



व-हिदी वा संस्कृत वर्णमाला का उन्तीसवाँ व्यंजन वर्ण, जो वकार का विकार और अंतस्थ अर्द्धव्यंजन माना जाता है। इसका उच्चारण स्थान दंत्योष्ठ है; अर्थात् दाँत और ओष्ठ से इसका उच्चारण होता है। प्रथम ईष्यस्वरूप होता है; अर्थात् उच्चारण के समय दाँतों का ओष्ठ से कुछ स्पर्श होता है। हिंदी में इस वर्ण का उच्चारण अधिकतर केवल ओष्ठ से होता है, केवल संस्कृतभाषी लोग ही शुरु दंत्योष्ठ उच्चारण करते हैं।

वंक-वि० [ सं० ] वृक्ष का नाम। देवा। वक।  
 वंहा पुं० [ सं० ] नदी का मोड़। वंकर।  
 वंकट-वि० [ सं० वंक ] (१) देवा। बंका। (२) कुटिल। जो सीधा न हो। (३) विकट। दुर्गम। उ०—वही है धूपट-पट की ओट। मनो कियो किर मान मवासो मन्मथ वंकट फोट।—चूर।

वंकनाल-वंहा पुं० [ सं० ] शरीर की एक नदी का नाम।  
 वंकनाली-वंहा स्त्री० [ हि० वंक + नाली ] साधुओं की बोलचाल में सुपुगता नामक नदी, जो मध्य में मानी गई है। उ०—बंकादि सदा रस पीषी, तब गड्डु मनुवाँ कहीं न जाय।  
 वंहा स्त्री० [ सं० ] वंहा नामक जीव को कैरे सहाय।—वृद्ध।

वकर-वंहा पुं० [ सं० ] यह स्थान जहाँ से नदी मुड़ी हो। नदी का मोड़।

वंकसेन-वंहा पुं० [ सं० ] भगल का वृद्ध।  
 वंका-वंहा स्त्री० [ सं० ] चारजामे की भगली मेंठी।  
 वंकाटक-वंहा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम।  
 वंकाहा-वंहा स्त्री० [ सं० ] बंगाल की प्राचीन राजधानी का नाम जिसके कारण उस देश का बंगाल नाम पड़ा। (राजतरंगिणी)  
 वंकिम-वि० [ सं० ] ईष्य वक। कुछ देवा या दुका हुआ।  
 वंहा।

वंगिल-वंहा पुं० [ सं० ] कंकड़ का टोटा।  
 वंका-वंहा स्त्री० [ सं० ] (१) पशुओं की पसली की दड़ी। (२) कौड़ी। कपड़ी। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का वाजा।  
 वंहा-वंहा पुं० [ सं० ] मूत्राशय और जंघास्थल का संधि स्थान। यह स्थान जो पेट और शिप के बीच में है और जहाँ 'पथी' नामक रोग की गति निकला करती है।  
 वंहा-वंहा स्त्री० [ सं० ] भास्सस नदी जो हिंदुकुश पर्वत से निकलकर मध्य एशिया में बहती हुई भारत समुद्र में गिरती है।

विशेष—इस नदी का नाम वेदाँ में कई जगह आया है। उरणों में यह केदनाल वर्ण की एक नदी कही गई है।

महाभारत में इसकी गणना पवित्र नदियों में की गई है। रघुवंश की प्राचीन प्रतिभों में भी रघु के दिग्विजय के अंत गंत इस नदी का उल्लेख है और इसके किनारे हूणों का बस्ती कही गई है।

वंग-वंहा पुं० [ सं० ] (१) नागध या विहार के पूर्व पड़नेवाला प्रदेश। बंगाल।

विशेष—जम्बूद्वीप में सब से पूर्व पड़नेवाले जिस प्रदेश का उल्लेख है, वह "कीकट" (मगध) है। अथर्वसंहिता 'अंग' देश का भी नाम मिलता है। संहिताओं में 'वं' नाम नहीं मिलता। पुराण आख्यक में ही सब से पहले वं देश की बर्चा आई है; और यहाँ के निवासियों की दुर्बलता और दुरादार आदि का उल्लेख पाया जाता है। बात यह है कि संहिता काल में कीकट और वंग देश में अनाथ्यों का ही निवास था। आर्य लोग यहाँ तक न पहुँचे थे। बौद्ध धर्म प्रसृत्य में लिखा है कि वंग, कलिंग, पुंड्र आदि देश में जानेवाले को लौटने पर पुनलौम यज्ञ करना चाहिए मनुस्मृति में तीर्थ यात्रा के लिये जाने को आला है। इस जान पड़ता है कि उस समय आर्य वहाँ बस गए थे शतयुग महाजन के समय में सिंधिल में विदेह वंश प्रतिष्ठित था। रामायण में प्रागज्योतिषपुर (रंगपुर से लेकर भासा तक प्रागज्योतिष प्रदेश कहलाता था) की स्थापना का उल्लेख है।

महाभारत (आदि पर्व) में लिखा है कि क्षत्रिय राज बलि को कोई संतति न हुई। तब उन्होंने अंधे दीर्घवत क्षत्रि द्वारा अपनी राणी के गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न कराए जिनके नाम हुए—अंग, वंग, कलिंग, पुंड्र और मुद्ग इन्हीं के नाम पर देशों के नाम पड़े।

(२) रौंग नाम की धातु। (३) रौंगे का मस। (४) कलात। (५) वेगल। गंटा।

वंगज-वंहा पुं० [ सं० ] (१) सिद्ध। (२) पीतल।  
 वि०—(१) बंगाल में उत्पन्न होनेवाला। (२) बंगाली।

वंगजीधन-वंहा पुं० [ सं० ] चाँदी।  
 वंगन-वंहा पुं० [ सं० ] बंगल।  
 वंगमल-वंहा पुं० [ सं० ] सीसा नामक धातु। प्राचीनों की यह धारणा थी कि रौंग और सीसा दोनों एक ही धातु हैं और वे सीसे को रौंग का मूल मूलकते थे।

वंगसेन-वंहा पुं० [ सं० ] बंगाल, कलकत्ता भारत।  
 वंगारि-वंहा पुं० [ सं० ] हरताल।

वंगाली-वंहा स्त्री० [ हि० वंगाल ] मैत्रक रास की एक रागिणी।  
 विशेष—यह ओद्वेक जानि की है और इसमें परम तथा धैर्य

स्वर नहीं लगते। कछिनाथ के मत से यह संपूर्ण जाति की है और हूचमें दो बार मध्यम आता है।

**यंगायक-छंदा पुं० [ सं० ]** एक रसौपय जिसमें रौंगा आदि आठ धारुएँ एक साथ मिलाकर फूँकी जाती हैं। यह प्रमेह रोग पर दिया जाता है।

**विशेष**—पारा, गंधक, कोहा, चाँदी, स्वपरिया, भद्रक और ताँबा बराबर लेकर जितना सब हो, उतना रौंगा लेकर सप को एक साथ मर्दन करके गजपुट द्वारा फूँकते हैं। जब मसम हो जाता है, तब उसको यंगायक कहते हैं। यंगायक की मात्रा दो रसी है; और मयु, हलदी के घृण तथा आमले के रस में इसे खाते हैं।

**वंगेश्वर-छंदा पुं० [ सं० ]** एक प्रसिद्ध रस।

**विशेष**—पारे का मसम ८ तोला, यंग का मसम ८ तोला, ताँबे का मसम ३२ तोला और गंधक ३२ तोला लेकर मदार के दूध में मलकर फिर पिंटी बनाकर भूपर यंग द्वारा फूँकते हैं। जब मसम हो जाता है, तब उसे वंगेश्वर कहते हैं। इसकी मात्रा २ रसी है। इसे रुक्मोदर रोग में घी के साथ देते हैं; और ऊपर से पुनर्नवा का रस और गोमूत्र या हल्दी का रस पिछाते हैं।

**यंचक-वि० [ सं० ] (१)** पूषा। घोषेबाज़। टग। (२) छल।

**छंदा पुं० (१)** गीदड़। (२) सौंधियार। (३) चोर। टग।

**यंचन-छंदा पुं० [ सं० ] [ वि० ]** धोखा देना या खाना। धूरा। टगी।

**यंचना-छंदा की० [ सं० ]** धोखा। जाल। फ़रेब। छल।

छ कि० छ [ सं० बंचन ] धोखा देना। टगना। ड०—  
दुंभ विलोहयो कलह जो, दिही नगरी जाह। यंचतु जग  
कैसे फिरतु मो पै चरनि न जाह।—केनाथ।

‡ कि० स० [ सं० वाचन ] पढ़ना। पाँचना।

**यंचित-वि० [ सं० ] (१)** चोरे में आया हुआ। जो टगा गया है। (२) भला किया हुआ। (३) विमुक्त। जलग। हीन। रहित। जैसे,—ई हूख हुआ से यंचित रखा गया हूँ।

**यंचुल-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** यँत। (२) तिमिर का पेंद। (३) अशोक का पेंद। (४) स्वल्पप्र। (५) एक प्रकार के पक्षी का नाम।

**यंचुला-छंदा की० [ सं० ] (१)** दुपारी गाय। (२) एक नदी का नाम जो मध्यपुराणासुरा सहायि पर्वत से निकलती है।

**यंचुलावती-छंदा की० [ सं० ]** एक नदी का नाम जो दक्षिण के एक पर्वत से निकलती है।

**यंच-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** भाग। बाँट। (२) हँसिया आदि की मूढ़। यँठ। (३) जिसकी पूँठ न हो या कट गई हो। हँहरा। चाँड़ा। (४) अविवाहित पुत्रप।

**यंचक-छंदा पुं० [ सं० ]** भाग। बाँट।

वि० बाँटनेवाला। विभाजक।

**यंचाल-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** यूरों का युद्ध। (२) नौका। (३) सोदने का औजार। खनती।

**यंच-वि० [ सं० ]** जिसका कोई अंग खंडित हो। हीनांग। जैसे—  
छला, हँहरा, खंजा आदि।

**यंचा पुं० (१)** अविवाहित पुत्रप। (२) दास। (३) वामन। बौना। (४) कुंत। भाछ।

**यंचर-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** ताड़ के दूध का कोंपक। (२) बाँध के कटे का वह मोटा पसा जो उसे छिगाए रहता है। यह पसा गाँठ गाँठ पर होता है और बहुत कड़ा तथा भूरे रंग का होता है। (३) कुत्ते की पूँठ। (४) यह रस्ती जिससे यकरी, गाव आदि को गले से बाँधते हैं। (५) स्तन। घन। (६) मेव। (७) कुला।

**यंचाल-छंदा पुं० दे० "यंचाल"।**

**यंच-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** वह जिसकी किंग्रिय के अम भाग पर यह चमड़ा न हो, जो सुपारी को बाँके रहता है। (२) अजसंग नामक रोग।

**पय्यां०—दुखमां। दिनमक। तिपिपिठ।**

वि० चाँड़ा। हीनांग।

**यंचर-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** मक्खीचूस। सूम। कंयूस। (२) यह नरुंसक जो अंतापुर का रसक हो। खोना।

**यंचा-छंदा की० [ सं० ]** पुंथली की।

**यंचन-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** स्तुति और प्रणाम। पूजन।

**विशेष**—यंचन योद्गोपचार पूजन में है। यह समस्त पद के अंत में 'यंचन' शब्द से पूजित या पूज्य का अर्थ देता है। जैसे,—जायंयन।

(१) शरीर पर घनापु हृप तिलक आदि चिह्न। (२) एक विष का नाम। (३) एक अक्षर का नाम। (४) एक ऋषि का नाम। (५) यंचाक। चाँदा।

**यंचनमाल, यंचनमाला-छंदा की० [ सं० ]** यंचनगाय।

**यंचनघार-छंदा की० [ सं० यंचनमाल ]** वह माला जो समापक के लिये घाँों के द्वार पर या मंडप के घाँों और उरखंड के समय बाँधी जाती है। ड०—सेजहि सुघारै एक, रोसनी उधरै एक, बाँधती यंचनघारै धारै फूल बचारी की।—राम।

**विशेष**—हस्त माला में फूल पत्रियाँ गुठी रहती हैं। यंचादि में आम के पत्तय गूँथे जाते हैं।

**यंचना-छंदा की० [ सं० ] [ वि० बंधित, यंचनीय ] (१)** स्तुति। (२) प्रणाम। यंचन। (३) यह तिलक जो होम के मसमें से यंच के अंत में लगाया जाता है।

**यंचनी-छंदा की० [ सं० ] (१)** स्तुति। (२) जीवापु नामक औषधि। (३) मोरोचन। (४) तिलकादि चिह्न जो शरीर पर बनाए जाते हैं। (५) याचनाकर्त्ता। (६) घरी।

वन्दनीय-वि० [ सं० ] वन्दना करने योग्य । आदर करने योग्य ।  
 वंदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दूसरे पेड़ों के ऊपर उसी के रस से पलने-  
 वाला एक प्रकार का पौधा । वंदाक । बौंदा ।

पर्याय—वृशदादनी । वृशरक्षा । वंदाका । जीवंतिका । शेरली ।  
 सेम्या । वंदका । वंदक । नीलवल्ली । वंदाकी । परवास्तिका ।  
 वसिती । पुत्रिणी । वंदा । परपुष्टा । पराधरा । कामवृक्षा ।  
 केतुष्पा । गंधमादनी । कामिनी । इयामा । कामवृक्ष ।

विशेष—इसका स्वाद तिक्त होता है, और वैद्यक में यह कफ,  
 पित्त तथा श्रम को दूर करनेवाला कहा गया है ।

वंदाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्तोत्र । (२) बौंदा । वंदाक ।  
 वि० वंदवनील ।

वंदिप्राह-संज्ञा पुं० [ सं० ] दाह ।

वंदित-वि० [ सं० ] पूज्य । आदरणीय ।

वंदी-संज्ञा पुं० दे० "वदी" ।

वंदीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्र ।

वंदीगृह-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैदखाना ।

वंदीजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजाओं आदि का यश वर्णन करनेवाली  
 एक प्राचीन जाति ।

वंद्य-वि० [ सं० ] वंदना करने योग्य । वंदनीय । आदरणीय ।  
 पूजनीय ।

वंधु-संज्ञा पुं० दे० "बंधु" ।

वंधुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रथ या गाड़ी का आश्रय जिसमें  
 दोनों तरफे और धुरा प्रधान हैं । (२) गाड़ी में का यह स्थान  
 जहाँ सारथी या गाड़ीवान बैठकर उठे चलता है ।

वंश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बॉस । (२) बेंडेर । (३) पीठ की  
 हड्डी । (४) नाक के ऊपर की हड्डी । बॉसा । (५) बॉसुरी ।  
 (६) एक प्रकार की हंस । (७) लड्डा के बीच का यह भाग  
 जो ऊँचा होता है, अर्थात् जहाँ पर वह अधिक चौड़ा होता  
 है । (८) शराह हाथ का एक भाग । (९) बाहु आदि की  
 छव्ही हड्डियाँ । (१०) युद्ध की सामग्री । शिमे, रथ, चंज  
 ह्यादि । (११) विष्णु । (१२) वंशलोचन । (१३) कुल ।  
 शो—वंशज । वंशकृद्व । वंशस्य । वंशच्छेद ह्यादि ।

वंशश्रुति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे ऋषि जिनके नाम वंश माह्वण में  
 आए हैं ।

वंशकंज-संज्ञा पुं० [ सं० ] काले अंगर की छकड़ी । कृष्णागुद ।

वंशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अंगर नामक गंध द्रव्य । अगुद ।  
 (२) एक प्रकार की मछली । (३) एक प्रकार का गधा या  
 हंस ।

विशेष—वैद्यक में इसे शीतल, मधुर, त्रिपि, पुष्टिकारक,  
 सारक, क्षुब्ध और कफनाशक लिखा है । इसके रस का  
 स्वाद कृक क्षारीयण किपु और भारी होता है । इसे  
 'कृकल' कहते हैं ।

(४) छोटी जाति का बॉस ।

वंशकपूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वंशकपूर । वंसलोचन ।

वंशकफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेमल आदि का घृभाजो भाकार में उड़ता  
 कित्ता है ।

वंशकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पुरुष जिससे किसी वंश का भारभ  
 हुआ हो । मूलपुत्रप ।

वंशकरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मार्कण्डेयपुराणानुसार एक नदी जो  
 महेंद्र पर्वत से निकलती है । वंशधरा ।

वंशकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधक ।

वंशकोरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वंसलोचन ।

वंशकटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दिव्यावदान के अनुसार एक प्रकार  
 का खेल ।

वंशज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बॉस का चावल । (२) पुत्र । (३)  
 कुल में उत्पन्न पुरुष । संतान । संतति । बीजाद ।

वंशज-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वंसलोचन । (२) कन्या ।

वंशजितिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक छंद का नाम ।

वंशधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुल में उत्पन्न । वंशज । संतति ।  
 संतान । (२) वंश की मर्यादा रखनेवाला ।

वंशधारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकली  
 है । यह नदी मध्य प्रदेश में है । इसे वंशकरा भी कहते हैं ।

इसका आधुनिक नाम वंशधारा है ।

वंशधाम्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] बॉस का चावल ।

वंशानर्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] वंशानर्त्त । बौद्ध ।

वंशानश-संज्ञा पुं० [ सं० ] कलित ज्योतिष के अनुसार एक योग  
 जो शनि और शुक के सूर्य के क्षाय एक क्षण में, विदोपतः  
 पंचम में, पदने पर होता है ।

वंशान्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] हंस के अंडरवाले बंटल जिन्हें जमीन में  
 गादने से हंस का गया पौधा उत्पन्न होता है । अर्शा ।

वंशपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] हरताल ।

वंशपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार की हंस जो छकड़  
 होती है । (२) एक प्रकार की मछली । (३) हरताल ।

वंशपत्रपतित-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक छंद का नाम ।

वंशपत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार की हींग । (२) एक  
 भास जिसे बॉसा कहते हैं । इसकी पत्तियाँ बॉस की पत्तियों  
 से निकली हैं । वैद्यक में यह शीतल, मधुर, रुचिकारी तथा  
 रक्त पित्त के दोषों को नाश करनेवाली कही गई है ।  
 पर्याय—वंशरक्षा । अंतिका । जीर्णपत्रिका । वैशुपत्री । विंदा ।  
 शिराटिका ।

वंशपीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुग्गुलु ।

वंशप्रह्वण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सामवेद के ब्राह्मणों में एक प्रधान  
 ब्राह्मण, जिसमें सामवेदी ब्राह्मणों के वंशकार ऋषियों की  
 नामावली है ।

वंशरोचना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वंशलोचन ।

वंशलोचन—संज्ञा पुं० [ सं० ] वंशलोचन ।

पय्यां०—ख्वक्षीर । वंशलोचना । तुगाक्षीरी । वांशी । वंगजा । क्षीरिका । तुंगा । ख्वक्षीरी । शुभ्रा । शुभा । वंशक्षीरी । ख्वक्षसारा । कर्मरी । शोला । वंशकपूर । रोचना । रोचनिवा । विगा । वंशशर्करा । वेणुलवण । वैणवी ।

वंशलोचना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वंशलोचन ।

वंशशर्करा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वंशलोचन ।

वंशशलाका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धीन, सितार आदि वाजों का ढंडा ।

वंशस्थं—संज्ञा पुं० [ सं० ] बारह वर्षों का एक पणवृत्त जिसका व्यवहार संस्कृत काव्यों में अधिक मिलता है । इसमें जाग, हाग, जाग और रगण आते हैं । जैसे,—प्रया जु वंशस्थ विलंबि धावती । नसाप तीनों कुल को लजावती । इसे 'वंशस्थविल' भी कहते हैं ।

वंशहीन—वि० [ सं० ] (१) जिसके वंश में कोई न हो । निर्बंश ।

(२) अनुप ।

वंशानुचरित—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन राजवंशों की कथा ।

विशेष—यह पुराणों के लक्षणों में से एक है ।

वंशावली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किसी वंश में उत्पन्न पुरुषों की पूर्वोत्तर क्रम से सूची ।

वंशिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अगर कीलकड़ी । (२) फाड़ा गन्ना । केतार ।

वंशिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अगर की लकड़ी । (२) बंसी । मुरली । (३) पिपली ।

वंशी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मुँह से फूँकर बनाया जानेवाला एक प्रकार का बाजा जो बॉस में सुर निकालने के लिये छेद करके बनाया जाता है । बॉसरी । मुरली ।

विशेष—पुरातन ग्रंथों में लिखा है कि वंशी बॉस ही की होनी चाहिये, पर और, छालचंदन आदि की लकड़ी की भयवा सोने, चाँदी की भी हो सकती है । यह वास्तव में बॉस की एक फोड़ी नली होती है, जिसके बनानेवाले छोर पर एक जीभ लगी होती है और दूसरी ओर नली के ऊपर एक पंक्ति में सुर निकलने के छेद होते हैं । मातंग ऋषि का मत है कि नली का छेद कनिष्ठा अँगुली के मूल के बाहर होना चाहिये । जो छोर मुँह में रखकर फूँका जाता है, उसे 'पूकाररंभ' और सुर निकालनेवाले सात छेदों को 'ताररंभ' कहते हैं । इस बंधों के अतिरिक्त मातंग के अनुसार चार प्रकार की मुरलियाँ और होती हैं, जिन्हें मदागंदा, नंदा, विजया और जया कहते हैं । मदागंदा में ताररंभ पूकाररंभ से दस अंगुल पर, नंदा में ग्यारह अंगुल पर, विजया में बारह अंगुल पर और जया में चौदह अंगुल पर होते हैं । आज

कल यह वंशी जो एक साथ दो बजाई जाती है, अलमोज कहलाती है । प्राचीन काल के गोपों में इस बाजे का प्रचार बहुत था ।

यौ०—वंशीघर ।

(२) चार वर्ष का एक मान जो आठ तोले के बराबर होता है । (३) वंशलोचन ।

वंशीघर—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीकृष्ण, जो वंशी बजाया करते थे वंशीय—वि० [ सं० ] वंशीज्व । कुल में उत्पन्न । जैसे,—वंद-वंशीय ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग धार्मिक शब्दों के अंत में हुआ करता है ।

वंशीघट—संज्ञा पुं० [ सं० ] वृंदावन में वह बरगद का पेड़ जिसके नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे ।

वंशीवादन—संज्ञा पुं० [ सं० ] वंशी बजाना ।

वंशीज्वय—वि० [ सं० ] वंदाज । कुल में उत्पन्न ।

वंशीज्वया—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वंशलोचन ।

वंश्य—वि० [ सं० ] वंशी । वंशज ।

संज्ञा पुं० (१) पीठ की रीढ़ । (२) वह बड़ी लकड़ी जो छाजन के बीघाबीघ रीढ़ के समान होती है । बँदेर ।

घ—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घायु । (२) वाण । (३) वल्ल । (४) बाहु । (५) मंत्रण । (६) कल्याण । (७) संतवन । (८) बसति । बस्ती । (९) चरणालय । समुद्र । (१०) शार्दूल । (११) वज्र । (१२) कोई का कंद । सेरकी । (१३) जल में उत्पन्न होनेवाले बँदे । शालक । (१४) बंदन । (१५) अक्ष । (१६) खड्गधारी पुरुष । (१७) मूर्वा मानक छता । (१८) वृक्ष । (१९) कलदा से उत्पन्न ध्वनि । (२०) मद्य । (२१) प्रचेता ।

वि० बलवाग् ।

भ्रव्य० [ प्रा० ] और । जैसे,—राजा व रईस ।

वक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बगला नाम का पक्षी । (२) भगस्त का पेड़ या फूल । (३) एक दैत्य का नाम जिसे श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में मारा था । (४) एक राक्षस जिसे भीम ने मारा था । (५) कुवेर । (६) एक वंश का नाम । (७) एक जाति का नाम ।

वककच्छु—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद जो नर्मदा के किनारे था ।

विशेष—कथासरित्सागर में लिखा है कि दण्डिनी के राजा सातवाहन सर्वधर्मा ने कलाप व्याकरण का अध्ययन करके अपने गुरु को यह रावण गुरुवक्षिण में दिया था ।

वक्राचविका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की छोटी मंडली ।

वकजित्—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रीकृष्ण । (२) भीमसेन ।

वकनख—संज्ञा पुं० [ सं० ] विधामित्र के एक पुत्र का नाम ।

वक्रपञ्चक-संज्ञा पुं० [ सं० ] काविक के मुख्य पक्ष की पूरुवरी से लेकर पूर्वमा तक की पाँच तिथियाँ ।

वक्रपञ्च-संज्ञा पुं० [ सं० ] भासव आदि भयके से उतारने के लिये एक पंज या भारतन, जिसके मुँह पर बगले की गरदन की तरह देवी नली लगी रहती है ।

वक्रवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घोसा देकर काम निकालने की घात में रहने की वृत्ति । कदापार ।

वक्रप्रल-संज्ञा पुं० [ सं० ] बगले की तरह घात में रहनेवाला । कपटी मनुष्य ।

वकालत-संज्ञा स्त्री० [ भ० ] (१) दूसरे के किसी काम का मार लेना । दूसरे के स्थानापन्न होकर काम करना । (२) दूसरे का सँदेसा जोर देकर कहना । दूतधर्म । (३) दूसरे के पक्ष का मंडन । दूसरे की ओर से उसके अनुकूल श्रावणीत करना । जैसे,—बढ़ें जो कुछ कहना होगा आप कहेंगे, तुम क्यों उनकी ओर से वकालत करते हो । (४) अदालत या कचहरी में किसी मामले में वादी या प्रतिवादी की ओर से प्रश्नोत्तर या वादविवाद करने का काम । मुकदमे में किसी फरकी की तरफ से बहस करने का पेशा ।

मुहा०—वकालत चलना या चमकना = वकालत के पेशे में भागदानी होना । वकालत जमना = वकालत के पेशे में लग्न होने लगना ।

यो०—वकालतनामा ।  
वकालतन-किं० वि० [ भ० ] वकील के द्वारा । असालतन का उलटा ।

वकालतनामा-संज्ञा पुं० [ भ० + का० ] वह अधिकारपत्र जिसके द्वारा कोई किसी वकील की अपनी तरफ से मुकदमे में बहस करने के लिये मुकदमे करता है ।

वकालत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम । विशेष—इस नाम के दो राक्षस हुए हैं । एक को श्रीकृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था में मारा था । यह पूतना नाम की राक्षसी का भाई और फंस का अनुचर था । दूसरे को भीमसेन ने उस समय मारा था, जब पाँचों पांडव लांछा-गृह से निकलकर वन में जाकर रहते थे ।

वकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक राक्षसी का नाम ।

वकील-संज्ञा पुं० [ भ० ] (१) दूसरे के काम को उसकी ओर से करने का भार लेनेवाला । (२) दूसरे का सँदेसा ले जाकर उस पर जोर देनेवाला । दूत । (३) राजनृत्य । पुरुषी ।

उ०—सुरत कपी मयाव के है आनंद सरीर । तब वकील बिमती करी कथा पाद अदुबीर ।—पुद्गल । (४) प्रतिनिधि । (५) दूसरे का पक्ष मंडन करनेवाला । दूसरे की ओर से उसके अनुकूल बात करनेवाला । (६) कानून के अनुसार वह भादमी जिसने वकालत की परीक्षा पास की हो और जिसे

हार्दकोर्ट की ओर से अधिकार मिला हो कि वह अदालतों में मुद्दई या मुद्दालेह की ओर से बहस करे ।

वकुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] भासत का पेड़ या फूल ।

वकुला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुटकी नामक भोपधि ।

वकुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काकोली नाम की भोपधि । (२) वकुल । मौलसिरी ।

वकूच-संज्ञा पुं० [ भ० ] घटित होना । प्रकट हो ।

मुहा०—वकूच में आना = प्रकट होना । घटित होना ।

वकूच-संज्ञा पुं० [ भ० ] (१) जानकारी । ज्ञान । (२) बुद्धि । समझ । यो०—वकूच = मूल ।

वक-संज्ञा पुं० [ भ० ] (१) समय । काल ।

मुहा०—वक फलना = (१) किसी प्रकार समय बिगाना । (२) जो बहलाना । वक की चीज = (१) किसी समय या पक्ष विशेष में मिलनेवाली चीज । (२) किसी विशेष समय में गाया जानेवाला गीत या राग । जैसे,—कोई वक की चीज गावृष्ट । वक खोना = समय नष्ट करना ।

(२) किसी बात के होने का समय । अवसर । मौका ।

मुहा०—वक पर = अवसर आने पर । कोई विशेष परिस्थिति होने पर । जैसे,—हूसे रक्ष छोदो, वक पर काम आवेगी । वक ताकना = मौका देखना । इन बात की प्रतीक्षा में रहना कि कब कयुक्त अवसर मिले और कोई बात करे । वक हाथ से देना = अवसर चुकना । मौका आने पर भी काम न करना । (३) इतना समय कि कोई काम किया जा सके । भयकाया । सुरसत ।

कि०प्र०—निकलना ।—निकालना ।—मिलना ।

(४) मरने का नियत समय । मृत्युकाल ।

कि० प्र०—आ जाना ।—आ पहुँचना ।

वक्तन फौफतन-कि० वि० [ भ० ] (१) यदकदा । कभी कभी । (२) यथासमय ।

वक्तव्य-वि० [ सं० ] (१) करने योग्य । वार्य । (२) कुछ करने सुनने लायक । (३) हीन । तुच्छ ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कथन । वचन । (२) वह बात जो किसी विषय में कहनी हो ।

वका-वि० [ सं० वक् ] (१) वाग्मी । बोलनेवाला । (२) भाषण-पटु । यद्वाच्य ।

संज्ञा पुं० कथा कहनेवाला पुरुष । व्यास । उ०—सूत हर्द कथा, मागवत की कहत है त्रुपि अटासी सहस्र हृते शोवा ।

राम की देधि सभमान सब ही कियो सूत त्रिह उद्यो तिन जानि वक्ता ।—धर ।

वक्तृता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वाग्मिता । वाक्पटुता । (२) व्याख्याता । (३) कथन । भाषण ।

संज्ञा पुं० कथा कहनेवाला पुरुष । व्यास । उ०—सूत हर्द कथा, मागवत की कहत है त्रुपि अटासी सहस्र हृते शोवा ।

राम की देधि सभमान सब ही कियो सूत त्रिह उद्यो तिन जानि वक्ता ।—धर ।

वक्तृता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वाग्मिता । वाक्पटुता । (२) व्याख्याता । (३) कथन । भाषण ।

संज्ञा पुं० कथा कहनेवाला पुरुष । व्यास । उ०—सूत हर्द कथा, मागवत की कहत है त्रुपि अटासी सहस्र हृते शोवा ।

राम की देधि सभमान सब ही कियो सूत त्रिह उद्यो तिन जानि वक्ता ।—धर ।

वक्तृता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वाग्मिता । वाक्पटुता । (२) व्याख्याता । (३) कथन । भाषण ।

संज्ञा पुं० कथा कहनेवाला पुरुष । व्यास । उ०—सूत हर्द कथा, मागवत की कहत है त्रुपि अटासी सहस्र हृते शोवा ।

घकृत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वक्रता। वाग्मिता। (२) व्याख्यान।  
(३) कथन।

घकृ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मुख। (२) तगर की जड़। (३) एक प्रकार का छंद जो अनुपदुम छंद के अनुरूप होता है। (४) काम का आरंभ।

यो—घकृज।

घकृताल-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह ताल जो मुँह से उल्लस किया जाय। जैसे, बंटी की बजाने से या मुँह में धातु भरकर छोड़ने से।

घकृमुंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] गणेश।

घकृदल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ताल।

घकृबाहु-संज्ञा पुं० [ सं० ] चारही कंद।

घकृवास-संज्ञा पुं० [ सं० ] नारंगी।

घकृगुल्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुंजा। घुँघरी।

घकृसव-संज्ञा पुं० [ सं० ] झाला। घूक।

घकृफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह मूमि या संपत्ति जो धर्मायं दान कर दी गई हो। किसी धर्म के काम में लगी हुई जायदाद।

क्रि० प्र०—करना।

(२) किसी धर्म के काम में धन आदि देना। धर्मायं दान।

(३) किसी के लिये कोई चीज या धन संपत्ति आदि छोड़ देना। (क०)

घकृनामा-संज्ञा पुं० [ सं० वक्र + भा० नामा ] वह पत्र जिसके अनुसार किसी के नाम कोई चीज वक्र की जाय। दानपत्र।

घकृफा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भवकाश। अंतर। छुटी। मोहलत।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।

(२) काम करने से विराम।

क्रि० प्र०—मिलना।

घकृ-वि० [ सं० ] (१) टेढ़ा। बाँका। झुका का उलटा। (२) झुका हुआ। तिरछा। (३) कुटिल। दबि पंच चलनेवाला। संज्ञा पुं० (१) नदी का मोड़। बाँका। (२) तगरपातुका। (३) शौचर। (४) शीम। मंगल। (५) रूढ़। (६) पर्यट। (७) यह ग्रह जिससे तीस संज्ञा के अंदर ही सूर्य हो। यक्षीमह। (८) एक राक्षस का नाम। (९) त्रिपुरासुर।

घकृकंदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] घैर का वृक्ष।

घकृगति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शीम। मंगल। (२) ग्रहलाघव के अनुसार वे ग्रह जो सूर्य से पंचवें, छठे, सातवें और आठवें हों। इस प्रकार मंगल ३३ दिन, बुध २१ दिन, बृहस्पति १०० दिन, शुक्र १२ दिन और शनि १८४ दिन बकी होता है।

घकृगल-संज्ञा पुं० [ सं० वक्र + गला ] एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँकर बजाया जाता है।

घकृगामी-वि० [ सं० घकृगामिन् ] (१) टेढ़ी चाल चलनेवाला। (२) शठ। कुटिल।

घकृगुल्फ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैंटा।

घकृच-सु-संज्ञा पुं० [ सं० ] तोता। शुक्र पक्षी।

घकृताल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। घकृनाल।

घकृतुंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुक्र पक्षी। तोता। (२) गणेश।

घकृदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूकर। सूअर।

घकृदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) टेढ़ी दृष्टि। (२) क्रोध की दृष्टि। (३) मंद दृष्टि।

घकृधर-संज्ञा पुं० [ हि० वक्र + धर ] द्वितीया का देवा। चंद्रमा धारण करनेवाले, शिव।

घकृनक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विभुन। लुगलखोर। (२) शुक्र पक्षी। तोता।

घकृनाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] घकृताल नाम का बाजा जो मुँह से फूँकर बजाया जाता है।

घकृनासिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] उल्लू।

वि० टेढ़ी नाकवाला।

घकृपुच्छ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुशा।

घकृपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भगस्त का पेड़। (२) पलना।

घकृय-संज्ञा पुं० [ सं० ] मूल्य। दाम।

घकृशल्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कढ़वा कढ़ू या पीया। (२) छाल फूल की निपलांगली।

घकृग-वि० [ सं० ] जिसका भंग देना हो।

संज्ञा पुं० (१) हंस। (२) सर्प। साँप।

घकृति-वि० [ सं० ] जो टेढ़ा हो गया हो।

घकृतिम-वि० [ सं० ] टेढ़ा। कुटिल।

घकृ-वि० [ सं० वक्रिन् ] अपने मार्ग को छोड़कर पीछे छोटने-वाला।

विशेष—फलित ज्योतिष में जो ग्रह अपनी राशि से एक चारगी दूसरी राशि में चला जाता है, उसे अतिवक्त्री या महावक्त्री कहते हैं। यह वक्रता मंगल आदि पाँच ग्रहों में ही होती है। वि० दे० "वक्रगति"।

संज्ञा पुं० (१) वक्र ग्रह। (२) यह प्राणी जिसके भंग जन्म से देदे हों। (३) सुहृदेव, जिन्होंने देवी युक्तियों से वैदिक मत का विरोध किया था।

घकृोक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार का काव्यालंकार जिसमें काकू या स्त्रेप से वाच्य-का और का और अर्थ किया जाता है। (२) काकूक्ति। (३) वह उक्ति जिसमें वक्ताकार हो। बहिरा उक्ति।

विशेष—किसी किसी भावार्थ ( जैसे "वक्रोक्तिजीवितम्" के कर्ता ) ने वाक्यानुष्य को ही काव्य की भाषा कह दिया है, जिसका और भावार्थों ने खंडन किया है।

वक्रोष्टिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ऐसी मंद हँसी जिसमें दर्शन न सुख, केवल अंत कुछ देदे हो जायें। मुसकान। स्मित।

वक्रस—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुभ्रत के अनुसार एक प्रकार का मय।  
 वक्र—संज्ञा पुं० [ सं० वक् ] (१) पेट और गले के बीच में पढ़नेवाला भाग जिसमें शिबों के स्तन और पुरुषों के स्तन के से चिद्र होते हैं। छाती। वरस्पल। (२) पैल।

वक्रःस्पल—संज्ञा पुं० [ सं० ] वर। छाती।

वक्षी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्निदत्ता।

वक्षु—संज्ञा पुं० दे० "वक्षु"।

वक्षीप्रिय—संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

वक्षीज—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन। कुच।

वक्षीयह—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन। कुच।

वक्ष्यमाय—वि० [ सं० ] (१) भाष्य। वक्तव्य। (२) जिसे कह रहे हों। जो कथन का प्रस्तुत विषय हो।

वगलामुखी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दस महाविद्याओं में से एक जिनकी पूजा का महोत्सव वर्षों में वर्णित है।

वगैरह—अव्य० [ सं० ] एक अव्यय जिसका अर्थ यह होता है कि "इसी प्रकार और भी समझिए"। इत्यादि। आदि। जैसे,—पंडित, लैट, हाथी वगैरह बहुत से जानवर यहाँ आए थे।

विशेष—इसका प्रयोग वस्तुओं की गिनाने में उनके नामों के अंत में संक्षेप या छावव के लिये होता है।

वखंडी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सारिका। मैना। (२) बघी। (३) एक शब्द का नाम।

वख—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शोला। शुक पक्षी। (२) सूर्य। (३) कारण।

खंडा पुं० [ सं० वच, वचन ] वचन। वाक्य।

वखर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मनुष्य के घुँह से निकला हुआ सार्थक शब्द। वाणी। वाक्य।

वख्या—हरा। सरस्वती। माझी। माया। गिरा। गीर्द्धी। भातरी। बाया। वगैरमावरा। प्याहार। लपित।

(१) कही हुई बात। कथन। उक्ति।

व्यौ—वचनवद। वचनगुति।

(१) व्याकरण में शब्द के रूप में वह विधान जिससे पुरुष या बहुवचन का बोध होता है। हिंदी में दो ही वचन होते हैं—पुरुषवचन और बहुवचन। पर कुछ और प्राचीन भाषाओं के समान संस्कृत में एक तीसरा वचन द्विवचन भी होता है।  
 वचनकारी—वि० [ सं० ] भाष्यकारी।

वचनगुति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैन धर्म के अनुसार वाणी का ऐसा संयम जिससे वह अग्रिम वृत्ति में प्रवृत्त न हो।

वचनसहितता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह परकीया नायिका जिसकी बातचीत से उसका उपपत्ति से प्रेम लक्षित या प्रकट होता हो। उ०—अंगन की छवि भूषन की रघुनाथ सराहि सप सियारतें। आपनी प्रीति, मया उनकी प्रगटी प्रगटे सुख के हियारतें। काहे को भाजु छियायति ही हमसों करि ये चतुराई की बातें। मैं निज कान सुनी जो कही यह काव्हि बखी सों गोपाल की बातें।

वचनविदग्धा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नायिकाओं का एक भेद। यह परकीया नायिका जो अपने वचन की चतुराई से नायक की प्रीति का साधन करती हो। उ०—अप छौं घर की धनी भावै धरै तब छौं तो कहूँ चित दैयो करो। पदमाकर ये यहरा अपने पछरान के संग चरैयो करो। अरु औरन के घर तैं हम सों तुम दूनी दुहावन लैयो करो। नित सौँस सुकरो हमारी दहा। हरि गैयन को दुहि जैयो करो।—पद्माकर।

वचनीय—वि० [ सं० ] कथनीय।

वखा पुं० विदा। शिकायत।

वखर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुक्कुट। (२) शंठ।

वखा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वच नाम की क्षोपवि। वि० दे० "वच"। (२) सारिका पक्षी। मैना।

वखुकी—संज्ञा पुं० [ सं० वख, प्रा० वख ] वर। छाती।

वखून—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भार। बोझ। (२) लौक। (३) मान। भय्यादा। गौरव।

वि० प्र०—रखना।

वखनी—वि० [ सं० वचन + ई ] (१) जिसका बहुत बोझ हो। भारी। (२) जिसका कुछ असर हो। मानने योग्य।

वखजह—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कारण। हेतु। (२) प्रकृति। (३) सरत।

वखजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० वख + जा ] (१) संघटन। वनावट। रचना। (२) बालकाल। सज्जजन। (३) रूप। आकृति। (४) दशा। अवस्था। (५) रीति। प्रणाली। (६) मुजरा। निवहा। कटती।

वि० प्र०—करना।—होना।

वखजावर—वि० [ सं० वखा + का० वर ] जिसकी बनावट या गदन आदि बहुत अच्छी हो। तरदार। दर्नीय।

वखजादारी—संज्ञा स्त्री० [ सं० + का० ] (१) कपड़े वगैरह पहनने का सुंदर ढंग। फैशन। (२) सजावट का उच्चम ढंग। (३) किसी प्रकार की सय्यादा आदि का अच्छी भाँति निबोह।

वखजास्त—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मंत्री या अमात्य का पद। वजीरी। (२) मंत्री या अमात्य का कार्य। (३) अमात्य का कार्यालय।



घञीका-संज्ञा पुं० [ घञ० ] (१) वृत्ति। (२) वह वृत्ति या आर्थिक सहायता जो विद्वानों, छात्रों, संयासियों, दीनों या मित्रों द्वारा रहस्यों आदि को दी जाती है। (३) वह जर या पाठ जो नियमपूर्वक प्रति दिन किया जाता है। (मुसलमान)

किं० प्र०—पढ़ना।

घञीकादार-वि० [ घञ० घञीका + का० दार ] घञीका पानेवाला।

घञोर-संज्ञा पुं० [ घञ० ] (१) वह जो बादशाह को रियासत के प्रबंध में सलाह या सहायता दे। मंत्री। अमात्य। दीवान। (२) शतरंज की एक गोटी, जो बादशाह से छोटी और शेष सब मोहरों से बड़ी होती है। यह गोटी आगे, पीछे, दाहिने, बाएँ और तिरछे निचर चाहे, उधर और जितने घर चाहे, उतने घर चल सकती है।

घञीरी-संज्ञा स्त्री० [ घञ० ] घञीर का काम या पद।

संज्ञा पुं० घोड़ों की एक जाति जो यरध्विस्तान में पाई जाती है। इस जाति के घोड़े पर्व पश्चिमी और दीर्घने में बहुत तेज होते हैं। इनके कंधे ऊँचे और मुँह चौड़े होते हैं।

घञ-संज्ञा पुं० [ घञ० उञ् ] नमाज़ पढ़ने के पूर्व शौच के लिये हाथ पौं आदि धोना। (मुसलमानों का नियम है कि नमाज़ पढ़ने के पूर्व ये पहले तीन बार हाथ धोते, फिर तीन बार कुट्टी करके नयनों में पानी देते हैं। फिर मुँह धोकर कुदनियाँ तक हाथ धोते हैं, और सिर पर पानी लीने हाथ फेले हैं। अंत में पौं धोते हैं। इसी आचार का नाम वज़ है।) उ०—का भो वज़ म मञ्ज कभीरे का मसजिद सिर नायें। हदया कपट निमाज़ गुजारी का भो मका जायें।—कबीर।

किं० प्र०—करना।

घञ्ज-संज्ञा पुं० [ घञ० ] (१) सत्ता। अस्तित्व। (२) शरीर। वेद। (३) सृष्टि। (४) प्रकृत या घटित होना। अभिगम्यक्ति।

मुहा०—घञ्ज पकड़ना = प्रकृत होना। अस्तित्व में आना।

घञ्ज में आना = उत्पन्न होना। प्रकृत होना। घञ्ज में आना = उपज करना।

घञ्जहात-संज्ञा स्त्री० [ घञ० घञ्ज का वङ् ११ ] कारणा का समूह।

विशेष—यह बहुवचन शब्द है; और इसका प्रयोग भी सदा बहुवचन में ही होता है।

घञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुराणानुसार माले के फल के समान एक दारु जो इंद्र का प्रधान दारु कहा गया है।

विशेष—इसकी उपरक्ति की कथा महाभारत-ग्रंथों और पुराणों में लिखी हुई है। ऋषभदेव ने उल्लेख है कि दधीचि ऋषि की हड्डी से इंद्र ने राक्षसों का ध्वंस किया। पृतरथ मालाज में इसका इस प्रकार विवरण है। दधीचि जब तक जीते थे, तब तक असुरों उन्हें देखकर भाग जाते थे। पर जब वे मर गए, तब असुरों ने उपासत मचाना आरंभ किया। इंद्र दधीचि

ऋषि की खोज में पुच्छर गए। वहाँ पता चला कि दधीचि का देहावसान हो गया। इस पर इंद्र उनकी हड्डी इकट्ठे करने लगे। पुच्छर क्षेत्र में उनके सिर की हड्डी मिली। उसी का वज्र बनाकर इंद्र ने असुरों का संहार किया। भागवत में लिखा है कि इंद्र ने वृषासुर का वध करने के लिये दधीचि से वज्र बनवाया था। मत्स्यपुराण के अनुसार जब विश्वकर्मा ने सूर्य को भ्रमण (खटाव) पर चढ़ाकर खरादा था, तब छिलकर जो तेज निकला था, उसी से विष्णु का चक्र, रुद्र का शूल और इंद्र का वज्र बना था। वामनपुराण में लिखा है कि इंद्र जब दिति के गर्भ में घुस गए थे, तब वहाँ उन्हें बालक के पास ही एक मांस पिंड मिला था। इंद्र ने जब उसे हाथ में लेकर देखाया, तब वह लंबा हो गया और उसमें सौ गाँठें दिखाई पड़ीं। वही पीछे कठिन होकर वज्र बन गया। इसी प्रकार और और पुराणों में भी मित्त मित्त कथाएँ हैं।

प्यार्या—ह्लादिनी। कुलिश। निदुर। पपि। शतकोरि। स्वर्। शंभ। दंभोलि। अशनि। स्वदसू। जंमारि। शतार। शतधार। आपोत्र। अज्ञज। गिरिकंठक। गो। अश्रोथ्य। दंभ इत्यादि।

वैदिक निबंध के अनुसार—विद्युत्। नेमि। हेति। नम। पवि। सूक्ष्। वृक। यथ। भर्क। वृत्स। कुलिश। तुज। तितंम। मेनि। स्वधिति। सायक। परशु।

(२) विद्युत्। विजली।

किं० प्र०—गिरना।—पढ़ना।

मुहा०—घञ्ज पड़े = देव से मारी दंड मिले। संभारना हो। (किथो)

(३) हीरा। (४) एक प्रकार का लोहा। फौलाद।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में वज्रलौह के अनेक भेद कहे गए हैं। यथा—नीलवर्ण, अरुणाव, मोरक, नागकेसर, तिलचिरांग, स्वर्णवज्र, दीवालवज्र, शोणवज्र, रोहिणी, कांकोल, प्रंथियवज्र और मदन।

(५) माला। बरछा। उ०—हरन रुक्मिणी होत है, दुहूँ और भद्र भीर। अति अघात, कष्ट नादिन सुसप्त, वज्र चर्छहि उयों भीर।—सूर। (१) उपोत्थि में २२ स्वतीपात योगों में से एक। (२) वास्तु विद्या के अनुसार वह स्तंभ (खंन) जिसका मध्य भाग अष्टकोण हो। (३) विष्णु के चरण का एक चिह्न। (४) अन्नक। (५) कोकिलश वृक्ष। (६) श्वेत कुश। (७) कौन्ती। (८) वज्रपुष्प। (९) धात्री। (१०) धूर का पेड़। सेहूँद। (११) कृष्ण के एक प्रवीर जो अनिरुद्ध के पुत्र थे। (१२) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (१३) पीढ़ मत में चक्राकर चिह्न। (१४) अकलवरीर नाम का पौधा।

वि० (१) वज्र के समान कठिन। बहुत कड़ा या मजबूत।

अर्थात् इदं और पुष्ट । धैर्य,—यह मसाला जब सूखेगा, तब वज्र हो जायगा । (२) घोर । दारुण । भीषण । उ०—वज्र अग्नि विराहिनि द्विय जात । सुलगि सुलगि दहि कै भइ धारा ।—जायसी ।

वज्रकण्ड-संज्ञा पुं० [ सं० ] हनुमान का एक नाम ।  
वज्रकण्डक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खुदी वृक्ष । यूहर । सेंहूँद । (२) कोकिलाक्ष वृक्ष ।

वज्रकण्डशालमाली-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाग्यत पुराण के अनुसार अष्टादश नरकों में से एक नरक का नाम ।

वज्रकण्ड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जंगली घूरन या जिमीकंद । (२) शककंद । कंदा । (३) ताल के वृक्ष का फूल ।

वज्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वज्रक्षार । (२) फलित श्रुतिय के अनुसार सूर्य के आठ उपग्रहों में से एक, जो सूर्य से तेरेसवों नक्षत्र होता है ।

वज्रकपाली-संज्ञा पुं० [ सं० ] वक्रकपालि चोदों की महायान शाखा के अनुसार एक बुद्ध का नाम ।

वज्रकारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] नख नामक सुगंधित द्रव्य ।

वज्रकालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बुद्ध की माता मायादेवी का एक नाम ।

वज्रकीट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कीड़ा जो पत्थर या काठ को काटकर उसमें छेद कर देता है ।

विशेष—कहते हैं कि गंडक नदी में इन कीटों के द्वारा काटी हुई सिखा ही नालग्राम की बरिया बन जाती है ।

वज्रकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक पर्वत का नाम । (२) हिमालय की चेदी पर का एक प्राचीन नगर ।

वज्रकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] मार्कण्डेय पुराण के अनुसार एक राक्षस जो भरक का राजा था ।

वज्रक्षार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक रसायन योग जिसका व्यवहार गुल्म, शूल, भजीर्ण, शोथ तथा मंदाग्नि आदि उदर रोगों में होता है ।

विशेष—सर्पिण, सैंधव, काच और सौषर्षक लवण तथा जवाहार और सजीसम भाग लेकर चूर्ण करते हैं, और उस चूर्ण को घूर के दूध में जिंगीकर तीन दिन तक छाया में सुखाते हैं । इसके उपरांत उस चूर्ण को भाक ( मदार ) के पत्तों में कपेटकर एक बड़े में गजपुट द्वारा कुँकते हैं । जब बड़ मरम हो जाता है, तब उसमें सोंठ, मिष, पीपल, चिकड़ा, अजवायन, जीरा और चित्रक ( चीता ) का चूर्ण डलाना ही सिखाकर सरल कर लेते हैं और दो टंक मात्रा में सेवन कराते हैं । इसका अनुपान उष्ण, जल, गोमूत्र, घी या कर्जी है ।

वज्रगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार एक बोधिसत्व का नाम ।

वज्रगोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीरवहूटी नाम का कीड़ा । इंद्रगोप ।

वज्रचर्मो-संज्ञा पुं० [ सं० ] वक्रचर्म ] शंख ।

वज्रजवाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विरोचन दैत्य की पत्नी का नाम । (२) कुंभकूप की पत्नी ।

वज्रहाकिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महायान शाखा के तांत्रिक बौद्धों की उपास्य ऋत्किनियों का एक वर्ग, जिसके अंतगत ये आठ ऋत्किनियाँ मानी जाती हैं—छास्या, माळा, गीता, गुप्ता, पुष्पा, धूपा, दीपा और गंधा । इनकी पूजा तिन्वत में होती है ।

वज्रतुंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गदद । (२) गणेश । (३) गीघ । (४) भरक । मच्छ । (५) यूहर । सेंहूँद ।

वज्रदंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अस्त्र का नाम जिसे इंद्र ने अर्जुन को प्रदान किया था ।

वज्रदंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चूहा । (२) सुअर ।

वज्रदंती-संज्ञा स्त्री० [ हिं० ] वज्र + दंत ] एक प्रकार का पेद या पीया ।

विशेष—इसकी दंतुचन अच्छी होती है और वैद्यक में इसकी जड़ यमनकारक कही गई है ।

वज्रदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्रगोप नाम का कीड़ा । वीर-वहूटी । (२) भागवत के अनुसार एक असुर का नाम ।

वज्रदुर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] यूहर का वृक्ष । खुदी । सेंहूँद ।

वज्रघट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र । (२) बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार भादि पुद्ग ।

विशेष—तिन्वत के तांत्रिक बौद्ध महातुसार ये प्रधान बुद्ध, प्रधान जिन, गुह्यपति तथा सप्त तयागतों के प्रधान मंत्री आदि, अर्थात् और वज्रसत्व हैं । अपदेवताओं ने इनसे द्वार मानकर प्रतिज्ञा की थी कि बौद्ध धर्म के विरुद्ध कभी भयन्न न करेंगे ।

वज्रनख-संज्ञा पुं० [ सं० ] गृसिंह ।

वज्रनाभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्फंद के एक अनुचर का नाम । (२) एक वानवराज । (३) राजा उषय के पुत्र का नाम ।

वज्रपाणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र । (२) माहाण । (३) बौद्धशास्त्रानुसार एक प्रकार की देवयोनि । (४) एक बोधिसत्व । ध्यानी बोधिसत्व ।

वज्रप्रभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक विषाघर का नाम ।

वज्रपाहु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र । (२) रुद्र । (३) भस्त्रि ।

वज्रमैरव-संज्ञा पुं० [ सं० ] महायान शाखा के बौद्धों के एक देवता, जिन्हें मूदान में 'प्रमातक तिब' कहते हैं । इनके अनेक मुख और हाथ माने जाते हैं ।

वज्रमणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] रीता ।

वज्रमुष्टि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र । (२) एक राक्षस का नाम । (३) जंगली घूरन ।

घञ्जम्बूकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मायपर्णी ।

घञ्जयोगिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संज्ञानुसार एक देवी । इसे चन्द्र-योगिनी भी कहते हैं ।

घञ्जस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्षत्रिय ।

घञ्जलेप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक मसाला या पलस्तर जिसका लेप करने से दीवार, मूर्ति आदि अत्यंत दृढ़ और मजबूत हो जाती हैं ।

विशेष—यह दो तरह से बगता है । एक में तो तेंदू और कैप के कच्चे फल, सेमल के फूल, घालुकी ( सलई ) के बीज, धन्वन की छाल और बब को लेकर एक द्रोण पानी में उबालते हैं । जब जलकर आठवाँ भाग रह जाता है, तब उसे उतारकर उसमें गंधा यिरोडा, बोल, गूगल, मिलापर्व, कुंदुर गोंद, राळ, अलसी और बेल का गूदा घोटकर मिलाते हैं । दूसरा मसाला इस प्रकार है । लास, कुंदुर गोंद, बेल का गूदा, गँगेरन का फल, तेंदू का फल, महूप का फल, मजीठ, राळ, बोल और भाँवला इन सब को द्रोण भर पानी में उबालते हैं । जब अष्टमांश रह जाता है, तब काम में लाते हैं ।

घञ्जवारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार कैमिनि, सुमंत, वैशंपायन, पुलस्त्य और पुलह नामक पाँच ऋषि, जिनका नाम लेने से घञ्जपात का भय नहीं रहता ।

घञ्जवाराहो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बौद्धों की एक देवी का नाम ।

(२) बुद्ध की माता मायादेवी का एक नाम ।

घञ्जविष्कम्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड़ के एक पुत्र का नाम ।

घञ्जवीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाकाल रुद्र का एक नाम ।

घञ्जवेग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक राक्षस का नाम । (२) एक विचार का नाम ।

घञ्जव्यूह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की सेना की रचना जो दुधारे खड्ग के आकार में स्थित की जाती थी ।

घञ्जवाष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैन मत के एक संन्याय का नाम जिसे घञ्ज स्वामी ने चलाया था ।

घञ्जवृंक्षला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैन मतानुसार सोलह महाविद्याओं में से एक ।

घञ्जसंघात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भीमसेन । (२) पत्थर जोड़ने का एक मसाला जिसमें आठ भाग सीसा, दो भाग कर्सा और एक भाग पीतल होता था । इससे पत्थर की जोड़ाई की जाती थी ।

घञ्जसंहत-संज्ञा पुं० [ सं० ] ललित विस्तर के अनुसार एक बुद्ध का नाम ।

घञ्जसारव-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्यानी बुद्ध का नाम ।

घञ्जसमाधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बौद्ध धर्म के अनुसार एक प्रकार की समाधि ।

घञ्जसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] हीरा ।

घञ्जसूर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बुद्ध का नाम ।

घञ्जहस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र ।

घञ्जांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्प । साँप । (२) हनुमान ।

घञ्जांगी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गवेषुक्त । कौदिला । (२) हनुमान नाम की स्त्रिया जो चोट लगने पर लगाई जाती है ।

घञ्जा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्तुही । धूर । (२) गुडुच । (३) दुर्गा ।

घञ्जाचार्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] नेपाली बौद्धों के अनुसार तांत्रिक बौद्ध आचार्य जिसे तिब्बत में छामा कहते हैं । यह गृहस्थ होता है और अपने पुत्र कलत्र के साथ विहार में रह सकता है । नेपाल और तिब्बत में ऐसे आचार्यों का बड़ा मान है ।

घञ्जाभियवन-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का अनुष्ठान जिसमें तीन दिन तक जौ का सत्त पीकर रहते थे ।

घञ्जाभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का अन्नक जो काले रंग का होता है ।

घञ्जायुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र ।

घञ्जावर्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक मेघ का नाम । उ०—सुनत मेघवर्तक सजि सैन छै आये । जलवर्त, वारिवर्त, पवनवर्त, घञ्जावर्त, आगिवर्तक जलद संग लाये ।—सूर ।

घञ्जासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दृढ योग के चौआठ भासनों में से एक जिसमें मुद्रा और लिंग के अन्वय के स्थानों को बाँटें पैर की धूप से दयाकर उसके ऊपर दाहिना पैर रखकर पालथी लगाकर बैठते हैं । (२) यह तिला जिस पर बैठकर बुद्ध देव ने बुद्धत्व लाभ किया था । यह गया जी में बोधिवृक्ष के नीचे थी ।

घञ्जी-संज्ञा पुं० [ सं० बभ्रिन् ] (१) इंद्र । (२) एक प्रकार की ईंट ।

संज्ञा स्त्री० (१) धूर । स्तुही । (२) तिषारा । नरसेज ।

घञ्जेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बौद्धों की एक देवी । (२) एक तांत्रिक अनुष्ठान जिसे घञ्जवाह्निका भी कहते हैं । इसमें वज्र बनाकर मंत्रों द्वारा अभिषेक करते हैं और उस पर सोने से मंत्र लिखते हैं । इसके उपरोक्त उस वज्र को किसी जितेंद्रिय पुरुष के हाथ में दे देते हैं और लाल वार मंत्र जप करके वज्रकुंड में हवन करते हैं । इस प्रयोग से पातुओं पर विजय प्राप्त होती है ।

घञ्जोली-संज्ञा स्त्री० [ हि० वज्र ] दृढ योग की एक मुद्रा का नाम ।

घट-संज्ञा पुं० [ सं० ] बरगद का पद ।

घटफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बड़ी दिक्किया या गोला । घटा । (२)

बद्धा। पकौदा। (३) एक सौल जो आठ माने की होती और सोना लौलने के काम में आती थी। इसे छुदम, द्रुशन और कोक भी कहते थे। १० गुना = १ मासा, ४ मासा = १ घोण, २ घोण = १ घटक।

घटच्छुद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेत बर्यंरी। सफेद बनगुलसी।

घटपत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घुसमल्लिका नामक फूल का पौधा।

घटपत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पाखान-भेद। पयरफोद।

घटर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घोर। (२) घटेर नामक पक्षी। (३) पगड़ी। (४) विस्तार। (५) मयानी।

घटसावित्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रत का नाम जिसमें छियाँ बट का पूजन करती हैं।

घटारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] रस्ती।

घटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बटी। गोली।

घटो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोली या टिकिया। बटी।

घट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बालक। (२) मद्रवारी। माणवक।

घट्टक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बालक। (२) माणवक। प्रस्यवारी। (३) एक भैरव। बटुकभैरव।

घटोदक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भागवत के अनुसार एक नदी जो पवित्र मानी जाती है।

घटर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बंधक नामक एक वर्णसंकर जाति। (२) शब्दकार।

वि० (१) सूख। (२) टाठ। (३) मंद।

घट्टय-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० कवचा ] घोड़ा।

घट्टभी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह बाला या घर जो किसी प्रासाद के निहार पर हो। गृहबद्धा। घोरहर। घरहरा।

घट्टपां०—गोवानसी। चंद्रमाला। कृतांगार।

घट्टिश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बंसी जिससे मछली फँसाई जाती है। कैंदिया। (२) बिकिसकों का एक अन्न जिससे बेघते या नरतर लगाते हैं। (घैयक)

घट्टिफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो घण्टिज्य के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता हो। रोजगार करनेवाला। (२) वैद्य। बनिया।

घटंस-संज्ञा पुं० दे० "अवतंस"।

घटन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वास्तुस्थान। (२) जन्मभूमि।

घटीरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रंग। रीति। प्रथा। (२) चाल बाल। (३) छत्र। टेप।

घटस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गाय का बच्चा। बछड़ा। (२) टायु। बालक। बच्चा। (३) बत्सर। वर्ष। (४) कंस का एक अनुवर्ष। घाससुर। (५) इंद्रजी। (६) वस। उर। छापी। (७) एक देश का नाम।

घटसक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुण्यकर्मिणः। (२) कुटज। (३) इंद्रजी। (४) निर्गुंरी।

घटसघोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक देश का नाम जो नहराओं के प्रथम वर्ष में है।

घटसतर-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० बरतणी ] जवान बछड़ा जो जोता न गया हो। दोहान।

घटसंतरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह बछिया जो तीन वर्ष की हो। ककोर।

घिशोष-उद्योत्सर्ग में चार घटसतरी के साथ एक वृष उतारने का विधान है।

घटसनाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक विष जिसे 'बलनाग' या 'बच्छनाग' भी कहते हैं। मीठा जड़ है।

घिशोष-इसका पौधा हिमालय के कम उँचे भागों में होता है। इसकी जड़ विरोधतः नैपाल से आती है। इसके पत्ते सँभल के पत्तों के समान होते हैं। विष अद् में होता है। यह विष शोधकर औषधों में दिया जाता है। शोधन के लिये जड़ के छोटे छोटे टुकड़े काटकर तीन दिन तक गोग्रु में निगोते हैं। फिर छाल मलज करके छाल सरसों के तेल में निगोप हुए कपड़े में सोटली बाँधकर रखते हैं। उपयुक्त मात्रा और युक्ति के साथ सेवन करने से यह रसायन, योगवादी, पाननासक और त्रिदोषज कड़ा गया है। वैद्य लोग इसे उवर और लक्ष्म्य में देते हैं। इसके प्रयोग में बड़ी सावधानी चाहिए; क्योंकि अधिक मात्रा में होने से यह विष प्राणनासक होता है। इसके योग से मृत्सुंजय रस, आनंद-भैरव रस, पंचवक्त्र रस आदि कई प्रसिद्ध औषधें बनती हैं।

घट्यां०—अभृत। विष। उग्र। महीपथ। गरल। मारण। नाग। स्तौकक। प्राणहाक। स्यावर।

घटसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] उतना काल या समय जितने में पृथ्वी सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करती है और सब क्रतुओं की एक उदरणी हो जाती है। काल का वह मान जो बारह महीनों या ३६५ दिनों का होता है। वर्ष। साल। बरस।

घटसराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राजा का नाम।

घिशोष-इस नाम के अनेक राजा हो गए हैं। एक तो क्षीरापी का प्रसिद्ध राजा था, जो गौतम बुद्ध का समसामयिक था। चौदान बंस में भी एक बत्सराज हुआ। छोट देश का एक चोलस्यवंशी राजा इस नाम का हुआ है। महोदये के चंद्रल राजाओं का एक मंत्री बत्सराज था, जो माहदा मानेवाले में "बत्सराज" के नाम से प्रसिद्ध है।

घटसल-वि० [ सं० ] [ स्त्री० बरतणी ] (१) पुत्र या संतान के प्रति पूर्ण स्नेह-युक्त। बच्चे के प्रेम से मारा हुआ। दैत्ये,—पुत्र-घातक पिता, पुत्र-घटसला माता। (२) अपने से छोटी के प्रति अत्यंत स्नेहवान् दया कृपाणु। दैत्ये,—प्रजाघटसलराज। संज्ञा पुं० साहित्य में कुछ लोगों के द्वारा माना हुआ वसधों

वासुध्वय रत्न, जिसमें पिता या माता का अपनी संतति के प्रति रतिभाव या प्रेम प्रदर्शित होता है।  
 पत्सादी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरपृष्ठ। कर्लीहा।  
 पत्सादनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुदुप्य। गिलोय।  
 पत्सासुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंस का अनुचर एक राक्षस जिसे कृष्ण ने बाल्यावस्था में मारा था।  
 पद्वती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कथा। यात।  
 पदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] यका। कहनेवाला।  
 पदतोषाघात-संज्ञा पुं० [ सं० ] कथन का एक दोष जिसमें कोई एक बात कहकर फिर उसके विरुद्ध बात कही जाती है।  
 पद्वन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मुख। मुँह। (२) अगला भाग। (३) कथन। बात कहना।  
 पदवाभ्य-वि० [ सं० ] (१) अतिशय दाता। उदार। (२) मधुर-भाषी। अपनी बात से दूसरों को संतुष्ट करनेवाला।  
 पद्माल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पाठीन मल्ला। पहिना मछली।  
 पद्वि-संज्ञा पुं० [ सं० ] अश्विन। कृष्ण पक्ष। जैसे,—जेठ पद्वि ४।  
 पदुसानाल-कि० सं० [ सं० ] विद्वप्य। दोष घेना। मला घुरा कहना। इलज्जाम लगाना। उ०—हम सब जानत हरि की पातें। तुम जो कहत हरि राज करत नहि जानत ही कष्ट का तें ? उमसेम पैठारि सिंघासंग लेग फहस कुल नाते। तप तें राज, राज तें आगे तुम सन समुझत पातें। सूरश्याम यहि भौति सघाने हमही की बहुसाते।—सूर।  
 पध-संज्ञा पुं० [ सं० ] घात। घास। मारण। वि० दे० “बध”।  
 पधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घातक। हिंसक। (२) व्याध। (३) शत्रु। (४) दे० “बधक”।  
 पधजीयो-संज्ञा पुं० [ सं० ] पधजीविन। यह जो पध करके जीविका निर्वाह करता हो।  
 पधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] अघ। हथियार।  
 पधमूमि-संज्ञा स्त्री० दे० “पधमूमि”।  
 पधांगक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कारागार। कैदखाना।  
 पधुका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पुत्र की स्त्री। बहू। (२) दुलहन। स्त्री।  
 पधु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नव निवाहिता स्त्री। दुलहन। (२) पत्नी। भार्या। (३) पुत्र की बहू। पतोहू।  
 पधुटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नई प्याही हुई स्त्री। दुलहिन। (२) भार्या। पत्नी। (३) पुत्र-वधू। पतोहू।  
 पधुतल-संज्ञा पुं० दे० “अवधुतल”। उ०—अवन कुंडल गरल कंत कलगंकंद सच्चिदानंद बंदे धधुतल।—तुलसी।  
 पधव-वि० [ सं० ] मीर डालने योग्य। वधाई।  
 पधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सीसा नाम की धातु।  
 पधनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] बधिया।  
 पधिका-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पुरुष जो बधिया हो। खोज।

पधुसंभ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आश्रयता घोड़ा। (२) एक प्राचीन राजा का नाम।  
 धन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धन। जंगल। (२) घाटिका। (३) जल। (४) घर। आलय। (५) चमसा नामक यज्ञ-पात्र। (६) रसिम। (७) शंकराचार्य के अनुयायी संन्यासियों की एक उपाधि। (८) फूलों का गुच्छ।  
 धनकणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धनसिप्यही।  
 धनकुंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी जाति का सूरन या जिमीकंद।  
 धनचंद्रन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अयुध। अगार। (२) देवदार।  
 धनचंद्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मछिका।  
 धनचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धन में भ्रमण करने या रहनेवाला। (२) जंगली मनुष्य या प्राणी। (३) शरम नामक धनजंतु।  
 धनज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह जो वन (जंगल या पानी) में उपवास हो। (२) कमल। (३) मुस्तक। मोषा। (४) सुंदर का फल। (५) जंगली विजौरा नीवू। (६) वनकुंधी।  
 धनजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मुद्रपर्णा। (२) निगुंडी। (३) सफेद कंटकारी। (४) धनगुलसी। (५) अशर्वाया। (६) धनरुपासी।  
 धनजीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] काली जीरी।  
 धनतिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] हरीतकी। हड़।  
 धनतित्तिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पाठा। (२) पयरी नाम का शाक।  
 धनद-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेव। पादल।  
 धनद्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] धनचंपक।  
 धनदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] धन का अधिष्ठाता देवता।  
 धनदेवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धन की अधिष्ठात्री देवी।  
 धनसिप्यली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटी पीपल।  
 धनभिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फोकिल। (२) बहेदे का वृक्ष। (३) कपूर कचरी। (४) सामिर हिरन।  
 धनमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेवती का पीया या फूल।  
 धनमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धन के फूलों की माला। (२) एक विशेष प्रकार की माला जो सब ऋतुओं में होनेवाले अनेक प्रकार के फूलों से धनती जीर घुटने तक लंबी होती थी। ऐसी माला स्त्रीकृष्ण धारण करते थे।  
 धनमाली-वि० [ सं० ] धनमाला धारण करनेवाला।  
 संज्ञा पुं० धीकृष्ण।  
 धनमूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेव। पादल।  
 धनमूर्द्धजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जंगली विजौरा नीवू। (२) काकड़ासिंगी।  
 धनराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिंद। (२) अशमंतक वृक्ष।  
 धनराजि, धनराजी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धन की श्रेणी।

वन-संग्रह । बृह-संग्रह । (२) वन के बीच गई हुई पगडंडी ।

(३) वसुदेव की एक दासी का नाम ।

वनरह-संज्ञा पुं० [ सं० ] कमल ।

वनलक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वन की शोभा । वनधरी । (२) बहरी । कला ।

वनवास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वन का निवास । जंगल में रहना ।

(२) बस्ती छोड़कर जंगल में रहने की व्यवस्था या विधान ।

मुद्रा—वनवास देना = जंगल में रहने की आज्ञा देना । बस्ती छोड़ने की आज्ञा देना । वनवास लेना = बस्ती छोड़कर जंगल में रहना आगेकार करना ।

वि० जंगल में रहनेवाला । वनवासी ।

वनवासक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शाहमती कंद । (२) एक प्राचीन नगर जो कादंब राजाओं की राजधानी था ।

वनवासी-वि० [ सं० वनवासिन् ] [ स्त्री० वनवासिनी ] वन में रहनेवाला । बस्ती छोड़कर जंगल में निवास करनेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) श्रपम नामक ओषधि । (२) वाराही कंद ।

(३) शाहमती कंद । (४) नीलमदिप कंद । (५) द्रोगकक ।

शोम कौभा । बदा काल कौभा । (६) दक्षिण में तुंगमदी

की शाखा पेंद्रा नदी के किनारे बसा हुआ एक प्राचीन

नगर जो कादंब राजाओं का प्रधान नगर था ।

वनविलासिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शंखपुष्पी लता ।

वनशूकरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कपिकच्छु । केवॉच । (२) जंगली मादा खर ।

वनशृंगार-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोखर ।

वनसंकट-संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूर ।

वनस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वन में रहनेवाला । (२) वनप्रस्थ । (३) शृंग ।

वनस्थली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वन भूमि । अरण्य देश । जंगली जमीन ।

वनस्था-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अक्षय । पीपल का पेड़ ।

वनस्पति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यह वृक्ष जिसमें फूल न हों (अर्थात् न दिखाई पड़ें) केवल फल ही हों जैसे,—गूलर, बड़, पीपल आदि घट वर्ग के वृक्ष । (मनु०) (२) वृक्ष मात्र ।

पेड़ । पीपल । (३) घट वृक्ष । बरगद ।

संज्ञा पुं० धतराष्ट्र के एकवृक्ष का नाम ।

वनस्पति शास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह शास्त्र जिसके द्वारा यह

जाना जाता हो कि पौधों और वृक्षों आदि के क्या क्या रूप

और कौन कौन सी जातियाँ होती हैं, उनके निम्न निम्न

श्रेणियों को बनावट कैसे होती है और कलम आदि के द्वारा किस प्रकार के नए पौधे या वृक्ष उत्पन्न होते हैं । वनस्पति विज्ञान ।

वनहास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कांसा । काँस । (२) कुंद का फूल ।

वनान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] वन प्रांत । जंगली भूमि या मैदान ।

वनायु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन देव का नाम जहाँ का घोड़ा अच्य होना था । (२) इस देव में रहनेवाली जाति ।

(३) पुरुवा के एक पुत्र का नाम ।

वनायुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वनयु देश का घोड़ा ।

वनालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गेरू ।

वनालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हस्तिशुंघी लता । हाथी सुंघी ।

वनार्धय-संज्ञा पुं० [ सं० ] काला कौभा । शोम कौभा ।

वनिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुंजवन ।

वनिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अनुरक्ता स्त्री । प्रिया । प्रियतमा ।

(२) स्त्री । औरत । (३) छः वर्णों की एक वृत्ति जिसे

'तिलका' और 'ढिल्ला' भी कहते हैं । इसमें दो सगण होते हैं ।

जैसे,—ससि माल धरो । शिव माल धरो ।

वनितामुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] मार्कण्डेय पुराण के अनुसार मनुष्यों की एक जाति ।

वनी-संज्ञा पुं० [ सं० वनिन् ] वानप्रस्थ ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटा वन । वनस्थली । उ०—अति

चंचल जहाँ चलदल, विधवा वनी, न नारि ।—केशव ।

वनेकिशुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पशु जो घैसे ही बिना मॉंगे

मिले, जैसे वन में किशुक बिना मॉंगे या प्रयास किए

मिलता है ।

वनेचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वन में फिरनेवाला मनुष्य । वनधर ।

जंगली भादमी ।

वनेजा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आम । (२) पर्यट । पापदा ।

वनोरसर्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवमंदिर, वापी, कूप, उपवन

आदि का उत्सर्ग जो शास्त्रविधि से किया जाता है । मंदिर,

कूर्म आदि बनवाकर सर्वसाधारण के लिये दान करना ।

(२) ऐसे दान या उत्सर्ग की विधि ।

वनौकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसका घर वन में हो । वनवासी । (२) बंदर ।

वनौपध-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वन की ओषधियाँ । जंगली जड़ी बूटी ।

वन्य-वि० [ सं० ] (१) वन में उत्पन्न होनेवाला । वनोद्भूत । (२) जंगली ।

संज्ञा पुं० (१) वनसूत्र । (२) क्षीर विदारी । (३) काराही

कंद । (४) शंख ।

वन्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुदुर्गम । (२) गोपालककृदा । (३)

गुंजा । (४) अद्रमुस्ता । (५) अक्षयंघ । असंघ ।

वपन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० वपनी ] (१) केरासुंदन । (२) पीज पोना ।

वपनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यह स्थान जहाँ माई क्षीर कर्ण

करंते हैं । यह स्थान जहाँ हजाम पीठकर हजामत बनाते हैं । (२) यह स्थान जहाँ बुलादे कंपदा बुनते हैं ।

वपनीय-वि० [ सं० ] बोने योग्य ।  
 यषा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धरती। मेद। (२) वल्मीक। बॉबी।  
 यषु-संज्ञा पुं० [ सं० वषु ] (१) शरीर। देह। (२) रूप।  
 यषुष्टमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पञ्चवारिणी कला। (२) हरि-  
 वंश के अनुसार काशीराज की एक कन्या, जो परीक्षित के  
 पुत्र जन्मेजय से व्याही थी।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि राजा जन्मेजय ने एक अश्व-  
 मेघ यज्ञ किया। उनकी पत्नी यषुष्टमा साथ ही बैठी थी।  
 इंद्र ने अश्व के दारों में प्रविष्ट होकर उसके साथ सहवास  
 किया। जय मारा हुआ अश्व जीवित दिखाई पड़ा, तब इंद्र  
 की चाल का पता लगा। जन्मेजय ने क्रुद्ध होकर इंद्र को  
 शाप दिया कि अब से अश्वमेघ में तुम्हारा कोई पूजन न  
 करेगा। उन्होंने ऋषियुक्त ऋषियों को भी देश से निकाल  
 दिया और यषुष्टमा का भी तिरस्कार किया। उसी समय  
 गंधर्वाय विभावसु ने आकर राजा को समझाया कि इंद्र ने  
 तुम्हारे अश्वमेघ यज्ञों से डरकर रमा अम्बरा को यषुष्टमा का  
 शरीर धारण करा के भेजा है। ऋषिजनों को निकालने से  
 तुम्हारा अश्वमेघ का पुण्य क्षीण हो गया।

यंता-संज्ञा पुं० [ सं० वतु ] (१) पिता। जनक। (२) कवि।  
 (३) नापित। नाई। (४) बीज बोनेवाला।  
 यत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मिट्टी का ऊँचा घुसव जो गद या नगर  
 की खाई से निकली हुई मिट्टी के ढेर से चारों ओर उठाया  
 जाता है और जिसके ऊपर प्राकार या दीवार होती है।  
 यय। सृष्टिकारण। (२) क्षेत्र। खेत। (३) रेणु। धूल।  
 (४) ऊँचा किनारा। कगार। (बढ़ी आदि का) (५)  
 पहाड़ की चोटी। (६) टीला। भीटा। (७) सीसा गाम  
 की धातु। (८) प्रजापति। (९) द्वार युग के एक ध्यास।  
 (१०) चौदहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

यप्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वृत्त की परिधि। गोलाई का घेरा।  
 चक्कर।

यप्रक्रिया-संज्ञा स्त्री० दे० "यप्रक्रीडा"।

यप्रकीडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] टीले या ऊँचे उठे हुए मिट्टी के ढेर  
 को हामी, साँद आदि का दंतों या सींगों से मारना, जो  
 उनकी एक क्रीडा है।

यषा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मजीठ। (२) जैनों के इक्कीसवें जिन  
 नेमिनाथ की माता का नाम।

यषि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) क्षेत्र। (२) समुद्र। (३) स्थान की  
 दुर्गमता। दुर्गति।

यषी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वल्मीक। बॉबी।

यष्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) याद परा करना। बाल निषाहना।  
 यौ०—वज्राहार। वफादारी।

(२) निर्वाह। पूर्णता। उ०—अथ कृच ही करना सही इस  
 खेत से न यष्या लही।—सूदन।

कि० प्र०—करना।

(३) मुरीबत। सुखीलता। उ०—ये छाये से वेवफा वफा  
 रहे उद्वाराह। मीने कीने दूर उषीं सेही ते रह जाह।—  
 रसनिधि।

यफादा-वि० [ म० वफा + फा० दा० ] [ संज्ञा वफादारी ] (१)  
 पचन या कर्तव्य का पालन करनेवाला। (२) अपने काम  
 को ईमानदारी से करनेवाला। (३) सच्चा।

यफात-संज्ञा स्त्री० [ म० ] मरण। मृत्यु।

कि० प्र०—करना।—पाना।—होना।

यषा-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) मरी। महामारी। फैलनेवाला  
 भयंकर रोग। जैसे,—हैजा, प्लेग आदि। (२) दूत का रोग।  
 [म० प्र०—आना।—पदना।—फैलना।

यषाल-संज्ञा पुं० [ म० ] (१) मोक्ष। भार। (२) आपत्ति।  
 कठिनाई। (३) घोर विपत्ति। आपत। (४) ईश्वरीय  
 कोप। (५) पाप का फल।

कि० प्र०—होना।

मुद्दा—किसी का बवाल पदना = किसी को दुःख पहुंचाने का  
 फल मिलना। दुखिया को भाद पड़ना। जैसे,—इसका बवाल  
 तेरे ऊपर पड़ेगा।

यषु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का सर्प। (सुधुत)  
 (२) एक पशुवंशीय योद्धा। वि० दे० "यषु"।

यषुवाहन-संज्ञा पुं० दे० "यषुवाहन"।

यमन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कै करना। उलटी करना। छंदन।  
 (२) यमन किया हुआ पदार्थ। (३) आहुति। (४) पीदा।

यमनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जोक।

यमनीया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मक्खी।

यमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक रोग जिसमें मनुष्य का जो  
 मतलता है, मुँह से पानी छूटता है और जो कुछ वह खाता  
 पीता है, उसे मुँह के रास्ते निकालकर बाहर फेंक देता या कै  
 कर देता है।

विशेष—यह यमन रोग पाँच प्रकार का माना गया है—  
 वातज, पित्तज, कफज, सप्तपातज और आंगुदक। वातज  
 में बगल और छाती में दर्द, मस्त्वक और नाभि में द्रव्य  
 तथा अंगों में सूई छेदने की सी पीदा होती है। यमन बढ़े  
 वेग से और बढ़े द्रव्य के साथ अधिक मात्रा में निकलता  
 है। पित्तज में मूर्च्छा, प्यास, मुँह सूखना, ताड़ और  
 आँवों में जलन और आँवों के सामने भैंसेरा छाना आदि  
 लक्षण होते हैं और यमन कुछ हरा और तीता होता है।  
 कफज में मुँह मीठा रहता है, कुछ कफ निकलता है, भोजन  
 की अनिच्छा होती है, शरीर भारी जान पड़ता है और यमन

सुकेर, गाढ़ा और मीठा होता है; तथा यमन के समय रोंते खड़े हो जाते हैं और बड़ी पीड़ा होती है। आगंतुक यमन कोड़े चुरी बरत खा लेने या मृगित वस्तु देखने या खँवने से एक चारगी हो जाता है।

(२) भक्ति।

घन्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दूधम।

घन्नीकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] वरहीक। घोंघी। विमौट।

घयं छ-सर्व० [ सं० प्र, पु० वृ ] हम् । उ०—विकृतर यक्र घुर धार प्रमदा तीम दुर्ष कंदर्प स्तर सत्रगधारा। धीर गंभीर मन पीर कारक तत्र केवरा का घयं विगत सारा।  
—तुलसी।

घयःकृप-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्रमान्त जीवन काल। अवस्था। उग्र।

घयःसंधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बाल्यावस्था और यौवनावस्था के बीच की स्थिति। लंदकपन और जवानी के बीच का काल।

घय-संज्ञा स्त्री० [ सं० वयम् ] (१) बीता हुआ जीवन-काल। अवस्था। उग्र। (२) बल। (३) पक्षी।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संतुषाव। जुकाहा। (२) बया पक्षी।

संज्ञा स्त्री० जुकाहों के चरणों में सूत का एक जाल। जि० दे० "धै" या "वय"।

घयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मुनने की क्रिया या भाव। पुनना।

घयस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बीता हुआ जीवन काल। अवस्था। उग्र। (२) पक्षी।

घयस्क-वि० [ सं० ] [ स्त्री० वयका ] (१) उमर का। अवस्था-पाल।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग समस्त पद के अंत में होता है। जैसे अल्पवयस्क, समवयस्क इत्यादि।

(२) पूरी अवस्था को पहुँचा हुआ। जो अब बालक न हो। सयाना। बालिग।

घयष्टु-वि० [ सं० ] आयुःप्रद। जीवन देनेवाला।

घयस्थ-वि० [ सं० ] [ स्त्री० वयथा ] (१) प्राथम्यस्क। (२) युवा। युवक। (३) समवयस्क।

संज्ञा पुं० समवयस्क पुरुष।

घयस्था-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आमलकी। जॉबला। (२) हलिकी। हड़। (३) मुद्ग। (४) छोटी हलयाची। (५) काहोली। (६) सेमल। (७) युवती।

घयस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] यौवन।

घयस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समवयस्क। एक उमरवाले। हम-जोली। (२) मित्र।

घयस्था-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सखी। (२) हँट।

घपोहृद-वि० [ सं० ] जो अवस्था में बढ़ा हो। बढ़ा बढ़ा।

घरं-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देसा न होकर देसा। परिक। अपिगु।

(२) परां। छेकिन।

घरं-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घंसी की खोर। निस्त। (२) समूह। (३) सुरक्षा। (४) घास का गडर। (५) फीलवाने कादि में की वह दीवार जो दो लड़ाके हाथियों के बीच में लड़ाई चवाने के लिये बनाई जाती है।

घरंडक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मिट्टी का मीठा। दूह। (२) दो लड़ाके हाथियों के बीच की दीवार। (३) हाथी की पीठ पर कसा जानेवाला होता।

घरंदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कटारी। कत्ती। (२) घत्ती।

संज्ञा पुं० दे० "वामदा"।

घर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी देवता या बड़े से माँगा हुआ अनुरोध। वह बात जिसके लिये किसी देवी देवता या बड़े से प्रार्थना की जाय। जैसे,—उत्सने शिव से यह घर माँगा।

क्रि० प्र०—माँगना।

(२) किसी देवता या बड़े से प्राप्त किया हुआ फल या सिद्धि। वह बात जो किसी देवता या बड़े की प्रसन्नता से प्राप्त हुई हो। जैसे,—उसे यह घर पा कि वह किसी के हाथ से न मरेगा।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

(३) जामता। (४) पति या बूढ़ा। (५) गुगुल। (६) कुंडम। केसर। (७) दारचीनी। (८) घालक। (९) भद्रक। आर्द्रक। (१०) सुगंध गुण। (११) सँधा नमक। (१२) पियाल या धिर्ती का पेड़। (१३) यकुल। मौलसिरी। (१४) हलदी। (१५) गौरा पक्षी।

वि० श्रेष्ठ। उत्तम।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः श्रेष्ठता सूचित करने के लिये संज्ञा या विशेषणों के आगे होता है। जैसे,—पंडित-घर, मिश्रघर, धीरघर मिश्रघर।

घरक संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साधारण बच्चा। (२) नाव का आच्छादन। (३) बन मृत। (४) काकुन। मियंगु। (५) जंगली घेर। सद्बेरी।

घरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पत्र। (२) पुस्तकों का पक्का। पत्रा। (३) सोने, चाँदी आदि के पतले पत्तर, जो बूटकर बनाए जाते हैं और मिठाइयों पर लगाने और औषध में काम आते हैं।

घरकतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] हँड।

घरकोद्वय-संज्ञा पुं० [ सं० ] कोविदार। कचनार का पेड़।

घरकंदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काला चंदन। (२) देवदाह।

घरज-वि० [ सं० ] श्रेष्ठ। बढ़ा।

घरजीवी-संज्ञा पुं० [ सं० घरजीव ] (१) एक कर्णेंद्रर जाति जो स्तूतियों में गोव और गंधुवाय के संयोग से उत्पन्न बनी गई है। (२) ब्राह्मण का औरत पुत्र जो पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हो।



घरट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हंस। (२) कुंद का फूल। (३) मिट्टा। बरें।

घरटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हंसी। (२) गँधिया कीड़ा। (३) बरें नाम का उड़नेवाला कीड़ा। मिट्टा।

घरटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हंसी। (२) गँधिया कीड़ा।

घरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी को परस करके किसी कार्य के लिये नियुक्त करना। किसी को किसी काम के लिये चुनना या मुक़रर करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) मंगल कार्य के विधान में होता आदि कार्य-कर्त्ताओं को नियत करके दान आदि से उनका सहाय्य करना। (३) मंगल कार्य में नियत किए हुए होता आदि के सकारार्थ दी हुई वस्तु या दान। जैसे,—विवाह में ११ आदमियों को वरण मिठा है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

(४) कन्या के विवाह में वर को अंगीकार करने की रीति।

(५) पूजा। अर्चना। सस्कार। (६) ढरने या छपेटने की वस्तु। आवरण। आच्छादन। वेष्टन। (७) किसी स्थान के चारो ओर घेरी हुई दीवार। (८) ऊँट। (९) वरुण वृक्ष। (१०) पुल। सेतु।

घरणक-संज्ञा पुं० [ सं० ] आच्छादन। आवरण।

घरणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक छोटी नदी का नाम जो काशी के उत्तर में बहती है। यह नदी वाराणसी क्षेत्र की उत्तरीय सीमा है। वरुणा। (२) वरुणा देव की एक नदी का नाम जो सिंधु नदी में दक्षिण ओर से आकर के विपरीत दिशा से आकर मिलती है। (३) अरहर।

घरणी-संज्ञा स्त्री० दे० "वरण" (३)।

घरणीय-वि० [ सं० ] (१) पूजनीय। पूज्य। (२) श्रेष्ठ। बढ़ा।

घरतंतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ऋषि का नाम।

घरतिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुश्म। कोरिया। (२) नीम। (३) पर्यट। पापदा। (४) रोहितक। रोहना का पेड़।

घरतिकिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पाटा।

घरत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बरेत। बरेता। (२) हाथी खींचने का रस्ता। (३) घमड़े का तसमा।

घरत्वच-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीम का पेड़।

घरद-वि० [ सं० ] [ स्त्री० वरदा ] घर देनेवाला। अमीरवाता।

घरदक्षिणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह धन जो घर को विवाह के समय कन्या के पिता से मिलता है। वहेज। दायज।

घरदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कन्या। (२) अशगंध। (३) अद्दुक। दुरदुर। (४) धारादी कंद।

घरदा-चतुर्थी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माघ महीने के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी। घरदा धौप।

घरदाता-वि० [ सं० ] घर देनेवाला। धरद।

घरदान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी देवता या वर के प्रसन्न होकर कोई अमिलपित वस्तु या सिद्धि देना। उ०—(क) कन्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिक् कर्हें मैं पूरव क दीन्हा।—तुलसी। (ख) देन कहेहु घरदान हुइ तेठ पावत सदेह।—तुलसी।

क्रि० प्र०—देना।

(२) किसी फल का लाभ जो किसी की प्रसन्नता से हो।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।

घरदानी-संज्ञा पुं० [ सं० ] घर प्रधान करनेवाला। मनोरथ पूर्ण करनेवाला। घरदायक।

घरदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह परिधान जो किसी विशेष विभाग के कर्मचारियों के लिये नियत हो। वह पोशाक या पहनावा जो किसी खास महकमे के अफसरों और नौकरों के लिये मुक़रर हो। जैसे,—पुलिस की घरदी, फौज की घरदी।

घरदुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का अगर जिसका वृक्ष बहुत बढ़ा होता है।

घरद्व-अव्य० [ सं० वर ] ऐसा नहीं। बलिक।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अत्र उल्टा जा रहा है।

घरना-संज्ञा पुं० [ सं० वरण ] ऊँट। उ०—वरना-भस कर मैं अचलोकात केस पास हृत बंद। अथर ससुद्ध सदल जो सहसा ध्वनि उपजत मुखकंद।—सूर।

अव्य० [ अ० ] नहीं तो। यदि ऐसा न होगा तो। जैसे,—आप वैरिद; वरना मैं भी उठकर चला जाऊँगा।

घरप्रद-वि० [ सं० ] [ स्त्री० वरदा ] (१) वर देनेवाला। (२) प्रसन्न।

घरप्रदान-संज्ञा पुं० [ सं० ] मनोरथ पूर्ण करना। कोई फल या सिद्धि देना। वर देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

घरफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] नारिकेल। नारियल।

घरम-संज्ञा पुं० दे० "वर्म"।

घरमेल्ही-संज्ञा पुं० [ पूर्व० ] एक प्रकार का लाल बंदन जो मलाया द्वीप से आता है।

घरवात्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विवाह के लिये घर का अपने हट-भिन्नो और संवर्षियों के सहित धूमधाम ले साथ कन्या के घर जाना। वृद्धे का मात्रे गाने के साथ दुखदिन के घर विवाह के लिये जाना। (२) वह भीड़ भाड़ जो वृद्धे के साथ चलती है। बरात।

घरयिता-संज्ञा पुं० [ सं० वरविट ] (१) वरण करनेवाला। (२) पति। भर्ता।

घररुचि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अत्यंत प्रसिद्ध प्राचीन पंडित, वैपाकरण और कवि।

विशेष—प्रधाप्यायी हृदि, प्राकृतप्रधान, लिङ्गानुशासन, राक्षसहाय आदि अनेक ग्रंथ इनके नाम से प्रसिद्ध हैं; पर सुन इनके नहीं बनाने हैं। इनका प्राकृत का व्याकरण 'प्राकृत प्रक्रा' बहुत प्राचीन और प्रामाणिक माना जाता है। ये कथ कुट्ट, हस्तका ठीक ठीक निश्चय विद्वानों को अभी नहीं हुआ है। कपासतिस्धारण में ये पाणिनि के सहाय्यायी और प्रातहृदी कहे गए हैं; पर यह कल्पना मात्र है। उसी ग्रंथ में वारहचि और काल्यायन एक ही गए हैं; पर यह भी ठीक नहीं है। इसी प्रकार उद्योतिविदाभरण का वह नवरत्न-वाला श्लोक भी, जिसमें वरहचि का नाम है, कपोल कल्पना मात्र है। 'प्राकृतप्रधान' की भूमिका में कावेल साहय ने वरहचि को ईसा की पहली शताब्दी का ठहराया है; और कोई कोई इन्हें चंद्रगुप्त मौर्य से भी पहले ईसा से ४०० वर्ष पूर्व का मानते हैं।

- बराह्मा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हंसी।
- बरवराह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुँवराले यालोंवाला जंगली आदमी। बघैर।
- बरवृषिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उत्तम स्त्री। (२) छात्र। (३) हृदी। (४) गोरौचन। (५) कँगनी। काकुन। (६) गौरी। (७) लक्ष्मी। (८) सारस्वती।
- बरवाहीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुकुम। केसर।
- बरशिव-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक असुर जिसे इंद्र ने संपरिवार मारा था।
- बरहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक जनपद का नाम।
- बरही-संज्ञा पुं० [ हिं० बर ] सोने की एक लंबी पट्टी जो बिलह के समय यक्ष को पहनाई जाती है। टीका।
- ७ संज्ञा पुं० दे० "वहीं"।
- ८ संज्ञा स्त्री० दे० "बराही"।
- बरांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मस्तक। (२) गुदा। (३) योनि। (४) हस्ती। (५) विष्णु का एक नाम। (६) एक प्रकार का मशय वासर जो ३२४ दिनों का होता है। (७) दारचीनी। (८) पेड़ की टहनो का सिरा।
- बरांगक-संज्ञा पुं० [ सं० ] दारचीनी।
- बरांगना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुंदर स्त्री।
- बरांगी-संज्ञा पुं० [ सं० बरांगि ] (१) हाथी। (२) अमलवेत।
- संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हृदी। (२) नागदंती। (३) मन्नीठ।
- बरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रिफला। (२) रेणुका नामक गंध-द्रव्य। (३) गुण्ण। (४) मेदा। (५) प्राही। (६) विदंग। (७) पाठा। (८) हृदी। (९) बैंगन। (१०) अद्दुल। जवा। देवीफूल। (११) मद्य। (१२) सोमराजी। (१३) शैतारपत्रिता। (१४) शतमूली।
- बराक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव। (२) बुद्ध। (३) पावक।

- वि० (१) शोचनीय। (२) नीच।
- बराजीवी-संज्ञा पुं० [ सं० बराजीविन् ] ज्योतिषी। गणक।
- बराट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कौड़ी। (२) रस्ती। (३) पयनीय।
- बैजलगटे का बीज।
- बराटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कौड़ी। (२) रस्ती। (३) पत्र का बीज।
- बराटकरमा-संज्ञा पुं० [ सं० बराटकरम् ] नागकेसर का पेड़।
- बराटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कौड़ी। (२) तुल्य वस्तु। (३) नागकेसर।
- बराण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र। (२) परल युद्ध। बरना।
- बरानना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुंदर स्त्री।
- बराभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] दबा हुआ वृत्तम अन्न।
- बराभिद-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमलवेतस्। अमलवेद।
- बराभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] करौंदा।
- बराटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] हीरा। हीरक।
- बराण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माता।
- बराटोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु। (२) एक प्रकार का पक्षी।
- वि० श्रेष्ठ सवारीवाला।
- बराट्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] पूजा की एक सामग्री जिसमें चंदन, कुकुम और जल सम भाग होता है।
- बराल-संज्ञा पुं० [ सं० ] लयंग। लौंग।
- बरालि-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा।
- बरालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा।
- बराशि-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोटा कपड़ा।
- बरासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रेष्ठ आसन। ईंधा आसन। (२) विवाह में घर के बैठने का आसन या पाटा। (३) जवा। देवीफूल। अद्दुल। (४) हिजड़ा। खोज। (५) द्वारपाल।
- बरासि-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोटा कपड़ा।
- बराह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शूकर। सूअर। (२) विष्णु। (३) मुस्ता। मोथा। (४) एक पर्वत का नाम। (५) एक मान। (६) सूँस। शिशुमार। (७) बराहीकंद। (८) अठारह द्वीपों में से एक छोटा द्वीप।
- बराहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हीरा। (२) शिशुमार। सूँस।
- बराहकणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अशगंधा। अशगंध।
- बराहकाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बाराही। (२) क्वालु। लजाह।
- बराहपत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अशगंधा। अशगंध।
- बराहमिहिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष के एक प्रधान आचार्य जिनके बनाव युद्धसंहिता, पंचसिद्धांतिका और बृहन्नाटक नामक ग्रंथ प्रचलित हैं।
- विशेष—इनके समय के संबंध में अनेक प्रकार के प्रयाद कुछ

वचनों के आधार पर प्रचलित हैं। जैसे,—उद्योतिर्विदाभरण के एक श्लोक में कलिदास, धन्वंतरि आदि के साथ पराहमिहिर भी विक्रम की समा के नौ रत्नों में गिनाए गए हैं। पर इन नौ नामों में से कई एक भिन्न भिन्न काल के सिद्ध हो चुके हैं। अतः यह श्लोक प्रमाण के योग्य नहीं। इसी प्रकार कुछ लोग प्रह्लादसुत के टीकाकार पृथुश्रामी के इस वचन का आश्रय लेते हैं—

नवाधिक पंचशतसंख्य पाके पराहमिहिराचार्यां दिवं गतः।  
और शक ५०९ में पराहमिहिर की मृत्यु मानते हैं। पर अपनी पंचसिद्धांतिका में रोमकसिद्धांत का अहर्गण स्थिर करते हुए पराहमिहिर ने शक संवत् ४२० लिया है। उद्योतिषी लोग अपना समय लेकर ही अहर्गण स्थिर करते हैं। अतः इससे ईसा की पूर्वार्ध शताब्दी में पराहमिहिर का होना सिद्ध होता है। अपने गृहज्ञातक के उपसंहाराध्याय में आचार्य ने अपना कुछ परिचय दिया है। उसके अनुसार ये अवंती (उज्जयिनी) के रहनेवाले थे। 'कापिल्य' स्थान में सूर्यदेव को प्रसन्न करके इन्होंने घर प्राप्त किया था। इनके पिता का नाम आदिपदास था।

पराहमुक्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का मोती।

विशेष—जैसे,—'गममुक्ता' हाथी से उत्पन्न मानी जाती है, वैसे ही यह सूअर से उत्पन्न मानी जाती है।

पराहम्यूह-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का व्यूह या सेना की रचना, जिसमें अग्र भाग पतला और पीछे का भाग चौड़ा रखा जाता था।

पराहशिला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक विचित्र पवित्र शिला जो हिमाचल के सिखर पर है।

पराहरीला-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम।

पराहसंहिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पराहमिहिर रचित उद्योतिष की गृहसंहिता नाम की प्रसिद्ध पुस्तक।

पराहार्गी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्षुद्रवंती।

पराहिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कपिकच्छु। केपूच। कौच।

पराही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूअरी। सूअरी। (२) भद्रमुल्ला। नागरसोया। (३) वाराहीकंद। (४) अशगंधा। (५) एक प्रकार का पक्षी जो गौरैया के धारण और काले रंग का होता है। (६) दे० "वाराही"।

परिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्ष।

परिष्ट-वि० [ सं० ] श्रेष्ठ। पूजनीय।

संज्ञा पुं० (१) तित्तिर पक्षी। तीतर। (२) चातुष्य मनु के पुत्र का नाम। (३) धर्म सावर्णि जन्मंतर के सप्त ऋषियों में से एक। (४) ताष्ट्र। तौथा। (५) निचं। (६) वस्तुमत् ऋषि का एक नाम।

परिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हलदी। (२) हुरहुर नाम का पौधा।

परिष्टिष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उशीर। वस। (२) सुगंधवाला। परी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सातावरी। सतावर। (२) सूर्य की पत्नी।

परीयान्-वि० [ सं० ] (१) श्रेष्ठ। बढ़ा। (२) अति युवा।

संज्ञा पुं० (१) फलित उद्योतिष में विष्टकंम अदि सप्तसहस्र योगों में से अष्टारहवाँ योग, जिसमें जन्म लेनेवाला मनुष्य दयालु, दाता, सुंदर, सरकमें करनेवाला और मधुर स्वभाव का होता है। (२) पुलह ऋषि के एक पुत्र का नाम।

परीपु-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव।

परुण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक वैदिक देवता जो जल का अधिपति, दृश्युओं का नाशक और देवताओं का रक्षक कहा गया है। पुराणों में वरुण की गिनती दिक्पालों में है और यह पश्चिम दिशा का अधिपति माना गया है। वरुण का अष्ट पाश हैं।

विशेष—यहूत प्राचीन वैदिक काल में वरुण प्रधान देवता थे; पर क्रमशः उनकी प्रधानता कम होती गई और इंद्र की प्रधानता प्राप्त हुई। वरुण अदिति के आठ पुत्रों में कहे गए हैं। निरुक्तकार इन्हें द्वादश आदिर्षियों में बतलाते हैं। ऋग्वेद में वरुण के अनेक मंत्र हैं, जिनमें से कुछ के संबंध में पुरेवरे द्राण्य में शुनःशोक की प्रसिद्ध गाथा है। इस के अनुसार हरिश्चंद्र वीषस नामक एक राजा ने पुत्र-प्राप्ति के लिये वरुण की उपासना की। वरुण ने पुत्र दिया, पर यह वचन लेकर कि उसी पुत्र से तुम मेरा पशु करना। पुत्र का नाम रोहित हुआ। जब यह कुछ बढ़ा हुआ और उसे यह पता चला कि मुझे वरुण के पशु में बलिपशु बनना पड़ेगा, तब यह जंगल में भाग गया। यहाँ उसे इंद्र घर छोड़ने को बराबर मना करते रहे। अंत में राजा ने अजीत नामक एक ऋषि को सौ गौएँ देकर उनके पुत्र शुनःशोक को बलि के लिये मोल लिया। जब शुनःशोक बूढ़ में बाँधा गया, तब वह अपने छुटकारे के लिये प्रजापति, अग्नि, सविता आदि कई देवताओं की स्तुति करने लगा। अंत में वरुण की स्तुति करने से उसका बदर-हुआ। ऋग्वेद में वरुण के कुछ मंत्र ये ही हैं, जिन्हें पदकर शुनःशोक ने स्तुति की थी।

पुराणों में वरुण कदपक के पुत्र कहे गए हैं। भागवत में लिखा है कि चर्षकी नामी पत्नी से वरुण को भाद्र और घाल्की नामक दो पुत्र हुए थे। वरुण अथ तक जल के देवता माने जाते हैं और जलाशयोंसंग में-हृत्वा पूजन होता है। साहित्य में ये वरुण रस के अधिपति माने गए हैं।

पर्य्या—प्रवेत्स। पाशी। यादशापति। अंरति। यादःपति।

अपारति। जंघुक। मेघनाद। परंजय। धारिळोम। कुंडली।  
 (१) बहना का पेड़। (३) जल। पानी। (४) सूर्य।  
 (५) एक ऋषि का नाम। (६) एक ग्रह का नाम जिसे  
 अंग्रेजी में "नेपचून" कहते हैं। (आधुनिक)  
 चरुणुग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] घोड़ों का एक रोग जो अचानक हो  
 जाता है। इस रोग में घोड़े का तालू, जीभ, आँसू और  
 किंमिदिय आदि, अंग काले रंग के हो जाते हैं। उसका  
 शरीर भारी हो जाता है और पसीना छूटता है। यह रोग  
 भयानक होता है और बहुत यत्न करने से घोड़े के प्राण  
 बचते हैं।  
 चरुणुधृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] धृत में बनी हुई एक औषध जो  
 अस्मरी (पथरी) रोग में दी जाती है।  
 चिरोप-इसमें बरना नामक पेड़ की छाल को जल और घी  
 में जलाकर काप बनाया जाता है।  
 चरुणुद्वैत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शतभिषा नक्षत्र।  
 चरुणुपाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बरुण का अश्व पना या फंद।  
 (१) नाक नामक जल-जंतु। नक्र।  
 चरुणुप्रसास-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक व्रत या कृत्य जो आपाद या  
 भावण की पूर्णिमा के दिन किया जाता है। इसमें ऋषि जी  
 का सत्त्वाकर रहते हैं। इस व्रत का फल यह कहा गया  
 है कि व्रत करनेवाला जल में डूबता नहीं और उसे मगर,  
 पक्षियाल आदि जलजंतु नहीं पकड़ते।  
 चरुणुप्रस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन नगर जो कुक्षेत्र के  
 पश्चिम में था।  
 चरुणुमंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] नक्षत्रों का एक मंडल जिसमें रेवती,  
 पूर्वाषाढा, आर्द्रा, भास्करा, मूल, उत्तराशाढ़पदा और  
 शतभिषा हैं।  
 चरुणुशरमंजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चारुणी। सुरा। मरिचा। शराय।  
 चरुणुदिग्गुण-संज्ञा पुं० [ सं० ] पदों और शीघ्रों का एक वर्ग  
 जिसके अंतर्गत चरुणु, नीलसिंही, सहिजन, जयती, मेधासिंगी,  
 पुतिका, नाटकरंज, अस्मिन्थ (धर्मपू), चीता, शतमूली,  
 बेल, अजयंगी, डाम, घृहीती और कंडकारी (भटकटैया)  
 हैं। (सुश्रुत)  
 चरुणुपानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चरुणु की छी।  
 चरुणुलव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सधुद्र।  
 चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तत्रुयाण। यकतर। (२) ढाल।  
 (३) छोड़े की चदर या सीकड़ों का बना हुआ आवरण या  
 झल जो शत्रु के आघात से रथ को रक्षित करने के लिये  
 उसके ऊपर ढाली जाती थी। (४) सैन्य। सेना। फौज।  
 (५) एक प्राचीन ग्राम। (शांभायण)  
 चरुणुघनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेना।  
 चरुणुधो-संज्ञा पुं० [ सं० ] वरुणपु [ स्त्री० ] वरुणिके ] हाथी की काटी।

चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रांगा। (२) हंदा। (३) बंगाल का  
 एक भाग।  
 चरुणुव्य-वि० [ सं० ] (१) प्रघात। मुख्य। (२) वरुणिय।  
 पूजनीय।  
 संज्ञा पुं० (१) श्रुग के एक पुत्र का नाम। (२) महादेव।  
 (३) कुकुम। केसर।  
 चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सरुवा। सरुवक।  
 चरुणु-वि० [ सं० ] (१) श्रेष्ठ ज्योतिषाला। (२) सुंदरी।  
 चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथी का बंधन जो लकड़ी का बना  
 हुआ और काँटेदार होता है। (२) काँटा। कील (३)  
 अगरी। अंगल।  
 चरुणु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जवान चकरी। परिधा।  
 चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जवान, पशु। (२) बकरा। (३) भेड़  
 का यथा। मेमना। (४) आमोद प्रमोद। परिहास।  
 चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कटाक्ष। (२) मध्याह्न के सूर्य  
 की प्रभा। (३) स्त्री के कृच के किनारे लगा हुआ नखसत।  
 चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक ही प्रकार की अनेक चरुणुओं का  
 समूह। जाति। कोटि। गण। श्रेणी। (२) अकार प्रकार  
 में कुछ भिन्न, पर कोई एक सामान्य धर्म रखनेवाले पद्यों  
 का समूह। जैसे,—अंतरिक्ष वर्ग, श्रद्ध वर्ग, द्राघण वर्ग।  
 (३) शब्द शास्त्र में एक स्थान से उद्यत होनेवाले स्वर्ण  
 व्यंजन वर्णों का समूह। जैसे,—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग  
 इत्यादि।  
 चरुणु-उद्योतिष में स्वर, अंतस्थ और ऊर्म्य वर्ण भी (जैसे,—  
 अ, य, वा) क्रमताः अवर्ग, यवर्ग और दावर्ग के अंतर्गत  
 रखे गए हैं। इस प्रकार उद्योतिष के व्यवहार के लिये सव  
 वर्णों के विभाग 'वर्ग' के अंतर्गत किए गए हैं और अवर्ग,  
 कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग तथा शवर्ग के स्वामी  
 क्रमताः सूर्य, मंगल, शुक्र, बुध, वृहस्पति, शनि और चंद्रमा  
 कहे गए हैं।  
 (४) ग्रंथ का विभाग। परिच्छेद। प्रकरण। अध्याय। (५)  
 दो समान अंकों या राशियों का घात या गुणनफल। जैसे—  
 ३ का ९, ५ का २५ (३ × ३ = ९। ५ × ५ = २५)।  
 (६) वह चौड़ा क्षेत्र जिसकी लम्बाई चौड़ाई बराबर और  
 चारों कोण समकोण हों। (रेखा गणित)  
 चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] पदना या पहिमा मठकी। पंथीन।  
 चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुणन। घात।  
 चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह अंक जिसके घात से कोई वर्गक  
 बना हो। वर्गमूल।  
 चरुणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह गुणनफल जो दो समान राशियों  
 के घात से प्राप्त हो। यह अंक जो किसी अंक को उसी अंक  
 के साथ गुणा करने से आवे। जैसे,—५ का वर्गफल २५  
 होता है।

वर्णमूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी वर्णांक का वह अंक जिसे यदि उसी से गुणन करें, तो गुणन वही वर्णांक हो। जैसे,—४ वर्णांक का वर्णमूल २ और २५ का ५ होगा।

वर्णलाना-किं० सं० [ का० 'वर्णलानादन' से ] (१) कोई काम करने के लिये उभारना। कुछ करने के लिये उत्तेजित करना। उकसाना। (२) बहकाना। फुसलाना।

वर्णात्तम-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष में राशियों के वे श्रेष्ठ अंश जिनमें स्थित ग्रह शुभ होते हैं।

विशेष—चर राशि ( मेष, कर्कट, तुला, मकर ) का प्रथम अंश, स्थिर राशि ( ध्रुव, सिंह, वृश्चिक, कुंभ ) का पंचम अंश और व्यापक राशि ( मिथुन, कन्या, चतु, मीन ) का नवम अंश वर्णात्तम कहा जाता है। इसके अतिरिक्त राशियों का नवांश भी वर्णात्तम कहा जाता है।

वर्चस्-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० वर्चस्वान्, वर्चस्वो ] (१) रूप। (२) तेज। कीर्ति। दीप्ति। (३) धन। (४) विद्या।

वर्चस्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दीप्ति। तेज। (२) विद्या।

वर्चस्व-वि० [ सं० ] तेजस्वर्द्धक।

वर्चस्वन्-वि० [ सं० वर्चस्वत् ] [ लो० वर्चस्वतो ] तेजवान् । दीप्तियुक्त। समुज्ज्वल।

वर्चस्वो-वि० [ सं० वर्चस्विन् ] [ लो० वर्चस्वित्वा ] तेजस्वी । दीप्तियुक्त।

संज्ञा पुं० चंद्रमा।

वर्जन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० वर्जनीय, वर्ज्यं, वर्जित ] (१) त्याग। छोड़ना। (२) प्रहण या भाषण का निषेध। मनाही। मुमामनियत। (३) हिंसा। मारण।

वर्जनीय-वि० [ सं० ] (१) छोड़ने योग्य। न प्रहण करने योग्य। त्याग्य। (२) निषेध के योग्य। निषिद्ध। मना।

वर्जयिता-वि० [ सं० ] वर्जन करनेवाला। त्यागनेवाला।

वर्जित-वि० [ सं० ] (१) त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ। त्यक्त। (२) जो प्रहण के अयोग्य उधारया गया हो। निषिद्ध। जैसे,—कल में नियोग वर्जित है।

वर्ज्य-वि० [ सं० ] (१) छोड़ने योग्य। त्याग्य। वर्जनीय। (२) निषेध का निषेध किया गया हो। जो मना हो।

वर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पदार्थों के लाल, पीले आदि भेदों का नाम। रंग। वि० दे० रंग। (२) जन-समुदाय के चार विभाग—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—जो प्राचीन आर्यों ने किए थे। जति।

विशेष—इस शब्द का प्राचीन प्रयोग क्रमवेद में है। वहाँ यह जनता के दो वर्णों—आर्यों और द्रव्युओं—को सूचित करने के लिये हुआ है। यह विभाग पहले रंग के आधार पर था; क्योंकि आर्यों को रंग और द्रव्यु या अनार्यों को काले। पर पीछे यह विभाग व्यवसाय के आधार पर हुआ और

चार वर्ण माने गए। पुरूपसूक्त में चारों वर्णों की उत्पत्ति का आलंकारिक रूप से इस प्रकार वर्णन है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख से, क्षत्रिय वायु से, वैश्य जंघे से और शूद्र पैर से उत्पन्न हुए। इस व्यवस्था के अनुसार "वर्ण" शब्द की व्युत्पत्ति 'वृ' पाठ से बताई जाती है, जिसका अर्थ है 'सुगन्ध'। अतः 'वर्ण' शब्द का अर्थ हुआ व्यवसाय। स्मृतियों में भिन्न भिन्न वर्णों के धर्म निरूपित हैं। जैसे,— ब्राह्मण का धर्म—अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह; क्षत्रिय का धर्म—प्रजापत्या, दान, यज्ञानुष्ठान और अध्ययन; वैश्य का धर्म—पशुपालन, कृषि, दान, यज्ञ और अध्ययन। शूद्र का धर्म—तीनों वर्णों की सेवा। व्यवसाय-भेद और सब देवों में भी चला आ रहा है, पर भारतीय आर्यों की लोकव्यवस्था में यह व्यवसायों के विचार से जाति-गत या जन्मना माना गया है। इसी 'वर्ण' और 'आश्रम' की व्यवस्था को भारतीय आर्य्य अपना विशेष लक्षण मानते थे और अपने धर्म को 'वर्णाश्रम धर्म' कहते थे।

(३) भेद। प्रकार। किस। (४) साकारिद शब्दों के चिह्न या संकेत। अक्षर। (५) गुण। (६) यश। कीर्ति। (७) स्तुति। बड़ाई। (८) स्वर्ण। सोना। (९) शृदंग का एक ताल जो चार प्रकार का होता है—पाट, विधिपाट, कृपटाट और खंडपाट। (१०) रूप। (११) अंगारा। विलेपन। (१२) कुंडल। कैसर। (१३) चित्र। तसवीर।

वर्णक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वृत्ति या।

वर्णक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हस्ताक्षर। (२) अनुलेपन। उबठन। (३) चंदन। (४) किसी हुई हल्दी आदि जो देवताओं को चढ़ाई जाती है। (५) मंडक। (६) चरण। (७) रंग। (८) अभिनेताओं के परिधान या परिच्छद। (९) चित्रकार।

वर्णलक्ष्मणे-संज्ञा पुं० [ सं० ] विंगल या छंदः शास्त्र में यह क्रिया जिससे विना मंत्र बनाए मंत्र का काम निकल जाता है; अर्थात् यह ज्ञात हो जाता है कि इतने वर्णों के कितने वृत्त हो सकते हैं और प्रत्येक वृत्त में कितने गुरु और कितने लघु होंगे।

विशेष—जितने वर्णों का खंडमेह बनाना हो, उतने से एक कोष्ठ अधिक बाईं से दाहिनी ओर को बनाये। फिर उन्हीं कोष्ठों के नीचे पहला स्थान छोड़कर दूसरे स्थान से आरंभ करके ऊपर से एक कोष्ठ कम बनाये। इसी प्रकार वही स्थान से नीचे एक कोष्ठ कम बराबर बनाता जाता जाय, यद्यत् एक कोष्ठ न आ जाय। इन कोष्ठों को इस प्रकार करें। कोष्ठों की पहली पंक्ति में बाईं ओर से सप्त में एक एक का अंक लिखे। दूसरी पंक्ति के पहले कोष्ठ से आरंभ करके क्रमदाः २, ३, ४, ५, ६ आदि अंश तक लिख जाय। इसके अनंतर कोष्ठों की प्रथम पंक्ति के तीसरे अंक

से उचरोत्तर नीचे की ओर वक्रगति से अंकों को जोड़कर आगे खानों में रखता जाय। अंतिम कोष्ठों में जो अंक होंगे, वे लघु गुरु के हिसाब से वृत्तों के भेद सूचित करेंगे। उदाहरणार्थ आठ वर्णों का रंङ्गरेख बनाना हो, तो इस प्रकार करे—

१	१	१	१	१	१	१	१	१
	२	३	४	५	६	७	८	
	३	६	१०	१५	२१	२८		
	४	१०	२०	३५	५६			
	५	१५	३५	७०				
	६	२१	५६					
	७	२८						
	८							

वर्णों वृत्तों में एक भेद देसा होगा जिसमें सब गुरु होंगे, और एक देसा होगा, जिसमें सब लघु होंगे। अतः सबे गुरु से आरंभ करके एक एक गुरु घटाते जायें, तो भेदों की संख्या इस प्रकार होगी—१ भेद देसा होगा, जिसमें सब (८) गुरु होंगे। ८ भेद देसे होंगे जिनमें १ लघु और ७ गुरु होंगे। ८ भेद देसे होंगे जिनमें २ लघु और ६ गुरु होंगे। ५१ भेद देसे होंगे, जिनमें ३ लघु और ५ गुरु होंगे। ७० भेद देसे होंगे जिनमें ४ लघु और ४ गुरु होंगे। ५६ भेद देसे होंगे, जिनमें ५ लघु और ३ गुरु होंगे। २८ भेद देसे होंगे जिनमें ६ लघु और २ गुरु होंगे। ८ भेद देसे होंगे जिनमें ७ लघु और १ गुरु होगा। एक भेद देसा होगा, जिसमें सब लघु होंगे।

- वर्णन्येष्ट-छंदा पुं० [ सं० ] सब वर्णों में चढ़ा, प्राण्यन।
- वर्णद्वलि, वर्णद्वलिका, वर्णद्वली-छंदा स्त्री० [ सं० ] चढ़ कृचि वर्णससे चित्रकार चित्र बनते हैं। कलम।
- वर्णद्वल-पारा पुं० [ सं० ] लिपि।
- वर्णद्वलक-छंदा पुं० [ सं० ] अपने संसर्ग से दूसरे को जलितभ्रष्ट करनेवाला। पंक्ति-दूषक। पतित मनुष्य।
- वर्णन-छंदा पुं० [ सं० ] [ वि० नचनीय, वर्य, वधिण ] (१) चित्रण। रंगना। (२) किसी बात को सविस्तार कहना। कथन। बयान। उ०—सो चौबीस रूप निज कहियत वर्णन करत

विचार।—सूर। (३) स्तवन। प्रनांस। गुणकथन। तारीफ़।

कि० प्र०—करना।—होना।  
वर्णनष्ट-छंदा पुं० [ सं० ] विंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि प्रस्तार के अनुसार ह्रासे वर्णों के वृत्तों के अगुक्त संख्यक भेद का रूप लघु गुरु के हिसाब से कैसा होगा।

विशेष—जितने वर्णों के प्रस्तार के किसी भेद का रूप निकालना हो, उतने लघु के चिह्न लिखकर उनके सिरे पर क्रमशः वर्णोद्दिष्ट अंक ( १ से आरंभ करके क्रमशः दूने दूने अंक ) लिखे। फिर अंतिम अंक का दूना करके उसमें से पूछी हुई संख्या घटावे। जो अंक शेष रहे, वह जिन जिन उद्दिष्टों के योग से बना हो, उनके नीचे की लघु मात्राओं के चिह्नों को गुरु कर दे। जो रूप सिद्ध होगा, वही उचर होगा। जैसे,—किसी ने पूछा कि चार वर्णों के प्रस्तार में सेाहवें भेद का रूप क्या होगा ? इसके लिये हमने यह क्रिया की—

१	२	४	८

अंतिम अंक ८ का दूना १६ हुआ। उसमें से १३ घटाया, तो ३ रहा। अब हमने देसा कि ३ संख्या कपर दिए हुए उद्दिष्टांकों में से १ और २ जोड़ने से आ जाती है। अतः उनके नीचे गुरु बनाया तो यह रूप उ०३। सिद्ध हुआ।

- वर्णना-उच्चा स्त्री० [ सं० ] गुण कथन।
- वर्णनाश-छंदा पुं० [ सं० ] निरुक्तकार के अनुसार शब्द में किसी वर्ण का नष्ट हो जाना। जैसे—'पुत्रोदर' शब्द में 'पुत्रोदर' शब्द के 'त' का नाश पाया जाता है।
- वर्णपताका-छंदा स्त्री० [ सं० ] विंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि वर्णवृत्तों के भेदों में से कौन सा ( पहला, दूसरा या तीसरा आदि ) देसा है, जिसमें इतने लघु और इतने गुरु होंगे।

वर्णपताका-छंदा पुं० [ सं० ] विंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि अगुक्त संख्या के वर्णों के कुल कितने वृत्त हो सचते हैं और उन वर्णों में से कितने लघुवादि और कितने लघ्वंत, कितने गुरुवादि और कितने गुरुवंत तथा कितने सर्वगुरु और कितने सर्वलघु होंगे।

विशेष—जितने वर्णों का पताका बनाना हो, उतनी ही सदी रेखाएँ और उतने काठरी हुई पाँच आदरी रेखाएँ लीं। इस प्रकार कोष्ठ बन जाने पर कोष्ठों की पहली पंक्ति में क्रम से १, २, ३, ४ आदि अंक भरे। दूसरी पंक्ति में ३, ४, ८, १६ आदि वर्णवृत्तों के अंक लिखे। तीसरी पंक्ति में वृत्तों के अंकों के भाधे लिखे, और चौथी पंक्ति में पहली और तीसरी पंक्ति

के अंकों का गुणनफल लिखे। उदाहरण के लिये ९ वर्णों का पाताल इस प्रकार होगा—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	वर्ण संख्या।
२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२	सर्व संख्या।
१	२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	लघ्वादि, लघ्वंत, गुर्वादि, गुर्वंत।
१	४	१२	३२	८०	१२२	४४८	१०२४	२३०४	सर्वं गुरु, सर्वं लघु।

इस पाताल से विदित हुआ कि ९ वर्णों के ५१२ वृत्त हो सकते हैं। इन वृत्तों में २५६ ऐसे वृत्त होंगे, जिनके आदि में लघु होंगे; २५६ ऐसे होंगे, जिनके अंत में लघु होंगे; फिर २५६ ऐसे होंगे जिनके आदि में गुरु होंगे; और २५६ ऐसे होंगे, जिनके अंत में गुरु होंगे। सब वृत्तों में कुल मिलाकर २३०४ गुरु और २३०४ लघु होंगे।

वर्णपुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुद्ध राग का एक भेद।

वर्णप्रत्यय-संज्ञा पुं० [ सं० ] छंदः शास्त्र या विंगल में वे क्रियाएँ जिनके द्वारा यह जाना जाता है कि अभुक्त संख्या के वर्णवृत्तों के कितने भेद हो सकते हैं, उनके स्वरूप क्या होंगे, इत्यादि।

विशेष—जिस प्रकार मात्रिक छंदों में ९ प्रत्यय होते हैं, उसी प्रकार वर्णवृत्तों में भी ९ प्रत्यय होते हैं—प्रस्तार, सूची, पाताल, उरिष्ट, नष्ट, मेह, खंडमेह, पताका और मकटी।

वर्णप्रस्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] विंगल या छंदः शास्त्र में यह क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि इनने वर्णों के वृत्तों के इतने-भेद हो सकते हैं भी उन भेदों के स्वरूप इस प्रकार होंगे।

विशेष—जितने वर्णों का प्रस्तार बढ़ाया हो, उतने वर्णों का पहला भेद (सर्वं गुरु) लिखे। फिर गुरु के नीचे लघु लिख कर दोष वर्णों का र्यों लिखे। फिर सब से बाईं ओर के गुरु के नीचे लघु लिखकर आगे ज्यों का र्यों लिखे; और बाईं ओर जितनी न्यूनता रहे, उतनी गुरु से भरे। यह क्रिया अंत तक अर्थात् सर्वलघु भेद के आगे तक करे। उदाहरण के लिये तीन वर्णों का प्रस्तार इस प्रकार होगा—

रूप	भेद
६३५-	पहला
१५५	दूसरा
६१५	तीसरा
११५	चौथा
५३१	पाँचवाँ

१५१	छठा
५११	सातवाँ
१११	आठवाँ

इस प्रस्तार से प्रकट हुआ कि तीन वर्णों के आठ ही भेद हो सकते हैं; अर्थात् आठ ही प्रकार के वृत्त बन सकते हैं, अधिक नहीं।

वर्णमकटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि इतने वर्णों के इतने वृत्त हो सकते हैं, जिनमें इतने गुर्वादि, गुर्वंत और इतने लघ्वादि लघ्वंत होंगे; तथा सब वृत्तों में मिलाकर इतने वर्ण, इतने गुरु लघु, इतनी कलाएँ और इतने पिंड (= दो कल) होंगे।

विशेष—जितने वर्ण हों, उतने खाने बाएँ से दाहिने बनाये। फिर उन खानों के नीचे उतने ही खानों की छः-पंक्तिएँ और बनाये। कोष्ठों की पहली पंक्ति में १, २, ३ आदि अंक लिखे; दूसरी में वर्ण सूची के अंक (२, ४, ८, १६ आदि) लिखे; तीसरी पंक्ति में दूसरी पंक्ति के अंकों के आधे अंक भरे; चौथी में पहली और दूसरी पंक्ति के अंकों के गुणनफल लिखे; पाँचवीं में चौथी पंक्ति के आधे अंक भरे; छठी पंक्ति में चौथी और पाँचवीं पंक्ति के अंकों का योग लिखे; और सातवीं पंक्ति में छठी पंक्ति के आधे अंक भरे। उदाहरण के लिये छः वर्णों की मकटी इस प्रकार होगी—

१	२	३	४	५	६	वर्ण संख्या
२	४	८	१६	३२	६४	वृत्तों की संख्या
१	२	४	८	१६	३२	गुर्वादि, गुर्वंत, लघ्वादि, लघ्वंत
२	८	२४	६४	१६०	३८४	सर्वं वर्ण
१	४	१२	३२	८०	१९२	गुरु लघु
३	१२	३६	९६	२४०	५०६	सर्वं कला
१३	६	१८	४८	१२०	२८८	पिंड

इस मकटी से प्रकट हुआ कि ६ वर्णों के ६४ वृत्त हो सकते हैं। ३२ वृत्त ऐसे होंगे जिनके आदि में गुरु, ३२ ऐसे जिनके अंत में गुरु, ३२ ऐसे जिनके आदि में लघु और ३२ ही ऐसे जिनके अंत में लघु होंगे। सब वृत्तों की मिलाकर ३८४ वर्ण होंगे; इत्यादि, इत्यादि।

वर्णमाला-संज्ञा की० [ सं० ] अक्षरों के रूपों की यथा श्रेणी लिखित सूची। किसी भाषा में आनेवाले सब हरफ जो ठीक सिलसिले से रखे हों। जैसे देवनागरी में—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ए ऐ ओ औ।

क ख ग घ ङ।  
च छ ज झ ञ।  
ट ठ ड ढ ण।  
त थ द ध न।  
प फ ब भ म।  
य र ल व।  
श ष स ह।  
अं अः।

वर्णयती संज्ञा की० [ सं० ] हल्दी।

वर्णविकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] निरुक्त के अनुसार शब्दों में एक वर्ण का विग्रहकर दूसरा वर्ण हो जाना। जैसे 'हल्दी' शब्द में 'हरिद्रा' के 'र' का 'ल' हो गया है। 'द्वादश' के 'द' का 'बारह' शब्द में 'र' हो गया है।

वर्णविचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] आधुनिक व्याकरण का वह अंश जिसमें वर्णों के आकार, उच्चारण और संधि आदि के नियमों का वर्णन हो। प्राचीन वेदों में यह विषय 'सिक्षा' कहलाता था और व्याकरण से बिल्कुल स्वतंत्र माना जाता था।

वर्णविपर्यय-संज्ञा पुं० [ सं० ] निरुक्त के अनुसार शब्दों में वर्णों का उलट फेर हो जाना। जैसे 'दिस' शब्द से यने 'सिह' शब्द में हुआ है।

वर्णविक्षाशिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हल्दी।

वर्णवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पद्य जिसके चरणों में वर्णों की संख्या और लघु गुरु के क्रमों में समानता हो।

वर्णश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्राह्मण।

वर्णसंकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह व्यक्ति या जाति जो दो मिश्र मिश्र जातियों के छी पुरुष के संयोग से उत्पन्न हो।

विशेष—स्वतंत्रियों में ऐसी बहुत सी जातियाँ गिनाई गई हैं। इस विषय में एक वृत्तरे के मत भी नहीं मिलते। वर्णसंकर दो प्रकार के बड़े हुए हैं—अनुलोमज और प्रतिलोमज। अनुलोमज का पिता माता से श्रेष्ठ वर्ण का होगा है और प्रतिलोमज की माता पिता से श्रेष्ठ वर्ण की होती है। प्रतिलोमज संकर प्राचीन काल में निषिद्ध माने जाते थे। अनुलोम विवाह का प्रचार प्राचीन काल में था; पर पीछे बंद हो गया। धर्मशास्त्रों में यद्यपि वर्णसंकरता के ये कारण गिनाए गए हैं—(१) स्वमिचार, (२) अवेद्यावेदन और (३) स्वकर्मव्यग्र; पर शोक में अंतिम यात पर ध्यान नहीं दिया जाता। (२) यह व्यक्ति जो ऐसे की पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ

हो, जो धर्मानुसार विवाहित न हों। स्वमिचार से उत्पन्न मनुष्य। दोगला।

वर्णसमाप्त्याय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्णमाला।

वर्णसूची-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छंदः शास्त्र या विंगल में एक क्रिया जिसके द्वारा वर्णसूची की संख्या की छुदता, उनके भेदों में आदि अंत लघु और आदि अंत गुरु की संख्या जानी जाती है।

विशेष—जितने वर्णों की सूची देखनी हो, उतने वर्णों की संख्या तक क्रम से १, ४, ८ इत्यादि अर्थात् उरोत्तर दूने अंक लिखे। इस क्रिया के अंत में जो संख्या आवेगी, वह वृत्त-भेद की संख्या होगी। अंत के अंक से बाईं ओर जो अंक होगा, उतने आदि लघु और अंतलघु तथा आदिगुरु और अंत-गुरु होंगे। फिर उससे भी बाईं ओर अर्थात् अंत से तीसरे कोष्ठ में जो अंक होगा, उतने ही आद्यंत लघु और आद्यंत गुरु वृत्त होंगे। उदाहरणार्थ ४ वर्णों की सूची यह है—

२	४	८	१६
	आदि लघु	आदि गुरु	अंत लघु
	आदि लघु	आदि गुरु	अंत लघु
	आदि लघु	आदि गुरु	अंत लघु

वर्ण-संज्ञा की० [ सं० ] अक्षर।

वर्णधिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित उगोतिप के अनुसार ब्राह्मणादि वर्णों के अधिपति द्रव्य। (ब्राह्मण के अधिपति बृहस्पति और शुक्र, क्षत्रिय के भीम और रवि, वैश्य के चंद्र, द्रव्य के पुत्र और अथर्व के शक्ति माने जाते हैं।)

वर्णहिं-संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्रह्म।

वर्णि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्वर्ग। सोना। (२) चलि।

वर्णिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] लेखक।

वर्णिक वृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह वृत्त या छंद जिसके प्रत्येक वर्ण के वर्णों की संख्या और लघु गुरु के स्थान समान हों।

वर्णिका-संज्ञा की० [ सं० ] (१) कठिनी। खड़िया। (२) मसि। स्वाही। (३) सोने का पानी। (४) चंद्रमा। (५) विलेपन।

वर्णित-वि० [ सं० ] (१) कथित। कहा हुआ। (२) जिसका वर्णन हो चुका हो। बयान किया हुआ।

वर्णी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्णिक। (१) लेखक। (२) चित्रकार। (३) प्रह्वचारी।

वर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक नदी का नाम। बन्नु। आदिया। (२) बन्नु नामक देश।

वर्णोद्दिष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि अमुक संत्यक वर्णवृत्त का कोई रूप कौन सा भेद है।



विशेष—जो भेद दिया गया हो, उसमें लघु गुण के ऊपर ऋम से दूने अंक अर्थात् १, २, ४, ८ इत्यादि लिखे। फिर लघु के ऊपर जितने अंक हों, उन्हें जोड़कर उसमें १ और जोड़ दे। जैसे,—किसी ने पूछा कि चार वर्ण के धूर्तों में ॥५५ कौन सा भेद है, तो यह क्रिया की—

१ २ ४ ८  
। । ५ ५

अब लघु वर्णों के ऊपर के अंक (१ + २) जोड़ने से ३ हुए। उसमें एक जोड़ने से ४ हुए। इससे विदित हो गया कि यह धीमा भेद है।

धर्षण—घंशा पुं० [ सं० ] (१) कुंठम। (२) वनतुलसी। यवर्द्ध।

(३) प्रस्तुत विषय। (४) उपमेय।

वि० (१) वर्णन के योग्य। (२) जो वर्णन का विषय हो।

धर्तक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यदुना। (२) नर यदर। (३) घोड़े का शूर।

धर्तका, धर्तकी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घटर।

धर्तन—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० बर्तित ] (१) बरताव। व्यवहार।

(२) व्यवसाय। जीवनोपय। धृति। रोगी। (३) फेरना।

धुमाना। घटना। (४) परिवर्तन। फेर फार। (५) स्थिति।

ध्वराव। (६) स्वपन। रचना। (७) सिक पट्टे से पीसना।

पेपण। घटना। (८) धर्तमान। (९) चरखे की यह लकड़ी

जिसमें तकड़ा लगा रहता है। (१०) धरलोई। धडुळा।

(११) धात। बरतन। (१२) धात में सलाई डालकर

दिलाना झुलाना, जिससे धात या मासूर की गहराई और

फेलाव आदि का पता लगता है। शययकंपन फर्म। (१३)

विष्णु। (१४) कोमा।

धर्तना—कि० ऋ०, कि० सं० दे० 'बरतना'।

धर्तनि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पूर्व दिशा। पूर्व देश। (२) याट।

रास्ता। (३) शुद्ध राग का एक भेद।

धर्तनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घटने की क्रिया। पेपण। पिसाई।

(२) याट। रास्ता।

धर्तमान—वि० [ सं० ] (१) चलता हुआ। जो जारी हो। जो

चल रहा हो। (२) उपस्थित। मौजूद। विद्यमान। (३)

साक्षात्। (४) भाषुनिक। हाल का।

घंशा पुं० (१) व्याकरण में क्रिया के तीन कालों में से एक,

जिससे सूचित होता है कि क्रिया अभी चली चलती है,

समाप्त नहीं हुई है।

विशेष—धर्तमान के कई भेद होते हैं। "यह आता है" इस

क्रिया में क्रिया में आरंभ और बड़ा चलना पाया जाता

है, समाप्त नहीं; इससे यह सामान्य धर्तमान है।

कभी कभी धर्तमान के प्रयोग द्वारा 'नियत प्रवृत्ति' भी पाई

जाती है। जैसे,—"भारत के उत्तर में हिमालय है"। कभी

कभी "वृत्ताविरता" भी पाई जाती है। जैसे,—"हस मैशन में लड़के खेलते हैं"। इस वाक्य से यह सूचित होता है कि चाहे कबने के समय लड़के न खेलते रहे हों, पर उसके पूर्व कई बार खेल चुके हैं और आगे भी बराबर खेलेंगे। इसी प्रकार "यह मांस नहीं खाता" इस वाक्य में "प्रवृत्तोरता" पाई जाती है; अर्थात् वह जन्म से ही मांस नहीं खाता। इसी प्रकार और भी भेद हैं।

(२) वृत्तांत। समाचार। (३) चलता व्यवहार। उ०—  
तुम पाँच सात पीढ़ियों के वत्तमान को सनातन व्यवहार मानते हो।—सुरपार्थ प्रकाश।

धर्तक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक नदी का नाम। (२) कौवे का धौंसला। (३) द्वारप्रकार।

धर्तलोह—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का लोहा।

विशेष—वैद्यक में दोषे हुए धर्तलोह को कफ, दाह और

पित्त का नाशक और उसके स्वाद को कटु, मधुर और तिक्त

लिखा है। यह बड़ी लोहा है, जिसके बिंदुरी बरतन

बनते हैं।

धर्तलोह—धर्तलोह। धर्तक। लोहसंकट। नीलक। नीलज।

नीललोह।

धर्तल—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बत्ती। (२) अंजन। (३) यह बत्ती

जो चैय धात में देता है। (४) औषध बनाना। (५)

अनुलेपन। उचटन। (६) गोली। बटो।

धर्तलक—संज्ञा पुं० [ सं० ] घटर।

धर्तिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घटर। (२) अन्नश्रंगी। (३)

बत्ती। (४) ढालाका। सलाई।

धर्तिकापिटु—संज्ञा पुं० [ सं० ] हीरे का एक दोष। (इस प्रकार के

हीरे को धारण करने से भय उत्पन्न होता है।—रथ परी-

हा।)

धर्तित—वि० [ सं० ] (१) संपादित। निष्पादित। क्रिया हुआ।

(२) चलाया हुआ। जारी किया हुआ। (३) दुदुस्त किया

हुआ।

धर्तितर—संज्ञा पुं० [ सं० ] घटर।

धर्तल वि० [ सं० बर्तित् ] [ स्त्री० बर्तनी ] (१) धर्तनशील।

बरतनेवाला। (२) स्थित रहनेवाला। जैसे,—समीपवर्ती।

संज्ञा स्त्री० (१) बत्ती। (२) ढालाका। सलाई।

धर्तुल—वि० [ सं० ] गोल। वृत्ताकार।

संज्ञा पुं० (१) गुंजन। गाजर। (२) मटर। (३) गुंरुपण।

(४) मुहाला।

धर्तल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मार्ग। पथ। (२) मार्ग के पवित्र

का मार्ग। लीक। (३) किनारा। बाँट। बारी। (४) अल

की पलक। (५) आयात। आयाप।

वर्त्मकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] अँल का एक रोग जिसमें पित और रक्त के प्रकोप से अँलों में कीचद भरा रहता है।

वर्त्मबंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] अँल का एक रोग जिसमें पलक में सूजन हो जाती है, खुजली तथा पीड़ा होती है और अँल नहीं खुलती।

वर्त्ममांसिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्ण मांसिका। सोना माली।

वर्त्मरोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] अँल का एक रोग जिसमें पलकों में विकार उत्पन्न हो जाता है और अँलों को खोलने से बड़ी पीड़ा होती है। वैद्यक में इस रोग के २१ भेद माने गए हैं—उत्सृग्गिनी, कुम्भिका, पोषकी, वामांतर्करा, वर्त्मभ्रं, शुष्कार्वा, भ्रंजन-द्विका, बहुद्वार्य, वर्त्मबधक, क्षिप्रवर्त्म, वर्त्मकर्म, दवाव-वर्त्म, प्रक्षिन्नवर्त्म, अक्षिन्नवर्त्म, वातहतवर्त्म, वर्त्मखंड, निमेष, शोणितारं, नगण, विष-वर्त्म और कुंचन।

वर्त्मशर्करा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अँल का एक रोग जिसमें पलकों में छोटी छोटी कुंसियों के सहित एक बड़ी और कड़ी कुंसी हो जाती है।

वर्त्मस्था-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अँलों का एक रोग। वर्त्मरोग।

वर्त्मविभ्रं-संज्ञा पुं० [ सं० ] अँलों का एक रोग जिसमें पलक के अंदर एक गोंद उत्पन्न हो जाती है। यह देवी और लाल रंग की होती है और इसमें पीड़ा नहीं होती।

वर्त्मविरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्त्मरोग।

वर्त्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वर्ती = बत्ती। बूँज की बत्ती जो रज के पीले होने पर चरले में लगाई जाती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "वर्दी"।

वर्द्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सीसा पात्र। (२) भारंगी। (३) काटना। सातना। (४) पूर्ति। पूरण।

वर्द्ध-वि० [ सं० ] (१) बढ़ानेवाला। पूरक। (२) काटनेवाला। छीलनेवाला।

वर्द्धकी संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्द्धक, वर्द्धिन् ] वर्द्ध। लकड़ी का काम करनेवाला।

वर्द्धन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० वर्द्धि ] (१) बढ़ाना। (२) वृद्धि। बढ़ती। वृद्धि। (३) छेदना। काटना। छीलना। सातना।

वर्द्धमान-वि० [ सं० ] (१) बढ़ता हुआ। जो बढ़ता जा रहा हो। (२) बढ़नेवाला। वर्द्धनशील।

संज्ञा पुं० (१) एक वर्ण सूत्र जिसके चारो चरणों में वर्णों की संख्या मिला होती है: अर्थात् १४, १३, १८ और १५।

विशेष—इसके चारो चरणों में वर्णों की संख्या इस प्रकार होती है—प्रथम चरण—मगण, सगण, जगण, भगण, पुग, युग; द्वितीय चरण—सगण, मगण, जगण, रगण, पुग; तृतीय चरण—मगण, भगण, सगण, जगण, पुग; और चतुर्थ चरण—मगण, भगण, जगण, सगण, युग।

यथा—गोविंदा पद में सु, मित्त चित्त लर्गौरी। निहर्ष यहि भवसिद्धि पाव वैहौ। असत् सकल जग मोह मर्दहि सय तज रे। तन मन धन सन भगिण्ट हरि को रे।

(२) मिट्टी का प्याला। सकोरा। (३) जैनियों के २४ वें दिन महावीर का नाम। (४) बंगाल का एक जिला और नगर।

वर्द्धयिता-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्द्धयिन् ] बढ़ानेवाला।

वर्द्धी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम जो सतपुरा के पर्वतों से निकलकर गोदावरी में गिरती है। मध्य प्रदेश की भमरावती नगरी इसी नदी के किनारे बसी है।

वर्द्धीयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कर्ण वेध। नाड़ी छेदन। कन-छेदन। (२) महाग्राह्य देव में अर्ध्यागदि क्रिया जो किसी पुरुष की जन्मतिथि को की जाती है।

वर्द्धित-वि० [ सं० ] (१) बढ़ा हुआ। (२) पूर्ण। (३) छिन्न। कटा हुआ।

वर्द्धीणस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सकेद रंग का बकरा जिसके कान नदी में पानी पीते समय पानी में छू जायँ।

वर्द्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] चमड़ा। खाल।

वर्द्धिका, वर्द्धी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चमड़े की रस्सी। बन्दी। (२) एक प्रकार का आभूषण जिसे बन्दी कहते हैं।

वर्ध्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्ध्मन् ] (१) वह फोड़ा जो जीव के मूल में संधिस्थान में निकल आता है। यह फोड़ा कठिन होता है। इसके रोगी को ज्वर आता है, शूल होता है, और बह। सुस्त पड़ा रहता है। पद। (२) अंगवृद्धि रोग। अर्थात् उतरने का रोग।

वर्ध्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्ध्मन् ] (१) कचर। बकुर। (२) घर। (३) पित्त पाषाण। परपटक।

वर्ध्मक-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक जनपद का नाम जिसे अथ 'वर्ध्मा' कहते हैं।

वर्ध्मकंक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वित्तपाषाण। परपटक।

वर्ध्मकथा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सातला। सप्तला।

वर्ध्महर-वि० [ सं० ] वर्ध्महर। कवचघारी।

वर्ध्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्ध्मन् ] हरियों आदि की उपाधि जो उनके नाम के अंत में लगाई जाती है।

वर्ध्मि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली।

वर्ध्मित-वि० [ सं० ] कवचघारी। कृतसम्नाह।

वर्द्ध-वि० [ सं० ] (१) बढ़ाना। (२) छेद।

विशेष—इसका प्रयोग विद्विपतः समस्त पदों में होता है। जैसे—विद्धवर्द्ध।

संज्ञा पुं० कामवेध।

वर्द्धी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कन्या। (२) पत्निका यप। (३) अर्द्धर।

घर्षट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] लोथिया । बोदा । चजरघट्ट ।

घर्षण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नीली मक्खी ।

घर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक देश का नाम । (२) इस देश का असम्भूत निवासी जिसके बाल घुँघराले कहे गए हैं ।

विशेष-यद्यपि घर्ष देश का उल्लेख महाभारत ( भीष्म पर्व ) तथा यामन, मार्कण्डेय आदि पुराणों में है, पर यह जनपद कहाँ था, इसका ठीक ठीक पता नहीं । कहीं कहीं पर्वतों के बाल घुँघराले कहे गए हैं । पुराने यूनानी और रोमन भूगोलिकों ने सिंधु नदी के मुहाने के आसपास के प्रदेश को बर्बर ( Barbarion ) देश कहा है । कुछ भारतीय ग्रंथकारों ने महाराष्ट्र देश के एक विशेष भाग को घर्ष कहा है । घर्ष नाम की एक प्राकृत भाषा का उल्लेख भी 'प्राकृतचन्द्रिका' में है । इसमें संदेह नहीं कि इस जनपद के निवासी असम्भूत समझे जाते थे और पूजा की दृष्टि से देखे जाते थे । पीछे से दूर दूर तक की सम्भूत जातियों में यह शब्द 'म्लेच्छ' और 'जंगली' का वाचक हुआ । प्राचीन यूनानी अपनी जाति के लोगों के अतिरिक्त औरों को 'घर्ष' कहा करते थे । रोमनों में भी ऐसा ही था ।

(१) पामर । नीच । (२) घुँघराले बाल । (३) काली वन तुलसी । (४) हिण्डुल । ईशुर । (५) पीला चंद्रन ।

घर्षकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चंद्रन । इसका गुण शीतल, कफ, वायु, पित्त, कौष, खात्र और प्रण तथा रक्त दोष का नाशक और स्वाद कड़वा माना गया है ।

घर्षारो-संज्ञा स्त्री० । शीत । पिशाचि ।

घर्षारो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वन तुलसी ।

घर्षारीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मारंगी । (२) वन तुलसी । (३) महाकाल ।

घर्षार-संज्ञा पुं० [ सं० ] धनुष ।

घर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दृष्टि । जलघर्षण । (२) काल का एक मान जिसमें दो अयन और बारह महीने होते हैं । उतना समय जितने में सब ऋतुओं की एक आवृत्ति हो जाती है । संवत्सर । साल ।

विशेष-घर्ष चार प्रकार के होते हैं-सौर, चांद्र, सावन और नाक्षत्र । सौर वर्ष ३६५ दिन, ५ घंटे, ४८ मिनट और ४६ सेकंड का होता है । यह उतना समुप है, जितने में पृथ्वी सूर्य की एक परिक्रमा पूरी कर लेती है । पृथ्वी के इसी भ्रमण के कारण सूर्य का सप्ताहसं नक्षत्रों और बारह राशियों गमन दिखाई पड़ता है । लोग कहते हैं कि धर सूर्य अमुक नक्षत्र या राशि में है । धूमते समय पृथ्वी की घुरी सीधी न रुककर कुछ डेढ़ी रहती है और उसके मार्ग की कक्षा गोल न होकर अंडाकार होती है । इसी से सूर्य कुछ महीनों तक भूमध्यरेखा के उत्तर और कुछ महीनों तक दक्षिण में उदय

होता दिखाई पड़ता है । ये दोनों 'उत्तर अयन' और 'दक्षिण अयन' कहलाते हैं । वर्ष में केवल दो दिन सूर्य भूमध्य या विषुवत् रेखा पर उदय होता है । इन दोनों को सावन कहते हैं । एक सावन तुला राशि में और दूसरा मेष में होता है । सूर्य कर्क राशि में आकर दक्षिण की ओर बचने लगता है और धनु राशि में पहुँचने तक भूमध्यरेखा के दक्षिण ही रहता है । मकर राशि से फिर उत्तर की ओर बढ़ने लगता है और कर्क राशि में पहुँचने तक उत्तर ही रहता है । प्राचीन भारतीय आश्यों में राशियों का व्यवहार न था, इससे सौर वर्ष दो अयनों का ही माना जाता था । प्रदों का उदय राशियों में न माना जाकर २७ नक्षत्रों में माना जाता था । इससे कभी कभी बड़ी अव्यवस्था होती थी। चांद्र वर्ष ३५४ दिन, ८ घंटे, ४८ मिनट और ३६ सेकंड का होता है । इतने काल में चंद्रमा पृथ्वी की बारह परिक्रमाएँ कर लेता है । इस प्रकार सौर वर्ष और चांद्र वर्ष में प्रति वर्ष १० दिन, २१ घंटे का अंतर पड़ता है । हिन्दू पंचांग में यह अंतर प्रति तीसरे वर्ष १३ महीने का वर्ष मानकर दूर किया जाता है । उस बड़े हुए महीने को 'अधिमास' या 'मलमास' कहते हैं । सावन वर्ष पूरे ३६० दिनों का होता है और उसके महीने तीस तीस दिन के होते हैं । वैदिक काल में सावन मास ही अधिक चलता था और प्रत्येक मास की तिथि की गणना चंद्रमा के ही हिसाब से होती थी । शुद्ध प्रतिपदा से पूर्णिमा तक १५ दिन का शुद्ध पक्ष और कृष्ण प्रतिपदा से अमावास्या तक १५ दिन का कृष्ण पक्ष होता था । नाक्षत्र वर्ष ३२४ दिन का और उसका प्रत्येक महीना २७-२७ दिन का होता है । इन चार प्रकार के वर्षों के अतिरिक्त प्राचीन काल में और कई प्रकार के वर्षों का प्रचार था । जैसे,—सप्तर्षि वर्ष ।

(३) पुराण में माने हुए सात हीनों का एक विभाग । (४) किसी हीन का प्रधान भाग जैसे,—भातवर्ष । (५) मेष । बादल ।

घर्षकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेष ।

घर्षकरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिंघी । हींगुर ।

घर्षकाम-विं० [ सं० ] दृष्टि की कामना रखनेवाला । दृष्टि चाहनेवाला ।

घर्षकामेष्टि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यज्ञ जो वर्षों के लिये किया जाता था ।

घर्षकाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जीरा ।

घर्षकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] लाल रंग की पुननवा । लाल गद्दपुराना ।

घर्षकोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दीवज । ज्योतिषी । (२) माप । ६५५ ।

वर्षगाँठ-संज्ञा स्त्री० [ दि० वर्ष + गाँठ ] वह कृत्य जो किसी पुरुष के जन्म दिन पर किया जाता है। वि० दे०—“बरस गाँठ।

वर्षस्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पवन। (२) ग्रहों का वह योग जिससे वर्षा नष्ट हो जाती है।

वर्षपंचा-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० वर्षित ] वृष्टि। बरसना।

वर्षपूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेघ। मार्ग (२) अंतःपुर रक्षक। नपुंसक। खोजा।

वर्षपर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] अंतःपुर-रक्षक। नपुंसक। खोजा।

वर्षप, वर्षपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्ष के अधिपति ग्रह।

विशेष—फलित ज्योतिष में वर्ष प्रवेश होने पर कोई न कोई ग्रह उस वर्ष का अधिपति या राजा माना जाता है। इसी अधिपति के विचार से यह बताया जाता है कि वर्ष शुभ होगा या अशुभ।

वर्षपारकी-संज्ञा पुं० [ सं० वर्षपारिक ] आस्रातक। आमदा।

वर्षफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष में जातक के अनुसार वह कुंडली जिससे किसी के वर्ष भर के ग्रहों के शुभाशुभ फलों का विवरण जाना जाता है।

क्रि० प्र०—निकाळना।—घनाना।

वर्षाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] महीना।

वर्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह ऋतु जिसमें पानी बरसता है।

विशेष—छः ऋतुओं के हिसाब से सावन और भादों में दो महीने वर्षा ऋतु के माने जाते हैं। पर साधारण व्यवहार में जादा, गरमी और बरसत के हिसाब से वर्षा काळ आषाढ़ से कुम्भार तक चार महीने का लिया जाता है, जिसे चातुर्मास या 'चौमासा' कहते हैं।

पथी०—मावृट्। पावस। घनागम। घनाकर।

(२) पानी बरसने की क्रिया या भाव। वृष्टि।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—(किसी वस्तु की) वर्षा होना = (१) बहुत अधिक परिमाण में ऊपर से गिरना। जैसे,—झूठों की वर्षा होना।

(२) बहुत अधिक संख्या में मिलना। जैसे,—धार्त खर्यों की वर्षा होती है।

वर्षाकाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्षा ऋतु। बरसत।

वर्षागम-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्षा ऋतु का आगमन। वर्षारंभ।

वर्षाधिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो संवत्सर के वर्ष का अधिपति हो। वि० दे०—“वर्षपति”।

वर्षामिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] खातक। पपीहा।

वर्षावीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेघ। बादल।

वर्षाभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेक। दादुर। मेवक। (२) इंद्र-गोप। ग्यालिज नाम का कीड़ा। (३) छाल रंग की पुन-नवा। (४) कीड़े मकोड़े।

वि० वर्षा में उत्पन्न होनेवाला।

वर्षामद-संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूर। मोर।

वर्षायस-वि० [ सं० ] नव्ये बरस से ऊपर की अवस्था का। अति बृद्ध।

वर्षाची-संज्ञा पुं० [ सं० ] मंगल ग्रह।

वर्षाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कतिगा। पतंग।

वर्षाहिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बरसाती सर्प जिसमें चिप नहीं होता।

वर्षेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्षाधिप। वि० दे०—“वर्षपति”।

वर्षमा-संज्ञा पुं० [ सं० वर्षमन ] (१) शरीर। (२) प्रमाण। (३) हृयता। (४) जल-रोधक। बाँध।

वर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोर का पंख। (२) गैडिवन। ग्रंथि-पर्णी। (३) पत्र। पत्ता।

वर्षेण-संज्ञा पुं० [ सं० ] पत्र। पत्ता।

वर्षा-संज्ञा पुं० [ सं० वर्षस ] (१) अग्नि। (२) दीप्ति। (३) यज्ञ। (४) कुत। (५) विप्रक। चीते का पेट। (६) एक राजा का नाम।

वर्षिपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पितर का नाम।

वर्षी-संज्ञा पुं० [ सं० वर्षि ] (१) मयूर। मोर। (२) कश्यप के एक पुत्र का नाम। (३) तगर।

वर्षीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] अवलंब। सहारा।

वर्षा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेघ। (२) एक असुर का नाम। यह देवताओं की गोदें पुराकर एक मुहा में जा छिपा था।

इंद्र उस मुहा को छँकर उसमें से गौओं को छुड़ा लाए थे। फिर वह ने धैल का रूप धारण किया और वह वृहस्पति के हाथ से मारा गया।

वर्षा-संज्ञा पुं० [ सं० ] मार्कंडेय पुराणानुसार तामस मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।

वर्षा-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र।

वर्षा-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष शास्त्रानुसार ग्रह, नक्षत्रादि का क्षायनादा से हटकर चलना। विचलन।

वर्षा-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष के अनुसार भयनासा से किसी ग्रह के चलन वर्षात् हटकर चलने या चक्रगति की दूरी का अंश।

वर्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह मंडप जो घर के ऊपर शिखर पर बना हो। रावटी। (२) घर की चोटी। (३) छानी।

(४) एक पुरानी नगरी जो काठियावाड़ में थी और जिसके सेंडहर अब तक मिलते हैं।

विशेष—वर्षा एक महिद्ध राजवंश का राज्य था, जिसके संस्थापक सेनापति महाकं थे।

वर्षा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मंडल। (२) कंकड़। (३) बूझी। (४) वेष्टन। (५) अठारह प्रकार के गळगळ रोगों में से एक।

इसमें कफ के कारण मूले के अंदर उस नली में जिसमें से होकर अन्न जल पेट में जाता है, एक गाँठ बसत हो जाती

है। यह गॉठ ऊँची और पड़ी होती है और अन्न जल के जाने का मार्ग रोक देती है। वीच लोग इसे असाध्य मानते हैं। (६) बंड ब्यूह का एक भेद।

बलियित-वि० [ सं० ] वेष्टित। परिवृत्त। घेरा हुआ।

बलयला-बंधा पुं० [ भ० ] उमंग। आवेग।

बलयुद्धन-बंधा पुं० [ सं० ] इंद्र।

बलहंता-बंधा पुं० [ सं० ] इंद्र।

बलाका-बंधा स्त्री० [ सं० ] बाला।

बलाट-बंधा पुं० [ सं० ] मूँग।

बलाहक-बंधा पुं० [ सं० ] (१) मेघ। बादल। (२) पर्वत। (३) एक दैत्य का नाम। (४) सर्पों की एक जाति जो दुर्वाकर के अंतर्गत मानी जाती है। (५) सुस्तक। मोथा। (६) श्रीकृष्ण के रथ के एक घोड़े का नाम। (७) एक नद का नाम। (८) कुन्न द्वीप के एक पर्वत का नाम।

बलि-बंधा पुं० [ सं० ] (१) रेखा। लकीर। (२) चंदन आदि से बनाई हुई रेखा। (३) सिद्धन के कारण पड़ी हुई लकीर। झुर्रि। (४) पेट के दोनों ओर पेटि के सिद्धन से पड़ी हुई रेखा। बल। जैसे,—त्रिवली। (५) देवता को चढ़ाने की वस्तु। (६) राजकर। (७) एक दैत्य जो प्रह्लाद का पौत्र था और जिसे त्रिष्णु ने वामन अवतार लेकर छला था।

बिशेष-त्रे० "बलि"।

(८) श्रेणी। पंक्ति। (९) बवासीर का मरसा। (१०) छाजन की ओलसी। (११) गंधक। (१२) एक प्रकार का बाजा।

बलिक-बंधा पुं० [ सं० ] घर की छत या छाजन की ढाल का अंत जहाँ से पानी गिरता है। ओलसी।

बलित-वि० [ सं० ] (१) बल खोया हुआ। लचका हुआ। (२) झुकाया हुआ। मोटा हुआ। (३) परिवृत्त। आवेष्टित। घेरा हुआ। (४) जिसमें झुर्रियाँ पड़ी हों। जो जगह जगह से झुकदा हो। (५) लिपटा हुआ। लगा हुआ। उ०—उरज मलय शैल शील सम मुनि देखि अलक बलित म्याल आसा कर आणु हैं।—केशव। (६) आच्छादित। ढका हुआ। उ०—कंटक-कलित घन बलित वि धञ्जल।—केशव। (७) युक्त। सहित। उ०—श्री रघुपद के हृष्ट अभ्रवलित सीता नयन।—केशव।

बिशेष—इस धर्म में इस शब्द का प्रयोग 'कलित' आदि के स्थान काव्य की भाषा में बहुत अधिक होता है।

बंधा पुं० (१) काली मिचं। (२) नृत्य में हाथ मोड़ने की एक मुद्रा।

बलिमुख-बंधा पुं० [ सं० ] (१) वानर। (२) गरम वृष में महा मिलने से उत्पन्न छटो विकार।

बली-बंधा स्त्री० [ सं० ] (१) झुर्रि। सिक्का। (२) भवली। श्रेणी। (३) रेखा। लकीर। (४) चंदन आदि से बनाई हुई लकीर।

(५) पेट के दोनों ओर पेटि के झुकाने से पड़ी हुई लकीर। जैसे,—त्रिवली।

बंधा पुं० [ भ० ] (१) मालिक। स्वामी। (२) शासक। हाकिम। अधिपति।

यो०—बलीबहुद।

(३) साधु। फकीर।

यो०—बली खंगर = साधु होने का भूठा, दावा रखनेवाला। धर्मश्रजो साधु।

बलीअहद-बंधा पुं० [ भ० ] युवराज। टीका। टिकैत।

बलीक-बंधा पुं० [ सं० ] (१) घर की छत या छाजन की ओलसी। (२) सरकंडा। शर।

बलूक-बंधा पुं० [ सं० ] (१) पत्रमूल। मिस्ता। मसींड। कमल की जड़। (२) एक प्रकार का पत्थर।

बलक-बंधा पुं० [ सं० ] पेटों के धड़ और कोंड पर का आवरण। बलकल। छाल।

यो०—बलकतर। बलकट्टम।

बलकतर-बंधा पुं० [ सं० ] सुगरी का वृक्ष।

बलकट्टम-बंधा पुं० [ सं० ] भोजपत्र का वृक्ष।

बलकल-बंधा पुं० [ सं० ] (१) वृक्ष की छाल। पेटों के धड़ और कोंड पर का आवरण।

पर्या०—खकू। बलक। चोच। चोलक। शलक।

(२) वृक्ष की छाल का वक्र, जिसे अरण्यवासी मुनि और तपस्वी पहन करते थे। (३) भगवेद की बाणक नामक शाखा।

बलकला-बंधा स्त्री० [ सं० ] (१) सफेद रंग का प्रकार का एक पत्थर जिसका गुण शीतल और दांतिकारक माना जाता है। शिखाबलका। (२) तेजबल।

बलकली-वि० [ सं० बलकलि ] बलकल या पेट की छाल पहनने-वाला। बलकलपारी।

बलकलीध-बंधा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की लोप। पठानी लोप।

बलिकल-बंधा पुं० [ सं० ] कंटक। कौटा।

बलगन-बंधा पुं० [ सं० ] (१) जोड़े का कूदते या उछलते हुए चलना। हुंलकी। (२) बहुत सी इधर उधर की बातें कहना। बहुत बकना।

बलगा-बंधा स्त्री० [ सं० ] लगाम। बाग।

बलमु-बंधा पुं० [ सं० ] (१) छाग। बकरा। (२) बौद्धों के मोधि-हुम के चार अधिष्ठाता देवताओं में से एक।

वि० सुंदर। खय्यूरत।

बलमुक-बंधा पुं० [ सं० ] (१) चंदन। (२) विपिन। वन। (३) पण। बाज़ी। (४) सौदा।

वि० सचि। सुंदर।

बलमुजंघ-बंधा पुं० [ सं० ] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

पल्लवज-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० बल्लुजा ] छाम । बकरा ।  
 पल्लुपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] बनभूता ।  
 पल्लुपोदिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लहसुभा नाम का साग ।  
 (२) एक प्रकार की छता ।  
 पल्लुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्यामल । गीदूद ।  
 पल्लुला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पकूची । (२) चमगादड़ ।  
 पल्लुलिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कथई रंग का पतंग जाति का कीड़ा जिसे "तैलपायी" भी कहते हैं । चपड़ा । (२) मंजूषा । श्वाभा । पितारा ।  
 पल्लुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चमगादड़ । गादुर । (२) मंजूषा । श्वाभा । पितारा ।  
 पल्ल-संज्ञा पुं० [ अ० ] औरस वेदा । पुत्र ।  
 विश्रिय-किसी मनुष्य के कुल के परिचय के लिये उसके नाम के भागे इस शब्द का व्यवहार करके उसके पिता का नाम रखा जाता है । जैसे,—“गोकुल वल्ल वल्लदेव” अर्थात् 'गोकुल, वेदा वल्लदेव का' । दस्तावेजों और सरकारी कागज़ों आदि में, जिनकी भाषा बर्दू होती है, इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है ।  
 पल्लियत-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] पिता के नाम का परिचय । शप के नाम का पता । जैसे,—अपनी वल्लियत और सकुनत लिखाओ ।  
 पल्लमीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दीमकों का लगाया हुआ मिट्टी का ढेर । बॉबी । विमोड । (२) पल्लमीकि मुनि । (३) यह मेघ जिस पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं । (४) एक प्रकार का रोग जिसमें विश्रिय के कारण गले, कंधे, कँवल, हाथ, पैर और संधि-स्थानों (जोड़ों) में सूजन हो जाती है, जो क्रमशः गॉठ की तरह बढ़ी हो जाती है । इसमें सूई चुभने की सी पीड़ा होती है और पकने पर अनेक छेद हो जाते हैं । यदि आरंभ में ही इसकी चिकित्सा न की जाय, तो यह रोग असाध्य हो जाता है ।  
 पल्लमीकशीर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रोतोजन । छाल सुरमा ।  
 पल्ल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक मान को तीन गुंजा या रत्ती के बराबर वोल में होता है । (वैयक में दो गुंजा का एक 'वल्ल' है ।) माना गया है । राजनिर्णय १॥ घुंघची का ही वल्ल मानता (२) खलियान में भूसा मिले हुए अनाज के दाने को ऊपर से गिराना, जिसमें दबा के जोर से भूसा अलग हो जाय । बरसाना । ओसाना । (३) निषेध । (४) आवरण । (५) सलई का पेड़ । (६) चौरा ।  
 पल्लिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र में रहनेवाला एक प्रकार का जंतु ।  
 पल्लकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पीणा । (२) सलई का वृक्ष ।  
 पल्लम-वि० [ सं० ] अत्यंत मिय । मियतम । प्यारा ।  
 संज्ञा पुं० (१) आभ्यंत प्यारा व्यक्ति । मिय मित्र । नायक ।

(२) पति । स्वामी । जैसे,—राधावल्लम । (३) अथयक्ष । मालिक । (४) सुंदर लक्ष्मी से युक्त पौदा । (५) एक प्रकार की सेम । (६) वैष्णव-संप्रदाय के प्रवर्तक एक प्रसिद्ध आचार्य जिनका संप्रदाय वल्लम संप्रदाय कहलाता है ।  
 विश्रिय-इनके माता-पिता का पता नहीं । लक्ष्मण भट्ट नामक एक दक्षिणी ब्राह्मण ने सुनारगढ़ के पास एक बालक पदा पाया; और उसे अपने घर लाकर पुत्र के समान पाला । फिर वही बालक प्रसिद्ध वल्लमाचार्य हुआ । जब तक लक्ष्मण भट्ट जीते रहे, तब तक वल्लम उन्हीं के पास अध्ययन करते थे । उनके मरने पर वे विष्णुस्वामी के मंदिर में जाकर शिष्य हुए और कारी में आकर संन्यास लिया । संन्यास छोड़कर ये फिर गृहस्थ हो गए थे । इनके कई पुत्र हुए, जो गदियों के मालिक गोस्वामी हुए । इन्होंने राधाहृष्य की बड़ी आदर्शपूर्ण उपासना चलाई और अपना वेदांत संबंधी एक स्वतंत्र सिद्धांत भी स्थापित किया, जो विशुद्धाद्वैत वाद के नाम से प्रसिद्ध है । इस कारण ये वेदांत के चार मुख्य आचार्यों में माने जाते हैं । इनका जन्म सन् १४०९ ई० और मृत्यु सन् १५३१ ई० में हुई । खरदास आदि अष्ट-छाप के कवि इन्हीं के शिष्य थे ।  
 पल्लमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मिय स्त्री । मिय पत्नी । प्यारी जोरू । वि० स्त्री० प्यारी । मिय ।  
 पल्लमाचार्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैष्णव मत के एक प्रसिद्ध आचार्य । वि० दे० "वल्लम" (६) ।  
 पल्लमी-संज्ञा पुं० दे० "वल्लमी" ।  
 पल्लरि, पल्लरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बल्ली । छता । (२) मंजरी । (३) मेथी । (४) बच । (५) एक प्रकार का बाजा ।  
 पल्लय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गोप । (२) सूतकार । सुभार । रसोहया ।  
 पल्लहा-अव्य० [ अ० ] ईश्वर की शपथ । सचमुच ।  
 पल्लिकंडकारिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अमिदमनी । शोला ।  
 पल्लिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छता । (२) बेला । (३) पौई नाम की छता जिसकी पत्तियों का साग बनाकर खाया जाता है ।  
 पल्लिज-संज्ञा पुं० [ सं० ] मरिच । मिर्च ।  
 पल्लिदूर्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्वेत दूध । सफेद दूध ।  
 पल्लियरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] अत्यन्तपूर्ण । छता । रामचनो । रपट्टा ।  
 पल्ली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छता । (२) केवटी मोथा । (३) अमिदमनी । शोला । (४) काली अपराजिता ।  
 पल्लीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] मिर्च ।  
 पल्लीवृक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाल वृक्ष ।

घल्लूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुंज । (२) मंजरी । (३) क्षेत्र ।  
(४) निर्जल स्थान । सूखी जगह ।

घल्लूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धूप में सुलाया हुआ मांस । (२)  
शूकर का मांस । (३) ऊपर । ऊसर । (४) जंगल । (५)  
वीरान । उजाड़

घल्लवग-संज्ञा पुं० [ सं० ] आँवला ।  
घल्लवज-संज्ञा पुं० [ सं० ] भोखला ।

घल्लवजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का लूण या घास ।  
पर्याय—द्वपत्री । लूणधु । इधुरा । मौंजीपत्री ।

विशेष—वैद्यक में यह शीतल, मधुर तथा पिच, दाह और  
लूण को दूर करनेवाली कही गई है ।

घल्लवल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दैत्य जिसके पल्लवान जी ने मारा था ।  
इत्यल । उ०—राम दिन कइक ता टीर औरहु रहे, भाइ  
घल्लवल तहाँ दियो दिखाई । रुधिर भर मांस की लय्यो वपॉ  
करन, अपि सकल देखि कै गये दराई ।—सूर ।

घव-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित उग्रोत्पि के अनुसार ग्यारह करणों  
में एक करण जिसमें जन्म लेनेवाले मनुष्य का बलवान्,  
धीर, कृती और विचक्षण होना माना जाता है ।

घशंघद्-वि० [ सं० ] (१) वशीभूत । वशवर्ती । (२) आज्ञा-  
कारी । दास ।

घश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इच्छा । चाह । (२) एक व्यक्ति पर  
दूसरे का ऐसा प्रभाव कि दूसरा उसके साथ जो चाहे कर  
सके, या उससे जो चाहे करा सके । फ़ाव् । इङ्गियारा ।  
अधिकार । जैसे,—(क) इस समय यह तुम्हारे घश में है,  
जो चाहे, करा लो । (ख) मैं उसके घश में हूँ; जैसा वह  
कहेगा, वैसा करूँगा । (ग) उस पर मेरा कोई घश नहीं है ।

मुहा०—(किसी का किसी के) घश में होना = (१) अधिकार  
में होना । काबू में होना । कब्जे में होना । अधीन होना । (२)  
बड़े में होना । आज्ञानुवर्ती होना । दबाव मानना । किसी पर  
बस होना = किसी पर अधिकार होना । किसी पर ऐसा प्रभुत्व  
होना कि उसे इच्छानुसार चलाया जा सके । जैसे,—उस लड़के पर  
हमारा कोई घश नहीं है । घश का = जिस पर अधिकार हो ।  
जो इच्छानुसार चलाया जा सके । अधीन । जैसे,—अब वह  
संयोग हुआ; हमारे घश का नहीं है ।

(३) किसी वस्तु या बात को अपने अनुकूल घटित करने की  
सामर्थ्य । शक्ति की पहुँच । काबू । जैसे,—(क) जो अपने  
घश की बात नहीं, उसके लिये शोक क्या ? (ख) हार जीत  
अपने घश की बात नहीं ।

मुहा०—घश का = इच्छा के अधीन । घश चलना = शक्ति काम  
करना । कुद्व करने की सामर्थ्य होना । काबू चलना । जैसे,—  
यदि मेरा घश चळता, तो मैं उसे निकाल देता ।

(४) अधीन करने का भाव । अधिकार । फ़र्जा । प्रभुत्व ।  
उ०—हरि कछु ऐसो दोना जानत । स्वयं के मन अपने घश  
आनत ।—सूर । (५) जन्म । (६) वेश्याओं के रहने का  
स्थान । चकला ।

वशवर्ती-वि० [ सं० वशवर्तिन् ] जो दूसरे को घश में रहे । जो  
दूसरे के आज्ञानुसार चलता हो । अधीन । ताबे ।  
वशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वंध्या स्त्री । बर्त । (२) स्त्री ।  
पत्नी । (३) गाय । (४) हयिनी । (५) वंध्या गाय । ठाँट ।  
(६) पति की बहन । ननद ।

वशाङ्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की विद्विया ।  
वशाऽटथक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिमुमार । सूँस ।  
वशानुग-संज्ञा पुं० [ सं० ] आज्ञाकारी । अधीन । दास ।  
वि० वशीभूत ।

वशिक-वि० [ सं० ] शून्य ।  
वशिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अण्ड । अण्ड की लकड़ी ।  
वशिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अधीनता । ताबेदारी । (२)  
मोहने की क्रिया या भाव । मोहन ।

वशिरत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वशता । (२) योग के अणिमादि  
आठ प्रकार के ऐश्वर्यों में से एक । कहते हैं कि इस सिद्धि  
से साधक स्वयं को अपने घश में कर लेता है ।

वशिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शमी का पेड़ ।  
वशिमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] योग की आठ सिद्धियों में से एक ।  
वशित्व ।

वशिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समुद्र लवण । समुद्री नमक । (२)  
एक प्रकार का वृक्ष । (३) एक प्रकार की लाल मिर्च । निर्चा ।  
वशिष्ठ-संज्ञा पुं० दे० “वशिष्ठ” ।

वशी-वि० [ सं० वशिन् ] [ जो० वशिनी ] (१) अपने को घश में  
रखनेवाला । (२) घश में किया हुआ । काबू में छाया  
हुआ । अधीन ।

वशीकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० वशीकृत ] (१) घश में खाने  
की क्रिया । (२) मणि, मंत्र या औषध आदि के द्वारा किसी  
को अपने घश में करने का प्रयोग । अधीन करना ।

विशेष—मंत्र में चार प्रकार के प्रयोग कहे जाते हैं—मरण,  
मोहन, वशीकरण और उच्चाटन । अथर्व वेद में मंत्र सिद्ध  
करके मणि और औषध द्वारा घश में करने का उल्लेख है ।

वशीकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] घश में करना ।  
वशीकृत-वि० [ सं० ] (१) किसी प्रकार घश में किया हुआ ।  
(२) मंत्र द्वारा घश में किया हुआ । मंत्रमुग्ध । (३)  
मोहित । मुग्ध ।

वशीभूत-वि० [ सं० ] (१) घश में आया हुआ । अधीन । ताबे ।  
(२) दूसरे की इच्छा के अधीन ।  
कि० प्र०—करना ।—होना ।

वश्य-वि० [ सं० ] (१) वश में आनेवाला । तांघे होनेवाला ।

(२) किसी की इच्छा के अधीन । दूसरे की आज्ञा या कहने में रहनेवाला ।

वशा पुं० (१) दास । सेवक । (२) मातहत । (३) आनिष्ट का परिचय पुत्र । (मार्कण्डेय पुराण)

वश्यता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वश में होने की अवस्था या भाव । अधीनता ।

वश्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छंगाम । (२) नीलापराजिता । (३) गीतेधन ।

वश्य-प्रत्ययं० [ सं० ] एक दास्य जिसका उच्चारण अग्नि में आहुति देने समय यज्ञों में होता है । अंगन्यास और करन्यास में शिवा और मध्वमा के साथ इसका व्यवहार होता है ।

वश्यकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं के उद्देश्य से किया हुआ यज्ञ । होम । होत्र । (२) वेदोक्त तैत्तिरीय देवआओं में से एक ।

वश्यकृत-वि० [ सं० ] देवताओं के निमित्त अग्नि में डाला हुआ । होम किया हुआ । हुत ।

वश्यकृत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] होम ।

वश्यकृष्णी, वश्यकृष्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बडेना गाय ।

वसंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० वासंत, वासंतिक, वासंति, वसंती ]

(१) वर्ष की छः ऋतुओं में से प्रथम और प्रथम ऋतु जिसके अंतर्गत चैत और वैशाख के महीने माने गए हैं । नई पत्ती लगने और बहुत से फूल फूलने की सुंदर ऋतु । बहार का मौसिम ।

विशेष—प्राचीन वैदिक काल में यह ऋतु चैत और वैशाख में ही पवती थी, पर क्रमशः अयन, खिसकने से आज कल प्रकृति में कुछ अंतर दिखाई पड़ता है । इसी से पीछे के कुछ ग्रंथों में कागुन और चैत के महीने वसंत ऋतु कहे गए हैं । पर काव्य आदि में परंपरासुसार अब तक चैत और वैशाख ही इस ऋतु के महीने माने जाते हैं । वसंत ऋतु के ये छह दिन कहे गए हैं—पंचदश में फूल लगना और नई पत्तियाँ भान, शीतल मंद और सुगंधयुक्त चायु, चखना, सार्वकाल आभयत भागेरम होना, और छी पुरणों का उगम से भरना । इस ऋतु में प्राचीन काल में वसंतोत्सव और मदन-पूजा होती थी । आज कल होळी का उत्सव उसी की परंपरा है । पुराणों में इस ऋतु का अधिष्ठाता देवता कामदेव का सहचर कहा गया है ।

(२) अतीसार रोग । (३) शीतला रोग । विस्कोटक । वेचक । (४) मस्त्रिका रोग । (५) छः रागों में दूसरा राग । (संगीत)

विशेष—इस राग की उत्पत्ति पंचमकृ शिव के पर्ववें मुख से कही गई है । इसकी छः रागिनियाँ ये हैं—वेशी, देवगिरी,

धैराटी, तोडिका, ललित और दिबोला । कडिनाप के अनुसार छः रागिनियाँ ये हैं—अंपुली, गमकी, परमंजरी, गौडकेरी, घामकली और देवताला । संगीतदानोदर का मत है कि श्रीपंचमी से हरि-रायनी एकदशी तक वसंत राग गा सकते हैं । पर संगीतवर्णन के अनुसार इसे वसंत ऋतु में ही गाना चाहिए । इसका सरगम इस प्रकार है—सा, रि, ग, म, पं, ध, नि, सा । कुछ लोग इस राग को हिंदोल राग का मुद्र मानते हैं ।

(६) एक ताल का नाम । (संगीत) (७) शूलों का गुच्छ । वसंतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] इमोनाक । सोनापादी । देहू । भरलू ।

वसंतघोषी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वसंतघोषिण । कोकिल ।

वसंतजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वासंती छता । (२) सफेद खुदी । (३) वसंतोत्सव ।

वसंततिलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार के फूल का नाम । (२) एक वणोद्भूत जिसके प्रत्येक चरण में तगण, भगण, वगण, जगण और दो गुं, इस प्रकार कुछ पैदाइ वण होते हैं । उ०—लाकी छलाम मृदुता अवलोकनीया ।

वसंततिलका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वणोद्भूत । वि० दे० "वसंततिलक" ।

वसंतदुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आम का वृक्ष । (२) कोयल । (३) पंचम राग । (४) चैत्र मास ।

वसंतदुती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कोकिला । (२) पटोली वृक्ष । पंडरि । पावर । (३) माघवी छता ।

वसंतपंचमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माघ महीने की शुक्ल पंचमी । इस दिन वसंत और रति सहित कामदेव की पूजा करने का विधान है और वसंत राग के सुनने का महाफल है । इसे श्रीपंचमी भी कहते हैं । इस दिन एकदशर व्रत भी किया जाता है ।

वसंतबंधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव ।

वसंतभैरवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक रागिनी का नाम ।

वसंतमहोत्सव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक उत्सव जो प्राचीन काल में वसंत पंचमी के दूसरे दिन कामदेव और वसंत की पूजा के उपलक्ष्य में मनाया जाता था । (२) होळीकोत्सव ।

वसंतमाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सध शुद्ध स्वर लगते हैं ।

वसंतयात्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वसंतोत्सव ।

वसंतवाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चौदह तालों में से एक । (संगीत दानोदर)

वसंतव्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] कोकिल ।

वसंतसप्त, वसंतसख्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव ।

वसंता-संज्ञा पुं० [ हि० वसंत ] हरे रंग की एक सुंदर पिडिया जिसका कंठ और सिर लाल होता है ।



यसंतारार-संज्ञा पुं० [ सं० ] विभीतक वृक्ष । यदेदा ।  
 यसंती-संज्ञा पुं० [ हि० वसं ] एक रंग जो हलका पीला होता है । सरसों के फूल के रंग का । यसंती ।  
 वि० यसंती रंग का ।  
 विरोध-यसंतोत्सव में हंस रंग के कपड़े पहने जाते हैं ।  
 यसंतोरसव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक उत्सव जो प्राचीन काल में यसंत पंचमी के दूसरे दिन होता था । इसे 'मदनोत्सव' भी कहते थे । इसमें उद्यानों में जाकर लोग यसंत और कामदेव का पूजन करते थे । होली का उत्सव इसी की परंपरा है । (२) होली का उत्सव ।  
 यसन्नत-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) विस्तार । फैलाव । (२) (३) समारंभ । अंटेने की जगह । (४) चौदाई । (५) सामर्थ्य । शक्ति । जैसे,—यसन्नत अपनी यसन्नत देखकर करना चाहिए ।  
 यसन्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वास । रहना । (२) घर । (३) यस्ती । आमादी । (४) जैन साधुओं का मठ । (५) रात । रात्रि ।  
 यसंती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वास । रहना । (२) रात । (३) घर ।  
 यस्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ । (२) ढकने की पस्तु । आश्रयण । छादन । (३) निवास । (४) स्त्रियों की कमर का एक आभूषण । (५) वेजपत्ता ।  
 यस्न-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्त्रियों की कमर का एक आभूषण ।  
 यसंनार्णवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भूमि । पृथिवी ।  
 यंसाम-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) नील का पत्ता । (२) विजाय । (३) उंबटन । (४) एक प्रकार का छपा कपड़ा जो चाँदी के धके लगाकर छापा जाता है ।  
 यसवास-संज्ञा पुं० [ अ० ] [ वि० यसवासी ] (१) भ्रम । हुबुधा । संदेह । (२) झुकावा । बहकावा । प्रलोभन या मोह । उ०—सगहूँ ते दोड निकसे नारद के यसवास ।—आयसी ।  
 यसवासी-वि० [ अ० यसवास ] (१) विघास न करनेवाला । संशयाम्ना । शक्ती । (२) झुकावे में ढालनेवाला । बहकानेवाला ।  
 यसहल-संज्ञा पुं० [ सं० यषम, मा० यसह ] शैल । वि० दे० "यसह" ।  
 यस-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मेद । (२) चरबी ।  
 यसकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार के धूमकेतु जो पश्चिम में उदय होते हैं और जिनकी पूँछ का विस्तार उत्तर की ओर होता है । ये देखने में निम्न जान पड़ते हैं और इनके उदय से सुमिन्न होता है ।  
 यसदाह्य, यसदाह्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] निशुमार । सूँस ।  
 यसंसातनो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीठा शीतल ।  
 यससति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यससति नामक जनपद का अधि-

वासी । (२) इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम । (३) जन्मेजय के एक पुत्र का नाम ।  
 संज्ञा स्त्री० उत्तर के एक जनपद का नाम ।  
 यससापायी-संज्ञा पुं० [ सं० यसापायिन् ] कुशा ।  
 यससापावन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार के वैदिक देवता । पशुभाजा ।  
 यससामेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मेह रोग जिसमें मूत्र के साथ चरबी निकलकर निकलती है ।  
 विरोध—आधुनिक डाक्टरों चिकित्सा में यह बहुमूत्र का भेद है, जिसमें मूत्र के साथ शरीर का सत निकलता है और रोगी बहुत क्षीण हो जाता है ।  
 यससामूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक जनपद का नाम ।  
 यससामेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] यससामेह ।  
 यससार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इच्छा । (२) वश । (३) अभिप्राय ।  
 यससारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुकरमुत्ता । लुमी ।  
 यसिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्रग्द लक्षण । (२) गज विप्लवी । (३) छाल रंग का अपामार्ग । छाल विचट्टा । (४) जलनीम ।  
 यसिष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन कृषि जिनका उल्लेख वेदों से लेकर रामायण, महाभारत, पुराणों आदि तक में है । विरोध—वेदों में ये मित्र और वरुण के पुत्र कहे गए हैं । यज्ञस्थल में एक बार उर्वशी को देखकर मित्र और वरुण का वीर्यपात हो गया । वह वीर्य एक यज्ञकुंभ में रखा गया । कुंभ से यसिष्ठ और अगस्त्य का जन्म हुआ । 'बृहदेवता' में लिखा है कि कुंभ के जल में मत्स्य, स्थल में यसिष्ठ और कुंभ में अगस्त्य उत्पन्न हुए थे । ऋग्वेद के अनुसार ये यसिष्ठ गांधार और कावुल की ओर रातव करगेवाले त्रिसु वंश के राजा दिवोदास के पौत्र और रिजवन के पुत्र सुदास के पुरोहित थे । सुदास ने इनको बहुत कुछ दान दिया था । एक बार सुदास ने यज्ञ करने के लिये विश्वामित्र को बुलाया इस पर यसिष्ठ बहुत क्रुद्ध हुए । उन्होंने अपने अन्य यजमानों "मत्तो" के द्वारा विश्वामित्र को बहुत तंग किया । विश्वामित्र तो चले आए, पर सुदास के पुत्रों ने यसिष्ठ के सौ पुत्रों का नाश कर दिया । फिर यसिष्ठ ने "एक-साक" इत्यादि ५० मंत्रों द्वारा यज्ञ करके सौदासों को पराभूत किया ।  
 पुराणों में यसिष्ठ प्रयाग के माचल-पुत्र कहे गए हैं । राजा निमि और यसिष्ठ के बीच एक बार झगडा हुआ । यसिष्ठ ने निमि को और निमि ने यसिष्ठ को क्षाप दिया । निमि तप करके शरीर रक्षित होकर अन्न हुए और उनका वंश विदेह कहलाया । यसिष्ठ ने शरीर त्याग कर मित्रावरुण के वीर्य से जन्म ग्रहण किया । कामधेनु के लिये यसिष्ठ और विश्वामित्र ( जो पहले राजा

थे) से बहुत दिनों तक झगड़ा होता रहा। विश्वामित्र के सौ पुत्रों को वसिष्ठ ने केवल हुंकार से जला दिया था। विश्वामित्र अंत में हारकर श्रावण्य प्राप्त करने के लिये तप करने लगे। पुराणों में वसिष्ठ की अनेक पत्नियों के नाम मिलते हैं, जिनमें से अर्धवती कर्दम की कन्या थी; और वसिष्ठ को सब से प्रिय थी। इनकी एक और स्त्री अश्वमात्रा नीच जति की थी। किसी और पत्नी से इन्हें वासु नामक एक पुत्र हुआ था जो गोत्रकार कल्प हुआ। फल्गुदे के अनेक मंत्रों के द्रष्टा वसिष्ठ हैं। सप्तम मंडल के द्रष्टा ये ही माने जाते हैं।

(२) सप्तमि मंडल का एक तारा जिसके पास का छोटा तारा अर्धवती कहलता है।

वसिष्ठनिहा-गंगा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम।

वसिष्ठ पुराण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक उपपुराण जिसका उल्लेख देवी भागवत में है। कुछ लोग कहते हैं कि लिंग पुराण ही वसिष्ठ पुराण है।

वसिष्ठप्राची-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल के एक जनपद का नाम।

वसिष्ठराफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम।

वसिष्ठसंख्ये-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का संख्यासी।

वसिष्ठसंहिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक स्मृति का नाम।

वसिष्ठसिद्धांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष का एक सिद्धांत ग्रंथ।

वसिष्ठशूरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम।

वसिष्ठानुपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम।

वसिष्ठप्राचीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सरस्वती नदी के किनारे का एक प्राचीन स्थान।

विशेष—रूपा है कि जब वसिष्ठ और विश्वामित्र के बीच घोर युद्ध हुआ था, तब सरस्वती नदी ने वसिष्ठ को विश्वामित्र से बचाने के लिये इसी स्थान पर ठिना ठिना था।

वसीका-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मुसलमानों धर्मशास्त्र के अनुसार यह धन जो विधवा या काफिर से नक़्द रूप के मुनाफ़े के तौर पर लिया जाय। (२) वह धन जो इस उद्देश्य से सहायगी खर्चाने में जमा किया जाय कि उसका पूरा जमा करनेवाले के संबंधियों को मिला करे अथवा किसी धर्म-कार्य, मकान की मरम्मत आदि में लगाया जाय।

(३) देने पन से आया हुआ सूद। वृत्ति। (४) वरुण का इकरानाम।

वसीयत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह अंतिम आदेश जो विदेश जानेवाला या मरणासन्न पुरुष हम उद्देश्य से करता है कि मेरी अनुपस्थिति में शत्रुक काम इस प्रकार किया जाय।

(२) अपनी संपत्ति के विभाग और प्रबंध आदि के संबंध

में की हुई वह व्यवस्था, जो मरने के समय कोई मनुष्य लिख जाता है। विल।

वसीयतनामा-संज्ञा पुं० [ सं० ] धर्मियत + फा० नामा ] वह लेख जिसके द्वारा कोई मनुष्य यह व्यवस्था करता है कि मेरी संपत्ति का विभाग और प्रबंध मेरे मरने के पीछे किस प्रकार हो। विल।

वसीला-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संबंध। (२) आश्रय। सहायता। (३) किसी कार्य की सिद्धि वा मार्ग। जारया। द्वार। जैसे,—(क) किस वसीले से वह यहाँ आया? (ख) नौकरी के लिये जाता हूँ; कोई वसीला निकल ही आवेगा।

मुदा०— वसीला पैदा करना = (१) किसी कार्य की सिद्धि का मार्ग निकालना। सारां पैदा करना। (२) आश्रय आदि का रास्ता निकालना। वसीला रखना = (१) संबंध रखना। (२) आश्रय रखना।

वसुंधरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पृथ्वी। (२) शकलक की कन्या जो सांब से ब्याही थी।

वसु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं का एक गण जिसके अंतर्गत भात देवता हैं।

विशेष— वेदों में वसु शब्द का प्रयोग अग्नि, मरुत्तण, इंद्र, उषा, अरथी, रुद्र और वायु के लिये मिलता है। वसु को आरिय भी कहा है। बृहदारण्यक में इस गण में पृथिवी, वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, सौ, अग्नि, चंद्रमा और नक्षत्र माने गए हैं। महाभारत के अनुसार भात वसु ये हैं—धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्युष और प्रभास। श्रीमद्भागवत में ये नाम हैं—शूण, प्राण, ध्रुव, अक्ष, अग्नि, दोष, वासु और विभासु। अग्नि पुराण में आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्युष और प्रभास वसु बड़े गए हैं। भागवत के अनुसार दक्ष प्रजापति की कन्या 'वसु' ने, जो धर्म को ब्याही थी, वसुओं को उत्पन्न किया।

देवी भागवत में कथा है कि एक बार वसुओं ने वसिष्ठ की नंदिनी गाय चुरा ली थी, जिससे वसिष्ठ ने शाप दिया था कि तुम लोग मनुष्य योनि में जन्म लगे। उसी शाप के अनुसार वसुओं का जन्म शतंगु की पत्नी गंगा के गर्भ से हुआ, जिनमें सात को तो गंगा जनमते ही गंगा में फेंक बाढ़, पर अंतिम भीष्म बचा लिए गए। इसी से भीष्म वसु के अद्यतार माने जाते हैं।

(२) शब्दों द्वारा संख्या सूचित करने की रीति के अनुसार भात की संख्या। (३) रत्न। (४) धन। (५) एक वृक्ष। अगल का पेड़। (६) अग्नि। (७) शरि। किरन। (८) जल। (९) सुवर्ण। सोना। (१०) योग्य। जीत। (११) कुने। (१२) पीछे मूँग। (१३) वृक्ष। पेड़। (१४) शिव। (१५) सूर्य। (१६) विष्णु। (१७) भौलसि।

धकुल । (१८) साधु पुरुष । सजन । (१९) सरोवर ।  
तालाव । (२०) राजा युग के एक पुत्र का नाम । (२१)  
छपय के दो सकनेवाले भेदों में से ६९ वॉ भेद ।

संज्ञा स्त्री० । (१) दीप्ति । आभा । (२) प्रदीपन । (३) दक्ष  
प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को ब्याधी थी और जिससे  
दोग आदि आठ धनुषों का जन्म हुआ था ।

वि० (१) जो सच में वास करता हो । (२) जिसमें सच  
का वास हो ।

धनुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सॉमर नमक । (२) पांशु लवण ।  
रेह । (३) वलुक प्राक । यशुआ । (४) काला अमर ।  
कृष्णानुस । (५) क्षार लवण । (६) मदार का वृक्ष । (७)  
बनहुला वृक्ष । बड़ी मौलसिरी ।

धनुकर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक मंत्रद्रष्टा ऋषि ।

धनुकृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक मंत्रद्रष्टा ऋषि ।

धनुफोद-संज्ञा पुं० [ सं० ] तालीनाम ।

धनुफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक मंत्रद्रष्टा ऋषि का नाम । इस नाम  
के दो ऋषि हुए हैं । एक इंदु के गोत्र में उत्पन्न हुए थे; दूसरे  
वसिष्ठ के गोत्र के थे ।

धनुत्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] ढगण के चौथे भेद का नाम जिसके  
आदि में गुरु और फिर दो छपु होते हैं । (पिगल)

धनुचारु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोना ।

धनुच्छिद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महादेव ।

धनुद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुबेर । (२) विष्णु ।

धनुदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्कंद माताओं में से एक । (२)  
पृथ्वी । (३) माली राक्षस की पत्नी जो नर्मदा नाम की  
गंधर्वों की पुत्री थी । इसके अन्तल, निरु, हर और संपाति  
नामक चार पुत्र थे, जो विभीषण के अमात्य थे ।

धनुदान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विदेहराज के एक पुत्र का नाम ।  
(२) बृहद्भय के एक पुत्र का नाम ।

धनुदाना-संज्ञा पुं० [ सं० ] बृहद्भयमप । बृहद्भय में एक पुत्र का नाम ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्कंद माताओं में से एक का नाम ।

धनुदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यदुवंशियों के दूर कुल के एक  
राजा जो धीकृष्ण के पिता थे ।

विशेष—इनके पिता का नाम देवमीदु और माता का मारिया  
था । इनके जन्म के समय स्वर्ग में तुंदुमि का शब्द सुनाई  
पड़ा था, इससे ये 'आनकतुंदुमी' कहलाते थे । ये अपने पिता  
के ग्रेष्ठ पुत्र थे । इनकी बारह खियाँ थीं—पौरवी, रोहिणी,  
मदिरा, घरा, वैताली, भद्रा, सुनात्री, सहदेवा, शान्तिदेवा,  
सुदेवा, देवाक्षिता और देवकी । इन पत्नियों के अतिरिक्त  
इनके सुतनु और यदुवा नाम की दो परिचारिकाएँ भी थीं ।  
रोहिणी के गर्भ से बकराम और देवकी के गर्भ से धीकृष्ण

का जन्म हुआ था । धनुदेव की यहन कुंती थीं, जिनसे  
पांडव उत्पन्न हुए थे ।

(२) एक राजा जो पहले धनुभूति का अमात्य था और पीछे  
उसे मारकर आप राजा हुआ । (३) धनिष्ठा मक्षत्र ।

धनुदेवत-संज्ञा पुं० [ सं० ] धनिष्ठा नक्षत्र ।

धनुदेव्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धनिष्ठा नक्षत्र ।

धनुदैवत-संज्ञा पुं० [ सं० ] धनिष्ठा नक्षत्र ।

धनुद्रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] बडुंबर । गूडर ।

धनुधर्मा-संज्ञा पुं० [ सं० ] बसुधर्म । महाभारत के अनुसार एक  
राजा का नाम ।

धनुधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी ।

वि० धनु अर्थात् धन देनेवाला । धनदाता ।

धनुधाधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पर्वत । (२) विष्णु ।

धनुधाधिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा ।

धनुधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] पृथ्वी ।

धनुधार-संज्ञा पुं० [ सं० ] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक  
पर्वत का नाम ।

धनुधारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जैनों की एक देवी का नाम ।

पद्यार्थ—तारा । नीलसरस्वती । महाश्री । स्वाहा । श्री ।  
जया । अर्न्ता । शिवा । भद्रा । शंखिनी । महातारा ।  
त्रिलोचना । तारिणी ।

(२) कुबेर की पुरी, अलका । (३) एक तीर्थ का नाम ।

(४) नदीमुख श्राद्ध का अंग एक कृत्य, जिसमें राजा धनु  
के लिये घी की सात धारें दी जाती हैं । पहले दीवार में  
चंद्रन से मात चिह्न बनाए जाते हैं; फिर वेद मंत्र पढ़ते हुए  
धारें दी जाती हैं । (५) एक नदी का नाम ।

धनुधार्मिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रफटिक । बिलौर ।

(२) संगमरम ।

धनुनीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] मल्ला ।

धनुनीध-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि ।

धनुप्रद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) स्कंद के एक अनु-  
चर का नाम । (३) कुबेर ।

धनुबंधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन बौद्ध आचार्य जो  
महायान शाखा के अनुयायी थे । इन्होंने अनेक ग्रंथ रचे थे,  
जिनमें से कुछ के अनुवाद चीनी भाषा में भी वर्तमान हैं ।

धनुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] धनिष्ठा नक्षत्र ।

धनुमती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पृथ्वी । (२) छः वर्षों का एक  
वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तमण और सगण होते हैं ।

उ०—तासों परिहरो । जो दी हितु खरो । सारी जड़मती ।  
घारी धनुमती ।

धनुमना-संज्ञा पुं० [ सं० ] यदुमन्त । पुराणानुसार एक मंत्रद्रष्टा  
ऋषि का नाम ।

धनुमान-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो उत्तर दिशा में है ।

धनुमित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वीर आचार्य जो महायान शास्त्र के अंतर्गत वैभाषिक संप्रदाय के थे । ये कारमीर के पश्चिम अरमाप्रांत देश के निवासी कहे गए हैं ।

धनुस्दान-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वीर आचार्य का नाम ।

धनुगत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ऋषि का नाम ।

धनुश्च-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार के देवता ।

धनुस्वि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गौरव का नाम ।

धनुस्वप-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव ।

धनुस्वता-संज्ञा पुं० [ सं० ] धनुस्वत (१) अग्नि । (२) शिव ।

धनुसोपो-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव ।

धनुस-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेता ।

धनुस्यन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पृथ्वीरहिता के अनुसार ईशान कोण में स्थित एक देश ।

धनुषाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ऋषि का नाम ।

धनुषिद-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि ।

धनुष्ठी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्कंद की अनुचरी एक मातृका का नाम ।

धनुष्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्निगोत्री एक ऋषि का नाम ।

धनुष्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] चाँदी ।

धनुसारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुबेर की पुरी, अरुणा ।

धनुस्पाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुबेर की पुरी, अरुणा ।

धनुर्हंस-संज्ञा पुं० [ सं० ] धनुर्देव के पुत्र एक यादव का नाम ।

३०—धनुषी धीर धनुर्हंस हंस-पुत्रि हंस-पान पट । जादव-

कुक्ष-असंसं धायु विध्वंसकरन श्रुत ।—गोपाल ।

धनुहोम-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार अंग देश के एक राजा का नाम ।

धनुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अगस्त का पेड़ ।

धनुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्निगोत्री एक ऋषि जो ऋग्वेद के एक सूक्त के द्वाय थे ।

धनुज-वि० [ ध० ] (१) प्राप्त पहुँचा हुआ । मिला हुआ । प्राप्त । जैसे,—खत का धनुज होना । (२) जो चुका लिया गया हो । जो हाथ में आ गया हो । प्राप्त । लब्ध । जैसे,—लगाव धनुज करना । रूपया धनुज करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धनुज-नसुल पाना = दूसरे से जो पाना हो, वर मिल जाना ।

संज्ञा पुं० दे० "उसूल" ।

धनुली-संज्ञा स्त्री० [ ध० वसु ] (१) शुकटा कहाने की किया । दूसरे से रूपया पैसा या वस्तु लेने का काम । प्राप्ति । जैसे,—

स्कंद रूपया देते तो हो, वर धनुली में वसी दिशुक्त होगी ।

(२) भाकी निकला या चाहता हुआ रूपया लेने का काम ।

जैसे,—उस गौब में धनुली शुरू हो गई ।

धनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] यकता ।

संज्ञा स्त्री० दे० "वस्तु" ।

धनुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कृत्रिम लवण । बनाया हुआ नमक ।

धनुकर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाल वृक्ष । साल का पेड़ ।

धनुमोदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अजमोदा ।

धनु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नाभिक के नीचे का भाग । पेट । (२) मूत्राशय । (३) पिचकारी ।

धनुस्त्रमे-संज्ञा पुं० [ सं० ] लिण्ड्रिय, गुण्ड्रिय आदि मार्गों में पिचकारी देने की क्रिया ।

धनुस्त्रिकुण्डलिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक रोग जिसमें मूत्राशय में गाँठ सी पद जाती है, उसमें पीड़ा तथा जलन होती है और पेशाब कठिनता से उतरता है । गाँठ को दधाने से कभी तो घूँद घूँद करके पेशाब गिरता है, और कभी धार भी निकल पड़ती है । यह रोग अशुभ्य कदा जाता है । अधिक परिश्रम करने, दीवकर चलने या चोट लगने से इस रोग की उत्पत्ति कही गई है ।

धनुस्त्रिवात-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक सूत्र रोग जिसमें वायु विषाद कर वस्त्रि (पेट) में सूत्र को रोक देता है ।

धनुस्त्रिगोधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मदन वृक्ष । मीनफल का पेड़ । (२) मदनफल । मीनफल ।

धनु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] [ वि० वास्तव, वास्तविक ] (१) यह जिसका अस्तित्व हो । यह जिसकी सत्ता हो । यह जो संशयमुक्त हो । जैसे,—दर कोई वस्तु नहीं । (२) सत्य । (३) यह जिसका नामरूप हो । नामपर पदाधिक । चीज़ । जैसे,—घर में बहुत सी वस्तुएँ इधर उधर पड़ी हैं । (४) इतिवृत्त । घृष्टान्त । (५) नाटक का कथन या भाषयान । कथावस्तु ।

धनु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नाटकीय कथावस्तु दो प्रकार की कही गई है—अधिकारिक जिसमें नायक का चरित्र हो, और प्रासंगिक जिसमें नायक के अतिरिक्त और किसी का चरित्र बीच में आ गया हो । वि० दे० "नाटक" ।

धनुकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धनुआ नाम का साग ।

धनुहान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी वस्तु की पहचान । (२) मूल तथ्य का बोध । सत्य की जानकारी । तथ्यज्ञान ।

धनुन-प्रत्य० [ सं० ] यथार्थता । सत्यमुक्त । असल में ।

धनुनिर्देश-संज्ञा पुं० [ सं० ] संग्रहाचरण का एक भेद जिसमें कथा का कुछ आभास दे दिया जाता है ।

धनुपल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वस्तु का गुण ।

धनुवादे-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें जगत् त्रैलोक्य है, उसी रूप में उसकी सत्ता मानी जाती है । जैसे,—न्याय और वैशेषिक । यह सिद्धांत भद्वैतवाद का विरोधी है, जिसमें नामरूपात्मक जगत् की सत्ता नहीं मानी जाती ।

वस्त्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वस्त्रने की जगह, घर ।

वस्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपड़ा ।

वस्त्रकुट्टिम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छाता । (२) जूमा । डेरा ।

वस्त्रप्रिय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नीवी । नादा । हज़ारबंद ।

वस्त्रवर्चस्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वाजा ।

वस्त्रप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक तीर्थ स्थान जिसका नाम पुराणों में "वधापथ क्षेत्र" मिलता है । यह आज कल का गिरनार है, जो गुजरात में है ।

वस्त्रपूत-वि० [ सं० ] कपड़े से राना हुआ ।

वस्त्रबंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीवी ।

वस्त्रभूषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] रक्तोजन ।

वस्त्रभूषणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मजीठ ।

वस्त्रजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुसुंभ का पक्ष ।

वस्त्ररंजनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मजीठ ।

वस्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वेतन । (२) मुख्य । (३) वस्त्रन । (४) द्रव्य । चीज (५) धन । (६) स्वक । घटक । छाल ।

वस्त्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कटिभूषण । करपनी ।

वस्त्र-मन्त्र पुं० [ सं० ] (१) प्रशंसा । स्तुति । (२) गुण । सिद्ध । (३) विशेषता ।

वस्त्रोत्सर्गा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) इंद्रपुरी । (२) कुबेरपुरी । (३) गंगा । (४) इंद्र नामक नदी ।

वह्नि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु । (२) बालक ।

वह-सर्व० [ सं० सः ] (१) एक शब्द जिसके द्वारा दूसरे मनुष्य से बातचीत करते समय किसी तीसरे मनुष्य का संकेत किया जाता है । कर्त्तकारक प्रथम पुरुष सर्वनाम । जैसे,—तुम जाओ, वह आता होगा । (२) एक निर्देशकारक शब्द जिससे दूर की या परोक्ष वस्तुओं का संकेत करते हैं । जैसे,—यह और वह दोनों एक ही हैं ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द संज्ञा के पहले विशेषण की तरह भी आता है । जैसे,—यह आदमी और वह आदमी ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बिल का कंधा । (२) घोड़ा । (३) वायु । (४) मार्ग । पथ । (५) नदी ।

वि० बोझ उठाकर ले जानेवाला । बाहक । (समास में)

वहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बिल । (२) पंथ । मार्ग ।

वहतोत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छागशाली छुप ।

विशेष—वैद्यक में यह वीषा कटु तथा कास रोग नाशक और शुक्र पदक कहा गया है ।

पठ्यां०—वृषगंधा । मेपांती । वृषपत्रिका ।

वहति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु । (२) सचिव ।

वहतो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गाव । (२) नदी ।

वहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० वहनीय, वहनग, वहति ] (१) घेड़ा । तर्दा । (२) खींचकर अथवा सिर या कंधे पर छाड़कर एक

जगह से दूसरी जगह ले जाना । जैसे,—आर वहन करना । रथ वहन करना । (३) कंधे या सिर पर लेना । (४) ऊपर लेना । उठाना । (५) खंभे के नौ भागों में से सप्त से नीचे का भाग । (वास्तु विद्या)

वहनीय-वि० [ सं० ] (१) उठा या खींचकर ले जाने योग्य । (२) ऊपर लेने योग्य ।

वहम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बिना संकल्प के चित्त का किसी बात पर जाना । मिथ्या धारणा । झूठा झूवाला । (२) भ्रम । (३) व्यर्थ की शंका । मिथ्या संदेह । फुन्नल शक । जैसे,—वहम की तो कोई दवा ही नहीं ।

वहमी-वि० [ सं० ] वधम । वृथा संदेह द्वारा उत्पन्न । भ्रम-जन्य । (२) झूठे खयाल में पढ़ा रहनेवाला । (३) वहम करनेवाला जो व्यर्थ संदेह में पड़े । किसी बात के संबंध में जो व्यर्थ भला बुरा सोचे । संशयारता ।

वहल-संज्ञा पुं० [ सं० ] नौका । नाव ।

वि० दृढ़ । मजबूत ।

वहलगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंखर खंदन ।

वहलचन्द्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वहलचन्द्र । मेदासींगी । मेपश्री ।

वहलत्वञ्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] लोथ ।

वहला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दातपुष्पा । (२) यही हलायची ।

(२) दीपक राग की एक रागिणी का नाम ।

वहशत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जंगलीपन । असम्भ्यता । धरैरता ।

(२) उजड़पन । (३) पागलपन । बाबलापन । (४) सिद्ध की चंचलता । अधीरता । (५) विकलता । धराराहट । (६)

चहल-पहल या रौनक न होना । सत्तापन । उदासी ।

(७) डरावनापन ।

मुह्रां०—वहशत उलठना = (१) सनक होना । खराब होना ।

(२) धन होना । वहशत धरना = (१) उदासी होना । कष्ट या दुःख का भाव प्रकट होना । रौनक न रहना । (२) जंगलीपन प्रकट होना ।

वहशी-वि० [ सं० ] (१) जंगल में रहनेवाला । जंगली । (२) जो पालन न हो । जो आदमियों में रहना न जानता हो ।

(३) असम्भ्य । (४) भड़कनेवाला ।

वह्रां०—वि० वह । उस जगह । उस स्थान पर ।

विशेष—जैसे,—“वहाँ” का प्रयोग पास के स्थान के लिये होता है, वैसे ही इस शब्द का प्रयोग दूर के स्थान के लिये होता है ।

वहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी ।

वहाया-संज्ञा पुं० [ सं० ] मुसलमानों का एक सम्प्रदाय जो अन्दक वहाय नज्दी का बलाया हुआ है ।

विशेष—अन्दकवहाय शब्द के जम्द नामक स्थान में उत्पन्न हुआ था । यह सुदामद साहब के सर्वोच्च पद को अस्वीकार

करता था। इस मत के अनुयायी किसी व्यक्ति या स्थान विशेष की प्रतिष्ठा नहीं करते। अष्टुलवदाय ने अनेक मस-त्रिदों और पवित्र स्थानों की गिराया और मुहम्मद साहब की क़ुरा को भी खोदकर फेंक देना चाहा था। इस मत के अनुयायी अरब और फ़ारस में अधिक हैं।

वहिः-अब्र्य० [ सं० ] जो अंदर न हो। बाहर।

विशेष—हिंदी में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता, समस्त रूप में होता है। जैसे,—वहिगत। वहिष्कार। वहिरंग हस्यादि।

वहिनौ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नौका। नाव।

वहिरंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घाटी का बाहरी भाग। देह का बाहरी हिस्सा। (२) ऊपर या बाहर का हिस्सा। बाहरी भाग। अंतरंग का उलटा। (३) वह जो किसी वस्तु के भीतरी तत्व को न जानना चाहता हो। (४) आंगतुक मुख्य। कहीं बाहर से आया हुआ आदमी। (५) वह मनुष्य जो अपने दूल या मंडली का न हो। याययी आदमी। (६) पूजा में वह कृत्य जो आदि में किया जाय। वि० (१) ऊपर ऊपर का। बाहर का। जो अंतरंग न हो। बाहरी। (२) जो सार रूप न हो। जो भीतरी तत्व न हो। (३) अनावश्यक। फालतू।

वहिरिन्द्रिय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कर्मेन्द्रिय। (२) बाह्यकरण मात्र। कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय।

वहिरिगत-वि० [ सं० ] जो बाहर गया हो। निकला हुआ। बाहर का।

वहिरिध्वं-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाहर का स्थान। (२) विदेग। (३) अज्ञात स्थान। (४) द्वार। दरवाजा।

वहिरिध्वंजा-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाहरी फाटक। सदर फाटक। तोरण।

वहिरिध्वंजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा।

वहिरिभूत-वि० [ सं० ] वहिरंगत।

वहिरिमुख-वि० [ सं० ] विमुख।

वहिरियोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] इष्टयोग।

वहिरिलेख-संज्ञा पुं० [ सं० ] रेखा-गणित में यह लेख जो किसी क्षेत्र के बाहर बचाए हुए आधार पर गिराया जाता है।

वहिरिलिपिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कोई ऐसा देहा वाक्य या प्रश्न जिसका उत्तर बतलाने के लिये धोता से कदा जाय। पहले ही।

विशेष—पहलेही दो प्रकार की होती है। जिनके उत्तर का शब्द पहले ही के वाक्य के अंदर ही रहता है, उसे अंतर्लिपिका कहते हैं। और जिनके उत्तर का पूरा शब्द पहले ही के अंदर नहीं होता, वे वहिरिलिपिका कहलाती हैं। जैसे,—“मांस काह समझन को ? कौन शोषु-वाहन है ? कां को सुख होन है ? काकी माल शिव धारो है ? कदा गज बंधन ? छपीले दग का के अति ? कौन हरपुत्र ? सीपसुत को

सुप्यारो है। शोमा को सुनाम का है, कृष्ण नख धारो कदा ? सिंधु से मिलत कौन ? काह अनियारो है ? उत्तर के वर्णन में आदि अंत छोड़ दीजै, मध्य छोड़ै सो हिये मनोरथ हमारो है।”

इन प्रश्नों के उत्तर क्रमशः ये होंगे—(१) सयाने। (२) बरद। (३) सुकृती। (४) कपाल। (५) सौंफल। (६) हरिणी। (७) गनेरा। (८) मुकता। (९) पानिप। (१०) पहाड़। (११) सरिता। (१२) नयन। इन शब्दों के मध्या-हर लेने से यह उत्तर वाक्य निकलता है।—“यार ! कृपा करि नेक निहारिय”।

वहिश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] केकड़ा।

वहिश्वरप-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाहर की इन्द्रियों। पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों। बाह्येन्द्रिय। (मन या अन्तःकरण को भीतर की इन्द्रिय कहते हैं।)

वहिश्वरत-वि० [ सं० ] (१) निकला हुआ। बाहर किया हुआ। (२) अलग किया हुआ। धागा हुआ। धक।

वहिश्वर-वि० [ सं० ] अधिक भार उठानेवाला।

वहिश्वराय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जीवन। (२) भास वायु। (३) अर्थ।

वह्रीं-अब्र्य० [ हिं० बह्रीं + हीं ] उसी स्थान पर। उसी जगह।

विशेष—जब वहाँ शब्द पर ज़ोर होता है, तब “हीं” लगने के कारण उसका यह रूप हो जाता है।

वह्री-सर्व० [ हिं० बह + हीं ] (१) उस तृतीय व्यक्ति की ओर निश्चित रूप से संकेत करनेवाला सर्वनाम, जिसके संबंध में कुछ कहा जा चुका हो। पूर्वोक्त व्यक्ति। जैसे,—(क) यह वही आदमी है जो कल आया था। (ख) निर्दिष्ट व्यक्ति। अन्य नहीं। जैसे,—जो पहले वहाँ पहुँचेगा, वही इनाम पावेगा।

वह्रीच-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रक्षावाहिनी नादियों का एक वर्ग। तारा। (२) स्नायु। (३) मांसपेशी। पुट्टा।

वह्रदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चार प्रकार के संन्यासियों में से एक। विशेष—सूत-संहिता के अनुसार कुटीचक, वह्रदक, हंस और

परमहंस ये चार प्रकार के संन्यासी कहे गए हैं। वह्रदकों के लिये यह नियम है कि वे एक घर से पूरी मिशान न ग्रहण करें, शत घरों से हों। उन्हें अपने साथ में गाय की पूँछ के रोमों से बँधा हुआ त्रिदंष्ट्र, शिखर, जलपूर्ण पात्र, कौपीन, कर्मदल, कंधा, पादुका, छत्र, रुद्राक्ष की माला, योगपट, खनित्र और कृपाण रखना चाहिए। मरने पर वह्रदक संन्यासी जल में डुबाए जाते हैं।

वह्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अति। (२) कृष्ण के एक पुत्र का नाम, जो मित्रविदा से उत्पन्न हुआ था। (३) दुर्बल के पुत्र का नाम। (४) दुश्चर वंशी एक यादव का नाम। (५)

चित्रक । चीता । (६) मिळावों । (७) तीन की संख्या ।  
 (८) राम की सेना के सेनापति एक यंदर का नाम ।  
 वह्निकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चित्रक । चित्रा । (२) जटारात्रि ।  
 (३) चक्रमक । पथरी ।  
 वह्निकरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चौ का फूल ।  
 वह्निकुमार-संज्ञा पुं० [ सं० ] भुवनपति देवगण में से एक ।  
 वह्निकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ ।  
 वह्निकमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कलिहारी या कलियारी नाम का विप ।  
 वह्निकमाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धव का पेड़ ।  
 वह्निकीपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुसुम का वृक्ष ।  
 वह्निकीपिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अजमोदा ।  
 वह्निकाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चित्रक । चीते का पेड़ । (२) मिळावों ।  
 वह्निनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जटामासी ।  
 वह्नियुष्प-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धव का वृक्ष ।  
 वह्नियोज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्वर्ण । सोना ।  
 विशेष—प्रसूद्वैचर्य पुराण के कृष्णजन्म खंड में स्वर्ण की उत्पत्ति की कथा यह है । स्वर्ण की सम्रा में एक बार स्रव देवता धंटे हुए थे और रंभा नाच रही थी । रंभा को देखकर अग्नि देव काम पीड़ित हुए और उनका वीर्य गिरा, जिसे उन्होंने लज्जावश कपड़ों से ढँक लिया । कुछ दिनों पीछे वह वीर्य दमकती हुई धातु होकर वस्त्र भेदकर नीचे गिरा, जिस्से सुवर्ण की उत्पत्ति हुई ।  
 (२) तंत्र में "रं" बीज ।  
 वह्निसूक्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] चौदी ।  
 वह्निसोम-संज्ञा पुं० [ सं० ] घी ।  
 वह्निसंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] गनियारी का पेड़ । अग्निमंथ वृक्ष ।  
 अथेयू का पेड़ ।  
 वह्निसंधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] गनियारी का पेड़ ।  
 वह्निसिन्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] वायु । हवा ।  
 वह्निसुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवता ।  
 विशेष—यज्ञ की अग्नि में डाला हुआ भाग देवताओं को पहुँचता है; इसी से वे वह्निसुख कइलाते हैं ।  
 वह्निरैता-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह्निरैत । शिव ।  
 वह्निलोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] ताम्र । ताँबा ।  
 वह्निलोहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] काँठा ।  
 वह्निकृत्वा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कलिहारी या कलियारी नाम का विप ।  
 वह्निशिला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कलिहारी या कलियारी नाम का विप । (२) धव का पेड़ । (३) कङ्कन नाम का अन्न ।  
 मियंगु । (४) गज पिण्डी । गजपीण्ड ।  
 वह्न्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वाहन । यान । (२) शक्ति । शक्ति ।

वह्निक-संज्ञा पुं० [ सं० ] उडाकर ले जानेवाला । वाहक ।  
 वाँ-प्रत्यय [ हिं० ] बर्ष का संज्ञित रूप । उस जगह । उस स्थान पर ।  
 वाँछनीय-वि० [ सं० ] (१) चाहने योग्य । (२) जिसकी इच्छा हो ।  
 वाँछा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वाँछा [ वि० ] वाँछित, वाँछनीय । इच्छा ।  
 अभिलाषा । चाह ।  
 विशेष—सिद्धांतमुक्तावली के अनुसार वाँछा नामक आत्मवृत्ति दो प्रकार की होती है । एक उपाय-विपरिणी, दूसरी फल-विपरिणी । फल का अर्थ है—सुख की प्राप्ति और दुःख का न होना । जिस वाँछा का कारण फलज्ञान हो, अर्थात् जो वाँछा इस रूप में हो कि अमुक सुख मुझे मिले, वह फलविपरिणी है । जो वाँछा किसी ऐसे उपाय के संबंध में हो, जिस्से इष्ट साधन हो, वह उपाय-विपरिणी है ।  
 वाँछित-वि० [ सं० ] अभिलषित । इच्छित । चाह । हुआ ।  
 जिसकी इच्छा हो ।  
 वाँत-संज्ञा पुं० [ सं० ] धमन । उलटी । फें ।  
 वाँता-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुत्ता ।  
 वाँताशी-वि० [ सं० ] धमन खानेवाला ।  
 संज्ञा पुं० (१) कुत्ता । (२) वह ब्राह्मण जो भोजन के लिये अपने कुल या गोत्र की प्रशंसा करे ।  
 वाँति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धमन । वाँत । फें ।  
 वाँतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुटकी ।  
 वाँतित-संज्ञा पुं० [ सं० ] मदनफल वृक्ष । मैनफल का पेड़ ।  
 वाँतिदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुटकी ।  
 वाँतिशोधनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जोरक । जीरा ।  
 वाःकटि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिशुमार । सूँस ।  
 वाःपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] लवंग । लौंग ।  
 वाः-प्रत्यय [ सं० ] विकल्प या संदेहाचक शब्द । था । अथवा ।  
 लो सर्वो [ हिं० ] वह । प्रज आपा में प्रथम पुत्र का वह एकवचन रूप जो कारक चिह्न लगने के पहले उसे होता है । जैसे,—वाने, वाक्यों, वासों इत्यादि । उ०—वही देह चाके परस वाहि इगन ही देखि ।—विहारी ।  
 वाहल्लो-सर्वो दे० "वाहि" । उ०—नैन कमल छाँँ लगत है कमल लगत है वाह । कमल काल सजन हियो दोनों एक सुभाह ।—रसनिधि ।  
 वाहदा-संज्ञा पुं० [ सं० ] दे० "वादा" ।  
 वाहस वाहसल्लर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विधविद्यालय का वह ऊँचा अधिकारी जो वाहसल्लर के सहायतायें हो और उसकी अनुपस्थिति में उसके सारे कामों को उसी की मूर्ति कर सकता हो ।  
 वाहसराय-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिंदुस्तान का वह सर्वप्रथम शासक

अधिकारी जो सम्राट् के प्रतिनिधि स्वरूप यहाँ रहता है।  
बड़ा लाट।

वाक्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वाणी। वाच्य। (२) सरस्वती।  
(३) बोलने की इन्द्रिय।

वाक्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बगलों का समूह। (२) वाक्य।  
(३) वेद का एक भाग। (४) खेत की वह कृत जो चिना  
खेत नापे की जाती है।

वि० वक् संसंधी। बगलों का।

वाक्कई-वि० [ अ० ] डीक। यथार्थ। सच। वास्तव। जैसे,—जो  
हुठ कहता हूँ, वह वाक्कई कहता हूँ।

व्य० सचमुच। यथार्थ में। वास्तव में। जैसे,—वया आप  
वाक्कई यहाँ गए थे ?

वाक्कया-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) कोई बात जो घटित हो।  
व्यापार-संयोग। घटना। (२) वृत्तान्त। समाचार।

यौ०—वाक्कया नवीस = गुनजमानी साम्राज्य में वह कर्मचारी  
जिनका कार्य इतिहास के रूप में घटनाओं को लिखना होता था।

वाक्का-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) होमेवाला। घटनेवाला।

मुहा०—वाक्का होना = घटना के रूप में उपस्थित होना। घटित  
होना।

(२) स्थित। खड़ा। प्रतिष्ठित। जैसे,—वह मकान दरिया  
के किनारे वाक्का है।

वाक्किनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम।

वाक्किफ-वि० [ अ० ] (१) जानकार। ज्ञाता। जैसे,—मैं  
इस बात से वाक्किफ न था। (२) बात को समझने बूझने-  
वाला। बातों की जानकारी रखनेवाला। अनुभवशील। जैसे,—

हिस्सी वाक्किफ भाइमी को इंतजाम के लिये भेजना चाहिये।

वाक्किफकार-वि० [ अ० वाक्किफ + कार ] काम को समझने  
बूझनेवाला। जो अनाड़ी न हो। कार्याभिज्ञ।

वाक्की-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बहूची।

वाक्कीवाक्-संज्ञा पुं० [ सं० ] कथोपकथन। बातचीत।

वाक्कीवाच्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) परस्पर कथोरकथन। बातचीत।  
(२) परस्पर तर्क। (३) तर्क विद्या।

विशेष—उद्दिष्टयोपनिन्द में नारद ने सत्तरकुमारों से अपनी  
जिन जिन विद्याओं के ज्ञाता होने की बात कही थी, उनमें  
“वाक्कीवाच्य” विद्या भी थी।

वाक्का-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] परक के अनुसार एक प्रकार का पत्थर।

वाक्कयत-वि० [ सं० ] (१) बहुत बातें करनेवाला। बातें करने  
में तेज़। मुँहजोर। (२) भद्रमदिया।

वाक्कल-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्यायशास्त्र के अनुसार छह के तीन  
भेदों में से एक।

विशेष—जब पक्षों के साधारण रूप से कहे हुए कथन में  
दूसरे पक्ष द्वारा अनिश्चित अर्थ से अन्य अर्थ की कथना उसे

केवल पक्ष में डालने के लिये की जाती है, तब वाक्कल  
कहा जाता है। जैसे,—पक्ष ने कहा,—“यह वाक्कल नव  
कंपल है।” अर्थात् नव कंपलवाला है। इसका प्रतियादी यदि  
यह अर्थ लगावे कि इस वाक्कल के पास संख्या में नौ कंपल  
हैं, और कहे—“नौ कंपल यहाँ हैं, एक ही तो है।” तो यह  
वाक्कल होगा।

वाक्कपट्ट-वि० [ सं० ] बात करने में छुनुर। वाक्काल।

वाक्कपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वृहस्पति। (२) विष्णु। (३)  
अनघ वचन। पट्ट वाच्य। निर्दोष बात।

वाक्कपतिराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक कवि जो राजा यशोवर्मन  
के आश्रित थे। इन्होंने प्राकृत में गौपयहो.(गौडवच) नामक  
काव्य की रचना की है। ये भवभूति के सम सामयिक थे।  
(२) मालया का एक परमार राजा जो सीयक का पुत्र था।  
(इस नाम का एक और राजा हुआ है।)

वाक्कपारुष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वचन की क्रोरता। बात  
का कटुभाषन। मुँहजोरी। (२) धर्मशास्त्रानुसार किसी की  
जाति, कुल हत्यादि के दोषों को इस प्रकार लैच शत्रु से  
कहना कि उससे उद्द्वेग उत्पन्न हो।

वाक्कफियत-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] जानकारी। परिज्ञान।

वाच्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह पद समूह जिससे श्रोता को वक्ता के  
अभिप्राय का बोध हो। वाच्य में क्रम से कम कर्ता, जो संज्ञा  
या सर्वनाम होता है, और क्रिया का होना आवश्यक है।

विशेष—नैयायिकों और अलंकारियों के अनुसार वाच्य में (१)  
आदर्शा, (२) योग्यता और (३) भासति होनी चाहिये।

“आकांक्षा” का अभिप्राय यह है कि वाद्य यों ही रहे हुए  
न हों, वे मिलकर किसी एक तात्पर्य का बोध कराते हों।

जैसे,—कोई कहे—“मनुष्य चारपाईं पुस्तक” तो यह वाच्य  
न होगा। जब यह बड़ेगा—“मनुष्य चारपाईं पर पुस्तक  
पढ़ता है।” तब वाच्य होगा। “योग्यता” का तात्पर्य यह

है कि पदों के समूह से निकला हुआ अर्थ असंगत या  
असंभव न हो। जैसे,—कोई कहे—“पानी में हाथ जल

गया” तो यह वाच्य न होगा। “भासति” का मतलब है  
सामान्य या निकटता। अर्थात् तात्पर्य बोध करानेवाले पदों

के बीच दूरात या काल का व्यवधान न हो। जैसे,—कोई  
यह न कह कर कि “तुम्हारा माता, पानी पिया” यह कहे—

“तुम्हारा पिया माता पानी” तो इसमें भासति न होने से वाच्य  
न बनेगा, क्योंकि “तुम्हारा” और “माता” के बीच “पिया” शब्द

कार्यवधान पढ़ता है। इसी प्रकार यदि कोई “पानी” खपे  
पड़े और “पिया” शाम को कहे, तो इसमें काल संबंधी

व्यवधान होगा।

वाच्यकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक की बात दूसरे से  
कहनेवाला। दूत। (२) बातें बगुनेवाला।



वाक्यभेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] मीमांसा के एक ही वाक्य का एक ही काल में परस्पर विरुद्ध अर्थ करना ।  
 वाक्यैकवाक्यता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मीमांसा के अनुसार एक वाक्य को दूसरे वाक्य से मिलाकर उसके सुसंगत अर्थ का बोध कराना ।  
 वाक्संयम-पज्ञा पुं० [ सं० ] वाणी का संयम । अन्वया बात न कहना । अर्थ बातें न करना ।  
 वाक्सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वाणी की सिद्धि; अर्थात् इस प्रकार की सिद्धि या शक्ति कि जो बात सुँह से निकले, वह ठीक घटे ।  
 वागत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वारक । (२) प्राण । सान । (३) निर्णय । (४) वृत्त । मेदिनी । (५) पंडित । (६) सुसुष्ठु । (७) निर्भय । निष्ठर ।  
 वागा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वरणा । लगाम ।  
 वागाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] भावा देकर निराश करनेवाला । भासने में रहकर पीछे धोखा देनेवाला । विश्वासघाती ।  
 वागाशनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुद्धदेव ।  
 वागीश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बृहस्पति । (२) प्रजा । (३) वाग्मी । कवि ।  
 वि० अच्छा बोलनेवाला । वक्ता ।  
 वागीशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती ।  
 वागीश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बृहस्पति । (२) प्रजा । (३) मंत्रुवाप बोधिसत्व । (४) कवि ।  
 वि० अच्छा बोलनेवाला । सद्ब्रह्म ।  
 वागीश्वरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती ।  
 वागुंजार-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली । (सुश्रुत)  
 वागुजी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बकुची नाम की ओषधि ।  
 वागुण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमरख । (२) बैंगन । भंटा ।  
 वागुरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मृगों के फँसने का जाल ।  
 वागुरिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिरन फँसानेवाला निष्कारी । मृगवाप ।  
 वागुलि संज्ञा पुं० [ सं० ] सिद्धा । पानदान ।  
 वागुलिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजाओं का वह सेवक जिसका काम उनको पान खिलाना होता है । ख्यास ।  
 वागुद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पक्षी ।  
 विशेष-मनुस्मृति में लिखा है कि जो गुह खुराता है, वह दूसरे जन्म में वागुद पक्षी होता है ।  
 वागुलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजाओं का वह ख्यास जो उनको पान खिलता है ।  
 वाग्जात-संज्ञा पुं० [ सं० ] बातों की लपेट । बातों का आढम्बर या भरमार ।  
 वाग्दंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] मजा बुरा कहने का दंड । मौखिक दंड ।  
 होंट डपट । लिखाय ।

वाग्दत्त-वि० [ सं० ] सुँह से दिया हुआ । धनचौं द्वारा प्रदान किया हुआ । जिसे दूसरे को देने के लिये कह चुके हों ।  
 वाग्दत्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह कन्या जिसके विवाह की बात किसी के साथ ठहराई जा चुकी हो, केवल विवाह संस्कार होने को बाकी हो ।  
 विशेष-पूर्व काल में प्रथा थी कि कन्या का पिता जामाता के पास जाकर कहता था कि मैं अपनी कन्या तुम्हें दूँगा । आजकल इस प्रकार तो नहीं कहा जाता; पर वार्ष्णा या फडदान का टीका चढ़ाया जाता है ।  
 वाग्दल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ओछापर । ओठ ।  
 वाग्दान-संज्ञा पुं० [ सं० ] कन्या के पिता का किसी से जाकर यह कहना कि मैं अपनी कन्या तुम्हें दूँगा ।  
 विशेष-प्राचीन काल में कन्या का पिता जिसे उत्तम घर समझता था, उसके पास जाकर कहता था—“मैं अपनी कन्या तुम्हें दूँगा” । यही कथन वाग्दान कहलाता था ।  
 वाग्दुष्ट-वि० [ सं० ] (१) परुषभाषी । कटुभाषी । (२) जिसे किसी ने शाप दिया हो । जिसे किसी ने कोसा हो । अमिशास ।  
 वाग्देवता-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाणी । सरस्वती ।  
 वाग्देवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती । वाणी ।  
 वाग्देव्यचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह चर जो सरस्वती के उद्देश्य से पकाया गया हो ।  
 वाग्द्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बोलने की शक्ति । जैसे,—बच्चों का ठीक उच्चारण न करना इत्यादि । (२) व्याकरण संबंधी श्रुतियों या दोष । (३) निद्रा या गहरी ।  
 वाग्मट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अष्टांगहृदय संहिता नामक वैद्यक के ग्रंथ के रचयिता जिनके पिता का नाम सिंहगुप्त था । (२) पदार्थचंद्रिका, भावप्रकाश, रघुरथ-समुच्चय, शास्त्रपेण आदि के रचयिता । (३) वैद्यक निघंटु के रचयिता । (४) एक जैन पंडित जिनके पिता का नाम नेमिकुमार था । इनके रचे अलंकारतिलक, वाग्मटालंकार, और छंदानुशासन प्रसिद्ध ग्रंथ हैं ।  
 वाग्मी-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वाचाल । अच्छा वक्ता । (२) पंडित । (३) बृहस्पति । (४) एक पुरुवंशी राजा ।  
 वाग्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) परिमित-भाषी (२) निर्वेद ।  
 वाग्मन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाणी का संयम । बोलने में संयम ।  
 वाग्मज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कठोर वाक्य । (२) वाप ।  
 वाग्वादिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती ।  
 वाग्विद्मथ-वि० [ सं० ] (१) पंडित । (२) यातचीत करने में चतुर ।  
 वाग्बिलास-संज्ञा पुं० [ सं० ] आनंदपूर्वक परस्पर संभाषण । आनंदपूर्वक बात-चीत करना ।

वाचवैद्वय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वात करने की चतुरता । (२) सुंदर अलंकार और चमत्कारपूर्ण उक्तियों की विपुलता ।  
 विशेष-काव्य में वाचवैद्वय की प्रधानता मानते हुए भी कवि की आत्मा रस ही कहा गया है । अग्नि पुराण में स्पष्ट कहा है—“वाचवैद्वय्यं प्रधानेऽपि रसः प्रयात्र जीवितम्” ।  
 वाङ्मती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी जो मैवाळ में है और आजकल “वागमती” कहलाती है ।  
 विशेष-गिराह पुराण ( गोकर्ण महात्म्य ) में इस नदी को अत्यंत पवित्र गंगा से भी पवित्र, कहा है और इसमें स्नान करने तथा इसके किनारे मरने से विष्णुलोक की प्राप्ति बतलाई है ।  
 वाङ्मय-वि० [ सं० ] (१) वाच्यतामक । वचन-संबंधी । (२) वचन द्वारा किया हुआ । जैसे,—वाङ्मय पाप ।  
 विशेष-वचनों द्वारा किए हुए पाप चार प्रकार के कहे गए हैं—पारम्य, अनृत, पैशुन्य और असंद प्रभार ।  
 (३) जो पठन-पाठन का विषय हो ।  
 संज्ञा पुं० गद्य-पद्यात्मक वाक्य भादि जो पठन-पाठन का विषय हैं । साहित्य ।  
 वाङ्मयी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती ।  
 वाङ्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का गद्य काव्य । उपन्यास ।  
 वाचयम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मुनि । (२) मौन मत धारण करनेवाला पुरुष । मौनी ।  
 वाच-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वाचा । वाणी । वाक्य ।  
 वाच-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की मछली ।  
 वाच-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जेब में रखने की या कलाई पर बाँधने की छोटी घड़ी ।  
 वाचक-वि० [ सं० ] बतानेवाला । कहनेवाला । चोतक । सूचक । बोधक । जैसे,—उपमावाचक शब्द । किमवाचक प्रत्यय ।  
 संज्ञा पुं० वह जिससे किसी वस्तु का अर्थ बोध हो । नाम । संज्ञा । संकेत ।  
 वाचकधर्मलुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह उपमा जिसमें वाचक शब्द और सामान्य धर्म का लोप हो । उ०—ईस प्रसाद अर्थात् तुम्हारी । सय सुतवर्ष देवसरि-वारी ।—तुलसी ।  
 वाचकलुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का उपमालंकार जिसमें उपमावाचक शब्द का लोप होता है । जैसे,—नील सरोवरद वयाम्, तरुण अरुण वारिज वयम् ।—तुलसी ।  
 वाचकोपमानधर्मलुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह उपमा जिसमें वाचक शब्द, उपमान और धर्म तीनों लुप्त हैं, केवल उपमेय भर हो । जैसे,—जेहि घर बाजि राम भववारा । तेहि सारदौ न बरौ, पारा ।—तुलसी ।  
 वाचकोपमानलुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उपमालंकार का एक भेद

जिसमें वाचक और उपमान का लोप होता है । यथा,—तेरे पे कट्ट वचन हूँ सुनंत हियो हरखात ।  
 वाचकोपमेयलुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उपमालंकार का एक भेद जिसमें वाचक और उपमेय का लोप होता है । जैसे,—भटा उदय होतै भयो छविपर परन चंद ।  
 वाचकज्ञी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गागी । वाचकृती । (वचन कृति की अपत्य )  
 वाचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पढ़ना या उच्चारण करना । पठन । बॉचना । (२) कहना । बताना । (३) प्रतिपादन ।  
 वाचनक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पहेली ।  
 वाचयिता-वि० [ सं० वाचयित ] वाचक । बॉचनेवाला ।  
 वाचसांपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] बृहस्पति ।  
 वाचस्पति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बृहस्पति । (२) दार्जपति-पालक ।  
 वाचा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वाणी । (२) वाक्य । वचन । शब्द ।  
 वाचाट-वि० [ सं० ] (१) वाचाल । (२) बकी । बकवादी ।  
 वाचापन्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रतिज्ञापत्र ।  
 वाचायधर-वि० [ सं० वाचायद ] वाचायद । प्रतिज्ञायद । उ०—वाचायधर कंस करि छठिहो तब वसुदेव पतीजे हो । याके गर्भ अयतरे जे सुत सावधान है लीजे हो ।—सर ।  
 वाचायधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रतिज्ञायद होना ।  
 वाचायद-संज्ञा पुं० [ सं० ] वादे में बंधा हुआ । वचन देने के कारण विवदा । प्रतिज्ञायद ।  
 वाचास्त-वि० [ सं० ] (१) बोलने में तेज । धाकपट्ट । (२) बकवादी । व्यर्थ बकनेवाला ।  
 वाचासता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बहु-भाषिता । बहुत बोलने-वाला । (२) वातचीत में निपुणता ।  
 वाचिक-वि० [ सं० ] (१) वाणी संबंधी । (२) वाणी से किया हुआ । (३) संकेत से कहा हुआ ।  
 संज्ञा पुं० अभिनय का एक भेद जिसमें केवल वाक्य विन्यास द्वारा अभिनय का कार्य संपन्न होता है ।  
 वाची-वि० [ सं० वाचिर् ] (१) वाक्ययुक्त । (२) प्रकट करने-वाला । बोध करानेवाला । सूचक ।  
 विशेष-यह शब्द समास में समस्त पद के अंत में आने से वाचक और विधापक का अर्थ देता है । जैसे,—पुरुषवाची = पुरुषवाचक ।  
 वाच्य-वि० [ सं० ] (१) बहने-योग्य । जो कथन में आये । (२) शब्द संकेत द्वारा जिसका बोध हो । अभिप्रा द्वारा जिसका बोध हो । अभिप्रेय ।  
 विशेष-जित शब्द द्वारा बोध होता है, उसे “वाचक” कहते

हैं; और जिस वस्तु या अर्थ का बोध होता है, उसे "वाच्य" कहते हैं ।

(२) जिसे लोग भला बुरा कहें । कुत्सित । हीन ।  
संज्ञा पुं० (१) अभिचेयार्थ । (२) प्रतिपादन । वि० दे० "वाच्यार्थ" ।

वाच्यार्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह अभिप्राय जो शब्दों के नियत अर्थ द्वारा ही प्रकट हो । संकेत रूप से स्थिर शब्दों का नियत अर्थ । मूल शब्दार्थ ।

विशेष—अभिधा, उद्घाणा और ध्वंजना ये तीन शक्तियाँ शब्द की भागी जाती हैं । इनमें से प्रथम के सिवा और सब का आधार "अभिधा" है, जो शब्द-संकेत में नियत अर्थ का बोध कराती है । जैसे,—'कुत्ता' और 'इमली' कहने से पशु विशेष और पृथक् विशेष का बोध होता है । इस प्रकार का मूल अर्थ वाच्यार्थ कहलाता है । वि० दे० "वाच्यशक्ति" ।

वाच्यार्थावाच्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] मळी धुरी या कहने न कहने योग्य बात । जैसे,—उसे वाच्यार्थावाच्य का विचार नहीं है ।

वाज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वृत् । घी । (२) यज्ञ । (३) अन्न । (४) जल । (५) संग्राम । (६) चल । (७) वाण में का पंख जो पीछे लगा रहता है । (८) पलक । (९) वेग । (१०) मुनि । (११) वायु । भावाज्ञ ।

वाज-संज्ञा पुं० [ म० ] (१) उपदेश । शिक्षा । (२) धार्मिक व्याख्यान । (३) धार्मिक उपदेश । कथा ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।

वाजवावर्षा-संज्ञा पुं० [ सं० वाजवावर्षत् ] एक साम का नाम ।

वाजपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि । (२) अन्नपति ।

वाजपेय-संज्ञा पुं० दे० "वाजपेयी" ।

वाजपेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रसिद्ध यज्ञ, जो सात श्रौत यज्ञों में सर्वोर्षा है ।

वाजपेयी-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह पुरुष जिसने वाजपेय यज्ञ किया हो । (२) ब्राह्मणों की एक उपाधि जो कान्यकुब्जों में होती है । (३) अत्यंत कुलीन पुरुष । जैसे,—वे कौन बड़े भारी वाजपेयी हैं । उ०—म्याध धराराध की साथ राखी कौन, विंगल कौन मति भक्तभेई । कौन पौ सोम-जाजी अजामिल अधम कौन गजराज पौ वाजपेई?—तुलसी ।

वाजप्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्रकार ऋषि । इनके गोत्र के लोग वाजप्यायन कहलाते हैं ।

वाजपी-वि० दे० "वाजिपी" ।

वाजमर्माय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।

वाजभृत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।

वाजवत-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ अथवा वाजवतायि ] एक गोत्रकार ऋषि, जिनके गोत्र के लोग "वाजवतायि" कहलाते हैं ।

वाजश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ऋषि का नाम ।

वाजश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वाजश्व-ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष । (२) एक ऋषि जिनके पुत्र का नाम "नचिकेता" था और जो अपने पिता के क्रुद्ध होने पर यमराज के यहाँ चला गया था । यहाँ उसने उनसे ज्ञान प्राप्त किया था ।

वाजश्व-संज्ञा पुं० [ सं० वाजश्वत् ] (१) अग्नि । (२) एक गोत्रकार ऋषि का नाम ।

वाजस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।

वाजसनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य ।

वाजसनेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यजुर्वेद की एक शाखा का नाम जिसे याज्ञवल्क्य ने अपने गुरु वैशंपायन पर क्रुद्ध होकर उनकी पदाई हुई दिया उगलने पर सूर्य के तप से प्राप्त की थी । मरुत् पुराण के अनुसार वैशंपायन के शाप से वाजसनेय शाखा नष्ट हो गई । पर आजकल कुछ यजुर्वेद की जो संहिता मिलती है, वह वाजसनेय संहिता कहलाती है । (२) याज्ञवल्क्य ऋषि ।

वाजसाम-संज्ञा पुं० [ सं० वाजसामत् ] एक साम का नाम ।

वाजस्रजास-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेणु राजा का नाम ।

वाजिगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अश्वगंधा । अस्रगंध ।

वाजिदंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वासक । अइसा ।

वाजिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घोड़ी । (२) अश्वगंधा । अस्रगंध ।

वाजिय-वि० [ म० ] उचित । ठीक । मुनासिब ।

वाजिधी-वि० [ म० ] उचित । ठीक । मुनासिब ।

मुहा०—वाजिधी बात = ठीक बात । सही बात । वाजिधी खर्च = आवश्यक खर्च ।

वाजिबुल-अद्दा-वि० [ म० ] (रकम या धन) जिसके देने का समय आ गया हो । (यह रकम) जिसका दे देना उचित हो, या जिसे देने का समय पूरा हो गया हो ।  
संज्ञा पुं० देसा धन या रकम ।

वाजिबुल-अद्दा-संज्ञा पुं० [ म० ] वह बात जो कानूनी बन्दोबस्त के समय जमींदारों और कान्तकारों के बीच गाँव के रिवाज आदि के संबंध में लिखी जाती है ।

वाजिबुल घसुल-वि० [ म० ] (धन) जिसके वसूल करने का वक्त आ गया हो ।

संज्ञा पुं० देसा धन या रकम ।

वाजिम-संज्ञा पुं० [ सं० ] अधिनी नक्षत्र ।

वाजिमेघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] अश्वमेघ ।

वाजिराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) उद्योत्थव ।

वाजिशुभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] अश्वमार । कनेर का पेड़ ।

वाजिशिर-संज्ञा पुं० [ सं० वाजिशिरत् ] (१) मगवान के एक अवतार का नाम । (२) एक दानव का नाम ।

वाजी-संज्ञा पुं० [ सं० वाजिन् ] (१) घोड़ा । (२) वासक । अइसा ।

(३) फटे हुए वृष का पानी । वैष्णव में इसे शचिकर तथा

गुणा, दाह, रक्तपित्त और वर का नाशक लिखा है।  
(५) हवि।

वाजीकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्द्ध आयुर्वेदिक प्रयोग जिससे मनुष्य में वीर्य और पुंसत्व की वृद्धि हो।

विशेष—जिस प्रयोग से मनुष्य भ्रम के समान रतिप्रकियाला हो, उसे वाजीकरण कहते हैं। मनुष्य में जब वीर्य की अल्पता होती है, तब वाजीकरण औषधों का व्यवहार किया जाता है। साधारणतः घी, दूध, मांस आदि पदार्थ वीर्य-वर्द्धक होते हैं। पर आयुर्वेद में वाजीकरण पर एक अलग प्रकरण रहता है, जिसमें अनेक प्रकार की काष्ठौषधों और रसौषधों की व्यवस्था रहती है।

वाट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मार्ग। रास्ता। (२) वास्तु। इमारत। (३) मंडप।

वाटधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक जनपद जो कादमीर के नैऋत्य कोण में बसा गया है। मकुल के दिग्विजय में हूने पश्चिम में और मत्स्य पुराण में उत्तर दिशा में लिखा है। (२) ब्राह्मणी माता और वण मालिन या कर्मेहीन ब्राह्मण ने बरगस एक संकर जाति। (स्मृति)।

वाटर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पानी।

पौ०—वाटरप्रक। वाटरवर्ष। वाटरशूट। सोबावाटर आदि।  
वाटरप्रक-वि० [ सं० ] जिस पर पानी का प्रभाव न पड़े। जो पानी में न भीग सके। जैसे,—वाटरप्रक कपड़ा।

वाटर चर्मसं-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नगर में पानी पहुँचाने का विभाग। पानी पहुँचाने की कल का कार्यालय। (२) पानी पहुँचाने की कल। जलकंड।

वाटरशूट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पानी में कूदकर छैरने की श्रद्धा। जलश्रीवा।

वाटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वास्तु। इमारत। (२) बरग। बगीचा। (३) हिंगुपत्री।

वाटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वास्तु। इमारत। घर।

वाटुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मुना हुआ जो। यहूरी।

वाटप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बड। बरियारा। खिरंटी। (२) मुना हुआ जो।

वाटपपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रन। (२) कुंकुम।

वाटपमंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] पिना भूसी या छिडके के भुने हुए और बले हुए जो का मोह।

विशेष—एक भाग बले हुए जो को चौगुने पानी में पकाने से वाटपमंड बनता है। वैद्यक में यह हल्का, दचिकर, दीपन हृद्य तथा पित्त, श्लेष्मा, वायु और अनाहानाशक कहा गया है।

वाट्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बरियारा। बीजबंध।

वाट्याल, वाट्यालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बरियारा। बीजबंध।

वाट्यालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लोटा बरियारा।

वाड्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] दे० "वाद्य"।

वाड्यप्रति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) समुद्र के अंदर की भाग।

(२) समुद्री भाग। यह भाग जो समुद्र में दिखाई देती है।

वाद्म-मव्य० [ सं० ] अलम। पस। काफ़ी है। बहुत हो चुका।

वाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] चारदार फल लगा हुआ छड़ी के आकार का छोटा भक्ष जो धनुष की डोरी पर खींचकर छोड़ा जाता है। तीर।

विशेष—सहस्र शार्ङ्गधर में धनुष और वाण बनाने के संबंध में बहुत से नियम दिए गए हैं। वसमें लिखा है कि वाण या तीर का फल सुख लौह का होना चाहिए। फल कई आकार के बनाए जाते थे; जैसे,—भारामुल, क्षुरम, गोपुच्छ, अर्द्धचंद्र, सूधीमुख, भल, वसदंत, द्विमल, कीर्णक और काक-गुंठ। ये सब मित्र मित्र कामों के लिये होते थे। जैसे,—भारामुल वाण धर्म (पक्षर) भेदने के लिये, अर्द्धचंद्र सिर काटने के लिये, भारामुल और सूची बाल छेदने के लिये, क्षुरम धनुष काटने के लिये, भल हृदय भेदने के लिये, द्विमल धनुष की डोरी काटने के लिये आदि। फल पर अच्छी जिंखा होनी चाहिए। पीपल, सेंधा नमक और कुड़को गोमुत्र में पीसकर फल पर लेप करें; फिर फल को अग्नि में तपाकर सेल में सुखावे, तो अच्छी जिंखा होगी। चार कैसा होना चाहिए, इसके संबंध में भी बहुत सी बातें हैं। वाण ठीक सीधा जाय, रास्ते में हथर उधर न हो; इसके लिये उसके पिछले भाग में कुछ दूर तक कौड़े, हंस, बगले, गीध और मयूर आदि किसी यही के पर छगाने चाहिए।

वाणायली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वाणों की भवली। तीरों की कतार। (२) तीरों की छगतात धर्म। (३) एक साध यने हुए पाँच श्लोक। श्लोकों का पंचक।

वाणिय्य-संज्ञा पुं० दे० "वाणिय्य"।

वाणिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नर्चकी। (२) मत्त स्त्री। (३) एक धर्म वृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में १६ वर्ण अर्थात् क्रमात्सुत्तर भगण, जगण, भगण, फिर जगण और अंत में रगण और गुण होता है।

वाणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सरस्वती। (२) मुँह से निकले हुए सार्धक वाद्य। वचन। जैसे,—देवी वाणी योषिण मन का भाषा खीय।—कथीर।

मुहान्—वाणी कुरता = मुँह से शब्द निकला।

(२) वाक्शक्ति। उ०—इतनी कहत गरुड़ पर चर्विक तरताहि मधुवन भाये। कंधु कपोल परसि बालक के वाणी प्रगढ़ फराये।—सूर। (४) वाग्विद्वि। जीभ। रसना। उ०—नैन निरति चरिता हूँ गये। मन वाणी शोक धकि रये।—सूर। (५) स्वर।

वातंढ-छंझा पुं० [ सं० ] एक मोत्रकार ऋषि का नाम, जिनके मोत्रबाले वातंढ्य कहलाते हैं।

वातंढ्य-छंझा पुं० [ सं० ] [ श्री० वातंढ्यमयिनी ] वातंढ ऋषि के मोत्र में उत्पन्न पुरुष।

वात-छंझा पुं० [ सं० ] (१) वायु। हवा। (२) वैद्यक के अनुसार शरीर के अंदर की वह वायु जिसके कुपित होने से अनेक प्रकार के रोग होते हैं। शरीर में इसका स्थान पकाशय माना गया है। कहते हैं कि शरीर की सब धातुओं और मल आदि का परिचालन इसी से होता है; और श्वास प्रश्वास, चेष्टा, वेग आदि इंद्रियों के कार्यों का भी यही मूल है।

वातकंठक-छंझा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वात रोग जिसमें पीय की गोंडों में वायु के घुसने के कारण जोड़ों में यदी पीड़ा होती है। यह रोग ऊँचे नीचे पैर पढ़ने या अधिक परिश्रम करने से हो जाता है।

वातक-छंझा पुं० [ सं० ] अशनपर्णी।

वातकुंडलिका-छंझा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का सूत्ररोग जिसमें वायु कुंडलाकार होकर पेट में घूमता रहता है, रोगी को पेशाव करने में पीड़ा होती है, और बूँद बूँद करके पेशाव उतरता है।

विशेष—मूत्रकृच्छ्र का रोगी यदि कुश्रय करके रूही पस्तुएँ खाता है, तो यह उपद्रव होता है।

वातकेतु-छंझा पुं० [ सं० ] धूल। गर्द।

वातकेलि-छंझा स्त्री० [ सं० ] (१) सुंदर आलाप। (२) उपपत्ति के दार्ता का क्षत।

वातगंड-छंझा पुं० [ सं० ] वातज गलगंड रोग जिसमें गले की नसें काली या लाल और कड़ी हो जाती हैं और बहुत दिन में पकती हैं।

वातगुल्म-छंझा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का गुल्म रोग जो वात के प्रकोप से होता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार अधिक भोजन करने, रूखा अथ खाने, घलवायु से लड़ने, मल सूत्र रोकने या अधिक विरेचनादि लेने से यह रोग होता है। इसमें गोला सग बंध जाता है, जो हृदय से उधर रेंगता सा जान पड़ता है। कभी कभी यदी पीड़ा होती है। यह पीड़ा प्रायः भोजन पचने के पीछे झाली घंट पोने पर होती है और भोजन करने पर घट जाती है।

वातग्री-छंझा स्त्री० [ सं० ] (१) शालपर्णी। (२) अश्वगंधा। अश्वगंध।

वातचक्र-छंझा पुं० [ सं० ] (१) उशीतिप में एक योग।

विशेष—आषाढी पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय यह योग खाता है। उस समय वायु की दिशा द्वारा वर्ष के फलकक का विचार किया जाता है।

(२) चक्रवात। बवंडर।

वातच्युतक-छंझा पुं० [ सं० ] तित्तिर। तीतर पक्षी।

वातज-विं० [ सं० ] वायु द्वारा उत्पन्न। वातकृत।

वातजवर-छंझा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का ज्वर।

विशेष—इसमें गला, होंठ और मुँह सूखते हैं, नींद नहीं आती, द्विचकी आती है, शरीर रूखा हो जाता है, सिर और देह में पीड़ा होती है, मुँह पीका लगता है और मल रुक हो जाता है। यह ज्वर कभी घट और कभी बढ़ जाता है।

वाततूल-छंझा पुं० [ सं० ] महीन तागा जो कभी कभी आघात में हृदय उधर उड़ता-दिखाई पड़ता है।

विशेष—यह एक प्रकार की बहुत छोटी मकड़ियों का जाह होता है जिसके सहारे वह एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाया करता है। इसी को बुढ़िया का तागा कहते हैं।

प्यर्पां—युद्धसूत्रक। इंदूतूल। मापादास। चंद्रकफ। मरुध्वज।

वातघ्यज-छंझा पुं० [ सं० ] मेघ।

वातनाडो-छंझा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का नासूर जिसमें वायु के प्रकोप से दाँत की जड़ में नासूर हो जाता है। इस में ते रक्त सहित पीय निकला करता है और चुभने की सी पीड़ा होती है।

वातपट-छंझा पुं० [ सं० ] पताहा। ध्वजा।

वातपत्नी-छंझा स्त्री० [ सं० ] दिशा।

वातपथ्य-छंझा पुं० [ सं० ] एक शत्रु रोग जिसमें कभी मौं में और कभी आँसुँँँने से यदी पीड़ा होती है।

वातपुत्र-छंझा पुं० [ सं० ] (१) हनुमान। (२) भीम।

वातपोथ-छंझा पुं० [ सं० ] पलाश।

वातप्रकृति-विं० [ सं० ] जिसकी प्रकृति वायु-प्रधान हो।

वात प्रकोप-छंझा पुं० [ सं० ] वायु का बढ़ जाना। वायु की अधिकता। इसमें अनेक प्रकार के रोग होते हैं।

वातप्रमो-छंझा स्त्री० [ सं० ] (१) हिरन। (२) नकुल। नेयका। (३) घोड़ा।

वातप्रशमिनी-छंझा स्त्री० [ सं० ] आलु, पुतारा।

वातमज-छंझा पुं० [ सं० ] जिधर की हवा हो, उधर मुख करके दौड़नेवाला मृग। वातमृग।

वातमूढ-छंझा पुं० [ सं० ] जिधर की हवा हो, उधर मुख करके दौड़नेवाला मृग।

वातरंग-छंझा पुं० [ सं० ] चलदूक वृक्ष। पीपल।

वातरक-छंझा पुं० [ सं० ] एक रोग जिसमें कुपथ्य और अनुका-हार विहार से रक्त वायु से दूषित हो जाता है। इसमें पैर के तल्ले से घुटने तक छोटी छोटी कुंसियाँ हो जाती हैं, जठराग्नि मंद पड़ जाती है और शरीर दुर्बल होता जाता है।

वातरथ-छंझा पुं० [ सं० ] मेघ।

वातिरायण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) निचयोजन पुरुष । निदग्मा  
भादमी । (२) कांड । (३) करपात्र । छोटा । (४) छुट ।  
(५) सीया पेंद । (६) उन्नत पुरुष ।

वातरुघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हृदयगुण । (२) उरकोच । घस ।  
रिषावत ।

वातरौहिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का रोग जिसमें जीम  
पर चारों ओर कौंटे के समान मांस उभर आता है और  
उसका गन्ना रुक सा जाता है । इसमें रोगी को बड़ा कष्ट  
होता है ।

वातरिं-संज्ञा पुं० [ सं० ] काठ और लोहे का बना हुआ पात्र ।

वातल-संज्ञा पुं० [ सं० ] चना ।

वि० वायुकारक । वायुवर्द्धक ।

वातवैरी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वादाम ।

वातव्याधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गन्धिया ।

वातशूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि ।

वातशीर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] वस्ति । पिचकारी ।

वातसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्व । सेल ।

वातसारयि-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि ।

वातस्कंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] आश्रमा का यह भाग जहाँ वायु  
बलती रहती है ।

वातखन-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि ।

वातांड-संज्ञा पुं० [ सं० ] अंडकोर का एक रोग, जिसमें एक  
अंड चलता रहता है ।

वातांड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य का घोड़ा । (२) हिरन ।

वातात्मज-संज्ञा पुं० [ सं० ] हनुमान ।

वातादि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वादाम ।

वातापि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक असुर का नाम ।

विद्येय-आतापि और वातापि दो भाई थे । दोनों मिलकर  
अपिथों को बहुत सताया करते थे । वातापि तो नेत्र बन  
जाता था और उसका भाई आतापि उसे मारकर मादणों  
को भोजन कराया करता था । जब मादण लोग घा चुकते,  
तब वह वातापि का नाम लेकर पुकारता था और यह  
उनका पेट फाड़कर निकल जाता था । इस प्रकार उन  
दोनों ने बहुत से मादणों को मार डाला । एक दिन अगस्त्य  
ऋषि उन दोनों के घर आए । आतापि ने वातापि को मार-  
कर अगस्त्य को लिखाया और फिर नाम लेकर पुकारने  
लगा । अगस्त्य जी ने डकार लेकर कहा कि यह तो मेरे  
पेट में कमी का पच गया; अब कहाँ जाता है ।

वाताप्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल । (२) क्षोम ।

वाताम-संज्ञा पुं० [ सं० ] वादाम ।

वातामोहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कन्दूरी ।

वातापन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गवाछ । झोका । छोटी

विटकी । (२) घोड़ा । (३) एक मंत्रद्वारा ऋषि का नाम ।  
(४) रामायण के अनुसार एक जनपद का नाम ।

वातायु-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिरन ।

वातासि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) परंब । रेंद । (२) शतमूली ।  
(३) सिंहास । निगुंडी । (४) भजवायन । (५) बूहर ।  
सेंहुड़ । (६) वायविकंग । (७) सूखन । जिर्मिकंद । (८)  
मिळावाँ । (९) सतावा । (१०) तिलक वृक्ष । (११) नील  
का पौधा ।

वाताष्टीला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उदर रोग जिसमें नाभि के  
नीचे वायु की गाँठ सी पड़ जाती है, जो हृषर उधर  
रेंगती सी जान पड़ती है । यह कमी कमी मूत्र का अवरोध  
भी करती है ।

वाति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु । (२) सूर्य । (३) चंद्रमा ।

वातिगम-संज्ञा पुं० [ सं० ] भंडा । बैंगन ।

वातीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का छोटा पक्षी ।

वानुल-वि० [ सं० ] (१) वायुप्रधान । (२) वायु के कोप से  
जिसकी बुद्धि ठिकाने न हो ।

संज्ञा पुं० यावला । दग्मल ।

वातोदर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रोग जिसमें हाथ, पैर, नाभि,  
कॉल, पसली, पेट, कमर और पीठ में पीड़ा होती है; सूली  
खोसी आती है; शरीर भारी रहता है; अंगों में प्युंठन होती  
है; भीर मल का अवरोध हो जाता है । पेट में कमी कमी  
गुदगुदाहट भी होती है और पेट फूला रहता है । पेट  
ठोंकने से ऐसा शब्द निकलता है, जैसे हवा भी हुई मराफ  
ठोंकने से ।

वातोर्मी-संज्ञा पुं० [ सं० ] ग्यारह अक्षरों का एक वर्ण वृत्त जिसमें  
भगण, भगण, तगण और अंत में दो गुरु होते हैं । जैसे,—  
भोँ भौँ गो गहिँ धीरा धरो जू । नीकै कीरो सह बुद्धे  
करो जू । पाभोगे अहुँन या रीति मुकै । वातोर्मी सी समुक्ती  
भारमुकुती ।

वातोलंबन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सक्षिपात उग्र ।  
इसमें रोगी को खास, खोसी, भ्रम और मूर्च्छा होती है और  
यह प्रलय करता है । उसकी पसलियों में पीड़ा होती है,  
यह जैभाई अधिक लेता है और उसके मुँह का स्वाद कसैला  
रहता है ।

वातस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक गोत्रधार ऋषि का नाम । (२) एक  
साम का नाम ।

वातसरिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेतिली ।

वातसहय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रेम । स्नेह । (२) यह स्नेह जो  
पिता या माता के हृदय में संतति के प्रति होता है ।  
माता-पिता का प्रेम ।

विद्येय-साहित्य में मिथ मकर वायक वायिका के रति भाव

के वर्णन द्वारा शृंगार रस माना जाता है, उसी प्रकार कुछ लोग माता-पिता के रति भाव के विभाव, अनुभाव और संचारी सहित वर्णन को वास्तव्य रस मानते हैं। पर यह सर्वसम्मत नहीं है। अधिकतर लोग दांपत्य रति के अतिरिक्त और प्रकार के रति भाव को "भाव" ही मानते हैं।

वास्त्य-पंजा पुं० [ सं० ] (१) एक ऋषि का नाम। (२) एक गोत्र जिसमें भोव, प्यवन, भार्गव, क्षामदन्त्य और क्षामवान नामक पाँच प्रवर होते हैं।

वास्त्यायन-पंजा पुं० [ सं० ] (१) एक ऋषि का नाम। (२) न्यायशास्त्र के प्रसिद्ध भाष्यकार। (३) काम सूत्र-प्रणेता एक प्रसिद्ध ऋषि।

वाद्-पंजा पुं० [ सं० ] (१) वह वात-धीत जो किसी स्तव के निर्णय के लिये हो। तर्क। शास्त्रार्थ। दलील।

विशेष—“वाद्” न्याय के सोलह पदार्थों में दसवाँ पदार्थ माना गया है। जब किसी बात के संबंध में एक कहता है कि यह हस प्रकार है और दूसरा कहता है कि नहीं, हस प्रकार है, और दोनों अपने अपने पक्ष की युक्तियों को सामने रखते हुए कथोपकथन में प्रवृत्त होते हैं, तब यह कथोपकथन “वाद्” कहलाता है। यह वाद् शास्त्रीय नियमों के अनुसार होता है; और उसमें दोनों अपने अपने कथन को प्रमाणों द्वारा सुष्ट करते हुए दूसरे के प्रमाणों का खंडन करते हैं। यदि कोई निग्रह स्थान में आ जाता है, तो उसका पक्ष गिरा हुआ माना जाता है और वाद् समाप्त हो जाता है।

(२) किसी पक्ष के तत्त्वों द्वारा निश्चित सिद्धांत। उखल। जैसे,— अद्वैतवाद, आरंभवाद, परिणामवाद। (३) बहस। क्षगदा।

घ.दफ-पंजा पुं० [ सं० ] (१) बाजा बजानेवाला। (२) पक्का। (३) वाद करनेवाला। तर्क या शास्त्रार्थ करनेवाला।

बाद्चंडु-पंजा पुं० [ सं० ] शास्त्रार्थ करने में पटु। वाद् करने में दक्ष।

घाद्दंड-पंजा पुं० [ सं० ] सारंगी आदि बाजों के बजाने की कमान।

घादन-पंजा पुं० [ सं० ] (१) बाजा बजाना। (२) बाजा।

घादप्रतिवाद-पंजा पुं० [ सं० ] शास्त्रीय विषयों में होनेवाला कथोपकथन। बहस।

घादर-पंजा पुं० [ सं० ] (१) कपास के सूत का कपड़ा। (२) कपास का पेड़। (३) बर का पेड़।

घादरंग-पंजा पुं० [ सं० ] आश्वय का वृक्ष।

घादरा-पंजा स्त्री० [ सं० ] कपास।

घाद्रायण-पंजा पुं० [ सं० ] व्यासदेव। वेद्व्यास।

घाद्रायण-पंजा पुं० [ सं० ] (१) व्यास के पुत्र शुक्रदेव। (२) व्यासदेव।

घादरि-पंजा पुं० [ सं० ] वाद्रायण के पिता। इनका मत वेदांत दर्शन में भावः उद्भूत मिलता है।

घादरिफ-पंजा पुं० [ सं० ] बर धीनेवाला।

घादल-पंजा पुं० [ सं० ] मधुपटिका। जेठी मधु। मुकेठी।

घादविवाद-पंजा पुं० [ सं० ] शाब्दिक क्षगदा। बहस।

घादसाधन-पंजा पुं० [ सं० ] (१) अपकार करना। (२) तर्क करना।

घाद-पंजा पुं० [ सं० ] (१) नियत समय या घड़ी।

मुहा०—घादा आना = (१) घड़ी आ पहुँचना। नियत समय का भाग होना। (२) काल माना। शत्रु का समय माना। घादा पूरा होना = जीवन काल समाप्त होना।

(३) इस बात का विश्वास दिखाना कि मैं अमुक काम करूँगा। यथन। प्रतिज्ञा। इफ़रार।

मुहा०—घादा पूरा करना = बचन के अनुसार काम करना। प्रतिज्ञा पूर्ण करना। घादा टालना = जिस समय कोई काम करने का बचन दिया हो, उस समय न करना। प्रतिज्ञा भंग करना। घादाझिझकी करना = बात पूरी न करना। कथन के विश्वास कर्त्तव्य करना। घादा रखना = बचन लेना। प्रतिज्ञा कराना। डं—सौंद करि कहत हैं, पदो प्यारे रघुनाथ। भावति रखाय वारो उनहीं के घर सों।—रघुनाथ।

घादनुवाद्-पंजा पुं० [ सं० ] तर्क वितर्क। शास्त्रार्थ। बहस।

घादाल-पंजा पुं० [ सं० ] सहजदंष्ट्रा नामक मच्छली।

घादि-पंजा पुं० [ सं० ] विद्वान्।

प्रव्यं दे० “बादि”।

घादिक-पंजा पुं० [ सं० ] शाब्दिक।

घादित-वि० [ सं० ] बजाना हुआ। नादित।

घादित्र-पंजा पुं० [ सं० ] वाद्य। बाजा।

घादिराज-पंजा पुं० [ सं० ] मंडुपौष।

घाद्दि-पंजा पुं० [ सं० ] मंडुपौष।

घादी-पंजा पुं० [ सं० ] वाद्य। (१) पक्का। सोलनेवाला। (२) किसी बात का पहले पहल प्रस्ताव करनेवाला, जिसका प्रतिवादी की ओर से खंडन होता है। (३) व्यवहार में किसी के प्रति कोई अभियोग चलावेवाला। मुकदमा खानेवाला। फ़रिवादी। मुद्दह।

घादुलि-पंजा पुं० [ सं० ] विद्यामित्र के एक पुत्र का नाम।

घाद्य-पंजा पुं० [ सं० ] (१) बाजा। (२) बाजा।

घाद्यक-पंजा पुं० [ सं० ] बाजा बजानेवाला।

घाद्यमांड-पंजा पुं० [ सं० ] मुरज भोंदि बाजे।

घाधु-पंजा पुं० [ सं० ] (१) नाथ का झोंटा। (२) नीहा। (नार)

बाधूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्रकार रूपि का नाम । इस गोत्र के लोग बाधौल कहलाते हैं ।

बाधुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] भक्ति ।

बाधुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कट । गोमटी । घटाई । (२) पानी में छानेवाला पायु का सौंका । (३) गति । (४) सुरंग । (५) सौरम । सुगंध । (६) सूजा फल । (७) पाना ।  
संज्ञा पुं० दे० "बाण" ।

बाधुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह लकड़ी जिसमें पाना लपेटकर घुना जाता है ।

बाधुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महुए का पेड़ । मधुल वृक्ष । (२) पडारा । (३) प्राचीन भारतीय भाष्यों के अनुसार मनुष्य जीवन के चार विभागों या भागों में से तीसरा विभाग या भाग ।

विशेष—यह भाग्य गार्हस्थ्य के पीछे और संन्यास के पहले पड़ता है । शास्त्र के अनुसार पचास वर्ष के ऊपर हो जाने पर भी गार्हस्थ्य भाग्य में पित्त हट जाने पर मनुष्य इस भाग्य का अधिकारी होता है । इस भाग्य में प्रवेश करने वाले को नगर, गाँव या बस्ती से अलग बन में रहना, जंगली फल खाना, और वहाँ से रंचमहा यज्ञादि करना चाहिये । शय्या, वाहन, वस्त्र, पत्र आदि सब त्याग देना चाहिये । की को चाहे पुत्र के पास छोड़े, चाहे अपने साथ वन में ले जाय । जब इस भाग्य में रहकर मनुष्य पूर्ण वैराग्य प्राप्त हो जाय, तब उसे संन्यास लेना चाहिये ।

बाधुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बंदर । (२) दोहे का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में १० गुरु और २० लघु होते हैं । यथा—जद चेतनगुण दोषमय, विश्व कीन्द करतार । संत हंस गुण गार्हर्षि परिहारि चारि चिकार ।

बाधुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) केवॉच । कपिकण्ठ । (२) बंदर की मादा ।

बाधुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] काळी वन-मुलसी ।

बाधुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोलह मात्राओं के छंदों या चौपाई का एक भेद जिसमें नवीं और बारहवीं मात्राएँ लघु पढ़ती हैं । जैसे,—“सौम्य छयन नेहि विधि सुख लहहीं” ।

बाधुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह वृक्ष जिसमें पहले फूल लगर पीछे फल लगते हैं । जैसे,—धाम, आम्रानु आदि । (२) बनस्पति का समूह ।

बाधुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पट्टे पत्नी ।

बाधुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वनयुज देव का घोड़ा ।

बाधुली-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैवल्य मुल्लर । कैवलीमोथा । कुट । गोम ।

बाधुली-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बेंत । (२) पाकड़ का पेड़ । पकड़ ।

बाधुली-संज्ञा पुं० [ सं० ] बूँज ।

बाधुली-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोम नाम का वृण जो पानी में होता है । कैवल्य मुल्लर ।

बाधुली-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) योना । धवन । (२) मुँदंग । (३) क्षेत्र । खेत ।

बाधुली-संज्ञा पुं० [ सं० ] धीज योनेवाला ।

बाधुली-संज्ञा पुं० [ सं० ] धीज योना ।

बाधुली-वि० [ का० ] लौटा हुआ । फिरा हुआ ।

मुद्रा—बाधुली आना = किसी स्थान पर जाकर वर्षों से फिर आना । लौट आना । बाधुली करना = (१) किसी भाष्य हुए मनुष्य को फिर वर्षों भोजना, जहाँ से वह भाषा हो । लौटाना । (२) किसी वस्तु को मोल लेकर फिर दुकानदार को दे देना और उससे दाम ले लेना । जैसे,—यह छाता अच्छा नहीं है; बाधुली कर दो । (३) दे० "बाधुली लेना" । (४) किसी से ली हुई वस्तु को उसे फिर दे देना । बाधुली जाना = फिर वर्षों भना, जहाँ से भाषा हो । लौट जाना । बाधुली होना = (१) लौट जाना । (२) किसी मोल ली हुई वस्तु का फिर दुकानदार को उससे दाम लेकर दे दिया जाना । फेरा जाना । जैसे,—जब यह छाता बाधुली नहीं हो सकता । (३) दो हुई वस्तु का फिर मिल जाना या ली हुई वस्तु का फिर दे दिया जाना ।

बाधुली-वि० [ का० ] बाधुली लौटा हुआ या फेरा हुआ । जैसे,—बाधुली हाक ।

बाधुली स्त्री० (१) लौटने की क्रिया या भाव । प्रयावर्त्तन । जैसे,—बाधुली के समय लेते जाना । (२) किसी दो हुई—वस्तु को फिर लेने या ली हुई वस्तु को फिर देने का काम या भाव ।

बाधुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का यदा चौड़ा कूर्त्त या जलदाय । पापी । बाधुली ।

बाधुली-वि० [ सं० ] (१) चोया हुआ । (२) मुँदित । मुँदा हुआ ।

बाधुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटा जलदाय । बाधुली ।

बाधुली-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुट । (२) योगारी धान । (३) बाधुली का पानी ।

बाधुली-वि० [ सं० ] (१) बाधुली । दक्षिण या दाहिने का उलटा । (२) प्रतिवृत्त । विरुद्ध । विपरीत । अहित में तत्पर । व०—विधि धाम की करनी कठिन जेह मातु कीन्ही बाधुली ।—मुलसी । (३) देवा । कुटिल । (४) छोटा । दुष्ट । नीच । (५) जो अच्छा न हो । बुरा ।

बाधुली पुं० (१) कामदेव । (२) एक रुद्र का नाम । कामदेव । (३) वरुण । (४) कुच । स्तन । (५) धन । (६) कर्षीक के एक पुत्र का नाम । (७) कृष्ण के एक पुत्र का नाम । (८) चंद्रमा के रथ के एक घोड़े का नाम । (९) २४ अक्षरों का एक वर्ण वृत्त मितके प्रत्येक चरण में सात अक्षर और



एक यगण होता है। इसे मंत्ररी, मकरंद और माधवी भी कहते हैं। यह एक प्रकार का सवैया ही है। जैसे,—  
लोक यथामति वेद पर्वे सह क्षामग औ दस आठ सयाने ।  
छंदा सी० दे० "वामा" । उ०—नवल त्रिमंग कदम तर  
दायो, मोहत सच प्रथ वाम । ( गीत )

धामक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) भंगमंगी का एक भेद । (२)

यौद मंत्रों के अनुसार एक चक्रवर्ती ।

धामकस्त-छंदा पुं० [ सं० ] एक गोरकार ऋषि का नाम जिनके गोर के लोग धामकशासन कहे जाते थे ।

धामदेव-छंदा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) गौतम गोत्रीय एक वैदिक ऋषि जो ऋग्वेद के चौथे मंडल के अधिकांश सूक्तों के रूढ़ थे। (३) दशरथ के एक मंत्री का नाम ।

धामदेवी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) दुर्गा । (२) सावित्री ।

धामदेव्य-छंदा पुं० [ सं० ] (१) एक साम का नाम । (२) एक ऋषि का नाम । (३) पुराणानुसार दालमलि द्वीप के एक पर्वत का नाम ।

धामन-वि० [ सं० ] (१) घौना । छोटे डील का । (२) ह्रस्व । सर्व ।

छंदा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) शिव । (३) एक दिग्गज का नाम । (४) एक प्रकार का घोड़ा जो डील डील में छोटा होता है । (५) हनु के एक पुत्र का नाम । (६) एक नाग का नाम । (७) गरुड़ वंशी एक पक्षी का नाम । (८) क्रीच द्वीप के एक पर्वत का नाम । (९) विष्णु भगवान का पार्षवर्ष भवतार जो बलि की छलने के लिये अर्द्धित के गर्भ से हुआ था । (१०) अठारह पुराणों में से एक ।

धामनक-छंदा पुं० [ सं० ] क्रीच द्वीप का एक पर्वत ।

धामनद्वादशी-छंदा स्त्री० [ सं० ] एक पर्व तिथि जो भाद्र शुक्ल १२ की पड़ती है। इस दिन मत करके विष्णु भगवान के धामनावतार की पूजा की जाती है ।

धामना-छंदा स्त्री० [ सं० ] एक भस्तरा का नाम ।

धामनिका-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) स्कंद की अनुचरी एक माता या मातृका का नाम । (२) घौनी स्त्री ।

धाम मार्ग-छंदा पुं० [ सं० ] वेद-विहित दक्षिण मार्ग के प्रतिकूल तार्किक मत जिसमें, मय, मांस, ब्यभिचार आदि निषिद्ध बातों का विधान रहता है ।

धामरथ-छंदा पुं० [ सं० ] एक गोरकार ऋषि का नाम जिनके गोरवाले धामरथ कहलाते थे ।

धामरूप-छंदा पुं० [ सं० ] दीमक का भेद । वल्मीक । बर्षी ।

धामलोचना-छंदा स्त्री० [ सं० ] सुंदरी स्त्री ।

धामा-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) स्त्री । (२) दुर्गा । (३) दस अक्षरों के एक श्लोक का नाम जिसके प्रत्येक-चरण में सगण,

यगण और भगण तथा अंत में एक युग होता है। धामा—  
तु यों भगवामा तें सरला । डेढे धनु ते ज्यों तीर चला । ये  
हैं दुख नाना की जननी । ऐसी हम गाथा ते अकनी ।

धामाक्षी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) सुंदर स्त्री । (२) दीर्घ ईश्वर ।

धामाचार-छंदा पुं० [ सं० ] तार्किक मत का एक भेद जिसमें पंच मकार अर्थात् मय, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन द्वारा उपास्य देव की पूजा की जाती है । इस मतवाले धमला-  
वलंबी की धीर, साधक आदि और विरोधी को कंटक कहते हैं ।

धामापीडन-छंदा पुं० [ सं० ] पीलू का पेड़ ।

धामावर्त-वि० [ सं० ] (१) दक्षिणावर्त का उलटा । (वह फेरी) जो किसी वस्तु ( देव-प्रतिमा आदि ) की बाईं ओर से आरंभ की जाय । जैसे,—वामावर्त्त परिक्रमा । (२) ( यह चक्र ) जो बाईं ओर से चला हो । (३) जिसमें बाईं ओर का घुमाव या अँवरी हो । जैसे,—वामावर्त्त दंख ।

विशेष—दंख दो प्रकार के होते हैं—एक वामावर्त्त, दूसरा दक्षिणावर्त्त । दक्षिणावर्त्त दंख अत्यन्त शुभ और दुष्प्राप्य कहा जाता है ।

धामिका-छंदा स्त्री० [ सं० ] चंद्रिका ।

धामिनी-छंदा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का योनि रोग जिसमें गर्भाशय से छ; सात दिन तक रज का स्राव होता रहता है । इसमें कभी पीड़ा होती है, कभी नहीं होती ।

धामी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) श्यामी । गीदड़ी । (२) घोड़ी । (३) गदरी ।

धामीय-छंदा स्त्री० [ सं० ] सुंदर उरवाली स्त्री । सुंदरी स्त्री ।  
धाप्ती-छंदा स्त्री० [ सं० ] एक स्त्री जो गोरकार थी । इसके गोर-  
वाले धाप्तीय कहलाते थे ।

धाम्य-छंदा पुं० [ सं० ] धामदेव ऋषि के छोड़े का नाम ।

धात्र-छंदा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।

धाय-छंदा पुं० [ सं० ] (१) धुनना । (२) साधन ।

धायक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) धुननेवाला । (२) तंदुपाप ।  
शुलाहा ।

धायदंड-छंदा पुं० [ सं० ] शूलाहों की टरकी ।

धायन-छंदा पुं० [ सं० ] यह मिठाई या पकवान जो देव-पूजा या विवाहादि के लिये बनाया जाय ।

विशेष—दे० "धायन" ।

धायनरज्जु-छंदा पुं० [ सं० ] शूलाहों के कपड़े की री ।

धायव्य-वि० [ सं० ] (१) वायु संबंधी । (२) वायुघटित । वायु से बना हुआ । (३) जिसका देवता वायु हों ।

छंदा पुं० (१) यह कौण या दिशा जिसका अधिपति वायु है । उत्तर पच्छिम का कोण । पश्चिमोत्तर दिशा । (२) वायु पुराण । (३) एक अक्ष का नाम ।

वायस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अयुर। अग्न का वेद। (२) कौशा।

वायसतंतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हनु के दोनों जोड़। (२) काकतुंडी। कौआदोंदी।

वायसांतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] उल्क। उल्क।

वायसाहिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) महाज्योतिष्मती लता। (२) कौआदोंदी।

वायसी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छोटी मकोय जिसमें गुच्छों में गोल मिर्च के समान लाल फल लगते हैं। काकमावी। (२) महाज्योतिष्मती। (३) काकतुंडी। कौआदोंदी। (४) सर्पदंष्ट्रुचो। (५) काकजंघा। कासी। (६) महाकर्ज। यदा कजा।

वायसेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] कौस नाम का वृण।

वायसोत्सिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काकोली। मालकंगनी। (२) महाज्योतिष्मती लता।

वायु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हवा। वात।

विशेष—वैशेषिक दर्शन वायु को दूरघों में मानता है और उसे स्पर्शरहित, स्पर्शवान् तथा नित्य कहता है। न्याय दर्शन में वायु पंचभूतों में है और इसका गुण स्पर्श कहा गया है। वायु से ही स्पर्शद्रव्य की उत्पत्ति मानी गई है। वैशेषिक दर्शन स्पर्श के अतिरिक्त संख्या, परिमाण, स्थचक्र, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेग भी वायु के गुण मानता है। सांख्य में वायु की उत्पत्ति स्पर्श तन्मात्रा से मानी गई है। उपनिषदों के अनुसार वेदांत भी वायु की उत्पत्ति आकाश से मानते हैं।

वायुकोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] पश्चिमोत्तर दिशा।

वायुमुहम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वातचक्र। यगोला। बवंडर। (२) पेट का एक रोग जिसमें उसके अंदर वायु का एक गोला सा बँध जाता है, जो घटता बढ़ता और सारे पेट में फिरता रहता है। कभी कभी यह बीधा भी उत्पन्न करता है। वायगोला।

विशेष—इसमें प्रायः मूत्र मूत्र का अवरोध भी हो जाता है और मूत्र सूखा रहता है। हृदय, यकल और पसली में कभी कभी यथा दर्द होता है। खाड़ी पेट में इसका और अधिक रहता है और भरे पेट में कम। कड़वे, कसैले पदार्थों के खाने से यह रोग बढ़ता है।

वायुदाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेघ। बादल।

वायुपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हनुमान। (२) भीम।

वायुफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] हंघेचतुप।

वायुमदय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्प। सर्प।

वायुमंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] आकाश, जिसमें वायु प्रवाहित होती है।

वायुमरुह्लिपि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ललितविस्तर के अनुसार एक लिपि का नाम।

वायुरोष-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रात।

वायुलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुराणानुसार एक लोक का नाम। (२) आकाश।

वायुसाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] धूम्र। धूम्र।

वायुसख-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि।

वायुहन्-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ऋषि का नाम जो संकण ऋषि के पुत्र थे। क्या है कि संकण ऋषि एक बार सरस्वती में स्नान कर रहे थे। वहाँ उनको एक मत्त खी स्नान करती हुई दिखाई दी। उसे देखकर उनका वीर्य स्थलित हो गया। उसे उन्होंने एक घड़े में रखा, वह सात भागों में विभक्त हो गया और उनसे वायुवेग, वायुबल, वायुहन्, वायुमंडल, वायुमाल, वायु-रेता और वायुचक्र नामक सात पुत्र उत्पन्न हुए।

वारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पक्षी।

वारंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तलवार की मूट। (२) अँकड़े के आकार का एक अन्न जिससे चिकित्सक अस्थिविणष्ट शक्य निकालते थे। (सुभ्रुत)

वारंट-संज्ञा पुं० [ सं० ] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को वह काम करने का अधिकार प्राप्त हो जाय, जिसे वह अन्याय करने में अक्षम हो। यह कई प्रकार का होता है, जैसे,—वारंट गिरफ्तारी, वारंट तलाशी, वारंट रिहाई, इत्यादि।

वारंट गिरफ्तारी-संज्ञा पुं० [ सं० वारंट + फा० गिरफ्तारी ] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को यह अधिकार दिया जाय कि वह किसी पुरुष को पकड़कर अदालत में हजर करे।

वारंट तलाशी-संज्ञा पुं० [ सं० वारंट + फा० तलाशी ] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को यह अधिकार दिया जाय कि वह किसी स्थान में जाकर वहाँ की तलाशी ले।

वारंट रिहाई-संज्ञा पुं० [ सं० वारंट + फा० रिहाई ] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी सरकारी कर्मचारी को यह आज्ञा और अधिकार मिले कि वह किसी पुरुष को, जो जेल, हवालात या गिरफ्तारी में हो, छोड़ दे; या किसी माल या जायदाद को, जो हूकूम हो या किसी की सपुर्दागी में हो, मालिक को लौटा दे।

वारंवार-अन्व० दे० 'वारंवार'।

वार-संज्ञा पुं० [ सं० ] जल। पानी।

वार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) द्वार। दरवाजा। (२) अवरोध।

रोक। रुकावट। (३) बर्कनेवाली पशु। आपाण। (४)

एक यगण होता है। इसे संजरी, मकरंद और माघवी भी कहते हैं। यह एक प्रकार का सबैया ही है। जैसे,—शु लोक यथामति वेद पढ़ें सह भागम भी दस भाट सपाने। संता सी० दे० “वामा”। उ०—नवल त्रिभंग कदम तर दादो, मोहत सब मज वाम। (गीत)

धामक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अंगभंगी का एक भेद। (२)

बौद्ध ग्रंथों के अनुसार एक चक्रवर्ती।

धामकक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोश्रकार ऋषि का नाम जिनके गोश्र के लोग वामकक्षायन कहे जाते थे।

धामदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव। महादेव। (२) गौतम गोत्रीय एक वैदिक ऋषि जो ऋग्वेद के चौथे मंडल के अधिकांश सूक्तों के दृष्टा थे। (३) दशरथ के एक मंत्री का नाम।

धामदेवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुर्गा। (२) सावित्री।

धामदेव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक साम का नाम। (२) एक ऋषि का नाम। (३) पुराणानुसार शालमलि द्वीप के एक पर्वत का नाम।

धामन-वि० [ सं० ] (१) बीना। छोटे बील का। (२) ह्रस्व। सर्व।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) एक हिमालय का नाम। (४) एक प्रकार का घोड़ा जो झील झील में छोटा होता है। (५) हनु के एक पुत्र का नाम। (६) एक नाग का नाम। (७) गहड़ वंशी एक पक्षी का नाम। (८) गौच द्वीप के एक पर्वत का नाम। (९) विष्णु भगवान का पंचवर्षी अवतार जो बलि को उठाने के लिये अदिति के गर्भ से हुआ था। (१०) अठारह पुराणों में से एक।

धामनक-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्रीच द्वीप का एक पर्वत।

धामनहादशी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक पर्व तिथि जो भाद्र शुक्ल १२ को पड़ती है। इस दिन मृत करके विष्णु भगवान के वामनावतार की पूजा की जाती है।

धामना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अस्परा का नाम।

धामनिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्कंद की अनुचरी एक माता या मातृका का नाम। (२) बौनी स्त्री।

धाम मार्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेद-विहित दक्षिण मार्ग के प्रतिकूल तांत्रिक मत जिसमें, मद्य, मांस, व्यभिचार आदि निषिद्ध बातों का विधान रहता है।

धामरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोश्रकार ऋषि का नाम जिनके गोश्रवाले वामरथ्य कहलाते थे।

धामलूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] दीमक का भेद। वक्कीक। पाँधी।

धामलोचना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुंदरी स्त्री।

धामा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्त्री। (२) दुर्गा। (३) दस अक्षरों के एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तगण,

यगण और अगण तथा अंत में एक गुरु होता है। पद्य—  
यू यौ भगवामा तें सरला। डेढे धनु ते ज्यों तीर लखा। ये  
हैं दुख नाना की जननी। ऐसी हम गाथा से अकनी।

धामाक्षी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुंदर स्त्री। (२) दीर्घ ई-कार।

धामाचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] तांत्रिक मत का एक भेद जिसमें पंच मकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, सुदा और मैथुन द्वारा उपास्य देव की पूजा की जाती है। इस मतवाले स्वमत-पक्षी को वीर, साधक आदि और विरोधी को कंडक कहते हैं।

धामापीडन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पील का पेड़।

धामावर्त-वि० [ सं० ] (१) दक्षिणावर्त का उलटा। (यह फेरी) जो किराी वस्तु (देव-प्रतिमा आदि) की बाईं ओर से आरंभ की जाय। जैसे,—वामावर्त परिक्रमा। (२) (यह चक्र) जो बाईं ओर से चला हो। (३) जिसमें बाईं ओर का घुमाव या भ्रंवी हो। जैसे,—वामावर्त चंख।

विशेष—दांख दो प्रकार के होते हैं—एक वामावर्त, दूसरा दक्षिणावर्त। दक्षिणावर्त दांख अत्यन्त शुभ और दुष्प्राप्य कहा जाता है।

धामिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंद्रिका।

धामिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का यौनि रोग जिसमें गर्भाशय से ८५ सात दिन तक रज का प्रवाह होता रहता है। इसमें कभी पीड़ा होती है, कभी नहीं होती।

धामी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्याली। गीदरी। (२) मोड़ी। (३) गद्दी।

धामीर-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुंदर उरुवाली स्त्री। सुंदरी स्त्री।

धाम्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक स्त्री जो गोश्रकार थी। इसके गोश्रवाले पासेव कहलाते थे।

धाम्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] धामदेव ऋषि के छोड़े का नाम।

धाम्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम।

धाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धुनना। (२) साधन।

धायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धुननेवाला। (२) संतुषाप।  
सुभांदा।

धायदंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुलहाँ की डरकी।

धायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मिठाई या पकवान जो देव-पूजा या विवाहादि के लिये बनाया जाय।

विशेष—दे० “धायन”।

धायनरज्जु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुलहाँ के करघे की री।

धायप्य-वि० [ सं० ] (१) वायु संबंधी। (२) वायुपटित। वायु से बना हुआ। (३) जिसका देवता वायु हों।

संज्ञा पुं० (१) वह कोण या दिशा जिसका भविष्यति वायु है। उत्तर पच्छिम का कोना। पश्चिमोत्तर दिशा। (२) वायु पुराण। (३) एक भूत का नाम।

वायस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अणुद। अणु का पद। (२)

कौआ।

वायससंतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हनु के दोनों जोड़। (२) काकतुंडी।

कौआटोरी।

वायसांतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] उल्लू। उल्लू।

वायसाहिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) महाज्योतिष्मती कला। (२)

कौआटोरी।

वायसी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छोटी मकोय जिसमें गुच्छों में

गोल मिच के समान लाल फल लगते हैं। काकमाची।

(२) महाज्योतिष्मती। (३) काकतुंडी। कौआटोरी। (४)

सफेद घुँघुची। (५) काकजंघा। मासी। (६) महाकरंज।

बदा कंजा।

वायसेनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] कौस नाम का वृण।

वायसोलिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काकोली। मालकंगनी।

(२) महाज्योतिष्मती कला।

वायु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हवा। वात।

विशेष—वैशेषिक दर्शन वायु को दूर्यों में मानता है और उसे

स्वरहित, स्वभावानु तथा नियत कहता है। न्याय दर्शन में

वायु पंचभूतों में है और इसका गुण स्वरास कहना गया है।

वायु से ही स्वर्णोद्विग की उत्पत्ति मानी गई है। वैशेषिक

दर्शन स्वरास के अतिरिक्त संख्य, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग,

विभाग, परत्व, अपरत्व और वेग भी वायु के गुण मानता

है। सांख्य में वायु की उत्पत्ति स्वरास तन्मात्रा से मानी गई

है। उपनिषदों के अनुसार वेदान्त भी वायु की उत्पत्ति

आकाश से मानते हैं।

वायुकोण-संज्ञा पुं० [ सं० ] पश्चिमोत्तर दिशा।

वायुगुलम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घातचक्र। यगोला। घबंडर।

(२) पेट का एक रोग जिसमें उसके अंदर वायु का एक

गोला सा बँध जाता है, जो घटता बढ़ता और सारे पेट में

फिरता रहता है। कभी कभी यह पीड़ा भी उत्पन्न करता

है। बायगोला।

विशेष—इसमें प्रायः मूत्र मूत्र का अवरोध भी हो जाता है।

और मला सूखा रहता है। हृदय, यगल और पसली में

कमी कमी बढ़ाई होती है। खाली पेट में इसका जोर

अधिक रहता है और भरे पेट में कम। कड़वे, कसैले पदार्थों

के खाने से यह रोग बढ़ता है।

वायुदाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेघ। बादल।

वायुपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हनुमान। (२) भीम।

वायुफन-संज्ञा पुं० [ सं० ] हँधधनुष।

वायुभवय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्प। सर्प।

वायुमंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] आकाश, जिसमें वायु प्रवाहित

होती है।

वायुमण्डलिपि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ललितविस्तार के अनुसार एक

लिपि का नाम।

वायुरोपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रात।

वायुलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुराणानुसार एक लोक का

नाम। (२) आकाश।

वायुवाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] ध्वज। ध्वज।

वायुसल-संज्ञा पुं० [ सं० ] अति।

वायुहनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ऋषि का नाम जो मंथन क्षपि के

पुत्र थे। कथा है कि मंथन क्षपि एक बार सरस्वती में

जान कर रहे थे। वहाँ उनको एक नम स्त्री खान करती हुई

दिखाई दी। उसे देखकर उनका धीर्य स्थलित हो गया।

उसे उन्होंने एक घड़े में रखा, वह सात भागों में विभक्त हो

गया और उनसे वायुदेव, वायुबल, वायुहनु, वायुमंडल,

वायुनाल, वायुनेता और वायुवाक नामक सात पुत्र

उत्पन्न हुए।

वारंक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पत्नी।

वारंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तलवार की मूठ। (२) अंकुड़े के

आकार का एक अन्न जिससे चिकरिसक अस्थिविनाश शक्य

निकालते थे। (सुधुत)

वारंट-संज्ञा पुं० [ सं० ] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनु-

सार किसी कर्मचारी को वह काम करने का अधिकार प्राप्त

हो जाय, जिसे वह अन्याय करने में अक्षमर्ष हो। यह कई

प्रकार का होता है, जैसे,—वारंट गिरफ्तारी, वारंट तलाशी,

वारंट रिहाई, इत्यादि।

वारंट गिरफ्तारी-संज्ञा पुं० [ सं० वारंट + फा० गिरफ्तारी ] अदालत

का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को यह

अधिकार दिया जाय कि वह किसी पुरान को पकड़कर

अदालत में हजरत करे।

वारंट तलाशी-संज्ञा पुं० [ सं० वारंट + फा० तलाशी ] अदालत का

वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को यह

अधिकार दिया जाय कि वह किसी स्थान में जाकर वहाँ

की तलाशी ले।

वारंट रिहाई-संज्ञा पुं० [ सं० वारंट + फा० रिहाई ] अदालत का

वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी सरकारी कर्मचारी को

यह आज्ञा और अधिकार मिले कि वह किसी जुदय को, जो

जेल, इत्यादालत या गिरफ्तारी में हो, छोड़ दे; या किसी माल

या जायदाद को, जो कुर्क हो या किसी की सपुर्दगी में हो,

मालिक को लौटा दे।

वारंवार-अन्व० दे० 'वारंवार'।

वार-संज्ञा पुं० [ सं० ] जल। पानी।

वार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) द्वार। दरवाजा। (२) अपरोध।

रोक। फकावट। (३) ढँकनेवाली वस्तु। आवरण। (४)

कोई नियत काल। अवसर। दूका। मरतयः। जैसे,—  
घारंवार। (५) क्षण। (६) सप्ताह का दिन। जैसे,—  
भाज कौन घार है ? (७) कुज वृक्ष। (८) पानपात्र। मघ  
का प्याला। (९) धाण। तोर। (१०) नदी वा समुद्र का  
किनारा। (११) शिव का एक नाम। (१२) दौंव। घारी।  
जैसे,—अरना अरना घार है।

मुहा०—घार मिठना = कुत्सन मिठना।

छंछा पुं० [ सं० घार = शेष, धारी ] चोट। आघात। आक्रमण।  
हमछा।

क्रि० प्र०—अरना।—होना।

मुहा०—घार खाली जाना = (१) प्रहार का ठीक स्थान पर न  
पड़ना। चलाया हुआ आप न लगना। (२) युक्ति मफल न होना।  
चलो दूर चाल या तरबैर का कुछ गतीमान न होना।

घारक छंछा पुं० [ सं० ] (१) निषेध करनेवाला। प्रतिबंधक।  
(२) बोधे वा कद्रम। (३) घोदा। (४) वह स्थान जहाँ  
पीड़ा हो। कष्ट-स्थान। (५) याधा का स्थान। (६) एक  
सुगंधित वृक्ष।

घारकन्या—छंछा स्त्री० [ सं० ] वेदया। रंडी।

घारकी—छंछा पुं० [ सं० ] (१) प्रतिवादी। दायु। (२) समुद्र।  
(३) पत्ते खाकर रहनेवाला तपस्वी। पर्णारी यती।

घारकौर—छंछा पुं० [ सं० ] (१) साला। (२) द्वारपाल। (३)  
वाङ्मणि। (४) जूँ। (५) कंधी। (६) लड़ाई का घोदा।  
धिप्राय।

घारण—छंछा पुं० [ सं० ] (१) किसी बात को न करने का संकेत  
या आज्ञा। निषेध। मनाही।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) रोक। रुकावट। याधा। (३) कवच। बकतर। (४)  
हाथी। (५) अंडुस। (६) दरताल। (७) काळा सीसम।  
(८) परिमद्र। (९) सफेद कौरैया का कूल। (१०) छप्य  
छंद का एक भेद जिसमें ४१ गुरु, ७० छपु, कुछ १११ वर्ण  
या १५२ मात्राएँ होती हैं; अथवा ४१ गुरु, ६६ छपु, कुछ  
१०७ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं।

घारणकण—छंछा स्त्री० [ सं० ] गजपिप्पली।

घारणकुच्छु—छंछा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कृच्छ्र व्रत जिसमें  
एक महीने तक पानी में जी का सत्त धोलकर पीना पड़ना है।

घारणवृष—छंछा स्त्री० [ सं० ] कदली। केला।

घारणोद्यत—छंछा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक जनपद  
या नगर जो गंगा के किनारे था।

विशेष—यहाँ पर दुर्गोपन ने पाँहों को जलाने के लिये  
छाद्रागुप्त बनवाया था। कुछ लोग इसे करनाल के आस-  
पास मानते हैं और कुछ लोग इलाहाबाद जिले के हँडिया  
नामक स्थान के पास।

घारण्य—छिं० [ सं० ] निषेध बोधय। प्रतिषेध।

घारतिय—छंछा स्त्री० [ सं० घारकी ] वेदया। उ०—ताके रहीं  
घारतिय दोई। रूपयती रंभा छवि छोई।—धुराज।

घारदक्ष—छंछा पुं० [ सं० कादि ] वादल। उ०—सोहति घोती  
सेत में कनक वरन तन। सारद-घारदे बीजुती-भा रर  
कीजत काल।—विहारी।

घारदात—छंछा स्त्री० [ सं० ] (१) कोई भीषण या दोषधीय काँच।  
दुर्घटना। (२) मारपीट। मारकाट। वंगा फसाद।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) घटना संबंधी समाचार। हाल। (क०)

घारधान—छंछा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक जनपद का नाम।  
इसे घाटधान भी कहते हैं।

घारनल—छंछा स्त्री० [ हिं० घाना ] निडावर। बलि। उ०—नित  
हित सौं बालत रई रूप भूप नैदकाल। छवि पनिपारन में  
मनी दग पर घारन हाल।—रसनिधि।

छंछा पुं० [ सं० बंदन ] बंदनवार। बंदनमाला। उ०—घर  
पर धुमा पतझा बानी। तोरन वारन वासर ठानी।—सूर।

घारना—छिं० उ० [ हिं० उधाना ] निडावर करना। उत्सर्ग  
करना। उ०—(क) चिते रही मुख ईंदु मनोहर या छवि  
पर घारति तन को। कछि बादिनी भेष नरवर को घीष मिळी  
मुरलीघर को।—सूर। (ख) कौलिला की कोपि पर तोपि  
तन वारिए री राम दसरथ की बलाय लीमै आलि री।—  
तुलसी। (ग) तो पर घारौं उरवक्षी सुन राधिका सुजान।  
वृ मोहन के उर यती है उरवक्षी समान।—विहारी।

छंछा पुं० निडावर। उत्सर्ग। उ०—भति कोमल क-  
चरन-सरोरद, अथर दसन नासा सोई री। लटकन सीस  
कंड मणि भ्राजत ..... कोटि वारने है।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—घारने जाना = निशान होना। बलि जाना। उ०—बाल  
विभूषण, वसन मनोहर अंगनि विरिचि यमैहौं। सोभा  
निरलि निडावरि करि उर छाह वारने जैहौं।—तुलसी।

घात्तारी—छंछा स्त्री० [ सं० ] वेधया।

घारपार—छंछा पुं० [ सं० कवर + पार ] (१) (नदी भादि का)  
बह किनारा और बह किनारा। पूरा विस्तार। जैसे,—नदी  
हतनी यदी है कि घारपार नहीं सूखता। (२) बह छोर और  
बह छोर। अंत। उ०—घार पार नहिं मूसहि छाखन उमरा  
मीर।—जायसी।

अर्थ (१) इस किनारे से उस किनारे तक। जैसे,—घार  
पार जाने में एक घंटा लगेगा।

मुहा०—घार पार करना = पूरा विस्तार से करना। घार पार  
होना = पूरा विस्तार से होना।

(२) एक पारब से दूसरे पारब तक। एक बाग से दूसरी

बागल तक। पूरी बीदाई या मोटाई तक। जैसे,—बट्टी वारावारा हो गई।

मुहा.—वार वार करना = रस भोर से वस भोर तक पैसाना।  
पूरी मोटाई देकर दूसरी भोर निकालना।

वारफेर-संज्ञा स्त्री० [ हि० वार + फेर ] (१) निछावर। बलि।  
(२) यह रनया पैसा जो दुल्हा या दुल्हिन के सिर पर से घुमाकर दोनोंनों आदि को दिया जाता है। उ०—घोली कर जोरि मेरो जोर न चलत कछु चाहो सोई होहु यह वारि फेरि वारिये।—प्रियादास।

वारमुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेदवा। उ०—कई तुम कौन वारमुखी नहीं भोग संग भदवा सुगई मौन सुनि परी बेरी है।—प्रियादास।

वारला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हंसी। (२) केला।

वारलीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्वक्ना वृण। वनकस।

वारवधू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेदवा। रंडी।

वारवाणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वंशी बजानेवाला। (२) उत्तम गावक। (३) धर्मोपदेश। न्यायाधीश। जज। (४) ज्योतिषी।  
वारवाणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेदवा।

वारवासि, वारवास्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक जनपद का नाम जो भारत की पश्चिमी सीमा के आगे था।

वारखो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यात्रा में बैठनेवाली स्त्री। वेदवा। रंडी।

वारंगणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेदवा। रंडी।

वारंगिनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र। उ०—जयति वैराग्य-विज्ञान-वारंगिनि, नमत नमंद पाप-ताप-दुर्गा।—तुलसी।

वार-संज्ञा पुं० [ सं० वार्य = रथा, द्वाय ] (१) लक्ष्मी की बचत। किराया। (२) काम। क्रायदा।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—बैठना।

संज्ञा पुं० [ हि० वार = घट किताब ] इषर का किनारा। वार।  
यो०—वारा न्यारा।

वि० किरायात। सस्ता।

वि० [ हि० वारंग ] [ स्त्री० वारी ] जो निछावर हुआ हो। जिसने किसी पर अपने को उत्सर्ग किया हो।

मुहा.—वारा होना = निछावर होना। कुरबान होना। (वार का भाव) उ०—हो वारी तेरे हृदयद्वय पर भलि छवि अल-सानि रोई।—सूर। वारा जाना = दे० “वारा होना”।  
उ०—बनवारी वारी गई बनवारी वै आन।—रघुनिधि।

वारालुसी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काशी नगरी का प्राचीन नाम।

विशेष—कुछ लोग यह नाम बरुणा और असी नदियों के कारण मानते हैं। पर इस प्रकार यह प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं होता।  
लोग इसकी ठीक व्युत्पत्ति ‘वार’ + ‘अनसू’ (जल) भाव।

“यद्यत्र जलवाणी पुरी” यतलते हैं। “उत्तम रथोवाणी पुरी” भी कुछ विद्वान् अर्थ करते हैं।

वाराः न्यारा-संज्ञा पुं० [ हि० वार + न्यार ] (१) इस पक्ष या उस पक्ष में निर्णय। किसी और विषय। फंसला। (२) संसत या संगड़े का निचोरा। चले आते हुए मामले का ग्यातमा। जैसे,—उस मामले का अभी तक कुछ वारा न्यारा नहीं हुआ।

वारालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा।

वारवस्कंदी-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि।

वाराह संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० वागदो ] (१) दे० “वारा”। (२) काशी मैत्री का वृक्ष। (३) पानी के किनारे होनेवाला बेंत। अंबुवेतसू।

वाराहपत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अश्वगंधा। अश्वगंध।

वाराहांगी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वृंती का पेड़।

वाराही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) ब्रह्मगो आदि आठ मारुकाओं में से एक मारुका का नाम। (२) एक योगिनी का नाम। (३) वाराही कंद। (४) कैमरी। (५) द्रव्यात पक्षी। (६) सखेद भूकृष्णांड। बिलाई कंद। विदारी कंद।

वाराहीकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का महाकंद जो गेंदी कहलाता है। कहते हैं कि यह अनुप देश में होता है। इसके कंद के ऊपर सूख के बालों के समान रोपे होते हैं। इसका नाकार प्रायः गुद्द की भेली के समान होता है और इसके पत्ते कैंटीले, घड़े घड़े तथा अनीदार होते हैं। पैयक में यह चरपरा, कड़वा, यलकारक, पिचजनक, रसायन, शुक्रजनक, वीर्यवर्धक, भस्मिदीपक, मधुर, गरम, स्वर को शुद्ध करनेवाला, आयुष्वर्धक तथा कौद, प्रमेह, त्रिदोष, कृक, यात, कृमि और मूत्रकृच्छ्र का नासक माना है।

पठ्या०—वाराही। चर्मकारालुच। विष्वक्सेगमिया। शृष्टि। यदरा। कच्छा। वनमाछिनी। शृष्टि। विष्वमूला। शूकरी। क्रोडकन्या। कीमारी। त्रिनेत्रा। ब्रह्मपुत्री। कोद्री। कन्या। माघपेठा। शूकरकंद। वनवासी। कुटगानाम। वक्ष्य। अमृत। महावीर्य्यं। शंभरकंद। वाराहकंद। वीर। माद्रीकंद। महोपध। सुकंदक। वृष्टिद। भवाधिहा। नागपरी।

वारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल। पानी। (२) तरल पदार्थ। (३) हीवेर। (४) सुगंधवाला।

संज्ञा स्त्री० (१) वाणी। सरस्वती। (२) हाथी के बंधने की पंजीर आदि। (३) हाथी के बंधने का स्थान। (४) छोटा कलसा या गगरा।

वारिकफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र।

वारिकुष्ठ, वारिकुष्ठक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिपादा।

वारिकोल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कच्छर। कलुभा।

शारिचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पानी में रहनेवाले जंतु । (२) मत्स्य । मछली । (३) शंख ।  
 शारिज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमल । (२) द्रोणीलवण । (३) मछली । (४) शंख । (५) घोंघा । (६) कौड़ी । (७) उत्तम सुवर्ण । सदा सोना ।  
 शारिजात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमल । (२) शंख । (३) दे० "शारिज" ।  
 शारित-वि० [ सं० ] जो रोका गया हो । जो मना किया गया हो । निवारित ।  
 शारितर-संज्ञा पुं० [ सं० ] उशीर । खस ।  
 शारिद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेघ । बादल । (२) भद्रमुस्तक । नागरमोथा ।  
 शारिधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेघ । बादल । (२) भद्रमुस्तक । नागरमोथा ।  
 शारिधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र ।  
 शारिनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वरुण । (२) समुद्र । (३) बादल । मेघ ।  
 शारिनिधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र ।  
 शारिपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जलकुंभी । (२) पानी की काई ।  
 शारिपूर्वी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जलकुंभी ।  
 शारिबुध-संज्ञा पुं० [ सं० ] बादल । मेघ ।  
 शारियंत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्ञौआरा । जलयंत्र ।  
 शारियाँ-संज्ञा स्त्री० [ हि० शरी ] निछावर । बलि ।  
 क्रि० प्र०—जाना ।  
 मुहा०—शारियाँ जाई = तुम पर निछावर हूँ । ( शियों का धार का भाव जो वे बात चीत में लाया करते हैं । )  
 शारिकह-संज्ञा पुं० [ सं० ] कमल ।  
 शारिलोमा-संज्ञा पुं० [ सं० शारिलोमन् ] वरुण ।  
 शारिचंद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद ।  
 विशेष—यह कृचविहार के उत्तर में पताया जाता है ।  
 शारिचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] करौंदा ।  
 शारिचरतं ह-संज्ञा पुं० [ सं० शारि + शारचतं ] एक मेघ का नाम ।  
 उ०—सुमत्त मेघवर्तकं सज्जि सैन है आए । जलवर्त, शारिचरतं, पवनवर्त, धरतवर्त, आगिवर्तक जलद संग काए ।  
 —सूर ।  
 शारिवाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] मद्य पनानेवाला । कलवार । कलार ।  
 शारिवाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेघ । (२) मुस्तक । मोथा ।  
 शारिश-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 शारिशार-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित उद्योतिष का एक ग्रंथ जो गर्ग मुनि का रचा हुआ कहा जाता है । इससे यह निकाला जाता है कि सन्यस में कैसी बृष्टि होगी, और कब कब होगी ।

शारिस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दायाद । दायभागी पुरुष । (२) वह पुरुष जो किसी के मरने के पीछे उसकी संपत्ति आदि का स्वामी और उसके ऋण आदि का देगदार हो । उचराधिकारी ।  
 शारिसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] भागवत पुराण के अनुसार चंद्रगुप्त के एक पुत्र का नाम ।  
 शारिंद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र ।  
 शारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हाथी के बाँधने की जंजीर या बँडुआ । गजबंधन । (२) कलसी । छोटा गगर ।  
 वि० दे० "शारा" ।  
 शारीट-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथी ।  
 शारी फेरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० शाना + फेरना ] किसी प्रिय व्यक्ति के उपर कुछ द्रव्य, या और कोई वस्तु मुमाकर इसलिये छोड़ना या उत्सर्ग करना, जिसमें उसकी सभ्य बाधाएँ बुर हो जायँ । निछावर । ( शियों का एक उद्योग ) उ०—  
 अजन पर जननी शारी फेरी बारी । क्यों तोन्यो कोमल कर-कमलन संभु-सारासन भारी ?—तुलसी ।  
 क्रि० प्र०—शालना ।  
 शारीश-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र ।  
 शारुट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्पों का राजा । (२) नाव में से पानी निकालने का यंत्रण । तसला । (३) कान की सैल । खूँट । (४) भाल का कीचड़ ।  
 शारु-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजय हस्ति, जिस पर विजयपताका चलती है ।  
 शारुट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अंततव्या । मरण खाट । (२) वह टिकटी जिस पर मुरदे को छोटाकर ले जाते हैं । शरथी ।  
 शारुण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल । (२) शतभिषा नक्षत्र । (३) भारतवर्ष के एक खंड का नाम । इसे आज कल 'भारत' कहते हैं । (४) एक अष्टक का नाम । (५) हरताल । (६) एक उपपुराण का नाम । (७) वरुण या धरुना नाम का पेड़ ।  
 शारुण्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक जनपद का नाम ।  
 शारुण्यकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] कूर्मों, पोखरा, धाबडी आदि जल-शाय भगवानों का काम ।  
 शारुण्यि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्रह्य मुनि । (२) बसिष्ठ । (३) भृगु । (४) विनता के एक पुत्र का नाम । (५) एक जनपद का नाम । (६) दूँतैला हाथी । (७) शारुण्य वृक्ष । धरुना का पेड़ ।  
 शारुणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मदिरा । शराव ।  
 विशेष—कई प्रकार की मदिरा का नाम शारुणी है । जैसे—  
 पुननवा ( गहहपरना ) को पीसकर बनाई हुई, ताड़ या

खरूर के रस से बनी हुई, छाती धान के चावल और हृदय पीसकर बनाई हुई।

(२) धरुण की स्त्री। धरुणाती। (३) उपनिषद् विद्या जिसका उपदेश धरुण ने किया था। (४) पश्चिम दिशा। (५) शतभिषा नक्षत्र। (६) एक नदी का नाम। (७) युद्धोर्ध्वला। (८) गौडर द्वय। (९) घोड़े की एक चाल। (१०) हृन्नुवास्नी लता। हृद्दारुन की बेल। (११) हृद्यनी। (१२) एक पर्व जो उस समय माना जाता है, जब धैर्य महीने की कृष्ण त्रयोदशी को शतभिषा नक्षत्र पड़ता है। इस दिन लोग गंगा स्नान, दान आदि करते हैं। (१३) हृदायन के एक कर्दम का रस जो धरुण की कृपा से धरुणम की के लिये निकला था। (१४) कर्दम के पके हुए फलों से बनाया हुआ मद्य।

धारुह—संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि। आग।

धारुह—संज्ञा पुं० [ सं० ] गौड़ देश के एक प्राचीन जनपद का नाम जो आज कल के राजगाढ़ी जिले में था।

धारुजंभ—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक साम का नाम। (२) बृह-जंभ ऋषि का गोपत्र।

धारुज्यार्य—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक यज्ञ कर्म।

धारुव—वि० [ सं० ] वृक्ष सर्वथी या वृक्ष का बना हुआ।

धारा पुं० वृक्ष की छाल का बना हुआ वस्त्र।

धार्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रचेतागण की स्त्री मारिया का नाम।

विशेष—इसका जन्म कुंड मुनि और प्रमोचा अक्षरता से हुआ था। कुंड मुनि गोमती के तट पर तप कर रहे थे। उनके तपोभ्रष्ट करने के लिये इंद्र ने प्रमोचा को भेजा था। यह मुनि के आश्रम में बहुत काल तक रही। जब मुनि को उसके छल का ज्ञान हुआ, तब वे अपने को पिंकारने लगे। प्रमोचा क्षार के मय से भागी। उसके शरीर से पत्थीना निकला, जो एक वृक्ष के ऊपर पड़ा। उसी से मारिया उत्पन्न हुई। मारिया को राजा ने प्रचेतागण को प्रदान किया, जिससे दक्ष प्रजापति का जन्म हुआ।

धार्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] दंस।

धार्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रक्षा। दिकान्त। (२) किसी विविध कार्य के लिये घेरकर बनाया हुआ स्थान। (३) नगर में उनके महलों आदि का समूह, जो किसी विविध कार्य के लिये अलग नियत किया गया हो। (४) अस्पताल या जेल आदि के अंदर के अलग अलग विभाग।

धार्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो रक्षा करता हो। रक्षक। (२) जेल आदि के अंदर का पहरेदार।

धार्यक—संज्ञा पुं० [ सं० ] लेखक।

धार्यक—संज्ञा पुं० [ सं० ] लेखक।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आरोग्य। निरामय। (२) किसी वृत्ति या व्यवसाय में लगा हुआ। काम-काजी।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] घटेर पक्षी।

धातं—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जनश्रुति। अफ़वाह। (२) संवाद। वृत्त। हाल। (३) विषय। मामला। प्रसंग। बात। (४) कथोपकथन। बातचीत।

धातं—धातंलाप।

(५) वैश्य वृत्ति जिसके अंतर्गत कृषि, वाणिज्य, मोरक्षर और कुसीद है। (६) हुर्गा। (७) अन्य के द्वारा कय विक्रय होना।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैगन। भंडा। (२, घटेर पक्षी।

धातं—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैगन। भंडा।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैगन। भंडा।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गूड़ पुरुष। प्रणिधि। चर। (२) दूत। पलची।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] बात चीत। कथोपकथन।

धातं—प्र०—करना।—होना।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पनसारी। (२) समाचार ले जानेवाला। दूत। (३) गीति शास्त्र का वह भाग, जो भाष्य स्वयं से संबंध रखता है। धातं।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी ग्रन्थ के उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थों को स्पष्ट करनेवाला वाक्य या ग्रंथ। जैसे,—पाणिनि की अष्टाध्यायी पर कात्यायन का धातं, न्यायसूत्र के वात्स्यायन भाष्य पर उदोत्कर का न्याय-धातं।

विशेष—वृत्ति और भाष्य केवल मूल ग्रंथ के आशय को स्पष्ट करते हैं, उसके बाहर कुछ नहीं कहते। पर धातंकार को पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। वह नहीं धातं भी कह सकता है।

(२) वृत्ति या आचार शास्त्र का अध्ययन करनेवाला। (३) दूत। चर।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अर्जुन। (२) जयंत।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] मेघ। धातं।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दक्षिणावर्त शंख। (२) जल। (३) घोड़े के गले पर की दाहिनी ओर की भौंती। (४) आम की गुठली। (५) देशम। (६) जल। (७) काकचिचा।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] धुवापा।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धुवापा। (२) वृद्धि। यदती।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] सलुद।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] सलुद। बहुत अधिक व्याज लेनेवाला।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत अधिक सूद लेनेवाला। सूदखोर।

धातं—संज्ञा पुं० [ सं० ] अन्न को अधिक व्याज पर देने का व्यवसाय। विसार।



वाङ्मयस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गेदा । (२) वह वधिया बकरा जिसका रंग सफ़ेद हो और जिसके कान इतने लंबे हों कि पानी पीते समय पानी से छू जायें । (३) एक प्रकार का पक्षी जिसका सिर लाल, गला नीला और शेष शरीर काला कड़ा गया है । प्राचीन काल में इस पक्षी का "बलि-दान विष्णु के उद्देश्य से होना था ।

वार्मट-संज्ञा पुं० [ सं० ] घड़ियाल ।

वार्मुच-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बादल । (२) मुस्तक । मोवा ।

वार्थ्य-वि० [ सं० ] (१) जो रोका जा सके । जिसका निवारण हो सके । वारणीय । (२) जिसे वारण करना हो । जिसे रोकना हो ।

वाय्योका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जोक ।

वार्यति-संज्ञा पुं० [ सं० ] सजुद ।

वार्यट-संज्ञा पुं० [ सं० ] नौका । नाव । वेदा ।

वार्यणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नीले रंग की मन्थी ।

वार्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार पृथ्वी के दस भागों में से एक भाग का नाम जिसे सुवसु ने विभक्त किया था ।

वार्यण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार के वैदिक आचार्य ।

वार्यहट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।

वार्यिक-वि० [ सं० ] (१) वर्ष संबंधी । (२) जो प्रति वर्ष होता हो । सात्वता । (३) वर्षों काल में होनेवाला ।

वार्यिकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बेले का फूल ।

वार्यिला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ओला । करका । पत्थर ।

वार्यु संज्ञा पुं० [ सं० ] कृष्णचंद्र ।

वार्युय-संज्ञा पुं० [ सं० ] कृष्णचंद्र ।

वार्युय-संज्ञा पुं० [ सं० ] बृहद्रथ का पुत्र, जरासंध ।

वालटियर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह मनुष्य जो बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य में अपनी हृष्टा से योग दे । स्वयंसेवक । स्वेच्छासेवक । (२) वह सिपाही जो बिना वेतन के अपनी हृष्टा से जौज में सिपाही या अफसर का काम करे । यहमंदर ।

वालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बालक । (२) कंकण । कंगन ।

वालदेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] माता पितर । माँ बाप ।

वालव-संज्ञा पुं० [ सं० ] उग्रोत्पि में एक कर्ण का नाम ।

वाल-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इंद्रवज्रा और उर्वेद्वज्रा के मेल से बने हुए उपजाति नामक सोलह प्रकार के एशों में से एक, जिसके पहले तीन चरणों में दो तगण, एक जगण और दो गुरु होते हैं, तथा चौथे चरण में और सप्त धारी रहता है, केवल प्रथम वर्ण लघु होता है । जैसे, - रावौ सदा शत्रु हिमे अर्षदा । बाधौ सवे धार तमे छु दंडा । धारो विभूती तन अक्षमदा । नसे सपेदै अय.भोज चंडा ।

वालानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक पौधा जिसके फूलों के रस अति के भाकार के लगेते हैं ।

वालाम्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन मान जो भाउ रज का नाम जाता था ।

वालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दे० "वालिका" । (२) बालक । बाल । (३) कान का एक गहना । बाला । बाली । (४) हलायची ।

वालिलिख-संज्ञा पुं० दे० "बाललिक्य" ।

वालिव-संज्ञा पुं० [ सं० ] वित्त । बाप ।

वालिव-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माता । माँ ।

वाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] बलित् । बंदरों का एक राजा जो सुभीत का बड़ा भाई और अंगद का पिता था ।

वालिय-पुराणों में इसकी उत्पत्ति इंद्र के वीर्य से बड़ी गई है । वि० दे० "बालि" ।

वाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गंध द्रव्य ।

वालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक गंध द्रव्य । (२) एनिवाल ।

वालका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बाल । रेत । (२) दाहा । (३) हाथ धर । (४) ककड़ी । (५) कपूर ।

वालकाप्रभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नरक का नाम ।

वालकायंत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीघ्र सिद्ध करने का एक प्रकार का यंत्र ।

वालकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की ककड़ी ।

वालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का विप ।

वालिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गदाह । (२) पुत्र । (३) एक प्रकार का करंज । अंगारवलुरी ।

वालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शौमादि घन ।

वालकल-वि० [ सं० ] धक्कल का । छाल का ।

वालकली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मदिरा । मौदी मद्य ।

वालमीकि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक मुनि जो रामायण के रचयिता और आदि कवि कहे जाते हैं । इनका जन्म शत्रुघ्न वंश में हुआ था । ये प्रचेता के वंशज थे और समस्ता नदी के किनारे, जिसे श्व टील कहते हैं, रहते थे । ये एक बार अपने शिष्यों सहित नदी तट पर स्नान करने गए । वहाँ शिष्यों को घाट पर स्नान संपादन करने के लिये छोड़कर नदी के किनारे टहल रहे थे कि इसी बीच में एक निपाद ने एक कौंच को मारा । कौंच रग में लपपथ भूमि पर गिर पड़ा और कौंची पिलाने लगी । यह घटना देखकर मुनि के मुँह से यह वाक्य निकल गया—मा निपाद प्रतिष्ठावमगमच्छात्पत्ती समा, यकोच मिधुनादेकमवधी कामोदिता । यह वाक्य विशुद्ध वर्ण-युक्त सुंदर अनुष्टुभ था । यह छंद मुनि को इतना रुचिकर हुआ कि उन्होंने समस्त रामायण महाकाव्य इसी छंद में रच डाला ।

घाटमीकीय-वि० स्त्री० [ सं० ] (१) वाल्मीकी संबंधी। वाल्मीकी, स्त्री। (२) वाल्मीकी की वनाई हुई।  
 घाचट्टक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छा बोलनेवाला। वक्ता।  
 घाम्मी। (२) बहुत बकनेवाला। बकवादी।  
 घासैला-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विलाप। रोना पीटना। (२) शोरगुल। हल्ला। चिह्लाइट।  
 क्रि० प्र०—करना।—मचाना।  
 घाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] अद्भुत। वासक।  
 वि० (१) बहुत रोनेवाला। रोना। (२) निवेदित।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम।  
 घाशुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिह्लानेवाला। जिनाद्वारी। (२) रोनेवाला। (३) अद्भुत।  
 घाशुन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पक्षियों का बोलना। (२) मक्खियों का भिनभिमाना।  
 वि० (१) चिह्लानेवाला। शब्द करनेवाला। (२) चहचहानेवाला। (३) भिनभिमानेवाला।  
 घाशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वासक। अद्भुत।  
 घाशि-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि। आग।  
 घाशिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अद्भुत।  
 घाशित-संज्ञा पुं० [ सं० ] पशु पक्षी आदि का शब्द।  
 वि० दे० "वासित"।  
 घाशिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्त्री। (२) हयिनी।  
 घाशिष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक उपपुराण का नाम। (२) एक प्राचीन तीर्थ का नाम।  
 वि० [ सं० ] वशिष्ट संबंधी। वशिष्ट का  
 घाशिष्टी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोमती नदी।  
 घाश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मंदिर। (२) चौसाहा।  
 घाश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लोहा। (२) आँसू। (३) भाप।  
 भाक। (४) फंटकारि। भटकटैया।  
 घाश्वक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मरसा नाम का साग।  
 घाश्विका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हिंदुपत्नी।  
 घासंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ऊँट। (२) कोकिल। (३) मलय वायु। (४) मूँग। (५) मैनफळ।  
 घासंतक-वि० [ सं० ] (१) वसंत संबंधी। (२) वसंत ऋतु में बोया हुआ।  
 घासंतिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भौँद। विदूषक। (२) नाचनेवाला। नर्तक।  
 वि० वसंत संबंधी।  
 घासंती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) मापकी लता। (२) जूही।  
 (३) गजियारी नामक फूल। (४) मन्दोरसंव। (५) दुर्गा।  
 (६) एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चौदह वर्ण होते हैं, जिनमें ६, ७, ८ और ९ वर्ण ऋषु और दोष पुण होते हैं। (म, त, न म, ग ग)

वास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अवस्थान। रहना। निवास।  
 क्रि० प्र०—करना।—होना।  
 यौ०—कारावांस। तीर्थवास। कल्पवास। कैलासवास। वैकुण्ठवास।  
 (२) गृह। घर। मकान। (३) वासक। अद्भुत। (४) सुगंध। प।  
 वासक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अद्भुत। (२) गान का एक संग।  
 वियोग—शंकर के मत से मनोहर, कंदर्प, चार और नंदन नामक इसके चार भेद हैं। कोई कोई विनोद, वरद, वंद और कुसुद को इसके भेद मानते हैं।  
 (३) वासर। दिन। (४) शालक राग का एक भेद।  
 वासकसज्जा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नायिका भेद के अनुसार यह नायिका जो नायक से मिलने की तैयारी किए हुए घर आदि सजाकर और भाप भी सजकर बैठती हो।  
 वासका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अद्भुत।  
 वासकैट-संज्ञा पुं० स्त्री० [ सं० ] वेदकैट ] एक प्रकार की छोटी बंदी या कमर तक की कुलती जिससे केवल पीठ, छाती और पेट बचता है।  
 वियोग—इसमें आत्मीन नहीं होती। आगे और पीछे के कपड़ों में भेद होता है। इसे कसने के लिये पीछे बकसुपदार दो बंद होते हैं।  
 वासत-संज्ञा पुं० [ सं० ] गर्दन। गद्दा।  
 वासतैय-वि० [ सं० ] बस्ती के योग्य। रहने लायक।  
 वासतैयी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रात।  
 वासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० वासित ] (१) सुगंधित करना। वासना। धूपन। (२) वख। (३) वास। (४) ज्ञान।  
 वासना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रयत्ना। (२) ज्ञान। (३) किसी पूर्व स्थिति के जमे प्रभाव से उत्पन्न मानसिक दशा। भावना। संस्कार। स्मृति हेतु। (४) न्याय के अनुसार देहात्म बुद्धिजन्य मिथ्या संस्कार। (५) इच्छा। कामना। (६) दुर्गा। (७) अर्क की पत्नी।  
 क्रि० सं० दे० "वासना"।  
 वासर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दिन। दिवस। (२) वह घर जिसमें विवाह हो जाने पर स्त्री पुरुष पट्टी रात को सोते हैं।  
 वासरमणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य।  
 वासरसंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रातःकाल।  
 वासव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र। (२) धनिष्ठा नक्षत्र।  
 वासवि-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र के पुत्र, अर्जुन।  
 वासवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यास की माता सत्यवती। मत्स्यगंगा।  
 वासवेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वासवी के पुत्र, वेदव्यास।  
 वासव-संज्ञा पुं० [ सं० ] वख। कपड़ा।

वासि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वासक। जड़सा। (२) वासंती। माषवी लता।  
 वासि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कुडार। बसूला।  
 वासित-वि० [ सं० ] (१) सुगंधित किया हुआ। महकाया हुआ। (२) बघाच्छादित। कपड़े से ढका हुआ। (३) जो ताजा न हो। वासी।  
 वासिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्त्री। (२) हथिनी। (३) चंद्रशेखर के मत से आर्या छंद का एक भेद जिसमें १ गुरु और ३१ लघु वर्ण होते हैं।  
 वासित-वि० [ सं० ] (१) पहुँचाया हुआ। प्राप्त। (२) मिला हुआ। जो बसूल हुआ हो।  
 यौ०—वासिल यात्री = बसूल श्रेय बाकी रकम। उ०—वासिल यात्री स्वाहा मुजमिल सब अपरम की यात्री। चित्रगुप्त होत मुस्तौफी शरण गहौं मैं काही।—सूर।  
 वासिलात संज्ञा पुं० [ सं० ] वह धन जो बसूल हुआ हो। बसूल हुए धन का योग। (इसका प्रयोग बहु० में होता है।)  
 वासिष्ठ-वि० [ सं० ] वसिष्ठ संबंधी।  
 संज्ञा पुं० रक्त। हथिर।  
 वासी-संज्ञा पुं० [ सं० वासिन् ] रहनेवाला। बसनेवाला। अधिवासी। जैसे,—ग्रामवासी। नगरवासी।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बसूला जिससे बड़े लकड़ी छीलते हैं। तक्षणी।  
 वासु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु। (२) परमात्मा। (३) पुनर्वसु नक्षत्र।  
 वासुकी-संज्ञा पुं० [ सं० ] आठ-नागों में से दूसरा नागराज।  
 वासुदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्णचंद्र। (२) पीपल का पेड़। अश्वत्थ। (बोलचाल)  
 वासुदेवक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वासुदेव या श्रीकृष्ण का उपासक।  
 वासुभद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वासुदेव। श्रीकृष्णचंद्र।  
 वासुमंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम।  
 वासुरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्त्री। (२) हथिनी। (३) रात्रि। रात। (४) भूमि। जमीन।  
 वासु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नाटकों की परिभाषा में चिपों के लिये संयोजन का शब्द।  
 वास्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] बकरा।  
 वास्तव-वि० [ सं० ] प्रकृत। यथार्थ। सत्य।  
 यौ०—वास्तव में = सचमुच। सत्यतः। प्रतल में। दर-असल। वाकई।  
 संज्ञा पुं० परमार्थ मूल। असल तथ्य।  
 वास्तविक-वि० [ सं० ] (१) परमार्थ। सत्य। प्राकृत। (२) यथार्थ। ठीक।  
 वास्तव्य-वि० [ सं० ] (१) रहने योग्य। बसने योग्य। (२) बसनेवाला। अधिवासी।

संज्ञा पुं० बस्ती। आवासी।  
 वास्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संबंध। लगाव।  
 मुहा०—वास्ता पढ़ना = व्यवहार का शक्तर जाना। काम पचना। जैसे,—तुमको उससे वास्ता नहीं पढ़ा है; नहीं तो जागते। वास्ता पैदा करना = डब लगाना। संबंध जोड़ना। वास्ता रखना = लगाव रखना। संबंध रखना। (२) मित्रता। (३) स्त्री और पुरुष का अनुचित संबंध।  
 वास्तु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुभ निवास योग्य स्थान। वह स्थान जिस पर घर उठाया जाय। कीह।  
 विशेष—घर बनाने के पहले वास्तु या कीह के शुभाशुभ का विचार किया जाता है। बृहस्पतिता में वास्तुगृह के उद्यम, मध्यम आदि क्रम से पाँच भेद कहे गए हैं। (२) घर। गृह। मकान। (३) इमारत।  
 वास्तुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यथुधा नाम का साम। (२) पुनर्नवा। गदहपूरना।  
 वास्तुकालिंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] तरयूज। कलीदा।  
 वास्तुपति, वास्तुपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वास्तु का अधिष्ठाता देवता। उस स्थान का देवता जिसमें घर बना हो। वास्तुपुरुष।  
 वास्तुपूजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वास्तु पुरुष की पूजा जो नवीन घर में गृहप्रवेश के आरंभ में की जाती है।  
 वास्तुयाग-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह याग जो नवीन गृह में प्रवेश करने के समय किया जाता है।  
 वास्तुविद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह विद्या जिससे वास्तु या इमारत के संबंध की सारी बातों का परिज्ञान होता है। भवन-निर्माण की कला।  
 वास्तुशांति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वे शांति आदि कर्म जो नवीन गृह में प्रवेश करते समय किए जाते हैं।  
 वास्तुशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वास्तुविषयक शास्त्र। 'वि० दे० "वास्तु विद्या"।  
 वास्तुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] यथुधा।  
 वास्ते-अभ्य० [ सं० ] (१) लिये। निमित्त। जैसे,—तुम्हारे वास्ते आम काया हूँ। (२) हेतु। सबब। जैसे,—तुम भिन्न वास्ते वहाँ जाते हो?  
 वास्तोष्पति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र। (२) देवता मात्र। (३) वास्तुपति।  
 वास्य-वि० [ सं० ] जल में रहनेवाला। जलस्थ।  
 वास्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गरमी। ऊष्मा। (२) कोहा। (३) माष।  
 वास्पेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] नागकेसर।  
 वाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वाहन। सवारी। (२) लादकर या खींचकर ले चलनेवाला। (३) घोड़ा। (४) पैल। (५) बैसा। (६) वायु। (७) प्राचीन काल का एक तौल या मान जो चार गौणी का होता था।

प्रव्यं [ कां ] (१) प्रदासासूचक शब्द । धम्य । जैसे,—  
वाह । यह तुम्हारा ही काम था ।

विशेष—कभी कभी अर्थात् हर्ष प्रकट करने के लिये यह शब्द  
दो बार भी आता है । जैसे,—वाह वाह, आ गय ।

(२) आश्चर्यसूचक शब्द । जैसे,—वाह ! निर्गो काले, क्या  
रूप रंग निकाले । (३) पूजास्तोत्रक शब्द । जैसे,—वाह  
तुम्हारा यह मुँह ! (४) आर्तसूचक शब्द ।

वाहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खादकर या खीचकर वस्तुओं को  
ले चलनेवाला । घोस डोने या खींचनेवाला । जैसे,—  
भारवाहक । (२) सारथी ।

वाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सवारी ।

वाहरिपु-संज्ञा पुं० [ सं० ] महिष । भैंसा ।

वाहवाही-संज्ञा स्त्री० [ कां ] लोगों की प्रदासा । द्युति ।  
साधुवाद ।

मुद्दां—वाहवाही लेना या छटना = लोगों की प्रदासा का पान  
बनना । जैसे,—दूसरे का माल नोटकर उसने खूब  
वाहवाही लूटी ।

वाहिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गाड़ी । छकड़ा । (२) वक्ता ।

वाहित-वि० [ सं० ] (१) प्रवाहित । (२) चलाया हुआ ।  
चालित । (३) वंचित ।

वाहिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सेना । (२) सेना का एक भेद  
जिसमें ८१ हाथी, ८१ रथ, २४३ घोड़े और ४०५ पैदल  
होते थे । एक वाहिनीमें तीन गण होते थे ।

वाहिनीपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वाहिनी नामक सेना विभाग  
का अधिपति । (२) सेनापति ।

वाहियात-वि० [ म० वादी + कां० वात ] (१) व्यर्थ । फजूल ।  
जैसे,—तुम तो यों ही वाहियात यका करते हो । (२)  
बुरा । खराब । जैसे,—वाहियात आदमियों का साथ मत  
क्रिया करो ।

वाही-वि० [ म० ] (१) सुस्त । ढीला । (२) निकम्मा । (३)  
सुदिदीन । सूफ़े । उ०—पीठि परो इति सो वसति विनु  
वीठ मय नोठ न सँभारे वाही मोहि मदि रहो ही ।—देव ।  
(४) भावता । (५) धेरिकाने का । (६) बेहूदा ।

बाहोतवाही-वि० [ म० वादी + तवाही ] (१) बेहूदा । भावता ।  
क्रि० प्र०—किरवा ।

(२) अंधधट । बेसिर पैर का ।

क्रि० प्र०—वकना ।

संज्ञा स्त्री० अंधधट बातें । गाड़ी गलीज ।

बाहु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हाथ के ऊपर का भाग जो कुहनी  
और कंधे के बीच में होता है । मुजदंद । (२) गणित शास्त्र  
में त्रिभुजादि शेषों के किनारे की (पार्श्व) रेखा । भुजा ।

बाहुमूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कालि ।

बाहुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कालिक वा मदीना ।

बाहुलय-संज्ञा पुं० [ सं० ] आधिपत्य । अधिकता ।

बाहुवाट-संज्ञा पुं० [ सं० ] बदेड़े का वृक्ष ।

बाह्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] यान । रथ । सवारी ।

क्रि० वि० (१) बाहर । (२) अलग । जैसे,—ढोकवाद्य ।

बाह्योत्तर-वि० [ सं० ] भीतर और बाहर का । जैसे,—बाह्योत्तर  
शुद्धि ।

क्रि० वि० भीतर और बाहर ।

बाह्येन्द्रिय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पाँचों ज्ञानेन्द्रियों जिनका काम बाह्य  
विषयों का ग्रहण करना है । भ्रॉल, कान, बाह, जिह्वा और  
त्वचा ।

बाह्योक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक जनपद जो भारत की उत्तर-  
पश्चिम सीमा पर था । गांधार के पाठ का एक प्रदेश ।

विशेष—साधारणतः आजकल के 'बलख' (जो अफगानिस्तान  
के उत्तरी भाग में है) के भाग प्राप्त का प्रदेश ही, जिसे  
प्राचीन पारसी 'बहतर' और यूनानी 'थेतिथ्या' कहते थे,  
बाह्योक्त माना जाता है; पर पारसियाय पुराणविद् इसे  
आजकल के हिंदुस्तान के बाहर नहीं मानना चाहते ।

(२) बाह्योक्त देश का घोड़ा । (३) कुंडल । केटर । (४) हींग ।

(५) एक गंधर्व का नाम ।

विद्योद-संज्ञा पुं० [ ? ] अग्नि । आग ।

विजामर-संज्ञा पुं० [ सं० ] भ्रॉल का यह भाग जो सफ़ेद होता है ।

विजाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्रेणी । पंक्ति । कृतार ।

विद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अर्थात् के एक राजा का नाम । (२)  
धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (३) दिन का एक विशेष  
भाग । (४) प्राप्ति । लाभ ।

संज्ञा पुं० दे० "वृद्" । उ०—कलिर्दजा के सुग्य मूल हतान  
के विद् विद्वान तने हैं ।—दास ।

संज्ञा पुं० दे० "विदु" ।

विद्वकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राप्त करनेवाला । पानेवाला ।

(२) जाननेवाला । ज्ञाता । वेत्ता । उ०—(क) परम साधु  
परमार्थ विद्वक । संशु उपासक नहि हरि विद्वक ।—  
तुलसी । (ख) भय कि परिहि परमात्म विद्वक । सुधी कि  
होहि क्यहुँ पर विद्वक ।—तुलसी ।

विद्वु-संज्ञा पुं० [ सं० विदु ] (१) जलकण । बूँद । (२) बुँदकी ।

बिंदी । (३) रंग की बिंदी जो हाथी के मस्तक पर गोमा  
के लिये बनाई जाती है । (४) अनुस्वार । (५) घट्टय ।  
(६) दंत का लगाना हुआ दंत । दंत क्षत । (७) दो  
औरी के बीच की बिंदी । (८) एक हँस परिणाम । (९)  
रेखागणित के अनुसार यह जिसका स्थान नियत हो, पर  
विभाग न हो सके । (१०) छोटा डुकड़ा । कण । कनी ।

उ०—बनक विदु हुइ चारि कं देसे। राखे सीस सीय रुम  
हेसे।—तुलसी। (१) रत्नों का एक दोष या घट्या जो  
चार प्रकार का कहा गया है—आरत्त (गोल), रत्ति (छंया)  
आफ (हाल) और यव (जौ के आनर का)। (१) रत्न  
या सरकटे का पूर्वार्थ।

वि० (१) शाता। वेसा। जानकार। (२) दाता। (३)  
जानने योग्य।

विदुश्चित्रक—छंया पुं० [ सं० ] यह गूग जिसके शरीर पर गोल  
गोल सफेद छिदकियाँ होती हैं। सफेद चित्तियों का हिरन।  
विदुजाल—छंया पुं० [ सं० ] सफेद विदियों का समूह जो हाथी  
के मस्तक और सूँढ़ पर बनाया जाता है।

विदुजालक—छंया पुं० [ सं० ] हाथियों का पथक नामक रोग।  
विदुत्तंत्र—छंया पुं० [ सं० ] (१) चौपड़ आदि की विसात। अक्ष।  
सारिकलक। (२) तुरंगक।

विदुतीर्थ—छंया पुं० [ सं० ] काशी के प्रसिद्ध पंचनद तीर्थ का  
नामांतर जहाँ विदु माघव का मंदिर है। पंचगंगा।

विदुत्रिवेष्ठी—छंया स्त्री० [ सं० ] गाने में स्वर साधन की एक  
प्रणाली जिसमें तीन बार एक स्वर का उच्चारण करके एक  
बार उसके बाद के स्वर का उच्चारण करते हैं। फिर तीन बार  
उस दूसरे स्वर का उच्चारण करके एक बार तीसरे स्वर का  
उच्चारण करते हैं और अंत में तीन बार सातवें स्वर का उच्चारण  
करके एक बार उसके अगले सप्तक के पहले स्वर का उच्चारण  
करते हैं। यथा—आरीही—सा सा सा रे, रे रे रे ग, ग ग  
ग म, म म म प, प प प ध, ध ध ध नि, नि नि नि सा।  
भवरोही—सा सा सा नि, नि नि नि ध, ध ध ध प, प  
प प म, म म म ग, ग ग ग रे, रे रे रे सा।

विदुपत्र—छंया पुं० [ सं० ] भोजपत्र।

विदुमति, विदुमती—छंया स्त्री० [ सं० ] राजा शक्तिविदु की  
वन्द्या का नाम।

विदुमाधव—छंया पुं० [ सं० ] काशी की एक प्रसिद्ध विष्णुमूर्ति का  
नाम। इसके विषय में काशी खंड में लिखा है कि एक  
बार भगवान विष्णु दिवजी की सम्मति पाकर काशी आए  
और यहाँ से राजा दिवोदास को याहर निकाल दिया।  
उस समय अतिविदु नामक ऋषि ने विष्णु की स्तुति की  
और भगवान ने प्रसन्न होकर उससे पर भोगने के लिये  
कहा। ऋषि ने कहा कि मोक्षाभिलाषियों के हितार्थ पंचनद  
तीर्थ पर आप अवस्थान करें और हमारे नाम से प्रसिद्ध होकर  
सब को मुक्ति प्रदान करें। विष्णु भगवान ने "पुत्रमस्तु"  
कहकर कहा कि आज से हम तुम्हारा भावा नाम अपने  
नाम के आगे जोड़कर विदुमाधव नाम से प्रख्यात होकर  
पंचनद तीर्थ (पंचगंगा) पर वास करेंगे। पंचनद तीर्थ भी  
विदु तीर्थ कहलायेगा।

विदुर—छंया पुं० [ सं० विदु + र (प्रत्य०) ] किसी पदार्थ पर दूसरे  
रंग के लगे हुए छोटे छोटे चिह्न। सुंदकी। उ०—सिदुर  
विदुर मान के चिह्न शुनी जरि कैसर कुंदन कीनै।—सुंदरीस०

विदुराजि—छंया पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साँप। राजमन।  
विदुल—छंया पुं० [ सं० ] अगिया नामक कीड़ा जिसके छूने से शरीर  
में फफोले निकल आते हैं।

विदुसर—छंया पुं० [ सं० ] (१) पुराणानुसार एक सरोवर का नाम  
जिसके उत्तर कैलाश पर्यंत है। कहते हैं कि भगीरथ ने गंगा  
के लिये इसी सर के किनारे तर किया था। गंगा जो इसी  
स्थान से निकली है। देवताओं ने यहाँ अनेक यज्ञ किए थे  
और मगवती गंगा के जितने विदु पृथ्वी पर उतरते समय  
गिरे, वे इसी स्थान पर गिरे थे। इस से वह सर बन गया  
और विदुसर कहलाने लगा। (२) उड़ीसा में सुवनेरवर क्षेत्र  
के एक प्राचीन सरोवर का नाम।

विदुसार—छंया पुं० [ सं० ] चंद्रगुप्त के एक पुत्र का नाम। यह  
चंद्रगुप्त के बाद मगध का राजा हुआ था। सत्राट अशोक  
इसी का पुत्र था।

विधक—छंया पुं० [ सं० विध्य ] विष्याचल। विध्य पर्वत। उ०—  
रुसमउ देखि सुनेह सँभार। द्युत विध जिमि धरज  
निबारा।—तुलसी।

विधपत्र—छंया पुं० [ सं० ] बेलसोंठ। विध्यतारुड।

विधपत्री—छंया स्त्री० [ सं० ] "विधपत्र"।

विध्य—छंया पुं० [ सं० ] एक प्रसिद्ध पर्वत या पर्वत-श्रेणी का  
नाम जो भारतवर्ष के मध्य में पूर्व से पश्चिम की ओर हुआ  
है। आर्यावर्त देश की दक्षिण सीमा पर यह पर्वत है।  
विध्य पर्वत के दक्षिण का प्रदेश दक्षिणापथ या दक्षिण  
कहलाता है। इससे दो प्रधान नदियाँ नर्मदा और ताप्ती  
दक्षिण और पश्चिम दिशा में बहकर अरब की खाड़ी में  
गिरती हैं। इस पर्वत के पथर प्रायः बलुए और परतदार  
होते हैं। इसकी अनेक शाखा-प्रशाखाएँ सतपुरा आदि नाम  
से विख्यात हैं। पुराणानुसार यह सात हल पर्वतों में है  
और मनु के अनुसार मध्य देश की दक्षिणी सीमा है।  
महाभारत में कहा है कि विध्य ने सूर्य से कहा कि मेरे  
के समान तुम हमारी प्रदक्षिणा किया करो। जय सूर्य ने न  
माना, तब विध्य ऊपर बढ़ने लगा और यह आवांका हुई कि  
यह सूर्य का मार्ग ही रोक देगा। देवताओं ने बगलस्य से  
प्रार्थना की। बगलस्य उसके पास गए और उसने साष्टांग  
दृष्टवत की। मुनि ने कहा कि जब तक मैं न लौटूँ, तब तक  
इसी तरह पड़े रहना। इतना कहकर बगलस्य जी चले गए  
और फिर वापस नहीं आए। कहते हैं कि इसी लिये यह  
पर्वत अब तक ज्यों का त्यों खड़ा है; और इसी लिये  
इसका इतना अधिक विस्तार है।

विष्यकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्य पर्वत । (२) अगस्त्य मुनि का एक नाम ।

विष्यचूषक, विष्यचूषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्य पर्वत के दक्षिण का प्रदेश । महाभारत के अनुसार यहाँ एक प्राचीन जंगली जाति बसती थी ।

विष्यवासिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवी की एक प्रसिद्ध मूर्ति जो मिर्जापुर ज़िले में विष्य के एक टीले पर अवस्थित है । पुराणों में इस मूर्ति के संबंध में अनेक आख्यायन हैं । वामन पुराण का मत है कि इंद्र ने भगवती दुर्गा की विष्य पर्वत पर ले जाकर स्थापित किया था । किसी किसी का मत है कि सती के देह परिध्याग करने पर जब शिव जी उनके शव को अपनी पीठ पर लादकर फिरने लगे, तब विष्णु धनुष बाण लेकर उनके पीछे पीछे चले, और जहाँ जहाँ अवकान पाया, शव को काट काटकर गिराते गए । उसी समय एक भाग यहाँ भी गिरा था, जिससे यह सिद्ध-पीठ हो गया । यह मूर्ति बहुत प्राचीन है; क्योंकि प्राकृत के गौडयहो ( गौडयय ) काव्य में वारुणतिराज ने, जो आठवीं शताब्दी में था, इसका वर्णन किया है । रामतरंगिणी में विष्यवासिनी को अमरवासिनी नाम से लिखा है । जिस स्थान पर यह मूर्ति है, वह स्थान विष्वाचल कहलाता है ।

विष्यवासी-संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्याधि मुनि का एक नाम ।

विष्यशक्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यवन राजा का नाम ।

विष्यस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्याधि मुनि का एक नाम ।

विष्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम ।

संज्ञा पुं० दे० "विष्य" ।

विष्याचल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्य पर्वत । (२) विष्य पर्वत की एक शाला पर बसी हुई एक छोटी सी बस्ती जिसमें विष्यवासिनी देवी का मंदिर है । यह मिरज़ापुर से थोड़ी दूर पर है ।

विष्याचली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राजा बलि की स्त्री का नाम ।

विश-वि० [ सं० ] क्रम में वीस के स्थान पर पढ़नेवाला । वीसवाँ ।

विशत-वि० [ सं० ] बीस । ( कुल समस्त शब्दों में )

विशति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बीस की संख्या । (२) इसका सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२० ।

वि० जो गिनती में बीस हो ।

विशतिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] बीस गाँवों का अधिपति ।

विशतिशत्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] रावण का एक नाम । विशद्राहु ।

विशतोय-संज्ञा पुं० [ सं० ] बीस गाँवों का अधिपति ।

विशतोशी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विशकीशिव । बीस गाँवों का अधिपति । विदातीश ।

विशोत्तरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फलिज श्वोतिप के अनुसार मनुष्य के शुभाशुभ फल जानने की एक रीति, जिसमें मनुष्य की

जायु १२० वर्ष मानकर उसके विभाग करके नक्षत्रों और प्रदों के अनुसार शुभाशुभ फल की कथना की जाती है ।

यथा—

मह	काल	नक्षत्र
सूर्य	१ वर्ष	कृत्तिका, उत्तर फाल्गुनी और उचारापाद ।
चंद्र	१० "	रोहिणी, हस्त और श्रवण ।
मंगल	७ "	मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा ।
राहु	१८ "	आर्द्रा, रेवती और प्रतभिषा ।
बृहस्पति	१६ "	पुनर्वसु, विशाखा और पूर्व भाद्र ।
शनि	१९ "	पुष्य, अनुराधा और उत्तर भाद्र ।
शुभ	१७ "	अश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती ।
केतु	७ "	मघा, मूल और अश्विनी ।
शुक्र	२० "	पूर्वफाल्गुनी, पूर्वभाद्रा और भरणी ।

कुत्र १२० वर्ष

विःशुधिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मेढ़कों की बोली । (२) दरं दरं की आवाज़ । कफ़ेस ध्वनि । टरांइट ।

वि-उप० [ सं० ] एक उपसर्ग जो शब्द के पहले लगकर इस प्रकार अर्थ देता है—(१) विशेष; जैसे,—विकाराल, विहीन । (२) वैरुप्य; जैसे,—विषय । (३) निषेध या वैरीत्य; जैसे,—विक्रय, विकच्छ ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अन्न । (२) आहार । (३) चतु । भाल ।

संज्ञा स्त्री० पत्नी ।

विकंकट-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोशुर । गोखरू ।

विकंकट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक जंगली वृक्ष का नाम जिसे कंटाई, किन्गिणी और धंज कहते हैं । इसके पत्ते छोटे छोटे और कालियों में वॉटे होते हैं । इसके फल घेर के आकार के तथा पकने पर मीठे होते हैं; पर अचपकी अवस्था में खटमीठे होते हैं । वैद्यक में यह रज्जु, दीपन और पाचक तथा कमल और स्त्रीहरा का नाशक लिखा है । यज्ञों के लिये सुवा इसी की लकड़ी के बनाने का विधान है ।

पट्यां०—प्रथिल । सुबावृक्ष । स्वातुकंटक । कंटकी । व्याम-पाद । कंटकारी । वृत्तिकंट । सुग्दाफ । मधुपर्णी । बहुफल । गोपचंदी । दंतकाष्ठ । मत्स्यपादप । हिमक । पिंदार । पृथु-बीज । रावण । पादरोहण । सुबावृक्ष ह्य्यादि ।

विकंकटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतिपटा ।

विकंकट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जवासा । (२) विकंकट ।

विकंपन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम ।

विकंप-संज्ञा पुं० [ सं० ] सद्यः प्रसूता गाय का दूध । परन्तु की ध्याई गौ का दूध । पेउस । पीपूय ।

विकच-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार के धूमकेतु जिनकी

संख्या ६, है। ये वृद्धरति के पुत्र माने जाते हैं। इनमें शिखा नहीं होती। इनका वर्ण सफेद होता है और ये प्रायः दक्षिण दिशा में उदय होते हैं। इनके उदय का फल अशुभ माना जाता है। (वृहत्संहिता) (२) भ्रजा। (३) क्षयणक। वि० (१) विकसित। लिखा हुआ। (२) जिसमें बाल न हो। विना बाल का। केनाहीन।

विकच्छु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (नदी) जिसके दोनों ओर तराईया बरकर न हो। जिसके किनारे पर दलदल या गीली जमीन न हो।

विकट-वि० [ सं० ] (१) विशाल। (२) विकराल। भयंकर। भीषण। (३) बक। देवा। उ०—(क) भृशुटी विकट निकट नैनन के राजत भति वर नारि। मनहुँ मदन जग नीति जेर करि राख्यो धनुष उतारि।—सूर। (ख) विकट भृशुकटि कच घूमरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे।—तुलसी। (घ) कठिन। मुद्रिकल। उ०—(क) नित प्रति सवे डरहने के मिस भायति हैं उठि प्रात। अनसमुसे अराधण लगावति विकट यनापति भात। सूर। (ख) नट कृत कपट विकट खगाराया। नट सेवकाई न ब्यापहि माया।—तुलसी। (५) दुर्गम। जैसे, विकट मार्ग। (६) दुस्साध्य। (७) विना चटाई का।

संज्ञा पुं० (१) विकोटक। (२) सोम लता। (३) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विकटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] युद्ध देव की माता माया देवी का एक नाम।

विकटानन-संज्ञा पुं० [ सं० ] छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विकटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विशिष्ट कथा। (२) कुरिसत कथा। (जैन)

विकट्ट संज्ञा पुं० [ सं० ] यादवों के एक भेद का नाम।

विकनिद्रादिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम।

विकट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रोग। व्याधि। (२) तलवार के ३३ हाथों में से एक का नाम।

विकरार छ-वि० [ सं० विकराल ] विकराल। भयंकर। डरापना।

उ०—(क) नाक कान बिनु भइ विकरारा। जनु ख्य सैल रोप कै धारा।—तुलसी। (ख) कियो युद्ध भति ही विकरार। लागी चलन रथिर की धार।—सूर।

वि० [ सं० ] का० वैजारा ] विकट। बेचैन। ब्याकुल। उ०—खनहि चेत खन होइ विकरारा। भा चंदन चंदन सब छारा।—जायसी।

विकराल-वि० [ सं० ] भीषण। भयानक। डरावना।

विकर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कर्ण के एक पुत्र का नाम। (२) दुर्बोधन के एक माई का नाम जो कुरुक्षेत्र की लड़ाई में मारा गया था। (३) एक साम का नाम। (४) एक प्रकार का भण।

विकर्णक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार की मंडिवन। (२) शिव का ब्याधि नामक गण।

विकर्णिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सारश्श प्रदेश।

विकर्णी संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार की हूट जिसका व्यवहार यज्ञ की वेदी बनाने में होता था। (२) एक साम का नाम।

विकर्त्तन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घृष्ट्यं। (२) मंदार। भाक।

विकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] निषिद्ध कर्म। विरुद्धाचार।

वि० कर्मभ्रष्ट। दुराचारी।

विकर्मस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] धर्मशास्त्रानुसार वह पुरुष जो वेद-विरुद्ध कर्म करता हो। वेद के विरुद्ध आचार करनेवाला व्यक्ति।

विकर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाण। तीर।

विकर्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भाकर्षण। खोंचना। (२)

विभाग। हिस्सा। (३) एक शास्त्र का नाम जिसमें भाकर्षण करने की विद्या का वर्णन है। उ०—सत्य अन्न मायाय महापठ घोर तेज तनुकारी। पुनि पर तेज विकर्षण लीजे सौम्य अन्न भयहारी।

विकल-वि० [ सं० ] (१) बिहल। ब्याकुल। बेचैन। (२)

कलाहीन। (३) खंडित। अपूर्ण। जैसे,—विकलांग। (४) चटा हुआ। हास्यप्रसन्न। (५) अस्वामयिक। अनैसगिक। (६) असमर्थ।

संज्ञा पुं० दे० "विकला"।

विकलांग-वि० [ सं० ] जिसका कोई अंग टूटा या खराब हो। न्यूनग। अंगहीन। जैसे,—लला, लंगड़ा, काना, संज्ञा आदि।

विकला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कला का साठवाँ अंग। (२) बुध जो जिसका रजोदर्शन होना बंद हो गया हो। (३) युद्ध ग्रह की गति का नाम। (४) समय का एक अत्यंत छोटा भाग।

विकलानाल-कि० प्र० [ सं० विकल + आना (भव०) ] ब्याकुल होना। धरराना। बेचैन होना। उ०—(क) निटुर बचन सुनि रयाम के युवती विकलानी। मनो महानिधि पाइके लाये पछितानी।—सूर। (ख) एक एक है हूँ बर्षी तरुनी विकलाहीं। सूर भयु कहुँ नाहि मिले हूँ दिति हमपाहीं।—सूर।

विकलास-संज्ञा पुं० [ सं० विकलास ] एक प्रकार का प्राचीन वाद्य, जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

विकलित-वि० [ सं० ] (१) ब्याकुल। बेचैन। (२) दुःखी। पीड़ित।

विकल्पद्वय-वि० [ सं० ] (१) जिसकी इंद्रियां घरा में न हों।

(२) जिसकी कोई इन्द्रिय खराब हो, अथवा बिल्कुल न हो।  
न्यूनन्द्रिय। जैसे,—लूण, लँगड़ा, काना, खंजा इत्यादि।  
विकल्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अति। भ्रम। धोखा। (२)  
एक बात मन में बैठकर फिर उसके विरुद्ध सोच बिचा।  
संशय का उदय। (३) विपरीत कल्पना। विरुद्ध  
कल्पना। (४) विशेष रूप से कल्पना करना या निर्धारित  
करना। जैसे,—दूढ़ विकल्प। (५) विविध कल्पना। नाना  
भाँति से कल्पना करना। (६) कई प्रकार की विधियों का  
मिलना।

विशेष—भीमासा में विकल्प दो प्रकार का माना गया है—  
एक कथवस्थापुक्त, दूसरा इच्छानुयायी। जिसमें दो प्रकार  
की विधियाँ मिलती हैं, उसे व्यवस्थापुक्त कहते हैं। यथा  
“दशं पीर्णमास याग में यव द्वारा होम करे, प्रीहि द्वारा  
होम करे” इसमें दो प्रकार की विधियाँ हैं। इसमें यदि  
कच्चा यव से होम करे या मीहि से, तो यह इच्छानुयायी  
विकल्प होगा। इच्छा विकल्प में आठ दोष होते हैं—  
प्रमाणत्व परित्याग, अप्रामाण्य कल्पना, अप्रामाण्योन्नीचन  
और प्रामाण्य हानि। ये चारों उक्त दोषों में ऊपरोक्त से आठ  
हो जाते हैं।

(७) योग शास्त्रानुसार पंच विधि विचष्टुत्तियों में एक, जो  
ऐसे शब्द-ज्ञान की शक्ति है जिसका वाच्य वस्तु नहीं होती।  
इसमें मनुष्य इस बात की योज नहीं करता कि अतुक्त शब्द  
का वाच्य कोई पदार्थ है या नहीं, अथवा हो सकता है या  
नहीं। परंपरा से उसके वाच्य के संबंध में ऐसा लोग मानते  
आते हैं, वैसा ही यह भी मान बैठता है। जैसे,—पारस  
परधर न मिला और न किसी ने देखा है। पर पारस परधर  
शब्द से लोग यही समझते हैं कि कोई ऐसा परधर है,  
जिसे के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। इस प्रकार के  
शब्दों के वाच्य के संबंध में जो वृत्ति चित्त में उत्पन्न होती  
है, उसे विकल्प कहते हैं। (८) अर्वांतर कल्प। (९) एक  
कारणालंकार जिसमें दो विरुद्ध बातों को लेकर कहा जाता  
है कि या तो यही होगा या यही। जैसे,—कै लखिन्हें मुल  
मोहन को कै पलास-प्रसून की भांगि जरीगी। (१०)  
वैचित्र्य। बिलक्षणता। (११) समाधि का एक भेद जिसे  
सविकल्प कहते हैं। (१२) प्याकरण में एक ही विषय के  
कई नियमों में से किसी एक का इच्छानुसार ग्रहण।

विकल्पसमाप्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यातादि दोषों की निमित्त  
अवस्था में प्रत्येक के अंशों की कल्पना करना। (वैद्यक)  
विकल्पसम-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्यायदर्शन में २४ जातियों में से  
एक जिसमें वादी के दिए हुए दृष्टांत में अन्य धर्म की  
योजना करते हुए साध्य में भी उसी धर्म का आरोप करके  
अथवा दृष्टांत की अंसिद्ध उदाहरण वादी की युक्ति का मिथ्या

खंडन किया जाता है। जैसे,—वादी—“शब्द अनित्य है,  
यद्यपि यह उत्पत्ति धर्मवाला है, घट के समान”। प्रति-  
वादी—“अनित्य और मूर्च्छ है, क्योंकि यह उत्पत्ति धर्मवाला  
है, घट के समान जो अनित्य और मूर्च्छ है।” यहाँ प्रतिवादी  
का अभिप्राय यह है कि या तो शब्द को मूर्च्छ मानो अथवा  
उसका नित्य होना स्वीकार करो।

विकल्पित-वि० [ सं० ] (१) जिसके संबंध में निश्चय न हो।  
संदिग्ध। (२) जिसका कोई नियम न हो। अनियमित।

विकल्पमय-वि० [ सं० ] जिसमें पाप न हो। निष्पाप। पाप-रहित।

विकल्प-वि० दे० “विकल्प”।

विकल्प-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मजीठ।

विकल्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा।

विकल्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विकल्पित ] प्रस्तुतन। फूटना।  
खिलना।

विकल्पना-कि० प्र० दे० “विकल्पना”।

विकल्प-वि० [ सं० ] विकल्पशील। खिलनेवाला।

संज्ञा पुं० एक कान्यालंकार जिसमें पहले कोई विशेष बात  
कहकर उसकी पुष्टि सामान्य बात से की जाती है। उ०—  
मधुर मोह मोहन तज्यो यह खामन की रीति। करौ  
आपने काज लौं तुम्हें भाति सौं प्रीति।

विकल्प-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शाल रंग की पुनर्नवा। शाल  
गद्दपुरना।

विकल्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी वस्तु का रूप, रंग आदि  
बदल जाना। (२) निरुक्त के चार प्रधान नियमों में एक  
जिसके अनुसार एक वर्ण के स्थान में दूसरा वर्ण हो जाता  
है। (३) दोष की प्राप्ति। विगड़ना। खराबी। (४) दोष।  
भुराई। अवस्तुण। (५) मन की वृत्ति या अवस्था। मनोवेग  
या प्रवृत्ति। चासना। उ०—सकल प्रकार विकार  
बिहाई। मन कम यचन करेहु तेवकाई।—सुलसी। (६)  
वेदांत और सांख्य दर्शन के अनुसार किसी पदार्थ के रूप  
आदि का बदल जाना। परिणाम। जैसे,—कंकण सोने का  
विकार है; क्योंकि यह सोने से ही रूपांतरित होकर बना है।  
(७) उपद्रव। हानि।

विकल्प-वि० [ सं० विकल्प ] (१) जिसमें विकार हो। विकार  
युक्त। (२) क्रोधादि मनोविकारों से युक्त। दुष्ट वास्तव-  
वाला। उ०—रे रे अंध बोंसहैं लोचन पर-तिय हर न  
विकारी। सुने भवन गवन तैं कीनो दोष रेल नहीं  
टारी।—सूर। (३) जिसमें विकार या परिवर्तन हुआ  
हो। परिवर्तित। उ०—तो हैं क्रोध न कियो विकारि।  
महादेव हू किये निहारि।—सूर।

संज्ञा पुं० [ सं० ] साठ संबंहरों में से एक संबंहर का नाम।

विकल्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अविच्छाल। देर। (२) ऐसा समय



जब देव कार्य या पितृकार्य करने का समय बीत गया हो ।  
सायंकाल का समय ।

पर्याय०—सायं । दिनांत । सायाह्न । विकालक ।

विकालत-संज्ञा स्त्री० दे० "विकालत" ।

विकालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घड़ियाल का कठोरा । जलपदी ।

विकाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रकाश । (२) प्रसार । फौलाच ।

विस्तार । वृद्धि । (३) आकाश । (४) विषम गति । (५)

प्रफुटन । खिलना । (६) एक काव्यालंकार जिसमें किसी

वस्तु का विना निज का आधार छोड़े अर्थात् विकसित होना

घणन किया जाता है । (७) किसी वस्तु की वृद्धि के लिये

उसके रूप आदि में उत्तरोत्तर परिवर्तन होना ।

वि० निर्जन । एकान्त ।

विकास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रसार । फौलाच । (२) खिलना ।

प्रफुटन होना । (३) किसी पदार्थ का उपरन्न होकर अन्त

या आरंभ से भिन्न भिन्न रूप धारण करते हुए उत्तरोत्तर

वदना । क्रमशः उपरत होना । जैसे,—सृष्टि का विकास,

मानव सम्पत्ता का विकास, यौन से पदों का विकास,

गर्भादि से दारी का विकास । (४) एक प्रसिद्ध पाश्चात्य

सिद्धांत जिसके आचार्य डार्विन नामक प्रसिद्ध प्राणि-

विज्ञानवेत्ता हैं । इस सिद्धांत में यह माना जाता है कि

आधुनिक श्वेत सृष्टि और उसमें पाए जानेवाले जीव-

जन्तु तथा वृक्ष आदि एक ही मूल तत्व से उत्तरोत्तर निकलते

गए हैं । यह सिद्धांत इस बात का विरोधी है कि सारी सृष्टि

जैसी है, वैसी ही एक बारगी उत्पन्न हो गई थी ।

रक्षा स्त्री० [ सं० वि+कार ] एक प्रकार की घास जो नीच

भूमि में होती है । इसकी पत्तियाँ घूब की भाँति पर कुछ

बढ़ी होती हैं । चौपाए इन्से बड़े घास से खाते हैं ।

विकासनाशक-कि० घ० [ सं० विनाश ] (१) प्रकट करना ।

निकालना । उ०—(क) जनु अष्टत होइ बचन विकास ।

संज्ञा पुं० स्वर के उच्चारण में होनेवाला एक प्रकार का दोष ।

विकीर्णरोम-संज्ञा पुं० [ सं० विकीर्णरोमन् ] एक प्रकार का सुगंधित

पीया ।

विकुंज-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक जाति का

नाम ।

विकुंडल-संज्ञा पुं० [ सं० वेकुंड ] वेंकुंड । उ०—(क) हरिरस माते

भगन रहइ । निरमल भगति प्रेमरस पीवइ आन न वृज

भाव धरइ । सहजइ सदा राम रसराते, मुक्ति विकुंडइ

कहा करइ ।—दादू । (ख) नारायण सुंदर भुज चारी ।

बसहि विकुंडहि सदा सुरारी ।—रघुराज ।

वि० [ सं० ] जो कुंडित न हो । तेज धारावाला । कुंड या

भुचरा का उलटा ।

विकुंभांड-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक दानव का नाम ।

विकुंदि-संज्ञा पुं० [ सं० ] अयोध्या के राजा कुंदि के पुत्र का

नाम ।

वि० जिसका पेट फूला या धागे को निकला हुआ हो । सौंद-

वाला ।

विकुस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

विकृष्टिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नासिका । नाक ।

विश्रुत-वि० [ सं० ] (१) जिसमें किसी प्रकार का विकार भा

गया हो । विगड़ा हुआ । (२) जो महा या कुरूप हो गया

हो । उ०—पुरण के शुक और श्री के भातेव में कैसा दोष

हो जाने से संतान नहीं होती अथवा विकृत संतान होती

है ।—जगन्नाथ शर्मा । (३) असाधारण । अस्वभाविक ।

(४) अपूर्ण । अपूरा । (५) विद्रोही । भरातक । (६)

रोगी । बीमार ।

संज्ञा पुं० (१) दूसरे प्रजापति का नाम । (२) पुराणानुसार

परिवर्त राक्षस के पुत्र का नाम । (३) साठ संवत्सरो में से

धीधीसर्वा संवत्सर ।

है। विहार। परिणाम। (५) परिवर्तन। (६) मन में होनेवाला क्षोभ। (७) विद्रोही होने का भाव। बाधुता। (८) मूल धातु से ब्रिगद्वर बना हुआ शब्द का रूप। (९) उन्नति। विकास। (१०) माया का एक नाम। (११) २३ वर्ष के पुत्रों की संज्ञा।

विहट्ट-वि० [ सं० ] खोंचा हुआ। आकृष्ट।

विक्रैट डोर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का छोटा चक्रदार दरवाजा या जाने का रास्ता, जो प्रायः कमर तक ऊँचा और ऊपर से बिलकुल खुला हुआ होता है। यह बागों आदि के बड़े दरवाजों के पास ही इसलिये लगाया जाता है कि आदमी तो आ जा सके, पर पशु आदि न आ सकें। इसके रूप प्रायः इस प्रकार के होते हैं—(१) <, (२) × ], (३) [ ◇ ]

विकेश-वि० [ सं० ] [ खी० विकेशी ] (१) जिसके बाल खुले हों। (२) गंगा।

वक्रा पुं० (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) पुच्छक तारा। (३) एक प्रकार के प्रेत।

विकेशी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मही (पृथ्वी) रूप त्रिव की पत्नी का नाम। (२) एक प्रकार की राक्षसी या पूतना।

विकोफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वृकासुर के पुत्र और बोक के छोटे भाई का नाम।

विकोप-वि० [ सं० ] (१) कोप या म्यान से निकली हुई (तन्त्रवार)। (२) जिसके उपर किसी प्रकार का आवरण या आच्छादन न हो।

विपटोरिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की घोड़ा गाड़ी जो दैतन में प्रायः फिटन से मिलती सुलती, पर उससे कुछ छोटी और हलकी होती है और जिसे प्रायः एक ही घोड़ा खोंचता है।

संज्ञा पुं० एक छोटे ब्रह्म का नाम जिसका पता ईश्वर नामक एक सुरोपियन ने सन् १८५० में लगाया था।

विक्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु का एक नाम। उ०—कठि तट प्रगट प्रताप महान त्रिविक्रम रक्षे। शृष्ट देस मैह परम रास वर विक्रम रक्षे।—गोपाल। (२) बल, शौर्य या दक्षि की अक्षिकता। ताकत का ज्यादा होना। बहादुरी। पराक्रम। उ०—(क) दासो भूरति चढेट प्रहसो विक्रम रासो।—गोपाल। (ख) वर भोगी भूपन को घरे पंचानन विक्रम धरिंक।—गोपाल। (ग) विपुल बल मूल सार्दक विक्रम जलद नाद मर्दन महावीर मारो।—मुक्तली। (३) हाकत। बल। (४) गति। (५) प्रसार। उ०। (६) साठ सातसठों से वे चौदहवों संवत्सर। (७) वेद पाठ की यह प्रणाली तिथिमें क्रम का अभाव हो। (८) दे० “विक्रमादित्य”।

वि० श्रेष्ठ। उपाय। उ०—सुवा सुफल है भाएई तेहि गुन ते सुख रात। कथा पीत सो तसौं सवरों विक्रम बात।—जायसी।

विक्रमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] काचित्केय के एक गण का नाम।

विक्रमण-संज्ञा पुं० [ सं० ] चलना। कदम रखना।

विक्रमाजीत-संज्ञा पुं० दे० “विक्रमादित्य”।

विक्रमादित्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] उज्जयिनी के एक प्रसिद्ध प्रतापी राजा का नाम जिनके संबंध में अनेक प्रकार के प्रवाद प्रचलित हैं। ये बहुत बड़े विद्याधरमी, कवि, उदार, गुणप्रादक और दानी कहे जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि इनकी समा में भी बहुत बड़े बड़े और प्रसिद्ध पंडित रहा करते थे, जो “नवरत्न” कहलाते थे और जिनके नाम इस प्रकार हैं—कालिदास, वररचित, भर्मासिंह, चन्वंतरि, क्षपणक, वेतालभट्ट, घटकपर्, रांडू और वराहमिहिर। परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से इन नौ विद्वानों का एक ही समय में होना सिद्ध नहीं होता, जिससे “नवरत्न” को लोग कल्पित ही समझते हैं। मान्यतः जो विक्रमी संवत् प्रचलित है, उसके संबंध में भी लोगों की यही धारणा है कि इन्हीं राजा विक्रमादित्य का चलाया हुआ है, पर इस बात का भी कोई ऐतिहासिक प्रमाण अभी तक नहीं मिला है कि विक्रमी संवत् के आरंभ होने के समय मालव देश में या उसके आस पास विक्रमादित्य नाम का कोई राजा रहता था। विक्रमी संवत् किस राजा विक्रमादित्य का चलाया हुआ है, इसका अभी तक कोई ठीक ठीक पता नहीं पला है। कुछ विद्वानों का मत है कि विक्रम संवत् का विक्रमादित्य नाम के किसी राजा के साथ कोई संबंध नहीं है और न वह किसी एक व्यक्ति का चलाया हुआ है। उनका मत है कि ईसवी सन् में ५८ वर्ष पूर्व शक नरपाणक गौतमीपुर में युद्ध में शुरी तरह परास्त करके उसे मार डाला था। इस युद्ध में उसने अपना जो विक्रम (धीरता) दिखाया था, उसी की स्मृति के स्वर में मालवों के गण ने उसी तिथि से वृत्त-युग का आरंभ माना; और इस प्रकार इस विक्रम संवत् का प्रचार हुआ। तात्पर्य यह है कि संवत्वाला “विक्रम” शब्द किसी विक्रमादित्य नामक संवत् चलायेवाले राजा का सूचक नहीं है, बल्कि यह पीछे के किसी राजा के विक्रम या धीरता का बोधक है। स्वर्द्ध पुराण में लिखा है कि कलियुग के तीस हजार वर्ष धीन जाने पर विक्रमादित्य नाम का एक बहुत प्रतापी राजा हुआ था। मोटे हिसाब से यह समय ईसवी सन् से प्रायः सौ वर्ष पूर्व पड़ता है; पर यह राजा कौन था, इसका निश्चय नहीं होता। यह भी प्रसिद्ध है कि इस राजा ने दाकों को एक घोर युद्ध में पराजित किया था और उसी विजय के उपलक्ष्य में अपना संवत्

भी चलाया था। शकों को परासित करने के कारण ही इसकी एक उपाधि "शाकरि" भी हो गई थी। बौद्धों और जैनियों के धर्मग्रंथों तथा चीनी और अरबी भादि यात्रियों के यात्रा विवरण में भी विक्रमादित्य के संबंध में कुछ फुटकर बातें पाई जाती हैं। पर न तो यही ज्ञात है कि इन्होंने कब से कब तक राज्य किया और न इनके जीवन की और बातों का ही कोई क्रमबद्ध इतिहास मिला है। इतिहास से यह भी पता चलता है कि गुप्त वंशीय प्रथम चंद्रगुप्त ने उत्तर भारत में शकों को परास्त करके "विक्रमादित्य" की उपाधि धारण की थी; परंतु ये संबद्ध चलानेवाले विक्रमादित्य के बहुत बाद के हैं। इसके अतिरिक्त इसी गुप्त वंश के समुद्रगुप्त के पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त ने भी "विक्रमादित्य" की उपाधि धारण की थी। ईसवी सातवीं शताब्दी के आरंभ में काश्मीर में भी विक्रमादित्य नाम का एक राजा हुआ था जिसके पिता का नाम रणादित्य था। इसी प्रकार चालुक्य वंश में भी इस नाम के कई राजा हो गए हैं। पीछे से तो मानों यह प्रथा सी चल पड़ी थी कि जहाँ कोई राजा कुछ अधिक पड़ निकलता था, तहाँ वह अपने नाम के साथ "विक्रमादित्य" की उपाधि लगा लिया करता था। यहाँ तक कि अक्षर की वाल्यावस्था में जब हेन्री दूसरे ने दिल्ली पर अधिकार किया, तब वह भी "विक्रमादित्य" धन बैठा था।

विक्रमाब्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] विक्रमादित्य के नाम से चला हुआ संवत् । विक्रम संवत् ।

विक्रमार्क-संज्ञा पुं० दे० "विक्रमादित्य" ।

विक्रमी-संज्ञा पुं० [ सं० विक्रमिन् ] (१) वह जिसमें बहुत अधिक बल हो। विक्रमवाला। पराक्रमी। उ०—अति विक्रमी मोरचजनन्दन। नाम तादृचज हृष्ट निकंदन।—रघुराज। (२) विष्णु। (३) शेर।

वि० विक्रम का। विक्रम संबंधी। वैशे,—विक्रमी संवत् ।

विक्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] मूल्य लेकर कोई पदार्थ देना। बेचना। विक्री। उ०—इस दहील के आधार पर क्रय-विक्रय के सामूहिक व्यापार में दस्तांदाजी करना—अर्थात् किसी चीज के बेचने या माल लेने की मनाई कर देना—और भी अनुचित बातें होगी।—स्वार्थीनता।

यौ०—क्रय-विक्रय ।

विक्रयक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रयण-संज्ञा पुं० [ सं० ] बेचने की क्रिया। विक्रय। विक्री।

विक्रयपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र जिसमें यह लिखा हो कि अमुक पदार्थ अमुक व्यक्ति के नाम इतने मूल्य पर बेचा गया। पैनामा।

विक्रयिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विक्रय करता या बेचता हो। बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रयी-संज्ञा पुं० [ सं० विक्रयिन् ] विक्रय करनेवाला। बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैक्रांत मणि। (२) शूर। वीर। बहादुर। (३) शोर। (४) पुराणानुसार हिरण्यवध के एक पुत्र का नाम। (५) व्याकरण में एक प्रकार की संधि जिसमें, जिसमें अविकृत ही रहता है। (६) एक प्रजापति का नाम। (७) पुराणानुसार ह्यंबकवाध के पुत्र का नाम जिसका जन्म मदाहसा के गर्भ से हुआ था। (८) चलने का ढंग। (९) साहस। हिम्मत। (१०) एक प्रकार का मादक पेय पदार्थ। वि० (१) जिसकी क्रांति नष्ट हो गई हो। (२) तेजस्वी। प्रतापी।

विक्रांता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अभिगम्य वृद्ध। अरणी। (२) जयंती। (३) मूसाकानी। (४) अदहुल। गुदहर। (५) अपराजिता। (६) लाल लज्जा। छुई मुई। (७) ईसपदी नाम की लता।

विक्रांति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गति। (२) छोड़े की संपन्न चाल। (३) विक्रम। बल। (४) वीरता। शूरता। बहादुरी।

विक्रायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विकार। खराबी। (२) किसी क्रिया के विरुद्ध होनेवाली क्रिया।

विक्रियोपमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का उपमालंकार जिसमें किसी विशिष्ट क्रिया या उपाय का अवलंबन बड़ा जाता है।

विक्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० विक्रय ] (१) बेचने की क्रिया या भाव। विक्रय। विक्री। (२) वह धन जो बेचने पर मिले।

विक्रीत-वि० [ सं० ] जो बेच दिया गया हो। बेचा हुआ।

विमृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] निष्टुर। निर्दय। निष्टुर।

विक्रंता-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो मूल्य लेकर देता हो। बेचनेवाला। विक्री करनेवाला।

विक्रंय-वि० [ सं० ] जो विक्रय होने को हो। विक्रंनेवाला।

विक्रय-वि० [ सं० ] विहृत। बेचन।

विक्रिय-वि० [ सं० ] जो पुराना होने के कारण सड़ या गल गया हो।

विक्रत-वि० [ सं० ] (१) जिसमें क्षत लगा हो। जिसमें खराब पड़ी हो। घायल। ज़ख्मी।

विक्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदक के अनुसार एक प्रकार का रोग जो अधिक मद्य-पान करने से होता है।

विक्रिय-वि० [ सं० ] (१) फँका या छितराया हुआ। (२) जिसका रवाना किया गया हो। त्यक्त। (३) जिसका दिमाग ठिकाने न हो। पागल। उ०—(क) उसकी नींद भी उड़

जती होगी और जो रात-दिन जागता होगा, तो विक्षिप्त या भ्रति रोगी होगा।—दयानंद । (ख) तुमहिं कछो धृति वाञ्छन माहीं । जहँ विक्षिप्त भूप छै जाहीं ।—रघुराज । (घ) घबराया हुआ । पागलों का सा । विकल । ध्याकुल ।

**विक्षिप्तक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] यह मृत शरीर जो अजयाया या गादा न गया हो, बल्कि घोड़ी कहीं फेंक दिया गया हो ।

**विक्षिप्तता-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] विक्षिप्त या पागल होने का भाव । पागलपन । उ०—यहाँ तक कि कुछ काल के पश्चात् स्वयं उसे ही अपनी विक्षिप्तता को देखकर विभ्रित होना पड़ता है ।—निबंधमालाद्वय ।

**विक्षीर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] भाक । मदार ।

**विक्षीरणी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] हुदी । दुग्धिका ।

**विक्षुब्ध-वि०** [ सं० ] जिसके मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ हो । जिसका मन घंचल हो गया हो । क्षुब्ध ।

**विक्षुब्धा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] एक छाया का नाम ।

**विक्षेप-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) ऊपर की ओर अथवा इधर उधर फेंकना । डालना । (२) इधर उधर हिलाना । झटका देना । (३) (धनुष की चोरी) खींचना । चिद्धा चढ़ाना । (४) मन को इधर उधर भटकाना । हृदयों को यश में न रखना । संयम का उलटना । उ०—ईश्यां, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषों से अलग होके सत्य आदि गुणों को धारण करे ।—दयानंद । (५) प्राचीन काल का एक प्रकार का अन्न जो फेंककर चलाया जाता था । (६) सेना का पदाव । छावनी । (७) एक प्रकार का रोग । (८) बाधा । विघ्न । खलल । वैसे,—इस काम में कई विक्षेप पड़े हैं । उ०—समाधि की प्राप्ति होने पर भी उसमें चित्त स्थिर न होना ये सब चित्त की समाधि होने में विक्षेप अर्थात् उपासना-योग के शत्रु हैं ।—दयानंद ।

**विक्षेपण-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) ऊपर अथवा इधर उधर फेंकने की क्रिया । (२) हिलाने या झटका देने की क्रिया । (३) धनुष की चोरी खींचने की क्रिया । (४) विघ्न । बाधा । खलल ।

**विक्षेपणवित्तर-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] छलितवित्तर के अनुसार एक प्रकार की प्राचीन छिपि या खेल-प्रणाली ।

**विक्षोभ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) मन की घंचलता या उद्विग्नता । क्षोभ । (२) हाथी की दाती का एक भाग या पार्श्व ।

**विक्षोभण-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) घुराणाउत्सार एक शानप का नाम । (२) मन में बहुत अधिक क्षोभ उत्पन्न होना या करना ।

**विक्षोभी-वि०** [ सं० विक्षोभिन् ] [ स्त्री० विक्षोभिणी ] जो क्षोभ उत्पन्न करे । क्षोभकारी ।

**विक्ष-वि०** [ सं० ] जिसकी नाक न हो । बिना नाकवाला ।

● संज्ञा पुं० दे० “विप” ।

**विष्वहा-संज्ञा** पुं० [ सं० विषवा ] गरुड ।

**विष्वदित्क-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह मृत शरीर जिसे पशुओं ने खा डाला हो ।

**विष्वानल-संज्ञा** पुं० [ सं० विषव्य ] सींग ।

**विष्वानस्त-संज्ञा** पुं० दे० “पैशानस्त” ।

**विष्वार्यध-संज्ञा** स्त्री० [ दि० विष्व = जहर + आर्यध (संघ) (शयन०) ] कद्दरी या जहर की सी गंध । विष्वार्यध । उ०—जो अन्ध्वाप भरै अरगजा । तोहु विष्वार्यध ओहि नहिं तजा । जायसी ।

**विष्वर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) राक्षस । (२) घोर ।

**विष्वयात-वि०** [ सं० ] जिसे सब लोग जानते हों । प्रसिद्ध । महाहूर । उ०—(क) यक्ष प्रबल थाड़े सुच मंडल तिन मान्यो निज भ्रात । तिनके काम अंश हरि प्रगटे भ्रूष जगत विष्वयात ।—सूर । (ख) मन तें यदि रघ जात केतु फडरात यान बस । छलि छजात सुरतात बहुत विष्वयात जगत बस ।—गोपाल ।

**विष्वयाति-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] विष्वयात होने का भाव । प्रसिद्धि । शोहरत । उ०—राम नाम मुमिरत सुजस मानन मयेठ कुजाति । कुतय कु-सर पुर राम यन लहत भुवन विष्वयाति । तुलसी ।

**विष्वयापन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] प्रसिद्ध करना । महाहूर करना ।

**विगंध-वि०** [ सं० ] (१) जिसमें किसी प्रकार की गंध न हो । (२) बद्धूदार । उ०—फंटक कलित त्रिनश्लित विगंध जल तिनके तटपत लता को ललचात जू ।—केदार ।

**विगंधक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] हनुवड़ी वृक्ष ।

**विगंधिका-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) हनुवा । हाकवेर । (२) अजगंधा । तिलवन ।

**विगणन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) हिसाब लगाना । लेखा करना । (२) ऋण से मुक्त होना । कर्म सुकाना ।

**विगत-वि०** [ सं० ] (१) जो गत हो गया हो । जो भीत चुका हो ।

• **विशेष**—जब यह शब्द यौगिक अवस्था में किसी संज्ञा के पहले आता है, तब इसका अर्थ होता है—“जिसका नष्ट हो गया हो” जैसे,—विगत-अर = जिसका अर उतार गया हो । विगत मन = जिसकी भाँति नष्ट हो गई हों । उ०—विगत प्राप्त प्रमुदित मन माहीं । निरखि राम छवि दग न अचाहीं । रामाधमेय ।

(२) गत से पहले का । अंतिम या भीते हुए से पहले का । वैसे,—विगत सप्ताह = गत सप्ताह से पहले का सप्ताह । (३) जो कहीं इधर उधर चला गया हो । (४) जिसकी प्रथा या कति नष्ट हो गई हो । जिसकी चमक आदि जाती रही हो । निष्पन्न । (५) रहित । विहीन । उ०—

(क) विगत मानसम सीतल मन पर गुन नहीं दोस फहींगो।—गुलसी। (घ) प्रमुदित जनक निरति अंगुज सुख विगत नयन मन पीर।—सूर।

विगता-वि० स्त्री० [ सं० ] (१) जो विवाह करने के योग्य न रह गई हो। (२) जो पर पुरुष से प्रेम करती हो।

विगति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्दशा। दुर्गति। खराबी।

विगतोद्भव-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पुत्र का नाम।

विगम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रस्थान। चला जाना। (२) समाप्ति। अंत। छातमा। (३) नाश। (४) मोक्ष।

विगर्हण-संज्ञा पुं० [ सं० ] भर्त्सना करना। डाँटना। डपटना।

धिकार। फटकार।

विगर्हण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भर्त्सना। डाँट। फटकार।

विगर्हित-वि० [ सं० ] (१) जिसे भर्त्सना की गई हो। जिसे डाँट या फटकार बतलाई गई हो। (२) घुरा। खराब। निन्दनीय। (३) निन्दित।

विगर्हा-वि० [ सं० ] जो भर्त्सना करने योग्य हो। डाँट डपटने या निन्दा करने के योग्य।

विगलित-वि० [ सं० ] (१) जो गिर गया हो। (२) जो बह गया हो। जो चूर या टपककर निकल गया हो। (३) बीजा पड़ा हुआ। छूटा हुआ। सिरिधिल। (४) विगड़ा हुआ।

उ०—प्रतुपति सर विगलित सुदल, तर्ह कुरुपता बास। बसी भरवि यक भयन में, पाप न बस्यो विनास।

—रामस्वयंबर।

विगाथा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आर्या छंद का एक भेद जिसके विषय

पदों में १२, दूसरे में १५ और चौथे में १८ मात्राएँ होती हैं और अंत का वर्ण गुरु होता है। विषय गणों में जाग

नहीं होता, पहले दल का छटा गण (२० ही मात्रा के कारण) एक लघु का मान लिया जाता है। इसे 'विगाथा' और 'उद्गीति' भी कहते हैं।

विगुण-वि० [ सं० ] जिसमें कोई गुण न हो। गुण रहित।

निगुण। वि० दे० "निगुण"। उ०—एषि रूप मनं तममं विगुणं। हृदयस्थ लखी सख त्यागि भ्रमं।—स्वामी रामकृष्ण।

विगाहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विगाथा। विगाथा नामक छंद जो आर्यों का एक भेद है।

विग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दूर या अलग करना। (२) विभाग।

(३) धार्मिक शब्दों अथवा समस्त पदों के किसी एक अथवा

अनेक शब्द को अलग करना। (४) ध्याकरण। (५) कलह।

लड़ाई। झगड़ा। (६) युद्ध। समर। (७) नीति के छः गुणों में से एक। विपक्षियों में फूट या कलह उत्पन्न करना।

(८) आकृति। नाक। (९) शरीर। (१०) मूर्ति। (१०) सजावट। शृंगार। (११) सांख्य के अनुचार कोई तत्व। (१२)

जिज का एक नाम। (१३) स्कंद के एक अनुचर का नाम।

विग्रहय-संज्ञा पुं० [ सं० ] रूप धारण करना। शङ्ख में आना।

विग्रही-संज्ञा पुं० [ सं० ] विप्रविद् [ (१) छपाई प्रगटा करनेवाला।

(२) युद्ध करनेवाला। (३) युद्ध विभाग का संप्री वा

सचिव।

विग्राह-वि० [ सं० ] जो इस योग्य हो कि उसके साथ लड़ाई

की जा सके। जिसके साथ युद्ध हो सके।

विघटन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संयोजक अंगों को अलग अलग

करना। (२) तोड़ना फोड़ना। उ०—प्रगटी घनु-विघटन

परिगटी।—गुलसी। (३) नष्ट करना।

विघटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] समय का एक छोटा मान। पदी

का २३वाँ भाग।

विघटित-वि० [ सं० ] (१) जिसके संयोजक अंग अलग-अलग

फिड़ गए हों। (२) जो तोड़ फोड़ ढाँध गया हो।

(३) नष्ट।

विघटन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खोलना। (२) पटकना। (३)

रगड़ना। (४) दे० "विघटन"।

विघटित-वि० [ सं० ] (१) चुला हुआ। (२) तोड़ा फोड़ा

हुआ।

विघन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आघात करना। चोट पहुँचाना।

(२) एक प्रकार का बहुत बड़ा हथौड़ा। घन। (३) इंद्र।

भू० संज्ञा पुं० दे० "विग्र"।

विघर्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी तरह रगड़ने या घिसने की

क्रिया।

विघस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) माहार। भोजन। खाना। (२)

बह अन्न जो देवता, पितर, गुरु या अतिथि आदि के खाने

पर बच रहे।

विघात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आघात। प्रहार। चोट। (२) टुकड़े

टुकड़े करना। तोड़ना फोड़ना। (३) नाश। (४) बाधा।

विघा। (५) सफल न होना। विफलता।

विघातक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विप्र डालनेवाला। बाधक।

विघातन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विघात करने की क्रिया। (२)

मार डालना। हत्या करना।

विघाती-संज्ञा पुं० [ सं० ] विघातक [ जो विघातनी ] (१) विघात

करनेवाला। (२) बाधा डालनेवाला। (३) हत्या करनेवाला।

घातक।

विघृणिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नासिका। नाक।

विघृणन-संज्ञा पुं० [ सं० ] चारों ओर घुमाना। चकर देना।

विग्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी काम के बीच में पड़नेवाली

अड़चन। रुकावट। बाधा। व्याघात। अंतगाप। खलक।

क्रि० प्र०—करना।—डाँटना।—दूर करना।—पढ़ना।—

होना।

विशेष—जब इस शब्द के साथ नायक, भाताक अथवा इनके

पर्यायवाची शब्दों का योग होता है, तब इसका अर्थ "गणेश" होता है।

(२) पाककटा ।

विभक्त-वि० [ सं० ] विभक्त करनेवाला । बाधा डालनेवाला ।

विभक्तकारी-संज्ञा पुं० [ सं० विभक्तकारिन् ] वह जो विभक्त डालता हो । बाधा उपस्थित करनेवाला ।

विभक्तित्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] गणेश ।

विभक्तनायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गणेश ।

विभक्तनायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गणेश ।

विभक्तपति, विभक्तराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] गणेश ।

विभक्तविनायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गणेश ।

विभक्तेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] गणेश ।

विभक्तेयकांता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद दूध ।

विचकित्त-वि० [ सं० ] घबराया हुआ ।

विचकित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मल्लिका या चमेली । मदनक ।

विचकित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुराणांनुसार एक दानव का नाम ।

विचक्षण-वि० [ सं० ] (१) प्रकृतमान् । चमकता हुआ । (२) जो स्पष्ट दिखाई दे । (३) जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो । विपुण । पारदर्शी । (४) पंडित । विद्वान् । (५) बहुत बढ़ा चतुर या बुद्धिमान् । उ०—(क) परम साधु सब बात विचक्षण । यसे ताहि मई सकल सुलक्षण ।—रघुराम । (ख) अंतरवेद विचक्षण गारि निरंतर अंतर की गति जानै ।—देव ।

विचक्षण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नागदंती ।

विचच्छन्न-संज्ञा पुं० [ सं० विचक्षण ] बहुत बढ़ा बुद्धिमान् या चतुर । उ०—(क) रत्न परम विचच्छन्न गरम तर धरम सुरच्छन्न करम कर ।—गोपाल । (ख) लच्छ रथी अल्पच्छ प्रथल प्रथल्य विचच्छन्न । कसे कच्छ निम सैनु रच्छ करि पर थल अच्छन ।—गोपाल । (ग) द्वै कपर मनिमय रदी मिलि तन दुति मुकुनालि । छिन छिन खरी विचच्छनी ललसि ध्रुव तिन आलि ।—विहारी ।

विचक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एकत्र करना । इकट्ठा करना । जमा करना । (२) जाँच पड़ताल करना । परीक्षा करना ।

विचक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इकट्ठा करना । एकत्र करना । (२) जाँचना । परीक्षा करना ।

विचक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चलना । (२) धूमना करना ।

विचक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चलना । (२) धूमना करना । (३) धूमना करना । उ०—आर्ष्य संतान उस दिन अपने प्राचीन वेप में विचक्षण करती थी ।—बालमुकुंद गुप्त ।

विचक्षण-संज्ञा पुं० दे० "विचरण" । उ०—(क) पूछ पूरी लोमा विचरण नरचर्प होइ खीकर की चरणन रचना ऊपर

दे ।—गौराल । (ख) भये कधीर प्रगट मथुरा में । विचरण लगे सकल यमुना में ।—कशीर ।

विचरना-कि० प्र० [ सं० विचरण ] चलना फिरना । उ०—(क)

जाग मई विचरि विचरि सब डौरा । हरि विमुक्तन किय

हरि की ओता ।—रघुराम । (ख) भोग समग्री जुती अगार ।

विचरन लगे सुख संसार ।—सूर । (ग) रामचरण धरि

हृदय मुदित मन विचरत फिरत निरांक ।—सूर ।

विचरनि-संज्ञा स्त्री० [ सं० विचरण ] चलने फिरने या विचरण करने की क्रिया या भाव ।

विचचिंका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुसूत्र के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें दाने निकलते भीर सुनली होती है । द्यौंकी । (२) छोटी कुंसी ।

विचल-वि० [ सं० ] जो बराबर हिलता रहता हो । (२) जो स्थिर न हो । अस्थिर । (३) डिगा हुआ । स्थान से हटा हुआ । (४) प्रतिज्ञा या संकल्प से हटा हुआ ।

मुहा०—चल-विचल होना = मन का किसी एक बात पर न टहलना । विच का चंचल होना ।

विचलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विचल होने की क्रिया या भाव । चंचलता । अस्थिरता । (२) घबराहट ।

विचलना-कि० प्र० [ सं० विचलन ] (१) अपने स्थान से हट जाना या चल पड़ना । ( विचलनः घबराहट या गडबडी आदि के समय ) उ०—(क) ओ जोवन मर्मत विघोसा ।

विचल विरह शिरह कै नासा ।—जायसी । (ख) हल विचलत लछिके मट सगरे । धरि धरि घनुष गदादिक अगरे ।—गोपाल । (ग) जो सीता सुतते विचलै ती

श्रीपति काहि सँभरि । मोसे मुग्ध महापायी को कौन क्रोध करि सारि ।—सूर । (२) विचलित होना । अधीर होना ।

घयाना । उ०—(क) जँहि भगत विनाहक इकरदन चलत समर विचलत प्रथल ।—गोपाल । (ख) चलत जबै रत हेत तथै विचलत लछिके पर ।—गोपाल । (३) प्रतिज्ञा या संकल्प पर हट न रहना । बात पर जमा न रहना ।

विचलाना-कि० प्र० [ सं० विचलन ] (१) इधर उधर हटाना या चलाना । विचलित करना । उ०—पृथि विधान मरि जोर सकल यदु दल विचलौयो ।—गोपाल । (२) ऐसा काम करना जिससे कोई घबरा जाय या स्थिर न रह सके ।

विचलित-वि० [ सं० ] (१) जो विचल हो गया हो । अस्थिर । चंचल । जैसे,—किसी चीज को देखकर मन विचलित होना । उ०—(क) उसकी बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण थी कि कोई कैसा ही दुष्ट काम हो, परंतु वह कभी विचलित न होता ।—कादंबरी । (ख) तेहि से अब यह रूप दुरावहु । विचलित सकल लोक मुख पावहु ।—दा० दि० । (२) प्रतिज्ञा या संकल्प से हटा हुआ । जो हट न रहा हो । डिगा हुआ ।

**विचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१)** वह जो कुछ मन से सोचा जाय अथवा सोचकर निश्चित किया जाय। किसी विषय पर कुछ सोचने या सोचकर निश्चय करने की क्रिया। (२) वह बात जो मन में उदयमान हो। मन में उदयेवाली कोई बात। भावना। स्वप्ना। जैसे,—अभी मेरे मन में विचार आया है कि चलकर उससे बातें करूँ। (३) राजा या न्यायाधीश आदि का वह कार्य, जिसमें वादी और प्रतिवादी के अभिप्राय और उत्तर आदि सुने जाते हैं; यह निश्चित किया जाता है कि किस पक्ष का कथन ठीक है; और तब कुछ निर्णय किया जाता है। मुकदमे की सुनवाई और फौसला। जैसे,—राजकर्मचारी दोनों को पकड़कर उनका विचार कराने के लिये उन्हें राजद्वार पर ले गया।

**पौ०—विचारकर्ता। विचारस्थल। विचारसभा।**

(७) विचरना। घूमना। (५) घुमाना। फिराना।

**विचारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ श्री० विचारिका ] (१)** वह जो विचार करता हो। विचार करनेवाला। उ०—इन बातों पर ध्यान करके विचारक पुरुष जानते हैं कि ऐसा धृष्टता केवल कवीश्वर का कल्पित मात्र है।—मत परीक्षा। (२) फैसला करनेवाला। न्यायकर्ता। उ०—तब तक विरोधी विचारकों का होना बहुत ही जरूरी है।—स्वाधीनता। (३) नेता। पथ-प्रदर्शक। (४) सुसंस्कार। जासूस।

**विचारकर्त्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१)** वह जो किसी प्रकार का विचार करता हो। सोचने विचारनेवाला। (२) वह जो अभिव्यक्ति आदि सुनकर उनका निर्णय करता हो। न्यायाधीश।

**विचारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१)** वह जो विचार करना जानता हो। (२) वह जो अभिव्यक्ति आदि का निर्णय या निपटारा करता हो।

**विचारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१)** विचार करने की क्रिया या भाव। (२) घूमना फिरना। (३) घुमाना। फिराना।

**विचारणा-संज्ञा श्री० [ सं० ] (१)** विचार करने की क्रिया या भाव। उ०—नयीं कि केवल अपनी बुद्धि, या अपने ज्ञान या अपनी विचारणा पर आदमी का विश्वास जितना कम होता है, उतना ही संसार की प्रमाद-हीनता या निष्प्रमत्ता पर उसका विश्वास अधिक होता है।—स्वाधीनता। (२) घूमने फिरने या घुमाने फिराने की क्रिया या भाव।

**विचारणीय-वि० [ सं० ] (१)** जो विचार करने के योग्य हो। जिस पर कुछ विचार करने की आवश्यकता हो। उ०—यह बड़े आवश्यक विचारणीय है कि यदि ऐसा ही है तो बिना कारण किसी को दूषित करना और व्यर्थ उस पर दोषारोपण कर लोगों में उसकी योग्यता कम करने के लिये यत्न करना नीचता एवं अधमता है।—निबंध-माला-

दत्त। (२) जो सिद्ध न हो। जिसे प्रमाणित करने की आवश्यकता हो। विषय। संदिग्ध।

**विचारना-कि० प्र० [ सं० विचार + ना (प्रत्य०) ] (१)** विचार करना। सोचना। समझना। धौर करना। उ०—(क) कृष्णदेव द्वारावलि उन्हें। मन में बहुत विचारत रहे।—सचल (ख) फिर मैंने यह बात विचारी कि लिखने में तो कुछ अधिक अर्थ नहीं होता।—प्रद्वाराम। (ग) आजुही भजादवी धरा करीं विचारि कै।—गोपाल। (घ) रचो विरंचि विचार तहें, नृपमणि मधुकर शाहि।—केशव। (२) पूछना। (३) ईदना। पता लगाना। उ०—तुझही तेहि अवसर लावनता वस चारि नव तीनि पुरीस सवै। मति नारति पंगु भई जो निहारि विचारि फिरि उपमान पवै।—तुलसी।

**विचारपति-संज्ञा पुं० [ सं० विचार + पति ]** वह जो किसी बड़े न्यायालय में बैठकर मुकदमों आदि के फैसले करता हो। विचारक। न्यायाधीश।

**विचारवान्-संज्ञा पुं० [ सं० ]** वह जिसमें सोचने समझने या विचारने की अच्छी शक्ति हो। विचारशील।

**विचारशक्ति-संज्ञा श्री० [ सं० ]** वह शक्ति जिसकी सहायता से विचार किया जाय। सोचने या मझ घुसा पहचानने की शक्ति। उ०—मनुष्य जानता तो है कि मैं जीजा हूँ और सोच विचार भी करता हूँ, परंतु प्राण और विचारशक्ति कितने बनावी गई।—मोक्षनिन्दन।

**विचारशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ]** नीमांसा शास्त्र।

**विचारशील-संज्ञा पुं० [ सं० ]** वह जिसमें किसी विषय को सोचने या विचारने की अच्छी शक्ति हो। विचारवान्। उ०—(क) जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनंत देवर्ष्य है, इससे उस परमात्मा का नाम ईश्वर है।—सत्यार्थ-प्रकाश। (ख) विद्वान् बुद्धिमान और विचारशील पुरुषों के धरण जिस भूमि पर पड़ते हैं, वह तीर्थ बन जाती है।—सिध्दशंखु का चिह्न।

**विचारशीलता-संज्ञा श्री० [ सं० ]** विचारशील होने का भाव या धर्म। बुद्धिमत्ता। अहमर्दो। उ०—आत्मकथ्य का भाव्यी अर्थ विचारशीलता या बुद्धिमानी है।—स्वाधीनता।

**विचारस्थल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१)** वह स्थान जहाँ किसी विषय पर विचार होता हो। (२) न्यायालय। अदालत।

**विचारार्थ्यल-संज्ञा पुं० [ सं० ]** वह जो न्याय-विभाग का प्रधान हो। प्रधान विचारक। प्रधान न्यायाधीश।

**विचारालय-संज्ञा पुं० [ सं० ]** वह स्थान जहाँ अभियोगों आदि का विचार होता हो। न्यायालय। कचहरी। उ०—बड़े बड़े आचार्य नीतिज्ञ धर्मशास्त्री लोग विचारालय में बैठे विचार कर रहे हैं।—कदंबरी।

विचारिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्राचीन काल की वह दासी जो घर में लगे हुए फूल पौधों की देख-भाल तथा इसी प्रकार के और काम करती थी। (२) वह स्त्री जो अभियोगों आदि का विचार करती हो।

विचारित-वि० [ सं० ] (१) जिस पर विचार किया जा चुका हो। जो सोचा समझा जा चुका हो। (२) जो अभी विचाराधीन हो। जिस पर विचार होने की हो।

विचारी-संज्ञा पुं० [ सं० विचारिन् ] (१) वह जिस पर चलने के लिये बहुत बड़े बड़े मार्ग बने हों ( जैसे, टुप्पी )। (२) जो इधर उधर चलता हो। विचरण करनेवाला। (३) वह जो विचार करता हो। विचार करनेवाला। (४) कवच के एक पुत्र का नाम।

विचारु-संज्ञा पुं० [ सं० ] भागवत के अनुसार ब्रह्मिण्य के एक पुत्र का नाम।

विचार्य-वि० [ सं० ] जो विचार करने के योग्य हो। जिस पर विचार करने की आवश्यकता हो। विचाराणीय।

विचारान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हटाना या चलाना। (२) नष्ट करना।

विचिंतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिन्ता करना। सोचना।

विचिन्तनीय-वि० [ सं० ] जो चिन्ता करने या सोचने योग्य हो।

विचिन्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोच-विचार।

विचिन्त्य-वि० [ सं० ] (१) जो चिन्तन करने या सोचने के योग्य हो। (२) जिसमें किसी प्रकार का संदेह हो। संदिग्ध।

विचि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धोधी। तरंग। लहर।

विचिकित्सा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) संदेह। अनिश्चय। शक। (२) वह संदेह जो किसी विषय में कुछ निश्चय करने के पहले उत्पन्न हो और जिसे दूर करके कुछ निश्चय किया जाय।

विचिन्त-वि० [ सं० ] जिसका अन्वेषण किया जाय।

विचिन्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विचार। सोचना। (२) अनुसंधान।

विचिन्त-वि० [ सं० ] (१) अचेत। बेहोश। (२) जिसका चित्त ठिकाने न हो। जो अपना कर्तव्य न समझ सकता हो।

विचिन्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बेहोशी। (२) वह अवस्था जिसमें मनुष्य का चित्त ठिकाने न रहे।

विचित्र-वि० [ सं० ] (१) जिसमें कई प्रकार के रंग हों। कई तरह के रंगों या वर्णोंवाला। (२) जिसमें किसी प्रकार की विलक्षणता हो। जिसमें किसी प्रकार की असाधारणता हो। विचक्षण। जैसे, - (क) ऐसा विचित्र पक्षी मैंने पहले नहीं देखा था। (ख) हम भी बड़े विचित्र भादमी हो। (३) जिसके द्वारा मन में किसी प्रकार का आनन्द उत्पन्न हो। विस्मित या चकित करनेवाला। (४) सुन्दर। उत्कृष्ट।

संज्ञा पुं० (१) पुराणानुसार रौच्य मनु के एक पुत्र का नाम।

(२) साहित्य में एक प्रकार का अर्थालंकार जो उस समय होता है, जब किसी फल की सिद्धी के लिये किसी प्रकार का उछटा प्रयत्न करने का उल्लेख किया जाता है। उ०—(क) कठिनीकौ उजवल सुधा सौं अभिराम देखो, मन मजबाम रँगती है श्याम रंग में। (ख) राम कहेव रिस तजहु मुनीस। कर कुआर भागे यह सीता। - तुलसी। (ग) जीवन हित प्राणहि तमज नयँ उँचाई हैत। सुख कारण दुख संग्रहँ बह्या पुरुष सचेत। (घ) क्यों नहि गंगा को सुमिरि दूरस परस सुख लेत। जाके तट में मरत नर अमर होने के हेत।

विचित्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भोजपत्र का वृक्ष। वि० दे० "विचित्र"।

विचित्रता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रंग विरंगे होने का भाव। (२) विलक्षण या अद्भुत होने का भाव।

विचित्रदेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेघ। बादल।

विचित्रवीर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रवंशी राजा शांतनु के पुत्र का नाम जिसकी कथा महाभारत में है। जब राजा शांतनु ने अपने पुत्र भीष्म के आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा करने पर सत्यवती के साथ विवाह कर लिया था, तब उसी सत्यवती के गर्भ से उभड़ें चित्रांगद और विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। चित्रांगद तो छोटी भवस्था में ही एक गंधर्व द्वारा मारा गया था; पर विचित्रवीर्य ने बड़े होने पर राज्याधिकार पाया था। इसने कालिराज की भयिका और अंबालिका नाम की दो कन्याओं के साथ विवाह किया था। परंतु थोड़े ही दिनों बाद निःसंतान भवस्था में ही इसकी मृत्यु हो गई। सत्यवती को विवाह से पहले ही परावार से गर्म रह चुका था और उससे द्वैपायन का जन्म हुआ था। विचित्रवीर्य के निःसंतान मर जाने पर सत्यवती ने अपने उसी पहले पुत्र द्वैपायन को बुलाया और उसे विचित्रवीर्य की विधवा स्त्रियों के साथ नियोग करने को कहा। तदनुसार द्वैपायन ने भूतराष्ट्र, पांडु और विदुर नाम के तीन पुत्र उत्पन्न किए थे।

विचित्रशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के विचित्र पदार्थों का संग्रह हो। अजायबघर।

विचित्रांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोर। (२) बाघ।

विचित्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक रागिनी जिसे कुछ लोग भैरव राग की पाँच स्त्रियों में से एक और कुछ लोग त्रिवण, बारी, गौरी और जयती के मेल से बनी हुई संकर जाति की मानते हैं।

विचित्रित-वि० [ सं० ] जो कई तरह के रंगों आदि से बना हो। अनेक प्रकार के रंगों से चिपिन। रंग-विरंगा।



विचिसलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधुत के अनुसार एक प्रकार का जहरीला कीड़ा ।

विचि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वीची । तरंग । लहर ।

विचेतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसे चेतना न हो । संज्ञानहीन । अचेतन । बेहोश । (२) वह जिसे भले बुरे का ज्ञान न हो । विवेकहीन ।

विचेता-संज्ञा पुं० [ सं० विचेत० ] (१) जिसका चित्त ठिकाने न हो । घबराया हुआ । (२) बेहोश । (३) जिसे किसी विषय का विवेक ज्ञान हो । (४) दुष्ट । पापी । (५) मूर्ख । बेवकूफ ।

विचेष्ट-वि० [ सं० ] जिसमें किसी प्रकार की चेष्टा न हो । जो हिलता दोलता न हो ।

विचेष्टन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीड़ा भादि से बुरी चेष्टा करना । हथर उधर खोटना । लड़पना ।

विचेष्टा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बुरी या खराब चेष्टा करना । मुँह यनाना या हाथ पैर पटकना ।

विच्छेदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देव-मंदिर । देवालय । (२) प्रासाद । महल ।

विच्छेन्नक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुसनी का साग ।

विच्छेदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देव-मंदिर । देवालय । (२) प्रासाद । महल ।

विच्छेदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैं । वमन ।

विच्छेदिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वमन । कैं ।

विच्छेदित-वि० [ सं० ] (१) जो वमन किया गया हो । कैं किया हुआ । (२) जिसकी उपेक्षा की गई हो । जो तुच्छ समझा गया हो ।

विच्छेद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] घेंत की छता ।

विच्छेद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पत्तियों की छाया । (२) मणि । (३) वह जिसकी छाया न पड़ती हो ।

विशेष-प्रायः ऐसा माना जाता है कि देवताओं, दानवों, भूतों और प्रेतों आदि की छाया नहीं पड़ती ।

वि० कतिहीन । श्रीहीन ।

विच्छिन्नि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काटकर भलग या टुकड़े करना । (२) विच्छेद । भलगना । (३) कमी । छुट । (४) वेपथूया आदि में होनेवाली लापरवाही या बेवगपन । (५) रंगों आदि से शरीर को चित्रित करना । (६) कविता में, यति । (७) एक प्रकार का हार । (८) साहित्य में एक हाथ जिसमें की थोड़े शृंगार से पुरुष को मोहित करने की चेष्टा करती है । उ०—येंदी माछ, तमोल सुख, सीस सिलसिले बार । रग शरैँ, राजे खरी, साजे सहज सिंगार ।

विच्छिन्न-वि० [ सं० ] (१) जो काट या टैडकर भलग कर दिया गया हो । जिसका अपने मूल अंग के साथ कोई संबंध न

रह गया हो । विभक्त । (२) बुरा । भलग । उ०—जंग-निवासी इस्से विच्छिन्न नहीं हुए वरंघ और युक्त हो गये । —जिबभभु का चिट्ठा । (३) जिसका विच्छेद हुआ हो । (४) जिसका घंठ हो गया हो । (५) कुटिल ।

विच्छेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काट या टैडकर भलग करने की क्रिया । (२) क्लम का घीघ से टूट जाना । सिलसिला न रह जाना । (३) किसी प्रकार भलग या टुकड़े टुकड़े करना । सय में से कुछ भलग करना । (४) नाश । उ०—प्रेते इत समय यक्ष मुक्त जीव हैं, यैसे ही सर्वदा रहते हैं; अथांत विच्छेदबंध मुक्ति का कभी नहीं होता, किंतु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती—दयानंद । (५) विहा । वियोग । (६) पुस्तक का प्रकरण या अध्याय । परिच्छेद । (७) घीघ में पड़नेवाला खाली स्थान । अवकाश । (८) कविता में यति ।

विच्छेदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो विच्छेद करता हो । (२) वह जो काट या टैडकर भलग करता हो । (३) विभाग करनेवाला । विभाजक ।

विच्छेदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काट या टैडकर भलग करने की क्रिया । भलग करना । (२) नष्ट करना । बरबाद करना ।

विच्छेदनीय-वि० [ सं० ] (१) जो काट या खेदकर भलग करने के योग्य हो । (२) जो विच्छेद करने के योग्य हो ।

विच्छेदी-संज्ञा पुं० [ सं० विच्छेद० ] वह जो विच्छेद करता हो । विच्छेदन करनेवाला ।

विच्छेद्य-वि० [ सं० ] जो विच्छेद करने के योग्य हो । जो काटने या विभाग करने के योग्य हो ।

विच्युत-वि० [ सं० ] (१) जो कटकर अथवा और किसी प्रकार हथर उधर गिर पड़ा हो । (२) जो जीवित अंग में से काटकर निकाला गया हो । (वैद्यक) (३) जो अपने स्थान से गिर या हट गया हो । च्युत ।

विच्युति संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ का अपने स्थान से हट या गिर जाना । च्युत होना । (२) गर्भ का गिर जाना । गर्भ-पात ।

विच्छिन्नार्थी-क्रि० प्र० [ वि० फिसलना ] (१) फिसलना । (२) विचलित होना । उ०—उडख्यो उदयितान विच्छिन्नो ग्रहन-राज ध्यान की धमरि भूरि भूछी भूतराज की ।—रघुराज । विच्छेदक-संज्ञा पुं० [ सं० विच्छेद० ] म्रिय से भलग या बूर होना । वियोग । विच्छेद । उ०—सूरधवाम के परम भावती पठक न होत विच्छेद ।—सूर ।

विच्छेदी-संज्ञा पुं० [ वि० विच्छेद + ई (प्रत्य०) ] वह जिसका अपने म्रिय से विच्छेद हो गया हो । वियोगी । उ०—हिच-पियारा मीत विच्छेदी । साथ न छाग थाप या सोदी ।—जायसी ।

विच्छेदक-संज्ञा पुं० [ सं० विच्छेद० ] म्रिय से भलग या बूर होना ।

विशेष । उ०—जस-विशोद जल मीन दुहेला । जल हति कादु भंगन महे मेला ।—तापसी ।

विजय-वि० [ सं० ] (१) जिसकी जड़ें कट गई हों या न हों ।  
(२) (गर्भ) जिसमें धुरी और पहिपू आदि न हों ।

विजय-संज्ञा पुं० दे० "विजयी" ।

विजय-वि० [ सं० ] जिसमें भयना जहाँ आत्मी न हो । जन-रक्ष । एकांत । निराला । उ०—तहाँ सचिव सच लेहि सुचारी । भूपति विजय भवन महे दारी ।—रघुराज ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] ध्वजन । दवा करने का पंखा । धीजन ।

उ०—(क) मुरछल चँवर विजयन बहु करते । मृदु कदि राह परिछम हारते ।—गोपाल । (ख) कौक विजयन छोलावन छारे । कौड सींचे जल अति अनुराते ।—रघुराज ।

विजयनता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विजय होने का भाव । एकांत का भाव ।

विजयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जनन काने की क्रिया । प्रसव ।

विजयनाली-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजय । पंखा । उ०—हत एक सखी बतराय रही विजय हत एक झुलाय रही—संगीत शाकुंतल ।

विजयमा-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजयम् । (१) किसी स्त्री का उसके उपरति पामार से उत्पन्न पुत्र । जारज । दोगला । (२) मनु के अनुसार एक वर्षांकर जाति । (३) वह जो जाति प्युत कर दिया गया हो ।

विजयमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो प्रसव करने को हो । गर्भवती । गर्भिणी ।

विजयपंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र का एक नाम ।

विजयतिफा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक योगिनी का नाम ।

विजयती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक अप्सरा का नाम । (२) मासी वृत्ति ।

विजय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) युद्ध या विवाद आदि में होनेवाली जीत । विपत्ती या शत्रु को दबाकर अपना प्रभुत्व या पक्ष स्थापित करना । जय । जीत । पराजय का उलटा । (२) एक प्रकार का छंद जो केशव के अनुसार सवैया का सप्तम्यंद नामक भेद है । (३) भोजन करना । खाना । (परब)

विजयक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विजय करता हो । सदा जीतनेवाला ।

विजयकुंजर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा की सवारी का हाथी । (२) लड़ाई के मैदान में जानेवाला हाथी ।

विजयकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ध्वजा जो शत्रु पर विजय प्राप्त करके फहराई जाती है । विजय-पताका ।

विजयकच्छुद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पौंच स्त्री मोतियों का हार । (२) एक प्रकार का कश्मिर हार जो दो हाथ लंबा और

५०४ लक्षियों का माना जाता है । कहते हैं कि ऐसा हार केवल देवता छोग पहनते हैं ।

विजयखंडिम-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा बोल जो युद्ध के समय पजाया जाता था ।

विजयतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम ।

विजयदंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सैनिकों का वह समूह अथवा सेना का वह विभाग जो सदा विजयी रहता हो । (२) सेना का एक विशिष्ट विभाग जिस पर विजय विशेष रूप से निर्भर करती है ।

विजयपद्ममी-संज्ञा स्त्री० दे० "विजयादामी" ।

विजयतंदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] इक्ष्वाकु वंश के राजा जय का एक नाम ।

विजयपताका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सेना में की वह पताका जो जीत के समय फहराई जाती है । (२) विजय का सूचक कोई चिह्न ।

विजयपर्वटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो पारे, जयंती के पत्तों, रेंद की जड़ और अद्रक आदि के योग से बनाई और संप्रहणी रोग में दी जाती है ।

विजयपूर्णिमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विजयादामी के उपरति पड़नेवाली पूर्णिमा । आश्विन की पूर्णिमा ।

विशेष—इस तिथि को यंगल में लक्ष्मी का पूजन होता और उसय मनाया जाता है ।

विजयभैरव-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का रस । इसमें हृद्द का छिलका, चीता, इलायची, तज, सौंदा, पीपल, छोहसार आदि के योग से गंधक और पारे की कजली तैयार की जाती है । यह सय प्रकार के रोगों और दुर्बलता को दूर करनेवाला माना जाता है ।

विजयभैरव तैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो मालकंगनी, अजवायन, काले जीरे, मेथी और तिल के कोल्हू में पेरकर निहाला जाता है और जो सय प्रकार के वायु रोगों का नाशक माना जाता है ।

विजयमहल-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का बोल । डक्का ।

विजय यात्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह यात्रा जो किसी पर किसी प्रकार की विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाय ।

विजय रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, गंधक और सीसे के योग से बनता और प्रायः बर्जीय रोग में दिया जाता है ।

विजयलक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विजय की अर्चिष्ठात्री देवी, जिसकी कृपा कर विजय निर्भर मानी जाती है ।

विजयशील-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो परावर विजय करता हो । सदा जीतनेवाला ।

विजयश्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विजय की अधिष्ठात्री देवी जिसकी कृपा पर विजय निर्भर मानी जाती है ।

विजयसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी औजार बनाने और इमारत के काम में आती है ।  
वि० दे० "विजयसार" ।

विजया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पुराणानुसार पार्वती की एक सखी का नाम जो गोतम की कन्या थी । (२) दुर्गा । (३) यम की माया का नाम । (४) हरीतकी । हरे । (५) वच । (६) जयंती । (७) मजीठ । (८) एक प्रकार का द्रुमी । (९) अग्निसंघ । (१०) भंगि । सिद्धि । भंग । उ०—(क) संसार के सब दुःखों और समस्त विताओं को जो शिवशंभु दाम्नी दो झुल्ल, वृष्टी पीकर भुजा देता था, आज उसका उस प्यारी विजया पर भी मन नहीं है ।—शिवशंभु का चिद्धा । (ख) हम तो यह जानते हैं कि यदि किसी मंत्र, यंत्र से सर्पादि के डंक का कष्ट या कोई ज्वर, शूल आदि विकार दूर हो जाता हो, तो वह मंत्र संख्या, धनूरा, विजयादि के विषों पर पढ़ा हुआ भी अवश्य फल करे ।—श्रद्धाराम । (११) एक योगिनी का नाम । (१२) वर्तमान अथसंपिणी के दूसरे अर्धत की माता का नाम । (१३) दक्ष की एक कन्या का नाम । (१४) श्रीकृष्ण की माता का नाम । (१५) इंद्र की पताका पर की एक कुमारी का नाम । (१६) प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा खेमा । (१७) कारमीर के एक पवित्र क्षेत्र का नाम । (१८) दस मात्राओं का एक मात्रिक छंद जिसमें अक्षरों का कोई नियम नहीं होता और जिसके अंत में रगण रखना कर्ण मधुर होता है । (१९) एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं । इसके अंत में लघु और गुरु अथवा नगण भी होता है । उ०—चरन यधु धारिण् । धारण प्रति धारिण् । छगन ना बिसारिण् । सुविजया सग्यारिण् । (२०) दे० "विजयादशमी" ।

विजया एकादशी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी । (२) फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी ।

विजया दशमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी जो हिंदुओं का और वियोपतः क्षत्रियों का एक बहुत बड़ा त्यौहार है । प्राचीन काल में राजा लोग इसी दिन अपने शत्रुओं पर आक्रमण करने अथवा दिविजय आदि करने के लिये निकला करते थे । इस दिन देवी, घोड़े, हाथी और खट्वा आदि का पूजन तथा राजा के दर्शन करने का विधान है । इस दिन किसी मृत कार्य का आरंभ करना बहुत ही शुभ समझा जाता है ।

विजयानंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक । (२) वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो

पारे और हरताल के योग से बनाई जाती और कुछ रोग में डी जाती है ।

विजयार्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।  
विजया वटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रका की वटिका या मोठी जो पारे और गंधक के योग से बनाई जाती है और जिसका व्यवहार संग्रहणी रोग में होता है ।

विजया सप्तमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फलित ज्योतिष के अनुसार किसी मास के शुक्ल पक्ष की यह सप्तमी जोरविचार को बढ़ा ऐसी तिथि को पुराणानुसार रामचंद्र जी का पूजन और दान करने का विधान है ।

विजयी-संज्ञा पुं० [ सं० विजयिन् ] [ स्त्री० विजयिनी ] (१) वह जिसने विजय प्राप्त की हो । विजय करनेवाला । जीतनेवाला । उ०—(क) सीजर भी उसी धर्म के प्रभाव से ऐसी विजयी सेना संग होने पर भी काँप उठता है ।—तोताराम । (ख) पुरावत-विजयी द्विद मच उसके सब । मेघों से टकर मार खेळते हैं अथ ।—द्विवेदी । (ग) पाँचव विजयी यह कथा, राजा सुन दे कान । विजय होय, सब जगत में, शत्रु होय क्षय जान ।—सबक । (२) अर्जुन ।

विजयेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम, जो विजय के देवता माने जाते हैं ।

विजयोरसव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह उरसव जो आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को होता है । विजया दशमी को होनेवाला उरसव । (२) वह उरसव जो किसी प्रकार की विजय प्राप्त करने पर होता है ।

विजय-वि० [ सं० ] (१) जिसे जरा या बुढ़ापा न आता हो । (२) नवीन । नया ।

विजरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ब्रह्मलोक की एक नदी का नाम ।  
विजल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल या वर्षा का अभाव । अना-वृष्टि । सूखा । (२) जल का न होना । पानी का अभाव ।

विजला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंबु या चंच नाम का साग ।  
विजदप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सच, झूठ और तरह तरह की उद यतों यतें करना । धर्म की यहुत सी बकवाद । (२) किसी सज्जन या भले आदमी के संबंध में हेतुपूर्ण झूठी बातें कहना ।

विजगण-संज्ञा पुं० [ सं० विजोग ] विमोह । विभोग । उ०—सूरज जरत हिमंचल ताका । विह विजग सौँह रथ हाँका ।—जापसी ।

विजगील-संज्ञा पुं० [ सं० विजोगी ] जिसका अपने प्रिय से विजोह हुआ हो । विजोगी । उ०—तेहि के जरत जो उठे विजगी । तीनों लोक जर्हि तेहि लागी ।—जापसी ।

विजात-वि० [ सं० ] वर्णसंकर । दोगला । हरामजादा ।

छाया पुं० सखी छंद का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में ५-५-४ के विधाम से १४ मात्राएँ और अंत में मगण या यगण होता है। इसकी पहली और आठवीं मात्राएँ लघु रहती हैं। इसके अंत में जगण, तगण वा रगण नहीं होना चाहिए।

विज्ञाता-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) जाजर लक्ष्मी। योगली। (२) वह स्त्री जिसे हाथ में संतान हुई हो। ज़या।

विज्ञाति-वि० [ सं० ] मित्र या दूसरी जाति का।

विज्ञातीय-वि० [ सं० ] जो दूसरी जाति का हो। एक भयवा अपनी जाति से भिन्न जाति का। उ०—(क) हम विज्ञातीय कार्यकर्ताओं की यनाई हुई वस्तुओं को काम में लाते हैं। (ख) महा से प्रथक् कोई सजातीय विज्ञातीय और स्वगत भयवों के भेद न होने से एक महा ही सिद्ध होता है।—दयानन्द।

विज्ञानु-छंदा पुं० [ सं० ] लघुवार चलाने के ३३ हाथों में से एक हाथ या प्रकार। उ०—तिमि सख्य जानु विज्ञानु संकोचित सुभादित चित्रको।—रघुराज।

विज्ञार-छंदा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की मटिया भूमि जिसमें धान और कमी कमी धान भी बोया जाता है।

विज्ञारत-छंदा स्त्री० [ सं० ] यज्ञ का पद, धर्म या भाव। मंत्रित्व। उ०—वज्ञारत की तनहाइ १ लाइ रपप की और विज्ञारत के दस्तर समेत २ लाइ रपप की सालाना है।—देवीप्रसाद।

विज्ञिगीया-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) वह दृष्टा जिसके अनुसार मनुष्य यह चाहता है कि मुझे कोई यह न कह सके कि मैं अपना पेट पालने में असमर्थ हूँ। (२) विजय प्राप्त करने की दृष्टा। (३) व्यवहार। (४) बर्द्धपे। उन्नति।

विज्ञिगीयु-वि० [ सं० ] विजय की दृष्टा करनेवाला।

विज्ञिगीयुता-छंदा स्त्री० [ सं० ] विज्ञिगीयु होने का भाव या धर्म।

विज्ञिट-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) भेंट। मुलाकात। (२) डाक्टर आदि का रोगी के देखने के लिये आना। (३) वह धन जो डाक्टर आदि को आने के उपलक्ष्य में दिया जाय। डाक्टर की फीस।

विज्ञिटसें युक्त-छंदा स्त्री० [ सं० ] किसी सार्वजनिक संस्था की वह पुस्तक जिसमें यहाँ के आने जानेवाले अपना नाम और कमी कमी उस संस्था के संबंध में अपनी सम्मति भी लिखते हैं।

विज्ञिटिंग कार्ड-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का बटिया छोटा कार्ड जिस पर खोग अपना नाम, पद और पता छपवा देते हैं; और खय किसी से मिलने जाते हैं; तब उसे अपने आगमन की सूचना देने के लिये पहले यह कार्ड उसके पास भेज देते हैं।

विज्ञित-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वह जिस पर विजय प्राप्त की गई हो। वह जो जीत लिया गया हो। (२) वह प्रदेश जिस पर विजय प्राप्त की गई हो। जीता हुआ देश। (३) कोई प्रांत या प्रदेश। (४) कथित ज्योतिष में यह प्रद जो युद्ध में किसी दूसरे प्रद से घल में कम होता है।

विज्ञितारमा-छंदा पुं० [ सं० ] विशालम्बु ] शिय का एक नाम।

विज्ञितारि-छंदा पुं० [ सं० ] (१) एक राजस का नाम। (२) वह जिसने अपने शत्रु को जीत लिया हो।

विज्ञिताभ्य-छंदा पुं० [ सं० ] राजा पृथु के एक पुत्र का नाम।

विज्ञिति-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) विजय। जीत। (२) प्राप्ति।

विज्ञित्वर-वि० [ सं० ] जीतनेवाला। विजेता।

विज्ञित्वर-छंदा स्त्री० [ सं० ] एक देवी का नाम।

विज्ञिल-छंदा पुं० [ सं० ] (१) ऐसा भोजन जिसमें अधिक रस न हो। (२) एक प्रकार का दही।

विज्ञीय-वि० [ सं० ] जिसे ज्ञय प्राप्त करने की इच्छा हो।

विज्ञुल-छंदा पुं० [ सं० ] शालमलि कंद।

विज्ञुली-छंदा स्त्री० [ सं० ] दुराणानुसार एक देवी का नाम। छंदा स्त्री० दे० "विजली"।

विज्ञु मण-छंदा पुं० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ का मुँह खोलना। (२) जैमाई लेना। उबासी लेना। (३) धनुष की डोरी खीचना। (४) (भी) सिकोड़ना।

विज्ञु भा-छंदा स्त्री० [ सं० ] उबासी। जैमाई।

विज्ञेतभ्य-वि० [ सं० ] जो विजित करने के योग्य हो। जो जीतने के योग्य हो।

विज्ञेता-छंदा पुं० [ सं० ] विज्ञे ] जिसने विजय पाई हो। जीतने-वाला। विजय करनेवाला।

विज्ञेय-वि० [ सं० ] जिस पर विजय प्राप्त की जाने की हो। जीता जाने के योग्य।

विज्ञैलु-छंदा स्त्री० दे० "विजय"। उ०—हारि जात नर करि उपाय। कपट न तिनको यह कैपाय। सोइ अकंपन पद कहाय। प्रेलोब्य विवै जौ रहा पाय।—देव स्वामी।

विज्ञैसा-छंदा पुं० [ सं० ] विजयसार ] एक प्रकार का बड़ा बृक्ष जो साल का एक भेद माना जाता है। यह पूर्वी भारत तथा यरमा में बहुत अधिकता से पाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और खेती के भीजार बनाने तथा हमारत आदि के काम में आती है।

विज्ञैसाल-छंदा पुं० दे० "विज्ञैसार"।

विज्ञोर-छंदा पुं० दे० "विज्ञौरा"।

वि० [ हिं० वि० + जोर = रत ] निर्बल। कमजोर। उ०—जीव को सुख दुख सतु सँग होई। जोर विजोर तन के रँग सोई।—सूर।

विज्ञोदा-छंदा पुं० [ सं० ] विज्ञोदा ] एक बृक्ष का नाम जिसके प्रायः

चरण में दो रगण होते हैं। इसे "जोहा" "विमोहा" और "विजोहा" भी कहते हैं।

विज्ञाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक विशेष प्रकार का वाण या तीर।  
विज्जुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० विज्यु ] विद्युत्। विजली। उ०—  
सखि विज्जु मनहुँ दोट दिसि यसत उदगन को पकतर  
धरे।—गोपाल।

विज्जुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खचा। छिलका। (२) दारचीनी।  
विज्जुलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० विज्युलता ] विद्युत्। विजली।  
उ०—कर लीने मनि रस्मि रस्मि रहि फँलि अधोरी।  
विज्जुलता नखि मनहुँ रची विज्जुकरमा दोरी।—गोपालचंद्र।  
विज्जुलिवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जतुका या पहाड़ी नाम की  
लता।

विजोहा-संज्ञा पुं० दे० "विजोहा"।  
विज्ञ-वि० [ सं० ] (१) जो जानता हो। जानकार। (२) बुद्धि  
मान्। समक्षदार। (३) विद्वान्। पंडित।  
विज्ञता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विश्व होने का भाव। जानकारी।  
(२) बुद्धिमत्ता। (३) पंडित्य। विद्वत्ता।

विज्ञत्व-संज्ञा पुं० दे० "विज्ञता"।  
विज्ञत-वि० [ सं० ] जो बतलाया या सूचित किया गया हो।  
जतलाया हुआ।

विज्ञति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जतलाने या सूचित करने की  
क्रिया। (२) विज्ञापन। इतहास।

विज्ञप्तिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रार्थना। निवेदन।  
विज्ञप्तु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जटामासी।  
विज्ञात-वि० [ सं० ] (१) जाना या समझा हुआ। (२) प्रसिद्ध।  
मशहूर।

विज्ञातव्य-वि० [ सं० ] जो जानने या समझने के योग्य हो।  
विज्ञाता-संज्ञा पुं० [ सं० विज्ञात ] यह जो जानता या समझता  
हो।

विज्ञाति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) ज्ञान। समझ। (२)  
जानकारी। (३) एक प्रकार की देवयोनि जिसे गय भी  
कहते हैं। (४) एक कल्प का नाम।

विज्ञान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ज्ञान। (२) किसी  
विशिष्ट विषय के तत्त्वों या सिद्धांतों आदि का विशेष रूप  
से प्राप्त किया हुआ ज्ञान जो ठीक क्रम से एकत्र या संगृहीत  
हो। किसी विषय की जानी हुई बातों का ठीक तरह से  
किया हुआ संग्रह जो एक अलग शास्त्र के रूप में हो।  
शास्त्र। जैसे,—पदार्थ विज्ञान, राजनीति विज्ञान, दारी  
विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, समाज विज्ञान आदि। (३) किसी  
विषय का अनुभव-जन्य, पूरा और अच्छा ज्ञान। कार्य  
कुशलता। (४) कर्म। (५) माया या अविद्या नाम की  
दृष्टि। (६) बौद्धों के अनुसार आत्मा के स्वरूप का ज्ञान।

आत्मा का अनुभव। (७) अज्ञ। (८) आत्मा। (९)  
आकाश। (१०) निधयामिका बुद्धि। (११) मोक्ष।

विज्ञानकोश-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेदांत के अनुसार ज्ञानेंद्रियों और  
बुद्धि। विज्ञानमय कोश। वि० दे० "कोप"।

विज्ञानता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विज्ञान का भाव या धर्म।  
विज्ञानापति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो परम ज्ञानी हो।  
विज्ञानवाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेदव्यास का एक नाम।  
विज्ञानमय कोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्ञानेंद्रियों और बुद्धि का  
समूह। वि० दे० "कोप"।

विज्ञानमातृक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुद्ध का एक नाम।  
विज्ञानवाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह वाद या सिद्धांत जिसमें  
बुद्ध और आत्मा की एकता प्रतिपादित हो। (२) यह वाद  
या सिद्धांत जिसमें केवल आधुनिक विज्ञान की बातें ही  
प्रतिपादित या मान्य की गई हैं।

विज्ञानवादी-संज्ञा पुं० [ सं० विज्ञानवादिन् ] (१) वह जो योग के  
मार्ग का अनुसरण करता हो। योगी। (२) वह जो आधु-  
निक विज्ञान-शास्त्र का पक्षपाती हो। विज्ञान के मत का  
समर्थन करनेवाला।

विज्ञानिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जिसे ज्ञान हो। (२) विज्ञान  
पंडित। (३) दे० "वैज्ञानिक"।

विज्ञानिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विज्ञानी का भाव या धर्म।  
विज्ञानी-संज्ञा पुं० [ सं० विज्ञानिन् ] (१) वह जिसे किसी विषय  
का अच्छा ज्ञान हो। (२) वह जो किसी विज्ञान का अच्छा  
वेत्ता हो। वैज्ञानिक। (३) वह जिसे आत्मा तथा ईश्वर आदि  
के स्वरूप के संबंध में विशेष ज्ञान हो।

विज्ञानीय-वि० [ सं० ] विज्ञान-संबंधी। वैज्ञानिक।  
विज्ञापक-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो विज्ञापन करता हो।  
समझाने, बतलाने या जतलानेवाला।

विज्ञापन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विज्ञापनीय ] (१) किसी बात  
को बतलाने या जतलाने की क्रिया। जानकारी कराना।  
सूचना देना। (२) वह पत्र या सूचना भादि जिसके द्वारा  
कोई बात लोगों को बतलाई जाय। इतहास।

विज्ञापना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विज्ञप्त करना। जतलाना।  
बतलाना।

विज्ञापनीय-वि० [ सं० ] जो बतलाने या जतलाने के योग्य हो।  
सूचित करने के योग्य।

विज्ञापित-वि० [ सं० ] (१) जो बतलाया जा चुका हो।  
जिसकी सूचना दी जा चुकी हो। (२) जिसका इतहास  
दिया जा चुका हो।

विज्ञापी-वि० [ सं० विज्ञापिन् ] जतलाने या बतलानेवाला।  
सूचना देनेवाला।

विज्ञाति-संज्ञा स्त्री० दे० "विज्ञप्ति"।

विज्ञान्य-वि० [ सं० ] बतलाने योग्य । सूचित करने योग्य ।  
 विश्वय-वि० [ सं० ] जो जानने या समझने के योग्य हो ।  
 विज्वर-वि० [ सं० ] (१) जिसका उर उतर गया हो । जिसका  
 सुतार छूट गया हो । (२) जिते सब प्रकार की चिंताओं  
 से छुटकारा मिल गया हो । निश्चित । बेफिक्र । (३) जो सब  
 प्रकार के छेड़ों आदि से मुक्त हो । जिसे किसी प्रकार का  
 नोक या संताप न हो ।  
 विटंक-वि० [ सं० ] सुंदर । मनोहर ।  
 वंश पुं० (१) सब से ऊँचा सिरा या स्थान । (२) कवृतर  
 का दूरवा । कालुक । (३) बड़ी ककड़ी ।  
 विट-वंश पुं० [ सं० ] (१) वह जिसमें काम-वासना बहुत अधिक  
 हो । कामुक । खंपट । (२) वह जो किसी वेश्या का पार  
 हो या जिसने किसी वेश्या को रख लिया हो । (३) धूर्त ।  
 चाळर । (४) साहित्य में एक प्रकार का नायक । साहित्य-  
 दर्शन के अनुसार जो व्यक्ति विषय-भोग में ध्वनी सारी  
 संरक्षित नष्ट कर चुका हो, भारी धूर्त हो, फल या परिणाम  
 का एक ही रंग देखता हो, वेग-भूया और धार्तें बनाने में  
 बहुत प्यार हो, वह विट कहलाता है । (५) एक पर्वत का  
 नाम । (६) एक प्रकार का सैर जिसे दुर्गम सैर भी कहते हैं ।  
 (७) नारंगी का वृक्ष । (८) चूहा । (९) साँवर नमक ।  
 विटक-वंश पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल की एक जाति का  
 नाम । (२) पुराणानुसार एक प्राचीन देव जो नर्मदा नदी  
 के तट पर था । (३) घोड़ा ।  
 विटकारिका-वंश स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पक्षी ।  
 विटहमि-वंश पुं० [ सं० ] सुखा या खुनखुना नाम का कीड़ा जो  
 पत्तों की पृष्ठ में उत्पन्न होता है ।  
 विटप-वंश पुं० [ सं० ] (१) वृक्ष या छता की बड़ी शाखा ।  
 कोंपल । (२) छतनार पेड़ । शमी । (३) वृक्ष । पेड़ ।  
 (४) भाविष्य-पत्र ।  
 विटपक-वंश पुं० [ सं० ] दुष्ट । पासी ।  
 विटपी-वंश पुं० [ सं० ] विटपी । (१) जिसमें नई शाखाएँ या  
 कोंपलें निकली हों । (२) वृक्ष । पेड़ । (३) अजीर का पेड़ ।  
 (४) बट वृक्ष । बट का पेड़ ।  
 विटपीलुग-वंश पुं० [ सं० ] शास्त्राभ्युग । बंदर ।  
 विटप्रिय-वंश पुं० [ सं० ] मोगरा नामक फूल का उसका पौधा ।  
 विटभूत-वंश पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक भयुर  
 का नाम ।  
 विटमालिका-वंश पुं० [ सं० ] सोनामक्की नाम का  
 कनिन वृक्ष ।  
 विटलवण-वंश पुं० [ सं० ] साँवर नमक ।  
 विटवल्लभा-वंश स्त्री० [ सं० ] पाटली वृक्ष ।  
 विटि-वंश स्त्री० [ सं० ] काल चंदन ।

विट्ट-वंश पुं० [ सं० ] साँवर नमक ।  
 विट्टक-वंश पुं० [ सं० ] विप । जहर ।  
 विट्टघात-वंश पुं० [ सं० ] मृदाघात नामक रोग ।  
 विट्टवर-वंश पुं० [ सं० ] गाँवों में रहनेवाला खर ।  
 विट्टल-वंश पुं० [ सं० ] दक्षिण भारत की विष्णु की एक मूर्ति  
 का नाम ।  
 विट्टपति-वंश पुं० [ सं० ] जामाता । दामाद ।  
 विट्टप्रिय-वंश पुं० [ सं० ] शिशुमार या सूँस नामक जल-जंतु ।  
 विट्टशाल-वंश पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का  
 शूल रोग ।  
 विट्टसंग-वंश पुं० [ सं० ] मलरोग । कयजियत ।  
 विट्टसारिका-वंश स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पक्षी ।  
 विटल-वंश पुं० दे० "विटल" ।  
 विट्टंग-वंश पुं० [ सं० ] वायविट्टंग ।  
 विट्टवफ-वंश पुं० [ सं० ] (१) ठीक ठीक अनुकरण करनेवाला ।  
 पूरी पूरी नकल करनेवाला । (२) अनुकरण करके चिदाने  
 या भ्रममान करनेवाला । (३) निंदा या परिहास करनेवाला ।  
 विट्टवन-वंश पुं० [ सं० ] (१) किसी के रंग रंग या चाल  
 चाल आदि का ठीक ठीक अनुकरण करना । पूरी पूरी नकल  
 करना । (२) चिदाने या भ्रममानित करने के लिये नकल  
 करना । भ्रमिपन करना । (३) निंदा या उपहास करना ।  
 विट्टवन-वंश स्त्री० [ सं० ] [ वि० विट्टवनीय, विट्टवित ] (१)  
 अनुकरण करना । नकल उतारना । (२) किसी को  
 चिदाने या बनाने के लिये उसकी नकल उतारना । (३)  
 हँसी उड़ाना । मजाक करना । (४) उटिना उपटना । फट-  
 करना ।  
 विट्टवनीय-वि० [ सं० ] (१) जो अनुकरण करने के योग्य हो ।  
 नकल उतारने लायक । (२) चिदाने या उपहास करने  
 के योग्य ।  
 विट्टवी-वंश पुं० [ सं० ] विट्टवी । वह जो किसी प्रकार की विट्ट-  
 वना करता हो । विट्टवना करनेवाला ।  
 विट्ट-वंश पुं० [ सं० ] विट्ट खण ।  
 विट्टगंड-वंश पुं० [ सं० ] विट्ट खण । साँवर नमक ।  
 विट्टराना-कि० अ० [ सं० ] तब, हिं० जानना या सं० विगण्य ]  
 (१) हृष्य उग्र होना । तितर बितर होना । उ०—(क)  
 विट्टर विट्टुकि जानि रय ते मृग जनु ससंकि त्रिगि लंगर  
 सारे ।—सूर । (ख) जानत नहीं कौन गुण यदि तन जाते  
 संय विट्टे ।—सूर । (२) भागना । दौड़ना । उ०—हँके  
 मुगल ताळ की जोरी । भजें विट्टरि बाळक यहूँ भोरी ।—  
 छत्रमकाश ।  
 विट्टराना-कि० अ० दे० "विट्टराना" ।  
 विट्टरक-वंश पुं० [ सं० ] विट्टरक । विट्टी ।

विडारना-किं स० [ हिं विडरना का सं १५ ] (१) वितर वितर करना। इधर उधर करना। छितराना। उ०—हारे लै विडारे जोहू पति पै पुंकारे कहुो वजमारे मति जावो हरि गाहये।—नाभादास। (२) नष्ट करना। उ०—विध्वङ्गतेन रूप हरि लेंगे कीन्हो तिव को हेत। असुर मारि सब तुरत विडारे दीन्हें रुद्र निकेत।—सूर। (३) भगाना। दीडाना।

विडाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आँख का पिंड। (२) आँख की एक प्रकार की दवा जो जेठी मधु, गेरू, दाढ़ हल्दी और रसांजन आदि से बनती है और जिसका आँख के चारों ओर लेप किया जाता है। (३) आँख के चारों ओर किया जानेवाला कोई लेप। (४) बिली। (५) गंध मांजर। मुद्रक बिलवा। (६) हरताल।

विडालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हरताल। (२) बिली।  
विडालपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] दो तोले का परिमाण।  
विडालाक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम जो महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गया था।  
विडाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विदारी कंद। (२) बिली।  
विडोली-संज्ञा पुं० [ सं० ] पक्षियों की उड़ान का एक प्रकार।  
विडोली-संज्ञा पुं० [ सं० ] विदोवत् इंद्र का एक नाम।  
विडुगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] विडु लवण।  
विडुग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] कोष्ठबद्धता। कृत्रियत। मखरोध।  
विडुघात-संज्ञा पुं० [ सं० ] मलमूत्र का अवरोध। पेशाव और पाखाना रुकना।

विडुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्या आदि से दरपण होनेवाले कोई मनुष्य।

विडुगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] मल का अवरोध। कृत्रियत।  
विडुगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत दस्त होना। पेट चलना।  
विडुभेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत दस्त होना। पेट चलना।  
विडुभेदी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वेदिन। वह भोषधि या द्रव्य जो विरचक हो। दस्तावर चीज या दवा।

विडुभोजी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वेदिन। वह जो विद्या खाता हो।  
विडुलवण-संज्ञा पुं० [ सं० ] विट लवण। साँचर नमक।  
विडुवराह-संज्ञा पुं० [ सं० ] गर्वों में रहनेवाला सुभर।  
विडुविघात-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मृत्रपात रोग।  
वितंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथी।

वितंडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दूसरे के पक्ष को दबते हुए अपने मत की स्थापना करना। (२) व्यर्थ का सगवा या कटा-सुनी। (३) कचूर। (४) दर्मी। (५) तिलारस।

वितंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] वितंड। वह याज्ञ जिसमें तार न लगे हो। बिना तार का वाजा। उ०—तंत वितंड सुभ घन राजनिं शान्द होय क्षनकारां—जगन्नी।

वितंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] पक्षियों अथवा छोटे छोटे पशुओं आदि को फैसाने का जाल।

वितंड-वि० [ सं० ] विटु (१) जाननेवाला। ज्ञाता। उ०—सब शस्त्र विसारद अत्र चित विदित बली मनि जगत जित।—गोपाल। (२) चतुर। निपुण। उ०—रन छु आन रद वित नृप लख्यो करद मगध महाराज को।—गोपाल।

वितंडी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटी अरणी।

वितंड-वि० [ सं० ] विस्तृत। फैला हुआ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] बीणा अथवा उससे, मिलता जुलता हुआ और कोई वाजा।

वितताना-संज्ञा-किं भ० [ सं० ] व्याकुल होना। बेचैन होना। उ०—देखे आहू तहाँ हरि नार्हीं, चितवति जहाँ तहाँ विततानी।—सूर।

वितति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विस्तार। फैलाव।

वितथ-वि० [ सं० ] [ संज्ञा वितथता ] (१) मिथ्या। झूठ। (२) व्यर्थ। निरर्थक। बेकार।

वितथता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वितथ का भाव। मिथ्यात्व।

वितथ्य-वि० [ सं० ] मिथ्या। असत्य। झूठ।

वितटु-संज्ञा पुं० [ सं० ] पंजाब की वितस्ता या श्रेष्म नदी का एक नाम।

वितनु-वि० [ सं० ] जो बहुत ही सूक्ष्म हो।

वितपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्युत्पन्न। वह जो किसी काम में कुशल हो। शुल्क। दक्ष। प्रवीण। उ०—(क) सूत्र प्रभु वितपत्र कोक गुन ताते हरि हरि ध्यायत।—सूर। (ख) संगहि रहति सदा धिय प्यारी क्षीद्वत करति उपाया। कोकला वितपत्र भई हौ कान्हरूप तनु आधा।—सूर।  
वि० चबराया हुआ। व्याकुल। उ०—उनहिं मिले वितपत्र भई अथ वै दिन गपु सुखाह।—सूर।

वितनस्क-वि० [ सं० ] (१) जिसमें अंशकार न हो। (२) जिसमें तमोगुण न हो।

वितरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वितरण। वितरण करनेवाला। बाँटनेवाला। उ०—अनु भुति पूत साते नूपुर वितरक अर्थ सुरायन में। देव स्वामी।

वितरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दान करना। अर्पण करना। देना। (२) बाँटना।

वितरन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वितरण। (१) बाँटनेवाला। वितरण करनेवाला। तरन तरन दुति भयतरन वितरन सुख हित रनकरन।—गोपाल। (२) दे० "वितरण"। उ०—कहुँ दिन प्रभु तहाँ कियो निवासा। वितरन वीणव वृंद हुलासा।—रघुराज।

वितरना-संज्ञा-किं स० [ सं० ] वितरण। वितरण करना। बाँटना। उ०—(क) ये लहुरे भवि रहैं उदाता। वितरहि सब को द्रव्य

भपारा ।--रघुराज । (ख) सुवरण तनु तिनके किये, सुवरण वितरिं भपार ।--रघुराज ।

वितरिंक-अभ्य० [ सं० ] व्यतिरिक्त ] अतिरिक्त । सिवा । उ०—हरि वितरिंक जादि शिर भावै । मूरति तुरत फूटि सो जावै—रघुराज ।

वितरित-वि० [ सं० ] जो वितरण किया गया हो । र्थाटा हुआ । वितरेक-कि० वि० [ सं० ] व्यतिरिक्त ] छोड़कर । सिवा । उ०—वितरेक तोहि निर्दय महाबल आनु कहु को सहि सकै ।—गुलसी ।

वितरिंक-पं० पुं० [ सं० ] (१) एक तर्क के उपरांत होनेवाला दूसरा तर्क । (२) संदेह । शक । (३) अनुमान । (४) एक प्रकार का अर्थात्कार जिसमें किसी प्रकार के संदेह या वितर्क का उल्लेख होता है और कुछ निर्णय नहीं होता ।

वितरिंक-वि० [ सं० ] (१) जिसमें किसी प्रकार के वितर्क या संदेह का स्थान हो । (२) जो देखने में बहुत बिलक्षण हो ।

वितरिं, वितरिंका-पं० स्त्री० [ सं० ] वेदी । मंच ।

वितल-पं० पुं० [ सं० ] पुराणापुराण सात पातालों में से तीसरा पाताल । देवी भागवत के अनुसार यही दूसरा पाताल है । कहते हैं कि इस पाताल में शिव जी "हाटकेश्वर" नाम से अपने पार्ष्णों के साथ रहते हैं । इनके वीर्य से हाटक नाम की नदी बहती है जिसे हुताशन पीते हैं । उन्हीं हुताशन के मुँह से जब कुफहार निकलता है, तब उससे हाटक नामक सोना निकलता है ।

वितलिन-पं० पुं० [ सं० ] विलिन ] वितल लोक को धारण करनेवाले, बलदेव । उ०—विलिन मुदाकिन देव इकिन वितलिन तलिन स्वयं ।—गर्गसंहिता ।

वितस्ता-पं० स्त्री० [ सं० ] पंजाब की श्रेष्ठ नामक नदी का प्राचीन नाम ।

वितस्तापय-पं० पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार तक्षक नाम का निवास-स्थान ।

वितस्ताद्रि-पं० पुं० [ सं० ] रामचरितमिथी के अनुसार एक पर्वत का नाम ।

वितस्ति-पं० पुं० [ सं० ] (१) उतना परिमाण जितना हाथ के अँगूठे और उँगली को पूरा पूरा फेरने से होता है । बालित्व । वित्ता । (२) बारह अंगुल का परिमाण ।

वितान-पं० पुं० [ सं० ] (१) यश । (२) विस्तार । फैलाव । (३) बड़ा चँदोना वा खेमा । (४) समूह । संघ । जमाव । (५) सुभ्रु के अनुसार एक प्रकार का यंत्र जो सिर पर के भागत या घाय भादि पर बाँधा जाता है । (६) अक्षर । अक्षराल । (७) पूजा । कर्मा । (८) श्रृण्य । खाली स्थान । (९) मरिहोत्र भादि कर्म । (१०) एक-प्रकार का उर्ध्व ।

(११) एक वृत्त का नाम जिसके प्रायेक धरण में एक सागण, एक भगण और दो गुरु होते हैं । उ०—सुम गंगा जल तेरो । सुखदाता जन केरो । नसिके मी-दुख नाना । जस को तान विताना ।—जगन्नाथ ।

वि० (१) मंद । धीमा । (२) श्रृण्य । खाली ।

वितानक-पं० पुं० [ सं० ] धनिया ।

व्या पुं० [ सं० ] (१) बड़ा चँदोना वा खेमा । (२) समूह । जमावडा । (३) धन संपत्ति ।

वितानना-पं० कि० सं० [ सं० ] वितान । (१) शामियाना भादि तानना । (२) कोई चीज तानना । उ०—ममी हीन छीन फनी, मीन थारि सौं बिहीन है कै मलीन मति दीनया वितानई ।—रघुकुसुमाकर ।

वितानमूल-पं० पुं० [ सं० ] खस । उशीर ।

वितानमूलक-पं० पुं० [ सं० ] उशीर । गाबर । खस ।

वितामस-पं० पुं० [ सं० ] प्रकाश । उजाला ।

वि० जिसमें तमोगुण न हो ।

वितार-पं० पुं० [ सं० ] वृक्षसंहिता के अनुसार एक प्रकार का फेनु या पुच्छल तार ।

वितारक-पं० पुं० [ सं० ] विचारा नामक जड़ी ।

वितिक्रम-पं० पुं० [ सं० ] व्यतिक्रम ] क्रम का भंग होना । व्यतिक्रम । गड़बड़ी । उ०—त्रीति परीक्षा तिहुन की वीर वितिक्रम जानि ।—गुलसी ।

वितिहोतर-पं० पुं० [ सं० ] वीतिहोत ] अग्नि । (हि०)

वितित-पं० वि० दे० "व्यतीत" । उ०—आम मंत्री सँग सनेह सौं कहु दिन करत वितित ।—संगीत शाकुंतल ।

वित्तीपात-पं० पुं० दे० "व्यतीपात" ।

वित्तीपाती-पं० पुं० [ सं० ] व्यतीपात + ई० (प्रत्य०) ] वह जो बहुत अधिक उपद्रव करना हो । पाजो । दारारती । (कद्रका)

वितोर्ण-पं० पुं० दे० "वितरण" ।

वि० दे० "उत्तीर्ण" ।

विनुंड-पं० पुं० [ सं० ] वि + हुंड ] हाथी । उ०—(क) जागं पुंठ के विनुंड चित्र हुंड हुंड हुंड हुंड धरे हुंड हुंड हुंड हुंड करे करे ।—गोपाल । (ख) तहें वसिष्ठ भादिहु मुनिराई । षडे विनुंडन भाणेंड छाई ।—रघुराज ।

विनुळी-पं० पुं० [ सं० ] विच ] धन-संपत्ति । उ०—ई विनु के हित है सय छवि विनु विधि निभ हाय सँवारे ।—गुलसी ।

विनुड-पं० पुं० [ सं० ] नीला योथा । तृणिया ।

विनुद-पं० पुं० [ सं० ] वैदिक साहित्य के अनुसार एक प्रकार की भूतयोति ।

विनुज-पं० पुं० [ सं० ] (१) तिरिपारी या सुखसा नामक साग । (२) छेपार ।



वितुत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धनिया। (२) तृतिया। (३) कैवल्यमुस्तक। (४) भुईं भाँवला।  
 वितुत्रका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भुईं भाँवला।  
 वितुत्रमूला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भुईं भाँवला।  
 वितुत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भुईं भाँवला।  
 वितुष्ट-वि० [ सं० ] जो संतुष्ट न हो। असंतुष्ट।  
 वितुष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ तृण या घास आदि न होती हो।  
 वितुष्ट-वि० [ सं० ] जो तृप्त या संतुष्ट न हुआ हो।  
 वितुष्टता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वितुष्ट या असंतुष्ट होने का भाव।  
 वितुष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसे किसी प्रकार की तृष्णा न रह गई हो। तृष्णा से रहित।  
 वितुष्टा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसे किसी प्रकार की तृष्णा न हो। निःस्पृह। उदासीन।  
 वितुष्टा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तृष्णा का अभाव। तृष्णा कान होना।  
 वित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] धन। संपत्ति।  
 वि० (१) सोचा या विचारा हुआ। (२) जाना या समझा हुआ। (३) मिला या पाया हुआ। (४) विष्ण्यात। प्रसिद्ध। मशहूर।  
 वित्तकौश-संज्ञा पुं० [ सं० ] रूप्य पैसे आदि रखने की थैली।  
 वित्तगोप्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुबेर के भंडारी का नाम।  
 वित्तदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कासिकेय की एक मातृका का नाम।  
 वित्तनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुबेर का एक नाम।  
 वित्तप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो धन की रक्षा करता हो। भंडारी। (२) कुबेर का एक नाम।  
 वित्तपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुबेर का एक नाम। उ०—छज्यो वित्तपित्त वित्त महँ, कदि धनि अनुत्त हमार।—रघुराज।  
 वित्तपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुबेर का एक नाम।  
 वित्तपुरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुबेर की पुरी, अलका।  
 वित्तहीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] धनहीन। दरिद्र। गरीब। उ०—सय परिवार मेरो याही लागे रामाय, हीं दीन वित्तहीन कैते बूसरी गदाइहीं।—तुलसी।  
 वित्त-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विचार। (२) लाभ। प्राप्ति। (३) ज्ञान। (४) संभावना।  
 वित्तेश, वित्तेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुबेर।  
 वित्तप-वि० [ सं० ] मिलजुग। बेहया। चंदरम।  
 वित्तप-संज्ञा पुं० [ सं० ] भय। डर।  
 वित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] देता होने का भाव।  
 वित्तसंन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैल।  
 विद्यकना-संज्ञा-वि० [ सं० ] [ हिं० यकना ] (१) यकना। शिथिल होना। उ०—सुनि किन्नर गंधर्व सराहत विषय है किपुं विमल।—तुलसी। (२) मोहित या चकित होकर चुप

हो जाना। उ०—तुलसी सुनि प्रामवधू विषकीं पुलकीं तप औ चले छोचन चै।—तुलसी।  
 विद्यकित्त-वि० [ हिं० विद्यकना ] (१) धका हुआ। शिथिल। उ०—तुलसी भइ मति विद्यकित्त करि अनुमान। राम छत्र के रूप न देपेठ आन।—तुलसी। (२) जो भादचर्य या मोह आदि के कारण कुछ न बोल सकता हो। उ०—गोपीजन विद्यकित्त है चितवत सय ठाढ़ी।—सूर।  
 विद्यराना-संज्ञा-वि० [ सं० ] वितरण। (१) फैलाना। (२) हथर उधर करना।  
 विद्या-संज्ञा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्याप्य ] (१) व्याधा। पीड़ा। तड़की। उ०—[ हिं० ] तनकहु विद्या नहीं मन मान्यो। पर उपकार न तनु प्रिय जान्यो।—रघुराज। (ख) भँवर जाति पै कमल पिरिती। जेहि महँ विद्या प्रेम गै बीती।—जायसी। (ग) घृटी जड़ी मनी बहु विधि की। लीनी विद्या निवारन सिधि की।—गोपाल। (२) रोग। बीमारी। उ०—फिन तत्रै मुख तें, पटके कर, जो न क्रियौ नू विद्या निरवान।—रसकुसुमाकर।  
 विद्याराना-संज्ञा-वि० [ सं० ] वितरण ] फैलाना। छितराना। उ०—धी रघुवीर के वाह विद्यास तें धर्म रच्यो। प्रैलोक्य विद्याप्यो।—हृदयराम।  
 विद्यित्त-संज्ञा-वि० [ सं० ] व्यथित ] जिसे किसी प्रकार की व्याधा हो। दुःखी।  
 विद्युर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चोर। (२) राजस। (३) क्षय। नाश।  
 वि० (१) अल्प। थोड़ा। कम। (२) व्यथित। दुःखित।  
 विद्युरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसका स्वामी से विवाह हुआ हो। विरहिणी।  
 विद्युधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोभी।  
 विद्युता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की कौड़ी।  
 विद्यु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तिल पुष्पी। तिलक। (२) जागकार। जाननेवाला। (३) पंडित। विद्वान्।  
 विद्युग्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रसिक पुरुष। रसज्ञ। नागर। (२) पंडित। विद्वान्। (३) चतुर। चालक। होशियार। (४) रूसा नामक घास।  
 वि० जला हुआ।  
 विद्युग्धता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पांडित्य। विद्वता।  
 विद्युग्धा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह परकीया नायिका जो होशियारी के साथ पर-पुरुष को अपनी ओर अनुकूल करे। यह दो प्रकार की मानी गई है—वचन विद्युग्धा और क्रिया विद्युग्धा। जो स्त्री अपनी बात चीत के कौशल से पर-पुरुष पर-अपनी काम-वासना प्रकट करती है, यह वचन विद्युग्धा कहलाती है, और जो किसी प्रकार के क्रिया कलाप

से अपना भाव प्रवृत्त करती है, उसे क्रिया विद्यग्वा कहते हैं।  
 विद्यग्वाञ्जीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का अजीर्ण रोग जो  
 पित्त के प्रकोप से उत्पन्न होता है और जिसमें रोगी कौश्लम,  
 गुण्ठा, मूच्छा, दाह और पेट में दर्द होता है।

विद्यग्वाभृत्प्र-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अश्विों का एक प्रकार का  
 रोग जो बहुत अधिक सड़ाई खाने से होता है और जिसमें  
 अश्विं पीली पड़ जाती है।

विद्यथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) योगी। (२) यज्ञ। (३) वैदिक काल  
 के एक राजा का नाम।

विद्यथी-संज्ञा पुं० [ सं० विद्यथि ] एक वैदिक ऋषि का नाम।

विद्यमान-सं-प्रत्यय [ सं० विद्यमान ] जो विद्यमान हो। सामने।  
 सम्मुख। (क) उ०—फोन्वो यधन काग नहि छँदयो सुर-  
 पति के विद्यमान।—सूर। (ख) ताको यधन क्रियो इहि  
 रघुपति तो देखत विद्यमान।—सूर।

विद्यार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंकारी। विषस्रोतक। (२) विदा-  
 रण करना। फाटना।

विद्यारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्यारण करना। फाटना। (२)  
 विद्रधि नामक रोग।

विद्यरना-संज्ञा प्र० [ सं० विररण ] विदीर्ण होना। फटना।

उ०—(क) विद्यरत नाहि बज्र की छाती इति वियोग क्यों  
 सहिए।—सूर।

क्रि० सं० विदीर्ण करना। फाटना। उ०—महेश यही तुमको  
 विद्व्योजू। भरा सम पत्रनि छै विद्व्योजू।—गुमान।

विद्वर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आधुनिक वंश प्रदेग का प्राचीन  
 नाम। (२) भागवत के अनुसार एक राजा का नाम।  
 कहते हैं कि इसी राजा के नाम पर विद्वर्भ देग का नाम  
 पड़ा था। (३) पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।  
 (४) दार्ति में चोट लगने के कारण समूदा फूलना या दार्ति  
 का हिलना।

विद्वर्भजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भगवत्प ऋषि की स्त्री लोपा-  
 मुद्रा का एक नाम। (२) दमयंती का एक नाम जो विद्वर्भ  
 के राजा भीष्म की कन्या थी। (३) रुक्मिणी का  
 एक नाम।

विद्वर्भराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] दमयंती के पिता राजा भीष्म जो  
 विद्वर्भ के राजा थे।

विद्वर्भि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विद्वर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] विना फनवाला सपि।

विद्वल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काल रंग का सोना। (२) सोना।  
 रमण। (३) अनार का शान। (४) बसि का बना हुआ  
 दौरा या और कोई पात्र। (५) चना। (६) पीठी।

वि० विकसित। खिला हुआ। (७) जिसमें दलन हो।  
 विना दल का।

विद्वलान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मछने दलने या दधाने भादि की  
 क्रिया। (२) डुकड़े डुकड़े या इधर उधर करना। फाटना।

विद्वलानाळ-क्रि० सं० [ सं० विदलन ] दलित करना। नष्ट करना।  
 उ०—तीन केहरि केहरि के विदले करि हुंजर ऐल छवासे।  
 —तुकसी।

विदलान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पकाई हुई दाल। (२) वह  
 भत्त जिसमें दो दल हों। जैसे,—चना, उदक, मूँग,  
 अरहर, मसूर आदि।

विदलित-वि० पुं० [ सं० ] (१) जिसका अच्छी तरह दलन किया  
 गया हो। (२) रौंदा हुआ। मला हुआ। (३) डुकड़े डुकड़े  
 किया हुआ। (४) फाटा हुआ।

विद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बुद्धि। ज्ञान। अक्षु।

संज्ञा स्त्री० [ सं० विदाय, मि० प्र० विदाम ] (१) प्रस्थान।  
 रवाना होना। (२) कहीं से चलने की आज्ञा या अनुमति।

क्रि० प्र०—करना।—आगना।—होना।

विदाई-संज्ञा स्त्री० [ वि० विदा + ई (प्रत्य०) ] (१) विदा होने की  
 क्रिया या भाव। रहस्यती। प्रस्थान। (२) विदा होने की  
 आज्ञा या अनुमति। (३) वह भत्त भादि जो विदा होने के  
 समय किसी को दिया जाय।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

विदाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विसर्जन। (२) प्रस्थान। (३)  
 जाने की आज्ञा या अनुमति। विदा।

क्रि० प्र०—आगना।—लेना।

(४) दान।

विदायी-संज्ञा पुं० [ सं० विदायिन् ] (१) वह जो ठीक तरह से  
 चलाता या रखता हो। नियातक। (२) दान करनेवाला।

संज्ञा स्त्री० दे० “विदाई”।

विदार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) युद्ध। समर। (२) दे० “विदारण”।

विदारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह वृक्ष या पर्वत भादि जो  
 जल के बीच में हो। (२) छोटी नदियों के तल में बनाया  
 हुआ गढ़ा, जिसमें नदी के सूखने पर भी पानी बचा रहता  
 है। (३) नौसादर।

वि० विद्याग करनेवाला। फाड़ डालनेवाला।

विदारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बीच में से अलग करके दो या  
 अधिक डुकड़े करना। फाटना। (२) मार डालना। हत्या  
 करना। (३) युद्ध। समर। लड़ाई। (४) कनेर। (५)  
 खपरिया। (६) नौसादर।

विदारनाळ-क्रि० सं० [ वि० विररता ] (१) फाटना। उ०—

(क) अणु उदगन विधु मिलन की चले तम विदारि करि-  
 षाट।—तुकसी। (ख) निज जपिन पर ताहि पठाव्यो।  
 नखन साथ सब उदर विदाव्यो।—देगव।

विदारिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रहस्यसिद्धता के अनुसार एक

प्रकार की बाकिनी जो घर के बाहर भूमि कोण में रहती है ।

(२) गंभारी वृक्ष । (३) विदारीकंद । (४) शालपर्णी ।

(५) कदवी तूँबी ।

विद्यारिगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शालपर्णी ।

विद्यारिगंधी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंभारी ।

विद्यारित्त-वि० [ सं० ] विदीर्ण किया हुआ । काटा हुआ ।

विदारी-वि० [ सं० विदारिज् ] फाड़नेवाला । विदारण करने-वाला ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शालपर्णी । (२) सुई कुम्हड़ा । (३)

भावप्रकाश के अनुसार अठारह प्रकार के कंठ रोगों में से एक

प्रकार का कंठ रोग जो पित्त के प्रकृषित होने से होता है ।

इस में गले और मुँह पर लाली आ जाती है, जलन होती है

और यदुद्गार मांस के टुकड़े घट कटकर गिरने लगते हैं ।

यह रोग है कि जिस कारवट कोई अधिक सोता है, उसी और

यह रोग होता है । (४) एक प्रकार का छुद्र रोग जिसमें

बागल में फुंसी निकलती है । (५) कान का का एक रोग ।

(६) वाराहीकंद । (७) क्षीर काकोली । (८) वागमट्ट के

अनुसार मेवासिंगी, सफेद पुनर्नवा, देवदार, अनंतमूल,

बृहती आदि औषधियों का एक गण ।

विदारीकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुई कुम्हड़ा ।

विदारीगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शालपर्णी । (२) सुश्रुत के

अनुसार शालपर्णी, सुई कुम्हड़ा, गोखरू, शतमूली, अनंत-

मूल, जीवंती, युगवन, कटियारी, पुनर्नवा आदि औषधियों

का एक गण । इस गण की सब औषधियाँ वायु तथा पित्त

की नाशक, और शोथ, गुल्म, जर्द्विषास तथा खाँसी आदि

रोगों में हितकर मानी जाती हैं ।

विद्यारु-संज्ञा पुं० [ सं० ] गिरगिट ।

विदाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पित्त के प्रकोप के कारण होनेवाली

जलन । (२) हाथ पैर में किसी कारण से होनेवाली

जलन ।

विदाहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो विदाह उत्पन्न करता

हो । (२) दे० "विदाह" ।

विदाही-संज्ञा पुं० [ सं० विराह्वि ] यह पदार्थ जिससे जलन पैदा

हो । दाह उत्पन्न करनेवाला । उ०—विदाही, अर्थात् जो

चौड़ा खाने से छाती में जलन होती है; और जितने प्रकार

के रुखे भाग हैं, वैसे वाजरा आदि इनको न खाए ।

विदित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] जाना हुआ । अवगत । ज्ञात ।

संज्ञा पुं० कवि ।

विदिथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पंडित । विद्वान् । (२) योगी ।

विदिशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धर्ममान लेखना नामक नगर का

भाषीन नाम । (२) पुराणानुसार पारिपात्र वर्तत से निकली

हुई एक नदी का नाम । (३) दे० "विदिन्" ।

विदिश-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दो दिशाओं के बीच का कोना ।

कैसे,—भूमि या ईशान आदि ।

विदीपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] दीपक । दीआ ।

विदीर्ण-वि० [ सं० ] (१) बीच से फाड़ा या विदारण किया हुआ ।

(२) टूटा हुआ । (३) मार डाला हुआ । निहत ।

विदु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथी के मस्तक के बीच का भाग ।

(२) घोड़े के कान के नीचे का भाग ।

विदुत्तम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सब बातें जानता हो ।

(२) विष्णु का एक नाम ।

विदुत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो जानता हो । जानकार ।

वेत्ता । ज्ञाता । (२) पंडित । ज्ञानी । (३) कौरवों के

सुप्रसिद्ध मंत्री जो राजनीति, धर्मनीति और अर्थनीति में बहुत

निपुण थे और जो धर्म के अवतार माने जाते हैं । महाभारत

में कहा है कि जब सत्यवती ने अपनी पुत्रवधू अंधिका को

दूसरी बार कृष्णद्वैपायन के साथ निवोग करने की आज्ञा

दी, तब उसने कृष्णद्वैपायन की आज्ञाति आदि से भयभीत

होकर एक सुन्दरी दासी को अपने कपड़े आदि पहनाकर

उनके पास भेज दिया, जिससे विदुत् का जन्म हुआ । ये

बहुत बड़े पांडव, इन्द्रियार्णव, रात और दूरदर्शी थे; और

पांडवों के बहुत बड़े पक्षपाती थे । पहले ये राजा पांडु के

मंत्री थे; और हस्ती किये पीछे से अनेक अवसरों पर इन्होंने

पांडवों की भारी भारी विर्वासियों से रक्षा की थी । जटुगुह

के जलने के समय भी इन्होंने के परामर्श से पांडवों की जान

बची थी । ये छतराष्ट्र के छोटे भाई और मंत्री भी थे । जिस

समय दुर्योधन के बहुत कड़ने पर छतराष्ट्र ने इनसे जूए

के संबंध में सम्मति माँगी थी, उस समय इन्होंने उन्हें बहुत रोका

और समझाया था । पांडवों के मन जाने पर ये दुर्योधन के

पास रहते थे । महाभारत का युद्ध आरंभ होने से पहले

इन्होंने छतराष्ट्र को रात भर अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे

उपदेश देकर युद्ध रूकवाना चाहा था; पर इसमें भी इन्हें

सफलता नहीं हुई । युद्ध में इन्होंने पांडवों का पक्ष ग्रहण

किया था । महाभारत के युद्ध के उपरान्त जब पांडवों का

राज्य हुआ, तब भी ये बहुत दिनों तक मंत्री के पद पर थे; पर

पीछे से मन में चले गए । वहाँ राजा युधिष्ठिर से एक बार

इनकी भेंट हुई थी । वहाँ बहुत दिनों तक और तपस्या करने

के उपरांत इनका परलोक वाम हुआ था । नीति की प्रसिद्ध

पुस्तक "विदुरनीति" इन्हीं की रचित मानी जाती है ।

विदुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बँत । (२) जल बँत । (३) बोक

या गंधरस नामक गंधद्रव्य । (४) अमलपेत ।

विदुला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार का शूद्र जिते

सातला कहते हैं । (२) पित्त खदिर ।

**विद्युत्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] [ शी० विद्युत् ] विद्वान् । पंडित । उ०—  
 (क) निज निज वेद की समेत जोग ऐम मई मुदित असीस  
 विर विद्युत् निवई है ।—गुलसी । (ख) विद्युत् जनन  
 विर प्रभु द्री से अति मन में सुख पायो ।—गूर ।  
**विद्युत्-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] विद्या पढ़ी हुई स्त्री । विद्वान् स्त्री ।  
 उ०—(क) जिते छद्मे प्रज्ञाचर्य्यं सर्वेन ते पूर्णं विद्या और  
 सुशिक्षा को प्राप्त होके सुधति, विद्युत्, अपने अनुकूल निय  
 सत्स चिषों के साथ विवाह करते हैं ।—दयानंद । (ख)  
 जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विद्युत् स्त्री शिक्षा और विद्या-  
 दान करनेवाली हों, वहाँ भोज दें ।—दयानंद ।  
**विद्युत्-वि०** [ सं० ] जो बहुत दूर हो ।  
**संज्ञा** पुं० (१) बहुत दूर का प्रदेश । (२) एक देश का नाम ।  
 (३) एक पर्वत का नाम । कहते हैं कि वैदूर्य्य मणि इसी  
 पर्वत में मिलती है । (४) दे० “वैदूर्य्य” । (मणि)  
**विद्युत्-म-संज्ञा** पुं० [ सं० ] विद्युत् पर्वत से उत्पन्न, वैदूर्य्य मणि ।  
**विद्युत्-स्व-संज्ञा** पुं० [ सं० ] विद्युत् होने का भाव । बहुत अधिक  
 दूर होना ।  
**विद्युत्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) कुलदेव का एक नाम । (२)  
 पुराणानुसार एक राजा का नाम ।  
**विद्युत्-भूमि-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] विद्युत् नामक देश । कहते हैं कि  
 वैदूर्य्य मणि इसी देश में होती है ।  
**विद्युत्-विगत-संज्ञा** पुं० [ सं० ] अन्यत्र ।  
**विद्युत्-क-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वह जो बहुत अधिक विपरी  
 हो । कामुक । (२) वह जो तरह तरह की नकलें भादि  
 करके, बेच भूया । बजारक भयवा बातचीत करके दूसरों को  
 हँसाता हो । मसखरा ।  
**विद्युत्-प्राचीन काल में** राजाओं और पदे आदिमियों के  
 मनोविनोद के लिये उनके दरबार में इस प्रकार के मसखरे  
 रहा करते थे, जो अनेक प्रकार के कौतुक करके, वेचक बनकर  
 भयवा बातें बजारक लोगों को हँसाया करते थे । प्राचीन  
 नाटकों भादि में भी इन्हें प्येप स्थान मिला है; क्योंकि  
 इनसे सामानिकों का मनोरंजन होता है । साहित्यदर्पण  
 के अनुसार विद्युत्-प्रायः अपने कौतुक से दो आदिमियों  
 में स्थापना भी करता है; और अपना पेट भरना या स्वार्थ  
 सिद्ध करना दृष्ट जानता है । यह शृंगार रस में सहायक  
 होता है और मामिनी नायिका को मनाने में बहुत कुशल  
 होता है ।  
 (१) चार प्रकार के नायकों में से एक प्रकार का नायक जो  
 अपने कौतुक और परिहास भादि के कारण काम केलि में  
 सहायक होता है । (२) वह जो दूसरों की निंदा करता  
 हो । खल । (३) मूर्ख । उ०—नाचदि कहुँ विद्युत् करि  
 जाका । कृगहि कौल बनावहि नाका ।—सुबल ।

**विद्युत्प-संज्ञा** पुं० [ सं० ] किसी पर विरोध रूप से दोष लगाने  
 की क्रिया । प्ये लगाना ।  
**विद्युत्पना-कि०** सं० [ सं० विद्युत्प ] (१) सताना । दुःख देना ।  
 उ०—सुनु सठ काल मसित यह देखी । जनि तेहि छागि  
 विद्युत्पहि केही ।—गुलसी । (२) दोष लगाना । दोषी  
 ठहराना ।  
 कि० म० दुःखी होना । पीड़ा का अनुभव करना । उ०—  
 तापन सों तपती विर में विन काल शृया मन माहि  
 विद्युत्पती ।—मन्नालाल ।  
**विद्युत्-वि०** [ सं० ] जिसे दिखाई न पड़े । भग्या ।  
**विद्युत्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम । (२)  
 दे० “विदेह” ।  
**विद्युत्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) राक्षस । (२) यक्ष ।  
**विद्युत्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] अपने देश को छोड़कर दूसरा देश ।  
 परदेश ।  
**विद्युत्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वह जो शरीर से रहित हो । (२)  
 वह जिसकी उत्पत्ति माता पिता से न हो । जैसे,—देवता  
 भादि । (३) राजा जनक का एक नाम । वि० दे० “जनक” ।  
 (४) राजा निमि का एक नाम । वि० दे० “निमि” ।  
 (५) प्राचीन मिथिला का एक नाम । (६) इस देश के  
 निवासी ।  
**विदेहक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।  
**विदेहकूट-संज्ञा** पुं० [ सं० ] जैन पुराणानुसार एक पर्वत का  
 नाम ।  
**विदेहकैयट्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह निर्वाण या मोक्ष जो  
 जीरन्मुक्त को मरने पर प्राप्त होता है ।  
**विदेहत्व-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) विदेह होने का भाव । (२)  
 शरीर का नाश । श्शु । मीत ।  
**विदेहपुर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] राजा जनक की राजधानी, जनकपुर ।  
 उ०—विदित विदेहपुरनाथ शृगुनाथ गति समय सयानी  
 कीन्ही जैसी भाइ गों परी ।—गुलसी ।  
**विदेहा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] मिथिला नगरी और प्रदेश का एक  
 नाम ।  
**विद्युत्-वि०** [ सं० ] जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो । दोष-  
 रहित । वे देश ।  
**विद्युत्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वह जो जानता हो । जानकार । (२)  
 पंडित । विद्वान् । (३) बुध ग्रह । (४) तिल का पीया ।  
**विद्युत्-वि०** [ सं० ] (१) धीप में से छेद किया हुआ । (२) कँडा  
 हुआ । (३) जिसमें बाधा पड़ी हो । (४) समान । तुल्य ।  
 परापर । (५) जिसको चोट लगी हो । (६) देवा । (७)  
 मिला हुआ । भावद ।

विश्वक-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का यंत्र जिससे मिट्टी खोदी जाती थी ।

विश्व-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिससे शरीर में बहुत छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं ।

विश्वि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आवात करना । मारना ।

विद्यमान-वि० [ सं० ] वर्तमान । उपस्थित । मौजूद ।

विद्यमानता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विद्यमान होने का भाव । उपस्थिति । मौजूदगी ।

विद्यमानत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्यमान होने का भाव । उपस्थिति । मौजूदगी ।

विद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह ज्ञान जो शिक्षा आदि के द्वारा उपार्जित या प्राप्त किया जाता है । यह जानकारी जो सोचकर हासिल की जाती है । किसी विषय का विस्तृत ज्ञान । ह्मन् । शैवे,—(क) विद्या पढ़कर मनुष्य पंडित होता है । (ख) आजकल पाठशालाओं में अनेक प्रकार की विद्याएँ पढ़ाई जाती हैं ।

विशेष—हमारे यहाँ विद्या दो प्रकार की मानी गई है—परा और अपरा । जिस विद्या के द्वारा प्रज्ञान होता है, वह परा विद्या और इसके अतिरिक्त जो अन्य लौकिक या पदार्थ विद्याएँ हैं, वे सब अपरा विद्या कहलाती हैं ।

(२) वह ज्ञान जिसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति या परमपुरुषार्थ की सिद्धि होती है । (३) वे शास्त्र आदि जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है । हमारे यहाँ इनकी संख्या १८ बतलाई गई है । यथा—चारों वेद, छठो अंग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अथंशास्त्र । (४) दुर्गा । (५) देवी का मंत्र । (६) गणिवारी । (७) सीता की एक सखी का नाम । (८) आर्या उद का पंचवर्षी भेद जिसमें चन्द्रशेखर के मत से २३ गुरु और ११ ऋषि मात्राएँ होती हैं ।

विद्यागुरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह गुरु जिससे विद्या पढ़ी हो । पढ़ानेवाला गुरु । शिक्षक ।

विद्याग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ विद्या पढ़ाई जाती हो । विद्यालय । पाठशाला ।

विद्यातीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

विद्यार्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्या का भाव ।

विद्यादल-संज्ञा पुं० [ सं० ] भोजनपत्र का पद ।

विद्यादाता-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्यागुरु । विद्या पढ़ानेवाला गुरु, जो छात्रों के अनुसार विद्या माना जाता है ।

विद्यादान-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्या पढ़ाना । शिक्षा देना ।

विद्यादेवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सरस्वती । (२) जैनियों की सौक्य जित देवियों में से एक देवी का नाम ।

विद्याधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्या रूपी धन । (२) वह धन जो अपनी विद्या द्वारा उपार्जित किया जाय । ऐसे धन में किसी का हिसाब नहीं लग सकता ।

विद्याधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार की देवयौनि जिसके भंतर्गत खेचर, गंधर्व, किन्नर आदि माने जाते हैं । (२) सोलह प्रकार के रतिबंधों में से एक प्रकार का रतिबंध । (३) वैद्यक में एक प्रकार का यंत्र जिसमें एक घाड़ी में पारा रखकर उस पर दूसरी घाड़ी रखकर मिट्टी से बीच का जोड़ बंद कर देते हैं, और ऊपर की घाड़ी में पानी मानकर दोनों मिली हुई घाड़ियों पाँच पहर तक भाग पर रखते हैं । इसके उपरान्त उँदे होने पर पारा निकाल लेते हैं ।

विद्याधर रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, गंधक, तीक्ष्ण, सौंठ, पीपक, मिर्च, चन्दे आदि की सहायता से बनाया जाता है और ज्वर में बहुत उपयोगी माना जाता है ।

विद्याधरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विद्याधर नामक देवता की स्त्री । उ०—विद्याधरी किन्नरी नामा त्वयां वानरी अपरा ।—रघुजा ।

विद्याधरेंद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] जागृवायु का एक नाम ।

विद्याधरेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक शिवलिंग का नाम ।

विद्याधार-संज्ञा पुं० [ सं० ] पंडित । विद्वान् ।

विद्याधारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्याधर नाम की देव-यौनि । प्रत्येक चरण में चार मंगल होते हैं । उ०—मैं चारों पैर गाऊँ भक्ति को पाऊँ । रे खामे सारे यामें अन्ते न नाम जाऊँ । जाँवे भेदा यामे सख्सां को धारी । योही सचो भला सचो विद्याधारी ।—जगन्नाथ ।

विद्याधिदेवता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विद्या की अधिष्ठात्री देवी, सरस्वती ।

विद्याधिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्या पढ़ानेवाला । गुरु । शिक्षक । (२) विद्वान् । पंडित ।

विद्याधिराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो बहुत बड़ा पंडित हो ।

विद्याधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्याधर नाम की देव-यौनि ।

विद्यामणि-संज्ञा पुं० दे० "विद्याधन" ।

विद्यामय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो पूर्ण पंडित हो ।

विद्यारंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह संस्कार जिसमें विद्या की पढ़ाई आरंभ होती है ।

विद्याराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु की एक मूर्ति का नाम ।

विद्याराशि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।

विद्यार्थी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्या पढ़ता हो । पढ़नेवाला छात्र । शिष्य ।

विद्यालय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ विद्या पढ़ाई जाती हो । पाठशाला ।

- विद्याविद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वांश्च । पंडित ।  
 विद्याव्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह व्रत जो गुरु के घर रहकर विद्या पढ़ने के उद्देश्य से धारण किया जाता है ।  
 विद्याव्रतस्नातक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मनु के अनुसार यह स्नातक जो गुरु के पास रहकर वेद और विद्या व्रत दोनों समाप्त करके अपने घर लौटे ।  
 विद्यास्नातक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मनु के अनुसार यह स्नातक जो गुरु के घर रहकर वेदाध्ययन समाप्त करके घर छोटा हो ।  
 विद्युज्जिह्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रामायण के अनुसार रावण के पक्ष के एक राक्षस का नाम जो शूर्पणखा का पति था । (२) एक यक्ष का नाम ।  
 विद्युज्जिह्वा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कालिकेय की एक मातृका का नाम ।  
 विद्युज्ज्याला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कलिकारी या कलियारी नामक वृक्ष ।  
 विद्युता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विद्युत् । बिजली । (२) महाभारत के अनुसार एक अस्त्र का नाम ।  
 विद्युतास-संज्ञा पुं० [ सं० ] कालिकेय के एक अनुचर का नाम ।  
 विद्युत्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) संध्या । (२) बिजली । (३) इन्द्रसंहिता के अनुसार एक प्रकार की उष्ण । (४) एक प्रकार की धीमा ।  
 संज्ञा पुं० एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
 वि० (१) जिसमें बहुत अधिक दीप्ति हो । बहुत चमकीला । (२) जिसमें किसी प्रकार की दीप्ति या प्रभा न होना ।  
 विद्युत्केय-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामायण के अनुसार हेति नामक राक्षस का पुत्र जो काल की कन्या मया के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । इसी विद्युत्केय और पीलोमी से राक्षसों के वंश की वृद्धि हुई थी ।  
 विद्युत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्युत् का भाव या धर्म । बिजली-धन ।  
 विद्युत्पताक-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रलय के समय के सात मेघों में से एक मेघ का नाम ।  
 विद्युत्पर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अस्त्र का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।  
 विद्युत्पात-संज्ञा पुं० [ सं० ] बिजली का गिरना । चक्रपात ।  
 विद्युत्प्रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक ऋषि का नाम । (२) एक दैत्य का नाम ।  
 विद्युत्प्रमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दैत्यों के राजा बालिकी पोती का नाम । (२) अस्त्राओं का एक गण ।  
 विद्युत्प्रिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्सा नामक पाशु या उसका कोई वंशज, जिसकी ओर बिजली लक्ष्मी झिंझती है ।  
 विद्युत्प्रिय-वि० [ सं० ] विद्युत् या बिजली से उत्पन्न ।

- विद्युत्पत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेघ । बादल ।  
 विद्युत्प्रास-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक दैत्य का नाम ।  
 विद्युत्पूगौरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शक्ति की एक मूर्ति का नाम ।  
 विद्युत्पूध्वज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक असुर का नाम । (२) दे० "विद्युत्पताक" ।  
 विद्युत्प्रपाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्युत् + पाक ] एक विशेष प्रकार का यंत्र जिससे यह जाना जाता है कि विद्युत् का वह कितना और प्रवाह किस जोर है ।  
 विद्युत्प्रमाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रामायण के अनुसार एक बंदर का नाम । (२) दे० "विद्युत्प्रमाला" ।  
 विद्युत्प्रमाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बिजली का समूह या सिलसिला । (२) एक यक्षिणी का नाम । (३) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में आठ आठ गुरु वर्ण अथवा दो मगण और दो गुरु वर्ण होते हैं और चार वर्णों पर यति होती है । उ०—मैं मँगौ गोपी सौं दाना । भागी योकी नहीं काना । कारी सारी साही माला । भासी मोही विद्युत्प्रमाला ।—जगन्नाथ ।  
 विद्युत्प्रमाली-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्युत्प्रमालिन् ] (१) पुराणानुसार एक राक्षस का नाम जिसने शिव की भक्ति करके सोने का एक विमान प्राप्त किया था और जो उसी विमान पर चढ़कर सूर्य के पीछे पीछे घूमा करता था । इससे रात के समय भी उस विमान में अन्धकार नहीं होने पाता था । इससे धराकर सूर्य ने अपने तेज से यह विमान गलकर जमीन पर गिरा दिया था । रामायण में कहा है कि धर्म के पुत्र सुपेण के साथ इसका युद्ध हुआ था । उ०—विद्युत्प्रमाली रजनिचर, हन्यो सुपेणहृत् । मारि सुपेणहृत् ।—श्रम इक, तोयो साकर यान ।—रघुराज । (२) महाभारत के अनुसार एक असुर का नाम । (३) एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक मगण, एक मगण और अंत में दो गुरु होते हैं ।  
 विद्युत्मुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार के उपग्रह ।  
 विद्युत्सूता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विद्युत् । बिजली ।  
 विद्युत्सूया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो मगण होते हैं । इसे दीपराज भी कहते हैं । उ०—मैं माटी भा सार्दा । झूठे बाला माई । मू बापो मा देखा । जोती विद्युत्सूया ।—जगन्नाथ । (२) विद्युत् । बिजली ।  
 विद्युत्श-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।  
 विद्युत्शत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विद्युत् । बिजली । (२) प्रमा । दीप्ति । चमक । (३) एक अस्त्र का नाम ।  
 विद्युत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] छिद्र । छेद ।  
 विद्युत्प्र-वि० [ सं० ] (१) मोटा साड़ा । (२) रद्द । मन्त्रवृत्त । पका । (३) जो किसी काम के लिये अच्छी तरह तैयार हो ।

संज्ञा पुं० दे० "विद्रधि" ।  
 विद्रधि-संज्ञा पुं० स्त्री [ सं० ] पेट के अंदर का एक प्रकार का फोड़ा जो बहुत घातक होता है ।  
 विद्रधिका-संज्ञा स्त्री [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का छोटा फोड़ा जो प्रमेह रोग के बहुत दिनों तक रहने के कारण होता है ।  
 विद्रधिघ्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] दोमोजन । सहजिन ।  
 विद्रघ्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भागना । (२) बुद्धि । अश्रु । (३) नास । (४) मय । डर । (५) युद्ध । लड़ाई । (६) यचना । (७) पिघलना । (८) निंदा । शिकायत ।  
 विद्राघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यचना । क्षरण । (२) पिघलना । (३) गलना ।  
 विद्रावण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भागना । (२) पिघलना । (३) गलना । (४) उड़ना । (५) फाड़ना । (६) वह जो नष्ट करता हो । (७) एक दानव का नाम ।  
 विद्राविणी-संज्ञा स्त्री [ सं० ] बीबा डोरी ।  
 विद्रावी-संज्ञा पुं० [ सं० विद्राविन ] (१) भागनेवाला । (२) गलनेवाला । (३) फाड़नेवाला ।  
 विद्रुत-वि० [ सं० ] (१) भागा हुआ । (२) गला हुआ । (३) पिघला हुआ ।  
 विद्रुति-संज्ञा स्त्री [ सं० ] (१) भागना । (२) गलना । (३) पिघलना । (४) नष्ट होना ।  
 विद्रुधि-संज्ञा पुं० दे० "विद्रधि" ।  
 विद्रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रवाल । मूँगा । (२) मुक्ताफल नामक वृक्ष । (३) वृक्ष का नया पत्ता । कोंपल ।  
 विद्रुमफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊँहुर नामक सुगंधित गोंद ।  
 विद्रुमलता-संज्ञा स्त्री [ सं० ] (१) नलिका या नली नामक नय वृक्ष । (२) मूँगा ।  
 विद्रोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी के प्रति होनेवाला वह द्वेष या आशय जिससे उसको हानि पहुँचे । (२) राज्य में होनेवाला भारी उपद्रव जो राज्य की हानि पहुँचाने या नष्ट करने के उद्देश्य से हो । चलना । बगावत ।  
 विद्रोहो-संज्ञा पुं० [ सं० विद्रोहिन ] (१) वह जो किसी के प्रति विद्रोह या द्वेष करता हो । (२) राज्य का अनिष्ट करनेवाला । गायी ।  
 विद्रुत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिब का एक नाम ।  
 विद्रुत्ता-संज्ञा स्त्री [ सं० ] बहुत अधिक विद्रुत् होने का भाव । पांडित्य ।  
 विद्रुत्त्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत अधिक विद्रुत् होने का भाव । विद्रुत्ता । पांडित्य ।  
 विद्रुत्त-संज्ञा पुं० [ सं० विद्रुत् ] (१) वह जो धामा का स्वरूप

जानता हो । (२) वह जिसने बहुत अधिक विद्या पढ़ी हो । पंडित । (३) वह जो सब कुछ जानता हो । सर्वज्ञ ।  
 विद्रिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विद्वेप या दायुता करता हो । दायु । दुश्मन ।  
 विद्रिप-वि० [ सं० ] जिसके साथ विद्वेप या दायुता की जाए । द्वेष का पात्र या भाजन ।  
 विद्रिपता-संज्ञा स्त्री [ सं० ] विद्रिप होने का भाव ।  
 विद्रिपि-संज्ञा स्त्री [ सं० ] विद्वेप । दायुता । दुश्मनी ।  
 विद्वेप-संज्ञा पुं० [ सं० ] दायुता । दुश्मनी । वैर । द्वेष ।  
 विद्वेपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विद्वेप करता हो । दायु । दुश्मन । वैरी ।  
 विद्वेपण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दायुता । दुश्मनी । वैर । (२) तंत्र के अनुसार एक प्रकार की क्रिया जिसके द्वारा दो व्यक्तियों में द्वेष या दायुता उत्पन्न की जाती है । (३) वह जो द्वेष करता हो । दायु । वैरी । (४) सज्जन्त का उल्टा । दुष्टता ।  
 विद्वेपिणी-संज्ञा स्त्री [ सं० ] पुराणानुसार दुःसह नामक यक्ष की आठवीं और अंतिम कन्या जो निर्मासि के गर्भ से उत्पन्न हुई थी । कहते हैं कि यही लोगों में द्वेष उत्पन्न करती है । इसे दात करने के लिये दूध, शहद और घी में मिले हुए तिलों से होम आदि करने का विधान है ।  
 विद्वेपी-संज्ञा पुं० [ सं० विद्वेपि ] वह जो विद्वेप करता हो । द्वेषी । दायु । वैरी ।  
 विद्वेष्टा-संज्ञा पुं० [ सं० विद्वेष्ट ] वह जो विद्वेप करता हो । दायु । वैरी ।  
 विद्वेष्ट्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जिसके साथ विद्वेप किया जाए । द्वेष का पात्र या भाजन । (२) कंकोळ ।  
 विधंसल-संज्ञा पुं० [ सं० विधंस ] विधंस । नास । उ०—माया कंस विधंससुपारी । दारिद्र्य दारिद्र्य प्रबलव्यारी ।—रघुनाथ ।  
 वि० विधंसत । नष्ट । विनष्ट ।  
 विधंसनाल-किं० सं० [ सं० विधंसत् ] नष्ट करना । बर्बाद करना । उ० चाँद सुरज सौं होइ विवाह । बारि विधंसल, वेधंस राहू ।—जायसी ।  
 विध-संज्ञा पुं० [ सं० विधि ] विधि । प्रज्ञा । उ०—नैव की कोर ते नेह कियो विध डील की छाँह ते सीलसँवारी ।—हदय ।  
 संज्ञा पुं० दे० "विधि" ।  
 विधत्री-संज्ञा स्त्री [ सं० विधात्री ] महा की दाकि, महासरस्वती ।  
 विधन-वि० [ सं० ] जिसके पास धन न हो । निर्धन । गरीब ।  
 विधनता-संज्ञा स्त्री [ सं० ] विधन होने का भाव । निर्धनता । गरीबी ।  
 विधना-किं० सं० [ सं० विधि ] प्राप्त करना । अपने साथ लगाना । ऊपर लेना । उ०—(क) छप फँदाई विधना मानो मदन

व्याध विधर्।—सूर। (स) धाके सूर पयिक मग मानो मदन व्याधि विधये री।—सूर।

धंशा स्त्री० [ सं० विधि] वह जो कुछ होने को हो भवितव्यता। होनी।

धंशा पुं० विधि। प्रहा। उ०—विधाना ऐसी रैन कर भोर कमी ना होय।

विधमन—धंशा पुं० [ सं० ] धौकनी या नल आदि के द्वारा हवा पहुँचाकर भाग सुलगाना। धौकना।

विधर्त्ता—कि० वि० दे० "उधर्त्ता"। उ०—जैसे रथ के पोदे धारा के आश्रय जिधर लेजाते हैं, विधरजाता है।—यमुनादासक।

विधरंशु—धंशा पुं० [ सं० ] (१) पकड़ना। रोकना। (२) दे० "विधर्त्ता"।

विधर्म—धंशा पुं० [ सं० ] (१) अपने धर्म को छोड़कर और किसी का धर्म। पराया धर्म। (२) अपने धर्म को छोड़ कर दूसरे का धर्म ग्रहण करना, जो पाँच प्रकार के अधर्मों में से एक कहा गया है।

वि० (१) जिसकी धर्मताक में निंदा की गई हो। (२) जिसमें गुण न हो। गुणहीन।

विधर्मिक—वि० [ सं० ] (१) जो धर्मविरुद्ध आचरण करता हो। (२) जो दूसरे धर्म का अनुयायी हो।

विधर्मी—धंशा पुं० [ सं० विधर्म] (१) वह जो अपने धर्म के विपरीत आचरण करता हो। धर्मभ्रष्ट। (२) वह जो किसी दूसरे धर्म का अनुयायी हो।

विधवा—धंशा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसका पति मर गया हो। पतिहीन स्त्री। रौंद। घेवा। उ०—(१) सुत वधू विधवा सौं बोलि के सुनायो छेदु धनरति गेह धी गुपाल भरतार है।—नामा। (२) प्राहण विधवा नारि सुरगुद भंडा पुरावहीं। कई न वधन विचारि, परे सोई निरधास भैंह।—विद्याना।

विशेष—स्त्रियों में विधवा स्त्रियों के लिये प्रत्यक्ष तथा कतिन नियमों का पालन विधेय है। जैसे,—तांबूल और मद्यमोक्ष-आदि का त्याग। द्विजातियों में विधवा के लिये पुनर्विवाह का नियम नहीं है। देवल-पराशर-संहिता में यह कहा गया है कि स्वामी के लापता होने, मरने, अथवा संन्यासी, स्त्री या पतित होने पर स्त्री दूसरा पति कर सकती है। पर और स्त्रियों के साथ भवितोष सिद्ध करने के लिये पंडित लोग "अन्य पति" वाद का अर्थ "दूसरा पालनकर्ता" किया करते हैं।

विधवापन—धंशा पुं० [ सं० विधा + दि० पन (अप०) ] विधवा होने की अवस्था। वह अवस्था जिसमें पति के मरने के कारण स्त्री पतिहीन हो जाती है। रूपा। वैधव्य। उ०—

लिख्यो न विधि मिलिबे तिहि मोंही। प्राण जई विधवापन तोही।—रघुराज।

विधवाधर्म—धंशा पुं० [ सं० विधा + धर्म ] विधवाओं के रहने का स्थान। यह स्थान जहाँ विधवाओं के पालन पोषण तथा शिक्षा आदि का प्रबंध किया जाता है। उ०—हम बालिकाओं के लिये अध्यापक कर्तव्य ने पूना में "अनाथ विधवाधर्म" खोला है।—सरस्वती।

विधस—धंशा पुं० [ सं० ] मोम।

विधाँसनाली—कि० सं० [ सं० विधसन् ] (१) नष्ट करना। बरबाद करना। उ०—(क) भी जीवन मर्मत विधाँसा। बिचला विरह विरह है नासा।—जायसी। (ख) भएउ जस जस रावन रामा। सेग विधाँस, विरह संग्रामा।—जायसी। (२) भस्त व्यस्त करना। इधर उधर करना। गद्बद्ग कर देना।

विधातव्य—वि० [ सं० ] (१) विधान के योग्य। विधेय। (२) करने योग्य। कर्तव्य।

विधाता—धंशा पुं० [ सं० विधातृ ] [ की० विधाता ] (१) विधान करनेवाला। रचनेवाला। बनानेवाला। (२) उत्पन्न करनेवाला। तैयार करनेवाला। उ०—विधा-वारिधि बुद्धि-विधाता।—गुलसी। (३) व्यवस्था करनेवाला। प्रबंध करनेवाला। ईतज्ञाम करनेवाला। ठीक तरह से लगानेवाला। उ०—पू गोसाईं! वृ देश विधाता। जावत जीव सबन्ह सुकदाता।—जायसी। (४) सृष्टि बनानेवाला। जगत् की रचना करनेवाला। सृष्टिकर्ता। प्रदा या ईश्वर। उ०—कुछ संदेह नहीं कि विधाता ने मुझे अत्यंत सुकुमारी बनाया है।—तोताराम।

विधातृका—धंशा स्त्री० [ सं० ] विधान करनेवाली। विधायिका।

विधात्री—धंशा स्त्री० [ सं० ] (१) विधान करनेवाली। रचनेवाली। बनानेवाली। (२) व्यवस्था करनेवाली। प्रबंध करनेवाली। (३) विष्णुकी। वीष्णु।

विधान—धंशा पुं० [ सं० ] (१) किसी कार्य का आयोजन। काम का होना या चलना। चिन्नास। संपादन-क्रम। अनुष्ठान। जैसे,—जो कुछ करना है, उसी का विधान भव होना चाहिए।

क्रि० प्र०—करता।—होना।

(२) व्यवस्था। प्रबंध। ईतज्ञाम। बंदोबस्त। जैसे,—पहले ही से ऐसा विधान करो कि कार्य आरंभ करने में देर न हो। (३) कार्य करने की रीति। विधि। प्रणाली। पद्धति। जैसे,—शास्त्रों में ऐसा विधान है। उ०—गुप्त मित्र विविध विधान।—केदार। (४) रचना। निर्माण। (५) धर्म। तरकीब। उपाय। युक्ति। जैसे,—बोई ऐसा विधान निहाली कि कार्य निर्विघ्न हो जाय। (६) उलना पाया



जितना हाथी एक बार सुँह में डालता है। हाथी का प्राप्त ।  
 (०) हानि पहुँचाने का दौषपेच । राहुता का आचरण । (८)  
 प्रेरण । भेजना । (९) अनुमति देने का कार्य्य । आज्ञा करना ।  
 (१०) धन संपत्ति । (११) पूजा । अर्चन । (१२) नाटक  
 में वह स्थल जहाँ किसी वाक्य द्वारा एक साथ सुख और  
 दुःख प्रकट किया जाता है । जैसे,—“वाल्मीकाल ही में  
 तुम्हारा ऐसा उत्साह देख मुझे हर्ष और विषाद दोनों  
 होते हैं ।”

विधानक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विधान । विधि । (२) विधान-  
 वेत्ता । विधि या रीति जाननेवाला ।

विधानसप्तमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माघ शुक्ला सप्तमी ।

विधानसप्तमी व्रत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूर्य्य का एक व्रत जो माघ  
 शुक्ला सप्तमी को आरंभ करके साल भर तक ( पीप वृक्ष )  
 किया जाता है । इसमें सूर्य्य का पूजन होता है ।

विधानिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वृद्धि ।

विधानी-संज्ञा पुं० [ सं० विधान + ई ( प्रत्य० ) ] (१) विधान का  
 जाननेवाला । (२) विधिपूर्वक कार्य्य करनेवाला ।

विधायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० विधायिका ] (१) विधान  
 करनेवाला । कार्य्य करनेवाला । (२) बनानेवाला ।  
 रचनेवाला । उ०—हे विरिंचि तैं विधविधायक ।—रघुराज ।  
 (३) व्यवस्था करनेवाला । प्रबंध करनेवाला । प्रस्तुत करने-  
 वाला । उ०—मंगल मूर्ति सिद्धि विधायक ।—शंकर-  
 दिग्विजय ।

विधारा-संज्ञा पुं० [ सं० वृद्ध + दाह ] एक प्रकार की लता  
 जो दक्षिण भारत में बहुतायत से होती है । इसका शाद  
 बहुत बढ़ा और इसकी शाखाएँ बहुत घनी होती हैं ।  
 इसकी डालियों पर गुलाब के से काँटे होते हैं । पत्ते तीन  
 अंगुल लंबे अण्डाकार और नोकदार होते हैं । डालियों के  
 सिरे पर चमकदार पीले फूलों का गुच्छा होता है । वैद्यक में  
 इसे गरम, मधुर, मेघान्नक, अग्नि-प्रदीपक, घातुवर्धक और  
 गुण्डिशयक माना है । उपद्रव, प्रमेह, क्षय, वातरक आदि  
 में इसे औषधि की भाँति व्यवहार में लाते हैं ।

पथ्यो०—जीर्णदाह । शुब्दाह । शुब्दाहक । गर्भवृद्धि ।

विधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कोई कार्य्य करने की रीति ।  
 कार्य्यक्रम । प्रणाली । ढंग । नियम । कायदा । जैसे,—पूजा  
 की विधि, यज्ञ की विधि । (२) व्यवस्था । संगति ।  
 योजना । करीना । मेल या सिलसिला ।

मुद्रा०—विधि बैठना = (१) परस्पर अनुश्रुता, होना । मेल  
 बैठना । मेल खाना । व्यवहार । निम्नता । जैसे,—हमारी उन्नकी  
 विधि नहीं बैठेगी । (२) सब बातों का ठीक होना । बन्धनसुल  
 व्यवस्था होना । जैसे,—फिर क्या है, तुम्हारी विधि बैठ गई ।

(२) किसी शास्त्र या ग्रंथ में लिखी हुई व्यवस्था । शास्त्रोक्त  
 विधान ।

मुद्रा०—कुंडली की विधि मिलना = कुंडली में लिये गए का  
 पूरा होना । फलन ज्योतिष द्वारा बताएँ हुए बात का ठीक पटना ।

(३) किसी शास्त्र या धर्म-ग्रंथ में किया हुआ कर्त्तव्य-निर्देश ।  
 कर्म के अनुष्ठान की आज्ञा या अनुमति । शास्त्र में इस  
 प्रकार का कथन कि मनुष्य यह काम करे ।

विशेष—किसी काम को करने की आज्ञा को “विधि” और  
 न करने की आज्ञा को “निषेध” कहते हैं । पूर्वमीमांसा में  
 नियोग का नाम विधि है । अर्थात् जो वाक्य किसी षट्  
 फल की प्राप्त का उपाय बताकर उसे करने की प्रवृत्ति  
 उत्पन्न करे, वही विधि है । जैसे,—“स्वर्ग चाहनेवाला यज्ञ  
 करे” विधि दो प्रकार कही गई है—प्रधान-विधि और  
 अंग-विधि । फल देनेवाली संपूर्ण क्रिया के आदेश करनेवाले  
 वाक्य को “प्रधान विधि” कहते हैं । जैसे,—“जिसे पुत्र  
 की कामना हो, वह पुत्रेष्टि यज्ञ करे” । प्रधान क्रिया के  
 अंतर्गत होनेवाली छोटी छोटी क्रियाओं के निर्देश को “अंग-  
 विधि” कहते हैं । जैसे,—“चावल से यज्ञ करे” “दूध का  
 हवन करे” इत्यादि ।

यो०—विधि निषेध । उ०—विधि-निषेध-मय कलिमल-हानी ।  
 —तुलसी ।

(५) व्यवकरण में क्रिया का वह रूप जिसके द्वारा किसी को  
 कोई काम करने का आदेश किया जाता है । जैसे,—यह  
 काम करो या काम करना चाहिए । (६) साहित्य में एक  
 अर्थालंकार जिसमें किसी सिद्ध विषय का फिर से विधान  
 किया जाता है । जैसे,—वर्षा काल के ही मेघ मेघ है । (७)  
 आचार-व्यवहार । चालढाल ।

यो०—गतिविधि = गेय और कारवाँ । जैसे,—उसकी गति  
 विधि पर ध्यान रखना ।

(८) भौति । प्रकार । क्रिसम । तरह । उ०—एहि विधि  
 राम सचहि समुसाया ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] सृष्टि का विधान करनेवाला । प्रह्ला ।  
 उ०—विधि करतव्य सय ठठठे आहर्ही ।—तुलसी ।

विधिज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विधि को जाननेवाला । शास्त्रोक्त  
 विधान को जाननेवाला । (२) रीति जाननेवाला ॥

विधिदर्शा-संज्ञा पुं० [ सं० विधिदर्शक ] यज्ञ में यह देखने के लिये  
 नियुक्त पुरुष कि होता, आचार्य्य आदि ठीक ठीक विधि के  
 अनुकूल कर्म कर रहे हैं या नहीं ।

विधिना-संज्ञा पुं० [ सं० विधि + ना (प्रत्य०) ] विधि । प्रह्ला ।

विधिपाट-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य्य के चार वर्णों में से एक वर्ण ।  
 चारो वर्ण ये हैं—पाट, विधिपाट, कृतपाट और पंडुपाट ।

विधिपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० विधि + पुत्र ] प्रह्ला के पुत्र, भारद्वाज ।

विधिपुर-संज्ञा पुं० [ सं० विधि + पुर ] मद्रा का लोक, मद्रा-लोक ।  
उ०—स्वर्ग-लोक नहीं बचन न देखी । विधिपुर गयी प्राण  
निज लेखी ।—रघुराज ।

विधिभोचित-वि० [ सं० ] वाच्य विधि द्वारा यताया हुआ ।  
शास्त्रसम्मत ।

विधिपङ्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पङ्क जिसके करने की विधि हो ।  
जैसे,—दशैषोमसप्त ।

विधिरानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० विधि + रानी (रिं०) ] मद्रा  
की रानी, सरस्वती । उ०—चंद्रौ पाणी वीण कर विधि-  
रानी विष्पात ।—रघुराज ।

विधिलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मद्रालोक । सत्यलोक ।  
विधिवत्-क्रि० वि० [ सं० ] (१) विधिपूर्वक । विधि से । पद्धति के  
अनुसार । कायद के मुताबिक । (२) जैसा चाहिए । उचित  
रूप से । यथा योग्य ।

विधिबधू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मद्रा की पत्नी, सरस्वती ।

विधिवाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मद्रा की सवारी, हंस ।

विधिसेध-संज्ञा पुं० [ सं० ] विधि और निषेध ।

विधुनुद-संज्ञा पुं० [ सं० विधु + नुद ] चंद्रमा को दुःख देनेवाला,  
राहु । उ०—ज्ञानराकेस-प्रासन विधुनुद दहन काम-करि  
मच हरि दुपनारी ।—तुलसी ।

विधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (१) वायु । (३) कपूर ।  
(४) मद्रा । (५) विष्णु । (६) एक राक्षस का नाम । (७)  
आयुष्य । (८) जल-स्नान । (९) वायु-क्षालन । पाप छुड़ाना ।

विधुकांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत का एक ताल ।

विधुदार-संज्ञा पुं० [ सं० विधु + दाण ] चंद्रमा की खी । रोहिणी ।  
उ०—तारा किंयों विधुदार किंयों एनघार सी पावक है  
परिरंभी ।—महाशाल ।

विधुपंजर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सद्गम । खोंदा ।

विधुप्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चंद्रमा की खी ; रोहिणी ।  
(२) कुमुदिनी ।

विधुबंधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुमुद का फूल । उ०—विधुबंधु  
मुच भा बही पारिज नैन प्रभाति ।—रामसहाय ।

विधुवैनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० विधु + वन, प्रा० वन ] चंद्र-  
मा की । सुंदरी स्त्री । उ०—संग लिये विधुवैनी मधू रति  
हू वैदि रंचक रूप दियो है ।—तुलसी ।

विधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) दुःख । (३) घपराया  
हुआ । घरा हुआ । (४) विकल । ब्याकुल । जैसे,—विह-  
विधु । (५) असमर्थ । अशक्त । (६) परिष्यक्त । (७)  
विमूढ़ ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कष्ट । दुःख । (२) वियोग । जुदाई ।  
(३) अलग होने की क्रिया या भाव । (४) कैवल्य । मोक्ष ।  
(५) राहु ।

विधुरा-वि० स्त्री० [ सं० ] (१) कातर । ब्याकुल । पीड़ित । (२)  
कानों के पीछे की एक स्नायु-प्रथि जिसके पीड़ित या क्षरत  
होने से प्राणी बहुरा हो जाता है ।

विधुवदनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंद्रमा के समान मुखवाली स्त्री ।  
सुंदरी स्त्री । उ०—विधुवदनी सब भक्ति सेवारी । खोह न  
बसत बिना यरनारी ।—तुलसी ।

विधून-वि० [ सं० ] (१) कंपित । काँपता हुआ । (२) हिलता  
हुआ । झोलता हुआ ।—(२) त्यागा हुआ । छोड़ा हुआ ।  
त्यक्त । (३) दूर किया हुआ । इटाया हुआ । (५) निष्काल  
हुआ । बाहर किया हुआ ।

विधूनन-पुं० पुं० [ सं० ] कंपन । काँपना ।

विधूम-वि० [ सं० ] धूम रहित । चिन्ता भूयें का । उ०—  
जाति वारि कै विधूम वारिधि जुताई छूम ।—तुलसी ।

विधूम-वि० [ सं० ] धूमिल या मट्टीले रंग का । धूसर वर्ण ।

विधुवन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंपन । काँपना ।

विधेय-वि० [ सं० ] (१) विधान के योग्य । जिसका विधान या  
अनुष्ठान उचित हो । जिसका करना उचित हो । कर्त्तव्य ।  
(२) जिसका विधान हो या होनेवाला हो । जो किया  
जाय या किया जानेवाला हो । (३) जो नियम या विधि  
द्वारा जाना जाय । जिसके करने का नियम या विधि हो ।  
(४) वचन या आज्ञा के वशीभूत । अधीन । (५) वह  
(शब्द या वाक्य) जिसके द्वारा किसी के संबंध में कुछ कहा  
जाय । जैसे,—“गोपाल सज्जन है” इस वाक्य में “सज्जन  
है” विधेय है; क्योंकि वह गोपाल के संबंध में कुछ विधान  
करता है, अर्थात् उसकी कोई विशेषता बताता है ।

विशेष-न्याय और ब्याकरण में वाक्य के दो मुख्य भाग  
माने जाते हैं—उद्देश्य और विधेय । जिसके संबंध में कुछ  
कहा जाता है (अर्थात् कर्त्ता), वह “उद्देश्य” कहलाता है;  
और जो कुछ कहा जाता है, वह “विधेय” कहलाता है ।

विधेयता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विधान की योग्यता या  
भीकिय । (२) अधीनता ।

विधेयत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] विधेयता ।

विधेयाविमर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] साहित्य में एक वाक्य-दोष जो  
विधेय अंश को अध्यायन स्थान प्राप्त होने पर होता है ।  
जो बात प्रधानतः कहनी है, उसका वाक्य-रचने के बीच  
दुहा रहना ।

विशेष-प्रत्येक वाक्य में विधेय की प्रधानता के साथ  
निर्देश होना चाहिये । ऐसा न होना दोष है । “विधेय”  
शब्द के समाप्त के बीच पढ़ जाने से या विशेषण रूप से  
आ जाने पर प्रायः यह दोष होता है । जैसे,—किसी वीर  
ने लिख होकर कहा—“मेरी हून स्वर्ग फूली हुई बर्दों  
से पया” । इस वाक्य में कहनेवाले का अभिप्राय तो

‘यह है कि मेरी बहों बर्षों चुली हैं; पर “चुली हैं” के विशेष रूप में भा जाने से विधेय की प्रधानता नहीं स्पष्ट होती। दूसरा उदाहरण—“सुस रामानुज के सामने राक्षस क्या रहेंगे?” यहाँ कहना चाहिए था कि—“राम का अनुग्रह है” तब राम के संबंध से छद्मनाम की विशेषता प्रकट होती।

विषय-वि० [ सं० ] (१) विधेय योग्य। लिङ्गने योग्य। (२) जिसे बेधना हो। जो छेदा जानेवाला हो।

विषयमास-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अर्थात्कार जिसमें घोर अनिष्ट की संभावना दिखाते हुए अनिष्टापूर्वक किसी बात की अनुमति दी जाती है। जैसे,—विदेश जाते हुए नायक के प्रति नायिका का यह कथन “जाते हो तो जाओ! जहाँ जाते हो, मैं भी वहाँ जन्म लेकर पहुँचूँगी।”

विषयंस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनाश। नाश। बरबादी। (२) घृणा। (३) अनादर। (४) वैर। (५) धमनस्य।

विष्वंसक-संज्ञा पुं० [ सं० ] नाश करनेवाला।

विष्वंसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विष्वंसित, विष्वंस ] नाश करना। बरबाद करना।

विष्वंसित-वि० [ सं० ] नष्ट किया हुआ। बरबाद किया हुआ।

विष्वंसी-संज्ञा पुं० [ सं० विष्वंसिन् ] [ को० विष्वंसिनी ] नाशकारी। नाश करनेवाला। बरबाद करनेवाला।

विष्वस्त-वि० [ सं० ] नष्ट किया हुआ। बरबाद किया हुआ।

विनती-सर्व० [ दि० वा०=वम ] प्रथम पुरुष बहुवचन सर्वनाम का यह रूप जो उसे कारक चिह्न लगाने के पहले प्राप्त होता है। जैसे,—विन मे, विनको ह्यादि।

प्रत्य० दे० “विना”।

विनत-वि० [ सं० ] (१) नीचे की ओर प्रवृत्त। झुका हुआ। (२)

देवा पदा हुआ। यत्। (३) संकुचित। सिकुड़ा हुआ।

(४) विनीत। नम्र। (५) शिष्ट। दिक्षित।

संज्ञा पुं० (१) सुग्रीव की सेना का एक बंदर। (२) शिव। महादेव।

विनतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्यंत का नाम।

विनतङ्गी-संज्ञा स्त्री० दे० “विनति”। उ०—स्वामी तमों ही संग न मेवहीं धीनतङ्गी कहसै।—दादू।

विनता-वि० स्त्री० [ सं० ] कुपद्मी या पंज। (को०)

संज्ञा स्त्री० (१) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो कदपप की स्त्री और गरुड़ की माता थी। (२) एक प्रकार का भयानक जोड़ा जो प्रमेह या बहुमूत्र के रोगियों को होता है।

विशेष—जिस स्थान पर यह जोड़ा होता है, वह स्थान मुरदा हो जाने के कारण नीला पद जाता है। सुषुप्त आदि प्राचीन प्रयोग में प्रमेह के अंतर्गत इसकी चिकित्सा लिखी है। यह प्रायः घातक होता है। इसमें अंग बहुत तेजी के साथ सदा चला

जाता है। यदि बदन के पहले ही यह स्थान काटकर अलग कर दिया जाय, तो रोगी बच सकता है। (३) एक राक्षसी जो ब्याधि खाती है। (महाभारत) (४) एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता को समझाने के लिये नियुक्त किया था।

विनतासुनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अरुण। (२) गरुड़।

विनति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) झुकाव। (२) नम्रता। विनय। शिष्टता। सुनीलता। (३) अनुनय। प्रार्थना। विनती। (४) निवारण। रोक। (५) दमन। शासन। दंड। (६) विनियोग।

विनती-संज्ञा स्त्री० दे० “विनति”।

विनद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पेड़। विन्याक वृक्ष।

विनमन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विनत ] (१) नम्र करना। झुकाना। (२) लुप्ताना।

विनम्र-वि० [ सं० ] (१) झुका हुआ। (२) विनीत। सुनील। संज्ञा पुं० तगर का फूल।

विनय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) व्यवहार में दीनता या अधीनता का भाव। नम्रता। प्रणति। आभिज्ञता। (२) शिष्टा।

(३) प्रार्थना। विनती। अनुनय। (४) शासन।

संधीह। (स्थिति) (५) नीति। उ०—नमस्त सयै करि विनय, विनय मत सयै बखानत।—गोपाल।

संज्ञा पुं० (१) यज्ञिक। यज्ञिया। (२) यज्ञ। यज्ञिया। (३) जितेंद्रिय। संयमी।

विनयधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुरोहित।

विनय-पिटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] आदि बौद्ध शास्त्रों में से एक।

विशेष—आदि बौद्ध शास्त्र जो पाठी भाग्य में हैं, तीन भागों में विभक्त हैं—विनय-पिटक, सूय-पिटक और अभिधर्म-पिटक। ये तीनों “त्रिपिटक” नाम से प्रसिद्ध हैं।

सुदक्ष ने अपनी शिष्यमंडली को मिश्रधर्म के जो उपदेश दिए थे, यही विनय-पिटक में संगृहीत हैं। इसके संकलन के संबंध में यह कहा है कि बुद्धभगवान् सभा सारिपुत्र, मौद्गल्यन आदि प्रधान प्रधान शिष्यों के निर्वाण लाभ करने पर

बौद्ध शास्त्र के सुस्त होने का भय हुआ। इससे महाकरपप ने अजातशत्रु के राजत्व काल में राजगृह के पास वैभार पर्यंत की सप्तपर्णी नाम की गुफा में पाँच सौ स्थविरों को आमंत्रित करके एक बड़ी सभा की, जिसमें उपालि ने बुद्ध

द्वारा उपदिष्ट “विनय” का प्रकाश किया। इसके पीछे एक बार फिर गद्बद्ध उपस्थित होने पर वैशाठी के बलिकाराम में सभा हुई जिसमें “विनय” का फिर संग्रह हुआ।

इस प्रकार कई संकलनों के उपरांत अशोक के समय में ‘विनय’ पूर्ण रूप से संकलित हुआ।

इस प्रकार कई संकलनों के उपरांत अशोक के समय में ‘विनय’ पूर्ण रूप से संकलित हुआ।

इस प्रकार कई संकलनों के उपरांत अशोक के समय में ‘विनय’ पूर्ण रूप से संकलित हुआ।

इस प्रकार कई संकलनों के उपरांत अशोक के समय में ‘विनय’ पूर्ण रूप से संकलित हुआ।

विनयवाच-वि० [ सं० विनयवत् ] [ स्त्री० विनयवती ] जिज्ञासे नम्रता हो। शिष्ट।

विनयशील-वि० [ सं० ] विनययुक्त । नम्र । सुसील । मिष्ट ।  
 विनया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मायाशुद्ध । बरियाता ।  
 विनयी-वि० [ सं० ] विनयिन् । विनययुक्त । नम्र ।  
 विनयन-कि० प्र०, कि० सं० दे० "विनयना" ।  
 विनयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० ] विनय, विनय, विनय । नष्ट होना ।  
 नाश । बरबादी ।  
 विनयना-कि० प्र० दे० "विनयना" ।  
 विनयाना-कि० सं० दे० "विनयाना" ।  
 विनयव्य-वि० [ सं० ] सप्त दिन या बहुत दिन न रहनेवाला ।  
 नष्ट होनेवाला । ध्वंसशील । अचिरस्थायी । अनिरप्य ।  
 जैसे,—नारी विनयवती है ।  
 विनयवर्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अनिरप्यता । अचिरस्थायित्व ।  
 (घनष्ट-वि० [ सं० ] (१) नाम की मात्रा । जो बरबाद हो गया  
 हो । जो न रह गया हो । जिसका अस्तित्व मिट गया हो ।  
 ध्वस्त । (२) मृत । मारा हुआ । (३) जो विहृत या खराब  
 हो गया हो । जो व्यवहार के योग्य न रह गया हो । जो  
 निकम्मा हो गया हो । विगढ़ा हुआ । (४) जिसका आचरण  
 विगढ़ गया हो । म्रष्ट । पतित ।  
 कि० प्र०—करना । -होना ।  
 विनष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नाश । (२) खोप । (३) पतन ।  
 विनस्त-वि० [ सं० ] जिसे नास्तिका न हो । विना नाक का ।  
 नकटा ।  
 विनस्तना-कि० प्र० [ सं० ] विनयन । नष्ट होना । न रहना ।  
 क्षुप्त होना । उ०—उपजै विनसे ज्ञान जिमि पाह सुसंग  
 कुसंग ।—गुच्छरी ।  
 विनस्ताना-कि० प्र० [ सं० ] विनयन का सं० रूप । (१) नष्ट करना ।  
 (२) विगाड़ना ।  
 कि० प्र० दे० "विनस्तना" ।  
 विना-मध्य० [ सं० ] (१) भभाव में । न रहने की अवस्था में ।  
 बारी । जैसे,—सुन्दरि विना यह काम न बनेगा । (२)  
 छोड़कर । अतिरिक्त । सिवा । जैसे,—सुन्दरि विना और  
 कौन यह काम कर सकता है ?  
 विनाही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक घड़ी का साठवाँ भाग । पल ।  
 विनती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विनती । विनय । उ०—  
 प मोसाई, सुनु मोरि विनती ।—जायसी ।  
 विनाथ-वि० [ सं० ] जिसका कोई रक्षक न हो । अनाथ । उ०—  
 नाथ नाथ विनाथ नाथ अनाथ नाथ सुसिद्ध ।—केशव ।  
 विनाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुक्राव । देवायन । (२) किसी  
 चीज द्वारा नारी का झुका जाना । (भावप्रकाश)  
 विनायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गणों के नायक, गणेश । (२) गरुड़ ।  
 (३) विनाय । बाधा । उ०—ससत विनायक-केतु विनायक  
 नसत निरक्षि रथ ।—गोपाल । (४) गुरु । (५) देवी का  
 एक स्थान । (६) बुद्धदेव ।

विनायक-केतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड़ध्वज । शीकण्ड । उ०—  
 ससत विनायक-केतु विनायक नसत निरक्षि रथ ।—गोपाल ।  
 विनायक चतुर्थी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माघ महीने की शुक्ल  
 चतुर्थी । माघ सुदी चौथ । गणेशचतुर्थी ।  
 विशेष—दस दिन गणेश का पूजन और व्रत होता है ।  
 विनाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भभाव हो जाना । अस्तित्व का  
 न रह जाना । न रहना । नाश । मिटना । ध्वंस । पर-  
 चारी । (२) खोप । अक्षय । (३) विगढ़ जाने का भाव ।  
 खराब हो जाना । निकम्मा हो जाना । चौपट होना ।  
 खराबी । (४) बुरी दशा । तथार्थी । (५) हानि । नुकसान ।  
 विनाशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनाश करने वाला । क्षय  
 करनेवाला । (२) विगाड़नेवाला । खराब करनेवाला । धातक ।  
 विनाशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० ] विनाशी, विनाश्य । (१) नष्ट  
 करना । ध्वस्त करना । बरबाद करना । (२) संहार करना ।  
 बध करना । उ०—दससीस विनाशन बीस सुखा—गुच्छरी ।  
 (३) खराब करना । विगाड़ना । (४) एक बसुर जो काल  
 का पुत्र था ।  
 विनाशित-वि० [ सं० ] (१) नष्ट किया हुआ । ध्वस्त किया हुआ ।  
 (२) मारा हुआ । (३) विगाड़ा हुआ । खराब किया हुआ ।  
 विनाशी-वि० [ सं० ] विनाशित् । [ स्त्री० ] विनाशिकी । (१) नष्ट  
 करनेवाला । ध्वस्त करनेवाला । बरबाद करनेवाला । (२)  
 बध करनेवाला । मारनेवाला । (३) विगाड़नेवाला । खराब  
 करनेवाला ।  
 विनाश्य-वि० [ सं० ] विनाश योग्य ।  
 विनासक-संज्ञा पुं० दे० "विनाश" ।  
 विनासक-वि० [ सं० ] विना नाक का । नकटा ।  
 अंसंज्ञा पुं० दे० "विनाशक" ।  
 विनासनक-संज्ञा पुं० दे० "विनाशन" ।  
 विनासना-कि० प्र० [ सं० ] विनाशन । (१) नष्ट करना । ध्वस्त  
 करना । बरबाद करना । न रहने देना । (२) संहार करना ।  
 बध करना । (३) खराब करना । विगाड़ना ।  
 कि० प्र० नष्ट होना । बरबाद होना ।  
 विनिर्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अत्यंत निद्रा करनेवाला ।  
 विनिद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतिराप निद्रा । बहुत बुराई ।  
 विनिद्रित-वि० [ सं० ] जिसकी बहुत निद्रा हुई हो । अतिरिक्त ।  
 विनिःसृत-वि० [ सं० ] निकला हुआ । जो बाहर हुआ हो ।  
 विनिगमक-वि० [ सं० ] दो पक्षों में से किसी एक पक्ष को सिद्ध  
 करनेवाला ।  
 विनिगमना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दो परस्पर विपक्ष पक्षों में  
 से किसी एक पक्ष का युक्ति और प्रमाण द्वारा विधाय । दो  
 बातों में से किसी एक बात के ठीक होने का निर्णय जो  
 विचार और तर्क द्वारा हो । (धैतिक) (२) सिद्धांत ।  
 नतीजा ।

विनिग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नियम। बंधेज। प्रतिबंध।  
 (२) अपनी किसी वृत्ति को दबाकर अधीन करना। संयम।  
 (३) अवरोध। रूकावट। (४) ब्याघात। बाधा।  
 विनिग्रह-वि० [ सं० ] (१) नष्ट। बरबाद। (२) गुणित। गुणा  
 किया हुआ।  
 विनिहत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] अक्ष का एक संहार जिससे अक्ष द्वारा  
 निहित या मूर्च्छित व्यक्ति की नींद या बेहोशी दूर होती है।  
 वि० जिसकी नींद खुल गई हो।  
 विनिपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनाश। ध्वंस। बरबादी।  
 (२) बध। हत्या। (३) अवमान। अनादर। नज़र से  
 गिरना।  
 विनिपातक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनाशकारी। (२) संहार-  
 कर्ता। (३) अपमान करनेवाला।  
 विनिग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक वस्तु लेकर बदले में दूसरी  
 वस्तु देने का व्यवहार। बदल बदल। परिवर्तन। परिदान।  
 (२) गिरावी। बंधक।  
 विनियुक्त-वि० [ सं० ] (१) किसी काम में लगाया हुआ।  
 नियोजित। (२) अर्पित। (३) प्रेरित।  
 विनियोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी फल के उद्देश्य से किसी  
 वस्तु का उपयोग। किसी विषय में लगाना। प्रयोग। (२)  
 किसी वैदिक कृत्य में मंत्र का प्रयोग। (३) मेषण। भेजना।  
 (४) प्रवेश। घुसना।  
 विनियोजित-वि० [ सं० ] (१) प्रयुक्त। नियुक्त। लगाया हुआ।  
 (२) अर्पित। (३) प्रेरित।  
 विनिर्गत-वि० [ सं० ] (१) निकला हुआ। जो बाहर हुआ हो।  
 बहिर्गत। (२) गया हुआ। जो चला गया हो। निष्कांत।  
 (३) भीता हुआ। अतीत।  
 विनिर्गम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाहर होना। निकलना। (२)  
 प्रस्थान। चला जाना।  
 विनिर्माण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक कल्प का नाम।  
 विनिर्माण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विनिर्मित ] विशेष रूप से  
 निर्माण। अच्छी तरह बनना।  
 विनिर्मित-वि० [ सं० ] विशेष रूप से निर्मित था बना हुआ।  
 जैसे,—प्रस्तर विनिर्मित भवन।  
 विनिर्मुक्त-वि० [ सं० ] (१) बाहर निकला हुआ। बहिर्गत।  
 (२) जो मुला हो या ढँका न हो। अनाच्छन्न। (३) छूटा  
 हुआ। बंधन से रहित।  
 विनिर्माक-वि० [ सं० ] निर्माक रहित। पिया पढ़ाने का।  
 बध रहित। परिधान शून्य।  
 विनिर्वर्तन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विनिर्वर्तित, विनिर्वर्ती ] लौटना।  
 विनिवेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रवेश। घुसना।  
 विनिवेशन-वि० [ सं० ] [ वि० विनिवेशित, विनिवेशी ] (१)

प्रवेश। घुसना। (२) अधिष्ठान। स्थिति। बास। रहना।  
 विनिवेशित-वि० [ सं० ] (१) प्रविष्ट। घुसा हुआ। (२)  
 उदर या टिका हुआ। अधिष्ठित। स्थापित। (३) बसा  
 हुआ।  
 विनिवेशी-वि० [ सं० विनिवेशी ] [ ली० विनिवेशीनी ] (१) प्रवेश  
 करनेवाला। घुसनेवाला। (२) रहनेवाला। बसनेवाला।  
 विनिहत-वि० [ सं० ] (१) घोट खाया हुआ। आहत। (२)  
 विनष्ट। ध्वस्त। बरबाद। (३) मरा हुआ। मृत।  
 (४) लुप्त।  
 विनीत-वि० [ सं० ] (१) जिसमें उत्तम शिक्षा का संस्कार  
 और शिष्टता हो। विनययुक्त। सुशील। (२) व्यवहार में  
 अधीनता प्रकट करनेवाला। शिष्ट। नम्र। (३) जिज्ञासु।  
 (४) संयमी। (५) ग्रहण किया हुआ। (६) सिलाया हुआ।  
 (७) दूर किया हुआ। हटाया हुआ। (८) छे गया हुआ। (९)  
 जिसको संबोध की गई हो। दूषित। शासित। (१०) नीति-  
 पूर्वक व्यवहार करनेवाला। धार्मिक। (११) साफ सुथरा।  
 (कपड़ा आदि)  
 संज्ञा पुं० (१) यणक। बनिया। साहु। (२) निकाला हुआ  
 घोदा। (३) पुलस्त्य के एक पुत्र का नाम। (४) दमनक।  
 होने का पौधा।  
 विनीतता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विनीत होने का भाव। नम्रता।  
 विनीति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विनय। सुशीलता। (२)  
 सद्व्यवहार। (३) सम्मान।  
 विनुक्ता-मन्थ० दे० "विना"।  
 विनुक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रस्ता। (२) एक प्रकार का  
 का नाम। (आध्यात्मन श्रौत सूत्र)  
 विनुडा-वि० [ हि० वनूडा ] अनूठा। सुंदर। यदिया।  
 विनोक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक अलंकार जिसमें किसी  
 वस्तु की हीनता या श्रेयता वर्णन की जाती है। दे०—(क)  
 जिय विनु देह नदी विनु बारी। तैसह नांघ पुरप विनु  
 बारी।—तुलसी। (ख) कैसे नीके लगत ये विनु सँकोच के  
 धै।—विहारी।  
 विनोद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कौतूहल। तमाशा। मनोरंजन  
 व्यापार। (२) क्रीड़ा। खेल कूद। लीला। (३) प्रमोद।  
 हँसी दिहगी। परिहास। (४) कामवाज के अनुसारा एक  
 प्रकार का आकृतिगन। (५) एक प्रकार का प्रासाद। प्रमोद-  
 गृह। (६) हर्ष। आनंद। प्रसन्नता।  
 विनोदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विनोदित, विनोदी ] (१) ऐसे  
 व्यापार करना जिनका उद्देश्य केवल मनोरंजन हो। आनोद  
 प्रमोद करना। क्रीड़ा करना। खेल कूद करना। (२)  
 हँसी दिहगी या हास विजास करना। (३) आनंद करना।  
 विनोदित-वि० [ सं० ] (१) हर्षित। प्रसन्न। (२) कुतूहलयुक्त।

विनोदी-वि० [ सं० विनोदिर ] [ वी० विनोदिनी ] (१) कुतूहल करनेवाला। आमोद प्रमोद करनेवाला। प्रीडा करनेवाला।

(२) खेल, कूद करनेवाला। जुहलवान् । (३) जिसका स्वभाव आमोद प्रमोद करने का हो। धानंदी। (४) क्रीडा-शील । खेलकूद या हँसी उठने में रहनेवाला। उ०—दयाम विनोदी रे मधुबनिया ।—सूर ।

विभ्रमस्त-वि० [ सं० ] (१) रखा हुआ। स्थापित। (२) यथा स्थान धँसा हुआ। जदा हुआ। (३) करीने से लगा हुआ। (४) ढाला हुआ। क्षित ।

विभ्रमस्त-कथा पुं० [ सं० ] बरियारा नाम का पौधा ।

विभ्रमस्त-उप्रा पुं० [ सं० ] [ वि० विव्यल ] (१) स्थापन। रखना। धरना। (२) यथा स्थान स्थापन। ठीक जगह पर करीने से रखना या धँसाना। सजाना। रखना। (३) अड़ना। (४) किसी स्थान पर ढालना।

विपंची-पंजा की० [ सं० ] (१) एक प्रकार का बग्गा जिसमें तार लगे रहते हैं। एक प्रकार की बीणा। उ०—(क) गवळ वसंत सुनि सुनिचे विपंची नाद पंचम सुनि ठानी धोडनि भनेटिचे ।—देव । (ख) तंत्री वीणा चलनी बहुवि विपंची भाहि ।—नंददास । (२) केलि। क्रीडा। खेल ।

विपक्ष-वि० [ सं० ] (१) लूण पका हुआ। (२) पूर्ण अवस्था को प्राप्त। (३) जो पका न हो। कच्चा।

विपक्ष-पंजा पुं० [ सं० ] (१) विरुद्ध पक्ष। किसी बात के विरुद्ध दूसरी स्थिति। (२) शत्रु या विरोधी का पक्ष। (३) विरोध करनेवाला दल। शत्रु पक्ष। विरोधी। प्रतिद्वंद्वी। दूसरा करीक। जैसे,—विपक्ष में जाना। (४) प्रतिवादी या शत्रु। विरुद्ध दल का मनुष्य। (५) किसी बात के विरुद्ध की स्थापना। विरोध। खंडन। जैसे,—दूसके विपक्ष में तुम्हें क्या कहना है? (६) व्याकरण में किसी नियम के कुछ विरुद्ध व्यवस्था। बाधक नियम। अववाद। (७) ग्राप या तक शास्त्र में वह पक्ष जिसमें सारथ का अभाव हो।

वि० (१) विरुद्ध। खिलाफ़। प्रतिकूल। (२) उल्टा। विपरीत। (३) जिसके पक्ष में कोई न हो। जिसका कोई सरकार न हो। (४) विना पर या देने का। पक्षहीन।

विपक्षता-पंजा की० [ सं० ] (१) विरुद्ध पक्ष का अचलंबन। (२) विपक्ष होने की क्रिया या भाव। खिलाफ़ होना।

विपक्षी-पंजा पुं० [ सं० विपक्षिण ] (१) विरुद्ध पक्ष का। दूसरी तरफ़ का। (२) शत्रु। प्रतिद्वंद्वी। प्रतिवादी। करीक़ उ०—(३) विना पक्ष का। विना पंख या देने का। (४)—निर्दिष्ट विपक्ष बनाह ।—गुमान।

विपक्षि-पंजा की० [ सं० ] (१) कष्ट, दुःख या शोक की प्राति। भारी रंज या तकलीफ़ का भा पदना। भाङ्ग। (२) छेद

या शोक की स्थिति। रंज या तकलीफ़ की हालत। संकट की अवस्था। बुरे दिन। जैसे,—विपक्ष में कोई साथी नहीं होता।

कि० प्र०—भाना।—पदना।

मुहा०—विपक्षि उठाना = संकट या कष्ट सहना। रंज या तकलीफ़ सहना। विपक्षि काटना = संकट या कष्ट के दिन विगत। रंज या तकलीफ़ में रहना। विपक्षि सेलना = कष्ट या शोक सहना। (किसी पर) विपक्षि ढालना = (किसी को) शोक या दुःख पहुँचाना। किसी को रंज या तकलीफ़ में डालना। (किसी पर) विपक्षि उठाना = सहसा कोई दुःख या शोक उपस्थित होना। एक भारी भाङ्ग आना। विपक्षि में ढालना = संकट या दुःख की अवस्था में करना। विपक्षि में पड़ना = शोक, दुःख या संकट की दशा को प्राप्त होना। विपक्षि मुतना या भोगना = शोक, दुःख या संकट सहना। (३) कठिनाई। संकट। बख़ेदा।

मुहा०—विपक्षि मोल लेना = स्वयं अपने कार भंकर लेना। ख़ेदे में पड़ना। विपक्षि सिर पर लेना = स्वयं भंकर में पड़ना। दिवहत में पड़ना।

विपथ-पंजा पुं० [ सं० ] (१) कुमार्ग। बुरा रास्ता। (२) बग़ल को रास्ता। (३) बुरी चाल। मंद आचरण। (४) एक प्रकार का रथ।

विपट्ट-पंजा की० [ सं० ] विपक्षि। भाङ्ग। संकट।

विपट्टा-पंजा की० [ सं० ] विपक्षि। भाङ्ग। दुःख, शोक या संकट।

विपक्ष-वि० [ सं० ] (१) जिस पर विपक्षि पड़ी हो। विपक्षि में पड़ा हुआ। मुसीबत का मारा। (२) दुःखी। भाते। (३) कठिनाई या संकट में पड़ा हुआ। (४) भूखा हुआ। भ्रम में पड़ा हुआ। (५) मृत।

विपरीत-वि० [ सं० ] (१) जो मेरु में वा अनुरूप न हो। जो विपर्यय के रूप में हो। उल्टा। विरुद्ध। खिलाफ़। (२) किसी की इच्छा या हित के विरुद्ध। प्रतिकूल। जैसे,—विपरीत आचरण। (३) अनिष्ट साधन में तारप। मृत। जैसे,—दैन या विधि का विपरीत होना। (४) हितसाधन के अनुपयुक्त। दुःखद। जैसे,—विपरीत समय। उ०—भाहं विपरीत समय सब ही विपरीत है।

पंजा पुं० (१) केवल के अनुसार एक अर्थालंकार जिसमें कार्य की सिद्धि में स्वयं साधक का बाधक होना दिखाया जाता है। उ०—साधो जू सों कहा कहीं दूतिन की मानिं सीख सौपिनी सद्धित विप रहित फजिन की। ब्यों न परे बीब, बीच भाँगियौ न सहि सकै, बीच परी भंगना भनेक बाँगनि की। (यहाँ दूती को साधक होना चाहिये या, पर यह बाधक हुई।) (२) सोरह मंत्रों के रति बंधों में से दुसवाँ रतिबंध।

विपरीतता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विपरीत होने का भाव ।

विपरीता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुश्चरित्रा स्त्री ।

विपरीतार्थ-वि० [ सं० ] भिन्नार्थ अर्थ उलटा हो ।

विपरीति-संज्ञा स्त्री० दे० "विपरीत" ।

विपरीतोपमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] केशव के अनुसार एक अलंकार जिसमें किसी भाग्यवान् व्यक्ति की हीनता वर्णन की जाय और वह अति हीन दशा में दिखाया जाय । यथा—द्रेस्त्रिय मंडिन वृद्धन सौं, भुजवृद्ध द्रोऊ अस्ति वृद्ध विहीनो राजनि श्री रघुनाथ के राज कुमंडल छाँदि कर्मदल हीनो ।—केशव ।

विपर्यय-वि० [ सं० ] पूर्ण रहित । बिना पत्तों का ।

संज्ञा पुं० पलाश का पेड़ । डेवू ।

विपर्यय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक पशु का दूसरी के स्थान पर और दूसरी का पहली के स्थान पर होना । उलट पलट । इधर का उधर । जैसे,—वर्ण-विपर्यय । (२) ऐसा परिवर्तन जिसमें दो पशुओं की स्थिति पूर्व स्थित से विरुद्ध हो जाय । जैसी चाहिए, उससे विरुद्ध स्थिति । और का और ।

व्यतिक्रम । (३) मित्या ज्ञान । और का और समझना ।

विशेष—योग-दर्शन के अनुसार "विपर्यय" चित्त की पाँच प्रकार की वृत्तियों ( प्रमाणा, विकल्प आदि ) में से एक है । जैसे, रस्ती को साँप, या साँप को चाँदी समझना । यथार्थ ज्ञान द्वारा इसका निराकरण होता है । इस "विपर्यय" या विपरीतज्ञान के पाँच अवयव बड़े गए हैं—भविष्य, अस्मिन्, राग, दौष और अभिनिवेश । इन्हीं को सांख्य में क्रमशः सम, मोह, महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्र कहते हैं । (४) धम । मूळ । गूळती । समझ का फेर । (५) गदबदी । अदबवस्था । (६) नाश ।

विपटवस्त-वि० [ सं० ] (१) जिसका विपर्यय हुआ हो । जो उलट पलट गया हो । जो इधर का उधर हो गया हो । (२) अस्त व्यस्त । गदबद । चौपट ।

विपर्ययास-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विपर्यय ] (१) विपर्यय । उलट पलट । इधर का उधर । व्यतिक्रम । (२) पूर्व से विरुद्ध स्थिति । एक पशु का दूसरी के स्थान पर होना । (३) जैसी चाहिए, उससे विरुद्ध स्थिति । और का और । (४) मित्या ज्ञान । और का और समझना ।

विशेष—न्याय में शत्रुमात्सक बुद्धि का नाम विपर्ययास है ।

जैसे,—रस्ती को साँप समझना ।

विपल-संज्ञा पुं० [ सं० ] समय का एक अत्यंत छोटा विभाग जो एक पल का साठवाँ भाग होता है ।

विपचन-वि० [ सं० ] [ वि० विपचीय, विपच्य ] विशेष रूप से पचित्र करनेवाला ।

संज्ञा पुं० विद्युत् पचन । सारा हुआ ।

विपशी-संज्ञा पुं० [ सं० विपशान् ] एक बुद्ध का नाम ।

विपश्यन-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रकृत ज्ञान । यथार्थ बोध । (भौट)

विपश्चित्-वि० [ सं० ] पश्चित । बुद्धिमान् । सूक्ष्मदर्शी । उ०—तेदि कारण तिव गंग तेदि गँई विपचित् कोक । यहि में मज्जन किये ते मिउँ महा धम कोक ।—दांडर । दिग्विजय ।

विपश्यी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विपश्यन् । एक बुद्ध का नाम ।

विपल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेघा । कुण्डि । (२) क्षान् । समझ ।

विपांडुरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महामेघा ।

विपाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) परिपेक होना । पचन । पचना ।

(२) पूर्ण दशा को पहुँचना । सैयारी पर आना । चाम

उत्कर्ष । (३) फल । परिणाम । (४) कर्म का फल ।

विशेष—योग दर्शन में यह विपाक तीन प्रकार का कहा गया है—जाति ( जन्म ), भावु और भोग ।

(५) खाए हुए भोजन का पेट में पचना । खाए द्रव्य की

पेट के अंदर रस-रूप में परिणति । (६) दुर्गति । दुर्दशा ।

(७) स्वाद । ज्ञापका ।

विपाठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वाण ।

विपाटन-संज्ञा पुं० [ सं० ] उखाड़ना । खोदना ।

विपाठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाण । सीर ।

विपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] पानन । नाश ।

विपातन-संज्ञा पुं० [ सं० ] नाश कानेशका । नाशक ।

विपातन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गळना । (२) नाश करना ।

विपादिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विपादित ] वध । हत्या ।

विपादिना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कुट रोग का एक भेद । अपरस ।

विशेष—यह पिर में होता है । इसके हँ गालियों के पास से उपर तक चमड़े में दारों पड़ जाती हैं और बढ़ी खुजली होती है । पीड़ा के कारण पिर नहीं रखा जाता ।

(२) प्रहेलिका । पहेली ।

विपादित-वि० [ सं० ] विनाशित । नष्ट किया हुआ ।

विपावा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम । ( महाभारत )

विपाल-वि० [ सं० ] ( पशु ) जिसका कोई पालनेवाला या मालिक न हो । ( स्मृति )

विपाशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यास नदी जो प्रभात में है । वि० दे० "विपासा" ।

विपासा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रभात की एक नदी । व्यास ।

विशेष—ऋग्वेद में इस नदी का उल्लेख शतुप्री ( सतलज ) के साथ है ।

विपिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वन । जंगल । (२) उपवन । वाटिका ।

वि० भवानक । बरवाना ।

विपिनचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वन में रहनेवाला। वनचर।

(२) जंगली आदिमी। (३) पशु पक्षी आदि।

विपिनतिलका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वर्ग वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में नाग, स्रगण, मगण और दो रगण ( न, स, न, र, र अर्थात् II, II, III, III, III, III ) होते हैं।

विपिनपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वन का राजा, सिंह। उ०—  
तिमि भेरी दल छे विपिन-पति, रिचि दुर्गम मन में भरत।  
तिमि लक्ष्यो प्रवीन उताल गति सुर सिंगार करि समर रत।  
—गोपाल।

विपिनविहारी-संज्ञा पुं० [ सं० विपिन + विहारी ] (१) वन में विहार करनेवाला। वनचारी। (२) कृष्ण का एक नाम। उ०—हरसन पाहू थकित भई-सारी। कहत भये तब विपिनविहारी।—विद्यानाम।

विपुलक-वि० [ सं० ] पुंलक्ष्य रहित। पुरणव से हीन।  
विपुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बहू स्त्री जिसकी, घेरा, स्वभाव या भावति पुरुषों की सी हो।

विपुत्र-वि० [ सं० ] [ स्त्री० विपुत्रा ] पुत्र-रहित। पुत्र-हीन।  
विपुल-वि० [ सं० ] [ स्त्री० विपुला ] (१) विलार, संख्या या परिणाम में बहुत अधिक। (२) बृहत्। बड़ा। अगाध। बहुत गहरा।

संज्ञा पुं० (१) सुमेरु पर्वत का पश्चिमी भाग। (१) मगध देश की प्राचीन राजधानी राजगृह के पास की एक पहाड़ी। (२) हिमालय। (३) एक देवी-पीठ। देवी का एक प्रधान स्थान जहाँ की देवी का नाम विपुला है। (४) रोहिणी से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम। उ०—विपुल विपुल-बल क्यो रचत रन में पुल सर की।—गोपाल।

विपुलक-वि० [ सं० ] (१) बहुत चौड़ा। (२) जिसे रोमांच न हो। पुलक-रहित।

विपुलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आधिपत्य। बहुतायत। बड़ाई।  
विपुलपार्थ्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम।  
विपुलमति-वि० [ सं० ] बहुत बुद्धिवाला। बहुत बुद्धिमान्।

संज्ञा पुं० एक बोधिसत्व का नाम।  
विपुलसूक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] अज्ञेय एक नाम।  
विपुला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पत्नी। वसुन्धरा। (२) एक प्रकार का उद, जिसके प्रत्येक चरण में मगण, रगण और दो लघु होते हैं। (३) भाष्यों उद के तीन भेदों में एक भेद जिसके प्रथम चरण में १८, दूसरे में १२, तीसरे में १४ और चौथे में १३ मापाएँ होती हैं। (४) विपुल नामक पर्वत की अधिष्ठात्री देवी। (५) एक प्रसिद्ध संतों जो 'बहुला' के नाम से प्रसिद्ध है।

विपुलारि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विपुल + भार ( वि० मध्य० ) विपुलता। अधिकता। उग्रता।

विपुलाक्षया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृतङ्गमारी। श्री कुंवार। ग्यारपाडा।

विपुचित्त-वि० [ सं० ] हर्षित। प्रफुल्ल।

विपुय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुन्दरगुण। मूँज।

विपोहना-संज्ञा-कि० सं० [ सं० वि० + पोह ] (१) पोतना। लीपना। (२) नाश करना। मिटाना। उ०—उपति जमी जमुना सी लगी जग लाल-विलोचन पाप विपोही।—केशव। (३) दे० "पोहना"।

विप्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) माहण विशेष—जो यजन याजन आदि कर्म पूर्ण रीति से करता हो, यह विप्र है। विशेष दे० "माहण"।

(२) पुरोहित। यज्ञ करनेवाला। (३) वेद मंत्रों को जानने-वाला। कर्मनिष्ठ। (४) शीरोपर बृद्ध। सरिस का पेड़। (५) अक्षय। पीपल का पेड़। (६) पापर का पौधा जो औषध के काम में आता है। रेणुक।  
वि० मेधावी। बुद्धिमान्।

विप्रकर्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विप्रकृष्ट ] (१) दूर खींच ले जाना। दूर हटाना। (२) किसी कर्म या कृत्य का अंत।

विप्रकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विप्रकर्म ] (१) तिरस्कार। भनादर। (२) अपकार।  
मन्थ्यं विविध प्रकार से।

विप्रकाष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] नरमा या कदास का पौधा।  
विप्रकीर्ण-वि० [ सं० ] (१) बिखरा हुआ। छिन्नाया हुआ।  
ध्वर उधर पड़ा हुआ। (२) अस्त व्यस्त। अस्थवस्थित।  
गह्वर।

विप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विप्रकार। अपकार।  
विप्रकृष्ट-वि० [ सं० ] (१) खींचकर दूर किया हुआ। (२) जो दूरी पर हो। दूरस्थ।

विप्रचरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ सं० विन + चरण ] शृंग मुनि की शान का चिह्न जो विष्णु के हृदय पर माना जाता है। उ०—  
(क) उर वन माल पदिक भति शोभित, विप्रचरन चित कई कपै।—तुलसी। (ख) उर मनि-हार पदिक की सोभा।  
विप्रचरन देखत मन छोभा।—तुलसी।

विप्रचित्त-संज्ञा पुं० दे० "विप्रचित्त"।  
विप्रचित्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक शान्त जिसकी पत्नी सिद्धिका के गर्भ से राष्ट्र की उत्पत्ति हुई थी।

विप्रता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माहणत्व।  
विप्रतारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत धोखा देनेवाला।  
विप्रतपस्त्रि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विरोध। भेद न पेटना।  
शैले,—मनुष्यों के स्वार्थ की विप्रतिपत्ति। ( मिताक्षर )  
(२) देसा कथन जिसके अर्थ दो देसी बातें हों जो एक साथ न हो सकती हों। परस्पर विरुद्ध भाव। ( श्याम )



विशेष—जैसे, कोई कहे कि "वहाँ अग्नि है और नहीं है" तो उसका यह कथन विप्रतिपत्ति का उदाहरण होगा।

(३) किसी बात का बिल्कुल उल्टा निरूपण। किसी बात से ऐसा नतीजा निकालना जो ठीक न हो। विपरीत प्रतिपत्ति।

अविद्धि। (४) प्रसिद्धि का अभाव। अस्पष्टता। (५) अज्ञान। (६) किसी कृत्य या पूजन की वह विकृति जो प्रतिनिधि द्रव्य का नाम लेने से होती है।

विशेष—किसी कृत्य या पूजन में जो द्रव्य विहित है, उसके अभाव में यदि कोई दूसरा द्रव्य प्रतिनिधि रूप में रखा जाय, तो समर्पण वाक्य में प्रतिनिधि द्रव्य का नाम न लेकर जिसके अभाव में वह द्रव्य रखा गया हो, उसी का नाम कहना चाहिए। प्रतिनिधि द्रव्य का नाम लेने से पूजा विकृत हो जाती है।

विप्रतिपद्यमान-वि० [ सं० ] पाप करनेवाला। पापात्मा।

विप्रतिपक्ष-वि० [ सं० ] (१) विप्रतिपत्ति युक्त। संदिग्ध युक्त।

(२) अस्वीकृत। (३) जो साक्षित न हुआ हो। अस्तिष्ठ।

विप्रतिपिद्ध-वि० [ सं० ] (१) जिसका निषेध किया गया हो।

जो मना हो। निषिद्ध। (स्मृति) (२) विरुद्ध। विहाक।

उल्टा। (३) निवारित। वञ्चित।

विप्रतिषेध-संज्ञा पुं० [ सं० ] दो बातों का परस्पर विरोध। मेक न बैठना।

विप्रतिषार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अनुताप। पछतावा। (२)

रोप। क्रोध।

विप्रत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] माझण।

विप्रथित-वि० [ सं० ] विषयात्। महाद्वार।

विप्रदुष्ट-वि० [ सं० ] (१) पापवत्। (२) कामी। (३) मन्द।

नष्ट।

विप्रयुक्त-वि० [ सं० ] कामकारी। हितकर।

विप्रचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रुत सुनि की लात का चिह्न जो विष्णु के वक्षस्थल पर माना जाता है। विप्रचरण।

विप्रपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विशेष रूप से पतन। बिल्कुल गिर जाना। (२) ऊँचा बालूवाँ टीला। (३) खाई।

विप्रपिण्ड-संज्ञा पुं० [ सं० ] पलाश वृक्ष।

विप्रबंधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह माझण जो अपने कर्म से श्रुत हो। नीच माझण। (२) गोपायन गोश्रीय एक मंत्रद्रव्य अपि।

विप्रमुद्ध-वि० [ सं० ] (१) भागा हुआ। (२) ज्ञान प्राप्त।

विप्रमनस-वि० [ सं० ] जिसका जी न लगता हो। अन्यामनस्क।

अमनना।

विप्रमाथी-वि० [ सं० ] विप्रमाथिन् [ को० ] विप्रमाथिनी (१) खूब

मग्न करनेवाला। (२) ध्वस्त या नष्ट करनेवाला। (३)

आकृत का ध्वस्त करनेवाला।

विप्रयाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] भागना। पलायन।

विप्रयुक्त-वि० [ सं० ] (१) जो मिला न हो। विच्छिन्न। विभ्रष्ट। अलग। (२) विद्युद्वा हुआ। (मित्र या प्रिय से) (३) जिसका विभाग हुआ हो।

विप्रयोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० ] विप्रयुक्त (१) वियोग। विरह। जुदाई। विपलंभ। (२) विस्वादा। घुरा समाचर। (३) विच्छेद। अलग होना।

विप्रराम-संज्ञा पुं० [ सं० ] परशुराम। उ०—वैरिन मैं विप्रराम, नीति माई जदुराम, बूँड़ी नाथ राताराम शीक माई राम है।—मतिराम।

विप्रलंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अभिलषित वस्तु को अप्राप्ति। चाही हुई वस्तु का न मिलना। (२) प्रिय का न मिलना। वियोग। जुदाई। विरह। अनिलन।

विशेष—सहित्य में शृंगार रस दो प्रकार का कहा गया है—संयोग शृंगार और विप्रलंभ शृंगार। इन्हीं को संयोग और वियोग भी कहते हैं। विप्रलंभ शृंगार में नायक नायिका के विरह-जन्य संताप भादि का वर्णन होता है।

(१) अलग होना। विच्छेद। (२) छल से किसी को किसी काम से वंचित करना। धोखा। छल। धूर्तता। वंचना।

(५) विरुद्ध कर्म। घुरा काम।

विप्रलंभक-संज्ञा पुं० [ सं० ] धूर्त या धोखेवाज़-आदमी। वंचक।

विप्रलंभी संज्ञा पुं० [ सं० ] विप्रलंभिन् धोखेवाज़। धूर्त।

विप्रसन्ध-वि० [ सं० ] (१) जिसे चाही हुई वस्तु न प्राप्त हुई हो। रहित। वंचित। (२) जिसे प्रिय का समागम न प्राप्त हुआ हो। वियोग-दशा-प्राप्त। (३) जो छल द्वारा किसी काम से वंचित किया गया हो। प्रतारित।

विप्रलब्धा-संज्ञा स्त्री [ सं० ] वह नायिका जो संकेत स्थान में प्रिय को न पाकर निराश या दुःखी हो।

विप्रल्लाव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सारहीन वाक्य। व्यर्थ बकवास। (२) विवाद। झगडा। (३) घुरा वचन।

विप्रलीन-वि० [ सं० ] बिखरा हुआ। छितराया हुआ। ह्वर-ह्वर पड़ा हुआ।

विप्रलुपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बड़ा कालची। अति लोभी। (२) अपने काम के लिये लोगों को सजानेवाला। उपदेशक। (३) अधिक कर लेनेवाला।

विप्रलुप्त-वि० [ सं० ] (१) जो लुटा गया हो। भ्रष्ट। (२) जो गायब किया गया हो। जो उड़ा लिया गया हो। (३) जिसके कार्य में विप्र पहुँचाया गया हो।

विप्रलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिंधिया पड़नेवाला। श्वाध। गिहारी।

विप्रलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विप्रलोक ] (१) विवृक्त लोप ।  
 (२) नाश ।  
 विप्रदाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दूरे वचन । (२) व्यर्थ वक्ताव ।  
 (३) कलह । विवाद । सगदा ।  
 विप्रदास-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विप्रदास ] (१) विदेश में वास ।  
 परदेश में रहना । (२) संन्यास आश्रम में एक अपराध जो  
 अपने कपड़े दूसरे को देने से होता है ।  
 विप्रद्वजनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो दो पुरुषों से संबंध  
 रखे ।  
 विप्रद्वज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह प्रथम जिसका उत्तर फलित ज्योतिष  
 द्वारा दिया जाय ।  
 विप्रद्विक्-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईदृश । ज्योतिषी ।  
 विप्रद्वज-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यादव का नाम जो बलराम जी  
 का छोटा भाई लगता था ।  
 विप्रदास्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विस्तार करना । फैलाना ।  
 विप्रहरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ल्याग । (२) युक्ति ।  
 विप्रिय-वि० [ सं० ] (१) अग्रिय । (२) कृद् । (३) अतिशय  
 मिय । (४) विद्योग ।  
 संज्ञा पुं० अपराध । क्रूर ।  
 विप्रुद-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पानी की छोटी बूँद या छीटा ।  
 (२) धूँक का वह छीटा जो वेद पाठ करने में बँदता है ।  
 विशेष—मनुस्मृति के अनुसार ऐसा छीटा अपवित्र नहीं है ।  
 विप्रुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] पानी की छोटी बूँद या छीटा ।  
 विप्रुद्धोम-संज्ञा पुं० [ सं० ] विप्रुप + रोम ] एक प्रकार का पूजन जो  
 वन के अवसर पर सोम की प्राप्ति के लिये किया जाता था ।  
 विप्रोपित-वि० [ सं० ] (१) प्रवास में गया हुआ । (२) अनु-  
 पत्थित ।  
 विप्रोपितमर्तृका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसका पति या  
 प्रेमी परदेश गया हो ।  
 विप्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उपद्रव । हंगामा । शशाति और  
 हलचल । (२) राग्य के भीतर जनता की अशांति और  
 उद्वत आघात । बलवा । (३) दूसरे राष्ट्र द्वारा उपस्थित  
 अशांति । परचक्र-भय । (४) उधल पुथल । अग्रवस्था ।  
 (५) भाङ्ग । विपत्ति । (६) विनाश । (७) शत्रु को  
 डराने के लिये मचाया हुआ सार गुल । दौट डपट या  
 ममकी । (८) नाच का दृबना । (९) जल की बाढ़ ।  
 बधिया । (१०) वेदों के अपूर्ण ज्ञान द्वारा उनका भनाद ।  
 (११) घोड़े की बहुत तेज़ चाल ।  
 विप्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पानी की बाढ़ । बधिया । (२)  
 घोड़े की बहुत तेज़ चाल ।  
 विप्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्वधारी । उपद्रव मचाने-  
 वाला । (२) राग्य में उपद्रव लदा करनेवाला । बलगाई ।  
 (३) जल की बाढ़ डानेवाला ।

विप्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] विप्रथिन [ को-विप्रथिनी ] (१) उपद्रव  
 करनेवाला । (२) जल की बाढ़ डानेवाला ।  
 विमुत्त-वि० [ सं० ] (१) छितराया हुआ । बिखरा हुआ । (२)  
 प्याराया हुआ । आकुल । (३) क्षुब्ध । व्यग्र । दुखी ।  
 (४) अष्ट । पतित । (५) नियम, प्रतिज्ञा भादि से प्युत ।  
 (६) व्यसन के कारण किसी वस्तु के अभाव में व्याकुल ।  
 व्यसनार्त ।  
 विमुत्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्रिया की एक व्याधि जिसमें उनही  
 योनि में नित्य पीड़ा रहती है ।  
 विमुत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विद्वध । हलचल । उपद्रव ।  
 विमुत्प-संज्ञा पुं० दे० "विमुत्" ।  
 विप्लवा-संज्ञा स्त्री० दे० "धीप्लता" ।  
 विफल-वि० [ सं० ] (१) जिसमें फल न लगता या लगा हो ।  
 फल-रहित । उ०—सुरली सुनत अचल चले । प्रवित है  
 जल धारत पाहन विफल वृक्ष फले ।—सूर । (२) जिसका  
 कुछ परिणाम न हो । जिसका कुछ नतीजा न हो । जिससे  
 कुछ सिद्धि न प्राप्त हो । निष्फल । व्यर्थ । बेफायदा ।  
 शैते,—कोई प्रयत्न विफल होना; विफल-मनोरथ होना ।  
 (३) जिसके प्रयत्न का कुछ परिणाम न हुआ हो । अकृत-  
 कार्थ्य । नाकामयाव । (४) हताश । निराश । (५) अक्ष-  
 कोत्तर-रहित ।  
 विफलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कार्य की सिद्धि न होना ।  
 अक्षफलता ।  
 विफला-वि० स्त्री० [ सं० ] (१) बिना फल की । जिसमें फल  
 न लगे । (२) जिसका कुछ परिणाम न निकले । (३) जो  
 प्रयत्न में कृतकार्थ्य न हुई हो ।  
 संज्ञा स्त्री० केतकी ।  
 विबंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विशेष रूप से बंधन । श्वंज जक-  
 दना । (२) आनाइ रोग (अफरा) का एक भेद जिसमें  
 छाप हुप पदार्थ का बिना पचा रह मल रूप में पेट में  
 रुका रहता है और दस्त नहीं होता ।  
 विबंधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीठ, छाती, पेट आदि के घाव या  
 फोड़े को कपड़े से विद्योग रूप से बाँधने की युक्ति या क्रिया ।  
 (सुधुत)  
 विबंधवर्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घोड़ों का एक रोग जिसमें उनकां  
 पेटाध बंध हो जाता है तथा पेट और नादियों में जकड़ने  
 की सी पीड़ा होती है ।  
 विबंध-वि० [ सं० ] वि + क्यु ] (१) बंधु रहित । जिसके भाई बंधु  
 न हो । (२) विद्वहीन । अनाथ ।  
 विद्वल-वि० [ सं० ] (१) बल रहित । (२) दुर्बल । अशक्त ।  
 (३) विद्योग बलवात् ।  
 विधाध-वि० [ सं० ] बध्या रहित ।

विद्युत्-वि० [ सं० वि + वृथ ] (१) ज्ञात। जगा हुआ। (२) विकसित। खिला हुआ। (३) ज्ञान-मास। सचेत।  
विद्युत्-संज्ञा पुं० [ सं० वि + वृथ ] (१) पंडित। बुद्धिमान्। (२) देवता। (३) चंद्रमा। (४) एक राजा का नाम। (५) शिव। महादेव।  
विद्युत्घातनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवताओं की नदी, आकाश-गंगा।

विद्युत्घतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कल्पवृक्ष।  
विद्युत्घनेजु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कामधेनु।  
विद्युत्घपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का राजा, इन्द्र।  
विद्युत्घमिया-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवी। भगवती।  
विद्युत्घिलासिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) देवोगना। देवता की स्त्री। (२) अम्सरा। स्वर्ग की वेद्या। उ०—सकल सुभासिनी गुरु जन पुराण पाहुने लोग। विद्युत्घिलासिनी सुर मुनि जाचक जो जेहि जोग।—तुलसी।

विद्युत्घोषि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कल्पवृक्ष। उ०—रूपा सुधा सींधी विद्युत् घोषि लीं फिरि सुख फरनि फरी।—तुलसी।  
विद्युत्घोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के घैष, अधिनीकुमार।  
विद्युत्घवन-संज्ञा पुं० [ सं० विद्युत् + वन ] इन्द्र का उद्यान। नंदन कानन।

विद्युत्घाघिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के राजा, इन्द्र।  
विद्युत्घान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पंडित। आचार्य्य। (२) देवता।  
विद्युत्घापना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवताओं की नदी, आकाश-गंगा।  
विद्युत्घावांस-संज्ञा पुं० [ सं० विद्युत् + वागम ] (१) देवताओं का निवास स्थान, स्वर्ग। (२) देवमंदिर।  
विद्युत्घोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जागरण। जगना। उ०—चिता मोह सुपन विद्युत्घोष स्मृति अमर्ष-गर्भ-उत्सुक तासु अवहित्य अनिये।—पद्मकर।

विद्युत्घोष-साहित्य के रस विधान में विद्युत्घोष संचारी या व्यभिचारी भावों में से एक है।  
(२) सम्यक् बोध। अच्छा ज्ञान। (३) सचेत होना। सावधान होना। (४) होश-में आना। (५) विकास। प्रफुल्लता।

विद्युत्घोषन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विद्युत्घोष ] (१) जगना। प्रबोधन। (२) ज्ञान कराना। अर्थ खोलना। (३) समझाना। बुझाना। दास देना।

विद्युत्घोषित-वि० [ सं० ] (१) जगाया हुआ। (२) ज्ञापित। जताया हुआ। सतलाया हुआ। (३) खिलाया या प्रफुल्लित किया हुआ। विकसित।

विद्युत्घोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विन्यास। गठन या रचना। (२) दृष्टना। (३) विभाग। (४) क्रम या परंपरा का दृष्टना।

(५) भ्रमंग। सौं की घेरा। (६) मुख का भाव या चेहरा।  
विद्युत्घोष-वि० [ सं० वि० + मन् ] (१) दृष्टना। (२) कृष्टना। (३) नाद। शब्द।

विद्युत्घोष-वि० [ सं० वि० + मन् ] (१) चैंटा हुआ। विभाजित। (२) भलग किया हुआ। प्रथक् किया हुआ। (३) जो अपने पिता की सम्पत्ति से अपना भाग पा चुका हो और भलग हो। संज्ञा पुं० कातिकेय।

विद्युत्घोष-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विभक्त होने की क्रिया या भाव। विभाग। बँट। (२) भलग होने की क्रिया या भाव। भलगवाव। पार्थक्य। (३) शब्द के आगे लगा हुआ शब्द प्रत्यय या सिद्ध जिससे यह पता लगता है कि उस शब्द का क्रिया-पद से क्या संबंध है। (व्याकरण)।

विद्युत्घोष-संस्कृत व्याकरण में जिसे 'विभक्ति' कहते हैं, वह पालन में शब्द या रूपान्तरित भंग होता है। जैसे,—रामेण, रामाय इत्यादि। आज कल की प्रचलित खड़ी बोली में इस प्रकार की विभक्तियाँ प्रायः नहीं हैं, केवल कर्म और सम्बन्धान कारक के सर्वनामों में विकल्प से आती हैं। जैसे,—मुझे, तुझे, इन्हें इत्यादि। संस्कृत में विभक्तियों के रूप शब्द के अंत्य अक्षर के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं। पर यह भेद खड़ी बोली के कारकों में नहीं पाया जाता, तब भी कुछ विभक्तियों का व्यवहार नहीं होता, कारक-विद्युत् का व्यवहार होता है।

विद्युत्घोष-वि० [ सं० वि + मन् ] (१) दृष्टा कृष्टा हुआ। (२) भलग हुआ।

विद्युत्घोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घन। संपत्ति। (२) ऐश्वर्य्य। शक्ति। उ०—भव भय, विभव, परामय-कारिनि।—तुलसी। (३) औदार्य्य। (४) बहुतायत। आधिक्य। (५) मोक्ष। जन्म मरण से छुटकारा। (६) साठ संवसरो में से छत्तीसवाँ संवसर।

विद्युत्घोषान-संज्ञा पुं० [ सं० विभवत् ] [ स्त्री० विभवती ] (१) विभव-वाला। धनी। दौलतमन्द। (२) शक्तिवाली।  
विभवशाली-वि० [ सं० ] (१) विभववाला। (२) प्रतापवाला। ऐश्वर्य्यवाला।

विद्युत्घोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ऋषि जो ऋष्यश्याम के पिता थे।

विद्युत्घोषिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आहुत्य वृक्ष।  
विद्युत्घोषी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नीलापरजिता। विष्णुकी लता।

विद्युत्घोषि-संज्ञा स्त्री० [ सं० वि० + हि० शक्ति ] प्रकार। भेद। क्रिया। वि० अनेक प्रकार का। प्रत्यय अनेक प्रकार से।

विद्युत्घोष-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रभा। कान्ति। चमक। (२) किरण। रश्मि। (३) शोभा। सुन्दरता।

# मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

- (१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (३) शुद्ध गोविंदसिंह—लेखक धेष्णोप्रसाद ।  
 (४, ५, ६) आदर्श हिंदू, तीन भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्मा ।  
 (७) राणा जंगमहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।  
 (८) भीम पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा ।  
 (९) जीवन के आनंद—लेखक गणपति जानकीराम दुबे ।  
 (१०) मौनिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद यो०एस०सो० ।  
 (११) लालचीन—लेखक ब्रजनंदनसहाय ।  
 (१२) कबीर-ध्वजनामाली—संग्रहकर्ता श्रयोध्यासिंह उपाध्याय ।  
 (१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र यो०एस० ।  
 (१४) शुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।  
 (१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमार देव शर्मा ।  
 (१७) घोरमणि—लेखक श्यामविहारो मिश्र एम० ए० और शुद्धदेवविहारो मिश्र यो०एस० ।  
 (१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी ।  
 (१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार ।  
 (२०, २१) हिंदुस्तान दो खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय यो०एस० ।  
 (२२) महाय सुकरान—लेखक धेष्णोप्रसाद ।  
 (२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद यो०एस०सो० ।  
 (२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारो मिश्र एम० ए० और शुद्धदेवविहारो मिश्र यो०एस० ।  
 (२५) सुंदरसार—संग्रहकर्ता पुरोहित हरिनारायण शर्मा यो०एस० ।  
 (२६, २७) जर्मनों का विकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्मा ।  
 (२८) कृषिकौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह एल० ए०जी० ।  
 (२९) कर्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम०एस० ।  
 (३०, ३१) मुसलमानों राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मथन दिवेदी यो०एस० ।  
 (३२) महाराज रणजितसिंह—लेखक धेष्णोप्रसाद ।  
 (३३, ३४) विश्वप्रपंच, दो भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (३५) अहिल्यायारौ—लेखक गोविंदराम केशवराम जोशी ।  
 (३६) रामचंद्रिका—संकलनकर्ता लाला भगवानदास ।  
 (३७) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ।  
 (३८, ३९) हिंदी निबंधमाला, दो भाग—संग्रहकर्ता श्यामसुन्दरदास यो०एस० ।  
 (४०) सरसुधा—संपादक गणेशविहारो मिश्र, श्यामविहारो मिश्र, शुद्धदेवविहारो मिश्र ।  
 (४१) कर्तव्य—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (४२) संक्षिप्त रामस्वयंवर—संपादक ब्रजरत्नदास ।  
 (४३) शिशुपालन—लेखक मुकुन्दस्वरूप वर्मा ।  
 (४४) शाही दृश्य—लेखक मन्मथनलाल शुभ शर्मा ।  
 (४५) पुरुषार्थ—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।  
 (४६) तर्कशास्त्र, पहला भाग—लेखक गुलाबराय एम०एस० ।

माला की प्रत्येक पुस्तक या उसके किसी भाग का मूल्य १। है; परन्तु स्यायो-आहकों को सब पुस्तकें बारह बारह आने में दी जाती हैं ।

एक फाई भेजकर उत्तमोत्तम पुस्तकों का बड़ा और नया सूचीपत्र मँगवाए ।

मिलने का पता—प्रकाशन मंत्री, नागरीभचारिणी समा,

बनारस सिटी ।

## नई पुस्तकें

### मुहम्मद नैएसि की ख्यात ( पहला भाग )

राजपूताने, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवे और गुजरेलखंड के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करनेवालों के लिये यह सुप्रसिद्ध ख्यात बहुत महत्व की है। इसमें मुहिलौत, चौदान, सोलंकी, प्रतिहार और परमार वंश का बहुत ही विस्तृत तथा प्रामाणिक इतिहास और उनकी वंशावलिओं दी गई हैं। साथ में अनेक उपयोगी टिप्पणियाँ आदि भी दी गई हैं। ऐतिहासिक अनुसंधान करनेवालों के लिये बड़े फाय की चीज है। मूल्य ३॥)

### अकबरी दरबार (पहला भाग)

सूई, फारसी आदि के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय शम्सुल् उल्मा मौलाना मुहम्मद हुसेन साहब आचार्य इस दरबारे अकबरी नामक ग्रंथ का अनुवाद। इसमें बादशाह अकबर की पूरी जीवनी दी गई है और बतलाया गया है कि उसने कैसे कैसे युद्ध किए, अपने राज्य की किस प्रकार व्यवस्था की, उसके समय में देश को राजनीतिक, सामाजिक और साम्प्रति अवस्था कैसी थी, आदि आदि। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर, मूल्य २॥)

### अशोक की धर्म-लिपियाँ (पहला भाग)

इस पुस्तक में सम्राट् अशोक के प्रधान शिलालेखों की प्रतिलिपि, संस्कृत तथा हिंदी अनुवाद और स्थान स्थान पर अनेक बहुमूल्य टिप्पणियाँ दी गई हैं। अशोक की धर्मलिपियों का ऐसा अच्छा दूसरा संस्करण अभी फहीं नहीं निकला। प्रत्येक इतिहास-भेमी और विद्यानुरागी को इसकी एक प्रति अवश्य रखनी चाहिए। मूल्य ३।)

### वाँकीदास ग्रंथावली (पहला भाग)

हिंदी भाषा के महाकवि कविराजा वाँकीदास कृत सूर छतीसी, सोह छतीसी, वीर-विनोद, धवल पचीसी, दातार वादनी, नीति-मंजरी और सुपह छतीसी ये सात ग्रंथ अभी तक मिले हैं, जो इस पहले खंड में एक साथ ही छाप दिए गए हैं। आरंभ में वाँकीदास जी की जीवनी दे दी गई है और प्रत्येक पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा उनके उपयोगी विवरण आदि पाठ्यटिप्पणियों में देकर पुस्तक सर्वसाधारण के लिये बहुत ही सुगम कर दी गई है। १०० पृष्ठों से ऊपर की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ॥)

### वीसलदेव रासो

यह ग्रंथ सं० १२७२ का लिखा हुआ है और इसकी भाषा प्राचीनतम हिन्दी है। इसमें वीसलदेव (विजयराज चतुर्थ) के जीवन की मुख्य घटनाओं और युद्धों आदि का बहुत उत्कृष्ट वर्णन है। १७ वीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रति से इसका पाठ शुद्ध किया गया है और कठिन शब्दों के अर्थ तथा टिप्पणियाँ दी गई हैं। प्राचीन भाषा कान्य-प्रेमियों के लिये अपूर्व रत्न है। १७५ पृष्ठों की जिल्ददार पुस्तक का मूल्य ॥॥)

### जायसी ग्रंथावली

सभा, नैजायसी कृत पद्मावत और अखरावट का बहुत सुन्दर और शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया है और प्रति पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा दूसरे आवश्यक विवरण दे दिए हैं, जिसमें यह कान्य साधारण विद्यार्थियों तक के समझने योग्य हो गया है। पुस्तक का पाठ बहुत परिश्रम से शुद्ध किया गया है। आरंभ में इसके सम्पादक और सिद्धहस्त समालोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल ने प्रायः ढाई सौ पृष्ठों की इसकी मार्मिक आलोचना कर दी है, जिसके कारण सोने में सुगंध भी आ गई है। बड़े आकार के प्रायः ७०० पृष्ठों की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ३।)

### प्रकाशन मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस सिटी।

मुद्रक—गणपति हृष्य गुर्जर, श्रीकृष्णीनारायण प्रेस, बनारस सिटी।

विभाकर-छंदा पुं० [ सं० ] (१) प्रकाशवाला । (२) सूर्य । (३) भाऊ का पौधा । मदार । (४) चित्रक । चीते का पेड़ । (५) अमि । (६) राजा ।

विभाग-छंदा पुं० [ सं० ] (१) बँटने की क्रिया या भाग । किसी वस्तु के कई भाग या हिस्से करना । बँटवारा । तख्सीम । जैसे,—संपत्ति का विभाग ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

(२) कई खंडों या वर्गों में विभक्त वस्तु का एक एक खंड या वर्ग । भाग । भंडा । हिस्सा । बख़रा । (३) पौकसंपत्ति का कोई भंडा जो किसी को नियमानुसार दिया जाय । हिस्सा । बख़रा । (४) प्रकरण । अर्थात् । जैसे,—ग्रंथ का विभाग । (५) कार्य क्षेत्र । मुहकमा । जैसे,—शिक्षा विभाग ।

विभागशः-कि० वि० [ सं० ] विभाग के अनुसार ।

विभागारम्भक नक्षत्र-छंदा पुं० [ सं० ] रोहिणी, भाद्रा, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा और श्रवण भादि भाट प्रकाशमय नक्षत्र ।

विभाषी-छंदा पुं० [ विभाषिण ] [ औ० विभाषिणी ] (१) विभाग करनेवाला । (२) विभाग या हिस्सा पानेवाला । हिस्सेदार ।

विभाजक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) विभाग करनेवाला । बँटनेवाला । (२) गणित में वह संख्या जिससे किसी दूसरी संख्या को भाग दें । भाजक ।

विभाजन-छंदा पुं० [ सं० ] [ वि० विभाजनीय, विभाजित, विभाज्य ] (१) विभाग करने की क्रिया या भाग । बँटने का काम । (२) पाठ । वारतन ।

विभाजित-वि० [ सं० ] जिसका विभाग किया गया हो । जो बाँटा गया हो । जिसके खंड वा हिस्से किए गए हों ।

विभाज्य-वि० [ सं० ] (१) विभाग करने योग्य । (२) जिसका विभाग करना हो । जिसे बँटना हो ।

विभाज-छंदा पुं० [ सं० ] सवेरा । प्रभात ।

विभावि-छंदा पुं० [ सं० विना ] शोभा । सुंदरता । उ०—और यनिता की ओर भूलेहैं न देहीं मन तुम जो कहत भाये सोह धीरी तानी में । वाको अथ करिसे निवाह सो देखाऊँ तवै रघुनाथ देखी देह धायनी विमाती में ।—रघुनाथ ।

विभावा-कि० प्र० [ सं० विभा + ना (प्रत्य०) ] (१) चमकना । छटकना । (२) शोभा पाना । शोभित होना । उ०—मनु कुछ कमल के मधि कठी सगुण छता विमाति है ।—गोपाल ।

विभावा-कि० प्र० [ वि० विभावा ] चमकना । छटकना । उ०—साम बान पट अरुन विभारिं रवि साम तेज मुखचन परिं ।—पद्माकर ।

विभाय-छंदा पुं० [ सं० ] साहित्य में वह वस्तु जो रति भादि भावों को आश्रय में उत्पन्न करनेवाली या उद्दीप्त करनेवाली हो । रस-विधान में भाव का उद्देश्यक ।

विशेष—विभाय दो कहे गए हैं—आलंबन और उद्दीपन । आलंबन वह है जिसके प्रति आश्रय या पात्र के हृदय में कोई भाव स्थित हो । जैसे नायक के लिये नायिका और नायिका के लिये नायक । उद्दीपन वह है जिससे आलंबन के प्रति स्थित भाव उद्दीप्त या उत्तेजित हो । रस-भेद से आलंबन और उद्दीपन मिश्र मिश्र होंगे । जैसे, शृंगार में आलंबन होंगे नायक नायिका; हास में कोई खेदगी अश्रुति या बाणी भादिवाला व्यक्ति; करुण में विनष्ट बंधु भादि या कोई पीडित अथवा शोचनीय व्यक्ति इत्यादि, इत्यादि । इसी प्रकार उद्दीपन भी रस भेद से मिश्र होंगे । जैसे, शृंगार में खौदगी, फूल आदि; रौद्र में आलंबन की दुष्ट चेष्टा इत्यादि ।

विभाजन-छंदा पुं० [ सं० ] [ वि० विभाजनीय ] (१) विशेष रूप से चिंतन । (२) साहित्य के रस-विधान में वह सांनसिक व्यापार जिसके कारण पात्र में प्रदर्शित भाव का श्रोता या पाठक भी साधारणीकरण द्वारा भागी होता है ।

विभाजना-छंदा की० [ सं० ] साहित्य में एक अर्थात्कार जिसमें नाराज के विना कार्य की उत्पत्ति, या अर्थ का कारण से कार्य की उत्पत्ति, या प्रतिबंध होते हुए भी कार्य की सिद्धि, या जो जिस कार्य का कारण नहीं हुआ करता, उससे उस कार्य की उत्पत्ति, अथवा विरुद्ध कारण से किसी कार्य की उत्पत्ति या कार्य से कारण की उत्पत्ति दिखाई जाती है । उ०— (क) सुनत छपत मुनि नैन भिनु, रसना विनु रस छेत । (ख) रामकुमार सरोज से हापन सों गहि दंभु धारासुन गोदयो । (ग) तव येनी जगिनि रई, बधि गुनन बनाप । तऊ वाम प्रमचंद को यदाबदी रसि जाय । (घ) करे पन उमदि अंगरे बरसत हैं । (ङ) भक्तिपार छपत सुपाकर बिलोकिदि । (च) और नदी नदन सँ कोकनद होत, तेरो कर कोकनद नदी नद प्रगटत है ।

विभायनीय-वि० [ सं० ] भावना या चिंतन करने योग्य ।

विभायरी-छंदा की० [ सं० ] (१) राति । रात । (२) वह रात जिसमें राते चमकते हों । (३) दरिद्र । इन्धु । (४) डूबती डूबती । दूती । (५) देखी की । पाक की भीरत । (६) मुसरा की । बहुत बढ़ बढ़ करनेवाली ची । (७) मेरा वृध (८) प्रचेतस की नगरी का नाम ।

विभायरीश-छंदा पुं० [ सं० ] निरापत्ति । चंद्रमा ।

विभायसु-वि० [ सं० ] जिसमें प्रकाश की अविद्यता हो । अंधिक प्रमाणादा ।

छंदा पुं० (१) वस्तुओं के एक पुत्र । (२) सूर्य । (३) भाऊ का पौधा । अर्धे । मदार (४) अमि । (५) चित्रक वृक्ष ।

चीता । (६) चंद्रमा । (७) एक प्रकार का हार । (८) एक दानव जो नरकासुर का पुत्र था । (९) एक ऋषि का नाम । (महाभारत) । (१०) एक गंधर्व जिसने गांधरी से वह सोम छीना था, जो वह देवताओं के लिये ले जा रही थी ।

**विभाषित-वि०** [ सं० ] (१) चिंतन किया हुआ । सोचा या विचारा हुआ । (२) कल्पित । (३) निरिच्छत । (४) स्वीकृत । मंजूर किया हुआ ।

**विभाषा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] संस्कृत व्याकरण में वह स्थल जहाँ ऐसे वचन मिलते हैं कि "देसा न होगा" तथा "देसा हो भी सकता है" ।

**विभास-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) चमक । तेज । (२) एक राग जो सवेरे के समय गाया जाता है । इसे कुछ लोग मीरव राग का ही भेद मानते हैं । (३) तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार सप्तपिंयों में से एक । (४) एक देव योनि । (मार्कंडेय पुराण)

**विभासक-वि०** [ सं० ] [ की० विभासिका ] (१) चमकानेवाला । प्रकाशयुक्त । (२) चमकानेवाला । झलकानेवाला । (३) प्रकाशित करनेवाला । प्रकट या व्यक्त करनेवाला । ज़ाहिर करनेवाला ।

**विभासनाश-क्रि० प्र०** [ सं० विभास + ना (हिं० प्रत्य०) ] चमकना । झलकना ।

**विभासिका-वि० स्त्री०** [ सं० ] चमकानेवाली ।

**विभासित-वि०** [ सं० ] (१) प्रकाशित । दीप्त । चमकता हुआ । (२) प्रकट । ज़ाहिर ।

**विभिन्न-वि०** [ सं० ] (१) छिद्रा हुआ । कटा हुआ । काटकर अलग किया हुआ । (२) बिखरल अलग । वृथक । जुदा । (३) अनेक प्रकार का । कई तरह का । (४) और का और किया हुआ । उलटा । (५) हताश । निराश ।

**विभिन्नता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] विभिन्न होने का भाव । भेद । पार्थक्य । अलगवाव । फर्क ।

**विभीत-वि०** [ सं० ] डरा हुआ ।

**संज्ञा पुं०** विभीतक । बहेड़ा ।

**विभीतक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बहेड़े का वृक्ष ।

**विभीति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) डर । भय । (२) शंका । संदेह । उ०—नहिं तोरिहैं राम शिव की धनु यह विभीति परिहरहु ।—पुत्रराज ।

**विभीषक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] डरानेवाला । भयानक ।

**विभीषण-वि०** [ सं० ] बहुत डरानावा । बहुत भयानक ।

**संज्ञा पुं०** (१) एक राक्षस जो रावण का भाई था और रावण के मारे जाने पर राम द्वारा लंका का राजा बनाया गया था ।

**विशेष**—यह विश्रवा मुनि द्वारा कैकसी राक्षसी के गर्भ से

उत्पन्न हुआ था और सुमाली नामक राक्षस का दैहिक (नाती) था । एक दिन सुमाली ने कुवेर को पुष्पक विमान पर चढ़कर जाते देखा । उसे यह इच्छा हुई कि मेरे भी देसा ही दैहिक होना । उसने अपनी परम रूपवती कन्या कैकसी को विश्रवा मुनि के पास भेजा । जिस समय वह गई, उस समय मुनि प्यान में मग्न थे । वे उसका अभिप्राय समझकर बोले—“तू बड़े विकट समय में आई । इससे इस बार तुझे एक विकट आहूति का पुत्र उत्पन्न होगा” । कैकसी के बहुत विनय करने पर ऋषि ने फिर आशीर्वाद दिया—“अच्छा जा । तेरा अंतिम पुत्र मेरे ही वंश का सा और परम धार्मिक होगा” । वही अंतिम पुत्र विभीषण हुआ । अपने वदे माह्यो रावण और कुंभकर्ण के साथ विभीषण ने भी धोरा सप किया । जब द्रष्टा वर देने आय, तब विभीषण ने यही वर माँगा—“मेरी मति धर्म में सदा स्थिर रहे” । द्रष्टा ने वर दिया—“तुम वदे धार्मिक और भक्त होंगे” । वर-प्राप्ति के उपरांत विभीषण भी रावण के साथ लंका में ही आकर रहने लगा । रावण ने जब सीताहरण किया, तब यह राम की ओर हो गया था ।

(२) नल वृण । नरसल का पौधा ।

**विभीषण-वि० स्त्री०** [ सं० ] डरानेवाली । भयानक ।

**संज्ञा स्त्री०** एक सुहृत् का नाम ।

**विभीषिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) भय-प्रदशन । डर-दिखाना । (२) भयंकर यान । भयानक काँठ या हत्य ।

**विभु-वि०** [ सं० ] (१) जो सर्वत्र वर्चमान हो । जो सय मूर्त पदार्थों में रम रहा हो । जिससे कोई स्थान खाली न हो । सर्वगत । सर्वव्यापक । जैसे,—दिक्, काल और आत्मा ।

**विशेष**—जीव की जाग्रत आदि चारों अवस्थाओं के चार विभु माने गए हैं । जाग्रत का विभु विश्व, स्वप्न का तेजस्व, सुषुप्ति का प्राज्ञ और तुरीय का ब्रह्म कहा गया है ।

(२) जो सय जगह जा सकता हो । सर्वत्र गमनशील । जैसे, मन । (३) अत्यंत विस्तृत । बहुत बड़ा । महात् । (४) सब काल में रहनेवाला । सर्वकाल स्थायी । निरप । (५) हृद् । अचल । चिरस्थायी । (६) शक्तिमान् । ऐश्वर्ययुक्त ।

**संज्ञा पुं०** (१) ब्रह्म । (२) आत्मा । जीवात्मा । (३) प्रभु । स्वामी । (४) ईश्वर । (५) शंकर । शिव । (६) विष्णु । (७) शूल ।

**विभुता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) विभु होने का भाव । सर्व-व्यापकता । (२) ऐश्वर्य । शक्ति । (३) प्रभुता । ईश्वरता । (४) अधिकार ।

**विभूति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) बहुतायत । वृद्धि । बढ़ती ।

(२) विभव। ऐश्वर्यं। (३) संवत्ति। धन। (४) दिग्ग या भली-  
किङ्क शक्ति जिसके अंतर्गत अग्निमा, महिमा, गरिमा, लघिमा,  
प्राप्ति, प्राकाम्यं, ईर्ष्या और वसिष्ठ ये आठ सिद्धियाँ हैं।  
विशेष—योगदान के विभूतिपाद में इसका अर्थ है कि किन  
किन साधनाओं से कौन कौन सी विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

(५) निव के अंग में चन्द्रा की राक्ष या भस्म।  
विशेष—देवी भागवत, शिवपुराण आदि में भस्म या विभूति  
धारण करने का साहाय्य विस्तार से वर्णित है।

(६) भगवान् विष्णु का यह ऐश्वर्य जो निव और स्थायी  
माना जाता है। (७) लक्ष्मी। (८) विविध सृष्टि। (९) एक  
दिव्याल जो विद्यामित्र ने राम को दिया था। (१०)  
प्रभुत्व। बड़ाई। (११) सृष्टि।

विभूतिमान-वि० [ सं० ] [ ली० विभूतिमानो ] (१) शक्ति-संपन्न।  
ऐश्वर्यशाली। (२) संपत्तिशाली। धनवान्।

विभूमा-वि० [ सं० विभूमन् ] ऐश्वर्यवान्। शक्तिशाली।  
संज्ञा पुं०, श्रीकृष्ण।

विभूरसि-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि की एक मूर्ति।  
विभूपण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विभूय, विभूयित ] (१) अलंकृत  
करने की क्रिया। गहने आदि से सजाने का काम। (२)

भूयण। अलंकार। जेवर। गहना।  
विशेष—किसी शब्द के आगे लगकर यह शब्द श्रेष्ठतापचक  
हो जाता है। जैसे—रघुवंश-विभूयण।

(३) मंत्रधारी का एक नाम। (शौद्ध)  
विभूपणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गहनों आदि की सजावट।  
भूया। (२) शोभा।

विभूपनाल-कि० सं० [ सं० विभूय ] (१) अलंकृत करना।  
गहने आदि से सजाना। (२) सुशोभित करना। मंडित  
करना। (३) अपने आगमन-द्वारा सुशोभित करना।

उ०—कहा रीति रावरी ओ रंक को विभूनी गेह, तुम सो  
प्रवीन गुरु सेवा तवपर को।—दूखद।

विभूपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गहनों आदि की रूप सजावट।  
(२) भूयण। अलंकार। गहना। (३) शोभा।

विभूयित-वि० [ सं० ] (१) गहनों आदि से सजाना हुआ।  
अलंकृत। (२) अस्त्री वस्तु, गुण आदि से) युक्त। सहित।  
जैसे—ये सब गुणों से विभूयित हैं। (३) शोभित।

विभूयु-वि० [ सं० ] विभूति-युक्त।  
संज्ञा पुं० शिव।

विभूय-वि० [ सं० ] (१) विभूयित करने योग्य। सजाने योग्य।  
(२) जिसे गहनों आदि से सजाना हो।

विभ्रम-संज्ञा पुं० [ सं० वि० भ्रं + म ] आलिंगन करना। गले  
मिलाना। मँडना। उ०—पूरे काम नैन मेरे परी भुजं बाम  
भात्रौरे फरकन से जो बालम बिहातिहैं। करिहैं गुलाब

उपकार गुन मागिनी के देखन विभ्रमन मैं आगे विलसिहैं।  
—प्रभाकर।

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विभिन्नता। फरक। अंतर। (२)  
अनेक भेद। कई प्रकार। (३) छेदकर घुसना। घँसना।  
(४) काटना, तोड़ना या छेदना। (५) कटाव। छेद।  
द्वार। (६) दो या कई खंडों में करना। विभाग। (७)  
एक-रूपता से अनेक रूपता की प्राप्ति। विकास। (८)  
मिश्रण।

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भेदन करनेवाला। काटने या  
छेदनेवाला। (२) घुसनेवाला। घँसनेवाला। (३) दो  
वस्तुओं में भेद प्रकट करनेवाला। फुँकें दिखाने या ढालने-  
वाला। एक से दूसरे में विरोधता प्रकट करनेवाला।

संज्ञा पुं० विनीतक। बड़ेदा।  
विभ्रकारी-वि० [ सं० विभ्रकारिन् ] [ ली० विभ्रकारी ] (१)  
छेदने या काटनेवाला। (२) भेद या फुँकें करनेवाला।

(३) दो व्यक्तियों में विरोध उत्पन्न करनेवाला। फूट  
ढालनेवाला।

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विभ्रनीय, विभ्र ] (१) छेदना,  
काटना या तोड़ना। (२) छेदकर घुसना। घँसना। (३)  
काटकर दो या कई खंडों में करना। (४) पृथक् पृथक्  
करना। अलग अलग करना। (५) भेद या फुँकें ढालना  
या दिखाना।

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विभ्रनीय, विभ्र ] (१) छेदना,  
काटना या तोड़ना। (२) छेदकर घुसना। घँसना। (३)  
काटकर दो या कई खंडों में करना। (४) पृथक् पृथक्  
करना। अलग अलग करना। (५) भेद या फुँकें ढालना  
या दिखाना।

विभ्रनास-कि० सं० [ सं० विभ्रन ] (१) भेदन करना। छेदना।  
काटना। (२) घुसना। प्रवेश करना। उ०—लोक विभ्र-  
वति वासना बासु परी मनु धीरक में गनिये जू।—केदाव।

(३) भेद या फुँकें ढालना।  
विभ्रदिनी-वि० स्त्री० [ सं० विभ्रदिन् ] (१) छेदन या भेदन  
करनेवाली। (२) छेदकर घुसनेवाली। (३) भेद या  
फुँकें करनेवाली।

विभ्रदी-वि० [ सं० विभ्रदिन् ] [ ली० विभ्रदिनी ] (१) छेदन करने-  
वाला। काटनेवाला। (२) छेदकर घुसनेवाला। घँसने-  
वाला। (३) भेद या फुँकें करनेवाला।

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ विभ्र ] का संशोधन रूप ] है विभ्र।  
विभ्र-संज्ञा पुं० दे० "विभव"।

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिन्ता। खंख। (२) पवन।  
ध्वनित। (३) ऊँचा कागार। (४) पहाड़ की चोटी पर का  
चौरस मैदान।

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनष्ट। ध्वस्त। (२) पतित।  
विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भ्रमण। चक्कर। फेता। (२) भ्रम।  
—आति। घोसा। भूक। (३) संदेह। संशय। (४) चक्-  
पकाहट। घबराहट। अस्थिरता। (५) छिपों का एक हाव  
जिसमें वे भ्रम से उठते पड़ते भूयण बच पदन सेती है,

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिन्ता। खंख। (२) पवन।  
ध्वनित। (३) ऊँचा कागार। (४) पहाड़ की चोटी पर का  
चौरस मैदान।

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनष्ट। ध्वस्त। (२) पतित।  
विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भ्रमण। चक्कर। फेता। (२) भ्रम।  
—आति। घोसा। भूक। (३) संदेह। संशय। (४) चक्-  
पकाहट। घबराहट। अस्थिरता। (५) छिपों का एक हाव  
जिसमें वे भ्रम से उठते पड़ते भूयण बच पदन सेती है,

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिन्ता। खंख। (२) पवन।  
ध्वनित। (३) ऊँचा कागार। (४) पहाड़ की चोटी पर का  
चौरस मैदान।

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिन्ता। खंख। (२) पवन।  
ध्वनित। (३) ऊँचा कागार। (४) पहाड़ की चोटी पर का  
चौरस मैदान।

विभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिन्ता। खंख। (२) पवन।  
ध्वनित। (३) ऊँचा कागार। (४) पहाड़ की चोटी पर का  
चौरस मैदान।



तथा रह रहकर मतवाले की तरह कमी क्रोध, कमी हृष्य आदि भाव प्रकट करती हैं। (१) शोभा।

विभ्रमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बुवाई। बुढापा। वादपथ।

विभ्रान्त-वि० [ सं० ] (१) घृमता हुआ। चकर खाता हुआ। (२) भ्रम में पड़ा हुआ। विभ्रमयुक्त।

विभ्रान्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) फेर। चकर। (२) भ्रम। संदेह। (३) हृष्यही। धराहाट।

विभ्रान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आपत्ति। विपत्ति। संकट। (२) उपद्रव। बखेदा। उ०—तिलक विभ्रान्त के समय गोखले खिलायत में थे।—सरस्वती।

वि० प्रकाशमान्। दीप्तिमान्।

विभ्रान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विभ्रान्त ] (१) गहने आदि से सजाना। (२) भ्रंश करना। सँवारना। (३) अलंकार। भूषण। राहना।

विभ्रान्त-वि० [ सं० ] (१) अलंकृत। सजा हुआ। (२) सुशोभित। (३) सहित। युक्त। (अच्छी वस्तु से) उ०—देखि विभ्रान्त दण्डन सो भुजदण्ड हुआ अंसि दण्ड विहीनो।—केशव।

विभ्रान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] खूब मथना।

विभ्रान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विरुद्ध मत। विपरीत सिद्धान्त। उ०—उत्तम, विभ्रान्त, न पुरान मत एक पथ नेति नेति नेति नित निगम करत।—गुलसी। (२) खिलारण राय। प्रति-कूल सम्मति।

वि० विरुद्ध मतवाला।

विभ्रान्त-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विरुद्ध मति। खिलारण राय। प्रतिकूल विचार। (२) उचित के विपरीत विचार। कुमति। दुर्बुद्धि। बुरा विचार। (३) असम्मति। अस्वीकृति।

विभ्रान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] अधिक अहंकार। उ०—तजि काम क्रोध विभ्रान्तसालस लोभ मोह निवारि कै। छल मल कुसंगति त्यागि मद्द दुरवासना सनमानि कै।—विद्याम।

वि० मरखर-रहित। अहंकार-शून्य।

विभ्रान्त-वि० [ सं० ] (१) मद्-रहित। उन्माद हीन। जो मतवाला न हो। (२) (बह दायी) जिसे मद् न बढ़ता हो।

विभ्रान्त-वि० [ सं० विभ्रान्त ] अनमना। उदास। रंजीदा। खिन्न। उ०—विमन बैठि सुनि सुरसरि तीरा। तहँ आयी नारद मुनि धीरा। ज्यों उदास पछवी अस ब्यासे। ज्यों ब्यास सकल निज भासे।—रघुराज।

विभ्रान्त-वि० [ सं० ] (१) जिसका मन उबटा हो। जिसका मन न ऊगता हो। अनमना। (२) उदास। खिन्न। रंजीदा।

विभ्रान्त-वि० [ सं० ] (१) खूब मर्दन करनेवाला। मसल ढालनेवाला। (२) चूर चूर करनेवाला। पीस ढालनेवाला। (३) नष्ट भष्ट करनेवाला। ध्वस्त करनेवाला।

विभ्रान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विभ्रान्त ] (१) खूब मर्दन करना। अच्छी तरह मलना ढलना। (२) कुचबना। पीस ढालना। (३) ध्वस्त करना। नष्ट करना। यरबाद करना। (४) मार ढालना। (५) पीड़ित करना। (६) अस्मिन्व। प्रस्फुरन। स्फुरन। जैसे, चीज फूटकर अंकुर का प्रकट होना। (सांख्य)

विभ्रान्त-वि० [ सं० ] मर्दन करने योग्य।

विभ्रान्त-वि० [ सं० ] (१) मला ढला हुआ। (२) कुचटा हुआ। (३) नष्ट किया हुआ। यरबाद किया हुआ। (४) पीड़ित। (५) धपमानित।

विभ्रान्त-वि० [ सं० विभ्रान्त ] [ स्त्री० विभ्रान्ति ] (१) खूब मर्दन करनेवाला। (२) कुचलनेवाला। पीसनेवाला। (३) नष्ट करनेवाला। (४) धप करनेवाला। मारनेवाला।

विभ्रान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी तथ्य का अनुसंधान। किसी बात का विवेचन या विचार। (२) आलोचना। समीक्षा। (३) परखने की क्रिया। परीक्षा। (४) परामर्श। सलाह। (५) असंतोष। अधीरता।

विभ्रान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विभ्रान्त, विभ्रान्ति ] (१) विवेचन करना। तर्क वितर्क करना। (२) आलोचना करना।

विभ्रान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विवेचन। विचार। (२) आलोचना। समीक्षा। (३) नाटक का एक भाग जिसके अंतर्गत अपवाद, संकेत, व्यवसाय, द्रव, धृति, शक्ति, प्रसंग, खेद, प्रतिषेध, विरोध, प्रतोषना, आदान और छादन का वर्णन होता है।

विभ्रान्त-द्रोष-कथन को अपवाद, क्रोध से मरी बात चीत को संकेत, कार्य के हेतु के उद्भव को व्यवसाय, शोक आदि के वेग में गुद जनों के आदर आदि का ध्यान न रखने को द्रव, भयप्रदर्शन द्वारा उद्देग उत्पन्न करने को धृति, विरोध की शक्ति, अत्यंत गुण कीर्तन या दोष-दर्शन को प्रसंग, शरीर या मन की यकावट को खेद, अभिलषित विषय में रुकावट को प्रतिषेध, कार्यध्वंस को विरोध, प्रस्तावना के समय मट, मटी, नाटक या नाटककार आदि की प्रशंसा को प्रतोषना, संहार विषय के प्रदर्शित होने को आदान, तथा कार्योद्धार के लिये अवमान आदि सह लेने को छादन कहते हैं।

विभ्रान्त-वि० [ सं० ] [ स्त्री० विभ्रान्ति ] (१) विभ्रान्त। मल रहित। स्वच्छ। साफ। (२) बिना देव का। निर्दोष। शुद्ध। (३) रमणीय। सुंदर। मनोहर।

संज्ञा पुं० (१) एक उपवाद जिसके सोधन आदि की विधि रसद्वारा में लिखी है। (२) चाँदी। (३) गत वरसिणी के ५ में और वसंतान अवसर्पिणी के १३ में अर्द्ध या सीधंकर। (जैन) (४) सुधन का पुत्र। (५) पद्मकाठ। (६) खँबा नामक।

विमलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का नग या बहुमूल्य पत्थर ।

विमलकीर्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] महायान पंथ के एक बौद्ध आचार्य जिन्होंने कई सूत्रों की रचना की है, जो उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

विमलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) निर्मलता । स्वच्छता । सफ़ाई । (२) पवित्रता । (३) शुद्धता । निर्दोषता । (४) रमणीयता । मनोहरता ।

विमल दान-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह दान जो नियत, नैमित्तिक और काम्य के अतिरिक्त हो और केवल ईश्वर के प्रीत्यर्थ दिया जाय । ( गरुड पुराण )

विमलव्यन्त्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] छः चरणों का एक छंद जो एक दोहे और समान सयैदा से मिलकर बनता है ।

विमला-वि० स्त्री० [ सं० ] निर्मल । स्वच्छ ।

संज्ञा स्त्री० (१) ससला का पेड़ । क्षीरी । सातला । चर्म-कपा । (२) एक प्रकार की भूमि । (३) एक देवी का नाम जो कालिका पुराण में वासुदेव की नायिका कही गई है । (४) सरस्वती ।

विमलात्मा-वि० [ सं० विमलमन ] शुद्ध हृदयवाला । शुद्ध मनवाला ।

संज्ञा पुं० चंद्रमा ।

विमलाशोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संन्यासियों का एक भेद ।

विमलकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विमल करने की क्रिया । शुद्ध करने की क्रिया । (२) मन में विचार कर योति मंत्र से भीतों मलों का नाश करना । ( सर्वदर्शनसंग्रह )

विमलोदका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम ।

विमोस-संज्ञा पुं० [ सं० ] अशुद्ध, अपवित्र या न खाने योग्य मांस । ( जैसे, कुत्ते आदि का )

विमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० विमातृ ] अपनी माता के अतिरिक्त पिता की दूसरी विवाहवा स्त्री । सौतेली माँ ।

विमारुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] विमाता का पुत्र । सौतेला भाई ।

विमान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आकाश मार्ग से गमन करनेवाला रथ जो देवताओं आदि के पास होता है । वायुयान । उड़न-उड़ोला । (२) मरे हुए बृद्ध मनुष्य की शरीरी जो सज्जण के साथ निकाली जाती है । (३) रथ । गाड़ी । (४) भय । घोड़ा । (५) सात संद का सज्जन । सात मंत्रिक का घर । (६) असम्मान । अनादर । (७) परिमाण । (८) प्राचीन वास्तु विद्या के अनुसार वह देव मंदिर जो ऊपर की ओर गावदुम या पतला होता हुआ खड़ा जाय ।

विशेष—'नामसार' नामक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार विमान गोक, भौरहला और भउपहला होता है । गोक को बेसर, भौरहले को भागर और भउपहले को द्राविड कहते हैं ।

विमानता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अयमान । अवमानना । तिरस्कार । विमार्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बुरा रास्ता । (२) कदाचार । बुरी चाल । (३) झंझ । कूबा ।

विमित-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह चौकोर शाला या इमारत जो चार सोंनों पर टिकी हो । (२) बड़ा कमरा या इमारत । वि० जिसकी सीमा या हद हो । परिमित ।

विमिश्र-वि० [ सं० ] (१) मिला हुआ । मिश्रित । (२) जिसमें कई प्रकार की वस्तुओं का मेल हो । मिला जुटा ।

विमिश्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मृगविरा, भार्वा, मघा, और अश्लेषा नक्षत्र में बुध की गति का नाम जो ३० दिनों तक रहती है ।

विमिश्रित-वि० [ सं० ] (१) मिलाया हुआ । (२) मिला जुटा । विमुक्त-वि० [ सं० ] (१) अच्छी तरह मुक्त । छुटा हुआ ।

जो बंधन से अलग हुआ हो । (२) जितने किसी प्रकार का प्रतिबंध या रुकावट न रह गई हो । (३) स्वतंत्र । स्वचर्यद । आजाद । (४) ( हानि, दंड आदि से ) बचा हुआ । (५) अलग किया हुआ । बरी । (६) पढ़ से छूटकर बला हुआ । फेंका हुआ । छोड़ा हुआ । जैसे,—विमुक्त बाण ।

विमुक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छुटकारा । रिहाई । (२) मुक्ति । मोक्ष ।

विमुज-वि० [ सं० ] (१) मुक्त रहित । जिसके मुँह न हो । (२) जिसने किसी बात से मुँह फेर लिया हो । जो किसी कार्य या विषय में दृक्चित न हो । जो किसी काम से हटा या अलग हो । अतएव विरत । निवृत्त । जैसे,—कर्मबंध से विमुक्त होना । (३) जो अशुक्त न हो । जिसे परवाह न हो । जिसने मन न लगाया हो । उदासीन । जैसे,—हरिपद विमुक्त । (४) जो किसी के हित के प्रतिरुद्ध हो । जिसकी स्थिति या आचरण अनुकूल न हो । विरुद्ध । खिन्नकृत । अपसह्य । जैसे,—जब ईश्वर ही विमुक्त है, तब क्या हो सकता है । (५) जिसकी चाह या मर्ग पूरी न हुई हो । अप्राप्त मनोस्थ । निराश । जैसे,—उन्के बहों से कोई याचक विमुक्त नहीं गया । उ०—जो देहें सो भोजन पै है । विमुक्त कोउ हवतें नहिं सै है ।—रघुराज ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

विमुजता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी बात से दूर रहना । अतएवता । विरति । (२) विपरीतता । विरोध । अपसह्यता ।

विमुग्ध-वि० [ सं० ] (१) मोहित । आसक्त । (२) भ्रम में पड़ा हुआ । भ्रूला हुआ । भ्रांत । (३) बहाराया हुआ । डरा हुआ । (४) उन्मत्त । मतवाला । (५) पागल । पावला । (६) बेबुध ।

विमुग्धक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोहनेवाला । (२) एक प्रकार का छोटा अभिनय या नाटक । (मांज्य-भाक)

विमुग्धकारी-संज्ञा पुं० [ सं० विमुग्धकारिन् ] [ स्त्री० विमुग्धकारिणी ]

(१) मोहनेवाला। मोहित करनेवाला। (२) भ्रम में डालनेवाला।

विमुद्-वि० [ सं० ] भानंद-रहित। उदास। खिन्न। उ०—करति केलि पिय हिय लगी, कोक कलनि अथरेति। विमुद् कुमुद लौं है रही चंडु मंद दुति देखि।—पद्माकर।

संज्ञा पुं० एक बड़ी संख्या का नाम।

विमुद्-वि० [ सं० ] [ स्त्री० विमुद् ] (१) विशेष रूप से मुग्ध। अत्यंत मोहित। (२) मोह प्राप्त। भ्रम में पड़ा हुआ। चकराया हुआ। (३) बेसुध। अचेत। (४) ज्ञान-रहित। जिसे समझ न पड़ता हो। जैसे,—किंकर्त्तव्य विमुद्। (५) बहुत मूर्ख। जड़ बुद्धि। नादान। नासमझ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार की संगीत-कला।

विमुद्गर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह गर्भ जिसमें बच्चा मरा या बेहोश हो और प्रसव में बड़ी कठिनाता हो।

विमूल-वि० [ सं० ] (१) मूल-रहित। बिना जड़ का। (२) मूल से रहित। उच्छिन्न। निर्मूल। (३) परवाद। नष्ट।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विमूलन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जड़ से उखाड़ना। उन्मूलन। (२) विनाश। ध्वंस।

विमृश्य-वि० [ सं० ] (१) विवेचन के योग्य। आलोचना या समीक्षा के योग्य। (२) जिस पर विवेचना या विचार करना हो। जिसकी समीक्षा करनी हो।

विमृष्ट-वि० [ सं० ] (१) जिस पर तर्क वितर्क या सम्यक् विचार हुआ हो। (२) जिसकी पूरी आलोचना या समीक्षा हुई हो। (३) परिच्छन्न।

विमोक्त-वि० [ सं० ] (१) मल-रहित। राग-रहित। दुर्वासना रहित। (जैन) (२) ऊपरी आवरण रहित। (३) साफ़। स्पष्ट। संज्ञा पुं० मुक्ति। छुटकारा। रिहाई।

विमोक्ता-संज्ञा पुं० [ सं० विमोक्त ] मुक्त करनेवाला। छुड़ाने-वाला।

विमोक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बंधन या गॉट आदि का खुलना। (२) छुटकारा। मुक्ति। रिहाई। (३) जन्म मरण के बंधन से छूटना। आवागमन से छुटी पाना। मुक्ति। निर्वाण। (४) सूर्य या चंद्रमा का ग्रहण से छूटना। ग्रहण का हटना। उग्रह। (५) किसी वस्तु का पकड़ से इस प्रकार छूटना कि वह दूर जा पड़े। प्रक्षेपण। (६) मेरु पर्वत का एक नाम।

विमोक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बंधन आदि खोलना। (२) मुक्त करना। रिहा करना। (३) हाथ से छोड़ना जिसमें कोई वस्तु दूर जा पड़े। प्रक्षेपण।

विमोघ-वि० [ सं० ] स्थिर न होनेवाला। न चूकनेवाला। खाली न जानेवाला। अमोघ।

विमोचक-वि० [ सं० ] (१) मुक्त करनेवाला। छुड़ाने-वाला। (२) बंधन खोलनेवाला। (३) गिरानेवाला। छोड़नेवाला। डालनेवाला।

विमोचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विमोचनीय, विमोचित, विमोच्य ]

(१) बंधन, गॉट आदि खोलना। (२) बंधन से छुड़ाना। मुक्त करना। रिहा करना। (३) गाड़ी से पैल आदि को खोलना। (४) निकालना। बाहर करना। जैसे,—अधु विमोचन। (५) इस प्रकार भलग करना कि कोई वस्तु दूर जा पड़े। छोड़ना। फेंकना। जैसे,—धनुष से बाण। (६) गिराना। डालना।

विमोचना-क्रि० सं० [ सं० विमोचन ] (१) बंधन आदि खोलना। (२) छुटकारा देना। रिहा करना। मुक्त करना। छोड़ना। (३) गिराना। टपकाना। (४) निकालना। बाहर करना। उ०—जब मैं परदेस सिधारे पिया बैसुभा बैसियानि विमोचति सी।—वेनीप्रवीन।

विमोचनीय-वि० [ सं० ] छोड़ने योग्य। मुक्त करने योग्य। विमोचित-वि० [ सं० ] (१) खुला हुआ। जो बंधन न हो। (२) जो छोड़ दिया गया हो। मुक्त किया हुआ।

विमोच्य-वि० [ सं० ] (१) छोड़ने योग्य। मुक्त करने योग्य। (२) जिसे छोड़ना, खोलना या मुक्त करना हो।

विमोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोह। भ्रम। भ्रांति। उ०—मनु वसुदेव विमोह कंस से। मोघक माघव दुविदं धंस से।—रघुराज। (२) बेसुध-होना। अचेत होना। बेहोशी। (३) बहुत लुभाना या मोहित होना। आसक्ति। (४) एक नरक का नाम।

विमोहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोहनेवाला। मन खींचनेवाला। लुभावना। (२) मन में लोभ उत्पन्न करनेवाला। ललचाने-वाला। (३) ज्ञान या सुध हरनेवाला। (४) एक राग जो हिंदोल राग का पुत्र माना जाता है।

विमोहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विमोहित, विमोहो ] (१) मोहित करना। मन लुभाना। मुग्ध करना। (२) दूसरे का मन बश में करना। (३) सुध सुध भुलाना। देखा प्रभाव डालना कि चित्त टिकाने न रहे। (४) कामदेव के पाँच वाणों में से एक। (५) एक नरक का नाम।

विमोहनशील-वि० [ सं० विमोहन + शील ] (१) भ्रमकारी। धोखा देनेवाला। चकर में डालनेवाला। भ्रांत करनेवाला। उ०—गिरजा सुनुहु राम कै लीला। सुर हित वसुज विमोहनशीला।—गुलसी। (२) मोहित करनेवाला। लुभावना।

विमोहना-क्रि० प्र० [ सं० विमोहन ] (१) मोहित होना। लुभा जाना। आसक्त होना। उ०—एक नयन कवि मुहमद गुनी।

सोह विमोहा जो कवि सुनी।—जायसी। (२) वेसुध होना। तन मन की सुध न रहना। (३) भ्रांत होना। पोसा खाना।

वि० सं० (१) मोहित करना। लुभाना। (२) ऐसा प्रभाव डालना कि तन मन की सुध न रहे। वेसुध करना। (३) भ्रांति में करना। पोसे में डालना।

विमोहा-संज्ञा स्त्री० [ ? ] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो रगण ( 315 ) होते हैं। इसे 'जोहा' 'विजोहा' और 'विजोहा' भी कहते हैं। वि० दे० "विजोहा"।

विमोहित-वि० [ सं० ] (१) लुभाया हुआ। सुध। उ०—पुम अस्त बहुत विमोहित भये। पुन पुन सीस जीव दै गये। (२) तन मन की सुध भूला हुआ। (३) मूर्च्छित। उ०—यह सुनना न पड़े सोई अच्छा है और यही कहते कहते वह विमोहित हो गई।—कारंबारी।

विमोही-वि० [ सं० विमोहिनी ] (१) मोहित करनेवाला। जो लुभानेवाला। मन आकर्षित करनेवाला। (२) सुध सुध मुलानेवाला। ऐसा प्रभाव डालनेवाला कि तन मन की सुध न रहे। (३) मूर्च्छित या बेहोश करनेवाला। (४) भ्रम में डालनेवाला। भ्रांत करनेवाला। (५) जिसे मोह या दया न हो। जिसे समता या स्नेह न हो। निष्ठुर। कठोर-हृदय। उ०—मिठ गँवाह सो गपूठ विमोही। भा विनु मिठ, त्रिउ दीनैसि ओही।—जायसी।

विमोह-गंजा पुं० [ सं० बगनीश प्रा० नन्दी + मोह (पत्य०) ] दीमकों का उठाया हुआ मिठी का हूह। बौबी। उ०—गोहर द्वै तुम पुरब जममा। यसे विमोह एक कहुँ यन मी।—रघुराज।

विपंग-संज्ञा पुं० [ हि० विप + अंग ] दो अंगवाले, मद्दादेव। उ०—करहि विपंगा आलिंगन। तेहि चन्द्रहि ऋषहुँ सारलिंगन।—शंकरद्विस्वजय।

विपद्य-वि० [ सं० दि, प्रिक्रिय, प्रा० विप ] (१) दो। जोड़ा (२) दूसरा। उ०—कहत सथै कवि कमलसे, मो मत नैन पखान। मनर कत हनि विप लगत उपप्रत विरह कुरान।—विहारी।

विपद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य।  
विपद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आकाश। (२) दायुमण्डल।  
वि० गमनशील।

विपद्यपताका-संज्ञा स्त्री० [ सं० विपद्य + पताका ] विद्युत्। बिजली।  
विपद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] महूय राजा के एक पुत्र का नाम। (भागवत)

विपद्यगंगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आकाशगंगा।  
विपद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संयम। द्विप्रपत्सन। (२) दुःख। हँस। यतना।

विपद्य-वि० [ सं० ] (१) राते से भटका हुआ। पप-भट्ट। (२) गया धीला। (३) निर्लज्ज। बेहया।

विपद्यम-संज्ञा पुं० [ सं० ] द्विप्रिय निग्रह। संयम।

विपद्युत-वि० [ सं० ] (१) विद्युत्। अलग। (२) रहित। हीन।

विपद्युक्त-वि० [ सं० ] (१) जो संयुक्त न हो। जिसकी जुदाई दो गई हो। विपद्युदा हुआ। वियोग प्राप्त। (२) जुदा। अलग। पृथक्। (३) रहित। हीन।

विपद्यो-वि० [ सं० द्विप्रिय, प्रा० विप ] दूसरा। अन्य। उ०—ज्ञान स्मारत पक्ष को नाहिन कोठ खण्डन विपयो।—नामादास।

विपद्यो-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संयोग का अभाव। मिलाप का न होना। विच्छेद। (२) पृथक् होने का भाव। अलगवाव। (३) दो प्रेमियों का एक दूसरे से अलग होना। विरह। जुदाई।

विपद्यो-साहित्य में शृंगार रस दो प्रकार का माना गया है—संयोग शृंगार (या संभोग शृंगार) और विपद्यो शृंगार (या विमलंभ शृंगार)। विपद्यो की दशा तीन प्रकार की होती है—पूर्वराग, मान और प्रवास। (४) गणित में राशि का व्यकलन।

विपद्योपांत-वि० [ सं० ] (नाटक या उपन्यास आदि) जिसकी कथा का अंत दुःख-पूर्ण हो।

विपद्यो-आधुनिक नाटक दो प्रकार के माने जाते हैं—सुखोत्त और दुःखोत्त। हर्नी को कुछ लोग संयोगान और विपद्योगत भी कहते हैं। आरतवर्ष में संयोगोत्त या सुखोत्त नाटक लिखने की ही चाल पाई जाती है; दुःखोत्त का विषय ही मिलता है। पर पूर्वकाल में दुःखोत्त नाटक भी लिखे जाते थे, इसका आभास कालिदास के पूर्ववर्ती महाकवि भास के नाटकों से मिलता है।

विपद्योगिन-संज्ञा स्त्री० दे० "विपद्योगिनी"।

विपद्योगिनी-वि० स्त्री० [ सं० ] जो अपने पति या प्रिय से विद्युत् हो। जो अपने प्यारे से बिछुड़ी हुई हो। जिसका पति या गायक पास में न हो और जो उसके न रहने से दुःखी हो।

विपद्योगी-वि० [ सं० विपद्योगिन ] [ श्री० विपद्योगिनी ] जो प्रिया से विद्युत् हो। जो प्रियतमा से बिछुड़ा हुआ हो। विरही।

संज्ञा पुं० (१) विपद्योगी पुरुष। (२) चक्रवाक। चक्रवा।  
विपद्योत्तक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अलग करनेवाला। दो मिठी हुई वस्तुओं को पृथक् करनेवाला। (२) गणित में वह संख्या जिसे किसी दूसरी यही संख्या में से घटाया हो।

विपद्योत्तन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० वरुणगोत्र, विपद्योत्त, विपद्योत्त ] (१) मिठी हुई वस्तुओं को अलग करना। जुदा करना। पृथक् करना। (२) गणित में एक संख्या में से उससे कुछ छोटी दूसरी संख्या निकालने या घटाने की क्रिया। बाकी।

विद्योजित-वि० [ सं० ] (१) पृथक् किया हुआ। अलग किया हुआ। (२) रहित। शून्य।

विद्योज्य-वि० [ सं० ] (१) विद्योजन के योग्य। पृथक् करने योग्य। (२) जिसे अलग करना हो। जिसे जुदा करना हो। सहा पुं० वह संख्या जिसमें से कोई संख्या घटानी हो। (गणित)

विरंग-वि० [ सं० ] (१) सुरे रंग का। यदरंग। विषणं। फीका। उ०—कैला करी कोकिल कुरंग बार कीर कीर कुपि कुवि केहरि कलंक लंक हल्ली। जरि जरि जम्बूनद विद्रुम विरंग होत, अंग फारि दादिम स्वचा भुजंग बदली। (२) अनेक रंगों का। कई धणों का।

यौ०—रंग विरंग, रंग विरंग।

विरंग कायुली-संज्ञा पुं० [ का० ] वायविरंग। भारीरंग।

विरंच-संज्ञा पुं० [ सं० ] मद्रा।

विरंचि-संज्ञा पुं० [ सं० ] सृष्टि रचनेवाला, प्रहा। विधाता। उ०—संचि विरंचि निकाई मगोहर लाजति मूरतिवन्त बनाई। तापर तो बद्द भाग बदे मतिराम छई पति प्रीति सुहाई।—मतिराम।

विरंचिसुत-संज्ञा पुं० [ सं० विरंचि+सुत ] मद्रा के पुत्र, नारद। उ०—सुनि विरंचि-सुति भति हरपाए। कहत सुनहु जो चहत सुहाए।—गोपाल।

विरंच फूल-संज्ञा पुं० [ हि० विरंच+फूल ] एक प्रकार का धान या जड़हन।

विरक्त-वि० [ सं० ] (१) जो अनुरक्त न हो। जिसका जी हटा हो। जिसे चाह न हो। विमुख। जैसे,—ऐसी बातों से वे सदा विरक्त रहते हैं। (२) जो कुछ प्रयोजन न रखता हो। उदासीन। (३) अप्रसन्न। विष्र। जैसे,—वनकी बातें सुनकर वे भी विरक्त हो गए।

संज्ञा पुं० ऐसे जाने जो केवल ताल देने के काम में आते हैं।

विरक्तता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अनुराग का अभाव। विरक्त होने का भाव। (२) उदासीनता।

विरक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अनुराग का अभाव। चाह का न होना। जी का हटा रहना। विराम। विमुखता। (२) उदासीनता। (३) अप्रसन्नता। विष्रता।

विरचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरचनीय, विरचित ] प्रणयन। निर्माण। बनाना।

विरचना-संज्ञा-कि० सं० [ सं० विरचन ] (१) रचना। बनाना। निर्माण करना। (२) अलंकृत करना। सजाना।

कि० प्र० [ सं० वि+रंचन ] विरक्त होना। जी का हटना। उचटना। उ०—विरचि मन फेरि राधयो जाइ।—सूर।

विरचयिता-संज्ञा पुं० [ सं० ] रचनेवाला। बनानेवाला।

विरचित-वि० [ सं० ] (१) बनाया हुआ। निर्मित। (२) रचा

हुआ। लिखित। जैसे,—कालिदास विरचित शकुंतला नाटक।

विरज-वि० [ सं० विरजत् ] (१) जोगुण रहित। सुख-बाधना आदि से मुक्त। (२) जिस पर रूख या गर्द न हो। निर्मल। स्वच्छ। साफ़। (३) निर्दोष। बेदोष। (४) (स्त्री) जिसका रजोधर्म बंद हो गया हो।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) शिव। (३) पतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विरजप्रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वृद्ध का नाम।

विरजमंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक तीर्थ जो उड़ीसा में जाजपुर के पास माना गया है। यहाँ देवी की महाजया नामक मूर्ति है। (प्रभासखंड)

विरजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कपिल्यानी का पोवा जिसकी पत्तियाँ कैथ की पत्तियों के समान होती हैं। (२) धीकृष्ण की एक प्रेमिका सखी जिसने राधा के भय से नदी का रूप धारण कर लिया था।

विशेष—इसकी कथा महावैवर्त पुराण के धीकृष्ण जन्मखंड में दी हुई है। गोलोक में एक बार कृष्ण जी राधा को न देखकर विरजा नाम की एक गोरी के पास चले गए। तब राधा ही राधा दौड़ी। धीकृष्ण तो अंतर्धान हो गए; और विरजा येचारी उर केमारे नदी हो गईं। जब कृष्ण इसके विरह में बहुत ब्याकुल हुए, तब इसने फिर अपना पूर्व रूप धारण कर लिया।

विरजास-संज्ञा पुं० [ सं० ] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक पर्वत जो मेरु के उत्तर ओर है।

विरजाक्षेत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] उड़ीसा में एक तीर्थ स्थान जो जाजपुर के पास माना जाता है।

विरट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंधा। (२) शरणा। अंगर वृक्ष।

विरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] यरिन नाम की घास।

विरत-वि० [ सं० ] (१) जो अनुरक्त न हो। जिसे चाह न हो। जिसका मन हटा हो। विमुख। जैसे,—छी या भोग विलास से विरत होना। (२) जो लगा हुआ न हो। जो छीन या तखर न हो। जिसने अपना हाथ हटा लिया हो। निवृत्त। जैसे,—किसी कार्य से विरत होना। (३) जिसने सांसारिक विषयों से अपना मन हटा लिया हो। विरक्त। वैरागी। (४) विशेष रूप से रत। बहुत छीन। बिल्कुल लगा हुआ। उ०—कहुँ गनक गनत, जोगी जपत जंत्र मंत्र मन विरत नित।—गुरमान।

विरति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अनुराग का अभाव। चाह का न होना। (२) जी का उचटना। उदासीनता। (३) सांसारिक विषयों से जी का हटना। वैराग्य। उ०—जोग तें विरति, विरति तें ज्ञाना।—गुरुक्षी।

**विरथ-वि०** [ सं० ] (१) बिना रथ का। जिसके पास रथ या सवारी न हो। उ०—रावण रथी, विरथ रथुधीरा।—सूक्ष्मी। (२) रथ से गिरा हुआ। (३) पैदल।

**विरथीकरण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] युद्ध में रथ नष्ट करके सत्तु को रथहीन करना।

**विरद-संज्ञा पुं०** [ सं० विरद ] (१) यद्वा नाम। लंबा चौड़ा या सुंदर नाम। (२) क्याति। प्रसिद्धि। उ०—बड़े न हूँ ये गुन धितु विरद यद्वाई पाय। कहत चतुरा को कनक गहनों रावयो न जाय।—विहारी। (३) यश। कीर्ति।

**विशेष-दे०** “विरद”।

**वि०** [ सं० ] बिना दाँत का।

**विरदावली-संज्ञा स्त्री०** [ सं० विरदावली ] यश की कथा। कीर्ति की गाथा। प्रशंसा के गीत।

**विरद्वैत-वि०** [ हि० विरद्वैत (प्रत्यय०) ] बड़े विरदवाला। कीर्ति या यशवाला। बड़े नामवाला।

**विरमण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) विराम करना। रुकना। उतरना। धमना। (२) रम जाना। मन लगाना। (३) संभोग। विवास। (४) चित्त होना। निवृत्त होना। त्याग। जैसे,—अदत्तदान-विरमण। ( जैन )

**विरमनाल-वि०** क्रि० प्र० [ सं० विरमण ] (१) रम जाना। मन लगाना। अनुरक्त हो जाना। (२) विराम करना। उतरना। रुकना। (३) मोहित होकर रुक जाना। उ०—सूरदास कित विरमि रहे प्रसु भावत नाहि चले।—सूर। (४) वेग आदि का धमना या कम होना। उ०—विरमै नहिं ताप जताए विन, जगजीवन की अद्वैती यही। करै जादिर नीम सौं छात्र छगै जो अकाम न भाज किरै उमदी।

क्रि० प्र० दे० “विरंभना”।

**विरमाना-क्रि०** सं० [ हि० विरमाना का सं० क्य ] (१) दूसरे का मन लगाना। अनुरक्त करना। (२) मोहित करके रोक लेना। फँसाना। उ०—उत कुबजा विरमायो इनामदि, हत यह दया भई।—सूर। (३) फँसा रखना। समगुल रखना। उ०—देति न लेति कष्ट हँसिकै यदी घेर छौं वातन ही विरमायि। (४) मुलावे में रखना। धम में डाले रहना।

क्रि० सं० दे० “विरंभना”।

**विरल-वि०** [ सं० ] (१) जो घना न हो। जिसके बीच बीच में अथकाता हो। जिसके बीच बीच में ग्राही जगह हो। ‘सघन’ का उल्टा। जैसे,—आगे चलकर यह बन विरल होता गया है। (२) जो पास पास न हों। जो दूर दूर पर हों। (३) जो अधिकता से न मिले। जो केवल कहीं कहीं पाया जाय। दुर्लभ। जैसे,—देसे कोम संसार में बहुत विरल हैं। (४) जो गाढ़ा न हो। पतला। (५) शून्य। निर्जन। (६) अल्प। थोड़ा।

**विरलिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का हीना या महीन वस्त्र।

**विरलीकरण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सघन को विरल करना।

**विरव-संज्ञा पुं०** [ सं० ] अनेक प्रकार के वाद्य।

वि० शब्द-रहित। नीरव।

**विरस-वि०** [ सं० ] (१) रसहीन। फीका। नीरस। बिना स्वाद का। उ०—जल पय सरिस विक्राय, देखहु प्रीति की रीति यह। विरस हुरत ह्ये जाय, कपट ह्यदाई परत ही। (२) जो अच्छा न लगे। विरक्ति-जनक। जो हटानेवाला। अभिय। अस्विकार। (३) (काव्य) जो रसहीन हो गये हो। जिसमें रस का निर्वाह न हो सका हो।

संज्ञा पुं० काव्य में रस-भंग।

**विशेष-केशव** ने इसे ‘अनरस’ के पाँच भेदों में एक माना है।

**विरसता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) नीरसता। फीकापन। (२) रसभंग। मज़ा किचिटा होना।

**विरह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) किसी वस्तु से रहित होने का भाव। किसी वस्तु का अभाव। किसी वस्तु के बिना स्थिति। (२) किसी मिय व्यक्ति का पास से अलग होना। विच्छेद। विभोग। उदाई। (३) विभोग का दुःख। उदाई का रंज।

वि० रहित। शून्य। शून्य। बिना।

**विरहा-संज्ञा पुं०** [ हि० विरह ] एक प्रकार का गीत जिसे अहीर और गढ़रिय गाते हैं। वि० दे० “विरहा”।

**विरहिणी-वि०** स्त्री० [ सं० ] जिसे प्रिय या पति का विभोग हो। जो पति या नायक से अलग होने के कारण दुखी हो।

**विरहित-वि०** [ सं० ] रहित। शून्य। बिना। उ०—आश्रम-बन-धरम-विरहित जग कोर-वेद मरजाद गई है।—सूक्ष्मी।

**विरही-वि०** [ सं० विरहिन् ] स्त्री० विरहिणी जिसे प्रिया का विभोग हो। जो प्रियतासे अलग होने के कारण दुखी हो। उ०—विरही कहँ छौं धायु सँभारे ?—सूर।

**विरहोक्तिता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] नायिका भेद के अनुसार प्रिय के न आने से दुखी वह नायिका जिसके मन में पूरा विश्वास हो कि पति वा नायक आवेगा, पर फिर भी किसी कारणवश वह न आवे।

**विराग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) अनुराग का अभाव। चाह का न होना। लगन न होना। (२) किसी वस्तु से न विशेष प्रेम होना न द्वेष। उदासीन भाव। (३) सांसारिक सुखों की चाह न रहना। विषय-भोग आदि से निवृत्ति। वैराग्य। (४) एक में मिले हुए दो राग। ( एक राग में जब दूसरा राग मिल जाता है, तब उसे विराग कहते हैं )।

**विरागी-वि०** [ सं० विरागिन् ] स्त्री० विरगिनी (१) जिसे वा

न हो । जिसे चाह न हो । जिसने मन न छगाया हो । उदासीन । विमुक्त । (२) जिसने सांसारिक विषयों से मन हटा लिया हो । संसात्त्यागी । विरक्त ।

**विराजन्-संज्ञा पु०** [ सं० ] [ वि० विराजमान, विराजित ] (१) शोभित होना । (२) वर्चमान होना । रहना ।

**विराजना-कि० प्र०** [ सं० विराजन् ] (१) शोभित होना । प्रकाशित होना । सोहना । फटना । (२) वर्चमान होना । मौजूद रहना । उपस्थित रहना । होना । रहना । (३) धैर्य । जैसे,—आहूय, विराजिपु ।

**विराजमान-वि०** [ सं० ] (१) प्रकाशमान । चमकता हुआ । चमक दमकवाला । (२) विद्यमान । उपस्थित । मौजूद । जैसे,—पंडित जी यहाँ पहले ही से विराजमान हैं । (३) धैर्य हुआ । उपविष्ट ।

**विराजित-वि०** [ सं० ] (१) सुशोभित । (२) प्रकाशित । (३) उपस्थित । विद्यमान ।

**विराट्-संज्ञा पु०** [ सं० ] (१) प्रजा का वह स्थूल स्वरूप जिसके अंदर अखिल विश्व है अर्थात् संपूर्ण विश्व जिसका शरीर है । विश्व-शरीरमय अनंत पुरुष ।

**विशेष—**इस भावना का निरूपण ऋग्वेद में इस प्रकार है—

“उस पुरुष के सहस्रों मस्तक, सहस्रों बाँलें और सहस्रों चरण हैं । वह पृथ्वी में सर्वत्र व्याप्त रहने पर भी दस भंगुल ऊपर अवस्थित है । पुरुष ही सब कुछ है—जो हुआ है और जो होगा । उसकी हतनी चढ़ी महिमा है, पर वह इससे कहीं बढ़ा है । संपूर्ण विश्व और भूत एक पाद है, आकाश का अमर भंग त्रिपाद है । उससे विराट् उत्पन्न हुए और विराट् से अपिपुरुष । उन्होंने आविर्भूत होकर संपूर्ण पृथ्वी को आगे पीछे घेर लिया ।” भगवद्गीता के अनुसार भगवान ने जो अपना विराट् स्वरूप दिखाया था, उसमें समस्त लोक, पर्वत, समुद्र, नद, नदी, देवता इत्यादि दिखाई पड़े थे । यज्ञ को छलने के लिये भगवान् ने जो प्रतिक्रम रूप धारण किया था, उसे भी विराट् कहते हैं । पुराणों में विराट् को प्रजा का प्रथम पुत्र कहा है । प्रजा दो भागों में विभक्त हुए—स्त्री और पुरुष । स्त्री-भंग से विराट् की उत्पत्ति हुई जिसने स्वार्णमुच मनु को उत्पन्न किया । स्वार्णमुच मनु से प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई । (२) क्षत्रिय । (३) कान्ति । क्षीति ।

वि० बहुत बढ़ा । बहुत भारी । जैसे,—विराट् सर्भ, विराट् आयोजन ।

**विराट् स्वरारज-संज्ञा पु०** [ सं० ] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ । एक प्रकार का एकाई । ( श्रौत सूत्र )

**विराट्-संज्ञा पु०** [ सं० ] (१) मत्स्य देश जहाँ के राजा के यहाँ पाँच पांडव अज्ञातवास के समय छिपे थे ।

**विशेष—**मनुस्मृति में मत्स्य देश का उल्लेख कुरुक्षेत्र और पांचाल के साथ है; इससे अनुमान होता था कि वह थानेसर के आसपास होगा । परंभव यह बात एक प्रकार से निश्चित हो गई है कि अलवर और जयपुर के बीच का प्रदेश ही महाभारत के समय मत्स्य देश कहलाता था । उक्त प्रदेश के अंतर्गत 'विराट्' और 'माचक्ष' दो स्थान भ्रम तक 'विराट्' और 'मत्स्य' का स्मरण दिलाते हैं ।

(२) मत्स्य देश का राजा जिसके यहाँ अज्ञातवास के समय पांडव नौकर रहते थे । (३) महाभारत का एक पर्व । (४) संगीत में एक ताल का नाम ।

**विराटक-संज्ञा पु०** [ सं० ] एक प्रकार का निम्न कोटि का क्षीर या नम जो विराट् देश में निकलता था । राजपद । राजावर्त ।

**विराटज-संज्ञा पु०** दे० "विराटक" ।

**विराणी-संज्ञा पु०** [ सं० विराणिन् ] हस्ति । हाथी ।

**विराटक-संज्ञा पु०** [ सं० ] अर्जुन वृक्ष ।

**विराध-संज्ञा पु०** [ सं० ] (१) पीड़ा । श्लेश । तकलीफ । (२) पीड़ित करनेवाला । सतानेवाला । (३) एक राक्षस जिसे दंबकारण्य ने मारा था ।

**विशेष—**इसके पिता का नाम सुवर्ण्य और माता का नाम दातद्वता था । यह राक्षस पूर्व जन्म में तुंबुरु नामक गंधर्व था जो धैर्यवण या कुबेर के शाप से राक्षस-योनि में उत्पन्न हुआ था । इसके बहुत प्रार्थना करने पर धैर्यवण ने कहा था—“अच्छा, जाओ । जब दशरथ के यहाँ भगवान् अवतार लेंगे, तब तुम्हारा शाप छूटेगा” । ( अग्निपुराण )

रामायण में लिखा है कि दंबकारण्य में विराध सीता को लेकर भागने लगा । राम ने बहुत वाण चलाए, पर वह युद्ध में न मारा गया और राम तथा लक्ष्मण दोनों को उठाकर ले चला । रास्ते में फिर युद्ध होने लगा और दोनों आर्हयों ने मिलकर उसकी मुजाद जाट डालीं । पर वह जल्दी मरता नहीं था । अंत में लक्ष्मण ने एक बढ़ा सा गड्ढा खोदा और उसका शरीर उसमें डाल दिया गया । मरने के पहले इसे अपने पूर्व शरीर और शाप का स्मरण हो आया था ।

**विराधन्-संज्ञा पु०** [ सं० ] (१) अपकार करना । हानि करना ।

(२) पीड़ित करना । सताना । तंग करना ।

**विराम-संज्ञा पु०** [ सं० ] (१) किसी क्रिया या व्यापार का कुछ देर के लिये बंद होना । रुकना या घमना । ठहराव । ठहरना । (२) चलने की धक्काट दूर करनेके लिये रास्ते में ठहरना । चलना रोकना । सुस्ताना । दम मारना । विप्राम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(१) वाक्य के अंतर्गत यह स्थान जहाँ चोलते समय

ठहरना पड़ता हो। (७) छंद के चरण में यह स्थान जहाँ पढ़ते समय कुछ ठहरना पड़े। यति।

विरामप्रश्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में मूल ताल के चार भेदों में से एक भेद।

विराल-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वाल। थिली।

विराय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शब्द। कोली। कलरव। ढ०—काग परी कोकिला की काकली कलित जो कलापिन की कूक कल कोमल विराम की।—येव (२) बछा गुहा। मोर गुल। वि० शब्द रहित।

विराविणी-वि० स्त्री० [ सं० ] (१) बोलनेवाली। शब्द करनेवाली। (२) रोने चिहानेवाली। संज्ञा स्त्री० श्राद्ध।

विरामी-वि० [ सं० विराविन् ] [ स्त्री० विराविणी ] (१) शब्द करनेवाला। बोलनेवाला। (२) रोने चिहानेवाला।

विरासल-संज्ञा पुं० दे० "विलास"।

विरासी छ-वि० दे० "विलासी"। ढ०—जो छवि कालिदि होसि विरासी। पुनि सुसरि होइ समुद परासी—जायसी।

विरिचि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मन्त्र। (२) विष्णु। (३) शिव। विरिचिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मन्त्र।

विरिक्त-वि० [ सं० ] (१) जिसे विरेचन दिया गया हो। (२) जिसका पेट छूटा हो। जिसे दस्त आ रहे हों।

विरुला-वि० दे० "वेरुला" या "वेरुल"।

विरुज-वि० [ सं० ] रोग रहित। नीरोग। स्वल्प।

विरुजनाक्षी-क्रि० प्र० दे० "उल्लसना"।

विरुत-वि० [ सं० ] रव-युक्त। अल्पक शब्द-युक्त। कुञ्जित। गूँजता हुआ।

विरुद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गुण, प्रताप आदि का वर्णन। राजाओं की स्तुति या प्रशंसा जो सुन्दर भाषा में की गई हो। यशोकीर्तन। प्रशस्ति। (२) यश या प्रशंसासूचक पद्यों जो राजा लोग प्राचीन काल में धारण करते थे। जैसे, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य। (इसमें चंद्रगुप्त तो नाम है और 'विक्रमादित्य' विरुद है।) (३) यश। कीर्ति।

विरुदायली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किसी के गुण, प्रताप, पराक्रम आदि का सविस्तर कथन। यश-वर्णन। प्रशंसा।

विरुद-वि० [ सं० ] (१) जो हिन के अनुकूल न हो। विरोध-युक्त। प्रतिहृत्। श्लिङ्ग। जैसे,—भाज कल यह हमारे विरुद है। (२) अपसन्न। बाम। (३) जो मेघ में न हो। जो एक दम मिला या उल्टा हो। विपरीत। जैसे,—यह बात उस बात से सर्वथा विरुद है। (७) जो उचित से सर्वथा

मित्र हो। जो न्याय या नीति के अनुकूल न हो। विपरीत। अनुचित। जैसे,—विरुद आचरण।

क्रि० वि० प्रतिकूल स्थिति में। श्लिङ्ग। जैसे,—भाजकल यह हमारे विरुद चल रहा है।

विरुदकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० विरुदकर्मन् ] (१) विरुद कर्म करनेवाला। विपरीत आचरण का मनुष्य। घुरे चाल चलन का आदमी। (२) केशव के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें एक ही क्रिया के कई परस्पर विरुद फल दिखाए जाते हैं। ढ०—वारणी को राग होत सुरज कत भस्त, उदी द्विजराज को उ होत यह कैसी है ? इस पद का साधारण अर्थ तो यह है कि पश्चिम दिशा के लाल होते ही सूर्य तो अस्त होता है और चन्द्रमा उदय, यह कैसी बात है ! पर श्लेष से इसका अर्थ होता है कि वारणी ( शावक ) की चाह होते ही सूर्योदय का तो परामव होता है, पर वारणी ( उपनिषद् की एक विद्या ) की चाह होते ही माहाग की उन्नति होती है।

विरुदता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विरुद होने का भाव। (२) प्रतिकूलता। विपरीतता। उलटारन।

विरुद्धमति-का-विता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक काष्प-दोष जो ऐसे पद या वाक्य के प्रयोग से होता है जिससे वाक्य के संबंध में विरुद या अनुचित बुद्धि हो सकती है। जैसे, "भवानीत" शब्द के प्रयोग से। "भवानी" शब्द का अर्थ ही है 'शिव' की पत्नी। उसमें ईश लगाने से सहसा यह ध्यान हो सकता है कि "शिव की पत्नी" का कोई भी पति है।

विरुद्धरूपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] केशव के अनुसार रूपक अलंकार का एक भेद जिसमें वही हुई बात विरुद्ध 'अनमिल' अर्थात् असंगत या असंबन्धी सी जान पड़ती है, पर विचार करने पर अर्थात् रूपक के दोनों पक्षों (उपमेय, उपमान) का ध्यान करने पर अर्थ संगत ठहरता है। इसमें उपमेय का कथन नहीं होता, इससे यह "रूपकानिर्वाचक" ही है।

विरुद्धहेत्याभास-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में वह हेत्याभास जहाँ साध्य के साधक होने के स्थान पर साध्य के अभाव का साधक हेतु हो। जैसे,—यह द्रव्य बहिर्मान् है; क्योंकि वह महा द्रुद है। यहाँ महा द्रुद होना बहिर् के होने का हेतु नहीं है, परन्तु बहिर् के अभाव का हेतु है।

विरुद्धार्थ-दीपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] काण्वादर्श के अनुसार दीपक अलंकार का एक भेद जिसमें एक ही बात से दो परस्पर विरुद क्रियाओं का एक साथ होता दिखाया जाता है। जैसे,—जलकण मिट्टी भीष्म-तार की घटाती और विरह-ताप की बढ़ाती है।

विरुद्ध-वि० [ सं० ] (१) आलस्य। उदा। हुआ। (२) अकुशल।



जमा हुआ। चीज से फूटा हुआ। (१) जात। दारुण।  
पेश। (४) खूब जमा हुआ। खूब पैसा हुआ। रूप गढ़ा  
या पैसा हुआ।

विकृष्टक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम।  
(२) एक क्षत्रिय वंशीय राजा का नाम। (३) एक लोक-  
पाल का नाम।

विकृष्टिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैशाख कृष्ण एकादशी।

विकृष्ट-वि० [ सं० ] [ लो० विक्ष्वा ] (१) कई रंग रूप का।  
कई शकलों का। तरह तरह का। (२) कुरूप। बदसूरत।  
भरा। (३) बदला हुआ। परिवर्तित। (४) शोभाहीन।  
शोभा रहित। (५) जो अनु रूप न हो। विरुद्ध। उलटा।  
(६) दूसरी तरह का। बिल्कुल भिन्न।

संज्ञा पुं० विपरामूल।

विकृष्टता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विकृष्ट होने का भाव।  
(२) कुरूपता। बदसूरती। (३) भक्षण। घेरेगापन।

विकृष्ट-परिणाम संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रूपता से अनेकरूपता  
अर्थात् निर्विशेषता से विशेषता की ओर परिवर्तन। एक  
मूल प्रकृति से अनेक विकृतियों की ओर गति।

विशेष—सांख्य में परिणाम दो प्रकार के कहे गए हैं—स्वरूप  
परिणाम और विरूप परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा  
प्रकृति से नाना रूप पदार्थों का विकास होता है; और  
स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप  
छोटे हुए प्रकृति में लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टि की  
ओर अभ्यसर होता है और दूसरा लय की ओर।

विकृष्टा-वि० स्त्री० [ सं० ] कुरूप। बदसूरत। ३०—शूर्पणखे  
जो विरूपा करी दुम तातें दियो हमहूँ दुख नारी।—  
केदाव।

संज्ञा स्त्री० (१) दुरालभा। (२) अतिविद्या। (३) यम की  
पत्नी का नाम।

विकृष्टाक्ष-वि० [ सं० ] जिसके नेत्र बेढंगे या ढरावने हों।

संज्ञा पुं० (१) शिव। शंकर। (२) शिव के एक गण का  
नाम। (३) रावण का एक सेनानायक जिसे हनुमान ने  
प्रमोद धन उजाड़ने के समय मारा था। (४) एक राक्षस  
का नाम जिसे सुप्रिय ने राम-रावण युद्ध में मारा था।  
(५) रावण का एक मंत्री। (६) एक दिग्गज का नाम। (७)  
एक नाग का नाम।

विकृष्टिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुरूप स्त्री। बदसूरत औरत।

विकृष्टि-वि० [ सं० ] विक्षिप्त। [ लो० विक्षिप्ति ] (१) बदसूरत।  
कुरूप। (२) ढरावनी सूरत का।

संज्ञा पुं० निरगति।

विकृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] दस्तावर दवा। जुलाब। विरोचन।

विकृष्ट-वि० [ सं० ] दस्त लानेवाला। मलभेदक। दस्तावर।

विकृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मलभेदक औषध। दस्त लानेवाली  
दवा। जुलाब। जैसे,—रेंदी का तेल। (२) दस्त लाना।  
मल भेद करने की क्रिया।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में विरोचन की विधि विशेष बिलाल से  
लिखी है; क्योंकि कुपित मल ही सब रोगों का कारण कहा  
गया है। पूरी विधि के साथ विरोचन का विधान स्नेह,  
स्वेदन और घनन के उपरांत किया गया है। दारु और  
वस्तु में विरोचन विधेय उद्धारया गया है। बालक, बृद्ध,  
क्षतप्रस्त, रोग से अत्यंत क्षीण, भयार्ण, भ्रांत, पिपासांत  
और मतवाले को विरोचन नहीं कराना चाहिए।

विकृष्ट-वि० [ सं० ] विरोचन के योग्य। जो दस्तावर दवा देने  
के योग्य हो।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में नीचे लिखे रोगियों को विरोचन  
के योग्य कहा है—गुहम, दवासीर, विस्फोटक (चेचक),  
कमल रोग, जीर्ण ज्वर, उदर रोग, विष, पेट की पीड़ा, यंत्रि  
और शुक्रगत रोग, छीड़ा, कुष्ठ, मेह, स्त्रीपद (फीलपाव),  
उन्माद, काश, श्वास, विस्पर्ण इत्यादि से पीड़ित रोगियों  
को विरोचन देना चाहिए।

विकृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमक। दीप्ति। (२) रश्मि।  
किरण। (३) छिद्र। छेद। (४) चंद्रमा। (५) विष्णु।

विकृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमकता। प्रकाशित होना। (२)  
दीप्ति युक्त। प्रकाशमान। (३) सूर्य की किरण। (४) सूर्य।  
(५) चंद्र। (६) भस्मि। (७) मदार का पौधा। शक। (८)  
विष्णु। (९) रोहित वृक्ष। (१०) द्योनाक वृक्ष। (११) पुत्र-  
करंज। (१२) महादे के पुत्र और बलि के पिता।

विकृष्ट-सुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा बलि।

विकृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेल में न होना। किसी दूसरी  
वस्तु के साथ अत्यंत भिन्नता। विपरीत भाव। अनैक्य।  
जैसे,—हन दोनों भावों का परस्पर विरोध है। (२) मेल  
का न होना। धैर। शयुता। विगाद। अनवन। जैसे,—  
उन दोनों का विरोध बहुत पुराना है।

यौ०—धैर विरोध।

(३) दो बातों का एक साथ न हो सकना। विप्रतिपत्ति।  
व्याघात। असहभाव। जैसे,—आपके कथन में पूर्वोक्त विरोध  
है। (४) उलटी स्थिति। सर्वथा दूसरे प्रकार की स्थिति।  
(५) नाश। (६) नाटक का एक अंग जिसमें किसी बात का  
वर्णन करते समय विपत्ति का आभास दिखाया जाता है।  
(७) एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य  
में से किसी एक का दूसरी जाति, गुण, क्रिया या द्रव्य में  
से किसी एक के साथ विरोध होता है। जैसे,—“तुम्हारे  
विद्योग में उस कामिनी को मलयानिल दावानल हो रहा है।”  
यहाँ जाति के साथ जाति का विरोध है। इसी प्रकार यह

कहना गुण का द्रव्य के साथ जाति-विरोध होगा—“तुम्हारे बिना चंद्रमा विप की उजाला से पूर्ण हो गया” ।

विरोधक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विरोध करनेवाला । (२) नाटक में वे विषय जिन का वर्णन निषिद्ध हो ।

विरोधन—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोधि, विरोधिन्, विरोध्य ] (१) विरोध करना । वैर करना । (२) मारा । बरबादी । (३) नाटक में विमर्ष का एक अंग जो उस समय होता है, जब किसी कारणवश कार्यध्वंस का उपक्रम ( सामान ) होता है । जैसे,—कुरुक्षेत्र के युद्ध के अंत होने के निकट जब दुर्योधन बच रहा था, तब भीम का यह प्रतिज्ञा करना कि “यदि दुर्योधन को न मारूँगा, तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा” । सब बात बत जाने पर भी भीम का यह कहना सुधिष्ठिर आदि के मन में यह विचार लाया कि यदि दुर्योधन न मारा गया, तो हम सब लोग भी भीम के बिना कैसे रहेंगे !

विरोधनाश—किं० सं० [ सं० विरोधन ] विरोध करना । अपने निषेध करना । वैर करना । शत्रुता या शत्रुता करना । उ०—साहै ये न विरोधिणु शुद्ध, पंडित, कवि, पार ।— गिरधर ।

विरोधाचरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हित के प्रतिवृत्त आचरण । विज्ञान करवाहै । (२) शत्रुता का व्यवहार ।

विरोधामास—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अर्थात्कार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य का विरोध दिखाई पड़ता है । वि० दे० “विरोध” ।

विरोधित—वि० [ सं० ] जिसका विरोध किया गया हो । विरोधिता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विरोध । शत्रुता । वैर । (२) नक्षत्रों की प्रतिवृत्त दृष्टि । ( फलित ज्योतिष )

विरोधिनी—वि० स्त्री० [ सं० ] (१) विरोध करनेवाली । वैरिन । (२) विरोध करानेवाली । दो आत्मियों में सगदा कमानेवाली ।

विरोधि—वि० [ सं० विरोधिन् ] [ स्त्री० विरोधिनी ] (१) विरोध करनेवाला । हित के प्रतिवृत्त चलनेवाला । कार्य्य सिद्धि में बाधा डालनेवाला । (२) प्रतिद्वन्द्वी । विपक्षी । शत्रु । वैरी । दुश्मन ।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से पचीसवाँ संवत्सर ।

विरोधी श्लेष—संज्ञा पुं० [ सं० ] केशव के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें विलेप शब्दों द्वारा दो पदार्थों में भेद, विरोध या न्यूनाधिकता दिखाई जाती है । उ०—कृष्ण हो हरये हँ संपति, संसु विपत्ति यहै अर्थिकाई । वातक काम अहामन के हित, वातक काम सकाम सहाई । इसमें यह दिखाया गया है कि हर ( शिव ) दासों पर हरि की प्रतीका अधिक कृपा करते हैं । कृष्ण धीरे धीरे संपत्ति करते

हैं और शिव विपत्ति । हरि काम को उत्पन्न करनेवाले हैं और निष्काम लोगों के हित हैं; शिव काम के घातक हैं, पर कामना रखनेवालों के सहायक हैं । यहाँ ‘काम’ शब्द के ‘कामदेव’ और ‘कामना’ दो अर्थ हैं ।

विरोधोपमा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उपमा अलंकार का एक भेद जिसमें किसी वस्तु की उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थों से दी जाती है । जैसे,—“तुम्हारा मुख चंद्रमा और कमल के समान है” । यहाँ कमल और चंद्रमा इन दोनों उपमानों में विरोध है ।

विरोध्य—वि० [ सं० ] (१) विरोध के योग्य । (२) जिसका विरोध करना हो ।

विरोपण—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोपणीय, विरोपित, विरोप्य ] (१) लेपन । लेस करना । (२) लीपना । पोतना । तह चढ़ाना । लेव चढ़ाना । (३) ज़मीन में पौधा लगाना । रोपना ।

विरोम—वि० [ सं० ] रोम रहित । बिना रोएँ का ।

विरोहण—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोहणीय, विरोहित ] एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना ।

विरोही—वि० [ सं० विरोहिन् ] [ स्त्री० विरोहिणी ] रोपनेवाला । पौधा लगानेवाला ।

विरोही—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बाजरा, महुवा, कोदों बगैरह की एक प्रकार की जोताई जो उनके पौधे कुछ ऊँचे होने पर भी जाती है ।

वितर्क—संज्ञा स्त्री० दे० “वृत्ति” ।

विलंबन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कूड़ या लॉचकर पार करने की क्रिया । (२) उपवास करना । लंघन करना । (३) किसी वस्तु के भोग से अपने आप को रोक रखना । वंचित रहना ।

विलंबनीय—वि० [ सं० ] (१) पार करने योग्य । लॉचने योग्य । (२) नीचा दिखाने योग्य । परालत करने योग्य ।

विलंबित—वि० [ सं० ] (१) जो परालत हुआ हो । जिसने नीचा देखा हो । (२) जो विकल हुआ हो ।

विलंब्य—वि० [ सं० ] (१) पार करने योग्य । (नदी आदि) (२) परालत होने योग्य । वद में भाने योग्य । (३) करने योग्य । सहज ।

विलंब्य—वि० [ सं० विलम्ब ] भावदयकता, अनुमान आदि से अधिक समय (जो किसी बात में लगे) । बहुत काल । अतिवृत्त । देर ।

किं० प्र०—करना ।—होना ।

विलंबन—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विलंबनीय, विलंब, विलंबिन ] (१) देर करना । विलंब करना । (२) लटकना । टँगना । (३) सहाता पकड़ना । टेकना ।

जमा हुआ। वीज से फूटा हुआ। (१) जात। उपपन्न। पदा। (७) खूब जमा हुआ। खूब पैठा हुआ। खूब गड़ा या पौसा हुआ।

विरुद्धक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम। (२) एक पाण्डव वंशीय राजा का नाम। (३) एक लोकरपाल का नाम।

विरुध्रिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैशाख कृष्ण एकादशी।  
विरूप-वि० [ सं० ] [ स्त्री० विरुषा ] (१) कई रंग रूप का। कई शकलों का। तरह तरह का। (२) कुरूप। बदसूरत। भद्दा। (३) बदला हुआ। परिवर्तित। (७) शोभाहीन। शोभा रहित। (५) जो अनुरूप न हो। विरुद्ध। उल्टा। (६) दूसरी तरह का। बिलकुल भिन्न।  
संज्ञा पुं० विपरामूल।

विरूपता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विरूप होने का भाव। (२) कुरूपता। बदसूरती। (३) भद्दापन। बेरंगापन।

विरूप-परिणाम संज्ञा पुं० [ सं० ] एकरूपता से अनेकरूपता अर्थात् विविधता से विशेषता की ओर परिवर्तन। एक मूल प्रकृति से अनेक विकृतियों की ओर गति।

विरोध-सांख्य में परिणाम दो प्रकार के कहे गए हैं—स्वरूप परिणाम और विरूप परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा प्रकृति से नाना रूप पदार्थों का विकास होता है; और स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप खोते हुए प्रकृति में लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टि की ओर अग्रसर होता है और दूसरा लय की ओर।

विरुषा-वि० स्त्री० [ सं० ] कुरूप। बदसूरत। उ०—दूर्पणखे जो विरुषा करी गुम सातें दियो हमहूँ दुख नारी।—केदाय।

संज्ञा स्त्री० (१) दुरालमा। (२) अतिविषा। (३) यम की पत्नी का नाम।

विरुषास-वि० [ सं० ] जिसके नेत्र बेदंगे या ढरावने हों।  
संज्ञा पुं० (१) शिव। शंकर। (२) शिव के एक गण का नाम। (३) रावण का एक सेनानायक जिसे हनुमान ने प्रमोद वन उगाने के समय मारा था। (४) एक राक्षस का नाम जिसे सुग्रीव ने राम-रावण युद्ध में मारा था। (५) रावण का एक मंत्री। (६) एक दिग्गज का नाम। (७) एक नग का नाम।

विरूपिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुरूप स्त्री। बदसूरत औरत।  
विरुषी-वि० [ सं० विरुषि ] [ स्त्री० विरुषिणी ] (१) बदसूरत। कुरूप। (२) ढरावनी सूरत का।  
संज्ञा पुं० निरगिट।

विरोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] दस्तावर दवा। जुलाब। विरेचन।  
विरोचक-वि० [ सं० ] दस्त जानेवाला। मलमेदक। दस्तावर।

विरेचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मलमेदक औषध। दस्त जानेवाली दवा। जुलाब। जैसे,—रेंडू का तेल। (२) दस्त खाना। मल मेद करने की क्रिया।

विरोध—वैद्यक के ग्रंथों में विरेचन की विधि विरोध विस्तार से लिखी है; क्योंकि कुपित मल ही सब रोगों का कारण है। पूरी विधि के साथ विरेचन का विधान स्नेह, स्वेदन और घमन के उपरान्त—क्रिया गया है। पारद और घसंत में विरेचन विधेय ठहराया गया है। बालक, बूढ़, क्षतप्रस्त, रोग से अत्यंत क्षीण, भयान्त, धीर, पिपाशाल और मतबले को विरेचन नहीं कराना चाहिए।

विरोच्य-वि० [ सं० ] विरेचन के योग्य। जो दस्तावर दवा देने के योग्य हो।

विरोध—वैद्यक के ग्रंथों में नीचे लिखे रोगियों को विरेचन के योग्य कहा है—गुल्म, ववासीर, विस्फोटक (चेचक), कमल रोग, जीर्णज्वर, उदर रोग, विष, घेद की पीड़ा, योनि और शुक्रगत रोग, लीहा, कुष्ठ, मेह, श्लेष्मद (फीलपाव), उन्माद, कारा, श्वास, विसर्प इत्यादि से पीड़ित रोगियों को विरेचन देना चाहिए।

विरोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमक। दीप्ति। (२) रश्मि। किरन। (३) छिद्र। छेद। (४) चंद्रमा। (५) विष्णु।

विरोचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमकना। प्रकाशित होना। (२) दीप्तियुक्त। प्रकाशमान। (३) सूर्य की किरण। (४) सूर्य। (५) चंद्र। (६) भस्मि। (७) मदार का पौधा। भाक। (८) विष्णु। (९) रोहित वृक्ष। (१०) द्योनाक वृक्ष। (११) घृत-करंज। (१२) प्रह्लाद के पुत्र और बलि के पिता।

विरोचनसुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा बलि।

विरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेल में न होना। किसी दूसरी वस्तु के साथ अत्यंत भिन्नता। विपरीत भाव। अनैक्य। जैसे,—हन दोनों भावों का परस्पर विरोध है। (२) मेल का न होना। वैर। शत्रुता। विगाद। अनयन। जैसे,—उन दोनों का विरोध बहुत पुराना है।

यौ०—वैर विरोध।  
(३) दो बातों का एक साथ न हो सकना। विप्रतिपत्ति। ब्याघात। असहभाव। जैसे,—आरके कथन में पूर्वोपर विरोध है। (४) उलटी स्थिति। सर्वथा दूसरे प्रकार की स्थिति। (५) गारा। (६) नाटक का एक अंग जिसमें किसी बात का वर्णन करते समय विपत्ति का आभास दिखाया जाता है। (७) एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य में से किसी एक का दूसरी जाति, गुण, क्रिया या द्रव्य में से किसी एक के साथ विरोध होता है। जैसे,—“तुम्हारे बियोग में दस्त कामिनी की मलफानिल शत्रानल हो रहा है।” यहाँ जाति के साथ जाति का विरोध है। इसी प्रकार यह

कहना गुण का रूप के साथ जाति-विरोध होगा—“तुम्हारे बिना चंद्रमा विष की उबाल से पूर्ण हो गया” ।

विरोधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विरोध करनेवाला । (२) नाटक में वे विषय जिन का वर्णन निरिपद्ध हो ।

विरोधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोध, विरोधिन, विरोधि ] (१) विरोध करना । वैर करना । (२) नाश । धरवादी । (३) नाटक में विमर्ष का एक अंग जो उस समय होता है, जब किसी कारणवश काव्यध्वंस का उपक्रम ( सामान ) होता है । जैसे,—कृष्णक्षेत्र के युद्ध के अंत होने के निकट जब दुर्योधन बच रहा था, तब भीम का यह प्रतिज्ञा करना कि “यदि दुर्योधन को न मारूँगा, तो अग्नि में प्रवेष्ट कर जाऊँगा” । सब बात बर्न जाने पर भी भीम का यह कहना युधिष्ठिर आदि के मन में यह विचार छाया कि यदि दुर्योधन न मारा गया, तो हम सब लोग भी भीम के बिना कैसे रहेंगे !

विरोधनाल-क्रि० सं० [ सं० विरोधन ] विरोध करना । अपने विरुद्ध करना । वैर करना । शत्रुता या शत्रुता करना । उ०—साईं ये न विरोधिषु युद्ध, पंचित, रुचि, यार ।— गिरधर ।

विरोधाचरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हित के प्रतिशूल आचरण । श्लोककारवादी । (२) शत्रुता का व्यवहार ।

विरोधाभास-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और रूप का विरोध दिखाई पड़ता है । वि० हे० “विरोध” ।

विरोधित-वि० [ सं० ] जिसका विरोध किया गया हो । विरोधिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विरोध । शत्रुता । वैर । (२) नश्वरों की प्रतिशूल हृष्टि । ( फलित ज्योतिष )

विरोधिनी-वि० स्त्री० [ सं० ] (१) विरोध करनेवाली । धैरिन । (२) विरोध करनेवाली । दो आदमियों में शत्रुता लगानेवाली ।

विरोधी-वि० [ सं० विरोधिन् ] [ स्त्री० विरोधिनी ] (१) विरोध करनेवाला । हित के प्रतिशूल चलनेवाला । कार्य सिद्धि में बाधा डालनेवाला । (२) प्रतिद्वन्द्वी । विपक्षी । शत्रु । धैरी । दुश्मन ।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से पचीसवाँ संवत्सर ।

विरोधी श्लेष-संज्ञा पुं० [ सं० ] केनाथ के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें श्लेष शब्दों द्वारा दो पदार्थों में भेद, विरोध या न्यूनताविक्रता दिखाई जाती है । उ०—कृष्ण हरे हृदये हरे संपत्ति, शंखु विपत्ति यदैः अधिकाहं । जातकं काम भक्षामन के हित, घातक काम सक्षाम सहाई । इसमें यह दिखाया गया है कि हर ( शिव ) दासों पर हरि की अपेक्षा अधिक कृपा करते हैं । कृष्ण धीरे धीरे संपत्ति हारते

हैं और शिव विपत्ति । हरि काम को उत्पन्न करनेवाले हैं और निष्काम लोगों के शत्रु हैं; शिव काम के घातक हैं, पर कामना रखनेवालों के सहायक हैं । यहाँ ‘काम’ शब्द के ‘कामदेव’ और ‘कामना’ दो अर्थ हैं ।

विरोधोपमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उपमा अलंकार का एक भेद जिसमें किसी वस्तु की उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थों से दी जाती है । जैसे,—“तुम्हारा मुख चंद्रमा और कमल के समान है” । यहाँ कमल और चंद्रमा इन दोनों उपमानों में विरोध है ।

विरोध्य-वि० [ सं० ] (१) विरोध के योग्य । (२) जिसका विरोध करना हो ।

विरोपण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोपण्य, विरोपित, विरोप्य ] (१) लेपन । लेस करना । (२) लीपना । पोतना । तह चढ़ाना । लेव चढ़ाना । (३) ज़मीन में पौधा लगाना । रोपना ।

विरोम-वि० [ सं० ] रोम रहित । बिना रोम का ।

विरोहण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोहण्य, विरोहित ] एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना ।

विरोही-वि० [ सं० विरोहिन् ] [ स्त्री० विरोहिणी ] रोपनेवाला । पौधा लगानेवाला ।

विरोही-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] यात्रा, मंडुवा, कोदों वगैरह की एक प्रकार की जोताई जो उनके पीछे कुछ ऊँचे होने पर भी जाती है ।

विरती-संज्ञा स्त्री० दे० “वृत्ति” ।

विलंबन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रुद्ध या लॉपकर पार करने की क्रिया । (२) उपवास करना । लंघन करना । (३) किसी वस्तु के भोग से अपने आप को रोक रखना । वंचित रहना ।

विलंबनीय-वि० [ सं० ] (१) पार करने योग्य । लौंने योग्य । (२) नीचा दिखाने योग्य । परास्त करने योग्य ।

विलंबित-वि० [ सं० ] (१) जो परास्त हुआ हो । जिसने नीचा देखा हो । (२) जो विफल हुआ हो ।

विलंब्य-वि० [ सं० ] (१) पार करने योग्य । (मद्री आदि) (२) परास्त होने योग्य । ब्रह्म में जाने योग्य । (३) करने योग्य । सहज ।

विलंब्य-वि० [ सं० ] विराम्य ] भावदयकता, अनुमान आदि से अधिक समय (जो किसी बात में खो) बहुत काल । अतिशाल । देर ।

क्रि० प्र०—करना।—होना ।

विलंबन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विलंबनीय, विलंबी, विलंबित ] (१) देर करना । विलंब करना । (२) लटकना । टँगना । (३) सहारा पकड़ना । टेकना ।

जमा हुआ। बीज से फूटा हुआ। (१) जात। उत्पन्न। पैरा। (२) खूब जमा हुआ। खूब पैदा हुआ। खूब गढ़ा या भँसा हुआ।

विरुद्धक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इन्द्राकु के एक पुत्र का नाम। (२) एक काश्यप वंशीय राजा का नाम। (३) एक लोकपाल का नाम।

विरुग्िनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैशाख कृष्ण एकादशी।

विरूप-वि० [ सं० ] [ स्त्री० विरुपा ] (१) कई रंग रूप का। कई शकलों का। तरह तरह का। (२) कुरूप। बदसूरत। भद्दा। (३) बदला हुआ। परिवर्तित। (४) शोभाहीन। शोभा रहित। (५) जो अनुरूप न हो। विरुद्ध। उकटा। (६) दूसरी तरह का। बिलकुल निम्न।

संज्ञा पु० विपरामूल।

विरूपता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विरूप होने का भाव। (२) कुरूपता। बदसूरती। (३) भद्रापन। वेदंगापन।

विरूप-परिणाम संज्ञा पुं० [ सं० ] एकरूपता से अनेकरूपता अर्थात् निर्विणता से विनेयता की ओर परिवर्तन। एक मूल प्रकृति से अनेक विकृतियों की ओर गति।

विरोध-सांगम में परिणाम दो प्रकार के कहे गए हैं—स्वरूप परिणाम और विरूप परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा प्रकृति से नाना रूप पदार्थों का विकास होता है; और स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप ओते हुए प्रकृति में लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टि की ओर अग्रसर होता है और दूसरा लय की ओर।

विरूपा-वि० स्त्री० [ सं० ] कुरूप। बदसूरत। उ०—घृपणखे जो विरूपा करी तुम तातें दियो हगहँ दुख भारी।—केदार।

संज्ञा स्त्री० (१) दुरालभा। (२) अतिविषा। (३) यम की पत्नी का नाम।

विरूपाक्ष-वि० [ सं० ] जिसके नेत्र बेडोंगे या ढरावने हों।

संज्ञा पुं० (१) शिव। शंकर। (२) शिव के एक गण का नाम। (३) रावण का एक सेनानायक जिसे हनुमान ने प्रमोद वन उजाड़ने के समय मारा था। (४) एक राक्षस का नाम जिसे सुग्रीव ने राम-रावण युद्ध में मारा था। (५) रावण का एक मंत्री। (६) एक दिग्गाज का नाम। (७) एक नग का नाम।

विरूपिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुरूप स्त्री। बदसूरत औरत।

विरुपी-वि० [ सं० विरुपिन् ] [ स्त्री० विरुपिणी ] (१) बदसूरत। कुरूप। (२) ढरावनी सूरत का।

संज्ञा पुं० तिरगिट।

विरोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] दस्तावर दवा। जुलाब। विरेचन।

विरेचक-वि० [ सं० ] दस्त लावनेवाला। मलभेदक। दस्तावर।

विरेचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मलभेदक औषध। दस्त लावनेवाली दवा। जुलाब। जैसे,—रैकी का तेल। (२) दस्त लागना। मल भेद करने की क्रिया।

विरोध-वैचक के ग्रंथों में विरेचन की विधि विरोध विकार से लिखी है; क्योंकि कुपित मल ही सब रोगों का कारण कहा गया है। पूरी विधि के साथ विरेचन का विधान है, स्वेदन और यमन के उपरांत क्रिया गया है। दारु और यस्त में विरेचन विधेय ठहराया गया है। चालक, बुध, क्षतप्रस्त, रोग से अत्यंत क्षीण, भवात्त, अंत, पिनासात् और मतवाले को विरेचन नहीं कराना चाहिए।

विरेच्य-वि० [ सं० ] विरेचन के योग्य। जो दस्तावर दवा देने के योग्य हो।

विरोध-वैचक के ग्रंथों में नीचे लिखे रोगियों को विरेचन के योग्य कहा है—गुल्म, यवासीर, विरकोटक (चेचक), कमल रोग, जीर्णज्वर, उदर रोग, विष, पेट की पीड़ा, पीन और शुक्रगत रोग, झीहा, कुष्ठ, मेह, स्त्रीपद (कोलपाव), उन्माद, कास, खास, विषाणु हत्यादि से पीड़ित रोगियों को विरेचन देना चाहिए।

विरोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमक। दीप्ति। (२) रश्मि। किरन। (३) छिद्र। छेद। (४) चंद्रमा। (५) विष्णु।

विरोचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमकना। प्रकाशित होना। (२) दीप्तियुक्त। प्रकाशमान। (३) सूर्य की किरण। (४) सूर्य। (५) चंद्र। (६) अग्नि। (७) मदर का पीया। आक। (८) विष्णु। (९) रोहित वृक्ष। (१०) द्योनोक वृक्ष। (११) घृतकरंज। (१२) प्रह्लाद के पुत्र और बलि के पिता।

विरोचनसुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा बलि।

विरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेल में न होना। किसी दूसरी वस्तु के साथ अत्यंत भिन्नता। विपरीत भाव। अनैक्य। जैसे,—इन दोनों भावों का परस्पर विरोध है। (२) मेल का न होना। घेर। शत्रुता। विगाड़। अनयन। जैसे,—उन दोनों का विरोध बहुत पुराना है।

यौ०—वैर विरोध।

(३) दो बातों का एक साथ न हो सकना। विप्रतिपत्ति। ग्यायात। असदभाव। जैसे,—आपके कथन में पूर्वोपर विरोध है। (४) उलटी स्थिति। सर्वथा दूसरे प्रकार की स्थिति। (५) नाश। (६) नाटक का आभास दिखाया जाता है। (७) एक अर्थोत्कार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य में से किसी एक का दूसरी जाति, गुण, क्रिया या द्रव्य में से किसी एक के साथ विरोध होता है। जैसे,—“तुम्हारे विद्योग में उस कामिनी को मलयानिष्ठ दावानल हो रहा है।” यहाँ जाति के साथ जाति का विरोध है। इसी प्रकार यह

कहना गुण का द्रव्य के साथ जाति-विरोधी होगा—“सुन्दरी बिना चंद्रमा विष की ज्वाला से पूर्ण हो गया” ।

विरोधक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विरोध करनेवाला । (२) नाटक में वे विषय जिन का वर्णन निषिद्ध हो ।

विरोधना—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोधी, विरोधित, विरोध्य ] (१) विरोध करना । धर करना । (२) नाश । बरबादी । (३) नाटक में विमर्ष का एक अंग जो उस समय होता है, जब किसी कारणवश काव्यरच्यंस्व का उपक्रम ( सामान ) होता है । जैसे,—कुण्डोत्र के युद्ध के अंत होने के निष्ठ जब दुर्योधन बध रहा था, तब भीम का यह प्रतिज्ञा करना कि “यदि दुर्योधन को न मारूँगा, तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा” । सब बात बन जाने पर भी भीम का यह कहना युधिष्ठिर आदि के मन में यह विचार छाया कि यदि दुर्योधन न मारा गया, तो हम सब लोग भी भीम के बिना कैसे रहेंगे !

विरोधनाल—किं० सं० [ सं० विरोधन ] विरोध करना । अपने विरुद्ध करना । धर करना । शत्रुता या श्लेषा करना । उ०—साईं ये न विरोधिषु गुरु, पंडित, कवि, यार ।— गिरधर ।

विरोधाचरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हित के प्रतिकूल आचरण । श्लेषा करारवादी । (२) शत्रुता का व्यवहार ।

विरोधाभास—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अर्थात्कार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य का विरोध दिखाई पड़ता है । वि० दे० “विरोध” ।

विरोधित—वि० [ सं० ] जिसका विरोध किया गया हो । विरोधिता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विरोध । शत्रुता । धर । (२) मन्त्रों की प्रतिकूल शक्ति । ( फलित ज्योतिष )

विरोधिनी—वि० स्त्री० [ सं० ] (१) विरोध करनेवाली । धरिन । (२) विरोध करनेवाली । दो आत्मियों में श्लेषा लगानेवाली ।

विरोधी—वि० [ सं० विरोधि ] [ स्त्री० विरोधिनी ] (१) विरोध करनेवाला । हित के प्रतिकूल चलनेवाला । काव्य सिद्धि में बाधा डालनेवाला । (२) प्रतिद्वन्दी । विपक्षी । शत्रु । धरि । दुश्मन ।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से पचीसवों संवत्सर ।

विरोधी श्लेष—संज्ञा पुं० [ सं० ] केसर के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें विलेख शब्दों द्वारा दो पदार्थों में भेद, विरोध या म्युनाधिकता दिखाई जाती है । उ०—रुच्य हो इतने इतने संपत्ति, शंसु विपत्ति यह अधिकाई । ज्ञातक काम अकामन के हित, घातक काम सकाम सदाई । इसमें यह दिखाया गया है कि हर ( शिव ) शस्त्रों पर हरि की मरोका अधिक रूपा करते हैं । कृष्ण धरि धरि संपत्ति इतने

हैं और शिव विपत्ति । हरि काम को उपलब्ध करनेवाले हैं और निष्काम लोगों के हित हैं; शिव काम के घातक हैं, पर कामना रखनेवालों के सहायक हैं । यहाँ ‘काम’ शब्द के ‘कामदेव’ और ‘कामना’ दो अर्थ हैं ।

विरोधोपमा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उपमा अलंकार का एक भेद जिसमें किसी वस्तु की उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थों से दी जाती है । जैसे,—“सुहारा मुख चंद्रमा और कमल के समान है” । यहाँ कमल और चंद्रमा इन दोनों उपमानों में विरोध है ।

विरोध्य—वि० [ सं० ] (१) विरोध के योग्य । (२) जिसका विरोध करना हो ।

विरोपण—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोपणीय, विरोपित, विरोप्य ] (१) लेपन । लेस करना । (२) छीपना । पोतना । तह चढ़ाना । छेव चढ़ाना । (३) ज़मीन में पौधा लगाना । रोपना ।

विरोम—वि० [ सं० ] रोम रहित । बिना रोएँ का ।

विरोहण—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोहणीय, विरोहित ] एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना ।

विरोही—वि० [ सं० विरोधि ] [ स्त्री० विरोधिनी ] रोपनेवाला । पौधा लगानेवाला ।

विरोही—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] बाजरा, महुवा, कोदों घौरह की एक प्रकार की जोताई जो उनके पौधे कुछ ऊँचे होने पर भी जाती है ।

विर्तु—संज्ञा स्त्री० दे० “वृत्ति” ।

विलंबन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छूट या लॉपकर पार करने की क्रिया । (२) उपवास करना । कंथन करना । (३) किसी वस्तु के भोग से अपने आप को रोक रखना । वंचित रहना ।

विलंबनीय—वि० [ सं० ] (१) पार करने योग्य । लॉपने योग्य । (२) नीचा दिखाने योग्य । परालत करने योग्य ।

विलंबित—वि० [ सं० ] (१) जो परालत हुआ हो । जिसने नीचा देखा हो । (२) जो विकल हुआ हो ।

विलंब्य—वि० [ सं० ] (१) पार करने योग्य । (नदी आदि) (२) परालत होने योग्य । बश में आने योग्य । (३) करने योग्य । सहज ।

विलंब—वि० [ सं० विलम्ब ] भावव्यक्तता, अनुमान आदि से अधिक समय (जो किसी बात में लगे) बहुत काल । अतिकाल । धर ।

किं० प्र०—करना।—होना ।

विलंबन—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विलंबनीय, विलंब, विलंबित ] (१) धर करना । विलंब करना । (२) लटकना । टँगना । (३) उखाट पकड़ना । टेंकना ।

जमा हुआ। बीज से फूटा हुआ। (१) जाल। डायन।  
पंजा। (४) खूब जमा हुआ। खूब पैदा हुआ। खूब गढ़ा  
या भँसा हुआ।

विरुद्ध-क-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) द्वुद्वाक के एक पुत्र का नाम।  
(२) एक शाक्य वंशीय राजा का नाम। (३) एक लोक-  
पाल का नाम।

विरुग्िनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैशाल कृष्ण पकावशी।

विरूप-वि० [ सं० ] [ स्त्री० विरुपा ] (१) कई रंग रूप का।  
कई शकलों का। तरह तरह का। (२) कुरूप। बदसूरत।  
भद्दा। (३) बदला हुआ। परिवर्तित। (४) भ्रोमाहीन।  
शोभा रहित। (५) जो अनुरूप न हो। विरुद्ध। उलटा।  
(६) दूसरी तरह का। बिल्कुल भिन्न।

संज्ञा पुं० विपरामूल।

विरूपता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विरूप होने का भाव।  
(२) कुरूपता। बदसूरती। (३) महापान। बेवैगपान।

विरूप-परिणाम संज्ञा पुं० [ सं० ] एकरूपता से अनेकरूपता  
अर्थात् निर्विशेषता से विशेषता की ओर परिवर्तन। एक  
मूल प्रकृति से अनेक विकृतियों की ओर गति।

विशेष—सांख्य में परिणाम दो प्रकार के कहे गए हैं—स्वरूप  
परिणाम और विरूप परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा  
प्रकृति से नाना रूप पदार्थों का विकास होता है; और  
स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप  
छोटे हुए प्रकृति में लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टि की  
ओर भ्रमसर होता है और दूसरा लय की ओर।

विरुपा-वि० स्त्री० [ सं० ] कुरूप। बदसूरत। उ०—दूर्पणस्यै  
जो विरुपा करी तुम सार्ते दियो दमहँ दुख भारी।—  
केशव।

संज्ञा स्त्री० (१) दुरालभा। (२) अतिविषा। (३) यम की  
पत्नी का नाम।

विरुपादा-वि० [ सं० ] जिसके नेत्र बेवर्ते या दरारने हैं।

संज्ञा पुं० (१) शिव। शंकर। (२) शिव के एक गण का  
नाम। (३) रावण का एक सेनानायक जिसे हनुमान ने  
प्रमोद वन उखाड़ने के समय मारा था। (४) एक राक्षस  
का नाम जिसे सुमीव ने राम-रावण युद्ध में मारा था।  
(५) रावण का एक मंत्री। (६) एक दिग्गज का नाम। (७)  
एक नाग का नाम।

विरुपिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुरूप स्त्री। बदसूरत औरत।

विरुपी-वि० [ सं०. विरुपिन् ] [ स्त्री० विरुपिणी ] (१) बदसूरत।  
कुरूप। (२) दरावनी सूरत का।

संज्ञा पुं० विरगिट।

विरैक-संज्ञा पुं० [ सं० ] दस्तावर दवा। जुलाब। विरेचन।

विरैचक्र-वि० [ सं० ] दस्त जानेवाला। मलभेदक। दस्तावर।

विरैचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मलभेदक औषध। दस्त जानेवाली  
दवा। जुलाब। जैमे,—रैची का तेल। (२) दस्त लागे।  
मल भेद करने की क्रिया।

विशेष—वैचक के ग्रंथों में विरेचन की विधि विशेष विस्तार से  
लिखी है; क्योंकि कुवित मल ही सब रोगों का कारण कहा  
गया है। पूरी विधि के साथ विरेचन का विधान स्पष्ट,  
स्वेदन और वमन के उपरांत किया गया है। दारद और  
घसंत में विरेचन विशेष ठहराया गया है। धातक, हृद,  
क्षतप्रस्त, रोग से अत्यंत क्षीण, भयान्त, श्रांत, विषासाध  
और मतवाले को विरेचन नहीं कराना चाहिए।

विरैच्य-वि० [ सं० ] विरेचन के योग्य। जो दस्तावर दवा देने  
के योग्य हो।

विशेष—वैचक के ग्रंथों में नीचे लिखे रोगियों को विरेचन  
के योग्य कहा है—गुल्म, यवासीर, विस्फोटक (चेचक),  
कमल रोग, जीर्ण ज्वर, उदर रोग, विष, पेट की पीड़ा, योनि  
और शुकगत रोग, हीहा, कुष्ठ, मेह, क्षीपद (कीलपाव),  
उन्माद, कान, श्वास, विसर्प इत्यादि से पीड़ित रोगियों  
को विरेचन देना चाहिए।

विरोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमक। दीप्ति। (२) रश्मि।  
किरण। (३) छिद्र। छेद। (४) चंद्रमा। (५) विष्णु।

विरौचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमकना। प्रकाशित होना। (२)  
दीप्तिवृत्त। प्रकाशमान। (३) सूर्य की किरण। (४) सूर्य।  
(५) चंद्र। (६) अग्नि। (७) मवार का पीया। आरु। (८)  
विष्णु। (९) रोहित वृक्ष। (१०) श्योनाक वृक्ष। (११) पुत्र-  
करंज। (१२) प्रह्लाद के पुत्र और बलि के पिता।

विरौचनसुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा बलि।

विरौच-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेळ में न होना। किसी दूसरी  
वस्तु के साथ अत्यंत भिन्नता। विपरीत भाव। अनैक्य।  
जैसे,—इन दोनों भावों का परस्पर विरोध है। (२) मेळ  
का न होना। वैर। शत्रुता। विगाद। अनयन। जैसे,—  
उन दोनों का विरोध बहुत पुराना है।

यौ०—वैर विरोध।

(३) दो बातों का एक साथ न हो सकना। विप्रतिपत्ति।  
व्याघात। अतद्भावा। जैसे,—आरक के कथन में पूर्वापर विरोध  
है। (४) उलटी स्थिति। सर्वथा दूसरे प्रकार की स्थिति।  
(५) नाश। (६) नाटक का एक अंग जिसमें किसी बात का  
घर्षण करते समय विपत्ति का भासास दिखाया जाता है।  
(७) एक अर्थोत्कार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य  
में से किसी एक का दूसरी जाति, गुण, क्रिया या द्रव्य में  
से किसी एक के साथ विरोध होता है। जैसे,—“तुम्हारे  
विशेषों में उस कामिनी को मलयानिल धावानल हो रहा है।”  
यहाँ जाति के साथ जाति का विरोध है। इसी प्रकार यह

कहना गुण का द्रव्य के साथ जाति-विरोध होगा—“तुम्हारे बिना चंद्रमा विप की ज्वाला से पूर्ण हो गया” ।

विरोधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विरोध करनेवाला । (२) नाटक में वे विषय जिन का वर्णन निषिद्ध हो ।

विरोधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोधि, विरोधिन्, विरोध्य ] (१) विरोध करना । धैर करना । (२) नाद । परवादी । (३) नाटक में विषय का एक अंग जो उस समय होता है, जब किसी कारणवश कार्यध्वंस का उपक्रम ( सामान ) होता है । जैसे,—कुशक्षेत्र के युद्ध के अंत होने के निकट जब दुर्योधन बच रहा था, तब भीम का यह प्रतिज्ञा करना कि “यदि दुर्योधन को न मारेंगा, तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा” । सद्य बात बन जाने पर भी भीम का यह कहना दुष्प्रिय आदि के मन में यह विचार लाया कि यदि दुर्योधन न मारा गया, तो हम सब लोग भी भीम के बिना कैसे रहेंगे !

विरोधनाश-क्रि० सं० [ सं० विरोधन ] विरोध करना । अपने विरुद्ध करना । धैर करना । शत्रुता या शगड़ा करना । उ०—साहें ये न विरोधिपु गुण, पंडित, कवि, यार ।— गिरधर ।

विरोधाचरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हित के प्रतिकूल आचरण । विरुद्ध कार्यवाही । (२) शत्रुता का व्यवहार ।

विरोधाभास-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य का विरोध दिखाई पड़ता है । वि० दे० “विरोध” ।

विरोधित-वि० [ सं० ] जिसका विरोध किया गया हो । विरोधिता-संज्ञा स्त्री [ सं० ] (१) विरोध । शत्रुता । धैर । (२) नश्वरों की प्रतिकूल दृष्टि । ( फलित ज्योतिष )

विरोधिनी-वि० स्त्री [ सं० ] (१) विरोध करनेवाली । धैरिन । (२) विरोध करानेवाली । दो आदमियों में शगड़ा लगानेवाली ।

विरोधि-वि० [ सं० विरोधिन् ] [ स्त्री० विरोधिनी ] (१) विरोध करनेवाला । हित के प्रतिकूल चलनेवाला । कार्य सिद्धि में बाधा डालनेवाला । (२) प्रतिद्वन्दी । विपक्षी । शत्रु । धैरी । दुश्मन ।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से पचीसवाँ संवत्सर ।

विरोधी श्रेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] फेराव के अनुसार श्रेय अलंकार का एक भेद जिसमें द्रिष्ट शब्दों द्वारा दो पदार्थों में भेद, विरोध या म्यूनार्थिकता दिखाई जाती है । उ०—दृष्य हरे हस्ते हैं संपत्ति, शंभु विपत्ति धरै अधिकार । जातक काम अशामन के दिन, चातक काम सकाम सहाई । इसमें यह दिखाया गया है कि हर ( शिव ) दासों पर हरि की भयंकर अधिक क्रिया करते हैं । कृष्ण धीरे धीरे संपत्ति हारते

हैं और शिव विपत्ति । हरि काम को उत्पन्न करनेवाले हैं और निष्काम लोगों के हित हैं; शिव काम के चातक हैं, पर कामना रखनेवालों के सहायक हैं । यहाँ ‘काम’ शब्द के ‘कामदेव’ और ‘कामना’ दो अर्थ हैं ।

विरोधोपमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उपमा अलंकार का एक भेद जिसमें किसी वस्तु की उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थों से दी जाती है । जैसे,—“तुम्हारा मुख चंद्रमा और कमल के समान है” । यहाँ कमल और चंद्रमा इन दोनों उपमानों में विरोध है ।

विरोध्य-वि० [ सं० ] (१) विरोध के योग्य । (२) जिसका विरोध करना हो ।

विरोपण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोपणीय, विरोपित, विरोप्य ] (१) लेपन । लेख करना । (२) छीपना । पोतना । तह चढ़ाना । छेव चढ़ाना । (३) ज़मीन में पौधा लगाना । रोपना ।

विरोम-वि० [ सं० ] रोम रहित । बिना रोहूँ का ।

विरोहण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विरोहणीय, विरोहित ] एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना ।

विरोही-वि० [ सं० विरोहिन् ] [ स्त्री० विरोहिणी ] रोपनेवाला । पौधा लगानेवाला ।

विरोही-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] बाजरा, महुवा, कोदों परौरह की एक प्रकार की जोताई जो उनके पौधे कुछ ऊँचे होने पर भी जाती है ।

वित्तु-संज्ञा स्त्री० दे० “वृत्ति” ।

विलंघन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कूट या लॉचकर पार करने की क्रिया । (२) उपवास करना । लंघन करना । (३) किसी वस्तु के भोग से अपने आप को रोक रखना । यंचित रहना ।

विलंघनीय-वि० [ सं० ] (१) पार करने योग्य । लॉचने योग्य । (२) नीचा दिखाने योग्य । परालत करने योग्य ।

विलंघित-वि० [ सं० ] (१) जो परालत हुआ हो । भिसने नीचा देखा हो । (२) जो विफल हुआ हो ।

विलंच्य-वि० [ सं० ] (१) पार करने योग्य । (नदी आदि) (२) परालत होने योग्य । वरा में आने योग्य । (३) करने योग्य । घाहज ।

विलंघ-वि० [ सं० विलघ्न ] आवयकता, अनुमान आदि से अधिक समय (जो किसी बात में लगे) । बहुत काल । अतिकाल । देर ।

क्रि० प्र०—करना।—होना ।

विलंबन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विलंबनीय, विलंब, विलंबित ] (१) देर करना । तिर्लंब करना । (२) लटकना । टँगना । (३) सहाता पकड़ना । टकना ।



विलंबना-कि० प्र० [ सं० विलंबन ] (१) देर करना । विलंब करना । आवश्यक्ता से अधिक समय लगाना । (२) रम जाना । मच लगाने के कारण चष जाना । उ०—अंबर कैंबल रस वेधिया, अमत न भरसै जाइ । तहाँ पास बिलंबिया, मगन भया रस खाइ ।—दादू । (३) लटकना । (४) सहाता लेना ।

विलंबिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का रोग जो विदग्धा-जीण द्वारा उत्पन्न होता है ।

विशेष—इस रोग में खाया हुआ भक्ष कफ और वायु से दूषित होकर पेट में दुःख देता है । न तो घमन होता है न मल निकलता है ।

विलंबित-वि० [ सं० ] (१) लटकता हुआ । झलता हुआ । उ०—रानत रोमक की तन राजिव है रस बिच नदी सुख देनी । आगे भई, प्रतिविम्बित पाइ बिलम्बित जो भृगुनीनी कि घेनी ।—द्विज । (२) जिसमें विलंब या देर हुई हो । संज्ञा पुं० सुस्त चलनेवाला जानवर । जैसे,—दायी, गेंडा, भैंस इत्यादि ।

विलंबी-वि० [ सं० विलंबि ] [ स्त्री० विलंबिनी ] लटकता हुआ । झलता हुआ ।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरो में से बत्तीसवाँ संवत्सर ।

विलंब-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उदारता । (२) दान । (३) उपहार । भेंट ।

विलम्ब-वि० [ सं० ] (१) अर्चभे में पड़ा हुआ । भावार्थ्यचकित । (२) लज्जित । (३) घबराया हुआ । व्यस्त ।

विलम्बण-वि० [ सं० ] (१) साधारण से मित्र । असाधारण । अपूर्व । अद्भुत । (२) अनोखा । अनूदा ।

विलम्बणता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विलक्षण होने का भाव । अपूर्वता । अद्भुतता । अनोखापन ।

विलम्बना-कि० प्र० [ सं० विकल ] दुखी होना । वि० दे० 'विलम्बना' ।

ल-कि० प्र० [ सं० लघ ] ताड़ना । पता पाना । लक्ष करना ।

विलम्बाना-कि० स० [ हि० विलम्बना का स० ] विलम्बाना का सभमंठ रूप । विकल करना । वि० दे० 'विलम्बना' ।

विलम्बा-वि० [ हि० वि (उप०) + लगना ] अलग । पृथक् ।

संज्ञा पुं० अंतर । भेद । फरक ।

विलम्बाना-कि० प्र० [ हि० विलम्बा + ना (पठ्य०) ] (१) अलग होना । पृथक् होना । (२) पृथक् पृथक् दिखाई पड़ना ।

विभक्त या अलग दिखाई देना ।

कि० स० पृथक् करना । अलग करना । वि० दे० 'विलम्बाना' ।

विलम्बन-वि० दे० 'विलम्बण' ।

विलम्बना-कि० प्र० [ सं० विलम्ब ] विलम्ब करना । रोना ।

विलम्बाना-कि० स० [ हि० विलम्बना का स० ] दूसरे को विलम्ब करने में प्रयुक्त करना । रुकाना ।

विलम्ब-वि० [ सं० ] (१) दिया हुआ । पाया हुआ । (२) अलग किया हुआ ।

विलम्ब-संज्ञा पुं० [ सं० विलम्ब ] देर । अवेर । विलम्ब ।

विलम्बना-कि० प्र० दे० 'विलम्बना' ।

विलम्ब-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जिलीन होने की क्रिया या भाव । छोप । अस्त । (२) मृत्यु । मौत । (३) नाश । (४) प्रलय ।

विलम्ब-संज्ञा पुं० [ सं० ] लय को प्राप्त होना । जिलीन होना ।

विलम्ब-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमकने की क्रिया । (२) क्रीड़ा । प्रमोद ।

विलम्बना-कि० प्र० [ सं० विलम्ब ] (१) सोभा पाना । (२) विलास करना । क्रीड़ा करना । (३) आनंद मनाना । वि० दे० 'विलम्बना' ।

विलम्बाना-कि० स० दे० 'विलम्बाना' ।

विलम्ब-संज्ञा स्त्री० [ ? ] गिजे के बन्दोबस्त का वह संक्षिप्त व्योरा जिसमें प्रत्येक महाल का नाम, फासतकारों के नाम और उनके लगान आदि का व्योरा लिखा होता है । वितरबन्दी ।

विलम्बा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की चिड़िया ।

विलम्बाना-कि० प्र० दे० 'विलम्बाना' ।

विलम्बा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विलम्ब विलम्ब कर या विकल होकर रोने की क्रिया । रोकर दुःख प्रकट करने की क्रिया । कन्दन । रुदन ।

विलम्बाना-कि० प्र० [ सं० विलम्बान ] शोक करना । विलम्ब करना । कि० स० [ सं० रोपना ] वृद्ध रोपना या लगाना ।

विलम्बा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पराया देश । दूसरों का देश । (२) दूरस्थ देश । दूर का देश । विशेषतः आजकल की योरवाल में यूरोप या अमेरिका का कोई देश । जैसे,—भाप दो बार विलम्बात हो भाए हैं ।

विलम्बायती-वि० [ सं० ] (१) विलम्बात का । विदेशी । (२) दूसरे देश में बना हुआ । (३) अन्य देश का रहनेवाला । परदेशी ।

विलम्बायती अनन्नास-संज्ञा पुं० [ हि० विलम्बायती + अनन्नास ] रामबाँस । रामदान । वि० दे० 'रामबाँस' ।

विलम्बायती कद्दू-संज्ञा पुं० [ हि० विलम्बायती + कद्दू ] 'एक विशेष प्रकार का कद्दू, जो सरकारी के काम में आता है ।

विलम्बायती कासनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० विलम्बायती + कासनी ] एक प्रकार की कासनी जिसकी पत्तियाँ दवा के काम में आती हैं ।

**विलायती कौकर-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + कौकर ] पहाड़ी कौकर जो हिमालय में पच हजार फुट की ऊँचाई तक होता है। यह वायु उठाने के काम आता है। यह जाड़े के दिनों में खूब फूलता है और इसके फूलों से बहुत अच्छी मद्दक निकलती है। युरोप में इन फूलों से कई प्रकार के द्रव्य आदि बनाए जाते हैं। इसे परसी वयूल भी कहते हैं।

**विलायती छद्मद्वार-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + द्वार ] एक प्रकार का छद्मद्वार जो इंग्लैण्ड के पश्चिमी ओर के प्रदेशों में बहुत पाया जाता है। यह पृथ्वी के नीचे सुरंग में रहता है और प्रायः दूध पीता है। इसे अंधकार अधिक प्रिय होता है। इस के अगले पैर चौड़े और पेटेदार तरिछे होते हैं। इसकी आँखें छोटी, धुपना लंबा और नोकदार, बाल सघन और कोमल होते हैं। इसकी ध्वज नक्ति बहुत तेज होती है।

**विलायती नीला-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + नील ] एक विगेष प्रकार का नीला रंग जो चीन से आता है।

**विलायती पटुआ-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + पटुआ ] लाल पटुआ। लाल सन।

**विलायती पात-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + पटुआ ] रामबाँस। कृष्ण केतकी।

**विलायती प्याज-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + प्याज ] एक प्रकार का प्याज जिसमें गाँठ नहीं होती, सिर्फ गुद्देदार जड़ होती है।

**विलायती बैंगन-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + बैंगन ] एक प्रकार का बैंगन या मंठा जो इस देश में युरोप से आया है। यह धुब जाति की मंगरपति है जो प्रति वर्ष योई जाती है। इसका छुप दो दाईं हाथ ऊँचा होता है। इसकी शालियाँ भूमि की ओर झुकी अथवा भूमि पर पसरी रहती हैं। पत्ते आस के पत्तों के से होते हैं। संदिपों के बीच बीच से सींके निकलते हैं जिन पर गुच्छे में फूल आते हैं। ये फूल साधारण बैंगन के फूलों के सदृश, पर उनसे छोटे होते हैं। इनका रंग पीला होता है। फल प्रायः दो से चार इंच तक के गोलाकार और कुछ चिपटे (नारंगी के समान) होते हैं। कच्चे रहने पर उनका रंग हरा और पकने पर लाल चमकीला हो जाता है। इसकी तरकारी, चटनी आदि बनती है। स्वाद में यह कुछ खटापन छिद्र होता है। रासायनिक विरलेपण से पता लगाया है कि इसमें २३ लैक्टिक कोह का अंश होता है। अतः यह रक्त-वर्धक है। अंग्रेज लोग इसका अधिक व्यवहार करते हैं। इसे दुग्दी कहते हैं।

**विलायती लहसुन-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + लहसुन ] एक प्रकार का लहसुन जो मसाले के काम में आता है।

**विलायती सिरिस-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + सिरिस ] एक प्रकार का सिरिस जो विदेश से यहाँ आया है, पर अब यहाँ भी होने लगा है। यह नीलगिरि पर्यंत पर बहुतायत से होता

है। पंजाब में भी यह पाया जाता है। इसकी टाल प्रायः चमड़ा सिंघाने के काम में आती है।

**विलायती सेम-संज्ञा स्त्री०** [ हि० विलायती + सेम ] एक प्रकार की सेम जिसकी फलियाँ साधारण सेम से कुछ बड़ी होती हैं।

**विलायत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] प्राचीन काल का एक अञ्चल। कहते हैं कि जब इस अञ्चल का उपयोग किया जाता था, तब दासु की सेना विश्राम करने लगती थी।

**विलावल्लो-संज्ञा स्त्री०** [ हि० विलावल ] एक रागिनी जो हिंदोल राग की स्त्री मानी जाती है। (संगीत)

**विलास-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) प्रसन्न या प्रफुलित करनेवाली क्रिया। (२) सुख-भोग। आनन्दमय क्रीड़ा। मनोरंजन। मनोविनोद। (३) आनंद। हर्ष। (४) संयोग के समय में अनेक हाव भाव अथवा प्रेमसूचक क्रियाएँ जिनसे स्त्रियाँ पुरुषों की अपनी ओर अनुरक्त करती हैं। हाव भाव। नाज नधरा। (५) किसी अंग की मनोहर चेष्टा। जैसे अविच्छाद, करविलास। उ०—भृकुटि विलास जाधु जग होई। राम नाम दिख सीता सोई।—तुलसी। (६) किसी चीज का हिलना ढोलाना। जैसे,—चपला का विलास। (७) आराम लक्ष्मी। अतिराम सुख भोग।

**विलासक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ स्त्री० विलासिका ] हृष्य उचर करिनेवाला। अमणशील।

**विलासिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक प्रकार का रुद्रक जिसमें एक ही अंक होता है। इसका विषय संक्षिप्त और साधारण होता है।

वि० स्त्री० आनन्द देनेवाली।

**विलासिनी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) सुन्दरी युवा स्त्री। कामिनी। (२) वेश्या। गणिका। (३) एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, ग, ग, (ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ) होते हैं।

**विलासी-संज्ञा पुं०** [ सं० विलासिन् ] [ स्त्री० विलासिनी ] (१) सुख भोग में अनुरक्त पुरुष। कामी। (२) जिसे आमोद प्रमोद पसंद हो। क्रीडाशील। हँसोड़। कौतुकशील। (३) ऐसा आराम पसंद। आराम लक्ष्य। (४) वदन वृद्ध।

**विलास्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का पाना जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे।

**विलिखित-वि०** [ सं० ] (१) खरोया हुआ। (२) टिखा हुआ। (३) खुदा हुआ।

**विलिगी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक प्रकार का सर्प।

**विलित-वि०** [ सं० ] पुटा हुआ। डिगा हुआ।

विलंबना-किं प्र० [ सं० विलंबन ] (१) देर करना । विलंब करना । आवश्यकता से अधिक समय लगाना । (२) रम जाना । मन लगाने के कारण बस जाना । उ०—भँवर केवल रस बेधिया, भमत न भरमें जाइ । तहाँ वास बिलंबिया, मगन भया रस खाइ ।—दादू । (३) लटकना । (४) सहारा लेना ।

विलंबिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का रोग जो विदग्धा-जीर्ण द्वारा उत्पन्न होता है ।

विरोध—इस रोग में खाया हुआ भस्म कफ और वायु से दूषित होकर पेट में दुःख देता है । न तो वमन होता है न मल निकलता है ।

विलंबित-वि० [ सं० ] (१) लटकता हुआ । झलता हुआ । उ०—राजत रोमक की तन रात्रिव ही रस बिच नदी सुख देनी । भागे भई, प्रतिविम्बित पाह विलम्बित जो मृगनी की बिनी ।—द्विज । (२) जिसमें विलंब या देर हुई हो । संज्ञा पुं० सुस्त चलनेवाला जानवर । जैसे,—हाथी, गैंडा, भैंस इत्यादि ।

विलंबी-वि० [ सं० वि० ] [ जो० विलंबिनी ] लटकता हुआ । झलता हुआ ।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से बत्तीसवाँ संवत्सर ।

विलम्ब-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उदारता । (२) दान । (३) उपहार । भेंट ।

विलम्ब-वि० [ सं० ] (१) भचंभे में पदा हुआ । आश्चर्यचकित । (२) लजित । (३) घबराया हुआ । व्यस्त ।

विलम्बण-वि० [ सं० ] (१) साधारण से भिन्न । असाधारण । अपूर्व । अद्भुत । (२) अनोखा । अनूठा ।

विलम्बणता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विलक्षण होने का भाव । अपूर्वता । अद्भुतता । अनोखापन ।

विलम्बना-किं प्र० [ सं० विकल ] दुखी होना । वि० दे० 'विलम्बना' ।

भ-किं प्र० [ सं० लघ ] ताड़ना । पता पाना । लक्ष करना ।

विलम्बाना-किं प्र० [ हि० विलम्बना का सं० ] विलम्बाना का संकर्मक रूप । विकल करना । वि० दे० 'विलम्बना' ।

विलम्प-वि० [ हि० वि (उप०) + लगना ] अलग । पृथक् ।

संज्ञा पुं० अंतर । भेद । फरक ।

विलम्पाना-किं प्र० [ हि० विलम्प + ना (प्रत्य०) ] (१) अलग होना । पृथक् होना । (२) पृथक् पृथक् दिखाई पड़ना ।

वि० अ० या अलग दिखाई देना ।

किं प्र० पृथक् करना । अलग करना । वि० दे० 'विलम्पाना' ।

विलम्बण-वि० दे० "विलक्षण" ।

विलम्पना-किं प्र० [ सं० विलाप ] विलाप करना । रोना ।

विलम्पाना-किं प्र० [ हि० विलम्पना का सं० ] दूसरे को विलाप करने में प्रवृत्त करना । हलाना ।

विलम्ब-वि० [ सं० ] (१) दिया हुआ । पाया हुआ । (२) अलग किया हुआ ।

विलम्ब-संज्ञा पुं० [ सं० विलंब ] देर । अचेर । विलंब ।

विलम्बना-किं प्र० दे० "विलम्बना" ।

विलम्ब-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बिल्ली होने की क्रिया या भाव । कोप । अस्त । (२) मृत्यु । मौत । (३) नास । (४) प्रलय ।

विलम्बन-संज्ञा पुं० [ सं० ] लय को प्राप्त होना । बिल्ली होना ।

विलम्बन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमकने की क्रिया । (२) क्रीड़ा । प्रमोद ।

विलम्बना-किं प्र० [ सं० विलम्ब ] (१) सोभा पाना । (२) विभास करना । क्रीड़ा करना । (३) आनंद मनाना । वि० दे० "विलम्बना" ।

विलम्बाना-किं प्र० दे० "विलम्बाना" ।

विलम्ब-संज्ञा स्त्री० [ ? ] जिसे के यन्त्रोपलब्ध का वह संक्षिप्त व्योरा जिसमें प्रत्येक महाल का नाम, कारतकारों के नाम और उनके लगान आदि का व्योरा लिखा होता है । वितरबन्दी ।

विलाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की चिड़िया ।

विलातना-किं प्र० दे० "विलातना" ।

विलाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बिल्लप बिल्लप कर या बिल्लप होकर रोने की क्रिया । रोकर दुःख प्रकट करने की क्रिया । क्लृप्त । रुदन ।

विलापना-किं प्र० [ सं० विलापन ] शोक करना । विलाप करना । किं प्र० [ सं० रोपना ] वृक्ष रोपना या लगाना ।

विलायत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पराया देश । दूसरों का देश । (२) दूरस्थ देश । दूर का देश । विदेशतः आजकल की मोलचाल में युरोप या अमेरिका का कोई देश । जैसे,—भाप दो भार विलायत हो जायें ।

विलायती-वि० [ प्र० ] (१) विलायत का । विदेशी । (२) दूसरे देश में घना हुआ । (३) अन्य देश का रहनेवाला । परदेशी ।

विलायती अनन्नास-संज्ञा पुं० [ हि० विलायती + अनन्नास ] रामर्षस । रामधान । वि० दे० "रामर्षस" ।

विलायती कद्दू-संज्ञा पुं० [ हि० विलायती + कद्दू ] एक विशेष प्रकार का कद्दू, जो तरकारी के काम में आता है ।

विलायती कासनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० विलायती + कासनी ] एक प्रकार की कासनी जिसकी परिचर्या देवा के काम में आती है ।

**विलायती कीकर-छंदा पुं०** [ दि० विलायती + कीकर ] पहाड़ी कीकर को हिमालय में पवि हज़ार फुट की ऊँचाई तक होता है । यह वाद्य लगाने के काम आता है । यह जाड़े के दिनों में खूब फूलता है और इसके फूलों से बहुत अच्छी मद्यक निकलती है । युरोप में इन फूलों से कई प्रकार के द्रव्य आदि बनाए जाते हैं । इसे परसी वयूल भी कहते हैं ।

**विलायती छद्मद्वार-छंदा पुं०** [ दि० विलायती + छद्मद्वार ] एक प्रकार का छद्मद्वार जो इंग्लैण्ड के पश्चिमी ओर के प्रदेशों में बहुत पाया जाता है । यह पृथ्वी के नीचे सुरंग में रहता है और प्रायः दूध पीता है । इसे अंधकार अधिक प्रिय होता है । इस के अगले पैर चौड़े और पट्टेदार तरिछे होते हैं । इसकी आँखें छोटी, सुयान लंबा और नोकदार, बाळ सघन और कोमल होते हैं । इसकी ध्रयण शक्ति बहुत तेज होती है ।

**विलायती नील-छंदा पुं०** [ दि० विलायती + नील ] एक विशेष प्रकार का नीला रंग जो चीन से आता है ।

**विलायती पट्टुआ-छंदा पुं०** [ दि० विलायती + पट्टुआ ] लाल पट्टुआ । छाल सन ।

**विलायती पात-छंदा पुं०** [ दि० विलायती + पट्टुआ ] रामवास । कृष्ण धेतकी ।

**विलायती प्याज-छंदा पुं०** [ दि० विलायती + प्याज ] एक प्रकार का प्याज जिसमें गन्ध नहीं होती, सिर्फ गुद्देदार लड़ होती है ।

**विलायती वैगन-छंदा पुं०** [ दि० विलायती + वैगन ] एक प्रकार का वैगन वा भंडा जो इस देश में युरोप से आया है । यह धुप जालि की वनस्पति है जो प्रति वर्ष योई जाती है । इसका धुप दो डाढ़े हाथ ऊँचा होता है । इसकी शालियों भूमि की ओर झुकी अथवा भूमि पर पसरी रहती हैं । पत्ते आळ के पत्तों के से होते हैं । शैलियों के बीच बीच से सूँके निकलते हैं जिन पर गुच्छे में फूल आते हैं । ये फूल साधारण वैगन के फूलों के सदृश, पर बगले छोटे होते हैं । इनका रंग पीला होता है । फल प्रायः दो से चार दूँच तक के गोलाकार और कुछ चिपटे (नारंगी के समान) होते हैं । कच्चे रहने पर उनका रंग हरा और पकने पर लाल चमकीला हो जाता है । इसकी तरकारी, चटनी आदि धनती है । स्वाद में यह कुछ खटापन छिद्र होता है । रासायनिक विश्लेषण से पता लगता है कि इसमें २३ सैकड़े कोड़े का भंडा होता है । अतः यह रक्त-वर्धक है । अंग्रेज लोग इसका अधिक व्यवहार करते हैं । इसे दुग्धो कहते हैं ।

**विलायती लहसुन-छंदा पुं०** [ दि० विलायती + लहसुन ] एक प्रकार का लहसुन जो मसाले के काम में आता है ।

**विलायती सिरिस-छंदा पुं०** [ दि० विलायती + सिरिस ] एक प्रकार का सिरिस जो विदेश से यहाँ आया है, पर अब यहाँ भी होने लगा है । यह नीलगिरि पर्वत पर बहुतायत से होता

है । पंजाब में भी यह पाया जाता है । इसकी छाल प्रायः चमड़ा सिंघाने के काम में आती है ।

**विलायती सेम-छंदा स्त्री०** [ दि० विलायती + सेम ] एक प्रकार की सेम जिसकी फलियाँ साधारण सेम से कुछ बड़ी होती हैं ।

**विलायम-छंदा पुं०** [ सं० ] प्राचीन काल का एक अन्न । कहते हैं कि जब इस अन्न का उपयोग किया जाता था, तब शत्रु की सेना विभ्राम करने लगती थी ।

**विलायली-छंदा स्त्री०** [ दि० विलायन ] एक रागिनी जो हिंदोल राग की घी मानी जाती है । (संगीत)

**विलास-छंदा पुं०** [ सं० ] (१) प्रसन्न या प्रकुलित करनेवाकी क्रिया । (२) सुख-भोग । आनन्दमय मीढ़ा । मनोरंजन । मनोविनोद । (३) आनंद । हर्ष । (४) संयोग के समय में अनेक हाव भाव अथवा प्रेमसूचक क्रियाएँ जिनसे शिष्यों पुरणों को अपनी ओर अनुरक्त करती हैं । हाव भाव । नाज नसरा । (५) किसी अंग की मनोहर चेष्टा । जैसे अविद्यास, करविद्यास । उ०—भृकुटि विलास जाडु जग होई । राम याम दिख सीता सोई ।—गुलसी । (६) किसी चीज़ का दिलना डोलाना । जैसे,—चपला का विलास । (७) आराम तलपी । अतिशय सुख भोग ।

**विलासक-छंदा पुं०** [ सं० ] [ स्त्री० विलासिका ] हज़र उधर फिरेवाला । भ्रमणशील ।

**विलासिका-छंदा स्त्री०** [ सं० ] एक प्रकार का रूपक जिसमें एक ही अंक होता है । इसका विषय संक्षिप्त और साधारण होता है ।  
वि० स्त्री० आनन्द देनेवाली ।

**विलासिनी-छंदा स्त्री०** [ सं० ] (१) सुन्दरी युवा स्त्री । कामिनी । (२) वेदया । गणिका । (३) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, ग, ग, (ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ) होते हैं ।

**विलासी-छंदा पुं०** [ सं० विलासिन ] [ स्त्री० विलासिनी ] (१) सुख भोग में अतृप्त पुरुष । कामी । (२) जिसे आमोद प्रमोद पसंद हो । मीढ़ाशील । हँसोद । कौतुकशील । (३) देश आराम पसंद । आराम तलब । (४) वदन हूँ । वदन ।

**विलास्य-छंदा पुं०** [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का यान जिसमें यजाने के छिपे तार लगे होते थे ।

**विलिखित-वि०** [ सं० ] (१) खरोथा हुआ । (२) टिखा हुआ । (३) खुदा हुआ ।

**विलिनी-छंदा स्त्री०** [ सं० ] एक प्रकार का सारि ।  
**विलित-वि०** [ सं० ] युवा हुआ । किया हुआ ।

**विलंबना**-कि० प्र० [ सं० विलंबन ] (१) देर करना । विलंब करना । आनन्दयकता से अधिक समय लगाना । (२) रम जाना । मन लगने के कारण चर जाना । उ०—भँवर कँवल रस वैधिया, भमत न भरमै जाइ । तहाँ घास बिलंबिया, मगन भया रस खाइ ।—दादू । (३) लटकना । (४) सहारा लेना ।

**विलंबिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का रोग जो विदग्धा-जीर्ण द्वारा उत्पन्न होता है ।

**विशेष**—इस रोग में खाया हुआ भक्ष करुण और वायु से दूषित होकर पेट में दुःख देता है । न तो चमन होता है न मल निकलता है ।

**विलंबित**-वि० [ सं० ] (१) लटकता हुआ । झूलता हुआ । उ०—राजत रोमक की तन राजिव है रस बिच नदी सुख देनी । भागे भई प्रतिविम्बित पाइ विलंबित जो सुगमैनी कि बेनी ।—द्विज । (२) जिसमें विलंब या देर हुई हो । संज्ञा पुं० सुस्त चलनेवाला जानवर । जैसे,—हाथी, गैदा, भैंस इत्यादि ।

**विलंबी**-वि० [ सं० विलंबिन् ] [ स्त्री० विलंबिनी ] लटकता हुआ । झूलता हुआ ।

संज्ञा पुं० साठ संवसरो में से बत्तीसवाँ संवसर ।

**विलंब**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उदारता । (२) दान । (३) उपहार । भेंट ।

**विलम्ब**-वि० [ सं० ] (१) अचंभे में पड़ा हुआ । आश्चर्यचकित । (२) लजित । (३) घबराया हुआ । व्यस्त ।

**विलम्बण**-वि० [ सं० ] (१) साधारण से निम्न । असाधारण । अपूर्व । अद्भुत । (२) अनोखा । अनूठा ।

**विलम्बणता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विलक्षण होने का भाव । अपूर्वता । अद्भुतता । अनोखापन ।

**विलम्बना**-कि० प्र० [ सं० विक्रम ] दुखी होना । वि० दे० 'विलम्बना' ।

**म्ब**-कि० प्र० [ सं० लघ ] ताड़ना । पता पाना । लक्ष करना ।

**विलम्बाना**-कि० प्र० [ हि० विलम्बना का सं० ] विलम्बाना का सचमक रूप । विकल करना । वि० दे० 'विलम्बना' ।

**विलम्ब**-वि० [ हि० वि (उप०) + लगना ] अलग । पृथक् । संज्ञा पुं० अंतर । भेद । फरक ।

**विलम्बाना**-कि० प्र० [ हि० विलम्ब + ना (प्रत्य०) ] (१) अलग होना । पृथक् होना । (२) पृथक् पृथक् दिखाई पड़ना ।

विभक्त या अलग दिखाई देना ।

कि० प्र० पृथक् करना । अलग करना । वि० दे० "विलम्बाना" ।

**विलम्बण**-वि० दे० "विलम्बण" ।

**विलम्बण**-कि० प्र० [ सं० विलम्ब ] विलम्ब करना । रोना ।

**विलम्बण**-कि० प्र० [ हि० विलम्बना का सं० ] दूसरे को विलम्ब करने में प्रवृत्त करना । हलाना ।

**विलम्ब**-वि० [ सं० ] (१) दिया हुआ । पाया हुआ । (२) अलग क्रिया हुआ ।

**विलम्ब**-संज्ञा पुं० [ सं० विलंब ] देर । अवेर । विलंब ।

**विलम्बना**-कि० प्र० दे० "विलम्बना" ।

**विलम्ब**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विलीन होने की क्रिया या भाव । लोप । अस्त । (२) ग्युगु । मौत । (३) नाश । (४) प्रलय ।

**विलम्बन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] लप को प्राप्त होना । विलीन होना ।

**विलम्बन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमकने की क्रिया । (२) क्रीड़ा । प्रमोद ।

**विलम्बना**-कि० प्र० [ सं० विलम्ब ] (१) शोभा पाना । (२) विलास करना । क्रीड़ा करना । (३) आनंद मनाना । वि० दे० "विलम्बना" ।

**विलम्बना**-कि० प्र० दे० "विलम्बना" ।

**विलम्बरी**-संज्ञा स्त्री० [ ] जिले के बन्दोबस्त का वह संक्षिप्त खोरा जिसमें प्रत्येक महाल का नाम, कारतदारों के नाम और उनके लगान आदि का खोरा लिखा होता है । वितरबन्दी ।

**विलम्बा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की विद्या ।

**विलम्बा**-कि० प्र० दे० "विलम्बा" ।

**विलम्बा**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विलम्ब विलम्ब का या विकल होकर रोने की क्रिया । रोकर दुःख प्रकट करने की क्रिया । क्रन्दन । रुदन ।

**विलम्बना**-कि० प्र० [ सं० विलम्बन ] शोक करना । विलम्ब करना । कि० प्र० [ सं० रोपना ] वृक्ष रोपना या लगाना ।

**विलायत**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पराधा देश । दूसरा का देश । (२) दूरका देश । दूर का देश । विशेषतः आनकल की नीलचाल में युरोप या अमेरिका का कोई देश । जैसे,—आप दो बार विलायत हो आए हैं ।

**विलायती**-वि० [ सं० ] (१) विलायत का । विदेशी । (२) दूसरे देश में बना हुआ । (३) अन्य देश का रहनेवाला । परदेशी ।

**विलायती** आनन्दनास-संज्ञा पुं० [ हि० विलायती + आनन्दनास ] रामबाँस । रामधान । वि० दे० "रामबाँस" ।

**विलायती** कदु-संज्ञा पुं० [ हि० विलायती + कदु ] एक विशेष प्रकार का कदु, जो सरकारी के काम में आता है ।

**विलायती** कासनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० विलायती + कासनी ] एक प्रकार की कासनी जिसकी परियार्या दवा के काम में आती है ।

**विलायती कीकर-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + कीकर ] पहाड़ी कीकर जो हिमालय में पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक होता है । यह गाय लगाने के काम आता है । यह चाँदे के दिनों में खूब फूलता है और इसके फूलों से बहुत अच्छी मद्य निकलती है । युरोप में इन फूलों से कई प्रकार के द्रव्य आदि बनाए जाते हैं । इसे परसी यकूल भी कहते हैं ।

**विलायती छुहूँदर-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + छुहूँदर ] एक प्रकार का छुहूँदर जो इंग्लैण्ड के पश्चिमी ओर के प्रदेशों में बहुत पाया जाता है । यह पृथ्वी के नीचे सुरंग में रहता है और प्रायः दूध पीता है । इसे अंधकार अधिक मिय होता है । इस के अगले पैर चौड़े और पड़ेदार तरिछे होते हैं । इसकी भौँलें छोटी, धुयना लंबा और मोकदार, बाल सघन और कोमल होते हैं । इसकी ध्रुवन शक्ति बहुत तेज होती है ।

**विलायती नीला-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + नील ] एक विशेष प्रकार का नीला रंग जो चीन से आता है ।

**विलायती पटुआ-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + पटुआ ] लाल पटुआ । लाल सन ।

**विलायती पात-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + पटुआ ] रामबॉस । कृष्ण केवकी ।

**विलायती प्याज-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + प्याज ] एक प्रकार का प्याज जिसमें गंठ नहीं होती, सिर्फ पड़ेदार जड़ होती है ।

**विलायती बैंगन-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + बैंगन ] एक प्रकार का बैंगन या मंडा जो इस देश में युरोप से आया है । यह ध्रुव जाल की बनरपति है जो प्रति वर्ष बोई जाती है ।

इसका ध्रुव दो दाईं हाथ ऊँचा होता है । इसकी शालियाँ भूमि की ओर झुकी अथवा भूमि पर परसी रहती हैं । पत्ते आध के पत्तों के से होते हैं । शब्दियों के बीच बीच से सूँके निकलते हैं जिन पर गुच्छे में फूल आते हैं । ये फूल साधारण बैंगन के फूलों के सदृश, पर उनसे छोटे होते हैं । इनका रंग पीला होता है । फल प्रायः दो से चार इंच तक के गोलाकार और कुछ चिपटे (मार्गी के समान) होते हैं । कच्चे रहने पर उनका रंग हरा और पकने पर लाल चमकीला हो जाता है । इसकी तरकारी, चटनी आदि बनती है । स्वाद में यह कुछ खटापन लिए होता है । रासायनिक विश्लेषण से पता लगाता है कि इसमें २३ सेकड़े लोहे का अंग होता है । अतः यह रक्त-चपक है । अंग्रेज लोग इसका अधिक व्यवहार करते हैं । इसे तुमेटो कहते हैं ।

**विलायती लहसुन-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + लहसुन ] एक प्रकार का लहसुन जो मसाले के काम में आता है ।

**विलायती तिरिस-संज्ञा पुं०** [ हि० विलायती + तिरिस ] एक प्रकार का तिरिस जो विदेश से यहाँ आया है, पर अब यहाँ भी होने लगा है । यह नीलगिरि पर्वत पर बहुतायत से होता

है । पंजाब में भी यद पर्याप्त जाता है । इसकी छाल प्रायः चमड़ा तिसाने के काम में आती है ।

**विलायती सेम-संज्ञा स्त्री०** [ हि० विलायती + सेम ] एक प्रकार की सेम जिसकी फलियाँ साधारण सेम से कुछ बड़ी होती हैं ।

**विलायत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] प्राचीन काल का एक अक्षर । करते हैं कि जब इस अक्षर का उपयोग किया जाता था, तब शत्रु की सेना विध्राम करने लाती थी ।

**विलायती-संज्ञा स्त्री०** [ हि० विलायती ] एक रागिनी जो हिंदोल राग की थी मानी जाती है । (संगीत)

**विलास-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) प्रसन्न या प्रफुलित करनेवाली क्रिया । (२) सुख-भोग । आनन्दमय मीठा । मनोरंजन । मनोविमोद । (३) आनंद । हर्ष । (४) संभोग के समय में अनेक हाव भाव अथवा प्रेमसूचक क्रियाएँ जिनसे स्त्रियाँ पुरुषों को अपनी ओर अनुरक्त करती हैं । हाव भाव । नाज नखरा । (५) किसी अंग की मनोहर चेष्टा । जैसे अविद्यास, करविद्यास । उ०—सुकृति विलास जेष्टु जग होई । राम नाम दिस सीता सीई ।—सुकसी । (६) किसी चीज़ का दिखना डोलाना । जैसे,—चपला का विलास । (७) आराम लक्ष्मी । अतिशय सुख भोग ।

**विलासक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ स्त्री० विलासिका ] इधर, उधर फिरनेवाला । अमनशील ।

**विलासिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक प्रकार का स्वरक जिसमें एक ही अंक होता है । इसका विषय संक्षिप्त और साधारण होता है ।

वि० स्त्री० आनन्द देनेवाली ।

**विलासिनी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) सुन्दरी युवा स्त्री । कामिनी । (२) वेदया । गणिका । (३) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक धरण में ज, र, ज, ग, ग, ( 151 515 151 5 5 ) होते हैं ।

**विलासी-संज्ञा पुं०** [ सं० विलासिन ] [ स्त्री० विलासिनी ] (१) सुख भोग में अनुरक्त पुरुष । कामी । (२) जिसे आनन्द प्रमोद पसंद हो । मीठाशील । हँसोड़ । कौतुकशील । (३) ऐसा आराम पसंद । आराम लक्ष्म । (४) धरग बूझ । धरन ।

**विलास्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का वाद्य जिसमें बजाने के लिये तार रूमे होते थे ।

**विलिखित-वि०** [ सं० ] (१) खरोया हुआ । (२) टिखा हुआ । (३) मुरा हुआ ।

**विलिगी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक प्रकार का सॉप ।

**विलित-वि०** [ सं० ] जुटा हुआ । छिपा हुआ ।

**विक्रिप-वि०** [ सं० ] (१) टूटा हुआ । उखड़ा हुआ । (२) जो ठीक अवस्था में न हो । अस्तव्यस्त ।

**विक्रीक-वि०** पुं० [ सं० व्यलीक ] अनुचित । नामुनासिब ।

**विक्रीन-वि०** [ सं० ] (१) जो अदृश्य हो गया हो । छुप्त । (२) जो मिल गया हो । जैसे, पानी में नमक विलीन हो गया । (३) छिपा हुआ । (४) नष्ट । क्षयमाप्त ।

**विलुप्त-वि०** [ सं० ] (१) जिसका लोप हो गया हो । नष्ट । (२) जो अदृश्य हो गया हो । जो दिखाई न पड़ना हो ।

**विलुप्तयोनि-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का योनि रोग । इस रोग में योनी में सदा पीड़ा होती रहती है ।

**विलुलक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) नामा करनेवाला ।

**विलून-वि०** [ सं० ] कटा हुआ । अलग किया हुआ ।

**विलोप-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वारीर भादि पर चुपकेर लगाने की चीज । लेप । (२) पलस्तर । गारा ।

**विलोपन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) लेप करने या लगाने की क्रिया । अच्छी तरह ढीपना । लगाना । (२) लगाने या लेप करने का पदार्थ । जैसे,—चन्दन, केसर भादि ।

**विलोशय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) बिल या दरार में रहनेवाले जीव । जैसे साँप, बिच्छू, गोह आदि । (२) सर्प । साँप । उ०—आशीविप विपधर कगी मगी विलोशय प्याल ।—नन्ददास ।

**विलोकना-कि०** सं० [ सं० विलोकन ] (१) देखना । (२) अवलोकन करना । वि० दे० “विलोकना” ।

**विलोकनि-संज्ञा** स्त्री० दे० “विलोकन” ।

**विलोचन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) नेत्र । नयन । आँख । (२) पुराणानुसार एक नरक का नाम जिसमें मनुष्य अन्धा हो जाता है और न देखने के कारण अनेक यातनाएँ भोगता है । (३) लोचन-रहित करने की क्रिया । आँखें फोड़ने की क्रिया । नेत्र-रहित कर देने की क्रिया ।

**विलोटक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली । बेल मछली ।

**विलोडना-कि०** सं० दे० “विलोडना” ।

**विलोना-कि०** सं० दे० “विलोना” ।

**विलोप-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) किसी वस्तु को लेकर भाग जाने की क्रिया । (२) रुकावट । (३) विग्रह । बाधा । (४) आवात । (५) नाश । लोप । (६) हानि । नुकसान ।

**विलोपक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) नाश करनेवाला । (२) दूर करनेवाला । (३) लेकर भागनेवाला ।

**विलोपन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] विलोप करने की क्रिया ।

**विलोपना-कि०** सं० [ सं० विलोपन ] (१) खोप करना । नाश करना । (२) लेकर भागना । (३) विग्रह डालना । बाधा उपस्थित करना ।

**विलोपी-संज्ञा** पुं० [ सं० विलोपिन् ] [ स्त्री० विलोपिनी ] विलोप करनेवाला । नाश करनेवाला ।

**विलोप्य-वि०** [ सं० ] विलोप करने या होने योग्य ।

**विलोम-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) प्रलोमन । (२) मोह । माया । भ्रम ।

वि० जिसके मन में किसी प्रकार का लालच न हो । लोम-रहित ।

**विलोभन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) लोम दिखाने की क्रिया । (२) मोहित या आकर्षित करने का व्यापार । (३) कोई पुरा कार्य करने के लिये किसी को लोम दिखाने का काम । ललचाना ।

**विलोम-वि०** [ सं० ] (१) विपरीत । उलटा । प्रतिकूल । उ०—गुम सन कही बचन कहु वागी । अपने हाथ मीचु वहि माँगी । कहेसि विलोम-बचन सजि ज्ञाना । यहि कर काल भाय निपारना ।—सुबल । (२) संगीत में ऊँचे स्वर से नीचे स्वर की ओर आना । स्वर का अवरोह । उतार । (३) ऊँचे की ओर से नीचे की ओर आना ।

**संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) सर्प । (२) वरुण । (३) कुत्ता । (४) रहट ।

**विलोमक-वि०** [ सं० ] विपरीत । प्रतिकूल ।

**विलोम क्रिया-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] वह क्रिया जो अंत से भादि की ओर की जाय । उलटी ओर से होनेवाली क्रिया ।

**विलोमजिह्व-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार का हाथी ।

**विलोम वर्ण-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वर्ण सङ्कर जाति । दोगली जाति ।

**विलोमी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] अँवला । आमकड़ी ।

**विलोल-वि०** [ सं० ] (१) चंचल । (२) सुन्दर । उ०—(क) चपल विलोल डोल यह लागी । धिर न रहे चंचल वैरागी ।—जायसी । (ख) चहुँदी चिबुक चॉपि चँचि विलोल कोपन कौं, रस में बिरस कलौ बचन मलीनो है । गहि मरि लीनो कहु उचर न माल दीनों हाल से हवाल राख अंक भरि लीनो है ।—सुदम ।

**विल्व-संज्ञा** पुं० [ सं० ] बेल वृक्ष । बेल का पेड़ ।

**विल्व तैल-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का तेल । इसे बनाने के लिये बेल की जड़ का रस, सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, अपामार्ग का क्षार और जवाबहार को कूटकर गोमूत्र के साथ तेल में डालकर मन्द आँच पर पकाते हैं । रस जलने और तेल मात्र रहने पर उतार लेते हैं । कहते हैं कि इससे कान से पथरता, कर्ण-ज्वावादि रोग अच्छे हो जाते हैं ।

**विल्वपत्र-संज्ञा** पुं० [ सं० ] बेल का पत्ता, जो शिव पर चढ़ाने के काम में आता है । वल्वपत्र ।

वित्त्वमंगल-छंदा पुं० [ सं० ] भक्त और महाकवि सुरदास का अन्य होने से पूर्व का नाम ।

वित्त्वमंगल-छंदा पुं० [ सं० ] धातुनिक निरुद्धा नगरी का प्राचीन नाम जो ग्वाळियर के दक्षिण में वेतवा नदी के दाहिने किनारे पर बसी है । इसका पुराना नाम भद्रावंत भी कहा जाता है ।

विचंचक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) रोकनेवाला । (२) कोट-बद्धता । कठिनयत । कठज ।

विचंचन-छंदा पुं० [ सं० ] रोक । बंधन । रूकावट ।

विचं-विं० [ सं० द्वि० ] (१) दो । (२) द्वितीय । दूसरा । विं० दे० "विचि" ।

विचकृत-छंदा पुं० [ सं० ] (१) बहुत धोलनेवाला । वाचाळ । (२) स्पष्ट धोलनेवाला । (३) बका । वाग्मी ।

विचका-छंदा पुं० [ सं० विचकृ० ] (१) कहनेवाला । (२) किसी बात को प्रकट करनेवाला । (३) दुखल करने या सुधारनेवाला । संशोधन करनेवाला ।

विचक्षा-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) कोई बात कहने की हृष्टता । धोलने की-हृष्टता । (२) अर्थ । तात्पर्य । भाषण । (३) अनिश्चय । शक । संदेह ।

विचक्षित-विं० [ सं० ] जिसकी आवश्यकता या हृष्टता हो । हृष्टत । अपेक्षित ।

विचक्ष्ण-छंदा-किं० प्र० [ सं० विवाद+विं० ना ] किसी वस्तु या विषय पर जबानी झगड़ा करना । शास्त्रार्थ करना । विवाद करना । जपानी झगड़ना । उ०—इमि विचक्षि शारद यति राजा । सुमि विमित्त सय विदुष समाजा ।—शं० दि० ।

विचध-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वह लकड़ी जो पैलों के कर्णों पर उस समय रखी जाती है, जब उन्हें कोई वस्तु खींचकर ले जानी होती है । श्रुभाटा । (२) मूत्र या अनाज की राति । (३) चौड़ी सड़क । राममार्ग ।

विचर-छंदा पुं० [ सं० ] (१) छिद्र । बिल । (२) गड्ढा । दरार । गार्त । (३) गुफा । कन्दरा ।

विचरण-छंदा पुं० [ सं० ] (१) किसी वस्तु को स्पष्ट रूप से समझाने की क्रिया । विवेचन । व्याख्या । (२) सविस्तर गणन । वृत्तान्त । बयान । हाल । (३) मार्ग । टीका ।

विचरना-किं० प्र० दे० "विचरना" ।

विचर्जन-छंदा पुं० [ सं० ] (१) त्याग करने की क्रिया । परित्याग । (२) अनादर । अपेक्षा ।

विचक्षित-विं० [ सं० ] (१) मना किया हुआ । पंजित । निपट । (२) उपेक्षित । अनादरित । (३) वंचित । रहित ।

विचर्ष-छंदा पुं० [ सं० ] साहित्य में एक भाव का नाम जिसमें भय, मोह, क्रोध, छद्म आदि के कारण नायक या नायिका के मुख का रंग बदल जाता है । पराश रंगवाला ।

विं० [ सं० ] (१) नीच । कर्मीना । (२) नीच जाति का । (३) नीच पेशा या व्यवसाय करनेवाला । (४) कुजाति । (५) निरुद्धा रंग खराब हो गया हो । (६) रंग बदलनेवाला । (७) बदरंग । बुरे रंग का । (८) जिसके चेहरे का रंग उतरा हुआ हो । कंतिहीन ।

विचर्त्त-छंदा पुं० [ सं० ] (१) समुदाय । समूह । (२) नाच । नृत्य । (३) रूपान्तर । (४) भाकास । (५) अंति । भ्रम ।

विचर्त्त कल्प-छंदा पुं० [ सं० ] वह कल्प जिसमें लोक क्रमता उन्नति से भवनति को प्राप्त होता है ।

विचर्त्तन-छंदा पुं० [ सं० ] (१) परिग्रमण । धूमना फिरना । (२) नाच । नृत्य ।

विचर्त्तवाद्-छंदा पुं० [ सं० ] वेदान्त में एक सिद्धान्त जिसके अनुसार प्रकृत को सृष्टि का मुख्य उत्पत्ति स्थान और संसार को माया मानते हैं । परिणामवाद ।

विचर्त्तस्थापी कल्प-छंदा पुं० [ सं० ] वह समय जब लोक भवनति की पराकांशा को पहुँचकर शून्य पेशा में रहता है । कल्पान्त । मलय ।

विचर्त्तित-विं० [ सं० ] (१) परिवर्तित । बदला हुआ । (२) अमित । धूमा हुआ । (३) उखड़ा हुआ । सरका हुआ । (४) अंग जिसमें मोच भा गड़े हो । जैसे हाथ पैर का विचर्त्तित होना ।

विचर्त्तित-छंदा पुं० [ सं० ] अक्षि सुमानेवाला, सुगर्ग । अल्प-शिक्षा ।

विचर्त्तन-छंदा पुं० [ सं० ] (१) बढ़ाने या वृद्धि करने की क्रिया । (२) वृद्धि । बढ़ती । उन्नति ।

विचर्त्तित-विं० [ सं० ] (१) बढ़ा हुआ । वृद्धि-प्राप्त । (२) उन्नति-प्राप्त । उन्नत ।

विचर्त्त-विं० [ सं० ] (१) जिसका कुछ बदन न चले । लाचार । बेचर । मजबूर । (२) अपाधीन । परित्या । (३) जो कर्तव्य में न आवे । स्वाधीन । (४) जिसमें कोई धाक या शक न हो । अशक्त ।

विचर्त्त-विं० दे० "विचर्त्त" ।

विचर्त्त-विं० [ सं० ] जिसके तरीर पर वचन हो । चर्त्त-रहित । नर । जंगा ।

विचर्त्त-विं० [ सं० ] सूर्यनगरी ।

विचर्त्त-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य । (२) अर्क वृक्ष । (३) सूर्य का सारथी, अरण । (४) पंद्रहवें प्रजापति का नाम ।

विचर्त्त-छंदा पुं० [ सं० ] (१) जो शास्त्रार्थ में दोनों पक्षों के तर्कों को देखकर न्याय करे । न्यायवीथी । (२) सुव्यय ।

विचर्त्त-छंदा पुं० [ सं० ] (१) किसी बात या वस्तु पर लजानी झगड़ा । याक बुद्ध । (२) झगड़ा । कलह ।

मुद्गा—विवाद उठाना = किसी बात पर मतभेद प्रकट करना और उसके उत्तर की भाशा करना । भाशा उठाना ।

(३) मतभेद । (४) मुकदमेबाजी । अदालत की लड़ाई ।



विवाहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विवाह करनेवाला। सगदाख।  
 विवादास्पद-वि० [ सं० ] जिस पर विवाद या सगदा हो। विवाद  
 योग्य। विवादयुक्त। जैसे—भभी इस विषय में कुछ निश्चय  
 नहीं हुआ है; यह विवादास्पद है।

विवादी-संज्ञा पुं० [ सं० विवादिन् ] (१) विवाद करनेवाला। कदा  
 सुनी या सगदा करनेवाला। (२) मुकदमा लड़नेवालों में से  
 कोई एक पक्ष। मुद्दई और मुद्दालेह। (३) संगीत में वह  
 स्वर जिसका किसी राग में बहुत कम व्यवहार हो।

विवाधिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जो कंधे पर चीज़ें टोकर ले जाय।  
 (२) घूमकर चीज़ें बेचनेवाला। फेरिवाला।

विवाह्य-वि० [ सं० ] निकाल देने योग्य।

विवाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रथा जिसके अनुसार स्त्री  
 और पुरुष आपस में दाम्पत्य सूत्र में बंधते हैं। कहीं  
 यह प्रथा सामाजिक होती है, कहीं धार्मिक और कहीं कानून  
 के अनुसार होती है। यह हिन्दुओं के सोलह संस्कारों में  
 से एक संस्कार है। शादी। व्याह।

विशेष—मनुष्य जाति जब आदिम असभ्यतास्था में थी, उस  
 समय उसमें विवाह या पति-संवरण की प्रथा न थी। केवल  
 काम वेग के कारण स्त्री पुरुषों का समागम हुआ करता था।  
 यह प्रथा अब भी कुछ असभ्य जातियों में प्रचलित है।  
 महाभारत में लिखा है—‘प्राचीन काल में स्त्रियाँ गंगी रहती  
 थीं। ये स्वतंत्र और विहारिणी होती थीं और बिना व्याह  
 किए भी अनेक पुरुषों से समागम करती थीं। उनका यह  
 हृदय उस समय अधर्म नहीं समझा जाता था। सभ्यता  
 बढ़ने पर लोगों को घर बनाने और एक ऐसे व्यक्ति को  
 अपने यहाँ रखने की आवश्यकता हुई जो उसका प्रबन्ध कर  
 सके। इसके लिये स्त्रियाँ उपयुक्त समझी गईं। अतः लोगों  
 ने उनको फुसलाकर अथवा बलात् सहने यहाँ रखना आरंभ  
 किया। उन दिनों स्त्री एक पुरुष के अधिकार में तब तक  
 रहती थी, जब तक कोई दूसरा उससे बड़ी पुरुष उसे बल-  
 पूर्वक छीन न ले जाता था। अतः अब ऐसा नियम बनाने  
 की आवश्यकता हुई कि एक दूसरे की स्त्री को हरण न कर  
 सके। पर स्त्री-स्वतंत्रता में बाधा नहीं थी। जब भायों की  
 सभ्यता बढ़ी और उनमें वर्णधर्म स्थापित हो चला, तब  
 लोग संयुक्त स्त्री को अपने यहाँ रखने की अपेक्षा असंयुक्त  
 या कन्या को अच्छा समझते थे। कन्या के लिये कभी  
 कभी युद्ध भी हुआ करते थे। धीरे धीरे सभ्यता बढ़ती गई  
 और लोगों में स्त्री पुत्र की ममता अधिक होती गई। पर  
 स्त्रियों की स्वतंत्रता बनी रही। ये एक पुरुष के अधिकार  
 में रहकर भी अन्य की कामना करती थीं। उस समय यह  
 ध्वनिचार नहीं समझा जाता था। महाभारत से पता  
 चलता है कि इस प्रथा को उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु

ने उठा दिया। उन्होंने यह मर्यादा बाँधी कि पति के रहते  
 हुए कोई स्त्री उसकी आज्ञा के विरुद्ध अन्य पुरुष से संयोग  
 न करे। पर उस समय भी पति की अन्यायता की अवस्था  
 में उसके रहते स्त्रियाँ दूसरा पति कर लेती थीं। महर्षि  
 दीर्घतमा ने यह प्रथा निकाली कि ‘याम्प्य जीवन स्त्रियाँ पति  
 के अधीन रहें। पति के जीवन काल में तथा उसके मरने पर  
 भी वे कभी पर पुरुष का आश्रय न लें। और यदि आश्रय  
 लें, तो पतित समझी जायें।’ धीरे धीरे स्त्रियों की स्वतंत्रता  
 जाती रही और ये उपभोग की सामग्री समझी जाने लगीं।  
 यहाँ तक कि लोग उन्हीं पति के मरने पर उसके दाय के  
 साथ अन्य आमोद प्रमोद की वस्तुओं की भीति जलाने लगे  
 जिसमें अरे हुए व्यक्ति को वे स्वर्गमें मिलें। इसी प्रथा ने पीछे  
 सती की प्रथा का रूप धारण किया। पीछे से लागू जाति  
 ब्यसनी हो गईं। एक पुरुष अनेक स्त्रियाँ रखने लगा, यहाँ  
 तक कि तपस्वी भी इससे नहीं बचे थे। याज्ञवल्क्य के दो  
 स्त्रियाँ (मैत्रेयी और गार्गी) थीं। भाष्य लोग अनार्य स्त्रियों  
 को भी नहीं छोड़ते थे। इस कारण यह नियम बनाता पदा  
 कि यज्ञ-दीक्षा के समय रामा अर्थात् द्यूता से गमन  
 न करें। पीछे से राजा वेणु ने अपने वंश की रक्षा के लिये  
 जयवंती ‘नियोग’ की प्रथा चलाई। मनुजी ने उसकी  
 निन्दा की है। वे लिखते हैं—‘राजर्षि वेणु के समय में  
 विद्वान् द्विजों ने मनुष्यों के लिये इस पञ्च-धर्म (नियोग)  
 का उपदेश किया था। राजर्षि प्रवर वेणु समस्त भूमण्डल  
 का राजा था। उसी कामी ने वर्णों का चाल-मेल किया।’  
 उस समय तक विवाह दो प्रकार के होते थे। एक तो छीन  
 क्षपटकर, लड़ मिड़कर या बाँधी कन्या को फुसलाकर  
 अपने यहाँ ले आते थे। दूसरे यज्ञों के समय यजमान  
 अपनी कन्याएँ पुरोहितों को चाहे दक्षिण रूप में या  
 धर्म समझकर दे देते थे। धीरे धीरे जब विवाह की यह  
 प्रथा अनुचित मान्य हुई, तब विवाह का अधिकार पिता  
 के हाथ में दिया गया और पिता योग्य वरों को एक  
 समाज में शूलाकर कन्याओं को उनमें से एक को चुनने  
 का अधिकार देता था। यही आगे चलकर स्वयंवर हुआ।  
 कभी कभी स्वयंवर के मौके पर भी क्षत्रिय लोग छद्मस्त्रियाँ  
 उठा ले जाते थे। विवाह के समय प्रायः वर की २५  
 वर्ष और कन्या की १६ वर्ष की अवस्था होती थी; अतः  
 विधवा होने की कम संभावना रहती थी। धीरे धीरे  
 ‘नियोग’ की प्रथा निरुद्ध हुई। विधवा का विवाह भी पुरा  
 समझा जाने लगा। सभ्यता के बढ़ने पर पुरुष लोग स्त्रियों  
 पर कड़ी दृष्टि रखने लगे और उनकी स्वतंत्रता जाती रही।  
 स्त्रियों की स्वतंत्रता हो जाने पर पुरुषों में बहु-विवाह की  
 प्रथा चल पड़ी। पीछे युद्ध के समय में एक बार स्त्रियों की

स्वतंत्रता फिर बढ़ी। पर बौद्ध मत का खोप होने पर यह फिर जाती रही। मुसलमानों के आने पर स्त्रियों की रक्षा करने के लिये हिंदुओं ने उनकी जल्दी विवाह करना आरंभ किया; क्योंकि उस समय मुसलमान लोग विवाहित स्त्रियों पर बलात्कार करना धर्म-विरुद्ध समझते थे। इसी से बाल विवाह की प्रथा चली। विवाह आठ प्रकार के माने गए हैं—प्राज्ञ, दैव, आर्य, प्रजापार्य, आसुर, गौरव, राजस और वैशाच। पर आज कल केवल प्राज्ञ विवाह प्रचलित है।

पर्यायों—दारुक्रमं। परिणयं। पाणिप्रहणं।  
विवाहना-क्रि० सं० दे० “व्याहना”।  
विवाहित-वि० पुं० [ सं० ] [ स्त्री० विवाहिता ] जिसका विवाह हो गया हो। व्याहं हुआ।  
विवाहिता-वि० स्त्री० [ सं० ] जिसका पाणिप्रहण हो चुका हो। व्याही हुई।

विवाही-वि० स्त्री० [ सं० विवाहिता ] जिसका विवाह हो चुका हो। उ०—और सहेली सधै विवाही। मो कहीं देव कतहुं बर माहीं।—जायसी।

विवाह-वि० [ सं० ] पाणिप्रहण करने योग्य। व्याह करने योग्य। व्याहने लायक।

विविह-वि० [ सं० दि ] (१) दूरी। (२) दूसरा। उ०—भीकल कंज कळी से विरासत के विवि मीनी बसे दिग गंग के। कै गिरि हेम के संपुट साने कै राजत संसु मनो रस रंग के।—द्विज।

विविक-वि० [ सं० ] (१) पृथक् किया हुआ। (२) बिखरा हुआ। (३) पथिग। (४) विगत। निर्जन। (५) त्यक्त।  
संज्ञा पुं० [ स्त्री० विविक ] सन्प्राप्ती। स्थानी।

विविकचरित-वि० [ सं० ] जिसका आचरण बहुत अच्छा और पथिग हो। सुद चरित्रवाला।

विविकनाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुराणानुसार हिरण्यरेता के सात पुत्रों में से एक पुत्र। (२) इसके द्वारा दाक्षित ययं का नाम।

विविचार-वि० [ सं० ] (१) विचार रहित। विवेक रहित। उ०—हैं अपने विविचार विचार अचार विचार अपार बहाऊँ।  
धौल धूरि मिले कहि केशव धर्म के धामिन धूरि जमाऊँ।—केशव। (२) आचार रहित।

विविचारो-संज्ञा पुं० [ सं० विविचारिण ] [ स्त्री० विविचारिणी ] (१) अविवेधी। मूर्ख। बेवक्फ। (२) दुराचारी। दुश्चरित्र। बवृचकन।

विविध-वि० [ सं० ] बहुत प्रकार का। अनेक तरह का।  
‘मौलि मौलि’ का। जैसे,—विविध विषयों से विमूर्षित मासिक पत्रिका। उ०—मति रति मति मति एक करि,

विविध विवेक विळांस। रसिकन को रसिक मिया, कीर्ती केशवदास।—केशव।

विविध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जोड़। गुका। उ०—विविध भाव सुख पाय, पायो महाप्रसाद पुनि। तहँ के तीर्थ निकाम जाय जाय सादर क्रियो। (२) बिल। (३) दारा।

विधीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह स्थान जो चारो ओर से घिरा हो। बाढ़ा। (२) पशुओं के चरने का स्थान जो चारो ओर से घिरा हो।

विधुध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवता। (२) पंडित। ज्ञानी।

विधुधपुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का देश, स्वर्ग।

विधुधप्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में र, स, ज, ज, म और र गण होते हैं। इसे ‘चंचरी’ ‘चंचली’ और ‘चंचरी’ भी कहते हैं।

विधुधयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का प्रमोद धन, नंदन कानन।

विधुधवीध-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के चित्ररसक, अधिनी-कुमार।

विधुधेश-संज्ञा पुं० [ सं० विधुध + ईश ] देवताओं का शान, ह्यूर।

विधुत-वि० [ सं० ] (१) विस्मृत। फौला हुआ। (२) सुला हुआ।

संज्ञा पुं० ऊप्य स्वर्गों के उच्चारण करने का एक प्रयत्न।

विधुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मोनि का एक रोग जिसमें गूलर के फल के सदृश मंडलाकार कुँसियाँ होती हैं और मोनि में बहुत जलन होती है।

विधुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चक्र के समान घूमने की क्रिया। परिभ्रमण। (२) टीका। भाष्य।

विधुतीक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अलंकार जिसमें श्लेष से छिपाया हुआ अर्थ कवि स्वयं अपने शब्दों द्वारा प्रकट कर देता है।

विद्येक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मली हुरी वस्तु का ज्ञान। सत्य अक्षय का ज्ञान। (२) मन की-घट पाकि जिससे भलें बुरे का ज्ञान होता है। अच्छे और बुरे को पहचानने की शक्ति। (३) समझ। विचार। बुद्धि। (४) साय ज्ञान। (५) प्रकृति और पुरुष की विविधता का ज्ञान। (६) पानी रखने का एक प्रकार का वासन।

विद्येकता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विवेक का भाव। ज्ञान। (२) सत्य और अक्षय का विचार।

विद्येकवान्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसे सत्य और अक्षय का ज्ञान हो। अच्छे बुरे को पहचाननेवाला। (२) बुद्धिमान्। अक्षुभंद।

विद्येकी-संज्ञा पुं० [ सं० विवेकि ] (१) वह जिसे विवेक हो। मले बुरे

का ज्ञान रखनेवाला। (२) विचारवान। बुद्धिमान्। समस-  
दार। (३) ज्ञानी। (४) न्यायशील। (५) यह जो  
अभियोगों आदि का न्याय करता हो। न्यायाधीश।  
विशेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विशेषना करनेवाला। विशेषी।  
विशेषचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी वस्तु की भली भाँति  
परीक्षा करना। जाँचना। (२) यह देखना कि कौन सी यात  
ठीक है और कौन नहीं। निर्णय। (३) व्याख्या। तर्क  
वितर्क। (४) अनुसंधान। (५) परीक्षा। (६) सत् असत्  
का विचार। (७) मीमांसा।  
विशेषचना-संज्ञा स्त्री० "विशेषचन"।  
विशेषचनीय-वि० [ सं० ] विशेषचन करने योग्य। विचार करने  
लायक।  
विशेषचित-वि० [ सं० ] (१) जिसकी विशेषना की गई हो।  
निर्णय किया हुआ। (२) तै किया हुआ। निश्चित।  
विश्वोक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] साहित्य शास्त्र के अनुसार एक  
हाव जिसमें शिष्यों संयोग के समय प्रिय का अनादर  
करती हैं।  
विश्वोक्त-वि० [ सं० ] जिसे किसी प्रकार की शंका या भय न हो।  
निःशंका। निर्भय। निरदर।  
विश्वोक्त-वि० [ सं० ] (१) बहुत बड़ा या विस्तृत। विशाल।  
(२) भयानक। डरावना।  
विश्वोक्तनीय-वि० [ सं० ] जिससे किसी प्रकार की शंका हो।  
डरने योग्य।  
विश्वोक्त-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आशंका। भय। डर। (२) आशंका  
का अभाव।  
विश्वोक्त-वि० [ सं० ] विश्विन् जिसे किसी प्रकार की आशंका या  
भय हो।  
विश्वोक्त-वि० [ सं० ] आशंका या भय करने के योग्य।  
विश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमल की डंठी। शृंगाल। (२)  
बाँदी। (३) मनुष्य। आदमी।  
संज्ञा स्त्री० कन्या। लड़की।  
विश्व-वि० [ सं० ] (१) स्वच्छ। विमल। (२) साक। स्पष्ट।  
(३) जो दिखाई पड़ता हो। स्पष्ट। (४) सफेद। (५)  
प्रसन्न। खुश। (६) सुंदर। मनोहर। खूबसूरत। (७)  
अनुकूल।  
संज्ञा पुं० (१) सफेद रंग। (२) भाग्यत के अनुसार जयद्रथ  
के एक पुत्र का नाम। (३) कसीस। (४) बृहती। यद्यी  
कटाई। बनमंडा।  
विश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संशय। संदेह। शक। (२)  
आशय। सहारा।  
विश्वो-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्विन् यह जिसे किसी प्रकार की शंका  
या संदेह हो।

विश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] मार डालना। वध।  
विश्वरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] मार डालना। हत्या करना। वध  
करना।  
विश्वरथ-संज्ञा पुं० दे० "विश्वरथ"।  
विश्वरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वायुराय। पादना।  
विश्वरथकर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] निर्बिंबी।  
विश्वरथकृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पलासी छता। (२) आसफोता  
या इरपरवाली नामक छता।  
विश्वरथ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गुडूच। (२) अग्निशिखा  
नामक वृक्ष। (३) दंती वृक्ष। (४) नागदंती। (५) एक प्रकार  
की तुलसी जिसे रामदंती भी कहते हैं। (६) एक नदी का  
नाम। (७) लक्ष्मण की स्त्री का नाम। (८) मिश्रोथ। (९)  
पाटला। (१०) खेसारी।  
विश्वस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मार डालना। हत्या करना। वध।  
(२) खड्ग।  
विश्वस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मार डालना। हत्या करना।  
(२) भांगवत के अनुसार एक नरक का नाम। (३)  
खड्ग।  
विश्वस्त-वि० [ सं० ] (१) जो मार डाला गया हो। (२) काटा  
हुआ। (३) जिसे किसी प्रकार का भय न हो।  
विश्वस्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] विशाल। (१) मार डालनेवाला। हत्या  
करनेवाला। (२) बाँडाल।  
विश्वस्त-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मार डालना। हत्या।  
विश्वरूपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा।  
विश्वोपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा।  
विश्वोकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मद्रवृद्ध। लंकासीज। (२)  
दंती। (३) हाथी शूंटी। (४) पावर या पाटला का वृक्ष।  
विश्वोक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कार्तिकेय। (२) धनुष चलाने के  
समय एक पैर आगे और एक उससे कुछ पीछे रखना।  
(३) माँगनेवाला। याचक। (४) पुनर्वा। गवहपूरना।  
(५) सुश्रुत के अनुसार वह अपस्मार रोग जो स्कंद नामक  
ग्रह के प्रकोप से हो। (६) पुराणानुसार एक देवता का  
नाम जिनका जन्म कार्तिकेय के वज्र चलाने से हुआ था।  
(७) कार्तिकेय के छोटे भाई का नाम। (८) शिव।  
वि० जिसमें शाल्वार्थ आदि न हों।  
विश्वोक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] बेल का पेड़।  
विश्वोक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] नारंगी का पेड़।  
विश्वोक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] बालकों को होनेवाला एक प्रकार  
का रोग। (वैद्यक)  
विश्वोक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] नृसिंह पुराण के अनुसार एक  
प्राचीन देश का नाम। कुछ लोग इसे मद्रास प्रांत का  
आधुनिक विशाखपत्तन मानते हैं।

विशाखा-छंदा श्री० [ सं० ] (१) भविष्यी आदि सप्ताहस नक्षत्रों में से सोलहवाँ नक्षत्र जो मित्र गण के अंतर्गत है और जिसे राधा भी कहते हैं। इसमें चार तारे हैं और इसका आकार तोरण का सा है। यह नक्षत्र दो भागों में बँटा हुआ है, इसलिये इसके दो देवता इंद्र और अग्नि हैं। (२) एक प्राचीन जनपद जो कौशांबी के पास था। (३) सफेद गदहपूरना। (४) काळी अपराजिता।

विशाखिका-छंदा श्री० [ सं० ] (१) पुनर्नया। गदहपूरना। (२) नीली अपराजिता। (३) क्रेला।

विशाप-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विशाय-छंदा पुं० [ सं० ] पहरेदारों का पारी पारी से सोना।

विशायक-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की छता जिसे विशाकर भी कहते हैं।

विशारद-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वह जो किसी विषय का अच्छा पंडित या विद्वान् हो। (२) वह जो किसी काम में बहुत कुशल हो। दक्ष। (३) वह जिसे अपनी शक्ति पर भरोसा हो। (४) बहुत धृष्ट। मौलसिरी।

वि० (१) प्रसिद्ध। महाहूर। (२) छेड़। उत्तम। (३) भूमिगामी। घमंडी।

विशारद-छंदा श्री० [ सं० ] (१) केदार्य। कौल। (२) धमासा। दुरात्म।

विशाल-वि० [ सं० ] (१) जो बहुत बड़ा और विस्तृत हो। छंदा चौदा। (२) जो देखने में सुंदर और मजबूत हो। (३) प्रसिद्ध। महाहूर।

छंदा श्री० (१) एक प्रकार का मृग। (२) चिदिषा। पक्षी। (३) पेड़। वृक्ष। (४) रामायण के अनुसार रामा इक्ष्वाकु के पुत्र का नाम जिसने विशाल नाम की मगरी स्थापित की थी। (५) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विशालक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) कैप। कपिल्य। (२) गरुड़। (३) एक पक्ष का नाम।

विशालता-छंदा श्री० [ सं० ] विशाल होने का भाव।

विशालत्वक-छंदा पुं० [ सं० ] छतियन।

विशालदा-छंदा श्री० [ सं० ] एक प्रकार की छता।

विशालनेत्र-छंदा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम।

विशालपत्र-छंदा पुं० [ सं० ] (१) श्रीगाल नामक वृक्ष। हिताल। (२) मानकेंद्र। भागरूप्य।

विशालफलिका-छंदा श्री० [ सं० ] जिप्सायी। बरसेमा।

विशाला-छंदा श्री० [ सं० ] (१) इंद्रवाक्यी नामक छता। इंद्रायन। (२) महेंद्रवाक्यी। (३) पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम। (४) वृक्ष की एक कन्या का नाम। (५) पोई का साव। (६) पक्षी। मुरामांसी। (७) कक्या नामक पक्ष।

विशालाक्ष-छंदा पुं० [ सं० ] (१) महादेव। शिव। (२) विष्णु। (३) गरुड़। (४) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। वि० जिसकी भाँसि बड़ी और सुंदर हों।

विशालाक्षी-छंदा श्री० [ सं० ] (१) वह स्त्री जिसकी भाँसि बड़ी और सुंदर हों। (२) पार्वती। (३) देवी का एक रूप या मूर्ति। (४) चौंसठ योगिनियों में से एक योगिनी का नाम। (५) नामदेवी। हाथीशुंदी।

विशाली-छंदा श्री० [ सं० ] (१) अजमोदा। (२) पलाशी छता।

विशिका-छंदा श्री० [ सं० ] गाल। रेत।

विशिष्ट-छंदा पुं० [ सं० ] (१) रामसर या भद्रमुंज नामक पास। (२) धाण। (३) वह स्थान जिसमें रोगी रहता हो।

विशिरस्क-छंदा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार मेघ पर्वत के पास के एक पर्वत का नाम।

विशिष्ट-वि० [ सं० ] (१) निष्ठा हुआ। युक्त। (२) जिसमें किसी प्रकार की विशेषता हो। विशेषता-युक्त। जैसे,—कुछ विशिष्ट कर्म ऐसे होते हैं, जिनके लिये मनुष्य को भावविचलन तक करना होता है। (३) विक्रमण। अद्भुत। (४) जो बहुत अधिक शिष्ट हो। (५) यशस्वी। कीर्तिशाली। (६) प्रसिद्ध। महाहूर।

छंदा पुं० सीसर नामक धातु।

विशिष्टवर्त्म-छंदा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम।

विशिष्टता-छंदा श्री० [ सं० ] (१) विशिष्ट का भाव या धर्म। (२) विशेषता।

विशिष्टपत्र-छंदा पुं० [ सं० ] ग्रंथिपर्णी। गठियन।

विशिष्टाद्वैत-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रसिद्ध दार्शनिक सिद्धांत जिसके अनुसार यह माना जाता है कि जीवात्मा और जगत् दोनों ब्रह्म से भिन्न होने पर भी वास्तव में भिन्न नहीं हैं। इस सिद्धांत में यद्यपि ब्रह्म, जीवात्मा और जगत् तीनों मूलतः एक ही माने जाते हैं, पर फिर भी तीनों कार्य रूप में एक दूसरे से भिन्न और कुछ विशिष्ट गुणों से युक्त माने जाते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार जीव और ब्रह्म का पक्षी संबंध है, जो किरण और सूर्य का है; अर्थात् किरण जिस प्रकार सूर्य से निकळी हुई है, उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म से निकळ हुआ है, और जिस प्रकार किरण से सूर्य बहुत बड़ा है, उसी प्रकार जीव से ब्रह्म भी बहुत बड़ा है। इसमें ब्रह्म को एक ही माना जाता है और अनेक भी। वास्तव में द्वैत और अद्वैत दोनों पक्षों के मध्य का यह मार्ग है; अर्थात् इसमें उन दोनों पक्षों में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की गई है। यह पक्ष रामानुजाचार्य का चक्षया हुआ है और भेशांगेयवाय पा द्वैताद्वैतवाय भी कहलाता है।

विशिष्टी-छंदा श्री० [ सं० ] संज्ञावाच्य की भाषा का नाम।

विशीर्ष-वि० [ सं० ] (१) सूखा हुआ । (२) दुबला पतला ।  
(३) बहुत पुराना । जीर्ण ।

विशीर्षपर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीम का पेड़ ।

विशील-वि० [ सं० ] (१) जिसका शील या चरित्र अच्छा न हो । (२) हुए । पात्री ।

विशुद्धि-संज्ञा पुं० [ सं० ] कनक के एक गुण का नाम ।

विशुद्ध-वि० [ सं० ] (१) जो बिलकुल शुद्ध हो । जिसमें किसी प्रकार की मिटावट आदि न हो । (२) सत्य । सच्चा ।

शुद्ध पुं० तंत्र के अनुसार शरीर के अंदर के छः पक्षों में से पाँचवा पक्ष जो गले में माना जाता है । कहते हैं कि इस में सोलह दूक होते हैं और शिव तथा आकाश इसमें निवास करते हैं ।

विशुद्धचरित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम ।

वि० जिसका चरित्र बहुत शुद्ध हो ।

विशुद्धचारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विशुद्धचरित्र । यह जिसका चरित्र बहुत शुद्ध हो ।

विशुद्धता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विशुद्ध होने का भाव या धर्म । पवित्रता ।

विशुद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विशुद्ध होने की क्रिया या भाव । शुद्धता । पवित्रता ।

विशुद्धिका-संज्ञा स्त्री० दे० "विशुद्धिका" ।

विशुद्धल-वि० [ सं० ] (१) जिसमें श्लक्ष्ण न हो या न रह गई हो । श्लक्ष्ण-रहित । (२) जो किसी प्रकार दबाया या रोका न जा सके ।

विशुद्ध-वि० [ सं० ] जिसमें श्लक्ष्ण न हो । श्लक्ष्ण-रहित ।

विशेष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भेद । अंतर । फरक । (२) प्रकार । तरह । ङग । (३) नियम । कायदा । (४) विचित्रता ।

(५) व्यक्ति । (६) सार । निचोड़ । (७) तात्पर्य । मुना-सिबत । (८) वह जो साधारण के अतिरिक्त और उससे अधिक हो । अधिकता । ज्यादाता । (९) अवयव । अंग ।

(१०) घट्ट । पदार्थ । चीज । (११) तिल का पौधा ।

(१२) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार जिसके तीन भेद कहे गए हैं । पहला वह भेद है जिसमें बिना किसी आधार के ही भाष्य का वर्णन होता है । जैसे,—बिजु बारिद बिजुरी बिना बारि लछत युग मीन । बिजु ऊपर तम तोम यह निरखी रीति नवीन । दूसरा भेद वह है जिसमें योंदा सा ही काम करने पर बहुत यदा काम या लाभ हो ।

जैसे,—पाइ चुके फल चारिहु करत गंगजल पान । तीसरा भेद यह है जिसमें एक चीज का अनेक स्थानों में होना वर्णित होता है । जैसे,—धर बाहर अब ऊरथी सत्र ठाँ राम ललाय । (१३) वैशेषिक दर्शन के अनुसार सात प्रकार के पदार्थों में से एक प्रकार का पदार्थ ।

विशेष-कथाद ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात पदार्थ माने हैं । "विशेष" वे गुण हैं जिनके कारण कोई एक पदार्थ दोप दूसरे पदार्थों से भिन्न समझा जाता है । दो वस्तुओं में रूप, रस और गंध आदि में जो अंतर होता है, वह इसी "विशेष" गुण के कारण होता है । रूप, रस, गंध, हर्षा, स्नेह, द्रव्यत्व, बुद्धि, मुख, दुःख, दृष्टा, द्वेष, मयल, धर्म, अयमं, संस्कार और शब्द ये वैशेषिक गुण या विशेष गुण कहलाते हैं । कणाद के दर्शन में इसी विशेष पदार्थों या गुणों आदि का विवेचन है; इसी लिये वह "वैशेषिक दर्शन" कहलाता है ।

विशेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) माथे पर लगाया जानेवाला तिलक । टीका । (२) तिलक घृष्ट । तिलकुप्ती । (३) चित्रक । (४) साहित्य में एक प्रकार का पद्य जिसमें तीन श्लोकों या पद्यों में एक ही क्रिया रहती है; इसलिये उन तीन श्लोकों या पद्यों का एक साथ ही अन्वय होता है ।

वि० विशेषता सत्यज्ञ करनेवाला । विशेष रूप देनेवाला ।

विशेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो । वह जो किसी बात का खास तौर पर जानकर हो । किसी विषय का पारदर्शी ।

विशेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो किसी प्रकार की विशेषता उत्पन्न करता या बतलाता हो । (२) व्याकरण में वह विकारी शब्द जिससे किसी संज्ञा की कोई विशेषता सूचित होती है, अथवा उसकी व्याप्ति मर्यादित होती है । जैसे,— "वीर मराठे" या "चवल घालक" में "वीर" और "चवल" शब्द विशेषण हैं । जब विशेषण किसी संज्ञा के साथ लगता है, तब उसे विशेष्य-विशेषण कहते हैं; और जब यह क्रिया के साथ लगता है, तब उसे विशेष्य-विशेषण कहते हैं । जैसे,— "हमें यो संसार सुना देल पढ़ता है" । यहाँ "सुना" विशेष्य विशेषण है । साधारणतः विशेषण तीन प्रकार के होते हैं—

(१) सार्वनामिक विशेषण; जैसे,— "वह आदमी चला गया" में "वह" सार्वनामिक विशेषण है । (२) गुणवाचक विशेषण; जैसे,— नया, पुराना, सुडौल, सूखा, साराय आदि । और

(३) संख्यावाचक विशेषण; जैसे,— भाषा, एक, चार, दसवाँ ।

विशेषता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विशेष का भाव या धर्म । खस-सिपत । खासपन । जैसे,—आपकी बातों में यह विशेषता है कि तुरंत प्रभाव डालती हैं ।

विशेषमति-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम ।

विशेषित-वि० [ सं० ] (१) जो खास तौर पर भङ्ग किया गया हो । जो "विशेष" क्रिया या बनाया गया हो । (२) जिसमें विशेषण लगा हो ।

विशेषी-वि० [ सं० विशेषिन् ] जिसमें कोई, विशेष बात हो। विशेषतायुक्त।

विशेषोक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें पूर्ण कारण के रहते हुए भी कार्य के न होने का वर्णन रहता है। जैसे,—(क) मलि-इन लोचन की कट्ट उपजी बसी बलाय। नीरे अरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास जुजाय। (ख) तमकि ताकि तकि सिव धनु भरहीं। उठत न कोटि भति बल करहीं—तुलसी।

विशेष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रयत्न में वह संज्ञा जिसके साथ कोई विशेषण लगा होता है। वह संज्ञा जिसकी विशेषता विशेषण लगाकर सूचित की जाय। जैसे,—मोटा भादमी या कठ्ठा कुत्ता में "भादमी" और "कुत्ता" विशेष्य हैं।

विशेष्यासिद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह हेत्याभास जिसके द्वारा स्वरूप की असिद्धि हो।

विशोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अतोक वृक्ष। (२) सुषिष्टिर के एक अनुचर का नाम। (३) पुराणानुसार प्रजा के एक मानसपुत्र का नाम।

वि० जिसे शोक न हो। शोक रहित।

विशोकता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शोक रहित होने का भाव या धर्म।

विशोक पट्टी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चित्र गुच्छा पट्टी।

विशेष्य-कहते हैं कि इस दिन मत करने से मनुष्य को शोक नहीं होता।

विशोक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] योग दर्शन के अनुसार वह चित्त-रूपि जो संमिश्रत समाधि से पहले होती है। इसे ज्योतिष्मती भी कहते हैं।

विशोध-वि० [ सं० ] विशुद्ध करने योग्य। साफ करने लायक।

विशोधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह साफ करना। (२) विष्णु।

विशोधनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रजा की पुरी का नाम। (२) नागदेवी। (३) नीली नामक पौधा। (४) पान। सोबू।

विशोधिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नागदेवी। (२) नीली। (३) जमाकगोदा।

विशोधिनीबीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] जमाकगोदा।

विशोधी-वि० [ सं० ] विशेष्य। विशेष्य शब्द करनेवाला। विशुद्ध करनेवाला।

विशोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] गौरसता। शुष्कता। रुसापन।

विशोधय-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी तरह सोसना।

विशोधी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विशेष्य। अच्छी तरह सोसनेवाला।

विशु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह जिसने धनम लिया हो। प्रजा। (२) कन्या। लडकी।

विशुपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० ] (१) राजा। (२) देवों का प्रधान, मुखिया या पंच।

विशुपापण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ।

विभ्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विश्वास। पुतभार। (२) प्रेमी और प्रेमिका में रति के समय होनेवाला झगड़ा। (३) प्रेम। सुहृद्वत्। (४) हत्या। मार दाकना। (५) स्वच्छंदापूर्वक घूमना फिरना।

विभ्रम-वि० [ सं० ] (१) जो उद्वत न हो। शांत। (२) जिसका विश्वास किया जाय। विश्वसनीय। (३) जिसे किसी प्रकार का भय न हो। निर्भय। निरद।

विभ्रमघनघोडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साहित्य में, नवोदा नायिका का एक भेद। वह नवोदा नायिका जिसका अपने पति पर कुछ कुछ अनुराग और कुछ कुछ विश्वास होने लगा हो।

उ०—जाहि न चाह कहूँ रति की सुकृद पति को पतियान लगी है। लीं पदमाकर आनन में रचि कानन भीह कमान लगी है। देति दिया न सुखे छतियाँ पतियान में तो मुख्यान लगी है। प्रीतमें पान खवाह्ये को परनेक के पास लीं जान लगी है।—पद्माकर।

विभ्रम-संज्ञा पुं० दे० "विभ्राम"।

विभ्रमण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विभ्रवा-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्वत्। एक प्राचीन ऋषि जो पुरुष्य मुनि के पुत्र थे और उनकी पत्नी हविर्भू के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। कुवेर इन्हीं के पुत्र थे और इन्हीं की पत्नी हृदविदा के गर्भ से जनमे थे।

विभ्रान्त-वि० [ सं० ] जिसने विभ्राम कर लिया हो। जो यकावड उतार चुका हो।

विभ्रान्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विभ्राम। भाराम। (२) पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम। कहते हैं कि जगदीश ने यहाँ आकर विभ्राम किया था।

विभ्राम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अधिक समय तक कोई काम या परिश्रम करने के कारण थक जाने पर रुकना या टहरना। श्रम मिटाना। थकावट दूर करना। भाराम करना। उ०—किय विभ्राम न मगु महिपाळा।—तुलसी। (२) टहरने का स्थान। उ०—प्यारी की रोदी को बिंदु दिनेस किधी बिसराम गोविंद के जी को। (३) भाराम। चैन। सुख। उ०—कोठ विभ्राम कि पाव तत सहज संतोप विन। पळे कि जळ विनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिय।—तुलसी।

विभ्राव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत अधिक प्रसिद्धि। सोहरत। (२) ध्वनि। (३) शरणा, यचना या रचना। धरण्य।

विभ्रि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संसु। मौत।

विभ्री-वि० [ सं० ] (१) जिसकी धी नष्ट हो गई हो। शोभाहीन। (२) भद्र। कुरूप।

विभ्रुत-वि० [ सं० ] (१) जो जाना या सुना हुआ हो। (२) प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

विष्टुतात्मा-संज्ञा पुं० [ सं० विश्रुतात्मन् ] विष्णु ।  
 विष्टुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रसिद्धि । शोहरत । (२) सरना, बहना या रसना ।  
 विष्टुष्ट-वि० [ सं० ] (१) जो भलंग हो गया हो, जो मिला हुआ न हो । जिसका त्वरलेपण हो चुका हो । (२) विकसित । खिला हुआ । (३) जो प्रकट हो । प्रकटित । (४) जो खुला हुआ हो । मुक्त । (५) थका हुआ । शिथिल ।  
 विष्टुष्टसंधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धक्के के अनुसार दृष्टी टूटने का एक प्रकार । (२) दारी के अंगों की किसी संधि का चोट आदि के कारण टूटना ।  
 विश्लेष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भला होना । प्रथक् होना । (२) वियोग । बिछोह । (३) शिथिलता । भकावट । (४) किसी की ओर से मन हट जाना । (५) विहास ।  
 विश्लेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ के संयोजक द्रव्यों का भला भला करना । (२) वायु के प्रकोप से फोड़े या घाव में होनेवाली एक प्रकार की वेदना ।  
 विश्वंतर-संज्ञा पुं० [ सं० ] भगवान् बुद्ध का एक नाम ।  
 विश्वंभर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सारे विश्व का पालन या भरण करनेवाला, परमेश्वर । (२) विष्णु । (३) एकउपनिषद् का नाम ।  
 विश्वंभरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी ।  
 विश्वंभरेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार हिमालय के एक शिव लिंग का नाम ।  
 विश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चौदसो भुवनों का समूह । समस्त प्रलोक । वि० दे० "प्रलोक" । (२) संसार । जगत् । दुनिया । (३) सौंड । (४) बोल नामक गंध द्रव्य । (५) देवताओं का एक गण जिसमें ये दस देवता हैं—वसु, सत्य, ऋतु, वृक्ष, काल, काम, धृति, ऊरु, पुरूरवा और माद्रवा । ये धर्म के पुत्र और वक्ष की कन्या विदवा के गर्भ से उत्पन्न माने जाते हैं । (६) जीवान्मा । (७) विष्णु । (८) शिव । (९) शरीर । देह ।  
 वि० (१) समस्त । सय । (२) बहुत । अधिक ।  
 विश्वेष—इन अर्थों में इस शब्द का व्यवहार यौगिक शब्द बनाने के लिये उनके आरंभ में होता है ।  
 विश्वंक्र-वि० [ सं० ] समस्त । पूरा ।  
 विश्वकट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिकारी कुत्ता । (२) खल । हुए । पाजी । (३) शब्द । भाषा ।  
 विश्वकृत्वा-संज्ञा पुं० [ सं० विश्वकृत् ] संसार को उत्पन्न करनेवाला, परमेश्वर ।  
 विश्वकर्म्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सब प्रकार के कार्य करने में चतुर हो ।  
 विश्वकर्म्मजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूर्य की पत्नी संज्ञा का एक नाम ।

विश्वकर्म्म-संज्ञा पुं० [ सं० विश्वकर्म्म ] (१) समस्त संसार की रचना करनेवाला, ईश्वर । (२) महा । (३) सूर्य । (४) एक प्रसिद्ध आचार्य अथवा देवता जो सब प्रकार के दिग्दर्शाक्ष के आविष्कारों और सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता माने जाते हैं । पुराणानुसार ये आठ वसुओं में 'से प्रभास' नामक वसु के पुत्र थे और देवताओं के लिये विमान तथा प्रासाद आदि बनाया करते थे । आग्नेयाक्ष इन्हीं का बनाया हुआ माना जाता है । महाभारत में ये सर्वश्रेष्ठ शिल्पी और शूरा कह गये हैं । रामायण के अनुसार इन्हीं ने राक्षसों के लिये लंका बनाई थी । वेदों में ये सर्वदर्शी, सर्वनियंता और विश्वज्ञ कहे गये हैं । वेदों में कहीं कहीं "विश्वकर्म्म" शब्द इंद्र, सूर्य, मंजापति, विष्णु आदि के अर्थ में भी आया है । महाभारत के अनुसार इनकी माता का नाम लावण्यमयी था, और सूर्य की पत्नी संज्ञा इन्हीं की कन्या थी । कहते हैं कि जब सूर्य के प्रहर ताप को संज्ञा न सह सकी, तब इन्हीं ने उसका आठवाँ अंग काट लिया और उससे सुवर्णन चक्र, विश्वल आदि बनाकर देवताओं में बाँटे । सृष्टि की रचना करने के कारण ये प्रजापति और त्वष्टा भी कहे जाते हैं । भाद्रपद की संक्रांति को इनकी पूजा हुआ करती है । कार । तक्षक । देवदर्शन । (५) दिवं का एक नाम । (६) चरक के अनुसार शरीर में की चेतना नामक धातु । (७) बड़ई । (८) मेमार । राज । (९) लोहार ।  
 विश्वकर्म्मेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक शिवलिंग का नाम ।  
 विश्वकाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 विश्वकाया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा ।  
 विश्वकारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव ।  
 विश्वकारु-संज्ञा पुं० दे० "विश्वकर्म्म" ।  
 विश्वकार्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य की सात प्रधान ज्योतियों का समूह ।  
 विश्वकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार हिमालय की एक चोटी का नाम ।  
 विश्वकृत्-संज्ञा पुं० दे० "विश्वकर्म्म" ।  
 विश्वकृष्टि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सब लोगों को अपने सगे संबंधी के समान समझता हो ।  
 विश्वकेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अनिरुद्ध का एक नाम । (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।  
 विश्वकोश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह कोश या भांडार जिसमें संसार भर के सब पदार्थ आदि संगृहीत हों । (२) वह ग्रंथ जिसमें संसार भर के सब प्रकार के विषयों आदि का विस्तृत विवेचन या वर्णन हो ।  
 विश्वकोष-संज्ञा पुं० दे० "विश्वकोश" ।  
 विश्वकेशेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) पुराणानुसार

देवते मनु का नाम । (१) कालिका पुराण के अनुसार एक ऋषि जो देवता जो शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए रहते हैं और जो विष्णु का निर्माल्य धारण करनेवाले माने जाते हैं ।

विश्वकर्मो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रियंघु नामक वृक्ष । कर्मणी ।

विश्वकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्व या ब्रह्मांड का नास । प्रलय ।

विश्वगंगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बरार प्रदेश की एक छोटी नदी का नाम ।

विश्वगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शोल नामक गंध द्रव्य । (२) प्याज ।

विश्वगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी ।

विश्वगंधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] भागवत के अनुसार पृथु के पुत्र का नाम ।

विश्वगा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ब्रह्मा । (२) भागवत के अनुसार मरीचि के पुत्र का नाम जिसका जन्म पूर्णिमा के गर्भ से हुआ था ।

विश्वगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) शिव । (३) पुराणानुसार देवत के एक पुत्र का नाम ।

विश्वगुरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

विश्वगोता-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वगोत्र । (१) विष्णु । (२) इंद्र । (३) वह जो समस्त दिव्य का पावन करता हो ।

विश्वग्रंथि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हंसपदी लता । (२) लाल लज्जाल ।

विश्वग्र्यात-संज्ञा पुं० दे० "विश्वग्वायु" ।

विश्वग्वायु-संज्ञा पुं० स्त्री० [ सं० ] वह वायु जो सब जगह समान रूप से चलती हो । ऐसी वायु अनेक प्रकार के दोष और उत्पात उत्पन्न करनेवाली मानी जाती है ।

विश्वचक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार बारह प्रकार के महादत्तों में से एक प्रकार का महादान । इसमें एक हजार पल का सोने का एक चक्र या पहिया बनवाया जाता है जिसमें सोलह भारे होते हैं, और सब यह चक्र कुछ विनिष्ट विधानों के अनुसार दान किया जाता है ।

विश्वचक्रामा-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वचक्रम् । विष्णु ।

विश्वचक्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वचक्रुम् । इंद्रवर ।

विश्वजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सौंद ।

विश्वजित्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का यज्ञ । (२) बरुण का पाप । (३) महाभारत के अनुसार एक प्रकार की अग्नि । (४) एक दामय का नाम । (५) सत्यनित्त के पुत्र का नाम । ( ६ ) वह जिसने सारे विश्व पर विजय प्राप्त की हो ।

विश्वजीव-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रवर ।

विश्वज्योतिष-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम ।

विश्वतनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

विश्वतुलसी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बहुत ही सुलसी । बन-तुलसी ।

विश्वतुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

विश्वतोया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंगा नदी ।

विश्ववासा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्नि की सातों जिह्वाओं का एक नाम ।

विश्वदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्रकार के देवता जिनकी पूजा गौरीमुख भाद में होती है ।

विश्वदेवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नागबला । गैरीन । (२) छाछ हंबोपल ।

विश्वदैव, विश्वदैवत-संज्ञा पुं० [ सं० ] उच्चरापादा नक्षत्र, जिसके देवता विश्वदेव माने जाते हैं ।

विश्वधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

विश्वधाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वधामम् । (१) इंद्रवर । (२) स्वदेश ।

विश्वधार-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाकद्वीप के राजा मेधातिथि के एक पुत्र का नाम ।

विश्वधारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक नदी का नाम । विश्वधारिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी ।

विश्वधेनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

विश्वनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) काशी के एक प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग ।

विश्वनाभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

विश्वनाभि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विष्णु का चक्र ।

विश्वपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्रवर । (२) श्रीकृष्ण ।

विश्वपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुई अंबिका ।

विश्वपा-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रवर ।

विश्वपाणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम ।

विश्वपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रवर ।

विश्वपापन-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तुलसी ।

विश्वपूजिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तुलसी ।

विश्वप्रकाशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य ।

विश्वप्रबोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

विश्वप्ल-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वप्लम् । (१) अग्नि । (२) चंद्रमा ।

(३) सूर्य । (४) देवता । (५) विश्वकर्मा ।

विश्वप्लता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्नि ।

विश्वप्लु-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव । महादेव ।

विश्वप्लु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) महादेव ।

विश्ववीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्व की मूल प्रकृति या माया ।

विश्वबोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] भगवान् बुद्ध का एक नाम ।

विश्ववद्र-संज्ञा पुं० दे० "सर्वतोमद" ।

विश्ववर्चा-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्ववर्चम् । इंद्रवर ।

विश्वमव-संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्रह्म जिससे सारे विश्व की सृष्टि हुई है ।



विश्वभाव, विश्वभाषन-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर ।  
 विश्वभुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ईश्वर । (२) ईद्र ।  
 विश्वभुजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक देवी का नाम ।  
 विश्वभेषज-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोडा ।  
 विश्वभय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम ।  
 विश्वमहेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] महादेव ।  
 विश्वमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विश्वमातृ समस्त विश्व की माता, दुर्गा ।  
 विश्वमुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पार्वती का एक नाम ।  
 विश्वमूर्त्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 विश्वमोहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 विश्वयोनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्रह्मा ।  
 विश्वरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार राजा गाधि के एक पुत्र का नाम ।  
 विश्वरत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] मग या भोजक ब्राह्मणों का एक धार्मिक ग्रंथ जिसे वे अपना वेद मानते थे और जो भारतीय आर्यों के वेदों का विरोधी था ।  
 विश्वरुचि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक प्रकार की देवयोनि । (२) एक दानव का नाम ।  
 संज्ञा स्त्री० अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम ।  
 विश्वरूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) शिव । (३) पुराणानुसार स्वर्ग के एक पुत्र का नाम । (४) भगवान् श्रीकृष्ण का वह स्वरूप जो उन्होंने गीता का उपदेश करते समय अर्जुन को दिखलाया था ।  
 विशेष—श्रीकृष्ण ने उस अवसर पर अर्जुन को यह दिखलाया था समझाया था कि इस समस्त विश्व या ब्रह्मांड में सूर्य, चंद्रमा, तारे, ग्रह, आदि जो कुछ हैं, वे सब मेरा ही स्वरूप हैं ।  
 (५) पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम ।  
 विश्वरूपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काला अगर । (२) खिरनी ।  
 विश्वरूपी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वपति । विष्णु ।  
 विश्वरोचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नाड़ी या नारीच नामक साग । (२) कपूर या पेषुक्त नामक साग ।  
 विश्वलोचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य और चंद्रमा ।  
 विश्वलोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक ऋषि का नाम ।  
 विश्ववर्णा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भुईँ आवला ।  
 विश्ववार-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ में सोम का एक संस्कार ।  
 विश्ववार-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्नि गोत्र की एक की जो ऋग्वेद के पाँचवें मंडल की कुछ ऋचाओं की ऋषि मानी जाती है ।  
 विश्ववास-संज्ञा पुं० [ सं० ] संसार । जगत् । दुनिया ।

विश्वविद्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो विश्व की सब बातें जानता हो । बहुत बड़ा मंडित । (२) ईश्वर ।  
 विश्वविद्यालय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह संस्था जिसमें सभी प्रकार की विद्याओं की उच्च बोटि की शिक्षा दी जाती हो, परीक्षाएँ ही जाती हैं और जो लोगों को विद्या संबंधी उपाधियाँ आदि प्रदान करती हो । यूनिवर्सिटी ।  
 विश्ववृक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 विश्वव्यापी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वव्यापि । ईश्वर ।  
 वि० जो सारे विश्व में व्याप्त हो ।  
 विश्वधरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वधर । एक मुनि जो कुवेर और रावण आदि के पिता थे ।  
 विश्वसंभव-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर ।  
 विश्वसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह स्थान जहाँ ऋषि मुनि विश्राम करते हैं । (२) विश्रवात् । पतवार ।  
 विश्वसनीय-वि० [ सं० ] विश्रवात् करने के योग्य । जिसका पतवार किया जा सके । जैसे,—(क) हमें यह समाचार विश्वसनीय सूत्र से मिला है । (ख) आपकी सब बातें बहुत विश्वसनीय हैं ।  
 विश्वसहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम ।  
 विश्वसाक्षी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वसाक्षि । ईश्वर ।  
 विश्वसाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वसाम । एक वैदिक ऋषि का नाम जो आश्रय गोत्र के थे और जो अनेक वैदिक मंत्रों के ऋषि थे ।  
 विश्वसारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंकारी वृक्ष ।  
 विश्वसित-वि० [ सं० ] विश्रवात् करने के योग्य । विश्वसनीय । विश्वस्त ।  
 विश्वरत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर ।  
 विश्वस्त-वि० [ सं० ] जिसका विश्रवात् किया जाय । विश्वसनीय ।  
 विश्वस्त-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विश्रवात् ।  
 विश्वस्था-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दातावर ।  
 विश्वहस्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वहर्तृ । शिव ।  
 विश्वहेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्व को उत्पन्न करनेवाले, विष्णु ।  
 विश्वा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दक्ष की एक कन्य जो धर्म की व्याही थी और जिससे वसु, सत्य, ऋतु आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए थे । (२) एक मान जो २० पल का होता है । (३) अतिविषा । अतीस । (४) दातावर । (५) पीपल । (६) सोडा । (७) दाखिनी । नीरपुष्पी ।  
 विश्वात्-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर ।  
 विश्वाची-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक वैदिक अप्सरा का नाम । (२) एक प्रकार का रोग जिसमें वायु के कारण कंधे से

उंकाळियों तक सारा हाथ न तो फैलाया जा सकता है और न सिकोड़ा जा सकता है ।

विश्वामित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर  
विश्वामित्र-संज्ञा पुं० [ सं० विश्वामित्र ] (१) विष्णु । (२) शिव ।

(३) ब्रह्मा ।

विश्वामित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि ।

विश्वामित्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का कपाय जो सोंठ, माछा, क्षौद्रप्रपटी, मोखा, काळ चंदन आदि से बनाया जाता है और जो ज्वर की प्यास, कै तया दाह आदि की कम करनेवाला माना जाता है ।

विश्वामित्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] परमेश्वर ।

विश्वामित्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] परमेश्वर ।

विश्वामित्रि-संज्ञा पुं० दे० "विश्वामित्र" ।

विश्वामित्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर ।

विश्वामित्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि जो गांधिन, गांधेय और कौशिक भी कहे जाते हैं ।

विशेष—विश्वामित्रि कान्यकुब्ज के पुरुवंशी महाराज गांधि के पुत्र थे, परंतु क्षत्रिय कुल में जन्म लेने पर भी अपने तपो-बल से ब्राह्मणियों में परिगणित हुए । ऋग्वेद के अनेक मंत्र ऐसे हैं जिनके ब्रह्मा विश्वामित्रि अथवा उनके संतान माने जाते हैं । इनका विश्वामित्रि नाम ब्राह्मणत्व प्राप्त करने पर पड़ा था; नहीं तो इनका पहला क्षत्रिय-दत्ता का नाम विश्वरथ था । ऋग्वेद में अनेक मंत्र ऐसे मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि ये यज्ञों में पुरोहित का कार्य करते थे, और धृति के संबंध में इनमें तपो-पति में बहुत समय तक धारण-हागदे बखेदे होते रहते थे । पुराणों में लिखा है कि रामा गांधि को सत्यवती नाम की एक सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई थी । यह कन्या उन्होंने ऋचीक ऋषि को दे दी थी । ऋचीक ने एक बार दो अलग अलग घर तैयार करके अपनी स्त्री सत्यवती को दिए थे और कहा था कि इसमें से यह एक घर तो तुम खा लेना जिससे तुम्हें ब्राह्मणों के गुण से संपन्न एक पुत्र होगा, और यह दूसरा घर अपनी माता को दे देना जिससे उन्हें क्षत्रियों के गुणवाला एक बहुत तेजावी पुत्र उत्पन्न होगा । इसी बीच में रामा गांधि अपनी स्त्री सहित वहाँ आए । सत्यवती ने ये दोनों घर अपनी माता के सामने रख दिए और उनका गुण बतला दिया । माता ने समझा कि ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिये बंधिया घर तैयार किया होगा; इसलिये उसने उसका घर तो आप खा लिया और अपना उसे खिला दिया । इससे उसके गर्भ से तो विश्वामित्रि का जन्म हुआ, जिसमें क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मणों के से गुण थे; और सत्यवती के गर्भ से व्रजदेश का जन्म हुआ जो ब्राह्मण होने पर भी क्षत्रियों

के गुणों से संपन्न थे । विश्वामित्रि को पुनः, वीक, देवरात, देवश्रवा, हिरण्यनाभ, गालव, कप, अरुण, कण्ठ, नारायण, नर आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनके कारण इनके कौशिक वंश की बहुत अधिक वृद्धि हुई थी । कहते हैं कि एक बार जब विश्वामित्रि ने बहुत यज्ञ तप किया था, तब ईश्वर तथा समस्त देवताओं ने भयभीत होकर मेनका नामक अप्सरा को उसका तप भंग करने के लिये भेजा था । इसी मेनका से विश्वामित्रि को द्रकुंतला नामक कन्या उत्पन्न हुई थी जो दुश्चर्य को ब्याही गई थी । यह भी प्रसिद्ध है कि इन्द्रकुंठ वंश के राजा त्रिशंकु ने एक बार सखारी स्वर्ग जाने की कामना से एक यज्ञ करना चाहा था । परंतु उनके पुरोहित बशिष्ठ ने कहा कि ऐसा होना असंभव है । इस पर त्रिशंकु ने विश्वामित्रि की वारण ली और विश्वामित्रि ने उन्हें सखारी स्वर्ग पहुँचा दिया । यह भी कहा जाता है कि विश्वामित्रि बहुत बड़े श्रोधी थे और प्रायः लोगों को शान दे दिया करते थे । राजा हरिश्चंद्र के सख की सुप्रसिद्ध परीक्षा लेनेवाले भी यही माने जाते हैं । पुराणों में इनके संबंध में इसी प्रकार की और भी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं ।

विश्वामित्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] नारियल का पेड़ ।

विश्वामित्रि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम ।

विश्वामित्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो विश्व की सभ बातें जानता हो । सर्वज्ञ । (२) ब्रह्मा ।

विश्वामित्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर ।

विश्वामित्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुराणानुसार एक संघर्ष का नाम । (२) विष्णु । (३) एक संवत्सर का नाम ।

संज्ञा स्त्री० रात ।

विश्वास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह धारणा जो मन में किसी व्यक्ति के प्रति उसका सद्भाव, हितैषिता, सत्यता, ईश्वरता आदि अथवा किसी सिद्धांत आदि की सत्यता अथवा उच्चता का ज्ञान होने के कारण होती है । किसी के-गुणों आदि का निश्चय होने पर उसके प्रति उत्पन्न होनेवाला मन का भाव । एतवार । यकीन । शैले,—(क) मैं तो सदा ईश्वर पर विश्वास रखता हूँ । (ख) उन्हें आपका पूरा पूरा विश्वास है । (ग) आप विश्वास रखें, ऐसा कभी न होगा ।

किं० प्र०—करना ।—मानना ।—रखना ।—होना ।

मुहा०—विश्वास जमाना=किसी के मन में विश्वास प्रेरित करना या दृढ़ करना । विश्वास डिलाला=किसी के मन में विश्वास उत्पन्न करना ।

(२) मन की वह धारणा जो विश्व या सिद्धांत आदि की सत्यता का पूरा पूरा प्रमाण न मिलने पर भी, उसकी

सम्बन्ध के संयंघ में होती है। जैसे,—(क) बहुत से अनिश्चित भूत प्रेत पर विश्वास रखते हैं। (ख) और धर्मों की अपेक्षा बौद्ध धर्म पर उनका कुछ अधिक विश्वास है। (३) केवल अनुमान के आधार पर होनेवाला मन का दृढ़ निश्चय। जैसे,—मेरा तो यही विश्वास है कि वह अवश्य आवेगा।

**विश्वासकारक**—वि० [ सं० ] (१) विश्वास करनेवाला। यकीन करनेवाला। (२) मन में विश्वास उत्पन्न करनेवाला। जिससे विश्वास उत्पन्न हो।

**विश्वासघात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी के विश्वास के विपक्ष की हुई क्रिया। अपने पर विश्वास करनेवाले के साथ ऐसा कार्य करना जो उसके विश्वास के विरुद्ध विपरीत हो।

**विश्वासघातक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो किसी के मन में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करके भी उसका अपकार करे। विश्वास करने पर भी धोखा देनेवाला। धोखेवाज।

**विश्वासन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वास। प्तवार। यकीन।

**विश्वासपात्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जिस पर भरोसा किया जाय। विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय।

**विश्वासस्थान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसका विश्वास किया जाय। विश्वास-भ्रान्त।

**विश्वासिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसका विश्वास किया जाय। विश्वसनीय।

**विश्वासी**—संज्ञा पुं० [ सं० विश्वासिन् ] (१) वह जो किसी पर विश्वास करता हो। विश्वास करनेवाला। (२) वह जिसका विश्वास किया जाय।

**विश्वाह्य**—वि० [ सं० ] (१) विश्वास करने योग्य। विश्वसनीय। (२) जिसका विश्वास किया जाय। विश्वास-भाजन।

**विश्वाहा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घात।

**विश्वेदेव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि। (२) देवताओं का एक गण जिसमें इंद्र, अग्नि आदि नौ देवता माने जाते हैं। वैदिक युग में लोग इन्हें मनुष्यों के रक्षक, शुभ कर्मों के कृत्तृ होनेवाले और विघ्न के अधिपति मानते थे। अग्नि यज्ञान में ये दस कहे गए हैं और इनके नाम इस प्रकार उल्लेख किए हैं—ऋतु, दक्ष, वसु, स्याव, काम, काल, ध्वनि, तेज, आद्रव और पुकरवा। (३) धृतराज्युसार एक असुर का नाम।

**विश्वेदेव**—संज्ञा पुं० [ सं० विश्वेदेवन् ] इंद्र।

**विश्वेदेव**—संज्ञा पुं० [ सं० विश्वेदेवन् ] अग्नि।

**विश्वेदेव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) उषारा-सदृश यज्ञ-विश्वेदेव अधिपति विद्यय नामक देवता माने जाते हैं।

**विश्वेदेव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्रवर। (२) शिव की एक मूर्ति का नाम।

**विश्वैकसार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] काश्मीर के एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

**विश्वीपथ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेंट।

**विषंड**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कमल की माल। मृगाल।

**विष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह पदार्थ जो किसी प्राणी के शरीर में किसी प्रकार पहुँचने पर उसके प्राण छे लेता हो अथवा उसका स्वास्थ्य नष्ट करता हो। गरल। जहर।

**विशेष**—वैयक में स्थावर और जंगम ये दो प्रकार के विष माने गए हैं। स्थावर विष वृक्षों, पौधों और जलोत्पत्तियों में से निकला हुआ माना जाता है; और जंगम विष वह कहलाता है जो अनेक प्रकार के जीवों के शरीर, नख, रक्त या त्वक आदि में होता है। कुछ विष कृत्रिम भी होते हैं और रासायनिक क्रियाओं से बनाए जाते हैं। चिकित्सा में अनेक विषों का प्रयोग, बहुत थोड़ी मात्रा में, अनेक रोगों को दूर करने और दुर्बल रोगी के शरीर में बल लाने के लिये किया जाता है।

**मुद्गा**—के लिये दे० "जह"।

(२) वह जो किसी की सुख-आति आदि में बाधक हो।

**मुद्गा**—विष की गाँठ = वह जो अनेक प्रकार के उपद्रव और अपकार आदि करता हो। सखी पैदा करनेवाला। जैसे,—यही तो विष की गाँठ है; सब शगद्दा इन्हीं का खदा किया हुआ है।

(३) जल। (४) पद्मकेसर। (५) कमल की माल। (६) रत्न नामक गंध द्रव्य। (७) बलनाग। (८) अतीस। (९) ककिहारी।

**विषकंट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंगुरी।

**विषकंटक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] दुरालभा।

**विषकंटका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कंथा ककौटी। यॉस ककौटी।

**विषकंटकी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यॉस ककौटी।

**विषकंट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष। महादेव।

**विषकंटिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पगल।

**विषकंद**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेंसा कंद। (२) हिमोत। इंगुरी।

**विषकन्या**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह कन्या या स्त्री जिसके शरीर में इस आचार्य से कुछ विष प्रविष्ट कर दिए गए हों कि जो उसके साथ संयोग करे, वह मर जाय।

**विशेष**—प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ घालपावस्या से ही कुछ कन्याओं के शरीर में अनेक प्रकार से विष प्रविष्ट करा दिए जाते थे, जिनके कारण उनके शरीर में ऐसा प्रभाव आ जाता था कि जो उनके साथ विषय करता था, वह मर जाता था। जब राजा को अपने किसी शत्रु को गुप्त

रूप से मारना अमीद होता था, सब वह इस प्रकार की विषकन्द्या उसके पास भेज देता था, जिसके साथ संयोग करके वह शत्रु मर जाता था ।

विषगंधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का तृण जिसमें भीनी भीनी गंध होती है ।

विषगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काठी अपराजिता ।

विषगिरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पर्वत जिस पर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष और पौधे आदि जहरीले होते हैं ।

विषघ-वि० [ सं० ] विष का नाश करनेवाला ।

विषघा-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुट्टुक ।

विषघातक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिससे विष का प्रभाव दूर होता हो ।

विषघात्री-संज्ञा पुं० [ सं० विषघातिन् ] (१) वह जिससे विष का प्रभाव नष्ट होता हो । (२) सिरिस का पेड़ ।

विषघ्न-वि० [ सं० ] विष का प्रभाव दूर करनेवाला । विषनाशक ।

संज्ञा पुं० (१) सिरिस का वृक्ष । (२) मिलावर्षा । (३) वंषा का वृक्ष । (४) मूकद्वय । (५) गंध-नुलसी ।

विषघ्ना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतिविषा । अतीस ।

विषघ्निका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद अषामार्ग या चिचदा ।

विषघ्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हिलमोचिका या हिल्वंय नामक साग । (२) बन तुलसी । बसुई तुलसी । (३) इन्द्राफली । (४) सुई आंवला । (५) लाल पुनर्त्वा । गद्दहूरना । (६) हलदी । (७) महाकरंज । (८) वृषिकाली नाम की कटा । (९) देवदाकी या पीतयोषा नाम की लता । (१०) कडकेला । (११) सफेद अषामार्ग । (१२) रातना ।

विषघ्नक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चकोर पक्षी ।

विषजिह्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताद नामक वृक्ष ।

विषज्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैद्यक के अनुसार यह ज्वर जो विष के कारण उत्पन्न हुआ हो । ऐसे ज्वर में दाह होती है, दस्त आते हैं, भोजन की ओर रुचि नहीं होती, प्यास बहुत लगती है और रोगी मूर्च्छित हो जाता है । (२) भैंसा ।

विषजि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सर्प ।

विषराय-वि० [ सं० ] जिसका चित्त दुःखी हो । जिससे विषाद, शोक या रंज हो ।

विषरायना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विषण्ण या दुःखी होने का भाव । (२) मूर्त्तवा । वेपकृषी ।

विषरायाग-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्राप ।

विषरत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार यह प्रक्रिया जिसके द्वारा सर्प आदि का विष दूर किया जाता है ।

विषरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुचका ।

विषरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विष का भाव या धर्म । जहरीलापन ।

विषरति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुचका । (२) कुरीछ ।

विषरती-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो कडुप तेल में गोमूत्र, हलदी, दारु हलदी, वष, लालचंदन, मजीठ आदि डालकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार कुष्ठ आदि रोग दूर करने के लिये होता है ।

विषरत-संज्ञा पुं० [ सं० ] बिल्ली ।

विषरतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्प ।

विषरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] बिल्ली ।

विषरथी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सर्प का वह दंत जिसमें जहर होता है । (२) सर्प कंडालिका नाम की लता । (३) नागदमनी ।

विषर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हीरा कसीस । (२) सफेद रंग । (३) अतिविषा । अतीस । (४) पादक । वि० विमेल । स्वच्छ । साफ ।

विषरमूला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मार्कंडी नामक पौधा जिसके पत्तों का साग होता है ।

विषदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतिविषा । अतीस ।

विषदाता-संज्ञा पुं० [ सं० विषदातृ ] वह जो किसी को मार डालने या बेहोश करने के अभिप्राय से जहर दे ।

विषदुष्ट-वि० [ सं० ] जो जहर मिलाकर खाए कर दिया गया हो ।

विषदुषण-वि० [ सं० ] विष दूर करनेवाला ।

विषदुग्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुचका ।

विषधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ सं० विषधरी ] सर्प ।

विषधानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जरासाह ऋषि की स्त्री मनसा देवी का एक नाम ।

विषध्वंसी-संज्ञा पुं० [ सं० विषध्वंसिन् ] नागर मोथा ।

विषनाशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिरिस का पेड़ । (२) मानकंद । वि० जो विष को दूर करता हो । विषनाशक ।

विषनाशिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सर्प कंडाली नाम की लता । (२) बसि ककोटी । (३) गंधनाकुडी ।

विषनाशिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी जहरीले बीज का तिलका । (२) कोई जहरीला पत्ता ।

विषनाशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जहरीला सर्प ।

विषाचुक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० विषुचक्षी ] विषुच ।

विषाभुट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

विषाभुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नीला पत्र । (२) भलसी का फूल । (३) मैनफल का पेड़ ।

विषाभुषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मदन नामक वृक्ष । मैनफल ।

विषप्रशमनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बसि ककोटी ।

विषप्रस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम ।

विषप्रज्ञा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बसि रंजी ।

सत्यता के संबंध में होती है। जैसे,—(क) बहुत से अशिक्षित भूत प्रेत पर विश्वास रखते हैं। (ख) और धर्मों की अपेक्षा बौद्ध धर्म पर उनका कुछ अधिक विश्वास है। (३) केवल अनुमान के आधार पर होनेवाला मन का दृष्ट निश्चय। जैसे,—मेरा तो यही विश्वास है कि वह अवश्य आवेगा।

**विश्वासकारक-वि०** [ सं० ] (१) विश्वास करनेवाला। यकीन करनेवाला। (२) मन में विश्वास उत्पन्न करनेवाला। जिससे विश्वास उत्पन्न हो।

**विश्वासघात-संज्ञा** पुं० [ सं० ] किसी के विश्वास के विरुद्ध की हुई क्रिया। अपने पर विश्वास करनेवाले के साथ ऐसा कार्य करना जो उसके विश्वास के विरुद्ध विपरीत हो।

**विश्वासघातक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह जो किसी के मन में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करके भी उसका भण्डार करे। विश्वास करने पर भी धोखा देनेवाला। धोखेवाज।

**विश्वासन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] विश्वास। पतवार। यकीन।

**विश्वासपात्र-संज्ञा** पुं० [ सं० ] जिस पर भरोसा किया जाय। विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय।

**विश्वासस्थान-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह जिसका विश्वास किया जाय। विश्वास-भाजन।

**विश्वासिक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह जिसका विश्वास किया जाय। विश्वसनीय।

**विश्वासी-संज्ञा** पुं० [ सं० विश्वासि ] (१) वह जो किसी पर विश्वास करता हो। विश्वास करनेवाला। (२) वह जिसका विश्वास किया जाय।

**विश्वास्य-वि०** [ सं० ] (१) विश्वास करने योग्य। विश्वसनीय। (२) जिसका विश्वास किया जाय। विश्वास-भाजन।

**विश्वाहा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] सौँट।

**विश्वेदेव-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) अग्नि। (२) देवताओं का एक गण जिसमें इंद्र, अग्नि आदि नौ देवता माने जाते हैं। वैदिक युग में लोग इन्हें मनुष्यों के रक्षक, शुभ कर्मों के फल देनेवाले और विद्वत् के अधिपति मानते थे। अग्नि पुराण में ये दस कहे गए हैं और इनके नाम इस प्रकार बतकाए गए हैं—ऋत, इक्ष्म, वसु, सत्य, काम, काल, ध्यनि रोचक, आद्रव और पुरूरवा। (३) ब्रह्माण्डसार एक अक्षुर का नाम।

**विश्वेमोज-संज्ञा** पुं० [ सं० विश्वेमोजम् ] इंद्र।

**विश्वेदेव-संज्ञा** पुं० [ सं० विश्वेदेवम् ] अग्नि।

**विश्वेश-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) उचरारा-पादा नक्षत्र जिसके अधिपति विद्वत् नामक देवता माने जाते हैं।

**विश्वेश्वर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) इंद्रवर। (२) शिव की एक मूर्ति का नाम।

**विश्वैकसार-संज्ञा** पुं० [ सं० ] काश्मीर के एक प्राचीन शीरे का नाम।

**विश्वीपथ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] सौँट।

**विपंड-संज्ञा** पुं० [ सं० ] कमल की गाल। गृणाल।

**विप-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वह पदार्थ जो किसी प्राणी के शरीर में किसी प्रकार पहुँचने पर उसके प्राण ले लेता हो अथवा उसका स्वास्थ्य नष्ट करता हो। गाल। जहर।

विशेष-वैद्यक में स्थावर और जंगम ये दो प्रकार के विष माने गए हैं। स्थावर विष वृक्षों, पौधों और खानों आदि में से निकला हुआ माना जाता है; और जंगम विष वह कहलाता है जो अनेक प्रकार के जीवों के शरीर, मनुष्य, पशु या उड़क आदि में होता है। कुछ विष कुत्रिम भी होते हैं और रासायनिक क्रियाओं से बनाए जाते हैं। चिकित्सा में अनेक विषों का प्रयोग, बहुत थोड़ी मात्रा में, अनेक रोगों को दूर करने और दुर्बल रोगी के शरीर में बल लाने के लिये किया जाता है।

**मुद्गा**—के लिये दे० "जहर"।

(२) वह जो किसी की सुख-शान्ति आदि में बाधक हो।

**मुद्गा**—विष की गौँट = वह जो अनेक प्रकार के उपद्रव और अपकार भादि करता हो। खारी पैदा करनेवाला। जैसे,—यही तो विष की गौँट है; सब हागड़ा इन्हीं का खड़ा किया हुआ है।

(३) जल। (४) पत्रकेशर। (५) कमल की गाल। (६) बोल नामक गंध द्रव्य। (७) बटनाग। (८) अतीस। (९) कलिद्वारी।

**विपकंड-संज्ञा** पुं० [ सं० ] इंगुदी।

**विपकंडक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] दुरालभा।

**विपकंडका-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] चंपका कफौटी। बॉस कफौटी।

**विपकंडकी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] बॉस कफौटी।

**विपकंड-संज्ञा** पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

**विपकंडिका-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] पगला।

**विपकंड-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) भैंसा कंद। (२) हिंगोट। इंगुदी।

**विपकण्या-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] वह कण्या या स्त्री जिसके शरीर में इस आघात से कुछ विष प्रविष्ट कर दिए गए हों कि जो उसके साथ संमोग करे, वह मर जाय।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ बाल्यावस्था से ही कुछ कण्याओं के शरीर में अनेक प्रकार से विष प्रविष्ट कर दिए जाते थे, भ्रिनके कारण उनके शरीर में ऐसा प्रभाव आ जाता था कि जो उनके साथ विचर-करता था, वह मर जाता था। सब राजा को अपने किसी शत्रु को शत्रु

रूप से मारना अभीष्ट होता था, तब वह इस प्रकार की विषकन्या उसके पास भेज देता था, जिसके साथ संयोग करके वह शत्रु मर जाता था ।

विषगंधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का लृण जिसमें भीनी भीनी गंध होती है ।

विषगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काळी अपराजिता ।

विषगिरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पर्वत जिस पर उषन्न होनेवाले वृक्ष और पौधे आदि जहरीले होते हैं ।

विषघ-वि० [ सं० ] विष का नाश करनेवाला ।

विषघा-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुह्य ।

विषघातक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिससे विष का प्रभाव दूर होता हो ।

विषघाती-संज्ञा पुं० [ सं० विषघातिन् ] (१) वह जिससे विष का प्रभाव नष्ट होता हो । (२) सिरिस का पेड़ ।

विषघन-वि० [ सं० ] विष का प्रभाव दूर करनेवाला । विषनाशक ।

संज्ञा पुं० (१) सिरिस का वृक्ष । (२) मिलावर्ण । (३) चंपा का वृक्ष । (४) मूकद्वय । (५) गंध-पुलसी ।

विषघ्ना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतिविषा । अतीस ।

विषघ्निका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद अपामार्ग या चिचदा ।

विषघ्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हिकमोचिका या हिलंच नामक साग । (२) वन तुलसी । बड़ई तुलसी । (३) हृद्बहारुणी । (४) मुहं औंखला । (५) लाळ पुनर्वा । गद्दपरना । (६) हलदी । (७) महाकरंज । (८) शुद्धिकाळी नाम की कला । (९) देवदाळी या पीतपोषा नाम की कला । (१०) कडकेला । (११) सफेद अपामार्ग । (१२) रासना ।

विषघ्नक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चकोर पत्ती ।

विषजिह्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताद नामक वृक्ष ।

विषज्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैद्यक के अनुसार वह ज्वर जो विष के कारण उत्पन्न हुआ हो । ऐसे ज्वर में दाह होती है, दस्त आते हैं, भोजन की ओर रुचि नहीं होती, प्यास बहुत लगती है और रोगी मूर्च्छित हो जाता है । (२) भैंसा ।

विषधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सर्प ।

विषधण-वि० [ सं० ] जिसका चित्त दुःखी हो । जिसे विषाद, शोक या रंज हो ।

विषधणना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विषण्य या दुःखी होने का भाव । (२) मूर्च्छता । वेवहृकी ।

विषधर्मा-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव ।

विषधर्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार वह प्रक्रिया जिसके द्वारा सर्प आदि का विष दूर किया जाता है ।

विषधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुचला ।

विषदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विष का भाव या चर्म । अहरीणपन ।

विषनिद्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुचला । (२) ऊनीक ।

विषतैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो कडुप तेल में गोमूत्र, हलदी, दास हल्ली, बच, लाळपंदन, मजीठ आदि ढालकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार कुष्ठ आदि रोग दूर करने के लिये होता है ।

विषधंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] विली ।

विषरत्तक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्प ।

विषशंशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] विली ।

विषशंशु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सर्प का वह दंत जिसमें जहर होता है । (२) सर्प कंकालिका नाम की लता । (३) नागदमनी ।

विषश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हीरा कसीस । (२) सफेद रंग । (३) अतिविषा । अतीस । (४) बादल । वि० विमल । स्वच्छ । साफ ।

विषशुला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मार्कंडी नामक पौधा जिसके पत्तों का साग होता है ।

विषदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतिविषा । अतीस ।

विषदाता-संज्ञा पुं० [ सं० विषदाट ] वह जो किसी को मार डालने या बेहोसा करने के अभिप्राय से जहर दे ।

विषदुष्ट-वि० [ सं० ] जो जहर मिलाकर धराप कर दिया गया हो ।

विषदूषण-वि० [ सं० ] विष दूर करनेवाला ।

विषद्रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुचला ।

विषधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० विषधरी ] सर्प ।

विषधार्त्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जराकाष्ठ ऋषि की खा मनसा देवी का एक नाम ।

विषधंसी-संज्ञा पुं० [ सं० विषधंसिन् ] नागर भोया ।

विषनाशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिरिस का पेड़ । (२) मानकंड । वि० जो विष को दूर करता हो । विषनाशक ।

विषनाशिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सर्प कंकाली नाम की लता । (२) बॉस ककोटी । (३) गंधनाकुळी ।

विषमयिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी जहरीले बीज का छिड़का । (२) कोई जहरीला पत्ता ।

विषाम्रग-संज्ञा पुं० [ सं० ] अहरीण सर्प ।

विषाम्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० विषाम्रु ] विषद्रु ।

विषाम्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

विषाम्रुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मौला पत्त । (२) अलसी का वृक्ष । (३) मैनरुल का पेड़ ।

विषाम्रुपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मदन नामक वृक्ष । मैनरुल ।

विषाम्रुमनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बॉस ककोटी ।

विषाम्रुध-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम ।

विषाम्रुदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बड़ी रंगी ।

विद्यापद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोला नामक वृक्षा। (२) वह जिससे विप का नाम हो।

विद्यापहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) इंद्रधारणी। इंद्रायन। (२) निर्विषी। (३) नागदमन। (४) अर्कपत्रा। इसरोल। (५) सर्पकंकाळी। (६) सर्पदंष्ट्रा। इरपंद। (७) त्रिपर्णी नामक वृक्ष।

विद्यायका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] निर्विषी।

विद्यायुध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्प। (२) वह अक्ष जो जहर में सुस्तया गया हो।

विपार-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्प।

विपारति-संज्ञा पुं० [ सं० ] काला धपूर।

विपारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महापंचु या चंच नामक साग। (२) वीकरंज।

वि० जिससे विप का नाम होता हो।

विपाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की मछली जिसका मांस घायु और कफ को घटानेवाला माना जाता है।

विपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्प। (२) जहर में सुस्तया हुआ अक्ष।

विपाल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्प।

विपाल्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मिठायी।

विपी-संज्ञा पुं० [ सं० विष्णु ] (१) विष्णुपुत्र वस्तु। जहरीली चीज़। (२) विष्णु सर्प। जहरीला सर्प।

वि० [ हि० विप ] विष्णुक। जहरीला।

विपुष्प-संज्ञा पुं० दे० "विपव"।

विपुद्दह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाण। तीर।

विपुप-संज्ञा पुं० दे० "विपव"।

विपुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष के अनुसार वह समय जब कि सूर्य विपुष रेखा पर पहुँचता है और दिन तथा रात दोनों बराबर होते हैं। ऐसा समय वर्ष में दो बार आता है। एक तो सौर चैत्र मास की नवीं तिथि या अंग्रेज़ी २१ मार्च को; और दूसरा सौर आश्विन की नवीं तिथि या अंग्रेज़ी २२ सितंबर को।

विपुष-दे० "विपव रेखा"।

विपुषरेखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ज्योतिष के कार्य के लिये कल्पित एक रेखा जो पृथ्वी तल पर उसके ठीक मध्य भाग में वेद वृक्ष में या पूर्व पश्चिम पृथ्वी के चारों ओर मानी जाती है। यह रेखा दोनों मेरुओं के ठीक मध्य में और दोनों से समान अंतर पर है। आकाश में इस रेखा से उत्तर की ओर मेघ से कन्या तक की पहली छः राशियाँ और दक्षिण की ओर तुला से मीन तक की छः राशियाँ हैं। इसे निरक्ष वृष भी कहते हैं।

विपुष्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वेषिका नामक रोग।

विपुष्का-संज्ञा स्त्री० दे० "विद्वेषिका"।

विषौषधी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नागदंती।

विष्कंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो गति को रोकता हो। (२) बाधा। विग्रह।

विष्कंधाजीर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का अजीर्ण रोग जिसमें रोगी के शरीर में शूल के समान पीड़ा होती है, उसका पेट फूल जाता है और वह मल या अपान वायु का त्याग नहीं कर सकता।

विष्कंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फलित ज्योतिष के अनुसार सत्ताहस योगों में से पहला योग जो आरंभ के पाँच दंडों को छोड़कर शुभ कार्य के लिये बहुत अच्छा समझा जाता है। कहते हैं कि इस योग में जन्म लेनेवाला मनुष्य सब बातों में स्वाधीन और आई वंधु आदि से सदा मुक्त रहता है। (२) विस्तार। (३) बाधा। विग्रह। (४) साहित्य-दर्पण के अनुसार नाटक का एक प्रकार का अंक जो प्रायः गमोक के समीप होता है। जो कथा पहले हो चुकी हो अथवा जो अभी होनेवाली हो, उसकी इसमें मध्यम पात्रों द्वारा सूचना दी जाती है। यह दो प्रकार का होता है—शुद्ध और संकीर्ण। जब एक या अनेक मध्यम पात्र इसका प्रयोग करते हैं, तब यह शुद्ध कहलाता है। और जब मध्यम तथा नीच पात्रों द्वारा इसका प्रयोग होता है, तब इसे संकीर्ण कहते हैं। शुद्ध विष्कंधक में मध्यम पात्रों का वातालाप संस्कृत भाषा में और संकीर्ण विष्कंधक में मध्यम तथा नीच पात्रों का वातालाप प्राकृत भाषा में होता है। शुद्ध का उदाहरण माहती माघव के पंचिमें अंक में कुंडला कृत प्रयोग और संकीर्ण का रामरामिन्द में क्षयणक और कापालिक कृत प्रयोग है। (५) योगियों का एक प्रकार का मंत्र। (६) वाराह पुराण के अनुसार एक पर्वत का नाम। (७) वृक्ष। पेड़। (८) अंगक। व्योदा।

विष्कंधक-संज्ञा पुं० दे० "विष्कंध"।

विष्कंधो-संज्ञा पुं० [ सं० विष्कंधिन् ] (१) शिव जो का एक नाम। (२) अंगक। व्योदा।

विष्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह हाथों जिसकी अवस्था पीस वर्ष की हो गई हो।

विष्कर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) अंगक। व्योदा। (३) एक हानय का नाम।

विष्कल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूअर।

विष्कलान-संज्ञा पुं० [ सं० ] भोजन। आहार।

विष्कर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) वे पक्षी जो अन्न को दूध उधर छितोकर नवों से छेदकर खाते हैं। जैसे, क्यूतर, सुरगा, तीतर, बटेर आदि। (३)

दर्शिक नामक जाति के सर्पों के अंतर्गत एक प्रकार का सर्प ।

विष्णुम-संज्ञा पुं० दे० "विष्णुम" ।

विष्टप-संज्ञा पुं० [ सं० ] भुवन । लोक ।

विष्टप-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ग लोक ।

विष्टम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) थापा । रुकावट । (२) एक प्रकार का रोग जिसमें मल रक्तने के कारण रोगी का पेट फूल जाता है । अनाह । विबंध । (३) आक्रमण । चढ़ाई ।

विष्टमन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रोकने या संकुचित करने की क्रिया । (२) वह जो रोकता या संकुचित करता हो ।

विष्टमी-संज्ञा [ सं० विष्टमिन् ] वह पदार्थ जिससे पेट का मल रके । ( वैद्यक )

विष्टर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आठ । भद्रा । (२) वृद्ध । पेड़ । (३) पीठ । (४) कुशा का बना हुआ भासन ।

विष्टरश्वा-संज्ञा पुं० [ सं० विष्टरश्वम् ] विष्णु । नारायण ।

विष्टरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुंघासिनी नामक घास ।

विष्टराध्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार श्युं के एक पुत्र का नाम ।

विष्टबहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली केतकी ।

विष्टरपक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसके प्रथम और चतुर्थ चरणों में १२ वर्ण होते हैं ।

विष्टरधृद्वती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वैदिक छंद का नाम जिसके पहले और चौथे चरणों में ८ और दूसरे तथा तीसरे चरणों में १० वर्ण होते हैं ।

विष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह काम जो बिना कुछ पुरस्कार दिए कराया जाय । बेगार । (२) वेतन । तनहूवाह । (३) काम । (४) यर्षा । (५) फलित ज्योतिष के त्प्यारह चरणों में से सातवाँ चरण जिसे विष्टिभद्रा भी कहते हैं ।

विष्टिकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल के राज्य का वह बड़ा सैनिक कर्मचारी जिसे अपनी सेना रखने के लिये राज्य की ओर से जागीर मिला करती थी । (२) अत्याचारी ।

विष्टिभद्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "विष्टि" । (५)

विष्टियत-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्रकार का मत ।

विष्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मल । मैला । गुह । पांखाना ।

विष्ठाभुक्-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूअर ।

विष्ठाभुशी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूअर ।

विष्ठाकहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली केतकी ।

विष्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हड्डी ।

विष्णु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हिंदुओं के एक प्रधान और बहुत बड़े देवता जो सृष्टि का मरण पोषण और पालन करनेवाले तथा महा का एक विशेष रूप माने जाते हैं ।

विशेष-भारतवर्ष में विष्णु को देवता रूप में बहुत दिनों से मानते चले आते हैं और इनकी उपासना बहुत अधिकता से होती आई है । ऋग्वेद में यद्यपि विष्णु गौण देवता माने गए हैं, पर माहाण ग्रंथों में इनका महत्व बहुत अधिक है । ऋग्वेद में विष्णु विशाल बरीरीवाले और युवक माने गए हैं और कहा गया है कि वे त्रि-विष्णु नाम अर्थात् तीन कर्माँ अथवा दलों से सारे विश्व को अधिक्रमण करनेवाले हैं । पुराणों के वामन अवतार का यही यौज रूप है । कुछ लोगों ने इन तीनों दलों या कर्माँ का अर्थ सूर्य का दैनिक उदय, मध्य और अस्त माना है, और कुछ लोग इसका अर्थ मूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक लेते हैं । इसके अतिरिक्त ये नियमित रूप, बहुत दूर तक और जल्दी जल्दी चलनेवाले माने गए हैं । यह भी कहा गया है कि वे इंद्र की मित्र थे और वृष के साथ युद्ध करने में इन्होंने इंद्र की सहायता दी थी । विष्णु और इन्द्र दोनों मिलकर वातावरण, अंतरिक्ष, सूर्य, उषा और अग्नि के उत्पादक माने गए हैं; और विष्णु इस पृथ्वी, स्वर्ग और सब जीवों के मुख्य आधार बड़े गए हैं । ऋग्वेद और शतपथ माहाण में कुछ ऐसी कथाएँ भी हैं जो पौराणिक काल के बराह, मत्स्य तथा कूर्म अवतार का भी मूल या आरंभिक रूप मानी जा सकती हैं । वैदिक काल में विष्णु धन, धीर्य और बल देनेवाले तथा सप लोगों का अभीष्ट सिद्ध करनेवाले माने जाते थे । पुराणों के अनुसार विष्णु समय समय पर पृथ्वी का भार इलका करने के लिये, संसार में शांति और सुख की स्थापना करने के लिये और दुष्टों तथा पापियों का नाश करने के लिये अवतार धारण किया करते हैं । विष्णु के कुल चौबीस अवतार कहे गए हैं जिनमें से दस मुख्य माने गए हैं ( दे० "अवतार" ) । मित्र मिल पुराणों में विष्णु के संबंध में जनेक प्रकार की कथाएँ और उनकी उपासना आदि का बहुत अधिक माहात्म्य मिलता है । विष्णु के उपासक वैष्णव कहलाते हैं । इनकी स्त्री का नाम श्री या लक्ष्मी कहा गया है; और ये युवक, दयाम घर्ण और पशुभुज माने गए हैं । ये चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए रहते हैं । इनके शंख का नाम पांचजन्य, चक्र का नाम सुदर्शन और गदा का नाम कीर्तिदधी है । इनकी ललवार का नाम नंदक और धनुष का नाम शार्ङ्ग है । इनका बाह्य धनतेज नामक गरुड माना जाता है । पुराणों में इनके एक हजार नाम कहे गए हैं; और उन नामों का ण्य बहुत श्रम फल देनेवाला माना जाता है । नारायण, कृष्ण, पैकुंड, दामोदर, केशव, माधव, गोविंद, पीतांबर, जनार्दन, चक्रपाणि, श्रीपति, मधुसूदन, हरि आदि इनके प्रसिद्ध नाम हैं । (२) अग्नि । (३) वसुदेवता । (४) वारह आदित्यों में से



जलना होती है और प्यास बहुत लगती है; छाती और सिर में पीड़ा होती है; अम, मूत्र और कंफ होता है; जैम्बाई आती है; निर्मलता बहुत होती है; मूत्र बंद हो जाता है; नाड़ी मंद पड़ जाती है; आँखें बंद जाती हैं। शरीर का रंग पीला पड़ जाता है और भावाज बदल जाती है। साय ही घायु आदि के प्रकोप के कारण सारे शरीर में सड़कों चुमने की सी पीड़ा होती है; इसी से इसे विस्त्रिका कहते हैं। कुछ लोग इसे "हेज़ा" भी मानते हैं, पर अधिकांश डाक्टर आदि इसे ईंड़े से भिन्न समझते हैं। उनका मत है कि यह विस्त्रिका रोग अजीर्ण के कारण होता है; और हेज़ा एक प्रकार के विपाक जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश करने से होता है।

विस्त्रो-संज्ञा स्त्री [ सं० ] विस्त्रिका नामक रोग।

विस्त्रण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दुःख। रंज। शोक। (२) चिन्ता। क्रि। (३) विरक्ति। वैराग्य।

विस्त्र-वि० [ सं० ] (१) जिसकी सृष्टि या रचना विशेष प्रकार से हुई हो। विशेष रूप से यनाया हुआ। (२) फँका हुआ। (३) त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ। (४) भेजा हुआ।

संज्ञा पुं० विसर्ग जो इस प्रकार लिखा जाता है—।

विस्तोटा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाक्क। अहसा।

विस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोना। (२) एक प्रकार का परिमाण जो एक कर्प के बराबर होता है। (३) ८० रशी सोना।

विस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊँटुर।

विस्तर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दे० "विस्तार"। (२) प्रेम। (३) समृद्ध। (४) आसन। (५) संख्या। (६) आधार। (७) तिरक का एक नाम।

वि० बहुत। अधिक। विशेष।

विस्तारता-संज्ञा स्त्री [ सं० ] बहुत या अधिक होने का भाव।

विस्तार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छँपे या चौड़े होने का भाव। फैले होने का भाव। फैलाव। जैसे—(क) इस मकान का विस्तार कम है। (ख) हम बातों का बहुत अधिक विस्तार करते हो। (२) पड़ की छाया। (३) गुच्छ। (४) तिरक का एक नाम। (५) विष्णु का एक नाम।

विस्तारता-संज्ञा स्त्री [ सं० ] विस्तार का भाव। फैलाव।

विस्तारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] विस्तारि। (१) वह जिसका विस्तार अधिक हो। (२) मरगढ़। चड़।

विस्तीर्ण-वि० [ सं० ] (१) जो दूर तक फैला हुआ हो। विस्तृत। (२) विस्तार। बहुत बढ़ा। (३) विपुल। बहुत अधिक।

विस्तीर्णकण-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथी।

विस्तीर्णता-संज्ञा स्त्री [ सं० ] विस्तीर्ण होने का भाव। विस्तार। फैलाव।

विस्तीर्णपर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] मानकंद।

विस्तीर्णवेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] उल्लिखितविस्तर के अनुसार एक शुद्ध का नाम।

विस्तृत-वि० [ सं० ] (१) जो अधिक दूर तक फैला हुआ हो। लंबा चौड़ा। विस्तारवाला। जैसे,—यहाँ आप लोगों के लिये बहुत विस्तृत स्थान है। (२) यथेष्ट विवरणवाला। जिसके सब अंग या सब बातें बतलाई गई हों। जैसे,—इस ग्रंथ में नाटक के स्वरूप का बहुत विस्तृत वर्णन है। (३) बहुत बढ़ा या लंबा चौड़ा। विपाक।

विस्तृति-संज्ञा स्त्री [ सं० ] (१) फैलाव। विस्तार। (२) व्याप्ति। (३) लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई या गहराई। (४) वृत्त का व्यास।

विस्फार-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० विस्फारित ] (१) धनुष की टंकार। कमान का शब्द। (२) धनुष की खोली। (३) विस्तार। फैलाव। (४) स्फूर्ति। तेज़ी। (५) विकास। (६) कॉपना। धार धार दिखना।

विस्फारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सन्निपात पर जो बहुत ही भयंकर होता है और जिसमें रोगी को खौंती, मूर्च्छा, मोह और कंफ आदि होता है।

विस्फुरणी-संज्ञा स्त्री [ सं० ] तेंदुआ या तिट्ठक नामक वृक्ष।

विस्फूर्जन-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी पदार्थ का फैलना या बढ़ना। विकास।

विस्फूर्जनी-संज्ञा स्त्री [ सं० ] तेंदुआ या तिट्ठक नामक वृक्ष।

विस्फुलिंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का विप। (२) भाग की चिनगारी।

विस्फोट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ का गरमी आदि के कारण उबल या फूट पड़ना। जैसे,—अवालुखी पर्वत का विस्फोट। (२) कोई ज़हरीला और बहुत ख़तरा फोड़ा।

विस्फोटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फोड़ा, विशेषतः ज़हरीला फोड़ा। (२) वह पदार्थ जो गरमी या आघात के कारण भस्मक उठे। भस्मकनेवाला पदार्थ। (३) दाँतला का रोग। चैचक।

विस्फोटन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ का उबाल आदि के कारण फूट बढ़ना। (२) जोर का शब्द।

विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आश्चर्य। ताजहब। (२) साक्षि में अद्भुत रस का एक स्थायी भाव जो लनेक प्रकार के अलौकिक या विलक्षण पदार्थों के वर्णन के कारण मन में उत्पन्न होता है। (३) अभिमान। गर्व। शोभी। (४) संदेह। शक। वि० जिसका गर्व नष्ट या न्यून हो गया हो।

विस्मरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्मरण न रहना। भूल जाना।

विस्साधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गैर्वनगर। (२) कामदेव का एक नाम।

वि० जिसे देशक विस्मय हो। आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला। विस्सारक-वि० [ सं० ] भुला देनेवाला। विस्मरण करनेवाला।

विस्मरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] लीन हो जाना। लय हो जाना। नष्ट हो जाना।  
 विस्मित-वि० [ सं० ] त्रिते विस्मय या आश्चर्य हुआ हो। चकित।  
 विस्मृत-वि० [ सं० ] जो स्मरण न हो। जो याद न हो। भूटा हुआ।  
 विस्मृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मूल जाना। विस्मरण।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विस्मय। यकीन। पतनार। (२) केलि के समय स्त्री और पुरुष में होनेवाला सगदा। (३) धप। हत्या।  
 विस्मयिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का उपकरण जिससे यज्ञ में आहुती दी जाती थी।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बड़ी मूर्छी। (२) मांस के जलने की गंध। घिरायें।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्याज। (२) गोदंती हरताल।  
 विस्मय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोदंती हरताल।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बड़ना। (२) धरना। क्षरण। रसना।  
 विस्मय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बुद्धवस्था। पुपा।  
 विस्मय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हाज बेर। हनुपा। (२) चरबी।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० दे० "विश्राम"।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] भात का मॉड़। पीच।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पक्षी। चिड़िया। इ०—सुखी परेवा जगत में सुधी एक विदग्ध।-विहारी। (२) सोना मक्खी। (३) घाण। तीर। (४) मेव। बादल। (५) चंद्रमा। (६) सूर्य। (७) एक नाग का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) सूर्य।  
 विस्मय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूर्य की एक प्रकार की क्षरण। (२) प्यारहर्षे मन्वन्तर के देवताओं का एक गण। (३) बहंगी में की यह छद्म जिसके दोनों सिरों पर बोस छटकाया जाता है।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] गण्ड।  
 विस्मय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बहंगी जिस पर अक्षर बोस डोते हैं।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पक्षी। चिड़िया। इ०—वाहन पशु विदग्ध विदग्ध अपने कर लीन्हें। महाराज दशरथ के रंक राव कीर्ति—सुखी। (२) घाण। तीर। (३) सूर्य। (४) चंद्रमा। (५) ग्रह।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विधोग। विडोह। (२) दे० "विहार"।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विहार करने की क्रिया। चलना। फिरना। घूमना। (२) विधोग। विडोह। (३) फेंकना।

विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ। (२) युद्ध। छद्माई।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह हास्य जो न बहुत उच्च हो, न बहुत मज्जुर। मध्यम हास्य।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] पंडित। विद्वान्।  
 वि० (१) घबराया हुआ। व्याकुल। (२) सिकका हाट टूटा हुआ हो।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आकाश। (२) दान। (३) पक्षी। चिड़िया।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मन बहलाव के लिये धीरे धीरे चलना। टहलना। घूमना। फिरना। (२) रति मीठा। संभोग। (३) रति-मीठा करने का स्थान। (४) बौद्ध भगवों के रहने का मठ। संघाराम।  
 विस्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ सं० ] विहारिणी (१) वह जो विहार करता हो। विहार करनेवाला। (२) श्रीकृष्ण का एक नाम।  
 विहित-वि० [ सं० ] (१) जिसका विधान किया गया हो। जैसे—यह कार्य शास्त्रविहित है। (२) किया हुआ। (३) दिया हुआ।  
 विहित-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कोई काम करने की आज्ञा। विधान।  
 विहीन-वि० [ सं० ] (१) रहित। बगैर। विना। (२) त्याग हुआ। छोड़ा हुआ।  
 विहीनता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विहीन होने का भाव या धर्म।  
 विहीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।  
 विहीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव के एक अनुचर का नाम।  
 विहित-संज्ञा पुं० [ सं० ] साहित्य में खियों के दस प्रकार के स्वभाविक अर्थकारों में से एक प्रकार का अर्थकार।  
 विहित-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जबरदस्ती या बलपूर्वक कृष्ण लेना या कोई काम करना। (२) विहार। मीठा। (३) खोलने की क्रिया।  
 विहित-वि० [ सं० ] मय या हठी प्रकार के और किसी मनोवेग के कारण जिसका चित्त ठिकाने न हो। घबराया हुआ। व्याकुल।  
 विहित-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विद्वत् होने की क्रिया या भाव। व्याकुलता। घबराहट।  
 विहित-संज्ञा पुं० [ सं० ] विहित। वह जो विद्वत् हो गया हो। वह जो बहुत घबरा गया हो।  
 वीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु। (२) पक्षी। चिड़िया। (३) मन।  
 वीकाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एकल स्थान। (२) प्रकाश। रोशनी।  
 वीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बटि।  
 वीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० शोध ] देखने की क्रिया। निरीक्षण।

- वीरणीय-वि० [ सं० ] जो देखने योग्य हो । दर्शनीय ।
- वीरवा-पेक्षा स्त्री० [ सं० ] देखने की क्रिया । वीक्षण । दर्शन ।
- वीर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विसंभय । आश्चर्य्य । (२) वह जो कुछ देना भाव । दृश्य । (३) वह जो नाचना हो । नाचने-वाला । नचक । (४) घोड़ा ।
- वि० देखने योग्य । दर्शनीय ।
- वीरिच-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लहर । तरंग । (२) बीच की खाड़ी जगह । अवकाश । (३) सुख । (४) रीति । चमक ।
- वीरिचरंग न्याय-संज्ञा पुं० दे० "न्याय" ।
- वीरिमात्नी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीरिमातिन । ससुद्र ।
- वीरि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तरंग । लहर ।
- वीरिकाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जलकौम ।
- वीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मूल कारण । (२) शुक । वीर्य्य । (३) तेज । (४) अन्न भादि का वीर । भीमा । (५) अक्षर । (६) फल । (७) आधार । (८) निधि । खजाना । (९) शक्त । (१०) मूल । (११) मजा । (१२) तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार के मंत्र जो बड़े बड़े मंत्रों के मूल तत्वों के रूप में माने जाते हैं । प्रत्येक देवी या देवता के लिये ये मंत्र अलग अलग होते हैं । जैसे,—ही, श्री, ह्रीं, ह्रूं आदि । (१३) वीर गणित ।
- वीरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विजयसार या पियासाळ नामक वृक्ष । (२) विजौरा नीचू । (३) सफेद सदिजन । (४) वीर । भीमा । (५) दे० "वीरक" ।
- वीरकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] उद्द की दाल जो बहुत पुष्टिकारक मानी जाती है ।
- वीरकर्कटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ककड़ी ।
- वीरकसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विजयसार के वीर । (२) विजौरा नीचू का सार या सत्त ।
- वीरका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मुसफा ।
- वीरकाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजौरा नीचू का पेड़ ।
- वीरकह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शीष्य जिसके खाने से वीर्य्य बढ़ता हो । वीर्य्य बढ़ानेवाली दवा ।
- वीरकोश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमलगट्ट । (२) सिंघादा । (३) फल, जिसमें वीर रहते हैं ।
- वीरकोशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अंडकीटा ।
- वीरगणित-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का गणित जिसमें अज्ञात राशियों को जानने के लिये उनके स्थान पर अक्षर भादि रखकर कुछ सांकेतिक चिह्नों आदि की सहायता से गणना की जाती है । यह साधारण अंकगणित की अपेक्षा जटिल होता है, पर इसके द्वारा अज्ञात राशियों का पता लगाने में बहुत सहायता मिलती है ।
- वीरगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] परबल ।

- वीरगुप्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हेम ।
- वीरहृम-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजयसार या अलग नामक वृक्ष ।
- वीरधाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] धर्मियों ।
- वीरभन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बंला खलना । दवा करना । (२) बंला । (३) चौर । (४) चकोर । (५) होच का पेड़ ।
- वीरपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पियासाळ । विजयसार । (२) मिखावा ।
- वीरपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी वंश का भादि या मूल पुष्प जिससे वह वंश चला हो ।
- वीरपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मरुमा । (२) मैनक । (३) ज्वार ।
- वीरपूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पिजौरा नीचू । (२) चकोतरा । (३) गलगल ।
- वीरपूर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विजौरा नीचू । (२) चकोतरा ।
- वीरपेशिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अंडकीटा ।
- वीरकलाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजौरा नीचू ।
- वीरमातुलक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कमलगट्ट ।
- वीरमाती-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीरगणित । एक प्रकार के वैष्णव जो पश्चिम भारत में पाए जाते हैं । ये लोग निर्गुण, उपासक होते हैं और देवी देवताओं का पूजन नहीं करते ।
- वीरज-संज्ञा पुं० [ सं० ] उद्द की दाल ।
- वीरजेवक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जमाळगोटा ।
- वीरजेवन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जमाळगोटा ।
- वीरघर-संज्ञा पुं० [ सं० ] उद्द । माप ।
- वीरघाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] महादेव । शिव ।
- वीरघृह-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजयसार । पियासाळ । (३) मिखावा ।
- वीरसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाघविंद ।
- वीरसू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घृही ।
- वीरस्नेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] पलाश । डाक ।
- वीरगुह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का न्याय । वि० दे० "न्याय" ।
- वीरालय-संज्ञा पुं० [ सं० ] जमाळगोटा ।
- वीरामल-संज्ञा पुं० [ सं० ] बृहामळ । महादा ।
- वीरविक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊँट ।
- वीरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीरिग । (१) वह जिसमें वीर हों । (२) विला । (३) चौलाई का साग ।
- वीरिविक-संज्ञा पुं० [ सं० ] आकाश से गिरनेवाला मोटा । विजौरा ।
- वीरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जो सोने के योग्य हो । (२) जो अच्छे लक में टपक हुआ हो । कुलीन ।
- वीर-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का खेल जो बालक लकड़ी के एक छोटे दंड से खेला करते थे । कूज

कोनों का यह भी मत है कि यह खेड़ने के लिये बना हुआ धातु का एक गोला होता था।

वीटि-छंका बी० [ छं० ] पान का बीज।

वीटिका-छंका बी० [ छं० ] छायावा हुमा पान का बीड़ा।

वीटी-छंका बी० [ छं० ] पान का बीड़ा।

वीषा-छंका बी० [ छं० ] (१) प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध पात्र जिसका प्रचार अथ तक भारत के पुराने वंश के गवैयों में है। इसमें वीच में एक लंबा पोला दंड होता है, जिसके दोनों सिरों पर दो बड़े बड़े सूँचे लगे होते हैं; और एक सूँचे से दूसरे सूँचे तक, वीच के दंड पर से होते हुए, छोड़े के तीन और पीतल के चार तार लगे रहते हैं। छोड़े के तार पत्रके और पीतल के कच्चे कहलाते हैं। इन सातों तारों को कसने या ढीला करने के लिये सात खैदियों रहती हैं। इन्हें तारों को समूका कर स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। वीच।

विशेष—प्राचीन भारत के तत् जाति के रागों में वीणा खर से पुरानी और अच्छी मानी जाती है। कहते हैं कि अनेक देवताओं के हाथ में यही वीणा रहती है। निम्न निम्न देवताओं के हाथ में रहनेवाली वीणाओं के नाम अलग अलग हैं। जैसे,—महादेव के हाथ की वीणा लंबी, सरस्वती के हाथ की कच्छरी, नारद के हाथ की महती और सुंदर के हाथ की कलापती कहलाती है। इसके अतिरिक्त वीणा के और भी कई भेद हैं। जैसे,—प्रित्थी, किलरी, विपंची, रंजनी, सारदी, रुद्र और नादेवर आदि। इन सब की आकृति आदि में भी जोड़ा बहुत अंतर रहता है।

पर्या०—बलकी। परिवदिनी। ध्वनिमाला। वंगमंडी। घोषवती। कंटकृणिका।

(२) विष्णु। बिजली।

वीणादंड-छंका पुं० [ छं० ] वीणा में का लंबा दंड या तुंसी का पना हुआ यह अंग जो मध्य में होता है। इसे प्रवाल भी कहते हैं।

वीणापाणि-छंका बी० [ छं० ] सरस्वती।

वीणाप्रसेध-छंका पुं० [ छं० ] यह गिराफ जो वीणा पर उसकी रक्षा के लिये चढ़ाया जाता है।

वीणाभिद्-छंका पुं० [ छं० ] एक प्रकार की वीणा।

वीणाघता-छंका बी० [ छं० ] (१) सरस्वती। (२) एक अप्सरा का नाम।

वीणावरा-छंका बी० [ छं० ] एक प्रकार की मन्त्री।

वीणावाद-छंका पुं० [ छं० ] वह जो वीणा बजाता हो। वीनकार।

वीणास्थ-छंका पुं० [ छं० ] नारद।

वीणाहस्त-छंका पुं० [ छं० ] शिव। महादेव।

वीतंस-छंका पुं० [ छं० ] वह आर्य, कंदा या हसी प्रकार की और सामग्री जिससे पशु और पक्षी आदि कैसाए जाते हैं।

वीत-छंका पुं० [ छं० ] (१) वे हाथी, घोड़े और सैनिक आदि जो युद्ध करने के योग्य न रह गए हों। (२) अंधरा के द्वारा मारना। अंधरा का प्रहार करना। (३) सांख्य के अनुसार अनुमान के दो प्रकारों में से एक।

विशेष—सांख्य में अनुमान के तीन भेद बड़े गए हैं—पूर्ववत् या केवलान्वयी, शेषवत् या व्यतिरेकी और सामान्यतोष्ट या अन्वयव्यतिरेकी। इनमें से पूर्ववत् और सामान्यतोष्ट अनुमान तो वीत कहलाते हैं और शेषवत् को अवीत कहते हैं। वि० दे० "अनुमान"।

वि० (१) जिसका परित्याग कर दिया गया हो। जो छोड़ दिया गया हो। (२) जो छूट गया हो। मुक्त। (३) जो वीत गया हो। जो समाप्त हो चुका हो। (४) जो निवृत्त हो चुका हो। जो (किसी बात से) रहित हो। जैसे,—वीतग। (५) सुंदर।

वीतदंभ-छंका पुं० [ छं० ] वह जिसने दंभ या अहंकार का परित्याग कर दिया हो। जिसका अभिमान नष्ट हो गया हो।

वीतभय-छंका पुं० [ छं० ] (१) वह जिसका भय छूट गया हो। (२) विष्णु।

वीतभीत-छंका पुं० [ छं० ] एक असुर का नाम।

वीतमल-वि० [ छं० ] (१) जो कोई पाप न करे। पाप-रहित। (२) जिसमें किसी प्रकार का कलक या मल आदि न हो। विमल।

वीतराग-छंका पुं० [ छं० ] (१) वह जिसने राग या भासक्ति आदि का परित्याग कर दिया हो। वह जो निरुद्ध हो गया हो। (२) बुद्ध का एक नाम। (३) जैनों के प्रधान देवता का एक नाम।

वीतशोक-छंका पुं० [ छं० ] (१) वह जिसने शोक आदि का परित्याग कर दिया हो। (२) अशोक नामक वृक्ष।

वीतसूत्र-छंका पुं० [ छं० ] यशोवती। जनेक।

वीतहृद्य-छंका पुं० [ छं० ] (१) एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि जो अंगिरा के वंश में थे। (२) शुभक के पुत्र का नाम।

वि० यश में आहुति देनेवाला। जो आहुति या हव्य देता हो। वीतहोत्र-छंका पुं० दे० "वीतिहोत्र"।

वीति-छंका बी० [ छं० ] (१) गति। चाल। (२) दीप्ति। चमक। आभा। (३) गर्म धारण करने की क्रिया। (४) क्षान्ति प्राप्ति की क्रिया। (५) यश। (६) घोड़ा।

वीतिका-छंका बी० [ छं० ] (१) जेठीमनु। मुलेठी। (२) नीलिका।

वीतिहोत्र-छंका पुं० [ छं० ] (१) अग्नि। (२) सूर्य। (३) पुराणानुसार राजा विद्यमत के एक पुत्र का नाम। (४) हव्य यंत्र के एक राजा का नाम। (५) वह जो यज्ञ करता हो।

वीती-छंका पुं० [ छं० ] वीति। एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वीथिका-छंका बी० दे० "वीथी"।

वीक्षणीय-वि० [ सं० ] जो देखने योग्य हो। दर्शनीय।  
 वीक्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देखने की क्रिया। वीक्षण। दर्शन।  
 वीक्ष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विरमय। आश्चर्य्यं। (२) वह जो कुछ देखा जाय। दृश्य। (३) वह जो नाचता हो। नाचने-वाला। नर्तक। (४) घोड़ा।  
 वि० देखने योग्य। दर्शनीय।  
 वीचि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लहर। तरंग। (२) बीच की खाली जगह। अवकाश। (३) सुन्न। (४) दीप्ति। चमक।  
 वीचित्ररंग न्याय-संज्ञा पुं० दे० "न्याय"।  
 वीचिमात्मी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीचिमात्मीन। समुद्र।  
 वीचो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तरंग। लहर।  
 वीचोकाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जलकीआ।  
 वीक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मूल कारण। (२) श्रुत। वीर्य्यं। (३) तेज। (४) अन्न आदि का बीज। बीआ। (५) अंकुर। (६) फल। (७) आधारा। (८) निधि। खजाना। (९) शक्ति। (१०) मूल। (११) मज्जा। (१२) तंत्रिकों के अनुसार एक प्रकार के मंत्र जो बड़े बड़े मंत्रों के मूल तत्वों के रूप में माने जाते हैं। प्रत्येक देवी या देवता के लिये ये मंत्र अलग अलग होते हैं। जैसे,—ह्रीं, श्रीं, ह्रीं आदि। (१३) बीज गणित।  
 वीजक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विजयसार या विद्यासाल नामक वृक्ष। (२) विजौरा नीवू। (३) सफेद सहिजन। (४) बीज। बीआ। (५) दे० "बीजक"।  
 वीजकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] उद्द की दाल जो बहुत पुष्टिकारक मानी जाती है।  
 वीजककटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ककड़ी।  
 वीजकसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विजयसार के बीज। (२) विजौरा नीवू का सार या सस।  
 वीजका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुवह्वा।  
 वीजकाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजौरा नीवू का पेड़।  
 वीजकृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह औषध जिसके खाने से वीर्य्य बढ़ता हो। वीर्य्य बढ़ानेवाली दवा।  
 वीजकोश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमलगोटा। (२) सिंघादा। (३) फल, जिसमें बीज रहते हैं।  
 वीजकोशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अंबकोश।  
 वीजगणित-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का गणित जिसमें अज्ञात राशियों को जानने के लिये उनके स्थान पर अक्षर आदि रखकर कुछ सांकेतिक चिह्नों आदि की सहायता से गणना की जाती है। यह साधारण अंकगणित की अपेक्षा लट्टिक होमा है, पर इसके द्वारा अज्ञात राशियों का पता लगाने में बहुत सहायता मिलती है।  
 वीजगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] परवल।

वीजगुप्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्षेम।  
 वीजहृत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजयसार या असन नामक वृक्ष।  
 वीजधाम्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] घनियाँ।  
 वीजन्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पंखा सलना। हवा करना। (२) पंखा। (३) चौर। (४) चक्री। (५) लोच का पेड़।  
 वीजपादप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्यासाल। विजयसार। (२) मिठावॉ।  
 वीजपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी वंश का आदि या मूल पुष्प जिससे वह वंश चला हो।  
 वीजपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मरुमा। (२) मेनकल। (३) ज्वार।  
 वीजपूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विजौरा नीवू। (२) चकोतरा। (३) गलगल।  
 वीजपूर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विजौरा नीवू। (२) चकोतरा।  
 वीजपेशिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अंबकोश।  
 वीजफलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजौरा नीवू।  
 वीजमातृका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कमलगोटा।  
 वीजमार्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] बीजमार्ग। एक प्रकार के वैष्णव जो पश्चिम भारत में पाए जाते हैं। ये लोग विष्णु-उपासक होते हैं और देवी देवताओं का पूजन नहीं करते।  
 वीजरत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] उद्द की दाल।  
 वीजरचक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जमालगोटा।  
 वीजरचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जमालगोटा।  
 वीजवर-संज्ञा पुं० [ सं० ] उद्द। माप।  
 वीजवाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] महादेव। शिव।  
 वीजवृक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजयसार। विद्यासाल। (२) मिठावॉ।  
 वीजसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] बायबिडिंग।  
 वीजसू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी।  
 वीजस्नेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] पलाय। राक।  
 वीजोक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का न्याय। वि० दे० "न्याय"।  
 वीजाढ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] जमालगोटा।  
 वीजमल-संज्ञा पुं० [ सं० ] घुसगुल। महादा।  
 वीजाविक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊँट।  
 वीजि-संज्ञा पुं० [ सं० ] बीजिन। (१) वह जिसमें बीज हों। (२) विता। (३) चौलाई का साग।  
 वीजोदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] आकाश से गिरनेवाला थोला विनीरी।  
 वीज्य-वि० [ सं० ] (१) जो बोन के योग्य हो। (२) जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ हो। कुलीन।  
 वीटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का खेल जो बालक लकड़ी के एक छेदे ढंसे से खेला करते थे। कुछ

कोंगों का यह भी मत है कि यह खेजून के लिये बना हुआ धातु का एक गोळा होता था।

बीटिका-छंका बी० [ सं० ] पानु का बीज।

बीटिका-छंका बी० [ सं० ] छगाया हुआ पानु का बीड़ा।

बीटी-छंका बी० [ सं० ] पानु का बीड़ा।

बीस-छंका बी० [ सं० ] (१) प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध धाना जिसका प्रचार अद्य तक भारत के पुराने वंग के गयेयों में है। इसमें बीच में एक लंबा पीला दंड होता है, जिसके दोनों सिरों पर दो बड़े बड़े लंबे लंगे होते हैं; और एक दूध से दूसरे दूध तक, बीच के दंड पर से होते हुए, छोड़े के तीन और पीतल के चार तार लगे रहते हैं। छोड़े के तार पक्के और पीतल के कच्चे कहलते हैं। इन सारों सारों को छसने या बीटा करने के लिये सात खुरिया रहती हैं। इन्हें सारों को सन्धार कर स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। बीन।

विशेष-प्राचीन भारत के तत् जाति के वानों में वीणा का से पुरानी और अच्छी मानी जाती है। कहते हैं कि अनेक देवताओं के हाथ में यही वीणा रहती है। सिद्ध सिद्ध देवताओं आदि के हाथ में रहनेवाली वीणाओं के नाम अलग अलग हैं। जैसे,—महादेव के हाथ की वीणा लंबी, सरस्वती के हाथ की कल्परी, नारद के हाथ की महली और वसुदेव के हाथ की कथावती कहलाती है। इसके अतिरिक्त वीणा के और भी कई भेद हैं। जैसे,—त्रितंत्री, किशरी, विषंकी, रंजनी, सारदी, रुद्र और नारदवर आदि। इन सब की आकृति आदि में भी बीड़ा बहुत अंतर रहता है।

पस्था—बलकी। परिवादिनी। ध्वनिमाहा। वंगमहो। घोष-वती। कंठकृणिका।

(२) विपुल। विजली।

बीषादंड-छंका पुं० [ सं० ] वीणा में का लंबा दंड या तुंबी का पना हुआ यह अंग जो मध्य में होता है। इसे प्रवाल भी कहते हैं।

बीषापाणि-छंका बी० [ सं० ] सरस्वती।

बीषाप्रसेव-छंका पुं० [ सं० ] वह गिलाफ जो वीणा पर ठसकी रक्षा के लिये चढ़ाया जाता है।

बीषाभिदु-छंका पुं० [ सं० ] एक प्रकार की वीणा।

बीषावती-छंका बी० [ सं० ] (१) सरस्वती। (२) एक अप्सरा का नाम।

बीषावरा-छंका बी० [ सं० ] एक प्रकार की मण्डी।

बीषाबाद-छंका पुं० [ सं० ] यह जो वीणा वजाता हो। बीनकार।

बीषास्य-छंका पुं० [ सं० ] नारद।

बीषाहस्त-छंका पुं० [ सं० ] निव। महादेव।

बीस-छंका पुं० [ सं० ] वह जाल, फंदा या इसी प्रकार की और क्षामनी जिससे पशु और पक्षी आदि फँसाए जाते हैं।

बीत-छंका पुं० [ सं० ] (१) वे हाथी, घोड़े और सैकिक आदि को बुद्ध करने के योग्य न रह गए हों। (२) अंडुका के द्वारा मारना। अंडुका का प्रहार करना। (३) साध्य के अनुसार अनुमान के दो प्रकारों में से एक।

विशेष-साध्य में अनुमान के तीन भेद कहे गए हैं—पूर्ववत् या वेवशान्वयी, दोषवत् या स्वतिरेकी और सामान्यतोष्ट या अन्वयव्यतिरेकी। इनमें से पूर्ववत् और सामान्यतोष्ट अनुमान तो बीत कहलाते हैं और दोषवत् को अभीत कहते हैं। वि० दे० "अनुमान"।

वि० (१) जिसका परिचयाग कर दिया गया हो। जो छोड़ दिया गया हो। (२) जो छूट गया हो। मुक्त। (३) जो बीत गया हो। जो समाप्त हो चुका हो। (४) जो निवृत्त हो चुका हो। जो (किसी बात से) रहित हो। जैसे,—बीतगाम। (५) सुंदर।

बीतदंभ-छंका पुं० [ सं० ] वह जिसने दंभ या अहंकार का परिचयाग कर दिया हो। जिसका अभिमान नष्ट हो गया हो।

बीतमय-छंका पुं० [ सं० ] (१) वह जिसका मय छूट गया हो। (२) विष्णु।

बीतभीत-छंका पुं० [ सं० ] एक असुर का नाम।

बीतमल-वि० [ सं० ] (१) जो कोई पाप न करे। पाप-रहित। (२) जिसमें किसी प्रकार का कलंक या मल आदि न हो। विमल।

बीतराग-छंका पुं० [ सं० ] (१) वह जिसने राग या भासुक्ति आदि का परिचयाग कर दिया हो। वह जो निरहृष्ट हो गया हो।

(२) बुद्ध का एक नाम। (३) जैनों के प्रधान देवता का एक नाम।

बीतशीफ-छंका पुं० [ सं० ] (१) वह जिसने शोक आदि का परिचयाग कर दिया हो। (२) असोक नामक वृक्ष।

बीतसूत्र-छंका पुं० [ सं० ] यज्ञोपवीत। जनेक।

बीतहृदय-छंका पुं० [ सं० ] (१) एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि जो अंगिरा के वंश में थे। (२) शुनक के पुत्र का नाम।

वि० यज्ञ में आहुति देनेवाला। जो आहुति या हव्य देता हो।

बीतहोत्र-छंका पुं० दे० "बीतिहोत्र"।

बीति-छंका बी० [ सं० ] (१) गति। चाल। (२) दक्षि। चमक। आभा। (३) गर्भ धारण करने की क्रिया। (४) छाने या पीने की क्रिया। (५) यज्ञ। (६) घोड़ा।

बीतिका-छंका बी० [ सं० ] (१) जेठीमधु। मुलेठी। (२) नीलिका।

बीतिहोत्र-छंका पुं० [ सं० ] (१) अग्नि। (२) सूर्य। (३) पुराणा-नुसार राजा विषयवत के एक पुत्र का नाम। (४) हृदय वंश के एक राजा का नाम। (५) वह जो यज्ञ करता हो।

बीती-छंका पुं० [ सं० ] बीतिव। एक प्राचीन ऋषि का नाम।

बीथिका-छंका बी० दे० "बीथी"।

**वीथी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) इत्य षाड्य या रूपक के २७ भेदों में से एक भेद जो एक ही अक्षर का होता है और जिसमें एक ही नायक होता है। इसमें आकाशमापित और शृंगाररस की अधिकता रहती है। प्राचीन काल में ऐसे रूपक अलग भी खेले जाते थे और दूसरे नाटकों के साथ भी। इसके नीचे खिले १३ अंग माने गए हैं—(१) उदात्तक (२) अदलित (३) प्रपंच (४) प्रिगत (५) छलन (६) वाक्केली (७) अधिवल (८) गंद (९) अवस्यंदित (१०) नालिका (११) असप्रलाप (१२) व्याहार और (१३) शृद्ध। धनंजय ने अपने द्वादशरूपक में वीथी के उक्त तरह अंगों का उल्लेख करके कहा है कि सूत्रधार इन वीथियों के द्वारा अर्थ और पात्र का प्रस्ताव करके प्रस्तावना के अंत में चला जाय और तब परतु-प्रपंचन आरंभ हो। साहित्यदर्पण के अनुसार वीथी के अंग ही प्रहसन के भी अंग हो सकते हैं। अंतर केवल यही है कि वीथी में तो इनका होना आवश्यक है, पर प्रहसन में ऐच्छिक होता है। अतः कहा जा सकता है कि वीथी और प्रहसन दोनों प्रस्तावना के ऐसे अंगों को कहते थे जिनमें हास्य रस की अधिकता होती थी और जिनके द्वारा सामाजिकों या दार्शकों के मन में अभिनय के प्रति रुचि या उकंठा उत्पन्न की जाती थी। (२) मार्ग। रास्ता। सड़क। (३) वह आवाजा मार्ग जिससे होकर सूर्य चलता है। रवि-मार्ग। (४) आकाश में नक्षत्रों के रहने के स्थानों के कुल विशिष्ट भाग जो वीथी या सड़क के रूप में माने गए हैं। जैसे,—नागवीथी, गजवीथी, ऐरावती वीथी, गोवीथी, मृगवीथी आदि।

**विशेष**—आकाश में उत्तर, मध्य और दक्षिण में क्रमशः ऐरावत, जरदमय और वैश्वानर नामक तीन स्थान माने गए हैं; और इनमें से प्रत्येक स्थान में तीन तीन वीथियाँ हैं। इस प्रकार कुल नौ वीथियों में सत्ताईस नक्षत्रसमान भागों में विभक्त हैं; अर्थात् प्रत्येक वीथी में तीन तीन नक्षत्रों का अवस्थान माना गया है।

**वीथ्यंग-संज्ञा** पुं० [ सं० ] रूपक में वीथी के अंग जो १३ माने गए हैं। वि० दे० "वीथी" (१)।

**वीथ्र-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) आकाश। (२) अग्नि। (३) वायु।

**वीनाह-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह जंगला या उड़ना आदि जो कूट के ऊपर लगाया जाता है।

**वीपा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] विजली।

**वीरकरा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक नदी का नाम, जिसे वीरकरा भी कहते हैं।

**वीरधर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) मोर। (२) जंगली पशुओं के साथ होनेवाला युद्ध। (३) एक प्राचीन नदी का नाम।

**वीर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वह जो साहसी और बलवान् हो। पूर। यहादुर। (२) योद्धा। सैनिक। सिपाही। (३) वह जो किसी विपत्त परिस्थिति में भी अपने बक्कर उद्यमपूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करे। (४) वह जो किसी काम में और लोगों से बहुत बक्कर हो। जैसे,—दानवीर। कर्मवीर। (५) पुत्र। लड़का। (६) पति। धरम। (७) भाई। (४ी०) (८) महाभारत के अनुसार द्रुपद्यु नामक षड्य के पुत्र का नाम। (९) विष्णु। (१०) जिन। (११) साहित्य में शृंगार आदि नौ रसों में से एक रस जिसमें उत्साह और वीरता आदि की परिपुष्टि होती है। इसका वर्ण गौर और देवता इंद्र माने गए हैं। उत्साह इसका स्याधी भाव है और एति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क और रोमांच आदि इसके संचारी भाव हैं। भयानक, श्रांत और शृंगार रस का यह रस विरोधी है। (१२) तांत्रिकों के अनुसार साधना के तीन भावों में से एक भाव। कहते हैं कि दिन के पहले दस दंड में पशु पाव से, बीच के दस दंड में वीर भाव से और अंतिम दस दंड में दिव्य भाव से साधना करनी चाहिए। कुछ लोगों का यह भी मत है कि पहले १६ वर्ष की आयु तक पशु भाव से, फिर ५० वर्ष की आयु तक वीर भाव से और इसके उपरांत दिव्य भाव से साधना करनी चाहिए। (१३) तांत्रिकों के अनुसार वह साधक जो इस प्रवाह वीर भाव से साधना करता है। दिन रात मद्य पीना, पगलों की सी चेष्टा रखना, शरीर में मस्य छत्पाए रहना और अपने इष्ट देव को मनुष्य, बकरी, भेड़ या भैंसे आदि का बलिदान चढ़ाना इनका मुख्य कर्तव्य होता है। (१४) वह जो किसी काम में बहुत चतुर हो। दोस्तियार। (१५) कर्मठ। कर्मशील। (१६) यज्ञ की अग्नि। (१७) सीसिया नामक विष। (१८) बाली मोर्चे। (१९) पुष्करसूत। (२०) कौजी। (२१) लस। उचरी। (२२) आलुसुलारा। (२३) पीली कटसरैया। (२४) चौगई का साग। (२५) वाराहीकंद। गेंदी। (२६) छताकरंज। (२७) कनेर। (२८) अर्जुन नामक वृक्ष। (२९) काकोली। (३०) सिंदूर। (३१) शालिपर्णी। सरियन। (३२) लोहा। (३३) नरसल। नरकट। (३४) निजार्वा। (३५) कुवा। (३६) क्षयभक्त नामक भोपधि। (३७) तोरई।

**वीरक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) सफेद कनेर। (२) वह जो किसी निहित देव का निवासी हो। (३) पुराणानुसार चाण्डूय मन्वन्तर के एक मनु का नाम।

**वीरकरा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक नदी का नाम जिसे वीरकरा भी कहते हैं।

**वीरकर्म-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वीरकर्म। वह जो वीरों की भाँति काम करता हो। वीरोचित कार्य करनेवाला।

वीरकाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसे पुत्र की कामना हो। पुत्र की इच्छा रखनेवाला।  
 वीरकुण्डि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो वीर पुत्र प्रसव करती हो।  
 वीरकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार पांचाल के एक रामकुमार का नाम।  
 वीरकेशरी-संज्ञा पुं० [ सं० वीरकेशरि ] वह जो वीरों में सिंह के समान अथवा बहुत श्रेष्ठ हो।  
 वीरकेशरी-संज्ञा पुं० दे० "वीरकेशरी"।  
 वीरगति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह उत्तम गति जो वीरों को रणक्षेत्र में मरने से प्राप्त होती है। (कहते हैं कि युद्ध-क्षेत्र में वीरतापूर्वक लड़कर मरनेवाले लोग स्वर्ग स्वर्ग धाते हैं।)  
 (२) स्वर्ग।  
 वीरवक्रेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु।  
 वीरवृ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुश, धर्म, कर्त और द्यूय आदि की जाति के वृण। (२) उशीर। खस। (३) पुराणानुसार एक प्रजापति का नाम जिनकी कन्या असिकी का विवाह दश से हुआ था। इस कन्या के गर्भ से पॉच हजार वीर पुत्र उत्पन्न हुए वे जिनसे सृष्टि बड़ी थी। (४) एक प्राचीन ऋषि का नाम।  
 वीरणुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक नाग का नाम, जिसका वल्लभ महाभारत में है।  
 वीरतर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शर। शीर। वाण। (२) उशीर। खस।  
 वीरतल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अर्जुन वृक्ष। (२) तालमखाना। (३) मिठाई। (४) शर नामक वृण। (५) पिपासा नामक वृक्ष।  
 वीरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वीर होने का भाव। शूरता। बहादुरी।  
 वीरदाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक राजकुमार का नाम।  
 वीरदाम्ना-संज्ञा पुं० [ सं० वीरदाम्न ] कामदेव का एक नाम।  
 वीरनायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] उशीर। खस।  
 वीरपट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक विशेष प्रकार का पहनावा जो युद्ध के समय पहना जाता था।  
 वीरपत्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वैदिक काल की एक नदी का नाम। (२) वह जो किसी वीर की पत्नी हो।  
 वीरपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अंग। अंग। (२) एक प्रकार का महाकंद जिसे धारणी भी कहते हैं।  
 वीरपर्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरपर्व। माघपत्री।  
 वीरपाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पाण जो वीर लोग युद्ध का धर्म मिराने के लिये करते हैं।  
 वीरपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) महापत्नी। सद्देई। (२) सिद्धरूपी। कटकन।

वीरप्रमोद-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।  
 वीरप्रसू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो वीर संतान उत्पन्न करती हो।  
 वीरयाहु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु। (२) घटाष्ट के एक पुत्र नाम। (३) रावण के एक पुत्र का नाम।  
 वीरभद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अक्षमेव यज्ञ का घोड़ा। (२) उशीर। खस। (३) शिव के एक प्रसिद्ध गण का नाम जो उनके पुत्र और अवतार माने जाते हैं। कहते हैं कि दक्ष का यज्ञ नष्ट करने के लिये शिवजी ने अपने मुँह से इनकी सृष्टि की थी। वीरभद्र ने बहुत से यज्ञों की सृष्टि करके दक्ष का यज्ञ नष्ट किया था।  
 वीरभद्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] रास। उशीर।  
 वीरभद्र रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो सन्निपात के लिये बहुत उपकारी माना जाता है।  
 वीरभुक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आधुनिक वीरभूम का प्राचीन नाम।  
 वीरमणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार देवपुर के एक प्राचीन राजा का नाम जिसके पुत्र रत्नमोद ने रामचंद्रजी के यज्ञ का घोड़ा पकड़ लिया था। इस पर क्रोध और हनुमान आदि ने इससे युद्ध किया था। कहते हैं कि इस युद्ध में महादेवजी भी वीरमणि की ओर से लड़े थे और उन्होंने क्रोध की अपने पादा में रॉध लिया था। तब रामचंद्र ने आकर उन्हें और अपना घोड़ा छुड़ाया था।  
 वीरमत्स्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामायण के अनुसार एक प्राचीन जाति का नाम।  
 वीरमर्दन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक दानव का नाम।  
 वीरमर्दन-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का डोल जो युद्ध के समय बजाया जाता था।  
 वीरमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० वीरमत् ] वह स्त्री जो वीर पुत्र प्रसव करती हो। वीरजननी वीरमत्।  
 वीरमार्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ग।  
 वीरमुद्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का छटका जो प्राचीन काल में पैर की बीचवाली उँगली में पहना जाता था।  
 वीररज-संज्ञा पुं० [ सं० वीररज ] सिद्धर।  
 वीरराधिव-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामचंद्र का एक नाम।  
 वीररेणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] भीमसेन का एक नाम।  
 वीरललित-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीरों का सा, पर साथ ही कोमल स्वभाव।  
 वीरलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ग।  
 वीरवती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मांसरोहिणी नाम की छता।  
 वीरवली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवदासी नाम की छता।





घोरघह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो घोड़ों द्वारा खींच जाय। (२) रथ।

घोरविज्ञापक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शूद्रों से धन आदि लेकर हवन करता हो।

घोरवृक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भिलावॉ। (२) अर्जुन नामक वृक्ष। (३) महाशालि। देवधान्य। (४) विष्वांतर या वेल्वांतर नामक वृक्ष। (५) सार्वो नामक धान्य। (६) शाल वृक्ष।

घोरवेतलस-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमलबैत।

घोरप्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो अपने संकल्प पर सदा दृढ़ रहता हो। घोरतापूर्वक अपने संकल्प का पालन करने-वाला। (२) वह ब्रह्मचारी जो बहुत ही निष्ठा तथा आचार-पूर्वक रहता हो। (३) पुराणानुसार मनु के एक पुत्र का नाम जो सुमना के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

घोरशय-संज्ञा पुं० [ सं० ] घोरों के सोने का स्थान, रणभूमि। युद्धक्षेत्र। लड़ाई का मैदान।

घोरशयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] घोरों के सोने का स्थान, रणभूमि।

घोरशय्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रणभूमि।

घोरश्याक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बधुभा नामक साग।

घोरशैव-संज्ञा पुं० [ सं० ] शैवों का एक भेद।

घोरसू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो वीर पुत्र प्रसव करती हो। वीर-जननी।

घोरसेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा नल के पिता का काम। (२) आरूक या भाद नाम की जड़ी जो हिमालय में होती है। (३) आळुपुत्रारा।

घोरस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पशु जिसका यज्ञ में बलिदान हो।

घोरस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साधकों का एक प्रकार का आसन जिसे घोरानन कहते हैं। (२) स्वर्ग, जहाँ वीर लोग मरने पर जाते हैं।

घोरहा-संज्ञा पुं० [ सं० वीरह ] (१) विष्णु। (२) वह अग्निहोत्री ब्राह्मण जिसकी अग्निहोत्रवाली अग्नि आलस्य आदि के कारण बुझ गई हो।

वि० घोरों को मारनेवाला।

घोरहोत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन प्रदेश का नाम जो दिव्य पर्वत पर था।

घोरतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो घोरों का अंत या नाश करता हो। (२) अर्जुन नामक वृक्ष।

घोरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मुरामांसी। मुरा। (२) क्षीर का-कोठी। (३) सुई काँच। (४) पल्लवा। (५) केला। (६) विदारि कंद। (७) काकोली। (८) दातावर। (९) घो कुआँ। (१०) माहरी। (११) अतीस। अंतिविपा। (१२) मदिनां। शंवार। (१३) शीशम का पेड़। (१४) गंभारी नामक वृक्ष। (१५) एभिपर्णी। पिठवन। (१६) छिरोटी।

(१७) छुटकी। (१८) जटामांसी। पालक। (१९) अंबला। (२०) वह स्त्री जिसके पति और पुत्र हों। (२१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

घोराचारी-संज्ञा पुं० [ सं० वीराचारि ] एक प्रकार के वामनाओं या शाक जो अपने दृष्ट देवताओं की वीर भाव से उपासना करते हैं। ये लोग मंध को शक्ति और मांस को शिव स्वरूप मानते हैं, और इन दोनों के भक्तों को वैभव समझते हैं। ये लोग चक्र में बैठकर पूजन करते हैं और बीच-बीच में किसी स्त्री को काळी मानकर उस पर मध, मांस आदि चढ़ाते हैं। ये लोग प्रायः शव या शूल धारि खाकर उस की पूजा करते और उसी के द्वारा अनेक प्रकार के साधन और पूजन करते हैं।

घोराट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्जुन नामक वृक्ष।

घोरान-वि० [ फा० ] (१) उजड़ा हुआ। जिसमें आबादी न रह गई हो। जैसे,—यह बस्ती बिल्कुल घोरान हो गई है। (२) जिसकी शोभा नष्ट हो गई हो। धीहीन।

घोराना-संज्ञा पुं० [ फा० ] वह स्थान जहाँ किसी प्रकार की आबादी न हो। उजाड़ जंगल।

घोरानी-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] घोरान या उजाड़ होने का भाव।

घोरान्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमलवैत।

घोरारूक-संज्ञा पुं० [ सं० ] आरूक या भाद नाम की जड़ी जो हिमालय में होती है।

घोराशंसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह युद्धभूमि जो बहुत ही भीषण और भयानक जान पड़ती हो।

घोराष्टक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कांसिकेय के एक अनुचर का नाम।

घोरासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] बैठने का एक प्रकार का आसन या मुद्रा जिसका व्यवहार प्रायः पूजन और तंत्रिकों आदि के साधन में होता है। इसमें बाएँ पैर और टखने पर दाहिनी जाँघ रखकर बैठते हैं।

घोरिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घोरण प्रजापति की कन्या असिनी जो दस को व्याही थी। (२) वह स्त्री जिसे पुत्र हो। पुत्रवती। (३) एक प्राचीन नदी का नाम।

घोरुध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वृक्ष और वनस्पति आदि। (२) शोपथि। (३) विलुता या शुक्तिनी नाम की लता।

घोरुधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दवा के रूप में काम में आनेवाली वनस्पति। शोपथि।

घोरेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

घोरेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

घोररोपजीविक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अग्निहोत्र के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता हो।

घोर्यै-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घोरों के सात घातुओं में से एक घातु जिसका निर्माण सप्त के अंत में होता है और जिसके कारण

शरीर में बल और कति आती है। इसे चरम धातु भी कहते हैं। यह स्त्री-प्रसंग के समय अथवा रोग आदि के कारण योही मूर्च्छित्य से निकलता है। कुछ लोगों का मत है कि वीर्य दो प्रकार का है—शीत और उष्ण। और कुछ लोगों का मत है कि यह आठ प्रकार का होता है—उष्ण, शीत, क्षिप्त, रूक्ष, विषाद, पिच्छल, मृदु और तीव्र। वि० दे० "शुक्र"।

पर्या०—शुक्र। तेज। रेत। वीज। हृदिय।  
(२) दे० "रज"। (३) वीरक के अनुसार किसी पदार्थ का वह सार भाग जिसके कारण उस पदार्थ में शक्ति रहती है। किसी वस्तु का मूल तत्त्व। (४) पराक्रम। बल। शक्ति। सामर्थ्य। (५) अन्न आदि का वीज। बीजा।

वीर्य्यहृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] बलवान्। शक्तवत्।  
वीर्य्यहृत्-वि० [ सं० ] जो बल या वीर्य उल्लस करता हो। बल-कारक।

वीर्य्यज-संज्ञा पुं० [ सं० ] लडका। बेटा। पुत्र।  
वीर्य्यतम-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो बहुत पदा बलवान हो।  
वीर्य्यधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार भूक्ष हीम से रहनेवाले एक प्रकार के क्षत्रिय।

वीर्य्यधत्-वि० [ सं० ] (१) बलवान्। मन्वत्। (२) मांसल। हृष्ट पुष्ट।

वीर्य्यशुक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ श्री० वीर्य्यशुक्रा ] यह प्रतिज्ञा या प्रण जो वीर्य्य संबंधी हो। जैसे,—यह प्रतिज्ञा करना कि जो पुरुष (या स्त्री) अमुक कार्य करेगा, उसके साथ इस स्त्री (या पुरुष) का विवाह होगा।

वीर्य्यसह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यवंशी राजा सौदास के पुत्र कल्पापार का एक नाम।

वीर्य्यहारी-संज्ञा पुं० [ सं० वीर्य्यहारिन् ] एक यक्ष का नाम जो दुःसह नामक यक्ष की कन्या के गर्भ से किसी चोर के वीर्य्य से उत्पन्न हुआ था। कहते हैं कि जो लोग कदाचारी होते हैं, या बिना हाथ पैर धोए सरोई घर में आते हैं, उनके घर में यह यक्ष अपने और दो भाइयों के साथ रहता है।

वीर्य्यतिराय-संज्ञा पुं० [ सं० ] कौनियों के अनुसार यह पाप कर्म जिसका उद्भव होने से जीव हृष्ट पुष्टांग होते हुए भी शक्ति-विहीन हो जाता है और कुछ पराक्रम नहीं कर सकता।

वीर्य्या-संज्ञा स्त्री० दे० "वीर्य्य"।  
वीर्य्यार-संज्ञा पुं० दे० "विहार"।  
वीर्य्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्तन का अगला भाग। (२) बीड़ी। चेंडी।

वीर्य्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धैर्य। (२) पौई का साग।  
वीर्य्यकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धनभंडा। (२) धैर्य।  
वीर्य्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समृद्ध। सुंदर। (२) श्री करौड़ की

संख्या। (३) एक सुहृद् का नाम। उ०—माघ शुक्ल भूत दिन जानो। सुंद सुहृत्त में पहिचानो।—विश्राम।

वृंदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तुलसी। (२) राधिका के सोलह नामों में से एक नाम।

वृंदाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] परमाष्टा नाम का पेड़।

वृंदाकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवा। (२) श्रेष्ठ शक्ति।

वृंदाकराय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वृंदावन।

वृंदावन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मथुरा जिले का एक प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ जो भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का क्रीडा-क्षेत्र माना जाता है। कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने अपनी अविवाहात याज्ञ लीलाएँ यहीं की थीं। पुराणों में वृंदावन के संबंध में अनेक प्रकार की विलक्षण कथाएँ आदि पाई जाती हैं। महामुद्र गजन्वी ने वृंदावन और उसके आस पास के अनेक स्थानों को विष्णुकुल नष्ट कर डाला था, और बहुत दिनों तक यह उसी दशा में पड़ा रहा। पर पीछे से चैतन्य महाप्रभु ने मथुरा के किनारे घतमान वृंदावन नामक नगर की स्थापना की थी। इस नगर में इस समय हजारों बड़े बड़े मंदिर हैं और दूर दूर से यात्री लोग यहाँ दर्शनों के लिये आते हैं।

वृंदावनेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीकृष्ण का एक नाम।

वृंदावनेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राधिका का एक नाम।

वृंदाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह पदार्थ जो पुष्टिकारक हो। बल-वर्धक द्रव्य। (२) नावप्रकार के अनुसार एक प्रकार का पूर्य-पान। (३) असंगंध। (४) मुनक। (५) सुई-कुहवा। (६) चरक के अनुसार सूत्र के मांस में पकाया हुआ जो का सफ़।

वृंदाणवस्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार की वस्ति जिसे निरुद्ध या निरुद्ध भी कहते हैं। वि० दे० "निरुद्धवस्ति"।

वृक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुत्ते की जाति का एक मांसाहारी पशु। मेढ़िया। (२) शृगाल। गीदड़। (३) कौवा। (४) क्षत्रिय। (५) चोर। (६) वज्र। (७) भगस्त का पेड़। (८) गंधा-विरोज।

वृकरुमर्मा-संज्ञा पुं० [ सं० वृकरुमर्म् ] एक असुर का नाम।

वृकखंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृकगत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम।

वृकप्राह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृकजंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृकदंत संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक राक्षस का नाम।

हृषी की कन्या सारंगिनी कृमर्षण की ज्यौही थी।  
वृकवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] कृपा।

हुभा । (५) जो हयपत्र हुआ हो । जात । (६) निष्पन्न । सिद्ध । (७) डका हुआ । आच्छादित ।  
 वृत्तक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह गद्य जिसमें कोमल तथा मधुर अक्षरों और छोटे छोटे समासों का व्यवहार किया गया हो । (२) छंद ।  
 वृत्तककटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खरवृत्ता ।  
 वृत्तक्रीडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवशाली नाम की छता ।  
 वृत्तकौप-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीली देवदाली ।  
 वृत्तखंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी वृत्त या गोलार्ध का कोई अंश । (२) मेहराव ।  
 वृत्तगंधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह गद्य जिसमें अनुमासों और समासों की अधिकता हो । यह गद्य जिसमें पद्य का आनंद आता हो ।  
 वृत्तगुंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीर्षनाल या गोंदला नाम की घास ।  
 वृत्तचेष्टा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्वभाव । प्रकृति । मिजाज । (२) आचरण । चाल चलन ।  
 वृत्ततंडुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ययनाल । जवनाल ।  
 वृत्तपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुत्ररात्री नाम की छता ।  
 वृत्तपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पात्र । पावा । (२) बड़ी शान-पुष्पी ।  
 वृत्तपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिरिस का पेड़ । (२) कर्म या कर्म का पेड़ । (३) जलधेत । (४) सुई कर्म । (५) सदा-गुलाब । सेवती । (६) मोतिया । (७) मल्लिका ।  
 वृत्तपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नागदमनी । (२) सदा गुलाब । सेवती ।  
 वृत्तफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कोई गोलकार फल । (२) काली मिर्च । (३) अनार । (४) बेर । (५) कैय । कपिराय । (६) छाल अपभ्रंश । छाल चिचदा । (७) करंज का पेड़ । (८) तरबूज । (९) खरवृत्ता ।  
 वृत्तफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बंगन । भंडा । (२) कढ़वी कढ़वी । (३) आँवला ।  
 वृत्तबंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो वृत्त या छंद के रूप में बंधा गया हो ।  
 वृत्तमोजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंडीर या गिंदनी नाम का साग ।  
 वृत्तमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सफेद आरु । (२) त्रिपुर-मल्लिका ।  
 वृत्तध्वनि-संज्ञा [ सं० ] जिसका आचरण उचम हो । सदाचारी ।  
 वृत्तधीम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भिंडी । तरौई । (२) लोबिया । राजमाप ।  
 वृत्तधीजका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भरहर नामक दाल । (२) पांडुकली । पांडुरकली ।  
 वृत्तधीजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भरहर नाम का अन्न ।

वृत्तशास्त्री-संज्ञा पुं० [ सं० वृत्तशास्त्रिन् ] वह जिसका आचरण उचम हो । सदाचारी ।  
 वृत्तशुद्धी-संज्ञा पुं० [ सं० वृत्तशुद्धिर् ] (१) वह जिसे अपने काम का अभिमान या श्लाघा हो । (२) क्षत्रिय ।  
 वृत्तस्फु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसका चरित्र-शुद्ध हो । सदाचारी । (२) वह जो दूसरों का उपकार करता हो । परोपकारी ।  
 वृत्तांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी वीथी हुई बात या घड़ी हुई घटना का विवरण । समाचार । हाल । जैसे,—(क) हम पटना का सारा वृत्तांत समाचारपत्रों में छप गया है । (ख) भव थाप कुछ अपना वृत्तांत सुनाइए । (२) प्रक्रिया । (३) संपूर्णता । समस्तता । (४) प्रस्ताव । (५) भाष्यना । (६) अवसर । मौका । (७) भाव ।  
 वृत्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) त्रिंसीटी नाम का छुन । (२) रेणुका । रेणु-बीज । (३) प्रियंगु । (४) मांसरोदिणी । (५) सफेद सेम । (६) नाग-रूमनी । (७) ननुभा ।  
 वृत्तानुवर्त्ती-संज्ञा पुं० [ सं० वृत्तानुवर्त्तिन् ] वह जिसका आचरण शुद्ध हो । सदाचारी ।  
 वृत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह कार्य जिसके द्वारा जीविका का निर्वाह होता हो । जीविका । रोजी ।  
 किं० प्र०—करना ।—लगना ।—होना ।  
 (२) वह पत्र जो किसी दीन, विषयवा या छात्र आदि को बराबर, कुछ निश्चित समय पर, उसके सहायताार्थ दिया जाय । उपजीविका ।  
 किं० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।  
 (३) सूत्रों आदि का वह विवरण या व्याख्या जो उनका अर्थ स्पष्ट करने के लिये की जाती है ।  
 विशेष—हमारे यहाँ सूत्रों आदि की व्याख्या के वृत्ति, भाष्य, चार्त्तिक, टीका और टिप्पणी ये पाँच भेद किए गए हैं । इनमें से वृत्ति उस व्याख्या को कहते हैं, जो कुछ संक्षिप्त होती है और जिसकी रचना गंभीर होती है ।  
 (४) विवरण । वृत्तांत । हाल । (५) नाटकों में विषय के विचार से वर्णन करने की शैली जो चार प्रकार की कही गई है और जो भिन्न भिन्न रसों के लिये उपयुक्त मानी गई है । जैसे,—कौशिकी वृत्ति, शृंगार रस के लिये; सारवती वृत्ति वीर रस के लिये; भारभटी वृत्ति रौद्र और धीमास रस के लिये; और माती वृत्ति शेष अल्प रसों के लिये । जहाँ अच्छी चेतानूनामकी नायिका, बहुत सी खियों और नृत्य-गीत तथा भोग-विलास आदि का वर्णन हो, उसे कौशिकी; जहाँ वीरता, गानशक्ति, दया, सरलता आदि का वर्णन हो, उसे सारवती; जहाँ माया, ईदनाल, संभ्राम, क्रोध आदि का वर्णन हो, उसे भारभटी; और जहाँ संकृत-बहुल कथोप-

कथन हो, इसे भारती वृत्ति कहते हैं। इन चारों वृत्तियों के भी कई अर्थांतर भेद माने गए हैं। (१) व्यपहार। (२) वह जो किसी वृत्ते पर आश्रित या अवलंबित हो। आश्रय। (३) योग के अनुसार चित्त की अवस्था जो पाँच प्रकार की मानी गई है—चित्त, सूक्ष्म, विशिष्ट, एकाग्र और निरुद्ध। (४) व्यापार। कार्य। (५) स्वभाव। प्रकृति। (६) कर्मण्य। (७) संसार करने का एक प्रकार का ऋषि। उ०—साराचि मांडी वृत्ति नाम पुनि अतिमांडी नी।—पद्माकर।

वृत्तिकार—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसने किसी सूत्र ग्रंथ पर वृत्ति लिखी हो।

वृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वृत्ति का भाव या धर्म।

वृत्तिकथना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार रत्न की एक स्त्री का नाम।

वृत्तिस्थ—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो अपनी वृत्ति पर स्थित हो। (२) निरगित।

वृत्तेषां च—संज्ञा पुं० [ सं० ] चरवृत्ते की बेल।

वृत्त्य-वि० [ सं० ] जो नियुक्त करने के योग्य हो। मुकरंर करने के कृत्रिम।

वृत्त्यनुमास—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पाँच प्रकार के अनुमासों में से एक प्रकार का अनुमास जो काल्य में एक शब्दालंकार माना जाता है। इसमें एक या कई व्यंजन वर्ण एक ही या भिन्न भिन्न रूपों में बार बार आते हैं। उ०—अति भारी कारी घटा, कारी पारी घँस। (२) इसमें र और व ये दो व्यंजन कई बार अवश्य हैं, अतः यह वृत्त्यनुमास हुआ।

वृत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भँषेरा। (२) मेघ। पादल। (३) शत्रु। दुश्मन। (४) पुराणानुसार स्वर्ग के पुत्र एक दानव या असुर का नाम जिसे इंद्र ने मारा था। इसी को मारने के लिये दधीचि ऋषि की हठियाँ का वज्र बनाया गया था। कहते हैं कि एक बार इंद्र ने विष्वक्पुत्र पुरोहित को मार डाला था। उसके पिता स्वर्ग ऋषि ने इसका बदला सुकाने के लिये वज्र करके इसे उत्पन्न किया। जब इसने इंद्र पर आक्रमण किया, तब इंद्र देवताओं सहित इंद्रपुरी में भाग गए। पर अंत में विष्णु की सम्मति से इंद्र ने दधीचि ऋषि से उनकी हठियाँ मींगीं और उन्हीं हठियाँ का वज्र बनाकर इससे कदना भारंम किया। जब इंद्र ने इसके दोनों हाथ काट डाले, तब यह इंद्र को उनके हाथों पेरारवत सहित निगड़ गया। अब इंद्र इसका पेट काटकर बाहर निकले और इसका सिर काट डाला। देवी भागवत में इसकी कथा विस्तार के साथ दी गई है। वेदों में भी वृत्र असुर का बल्लेण है; पर वहाँ जो कुछ वर्णन मिलता है, उससे आंश-कारिक रूप में मेघ और अंधकार, आदि के संबंध में ही

“वृत्र” शब्द आया हुआ जान पड़ता है। वृत्रासुर। (२) एक पर्वत का नाम।

वृत्रखाद—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र का एक नाम, जिन्होंने वृत्र नामक असुर को मारा था।

वृत्रघ्ने—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वृत्र नामक असुर को मारनेवाले, इंद्र। (२) वैदिक काल के एक देश का नाम जो गंगा के तट पर था।

वृत्रघ्नी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार पारिपात्र नामक क्लृप्त-पर्वत से निकली हुई एक नदी का नाम।

वृत्रतूर्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] युद्ध। लड़ाई।

वृत्रत्व—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वृत्र का भाव या धर्म। (२) शत्रुता। दुश्मनी।

वृत्रनाशन—संज्ञा पुं० [ सं० ] वृत्र नामक असुर को मारनेवाले, इंद्र।

वृत्रभोजन—संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधीर या तुँदरी नामक खाद्य।

वृत्रधैरी—संज्ञा पुं० [ सं० ] वृत्रधैरि। वृत्र को मारनेवाले, इंद्र।

वृत्रशंख—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पत्थर का खंभा। (वैदिक)

वृत्रशत्रु—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र।

वृत्रहा—संज्ञा पुं० [ सं० ] वृत्रासुर को मारनेवाले, इंद्र।

वृत्रारि—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र।

वृत्रासुर—संज्ञा पुं० दे “वृत्र” (७)।

वृथा-वि० [ सं० ] बिना मतलब का। निष्प्रयोजन। व्यर्थ। फलरहित।

किं वि० बिना मतलब के। बेफायदा।

वृथात्व—संज्ञा पुं० [ सं० ] वृथा होने का भाव या धर्म।

वृथामांस—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मांस जो किसी देवी या देवता को चढ़ाया गया हो। ऐसा मांस खाने का निषेध है।

वृद्ध—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मनुष्य की तीन अवस्थाओं में से एक अवस्था जो युवावस्था के उपरांत और सय के अंत में आती है। यह अवस्था प्रायः ६० वर्ष के उपरांत आती है। इसमें मनुष्य दुर्बल और क्षीण हो जाता है, उसके सब अंग थियिल हो जाते हैं, शरीर की धातुएँ तथा इंद्रियाँ आदि भी बराबर क्षीण होती जाती हैं, और इसके अंत में श्रद्धा आ जाती है। बुढ़ापा। जरा। (२) वह जो इस अवस्था में पहुँच गया हो। बुढ़ा। (३) पंडित। विद्वान्। (४) शैलेज नामक गंधद्रव्य। (५) वृद्धावस्था।

वृद्धकट—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र की एक पेट।

वृद्धकाक—संज्ञा पुं० [ सं० ] शीतल काक। पदासी कौवा।

वृद्धकावेरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम।

वृद्धरुच्छ्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कृष्ण रोग।

वृद्धकेशव—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार सूर्य की एक मूर्ति का नाम।

वृद्धगंगा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हिमाचल की एक छोटी नदी का नाम।

वृद्धगोनस-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का सर्प ।

वृद्धता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वृद्ध का भाव या धर्म । बुढ़ापा । (२) पण्डित्य ।

वृद्धतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पाठा । पाढ़ा ।

वृद्धत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वृद्ध होने का भाव या धर्म । बुढ़ापा । (२) पण्डित्य ।

वृद्धदार-संज्ञा पुं० दे० "बृद्धदारक" ।

वृद्धदारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विधारा नामक क्षुप ।

वृद्धघुञ्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

वृद्धधूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिरिस का पेड़ । (२) सरल का वृक्ष ।

वृद्धधूमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लिसोदा ।

वृद्धनाभि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसकी तोंड़ भागे को निकली हो । तोंड़ल ।

वृद्धपरशर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक धर्मशास्त्रकार का नाम ।

वृद्धप्रपितामह-संज्ञा पुं० [ सं० ] दादा का दादा । परदादा का पिता ।

वृद्धयला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) ककड़ी या कंधी नामक पेड़ । (२) महाबला ।

वृद्धवृद्धरति-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक धर्मशास्त्रकार का नाम ।

वृद्धवैधायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन धर्मशास्त्रकार का नाम ।

वृद्धमनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक धर्मशास्त्रकार का नाम ।

वृद्धयाज्ञवल्क्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक धर्मशास्त्रकार का नाम ।

वृद्धयुवती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कुटनी । (२) धात्री । दाई ।

वृद्धराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमलयेत्र ।

वृद्धवशिष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक धर्मशास्त्रकार का नाम ।

वृद्धवासिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गीदद ।

वृद्धवाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] आम का पेड़ ।

वृद्धविभीतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमड़ा ।

वृद्धविष्णु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक धर्मशास्त्रकार का नाम ।

वृद्धशाकल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

वृद्धश्रवा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वृद्धश्रवत् । झंझ ।

वृद्धश्रावक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कापालिक ।

वृद्धसूचक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपास ।

वृद्धहारीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन धर्मशास्त्रकार का नाम ।

वृद्धांगुलि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बैंगुला ।

वृद्धांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सम्मान या प्रतिष्ठा करने योग्य हो । आदरणीय ।

वृद्धा स्त्री० [ सं० ] (१) वह स्त्री जो अथवस्था में वृद्ध हो गई हो । बुढ़ी । (२) बैंगुला । (३) महाश्रावणिका ।

वृद्धाचल-संज्ञा पुं० [ सं० ] मद्रास प्रांत के एक तीर्थ का नाम ।

वृद्धाभि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

वृद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बढ़ने या अधिक होने की क्रिया का भाव । बढ़ती । ज्यादाती । अधिकता । जैसे,—धन धान्य की वृद्धि, संतान की वृद्धि, यश की वृद्धि । (२) व्याज । सूद । (३) वह अशौच जो घर में सन्तान उत्पन्न होने पर होता है । (४) अभ्युदय । समृद्धि । (५) एक प्रसिद्ध जग जो अष्टद्वारों के अंतर्गत मानी गई है । कहते हैं कि यह कोन्यामल देश में कोशाल पर्वत पर पाई जाती है । इसके कंध पर सफेद रोपूँ और कहीं कहीं छेद होते हैं । इसका फल कपास की गॉठ के समान होता है, जो लता में दाहिनी ओर निकलता है । आजकल यह ओषधि नहीं मिलती । वैद्यक में यह मधुर, शीतल, वीर्यवृद्धक, गर्भ धारण करानेवाली और रक्त-पित्त, खाँसी तथा क्षय-रोग को नष्ट करनेवाली मानी गई है ।

पर्यायों—वीर्या । कृद्धि । सिद्धि । लक्ष्मी । सुष्टिदा । वृद्धिदात्री । मंगल्य्या । धी । सगुप् । जनेष्टा । भूति । सुप्र । जीवमद्रा ।

(१) राजनीति में कृषि, वाणिज्य, दुर्गा, सेव, कुंजववन, कन्याकर, घलादान और सैन्यसन्निवेश इन आठों वर्गों का उपचय वृद्धन । स्फालि । (७) कलित ज्योतिष में विष्कम्भ आदि २७ योगों के अंतर्गत म्यारहवों योग । कहते हैं कि इस योग में जन्म लेनेवाला व्यक्ति विनयी, धन का अर्था उपयोग करनेवाला और मातृ झरीदने तथा चेतने में बहुत चतुर होता है ।

वृद्धिकर्म्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] नांदीमुख आद । वृद्धिआद । वृद्धिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कृद्धि नाम की ओषधि । (२) सफेद अपराजिता । (३) अर्कपुष्पी ।

वृद्धिजीवक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो वृद्धि या व्याज से अपना निर्वाह करता हो । सूद से अपना निर्वाह करनेवाला ।

वृद्धिद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जीवक नामक क्षुप । (२) शूकरकंद । वि० वृद्धि देनेवाला ।

वृद्धिपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का शप जो सात अंगुल का होता था और जिसका व्यवहार चौर फाड़ में छेदने आदि के लिये होता था । इसका आकार प्रायः घुरे के समान होता था ।

वृद्धियोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] कलित ज्योतिष के सत्पारस योगों में से एक योग ।

वृद्धिधाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] नांदीमुख नाम का आद । वि० दे० "नांदीमुख" ।

वृद्धसानु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुरुष । आदमी । (२) कृत्ति । काम ।

वृधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक सूचक जिससे मर-ह्राज मुनि को बहुत सी गौपूँ मिली थीं ।

ब्रह्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ब्रह्मा। (२) ब्रह्मा।

संज्ञा पुं० दे० "दृष"।

ब्रह्मा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की ओषधि।

ब्रह्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] बृहिक। विष्णु।

बृहिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] छाल गददपरना।

बृहिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु नामक प्रसिद्ध कीड़ा जिसके हंक में बहुत सेज उड़र होता है। वि० दे० "विष्णु"। (२) गोबर में उत्पन्न होनेवाला कीड़ा। शुकरीट। (३) पुनर्नवा। गददपरना। (४) मदन वृक्ष। मैनकल। (५) बृहिकाळी। गददपरना। (६) ज्योतिष में मेघ आदि बारह राशियों में से आठवीं राशि जिसके सब तारों से प्रायः विष्णु का सा आकार बनता है। विद्याका नक्षत्र के अंतिम पाद से आरंभ होकर अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रों के स्थितिकाल तक यह राशि मानी जाती है। भारतीय कलित ज्योतिष के अनुसार यह राशि शीर्षोदय, प्लेवतर्कण, कर्फ प्रकृति, जलधर, उत्तर दिशा की अधिपति, और अनेक पुराणों तथा किंवदंतियों से युक्त मानी गई है। कहते हैं कि इस राशि में जन्म लेनेवाला मनुष्य धन जन से युक्त, भाग्यवान्, स्वल्, राजसेवा करनेवाला, सदा दुष्टों के धन की अभिलाषा करनेवाला, उखाड़ी और धीर होता है।

पदार्थो— शीघ्र। इंगनो। सुम। सम। रिपर। पुष्कर। सतीचपजाति। प्राग्य।

(७) कलित ज्योतिष के अनुसार मेघ आदि बारह छत्रों में से आठवाँ छत्र जो बृहिक राशि के उदय के समय माना जाता है। कहते हैं कि जो बालक इस छत्र में जन्म लेता है, वह बहुत मोटा ताजा, खर्चीला, कुटिल, माता-पिता के लिये अनिष्टकर, गंभीर और स्थिर प्रकृतिवाला, उग्र स्वभाव का, विधवा, ईदसुख, साहसी, गुरु और मित्रों से चायुता रखनेवाला, राजसेवा करनेवाला, दुःखी, दाता, नीचप्रकृति और पित्त-रोगी होता है। (८) अगहन मास जिसमें प्रायः शीर्षोदय के समय बृहिक राशि का उदय होता है।

बृहिकपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पोई नाम का साग।

बृहिकप्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पोई नाम का साग।

बृहिककर्णो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मूसाकानी। आसुवर्णा।

बृहिकरिवापदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गड्डकंद। (२) रासना।

बृहिक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विद्युत्वा या विष्णु नाम की घास। (२) पिठवन। (३) सफेद पुनर्नवा।

बृहिकाळी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विष्णु नाम की छता जो प्रायः सारे भारत में पाई जाती और बारहो मास हरी रहती है।

इसके पत्ते ५-६ अंगुल लंबे, मुकीले और भंडाकार होते हैं और बन पर तथा ढंठलों पर एक प्रकार के रोई होते हैं।

जिनके बारीर में लगने से बहुत तेज जलन होती है। इसकी जड़ का प्रयोग ओषधि रूप में होता है। वैद्यक में यह कडवी, पारपी, बल तथा रुचि बढ़ानेवाली, तथा खोसी, खास और उबर को दूर करनेवाली मानी गई है।

बृहिककेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] बृहिक राशि के अधिपति देवता।

बृहिकपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पत्रिका। पोई।

बृहिकपत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बृहिकाळी। (२) मेदासिगी।

बृहिकपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बृहिकाळी। (२) मेदासिगी।

बृहिकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुनर्नवा। गददपरना।

बृहिकीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद गददपरना।

बृहिकीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] गददपरना। पुनर्नवा।

घृष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गौ का नर। साँड़। (२) वामशाख

के अनुसार चार प्रकार के पुरुषों में से एक प्रकार का पुरुष जो दक्षिणी जाति की स्त्री के लिये उपयुक्त समझा जाता है। कहते हैं कि ऐसा पुरुष अनेक गुणों से युक्त, अनेक प्रकार के रतिबंधों का ज्ञाता, सुंदर और सत्यवादी होता है।

(३) धर्म जिसके चार पैर माने जाते हैं और जो इसी कारण साँड़ के रूप में माना जाता है। (४) पुराणानुसार प्यारहवें मन्वंतर के इंद्र का नाम। (५) बुद्ध। (६) ब्रह्मा।

(७) श्रीकृष्ण का एक नाम। (८) शयु। दुदमन। धीरी।

(९) काम। (१०) ऋषभ नामक ओषधि। (११) पति।

स्वामी। (१२) गेहूँ। (१३) घमासा। (१४) नदी में होने-

वाला मिठवर्ण। (१५) ज्योतिष में मेघ आदि बारह राशियों

में से दूसरी राशि जिसमें कृष्ण नक्षत्र के तीन पाद, पूरा

रोहिणी नक्षत्र और मृगशिरा नक्षत्र के पहले दो पाद हैं।

यह राशि श्वेत वर्ण, वात प्रकृति, वैश्य, चार पैरोंवाली और

दक्षिण दिशा की स्वामिनी मानी जाती है। कहते हैं कि जो

व्यक्ति इस राशि में जन्म लेता है, वह सुंदर, दाता, क्षमा-

शील, श्रेष्ठ और निर्भय होता है तथा आरंभिक अवस्था में

धन, यशु, संतति आदि से रहित और अंतिम अवस्था में इन

सब बातों से सुखी रहना है। (१६) कलित ज्योतिष में मेघ

आदि बारह छत्रों में से दूसरा छत्र। कहते हैं कि इस छत्र

में जन्म लेनेवाले मनुष्य के ओंठ और नाक मोटी तथा

जलट बहुत चौड़ा होता है; वह वात-रूप प्रकृति का,

भाग्यवान्, खर्चीला, माता-पिता को बट देनेवाला और

पुरे कामों की ओर प्रवृत्ति रखनेवाला होता है। पिते मनुष्य

को पुत्र कम और कन्याएँ अधिक होती हैं। इसकी शयु

किसी पशु या बकवास्य व्यक्ति के द्वारा भयवा जल, शूल,

पर्यन्त आदि के कारण भयवा भूखें रहने से होती है।

बृषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साँड़। (२) महाभारत के अनुसार

गंधार के एक राजकुमार का नाम। (३) एक प्रकार का

नाम। (४) ब्रह्मा। (५) ऋषभक नामक ओषधि। (६)

धमासा । दुरालभा । (७) मिलावो । (८) गेहूँ । (९) चूहा ।  
 शुभकर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुदर्शन नाम की लता । (२) एक प्रकार का विधारा ।  
 शुभका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम ।  
 शुभा पुं० [ सं० ] शिव । महादेव ।  
 शुभकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव या महादेव, जिनकी ध्वजा पर बैल का चिह्न माना जाता है । (२) कर्ण के एक पुत्र का नाम । (३) लाल गदहपुरना ।  
 शुभकस्तुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्षा करनेवाले, इंद्र ।  
 शुभखादि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सोम पान करता हो ।  
 शुभगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) ककही या कंधी नाम का पौधा । (२) एक प्रकार का विधारा ।  
 शुभगंधिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शुभगंधा" ।  
 शुभगण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक ऋषियों का एक गण या समूह ।  
 शुभचक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसमें एक बैल बनाकर उसके निम्न निम्न अंगों में नक्षत्र आदि रखते हैं और तब उसके द्वारा खेती संबंधी शुभाशुभ फल आदि निकालते हैं ।  
 शुभशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र । (२) वज्र । (३) विष्णु । (४) सौंद । (५) घोड़ा । (६) वृक्ष । (७) पीढ़ा का ज्ञान या उससे होनेवाली वेदोत्पत्ति । (८) अंडकोप । पोता ।  
 शुभएकच्छु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अंडकोश के आस पास होनेवाली वह कुंसियाँ आदि जो मैल और पसीने आदि के कारण हो जाती हैं और जिनमें सुखती होती है ।  
 शुभशुशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रसिद्ध वैदिक राजा का नाम । (२) इंद्र के घोड़े का नाम ।  
 शुभदेशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बिहारी ।  
 शुभदर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार वदमीर के एक राजकुमार का नाम । (२) पुराणानुसार शिव के एक पुत्र का नाम । (३) श्रीकृष्ण का एक नाम ।  
 शुभदेवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वायुपुराण के अनुसार वसुदेव की एक स्त्री का नाम ।  
 शुभद्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] गृहसंहिता के अनुसार एक द्वीप का नाम ।  
 शुभध्वज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) गणेश । (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम । (४) वह ध्वज जो बहुत पुण्यशील हो । पुण्यात्मा ।  
 शुभध्वजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा का एक नाम ।  
 शुभध्वाना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नागरमोथा ।  
 शुभध्वानि-संज्ञा स्त्री० दे० "शुभध्वाना" ।

शुभनामा-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुभनाम्न । अक्षय ।  
 शुभनाशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विदग्ध । भावविदग्ध । (२) पुराणानुसार श्रीकृष्ण का एक नाम ।  
 शुभपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) नहुँसक । द्विजदा । पंड ।  
 शुभपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पत्तोंची या छगलाची नाम की ओषधि जो विधारा का एक भेद है ।  
 शुभपणिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सारंगी । मांझणपाटिका ।  
 शुभपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मूसाकानी । भातुर्कणी । (२) उदुवरपर्णी । दंती । (३) सुदर्शन नाम की लता ।  
 शुभपर्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुभपर्व । (१) शिव । महादेव । (२) महाभारत के अनुसार एक दैत्य का नाम । (३) विष्णु का एक नाम । (४) कसेरू । (५) एक प्रकार का शुभ । (६) जंगल ।  
 शुभप्रिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 शुभम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बैल या सौंद । (२) साहित्य में वैदर्भी रीति का एक भेद । (३) कान का छेद । (४) ऋषभ नाम की ओषधि । (५) कामशास्त्र के अनुसार चार प्रकार के पुण्यों में श्रेष्ठ पुण्य जो शक्तिनीजाति की स्त्री के लिये उपयुक्त कहा गया है । (६) सूर्य की धींधियों में से एक धींधी का नाम । (७) एक प्राचीन तीर्थ का नाम । (८) श्रीकृष्ण के एक सखा का नाम । (९) एक यूपपति यंदर का नाम जो राम-रावण युद्ध में लड़ा था ।  
 शुभमकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।  
 शुभमगति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) वह सवारी जो बैल के द्वारा खींची जाती हो ।  
 शुभमतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।  
 शुभभाव-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुभ होने का भाव या धर्म । शुभभवा ।  
 शुभमधुजल-संज्ञा पुं० दे० "शुभमध्वज" ।  
 शुभमध्वज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) एक प्राचीन पर्वत का नाम ।  
 शुभमध्वजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बड़ी दंती । बंगदेता ।  
 शुभमपह्लाव-संज्ञा पुं० [ सं० ] अक्षय ।  
 शुभमधीधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूर्य की धींधियों में से एक धींधी का नाम ।  
 शुभमांक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव । महादेव ।  
 शुभमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन नदी का नाम ।  
 शुभमान-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 शुभमाक्षी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इंद्रवारुणी लता । इगारू ।  
 शुभमान-संज्ञा पुं० दे० "शुभमानु" ।

वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] श्री राधिकाजी के पिता का नाम जो पुराणानुसार नारायण के अंत से उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम सुवमानु और माता का नाम पद्मावती था। वे गोकुल के बड़े सरदार थे और पहले रावल ग्राम में रहते थे, जहाँ राधिका का जन्म हुआ था। पर अंत में कंस के उपद्रव के कारण यहाँ से परसाने में जा पड़े थे। विशेष—इस शब्द के साथ "कन्या" या उसका पर्याय-शब्दों की शब्द लगाने से उसका "राधिका" अर्थ होता है। जैसे,—वृषभानुसुता, वृषभानुनंदिनी। वृषभानुनंदिनी-पंथा स्त्री० [ सं० ] राधिका। वृषभानुसुता-पंथा स्त्री० [ सं० ] वृषभानु की कन्या, श्रीराधिका। वृषभानु-पंथा स्त्री० [ सं० ] ईश्वर की पुरी अमरावती का एक नाम। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] विष्णु। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] भद्रसे की उद। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] आश्रय। वृषभानु-पंथा पुं० दे० "वृषभानु"। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] वृषभानु। शिव। महादेव। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] (१) शूद्र। (२) वह जिसे धर्म आदि का कुछ भी ध्यान न हो। पाप और दुष्कर्म करनेवाला। (३) बोद्धा। (४) सत्राद् चंद्रगुप्त का एक नाम। (५) गाजर। (६) राहगम। वृषभानु-पंथा स्त्री० [ सं० ] वृषभानु होने का धर्म या भाव। वृषभानु। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव। वृषभानु-पंथा स्त्री० [ सं० ] (१) शक्तिवर्ती आदि के अनुसार वह कन्या जो रजस्वला तो हो गई हो, पर जिसका मही विवाह न हुआ हो। कहते हैं कि ऐसी कन्या का पिता बड़ा पातकी होता है और उसे उस कन्या की अग्रहारा करने का पाप लगता है। (२) वह स्त्री जो अपने पति को छोड़कर पर-पुरुष से मेम करती हो। (३) शूद्र जाति की स्त्री। वृषभानु की स्त्री। (४) वह स्त्री जो पाप या दुष्कर्म करती हो। (५) नीच जाति की स्त्री। (६) वह स्त्री जो साक्षिक धर्म से हो। रजस्वला स्त्री। (७) वह स्त्री जो मरी हुई संतान उत्पन्न करती हो। वृषभानुपति-पंथा पुं० [ सं० ] वह पुरुष, जिसने ऐसी कन्या के साथ विवाह किया हो जो विवाह से पहले ही रजस्वला हो चुकी हो। वृषभानु का पति। (कहते हैं कि ऐसे पुरुष की आश्रय आदि करने का अधिकार नहीं होता।) वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] वृषभानु। मूला। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] वृषभानु। केरल देश के वृषभानु पर

वसनेवाले, शिवजी। उ०—इनके घर लेही भवता। वृषभानु हर हृदय विचारा।—शंकर दि०। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की कौट या केवच। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] विष्णु। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक असुर का नाम। वृषभानु-पंथा पुं० दे० "वृषभानु"। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम जो जतुकर्ण के पोते थे। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] एक प्रवर-कार ऋषि का नाम। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] वह जिसने यज्ञ करने के लिये मगल-स्थान किया हो। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] (१) सफेद बड़। (२) देवकुंभी। बड़ा गुला। वृषभानु-पंथा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उद्गम महाभारत में है। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] वृषभानु। भीमरोल या श्रुंगरोल नाम का कीड़ा। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] भावपत के अनुसार कर्म के एक पुत्र का नाम। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] (१) शिव। महादेव। (२) साधु। धर्मान्ना। (३) जल में होनेवाला मिछवा। (४) नरुसक। दिग्गद। (५) मोर। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] इमरु। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक असुर का नाम। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] विष्णु। वृषभानु-पंथा स्त्री० [ सं० ] (१) मूलाकात्री। आशुकर्णा। (२) केवच। कौट। (३) वरुणवर्णी। वृषभानु। (४) बरी देवी। (५) अक्षय। (६) मालकात्री। (७) गौरी। वृषभानु-पंथा स्त्री० [ सं० ] (१) जीवती। डोही। (२) शतावर। (३) कर्पूरी। (४) गौरी। (५) इंद की पत्नी, राक्षी। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) अग्नि। (४) इंद। (५) सूर्य। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] उद। माय। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] विष्णु। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] विष्णु। वृषभानु-पंथा पुं० [ सं० ] (१) शिव। महादेव। (२) शिव के एक अनुसार का नाम।



वेद के एक अंग का नाम । (४) भागवत के अनुसार पत-  
 धन्वा के एक पुत्र का नाम । (५) देवरात के एक पुत्र का  
 नाम । (६) एक प्रकार का मंत्र ।  
 वि० [ श्री० वृहद्रथ ] जिसके पास बहुत से रथ हैं ।  
 वृहद्रथा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] उल्लूक पक्षी ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोनामन्त्री ।  
 वृहद्रथक, वृहद्रथकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पठानी छोप ।  
 (२) ससपण । सतियम ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] करोडा ।  
 वृहद्रथान-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवधान्य । पुनेरा ।  
 वृहद्रथारणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महेंद्रवारणी । हुन्ना ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाहु । बाह । (२) अर्जुन ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अर्जुन का उस समय का नाम जब  
 वे पनवास के उपरांत अज्ञातवास के समय राजा विराट के  
 यहाँ स्त्री के रूप में रहकर उसकी कन्या को नाच गाना  
 सिखलते थे ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] नरसल । नरकट ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] महानिब । यकायन ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोल सिंच ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुलका नामक राग ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० दे० "वृहद्रथपति" ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] साठी धान्य ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] दक्षिण भारत के एक पर्वत का  
 नाम ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० दे० "वृहद्रथगिरि" ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार की मछली । भाकर ।  
 (२) सुबक । जवान । (३) विदूषक । मसपरार । (४)  
 जोहरी ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] अरुणी तरह बँटना या देसना ।  
 वृहद्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रवाह । बहाव । (२) शरीर में से  
 मल मूत्र आदि निकलने की प्रवृत्ति । (३) किसी और  
 प्रवृत्त होने का जोर । तेजी । (४) शीघ्रता । जल्दी । (५)  
 ) ; आनंद । प्रसन्नता । खुशी । (६) कोई काम करने की दृ-  
 प्रतिशा या पथा निश्चय । (७) उद्योग । उद्यम । (८) प्रवृत्ति ।  
 प्रवृत्ति । (९) बुद्धि । चतुर्ता । (१०) मदा उभोतिष्मती ।  
 (११) छाल हुन्ना । (१२) छाल । धीर्य । (१३) रथ  
 के अनुसार चौबीस गुणों में से एक गुण जो आकार, बल,  
 तेज, वायु और मन में पाया जाता है । संसार में जो कुछ  
 गति देखी जाती है, वह इसी गुण के कारण होती है और  
 उक्त पक्षों में से किसी न किसी के द्वारा होती है ।  
 वेगना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेगपूर्वक चलनेवाली, गरी ।

वेगदर्शी-संज्ञा पुं० [ सं० वेगदर्श ] रामायण के अनुसार एक  
 बंदर का नाम ।  
 वेगधारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] मल, मूत्र या शरीर के इसी प्रकार  
 के और किसी वेग को रोकना जो स्वास्थ्य के लिये हानि-  
 कारक होता है ।  
 वेगनाशुभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलेना । कफ । ( कहते हैं कि शरीर  
 से निकलनेवाला मल आदि इसी के कारण कुछ रुकना है ;  
 इसी लिये इसका यह नाम पड़ा है । )  
 वेगनिरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर के मल-मूत्र आदि वेगों को  
 रोकना । वेगधारण ।  
 वेगरोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर के मल-मूत्र आदि वेगों को  
 रोकना । वेगधारण ।  
 वेगवती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दक्षिण भारत की एक नदी का नाम ।  
 वेगवान-वि० [ सं० ] वेगपूर्वक चलनेवाला । तेज चलनेवाला ।  
 संज्ञा पुं० विष्णु ।  
 वेगवाहिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गंगा । (२) पुनायास  
 एक प्राचीन नदी का नाम ।  
 वेगविधात-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर से निकलते हुए मल-मूत्र  
 आदि वेगों को सहसा रोक लेना जो स्वास्थ्य के लिये हानि-  
 कारक समझा जाता है ।  
 वेगसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तेज चलनेवाला घोड़ा । (२)  
 चरघर ।  
 वेगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बड़ी मारकैंगनी । महायोतिष्मती ।  
 वेगित-वि० [ सं० ] जिसमें वेग हो । वेगयुक्त ।  
 वेगिदिरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीघ्रता । रग ।  
 वेगी-संज्ञा पुं० [ सं० वेग ] (१) वह जिसमें बहुत अधिक वेग  
 हो । (२) बाज नाम का पक्षी ।  
 वेगली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोमराजी ।  
 वेग-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वाहा ।  
 विशेष-—वैदिक काल में यज्ञों आदि में स्वाहा के स्थान में  
 वेद शब्द का व्यवहार होता था ।  
 वेगबंदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मलयगिरि बंदन ।  
 वेगुमिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह रोटी या कपौड़ी जिसमें उड़द  
 की पीठी मरी हो । वेगुई ।  
 वेग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मनु के अनुसार एक प्राचीन वर्षों  
 संक्रांति जिसकी उत्पत्ति वैदेहक माता और अंबुष  
 पिता से मानी गई है । (२) सूर्यवंशी राजा प्रथु के पिता  
 का नाम ।  
 वेगयोनि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की लता ।  
 वेगयी-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसके पास वेणु हो । (२)  
 निव का एक नाम ।  
 वेणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रामायण के अनुसार एक प्राचीन

बेसि का नाम जिसे पगासा भी कहते हैं । (२) उशीर ।  
 खस ।  
 बेसि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवदाली । बंदाळ ।  
 बेसिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन  
 अनपद का नाम । (२) इस देश का निवासी ।  
 बेसिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्त्रियों के बालों की गूथी हुई चोटी ।  
 बेसि वेणी ।  
 बेसिघेघनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ओंछ ।  
 बेसी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्त्रियों के बालों की गूथी हुई चोटी ।  
 (२) जल का प्रवाह । पानी का बहाव । (३) भीड़-भाड़ ।  
 (४) देवदाली । (५) एक प्राचीन नदी का नाम । (६)  
 भेद । (७) देवताद ।  
 बेसीग-संज्ञा पुं० [ सं० ] खस । उशीर ।  
 बेसीफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवदाली का फल ।  
 बेसीमूलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] उशीर ।  
 बेसीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नीम का पेड़ । (२) शीत ।  
 बेसीस्कंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक नाग  
 का नाम ।  
 बेसु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बसि । (२) बसि की बनी हुई बंसी ।  
 (३) दे० "वेणु" ।  
 बेसुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह एकदी या छद्दी जिससे गौओं,  
 बैलों आदि को दबिते हैं । (२) अंकुश । ओंछुस । (३)  
 छोटी बंसी । बसुिरी । (४) इलायची ।  
 बेसुककर-संज्ञा पुं० [ सं० ] कनेर का पेड़ ।  
 बेसुका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बसुिरी । बंसी । (२) एक प्रकार  
 का वृक्ष जिसका फल बहुत जहरीला होता है । (३) हाथी  
 को बंधाने का प्राचीन काल का एक प्रकार का बंध जिसमें  
 बसि का देगा लगा होता था ।  
 बेसुकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो बसि से बसुिरी बनाता हो ।  
 बंसी बनानेवाला ।  
 बेसुकीय-वि० [ सं० ] बेसु संबंधी । बेसु का ।  
 बेसुप्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की ओषधि ।  
 बेसुजंघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन  
 सुनि का नाम ।  
 बेसुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह बीज जो बसि से उत्पन्न हुई  
 हो । (२) बसि के फूल में होनेवाले दाने, जो चावल  
 कहलाते हैं और जो पीसकर ज्वार आदि के आटे के साथ  
 खाए जाते हैं । बसि का चावल । (३) गोल मिर्च ।  
 बेसुजमुक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बसि में होनेवाला एक प्रकार  
 का गोल दाना जो प्रायः मोटी कहलाता है ।  
 बेसुस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन फेरि का नाम ।

बेसुदरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक राजकुमार  
 का नाम ।  
 बेसुन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मिर्च ।  
 बेसुनिःसृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश । उख ।  
 बेसुनिलोसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] बसि की छाछ ।  
 बेसुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन  
 देश का नाम जो वेणु भी कहलाता था । (२) इस देश  
 का निवासी ।  
 बेसुपन्नक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का सर्प ।  
 बेसुपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बंसापत्री । द्विपुर्णी ।  
 बेसुपुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] आधुनिक वेणुगवि का प्राचीन नाम ।  
 बेसुबीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] बसि के फूल में होनेवाले छोटे दाने  
 जो ज्वार आदि के आटे के साथ पीसकर खाए जाते हैं ।  
 बसि का चावल ।  
 बेसुभंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार कृष्णद्वीप के  
 एक वर्ष का नाम ।  
 बेसुमती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार परिमोचर देश की  
 एक नदी का नाम ।  
 बेसुमय-वि० [ सं० ] बसि का बना हुआ ।  
 बेसुमान-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेणुमय । (१) पुराणानुसार एक पर्वत  
 का नाम । (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।  
 बेसुमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तांत्रिकों की एक प्रकार की मुद्रा ।  
 बेसुयघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] बसि के फूलों में होनेवाले दाने जो  
 ज्वार आदि के साथ पीसकर खाए जाते हैं । बसि का  
 चावल । वैद्यक में यह रुख, शीतल, कषाय और कफ, पित्त,  
 मेद, क्रिमि तथा विष आदि का नाशक तथा बल और  
 धीर्यवर्धक कहा गया है ।  
 बेसुयंश-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक राजा का नाम ।  
 बेसुयत-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजगृह के पास का एक उपवन ।  
 राजा विषिचर ने गौतम बुद्ध को बुलाकर यहीं उदरता था ।  
 बेसुयाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो बंसी बजाता हो । बसुिरी  
 बजानेवाला ।  
 बेसुयोषाधरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कात्तिकेय की एक मातृका  
 का नाम ।  
 बेसुहोत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एतकेय के एक पुत्र का नाम ।  
 बेसुय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार विंध्य पर्वत से निकली हुई  
 एक नदी का नाम ।  
 बेसुया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार पारिवान पर्वत की एक  
 नदी का नाम ।  
 बेण्यातट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक  
 प्राचीन देश का नाम जो वेणु या वेण्वा नदी के तट पर  
 था । (२) इस देश का निवासी ।

वेत-संज्ञा पुं० दे० "वेत" ।

वेतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह धन जो किसी को कोई काम करने के बदले में दिया जाये। पारिश्रमिक। उजरत। (२) वह धन जो बराबर कुछ निश्चित समय तक, प्रायः एक मास तक, काम करने पर मिले। तनखाह। दर-माहा। महीना।

क्ति० प्र०—देना—पाना।—मिलना।

(३) चौदी।

वेतनभोगी-संज्ञा पुं० [ सं० वेतनभोगिन् ] यह जो वेतन लेकर काम करता हो। तनखाह पर काम करनेवाला।

वेतल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैत। (२) जल-वैत। (३) बद्धवानल।

वेतसक-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

वेत०. प्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार प्राचीन काल का एक प्रकार का दाह जो प्रायः एक अंगुल मोटा और चार अंगुल लंबा होता था। इसका व्यवहार धीरकाष्ठ में होता था।

वेतसाग्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नवेत।

वेतसिन्धी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

वेतसी-संज्ञा स्त्री० दे० "वेतस"।

वेतसु-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक असुर का नाम।

वेता-संज्ञा स्त्री० दे० "वेतन"।

वेताल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) द्वारपाल। संतरी। (२) शिव के एक गणाधिप। (३) पुराणों के अनुसार भूतों की एक प्रकार की योनि। इस योनि के भूत साधारण भूतों के प्रबान माने जाते हैं। ये प्रायः स्नानानों आदि में रहते हैं। वेताल। (४) वह शव जिस पर भूतों ने अधिकार कर कर लिया हो। (५) छप्यके के छठे भेद का नाम जिसमें ६५ गुरु और २२ लघुकुल ८० वर्ष या १५२-मासार्थ, अथवा ६५ गुरु और १८ लघुकुल ८३ वर्ष या १४८ मासार्थ होती हैं।

वेतालप्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का भूतप्रह। कहते हैं कि जिस पर इस प्रह का आक्रमण होता है, उसमें बहुत से दोष आ जाते हैं। वह प्रायः कौपता रहता है, सूच सोलता है और फूल, माला तथा सुगंधि आदि बहुत पसंद करता है।

वेता-वि० [ सं० ] जाननेवाला। ज्ञाता। जानकार। ज्ञेते,—सावयेता, शाक्येता।

वेत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैत।

वेत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामसर। सरपत।

वेत्रकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो वैत के सामान्य करता हो।

वेत्रकीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान, वा देश जहाँ वैत की अधिकता हो।

वेत्रकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार हिमालय की एक चोटी का नाम।

वेत्रगंगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हिमालय से निकली हुई एक नदी का नाम।

वेत्रघर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) द्वारपाल। संतरी। (२) कटैत। लठबंद।

वेत्रमूला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यवत्तिका। शंखिनी।

वेत्रघती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेतवा नदी जो मालवे से निकलकर कावपी के पास यमुना में मिलती है।

वेत्रहा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैत्रन्। इंद्र।

वेत्रावती-संज्ञा स्त्री० दे० "वेत्रवती"।

वेत्रासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैत का बना हुआ किसी प्रकार का आसन।

वेत्रासुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक मसिद्ध असुर का नाम जो प्रागुज्योतिषपुर का राजा था। इसने पहले समस्त संसार को जीतकर फिर इंद्र, अग्नि और यम पर विजय प्राप्त की थी। अंत में इंद्र ने इसे मार डाला था। कहते हैं कि यह सिंधुद्वीप नामक राजा का पुत्र था और वेत्रवती नदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

वेत्रिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार प्राचीन काल के एक जनपद का नाम। (२) इस जनपद का निवासी। (३) द्वारपाल। संतरी।

वेत्री-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैत्रिन्। (१) द्वारपाल। संतरी। (२) चौबदार। असा-बरदार।

वेवंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथी।

वेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी विषय का, विशेषतः धार्मिक या आध्यात्मिक विषय का, सच्चा और वास्तविक ज्ञान। (२) वृक्ष। (३) विच। (४) यज्ञोप। (५) भारतीय आर्यों के सर्वप्रधान और सार्वमान्य धार्मिक ग्रंथ जिनकी संख्या चार है और जो मन्दा के चारों मुहानों से निकले हुए माने जाते हैं। आत्माय। धृति।

विशेष—भारत में वेद-केवल तीन ही थे—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ( दे० )। इनमें से ऋग्वेद-पद्य में ही और यजुर्वेद गद्य में; और सामवेद में गाने-योग्य गीत वा साम हैं। इसी लिये प्राचीन साहित्य में "वेदत्रयी", ऋग्वेद का ही अधिक प्रयोग देखने में आता है; यहाँ तक कि मनु ने भी अपने धर्मशास्त्र में अनेक स्थानों पर "वेदत्रयी" ऋग्वेद का ही व्यवहार किया है। चौथा अथर्ववेद पीछे से, वेदों में सम्मिलित हुआ था और तब से वेद चार माने जाने लगे। इस चौथे या अंतिम वेद में प्राति तथा पौष्टिक अभिचार,

प्रायश्चित्त, तंत्र, मंत्र आदि विषय हैं। वेदों के तीन मुख्य भाग हैं जो संहिता, ब्राह्मण और भारुष्यक या उपनिषद् कहलाते हैं। संहिता शब्द का अर्थ संग्रह है; और वेदों के संहिता भाग में स्तोत्र, प्रार्थना, मंत्र-प्रयोग, आशीर्वादात्मक सूक्त, यज्ञ-विधि से संबंध रखनेवाले मंत्र और ऋषि आदि की शक्ति के लिये प्रार्थनाएँ आदि सम्मिलित हैं। वेदों का यही अंश मंत्र भाग भी कहलाता है। ब्राह्मण भाग में एक प्रकार से बड़े बड़े गद्य ग्रंथ आते हैं जिनमें अनेक देवताओं की कथाएँ, यज्ञ संबंधी विचार और मित्र मित्र क्रतुओं में होनेवाले धार्मिक कृत्यों के उपायकारिक तथा आध्यात्मिक महत्व का निरूपण है। इनमें कथाओं आदि का जो अंश है, वह अर्थशास्त्र कहलाता है; और धार्मिक कृत्यों की विधियोंवाले अंश को विधि कहते हैं। वनों में रहनेवाले यति, संन्यासी आदि परमेश्वर, जातू और मनुष्य इन तीनों के संबंध में जो विचार किया करते थे, वे उपनिषद्‌ओं और भारुष्यक में संगृहीत हैं। इन्हीं में भारतवर्ष का प्राचीनतम तत्वज्ञान भरा हुआ है। यह मानो वेदों का अंतिम भाग है; और इसी लिये वेदांत कहलाता है। वेदों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से और बहुत विस्तृत प्रदेशों में रहा है; इसलिये काल-भेद, देश-भेद और व्यक्ति-भेद आदि के कारण वेदों के मंत्रों के उच्चारण आदि में अनेक पाठभेद हो गए हैं। सायं श्री पाठ में कहीं कहीं कुछ न्यूनता और अधिकता भी हो गई है। इस पाठ-भेद के कारण संहिताओं को जो रूप प्राप्त हुए हैं, वे कालों कहलाते हैं; और इस प्रकार प्रत्येक वेद की कई कई शाखाएँ हो गई हैं। चारों वेदों से निकली हुई चार विधाएँ कही गई हैं; और जिन ग्रंथों में इन चारों विधाओं का वर्णन है, वे उपवेद कहलाते हैं। प्रत्येक वेद का एक स्वतंत्र उपवेद माना जाता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा, कवच, भ्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद ये छः वेदों के अंग या वेदोंग कहलाते हैं।

वेदों का स्थान संसार के प्राचीनतम इतिहास में बहुत ऊँच है। इनमें भारतीय आर्यों की आरंभिक आध्यात्मिक, सामाजिक और नैतिक सभ्यता का बहुत अच्छा दिग्दर्शन है। भारतीय आर्यों या हिंदू लोग इन्हें अतीव प्यारे और हृदय-कृत मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि ब्रह्मा ने अपने चारों सुतों से वेद कहे हैं; और जिन जिन क्रतुओं ने जो मंत्र सुनकर संगृहीत किए हैं, वे क्रति उन मंत्रों के ब्रह्मा हैं। प्रायः सभी संग्रहों के लोग वेदों को परम-प्रामाण्य मानते हैं। रूढ़ियों और पुराणों आदि में वेद देवताओं आदि के मार्गदर्शक, शिष्य, अतीव प्यारे और अग्रमेय कहे गए हैं। ब्राह्मणों और उपनिषद्‌ओं में तो यहाँ तक कहा गया है कि वेद सृष्टि से भी पहले के हैं और उनका निर्माण

प्रजापति ने किया है। कहा जाता है कि वेदों का वर्णमान रूप में संग्रह और संकलन महर्षि व्यास ने किया है; और इसी लिये वे वेद-व्यास कहे जाते हैं। विष्णु और वायुपुराण में कहा है कि स्वयं विष्णु ने वेद-व्यास का रूप धारण करके वेद के चार भाग किए और क्रमशः पैल, वैशंपायन, जैमिनि और सुमंत इन चार क्रतुओं को दिए। वेदांगी लोग वेदों को ब्रह्म से निकला हुआ मानते हैं; और जैमिनि तथा कपिल इन्हें स्वसःसिद्ध कहते हैं। वेदों के रचना-काल के संबंध में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। मैक्समूलर आदि कई पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि वेदों की रचना ईसा से प्रायः हजार वेद हजार वर्ष पहले उस समय हुई थी, जिस समय आर्य लोग आकर पंजाब में बसे थे। परंतु लोक-मान्य तिलक ने ज्योतिष संबंधी तथा अन्य कई आधारों पर वेदों का समय ईसा से लगभग ४५०० वर्ष पूर्व स्थिर किया है। बुधलर आदि विद्वानों का मत है कि आर्य सभ्यता ईसा से प्रायः चार हजार वर्ष के पहले की है और वैदिक साहित्य की रचना ईसा से प्रायः तीन हजार वर्ष पहले हुई है; और अधिकांश लोग यही मत मानते हैं।

वेदक-वि० [ सं० ] शान करानेवाला। परिचय करानेवाला।  
वेदकर्त्ता-संज्ञा पुं० [ सं० वेदकर्त्ता ] (१) वह जिसने वेदों की रचना की। वेदों का रचयिता। (२) धूर्त्य। (३) शिष्य। (४) विष्णु। (५) वर पक्ष के बड़े सूडे लोग जो विवाह हो चुकने के उपरांत वेदी पर बैठे हुए वर और वधु को आशीर्वाद देने के लिये जाते हैं।

वेदकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेदों का रचयिता।  
वेदकुंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक आचार्य का नाम।  
वेदकौलेयक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिष्य का एक नाम।  
वेदगंगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दक्षिण भारत की एक नदी का नाम जो कोल्हापुर राज्य से निकलकर कृष्णा नदी में मिलती है।  
वेदगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ब्रह्मा। (२) ब्राह्मण।  
वेदगर्भा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सरस्वती नदी। (२) रेवा नदी।  
वेदगर्भापुरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।  
वेदगाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन क्रति का नाम।  
वेदगुप्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) भागवत के अनुसार पत्ताशर के एक पुत्र का नाम।  
वेदगुह्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु।  
वेदजननी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सावित्री जो वेद की माता मानी जाती है।  
वेदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो वेदों का ज्ञाता हो। वेद

- जाननेवाला। (२) वह जो प्रसन्न ज्ञान प्राप्त कर चुका हो।  
 प्रज्ञाज्ञानी।  
 वेदतीर्थ—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।  
 वेदव्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] वेद का भाव या धर्म।  
 वेददर्शी—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन मुनि का नाम।  
 वेददर्शन—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो देखने में वेदों का स्वरूप जान पड़े।  
 वेददर्शी—संज्ञा पुं० [ सं० वैदशिल् ] यह जो वेदों का ज्ञाता हो।  
 वेददान—संज्ञा पुं० [ सं० ] वेद पढ़ना।  
 वेददीप—संज्ञा पुं० [ सं० ] महीधर का किया हुआ शुद्ध यज्ञवेद का भाष्य।  
 वेदन—संज्ञा पुं० दे० "वेदना"।  
 वेदना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुःख या कष्ट आदि का होनेवाला अनुभव। पीड़ा। व्यथा। तकलीफ। (२) यौद्धों के अनुसार पर्व रक्षकों में से एक रक्षक। (३) विकिसा। इलाज। (४) धमदा।  
 वेदनिन्दक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो वेदों की निन्दा करता हो। वेदों की बुराई करनेवाला। (२) नास्तिक। (३) भगवान् शुद्ध का एक नाम। (४) यौद्ध धर्म का अनुयायी।  
 वेदनीय—वि० [ सं० ] (१) जानने योग्य। (२) कष्ट-दायक। जो वेदना उत्पन्न करे।  
 वेदपारत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो वेदों का ज्ञाता हो। (२) वह जो वैदिक कर्मों का ज्ञाता हो।  
 वेदफल—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह फल जो वैदिक कर्म करने से प्राप्त होता है।  
 वेदवाह—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) पुलस्त्य का एक नाम।  
 वेदधीज—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीकृष्ण।  
 वेदभू—संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार देवताओं के एक गण का नाम।  
 वेदभूत—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।  
 वेदमंत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वेदों में भाग्य ह्रद मंत्र। (२) पुराणानुसार एक जनपद का नाम। (३) इस जनपद का निवासी।  
 वेदमाता—संज्ञा स्त्री० [ सं० वैदमातृ ] (१) गायत्री। सावित्री। (२) दुर्गा। (३) सारस्वती।  
 वेदमारुका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सावित्री।  
 वेदमित्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक आचार्य का नाम।  
 वेदमुंड—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अनुद का नाम।

- वेदमूर्ति—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो वेदों का बहुत बड़ा ज्ञाता हो। (२) सूर्य।  
 वेदयज्ञ—संज्ञा पुं० [ सं० ] वेद पढ़ना। वेद-पाठ।  
 वेदरहस्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] उपनिषद्।  
 वेदवती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) राजा कुतापञ्ज की बन्ध्या का नाम। कहते हैं कि यही दूसरे जन्म में सीता हुई थी। (२) पुराणानुसार पारिपात्र पर्यंत की एक नदी का नाम। (३) अम्बरा। (४) दक्षिण भारत की एक नदी का नाम।  
 वेदवदन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रहा। (२) व्याकरण।  
 वेदवाक्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वेद में का कोई वाक्य। (२) ऐसी बात जो पूर्ण रूप से प्रामाणिक हो और जिसका खंडन न हो सकता हो।  
 वेदवादी—संज्ञा पुं० [ सं० वेदवादि ] वह जो वेदों का अन्धा ज्ञाता हो।  
 वेदवाच—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राहण।  
 वेदवाह—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो वेदों का ज्ञाता हो।  
 वेदवाहन—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य।  
 वेदविद्—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो वेदों का ज्ञाता हो। वेदज्ञ। (२) विष्णु का एक नाम।  
 वेदवृक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन आचार्य का नाम।  
 वेदवैनाशिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम।  
 वेदव्यास—संज्ञा पुं० दे० "व्यास" (१)।  
 वेदव्रत—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो वेदों का अभ्ययन करता हो।  
 वेदशिर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भागवत के अनुसार कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (२) पुराणानुसार एक प्रकार का अन्न। संज्ञा पुं० [ सं० वेदशिरस् ] पुराणानुसार मार्कण्डेय के एक पुत्र का नाम जो मूर्धन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। कहते हैं कि भार्गव लोगों का मूल पुरुष यही था।  
 वेदशीर्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।  
 वेदश्रवा—संज्ञा पुं० [ सं० वैश्रवस् ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।  
 वेदश्री—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।  
 वेदश्रुत—संज्ञा पुं० [ सं० ] भागवत के अनुसार वसिष्ठ के एक पुत्र का नाम।  
 वेदश्रुति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।  
 वेदसार—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु।  
 वेदसिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक नदी का नाम।  
 वेदस्पर्श—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन वैदिक आचार्य का नाम।  
 वेदस्मृता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।  
 वेदस्मृति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेदस्मृता नदी का एक नाम।

वेदांग-वैशा पुं० [ सं० ] (१) वेदों के अंग या शास्त्र जो छः हैं और जिनके नाम इस प्रकार हैं—विज्ञाना, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद। इनमें से व्याकरण को लोग वेदों का मूल, विज्ञाना को नाक, निरुक्त को कान, ज्योतिष को आँसू, कल्प को हाथ और छंद को पैर मानते हैं। (२) सूर्य का एक नाम। (३) बाह्य आदित्यों में से एक आदित्य।

वेदांत-वैशा पुं० [ सं० ] (१) उपनिषद् और आरण्यक आदि वेद के अंतिम भाग जिनमें आत्मा, परमात्मा, जगत् आदि के संबंध में निरूपण है। ब्रह्म-विद्या। अष्टात्म। ज्ञानकांड। (२) छंदों में से प्रधान दर्शन जिसमें धैतन्य या ब्रह्म ही एक मात्र पारमार्थिक सत्ता स्वीकार किया गया है; अर्द्ध जगत् और जीव कोई अतिरिक्त वा अन्य पदार्थ नहीं माने गए हैं। उच्च मीमांसा। अद्वैतवाद।

विशेष—यद्यपि इस सिद्धांत का आभास वेद के मंत्र भाग में कहीं कहीं पाया जाता है, पर इसका आधार उपनिषद् ही है जिनमें जीव, जगत् और ब्रह्म आदि का निरूपण है। उपनिषदों में जिस प्रकार 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि' आदि जीवात्मा और परमात्मा की एकता प्रतिपादित करनेवाले महावाक्य हैं, उसी प्रकार पंचमहाभूतों में से पृथ्वी, जल और अग्नि ब्रह्म के मूल रूप तथा वायु और आकाश अमूल रूप कहे गए हैं। इस प्रकार उनमें जीवात्मा और अर्द्ध जगत् दोनों का समावेश ब्रह्म के भीतर मिलता है जो अद्वैतवाद का आधार है। आगे चलकर उपनिषद् की इस ब्रह्म विद्या का दार्शनिक ढंग से निरूपण महर्षि भारद्वाज के 'ब्रह्मसूत्रों' में हुआ है, जिन पर कई भाष्य मिश्र मिश्र आचार्यों ने अपने अपने मत के अनुसार रचे। तीन भाष्य मुख्य हैं—शंकराचार्य का (शारीरक), रामानुज स्वामी का और वल्लभाचार्य का। इनमें से शंकर का भाष्य ही सब से प्रसिद्ध और चिन्तन-पद्धति में बहुत आगे बढ़ा हुआ है। अतः 'वेदांत' शब्द से साधारणतः शंकर का अद्वैतवाद ही समझा जाता है। शेष दो भाष्य साम्प्रदायिक माने जाते हैं।

जगत्, जीव और ब्रह्म या परमात्मा इन तीनों वस्तुओं के स्वरूप तथा इनके पारस्परिक संबंध का निर्णय ही वेदांत शास्त्र का विषय है। न्याय और वैशेषिक ने ईश्वर, जीव और जगत् (या जगत् के मूल-द्रव्य परमाणु) में तीन तत्व मानकर ईश्वर को जगत् का कर्त्ता उद्हराया है, जो सर्वसाधारण की स्थूल भावना के अनुकूल है। वैशेषिक के अनुसार जगत् का मूल रूप परमाणु है जो नित्य है और जिनके ईश्वर-प्रेरित संयोग से सृष्टि होती है। इसके आगे शब्दर सारण्य ने दो ही नित्य तत्व स्थिर किए—

पुरुष (आत्मा) और प्रकृति; अर्थात् एक ओर असंख्य-चेतन जीवात्माएँ और दूसरी ओर जड़ जगत् का अमयक मूल। ईश्वर या परमात्मा का समावेश सांख्य-पद्धति में नहीं है। सृष्टि के विकास की स्थूल तात्त्विक विवेचना सांख्य ने ही की है। किस प्रकार एक अमयक प्रकृति से क्रमशः आपसे आप जगत् का विकास हुआ, इसका पूरा ब्योरा उसमें बताया गया है; और जगत् का कोई कर्त्ता है, नैयायिकों के इस सिद्धांत का खण्डन किया गया है। पुरुष या आत्मा केवल द्रष्टा है, कर्त्ता नहीं। इसी प्रकार प्रकृति जड़ और क्रियामयी है। एक लौकिक है, दूसरी अंधी। असंख्य पुरुषों के संयोग या सांख्य से ही प्रकृति सृष्टि-क्रिया में तरार हुआ करती है।

वेदांत ने और आगे बढ़कर प्रकृति तथा असंख्य पुरुषों का एक ही परम तत्व ब्रह्म में अभिन्नक रूप से समावेश करके जड़ चेतन के द्वैत के स्थान पर अद्वैत की स्थापना की। वेदांत ने सांख्यों के अनेक पुरुषों का खंडन किया और चेतन तत्व को एक और अविच्छिन्न सिद्ध करते हुए बताया कि प्रकृति या माया की 'अहंकार' गुण-रूपी उपाधि से ही एक के स्थान पर अनेक पुरुषों या आत्माओं की प्रतीति होती है। यह अनेकता माया-जन्य है। सांख्यों ने पुरुष और प्रकृति के संयोग से जो सृष्टि की उत्पत्ति कही है, वह भी असंगत है; क्योंकि यह संयोग या तो संभव हो सकता है अथवा मिथ्या। यदि सत्य है, तो नित्य है; अतः कुभी टूट नहीं सकता। इस दशा में आत्मा कभी मुक्त हो ही नहीं सकती। इसी प्रकार की युक्तियों से पुरुष और प्रकृति के द्वैत को न मानकर वेदांत ने उन्हें एक ही परम तत्व ब्रह्म की विभूतियाँ बताया। वेदांत के अनुसार ब्रह्म जगत् का निमित्त और उपादान दोनों ही।

नामरूपात्मक जगत् के मूल में आधारभूत होकर रहनेवाले इस नित्य और निर्विकार तत्व ब्रह्म का स्वरूप कैसा हो सकता है, इसका भी निरूपण वेदांत ने किया है। जगत् में जो नाना दृश्य दिखाई पड़ते हैं, वे सब परिणामी और अनित्य हैं। वे बदलते रहते हैं, पर उनका ज्ञान करनेवाला आत्मा या द्रष्टा सदा यही रहता है। यदि ऐसा न होता तो भूत काल में अनुभव की हुई बात का वर्तमान काल में अनुभूत विषय के साथ जो संबंध जोड़ा जाता है, वह असंभव होता (पंचदर्शी)। इसी से ब्रह्म का स्वरूप भी ऐसा ही होना चाहिए, अर्थात् ब्रह्म चितस्वरूप या आत्मस्वरूप है। नाना ज्ञेय पदार्थ भी ज्ञाता के ही सगुण, सोपाधि या मायात्मक रूप हैं, यह निश्चित करके ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैत वेदांत ने हटा दिया है। ब्रह्मस्वरूप का विवेचन वेदांत के पिछले ग्रंथों में ब्योरे के साथ हुआ है।

जगत् और सृष्टि के संबंध में वेदवित्तियों ने नैयायिकों के 'आरंभवाद' ( ईश्वर सृष्टि उत्पन्न करता है ) और सांत्व्यों के 'परिणामवाद' ( सृष्टि का विकास उत्पत्तोर विकार या परिणाम द्वारा अल्पक प्रकृति से आरंभ हो जाता है ) के स्थान पर 'विवर्तवाद' की स्थापना की है जिसके अनुसार जगत् ब्रह्म का विवर्त या कल्पित रूप है । रस्सी को यदि हम सपने समझें तो रस्सी सत्य वस्तु है और सपने उसका विवर्त या भ्रान्तिजन्य प्रतीति है । इक्षी प्रकार ब्रह्म तो सत्य और वास्तविक सत्ता है और नामरूपात्मक जगत् उसका विवर्त है । यह विवर्त अभ्यास द्वारा होता है । जो नामरूपात्मक दृश्य हम देखते हैं, वह न तो ब्रह्म का वास्तव स्वरूप ही है, न कार्य या परिणाम ही, क्योंकि ब्रह्म निर्विकार और अपरिणामी है । अभ्यास के संबंध में कहा जा सकता है कि सपने कोई भ्रम पदार्थ है, तब तो उसका आरोप होता है । अतः इस विषय की और स्पष्ट करने के लिये 'सृष्टि-सृष्टि-वाद' उपस्थित किया जाता है जिसके अनुसार माया या नामरूप मन की वृत्ति है । इनकी सृष्टि मन ही करता है और मन ही देखता है । ये नामरूप उसी प्रकार मन या वृत्तियों के बाहर की कोई वस्तु नहीं हैं, जिस प्रकार जड़ चित्त के बाहर की कोई वस्तु नहीं है । इन वृत्तियों का धामन ही मोक्ष है ।

इन दोनों वादों में कुछ वृत्ति देखकर कुछ वेदांती 'अवच्छेदवाद' का आश्रय लेते हैं । ये कहते हैं कि ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् की जो प्रतीति होती है, वह पृथक् या अनवच्छिन्न सत्ता के भीतर माया द्वारा अवच्छेद या परिमित के आरोप के कारण होती है । कुछ अन्य वेदांती इन तीनों वादों के स्थान पर 'विव-प्रतिविव-वाद' उपस्थित करते हैं और कहते हैं कि ब्रह्म प्रकृति पर माया के बीच अनेक प्रकार से प्रतिबिम्बित होता है जिससे नामरूपात्मक दृश्यों की प्रतीति होती है । अंतिम वाद 'अजातवाद' है जिसे 'प्रोविवाद' भी कहते हैं । यह सब प्रकार की उत्पत्ति को— चाहे वह विवर्त के रूप में कही जाय चाहे सृष्टिसृष्टि या अवच्छेद या प्रतिबिम्ब के रूप में—अस्वीकार करता है और कहता है कि जो जैसा है, वह वैसा ही है और सब ब्रह्म है । ब्रह्म अनिर्वचनीय है, उसका वर्णन शब्दों द्वारा हो ही नहीं सकता, क्योंकि हमारे पास जो भाषा है, वह द्वैत ही की है, अर्थात् जो कुछ हम कहते हैं, वह भेद के आधार पर ही ।

यद्यपि ब्रह्म का वास्तविक या पारमार्थिक रूप अस्पष्ट, मिथुन और निर्विद्योप है, परं व्यक्त और संगुण रूप भी उसके बाहर नहीं है । पंचदशी में इन सगुण रूपों का विभेद प्रतिविव-वाद के शब्दों में इस प्रकार समझाया गया है । रजोगुण की प्रकृति से प्रकृति दो रूपों में विभक्त होती है—

सर्व-प्रधान और तमःप्रधान । सर्वप्रधान के भी दो रूप हो जाते हैं—शुद्ध सत्य ( जिसमें सत्वगुण पूर्ण हो ) और अशुद्ध सत्य ( जिसमें सत्व अंशतः हो ) । प्रकृति के इन्हीं भेदों में प्रतिबिम्बित होने के कारण ब्रह्म को 'जीव' कहते हैं ।

वेदांत या अद्वैतवाद से साधारणतः शंकराचार्य प्रतिपादित अद्वैतवाद लिया जाता है जिसमें ब्रह्म स्वतन्त्र, सजातीय और विजातीय तीनों भेदों से परे कहा गया है । परं शैवा ऊपर कहा जा चुका है, वादरायण के ब्रह्मसूत्र पर रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य के भाष्य भी हैं । रामानुज के अद्वैतवाद को 'विशिष्टाद्वैत' कहते हैं; क्योंकि उसमें ब्रह्म को चित्त और अचित्त इन दो पक्षों से युक्त या विशिष्ट कहा है । ब्रह्म के इसी सूक्ष्म चित्त और सूक्ष्म अचित्त से स्थूल चित्त ( जीव ) और स्थूल अचित्त ( जड़ ) उत्पन्न हुए । अतः रामानुज के अनुसार ब्रह्म केवल निमित्त-कारण है, उपादान हैं जड़ ( स्थूल अचित्त ) और जीव ( स्थूल चित्त ) । इस मत के अनुसार जीव को ब्रह्म का अंश कह सकते हैं, परं शंकर मत से नहीं, क्योंकि उसमें ब्रह्म सब प्रकार के भेदों से परे कहा गया है ।

वल्लभाचार्य जी का अद्वैत 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है; क्योंकि उसमें रामानुज-कृत दो पक्षों की विशिष्टता इटाकर अद्वैतवाद शुद्ध किया गया है । इस मत के अनुसार सत्, चित्त और आनन्दस्वरूप ब्रह्म अपने इच्छानुसार इन तीनों स्वरूपों का अविभाज्य करता रहता है । जड़ जगत् भी ब्रह्म ही है, परं अपने चित्त और आनन्द स्वरूपों का पूर्ण तिरोभाव किए हुए तथा सत् स्वरूप का कुछ अंशतः आविर्भाव किए हुए है । चेतन जगत् भी ब्रह्म ही है जिसमें सत्, चित्त और आनन्द इन तीनों स्वरूपों का कुछ आविर्भाव और कुछ तिरोभाव रहता है । माया ब्रह्म ही की शक्ति है जो उसी की इच्छा से विभक्त होती है; अतः मायामय जगत् मिथ्या नहीं है । जीव अपने शुद्ध ब्रह्मस्वरूप को तभी प्राप्त करता है जब आविर्भाव और तिरोभाव दोनों मिट जाते हैं; और यह घात केवल ईश्वर के अनुग्रह से ही, जिसे 'पुष्टि' कहते हैं, हो सकती है ।

रामानुज और वल्लभाचार्य केवल दार्शनिक ही न थे, भवित्तमार्गी भी थे ।

वेदांतसूत्र—पंजा ५० [ सं० ] महर्षि वादरायण कृत सूत्र जो वेदांत शास्त्र के मूल माने जाते हैं । वि० दे० "वेदांत" ।

वेदांती—पंजा ५० [ सं० वेदांतिय ] वह जो वेदांत का अध्यायता हो । वेदांत का पूरा पंडित । ब्रह्मवादी ।

वेदाप्रणी—पंजा ५० [ सं० ] सारस्वती ।

वेदात्मा—पंजा ५० [ सं० वेदात्म्य ] (१) विष्णु । (२) सूर्य ।

वेदादि—पंजा ५० [ सं० ] मंत्रण या शंकार का मंत्र ।

वेदादिवीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रणव या ओंकार का मंत्र ।  
 वेदाधिदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्राह्मण ।  
 वेदाधिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] चारों वेदों के अधिपति ब्रह्म जो इस प्रकार हैं—कण्वेद के अधिपति पृथहस्पति, यजुर्वेद के शुक्र, सामवेद के मंगल और अथर्ववेद के बुध ।  
 वेदाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्रह्मरूप का एक नाम ।  
 वेदाष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] गिरागिट ।  
 वेदाश्रय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उद्गम महाभारत में है ।  
 वेदि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यज्ञ कार्य के लिये साफ करके तैयार की हुई भूमि । वेदी । (२) किसी शुभ कार्य के लिये बनाकर तैयार की हुई भूमि । (३) उँगली की एक प्रकार की मुद्रा । (४) अंबुदा । (५) वह अँगूठी जिस पर किसी का नाम अंकित हो ।  
 वेदिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी शुभ कार्य के लिये साफ करके तैयार की हुई भूमि । वेदी । (२) जैन पुराणों के अनुसार एक नदी का नाम ।  
 वेदिजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] द्रौपदी का एक नाम ।  
 वेदित-वि० [ सं० ] (१) जो कुछ बतलाया या सूचित किया गया हो । निवेदित । (२) जो देखा गया हो ।  
 वेदितप्र-वि० [ सं० ] जो जानने के योग्य हो । ज्ञातव्य ।  
 वेदित्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विदित होने का भाव । ज्ञान ।  
 वेदिष्ठ-वि० [ सं० ] जो सभ बातें जानता हो । सर्वज्ञ ।  
 वेदी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेदि । [ स्त्री० ] वेदिनी । (१) पंडित । विद्वान् । (२) ज्ञाता । जानकार । (३) वह जो विवाद करता हो । (४) मद्र ।  
 वदा स्त्री० (१) किसी शुभ कार्य के लिये, विशेषतः धार्मिक कार्य के लिये तैयार की हुई ऊँची भूमि । जैसे,— विवाह की वेदी, यज्ञ की वेदी । (२) सरस्वती ।  
 वेदीतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जिसका उद्गम महाभारत में है ।  
 वेदीश-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेदों के स्वामी, मद्रा ।  
 वेदुक्-वि० [ सं० ] (१) जाननेवाला । ज्ञाता । (२) प्राप्त करने-वाला । पानेवाला । (३) जो कुछ मिला हो । प्राप्त ।  
 वेदेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेदों के स्वामी, मद्रा ।  
 वेदोद्भव-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य्य ।  
 वेदोपकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेदांग ।  
 वेदोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम ।  
 वेदबन्ध-वि० [ सं० ] जो वेधना या उद्घने के योग्य हो । वेधना जाने के योग्य । वेध ।  
 वेध-वि० [ सं० ] (१) जो जानने या समझने के योग्य हो ।

(१) जो कहने के योग्य हो । (२) जो स्तुति करने के योग्य हो । (३) जो प्राप्त करने के योग्य हो ।  
 वेद्यारव-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्ञान । जानकारी ।  
 वेध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी लुकीली चीज से उद्घने की क्रिया । वेधना । विद् करना । (२) मंत्रों आदि की सहायता से मंत्रों, नक्षत्रों और तारों आदि को देखना ।  
 यो०—वेधशाला ।  
 (३) उपोत्पि के मद्रों का किसी ऐसे स्थान में पहुँचना जहाँ से उनका किसी वृत्त मद्र में सामना होता हो । जैसे,—युतवेध, पताही वेध । (४) गृहारापन । गंभीरता ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] वेधत् । (१) मद्रा । (२) विष्णु । (३) शिव । महादेव । (४) सूर्य्य । (५) पंडित । विद्वान् । (६) सफेद मद्रा । (७) दश आदि प्रजापति ।  
 वेधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वेध करनेवाला । (२) वह जो मणियों आदि को वेधकर अपनी जीविका चलाता हो । (३) धनियों । (४) कर्त्त । (५) अम्कर्मत ।  
 वेधनिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह औजार जिससे मणियों आदि में उद्घ करते हैं ।  
 वेधनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह औजार जिससे मणियों आदि में उद्घ करते हैं । वेधनिका । (२) हाथी का अंकुश ।  
 वेधमुद्ध्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्त्त ।  
 वेधमुद्ध्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] इज्जदी का पोषा ।  
 वेधमुदय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कर्त्तरी ।  
 वेधशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्थान जहाँ मद्रों और नक्षत्रों आदि का वेध करने के मंत्र आदि रखे हैं । वह स्थान जहाँ नक्षत्रों और तारों आदि को देखने और उनकी दूरी, गति आदि जानने के मंत्र हैं ।  
 वेधस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] दृष्टेष्टी के अँगूठे की जड़ के पास का स्थान जिसे मद्रातीर्थ भी कहते हैं । ( आचमन के लिये इसी गद्दे में जल लेने का विधान है । )  
 वेधस्त्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।  
 वेधा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेधत् । (१) मद्रा । उ०—सहस्र अब्द कीसे तब वेधा । वरं मूहि मालेष्ट अति मेधा ।—गिरपर । (२) विष्णु । (३) शिव । (४) सूर्य्य । (५) पंडित । (६) सफेद मद्रा । (७) दश आदि प्रजापति । (८) एक पादव का नाम जो अग्द या अग्गत का पुत्र था ।  
 वेधालय-संज्ञा पुं० दे० “वेधशाला” ।  
 वेधित-वि० [ सं० ] जो वेधा गया हो । जिसमें उद्घ किया गया हो । विधा हुआ ।  
 वेधिनो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जौंक । (२) मेथी ।  
 वि० वेधनेवाली । उद्घनेवाली ।



वेधी-संज्ञा पुं० [ सं० वेधिन्- ] [ स्त्री० वेधिनी ] (१) वह जो वेध करता हो । वेध करनेवाला । (२) अशुभ्यंत ।

वेध्य-वि० [ सं० ] (१) जिसे वेध किया जाय । (२) जो वेध करने के योग्य हो ।

वेधना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक पवित्र नदी । ( महाभारत )

वेधन्य-संज्ञा पुं० दे० "वेन" ।

वि० सु० दर । ख्वसूरत ।

वेधयु-संज्ञा पुं० [ सं० ] कौपिने की क्रिया । कैंपकैरी । कंप ।

वेधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कौपिना । कंप । (२) चात रोग ।

वेधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक स्वर्गीय ऋषि ।

वेध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरीर । वेद । यदन । (२) कुंकुम । वेसर ।

वेधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपूर ।

वेधट-संज्ञा पुं० [ सं० ] धेर नामक फल ।

वि० (१) मिलाया हुआ । मिश्रित । (२) नीच ।

वेध-संज्ञा पुं० [ सं० ] उपवन । बाग ।

वेधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] हींग ।

वेधला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काल । समय । वक्त । (२) समय का एक विभाग जो दिन और रात का चौथीसवाँ भाग होता है । कुछ लोग दिनमान के आठवें भाग को भी वेधला मानते हैं । (३) मर्यादा । (४) समुद्र का किनारा । (५) समुद्र की छहर । (६) धाक । घाणी । (७) मसूदा । (८) भोजन । खाना । (९) रोग । बीमारी ।

वेधलाकूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ताम्रलिप्त देव का एक नाम ।

वेधलाजवर-संज्ञा पुं० [ सं० ] मरने के समय आनेवाला जवर ।

वेधलाधिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष में दिनमान के आठवें भाग या वेधला के अधिपति देवता ।

विशेष—रवि, शुक्र, बुध, चंद्र, शनि, वृहस्पति और मंगल ये क्रमशः वेधलाधिप होते हैं । जिस दिन जो वार होता है, उस दिन की पहली वेधला का वेधलाधिप दूसी वार का ग्रह होता है; और फिर पीछे की वेधलाओं के अधिपति उक्त क्रम से शेष ग्रह होते हैं । जैसे,—रविवार की पहली वेधला के वेधलाधिप रवि, दूसरी के शुक्र, तीसरी के बुध, चौथी के चंद्र आदि होंगे । इसी प्रकार शुक्रवार की पहली वेधला के वेधलाधिप बुध, दूसरी के चंद्र, तीसरी के शनि, चौथी के वृहस्पति आदि होंगे ।

वेधलायनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्रप्रवर्धक ऋषि ।

वेधलायलि-संज्ञा स्त्री० दे० "बिहायल" ।

वेधलाचिच-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल के एक प्रकार के राज-कर्मचारी । ( राजतरंगिणी )

वेधिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) ताम्रलिप्त का एक नाम । (२)

नदी तट के आस पास का प्रदेश ।

वेधल-संज्ञा पुं० [ सं० ] विदंग ।

वेधलगिरिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] त्रिवंगु ।

वेधज-संज्ञा पुं० [ सं० ] मिर्च ।

वेधलन-संज्ञा पुं० [ सं० ] धोड़ों का जमीन पर झोटना ।

वेधलनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घल्ली दूध । माछा दूध ।

वेधलमध-संज्ञा पुं० [ सं० ] मिर्च ।

वेधलरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काढा विधाता । (२) माछा दूध ।

वेधलइल-संज्ञा पुं० [ सं० ] लंपट । दुराचारी । बदचलन ।

वेधिल-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लता । वेध ।

वेधिलका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पोई का साग । उपोदिका ।

वेधिकाख्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वेध का पेड़ । (२) वेध के फल का गुद्दा ।

वेधितक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साँप ।

वेधो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेध । वेध । लता ।

वेध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कपड़े लच्छे और गड़ने आदि पहन कर धपने भापको सजाना । (२) किसी के कपड़े लच्छे आदि पहनने का ढंग ।

मुद्रां—किसी का वेध धारण करना = किसी के ढंग के कपड़े लच्छे पहनना । किसी के रूप रंग और पहनने आदि की नकल करना । जैसे,—( नरों आदि का ) राजा का वेध धारण करना ।

(३) पहनने के घब । पोशाक । जैसे,—अब आप अपना वेध उतारिए ।

यो०—वेधामूढा = पहनने के कपड़े आदि । पोशाक ।

(४) कपड़े का बना हुआ घर । खेमा । संवू । (५) घर । मकान । (६) वेधया का घर । (७) दे० "प्रवेत" ।

वेधकुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुलटा स्त्री । दुश्चरिता स्त्री । (२) वेधया । रंडी ।

वेधता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेध का भाव या धर्म । वेधार्थ ।

वेधत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेध का भाव या धर्म । वेधार्थ ।

वेधधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसने किसी दूसरे का वेध धारण किया हो । वह जो अस बदले हुए हो । छत्रवेशी । (२) शैनों का एक संप्रदाय ।

वेधशरी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेधारिन् । (१) वह जिसने वेध धारण किया हो । वेध धारण करनेवाला । (२) वह जो तपस्वी न हो, पर तपस्वियों का सा वेध धारण करता हो । (३) पुराणांनुसार एक संकर जाति ।

वेधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रवेश करना ।

वेधनद-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल की एक नदी का नाम ।

वेधयुधती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेधया । रंडी ।

वेधधू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेधया । रंडी ।

वैश्वानरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैश्या । रंढी ।  
 वैश्वानरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] नमक, मिर्च, धनिया आदि मसाले ।  
 वैश्वानरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैश्या का घर । रंढी का मकान ।  
 वैश्वानरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैश्या । रंढी ।  
 वैश्वानरी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिवशक्ति । हाथ की करीगरी ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैश्या । वह जो वेद्यं पारण किए हो । वेद्यं  
 धारण करनेवाला ।  
 वैश्याजाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुत्रदात्री नाम की छता ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] घर । मकान ।  
 वैश्याकलिंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] चतक पक्षी । गौरैया ।  
 वैश्याकूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिंचिका । विचदा ।  
 वैश्यामनकुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] छट्टूर ।  
 वैश्याभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जो मकान बनाने के लिये  
 उपयुक्त हो; अथवा जिस पर मकान बनाया जाय ।  
 वैश्यावास-संज्ञा पुं० [ सं० ] रहने का घर । मकान ।  
 वैश्यास्त्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैश्या । रंढी ।  
 वैश्यामंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] घर के अंदर का वह भाग जिसमें खिर्कियाँ  
 रहती हैं । अंतःपुर । अनामस्थाना ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैश्या के रहने का मकान । रंढी का घर ।  
 वैश्यागना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुकटा स्त्री । बदचलन औरत ।  
 वैश्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह स्त्री जो नाचती गाती और घन लेकर  
 लोगों के साथ संभोग करती हो । गाने और कसप कमाने-  
 वाली औरत । रंढी ।  
 पय्या-वारखी । गणिका । रूपाजीवा । छुद्रा । शूला ।  
 वारखीसिनी । छमिका । कुंभा । कामरेखा । पय्यागना ।  
 वारखू । भोग्या । सारखीका ।  
 वैश्यावार्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो वैश्याओं के साथ रहता  
 और उन्हें परपुरुषों से मिलाता हो । रंढियों का दलाल ।  
 महुना ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] गद्दा ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दे० "वैश्या" । (२) रामचंद्र में पीछे का  
 वह स्थान जहाँ सट लोग वैश्या रचना करते हैं । नेपथ्य ।  
 (३) वैश्या का घर । रंढी का मकान । (४) कर्म । (५)  
 कार्य-परिचालन । काम चलाना ।  
 वैश्याकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी चीज को छपेटने का कपड़ा ।  
 वेदन । वेदन ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कासमई नाम का छुप्र । कहींदी ।  
 (२) परिचर्या । सेवा ।  
 वैश्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धनियाँ ।  
 वैश्यागरी-संज्ञा पुं० दे० "वैश्यागरी" ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] नमक, मिर्च, धनियाँ आदि मसाले ।

वैश्या-वि० [ सं० ] (वैश्या) जिसमें सुंदर और छलित  
 पायव हो ।  
 वैश्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चमेडी ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० दे० "वैश्या" ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वृक्ष का किसी प्रकार का निर्यास ।  
 (२) गोंद । (३) धूप का पेड़ । धूपसरल । (४) श्रीवेष्ट ।  
 गंधा चिरोजा । (५) सुश्रुत के अनुसार सुँद में होनेवाला  
 एक प्रकार का रोग । (६) दे० "वैश्या" ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गंधापिरोजा । श्रीवेष्ट । (२) गोंद ।  
 (३) वृक्ष का किसी प्रकार का निर्यास । (४) सफेद  
 कुम्हड़ा । पेठा । (५) कुम्हड़ा । (६) छाल । बरकल । (७)  
 उष्णीप । पगड़ी । (८) प्राचीर । परकोटा । चहारदीवारी ।  
 वि० चारों ओर से ढकने या आवृत करनेवाला । वेदन  
 करनेवाला ।  
 वैश्यापथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन शिव-  
 स्थान का नाम ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह कपड़ा आदि जिससे कोई चीज  
 छपेटी जाय । वेदन । (२) घेरने या छपेटने की क्रिया या  
 भाव । (३) सुकट । (४) उष्णीप । पगड़ी । गुगुल । (५)  
 गुगल । (६) कान का छेद ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्री-प्रसंग करने का एक प्रकार । एक  
 तरह का रतिबंध ।  
 वैश्यावैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रतिबंध ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चॉस जिसे वेटर चॉस  
 कहते हैं । रंभबंध ।  
 वैश्या-वि० [ सं० ] वेदन करने योग्य । वेदन आदि से छपेटने  
 क्षामक ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रीवेष्ट । गंधापिरोजा । (२) धूप  
 का पेड़ । सरलछाए । धूपसरल ।  
 वैश्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हरे । हरीतकी ।  
 वैश्या-वि० [ सं० ] (१) नदी या परकोटे आदि से चारों ओर  
 से घिरा हुआ । (२) कपड़े आदि से छपेटा हुआ । (३)  
 रका हुआ । रक ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] मटर, चने आदि की दाल पीसकर  
 तैयार किया हुआ आटा । वैसन ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] गद्दा ।  
 वैश्या-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पीसा हुआ जीरा, मिर्च, लोंग  
 आदि मसाला । (२) एक प्रकार का पकाया हुआ मांस ।  
 विशेष—पहले हड्डियाँ आदि अलग करके छाली मांस पीस  
 लेते हैं, और तब गुद, घी, पीपल, मिर्च आदि मिलाकर  
 उसे पकाते हैं । पही पका हुआ मांस वैश्या कहलाता है ।

**वैकि-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

**वैदधी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] प्राचीन काल की एक जाति का नाम । इस जाति के लोग बहुत युद्ध-प्रिय होते थे ।

**वैध्य-वि०** [ सं० ] (१) विष्य प्रांत का । (२) विष्य पर्वत का ।

**वैकंठ-संज्ञा पुं०** दे० "विकंठ" ।

वि० जो विकंठ की लकड़ी भादि से बना हो । विकंठ का ।

**वैकल्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) यह द्वार या माला जो एक ओर कंधे पर और दूसरी ओर हाथ के भीचे रहे । जनेक की तरह पहना जानेवाला द्वार या माला । (२) इस प्रकार माला पहनने का ढंग ।

**वैकटिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] रत्न-परीक्षक । जीहरी ।

वि० विकट संबंधी । संबंधी विकट का ।

**वैकट्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] विकट होने का भाव या धर्म । विकटता ।

**वैकतिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जो रत्नों की परीक्षा करता हो । रत्न-परीक्षक । जीहरी ।

**वैकथिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जो अपने संबंध में बहुत बदा कर बातें कहा करता हो । शोलीबाज । सीटनेवाला ।

**वैकरंज-संज्ञा पुं०** [ सं० ] संकर जाति का एक प्रकार का साँप । ऐसा साँप जो फनवाले और बिना फनवाले साँपों के योग से उत्पन्न हुआ हो ।

**वैकर्ण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) वास्य मुनि का एक नाम । (२) एक प्राचीन जनपद का नाम जिसका उल्लेख वेदों में है ।

**वैकर्णायन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह जो वैकर्ण या वात्स्य मुनि के वंश में उत्पन्न हुआ हो ।

**वैकर्त्तन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम । (२) कर्ण का एक नाम । (३) सुप्रिय के एक पूर्वज का नाम । (४) वह जो सूर्य वंशी हो ।

वि० सूर्य संबंधी । सूर्य का ।

**वैकर्म-संज्ञा पुं०** [ सं० ] विकर्म या भयकर्म का भाव । दुष्कृत्य ।

**वैकल्प-संज्ञा पुं०** [ सं० ] विकल्प का भाव ।

**वैकल्पिक-वि०** [ सं० ] (१) जो किसी एक पक्ष में हो । एकगामी । (२) जिसमें किसी प्रकार का संदेह हो । संदिग्ध ।

(३) जो अपने इच्छानुसार ग्रहण किया जा सके । जो चुना जा सके ।

**वैकल्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) विकल होने का भाव । विकलता । धबराहट । (२) कातरता । (३) देवापन । (४) भंगहीन होने का भाव । (५) न्यूनता । कमी । (६) अभाव । न होना ।

वि० अघरा । अर्ण्य ।

**वैकायन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

**वैकारिक-वि०** [ सं० ] जिसमें किसी प्रकार का विकार हुआ हो । विगड़ा हुआ । विकृत ।

**संज्ञा पुं०** विकार । विगाद ।

**वैकार्य्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] विकार का भाव या धर्म ।

वि० जिसमें विकार हो सकता या होता हो । विकार के योग्य ।

**वैकालिक-वि०** [ सं० ] जो अपने उपयुक्त समय पर न होकर असमय में उत्पन्न हो ।

**वैकुण्ठ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) विष्णु का एक नाम । (२) पुराणानुसार विष्णु का धाम या स्थान । वह स्थान जहाँ भगवान् या विष्णु रहते हैं । पुराणानुसार यह धाम सत्यलोक से भी ऊपर है । यह धाम सप्त से श्रेष्ठ माना गया है और कहा गया है कि जिन्हें विष्णु मोक्ष देते हैं, वे इसी धाम में निवास करते हैं । यहाँ रहनेवाले न तो युद्धे होते हैं और न मरते हैं । (३) वैकुण्ठ में रहनेवाले देवता । (४) स्वर्ग । (क०) (५) इंद्र । (६) सफेद पत्तोंवाली छलसी ।

**वैकुण्ठ्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वैकुण्ठ का भाव या धर्म ।

**वैकुण्ठीय-वि०** [ सं० ] वैकुण्ठ संबंधी । वैकुण्ठ का ।

**वैकृत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) विकार । (खराबी) । (२) बीमारस रस । (३) बीमारस रस का आलंघन । घीसे, — स्तन, गोस्त, हड्डी भादि ।

वि० (१) जो विकार से उत्पन्न हुआ हो । (२) जो सख्त में ठीक न हो सके । दुःसाध्य ।

**वैकृत उच्चर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह उच्चर जो ऋतु के अनुसार स्वामिक न हो, बरिह किसी और ऋतु के अनुकूल हो ।

**विशेष-साधारणतः** वर्षा ऋतु में वायु, शरद ऋतु में पित्त और वसंत ऋतु में कफ कुचित होता है । यदि वर्षा ऋतु में वायु के प्रकार से उच्चर हो, तो वह वैकृत उच्चर कहा जायगा ।

**वैकृतिक-वि०** [ सं० ] नैमित्तिक ।

**वैकृत्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बीमारस रस ।

**वैकामीय-वि०** [ सं० ] विक्रम का । विक्रम संबंधी । जैसे, — वैकामीय संवत् ।

**वैक्रांत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार की मणि जिसे लुझी कहते हैं ।

**वैक्रिय-वि०** [ सं० ] जो विकने को हो । बेचा जाने योग्य । विक्री का ।

**वैखरी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) कंठ से उत्पन्न होनेवाले स्वर का एक विशिष्ट प्रकार । ऐसा स्वर उच्च और गंभीर होता है ।

और बहुत स्पष्ट सुनाई पड़ता है । (२) वाक्-शक्ति ।  
 (३) वाग्देवी ।  
 वैज्ञानस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो मानस्य आश्रम में हो ।  
 (२) प्राचीन काल के एक प्रकार के ब्राह्मणारी या तपस्वी  
 जो प्रायः वन में रहा करते थे ।  
 वैज्ञानसि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गौत्रप्रवचक ऋषि  
 का नाम ।  
 वैज्ञानसीय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम ।  
 वैगंधिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधक ।  
 वैगण्डेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार भूतों का एक गण ।  
 वैगुण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गुणहीन होने का भाव । विगुणता ।  
 (२) अपराध । दोष । (३) नीचता । वादिवातपन ।  
 वैग्रहिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विग्रह या शरीर संबंधी । शरीर का ।  
 वैग्राह्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो घात करने के योग्य हो । मार  
 डालने लायक ।  
 वैघस्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विघ्नघण या निपुण होने का भाव ।  
 विघ्नघणता । निपुणता । होशियारी ।  
 वैचित्र्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] चित्र की शक्ति । भ्रम । अन्यमनस्कता ।  
 वैचित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] विचित्रता । विलक्षणता ।  
 वैचित्र्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विचित्र होने का भाव । विचित्रता ।  
 विलक्षणता । (२) विनिग्रता । भेद । फर्क । (३) सुंदरता ।  
 लक्ष्यसूती ।  
 वैचित्र्योपार्थ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विचित्रोपार्थ्य की संज्ञान, एत-  
 राट्ट, पांडु और विदुर आदि ।  
 वैच्युत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
 वैच्युति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विच्युत होने का कार्य या भोग ।  
 पतन । गिरना ।  
 वैजनन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मांस जिसमें किसी स्त्री को संज्ञान  
 बरपत्र हो । प्रसव-मांस ।  
 वैजन्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजन होने का भाव । विजनता ।  
 एकता ।  
 वैजयंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र की पुरी का नाम । (२)  
 इंद्र । (३) पर । (४) अश्रिमंथ नामक वृक्ष । अरणी ।  
 वैजयंतिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो पताका या शंका उठाता हो ।  
 शंका उठानेवाला ।  
 वैजयंतिका-संज्ञा स्त्री० दे० "वैजयंती" ।  
 वैजयंती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पताका । शंका । (२) जयंती  
 नामक वृक्ष । (३) एक प्रकार की माला जो पाँच रंगों की  
 और घुटनों तक छटपटी हुई होती थी । कहते हैं कि यह  
 माला श्रीकृष्ण जी पहना करते थे ।  
 वैजयिक-वि० [ सं० ] विजय संबंधी । विजय का ।  
 वैजयी-संज्ञा पुं० दे० "विजयी" ।

वैजयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि जो एक वैदिक शाखा  
 के प्रवर्तक थे । वैजयन । वैजन ।  
 वैजात्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विजातीय होने का भाव । (२)  
 विलक्षणता । अद्भुतता । (३) बद्ध-चलनी । छंपटना ।  
 वैज्ञिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भासा । (२) हेतु । कारण ।  
 वि० (१) बीज संबंधी । बीज का । (२) धीर्य संबंधी ।  
 वीर्य का ।  
 वैज्ञानिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो विज्ञान का अध्यापना  
 हो । विज्ञान ज्ञाननेवाला । (२) निपुण । दक्ष । होशियार ।  
 वि० विज्ञान संबंधी । विज्ञान का । जैसे,—वैज्ञानिक  
 विवेचन, वैज्ञानिक खोज ।  
 वैज्ञान्यत-संज्ञा पुं० [ सं० ] पाप और कुकर्म करते हुए भी ऊपर  
 से साधु मने रहना ।  
 वैज्ञान्यत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैज्ञान्यतम् । वह तपस्वी या साधु  
 जो धास्त्व में पापी और कुकर्मी हो । दुष्ट और नीच धर्म-  
 ध्वजी ।  
 वैज्ञान्य-संज्ञा पुं० दे० "वैद्व्यम्" ।  
 वैज्ञ-वि० [ सं० ] वैज्ञ संबंधी । बौद्ध का ।  
 वैज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बौद्ध का फल । (२) बौद्ध का वह  
 संज्ञा जो यज्ञोपवीत के समय धारण किया जाता है । (३)  
 वंशी । वैज्ञ ।  
 वि० वैज्ञ संबंधी । बौद्ध का ।  
 वैज्ञविक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो वैज्ञ बनाता हो । वंशी बनाने-  
 वाला ।  
 वैज्ञवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वंशलोचना ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] वैज्ञविन । (१) वह जो वैज्ञ बनाता हो ।  
 (२) शिव का एक नाम ।  
 वैज्ञिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो वीणा बनाता हो । वीणकार ।  
 वैज्ञिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो वैज्ञ बनाते में चतुर हो ।  
 वंशी बनानेवाला । (२) हांभी का भंडुस ।  
 वैज्ञकीय-वि० [ सं० ] वैज्ञ संबंधी । वैज्ञ का ।  
 वैज्ञिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेद की एक शाखा का नाम ।  
 वैद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा वैद्य के पुत्र श्रुत का एक नाम ।  
 वैतंडिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो बहुत अधिक चिंतना करता  
 हो । शर्ष का श्रमदा या बहस करनेवाला ।  
 वैतंडी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैतंडिन । पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि  
 का नाम ।  
 वैतंडिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो मांस खेवता हो । मांसिक ।  
 खूब । कसाई ।  
 वैतथ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विफल होने का भाव । विफलता ।  
 वैतनिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो वैतन लेकर काम करता हो ।  
 तनखाह लेकर काम करनेवाला । नीब । भय ।

वैतरणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रसिद्ध पौराणिक नदी जो यम के द्वारा पार मानी जाती है। कहते हैं कि यह नदी बहुत तेज बहती है, इसका जल बहुत ही गरम और बदबूदार है, और उसमें हड्डियाँ, लकड़ तथा बाख आदि भरे हुए हैं। यह भी माना जाता है कि प्राणी को मरने पर पहले यह नदी पार करनी पड़ती है, जिसमें उसे बहुत कष्ट होता है। परंतु यदि उसने अपनी जीवितावस्था में मोदाम किया हो, तो वह उसी गौ की सहायता से सहज में पार उतर जाता है। पुराणों में लिखा है कि जब सती के वियोग में महादेवजी रोने लगे, तब उनके आँसुओं का प्रवाह देखकर देवता लोग बहुत डरे और उन्होंने शनि से प्रार्थना की कि तुम इस प्रवाह को ग्रहण करके सोख लो। शनि ने उस धारा को ग्रहण करना चाहा, पर उसे सफलता नहीं हुई। अंत में उसी धारा से यह वैतरणी नदी बनी। इसका विस्तार दो योजन माना गया है। पापियों को यह नदी पार करने में बहुत कष्ट होता है। (२) वडीसा की एक नदी का नाम जो बहुत पवित्र मानी जाती है।

वैतस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उपर्य की मूर्वेन्द्रिय। लिग। (२) अक्षयेंत।

वैतसेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा पुरुखा का एक नाम जो धीतसेना के पुत्र थे।

वैताल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम।

वैतानिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह हथियार या यज्ञ आदि जो श्रौत विधानों के अनुसार हो। (२) वह अग्नि जिससे अग्निहोत्र आदि कृत्य किए जायें।

वैताल-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तुति-पाठक। वैतालिक।  
वि० वैताल संबंधी। वैताल का।

वैतालकि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन आचार्य का नाम जो ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक थे।

वैताल रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैचक में एक प्रकार का रस जो गंधक, मिर्च और हरताल आदि के योग से बनता है और जो सांनिपातिक ज्वर तथा मूच्छा आदि में उपयोगी माना जाता है।

वैतालिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का वह स्तुति-पाठक जो प्रातःकाल राजाओं को उनकी स्तुति करके जगाया करता था। स्तुति-पाठक।

वैताली-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैजलियुं कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

वैतालीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वर्णवृत्त जिसके पहले तथा तीसरे चरणों में चौदह और दूसरे तथा चौथे चरणों में सोलह मात्राएँ होती हैं।

वि० वैताल संबंधी। वैताल का।

वैतृष्ण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वृष्णा से रहित होने का भाव।

वैद-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।

वैद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो विद नाम ऋषि के पुत्र थे।

वि० विद्वान् या पंडित संबंधी।

संज्ञा पुं० दे० "वैद्य"।

वैदक-संज्ञा पुं० दे० "वैद्यक"।

वैदग्ध्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव। पांडित्य। विद्वत्ता। (२) कार्यकुशलता। पटुता।

(३) चतुरता। चालाकी। (४) रसिकता। (५) शोभा।

(६) हाव भाव।

वैदग्ध्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव।

पांडित्य। विद्वत्ता।

वैदत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो। जानकार।

वैदनुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सोम।

वैदर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विदर्भ देश का राजा या भावक।

(२) दमयंती के पिता भीमसेन का एक नाम। (३)

रुचिगणी के पिता भीमक का एक नाम। (४) वह जो

यातचीत करने में बहुत चतुर हो। (५) यातचीत करने

की चतुराई। वाक्-चातुरी। (६) एक रोग जिसमें मसूरे

फूल जाते हैं और उनमें पीड़ा होती है।

वि० (१) जो विदर्भ देश में उत्पन्न हुआ हो। (२) विदर्भ

देश का।

वैदर्भक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विदर्भ देश का निवासी हो।

वैदर्भी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काव्य की एक रीति। वह रीति

या शैली जिसमें मधुर वर्णों के द्वारा मधुर रचना होती

है। यह सब से अच्छी समझी जाती है। (२) अक्षर्य

ऋषि की स्त्री का एक नाम। (३) दमयंती। (४)

रुचिगणी।

वैदल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मिट्टी का वह पात्र जिसमें भिन्न-

भंगे मील मॉगते हैं। (२) एक प्रकार की पीठी।

वैदारिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर।

इसमें घायु का प्रकोप कम, पित्त का मध्यम और कफ का

अधिक होता है; रोगी की हड्डियाँ और कमर में पीड़ा होती

है; उसे भ्रम, ह्रांस, आस, खोँसी और दिक्की होती है;

और सारा शरीर सुन्न हो जाता है। ऐसा सन्निपात ज्वर

अच्छा नहीं होता।

वैदिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो वेदों में बतलाए हुए

कर्मोंका एक अनुष्ठान करता हो। वेद में कहे हुए कृत्य

करनेवाला। (२) वह जो वेदों आदि का अच्छा ज्ञाता हो।

वेदों का पंडित।

वि० (१) जो वेदों में कहा गया हो। (२) वेद संबंधी।  
वेद का। जैसे—वैदिक काल।

वैदिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धनसाधन।

वैदिश-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विदिशा का निवासी हो।

वैदुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] बेंत की जड़।

वैदुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वान्। पंडित।

वैदुष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वत्ता। पंडित्य।

वैदूर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रमिल रंग का एक प्रकार का रत्न या बहुमूल्य पत्थर जिसे "वहसुनिया" कहते हैं। दे० "लह-सुनिया"।

विशेष—कठित ज्योतिष के अनुसार इत रत्न के अधिष्ठाता देवता केतु माने गए हैं, और कहा गया है कि जय केतु प्रद क्षराय या विद्या हुआ हो, तो यह रत्न धारण करना चाहिए। हमारे यहाँ इसकी गणना महारत्नों में है। सुतार, धन, अश्वत्थ, कलिक और ध्यंग ये पाँच हंसके गुण और कर्कर, कर्करा, प्रास, कलक और देह ये पाँच हंसके दोष कहे गए हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह रत्न विदूर पर्वत पर होता है, इसी से वैदूर्य कहलाता है। वैदिक के अनुसार यह अश्वत्थ, खण्ड, कफ तथा वायु का नाशक और गुल्म तथा शूल को शांत करनेवाला है।

पर्य्याय—केतुरत्न। अश्वरोह। विदुराश्व। विदुरज। खारवज्जु।

वैदेशिक-वि० [ सं० ] विदेश संबंधी। विदेश का।

वैदेश्य-वि० दे० "वैदेशिक"।

वैदेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा निमि के पुत्र का नाम। कहते हैं कि जब राजा निमि निःसंतान मर गए, तब धर्म का कोप हो जाने के भय से ऋषियों ने आरणी से मयकर हर्ष, राग्य करने के लिये, उत्पन्न किया था। (२) पणिक। सौदागर। (३) प्राचीन काल की एक वर्णसंस्कर जाति जिसका काम अंतःपुर में पहरा देना था। मनु के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति माहसनी माता और वैश्य पिता से है।

वैदेहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पणिक। व्यापारी। (२) वैदेह नामक वर्णसंस्कर जाति।

वैदेशिक-संज्ञा पुं० दे० "वैदेह" (२) और (३)।

वैदेही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विदेह राजा जनक की कन्या, सीता। (२) विदेह जाति की स्त्री। (३) रोचना। (४) पीपल। रिप्यली।

वैद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पंडित। विद्वान्। (२) वह जो आयुर्वेद का ज्ञाता हो और उसके अनुसार रोगियों की चिकित्सा आदि करता हो। नियक्। चिकित्सक। (३) वासक वृक्ष। (४) एक जाति जो प्रायः बंगाल में पाई जाती।

है। इस जाति के लोग अपने आप को "अंबष्ठ संतान" कहते हैं।

वि० वेद संबंधी। वेद का।

वैद्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें रोगों के निदान और चिकित्सा आदि का विवेचन हो। चिकित्सा शास्त्र। आयुर्वेद। वि० दे० "आयुर्वेद"।

वैद्यनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंगाल का एक प्रसिद्ध तीर्थ जो संघाल परगने के अंतर्गत है। यहाँ हसी नाम का शिव का एक प्रसिद्ध मंदिर है।

वैद्यमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैद्यमातृ। वासक वृक्ष। अइसा।

वैद्यराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अच्छा वैद्य हो। वैद्यों में श्रेष्ठ।

वैद्यसिंही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वासक वृक्ष।

वैद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काकोली।

वैद्यानि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि-पुत्र का नाम।

वैद्युत-वि० [ सं० ] विद्युत् संबंधी। विजली का।

संज्ञा पुं० (१) विद्युत् का देवता। (२) पुराणानुसार शास्त्र-लिङ्गीय के एक वर्ष का नाम।

वैद्युतगिरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वैद्युम-वि० [ सं० ] विद्युत् संबंधी। मूँगे का।

वैद्यी-वि० [ सं० ] जो विधि के अनुसार हो। कायदे या कानून के मुताबिक। ठीक। जैसे,—वैद्य आंदोलन। वैद्य हिसा।

वैद्यर्ष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्यर्षी होने का भाव। (२) वह जो अपने धर्म के अतिरिक्त अन्यथा धर्मों के सिद्धांतों का भी अच्छा ज्ञाता हो। (३) नास्तिकता।

वैद्यध-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्युत् अर्थात् चंद्रमा के पुत्र, पुत्र।

वैद्यधेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विधवा के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो। विधवा का पुत्र।

वैद्यध्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] विधवा होने का भाव। ईबावा।

वैद्यस-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा हरिचंद्र का एक नाम जो रामा वैद्यस के पुत्र थे।

वैद्यतनिक-संज्ञा पुं० दे० "वैद्यार्थ"।

वैद्यार्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] खनाकुमार, जो विधाता के पुत्र माने जाते हैं।

वैद्यार्थी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माद्री नाम की नदी।

वैद्युमाभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन पगरी का नाम जो शास्त्र, देश में थी।

वैद्यूर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विदुर होने का भाव। इलाहा या कातर होने का भाव। (२) धर्म। सदेह। (३) कपित होने का भाव।

वैद्युत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो विपत्ति का पुत्र या संतान हो। (२) ग्यारहवें मन्वन्तर के एक इंद्र का नाम।

**वैतरणी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रसिद्ध पौराणिक नदी जो यम के द्वारा पर मानी जाती है। कहते हैं कि यह नदी बहुत तेज बहती है, इसका जल बहुत ही गरम और बद्बु-दार है, और उसमें हड्डियाँ, लहू तथा पाल आदि भरे हुए हैं। यह भी माना जाता है कि प्राणी को मरने पर पहले यह नदी पार करनी पड़ती है, जिसमें उसे बहुत कष्ट होता है। परंतु यदि उसने अपनी जीवितावस्था में मोदान किया हो, तो वह उसी गौ की सहायता से सहज में पार उतर जाता है। पुराणों में लिखा है कि जब सती के वियोग में महादेवजी रोने लगे, तब उनके आँसुओं का प्रवाह देखकर देवता लोग बहुत डरे और उन्होंने शनि से प्रार्थना की कि तुम इस प्रवाह को ग्रहण करके सोख लो। शनि ने उस धारा को ग्रहण करना चाहा, पर उसे सफलता नहीं हुई। अंत में उसी धारा से यह वैतरणी नदी बनी। इसका विस्तार दो योजन माना गया है। पारियों को यह नदी पार करने में बहुत कष्ट होता है। (२) उड़ीसा की एक नदी का नाम जो बहुत पवित्र मानी जाती है।

**वैतस-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) पुरुष की मूर्च्छित्य। लिग। (२) अश्लक्ष्ण।

**वैतसेन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] रात्रा पुरुखा का एक नाम जो धीत-सेना के पुत्र थे।

**वैताल्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम।

**वैतानिक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वह हवन या यज्ञ आदि जो श्रौत विधानों के अनुसार हो। (२) वह भग्नि जिससे भग्निदोत्र आदि कृत्य किए जायें।

**वैताल-संज्ञा** पुं० [ सं० ] स्तुति-पाठक। वैतालिक।  
वि० वेताल संबंधी। वेताल का।

**वैतालिक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्राचीन आचार्य का नाम जो ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक थे।

**वैताल रस-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो गंधक, मिर्च और हरताल आदि के योग से बनता है और जो साधुवैदिक स्वर तथा मूच्छा आदि में उपयोगी माना जाता है।

**वैतालिक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का वह स्तुति-पाठक जो प्रातःकाल राजाओं को उनकी स्तुति करके जगाया करता था। स्तुति-पाठक।

**वैताली-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक अनुचर का नाम।

**वैतालीय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक षण्णक्ष जिसके पहले तथा तीसरे चरणों में चौदह और दूसरे तथा चौथे चरणों में सोलह मात्राएँ होती हैं।

वि० वेताल संबंधी। वेताल का।

**वैतपुण्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वृष्णा से रहित होने का भाव।

**वैदभ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।

**वैद-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो विद् ऋषि ऋषि के पुत्र थे।

वि० विद्वान् या पंडित संबंधी।

संज्ञा पुं० दे० "वैद्य"।

**वैदक-संज्ञा** पुं० दे० "वैद्यक"।

**वैदग्ध्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव। पांडित्य। विद्वत्ता। (२) कार्यकुशलता। पटुता। (३) चतुरता। चालाकी। (४) रसिकता। (५) शोभा। (६) हाव भाव।

**वैदग्ध्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव। पांडित्य। विद्वत्ता।

**वैदत-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह जो किसी विषय का अच्छा ज्ञान हो। जानकार।

**वैदनुत-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम।

**वैदर्भ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) विदर्भ देश का राजा या शासक। (२) दमयंती के पिता भीमसेन का एक नाम। (३) रुक्मिणी के पिता भीमक का एक नाम। (४) वह जो बातचीत करने में बहुत चतुर हो। (५) बातचीत करने की चतुराई। वाक्-चातुरी। (६) एक रोग जिसमें मसूरे फूल जाते हैं और उनमें पीड़ा होती है।  
वि० (१) जो विदर्भ देश में उत्पन्न हुआ हो। (२) विदर्भ देश का।

**वैदर्भक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह जो विदर्भ देश का निवासी हो।

**वैदर्भी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) काश्य की एक रीति। वह रीति या शैली जिसमें मथुरा वर्णों के द्वारा मथुरा रचना होती है। यह सब से अच्छी समझी जाती है। (२) भगवत्पुत्र ऋषि की स्त्री का एक नाम। (३) दमयंती। (४) रुक्मिणी।

**वैदक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) मिट्टी का वह पात्र जिसमें निब-मंगे मील मॉंगते हैं। (२) एक प्रकार की पीठी।

**वैदारिक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार का ससिपात्र उर। इसमें वायु का प्रकोप कम, पित्त का मध्यम और कफ का अधिक होता है; रोगी की हड्डियाँ और कमर में पीड़ा होती है; उसे भ्रम, झूलि, खास, साँस और हिचकी होती है; और सारा शरीर सुन्न हो जाता है। ऐसा ससिपात्र कभी अच्छा नहीं होता।

**वैदिक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वह जो वेदों में बतलाए हुए कर्मकांड का अनुष्ठान करता हो। वेद में कहे हुए कृत्य करनेवाला। (२) वह जो वेदों आदि का अच्छा ज्ञान हो। वेदों का पंडित।

वि० (१) जो वेदों में कहा गया हो। (२) वेद संबंधी।  
वेद का। जैसे—वैदिक काल।

वैदिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धनगण्डुन।

वैदिया-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विद्विद्या का निवासी हो।

वैदुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] बेंत की जड़।

वैदुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वान्। पंडित।

वैदुष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वत्ता। पांडित्य।

वैदूर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] भूमिल रंग का एक प्रकार का रत्न या बहुमूल्य पत्थर जिसे "लहसुनिया" कहते हैं। दे० "लहसुनिया"।

विशेष—कलित ज्योतिष के अनुसार इस रत्न के भविष्यता देवता केतु माने गए हैं, और कहा गया है कि जब केतु ग्रह क्षारप या विगड़ा हुआ हो, तो यह रत्न धारण करना चाहिए। हमारे यहाँ इसकी गणना महारत्नों में है। सुतार, धन, अद्भुत, कलिल और ध्यंग ये पाँच इसके गुण और कर्कर, कर्करा, प्रास, कलंक और वेद ये पाँच इसके दोष कहे गए हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह रत्न विदुर पर्वत पर होता है, इसी से वैदूर्य कहा जाता है। वैदुर के अनुसार यह अल, उष्ण, कफ तथा वायु का नाशक और गुल्म तथा शूल को शांत करनेवाला है।

पथ्यां—केतुग्रह। अग्ररोह। विदुरग्रह। विदुरज। सराज्जालुर।

वैदेशिक-वि० [ सं० ] विदेश संबंधी। विदेश का।

वैदेश्य-वि० दे० "वैदेशिक"।

वैदेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा निमि के पुत्र का नाम। कहते हैं कि जब राजा निमि निःसंतान मर गए, तब धर्म का ढोप हो जाने के भय से ऋषियों ने आणी से मथकर हनुं, रास करने के लिये, वापस किया था। (२) वणिक्। सौदागर। (३) प्राचीन काल की एक वणसंकर जाति जिसका काम अंतःपुर में पहरा देना था। मनु के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति प्राहृणी माता और वैश्य पिता से है।

वैदेहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वणिक्। व्यापारी। (२) वैदेह नामक वणसंकर जाति।

वैदेहिक-संज्ञा पुं० दे० "वैदेह" (२) और (३)।

वैदेही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विदेह राजा जनक की कन्या, सीता। (२) वैदेह जाति की स्त्री। (३) रोचना। (४) पीपल। विष्णुकी।

वैद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पंडित। विद्वान्। (२) वह जो आयुर्वेद का ज्ञाता हो और उसके अनुसार रोगियों की चिकित्सा भादि करता हो। नियक्। चिकित्सक। (३) वासक वृक्ष। (४) एक जाति जो प्रायः बंगाल में पाई जाती।

है। इस जाति के लोग अपने आप को "अथ्य संतान" कहते हैं।

वि० वेद संबंधी। वेद का।

वैद्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें रोगों के निदान और चिकित्सा भादि का विवेचन हो। चिकित्सा शास्त्र। आयुर्वेद। वि० दे० "आयुर्वेद"।

वैद्यनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंगाल का एक प्रसिद्ध तीर्थ जो संयाल पराने के अंतर्गत है। यहाँ इसी नाम का तिर्थ का एक प्रसिद्ध मंदिर है।

वैद्यमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैद्यमातृ। वासक वृक्ष। अडुसा।

वैद्यराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अच्छा वैद्य हो। वैद्यों में श्रेष्ठ।

वैद्यसिंही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वासक वृक्ष।

वैद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काकोली।

वैद्यानि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि-पुत्र का नाम।

वैद्युत-वि० [ सं० ] विद्युत् संबंधी। बिजली का।

संज्ञा पुं० (१) विद्युत् का देवता। (२) उराणाजुसार शास्त्र-लि शीप के एक वर्ण का नाम।

वैद्युतगिरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] उराणाजुसार एक पर्वत का नाम।

वैद्युम-वि० [ सं० ] विद्युत् संबंधी। मूँगे का।

वैद्यु-वि० [ सं० ] जो विधि के अनुसार हो। कायदे या कानून के मुताबिक। ठीक। जैसे—वैद्य आंदोलन। वैद्य हिंसा।

वैद्यर्म्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्यर्म्म होने का भाव। (२) वह जो अपने धर्म के अतिरिक्त अन्याय धर्मों के सिद्धांतों का भी अच्छा ज्ञाता हो। (३) नास्तिकता।

वैद्यय-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्युत् अर्थात् चंद्रमा के पुत्र, पुत्र।

वैद्यवेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विषया के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो। विषया का पुत्र।

वैद्यव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विषया होने का भाव। ईहापा।

वैद्यस-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा हरियचंद्र का एक नाम जो राजा वैद्यस के पुत्र थे।

वैद्यार्त्तिक-संज्ञा पुं० दे० "वैद्यार्त्त"।

वैद्यार्त्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] सन्यासकार, जो विषया के पुत्र माने जाते हैं।

वैद्यार्त्ती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राचीनी नाम की जड़ी।

वैद्युमात्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नगरी का नाम जो शाक्य देश में थी।

वैद्यूर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्युत् होने का भाव। इतना या कालर होने का भाव। (२) अम। संदेह। (३) कपित होने का भाव।

वैद्युत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो विद्युत् का पुत्र या सत्या हो। (२) ग्याहर्च मन्वन्तर के एक इंद्र का नाम।



वैश्वदेव्याशिष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।  
 वैश्वेति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ज्योतिष में विष्कंभा आदि सचाईस योगों में से एक योग जो अशुभ माना जाता है । इस योग में, यात्रा अथवा कोई शुभ कार्य करना वर्जित है । (२) भागवत के अनुसार एक देवता जो विपत्ति के पुत्र हैं ।  
 वैधेय-वि० [ सं० ] (१) विधि संबंधी । विधि का । (२) संबंधी । (३) मूल । वेदकृष । ना समस ।  
 वैध्वत-संज्ञा पुं० [ सं० ] यम के एक प्रतिहार का नाम ।  
 वैन-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा वेन के पुत्र पृथु का एक नाम ।  
 वैनतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का पात्र जिसमें घी रखा जाता था और जिसका व्यवहार यज्ञों में होता था ।  
 वैनतेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनता की संतान । (२) गरुड । (३) अहज ।  
 वैनतेयी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वैदिक शाखा का नाम ।  
 वैनत्य-वि० [ सं० ] जिसका स्वभाव विनीत हो । नम्र ।  
 वैनव-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम ।  
 वैनभूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन गोत्र प्रवर्तक ऋषि का नाम । (२) एक वैदिक शाखा का नाम ।  
 वनयिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनय । प्रार्थना । (२) वह जो शास्त्रों आदि का अध्ययन करता हो । (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का रथ जिसका व्यवहार युद्ध में होता था ।  
 वि० विनय संबंधी । विनय का ।  
 वैन्यायक-वि० [ सं० ] विनायक या गणेश संबंधी ।  
 संज्ञा पुं० भागवत के अनुसार भूतों का एक गण ।  
 वैतायिक-वि० [ सं० ] विनायक संबंधी ।  
 संज्ञा पुं० वह जो बौद्ध धर्म का अनुयायी हो । बौद्ध ।  
 वैनाशिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फलित ज्योतिष में जन्म-नक्षत्र से वेदसर्वा नक्षत्र । (२) जन्म नक्षत्र से सातवाँ, दसवाँ और अठारहवाँ नक्षत्र । ये तीनों नक्षत्र अशुभ समझे जाते हैं और निघन्तु-तारा कहलाते हैं । इन नक्षत्रों में यात्रा करना वर्जित है । (३) बौद्ध ।  
 वि० (१) विनाश संबंधी । (२) परतंत्र । पराधीन ।  
 वैनीतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऐसी सपारी जिसे कोई आदमी-मिह-कर डटाते हैं । जैसे, —डोली, पालकी; ताम्रनाम आदि ।  
 वैनेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक शाखा का नाम ।  
 वैनेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा वेन के पुत्र पृथु-का एक नाम ।  
 वैपरीत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विपरीत होने का भाव । विपरीतता । प्रतिवृत्तता ।  
 वैपश्चित-संज्ञा पुं० [ सं० ] तादृश्य नामक ऋषि का एक नाम जो विपश्चित ऋषि के वंशज थे ।

वैपश्यत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम ।  
 वैपादिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विपादिका नामक रोग ।  
 वैपार-संज्ञा पुं० दे० "व्यापार" ।  
 वैपारी-संज्ञा पुं० दे० "व्यापारी" ।  
 वैपित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे भाई यहन आदि जिनकी माता तो एक ही हो, पर पिता भला भला हों ।  
 वैपुल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विपुल होने का भाव । विपुलता । अधिकता ।  
 वैफल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विकल होने का भाव । विकलता । नाकामयाची ।  
 वैषाद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का विकृष्ट । (२) वह अद्यय वृक्ष जो खैर के वृक्ष में से निकला हो ।  
 वैयोधिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो रात के समय पहरा देता, चंटा बजाता और सोए हुए लोगों को जगता हो ।  
 वैमंडि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम । जिन्हें विमंडि भी कहते हैं ।  
 वैभव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धन-संपत्ति । दौलत । विभव । ऐश्वर्य । (२) महिमा । महत्त्व । बड़पन । (३) सामर्थ्य । शक्ति । ताकत ।  
 वैभवशाली-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसके पास बहुत अधिक धन-संपत्ति हो । विभवशाली । मालदार ।  
 वैभविक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो कोई काम करने की अच्छी सामर्थ्य रखता हो । समर्थ ।  
 वैमंडिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।  
 वैभार-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजगृह के पास के एक पर्वत का नाम । इसे वैहार भी कहते थे ।  
 वैभाषिक-वि० [ सं० ] (१) विभाषा संबंधी । (२) वैकल्पिक । संज्ञा पुं० बौद्धों के एक संमदाय का नाम ।  
 वैभूतिक-वि० [ सं० ] विभूति संबंधी । विभूति का ।  
 वैभोज-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जाति का नाम । महाभारत के अनुसार हनु के वंशज वैभोज कहलाते थे । ये लोग सवारी आदि का व्यवहार करना नहीं जानते थे और न इन लोगों में कोई राजा हुआ करता था ।  
 वैभोज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैश्वतोषी का उद्यान या बाग । (२) पुराणानुसार मेरु के पश्चिम में सुपाई पर्वत पर के एक जंगल का नाम । (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम । (४) एक लोक का नाम जो स्वर्ग में माना जाता है ।  
 वैभनस्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विभन या अन्यमनेक होने का भाव । (२) वैर । द्वेष । दुश्मनी ।  
 वैमल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विमल होने का भाव । विमलता ।

वैमान-वि० [ सं० ] [ ली० वैमाना ] विमाता से उत्पन्न । सौतेला ।  
 श्रुते, —वैमान भाई ।  
 वैमात्रेय-वि० [ सं० ] [ ली० वैमात्रेयो ] विमाता से उत्पन्न ।  
 सौतेला ।  
 वैमानिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो विमान पर चढ़कर  
 अंतरिक्ष में विहार करता हो । (२) वह जो आकाश में  
 विहार करता हो । आद्यानाचारी । (३) वह जो उड़  
 सकता हो ।  
 वैमिन्ना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कालिकेय की एक मातृका का नाम ।  
 वैमुख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विमुख होने का भाव । विमुखता ।  
 (२) विपरीतता । प्रतिकूलता । (३) अप्रसन्नता । नाराजगी ।  
 (४) भागना ।  
 वैमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] युद्ध करनेवाले, इंद्र ।  
 वैमुख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो युद्ध विद्या में बहुत निपुण हो ।  
 युद्ध कुशल ।  
 वैमेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] विनिमय । परिवर्तन । बदला ।  
 वैम्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम ।  
 वैपमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जाति का नाम जिसका  
 उल्लेख महाभारत में है ।  
 वैयर्थ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यर्थ होने का भाव । व्यर्थता ।  
 वैयशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम ।  
 वैयश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक ऋषि का नाम जो विश्वमनस  
 के पिता थे ।  
 वैयसन-वि० [ सं० ] व्यसन से उत्पन्न । व्यसन का ।  
 वैयाकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो व्याकरण शास्त्र का अध्या  
 शता हो । व्याकरण का पंडित ।  
 वि० व्याकरण संबंधी । व्याकरण का ।  
 वैयाहय-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याहय" ।  
 वैयात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का रथ  
 जिस पर शेर या चीते की खाळ मढ़ी होती थी । इसे द्वैप  
 भी कहते थे ।  
 वि० व्यात्र संबंधी । व्यात्र का ।  
 वैयात्रपद्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि  
 का नाम ।  
 वैयाहय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का आसन ।  
 वैयास-वि० [ सं० ] व्यास संबंधी । व्यास का ।  
 वैयासिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो व्यास के गोत्र या वंश में  
 उत्पन्न हो ।  
 वैयासिक-वि० [ सं० ] व्यास का बनाया हुआ ( ग्रंथ  
 आदि ) ।  
 वैयास्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक छंद ।

वैरदेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का  
 नाम ।  
 वैर-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्रयुता । दुश्मनी । द्वेष । शत्रुत्व ।  
 किं० प्र०—करना ।—मानना ।—रखना ।—होना ।  
 वैरकर, वैरकारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो किसी के साथ  
 वैर करता हो । दुश्मनी करनेवाला ।  
 वैरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विरक्त होने का भाव । विरक्ता । वैराग्य ।  
 वैरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन जाति का नाम ।  
 वैरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैर का भाव । शत्रुता । दुश्मनी ।  
 वैरदेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) वह वैर या शत्रुता जो किसी के  
 शत्रुता करने पर उत्पन्न हो । ( २ ) वैदिक काल के एक अनु  
 का नाम ।  
 वैरपुरुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसके साथ वैर हो । शत्रु ।  
 दुश्मन ।  
 वैरह्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) विरक्त होने का भाव । विरक्ता ।  
 ( २ ) एकंत ।  
 वैरशुद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किसी के वैर का बदला चुकाना ।  
 दुश्मनी का बदला लेना ।  
 वैरस्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) विरस होने का भाव । विरसता ।  
 ( २ ) हृष्टा का न होना । अनिच्छा ।  
 वैराग-संज्ञा पुं० दे० "वैराग्य" ।  
 वैरागिक-वि० [ सं० ] जिसके कारण विराग उत्पन्न हो ।  
 वैरागी-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) वह जिसके मन में विराग उत्पन्न  
 हुआ हो । यह जिसका मन संसार की ओर से हट गया हो ।  
 विरक्त । ( २ ) उदासीन चैतन्यों का एक संप्रदाय । इस  
 संप्रदाय के लोग रामानुज के अनुयायी होते हैं और श्रीकृष्ण  
 भयवा रामचंद्र की उपासना करते हैं । ये लोग प्रायः जिज्ञा  
 भौतिक अपना निर्वाह करते हैं और अज्ञान बंधन रहते  
 हैं । बंगाल के कुछ वैरागी विवाह करके पुरुषों की भौतिक  
 भी रहते हैं ।  
 वैराग्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] मन की वह वृत्ति जिसके अनुसार संसार  
 की विषयवासना मुच्छ प्रतीत होती है और लोग संसार की  
 संसर्ग छोड़कर एकंत में रहते और ईश्वर का भजन करते  
 हैं । विरक्ति ।  
 वैराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) विराट् पुरुष । परमात्मा । ( २ ) एक  
 मनु का नाम । ( ३ ) एक प्रकार का साम । ( ४ ) भागवत के  
 अनुसार अमित के पिता का नाम । ( ५ ) सृष्टादसर्वे कल्प  
 का नाम । ( ६ ) सपोलोक में रहनेवाले एक प्रकार के पितृ ।  
 कहते हैं कि ये कभी भाग से नहीं जल सकते । ( ७ ) दे०  
 "वैराग्य" ।  
 वैराजक-संज्ञा पुं० [ सं० ] उरीसर्वे कल्प का नाम ।  
 वैराज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) प्राचीन काल की एक प्रकार की

शासन प्रणाली जिसमें एक ही देश में दो राजा मिलकर शासन करते थे। एक ही देश में दो राजाओं का शासन।  
(२) वह देश जहाँ इस प्रकार की शासन प्रणाली प्रचलित हो।

वैराट-वि० [सं०] (१) विराट संबंधी। विराट का। (२) विस्तृत। लंबा चौड़ा।

संज्ञा पुं० (१) इंद्रगोप नाम का कीड़ा। वीरचहूटी। (२) महाभारत का विराट पर्व।

वैराटक-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार भारी में किसी स्थान पर होनेवाली वह गॉट जो जहरीली हो।

वैराट्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों के अनुसार सोलह विद्या-देवियों में से एक विद्यादेवी का नाम।

वैरातक-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन या कोह नाम का वृक्ष।

वैराम-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जाति का नाम।

वैरिचि-वि० [सं०] विरिचि या व्रद्धा संबंधी। व्रद्धा का।

वैरिच्य-संज्ञा पुं० [सं०] सनक आदि ऋषि जो व्रद्धा के पुत्र माने जाते हैं।

वैरि-संज्ञा पुं० [सं०] वैरी। शत्रु। दुश्मन।

वैरिण्य-संज्ञा पुं० [सं०] वैरी। शत्रु। दुश्मन।

वैरिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैर का भाव। शत्रुता। दुश्मनी।

वैरिबीर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दशरथ के एक पुत्र जिनका दूसरा नाम इलविल भी है।

वैरूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन प्रवरकार ऋषि का नाम। (२) एक प्रकार का साम।

वैरुपाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विरुपाक्ष के गोत्र या वंश में उत्पन्न हुआ हो।

वैरुप्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरूप का भाव या धर्म। विरूपता। (२) विकृत होने का भाव।

वैरेचन-वि० [सं०] विरेचन संबंधी। विरेचन का।

वैरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध का एक नाम। (२) राजा बलि का एक नाम। (३) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (४) अग्नि के एक पुत्र का नाम।

वैरोचनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध का एक नाम। (२) राजा पल्लि का एक नाम। (३) सूर्य के एक पुत्र का नाम।

वैरोचि-संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि के पुत्र बाण दैत्य का एक नाम।

वैरोठ्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों की सोलह विद्यादेवियों में से एक विद्यादेवी का नाम।

वैरोथारि-संज्ञा पुं० [सं०] किसी के वैर का बदला चुकाना। वैर-शुद्धि।

वैल-संज्ञा पुं० [सं०] बेल नामक वृक्ष या वसुधा फल।

वैलक्षय्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकल्प होने का भाव। विकल्पता। (२) विभिन्न या अलग होने का भाव। विभिन्नता।

वैलचम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लज्जा। संकोच। धर्म। (२) विस्मय। आश्चर्य। ताज्जुब। (३) स्वभाव की विकल्पता।

वैलस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] दमस्थान। मरघट।

वैल्य-संज्ञा पुं० [सं०] विद्वय या बेल नामक फल। श्रीफल।

वि० विद्वय या बेल नामक फल के संबंध का। बेल का।

वैवधिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अनाज आदि वैचक्र अपना निर्वाह करता हो। गल्ले का व्यापारी। (२) दूत। (३) योद्धा होनेवाला। मजदूर।

वैवर्ण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विवर्ण या मलिन होने का भाव। मलिनता। (२) सौंदर्य या छावण्य का अभाव। (३) खियों के भाट प्रकार के सात्विक भावों में से एक प्रकार का भाव।

वैवर्च-संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ का चक्र या पहिए के समान घूमना।

वैवश्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विवश होने का भाव। विवशता। लाचारी। (२) दुर्बलता। कमजोरी।

वैवश्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (२) एक रुद्र का नाम। (३) धनैश्वर। (४) पुराणानुसार एक मनु का नाम। भाजकल का मन्वंतर हृद्दी मनु का माना जाता है। इक्ष्वाकु, वृग, धार्याति, दिष्ट, एष्ट, करुपक, नरिष्यंत, प्रथम, नामाग और कवि ये दस हनुके पुत्र माने गए हैं। (५) पुराणानुसार वर्णमाल मन्वंतर का नाम। इस मन्वंतर के अवतार वामन, पुरंदर इंद्र, देवता आदियोग, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण आदि और ऋषि करप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि कहे गए हैं। (६) एक तीर्थ का नाम।

वैवश्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (२) एक रुद्र का नाम। (३) धनैश्वर। (४) पुराणानुसार एक मनु का नाम। भाजकल का मन्वंतर हृद्दी मनु का माना जाता है। इक्ष्वाकु, वृग, धार्याति, दिष्ट, एष्ट, करुपक, नरिष्यंत, प्रथम, नामाग और कवि ये दस हनुके पुत्र माने गए हैं। (५) पुराणानुसार वर्णमाल मन्वंतर का नाम। इस मन्वंतर के अवतार वामन, पुरंदर इंद्र, देवता आदियोग, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण आदि और ऋषि करप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि कहे गए हैं। (६) एक तीर्थ का नाम।

वैवश्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (२) एक रुद्र का नाम। (३) धनैश्वर। (४) पुराणानुसार एक मनु का नाम। भाजकल का मन्वंतर हृद्दी मनु का माना जाता है। इक्ष्वाकु, वृग, धार्याति, दिष्ट, एष्ट, करुपक, नरिष्यंत, प्रथम, नामाग और कवि ये दस हनुके पुत्र माने गए हैं। (५) पुराणानुसार वर्णमाल मन्वंतर का नाम। इस मन्वंतर के अवतार वामन, पुरंदर इंद्र, देवता आदियोग, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण आदि और ऋषि करप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि कहे गए हैं। (६) एक तीर्थ का नाम।

वैवश्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (२) एक रुद्र का नाम। (३) धनैश्वर। (४) पुराणानुसार एक मनु का नाम। भाजकल का मन्वंतर हृद्दी मनु का माना जाता है। इक्ष्वाकु, वृग, धार्याति, दिष्ट, एष्ट, करुपक, नरिष्यंत, प्रथम, नामाग और कवि ये दस हनुके पुत्र माने गए हैं। (५) पुराणानुसार वर्णमाल मन्वंतर का नाम। इस मन्वंतर के अवतार वामन, पुरंदर इंद्र, देवता आदियोग, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण आदि और ऋषि करप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि कहे गए हैं। (६) एक तीर्थ का नाम।

वैवश्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (२) एक रुद्र का नाम। (३) धनैश्वर। (४) पुराणानुसार एक मनु का नाम। भाजकल का मन्वंतर हृद्दी मनु का माना जाता है। इक्ष्वाकु, वृग, धार्याति, दिष्ट, एष्ट, करुपक, नरिष्यंत, प्रथम, नामाग और कवि ये दस हनुके पुत्र माने गए हैं। (५) पुराणानुसार वर्णमाल मन्वंतर का नाम। इस मन्वंतर के अवतार वामन, पुरंदर इंद्र, देवता आदियोग, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण आदि और ऋषि करप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि कहे गए हैं। (६) एक तीर्थ का नाम।

वैवश्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (२) एक रुद्र का नाम। (३) धनैश्वर। (४) पुराणानुसार एक मनु का नाम। भाजकल का मन्वंतर हृद्दी मनु का माना जाता है। इक्ष्वाकु, वृग, धार्याति, दिष्ट, एष्ट, करुपक, नरिष्यंत, प्रथम, नामाग और कवि ये दस हनुके पुत्र माने गए हैं। (५) पुराणानुसार वर्णमाल मन्वंतर का नाम। इस मन्वंतर के अवतार वामन, पुरंदर इंद्र, देवता आदियोग, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण आदि और ऋषि करप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि कहे गए हैं। (६) एक तीर्थ का नाम।

वैवश्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (२) एक रुद्र का नाम। (३) धनैश्वर। (४) पुराणानुसार एक मनु का नाम। भाजकल का मन्वंतर हृद्दी मनु का माना जाता है। इक्ष्वाकु, वृग, धार्याति, दिष्ट, एष्ट, करुपक, नरिष्यंत, प्रथम, नामाग और कवि ये दस हनुके पुत्र माने गए हैं। (५) पुराणानुसार वर्णमाल मन्वंतर का नाम। इस मन्वंतर के अवतार वामन, पुरंदर इंद्र, देवता आदियोग, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण आदि और ऋषि करप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि कहे गए हैं। (६) एक तीर्थ का नाम।

वैवश्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (२) एक रुद्र का नाम। (३) धनैश्वर। (४) पुराणानुसार एक मनु का नाम। भाजकल का मन्वंतर हृद्दी मनु का माना जाता है। इक्ष्वाकु, वृग, धार्याति, दिष्ट, एष्ट, करुपक, नरिष्यंत, प्रथम, नामाग और कवि ये दस हनुके पुत्र माने गए हैं। (५) पुराणानुसार वर्णमाल मन्वंतर का नाम। इस मन्वंतर के अवतार वामन, पुरंदर इंद्र, देवता आदियोग, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण आदि और ऋषि करप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि कहे गए हैं। (६) एक तीर्थ का नाम।

वैवाह-वि० [सं०] विवाह संबंधी। विवाह का।

वैवाहिक-संज्ञा पुं० [सं०] कन्या अथवा वर का प्रवसु। समधी।

वि० विवाह संबंधी। विवाह का।

वैवाह्य-वि० [सं०] (१) विवाह संबंधी। विवाह का। (२) जो विवाह के योग्य हो।

संज्ञा पुं० वह समारोह या उत्सव जो विवाह के अवसर पर हो।

वैवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] उदात्त आदि स्वरों का क्रम।

वैशंपायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जो वेद-

भ्यास के निमित्त थे। कहते हैं कि महर्षि व्यासदेव की आज्ञा से इन्हीं ने जन्मेजय को महाभारत की कथा सुनाई थी।

वैशद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विषय होने का भाव। विषयता।

(२) निर्मल या स्वच्छ होने का भाव। निर्मलता।

वैशली-संज्ञा स्त्री० दे० "वैशाली"।

वैशाख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मयानीमें का ढंढा। मयन पृथ।

(२) छाल गदहपूरना। (३) बारह महीनों में से एक महीना जो चांद्र गणना से दूसरा और सौर गणना के अनुसार पहला महीना होता है। इस मास की पूर्णिमा विशाल-वक्षत्र में पड़ती है, इसी लिये इसे वैशाख कहते हैं। चैत के बाद का और जेठ के पहले का महीना। (४) एक प्रकार का श्राद्ध जिसका प्रभाव धोखे पर पड़ता है और जिसके कारण वृक्षा का शरीर भारी हो जाता और वह काँपने लगता है।

वैशालो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यह पूर्णिमा जो विशाला नक्षत्र से युक्त हो। वैशाल मास की पूर्णिमा। (२) छाल गदह-पूरना। (३) पुराणानुसार वसुदेव की एक स्त्री का नाम।

वैशाख-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वैशारद-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो किसी विषय का अष्टांशता हो। विशारद। पंडित।

वैशाख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विशारद या पंडित होने का भाव। (२) निर्मलता। स्वच्छता। सफाई।

वैशाख-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वैशाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राचीन बौद्ध काल की एक प्रसिद्ध नगरी जो विशाल नगरी या विशालपुरी भी कहलाती थी।

कहते हैं कि राजा गुणवर्द्ध के पुत्र विशाल ने यहाँ नगरी बसाई थी। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर का जन्म यहीं हुआ था और बुद्ध भगवान् कई बार यहाँ गए थे। किसी समय यह नगरी बहुत प्रसिद्ध थी और यहाँ बौद्धों की बहुत प्रधानता थी। यहाँ का लिच्छवी राजवंश इतिहासों में प्रसिद्ध है। यहाँ जैनियों का भी तीर्थ था। विद्वानों का मत है कि आधुनिक मुजफ्फरपुर जिले का यसाद नामक गाँव प्राचीन वैशाली का ही अवशेष है।

वैशालीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर का एक नाम।

वैशालीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] लखन, जो विशाल-के संज्ञा माने जाते हैं।

वैशिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] साहित्य के अनुसार तीन प्रकार के नायकों में से एक प्रकार का नायक। यह नायक जो येश्याओं के साथ भोग-विलास करता हो। शेरयागामी नायक।

वि० शेर संबंधी। शेर का।

वैशिक्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन जाति का नाम।

वैशिश्रिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुत्रदात्री नाम की उता।

वैशीपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैश्या का पुत्र।

वैशेषिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छः दर्शनों में से एक जो महर्षि कणाद कृत है और जिसमें पदार्थों का विचार तथा द्रव्यों का निरूपण है। पदार्थ विद्या।

विशेष-महर्षि कणाद का एक नाम उद्धृत भी है, इससे इसे 'शौलक्य दर्शन' भी कहते हैं। यह दर्शन भ्याय के ही अंतर्गत माना जाता है। सिद्धांत-पक्ष में 'भ्याय' कहने से दोनों का बोध होता है; क्योंकि गौतम में प्रमाण-पक्ष प्रधान है और इसमें प्रमेय-पक्ष लिखा गया है। ईश्वर, जगत्, जीव आदि के संबंध में दोनों के सिद्धांत एक ही हैं। यह दर्शन गौतम से पीछे का माना जाता है। गौतम ने मुख्यतः तर्क-पद्धति और प्रमाण-विषय का ही निरूपण किया है, पर कणाद सबसे आगे बड़कर द्रव्यों की परीक्षा में प्रवृत्त हुए हैं। जो द्रव्यों की विशेषताएँ बताते के ही कारण इनके दर्शन का नाम वैशेषिक पदा। नो द्रव्य ये हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। इनमें से पृथ्वी, जल, तेज और वायु नित्य भी हैं और अनित्य भी; अर्थात् परमाणु-भवस्था में तो ये नित्य हैं और स्थूल अवस्था में अनित्य। आकाश, काल, दिक् और आत्मा नित्य और सर्वव्यापक हैं। मन नित्य तो है, पर व्यापक नहीं, क्योंकि यह अणु-रूप है। द्रव्यों की विशेषता इसी प्रकार कणाद ने बताई है।

गौतम ने शौलक्य पदार्थ माने थे, पर कणाद ने छः ही पदार्थ रखे—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समयाव। अंधकार आदि को इन छः के अंतर्गत भाता न समझकर पीछे से एक सातवाँ पदार्थ 'अभाव' भी बढ़ाया गया। द्रव्यों के उद्देश (परिगणन), लक्षण और परीक्षा के उपरान्त कणाद ने गुण और कर्म को लिया है जो द्रव्यों में रहते हैं। संख्या, श्रयकृत्व, बुद्धि, सुख, दुःख इत्यादि ३२६ गुण तिनारा द्रव्य हैं। उल्लेख, अवक्षेपण आदि पाँच प्रकार की गतिवाँ कर्म के अंतर्गत ही गई हैं। अथ रदा 'सामान्य'। वह द्रव्य, गुण और कर्म इन्हीं तीनों में सत्ता के रूप में पाया जाता है। पाँचवाँ पदार्थ 'विशेष' पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणुओं में तथा शेष पाँच द्रव्यों में पाया जाता है। 'विशेष' अनंत होते हैं। 'समयाव' जहाँ कहीं पाया जायगा, वही रहेगा; अतः यह एक ही है।

वैशेषिक का परमाणुवाद प्रसिद्ध है। द्रव्यलोक के टुकड़े करते करते जब ऐसा टुकड़ा रह जाता है जिसके और टुकड़े नहीं हो सकते, तब वह परमाणु कहलाता है। परमाणु नित्य और अक्षर हैं। इन्हीं की योगन से सब

पदार्थ बनते हैं और सृष्टि होती है। आकाश को छोड़ कर जितने प्रकार के भूत होते हैं, उतने ही प्रकार के परमाणु होते हैं; जैसे—पृथ्वी-परमाणु, जल-परमाणु, तेज-परमाणु और वायु-परमाणु। वैशेषिक में दो परमाणुओं के योग को द्वयणुक कहते हैं। आगे चलकर यही द्वयणुक अधिक संख्या में मिलते जाते हैं, जिससे नाना प्रकार के पदार्थ बनते हैं; जैसे, तीन द्वयणुओं से प्रस्थेणु, चार द्वयणुओं से चतुरणुक इत्यादि। कारण-गुण पूर्वक ही कार्यों के गुण होते हैं; अतः जिस गुण के परमाणु होंगे, उसी गुण के उनसे बने पदार्थ होंगे। पदार्थों में जो नाना भेद दिखाई पड़ते हैं, वे सत्त्विक-भेद से होते हैं। तेज के संबंध से वस्तुओं के गुण में बहुत कुछ फेरफार हो जाता है।

परमाणुओं के बीच अंतर की धारणा न होने के कारण वैशेषिकों को "बीजुपाक" नाम का विकल्पण मत ग्रहण करना पड़ा। इस मत के अनुसार पदा भाग में पड़कर इस प्रकार काळ होता है कि क्षमि के तेज से घड़े के परमाणु अलग अलग हो जाते हैं और फिर काष्ठ होकर मिल जाते हैं। घड़े का यह बनना और विगड़ना इतने सूक्ष्म काळ में होता है कि कोई देख नहीं सकता।

परमाणुओं का संयोग सृष्टि के आदि में कैसे होता है इस संबंध में कहा गया है कि ईश्वर की इच्छा या प्रेरणा से परमाणुओं में गति या क्षीम उत्पन्न होता है और वे परस्पर मिलकर सृष्टि की योजना करने लगते हैं। ऊपर जो भी द्वय्य कहे गए हैं, उनमें 'आत्मा' भी है। आत्मा दो प्रकार का कहा गया है—ईश्वर और जीव। ईश्वर की सत्ता और कर्तृत्व मानने के कारण ही न्याय और वैशेषिक भक्तों और पौराणिकों के आक्षेपों से बचे रहे हैं।

और दर्शनों के समान इस दर्शन पर भाष्य नहीं मिलते। प्रवास्तपाद का "पदार्थधर्म संग्रह" नायक ग्रंथ वैशेषिक सूत्रों का भाष्य कहा जाता है; पर यह वास्तव में भाष्य नहीं है, सूत्रों के आचार पर बना हुआ अलग ग्रंथ है।

(२) कणाद का अनुयायी। वैशेषिक दर्शन का माननेवाला।  
 वैशेष्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] विशेष का भाव। विशेषता।  
 वैश्व—संज्ञा पुं० [ सं० ] भारतीय भाषों के चार वर्णों में से तीसरा वर्ण जो "द्विजाति" के अंतर्गत और उसमें अंतिम है। इसका धर्म जनन, अध्वयन और पशुपालन तथा वृत्ति कृषि और वाणिज्य है। आज कल अधिकांश वैश्य प्रायः वाणिज्य-व्यवसाय करके ही जीविका निर्वाह करते हैं।  
 विशेष—"त्रैश्व" शब्द वैदिक "विश्व" से निकला है। वैदिक काल में प्रजापति को विश्व कहते थे। पुराण वाद

में वर्णव्यवस्था हुई, तब वाणिज्य-व्यवसाय और गोपालन आदि करनेवाले लोग वैश्य कहलाने लगे। आजकल इन वैश्यों में देश और वंश आदि के भेद से अनेक जातियाँ और उपजातियाँ पाई जाती हैं। जैसे,—अप्रवाल, भोसवाल, रस्तोगी, भाटिय आदि।

वैश्यता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैश्य का भाव या धर्म। वैश्यत्व।  
 वैश्यभद्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यौद्धों की वैश्यता और भद्रा नाम की दो देवियाँ।

वैश्यसव—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सब या यज्ञ।  
 वैश्यस्तोम—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ।  
 वैश्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वैश्य जाति की स्त्री। (२) हल्दी।  
 वैश्रमक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुराणासुरा देवताओं के एक उपास्य या याग का नाम।

वैश्रवण—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुबेर। (२) शिव। महादेव।  
 वैश्रमणालय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुबेर के रहने का स्थान। (२) घट वृक्ष। घट का पेड़। बरगद।

वैश्रवणोदय—संज्ञा पुं० [ सं० ] घट वृक्ष। बरगद का पेड़।  
 वैश्व—वि० [ सं० ] विश्वदेव संबंधी। विश्वदेव का।  
 संज्ञा पुं० उत्तरापदा नक्षत्र का एक नाम।

वैश्वजनीन—वि० [ सं० ] विश्व भर के लोगों से संबंध रखनेवाला। समस्त संसार के लोगों का।  
 संज्ञा पुं० यह जो समस्त विश्व या संसार के लोगों का कल्याण करता हो।

वैश्वज्योतिष—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम।  
 वैश्वदेव—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह होम या यज्ञ आदि जो विश्वदेव के उद्देश्य से किया जाय। इसमें केवल पके हुए अन्न से विश्वदेव के उद्देश्य से आहुति दी जाती है और ब्राह्मणों को भोजन कराने की आवश्यकता नहीं होती।

वैश्वदेवत—संज्ञा पुं० [ सं० ] उत्तरापदा नक्षत्र जिसके अर्थिप्राता विश्वदेव माने जाते हैं।

वैश्वदेविक—वि० [ सं० ] विश्वदेव संबंधी। विश्वदेव का।  
 वैश्वमनस—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम।  
 वैश्वशुभ—संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष के अनुसार दृश्यवृत्ति के शोमकल्प, शुभकल्प, कोधी, विन्दवासु और परामव नामक पाँच संवत्सरों का युग या समूह। इनमें से पहले दो संवत्सर शुभ और शेष दो अशुभ माने जाते हैं।

वैश्वानर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि। (२) चित्रक या चीता नाम का वृक्ष। (३) रिक्त। पिशा। (४) परमात्मा। (५) वेतन।

वैश्वानर चूर्ण—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैश्व में एक प्रकार का चूर्ण जो संवा नक्षत्र, अजवायन और हर्ष आदि से बनाया जाता है।

यह आमवात, शूल और गुल्म आदि के लिये बहुत उप-  
योगी माना जाता है।

**वैश्वानर मार्ग-छंदा पुं०** [ सं० ] अग्निकोण या पूर्व और दक्षिण  
के बीच का कोण जो वैश्वानर का मार्ग माना जाता है।

**वैश्वानर घटी-छंदा की०** [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार की गोली  
जो पारे, गंधक, ताँबे, कोड़े, शिलानीत, सोड, पीपल,  
चित्रक तथा मिर्च आदि के योग से बनाई जाती है और  
को पेट के रोगों में उपकारी मानी जाती है।

**वैश्वानरविद्या-छंदा की०** [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम।

**वैश्वानर-छंदा पुं०** [ सं० ] वह जिस पर विन्यास किया  
जाय। प्तवार करने के कालिल। निदवरत।

**वैश्वी-छंदा की०** [ सं० ] उच्चारणानुसङ्ग।

**वैषम्य-छंदा पुं०** [ सं० ] विषम होने का भाव। विषमता।

**वैषम्य-छंदा पुं०** [ सं० ] विषम होने का भाव। विषमता।

**वैषयिक-वि०** [ सं० ] विषय संबंधी। विषय का।

**छंदा पुं०** वह जो छंदा विषय वासना में रत रहता हो।  
विषयी। छंदा।

**वैपुल्ल-छंदा पुं०** [ सं० ] विपुल संक्राति।

**वैषिकर-छंदा पुं०** [ सं० ] वह पशु या पक्षी जो चारों ओर घूम  
फिरकर आहार प्राप्त करता हो।

**वैष्टंभ-छंदा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का स्तम्भ।

**वैष्ट-छंदा पुं०** [ सं० ] होम की मसम।

**वैष्ट-छंदा पुं०** [ सं० ] (१) स्वर्ग। (२) यापु। (३) विष्णु।

**वैष्णव-छंदा पुं०** [ सं० ] [ जो० वैष्णो ] (१) वह जो विष्णु की  
आराधना करता हो। विष्णु की उपासना करनेवाला।  
(२) हिंदुओं का एक प्रसिद्ध धार्मिक संप्रदाय। इस  
संप्रदाय के लोग प्रभावतः विष्णु की उपासना करते हैं  
और भगवान्‌हृत विनोय आचार विचार से रहते हैं।

**विद्योप-भारतपर्यं** में विष्णु की उपासना बहुत प्राचीन काल  
से चली आती है। महाभारत के समय में यह धर्म पंचरात्र  
या नारायणीय धर्म कहलाता था। पीछे यही नारायण धर्म  
के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसमें वासुदेव या कृष्ण की  
उपासना प्रधान हुई। नारायणीय आख्यान में लिखा है  
कि पहले नारायण ने इस धर्म का उपदेश प्रजा को किया  
था। प्रजा ने मोह को, मारु ने ध्वास को और ध्वास ने  
शुकदेव को यह धर्म बतलाया था; और तब शुकदेव से  
सर्वसाधारण में प्रचलित हुआ था। शंकराचार्य ने इस मत  
को भवैदिक सिद्ध करना चाहा था, जिसका रामानुजाचार्य  
ने खंडन किया। बीच में इस धर्म का कुछ हास हो गया  
था; पर वैतन्य, रामानुजाचार्य, बहुभाष्य आदि आचार्यों  
ने इस धर्म का फिर से बहुत अधिक प्रचार दिया; और  
इस समय यह भारत के मुख्य संप्रदायों में से एक है। यह

धर्म भक्ति-प्रधान है और इसमें विष्णु ही ब्रह्मात्मा हैं। भाग  
कल इस संप्रदाय की अनेक शाखाएँ और प्रशाखाएँ निकल  
आई हैं—वैतन्य, चण्डल इत्यादि। अधिक संप्रदाय विष्णु  
के अवतार श्रीकृष्ण के उपासक हैं। कुछ संप्रदायवाले माधे  
पर के लिलक के अतिरिक्त दाल, चक्र, गदा, पद्म आदि  
विद्ध भी तब धातु से शरीर में अंकित कराते हैं।

(३) यज्ञ कृंच की मसम। (४) विष्णु पुराण।

वि० विष्णु संघी। विष्णु का।

**वैष्णवरथ-छंदा पुं०** [ सं० ] वैष्णव होने का भाव या धर्म।  
वैष्णवता।

**वैष्णवी-छंदा की०** [ सं० ] (१) विष्णु की शक्ति। (२) दुर्गा। (३)  
गंगा। (४) अपराजिता या कोयल नाम की छता। (५)  
शतावर। (६) तुलसी। (७) पृथ्वी। (८) प्रलय नक्षत्र।  
(९) एक प्रकार का स्तम्भ।

**वैष्णव्य-वि०** [ सं० ] विष्णु संबंधी। विष्णु का।

**वैसर्गिक-वि०** [ सं० ] जो विसर्जन करने या त्यागने योग्य हो।  
त्याग्य।

**वैसर्जन-छंदा पुं०** [ सं० ] (१) विसर्जन करने या उत्सर्ग करने की  
क्रिया। (२) वह जो विसर्जित या उत्सर्ग किया जाय।  
(३) पशु की बलि।

**वैसर्य-छंदा पुं०** [ सं० ] विसर्प नामक रोग।

**वैसाहश्य-छंदा पुं०** [ सं० ] असदृश या असमान होने का भाव।  
असमानता। विषमता।

**वैसारिण-छंदा पुं०** [ सं० ] मछली।

**वैष्टप-छंदा पुं०** [ सं० ] पुराणानुसार एक दातव्य का नाम।

**वैस्तारिक-वि०** [ सं० ] विस्तार संबंधी। विस्तार का।

**वैस्वर्य-छंदा पुं०** [ सं० ] स्वर का विकृत होना। गला बैठना।

**वैहंग-वि०** [ सं० ] विहंग संबंधी। विहंग का।

**वैहार-छंदा पुं०** [ सं० ] वैहार। एक पर्वत जो मगध में रातगुद  
के पास है। वैहार।

**वैहार्य-छंदा पुं०** [ सं० ] वह जिसके साथ हँसी मजाक आदि का  
संबंध हो। जैसे,—साला, सरहज, साडी आदि।

**वैहासिक-छंदा पुं०** [ सं० ] वह जो खप को हँसाता हो। विदु-  
पक। भाई।

**घोकाण-छंदा पुं०** [ सं० ] (१) गृहासंहिता के अनुसार एक देव  
का नाम। (२) इस देव का निवासी।

**घोट-छंदा पुं०** [ सं० ] यह सम्प्रति जो किसी सार्वभौमिक पद  
पर किसी को नियुक्त करने या न करने, अथवा सर्व-  
साधारण से संबंध रखनेवाले किसी नियम या कानून आदि  
के निर्धारित होने या न होने आदि के विषय में प्रकट की  
जाती है। किसी सार्वभौमिक कार्य आदि के होने अथवा  
न होने आदि के संबंध में ही हुई अलग अलग राय। एहा

विशेष—आज कल प्रायः सभा समितियों में निर्वाचन के संबंध में या और किसी विषय में सभासदों अथवा उपस्थित लोगों की सम्मतियों की जाती है। यह सम्मति या तो हाथ उठाकर या खड़े होकर या कागज आदि पर लिखकर प्रकट की जाती है। इसी सम्मति को घोट कहते हैं। आज-कल प्रायः म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा काउन्सिलों आदि के चुनाव में कुछ विविध अधिकार प्राप्त लोगों से घोट लिया जाता है। भारतवर्ष में प्राचीन बौद्ध काल में और उसके पहले भी इससे मिलती जुलती सम्मति देने की प्रथा थी, जिसे छंदस् या छंद कहते थे।

क्रि० प्र०—देना।—मँगना।

घोटर—छंदा पुं० [ छं० ] वह जिसे घोट या सम्मति देने का अधिकार प्राप्त हो। घोट या सम्मति देनेवाला।

घो०—घोटर लिस्ट।

घोटर लिस्ट—छंदा स्त्री० [ छं० ] घोट + लिस्ट यह सूची जिसमें किसी विषय में घोट देने के अधिकारियों के नाम और पते आदि लिखे रहते हैं। घोट देनेवालों की सूची।

घोटान्त—छंदा स्त्री० [ छं० ] दाखी। मजदूरी। दाई।

घोट—छंदा पुं० [ छं० ] सुपारी।

घोट—छंदा पुं० [ छं० ] (१) गौह नामक जंग। गोदस सर्प। (२) एक प्रकार की मछली।

घोट—छंदा पुं० [ छं० ] (१) बौह ऋषि। (२) कदम का पेड़।

घोट्टा—छंदा स्त्री० [ छं० ] ऋषभक नाम की भोपधि।

घोट्टा—छंदा पुं० [ छं० ] एक प्राचीन ऋषि जिनके नाम से तपण के समय जल दिया जाता है।

घोट्ट—वि० [ छं० ] आर्द्र। गीला।

घोट्टार—छंदा पुं० [ छं० ] मुरदासिणी। कंकुष्ट।

घोशाल—छंदा पुं० [ छं० ] एक प्रकार की मछली जिसे योभारी कहते हैं।

घोरक—छंदा पुं० [ छं० ] वह जो छिलता हो। छेसक।

घोरठ—छंदा पुं० [ छं० ] कुंद का फूल या पौधा।

घोरव—छंदा पुं० [ छं० ] घोरो घान।

घोदसाह—छंदा पुं० [ छं० ] वह घोदा जिसकी तुम और अयाल के धाल पीले रंग के हों।

घोदित्य—छंदा पुं० [ छं० ] यही नाव। जहाज।

घ्यंकुश—वि० दे० "निरंकुश"।

घ्यंग—छंदा पुं० [ छं० ] (१) मंडक। (२) भाव-प्रकाश के अनुसार एक प्रकार का छुद रोग जिसमें क्रोध या परिश्रम आदि के कारण वायु कुपित होने से सुँह पर छोटी छोटी काली कुंसियाँ या दाने निकल आते हैं। (३) वह जिसका कोई अंग दृष्ट हुआ या विकृत हो। विकर्ण। (४) दे० "घ्यंग्य"।

घ्यंगक—छंदा पुं० [ छं० ] पर्वत।

घ्यंगता—छंदा स्त्री० [ छं० ] घ्यंग का भाव।

घ्यंगरघ—छंदा पुं० [ छं० ] किसी अंग का न होना या क्षीन होना। संज्ञ।

घ्यंगार्थ—छंदा पुं० दे० "घ्यंग्य"।

घ्यंगुष्ट—छंदा पुं० [ छं० ] एक प्रकार का गुल्म।

घ्यंग्य—छंदा पुं० [ छं० ] (१) शब्द का वह अर्थ जो उसकी व्यंजना वृत्ति के द्वारा प्रकट हो। व्यंजना शक्ति के कारण प्रकट होनेवाला साधारण से कुछ विविध अर्थ। गूह और छिपा हुआ अर्थ। वि० दे० "घ्यंजना"। (२) वह लगती हुई बात जिसका कुछ गूह अर्थ हो। ताना। गेठी। जुटकी।

क्रि० प्र०—कहना।—छेदना—बोलना।—सुनाना।

घ्यंजना—छंदा पुं० [ छं० ] (१) व्यक्त या प्रकट करने अथवा होने की क्रिया। (२) दे० "घ्यंजना"। (३) किन्तु। मिशान। (४) अवयव। अंग। (५) भूँछ। (६) दिन। (७) पैरु के नीचे का स्थान। उपरथ। (८) तरकारी और साग आदि जो दाल, चावल, रोटी, आदि के साथ खाए जाते हैं। (९) साधारण बोलचाल में, पढ़ा हुआ ज्ञान। (१०) वर्णमाला में का वह वर्ण जो विना स्वर की सहायता से न बोला जा सकता हो। हिंदी वर्णमाला में "क" से "ह" तक के सब वर्ण घ्यंजन हैं।

घ्यंजनहारिका—छंदा स्त्री० [ छं० ] पुराणानुसार, एक प्रकार की अमंगल-कारिणी शक्ति जो विवाहता लक्ष्मियों के बनाए हुए खाद्य पदार्थ उठा ले जाती है।

घ्यंजना—छंदा स्त्री० [ छं० ] (१) प्रकट करने की क्रिया। (२) शब्द की तीन प्रकार की शक्तियों या वृत्तियों में से एक प्रकार की शक्ति या वृत्ति जिससे शब्द या शब्द-समूह के वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी और ही अर्थ का बोध होता है। शब्द की यह शक्ति जिसके द्वारा साधारण-अर्थ को छोड़कर कोई विशेष अर्थ प्रकट होता हो। जैसे,—यदि कोई कहे कि "तुम्हारे चेहरे पर पाजी-पन झलक रहा है" और इसके उत्तर में दूसरा व्यक्ति कहे कि "मुझे आज ही जान पड़ा कि मेरे चेहरे में दर्पण का गुण है" तो इससे यह अर्थ निकलेगा कि तुमने मेरे दर्पण रूपी चेहरे में अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसमें पाजी-पन की झलक पाई है। शब्दों की जिस शक्ति से यह अभिप्राय निकला, वही घ्यंजना शक्ति है। इसके शाब्दी और आर्थी ओं सेद माने गए हैं और इन दोनों मेंदों के भी कई उपभेद किए गए हैं।

घ्यंत्तर—छंदा पुं० [ छं० ] जैनों के अनुसार एक प्रकार के पिशाच और यक्ष आदि।

घ्यंश—छंदा पुं० [ छं० ] पुराणानुसार विप्रचिति के पुत्र का नाम जो सिद्धि के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

व्यंग्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पर्वत । पहाड़ ।  
 व्यंस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम ।  
 व्यंसक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भूत । छात्रक ।  
 व्यंसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] उगने या धोखा देने की क्रिया ।  
 व्यक्त-वि० [ सं० ] (१) दिखाई देता या श्लक्ष्णता हुआ । प्रकट ।  
 जाहिर । (२) साफ । स्पष्ट । (३) स्पष्ट । बड़ा । (४)  
 दृष्ट । पानी ।  
 संज्ञा पुं० (१) विष्णु । (२) मनुष्य । आदमी । (३) कृप ।  
 कार्य । काम । (४) साध्य के अनुसार प्रधान, अहंकार,  
 इन्द्रियाँ, तन्मात्र, महाभूत आदि चौबीस तत्व जो, पुरुष  
 से उद्भूत माने गए हैं ।  
 विशेष-साध्य के मत से प्रकृत अर्थक और पुरुष शक्त है ।  
 व्यक्तगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नीली लपराजिता । (२)  
 सोनगुही । (३) पिप्पली । पीपल ।  
 व्यक्तगणित-संज्ञा पुं० दे० "अंकगणित" ।  
 व्यक्तता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यक्त होने का भाव ।  
 व्यक्तदृष्टार्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो देखी हुई बात कहे ।  
 चरमदीर्घ गवाह ।  
 व्यक्तमुञ्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] समय । पक्ष ।  
 व्यक्त राशि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अंकगणित में वह राशि या अंक  
 जो व्यक्त क्रिया या बतला दिया गया हो । ज्ञात राशि ।  
 व्यक्तरूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 व्यक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) व्यक्त होने की क्रिया या भाव ।  
 प्रकृतित या इत्य होता । प्रकृत होता । (२) मनुष्य या  
 किसी और शरीरधारी का, सारा शरीर, जिसकी पृथक्  
 सत्ता मानी जाती है और जो किसी समूह या समाज का  
 अंग समझा जाता है । समष्टि का अणु । व्यक्ति । (३)  
 मनुष्य । आदमी । जैसे,—कृष्ण व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सदा  
 दूसरों का अवहार ही किया करते हैं ।  
 विशेष-यद्यपि यह शब्द संस्कृत में स्त्री लिंग है, तथापि  
 हिंदी में "मनुष्य" या "आदमी" के अर्थ में यह प्रायः  
 पुल्लिंग ही बोला और लिखा जाता है ।  
 (४) भूत मात्र । (५) वस्तु । पदार्थ । चीज । (६) प्रकृत ।  
 व्यक्तीकृत-वि० [ सं० ] जो व्यक्त किया गया हो । प्रकट किया  
 हुआ ।  
 व्यक्तीकृत-वि० [ सं० ] जो व्यक्त किया गया हो । प्रकट किया  
 हुआ ।  
 व्यपन्न-वि० [ सं० ] (१) घबराया हुआ । व्याकुल । (२) दरा  
 हुआ । भयभीत । (३) काम में फँसा हुआ । (४) उद्यमी ।  
 उद्योगी । (५) आसक्त । (६) आसदी ।  
 संज्ञा पुं० विष्णु ।

व्यपन्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) व्यपन्न होने का भाव । (२) व्या-  
 कुलता । घबराहट ।  
 व्यञ्जन-संज्ञा पुं० [ सं० ]-हवा करने का पंखा ।  
 व्यञ्ज्य-वि० [ सं० ] जिसका बोध शब्द की व्यंजना शक्ति के  
 द्वारा हो ।  
 संज्ञा पुं० दे० "व्यंग्य" ।  
 व्यडंबक-संज्ञा पुं० [ सं० ] रेंद का पेड़ । परंद ।  
 व्यड्ड-संज्ञा पुं० दे० "व्याधि" ।  
 व्यति-संज्ञा पुं० [ सं० ] घोड़ा ।  
 व्यतिकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्यसन । (२) विनाश । वरवादी ।  
 (३) मिथ्रण । मिलावट । (४) व्याप्ति । (५) संघर्ष ।  
 लड़ाई । तमसलुच । (६) समूह । झुंड ।  
 व्यतिक्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) क्रम में होनेवाला विपर्यय ।  
 सिलसिले में होनेवाला उलट-फेर । (२) यथा । विचल ।  
 व्यतिक्रमण-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्रम में विपर्यय करना । सिलसिले  
 में उलट फेर करना ।  
 व्यतिक्रांत-वि० [ सं० ] जिसमें किसी प्रकार का विपर्यय  
 हुआ हो ।  
 व्यतिक्रांति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्रम में होनेवाला विपर्यय-  
 व्यतिक्रम ।  
 व्यतिचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पाप कर्म करना । पाप का  
 आचरण करना । (२) दोष । देव ।  
 व्यतिपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत बड़ा उपात । भारी उपद्रव  
 या खराबी । (२) दे० "व्यतीपात" ।  
 व्यतिरिक्त-वि० [ सं० ] (१) भिन्न । अलग । (२) यथा हुआ ।  
 क्रि० वि० अतिरिक्त । सिवा । अलावा ।  
 व्यतिरिक्तता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यतिरिक्त होने का भाव या  
 धर्म । विभिन्नता ।  
 व्यतिरेक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अभाव । (२) भेद । अंतर ।  
 भिन्नता । (३) वृद्धि । बढती । (४) अतिक्रम । (५) एक  
 प्रकार का अर्थालंकार जिसमें उपमान की अपेक्षा उपमेय  
 में कुछ और भी विशेषता या अधिकता का वर्णन होता  
 है । उ०—(क) कहत सयै यँदी रिपु अंकु दस गुनो इति में  
 तिय लिखार यँदी रिपु भगनित धवत उदोत । (ख) निजें  
 परिताप द्रवहि नवनीता । पर दुख द्रवहि सुँ संत्त  
 पुनीता ।  
 व्यतिरेकी-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यतिरेकि । (१) वह जो किसी को  
 अतिक्रम करके जाता हो । (२) वह जो पदार्थों में  
 विभिन्नता उत्पन्न करता हो ।  
 व्यतिर्यंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० व्यतिक्रम ] (१) मिथ्रण ।  
 (२) विनिमय । बदला ।  
 व्यतिपत्तक-वि० [ सं० ] (१) मिला हुआ । (२) आसक्त ।



**विशेष**—आज कल प्रायः समा समितियों में निर्वाचन के संबंध में या और किसी विषय में समासर्वाभयवा उपस्थित लोगों की सम्मतिर्वां हो जाती है। यह सम्मति या तो हाथ उठाकर या खड़े होकर या कागज आदि पर लिखकर प्रकट की जाती है। इसी सम्मति को घोट कहते हैं। आज-कल प्रायः न्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा काउन्सिलों आदि के चुनाव में कुछ विदिष्ट अधिकार प्राप्त लोगों से घोट लिया जाता है। भारतवर्ष में प्राचीन बौद्ध काल में और उसके पहले भी इससे मिलती जुलती सम्मति देने की प्रथा थी, जिसे छंडस् या छंद कहते थे।

**क्रि० प्र०**—देना।—संगिना।

**घोटर-छंदा पुं० [ सं० ]** वह जिसे घोट या सम्मति देने का अधिकार प्राप्त हो। घोट या सम्मति देनेवाला।

**यो०**—घोटर लिटट।

**घोटर लिट्ट-छंदा स्त्री० [ सं० ]** घोट + लिटट ] वह सूची जिसमें किसी विषय में घोट देने के अधिकारियों के नाम और पते आदि लिखे रहते हैं। घोट देनेवालों की सूची।

**घोटान-छंदा स्त्री० [ सं० ]** दासी। मजदूरी। दाई।

**घोट-छंदा पुं० [ सं० ]** सुपारी।

**घोट-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** गौह नामक जंतु। गोवस सर्प। (२) एक प्रकार की मछली।

**घोट-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** गौह ऋषि। (२) कदम का पेड़।

**घोट्टा-छंदा स्त्री० [ सं० ]** ऋषभक नाम की भोपधि।

**घोट्ट-छंदा पुं० [ सं० ]** एक प्राचीन ऋषि जिनके नाम से तर्पण के समय जल दिया जाता है।

**घोट-वि० [ सं० ]** आर्द्र। गीला।

**घोत्रर-छंदा पुं० [ सं० ]** सुरदासिणी। कंकुछ।

**घोशल-छंदा पुं० [ सं० ]** एक प्रकार की मछली जिसे बोधारी कहते हैं।

**घोरक-छंदा पुं० [ सं० ]** वह जो छिलता हो। लेखक।

**घोरट्ट-छंदा पुं० [ सं० ]** कुंद का फूल या पौधा।

**घोरव-छंदा पुं० [ सं० ]** घोरो धान।

**घोटलाह-छंदा पुं० [ सं० ]** वह घोदा जिसकी हुम और अयाल के याल पीले रंग के हों।

**घोहरिथ-छंदा पुं० [ सं० ]** यषी नाव। जहाज।

**व्यंकुट-वि० दे० "निरंकुटा"।**

**व्यंग-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** मंदक। (२) भाव-प्रकाश के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें क्रोध या परिश्रम आदि के कारण वायु कुपित होने से मुँह पर छोटी छोटी काली फुंसियाँ या दाने निकल आते हैं। (३) वह जिसका कोई अंग हटा हुआ या विकृत हो। विकलीय। (४) दे० "व्यंग्य"।

**व्यंगता-छंदा स्त्री० [ सं० ]** व्यंग का भाव।

**व्यंगव-छंदा पुं० [ सं० ]** किसी अंग का न होना वा खरित होना। खंज।

**व्यंगार्थ-छंदा पुं० दे० "व्यंग्य"।**

**व्यंगुप-छंदा पुं० [ सं० ]** एक प्रकार का गुल्म।

**व्यंग्य-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** शब्द का वह अर्थ जो उसके

व्यंजना वृत्ति के द्वारा प्रकट हो। व्यंजना शक्ति के काल प्रकट होनेवाला साधारण से कुछ विनिष्ट अर्थ। गूढ़ और छिपा हुआ अर्थ। वि० दे० "व्यंजना"। (२) वह छलती हुई बात जिसका कुछ गूढ़ अर्थ हो। ताना। शेली। चुटकी।

**क्रि० प्र०**—बहना।—छंदना—घोटना।—सुनाना।

**व्यंजन-छंदा पुं० [ सं० ] (१)** व्यक्त या प्रकट करने अथवा होने की क्रिया। (२) दे० "व्यंजना"। (३) चिह्न। निशान। (४) अवयव। अंग। (५) शूल। (६) द्रव। (७) पेड़ के शीशे का स्थान। उपरध। (८) तरकारी और साग आदि जो दाल, चावल, रोटी, आदि के साथ खाए जाते हैं। (९) साधारण घोटछाल में, पका हुआ भोजन। (१०) वर्णमाला में का वह वर्ण जो बिना स्वर की सहायता से न बोला जा सकता हो। हिंदी वर्णमाला में "क" से "ह" तक के सब वर्ण व्यंजन हैं।

**व्यंजनहारिका-छंदा स्त्री० [ सं० ]** पुराणानुसार, एक प्रकार की अमंगल-कारिणी शक्ति जो विवाहता लक्ष्मियों के बनाए हुए खाच पदार्थ डाल दे जाती है।

**व्यंजना-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१)** प्रकट करने की क्रिया। (२) शब्द की तीन प्रकार की शक्तियों या वृत्तियों में से एक प्रकार की शक्ति या वृत्ति जिससे शब्द या शब्द-समूह के वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी और ही अर्थ का बोध होता है। शब्द की वह शक्ति जिसके द्वारा साधारण अर्थ को छोड़कर कोई विशेष अर्थ प्रकट होता हो। जैसे,—वदि कोई कहे कि "तुम्हारे चेहरे पर पाजी-पन झलक रहा है" और इसके उत्तर में दूसरा व्यक्ति कहे कि "मुझे आज ही जान पड़ा कि मेरे चेहरे में दर्पण का गुण है" तो इससे यह अर्थ निकलेगा कि तुमने मेरे दर्पण रूपी चेहरे में अपना प्रतिबिंब देखकर उसमें पाजी-पन की झलक पाई है। शब्दों की जिस शक्ति से यह अभिप्राय निकला, वही व्यंजना शक्ति है। इसके शाब्दी और आर्थी दो संदे माने गए हैं और इन दोनों संदों के भी कई उपभेद किए गए हैं।

**व्यंतार-छंदा पुं० [ सं० ]** जैनों के अनुसार एक प्रकार के पिशाच और यक्ष आदि।

**व्यंश-छंदा पुं० [ सं० ]** पुराणानुसार विप्रचित्ति के पुत्र का नाम जो सिद्धिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

व्यंशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पर्वत । पहाड़ ।  
 व्यंस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम ।  
 व्यंसक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पूर्त । घाऊक ।  
 व्यंसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] उगने या धोखा देने की क्रिया ।  
 व्यक्त-वि० [ सं० ] (१) दिखाई देता या झलकता हुआ । प्रकट ।  
 जाहिर । (२) साफ । स्पष्ट । (३) स्पष्ट । बदा । (४)  
 हुए । पानी ।  
 संज्ञा पुं० (१) विष्णु । (२) मनुष्य । आदमी । (३) कृत्य ।  
 कार्य । काम । (४) सांख्य के अनुसार प्रधान, अहंकार,  
 इन्द्रियाँ, तन्मात्र, महाभूत आदि चौबीस तत्व जो पुरुष  
 से उद्भूत माने गए हैं ।  
 विशेष-सांख्य के मत से प्रकृति अत्यन्त और पुरुष अत्यन्त है ।  
 व्यक्तगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नीली अमरगन्धिता । (२)  
 सोनहरी । (३) लिप्यन्ती । पीपल ।  
 व्यक्तगणित-संज्ञा पुं० दे० "अंकगणित" ।  
 व्यक्तता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यक्त होने का भाव ।  
 व्यक्तदृष्टार्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो देखी हुई बात कहे ।  
 चरमदीर्घ गवाह ।  
 व्यक्तभुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] समय । वक्त ।  
 व्यक्त राशि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अंकगणित में वह राशि या अंक  
 जो व्यक्त किया या बतला दिया गया हो । ज्ञात राशि ।  
 व्यक्तरूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 व्यक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) व्यक्त होने की क्रिया या भाव ।  
 प्रकाशित या दृश्य होना । प्रकट होना । (२) मनुष्य या  
 किसी और बारीबारी का सारा शरीर, जिसकी प्रत्यक्  
 सत्ता मानी जाती है और जो किसी समूह या समाज का  
 अंग समझा जाता है । समष्टि का अणु । व्यष्टि । (३)  
 मनुष्य । आदमी । शेष-कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सदा  
 दूसरों का अपकार ही किया करते हैं ।  
 विशेष-यद्यपि यह शब्द संस्कृत में छरी लिंग है, तथापि  
 हिंदी में "मनुष्य" या "आदमी" के अर्थ में यह प्रायः  
 पुल्लिङ्ग ही बोला और लिखा जाता है ।  
 (४) मृत मात्र । (५) वस्तु । पदार्थ । चीज । (६) प्रकृत ।  
 व्यक्तीकृत-वि० [ सं० ] जो व्यक्त किया गया हो । प्रकट किया  
 हुआ ।  
 व्यक्तीकृत-वि० [ सं० ] जो व्यक्त किया गया हो । प्रकट किया  
 हुआ ।  
 व्यप्र-वि० [ सं० ] (१) घबराया हुआ । घाबरा । (२) दरा  
 हुआ । अयमीत । (३) काम में फँसा हुआ । (४) उद्यमी ।  
 उद्योगी । (५) भासक । (६) आसही ।  
 संज्ञा पुं० विष्णु ।

व्यप्रता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) व्यम होने का भाव । (२) व्यं-  
 कुलता । घबराहट ।  
 व्यञ्जन-संज्ञा पुं० [ सं० ] दवा करने का पंला ।  
 व्यञ्ज्य-वि० [ सं० ] जिसका बोध शब्द की व्यञ्जना शक्ति के  
 द्वारा हो ।  
 संज्ञा पुं० दे० "व्यंग्य" ।  
 व्यड्यंयक-संज्ञा पुं० [ सं० ] रेंद का पेड़ । परंत ।  
 व्यड्य-संज्ञा पुं० दे० "व्यादि" ।  
 व्यति-संज्ञा पुं० [ सं० ] घोड़ा ।  
 व्यतिकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्यसन । (२) विनाश । बरबादी ।  
 (३) मिश्रण । मिलावट । (४) व्याप्ति । (५) संघर्ष ।  
 कगार । तत्रवस्तु । (६) समूह । मुंड ।  
 व्यतिक्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) क्रम में होनेवाला विपर्यय ।  
 सिलसिले में होनेवाला उलट-फेर । (२) बाधा । विघ्न ।  
 व्यतिक्रमण-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्रम में विपर्यय करना । सिलसिले  
 में उलट फेर करना ।  
 व्यतिक्रान्त-वि० [ सं० ] जिसमें किसी प्रकार का विपर्यय  
 हुआ हो ।  
 व्यतिक्रान्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्रम में होनेवाला विपर्यय ।  
 व्यतिक्रम ।  
 व्यतिचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पाप कर्म करना । पाप का  
 आचरण करना । (२) दोष । ऐव ।  
 व्यतिपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत बड़ा उपपात । भारी उपद्रव  
 या हारानी । (२) दे० "व्यतीपात" ।  
 व्यतिरिक्त-वि० [ सं० ] (१) विघ्न । अडग । (२) बड़ा हुआ ।  
 किं० वि० अतिरिक्त । सिवा । अलावा ।  
 व्यतिरिक्तता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यतिरिक्त होने का भाव या  
 धर्म । विभिन्नता ।  
 व्यतिरेक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अभाव । (२) भेद । अंतर ।  
 मिश्रता । (३) वृद्धि । बढ़ती । (४) अतिक्रम । (५) एक  
 प्रकार का अर्थालंकार जिसमें उपमा का अपेक्षा उपमेय  
 में कुछ और भी विशेषता या अतिरिक्तता का वर्णन होता  
 है । उ०—(क) कदव सवै बैदौ दिपु अंक दस गुनो होत न  
 तिय लिकार बैदौ दिपु अगनित बद्ध उदोत । (ख) निज  
 परिताप प्रबहि नयनीता । पर दुख प्रबहि सु संत  
 पुनीता ।  
 व्यतिरेकी-संज्ञा पुं० [ सं० अतिरिक् ] (१) यह जो किसी की  
 अतिक्रमण करके जाता हो । (२) वह जो पदार्थों में  
 विभिन्नता उत्पन्न करता हो ।  
 व्यतिपंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० व्यतिषक ] (१) मिश्रण ।  
 (२) विमिश्रण । बद्दल ।  
 व्यतिषक-वि० [ सं० ] (१) सिद्ध हुआ । (२) भासक ।

व्यतिहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनिमय । परिवर्तन । बदला ।  
 (२) गाड़ी गलीज । (३) मारपीट ।  
 व्यतीकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्यसन । (२) विनाश ।  
 बरबादी । (३) निग्रह ।  
 व्यतीत-वि० [ सं० ] धीता हुआ । गत । जैसे,—यहूत दिन  
 व्यतीत हो गय, वहाँ से कोई उतर नहीं आया ।  
 व्यतीपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत बढ़ा उखात । मारी उप-  
 ग्रह । जैसे,—भूकंप, उल्कापात आदि । (२) अपमान ।  
 बेइज्जती । (३) ज्योतिष में विंशक भादि सचाईस योगों  
 में से सत्रहवाँ योग जिसमें यात्रा अथवा किसी प्रकार का  
 शुभ काम करने का निषेध है । (४) एक प्रकार का योग  
 जो अमावास्या के दिन शिववार या श्रवण, धनिष्ठा, आर्द्रा,  
 अद्रेष्या अथवा श्रुगतिरा नक्षत्र होने पर होता है । इस  
 योग में गंगा स्नान का बहुत माहात्म्य है ।  
 व्यतीहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनिमय । परिवर्तन । बदला ।  
 (२) आपस में गाड़ी गलीज, मार पीट या इसी प्रकार का  
 और कोई काम करना ।  
 व्यत्यय-संज्ञा पुं० दे० "व्यतिक्रम" ।  
 व्यत्यास-संज्ञा पुं० दे० "व्यतिक्रम" ।  
 व्यथक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो व्यथा उपन्न करता हो । पीड़ा  
 देनेवाला ।  
 व्यथन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्यथा । पीड़ा । तकलीफ । (२)  
 वह जो व्यथा उत्पन्न करता हो । पीड़ा देनेवाला ।  
 व्यथा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पीड़ा । वेदना । तकलीफ । (२)  
 दुःख । छेद । (३) भय । डर ।  
 व्यथित-वि० [ सं० ] (१) जिसे किसी प्रकार की व्यथा या  
 तकलीफ हो । (२) दुःखित । रंजीदा । (३) जिसे किसी  
 प्रकार का शोक भास हुआ हो । (४) भीत । डरा हुआ ।  
 व्यथ्य-वि० [ सं० ] (१) व्यथा देने योग्य । (२) भय उपन्न  
 करनेवाला । भयानक ।  
 व्यथन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेधने की क्रिया । विद करना ।  
 धीघना ।  
 व्यथितोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] निंदा । शिक्कापत्र ।  
 व्यथदेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] निंदा । शिक्कापत्र ।  
 व्यथनय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विनाश । बरबादी । (२) छोड़  
 देना । त्याग ।  
 व्यथनयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] छोड़ देना । त्याग ।  
 व्यपरोपण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० व्यपरोपित ] (१) छुड़ाना ।  
 (२) काटना । (३) नष्ट से काटना । (४) दूर करना ।  
 हटाना ।  
 व्यपचर्चा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अलग होना । (२) छोड़ना ।  
 त्याग ।

व्यपचर्जन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० व्यपचर्जित ] (१) छोड़ना ।  
 त्याग । (२) निवारण । (३) देना । दान ।  
 व्यपेक्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आकांक्षा । इच्छा । चाह । (२)  
 अनुरोध । आग्रह ।  
 व्यपोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] विनाश । बरबादी ।  
 व्यभिचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दुरा या वृत्ति आचार । कुरा-  
 चार । बदचलनी । (२) स्त्री का पर-पुरुष से अथवा पुरुष  
 का पर-स्त्री से अनुचित संबंध । छिनाला ।  
 व्यभिचारिता-संज्ञा स्त्री० दे० "व्यभिचार" ।  
 व्यभिचारी-संज्ञा पुं० [ सं० व्यभिचारि ] [ स्त्री० व्यभिचारिणी ]  
 (१) वह जो अपने मार्ग से गिर गया हो । मार्ग-भ्रष्ट । (२)  
 वह जिसका चाल चलन अच्छा न हो । बदचलन । (३)  
 वह जो पर-स्त्रियों से संबंध रखता हो । पर-स्त्री-गामी ।  
 (४) दे० "संचारी" ( भाव ) ।  
 व्यभिहास-संज्ञा पुं० [ सं० ] उपहास । उट्टा । मजाक ।  
 व्यय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ का विशेषतः धन आदि  
 का इस प्रकार काम में आना कि वह समाप्त हो जाय ।  
 किसी चीज का किसी काम में लगाना । खर्च । सरका ।  
 खपत । जैसे,—(क) उनका व्यय १००] मासिक है ।  
 (ख) व्यय अपनी शक्ति व्यय मत करो । (२) माता । मा-  
 थारी । (३) दान । (४) छोड़ देना । परित्याग । (५) दूर-  
 स्वति के चार के एक धर्म या संस्कार का नाम । (६) महा-  
 भारत के अनुसार एक नाग का नाम ।  
 व्ययक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो व्यय करता हो । व्यय करने-  
 वाला ।  
 व्ययशील-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो बहुत अधिक खर्च करता हो ।  
 खर्चीले स्वभाव का । शाह-खर्च ।  
 व्यथित-वि० [ सं० ] खर्च किया हुआ । व्यय किया हुआ ।  
 व्यथी-संज्ञा पुं० [ सं० व्यथि ] वह जो बहुत व्यय करता हो ।  
 खर्च खर्च करनेवाला । शाह-खर्च ।  
 व्यर्थ-वि० [ सं० ] (१) जिसका कोई अर्थ या प्रयोजन न हो ।  
 बिना मतलब का । निरर्थक । (२) जिसका कोई अर्थ या  
 मतलब न हो । बिना माने का । लर्थ-रहित । (३) जिसमें  
 किसी प्रकार का लाभ न हो ।  
 किं० वि० बिना किसी मतलब के । फरूल । पौही । जैसे,—  
 यह दिन भर व्यर्थ घूमा करता है ।  
 व्यर्थता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यर्थ होने का भाव ।  
 व्यतीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह अपराध जो काम के भावेण  
 के कारण किया जाय । (२) अपराध । कसूर । (३) दंड  
 चपट । फटकार । (४) दुःख । कष्ट । तकलीफ । (५) पीठ-  
 मर्द । बिट । (६) विक्षयता । अद्भुतता ।  
 वि० (१) जो अच्छा न लगे । अशुभ । (२) दुःख देनेवाला ।

कहायक (१) विना ज्ञान पदधान का। अपरिचित।  
 (२) मिलक्षण। अद्भुत। अजीव।  
 व्यवकलन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अंक या रकम में से दूसरा अंक या रकम घटाना। बाकी निकालना।  
 व्यवकीर्ण-वि० [ सं० ] अलग किया हुआ। निकाळा हुआ। सुदा किया हुआ।  
 व्यवच्छिन्न-वि० [ सं० ] (१) अलग। सुदा। (२) विभाग करके अलग किया हुआ। विभक्त। (३) निर्दाण किया हुआ। निश्चित।  
 व्यवच्छेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पृथकता। पार्यवय। अलगभाव। (२) विभाग। खंड। हिस्सा। (३) विराम। उहरना। (४) निर्मूल। छुटकारा।  
 व्यवच्छेदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो व्यवच्छेद या अलग करता हो। व्यवधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी पदार्थ को सुद और साफ़ करने की क्रिया। संस्कार। सफाई।  
 व्यवधान-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यवधान। परदा।  
 व्यवधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह चीज जो बीच में पड़कर बाध करती हो। परदा। (२) भेद। विभाग। खंड। (३) छिपे। अलग होना। (४) छतम होना। समाप्ति।  
 व्यवधायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो बाध में जाता हो। छिपनेवाला। गायब होनेवाला। (२) वह जो किसी को ढकता या छिपाता हो। बाध करने या छिपानेवाला।  
 व्यवधारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी तरह अवधारण या निश्चय करना।  
 व्यवधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यवधान। परदा। बाध। जोड़।  
 व्यवशाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छोड़ देना। (२) त्यग।  
 (१) पीठे की ओर गिरना या हटना।  
 व्यवसर्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ के विभाग करने की क्रिया। बंट। (२) मुक्ति। छुटकारा।  
 व्यवसाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह कार्य जिसके द्वारा किसी की जीविका का निर्वाह होता हो। जीविका। जैसे,—दुसरों की सेवा करना ही उच्छका व्यवसाय है। (२) रोजगार। व्यापार। जैसे,—आनकल कपड़े का व्यवसाय कुठ मंदा है। (३) कोई कार्य आरंभ करना। (४) निश्चय। (५) प्रयत्न। हतयोग। कोशित। (६) उद्यम। काम धंधा। (७) इच्छा। विचार। कदना। (८) अभिप्राय। मतलब। (९) विष्णु का एक नाम। (१०) शिव का एक नाम।  
 व्यवसायी-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यवसायिन्। (१) वह जो किसी प्रकार का व्यवसाय करता हो। व्यवसाय करनेवाला। (२) रोजगार करनेवाला। रोजगारी। (३) वह जो किसी कार्य का अनुष्ठान करता हो।  
 व्यवसित-वि० [ सं० ] (१) जिसका अनुष्ठान किया गया हो।

व्यवसाय किया हुआ। (२) जो कोई काम करने के लिये तैयार हो। उद्यत। तत्पर। (३) जो निश्चय किया जा चुका हो। निश्चित।  
 व्यवसिति संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यवसाय। रोजगार।  
 व्यवस्था-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी कार्य या वह विधान जो शास्त्रों आदि के द्वारा निश्चित या निर्धारित हुआ हो।  
 मुहा०—व्यवस्था देना = धंडिलों आदि का यह बतलाना कि अनुष्ठान विषय में शास्त्रों का क्या मत अथवा भाषा है। किसी विषय में शास्त्रों का विधान बतलाना।  
 (१) चीजों को अलग अलग सजाकर या टिंछने से रखना। (२) प्रयत्न। हंतजाम। जैसे,—विवाह की सब व्यवस्था अपने ही हाथ में है। (३) स्थिर होने का भाव। स्थिरता। स्थिति।  
 व्यवस्थाता-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यवस्थापक (१) वह जो व्यवस्था करता हो। व्यवस्था या हंतजाम करनेवाला। (२) वह जो यह बतलता हो कि अनुष्ठान विषय में शास्त्रों की क्या भाषा है। शास्त्रीय व्यवस्था देनेवाला।  
 व्यवस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उपस्थित या स्थिर होना। व्यवस्थिति। (२) व्यवस्था। हंतजाम। प्रबंध। (३) विष्णु का एक नाम।  
 व्यवस्थानप्रवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।  
 व्यवस्थापक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो यह बतलता हो कि अनुष्ठान विषय में शास्त्रों का क्या मत है। व्यवस्था देनेवाला। (२) वह जो किसी कार्य आदि की नियमपूर्वक चलाता हो। (३) वह जो व्यवस्था या हंतजाम करता हो। प्रबंधकर्ता। हंतजामकार।  
 व्यवस्थापत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र जिसमें किसी विषय की शास्त्रीय व्यवस्था या यह विधान लिखा हो कि अनुष्ठान विषय में शास्त्रों की क्या भाषा या मत है।  
 व्यवस्थापन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी विषय में शास्त्रीय व्यवस्था देना या बतलाना। यह बतलाना कि अनुष्ठान विषय में शास्त्रों की क्या भाषा अथवा मत है। (२) किसी विषय में कुठ निश्चय, निर्धारण या निरूपण करना।  
 व्यवस्थापनीय-वि० [ सं० ] व्यवस्थापन करने के योग्य।  
 व्यवस्थापित-वि० [ सं० ] (१) जिसके संबंध में कुठ निश्चय या निरूपण किया गया हो। व्यवस्था किया हुआ। (२) जो नियमपूर्वक लगाया, रखा या किया गया हो। (३) जो नियम के अनुसार हो। नियमित।  
 व्यवस्थाप्य-वि० [ सं० ] जो व्यवस्थापन करने के योग्य हो।  
 व्यवस्थित-वि० [ सं० ] जिसमें किसी प्रकार की व्यवस्था का

नियम हो। जो ठीक नियम के अनुसार हो। कायदे का। जैसे,—वे सभी काम व्यवस्थित रूप से किया करते हैं।

**व्यवस्थिति-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) उपस्थित या स्थिर होना। व्यवस्थान। (२) व्यवस्था। इंतजाम।

**व्यवहार-ए-संज्ञा** पुं० [ सं० ] अभियोगों आदि का नियमानुसार विचार। मुकदमे की सुनवाई या पेशी। व्यवहार।

**व्यवहार्त्ता-संज्ञा** पुं० [ सं० व्यवहर्त्ता ] वह जो व्यवहार शास्त्र के अनुसार किसी अभियोग आदि का विचार करता हो। न्यायकर्त्ता।

**व्यवहार-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) क्रिया। कार्य्य। काम। (२) आपस में एक दूसरे के साथ बरतना। बरतना। जैसे,—हमारा उनका इस तरह का व्यवहार नहीं है। (३) व्यापार। रोजगार। (४) छेवदेन का काम। महाजनी। (५) सगद्दा। विवाद। (६) न्याय। (७) शर्त। पण। (८) स्थिति। (९) दो पक्षों में होनेवाला वह सगद्दा जिसका फैसला अदालत से हो। मुकदमा।

**व्यवहारक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वह जिसकी जीविका व्यवहार से चलती हो। वह जो न्याय या वकालत आदि करता हो। (२) वह जो वयस्क हो गया हो। वालिग।

**व्यवहारजीवी-संज्ञा** पुं० [ सं० व्यवहारजीविन् ] वह जो व्यवहार या वकालत आदि के द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

**व्यवहारज्ञ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वह जो व्यवहार शास्त्र का ज्ञाता हो। व्यवहार जाननेवाला। (२) वह जो पूर्ण वयस्क हो गया हो। वालिग।

**व्यवहारत्व-संज्ञा** पुं० [ सं० ] व्यवहार का भाव या धर्म।

**व्यवहारदर्शन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] किसी अभियोग में न्याय और अन्याय अथवा सत्य और मिथ्या का निर्णय करना।

**व्यवहारपाद-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) व्यवहार के पूर्वपद, उच्चर, क्रिया पाद और निर्णय इन चारों का समूह। (२) इन चारों में से कोई एक जो व्यवहार का एक पाद या अंश माना जाता है।

**व्यवहारमातृका-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] वे क्रियाएँ जिनका व्यवहार में उपयोग होता है। व्यवहार शास्त्र के अनुसार होनेवाली कार्यवाहियाँ। जैसे,—मुकदमा दावर होना, पेश होना, गवाहों का बुलाया जाना, उनकी गवाही होना, जिरद और बइस होना, फैसला होना आदि। मितलखार के अनुसार पेशी क्रियाएँ संख्या में तीस हैं।

**व्यवहारमूल-संज्ञा** पुं० [ सं० ] अकरका। अकरकाहा।

**व्यवहारविधि-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें व्यवहार संबंधी बातों का उल्लेख हो। वह शास्त्र जिसमें व्यवहार या मुकदमों आदि का विधान हो। धर्मशास्त्र।

**व्यवहारशास्त्र-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें वह बतलाया

गया हो कि वादी और प्रतिवादी के विवाद का किस प्रकार निर्णय करना चाहिए, अभियोग किस प्रकार सुनाया चाहिए और किस अपराध के लिये कितना दंड देना चाहिए। धर्मशास्त्र।

**व्यवहारसिद्धि-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] व्यवहार शास्त्र के अनुसार अभियोगों का निर्णय करना।

**व्यवहारस्थान-संज्ञा** पुं० [ सं० ] व्यवहार का विषय या पद। व्यवहारासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह आसन जिस पर अभियोगों का विचार करते समय विचार करनेवाला बैसता है। विचारासन। न्यायासन।

**व्यवहारास्पद-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह निवेदन जो वादी अपने अभियोग के संबंध में राजा अथवा न्यायकर्त्ता के समुच्च करता हो। वालिग। फुरियाद।

**व्यवहारिक-वि०** [ सं० ] (१) जो व्यवहार के लिये उपयुक्त या ठीक हो। व्यवहार-योग्य। (२) हंगुदी। हिंगोट।

**व्यवहारिकजीव-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वेदांत के अनुसार विशाल मय कोप जो ज्ञानेन्द्रिय के साथ बुद्धि के संयुक्त होने से होता है।

**व्यवहारिका-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) संसार में रहकर उसके सब व्यवहार या कार्य्य करना। (२) हंगुदी का पद। (३) स्नाह।

**व्यवहारी-संज्ञा** पुं० [ सं० व्यवहारिन् ] व्यवहार करनेवाला।

**व्यवहार्य-वि०** [ सं० ] जो व्यवहार करने के योग्य हो। काम में लाने लायक।

**व्यवहित-वि०** [ सं० ] जिसके आगे किसी प्रकार का व्यवधान या परदा पढ़ गया हो। भाइ या ओट में गया हुआ। छिपा हुआ।

**व्यवहृत-वि०** [ सं० ] (१) जिसका आचरण या अनुष्ठान किया गया हो। (२) जिसका व्यवहार शास्त्र के अनुसार विचार किया गया हो। (३) जो काम में लाया गया हो।

**व्यवहृति-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) वह लाम जो ब्यापार में होता है। रोजगार में होनेवाला नफा। (२) वालिजप। व्यापार। रोजगार। (३) कुशलता। होनियाती।

**व्यवाय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) तेज। (२) स्त्री-प्रसंग। संयोग। मैथुन। (३) शुद्धि। (४) परिणाम। फल। नतीजा। (५) भाइ। ओट। परदा। (६) विप्र। बाधा। खलक।

**व्यवायशोप-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार का राजपदना या तपेदिक जो बहुत अधिक स्त्री-प्रसंग करने से होता है।

**व्यवायी-संज्ञा** पुं० [ सं० व्यवयिन् ] (१) वह जिसे स्त्री-प्रसंग की बहुत अधिक कामना रहती हो। कामुक। (२) वह जो बीच में किसी प्रकार का व्यवधान या परदा करता हो। भाइ या शोइ करनेवाला। (३) वह जो बीच में

हारी में पहुँचकर पहले सब मादियों में, कैल जाय और  
उब चचे। जैसे,—जोग या अफिम ।

दृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम जो  
ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्राष्टा थे । (२) एक प्राचीन राजा का  
नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

दृष्ट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा ।

दृष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] समूह या समाज में से अलग किया  
हुआ प्रत्येक व्यक्ति या पदार्थ । वह जिसका विचार  
भङ्गले हो, औरों के साथ न हो । समष्टि का एक बिन्दु  
और पृथक् अंश । समष्टि का उलटा ।

दृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विपत्ति । आफत । (२) दुःख ।  
कष्ट । तकलीफ । (३) पतन । गिरना । (४) विनाश ।  
नष्ट होना । (५) कोई सुरी या अमंगल बात । (६) वह  
प्रयत्न जिसका कोई फल न हो । व्यर्थ का उद्योग । (७)  
विषय-वासना के प्रति होनेवाला अनुगत । विषयों के प्रति  
आसक्ति । (८) दुर्भाग्य । बदकिस्ती । (९) अयोग्य या  
असमर्थ होने का भाव । (१०) वह दोष जो काम या मोक्ष  
आदि विकारों से उत्पन्न हुआ हो । जैसे,—शिकार, जूभा,  
स्त्री-प्रसंग, नृत्य आदि देखना और गीत आदि सुनना ।

विशेष—मनु ने व्यसनो की संख्या १८ बतावाई है और  
उनमें से १० व्यसन कामज तथा ८ मोक्षज बड़े हैं ।  
मनु की यह भी भाषा है कि राजा को इन सब प्रकार के  
व्यसनो से बचना चाहिए ।

(११) किसी प्रकार का शौक । किसी विषय के प्रति  
विशेष रुचि या प्रवृत्ति । डीले,—उन्हें केवल लिखने पढ़ने  
का व्यसन है ।

व्यसनार्त्त-वि० [ सं० ] जिसे किसी प्रकार की देवी या मानुषी  
पीड़ा पहुँची हो ।

व्यसनिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यसनी होने का भाव या धर्म ।  
व्यसनित ।

व्यसनी-संज्ञा पुं० [ सं० व्यसनित् ] (१) वह जिसे किसी प्रकार  
का व्यसन या शौक हो । (२) वेदपागामी । रंजीवान ।

व्यस्त-वि० [ सं० ] (१) घबराया हुआ । व्याकुल । (२) काम  
में खया या फँसा हुआ । (३) फँसा या लाया हुआ । व्याप्त ।  
(४) फँसा हुआ । (५) ह्वर उधर, आगे पीछे या ऊपर  
नीचे किया हुआ । (६) हर एक । अलग अलग । पृथक् ।

व्यस्तक-वि० [ सं० ] जिस में हड़ती न हो । विना हड़ती का ।

व्यस्तपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यस्तपद शाक में नीलिया होने पर  
श्रम न चुकाना, बल्कि कुछ उन्न करना ।

व्यह-संज्ञा पुं० [ सं० ] कल का बीता हुआ दिन ।

व्याकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह विद्या या शास्त्र जिस में किसी  
भाषा के शब्दों के शुद्ध रूपों और वाक्यों के प्रयोग के

नियमों आदि का निरूपण होता है । भाषा का शुद्ध प्रयोग  
और नियम आदि बतलानेवाला शास्त्र ।

विशेष—व्याकरण में वर्णों, शब्दों और वाक्यों का विचार होता  
है; इसी लिये इसके वर्ण-विचार, शब्द-साधन और वाक्य-  
विन्यास ये तीन मुख्य विभाग होते हैं । व्याकरण के नियम  
प्रायः किसी हुई और प्रचलित भाषा के आधार पर निश्चित  
किए जाते हैं; क्योंकि बोलने में लोग प्रायः प्रयोगों की  
शुद्धता पर उतना अधिक ध्यान नहीं रखते । व्याकरण में  
शब्दों के अलग अलग भेद कर लिए जाते हैं; जैसे,—संज्ञा,  
क्रिया, विशेषण, सर्वनाम आदि; और तब इस बात का  
विचार किया जाता है कि इन शब्द-भेदों का ठीक ठीक और  
शुद्ध प्रयोग क्या है । हमारे यहाँ व्याकरण की गणना वेदांग  
में की गई है ।

व्याकर्त्ता-संज्ञा पुं० [ सं० व्याकर्त् ] मृष्टि की रचना करनेवाला,  
परमेश्वर ।

व्याकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ का विगदा या  
पददा हुआ आकार । (२) व्याख्या ।

व्याकीर्ण-वि० [ सं० ] जो चारों ओर. अच्छी तरह फैलाया  
गया हो ।

व्याकुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो अथवा दुःख के कारण  
इतना घबरा गया हो कि कुछ समझ न सके । बहुत  
घबराया हुआ । विकल । (२) जिसे किसी बात की बहुत  
अधिक उत्कंठा या कामना हो । (३) कातर ।

व्याकुलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) व्याकुल होने का भाव ।  
विकलता । घबराहट । (२) कातरता ।

व्याकृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] टुक । घोसा । फरेब ।

व्याकृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रकाश में लाने का काम ।  
(२) व्याख्या करने का काम । व्याख्यान । (३) रूप में  
परिवर्तन करने का काम ।

व्याकोश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विज्ञान । (२) स्फुटित होना ।  
सिलना ।

व्याकोश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी का तिरस्कार करते हुए  
कटाक्ष करना । (२) चिह्नना । चिह्नाहट ।

व्यालेप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विलंब । देर । (२) भाकुल होने  
का भाव । घबराहट ।

व्याख्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह वाक्य आदि जो किसी  
जटिल पद या वाक्य आदि का अर्थ स्पष्ट करता हो । किसी  
बात को समझाने के लिये किया हुआ उसका विस्तृत और  
स्पष्ट अर्थ । टीका । व्याख्यान ।

विशेष—शास्त्रों या सूत्रों आदि की जो व्याख्या होती है,  
इसके वृत्ति, भाष्य, वार्तिक, टीका, टिप्पणी आदि अनेक  
श्रेढ़ माने गए हैं ।

(२) वह ग्रंथ जिसमें इस प्रकार अर्थ-विस्तार किया गया हो। (३) कहना। वर्णन।

व्याख्यागम्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वादी के अभियोग का ठीक ठीक उत्तर न देकर झूठ उभर की बातें कहना। ( व्यवहार )

वि० जो व्याख्या अथवा टीका आदि की सहायता से समझा जा सके।

व्याख्यात-वि० [ सं० ] जिसकी व्याख्या की गई हो।

व्याख्यातव्य-वि० [ सं० ] जो व्याख्या करने के योग्य हो।

व्याख्याता-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याख्या (१) वह जो किसी विषय की व्याख्या करता हो। व्याख्या करनेवाला। (२) वह जो व्याख्यान देता हो। भाषण करनेवाला।

व्याख्यान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी विषय की व्याख्या या टीका करने अथवा विवरण बतलाने का काम। (२) बोलकर कोई विषय समझाने का काम। भाषण। (३) वह जो कुछ व्याख्या रूप में या समझाने के लिये कहा जाय। भाषण। वक्तुता।

व्याख्यानशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्थान जहाँ किसी प्रकार का व्याख्यान आदि होता हो।

व्याख्या स्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्वर जो न बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा। मध्यम स्वर।

व्याख्येय-वि० [ सं० ] जो व्याख्या करने के योग्य हो। वर्णन करने या समझाने लायक।

व्याघटन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह रगड़ने का काम। संचर्षण। रगड़। (२) मथना। बिलोना।

व्याघात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विघ्न। खलल। बाधा।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—होना।

(२) आघात। प्रहार। मार। (३) ज्योतिष के विष्कंभ आदि सप्ताहस्य योगों में से तेरहवाँ योग जिसमें किसी प्रकार का शुभ कार्य करना वर्जित है। पर कुछ लोगों का मत है कि इसके पहले छः दशों को जोड़कर दोष समय में शुभ काम किए जा सकते हैं। कहते हैं कि इस योग में जो बालक जन्म ग्रहण करता है, वह साधुओं के काम में विघ्न करनेवाला, क्रोध, हृष्ट और निर्दय होता है। (४) काय में एक प्रकार का अलंकार जिसमें एक ही उपाय के द्वारा अथवा एक ही साधन के द्वारा दो विरोधी कार्यों के होने का वर्णन होता है। उ०—(क) जासों काटत जगत के बंधन दीन दयाल। ता बितबनि सों तियन के मन बाँधे गोपाल। (ख) नाम प्रभाव ज्ञान दिव नीके। कालकूट फल दीन भनी के। (ग) रण से हृद को अमर भागत कादर दूर। पदै चाह बित करि बही पिचळत सौँचे सूर। (घ) मिळत एक दाहन दुख देहीं। विपुलत एक प्रान हरि उहेहीं।

व्याघ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाघ या शेर नामक प्रसिद्ध विलक चतु। वि० दे० "शेर"। (२) काल रेंद। (३) करंज।

व्याघ्रकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] काल रेंद।

व्याघ्रकूटडा-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाघ या शेर का नाव जो प्रायः बालकों के गले में उन्हीं नजर लगाने से बचाने के लिये पहनाया जाता है।

व्याघ्रप्रोथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुराणनुसार एक प्राचीन देस का नाम। (२) इस देस का निवासी।

व्याघ्रघंटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किकिणी या गोविंदी नाम की कता जो कोंकण प्रदेश में अधिकता से होती है। पैचक के अनुसार यह पिचतबंधक, उष्ण, रुचिकर और विष तथा कफ की नाशक मानी गई है।

व्याघ्रघंटी-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याघ्रघंटा"।

व्याघ्रचर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाघ या शेर की खाल जिस पर प्रायः लोग धरते हैं, या जो दोगा के लिये कमरों आदि में लटकाई जाती है।

व्याघ्रतरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] काल रेंद।

व्याघ्रतल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काल रेंद। (२) नखी या व्याघ्रनख नामक गंध द्रव्य।

व्याघ्रतला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नख या व्याघ्रनख नामक गंध द्रव्य। यगनहा।

व्याघ्रता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्याघ्र का भाव या धर्म।

व्याघ्रदू-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का गुग्गुलु।

व्याघ्रदूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नख या व्याघ्रनख नामक गंध द्रव्य। यगनहा। (२) काल रेंद।

व्याघ्रदुल-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याघ्रदूल"।

व्याघ्रनख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाघ या शेर का नाव जो प्रायः बच्चों के गले में उन्हीं नजर से बचाने के लिये पहनाया जाता है। (२) नख या यगनहा नामक प्रसिद्ध गंध द्रव्य। वि० दे० "नख"। (३) यूर। (४) एक प्रकार का कंद।

व्याघ्रनलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्याघ्रनख। (२) नाव के द्वारा लगी हुई घोटा। नलकत।

व्याघ्रनखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नख या यगनहा नामक गंध द्रव्य। वि० दे० "नख"।

व्याघ्रनादक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गीदू।

व्याघ्रपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पेड़। (यूरसं०)

व्याघ्रपदू-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का गुग्गुलु। (२) विशिष्ट गोर के एक प्राचीन ऋषि का नाम जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा थे।

व्याघ्रपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्कंभ या कंटाई नामक द्रव्य।

(२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

व्याघ्रपादपी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विष्कंभ। मंत्राहुल।

व्याघ्रपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विकृत या कटाई नामक वृक्ष ।  
 (२) विकटक । गन्नीहूळ । (३) एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
 व्याघ्रपुच्छ-संज्ञा पुं० [ सं० ] रेंद ।  
 व्याघ्रपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] नल या वर्गनहा नामक गंध द्रव्य ।  
 व्याघ्रपुरिष-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम ।  
 व्याघ्रमट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम ।  
 व्याघ्रमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिह्नी । (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम । (३) बृहस्पतिता के अनुसार एक देश का नाम । (४) इस देश का निवासी ।  
 व्याघ्ररूपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वरुणा कन्येटी । वन-ककोट्टा ।  
 व्याघ्रलोम-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याघ्रलोमर् । ऊपरी भाँठ पर के छाल । रेंद ।  
 व्याघ्रवका-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याघ्रवक् । (१) चिह्नी । (२) शिव का एक नाम ।  
 व्याघ्रसेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्याम । गीदू ।  
 व्याघ्रहस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] छाल रेंद ।  
 व्याघ्राक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम । (२) पुराणानुसार एक राक्षस का नाम ।  
 व्याघ्राग्नि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
 व्याघ्राट-संज्ञा पुं० [ सं० ] कवा नामक पत्नी । अग्नि विद्या ।  
 वि० दे० "कवा" ।  
 व्याघ्रादनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] निसोय ।  
 व्याघ्रायुध-संज्ञा पुं० [ सं० ] नल नामक गंधद्रव्य ।  
 व्याघ्रास्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिह्नी ।  
 व्याघ्रिल्ली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बौद्धों की एक देवी का नाम ।  
 व्याघ्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कंटकारी । छोटी कटाई । (२) एक प्रकार की कौड़ी । (३) नली नामक गंधद्रव्य ।  
 व्याघ्रीयुग-संज्ञा पुं० [ सं० ] युक्ती या वनभंदा और कंटकारी, इन दोनों का समूह ।  
 व्याज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मन में कोई और बात रखकर ऊपर से कुछ और करना या कहना । कपट । छल । फरेव । धोखा ।  
 यौ०—व्याजविदा । व्याजस्तुति । व्याजोक्ति ।  
 (२) बाधा । विज्ञा । छलक । (३) विरह । देह ।  
 संज्ञा पुं० दे० "व्याज" ।  
 व्याजनिदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह निंदा जो व्याज अर्थात् छल या कपट से की जाय । ऐसी निंदा जो ऊपर से देखने में स्पष्ट निंदा न जान पड़े । (२) एक प्रकारका शब्दालंकार जिसमें इस प्रकार निंदा की जाती है ।  
 व्याजस्तुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्तुति जो व्याज अर्थात् किसी धराने से की जाय और ऊपर से देखने में स्तुति न जान पड़े । (१) एक प्रकारका शब्दालंकार जिसमें इस प्रकार

स्तुति की जाती है । इस में जो स्तुति की जाती है, वह ऊपर से देखने में निंदा सी जान पड़ती है ।  
 व्याजोक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह कथन जिसमें किसी प्रकार का छल हो । कपट बारी-बात । (२) एक प्रकारका अलंकार जिसमें किसी स्पष्ट या प्रकट बात को छिपाने के लिये किसी प्रकारका धराना किया जाता है । छेकापद्धति से इसमें यह अंतर है कि छेकापद्धति में निषेधपूर्वक बात छिपाई जाती है और इसमें विना निषेध किए ही छिपाई जाती है । उ०—(क) भूप प्रतापमानु भवनीसा । तामु सचिव मैं सुनहू सुनीसा । (ख) यहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूप किगोर देखि किन लेहू ।  
 व्याज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] छाल रेंद ।  
 व्याङ्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सौर । (२) बाघ । शेर । (३) इंद्र का एक नाम ।  
 वि० भूत् । बंधक ।  
 व्याङ्गायुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] नल नामक गंध द्रव्य ।  
 व्याङ्गि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन का नाम जिन्होंने एक व्याकरण बनाया था ।  
 व्याट्युक्ती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जल क्रीडा ।  
 व्यादान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फैलाव । विस्तार । (२) शब्दांतर ।  
 खोलना ।  
 व्यादिश-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।  
 व्याध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो जंगली पशुओं आदि को मारकर अपना निर्वाह करता हो । शिकारी । (२) प्राचीन काल की एक जाति जो जंगली पशुओं को मारकर अपना निर्वाह करती थी । महायैवत्त पुराण के अनुसार इसकी उत्पत्ति सर्वस्वी माता और क्षत्रिय पितासे है । (३) प्राचीन काल की श्वर नामक नीच जाति ।  
 वि० दुष्ट । पाजी । लुच्चा ।  
 व्याधभीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृग । हिरन ।  
 व्याधास-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ ।  
 व्याधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रोग । बीमारी । (२) भाकत । झंझट । (३) कुद या कुट नाम की भोगधि । (४) साहित्य में एक संचारी भाव । विरह या काम आदि के कारण दारी में किसी प्रकारका रोग होना ।  
 व्याधिलङ्घा-संज्ञा पुं० [ सं० ] नल नामक गंध द्रव्य ।  
 व्याधिवात-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमलतास ।  
 व्याधिद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिस से किसी प्रकार की व्याधि का नाम होता हो । (२) अमलतास ।  
 व्याधिक्षि-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमलतास ।  
 व्याघित-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसे किसी प्रकार की व्याधि हुई हो । शोभी । बीमार ।



व्याधिनाशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] चोच-चीनी ।

व्याधिरिपु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भ्रमलतास । (२) एक प्रकार का भ्रमलतास जिसे कर्णिकर कहते हैं ।

व्याधिधिपरीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऐसी औषध जो व्याधि के धिपरीत गुण करनेवाली हो । जैसे,—दस्त लाने के समय कठिन्नयत करनेवाली दवा ।

व्याधिस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर । यदन । जिस्म ।

व्याधिहृता-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याधिहृत् वाराही कंद । शूकर कंद । गेंडी ।

वि० जिससे रोग का नाश हो । रोगनाशक ।

व्याधिहर-वि० [ सं० ] व्याधि को दूर करनेवाला । जिससे रोग नष्ट होता हो ।

व्याधी-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याधि" ।

व्याधय-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।

वि० व्याधि संबंधी । व्याधि का ।

व्यान-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर में रहनेवाली पाँच वायुओं में से एक वायु जो सारे शरीर में संचार करनेवाली मानी जाती है । कहते हैं कि इसी के द्वारा शरीर की सय क्रियाएँ होती हैं; सारे शरीर में रस पहुँचता है, पसीना बहता और खून चलता है, आदमी ठठता, बैठता और चलता फिरता है और आँसू छोलता तथा मंद करता है । मानवकाय के मत से जब यह वायु कुपित होती है, तब प्रायः सारे शरीर में एक न एक रोग हो जाता है ।

व्यानदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह शक्ति जो व्यान वायु प्रदान करती है ।

व्यापक-वि० [ सं० ] (१) जो बहुत दूर तक व्याप्त हो । चारों ओर फैला हुआ । जैसे,—यह एक सर्वव्यापक सिद्धांत है । (२) जो ऊपर या चारों ओर से घेरे हुए हो । घेरे या ढकनेवाला । आच्छादक ।

व्यापकव्याप्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] तंत्रिकों के अनुसार एक प्रकार का अंगन्यास । इसमें किसी देवता का मूल मंत्र पढ़ते हुए सिर से पैर तक न्यास करते हैं ।

व्यापत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मृत्यु । मौत ।

व्यापद्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मृत्यु । मौत ।

व्यापन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फैलाव । विस्तार । (२) दूर तक फैलना । विस्तृत होना । (३) चारों ओर से या ऊपर से घेरना या ढकना । आच्छादन करना ।

व्यापना-वि० प्र० [ सं० ] व्यापन । किसी चीज के अंदर फैलना । व्याप्त होना । जैसे,—(क) हुम्में भी इस समय मोह व्यापता है । (ख) ईश्वर घर घट में व्यापता है । (ग) उस के सारे शरीर में विष व्याप गया है ।

संयो० कि०—जाना ।—रहना ।

व्यापनीय-वि० [ सं० ] व्यापन करने के योग्य ।

व्यापन्न-वि० [ सं० ] (१) जो किसी प्रकार की विपत्ति में पड़ा हुआ हो । आकत में फँसा हुआ । (२) मरा हुआ । मृत ।

व्यापाद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मन में दूसरे के अथवा की भावना करना । किसी की बुराई सोचना । (२) मार डालना । (३) नष्ट करना । बरबाद करना ।

व्यापादक-वि० पुं० [ सं० ] (१) वह जो दूसरों की बुराई करने की हृत्ता रखता हो । (२) वह जो हत्या या विनाश करता हो ।

व्यापादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी को कष्ट पहुँचाने वा उपाय सोचना । (२) मार डालना । बध । हत्या । (३) नष्ट करना । बरबाद करना ।

व्यापादनीय-वि० [ सं० ] मार डालने वा नष्ट करने योग्य ।

व्यापार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कर्म । कार्य । काम । जैसे,—(क) संसार में दिन रात अनेक प्रकार के व्यापार होते रहते हैं । (ख) सोचना मस्तिष्क का व्यापार है । (२) व्याप्य के अनुसार विषय के साथ होनेवाला द्वंद्वियों का संयोग । (३) पदार्थों अथवा धन के बदले में पदार्थ लेना और देना । क्रय विक्रय का कार्य । रोजगार । व्यवसाय । जैसे,—(क) आजकल कपड़े का व्यापार बहुत चमक रहा है । (ख) वे रुई, सोने, चाँदी आदि कई चीजों का व्यापार करते हैं । (४) सहायता । मदद ।

व्यापारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भाशा देना । (२) किसी काम में । नियुक्त करना

व्यापारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यापारिन् । (१) वह जो किसी प्रकार का व्यापार करता हो । (२) व्यवसाय या रोजगार करनेवाला । व्यवसायी । रोजगारी ।

वि० [ सं० ] व्यापार + ई (प्रत्य०) । (१) वह जो किसी प्रकार का व्यापार करता हो । (२) व्यवसाय या रोजगार करनेवाला । व्यवसायी । रोजगारी ।

वि० [ सं० ] व्यापार + ई (प्रत्य०) । व्यापार संबंधी । व्यापार का । जैसे,—व्यापारी बोलचाल, व्यापारी भाव ।

व्याप्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) व्याप्त होने की क्रिया या भाव । चारों ओर या सब जगह फैला हुआ होना । (२) व्याप्य के अनुसार किसी एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का पूर्ण रूप से मिला या फैला हुआ होना । एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में अथवा अस्वच्छे साधु सदा पाया जाता । जैसे,—आग में धूप की या तिल में तेक की व्याप्ति है ।

यो०—व्याप्ति ज्ञान ।  
(३) आठ प्रकार के पेशव्यों में से एक प्रकार का पेशवर्ष । दोष सात पेशव्यों के नाम ये हैं—अणिमा, कणिमा,

प्राकाश्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व और कामावसायिता ।  
**व्याप्ति ज्ञान-संज्ञा पुं०** [ सं० ] व्याप के अनुसार यह ज्ञान जो  
 साध्य को देखकर साध्यवान् के अस्तित्व के संबंध में अथवा  
 साध्यवान् को देखकर साध्य के अस्तित्व के संबंध में होता  
 है । जैसे,— पूर्ण को देखकर यह समझना कि यहाँ अंग  
 भी होगी ।

**व्याप्तित्व-संज्ञा पुं०** [ सं० ] व्याप्ति का भाव या धर्म ।  
**व्याप्य-वि०** [ सं० ] व्याप्त करने के योग्य । व्यापनीय ।  
**संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) वह जिसके द्वारा कोई-काम हो ।  
 साधन । हेतु । (२) वृत्त या वृद्ध नामक ओषधि । (३) दे०  
 "व्याप्ति" ।

**व्याम-संज्ञा पुं०** [ सं० ] लंबाई की एक नाप ।  
**विशेष**—दोनों हाथों को अर्द्ध तक हो सके, दोनों थगल में  
 फैलाने पर एक हाथ की उँगलियों के सिरे से दूसरे हाथ  
 की उँगलियों के सिरे तक जितनी दूरी होती है, वह  
 व्याम कहलती है ।

**व्यामिश्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] दो प्रकार के पदार्थों या कार्यों को  
 एक में मिलाने की क्रिया ।

**व्यामोह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] मोह । भ्रम ।

**व्यायाम-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) यह शारीरिक श्रम को केवल  
 शरीर का बल बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता है । कसरत ।  
 जोर । जैसे,— हंड, बैठकी करना या मुग्गर, डबल आदि  
 दिखाना । (२) पौष्य । (३) परिश्रम । मेहनत । (४)  
 व्यापार । काम ।

**व्यायामिक-वि०** [ सं० ] व्यायाम का । व्यायाम संबंधी ।

**व्यायामी-संज्ञा पुं०** [ सं० ] व्यायामिन् । (१) वह जो व्यायाम करता  
 हो । कसरत करनेवाला । कसरती । (२) वह जो बहुत  
 परिश्रम करता हो । परिश्रमी । मेहनती ।

**व्यायोग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] साहित्य में दस प्रकार के रूपकों में  
 से एक प्रकार का रूपक या रस्य काव्य । इसकी कथावस्तु  
 किसी ऐसे ग्रंथ से ली जानी चाहिये, जिससे सब लोग  
 भली भाँति परिचित हों । इसके पात्रों में स्त्रियाँ कम और  
 पुरुष अधिक होते हैं । इसमें गर्भ, विमर्ष और संघि  
 नहीं होती । इसमें एक ही अंक रहता है और कौत्सिकी  
 वृत्ति का व्यवहार होता है । इसका नायक कोई प्रसिद्ध  
 राजर्षि, दिव्य और धीरोद्भूत होना चाहिये । इसमें  
 अंगार, हास्य और शान्त के लिये और सय रसों का  
 वर्णन होता है ।

**व्यायोग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] क्रोध । गुस्सा ।

**व्यालंब-संज्ञा पुं०** [ सं० ] लाल रंग ।

**व्याल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सौर्य । (२) वृष्ट या पात्री हाथी ।

(३) बाय । शेर । (४) वह बाघ जो शिकार करने के लिये

सज्जाया गया हो । (५) राजा । (६) विष्णु का एक नाम ।  
 (७) दंडक छंद का एक भेद । (८) कोई हिसक जंतु ।  
 वि० (१) दूसरों का अपकार करनेवाला । (२) वृष्ट  
 पानी ।

**व्यालक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) वृष्ट या पात्री हाथी । (२)  
 हिसक जंतु ।

**व्यालकरज-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य ।

**व्यालखड्ग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य ।

**व्यालगंधो-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] माकुली नामक कंद ।

**व्यालप्राइ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जो सर्पों को पकड़ता हो ।  
 सँपेरा ।

**व्यालप्राही-संज्ञा पुं०** [ सं० ] व्यालप्राहिन् । वह जो सर्प पकड़ने  
 का काम करता हो । सँपेरा ।

**व्यालप्रीय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) वृहत्संहिता के अनुसार एक  
 देश का नाम । (२) इस देश का निवासी ।

**व्यालजिह्वा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] केंगड़ी या कंधी नामक पौधा ।  
 महासमंगर ।

**व्यालता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] व्याल का भाव या धर्म । व्यालत्व ।  
 व्यालपन ।

**व्यालत्व-संज्ञा पुं०** [ सं० ] व्याल का भाव या धर्म । व्यालता ।  
 व्यालपन ।

**व्यालवृष्ट-संज्ञा पुं०** [ सं० ] गोचरू का पौधा ।

**व्यालनख-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य ।

**व्यालपत्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] खेतपावदा ।

**व्यालपत्रा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] खेतपावदा ।

**व्यालपाणिज-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नख या बगनहा नामक गंध  
 द्रव्य ।

**व्यालप्रहण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य ।

**व्यालवत्-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य ।

**व्यालधूम-संज्ञा पुं०** [ सं० ] धाग । शेर ।

**व्यालायुध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य ।  
**व्यालि-संज्ञा पुं०** [ सं० ] व्यादि नामक एक प्राचीन कृत्ति जिन्होंने  
 एक व्याकरण बनाया था ।

**व्यालिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जो सर्पों को पकड़कर अपनी  
 जीविका चलाता हो । सँपेरा ।

**व्यालीद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सर्प के काटने का एक प्रकार । सर्प  
 का यह काटना जिसमें केवल एक या दो दाँत लगे हों और  
 घाव में से खून न बहा हो ।

**व्यालुप्त-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सर्प के काटने का एक प्रकार । सर्प  
 का यह काटना जिसमें दो दाँत भरपूर धँडे हों और घाव में  
 से खून भी निकला हो ।

व्यास—विंश पुं० स्त्री० [ सं० ] रात के समय का भोजन । रात का खाना ।

व्यावर्ग—संज्ञा पुं० [ सं० ] विभाग करना । हिरसा लगाना । विभक्त करना । घंटना ।

व्यावर्त्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चक्रवर्द्ध । चक्रमण्ड । (२) भागे की ओर निकली हुई नाभि । नाभिकेंद्रक ।

व्यावर्त्तक—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो व्यावर्त्तन करता हो । पीछे की ओर झीटानेवाला ।

व्यावर्त्तन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जो पराङ्मुख किया गया हो । (२) पीछे की ओर झीटाया या मोड़ा हुआ ।

व्यावहारिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्यवहार । (२) वह जो व्यवहार शास्त्र के अनुसार अभियोगों का विचार करता हो । (३) राजा का वह अमात्य या मंत्री जिसके अधिकार में भीतरी और बाहरी सब तरह के काम हों ।

वि० (१) व्यवहार संबंधी । व्यवहार या वरताव का । (२) व्यवहार शास्त्र संबंधी । व्यवहार शास्त्र का ।

व्यावृत्त—वि० [ सं० ] (१) घूटा हुआ । निवृत्त । (२) मना किया हुआ । निविद्ध । (३) घटा हुआ । खंडित । (४) अलग किया हुआ । विभक्त । (५) जो मन में पसंद किया गया हो । मनोनीत । (६) चारों ओर से घेरा हुआ । (७) ऊपर से दका हुआ । आच्छादित । (८) जिसकी प्रशंसा या स्तुति की गई हो ।

व्यावृत्ति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) खंडन । (२) आवृत्ति । (३) मन से चुनने या पसंद करने का काम । (४) चारों ओर से फेरना । (५) स्तुति । प्रशंसा । शारीक । (६) मनाही । निषेध । (७) बाधा । खलल । (८) निराकरण । निर्णय । मीमांसा । (९) नियोग ।

व्यासंग—संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत अधिक आसक्ति या मनोयोग ।

व्यास—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन जिन्होंने वेदों का संग्रह, विभाग और संपादन किया था । कहा जाता है कि अठारहों पुराणों, महाभारत, भागवत और वेदोंत आदि की रचना भी इन्होंने की थी ।

विशेष—इनके जन्म आदि की कथा महाभारत में बहुत विस्तार के साथ दी है । उसमें कहा गया है कि एक बार मत्स्यगंधा सत्यवती नाव खे रही थी । उसी समय पराशर मुनि वहाँ जा पहुँचे और उसे देखकर आसक्त हो गए । वे उससे बोले कि तुम मेरी कामना पूरी करो । सत्यवती ने कहा—महाराज, नदी के दोनों ओर ऋषि मुनि आदि बैठे हुए हैं और हम लोगों को देख रहे हैं । मैं कैसे आपकी कामना पूरी करूँ । इस पर, पराशर मुनि ने अपने तप के बल से ऊँचा खड़ा कर दिया जिससे चारों ओर

सँघेरा छा गया । उस समय सत्यवती ने फिर कहा— महाराज, मैं अभी कुमारी हूँ; और आपकी कामना पूरी करने से मेरा कौमार नष्ट हो जायगा । उस दशा में मैं किस प्रकार अपने पर मैं रह सकूँगी ? पराशर ने उत्तर दिया—नहीं, इससे तुम्हारा कौमार नष्ट नहीं होगा । तुम मुझसे वर माँगी । सत्यवती ने कहा कि मेरे चारों ओर सखी की जो गंध आती है, वह न आवे । पराशर ने कहा कि ऐसा ही होगा । उसी समय से उसके शरीर से सुगंध निकलने लगी और तब से उसका नाम गंधवती या योवनगंधा पड़ा । इसके उपरांत पराशर मुनि ने उसके साथ संभोग किया जिससे उसे गर्भ रह गया; और उस गर्भ से इन्हीं व्यासदेव की उत्पत्ति हुई । इनका जन्म नदी के बीच के एक टापू में हुआ था और इनका रंग बिलकुल काला था; इसलिये इनका नाम कृष्ण द्वैपायन पड़ा । इन्होंने बचपन से ही तपस्या आरंभ की और बढ़ होने पर वेदों का संग्रह तथा विभाग किया; इसलिये वे वेदव्यास कहलाए । पीछे से जब प्रांतनु के साथ सत्यवती का विवाह हुआ, तब अपने पुत्र विचित्रवीर्य के मरने पर सत्यवती ने इन्हें सुलाकर विचित्रवीर्य की विधवा परिधियों (अंबिका और अंबाकिका) के साथ नियोग करने की आज्ञा दी, जिससे एतदाष्ट और पांडु का जन्म हुआ । विदुर भी इन्हीं के वीर्य से उत्पन्न हुए थे । वे पाराशर्य, कानोन, वादरायण, सत्यभारत, सत्यव्रत और सत्यत भी कहलाते हैं ।

(२) पुराणानुसार वे अष्टाईस महर्षि जिन्होंने भिन्न भिन्न कर्षों में जन्म ग्रहण करके वेदों का संग्रह और विभाग किया था । ये सब मद्दा और विष्णु के अवतार माने जाते हैं; और इनके नाम इस प्रकार हैं—स्वर्णसुव, प्रजापति या मनु, ब्रह्मा, बृहस्पति, सविता, सृष्टु, या युम, इंद्र, वसिष्ठ, सारस्वत, त्रिषाम, कायम या त्रिष्टु, सुतेजा या भारद्वाज, अंतरिक्ष या धर्म, षष्टुवन् या सुष्टु, श्रत्याहृति, धर्मजय, कृतंजय, ऋद्वाज, गौतम, उत्तम या इत्यंतम, वाचध्रवा या नारायण ( इन्हें वेण भी कहते हैं ), सोममुद्रपायन या एणपिंडु, ऋष या वासुकी, शक्ति, पराशर, जातुकर्ण और कृष्ण द्वैपायन । (३) वह ब्राह्मण जो रामायण, महाभारत या पुराणों आदि की कथाएँ लोगों को सुनाता हो । कथावाचक । (४) वह देवा जो किसी बिलकुल गोल देवा या घुत के किसी एक स्थान से बिलकुल सीधी चक्कर दूसरे सिरे तक पहुँची हो । (५) विस्तार । फैलाव ।

व्यासकृत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत में आपू हुए वेदव्यास के कृत बलोकि । (२) ने कृत बलोकि, जो सीताहरण

होने पर रामचंद्रजी ने मादववान पर्यंत पर कहे थे और  
जिनसे उन्हें कुछ शक्ति मिली थी।

व्यासक-वि० [ सं० ] जो बहुत अधिक भासक हुआ हो।  
जिसका मन बेतरह आ गया हो।

व्यासगीता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम।

व्यासता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यास का भाव या धर्म। व्यासत्व।

व्यासतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

व्यासत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यास का भाव या धर्म।

व्यासमूर्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।

व्यासवन-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन  
वन का नाम।

व्याससूत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेदांत सूत्र।

व्यासस्यो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक  
प्राचीन पवित्र तीर्थ का नाम।

व्यासाख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यासवन नामक प्राचीन वन।

व्यासाख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यास का आधा भाग। किसी वृत्त  
के केंद्र से उसके किसी छोर तक की रेखा।

व्यासासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह आसन जिस पर कथा कहने-  
वाले व्यास बैठकर कथा कहते हैं।

व्यासिद्ध-वि० [ सं० ] (१) मना किया हुआ। निषिद्ध। (२)  
रुका हुआ। अवरुद्ध।

व्याप्तौय-वि० [ सं० ] व्याप्त संबंधी। व्याप्त का।

व्याहृत-वि० [ सं० ] (१) मना किया हुआ। निवारित। निषिद्ध।  
(२) स्वयं।

व्याहृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बाधा डालना। खलक पहुँचाना।

व्याहरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] कथन। उक्ति।

व्याहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाच्य। जुमला।

व्याहृत-वि० [ सं० ] कहा हुआ। कथित।

व्याहृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कथन। उक्ति। (२) सूत्र, सुवच-  
स्वः इन तीनों का संग्रह। (कहते हैं कि जहाँ और कोई

मंत्र न हो, वहाँ इसी व्याहृति मंत्रमे काम लेना चाहिए।)

व्युच्छिन्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विनाश। धराही।

व्युच्छेत्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्युच्छेद। विनाश करनेवाला। बरबाद  
करनेवाला।

व्युत्क्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्रम में उलट कर होना। व्यतिक्रम।  
गढ़बंदी।

व्युत्क्रांता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पहेंकी।

व्युत्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्वतंत्र या स्वामीन होकर काम  
करना। (२) किसी के विरुद्ध आचरण करना। खिटाफ

चलना। (३) रुकावट डालना। रोकना। (४) समाधि।

(५) एक प्रकार का चयन। (६) योग के अनुसार चित्त की

सिस, सूक्ष्म और विभिन्न वे तीनी अवस्थाएँ या चित्त-भूमियाँ

जिनमें योग का साधन नहीं हो सकता। इन भूमियों में  
चित्त बहुत चंचल रहता है।

व्युत्पत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ आदि की विनिष्ट  
उत्पत्ति। किसी चीज का मूल उद्गम या उत्पत्ति स्थान।

(२) शब्द का मूल रूप। वह शब्द जिससे कोई दूसरा  
शब्द निकला हो। (३) किसी विज्ञान या शास्त्र आदि का

अच्छा ज्ञान। जैसे,—दर्शन शास्त्र में उनकी अच्छी  
व्युत्पत्ति है।

व्युत्पन्न-वि० [ सं० ] (१) जिसका संस्कार हो चुका हो।  
संस्कृत। (२) जिसका किसी विज्ञान या शास्त्र में अच्छा  
प्रवेश हो। जो किसी शास्त्र आदि का अच्छा ज्ञाता हो।

व्युत्पादक-वि० [ सं० ] व्युत्पत्ति करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला।

व्युत्पादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्युत्पत्ति।

व्युत्पदेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] उगने या धोला देने का काम। उगी।

व्युत्परम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गति। (२) छुटकारा। निवृत्ति।  
(३) स्थिति।

व्युत्पशम-संज्ञा पुं० [ सं० ] अशान्ति।

व्युत्प-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूर्य के उदय होने का क्षण। प्रातः-  
काल। सुबेरा।

व्युत्पिताश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक राजा  
का नाम।

व्युत्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रमात। तदका। (२) दिन। (३)  
फल।

वि० जला या छुलसा हुआ।

व्युत्पि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) फल। (२) सद्युद्धि। (३) स्तुति।  
प्रशंसा। (४) प्रकाश। उजाळा। (५) प्रभात। तदका।

(६) दाह। जलन। (७) हृष्टा। कामना। खाहिश।

व्युत्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन देस का नाम। (२)  
इस देस का निवासी।

व्युत्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो व्यूह बनाकर खड़ा हो।  
(२) वह जिसका विवाद हो चुका हो। विवाहित।

वि० (१) स्थूल। मोटा। (२) उत्तम। बढ़िया। (३)  
गुह्य। समान। (४) रद्द। मजबूत।

व्युत्पि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विश्वास। सजावट। (२)  
स्थूलता। मोटाई।

व्युत्प-वि० [ सं० ] गुना हुआ।

व्युत्पि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कपड़े आदि धुने की क्रिया। गुनाई।

व्यूह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समूह। जमघट। (२) निर्माण।  
रचना। (३) तर्क। (४) शरीर। बदन। (५) सेना।

दौग। (६) परिणाम। नतीजा। (७) बुद्ध के समय की  
जानेवाली सेना की रणरत्ना। छद्म के समय की अलग

वह जो यज्ञ आदि करता हो। यजमान। (१) व्रतचारी।  
 (२) एक प्राचीन व्यक्ति का नाम।  
 व्रतेयु-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार सौदास के एक पुत्र का नाम।  
 व्रतेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।  
 व्रतौपह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम।  
 व्रत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसने कोई व्रत धारण किया हो। (२) व्रतचारी।  
 व्रश्चन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोना, चाँदी आदि कारने की छेनी। (२) वह सुरादा जो लकड़ी आदि चीरने पर गिरता है। (३) कुम्हारदी। (४) छेदने या कारने की क्रिया।  
 व्राच्छ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अपभ्रंश भाषा का एक भेद जिसका व्यवहार आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक सिंध प्रांत में था। (२) पैशाचिका भाषा का एक भेद।  
 व्राज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुत्ता। (२) दूध। (३) समूह। (४) ज्ञान। गमन।  
 व्राजपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] दूध या समूह का नायक।  
 व्रात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समूह। दूध। (२) मनुष्य। आशमी।  
 (३) वह परिश्रम जो जीविका के लिये किया जाय।  
 व्रातजीवन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शारीरिक परिश्रम करके अपना निर्वाह करता हो।  
 व्रात्य-वि० [ सं० ] व्रत संबंधी। व्रत का।  
 संज्ञा पुं० (१) वह जिनके दस्त संस्कार न हुए हों। (२) वह जिसका उपनयन या यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो। वेसा मनुष्य पणित और अनार्य्य समझा जाता है और उसे वैदिक कृत्य आदि करने का अधिकार नहीं होता। शास्त्रों में ऐसे व्यक्ति के लिये प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।  
 विशोप-प्राचीन वैदिक काल में "व्रात्य" शब्द प्रायः पर-यत्न का वाचक माना जाता था; और अथर्ववेद में "व्रात्य" की बहुत अधिक महिमा कही गई है। वसमें वह वैदिक

कार्यों का अधिकारी, देवप्रिय, ब्राह्मणों और क्षत्रियों का पूज्य, यहाँ तक कि स्वयं देवाधिदेव कहा गया है। परंतु परवर्ती काल में यह शब्द पणित और निष्ठुर का वाचक हो गया।  
 (३) वह पुरुष जो असवर्ण माता-पिता से उत्पन्न हो। दोगला। वर्ण-संकर।  
 व्रात्यता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्रात्य का भाव या धर्म। व्रात्यत्व।  
 व्रात्यत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्रात्य का भाव या धर्म। व्रात्यत्व।  
 व्रात्ययज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो व्रात्यों को यज्ञ कराना हो।  
 व्रात्यस्तीम-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का यज्ञ जो व्रात्य या संस्कार-हीन लोग किया करते थे।  
 व्रीह-संज्ञा पुं० [ सं० ] लज्जा। शरम।  
 व्रीह्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लज्जा। शरम।  
 व्रीहि-संज्ञा पुं० [ सं० ] धान। चावल।  
 व्रीहिकांचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मसूर।  
 व्रीहिसुन्दिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवपान्प।  
 व्रीहिसुन्दिका-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पुष्प।  
 व्रीहिसुन्दिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शालिपर्णी।  
 व्रीहिसुन्दिका-संज्ञा पुं० [ सं० ] चना धान।  
 व्रीहिसुन्दिका-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार प्राचीन काल का एक प्रकार का शस्त्र जिसका व्यवहार शस्त्र चिकित्सा में होता था।  
 व्रीहिराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] चना धान।  
 व्रीहिश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] शालि धान्य।  
 व्रीही-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्रीहिवत् । वह खेत जिसमें धान बोया हो।  
 संज्ञा पुं०-दे० "व्रीहि"।  
 व्रीह्यगार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ पर बहुत सा धान रखा जाता हो। धान का गोदाम।  
 व्रीह्यप-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का पशु जो चावल को पीसकर बनाया जाता था।

## श

श—हिंदी वर्णमाला में व्यंजन का तीसरा वर्ण। इसका उच्चारण प्रधानतया साह्य की सहायता से होता है। इसके लिये साह्य व कहते हैं। यह महाप्राण है और इसके उच्चारण में एक प्रकार का पर्यण होता है; इसलिये इसे ऊपम भी कहते हैं। आभ्यंतर प्रयत्न के विचार से यह ईष्वर शब्द है; और इसमें धाद्य प्रयत्न श्वास और घोष होता है।

शं-छंदा पुं० [ सं० ] (१) कल्याण। मंगल। (२) सुख। (३) ताति। (४) राग का अभाव। धाद्य वस्तुओं से वैराग्य। (५) शास्त्र।

वि० शुभ।

शंक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वैल ओ छकड़ा सींचता है। (२) मय। (३) डर। भासका।

शंकरनाश-किं० शं० [ सं० शंका ] शंका करना। भय करना। डरना। उ०—(क) सांसति शंकि चली, धरैपहु से किंकर, मे करनी सुख मोरे।—गुलसी। (ख)—शंभयो शंभु शैलजा समेत देन मेरो शैल शम्भुद देन ही सुशंभयो सुरपाल है। भक्तमाल।

शंकनीय-वि० [ सं० ] शंका करने योग्य। भय के योग्य।

शंकर-वि० [ सं० ] (१) मंगल करनेवाला। (२) शुभ। (३) कामदायक।

शंका पुं० (१) शिष्य का एक नाम जो कल्याण करनेवाले माने जाते हैं। महादेव। शंभु।

शौं—शंकर की लक्ष्मी = कहरों की परिमाण में ऊँच। (जय कहरा पालकी लेकर चलते हैं और शरते में उन्हे ऊँच पड़ी हुई मिलती है, तब आगेवाला कहरा पीछेवाले कहरा को सचेत करने के लिये इस पद का प्रयोग करता है।)

(२) दे० “शंकराचार्य”। (३) भीमसेनी कपूर। (४) कर्पूर। (५) एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १० के विधाम से २६ मात्राएँ होती हैं और अंत में शुद्ध छन्द होता है। (६) एक राग जो मधुर राग का आठवाँ पुत्र कहा गया है। कहते हैं कि इसका रंग गोरा है; श्वेत वस्त्र धारण किए हुए है; तीक्ष्ण त्रिशूल इसके हाथ में है; पान खाए और भरणता लगाए खी के साथ विहार करता है। शायों में यह संपूर्ण जाति का कहा गया है। शक्ति का प्रथम पहर इसके गाने का समय है; और यों रात्रि में किसी समय गाया जा सकता है।

शंका पुं० दे० “शंकर” उ०—शंकर धरण पशु पक्षी में ही पाइवत मलकही पात अह अंग निराधरही।—गुमान।

शंकर का फूल-छंदा पुं० [ सं० शंकर + शूल ] शंखोदरी। गुलपरी।

शंकरचूर-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सर्प। कहते हैं कि

इसकी उपरि पातराज और दूधराज सर्प के जोड़े से होती है। यह कभी कभी ९, १० हाथ लंबा होता है। इसके जहर के दाँत बड़े होते हैं, इसी से इसका काटना साधारण होता है। यह बहुत कम देखने में आता है और बंग देश में केवल सुंदर बन में होता है। यह बहुत भयंकर होता है और इसका पकड़ना बड़ा कठिन है।

शंकरजटा-छंदा शी० [ सं० ] (१) खड़जटा। जटाधारी। (२) सागूदाना। सावूदाना। (३) एक प्रकार की विटवत।

शंकर तास-छंदा पुं० [ सं० ] संगीत में एक प्रकार का तास। इसमें ११ मात्राएँ होती हैं, जिसमें ९ आधातर और २ खाली

+

होते हैं। इसके श्रृंग के बोल इस प्रकार हैं—धा पिन

१ ० ० २ ३ ४ ० ५ ६  
ना देन धूसा केते ताग धापिन ता, देत धूसा वेदे केते नाम

देत सेते कत मदि धेने। धा।

शंकरतीर्थ-छंदा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक माघीन तीर्थ का नाम।

शंकरप्रिय-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सीतर पत्नी। (२) धनुर। (३) गुना। योगपुत्री। गोम।

शंकरमत्त-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का लोहा जिसे शंकर लोह भी कहते हैं।

शंकरवाणी-छंदा शी० [ सं० ] शंकर का वाक्य अर्थात् महा वाक्य जिसका सत्य होना परम निश्चित माना जाता है। सदा शीरु घटनेवाली बात।

शंकरशुक्र-छंदा पुं० [ सं० ] पारा। पारद।

शंकर शील-छंदा पुं० [ सं० ] महादेवजी का पर्वत, कैलास। उ०—शंकरशैल शिला तल मध्य किपीं शुक्र की भयली फिरि आई।—केशव।

शंकरस्वामी-छंदा पुं० दे० “शंकराचार्य”।

शंकरा-छंदा पुं० [ सं० शंकर ] (१) एक प्रकार का राग जिसमें सय शुद्ध स्वर लगते हैं। यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है। वि० दे० “शंकर” (२) और “शंकरमरण”। (३) शमी। सकेद कीकर। (४) मजीठ। (५) शिवा। भवानी। पार्वती।

वि० शी० कल्याण करनेवाली। मंगल करनेवाली।

शंकराचार्य-छंदा पुं० [ सं० ] श्रीशंकराचार्य द्वारा संस्थापित शैव-धर्म का अनुयायी।

शंकराचार्य-छंदा पुं० [ सं० ] अद्वैत मत के प्रवर्तक एक प्रसिद्ध शैव आचार्य जिनका जन्म सन् ७८८ ई० में केरल देश

में कालपी भयवा कापल नामक आम हुआ में हुआ था, और जो ३२ वर्ष की अवस्था में सन् ८२० ई० में केदारनाथ के समीप स्वर्गवासी हुए थे। इनके पिता का नाम शिवगुरु और माता का नाम सुभद्रा था। बहुत दिनों तक सपत्नीक शिव की आराधना करने के अनंतर शिवगुरु ने पुत्र रत्न पाया था, अतः उसका नाम दांकर रखा। जब ये तीन ही वर्ष के थे, तब इनके पिता का देहांत हो गया था। ये बड़े ही मेधावी तथा प्रतिभाशाली थे। छः वर्ष की अवस्था में ही ये एक प्रकाण्ड पंडित हो गए थे और आठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। इनके संन्यास ग्रहण करने के समय की कथा यही विचित्र है। कहते हैं कि माता अपने एक मात्र पुत्र को संन्यासी बनने की आज्ञा नहीं देती थी। एक दिन जब दांकर अपनी माता के साथ किसी आश्रम के यहाँ से छोट रहे थे, तब नदी पार करने के लिये वे उसमें घुसे। गले भर पानी में पहुँचकर इन्होंने माता को संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा न देने पर ह्वय मरने की धमकी दी। इससे भयभीत होकर माता ने तुरंत इन्हें संन्यासी होने की आज्ञा प्रदान की और इन्होंने गोविंद स्वामी से संन्यास ग्रहण किया। इन्होंने मल्लसूत्रों की बड़ी ही विनाद और रोचक व्याख्या की है। पहले ये कुछ दिनों तक काशी में रहे थे; और तब इन्होंने विजिलविदु के ताल वन में मंडन मिश्र को सपत्नीक शास्त्रार्थ में परास्त किया। इन्होंने समस्त भारत-वर्ष में भ्रमण करके बौद्ध धर्म को मिथ्या प्रमाणित करके वैदिक धर्म को पुनरुज्जीवित किया था। उपनिषदों और वेदान्त सूत्र पर लिखी हुई इनकी टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने भारतवर्ष में चार मठों की स्थापना की थी जो अभी तक बहुत प्रसिद्ध और पवित्र माने जाते हैं, और जिनके प्रबंधक तथा गद्दी के अधिकारी दांकराचार्य्य कहे जाते हैं। ये चारों स्थान निम्नलिखित हैं—(१) पट्टिकाश्रम, (२) करवीरपीठ, (३) द्वारिका पीठ और (४) शारदा पीठ। इन्होंने अनेक विधियों को भी अपने धर्म में दीक्षित किया था। ये दांकर के अवतार माने जाते हैं।

शंकरादि-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद आरु। सफेद मदार।

शंकरामरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] संपूर्ण जाति का एक प्रकार का राग जो नटनारायण राग का पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय प्रभात है; और किसी किसी के मत से सार्यकाल में १६ दंड से २० दंड तक भी गाया जा सकता है।

शंकरालय-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैलास।

शंकरावास-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैलास।

शंकरावास कर्पूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] भीमसेनी कपूर। वरास।

शंकराहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दामी का वृक्ष।

शंकरो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शिव की पत्नी पार्वती। (२) मंत्रिणा। ममीठ। (३) दामी का वृक्ष। (४) एक रागिनी जो मालकोश राग की सप्तमरी मानी जाती है।

वि० कल्याण करनेवाली। मंगल करनेवाली।

शंकरपुण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु का एक नाम। (२) रोहिणी के पुत्र का नाम।

शंकर्य-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सऊची मउडी।

शंका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मन में होनेवाला अनिष्ट का भय। डर। शौक। खटक। उ०—(क) देव शान दांकास्य कहु। वक्र चंद्रमहि प्रसी न राहु।—मुलसी। (ख) शंका देवगान को हंका दे सुषंका वीर, वंका दे विजय को करि हूर पन्थो लंका में।—पद्माकर। (२) किसी विषय की सत्यता या असत्यता के संबंध में होनेवाला संदेह। आशंका। संशय। शक। उ०—(क) नृप विभोक्ति शंका उपजा। सजल नयन मुल वचन न आवा।—सयल। (ख) दुर्गधि धरण चाहत हौं आपहि। पै हिरंय शंका मन आवहि।—सयल। (३) साहित्य के अनुसार एक संचारी भाव। अपने किसी अनुचित व्यवहार भयवा किसी और ब्राह्मण से होनेवाली इष्ट-दान की चिंता।

शंका अतिचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनियों के अनुसार एक प्रकार का पाप या अतिचार जो त्रिन-वचन में शंका करने से होता है।

शंकित-वि० [ सं० ] [ कौ० शंकित ] (१) बरा हुआ। भयभीत। (२) जिसे संदेह हुआ हो। (३) अनिश्चित। संदेहयुक्त। उ०—द्वान धरि धरनि विकरत दिग्गज कमठ, शेष संकंचित, शंकित पिनाडी।—मुलसी।

संज्ञा पुं० भेडेर या चोरक नाम का गंध द्रव्य।

शंकितवर्णक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चोर।

शंकु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कोई सुकीर्णी वस्तु। (२) मेल। कील। (३) लुंटी। (४) माला। बरछा। (५) गॉसी। फर। (६) लीलावती के अनुसार दस लक्ष कोटी की एक संख्या। शंख। (७) एक प्रकार की मउडी। (८) कामदेव। (९) शिव। (१०) राक्षस। (११) विष। (१२) हंस। (१३) बल्लोक। शीवी। (१४) कल्प। पाप। (१५) प्राचीन काल का एक प्रकार का याज्ञा। (१६) बारह अंगुल की एक मार। (१७) बारह अंगुल की एक लुंटी जिसका व्यवहार प्राचीन काल में सूर्य या वीर की छाया आदि मापने में होता था। (१८) वृक्षों में की रस खींचने की शक्ति। (१९) गावदुम खंभा जिसके ऊपर का हिस्सा सुलीला और नीचे का मोटा हो। (२०)

पुराणानुसार उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के नवरत्न  
पंचितो में से एक । (२१) उज्जयिनी का एक पुत्र ।  
(२२) दौब । (२३) पत्तों की नल्लें । (२४) नली नामक  
गंव प्रभ । (२५) लिंग । (२६) शिर के अनुचर एक  
गोवर्ष का नाम ।

शंक्रुर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह जिसके घन शंक्रु के समान  
छंदे और लुछीले हों । (२) गद्दा । (३) एक नाग का नाम ।

शंक्रुर्णो-संज्ञा पुं० [ सं० शंक्रुर्णिव् ] शिव । महादेव ।

शंक्रुचि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सकुची मछली ।

शंक्रुच्छाया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राचीन काल की यारह अंगुल की  
एक लुछीली जैसी जिसका ऊपरी भाग लुछीला होता था ।  
इसकी छाया से समय का परिमाण मात्स्य किया  
जाता था ।

शंक्रुत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाल का वृक्ष ।

शंक्रुत्तर-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुजरात के समीप के एक छोटे टापू का  
नाम । यहाँ शंक्रु नारायण की मूर्ति है ।

शंक्रुनारायण-संज्ञा पुं० [ सं० ] नारायण की वह मूर्ति जो  
शंक्रुत्तर टापू में है ।

शंक्रुणो-संज्ञा पुं० [ सं० शंक्रुणिव् ] जल में रहनेवाले जंतु ।  
जलचर ।

शंक्रुफलिका, शंक्रुफली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफ़ेद कीकर ।

शंक्रुमती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वैदिक छंद जिसके पहले पाद में  
पौष और शैव तीनों में छः या इससे कुछ न्यूनाधिक  
वर्ण होते हैं ।

शंक्रुमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मगर । (२) चूहा ।

शंक्रुमुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जौक ।

शंक्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक दानव का नाम ।  
वि० भयंकर । भीषण ।

शंक्रुज्ञा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुगरी काटने का सरोता ।

शंक्रुवृक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाल का वृक्ष ।

शंक्रुशिर-संज्ञा पुं० [ सं० शंक्रुशिरस् ] भागवत के अनुसार एक  
असुर का नाम ।

शंक्रुच, शंक्रुचि-संज्ञा पुं० [ सं० ] सकुची मछली ।

शंक्रुचिक-वि० [ सं० ] वैमिश्रिक । ( सांख्य )

शंख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का बड़ा घोंघा जो समुद्र  
में पाया जाता है । इसे एक प्रकार का जल जंतु, जिसे शंख  
कहते हैं, अपने रहने के लिये तैयार करता है । जोग इस  
जंतु को मारकर उसका यह कलेसर बनाते हैं उपयोग में  
लाते हैं । यह बहुत पवित्र समझा जाता है और देवता  
आदि के सामने तथा लड़ाई के समय मुँह से फूँटकर  
बजाया जाता है । पुराणों के अनुसार विष्णु भगवान के  
चारों हाथों में से एक हाथ में शंख भी रहता है । इसके

दो भेद होते हैं । एक दक्षिणावर्त्त और दूसरा वामावर्त्त ।  
इनमें से दक्षिणावर्त्त बहुत कम मिलता है । शंख के  
अनुसार यह नेत्रों को हितकारी, पित्त, कफ, रुधिर-विकार,  
विष-विकार, वायुगोला, शूल, खास, अजीर्ण, संभ्रमणी और  
मुँहसे को नष्ट करनेवाला माना गया है । दक्षिणावर्त्त में  
इससे भी अधिक गुण होते हैं । कहते हैं कि जिसके घर में  
यह रहता है, उसके घन की अधिक वृद्धि होती है ।  
वामावर्त्त ही अधिक मिलता है और यही ओषध के काम  
आता है । जो शंख उज्ज्वल और चमकदार होता है, वह  
उत्तम समझा जाता है । इसको विधिपूर्वक शुद्ध कर भस्म  
बनाकर काम में लाते हैं । यह भस्म सब प्रकार के ज्वर,  
सय प्रकार की खाँसी, खास, अतिसार आदि रोगों में  
उचित अनुपात से अत्यंत लाभकारी है । यह स्तंभक और  
धात्रीकरण भी है । इसकी मात्रा चार रत्नी से डेढ़ माने  
तक है ।

मुद्रा०—शंख बजाना = विजय प्राप्त होना । शंख बजाना =  
किसी की धुरारे या हाथि देखकर आनंद मनाना ।

शौ०—शंख का मोती = एक प्रकार का कल्पित मोती । कहते हैं कि  
यह समुद्र के अंतर्गत दुर्गम स्थानों में शंख के नीचे बरसता होता है ।

पट्या०—कंबु । कंबोज । पावनपत्ति । अंतःकुटिल । सुनाद ।  
महानाद । मुखर । बहुनाद । दीर्घनाद । हरिमिय ।

(२) दस खर्व की एक संख्या । एक लाख करोड़ । (१)  
कनपटी । (४) हाथी का गंडस्थल, अथवा दाँतों के बीच

का भाग । (५) चरण चिह्न । (६) एक शैव का नाम जो  
देवताओं को जीतकर वेदों को चुरा ले गया था और जिसके

हाथों से वेदों का उद्धार करने के लिये भगवान् को मार्या-  
वतार धारण करना पड़ा था । शंखासुर । (७) नली

नाम का सुगंधित द्रव्य । (८) एक निधि । ङ०—शंख चरने  
नीलाठप नवई निदि लुईद—विश्राम । (९) राजा

विराट् का पुत्र । ङ०—वत्तर शंख मूर्ति सुख धीरा । औरो  
सजे धमित रणधीरा ।—समल । (१०) एक राजमंत्री का

नाम । ङ०—सुरति सुधन्वा जू सौं शौप के कंत मरे शंख भी  
लिखित विप्र भयो मैलो मन है ।—नामा । (११) कुंजर की

निधि के देवता । (१२) चंपक पुरी के राजा हंसवर्धन का  
उपरोहित और लिखित का भाई । ङ०—शंख लिखित

उपरोहित दोई । रदे तहाँ जानत सय कोई ।—सयल । (१३)  
पारत नगर के राजा गंधर्वसेन का बड़ा लड़का और राजा

विक्रमादित्य का बड़ा भाई जिसे मारकर विक्रम ने गद्दी  
प्राप्त की थी । (१४) छपरय के ७१ भेदों में से एक भेद ।

इसमें १५२ मन्त्रों या १७९ वर्ण होते हैं, जिनमें से २ शुभ  
और शैव १४९ लघु होते हैं । (१५) दृढक वृत्त के अंतर्गत  
मघित का एक भेद । इसमें दो सगण और चौदह रगण



होते हैं। (१६) कपाल। लिङ्गार। (१७) पयन के चलने से होनेवाला शब्द।

शंखकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] दांखालु। सर्फ।

शंखक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें बहुत गरमी होती है और त्रिशोप विगड़ने से कनपटी में दाह सहित लाल रंग की गिळी निकल आती है, जिससे सिर और गाल जकड़ जाता है। कहते हैं कि यह असाध्य रोग है और तीन दिन के अंदर इसका इलाज संभव है, इसके बाद नहीं। (२) हवा के चलने का शब्द। (३) हीरा कसीस। (४) मस्तक। माया। (५) नौ निधियों में से एक निधि। (६) कंठण। घल्लय।

शंखकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक वर्ण संकर जाति जिसकी उपत्ति द्रुदा माता और विद्वकर्म पिता से मानी गई है। इस जाति के लोग शंख की चीजें बनाने का काम करते हैं।

शंखकुसुमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शंखपुष्पी। (२) सफेद अपराजिता। सफेद कोयल।

शंखकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक नाग का नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शंखक्षीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख का दूध अर्थात् कोई असंभव और अनशनी यात।

शंखचर्री, शंखचर्ची-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चंदन का तिलक (ललाट पर का)। (२) भाल। मस्तक। ललाट।

शंखचूड़-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक राक्षस का नाम जिसे कंस ने कृष्ण की मारने के लिये भेजा था और जो स्वयं कृष्ण द्वारा मारा गया था। कहते हैं कि यह सुदामा नामक गोन था जो राधा के शत्रु से असुर हो गया था। इसका विवाह तुलसी से हुआ था। महावैवर्त पुराण में लिखा है कि इसका संहार महादेव जी ने अपने दूत से किया था। (२) कुम्भ के दूत और सखा का नाम। (३) एक यक्ष का नाम। (४) पुराणानुसार द्वारिका निवासी एक शुद्धस्य का नाम जिसके पुत्र उग्रस ह्योकर भद्रय हो जाते थे। (५) एक नाग का नाम। (६) एक तीर्थस्थान।

शंखज-संज्ञा पुं० [ सं० ] यदा मोती जो शंख से निकलता है।

शंखजीरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] संग जराहत।

विशेष—जान पड़ता है कि यह शब्द फ़ारसी "संग जराहत" का बनाया हुआ संस्कृत रूप है।

शंखरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामायण के अनुसार प्रवृद्ध के लड़के का नाम।

शंखतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शंखदारक-संज्ञा पुं० दे० "शंखकार"।

शंखद्रव-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का अर्क

जिसमें शंख भी गल जाता है। आर्घ सेर हीरा कसीस, सेर भर लाहौरी फिटकरी, सेर भर स्यां नमक और सेर भर शोरा चूर्ण करके ठेकही यंत्र से रस निकाल दिया जाता है, जो शंखद्रव कहलाता है। कहते हैं कि इसके सेवन से दूध, गुल्म, अर्धा, प्लीहा, उदर रोग, अजीर्ण और वात रोग सब दूर होते हैं। इसे क्विच या चीनी की शीशी में रखना चाहिए; अन्यथा पात्र गल जायगा। इसके सेवन के समय शूँह में घी लगा देना चाहिए, नहीं तो जिह्वा और दाँतों को हानि पहुँचेगी।

वि० कोई ऐसा तीक्ष्ण रस या क्षार जिसमें बालने से शंख गल जाय।

शंखद्रवक-संज्ञा पुं० दे० "शंखद्रव"।

शंखद्रवीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंखद्रविन् । अमलयेत।

शंखद्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम।

शंखघट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शंख की धारण करनेवाले, अर्थात् विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। उ०—गिरिधर वज्रधर धामीधर पीताम्बर धर मुकुटधर गोपधर उग्रीधर सारंगधर चक्रधर रस धरं अथ सुनाधर।—सूर।

शंखधरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हुरदुर का साग। हिलमोषिका।

शंखधधना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जूही। यूथिका।

शंखन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अयोध्या के राजा कश्यापनाम के एक पुत्र का नाम। (२) वज्रनाम के पुत्र का नाम।

शंखनखा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घोंघा। टोटा शंख। (२) व्याघ्रनख। नखी नाम का गंध द्रव्य।

शंखनखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घोंघा। (२) नखी नामक गंध द्रव्य।

शंखनाभि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार का शंख। (२) एक प्रकार का गंध द्रव्य।

शंखनाम्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शंखालुकी। शंखपुष्पी।

शंखनासी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वृक्ष का नाम जिसमें छः वर्ण होते हैं। यह दो यगण का वृक्ष है। इसे सोमराजी वृक्ष भी कहते हैं।

शंखनी-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखनी"।

शंखपल्लिता-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख + हिं० पल्लिता। एक प्रकार का रेशीदार खनिज पदार्थ जो ज्वालामुखी पर्वतों से निकलता है। इसका रंग सफ़ेद या हरा होता है और इसमें रेशम की सी धमक होती है। इसका विशेष गुण यह है कि यह जपदी जलता नहीं; इसी लिये गैस के भट्टे बनाने में इसका बहुत उपयोग होता है। आग से न जलनेवाले कपड़े तैयार करने में भी यह काम में लाया जाता है। गरमी और विजली का प्रयोग इसमें बहुत कम होता है, इसी से यह विजली के तार आदि लपेटने में भी काम

आता है। हूनिजों के जोड़ हूसी से भरे या चंद किए जाते हैं। यह कारसिका, स्काउलेड, कनाडा, इटली आदि देशों में अधिक मिलता है।

शंखपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में शंख धारण करनेवाले, विष्णु।  
शंखपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शकर पारा नाम की मिठाई। वि० दे० "शकरपारा"। (२) एक प्रकार का सर्प। (३) एक नाम का नाम। (४) कर्दम के पुत्र का नाम।

शंखपायाण-संज्ञा पुं० [सं०] संख्या।  
शंखपुत्रिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखपुत्री"।  
शंखपुत्र्यो-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद अपराजिता। श्वेतापराजिता। सफेद कोयल। (२) जूही। यूथिका। (३) शंखाहुली। शंखाह्ला।

शंखप्रख-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का कर्क।  
शंखभस्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] चूना।  
शंखभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] शंख धारण करनेवाले, विष्णु।  
शंखमालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। शंखपुत्री।  
शंखमुक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखज नाम का बड़ा मोती।  
शंखमुख-संज्ञा पुं० [सं०] कुम्भीर। घड़ियाल।  
शंखमूलक-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूली।

शंखयूथिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही। यूथिका।  
शंखरी-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शंख की चूड़ी बनाने का व्यवसाय करता हो।

शंखलिखित-वि० [सं०] निर्दोष। दोष रहित। ये-धे०।  
संज्ञा पुं० (१) न्यायशील राजा। (२) शंख और लिखित नाम के दो ऋषि जिन्होंने एक स्मृति बनाई थी।  
संज्ञा स्त्री० शंख और लिखित ऋषियों द्वारा लिखी हुई स्मृति। उ०—सचिव सुधन्य चक्रो जराया। शंख लिखित फल भापुह पाया।—रघुनाथ।

शंखघटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंख में एक प्रकार की घटी या गोली जिसके प्रस्तुत करने की प्रणाली यह है। शंख के रस में सुसाई हुई शंख की भरम टके भर और जवाहार, सैंडी हींग, पौधों नामक, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, शुद्ध सिंगी सुहरा, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक की कजली ये सब दस दस टंक एक में मिटाकर सब को पूर्ण करके नीचू के रस में खरल करके चने के बाराब गोडियाँ बनाते हैं। कढ़ते हैं कि हींग के जल के साथ एक गोली सेवन करने से सामर्थ्य, शूल और वायुगोला आदि रोग दूर होते हैं।

शंखघटी रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की घटी या गोली जो शूल रोग को तत्काल दूर करनेवाली मानी जाती है। इसके प्रस्तुत करने की विधि यह है। थड़े शंख को तपा तपाकर स्याह भर नीचू के रस में सुसाते हैं, और इस शंख के पूर्ण में टके भर, इनकी का स्याह, ५ टंक सौंवर

नामक, टके भर सेंधा नामक, टके भर सौंवर नामक, टके भर कच मोन, टके भर विडू मोन, ६ मादो सोंठ, ६ मादो काली मिर्च, ६ मादो पिप्पली; टके भर सेंडी हींग, टके भर शुद्ध गंधक, टके भर शुद्ध पारा, १ टंक शुद्ध सिंगी सुहरा, इन सब को मिटाकर जल के साथ घोंटकर छोटे बेल के बाराब गोडियाँ बना लेते हैं।

शंखघात-संज्ञा पुं० [सं०] सिर की पीड़ा। वि० दे० "शंखक" (१)।  
शंखविष-संज्ञा पुं० [सं०] संख्या।  
शंखवेलान्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय जिसमें किसी एक कार्य के होने से किसी दूसरी बात का वैसे ही ज्ञान होता है, जैसे शंख बजने से समय का ज्ञान होता है।

शंखशुक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप।  
शंखसंकाश-संज्ञा पुं० [सं०] शंखाल। सफेद शकरकंद।  
शंखस-संज्ञा पुं० [सं०] शंख की चूड़ी या कड़ा।  
शंखाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्धक्री या बगनसला नामक गंध द्रव्य।

शंखाक, शंखालु-संज्ञा पुं० [सं०] शंखालुक। शंखकंद। सफेद शकरकंद।

शंखालुक-संज्ञा पुं० [सं०] शंखाल। सफेद शकरकंद।  
शंखाघत्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भगदर रोग जिसे शंखघत्त भी कहते हैं। वि० दे० "शंखघत्त"।

शंखालु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दैव जो प्रजा के पास से वेद चुराकर समुद्र के गर्भ में जा छिपा था। इसी को मानने के लिये विष्णु ने महायावता धारण किया था। उ०—बहुरो किञ्चल वैद मान्यो जिन शंखालु ताते वेद भनेक विधाता को दिखाए हैं।—रघुनाथक। (२) सुर दैव का पिता। उ०—शंखालुसुन पितु बध जान्यो। तप बन जाह तहाँ तप ठाम्यो।—रघुनाथ।

शंखालि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिर की हड्डी। (२) पीठ की हड्डी।

शंखालुनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शंखाहुली। शंखपुत्री। वि० दे० "कौडियाला"। (२) सफेद अपराजिता या कोयल।

शंखाहोली-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। शंखपुत्री। कौडियाला। कौडिना।

शंखिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। चोरपुत्री।  
शंखिन-संज्ञा पुं० [सं०] सिरस। सिरीप द्रव्य।

शंखिनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रथिवी। गडियन।  
शंखिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की बनीरपि जिसकी छता और फल सिवसिंगी के समान होते हैं। अंतर वैद्यक

यही है कि सिवसिंगी के फल पर सफेद छींटे होते हैं जो

होते हैं। (१६) कपाल। लिङ्गार। (१७) पवन के चलने से होनेवाला वायु।

शंखकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंखाण्ड। सर्प।

शंखक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें बहुत गरमी होती है और त्रिदोष विगड़ने से कनपटी में दाह सहित लाल रंग की गिन्दी निकल आती है, जिससे सिर और गला जकड़ जाता है। कहते हैं कि यह असाध्य रोग है और तीन दिन के अंदर इसका इलाज संभव है, इसके बाद नहीं। (२) हवा के चलने का वायु। (३) हीरा कसीस। (४) मल्लक। माषा। (५) नौ निधियों में से एक निधि। (६) कंकण। चलय।

शंखदार-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक वर्ण संकर जाति जिसकी उत्पत्ति शूद्रा माता और विश्वकर्मा पिता से मानी गई है। इस जाति के लोग शंख की चीजें बनाने का काम करते हैं।

शंखकुसुमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शंखपुत्री। (२) सफेद अपराजिता। सफेद कोयल।

शंखकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक नाग का नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शंखक्षीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख का दूध अर्थात् कोई असंभव और अन-होनी बात।

शंखचरी, शंखचर्ची-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चंदन का तिलक (ललाट पर का)। (२) भाल। मस्तक। ललाट।

शंखचूड़-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक राक्षस का नाम जिसे कंस ने कृष्ण की मारने के लिये भेजा था और जो स्वयं कृष्ण द्वारा मारा गया था। कहते हैं कि यह सुदामा नामक गोत्र था जो शंखा के श्राव से असुर हो गया था। इसका विवाह तुलसी से हुआ था। प्रलयवत्स पुराण में लिखा है कि इसका संहार महादेव जी ने अपने शूल से किया था। (२) कुंभर के दूत और सला का नाम। (३) एक यक्ष का नाम। (४) पुराणानुसार द्वारिका निवासी एक गृहस्थ का नाम जिसके पुत्र उत्तराक्ष होकर अद्वय हो जाते थे। (५) एक नाग का नाम। (६) एक तीर्थस्थान।

शंखज-संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़ा मोती जो शंख से निकलता है।

शंखजीरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] संग जराहत।

विशेष—जान पड़ता है कि यह वायु फारसी "संग जराहत" का यनाया हुआ संस्कृत रूप है।

शंखएण-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामायण के अनुसार प्रवृद्ध के लड़के का नाम।

शंखतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शंखदारक-संज्ञा पुं० दे० "शंखकार"।

शंखद्राव-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का भक्ष

जिसमें शंख भी गल जाता है। अर्थात् सेर हीरा कसीस, सेर भर लाहौरी फिटकरी, सेर भर लेंचा नामक और सेर भर शोरा पूर्ण करके देकरी घंघ से रस निकाल लिया जाता है, जो शंखद्राव कहलाता है। कहते हैं कि इसके सेवन से शूल, गुल्म, अर्सा, प्लीहा, उदर रोग, अजीर्ण और वात रोग सप दूर होते हैं। इसे कौंच या चीनी की शीशी में रखना चाहिए; अन्यथा पात्र गल जायगा। इसके सेवन के समय मुँह में घी लगा देना चाहिए, नहीं तो निहा और दाँतों को हानि पहुँचेगी।

वि० कोई ऐसा तीक्ष्ण रस या क्षार जिसमें शूलने से शंख गल जाय।

शंखद्रायक-संज्ञा पुं० दे० "शंखद्राव"।

शंखद्रावी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंखद्राविन्। भमरवैत।

शंखद्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम।

शंखधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शंख को धारण करनेवाले, अर्थात् विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। उ०—गिरिधर वज्रधर चामीधर पीताम्बर धर मुकुटधर गोपधर वर्गधर सारंगधर चक्रधर रस धर भव सुभाधर।—सूर।

शंखधरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हुरहुर का साग। हिलमोथिका।

शंखधनन-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जूरी। यूथिका।

शंखन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अयोध्या के राजा कशनायगाद के एक पुत्र का नाम। (२) वज्रनाम के पुत्र का नाम।

शंखनख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घोषा। छोटा शंख। (२) व्याघ्रनख। नली नाम का गंध द्रव्य।

शंखनखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घोषा। (२) नली नामक गंध द्रव्य।

शंखनाभि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार का शंख। (२) एक प्रकार का गंध द्रव्य।

शंखनासी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शंखाण्डकी। शंखपुत्री।

शंखनारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वृक्ष का नाम जिसमें छः वर्ण होते हैं। यह दो यगण का वृक्ष है। इसे सोमराजी वृक्ष भी कहते हैं।

शंखनी-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखिनी"।

शंखपत्नीता-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख की पत्नीता एक प्रकार का रेतीदार खनिज पदार्थ जो अजला-मुली पर्वतों से निकलता है। इसका रंग सफेद या हरा होता है और इसमें रेताम की सी चमक होती है। इसका विशेष गुण यह है कि यह जहरी जलता नहीं; इसी लिये रीस के मद्दे बनाने में इसका बहुत उपयोग होता है। भाग से न जलनेवाले कपड़े तैयार करने में भी यह काम में लाया जाता है। गरमी और पित्रली का प्रवेत इसमें बहुत कम होता है; इसी से यह विप्रेली के तार आदि छपेटने में भी काम

भाता है। इन्हीं के जोड़ इसी से भरे या पंढर किए जाते हैं। यह कारिका, स्फारिड, कनाडा, इटली आदि देशों में अधिक मिलता है।

शंखपाणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ में शंख धारण करनेवाले, विष्णु।  
 शंखपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शकर पारा नाम की मिठाई। वि० दे० "शकरपारा"। (२) एक प्रकार का सौँप। (३) एक भाग का नाम। (४) कर्म का पुत्र का नाम।

शंखपायाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] संख्या।  
 शंखपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखपुष्पी"।  
 शंखपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सफ़ेद अपरागिता। ज्ञेयाप-रगिता। सफ़ेद कोयल। (२) जूही। यूथिका। (३) शंखाहुली। शंखाहु।

शंखप्रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा का कर्क।  
 शंखभस्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] चूना।  
 शंखभूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख धारण करनेवाले, विष्णु।  
 शंखमालिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शंखाहुली। शंखपुष्पी।  
 शंखमुकुट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शंख नाम का बड़ा मोती।  
 शंखमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुमीर। यदियाल  
 शंखमूलक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मूली।

शंखयुधिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जूही। यूथिका।  
 शंखरी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शंख की चूड़ी बनाने का व्यवसाय करता हो।

शंखलिखित-वि० [ सं० ] निर्दोष। दोष रहित। दोष-रहित।  
 संज्ञा पुं० (१) न्यायशील राजा। (२) शंख और लिखित नाम के दो ऋषि मिश्रों ने एक स्मृति बनाई थी।  
 संज्ञा स्त्री० शंख और लिखित ऋषियों द्वारा लिखी हुई स्मृति। उ०—सचिव सुधने चलो जरावा। शंख लिखित फल भापुह पावा।—रघुनाथ।

शंखघटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार की घटी या गोली जिसके प्रयुक्त करने की गणाली यह है। मीठू के रस में घुसाई हुई शंख की भरम टके भर और जवाहार, सँकी हींग, पाँचों नमक, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, शुद्ध सिंगी सुहरा, शुद्ध पाया, शुद्ध गंधक की कजली ये सब दस दस टंक एक में मिखाकर सब को पूर्ण करके नीचू के रस में खरल करके चने के बराबर गोठियाँ बनाते हैं। कहते हैं कि हींग के जल के साथ एक गोली सेवन करने से संप्रहणी, दूध और वायुगोला आदि रोग दूर होते हैं।

शंखघटी रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार की घटी या गोली जो दूध रोग को तत्काल दूर करनेवाली मानी जाती है। इसके प्रयुक्त करने की विधि यह है। बड़े शंख को तपा तपाकर ग्यारह बार नीचू के रस में घुसाते हैं, और इस शंख के पूर्ण में टके भर इमली का खार, ५ टंक सौँवर

नमक, टके भर सौँवा नमक, टके भर सौँवर नमक, टके भर कच नोन, टके भर विद्ध नोन, ६ मासो सोंठ, ६ मासो काली मिर्च, ६ मासो पिप्पली; टके भर सँकी हींग, टके भर शुद्ध गंधक, टके भर शुद्ध पाया, १ टंक शुद्ध सिंगी सुहरा, इन सब को मिखाकर जल के साथ पोंटर छोटे बेर के बराबर गोठियाँ बना लेते हैं।

शंखवात-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिर की पीड़ा। वि० दे० "शंख" (१)।  
 शंखविप-संज्ञा पुं० [ सं० ] संख्या।

शंखवेदान्याय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का न्याय जिसमें किसी एक कार्य के होने से किसी दूसरी बात का वैसे ही ज्ञान होता है, जैसे शंख बजने से समय का ज्ञान होता है।

शंखशुक्तिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सीप।  
 शंखसंकाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] संखाल। सफ़ेद शकरकंद।  
 शंखस-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख की चूड़ी या कड़ा।  
 शंखास्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुहृत्सती या बगनख नामक गंध द्रव्य।

शंखाव, शंखालु-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंखालुक। शंखकंद। सफ़ेद शकरकंद।

शंखालुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंखालु। सफ़ेद शकरकंद।  
 शंखावत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का भंगदर रोग जिसे शंखवाचत् भी कहते हैं। वि० दे० "शंखवाचत्"।

शंखासुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक दैत्य जो ब्रह्मा के पास से वेद चुराकर समुद्र के गर्भ में जा लिया था। इसी को मारने के लिये विष्णु ने मर्यादावता धारण किया था।  
 उ०—बहुरो किंजल वैठ मान्यो जिन शंखासुर ताते वेद भनेक विधाता को दिलापु हँ।—रघुनाथक। (२) सुर दैत्य का पिता। उ०—शंखासुर सुन पितु बध जान्यो। तप बन जाह तहाँ तप ग्रन्थो।—रघुनाथ।

शंखास्थि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सिर की हड्डी। (२) पोंठ की हड्डी।

शंखाहुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शंखाहुली। शंखपुष्पी। वि० दे० "कौटियाला"। (२) सफ़ेद अपरागिता या कोयल।

शंखाहोली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शंखाहुली। शंखपुष्पी। कौटियाला। कौटिया।

शंखिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शंखाहुली। शंखपुष्पी।  
 शंखिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिरस। शिरीष वृक्ष।  
 शंखिनिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मंत्रियर्षी। गठिवन।  
 शंखिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार की बनीय जिसकी कता और फल शिवलिंगी के समान होते हैं। अंतर केवल यही है कि शिवलिंगी के फल पर सफ़ेद छीरे होते हैं जो

शंखिनी के फरु पर नहीं होते। इसके बीच फाल के समान होते हैं जिनका ठेक निकलता है। वैद्यक में यह चापरी, रिनाथ, कड़वी, भारी, तीक्ष्ण, गरम, अमिरीरक, बलकारक, रुचिकारी और विपविकार, आम-दोष, क्षय, रुधिर विकार तथा उदर-दोष आदि को शान्त करनेवाली मानी जाती है।

पदार्थ—पतितिका। महातिका। भद्रतिका। सूदनपुष्पी। टङ्गरादा। विसर्पिणी। माकुली। नेत्रमीला। अन्नपीडा। माहेधरी। तिका। यात्री।

(२) पश्चिमी आदि पियों के चार भेदों में से एक भेद। उ०—कोइ शंखिनि युत रोप दया विन वेगि प्रचरि।—विश्राम।

विशेष—कहते हैं कि ऐसी स्त्री कोपसील, कोविद, सलोम शरीरवाली, बड़ी बड़ी और सजल भाँखोंवाली, देखने में सुंदर, लम्बा और शंका रहित, अर्धरी, रतिप्रिय, क्षार गंध-युक्त और अरुण नखवाली होती है। यह वृष्यमं ज्ञाति के पुत्र के लिये उपयुक्त होती है।

(३) युदा द्वार की नस। (४) शुँह की नाड़ी। उ०—मुख स्थान शंखिनी केस। ये चादिन के नाम निवेश।—विश्राम। (५) एक देवी का नाम। (६) स्त्री। (७) एक शक्ति जिसकी पूजा बौद्ध लोग करते हैं। (८) एक तीर्थस्थान का नाम। (९) एक प्रकार की अक्षरा। (१०) शंखलुङ्गी।

शंखिनी डंकिनी—संज्ञा स्त्री [ सं० ] एक प्रकार का उन्माद जिसके लक्षण इस प्रकार कहे गए हैं—सर्वांग में पीडा होना, नेत्र बहुत दुखना, मूर्छा होना, शरीर कर्पना, रोना, हँसना, मरुता, भोजन में अरुचि, गला घैठना, शरीर के परत तथा मूत्र का नाश, उर चढ़ना और सिर में चक्र आना।

शंखिनीवाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] शालोद वृक्ष। सहोरा।

शंखिया—संज्ञा पुं० दे० “संख्या”।

शंखी—संज्ञा पुं० [ सं० शंखिन ] (१) विष्णु। (२) समुद्र। (३) एक प्रकार का सर्प।

शंखोदधिमल—संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्रफेन।

शंखोदरी—संज्ञा स्त्री [ सं० ] मध्यम आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो पर्वतों में शोभा के लिये लगाते हैं। इसके पत्ते चक्रवर्त के पत्तों के समान होते हैं। पीले और लाल फूलों के भेद से यह वृक्ष दो प्रकार का होता है। इसके कलियों अंगठी के समान होती, चिपटी तथा फार पौंच अंगुल लंबी होती हैं और इसमें ७, ८ दाने होते हैं। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं जो पारसों महीने रहते हैं; परंतु और महीनों की अपेक्षा आभास में अधिक फूल लगते हैं। फूलों में गंध नहीं होती। इसकी लकड़ी मज्ज्वन सोनी है। इसके वृक्ष चीन

और कलम दोनों से ही लगते हैं। कई प्रकार के रोगों में इसका काय भी दिया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह गरम, कड़ु, वात, शूल, आमवात और नेत्र रोग को दूर करनेवाली है। गुल्बरी। गुल्बुरी। सिद्धकर।

शंख जराहृत—संज्ञा पुं० दे० “संख जराहृत”।

शंखट—संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का बहुत बड़ा वृक्ष जो मद्रास और सुंदर वन में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी लाल और मज्ज्वत होती है और मरुता तथा गाढ़ी आदि बनाने के काम में आती है। इसके पत्तों से रंग भी निहाल जाता है।

शंखरफ—संज्ञा पुं० दे० “शिंगरफ”।

शंखट—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अविवाहित। (२) ननुसक। हीजदा। (३) मूलों के वृक्ष। उ०—मुण्ड मूत्र जड़ मूत्र ना अश्व मयुष वद शंठ।—नेददास।

शंखट—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ननुसक। हीजदा। (२) यह पुरुष जिते संतान न होती हो। संप्या पुरुष। (३) सौदा। (४) उन्माद। पागल। (५) कमलिनी। पश्चिमी।

शंखला—संज्ञा स्त्री [ सं० ] दाँद का भाव या धर्म। ननुसकर। हीजदापन।

शंखला—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फटा हुआ खटा वृष भयवा दरी। (२) शुक्राचार्य का पुत्र जो असुरों का पुरोहित था। (३) एक यज्ञ का नाम।

शंखला की मद्य—संज्ञा स्त्री [ सं० शंख + मद्य ] अर्कप्रकाश के अनुसार एक प्रकार की शराब जो राई, मूली और सरसों के पत्तों का रस चायलों की पीठी में मिलाकर अर्क निहालने से तैया होती है।

शंखामर्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख और मर्क के दो दैत्य जिनका नाम साथ ही साथ लिया जाता है। उ०—शंखामर्क से कहियो जाय।—शाब्दावली।

शंखोल—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गोशरकार क्षयि जिनके गोश के लोग शांडिल्य कहलाते हैं।

शंखोलु—संज्ञा पुं० दे० “शांतुलु”। उ०—(क) घणी शांतुलु की कथा, पुनि यथात् कर भोग।—रघुनाथ। (ख) विष्णु सुता साय सुत माहीं। साधु पुत्र शंखुलु श्र माहीं।—सुबल।

शंखोलु—सुत—संज्ञा पुं० [ सं० शांतुलु + सुत ] गंगा के गर्भ से उदयन शांतुलु के पुत्र, भीष्मपितामह। वि० दे० “भीष्म”।

शंखार—संज्ञा स्त्री [ सं० ] (१) बिजली। (२) कमर। शंखाक, शंखात—संज्ञा पुं० [ सं० ] आरम्य वृक्ष। अमलतास। शंख—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हृद का यज्ञ। (२) छोटे की जंतोर नी-ज्जार के चारों तरफ पहनी जाय। (३) प्राचीन काक

की मापने की एक माप । (४) नियमित रूप से हल जोतने की क्रिया ।

शंकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक दैत्य जो द्विवेदास का बड़ा शत्रु था । द्विवेदास की रक्षा के लिये इंद्र ने इसे पहाड़ पर से नीचे गिराकर मार डाला था । (२) रामायण और महाभारत में इसे कामदेव का शत्रु कहा है । (३) प्राचीन बाल का एक प्रकार का शत्रु । (४) युद्ध । समर । लड़ाई । (५) एक प्रकार का मृग । (६) मछली । (७) एक पर्वत का नाम । (८) जल । पानी । (९) चीता नामक पशु । चितवर । (१०) लोथ वृक्ष । (११) अर्जुन वृक्ष । (१२) लाल वृक्ष । (१३) साधारण दिन । (१४) सुन्दर जमीन ।

वि० (१) भक्ति उत्तम । बहुत बढ़िया । (२) भाग्यवान् । (३) सुखी ।

शंकरकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाराही कंद । शूकर कंद । शंकर चंद्रन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चंद्रन जिसे केरात, बहलगांध और गंधकाष्ठ भी कहते हैं । शंकरमाया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) इंद्रकाळ । जादू । (२) शक्ति । शंकरसूदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव ।

शंकरारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शंकर का शत्रु, अर्थात् कामदेव । मदन । उ०—शंकर उभे शंकरारि दुख देह को दई ।—केदार । (२) प्रयुक्त ओ कामदेव के अवनार कहे जाते हैं । उ०—सुरसि सुरसि गिरायो भूमि पर शंकरारि छलकारि ।—गर्गसंहिता ।

शंकराहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरपेरी । भूवदरी । शंकरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भूसाक्षिनी । आशुपर्णी । उता । (२) बड़ी देवी । बगरीडा । (३) माया ।

शंकरगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वनद्रव्य । चर्चरी । शंकरोद्भव-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफ़ेद लोथ । शंकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यात्रा के समय रास्ते के लिये भोजन-साधन । संवल । पायेय । (२) तट । किनारा । (३) कुल । (४) ईश्वर । हेप । (५) दे० "शंकर" ।

शंकरादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] चारुनीकीय रामायण के अनुसार एक दैत्य जिसे केशरी चानर ने मारा था ।

शंका-संज्ञा पुं० [ सं० ] शकित्वा । शकित्वा । शंका-संज्ञा पुं० [ सं० ] शकित्वा । शंका ।

शंका, शंका-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शंका । (२) छोटा शंका । शंकापुष्पी-संज्ञा स्त्री० दे० "शंकापुष्पी" ।

शंकावर्ष-वि० [ सं० ] शंका की भेरी के सदृश ध्वजा हुआ । संज्ञा पुं० शंका प्रकार के भगदोरों में से एक प्रकार का भगदोर जिसके जोड़ने से अनेक प्रकार की पीड़ा होती है । इसका कई प्रकार का वर्ण होता है और इसमें सदैव पीर बहा

करता है, जोड़ा गी के धन के आकार का हो जाता है और उसका छिद्र धोंके के घेरे के समान धूमता हुआ होता है ।

शंका-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक तपस्वी यज्ञ, जिसकी तपस्या के कारण त्रेतायुग में रामराज्य में एक ब्राह्मण का पुत्र अकाञ्छत्यु को प्राप्त हुआ था; अतः इसे राम ने मारकर मृत ब्राह्मण-पुत्र को पुनरुज्जीवित किया था । (२) शंका । (३) शंका । (४) एक दैत्य का नाम । (५) हाथी के सूँठ का अगला भाग ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सौपी । शंभु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) ग्यारह देवों में से एक । वि० दे० "महादेव" और "सद्" । (३) रामायण के अनुसार एक दैत्य का नाम । (४) एक वृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में १९ वर्ण होते हैं; और उनका क्रम इस प्रकार होता है—उ, ष, य, म, र, स, ग ( ॥ ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८ ) । (५) ब्रह्मा । (६) विष्णु । (७) सफ़ेद आक ! (८) पारा । संज्ञा पुं० दे० "स्वायंभुव" । उ०—कह शीतक शंभु मनु पाठे । कौन्दा राज्य केहि कहिये आठे ।—रघुनाथ ।

शंभुकांता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शंभु की स्त्री, पार्वती । (२) दुर्गा ।

शंभुगिरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंभु का पर्वत, कैलास । शंभुतेज-संज्ञा पुं० [ सं० ] पारा । पारद । शंभुबीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] पारा । पारद । शंभुभूषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] महादेव जी का भूषण, चंद्रमा । शंभु मनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वायंभुव मन्वन्तर जो सब से पहला मन्वन्तर है । वि० दे० "स्वायंभुव" और "मनु" ।

शंभुलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] महादेव जी का लोक, कैलास । शंस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रतिज्ञा । इकरार । (२) शपथ । कसम । (३) जादू । (४) प्रस्ता । तारीफ़ । (५) इच्छा । खाहिश । (६) चापलसी । चाटुता । (७) घोषणा । (८) पकता ।

शंस्य-वि० [ सं० ] (१) प्रस्ता के योग्य । (२) इच्छित । चाहा हुआ ।

संज्ञा स्त्री० अग्नि । श-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) कृपाण । मंगल । (३) शत्रु । इषियार ।

शश्वतान-संज्ञा पुं० [ सं० ] आधी आठवाँ महीना जिसकी चौदहवाँ तारीख को सुसप्तमानी का शश्वत नामक त्यौहार होता है । यह रजप के बाद आता है ।

शंकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी चीज़ की पहचान या जानकारी । (२) काम करने की योग्यता । रंग । (३) उद्वि । अह ।

कि० प्र०—आना ।—तीव्रता ।

मुहा०—शुद्धर पकड़ना = दंग सीपना । कड़ा सीपना । बुद्धिमान होना ।

शुद्धरदार—संज्ञा पुं० [ श० शुद्धर + दार (संघ०) ] जिसमें शकरी हों । काम करने की योग्यता रखनेवाला । हुजामंद । समतदार ।

शक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन जाति । युरालों में इस जाति की उपस्थिति सूर्यवंशी राजा नरियन्त से कही गई है । राजा सगर ने राजा नरियन्त को राज्यच्युत तथा देश से निर्वासित किया था । वर्णाश्रम आदि के नियमों का पाठन न करने के कारण तथा ग्राहणों से भक्षण रहने के कारण वे भलेष्ट हो गए थे । उन्हीं के वंशज शक कहलाए । आधुनिक विद्वानों का मत है कि मध्य एशिया पहले शकरीयों के नाम से प्रसिद्ध था । यूनानी इस देश को सीरिया कहते थे । उसी मध्य एशिया के रहनेवाले शक बड़े जाते हैं । एक समय यह जाति पट्टी पताप-गालिनी हो गई थी । ईसा से दो सौ वर्ष पहले इसने मथुरा और महाराष्ट्र पर अपना अधिकार कर लिया था । ये लोग अपने को देवपुत्र कहते थे । इन्होंने १९० वर्ष तक भारत पर राज्य किया था । इनमें कनिष्क और हविष्क आदि बड़े बड़े प्रतापशाली राजा हुए हैं । (२) वह राजा या शासक जिसके नाम से कोई संवत् चले । (३) राजा शालिवाहन या चलाया हुआ संवत् जो ईसा के ७८ वर्ष पश्चात् आरंभ हुआ था । (४) शालिवाहन के अनुयायी अथवा उनके वंशज । (५) संवत् । (६) तांतरा देश । (७) जल । (८) मल । (९) एक प्रकार का पशु । (१०) संदेह । आतंका । (११) भय । प्रास । डर ।

संज्ञा पुं० [ अ० ] शंका । संदेह । द्विधिवा ।

शिक्रि० प्र०—करना ।—हालना । निकालना ।—पढ़ना ।—मिटना ।—मिटाना ।

शुद्धरकारक—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसने कोई जया संवत् (शक) चलाया हो । संवत् का प्रवर्तक ।

शुद्धर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छद्मवा । बिलगादी । (२) भार । बोझ । (३) शकटासुर नामक दैत्य जिसे कृष्ण ने मारा था । (४) तिमिरा दृक् । (५) धन का दृक् । धौ । (६) शरीर । देह । (७) दो इज्जार पल की तोड़ । (८) रीढ़िणी नक्षत्र, जिसकी आकृति शकट या छद्मे के समान है ।

शुद्धर कर्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गादी या और कोई सवारी हॉकने का काम । (२) गादी आदि सवारियों की सामग्री बनाने और बेचने का काम ।

शुद्धरधूम—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गोबर या उपले आदि का धूम । (२) एक नक्षत्र का नाम ।

शुद्धर धूप—संज्ञा पुं० [ सं० ] शकट के आकार का सेना का

निवेश । सेना को इस प्रकार रखना, कि उभर आगे का भाग पतला और पीछे का मोटा हो, और यह देखने में शकट के आकार का जान पड़े ।

शुद्धरदा—संज्ञा पुं० [ सं० ] शकटासुर नामक दैत्य के मानेवाले, श्रीकृष्ण ।

शुद्धरदा—संज्ञा पुं० [ सं० ] गादी का घुरा ।

शुद्धरदास्य, शुद्धरदास्यक—संज्ञा पुं० [ सं० ] धी या घघ का दूध ।

शुद्धरदा—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा महानंद का प्रधान मंत्री, जिसने अपने अग्रमान का बदला चुकाने के लिये चाणक्य से मिलकर पदच्युत रचा था और इस प्रकार नंद वंश का नाश किया था । (२) एक प्रकार की निकारी चिड़िया ।

शुद्धरदारि—संज्ञा पुं० [ सं० ] शकट दैत्य के शत्रु, श्रीकृष्ण ।

शुद्धरदाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] "शकटार" ।

शुद्धरदासुर—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दैत्य जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिये भेजा था और जो स्वयं ही कृष्ण द्वारा मारा गया था ।

शुद्धरटिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छोटी बिलगादी । (२) बच्चों के खेलने की गादी ।

शुद्धरटी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटी गादी ।

शुद्धरठ—संज्ञा पुं० [ सं० शकट ] मचान । उ०—कृष्णचंद्र के समय में भी बुधायन घन गिना जाता था, और गोप लोग उसमें शकटों पर रहते थे ।—निबन्धसाद ।

शुद्धर—संज्ञा स्त्री० [ का० मि० सं० शकटा ] कर्षणी चीनी । शकटा । शकटार ।

शौ०—शकर सुफेद । शकरसुखे । शकरगुद ।

शुद्धरकंद—संज्ञा पुं० [ हि० शकर + सं० कंद ] एक प्रकार का प्रसिद्ध कंद जिसकी खेती प्रायः सारे भारत में होती है । यह साधारणतः सूखी जमीन में बोया जाता है । इसका कंद दो प्रकार का होता है—एक छाल और दूसरा सुफेद । छाल शकरकंद रताछ या पिटाछ कहलाता है और सुफेद को शकरकंद या कंदा कहते हैं । यह भूनकर या उबालकर खाया जाता है । प्रायः हिंदू लोग मंत्र के दिन कंदाहार रूप में इसका व्यवहार करते हैं । यह कंद बहुत मीठा होता है और इसमें से एक प्रकार की चीनी निकलती है । अनेक पादचार्य देशों में इससे चीनी निकाली भी जाती है; और इसी लिये इसकी बहुत अधिक खेती होती है । वनस्पति शास्त्र के आधुनिक विद्वानों का अनुमान है कि यह मूलतः अमेरिका का कंद है; और वहाँ से सारे संसार में फैला है ।

शुद्धरखोरा—संज्ञा पुं० [ का० शकर + खोर = खानेवाला ] एक प्रकार का छोटा सुन्दर पक्षी जिसकी खेती प्रायः एक बालिष्ठ से भी कम होती है और जो भारत, फ्रांस तथा चीन में पाया जाता है । इसका रंग नीला और चोंच काठी

# मनोरंजन पुस्तकमाला

अथ तत्र निम्नलिखित पुस्तक प्रकाशित हो चुकी हैं—

- (१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (२) आत्मसाक्षात्कार—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (३) युक्त गोविंदसिंह—लेखक वैष्णोप्रसाद ।  
 (४) जगन्नाह्न—लेखक मेहता ।  
 (५) राणा जगन्नाह्न—लेखक जगन्नाह्न वर्मा ।  
 (६) भौतिक पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा ।  
 (७) जीवन के आनंद—लेखक गणपति जानकीराम दुबे ।  
 (८) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद पी० एस० सी० ।  
 (९) लालचीन—लेखक प्रजननदेनसहाय ।  
 (१०) कबीर-प्रचनावली—संप्रहर्कता श्रयोभ्यासिंह उपाध्याय ।  
 (११) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र पी० पी० ।  
 (१२) बुद्धदेव—लेखक जगन्नाह्न वर्मा ।  
 (१३) नित्यव्यय—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (१४) सिंघों का उत्थान और पतन—लेखक गदकुमार देव शर्मा ।  
 (१५) बीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र पी० पी० और शुक्लदेवविहारी मिश्र पी० पी० ।  
 (१६) नेपोलियन बातापार्ट—लेखक रायामोहन गोकुलजी ।  
 (१७) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार ।  
 (१८, १९) हिबुसालन दो खंड—लेखक दयाचंद्र पी० पी० ।  
 (२०) महापि मुकररान—लेखक वैष्णोप्रसाद ।  
 (२१) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद पी० एस० सी० ।  
 (२२) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र पी० पी० और शुक्लदेवविहारी मिश्र पी० पी० ।  
 (२३, २४) जर्मनी का विकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्मा ।  
 (२५) कृषिकामुद्रा—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह पल० प० जा० ।  
 (२६) कृतश्याम—लेखक गुलाबराय पी० पी० ।  
 (२७, २८) मुसलमानों का राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मदन द्विवेदी पी० पी० ।  
 (२९) अहिंसायाही—लेखक गोविंदराम केशवराय जोशी ।  
 (३०) रामचंद्रिका—संकलनकर्ता खाला भगवानदीन ।  
 (३१) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ।  
 (३२, ३३) हिंदी निबंधमाला, दो भाग—संप्रहर्कता श्यामसुन्दरदास पी० पी० ।  
 (३४) सुरकुत्रा—संपादक गणेशविहारी मिश्र, श्यामविहारी मिश्र, शुक्लदेवविहारी मिश्र ।  
 (३५) कर्त्तव्य—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (३६) संक्षिप्त रामस्वयंवर—संपादक ब्रजरत्नदास ।  
 (३७) शिशुपालन—लेखक मुकुन्दरथ शर्मा ।

माला की प्रत्येक पुस्तक या उसकी किसी भाग का मूल्य ₹१। है, परन्तु श्यामविहारी मिश्र की सब पुस्तकें बारह बारह आने में ही जाती हैं ।

एक कांड मेजरकर उत्तमोत्तम पुस्तकों का बड़ा और नया सूचीपत्र संग्रहालय ।

मिलने का पता—प्रकाशन मंत्रालय, नागरीयचाराणी समा,

दिल्ली ।



## नई पुस्तकें

### मुहम्मद नैयसी की ख्यात ( पहला भाग )

राजपूताने, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवे और सुन्दरलखंड के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करनेवालों के लिये यह सुप्रसिद्ध ख्यात बहुत महत्व की है। इसमें मुहिलौत, चौहान, सोलंकी, प्रविहार और परमार बंस का बहुत ही विस्तृत तथा प्रामाणिक इतिहास और उनकी-वंशावलिओं की गई हैं। साथ में अनेक उपयोगी टिप्पणियाँ आदि जो भी गई हैं। इतिहासिक अनुसंधान करनेवालों के लिये यह काम की चीज है। मूल्य ३॥)

### अकबरी दरवार (पहला भाग)

बर्ह, फारसी आदि के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय शम्सुल्ल वल्लमा मौलाना मुहम्मद इब्न मुहम्मद अकबर दरवार अकबरी नामक ग्रंथ का अनुवाद। इसमें बादशाह अकबर की पूर्ण-जीवनी की ... .. वसने कैसे कैसे युद्ध किए, अपने राज्य की किस प्रकार व्यवस्था की, उसके समय में देश की राजनीतिक, सामाजिक और साम्प्रदायिक अवस्था कैसी थी, आदि आदि। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर, मूल्य २॥)

### अशोक की धर्म-लिपियाँ (पहला भाग)

इस पुस्तक में सम्राट् अशोक के प्रधान शिलालेखों की प्रतिनिधि, संस्कृत तथा हिंदी अनुवाद और स्थान स्थान पर अनेक बहुमूल्य टिप्पणियाँ दी गई हैं। अशोक की धर्म-लिपियों का ऐसा अच्छा दूसरा संस्करण अभी की नहीं निकला। प्रत्येक इतिहास-प्रेमी और विद्यालुभागी को इसकी एक प्रति अवश्य रखनी चाहिए। मूल्य ३)

### वाँकीदास ग्रंथावली (पहला भाग)

डिगल भाषा के महाकवि कविराजा वाँकीदास छठ सूर छतीसी, सीढ़ छतीसी, बीर-विनोद, धवल पचीसी, शारार बावनी, नीति-संजरी और सुपह छतीसी ये सात ग्रंथ अभी तक मिले हैं, जो इस पहले खंड में एक साथ ही छाप दिए गए हैं। आरंभ में वाँकीदास जी की जीवनी दे दी गई है और प्रत्येक पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा इनके उपयोगी विवरण आदि पाठ-टिप्पणियों में देकर पुस्तक सर्वसाधारण के लिये बहुत ही सुगम कर दी गई है। १०० पृष्ठों से ऊपर की जिल्द वैधी पुस्तक का मूल्य केवल ॥)

### वीसलदेव रासो

यह ग्रंथ सं० १२७२ का लिखा हुआ है और इसकी भाषा प्राचीनतम हिन्दी है। इसमें वीसलदेव (विपदराज चतुर्थ) के जीवन की मुख्य घटनाओं और युद्धों आदि का बहुत उत्कृष्ट वर्णन है। १७ वीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रति से इसका पाठ शुद्ध किया गया है और कठिन शब्दों के अर्थ तथा टिप्पणियाँ दी गई हैं। प्राचीन भाषा काव्य-प्रेमियों के लिये अपूर्व रत्न है। १५५ पृष्ठों की जिल्ददार पुस्तक का मूल्य ॥)

### जायसी ग्रंथावली

सभा ने जायसी कृत पद्मावत और अखरायट का बहुत सुन्दर पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा दूसरे आवश्यक विवरण दे दिए हैं; सम्मत्ते बौध्द हो गया है। पुस्तक का पाठ बहुत परिश्रम से शुद्ध किया गया है। यः ढाई सौ पृष्ठों की इसकी मूल्य ७०० पृष्ठों की जिल्द

### प्रकाशन मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस सिटी।

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुजर, श्रीरुद्रनीनारायण मेस, बनारस सिटी।

# हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

## हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

— १९३३ —

संपादक

श्यामसुन्दरदास वी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल

रामचंद्र वर्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

१९२७

मूल्य १)

डाकभय्य अतिरिक्त

# संकेताक्षरों का विवरण

अं० = आंगरेजी भाषा  
 अ० = अरबी भाषा  
 अलु० = अलुकरण शब्द  
 अने० = अनेकार्थनाममाला  
 अप० = अपभ्रंश  
 अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय  
 अर्द्धमा० = अर्द्ध मागधी  
 अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग  
 अश्व० = अश्वय  
 आनंदधन० = कवि आनंदधन  
 हृष० = हृषीकेश भाषा  
 ह० = उदाहरण  
 उत्तररहित = उत्तररामपरित  
 उप० = उपसर्ग  
 उभ० = उभयलिङ्ग  
 उ० उप० = ऊटवल्ली उपनिषद्  
 कपीर = कपीरदास  
 केदाव = केदावदास  
 कौंड० = कौण्ड देव की भाषा  
 क्रि० = क्रिया  
 क्रि० ह० = क्रिया अहमक  
 क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग  
 क्रि० वि० = क्रियाविशेषण  
 क्रि० स० = क्रिया सङ्गमक  
 क० = कर्त्तव्य अर्थात् इसका प्रयोग  
 बहुत कम देखने में आया है।  
 खानखाना = अखुरहीम खानखाना  
 गि० दा० वा गि० दास = गिरि-  
 धरदास (दा० गोपालचंद्र)  
 गिरिधर = गिरिधरराय (क०-  
 लिखावाले)  
 गुज० = गुजराती भाषा

गुमान = गुमान मिश्र  
 गोपाल = गिरिधरदास ( दा०  
 गोपालच० )  
 धरण = धरणचंद्रिका  
 चिंतामणि = कवि चिंतामणि  
 त्रिपाठी  
 जीत = जीतस्वामी  
 जागसी = मलिक मुहम्मद जागसी  
 जाधा० = जाधा हीर की भाषा  
 ज्यो० = ज्योतिष  
 डि० = डिगल भाषा  
 तु० = तुरही भाषा  
 गुलसी = गुलहीदास  
 तोप = कवि तोप  
 दादू = दादूदास  
 दीनदयालु = दीनदयाल गिरि  
 कूलह = कवि कूलह  
 दे० = देहो  
 देप = देप फीर ( गंगपुरीवाले )  
 देवा० = देवान  
 द्वियेदी = महावीरप्रसाद द्वियेदी  
 नागरी = नागरीदास  
 नामा = नामादास  
 निघण्टु = निघण्टुदास  
 पं० = पंजाबी भाषा  
 पशाकर = पशाकर अह  
 पर्या० = पर्याय  
 पा० = पाली भाषा  
 पु० = पुस्तिका  
 पु० हि० = पुरानी हिन्दी  
 पुर्वा० = पुर्वावाली भाषा  
 हि० = पूर्वी हिन्दी

प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र  
 प्रत्य० = प्रत्यय  
 प्रा० = प्राकृत भाषा  
 प्रिया = प्रियादास  
 प्रे० = प्रेरणापंथ  
 प्रे० स्या० = प्रेमसागर  
 फ० = फरसीची भाषा  
 फा० = फारसी भाषा  
 पैंग० = पैंगला भाषा  
 परमी० = परमी भाषा  
 रघु० = महुवचन  
 रिहारी = कवि बिहारीलाल  
 पु० खं० = सुदेवराज की बोली  
 पैगो = कवि पैगो प्रवीन  
 भाव० = भाववाचक  
 भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी  
 मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी  
 मत्वा० = मत्वायलम भाषा  
 मल्लक = मल्लकदास  
 मि० = मित्राक्षो  
 मुहा० = मुहाविर  
 मु० = मुन्नामी भाषा  
 यौ० = यौगिक तथा दो वा अ-  
 चित शब्दों के पद  
 रघु० पा० = रघुनाथदास  
 रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन  
 रघुनाथ = महात्मा रघुनाथसिंह  
 रीवाँनेर  
 रसजान = संपद इयाहीम  
 रसनिधि = राजा श्यांसीसिंह  
 रहीम = अहमदरहीम खानखाना  
 रुक्मणसिंह = राजा रुक्मणसिंह

खल्ल = खल्लकाल  
 खना० = खनाची भाषा अर्थात्  
 हिंदुस्तानी अर्थात् जो  
 बोली  
 खाल = खाल कवि (उत्तरप्रदा-  
 वाले)  
 छे० = छैटिन भाषा  
 वि० = विशेषण  
 विधाम = विधामसागर  
 प्योत्पाथ = प्योत्पाथ कीमती  
 ध्या० = ध्याकरण  
 ध्यास = धंधिकादास ध्यास  
 धा० दि० = शंकर द्विविधय  
 श्रु० सत० = शंकर सतसई  
 सं० = संस्कृत  
 संयो० = संयोजक अथवा  
 संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया  
 ता० = सङ्गमक  
 सुवल = सुवलसिंह चौहान  
 समा वि० = समाधिकार  
 सर्व० = सर्वनाम  
 सुधाकर = सुधाकर द्वियेदी  
 सुदन = सुदनरथि(भरतपुरवाले)  
 सुर = सुरदास  
 खि० = खियों द्वारा प्रयुक्त  
 खी० = खीरिण  
 खे० = खेती भाषा  
 हि० = हिंदी भाषा  
 हनुमान = हनुमणदास  
 हरिदास = स्वामी हरिदास  
 हरिदचंद्र = भारतेन्दु हरिदचंद्र

होती है और यह पेड़ों में झटका हुआ बौसला बनाता है। यह प्रायः खेतों में रहता और खेतों को हानि पहुँचाने-वाले कीड़े मकोड़े काँदि खाता है। यह सफेद रंग के दो या तीन अंडे एक साथ देता है, पर इसके अंडा देने का कोई निश्चित समय नहीं है।

**शकरपारा-घंसा पुं०** [ फा० ] (१) एक प्रकार का फल जो नीचे से कुछ बढ़ा होता है। इसका पृष्ठ नीचे के छेद के समान होता है, पर पत्ते नीचे से कुछ बढ़े होते हैं। फूल लाल रंग के होते हैं। फल सुगंधित और खटा मीठा होता है। (२) एक प्रकार का प्रसिद्ध पकवान जो घरकी की तरह चौकर का हुआ होता है। यह मीठा भी बनता है और नमकीन भी। इसके बनाने के लिये पहले मिट्टी में मोपन बाकर उसे दूध या पानी से गूँथते हैं और तब उसे मोठी रोटी की तरह बेकर घुरी भाँदि से छोटे छोटे चौकोर टुकड़ों में काटकर घी में तल लेते हैं। यदि नमकीन बनाना होता है तो मैदा गूँथते समय ही उसमें नमक, धनयापन आदि डाल देते हैं; और यदि मीठा बनाना होता है, तो कटी हुई टुकड़ियों को तलने के बाद चीनी के सारे में पाग लेते हैं।

(३) रुहंदार रूपदे पर की एक प्रकार की सिलाई जो शकरपारे के आकार की चौकोर होती है।

**शकरपाला-घंसा पुं०** दे० "शकरपारा"।

**शकरपीटन-घंसा पुं०** [ ? ] एक प्रकार की कँठीली झाड़ी जो हिमालय पर्वत की पथरीली और सूखी जमीन में क्रमाशु और उसके पश्चिम ओर पाई जाती है। यह बृहद् का ही भेद है; पर साधारण सेंहुद् या बृहद् के वृक्ष से कुछ भिन्न होता है।

**शकरपादा-घंसा पुं०** [ फा० शकर + पादा ] खजानी या जर्द-भाऊ नामक फल जो पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में होता है।

**शकरी-घंसा पुं०** [ फा० शकर ] फालसा नामक फल।

**शकल-घंसा पुं०** [ सं० ] (१) लवच। चमड़ा। (२) छाल। टिकका। (३) दालचीनी। (४) भाँवला। (५) कमल की माल। कमल-दंठ। (६) खाँदि। नाकर। (७) खंड। डुकदा। (८) मनु के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम।

**घंसा की०** [ प्र० शक ] (१) सुन्न की बनावट। आकृति। चेहरा। रूप। जैसे,—शकल न सूरत, गये की मूरत।

**मुहा०**—शकल विगायना = मारते मारते चेहरे का रूप विगायना। राव मारना।

**पौ०**—सूरत शकल = चेहरे की बनावट। आकृति।

(२) सुन्न का भाव। चेष्टा। (३) कित्ती चीज की बनावट। गन्न। हाँला।

**मुहा०**—शकल बनाता = कोई चीज बनाकर उसका स्वरूप तैयार करना।

(४) किसी चीज का बनाया हुआ आकार। आकृति। स्वरूप। (५) उपाय। तरकीब। उपा। जैसे,—भय इस सुकदमे से पीछा छुड़ाने की कोई शकल निहालनी चाँदि।  
**क्रि० प्र०**—शकलना।—निहालना।

(६) मूर्ति।

**शकली-घंसा की०** [ सं० ] सुकवी मछली।

**शकय-घंसा पुं०** [ सं० ] राजहंस।

**शकानक-घंसा पुं०** [ सं० ] शक जाति का अंत करनेवाला, विक्रमादित्य।

**शकाकुल-घंसा पुं०** [ प्र० ] शतावर की जाति की एक प्रकार की बनस्पति जो प्रायः मिन देहा में अधिकता से होती है और भारत के भी कुछ स्थानों विशेषतः काश्मीर और अफगानिस्तान में पाई जाती है। यह प्रायः नम जमीन में कुशों के नीचे उगती है। यह बासो मास रहती है। इसके डंठल वेद दो हाथ ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते प्रायः तीन अंगुल चौड़े और एक बाँटिन लंबे होते हैं। इसके पौधे की प्रत्येक गाँठ पर पत्ते होते हैं। इसमें नीले या लाल रंग के छोटे छोटे फूल गुच्छों में और काले रंग के फल लगते हैं। इसकी जड़ कंद के रूप में होती है और बाजार में प्रायः शकाकुल मिर्ची के नाम से मिलती है। यह जड़ कामो-होत्र तथा छायाओं के लिये घटकारक मानी जाती है और विविध प्रकार की पौष्टिक औषधों में डाली जाती है। कंधार में इसके बीज ओपधि के काम में आते हैं। इसकी रस का क्षार (नमक) अर्थात् रोग में हानदायक समझा जाता है। यह जड़ प्रायः काबुल से आती है और यही सय से अच्छी भी होती है। पुजकी। दुबळी। गर्सदस्ती।  
**शकाब्द-घंसा पुं०** [ सं० ] राजा शालिवाहन का चलाया हुआ संवत्। शक संवत्। (इसकी संवत् में से ७८, ७९ घटाने से शकाब्द निकल आता है।)

**शकार-घंसा पुं०** [ सं० ] (१) शक वंशीय व्यक्ति। शक वंश का। (२) संस्कृत भाषाओं की परिभाषा में राजा का यह साला जो नीच जाति का हो।

**विशेष**—नाटक में इस पात्र को बेवकूफ, चंचल, घमंडी, नीच तथा कठोर हृदयवाला दिसाया जाता है। जैसे,—सृष्टकृत्रि में संघायक।

**शकारि-घंसा पुं०** [ सं० ] शक जाति का शत्रु, विक्रमादित्य।

**शकौल-वि०** [ फा० (शक से) ] अच्छी शकवाला। खबसूरत। सुन्दर।

**शकुंत-घंसा पुं०** [ सं० ] (१) पक्षी। विद्याया। (२) एक प्रकार का कीड़ा। (३) विश्वामित्र के लड़के का नाम।

**शकुंतक-घंसा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार की छोटी विद्याया।

**शकुंतला-घंसा की०** [ सं० ] (१) राजा दुष्यंत की की जो

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध राजा भरत की माता और मेनका भयसरा की कन्या थी।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि शकुंतला का जन्म विद्यामित्र के वीर्य से मेनका भयसरा के गर्भ से हुआ था जो इसे वन में छोड़कर चली गई थी। वन में शकुंतलें (पक्षियाँ) आदि ने हिंसक पशुओं से इसकी रक्षा की थी; इसी से इसका नाम शकुंतला पड़ा। वन में से इसे कण्व ऋषि उठा लाए थे और अपने आश्रम में रखकर कन्या के समान पालते थे। एक बार राजा दुष्यंत अपने साथ कुछ सैनिकों को लेकर शिकार लेखने निकले और घूमते फिरते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि उस समय वहाँ उपस्थित नहीं थे; इससे युवती शकुंतला ने ही राजा दुष्यंत का आतिथ्य-सत्कार किया था। उसी भवसर पर दोनों में पहले प्रेम और फिर गंधर्व-विवाह हो गया। कुछ दिनों के बाद राजा दुष्यंत यहाँ से अपने राज्य को चले गए। कण्व मुनि जब लौटकर अपने आश्रम में आए, तब वे यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि शकुंतला का विवाह दुष्यंत से हो गया। शकुंतला उस समय गर्भवती हो चुकी थी; अतः समय पाकर उसके गर्भ से बहुत ही बलवान् और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम भरत रखा गया। कहते हैं कि इस देश का भारतवर्ष नाम इसी के कारण पड़ा। कुछ दिनों बाद शकुंतला अपने पुत्र को लेकर राजा दुष्यंत के दरबार में पहुँची। परंतु शकुंतला को वीच में दुर्वासा ऋषि का द्राघ मिल चुका था; इससे राजा ने इसे बिल्कुल न पहचाना और स्पष्ट कह दिया कि न तो मैं तुम्हें जानता हूँ और न मुझे अपने यहाँ आश्रय दे सकता हूँ। परंतु इसी भवसर एक आकाश पाणी हुई जिससे राजा को विदित हुआ कि यह मेरी ही पत्नी है और यह पुत्र भी मेरा ही है। उसी समय उन्हें कण्व मुनि के आश्रम की भी सप यातें स्मरण हो आईं और उन्होंने शकुंतला को अपनी प्रधान रागी बनाकर अपने यहाँ रख लिया।

(२) महाकवि कालिदास का लिखा हुआ एक प्रसिद्ध नाटक जिसमें राजा दुष्यंत और शकुंतला के प्रेम, विवाह, प्रयास-रूपान और ग्रहण आदि का वर्णन है।

शकुंतिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छोटी चिट्ठी। (२) रिवाज। प्रजा।

शकुंद—संज्ञा पुं० [ सं० ] सफ़ेद कनेर।

शकुन्ती—संज्ञा स्त्री० दे० "सकुन्ती"।

शकुन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी काम के समय दिखाई देने-वाले लक्षण जो उस काम के संबंध में शुभ या अशुभ माने

जाते हैं। वे चिह्न आदि जो किसी काम के संबंध में शुभ या अशुभ माने जाते हैं।

विशेष—प्रायः लोग कुछ घटनाओं को देखकर उनका शुभ या अशुभ फल होना मानते हैं; और उन घटनाओं को शकुन कहते हैं। जैसे,—कहीं जाते समय रास्ते में बिल्ली का रास्ता काट जाना अशुभ शकुन समझा जाता है और जलपूर्ण कलश या मृतक आदि का मिलना शुभ शकुन माना जाता है। इसी प्रकार अंगों का फटकर, विरिष्ट पशुओं या पक्षियों आदि का बोलना या कुछ विशिष्ट बातों का दिलावाई पढ़ना भी शकुन समझा जाता है। हमारे यहाँ इस विषय का एक अलग शास्त्र ही बन गया है; और उसके अनुसार दही, घी, दूध, चंदन, शीता, शंख, मछली, देवमूर्ति, फल, फूल, पान, सोना, चाँदी, रत्न, वेश्या आदि का दिखाई पड़ना अशुभ माना जाता है। प्रायः लोग अशुभ शकुन देखकर काम रोक या टाक देते हैं। साधारणतः बोल चाल में लोग शकुन से प्रायः शुभ शकुन का ही अभिप्राय लेते हैं; अशुभ शकुन को भयशकुन कहते हैं।

मुहा०—शकुन विचारना या देखना = कोई कार्य करते से पहले किसी उपाय से लक्ष्य आदि देखकर यह निश्चय करना कि यह काम होगा या नहीं; कथना काम अभी करना चाहिए या नहीं।

(२) शुभ मुहूर्त या उसमें होनेवाला कार्य। (३) पक्षी। चिट्ठी। (४) गिद्ध नामक शिकारी पक्षी। (५) मंगल अवसरों पर गाए जानेवाले गीत।

शकुनक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो शकुनों का शुभाशुभ फल जानता हो।

शकुनम्ता—संज्ञा पुं० [ सं० शकुन + म्ता ] गिरगिट। गृहगोषा।

शकुनद्वार—संज्ञा पुं० [ सं० ] शकुन शास्त्र के अनुसार एक साथ ही शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के शकुन होना जो यात्रा आदि के लिये बहुत शुभ माना जाता है।

शकुनशास्त्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें शकुनों के शुभ और अशुभ फलों का विवेचन हो। शकुन मतकानेवाला शास्त्र।

शकुनाहृत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का चावल जिसे दाऊदखानी कहते हैं। (२) एक प्रकार की मछली। (३) एक प्रकार का बाल रोग। शकुनी ग्रह। दे० "शकुनी" (४)। शकुनाहृता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चिट्ठियों द्वारा लाई हुई वस्तु। (२) एक प्रकार का चावल।

शकुनि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पक्षी। चिट्ठी। (२) गिद्ध पक्षी। (३) एक भाग का नाम। (४) एक दैत्य जो दिव्याशुभ

पुत्र और दूध का विना था। (५) पुराणानुसार दुग्धदेह के आठ पुत्रों में से एक जो निर्मापि के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (६) पुराणानुसार विक्रमि के पाँच पुत्रों में से एक। (७) गोधारी का भाई और कौरवों का मामा जो सुवलरान का पुत्र था और इसी लिये सोयल कहलाता था। यह बहुत ही दुष्ट और पापाचारी था। दुर्योधन ने इसे अपनी मंत्री बना रखा था और इसके परामर्श से उसने पांडवों के साथ अनेक कपटपूर्ण व्यवहार किए थे और उन्हें अनेक कष्ट पहुँचाए थे। कौरव कुल के नारा का मुख्य कारण यही शकुनि था। यह अपने पुत्र सहित सहदेव के हाथ से मारा गया था। (८) बड़ा भारी दुष्ट और पापी आदमी। (९) कलित ज्योतिष के अनुसार जब आदि स्याद्द करणों में से आठवाँ करण कहते हैं कि जो बालक इस करण में जन्म लेता है, वह बड़ा भारी धूर्त, टांग, मूर्ख, कुतम, क्रोधी और लंपट होता है। शकुनिका-छंदा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार स्कंद की अनुचरी एक मायका का नाम।

शकुनिमह-छंदा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार स्कंद के एक अनुचर का नाम।

शकुनिवाद-छंदा पुं० [ सं० ] उषा काल के समय चिद्वियों का चहचहाना।

शकुनी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) इयामा पक्षी। (२) गौरैया पक्षी की मादा। (३) पुराणानुसार एक पुत्र का नाम जो बहुत मूर्ख और मयंक कहल गार्ह है। (४) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बालरोग। कहते हैं कि जिस बालक पर इसका आक्रमण होता है, उसके अंग तिलिल पड़ जाते हैं, शरीर में जलन होती है, फोड़े फुंसिषी आदि निकल आती हैं, शरीर से पक्षियों की धी गंध आने लगती है और वह रद्द रहकर सौंफ उड़ता है।

छंदा पुं० [ सं० ] राऊन + ई (प्रत्य०) वह जो शकुनों का शत्रु और अग्रम फल जानता हो। शकुन्यु।

शकुनी मातृका-छंदा स्त्री० [ सं० ] बालकों की एक प्रकार की र्थापि जो उनके जन्म से छठे दिन, छठे मास या छठे वर्ष होती है और जिसमें उन्हें उरर तथा कंय होता है, यदि उद्वर्ण हो जाती है और हर वन बहुत कष्ट बना रहता है।

शकुनीभर-छंदा पुं० [ सं० ] पक्षियों का स्वामी, भयान्तर गण्ड।

शकुल, शकुलगंड-छंदा पुं० [ सं० ] सौरी मछली।

शकुला-छंदा स्त्री० [ सं० ] कुटकी। कटुकी।

शकुलात्त-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सफ़ेद दूध। श्वेत दूधवाँ।

(२) गंध दूध। गंधदूधवाँ।

शकुलात्ता-छंदा स्त्री० दे० "शकुलात्ता"।

शकुलात्नी-छंदा स्त्री० [ सं० ] गंध दूध।

शकुलादनी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) कुटकी। कटुकी। (२)

जलपिप्पली। जलपीपल। (३) जल चौड़ाई। कंचट नाक। (४) कायफल। कटफल। (५) गन्धपीपल। गन्धपिप्पली। (६) गंध दूध। गंधदूधवाँ। (७) जटामासी। पाठउड़। (८) कंबुमा। गंधपद।

शकुलाम्बक-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली। गडुई मछली।

शकुलाहनी-छंदा स्त्री० [ सं० ] जलपीपल।

शकुली-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) सडुधी मछली। (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शकृत-छंदा पुं० [ सं० ] (१) विद्या। गुह। (२) गोबर।

शकृत्करि-छंदा पुं० [ सं० ] गाय का बच्चा। बछड़ा।

शकृद्देश-छंदा पुं० [ सं० ] मलद्वार। गुदा।

शकृद्द्वार-छंदा पुं० [ सं० ] मलद्वार। गुदा।

शकृत्-छंदा स्त्री० [ सं० ] शक्रेता मि० का० शकर = चीनी। (१) चीनी। (२) कच्ची चीनी। खॉद।

छंदा पुं० पैल। दूध।

शकृत्-छंदा पुं० [ सं० ] पैल। दूध।

शकरी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) वर्ण दूध के अंतर्गत चौदह भक्षार्थ-वाले छंदों की संज्ञा मिनके नाम इस प्रकार हैं—वसंतिलका, अस्तबाधा, अपराजिता, प्रहणकलिका, वासंती, मंगरी, कुटिल, इंदुचंद्रना, चक्र, नांदीमुख, छाडी और अनंद। इनमें से वसंतिलका सब से अधिक प्रसिद्ध है। (२) मेखला। (३) एक प्राचीन नदी का नाम।

शकरी-वि० [ अ० शक + ई (प्रत्य०) ] जिसे हर रात में संदेह होता हो। सदा शक करनेवाला।

शक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसमें शक्ति हो। शक्तिसंपन्न। समर्थ। ताकतवर। (२) वह जो प्रिय बातें कहता हो। मिष्टभाषी।

शक-छंदा पुं० [ सं० ] भुने हुए अनाज का भाटा। सक्त।

शक्ति-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) वह शारीरिक गुण या धर्म जिसके द्वारा अंगों का संचालन तथा दूसरे काम होते हैं। बल। पराक्रम। ताकत। जोर। जैसे,—(क) उसमें दो मन भोज उठाने की शक्ति है। (ख) अब तो उनमें उठने बैठने की भी शक्ति नहीं रह गई। (ग) दुर्गलों पर शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

मि० प्र०—देखना।—रखना।—लपना।—लपाना।

(२) किसी प्रकार का बल या ताकत जिससे कोई काम हो। जैसे,—मानसिक शक्ति, रमण शक्ति, सैनिक शक्ति, दग्ध शक्ति। (३) किसी पदार्थ के संयोग्य अंगों या द्रव्यों आदि का प्रकट होनेवाला बल। दूसरे पदार्थों पर प्रभाव डालनेवाला बल। जैसे,—(क) इस शीतल में पैसी शक्ति है कि मसूख को भी कुछ देर के लिये रोक देती है। (ख) इस ईंजन में बीस घोड़ों की शक्ति है। (ग) पानी के बहाव

में बढ़ी बढ़ी चंटानों तक को तोड़ने की शक्ति होती है ।  
(४) वन । अधिकार । जैसे,—उसकी रक्षा करना मेरी शक्ति के बाहर है । (५) राज्य के वे स्थापन मिलते प्रायुओं पर विजय प्राप्त की जाती है ।

विशेष—हमारे यहाँ राजाओं की तीन प्रकार की शक्ति कही गई है—प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उरसाह शक्ति । कोष और दंड आदि के संबंध की शक्ति प्रभुशक्ति, संधि-विग्रह आदि के संबंध की शक्ति मंत्र शक्ति और पराक्रम प्रकट करने तथा विजय प्राप्त करने की शक्ति उरसाह शक्ति कहलाती है ।

(६) बढ़ा और पराक्रमी राज्य जिसमें यथेष्ट धन और सेना आदि हो । जैसे,—इस समय युरोप में हंगेरि, फ्रान्स, जर्मनी और रूस आदि कई बढ़ी बढ़ी शक्तियाँ हैं । (७) म्याद के अनुसार वह संबंध जो किसी पदार्थ और उसका बोध करानेवाले शब्द में होता है । (८) ईश्वर की वह कल्पित माया जो उसकी आज्ञा से सब काम करनेवाली और सृष्टि की रचना करनेवाली मानी जाती है । प्रकृति । माया । (९) किसी देवता का पराक्रम या बल जो कुछ विशिष्ट कार्यों का साधक माना जाता है । जैसे,—रीढ़ी शक्ति, वैष्णवी शक्ति ।

विशेष—हमारे यहाँ पुराणों में मित मित देवताओं की अनेक शक्तियों की भरना की गई है और ये शक्तियाँ बहुधा देवी के रूप में और सूर्यसिंघती मानी गई हैं । जैसे,—विष्णु की कीर्ति, कान्ति, वृष्टि, पुष्टि, शक्ति, प्रीति आदि शक्तियाँ; रुद्र की गुणोदरी, गोमुखी, दीर्घविद्धा, ज्वालामुखी, लंबोदरी, खेचरी, मंमरी आदि शक्तियाँ; देवी की इंद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, कौमारी, नारसिंही, चाराही, मादेचरी और सर्वसंगला आदि शक्तियाँ ।

(१०) तंत्र के अनुसार किसी पीठ की अधिष्ठात्री देवी जिसकी उपासना करनेवाले शाक्त बने जाते हैं । ऐसी शक्ति समस्त सृष्टि की रचना करनेवाली और सब तरह की सामर्थ्य रखनेवाली मानी जाती है । (११) दुर्गा । भगवती । (१२) गौरी । (१३) लक्ष्मी । (१४) तंत्रिकों की परिभाषा में वह गद्दी, कपालिकी, वेदवा, धोपिन, गडन, ब्राह्मणी, शूद्रा, ग्वालिन या मालिन जो युवती, रूपवती और सौभाग्यवती हो । ऐसी लियों का विधिपूर्वक पूजन, सिद्धिप्रद और मोक्षदायक माना जाता है । (१५) स्त्री की मूर्च्छिय । भग । ( तंत्रिक ) ( १६ ) एक प्रकार का शस्त्र । सर्वा । ( १७ ) सखवार ।

संज्ञा पुं० एक प्राचीन ऋषि का नाम जो पराशर के पिता थे ।  
शक्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधक ।

शक्तिप्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) कार्तिकेय ।

(३) शब्द का अर्थ यतलानेवाली शक्ति या वृत्ति का ज्ञान ।  
(४) वह जो भाला या बरछी चलाता हो । भालाबंदार ।  
वि० शक्ति को ग्रहण करनेवाला ।

शक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शक्ति का भाव या धर्म । शक्तिव ।  
शक्तिघर-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंद । कार्तिकेय । उ०—शक्ति-  
शक्तिघर पासहि पासी ।—गणसंहिता ।

शक्तिध्वज-संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्तिकेय । स्कंद ।

शक्तिपर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] छतिवन । सतिवन । ससपर्य वृक्ष ।

शक्तिपाणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्तिकेय । स्कंद ।

शक्तिपूजक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो शक्ति की उपासना करता हो । शाक्त । (२) शक्तिव । वाममार्गी ।

शक्तिपूजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शक्ति का शाक्त द्वारा होनेवाला पूजन ।

शक्तिपूर्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] पराशर का एक नाम ।

शक्तिबोधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्द शक्ति का ज्ञान । शब्द के अर्थ का बोध ।

शक्तिभूज-संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्तिकेय । स्कंद ।

शक्तिमत्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शक्तिमान् होने का भाव या धर्म ।

शक्तिमत्त-संज्ञा पुं० दे० "शक्तिमत्ता" ।

शक्तिमान्-वि० [ सं० शक्तिम् ] [ जी० शक्तिम् ] बलवान ।  
बलिष्ठ । ताकतवर ।

शक्तिधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक धन का नाम जो तीर्थ कहा गया है ।

शक्तिवादी-संज्ञा पुं० [ सं० शक्तिवादिन् ] वह जो शक्ति की उपासना करता हो । शाक्त ।

शक्तिवीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शक्ति की उपासना करता हो । वाममार्गी ।

शक्तिवैबल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शक्ति का नाग । कमजोरी ।  
(२) असमर्थता ।

शक्तिशीघ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाक्तों का एक संस्कार जिसमें वे किसी स्त्री को शक्ति की प्रतिनिधि बनाने से पहले कुछ विशिष्ट क्रियाएँ करके उसे शुद्ध करते हैं ।

शक्तिष्ठ-वि० [ सं० ] जिसमें शक्ति हो । शक्तिशाली । ताकतवर ।  
बलवान् ।

शक्तिस्वप्न-वि० [ सं० ] शक्ति से युक्त । बलवान् । ताकतवर ।  
मजबूत ।

शक्तिहीन-वि० [ सं० ] (१) जिसमें शक्ति का समावेश हो ।  
निर्वल । बलहीन । असमर्थ । नाताकृत । (२) हीनवा ।  
नामद । नपुंसक ।

शक्ती-संज्ञा पुं० [ सं० शक्ति ] एक प्रकार के मात्रिक छंद का नाम ।  
इसके प्रत्येक चरण में १८ मात्राएँ होती हैं और इसकी रचना ३ + ३ + ४ + ३ + ५ होती है । अंत में सगण, रागण

या नगम में से कोई एक और आदि में एक लघु होना चाहिए। इसकी १, १, १ और ११ वीं मात्रा लघु रहती है। यह संज्ञा भुजंगी और चंद्रिका वृष की चाल पर होता है। अंतर यह है कि ये गण-मन्त्र होते हैं और यह स्वतंत्र है। यह संज्ञा फारसी के 'करीमा बबलुयाय बर हाल मा। कि हस्तम् अक्षरी कर्मदे हवा' की संज्ञा से मिलता है। उ०—निया शंसु के पाँच पंक्त गहीं। विनापक सहायक सदा दिन चर्हीं।—काव्यप्रमाका।

संज्ञा पुं० [ सं० शक्ति ] शक्तिशाली। शक्तिशाली। बलवान्। शक्तु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुने हुए जी, चने आदि का आटा। सक्तु। शक्तुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाव प्रकाश के अनुसार एक प्रकार का बहुत तीव्र और उग्र विष जो मत्सोद् के समान होता है। पीसने से यह सज्ज ही में पिस्तक सक्तु के समान हो जाता है।

शक्तुफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शमी वृक्ष। सफ़ेद कीक। छिद्र का पेड़।

शक्तुफलिका, शक्तुफली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शमी का वृक्ष। शक्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वशिष्ठ मुनि के सप्त से बड़े छद्मके का नाम। महाभारत में लिखा है कि एक बार रास्ते में राजा बलमापपाद से इनकी कथा सुनी हो गई, जिस पर राजा ने इन्हें एक कोड़ा जमा दिया। इस पर इन्होंने राजा को धारा दिया कि तुम राक्षस हो जाओ। तदनुसार राजा राक्षस हो गया और पहले उसने इन्हीं को मक्षण कर लिया।

शक्य-वि० [ सं० ] (१) किया जाने योग्य। जो किया जा सके। संभव। क्रियात्मक। (२) जिसमें शक्ति हो।

संज्ञा पुं० शक्य शक्ति के द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ। जैसे,—'अग्नि' पद में अंगार रूप की शक्ति है। अतः अग्नि पद का अंगार धारण अथवा वाच्य है। (न्याकरण)

शक्यतर्ज-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शक्य होने का भाव या धर्म। कियात्मकता।

शक्यप्राप्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] न्याय ध्यान के अनुसार प्रमाता के ये प्रमाण जिनसे प्रमेय सिद्ध होता है।

शक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दैत्यों का नाच करनेवाले, इन्द्र। उ०—भरत शोक बरन्यो वहि आई। मगहु राफ द्विज हवा पाई।—लवकुशचरित। (२) कुटज वृक्ष। कोरैया। (३) अर्जुन वृक्ष। कोह वृक्ष। (४) इन्द्रजी। कुटज वीज। (५) रण के चौथे भेद अर्थात् (शः५) की संज्ञा, जिसमें छः मात्राएँ होती हैं। जैसे,—लोकवती। (६) ज्येष्ठा नक्षत्र, जिसके अधिष्ठाता देवता इन्द्र हैं।

वि० समर्थ। योग्य।

शककास्मृ-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्र-धनुष।

शककुमारिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शकमातृका"।

शककेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्रध्वज।

शकक्रीडावल्ल-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्र के क्रीडा करने का पर्वत अर्थात् सुमेरु पर्वत।

शकगोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्रगोप नामक क्रीडा। गौर बहूटी।

शकचप-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्रधनुष।

शकज, शकजात-संज्ञा पुं० [ सं० ] कौशा। काष्ठ पक्षी।

शकजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इन्द्रधारणी छता। इन्द्रायण। हनान।

शकजातु-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामायण के अनुसार एक यानर का नाम।

शकजाल-संज्ञा पुं० दे० "इन्द्रजाल"।

शकजित्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसने इन्द्र हर विजय प्राप्त की हो। (२) इन्द्र को जीतनेवाले मेघनाद का एक नाम।

शकत-संज्ञा पुं० [ सं० ] मीन का पेड़।

शकतय-संज्ञा पुं० [ सं० ] शक का भाव या धर्म।

शकदार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवदार। (२) साखू का पेड़। शाल।

शकदिवि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पूर्व दिशा जिसके स्वामी इन्द्र माने जाते हैं।

शकदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इन्द्र। (२) हरिवंश के अनुसार शकाल के एक पुत्र का नाम।

शकदैवत-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्येष्ठा नक्षत्र जिसके स्वामी इन्द्र माने जाते हैं।

शकद्रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवदार। (२) मौलसिरी। बहुल वृक्ष।

शकधनु, शकधनुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्र-धनुष।

शकध्वज-संज्ञा पुं० दे० "इन्द्रध्वज"।

शकनन्दन-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्र का पुत्र अर्थात् अर्जुन।

शकनेमी-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवदार का वृक्ष। (२) मेघा-सिरी। मेघश्रेणी। (३) कुड़ा। कोरैया। कुटज वृक्ष।

शकपथ्यीय, शकपादप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुड़ा। कुटज वृक्ष। (२) देवदार का पेड़।

शकपुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्र के रहने की पुरी, अमरावती।

शकपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्रजी। कुटज वीज।

शकपुष्पा-संज्ञा स्त्री० दे० "शकपुष्पिका"।

शकपुष्पिका, शकपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अग्निशिला नाम का वृक्ष। (२) कलिहारी। लोणडी। (३) नाग दमनी। नागदीन।

शकप्रत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक नगर जिसे पाँचों ने खाँदव-वन अकार बसाया था। इन्द्रमय्य। उ०—उठे सुनत्र हरि बदाय धानी। मे पुनि शकप्रत्य प्रत्यानी।—सुबल।

शकधीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्रजी।



शक्रभवन-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ग ।  
 शक्रभिद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र को दबानेवाला, मेघनाद ।  
 इंद्रजित् ।  
 शक्रभूषण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इंद्रवारुणी नाम की लता । इना-  
 रन । इंद्रायण ।  
 शक्रभूषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुटज वृक्ष । कुड़ा । कौरैया ।  
 शक्रमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शक्रनाथ इंद्र की माता अर्थात्  
 भार्गवी ।  
 शक्रमातृका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) इंद्रध्वज । (२) भार्गवी ।  
 शक्रमूर्धा-संज्ञा पुं० [ सं० ] शक्रमूर्धन् । वलमीक । बॉबी ।  
 शक्रयव-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रजी । कुटज बीज ।  
 शक्रलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रलोक । स्वर्ग ।  
 शक्रवल्ली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इंद्रवारुणी नाम की लता । इनारन ।  
 इंद्रायण ।  
 शक्रवापी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शक्रनाथिन् । महाभारत के अनुसार एक  
 नाग का नाम ।  
 शक्रवाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र का वाहन अर्थात् मेघ । बादल ।  
 शक्रवृक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुटज । कौरैया ।  
 शक्रशरासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रधनुष ।  
 शक्रशाली-संज्ञा पुं० [ सं० ] शक्रशालिन् । कुड़ा । कुटज वृक्ष ।  
 शक्रदाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यज्ञ-भूमि में वह स्थान जहाँ इंद्र  
 के उद्देश्य से यज्ञ हो जाती हो ।  
 शक्रशिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शक्रशिरस् । बॉबी । वलमीक ।  
 शक्रसारथी-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र का सारथी अर्थात् मातलि ।  
 शक्रमुत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र का पुत्र यालि, जिसे राम ने  
 मारा था ।  
 शक्रसुधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुँदरु । सुंदररोसा ।  
 शक्रवृष्टा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धरतीकी । हरे ।  
 शक्रव्यव-संज्ञा पुं० [ सं० ] उरुद्व । पेशक पक्षी ।  
 शक्राग्नि-संज्ञा पुं० [ सं० ] विशाखा नक्षत्र जिसके स्वामी इंद्र  
 और अग्नि माने जाते हैं ।  
 शक्राणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) इंद्र की पत्नी, राधी । इंद्राणी ।  
 (२) निर्गुंडी । शोफलिङ्गा । सेनुभार ।  
 शक्राभ्रज-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्जुन ।  
 शक्रादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] भोग । भोग ।  
 शक्रानिल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष में प्रभव आदि साठ संव-  
 त्सरों के धारह युगों में से दूसरों युग के अधिपति । इनके  
 युग में ये पंच संवत्सर होते हैं,—परिधावी, प्रमादी,  
 धानंद, राक्षस और भवल ।  
 शक्रावर्च-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन  
 तीर्थ का नाम ।

शक्राशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भोग । विजया । भोग । (२)  
 कुड़ा । कुटज । कौरैया । (३) इंद्रजी । कुटज बीज ।  
 शक्रासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र का आसन । (२) सिंहासन ।  
 शक्राल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्रजी । कुटज बीज । (२) कुटज  
 वृक्ष ।  
 शक्राहा-संज्ञा स्त्री० दे० "शक्राह" ।  
 शक्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेघ । बादल । (२) वज्र । (३)  
 हाथी । (४) पर्वत । पहाड़ ।  
 शक्रेंद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीर बहूटी या इंद्रगोप नाम का  
 कीड़ा ।  
 शक्रोत्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रध्वज नाम का उत्सव । वि० दे०  
 "इंद्रध्वज" ।  
 शक्रोत्सव-संज्ञा पुं० दे० "शक्रोत्थात" ।  
 शक्र-संज्ञा स्त्री० दे० "शक्र" ।  
 शक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पैल । (२) भाकाश ।  
 शकरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जंगली । (२) एक प्राचीन नदी  
 का नाम । (३) मेखला । (४) गौ । गाय । (५) शकरी  
 नामक छंद । वि० दे० "शकरी" ।  
 शक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शकन् । हाथी । गज ।  
 शक-संज्ञा पुं० दे० "शक" ।  
 शक-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यक्ति । जन । मनुष्य । आदमी ।  
 शकिस्यत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शकस का भाव या धर्म ।  
 व्यक्तिता । व्यक्तित्व ।  
 शकसी-वि० [ सं० ] शकस का । मनुष्य का । व्यक्तिगत ।  
 शकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्यापार । काम-संधा । जैसे,—  
 कदिय, आजकल क्या शकल है ? (२) वह काम जो यों ही  
 समय बिताने या मन बहलाने के लिये किया जाय । मनो-  
 विनोद ।  
 शशुन-संज्ञा पुं० [ सं० ] शशुन ] (१) किसी काम के समय होने-  
 वाले लक्षणों का शुभाशुभ विचार । शकुन । वि० दे०  
 "शकुन" ।  
 मुहूर्त—शशुन लेना या विचारना = कोई काम करने से पहले  
 कुछ विशिष्ट क्रियाओं द्वारा यह जानना कि वह काम होगा कि नहीं ।  
 (२) किसी काम के आरंभ में होनेवाले शुभ लक्षण । (३)  
 एक प्रकार की रसम जो विवाह की बात चित पकी होने  
 पर होती है । इसमें कन्या पक्ष के लोग घर पक्ष के लोगों  
 के यहाँ कुछ मिठाई और नगद आदि भेजते हैं । तिष्ठक ।  
 टीका ।  
 श्मि० प्र०—देना ।—भेजना ।—लेना ।  
 (४) भजराणा । भेंट । ( ५ ) ( ५ ) बहली में वह स्थान  
 जहाँ पैल रहनेवाला बैठता है ।

शगुनियाँ-छंदा पुं० [ हि० शगुन + शब्द (नय०) ] वह जो उद्योतिष या रमल आदि के द्वारा शुभाशुभ शगुनों आदि का विचार करता हो। साधारण कोटि का उद्योतिषी। रममाल।

शगुन-छंदा पुं० दे० "शगुन"।

शगुनियाँ-छंदा पुं० दे० "शगुनियाँ"।

शगुना-छंदा पुं० [ का० ] (१) बिना खिजा हुआ फूट्टा। कली।

(२) पुंर। फूट्ट। (३) कोई नई और विलक्षण घटना।

शुद्धा-शगुना खिलना = कोई नई और विलक्षण घटना होना।

शगुना खिलाना = कोई नई नई और विलक्षण बात कर बैठना जिससे सब लोग चकित हो जायें।

विशेष-इस शुद्धावरे का प्रयोग प्रायः देसी बातों के संबंध में ही होता है जिनसे कोई-कहाँई शगुना या संसद आदि पैदा हो।

शशि, शची-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) इंद्र की पत्नी, इंद्राणी जो दानवराज पुलोमा की कन्या थी।

पर्याय-सची। पेंदी। पुलोमना। माहेंदी। जयवाहिनी।

(२) क्षतावर। क्षतावती। शतमूली। (३) शृङ्गा। अस्त-वरा। (४) वक्रवृत्त शक्ति। धर्मिता। (५) प्रज्ञा। बुद्धि।

शङ्क।

शचीतीर्थ-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शचीपति-छंदा पुं० [ सं० ] शची के पति, इंद्र।

शचीपती-छंदा पुं० [ सं० ] शचीनीकुमार।

शचीपति-छंदा पुं० [ सं० ] नाटक में वह पात्र जो इंद्र के समान वैश भूषा धारण करता हो।

शचीश-छंदा पुं० [ सं० ] शची के पति, इंद्र।

शक्र-छंदा पुं० [ सं० ] द्रवण। वृक्ष। पेड़।

शक्रा-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वह कागज जिसमें किसी की वंश-परंपरा लिखी हो। वंशवृक्ष। पुत्रतनामा। कुर्सीनामा। वंशावली। (२) वृक्ष। पौधा। (३) पतवारी का तैयार किया हुआ खेतों का नक्शा।

शट-छंदा पुं० [ सं० ] (१) षट्पाई। अठार रस। (२) एक प्राचीन देश का नाम।

शटा-छंदा स्त्री० [ सं० ] जटा।

शट्टि, शट्टी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) कचूर। कचूर। (२) गंध-पलाशी। कपूर कचरी। (३) अमिया हब्दी। आश्र-हरिदा। (४) सुगंधवाला। नैप्रवाला।

शट्टक-छंदा पुं० [ सं० ] घी और पानी में घना हुआ चावल का अन्न जिसका व्यवहार वैद्यक में होता है।

शट्ट-वि० [ सं० ] (१) भूत। चालाक। धोखेबाज। (२) पात्री। छुपा। बदमाश।

छंदा पुं० (१) तगर का फूल। (२) कैसर। कुंजम। जाग-रान। (३) कोहर। (४) हरनाम। फौलाद। (५) धपरे

का वृक्ष। (६) चीता। चित्रक। चितवर। (७) ताल वृक्ष। (८) अमला का वृक्ष। (९) साहिय में पाँच प्रकार के पतियों या नायकों में से एक प्रकार का पति या नायक। यह नायक जो छलपूर्वक अपना अरप्राध छिपाने में चतुर हो, और किसी वृत्ति की से स्थाप्रेम करते हुए भी अपनी स्त्री से प्रेम प्रदर्शित करने का बहाना करता हो। षं—सहित काज मगुरे मधुर, धैनिगि कहे बनाय। उर अनर घट कपटमय, सो शठ नायक भाय। (१०) वैश्वरूप। जड़ बुद्धि। (११) आठवीं। (१२) वह जो दो भादमियों के बीच में पड़कर उनके सगदे का निपटारा करता हो। मपरप्य।

शठता-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) शठ का भाव या धर्म। धूर्तता। (२) बदमाशी। पात्रोपन।

शठव्य-छंदा पुं० [ सं० ] शठ का भाव या धर्म। शठता।

शठंगा, शठान्या-छंदा स्त्री० [ सं० ] आठवीं छता। अंबछा। पादा।

शठिका, शठो-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) कचूर। (२) गंध पलाशी। कचूर कचरी। (३) वग अशुका। पेड़।

शठोका-छंदा स्त्री० [ सं० ] कंद गिजेय। कंद गुट्टी।

शठोकर-वि० [ सं० ] धोखेबाज। धूर्त।

शण-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सन नामक पौधा। वि० दे० "सन"। (२) भंग। विजया। (३) शणुप्यी। वनसनई।

शणुई-छंदा स्त्री० दे० "सन"।

शणुकंद-छंदा पुं० [ सं० ] चर्मकपा नाम का सुगंधि द्रव्य।

शणुकंद-छंदा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का धूदक जिसे सातला कहते हैं।

शणुक-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन मत्स्य का नाम।

शणुघंटा, शणुघंटिका-छंदा स्त्री० [ सं० ] शणुप्यी नाम की छता। वि० दे० "शणुप्यी"।

शणुचूर्ण-छंदा पुं० [ सं० ] सनई का वह पचा हुआ भाग जो उसे फूटकर सन निकाल लेने के बाद रह जाता है।

शणुप्यी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार की वनस्पति जो साधारणतः वनसनई कहलाती है। यह छोटी और बढ़ी दो प्रकार की होती है। छोटी शणुप्यी प्रायः सय प्रांतों में पाई जाती है। इसका छुप, पत्ते, फूल इत्यादि सन के ही समान होते हैं, किंतु छुप सन से छोटा होता है। फूल पीले, फलियाँ मटर के समान गोल और लंबी होती हैं। यह कड़वी, यमनकारक और पारे को बर्षियेवाली कड़ी गई है। इसके फल सूख जाने पर अंदर के बीजों के कारण सन सग-राम्द करते हैं; इसी से इसे शणुनियाँ कहते हैं। बढ़ी शणुप्यी प्रायः वाटिकानों में लगाते हैं। इसका छुप, पत्ते आदि छोटी शणुप्यी से बड़े होते हैं। फूल सकेद रंग

के होते हैं। यह कसैली, गरम और पारे को घोंपनेवाली कड़ी गई है और मोहन, रतनन भादि में व्यवहार की जाती है। (२) भरहर।

शशशशश-संज्ञा की० [ सं० ] सनई या सन की जड़। शशशशश।

शशशसमा-संज्ञा की० [ सं० ] बनसनई। शशशशश।

शशशसूत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] कृता भादि की बनी हुई पवित्री जो श्राद्ध, तर्पण भादि कृत्यों के समय कनिष्ठि हा की गणलवाली डँगली में पहनी जाती है। पवित्रक।

शशशल-संज्ञा पुं० दे० "शशलुक"।

शशलुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भमलतास का वृक्ष।

शशलका-संज्ञा की० [ सं० ] शशशशश। बन सनई।

शशशर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोन नदी के मध्य का उपजाऊ स्थल। (२) सयूँ नदी की शाखाओं से घिरा हुआ उपरे के समीप का एक द्वीप। दर्दी तट।

शश-वि० [ सं० ] दस का दस गुना। सौ।

संज्ञा पुं० सौ की संख्या। दस की दस गुनी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००।

शशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ श्री० शशक ] (१) सौ का समूह।

(२) एक ही तरह की सौ चीजों का संग्रह। जैसे,—नीति शशक, रहस्यन शशक। (३) वह जिसमें सौ भाग या अवयव हों। (४) सौ वर्षों का समूह। शशशश। (५) विष्णु का एक नाम।

शशकपालेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव की एक मूर्ति का नाम।

शशकर्ममा-संज्ञा पुं० [ सं० ] शशकर्मन्त् ] शनि ग्रह।

शशकश्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की समाधि।

शशकीर्त्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैन पुराणासुसार एक भावी अहंत् का नाम।

शशकुंत, शशकुंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद कनेर। करवीर।

शशकुंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन पर्वत का नाम। (२) सफेद कनेर। शशकुंत। (३) सुवर्ण। सोना।

शशकुंभा-संज्ञा की० [ सं० ] एक नदी का नाम। ( महाभारत )

शशकुलीरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा।

शशकुसुमा-संज्ञा की० [ सं० ] शशशशश। सौंफ।

शशकसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] भागवत के अनुसार एक वर्ष पर्वत का नाम।

शशकोटि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सौ करोड़ की संख्या। अष्टुंद।

(२) इंद का वज्र। (३) हीरा। हीरक।

शशकौम, शशकौमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ण। सोना।

शशकनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद। (२) वह जिसने सौ यज्ञ किए हों।

शशकनुदुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] काकी कुड़ा। कृष्ण कुटज।

शशकनुयव-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुटज बीज। इंद्रजौ।

शशकंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोना। स्वर्ण। (२) सोने की बनी हुई कोई चीज।

शशशु-वि० [ सं० ] सौ गौनों का संवामी। सौ गावों का रखनेवाला। (मनु)

शशशुण-वि० [ सं० ] सौ गुना।

शशश्रथि-संज्ञा की० [ सं० ] (१) सफेद दूध। दूध। (२) नीली दूध।

शशश्रीध-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की भूतयोनि।

शशश्री-संज्ञा की० [ सं० ] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का शस्त्र जो किसी बड़े पथर या लकड़ी के कुड़े में बहुत से कील-कॉटे ठोककर बसाया जाता था और जिसका व्यवहार युद्ध के समय शत्रुओं पर फेंकने में होता था। (२) बुद्धिकाठी। बिछाती। (३) एक प्रकार की घास। (४) कर्म या कंजे का पेड़। (५) भावप्रकाश के अनुसार गले में होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें त्रिवीप के कारण गले में बची के समान लंबी और मोटी तथा कंठ को रोकनेवाली, मांस के अंकुरों से भरी हुई और बहुत पीड़ा देनेवाली सूजन हो जाती है। यह रोग प्राणनाशक कहा गया है।

शशशुद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कठफोड़वा या कठशेका नामक पत्थर। (२) सौ पत्तोंवाला कमल। शशदल पत्र।

शशशुटा-संज्ञा की० [ सं० ] सतवार। शशशुली।

शशशुत-संज्ञा की० [ सं० ] (१) विष्णु का एक नाम। (२) भागवत के अनुसार विराज के एक पुत्र का नाम। (३) एक यज्ञ का नाम।

शशशुह-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

शशशारा-संज्ञा की० [ सं० ] शशशिया नाम का नक्षत्र जिसमें सौ तारे हैं।

शशशविका-संज्ञा की० [ सं० ] नखी नाम गंधद्रव्य। हाथी शुंठी। नागदंती।

शशश्वल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पद्म।

शशश्वला-संज्ञा की० [ सं० ] सेवती। शशशरी।

शशशु-संज्ञा की० [ सं० ] पंजाब की सतलज नाम की नदी जो हिमालय पर्वत के रावणहृद् से निकलकर पंजाब के दक्षिण-पश्चिमी भाग में बहती हुई ब्यास या विपासा से मिलकर मुक्तान के दक्षिण ओर सिंधु में मिलती है।

शशशन्वा-संज्ञा पुं० [ सं० ] शशशन्वत् ] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) एक योद्धा जिसे कृष्ण ने संग्रहित के मारने के अपराध में मारा था।

शशशधा-संज्ञा की० [ सं० ] दूध।

शशशधामा-संज्ञा पुं० [ सं० ] शशशधम् ] विष्णु का एक नाम।

शशशधार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वज्र।

शतधातव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन सौर्य का नाम ।  
 शतधूमि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र । (२) महा । (३) स्वर्ग ।  
 शतनेत्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शतांबर ।  
 शतपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौ मनुष्यों का मासिक या सरदार ।  
 शतपथ-वि० [ सं० ] (१) सौ ढ़लों या पत्तोंवाला । (२) सौ पत्तोंवाला ।  
 संज्ञा पुं० (१) कमल । (२) सेवती । शतपत्री । (३) मोर नामक पक्षी । (४) कठकोद्वार नामक पक्षी । (५) सारस पक्षी । (६) मैना । शारिङ्गा । (७) वृहस्पति ।  
 शतपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कठकोद्वार नाम का पक्षी । (२) एक प्रकार का विषैला कीड़ा । (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।  
 शतपत्र-निवास-संज्ञा पुं० [ सं० ] महा ।  
 शतपत्रभेद न्याय-संज्ञा पुं० दे० "न्याय" (४-१७) ।  
 शतपत्र-योनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] महा ।  
 शतपत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दूध ।  
 शतपत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का गुलाब ।  
 शतपत्री-केसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुलाब का जीरा । गुलाब-केसर ।  
 शतपथ-वि० [ सं० ] (१) असंख्य मार्गोंवाला । (२) बहुत सी शाखाओंवाला ।  
 शतपथ ब्राह्मण-संज्ञा पुं० [ सं० ] यजुर्वेद का एक ब्राह्मण । इसके कर्त्ता महर्षि याज्ञवल्क्य माने जाते हैं । इसकी मार्ग-दिश और कानव शास्त्राई मिलती हैं । इनमें से पहली की विशेष प्रतिष्ठा है । एक प्रणाली के अनुसार इसमें ६८ प्रपदक हैं, और दूसरी के अनुसार यह १४ ऋत्यों और १०० अध्यायों में विभक्त है । चारों ब्राह्मणों में से यह अधिक क्रमपूर्ण और रोचक है । इसमें अग्निरोध से लेकर अश्वमेध पर्यंत कर्मोंका उपाय ही विवाद और सुंदर वर्णन है ।  
 शतपथिक-वि० [ सं० ] (१) बहुत से मतों का अनुयायी । (२) शतपथ ब्राह्मण का जानने या पढ़नेवाला ।  
 शतपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कन खजुरा । गोजर । (२) च्यूटी ।  
 शतपद चक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष में सौ खोंडोंवाला एक प्रकार का चक्र । इसकी सहायता से नक्षत्रों का ज्ञान शुभमत्तपर्यंत हो जाता है ।  
 शतपदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कनखजुरा । गोजर । (२) खतावर । शतमूली । (३) मरसे की जाति का एक पौधा जिसके ऊपर ककणी के आकार के फाल फूल लगते हैं । जटावर । (४) मीठी कोयल नाम की कता ।  
 शतपद्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद कमल ।  
 शतपरिवार-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्षमाधि का एक भेद ।

शतपर्वा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पौंस । पंन । (२) पौंडा । गला । केवारा । (३) दूर्वा घास । दूध (४) बच । (५) कुटकी । (६) सुगंधि द्रव्य । (७) भाग्य की पत्ती का नाम । (८) कठंधी । श्वरेमू का साग ।  
 शतपर्विका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दूब । (२) थप । (३) यव । जी ।  
 शतपाद-संज्ञा पुं० दे० "शतपद" ।  
 शतपात्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि । (२) कन खजुरा । गोजर ।  
 शतपुत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सप्तपुत्रिया तरौई । (२) सतावर । शतावरी ।  
 शतपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सारी धान्य ।  
 शतपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सोशा नाम का साग । (२) सौंफ । (३) गवेषुक ।  
 शतपुष्पादल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सौंफ का साग । (२) शताह्ला ।  
 शतपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शतपुष्पा" ।  
 शतपौद, शतपौदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का वात-जन्य भगंदर । इसमें गुदा के समीप कोड़ा उत्पन्न होता है जिसके पकने पर बहुत से छेद हो जाते हैं और उनमें से मूत्र तथा वीर्य निकलता है । (२) एक प्रकार का रोग जिसमें वात और रक्त के कुचित होने से शिंघ पर अनेक छेद हो जाते हैं ।  
 शतपौरक, शतपौर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पौंडा । गला ।  
 शतप्रसूना-संज्ञा स्त्री० दे० "शतपुष्पा" ।  
 शतप्रास-संज्ञा पुं० [ सं० ] कनेर का वृक्ष । कर्वीर वृक्ष ।  
 शतफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौंस ।  
 शतपला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम ।  
 शतपलाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक आचार्य का नाम ।  
 शतपलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मछली । (२) रामायण के अनुसार एक वंदर का नाम ।  
 शतपाहु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा । (२) भागवत के अनुसार एक असुर का नाम । (३) बौद्धों के अनुसार मार के पुत्र का नाम ।  
 शतमिय-संज्ञा पुं० दे० "शतमिया" ।  
 शतमिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्निनी आदि सप्ताह नक्षत्रों में से चौबीसवाँ नक्षत्र । यह सौ तारों का समूह है और इसकी आकृति मंडलाकार है । इसके अग्निघाता देवता वरुण कहे गए हैं, और यह लक्ष्मण-सुल माना गया है । कहते हैं कि जो बालक इस नक्षत्र में जन्म लेता है, वह

साहसी, निष्ठुर; चतुर और अपने घेरी का नादा करने-वाला होता है।

शतमीरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] महिष्ठा। चमेडी।

शतमख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र। दत्तक्रु। (२) उल्लू। भौतिक।

शतमन्यु-वि० [ सं० ] (१) क्रोधी। गुस्सावर। (२) उध्साही।

संज्ञा पुं० (१) इंद्र। (२) उल्लू।

शतमयूख-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा।

शतमदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संख्या नामक विप।

शतमान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुवर्ण की कोई वस्तु जो तौल में सौ मान की हो। (२) सोना या चाँदी तौलने के लिये सौ मान की तौल या बाँट। (३) चाँदी का पल। (४) भाद्रक नाम की प्रचीन काल की तौल जो प्रायः पौने चार सेर की होती थी। (५) रूपा-भाली या तार-माक्षिक नाम की उपधातु।

शतमार्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो अन्न खादि बनाता या उन्हें ठीक करता हो।

शतमूला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बड़ी सतावर। (२) यष। (३) नीली दूष।

शतमूलिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भासुकर्णों नाम की छता। (२) बड़ी दंती। बंगरेदा।

शतमूली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दातावरी नाम की ओपधि। (२) तालमूली। मूसली। (३) यष।

शतयष्टिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह द्वार जिसमें सौ लड़ हों।

शतयातु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन वैदिक ऋषि का नाम।

शतरंज-संज्ञा पुं० [ प्रा० मि० सं० चतुरंग ] एक प्रकार का प्रसिद्ध खेल जो चौंसठ खानों की बिसाल पर खेला जाता है। यह खेल दो आरमी खेलते हैं जिनमें से प्रत्येक के पास १६-१६ मुहरे होते हैं। इन सोलह मुहरों में एक बादशाह, एक बज़ीर, दो ऊँट, दो घोड़े, दो हाथी या किरितयों तथा आठ प्यादे होते हैं। इनमें से प्रत्येक मुहरे की कुछ विशिष्ट चाल होती है, अर्थात् बसके चलने के कुछ विशिष्ट नियम होते हैं। उन्हीं नियमों के अनुसार विपक्षी के मुहरे मारे जाते हैं। जब बादशाह किसी ऐसे घर में पहुँच जाता है, जहाँ से बसके चलने की जगह नहीं रहती, तब पाजी मात समझी जाती है। इसकी बिसाल में आठ आठ खानों की आठ पंक्तियाँ होती हैं। वि० दे० "चतुरंग"।

शतरंजराज-संज्ञा पुं० [ प्रा० शतरंज + राज ] शतरंज का खिलाड़ी। शासित।

शतरंजयात्री-संज्ञा स्त्री० [ प्रा० शतरंज + का० यात्री ] (१) शतरंज खेलने का व्यवसन। (२) शतरंज खेलने का काम या भाव।

शतरंजी-संज्ञा स्त्री० [ का० ] (१) वह घेरी जो कई प्रकार के रंग

विरंगे सुती से यनी हो। (२) शतरंज खेलने की बिसाल। (३) वह रोटी जो कई प्रकार के अनाजों को मिलाकर बनाई गई हो। मिरसी रोटी। (४) यह जो शतरंज का अच्छा खिलाड़ी हो।

शतरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राजा का नाम जिसका बरहेर महाभारत में है।

शतराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ जो सौ रातों में समाप्त होता था।

शतरुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रुद्र का एक रूप जिसके सौ सुँह माने जाते हैं। (२) दश दशान के अनुसार एक ऋषि जो भारमा की उपासक कही गई है।

शतरुद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हिमालय की एक नदी का नाम।

शतरुद्रिय, शतरुद्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यज्ञ की हवि। (२) यजुर्वेद का एक अंश जिसमें रुद्र के स्तोत्र हैं।

शतरूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शतरूपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रजा की मानसी कन्या तथा पत्नी का नाम। इसी के गर्भ से स्वायंभुव मनु की उत्पत्ति हुई थी। पर विष्णु पुराण में लिखा है कि शतरूपा स्वायंभुव मनु की स्त्री थी, न कि माता।

शतरुषी-संज्ञा पुं० [ सं० शतधनु ] ऋग्वेद के प्रथम मंडल के मंत्र-द्वारा ऋषियों की उपधि।

शतलोचन-वि० [ सं० ] सौ नेत्रोंवाला।

संज्ञा पुं० (१) स्कंद के एक गण या अनुचर का नाम। (२) पुराणानुसार एक असुर का नाम।

शतधनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

शतवहली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नीली दूष। (२) काकोडी नामक अष्टवर्गीय ओपधि।

शतवादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत से बाजों का एक साथ बजना।

शतचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक कवच का नाम जो अर्धवै वेद में है।

शतवार्षिक-वि० [ सं० ] प्रति सौ वर्ष पर होनेवाला।

शतवार्षिकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पानी न बरसना। अनाहृष्टि।

शतवाही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह स्त्री जो मैके से बहुत सा धन साथ लेकर समुद्राला आई हो।

शतवीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम।

शतवीर्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्रष्टेव दूष। (२) दातावर। शतमूली। (३) मुनका। कपिल प्राक्षा। (४) स्रष्टेव मूसली। (५) किरामिश।

शतवृषभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष में एक सुहृत् का नाम।

शतवेधिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चूका या लुकिका नामक साग।

शतधैवी-संज्ञा पुं० [ सं० शतधैवि ] (१) अमलबंत। (२) चूका या लुकिका नामक साग।

शतशलाका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छत्र ।  
 शतशीर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु का एक नाम । (२) रामायण के अनुसार एक प्रकार का अभिमंत्रित अस्त्र ।  
 शतशीर्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वासुकी देवी का एक नाम ।  
 शतश्रृंग संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो महाभद्र के उत्तर में अवस्थित बतलाया गया है । अनुमान है कि यह वर्तमान मैसूर राज्य के एक पर्वत का प्राचीन नाम है ।  
 शतसंख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णुपुराण के अनुसार दसवें मन्वं-  
 तर के एक देवता का नाम ।  
 शतसहस्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।  
 शतसुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सतावर । शतमूली ।  
 शतहृद-संज्ञा पुं० [ सं० ] हरिवंश के अनुसार एक असुर का नाम ।  
 शतहृदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विष्णु । विप्रती । (२) वज्र । (३) दक्ष की एक कन्या का नाम जो वाहुवृत्र की स्त्री थी । (४) विराध राक्षस की माता का नाम ।  
 शतांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रथ । (२) निविश । तिरिछ वृक्ष । वि० सौ अंगों या अवयवोंवाला ।  
 शतांगुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ताल या साद का वृक्ष ।  
 शतांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौ भागों में से एक भाग । १००वाँ हिस्सा ।  
 शता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शतावर ।  
 शताकरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक किन्नरी का नाम ।  
 शताकारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक गंधर्व स्त्री का नाम ।  
 शताक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] हरिवंश के अनुसार एक दानव का नाम ।  
 शताक्षी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) राति । रात । (२) शतसुपना नामक वनस्पति । सौरा । (३) पार्वती । (४) दुर्गा ।  
 शतानंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मत्स्य । (२) विष्णु । (३) विष्णु का रथ । (४) हृष्ण । (५) गौतम मुनि । (६) रामा जनक के एक पुरोहित का नाम । उ०—शतानंद तप वंदित प्रभु षडे गुरु पहें जाय ।—तुलसी ।  
 शतानंदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कांसिकेश की एक मातृका का नाम । (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम ।  
 शतानक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ सुरदे जलाए जाते हैं । मसान । दमसान । मरघट ।  
 शतानन-संज्ञा पुं० [ सं० ] बेल । श्रीकल ।  
 शतानना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक देवी का नाम ।  
 शतानीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बृहत् पुराण । बृहदा आदमी । (२) एक मुनि जो श्याल का शिष्य था । (३) दशसुर । ससुर । (४) पुराणानुसार चौथे युग में चंद्रवंश का द्वितीय

राजा । इसका पिता जम्भोज्य और पुत्र सहलानीक था । (५) भागवत के अनुसार सुदास राजा का पुत्र । (६) महाभारत के अनुसार नकुल के एक पुत्र का नाम जो द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । (७) एक असुर का नाम ।

शतान्द-वि० [ सं० ] सौ वर्षवाला ।

संज्ञा पुं० सौ वर्ष । शताब्दी । सदी ।

शतान्दी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सौ वर्षों का समय । (२) किसी संवत् में सैकड़े के अनुसार एक से सौ वर्ष तक का समय । जैसे,—ईसवीं पॉखवीं शताब्दी अर्थात् ई० सन् ४०१ से ५०० तक का समय ।

शतामध-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र का एक नाम ।

शतायुध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सौ अस्त्र धारण करता हो । सौ अस्त्रोंवाला ।

शतायुधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक किन्नरी का नाम ।

शतायु-संज्ञा पुं० [ सं० शतायुष ] (१) वह जिसकी आयु सौ वर्षों की हो । (२) महाभारत के अनुसार पुरूरवा के एक पुत्र का नाम । (३) विष्णु पुराण के अनुसार उदना के एक पुत्र का नाम ।

शतार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वज्र । (२) सुरार्धन चक्र ।

शतारु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कोढ़ । इस रोग में घाव पर छाल, काली और बाह्युक्त कुंसियाँ हो जाती हैं ।

शतारुपी-संज्ञा स्त्री० दे० "शतारु" ।

शताघधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह मनुष्य जो एक साथ बहुत सी धातें चुनकर उन्हें सिलसिलेवार याद रख सकता हो और बहुत से काम एक साथ कर सकता हो । श्रुतिहार ।

विशेष—कुछ मेधावी लोग ऐसे होते हैं जो एक साथ बहुत से काम करने का अभ्यास करते हैं । जैसे,—एक भारती रह रहकर कुछ संख्या या अंकों का नाम लेता है । दूसरा आदमी रह रहकर चढ़ियाल बजाता है । तीसरा आदमी किसी ऐसी भाषा के वाक्य के शब्द बोलता है जिससे शताघधान करनेवाला मनुष्य अपरिचित होता है । एक आदमी पूर्ति के लिये कोई धर्मस्था देता है । एक और शतरंज का खेल दोता, रहता है । शताघधान का यह कर्तव्य होता है कि वह संख्याओं और अपरिचित भाषा के वाक्य के शब्द याद रखे, समझा की पूर्ति करे और शतरंज खेलता चले और इसी प्रकार और जितने काम होते हैं, उन सब में सम्मिलित रहे; और अंत में सब का ठीक ठीक उत्तर दे और सब काम ठीक ठीक पूरे बतारे । (२) शताघधान का काम ।

शतावधानी-छंदा पुं० दे० "शतावधान" ।

छंदा स्त्री० [ सं० शतावधान ] शतावधान का काम ।

शतावर-छंदा पुं० [ सं० शतावरी ] सतावर नाम की शोषधि ।

सफ़ेद मूसली ।

शतावरी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) शतमूली । सतावर । सफ़ेद

मूसली । (२) कचूर । दादी । (३) इंद्र की भार्या, इंद्राणी ।

शतावर्ष-छंदा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) महादेव । (३)

दृतिवंश के अनुसार एक पवित्र वन का नाम ।

शतावर्षी-छंदा पुं० [ सं० शतावर्षिन् ] विष्णु ।

शताशिन-छंदा पुं० [ सं० ] वज्र ।

शताह्वया-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) सौंफ । (२) सोभा । मधु-

रिका । (३) सतावर ।

शताह्वा-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) सौंफ । (२) सतावर । (३) अज-

मोदा । (४) एक प्राचीन नदी का नाम । (५) एक तीर्थ का

नाम ।

शतिका-वि० [ सं० ] सौ संबंधी । सौ का ।

शती-छंदा स्त्री० [ सं० शतिन् ] सौ का समूह । सैकड़ा ।

जैसे,—दुर्गा सप्तशती ।

शतेर-छंदा पुं० [ सं० ] (१) शत्रु । (२) घाव । ज़खम । (३)

दिसा ।

शतोदर-छंदा पुं० [ सं० ] (१) शिव का एक नाम । (२) शिव

के एक गण का नाम । (३) रामायण के अनुसार एक अक्ष

का नाम ।

शतोदरी-छंदा स्त्री० [ सं० ] कार्तिकेय की एक मातृका का

नाम ।

शतीदना-छंदा स्त्री० [ सं० ] यज्ञ में होनेवाला एक प्रकार का

कृत्य ।

शत्रि-छंदा पुं० [ सं० ] (१) गज । हाथी । (२) बल । ताकत ।

(३) एक राजर्षि का नाम ।

शत्रुंजय-छंदा पुं० [ सं० ] (१) काठियावाड़ प्रांत का एक प्रसिद्ध

पर्वत जो विमलाद्रि भी कहलाता है । यह शैलियों का

एक प्रसिद्ध तीर्थ है । (२) रामायण के अनुसार एक नाग

का नाम । (३) परमेस्वर ।

वि० शत्रु को जीतनेवाला ।

शत्रु-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसके साथ भारी विरोध या

वैमनस्य हो । रिपु । शत्रि । दुश्मन । (२) एक असुर का

नाम । (३) नाग-द्वय या मारछोबा नाम की वनस्पति ।

शत्रुकंठक-छंदा पुं० [ सं० ] पुंगीफल । सुपारी ।

शत्रुकंठका-छंदा स्त्री० [ सं० ] सुपारी ।

शत्रुघाती-छंदा पुं० [ सं० शत्रुघातिन् ] राजा दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न

का एक पुत्र ।

वि० शत्रु का नाश करनेवाला ।

शत्रुघ्न-छंदा पुं० [ सं० ] (१) राम के एक भाई जो सुमित्रा के

गर्भ से उत्पन्न हुए थे । इनका भरत के साथ वैसा ही प्रेम

या जैसा लक्ष्मण का राम के साथ था । (२) स्वर्गलोक का

एक पुत्र । (३) देवश्रवा के एक पुत्र का नाम ।

वि० शत्रु को मारनेवाला । शत्रि को नष्ट करनेवाला ।

शत्रुघ्नी-छंदा स्त्री० [ सं० ] हथियार ।

शत्रुजित्-छंदा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) ऋतुध्वज या कुवल-

यादव के पिता का नाम ।

वि० शत्रु को जीतनेवाला ।

शत्रुतपन-छंदा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) एक वृक्ष का नाम ।

कहते हैं कि यह रोग फैलाता है ।

शत्रुता-छंदा स्त्री० [ सं० ] शत्रु का भाव या धर्म । दुश्मनी ।

वैर भाव ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिखलाना ।—खरना ।—होना ।

शत्रुताईल-छंदा स्त्री० दे० "शत्रुता" ।

शत्रुत्व-छंदा पुं० [ सं० ] शत्रु का भाव या धर्म । शत्रुता ।

दुश्मनी ।

शत्रुदमन-वि० [ सं० ] दुश्मनों को वश में करनेवाला ।

छंदा पुं० दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न का एक नाम ।

शत्रुदुग्ध-छंदा पुं० [ सं० ] अमलबंश ।

शत्रुमंग-छंदा पुं० [ सं० ] मूँज नामक वृक्ष ।

शत्रुभूमिज-छंदा पुं० [ सं० ] बालों में लगाने का सुत्रम् ।

शत्रुमर्दन-छंदा पुं० [ सं० ] (१) शत्रुघ्न का एक नाम । (२)

कुवलयाक्ष के पुत्र का नाम ।

वि० शत्रुओं का नाश करनेवाला ।

शत्रुविनाशन-छंदा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।

शत्रुहंता-वि० [ सं० शत्रुहन्त ] शत्रु का नाश करनेवाला ।

शत्रुहा-छंदा पुं० [ सं० शत्रुहर् ] दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न का

एक नाम ।

वि० शत्रु का नाश करनेवाला ।

शत्रुवरी-छंदा स्त्री० [ सं० ] रात्रि । रात ।

शत्रु-छंदा पुं० [ सं० ] (१) फल मूलादि । (२) कर । लगान ।

(३) तरकारी ।

शत्रुक-छंदा पुं० [ सं० ] वह अनाज जिसकी भूसी व निकाली

गई हो ।

शत्रुद-वि० [ सं० ] बहुत ज्यादा । जोर का । भारी । सफ़्त ।

जैसे,—उसकी चोट शत्रुद है ।

शत्रुधी-छंदा स्त्री० दे० "सहदेवा" ।

शत्रि-छंदा पुं० [ सं० ] (१) मेघ । बादल । (२) हामी ।

छंदा स्त्री० (१) खंन । डुकड़ा । (२) विजली । दामिनी ।

सद्वि० ।

शुद्ध-वि० [ सं० ] गिरानेवाला । पतन करनेवाला ।  
 चंदा पुं० विष्णु ।  
 शुद्धला-चंदा स्त्री० [ सं० ] पुराणनुसार एक नदी का नाम ।  
 शन-चंदा पुं० [ सं० ] (१) शक्ति । (२) चुप्पी । खामोशी ।  
 चंदा पुं० दे० "सन" (पीडा) ।  
 शनक-चंदा पुं० [ सं० ] शंकर के एक पुत्र का नाम ।  
 शनकाघलि-चंदा स्त्री० [ सं० ] गजपीपल ।  
 शनपर्णी-चंदा स्त्री० [ सं० ] कटकी नाम की ओषधि ।  
 शनपुष्पी-चंदा स्त्री० [ सं० ] बन-सनई ।  
 शनहृत्सी-चंदा स्त्री० दे० "शानपुष्पी" ।  
 शनि-चंदा पुं० [ सं० ] (१) सौर जगत के नौ ग्रहों में से सातवाँ ग्रह । सूर्य से इसका अंतर ८८३०००००० मील अथवा पृथ्वी के अंतर से ९३ गुना है । इसका व्यास ७५८०० मील का है । सूर्य की परिक्रमा में इसको २९ वर्ष और १६० दिन अर्थात् कुल १००५९ दिन लगते हैं । बुधस्वति को छोड़कर यह सब से बड़ा ग्रह है । पृथ्वी से इसका व्यास ९ गुना, विस्तार ६९७ गुना और मान ९३ गुना है । इसके साथ नौ उपग्रह या चंद्रमा हैं । बुधस्वति से छोटा होने पर भी यह सब ग्रहों से अधिक चमकदार है, जिससे इसका आकार सब से बड़ा प्रतीत होता है । यह ३७८ दिन में एक बार अपनी धुरी पर घूमता है । यह ग्रह विचित्र आकार का है । इसके बाहर चारों ओर एक चहुँप बड़ा बलय है; और उस बाह्य बलय से इसके पिंड की दूरी ५९०० मील है । इसके बाह्य बलय की चौड़ाई ११२०० मील है । इस बलय का व्यास १७२०० मील और मोटाई छौ मील से कुछ कम है ।  
 कलित ज्योतिष के अनुसार यह ग्रह काले रंग का, दूध वर्ण और सूर्यमुख है तथा इसका वाहन गृध्र है । यह सौराष्ट्र देश का स्वामी, नरुंकर और तमोगुण-युक्त है; और कपाय रक्ष का अधिपति है । मकर और कुंभराशि तथा मील-घांत मणि का भी अधिपति है । यह चतुर्भुज है और इसके हाथों में बाण, दाल, धनुष और भल्ल है । इसके अधिपति देवता यम और प्रत्यभिदेवता प्रजापति हैं । इसका परिमाण चार अंगुल है । पद्मपुराण के अनुसार सूर्य की स्त्री छाया के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई थी । अपनी स्त्री के दायप से इसकी दृष्टि क्रूर हो गई और पार्वती के दायप के कारण यह खंड हो गया । इसे कदयप मुनि की संतान मानते हैं ।  
 कलित ज्योतिष के अनुसार शनि का फल इस प्रकार दिखा है—पाप ग्रह और अज्ञान फल का देनेवाला है; परंतु राशि और स्थान विनोप में शुभ फल भी प्रदान करता है । शनि और मंगल दोनों ग्रह स्थान विनोप पर एक साथ होने से राजयोग-कारक होते हैं । यह भी माना जाता है कि

छोणों पर जो मारी विपत्तियाँ आती हैं, वे प्रायः इसी की कुदृष्टि के कारण होती हैं । इसका फल साढ़े सात दिन, साढ़े सात मास या साढ़े सात वर्ष तक रहता है ।  
 पृथ्वी—सौरि । शनिश्चर । नीलवासा । मंद । छायात्मक । पातंगि । ग्रहनायक । छायासुत । भास्वरी । नीलांबर । भार । क्रोद्ध । यक । बोल । सप्तानु । पंगु । काल । सूर्य-पुत्र । अस्तित ।  
 (२) दुर्भाष । अनाम्य । यद्विस्मयो । (३) दे० "शनिवार" ।  
 शनिचक्र-चंदा पुं० [ सं० ] कलित ज्योतिष में मनुष्य के शरीर के आकार का एक प्रकार का चक्र जिसमें शनिभोग्य नक्षत्र से आरंभ करके चक्र रूपी मनुष्य के भिन्न भिन्न अंगों में २७ नक्षत्रों की स्थापना करके शुभाशुभ फल जाने जाते हैं ।  
 शनिक-चंदा पुं० [ सं० ] काळी मिर्च ।  
 शनि प्रदोष-चंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का प्रदोष (पर्व) जो शनिवार के दिन किसी मांस के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी पक्ष पर होता है । इस दिन मत्त रखा और शिव का पूजन किया जाता है ।  
 शनिप्रसू-चंदा स्त्री० [ सं० ] शनि की माता छाया जो सूर्य की पत्नी कही गई है ।  
 शनिप्रिय-चंदा पुं० [ सं० ] नीलमणि । नीलम ।  
 शनिरुद्ध-चंदा स्त्री० [ सं० ] भैंस । महिषी ।  
 शनिचार-चंदा पुं० [ सं० ] वह चार जो शनिवार से पहले और शुक्रवार के बाद पढ़ता है ।  
 शनिश्चर-चंदा पुं० दे० "शनि" ।  
 शनैः-अव्य० [ सं० ] धीरे । अद्विस्ता । हीले ।  
 शौ०—शनैः शनैः=धीरे । आदित्ते आदिते ।  
 शला पुं० दे० "शनिवार" ।  
 शनैः-प्रमेह-चंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का प्रमेह रोग । इस प्रमेह में रोगी को धीरे धीरे, धमक और बहुत पतली धार में थोड़ा थोड़ा पेशाव आता है ।  
 शनैर्मह-चंदा पुं० दे० "शनैःप्रमेह" ।  
 शनैर्महो-चंदा पुं० [ सं० ] वह रोगी जिसे शनैःप्रमेह का रोग हो ।  
 शनैश्चर-चंदा पुं० दे० "शनि" ।  
 शपथ-चंदा स्त्री० [ सं० ] (१) यह कथन जिसके अनुसार कहने-वाला इस शपथ की प्रतिज्ञा करता है कि यदि मेरा कथन असत्य हो, मैं ने अशुभ काम किया हो, मैं अशुभ काम करने या न करने हवापि, तो मुझ पर अशुभ देवता का शपथ पड़े अथवा मैं अशुभ शपथ का भागी होऊँ आदि । कथन । विषय । शीघ्रदं ।  
 शि० प्र०—खाना ।—देवा ।—लेना ।  
 शुद्धा—दे० "कथम" के शुद्धा ।  
 (२) विषय । वि० दे० "विषय" (२१) । (३) प्रतिज्ञा या



द्वतापूर्वक कोई काम करने या न करने आदि के संबंध में कथन । कौड । वचन ।

शपन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शपथ । कसम । (२) माली । कुवाच्य ।

शप्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बलक अथवा उलप नामक वृक्ष । (२) वह व्यक्ति जिसे शाप दिया गया हो ।

शफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धूस की जड़ । (२) पशुओं का खुर । (३) नखी नामक गंध द्रव्य ।

शफुङ्ग-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] प्रातःकाल या सायंकाल के समय आकाश में दिखाई पड़नेवाली ललाई, विशेषतः संध्या के समय दिखाई पड़नेवाली छालिमा जो बहुत ही मनोहर होती है ।

मुद्गां—शफुक फूलना = प्रातःकाल या संध्या के समय आकाश में छालिमा फैलना ।

शफुकृत-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) कृपा । दया । मेहरबानी । (२) प्यार । मुद्दवत्त । प्रेम ।

क्रि० प्र०—दिखलाना ।—रचना ।

शफुगोल-संज्ञा स्त्री० दे० "इसबगोल" ।

शफुताल-संज्ञा पुं० [ फा० ] एक प्रकार का बड़ा आड़ जिसे ससा-लुक या सतालू भी कहते हैं । वि० दे० "सतालू" ।

शफर-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पोथी या पोथिया नाम की मछली ।

शफराधिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिलसा मछली ।

शफरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की छोटी मछली ।

शफरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सबूक । बयस । (२) पात्र । धरतन ।

शफ्रा-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] शरीर का स्वस्थ होना । नीरोगता । आरोग्यता । संतुल्यता ।

क्रि० प्र०—(किसी को) शफ्रा देना = (किसी को) रोग दूर करना । शब्दा करना । आराम देना । नीरोग करना ।

शफ्रायाना-संज्ञा पुं० [ अ० शफ्रा + फा० खाना ] वह स्थान जहाँ लोगों की चिकित्सा होती हो । चिकित्सालय । अस्पताल ।

शफ्रोच-वि० [ सं० ] जिसकी जपि गाय के खुर के समान हो । संज्ञा स्त्री० गाय के खुर के समान जंवावाली स्त्री ।

शय-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] रात । रात्रि । इजनी । निद्रा ।

शयनम-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] (१) ओस । तुपार । (२) एक प्रकार का सफेद रंग का बहुत ही शरीरक कपड़ा ।

शयनमी-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] चारपाई के ऊपर का वह ढाँचा जिस पर रात के समय ओस से बचने के लिये मसहरी ढाँची जाती है । मसहरी । छपरपट ।

शयशरत्-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] सुखभागों के आठवें मास की चौदहवीं अथवा पंद्रहवीं रात । इस रात को सुखभागों के विरासत के अनुसार फरिते परमारमा की आज्ञा से भोजन

वर्तते और आयु का हिसाब लगाते हैं । इस दिन सुखलमान अपने मृत पूर्वजों के उद्देश्य से प्राणों काते, इच्छा पूरी करते, रोशनी करते और आतिथ्यवागी छोड़ते हैं ।

शयशर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दक्षिण में रहनेवाली एक जंगली या पहाड़ी जाति । (२) जंगली । वहशी । (३) शूद्र तथा भीरु से उपरस संतान । (४) छोध नामक वृक्ष । (५) तिव । वि० (१) चितकबरा । (२) रंग बिरंगा ।

शयशर-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शयशरिका ] जंगली । वहशी । शयशरचंदन-संज्ञा पुं० [ सं० शयशर + हि० चंदन ] एक प्रकार का चंदन जो लाल और सफेद दोनों मिले हुए रंगों का होता है । वैद्यक के अनुसार यह शीतल तथा कड़वा, और वात, पित्त, कफ, बिस्फोटक, सुजली, कुष्ठ, मोहादि को नष्ट करनेवाला माना जाता है ।

शयशरजंजु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन नगर का नाम । शयशरलोच-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद लोच । शयस-वि० [ सं० ] (१) चितकबरा । (२) रंग बिरंगा । विद्य विचित्र ।

संज्ञा पुं० (१) एक नाप का नाम । (२) घीदों का एक प्रकार का धार्मिक कृत्य । (३) अर्गिया घास । गंध वृक्ष । (४) चित्रक । चितउर वृक्ष ।

शयसलक-वि० [ सं० ] (१) चितकबरा । (२) रंग बिरंगा । विद्य विचित्र ।

शयसलचेतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो किसी प्रकार की पीड़ा या कष्ट आदि के कारण बहुत बयराया हुआ हो । वह जो संतप्त या व्यथित होने के कारण अन्वयमनरूक हो ।

शयसलत्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शयसल का भाव या धर्म । (२) रंग बिरंगा पन । (३) मिलावट ।

शयसला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चितकबरी गौ । (२) कामधेनु ।

शयसलाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शयसलाश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम । (२) दक्ष के एक पुत्र का नाम ।

शयसलिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पत्ती ।

शयसलित-वि० [ सं० ] चितकबरा । रंग बिरंगा ।

शयसली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कामधेनु । (२) चितकबरी गाय ।

शयसाव-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) यौवन काल । जवानी । (२) किसी वस्तु की यह मध्य की अवस्था जिसमें वह बहुत अच्छा या खुर जान पड़े । (३) बहुत अधिक सौंदर्य ।

क्रि० प्र०—जाना ।—उतरना ।—चढ़ना ।—जाना ।

शयसाहव-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) समानता । अनुरूपता । (२) चरत । शक । भाकति ।

श्रीधर-संज्ञा स्त्री० [ क० ] (१) वह चित्र जो किसी व्यक्ति की स्मृत शक्ति के शीक अयुक्त बना हो।

क्रि० प्र०—छोचना।—बनाना।

(२) समानता। अनुसूचना।

श्रीधर-संज्ञा पुं० [ क० ] रात्र = रात + रोज = दिन। रात दिन। हर समय। हर दम।

शब्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु में होनेवाला वह कंप जो किसी पदार्थ पर आघात पड़ने के कारण भयवा स्वयं वायु पर आघात पड़ने के कारण उत्पन्न होकर कान या श्रवणेंद्रिय तक पहुँचता और उसमें एक विशेष प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करता है। ध्वनि। आवाज।

विशेष—प्रायः सभी पदार्थों से, उन पर आघात आदि करके या उनमें जड़की जल्दी गति उत्पन्न करके, शब्द उत्पन्न किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, मृदंग, बोल, घंटा, कुर्सी, किवाड़, कलम, थाली, गुता, हथौड़ी आदि। जब किसी पदार्थ पर दूसरा कोई पदार्थ आकर गिरता है भयवा किसी पदार्थ में वार वार गति उत्पन्न की जाती है, तब वायु में एक प्रकार की ठेस लगती है जो सब ओर कुछ दूर तक जाती है; और जहाँ कान या श्रवणेंद्रिय होती है, वहाँ वह उसे ग्रहण करके मस्तिष्क को उसकी सूचना देती है। वायु तो शब्द का वहन करती ही है, पर इसके अतिरिक्त और अनेक प्रकार की गैसों, जल तथा अनेक लघुजिं डोस पदार्थों भी शब्द वहन करते हैं। पर इनमें से मुख्य वाहक वायु ही है। तो भी वायु की अपेक्षा जल में शब्द बहुत अधिक दूर तक जाता है। जिस स्थान में वायु विकसल नहीं होती, वहाँ शब्द का वहन भी किसी मंदार नहीं हो सकता। वायु की अपेक्षा जल में शब्द की गति और भी अधिक होती है। शब्द हलका या धीमा भी होता है; और भारी या तेज भी। यदि वायु में कंप बहुत अधिक होता है, तो शब्द भी तेज या ऊँचा होता है। यदि वायु या शब्द के वाहक दूसरे साधन का घनत्व कम हो, तो भी शब्द हलका या धीमा हो जाता है। इसके अतिरिक्त दूरी भी शब्द की हलका या धीमा कर देती है। प्रकाश की भाँति शब्द का भी परावर्तन होता है। अर्थात् शब्द एक स्थान से उत्पन्न होकर किसी ओर जाता है, और मार्ग में अथवा पात्र फिर पीछे की ओर कोट जाता है। पहाड़ के नीचे या गुँववाँ आदि में शोकने के समय शब्द की जो गूँव या प्रतिध्वनि होती है, वह इसी परावर्तन के कारण होती है। यदि वातावरण का तापमान ३२° हो तो शब्द की गति प्रति सेकेंड ११२५ फुट या प्रति मिनट प्रायः १२ मील होती है। यदि प्रायः एक ही तरह के बहुत से शब्द लगातार रह रहकर हों, तो उनसे "शोर" पैदा होता है।

शब्द के दो मुख्य भेद होते हैं—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। ध्वन्यात्मक शब्द वह है जो कंठ और तालु आदि की सहायता से उत्पन्न होता है। इसके भी दो भेद हैं—ध्वक और अध्वक। जो शब्द सुनने में स्पष्ट हो और जिसका कोई अर्थ हो वह ध्वक कहलाता है। [दे० "शब्द" (२)] और जो शब्द स्पष्ट सुनाई न दे और जिसका कोई अर्थ न हो, वह अध्वक कहलाता है। जैसे,—हा, ऊँ, कौं। वर्णात्मक शब्द के अतिरिक्त और जितने प्रकार के शब्द होते हैं, वे ध्वन्यात्मक कहलाते हैं। जैसे, मृदंग या घंटे आदि से भयवा जोर से हवा चलने के कारण उत्पन्न होनेवाला शब्द। मीमांसकार ने शब्द को नियम और साक्ष्यकार ने उसे भाकास का गुण माना है। वि० दे० "ध्वनि"

पर्याय—निनाद। रव। नियॉप। नाद। घोष। निनद। ध्वान। स्वान। निहाँद। आवाव। राव।

(२) वह स्वतंत्र, व्यक्त और सापेक्ष ध्वनि जो एक या अधिक वर्णों के संयोग से, कंठ और तालु आदि के द्वारा, उत्पन्न हो और जिससे सुननेवाले को किसी पदार्थ, कार्य या भाव आदि का बोध हो। लक्षण। जैसे,—सैं, क्या, सीना, पोदा, मोटाई, काला आदि। (३) अमृतोपनिषद् के अनुसार "ओद्देश्य" जो परमात्मा का मुख्य नाम है। (४) किसी साधु या महामाता के बनाए हुए पद या गीत आदि। जैसे,—गुरु नामक के शब्द, कबीर के शब्द।

शब्द-ग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कान, जिससे शब्द का ग्रहण होता है। (२) एक प्रकार का कार्वाणिक वाण।

वि० शब्द को ग्रहण करनेवाला।

शब्द-चातुर्य्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्दों के प्रयोग करने की चतुरता। बोल बाल की प्रवीणता। वाग्मिता।

शब्द-चासि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का शृंग।

शब्द-चित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनुप्रास नामक अलंकार।

शब्द-त्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्द का भाव या धर्म। शब्दता।

शब्द-नृत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का नृत्य।

शब्द-पति-संज्ञा पुं० [ सं० ] नाम मात्र का नेता। वह नेता जिसके अनुयायी न हों।

शब्द-प्रमाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह प्रमाण जो किसी के केवल शब्दों या कथन के ही आधार पर हो। भास या विशास-प्राप्त पुरुष की बात जो प्रमाण स्वरूप मानी जाती हो। वि० दे० "प्रमाण"।

शब्द-प्राश-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्द के अर्थों का अनुसंधान। शब्दार्थ की जिज्ञासा।

शब्द-विरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह विरोध जो वास्तविक या भाव में न हो, बल्कि केवल शब्दों में जान पड़ता हो।

शब्दबोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाब्दिक साक्षी द्वारा प्राप्त ज्ञान । वह ज्ञान जो जयानी गयाही से प्राप्त हो ।

शब्दधारा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेद जो अपौरुषेय और ईश्वर का कहा हुआ माना जाता है ।

शब्दभेदी-संज्ञा पुं० दे० "शब्दवेधी" ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मुद्रा । मलहर ।

शब्दमहेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव । ( कहते हैं कि पाणिनि को व्याकरण का भाषित शिव ने ही किया था; इसी से उनका यह नाम पड़ा । )

शब्दमाला-संज्ञा पुं० [ सं० ] पोछा बाँस ।

शब्दयोनि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जड़ । मूल । (२) शब्द की उत्पत्ति । (३) वह शब्द जो अपने मूल अथवा प्रारंभिक रूप में हो ।

शब्दरोचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की घास ।

शब्दविद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्याकरण । शब्दशास्त्र ।

शब्दवेधी-संज्ञा पुं० [ सं० शब्दवेधिन् ] (१) वह मनुष्य जो भाँवों से बिना देखे हुए केवल शब्द से दिशा का ज्ञान करके किसी व्यक्ति या वस्तु को वाण से मारता हो !

विशेष-हमारे यहाँ प्राचीन काल में ऐसे धनुर्धर हुआ करते थे जो भाँवों पर पट्टी बंधकर किसी व्यक्ति का शब्द सुनकर या लक्ष्य पर की हुई टंकार सुनकर ही यह समझ लेते थे कि वह व्यक्ति अथवा वस्तु अमुक ओर है; और तब ठीक उसी पर वाण चलाते थे ।

(२) अर्जुन । (३) दशरथ ।

शब्दशक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शब्द की यह शक्ति जिसके द्वारा उसका कोई विशेष भाव प्रदर्शित होता है ।

विशेष-जब शब्द किसी वाक्य या वाक्यांश का अंग होता है, तब इसका अर्थ या तो साधारण और या वाक्य के तात्पर्य के अनुसार और अपने साधारण अर्थ से कुछ भिन्न होता है । उसकी जिस शक्ति के अनुसार वह साधारण या उससे कुछ भिन्न अर्थ प्रकट होता है, वह शब्दशक्ति कहलाती है । यह शब्दशक्ति तीन प्रकार की मानी गई है-अभिधा, लक्षणा और व्यंजना । (दे० ये तनों शब्द) इन तीनों से प्रकट होनेवाले अर्थ क्रमशः वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य तथा इन्हें प्रकट करनेवाले शब्द वाचक, लक्षक और व्यंजक कहलाते हैं ।

शब्दशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह शास्त्र जिसमें भाषा के भिन्न भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाय । व्याकरण ।

शब्दश्लेष-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शब्द जो दो या अधिक अर्थों में प्रयुक्त किया जाय ।

शब्दसंभव-संज्ञा पुं० [ सं० ] वायु जो शब्द की उत्पत्ति का कारण है; अथवा जिससे शब्द का अस्तित्व संभव होता है ।

शब्दसाधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याकरण का वह अंग जिसमें शब्दों की व्युत्पत्ति, भेद और रूपांतर आदि का विवेचन होता है । शब्दों के संज्ञा, क्रिया, विरोधण, क्रिया विरोधण, सर्वनाम आदि जो भेद होते हैं, वे भी इसी के अंतर्गत हैं ।

शब्दसौंदर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्दों के उच्चारण की सुगमता ।

शब्दसौष्टव-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी लेख या लेखी आदि में प्रयुक्त किए हुए शब्दों की कोमलता या सुंदरता ।

शब्दहीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्दों का वह रूप या प्रयोग जिसे आचार्यों ने न प्रयुक्त किया हो ।

शब्दाक्षर-संज्ञा पुं० [ सं० ] ध्वनिपूर्वक उच्चरित 'ओश्म्' शब्द ।

शब्दास्त्रवेद्य-वि० [ सं० ] जोर से या चिल्लाकर कहा जानेवाला शब्द ।

शब्दाडंबर-संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़े बड़े शब्दों का ऐसा प्रयोग जिसमें भाव की बहुत ही न्यूनता हो । केवल शब्दों की गढ़ावट से खड़ा किया जानेवाला आडंबर । शब्दमाल ।

शब्दाढ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] कौंसा नाम की धातु ।

शब्दातिग-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

शब्दातीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शब्द से परे हो; अर्थात् ईश्वर ।

शब्दाविष्टान-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्ण । कान ।

शब्दाध्याहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाक्य को पूरा करने के लिये उसमें अपनी ओर से और शब्द जोड़ना ।

शब्दानुशासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याकरण ।

शब्दालंकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] सारिथ में वह अलंकार जिसमें केवल शब्दों या वर्णों के विन्यास से भाषा में लाजिय उत्पन्न किया जाय । जैसे-अनुमास आदि ।

शब्देंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कान ।

शम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शांति । (२) मोक्ष । (३) हस्त । हाथ । (४) उपकरण । (५) अंतःकरण तथा अंतर् इन्द्रिय को बश में करना । (६) बाह्य इन्द्रियों का निग्रह । (७) निवृत्ति । (८) साहित्य में शांत रस का स्थायी भाव । (९) दाम । (१०) तिरस्कार ।

शमद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का वृत्त या शहवृत्त । (२) गंभीर नामक शाक ।

शमता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शम का भाव या धर्म । शान्त ।

शमथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शांति । (२) मंत्री ।

शमन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ के लिये होनेवाला पशुओं का बलिदान । (२) यम । (३) एक प्रकार का सुग । (४) हिंसा । (५) शांति । (६) दमन । जैसे-रोग का शमन । (७) अथ । (८) मटर । (९) वह ओषधि जो वातादि दोषों को घमन, विरेचनादि द्वारा दूर करे । जैसे गिलोय । (१०) तिरस्कार । (११) भाषा । चोट । (१२) वैद्यक में एक

प्रकार का धूपान जिसमें इलायची, तगर, कुड़ा, जटा-मासी, गंधवृण, दाड़चीनी, तेजपत्ता, नागकेसर, नसी, सरल, बाटा, शिलास आदि कई ओषधियों का धूम्र भी या सटक आदि के द्वारा पीते हैं। इससे पात आदि दोषों का नाश होना माना जाता है। (१३) एक प्रकार का वस्ति कर्म जो मोथा और रसांजन आदि मिले हुए दूध से किया जाता है। (१४) रात्रि। रात।

शमनवस्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वस्ति कर्म जिसमें पूरु विरंगु, मुलेठी, नागरमोया और रसौत के दूध में पीसकर मलद्वार से विचकारी देते हैं।

शमनवस्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० शमनवस्ति ] यम की भगिनी अर्थात् यमुना।

शमनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रात। रात्रि।

शमनीय-वि० [ सं० ] शमन करने योग्य। दवाने या शांत करने योग्य।

शमनीपद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] निशाचर। राक्षस।

शमल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्या। गुण। (२) पा। गुणाह।

शमशम-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।

शमशेर-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यह हथियार जो शेर की पूँछ अथवा नख के समान हो, अर्थात् तलवार, खड्ग आदि। (२) तलवार।

शमांतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव।

शमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० शमन् ] (१) शोभा। (२) शोभा या वर्षा की पानी हुई वर्षा जो जलाने के काम में आती है। शोभयत्ती।

शो—शामादान।

शमादान-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह आहार जिसमें मोम की बत्ती लगाकर जलाते हैं। यह प्रायः धानु का बना हुआ और अनेक आकार प्रकार का होता है।

शमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तिथी धान्य (मूँग, मसूर, मोठ, उदद, चना, भारहर, मटर, कुडथी, डोविया इत्यादि)। (२) सफेद कीचर। वि० दे० "शमी"।

संज्ञा पुं० (१) भागवत के अनुसार उशीर के एक पुत्र का नाम। (२) यज्ञ।

शमिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शमिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शमी वृक्ष।

शमिज-संज्ञा पुं० [ सं० ] छाड़ कुडथी।

शमिजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छाड़ कुडथी। (२) तिथी धान्य।

शमित-वि० (१) जिसका शमन किया गया हो। (२) शांत। टहरा हुआ।

शमिपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पानी में होनेवाली लज्जालू नाम की लता।

शमिपत्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "शमिपत्र"।

शमिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शमी वृक्ष। (२) बकुची। सोम-राजी।

शमिरोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। माहादेव।

शमिला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चमेडी की जाति का एक प्रकार का पौधा।

शमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिवा ? ] एक प्रकार का यज्ञ जो पंजाब, सिंध, राजपूताना, गुजरात और दक्षिण के प्रांतों में पाया जाता है। इसे चारों में भी लगाते हैं। इसका वृक्ष ३०-४० फुट तक ऊँचा होता है; परंतु सिंध में यह ६० फुट का भी होता है। इसकी शाखें पतली, चाकी रंग की, चिचिदार और भूमि की ओर लटकती हुई होती हैं। इसकी जड़ कहीं कहीं ६० फुट तक भूमि के भीतर भीचे चली जाती है और चारों ओर बहुत दूर तक बसती है, जिससे नष्ट कंदुर निकलकर और पौधे उग्न होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। इसके वृक्ष पर कौटे होते हैं। बालियों पर विषमवर्षा सींके रहते हैं। इन सींकों पर ७ से १२ जोड़े तक छोटे छोटे पत्ते रहते हैं। शाखों के अंत में ३-४ इंच लंबे सींकों पर नन्हे नन्हे पीले तथा गुलाबी रंग के फूल भाते हैं। फलियाँ ५ से १० इंच तक लंबी और चिपटी होती हैं। प्रायः फली में १०-१५ बीज रहते हैं जो अंडाकार और भूरे रंग के होते हैं। इसकी छाल और फलियाँ ओषधि के काम में आती हैं। लोग इसकी फलियों का साग और अचार बनाकर खाते हैं। दुर्मिक्ष के समय इसकी छाल के भाटे की रोटी बनाकर भी खाई जाती है। इसका मस बुद्धि, केश तथा नर्वों का नाश करनेवाला होता है। अतिसार में इसका कड़ा लाभदायक होता है। गठिया पर इसकी छाल पीसकर गरम करके लगाने से लाभ होता है। लोग विजया दशमी आदि कुछ विशिष्ट अवसरों पर इसका पूजन भी करते हैं। सफेद कीचर। छिडुर। छोंकर।

पय्यां—शकुफला। शिवा। केदारहीन। शुभदा। पवित्रा। पापनाशिनी।

वि० [ सं० शमिन् ] शांत।

शमीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रसिद्ध क्षमाशील ऋषि का नाम। कहते हैं कि परीक्षित ने इनके गले में एक बार मारा हुआ साँप डाल दिया, परंतु ये कुछ न बोले। इनके लड़के झूंगी ऋषि ने अपने पिता की दुर्दशा देखकर मुक्त हो वापस दिया कि आज के सातवें दिन मेरे पिता के गले में साँप डालनेवाले को तपस्क रसेगा। कहा जाता है कि इसी क्षण के द्वारा तपस्क के काटने से राजा परीक्षित की मृत्यु हुई थी।

शमीगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) माहाग्न। (२) अग्नि।

शरद्वसु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
 शरद्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम जो  
 जलद्वीप भी कहलाता है ।  
 शरधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक देव  
 का नाम । (२) इस देव का निवासी ।  
 शरधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] तीर रखने का चोंगा । तूणीर । तरकवा ।  
 शरपंख-संज्ञा पुं० [ सं० ] जवासा । हिणुमा । धमासा ।  
 शरपट्टा-संज्ञा पुं० [ सं० शर + टि० पट्टा ] एक प्रकार का ढाण ।  
 उ०—असिधार मिडिपाल शरपट्टा ।—गिरिधर ।  
 शरपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पौधा ।  
 शरपुंज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नील की तरह का एक  
 प्रकार का पौधा । सरफोका । (२) घाग या तीर में लगा  
 हुआ पंज । (३) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का यंत्र ।  
 शरवत्-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) पाने की मीठी वस्तु । रस । (२)  
 चीनी आदि में पका हुआ किसी भोपधि का अर्क जो दवा  
 के काम में आता है । जैसे,—शरवत् वनफला, शरवत्  
 अनार । (३) पानी में छोड़ी हुई चाकर या खोंड़ । (४)  
 मुसलमनों की एक रस्म जो विवाह के पश्चात् शरवत् पिटा  
 कर पूरी की जाती है और उसके पदके में वधू के पक्षवालों  
 को कुछ धन दिया जाता है । (५) सगाई की रस्म ।  
 ( मुसल० )  
 शरवत् पिलाई-संज्ञा स्त्री० [ हि० शरवत् + पिलाना ] वह धन जो  
 घर और कन्या पक्ष के लोग एक दूसरे को शरवत् पिटाकर  
 देते हैं । ( मुसल० )  
 शरवती-संज्ञा पुं० [ हि० शरवत् + ई ( प्रत्य० ) ] (१) एक प्रकार  
 का हल्का पीला रंग जिसमें साधारण छाछी भी होती है ।  
 यह प्रायः हरसिंगार के फूल और दाहाव मिलाकर बनाया  
 जाता है । (२) एक प्रकार का नगीना जो पीलापन छिप  
 छाल रंग का होता है । (३) एक प्रकार का नीवू जिसे  
 मीठा भी कहते हैं । ज्वर में खोग प्रायः इसका रस चूसते  
 हैं । चकोतरा । मुधुकंठी । (४) एक प्रकार का बड़िया  
 कपड़ा जो तमजेव से कुछ मोटा और अच्छी से कुछ पतला  
 होता है । (५) एक प्रकार का फालसा जो वड़ा और मीठा  
 होता है ।  
 वि० रसीला । रसदार । रस भरा हुआ ।  
 शरवती नीवू-संज्ञा पुं० [ हि० शरवत् + नीवू ] (१) चकोतरा ।  
 (२) गलगल । (३) बंभीरी नीवू । मीठा नीवू ।  
 शरधान-संज्ञा पुं० [ सं० शर + धान ] श्रुतुण । भगिया घास ।  
 शरधीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सरपत्ते के बीज । चाहरु । (२)  
 भद्रसुंज ।  
 शरमीं-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन महर्षि जो दक्षिण में रहते  
 थे । धनवास के समय रामर्षद्व द्वनके वर्शन करने गए थे ।

शरभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राम की सेना का एक यूथपति  
 बंदर । उ०—ऋषभ शरभ अरु नील गवाक्षहु गंधमादन  
 हू पाँचो ।—शुभ्राज । (२) टिड्डी । (३) हाथी का बंधा ।  
 (४) विष्णु । (५) ऊँट । (६) एक प्रकार का पक्षी । (७)  
 आठ पैरोंवाला एक कल्पित सृग । कहते हैं कि यह सिंह  
 से भी अधिक बलवान् होता है । (८) एक वृत्त का नाम  
 जिसके प्रत्येक चरण में ४ नगण और १ सगण होता है ।  
 इसे 'सप्तिकला' और 'मणिगुण' भी कहते हैं । (९) बंदे  
 का एक भेद जिसमें बीस गुरु और आठ लघु मात्राएँ होती  
 हैं । (१०) शेर । सिंह । (११) दनुज के एक पुत्र का नाम ।  
 (१२) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम ।  
 शरभता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शरभ का मान या धर्म । शरभत्व ।  
 शरमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्रुक् भवयर्षोवाली और विवाह  
 के अथोय कन्या । (२) एकद्वी का एक प्रकार का यंत्र ।  
 शरभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] कांसिकेय ।  
 शरभेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक शिवलिंग का नाम ।  
 शरभ-संज्ञा स्त्री० [ सं० शरभ ] (१) उज्जवा । हया । गौतम ।  
 कि० प्र०—भाना ।—करना ।—रखना ।—होना ।  
 मुहा०—शरभ से गदना = भारे हज़ा के देने या लुके बाग ।  
 बहुत लजित होना । शरभ से पानी पानी होना = बहुत लजित  
 होना ।  
 (२) लिहाज । संकोच । (३) प्रतिष्ठा । इज्जत ।  
 मुहा०—शरभ रखना = बहुत रखना । लान रखना । शरभ  
 रहना = प्रतिष्ठा रहना । भार रहना ।  
 शरभल्ल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शारिका पक्षी । मैना । (२) वह  
 जो तीर चढ़ाने में निपुण हो । धनुर्वारी ।  
 शरभसार-वि० [ सं० शरभसार ] (१) जिसे शरभ हो ।  
 उज्जवाला । (२) लजित । शरमिदा ।  
 शरभ हजुरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शरभ + हजुर ] ऐसी उज्जवा  
 या शरभत्व जो वास्तविक न हो, केवल किसी के सामने  
 आ जाने से उत्पन्न हो । मुँह देवे की लाज ।  
 शरभसारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शरभसारी ] उज्जवा । शरमिदगी ।  
 संज्ञा पुं० वह जो वास्तव में उज्जवा या शरभत्व न करता हो,  
 केवल किसी के सामने आ जाने पर उज्जवा या शरभत्व  
 करता हो । मुँह देवे की उज्जवा करनेवाला ।  
 शरमाऊ-वि० [ हि० शरम + भाऊ (प्रत्य०) ] जिसे बहुत उज्जवा  
 भाव्य होती हो ।  
 शरमाना-कि० प्र० [ सं० शरम ] लजित होना ।  
 मुहारे सामने  
 कि० सं० शरमिदा

शरमालू-वि० दे० "शरमाऊ" ।

शरमा शरमी-कि० वि० [ का० शर्म ] लज्जत के कारण । शर-मिदा होकर । जैसे,—आप शरमा शरमी साथ हो लिए हैं । शरमिदगी-संज्ञा स्त्री० [ का० ] शरमिदा या लज्जित होने का भाव या धर्म । नदामत । लाज । शैप ।

मुहा०—शरमिदगी ठठाना = क्या काम करना जिसमें लज्जित होना पड़े ।

शरमिदा-वि० [ का० ] जिसे शरम या लज्जा आई हो । लज्जित । शरमीला-वि० [ का० शर्म + रंला (भाव०) ] [ स्त्री० शरमीणी ] जिसे जल्दी शरम या लज्जा आवे । शरम करनेवाला । लज्जालु ।

शरयू-संज्ञा स्त्री० दे० "सरयू" ।

शरल-संज्ञा पुं० वि० दे० "सरल" ।

शरलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जल । पानी ।

शरलोमा-संज्ञा पुं० [ सं० शरलोमय ] एक प्राचीन ऋषि जिन्होंने कई ऋषियों के साथ भारद्वाज जी से आयुर्वेद संहिता रचने के लिये प्रार्थना की थी ।

शरयनोद्भव-संज्ञा पुं० [ सं० ] कात्तिशेय ।

शरपाणि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शर का अगला भाग । तीर का फल । संज्ञा पुं० (१) वह जो शर धकाकर जीविका निर्वाह करता हो । तीर धकानेवाला सिपाही । (२) पैदल सिपाही ।

शरवारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] डाल जिससे तीरों की चौटार रोकनी जाती है ।

शरव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिस पर शर का संधान किया जाय । वह जो तीर का निशाना पनाया जाय । लक्ष्य ।

शरस्तंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन स्थान का नाम । (२) एक प्राचीन प्रकार का ऋषि का नाम ।

शरह-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) वह कथन या वर्णन जो किसी बात को स्पष्ट करने के लिये किया जाय । (२) टीका । भाष्य । व्याख्या । (३) दर । भाव । (४) दे० "शरह छापान" ।

शरह लगान-संज्ञा स्त्री० [ म० शरह + हि० लगान ] भूकर की दर । जमीन की पट्टी । विषयी ।

शरा-संज्ञा स्त्री० दे० "शरभ" ।

शराकत-संज्ञा स्त्री० [ का० ] (१) शरीक या सम्मिलित होने का भाव । (२) साक्षा । हिस्सेदारी ।

शराटि, शराङ्गि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] टिडिहरी ।

शराटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) टिडिहरी । (२) लज्जालुक । लज्जालु । लाजवन्ती ।

शरार्थी-संज्ञा पुं० दे० "शरसू" ।

शराफा-संज्ञा पुं० दे० "शराफ" ।

शराफू-संज्ञा पुं० दे० "शराफू" ।

शराफूत-संज्ञा स्त्री० [ म० ] शरीक या सज्जन होने का भाव । भलमनसी । सज्जनता ।

शराफा-संज्ञा पुं० दे० "शराफा" ।

शराफी-संज्ञा स्त्री० दे० "शराफी" ।

शराब-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) मदिरा । सुरा । वारणी । मय । दारू । वि० दे० "मदिरा" ।

हि० प्र०—शौचनद ।—वालना ।—पिलाना ।—पीना ।

(२) दकौमों की परिभाषा में, शरबत । जैसे,—शराब बनशरा ।

शरायखाना-संज्ञा पुं० [ म० शराय + का० खाना ] शराय बनने तथा तथा बिकने की जगह । वह स्थान जहाँ शराय मिलती हो ।

शरायखोरी-संज्ञा स्त्री० [ का० ] (१) शराय पीने का हृत्प । मदिरा पान । (२) शराय पीने की हत ।

शरायखवार-संज्ञा पुं० [ का० ] वह जो शराय पीता हो । मदिरा पीनेवाला । मद्यप । शराबी ।

शरायी-संज्ञा पुं० [ हि० शराय + ई (भाव०) ] वह जो शराय पीता हो । शराय पीनेवाला । मद्यप ।

शरायोर-वि० [ का० ] जल आदि से विच्छेद भोगा हुआ । लघपप । तरबतर । जैसे,—रंग से शरायोर, पानी से शरायोर ।

शरारत-संज्ञा स्त्री० [ म० ] शरीर या पात्री होने का भाव । पात्रीपन । दुष्टता । बर्माशी । नटखटी ।

शरारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राम की सेना का एक गृहपति यंदा । (२) दे० "शरारिमुख" ।

शरारिमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] टिडिहरी नाम की छोटी चिड़िया जो जलदायों के पास रहती है ।

शरारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] टिडिहरी नाम की छोटी चिड़िया ।

शरारोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] घनुप जिस पर शर चढ़ाया जाता है । कमान ।

शराली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] टिडिहरी नाम की छोटी चिड़िया ।

शराय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मिट्टी का एक प्रकार का पुरवा । कुवहद । (२) वैद्यक में एक प्रकार का परिमाण या लौक जो चौंसठ तोले का एक सेर की होती है । (वैद्यक में सेर चौंसठ तोले का ही माना जाता है ।)

शरायती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक नदी जो भाज कल पाण गंगा कहलाती है । (२) एक प्राचीन नगरी जो लव की राजधानी थी ।

शरायर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शाल । (२) कवच । धर्म ।

शरायरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] डाल जिससे तीर का वार रोकते हैं ।

शरायाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] घनुप । कमान ।

शरद्वसु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
 शरद्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुराणानुसार एक द्वीप का नाम जो  
 जलद्वीप भी कहलाता है ।  
 शरधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्वदसंहिता के अनुसार एक देव  
 का नाम । (२) इस देव का निवासी ।  
 शरधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] तीर रखने का चोंगा । तृणीर । तरकवा ।  
 शरपंख-संज्ञा पुं० [ सं० ] जवासा । हिंगुआ । धमासा ।  
 शरपट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० रा + हि० पट्टा ] एक प्रकार का शष्प ।  
 उ०—असितार भिदिपाळ शरपट्टा ।—गिरिधर ।  
 शरपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पौधा ।  
 शरपुंख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नील की तरह का एक  
 प्रकार का पौधा । सरकोष्ठा । (२) वाण या तीर में लगा  
 हुआ पंख । (३) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का यंत्र ।  
 शरयत-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) पीने की मीठी वस्तु । रस । (२)  
 चीनी आदि में पका हुआ किसी भोपधि का भर्क जो दूध  
 के काम में आता है । जैसे,—शरयत बनकवा, शरयत  
 बनार । (३) पानी में घोली हुई चाकर या खाँड़ । (४)  
 सुसलमार्गों की एक रस जो विवाह के पश्चात् शरयत पिना  
 कर पूरी की जाती है और इसके बदले में धूप के पक्षवालों  
 को कुछ धन दिया जाता है । (६) सगाई की रस ।  
 (मुसल०)  
 शरयत पिनाई-संज्ञा स्त्री० [ हि० शरयत + पिना ] वह धन जो  
 घर और कन्या पक्ष के लोग एक दूसरे को शरयत पिनाकर  
 देते हैं । (मुसल०)  
 शरयती-संज्ञा पुं० [ हि० शरयत + ई (प्रत्य०) ] (१) एक प्रकार  
 का हल्का पीला रंग जिसमें साधारण छाछी भी होती है ।  
 यह प्रायः हरसिंगार के फूल और शहाब मिलाकर बनाया  
 जाता है । (२) एक प्रकार का नगीना जो पीलापन लिए  
 छाल रंग का होता है । (३) एक प्रकार का नीबू जिसे  
 मीठा भी कहते हैं । ज्वर में लोग प्रायः इसका रस चूसते  
 हैं । चकोतरा । मुधुकंठी । (४) एक प्रकार का यक्षिया  
 कपड़ा जो तमजेव से कुछ मोटा और अच्छी से कुछ पतला  
 होता है । (५) एक प्रकार का फालसा जो बड़ा और मीठा  
 होता है ।  
 वि० रसीला । रसदार । रस भरा हुआ ।  
 शरयती नीबू-संज्ञा पुं० [ हि० शरयत + नीबू ] (१) चकोतरा ।  
 (२) गलगल । (३) जंबीरी नीबू । मीठा नीबू ।  
 शरयान-संज्ञा पुं० [ सं० रा + यान ] भूगुण । भगिवा घास ।  
 शरयौज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सरपत्ते के यौज । चारक । (२)  
 मधुसुंज ।  
 शरभंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन महर्षि जो दक्षिण में रहते  
 थे । धनवास के समय रामचंद्र इनके वंशान कराने गए थे ।

शरभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राम की सेना का एक वृषपति  
 यंदर । उ०—कथम शरभ अरु नील गवाशहूँ नैवमादन  
 हूँ पाँचो ।—रघुराज । (२) टिठ्ठी । (३) हाथी का बच्चा ।  
 (४) विष्णु । (५) ऊँट । (६) एक प्रकार का पक्षी । (७)  
 भाट परीवाला एक कल्पित शृंग । कहते हैं कि यह सिंह  
 से भी अधिक बलवान् होता है । (८) एक वृक्ष का नाम  
 जिसके प्रत्येक चरण में ४ नगण और १ सगण होता है ।  
 इसे 'शसिकला' और 'मणिगुण' भी कहते हैं । (९) बोहे  
 का एक भेद जिसमें बीस गुरु और भाट छपु मात्राएँ होती  
 हैं । (१०) दोर । सिंह । (११) दनुज के एक पुत्र का नाम ।  
 (१२) महाभारत के अनुसार एक नाम का नाम ।  
 शरभता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शरभ का भाव या धर्म । शरभार ।  
 शरभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शुक भवयबोधाधी और विवाह  
 के अयोग्य कन्या । (२) सक्की का एक प्रकार का यंत्र ।  
 शरभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] काश्मिरेय ।  
 शरभेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दिग्यलिंग का नाम ।  
 शरभ-संज्ञा स्त्री० [ सं० शर्म ] (१) रज्जवा । हया । गूँत ।  
 कि० प्र०—भाना ।—करना ।—रखना ।—होना ।  
 मुहा०—शरभ से गदना = मारे रज्जवा के दबे या कुंके बाग ।  
 बहुत लज्जित होना । शरभ से पानी पानी होना = बहुत लज्जित  
 होना ।  
 (२) लिहाज । संकोच । (३) प्रतिष्ठा । हज्जत ।  
 मुहा०—शरभ रखना = शज्जत रखना । लाग रखना । शरभ  
 रहना = प्रतिष्ठा रहना । भावक रहना ।  
 शरभल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शारिका पक्षी । मैना । (२) वह  
 जो तीर चलाने में निपुण हो । घनुषारी ।  
 शरभलार-वि० [ सं० शर्मलार ] (१) जिसे शरभ हो ।  
 लज्जयाला । (२) लज्जित । शरमिदा ।  
 शरभ हुजुरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शर्म + का० हुजूर ] ऐसी लज्जा  
 या शरभत्व जो वास्तविक न हो, केवल किसी के सामने  
 आ जाने से उत्पन्न हो । मुँह देखे की लज्जा ।  
 शरभसारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शर्मसारी ] लज्जा । शरमिदारी ।  
 संज्ञा पुं० वह जो वास्तव में लज्जा या शरभत्व न करता हो,  
 केवल किसी के सामने आ जाने पर लज्जा या शरभत्व  
 करता हो । मुँह देखे की लज्जा करनेवाला ।  
 शरमाऊँ-वि० [ हि० शरम + आऊँ (प्रत्य०) ] जिसे बहुत लज्जा  
 मादर्य होती हो । शरमीला ।  
 शरमाना-कि० अ० [ सं० शर्म + आना (प्रत्य०) ] शर्मिदा होना ।  
 लज्जित होना । लाज करना । हया करना । जैसे,—वे  
 मुँहदेरे सामने शरमाते हैं ।  
 कि० सं० शर्मिदा करना । लज्जित करना । जैसे,—जब  
 उन्हें उपादा मत्त शरमाओ ।

शरीरपतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरीर का धीरे धीरे क्षीण होना । (२) मृत्यु । मीत ।

शरीरपाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर का धीरे धीरे क्षीण होना ।

शरीरपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] देह का अंत या नाश । शरीरगत । देहावसान । मृत्यु । मीत ।

शरीरभृत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो शरीर धारण किए हो । शारता । (२) विद्युत् । (३) जीवामा ।

शरीररक्षक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो राजा भादि के साथ उसके शरीर की रक्षा करने के लिये रहता हो । अंगरक्षक ।

शरीररथा -संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीरवाला । देहधारी ।

शरीरवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे पदार्थ जो शरीर का सौंदर्य बढ़ाने के लिये आवश्यक हों ।

शरीरवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जीवन निर्वाह करने की वृत्ति । जीविका ।

शरीरशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें शरीर के सब अवयवों, नसों, नादियों आदि का विवेचन होता है और जिससे यह जाना जाता है कि शरीर का कौन सा अंग कैसा है और क्या काम करता है । शरीर विज्ञान ।

शरीरशोधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह औषध जो कृत्रिम मल, पित्त तथा कफ को हटाकर ऊर्ध्व अथवा अधोभाग से निकाल दे ।

शरीर-संस्कार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गर्भाधान से लेकर अल्पेष्टि तक के मनुष्य के वैद-विधि सौलह संस्कार । (२) शरीर की शोभा तथा मार्जन ।

शरीरस्थ-विं० [ सं० ] (१) शरीर में रहनेवाला । (२) जीवित । जीता हुआ ।

शरीरगत-संज्ञा पुं० [ सं० ] देह का अंत अथवा नाश । मृत्यु । देहांत । मीत ।

शरीरार्पण-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी कार्य के निमित्त अपने शरीर को इस प्रकार लगा देना मानो उस पर अपना कोई स्वयं ही न हो । व०—कियो शरीरार्पण पर राजा । संतन सेवन कियो दुराजा ।—रघुराज ।

शरीरावच्छेद संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छात्र । चमदा । (२) धर्म । बाल । (३) शरीर को ढकने की कोई चीज ।

शरीरास्थि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर के अस्थि । हड्डी । दिव्य ।

शरीरी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर । (१) वह जो शरीर धारण किए हो । शरीरवाला । शरीरवात् । (२) आत्मा । जीव । (३) प्राणी । जीवधारी ।

शरीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] आम का पेड़ ।

शर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शीघ्र । गुस्सा । (२) वज्र । (३) माण । धीर । (४) आयुव । दाक्ष । इधियार । (५) हिंसा । हत्या । मार डालना । (६) वह जो हिंसा करता हो ।

हिंसक । (७) महाभारत के अनुसार एक गंधर्व का नाम । विं० (१) बहुत पतला । (२) जिसका भगला भग बहुत ही छोटा या मुट्टेला हो ।

शरेज-संज्ञा पुं० [ सं० ] कांसिपेय ।

शरेष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] आम । धात्र ।

छवि० दे० "श्रेष्ठ" ।

शर्कर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंकड़ । (२) घालू का कण । (३) जल में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का प्राणी । (४) पुराणानुसार एक देश का नाम । (५) इस देश का निवासी । (६) दे० "शर्करा" ।

शर्करक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मीठा नीचू । शरवती नीचू ।

शर्करकंद-संज्ञा पुं० दे० "शकरकंद" ।

शर्करजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चीनी ।

शर्करा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दाढ़र । चीनी । खॉद । (२) दाढ़ू का कण । (३) पपरी नामक रोग । (४) कंकड़ । (५) टीका । (६) पुराणानुसार एक देश का नाम जो कूर्मचक्र के पुत्र भाग में है । (७) एक प्रकार का रोग । इसमें त्रिदोष के कारण मांस, शिरा और रसायु में गाँठ उत्पन्न होती है । गाँठ के फूटने से दाहद, घी और चर्बी के समान पीव निकलता है ; और वायु के बढ़ने से अनेक गाँठें उत्पन्न होती हैं ।

शर्करात्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] चरक के अनुसार एक प्राचीन कृषि का नाम ।

शर्कराचल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार चीनी का यह पहाड़ जो दान करने के लिये लगाया जाता है ।

शर्कराधेनु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार चीनी की वह गौ जो दान करने के लिये बनाई जाती है ।

शर्कराप्रभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार एक नरक का नाम ।

शर्कराप्रमेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मूत्र का रंग मिट्टी का सा हो जाता है और उसके साथ शरीर की शर्करा निकलती है ।

शर्करावृद्ध-संज्ञा पुं० दे० "शर्करा" (०) ।

शर्करावन्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरवत् (७) ।

शर्करासप्तमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैशाख शुद्धा सप्तमी । पुराणानुसार इस दिन सुवर्णांध का पूजन किया जाता है और उनके आगे बड़े में चीनी भरकर रखी जाती है ।

शर्करासध-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मय वा शराब जो चीनी से तैयार की जाती है । चरक के अनुसार यह स्वादिष्ट सुगंधित, पाचक और वायु रोग नाशक है ।

शर्करासुरभि-संज्ञा पुं० दे० "शर्करासव" ।



शराविका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह कुंसी जो ऊपर से ऊँची और बीच में गहरी हो। (२) एक प्रकार का कोढ़।  
 शरासन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घनुप। कमान। चाप। (२) महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।  
 शरास्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] घनुप। कमान।  
 शरिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का मासाद।  
 शरिष्ठ-वि० दे० "श्रेष्ठ"। उ०—कन्या बहउ सुनी मतिमंता। जो शरिष्ठ सोई मम वंता।—सूयल।  
 शरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] द्रका या मोया नाम का वृण।  
 शरीभ्रत—संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) मुसलमानों के अनुसार यह पय जो परमात्मा ने अपने भक्तों के लिये निश्चित किया हो। (२) धर्म-शास्त्र। (मुसल०)  
 शरीक—वि० [ म० ] शामिल। सम्मिलित। मिटा हुआ।  
 संज्ञा पुं० (१) वह जो किसी बात में साथ रहता हो। साथी। (२) साक्षी। हिरसेदार। पट्टीदार। (३) सहायक। मददगार। (४) रिश्तेदार। संबंधी। (पश्चिम)  
 शरीफ—संज्ञा पुं० [ म० ] (१) उँचे घराने का व्यक्ति। कुलीन मनुष्य। (२) सभ्य पुरुष। भला मानुस। भला भादमी। (३) मक्के के प्रधान अधिकारी की उपाधि।  
 वि० पाक। पवित्र। जैसे,—मिर्जाज शरीफ। कुरान शरीफ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] शेरिफ ] कलकत्ते, बंगई और मद्रास में सरकार की ओर से नियुक्त किए जानेवाले एक प्रकार के अथैतिक अधिकारी जिनके सपुर्दे शान्ति-रक्षा तथा इसी प्रकार के और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगर के बड़े बड़े इँदूस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समय के लिये "शरीफ" बनाए जाते हैं। युरोप और अमेरिका आदि में भी इस प्रकार के अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं जिन्हें कुछ शासन संबंधी कार्य भी सौंपे जाते हैं। इनके अधिकार प्रायः मजिस्ट्रेटों से कुछ मिथसे जुलते होते हैं।  
 शरीफा—संज्ञा पुं० [ सं० ] फौज या सैनिक ] (१) मसौले आकार एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जो प्रायः सारे भारतवर्ष में फल के लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारत के जंगली देशों में बहुत अधिकता से पाया जाता है। कहते हैं कि यह वृक्ष येस्ट इंडीज़ से यहाँ आया है। इस वृक्ष की टाल पतली और खाकी रंग की, और लकड़ी कुछ मटमैलावग लिए सफ़ेद रंग की होती है। इसके पत्ते आमरूढ़ के फल के सदृश, बंटाकार तथा अनीदार होते हैं। इसमें एक प्रकार के ज़िदक फूल लगते हैं जो नीचे की ओर झुके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनाने के काम में आते हैं। यह वृक्ष गरमी के दिनों में फूलता है और कार्तिक अगहन में, इसमें आमरूढ़ के आकार के खाकी रंग के गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष चीजों से उगता है और

यहुत जल्दी बढ़कर फूलने फलने लगता है। इसके बीजे वा कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़कर दूसरे स्थान पर रोते जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियों का व्यवहार औषधों में होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीज में से एक प्रकार का तेल भी निकलता है और इसमें तीन तरह के गोंद भी लगते हैं। (२) इस वृक्ष का फल जो आमरूढ़ के सदृश गोल और खाकी रंग का होता है। इसके तल पर अर्बिल के आकार के बड़े बड़े दाने होते हैं जिनके अंदर सफ़ेद गूदे में लिपटे हुए काले खंबोरे बंधे होते हैं। इसका चूड़ा बहुत मीठा होता है; और इसी के लिये यह फल खाया जाता है। अकाल के दिनों में गरीब लोग प्रायः जंगली शरीफ के फल खाकर विरोग करते हैं। पैचक में इसे मधुर, हृदय के लिये हितकारी, पल्लवर्द्धक, वातकारक, शक्तिवर्द्धक, वृषिकारक, मांसवर्द्धक और दाह, पित्त, रक्त-पित्त, प्यास, धमन, खंभर-विषाद आदि के लिये लाभदायक माना है। श्रीफल। सीताफल। रामसीता।

शरीर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मनुष्य या पशु आदि के समस्त अंगों की समष्टि। सिर से पैर तक के सब अंगों का समूह। देह। सन। यदन। जिंस।

विशेष—"शरीर" शब्द से प्रायः आत्मा से भिन्न और सब अंगों या अवयवों का ही भाव प्रदण किया जाता है। पर हमारे यहाँ शास्त्रों में शरीर के दो भेद किए गए हैं—सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर। बुद्धि, अहंकार, मन, पंचों ज्ञानेंद्रियों, पंचों कर्मेंद्रियों और पंच तन्मात्र के समूह को सूक्ष्म या लिंग शरीर कहते हैं। और हाथ, पैर, मुँह, सिर, पेट, पीठ आदि अंगों का समूह स्थूल शरीर कहलाता है। इसी स्थूल शरीर में सूक्ष्म या लिंग शरीर का वास होता है। कहते हैं कि जब जीव मर जाता है, तब उसका सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर उसके स्थूल शरीर में से निकरकर परलोक को जाता है।

पृथ्वी—कलेवर। गात्र। विग्रह। काय। मूर्ति। गनु। क्षेत्र। पिंड। स्कंध। पंजर। करण। बंध। मुद्गाल।

वि० [ म० ] [ संज्ञा शरात ] पाजो। हुष्ट। नरखट।

शरीरवर्द्धक—संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीरवर्द्धक ] शरीर को बनानेवाला, परमेधर। सृष्टिकर्ता।

शरीररक्षक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रोग। बीमारी। (२) कामदेव।

(३) पुत्र। लड़का। वंश।

वि० शरीर से उत्पन्न।

शरीरता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शरीर का भाव या धर्म।

शरीररत्याग—संज्ञा पुं० [ सं० ] मृत्यु। मौत।

शरीरत्व—संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर का भाव या धर्म। शरीरता।

शरीरपतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरीर का धीरे धीरे क्षीण होना । (२) मृत्यु । मौत ।  
 शरीरपाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर का धीरे धीरे क्षीण होना ।  
 शरीरपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] देह का भंग या नाश । शरीरांत । देहावसान । मृत्यु । मौत ।  
 शरीरभृत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो शरीर धारण किए हो । शरीर । (२) विष्णु । (३) जीवात्मा ।  
 शरीररक्षक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो राजा आदि के साथ उसके शरीर की रक्षा करने के लिये रहता हो । अंगरक्षक ।  
 शरीररथा-संज्ञा पुं० [ सं० शरीररथ ] शरीरवाहक । देहधारी ।  
 शरीरसुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे पदार्थ जो शरीर का सौंदर्य बढ़ाने के लिये आवश्यक हों ।  
 शरीरसुत्त-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शीघ्र निवर्तन करने की वृत्ति । जीविका ।  
 शरीर शास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें शरीर के सब अवयवों, नसों, नाड़ियों आदि का विवेचन होता है और जिससे यह जाना जाता है कि शरीर का कौन सा अंग कैसा है और क्या काम करता है । शरीर विज्ञान ।  
 शरीरशोधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह औषध जो कुण्ठित मल, पित्त तथा कफ को हटाकर जड़त्व अथवा अधोमार्ग से निकाल दे ।  
 शरीर-संस्कार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक के मनुष्य के वैद-विहित सोलह संस्कार । (२) शरीर की शोभा तथा मार्जन ।  
 शरीररक्ष-वि० [ सं० ] (१) शरीर में रहनेवाला । (२) जीवित । जीता हुआ ।  
 शरीरांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] देह का भंग अथवा नाश । मृत्यु । देहांत । मौत ।  
 शरीरार्पण-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी कार्य के निमित्त अपने शरीर को इस प्रकार लगा देना मानो उस पर अपना कोई स्वत्व ही न हो । उ०—क्रियो शरीरार्पण पर काज । संतन सेचन कियो दरमिः ।—रघुनाथ ।  
 शरीरारवत् संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खाल । धमका । (२) धर्म । बाल । (३) शरीर को ढकने की कोई चीज ।  
 शरीरारसि-संज्ञा पुं० [ सं० शरीर + रसि ] कंकाळ । पिंजर ।  
 शरीरी-संज्ञा पुं० [ सं० शरीरि ] (१) वह जो शरीर धारण किए हो । शरीरवाहक । शरीरवाह । (२) आत्मा । जीव । (३) प्राणी । जीवधारी ।  
 शरीष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] आम का पेड़ ।  
 शर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) क्रोध । गुस्सा । (२) वज्र । (३) बाण । तीर । (४) आयुध । शस्त्र । हथियार । (५) हिंसा । हत्या । मार डालना । (६) वह जो हिंसा करता हो ।

हिंसक । (७) महाभारत के अनुसार एक गंधर्व का नाम । वि० (१) बहुत पतला । (२) जिसका अगला भाग बहुत ही छोटा या मुड़ीला हो ।

शरेज-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्णिकेय ।

शरेष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] आम । आध ।

छ वि० दे० "श्रेष्ठ" ।

शर्कर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंकड़ । (२) वालू का कण । (३) जल में उपरज होनेवाला एक प्रकार का प्राणी । (४) पुराणानुसार एक देव का नाम । (५) इस देव का निवास । (६) दे० "शर्करा" ।

शर्करक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मीठा नीचू । शरयती नीचू ।

शर्करकंद-संज्ञा पुं० दे० "शर्करकंद" ।

शर्करजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चीनी ।

शर्करा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शर्कर । चीनी । खाँद । (२) वालू का कण । (३) परती नामक रोग । (४) कंकड़ । (५) छीन्ना । (६) पुराणानुसार एक देव का नाम जो क्षीरमंथक के पुत्र भाग में है । (७) एक प्रकार का रोग । इसमें विशेष के कारण मांस, तिरा और स्नायु में गॉठ उत्पन्न होती है । गॉठ के फूटने से दाहद, घी और चर्बी के समान पीच निकलता है ; और वायु के बढ़ने से अनेक गॉठें उत्पन्न होती हैं ।

शर्करासू-संज्ञा पुं० [ सं० ] चरक के अनुसार एक प्राचीन द्रवि का नाम ।

शर्कराचल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार चीनी का यह पहाड़ जो दान करने के लिये लगाया जाता है ।

शर्कराधेनु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार चीनी की वह गौ जो दान करने के लिये बनाई जाती है ।

शर्कराप्रमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार एक नरक का नाम ।

शर्कराप्रमेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मूत्र का रंग मिथी का सा हो जाता है और उसके साथ शरीर की शर्करा निकलती है ।

शर्करासुंद-संज्ञा पुं० दे० "शर्करा" (०) ।

शर्करावत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरयत् (०) ।

शर्करासप्तमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धीनाथ शुद्धा सप्तमी । पुराणानुसार इस दिन सुवर्णांध का पूजन किया जाता है और उनके आगे यज्ञ में चीनी भरकर रखी जाती है ।

शर्करासध-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मद्य या दास्य जो चीनी से पैपर की जाती है । चरक के अनुसार यह शरीरि सुगंधित, पाचक और वायु रोग नाशक है ।

शर्करासुरभि-संज्ञा पुं० दे० "शर्करासध" ।

शर्करा-पेठां स्त्री० [ सं० ] (१) वर्ण वृत्त के अंतर्गत चौदह अक्षरों की एक वृत्ति । इसके कुल १६३८४ भेद होते हैं, जिनमें से १३ मुख्य हैं । (२) नदी । दरिया । (३) मेखला ।

(४) छिपाने की कलम । लेखनी ।

शर्कराय-वि० [ सं० ] शर्करा संबंधी । चीनी का ।

शर्करोदक-पेठां पुं० [ सं० ] (१) चीनी घोला हुआ पानी ।

शरयत । (२) वह शरयत जिसमें हलायची, हॉग, कपूर और गोलमीच मिली हो । वैद्यक में इसे यक्षुवर्दक, रुचिकारक, घायु, पित्त तथा रक्त-क्षोष नाशक और यमन, सूखा, दाह और वृष्णा आदि को दामन करनेवाला माना है ।

शर्कांति-पेठां पुं० [ सं० ] साँप ।

शर्ट-पेठां स्त्री० [ सं० ] कमीज नाम का पहनने का कपड़ा ।

शर्चापिलि-पेठां पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम ।

शर्त्त-पेठां स्त्री० [ सं० ] (१) दो व्यक्तिओं या दलों में होनेवाली ऐसी प्रतिज्ञा कि भुक्त यात होने या न होने पर हम तुमको इतना धन देंगे, अथवा तुमसे इतना धन लेंगे । पानी जिसमें दार जीत के अनुसार कुछ लेन-देन भी हो । वाजी । दौब । यदान ।

क्रि० प्र०—जीतना ।—बढ़ना ।—घोचना ।—रहना ।—

लगाना ।—लगाना ।—हारना ।

(२) किसी कार्य की सिद्धि के लिये आवश्यक या अपेक्षित होनेवाली यात या कार्य जिसके न होने से उस काम में बाधा उपस्थित हो । जैसे,—मैं चलने के लिये तैयार हूँ; पर शर्त्त यह है कि आप भी मेरे साथ चलें । (३) हम इस शर्त्त पर रूपया देंगे कि आप उसके ज़िम्मेदार हों । (४) उम्होंने कई ऐसी शर्त्तें लगाई हैं कि जिनके कारण काम होना बहुत कठिन है ।

क्रि० प्र०—रखना ।—लगाना ।

शर्त्तिया-क्रि० वि० [ सं० ] शर्त्तें बढ़कर । बहुत ही निश्चय या दृढ़तापूर्वक । जैसे,—मैं शर्त्तिया कहता हूँ कि आप का काम जरूर हो जायगा ।

वि० यिलकुल ठीक । निश्चित । जैसे,—यह तो इस धीमारी की शर्त्तिया दुर्वा है ।

शर्त्तिया-क्रि० वि० दे० "शर्त्तिया" ।

शर्त्तिया-पेठां पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक प्राचीन नगर का नाम ।

शर्त्तिया-पेठां पुं० [ सं० ] (१) तेज । (२) अपना घायु का रखा करना । पादना ।

शर्त्तिया-पेठां पुं० [ सं० ] अपोवायु । पाद ।

शर्त्तिया-पेठां पुं० दे० "शरयत" ।

शर्त्तिया-पेठां पुं० दे० "शरयती" ।

शर्म्-पेठां स्त्री० दे० "शरम" ।

शर्म्-पेठां पुं० [ सं० ] (१) सुख । आनंद । (२) वह जो सुखी हो । (३) गृह । घर ।

शर्म्-वि० [ सं० ] [ श्री० शर्म् ] आनंद देनेवाला । सुखदायक । उ०—कृष्णचन्द्र को मिय अधिकारी । शर्म्द घा धर्म धुरवारी ।—कबीर । (४) तीर शर्म्दा जग्मंदा इत भयो रूच पास ।

पेठां पुं० विष्णु का एक नाम ।

शर्म्-पेठां पुं० दे० "शर्म्" ।

शर्म्-पेठां पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वृक्ष ।

शर्म्-पेठां पुं० [ सं० ] शर्म्-पेठां स्त्री० [ सं० ] दाहदहती ।

शर्म्-पेठां पुं० [ सं० ] शर्म्-पेठां प्राणियों की उपाधि । जैसे,—प्रणयव शर्म् ।

विशेष—विधान है कि प्राणियों को अपने नाम के साथ शर्त्त में "शर्म्" शब्द का व्यवहार करना चाहिये ।

शर्म्-पेठां पुं० [ सं० ] मसूर ।

शर्म्-पेठां-क्रि० प्र० दे० "शरमाना" ।

शर्म्-पेठां-पेठां स्त्री० दे० "शरमिदगी" ।

शर्म्-पेठां-वि० दे० "शरमिदा" ।

शर्म्-पेठां-पेठां स्त्री० [ सं० ] ईश्वरों के राजा वृषपर्वा की कन्या का नाम जो शुक्राचार्य की कन्या देवयानी की सखी थी । वि० दे० "देवयानी" ।

शर्म्-पेठां-वि० दे० "शरमीला" ।

शर्म्-पेठां पुं० [ सं० ] (१) योद्धा । (२) बाण । (३) उँगली ।

शर्म्-पेठां पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक जनपद का नाम जो कुशक्षेत्र के अंतर्गत था ।

शर्म्-पेठां-पेठां पुं० [ सं० ] शर्म्-पेठां नामक जनपद के पास का एक प्राचीन सरोवर जो तीर्थ माना जाता था ।

शर्म्-पेठां-पेठां स्त्री० [ सं० ] रात्रि । रात ।

शर्म्-पेठां-पेठां पुं० [ सं० ] मनुष्य । आदमी ।

शर्म्-पेठां-पेठां पुं० [ सं० ] (१) एक रामा का नाम जिसकी कन्या "सुकन्या" महर्षि चववन को द्याही गई थी । (२) भागवत के अनुसार वैश्रवत मनु के एक पुत्र का नाम ।

शर्म्-पेठां पुं० [ सं० ] (१) शिव । शंकर । महादेव । (२) विष्णु ।

शर्म्-पेठां-पेठां पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शर्म्-पेठां-पेठां स्त्री० [ सं० ] (१) पार्वती । (२) लक्ष्मी ।

शर्म्-पेठां-पेठां पुं० [ सं० ] कैलास ।

शर्म्-पेठां-पेठां पुं० [ सं० ] (१) अंधकार । धँपेला । (२) कामदेव । (३) संख्या ।

शर्म्-पेठां-पेठां स्त्री० [ सं० ] (१) रात । रात्रि । निशा । (२) साँप । संख्या । नाम । (३) हल्दी । हरिद्रा । (४) स्त्री । औरत । (५) पेठां पुं० [ सं० ] शर्म्-पेठां वृक्षपति के साठ संवत्सरो में से

शैलीसर्व संवत्सर । कहेते हैं कि इस संवत्सर में बुद्धि का मय होता है ।

शार्दरीक-वि० [ सं० ] नुकसान करनेवाला । हानिकारक ।

शार्दरीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

शार्दरीकीपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

शार्दरोपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) शिव । महादेव ।

शार्दरीश-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

शार्दरीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] दयाकर । शिवाश्रम ।

शार्दरीचल-संज्ञा पुं० [ सं० ] देहास ।

शार्दरीणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शार्वती ।

शार्दरीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हिंसक । (२) खल । दुष्ट । पापी ।

(३) घोड़ा । (४) क्षत्रि ।

शार्दकट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शार्दकु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शार्दग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लोकपाल । (२) एक प्रकार का ममक ।

शार्दवा-संज्ञा पुं० [ दे० ] पाताल गांधरी । जल जगुनी । छिरोटा । डिरहटा ।

शार्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंस के एक मल्ल का नाम । व०—

और मरु और शल तो शल बहुत गण्ड सप्त भाज।—सूर । (२)

मद्रा । (३) ऊँट । (४) एक प्रकार का वृक्ष । (५) शरपराज

का एक नाम । वि० दे० "शरपराज" । (६) भाऊ । (७)

साही का कौटा । (८) चूंगी । (९) खराष्ट्र के एक पुत्र का

नाम । (१०) मायवत के अनुसार कंस के एक भ्रातृ

का नाम । (११) वासुकी के वंश के एक नाग का नाम ।

शार्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मकड़ी । (२) वाल । ताड़ वृक्ष ।

(३) साही का कौटा ।

शार्दकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम ।

शार्दगम-संज्ञा पुं० दे० "शरुगम" ।

शार्दजम-संज्ञा पुं० [ श्र० ] गाजर की तरह का एक प्रकार का

कंद जो प्रायः सारे भारत में जाड़े के दिनों में होता है ।

यह कंद गाजर से कुछ बड़ा और प्रायः गोल होता है और

तरकारी, अचार और मुरखे आदि बनाने के काम में आता

है । युरोप में इससे चीनी भी निकाली जाती है । शालगम ।

शार्दम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) टीढ़ी । टिंडी । धारम । (२) एक

भयुर का नाम । (३) पर्वगा । कर्तिका । (४) छप्पय के ३३

वें मेद का नाम । इसमें ७ गुण और ७२ लघु, कुल १३२

वर्ण या १५२ सामापूर् होती हैं ।

शार्दमता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शलम का भाव या धर्म ।

शार्दमत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शलम का भाव या धर्म । शलमता ।

शार्दल-संज्ञा पुं० [ सं० ] साही का कौटा ।

शार्दकपूच्छ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शालाकर्मों आदि की सदा-

यता से पक्षियों को परकृता हो । चिड़ीमार । बहेलिया ।

शार्दका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छोटे या एकट्टी आदि की लंबी

सलाई । सलाख । सील । (२) वह सलाई-जिससे घाव

की गहराई आदि मापी जाती है । (३) धाग । शरं । सीर ।

(४) अस्थि । हड्डी । (५) मदन वृक्ष । मैनफल । (६)

तिनका । गृण । (७) दारिका पक्षी । मैना । (८) सलई ।

शलकी वृक्ष । (९) सुरमा लगाने की सलाई । (१०) जूभा

रोकने का पासा (११) मघ । मघा । (१२) रामायण के अनु-

सार एक प्राचीन नगरी का नाम । (१३) नली की हड्डी ।

शार्दकापुष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] यौद्धों के तिरसठ देवपुरुषों में से

एक देवपुरुष ।

शार्दाल-संज्ञा स्त्री० दे० "सलात" ।

शार्दाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार दो हज़ार पल का

परिमाण । शकट ।

शार्दाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कच्चा फल । (२) वेरु । विवर ।

शार्दालु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम जो

पाणिनि का निवास-स्थान था ।

शार्दाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शार्दालो-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊँट ।

शार्दालु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सुगंधि द्रव्य ।

शार्दाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साही नामक जंतु जिसके सारे शरीर

पर कौंटे होते हैं ।

शार्दाली-संज्ञा पुं० दे० "सलीता" ।

शार्दाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाषी बाँह की एक प्रकार की कुली

जो प्रायः खिचो पहना करती है ।

शार्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दुकड़ा । संत्र । (२) छिलका ।

बदकल । (३) मछली के ऊपर का छिक्का ।

शार्दकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मछली का छिक्का । (२) वृक्ष की

छाल ।

शार्दकली-संज्ञा पुं० [ सं० ] शकलिन मछली । मत्स्य । मीन ।

शार्दप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाड़ । (२) शौदार । भरमार ।

(३) धपाका । कड़ाका ।

शार्दपदा, शार्दपपण्डिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेदा नामक अष्ट-

वर्गीय भोग्य ।

शार्दमलि, शार्दमली-संज्ञा पुं० [ सं० ] शालमली वृक्ष । सेमल ।

शार्दप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मद्र देश के एक राजा का नाम जो

श्रीरघु के स्वर्धर के समय भीमसेन के साथ मल्ल-युद्ध में

हार गए थे । कुक्षेत्र के युद्ध में द्रुपदोंने द्रुपदों का पक्ष

ग्रहण किया था । युद्ध के १९वें और १७वें दिन महावीर

वर्ण के वे सारथी हुए थे । कर्ण की शय्य के अनंतर १८वें

दिन वे सेनापति बनाए गए थे और शार्दप द्वारा-सारे गए

शर्करी-पेठा स्त्री० [ सं० ] (१) घणं वृत्त के अंतर्गत चौदह अक्षरों की एक वृत्ति । इसके कुल १६३८४ भेद होते हैं, जिनमें से १३ मुख्य हैं । (२) नदी । दरिया । (३) मेलला ।  
(४) छिछने की कलम । छेलनी ।

शर्करीय-वि० [ सं० ] शर्करा संबंधी । चीनी का ।

शर्करोद्क-पेठा पुं० [ सं० ] (१) चीनी घोला हुआ पानी । शरबत । (२) वह शरबत जिसमें इलायची, हींग, कपूर और गोलमीच मिली हो । वैद्यक में इसे बलवर्द्धक, रुचिकारक, घासु, पित्त तथा रक्त-क्षोप नाशक और यमन, मूच्छा, दाह और रुग्णा आदि को दमन करनेवाला माना है ।

शर्कोटि-पेठा पुं० [ सं० ] सॉप ।

शर्ट-पेठा स्त्री० [ सं० ] कमीज नाम का पहनने का कपड़ा ।

शर्जुचापिलि-पेठा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम ।

शर्च-पेठा स्त्री० [ सं० ] (१) दो व्यक्तियों या दलों में होनेवाली ऐसी प्रतिज्ञा कि अमुक बात होने वान होने पर हम तुमको हतना धन देंगे, अथवा तुमसे हतना धन लेंगे । याजी जिसमें हार जीत के अनुसार कुछ लेन-देन भी हो । याजी । दौब । वदान ।

क्रि० प्र०—जीतना ।—घटना ।—घोंपना ।—रहना ।—लगाना ।—लगाना ।—हारना ।

(२) किसी कार्य की सिद्धि के लिये आवश्यक या अपेक्षित होनेवाली बात या कार्य जिसके न होने से उस काम में बाधा उपस्थित हो । जैसे,—में चलने के लिये तैयार हूँ; पर शर्च यह है कि आप भी मेरे साथ चलें । (ख) हम इस शर्च पर रूपया देंगे कि आप उसके निम्मेदार हों । (ग) उन्होंने कई ऐसी शर्चें लगाई हैं कि जिनके कारण काम होना बहुत कठिन है ।

क्रि० प्र०—रखना ।—लगाना ।

शर्तिया-क्रि० वि० [ सं० ] शर्त पढ़कर । बहुत ही निश्चय या रचनापूर्वक । जैसे,—में शर्तिया कहता हूँ कि आप का काम जरूर हो जायगा ।

वि० बिहकुल ठीक । निश्चित । जैसे,—यह तो इस धीमारी की शर्तिया दवा है ।

शर्ती-क्रि० वि० दे० "शर्तिया" ।

शर्दि-पेठा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक प्राचीन नगर का नाम ।

शर्द-पेठा पुं० [ सं० ] (१) तेज । (२) अपान वायु का त्याग करना । पादना ।

शर्द्धन-पेठा पुं० [ सं० ] अधोवायु । पाद ।

शर्धत-पेठा पुं० दे० "शरवत" ।

शर्धती-पेठा पुं० दे० "शरवती" ।

शर्म-पेठा स्त्री० दे० "शरम" ।

शर्म-पेठा पुं० [ सं० ] (१) सुख । आनंद । (२) वह जो सुखी हो । (३) गृह । घर ।

शर्मर-वि० [ सं० ] [ श्री० शर्मदा ] आनंद देनेवाला । सुख-दायक । उ०—कृष्णचन्द्र को मिय अधिकारी । शर्मद पात धर्म सुरवारी ।—कवीर । (ख) तीर शर्मदा नर्मदा करत भयो श्रुप वास ।

पेठा पुं० विष्णु का एक नाम ।

शर्मन्-पेठा पुं० दे० "शरमा" ।

शर्मर-पेठा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वस्त्र ।

शर्मरी, शर्मरी-पेठा स्त्री० [ सं० ] दारुहवदी ।

शर्मा-पेठा पुं० [ सं० शर्मन् ] ब्राह्मणों की उपाधि । जैसे,—प्रह्लाद शर्मा ।

विशेष—विश्वाम है कि ब्राह्मण को अपने नाम के साथ अंत में "शर्मा" शब्द का व्यवहार करना चाहिये ।

शर्माख्य-पेठा पुं० [ सं० ] मसूर ।

शर्माना-क्रि० प्र० सं० दे० "शरमाना" ।

शर्मिद्गी-पेठा स्त्री० दे० "शरमिदनी" ।

शर्मिदा-वि० दे० "शरमिदा" ।

शर्मिष्ठा-पेठा स्त्री० [ सं० ] देवों के राजा वृषपर्वा की कन्या का नाम जो शुक्राचार्य की कन्या देवयानी की सखी थी । वि० दे० "देवयानी" ।

शर्माला-वि० दे० "शरमाला" ।

शर्य-पेठा पुं० [ सं० ] (१) योद्धा । (२) बाण । (३) उँगली ।

शर्यण-पेठा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक जनपद का नाम जो कुरुक्षेत्र के अंतर्गत था ।

शर्यणावत्-पेठा पुं० [ सं० ] शर्यण नामक जनपद के वास का एक प्राचीन सरोवर जो तीर्थ माना जाता था ।

शर्य-पेठा स्त्री० [ सं० ] रात्रि । रात ।

शर्यत-पेठा पुं० [ सं० ] मनुष्य । आदमी ।

शर्यति-पेठा पुं० [ सं० ] (१) एक राजा का नाम जिसकी कन्या "सुकन्या" महर्षि च्यवन को दयाही गई थी । (२) भागवत के अनुसार वैश्रवत मनु के एक पुत्र का नाम ।

शर्य-पेठा पुं० [ सं० ] (१) शिव । शंकर । महादेव । (२) विष्णु ।

शर्यक-पेठा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शर्यपती-पेठा स्त्री० [ सं० ] (१) पार्वती । (२) लक्ष्मी ।

शर्यपर्वत-पेठा पुं० [ सं० ] कैलास ।

शर्यर-पेठा पुं० [ सं० ] (१) अंधकार । अंधेरा । (२) कामदेव । (३) संध्या ।

शर्यरी-पेठा स्त्री० [ सं० ] (१) रात । रात्रि । निशा । (२) सॉल । संध्या । नाम । (३) हृदय । हरिद्रा । (४) स्त्री । औरत ।

पेठा पुं० [ सं० शर्यरि ] बृहस्पति के सात संवत्सरो में से

चौतिसवाँ संवत्सर । कहे हैं कि इस संवत्सर में बुधिश का मय होता है ।

शर्चरीक-विं [ सं० ] लुकसान करनेवाला । हानिकारक ।

शर्चरीकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

शर्चरीकीपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

शर्चरीपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) शिव । महादेव ।

शर्चरीश-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

शर्चवास-संज्ञा पुं० [ सं० ] रक्षाश । विशास ।

शर्चवास-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैलास ।

शर्चवाणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पार्वती ।

शशरीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हिसक । (२) पल । दुष्ट । पापी । (३) घोड़ा । (४) क्षत्रि ।

शलकट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शलकु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शलंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लोकनाल । (२) एक प्रकार का नमक ।

शलंदा-संज्ञा पुं० [ देश० ] पाताल गारदी । जल जमुनी । छिंटोटा । छिद्रहाटा ।

शल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंस के एक मल्ल का नाम । ४०— और मल्ल मोर दाढ लो धाल बहुत गए सप भाज—सूर । (२) मल्ला । (३) ऊँट । (४) एक प्रकार का वृक्ष । (५) दासराज का एक नाम । चिं० दे० "दासराज" । (६) माला । (७) साही का कौटा । (८) खूंगी । (९) पतराए के एक पुत्र का नाम । (१०) मागवत के अनुसार कंस के एक भगवत का नाम । (११) वायुकी के पंदा के एक नाग का नाम ।

शलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मरुड़ी । (२) ताल । ताद वृक्ष । (३) साही का कौटा ।

शलकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम ।

शलगम-संज्ञा पुं० दे० "शलकम" ।

शलजम-संज्ञा पुं० [ प्रा० ] गाजर की तरह का एक प्रकार का कंद जो माघ सारे भारत में जाड़े के दिनों में होता है । यह कंद गाजर से कुछ बड़ा और प्रायः गोल होता है और सरकारी, अचार और सुग्घे आदि बनाने के काम में आता है । युरोप में इससे चीनी भी निकाली जाती है । शलजम । शलभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) टीढ़ी । डिड्डी । शरम । (२) एक असुर का नाम । (३) पतंगा । करिंगा । (४) छप्पय के ३१ वें भेद का नाम । इसमें ४० गुरु और ७२ लघु, कुल ११२ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं ।

शलभता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शलभ का भाव या धर्म ।

शलभमत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शलभ का भाव या धर्म । शलभता ।

शलस-संज्ञा पुं० [ सं० ] साही का कौटा ।

शलाकपूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो दाढाकाभों आदि की सहायता से पत्तियों को पकड़ता हो । चिड़ीमार । यहलिया ।

शलाक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छोड़े या लकड़ी आदि की लंबी सलाई । सलाप । सीप । (२) वह सलाई जिससे चाव की गहराई आदि नापी जाती है । (३) बाण । शर । तीर । (४) भरिय । हड्डी । (५) मदन वृक्ष । मैनकल । (६) तिनका । वृण । (७) शारिका पक्षी । मैना । (८) सलई । शलकी वृक्ष । (९) सुरमा लगाने की सलाई । (१०) जूषा टोढे का पासा (११) वष । वषा । (१२) रामायण के अनुसार एक प्राचीन नगरी का नाम । (१३) नली की हड्डी ।

शलाकापुरुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] पौदों के तिरछट दैवपुरुषों में से एक दैवपुरुष ।

शलाक-संज्ञा स्त्री० दे० "सलाक" ।

शलाट-संज्ञा पुं० [ सं० ] दैवक के अनुसार दो हजार पल का परिमाण । शकट ।

शलाटु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कचा कक । (२) वेक । जिवव ।

शलातुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम जो पालिनि का निवास-स्थान था ।

शलाथल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शलाभोलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊँट ।

शलालु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सुगंधि द्रव्य ।

शलरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साही गामक जंठ जिसके सारे शरीर पर कौटे होते हैं ।

शलरीता-संज्ञा पुं० दे० "सलीता" ।

शलका-संज्ञा पुं० [ का० ] आची बौह की एक प्रकार की कुरती जो प्रायः छियाँ पहना करती हैं ।

शलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) टुकड़ा । खंड । (२) छिडका । बरछल । (३) मछली के रूप का छिडका ।

शलकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मछली का छिडका । (२) वृक्ष की छाल ।

शलकली-संज्ञा पुं० [ सं० ] शकलिले ] मछली । मत्स्य । मीन ।

शलप-संज्ञा पुं० [ लरा० ] (१) बाढ़ । (२) पौछार । भरमार । (३) धक्का । कद्दाका ।

शलपदा, शलपपत्तिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेदा नामक भट-वाणी ओपधि ।

शलमलि, शलमली-संज्ञा पुं० [ सं० ] शालमली वृक्ष । सेमल ।

शल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मद्र देग के एक राजा का नाम जो प्रीररी के रथसंवर के समय भीमसेन के साथ मछ-युद्ध में हार गए थे । कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने दुष्येवत का पक्ष प्रदण किया था । युद्ध के १९वें और १०वें दिन महावीर कर्ण के ये सारथी हुए थे । कर्ण की मृत्यु के अनंतर १८वें दिन ये सेनापति बनाए गए थे और भडंग द्वारा मारे गए

थे। ये पांडु की दूसरी खी माद्री के भाई थे। (१) एक प्रकार का घाण। (३) मल-विक्रिस्ता। (४) छप्य के ५६वें भेद का नाम। इसमें १५ शूल और १२२ लघु, कुल १३७ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (५) हड्डी। अस्थि। (६) अंजन लगाने की सलाह। शलाका। (७) मैनफल। मदन वृक्ष। (८) सफेद खैर। (९) शिल्पि मछली। (१०) लोप। लोभ वृक्ष। (११) वेक। विल्व वृक्ष। (१२) साही नामक जंतु। (१३) साँग नामक मल। (१४) तुवायि। (१५) पाप। (१६) जमीन में गड़ी हुई जानवरों आदि की हड्डियों जो मकान बनाने के समय निकालकर फेंकी जाती हैं। (१७) ये पदार्थ जिनसे शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा या रोग आदि उत्पन्न होता है। सुश्रुत के अनुसार ये शल्य दो प्रकार के होते हैं—शारीर और भांगतु। यदि बात पित्त आदि के दोष से रोपें, नालून, शरीर के धातु, अन्न, मल आदि कुपित होकर पीड़ा या रोग उत्पन्न करें, तो उसे शारीर शल्य कहते हैं। और इनके अतिरिक्त जो और बाहरी पदार्थ (छोटा, छकड़ी, सींग आदि) शरीर में पीड़ा या रोग उत्पन्न करें, तो उन्हें भांगतु शल्य कहते हैं।

शल्यकंठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] साही नामक जंतु।

शल्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साही नामक जंतु। (२) मैनफल। मदन वृक्ष। (३) सफेद खैर। (४) लाल खैर। (५) एक प्रकार की मछली। (६) लोप वृक्ष। (७) वेक। विल्व।

शल्यकर्त्तन-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामायण के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

शल्यकर्त्ता-संज्ञा पुं० [ सं० शल्यकर्तृ ] वह जो शल्य चिकित्सा करता हो। चीर फाड़ का हलज करनेवाला।

शल्यकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शलकी ] साही नामक जंतु। उ०—रोम रोम येषो तनु घाणन। भयो शल्यकी सरिस दधानन।—रघुराज।

शल्यक्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चीर-फाड़ का हलज। शल्य-चिकित्सा।

शल्यज नाड़ी मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] नाड़ी में होनेवाला एक प्रकार का म्रण या घाव। जब किसी घाव में कौटा या कंकड़ आदि पड़कर किसी नाड़ी में पहुँच जाता और वहीं रह जाता है, तब जो म्रण होता है, वह शल्यज नाड़ी मय कहलाता है। इसमें घाव में से गरम रक्त के साथ मवाद निकलता है।

शल्यज मूत्र कृच्छ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मूत्र-कृच्छ्र। वि० दे० "मूत्रकृच्छ्र"।

शल्यसंज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार भाठ प्रकार के संज्ञों में से एक संज्ञ। यह संज्ञ जिसमें चीर-फाड़ के संज्ञों, शर्त्तों, शर्त्तों और भ्रमि कर्म आदि के प्रयोगों का वर्णन होता है।

शल्यदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेदा नाम की ओषधि।

शल्यपण्डिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेदा नाम की ओषधि।

शल्यलोम-संज्ञा पुं० [ सं० शल्यलोम ] साही नामक जंतु का कौटा।

शल्यशालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] फोदों आदि की चीर फाड़ का काम।

शल्यशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिकित्सा शास्त्र का वह अंग जिसमें शरीर में गड़े हुए कौटों आदि के निकालने का विधान रहता है।

शल्य-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेदा नाम की ओषधि। (२) नाग-वह्नी नाम की लता। (३) विककत वृक्ष।

शल्यारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शल्य को मारनेवाला, युधिष्ठिर।

शल्योद्धार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरीर में लगे हुए घाण या कौटों आदि निकालने की क्रिया। (२) वास्तुविद्या के अनुसार मकान बनवाने के समय जमीन को साफ करना और उसमें की हड्डियाँ आदि निकलवाकर फेंकवाना।

शल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चमड़ा। (२) वृक्ष की छाल। (३) मंडक।

वि० [ अ० ] (अंग) जो दुर्बलता या थकावट आदि के कारण विरक्त सुस्त या सुप्त हो गया हो।

शल्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शोण वृक्ष। सलई। (२) साही नामक जंतु। (३) चमड़ा।

शल्यकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) साही नामक जंतु। (२) सलई का वृक्ष।

शल्यकीद्वय-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलारस। सलईक।

शल्यकीरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलारस। सलईक।

शल्यका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नाव। नौका।

शल्यकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) साही नामक जंतु। (२) शल्यकी का वृक्ष। सलई।

शल्य-संज्ञा पुं० दे० "शल्य"। उ०—निराकरण जब भीष्म क्रिय, तब अंधिका उदास। लौटि गई अपने भवन, शल्य भूप के पास।—रघुराज।

शल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूल शरीर। भाणरहित-वेह। छात्र। मुद्रा। विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल मनुष्य के शूल शरीर के ही लिये होता है। (२) जल। पानी।

शल्यकाश्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुम्भकर। कुत्ता।

शल्यकृत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीकृष्ण का एक नाम।

शल्यवाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] मनुष्य के शूल शरीर को जलाने की क्रिया या भाव।

शल्यधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्रदेश का नाम जिसे शरधान भी कहते हैं।

शवभस्त्र-पंजा पुं० [ सं० ] चिता का भस्त्र। मरघट की रात।

८—शवभस्त्र विभूषित भूरि गण।—रघुनाथ।

शवमंदिर-पंजा पुं० [ सं० ] इमशान। मरघट।

शवयान-पंजा पुं० [ सं० ] भरथी जिस पर शव ले जाते हैं। टिकरी।

शव्यर-पंजा पुं० [ सं० ] [ री० शवरी ] (१) एक पहाड़ी जंगली जाति। इस जाति के लोग मीरपंख से अपने आपकी सजाते हैं। ये लोग अब तक मध्य प्रदेश और हजारीबाग आदि जिलों में रहते और "सौर" कहलाते हैं। (२) शिव। (३) जल।

शव्यर-पंजा पुं० [ सं० ] शवयान। भरथी। टिकरी।

शव्यरलोभ-पंजा पुं० [ सं० ] सफेद लोभ।

शव्यरी-पंजा स्त्री० [ सं० ] (१) शव्यर जाति की धमना नाम की एक तपस्विनी। सीता जी को हँसते हुए रामचंद्र इस तपस्वी के आश्रम में पहुँचे थे। इसने राम की अभ्यर्थना की थी और उन्होंने भी अनुमति से उनके सामने ही पिता में प्रविष्ट होकर यह स्वर्ग को सिधारी थी। (२) शव्यर जाति की स्त्री।

शवल-पंजा पुं० [ सं० ] (१) चीता। चित्रक। (२) जल। पानी।

वि० चितकपरा। चितल। पीतल।

शवल-पंजा स्त्री० [ सं० ] चितकपरी गाय।

शवलित-वि० [ सं० ] मिश्रित। मिळा हुआ।

शवली-पंजा स्त्री० [ सं० ] चितकपरी गाय।

शवशयन-पंजा पुं० [ सं० ] इमशान। मरघट।

शवसाधन-पंजा पुं० [ सं० ] संघ के अनुसार एक प्रकार का साधन जो इमशान में किसी व्यक्ति के शव या मृत शरीर पर बैठकर अथवा उसे सामने रखकर दिया जाता है। कहते हैं कि इस प्रकार के साधन से साधक को सिद्धि और अनंत पद प्राप्त होता है।

शवसान-पंजा पुं० [ सं० ] पथिक। यात्री।

शवसान-पंजा पुं० [ सं० ] (१) वह अन्न जो विरकूल द्वारा हो गया हो और किसी काम का न रह गया हो। (२) मनुष्य के शव या मृत शरीर का नाश।

शव्य-पंजा पुं० [ सं० ] वह कृष्य या वस्तु जो शव को अर्पण किया के लिये ले जाने के समय होता है।

शव्याल-पंजा पुं० [ सं० ] गुप्तलमालों का दसवाँ महीना।

शव्य-पंजा पुं० [ सं० ] (१) सरहा। खरगोश। (२) चंद्रमा का कौत्न या कलंक। (३) लोभ हुआ। लोप। (४) काम शाल के अनुसार मनुष्य के चार भेदों में से एक भेद। जो मनुष्य शत्रु, वचन, बोलता हो, सुशील, कोमल, ग,

सत्यवादी और कुछ गुण निधान हो, वह दास जाति का माना जाता है। (५) बोल नामक गंधद्रव्य। गंधरस।

शशक-पंजा पुं० [ सं० ] खरगोश। खरहा।

शशगानी-पंजा पुं० [ सं० ] शशक + गानी ? ] शीर्ष का एक प्रकार का सिक्का जो फीरोज़ शाह के राज्य में प्रचलित था। यह लगभग दुआबी के बराबर होता था।

शशघातक, शशघाती-पंजा पुं० [ सं० ] बाज या श्येन नामक पक्षी। हारगोल।

शशघर-पंजा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा। (२) कपूर। कर्पूर।

शशबिन्दु-पंजा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु। (२) चित्ररथ के एक पुत्र का नाम।

शशभृत्-पंजा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

शशमाधी-वि० [ सं० ] हर छः महीने पर होनेवाला छः माही। भद्रे वायिक।

शशमुंड-पंजा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का रस।

शशमौलि-पंजा पुं० [ सं० ] शिव।

शशयान-पंजा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

शशलक्ष्ण-पंजा पुं० [ सं० ] चंद्रमा।

शशलंघन-पंजा पुं० [ सं० ] चंद्रमा।

शशशिक-पंजा स्त्री० [ सं० ] जीवन्ती। लोदी।

शशश्रृंग-पंजा पुं० [ सं० ] कोई अर्धभय और अनहोनी बात। वैसा ही अर्धभय कार्य जैसा खरगोश को सँग होना होता है। आकाश कुसुम की सी अर्धभय बात।

शशस्वली-पंजा स्त्री० [ सं० ] गंगा और यमुना के मध्य का प्रदेश। दोभाष।

शशांक-पंजा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

शशांकज-पंजा पुं० [ सं० ] बुध जो चन्द्रमा का पुत्र माना जाता है।

शशांकमुकुट-पंजा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

शशांकशर-पंजा पुं० [ सं० ] महादेव। शिव।

शशांकसुत-पंजा पुं० [ सं० ] बुध ग्रह जो शशांक या चंद्रमा का पुत्र माना जाता है।

शशांक-पंजा पुं० [ सं० ] शिव।

शशांकोपल-पंजा पुं० [ सं० ] चंद्रकांत मणि।

शशांकुलि-पंजा स्त्री० [ सं० ] कड़वी कड़वी।

शशा-पंजा पुं० दे० "शश"।

शशाद्-पंजा पुं० [ सं० ] (१) बाज। श्येन पक्षी। (२) भागवत के अनुसार इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम।

शशाद्-पंजा पुं० [ सं० ] बाज नाम का पक्षी।

शशि-पंजा पुं० [ सं० ] शशि। (१) चंद्रमा। शंभु। (२) उपनयन के ५७ वे भेद का नाम। इसमें १० गुण और ११० लघु,



कुल १३५ वर्ष या १५२ मात्राएँ होती हैं। (२) रगण के दूसरे भेद (155) की संज्ञा। (४) मोती। (५) छः की संख्या।  
 उ०—एहि भौति कीन्हों युद्ध दिव दशि मास तव हहयो हियो।—रघुनाथ।

शशिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जगपद का नाम। (२) इस जगपद में रहनेवाली जाति।

शशिकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा की रदिम या किरण।

शशिकला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चंद्रमा की कला। (२) एक प्रकार का वृत्त। इसके प्रत्येक चरण में चार नगण और एक सगण होता है। इसको 'मणिगुण' और 'दारम' भी कहते हैं।

शशिकान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रकान्त मणि। (२) कुमुद। कोई। बघोला।

शशिकूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रवंश। उ०—शशिकूल छत्र शिरोमणि अर्हां।—गण संहिता।

शशिकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बुद्ध का नाम।

शशिलंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव। महादेव। (२) चंद्रमा की कला। (३) एक विषाघर का नाम।

शशिखंडिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक देव का नाम।

शशिशुहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुलेठी।

शशिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा का पुत्र, सुघ प्रह। उ०—प्रथम शुक्र वृत्ते रवि शशिकुल राहु चतुर्थ गवाई।—रघुराज।

शशितिथि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पूर्णिमा। पूर्णमासी।

शशिक्षि-संज्ञा पुं० [ सं० ] भृगुशिरा नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता देवता चंद्रमा माने जाते हैं।

शशिधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव। (२) एक प्राचीन नगर का नाम। उ०—शशिधर नगर जाहु मिय करी।—शं० दि०।

शशिवन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक भस्त्र का नाम।

शशिपर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] परबल। पडोल।

शशिपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुघ प्रह जो चंद्रमा का पुत्र माना है।

शशिपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] कमल। पक्ष।

शशियोपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा का पोषण करनेवाला, शुक्र पक्ष।

शशिप्रभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसकी प्रभा चंद्रमा के समान हो। (२) कुमुद। कोई। (३) मुक्ता। मोती।

शशिप्रभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ज्योत्सना। चँदनी।

शशिमिच-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुमुद। कोई। (२) मुक्ता। मोती।

शशिमिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सचाहसो नक्षत्र जो चंद्रमा की परिवर्ण माने जाते हैं।

शशिभागा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राजा सुचक्रुंद की कन्या का नाम। उ०—सुचत कहेउ पति ते शशिभागा।—रघुनाथ।

शशिभाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] मल्ल पर चंद्रमा प्राण कानेवाले, शिव। महादेव। उ०—जय सज्जन रिपु काक, जयति पाळ शशिभाल भ्रम।—रघुराज।

शशिभूपण-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

शशिभृत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

शशिमंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा का घेरा या मंडल। चंद्रमंडल। उ०—सब नक्षत्र को राजा दीनों शशिमंडल में छाप।—सूर।

शशिमणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रकान्त मणि।

शशिसुखा-वि० [ सं० ] [ स्त्री० शशिसुखी ] (वह व्यक्ति) जिसका मुख चंद्रमा के सदृश सुंदर हो। कति सुंदर। उ०—राग सुनि भजन को भयो अनुवाग वद शशिसुख-हालजू को जाहके सुनाइये।—नामादास।

शशिमौलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

शशिरत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] भ्रमूत।

शशिरत्ना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंद्रमा की एक कला।

शशिलेखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चंद्रमा की कला। (२) यक्षी। सोमराज्ञी। (३) गिलोय। गुल्फ।

शशिवदना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण (111) और एक सगण (155) होता है। इसे चौबंसा, चंद्रसा और पादकुंडक भी कहते हैं। उ०—पिक द्विज देखे। इषित वितोषे। नयन-निराते। पचन-निसाते।—गुमान।

वि० स्त्री० चंद्रमा के समान सुंदर मुखवाली। शशिसुखी।

शशिवाटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुनर्ववा। गदहपूरना।

शशिशास्ता-संज्ञा स्त्री० [ का० शीरा + सं० काज्य ] वह पर जो बहुत से शीशों का बना हुआ हो या जिसमें बहुत से शीशे लगे हुए हों। शीशमहल। उ०—(क) कति उतंग सुंदर शशिशास्ता सात मरातिव घोर।—रघुराज। (ख) पूरित सस्य प्रमोद मही सब दाति भूपति शशिशास्ता।—रघुराज। (ग) शशिशास्ता अंतापुर शाला शाला सभा सदन के।—रघुराज।

शशिशेखर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव। महादेव। उ०—शिखी एक बिच छसत चिह्न तहँ पद शशिशेखर।—रक्षमण। (२) एक बुद्ध का नाम।

शशिशोपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा को क्षीण करनेवाला, कृष्ण पक्ष।

शशिसुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा का पुत्र, सुघ प्रह।

शशिहोरा-पंजा पुं० [ सं० शशि + हि० होरा ] चंद्रमात सगि ।  
 उ०—शशिहोरा की एक पात । फलीन कीलतम लगानों  
 पात ।—रखरीशर्मा ।  
 शशी-पंजा पुं० दे० “शशि” ।  
 शशीकर-पंजा पुं० [ सं० शशिकर ] चंद्रमा की किरण ।  
 शशोश-पंजा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) कर्त्तिकेय ।  
 शशवत-वि० दे० “दाशवत” ।  
 शशकुल-पंजा पुं० [ सं० ] करन ।  
 शशकुली-पंजा स्त्री० [ सं० ] (१) श्री पद्माक्ष भादि । (२) कान का  
 उद्ग । (३) सीरी मण्डली ।  
 शश्य-पंजा स्त्री० [ सं० ] (१) नई घास । (२) नीली दूध ।  
 शसन-पंजा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ के लिये पशुओं की हत्या  
 करना । (२) वह स्थान जहाँ पशुओं का बलिदान होता हो ।  
 शसा-पंजा पुं० [ सं० शत ] खरगोश । खरदा ।  
 शसि-पंजा पुं० दे० “शशि” ।  
 शसी-पंजा पुं० दे० “शशि” ।  
 शस्त-पंजा पुं० [ सं० ] (१) शरीर । यदन । निष्प । (२) कल्याण ।  
 मंगल । भडाई ।  
 वि० (१) जिसकी प्रसांसा की गई हो । अष्ट । उचम ।  
 श्रेष्ठ । (२) प्रशस्त । (३) जो मार डाला गया हो ।  
 निहत । (४) कल्याणयुक्त । मंगलयुक्त ।  
 शंका पुं० [ का० ] (१) वह हड्डी या बालों का छल्ला जो  
 शीर चलाने के समय आँगठे में पहना जाता है । (२) वह  
 जिस पर शीर या गोली भादि चलाई जाती है । लक्ष्य ।  
 निशाना ।  
 शुद्धा-पंजा पुं०—शस्त यौवन या लगाना = निशाना बेचने के लिये सीप  
 या ताक लगाना ।  
 (३) जमीन की पैमाइश करनेवालों की दूरबीन के आकार  
 का वह यंत्र जिसकी सहायता से जमीन की सीघ देखी  
 जाती है । (४) मछली पकड़ने का कौटा ।  
 शस्तक-पंजा पुं० [ सं० ] हाथ में पहनने का चमड़े का दस्ताना ।  
 अंगुलिप्रण ।  
 शस्ति-पंजा स्त्री० [ सं० ] शक्ति । प्रसांसा । शरीर ।  
 शस्तक-पंजा पुं० [ सं० ] लोहा ।  
 शस्तकर्म-पंजा पुं० [ सं० शस्तकर्मन् ] पात या फोड़े में नरतर  
 लगाना । फोड़ों भादि की चीर-फाड़ का काम ।  
 शस्तकेतु-पंजा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का केतु जो पूर्व में उदय  
 होता है । कहे हैं कि हृद्य के उदय होने पर महाभारती  
 फैली है ।  
 शस्तकोशतय-पंजा पुं० [ सं० ] बड़ा मैनकड़ ।  
 शस्तकिया-पंजा स्त्री० [ सं० ] फोड़ों भादि की चीर-फाड़ । नरतर  
 लगाने की किया ।

शस्तगृह-पंजा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के पात्र  
 भादि रहते हैं । शस्त-शाला । हथियार-घर । सिलहखाना ।  
 शस्तचूर्ण-पंजा पुं० [ सं० ] मंझूर ।  
 शस्तजीवी-पंजा पुं० [ सं० शस्तजीविन् ] योद्धा । सैनिक । सिपाही ।  
 शस्तदेवता-पंजा पुं० [ सं० ] बुद्ध का अधिष्ठाता देवता ।  
 शस्तधर-पंजा पुं० [ सं० ] योद्धा । सैनिक । सिपाही ।  
 शस्तधारी-वि० [ सं० शस्तधारीन् ] [ स्त्री० शस्तधारीणी ] शस्त धारण  
 करनेवाला । हथियारबंद ।  
 शंका पुं० (१) योद्धा । सिपाही । सैनिक । (२) एक प्रकार  
 का जंतु जिसे सिलहखाने भी कहते हैं । (३) एक प्राचीन  
 देश का नाम ।  
 शस्तभूत-पंजा पुं० [ सं० ] वह जो शस्त धारण करता हो ।  
 शस्तधारी ।  
 शस्तधारी-पंजा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन देश का नाम ।  
 शस्तविद्या-पंजा स्त्री० [ सं० ] (१) हथियार चलाने की विद्या ।  
 (२) यज्ञवेद का उपवेद, धनुर्वेद, जिसमें सय प्रकार के  
 शस्त चलाने की विधियों और लड़ाई के संपूर्ण यंत्रों का वर्णन  
 दिया गया है ।  
 शस्तवृत्ति-पंजा पुं० [ सं० ] वह जो शस्त भादि चलाकर अपना  
 निर्वाह करता हो । योद्धा । सैनिक । सिपाही ।  
 शस्तशाला-पंजा स्त्री० [ सं० ] वह स्थान जहाँ बहुत से शस्त  
 भादि रक्ते हैं । शस्तगृह । शस्तगार । सिलहखाना ।  
 शस्तशस्त्र-पंजा पुं० [ सं० ] (१) वह शस्त्र जिसमें हथियार  
 चकाने भादि का निरूपण हो । (२) धनुर्वेद ।  
 शस्तहत-पंजा पुं० [ सं० ] वह जिसकी हाथा दाख के द्वारा  
 हूई हो ।  
 शस्तहत चतुर्दशी-पंजा स्त्री० [ सं० ] गौण भादिन कृष्ण चतुर्दशी  
 और गौण कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी । इन दोनों चतुर्दशियों को  
 इन लोगों का श्राद्ध किया जाता है, जिनकी हाथा शस्त्रों  
 द्वारा होती है ।  
 शस्तगा-पंजा स्त्री० [ सं० ] सट्टी होने या भ्रमलोंने जिसका  
 साग होता है । चांगीरी ।  
 शस्तारथ-पंजा पुं० [ सं० ] दृढसंहिता के अनुसार एक प्रकार  
 का केतु ।  
 शस्तगार-पंजा पुं० [ सं० ] शस्त्रों के रखने का स्थान ।  
 शस्तशाला । शस्तारथ । सिलहखाना ।  
 शस्तपस-पंजा पुं० [ सं० ] वह छोटा जिससे शस्त बनाए जाते हैं ।  
 शस्त्री-पंजा पुं० [ सं० शस्त्रिन् ] (१) वह जो शस्त भादि चलाना  
 जानता हो । (२) वह जिसके पास शस्त हैं ।  
 शंका स्त्री० [ सं० शक्त ] शूरी । पाक ।  
 शस्त्य-पंजा पुं० [ सं० ] (१) नई घास । कीमल पुन । (२) हूँ

का फल । (३) खेती । फल्ल । (४) प्रतिमा की हानि या नाश । (५) घान्य । भ्रम । (६) सद्गुण ।  
वि० (१) उत्तम । श्रेष्ठ । अच्छा । (२) प्रवृत्ता के योग्य । तारीफ़ के लायक ।

शब्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रस ।

शब्दमो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चोरहुडी । चोरगुप्ती ।

शब्दपर्यन्ती-संज्ञा पुं० [ सं० शब्दपर्यन्त ] वृत्त । वर्ण वृत्त ।

वि० जिससे शब्द का नाश हो ।

शब्दसंघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शाल वृक्ष । (२) अवयवों वृक्ष ।

शब्दपारु-संज्ञा पुं० [ सं० ] छोटी शानी ।

शाहशाह-संज्ञा पुं० [ फ़ा० ] बादशाहों का बादशाह । महाराज-धिराज । शाहशाह ।

शाहशाही-वि० [ फ़ा० ] शाहों का सा । शाही । राजसी ।

संज्ञा स्त्री० (१) शाहशाह का भाव या धर्म । (२) शाहशाह का पद । (३) लेने देने में खरापन । (बाजारू)

फ़ि० प्र०—दिलखाना ।—रखना ।

शाह-संज्ञा पुं० [ फ़ा० शाह का ललित रूप ] (१) बहुत बड़ा राजा । बादशाह । (२) घर । वृहदा ।

यौ०—बाहवाला ।

वि० बड़ा चढ़ा । श्रेष्ठतर ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनाने के समय उसके आरंभ में होता है । जैसे,—  
शाहजोर, शाहबाज, शाहसवार ।

संज्ञा स्त्री० (१) शाहरंज के खेल में कोई मुहरर किसी ऐसे स्थान पर रखना जहाँ से बादशाह उसकी धात में पड़ता हो ।

-किसत । उ०—राजा पील देह शाह मर्गा । शाह ही चाहि मरे रथ खागा ।—जायसी ।

फ़ि० प्र०—खाना ।—देना ।—बचाना ।—लगाना ।

(२) गुप्त रूप से किसी के भद्रकामे या उभारने की क्रिया या भाव । जैसे,—ये गुम्हारी शाह पाकर ही तो हतना उछलते हैं ।

फ़ि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

(३) गुप्ती, पतंग या फनहोने भादि की धीरे धीरे, धीरे धीली करते हुए, आगे बढ़ाने की क्रिया या भाव ।

फ़ि० प्र०—देना ।

शाहचाल-संज्ञा स्त्री० [ फ़ा० शाह + हि० चाल ] शाहरंज में बादशाह की यह चाल जो और मोहों के मारे जाने पर चली जाती है ।

शाहजादा-संज्ञा पुं० [ फ़ा० ] [ स्त्री० शाहजारी ] (१) राजपुत्र ।

रामकुमार । (२) राज्य का उत्तराधिकारी । सुवाम ।

शाहज़ोर-वि० [ फ़ा० ] बकी । बलवान । ताकतवर ।

शाहज़ोरी-संज्ञा स्त्री० [ फ़ा० ] (१) बल । ताकत । (२) जबरदस्ती । शहूत-संज्ञा पुं० दे० "बाहूत" ।

शाहतीर-संज्ञा पुं० [ फ़ा० ] लकड़ी का चीरा हुआ बहुत बड़ा और लंबा छड़ा जो प्रायः इमारत के काम में जाता है ।

शाहदूत-संज्ञा पुं० [ फ़ा० ] रत नाम का पेड़ और उसका फल । वि० दे० "तूत" ।

शाहद-संज्ञा पुं० [ अ० ] धीरे की तरह का एक बहुत प्रसिद्ध मीठा, गाढ़ा सरल पदार्थ जो कई प्रकार के कीड़े और विशेषतः मधुमक्खियों अनेक प्रकार के फूलों के मकरंद से संग्रह काले अपने छत्तों में रखती हैं । जब यह अपने गुद रूप में रहता है, तब इसका रंग सफ़ेदी लिए कुछ लाल या पीला होता है । यह पानी में सहज में घुल जाता है । यह बहुत बल-वर्द्धक माना जाता है और प्रायः औषधों के साथ, दूध में मिलाकर भयवा योही खाया जाता है । इसमें फल भादि भी रक्षित रहे जाते हैं; अथवा उनका सुरक्षा ढाळा बना है । कभी कभी ऐसा शाहद भी मिलता है जो मादक या विर होता है । वैद्यक में यह शीतवीर्य, लघु, रूक्ष, पाक, आँखों के लिये हितकारी, अग्निदीपक, स्वास्त्ववर्द्धक, वर्ण-प्रसादक, चित्त को प्रसन्न करनेवाला, मेधा और वीर्य बढ़ाने-वाला, रुचिकारक और कोढ़, यवासीर, खाँसी, कफ, प्रमेह, प्यास, फ़े, हिचकी, अतीसार, मलरोग और दाह को दूर करनेवाला माना गया है । मधु ।

मुहूर्त—शाहद लगाकर चाटना = किसी निरर्थक पदार्थ को धीरे लिए रहना और उसका कुछ भी उपयोग न कर सकना । (अर्थ) जैसे,—उसका दिवाळा हो गया, अथ भाप अपना तमसुक शाहद लगाकर चाटिए । शाहद लगाकर भलगा होना = उपद्रव का सुवधात करके अलग होना । भाग लगाकर दूर होना ।

शाहनगी-संज्ञा पुं० [ अ० शाहनः ] (१) दास रक्षक का कार्य । (२) वह धन जो चौकीदार को देने के लिये असामियों से वसूल किया जाता है । चौकीदारी ।

शाहना-संज्ञा पुं० [ अ० शाहनः ] (१) खेत की चौकसी करनेवाला । शख-रक्षक । (२) वह व्यक्ति जो ज़मींदार की ओर से असामियों को बिना मोत दिए, खेत की उपज उठाने से रोकने और उसकी रक्षा के लिये नियुक्त किया जाता है । (३) कोतवाल । नगर-रक्षक ।

शाहनार्द-संज्ञा स्त्री० [ फ़ा० ] (१) बसुंरी या अल्लोगे के आकार का, पर उससे कुछ बड़ा, सुँह से ढूँँकर बनाया जानेवाला एक प्रकार का धागा जो प्रायः रीतानचौकी के साथ बनाया जाता है । मज़ीरी । (२) दे० "रीतानचौकी" ।

शाहवाला-संज्ञा पुं० [ फ़ा० ] वह छोटा बालक जो विवाह के समय दूबड़े के साथ बालकी पर भयवा उसके पीछे घोड़े

पर पैठकर जाता है। यह प्रायः घर का छोटा भाई या उसका कोई निष्ठ संबंधी हुआ करता है।

शब्दसुलभुल-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] एक प्रकार की सुलभुल। इसका सारा शरीर लाल होता है, केवल कंठ काला होता है; और सिर पर सुनहले रंग की पोटी होती है।

शब्दमात-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] शारंग के खेल में एक प्रकार की मात। इसमें बादशाह को केवल प्राद या किरत देकर इस प्रकार मात किया जाता है कि बादशाह के चलने के लिये और कोई घर ही नहीं रह जाता। उ०—राजा चढ़े बुढ़े मा, प्राद चढ़े शब्दमात।—जायसी।

शहर-संज्ञा पुं० [ फा० ] मनुष्यों की वह बड़ी बस्ती जो कस्बे से बहुत बड़ी हो, जहाँ हर घंटे के लोग रहते हों और जिसमें अधिकतर पके मकान हों। उ०—रघुराज गरीब सेवान दोज लखलोकन काज चले शहरें।—रघुराज।

शहरपनाह-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] नगर के चारों ओर बनी हुई पकी दीवार। यह दीवार जो किसी नगर के चारों ओर रक्षा के लिये बनाई जाय। शहर की चार-दीवारी। प्राचीर। नगर-कोटा। उ०—गमनत धात सुहात एहि बिधि निष्ठ शहर-पनाह के।—रघुराज।

शहरी-वि० [ फा० ] (१) शहर से संबंध रखनेवाला। शहर का। (२) शहर का रहनेवाला। नगर निवासी। नागरिक।

शहरवत-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] (१) कामातुरता। काम का उद्वेग। कि० प्र०—उठना।—होना। (२) भोग-विलास। विषय। मैथुन।

शहरसवार-संज्ञा पुं० [ फा० ] वह जो घोड़े पर अच्छी तरह सवारी कर सकता हो। अच्छा सवार। सवारी में चतुर।

शहादत-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] (१) गवाही। साक्ष। कि० प्र०—गुजरना।—देना।—मिलना।—लेना। (२) सत्य। प्रमाण। (३) धर्म के लिये लड़ाई आदि में मारा जाना। शहदी होना। (मुसल०)

शहाना-संज्ञा पुं० [ देश० या फा० शहर? ] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह राग फरीदस्त और कान्हादा को मिलाकर बनाया गया है और इसका व्यवहार प्रायः उसवों तथा धर्म संबंधी कार्यों में होता है। शाघ के अनुसार यह मालकोटा राग की रागिनी है। इसके गाने का समय ११ दंड से १५ दंड तक है।

वि० [ फा० ] (१) शाहों या बादशाहों का सा। राजाओं के योग्य। शाही। राजसी। (२) बहुत बढ़िया। उत्तम।

शंका पुं० वह जोड़ा जो विवाह के समय सूदे को पहनाया जाता है।

शहाना कान्हाड़ा-संज्ञा पुं० [ हि० शहाना + कान्हाड़ा ] संपूर्ण जाति

का एक प्रकार का कान्हादा राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

शहाय-संज्ञा पुं० [ फा० ] एक प्रकार का गहरा लाल रंग जो कुसुम के रूख अच्छे और गहरे लाल रंग में आम या हमली की छत्र मिलाकर बनाया जाता है।

शहाया-संज्ञा पुं० दे० “अगिया बैताल” (२)।

शहायी-वि० [ हि० शहाय + ई (प्रत्य०) ] शहाय के रंग का। गहरा लाल।

शहिजदा-संज्ञा पुं० [ ची० शहिजरी ] दे० “दाहनादा”। उ०—(क) पठयो कवरु नाम जेदि, शहिजदा को शाह।—रघुराज। (ख) रही शाह की एक शहिजदा। लखि सो मृत छवि मरयादी।—रघुराज।

शहीद-संज्ञा पुं० [ फा० ] वह व्यक्ति जो धर्म या इसी प्रकार के और किसी शुभ कार्य के लिये युद्ध आदि में मारा गया हो। म्यूठार या यत्तिदान होनेवाला व्यक्ति।

शांकर-वि० [ सं० ] (१) शांकर संबंधी। (२) शंकराचार्य का। जैने,—शांकर माध्य, शांकर मत।

शंका पुं० (१) साँझ। (२) शंकराचार्य का अनुयायी। (३) आर्द्रा नक्षत्र, जिसके देवता शिव जी माने गए हैं। (४) एक छंद का नाम। (५) सोम लता का एक भेद।

शांकरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव के पुत्र, गणेश। (२) कार्तिकेय। (३) अग्नि। (४) एक मुनि का नाम। (५) शमी का पेड़।

शांकारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शिव द्वारा निर्धारित अक्षरों का क्रम। शिायसूत्र।

शांफित-संज्ञा पुं० [ सं० ] चोरक नामक गंध द्रव्य।

शांफुची-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दाहूची मछली।

शांख-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख की ध्वनि।

वि० शंख संबंधी। शंख का बना हुआ।

शांखायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गुरु और श्रौत सूत्रकार ऋषि निनका की शिष्यता प्राप्त भी है।

शांखारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख ध्वजनेवाली जाति।

शांखिक-वि० [ सं० ] [ ची० शांखी ] (१) शंख संबंधी। (२) शंख का बना हुआ।

शंका पुं० शंख ध्वजने और ध्वजनेवाला। शांखारि। (२) शंख ध्वजनेवाला व्यक्ति।

शांखप-वि० [ सं० ] (१) शंख-संबंधी। (२) शंख का बना हुआ।

शांखुष्टा-संज्ञा स्त्री० दे० “शांखुष्टा”।

शांखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का शाक।

शांडदुर्वा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की दुर्वा। पाक दुर्वा।

शांडाकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पत्त।

शांडिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मंद में रहनेवाला साँझ नामक जंतु।

शांडिली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक ब्राह्मणी जो अग्नि की माता मानकर पूजी जाती थी। ( महाभारत )

शांडिल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बेल। धौकल। (२) अग्नि। (३) एक मुनि जिनकी रची एक स्मृति है और जो भक्तिसूत्र के कर्ता माने जाते हैं। (४) शांडिल्य के कुल में उत्पन्न पुरुष। (५) सप्तधारी ब्राह्मणों के तीन प्रधान गोत्रों में से एक गोत्र।

शांत-वि० [ सं० ] (१) जिसमें वेग, क्षोभ या क्रिया न हो। दहरा हुआ। रुका हुआ। बंद। जैसे,—अंध श्रांत होना, उपद्रव शांत होना, झगड़ा शांत होना। (२) ( कोई पीड़ा, रोग, मानसिक वेग आदि ) जो जारी न हो। बंद। मिटा हुआ। जैसे,—क्रोध शांत होना, पीड़ा शांत होना, साप शांत होना। (३) जिसमें क्रोध आदि वा वेग न रह गया हो। जिसमें जोश न रह गया हो। स्थिर। जैसे,—जब हमने समझाया, तब ये शांत हुए। (४) जिसमें जीवन की चेष्टा न रह गई हो। मृत। मरा हुआ। (५) जो चंचल न हो। धीर। उग्रता या चंचलता-रहित। सौम्य। गंभीर। जैसे,—शांत प्रकृति, शांत आदमी। (६) मौन। चुप। खामोश। (७) जिसमें मन और इंद्रियों के वेग को रोका हो। मनोविकार-रहित। रागादि-शून्य। जितेंद्रिय। (८) उत्साह या उत्परतारहित। जिसमें झुंझ करने की उमंग न रह गई हो। विथिल। ठीका। (९) दारा हुआ। थका हुआ। श्रांत। (१०) जो जलता या उद्दीप्त न हो। जो दृढ़कता न हो। सुलझा हुआ। जैसे,—अग्नि शांत होना। (११) विन्न बाधा रहित। स्थिर। (१२) जिसकी घबराहट दूर हो गई हो। जिसका जो डिकाने हो गया हो। स्वस्थ चित्त। (१३) जिस पर असर न पड़ा हो। अप्रभावित।

संज्ञा पुं० (१) कान्य के नौ रसों में से एक रस जिसका स्थायी भाव "निर्वेद" ( काम, क्रोधादि चैवों का क्षानन ) है।

विशेष—इस रस में संसार की अनियता, दुःखपूर्णता, असरता आदि का ज्ञान अथवा परमात्मा का स्वरूप आलंबन होता है; तपोवन, भ्रष्टि, आग्रम, रमणीय तीर्थान्ति, साधुओं का ससंग आदि उद्दीपन, रोमांच आदि अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, दया आदि संचारी भाव होते हैं। शांत ही रस कहने में यह वाधा उपस्थित की जाती है कि यदि सब मनोविकारों का क्षानन ही शांत है, तो विभाव, अनुभाव और संचारी द्वारा उसकी निष्पत्ति कैसे हो सकती है ? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि शांत दशा में जो सुखादि का अभाव कहा गया है, वह विषय-जन्य सुख का है। योगियों को एक अलौकिक प्रकार का आनंद होता है जिसमें संचारी आदि भावों की स्थिति हो सकती है। नाटक में आठ ही रस माने जाते हैं, शांत रस नहीं माना जाता।

कारण यह कि नाटक में अनियत क्रिया ही मुख्य है; अतः उसमें 'शांत' का समावेश ( जिसमें क्रिया, मनोविकार आदि की शांति कही जाती है ) नहीं हो सकता। (२) इंद्रिय-निग्रही योगी। विरक पुरुष। (३) मनु का एक पुत्र।

शांतता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शांति। क्षानन। (२) सामोती। नीरवता। (३) रागादि का अभाव। विराग। (४) हलचल का न होना। उपद्रव आदि का अभाव।

शांतनव-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शांतनवी ] (१) राजा शांतनु के पुत्र, भीष्म। (२) मेघातिथि का पुत्र।

शांतनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) द्वापर युग के एकसर्वे चंद्रवंशी राजा।

विशेष—ये प्रतीक के पुत्र और महाभारत युद्ध के प्रसिद्ध योद्धा भीष्मपितामह के पिता थे। शांतनु की स्त्री गंगेदेवी के गर्भ से भीष्म ( गांगेय ) की उत्पत्ति हुई थी। यदुराज नामक धीवर की कन्या सत्यवती के रूप पर मोहित होकर शांतनु ने उसे ब्याहने की इच्छा प्रकट की। यदुराज ने सत्यवती के पुत्र को राज्य देने की प्रतिज्ञा लेकर कन्या ब्याह दी। उसके गर्भ से विचित्रवीर्य और विप्रांगर उत्पन्न हुए थे।

(२) ककड़ी।

शांता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अयोध्या के राजा दशरथ की कन्या और महर्षि ऋष्यशृंग की पत्नी। दशरथ ने अपने निग्रह देव के राजा लोमनाद को अपनी कन्या शांता पोष्य-पुत्रिका के रूप में दी थी। (२) रेणुका। (३) दुर्गा। (४) धामी। छिहुर। (५) अंबिका। (६) संगीत में एक श्रुति।

शांति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वेग, क्षोभ या क्रिया का अभाव। किसी प्रकार की गति, हलचल या उपद्रव का न होना। स्थिरता। (२) नीरवता। स्वभावता। सदाता। (३) चित्त का ठिकाने होना। स्वस्थता। चैन। इतमीनान। क्षराम। (४) रोग आदि का दूर होना। मनोवेग, पीड़ा, शारीरिक उपद्रव या विकार आदि का न रह जाना। जैसे,—रोगशांति, तानशांति, क्रोध-शांति। (५) जीवन की चेष्टा का रुक जाना। मृत्यु। मरण। (६) चंचलता का अभाव। धीरता। गंभीरता। सौम्यता। (७) रागादि की निवृत्ति। पावनार्थ से छुटकारा। नृणा का क्षय। विराग। (८) एक गोपी का नाम। (९) दुर्गा। (१०) अनुभव या अनिष्ट का निवारण। अमंगल दूर करने का उपचार। जैसे,—मह शांति, पार शांति, मूल-शांति।

शांतिक-वि० [ सं० ] शांति संबंधी। शांति का।

संज्ञा पुं० शांतिकर्म।

शांतिकर-वि० [ सं० ] शांति करनेवाला ।  
 शांतिकर्म-छंदा पुं० [ सं० ] बुरे ब्रह्म, प्रेतवाधा, पाप आदि द्वारा होनेवाले भ्रमंगल के निवाण का उपचार ।  
 शांतिशुद्ध-छंदा पुं० [ सं० ] यज्ञ के अंत में पाप तथा अधुम आदि की शांति के लिये स्नान करने का स्नानागार ।  
 शांतिवृ-वि० [ सं० ] [ श्री० शांतिरा ] शांति देनेवाला ।  
 छंदा पुं० विलुपु ।  
 शांतिदाता-छंदा पुं० [ सं० ] शांतिदाए [ श्री० शांतिदात्री ] शांति देनेवाला ।  
 शांतिदायक-छंदा पुं० [ सं० ] [ श्री० शांतिदायिका ] शांति देनेवाला ।  
 शांतिदायी-वि० [ सं० ] शांतिदायिन् [ श्री० शांतिदायिनी ] शांति देनेवाला ।  
 शांतिनाथ-छंदा पुं० [ सं० ] जैनों के एक तीर्थंकर या अर्हत् का नाम ।  
 शांतिपर्व-छंदा पुं० [ सं० ] महाभारत का बारहवाँ और सप्त से बड़ा पर्व जिसमें युद्ध के उपरांत सुविष्टि की विच-शांति के लिये कही हुई बहुत सी कथाएँ, उपदेश और ज्ञानचर्चा हैं ।  
 शांतिपात्र-छंदा पुं० [ सं० ] वह पात्र जिसमें ब्रह्म, पाप आदि की शांति के लिये जल रखा जाय ।  
 शांतिप्रद-वि० [ सं० ] शांति देनेवाला ।  
 शांतिमय-वि० [ सं० ] [ श्री० शांतिमयी ] शांति से पूर्ण । शांति से भरा हुआ ।  
 शांतिवाचन-छंदा पुं० [ सं० ] ब्रह्म, प्रेतवाधा, पाप आदि से होनेवाला भ्रमंगल को दूर करने के लिये मंत्रपाठ ।  
 शांतिस्वा-छंदा पुं० दे० "शांतिशुद्ध" ।  
 शांतिव्रति-छंदा श्री० [ सं० ] भारंगी, बमनेटी, ब्राह्मण यष्टिका ।  
 शांय-छंदा पुं० [ सं० ] (१) एक राजा का नाम । (२) दे० "सौर" ।  
 शांय-वि० [ सं० ] (१) शंकर दैत्य संबंधी । (२) सौर श्रम का ।  
 छंदा पुं० छोभ वृक्ष । छोच ।  
 शांयशिल्प-छंदा पुं० [ सं० ] इंद्रजाल । जादू ।  
 शांयरिक-छंदा पुं० [ सं० ] जादूगर । मायावी ।  
 शांयरी-छंदा श्री० [ सं० ] (१) माया । इंद्रजाल ।  
 विशेष-कहते हैं कि शंकर दैत्य ने पहले पहल इसका प्रयोग किया था; इसी कार इसका नाम शांयरी पड़ा ।  
 (२) जादूगरनी । मायाविनी ।  
 छंदा पुं० [ सं० ] शांयिन् (१) एक प्रकार का चंदन । (२) छोच । (३) मृपाकानी नाम की लता ।  
 शांयविक-छंदा पुं० [ सं० ] शंय का व्यवसाय करनेवाला ।  
 शांयुक-छंदा पुं० [ सं० ] घोषा ।

शांयुक-छंदा पुं० [ सं० ] घोषा ।  
 शांयूर-छंदा श्री० [ सं० ] रातपूताने की एक शील जिसमें सौर नामक होना है । सौर शील ।  
 छंदा पुं० सौर नामक ।  
 शांमय-वि० [ सं० ] शंयु संबंधी । शिव का ।  
 छंदा पुं० [ सं० ] (१) देवदार वृक्ष । (२) कूर । (३) शिव मष्टिका का पौधा । वसु । (४) गुगुल । गुगुलु । (५) एक प्रकार का विय । (६) शिव का पुत्र । (७) शैव । शिवोपासक ।  
 शांमयी-छंदा श्री० [ सं० ] (१) नीली दूब । (२) दुर्गा ।  
 शाइस्तगी-छंदा श्री० [ सं० ] (१) शिष्टता । सम्भवता । तहजीब । (२) मरुममसी । आदमीपत । मनुष्यत्व ।  
 शाइस्त-वि० [ सं० ] शाइस्तः (१) शिष्ट । सुश्रव । तहजीब-वाला । (२) विगीत । मन्त्र । (३) जो अच्छी चाल सीखा हो । भद्र्य कापदा जाननेवाला । शिक्षित । शैसे,— शाइस्ता घोड़ा ।  
 शाकंठ-छंदा पुं० [ सं० ] बहुभा नाम का साग ।  
 शाकंभरी-छंदा श्री० [ सं० ] (१) दुर्गा । (२) सौर नामक नगर ।  
 शाकंभरीय-वि० [ सं० ] सौर शील से उत्पन्न ।  
 छंदा पुं० सौर नामक ।  
 शाक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) पत्ती, फूल, फल आदि जो पकाकर खाए जायें । भाजी । तरकारी । साग ।  
 विशेष-शाक छः प्रकार का कहा गया है—(१) पत्र शाक—चौलाई, यधुभा, मेथी आदि; (२) पुष्प शाक—ढेले का फूल, मगस का फूल आदि; (३) फल शाक—बैंगन, करेला आदि; (४) नाल शाक—करैम आदि; (५) कंद शाक—जमीरकंद, कपू आदि; (६) संस्वेदन शाक—द्विगरी, सुई फोड़, गोबर छत्ता आदि । ये शाक अनुक्रम से एक दूसरे से भारी होते हैं । सप्त प्रकार के पत्र शाक विष्टंभकारक, भारी, रुले, मरुकारक, अधोगत, वातकारी तथा शरीर, इट्टी, नेत्र, रुधिर, धीर्य, शुद्धि, सारण-शक्ति और गति-शक्ति का प्रादा करनेवाले तथा समय से पहले बाओं को सुकेंद करनेवाले कहे गए हैं । परंतु जीवंती, यधुभा और चौलाई हानिकारक नहीं हैं ।  
 (२) सार्गोन का पेड़ । (३) मोनपत्र । भूर्ज वृक्ष । (४) सिरिस का पेड़ । (५) पुराणानुसार सात हीरों में से एक हीरा । दे० वि० "शाकदीप" । (६) शाक राजा शांतिप्राहन का संबन्ध । (७) शक्ति । बल । ताकत ।  
 वि० [ सं० ] (१) शाक जाति संबंधी । (२) शाक राजा का । शैसे,—शाक संबन्ध ।

शाक-वि० [ सं० ] (१) भारी। दूधर। कठिन।  
 सुहा०—शाक गुमरना = कठकर होना। खलना।  
 (२) दुःख देनेवाला। कष्ट। (काम)  
 शाक कलंबक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्याज। (२) लहसुन।  
 शाक चुक्रिफा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अमलोनी का साग।  
 नोनिया। (२) हमळी।  
 शाकट-वि० [ सं० ] शकट या गाड़ी संबंधी। गाड़ी का।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गाड़ी का धूल या जानवर। (२)  
 गाड़ी का घोड़ा। (३) लिखोदा। लभेरा। (४) धव वृक्ष।  
 (५) खेत। जैसे,—शाक शकट।  
 शाकटपोतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पोई या पोय का पौधा।  
 शाकटायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शकट का पुत्र। (२) एक बहुत  
 प्राचीन वैयाकरण जिनका उल्लेख पाणिनि ने किया है।  
 (३) एक दूसरे भवोच्यीन वैयाकरण जिनके व्याकरण का  
 प्रचार किर्त्तों में है।  
 शाकटिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गाड़ीवाला। (२) गाड़ीवान।  
 शाकटीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गाड़ी का घोड़ा। (२) प्राचीन  
 काल की एक तौल जो बीस तुला या दो सहस्र पल की  
 होती थी।  
 शाकटुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वरण वृक्ष। (२) सागौन  
 का पेड़।  
 शाकटोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुराणावसर सात हीरों में  
 से एक हीरा।  
 विशेष—इसमें एक बहुत बड़ा शाक या सागौन का पेड़  
 माना गया है और यह चारों ओर क्षीर समुद्र से घिरा हुआ  
 कहा गया है। कहते हैं कि इसमें ऋतुमत्, सत्यमत्, दानमत्  
 और अनुमत् यत्ते हैं।  
 (२) ईरान और तुर्किस्तान के बीच में पड़नेवाले उस प्रदेश  
 का नाम जिसमें होकर वंशु नद या भाक्सस नदी बहती  
 है। इस प्रदेश में आर्य और शक जातियाँ बसती थीं।  
 शाकद्वीपीय-वि० [ सं० ] शाकद्वीप का रहनेवाला।  
 संज्ञा पुं० प्राहणों का एक भेद। मग प्राहण।  
 विशेष—इन प्राहणों के जन्म द्वीप में आने की कथा हरिवंश  
 में इस प्रकार मिलती है। एक पारं कृष्ण के पुत्र साँव ने  
 सूर्य का मंदिर बनवाया और सौर यज्ञ करना चाहा।  
 जब उन्हें यह मालूम हुआ कि सूर्य की सपासना-विधि  
 के अच्छे जानेवाले शाकद्वीप में मिलेंगे, तब उन्होंने वहाँ  
 से कुछ प्राहण चुनवाए। यह उस समय की बात है  
 जब भारत और ईरान में एक ही आर्य सभ्यता  
 प्रचलित थी और एक देश के ऋषिज दूसरे देश में जाकर  
 बराबर यज्ञ कराया करते थे। फ़ारस में यज्ञ करनेवाले

पुरोहित 'मग' कहलते थे; इसी से इन शाकद्वीपीय प्राहणों  
 को 'मग प्राहण' भी कहते थे।  
 शाकपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] संहिजन। शोभाजन वृक्ष।  
 शाकपिल्व, शाकपिल्वक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बैंगन। भंडा।  
 भौंटा।  
 शाकभञ्ज-वि० [ सं० ] मांस न खानेवाला। शाकाहारी।  
 शाकयोग्य-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धनिया। धान्याक।  
 शाकराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] बधुआ। वारूक शाक।  
 विशेष—निर्वाण होने के कारण बधुआ शाकों का राजा कहा  
 गया है।  
 शाकरी-संज्ञा स्त्री० दे० "शाकारी"।  
 शाकल-वि० [ सं० ] (१) शकल नाम द्रव्य से रंगा हुआ। (२)  
 खंड या धंदा संबंधी।  
 संज्ञा पुं० (१) खंड। टुकड़ा। चिपचड़। (२) एक प्रकार  
 का सौर्य। (३) ऋग्वेद की एक शाखा या संहिता। (४)  
 लकड़ी का बना हुआ तावीज। (५) मद्र देश का एक  
 नगर। (६) वाहीक (पंजाब) देश का एक ग्राम। (महा-  
 भाष्य) (७) एक ग्राम या नगर का निवासी। (८)  
 हवन की सामग्री जिसमें जी, तिल, घी, मधु आदि का  
 मेल रहता है।  
 शाकल शाखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ऋग्वेद की वह शाखा या  
 संहिता जो शाक्य ऋषि के गोत्रजों में चली। (ऋग्वेद  
 की यही शाखा आजकल मिलती और प्रचलित है।)  
 शाकली-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली।  
 शाकल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बहुत प्राचीन ऋषि जो ऋग्वेद  
 की एक शाखा के प्रचारक थे और जिन्होंने पहले पहल  
 उसका पदपाठ ठीक किया था।  
 शाक्यर-संज्ञा पुं० [ सं० ] जीवशाक।  
 शाक्यरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] जीवंती या डोडी नामक फल।  
 शाक्यवल्ली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कटा करंज। सागर गोटा।  
 शाक्यवालेप-संज्ञा पुं० [ सं० ] चमनेदी। भारंगी। प्राहण  
 यष्टिका।  
 शाक्यिदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बेल का पेड़।  
 शाक्यीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बधुआ। वारूक शाक। (२)  
 पुनर्वा। मद्रहपुरगा। (३) जीव शाक।  
 शाकशाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] यकॉन। महानिंब वृक्ष।  
 शाकधेष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] बधुआ। वारूक शाक।  
 शाकधेष्टा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जीवंती। डोडी शाक। (२)  
 डोडी। (३) भंडा। बैंगन। (४) पेदा। भतुआ। (५)  
 तरवूज।  
 शाकांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोल मिर्च। काठी मिर्च।  
 शाका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इरीतकी। हड़। हरे।

शाकाख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सामीन का पेद ।  
 शाकासू-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महादा । वृक्षाभ्र । (२) हमली ।  
 शाकाभ्र-भेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] चूक । चुक ।  
 शाकाहारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शाकें भयवा दाकारों की भाषा, जो प्राकृत का एक भेद है ।  
 शाकाष्टका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फाल्गुन कृष्ण पक्ष की अष्टमी । (हस दिन पितरों के उद्देश्य से दाक दान किया जाता है ।)  
 शाकाष्टमी-संज्ञा स्त्री० दे० "शाकाष्टका" ।  
 शाकाहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनाज भयवा फल कूड पत्ते आदि का भोजन । मोसाहार का उलटा  
 शाकाहारी-वि० [ सं० शाकाहारि ] [ स्त्री० शाकाहारिणी ] केवल अनाज या साग भाजी खानेवाला । (मांस न खानेवाला)  
 शाकिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह भूमि जिसमें दाक बोया हुआ हो । साग की बगारी । (२) एक पिनाची या देवी जो दुर्गा के गर्भों में समझी जाती है । टाहन । सुवैल ।  
 शाकिर-वि० [ सं० ] (१) कृतज्ञता प्रकाशित करनेवाला । शुक्र-गुजार । (२) संतोष रखनेवाला ।  
 शाकी-वि० [ सं० ] (१) शाकाहार करनेवाला । (२) मांसित करनेवाला । (३) सुगली खानेवाला ।  
 शाकुंतलेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] शकुन्तला का पुत्र, भरत ।  
 शाकुलिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिन्नीमार । बहेलिया ।  
 शाकुन-वि० [ सं० ] (१) पक्षी संबंधी । चिड़ियों का । (२) शुभानुभ लक्षण संबंधी । सगुनवाला ।  
 संज्ञा पुं० (१) चिड़िया पकड़नेवाला । बहेलिया । (२) धारा आदि में कुछ विशेष पक्षियों जंतुओं या और पदार्थों के मिलने से शुभानुभ का निर्णय । शाकुन । सगुन ।  
 शाकुनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] बहेलिया ।  
 शाकुनी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाकुनिर । (१) मछवाहा । मछली पकड़नेवाला । (२) एक प्रकार का मेल । (३) सगुन विचारनेवाला ।  
 शाकुनेय-वि० [ सं० ] पक्षी-संबंधी ।  
 संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का छोटा उलू । (२) पकासुर नामक दैत्य । (३) एक मुनि का नाम ।  
 शाकुलिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मछवाहा । (२) मछलियों का समूह ।  
 शाकेशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईल का एक भेद ।  
 शाकेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राभा जिसके नाम से संवत् चले । जैसे, —सुषिष्ठिर, विक्रमादित्य शाकित्वाहन ।  
 शाकौल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की लता ।  
 शाकर-संज्ञा पुं० दे० "शाकर" ।  
 शाक-वि० [ सं० ] शाक-संबंधी ।

संज्ञा पुं० शाक का उपासक । संघ पद्धति से देवी को पूजा करनेवाला ।

विशेष—इनके पूजन का विधान वैदिक से भिन्न होता है । वे ईश्वर की शाक का दिव की पत्नी दुर्गा के रूप में उपासना करते हैं । यह उपासना-पद्धति दो प्रकार की है—दक्षिणाचार और वामाचार । वामाचारियों या वाममार्गियों की पूजा में मद्य, मांस, स्त्री आदि का व्यवहार होता है । स्त्रियों की अनर्द्धिय को शाक का प्रतीक मानकर वे लोग उसकी विशेष रीति से पूजा करते हैं ।

शाकागम-संज्ञा पुं० [ सं० ] संघ शास्त्र ।

शाकिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शाक का उपासक । शाक । (२) माला संबंधीवाला ।

शाकीक-वि० [ सं० ] शाक या माला-संबंधी ।

संज्ञा पुं० माला खानेवाला ।

शाक्य-शाक्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाक का उपासक ।

शाक्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन क्षत्रिय जाति जो नैपाल की तराई में यक्षती थी और जिसमें गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए थे ।

विशेष—बौद्ध ग्रंथों में शक्य बुद्धवाक्य-वंशी कहे गए हैं । जिस स्थान में वे रहते थे, उसमें 'शाक' या सागीन के पेद अधिक थे; इसी से उसका 'शाक्य' नाम पड़ा । विद्वानों का अनुमान है कि लिच्छवियों के समान शाक्य भी प्रायः क्षत्रिय थे ।

शाक्यमुनि, शाक्यसिंह-संज्ञा पुं० [ सं० ] गौतम बुद्ध ।

शाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्येष्ठा नक्षत्र जिसके अधिपति इंद्र हैं ।

शाक्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुर्गा । (२) इंद्राणी । शक्यपत्नी ।

शाकर-वि० [ सं० ] शाकिसाक्षी । पराक्रमी । बलवान् ।

संज्ञा पुं० (१) इंद्र । (२) इंद्र का वज्र । (३) सौंद । बैल । (४) प्राचीन काल की एक रीति या संस्कार ।

शाख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कृत्तिका का पुत्र, कालिकेय । (२) भाग । (३) करंज ।

शाख-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) टहनी । टाल । टाली ।

मुहा०—शाख लगाना = (१) कलम लगाना । टहनी लगाना ।

(२) सिंगी लगाना । (३) पद बढ़ाना । सम्मान करना । शाख लगाना = धर्मल होना । रताना । शाख निकालना = दोष देना । कलंक लगाना । गुना बीनी करना । मगना खना करना । शाख निकालना = दोष निकालना । भगना निकालना । बलेना निकालना ।

(२) सींग । (३) लगा हुआ टुकड़ा । खंड । फाँट । (४) पत्नी आदि की बर्षी धारा में से निकली हुई छोटी धारा ।

शाखदार-वि० [ सं० ] (१) जिसमें बहुत सी शाखाएँ हों । टहनीदार । (२) सींगवाला । सींगदार ।

शाखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पेद के घट से चारों ओर निकली हुई लकड़ी या छंद । टहनी । टाल । (२) दारीर का भय । पथ । हाथ और पैर । (३) डँगली । (४) चौखटा । (५) घर



का पाख । (६) किसी मूल वस्तु से निकले हुए वस्तुके भेद । प्रकार । (७) विभाग । हिस्सा । (८) अंग । अवयव । (९) किसी शाखा या विद्या के अंतर्गत उसका कोई भेद । (१०) वेद की साहित्यांशों के पाठ और क्रमभेद जो कई ऋषियों ने अपने गोत्र या शिष्य परंपरा में चलाए ।

विशेष—शौनक ने अपने 'चरणस्यूह' में वेदों की जो शाखाएँ गिनाई हैं, उसके अनुसार ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं—शाकल्य, याग्वल्क्य, अथलायन, शाखायन और मांडूक्य । चायुपुराण में यजुर्वेद की ८६ शाखाएँ कही गई हैं जिनमें ४३ के नाम चरणस्यूह में आए हैं । इन ४३ में साष्वदिन और कण्व को लेकर १० शाखाएँ वाजसनेयी के अंतर्गत हैं । सामवेद की सहस्र शाखाएँ कही जाती हैं जिनमें १५ गिनाई गई हैं । इसी प्रकार अथर्ववेद की भी बहुत सी शाखाओं में से पिप्पलादा, शौनकीया आदि केवल नौ गिनाई गई हैं ।

शाखाकंठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] यूहर । स्तुही वृक्ष ।

शाखा चक्रमण्ड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक ढाल पर से दूसरी ढाल पर वृद्ध जाना । (२) एक विषय अपूर्ण छोड़कर दूसरा विषय हाथ में लेना । एक विषय पर स्थिर न रहना । (३) कोई विषय पूरा अध्ययन न करके थोड़ा थढ़, थोड़ा थढ़ पढ़ना ।

शाखाचंद्र न्याय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक न्याय या कथावत जो ऐसी बात के संबंध में कही जाती है जो केवल देखने में जान पड़ती है, वास्तव में नहीं होती । (चंद्रमा कभी कभी देखने में देखा जान पड़ता है मानो वेद की ढाल पर है ।)

शाखादंड-संज्ञा पुं० दे० "शाखारंड" ।

शाखाद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] पेड़ों की ढाल या टहनियों खानेवाले पशु । जैसे,—गो, बकरी, हाथी ।

शाखापित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रोग जिसमें हाथ और पैर में जलन और सूजन होती है ।

शाखापुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी नगर के भाग पास फैली हुई वस्ती ।

शाखाप्रवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अपने राज्य के कुछ दूर पर के भाग प्रकार के राजा जिनका विचार किसी राजा को युद्ध के समय रखना चाहिए । (मनु०)

शाखामृग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यानर । बंदर । (२) गिलहरी ।

शाखाम्ल-संज्ञा पुं० [ सं० ] जलधैत ।

शाखाम्ल-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हमली ।

शाखारंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह, मादण जो अपनी शाखा को छोड़कर दूसरी शाखा का अध्ययन करे । शाखादंड ।

शाखाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] जलधैत ।

शाखावात-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ पैर में होनेवाला वात रोग ।

शाखाशिफा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह ढाल जो नीचे की ओर बढ़कर जड़ पकड़ ले और एक अलग पैद के धड़ के रूप में हो जाए । जैसे,—घट की जटा या बरोह ।

शाखिमूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] रंषि वृक्ष ।

शाखी-वि० [ सं० शाखि ] शाखाओं से युक्त । शाखावाला ।

शाखी पुं० (१) वेद । वृक्ष । (२) वेद । (३) वेद की किसी शाखा का अनुयायी । (४) पीला का पेड़ । (५) दुर्द्विस्तार का निवासी ।

शाखोच्चार-संज्ञा पुं० [ सं० ] विवाह के समय वंशावली का उच्यन ।

शाखोट-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंदूर का पेड़ । पीत वृक्ष । वैद्य में यह कड़ुआ, गरम, पित्तकारक और वातहारी माना गया है ।

शागिर्द-संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) किसी से विद्या प्राप्त करने का संबंध रखनेवाला । शिष्य । चेला ।

मुहा०—शागिर्द करना = किसी को कुछ सिखाने का काम करने ऊपर लेना । चेला बनाना ।

शागिर्दपेशा-संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) मातहत । (२) अहलकार । कर्मचारी । (३) विद्वत्तगार । सेवक । (४) यद्यी कोठी के पास नौकरों के लिये अलग बने हुए घर ।

शागिर्दी-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] (१) शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त किसी गुरु के अधीन रहने का भाव । शिष्यता । (२) सेवा । टहल ।

शाचि-संज्ञा पुं० [ सं० ] दुल्कर भूखी निकाला हुआ जौ ।

शाट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कपड़े का टुकड़ा । (२) वह कपड़ा जो कमर में लपेटकर पहना जा सके । धोती । परदनी । (३) एक प्रकार की कुर्ती । (४) ठीला ठाला पहनावा ।

शाटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वस्त्र । पट ।

शाटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) साड़ी । धोती । (२) कपूर ।

शाटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साड़ी । धोती ।

शाट्याप्यन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शाट्याप्यनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम ।

शाट्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शकता । दुष्टता । बदमासी । (२) कपट । धँस । छल ।

शाट्यल-संज्ञा पुं० दे० "शाटल" ।

शाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हथियारों की धार तेज करने का पत्थर । सात । (२) कसौटी । कपपट्टिका । (३) चार मानों की एक तौल ।

वि० [ सं० ] (१) सन के पीछे से संबंध रखनेवाला । (२) सन का बना हुआ ।

संज्ञा पुं० सन के रेशे का बना हुआ कपड़ा । भँगरा ।

शाण्वास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सन का पुत्रा हुआ वज्र पहने। (२) एक भद्रं का नाम।

शाण्-संज्ञा पुं० [ सं० ] पट्टा।

शाणित-वि० [ सं० ] (१) सान रखा हुआ। तीला या तेज किया हुआ। (२) कसौटी पर कसा हुआ।

शाणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सन के रेवों से बुना हुआ कपड़ा। भंगरा। (२) फटा हुआ वज्र। चीयड़ा। (३) वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीत के समय प्रद्वचारी को पहनने के लिये दिया जाता है। (४) सान। (५) कसौटी। (६) छोटा सेमा या पयो।

शात-वि० [ सं० ] (१) सान रखा हुआ। तेज किया हुआ। (२) दुबला पतला। क्षीण।  
घडा पुं० धवरा।

शातकुंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कचनार का वृक्ष। (२) धवरा।  
(३) कनेर का वृक्ष। (४) सोना। स्वर्ण।

शातकौभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोना। सुवर्ण।

शातकृतव-संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्रधनुष।

शातन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० शातनीय, शातित ] (१) सान पर धार तेज करना। घोसा करना। (२) कटवाना। (वेद आदि) (३) मष्ट कराना। (४) काटना। तराशाना। छीलना। (५) सतह बराबर करना। रंदना।

शातुपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रिका। चाँदीनी।

शातमीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] मद्बहड़ी। मदन माठी।

शातला-संज्ञा स्त्री० दे० "सातला"।

शातवाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रामा का नाम। वि० दे० "शालिवाहन"।

शातातप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक स्मृतिकार का नाम।

शातिर-वि० [ सं० ] (१) चालाक। चतुर। उस्ताद। काढ़पॉ। (२) विपुण। दक्ष।

शंका पुं० (१) शूल। (२) शतरंज का खिलाड़ी।

शातोद्दर-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शातोदरी ] (१) पतली कमर-वाला। (२) क्षीण। पतला।

शात्रव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शत्रुव। शत्रुता। (२) शत्रु।  
(३) शत्रुओं का समूह।

शाद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पतन। गिरना। पदना। (२) घास। दूध। (३) कीचड़।

वि० [ सं० ] (१) सुख। प्रसन्न। (२) परिपूर्ण। भरापूर।

शाद्मान-वि० [ सं० ] प्रसन्न। सुख।

शाद्मानो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रसन्नता। सुखी।

शादा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ईंट।

शादात्र-वि० [ सं० ] हरा भरा। सरसज्ज। तरोताजा।

शादिसाना-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुखी का भांग। भांगद संगल-सूचक धार।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।

(२) वह धन जो किसान जमींदार को व्याह के भवसर पर देते हैं। (३) बधाया। बधाई।

क्रि० प्र०—देना।

शादी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुखी। प्रसन्नता। भांगद। (२) भांगदोसब।

यौ०—शादी गुमी।

(३) विवाह। व्याह।

शाद्गल-वि० [ सं० ] हरित वृण या दूर्वा से युक्त। हरी हरी घास से ढका हुआ। हरामरा।

संज्ञा पुं० (१) हरी घास। दूध। (२) सॉद। पैल।

शाद्गलाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का हरा कीड़ा।

शात-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तदक भदक। डाट घाट। सजावट। जैसे,—कल बड़ी शान से सपारी निकली थी।

यौ०—शान शौकत।

(२) गर्वाली चेरा। टसकी जैसे,—यह घोड़ा बड़ी शान से चलता है। (३) भवता। विशालता। चमस्कार।

(४) शक्ति। करामात। विभूति। ऐश्वर्य्ये। जैसे,—सुदा की शान। (५) प्रतिष्ठा। इज्जत। मानमर्थादा।

मुहा०—शान जाना = भविष्य होना। मान भंग होना।

शान घटना = इज्जत में कमी होना। बर्षण में कमी होना।

शान मारी जाना = दे० "शान जाना"। शान में बड़ा लगना = दे० "शान घटना"। किसी की शान में = किसी बड़े के संरंभ में। किसी के प्रति या किसी के विषय में। जैसे,—उनकी शान में ऐसी बात नहीं कहनी चादिप।

घडा पुं० [ सं० ] शाण। सान।

शानदार-वि० [ सं० शान + दार ] (१) भदकीला। तदक भदकवाला। डाट घाट का। जो बड़ी सजावट और सैपारी के साथ हो। (२) भव्य। विशाल। चमस्कारपूर्ण। (३) देवदर्य्य-युक्त। धैभवपूर्ण। (४) गर्वाली चेरा से युक्त। टसकवाला।

शानपाद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंदन पिलने का पथर। (२) पारिप्रात्र-पर्वत।

शान शौकत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तदक भदक। डाट घाट। सैपारी। सजावट।

शाना-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंया। कंधी। (२) मोदा। कंधा। खंवा।

शानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इनारुन। इंदवारणी।

शाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अहितकामना-सूचक शब्द। "तुम्हारा कुछ अनिष्ट हो" इस प्रकार का वचन। कोसना। बद्दुआ।

जैसे,—ऋषि के शाप से वह राजा हो गया। (२) धिक्कार। फटकारना। भर्त्सना।

क्रि० प्र०—देना।

का पात्र । (६) किसी मूल वस्तु से निकले हुए उसके भेद । प्रकार । (७) विभाग । हिस्सा । (८) अंग । अवयव । (९) किसी शास्त्र या विद्या के अंतर्गत उसका कोई भेद । (१०) वेद की संहिताओं के पाठ और क्रमभेद जो कई प्रतियों ने अपने गौरव या शिष्य परंपरा में चलाए ।

विशेष—शौनक ने अपने 'चरणव्यूह' में वेदों की जो शाखाएँ गिनाई हैं, उसके अनुसार ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं—शाकल्य, चाण्डल, अथलायन, शाखायन और मांडूक्य । वायुपुराण में यजुर्वेद की ८६ शाखाएँ कही गई हैं जिनमें ४३ के नाम चरणव्यूह में आए हैं । इन ४३ में माध्यंदिन और कण्व को लेकर १० शाखाएँ वाजसनेयी के अंतर्गत हैं । सामवेद की सहस्र शाखाएँ कही जाती हैं जिनमें १५ गिनाई गई हैं । इसी प्रकार अथर्ववेद की भी बहुत सी शाखाओं में से पिप्पलादा, शौनकीया आदि केवल नौ गिनाई गई हैं ।

शालाकंट-संज्ञा पुं० [ सं० ] थूहर । स्तुही वृक्ष ।

शाला चंद्रमण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक ढाल पर से दूसरी ढाल पर घूद जाना । (२) एक विषय अथवा छोटकर दूसरा विषय हाथ में लेना । एक विषय पर स्थिर न रहना । (३) कोई विषय पूरा अध्ययन न करके थोड़ा यद्, थोड़ा वह पढ़ना ।

शालाचंद्र न्याय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक न्याय या कथावत जो ऐसी बात के संबंध में कही जाती है जो केवल देखने में जान पड़ती है, वास्तव में नहीं होती । (चंद्रमा कभी कभी देखने में ऐसा जान पड़ता है मानो पेट की ढाल पर है ।)

शालादंड-संज्ञा पुं० दे० "शालारंड" ।

शालाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेदों की ढाल या टहनी खानेवाले पशु । जैसे,—गी, बकरी, हाथी ।

शालापित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रोग जिसमें हाथ और पैर में जलन और सूजन होती है ।

शालापुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी नगर के भाग पास फैली हुई बस्ती ।

शालाप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अपने राज्य के कुछ दूर पर के शाठ प्रकार के राजा जिनका विचार किसी राजा की युद्ध के समय रखना चाहिए । (मनु०)

शालाभृग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धानर । चंद्र । (२) गिलहरी ।

शालाम्ल-संज्ञा पुं० [ सं० ] जलवेत ।

शालाम्ना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हमली ।

शालारंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह, प्राणज जो अपनी दाखा को छोड़कर दूसरी शाखा का अध्ययन करे । शालादंड ।

शालाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] जलवेत ।

शालाघात-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ पैर में होनेवाला घात रोग ।

शालाशिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह ढाल जो नीचे की ओर घुकर जड़ पकड़ ले और एक अलग पेट के धड़ के रूप में हो जाय । जैसे,—घट की जटा या बरोह ।

शालिमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] रंधि वृक्ष ।

शाली-वि० [ सं० शालिन् ] शाखाओं से युक्त । शाखावाला । संज्ञा पुं० (१) पेट । वृक्ष । (२) वेद । (३) वेद की किसी शाखा का अनुयायी । (४) पीछ का पेट । (५) तुर्किस्तान का निवासी ।

शालोच्चार-संज्ञा पुं० [ सं० ] विवाह के समय वंशावली का कथन ।

शालोट-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिहोर का पेट । पीत वृक्ष । वैदक में यह कड़ुभा, गरम, पित्तकारक और वातहारी माना गया है ।

शालिर्द-संज्ञा पुं० [ का० ] (१) किसी से विद्या प्राप्त करने का संबंध रखनेवाला । शिष्य । चेला ।

मुद्दा—शालिर्द करना = किसी को कुछ सिखाने का काम करने लगर लेना । चेला बनाना ।

शालिर्दपेशा-संज्ञा पुं० [ का० ] (१) मातहत । (२) अहलकार । कर्मचारी । (३) खिदमतगार । सेवक । (४) बड़ी कोठी के पास चौकरी के लिये अलग बने हुए घर ।

शालिर्द-संज्ञा स्त्री० [ का० ] (१) शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त किसी गुरु के अधीन रहने का भाव । शिष्यता । (२) सेवा । टहल ।

शालि-संज्ञा पुं० [ सं० ] घुलकर भूसी निकाला हुआ जौ ।

शाट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कपड़े का टुकड़ा । (२) वह कपड़ा जो कमर में लपेटकर पहना जा सके । धोती । परदनी । (३) एक प्रकार की कुरती । (४) वीला वाला पहनावा ।

शाटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वस्त्र । पट ।

शाटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) साड़ी । धोती । (२) कचूर ।

शाटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साड़ी । धोती ।

शाट्यायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शाट्यायनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम ।

शाट्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शठता । दुष्टता । पदमासी । (२) कपट । धँस । छल ।

शाट्यल-संज्ञा पुं० दे० "नाद्रल" ।

शाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हथियारों की धार तेज करने का पथर । सान । (२) कसौटी । कपटद्विधा । (३) चार माते की एक तौल ।

वि० [ सं० ] (१) सन के पीछे से संबंध रखनेवाला । (२) सन का बना हुआ ।

संज्ञा पुं० सन के रेतो का पचा हुआ कपड़ा । भँगा ।

शाणवास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सन का घुना हुआ वस्त्र पहने। (२) एक भद्रक नाम।  
 शाधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] पटुभा।  
 शाशित-वि० [ सं० ] (१) सान रखा हुआ। तीखा या तेज किया हुआ। (२) कसौटी पर कसा हुआ।  
 शाणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सन के रेशों से घुना हुआ कपड़ा। अंगरा। (२) कटा हुआ वस्त्र। चौथड़ा। (३) वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीत के समय मसृष्टकारी को पहनने के लिये दिया जाना है। (४) सान। (५) कसौटी। (६) छोटा वेला या पदार्थ।  
 शात-वि० [ सं० ] (१) सान रखा हुआ। तेज़ किया हुआ। (२) दुबला पतला। क्षीण।  
 शष्पा पुं० श्वरा।  
 शातकुंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कचनार का वृक्ष। (२) श्वरा। (३) कनेर का वृक्ष। (४) सोमा। श्वर्ण।  
 शातकौम-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमा। सुवर्ण।  
 शातकृतय-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रधनुष।  
 शातन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० शातनीय, शातिन ] (१) सान पर धार तेज करना। चौंछा करना। (२) कटवाना। (वेद आदि) (३) नष्ट काना। (४) काटना। तराशाना। छीलना। (५) सतह बराबर करना। रंदना।  
 शातपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रिका। चाँदनी।  
 शातमीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] भद्रवल्ली। मदन माली।  
 शातला-संज्ञा स्त्री० दे० "सातला"।  
 शातपाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रामा का नाम। वि० दे० "शाब्दिपाहन"।  
 शातातप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक स्मृतिकार का नाम।  
 शातिर-वि० [ म० ] (१) चालाक। चतुर। वस्ताद। काहूँ। (२) निपुण। दक्ष।  
 शंघा पुं० (१) वृत्। (२) शतरंज का खिलाड़ी।  
 शातोदर-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शानोदरी ] (१) पतली कमर-वाला। (२) क्षीण। पतला।  
 शाश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शशुव। शशुवा। (२) शशु। (३) शशुओं का समूह।  
 शाश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पवन। गिरना। पड़ना। (२) घास। दूध। (३) कीचड़।  
 शि० [ फा० ] (१) सुशो। प्रसन्न। (२) परिपूर्ण। संतोष।  
 शादमान-वि० [ फा० ] प्रसन्न। सुख।  
 शादमानो-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] प्रसन्नता। सुखी।  
 शादा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इंत।  
 शादाश-वि० [ फा० ] हरा भरा। सरसदृश। तरोतान।  
 शादियाना-संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) सुखी का बांजा। भानंद मंगल-सूचक वाद्य।

क्रि० प्र०-यजना।-यजाना।  
 (२) वह धन जो किसान जमींदार को ब्याह के अवसर पर देते हैं। (३) यथावा। यथाई।  
 क्रि० प्र०-देना।  
 शादी-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] (१) सुखी। प्रसन्नता। भानंद। (२) भानंदोत्सव।  
 यौ०-शादी गामी।  
 (२) विवाह। ब्याह।  
 शादल-वि० [ सं० ] हरित गुण या दुर्वा से युक्त। हरी हरी घास से ढका हुआ। हराभरा।  
 शंघा पुं० (१) हरी घास। दूध। (२) सौंद। धूल।  
 शादलाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का हरा कीड़ा।  
 शान-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) तदक मदक। ठाठ वाट। सजावट। जैसे,—कल बड़ी शान से सवारी निकली थी।  
 यौ०-शान शौकत।  
 (२) गर्वांकी चेष्टा। ठसक। जैसे,—यह घोड़ा बड़ी शान से चलता है। (३) भयपता। विशालता। चमत्कार। (४) शक्ति। करामत। विभूति। ऐश्वर्य। जैसे,—सुदा की शान। (५) प्रतिष्ठा। इज्जत। मानमर्यादा।  
 मुहा०-शान जाना = भगविष्ठा होना। मान भंग होना। शान घटना = रजत में कमी होना। बरकपन में कमी होना। शान मारी जाना = दे० "शान जाना"। शान में बढ़ा छगना = दे० "शान घटना"। किसी की शान में = किसी बड़े के संबंध में। किसी के प्रति या किसी के विषय में। जैसे,—उनकी शान में ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये।  
 शंघा पुं० [ सं० ] शाण। सान।  
 शानदार-वि० [ म० शान + फा० दार ] (१) मद्कीला। तदक भद्रकवाला। ठाठ वाट का। जो बड़ी सजावट और सैयारी के साथ हो। (२) भय। विशाल। चमत्कारपूर्ण। (३) ऐश्वर्य-युक्त। धैर्यपूर्ण। (४) गर्वांकी चेष्टा से युक्त। ठसकवाला।  
 शानपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंदन चिसने का परपर। (२) पारियात्र-परवत।  
 शान शौकत-संज्ञा स्त्री० [ म० ] तदक मदक। ठाठ वाट। सैयारी। सजावट।  
 शाना-संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) कंधा। कंधी। (२) मोढ़ा। कंधा। खंभ।  
 शानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इनाहन। इंद्रवारणी।  
 शाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अहितकामना-सूचक वाग्द। 'तुम्हारा कुछ अनिष्ट हो' इस प्रकार का वचन। कोसना। मद्दुभा। जैसे,—अपि के शाप से यह राक्षस हो गया। (२) धिक्कार। फटकारना। भर्त्सना।  
 क्रि० प्र०-देना।

का पात्र । (६) किसी मूल वस्तु से निकले हुए उसके भेद । प्रकार । (७) विभाग । हिस्सा । (८) अंग । अवयव । (९) किसी शाख या विद्या के अंतर्गत उसका कोई भेद । (१०) वेद की संहिताओं के पाठ और क्रमभेद जो कई ऋषियों ने अपने गोत्र या शिष्य परंपरा में चलाए ।

**विशेष**—शौनक ने अपने 'चरणव्यूह' में वेदों की जो शाखाएँ गिनाई हैं, उसके अनुसार ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं—शाकल्य, चाण्डल, अथलायन, शाखायन और मांडूक्य । वायुपुराण में यजुर्वेद की ८६ शाखाएँ कही गई हैं जिनमें ४६ के नाम चरणव्यूह में आए हैं । इन ४३ में माध्यंदिन और कवच को लेकर १० शाखाएँ घाजसनेयी के अंतर्गत हैं । सामवेद की सहस्र शाखाएँ कही जाती हैं जिनमें १५ गिनाई गई हैं । इसी प्रकार अथर्ववेद की भी बहुत सी शाखाओं में से पिप्पलादा, शौनकीया आदि केवल नौ गिनाई गई हैं ।

**शाखाकंट**-संज्ञा पुं० [ सं० ] यूहर । सुही वृक्ष ।

**शाखा चक्रमण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक ढाल पर से दूसरी ढाल पर घूट जाना । (२) एक विषय अधूरा छोड़कर दूसरा विषय हाथ में लेना । एक विषय पर स्थिर न रहना । (३) कोई विषय पूरा अध्ययन न करके थोड़ा यह, थोड़ा वह पढ़ना ।

**शाखाचंद्र न्याय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक न्याय या कथावत जो देसी बात के संबंध में कही जाती है जो केवल देखने में आग पड़ती है, वास्तव में नहीं होती । ( चंद्रमा कभी कभी देखने में देखा जान पड़ता है मानो पेड़ की ढाल पर है । )

**शाखादंड**-संज्ञा पुं० दे० "शाखारंड" ।

**शाखाद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पेड़ों की ढाल या टहनी खानेवाले पशु । जैसे,—गौ, बकरी, हाथी ।

**शाखापिच**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रोग जिसमें हाथ और पैर में जलन और सूजन होती है ।

**शाखापुर**-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी नगर के भाग पास फैली हुई बस्ती ।

**शाखाप्रकृति**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अपने राज्य के कुछ दूर पर के भाग प्रकार के राजा जिनका विचार किसी राजा को युद्ध के समय रखना चाहिए । ( मनु० )

**शाखामृग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वानर । बंदर । (२) गिलहरी ।

**शाखाम्ल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] जलबेंत ।

**शाखामला**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इमली ।

**शाखारंड**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह, प्राक्कण जो अपनी दाखा को छोड़कर दूसरी शाखा का अध्ययन करे । शाखादंड ।

**शाखाल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] जलबेंत ।

**शाखाघात**-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ पैर में होनेवाला घात रोग ।

**शाखाशिफा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह ढाल जो नीचे की ओर बढ़कर जड़ पकड़ ले और एक अलग पेड़ के घड़े के रूप में हो जाय । जैसे,—यट की जटा या बरोह ।

**शाखिमूल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] रंघि वृक्ष ।

**शाखी**-वि० [ सं० शाखि ] शाखाओं से युक्त । शाखावाला ।  
**संज्ञा पुं०** (१) पेड़ । वृक्ष । (२) वेद । (३) वेद की किसी शाखा का अनुयायी । (४) पीछ का पेड़ । (५) दुर्किलान का निवासी ।

**शाखोचार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] विवाह के समय वंशावली का कथन ।

**शाखोट**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिहोर का पेड़ । पीत वृक्ष । वैशक में यह कड़ुभा, गरम, विचकारक और वातहारी माना गया है ।

**शागिर्द**-संज्ञा पुं० [ का० ] (१) किसी से विद्या प्राप्त करने का संबंध रखनेवाला । शिष्य । चेला ।

**मुहा०**—शागिर्द करना = किसी को कुछ सिखाने का काम करने ऊपर लेना । चेला बनाना ।

**शागिर्दपेशा**-संज्ञा पुं० [ का० ] (१) मातहत । (२) भहलकार । कर्मचारी । (३) लिदमतगार । सेवक । (४) बड़ी कोठी के पास नौकरों के लिये अलग बने हुए घर ।

**शागिर्दी**-संज्ञा स्त्री० [ का० ] (१) शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त किसी गुरु के अधीन रहने का भाव । शिष्यता । (२) सेवा । टहल ।

**शाचि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] दलकर भूसी गिकाला हुआ जौ ।

**शाट**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कपड़े का टुकड़ा । (२) वह कपड़ा जो कमर में लपेटकर पहना जा सके । धोती । परदनी । (३) एक प्रकार की लुगरी । (४) वीला वाला पहनावा ।

**शाटक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वस । पट ।

**शाटिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) साड़ी । धोती । (२) कचूर ।

**शाटी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साड़ी । धोती ।

**शाट्यायन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

**शाट्यायनी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम ।

**शाट्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शठता । दुष्टता । पदनासी । (२) कपट । दंभ । छल ।

**शाड्वल**-संज्ञा पुं० दे० "शाद्वल" ।

**शाण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हथियारों की धार तेज करने का पथर । सान । (२) कत्तीटी । कपवहिका । (३) चार मासे की एक लौह ।

**वि०** [ सं० ] (१) सन के पीछे से संबंध रखनेवाला । (२) सन का बना हुआ ।

**संज्ञा पुं०** सन के रेते का बना हुआ कपड़ा । भंगरा ।

शाण्ड्यास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सन का पुना हुआ ब्रह्म पढ़ने । (२) एक अर्हत का नाम ।

शाश्वि-संज्ञा पुं० [ सं० ] पद्मभा ।

शाश्वित-वि० [ सं० ] (१) सान रखा हुआ । तीला या तेज किया हुआ । (२) कसौटी पर कसा हुआ ।

शाशी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सन के रेशों से बुना हुआ कपड़ा । मंगरा । (२) फटा हुआ ब्रह्म । चौथड़ा । (३) यह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीत के समय ब्रह्मचारी को पहनने के लिये दिया जाता है । (४) सान । (५) कसौटी । (६) छोटा खेमा या पदाँ ।

शात-वि० [ सं० ] (१) सान रखा हुआ । तेज़ किया हुआ । (२) दुबला पतला । क्षीण ।

संज्ञा पुं० धवरा ।

शातकुंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कचनार का वृक्ष । (२) भद्ररा । (३) कनेर का वृक्ष । (४) सोना । स्वर्ण ।

शातकौम-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोना । सुवर्ण ।

शातकृतय-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रचतुष्टय ।

शातन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० शातनीय, शातित ] (१) सान पर धार तेज करना । चोखा करना । (२) कटवाना । (वेद आदि) (३) नष्ट कराना । (४) काटना । तरावाना । छीलना । (५) सतह बराबर करना । रंदना ।

शातपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रिका । चाँदनी ।

शातमौस-संज्ञा पुं० [ सं० ] मद्रवली । मदन माली ।

शातला-संज्ञा स्त्री० दे० "सातला" ।

शातयाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राजा का नाम । वि० दे० "शालिवाहन" ।

शातातप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक सृष्टिकार का नाम ।

शातिर-वि० [ सं० ] (१) चालाक । चतुर । उल्लास । काह्य । (२) निपुण । दक्ष ।

संज्ञा पुं० (१) दूत । (२) शतरंज का खिलाड़ी ।

शातोदर-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शातोदरी ] (१) पतली कमर-वाला । (२) क्षीण । पतला ।

शाश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शशुव । शशुता । (२) शशु । (३) शशुओं का समूह ।

शाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पतन । गिरना । पड़ना । (२) घास । दूब । (३) कीचड़ ।

वि० [ सं० ] (१) लुप्त । मसख । (२) परिपूर्ण । भरापूर ।

शादमान-वि० [ सं० ] मसख । लुप्त ।

शादमानो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मसखला । लुत्ती ।

शादा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ईंट ।

शादाव-वि० [ सं० ] दरा मरा । सरसज । तर्रोतारा ।

शादिधाना-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुनी का धागा । भानंद-मंगल-सूचक धाग ।

क्रि० प्र०—बजना ।—बजाना ।

(२) वह धन जो किसान जमींदार को ब्याह के भवसर पर देते हैं । (३) धपावा । धपाई ।

क्रि० प्र०—देना ।

शादी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुनी । मसखला । भानंद । (२) भानंदोस्तव ।

यौ०—शादी गमी ।

(३) विवाह । ब्याह ।

शादल-वि० [ सं० ] हरित मृग या दूबों से युक्त । हरी हरी घास से ढका हुआ । हरामरा ।

संज्ञा पुं० (१) हरी घास । दूब । (२) साँड़ । मूँठ ।

शादलाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का दरा कीड़ा ।

शान-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तदक मद्दक । डाट घाट । सजावट । जैसे,—कल बड़ी शान से सवारी निकली थी ।

यौ०—शान शौकत ।

(२) गर्वाली चेष्टा । ठसक । जैसे,—यह घोड़ा बड़ी शान से चलता है । (३) भव्यता । विशालता । चमत्कार ।

(४) शक्ति । करामात । विभूति । ऐश्वर्य । जैसे,—लुदा की शान । (५) प्रतिष्ठा । श्रुतता । मानमर्यादा ।

मुहा०—शान जाना = भव्यता होना । मान भंग होना । शान घटना = श्रुत में कमी होना । बहपन में कमी होना । शान मारी जाना = दे० "शान जाना" । शान में बड़ा लगना = दे० "शान घटना" । किसी की शान में = किसी बड़े के सम्बन्ध में । किसी के प्रति या किसी के विषय में । जैसे,—उनकी शान में ऐसी बात नहीं कहनी आदि ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] शाण । सान ।

शानदार-वि० [ सं० शान + दार ] (१) मद्दकीला । तदक मद्दकवाला । डाट घाट का । जो बड़ी सजावट और तैयारी के साथ हो । (२) भव्य । विशाल । चमत्कारपूर्ण । (३) ऐश्वर्य-युक्त । वैभवपूर्ण । (४) गर्वाली चेष्टा से युक्त । ठसकवाला ।

शानयाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रम चिसने का पाथर । (२) पारियात्र-पर्वत ।

शान शौकत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तदक मद्दक । डाट घाट । तैयारी । सजावट ।

शाना-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंबा । कंबी । (२) मोटा । कंबा । खंबा ।

शानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इनारन । इंद्रवाणी ।

शाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अहितकामना-सूचक शब्द । "मुझारा कुछ अनिष्ट हो" इस प्रकार का शपथ । कौसना । बद्धुभा । जैसे,—ऋषि के शाप से वह राजस हो गया । (२) पिकार । फटकारना । भर्त्सना ।

क्रि० प्र०—देना ।

(३) ऐसी शाप जिसके न पाठन करने का कोई अनिष्ट परिणाम कहा जाय । बुरी क्रम ।

शापप्रस्त-वि० [ सं० ] जिसे शाप दिया गया हो । शापित ।

शापज्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का ज्वर जो माता, पिता, गुरु आदि बड़ों के शाप के कारण कहा गया है ।

शापटिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूर । मोर ।

शापमुक्त-वि० [ सं० ] जिसका शाप छूट गया हो । जिसके ऊपर से शाप का उतरा प्रभाव हट गया हो ।

शापांतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जल जिसे हाथ में लेकर शाप दिया जाता ।

शापाज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह व्यक्ति जिसके पास भर्षों के स्थान पर शाप ही हो । (२) एक मुनि का नाम ।

शापित-वि० [ सं० ] जिसे शाप दिया गया हो । शाप-प्रस्त ।

शापोत्सर्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाप का उच्चारण । शाप छोड़ना । शाप देना ।

शापोद्धार-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाप या उसके प्रभाव से छुटकारा । शाप-मुक्ति ।

शाफरिफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] मछुआ । घीवर ।

शाफेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] यजुर्वेद की एक शाखा ।

शापर-वि० [ सं० ] दुष्ट । कपटी ।

शंका पुं० (१) बुराई । हानि । दुःख । (२) लोभ वृक्ष । लोच वा पेड़ । (३) ताँबा । (४) अंधकार । (५) एक प्रकार का चंदन ।

शायर भाष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] मीमांसा सूत्र पर प्रसिद्ध भाष्य या व्याख्या ।

शायरिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की जौक ।

शाबरी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शबरों की भाषा । एक प्रकार की प्राकृत भाषा ।

शाबल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कई रंगों का मेल । शबलता । कबरापन । चितकबरापन । (२) एक साथ भिन्न भिन्न कई वस्तुओं का मेल ।

शाबस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा युवनाश्व का एक पुत्र, जिसने शाबस्ती या शाबस्ती नगरी बसाई थी । ( भागवत )

शाबस्ती-संज्ञा स्त्री० दे० "शाबस्ती" ।

शाबाश-मन्त्र्य० [ फ्रा० ] एक प्रशंसा-सूचक शब्द । सुना रहो । याह याह । धन्य हो । क्या कहना ।

शाबाशी-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] किसी कार्य के करने पर प्रशंसा । याह याही । साधुवाद ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

शाब्द-वि० [ सं० ] [ स्त्री० शाब्दी ] (१) शब्द संबंधी । शब्द का (२) शब्द विशेष पर निर्भर ।

संज्ञा पुं० शब्दशास्त्री । वैयाकरण ।

शाब्दबोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्दों के प्रयोग द्वारा अर्थ का ज्ञान । वाक्य के तात्पर्य का ज्ञान ।

शाब्दिक-वि० [ सं० ] शब्द संबंधी । शब्द का ।

संज्ञा पुं० (१) शब्द-शास्त्र का ज्ञानेवाला । (२) वैयाकरण ।

शाब्दी-वि० स्त्री० [ सं० ] (१) शब्द संबंधिनी । (२) हेबल शब्द विशेष पर निर्भर रहनेवाली । मैत्रे,—शाब्दी व्यंजना ।

शाब्दीर्यजना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साहित्य में व्यंजना के दो भेदों में से एक । वह व्यंजना जो शब्द विशेष के प्रयोग पर ही निर्भर हो; अर्थात् उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर न रह जाय । अर्थात् व्यंजना का उलटा ।

शाम-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] सूर्य अस्त होने का समय । रापि और दिवस के मिलने का समय । सूर्या । संध्या ।

मुहूर्त्—शाम फूलना = संध्या समय पंचम की तलवार का प्रकट होना ।

\* वि० संज्ञा पुं० दे० "दयाम" ।

वि० [ सं० ] शाम संबंधी । शाम का ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] शामन् । शाम गान ।

संज्ञा स्त्री० [ दे० ] लोहे, पीतल आदि धातु का बना हुआ वह छद्मा जो हाथ में ली जानेवाली लकड़ियों या छदियों के बिचले भाग में अथवा भौजनों के दस्तों में लकड़ी को घिसने या छीजने से बचाने के लिये लगाया जाता है ।

क्रि० प्र०—जड़ना ।—लगाना ।

संज्ञा पुं० एक प्रसिद्ध प्राचीन देश जो अरब के उत्तर में है । कहते हैं कि यह देश हजरत नूह के पुत्र शाम ने बसाया था । इसकी राजधानी का नाम दमिस्क है । आजकल यह प्रदेश सीरिया कहलाता है ।

शामकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्यामकण्ये । वह घोड़ा जिसके शान श्याम रंग के हों ।

शामत-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) बहकिरमती । दुर्भाग्य । (२) विपत्ति । आफत । (३) दुर्दशा । दुर्बल्य ।

क्रि० प्र०—आना ।—में पड़ना या फसना ।

मुहूर्त्—शामत का घेरा या मारा = जिसकी दुर्दशा का समय आया हुआ हो । जिसकी दुर्दशा होने की हो । शामत सवार होना या सिर पर खेळना = शामत आना । दुर्दशा का समय आना ।

शामतजूदा-वि० [ म० ] शामत + फ्रा० जूदा । कमबलत । बदनशील । अभागा ।

शामती-वि० [ म० ] शामत + ई (प्रत्य०) । जिसकी शामत आई हो । जिसकी दुर्दशा होने की हो ।

शामन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शामन । (२) शांति । (३) मानव । हत्या करना ।

शामनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दक्षिण दिशा जिसके अविपत्ति

यम माने गए हैं । (२) शांति । स्तम्भता । (३) भंत ।  
समाप्ति । (४) यय । ह्य्या ।

शामा-संज्ञा स्त्री० [ ? ] एक प्रकार का पौधा, जिसकी पत्तियाँ  
भोर जड़ कोड़ रोग के लिये कामदायक मानी जाती हैं ।

संज्ञा स्त्री० दे० "दयामा" ।

शामिन्न-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यज्ञ में मांस पकाने के निमित्त  
प्रयत्नित की हुई भूमि । (२) वह स्थान जहाँ ऐसी भूमि  
प्रयत्नित की जाय । (३) यज्ञ । (४) यज्ञपात्र । (५) यज्ञ  
के लिये पशु की हिंसा ।

शामियाना-संज्ञा पुं० [ जा० शाम ? ] एक प्रकार का बड़ा तंतु । इसमें  
प्रायः ऊपर की ओर लंबा चौड़ा रूपदा होता है जो बाँसों  
पर बना रहता है । इसके नीचे चारों ओर प्रायः चुन्नी ही  
रहता है; पर कभी कभी इसके चारों ओर कनात भी खड़ी  
की जाती है ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।—गाढ़ना ।—तानना ।—छगाना ।

शामिल-वि० [ श्म० ] जो साथ में हो । मिळा हुआ । सम्मि-  
लित । जैसे,—(क) ये कागज मिस्रिख में शामिल कर दो ।  
(ख) भय से तुम भी वहाँ लोगों में शामिल हो गए ।

यौ०—शामिल हाल ।

शामिल हाल-वि० [ म० शामिल + हाल ] जो दुःख सुख आदि  
सम अवस्थाओं में साथ रहे । साथी । साथी ।

शामिलात-संज्ञा स्त्री० [ म० शामिल ] हिस्सेदारी । साहा । धार-  
कत । वि० दे० "शामिल" ।

शामी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] छोड़े या पीतल का वह छड़का जो  
छकड़ियों और छदियों आदि के नीचे के भाग में अथवा  
औजारों के दस्ते के सिरे पर उलझी रक्षा के लिये लगाया  
जाता है । धाम ।

क्रि० प्र०—जड़ना ।—लगाया ।

वि० [ शम (दे०) ] शाम देत का । शाम देत संबंधी ।  
जैसे,—शामी कवाच ।

शामी कवाच-संज्ञा पुं० [ हि० शामी + कवाच ] एक प्रकार का  
कवाच जो मांस को मसाले के साथ भूतने के उपान पीस-  
कर गोक्षियों या दिवियों के रूप में बनाया जाता है ।

शामील-संज्ञा पुं० [ सं० ] भस्म । साक । रास ।

शामील-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सड़ । माळा ।

शामुल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] गले में पहनने का कोई ऊनी कपड़ा ।

शामूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊनी कपड़ा ।

शामिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक मोत्र-प्रवसक ऋषि या नाम ।

शाम्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) क्षम का भाव । (२) बंधुत्व । भाई-  
चारा । (३) शांति ।

शाम्यमास-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ की बलि ।

शायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाण । तीर । धार । (२) खट्वा ।  
सलवार ।

शायक-वि० [ म० ] (१) शोक करने या रखनेवाला । शोकित ।  
(२) प्वादिशामंद । हृष्युह । भाईपरी ।

शायक-भ्रव्य० [ का० ] कदाचित् । संभव है । जैसे,—शायद  
यह भाज आवेगा ।

शायर-संज्ञा पुं० [ म० ] [ स्त्री० शायरा ] वह जो शेर भादि  
बनाता हो । काव्य करनेवाला । कवि ।

शायरी-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) कविता करने का काव्य या भाव ।  
(२) काव्य । कविता ।

शायी-वि० [ म० ] (१) प्रकट । ज़ाहिर । (२) प्रकाशित । छा  
हुआ ।

शायिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो दाव्या के द्वारा अपनी जीविका  
का निर्वाह करता हो ।

शायित-वि० [ सं० ] [ स्त्री० शायिता ] (१) सुलाया या छेदाया  
हुआ । (२) गिरा हुआ । पतित ।

शायिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शयन । सोना ।

शायी-वि० [ सं० शायित् ] शयन करनेवाला । सोनेवाला ।

शारंग-संज्ञा पुं० दे० "शारंग" ।

शारंगक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पक्षी ।

शारंगधनुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शारंग नामक धनुष से  
सुशोभित, अर्थात् विष्णु । (२) कृष्ण ।

शारंगपाणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथ में शारंग नामक धनुष  
धारण करनेवाले, विष्णु । (२) कृष्ण । (३) राम ।

शारंगपानी-संज्ञा पुं० दे० "शारंगपाणि" ।

शारंगभृत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शारंग नामक धनुष धारण  
करनेवाले, विष्णु । (२) कृष्ण ।

शारंगवत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुत्रर्ष नामक देश ।

शारंगघटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काकजंघा । (२) मकोय ।  
(३) गुंजा । चोटली । करमनी ।

शारंगघाटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मकोय । (२) कटकरंज ।  
छता करंज ।

शारंगी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शारंगी नामक बाधा । वि० दे०  
"शारंगी" ।

शारंगोष्ठा-संज्ञा स्त्री० दे० "शारंगोष्ठा" ।

शारंगर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शारंगरिणिणी के अनुसार एक प्राचीन  
जनपद का नाम ।

शार-वि० [ सं० ] (१) चितकरा । कई रंगों का । (२) पीला ।  
(३) नीले पीले और हरे रंगों का ।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का पासा । (२) बाघ । हया ।  
(३) हिंसा ।



(३) ऐसी शपथ जिसके न पालन करने का कोई अनिष्ट परिणाम कहा जाय । तुरी कृतम ।

शापप्रस्त-वि० [ सं० ] जिसे शाप दिया गया हो । शापित ।

शापज्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का ज्वर जो माता, पिता, गुरु आदि बड़ों के शाप के कारण कहा गया है ।

शापटिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूर । मोर ।

शापमुक्त-वि० [ सं० ] जिसका शाप छूट गया हो । जिसके ऊपर से शाप का डरा प्रभाव हट गया हो ।

शापबु-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जल जिसे हाथ में लेकर शाप दिया जाय ।

शापाख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह व्यक्ति जिसके पास भर्षों के स्थान पर शाप ही हो । (२) एक मुनि का नाम ।

शापित-वि० [ सं० ] जिसे शाप दिया गया हो । शाप-प्रस्त ।

शापोत्सर्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाप का उच्चारण । शाप छोड़ना । शाप देना ।

शापोद्धार-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाप या उसके प्रभाव से छुटकारा । शाप-मुक्ति ।

शाफरिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मछुआ । धीवर ।

शाफेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] यहुवैद की एक शाखा ।

शावर-वि० [ सं० ] दृष्ट । कपटी ।

संज्ञा पुं० (१) बुराई । हानि । दुःख । (२) लोभ बृक्ष । लोभ का पेड़ । (३) तौबा । (४) अंधकार । (५) एक प्रकार का चंद्रम ।

शावर भाष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] मीमांसा सूत्र पर प्रसिद्ध भाष्य या व्याख्या ।

शावरिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की जोंक ।

शावरी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शवरों की भाषा । एक प्रकार की प्राकृत भाषा ।

शावत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कई रंगों का मेल । शबलता । कथरापन । चितकथरापन । (२) एक साथ मिला मिला कई वस्तुओं का मेल ।

शावस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा युवनादय का एक पुत्र जिसने शावस्ती या शावस्ती नगरी बसाई थी । ( भागवत )

शावस्ती-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रावस्ती" ।

शाबाश-मन्त्र्य० [ फ्रा० ] एक प्रशंसा-सूचक शब्द । खुश रहो । बाह बाह । धन्य हो । क्या कहना ।

शाबाशी-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] किसी कार्य के करने पर प्रशंसा । बाह बाही । साधुवाद ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

शाब्द-वि० [ सं० ] [ स्त्री० शाब्दी ] (१) शब्द संबंधी । शब्द का (२) शब्द विशेष पर निर्भर ।

संज्ञा पुं० शब्दशास्त्री । वैयाकरण ।

शाब्दशोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्दों के प्रयोग द्वारा भ्रम का शान । वाक्य के तात्पर्य का ज्ञान ।

शाब्दिक-वि० [ सं० ] शब्द संबंधी । शब्द का ।

संज्ञा पुं० (१) शब्द शास्त्र का जाननेवाला । (२) वैयाकरण ।

शाब्दी-वि० स्त्री० [ सं० ] (१) शब्द संबंधी । (२) केवल शब्द विशेष पर निर्भर रहनेवाली । जैसे,—शाब्दी व्यंजना ।

शाब्दीव्यंजना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साहित्य में व्यंजना के दो भेदों में से एक । वह व्यंजना जो शब्द विशेष के प्रयोग पर ही निर्भर हो; अर्थात् उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर न रह जाय । अर्थात् व्यंजना का उलटा ।

शाम-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] सूर्य अस्त होने का समय । रात्रि और दिवस के मिलने का समय । सूर्यास्त । संध्या ।

मुहा०—शाम फूटना = संध्या समय परिवर्तन की लहरों का प्रकट होना ।

\* वि० संज्ञा पुं० दे० "दयाम" ।

वि० [ सं० ] शाम संबंधी । शाम का ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] शामन् । शाम गान ।

संज्ञा स्त्री० [ दे० ] लोहे, पीतल आदि धातु का बना हुआ वह छछा जो हाथ में ली जानेवाली छकड़ियों या छदिनों के बिचले भाग में अथवा औजारों के दस्तों में छकड़ी को घिसने या छीजने से बचाने के लिये लगाया जाता है ।

क्रि० प्र०—जड़ना ।—लगाना ।

संज्ञा पुं० एक प्रसिद्ध प्राचीन देश जो भरव के उत्तर में है । कहते हैं कि यह देश हरजत नृह के पुत्र शाम ने बसाया था । इसकी राजधानी का नाम दमिस्क है । आभ-कंक यह प्रदेश सीरिया कहलाता है ।

शामकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] शामकर्य । वह जोड़ा जिसके कान श्याम रंग के हों ।

शामत-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] (१) बहकिरमती । दुर्भाग । (२) विपत्ति । आफत । (३) दुर्दशा । दुर्बल्य ।

क्रि० प्र०—भाना ।—में पड़ना या फसना ।

मुहा०—शामत का घेरा या मारा = जिसकी दुर्दशा का सनन भया हुआ हो । जिसकी दुर्दशा होने लगे हो । शामत सवार होना या सिर पर खेचना = शामत भाना । दुर्दशा का समय भाना ।

शामतजूदा-वि० [ सं० ] शामत + जूदा । कमबल । बंद नसीब । अभाग्य ।

शामती-वि० [ फ्रा० ] शामत + ती (प्रत्य०) जिसकी शामत आई हो । जिसकी दुर्दशा होने लगे हो ।

शामन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शामन । (२) नाति । (३) माणन । हथ्या करना ।

शामनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दक्षिण दिशा जिसके अविपत्ति

शाकंर मद्य-छंदा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का मद्य जो धीनी और धौ से बनाया जाता था ।

शाकंरीधान-छंदा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक देवा जो उषा देवा में था ।

शाकं-छंदा पुं० [ सं० ] (१) धनुष । (२) विष्णु के हाथ में रहनेवाला धनुष । (३) अक्षरक । आदी । (४) एक प्रकार का साम ।

वि० शंभु संबंधी । शंभु का ।

शाकं-छंदा पुं० [ सं० ] पक्षी । चिह्नित ।

शाकं-धन्वा-छंदा पुं० [ सं०. शाकंनम् ] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण । (३) यह जो धनुष धारण करता हो । कमनीय ।

शाकं-धर-छंदा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण ।

शाकं-धरिणी-छंदा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण । (३) यह जो धनुष धारण करता हो । कमनीय ।

शाकंभूत-छंदा पुं० दे० "शाकंभूत" ।

शाकंभूत-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का स्यावर विष जो देखने में सोंठ के समान होता है ।

शाकंष्ट-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) काष्ठजंवा । (२) सुंघची ।

शाकंष्ट-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) महाकरंज । (२) कला करंज ।

शाकंष्टयुष-छंदा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण । (३) यह जो धनुष धारण करता हो । कमनीय ।

शाकं-छंदा स्त्री० [ सं०. शाकं ] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण । (३) धनुर्वाती । कमनीय ।

शाकं-छंदा पुं० [ सं० ] (१) चीता । श्याम । श्याव । (२) शाल । (३) शरभ नामक जंतु । (४) एक प्रकार का पक्षी । (५) पशुपद की एक शाखा । (६) दोहे का एक भेद जिसमें छः गुरु और छत्तीस लघु मात्राएँ होती हैं । (७) चित्रक या चीता नामक वृक्ष । (८) सिंह । वि० सर्वश्रेष्ठ । सर्वोत्तम ।

विशेष—इस शर्ष में इसका प्रयोग केवल योगिक शास्त्र बनाने में उनके अंत में होता है । जैसे,—जर शाकं ।

शाकं-छंदा पुं० [ सं० ] जंगली प्यात ।

शाकं-छंदा पुं० [ सं० ] त्रिदशक के एक पुत्र का नाम ।

शाकं-छंदा पुं० [ सं० ] व्याज-मल नामक गंध द्रव्य ।

शाकं-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वर्ण वृत्त । इसका प्रत्येक पद अठारह अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म + स + ज + स + त + स । इसका दूसरा नाम "शाकं-छंदा" भी है ।

शाकं-छंदा पुं० दे० "शाकं-छंदा" ।

शाकं-छंदा पुं० [ सं० ] जिनियों के अनुसार पचीस पूर्व जिनों में से एक जिन का नाम ।

शाकं-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वर्णवृत्त ।

इसका प्रत्येक पद्य उन्नीस अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म + स + ज + स + त + स + एक गुरु ।

शार्यात-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वैदिक काल के एक प्राचीन राजर्षि का नाम । (२) एक प्रकार का साम ।

शार्यात-छंदा पुं० [ सं० ] बहुत अधिक अंधकार ।

शार्यात-वि० [ सं० ] रात्रि संबंधी । रात का ।

शार्यात-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) रात । (२) लोच ।

छंदा पुं० [ सं०. शार्यात ] वृद्धवृत्ति के साठ संवत्सरों में से चौतीसवाँ संवत्सर ।

शालंकरा-छंदा पुं० [ सं० ] सुकेती राक्षस का एक नाम जो वामन पुराण के अनुसार चित्तुदेवी का पुत्र था ।

शालंकायन-छंदा पुं० [ सं० ] (१) विनयामित्र के एक पुत्र का नाम । (२) नंदी ।

शालंकायन-छंदा स्त्री० [ सं० ] शालंकायन की पुत्री सत्यवती जो भयास की माता थी ।

शालंकायन-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक क्षत्रि का नाम ।

शालंकि-छंदा पुं० [ सं० ] पाणिनि ऋषि का एक नाम ।

शालंकी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) गुहिया । (२) कठपुतली ।

शाल-छंदा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर सतलज से आसाम तक, मध्य भारत के पुरव प्रांत में, पश्चिम बंगाल की पहाड़ियों पर और छोटा नागपुर के जंगलों में उत्पन्न होता है । इसका वृक्ष बहुत बड़ा और विशाल होता है । छोटे वृक्षों की शाख प्रायः दो इंच मोटी, सुदृढ़ी, काले रंग की और रेतेदार होती है । कच्ची लकड़ी सफ़ेद रंग की और जवदी विगढ़नेवाली होती है । सार भाग जब ताजा होता है, तब कुछ पीछावन लिप्ट हुए भूरे रंग का होता है; परंतु सूखने पर काला हो जाता है । पत्ते चिकने, चमकीले, अंदाजारा व से १० इंच तक लंबे और ४ से ६ इंच तक चौड़े होते हैं । शालियों के अंत में फुलों के गुच्छे लगते हैं । पुष्पकल लंबे और हल्के पीले रंग के होते हैं; और क्लिप्त अंदाकार तथा अमीदार होते हैं । एक गोल और भाप हूँच लंबा होता है । वसंत में यह फूलता है और वर्षा के प्रारंभ में इसके फल एक जाते हैं । इसकी लकड़ी मरुग आदि बनाने में अधिकता से काम आती है । इसमें एक प्रकार का छाल रंग निकलता है । इसके बीजों का तेल निहालकर जलाने के काम में आया जाता है । दुग्ध में फलों का भाटा खाने के काम में आता है । यह दो प्रकार का होता है—एक बड़ा शाल और दूसरा पीतशाल या विजयशाल । वैष्णव के अनुसार यह चरपरा, कद्दा, रूखा, चिख, गरम, कसैला, क्लिप्तजल तथा कड़ू, रिच, घाय, पक्षीन, कृमिरोग, योनि-रोग, प्रमेह, कृष्ण, विस्फोटक आदि रोगों की दूर करनेवाला

संज्ञा स्त्री० कुशा ।  
 शारणिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शरण में भाप हुए की रक्षा करता हो । शरणिक ।  
 शारद-वि० [ सं० ] (१) शरद काल संबंधी । शरद काल का । (२) नवीन । नया । (३) छजावान् । शाहीन ।  
 संज्ञा पुं० (१) वर्ष । साल । (२) मेघ । बादल । (३) सफेद कमल । (४) मौलसिरी का वृक्ष । (५) कास लृण । (६) हरी मूंग । (७) एक प्रकार का रोग ।  
 शारदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती ।  
 शारदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार की बीणा । (२) माता । (३) भर्तृहरि । शारदा । (४) सरस्वती । (५) दुर्गा । (६) प्राचीन काल की एक प्रकार की लिपि ।  
 शारदिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरद ऋतु में होनेवाला उबर । (२) रोग । बीमारी । (३) श्राद्ध ।  
 शारदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जल पीपल । (२) छतियन । सहस्रर्ण । (३) भाद्रिवन मास की पूर्णिमा । क्रोनागर पूर्णिमा ।  
 वि० शरद काल का । शरद काल संबंधी ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० शारदिव ] (१) अपराजिता । कोयल । (२) सफेद कमल । (३) भद्र या फल आदि ।  
 शारदीय-वि० [ सं० ] शरद काल का । शरद ऋतु संबंधी ।  
 शारदीय महापूजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शरदकाल में होनेवाली दुर्गा की पूजा । नवरात्रि की दुर्गा-पूजा ।  
 शारथ-वि० [ सं० ] शरद काल का । शरद ऋतु संबंधी ।  
 शारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] पासा आदि खेलने की गोट ।  
 संज्ञा स्त्री० (१) मैना । (२) कपट । छल । धोखा । (३) एक प्रकार का गीत ।  
 शारिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मैना नाम की चिड़िया । (२) शतरंज या चौबट खेलने की क्रिया । (३) सारंगी आदि यज्ञाने की कमानी । (४) बीणा या सारंगी आदि यज्ञाने की क्रिया । (५) दुर्गा देवी का एक नाम ।  
 शारिका कवच-संज्ञा पुं० [ सं० ] दुर्गा का एक कवच जो रुद्र यामल तंत्र में है ।  
 शारित-वि० [ सं० ] रंगीन । चित्र विचित्र ।  
 शारिपट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] शतरंज या चौसर आदि खेलने की विसत ।  
 शारिफल-संज्ञा पुं० दे० "शारिपट्ट" ।  
 शारिषा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भर्तृहरि । सालसा । दुरालभा । (२) जवासा । धमासा ।  
 शारिष्टंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] जूना खेलने का एक प्रकार का पासा या गोदी ।

शारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कुशा नाम की खास । (२) एक प्रकार का पत्ती । (३) मूँज । कोटा ।  
 संज्ञा पुं० (१) शतरंज की गोट । (२) गेंद ।  
 शारीर-वि० [ सं० ] (१) शरीर संबंधी । शारीर का । (२) शरीर उत्पन्न ।  
 संज्ञा पुं० (१) शरीर को होनेवाला दुःख जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन प्रकार के होते हैं । (२) दूध । साँड़ ।  
 शारीरक-वि० [ सं० ] शरीर से उत्पन्न ।  
 शारीरक भाष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंकराचार्य का क्रिया-ब्रह्म प्रत्यक्ष का भाष्य ।  
 शारीरक सूत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैश्वानर का बनाया हुआ वेदत सूत्र ।  
 शारीरतद-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें शरीर के तत्वों और रचना आदि का विवेचन होता है ।  
 शारीर विधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह शास्त्र जिसमें इस बात का विवेचन होता है कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं । (२) वह शास्त्र जिसमें जीवों के शरीर के भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्यों का विवेचन होता है ।  
 शारीर व्रण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रोग जो वात, पित्त, कफ और रक्त से उत्पन्न होता है, परंतु रक्त के संबंध से द्विदोषज और त्रिदोषज होने के कारण भाद प्रकार का हो जाता है—(१) घात व्रण, (२) पित्तव्रण । (३) कफ व्रण, (४) रक्त व्रण । (५) वात पित्त व्रण । (६) वात कफ व्रण, (७) कफपित्त व्रण और (८) सत्रिघात व्रण ।  
 शारीर शास्त्र-संज्ञा पुं० दे० "शारीर विधान" ।  
 शारीरिक-वि० [ सं० ] शरीर संबंधी । कालेवरिक । कायिक । दैहिक । जिस्मानी । जैसे,—शारीरिक कष्ट ।  
 शायक-वि० [ सं० ] (१) हत्या या नाश करनेवाला । (२) कष्ट देनेवाला ।  
 शार्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चीनी । शर्करा । (२) एक प्राचीन मोत्र-प्रवर्धक द्रव्य का नाम ।  
 शार्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दूध का फेन । दुग्ध फेन । (२) चीनी का टुकड़ा । शर्करा पिंड । (३) मोश्न का टुकड़ा ।  
 शार्कर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दूध का फेन । (२) लोच वृक्ष । (३) कंकरीली और पथरीली जगह ।  
 वि० (१) कंकरीला । पथरीला । (२) दाकर या चीनी का बना हुआ ।  
 शार्करक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह स्थान जो कंकरीलों और पथरीलों से भरा हो । कंकरीली या पथरीली जगह । (२) वह स्थान जहाँ चीनी बहुत होती हो ।  
 वि० कंकरीला । पथरीला ।

शार्कर मद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का मद्य जो चीनी और धूस से बनाया जाता था ।

शार्करीधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक देश जो उत्तर दिशा में था ।

शार्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धनुष । कमन । (२) विष्णु के हाथ में रहनेवाला धनुष । (३) अक्षरक । आदी । (४) एक प्रकार का साम ।

वि० शंभु संबंधी । शंभु का ।

शार्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] पक्षी । चिड़िया ।

शार्कधनवा-संज्ञा पुं० [ सं० शार्कधन ] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण । (३) वह जो धनुष धारण करता हो । कमनैत ।

शार्कधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण ।

शार्कपाणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण । (३)

वह जो धनुष धारण करता हो । कमनैत ।

शार्कभुज-संज्ञा पुं० दे० "शार्कपाणि" ।

शार्कवैदिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का स्थावर विप जो देखने में सौंड के समान होता है ।

शार्कटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काकजंघा । (२) घुँघरी ।

शार्कछा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) महाकरंज । (२) कटा करंज ।

शार्कयुध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण । (३) वह जो धनुष धारण करता हो । कमनैत ।

शार्क-संज्ञा स्त्री० [ सं० शार्क ] (१) विष्णु । (२) श्रीकृष्ण । (३) धनुषी । कमनैत ।

शार्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चीता । ब्याघ्र । बाघ । (२) राक्षस । (३) शरभ नामक जंतु । (४) एक प्रकार का पक्षी । (५) धनुष की एक दाखा । (६) सोहे का एक भेद जिसमें छा: गुह और छसील लघु मायायुं होती हैं । (७) चित्रक या चीता नामक वृक्ष । (८) सिंह । वि० धर्मश्रेष्ठ । सर्वात्म ।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग केवल यौगिक द्रव्य बनाने में उनके अंत में होता है । जैसे,—नर शार्क ।

शार्ककन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जंगली प्याज ।

शार्ककर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] त्रिपंडु के एक पुत्र का नाम ।

शार्कलज-संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्याघ्र-नाश नामक गंध द्रव्य ।

शार्कलजिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वर्ण वृत्त । इसका प्रत्येक पद अक्षरक अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म + स + ज + स + स + स । इसका दूसरा नाम 'शार्कलजित' भी है ।

शार्कलजित-संज्ञा पुं० दे० "शार्कलजित" ।

शार्कलवाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जिनमें के अनुसार पक्षी सब जिनों में से एक जिन का नाम ।

शार्कलविकीर्तित-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वर्णवृत्त ।

इसका प्रत्येक चरण उर्ध्वस अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म + स + ज + स + स + स + एक गुह ।

शार्पास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैदिक काल के एक प्राचीन राजपुत्र का नाम । (२) एक प्रकार का साम ।

शार्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत अधिक भंडकार ।

शार्परिक-वि० [ सं० ] रात्रि संबंधी । रात का ।

शार्परी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रात । (२) कोष ।

संज्ञा पुं० [ सं० शार्परी ] गृहस्थति के साठ संवत्सरो में से चौंतीसवाँ संवत्सर ।

शालंकटाकट-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुकेरी राक्षस का एक नाम जो यामन पुराण के अनुसार विष्णुदेहा का पुत्र था ।

शालंकायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम । (२) नंदी ।

शालंकायनजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शालंकायन की पुत्री सार्ववती जो ब्यास की माता थी ।

शालंकायनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गोत्र-प्रबंधक ऋषि का नाम ।

शालंकि-संज्ञा पुं० [ सं० ] पाणिनि ऋषि का एक नाम ।

शालंकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गुदिया । (२) कटुतली ।

शाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर सतलज से आसाम तक, मध्य भारत के पूव प्रांत में, पश्चिम बंगाल की पहाड़ियों पर और छोटा नागपुर के जंगलों में उगता होता है । इसका वृक्ष बहुत बड़ा और विशाल होता है । छोटे वृक्षों की साल प्रायः दो हंस मोटी, सुरद्री, काले रंग की और रेवोडा होती है । कच्ची लकड़ी सफ़ेद रंग की और जल्दी विगदनेवाली होती है । सार भाग जव ताना होता है, सब कुछ पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है; परंतु सूखने पर काला हो जाता है । पत्ते विकने, चमकीले, अंडाकार ६ से १० इंच तक लंबे और ४ से ६ इंच तक चौड़े होते हैं । टालियों के अंत में फूलों के गुच्छे लगते हैं । पुष्पदल लंबे और हल्के पीले रंग के आते हैं; और द्विविध अंडाकार तथा अमीदार होते हैं । फल गोल और भाव हंस लंबा होता है । वसंत में यह फुलता है और वर्षा के प्रारंभ में इसके फल एक जाते हैं । इसकी लकड़ी मकान आदि बनाने में अधिकता से काम आती है । इससे एक प्रकार का लाल रंग निकलता है । इसके बीजों का तेल निकालकर जलाने के काम में लाया जाता है । दुग्ध में फलों का भाटा खाने के काम में आता है । यह दो प्रकार का होता है—एक बड़ा साल और दूसरा पीतसाल या विप्रयसार । वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, कड़वा, रूखा, जिह्व, गरम, कसैदा, कतिजनक तथा कफ, पित्त, वायु, पक्षीना, कुमिरोग, योनि-रोग, प्रमेह, कुष्ठ, विस्फोटक आदि रोगों की दूर करनेवाला

है। इसके पत्ते और गोंद प्रायः भोपधि के काम में आते हैं।  
साबू। सलुआ।

पय्याँ—शाल। अयवर्ण। शंक्रुवृक्ष। लतातरु। पक्षपुत्र  
आदि।

(२) एक प्रकार की मछली। (३) वृक्ष। पेड़। (४) एक  
नदी का नाम। (५) वृक्ष के एक पुत्र का नाम। (६) राजा  
शाकियाहन का एक नाम। (७) शाल। धूना।

शंहा स्त्री० [ फा० ] एक प्रकार की ऊनी या रेशमी चादर  
जिसके किनारे पर प्रायः बेल यूटे आदि बने होते हैं।  
दुनाहा।

यौ०—शालवाफ। शालदोज।

शालक—शंहा पुं० [ सं० ] (१) पटुभा। नादीनाक। (२) मसखरा।  
दिल्लीवाज। अदि।

शालकटकट—शंहा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक राक्षस  
का नाम जिसे घटोत्कच ने नार डाला था।

शालकटपाणी—शंहा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का साग जो शरक  
के अनुसार भारी, रुखा, मजुर, शीतवीर्य और पुरीप-भेदक  
होता है।

शालग्राम—शंहा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु की एक प्रकार की मूर्ति जो  
पत्थर की होती है और गंडकी नदी में पाई जाती है। यह  
मूर्ति प्रायः पत्थर की गोलियों या बटियों आदि के रूप में  
होती है और उस पर चक्र का चिह्न बना होता है, जिसे लोग  
साधारण बोल चाल में जनेऊ कहते हैं। जिस शिला पर  
यह चिह्न नहीं होता, वह पूजन के लिये उपयुक्त नहीं  
मानी जाती। लोग अन्य देव-मूर्तियों की भाँति इसकी भी  
पहले प्रतिष्ठा करते हैं और सब इसका पूजन करते हैं।  
अनेक पुराणों में इसकी पूजा का बहुत माहात्म्य मिलता है।  
(२) गंडकी नदी के किनारे का एक गाँव जिसके समीप  
शाल के वृक्ष बहुत अधिकता से हैं। इस गाँव के पास नदी  
में शालग्राम शिलाएँ भी पाई जाती हैं। धैष्य ब्रह्मण्डल  
में शाल को बहुत पवित्र मानते हैं।

शालग्रामगिरि—शंहा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम  
जहाँ शालग्राम की मूर्तियाँ मिलती हैं।

शालज—शंहा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली जिसे शाल भी  
कहते हैं।

शालदोज—शंहा पुं० [ फा० ] यह जो शाल के किनारे पर बेल यूटे  
आदि बनाता है।

शालनियार्स—शंहा पुं० [ सं० ] (१) शाल। धूना। (२) शाल  
या सार्स नाम का वृक्ष।

शालपत्रा—शंहा स्त्री० दे० “शालपर्णी”।

शालपर्णिका—शंहा स्त्री० [ सं० ] (१) सुरा नामक गंध द्रव्य।

(२) एक गो नाम की भोपधि। वि० दे० “पुकागी” (३)।

शालपर्णी—शंहा स्त्री० [ सं० ] सरियन नामक वृक्ष। वि० दे०  
“सरियन”।

शालवाफ—शंहा पुं० [ फा० ] (१) वह जो शाल या दुनाले आदि  
धुनता हो। शाल धुननेवाला। (२) एक प्रकार का रेशमी  
कपड़ा जो लाल रंग का होता है।

शालवाफ़ी—शंहा स्त्री० [ फा० ] दुनाले धुनने का काम।  
शालवाफ़ का काम।

शालमंजिका—शंहा स्त्री० [ सं० ] (१) कठपुतली। (२) वेदपा।  
रंढी।

शालमंजी—शंहा स्त्री० [ सं० ] कठपुतली।

शालम—शंहा पुं० [ सं० ] बिना सोचे विचारें उत्तरी प्रकार भाषण  
में क्रुद्ध पढ़ना, जिस प्रकार पतंग भाग या दीक पर दूर  
पढ़ता है।

वि० [ सं० ] पतिगों के संबंध का। पतिगों या दिवियों  
का। शालम संबंधी।

शालमरूप—शंहा पुं० [ सं० ] शिल्पि नामक मछली।

शालमकट, शालमकटक—शंहा पुं० [ सं० ] अतार का वृक्ष।  
वादिम।

शालयुग्म—शंहा पुं० [ सं० ] दोनों प्रकार के शाल; अर्थात् सर्व  
वृक्ष और विजयसार।

शालरस—शंहा पुं० [ सं० ] शाल। धूना। करायक

शालव—शंहा पुं० [ सं० ] लोभ। लोभ।

शालवदन—शंहा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक असुर का नाम  
जो कालवदन और शृगाल-वदन भी कहलाता है।

शालवानक—शंहा पुं० [ सं० ] (१) विष्णुपुराण के अनुसार एक  
देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

शालवाहन—शंहा पुं० दे० “शालिवाहन”।

शालवेष्ट—शंहा पुं० [ सं० ] शाल। धूना।

शालशाक—शंहा पुं० [ सं० ] पटुभा। नादी शक।

शालश्रृंग—शंहा पुं० [ सं० ] शीवार का ऊपरी भाग। शीवार  
की चोटी।

शालसार—शंहा पुं० [ सं० ] (१) शिंग। शिंगु। (२) शाल।  
धूना। करायक। (३) साबू नामक वृक्ष। शालं। (४)  
वृक्ष। हुम। पेड़।

शालांकी—शंहा स्त्री० [ सं० ] पुतली। गुदिया।

शालांचि—शंहा स्त्री० [ सं० ] शक्ति नामक साग।

शाला—शंहा स्त्री० [ सं० ] (१) घर। गृह। सदान। (२) ब्रह्म।  
स्वाम। जैसे,—वाटशाला। गौशाला। (३) शाला। शाल।  
(४) इंद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के योग से बननेवाले सोरह  
प्रकार के वृक्षों में से एक वृक्ष। इसका तीसरा अंग  
उपेंद्रवज्रा का और दोप तीनों अंग इंद्रवज्रा के होते हैं।

शालाक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) झाड़। संखार। (२) वह अति जो झाड़ संखाड़ जलाकर उपयुक्त की जाय।

शालाकी-छंदा पुं० [ सं० शालाकिन ] (१) वह जो अन्न चिकित्सा करता हो। अन्न वैद्य। जराह। (२) शक्ति। नाऊ। हजाम। (३) भाऊ-बरादार।

शाशास्त्र-छंदा पुं० [ सं० ] (१) आयुर्वेद के अंतर्गत आठ प्रकार के तंत्रों में से एक तंत्र जिसमें कान, आँसू, नाक, जीभ, होंठ, मुँह आदि के रोगों और उनकी चिकित्सा का विचारण है। (२) वह चिकित्सक जो आँसू, नाक, कान, मुँह आदि के रोगों की चिकित्सा करता हो।

शालाक्यशास्त्र-छंदा पुं० दे० "शाक्य" (१)।

शालास्त-छंदा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शालाजिर-छंदा पुं० [ सं० ] मिट्टी की तश्तरी या प्याली आदि।

शालासुरीय-छंदा पुं० [ सं० ] पाणिनि ऋषि का एक नाम।

शालात्व-छंदा पुं० [ सं० ] शाला का मांस या घर्म।

शालानी-छंदा स्त्री० [ सं० ] सरियन। शालपर्णी। विदारी।

शालामर्कंडक-छंदा पुं० [ सं० ] यक्षी मूली। चाणूरय मूलक।

शालामुल-छंदा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का चावल। (२) घर का सामान। घर का अगला भाग।

शालामुग-छंदा पुं० [ सं० ] (१) कुत्ता। (२) सियार। शृगाल। गौरव।

शालार-छंदा पुं० [ सं० ] (१) हाथी का नाखून। (२) सीढ़ी। सोनार। (३) पक्षियों के रहने का पिण्ड। (४) दीवार में लगी हुई खँटी।

शालासुक-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का गंध द्रव्य। शालासु।

शालावती-छंदा स्त्री० [ सं० ] हरिवंश के अनुसार विद्यामित्र की कन्या का नाम।

शालावत्-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शालावृक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) यंदूर। मानर। कपि। (२) कुत्ता। झुरझुर। (३) लोमड़ी। (४) बिस्त्री। बिदास। (५) हरिन। शृग।

शालिच-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सारग जिसे शालंघ या शालि सारग भी कहते हैं। वैद्यक के अनुसार यह चारपरा, दीपन तथा प्लीहा, यथासीर और कफ विष का नाश करने-वाला माना गया है।

शालिची-छंदा स्त्री० दे० "शालिच"।

शालि-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार के धानों में से एक प्रकार का धान जो हेमंत ऋतु में होता है। लघुदन।

विशेष—वैद्यक में इसके रूःशालि, कलम, पौंड्रक, दाकुनाहत, सुगंधक, कद्दमक, महाशालि, वृषक, पुष्पांडक, मदिप-

मस्तक, बर्षाशुक, कांचनक जादि अनेक भेद कहे गए हैं। यद्यपि वैद्यक के अनुसार भिन्न भिन्न देशों में शरवण होनेवाले भिन्न भिन्न गुण कहे गए हैं, तथापि साधारणतः सभी शालि धान्यों के गुण इस प्रकार माने गए हैं—मधुर, कषायरस, सिग्ध, पलकारक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, कुछ कुछ वायु और कफवर्द्धक, दीपवीर्य, पिचननाक और मूत्रवर्द्धक। पृथ्वी—मधुर। रस्य। मीहिश्रेष्ठ। नृपमिय। धान्योत्तम। देशार। सुकुमारक।

(१) शासमती चावल। (२) काला जीरा। (३) गन्ना। पौधा। (५) गंध विलाच। गंध मार्जार। (६) एक यज्ञ का नाम।

शालिका-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) विदारी कंद। (२) मैना। शारिका। (३) शालपर्णी। (४) घर। मकान।

शालिगोप-छंदा पुं० [ सं० ] वह जो खेतों की, विशेषतः धान के खेतों की, रक्षवाली करता हो।

शालिधान-छंदा पुं० [ सं० शालिधान्य ] शासमती चावल।

विशेष—यह धान जेत मास में बोया जाता है और अगहन के अंत या पून के आरंभ में एककर तय्यार हो जाता है। इसे अगहनी या हेमंतिक शालि धान्य भी कहते हैं। इसका पौधा मिट्टी तथा देवा के अनुसार दो हाथ से लेकर तीन हाथ तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते साधारण धान के समान होते हैं, पर उनकी अपेक्षा कुछ कड़े और चिकने होते हैं। यह छोटा और बड़ा दो प्रकार का होता है। भेद हतना ही है कि छोटा पहले पकता है और बड़ा कुछ देर में। यह धान बिना कुटे हुए ही सफेद होता है और बहुत बारीक तथा सुंदर होता है। चावलों में यह सय से उत्तम माना जाता है।

शालिनो-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) ग्यारह बज्रों का एक वृत्त। हवमें क्रम से एक पगण, दो तगण और अंत में दो गुरु होते हैं। (२) मर्त्यादि। पयकंद। (३) मेथी।

शालिपर्यिक-छंदा स्त्री० दे० "पृकंगी" (१)।

शालिपर्णी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) पिठवन। धुवनपर्णी। (३) घन उरद्वी। (४) शालपर्णी। सरियन।

शालिप्रिष्ट-छंदा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

शालिप्रिष्ट-छंदा पुं० [ सं० ] स्फटिक। शिलीर पत्थर।

शालिराट्ट-छंदा पुं० [ सं० ] हंसराज चावल।

शालिवाहन-छंदा पुं० [ सं० ] शक जाति का एक प्रसिद्ध राजा जिसने "शक" नामक संवत् चलाया था। टाड राजस्थान में लिखा है कि यह गजनी के राजा 'गज' का पुत्र था। पिता के मारे जाने पर यह पंजाब चला आया और उसपर अपना अधिकार जमा लिया। इसने शालिवाहनपुत्र नामक

मंगर भी बसाया था। इसकी रामधानी गोदावरी के किनारे प्रतिष्ठापनपुर में थी। कहीं कहीं इसका नाम सातवाहन भी मिलता है। कथा-संग्रहसंगर में लिखा है कि इसे सात नामक युद्धक बठाकर ले चला करता था; इसी से इसका नाम सातवाहन पड़ा।

शालिहोत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घोड़ा। (२) घोड़ों और पशुओं आदि की चिकित्सा का शास्त्र। अथ वैद्यक। (३) पुराणानुसार एक गौत्र-मन्त्रक ऋषि का नाम।

शालिहोत्री-संज्ञा पुं० [ सं० शालिहोत्र + ई (पय०) ] यह जो पशुओं और विदोपतः घोड़ों आदि की चिकित्सा करता हो। अथव वैया।

शाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काला जीरा। (२) मेथी। (३) शालपर्णी। (४) दुरालभा।

शालीकि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन आचार्य का नाम।

शालीन-वि० [ सं० ] (१) जो घट या बूँद न हो। विनीत। नम्र। (२) जिसे लज्जा आती हो। सलज्ज। (३) सद्गता। समान। तुष्टव। (४) अच्छे आचार विचारवाला। (५) शाला संबंधी। शाला का। (६) संघति-शाली। धनवान। अमीर। (७) जो व्यवहार में कुशल हो। दक्ष। चतुर।

शालीनता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शालीन होने का भाव या धर्म। (२) लज्जा। छात्र। धारम। (३) नम्रता। (४) अधीनता।

शालीनरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सौंफ। अतपुत्रा। (२) सोबा नामक साग।

शालीय-वि० [ सं० ] (१) शाला या घर संबंधी। (२) शाल वृक्ष का।

संज्ञा पुं० एक वैदिक आचार्य का नाम।

शालु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अर्सीढ़। कमलकंद। (२) अटेवर या चोरक नामक ओषधि। (३) कपाय ऋष्य। (४) मंडक। भेक। (५) एक प्रकार का फल।

शालुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अर्सीढ़। पद्मकंद। (२) जायफल।

शालुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मंडक। मंडक। (२) जायफल। जातीफल। (३) अर्सीढ़। (४) एक प्रकार का रोग।

शालुकिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

शालूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] भेक। मंडक।

शालूरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कीटाणु जो अंतर्दियों में पीड़ा उत्पन्न करता है।

शालीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सौंफ। मधुरिका। (२) शालि धान का खेत। (३) मूली।

वि० शाल संबंधी। शाल वृक्ष का।

शालीया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेथी। मिश्रया।

शालमल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शास्त्रकी वृक्ष। सेमल का पेड़। (२) मोचरस। (३) दे० "शास्त्रमलि"।

शालमलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शास्त्रकी वृक्ष। सेमल का पेड़। वि० दे० "सेमल"। (२) पुराणानुसार एक द्वीप का नाम जो कौंच द्वीप से बूना कहा गया है। यह भी कहा गया है कि इस द्वीप में शास्त्रमलि या सेमल के वृक्ष बहुत अधिकता से हैं और यह चारों ओर से ऊल के रस के संसुद्र से घिरा हुआ है। इसमें श्वेत, लोहित, जीमूत, हरित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ नामक सात वर्ष हैं जिनमें कुमुद, वचन, बलाहक, द्रोग, कंक, महिष और ककुद नामक सात पर्वत तथा पोनी, सोपा, विवृण्णा, चंद्रा, झुझा, विमोचनी और निवृत्ति नाम की सात नदियाँ हैं। (३) पुराणानुसार एक नरक का नाम। कहते हैं कि इसमें जीवों को शास्त्रमलि वृक्ष के काँटे चुभाकर कष्ट पहुँचाया जाता है।

शालमलिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] रोहितक वृक्ष। रोहिदा।

शालमलिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेमल का वृक्ष। शास्त्रमलि।

शालमलिपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सतिवन। सप्तपर्ण वृक्ष।

शालमली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शास्त्रमलि। सेमल।

संज्ञा पुं० [ सं० शास्त्रमलि ] गहड़।

शालमलीकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] शास्त्रमलि की जड़, जो वैद्यक के अनुसार मधुर, शीतल, रोचक और रिच, दाह तथा संतारनाशक मानी जाती है।

शालमलीफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेजबल या सेजकल नाम का वृक्ष।

शालमलीफलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार काठ की यह पट्टी जिस पर रगड़कर घुसे आदि की घार सेज की जाती है।

शालमली द्वीप-संज्ञा पुं० दे० "शास्त्रमलि" (२)।

शालमलीवेष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेमल का गोंद। मोचरस।

शालमलीखल-संज्ञा पुं० दे० "शास्त्रमलि" (२)।

शाल्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सौम राज्य के एक राजा का नाम। महाभारत में लिखा है कि काशिराज की कन्याओं के हरण के समय भीम के साथ इनका युद्ध हुआ था जिसमें वे हार गए थे। काशिराज की कन्या अंबा इन्होंने से विवाह करना चाहती थी; इसी लिये भीम ने अंबा को इनके पास भेज दिया था; पर इन्होंने अंबा को प्रहण नहीं किया। ये तिष्ठुपाल के बड़े मित्र थे। जब श्रीकृष्ण ने तिष्ठुपाल को मार डाला, तब इन्होंने श्रीकृष्ण की हत्या करने के लिये द्वारका पर घेरा डाला था। उसी अवसर पर वे युद्ध में श्रीकृष्ण द्वारा मारे गए थे। (२) एक प्राचीन देस का नाम।

शाब्दिकिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रामायण के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम ।

शाब्दिकिनी-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन पर्वत का नाम ।

शाब्दिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह लेख जो फोड़े को पकाने के लिये उस पर चढ़ाया जाता है । पुलकित । (२) भरता । चोला ।

शाब्दिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम । (२) इस देश का निवासी ।

शाब्दिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पक्षी जिसे छुदपूद भी कहते हैं ।

शाब्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) बच्चा; विशेषतः पशुओं आदि का बच्चा । (२) मूलक । सुरदा । (३) भूरा रंग । (४) सूतक, जो किसी के मर जाने पर उसके संबंधियों को लगता है । (५) मरघट । मनमान ।

वि० शब्द संबंधी । शब्द का ।

शाब्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बच्चा; विशेषतः पशु या पक्षी का बच्चा । (२) श्राद्ध ।

शाब्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पाप । गुनाह । (२) अपराध । कर्म । (३) बोध वृद्ध । (४) चाररगामी कृत भाष्य । (५) एक तंत्र ग्रंथ, जो शिव का बनाया हुआ माना जाता है ।

वि० शब्द संबंधी । शब्द का ।

शाब्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पठानी बोध ।

शाब्दकचंदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चंदन ।

शाब्दकमेरास-संज्ञा पुं० [ सं० ] तर्था ।

शाब्दकरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कौट । केवौव ।

शाब्दक-वि० [ सं० ] जो सदा स्थायी रहे । कभी मट्ट न होने-वाला । निरप ।

संज्ञा पुं० (१) वेदव्यास । (२) सिद्ध । (३) स्वर्ग । (४) अंतरिक्ष ।

शाब्दक-वि० [ सं० ] स्थायी । निरप । शाब्दक ।

शाब्दकती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वृष्ठी ।

शाब्दक-वि० [ सं० ] मोक्ष या मच्छली खानेवाला । मांसाहारी । मोक्षहारी ।

शाब्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अनुशासन । (२) स्तुति । स्तव ।

शाब्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शब्दिका ] (१) वह जो शासन करता हो । (२) वह जिसके हाथ में किसी नगर, प्रांत या देश आदि की राजकीय-व्यवस्था हो । शासक ।

शाब्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आज्ञा । आदेश । हुक्म । (२) किसी को अपने अधिकार या वश में रखना । (३) लिखित प्रतिज्ञा । पट्टा । टीका । (४) राजा की दान की हुई भूमि । मुभागी । (५) वह परवाना या फारमान जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को कोई अधिकार दिया जाय । (६) शाप । (७)

द्विज-निग्रह । (८) किसी के कार्यों आदि का नियंत्रण करना । (९) किसी नगर, प्रांत या देश आदि की राजकीय व्यवस्था करने का काम । हुक्मत । (१०) दंड । सजा ।

शासनदेवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनियों की एक देवी का नाम ।

शासनधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शासक । (२) राजदूत । पुरुषी ।

शासनपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ताम्रपत्र या शिखा जिस पर कोई राजाशा लिखी या खोदी हुई हो ।

शासनवादक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो राजा की आज्ञा लोगों के पास पहुँचाता हो । (२) राजदूत । पुरुषी ।

शासनशिक्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह शिक्षा जिस पर कोई राजाशा लिखी हो ।

शासनहर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजदूत । (२) वह जो राजा की आज्ञा लोगों तक पहुँचाता हो ।

शासनहारक-संज्ञा पुं० दे० "शासनहर" ।

शासनहारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शासनहारिण । राजदूत । पुरुषी ।

शासनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो लोगों को धर्म का उपदेश करती हो ।

शासनीय-वि० [ सं० ] (१) शासन करने के योग्य । (२) सुधारने के योग्य । (३) दंड देने के योग्य । सजा देने के लायक ।

शासित-वि० [ सं० ] [ स्त्री० शासिका ] (१) जिसका शासन किया जाय । शासन किया हुआ । (२) जिसे दंड दिया जाय । दंडित ।

संज्ञा पुं० (१) मजा । (२) निग्रह । संयम ।

शासी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शासित । शासन करनेवाला । शासक । (इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने में, उसके अंत में, किया जाता है ।)

शास्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] शास्त्र । (१) शासक । (२) राजा । (३) पिता । (४) उपाध्याय । गुरु ।

शास्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शासन । (२) दंड । सजा ।

शास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हिंदुओं के अनुसार ऋषियों और मुनियों आदि के बनाए हुए वे प्राचीन ग्रंथ जिनमें लोगों के हित के लिये अनेक प्रकार के कर्त्तव्य बतलाए गए हैं और अनुचित कृत्यों का निषेध किया गया है । वे पारमिहिक ग्रंथ जो लोगों के हित और अनुशासन के लिये बनाए गए हैं ।

विशेष—हमारे यहाँ वे ही ग्रंथ शास्त्र माने गए हैं जो वेद-मूलक हैं । इनकी संख्या १० कही गई है और नाम इस प्रकार दिए गए हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छंद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, भाग्यवेद, पञ्चवेद,



गोपयवेद और अर्थशास्त्र। इन अठारहो शास्त्रों को अठारह विद्याएँ भी कहते हैं। इस प्रकार हिंदुओं की प्रायः सभी धार्मिक पुस्तकें शास्त्र की कोटि में आ जाती हैं। साधारणतः शास्त्र में बतलाए हुए काम विधेय माने जाते हैं; और जो बातें शास्त्रों में बर्णित हैं, वे निबिद्ध और स्वायत्त समझी जाती हैं।

(२) किसी विशिष्ट विषय या पदार्थ-समूह के संबंध का वह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रम से संग्रह करके रखा गया हो। विज्ञान। जैसे,—प्राणि-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, विद्युत्-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र।

शास्त्रकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसने शास्त्रों का प्रणयन या रचना की हो। शास्त्र बनानेवाला।

शास्त्रकृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शास्त्र बनानेवाले; अर्थात् ऋषि, मुनि। (२) भाषार्थ्य।

शास्त्रचतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शास्त्र की शौल; अर्थात् व्याकरण। (२) वह जिसे शास्त्र रूपी मेत्र प्राप्त हो। ज्ञानी। पंडित।

शास्त्रचारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शास्त्रों का भ्रष्टा ज्ञाता हो। शास्त्रदर्शी।

शास्त्रज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह व्यक्ति जो शास्त्रों का भ्रष्टा ज्ञाता हो। शास्त्रों का जानकार। शास्त्रवेत्ता।

शास्त्रतत्त्वज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] गणक। ज्योतिषी।

शास्त्रत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] शास्त्र का भाव या धर्म।

शास्त्रदर्शी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शास्त्रज्ञ। यह जिसे शास्त्रों का भ्रष्टा ज्ञान हो। शास्त्रज्ञ।

शास्त्रदृष्टि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शास्त्रों का ज्ञाता हो। शास्त्रज्ञ।

शास्त्रयक्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] शास्त्रकृत्। वह जो लोगों को शास्त्रों का उपदेश देता हो।

शास्त्रविद्-वि० पुं० [ सं० ] शास्त्रों का जाननेवाला। शास्त्रदर्शी। शास्त्रज्ञ।

शास्त्रशिष्यी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शास्त्रशिष्य। (१) कारमीर देता। (२) भूमि। जमीन।

शास्त्रावर्च लिपि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ललितविस्तर के अनुसार प्राचीन काल की एक प्रकार की लिपि।

शास्त्री-वि० [ सं० ] शास्त्र-ज्ञ। शास्त्र का जाननेवाला। शास्त्रज्ञ। शास्त्रविद्।

संज्ञा पुं० (१) वह जो शास्त्रों आदि का भ्रष्टा ज्ञाता हो। शास्त्रज्ञ। (२) वह जो धर्म शास्त्र का ज्ञाता हो। (३) एक उपाधि जो कुछ विश्वविद्यालयों आदि में, इस्वी नाम की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर प्राप्त होती है।

शास्त्रीय-वि० [ सं० ] शास्त्र संबंधी। शास्त्र का।

शास्त्रोक्त-वि० [ सं० ] जो शास्त्र में लिखे या बड़े के अनुसार हो। शास्त्रों में कहा हुआ।

शास्त्र-वि० [ सं० ] (१) शासन करने के योग्य। (२) बंध देने के योग्य। बंधनीय। (३) सुधारने योग्य।

शाहंशाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] बादशाहों का बादशाह। बहुत बड़ा बादशाह। महाराजाधिराज।

शाहंशाही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शाहंशाह का कार्य या भाव। (२) व्यवहार का खरापन। (मोलचाल)

क्रि० प्र०—जताना।—दिसलाना।—बघारना।

शाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत बड़ा राजा या महाराज। बादशाह। वि० दे० "बादशाह"। (२) मुसलमान फकीरों की उपाधि।

वि० बड़ा। भारी। महान्। जैसे,—शाहराह।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनाने में, उनके आदि में होता है।

शाहजादा-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ श्री० शाहजारी ] बादशाह का लड़का। महाराजकुमार।

शाहजादी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बादशाह की कन्या। राजकुमारी। (२) कमल के फूल के अंदर का पीला जीरा।

शाहतरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वित्त पापदा।

शाहदरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह भाषादी जो किसी महल या किले के नीचे पसी हो।

शाहचलूत-संज्ञा पुं० दे० "बलूत"।

शाहबाज-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद रंग का एक प्रकार का तिफारी पक्षी।

शाहवाला-संज्ञा पुं० दे० "दाहवाला"।

शाहराह-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बड़ी सड़क। बड़ा रास्ता। राजमार्ग।

शाहाना-वि० [ सं० ] बादशाहों के योग्य। राजाओं का सा। राजसी।

संज्ञा पुं० (१) विवाह का जोड़ा जो चुल्हे को पहनाया जाता है। यह प्रायः लाल रंग का होता है। जामा। (२) दे० "शाहाना" (राग)।

शाहिद-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मनुष्य जो शौलों देवी घटना का न्यायाधीन के समझा वर्णन करे। साक्षी। गवाह।

वि० सुंदर। मनोहर। खूबसूरत।

शाही-वि० [ सं० ] शाहों या बादशाहों का। राजसी। जैसे,—शाही दरवार, शाही महल, शाही सवारी।

शाहीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दे० "शाहबाज"। (२) वह सूई जो तारों की डंडी के मध्य भाग में लगी होती है और जिसके बिलकुल सीधे रहने से तौल धाराय और ठीक नानी जाती है।

शिगरफ-संज्ञा पुं० [ शा० संगतं ] ईगुर । द्विपुल । वि० दे० "ईगुर" ।

शिगरफो-वि० [ का० ] शिगरफ के रंग का । लाल । सुले ।

शिघष, शिघाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लोहमल । मंहर । (२) नाक के अंदर का चैप जिससे सिलकी तर रहती है । (३) कौंच का वरतन । (४) दाढ़ी । (५) फला हुआ अंडकोश ।

शिघाणक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शिघाणिका ] (१) नाक के अंदर का चैप । (२) कफ । पलगम ।

शिघाणो-संज्ञा पुं० [ सं० शिघाणियु ] नाक ।

शिघान-संज्ञा पुं० दे० "शिघाण" ।

शिघित-वि० [ सं० ] सूंघा हुआ । भागान ।

शिघिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नाक ।

शिञ्जिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] करघनी ।

शिजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० शिजित ] धातुसंज्ञ का परस्पर बजना । संझार करना । झनझरना ।

शिजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) करघनी, नूपुर आदि आभूषणों की झनझार । धातुसंज्ञ के बजने का शब्द । झनझनाहट । (२) धतुप की सोरी ।

शिजित-वि० [ सं० ] झेकार करता हुआ । बजता हुआ ।

शिजिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धतुप की सोरी । चिखटा । पतंगिका । (२) करघनी या नूपुर के घुंघरू ।

शिडाको-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह कर्मी जो मूली के पत्तों के रस में राई और नामक डालकर अथवा सरसों के रस में घाबल का चूर्ण डालकर बनाई जाय । घैसक के अनुसार यह रुचिकारी, कफकारक, विच करनेवाली और मारी होती है ।

शिश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फली । छीमी । (२) चक्रवैड । चक्रमर्द ।

शिश-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छीमी । फली । (२) सेम । (३) शिबी धान्य ।

शिशि-संज्ञा स्त्री० दे० "शिबी" ।

शिशिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मूँगफली ।

शिशिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) फली । छीमी । (२) सेम ।

शिशिजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] द्विदल भक्ष । दांड ।

शिशिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्यामा चिदिवा । कृष्ण चटक । (२) बर्षी सेम ।

शिशिपथिका, शिशिपथी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बनमूँग । मुद्गपत्ती ।

शिशो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छीमी । फली । वींठी । (२) सेम । (३) कौंड । केवाँच । कपिकच्छु । (४) यन्मूँग ।

शिषो धान्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह भक्ष जिसके दानों में दो दल हों । द्विदल भक्ष । शाल । जैले, —मूँग, मसूर, मोठ, उदद, चना, मरहर, मटर, कुकरी, कोबिया आदि ।

शिषीफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] तरबूद या आहुल्य नामक धुप ।

शिश-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का फलदार वृक्ष ।

शिशपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शीतम का पेड़ । (२) भनोक वृक्ष ।

शिशुपाल-संज्ञा स्त्री० दे० "शितावा" ।

शिशुमार-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूँस नामक जल-जंतु ।

शि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) सुब । सीमाय । (३) शक्ति । (४) धैर्य ।

शिकंजा-संज्ञा पुं० [ का० ] (१) दवाने, कसने या निचोदने का यंत्र । (२) पंच कसने का यंत्र या औजार जिससे जिद-बंद किमार्थ दवाते और उसके पन्ने काटते हैं । (३) यह तागा जिससे लुहादे घुमावदार बंद बनाते और पनिक बाँधते हैं । ( जुलाहे ) (४) प्राचीन काक का अपराधियों को कठोर दंड देने के लिये एक यंत्र जिसमें उनकी टोंगें कस दी जाती थीं । (५) पत्ते का यंत्र । शेरूहू । (६) रुई दवाने की कल । पंच ।

मुद्गा-—शिकंजे में खिचवाना = घोर श्रम दिलावना । सर्वव काना । शिकंजे में खींचना = बहुत कष्ट देना । घोर श्रम दवाईवाना ।

शिकन-संज्ञा स्त्री० [ का० ] सिकुड़ने से पड़ी हुई धारी । मुद्गर दपने से पड़ी हुई छड़ी । सिकवट । बली । बलि । बल ।

कि० प्र०—भाना ।—डाकना ।—निहाकना ।—पड़ना ।

शिकम-संज्ञा पुं० [ का० ] पेट । उदर ।

शिकमी-वि० [ का० ] पेट संबंधी । नित्र का । अपना ।

शिकमी काश्तकार-संज्ञा पुं० [ का० ] वह काश्तकार जिसे जोतने के लिये खेत दूसरे काश्तकार से मिला हो । ( इसका हक खास काश्तकार के हक से बहुत कम होता है । )

शिकरा-संज्ञा पुं० [ का० ] एक प्रकार का वाद्य पक्षी । उ०—कोई शिकरा वाज उदाता है, कोई शाय में रक्से तुतली है ।—नज़ीर ।

शिकवा-संज्ञा पुं० [ भ० ] शिकायत । उलाहना ।

शिकस्त-संज्ञा स्त्री० [ का० ] (१) हार । पराभव । मात । (२) भंग । टूटना । (३) विफलता । असिद्धि ।

मुद्गा-—शिकस्त देना = पराजित करना । हारना । शिकस्त खाना = पराजित होना । हारना ।

शिकरता-वि० [ का० ] हटा हुआ । भग्न ।

संज्ञा स्त्री० उर्दू या फ़ारसी की पसींद खिलायत ।

शिकायत-संज्ञा स्त्री० [ भ० ] (१) गुआई करना । गिला । शिकवा । जुगुगी । (२) किसी मूल, युक्ति, दोष आदि की बात जो मन में हो । जैते,—इससे भय मुझे कोई शिकायत नहीं है । (३) उपाखंड । उलाहना ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

(४) शारीरिक अस्वस्थता। रोग। भीमारी। जैसे,—उसे दस्त की शिकायत है।

सुहा०—शिकायत रफा करना = रोग दूर करना। मोदगी हथाना।

शिकार-संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) जंगली पशुओं को मारने का कार्य या शौदा। आखेट। शूयगा। अहेर। जैसे,—घोर का शिकार, हिरन का शिकार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) वह जानवर जो मारा गया हो। (३) मोदत। मोस।

(४) आहार। भक्ष्य। जैसे,—बिही का शिकार चूहा।

(५) कोई ऐसा आदमी जिसके फँसने या बर्त में होने से बहुत लाभ हो। असाभी। जैसे,—बहुत दिनों पर आज एक शिकार फँसा है; कुछ मिल ही जायगा।

सुहा०—शिकार भाना = (१) मारने के लिये कोई जानवर मिलना।

(२) किसी ऐसे आदमी का मिलना जिससे कुछ लाभ हो। शिकार करना = (१) कोई जानवर मारना। (२) किसी से खूब लाभ उठाना। पटना। शिकार खेलना = शिकार करना। किसी का शिकार होना = (१) किसी के द्वारा या कारण मारा जाना। जैसे,—न जाने किसने आरमी ड्रेग के शिकार हुए। (२) बरा में भाना। फँसना। (३) किसी पर मोहित होना।

शिकार गड्ढा-संज्ञा पुं० [ फा० शिकार + हि० गड्ढा ] वह बड़ा गड्ढा जो शिकारी जानवरों को फँसाने के लिये खोदते हैं।

शिकार ग्राह-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] शिकार खेलने का स्थान।

शिकारबंद-संज्ञा पुं० [ फा० ] वह तस्मा जो घोड़े की तुम के पास चारजाने के पीछे शिकार लटकाने या आवश्यक सामान बाँधने के लिये लगाया जाता है।

शिकारी-संज्ञा पुं० [ फा० ] आखेट करनेवाला। शिकार करनेवाला। अहेरी।

वि० (१) शिकार करनेवाला। जंगली पशुओं को पकड़ने या मारनेवाला। जैसे,—शिकारी कुत्ता। (२) शिकार में काम आनेवाला। जैसे,—शिकारी कोट, शिकारी खेमा।

सुहा०—शिकारी ब्याह = गंधर्व विवाह जो चर्चियों में भ्रम तक करी करी होता है।

शिकाल-संज्ञा पुं० [ फा० ] वह घोड़ा जिसका अगला दाहिना पैर और पिछला बायाँ पैर सफेद हो। (यह दोषी माना जाता है।)

शिकय-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोम। मैन। मयूच्छिष्ट।

शिकय-संज्ञा पुं० दे० "शिकया"।

शिकया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यहाँगी के दोनों छोरों पर बँधा हुआ रस्सी का जाल जिस पर मोस रखते हैं। (२) छत में लटकता हुआ रस्सी का जालीदार संयुक्त जिस पर दूध, दही आदि का भटका रखते हैं। छीका। झीका। सिक्कर। (३) तराजू की रस्सी।

शिक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधर्वों का एक नायक। रोहित।

शिक्षक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिक्षा देनेवाला। सिखानेवाला। गुरु। उस्ताद।

शिक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] पढ़ाने का काम। तालीम। दिक्षा।

शिक्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी विद्या को सीखने या सिखाने की क्रिया। पढ़ने पढ़ाने की क्रिया। सीख। तालीम।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

(२) गुरु के निकट विद्या का अभ्यास। विद्या का महण।

(३) दक्षता। निगुणता। (४) उपदेश। मंत्र। सबाह। (५)

छः वेदों में से एक जिसमें वेदों के षण्, स्वर, मात्रा आदि का निरूपण रहता है। मंत्रों के ठीक उच्चारण का विषय।

विशेष—यह विषय कुछ तो ब्राह्मण भाग में आया है और

कुछ प्रातिशाख्य सूत्रों में। ऋग्वेद की शिक्षा का ग्रंथ शौक

का "प्रातिशाख्य" सूत्र है। यजुर्वेद के प्रातिशाख्य के दो

ग्रंथ मिलते हैं—एक तो आप्त्य, महपि और घरुषि संरु-

लित 'त्रिभाषपरम' जो तैत्तिरीय शाखा का है; और दूसरा

कात्यायन जी का आठ अध्यायों का 'वाजसनेयी प्रातिशाख्य'।

(६) दासन। दयाय। (७) किसी अनुचित कार्य का बुरा

परिणाम। सबक। दंड। जैसे,—अच्छी शिक्षा मिली, सब

कभी ऐसा काम न करेंगे।

शिक्षाकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] भवास।

शिक्षालेप-संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें शिक्षा द्वारा समन स्वरूप कार्य रोक जाता है। (केकव)

शिक्षामुय-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्या पढ़ानेवाला गुरु।

शिक्षाप्रहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिक्षा प्राप्त करनेवाला व्यक्ति। पढ़नेवाला। विद्यार्थी। छात्र।

शिक्षादंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह दंड जो किसी बालक को सुधने के लिये दिया जाय।

शिक्षापद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उपदेश। (२) शौद्धों के विनय-रिटक का एक प्रकार।

शिक्षा परिपद-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वैदिक काळ की शिक्षा संस्था या विद्यालय जो एक ऋषि या भगवार्थ के अधीन रहता था और उसी के नाम से प्रसिद्ध होता था। (२)

शिक्षा या पढ़ाई का प्रबंध करनेवाली सभा या समिति।

शिक्षार्थी-संज्ञा पुं० [ सं० शिक्षार्थिन ] शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति। विद्यार्थी। तालिब इत्म।

शिक्षालय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ शिक्षा दी जाय। विद्यालय। पाठशाला।

शिक्षावली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तैत्तिरीय उपनिषद् का पहला अध्याय।

शिक्षा विभाग-संज्ञा पुं० [ सं० शिक्षा + विभाग ] यह सरकारी विभाग जिसके द्वारा शिक्षा का प्रबंध होता है। सरियता साक्षीम।

शिक्षाप्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैन धर्म के अनुसार गार्हपथ धर्म का एक प्रधान अंग जो चार प्रकार का होता है—(१) सामयिक, (२) शैवाचकाशिक, (३) वीच और (४) अतिथि संविभाग।

शिक्षाशक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति। मेधा।

शिक्षाहीन-वि० [ सं० ] जिसे शिक्षा न मिली हो। असिद्धित। वेपथु। गीवार।

शिक्षित-वि० पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शिक्षित ] (१) जिसने शिक्षा पाई हो। पढ़ा लिखा। (२) विद्वान्। पंडित।

शिक्षिताक्षर-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जिसने विद्या पढ़ी हो। शिक्षित।

शिक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोर की पूँछ। मयूरपुच्छ। उ०—(क) कुटिल कच भुंज तिलक रेखा शीना सिखी शिक्षण—सूर। (ख) सिरनि शिक्षण सुमन दल मंडल बाळ सुभाय बनाप।—तुकरी। (२) चोटी। शिखा। बुटिया। उ०—सोमित केच विचित्र मौंति दुति शिखि शिक्षण इनी।—सूर। (३) काकपक्ष। काकुल।

शिक्षणक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काकपक्ष। काकुल। (२) मयूरपुच्छ।

शिक्षणिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुक्कुट। मुर्गा। (२) एक प्रकार का मानिक (रत्न)।

शिक्षणिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शिखा। चोटी।

शिक्षणिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मोरनी। मयूरी। (२) जूही। पूषिका। (३) गुंजा। करजनी। चोटली। (४) मुर्गा। (५) द्वयदारा की एक कन्या जो पीछे पुत्र के रूप में होकर कुक्षेत्र के युद्ध में लड़ी थी। कहते हैं कि पूर्व जन्म में यह काशिराज की बड़ी कन्या तथा थी जिसे भीष्म हर लाए थे। भीष्म से बदला लेने के लिये यह युद्ध रूप में हो गई और महाभारत के युद्ध में लड़ी थी। वि० दे० "शिक्षणिनी"। (६) कश्यप की पुत्री जो अक्षराएँ जो क्रवचे के एक मंत्र की द्रष्टा मानी जाती हैं।

शिक्षणिनी-संज्ञा पुं० [ सं० शिक्षणिनी ] (१) पीली जूही। स्वर्ण पूषिका। (२) गुंजा। चिरमिटी। गुंघची। (३) मोर। मयूर पक्षी। (४) मुर्गा। (५) मोर की पूँछ। (६) बाण। (७) विष्णु। (८) कृष्ण। (९) शिव। (१०) शिखा। बालों की चोटी। उ०—शिक्षणिनी सीत मुख सुरली यजावत कन्यो तिलक उर चंदन।—सूर। (११) द्वयद का एक पुत्र जो पहले कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ था, पर पीछे पुत्र के रूप में हो गया था। हूँही की जागे, करके महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने युद्ध के दसवें दिन भीष्म का वध किया

या। भीष्म की प्रतिज्ञा थी कि हम किसी स्त्री पर बाण न चलायेंगे। अश्रयामा के हाथ से हस्तकायप हुआ था। वि० दे० "शिक्षणिनी"। (१२) राम के दूध का एक बंदर। उ०—पुंभनाक गिरि पुनि गढ़ मिले शिखण्डी नाम।—विश्राम। (१३) वृहस्पति। (अगेका०)

शिक्षण-संज्ञा स्त्री० दे० "शिखा"। उ०—कूडी किरत रोहिणी मेधा नख शिख कर सिंघार।—सूर।

शिक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] लेखक। मुहररिं।

शिक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सब से ऊपर का भाग। शिखा। चोटी। (२) पहाड़ की चोटी। पर्वत-शृंग। (३) भ्रम भाग। (४) मंदिर या मकान के ऊपर का निकला हुआ तुकीला शिखा। कंगूरा। कलश। (५) मंदर। गुंबद। (६) जैनियों का एक धर्म। (७) एक अक्ष का नाम। (८) एक रत्न जो अनार के दाने के समान सफेद और लाल होता है। उ०—धीकळ सकुचि रहे दुरि कानन शिखर हियो विहारन।—सूर। (९) कुंद की कली। (१०) लीला। (११) कौल। पागल। (१२) पुच्छ। रोमांच। (१३) डोंगडियों की एक मुद्रा जो तांत्रिक पूजन में बनाई जाती है।

शिक्षणिणी-संज्ञा स्त्री० दे० "शिखरिणी"।

शिक्षणदृशना-वि० स्त्री० [ सं० ] जिसके दाँत कुंद की कली के समान हों।

शिक्षणन-संज्ञा पुं० [ सं० शिखरिणी ] बड़ी और चीनी का बनाया हुआ एक प्रकार का सीता पेय पदार्थ या दारुवत जिसमें कैसर, कपूर तथा मेवे आदि डाले जाते हैं।

शिक्षणवासिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शिखर पर बसनेवाली, मुर्गा।

शिक्षण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मूर्ख। मरोदकली। मुर्ख। (२) एक नक्ष जो बिशामित्र ने रामचंद्र को दी थी।

शिक्षणद्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम।

शिक्षणरिचरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिचड़े की जड़। अपामार्ग मूल।

शिक्षणिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रसाल। (२) नारी-रत्न। जिनमें मं श्रेष्ठ। (३) रोमावली। (४) महिका। बेला। मोतिया। (५) नेवारी का पीपा। (६) किामिना। लघुद्राक्षा। (७) मूर्ख। मरोदकली। मुहररी। (८) बड़ी और चीनी का रस। शिखरत। (९) सत्रह अक्षरों की एक वर्ण वृत्ति जिसमें छठे और ग्यारहवें वर्ण पर यति होती है। उ०—दिलव पै गेरु तें कुपित लजना सोहि डिलि कै।

शिक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० शिखरिणी ] (१) पर्वत। पहाड़। (२) पहाड़ी मुर्गा। (३) वृक्ष। पेड़। (४) अपामार्ग। चिचदा। (५) यंत्रक। बौद्ध। (६) कुंदक नामक गंध द्रव्य। (७) लोथान। (८) कंकड़सिंगी। (९) जवार। मक्का। (१०) एक प्रकार का रत्न।

संज्ञा स्त्री० [ सं० शिखरा ] एक गदा जो विषवामित्र ने रामचंद्र को दी थी। शिखरा । उ०—शिखरी कौमोदकी गदा युग दीपति भरी सदाई।—रघुना।

शिखलोलहित—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुङ्कुमुत्था ।

शिखांडक—संज्ञा पुं० [ सं० ] काकपक्ष ।

शिखां—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मुंढन के समय सिर के पीछे पीच छोड़ा हुआ बालों का गुच्छा जो फिर कटाया नहीं जाता और हिंदुओं का एक चिह्न है। चोटी। सुटैया।

चौ०—शिखायूत्र—चोटी और बनेज को दिनों के चिह्न है और तिनका त्याग केवल संन्यासियों के लिये विषय है।

(२) मोर, मुर्गा आदि पक्षियों के सिर पर बठी हुई चोटी या पंखों का गुच्छा। चोटी। कलगी। (३) भाग की छपटा।

ज्वाला। (४) दीपक की लौ। टेंग। उ०—(क) केशीदास तामें दुरी दीप की शिखा सी हैरि दुरावति नीलवास दुति

भंग भंग की।—केशव। (ख) दीप शिखा सम ज्वलति जन मन जनि होसि पतंग।—गुरुसी। (५) प्रकाश की किरन।

(६) सुधीला छोर या सिरा। नोक। (७) ऊपर को उठा हुआ भाग। चोटी। शिखर। (८) बरछा का अंचल। दामन। (९)

पैर के पंजे का सिरा। (१०) स्तन का भ्रम भाग। चूचक। (११) पेड़ की जड़। (१२) शाला। ढाली। (१३) अधिपति।

नायक। (१४) श्रेष्ठ पुरुष। (१५) कलियारी विप। लंगली। (१६) मूर्वा। मरोदकली। (१७) जटामासी। बालउड़। (१८)

वच। (१९) शिफा। (२०) गुरुसी। (२१) कामज्वर। (२२) एक घण्टवृत्त जिसके विषय पादों में २८ लघु मात्राएँ

और अंत में एक गुरु होता है और सम पादों में ३० लघु मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है।

शिखाकंद—संज्ञा पुं० [ सं० ] शलजम। शलगाम।

शिखातरु—संज्ञा पुं० [ सं० ] दीप-शुद्ध। दीवट। दीवट।

शिखाघर—संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूर। मोर।

शिखाघार—संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूर। मोर।

शिखापाश—संज्ञा पुं० [ सं० ] चोटी। सुंदरी।

शिखापित्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रोग जिसमें हाथ और पैर की उँगलियों में सूजन और जलन होती है।

शिखाबंधन—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिर के बालों को मिलाकर बाँधने की क्रिया। चोटी बाँधना।

शिखाभरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिर का आभूषण, मुकुट।

शिखामणि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह रत्न जो सिर पर पहना जाय। (२) श्रेष्ठ व्यक्तिक।

शिखामूल—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह कंद जिसके ऊपर पत्तियों का गुच्छा हो।

शिखावती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मूर्वा। मरोदकली।

शिखापर—संज्ञा पुं० [ सं० ] कटहल का वृक्ष। पनस।

शिखावर्च—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ। (महाभारत)।

शिखावल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोर। मयूर। (२) बटहल।

शिखावान्—वि० [ सं० शिखावत् ] की० शिखावती शिखावाला।

संज्ञा पुं० (१) भूमि। (२) चित्रक वृक्ष। चीतर। (१) वेदु ग्रह। (४) मोर। मयूर।

शिखावृत्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] दीवट। दीवट।

शिखावृद्धि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह ध्यान जो प्रति दिन कदा जाय। रूढ़ दर रूढ़।

शिखि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोर। मयूर। उ०—धीर फारि करिहौं भगौहौं शिखनि तिलि लखलेस।—सूर। (१)

सामस मन्वन्तर के इंद्र का नाम। (३) कामदेव। (४) भूमि। (५) तीन की संख्या।

शिखिकंठ—वि० पुं० [ सं० ] मोर के कंठ के समान।

संज्ञा पुं० कृतिया। नीला थोथा।

शिखिकुंद—संज्ञा पुं० [ सं० ] कुंदुर। विरोजा।

शिखिमीच—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नीला थोथा। (२) एक प्रकार नीला परधरा। कंत पाषाण।

शिखिध्वज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ध्वज। धूम्र। (२) कश्चिकेय। (३) वह जिस पर भूमि या मोर का चिह्न बना हो। (४)

एक प्राचीन तीर्थ का नाम। (५) मयूरध्वज नामक रामा। उ०—रूपति शिखिध्वज बोद्धौं जीतिगो संसार।—केशव।

शिखिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मयूरी। मोरनी। (२) मुर्गा। (३) मुर्गकेश। जटायरी का पीया।

शिखिम्रिय—संज्ञा पुं० [ सं० ] जंगली बेर।

शिखिमंडल—संज्ञा पुं० [ सं० ] बरुण वृक्ष। तपिया।

शिखिमोदा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अन्नमोदा।

शिखियूप—संज्ञा पुं० [ सं० ] धीकारी नाम का रूपा।

शिखिवर्द्धक—संज्ञा पुं० [ सं० ] गोल कद्दू। गोल पीया।

शिखिघाहन—संज्ञा पुं० [ सं० ] कश्चिकेय।

शिखिश्टम्—संज्ञा पुं० [ सं० ] चित्र रूपा। चित्तीवाला हिरन।

शिखिहिंटी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सहदेई। महाबला।

शिखींद्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेवू का पेड़। तिंदूक। (२) भार-नूस का पेड़।

शिखी—वि० [ सं० शिखिन् ] [ स्त्री० शिखिनी ] शिखावाला। चोटीवाला।

संज्ञा पुं० (१) मोर। मयूर। उ०—कुलिक कच भू तिडक रेखा सीस शिखी सिखंद।—सूर। (२) मुर्गा। (३) एक प्रकार का सारस। (४) वैड। सई। (५) घोड़ा। (६)

चित्रक। चीते का पेड़। (७) भूमि। उ०—भास्वक और दंध्यर, शिखी बरुण दिगपाल।—गुमान। (८) भूमि तीन प्रकार की होने के कारण) तीन की संख्या। (९)

दीपक। (१०) पित्त। (११) पुच्छक तारा। केदु। (१२)

मेयी । (१३) पयंत । (१७) वृक्ष । (१५) श्रावण । (१६) सतावर । (१७) बाण । तीर । (१८) जटाधारी साधु । (१९) एक नाम का नाम । (२०) इंद्र । (२१) बगला । बक । (२२) अपामार्ग । आंगा । चिचदा । (२३) एक प्रकार का विप ।

शिगाफ-संज्ञा पुं० [ ज्ञा० ] (१) चीरा । नखतर । (२) दूरार । वृत्र । (३) कलम के बीच का चिराव । (७) छेद । घुराल ।

मुहा०—शिगाफ देना या लगाना = (१) कलम को चोरना । (२) चीरा लगाना । नखतर लगाना ।

शिगुड़ी-संज्ञा स्त्री० [ देा० ] एक जंगली ध्रुप या पौधा जो दवा के काम में आता है ।

शिरोव-यह चरपरी, गरम तथा घात और पृष्ठ शूल का नाश करनेवाली तथा दूसरी औषधियों के योग से रसायन और शरीर को हृद करनेवाली कही गई है ।

शिगुफा-संज्ञा पुं० [ का० ] (१) बिना खिला हुआ फूल । कली । (२) फूल । पुष्प । (३) किसी अनोखी बात का होना । चुटकुला ।

सुहा०—शिगुफा खिलाना = भात खरी करना । तमाशे के लिये कोई मामला पैदा कर देना । शिगुफा खिलना = कोई ऐसी बात या भगवा खरा होना जिससे मनोरंजन हो । शिगुफा फूलना = सना । (१) मनोखी बात निकलना । (२) मामला खरा होना । शिगुफा छोड़ना = (१) कोई नरें या मनोखी बात कहना । (२) तमाशा देखने के लिये कोई मामला खरा कर देना ।

शिमु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्दिजन का वृक्ष । शोभोजन । (२) शाक । साग ।

शिमुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्दिजन का वीज ।

शिच्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] [ कर्त्ता० शिक् ] (१) जूए की रस्सी । (२) बर्दगी का छीका या जाल जिस पर चोख रखा जाता है ।

शित-वि० [ सं० ] (१) कृत । दुर्बल । (२) लुकीला । पतला । (३) चोखा । धारदार ।

संज्ञा पुं० शिवशक्ति के गोत्र के एक ऋषि का नाम ।  
 ✽ वि० हे० "शित" ।

शितद्रु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धातु । सतलज । (२) क्षीर मोरट । मोरट ।

शितनिशुडी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शोफालिका ।

शितपर्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोषा ।

शितपद, शितपार-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिरियारी नामक साग ।

शितशाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शांति शाक । शांति शाक ।

शितादिकर्षी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विष्णुक्रांता कता । अपरमिता । कोयल ।

शिताफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीका । सीताफल ।

शिताव-वि० वि० [ का० ] लक्ष्मी । सीमा ।

शितावी-संज्ञा स्त्री० [ का० ] (१) क्षीरता । जवदी । (२) तेजी । हृदयदी ।

शितावर-संज्ञा पुं० [ सं० रातावर ] (१) बकुची । सोमराजी । (२) शिरियारी । (३) सतावर ।

शिताधरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सतावर" ।

शिति-वि० [ सं० ] (१) सफेद । शुद्ध । श्वेत । (२) काळा । कृष्ण । नीला ।

शौ०—शितिकंठ ।

संज्ञा पुं० भोजपत्र ।

शितिकंठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दायूह पक्षी । मुगांवी । जल-काक । (२) पपीहा । चातक । (३) मोर । मयूर । (४) नाग देवता । (५) शिव । महादेव ।

शितिकुम्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कनेर का पेड़ । करवीर वृक्ष ।

शितिकेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंद के एक अनुचर का नाम ।

शितचन्दन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कस्तूरी ।

शितिचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिरियारी नामक साग ।

शितिच्छुद-संज्ञा पुं० [ सं० ] हंस ।

शितिपद्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] हंस ।

शितिपृष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक नाग जो एक यज्ञ में सैत्रायण बना था ।

शितिमूलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] खस । उशीर ।

शितिरत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीलमणि । नीलम ।

शितिसार, शितिसारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिंदुक वृक्ष । शेंदू ।

शितिलु-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक देवता उशना के एक पुत्र का नाम ।

शिरुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिल्पी की जाति का एक जानवर । (२) एक प्रकार का काळा भैंर ।

शिविल-वि० [ सं० ] (१) जो कसा या जकड़ा न हो । जो खूब बंधा न हो । डीला । (२) सुस्त । मंद । धीमा । (३) निचम में और शक्ति न रह गई हो । थका हुआ । धारा हुआ । आंत । उ०—देह शिविल मई उज्यो न जाई ।—सूर । (४) जो कार्य में पूर्ण तत्पर न हो । जो पूरा मुस्तैद न हो । आलस्ययुक्त । जैसे,—कार्य में शिविल पदना । (५) जो अपनी बात पर खूब अना न हो । अहम् । (६) जिसका पालन कदाई के साथ न हो । जिसकी पूरी पार्यदी न हो । जैसे,—नियम शिविल होना । (७) जो साफ सुनाई न दे । अस्पष्ट । (शब्द) (८) जो पूरे दबाव में न रखा गया हो । छोटा हुआ ।

शिवि० प्र०—करना ।—पदना ।—होना ।

शिविलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कसे या जकड़े न रहने का भाव । डीलापन । डिलाई । (२) थकावट । थकावट । धीमा । धीमा । (३) मुस्तैदी का न होना । अतत्परता । आलस्य ।

छंदा स्त्री० [ सं० शिखर ] एक गदा जो विद्वान्मित्र ने रामचंद्र को दी थी। शिखरा । उ०—शिखरी कौमोदकी गदा युग दीपति भरी सदाई।—रघुना ।

शिवलोहित-छंदा स्त्री० [ सं० ] कुडामुत्ता ।

शिखांडक-छंदा पुं० [ सं० ] काकपक्ष ।

शिखां-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) मुंडन के समय सिर के पीछे पीछ छोड़ा हुआ बालों का गुच्छा जो फिर कटाया नहीं जाता और हिंदुओं का एक चिह्न है। चोटी। सुटैया ।

यौ०—शिखासूत्र=चोटी और कनेज को दिनों के चिह्न है और इनका त्याग केवल संन्यासियों के लिये विषय है ।

(२) मोर, मुर्गी आदि पक्षियों के सिर पर उठी हुई चोटी या पंखों का गुच्छा। चोटी । कलगी । (३) भाग की छपट । ज्वाल । (४) क्षीपक की छो । टेम । उ०—(क) केतौदास तामें दुरी दीप की शिखा सी शौरि दुरावति नीलवास दुति अंग अंग की।—केवाव । (ख) दीप शिखा सम ज्वलति जन मन अनि होसि पतंग।—गुलसी । (५) प्रकाश की किरन । (६) मुडीका छोर या सिरा । नोक । (७) ऊपर को उठा हुआ भाग । चोटी । शिखर । (८) घघ का अंचल । दामन । (९) पैर के पंजे का सिरा । (१०) स्तन का अग्रभाग । चूचक । (११) पेड़ की जड़ । (१२) झाला । डाली । (१३) अधिपति । नायक । (१४) श्रेष्ठ पुरुष । (१५) कलियारी विष । लौंगली । (१६) मूर्वा । मरोदकली । (१७) जटामासी । बालकड़ । (१८) वच । (१९) शिफा । (२०) गुलसी । (२१) कामज्वर । (२२) एक वर्णवृत्त जिसके विषय पादों में २८ लघु मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है और सम पादों में ३० लघु मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है ।

शिखाकंद-छंदा पुं० [ सं० ] शालग्राम । शलगाम ।

शिखातरु-छंदा पुं० [ सं० ] दीप-वृक्ष । दीपट । दीपट ।

शिखाघर-छंदा पुं० [ सं० ] मयूर । मोर ।

शिखाघार-छंदा पुं० [ सं० ] मयूर । मोर ।

शिखापाश-छंदा पुं० [ सं० ] चोटी । चुंरी ।

शिखापित्त-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रोग जिसमें हाथ और पैर की उँगलियों में सूजन और जलन होती है ।

शिखाबंधन-छंदा पुं० [ सं० ] सिर के बालों को मिलाकर बाँधने की क्रिया । चोटी बाँधना ।

शिखाभरण-छंदा पुं० [ सं० ] सिर का आभूषण, मुकुट ।

शिखामणि-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वह रत्न जो सिर पर पहना जाय । (२) श्रेष्ठ व्यक्तिक ।

शिखामूल-छंदा पुं० [ सं० ] यह कंद जिसके ऊपर पत्तियों का गुच्छा हो ।

शिखाघती-छंदा स्त्री० [ सं० ] मूर्वा । मरोदकली ।

शिखापर-छंदा पुं० [ सं० ] कटहल का वृक्ष । पनस ।

शिखावर्त्त-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ । (महानात) ।

शिखावल-छंदा पुं० [ सं० ] (१) मोर । मयूर । (२) कटहल ।

शिखावान्-वि० [ सं० शिखावत् ] जो शिखावती शिखावाला ।

छंदा पुं० (१) अग्नि । (२) चित्रक वृक्ष । चीता । (३) वेनु ग्रह । (४) मोर । मयूर ।

शिखावृक्ष-छंदा पुं० [ सं० ] दीपट । दीपट ।

शिखावृद्धि-छंदा स्त्री० [ सं० ] वह ध्यान जो प्रति दिन पढ़ना जाय । सुद वर सुद ।

शिवि-छंदा पुं० [ सं० ] (१) मोर । मयूर । उ०—धीर करि करिहैं भगौहैं शिवनि शिखि लवलेस ।—सूर । (२) तामस मन्वन्तर के इंद्र का नाम । (३) कामदेव । (४) अग्नि । (५) तीन की संख्या ।

शिविकंठ-वि० पुं० [ सं० ] मोर के कंठ के समान ।

छंदा पुं० कृतिया । नीळं घोषा ।

शिविकुंद-छंदा पुं० [ सं० ] कुंडुक । विरोजा ।

शिविप्रीध-छंदा पुं० [ सं० ] (१) नीळ घोषा । (२) एक प्रकार नीला पत्थर । कंत पाषाण ।

शिविध्वज-छंदा पुं० [ सं० ] (१) ध्वज । धूम्र । (२) कात्तिकेय । (३) वह जिस पर अग्नि या मोर का चिह्न बना हो । (४) एक प्राचीन तीर्थ का नाम । (५) मयूरध्वज नामक राजा ।

उ०—रूपति शिविध्वज बोद्धुं जीतिगो संसार ।—केवाव ।

शिविनी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) मयूरी । मोरनी । (२) मुर्गी । (३) मुर्गीकेवा । जत्राघारी का पौधा ।

शिविमिय-छंदा पुं० [ सं० ] जंगली बेर ।

शिविमंडल-छंदा पुं० [ सं० ] वरुण वृक्ष । तपिया ।

शिविमोदा-छंदा स्त्री० [ सं० ] अन्नमोदा ।

शिवियूष-छंदा पुं० [ सं० ] श्रीकारी नाम का मृग ।

शिविवर्द्धक-छंदा पुं० [ सं० ] गोल कद्दू । गोल घीया ।

शिवियाहन-छंदा पुं० [ सं० ] कात्तिकेय ।

शिविश्रम-छंदा पुं० [ सं० ] चित्र मृग । चित्तीवाला डिरन ।

शिविहिटी-छंदा स्त्री० [ सं० ] सहदेई । महरवला ।

शिवींद्र-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सेदू का पेड़ । तिदूक । (२) भास्वसू का पेड़ ।

शिवी-वि० [ सं० शिविन् ] [ स्त्री० शिविनी ] शिखावाला । चोटीवाला ।

छंदा पुं० (१) मोर । मयूर । उ०—कुटिक कच भू तिक्क रेखा सीस शिखी सिलंध ।—सूर । (२) मुर्गी । (३) एक प्रकार का सारस । (४) बैल । सदि । (५) घोड़ा । (६) चित्रक । चीते का पेड़ । (७) अग्नि । उ०—भाखंडल और दंडवद, शिखी वरुण दिगपाल ।—गुमान । (८) अग्नि तीन प्रकार की होने के कारण । तीन की संख्या । (९) क्षीपक । (१०) पित्त । (११) गुच्छक तारा । केदू । (१२)

मेथी । (१३) पयंत । (१४) वृक्ष । (१५) मालाण । (१६) सतावर (१७) बाण । तीर । (१८) जटाधारी साधु । (१९) एक नाग का नाम । (२०) हंद्र । (२१) बगला । पक। (२२) अपामार्ग । भोगा । सिधदा । (२३) एक प्रकार का विष ।

शिगाफ-संज्ञा पुं० [ का० ] (१) चीरा । नरतर । (२) दरार । दर्र । (३) कलम के बीच का सिंघास । (४) छेद । स्यास ।

मुद्दा—शिगाफ देना या छगाना = (१) कलम को थोरना । (२) चीरा लगाना । नरतर लगना ।

शिगुडी-संज्ञा स्त्री० [ देस० ] एक जंगली छुब या पौधा जो दवा के काम में आता है ।

शिगुये—यह चरपरी, गरम तथा घात और वृष्ट झूल का नाश करनेवाली तथा दूसरी ओषधियों के योग से रसायन और शरीर को दृढ़ करनेवाली कही गई है ।

शिगुफा-संज्ञा पुं० [ का० ] (१) बिना लिखा हुआ फूल । फली । (२) फूल । पुष्प । (३) किसी अनेकौ घात का होना । चुटकुला ।

मुद्दा—शिगुफा लिखाना = बात खरी करना । तमारे के लिये कोई मामला देना कर देना । शिगुफा लिखना = कोई ऐसी बात या कथा खन होना जिससे मनोरंजन हो । शिगुफा फूलना = खना । (४) अनेकौ बात निकलना । (२) मामला खना होना । शिगुफा छोड़ना = (१) कोई नये वा अनेकौ बात कहना । (२) तमारा देखने के लिये कोई मामला खना कर देना ।

शिग्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संहिनन का वृक्ष । शोमानन । (२) शारु । साग ।

शिग्रुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] संहिनन का बीज ।

शिच्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] [ कर्त्त० शिच् ] (१) जूए की रस्सी । (२) बर्ही का टीका या चाल जिस पर मोहर रहता जाता है ।

शित-वि० [ सं० ] (१) ह्रद । दुपंछ । (२) सुधीला । पतला । (३) घोषा । धातदार ।

संज्ञा पुं० विश्वामित्र के गोत्र के एक ऋषि का नाम ।  
छ वि० दे० "सित" ।

शितदु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शतदु । सतलज । (२) शीर मोरट । मोरट ।

शितनिशुडी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शोफालिका ।

शितपेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोथा ।

शितपार, शितपार-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिरिवारी नामक साग ।

शितशाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शालिक शाक । शक्ति शाक ।

शित्नाद्रिकर्ण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विष्णुक्रान्ता कला । अपरा-जिवा । कोयल ।

शिताफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीफा । सीताकल ।

शिताथ-वि० वि० [ का० ] शब्द । शीम ।

शिताथी-संज्ञा स्त्री० [ का० ] (१) शीमता । जवदी । (२) तेज़ी । दृढ़वदी ।

शितावर-संज्ञा पुं० [ सं० शतावर ] (१) बहुधी । सोमराजी । (२) तिरिवारी । (३) सतावर ।

शिताथरी-संज्ञा स्त्री० दे० "शतावर" ।

शिति-वि० [ सं० ] (१) सफेद । शुद्ध । च्वेत । (२) काला । कृष्ण । नीला ।

यो०—शितिकंठ ।

संज्ञा पुं० भोगपत्र ।

शितिकंठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दात्यूह पत्ती । सुर्गावी । जळ-काक । (२) परीहा । चातक । (३) मोर । मयूर । (४) नाग देवता । (५) शिथ । महादेव ।

शितिकुंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] कनेर का पेड़ । कर्वीर वृक्ष ।

शितिकेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंद के एक अलुचर का नाम ।

शितचंदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्पूरी ।

शितिचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिरिवारी नामक साग ।

शितिच्युद-संज्ञा पुं० [ सं० ] हंस ।

शितिपद्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] हंस ।

शितिपृष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक नाग जो एक थंड में मैत्रावणन बना था ।

शितिमूलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] खस । उदीर ।

शितिरत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीलमणि । नीलम ।

शितिसार, शितिसारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिंदुक वृक्ष । तेंदू ।

शितानु-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक देवता उराना के एक पुत्र का नाम ।

शितपुट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बिही की जाति का एक जानवर । (२) एक प्रकार का काला भैंरा ।

शियल-वि० [ सं० ] (१) जो कसा या जकड़ा न हो । जो खूब बँघा न हो । टीला । (२) सुल । मंद । भीमा । (३) जिसमें और शक्ति न रह गई हो । यका हुआ । हारा हुआ ।

अंत । उ०—देह शियल भई उल्लो न जाई—सूर ।

(४) जो कार्य में पूर्ण तत्पर न हो । जो पूरा मुसौद न हो । आलस्ययुक्त । शैले,—कार्य में शियल पद्म । (५) जो अपनी बात पर खूब जमा न हो । भट्ट । (६) जिसका पाकन कदाई के साथ न हो । जिसकी पूरी पावेंदी न हो ।

शैले,—वियम शियल होना । (७) जो साफ़ सुगई न दे । भस्मट । (शब्द) (८) जो पूरे दबाव में न रखा गया हो । छोड़ा हुआ ।

कि० प्र०—करना ।—पद्म ।—होना ।

शियलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कसे या जकड़े न रहने का भाव । शीलापन । डिहाई । (२) यकावट । यकान । शक्ति । (३) मुसौद का न होना । अतत्परता । आलस्य ।



(४) नियम-पालन की कड़ाई का न होना। (५) शक्ति की कमी। सामर्थ्य की वृद्धि। (६) वाच्यों में शब्दों का परस्पर गटा हुआ अर्थ-संबंध न होना। (७) तर्क में किसी अवयव का अभाव।

शिविलोई—छंदा स्त्री० दे० “शिविलता”।

शिविलानाह—कि० प्र० [ सं० शिविल + आना (प्रत्य०) ] (१) शिविल होना। डीला पड़ना। (२) थकना। धोत होना। उ०—करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस शिविलाने।  
—सूर।

शिविलित-वि० [ सं० ] जो शिविल हो गया हो। डीला पड़ा हुआ।

शिविलीकरण—छंदा पुं० [ सं० ] [ वि० शिविलीकृत ] शिविल करना। डीला करना।

शिविलीभूत-वि० [ सं० ] जो शिविल हो गया हो। डीला पड़ा हुआ।

शिवित—छंदा स्त्री० [ प्र० ] (१) तेज़ी। ज़ोर। उग्रता। प्रचंडता। (२) अधिकता। उवाद्धती। जैसे,—शिवित की गरमी या सुझार।

शिना—छंदा पुं० [ सं० ] सुहँ आँवला।

शिनायत—छंदा स्त्री० [ का० ] (१) यह निश्चय कि, अमुक वस्तु या व्यक्ति यही है। पहचान। जैसे,—तुम अपने माल की शिनायत कर लो। (२) स्वरूप या गुण का बोध। अज्ञान-नकल, अज्ञान-सुरा जान लेने की वृद्धि। परख। समीक्षा। जैसे,—तुम्हें आदमी की शिनायत नहीं है।

शिमि—छंदा पुं० [ सं० ] (१) गरुँ क्रापि के पुत्र का नाम। (२) क्षत्रियों का एक भेद। (३) एक यादव वीर का नाम।

विशेष—इन्होंने वसुदेव के लिये देवकी का चलपूँक हरण किया था। इस कारण इन का सोमदत्त के साथ अर्धकर युद्ध हुआ था। इनके पुत्र का नाम सरयक और पौत्र का सायक था जो पाँडवों की शौर से महाभारत में लड़ा था।

शिमिनाह—छंदा पुं० [ सं० ] एक नदी का नाम। ( वायुपुराण )

शिमि—छंदा पुं० [ सं० ] रसिम। किरण।

छंदा स्त्री० [ सं० ] चमड़ा। टाल।

शिमिपिच्छ—छंदा पुं० [ सं० ] कुछी। कोढ़ी।

शिमुरगुड़ी—छंदा स्त्री० [ षा० ] एक प्रकार का पीया जिसकी डाल के सेने सुदृढ बनाने के काम में आते हैं।

शिमुर—छंदा पुं० [ का० शिप ] टाल। उ०—रातएँ शिमुर सुतरस बनाई। बाग वृष्टि तिन सवै बधाई।—हनुमन्नाटक।

शिफा—छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) एक वृक्ष की देशीय जड़ जिससे प्राचीन काल में कोढ़े बनते थे। (२) कोढ़े की फटकार। चायुक की मार। (३) माता। (४) हरिद्रा। (५) लक्ष्मी। (६) कर्मल की जड़। पद्मकंद। भसींद। (७) लता। (८) नदी।

(८) एक प्राचीन नदी का नाम। (९) मांसिका। जयानासी। (१०) शिखर। चोटी।

शिफाकंद—छंदा पुं० [ सं० ] कमल की जड़। भसींद।

शिफाक—छंदा पुं० [ सं० ] पद्ममूल। भसींद।

शिफाधर—छंदा पुं० [ सं० ] डाल। शाखा।

शिफासह—छंदा पुं० [ सं० ] बरगद का पेड़। घट वृक्ष।

शिमाल—छंदा स्त्री० [ प्र० ] [ वि० शिमाली ] उत्तर दिशा।

शिमूड्डी—छंदा स्त्री० [ सं० ] चंगोनी या चिंगोनी नाम का पीया।

शिया—छंदा पुं० [ प्र० शीया ] (१) मद्दगर। सहायक। (२) अनुयायी। (३) मुसलमानों के दो प्रधान और परस्पर शिरोधी संप्रदायों में से एक। हज़रत अली को पैगंबर का ही उत्तराधिकारी माननेवाला संप्रदाय।

विशेष—उमर, अबूबक आदि जो चार खलीफ़ा मुहम्मद साहब के पीछे हुए हैं, उन्हें इस संप्रदाय के लोग अनुधिकारी मानते हैं तथा पैगंबर के बाद अली और उनके बेटे हसन और हुसैन को ही आदर का स्थान देते हैं। सुर्रम के महीने में ये ऋष तक हसन हुसैन के वीरगति को प्राप्त होने के दिनों में शोक मनाते हैं।

शिरःकपाली—छंदा पुं० [ सं० ] कापालिक संन्यासी।

शिरःखंड—छंदा पुं० [ सं० ] माथे की हड्डी। कपालस्थि।

शिरःपीड़ा—छंदा स्त्री० [ सं० ] शिर का दर्द। माथे की पीड़ा।

विशेष—आयुर्वेद में ११ प्रकार के और यूनानी में १२ प्रकार के शिररोग बड़े हुए हैं; परंतु कोई कोई २१ प्रकार के शिरदर्द बताते हैं। आयुर्वेद के अनुसार पातज, पित्तज, कफज, सक्षिपातज, रक्तज, क्षयज, कृमिज, सूर्यावर्त, अनंतगत, अर्द्धाव-भेदक और दांशक ये ११ प्रकार के शिररोग होते हैं।

शिरःफल—छंदा पुं० [ सं० ] नारिकेल वृक्ष। नारियल।

शिरःशूल—छंदा पुं० [ सं० ] शिर की पीड़ा।

शिर—छंदा पुं० [ सं० शिर ] (१) शिर। कपाल। मुँद। घोपड़ा।

(२) मस्तक। माथे। (३) किसी वस्तु का सब से ऊँचा भाग या अंग। शिरा। चोटी। (४) शिर। (५) सेना का अग्र भाग। (६) पथ के चरण का आरंभ। टोंका। (७) मुखिया। प्रधान। अगुआ। (८) विप्वली मूल। विप्रा मूल। (९) दांभ्या। (१०) विस्तर। (११) अग्रग।

शिरफत—छंदा स्त्री० [ प्र० ] (१) किसी वस्तु के अधिकार में भाग। सम्मिलित अधिकार। साहा। हिस्सा। (२) किसी कार्य में योग। हिस्सी काम या व्यवसाय में शामिल होना। जैसे,—उनकी शिरफत से यह काम होगा।

शिरखिस्त—छंदा पुं० [ का० शीखिस्त ] एक वृक्ष का गोंद जो औरपथ के काम में आता है और जिसे साधारणतः लोग ग्वार से बनी चीनी मानते हैं।

शिरगोला-संज्ञा पुं० [ देश० ] दुग्धपाषाण नामक पृष्ठ ।  
 शिरज-संज्ञा पुं० [ सं० ] केस । बाल ।  
 शिरजान-संज्ञा पुं० देश० "शिरस्त्राण" । उ०—टूटत युवा पताक  
 छत्र रथ चाप चक्र शिरजान ।—एर ।  
 शिरनेत-संज्ञा पुं० [ देश० ] (१) गडवाल या धीनगर के आस. पास  
 का प्रदेश । उ०—सुनि सिपाय शिरनेतन देयू । तहँ विवाह  
 किया महानेरयू ।—कबीर । (२) क्षत्रियों की एक शाखा ।  
 शिरपेंच-संज्ञा पुं० देश० "शिरपेंच" ।  
 शिरफूल-संज्ञा पुं० [ हि० शिर+फूल ] शिर में पहनने का झिप्यो  
 का आभूषण । सीसफूल । उ०—मौंग फूल शिरफूल सय,  
 येगी फूल बनाव ।—देशव ।  
 शिरमौर-संज्ञा पुं० [ सं० शिर+मूर सं० मुकुट, मा० मज्ज ] (१)  
 शिरोभूषण । मुकुट । (२) श्रेष्ठ व्यक्ति । सुप्रथ व्यक्ति । प्रधान ।  
 (३) अधिपति । नायक ।  
 शिरश्चंद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] महादेव । शिव ।  
 शिरसिज-संज्ञा पुं० [ सं० ] केस । बाल ।  
 शिरसिध-संज्ञा पुं० [ सं० ] केस । बाल ।  
 शिरसाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुद्ध आदि के समय शिर के यथाव के  
 लिये पहनी जानेवाली लोहे की डोपी । फूँद । लोहर ।  
 शिरहनक-संज्ञा पुं० [ हि० शिर+मान ] (१) उसीसा ।  
 तकिमा । (२) शिरहाना । मुद्रबारी । उ०—(क) शिरहन  
 ओर परण की सोवन छगी अवधि नहि जानी ।—अधुरान ।  
 (ख) साके हृदय गयं नहि घोरा । घंटेउ जाह शिरहने  
 ओरा ।—सबल ।  
 शिरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रक्त की छोटी नाड़ी । खून की छोटी  
 नली । वि० देश० "नाड़ी" । (२) पानी का सोता या धारा ।  
 (३) जाल के समान गुठी हुई रेखाएँ । (४) पानी लींचने  
 का बोल । (५) पृथ्वी के भीतर भीतर बहनेवाला पानी  
 का सोता ।  
 विशेष—आठो दिशाओं के स्वामियों के नाम से आठ शिराएँ  
 भिन्न हैं—अैते, —आनेथी, पेंदी, यासवा । बीच में छपसे  
 बड़ी शिरा या महाशिरा है । इनके अतिरिक्त और भी  
 बहुत सी शिराएँ हैं ।  
 संज्ञा पुं० [ देश० ] भूरे रंग का एक पत्ती जिसका शिर किर-  
 मिन्नी रंग का तया पूँछ लकड़े होती है । इसकी छंवाई  
 १२ अंगुल के लगभग होती है । यह कुमाऊँ, काश्मीर और  
 अफगानिस्तान में होता है और भट्टकियाँ के बीच खाता है ।  
 शिराकत-संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) सागर । हिस्सेदारी । (२)  
 कार्य में योग ।  
 शिराकतनामा-संज्ञा पुं० [ प्र०+ना० ] यह कागज़ जिस पर  
 सासे की नसे लिखी हों ।

शिराग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का घात रोग जिसमें प्राय  
 रधिर के साथ मिलकर गले की नसों को काटा कर देती है ।  
 शिराज-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] हिंदुओं की एक जाति जो चमड़े का  
 काम बहुत अच्छा करती है ।  
 शिराजाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छोटी रक्त नाड़ियों का समूह ।  
 (२) अर्ध का एक रोग जिसमें छाल खोरे मोटे और कड़े  
 पड़ जाते हैं ।  
 शिरापत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लीपक का पेड़ । (२) एक प्रकार  
 का खजूर । हिताल । (३) कैप का पेड़ । कविय ।  
 शिराविट्टिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अर्ध का एक रोग जिसमें  
 सुतली के पास एक कुंसी निकल जाती है ।  
 शिरामहर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का नेत्र-रोग ।  
 शिराफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मारियल । (२) अंगीर ।  
 शिरामूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] नाभि ।  
 शिरायु-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीश । भाइ ।  
 शिरालक-वि० [ सं० ] बहुत नसों या नाड़ियोंवाला ।  
 संज्ञा पुं० एक प्राचीन जाति का नाम ।  
 शिरालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पौधा जिसे हाइयाँ भौंग  
 करते हैं ।  
 शिराला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार का पौधा । (२)  
 कमरक ।  
 शिराविका पीडिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह घातक कुंसी जो  
 बहुमूल्य के रोगियों की निकलती है । प्रमेह पीडिका ।  
 शिरावृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौसा नामक प्लाट ।  
 शिराहर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नसों का क्षयनाश । (२) अर्ध  
 का एक रोग जिसमें अर्ध तवों के समान छाल हो जाती  
 है और दिखाई नहीं पड़ता ।  
 शिरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खजूर । तकवार । (२) दार । (३)  
 शालम । पतिला । (४) टिट्टी ।  
 शिरियारी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक जंगली बूटी या शाक जो  
 औषध के काम में आता है । सुतला । सुनिपणक ।  
 विशेष—यह तर जगह में होता है । इसमें चेंगरी के समान  
 एक साथ चार चार पत्ते होते हैं जो एक अंगुल चौड़े और  
 नोकदार होते हैं । पत्तों के बीच में कली छगती है । फलों में  
 दो चिरटे बीज होते हैं जो कुछ रोईदार होते हैं । ये बीज  
 सूज़क में दिए जाते हैं । शिरियारी प्रंजाप और सिंध में  
 अधिक होती है । वैद्यक में यह कसेली, रुखी, चीतक,  
 हल्की, स्वादिष्ट, शुक्रजनक, रचिकारी, मेधाजनक और  
 त्रिदोष-नाशक कही गई है । इसका साग भी लोग खाते हैं ।  
 शिरौप-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिरस का पेड़ ।  
 शिरौपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिरस का पेड़ । (२) एक नाम  
 का नाम ।

शिरिपपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफ़ेद कटमी का पौधा ।  
शिरिपी-संज्ञा पुं० [ सं० शिरीषिन् ] विन्वामित्र के एक पुत्र का नाम ।

शिरुधारी-संज्ञा स्त्री० दे० "शिरियारी" ।  
शिरोगुहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शरीर के तीन छदों या कोठों में से एक छिद्रमें मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी का सिरा रहता है ।  
सिर के भीतर का भाग ।

शिरोगृह-संज्ञा पुं० [ सं० ] अटालिका । कोटा ।  
शिरोगेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] अटालिका । कोटा ।  
शिरोग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिर का एक वात रोग । दमल भाई ।  
शिरोज-संज्ञा पुं० [ सं० ] माल । देश ।  
शिरोदाम-संज्ञा पुं० [ सं० शिरोदामन् ] पगड़ी । साफ़ा ।  
शिरोधरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शीवा । गरदन ।  
शिरोधाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] चारपाई का सिरदाना ।  
शिरोधार्थ्य-वि० [ सं० ] (१) सिर पर धरने योग्य । आदर-पूर्वक मानने के योग्य । सादर अंगीकार करने योग्य ।  
मुष्टा-शिरोधार्थ्य करना = (२) सिर पर धारण करना । सिर माथे चढ़ाना । (२) आदरपूर्वक स्वीकार करना । आदर के साथ मानना । जैसे,—आज्ञा शिरोधार्थ्य करना ।

शिराधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शीवा । गरदन ।  
शिरोधिजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिरा । नस । नाड़ी ।  
शिरोपाय-संज्ञा पुं० दे० "सिरोपाय" ।  
शिरोभूषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिर पर पहनने का गहना ।  
जैसे,—सीस फूल । (२) मुकुट । (३) शिरोमणि । श्रेष्ठ व्यक्ति ।

शिरोभ्यंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिर में तेल छगाने की क्रिया ।  
शिरामणि-संज्ञा पुं० स्त्री० [ सं० ] (१) सिर पर का रत्न । चूड़ा-मणि । (२) श्रेष्ठ व्यक्ति । सब से उत्तम मनुष्य । सिरताम । मुखिया । प्रधान । (३) माला में सुमेरु ।  
शिरामर्मा-संज्ञा पुं० [ सं० शिरामर्मन् ] जंगली सुमेरु । शूकर ।  
शिरामाली-संज्ञा पुं० [ सं० शिरामालिन् ] मुँह की माला धारण करनेवाले, शिव । महादेव ।  
शिरामौलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिर का रत्न । (२) श्रेष्ठ व्यक्ति ।

शिरोरक्षी-संज्ञा पुं० [ सं० शिरोरक्षिन् ] सदा राजा के साथ रहने-वाला रक्षक । वादी भाई ।  
शिरोरत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिरोमणि ।  
शिरोरुद्ध-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सप्तपर्ण मुष्ट । सतिवन् ।  
शिरोरुह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिर के ऊपर के बाल । केश ।  
शिरोवल्ली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मोर या सुरभी की चोटी । कलगी ।  
शिरोवस्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वातज सिर के दर्द का एक उपचार ।  
विशेष—उर्दू के सने हुए भाटे से सिर पर भाठ या सोलह अंगुल

की पादु बंधकर बीच में गरम तेल भर दे और चार घड़ी रखकर निकाल डाले । इससे वातज शिरोरोग, कर्णरोग, मीठा रोग और दाढ़ के रोग ७, ५ दिन के सेवन से अच्छे हो जाते हैं ।

शिरोगृह-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोल मिर्च । काळी मिर्च ।  
शिरोगृहफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] छाळ भोंगा । रक भवामां । छाळ चिचदा ।  
शिरोगेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] उष्णीव । पगड़ी । साफ़ा ।  
शिरोगृह्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिर की पीड़ा । सिर का दर्द ।  
शिरोगृह्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का नेत्र रोग जो शिरोवात की चिकित्सा न करने से हो जाता है ।  
शिरोगृही-संज्ञा पुं० [ सं० शिरोगृहिन् ] (१) सिरों की माला पहनेवाले, शिव । महादेव ।

शिलिंडी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की घास जो सिप, यकोपिस्तान, दक्षिण, मलाबार और लंडा आदि के तेतीले स्थानों में बहुतायत से पाई जाती है । भारत से बाहर यह भ्रम और उत्तरी तथा मध्य अमेरिका में भी होती है । यह घास जिस स्थान पर होती है, उस स्थान पर जमीनमें धातव की तरह के एक प्रकार के दाने भी होते हैं, जो पौधों से बिलकुल स्वतंत्र और अलग होते हैं । गरीब खोग हून दानों को उपालकर अथवा इनका भाटा पनाकर खाते हैं । यीद ।  
शिलंधिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम ।

शिलिंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लुलादा । तंतुवाय । (२) बुद्धिमान् । समसदा ।  
शिल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दे० "उंछ" । (२) पारिपात्र के एक पुत्र का नाम ।

संज्ञा स्त्री० (१) दे० "शिला" । (२) दे० "सिल" ।  
शिलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम ।  
शिलगर्भज-संज्ञा पुं० [ सं० ] पापाण-भेद । पत्तानभेद ।  
शिलज-संज्ञा पुं० [ सं० ] शैलज । भूरि छीला ।  
शिलरति-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो उंछ वृत्ति के द्वारा जीविका निर्वाह करता हो । उंछशील ।

शिलवट-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलवट" ।  
शिलवाहा-संज्ञा स्त्री० दे० "शिलावहा" ।  
शिलाजनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काळीजनी वृक्ष । काळी कणस ।  
शिलात-संज्ञा पुं० [ सं० ] अरमंतक वृक्ष ।  
शिला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पापाण । परधर । (२) परधर का बड़ा पौधा टुकड़ा । घटान । सिल । (३) मन-शिला । मंगसिल । (४) कपूर । (५) शिलाजित । (६) गेरू । (७) नील का पौधा । (८) हरीतकी । हई । (९) गोरुचन । (१०) दूध । (११) परधर की कंकड़ी अथवा यंत्रिया । (१२) मृत्ति

में पदा हुआ एक एक दाना बीजने का काम । उल्लृप्ति ।  
७०—धीनो शिला ध्रुवा वत छीना ।—रघुराम । (१३)  
६० “तिरा” ।

शिलाकर्णौ—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शङ्ख की वृक्ष । सलई ।  
शिलाकुट्टक—संज्ञा पुं० [ सं० ] पत्थर तोड़ने की छेनी ।  
शिलाकुसुम—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाजीत ।  
शिलादार—संज्ञा पुं० [ सं० ] चूना ।  
शिलाचक्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] नालग्राम की मूर्ति ।  
शिलाचय—संज्ञा पुं० [ सं० ] पर्वत । पहाड़ ।  
शिलाज—संज्ञा पुं० [ सं० ] छरीला । पत्थर का फूल । (२)  
छोटा । (३) शिलाजीत ।

शिलाजत्रु—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाजीत ।  
शिलाजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद रंग का पत्थर । संगमरमर ।  
शिलाजीत—संज्ञा पुं० स्त्री० [ सं० शिलाजत्रु ] काले रंग की एक  
प्रसिद्ध भोपधि जिसे कुछ लोग मोमियाई भी कहते हैं ।

चिश्रेय—सुश्रुत के अनुसार यह ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की  
किरणों से तपी हुई शिलाओं का रस है । निर्घट्ट के अनुसार  
यह दो प्रकार का होता है—एक पर्वतों से निकलता है,  
और दूसरा खारी, जमीन में मिट्टी और पानी के योग से  
बनता है । रस रसाकर हृसकी उत्पत्ति सोने, चाँदी, छोदे  
और ताँबे से मानता है । परंतु यह प्रायः पहाड़ों पर या  
छोटे की खानवाले गड्ढों में ही मिलता है । द्रव्यों के  
अनुसार यह छः प्रकार का होता है । रस-रस के अनुसार  
यह दो प्रकार का होता है । एक वह जिसमें से गीमूत्र के  
समान गंध आती है । यह साधारणतः बहुत मिलता है ।  
और दूसरा कषुर के समान सफेद होता है । इसमें से किसी  
प्रकार की गंध नहीं आती । इसका रंग कई प्रकार का  
होता है । विषवाचल का शिलाजीत सब से उत्तम कहा  
जाता है । इसको रासायनिक रीति से शुद्ध करके भोपधि के  
काम में छाते हैं । यह बढ़ा ही गुणकारी और शक्तिवर्धक  
होता है । अनुपान भेद के अनुसार नाना प्रकार के रोगों के  
लिये इसका प्रयोग किया जाता है । वैद्यक के अनुसार यह  
कट्या, चरपा, गरम, रसायन, छेदन, योगवाही, कफ,  
भेद, पथरी, शकंटा, सूजक, क्षय, खास, चातरक, बषासीर,  
पंडुरोग, मृगी, उन्माद, काँसि इत्यादि रोगों का नाश  
करनेवाला माना गया है ।

पुराणों के अनुसार देवाशुर संग्राम के समय जब अरुत  
निकाठने के लिये देवताओं और राक्षसों ने समुद्र को,  
मंदराचल पर्वत को मथानी बनाकर मथा, सब दोषनाश के  
हाथ और मयने की गाम्भी से पर्वत के भीतर की धातुएँ  
चिरक गई और पत्थरों के रूप में बहने लगीं । उसी खाव  
का नाम शिलाजीत, गिरिवेद या शिलाकमल हुआ । पीछे

से देवताओं ने प्रलय और ईंद्र का पूजन कर मनुष्यों के  
कल्याणार्थ मंदराचल का पथी पत्थीना अन्य पर्वतों को  
दे दिया ।

पर्याय—भगज । भद्रिज । शीतपुष्पक । अरमलाशा ।  
जखदमक । गैरय । अर्य । गिरिज । अरमज ।

शिलाटक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत बड़ा मझान । अटलिका ।  
(२) मझान के सब से ऊपरी भाग में बना हुआ छोटा  
कमरा । चौबारा । (३) किसी इमारत के चारों ओर बना  
हुआ बड़ा घेरा । चहारादीवारी । परकोटा । (४) गड्ढा ।

शिलाटिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रक पुनर्नवा । लाल गद्दहपूना ।  
शिलारमज—संज्ञा पुं० [ सं० ] कोहा ।  
शिलारमिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोना या चाँदी गलाने की  
घरिया ।

शिलात्व—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिला का भाव या धर्म ।  
शिलात्वचू—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शिला या बरहा नाम की भोपधि ।  
शिलाद—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
शिलावद्—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शैलेय नामक गंध द्रव्य ।  
छरीला । (२) शिलाजीत ।

शिलादान—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणों के अनुसार यह दान जिसमें  
किसी प्राण्य को शालग्राम की मूर्ति दी जाती है ।  
शिलादिरय—संज्ञा पुं० दे० “हर्षवर्धन” ।

शिलाद्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] शैलेय नामक गंध द्रव्य । छरीला ।  
शिलाघातु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोनगोड़ । (२) छरिया  
मिट्टी । (३) चीनी । शकर ।

शिलानियांस—संज्ञा पुं० दे० “शिलाजीत” ।  
शिलानीङ्—संज्ञा पुं० [ सं० ] गदर ।  
शिलापट्ट—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पत्थर की चट्टान । ७०—पथी  
सेरे ही काज यह शिलापट्ट विधि लाय ।—सीताराम । (२)  
मसाहा आदि पीसने की सिल ।

शिलापुत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़ा जिससे सिल पर कोई चीज  
पीसी जाती है ।

शिलापुष्प—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छरीला । शैलेय । पत्थर का  
फूल । (२) दे० “शिलाजीत” ।

शिलाप्रसून—संज्ञा पुं० [ सं० ] शैलक या छरीला नामक गंध  
द्रव्य ।

शिलापंच—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह प्राचीर या परकोटा को पत्थरों  
के टुकड़ों से बना हो ।

शिलाभय—संज्ञा पुं० [ सं० ] छरीला । शैलक ।  
शिलामिष्यंद—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाजीत ।  
शिलामेद—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वापान भेदी वृक्ष । पखानभेद ।  
(२) पत्थर तोड़ने की छेनी ।

शिलामल—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाजीत ।

शिलायु-संज्ञा पुं० [ सं० ] गले में होनेवाला एक प्रकार का रोग। इसमें कफ और रक्त के कृति होने से गले में आँवले की गुठली के समान गाँठ उत्पन्न होती है जिसमें बहुत पीड़ा होती है। इसके कारण खाया हुआ भ्रष्ट गले में अटकता है। इसको गिलायु भी कहते हैं।

शिलायूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार विद्यामित्र के एक पुत्र का नाम।

शिलारंभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कष्ट केला। काष्ठ कदली।

शिलारस-संज्ञा पुं० [ सं० ] छोहयान की तरह का एक प्रकार का सुगंधित गोद।

विशेष—कुछ लोग इसे खनिज भी मानते हैं, पर वास्तव में यह एक वृक्ष का गोद भयवा जमा हुआ द्रव्य है। इसका वृक्ष पूरबी बंगाल, आसाम, मृतान, पेरू, चीन, मलाया, मेरुगुद, जावा और यूनान में पाया जाता है। इसका वृक्ष ६० से १०० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते ४ ३/४ इंच तक लंबे, जड़ की ओर गोलाकार, अनीदार और किंचित्त घारीक कण्टारेदार होते हैं। शालाओं के अंत में सुंठीदार फूल होते हैं। फल गोलाकार होते हैं जिनमें बीजों की अधिकता होती है। वैद्यक के अनुसार यह कटुवा, चरपरा, स्वादिष्ट, त्रिगुण, गरम, सुगंधित, बर्ण को सुंदर करनेवाला और त्रिदोष आदि को शांत करनेवाला होता है।

शिलातेज-संज्ञा पुं० [ सं० ] पथर पर लिखा या खोद हुआ कोई प्राचीन लेख। पुराने लेख जो पथरों पर लिखे हुए पाए जाते हैं और जिनमें किसी प्रकार का अनुशासन या दान आदि उल्लिखित होता है।

शिलायुधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलायुधि। पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वि० पथर बरसानेवाला।

शिलाचक्र-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की ओपधि जिसे शिलज और श्वेता भी कहते हैं।

शिलावह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस जनपद का निवासी।

शिलावहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम।

शिलावृष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आकाश से सोले या पथर गिरना।

शिलावेदम-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलावेदमन्त्रः। (१) कंदरा। गुफा।

(२) पथर का बना हुआ मकान।

शिलाव्याधि-संज्ञा पुं० दे० "शिलाजीत"।

शिलासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शैलेय नामक गंध द्रव्य। (२) पथर का बना हुआ आसन। (३) शिलाजीत।

शिलासार-संज्ञा पुं० [ सं० ] खोहर।

शिलारवेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाजीत।

शिलाहरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शालग्राम की मूर्ति। उ०—शुभ मुनि कदा शिलाहरि धोई। काहु पान कहु शोप न होई।—विग्राम।

शिलाहारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाहारिन्। यह जो शिल वा उंच वृत्ति से अपना निर्वाह करता हो। बेंछरीक।

शिलाह, शिलाहय-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाजीत।

शिलिद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली जिसका मंस बहुत स्वादिष्ट होता है और वैद्यक के अनुसार श्लेष्मावर्द्धक, हृद्य और वात-पित्तनाशक माना जाता है।

शिलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] भोजपत्र। मूर्जे वृक्ष।

संज्ञा स्त्री० चौखट के बीच की छकड़ी। देहरी। देहली।

शिलिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

शिलोधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बेलें का फूल। (२) जोड़ा। बनीरी।

(३) शिलिद् नामक मछली। (४) सुईछत्ता। उड़मुष्णा।

(५) कदकेला।

शिलोधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुडामुत्ता। सुमी।

शिलोधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) केसुमा। गंधपदी। (२)

मिष्टी। (३) एक प्रकार की चिड़िया।

शिली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) देहलीज। (२) केसुमा। गंधपदी।

(३) भोजपत्र। (४) घाण। (५) माला। (६) मंडूक।

मंडक।

शिलीप्रद-संज्ञा पुं० [ सं० ] फोलेपॉव नामक रोग। शीपद।

शिलीमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अमर। और। उ०—(क)

कुंवर प्रसिद्ध शीलंख अदि भ्रम चरण शिलीमुख काम।—

सूर। (ख) कुंचित्त अलक शिलीमुख मानो के मकरंद

निदोष।—सूर। (२) घाण। तीर। उ०—न ह्येन सगंभिय

जानि शिलीमुख पंच धरे रतिनायक है।—गुलसी। (३)

युद्ध। समर। लड़ाई। (४) मूर्ख। वेचकूप।

शिलु-संज्ञा पुं० [ सं० ] लिसोदा। बहुवार वृक्ष।

शिलूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन ऋषि जो नाट्यशास्त्र

के आचार्य माने जाते हैं। (२) बेल का वृक्ष।

शिलेय-वि० [ सं० ] शिला संबंधी। शिला का।

संज्ञा पुं० शिलाजीत।

शिलोच्छ-संज्ञा पुं० [ सं० ] फसल कट जाने पर खेत में गिरे पड़े

दाने सुनकर जीवन निर्वाह करने की वृत्ति। शिल और

उंच वृत्ति।

शिलोच्छ-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिल और उंच वृत्ति।

शिलोच्चय-संज्ञा पुं० [ सं० ] पर्वत। पहाड़।

शिलोत्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छरीका वा शैलेय नामक गंध द्रव्य।

(२) शिलाजीत।

शिलोद्भव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शैलेय। छरीका। (२) पीला

चंदन।

शिलोद्भिदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पापान भेद । परमर फोड़ ।  
शिलोका-संज्ञा पुं० [ सं० शिलोकम् ] (१) वह जो पर्वत पर  
होता हो । (२) गरुड़ ।

शिल्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथ से कोई चीज बनाकर तैयार  
करने का काम । दस्तकारी । कारीगरी । हुनर । शैले,—  
यातन बनाना, कपड़े सीना, गहने गढ़ना आदि । (२) कला  
संबंधी व्यवसाय । शैले,—अब इस नगर के कई शिल्प  
नष्ट हो गए हैं ।

शिल्पकर-संज्ञा पुं० दे० "शिल्पकार" ।

शिल्पकला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हाथ से चीजें बनाने की कला ।  
कारिगरी । दस्तकारी । ठं—सो सौं लहि आदर्श बढ़त कर  
शिल्पकला सुख—श्रीधर ।

शिल्पकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो हाथ से अच्छी अच्छी  
चीजें बनाकर तैयार करता हो । शिल्पी । कारीगर ।  
दस्तकार । (२) राज । मेमार ।

शिल्पकारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शिल्पकारिका ] हाथ से  
अच्छी अच्छी चीजें बनानेवाला कारीगर । शिल्पकार ।

शिल्पकारी-संज्ञा पुं० [ सं० शिल्पकारिन् ] वह जो शिल्प का  
कार्य करता हो । कारीगर ।

शिल्पगृह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ बहुत से शिल्पी  
मिलकर चीजें बनाते हों । कारखाना ।

शिल्पगृह-संज्ञा पुं० दे० "शिल्पगृह" ।

शिल्पजीवी-संज्ञा पुं० [ सं० शिल्पजीविन् ] वह जो शिल्प के  
द्वारा जीविका निर्वाह करता हो । कारीगर । दस्तकार ।

शिल्पज्ञ-वि० पुं० [ सं० ] शिल्प जाननेवाला । कारीगरी का  
जाननेवाला ।

शिल्पज्ञा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शिल्प का भाव या धर्म । शिल्पज्ञा ।

शिल्पपरव-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिल्प का भाव या धर्म । शिल्पज्ञा ।

शिल्पप्रज्ञापित-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वकर्मा का एक नाम ।  
(शिवकर्मां श्री समस्त शिल्पों के आविष्कर्ता और  
शिल्पियों के मूल गुरुय माने जाते हैं ।)

शिल्पलिपि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पत्थर या तर्बि आदि पर अक्षर  
रोदने की विद्या ।

शिल्पविद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हाथ से अच्छी अच्छी चीजें  
बनाने की विद्या । (२) गृहनिर्माण कला । मकान आदि  
बनाने की विद्या ।

शिल्पशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्थान जहाँ बहुत से शिल्पी  
मिलकर तरह तरह की चीजें बनाते हों । कारखाना ।  
शिल्पगृह ।

शिल्पशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह शास्त्र जिसमें हाथ से  
चीजें बनाने का निरूपण हो । शिल्पविद्या । (२) गृह-  
निर्माण का शास्त्र । शास्त्र शास्त्र ।

शिल्पिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो शिल्प द्वारा निर्वाह  
करता हो । कारीगर । दस्तकार । (२) शिल्प का एक नाम ।  
(३) नाटक का एक भेद । शिल्पिक ।

शिल्पिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का मृग जो दक्षिण  
में अधिकता से होता और भोजपि रूप में काम आता है ।  
शैथक में यह अशुभ तथा नीतल कहा गया है और इसके  
बीज बल तथा वीर्य्य बढ़ानेवाले माने गए हैं ।

शिल्पिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शिल्पी का स्त्रीलिंग रूप । (२)  
एक प्रकार की घास ।

शिल्पिशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शिल्पगृह । कारखाना ।

शिल्पी-संज्ञा पुं० [ सं० शिल्पिन् ] (१) शिल्पकार । कारीगर ।  
(२) राज । थवाई । (३) चितेरा । चित्रकार । (४) नक्षी  
नामक गंध द्रव्य ।

शिल्ह-संज्ञा पुं० दे० "शिल्हारस" ।

शिल्हक-संज्ञा पुं० दे० "शिल्हारस" ।

शिल्पर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मंगल करनेवाले, शिव । (२)  
तलवार । (३) शिल्प का एक गण । (४) रोग फिलानेवाले  
एक अशुभ का नाम । (५) एक प्रकार का बाल ग्रह ।

शिल्पिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुरु दासदी ।

शिल्पसाधु-संज्ञा पुं० [ सं० शिल्प + साधु ] शिल्प का यह अंश जो  
शैव साधुओं के लिये अनाज काटने के समय द्रव्य  
कर दिया जाता है ।

शिल्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मंगल । कल्याण । क्षेम । (२) जल ।  
पानी । (३) सौधा नमक । (४) श्यामल । सिंधार । गोदड़ ।  
(५) लूटा । (६) पारा । (७) गुग्गुलु । (८) पुंठीरक वृक्ष ।  
(९) मोक्ष । (१०) काष्ठा घट्टा । (११) वेद । (१२) देव ।  
(१३) कीलक ग्रह । शुभ ग्रह । (१४) रुद्र । काल ।  
(१५) वसु । (१६) एक प्रकार का मृग । (१७) एक प्रकार  
की गुरु की धाराप । (१८) रुद्र द्वीप तथा जंबू द्वीप के एक  
वर्ष का नाम । (१९) लिंग । (२०) एक प्रकार का नृत्य ।  
(२१) एक छंद का नाम । इसके प्रत्येक चरण में ५,६ के  
विधाम से ११ मात्राएँ और अंत में सुगण, रागण, नगण में  
से कोई एक होता है । इसकी तीसरी, छठी और नवीं मात्राएँ  
छपु रहती हैं । (२२) परमेश्वर । भगवान । (२३) विष्वक्मं  
आदि सत्ताइस योगों के आंगंत एक योग । (२४) समुद्र  
लक्षण । (२५) सुहागा । (२६) अविद्या । (२७) कदंब ।  
कदम । (२८) फिटकरी । (२९) सिंदूर । (३०) सिर्ष ।  
(३१) तिल का फूल । (३२) चंदन । (३३) लोहा । (३४)  
यादू । (३५) नीलकंठ पहरी । (३६) कौमा । (३७) मील-  
सिरी का पेड़ । (३८) हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध देवता जो  
गृष्टि का रंदास करनेवाले और धौर्गाणिक प्रियुक्ति के अंतिम  
देवता कहे गए हैं । वैदिक काल में बही ऋतु के रूप में पूजे

जाते थे; पर पौराणिक काल में ये शंकर, महादेव और शिव  
आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। पुराणानुसार इनका रूप इस  
प्रकार है—इनके स्तिर पर गंगा, माथे पर चंद्रमा तथा एक  
और तीसरा नेत्र, गले में सर्प तथा नर-मुंड की माला,  
सारे शरीर में भस्म, व्याघ्र-चर्म ओढ़े हुए और बाएँ अंग  
में अपनी स्त्री पार्वती को लिए हुए। इनके पुत्र गणेश तथा  
कार्तिकेय; गण भूत और प्रेत, प्रधान अस्त्र त्रिशूल; और  
वाहन बैल है जो नंदी कहलाता है। इनके धनुष का नाम  
पिनाक है, जिसे धारण करने के कारण ये पिनाकी बड़े  
जाते हैं। इनके पास पाशुपत नामक एक प्रसिद्ध अस्त्र था  
जो इन्होंने अर्जुन को, उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर, दे  
दिया था। पुराणों में इनके संबंध में बहुत सी कथाएँ  
हैं। ये कामदेव का वध करनेवाले और वृक्ष का यज्ञ नष्ट  
करनेवाले माने जाते हैं। कहते हैं कि समुद्र-मंथन के समय  
जो विष निकला था, यह इन्होंने पान किया था। वह विष  
इन्होंने अपने गले में ही रखा और नीचे पेट में नहीं उतारा;  
इसलिये इनका गला नीला हो गया और ये नीलकंठ कहलाने  
लगे। परशुराम ने अस्त्र-विद्या की शिक्षा इन्होंने पाई थी।  
संगीत और नृत्य के भी ये प्रधान आचार्य्य और परम  
तपस्वी तथा योगी माने जाते हैं। इनके नाम से एक पुराण  
भी है जो शिव-पुराण कहलाता है। इनके उपासक "शैव"  
कहलाते हैं। इनका निवास-स्थान कैलास माना जाता है  
और लोक में इनके लिंग का पूजन होता है।

पर्याय—शंशु। महादेव। ईश्वर। ईश। विध्वनाथ। गिरीश।  
शृङ्खलजय। शिलोचन। हर। उमापति। भैरव। भूतनाथ।  
काशीनाथ। नंदीश्वर। यद्ग। महाकाल। वासुदेव। जटा-  
धर। पशुपति।

वि० कल्याण करनेवाला। मंगल करनेवाला।

शिवक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कौट। कील। (२) लूँटा।

शिवकर—संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के चौबीस जिनों में से एक जिन  
का नाम।

शिवकर्णो—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कार्तिकेय की एक मातृका का  
नाम।

शिवकांची—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध  
नगर।

विशेष—हृष्णा और पोखर नदी के बीच में स्थित कारोमंडल  
के एक भाग की राजधानी कांची थी। इसके दो हिस्से हैं—  
एक विष्णुकांची और दूसरा शिवकांची। शिवकांची उत्तर  
की ओर है। दक्षिण भारत के देशों का यह एक प्रधान तीर्थ  
और सप्तपुरियों में से एक है।

शिवकांता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शिव की पत्नी, दुर्गा।

शिवकारिणी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा का एक नाम।

शिवकारी—वि० [ सं० शिवकारिन. ] मंगल करनेवाला। कल्याण  
करनेवाला।

शिवकिकर—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का गण या दूत।

शिवकीर्त्तन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो शिव का कीर्त्तन करता  
हो। शैव। (२) विष्णु। (३) शिव के द्वारपाल।

शिवकेसर—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का गुलम।

शिवक्षेत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] कैलास।

शिवगंग—संज्ञा पुं० [ सं० शिव + गंगा ] मैसूर राज्य के एक पर्वत  
का नाम।

शिवगंगा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह नदी या जलाशय जो शिव जी  
के मंदिर के समीप हो।

शिवगति—संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार एक अर्द्धत् का नाम।

शिवगिरि—संज्ञा पुं० [ सं० ] कैलास पर्वत।

शिवगुरु—संज्ञा पुं० [ सं० ] शंकराचार्य्य के पिता का नाम जो  
विद्याधिराज के पुत्र थे।

शिवधम्मज—संज्ञा पुं० [ सं० ] मंगल ग्रह।

शिवचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० दे० "शिवरात्रि"।

शिवजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शिवलिंगी कता। पचगुरिया।

शिवता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शिव का मात्र वा धर्म। इ०—  
शिव शिवता इनहीं सों लड़ी।—सूर। (२) मनुष्य के शिव  
में लीन होने की अवस्था। मोक्ष।

शिवतीर्थ—संज्ञा पुं० [ सं० ] काशी नामक स्थान जो शिव का  
प्रधान तीर्थ माना जाता है।

शिवतेज—संज्ञा पुं० [ सं० शिवतेजस् ] पारा। पारद।

शिवदत्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का चक्र। सुदर्शन चक्र।

शिवदारु—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवदार वृक्ष।

शिवदिशा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ईशान कोण जिसके स्वामी शिव  
माने गए हैं।

शिवदूतिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कार्तिकेय की एक मातृका का  
नाम।

शिवदूती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुर्गा। (२) आठ योगिनियों  
में से अंतिम योगिनी का नाम।

शिवदैव—संज्ञा पुं० [ सं० ] आर्द्रा नक्षत्र जिसके अधिपतिता देवता  
शिव माने जाते हैं।

शिवदुग्ध—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव वृक्ष। बेल का पेड़।

शिवद्विष्टा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] केशकी। केषदा।

विशेष—केशकी का फूल शिवजी पर चढ़ाने का नियम है; इसी  
से इसका यह नाम पड़ा है।

शिवधातु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पारद। पारा। (२) गोदंती  
नामक रत्न।

शिवधन—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिवजी के पुत्र गणेश जी। इ० ।

विग्रहरण गणनाथ, शिवनन्दन कंदन कुमति । तुव पद नाई माथ, कर्तु पर खंन सुयमा ।—रघुनाथ ।

शिवनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव । महादेव ।

शिवनाभि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का शिव-लिंग जो और सब शिव-लिंगों में श्रेष्ठ माना जाता है ।

शिवनारायणी-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिंदुओं का एक संवदाय ।

शिवनिर्मात्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह पदार्थ जो शिव जी को अर्पित किया गया हो । शिव पर चढ़ा हुआ नैवेद्य आदि । (पुराणों में देवी चीजों के प्रहण करने का निषेध है ) (२) यह चीज जो किसी प्रकार प्रहण न की जा सकती हो । परम स्थायि वस्तु । जैसे,—हमारे लिये तुम्हारी यह संपत्ति शिवनिर्मात्य है ।

शिवनूरय-संज्ञा पुं० [ सं० ] गति भेद के अनुसार एक प्रकार का नृत्य ।

शिवपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] लाल कमल ।

शिवपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पारा । पारद ।

शिवपुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैतियों का स्वर्ग जहाँ वे जैनसिद्धांता-नुसार मुक्ति का सुख भोगते हैं । मोक्ष शिला ।

शिवपुराण-संज्ञा पुं० [ सं० ] अठारह पुराणों में से एक पुराण जो शैवपुराण भी कहा जाता है । यह शिव-भक्त माना जाता है और इसमें शिव का माहात्म्य वर्णित है । अन्य पुराणों के अनुसार इसमें बारह संहिताएँ और २४००० श्लोक हैं । पर आज कल जो शिव पुराण मिलता है, उसमें केवल चार संहिताएँ और ७००० श्लोक पाए जाते हैं । इसी लिये कुछ लोगों का मत है कि शिवपुराण और वायु पुराण दोनों एक ही हैं । विष्णु, पद्म, मार्कण्डेय, कूर्म, वाराह, लिंग, महा-वैवर्त, भागवत और स्कंद पुराण में तो शिवपुराण का नाम है; पर मत्स्य, नारद और देवी भागवत में शिवपुराण के स्थान पर वायुपुराण का नाम मिलता है । कहते हैं कि शैव धर्म का प्रकाश करने के लिये शिव जी ने यह पुराण रचा था । इसमें निम्न लिखित बारह संहिताएँ हैं—विद्ये-भर, रौद्र, विनायक, भौम, मातृका, रुद्रकाम्य, कैलास, वायव्य, कोटिन्द्र, सहाय कोटिन्द्र, वायवीय और धर्म संहिता । इसके रचयिता मगधवांन वेद्व्यास जी कहे जाते हैं । पर आज कल जो शिव पुराण मिलता है, उसमें केवल ज्ञान, विमोक्ष, कैलास, वायवीय और धर्म आदि संहिताएँ ही पाई जाती हैं । किसी किसी शिवपुराण में सनत्कुमार संहिता और राधा माहात्म्य भी मिलता है ।

शिवपुरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शिव जी की पुरी, धारागप्ती । कानी ।

शिवपुष्पक-संज्ञा पुं० [ सं० ] आक का वृक्ष । मदार ।

शिवमिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रुद्राक्ष । (२) अगस्त । वक वृक्ष । (३) पशु । (४) भोग । (५) एकदिक । बिलौर ।

शिवप्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा ।

शिवप्रीति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बेल का वृक्ष । विदर ।

शिववीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] पारा जो शिव जी का वीर्य माना जाता है ।

शिवब्रह्मी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संज्ञाहूली । शंखपुष्पी ।

शिवभक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शिव का उपासक हो । शैव ।

शिवमल्लक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्जुन वृक्ष ।

शिवमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वसु नामक पुष्प वृक्ष ।

(२) मदार । आक । (३) अगस्त वृक्ष । (४) शिवलिंगी ।

(५) धीवली नामक कैंडीला पेड़ ।

शिवमल्ली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पाशुपति । मौलसिरी । (२)

मदार । आक । (३) वक नामक वृक्ष । (४) लिंगिनी नाम की लता ।

शिवमात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संस्था का नाम ।

शिवराजी-संज्ञा पुं० [ हि० शिव + राज ] एक प्रकार का बहुत बड़ा कव्चर ।

शिवरात्र-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवरात्रि" ।

शिवरात्रि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फाल्गुन वरी चतुर्दशी । शिव चतुर्दशी । ( इस दिन लोग शिव जी का पूजन करते और उनके उद्देश्य से प्रतं रखते हैं । )

शिवरानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिव + हि० रानी ] शिवजी की पत्नी, पार्वती । उ०—शिवरानी यों रति समुद्राई । तब तनु पर शंवर घर आई।—सख्त ।

शिवलिंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] महादेव का लिंग या पिंडी जिसका पूजन होता है ।

शिवलिंगो-संज्ञा स्त्री० [ सं० लिंगिनी ] एक प्रकार की प्रसिद्ध लता जो चौमाये में जंगलों और झाड़ियों में बहुत अधिकता से मिलती है । इसकी लिंगियाँ बहुत पतली और पत्ते करीके के पत्तों के समान ३ से ५ इंच के घेरे में गोलाकार, गहरे, कटे किनारेवाले और ५-७ माणों में विभक्त रहते हैं । पत्र-द्वंद्व की जड़ में ५-६ फूटों के छोटे छोटे गुच्छे लगते हैं । ये फूल पीले होते हैं । इसका व्यवहार भोपधि के रूप में होता है । वैद्यक के अनुसार यह वरपरी, गरम, दुर्गन्धयुक्त, पीठिक, शोथक, गर्म धारण करानेवाली और कुछ आदि का नाश करनेवाली होती है । इसके फलने पर इसका सर्वोद्य भोपधि के निमित्त संग्रह किया जाता है । विनगुरिया । पचगुरिया ।

पर्य्या०—लिंगिनी । ईशरलिंगी । विप्रकक्षा । बहुपत्रा । शिववलिङ्गा ।

शिवलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिवजी का लोक, कैलास । उ०—



छोने मंदिर सौवारह और चैंदन सप्त छीप । दिया जो मग  
शिवलोक महँ उपना तिहदहोप ।—जायसी ।

शिवसहस्रमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुर्गा । (२) सेवती ।  
सप्तपत्नी ।

शिवसहस्रिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवलिंगी" ।

शिवसहस्री-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवलिंगी" ।

शिवसाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का वाहन, धैल । नंदी ।

शिवशैवी-संज्ञा पुं० [ सं० ] पाप जो शिवजी का शीर्ष्य माना  
जाता है ।

शिवशुभम-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिवजी की सवारी का धैल ।

उ०—विराजेंगो जो वृ धमहरन ताकी निखर पै । दिपेगो  
पयो गोरे शिवशुभम खोडी कलिह है ।—लक्ष्मणसिंह ।

शिवशंकरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिवशंकरा ] देवी की एक मूर्ति  
का नाम ।

शिवशेखर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वक्र वृक्ष । (२) धनुष । (३)

शिव का मस्तक । (४) सफेद मदार ।

शिवशैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैलास पर्वत ।

शिवसायुज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शैवों के अनुसार वह मोक्ष  
जिसमें मनुष्य शिव में लीन हो जात्रा है । (२) सृष्टि ।  
औत ।

शिवसुंदरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा ।

शिवान-संज्ञा पुं० [ सं० ] भगस्त का वृक्ष । वक्र वृक्ष ।

शिवान-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुर्गा । (२) पार्वती । गिरिजा ।

उ०—जैहि रस शिव सनहादि मगन भए रांमु रहत । दिन  
साधा । सो रस दिपे सूर प्रभु तोकी शिवा न लहति

भराधा ।—सूर । (१) मुक्ति । मोक्ष । (४) शृगाली ।

शिवारिन । उ०—शिवान यशराजा में योकी । उहे भजन

धरणी जब डोली ।—सचक । (५) हृद् । हर् । हरीतकी ।

(६) सोभा नामक साग । (७) शमी । सफेद कीकर । (८)

बाँवला । (९) हलदी । (१०) वृष । (११) गोरोचन ।

(१२) श्यामा धाम की लता । (१३) एक सुद्विधाति का

नाम । (१४) धौ । धव । (१५) अनंतमूल ।

शिवानु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक माधीन गोत्र-प्रवर्षक-क्षत्रि का

नाम ।

शिवान्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] रुद्राक्ष ।

शिवान्ध्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बली दूष ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] धैरक में एक प्रकार का सैवार किया  
हुआ घृत । इसके प्रस्तुत करने के लिये गीदक का मांस,  
पकरी का दूध, मुलेठी, मजीठ, कुड़ा, लाल चंदन, पदन-  
काठ, हर्, बहेदा, अविळा, विडंग, देवदार, दंडीमूल,  
श्यामा लता काकोली, हलदी, दाहहलदी, अनंतमूल,  
हलायची भादि पदार्थों को धो में ढालकर घृतपाक की

विधि से पकते हैं । यह घृत पागलपन के लिये बहुत  
उपकारी माना जाता है । इसके अतिरिक्त वात, अरसा,  
मेह आदि में भी हस्तका व्यवहार होता है ।

शिवान्वी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वंशपत्नी ।

शिवान्विका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वंशपत्नी नामक वृक्ष । (२)

सफेद पुननंबा । (३) लाल पुननंबा । गदहपुनना । (४)

हिंमुपत्नी । (५) कठुमर ।

शिवारमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेंधा नामक ।

शिवान्धुत-संज्ञा स्त्री० दे० "शतहु" ।

शिवानो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुर्गा । (२) जयंती वृक्ष ।

शिवानोड-संज्ञा पुं० [ सं० ] अगस्त या वक्र नामक वृक्ष ।

शिवान्धिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव के पति, शिव । (२)

यशरा, जिसके वशिष्ठान्त में दुर्गा का प्रसव होना माना  
जाता है ।

शिवान्धुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शमी वृक्ष । सफेद कीकर ।

शिवान्धुति-संज्ञा पुं० [ सं० ] तांत्रिकों के अनुसार वह शैव्य जो  
राज के समय देवी के सामने रखा जाता है और जिसमें  
मांस की प्रधानता होती है ।

शिवान्धुतन-संज्ञा पुं० दे० "शिवान्धुत" ।

शिवान्धुति-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुशा, जो गीदक (शिवान्धुत) का घृत  
होता है ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] गीदक के बोलने का शब्द, जिससे  
यात्रा भादि के समय शुभानुष्ठान राहुन का विचार किया  
जाता है ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह मंदिर जिसमें शिव जी की  
मूर्ति या लिंग स्थापित हो । शिव जी का मंदिर । (२)  
कोई देव-मंदिर । (क०) (३) लाल तुलसी । (४) दनदान ।  
मसान । मरघट ।

शिवान्धुता-संज्ञा पुं० [ सं० शिवान्धुत ] (१) शिव जी का मंदिर ।  
शिवान्धुत । (२) देव-मंदिर । (क०) (३) कोयला जलने  
की मट्टी । (धानारू)

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

शिवान्धुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । शिवार । गीदक ।

अग्नि ने कपतर का रूख घालन किया और इंद्र ने बाज पक्षी का । कपतर उड़ता उड़ता राजा शिवि की गोद में जा छिया और कहने लगा कि यह बाज मेरे प्रण लेना चाहता है । भाप हसते मेरी रक्षा करें । इतने में बाज भी वहाँ आ पहुँचा और कहने लगा कि यह कपतर मेरा भक्ष्य है; भाप यह सुनें वे क्षीणिए । शिवि ने और कुछ भोजन देकर बाज को संतुष्ट करना चाहा; पर बाज किसी प्रकार नहीं मानता था । अंत में राजा ने अपनी जीव में से मांस काटकर और कपतर के बराबर तोड़कर बाज को देना चाहा । पर ज्यों ज्यों राजा अपने दाँतों से मांस काटकर तराजू पर रखते जाते थे, त्यों त्यों कपतर भारी होता जाता था । अंत में राजा विषम होकर स्वयं तराजू के पलड़े पर बैठ गए । इस पर बाज ने संतुष्ट होकर कपतर को भी छोड़ दिया और राजा का मांस भी नहीं लिया । तब से ये बहुत हानी और धर्मात्मा प्रसिद्ध हैं । उ०—अथ वरुणां शिविभूज की कथा परम रमणीय । दारणागत पालन क्रियो दै निज तनु कमनीय ।—रघुराज ।

शिविका—छंदा की० [ सं० ] पाळकी या ढोळी नाम की सबारी । उ०—देहिषु पृष्ठ पठन्मो तिनकाईं । ह्याय लगायो शिविछा माहीं ।—रघुराज ।

शिविपिष्ट—छंदा पुं० [ सं० ] महादेव ।

शिविर—छंदा पुं० [ सं० ] (१) देता । खेना । निवेश । (२) कौञ्ज के ठहरने की जगह । पदाव । छावनी । (३) क्लिष्टा । कोट । उ०—राम शिविर अंगरेज नृप तहँ भाए निर्दि वार । तव हँहूँ हानिर रष्यो आदर खहित उदार ।—मतिराम । (४) चरक के अनुसार एक प्रकार का द्रव धान्य ।

शिविरगिरि—छंदा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम ।

शिवीरथ—छंदा पुं० [ सं० ] पाळकी । शिविछा ।

शिवेश—छंदा पुं० [ सं० ] श्यामल । गीदद । सिवार ।

शिवेष्ट—छंदा पुं० [ सं० ] (१) अमृत वृक्ष । (२) वेड़ । श्रीकल ।

शिवेष्टा—छंदा की० [ सं० ] दूय ।

शिवोद्भव—छंदा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

शिवोपनिषद्—छंदा की० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम ।

शियन—छंदा पुं० (१) दे० "सेवान" । (२) दे० "सिपन" ।

शिशिर—छंदा पुं० [ सं० ] (१) एक ऋतु जो माघ और फाल्गुन मास में होती है । उ०—गोपी गाह श्याल गो सुत वै मखिन वदन रूप गात । परम दीन जनु शिशिर हिमी हल अंगुण गत विन पात ।—सूर । (२) जादू । शीत काल । (३) हिम । (४) विष्णु । (५) एक प्रकार का अन्न । (६) सूर्य का एक नाम । (७) काल चंद्रन । वि० चोतल । उ० । ( इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग

योगिक शास्त्रों के बताने में उनके आरंभ में होता है । वैसे,— शिशिरकर । )

शिशिरकर—छंदा पुं० [ सं० ] चंद्रमा, जिसकी किरणें शीतल होती हैं ।

शिशिरगु—छंदा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

शिशिरता—छंदा की० [ सं० ] शिशिर का भाव या धर्म ।

शिशिरमयूख—छंदा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

शिशिरांत—छंदा पुं० [ सं० ] शिशिर ऋतु के अंत में होनेवाली ऋतु, वसंत । उ०—शिशिरांत की लक्ष्मी का दिया हुआ कलियों का गुच्छा पकास में शोभायमान हुआ ।—लक्ष्मण-सिंह ।

शिशिरांशु—छंदा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

शिशिराक्ष—छंदा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु के पश्चिम ओर बतलाया गया है ।

शिशु—छंदा पुं० [ सं० ] (१) छोटा बच्चा; विशेषतः आठ वर्ष तक की अवस्था का बच्चा । छोटा लड़का । उ०—भापे सुकुट सुमग पीतांबर उर सोमित श्रुयु रेखा हो । शंख चक्र युज चारि विराजत अति प्रताप शिशु मेधा हो ।—सूर । (२) पशुओं आदि का बच्चा । (३) कर्पिकेय का एक नाम ।

शिशुक—छंदा पुं० [ सं० ] (१) शिशुमार या सूस नामक जलजंतु । (२) शिशु । बच्चा । बालक । (३) एक प्रकार का वृक्ष । (४) सुशुभ के अनुसार एक प्रकार का सौर ।

शिशुकुच्छ—छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चांद्रायण मत जिसे शिशु चांद्रायण या स्वदर चांद्रायण भी कहते हैं ।

शिशुगंधा—छंदा की० [ सं० ] मल्लिका । मोतिया ।

शिशुचांद्रायण—छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चांद्रायण मत जिसे स्वदर चांद्रायण या कृष्ण चांद्रायण भी कहते हैं । इस मत में मातःशाल चार मास और स्यांशाल चार मास भोजन करके निर्वाह किया जाता है ।

शिशुता—छंदा की० [ सं० ] शिशु का भाव या धर्म । बचपन । शिशुत्व ।

शिशुताईल—छंदा की० दे० "शिशुता" । उ०—यद्युमति भाग सुहागिनी हरि को सुत जाने । मुख मुख नीरि बतावई शिशुताईं ठाने ।—सूर ।

शिशुत्व—छंदा पुं० [ सं० ] शिशु का भाव या धर्म । शिशुता । शैशव ।

शिशुनाग—छंदा पुं० [ सं० ] (१) एक राक्षस का नाम । (२) मागवत के अनुसार एक राजा का नाम । (३) दे० "शिशुनाय" ।

शिशुनामा—छंदा पुं० [ सं० ] शिशुनामर् । ऊँट ।

शिशुपत्न—छंदा पुं० दे० "शिशुना" ।

शिष्टपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] चेदि देश का एक प्रसिद्ध राजा जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ०—देश देश के नृपति सुरे सध भीष्म नृपति के धाम। रुक्म कछो शिष्टपालहिं देहीं नहीं कृष्ण सों काम।—सूर।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि द्रुपद के पर एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसके तीन भाँलें और चार हाथ थे और जो जनमते ही गधे की तरह रेंकने लगा था। इससे डर कर माता-पिता ने इसका स्वयं करना चाहा था; पर इतने में आकाशवाणी हुई कि यह शिष्ट बहुत ही बलवान् और वीर होगा; तुम लोग इस शिष्ट का पालन करो। (इसी लिये इसका नाम शिष्टपाल रखा गया था।) इसका नाश करने-वाला भी पृथ्वी पर उत्पन्न हो चुका है। आकाशवाणी सुनकर शिष्टपाल की माता ने आकाश की ओर देखकर पूछा कि इसका नाम कौन करेगा? फिर आकाशवाणी हुई कि जिस आदमी की गोद में जाते ही इसकी तीसरी आँख और अतिरिक्त दोनों बाँहें जाती रहेंगी, वही इसके प्राण लेगा। द्रुपद ने बहुत से राजाओं आदि को बुलाकर उनकी गोद में अपना पुत्र दिया; पर उसकी तीसरी आँख और दोनों अतिरिक्त भुजाएँ ज्यों की त्यों बनी रहीं। अंत में जब श्रीकृष्ण ने उसे गोद में लिया, तब उसके दो हाथ भी गिर गए और तीसरा नेत्र भी अदृश्य हो गया। इसपर शिष्टपाल की माता ने श्रीकृष्ण से कहा कि तुम इसके साथ अपराध क्षमा करना। श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा की कि मैं इसके सौ अपराध तक क्षमा करूँगा।

बड़ा होने पर शिष्टपाल बहुत पराक्रमी हुआ और अक्रान्त ही श्रीकृष्ण से बहुत अधिक द्वेष रखने लगा। जब युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ के समय लोगों से पूछा कि यज्ञ का अर्घ्य किसे दिया जाय, और भीष्म ने उत्तर दिया—“श्रीकृष्ण को” तब शिष्टपाल बहुत विगदा और सब राजाओं को संवोधन करके श्रीकृष्ण की निन्दा करने और उन्हें कुशाच्य कहने लगा। श्रीकृष्ण उसके कुशाच्य गिनते जाते थे। जब तक उसने सौ गालियाँ दीं, तब तक तो श्रीकृष्ण बिलकुल चुप थे; क्योंकि वे उसकी माँता के सामने उसके सौ अपराध क्षमा करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। पर जब वह इतने पर भी शान्त न हुआ और उसने एक और कुशाच्य कहा, तब श्रीकृष्ण ने तुरंत उसका सिर काट डाला।

शिष्टपालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) द्रुपद का पुत्र शिष्टपाल। (२) केलि कर्षक। भीम।

शिष्टपालवध-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाकवि माघ कृत एक प्राचीन काव्य जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा शिष्टपाल के मारे जाने की कथा वर्णित है।

शिष्टपालहा-संज्ञा पुं० [ सं० शिष्टपालह ] शिष्टपाल को मारने-वाले, श्रीकृष्ण।

शिष्टमार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूँस नामक जलजंतु। (२) मगर की आकृतिवाला, नक्षत्र मंडल। (३) दे० “शिष्टमा चक्र”। उ०—(क) मेरो रूप चक्र-शिष्टमारा। जामे सख बैँयो संसारा।—रघुराज। (ख) बहुत काल में सुति करि, जब दोष्यो शिष्टमार। तब संघ्या मै भातु हिय, अस्तापल संचार।—रघुराज। (४) कृष्ण। (५) विष्णु।

शिष्टमार चक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सब अर्धों सहित सूर्य। सौर जगत्। उ०—भवध अनंद मिहारी गगन पथ रके भातु गति भूली। स्वयो चक्र शिष्टमार वार तेहि राम जन्म सुख फूली।—रघुराज।

शिष्टमारमुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

शिष्टवाहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जंगली बकरा।

शिष्टवाहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिष्टवाहक। जंगली बकरा।

शिष्टूल-संज्ञा पुं० दे० शिष्ट”।

शिष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुरुष की उपर्योग्य। लिंग।

शिष्ट-संज्ञा पुं० दे० “शिष्ट्य”। उ०—रामानुज के शिष्ट ही भयक। यह यदा त्रिभुवन महँ भरि गयक।—रघुराज।

संज्ञा स्त्री० [ सं० शिवा ] सील। शिक्षा। सिखावन। उ०—कहेइ सुमग शिष्ट धर्म कुमारा। कीन्ह सबन मिलि अंगी-कारा।—सुबलसिंह।

संज्ञा स्त्री० [ सं० शिल्प या शिला ] बाल जो मुँदन के समय सिर पर छोड़े जाते हैं। उ०—कटि पट पीत पिछौरी बधि कागपच्छ शिष्ट शीश। शर कीया दिन देखत भावत मारद सुर तेतीस।—सूर।

शिष्टरी-संज्ञा पुं० [ सं० ] भौता। अपामार्ग। चिचदा।

वि० [ सं० शिल्प + ई (प्रत्य०) ] शिल्प से युक्त। शिल्प-वाला। उ०—कोपि शिष्टरी गदा तब सब हन्यो तापे गात में। मोहि कपिपनि मिच्यो श्रीहत यथा कुमुदिन प्रात में।—श्यामविहारी मिश्र।

शिष्टाल-संज्ञा स्त्री० दे० “शिक्षा”। उ०—स्तुति वेद शिष्टा प्रमु केरी। पुराजस मन लेहु निबेरी।—रघुराज।

शिष्टिल-संज्ञा पुं० दे० “शिष्ट्य”। उ०—(क) जहँ शिष्टि तहँ ते गुद पर्यत। प्रगटे पतिनि पत्र अनंता।—रघुराज। (ख) अक विचारि शिष्टि करौ न तोहीं। याद न रोकू जान दे मोहीं।—विश्राम।

शिष्टी-संज्ञा पुं० दे० “शिक्षा”। उ०—यह कौन भावत है सबी मल पंक अंकित अंग। शिर केश लंघित नम्र हाय शिष्टी शिल्प सुखंग।—केशव।

शिष्ट-वि० पुं० [ सं० ] (१) जो अच्छी तरह धर्म का आचरण करता हो। धर्मशील। (२) शांत। धीर। (३) अच्छे स्वभाव और आचरणवाला। सुशील। (४) बुद्धिमान्। (५) सभ्य। सज्जन। मला आदर्श। (६) मला। उत्तम। श्रेष्ठ। (७) आचार व्यवहार में निपुण। नाशीन। (८) आज्ञाकारी। (९) प्रसिद्ध। मशहूर।

संज्ञा पुं० (१) मंत्री। वजीर। (२) सभ्य। समासद्। शिष्टता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शिष्ट होने का भाव या धर्म। (२) सभ्यता। सज्जनता। भद्रता। (३) उच्चमता। श्रेष्ठता। (४) अधीनता।

शिष्टदय-संज्ञा पुं० दे० "शिष्टता"। शिष्टसमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राज-सभा। राज्य परिषद्। शिष्ट समाज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह समाज जिसमें पढ़े लिखे सभी सदाचारी व्यक्ति हों। भले आदर्शियों का समाज। सभ्य समाज।

शिष्टाचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सभ्य पुरुषों के योग्य आचरण। भले आदर्शियों का सा बरताव। साधु व्यवहार। (२) आदर। सम्मान। खातिरदारी। (३) विनय। नम्रता। (४) वह अच्छा बरताव जो बैबल दिखलाने के लिये क्रिया जाय। दिखावटी सभ्य व्यवहार। जैसे,—शिष्टाचार की बात छोड़कर अपने अपने का अभिप्राय कहे। (५) भाव मगत। जैसे,—शिष्टाचार के अनन्तर उन्होंने वार्तालाप प्रारंभ किया।

शिष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आज्ञा। अनुशासन। हुकुम। (२) शासन। हुकूमत। (३) दंड। सज़ा। (४) सुधार। (५) सहायता। मदद्।

शिष्य-संज्ञा पुं० दे० "शिष्य"। शिष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शिष्या ] (१) वह जो शिक्षा या उपदेश देने के योग्य हो। (२) वह जो विद्या पढ़ने के उद्देश्य से किसी गुरु या आचार्य आदि के पास रहता हो। विद्यार्थी। शनैःश्रद्धा। चेला। उ०—हीर चलावत शिष्य सिपावत धर निदान देवरावत। कबहुँक सपे अथ यदि आपुन नाना भौति नधावत—सूर। (३) (शिक्षक या गुरु के संबंध से) वह जिसने किसी से शिक्षा प्राप्त की हो। शार्गर्द्र। चेला (४) (गुरु के संबंध से) वह जिसने किसी धार्मिक आचार्य से दीक्षा या मंत्र आदि ग्रहण किया हो। शुरीद। चेला। (५) वह जो हाल में यावक बना हो। (मैत्र)

शिष्यता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शिष्य होने का भाव-या धर्म। शिष्यत्व।

शिष्यत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिष्य होने का भाव या धर्म। शिष्यता।

शिष्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वृक्ष का नाम जिसके फलके चरण में सात गुरु अक्षर होते हैं। इसका दूसरा नाम "शीपरूपक" भी है।

शिरत-संज्ञा स्त्री० [ फ० ] (१) मछली पकड़ने का कौता। (२) निशाना। लक्ष्य।

मुद्रा०—शिरत बाँधना = तक लगाना। गिराना बाँधना। (३) दूरबीन की तरह का एक प्रकार का यंत्र जिससे जमीन नापने के समय सीध आदि देखी जाती है। (४) अँगूठा।

शिरतयाज्ञ-संज्ञा पुं० [ फ० ] (१) निशाना लगानेवाला। निशानेयाज्ञ। (२) शिरत लगाकर मछली पकड़नेवाला।

शिशुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलास नाम का गंध द्रव्य। शी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शक्ति। (२) शयन। सोना। (३) भक्ति।

शीकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गंधा विरोजा। (२) गुपार। भोस। शयनम। (३) हवा। वायु। (४) अक कण। पानी की बूँद। (५) शीत। जाड़ा। (६) वर्षा की छोटी छोटी बूँदें। फुहार। (७) धूप। (जलाने का)

शीघ्र-किं० वि० [ सं० ] बिना विरलंब। बिना देर के। घटपट। तुरंत। जल्द।

संज्ञा पुं० (१) छामजक या छामज नामक वृक्ष। (२) भागवत के अष्टासार कुहवशीय अग्निवर्ण के पुत्र का नाम। (३) वायु। हवा। (४) वह अंतर जो पृथ्वी के दो भिन्न भिन्न स्थानों से प्रहों के देखने में होता है। (५) चक्रग।

शीघ्रकारी-वि० [ सं० शीघ्रकारि ] (१) जल्दी से काम करनेवाला। शीघ्र कार्य करनेवाला। (२) शीघ्र प्रभाव सत्य करनेवाला। (३) तीव्र। कड़ा। (पीड़ा आदि के लिये)

संज्ञा पुं० एक प्रकार का सखियात ज्वर जिसमें मूर्च्छा, तंद्रा, प्यास, श्वास और पाचन में पीड़ा होती है। यह असाध्य और मृत्यु का पूर्व रूप माना जाता है।

शीघ्रकोपी-वि० [ सं० ] (१) जल्दी गुस्सा होनेवाला व्यक्ति। (२) चिद्चिद्वा।

शीघ्रग-वि० [ सं० ] शीघ्र चलनेवाला। द्रुतगामी। संज्ञा पुं० (१) मूर्च्छा। (२) वायु। (३) खरगोश। (४) अग्निवर्ण के पुत्र का नाम।

शीघ्रगामी-वि० [ सं० शीघ्रगामि ] शीघ्र चलनेवाला। जल्दी या तेज चलनेवाला।

शीघ्रचेतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो किसी बात को बहुत शीघ्र समझे। जल्दी बात समझनेवाला। चतुर। (२) कुशा। कुम्हुर।

शीघ्रजन्मा-संज्ञा पुं० [ सं० शीघ्रजन्म ] कंड करण।

श्रीमंजीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] चौलाई का साग ।  
 श्रीमंजित-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्रीमं का भाव या धर्म । जल्दी ।  
 तेजी । फुरती ।  
 श्रीमंजित-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीमं का भाव या धर्म । जल्दी ।  
 तेजी । फुरती ।  
 श्रीमंजित-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्री-सहवास के समय वीर्य का  
 श्रीमं स्थिति हो जाना । स्तंभन शक्ति का अभाव । (वैद्यक  
 से इसकी गणना एक प्रकार के नरुंसकत्व में की जाती है ।)  
 श्रीमंजित-संज्ञा पुं० [ सं० ] वायु ।  
 श्रीमंजित-संज्ञा पुं० [ सं० ] अगस्त्य वृक्ष ।  
 श्रीमंजित-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीमंजित- ] श्रीमंता से वाण चलाने-  
 वाला । लघुहस्त ।  
 श्रीमंजित-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक नदी का नाम । (२) वंसी  
 वृक्ष । वटुंभरपर्णी ।  
 श्रीमंजित-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) विष्णु । (३)  
 ब्रह्मिणों का लड़ना ।  
 श्रीमंजित-वि० [ सं० ] (१) ठंडा । सर्द । शीतल । (२) शिथिल ।  
 सुस्त ।  
 संज्ञा पुं० (१) जाड़ा । सर्दी । ठंड । (२) दालचीनी । (३)  
 वेंत । (४) लिटोद । (५) नीम । (६) कपूर । (७) एक  
 प्रकार का चंदन । (८) भोस । तुपार । (९) पिच पापदा ।  
 (१०) शीत काल । जाड़े का मौसिम । अगहन, पूस और  
 माघ के महीने । (११) लुकाम । सरदी । प्रतिदवाय ।  
 (१२) जल । पानी ।  
 श्रीतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शीत काल । जाड़े का मौसिम ।  
 (२) बिच्छू । (३) वन सनई । (४) यह जो हर काम में  
 बहुत देर लगाता हो । दीर्घसूत्री । (५) गृहसंहिता के  
 अनुसार एक देश का नाम । (६) एक प्रकार का चंदन ।  
 (७) आलसी । सुस्त । काहिल । (८) संतोषी पुरुष ।  
 श्रीतकटिबंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] पृथ्वी के उत्तर और दक्षिण के  
 भूमि बंध के वे कल्पित विभाग जो भूमध्य रेखा से २३½  
 अंश उत्तर के बाद और २३½ अंश दक्षिण के बाद माने  
 गए हैं । इन विभागों में जाड़ा बहुत अधिक पड़ता है ।  
 ये दोनों विभाग उष्ण कटिबंध के उत्तर और दक्षिण में  
 कर्क और मकर रेखा के बाद पड़ते हैं ।  
 श्रीतकण-संज्ञा पुं० [ सं० ] जीरा ।  
 श्रीतकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ठंडी किरणोंवाला, चंद्रमा । (२)  
 कपूर ।  
 वि० शीतल करनेवाला । ठंडा करनेवाला ।  
 श्रीतकपाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में किसी काठीपथ आदि  
 का यह कपाय या रस जो उसे छगुने ठंडे पानी में रात भर  
 भिगो रक्खने से तैयार होता है ।

शीतकाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हेमंत ऋतु । अगहन और पूस  
 के महीने । (२) जाड़े का मौसिम । हेमंत और शिशिर ।  
 शीतकिरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीत किरणोंवाला, चंद्रमा ।  
 शीतकुंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कनेर । कनैल ।  
 शीतकुंभिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुंभोरिका नाम की लता ।  
 जल-कुम्भी । कुंभी ।  
 शीतकुंभी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जल में उपरान्त होनेवाली एक  
 प्रकार की लता जिसे शीतली जटा भी कहते हैं ।  
 शीतकुंचिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शरियारा । बला । शिरेंटी ।  
 शीतकुच्छु-संज्ञा पुं० [ सं० ] मिताक्षरा के अनुसार एक प्रकार  
 का ऋतु जिसमें तीन दिन तक ठंडा जल, तीन दिन तक  
 ठंडा दूध और तीन दिन तक ठंडा घी पीकर और तीन  
 दिन तक बिना कुछ खाए पीए रहना पड़ता है ।  
 शीतक्षार-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुद्ध सोडाग ।  
 शीतगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंदन । संदल ।  
 शीतगात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर जिसमें  
 रोगी का शरीर बहुत ठंडा रहता है; उसे श्वास, खोसी  
 हृदय, मोह, कंप, अंतर्दाह और कै होसी है; उसके शरीर  
 में बहुत पीड़ा रहती है; उसका स्वर बिल्कुल बर्क जाता  
 जाता है और यह बकता शकता है ।  
 शीतगु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।  
 शीतचंपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दूषण । शीता । आदना ।  
 (२) प्रदीप । दीभा ।  
 शीतच्छाया-संज्ञा पुं० [ सं० ] वट वृक्ष या बरगद, जिसकी  
 छाया बहुत शीतल होती है ।  
 वि० शीतल छायावाला ।  
 शीतज्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] जाड़ा देकर आनेवाला बुखार ।  
 जूझी । जड़ेया ।  
 शीतता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शीत का भाव या धर्म । शीतत्व ।  
 ठंडक ।  
 शीतत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीत का भाव या धर्म । शीतता ।  
 ठंडापन ।  
 शीतदंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] ठंडी वायु या ठंडे जल का दाँतों से  
 छगना या एक प्रकार की वेदना उत्पन्न करना जो वैद्यक के  
 अनुसार दाँतों का एक रोग माना गया है ।  
 शीतदंतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नागदंती । हाथीमुंठी ।  
 शीतदीधिति-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा जिसकी किरणें शीतल  
 होती हैं ।  
 शीतदोष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद जीरा ।  
 शीतदोष्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद दूध ।  
 शीतसुति-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 शीतद्व-संज्ञा पुं० दे० "मोटेद" ।

श्रीतपत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद लज्जाल। सफेद छाजवंती।  
 श्रीतपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अर्कटुपर्णी। अंधाहुली।  
 श्रीतपहलया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटा जामुन। भूमि जंबु।  
 श्रीतपाकिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काकोली नामक अष्ट-  
 वर्गीय ओषधि। (२) ककड़ी। महासमंगा।  
 श्रीतपाकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काकोली नामक अष्टवर्गीय  
 ओषधि। (२) गुंजा। चोटकी। घुंघवी। (३) ककड़ी।  
 अतिषला।  
 श्रीतपित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुद-पित्ती नामक रोग। इसमें वात  
 की अधिकता से सारे शरीर की रक्ता में चकले पड़ जाते  
 हैं और उनमें सूई चुभने की सी पीड़ा होती है। इसमें  
 वमन, उबर और दाह भी होता है।  
 श्रीतपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छीला। दौलेय। (२) केवटी  
 मोथा। (३) सिरिस। सिरिय वृक्ष।  
 श्रीतपुष्पक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आक। अर्क। मदार। (२)  
 केवटी मोथा। (३) छीला। दौलेय।  
 श्रीतपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतिषला। ककड़ी। महासमंगा।  
 श्रीतपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतिषला। ककड़ी। कंधी।  
 श्रीतपूतना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार  
 का बालग्रह या बालरोग। इस रोग में बालक कृपिता और  
 र्श्वलता है, उसकी आँसें दुखती हैं और शरीर दुपका  
 पड़ जाता है, शरीर से दुर्गंध बाधी है और उसे वमन  
 तथा अतिसार होता है।  
 श्रीतपम-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्पूर।  
 श्रीतप्रिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] पिच पापड़ा। पर्यंतक।  
 श्रीतफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गूलर। (२) पीलू। (३) अल-  
 गोट। (४) आँबला। (५) लिंसोदा।  
 श्रीतषला संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ककड़ी। महासमंगा।  
 श्रीतमानु-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा।  
 श्रीतमोह-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मल्लिका। मोतिया। (२) दे०  
 "निर्गुही"।  
 श्रीतमीरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मल्लिका। (२) एक प्रकार  
 का शालिधाम्य। (३) काठी निर्गुही।  
 श्रीतमंजरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शैकालिका। निर्गुही।  
 श्रीतमयूज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा। (२) कर्पूर।  
 श्रीतमरीचि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा। (२) कर्पूर।  
 श्रीतमूलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] खस। दशरि।  
 श्रीतमेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का प्रमेह रोग।  
 श्रीतमेही-संज्ञा पुं० [ सं० ] शोभेहिर् वह जिसे श्रीतमेह  
 रोग हो।  
 श्रीतस्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] मरीचं। दीपक।  
 श्रीतसिम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा। (२) कर्पूर।

श्रीतरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] हल के कचे रस की बनी हुई एक  
 प्रकार की मसिरा।  
 श्रीतरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा।  
 श्रीतरुह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद कमल।  
 श्रीतल-वि० [ सं० ] (१) टेढा। सदै। गरम का उष्ण। (२)  
 क्षोभ या उद्वेग-रिहत। जिसमें आवेद का अभाव हो। शाल।  
 (३) प्रसन्न। संतुष्ट। वृत्त।  
 संज्ञा पुं० (१) कसीदा। (२) छीला। दौलेय। पर्यारुल।  
 (३) चंद्र। (४) मोती। मुक्ता। (५) उक्षीर। खस।  
 (६) वन समई। (७) लिंसोदा। (८) चंवा। (९) राल।  
 (१०) पट्टमकाठ। (११) पीतचंद्र। (१२) भीमसेनी  
 कर्पूर। (१३) शाल वृक्ष। (१४) वरुं। हिम। (१५)  
 केराव। मटर। (१६) चंद्रमा। (१७) जैनों का एक प्रकार  
 का मत।  
 श्रीतलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मद्रना। मद्रक। (२) कुसुद।  
 श्रीतलचीनी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० शीतल + चीन देश ] कषाय चीनी।  
 श्रीतलच्छुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंवा। चंपक।  
 श्रीतलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) डंडान। सर्दा। (२) अमृत-  
 चट्टी। (३) जड़ता।  
 श्रीतलताई-संज्ञा स्त्री० दे० "शीतलता"।  
 श्रीतलप्रद-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्र।  
 श्रीतलवातक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अपराजिता। कोयल कता।  
 विष्णुकृता।  
 श्रीतला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विस्फोटक रोग। चेषक। (२) एक  
 देवी विस्फोटक की अघिष्टात्री मानी जाती हैं। (३) आराम  
 शान्ति। (४) नीली वृष। (५) अर्कटुष्पी।  
 श्रीतलाष्टो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माघ शुक्ल पक्ष की छठी तिथि।  
 श्रीतलाष्टमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैश कृष्ण पक्ष की अष्टमी।  
 इस दिन शीतला देवी की पूजा होती है।  
 श्रीतली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जल में होनेवाला एक पौधा।  
 शीतली जटा। पातड़ी। (२) धीवही। (३) चेषक।  
 विस्फोटक।  
 श्रीतय-संज्ञा पुं० [ सं० ] गिरियारी। गुडवा।  
 श्रीतयरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ककड़ी। कंधी। (पौधा)  
 श्रीतयलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गूलर। उडुंघर।  
 श्रीतयल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पिचपापड़ा। दाहतरा।  
 श्रीतयलो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भीली वृष।  
 श्रीतयारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वृद्धी। चूचिंदा।  
 श्रीतपीठ्ये-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पट्टमकाठ। (२) पावाग-  
 भेद। पखानभेद। (३) पिचपापड़ा। (४) पाकड़। पकड़ी।  
 (५) नीली वृष। (६) बच। पषा।

वि० खाने में जिसका प्रभाव ठंडा हो । जिसकी, साक्षर  
सर्व हो ।

श्रीतवीर्यक-छंदा पुं० [ सं० ] पाकर । पक्ष वृक्ष ।

श्रीतवृक्षा-छंदा स्त्री० [ सं० ] दूरदूर का पेड़ ।

श्रीतशिव-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सैंधा नामक । (२) छरीला ।  
पयाकृत । (३) सोमा । (४) शमी का पेड़ । सफेद  
कीकर । (५) कपर ।

श्रीतशिया-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) सफेद कीकर । शमी ।  
(२) सीक ।

श्रीतशुक-छंदा पुं० [ सं० ] जी । श्व ।

श्रीतसंवासा-छंदा स्त्री० [ सं० ] जूही । शीतवासा ।

श्रीत सखिपात-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सखिपात जिसमें  
शरीर सुन्न और ठंडा हो जाता है । पद्मापात । अर्द्धांग ।

श्रीतसह-छंदा पुं० [ सं० ] पील । झल वृक्ष ।

श्रीतसदा-छंदा स्त्री० [ सं० ] (२) निर्गुंडी । शेफालिका । (२)  
नेवारी । वासंती का पौधा । (३) मोतिया बेला । मखिच्छा  
का एक भेद । (४) चमेडी । (५) सल्ल वृक्ष । पील ।

श्रीतांग-छंदा पुं० [ सं० ] शीत सखिपात ।

श्रीतांगी-छंदा स्त्री० [ सं० ] हंसपक्षी वृत्ता ।

श्रीतांबु-छंदा स्त्री० [ सं० ] दुग्दी नाम की घास ।

श्रीतांबु-छंदा पुं० [ सं० ] (१) कपर । कपर । (२) चंद्रमा ।

श्रीता-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) संदीपा । टंड । (२) एक प्रकार की  
वृक्ष । (३) शिल्पिका घास । (४) तरवर की छाछ । (५)  
भमलतास ।

श्रीताद-छंदा पुं० [ सं० ] दाँत के मयूकों का एक रोग जिसमें  
मयूके जगह जगह पक जाते हैं और उनमें से दुर्गंध निकलने  
लगती है ।

श्रीताद्रि-छंदा पुं० [ सं० ] हिमालय पर्वत ।

श्रीताघ-छंदा पुं० [ सं० ] शीतघर । जूही ।

श्रीतयला-छंदा स्त्री० [ सं० ] ककड़ी । महासमंगा ।

श्रीताम-छंदा पुं० [ सं० ] (१) कपर । (२) चंद्रमा ।

श्रीतार्च-वि० [ सं० ] शीत से पीड़ित । शीतालु ।

श्रीताल-छंदा पुं० [ सं० ] हिंताल वृक्ष ।

श्रीताश्रम-छंदा पुं० [ सं० ] शीतश्रमन् । चंद्रकोत मणि ।

श्रीतीभाघ-छंदा पुं० [ सं० ] (१) शीतलता । (२) मनोविकारों  
के वेग का न रद्द जाना । शान्ति । श्रम । (३) मोक्ष ।  
सुक्ति ।

श्रीतोद्क-छंदा पुं० [ सं० ] एक नरक का नाम ।

श्रीत्कार-छंदा पुं० दे० "सुत्कार" ।

श्रीधु-छंदा पुं० [ सं० ] पकी हुई रूख के रस से बनी हुई मदिरा ।  
सीधु ।

श्रीधुगंध-छंदा पुं० [ सं० ] (१) मय गंध । (२) बड़क वृक्ष ।  
मौलसिरी ।

श्रीध-छंदा पुं० [ सं० ] (१) मूख । (२) भवगर ।

वि० जमा हुआ ।

श्रीकालिका-छंदा स्त्री० [ सं० ] निपुंडी । शेफालिका ।

श्रीमर-छंदा पुं० [ सं० ] मूँह की हड्डी ।

श्रीम्य-छंदा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) वृष । पैठ ।

श्रीर-वि० [ सं० ] लुछीटा । सेज्ञ ।

छंदा पुं० भवगर ।

छंदा पुं० [ का० वि० सं० छेर ] शीर । वृष ।

श्रीरश्मिस्त-छंदा पुं० [ का० ] दकीमी में एक रेवक ओषधि ।

विशेष—कहते हैं कि यह ओषधि सुरादान में पेटों और शयनों  
पर भोस की बूँदों की तरह जमी हुई मिलती है ।

श्रीरखोरा-छंदा पुं० [ का० शीखार ] (१) वृष पीता वृक्ष ।  
(२) भंनजान याकृत ।

श्रीरमाल-छंदा स्त्री० [ का० ] एक प्रकार की खमीरी रोटी जिस  
पर पकते समय दूध का छंटा दिया जाता है ।

श्रीरा-छंदा पुं० [ का० ] (१) चीनी मिठा हुआ पानी । शरैत  
(२) चीनी या गुद को पकाकर शहद के समान गाढ़ा किए  
हुआ रस । पातनी ।

श्रीराजा-छंदा पुं० [ का० ] (१) यह पुना हुआ रंगीन या सफेद  
फीता जो कितायों की सिलाई की छोर पर गोमा और  
मज्जूनी के लिये लगाया जाता है । (२) प्रबंध । इंतजाम  
(३) सिलसिला ।

मुहा०—श्रीराजा चुकना या टूटना = (१) बँधा टूटना । विरु  
सुग जाना । (२) प्रबंध का विगड़ जाना । इंतजाम खराम होना ।

श्रीरि-छंदा स्त्री० [ सं० ] रत्नमादी । गिरा ।

श्रीरिका-छंदा स्त्री० [ सं० ] बंशपत्री नामक वृक्ष ।

श्रीरी-वि० [ का० ] (१) मीठा । मयूर । (२) शिव । प्यता ।

श्रीरी-छंदा पुं० [ सं० ] (१) कुश । कुता । हरिदम । (२) मूँह  
(३) कलिहारी । छांगडी ।

श्रीरीनी-छंदा स्त्री० [ का० ] (१) मिठास । मीठापन । (२)  
खाने की वस्तु जिसमें खूब चीनी या मीठा पड़ा हो  
मिठाई । मिठास । (३) वताता । स्त्रिनी ।

मि० प्र०—चवाना ।

श्रीर्य-वि० [ सं० ] (१) छितराया हुआ । टूटा हुआ हुआ ।  
संघ । (२) गिरा हुआ । प्युत । (३) जौने । कटा पुराना  
(४) सुराया हुआ । सुलकर सिकुड़ा हुआ । (५) लुप्त  
हुआ । (६) कुश । दुबका पतका ।

छंदा पुं० एक गंध द्रव्य । स्थौणिक । धुनेर ।

श्रीर्यदल-छंदा पुं० [ सं० ] मीम ।

श्रीर्षपत्र-छंदा पुं० [ सं० ] (१) कर्मिकार । कनिषारी । (२) पठानी कोष । (३) नीम ।

श्रीर्षपक्षी-छंदा पुं० [ सं० ] निष । नीम ।

श्रीर्षपाद्-छंदा पुं० [ सं० ] धमराज ।

विशेष—युगलों में कथा है कि माता के ज्ञाप से धमराज के पैर क्षीण हो गए थे ।

श्रीर्षपुष्पिका-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) सौंफ । मधुरिका । (२) सोभा ।

श्रीर्षपुष्पी-छंदा स्त्री० [ सं० ] सौंफ ।

श्रीर्षमाला-छंदा स्त्री० [ सं० ] चिन्तन । चिन्तनपर्णी ।

श्रीर्षरामक-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चिन्तन ।

श्रीर्षवृत्त-छंदा पुं० [ सं० ] तरवृत्त ।

श्रीर्षादि-छंदा पुं० [ सं० ] घम । वि० दे० "श्रीर्षपाद्" ।

श्रीर्षि-छंदा पुं० [ सं० ] सोदने कोदने की क्रिया । खंडन ।

श्रीर्ष-वि० [ सं० ] (१) दूटने फूटने योग्य । भंगुर । नाशवान् ।

छंदा पुं० एक प्रकार की वृष या घास जिसका प्रयोजन यज्ञों में पड़ता था ।

श्रीर्षि-वि० [ सं० ] (१) भयकारक । (२) हिंसक । (३) बर्बर । जंगली ।

श्रीर्ष-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सिर । मुंड । कपाल । (२) माथा । (३) सव से ऊपर का भाग । सिरा । चोटी । (४) सामना । अग्र भाग । (५) कालागुद । काला भगर । (६) एक पर्वत का नाम । (७) एक प्रकार की घास ।

श्रीर्षक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सिर । मुंड । (२) माथा । (३) चोटी । सिरा । (४) राहु प्रद । (५) सिर में छपेटने की माला । (६) भगर । (७) नारियल । नारिकेल वृक्ष । (८) टोप । तिरछाण । कूंड । (९) भयहार या अभियोग का निर्णय । कैसला । (१०) वह शब्द या वाक्य जो विषय के परिषय के लिये किसी छेद या प्रबंध के ऊपर लिखा जाय ।

श्रीर्षण्य-छंदा पुं० [ सं० ] (१) टोप । कूंड । (२) सुकसे हुए साङ्ग बाल । (३) चारपाई का चिरहाना ।

श्रीर्षपदक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सिर में छपेटने का कपड़ा । (२) पगड़ी । सुरेखा । साफा ।

श्रीर्षिषु-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सिर के ऊपर ओर ऊँचाई में सव से ऊपर का स्थान । (२) मोतिया बिंदु ।

श्रीर्षवर्चन-छंदा पुं० [ सं० ] अभियोग बचानेवाले का उस द्वाद में दंड सारने के लिये तैयार होना जब कि अभियुक्त ने विष्य परीक्षा देकर अपने को निर्दोष प्रमाणित कर दिया हो । सितोपरम्पारी ।

श्रीर्ष-छंदा पुं० [ सं० ] (१) बाल व्यवहार । आचरण । वृत्ति ।

वर्षि । (२) स्वभाव । प्रवृत्ति । आदत । मित्राज । (३) अष्टा चाल-चलन । उचम आचरण । सवृत्ति ।

विशेष—श्रीर्ष शब्दों में दस शील बड़े गए हैं—दिसा, रवेण, स्वमिचार, निष्कामाण, प्रमाद, अपराह भोजन, वृष्य गीतादि, मालसंधादि, उष्वासन-शय्या, और द्रव्यसंग्रह इन सब का त्याग । कहीं कहीं पंचशील ही बड़े गए हैं । यह शील छः या दस पारमिताओं में से एक है और तीन प्रकार का कहा गया है—संभार, कुशलसंग्रह और सव्यार्थ क्रिया ।

(४) उचम स्वभाव । अच्छी प्रवृत्ति । अष्टा मित्राज ।

(५) वृषे का जी न दुले, यद माय । कोमल हृदय ।

(६) संकोच का स्वभाव । सुरीवत ।

मुद्रां—शील सोदना = दूसरे के जी दुलने न दुलने का ध्यान न रखना । सुरीवत न रखना । शौंछों में शील न होना = दे० "कवि" के मुद्रां ।

(७) भजगर ।

वि० प्रवृत्त । तत्पर । प्रवृत्तिवाला । स्वभावयुक्त । जैते,— दानशील, पुण्यशील ।

शीलवान्-वि० [ सं० शीलवन् ] [ स्त्री० शीलवनी ] (१) अच्छे आचरण का । सार्विक वृत्ति का । (२) अच्छे या कोमल स्वभाव का । सुरीवतवाला । सुनील ।

शीला-छंदा स्त्री० [ सं० ] कौटिल्य मुनी की पत्नी का नाम ।

शीयल-छंदा पुं० [ सं० ] (१) छरीला । शैलेय । पथरफूल । (२) तैयार ।

शीया-छंदा पुं० [ सं० ] भजगर ।

शीशली-छंदा पुं० दे० "शीर्ष" ।

शीशम-छंदा पुं० [ का० ] एक प्रकार का पेड़ जिसका तना भारी, सुंदर और मजबूत होता है ।

विशेष—यह पेड़ बहुत ऊँचा और सीधा जाता है । इसकी पत्तियाँ छोटी और गोल होती हैं । लकड़ी लाल रंग की होती है और मजबूती तथा सुंदरता के लिये प्रसिद्ध है । इससे पलंग, कुर्सी, मेज आदि सजावट के सामान बहुत बढ़िया बनते हैं ।

शीशमहल-छंदा पुं० [ का० शीश + म० महल ] (१) वह कमरा या कोठी जिसकी दीवारों में सर्वत्र शीश जड़े हों । (२) कवि का मकान ।

मुद्रां—शीश महल का कुला = पागल कुलों की तरह बहने या बहलने बूटनेवाला । ( शीश में अपना ही प्रतिबिंब देख देखकर कुणा परताता भी बूटता है । )

शीशा-छंदा पुं० [ का० ] (१) एक मिश्र धातु, जो बाद्य या रेह या खारी मिट्टी को भाग में गलाने से बनती है । यह पारदर्शक होती है तथा खरी होने के कारण थोड़े आभात से टूट जाती



है। कौच । (२) कौच का वह खंड जिसमें सामने की वस्तुओं का ठीक प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है और जिसका व्यवहार चेहरा देखने के लिये किया जाता है। दर्पण। लाइना। (३) साद फ़ासू आदि कौच के बने सजावट के समान।

मुद्रा०—भीरा वागा = बहुत नाजुक चीज। श्रीशे में उतारना = (१) धूल छुड़ाना। श्रेष्ठ वाथा रात करना। (२) बरा करना। मोहित करना।

श्रीश्री—संज्ञा स्त्री० [का० शीरा] श्रीशे का छोटा पात्र जो तेल, इत्र, दवा आदि रखने के काम में आता है। कौच की लंबी कृष्णी।

मुद्रा०—भीरी शुभाना = स्तोरिकामं शुभाना। दवा कृष्णकर बेहोरा करना। (अथ विक्रिस्ता आदि के समय रोगी इत प्रकार स्तोरिकामं शुभकार बेहोरा किए जाते हैं।)

शुंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बट वृक्ष। (२) भाँवला। (३) पोकड़। पकड़ी। (४) नव पल्लव। (५) फूल के नीचे का आधार या कटोरी। (६) एक धार्मिक यंत्र जो मौय्यों के पीछे मगध के सिंहासन पर बैठा था।

विशेष—हस वंश का स्थापक मौय्यों का सेनापति पुष्यमित्र था जिसने मौय्य वंश के अंतिम राजा वृहद्रथ को मार कर ईसा से १८५ वर्ष पूर्व उसके साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया था।

शुंगी—संज्ञा पुं० [सं० शुंगि] (१) पकड़ का पेड़। पाकर। (२) बट वृक्ष।

शुंठि, शुंठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोंठ।

शुंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी की सूँड़। (२) हाथी का मूँड़ जो उसकी कनपटी से यहता है।

शुंडक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का रणवाद्य। भेरी। (२) मद्य उतारने या बेचनेवाला।

शुंडरोद—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निवा घास। भूतृण।

शुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूँड़। (२) मद्यपान करने का स्थान। हौली। (३) धाराव। (४) वेदया। (५) कृदनी।

शुंडादंड—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी की सूँड़।

शुंडार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी की सूँड़। (२) साठ वर्ष का हाथी। (३) मद्य उतारने या बेचनेवाला।

शुंडाला—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

शुंडिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य विकने का स्थान। कल-वरिया। (२) एक प्राचीन जाति का नाम जिसका व्यवसाय मद्य उतारना और बेचना था।

शुंडिमृक्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] लहसुन।

शुंडी—संज्ञा पुं० [सं० शुंडि] (१) (सूँड़वाला) हाथी। (२) मद्य उतारनेवाला। कलघार।

संज्ञा स्त्री० (१) हाथीसूँड़ी का पीया। (२) गले का कौमा। घाँटी।

शुंभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जिसे दुर्गा ने मारा था।

विशेष—यह प्रह्लाद का पौत्र और गणेशी का पुत्र था। इसके भाई का नाम निशुंभ था।

शुंभघातिनी, शुंभमर्दिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शुंभपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुंभ राक्षस की पुरी। एकवक्ता पुरी। हरिपुर।

विशेष—विद्वानों का अनुमान है कि मध्य प्रदेश में गोंदवाना के अंतर्गत संमलपुर ही प्राचीन शुंभपुरी है।

शुक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोता। सुगा। (२) एक प्रकार की गठिवन। (३) सिरिस का पेड़। (४) सोना पात्र। (५) लोच का वृक्ष। (६) तालीशपत्र। (७) मरुभंडा। मार्गद।

(८) रावण के एक दूत का नाम। (९) शुक्रदेव। (१०) बघ। कपड़ा। (११) कपड़े का भाँवला। (१२) पगड़ी। साँगा।

शुककर्णौ—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पीया।

शुककीट—संज्ञा पुं० [सं०] हरे रंग का एक कृमि जो सेतों में दिखाई पड़ता है।

शुककूट—संज्ञा पुं० [सं०] दो खंभों के बीच में शोभा के लिये छत-काई हुई माला।

शुकच्छुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोते का पर। (२) ग्रंथिपर्ण। गठिवन। (३) सेजपत्ता।

शुकजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुभायेंडी नामक पीया।

शुकतरु—संज्ञा पुं० [सं०] सिरिय वृक्ष।

शुकतुंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोते की चोंच। (२) हाथ की एक मुद्रा जो तांत्रिक पूजन में बनाई जाती है।

शुकतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुकजिह्वा या सुभायेंडी नामक पीया।

शुकदेव—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णदेवायन प्यास के पुत्र जो पुराणों के भारी बक्ता और ज्ञानी थे।

विशेष—इन्होंने राजा परीक्षित को बनेके मरने के पहले मोक्ष धर्म का उपदेश दिया था। कहा जाता है कि यही उपदेश भागवत पुराण है।

शुकद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] सिरिय वृक्ष।

शुक-नलिका-न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] तोता जिस प्रकार फँसने की मल्ली (मलनी) में लोभ के कारण फँस जाता है, वैसे ही फँसने की रीति।

विशेष—सूर, तुलसी आदि हिंदी के कवियों ने भी "मलनी के सुभटा" पद का व्यवहार किया है।

शुकनामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुकजिह्वा या सुभायेंडी नामक पीया।

शुकनायन—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रपेड़। चक्रमर्द।

शुकनास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कविकण्ठु । केवाँच । कौंड ।  
(२) शुकनिहार् । सुभा ठोड़ी । (३) गंगारी । (४) मलिका ।  
(५) श्मोनाक वृक्ष । छौंकर । (६) सोनापटा । (७)  
भगस्त का पेड़ ।

शुकनासा-संज्ञा स्त्री० दे० "शुकनास" ।

शुकपुच्छ-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधक ।

शुकपुच्छक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की गठिवन । धुनेर ।

शुकपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धुनेर । (२) सिरिस का पेड़ ।  
(३) गंधक । (४) भगस्त का पेड़ ।

शुकप्रिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिरिस का पेड़ । (२) कमरख ।

शुकप्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नीम । (२) जामुन ।

शुकफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भाऊ । मदार । (२) सेमर ।

शुकधर्ह-संज्ञा पुं० [ सं० ] गठिवन ।

शुकराना-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसके फल  
कड़प होते हैं ।

शुकराना-संज्ञा पुं० [ म० शुक ] (१) शुक्रिया । छतझटा । (२)  
वह धन जो कार्य हो जाने के पश्चात् धन्यवाद के रूप में  
किसी को दिया जाय । जैसे,—बकीलों का शुकराना, जमी-  
दारों का शुकराना इत्यादि ।

शुकवल्लभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनार । दादिम ।

शुकवाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव, जिसका वाहन शुक या  
सोता माना गया है ।

शुकशालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बकायन ।

शुकशिषा, शुकशिधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कविकण्ठु । किवौच ।

शुकशीपर-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धुनेर । श्मोण्यक । (२) तालीस ।  
(३) तैत्रयत्ता ।

शुकास्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुकनिहार् नामक पौधा ।

शुकादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनार ।

शुकानना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुकलया नामक पौधा ।

शुकायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बुद्ध । (२) अर्हत ।

शुकाह, शुकाहप-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का मोथा ।

शुकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मादा तोता । सुग्गी । (२) कदवप  
की पत्नी का नाम ।

शुकैट-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिरिय वृक्ष । सिरिस ।

शुकोदर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शालीदा वृक्ष ।

शुक-वि० [ सं० ] (१) सदा कर खट किया हुआ । झमीर उठाया  
हुआ । (२) खटा । भगल । (३) कदा । कठोर । (४) अभ्रिय ।  
नापसंद । (५) निर्जन । सुनसान । उजाड़ । (६) दिष्ट ।  
मिला हुआ ।

संज्ञा पुं० (१) भगवता । खटाई । (२) बसिष्ट के एक पुत्र  
का नाम । (३) सदा कर खटी की हुई कोई वस्तु । (४)

कौंजी । (५) सिरका । (६) बुक । (७) मांस । (८)  
कठोर वचन ।

शुका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शुक्रिका का पौधा । बूका ।  
(२) कौंजी ।

शुकामल-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुक्रिका शाक । शुक का साग ।

शुक्रि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सीप । सीपी । (२) ताल की  
सीपी । सुदही । (३) शाल । (४) दो कर्प या चार तोले  
की एक तौल । (५) वेर । (६) नखी नामक गंध द्रव्य । (७)  
भरौ । बवासीर । (८) आँसू का एक रोग जिसमें सफेद  
बेले के ऊपर मांस की एक बिंदी सी निकल जाती है । (९)  
कपाल जो काली या कारालिकों के हाथ में रहता है । (१०)  
हड्डी । (११) पोढ़े की गारन की एक मौती ।

शुक्रिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का नेत्र रोग ।  
(२) गंधक ।

शुक्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सीप । सीपी । (२) शुक्रिका  
शाक । बुक नाम का साग । (३) आँसू का शुक्रि नामक  
रोग ।

शुक्रिज-संज्ञा पुं० [ सं० ] मुक्ता । मोती ।

शुक्रिपत्र, शुक्रिपर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] छतिवन । हसपर्ण वृक्ष ।

शुक्रिषोड, शुक्रिमण्डि-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोती ।

शुक्रिमती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक नदी का नाम । (२) वेदि  
की राजधानी ।

शुक्तिमान्-संज्ञा पुं० [ सं० शुक्तिमत् ] एक पर्वत जो भाऊ कुक-  
पर्वतों में से है ।

शुक्तिधू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सीप । सीपी ।

शुफर्यंगी-संज्ञा पुं० [ सं० ] संभाळ । सिंदुवार । मेउड़ी ।

शुक्र-वि० [ सं० ] (१) देशीप्यमान । चमकीला । (२) स्वच्छ ।  
उज्वल ।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि । (२) एक बहुत चमकीला ग्रह या  
तारा जो सुराणानुसार दैत्यों का शुक कहा गया है ।

विशेष—आधुनिक ज्योतिषिज्ञान के अनुसार इसका व्यास  
००० मील है । यह पृथ्वी से सब से अधिक निकट है,  
एक करोड़ कोस से कुछ ही अधिक दूर है । सूर्य से इसकी  
दूरी तीन करोड़ पैंतीस लाख कोस है । इसका अक्ष भ्रमण  
काल २२५ दिनों का है; अर्थात् इसका एक दिन रात  
हमारे २२५ दिनों के बराबर होता है । शुक्र के समान यह  
ग्रह भी प्रधान युति के पीछे पश्चिम में निकलता है और  
पूर्व की ओर बढ़ता हुआ लघु युति के समय लुप्त हो जाता  
है । इसमें वायु और जल दोनों का होना अनुमान किया  
गया है । इसका पृष्ठ सदा घने बादलों से ढका रहता है ।  
फलित ज्योतिष में इसका वर्ण जल के समान श्यामल  
कहा गया है और यह धान्य का स्वामी, जलभूमिवादी,

और तिनभद्रचिवाला माना गया है। पुराणों में शुक्र दैत्यों के गुरु और भृगु के पुत्र कहे गए हैं। ऐसी कथा है कि दैत्यराज बलि जब धामन की पृथ्वी हान करने लगे, तब ये उन्हें रोकने के विचार से उस जलराज की टोंटी में जा बैठे जिसमें संकल्प करने का जल था। उस समय सौंके से गोदने पर इनकी एक भौंल फूट गई। इसी कारण काने भादमी को लोग हँसी में शुक्राचार्य्य कह दिया करते हैं। वि० दे० "शुक्राचार्य्य"।

पर्या०—दैत्यगुरु। काव्य। उचना। भागवत। कवि। सित। भृगु। षोडशति। दवेताध।

(३) उषेष्ट मास। जेठ। ( यह कुबेर का भंडारी कहा गया है।) (७) स्वच्छ और शुद्ध सोम। (५) चित्रक वृक्ष। धीता। (६) सार। रस। छत। (७) नर जीवों के शरीर की यह धातु जिसमें मादा के शंभ को गर्भित करनेवाले घटक या अणु रहते हैं। धीर्य्य। मती। (८) बल। सामर्थ्य्य। पौरुष। शक्ति। (९) सप्ताह का छठा दिन जो बृहस्पतिवार के बाद और शनिवार से पहले पड़ता है। (१०) भौल की पुतली का एक रोग। फूला। फूली। (११) परंठ वृक्ष। भंडी का पेड़। रेंड। (१२) स्वर्ण। सोना। (१३) धन। झूलत। संपत्ति।

घ्ना पुं० [ भ० ] धन्यवाद। कृतज्ञता प्रकाश। जैसे,— सुदा का शुक्र है।

शुक्रकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] मन्ना, जिससे शुक्र या धीर्य्य का धनना कहा गया है।

शुक्रकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] मूत्रकृच्छ्र रोग। सूजाक।

शुक्रगुजार-वि० [ भ० शुक्र + का० गुजार ] पदसान माननेवाला। धन्यवाद देनेवाला। आभारी। कृतज्ञ।

शुक्रगुजारी-संज्ञा स्त्री० [ भ० + का० ] पदसान मंत्री। किप हुए उपकार को मानना। कृतज्ञता।

शुक्रज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुत्र। वेद्य। (२) देवताओं का एक भेद। (जिन)

शुक्रद-संज्ञा पुं० [ सं० ] गेहूँ। गोधूम।

शुक्रदीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] ह्रीवत्त्व। नपुंसकता।

शुक्रपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कटहरैया। (२) सफेद अणुराजिता।

शुक्रप्रमेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] धातुहीनता। धातु का गिरना जो एक रोग है।

शुक्रभुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूर। मोर।

शुक्रभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] मन्ना।

शुक्रमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धमनेटी। भारंगी।

शुक्रमेह-संज्ञा पुं० दे० "शुक्रमेह"।

शुक्रल-वि० [ सं० ] (१) जिसमें शुक्र या धीर्य्य हो। (२) शीघ्र उतरान करनेवाला।

शुक्रला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उदंगन के वीर। उधवा। ओकड़ा। शुक्रवार-व्रजा पुं० [ सं० ] सप्ताह का छठा दिन जो बृहस्पतिवार के बाद और शनिवार के पहले पड़ता है।

शुक्रशिष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] दैत्य। अक्षुर।

शुक्रस्त्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] ध्वजमंग या नपुंसकता का एक भेद जो बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य्य पालन करने से होता है।

शुक्रांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूर। मोर।

शुक्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यंसलीघन।

शुक्राचार्य्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ऋषि जो दैत्यों के गुरु और महर्षि भृगु के पुत्र थे। इनकी कन्या का नाम देवयानी या और पुराणों का नाम पंड तथा भमक था। देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच ने इससे संजीवनी विद्या सीखी थी।

शुक्राशमरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शरमरी रोग का एक भेद। यह पथरी जो स्थूलित होते समय धीर्य्य को रोकने से उत्पन्न होती है।

शुक्रिय-वि० [ सं० ] (१) शुक्र संबंधी। शुक्र का। (२) जिसमें शुक्र रस हो।

शुक्रिया-संज्ञा पुं० [ का० ] धन्यवाद। कृतज्ञता-प्रकाश।

क्रि० प्र०—भदा करना।

शुक्र-वि० [ सं० ] सफेद। उजला। धवल। दवेत। स्वच्छ।

संज्ञा पुं० (१) ब्राह्मणों की एक पदवी। (२) शुद्ध पद।

(३) सफेद रेंद का वृक्ष। (४) भौलों का एक प्रकार का रोग जो उसके सफेद तल या डेले पर होता है। (५) ऊँद नामक पुष्प वृक्ष। (६) सफेद लोप। (७) मनीत। मन्जन। (८) चाँदी। रजत। (९) धव वृक्ष। घौ। (१०) योग। (११) विष्णु का एक नाम।

शुक्रकंड, शुक्रकंडक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मुगाबी। जक काक।

शुक्रकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भैंसाकंद। (२) चालाक। (३) अतीस।

शुक्रकंद-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सफेद शरीष। (२) बिदारी कंद।

शुक्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुद्ध पद। (२) खिरनी का वृक्ष।

शुक्रकर्कट-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद रंग का केकड़ा।

शुक्रकुष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह कोद जिसमें शरीर पर सफेद सफेद चकण पड़ जाते हैं।

शुक्रलोपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काकोली।

शुक्रलोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] पवित्र स्थान। तीर्थ स्थान।

शुक्रता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शुद्ध का भाव या धर्म। (२) सफेदी। दवेतता।

शुक्रतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जिसे विष्णुतीर्थ भी कहते हैं।

शुक्रत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुक्र का भाव या धर्म। शुद्धता।  
(२) सफेदी। श्वेतता।

शुक्रदुग्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] शियाड़ा।

शुक्रधातु-संज्ञा पुं० [ सं० ] खरिया नाम की मिट्टी।

शुक्रपक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमावास्या के उपरांत प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक का पक्ष, जिसमें चंद्रमा की कला प्रति दिन बढ़ती जाती है जिससे रात उजेली होती है। चंद्रमास में कृष्ण पक्ष से मिल दूसरा पक्ष।

शुक्रपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छत्रक वृक्ष। (२) कुंद नामक फूल का पौधा। (३) मूत्रभा। (४) सफेद ताल मखाना। (५) विद्या। (६) सैनफल।

शुक्रपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हाथीशुंठी नामक छुप। (२) शीतकुंभी। शीतकी जता। (३) कुंद।

शुक्रपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नागदंती। (२) कुंद नामक फूल का पौधा।

शुक्रपृष्ठक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मंडवी। सैमाळू। तिसुभार।

शुक्रफला-संज्ञा पुं० [ सं० ] मदार। आम।

शुक्रफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शमी। धीकुर। (२) मदार।

शुक्रफेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्रफेन।

शुक्रफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैतियों के अनुसार एक जिन देव का नाम।

शुक्रमंजरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद नितुंड़ी।

शुक्रमंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] आँखों का सफेद भाग जो पुतली से मिल होता है।

शुक्रमेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] चरक के अनुसार एक प्रकार का प्रमेह रोग।

शुक्रमायस-संज्ञा पुं० [ सं० ] बक। वगुला।

शुक्रवृक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] घो या घघ का वृक्ष।

शुक्रखाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गिरिमिष। (२) सफेद खाल का वृक्ष।

शुफलांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] खोबचीनी।

शुक्रांगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नितुंड़ी। शोफालिका।

शुक्रांगी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नितुंड़ी। शोफालिका।

शुफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सरखती। (२) शकैत। शकर। चीनी। (३) काकोली। (४) बिदारी। (५) शूकर कंद। (६) नितुंड़ी। शोफालिका।

शुक्रनाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पक्षी।

शुक्रनापांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूर पक्षी। मोर।

शुक्रनामल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पृथा या सुक्रिका नामक साग।

शुक्रनायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शुक्रनार्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद मदार।

शुक्रलार्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुक्रामंत् ] आँखों का एक प्रकार का रोग। इसमें आँखों के सफेद भाग में एक प्रकार का सफेद भरसा हो जाता है, जो धीरे धीरे बढ़ता रहता है।

शुक्रादिकेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पोस्ते का पेड़।

शुक्रोदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] छत्रित विलर के अनुसार महागान् शुक्रोदन के भाई का नाम।

शुक्रलोपला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चीनी। शकैत।

शुक्रोदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] अरवा चावल। सुनिया का उलटा।

शुक्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु। हवा। (२) तेज। (३) चित्र। तसवीर।

शुक्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शोक। दुःख। रंज। (२) दे० "शुचि"।

शुचि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि। आग। (२) चित्रक या धीता नामक वृक्ष। (३) ग्रीष्म। गरमी। (४) ज्येष्ठ मास। (५) आषाढ मास। (६) चंद्रमा। (७) शुक्र। (८) माझण। (९) भागवत के अनुसार भंडक के एक पुत्र का नाम। (१०) कार्तिकेय।

संज्ञा स्त्री० (१) पवित्रता। सफाई। स्वच्छता। शुद्धता। (२) पुराणानुसार ऋषय की पत्नी ताम्रा के गर्भ से उत्पन्न एक कन्या का नाम।

वि० (१) शुद्ध। पवित्र। (२) स्वच्छ। साफ। (३) निरपराध। निर्दोष। (४) जिसका अंतःकरण शुद्ध हो। स्वच्छ हृदयवाला।

शुचिकर्मा-वि० [ सं० ] शुचिकर्मन् ] पवित्र कार्य करनेवाला। सदाचारी। कर्मनिष्ठ। उ०—छेद शुभेष्ट नरेस्त्र छत्रधरमा सुचिहरमा। विबुधरमा कृत सुरप भैटि स्व कंचन वरमा। —गिरिधर।

शुचिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक अस्त्र का नाम।

शुचिवापुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] केवदा। केतकी।

शुचिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुचि का भाव या धर्म।

शुचिद्रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीपल। मसध वृक्ष।

शुचिप्रकी-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाषमन्।

शुचिमहिला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेवारी। मव महिलिका।

शुचिरोवि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुचिरोविन् ] चंद्रमा।

शुचिवाच-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शुचिघृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन प्रकार का ऋषि का नाम।

शुचिभ्रया-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुचिभ्रवन् ] शिष्य का एक नाम।

शुची-वि० [ सं० ] शुचिन् ] (१) शुद्ध। पवित्र। (२) स्वच्छ। साफ।

शुचीरता-संज्ञा स्त्री० पुं० [ सं० ] शीघ्र।

शुचीर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीघ्र।

शुजा-वि० [ सं० ] बहादुर। शूवीर। शिरेर।

शुक्रामन-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बहादुरी। धीरता। शरता।

शुकीर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुद्ध। शीघ्र।

शुभ्रि, शुभ्रि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रातहु नदी । सतलज ।  
शुभ्रिगाय-संज्ञा पुं० [ का० ] जिताफा नामक जंतु । वि० दे०  
"जिताफा" ।

शुभ्रिमुर्गा-संज्ञा पुं० [ प्रा० ] अमेरिका, अफ्रीका और अरब के  
रोगिस्तान में होनेवाला एक प्रकार का बहुत बड़ा पक्षी जो  
प्रायः तीन गज तक ऊँचा होता है । इसकी गरदन ऊँट की तरह  
बहुत लंबी होती है । यह उड़ तो नहीं सकता, पर रोगिस्तान  
में घोड़े से भी अधिक तेज दौड़ सकता है । यह घास और  
भनाज खाता है । कभी कभी कंकड़ पत्थर भी खा जाता है ।  
इसके पर बहुत घाम पर पिकते हैं । यह एक वार में तीस  
से कम अंडे नहीं देता ।

शुभ्रिनी-संज्ञा स्त्री० [ का० ] वह बात जिसका होना पक्षों से ही  
किसी दैवी शक्ति से निश्चित हो । भाषी । होनी । होनहार ।  
नियत ।

शुभ्रिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "शुभ्रिनी" ।

शुभ्रि-वि० [ सं० ] (१) जिसमें किसी प्रकार की मीन या खोद  
आदि न हो । पवित्र । साफ । स्वच्छ । ( इस अर्थ में इस  
शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने में शब्दों के आरंभ  
में होता है । जैसे,—शुभ्रिबुद्धि, शुभ्रिमति । ) (२) सफेद ।  
उज्ज्वल । (३) जिसमें किसी प्रकार की अशुद्धि न हो । जो  
गलत न हो । ठीक । सही । (४) दोग-रहित । निर्दोष । वेद्वे ।  
(५) जिसमें किसी तरह की मिलावट न हो । खालिस ।  
संज्ञा पुं० (१) सेंधा नामक । (२) काली मिर्च । (३) चाँदी ।  
रूपा । (४) गुंडा नाम की घास । (५) संरीत में राग के  
तीन भेदों में से एक भेद । वह राग जिसमें और किसी राग का  
मेलन हो । जैसे,—भीरव, मेघ । (६) शिव का एक नाम ।  
(७) चौदहवें मन्वन्तर के सप्तपिंजों में से एक ।

शुभ्रिजंघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] गर्म । गर्दा ।

शुभ्रिसा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शुद्ध होने का भाव या धर्म ।  
पवित्रता । (२) निर्दोषता ।

शुभ्रिरय-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुद्ध होने का भाव या धर्म । शुद्धता ।  
पवित्रता ।

शुभ्रि पक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] अभावस्था के उपरांत की प्रतिपदा से  
पूजिमा तक का पक्ष । शुक्र पक्ष ।

शुभ्रिपुरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दक्षिण भारत के एक पवित्र तीर्थ  
का नाम ।

शुभ्रिमांस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार वह पकाया हुआ  
मांस जिसके साथ में हड्डी आदि न लगी हो ।

शुभ्रिवल्लिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गिलोय । गुडुच ।

शुभ्रिता-संज्ञा पुं० [ सं० ] अंतःपुर । रनिवास । जगानखाना ।

शुभ्रितापालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अंतःपुर के द्वार पर  
पहरा देता हो । शुभ्रिवाचक ।

शुभ्रिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रानी । राज्ञी ।

शुभ्रि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इंद्रजव । कुटन बीज ।

शुभ्रिारमा-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुद्धाम्बु । शिव का एक नाम ।

शुभ्रिापहति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का अलंकार जिसमें  
प्रकृति अर्थात् उपमेय को हाथ उहराकर या उसका निषेध  
करके उपमान की सत्यता स्थापित की जाती है । अर्थात्  
उ०—शुभ्रिापहति हूँत छदि, नाँधी बात हुरादि । नीत नहीं  
ये नीन युग, छवि सागर के आदि ।—मानु ।

शुभ्रिशुद्धीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम ।

शुभ्रि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शुद्ध होने का कार्य । (२)  
सफाई । स्वच्छता । (३) वैदिक धर्म के अनुसार वह ह्य  
या संस्कार जो किसी अशुद्ध या अशुच शक्ति के शुद्ध होने  
के समय होता है । जैसे,—अशुच की समाप्ति पर शुद्ध  
होने के समय का कृम्य या किसी धर्म भ्रष्ट शक्ति के शुद्ध  
होकर पुनः अपने धर्म में आने के समय होनेवाला ह्य  
या संस्कार । (४) दुर्गा का एक नाम ।

शुभ्रिफंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] लहनुन ।

शुभ्रिपय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र जिसमें अपने के समय  
पुस्तक में रही हुई अशुद्धियाँ बतलाई गई हों । वह पत्र  
जिससे सूचित हो कि कहाँ क्या अशुद्धि है ।

शुभ्रिदोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र । सागर ।

शुभ्रिदोष संज्ञा पुं० [ सं० ] एक सुमतिद शाक्य राजा जो  
भगवान् बुद्धदेव के पिता थे और तिनकी राजधानी कपिल-  
वस्तु में थी ।

शुभ्रिशेप—इस शब्द के साथ पुत्र या उसका वाचक कोई शब्द  
लगने से "शुद्धदेव" अर्थ होता है ।

शुभ्रिोद्भि-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।

शुभ्रिोदभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक सिद्ध ऋषि जो  
महर्षि ऋचीक के पुत्र थे । ये महाराज अंबरीष के यज्ञ में  
बलि के लिये लाए गए थे । विश्वामित्र ने दयावश इनकी  
अग्नि की स्तुति बतला दी थी । अग्निदेव इनकी स्तुति से  
इतने प्रसन्न हुए थे कि जय दे यज्ञ कुंड में डाले गए, सब  
उसमें से अक्षत शरीर बाहर निकल आए । इसके उपरांत  
ये महर्षि विश्वामित्र के यहाँ उनके पुत्र तुल्य होकर रहने  
लगे । देवी भागवत आदि कुछ पुराणों में इनके संबंध में  
कई कथाएँ आई हैं ।

शुभ्रिःसख-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम जिनका  
बड़ेछ महाभारत में है ।

शुभ्रिःस्कर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शुभ्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुशा । (२) बाहु । (३) बुद्धि  
आराम ।

शुभक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुत्ता। कुकुर। श्वन। (२) महा-  
भारत के अनुसार एक योद्धा-मवर्तक ऋषि का नाम।

शुभकचक्र-संज्ञा सं० [ सं० ] चक्र नाम का साग।

शुभकचिह्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बधुभा।

शुभकहोत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२)  
भारत का ऋषि के पुत्र का नाम जो क्रष्येद के कई मंत्रों के  
ग्रहण हैं।

शुभामुनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिमालय के उत्तर ओर के एक प्रदेश  
का प्राचीन नाम। अनुमान है कि यह नेपाल के उत्तर का  
प्रदेश है।

शुभाशीर, शुभालीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र। (२) वायु  
और सूर्य। (३) इंद्र और वायु।

शुभासीरी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुभासीरिय। इंद्र।

शुभासीरीय-वि० [ सं० ] (१) इंद्र संबंधी। इंद्र का। (२)  
वायु देवता के संबंध का। (३) सूर्य देवता के संबंध का।

शुभि-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० ] शुभो। कुत्ता।

शुभोत्तम-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवी भागवत के अनुसार नानाशेक  
के छोटे भाई का नाम।

शुभहा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संदेश। शक। (२) घोड़ा।  
बहम। भ्रम।

शुभं प्र०—करना।—निकाटना।—मिटवाना।—मिटाना।—  
होना।

शुभंकर-वि० [ सं० ] शुभ या मंगल करनेवाला। मंगल-कारक।  
शुभकारी।

शुभंकारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कल्याण करनेवाली, पार्वती।  
(२) शमी वृक्ष।

शुभ-वि० [ सं० ] (१) अच्छा। मला। उत्तम। जैते,—शुभ  
शकुन, शुभ समाचार, शुभ कार्य। (२) कल्याणकारी।  
मंगलप्रद।

शुभा पुं० (१) मंगल। कल्याण। मलाहं। (२) विष्कंभादि  
संज्ञास्य योगों के अंतर्गत एक योग। फलित ज्योतिष के  
अनुसार जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह सय  
योगों का कल्याण करनेवाला, अच्छे कर्म करनेवाला, पंडितों  
का सख्त करानेवाला और बुद्धिमान होता है। (३)  
पटुमात्र। पटुमकाठ। (४) चाँदी। (५) बकरा।

शुभकर-वि० [ सं० ] शुभ या मंगल करनेवाला।

शुभकरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पार्वती।

शुभकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंहल द्वीप या सैंका का एक प्रसिद्ध  
पर्वत जिस पर चरणचिह्न बने हुए हैं। इसकाई इन्हें हज्रत  
आमन के चरणचिह्न और बौद्ध महात्मा बुद्ध के चरण-  
चिह्न मानते हैं।

शुभकृष्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्ध देवताओं का एक योर्ग।

शुभगंधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] दोल नामक गंधद्रव्य। गंधवाला।

शुभग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष के अनुसार वृहस्पति  
और शुक्र ये दोनों ग्रह जो सौम्य और शुभ माने जाते हैं।  
इनके अतिरिक्त बुध ग्रह भी, यदि पापयुक्त न हो तो, शुभ  
माना जाता है।

शुभचित्तक-वि० [ सं० ] शुभ या मला चाहनेवाला। मलाई की  
इच्छा रखनेवाला। कल्याण चाहनेवाला। हितैषी। सैर-  
स्वाहा।

शुभदंता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार पुष्पदंत नामक हाथी  
की हथनी का नाम।

शुभद-संज्ञा पुं० [ सं० ] अक्षय वृक्ष। पीपल का पेड़।

वि० शुभप्रद। शुभदायक।

शुभदर्शन-वि० [ सं० ] (१) जिसका मुँह देखने से कोई शुभ  
या मंगल बात हो। (२) सुंदर। सुंदरत।

शुभदायी-वि० [ सं० ] शुभदायिन्। शुभ या मंगल  
करनेवाला।  
शुभप्रद। शुभद।

शुभनामा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किसी मास के शुक्र पक्ष की  
पंचमी, दशमी या पूर्णिमा तिथि।

शुभप्रतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सतिगन। शालपर्णी।

शुभप्रद-वि० [ सं० ] शुभ या मंगल करनेवाला। शुभद।  
मंगलकारी।

शुभप्रका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

शुभप्रसन्नगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम।

शुभप्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का प्रत जो कार्तिक शुक्ल  
पंचमी को किया जाता है।

शुभशैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] तंत्र के अनुसार एक कल्पित पर्वत  
का नाम।

शुभसूचनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक देवी का नाम जिनकी पूजा  
का संकल्प किसी शुभ काम के होने की भांशा से किया  
जाता है, और वह शुभ काम हो जाने पर जिनकी पूजा की  
जाती है। इनकी पूजा प्रायः खियाँ ही करती हैं।

शुभस्यली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मंगल भूमि। पवित्र स्थान।  
(२) पक्ष भूमि।

शुभस्वधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शुभांगी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कुंवर की पत्नी का नाम। (२)  
कामदेव की पत्नी, रति। (३) महाभारत के अनुसार रामा  
कुंद की पत्नी का नाम।

शुभांजन-संज्ञा पुं० दे० "शोभांजन"।

शुभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शोभा। कान्ति। (२) इच्छा।  
(३) चंद्रलोचन। (४) गोरोचन। (५) सफेद कीकर।  
(६) मिश्रगु। पवित्रता। (७) सफेद ह्व। (८) बकरी।  
(९) भारोद। (१०) सुरहन की पत्नी। (११) शोभा।

(१२) सफेद बच । (१३) अश्वत्थ । (१४) पार्वती की एक सखी का नाम । (१५) देवताओं की सभा । (१६) पुराणानुसार एक नदी का नाम ।  
 शुभाकिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुद्ध भौवला ।  
 शुभाचल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक कल्पित पर्वत का नाम ।  
 शुभाचारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार पार्वती की एक सखी का नाम ।  
 शुभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अश्वत्थ । (२) सारंग नामक । (३) चाँदी । रूपा । (४) दत्तीस । (५) पद्माल । (६) खस । उशीर । (७) चरथी । (८) रूपामक्ली । (९) सेंधा नामक । (१०) बंसलोचन । (११) फिटिकरी । (१२) चीनी । (१३) सफेद विधारा ।  
 शुभ्रतरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिरिस का वृक्ष ।  
 शुभ्रता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुभ्र का भाव या धर्म । सफेदी । श्वेतता ।  
 शुभ्रदंती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार शुभ्रदंत नामक दिग्गज की हथनी का नाम ।  
 शुभ्रपर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद पान ।  
 शुभ्रपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] खस । उशीर ।  
 शुभ्रमानु-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 शुभ्ररश्मि-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 शुभ्रवेष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] गालगली । सेमल ।  
 शुभ्राशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।  
 शुभ्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बंसलोचन । (२) फिटिकरी ।  
 शुभ्रालु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भैंसाकंद । (२) शंखालु ।  
 शुभ्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रज्ञा ।  
 शुभ्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शहद से तैयार की हुई चीनी । मधुराकरा ।  
 शुभ्रवा-संज्ञा पुं० दे० "शोरवा" ।  
 शुक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी कार्य की प्रथमावस्था का संपादन । आरंभ । प्रारंभ । जैसे,—अब तुम यह काम जल्दी शुरू कर डालो । (२) वह स्थान जहाँ से किसी वस्तु का आरंभ हो । उत्थान । जैसे,—शुक्र से आखिर तक ।  
 शुक्ल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह महसूल जो घाटों और रास्तों आदि पर राज्य की ओर से घसूल किया जाता है । (२) वह धन जो कन्या का विवाह करने के बदले में उसका पिता घर के पिता से लेता है ।  
 विशेप—शास्त्र में इस प्रकार धन या शुल्क लेने का बहुत अधिक निषेध किया गया है ।  
 (३) विवाह के समय दिया जानेवाला दहेज । दायजा ।  
 (४) राजी । शर्त । (५) किराया । भाड़ा । (६) मूल्य ।

दाम । (७) वह धन जो किसी कार्य के बदले में दिया या दिया जाय । फीस । जैसे,—पैसे शुल्क ।  
 शुक्लता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुक्ल का भाव या धर्म ।  
 शुक्लशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह स्थान जहाँ पर घाट या मार्ग आदि का महसूल चुकाया जाता है । (२) वह स्थान जहाँ किसी प्रकार का शुल्क चुकाया जाता है । महसूल भरा करने की जगह ।  
 शुक्लस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ जाने जानेवाले को शुल्क देना पड़ता है ।  
 शुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रस्सी । (२) तर्बा ।  
 शुल्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तर्बा । (२) रज्जु । रस्सी । (३) यज्ञकर्म । (४) भाचार ।  
 शुल्वारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधक ।  
 शुभ्र-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बालक की सेवा शुभ्रप्य करनेवाली, माता । माँ । जननी ।  
 शुभ्रपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शुभ्रप्य करता हो । सेवा करनेवाला । तिरमत्त करनेवाला । जैसे,—किय, दाद, भचीनस्य कर्मचारी आदि ।  
 शुभ्रप्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुभ्रप्य करने का कार्य । सेवा करना । तिरमत्त-गुजारी ।  
 शुभ्रप्य-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] [ वि० शुभ्रप्य ] (१) सेवा । दह । परिचर्या । (२) सुधामद । (३) कथन । (४) किसी से कुछ सुनने की इच्छा ।  
 शुधिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जौंग । (२) भूमि । (३) सूसा । चूहा । (४) थिल । गहूँ । विषर । (५) आकान्त । (६) वह यात्रा जो मुँह से फूँकर बजाया जाता हो । जैसे,—बंशी, अलमोजा, राहनाई आदि ।  
 शुधिरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नदी । दरिया । (२) पत्नी । (३) नलिका या नली नाम का गंध द्रव्य ।  
 शुधेय-संज्ञा पुं० दे० "सुधेय" ।  
 शुष्क-वि० [ सं० ] (१) जिसमें किसी प्रकार की नमी या गीलापन न रह गया हो । जो किसी प्रकार सुखा किया गया हो । आर्द्रता-रहित । सुखा । सुदृक । जैसे,—शुष्क काष्ठ । (२) जिसमें जल या और किसी तरल पदार्थ का व्यवहार न किया गया हो । (३) जिसमें, रस का अभाव हो । नीरस । रसहीन । (४) जिससे मनोरंजन न होता हो । जिसमें मन न लगता हो । जैसे,—शुष्क विषय । (५) जिसका कुछ परिणाम न निकलता हो । निरर्थक । व्यर्थ । जैसे,—शुष्क वाद-विवाद । (६) जिसमें सीधाई आदि कोमल मनोवृत्तियाँ न हों । रूनेह आदि से रहित । निर्मोही । (७) जो बिलकुल पुराना और बेकाम हो गया हो । जीर्ण शीर्ण ।

छंदा पुं० काळा भगर ।

शुक्रलेख-छंदा पुं० [ सं० ] वितस्ता नदी के किनारे के एक पर्वत का नाम ।

शुक्रगर्भ-छंदा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार छियों का एक रोग - जिसमें वायु के प्रकोप से छियों का गर्भ सूख जाता है ।

शुक्रता-छंदा स्त्री० [ सं० ] शुष्क होने का भाव या गर्भ में सूखापन ।

शुक्ररेवती-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) पुराणानुसार एक मातृका का नाम । (२) एक प्रकार का बालग्रह जिसके प्रकोप से बालकों के भंग सूखने या क्षीण होने लगते हैं ।

शुक्रल-छंदा पुं० [ सं० ] (१) मांस । गोस्त । (२) यह जो मांस खाता हो । मांसमन्त्री ।

शुक्रलो-छंदा स्त्री० [ सं० ] मांस । गोस्त ।

शुक्रवृक्ष-छंदा पुं० [ सं० ] घव का वृक्ष । घी ।

शुक्रमन्थ-छंदा पुं० [ सं० ] छियों का योनिकंद नामक रोग । वि० दे० "योनिकंद" ।

शुक्रांग-छंदा पुं० [ सं० ] घव का वृक्ष । घी ।

शुक्रांगो-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) झूठ जाति का एक प्रकार का पत्ती । (२) गोहृ । गोषिका ।

शुक्रा-छंदा स्त्री० [ सं० ] छियों का योनिकंद नामक रोग ।

शुक्राक्षिपाक-छंदा पुं० [ सं० ] आँलों का एक प्रकार का रोग । इसमें आँलों की पलकों के कठोर और रूखी हो जाती हैं और उनके कोठने बंद करने में पीड़ा होती है; आँलों में जलन होती है और साफ़ देख नहीं पड़ता ।

शुक्रार्द्र-छंदा पुं० [ सं० ] सूखा अक्षरक । सोंठ ।

शुक्राश-छंदा पुं० [ सं० शुक्रार्श ] आँलों का एक प्रकार का रोग जिसमें आँल की पलकों के भीतर खाखरी और कठिन कुंसियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ।

शुक्राशुष्क-छंदा पुं० [ सं० ] समुद्रकेने ।

शुष्प-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य । (२) अग्नि । (३) बल । शक्ति । ताकत ।

शुष्म-छंदा पुं० [ सं० ] (१) तेज । पराक्रम । (२) अग्नि । (३) सूर्य । (४) वायु । (५) पत्नी । चिदिया ।

शुष्मा-छंदा पुं० [ सं० शुष्मन् ] (१) अग्नि । (२) पीता । चित्रक । (३) तेज । पराक्रम ।

शुष्कल-छंदा पुं० [ सं० ] मसोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसके हीर की लकड़ी मजबूत, कड़ी और टाढी छिप होती है और अग्नेय दामों पर बिहरी है । यह हमारलों और पुलों के बनाने के काम में आती है । इसकी छाल बहुत पतली होती है और उठारने से शरीक कागस के धारकों की तरह उठारती है । बंगाल के सुंदर मन में यह पेड़ बहुत होता है ।

शुक्र-छंदा पुं० [ सं० ] (१) अक्ष की बाल या सींका जिसमें दाने लगते हैं । (२) घव । जौ । (३) एक प्रकार का कीड़ा । (४) एक प्रकार का वृक्ष जिसे शुक्रकी कहते हैं और जो दुर्बल पशुओं के लिये बहुत बलकारक माना जाता है । (५) एक प्रकार का रोग जो लिंग-वर्द्धक औषधों के सेप के कारण होता है । इसमें लिंग पर कई प्रकार की कुंसियाँ और; वायु आदि हो जाते हैं । यह रोग १० प्रकार का माना गया है । यथा—सर्पिका, शरीरिका, मथित, कुम्भिका, अलजी, मृदित, सम्मूर्धपीडका, अथिमंथ, पुष्करिका, स्पश-हानि, उचमा, शतपोनका, त्वक्पाक, कोणियायुंद, मांसा-युंद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ।

शुक्र-छंदा पुं० [ सं० ] शरीर का रस नामक वात ।

शुक्रकीट-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रोपेदार कीड़ा ।

शुक्रज-छंदा पुं० [ सं० ] जवाखार । यवखार ।

शुक्रतुण-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की घास जो दुर्बल पशुओं के लिये बहुत बलकारक मानी जाती है । इसे शुक्रकी पा चोरहूछी भी कहते हैं ।

शुक्रदोष-छंदा पुं० [ सं० ] शुक्र नामक रोग । वि० दे० "शुक्र" (५) ।

शुक्रघान्य-छंदा पुं० [ सं० ] वह अन्न जिसके दाने यालों या सींकों में लगते हैं । जैसे,—नेहूँ, जौ आदि ।

शुक्रपत्र-छंदा पुं० [ सं० ] वह सर्प जिसमें विप न होता हो । जैसे,—पानी का सर्प या देहहा ।

शुक्रपाक्ष्य-छंदा पुं० [ सं० ] जवाखार । शुक्रज ।

शुक्रपिंडि, शुक्रपिंडी-छंदा स्त्री० [ सं० ] कपिकण्डु । बिंबाळ । कौंठ ।

शुक्र-छंदा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शुक्री ] (१) सुन्दर । वाराह । उ०—मजन विनु कृकर शुक्र जैसो ।—सूर । (२) विष्णु का सीसारा भवतार । वाराह भवतार । वि० दे० "वाराह" ।

शुक्रकंद-छंदा पुं० [ सं० ] बाराही कंद ।

शुक्रक्षेत्र-छंदा पुं० [ सं० ] एक तीर्थ जो वैमिपायाय के पास है । कहते हैं कि भगवान् विष्णु ने वाराह भवतार धारण करने पर हिरण्यकेशी को यहीं मारा था । आज कल यह स्थान सोरो नाम से प्रसिद्ध है । उ०—मै पुनि निज गुरु खन सुनी कथा सु सुकरखेत । समुद्री नदि तस बाळवन तव अति रहेई अचेत ।—गुलसी ।

शुक्रदंष्ट्र-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का छुद्र रोग जिसे सूअर-दाँव कहते हैं । यह रोग प्रायः बालकों को होता है । इसमें दाँह सहिल सूजन हो जाती है, जो पकती, पीड़ा करती और शुजलती है; और इसके विचार से ज्वर उत्पन्न होता है ।

शुक्रपादिका-छंदा स्त्री० [ सं० ] कोर्तिसिमी । सेम की फली ।



शूरत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर होने का भाव या धर्म । शूरता । चीरता । बहादुरी ।

शूरदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनियों के अनुसार भविष्य में होनेवाले चौबीस अर्हतों में से एक अर्हत का नाम ।

शूरन-संज्ञा पुं० दे० "सुरन" ।

शूरपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अद्रिति का एक नाम ।

शूरपत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक देवपुत्र का नाम ।

शूरभू-संज्ञा स्त्री० दे० "शूरभूमि" ।

शूरभूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भागवत के अनुसार उग्रसेन की एक कन्या का नाम । लिखा है कि वसुदेव के छोटे भाई श्यामक ने इसके साथ विवाह किया था, और उनके वीर्य से इसके गर्भ से हरिकेश और हिरण्यकेश नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ।

शूरमानी-संज्ञा पुं० [ सं० शूरमानिन् ] वह जिसे अपनी शूरता का बहुत अभिमान हो । अपनी बहादुरी पर बहुत भरोसा रखनेवाला ।

शूरवाणेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।

शूरविद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] युद्ध आदि करने की विद्या ।

शूरवीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अच्छा वीर और योद्धा हो । सरमा ।

शूरवीरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शौर्य । बहादुरी ।

शूरश्लोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीरों के वीरतापूर्ण कृत्यों की कहानी । वीरगाथा ।

शूरसेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मथुरा के एक प्रसिद्ध राजा जो कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता थे । (२) मथुरा और उसके आस पास के प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ राजा शूरसेन का राज्य था ।

शूरसेनप-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर वीरों की सेना का पालन करनेवाले, कानिबेय ।

शूरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्त्रीकाकोठी नामक अष्ट वर्गीय भोपधि । स्त्री संज्ञा पुं० [ सं० शूर ] समंत । वीर । उ०—पंडित नुफा में सब जग देखे, बाहर कट्टे न सूते । उलटा बान पारथिव जाने, शूरा होय सो द्यूते ।—कबीर ।

संज्ञा पुं० [ सं० सूयं ] सूर्य । उ०—जहाँ चंद्र न शूरा, तारा नहीं जहाँ मोरनिया ।—कबीर ।

शूरिमुंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाराह आदि जंगली पशु ।

शूर्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गेहूँ, चावल आदि अन्न पछोड़ने के लिये घना-ढुंघा बॉस या सीक का पात्र । सूप । (२) एक प्राचीन तौल जो २०४८ तोले या ३२ सेर की होती थी ।

शूर्पक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अक्षर जो किसी किसी के मत से कामदेव का दाय और किसी किसी के मत से उसका पुत्र था ।

शूर्पकर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथी, जिसके कान सूप के समान होते हैं । (२) गणेश । (३) एक प्राचीन देश का नाम । (४) इस देश का निवासी । (५) युगानुसार एक पर्वत का नाम ।

शूर्पकाराति-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर्पक नामक राक्षस का दाय, कामदेव ।

शूर्पकारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर्पक नामक राक्षस का दाय, कामदेव ।

शूर्पणखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की पहिन थी । कहते हैं कि इसके नल सूप के समान थे । राम के बनवास के समय काम से पीड़ित होकर यह राम के पास उनके साथ विवाह करने की इच्छा से गई थी । यहाँ राम के द्वारा से लक्ष्मण ने इसकी नाक और कान काट लिए थे । इसी का बदला लेने के लिये रावण सीता को हर ले गया था ।

शूर्पण्खी-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा" ।

शूर्पणाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम ।

शूर्पणखा-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा" ।

शूर्पण्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बन मूर्गा । बन उर्द ।

शूर्पण्णुति-संज्ञा पुं० [ सं० ] हस्ती । हाथी ।

शूर्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ? ] यचाँ के खेलने का एक प्रकार का खिलौना ।

शूर्पादि-संज्ञा पुं० [ सं० ] दक्षिणी भारत के एक पर्वत का नाम । इसे कुछ लोग सूर्यादि भी कहते हैं ।

शूर्पारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंबई प्रांत के थाना जिले के सोपारा नाम स्थान का प्राचीन नाम ।

शूर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शूर्मि ] (१) लोहे की बनी हुई सूँसि । (२) निहाई ।

शूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जो प्रायः बरछे के आकार का होता था । (२) सूखी जिससे प्राचीन काल में खोंगों को प्राण-वैद्य दिया जाता था । (३) दे० "मिश्रूल" । (४) कोई यज्ञ, लंबा और नुकीला काँटा । (५) घायु के प्रक्षोभ से होनेवाला एक प्रकार का बहुत तेज दर्द । यह दर्द प्रायः पेट, पसली, कलेजे या पेटू आदि में होता है । वैद्यक के अनुसार बहुत अधिक म्यायाम या मैथुन करने, घोड़े पर चढ़ने, रात के समय जागने, बहुत अधिक ठंडा जल पीने, रूखे वृक्षों का सेवन करने, सूखा मांस खाने, विरह भोजन करने, शारीरिक वेगों को रोकने, बहुत अधिक शोक या उपवास करने अथवा बहुत अधिक हँसने के कारण घायु का प्रभाव होता है जिससे पेट में या उसके आस पास बहुत तीव्र पीड़ा होती है । इस पीड़ा में ऐसा अनुभव होता है कि कोई अक्षर

से बहुत नुकीला कौटा या शूल गन्दा, रहा है; इसी से इसे शूल कहते हैं। यह रोग भात प्रकार का—वातज, पित्तज, कफज, सखिपातज, आमज, वातजैमिक, पित्तजैमिक और वातपैमिक—कहा गया है; और इसे सात करने के लिये खेद, भयंज, मर्दन और स्निग्ध तथा उष्ण द्रव्यों के सेवन का विधान है। (१) किसी नुकीली वस्तु के चुभने के समान होनेवाली पीड़ा। कौष। टीस। (७) पीड़ा। छेना। दुःख। दर्द। उ०—(क) तुम छत्रिमन निज पुरदि सिधारो। विष्ट्रम मेठ देहु लघु बंधु नियत न जैई शूल गृह्यो।—सूर। (ख) मन तोसों कोटिक पार कही। समुस न चरण गहत गोविंद के उर भय शूल सही।—सूर। (४) योतिप में विष्कम भादि सचाइस योगों के अंत त नवों योग। कहते हैं कि जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह बरपोक, दरिद्र, मूर्ख, विद्याहीन, शूल रोगी, दूसरों का अनिष्ट करनेवाला और अपने संयु धीयव को शूल के समान खटकनेवाला होता है। इस योग में किसी प्रकार का शुभ काम करने का निषेध है। (९) छद्। सखाल। सीख। उ०—खाने को बहूया शूल पर सुना हुआ भांस मिलता है, सो भी कुसमय।—छद्मण-विह। (१०) शूलु। मोन। (११) संदा। पताका। (१२) पोस्ते की पत्तियों की वह छद् जो बक्रीम की चबो जमाने के समय उसके चारों ओर और ऊपर नीचे लगाई जाती है। (बंगाल)

वि० कटि की तरह नोकवाला। नुकीला।

शूलक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) पुराणानुसार एक ऋषि का नाम।  
(२) दुष्ट या पानी घोड़ा।

शूलकार-छंदा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक नीच जाति का नाम।

शूलगजकेसरी रस-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वैद्यक में एक प्रकार का रस जो शुद्ध गंधक, पारे, कंटकेशी, तीक्ष्ण के पत्र आदि के योग से तैयार किया जाता है और शूल रोग के लिये गुणकारी माना जाता है। (२) वैद्यक में एक प्रकार की घटी या गोली। इसके लिये कौड़ियों की राख, शुद्ध सिंगी सुहरा, सेंधा नमक, काळी मिर्च, पिप्पली इन सब का चूर्ण कर पान के रस में एक रत्ती के बराबर गोळियाँ बनाई जाती हैं। ये गोळियाँ शूल का नाश करती हैं।

शूलगव-छंदा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।

शूलगिरि-छंदा पुं० [ सं० ] मद्रास प्रांत के एक पर्वत का नाम।

शूलम्रधि-छंदा स्त्री० [ सं० ] माला रूप।

शूलग्रह-छंदा पुं० [ सं० ] हाथ में त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव।

शूलप्रती-छंदा पुं० [ सं० शूलप्रतिन ] शिव। महादेव।

शूलघातन-छंदा पुं० [ सं० ] मंहार। लौहकिट्ट।

शूलघ्न-छंदा पुं० [ सं० ] तुंडुव वृक्ष।

शूलघ्नी-छंदा स्त्री० [ सं० ] सजी मिट्टी। सन्निवार।

शूलदावानल रस-छंदा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो दो तरह से बनता है—(१) शुद्ध पारा, शुद्ध सिंगी सुहरा, काळी मिर्च, पिप्पली, सोंठ, भूनी हींग, पाँचो नमक, हमली का खार, जंजीरी का खार, शंख-भस्म और नीचू के रस के योग से बनता है और शूल रोग को तत्काल दूर करता है। (२) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, सिंगी-सुहरा, पिप्पली, भूनी हींग, पाँचो नमक, हमली के खार और नीचू के रस में इसे हुए शंख की राख तथा नीचू के रस से बनता है और शूल, अजीर्ण, उदर रोग और मंदाग्नि को दूर करता है।

शूलद्वि-छंदा पुं० [ सं० ] हींग। हिंदु।

शूलधम्या-छंदा पुं० [ सं० शूलधमन ] शिव। महादेव।

शूलधर-छंदा पुं० [ सं० ] शिव। शंकर। उ०—गंगाधर हर शूलधर, सखिधर शंकर नाम। सर्वेश्वर भव शंभु शिव, रुद्र कामरिपु नाम।—चंद्र।

शूलधरा-छंदा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा।

शूलधारिणी-छंदा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा। शूलधरा।

शूलधारी-छंदा पुं० [ सं० शूलधारिन ] त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव। उ०—संध्यावलि पूजन जब होइ शूलधारी को, तुंडुमी की ठौर दीजो गरज सुनाइ कै।—छद्मणसिंह।

शूलनाल-क्रि० प्र० [ हिं० शूल + ना (वप०) ] (१) शूल के समान गन्दा। (२) दुःख देना। पीड़ा देना। कष्ट देना। उ०—(क) सो सुधि यदुनंदन नहि मूलत। सुमिरि सुमिरि भजहुँ हर शूलत।—सबल। (ख) लै लै शिव को नाम ठाँव हमरो नहि छोड़े। कठिन गृह्योरो बोल जाह हिरदै में शूल।—गिरधर।

शूलनाशन-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सौवर्चल लवण। (२) हींग। (३) शुद्ध शूल। (४) वैद्यक में शंख भस्म, कर्जमूल, भूनी हींग, सोंठ, काळी मिर्च, पीपल और सेंधा नमक के योग से बनाया हुआ एक प्रकार का चूर्ण जिसका व्यवहार प्रायः शूल रोग में किया जाता है।

शूलनाशिनी घटी-छंदा स्त्री० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार की घटी या गोली। इसके लिये हृद्द का टिक्का, सोंठ, काळी मिर्च, पीपल, शुद्ध कृष्णला, शुद्ध गंधक, भूनी गंधक, भूनी हींग, सेंधा नमक जल से खरल करके चने के बराबर

शूरत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर होने का भाव या धर्म। शूरता। शौरता। बहादुरी।

शूरदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनियों के अनुसार भविष्य में होनेवाले चौबीस अर्हंतों में से एक अर्हंत का नाम।

शूरन-संज्ञा पुं० दे० "सूरन"।

शूरपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अदिति का एक नाम।

शूरबल-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

शूरभू-संज्ञा स्त्री० दे० "शूरभूमि"।

शूरभूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भागवत के अनुसार रामसेन की एक कन्या का नाम। लिखा है कि वसुदेव के छोटे भाई दयामक ने इसके साथ विवाह किया था, और उनके बीच से इसके गर्भ से हरिकेश और हिरण्यक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

शूरमानी-संज्ञा पुं० [ सं० शूरमानिन् ] वह जिसे अपनी शूरता का बहुत अभिमान हो। अपनी बहादुरी पर बहुत भरोसा रखनेवाला।

शूरवाणेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम।

शूरविद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] युद्ध आदि करने की विद्या।

शूरवीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो अच्छा वीर और योद्धा हो। सरमा।

शूरवीरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शौर्य। बहादुरी।

शूरदलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीरों के वीरतापूर्ण कृत्यों की कहानी। वीरगाथा।

शूरसेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मथुरा के एक प्रसिद्ध राजा जो कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता थे। (२) मथुरा और उसके आस पास के प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ राजा शूरसेन का राज्य था।

शूरसेनप-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर वीरों की सेना का पालन करनेवाले, कान्तिदेव।

शूरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्षीरकाकोली नामक अष्ट वर्षीय भोग्यि। स्त्री संज्ञा पुं० [ सं० शूर ] सामंत। वीर। उ०—पति गुफा में सब जग देखै, पाइर कछु न सूरी। उलटा बान पारयिव लागे, दूरा होय सो दूरी।—कवीर।

संज्ञा पुं० [ सं० सूर्य ] सूर्य। उ०—जहाँ चंद्र न दूरा, तारा नहि जहाँ मोरनिषा।—कवीर।

शूरभृंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] धाराह आदि जंगली पशु।

शूर्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गेहूँ, चावल आदि अन्न पछोड़ने के लिये बना हुआ घँस या सीक का पात्र। सूप। (२) एक प्राचीन तौल जो २०४८ तोके या ३२ सेर की होती थी।

शूर्पक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक असुर जो किसी किसी के मत से कामदेव का शत्रु और किसी किसी के मत से उसका पुत्र था।

शूर्पक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथी, जिसके कान सूप के समान होते हैं। (२) गणेश। (३) एक प्राचीन देव का नाम। (४) इस देश का निवासी। (५) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शूर्पकाराति-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर्पक नामक राक्षस का शत्रु, कामदेव।

शूर्पकारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर्पक नामक राक्षस का शत्रु, कामदेव।

शूर्पणखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहिन थी। कहते हैं कि इसके नख सूप के समान थे। राम के बनवास के समय काम से पीड़ित होकर यह राम के पास उनके साथ विवाह करने की इच्छा से गई थी। वहाँ राम के द्वारा से छद्मण ने इसकी नाक और कान काट लिए थे। इसी का बदला लेने के लिये रावण सीता को हर ले गया था।

शूर्पणखी-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

शूर्पण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

शूर्पणखा-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

शूर्पण्यी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यन भूंग। बन उदं।

शूर्पश्रुति-संज्ञा पुं० [ सं० ] हस्ती। हाथी।

शूर्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ? ] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खिलौना।

शूर्पाद्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] दक्षिणी भारत के एक पर्वत का नाम। इसे कुछ लोग सूर्याद्रि भी कहते हैं।

शूर्पारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंबई प्रांत के थाना जिले के सोपारा नाम स्थान का प्राचीन नाम।

शूर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री शूर्मि ] (१) लोहे की बनी हुई सुरति। (२) निहाई।

शूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का अन्न जो प्रायः बरले के आकार का होता था। (२) सूली जिससे प्राचीन काल में लोगों को प्राण-दंड दिया जाता था। (३) दे० "प्रिशूल"। (४) कोई बड़ा, लंबा और लुकीला कौटा। (५) बाघ के प्रक्षीप से होनेवाला एक प्रकार का बहुत तेज दर्द। यह दर्द प्रायः पैर, पसंठी, कलेजे या पैरु आदि में होता है। वैद्यक के अनुसार बहुत अधिक व्यायाम या मैथुन करने, घोड़े पर चढ़ने, रात के समय जागने, बहुत अधिक ठंडा जल पीने, रूले प्रयोगों का सेवन करने, सूखा मांस खाने, विरुद्ध भोजन करने, धार्मिक लोगों को रोकने, बहुत अधिक शोक या उपवास करने अथवा बहुत अधिक हँसने के कारण बाघ का प्रक्षीप होता है जिससे पैर में या उसके आस पास बहुत तीव्र पीड़ा होती है। इस पीड़ा में ऐसा अनुभव होता है कि कोई अंधर

से बहुत चुकीला कौटा या शूल गदा, रहां है; इसी-से इसे शूल कहते हैं। यह रोग आठ प्रकार का—वातज, पित्तज, कफज, सस्त्रिवातज, आमज, वातवर्लेमिक; पित्तवर्लेमिक और वातपित्तक—रूढ़ा गया है; और इसे शांत करने के लिये श्वेत, अश्वयं, मर्दान और सिन्धु तथा उष्ण द्रव्यों के सेवन का विधान है। (६) किसी चुकीली वस्त्र के चुमने के समान होनेवाली पीड़ा। कौंच। टीस। (७) पीड़ा। छेवा। दुःख। दर्द। ४०—(क) तुम लड्डिमन निज पुरहि सिचारे। विद्युत मेट देहु लघु संघु जियत न कैई शूल गुह्यारो।—सूर। (ख) मन तोसो कौटिक चार कही। समुस न चाग गहत गोविंद के उर अथ शूल सहो।—सूर। (८) ज्योतिष में विषमं आदि सप्ताहस, योगों के अंत 'त नवा' योग। कहते हैं कि जो शूलक इस योग में जन्म लेता है, वह बरपोक, दरिद्र, मूर्ख, विद्याहीन, शूल रोगी, दूसरों का अनिष्ट करनेवाला और अपने संबंधियों को शूल के समान खटकनेवाला होता है। इस योग में किसी प्रकार का श्रम काम करने का निषेध है। (९) छद्। सलाल। सींछ। ४०—छाने को बहुधा शूल पर सुना हुआ नास, मिळता है, सो भी कुसमय—लक्ष्मण-सिंह। (१०) शूलु। नीत। (११) शूला। पताका। (१२) पोस्ते की पत्तियों की वह तह जो अफकी की पत्ती जमाने के समय उसके चारों ओर और ऊपर नीचे छाई जाती है। (संगाल)

वि० कटि की तरह नोकवाला। चुकीला।

शूलक—छंदा पुं० [ सं० ] (१) पुराणानुसार एक ऋषि का नाम। (२) दुष्ट या पापी घोड़ा।

शूलकार—छंदा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक, नीच जाति का नाम।

शूलगजकेसरी रस—छंदा पुं० [ सं० ] (१) वैद्यक में एक प्रकार का रस जो शुद्ध गंधक, पारे, कंठकेशी, लौह के पत्र आदि के योग से तैयार किया जाता है और शूल रोग के लिये गुणकारी माना जाता है। (२) वैद्यक में एक प्रकार की घटी या गोली। इसके लिये कौटिल्यों की राख, शुद्ध सिंगी सुहरा, सेंधा नमक, काळी मिर्च, पिप्पली इन सब का चूर्ण कर पान के रस में एक रशी के बराबर गोळियाँ बनाई जाती हैं। ये गोळियाँ शूल का नाश करती हैं।

शूलगध—छंदा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।

शूलगिरि—छंदा पुं० [ सं० ] मद्रास प्रांत के एक पर्वत का नाम।

शूलमंथि—छंदा स्त्री० [ सं० ] माला मूष।

शूलग्रह—छंदा पुं० [ सं० ] द्वाप में त्रिंशत् धारण करनेवाले, शिव।

शूलग्राही—छंदा पुं० [ सं० शूलग्राहि ] शिव। महादेव।

शूलघानन—छंदा पुं० [ सं० ] मंहूर। लौहकिट्ट।

शूलम—छंदा पुं० [ सं० ] तुंबुल वृक्ष।

शूलम्री—छंदा स्त्री० [ सं० ] समी मिट्टी। सर्जिलार।

शूलदावानल रस—छंदा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो दो तरह से बनता है—(१) शुद्ध पारा, शुद्ध सिंगी सुहरा, काळी मिर्च, पिप्पली, सोंठ, भूमी होंग, पाँचो नमक, हमली का सार, जंजीरी का सार, शंख-अस और नीचू के रस के योग से बनता है और शूल रोग को तत्काल दूर करता है। (२) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, सिंगी-सुहरा, पिप्पली, भूमी होंग, पाँचो नमक, इनकी के सार और नीचू के रस में उसे हुए शंख की राख तथा नीचू के रस से बनता है और शूल, अजीर्ण, उदर रोग और मंदाग्नि को दूर करता है।

शूलदि—छंदा पुं० [ सं० ] होंग। हिणु।

शूलधन्वा—छंदा पुं० [ सं० शूलधन्व ] शिव। महादेव।

शूलधर—छंदा पुं० [ सं० ] शिव। शंकर। ४०—गंगाधर हर शूलधर, सखिधर शंकर धाम। सर्वेश्वर भव शंसु शिव, रत्न कामरिपु नाम।—नंद।

शूलधर—छंदा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा।

शूलधारिणी—छंदा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा। शूलधर।

शूलधारी—छंदा पुं० [ सं० शूलधारिण ] त्रिंशत् धारण करनेवाले, शिव। महादेव। ४०—संस्कारके पूजन अब होइ शूलधारी को, दुंदुभी की ठौर बीमो गरज सुनाइ कै।—लक्ष्मणसिंह।

शूलनाल—कि० प्र० [ हि० गल + ना (शूल) ] (१) शूल के समान गदना। (२) दुःख देना। पीड़ा देना। कष्ट देना। ४०—(क) सो सुधि यदुर्दंन नहि भूलत । सुमिरि सुमिरि भइ हूँ हर शूलत ।—सबल। (ख) छै छै विप को नाम ठौह हमरो नहि छोड़ै । कठिन गुह्यारो थोळ जाइ हिरदैं में शूलै ।—गिरधर।

शूलनाशन—छंदा पुं० [ सं० ] (१) सौवर्षक लवण। (२) होंग। (३) पुष्कर मूल। (४) वैद्यक में शंख अंस, कंठकेशु, भूमी होंग, सोंठ, काळी मिर्च, पीपल और सेंधा नमक के योग से बनाया हुआ एक प्रकार का चूर्ण जिसका व्यवहार प्रायः शूल रोग में किया जाता है।

शूलनाशिनी घटी—छंदा स्त्री० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार की घटी या गोली। इसके लिये हृद का टिपका, सोंठ, काळी मिर्च, पीपल, शुद्ध लुण्ठ, शुद्ध गंधक, भूमी गंधक, भूमी होंग, सेंधा नमक जल से खरल करके चने के बराबर

शूरव-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर होने का भाव या धर्म। शूरता। वीरता। बहादुरी।

शूरदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] जिनियों के अनुसार भविष्य में होनेवाले चौबीस अर्हतों में से एक अर्हत का नाम।

शूरन-संज्ञा पुं० दे० "सूरन"।

शूरपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अदिति का एक नाम।

शूरबल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीरों के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

शूरभू-संज्ञा स्त्री० दे० "शूरभूमि"।

शूरभूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भागवत के अनुसार उग्रसेन की एक कन्या का नाम। लिखा है कि वसुदेव के छोटे भाई दयामक ने इसके साथ विवाह किया था; और उनके वीर्य से इसके गर्भ से हरिकेश और हिरण्यकेश नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

शूरमानी-संज्ञा पुं० [ सं० शूरमानिन् ] वह जिसे अपनी शूरता का बहुत अभिमान हो। अपनी बहादुरी पर बहुत भरोसा रखनेवाला।

शूरवाणेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम।

शूरविद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] युद्ध आदि करने की विद्या।

शूरवीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अच्छा वीर और योद्धा हो। सरमा।

शूरवीरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वीर्य। बहादुरी।

शूरश्लोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीरों के वीरतापूर्ण कृत्यों की कहानी। वीरगाथा।

शूरसेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मथुरा के एक प्रसिद्ध राजा जो कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता थे। (२) मथुरा और उसके आस पास के प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ राजा शूरसेन का राज्य था।

शूरसेनप-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर वीरों की सेना का पालन करनेवाले, कान्तिदेव।

शूरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्षीरकाकोली नामक अष्ट वर्गीय भोवधि। ली संज्ञा पुं० [ सं० शूर ] सामंत। वीर। उ०—पैटि मुका में सब जग देखे, बाहर कछु न सुखे। उलटा वान पारथिव लागे, शूरा होय सो सुखे।—कबीर।

संज्ञा पुं० [ सं० सूर्य ] सूर्य। उ०—जहाँ चंद न शूरा, तारा नहि जहाँ मोरनिधा।—कबीर।

शूरिसृंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाराह आदि जंगली पशु।

शूर्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गेहूँ, चावल आदि अन्न पछोड़ने के लिये बना हुआ बाँस या सौंठ का पात्र। सूप। (२) एक प्राचीन तौल जो २०४८ तोले या ३२ सेर की होती थी।

शूर्पक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक जसुर जो किसी किसी के मत से कामदेव का दास्य और किसी किसी के मत से उसका पुत्र था।

शूर्पकर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथी, जिसके कान सूँप के समान होते हैं। (२) गणेश। (३) एक प्राचीन देश का नाम। (४) इस देश का निवासी। (५) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शूर्पकाराति-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर्पक नामक राक्षस का दास्य, कामदेव।

शूर्पकारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शूर्पक नामक राक्षस का दास्य, कामदेव।

शूर्पणखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहिन थी। कहते हैं कि इसके नख सूँप के समान थे। राम के बनवास के समय काम से पीड़ित होकर यह राम के पास उनके साथ विवाह करने की इच्छा से गई थी। यहाँ राम के हठारे से लक्ष्मण ने इसकी नाक और कान काट लिए थे। इसी का बदला लेने के लिये रावण सीता को हर ले गया था।

शूर्पणखी-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

शूर्पणाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

शूर्पणखा-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

शूर्पणखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वन मूँगा। वन उद।

शूर्पश्रुति-संज्ञा पुं० [ सं० ] हस्ती। हाथी।

शूर्पा-संज्ञा स्त्री० [ ? ] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खिलौना।

शूर्पाद्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] दक्षिणी भारत के एक पर्वत का नाम। इसे कुछ लोग सूर्याद्रि भी कहते हैं।

शूर्पारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंबई प्रांत के थाणा जिले के सोपान नाम स्थान का प्राचीन नाम।

शूर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शूर्मि ] (१) लोहे की बनी हुई मूर्ति। (२) निहाई।

शूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जो प्रायः बरछे के आकार का होता था। (२) सूली जिससे प्राचीन काल में लोगों को प्राण-दंड दिया जाता था। (३) दे० "शिशूल"। (४) कोई बड़ा, लंबा और मुकीला कटौटा। (५) वायु के प्रकोप से होनेवाला एक प्रकार का बहुत तेज दर्द। यह दर्द प्रायः पेट, पसली, कूड़े या पेट आदि में होता है। वैद्यक के अनुसार बहुत अधिक व्यायाम या सैधुन करने, चौड़े पर चढ़ने, रात के समय जागने, बहुत अधिक ठंडा जल पीने, रुखे अर्थों का सेवन करने, सूखा मांस खाने, विषद भोजन करने, शारीरिक चेगों को रोकने, बहुत अधिक सोक या उपवास करने अथवा बहुत अधिक हँसने के कारण वायु का प्रकोप होता है जिससे पेट में या उसके आस पास बहुत तीव्र पीड़ा होती है। इस पीड़ा में पेशा अनुभव होता है कि कोई अंदर

से बहुत नुकीला कटाया या शूल गढ़ा रहा है; इसीसे इसे शूल कहते हैं। यह रोग माठ प्रकार का—वातम, पित्तम, कफम, ससिपातम, आमम, वातरुधिरिक, पित्तरुधिरिक और वातपैत्रिक—कहा गया है; और इसे घात करने के लिये श्वेत, शम्यंग, मर्दान और सिन्धु तथा उष्ण द्रव्यों के सेवन का विधान है। (६) किसी नुकीली वस्तु के चुभने के समान होनेवाली पीड़ा। कौवल टीका। (७) पीड़ा। छेदा। दुःख। वदं। उ०—(क) तुम लक्ष्मिन निज पुरहि सिंघारो। विद्युत्तम मेठ देहु लघु यंधु जियत न जैई, शूल तुम्हरो!—सूर। (ख) मन तोसों कोटिक बार कहीं। समुस न चरण गहत गोविंद के उर भय दूळ सही।—सूर। (ग) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों के अंत में नवौं योग। कहते हैं कि जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह बुराफोक, दरिद्र, मूर्ख, विद्याहीन, दूळ रोगी, दूसरों का अनिष्ट करनेवाला और अपने यंत्रु पीधव को दूळ के समान खटकनेवाला होता है। इस योग में किसी प्रकार का शुभ काम करने का निषेध है। (९) उद। संखल। सील। उ०—खाने को पट्टया शूल पर शुभा हुआ मांस मिलता है, सो नी कुसमम।—लक्ष्मणसिंह। (१०) श्यु। भीत। (११) संघा। पताका। (१२) पोस्ते की पत्तियों की वह तह जो बफोम की चढी जमाने के समय उसके चारों ओर और ऊपर नीचे लगाई जाती है। (संघाठ)

वि० कटि की तरह नोकवाला। नुकीला।

शूलक-घंठा पुं० [ सं० ] (१) पुराणातुसार एक ऋषि का नाम। (२) दुष्ट या पापी घोड़ा।

शूलकार-घंठा पुं० [ सं० ] पुराणातुसार एक नीच जाति का नाम।

शूलगजकोसरी रस-घंठा पुं० [ सं० ] (१) वैद्यक में एक प्रकार का रस जो शुद्ध गंधक, पारे, कंकडवेधी, ताँबे के पत्र आदि के योग से तैयार किया जाता है और शूल रोग के लिये गुणकारी माना जाता है। (२) वैद्यक में एक प्रकार की घटी या गोली। इसके लिये कौदियों की राख, शुद्ध सिंगी मुहरा, सेंधा नमक, काळी मिर्च, पिप्पली इन सब का चूर्ण कर पान के रस में एक रसी के बराबर गोखिराई बनाई जाती है। ये गोखिराई दूळ का नाश करती है।

शूलगव-घंठा पुं० [ सं० ] शिय का एक नाम।

शूलगिरि-घंठा पुं० [ सं० ] मदेरास प्रांत के एक पर्वत का नाम।

शूलमैथि-घंठा स्त्री० [ सं० ] माला द्य।

शूलम्रस-घंठा पुं० [ सं० ] हाथ में त्रिसूळ धारण करनेवाले, शिव।

शूलम्राही-घंठा पुं० [ सं० ] शूलशक्ति। शिव। महादेव।

शूलघातन-घंठा पुं० [ सं० ] मंहूर। लौहचिह्न।

शूलघ्न-घंठा पुं० [ सं० ] तुंडुवृक्ष।

शूलघ्नी-घंठा स्त्री० [ सं० ] सखी मिट्टी। सर्गिलार।

शूलद्वानिल रस-घंठा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो दो तरह से बनता है—(१) शुद्ध पारा, शुद्ध सिंगी मुहरा, काळी मिर्च, पिप्पली, सोंठ, भूनी हींग, पाँचो नमक, हमली का खार, जंजीरी का खार, शंख-भस्म और नीचू के रस के योग से बनता है और शूल रोग को तत्काल दूर करता है। (२) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, सिंगी-मुहरा, पिप्पली, भूनी हींग, पाँचो नमक, हमली के खार और नीचू के रस में हुसे हुए शंख की राख तथा नीचू के रस से बनता है और शूल, अजीर्ण, उदर रोग और मंदाग्नि को दूर करता है।

शूलद्रि-घंठा पुं० [ सं० ] हींग। हिंयु।

शूलधन्वा-घंठा पुं० [ सं० ] शूलधन्वन्। शिव। महादेव।

शूलधर-घंठा पुं० [ सं० ] शिव। शंकर। उ०—गंगाधर हर शूलधर, ससिंधर शंकर वाम। सर्वेश्वर भव शंभु शिव, रुद्र कामरिपु नाम।—नंद।

शूलधरा-घंठा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा।

शूलधारिणी-घंठा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा। शूलधरा।

शूलवारी-घंठा पुं० [ सं० ] शूलधारिन्। त्रिसूळ धारण करनेवाले, शिव। महादेव। उ०—संपदावलि पूजन भव होइ शूलधारी को, तुंडुनी की ठौर दीगो गरज सुनाइ कै।—लक्ष्मणसिंह।

शूलनालिक-घंठा पुं० [ सं० ] शूलना (शय्य०)। (१) दूळ के समान गढ़ना। (२) दुःख देना। पीड़ा देना। कष्ट देना। उ०—(क) सो सुधि यदुनन्दन नहिं शूलत। सुमिरि सुमिरि भ्रमरुं डर शूलत।—सबल। (ख) लै लै शिय को नाम तौव हमरो नहिं छोड़ै। कठिन तुम्हरो धोख जाह दिरदै में शूलै।—गिरधर।

शूलनाशिन-घंठा पुं० [ सं० ] (१) शौचसंक लक्षण। (२) हींग। (३) शुद्धक मूल। (४) वैद्यक में शंख भस्म, करंजमूल, भूनी हींग, सोंठ, काळी मिर्च, पीपल और सेंधा नमक के योग से बनाया हुआ एक प्रकार का चूर्ण जिसका व्यवहार प्रायः शूल रोग में किया जाता है।

शूलनाशिनी घटी-घंठा स्त्री० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार की घटी या गोली। इसके लिये हृद का छिहटा, सोंठ, काळी मिर्च, पीपल, शुद्ध लुपता, शुद्ध गंधक, भूनी गंधक, भूनी हींग, सेंधा नमक जल से खरल करके घने के बराबर

गोलियाँ बनाई जाती हैं। कहते हैं कि प्रातःकाल इसे गरम जल के साथ सेवन करने से संमहणी, भित्तिहार, भजीर्ण, मंदाग्नि आदि दूर होती है।

शूलनाशी-संज्ञा पुं० [ सं० शूलनाशिनः ] हींग।

शूलनिर्मूलन-संज्ञा पुं० [ सं० ] दुःख का नाश करनेवाले, शिव। महादेव।

शूलपत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की घास जिसे शूली भी कहते हैं।

शूलपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की घास जिसे शूली भी कहते हैं।

शूलपाणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ में शूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

शूलपाणि-संज्ञा पुं० [ सं० शूलपाणि ] शिव। महादेव। उ०—  
दारिद्र्य-दमन, दुखदोष-दाह-दावानल, दुर्गा न दयालु दूरी  
दानि सुखपाणि सौं।—तुलसी।

शूलमोत-संज्ञा पुं० [ सं० ] नरक के एक भाग का नाम।

शूलमर्दन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सालमखाना। कोकिलाक्ष।

शूलशत्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] रेंद का पेड़।

शूलशब्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] पेट की गड़गड़ाहट के कारण होने-  
वाला शब्द।

शूलहंती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शूल का नाश करनेवाली, अन्न-  
घाहिन। यवानी।

शूलहर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुच्छर-शूल।

शूलहस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ में शूल धारण करनेवाले, शिव।  
महादेव।

शूलहत-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिंगु। हींग।

शूलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

शूलो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वेश्या। रंजी। (२) शूली जिसके  
द्वारा प्राचीन काल में लोगों को प्राण दंड दिया जाता था।

(३) छद्म। सीख। सखल।

शूलाहत-संज्ञा पुं० [ सं० ] छोटे की सीख में शूल का भूना हुआ  
मांस। सीख पर भूना हुआ मांस। कबाब आदि।

शूलारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिंगोट। हिंगुदी वृक्ष।

शूलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम। महादेव।

संज्ञा स्त्री० दे० "शूली"।

शूलिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खरगोस। खरहा। (२) सीख में  
गोद कर पकाया हुआ मांस। कबाब। (३) फॉसी देनेवाला।  
शूली देनेवाला। उ०—हन मचादि तीसरे मंडल के शैव-  
गुरु यदि और किसी प्रथ से एक जैय ती येदों के सम्यह,  
शायर, दाद, पुण्ड्र, पत्रिम की सीमा का अथ, शूलिक,  
बनवासी, मविष, समुद्र के पुरषों का नाश हो जाता है।—  
बृहत्संहिता।

शूलिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सीख में गोदकर भूना हुआ मांस।  
कबाब।

शूलिकाप्रोत-संज्ञा पुं० दे० "शूलिका"।

शूलिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भोठीर वृक्ष। (२) गूजर का पेड़।  
उदुंबर।

शूलिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुर्गा का एक नाम जो त्रिशूल  
धारण करनेवाली मानी जाती है। (२) पान। नागवह्नी।  
(३) पुत्रदात्री नाम की लता।

शूली-संज्ञा पुं० [ सं० शूलि ] (१) त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव।  
महादेव। उ०—शृंगी शूली धुरजटी कुंडलीश त्रिपुरारि।  
धृषा कपर्दी मानहर मृत्युंजय कामारि।—सखल। (२) खर-  
गोश। खरहा। खरहा। (३) शूल रोग से पीड़ित व्यक्ति।  
यह जिसे शूल रोग हुआ हो। (४) एक नरक का नाम।  
उ०—तेरहों शूली नरक कहावै। शूली सम दुख तामे पावै।  
जो नर पाप करै अधिकावै। करि शिकार मृग मारि जावै।  
नाहक नर शूली धरि दीन्हों। जिन धन माहि उगाही  
कीन्हों। काहू को शस्त्रन ते मारे। तेहि यम शूली नरक में  
धरि।—विभ्राम।

संज्ञा स्त्री० दे० "शूली"। उ०—कौन पाप में ऐसो कियो।  
जाते मोहूँ शूली दियो।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [ सं० शूल ] पीड़ा। शूल। उ०—सो सुधि भूप  
दिये मैंह भूषी। अजहूँ बडत जासु ते शूली।—सखल।

क्रि० प्र०—उठना।

संज्ञा स्त्री० [ सं० शूलपत्री ] एक प्रकार की घास जिसे पशु  
घड़े खाते हैं और जिसका व्यवहार औषध रूप में  
भी होता है। वैद्यक के अनुसार यह किंचित् शंख, गुरु,  
बलकारक, विष तथा दाह-नायक और गौभों तथा भैंसों  
का दूध बढ़ानेवाली मानी जाती है।

शूलोरथा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोमरात्री लता। बकुची।

शूलव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सीख में बंधकर पकाया हुआ मांस।  
कबाब।

शूलव्यपाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कबाब।

शूलव्यमांस-संज्ञा पुं० [ सं० ] कबाब।

शूलव्यपाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मृत्योनि जिसका मान  
वैदिक काल में होता था।

शृङ्खल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का भानगज का प्राचीन  
काल में पुरुर लोग कमर में पहनते थे। मेलला। (२)  
दायी आदि के धारण की छोटे की जंजीर। सिकल। सिकल।  
उ०—भंडुस घंट सुश्रंखल जेऊ। चौदह सहस्र महा गज  
जेऊ।—पद्माकर। (३) हथकड़ी येदी। (४) नियम।

शृङ्खलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कैंटा। (२) दे० "शृङ्खल"।

शृङ्खलता-छंदा श्री० [ सं० ] सिलसिलेवार या क्रमबद्ध होने का भाव ।

शृङ्खला-छंदा श्री० [ सं० ] (१) क्रम । सिलसिला । (२) जंजीर । सर्कल । (३) कटि बध । मेखला । (४) चोड़ी का एक भाग्यन जिसे खियों कमर में पहनती हैं । करघनी । तागड़ी । (५) श्रेणी । कतार । (६) एक प्रकार का अलंकार जिसमें कवित पदार्थों का पूर्ण शृङ्खला के रूप में सिलसिलेवार दिया जाता है ।

शृङ्खलापद-वि० [ सं० ] (१) जो क्रम से हो । सिलसिलेवार । (२) जो शृङ्खला से बँधा हुआ हो ।

शृङ्खलि-छंदा पुं० [ सं० ] कोकिलाक्ष । ताल मलाना ।

शृङ्खलिन-वि० [ सं० ] (१) क्रमबद्ध । श्रेणीबद्ध । सिलसिलेवार । (२) विरोधा हुआ ।

शृंग-छंदा पुं० [ सं० ] (१) पर्वत का ऊपरी भाग । शिखर । चोटी । (२) गौ, भैंस, बकरी आदि के सिर के सींग । ड०—भक्ति विन शैल बिाने हैंहो । पौंठ चारि तार शृंग शृंग मुख तप कैसे गुण गैहो ।—सूर । (३) कँगुरा । ड०—जो कांचनीय रथ शृंग मयूर माली । जाके उदार उर षण्मुख शक्तिशाही ।—केशव । (४) प्राचीन काल का एक प्रकार का वाजा जो मुँह से हूँक कर बजाया जाता है । सिंगी थागा । ड०—कंस ताल कलाहाल बजावत शृंग मधुर सुवर्ण । मधुर जंजीरी पट्ट प्रगव ताल मुख पावत रत्नगंग ।—सूर । (५) कमल । पद्म । (६) जीवक नामक अष्टवर्गीय औषधि । (७) सोंठ । (८) अदरक । शार्दी । (९) अगर । (१०) प्रमुख । प्रधानता । (११) काम की उत्तेजना । (१२) सिद्ध । निदान । (१३) स्तन । छाती । (१४) एक प्राचीन ऋषि का नाम । वि० दे० "कृष्णशृंग" । (१५) पानी का फीवारा ।

वि० सीद्ध । वेग ।

शृंगकंद-छंदा पुं० [ सं० ] सिंघादा ।

शृंगक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) जीवक वृक्ष । (२) सिंगिया भामक विप ।

शृंगकूट-छंदा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम ।

शृंगगिरि-छंदा पुं० दे० "शृंगकूट" ।

शृंगमाहिता न्याय-छंदा पुं० [ सं० ] एक न्याय त्रिसुका उपयोग उस समय होता है, जब किसी कठिन काम का एक अंग हो जाने पर शेष अंग का संपादन उसी प्रकार सहज हो जाता है, जिस प्रकार सींग मारनेवाले बैल का एक सींग पकड़ लेने पर दूसरा सींग भी पकड़ लेना सहज हो जाता है ।

शृंगज-छंदा पुं० [ सं० ] (१) अगर । अमर । (२) चार । तीर ।

शृंगनाम-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का विप ।

शृंगनासी-छंदा श्री० [ सं० ] काकदासिगी । ककटशृंगी ।

शृंगपुर-छंदा पुं० दे० "शृंगवेरपुर" ।

शृंगभेदी-छंदा पुं० [ सं० ] शृंगभेदि । शृंदा नामक वृण ।

शृंगमूल-छंदा पुं० [ सं० ] सिंघादा ।

शृंगमोही-छंदा पुं० [ सं० ] शृंगभेदिन । चंपक वृक्ष । चंपा ।

शृंगरुह-छंदा पुं० [ सं० ] सिंघादा ।

शृंगला-छंदा श्री० [ सं० ] मैकासिगी ।

शृंगवत्-छंदा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार कुटुम्ब की सीमा पर के एक पर्वत का नाम ।

शृंगवृष-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शृंगवेर-छंदा पुं० [ सं० ] (१) शार्दी । अदरक । (२) सोंठ ।

(३) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम । (४) दे० "शृंगवेरपुर" ।

शृंगवेरक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) अदरक । शार्दी । (२) सोंठ ।

शृंगवेरपुर-छंदा पुं० [ सं० ] रामायण के अनुसार एक प्राचीन

नगर का नाम जहाँ रामचंद्र के समय में निषाद राजा युद्ध की राजधानी थी । संभवतः प्रतापगढ़ जिले का सिंगरीना नामक गाँव ही प्राचीन शृंगवेरपुर है । ड०—(क) ता दिन शृंगवेरपुर आए । राम सखा से सनाचार सुनि पारि यिजोचन छाप ।—तुलसी । (ख) छलि पुरवासिन को भाप शृंगवेरपुर खरिनि निषाद रांन कोऊ कही जाहूँकी ।—रघुराम ।

शृंगवेराममूल-छंदा पुं० [ सं० ] शृंदा नामक वृण ।

शृंगवेरिका-छंदा श्री० [ सं० ] गौरी ।

शृंगमुख-छंदा पुं० [ सं० ] सिंगी या सिंघा नामक वाजा ।

शृंगाट-छंदा पुं० [ सं० ] (१) सिंघादा । (२) गोखरू । (३)

कँटाई । विकंकत । (४) कामरूप देश के एक पर्वत का नाम । (५) चौराहा । चौमुहानी ।

शृंगाटक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का काय-पदार्थ जो मोँठ से बनाया जाता था । (२) एक मर्मस्नान जो मस्तक में उस स्थान पर माना जाता है, जहाँ नाक, कान, भ्रूँज और जीम से सर्वत्र रत्नवाली चारों तराफें मिलती हैं । कहते हैं कि यह मर्मस्नान चार अंगुल का होता है और इसके चारों ओर से चारों तराफें निकलती हैं; इसी से इसे शृंगाटक करते हैं । यह भी माना जाता है कि इस स्थान पर चोट लगने से श्रुंरत सृष्टि हो जाती है । (३) दे० "शृंगाट" ।

शृंगाटी-छंदा श्री० [ सं० ] जीव्यंटी ।

शृंगाट-छंदा पुं० [ सं० ] (१) साहित्य के अनुसार नी चौरों में से एक रस जो सब से अधिक प्रसिद्ध है और प्रधान माना जाता है । इसमें नायक नायिका के परस्पर मिश्रण के कारण होनेवाले मुख की परिपुष्टता दिखलाई जाती है । इसका स्वाधी भाव रति है । भावजन विभाव नायक और नायिका हैं । उर्वरिन विभाव सखा, सखी, वन, पाग आदि, विहार, चंद्र, चंद्रन, अमर, हाँकार, हाव भाव, मुद्रणमान तथा





शृङ्खलाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिलसिलेवार या क्रमबद्ध होने का भाव ।

शृङ्खला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) क्रम । सिलसिला । (२) जंजीर । सॉकल । (३) कटि वस्त्र । मेखला । (४) चौड़ी का एक आभूषण जिसे खिया कमर में पहनती है । कंधनी । तगदी । (५) श्रेणी । कतार । (६) एक प्रकार का अलंकार जिसमें कथित पदार्थों का वर्णन शृङ्खला के रूप में सिलसिलेवार किया जाता है ।

शृङ्खलायत्न-वि० [ सं० ] (१) जो क्रम से हो । सिलसिलेवार । (२) जो शृङ्खला से बंधा हुआ हो ।

शृङ्खलित-संज्ञा पुं० [ सं० ] कोकिलाक्षर । ताल मखाना ।

शृङ्खलित-वि० [ सं० ] (१) क्रमबद्ध । श्रेणीबद्ध । सिलसिलेवार । (२) बितोया हुआ ।

शृङ्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पर्वत का ऊपरी भाग । तिलार । चोटी । (२) गी, शंख, बकरी आदि के सिर के सींग । इ०—भक्ति बिन धेक बिराने हैदो । शॉड चारि सिर शृंग गुंग मुल तप केसे गुण गैहो ।—सूर । (३) कंगूर । इ०—जो कांवनवीर रथ शृंग मयूर माली । जाके उदार उर पण्डुल शक्तिशाली ।—केशव । (४) प्राचीन काल का एक प्रकार का पात्रा जो मुँह से फूँक कर बनाया जाता है । सिंगी घामा । इ०—कंस ताल करताल बनावत शृंग मधुर सुहसंग । मधुर खैररी पटई प्रणय मिळ सुख पावत सरसंग ।—सूर । (५) कमल । पत्र । (६) जीवक नामक अष्टवर्णीय भोपधि । (७) सोंड । (८) अदरक । भाड़ी । (९) भगर । (१०) प्रसुख । प्रधानता । (११) काम की उत्तेजना । (१२) चिह्न । निधान । (१३) स्तन । छाती । (१४) एक प्राचीन ऋषि का नाम । वि० दे० "मध्यशृंग" । (१५) पानी का चौबारा । वि० सीधु । सेज ।

शृङ्गकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिधादा ।

शृङ्गक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जीवक वृक्ष । (२) सिंगिया धामक विप ।

शृङ्गकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम ।

शृङ्गागारि-संज्ञा पुं० दे० "शृङ्गकूट" ।

शृङ्गमाहिता न्याय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक न्याय जिसका उपयोग उस समय होता है, जब किसी कठिन काम का एक अंश हो जाने पर शेष अंश का संवादन उसी प्रकार सहज हो जाता है, जिस प्रकार सींग मारनेवाले बैल का एक सींग पकड़ देने पर दूसरा सींग भी पकड़ लेना सहज हो जाता है ।

शृङ्गाज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अणार । अणद । (२) शर । तीर ।

शृङ्गनाभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का विप ।

शृङ्गनास्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काकदासिरी । कर्कटशृंगी ।

शृङ्गापुर-संज्ञा पुं० दे० "शृंगवेरपुर" ।

शृङ्गभेदी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृंगभेदिन् । गुंवा नामक वृक्ष ।

शृङ्गामूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंवादा ।

शृङ्गामोही-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृंगमोहिन । चंपक वृक्ष । चंपा ।

शृङ्गरह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिधादा ।

शृङ्गाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेधासिरी ।

शृङ्गघट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार कुरुवंश की सीमा पर के एक पर्वत का नाम ।

शृङ्गवृष-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

शृङ्गवेर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भाड़ी । अदरक । (२) सोंड ।

(३) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम । (४) दे० "शृंगवेरपुर" ।

शृङ्गवेरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अदरक । भाड़ी । (२) सोंड ।

शृङ्गवेरपुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामायण के अनुसार एक प्राचीन नगर का नाम जहाँ रामचंद्र के समय में निषाद राजा गुह की राजधानी थी । संभवतः प्रतापगढ़ ज़िले का सिंगौरा धामक गाँव ही प्राचीन शृंगवेरपुर है । इ०—(क) ता दिन शृंगवेरपुर आद । राम सखा से समानचार सुनि पारि बिकोचन छाद ।—गुलछी । (ख) उल्लि पुरपासिन को भाए शृंगवेरपुर खवरि निषाद राजे कोऊ बही जाहूँके ।—धरुराज ।

शृङ्गवेरामूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुंदा नामक वृक्ष ।

शृङ्गवेरिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोभी ।

शृङ्गसुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंगी या सिंघा नामक बाजा ।

शृङ्गाट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिधादा । (२) गोखरू । (३) कैंडाई । बिरुंकर । (४) कामरूप देश के एक पर्वत का नाम । (५) चौराहा । चौमुहानी ।

शृङ्गाटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का छात्र-पदार्थ जो मांस से बनाया जाता था । (२) एक भग्नेस्थान जो मस्तक में उस स्थान पर माना जाता है, जहाँ नाक, कान, आँसू और जीम से संबंध रखनेवाली चारों तिराएँ निकलती हैं । कहते हैं कि यह भग्नेस्थान चार अंगुल का होता है और इसके चारों ओर से चारों तिराएँ निकलती हैं; इसी से इसे शृङ्गाटक कहते हैं । यह भी माना जाता है कि इस स्थान पर चोट लगने से तुरंत मृत्यु हो जाती है । (३) दे० "शृङ्गाट" ।

शृङ्गाटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जीवंती ।

शृङ्गाट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साहित्य के अनुसार नी रसों में से एक रस जो सृष्ट से अधिक प्रसिद्ध है और प्रधान माना जाता है । इसमें नायक भाविका के परस्पर मिश्रण के कारण होनेवाले सुख की परिपुष्टता दिखलाई जाती है । इसका स्थायी भाव रति है । आर्लंबन विभाव नायक और नायिका है । उदीपन विभाव सखा, सखी, पत्र, याग आदि, विहार, शंभ्र, शंभ्र, अमर, संकार, हाव भाव, मुसुबसान धमा

विनोद आदि हैं। यही एक रस है जिसमें संचारी, विभाव, अनुभाव। सब भेदों सहित होता है; और इसी कारण इसे रसराज कहते हैं। इसके देवता विष्णु अथवा कृष्ण माने गए हैं और इसका वर्ण श्याम कहा गया है। यह दो प्रकार का होता है—एक संयोग और दूसरा वियोग या विप्रलंब। नायक नायिका के मिलने को संयोग और उनके विछोह को वियोग कहते हैं। उ०—जाको पायी भाव रस, सो शृंगार सुद्योत। मिलि विभाव अनुभाव, पुनि संचारिन के गोत।—पद्माकर। (२) छियों का वक्षाम्रूपण आदि से शरीर को सुशोभित और चित्ताकर्षक बनाना। सजावट।

विशेष—शृंगार १६ कहे गए हैं—अंग में उदयन लगाना, नहाना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, बाल सँवारना, काजल लगाना, सँदुर से मींग भरना, महावर देना, भाऊ पर तिलक लगाना, चिबुक पर तिलक बनाना, मेंहदी लगाना, अर्गजा आदि सुगंधित वस्तुओं का प्रयोग करना, आभूषण पहनना, फूलों की माला धारण करना, पान खाना, मिरसी लगाना। उ०—(क) अंग शुक्री मंत्रम बसन, मींग महावर केवा। तिलक भाळ तिल चिबुक में भूषण मेंहदी वेश। मिरसी काजळ अर्गजा, धीरी और सुगंध। पुष्प कली युत होय कर, तब नव सस निबंध। (ख) संग सखी सोहैं विधि वार। कीन्हे तन पोदुश शृंगार।—रघुनाथ।

(१) किसी चीज को दूसरे सुंदर उपकरणों से सुसजित करना। सजावट। बनाव-सुनाय। उ०—(क) पुनि सुसिगार-हाट अळ देवा। किये सिगार धैति तँह बेसा।—जायसी। (ख) रूपवती बहु वार वधू करि भूषण यसन सिगारा। मुनिदिं छेमाय उपाय अनेकनि आनहिं करि सत्कार।—रघुनाथ। (७) भक्ति का एक मास या प्रहार जिसमें मक अपने भाव को पत्नी के रूप में और अपने दृष्टदेव को पति के रूप में मानते हैं। उ०—पात दास्य सख्य वारसख्य और शृंगार चार पाँचौ रस सार विस्तार नीके गाये हैं।—नाभादास। (५) वह जिससे किसी चीज की शोभा बढ़ती हो। उ०—यद्यमलि कोलि सखाहिं बडैया छेज लगी मजनार। येसो सुव तेरे गृह प्रकज्यो वा मज को शृंगार।—सूर। (६) लीला। (७) सँदुर। (८) अदरक। (९) चूर्ण। घूरन। (१०) काजा अगार। (११) सोना। (१२) रति। मैथुन।

शृंगारक—छंदा पुं० [ सं० ] (१) सँदुर। (२) लीला। (३) अदरक। आदी। (४) काला अगार।

शृंगारजम्भा—छंदा पुं० [ सं० शृंगारजम्भ ] कामदेव या मदन का एक नाम।

शृंगारण—छंदा पुं० [ सं० ] किसी रूपवती स्त्री को देखकर उस पर

अपनी काम-वासना प्रकट करने की क्रिया। भैम-पदार्थन। मुहव्यत जतलाना।

शृंगारना—किं० सं० [ किं० शृंगार + ना (प्रत्य०) ] आनूषण आदि से या और किसी प्रकार सँवारना। शृंगार करना। सजाना।

शृंगारभूषण—छंदा पुं० [ सं० ] (१) सँदुर। (२) हाताल।

शृंगारमंडल—छंदा पुं० [ सं० ] (१) मज का एक स्थान जहाँ पर छीकृष्ण ने राधिका का शृंगार किया था। (२) वह स्थान जहाँ प्रेमी और प्रेमिका मिलकर काम-क्रीड़ा करते हैं। क्रीडासाल।

शृंगारयोनि—छंदा पुं० [ सं० ] मदन या कामदेव का एक नाम। शृंगारवेश—छंदा पुं० [ सं० ] वह सुंदर वेश जिसे धारण करके प्रेमी अपनी प्रेमिका के पास जाता है।

शृंगारहाट—छंदा स्त्री० [ सं० शृंगार + हिं० हाट ] वह बाजार जहाँ बेचनाएँ रहती हैं। चकला। उ०—पुनि शृंगारहाट मळ देवा। किये सिगार धैति तँह देवा।—जायसी।

शृंगारिक—वि० [ सं० ] शृंगार संबंधी। उ०—कलित क्ताओं को पहले के अपने सब शृंगारिक-भाव। हरिण-नारियों को नयनों की चंचलता का सहज रवभाव।—महावीरप्रसाद।

शृंगारिणी—छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) शृंगार करनेवाली स्त्री। शृंगारिण्य। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पाद में चार रगण (JIS) होते हैं। इसको 'छत्रिणी' 'कामिनी' 'मोहन' 'लक्ष्मीधरा' और 'लक्ष्मीधर' भी कहते हैं।

शृंगारित—वि० [ सं० ] जिसका शृंगार किया गया हो। सजा हुआ। सँवारा हुआ।

शृंगारिया—छंदा पुं० [ सं० शृंगार + रिया (प्रत्य०) ] (१) वह जो देवताओं आदि का शृंगार करता हो। (२) वह जो तरह तरह के भेस बनाता हो। बहुरूपिया।

शृंगारी—छंदा पुं० [ सं० शृंगारि ] (१) सुपारी। (२) नातिक। चुपी। (३) हाथी।

शृंगारुहा—छंदा स्त्री० [ सं० ] सिंहादा। शृंगारक।

शृंगालिका, शृंगाली—छंदा स्त्री० [ सं० ] विश्वरीकंद।

शृंगाल—छंदा पुं० [ सं० ] (१) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) सिंहादा।

शृंगाला—छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) सिंहादा।

शृंगि—छंदा पुं० [ सं० ] सिंगी मछली।

छंदा पुं० [ सं० शृंगि ] वह पक्ष जिसके सिर पर सींग हैं। सींगीवाला जानवर। उ०—नली, नदी और शृंगि जो धरत घाऊ निज पास। रामबंध औ नारि में कद न कवहुँ विनवास।—दीनाराम।

शुभिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंगिया विप ।

शुभिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो सुँह से बँकू कर बजाया जाता था। सिंगी। (२) अतीस। अतिविष। (३) काकड़ासिंगी। (४) मेदासिंगी। (५) पिप्पली। पीपल।

शुभियी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गाय। गौ। (२) मल्लिका। मोतिया। (३) मालकंगनी। उषोतिष्मती लता। (४) अतीस। अतिविष।

शुभ्री-संज्ञा पुं० [ सं० श्रुगिन् ] (१) हाथी। इस्ती। (२) वृक्ष। पेड़। (३) पर्वत। पहाड़। (४) एक ऋषि जो रामीक के पुत्र थे। इन्होंने शाप से अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को तक्षक ने दसा था। उ०—श्रुगी ऋषि तव क्रियो विचार। प्रजा दुःख कर नृपत गुहार।—सूर। (५) मरागद। (६) पाकद। (७) भमदा। (८) ऋषभक नामक अष्टवर्गीय भोपधि। (९) सींगवाला पशु। जैसे,—गौ, बैल, बकरी आदि। (१०) जीवक नामक भोपधि। (११) सिंगिया नामक विष। (१२) सींग का बना हुआ एक प्रकार का बाजा, जिसे कनकड़े बजाते हैं। उ०—श्रुगी शब्द धंघरी करा। बरे डो छट जहाँ पग धरा।—जायसी। (१३) महादेव। तिव्र। उ०—श्रुगी शूली पूरजटी, कुंडलीश त्रिपुरारि। घृषा कपर्दी मानहर, श्रुगुंजय कामारि।—सचल (१४) एक प्राचीन देग का नाम। उ०—श्रुगी सिंधु कण्ठ के राई। भाप सखल समेत सदाई।—सचल।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अतीस। (२) काकड़ासिंगी। (३) सिंगी मछली। (४) मजीठ। मंजिष्टा। (५) अतिवला। (६) पोई का सागा। (७) ऋषभक नामक भोपधि। (८) पाकर। (९) बट। बट। (१०) विप। लहर। (११) वह सोना जिससे गहने बनाए जाते हैं।

शुभ्रीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] काकड़ा सिंगी।

शुभ्रीकनक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सोना जिससे गहने बनाए जाते हैं।

शुभ्रीगिरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन पर्वत का नाम जिस पर श्रुगी ऋषि तप किया करते थे। उ०—पूण काम शान शान राजा। श्रुगी गिरि गवने यति राजा। जहाँ श्रुगी ऋषि धर तप करहीं। चर्म नयन सो देखि न परहीं।—राधाकृष्ण।

शुभ्री-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंकराचार्य के मठानुयायी संन्यासियों का एक प्रसिद्ध मठ जो दक्षिण भारत में है। इसके प्रधान अधीश्वर शंकराचार्य कहलाते हैं।

शुभ्रीमति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मही और नक्षत्रों आदि की एक प्रकार की मति।

शुभ्राल-संज्ञा पुं० दे० "शुभाळ"।

शुभ्राल-संज्ञा पुं० दे० "शुभाळ"। उ०—बहुतन कंक काक शग धवाना। भक्षत करत कटकटी नाना।—विश्राम।

शुभ्राल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गीदद नामक जंगली जंतु। सियाह। जंतुक। वि० दे० "गीदद"। उ०—न्याप्र कुरंग शृगाल शशादी। जानन नर बानर चिपारी।—सचल। (२) एक दैत्य का नाम। (३) वायुदेव।

वि० (१) मोह। डरपोक। (२) निपटुर। निर्दय। (३) लल। दुष्ट।

शुभ्राल कंटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मरभौद या सत्यानासी नाम का कंटोका छुप।

शुभ्रालकोलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] उषाय। ककंधु।

शुभ्राल घंटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तालमखाना। कोकिलाज।

शुभ्राल जंबु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गोडुवा। गोमा ककड़ी। (२) ककंधु। उषाय। (३) तरभूज।

शुभ्रालविष्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पिठवन। वृक्षिपर्णी।

शुभ्रालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विदारी कंद। (२) वृक्षिपर्णी। (३) सियारिन। गीददी। (४) लोमड़ी।

शुभ्राली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तालमखाना। (२) विदारी कंद। (३) गीदद की मादा। गीददी।

शुभ्रियी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शंक्रुवा। अंकुस।

शुभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काय। काढ़ा। (२) भीटा हुआ दूध।

शुभ्रशीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] भीटाया हुआ पानी जो प्रायः उजर के रोगियों को दिया जाता है और वैद्यक के अनुसार रक्त्विकार, यमन, उजर और सक्षिपत आदि रोगों का नाशक माना जाता है।

शुभ्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मलद्वार। गुदा। (२) बुद्धि।

शुभ्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुदा। मलद्वार।

वि० कुरितत। डरा। सताय।

शुभ्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] कल के आठ भाइयों में से एक। उ०—श्रुति सुनामा कंक सुदु राष्ट्रपाल न्यमोच। शंकु दृष्टि प् दाक्ष-धर बोधा प्रति क्रोच।—गोपाल।

शुभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री शेरानी ] (१) फ़िरोज मुहम्मद के यंत्रों की लपधि। (२) मुसलमानों के चार यंत्रों में सब से पहला यंत्र। (३) मुसलमान उपदेशक। इस्लाम धर्म का आचार्य। (४) पीर। बड़ा यंत्र।

शुभ्र-संज्ञा पुं० दे० "शेच"।

शुभ्र चिल्ली-संज्ञा पुं० [ सं० + चिल्ली ] (१) एक कवित्त मूल्य ग्यक्ति जिसके संबंध में बहुत सी बिलक्षण और हैसानेवाली कहानियाँ कही जाती हैं। (२) धेडे धेडे बड़े बड़े मंसूबे बंधनेवाला। छटमूट बड़ी बड़ी बातें हँसनेवाला। (३) मूल्य मसखरा।

शुभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कीर्ति। सिर। माया। (२) सिर

का भाषण। मुकुट। चिरीट। (१) सिर पर धारण की जानेवाली माला। (२) सिर। चोटी। शिखर। (पर्वत आदि का) (५) श्रेष्ठतावाचक शब्द। सब से श्रेष्ठ या उत्तम व्यक्ति या वस्तु। (६) टण्ण के पूर्ववर्गे भेद की संज्ञा (IIIS) यथा, प्रजनाय। (७) संगीत में भ्रुव या स्थायी पद का एक भेद।

शेखरापीड योजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] चौंसठ कलाओं में से एक कला का नाम। सिर पर या केशों में फूलों से अनेक प्रकार की रचना करना।

शेखरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यंदा। यंदाक। (२) लौंग। (३) सहिजन की जड़।

शेख सहो-संज्ञा पुं० [ अ० शेख + देश० सहो ] मुसलमान सियों के उपाख्य एक पीर जो कभी कभी भूत की तरह उनके सिर पर आते हैं।

शेखावत-संज्ञा स्त्री० [ अ० शेख ] क्षत्रियों की एक जाति। कछवाहे राजपूतों की एक शाखा। इ०—शेखावत राजा रह्यो, रह्यो पुरोहित तास। करमैती हुहिता रही, ताही की छवि-रास।—रघुराज।

विशेष—कं ते हैं कि किसी मुसलमान शेख या फकीर की तुलना से इस संज्ञा के प्रयुक्त उत्पन्न हुए थे जिनका नाम इसी कारण शेखा जी पड़ा। जयपुर राज्य के अंतर्गत शेखावादी नामक स्थान में इस शाखा के राजपूत वसते हैं।

शेखी-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) गर्व। अहंकार। घमंड। (२) धान। पेंड। अकड़। (३) अमिमान भरी बात। धींग।

मुहा०—शेखी बघारना, हँकना या मारना = नद बंद कर बाँते करना। अमिमान से भरी बातें बोलना। धींग मारना। शेखी सहना या निकलना = गर्व पूर्ण होना। मान खरट होना। येना बंद पाना या हानि सहना कि अमिमान दूर हो जाय।

शेखीबाज-वि० [ अ० शेखी + अ० बाज ] (१) अमिमान। घमंडी। (२) धींग मारनेवाला व्यक्ति।

शेखघंटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दंती। उदुंबरपर्णी।

शेख-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुरुष की हृदय। ह्रिग। शिखर।

शेखाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेवार। सौवाल।

शेफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] ह्रिग। शिखर।

शेफालि, शेफालिका, शेफाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] निर्गुंडी। नील सिंधुवार का पौधा।

शेयर-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) हिस्सा। भाग। सौदा। बाँट। (२) किसी कार वार में लगी हुई पूँजी का अलग हिस्सा जो उसमें शामिल होनेवाला हर एक भादमी लगावे।

शेर-संज्ञा पुं० [ अ० ] [ स्त्री शेरनी ] (१) बिल्ली की जाति का सब से बर्बर प्रसिद्ध हिंसक पशु। बाघ। ब्याघ्र। नाहर। वि० दे० "बाघ"।

यी०—शेर बघर, शेरबधा, शेरमर्द।

मुहा०—शेर का कान = भाँग धानने का कपटा। (भाँग) (धिरान) शेर करना = पतो बड़ा कर शेरानी तेज करना। शेर होना = निर्भय और शूर होना। डर या दाब में न रहना। स्वेच्छाचारी और बहद होना।

(२) अत्यंत धीर और साहसी पुरुष। यदा बहादुर भादमी। (लाक्षणिक)

संज्ञा पुं० [ अ० ] फारसी, उर्दू आदि की कविता के दो चरण।

शेर गुलाबी-संज्ञा पुं० [ अ० ] गहरा गुलाबी रंग।

शेर-बूँद-वि० [ अ० ] (१) जिसका मुँह शेर का सा हो। (२) जिसके छोरों पर शेर का मुँह बना हो।

संज्ञा पुं० (१) यह जिसकी घुंटी शेर के मुँह के आकार की पनी हो। (२) यह मकान जो भागे की ओर चौड़ा और पीछे की ओर पतला या संकरा हो। (३) पुराने रंग की एक प्रकार की बूँद।

शेरपंजा-संज्ञा पुं० [ अ० शेर + हि० पंजा ] शेर के पंजे के आकार का एक अन्न। बघनहा।

शेरबधा-संज्ञा पुं० [ अ० + हि० ] (१) शेर का बघा। (२) धीर पुरुष। पराक्रमी पुरुष। बहादुर भादमी। (३) एक प्रकार की छोटी बूँद।

शेरबघर-संज्ञा पुं० [ अ० ] सिंह। कैसरी।

शेरमर्द-वि० [ अ० ] बहादुर। धीर।

शेरमर्दी-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] बहादुरी। धीरता।

शेरवानी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] अंग्रेजी टंग की बट का एक प्रकार का बाँगा।

विशेष—यह घुटनों तक लंबा होता है। इसमें बालावर, कली और चौबगळे काट कर नहीं लगाए जाते। भागे जिस ओर घटन लगाया जाता है, उसके नीचे का भाग भाग अधिच चौड़ा होता है जिसमें बंद या झुक लगा कर दूसरे भाग के नीचे करके बाँधते या बंद करते हैं। मुसलमानों में इसका रवाज अधिक है।

शेला-संज्ञा पुं० दे० "शेख"।

शेलाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] लिसोदा। लभेरा। बहुवार वृक्ष।

शेलामुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रीकल। विल्व वृक्ष। (२) एक प्रकार का फल।

शेलु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लिसोदा। लभेरा। (२) बनमेयी नामक श्राक।

शेलुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लिसोदा। (२) मेयी। (३) लोच वृक्ष।

शेलुका-संज्ञा पुं० [ सं० ] बनमेयी।

शेलुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का लिसोदा।

शेखरिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुलदाउरी।

श्रेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उन्नति । (२) ऊँचाई । (३) धन संपत्ति । (४) शिवा । श्रेयः । (५) मङ्गली । (६) सर्प । (७) अग्नि का एक नाम ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] हुआमत बनाने का काम । शौर कर्म ।

क्रि० प्र०—काना ।—कराना ।—हीना ।

श्रेयधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] निधि । खजाना ।

श्रेयसा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेवार । शैवाल ।

श्रेयलिन-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( जिसमें सेवार हो ) नदी ।

श्रेयास-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेवार । सेवाङ्क ।

श्रेयासी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आकाश माँझी । बटा मासी का एक भेद ।

श्रेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो कुछ भाग निकल जाने पर रह गया हो । बची हुई वस्तु । बाकी । (२) वह शब्द जो किसी वाक्य का अर्थ करने के लिये ऊपर से लगाया जाय । अस्वाहार । (३) यद्दी संख्या में से छोटी संख्या घटाने से बची हुई संख्या । बाकी । (४) समाप्ति । अंत । श्रुतमा । (५) परिणाम । फल । (६) आरक वस्तु । यादगार की चीज़ । (७) मरण । नाश । (८) पुराणानुसार सृष्टि फलों के सर्पराज जो पाताल में हैं और जिनके फलों पर पृथ्वी ठहरी है ।

विश्रेय—ने 'अनंत' कहे गए हैं और विष्णु भगवान क्षीर सागर में इन्होंने के ऊपर दायन करते हैं । विष्णु पुराण में श्रेय, वायुकि और वक्षक तीनों कट्टे के पुत्र माने गए हैं । पाताल के राजा कहीं वायुकी कहे गए हैं और कहीं श्रेय । कुछ पुराणों के अनुसार गर्ग ऋषि ने ज्योतिष विद्या इन्होंने से पढ़ाई थी । लक्ष्मण और बलराम श्रेय के अवतार कहे गए हैं ।

(९) लक्ष्मण । उ०—सोहस श्रेय सहित रामचंद्र कुमा लय जीति के समर सिंधु संचिद्र सुधागो है ।—हेराव । (१०) बलराम । (११) एक प्रजापति का नाम । (१२) दिग्गजों में से एक । (१३) अनंत । परमेश्वर । (१४) विंगल में दगल के पवित्र भेद का नाम । (१५) छप्पय छंद के पचीसवें भेद का नाम जिसमें ४९ गुरु, ९० लघु, कुल १०६ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं । (१६) हाथी । (१७) जमाळ गोटा ।

वि० (१) जो कुछ भाग निकल जाने पर रह गया हो । बचा हुआ । बाकी । (२) अंत को पहुँचा हुआ । समाप्त । तुलम । शैते,—कार्य शेष होना । उ०—वाले करत शेष निजि भाई ऊधो गए अस्तमान ।—सूर । (३) अतिरिक्त । और । दूसरे ।

श्रेयजाति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गणित में बचे हुए अंक को लेने की क्रिया ।

श्रेयघर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (श्रेय अर्थात् सर्प को धारण करनेवाले) शिपजी । उ०—श्रेयघर नाम मुख मझ विष्णु इनको कहेवर ती काल को कवठ है ।—केशव

श्रेयनाग-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्पराज श्रेय । वि० दे० "श्रेय" (८) ।

श्रेयरत्न-संज्ञा पुं० दे० "शेखर" ।

श्रेयराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक धरण में दो मगल होते हैं । विद्युत्सेवा ।

श्रेयरात्रि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रात का रिछम पहर । रात्रि का अंतिम पाम ।

श्रेयष ।—संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में अनुमान का एक भेद । कार्य के देखकर कारण का निष्पत्ति । शैते,—मर्ी की याद देलकर ऊपर हुई वर्षों का अनुमान ।

श्रेयशापी-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रेयशापी श्रेय नाग पर दायन करनेवाले, विष्णु ।

विश्रेय—पुराणों के अनुसार प्रलय काल में विष्णु भगवान तीनों छोकों को अपने पेट में धारण कर क्षीर सागर में श्रेयनाग की धारणा बनाकर उस पर दायन करते हैं । कुछ काल के उपरांत उनकी नाभि से एक कमल निकलता है जिस पर ब्रह्मा की कल्पित होती है और सृष्टि का क्रम फिर से चलता है ।

श्रेयाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बचा हुआ अंश । अवशिष्ट भाग । (२) अंतिम अंश । आखिरी भाग ।

श्रेया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवता को चढ़ी हुई वस्तु जो दर्शकों या उपासकों को बाँटी जाय । प्रसाद ।

श्रेयाचल-संज्ञा पुं० [ सं० ] दक्षिण का एक पर्वत । उ०—मुरि सुनीता श्रेयाचल माहीं । धीठे भागे धरि पटकहाँ ।—रघुराज ।

श्रेयोक्त-वि० [ सं० ] अंत में कहा हुआ ।

श्रेय्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्लोक । सिकहर । छीका ।

श्रेय्यायस-संज्ञा पुं० [ सं० ] हृषपात छोटा ।

श्रीक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] आचार्य के निकट रहकर शिक्षा प्राप्त करनेवाला शिष्य ।

श्रीक्षिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिक्षा विषय का जागनेवाला । "शिक्षा" का ज्ञाता ।

श्रीक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] पतित मात्स्य की संतान । (स्मृति)

श्रीक्षरिक, श्रीक्षरेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] भोगा । अरामार्ता । विषयवा । सृष्टीरा ।

श्रीप्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सदिग्धन के धीम । शिष्यधीम ।

श्रीध, श्रैधय-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीप्रता । जलदी ।

वि० ज्योतिष के योग से संघ रहनेवाला ।

श्रीतान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ईश्वर के सम्मार्ग का विरोध करनेवाली शक्ति या देवता । समोगुण-मय देवता जो मनुष्यों

को बहक कर धर्म मार्ग से अग्र करने के प्रयत्न में रहा करता है ।

**विशेष**—यहूदी, ईसाई और इस्लाम तीनों पैगंबरी मतों में दो परस्पर विरुद्ध शक्तियाँ मानी गई हैं—एक सत् दूसरी असत् । सत्स्वरूप ईश्वर के मंगल विधान में, असत् शक्ति सदा विघ्न डालने में तत्पर रहती है। आदि पैगम्बर मूसा ने तोरत में लिखा है कि पहले आदम और हौवा ईश्वर की आज्ञा में रहकर बड़े आनन्द से स्वर्ग के विधान में रहा करते थे । शैतानाने हौवा को बहका कर ज्ञान का वह फल खाने के लिये कहा जिसका ईश्वर ने निषेध किया था । इस अपराध पर आदम और हौवा स्वर्ग से निकाल दिए गए और इस पृथ्वी पर आए । इन्हीं से यह मनुष्य-सृष्टि चली । ऐसा लिखा है कि शैतान भी पहले ईश्वर या खुदा का एक कतिबता (शरिपद) था । जब ईश्वर ने आदम या मनुष्य उत्पन्न किया, तब वह ईश्यांवता ईश्वर से विद्रोही हो गया और उसकी सृष्टि में हवात करने लगा । ईश्वर ने उसे स्वर्ग से निकाल कर नरक में भेज दिया जहाँ का वह राजा हुआ । सत् और असत् इन दो नियम शक्तियों की भावना यहूदियों के पैगम्बर मूसा को खालिदियों (बाबुलवालों) और परसीकों आदि प्राचीन सम्प्रजातियों से मिली थी । ज़रतुस्त ने भी भावस्ता में अहुरमज़द (सत् शक्ति) और अज़मान (असत् शक्ति) दो शक्तियाँ कही हैं ।

**मुहा०**—शैतान काकान में कूकना = शैतान का बहकाना । शैतान का धक्का = दुर्गति । दुष्ट प्रेरणा । शैतान का बच्चा = बहुत दुष्ट आदमी । शैतान की आँत = बहुत लंबी वस्तु । शैतान की खाला = बहुत दुष्ट या पाजी बीरत । (गाली)  
(२) दुष्ट देवयोनित् । भूत । प्रेत ।

**मुहा०**—शैतान चढ़ना या लगना = भूत प्रेत का आवेग होना । प्रेत का माव पचना ।

(३) बहुत ही दुष्ट या क्रूर मनुष्य । घोर अपराधकारी । (काश्तिक) (४) बहुत ही नटवट मनुष्य । बहुत बारा-रती आदमी । (काश्तिक) (५) क्रोध । तामस । गुरखा । (६) झगडा । टंटा । फसाद । उपद्रव ।

**मुहा०**—शैतान उठाना = जगसा खड़ा करना । उपद्रव मचाना ।

**शैतानी**—संज्ञा स्त्री० [ प्र० शैतान ] दुष्टता । शरासत । पाजीपन ।

वि० (१) शैतान संबंधी । शैतान का । जैसे,—शैतानी गोल ।

(२) नटवट से यात । दुष्टतापूर्ण । जैसे,—शैतानी हरजत ।

**शैतय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शीत । ठंडक ।

**शैतियहय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिथिल होने का भाव । शिथिलता । डिहाई । (२) तत्परता का अभाव । फुरती का न होना । सुस्ती ।

**शैतय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिनि का पुत्र सात्यकि नामक धीर योद्धा जो कृष्ण का सारथी था ।

**शैतय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिनि के पंचाज जो क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गए थे ।

**शैरिफ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] नीले फूल की कटसरीया ।

**शैल**—वि० [ सं० ] (१) शिला संबंधी । पथर का । (२) पथरीला । चटानी । (३) कड़ा । कठोर ।

संज्ञा पुं० (१) पर्वत । पहाड़ । उ०—दीर्घों द्वारि शैल से भू पर पुनि जल भीतर टारयो ।—सूर । (२) चटान । (३) छरीला । शैलेय । (४) रसीत । रसवत । (५) शिखरजित । (६) लिखोदा । बहुवार ।

**शैलकंपी**—संज्ञा पुं० [ सं० शैलकंपि ] (१) स्कंद का एक अनुचर । (२) एक दानव ।

**शैलक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] छरीला । शैलेय ।

**शैलकटक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पहाड़ की ढाल ।

**शैलकम्पा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पार्वती ।

**शैलकुमारो**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पार्वती । उ०—पुनि चदि नंदी चले पुरारी । पालि जोरि तब शैलकुमारो ।—चुरात्र ।

**शैलगंगा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोवर्द्धन पर्वत की एक नदी जिसमें श्रीकृष्ण ने सब तीर्थों का आनाहान किया था । उ०—इन्हहिं भादि तीरथ सकल शैलगंग प्रति आदि । जेहि दरसे परसे पाम गति कहैं मानव जाहि ।—गोपाल ।

**शैलगंध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शबर चंदन । शबर चंदन ।

**शैलगर्भा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सिंहली पीपल । (२) पखान भेद । पथरचूर ।

**शैलज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पथर फूल । छरीला ।

**शैलजा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) (पर्वत से उत्पन्न) पार्वती । दुर्गा । (२) सिंह पिपली । (३) गज पिपली । (४) पापाज भेद ।

**शैलजात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] छरीला । पथरफूल ।

**शैलजाता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गोल मिर्च । काली मिर्च । (२) गज पिपली ।

**शैलतटी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पहाड़ की तराई । उ०—जब यह मेरे साथ टहलने शैलतटी में जाता था । अपनी असत् मयी वाणी से प्रेम सुधा बरसाता था ।—धीर ।

**शैलधन्वा**—संज्ञा पुं० [ सं० शैलधन्व ] महादेव । शिव ।

**शैलधर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गिरिधर । श्रीकृष्ण ।

**शैलधानुक**, **शैलधानुज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाजित । शिलाजीत ।

**शैलानंदिनो**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पार्वती ।

**शैलानिर्यास**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाजित । शिलाजीत ।

**शैलपति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हिमालय पहाड़ ।

शैलपत्र-छंदा पुं० [ सं० ] वेद । विषय वृद्ध ।  
 शैलपुत्री-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) पार्वती । (२) नौ दुर्गाओं में से एक दुर्गा का नाम । (३) गंगा नदी ।  
 लघुपत्र-उद्गा पुं० [ सं० ] शिलाग्र । शिलागीत ।  
 शैलपौत्र-छंदा पुं० [ सं० ] शिलागीत । शैला ।  
 शैलभेद-छंदा पुं० [ सं० ] पलान भेद ।  
 शैलमहली-छंदा स्त्री० [ सं० ] कुत्रज । कोरिया ।  
 शैलरंज-छंदा पुं० [ सं० ] गुफा ।  
 शैलराज-छंदा पुं० [ सं० ] हिमालय पर्वत ।  
 शैलरोही-छंदा पुं० [ सं० ] मोगरा चावल ।  
 शैलवल्कला-छंदा पुं० [ सं० ] पापाण भेद । इवेत पापाण ।  
 शैलशिविर-छंदा पुं० [ सं० ] समुद्र । सागर ।  
 विशेष-कहते हैं कि जब इंद्र ने पर्वतों पर चढ़ाई की थी, तब कुछ पर्वत समुद्र में जा छिपे थे । इन्हीं से समुद्र का यह नाम पड़ा है ।  
 शैलसंभव-छंदा पुं० [ सं० ] शिलागीत ।  
 शैलसंभूत-छंदा पुं० [ सं० ] गेरू ।  
 शैलसुता-छंदा स्त्री० [ सं० ] पार्वती ।  
 शैलाक्ष-छंदा पुं० [ सं० ] पथर कूल । छीला ।  
 शैलाट-छंदा पुं० [ सं० ] (१) पहाड़ी भारमी । परवतिया । (२) किरात । (३) सिंह । (४) एकटिक । बिलौरी ।  
 शैलादि-छंदा पुं० [ सं० ] शिव के गण, नंदी ।  
 शैलान-छंदा पुं० [ सं० ] विश्वेश्वर में से एक ।  
 शैलासी-छंदा पुं० [ सं० ] शिलाही । नट ।  
 शैलाह-छंदा पुं० [ सं० ] शिलागीत ।  
 शैलिक-छंदा पुं० [ सं० ] शिलागीत ।  
 शैलिपत्र-छंदा पुं० [ सं० ] सर्वोद्गीत ।  
 शैली-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) चाऊ । डब । टेंप । (२) परिवारी । प्रणाली । तर्ज़ । तरीका । (३) रीति । प्रथा । रस रथाग । (४) लिखने का टेंप । वाक्य रचना का प्रकार । ड०—शैली श्रेष्ठ कवीन की, गुण को गुण है जीन । ताको चरित बलानि कै, यहै होय मति तीन ।—धुराज । (५) कठोरता । कड़ाई । सखी ।  
 शैल-छंदा पुं० [ देश० ] लिखोदा । कमेरा ।  
 छंदा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की चटाई जिसका व्यवहार दक्षिण और गुजरात में होता है ।  
 शैलू-छंदा पुं० [ सं० ] (१) यहुवार वृद्ध । लिखोदा । कमेरा । (२) कमलकंद । मसींद ।  
 शैलूओ-छंदा स्त्री० [ सं० ] कमलकंद । मसींद ।  
 शैलू-छंदा पुं० [ सं० ] (१) शमित्य करनेवाला । नाटक खेळनेवाला । नट । (२) गंधर्वों का स्वामी, रोहितण । (सागापण) (३) पूर्ण । (४) विषय वृद्ध । वेद ।

शैलू-मूयर्ष-छंदा पुं० [ सं० ] इरताळ ।  
 शैलूयिक-छंदा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शैलूयिकी ] नट वृत्ति से जीवन निर्वाह करनेवाली एक जाति । शिलाही । नट ।  
 शैलू-छंदा पुं० [ सं० ] हिमालय ।  
 शैलू-छंदा पुं० [ सं० ] भोज-पत्र ।  
 शालेय-विं० [ सं० ] (१) पत्थर का । पथरीला । (२) पहाड़ी । (३) पत्थर से उरपथ ।  
 छंदा पुं० (१) दे० "छरीला" । (२) शिलागीत । (३) मूसली । टाळपणी । (४) संधा नमक । (५) सिंह । (६) भ्रमर ।  
 शैलेयक-छंदा पुं० दे० "शैलेय" ।  
 शैलेयी-छंदा स्त्री० [ सं० ] पार्वती ।  
 शैलेवर-छंदा पुं० [ सं० ] शिव । महादेव ।  
 शैलीदा-छंदा स्त्री० [ सं० ] उत्तर दिशा की एक नदी । (बलमीकि रामा०; महाभारत ।)  
 शैलीदा-छंदा स्त्री० [ सं० ] पापाण भेद । छुद्र पापाण ।  
 शैल्य-विं० [ सं० ] (१) पत्थर का । (२) पथरीला । (३) कड़ा । कठोर ।  
 शैय-विं० [ सं० ] शिव संबंधी । शिव का । जैले,—शैय दर्शन ।  
 छंदा पुं० (१) शिव का अनन्य उपासक । महादेव का नमक । विशेष—उपासना-भेद से भाषुनिक हिंदू धर्म में तीन मुख्य संभेद प्रचलित हैं—शैव, शाक्त और वैष्णव । शैव लोग परमेश्वर को शिव-रूप ही मानते हैं । उनके अनुसार शिव ही सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार तीनों करते हैं । पूजा के लिये शिव की प्रतिमा नहीं बनाई जाती; छिग ही उनका प्रतीक माना जाता है । विशेष दे० "छिग" । शैव लोग शरीर में भस्म लगाते, गले में रुद्राक्ष की माला पहनते और माथे पर त्रिशुल ( तीन भाद्वी रेखाएँ ) लगाते हैं । दैवों के अनेक भेद हैं जो अधिकतर दक्षिण में पाए जाते हैं । काश्मीर में भी शैव मत का विशेष रूप से प्रचार था । द्रोकाराचार्य के अनुसार भी अद्वैतवादी भी उपासना-क्षेत्र में शैव ही होते हैं । शिव की उपासना भारत तथा उसके निकटवर्ती देशों में बहुत प्राचीन काल में भी प्रचलित थी । वैशाख, तिजवत आदि में बौद्ध धर्म के साथ उसमें मिश्रि हुई शिव की उपासना बहुत दिनों से प्रचलित चली आती है । ईसा के पूर्व के सिक्कों में भी त्रिशुल, नंदी आदि पाए जाते हैं । ऐसे सिक्के सुरासान तक में पाए गए हैं । राजों और हुणों में भी शैव धर्म प्रचलित था । (२) पाशुपत भव । (३) धूर्ता । (४) वासक । अहृसा । (५) दौर्बल्य कृष्ण । वासुदेव । ( ६ ) शैव )  
 शैयपत्र-छंदा पुं० [ सं० ] विषय वृद्ध, जिसकी पत्तिवाँ शिव पर चढ़ती है । वेद ।



शैवपुराण-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव पुराण ।  
 शैवमल्लिकार्जुन-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किंगिनी लता । वैद्यपुरिया ।  
 शैवल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पञ्चाङ्ग । पद्यकाण्ड । पदुमास । (२) सेवार । (३) एक पर्वत । (४) एक नाम का नाम । (बीर  
 शैवलिनो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी ।  
 शैवाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिवार । सेवार ।  
 शैवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पार्वती । (२) मानसा नाम की देवी । (३) इक्ष्वाणु । मंगल ।  
 शैव्य-वि० [ सं० ] शिव या शिवी संबंधी ।  
 संज्ञा पुं० (१) पांडवों का एक सेनापति । (२) श्रीकृष्ण का एक घोड़ा ।  
 शैव्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंद्रकौशिक के अनुसार अयोध्या के सत्यमती राजा हरिश्चंद्र की रानी का नाम ।  
 शैशव-वि० [ सं० ] (१) शिशु संबंधी । बच्चों का । (२) बाल्यावस्था संबंधी ।  
 संज्ञा पुं० (१) अनजान बालक की अवस्था । यवपत्र । (२) बच्चों का सा व्यवहार । लक्ष्मण ।  
 शैशिर-वि० [ सं० ] (१) शिशिर संबंधी । (२) शिशिर में स्नान ।  
 संज्ञा पुं० (१) ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवक्तृ एक ऋषि का नाम । (२) कृष्ण चातक पक्षी । काले रंग का पपीहा ।  
 शशिरीय (शाखा)-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ऋग्वेद की साठहत्तर शाखाओं में से एक ।  
 शैशुनाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] मगध के प्राचीन राजा शिशुनाग का वंशज ।  
 शास्त्रीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जाति का नाम ।  
 शोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] हृष्ट के नाश और अगिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न मनोविकार । किसी मिय व्यक्ति के अनाथ या पीड़ा आदि से अथवा दुःखदायी घटना से उत्पन्न शोक । रंज ।  
 शोक ।  
 विशेष-साहित्य में 'शोक' नौ स्थायी भावों में से एक है और करण रस का मूल है । पुराणों में 'शोक' मृत्यु का पुत्र कहा गया है ।  
 शोककारक-वि० [ सं० ] शोक उत्पन्न करनेवाला ।  
 शोकघ्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] अशोक वृक्ष ।  
 शोकनाशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अशोक वृक्ष ।  
 शोकहर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक छंद का नाम । इसके प्रत्येक पद में ८, ८, ८, ८ के चित्रान से (अंत गुरु सहित) तीस मात्राएँ होती हैं । प्रत्येक पद के दूसरे, चौथे और छठे चौकल में जगण न पड़े । इसको शुभंगी भी कहते हैं ।  
 शकटारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वग बर्षी । अन्नगंधा ।  
 शोकाकुल-वि० [ सं० ] शोक से व्याकुल ।

शोकातुर-वि० [ सं० ] शोक से व्याकुल ।  
 शोकारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्म । कर्म वृक्ष ।  
 शोकात्त-वि० [ सं० ] शोक से विकल ।  
 शोकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रात्रि । रात ।  
 शोकोपहत-वि० [ सं० ] शोक से विकल ।  
 शोष-वि० [ भा० ] (१) डीठ । छट । मगध । (२) शरीर । नष्ट । (३) चंचल । चपल । (४) जो मंद या धूमिल न हो । गहरा और घमकदार । चटकीला । जैसे,—शोष रंग । शोषी-संज्ञा स्त्री० [ भा० ] (१) धृष्टता । विद्याई । (२) चंचलता । चपलता । (३) वैजी । चटकीलापन । जैसे,—रंग की शोषी ।  
 शोच-संज्ञा पुं० [ सं० शोचन ] (१) दुःख । रंज । अन्नसोस । (२) चिंता । फिक्र । खटका ।  
 शोचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० शोचनीय, शोचित्य, शोच्य ] (१) शोक करना । रंज करना । (२) चिंता करना । (३) शोक । रंज ।  
 शोचनीय-वि० [ सं० ] (१) शोक करने योग्य । जिसकी दुःख देखकर दुःख हो । (२) जिससे दुःख उत्पन्न हो । बहुत हीन या शूरा ।  
 शोचि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लौ । छपट । (२) वीसि । चमक । (३) वर्ण । रंग ।  
 शोचिष्केश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि । (२) सूर्य । (३) चित्रक वृक्ष । चीता ।  
 शोशीर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] बल वीर्य । पराक्रम ।  
 शोठ-वि० [ सं० ] (१) मूर्ख । बेवकूफ । (२) नीच । छोटा । (३) भाङ्गी ।  
 शोथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लाल रंग । (२) छाडी । अरगता । (३) अग्नि । आग । (४) सिंदूर । सेंदुर । (५) रक्त । रुधिर । खून । (६) पञ्चाराग मणि । मानिक । (७) रक्त पुनर्नवा । लाल गद्दहूरना । (८) सोना पाठा । (९) लाल गदा । (१०) एक नद का नाम । वि० दे० "सोत" ।  
 शोथक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोना पाठा । (२) लाल गद्दहूरना । (३) लाल गदा ।  
 शोथगिरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पहाड़ी का नाम जिस पर मगध देश की पुरानी राजधानी 'राजगृह' थी ।  
 शोथमिंटिका, शोथमिंटो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली कटहरवा ।  
 शोथपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] रक्त पुनर्नवा । लाल गद्दहूरना ।  
 शोथपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] लाल कमल ।  
 शोथपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] कृष्णार । कोविदार वृक्ष ।  
 शोथपुत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिंदूरपुत्री । सेंदुरिया ।  
 शोथमन्दा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोन नदी ।  
 शोथरत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] मानिक । लाल ।

शोणसंभव-रंघा पुं० [ सं० ] विरला सूक्ष्म । विरपली सूक्ष्म ।  
 शोणानु-रंघा पुं० [ सं० ] प्रकृत काष्ठ के मेघों में से पृष्ठ मेघ ।  
 शोणानु-रंघा स्त्री० [ सं० ] (१) सोन नदी । (२) काष्ठ कटसरैया ।  
 शोणित-वि० [ सं० ] छाल । रक्त वर्ण का ।

रंघा पुं० (१) रक्त । क्विचि । लून । (२) पीलों का रस ।  
 (३) केसर । आकानन । (४) हँसुर । विंगरफ । (५) ताम्र  
 धातु । ताँबा । (६) मृगदेशर ।

शोणितचंदन-रंघा पुं० [ सं० ] छाल चंदन ।  
 शोणितपुर-रंघा पुं० [ सं० ] वाणासुर की राजधानी ।  
 शोणितमेह-रंघा पुं० [ सं० ] छाल प्रमेह ।  
 शोणितशर्करा-रंघा स्त्री० [ सं० ] शहद की बीनी ।  
 शोणितानु-रंघा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सूक्ष्म रोग जिसमें  
 लिंग पर कुंसिर्वा निकलती हैं ।

शोणितार्श-रंघा पुं० [ सं० ] शाल्व की पलक एक रोग जिसमें  
 पलकों की कोर पर कोमल और छाल रंग का मांस का  
 अंकुर उदयमान होता है ।

शोणितानु-रंघा पुं० [ सं० ] केसर । कुंडुम ।  
 शोणितोपल-रंघा पुं० [ सं० ] मानिक । छाल ।  
 शोणोपल-रंघा पुं० [ सं० ] मानिक । छाल ।

शोध-रंघा पुं० [ सं० ] (१) किसी भंग का फूलना । सूजन ।  
 वरम । (२) भंग में सूजन होने का रोग । वरम ।

विशेष—जय दूधित रक्त, पित्त या कफ कुचित वायु से नष्टों  
 में पड़ हो जाता है, तब सूजन होती है । शोध तीन प्रकार  
 का कहा गया है—वातज, पित्तज और कफज । आमाशय में  
 शोध होने से छाती के ऊपर, पक्षाघात में डोले से छाती के  
 नीचे और मलाशय में होने से कमर से पैर तक सारे शरीर  
 में शोध होता है । शरीर के मध्य भाग या सर्वांग का शोध  
 कष्टसाध्य कहा गया है । जो शोध केवल अर्धांग में उदयमान  
 होकर ऊपर की ओर बढ़ता हो, वह प्रायः घातक होता है ।  
 पर पांडु भादि रोगों में पैर से ऊपर की ओर बढ़नेवाला शोध  
 घातक नहीं होता । चिप्यों की कुष्ठि, उदर, गर्भस्थान या गले  
 का शोध असाध्य होता है । जो शोध बहुत भारी और कड़ा  
 हो और जिसमें दवांस, प्यास, दुर्बलता, अल्पि भादि उपद्रव  
 भी उत्पन्न हों, वह भी असाध्य कहा गया है ।

शोधक-रंघा पुं० [ सं० ] (१) दे० "शोध" । (२) मुरदा संग ।  
 शोधप्रो-रंघा स्त्री० [ सं० ] (१) गदहदराना । पुनर्नवा । (२)  
 शालवर्णा । हरिद्वय ।

शोधमित-रंघा पुं० [ सं० ] (१) शिलावा । मझातक । (२)  
 पुनर्नवा ।  
 शोधनिक्ष-रंघा पुं० [ सं० ] पुनर्नवा ।  
 शोधहन्-रंघा पुं० [ सं० ] शिलावा ।  
 शोधारि-रंघा पुं० [ सं० ] पुनर्नवा । गदहदराना ।

४५४

शोयद्वय-वि० [ सं० ] जिसे शुद्ध करना हो । शोधने योग्य ।  
 शोध-रंघा पुं० [ सं० ] (१) मुट्टि संस्कार । सफाई । (२)  
 ठीक किया जाना । दुष्टस्ती । (३) चुकता होना । मरना  
 होना । बेबाक होना । शैथे,—कण का शोध होना । (४)  
 जाँच । परीक्षा । (५) खोज । हँस । तलाश । अनुसंधान ।  
 अन्वेषण ।

शोधक-रंघा पुं० [ सं० ] (१) शोधनेवाला । श०— संसार को  
 बहूधा विरोध कुचित शोधक जानि । ताई भई वह नाति  
 सो कण्ठा सली सुख मानि ।—केसाव । (२) सुधार करने-  
 वाला । सुधारक । (३) हँसनेवाला । शोधनेवाला । (४)  
 यह संशय जिसे घटाने से ठीक वर्गमूल निकले । (गणित) ।

शोधन-रंघा पुं० [ सं० ] [ वि० शोधित, शोधन्य, शोध, शोद्य ]  
 (१) शुद्ध करना । साफ़ करना । (२) दुष्टत्व करना । ठीक  
 करना । सुधारना । (३) धातुओं का औषध रूप में व्यवहार  
 करने के लिये संस्कार । शैथे,—पारद का शोधन । (४) छान  
 चीन । जाँच । (५) खोजना । हँसना । तलाश करना ।  
 अनुसंधान करना । (६) ऋण चुकाना । भुगतान करना । बेबाक  
 करना । (७) किसी वाप से शुद्ध होने का संस्कार । प्रायश्चित्त ।  
 (८) चाक सुधारने के लिये हँस । सत्ता । (९) हटाकर साफ़  
 करना । सफाई के लिये दूर करना । साफ़ करना । (१०)  
 दस्त छाकर कोटा साफ़ करना । विरेचन । (११) मुरदा  
 संग । कंकुष्ट । (१२) मल । विष्टा । (१३) घटाना ।  
 निकालना । (गणित) (१४) नीच । (१५) हीरा कठीस ।

शोधनक-रंघा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल के म्हायालय या धर्म-  
 सभा का स्थान साफ़ और ठीक करनेवाला कर्मधारी ।

शोधना-किं० सं० [ सं० शोधन ] (१) शुद्ध करना । साफ़ करना ।  
 मैला भादि निकाल कर स्वच्छ करना । (२) दुष्टत्व करना ।  
 ठीक करना । मुट्टि या शोध नूर करना । सुधारना । शैथे,—  
 लेख शोधना । (३) औषध के लिये धातु का संस्कार करना ।  
 शैथे,—पारा शोधना । (४) हँसना । खोजना । तलाश  
 करना । श०—प्राहवळ, लडा, नक्षत्र शोधि कीनी वेद-  
 प्वलि ।—सूर ।

शोधनी-रंघा स्त्री० [ सं० ] (१) मार्जनी । झाड़ू । सुहारी । (२)  
 ताम्रपत्थी । (३) नील । (४) अदि नामक अटवर्गीय  
 भोगधि ।

शोधनीशुभ-रंघा पुं० [ सं० ] जमाल गोटे का बीज ।  
 शोधनीय-वि० [ सं० ] (१) शुद्ध करने योग्य । (२) चुकाने  
 योग्य । (३) हँसने योग्य ।

शोधयाना-किं० सं० [ सं० शोधना + याना (प्रत्य०) ] शोधने का  
 काम करना । शुद्ध करना । दुष्टत्व हटाना । (२) हँसवाना ।  
 तलाश कराना ।

शोधैया-रंघा पुं० [ हि० शोधना + यैया (प्रत्य०) ] शोधनेवाला ।

सुधारक । ४०—मंगल सदा ही करै राम युगलेश कहै राम  
रसिकावली शोधैया औ शोधैया को।—रघुराज ।

शोक-छंदा पुं० [ सं० ] शोध । सृजन ।

शोकश्री-छंदा स्त्री० [ सं० ] शोधश्री । रक पुनर्नवा ।

शोकनाशन-छंदा पुं० [ सं० ] शोधनाशन । नील का वृक्ष ।

शोकहारी-छंदा पुं० [ सं० ] जंगली बरगै का पौधा ।

शोकहृत-छंदा पुं० [ सं० ] मिठावर्ष । मध्याह्नक वृक्ष ।

शोफारि-छंदा पुं० [ सं० ] हाथीकंद । हस्तिकंद ।

शोबदा-छंदा पुं० [ अ० ] जादू । ईश्वराल । माया । नजरमंदी ।

शोम-वि० [ सं० ] शोभायुक्त । सुंदर । सजीला ।

छंदा पुं० (१) एक प्रकार के श्वेता । (२) एक प्रकार के नास्तिक ।

छंदा स्त्री० दे० "शोमा" ।

शोभक-वि० [ सं० ] सुंदर । सजीला ।

शोभत-वि० [ सं० ] (१) शोभायुक्त । सुंदर । सजीला । (२)

सुहावना । रमणीय । (३) उत्तम । अच्छा । भला । श्रेष्ठ ।

(४) उचित । उपयुक्त । सुहाता हुआ । (५) शुभ । मंगल-

दायक ।

छंदा पुं० (१) अग्नि का नाम । (२) शिव का नाम । (३)

दृष्टि योग । (४) ज्योतिष में निष्कंभक भादि सप्ताहस

योगों में से पंचमो योग । (५) ब्रह्म । (६) बृहस्पति का

ग्यारहवाँ संवत्सर । (७) २४ मात्राओं का एक छंद जिसमें

१४ और १० मात्रा पर वृत्ति होती है और अंत में जागण

होता है । इसका दूसरा नाम 'सिंहिका' है । (८) मालकोस

राग का पुत्र एक राग । (९) कमल । (१०) रँग । (११)

धामपुण । गहना । (१२) मंगल । कल्याण । शुभ । (१३)

धर्म । पुण्य । (१४) दीप्ति । सौंदर्य । (१५) सिंदूर ।

सिंदूर । (१६) कंकुठ ।

शोभक-छंदा पुं० [ सं० ] संहिजन या शोमोजन का वृक्ष ।

शोमना-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) सुंदरी स्त्री । (२) हलदी ।

हरिद्रा । (३) गोरोचन । (४) स्कंद की अनुचरी एक

मायुका ।

छंदा पुं० [ सं० शोभन ] शोभित होना । सोहना ।

शोभनिक-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का नट या अभिनयकर्ता

शोभनी-छंदा स्त्री० [ सं० ] पद्म रागिणी जो मालकोस राग की

स्त्री कही जाती है ।

शोभनीया-छंदा स्त्री० [ सं० ] गोरोचमुंदी ।

शोभाजन-छंदा पुं० [ सं० ] संहिजन का पेड़ ।

शोभा-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) दीप्ति । कांति । चमक । (२) छवि ।

सुंदरता । छटा । सजीलापन । श्विरेता ।

मुहा०—शोभा देना = अच्छा लगना । सुंदर लगना ।

(१) सजावट । (२) उत्तम गुण । (३) वर्ण । रंग । (४)

बीस अक्षरों का एक वर्णोद्धत जिसमें क्रम से गण, मण, दो गण, दो तण और दो गुरु होते हैं तथा ६, ७ और ७ पर वृत्ति होती है । (७) हलदी । हरिद्रा (८) गोरोचन । (९) फारसी संगीत में मुकाम की चिन्ता जो चौबीस होती है ।

शोमानक-छंदा पुं० [ सं० ] शोमानक वृक्ष । संहिजन ।

शोमान्वित-वि० [ सं० ] शोभा से युक्त । सुंदर । सजीला ।

शोभायमान-वि० [ सं० ] सोहता हुआ । सुंदर ।

शोभित-वि० [ सं० ] (१) शोभा से युक्त । सुंदर । सजीला । (२)

अच्छा लगता हुआ । सजा हुआ । (३) विद्यमान । उप-

स्थित । विराजता हुआ । जैसे,—सिंहासन पर शोभित

होना ।

शोर-छंदा पुं० [ का० ] (१) जोर की भावाज । हृष्टा । गुळ

गपादा । कोलाहल । ४०—(क) जहाँ तहाँ शोर मारी भीर

नर चारिन की सवही की छुटि गई छाज यहि भाइ कै।—

केशव । (ख) घननि की घोर सुनि मोरनि के शोर सुनि

सुनि केशव अलाप भाठी जन को।—केशव । (२) धूम ।

प्रसिद्धि । जैसे,—उसके बहूपन का शोर हो गया है ।

४८—आप द्वारका शोर कियो उन हरि हस्तिलापुर जाने ।

प्रयुक्त छरे सस दश दो दिन रंच द्वार जहि माने।—पूर ।

क्रि० प्र०—चरना।—मचना।—मचाना ।

यौ०—शोरगुळ ।

शोरधा-छंदा पुं० [ का० ] (१) किसी वधाकी हुई बहुत का पानी ।

शोक । जूस । रसा । (२) एक हुए मांस का पानी ।

शोरा-छंदा पुं० [ का० शोर ] एक प्रकार का क्षार जो मिट्टी में से

निकलता है ।

त्रिशोप—यह बहुत ठंडा होता है और इसी लिये पानी ठंडा करने

के काम में आता है । बारूद में भी इसका योग रहता है

और सुमार इससे गहने भी साफ करते हैं । सारी मिट्टी में

ब्यापारियों बनाकर इसे जमाते हैं । साफ किए हुए बड़िया शोरे

को कृष्ण शोरा कहते हैं ।

मुहा०—शोरे की पुतली = बहुत गरीबी ।

शोरा आलू-छंदा पुं० [ हि० शोप + आलू ] बन आलू ।

शोरापुरत-वि० [ का० ] लडाका । क्षणदाय । फसादी ।

शोरिश-छंदा स्त्री० [ का० ] (१) सलजली । हलजली । (२)

सलजा । मगवत । उपद्रव । दंगा ।

शोरी-छंदा पुं० [ का० शोर ] (१) फारसी संगीत में एक मुकाम

का गुण । (२) एक पंजाबी मसिख गवैया जिसने रूपा नाम

का गीत निकाळ था ।

शोला-छंदा पुं० [ दे० ] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत

हलकी होती है ।

त्रिशोप—पानी पर तैरनेवाले जाल में इसकी लकड़ी लगाई

जाती है। लकड़ी का सफेद हीर फूल, लिखीने तथा विवाह के मुकुट बनाने के काम में आता है।

शंका पुं० [ शं० ] भाग की लपट। उवाका।

शोकी-शंका की० [ शं० ] वन हल्दी। वन हरिद्रा।

शोलेप-शंका पुं० [ शं० ] एक प्रकार का भक्ष। (यावमीकि रा०)

शोशा-शंका पुं० [ शं० ] (१) निकली हुई भोक। (२) अद्भुत या अनोखी बात। चुटकुला। (३) क्षमादा खड़ा करनेवाली बात। (४) कगती बात। ध्वंग्य।

कि० प्र०—घोदना।

शोप-शंका पुं० [ शं० ] (१) मूलने का भाव। खुरक होना। रस या गीलापन दूर होने का भाव। (२) जीने का भाव। क्षय। (३) शरीर का घुलना या क्षीण होना। (४) एक रोग जिसमें शरीर सूखता या क्षीण होता जाता है। रागवधमा का भेद। क्षयी।

विशेष—पैचक में शोप रोग के छः कारण बताए गए हैं—

अधिक शोक, अनावस्था, अधिक मार्ग चलना, अधिक व्यायाम, अधिक खीमसंग, और हृदय में चोट लगना। इस रोग में शरीर क्षीण होता जाता है, भेद उबर और शक्ति रहती है, पसखी, छाती और कमर में पीड़ा रहती है तथा अतिसार भी हो जाता है।

(४) पथी का मुलंबी रोग। (५) खुरकी। सूक्ष्मपन।

शोपक-शंका पुं० [ शं० ] [ शी० शोपिका ] (१) जल, रस या सती क्षीयनेवाला। क्षोप्रनेवाला। (२) सुक्ष्मनेवाला। खुरक करनेवाला। (३) सुक्ष्मनेवाला। क्षीण करनेवाला। (४) नास करनेवाला। (५) दूर करनेवाला।

शोपकमे-शंका पुं० [ शं० ] बायली या ताडान भादि से पानी निकलवाना और उससे श्वेत विषवाना। (मैन)

शोपप्र-शंका पुं० [ शं० ] वन प्याज।

शोपण-शंका पुं० [ शं० ] [ शि० शोपी, शोपिन, शोपण्य ] (१) जल या रस क्षीयना। सोखना। (२) सुखाना। खुरक करना। सरी या गीलापन दूर करना। (३) हरापन या ताजापन दूर करना। (४) घुलाना। क्षीण करना। क्षय करना। (५) नास करना। दूर करना। न रहने देना। (६) कामदेव के एक वाग का नाम। (७) सौंड। झुंठि। (८) पदोनाक वृक्ष। सोमापना। (९) विष्पली। पीपल।

शोपणीय-शि० [ शं० ] सोखने योग्य।

शोपवितम्प-शि० [ शं० ] (१) जो सोसा जानेवाला हो। (२) जिसे सुखाना हो।

शोपसंभव-शंका पुं० [ शं० ] विपला मूल।

शोपहा-शंका पुं० [ शं० ] (शोप रोग का नास करनेवाला) भोगा। अनामार्ग। विचट्टा।

शोपापहा-शंका की० [ शं० ] मुलेठी।

शोपित-शि० [ शं० ] (१) सोखा हुआ। (२) सुखाया हुआ।

शोपी-शंका पुं० [ शं० शोपिन ] [ की० शोपिणी ] (१) सोखनेवाला। (२) सुखानेवाला।

शोहदा-शंका पुं० [ शं० शि० सं० + हुमद्र ] (१) व्यभिचारी। लंपटा। (२) गुंथा। बदमास। लुचा। (३) ठेक चिकनिया। बहुत बनाव दिगार करनेवाला।

शोहदापन-शंका पुं० [ शि० शोहरा + पन (अप०) ] (१) गुंथापन। लुचपापन। (२) छेडापन।

शोहरत-शंका की० [ शं० ] (१) नामवरी। यवाति। प्रसिद्धि। (२) खुरकेंडी हुई खबर। धूम। जनरव। जैसे,—शहर में शोहरत तो पेशी ही है।

शोहरा-शंका पुं० [ शं० शोहरत ] (१) यवाति। प्रसिद्धि। (२) धूम से फैली हुई खबर। जनरव। उ०—भने रघुपान दूत छागत भजनं मोदि, तोरिषो पिनाकी को पिनाक सुने शोहरा—रघुराज।

शोंग-शंका पुं० [ शं० ] भरद्वाज ऋषि का एक नाम जो शृंग के अरण्य थे।

शोंगिपुत्र-शंका पुं० [ शं० ] एक वैदिक आचार्य का नाम।

शोंगिय-शंका पुं० [ शं० ] (१) गदद। (२) वनेन पक्षी। शान।

शोड-शंका पुं० [ शं० ] (१) सुग्री। खुरकट पक्षी। (२) पुनेर। देवधाम्य। (३) वह जो मद्य पीकर मतवाला हुआ हो। मस्त। मद्य।

शोडता-शंका की० [ शं० ] मस्तता। धद-मस्ती।

शोडापन-शंका पुं० [ शं० ] प्राचीन काल की एक बोद्धा जाति का नाम।

शोडिक-शंका पुं० [ शं० ] [ शी० शोडिकी ] (१) प्राचीन काल की एक मसिद्ध जाति जिसका व्यवसाय मद्य बनाना और बेचना था। परासर पद्धति में इस जाति की उत्पत्ति कैवर्षो पिला और गायिक माता से लिखी है; और मनु ने कहा है कि इस जाति के आर्यी के घर भोजन नहीं करना चाहिए। (२) विष्पली मूल।

शोडिकमिय-शंका पुं० [ शं० ] आम।

शोडिकामार-शंका पुं० [ शं० ] शराय की वृक्षान। शराय पाना। हौडी। कष्टपरिहा।

शोडी-शंका पुं० [ शं० शोडिन ] प्राचीन काल की शोडिक नामक जाति।

शंका की० [ शं० ] पीपल। विष्पली। (२) चण्य। चटिका। कटमी वृक्ष। (३) मिर्च।

शोडीर-शि० [ शं० ] बहुत चर्म करनेवाला। अर्द्धकारी। अभिमानी।

शोक-शंका पुं० [ शं० ] (१) किसी पद की प्राप्ति या निर्वार भोग के लिये अथवा कोई कार्य करने रहने के लिये होने।

वाही तीम अभिलाषा या कामना । प्रवल लाकसा । जैसे,—  
मोटर का शौक, सफर का शौक, पाने पीने का शौक, नृत्य  
का शौक, किताबों का शौक ।

कि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

शुद्धा०—शौक करना = किसी वस्तु या पदार्थ का भोग करना ।  
जैसे,—संवाहू भा गाय, शौक कीजिए । शौक चराना या  
पेशा होना = मन में प्रबल कामना होना । (भयंभ) जैसे,—अब  
आरको भी घोड़े पर चढ़ने का शौक चराना है । शौक पूरा  
करना या मिटाना = किसी बात को प्रवल इच्छा की पूर्ति करना ।  
जैसे,—भाइए, आप भी दातरंज का शौक पूरा कर (मिटा)  
लीजिए । शौक करमाना = दे० “शौक करना” । शौक से =  
प्रसन्नता-पूर्वक । आनंद से । जैसे,—हाँ हाँ, आप भी शौक  
से चलिए ।

(२) आकांक्षा । लाकसा । हौसिला । जैसे,—मुझे आज  
तक इस बात का शौक ही रहा कि लोग तुम्हारी तारीफ  
करते । (३) व्यसन । चसका । चाट । जैसे,—(क) आज  
कल उसे धाराप का शौक हो गया है । (ख) आपको गंगा  
स्नान का शौक कब से हुआ ?

कि० प्र०—लगाना ।—लगाना ।—होना ।

(४) प्रवृत्ति । हुकाय । जैसे,—जरा आपका शौक तो  
देखिए, वेद पर चढ़ने चले हैं ।

शौक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुक-समुह । लोगों का हुंघ ।

शौकत-संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] टाठ याट । शान । वि० दे० “शान” ।

शौ०—शान शौकत ।

शौकर-संज्ञा पुं० दे० “शूकरक्षेत्र” ।

शौकरव-संज्ञा पुं० दे० “शूकरक्षेत्र” ।

शौकरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धाराहीकंद । गेंडी ।

शौकि-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रसक्त कृषि  
का नाम ।

शौकिया-कि० वि० [ प्र० ] शौक के कारण । शौक पूरा करने के  
छिन्ने । प्रवृत्ति के वक्ता होकर । जैसे,—(क) मुझे संवाहू  
पीने की आदत तो नहीं है; पर हाँ कभी कभी शौकिया पी  
लिया करता हूँ । (ख) उगई कोई जरूरत तो न थी; सिर्फ  
शौकिया फारसी सीप ही थी ।

वि० शौक से भरा हुआ । जैसे,—शौकिया सलाम ।

शौकीन-संज्ञा पुं० [ प्र० शौक + ईन (भव०) ] (१) वह जिसे  
किसी बात का बहुत शौक हो । शौक करनेवाला । चाब  
रखनेवाला । जैसे,—आप गाने पढ़ाने के बड़े शौकीन हैं ।  
(२) वह जो सदा ठैला बना रहता हो । सदा बना ठना  
रहनेवाला । (३) रंडीबाज । देयाशा । तमाशबीन ।

शौकीनी-संज्ञा स्त्री० [ कि० शौकीन + ई (भव०) ] (१) शौकीन होने  
का भाव या काम ।

वि० प्र०—करना ।—छोटना ।—दिखाना ।—बघारना ।

(२) तमाशबीनी । रंडीबाजी । देयाशी ।

शौकेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन कृषि का नाम ।

शौक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।

शौकिक, शौकिदेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुकिका या सीपी से  
बल्बक, मोती । मुक्त ।

शौकिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सीप ।

शौकेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोती को शुकिक या सीपी से बल्बक  
होता है ।

शौक-वि० [ सं० ] शुक संबंधी । शुक का ।

शौक-वि० [ सं० ] शुक संबंधी । शुक का ।

संज्ञा पुं० दे० “शौक” ।

शौक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संहिन का बीज ।

शौच-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुचि होने का भाव । शुद्धता ।  
पवित्रता । पाकीजगी । (२) प्राचीन परिभाषा में, पवित्रता-  
पूर्वक धर्मोत्तरण करना, अपना शरीर और मन शुद्ध  
रखना, सत्य बोलना और निविद पदार्थों तथा कायों आदि  
का त्याग करना । सब प्रकार से शुद्धता-पूर्वक जीवन  
धरतीत करना ।

व्यशेष—मनु के अनुसार यह धर्म के दस उक्त्यों में से  
पाँचवाँ उक्षण है; और योगशास्त्र के पाँच नियमों में  
से पहला नियम है । कुछ लोगों ने इसके पाछ और आभ्यं-  
तर ये जो भेद माने हैं । शरीर का बाह्य शौच मिट्टी और  
जल आदि से होता है, और अपने चित्त का भाव सब प्रकार  
से शुद्ध रखने से आभ्यंतर शौच होता है । दोनों के अनुसार  
संयम वृत्ति को निष्कलंक रखना शौच कहलाता है ।

(३) ये कृत्य जो प्रातःकाल उठकर सब से पहले किए  
जाते हैं । जैसे,—पाखाने जाना, सुँह हाथ धोना, नहाना,  
संन्या धंधन करना आदि । (४) पाखाने जाना । जंगल  
जाग । टट्टी जाना । (५) दे० “अशौच” ।

शौचविधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मल-मूत्र आदि का त्याग करना ।  
शौच आदि से निवृत्त होना । निपटना ।

शौचादिरैय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन कृषि का नाम ।

शौचिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति  
जिसकी उत्पत्ति शौचिक पिता और कैवर्ष माता से कही  
गई है ।

शौची-वि० [ सं० शौचिन ] विमुक्त । पवित्र ।

शौचेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] रजक । धोबी ।

शौटीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चीर । बहादुर । (२) स्वामी ।  
(३) अभिमाती ।

शौटीरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शौटीर का भाव या धर्म ।

(२) बीरता । बहादुरी । (३) त्याग । (४) अनिमान ।  
 भईकार । गर्व ।  
 शौटीर्य-छंदा पुं० [ सं० ] (१) वीर्य । शुक । (२) गर्व । अनि-  
 मान । (३) बीरता । बहादुरी ।  
 शौत-छंदा स्त्री० दे० "शौत" । उ०—मेरे भागे की यह गद्दी ।  
 भय भइ शौत बदन पर चढ़ी ।—कल्हणकाल ।  
 शौकीन्दन-छंदा पुं० [ सं० ] शुद्धदेव, जो शुद्धोदन के पुत्र थे ।  
 शौक-छंदा पुं० [ सं० ] माह्य, हाथियार वा वैभव के वीर्य से युवा  
 के उत्पन्न पुत्र जो बराह प्रकार के पुत्रों में से एक प्रकार  
 का पुत्र माना जाता है । ऐसा पुत्र अपने पिता के गोत्र  
 का नहीं होता और न कसुकी संपत्ति का अधिकारी ही हो  
 सकता है ।  
 शौघल-वि० [ सं० शुद्ध ] निर्मल । पवित्र । (क०) उ०—कटि  
 कांठी परागतिका नाभि द्वारिका शीघ्र । हृदमाया कंठ मधु-  
 पुरी काशि प्राण निर भीष ।—विप्रम ।  
 शौधिका-छंदा स्त्री० [ सं० ] रक्तगुं । लाल फेंगनी ।  
 शौम-छंदा पुं० [ सं० ] वह मांस जो विक्री के लिये रखा हो ।  
 वि० धान संघंधी । कुपे का ।  
 शौमक-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन वैदिक आचार्य और ऋषि  
 जो शुभक ऋषि के पुत्र थे । वे वैमिपातप्य में तपस्या  
 करते थे और इन्होंने एक बार एक बहुत बड़ा यज्ञ किया  
 था जो बारह वर्षों तक होता रहा था । इनके नाम से कई  
 ग्रंथ प्रसिद्ध हैं ।  
 शौमकायन-छंदा पुं० [ सं० ] यह जो शुभक के गोत्र में उत्पन्न  
 हुआ हो ।  
 शौमकीपत्र-छंदा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक प्राचीन आचार्य  
 का नाम ।  
 शौमावण-छंदा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गोत्रनवर्षक ऋषि  
 का नाम ।  
 शौमिक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) मांस बेचनेवाला । कर्षार्थ । (२)  
 निहार । भाखेट । सूगवा ।  
 शौमिकशास्त्र-छंदा पुं० [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें निहार खेलने,  
 घोड़ों भादि पर चढ़ने और पशुओं भादि को लड़ाने की  
 विद्या का वर्णन हो ।  
 शौम-छंदा पुं० [ सं० ] (१) चिकनी सुपारी । (२) देपता । (३)  
 राजा हरिश्चंद्र की यह कविता मगी जो शाकाय में मानी  
 जाती है ।  
 शौमांजम-छंदा पुं० [ सं० ] संहिनम नामक वृक्ष । शोमानन ।  
 वि० दे० "संहिनम" ।  
 शौमायन-छंदा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल की एक योद्धा जाति  
 का नाम ।  
 शौमिक-छंदा पुं० [ सं० ] इन्द्रमाल का समाधा करनेवाला ।  
 इन्द्रमालिक । भार्गव ।

शौमायण-छंदा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल के एक देव का  
 नाम । (२) इस देव का निवासी ।  
 शौरसेन-छंदा पुं० [ सं० ] आधुनिक मज्जमंडल का प्राचीन नाम  
 जहाँ पहले राजा शूरसेन का राज्य था ।  
 वि० शूरसेन संघंधी । शूरसेन का ।  
 शौरसेनिका-छंदा स्त्री० दे० "शौरसेनी" ।  
 शौरसेनी-छंदा स्त्री० [ सं० ] (१) प्राचीन काल की एक प्रसिद्ध  
 प्राकृत भाषा जो शौरसेन ( वर्तमान मज्जमंडल ) प्रदेश में  
 बोली जाती थी ।  
 विशेष—यह मध्य देव की प्राकृत थी और शूरसेन देव में  
 इसका प्रचार होने के कारण यह शौरसेनी कहलाई ।  
 मध्यदेव में ही साहित्यिक संस्कृत का अनुद्वय हुआ था  
 और यहीं की बोलचाल की भाषा से साहित्य की शौरसेनी  
 प्राकृत का जन्म हुआ । इस पर संस्कृत का बहुत अधिक  
 प्रभाव पड़ा था और इसी लिये इसमें तथा संस्कृत में बहुत  
 समानता है । यह अपभ्रंशकृत अधिक पुरानी, विचित्र और  
 निष्ट समान की भाषा थी । वर्धमान हिंदी का जन्म शौर-  
 सेनी और अर्धमागधी प्राकृतों तथा शौरसेनी और अर्ध-  
 मागधी अपभ्रंशों से हुआ है ।  
 (२) प्राचीन काल की एक प्रसिद्ध अपभ्रंश भाषा जिसका  
 प्रचार मध्य देव के शोर्गों और साहित्य में था । यह भाषा  
 भी कहलाती थी ।  
 शौरि-छंदा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) कृष्ण । (३) बरुदेव ।  
 (४) पशुदेव । (५) शनैश्चर मूढ ।  
 शौरिमिय-छंदा पुं० [ सं० ] हीरा ।  
 शौरिरत्न-छंदा पुं० [ सं० ] नीरुम ।  
 शौराटक-छंदा पुं० [ सं० ] काले रंग का एक प्रकार का हीरा जो  
 प्राचीन काल में द्युर्गकर प्रदेश में पाया जाता था ।  
 शौव्ये-छंदा पुं० [ सं० ] (१) दूर का भाव । दूरता । पराक्रम ।  
 बीरता । बहादुरी । (२) दूर का धर्म । (३) नाटक में  
 भारमटी नाम की वृत्ति । वि० दे० "भारमटी" (२) ।  
 शौलायन-छंदा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रवर्षक  
 ऋषि का नाम जो बौधायन की कहलाते थे ।  
 शौलिक-छंदा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल के एक देव का नाम  
 जो शूलिक भी कहलाता था । (२) इस देव का निवासी ।  
 शौलिकि-छंदा पुं० [ सं० ] योगशास्त्र के अनुष्ठान चीति, नेति  
 भादि छः प्रकार के कर्मों में से एक कर्म । इसमें दाहिने  
 नयने से धीरे धीरे सति शीघ्रते हुए बाएँ नयने से छोड़ते  
 हैं; और फिर बाएँ नयने से शीघ्रते हुए दाहिने नयने से  
 छोड़ते हैं । कहते हैं कि इस किया के द्वारा कफ के दोष का  
 क्षयन होता है ।  
 शौलक-वि० [ सं० ] शुद्ध संघंधी । शुभक का ।

संज्ञा पुं० एक साम का नाम ।  
 श्रीलंकायनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो वेदशां के सिष्य थे और जिनका उल्लेख भागवत में आया है ।  
 श्रीलंका-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह अधिकांश जो लोगों से शुल्क लेता हो। कर या महसूल आदि वसूल करनेवाला अफसर । शुल्काध्यक्ष ।  
 श्रीलंकाकेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का विप ।  
 श्रीलंका-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सौंफ । शतपुष्पा । (२) सुलफा नाम का साग ।  
 श्रीलंका-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति का नाम । (२) ठेरा । कसेरा ।  
 शौघन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुचे का मांस । (२) कुचों का छुंद ।  
 वि० श्रान संबंधी । कुचे का ।  
 शौघस्तिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पदार्थ जो भविष्य में व्यवहार करने के विचार से संग्रह करके रखा गया हो ।  
 शौहर-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्री का पति । स्वामी । खाविद । मालिक ।  
 वि० दे० "पति" (२) ।  
 श्राम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।  
 श्रुष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैदिक काल का 'समय' का एक परिमाण ।  
 श्रौष्टि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।  
 श्रमशान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह स्थान जहाँ मुरदे जलाए जाते हैं । शय दाह करने का स्थान । सप्तान । मरघट ।  
 पृथ्यां—पितृवन । शतानक । श्रद्धाक्षीद । दाहसर । अंत-शय्या । पितृकानन ।  
 श्रमशान कालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की काली जिनका पूजन मांस, मछली खाकर, मद्य पीकर और नंगे होकर श्रमशान में किया जाता है ।  
 श्रमशानानिलय-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रमशान में रहनेवाले, महादेव । शिव ।  
 श्रमशानपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रमशान के स्वामी, शिव । (२) एक प्रकार के पेंद्रजालिक ।  
 श्रमशानपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रमशान का रक्षक, चांणाल ।  
 श्रमशानभैरवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तांत्रिकों के अनुसार ये देवियाँ जो श्रमशान में रहती हैं । (२) दुर्गा का एक नाम ।  
 श्रमशानवासिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काली ।  
 श्रमशानवासी-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रमशानवासिन् । (१) महादेव । शिव । (२) चांणाल ।  
 श्रमशानचेताल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की भूतयोनि ।  
 श्रमशानवेश्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रमशानवेश्रमन् । महादेव । शिव ।

श्रमशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] होमें, गालों और ठोड़ी 'आरि' पर होनेवाले बाल । मुँह पर के बाल । दाढ़ी मूछ ।  
 श्रमशुकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] दाढ़ी की सफाई करनेवाला, इमाम । नापित ।  
 श्रमशुकर्म्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रमशुकर्म्मन् । दाढ़ी बनवाना । इमाम बनवाना । क्षौर कर्म्म ।  
 श्रमशुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसके गालों और ऊपरी होंठ पर दाढ़ी और मोछ के बाल हों । ऐसी स्त्री क्रूर, कुलक्षणी और पुंरचली समझी जाती है ।  
 श्रमशुखरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] इजाम ।  
 श्रमशुखर-संज्ञा पुं० [ सं० ] नारियल का वृक्ष ।  
 श्यापीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक शाखा का नाम ।  
 श्याम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धीरूष्णा का एक नाम, जो उनके शरीर के श्याम वर्ण होने के कारण पड़ा था । उ०—एक बार हरि निज पुर छये । हलधर जी चंद्रायन गये । यह देखत लोगन सुल पाये । जान्यो राम श्याम दोठ भाये ।—सूर । (२) प्रयाग के अक्षयपट का नाम । (३) सर्वाँ नामक धान्य । (दि०) (४) एक राग जो श्रीराग का पुत्र माना जाता है । यह राग उरखों आदि के समय गाया जाता है; और हास्य रस के लिये भी उपयुक्त होता है । इसके गाने का समय रांध्या के समय १ दंड से ५ दंड तक है । इसे श्याम कवचाण भी कहते हैं । उ०—नित मलार शु मलार सुनाई । श्याम गुजरी पुनि भंग गाई ।—जायसी । (५) संधा नामक । (६) धतूर । (७) विधारा । (८) मेघ । बादल । (९) शौना का क्षुप । दमनक । (१०) एक प्रकार का वृक्ष । गंध वृक्ष । (११) गोल मिर्च । छोटी या काली मिर्च । (१२) पीलू वृक्ष । (१३) कोपल । कोकिल । (१४) प्राचीन काल का एक देश जो कन्नौज के पश्चिम ओर था । (१५) श्याम नामक देश । वि० दे० "श्याम" ।  
 वि० (१) काला और नीला मिट्टाभुषा (रंग) । (२) काला । सर्बदा । उ०—(क) अभी हलाहल मद् भरे, देवत श्याम रतनार । नियत मरत छुकि छुकि परत, वेदि चितवत एक-बार । (ख) कीन्देसि परन स्वेत औ श्यामा ।—जायसी ।  
 श्यामकंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोर । मयूर । (२) नीलकंठ नामक पक्षी । (३) तिव का एक नाम ।  
 श्यामकंदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतीस । अतिविष ।  
 श्यामक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्वाँ का चारल । (२) गंध वृक्ष नामक वृक्ष । शमकपूर । (३) श्याम नामक देश । (४) भागवत के अनुसार क्रूर के एक पुत्र और धनुष के भाई का नाम ।  
 श्यामकर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह घोड़ा जिसका सारा शरीर सफेद

और एक कान कांडा होता है। उ०—श्यामकर्णं ह्य चालत भावै। चमर छत्र तापर छवि छावै।—स्रवकसिंह।  
 श्यामकंठा, श्यामकांठा—छंदा की० [ सं० ] गौडर पूव।  
 श्याम शि—छंदा की० [ सं० ] गाडर। दूव।  
 श्यामचटक—छंदा पुं० [ सं० ] श्यामा नामक पक्षी।  
 श्यामचूडा—छंदा की० [ सं० ] कृष्ण चटक या श्यामा नामक पक्षी।  
 श्याम जीरा—छंदा पुं० [ सं० ] श्याम + जीरक ] (१) एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रखा जा सकता है। (२) कांडा जीरा। कृष्ण जीरक।  
 श्याम टीका—छंदा पुं० [ सं० ] श्याम + टि० टीका ] यह कांडा टीका जो बच्चों को नमर से पचाने के लिये लगाया जाता है। दिवौता। उ०—पठारिं मातु भूय दरवारि टीको श्याम लगाई।—रघुराज।  
 श्यामता—छंदा की० [ सं० ] (१) श्याम का भाव या धर्म। (२) कालापन। सविनापन। कृष्णता। (३) मलिनता। उदासी। जैसे,—यह बात सुनते ही उसके मुँह पर श्यामता छा गई। (४) एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर का रंग कांडा होने लगता है।  
 श्याम तीतर—छंदा पुं० [ सं० ] श्याम + टि० तीतर ] प्रायः देव शक्तिपत खंवा एक प्रकार का पक्षी जो अकेला रहता है और पांडा भी जा सकता है। यह कारमीर, भूदान और दक्षिण हिमालय में पाया जाता है। बहुत भेदानुसार यह स्थान परिवर्तन करता रहता है। इसकी चोंच लंबी होती है और यह बहुत तेज उड़ता है। इसका शब्द घीमा पर विवित्र होता है। इसका मोस स्वादिष्ट होता है; इसलिये इसका शिकार भी किया जाता है।  
 श्यामपत्र—छंदा पुं० [ सं० ] तमाल वृक्ष।  
 श्यामपत्रा—छंदा की० [ सं० ] जामुन का वृक्ष।  
 श्यामपर्ण—छंदा पुं० [ सं० ] सिरिस का पेड़। शिरीष का वृक्ष।  
 श्यामपर्णी—छंदा की० दे० “चाय”।  
 श्याम पूरवी—छंदा पुं० [ सं० ] श्याम + टि० पूरवी ] एक प्रकार का संकर शाग। इसमें और सब जो छुद्र स्वर लगते हैं, केवल मध्यम लीम लगाता है।  
 श्यामभूपण—छंदा पुं० [ सं० ] मिर्च।  
 श्याम मंजरी—छंदा की० [ सं० ] श्याम + मंजरी ] काले रंग की एक प्रकार की मिठी जिससे वैष्णव लोग माथे पर तिलक लगाते हैं। यह मिठी प्रायः जगन्नाथ जी के भातपास की भूमि में पाई जाती है।  
 श्यामल—छंदा पुं० [ सं० ] पीपल। अश्वत्थ वृक्ष। (२) सिरिस का पेड़। शिरीष। (३) सुशुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत अहीटा विष्ट।

वि० जिसका वर्ण कृष्ण हो। कांडा। सौंवाला।  
 श्यामलचूडा—छंदा की० [ सं० ] गुंजा। सुंघी।  
 श्यामलता—छंदा की० [ सं० ] श्यामल या काले रंग के होने का भाव। सौंवालापन। कालापन।  
 श्यामला—छंदा की० [ सं० ] (१) अश्वत्थ। अश्वत्थ। (२) फटमी। (३) जामुन। (४) कस्तूरी। शृगमद। (५) पायंतो का एक नाम।  
 श्यामली—छंदा की० [ सं० ] नीली।  
 श्यामली—छंदा की० दे० “श्यामला”।  
 श्यामलेखु—छंदा पुं० [ सं० ] काले रंग की ईंख।  
 श्यामधरमें—छंदा [ सं० ] एक प्रकार का नेत्र रोग जिसमें बाल की पक्षमें यादर तथा भीतर से काली होकर फुल जाती हैं और इनमें पीड़ा होती है।  
 श्यामशुल—छंदा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार यम के अनुचर दो कुत्ते जो उनके द्वार पर पहरा देने का काम करते हैं। इन्हें संतुष्ट करने के लिये एक प्रकार का मत्त करने का भी विधान है।  
 श्यामशूर—छंदा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की ईंख जो बहुत अच्छी और गुणवाली मानी जाती है।  
 श्यामशक्ति—छंदा पुं० [ सं० ] कांडा शक्तिधान्य।  
 श्यामसार—छंदा पुं० [ सं० ] कृष्ण खदिर का वृक्ष।  
 श्यामसुंदर—छंदा पुं० [ सं० ] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। उ०—लिये उदाय श्यामसुंदर की धन गदि की मुक्त कीन्हों।—सूर। (२) एक प्रकार का वृक्ष जो कद में बहुत ऊँचा होता है। इसकी छाल मारम में अजब होती है; परंतु बयो उजो यह पुराना होता जाता है, त्यों त्यों छाल काली होती जाती है। इसके हीर की छकड़ी चमकदार होती है। पहारुं पर यह चार हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी छकड़ी प्रायः यदिया चीजों के बनाने में काम आती है। इससे लेठी के कौमार भी बनाए जाते हैं।  
 श्यामांग—छंदा पुं० [ सं० ] लुच ग्रह, जिसका वर्ण दुर्बा-श्याम माना गया है।  
 वि० जिसका शरीर कृष्ण वर्ण का हो। काले या सौंवे रंगवाला।  
 श्यामांगी—छंदा की० [ सं० ] नीली दूध।  
 श्यामा—छंदा की० [ सं० ] (१) राधा या शक्ति का एक नाम, जो श्याम या श्रीकृष्ण के साथ अतक प्रेम होने के कारण पदा था। उ०—मदनमोहन माद जान्यो गगन मेघ छिपाई। श्याम श्यामा गुप्त लीला.....।—सूर। (२) एक गोपी का नाम। उ०—श्यामा कामा चतुरा नवला प्रसुदा सुमदा नारि।—सूर। (३) प्रायः सवा पा देव शक्तिपत खंवा एक प्रकार का पक्षी जिसका रंग कांडा और पैर पीले



होते हैं। यह पंजाब के इतिहास के सारे भारत में मिलता है। यह एक ही स्थान पर स्थिर रूप से रहता है और पहाड़ पर नहीं जाता। यह प्रायः घने जंगलों में रहता है। इलहा स्वर बहुत ही मधुर और कोमल होता है। यह पक्षी और घास से घोंसला बनाता है और एक बार में चार भंडे देता है। (७) सोलह वर्ष की तरुणी। (५) काले रंग की गाय। (६) क्यूतरी। मादा क्यूतर। (७) काळा अर्न्तमूळ। श्यामा लता। (८) काली निघोष। (९) प्रियंगु। चनिता। (१०) वकुची। सोम राजी। (११) नील। (१२) गुण्ड। (१३) सोम लता। सोमवल्डी। (१४) भद्रमोया। (१५) गुडुच। गिलोय। (१६) बंदा। बंदा। (१७) काजूरी। मुद्क। (१८) बट पत्री। पावागमेरी। (१९) पीपल। पिप्पली। (२०) हरी। हरिद्रा। (२१) हरी दूब। (२२) तुलसी। सुरसा धुप। (२३) कमलगट्टा। (२४) विषादा। (२५) तिषथा वृक्ष। शीशम। (२६) सर्बो नामक अन्न। (२७) काठी गृहपूजा। (२८) गोडोचन। गोडोचन। (२९) परका या गुंदा नामक घास। (३०) लता करवूरी। मुद्क दामा। (३१) मेदा सिंगी। (३२) हरीतकी। हरे। (३३) कोपल नामक पक्षी। (३४) यमुना। (३५) रात। रात्रि। (३६) फी। औरत। (३७) छाया। (३८) कालिका देवी का एक नाम। वि० (१) तपाए हुए सोने के समान वर्णवाली। (२) श्याम रंगवाली। काकी।

श्यामाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्बो नामक अन्न।  
 श्यामाक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काले फूल की भरहर जो पौधक के अनुसार दीपन और पित्त तथा दाह की नाशक मानी जाती है।  
 श्यामायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम जो गोत्र-प्रवर्तक ऋषि थे।  
 श्यामायनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक भाचार्य का नाम।  
 श्यामायनी-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैशंपायन के शिष्यों का संघ-दाय। (२) वह जो हस्त संप्रदाय में हो।  
 श्यामा लता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काळा अर्न्तमूळ। कृष्ण घारिबा।  
 श्यामाहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पिपली। पीपल।  
 श्यामिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काळा रंग। कृष्ण वर्ण। (२) काळापन। श्यामता। (३) मलिनता। कृदाहरी।  
 श्यामेलु-संज्ञा पुं० [ सं० ] काला हँस। ककली हँस।  
 श्याल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पक्षी का माई। साळा। उ०—घार बार साकार करि; कीन्ही श्याल निहाळ।—रघुसा। (२) बहन का; प्रति। बहनोई।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] श्याल। गोइड़। सिपाय। उ०—रीव वृषभ गुरंग अह नाम। दयाल दिवस निशि पोई काग।—सूर।

श्यालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० श्यालिका ] पक्षी का साळा।  
 श्यालकाँटा-संज्ञा पुं० [ श्याल + कंठ + श्याल ] श्वणक्षी नामी। भरभाद।  
 श्यालकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पत्ती की बहन। साकी।  
 श्याल-वि० [ सं० ] कृष्ण और पीठ मिश्रित (वर्ण)। पीछा मिला हुआ (रंग)। कविता।  
 संज्ञा पुं० (१) काळा और पीछा मिला हुआ रंग। (२) सुधत के अनुसार एक प्रकार का विष विष बहुत तेज नहीं होता।  
 श्यायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक प्राचीन राजपि श्यायता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्याय (वर्ण) का भाव कविताना।  
 श्यायतैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] आम का पेड़।  
 श्यायदंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दाँतों का एक प्रकार जिसमें रक्त मिश्रित पित्त से दाँत जलकर काळे, नीले हो जाते हैं। (२) वह जिसके दाँत रजभावतः के हों।  
 श्यायनाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।  
 श्यायवर्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।  
 श्यायवर्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्यायवर्ध भर्तृहरि का नामक रोग। वि० दे० "श्यायवर्ध"।  
 श्यायवर्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।  
 श्येत-वि० [ सं० ] श्वेत। सफेद। शुद्ध। (वर्ण) संज्ञा पुं० सफेद रंग।  
 श्येतकोलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली।  
 श्येन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिकरा या बाज नामक प्रसिद्ध जो प्रायः छोटे छोटे पक्षियों का शिकार किया करता। पर्याय—शाशादन। कपोतारि। मुरवेगी। खगोतक। लंभकण। नीलपिच्छ। रणश्रय। रणवली। मयंकर। श्येन (२) होहे के श्येन मेह का नाम। हस्तमें १९ गुंठ अं कबु सादाई होते हैं। (३) पीछा रंग।  
 श्येनकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी काम की उतनी ही से बढ़ता से करना जिसकी तेजी और बढ़ता से बाय स अपने शिकार को पकड़ता है।  
 श्येनगामी-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्येनगामिन् । श्यामपण के एक राक्षस का नाम।  
 श्येनघंटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दंती वृक्ष। बहुबरी पर्णी। वि "पंती"।  
 श्येनज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ आदि में अग्नि स्थापित करने वह वेदी जिसका आकार श्येन या बाज पक्षी के होता है।

# मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

- (१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (२) आत्मोत्थार—लेखक रामचंद्र घर्मा ।  
 (३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेषीप्रसाद ।  
 (४, ५, ६) आदर्श हिंदू, तीन भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्मा ।  
 (७) राणा जंगवहादुर—लेखक जगन्मोहन घर्मा ।  
 (८) भौम पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा ।  
 (९) जीवन के आनंद—लेखक गणपतिजानकीराम दुबे ।  
 (१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद, बी० एल० सी० ।  
 (११) लाहार्चन—लेखक प्रजनंदनसहाय ।  
 (१२) कथोर वचनवली—संग्रहकर्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय ।  
 (१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी० ए० ।  
 (१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन घर्मा ।  
 (१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र घर्मा ।  
 (१६) सिक्कों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमार देव शर्मा ।  
 (१७) धीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुक्रदेवविहारी मिश्र, बी० ए० ।  
 (१८) नेपोलियन बोनापार्टे—लेखक राधामोहन गोकुलजी ।  
 (१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार ।  
 (२०, २१) हिंदुस्तान, दो खंड—लेखक दयाचंद्र गोयल्लोय बी० ए० ।  
 (२२) महर्षि सुकंरान—लेखक वेषीप्रसाद ।  
 (२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी० एल० सी० ।  
 (२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुक्रदेवविहारी मिश्र, बी० ए० ।  
 (२५) सुंदरसार—संग्रहकर्ता पुरोहित हरिनारायण शर्मा बी० ए० ।  
 (२६, २७) जर्मनी का विकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार घर्मा ।  
 (२८) कृषिकीमुद्दी—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह एल० ए० जी० ।  
 (२९) कर्त्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम० ए० ।  
 (३०, ३१) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मदन द्विवेदी बी० ए० ।  
 (३२) महाराज रणजीतसिंह—लेखक वेषीप्रसाद ।  
 (३३, ३४) विश्वप्रबंध, दो भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (३५) अहिल्याबाई—लेखक गोविंदराम केशवराज जोशी ।  
 (३६) रामचंद्रिका—संस्कृतकर्त्ता लाला भगवानदास ।  
 (३७) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ।  
 (३८, ३९) हिंदी निबंधमाला, दो भाग—संग्रहकर्ता श्यामसुन्दरदास बी० ए० ।  
 (४०) सूरसुधा—संपादक गणेशविहारी मिश्र, श्यामविहारी मिश्र, शुक्रदेवविहारी मिश्र ।  
 (४१) कर्त्तव्य—लेखक रामचंद्र घर्मा ।  
 (४२) संज्ञित रामस्वयंवर—संपादक अजरलदास ।  
 (४३) शिशुपालन—लेखक मुकुन्दस्वरूप घर्मा ।  
 (४४) शाही दरय—लेखक मंगलनलाल शुभ गर्ग ।  
 (४५) पुरुषार्थ—लेखक जगन्मोहन घर्मा ।  
 (४६) तर्कशास्त्र, पहला भाग—लेखक गुलाबराय एम० ए० ।

माला की प्रत्येक पुस्तक या उसके किसी भाग का मूल्य १) है, पर स्थायी ग्राहकों को सय पुस्तकें बारह बारह आने में दी जाती हैं ।

एक कार्ड भेजकर उत्तमोत्तम पुस्तकों का बड़ा और नया सूचीपत्र मंगवायए ।

प्रकाशन मंत्री,

नागरीभचारिणी समा, बनारस सिटी ।

## नई पुस्तकें

### मुहणौत नैणसी की ख्यात ( पहला भाग )

राजपूताने, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मालवे और गुन्देशखंड के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करनेवाले के लिये यह सुप्रसिद्ध ख्यात बहुत महत्व की है। इसमें गुहिलौव, चौहान, सोलंकी, प्रतिहार और परमार वंश का बहुत ही विस्तृत तथा प्रामाणिक इतिहास और उनकी वंशावलियाँ दी गई हैं। साथ में अनेक उपयोगी टिप्पणियाँ आदि भी दी गई हैं। ऐतिहासिक अनुसंधान करनेवालों के लिये बड़े काम की चीज है। मूल्य २॥)

### अकबरी दरवार (पहला भाग)

बर्ह, फारसी आदि के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वामी राममुल्हमा मौलाना मुहम्मद हुसैन साहब आजाद कृत दरवार अकबरी नामक ग्रंथ का अनुवाद। इसमें चादशाह अकबर की पूरी जीवनी दी गई है और बतलाया गया है कि उसने कैसे कैसे युद्ध किए, अपने राज्य की किस प्रकार व्यवस्था की, उसके समय में देश की राजनीतिक, सामाजिक और साम्प्रतिक अवस्था कैसी थी, आदि आदि। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर। मूल्य २॥)

### अशोक की धर्म-लिपियाँ (पहला भाग)

इस पुस्तक में सम्राट् अशोक के प्रधान शिलालेखों की प्रतिलिपि, संस्कृत तथा हिंदी अनुवाद और स्थान स्थान पर अनेक बहुमूल्य टिप्पणियाँ दी गई हैं। अशोक की धर्मलिपियों का ऐसा अच्छा दूसरा संस्करण अभी कहीं नहीं निकला। प्रत्येक इतिहास-भेमी और विद्याभिरागी को इसको एक प्रति अंतर्ग्रह रखनी चाहिए। मूल्य ३।)

### बाँकीदास ग्रंथावली (पहला भाग)

हिंदी भाषा के महाकवि कविराजा बाँकीदास कृत सूर छतीसी, सोह छतीसी, वीर-विनोद, धवल-पंचोसी, दातार यावनी, नीवि-मंजरी और सुपह छतीसी ये सात ग्रंथ अभी तक मिले हैं, जो हज़ार पहले खंड में एक साथ ही छाप दिए गए हैं। आरंभ में बाँकीदास जी की जीवनी दे दी गई है और प्रत्येक पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा उनके उपयोगी विवरण आदि पाठ्यटिप्पणियों में देकर पुस्तक सर्वसाधारण के लिये बहुत ही सुगम कर दी गई है। १०० पृष्ठों से ऊपर की जिल्द बाँधी पुस्तक का मूल्य केवल ॥)

### वीसलदेव रासो

यह ग्रंथ सं० १२७२ का लिखा हुआ है और इसकी भाषा प्राचीनतम हिन्दी है। इसमें वीसलदेव (विमहराज पतुर्ष) के जीवन की मुख्य घटनाओं और युद्धों आदि का बहुत उत्कृष्ट वर्णन है। १७ वीं शताब्दी की इस्तिलिखित प्रति से इसका पाठ शुद्ध किया गया है और कठिन शब्दों के अर्थ तथा टिप्पणियाँ दी गई हैं। प्राचीन भाषा काव्य-ग्रंथियों के लिये अर्पण रख है। १७५ पृष्ठों की जिल्ददार पुस्तक का मूल्य ॥।)

### जायसी ग्रंथावली

सभा ने जायसी कृत पद्यावत और अलखारवह का बहुत सुन्दर और शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया है और प्रति पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा दूसरे आवश्यक विवरण दे दिए हैं, जिसमें यह काव्य साधारण विद्यार्थियों तक के समझने योग्य हो गया है। पुस्तक का पाठ बहुत परिश्रम से शुद्ध किया गया है। आरंभ में इसके सम्पादक और सिद्धहस्त समालोचक प० रामचन्द्र शुक्ल ने प्रायः ढाई-सौ पृष्ठों की इसकी मार्मिक आलोचना कर दी है, जिसके कारण सोने में सुगंध भी आ गई है। बड़े आकार के प्रायः ७०० पृष्ठों की जिल्द बाँधी पुस्तक का मूल्य केवल ३।)

### प्रकाशन मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस सिटी।

# हिंदी-शब्दसागर

प्रणीत

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

संपादक

श्यामसुन्दरदास वी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल

रामचंद्र वर्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

१९२७

आकृष्य प्रतिरिक्त

## संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरत्नी भाषा  
 अ० = अरबी भाषा  
 अनु० = अनुकूलन चन्द्र  
 अने० = अनेकर्थनाममाला  
 अप० = अपभ्रंश  
 अथोप्या=अथोप्यासिंह उपाध्याय  
 अर्द्धभा० = अर्द्ध भाषाया  
 अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग  
 अल्प० = अल्पय  
 आतं दधन० = कवि आतं दधन  
 इव० = इशरानी भाषा  
 उ० = उदाहरण  
 उचर चरित० = उचररामचरित  
 उप० = उपसर्ग  
 उभ० = उभयलिग  
 कठ० उप० = कठवली उपनिषद्  
 फरीर = फरीरदास  
 केदाव = केदावदास  
 कौक० = कौकिल देश की भाषा  
 क्रि० = क्रिया  
 क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक  
 क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग  
 क्रि० वि० = क्रियाविशेषण  
 क्रि० स्त० = क्रिया सकर्मक  
 क० = कर्तृचन् अर्थात् इसका प्रयोग  
 बहुत कम देखने में आया है।  
 खानखाना=अब्दुरहीम खानखाना  
 गि० दा० या गि० दास=गिरि-  
 धरदास (दा० गोपालचंद्र)  
 गिरिधर=गिरिधरदास (कुंड-  
 लियावाले)  
 गुज० = गुजराती भाषा

गुमान = गुमान मित्र  
 गोपाल = गिरिधरदास (दा०  
 गोपालचंद्र)  
 घरण = घरणचंद्रिका  
 चिंतामणि=कवि चिंतामणि  
 त्रिपाठी  
 छीत=छीतस्वामी  
 जायसी=मल्लिक मुहम्मद जायसी  
 जाया०=जाया हीप की भाषा  
 ज्यो०=ज्योतिष  
 हि०=हिमाल भाषा  
 तु०=तुरकी भाषा  
 तुलसी=तुलसीदास  
 तोप=कवि तोप  
 दाहू=दाहूदयाल  
 दीनदयालु=दीनदयाल गिरि  
 दूल्हा=कवि दूल्हा  
 दे०=देवो  
 देव=देव कवि (मैनपुरीवाल)  
 देदा० = देवज्ञ  
 द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी  
 नागरी = नागरीदास  
 नामा० = नामादास  
 निश्चल = निश्चलदास  
 प० = पंजाबी भाषा  
 पद्माकर = पद्माकर भट्ट  
 पया० = पर्याय  
 पा० = पाली भाषा  
 पु० = पुष्टिया  
 पु० हि० = पुरानी हिन्दी  
 पुस्त० = पुस्तकाली भाषा  
 पू० हि० = पूर्वी हिंदी

प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र  
 प्रत्य० = प्रत्यय  
 प्रा० = प्राकृत भाषा  
 प्रिया = प्रियादास  
 प्रे० = प्रयोगार्थक  
 प्रे० सा० = प्रेमसागर  
 ष० = पुरासीसी भाषा  
 फा० = फारसी भाषा  
 दँग = दँगला भाषा  
 यरमी० = यरमी भाषा  
 बहु० = बहुवचन  
 विहारो = कवि विहारोलाल  
 सु० ख० = सु देलखडी बोली  
 वेनी = कवि वेनी प्रवीन  
 भाव० = भाववाचक  
 भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी  
 मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी  
 मला० = मलायालम भाषा  
 मल्लक = मल्लकदास  
 मि० = मिलाजो  
 मुहा० = मुहाविर  
 यू० = यूनानी भाषा  
 यो० = यौगिक तथा दो या अ-  
 धिक शब्दों के पद  
 रघु० दा० = रघुनाथदास  
 रघुनाथ = रघुनाथ वदीजन  
 रघुराज = महाराज रघुराजसिंह  
 रवीराम  
 रसखान = मयूर इमहांस  
 रसनिधि = रामा गुरुवांसिंह  
 रहोम = अब्दुरहीम खानखाना  
 लक्ष्मणांसिंह = राजा लक्ष्मणांसिंह

लखरू = लखरूलाल  
 लदा० = लखरूरी भाषा अर्थात्  
 हिंदुस्तानी बहामिनीयों की  
 बोली  
 खाल = खाल कवि (सुत्रप्रकाश-  
 वाल)  
 खे० = खेतिज भाषा  
 खि० = विशेषण  
 विभाम = विभामसागर  
 ख्यंग्याथं = ख्यंग्याथंमोसुरी  
 ख्या० = ख्याकरण  
 ख्यास = अंधिकादत्त ख्यास  
 खं० दि० = शंकर दिग्विजय  
 खे० सत० = खेगार सतसह  
 खं० = खट्टत  
 खंयो० = खंयोमक अल्पय  
 खंयो० क्रि० = खंयोय क्रिया  
 खं० = खकर्मक  
 खबल = खबलसिंह चौहान  
 खभा वि० = खभाविधान  
 खन० = खनान  
 खुपाकर = खुपाकर द्विवेदी  
 खूदन = खूदनकवि (भरतपुरवाले)  
 खूर = खूरदास  
 खि० = खियों द्वारा प्रयुक्त  
 खी० = खीलि  
 खपे० = खपेनी भाषा  
 हि० = हिंदी भाषा  
 हनुमान = हनुमन्चाटक  
 हरिदास = स्वामी हरिदास  
 हरिभद्र = भास्वरु हरिवर्मा

यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त होता है।  
 यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रतिक है।  
 यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप प्राग्य है।

**श्वेनजीवी**-संज्ञा पुं० [ सं० श्वेनजीविन् ] वह जो श्वेन या बाज पकड़ और बेच कर जीविका निर्वाह करता हो। मनु ने ऐसे आदमी के साथ एक पंक्ति में बैठ कर खाने पीने का निषेध किया है।

**श्वेनाहृत**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम रत्न।

**श्वेनिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं; और मात्रा के अनुसार उनका क्रम इस प्रकार होता है—र ज र ल ग (१, १, १, १, १, १, १)। इसका दूसरा नाम 'श्वेनी' भी है।

संज्ञा स्त्री० बाज परी की मादा।

**श्वेनी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दे० "श्वेनिका"। (२) माकंडेय पुराण के अनुसार कश्यप की एक कन्या का नाम, जो दक्ष की पुत्री तथा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। कहते हैं कि बाज, तोते, कव्तर आदि पक्षी इसी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

**श्वैनिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का याग, जो एक दिन में होता था।

**श्वेनेय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] जटायु का एक नाम।

**श्वोनाक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोनापाड़ा वृक्ष। (२) लोभ। लोभ।

**श्वोरा**-संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़ी मेघ।

क्रि० प्र०—डोकना—मारना।

**श्रंग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] गमन। जानौं।

संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रंग श्रंग। (दि०)

**श्रंग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सत्सार के बंधन से छुड़ानेवाले, विष्णु। (२) बंधन। (३) मोक्ष।

**श्रंघित**-वि० [ सं० ] (१) बंधा हुआ। (२) मुक्त। (३) प्रसन्न। हर्षित। सुख।

**श्रंसन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह औपधि जो पेट में जमे हुए मल या गोट को बाहर निकालती है। वैभे, अमलतास का गुद्दा।

**श्रघन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भार ढालना। यथ। हाना। (२) अलग करना। बंधन से मुक्त करना। खोलना। (३) यत्न। कोशिश।

**श्रद्धा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार की मनोवृत्ति, जिसमें किसी वदे या पूज्य व्यक्ति के प्रति भक्तिपूर्वक विश्वास के साथ डर और पूज्य भाव उत्पन्न होता है। वदे के प्रति मन में होनेवाला आदर और पूज्य भाव। उ०—(क) महिमा वेद पुराण सब बहु भक्ति श्रयानत। यथा सहित सब ऋत सहित श्रद्धा गुण मानत।—केचन। (ख) पूज्य श्रद्धा भक्ति श्रु कोई। ताके वरय जगत हम दोई।—सबलसिंह। (२)

पौढ धर्म के अनुसार श्रद्धा, धर्म और संघ में विश्वास। (३) वेदादिशास्त्रों और आत पुराणों के वचनों पर विश्वास। भक्ति। आस्था। विश्वास। (४) श्रद्धि। (५) विश्वास की प्रसवता। धृष्ट

(६) कर्दम मुनि की कन्या का नाम, जो उनकी पत्नी देवहृति के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं और जो अत्रि ऋषि की पत्नी थीं। **श्रद्धातन्त्र**-क्रि० [ सं० ] जिस पर श्रद्धा की जा सके। श्रद्धा करने के योग्य।

**श्रद्धान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रद्धा।

**श्रद्धालु**-वि० [ सं० ] (१) जिसके मन में श्रद्धा हो। श्रद्धा रखनेवाला। श्रद्धायुक्त। श्रद्धालु। (२) (की) जिसके मन में, गर्भावस्था के कारण, अनेक प्रकार की अभिलाषाएँ हों। दोहदयती।

**श्रद्धावान्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रद्धालु। (१) वह जिसके मन में श्रद्धा हो। श्रद्धायुक्त। श्रद्धालु पुरुष। (२) जिसके मन में धर्म के प्रति निष्ठा हो। धर्मनिष्ठ।

**श्रद्धास्पद**-वि० [ सं० ] जिसके प्रति श्रद्धा की जा सके। श्रद्धा-पात्र। श्रद्धेय। पूजनीय।

**श्रद्धी**-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रद्धिन् जिसके मन में श्रद्धा हो। श्रद्धावान्।

**श्रद्धेय**-वि० [ सं० ] [ संज्ञा श्रद्धेय ] जिस पर श्रद्धा की जाय।

श्रद्धा करने के योग्य। श्रद्धा-पात्र। श्रद्धास्पद।

**श्रपथ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] गार्हपत्य अग्नि के द्वारा चर पकाने की क्रिया।

**श्रपित**-वि० [ सं० ] पका हुआ। पक।

**श्रपिता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कौंजी। कौंजिक।

**श्रम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी कार्य के संपादन में होनेवाला शारीरिक अभ्यास। शरीर के द्वारा होनेवाला उद्यम। परिश्रम। मेहनत। मजकत। उ०—श्रुति तीर्थन श्रम करि जाहिं। जहाँ रहैं तहाँ लक्ष्यों न ताहि।—मूर।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—पढ़ना।—होना।

(२) श्रमाट। ह्मति।

**मुद्दा**—श्रम पाना=परिश्रम करना। मेहनत करके शक्य। उ०—आज कदा उद्यम करि आए। कई वृथा श्रमि श्रमि श्रम पाए।—मूर।

(३) साहित्य में संचारी भावों के अंतर्गत एक भाव। कोई कार्य करते करते संतुष्ट और स्थिखल हो जाना। (४) ह्मन। दुःख। लक्ष्मीक। (५) दौड़ पृथ। पुरेगती। (६) पत्नी। श्वेद। (७) व्यापार। कसरत। (८) शर्मों का अभ्यास। (९) विक्रिया। इलाज। (१०) श्वेद। (११) तप। (१२) प्रयास। (१३) अभ्यास।

**श्रमकथ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पत्नी के बूँद, जो परिश्रम करने पर शरीर से निकलती हैं। श्वेदविंदु। उ०—दयामल तन श्रमकन राजत ज्यों वरु, मन मुखा सारोवर सारो।—तुलसी। **श्रमप्र**-वि० [ सं० ] जिससे श्रम दूर हो। श्रमाट दूर करनेवाला। **श्रमजल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पत्नी। श्वेद। प्रस्वेद। उ०—(क) श्रमजल विंदु इंदु आनन पर राजन अति सुकुमार। मोनों

विविध भाव मिल विलसत भगन सिधु रस सार।—सूर।

(स) कुमकुम आड़ श्रवत भ्रमत्रल मिलि मधु पीवत छवि छीट चली री।—सूर।

**अभजित-वि०** [ सं० अभ + सं० जित् वा हि० जीतना ] जो मनमाना परिश्रम करने पर भी न थके। धम को जीत लेनेवाला। उ०—स्वामि भक्त अभजित सुधी, सेनापति सु अभीत। अनालसी जन प्रिय जसी, सुख संग्राम अजीत।—केदाव।

**अभजीवी-वि०** [ सं० अभजीवित् ] शारीरिक परिश्रम करके जीविका निर्वाह करनेवाला। मेहनत करके पेट पालनेवाला।

संज्ञा पुं० मजदूर। कुली।  
**अभय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) बौद्ध मतावलंबी संन्यासी। (२) यति। मुनि। (३) वह जो नीच कर्म करके जीविका निर्वाह करता हो। नीच। घृणित। (४) धमजीवी। मजदूर।

**अभय-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) सुदर्शना नामक ओषधि। (२) जटामांसी। बाललडू। (३) मुंडी। बुंडी। श्रावणिका। (४) दायर जाति की एक खाँ का नाम। (५) संन्यासिनी।

**अभयिदु-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पसीने की बूँदें, जो परिश्रम करने पर करने पर शरीर से निकलती हैं। धमकण। स्वेद।

**अभमंजिनी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] नागबहरी लता, जो धकावट दूर करनेवाली मानी जाती है। पान। नागबहरी।

**अभयारि-संज्ञा पुं०** [ सं० ] परिश्रम के कारण शरीर से निकलनेवाला पसीना। धमकण।

**अभयभाग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] किसी कार्य के भिन्न भिन्न अंशों के संपादन के लिये, अलग अलग व्यक्तियों की नियुक्ति। परिश्रम या काम का विभाग। जैसे,—किसी का रूई औटना, किसी का सूत कातना, किसी का कपड़ा धुनना, किसी का अनाज पीसना, किसी का रोटी पकाना।

**अभयशीकर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] धम से होनेवाला पसीना। धमकण।

**अभयस्त्रिणु-वि०** [ सं० ] जो यथेष्ट धम कर सकता हो। मेहनती। परिश्रमी।

**अभयसाध-वि०** [ सं० ] जिसके संपादन में धम करना पड़े। जो सहज में या बिना परिश्रम न सध सके।

**अभयस्त्रीकर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पसीना। अभयिदु। उ०—कुंडल मकर कपोलनि झलकत अभयस्त्रीकर के दाग।—सूर।

**अभयित-वि०** [ सं० अभ ] जो धम से चिथिल हो गया हो। थान। थका हुआ। उ०—चारों भ्रातन अभयित जानि कै जननी तव पौदुये। चापत चरण जननि अप अपनी कहुक मधुर स्वर गाये।—सूर।

**अभयी-संज्ञा पुं०** [ सं० अभय ] (१) मेहनती। परिश्रमी। (२) धमजीवी।

**अभय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] आश्रय।

**अभयतिनी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] नदी।

**अथ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) कान। (हि०) (२) शब्द।

**अथ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) वह इंद्रिय जिससे शब्द का ज्ञान होता है। कान। कर्ण। धृति। (२) वह ज्ञान जो धर्मोद्देश्य द्वारा होता है। (३) शास्त्रीय परिभाषा में शाश्वत में लिखी हुई बातें सुनना और उनके अनुसार कार्य करना अथवा देवताओं आदि के चरित्र सुनना। उ०—अथय कीर्तन सुमिरन करै। पद सेवन अर्चन उर धरै।—सूर। (४) नौ प्रकार की भक्तियों में से एक प्रकार की भक्ति। उ०—अथय, कीर्तन, स्मरण, पद रत्न, अरचन, चंदन, दास। सरल्य और आत्मानिवेदन प्रेम लक्षण जास।—सूर। (५) वैदय तपस्वी अंधक मुनि के पुत्र का नाम। (६) राजा मेघध्वज के पुत्र का नाम। उ०—ता संगति नव सुत नित जाए। अथयादिक मिलि हरि गुण गाये।—सूर। (७) अधिनी आदि सत्साइस नक्षत्रों में से बाइसवौं नक्षत्र, जिसका आकार धार या तीर का सा माना गया है। इसमें तीन तारे हैं, और इसके अधिपति देवता हरि कहे गए हैं। फलित ज्योतिष के अनुसार जो मालक इस नक्षत्र में जन्म लेता है, वह शाखों से प्रेम रखनेवाला, बहुत से लोगों से मित्रता रखनेवाला, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाला और अच्छी संतानवाला होता है।

**अथय द्वादशी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] भादों मास के शुक्ल पक्ष की वह द्वादशी जो अथय नक्षत्र से युक्त हो। यह बहुत पुण्य तिथि मानी जाती है। इसे वामन-द्वादशी भी कहते हैं। कहते हैं कि वामनावतार इसी दिन हुआ था। उ०—अस कहि शुभ दिन सोधि प्रहल ऋषि तुरत सुमंत बोलायो। भादों मास अथय द्वादशि को सुदिवस सुखद सुनायो।—रघुपान।

**अथयपथ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] अथगोन्द्रिय। कान।

**अथयविद्या-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वह विद्या जो अथय इंद्रिय के संपर्क से मानसिक वृत्ति प्रदान करती है। जैसे, संगीत-शास्त्र।

**अथयशीर्षिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] श्रावणी वृक्ष। गोरखमुंडी। बड़ी मुंडी।

**अथयहारी-संज्ञा पुं०** [ सं० अथयहारि ] यह जो कानों को भला लगे। सुनने में अच्छा जान पढ़नेवाला। कर्णमधुर।

**अथय-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) बड़ी मुंडी। (२) पुंडेरी। (३) अधिनी आदि सत्साइस नक्षत्रों के अंतर्गत बाइसवौं नक्षत्र। वि० दे० "अथय" (७)।

**अथयाह्वया-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) निर्विषी नामक वृण। (२) जल चोहराई।

**अथयणी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) पुंडेरी। (२) गोरखमुंडी। महामुंडी।

**अथयणीय-वि०** [ सं० ] सुनने लायक। अथय करने योग्य।

**अथयन-संज्ञा पुं०** [ सं० अथय ] अथय। कान। उ०—नयन यै

औ खवन ये सयही तोर प्रसाद । सेवा मोर यही नित बोलीं  
 आसिरवाद ।—जायसी ।  
 धवनता ॐ-किं० सं० [ सं० खल ] यहना । घना । रसना । उ०—  
 राति दिवस रस धवनत सुधा मे कामधेनु दरसाई । छट छट  
 दधि खात सपना संग तैसो स्वाद न पाई ।—सूर ।  
 किं० सं० गिराना । यक्षाना । उ०—खर भर लंक, सनांक,  
 दगानन गर्भ अर्धकिं अरि नारि ।—तुलसी ।  
 धवितक-वि० [ सं० धान ] यहा हुआ । रसा या घना हुआ ।  
 धविष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम ।  
 धविष्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घनिष्ठा नक्षत्र ।  
 धविष्ठाज-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुध ग्रह ।  
 धविष्ठाभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुध ग्रह ।  
 धविष्ठाभरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 धव्य-वि० [ सं० ] जो सुना जा सके । सुनने योग्य । जैसे,—  
 संगीत ।  
 यौ०—धव्य काव्य = वह काव्य जो केवल सुना जा सके । वह काव्य  
 जो अभिनय आदि के रूप में देखा जा न सके । इसके तीन भेद हैं—  
 (१) गय, (२) पय और (३) गयं पय । वि० दे० “काव्य” ।  
 धांत-वि० [ सं० ] (१) जिनेंद्रिय । (२) धांत । (३) जो अधिक  
 श्रम करने के कारण थक गया हो । परिश्रम से थका हुआ ।  
 (४) दुःखी । विव्र । रंजीदा । (५) निवृत्त । (६) जो सुल  
 भोगकर लुप्त हो चुका हो ।  
 धांति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्रम । परिश्रम । मेहनत । (२)  
 थकावट । उ०—संध्या पर्यंत मार्ग में चलती रही; इससे  
 अत्यंत धांति मालूम हुई ।—प्रतापनारायण । (३) श्लेद ।  
 दुःख । (४) विव्राम । आराम ।  
 धाण-वि० [ सं० ] धी, दूध या जल में पका हुआ । सिद्ध ।  
 पक ।  
 धाणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गाँड़ की काँजी जिसका व्यवहार पथ्य  
 रूप में होता है । यवागू । वि० दे० “यवागू” ।  
 धाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह कार्य जो अर्धापूर्वक किया जाय ।  
 अर्धा से किया जानेवाला काम । (२) वह कृत्य जो शास्त्र  
 के विधान के अनुसार पितरों के उद्देश्य से किया जाता है ।  
 जैसे,—पितरों के उद्देश्य से तर्पण और पिंडदान करना तथा  
 ब्राह्मणों को भोजन कराना । कुछ लोगों के मत से धाद पाँच  
 प्रकार का है—नित्य, वैभित्तिक, काव्य, वृद्धि और पार्षण ।  
 और कुछ लोग इन पाँच प्रकार के धादों के अतिरिक्त नीचे  
 लिखे सात प्रकार के और भी (कुल बारह प्रकार के) धाद  
 मानते हैं—संपिंडन, गोष्ठी, बुद्धयर्थ, क्रमांग, दैविक, वात्रायं  
 और पुरयर्थ । उ०—कतहूँ धाद कर्ता पितरन को तर्पण  
 करि बहु भौति । कहुँ विभन को दैत दक्षिणा कहुँ भोजन  
 की पौति ।—सूर । (३) आधिन कृष्ण पक्ष जिसमें पितरों

के उद्देश्य से विशेष रूप से पिंडदान किया और ब्राह्मण  
 भोजन कराया जाता है । पितृ-पक्ष । (४) विधास । (५)  
 प्रीति ।  
 धादकर्ता-संज्ञा पुं० [ सं० धादकर्तृ ] धाद करनेवाला व्यक्ति ।  
 धादकारक ।  
 धादस्त्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] धाद का भाव या धर्म ।  
 धाददेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धर्मराज । (२) यमराज । (३)  
 धाद में निर्मित ब्राह्मण । (४) माकंडेय पुराण के अनुसार  
 वैभवत मनु का एक नाम । (५) यह लोक जहाँ मरने पर  
 पितर लोग जाते हैं । पितृलोक ।  
 धादपल-संज्ञा पुं० [ सं० ] तर्पण, पिंडदान आदि के लिये निश्चित  
 आधिन मास का कृष्ण पक्ष । पितृपक्ष ।  
 धादशाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] नाड़ी शाक । काल शाक ।  
 धादसूतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] धाद के उद्देश्य से बनाया हुआ  
 भोजन । पितरों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को खिलाने के लिये  
 बनाया हुआ भोजन ।  
 धादिक-वि० [ सं० ] धाद संबंधी । धाद का ।  
 संज्ञा पुं० वह जो धाद के अवसर पर पितरों के उद्देश्य से  
 भोजन कराता हो ।  
 धादी-संज्ञा पुं० [ सं० ] धाद में भोजन करनेवाला । धादिक ।  
 धादीय-वि० [ सं० ] धाद संबंधी । धाद का ।  
 धाप-संज्ञा पुं० दे० “शाप” । उ०—राउसन मारि विधानिन्न सो  
 करायो यश तारी रिपि नारी सिद्धा शाप सों भई रही ।—  
 रघुनाथ बंदीजन ।  
 धापी-संज्ञा पुं० [ सं० ] धाद जो भोजन बनाता हो । रसांह्या ।  
 धाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मास । महीना । (२) संबप । घर ।  
 (३) कठ । समय ।  
 धाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] आशय ।  
 धाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शयन । कान । (२) गंधा वितेज ।  
 (३) दे० “स्वयण” ।  
 धायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० धायिका ] (१) बौद्ध धर्म को  
 माननेवाला संन्यासी । (२) जैन धर्म को माननेवाला  
 संन्यासी । (३) वह जो जैन धर्म का अनुयायी हो । (४)  
 नास्तिक । उ०—यह नरक को कोउ जीव है जिनि याहि  
 देखि ठेराहि । निज जालिये यह धायका भति दूर से तजि  
 ताहि ।—केशव । (५) दूर की भावाज । दूर का शब्द ।  
 (६) कौशा । काक । (७) छात्र । शिष्य ।  
 वि० श्रवण करनेवाला । सुननेवाला ।  
 धायग-संज्ञा पुं० दे० “धायक” । उ०—अजहूँ धायग ऐसो करै ।  
 ताही को मारग अनुसरे ।—सूर ।  
 धायगी-संज्ञा पुं० [ सं० ] धायक । जैन धर्म को माननेवाला । जैनी ।  
 धायण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धैत आदि महीनों में मे एक महीने



का नाम जो पौर्णमासी महीना होता और वर्षा ऋतु में पड़ता है। असाढ़ के बाद और भादों के पहले का महीना। इस मास की पूर्णमासी श्रावण नक्षत्र से युक्त होती है, इसी लिये इसे श्रावण कहते हैं। सावन। (२) एक प्रकार का वर्ष। यदि श्रावण अथवा धनिष्ठा नक्षत्र में बृहस्पति उदय हो, तो उस दिन से एक वर्ष तक का समय श्रावण कहलाता है। कहते हैं कि इस वर्ष में धान्य खूब पकते हैं, सब लोग बहुत सुखी होते हैं, पर पालेडी अनुपुष्य तथा उनके अनुयायी पीड़ित होते हैं। (३) श्रावण मास की पूर्णिमा। (४) शब्द, जिसका ग्रहण श्रवणदिन द्वारा होता है। आवाज। (५) पालेड।

वि० श्रवण नक्षत्र संबंधी। श्रवण नक्षत्र का।

श्रावण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भुँइ कदंब। (२) मुदरनाम नामक वृक्ष।

श्रावणिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रावण मास। सावन। (२) एक प्रकार की अग्नि।

वि० श्रावण संबंधी। श्रावण का।

श्रावणिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मुंडी।

श्रावणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा। सावन मास की पूर्णमासी। इस दिन ब्राह्मणों का प्रसिद्ध त्योहार 'रक्षा बंधन' या 'संलोन' तथा कुछ और कृत्य या पूजन आदि होते हैं। इस दिन लोग यज्ञोपवीत का पूजन करते और नवीन यज्ञोपवीत भी धारण करते हैं। (२) मुंडी। चुंडी। (३) भुँइ कदंब। (४) वृद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (५) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

श्रावण-क्रि० सं० [ हि० रावना ] गिराना। बहाना। उ०—रुचि हम प्रीति रीति नैनन जल संचि प्यान क्षर लागी। ताके प्रेम सुफल मुनि श्रावण दयाम सुरैंग अनुरागी।—सूर।

श्रावस्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] हरिवंश के अनुसार राजा श्राव के पुत्र का नाम, जिन्होंने श्रावस्ती नगरी बसाई थी।

श्रावस्ती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उत्तर कोशल में गंगा के तट पर बसी हुई एक बहुत प्राचीन नगरी, जो अब एक छोटे से गाँव के रूप में रह गई है और सहैत महैत कहलाती है। आजकल यह स्थान बलरामपुर राज्य के अंतर्गत है। यहाँ श्री रामचंद्र के पुत्र लव की राजधानी थी। जैनी इसे 'सायत्थी' कहते और अपने नवें तीर्थंकर सुबुद्धनाथ का कल्याणक वतलाने हैं। यह राजा प्रसेनजित की राजधानी भी कही जाती है। यहाँ एक बार कुछ दिनों तक भगवान् बुद्ध ने भी निवास किया था; इसलिये यहाँ की दृष्टि में यह एक बहुत पुण्यस्थल है। बुद्ध के समय में और उनसे पहले यह नगरी बहुत श्रीसंपन्न थी।

श्रावा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मीठ। पसावन। पीच।

श्रावी-संज्ञा पुं० [ सं० श्राविम् ] सजी। स्वजिका क्षार।।

श्राव्य-वि० [ सं० ] सुनने के योग्य। सुनने लायक। श्रोतव्य।

श्रिय-संज्ञा स्त्री० [ सं० श्रिया ] संगल। कल्याण। उ०—लखी जोति जो बान्हन लोग। तिनके बचन न संसय जोग। इनकी बानि संग श्रिय रहहीं। ये नहि कइहु गुण कइ कहहीं॥—सीताराम।

संज्ञा स्त्री० [ सं० श्री ] शोभा। प्रभा। उ०—हुहुन बीच संकेत राधिका नंदकुंवर की। सो श्रिय को कहि सकै भेहु पिय प्यारी घर की।—सूदन।

श्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विष्णु की पत्नी, लक्ष्मी।

श्रियावास-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जिसके पास यथेष्ट लक्ष्मी हो। धनवान्। अमीर।

श्रियावासी-संज्ञा पुं० [ सं० श्रियावासिन् ] महादेव। शिव।

श्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विष्णु की पत्नी, लक्ष्मी। कमला।

उ०—तजि वैकुंठ गरुड तजि श्री तजि निरुद दास के आयो।—सूर। (२) सरस्वती। (३) धूप सरल वृक्ष।

(४) लवंग। लौंग। (५) कमल। पद्म। (६) बेल। बिल्व वृक्ष। (७) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (८) सफेद चंदन। संवल। (९) धर्म, अर्थ और काम। त्रिवर्ग।

(१०) संपत्ति। धन। दौलत। (११) विभूति। ऐश्वर्य। (१२) उपकरण। (१३) अधिकार। (१४) कीर्ति। यश। (१५) प्रभा। शोभा। (१६) कालि। चमक। (१७) वृद्धि। (१८) सिद्धि। (१९) एक प्रकार का पद-चिह्न। उ०—स्वस्तिक अष्टकोण श्री केरा। हल मूसल पद्म शर हेरा।—विभ्राम।

(२०) श्रियों का बँदी नामक आभूषण। उ०—श्री जो रतन मोंग धैदारा। जानहु गगन टूट निस तारा।—जायसी।

(२१) उर्ध्व पुंड्र के बीच की लंबी मोकदार लाल रंग की रेखा। (२२) आदर-सूचक शब्द जो नाम के आदि में रखा जाता है।

संन्यासी, महात्माओं के नाम के आगे श्री १०८ लिखा जाता है। माता, पिता तथा गुरु के लिये श्री के साथ ६, स्वामी के लिये ५, शत्रु के लिये ४, मित्र के लिये ३, मौकुर के लिये २ और शिष्य, सुत तथा स्त्री के लिये श्री के साथ १ लिखने की प्राचीन प्रणाली है।

संज्ञा पुं० (१) कुंजर। (हि०) (२) प्रह्ला। (३) विष्णु।

(४) वैष्णवों का एक संप्रदाय। (५) एक वृक्ष का नाम। यह एकद्वारा वृत्ति है। इसके प्रत्येक पद में एक गुरु होगा है। यथा—गो। श्री। धी। ह्रीं। (६) संपूर्ण जाति का एक राग, जो हनुमद के मत में छः रागों के अंतर्गत पौषर्व राग है। यह धैर्य स्वर की संतान और गृष्ठी की मानि से उत्पन्न माना गया है। इसकी ऋतु शरद और वार शुक्र है। कहते हैं कि इस राग को शुद्धतापूर्वक गाने से सूखा वृक्ष भी हरा हो जाता है। शास्त्र के अनुसार इस राग की रागिणियाँ

यह है—गौरी, पूरवी, मालवा, मुलतान और जयती। इसका सहचर मंगल-राग और सहचरी चंद्रवती रागिनी है।  
 वयाम, कल्याण, मारु, एमन, मौनध्यान और गौड़ इसके पुत्र हैं। भीम पलाधी, घनाधी, मालधी, वारवा, विद्या-चकोरी इसके पुत्र वधुएँ हैं। हनुमत् के अनुसार मारवा, पूरवा, वयाम, हेम, क्षेम, हंवरिक, भूपाल, जैतरा, कल्याण, ध्यान-कल्याण इसके पुत्र हैं। इसकी खियाँ मालवी, त्रिवेणी, गौरी, गौरा और पूरवी हैं; तथा इसकी त्रियाएँ एमनि, टंकी, माली, गौरा, नामधनि और चेतकी हैं।

वि० (१) वीर्य । (२) सुंदर । (३) श्रेष्ठ । (४) सुभ ।

श्रीकण्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) निव । महादेव । उ०—श्रीकण्ठ उर वासुकि लसत सर्वमंगला मार ।—केताव । (२) हस्तिनपुर के उत्तर पश्चिम का कुस जंगल देश ।

श्रीकण्ठसखा-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुबेर का एक नाम ।

श्रीकण्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बंध्या कर्कटकी । खेल्सा । धनपखल ।

श्रीकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) छाल कमल । (३) नौ उपनदों में से एक ।

वि० शोभा बढ़ानेवाला । सौंदर्य बढ़ानेवाला ।

श्रीकरण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कलम । लेखनी । (२) कायस्थों की एक शाखा या उपजाति का नाम ।

श्रीकर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पर्या । (शुहसंहिता)

श्रीकांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] लक्ष्मी के पति, विष्णु ।

श्रीकारी-संज्ञा पुं० [ सं० श्रीकारिन् ] एक प्रकार का मृग । कुरंग । पर्या०—महायव । गिलिचूप । यवन । जंघाल ।

श्रीकीर्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद । इसमें दो गुंठ और दो छ्यु मापाएँ होती हैं । (संगीत दामोदर)

श्रीकुंज-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम, जो सरस्वती नदी के तट पर था ।

श्रीकुंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

श्रीकृष्ण-संज्ञा पुं० दे० "कृष्ण" (१) ।

श्रीद्विष-संज्ञा पुं० [ सं० ] जगन्नाथ पुरी तथा उसके आम्पास के प्रदेश का नाम, जो पुष्य क्षेत्र माना जाता है ।

श्रीखंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का चंदन जो हरिचंदन भी कहलाता है । मलयगिरी चंदन । उ०—सुवत्ता माल्य नंद नंदन उर अर्ध सुधां घट कान्ति । ननु श्रीखंड मेव उच्चल धनि देवि महाभल भोति ।—सूर । (२) दे० "शिवरण" । उ०—कलियां भर कथा वर स्वाड । तिभि श्रीखंड करन अहलद ।—राजराज । (३) वैद्यकों की एक जाति ।

श्रीखंड शैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] मलय पर्वत, जहाँ श्रीगंड (चंदन) होता है ।

श्रीखंडा-संज्ञा पुं० दे० "श्रीखंड" (४) ।

श्रीगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद चंदन । संदल-

श्रीगदित-संज्ञा पुं० [ सं० ] उपरूपक के अठारह भेदों में से एक भेद । इसकी रचना प्रायः किराँ पौराणिक घटना के आधार पर होती है । इसका दूसरा नाम श्रीरासिका भी है ।

श्रीगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) खडग । तलवार ।

श्रीगुरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैश्यों की एक जाति विशेष ।

श्रीगोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] कमल । पत्र ।

श्रीगौड-संज्ञा पुं० [ सं० ] ? ] वैश्यों की एक जाति विशेष ।

श्रीग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ विदियों के पानी पीने का प्रबंध हो ।

श्रीघन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दही । दधि । (२) बुद्धदेव का एक नाम । (३) बौद्ध यति या संन्यासी ।

श्रीचंदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद चंदन । संदल ।

श्रीचक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] तंत्रिकों के अनुसार एक प्रकार का चक्र या चंद्र जिसका व्यवहार देवी के पूजन में, विशेषतः त्रिपुरा-सुंदरी देवी के पूजन में होता है ।

श्रीचमरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का हिरन ।

श्रीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कामदेव । मदन । (२) शंख का एक नाम ।

श्रीटंक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में एक प्रकार का राग, जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं ।

श्रीश्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रात । रात्रि ।

श्रीतरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सज्ज वृक्ष । साल का पेड़ । साल ।

श्रीतल-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णुपुराण के अनुसार एक नरक का नाम ।

श्रीताल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ताड़ या ताल के वृक्ष से मिलता सुल्ला एक प्रकार का वृक्ष जिसे हिताल भी कहते हैं । यह महायां देश में उत्पन्न होता है । वैद्यक के अनुसार यह मधुर, कूट कुछ बृद्धा, कफ-कारक, किंचित् वायु को बुधित करनेशक्य तथा पित्त का नाश करनेवाला माना गया है ।

पर्या०—शुद्धताल । लक्ष्मीताल । शुद्धच्छद । विशालपत्र । मसीलेखदल । शिवालपत्रक ।

श्रीतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

श्रीतेज-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीवैद्यक के अनुसार एक बुद्ध का नाम ।

श्रीद-संज्ञा पुं० [ सं० ] धन देनेवाले, कुबेर ।

वि० श्री बढ़ानेवाला । शोभा बढ़ानेवाला ।

श्रीदयित-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।

श्रीदाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीगणेश । श्रीकृष्ण के एक ग्वाल सखा का नाम, जिन्हें सुदामा भी कहते हैं । उ०—ईनि हंसि तारी

देव सखा सच भगु श्रीदामा चोर । सुरदास हंसि कहति  
यशोदा जीव्यो है सुत मोर ।—सूर ।

श्रीदेवा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यमुदेव की पत्नी सुदेवा का एक नाम ।

श्रीधन्वी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

श्रीधर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु का एक नाम । उ०—धनि  
धनि नंद धन्य निशिवासर धनि यशुमति जिन श्रीधर जागु ।

—सूर । (२) जैनियों के चौबीस तीर्थकरों में से सातवें  
तीर्थकर का नाम ।

वि० तेजस्वी । तेजवान् ।

श्रीधाम—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लक्ष्मी का निवास-स्थान । (२)  
पद्म ।

श्रीनंदन—संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव ।

श्रीनाथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।

श्रीनिकेत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लक्ष्मी का निवास-स्थान, वैकुण्ठ ।

उ०—श्रीनिकेत समेत सब सुख रूप प्रगट निधान । अधर  
सुधा पिआइ बिहारे पटै दीनो ज्ञान ।—सूर । (२) गंधा  
विरोजा । सरल-निर्यास । (३) हलाल कमल । (४) स्वर्ण ।  
सोना ।

श्रीनिकेतन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) लक्ष्मी का  
निवासस्थान, वैकुण्ठ । (३) गंधा विरोजा । सरल निर्यास ।

श्रीनितंथा—संज्ञा स्त्री० [ सं० श्रीनिन्ता ] राधा का एक नाम ।

श्रीनिधि—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।

श्रीनिवास—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु का एक नाम । (२) श्री  
या लक्ष्मी का निवासस्थान, वैकुण्ठ ।

श्रीनिवासक—संज्ञा पुं० [ सं० ] कटसरैया ।

श्रीपंचमी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माघ शुक्ल पंचमी । वसंत पंचमी ।  
उ०—इहै दहै कर सुरति गैवाहै । सिरीपंचमी पूजै आई ।—  
जायसी ।

श्रीपति—संज्ञा पुं० [ सं० श्रीपति ] विष्णु । (हिं०)

श्रीपति—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । नारायण । हरि । उ०—  
जाके सखा दयाम सुंदर से श्रीपति सकल सुखन के दाता ।  
—सूर । (२) रामचंद्र । उ०—बार बार श्रीपति कहै कैवट  
नहिं मानै ।—सूर । (३) कृष्ण । उ०—तो हम कडु न  
वसाई पायं जो श्रीपति तोहि जितवै ।—(४) कवेर ।  
(५) पृथ्वीपति । नृप । राजा ।

श्रीपथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़ी और चौड़ी सड़क । राजमार्ग ।  
राजपथ ।

श्रीपद्मी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वार्षिकी पुष्प-शुद्ध । मछिका । बेला ।

श्रीपद्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीकृष्ण का एक नाम ।

श्रीपर्ण—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमल । पद्म । (२) अभिमंथ वृक्ष ।  
अरनी । गनियारी ।

श्रीपरिष्का—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कटफल । कायफल । (२)

गंभारी । (३) गनियारी । अरनी । (४) पृथिवीपत्नी । पिटवन ।

(५) सेमल का पेड़ । शाक्यलि ।

श्रीपर्णी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कायपर । कायफल । (२)

गंभारी । (३) गनियारी । अरनी । (४) पृथिवीपत्नी । पिटवन ।

(५) सेमल का पेड़ । शाक्यलि ।

श्रीपाद—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो चरण पूजने योग्य हो ।

पुण्य श्रेय । (२) धनवान् । संपन्न ।

श्रीपिष्ट—संज्ञा पुं० [ सं० ] सरल वृक्ष का रस । गंधा विरोजा ।

श्रीपुत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अश्व । घोड़ा । (२) कामदेव ।

श्रीपुर—संज्ञा पुं० [ सं० ] दक्षिण का मण्डिप नामक स्थान, जो  
वाममार्गी शक्तों का प्रधान स्थान है । यहीं ये लोग मुक्ति  
का सुख अनुभव करते हैं ।

श्रीपुष्प—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लौंग । लवंग । (२) पत्रकण्ट ।  
पद्मनाभ । (३) पुंढेरी । (४) सफेद कमल ।

श्रीप्रद—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो श्री या सौभाग्य प्रदान करता हो ।

श्रीप्रदा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राधा का एक नाम ।

श्रीप्रसून—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लौंग । लवंग ।

श्रीमिय—संज्ञा पुं० [ सं० ] हस्ताल ।

श्रीफल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बेल । (२) नारियल । उ०—(क)

श्रीफल मधुर चिरंजी आनी । सफरी चिद्भा भर नप  
याणी ।—सूर । (ख) हिया घार कुच कनक कचूरा । जानहुँ  
दोक श्रीफल जूरा ।—जायसी । (३) खिरनी । राजादनी  
वृक्ष । (४) आँवला । (५) कच्ची चिकनी सुपारी ।

श्रीफलता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नीली । नील का पौधा । (२)  
कोरी । क्षुद्र कारवेली । (३) आँवला ।

श्रीफलिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) क्षुद्र कारवेली । कोरी ।  
(२) महानीली का पौधा ।

श्रीफली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आँवला । (२) नील । (३)  
बड़ी मालकँगनी । महा ज्योतिष्मती लता ।

श्रीगंधु—संज्ञा पुं० [ सं० ] अमृत ।

श्रीबीज—संज्ञा पुं० [ सं० ] ताड़ । ताल-वृक्ष ।

श्रीभक्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] मधुपर्क जो देवताओं के सामने रखा  
जाता या दान किया जाता है । चिं० दे० "मधुपर्क" (१) ।

श्रीभद्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] मुस्तक । मोया ।

श्रीभद्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भद्रमोया । भद्रमुस्तक ।

श्रीभान—संज्ञा पुं० [ सं० ] भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण के एक  
पुत्र का नाम, जिनका जन्म सत्यभामा के गर्भ से हुआ था ।  
श्रीभ्राता—संज्ञा पुं० [ सं० श्रीभ्रात ] अश्व, चंद्र, अमृत आदि चौदह  
रत्न जो समुद्र से उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मी या श्री के भाई  
कहे जाते हैं ।

श्रीमंगल—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

श्रीमंजरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मुलसी । सुरसा ।

श्रीमंजु—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम ।

श्रीमंडप—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम ।

श्रीमंत—संज्ञा पुं० [ सं० श्रीमंत ] (१) एक प्रकार का शिशोभूषण ।  
उ०—दीना सचिकन केना हो विच श्रीमंत सैवारि।—सूर ।

(२) शिष्यों के सिर के बीच की सोंग ।

वि० श्रीमात् । धनवात् । धनार्य । धनी ।

श्रीमत्—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तिल पुष्प । (२) पीपल । अधर्य वृक्ष । (३) विष्णु का एक नाम । (४) शिव का एक नाम । (५) कुवेर । (६) ऋषभक नामक अष्टवर्गीय ओषधि । (७) हल्दी का पीषा ।

वि० (१) जिसके पास बहुत अधिक धन हो । धनवात् । अमीर । (२) जिसमें श्री या शोभा हो । (३) सुंदर । स्वप्नरत ।

श्रीमती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) "श्रीमात्" का श्री लिंग धातक शब्द । शिष्यों के लिये आदरसूचक शब्द । जैसे,—श्रीमती सुभद्रा देवी । (२) लक्ष्मी । (३) राधा का एक नाम । (४) मुंजिका । मुंजी ।

श्रीमदकुंभ—संज्ञा पुं० [ सं० ] सोना ।

श्रीमत्ता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) "श्रीमात्" या "श्रीमात्" होने का भाव या धर्म । (२) संपन्नता । अमीरी ।

श्रीमय—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

श्रीमलापड़ा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तमात् । तमाकू ।

श्रीमस्तक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लहसुन । (२) हल आल ।

श्रीमहिमा—संज्ञा पुं० [ सं० श्रीमहिम् ] शिव । महादेव ।

श्रीमान्—संज्ञा पुं० [ सं० श्रीमान् ] (१) आदरसूचक शब्द जो नाम के आदि में रखा जाता है । श्रीयुत् । शोभावात् । उ०—  
जय जय जय श्रीमान् महायु जय जय जगत अधार ।—  
सूर । (२) लक्ष्मीवात् । धनवात् । अमीर । (३) सुंदर ।

गंगा पुं० (१) तिल पुष्प । (२) पीपल । अधर्य वृक्ष । (३) हल्दी । हरिदा । (४) ऋषभक नामक अष्टवर्गीय ओषधि । (५) विष्णु । (६) शिव । (७) कुवेर ।

श्रीमाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] शैश्यों की एक जाति ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० श्री + माला ] गले में पहनने का एक आभूषण । कंठ श्री । उ०—चिचुक तर कंठ श्रीमाल मोतीन छवि कुच उचलि हेम गिरि भतिहि छात्रे।—सूर ।

श्रीमुख—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शोभित या सुंदर मुख । उ०—  
आंगम कल्प रमण हुष है है श्रीमुख कही बखान ।—सूर ।  
(२) बृहस्पति के साठ संवत्सरो में से सातवां संवत्सर ।  
(३) विष्णु का मुख, वेद ।

श्रीमूर्ति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विष्णु की मूर्ति ।

श्रीयुक्त—वि० [ सं० ] (१) जिसमें श्री या शोभा हो । (२) एक आदरसूचक विशेषण, जो बड़े आदरियों के नाम के साथ

लगाया जाता है । जैसे,—श्रीयुक्त केदारचंद्र सेन ।

श्रीयुत—वि० दे० "श्रीयुक्त" ।

श्रीरंग—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । लक्ष्मीपति । उ०—कके  
होहि जो नहि मोकुल के सूरज प्रभु श्रीरंग।—सूर । (२)  
ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद ।—संगीत दामोदर ।

श्रीरंगपट्टन—संज्ञा पुं० [ सं० ] दक्षिण में मैसूर राज्य के अंतर्गत एक प्रसिद्ध तीर्थ का नाम । पहले मैसूर राज्य की यहीं राजधानी थी । यहाँ "श्रीरंग स्वामी" नाम की एक प्रसिद्ध विष्णुमूर्ति है, जिसके कारण इसका यह नाम पड़ा है ।

श्रीरमण—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक संकर राग जो शंकराभरण और मालश्री को मिलाकर बनाया गया है । (संगीत) (२) विष्णु ।

श्रीरघन—संज्ञा संज्ञा [ सं० श्रीरमण ] लक्ष्मी में रमण करनेवाले, विष्णु ।

श्रीरस—संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधा विरोजा । श्रीवेष्ट ।

श्रीराग—संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में छः रागों में से तीसरा राग, जो संपूर्ण जाति का है और पृथ्वी की नाभि से उत्पन्न माना गया है । हनुमान के मत से यह पाँचवाँ राग है और इसका स्वर प्राम इस प्रकार है—सा रे ग म प ध नि सा अथवा नि ग म प ध नि सा रे । यह हेमंत ऋतु में तीसरे पहर या संध्या समय गाया जाता है । सोमेश्वर के मत से मालवी, त्रिवेणी, गौरी, केदार, मधुमाधवी और पहाड़ी ये छः इसकी भार्याएँ या रागिनियाँ हैं; और संगीत दामोदर में गौधारी, देवगांधारी, मालवश्री, सावी और रामक्रीरी ये पाँच रागिनियाँ कही गई हैं । सिंधु, मालव, गौड़, गुणसार, कुंभ, गंभीर, चिहवा और कल्याण ये आठ इसके पुत्र कहे गए हैं । उ०—पँचयें सिरिराग भल क्रियो । छप्ये दीपक उठा यर दिमो ।—जायसी ।

श्रीरूपा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राधा ।

श्रीलता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बड़ी मालकैंगनी । ज्योतिष्मती लता ।

श्रीवन्त—वि० [ सं० श्रीवत् ] ऐश्वर्यवान् । संपत्तिवाली ।

श्रीवत्स—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) विष्णु के बहस्यल पर अंगुष्ठ प्रमाण श्वेत दाँतों का दक्षिणावर्त भीरी का सां चिह्न, जो श्नु के चरण-अहार का चिह्न माना जाता है । उ०—यन के धातु चित्र सनु किम् । श्रीवत्स चिह्न राजन अस्ति दिपु ।—सूर । (३) जैनों के अनुसार अर्धलौ का एक चिह्न ।

श्रीवराह—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का चरह अवतार ।

श्रीवर्द्धन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक राग का नाम । (२) शिव का एक नाम ।

श्रीवह्नी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की कँटीली शला या पद्मे-माथी झाड़ी, जिसका ध्वजहात औषध में होता है ।

**विशेष**—यह लता कुछ दिनों तक बों ही खड़ी रहती है। पीछे बढ़ने पर किसी वृक्ष आदि का आश्रय लेती है। इसके डंठल और दहनियाँ भूरे रंग की होती हैं तथा उन पर टेढ़े कोंठे होते हैं। यह फ़सल से फूलने लगती है और आपाद तक फलती है। इसमें छोटी छोटी फलियाँ लगती हैं। बैद्यक में ये फलियाँ हल्की, रेशक और नमनकारक कही गई हैं। इस पौधे की फली, पत्ती और छाल सीतों में औषधोपयोगी हैं।

**पर्याय**—शिववह्नी। कंदवह्नी। अगला। कटुफला। दुरारोहा।

**श्रीवह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक नाम का नाम।

**श्रीवादी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पान। नागवह्नी के पान।

**श्रीवारक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सित्तार शक। शिरियासी।

**श्रीवास**, **श्रीवासक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गंधाविरोजा। सरल-निर्वास। (२) तारपीन का तेल। (३) गुगल। (४) देवदारु। (५) राल। धूप। करायल। (६) चंदन। संदल। (७) कमल। (८) विष्णु। (९) शिव।

**श्रीवासच्छद्**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धूप का पेट। सरल वृक्ष। (२) चंदन। (३) पदुमाख। पद्मकाष्ठ।

**श्रीवाससार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गंधाविरोजा। (२) तारपीन का तेल।

**श्रीवासा**—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीवास। गंधाविरोजा। सरल वृक्ष।

**श्रीवृक्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अश्वरथ वृक्ष। पीपल। (२) विट् वृक्ष।

**श्रीवृक्षक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घोड़े की छाती पर की एक बँवरी जो शुभ मानी जाती है। (२) एक व्रत का नाम।

**श्रीवृद्धि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दौधिट्टम पर की एक देवी। (ललित-विस्तार)

**श्रीवेष्ट**, **श्रीवेष्टक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सरल वृक्ष। गंधाविरोजा। (२) तारपीन का तेल। सरल वृक्ष।

**श्रीवैष्णव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] रामानुज का अनुयायी वैष्णव। वैष्णवों का एक संप्रदाय।

**श्रीश**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु।

**श्रीसंज्ञ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] लौंग। लवंग।

**श्रीसंपदा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

**श्रीसंभूता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ज्योतिष में कर्म मास की छठी रात्रि।

**श्रीसदा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रजनी। निशि। रात्रि। उ०—निशि श्रीसदा विभावरी, रात्रि त्रिजामा सोप।—अनेकार्थ।

**विशेष**—इस अर्थ में यह शब्द संस्कृत कोशों में नहीं मिलता।

**श्रीसमाध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राग जो श्री, शुद्ध, मालव्री, भीम पलाश्री और टंक को मिलाकर बनाया गया है।

**श्रीसहोदर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा। (चंद्रमा और लक्ष्मी दोनों समुद्र से उत्पन्न हैं।)

**श्रीहृद्**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक नगर का नाम। सिलहट।

**श्रीहृत्**—वि० [ सं० ] (१) गोभा-रहित। (२) निस्तेज। निष्प्र-प्रमाहीन। उ०—नमिन सीस सोवहि सल्ल सय श्रीहृत् भय सरी।—मुलसी।

**श्रीहर्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मैथप कान्य के रचयिता संस्कृत के प्रसिद्ध पंडित और कवि जो कान्यकुब्ज के गहरवार राजा के आश्रित थे। (२) रत्नायली, नागानंद और प्रियदर्शिक नाटकों के रचयिता जो संभवतः कान्यकुब्ज के प्रसिद्ध सम्राट हर्षवर्द्धन थे।

**श्रीहस्तिनो**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हस्तिशुंठी। नागवती। (२) सूर्यमुखी का पौधा।

**श्रुग्वार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विकंकत। कंदाई। कंज वृक्ष।

**श्रुम्भिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सर्वासार।

**श्रुतंधर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वास्तुविद्या में एक प्रकार का मंथप।

**श्रुत**—वि० [ सं० ] (१) सुना हुआ। जो श्रवण-गोचर हुआ हो। (२) जिसे परंपरा से सुनते आते हैं। (३) ज्ञात। प्रसिद्ध। श्रुत।

**श्रुतकीर्ति**—वि० [ सं० ] जिसकी कीर्ति प्रसिद्ध हो।

**संज्ञा पुं०** अर्जुन के एक पुत्र का नाम।

**संज्ञा स्त्री०** राजा जनक के भाई कुरावज की कन्या, जो शत्रुघ्न को प्याही थी।

**श्रुतकेवली**—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रुतकेलिन्। एक प्रकार के अर्हर जो छः कहे गए हैं। (जैन)

**श्रुतवैवी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती।

**श्रुतधर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कान। (२) शात्मलि द्वीप के वासियों की संज्ञा। (पुराण)

**श्रुतनिगधी**—वि० [ सं० ] श्रुतनिगदिन्। जो एक बार सुने हुए वचन आदि को ज्यों का ज्यों बत सके।

**श्रुतपूर्व**—वि० [ सं० ] जो पहले सुना गया हो। जाना हुआ।

**श्रुतशील**—वि० [ सं० ] विद्वान् और सदाचारी। संज्ञा पुं० विद्या और सदाचार। (मनु०)

**श्रुतान्वित**—वि० [ सं० ] शास्त्रज्ञ। शास्त्रवेत्ता।

**श्रुतायु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] राम के पुत्र कुश के वंशज एक वंशी राजा।

**श्रुतायुध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राजा, जिसके पिता वरुण ने एक पैसी गदा प्रदान की थी कि जो युद्धकर्ता पर फँके उसका अवयव नाश कर देती थी, पर युद्ध न करनेवाले ऊपर चलाने से वह लौटकर चलानेवाले ही के प्राण ले लेती।

**श्रुति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्रवण करने की क्रिया या भाव सुनना (२) सुनने की इच्छा। श्रवण। ध्यान। ध्यान जो सुना जाय। सुनी हुई बात। (४) शब्द। ध्वनि भाषायां। (५) खबर। शुद्धत। किंवदंती। (६) कथन बात। (७) वह पवित्र ज्ञान जो वृष्टि के आदि में प्रकट

बृह महर्षियों द्वारा सुना गया और जिसे परंपरा से ऋषि सुनते आए। वेद। निगम।

विशेष—'श्रुति' के अंतर्गत पहले मंत्र और ब्राह्मण-भाग ही लिखे जाते थे, पर पीछे उपनिषद् भी मानी गई।

(८) चार की संख्या (वेद चार होने से)। (९) संगीत में किसी सप्तक के चाईस भागों में से एक भाग अथवा किसी स्वर का एक अंश। स्वर का आरंभ और अंत इसी से होता है। पद्म में चार, ऋषभ में तीन, गांधार में दो, मध्यम में चार, पंचम में चार, षष्ठम में तीन और निषाद में दो श्रुतियाँ होती हैं। (१०) अनुप्रास का एक भेद। (११) त्रिभुज के समकोण के सामने की भुजा। (१२) नाम। अभिधान। (१३) विद्वत्ता। (१४) विद्या। (१५) अत्रि ऋषि की कन्या, जो कर्दम की पत्नी थीं।

श्रुतिकट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्प। सर्प। (२) तप।  
श्रुतिकट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] काव्य-रचना में एक दोष। कठोर और कर्करा वर्णों का व्यवहार। दुःश्रवण।

विशेष—द्विच वर्ण, टवर्ण, मूर्द्धन्व वर्ण कठोर माने गए हैं। श्रुतिकट्ट नित्य दोष नहीं है, अनियत दोष है क्योंकि यह सर्वत्र दोष नहीं होता, केवल श्रंगार, करुण आदि कोमल रसों में कठोर वर्ण दोषाध्यायक होते हैं, वीर, रौद्र आदि में नहीं।

श्रुतिकीर्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "धृतकीर्ति"।  
श्रुतिजीविका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्मृति। धर्मशास्त्र।  
श्रुतिदुष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रुतिकट्ट दोष। दुःश्रवण।  
श्रुतिपथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ध्वज मार्ग। श्रवणोदय।

मुहा०—श्रुतिपथ में आना = सुनारं पठना।

(२) वेदविहित मार्ग। सम्मार्ग।

श्रुतिमाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( चार सिरवाले ) प्रह्ला।  
श्रुतिमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( चार मुखवाले ) प्रह्ला।  
वि० वेद ही जिसका मुख है।

श्रुतिवर्जित-वि० [ सं० ] (१) वधिर। बहिरा। (२) वेद के अभ्यास से रहित।

श्रुतिविद्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुल द्रोण की एक नदी।  
श्रुतिवेध-संज्ञा पुं० [ सं० ] कनछेदन। कर्णवेध संस्कार।  
श्रुतिस्फोट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कनफोड़ा। (२) कर्णस्फोटा लला।

श्रुतिहारी-वि० [ सं० ] श्रुतिहारि। कानों की अच्छा लगानेवाला। सुनने में मधुर।

धृत्य-वि० [ सं० ] (१) सुना जाने योग्य। (२) प्रसिद्ध। (३) प्रसस्त।

धृत्यनुप्रास-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनुप्रास के पाँच भेदों में से एक।

यह अनुप्रास जिसमें एक ही स्थान से उच्चरित होनेवाले व्यंजन दो या अधिक बार आवें।

विशेष—कंठ, तालु, मूर्दा, दंत आदि उच्चारण के स्थान हैं। अतः निम्न वर्ण होने पर भी यहाँ कई वर्ण एक ही उच्चारण-स्थान के हैं, तो यह अनुप्रास होगा।

श्रुय-संज्ञा पुं० दे० "ध्रुव"।

श्रुया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कासमर्द। कर्साँदा।

श्रेटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पहाड़। सेड़ी।

श्रेण्यि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बहुत सी वस्तुओं का ऐसा समूह जो उत्तरोत्तर रेखा के रूप में कुछ दूर तक चला गया हो। पंक्ति। पंती। कृत्वार (२) एक के उपरांत दूसरा ऐसा लगातार क्रम। श्रंखला। परंपरा। सिलसिला।

यौ०—श्रेणीबद्ध।

(३) दल। समूह। (४) सेना। फौज। (५) समान व्यवसायियों का दल। एक ही कारवार करनेवालों की मंडली। कंपनी। (६) पानी भरने का डोल। (७) सिकड़ी। अंजीर। (८) सीढ़ी। ज़िना। (९) किसी वस्तु का अगला या ऊपरी भाग।

श्रेणिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अगला दौंत। राजदंत। (२) मगध देश के राजा विद्यसार का एक नाम।

श्रेणिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) देर। सेमा। तंबू। (२) एक छंद का नाम। (३) एक गुण।

श्रेणी-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रेणि"।

श्रेणीधर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यवसायियों की मंडली या पंचायत की रीति या नियम।

श्रेणीबद्ध-वि० [ सं० ] पंक्ति के रूप में स्थित। कृत्वार वॉधे हुए।

श्रेय-वि० [ सं० ] श्रेयसी [ स्त्री० ] श्रेयसी (१) अधिक अच्छा। बेहतर। (२) श्रेष्ठ। उत्तम। बहुत अच्छा। प्रशस्त। (३) मंगलदायक। शुभ। कल्याणकारी। (४) यश देनेवाला। कीर्तिकर।

श्रेया पुं० (१) अच्छापन। (२) भलाई। बेहतरी। कल्याण। मंगल। (३) धर्म। पुण्य। सदाचार। (४) एक सप्तम का नाम। (५) ज्योतिष में दूसरा सुहृत्। (६) वर्धमान अवसरिणी के ग्यारहवें अर्हत्। (चैन)

श्रेयस्ती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हरीतकी। हरी। (२) पाठा। पाठी। (३) गज पीपल। (४) रात्र। (५) मिर्मयु।

श्रेयस्कर-वि० [ सं० ] कल्याण करनेवाला। शुभदायक।

श्रेयासनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्धमान अवसरिणी के ग्यारहवें अर्हत् या तीर्थकर। (चैन)

श्रेय-वि० [ सं० ] [ स्त्री० ] श्रेया (१) सर्वोत्तम। उत्कृष्ट। बहुत अच्छा। (२) सुख्य। प्रधान। प्रथम। (३) पूज्य। बड़ा। (४) दृढ़। स्थिर। (५) कल्याण-भाजन।

संज्ञा. पुं० (१) कुवेर । (२) विष्णु । (३) द्विज । ब्राह्मण ।  
**श्रेष्ठकाष्ठ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सागौन । सागवन का पेड़ ।  
 (२) घर में लगा प्रधान स्तंभ ।  
**श्रेष्ठता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उत्तमता । (२) प्रधानता ।  
 गुस्ता । बड़ाई । बड़प्पन ।  
**श्रेष्ठा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बहुत उत्तम स्त्री । (२) स्थल  
 कमल । (३) मेधा नामक अधर्मायि ओषधि । (४) शिफला ।  
**श्रेष्ठी**-संज्ञा पुं० [ सं० ] ध्यापरियों या वणिकों का मुखिया ।  
 प्रतिष्ठित व्यवसायी । महाजन । सेठ ।  
**श्रेष्ण**-वि० [ सं० ] पंशु । रंज ।  
 † संज्ञा पुं० दे० "श्रेण" । उ०—श्रेण की सरिता दुरंत  
 अनंत रूप सुनंत ।—कंदाल ।  
**श्रेष्णा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कौजी । भात का मीढ़ । (२)  
 श्रवण नक्षत्र ।  
**श्रेष्णि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कटि । कमर । (२) नितंब । चूतड़ ।  
 (३) यज्ञ की वेदी का किनारा । (४) पथ । मार्ग ।  
**श्रेष्णिका**-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रेणि" ।  
**श्रेष्णित**-संज्ञा पुं० दे० "श्रेणित" ।  
**श्रेष्णिसूत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] करधनी । मेखला ।  
**श्रेष्णी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कटि । कमर । (२) चूतड़ । नितंब ।  
 (३) मध्य भाग । कटि प्रदेश ।  
**श्रेतः** आपत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बौद्ध शास्त्र के अनुसार मुक्ति  
 या निर्वाणसाधना की प्रथम अवस्था जिसमें बंधन ढीले  
 होने लगते हैं ।  
**श्रेयोप**-बौद्ध-शास्त्र में पाँच प्रतिबंध माने गए हैं—आलस्य,  
 हिंसा, काम, विचिकित्सा और मोह । श्रेतःआपन्न को ये  
 पाँचों बंधन छोड़ते तो नहीं पर क्रमशः ढीले होते जाते हैं ।  
 इस अवस्था को प्राप्त साधक को केवल सात बार और  
 जन्म लेना पड़ता है । इस अवस्था के उपरान्त 'सकृद्गामी'  
 की अवस्था है जिसमें प्रथम तीन बंधन सर्वथा छूट जाते हैं  
 और एक ही जन्म और लेना रह जाता है ।  
**श्रेतः** आपन्न-वि० [ सं० ] बौद्ध-शास्त्र के अनुसार मुक्ति या  
 निर्वाण की साधना में प्रथम अवस्था को प्राप्त जिसमें क्रमशः  
 बंधन ढीले होने लगते हैं ।  
**श्रेतः**-संज्ञा पुं० [ सं० श्रेतस् ] श्रवणेंद्रिय । कान ।  
**श्रेतक**-वि० [ सं० ] (१) सुनने योग्य । श्रवणीय । (२) जिसे  
 सुनना हो ।  
**श्रेता**-संज्ञा पुं० [ सं० श्रेत् ] (१) सुननेवाला । श्रवणकर्ता । (२)  
 कथा या उपदेश सुननेवाला ।  
**श्रेत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रवणेंद्रिय । कान । (२) वेदज्ञान ।  
**श्रेत्रकर्ता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक पौधा जो औषध के काम में  
 आता है ।

**श्रेत्रिय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वेद वेदांग में पारंगत । वेदज्ञ ।  
 (२) ब्राह्मणों का एक वर्तमान भेद ।  
**श्रेत्री**-संज्ञा पुं० दे० "श्रेत्रिय" ।  
**श्रेत्रो**-संज्ञा पुं० दे० "श्रेण" । उ०—लिपु नृकपाल वृद्धे कपाल ।  
 करे नर मुंदिन की उर माल । पिये नर श्रेत्र मिन्यो  
 मदिरा सों । कपालि कु देखिये भोम प्रभा सों ।—केशव ।  
**श्रेत्रो**-संज्ञा पुं० दे० "श्रेणित" । उ०—श्रेत्रो न श्रवत र्हे  
 तनु कैसे । परम प्रकृष्टित किंसुक जैसे ।—मधुसूदनदास ।  
**श्रेत्र**-वि० [ सं० ] (१) श्रवण संबंधी । (२) श्रुति संबंधी ।  
 (३) श्रुतिविहित । वेद-प्रतिपादित । जो वेद के अनुसार हो ।  
 (४) यज्ञ संबंधी । जैसे,—श्रेत्र-कर्म, श्रेत्र-सूत्र । (५)  
 तीनों प्रकार की श्रुति ।  
**श्रेत्रध्वज**-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिशुपाल का एक नाम ।  
**श्रेत्रसूत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञादि के विधानवाले सूत्र । कस्य  
 ग्रंथ का वह अंश जिसमें पौर्णमास्येष्टि से लेकर अधमेघ  
 पर्यंत यज्ञों का विधान है ।  
**श्रेत्रोप**-दो प्रकार के वैदिक सूत्रग्रंथ मिलते हैं—श्रेत्र-सूत्र  
 और गृह्यसूत्र । श्रेत्र-सूत्रों में यज्ञों का विधान है । सूत्रकार  
 कई हैं । जैसे,—आश्वलायन, आपस्तंब, कात्यायन, द्राघाण्य ।  
**श्रेत्रोहोम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सामवेद का एक परिशिष्ट ।  
**श्रेत्रकर्म**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेद-विहित योगादि कर्म । यज्ञ ।  
**श्रेत्रजन्म**-संज्ञा पुं० [ सं० श्रेत्रजन्म ] द्विजों का उपनयन-संस्कार  
 जिसमें वे वेद के अधिकारी होकर द्वितीय जन्म प्राप्त करते हैं ।  
**श्रेत्रो**-संज्ञा पुं० दे० "श्रवण" । उ०—पीतम श्रेत्र समीप सदा  
 यज्ञी यौं कहिके पहिले पहिरायो ।—मतिराम ।  
**श्रेत्राह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमल । पत्र । (२) गंधाधिरोग ।  
 सरल द्रव्य ।  
**श्रेत्र**-वि० [ सं० ] (१) शिथिल । ढीला । (२) मंद । धीमा ।  
 (३) दुर्बल । अशक्त । (४) न बँधा हुआ । छूटा हुआ ।  
**श्रेत्रबंधन**-वि० [ सं० ] जिसके बंधन ढीले हो गए हैं ।  
**श्रेत्रघन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० श्रेत्रिण, श्रेत्री, श्रेत्रणीय, श्रेत्र ]  
 अपनी प्रशंसा करना । डींग हँकना ।  
 वि० अपनी प्रशंसा करनेवाला ।  
**श्रेत्राधीन**-वि० [ सं० ] (१) प्रशंसा के योग्य । प्रशंसनीय ।  
 तारीफ़ के लायक । (२) उत्तम । श्रेष्ठ ।  
**श्रेत्राघा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रशंसा । तारीफ़ । (२) स्तुति ।  
 बड़ाई । (३) खुदायामद । चापलसी । (४) इच्छा । चाह ।  
 उ०—अच्छा तो शांत हुआ कि कदाचित् तुम्हारी लुभा है  
 कि मैं तुमको इनसे भी नीचतर समझूँ ।—अयोध्यासिंह ।  
 (५) आज्ञा पालन ।  
**श्रेत्रभित**-वि० [ सं० ] (१) जिसकी तारीफ़ हुई हो । प्रशंसित ।  
 (२) अच्छा । उत्तम । श्रेष्ठ ।

श्लाघ्य-वि० [ सं० ] (१) सराहने योग्य । प्रशंसनीय । तारीफ़ के लियक । (२) श्रेष्ठ । अच्छा ।

श्लिष्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मिलना । जुड़ना । संयुक्त होना । (२) परिवर्भण । आलिंगन ।

श्लिष्ट-वि० [ सं० ] (१) मिला हुआ । एक में जुड़ा हुआ । सटा हुआ । रूना हुआ । (२) अच्छी तरह जमा हुआ । चिपका हुआ । खूब पैठा हुआ । (यक्ष आदि) (३) आलिंगित । भेंटा हुआ । (४) (साहित्य में) श्लेषयुक्त । जिसके दोहरे अर्थ हों ।

श्लिष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जोड़ । मिलाव । रूनाव । (२) आलिंगन । परिवर्भण ।

श्लो पुं० श्रुव के एक पुत्र का नाम ।

श्लोपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] टॉंग फूलने का रोग । फ़ीलपान ।

विशेष—इस रोग के प्रथम पेट, अंदकोप और जंघा की संधियों में पीड़ा-सहित और ज्वरयुक्त सूजन होकर पथि में उतर आती है और फिर हाथी के पैर के समान मोटा हो जाता है । वैद्यक के अनुसार यह रोग हाथ, नाक, कान, आँव, लिंग और होंड में भी होता है । यह चार प्रकार का होता है; अर्थात् वानज, पिचज, श्लेष्मज और ससिपातज । एक वर्ष के बाद यह रोग असाध्य हो जाता है ।

यह रोग तालाब आदि का पुराना जल पीने, शीत देश में अधिक निवास करने तथा जिन स्थानों में सदा पुराना पानी बना रहता है, वहाँ रहने से उत्पन्न होता है ।

श्लोपवापह-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुत्रजीव वृद्ध ।

श्लोपदी-वि० [ सं० ] जिसे श्लोपद रोग हो गया हो ।

श्लोत्त-वि० [ सं० ] (१) उत्तम । नफीस । जो महा व हो । (२) मंगल-दायक । शुभ ।

श्लेष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मिलना । जुड़ना । एक में सटने या लगने का भाव । (२) संयोग । जोड़ । मिलाव । (३) आलिंगन । परिवर्भण । भेंटना । (४) साहित्य में एक अलंकार जिसमें एक शब्द के दो या अधिक अर्थ लिये जाते हैं । दो अर्थवाले शब्दों का प्रयोग ।

श्लेषक-वि० [ सं० ] मिलानेवाला । जोड़नेवाला ।

श्लेषा पुं० दे० "श्लेष" । उ०—केशव दशम प्रभाव में, श्लेषक कविता विलास । वर्णन के मित्तु प्रगट्टी, वरपा शरद प्रकाश—केशव ।

श्लेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० श्लेषण्य, श्लेषिन, श्लेषी, श्लिष्ट ] (१) मिलाना । जोड़ना । एक में सटाना । संयुक्त करना । (२) परिवर्भण । आलिंगन ।

श्लेषा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आलिंगन । भेंटना ।

श्लेषोपमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अलंकार जिसमें ऐसे लिख शब्दों का प्रयोग होता है जिनके अर्थ उपमेय और उपमान दोनों में लग जाते हैं । उ०—सगुन, सरस, सब अंग रत्न-नमित है

सुनहु सुभाग ! बड़े भाग बाग पाइए । चातुरी की शाला मानि आतुर हूँ, नंदलाल ! चंपे की माला थाला उर उरसाइए ।—केशव । यहाँ सगुन (गुणयुक्त, मृदयुक्त), सरस आदि शब्द थाला और चंपक माला दोनों में लग जाते हैं ।

श्लेष्म, श्लेष्मक-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्लेष्मा ।

श्लेष्मघन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) केनकी । (२) चमेली या जूही ।

श्लेष्मप्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गिपुर मल्लिका । (२) मल्लिका । मोतिया का एक भेद । (३) केनकी । केवड़ा । (४) महा-ज्योतिष्मती लता । (५) तीन कड़वे मसाले । त्रिकटु ।

श्लेष्मप्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दे० "श्लेष्मप्रा" ।

श्लेष्मण-वि० [ सं० ] कफवाला । कंठ प्रकृतिवाला ।

श्लेष्मण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक पौधा ।

श्लेष्मल-संज्ञा पुं० [ सं० ] लिंसोड़ा । बहुवार वृक्ष । वि० कफयुक्त । श्लेषयुक्त ।

श्लेष्मह-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( श्लेष्मा को हरनेवाला ) कायकल । कटफल ।

श्लेष्मांतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] लिंसोड़ा । लभेरा । बहुवार वृक्ष ।

श्लेष्मा-संज्ञा पुं० [ सं० श्लेषण ] (१) वैद्यक के अनुसार शरीर की तीन धातुओं या विकारों में से एक । कफ । बल्यम । (२) रस्ती । बंधन । बंधने की रस्ती । (३) लिंसोड़े का फल । लभेरा ।

श्लेष्मांतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] लिंसोड़ा । लभेरा ।

श्लेष्मांतक धन-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोकर्णतीर्थ के पास का जंगल जिसमें शिव एक बारहसिंघे के रूप में छिपे थे । (पुराण)

श्लेष्मी-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गंधा विरोजा । (२) लोबान ।

श्लेष्मिक-वि० [ सं० ] श्लेष्म संबंधी । कफवाला ।

श्लोका-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शब्द । ध्वनि । भावान । (२) पुकार । आह्वान । (३) स्तुति । प्रशंसा । (४) नाम । कीर्ति । वक्त । जैसे,—पुण्यश्लोका । (५) संस्कृत का सभसे अधिक ब्यवहृत छंद । अनुष्टुप् छंद । (६) संस्कृत का कोई पद्य ।

श्लो-मध्य० [ सं० श्लु ] आनेवाले दूसरे दिन । कल ।

श्लोकक-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रालव और श्लुता केगर्भसे उत्पन्न पुरुष । (स्मृति)

श्लोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भेदिना । श्लुक ।

श्लोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक बालप्रह या रोग । (२) बच्चों को कष्ट देनेवाला एक प्रेत ।

श्लोचिह्नो-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुडूरबंदा ।

श्लोचक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुचै का दूत । (२) गोखरू ।

श्लोचुत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्यामल । गौड़ ।

श्लो-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० शुनी ] कुवा । कुडूर ।

श्लोचो-समास में, पूर्ववत् केवल 'श' रह जाता है । जैसे,—शक्यं, शपच ।



अपच-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० अपचा, अपची ] (१) कुत्ते का मोस पत्राकर रानेवाला । (२) एक प्रकार का चांडाल । डोम ।

विशेष—मित्र मित्र स्त्रियों में इसकी उत्पत्ति मित्र मित्र कही गई है । जैसे,—कहीं चंडाल और माहणी से, कहीं निम्ब और किराती से, कहीं क्षत्रिय और उग्र जाति की स्त्री से, कहीं अंगद और माहणी से इत्यादि ।

अपच-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० अपची ] अपच । चांडाल ।  
अपचामन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पपरी नाम का पौधा जिसकी कढ़वी जड़ रोकक होती है और औषध के काम में आती है । काकच्छदि ।

अपचुच्छ-संज्ञा पुं० [ सं० ] पृथ्विक । विच्छु ।  
अपचुच्छा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घृण्यपूर्ण । पिठवन ।  
अपफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजौरा मीठ । मीजपूर वृक्ष ।  
अपफलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मादक वृत्ति के पुत्र और अक्रूर के पिता ।  
अपभीरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृगाल । गीदड़ ।  
अपन्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दरार । छेद । गड्ढा । (२) एक नरक । (३) वसुदेव के एक पुत्र का नाम ।

अपमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक जंगली जाति ।  
अपय-संज्ञा पुं० [ सं० ] शोध । सृजन ।  
अपयथु-संज्ञा पुं० [ सं० ] शोध । सृजन ।  
अपवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नीच सेवा की वृत्ति । निरूपित नौकरी द्वारा निर्वाह ।

अपशूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पति या पत्नी का पिता । ससुर ।  
अपशूर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] पति या पत्नी का भाई । देवर या साला ।

अपशु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पति या पत्नी की माता । सास ।  
अपसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० अवसनीय, अवसित ] (१) साँस लेना । दम लेना । (२) हँफना । (३) हँकना । सुँह से हवा छोड़ना । (४) फुल्लकर करना । फुफकारना । (५) लंबी साँस खींचना । आह भरना । (६) वायु देवता । पवन । (७) एक वसु का नाम । (८) मैनफल । मदनफल ।

अपसनाशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( वायु भक्षण करनेवाला ) सर्प । सर्पि ।

अपसनेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्जुन वृक्ष ।  
अपसनोस्तुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्पि । सर्प ।  
अपसुन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुकुंदर । कुकुरीथा नामक पौधा ।  
अपस्तन-वि० [ सं० ] आनेवाले दिन का । कल का ।

संज्ञा पुं० कल का दिन । आनेवाला दूसरा दिन ।  
अपस्तनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कल का दिन । आनेवाला दूसरा दिन ।  
अपारिधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का रत्न या बहुमूल्य पथर जो कौंस, रूपे, शंभू, कुमुद आदि के रंग का कहा गया है । ( रत्नपरिधा )

अपान-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० अपानी ] (१) कुत्ता । कुत्तर ।  
उ०—गोकुल चले प्रेम आशुर हूँ सुखि गए कपट कपाट ।  
सोये थान, पहरेआ सोये, सब मुक भई बाट ।—सुर ।  
(२) दोहे का इक्कीसवाँ भेद । इसमें २ गुरु और ४४ लघु होते हैं । (३) छपय का पंद्रहवाँ भेद । इसमें ५६ गुरु, ४० लघु कुल ९६ वर्ण १५२ मात्राएँ होती हैं ।

अपानचिह्निका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यथुआ नामक शाक ।  
अपाननिद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ऐसी नींद जो थोड़े मटक से भी घट खुल जाय । हलकी नींद । क्षपकी ।

अपाम्रति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आरंगी । बमनेदी । प्राण्य यष्टिका ।  
अपाम्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिंसक पशु । व्याघ्र आदि ।  
अपाम्रिध-संज्ञा पुं० [ सं० ] साही नामक जंतु । शल्य ।

अपास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नासिका के मार्ग से प्राणवायु के भीतर जाने और बाहर निकलने की क्रिया । प्राणियों का नाक से हवा खींचने और बाहर निकालने का व्यापार । साँस । दम ।

क्रि० प्र०—लेना ।—छोड़ना ।—निकलना ।—खींचना ।—रोकना ।

मुहा०—आस रहते = प्राण रहते । जीने जी । आस खींचना या चढ़ाना = साँस रोकें रहना । आस छूटना = श्शु होना ।  
(२) ध्वजनों के उच्चारण के प्रयत्न में सुँह से हवा छूटना ।  
(३) जल्दी जल्दी साँस लेना । हँफना । (४) एक रोग जिसमें साँस अधिक वेग से और जल्दी जल्दी चलता है । दम फूलने का रोग । दमा ।

यौ०—आस कास ।  
विशेष—आयुर्वेद में आस रोग पाँच प्रकार का कहा गया है—महाआस, ऊर्ध्व आस, छिन्न आस, तमक आस और शुद्र आस । इनमें से प्रथम तीन असाध्य, चौथा कष्ट साध्य और पाँचवाँ साध्य कहा गया है ।

अपासकास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दमा और खाँसी । (२) दम की खाँसी । दमा ।

अपासकुठार-संज्ञा पुं० [ सं० ] आस रोग में उपकारी एक रसौषध ।  
विशेष—इसे बनाने के लिये शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक की कजली, सिंगी मुहरा, घृना, सोहागा, मैनसिल, काली मिर्च, सोंठ और पिप्पली के धूँ के अदरक के रस की एक पुट देकर सिद्ध करते हैं ।  
अपासधारण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] आस को रोक रखना । साँस रोकने की क्रिया । ( काव्या० श्रौतसूत्र )

अपासरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साँस रोकना । साँस को बाहर निकलने से रोकें रहना । (२) दम घुटना । साँस भीतर न समाना ।

अपासहेति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( दमे को हटानेवाली ) निद्रा । नींद ।

श्वेतास-संज्ञा स्त्री० [ सं० श्वेत ] (१) सौंस । दूध । जैसे,—जय तक श्वासा तब तक आता । उ०—श्वेता तामु भये धुति चार । करि सो स्तुति या परकार ।—सूर । (२) प्राण । प्राणवायु ।

श्वेतासारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुष्कर मूल । (२) कुट्ट नामक पौधा । वृत् ।

श्वेतालोच्छ्वास-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेग से सौंस खींचना और निकालना ।

श्वेता म०—लेना ।

श्वित्र-वि० [ सं० ] (१) सफेद । श्वेत । (२) सफेद कोढ़वाला । संज्ञा पुं० श्वेत कुट्ट । सफेद कोढ़ । सफेद दागवाला कोढ़ ।

श्वित्रोप—इस रोग में शरीर के बमड़े के ऊपर सफेद दाग पड़ जाते हैं । यह रुधिर, मांस और मेद में रहता है । अन्य प्रकार के कुष्ठों की तरह यह पक्का, बहता और पीड़ा नहीं करता । जिसमें केश सफेद न हुए हों तथा जिसमें दाग परस्पर मिलकर एक न हो गए हों, यह साध्य है ।

श्वित्रघ्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्वित्रिकाली । पीतपर्णी । विद्याली का पौधा ।

श्वित्रादि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धकुन्वी । सोमराजी ।

श्वित्रिणी-वि० [ सं० श्वित्रि ] [ श्री० श्वित्रिणी ] श्वित्र रोगी । सफेद कोढ़वाला ।

श्वेत-वि० [ सं० ] (१) जिसमें कोई रंग न मालूम हो । बिना रंग का । सफेद । धौला । चिट्ठा ।

श्वेतोप—विज्ञान से सिद्ध है कि श्वेत रंग में सातों रंगों का अभाव नहीं है बल्कि उनका गूढ़ मेल है । सूर्य के किरणें देखने में सफेद जान पड़ती हैं, पर रश्मि-विश्लेषण क्रिया से सातों रंगों की किरणें अलग हो जाती हैं ।

(२) शुभ्र । उज्वल । साफ़ । निर्मल । (३) निर्दोष । निष्कलंक । (४) जो सँविला न हो । गौरा ।

संज्ञा पुं० (१) सफेद रंग । श्वेत वर्ण । (२) चोँदी । रजत ।

(३) कौड़ी । कपड़क । (४) पुराणानुसार एक द्वीप ।

(५) आयुर्वेद में तीसरी त्वचा की संज्ञा । शरीर के चमड़े की तीसरी तह । (६) एक पर्वत । (७) स्कंद के एक अनुचर का नाम । (८) शोभांजन धूप ।—सहिजन ।

(९) जीवक नामक अष्टवर्षीय ओषधि । (१०) शंख ।

(११) शुक्र मूत्र । (१२) सफेद घोड़ा । (१३) सफेद बादल । (१४) एक केंत या पुच्छल तारा । (१५)

सफेद जीरा । श्वेत जीरक । (१६) तिल का एक अवतार । (१७) वराह मूर्ति मेद । श्वेत वराह । (१८)

द्विष्यय वर्ष और रम्यक वर्ष के बीच का एक पर्वत ।

(पुराण)

श्वेतकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्याज ।

श्वेतकंदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अति विषा । अतीस नामक ओषधि ।

श्वेतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चोँदी । रजत । सैष्य । (२) कौड़ी ।

कपड़क । (३) कौसा । (४) एक भाग का नाम ।

श्वेतकपोत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का चूहा । (२) एक

प्रकार का साँप ।

श्वेतकांडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद दूध । श्वेत दूर्वा ।

श्वेत फाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद कौआ अर्थात् असंभव घात ।

श्वेतकि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक धर्मपरायण राजा । (महाभारत)

श्वेतकुक्षि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली ।

श्वेतकुपु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद दागवाला कोढ़ । श्वित्र ।

श्वेतकृष्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सफेद और काला । (२) यह

पक्ष और वह पक्ष । एक घात और दूसरी घात । श्वेते,—

हम श्वेत कृष्ण कुष्ठ न कहेंगे । (३) एक प्रकार का विपैला

कोड़ा । (सुश्रुत)

श्वेतकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महापति उहालक के पुत्र का नाम ।

(२) योधिसत्त्व की अवस्था में गौतम बुद्ध का नाम । (३)

केतु ग्रह विनोप ।

श्वेतकेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] छाल फूल का सहिजन पेड़ ।

श्वेतगज-संज्ञा पुं० [ सं० ] घेरावत हाथी । उ०—अप्सरा पार-

जातक घनुप अध गज श्वेत प पाँच सुरगतिहि क्षीने ।—

सूर ।

श्वेतघंट्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नगादंती ।

श्वेतच्छुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गंधपत्र । धन तुलसी । (२)

हंस ।

श्वेतजीरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद जीरा ।

श्वेत टंकण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोहागा ।

श्वेतता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेदी । उज्वलना । शुद्धता ।

श्वेतद्युति-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

श्वेतद्रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वरुण वृक्ष ।

श्वेतद्विप-संज्ञा पुं० [ सं० ] घेरावत द्वीप ।

श्वेतद्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार क्षीरसागर के पास एक

अत्यंत उज्वल द्वीप जहाँ विष्णु भगवान् निवास करते हैं ।

श्वेतधामा-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्गधामन । (१) चंद्रमा । (२) कणर ।

(३) ससुद्रजन । (४) अपामार्गा । विचड़ा । (५) अपराजिता ।

श्वेतनील-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेघ । बादल ।

श्वेतपटल-संज्ञा पुं० [ सं० ] जस्ता नामक धातु ।

श्वेतपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] हंस ।

श्वेतपर्णा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्वेतकुम्भी । वारिपर्णी ।

श्वेतपाद्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्वेत । (१) श्वेत के एक गण का नाम ।

श्वेतपिंगल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिंह । (२) महादेव । निव ।

श्वेतपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] निर्गुमी ।

श्वेतपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नाग शृंगी । (२) शंख ।

(३) सन । (४) सँयुआर । संभालु । (५) नागदंती । (६)

सफेद अपराजिता ।

श्वेतपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पुत्रदायी लता । (२) बड़ी सन पुष्पी ।

श्वेतप्रदूर—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह प्रदूर रोग जिसमें क्खियों को सफेद रंग की धातु गिरती है ।

श्वेतबर्षेह—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चंदन ।

श्वेतबुद्धा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बनतिका ।

श्वेतभानु—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

श्वेतभुजंग—संज्ञा पुं० [ सं० ] मूला का एक अवतार ।

श्वेतमंडल—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साँप । (सुधुत)

श्वेतमध्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] मुलक । मोथा ।

श्वेतमयूख—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

श्वेतमरिच—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शोभाजन बीज । सहिजन के बीज । (२) सफेद मिर्च ।

श्वेतमाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेघ । बादल । (२) धूप । धुआँ ।

श्वेतमूला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की गदहपूरना । पुनर्नवा-भेद ।

श्वेतयाचरो—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (श्वेत बहनेवाली) एक नदी जिसका नाम ऋग्वेद में आया है ।

श्वेतरंजन—संज्ञा पुं० [ सं० ] सीसा धातु ।

श्वेतरथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] शुक्र ग्रह ।

श्वेतराजी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चिंचिडा (जिसकी तरकारी होती है) ।

श्वेतरावक—संज्ञा पुं० [ सं० ] निर्गुंडी ।

श्वेतरोचिसु—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

श्वेतरोहिन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गरुड़ का एक नाम । (२) एक प्रकार का पौधा ।

श्वेतलोध्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] पडानी लोध ।

श्वेतघट्ट—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंद के एक अनुचर का नाम ।

श्वेतवचा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सफेद बच । (२) अतिविषा । अतीस ।

श्वेतवलकल—संज्ञा पुं० [ सं० ] गूलर । उदुंबर वृक्ष ।

श्वेतघह—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ श्री० शैतीही ] इंद्र ।

श्वेतवाजी—संज्ञा पुं० [ सं० श्वेतवाजिन ] (१) सफेद घोड़ा । (२) चंद्रमा । (३) अर्जुन ।

श्वेतवाराह—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चराह भगवान् की एक मूर्ति । (२) एक कल्प का नाम जो मूला के मास का प्रथम दिन माना गया है । (३) एक तीर्थ ।

श्वेतघाह—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) (सफेद घोड़ेवाले) इंद्र । (२) अर्जुन ।

श्वेतवाहन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) अर्जुन का एक नाम । (२) समुद्र का मकर । (३) शिव का एक रूप या मूर्ति ।

श्वेतशुंग—संज्ञा पुं० [ सं० ] जी । यव ।

श्वेतसर्प—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वरुण वृक्ष । (२) सफेद साँप ।

श्वेतसर्पप—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली सरसों ।

श्वेतसार—संज्ञा पुं० [ सं० ] खैर । कथा : खदिर ।

श्वेतसिद्धी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का शाक ।

श्वेतसिद्ध—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंद के एक अनुचर का नाम ।

श्वेतसुरसा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद फूल की निर्गुंडी ।

श्वेतहनु—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साँप । (सुधुत)

श्वेतहय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र का घोड़ा । उर्च्यःश्रवा ।

(२) अर्जुन ।

श्वेतहस्ती—संज्ञा पुं० [ सं० ] ऐरावत ।

श्वेतांबर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सफेद वस्त्र धारण करनेवाला ।

(२) जैनों के दो प्रधान संप्रदायों में से एक ।

विशेष—ये लोग शैवी रहते, माल उलड़वाते, श्वेत वस्त्र पहनते, क्षमायुक्त रहते और मित्रा माँगकर अपना निवाह करते हैं । ये क्खियों का भी अपवर्ग मानते हैं ।

(३) शिव का एक रूप ।

श्वेतांगु—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

श्वेता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक ।

(२) कौड़ी । (३) भोजपत्र का पेड़ । (४) श्वेत पाटला । काष्ठ पाटला । (५) श्वेत या शंख नामक हल्की की माता । शंखिनी ।

(६) अतीस । अतिविषा । (७) अपराजिता लता । (८) सफेद बन-भंटा । (९) श्वेत कंटकारी । मटकटैया । (१०) पापण-भेद । परवान-भेद । (११) शंखलोचन । (१२) श्वेत पुनर्नवा ।

सफेद गदहपूरना । (१३) शिलावाक । (१४) फिटकरी ।

(१५) चीनी । शकर । (१६) मिस्री । (१७) सफेद बच ।

(१८) धुरपत्री । पर्वमूला ।

विशेष—यह गृण बरसात में उगता है और जाड़े में नष्ट हो जाता है । यह एक या वेद बलिपत्र ऊँचा और छतना होता है । पत्तियाँ छोटी, फूल नीले या बँगनी रंग के और बीज छोटे छोटे दानों की तरह के होते हैं । धुरपत्री मधुर, शीतल और घी का दूध बढ़ानेवाली कही गई है ।

(१९) स्कंद की अनुचरी एक मातृका । (२०) कदपप की क्रोधवन्ता नाग्री पत्नी से उत्पन्न एक कन्या जो दिव्याओं की माता है ।

श्वेताक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की सोमलता ।

श्वेताक्षि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इमली ।

श्वेतारण्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] कावेरी नदी के किनारे का एक वन जो तीर्थ माना गया है ।

श्वेताचि—संज्ञा पुं० [ सं० श्वेताचिन् ] चंद्रमा ।

श्वेतालु—संज्ञा पुं० [ सं० ] मूषिप कंद । भैसा कंद ।

श्वेतावर—संज्ञा पुं० [ सं० ] शितावर शाक ।

श्वेताश्वतर—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा।

(२) उपनिषद् विशेष।

विशेष—कृष्ण यजुर्वेद की यह उपनिषद् छः अध्यायों की है। इसमें वेदांत के प्रायः सब सिद्धांतों के मूल पाए जाते हैं। भगवद्गीता के बहुत से प्रश्नों इससे लिये हुए जाते हैं। इसकी संस्कृत बड़ी ही माल और स्पष्ट है। वेदांत के प्रसंगों के अतिरिक्त इसमें योग और सांख्य के सिद्धांतों के मूल भी मिलते हैं। वेदांत, सांख्य और योग तीनों शास्त्रों के कर्त्तव्यों

ने माने इसी के मूल पाठ्यों को लेकर महा के स्वरूप तथा पुरुष प्रकृति भेद आदि का विस्तार किया है।

श्वेताह्वा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्वेत पाटला।

श्वेतिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सौंफ।

श्वेतोदर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुबेर। (२) एक प्रकार का साँप। (सुश्रुत) (३) एक पर्वत। (मार्क० पुराण)

श्वेतोद्गी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इंद्राणी।

श्वैत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद क्रीड।

## प

प—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला के व्यंजन वर्णों में ३१ वॉ वर्ण या अक्षर। इसका उच्चारण स्थान मूढ़ा है, इससे यह मूढ़न्व्य वर्णों में कहा गया है। इसका प्रयोग केवल संस्कृत के दाह्यों में होता है और उच्चारण दो प्रकार से होता है। कुछ लोग 'प' के समान इसका उच्चारण करते हैं और कुछ लोग 'ख' के समान। इसी से हिंदी की पुरानी लिखावट में इस अक्षर का स्पष्टावर कर्त्तव्य 'ख' के स्थान पर होता था। जैसे,—प्रेष, लपन इत्यादि।

संज्ञा पुं० (१) विद्वान् पुरुष। आचार्य। (२) कुच। चूचुक। (३) नात। (४) दोष। बाकी। (५) प्राप्त ज्ञान का क्षय। (६) मुक्ति। मोक्ष। (७) स्वर्ग। (८) अंत। समाप्ति। अवधि। (९) गर्भ। (१०) धैर्य। सहिष्णुता।

वि० बहुत अच्छा। उत्तम। भेष्ट।

पंजन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आलिंगन। (२) मिलना। समागम।

पंड—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राति। समूह। (२) झाड़ी। (३) सौंद। (४) हीजड़ा। नपुंसक। नामर्द। (५) कमलों का समूह। (६) तिव का एक नाम। (७) छत्राष्ट के एक पुत्र का नाम।

पंडित्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] नामर्द। हीजड़ापन। पुंसत्व का अभाव।

पंड्योनि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसे मासिक धर्म न होता हो और जिसके स्तन न हों अर्थात् जो पुरुष-समागम के अवोप्य हो।

पंडामर्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] शुकाचार्य के पुत्र का नाम। उ०—  
कविशुत असुर पंडा गुरु आमा। पंडामर्क रघो अस नामा।  
—सुराज।

पंडाली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तेल नापने की एक छोटी धरिया जिसमें एक छट्टीक वस्तु आ सकती हो। (२) दुश्चरिया स्त्री। ध्यनिचारिणी। (३) ताल। तलैया।

पंडो—संज्ञा स्त्री० [ सं० पंड ] वह स्त्री जिसे मासिक धर्म न होता हो, स्तन छिटे हों, और जो पुरुष-समागम के अवोप्य हो।

पंड—संज्ञा पुं० दे० "पंड"।

पंडा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसकी चेष्टा पुरुषों की सी हो।

पट्—वि० [ सं० ] गिनती में ६। छः।

संज्ञा पुं० (१) छः की संख्या। (२) पाठ्य जाति का एक राग जो दीपक का पुत्र माना गया है। इसके गाने का समय प्रातः १ दंड से ५ दंड तक है। इसमें सब कोमल स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे आसावरी, ललिन, टोड़ी और मीरकी आदि रागियों से उत्पन्न संकर राग मानते हैं।

पट्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ६ की संख्या। (२) छः वस्तुओं का समूह।

विशेष—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान के समूह को प्रायः पट्क कहते हैं।

वि० छः संबंधी। छः बर। छः वाला।

पट्कर्त्तव्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की वीणा या सितार जिसमें छः कान होते हैं।

पट्कर्म—संज्ञा पुं० [ सं० पट्कर्मन् ] (१) ब्राह्मणों के छः कर्म—यजन, याजन, अध्ययन, आप्यापन, दान देना और दान लेना। (२) सृष्टियों के अनुसार छः काम जिनके द्वारा आपकाल में ब्राह्मण अपनी जीविका कर सकता है।—उद्यं वृत्ति (कटे हुए सेतों में दाने चिनना), दान लेना, धावना करना, कृषि, वाणिज्य और गोरक्षा (अथवा किसी किसी के मत से सूद पर रपया देना)। (३) तांत्रिकों के षड आदि छः कर्म।

पट्कर्मन्—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यजन याजन आदि नियत कर्मों को करनेवाला ब्राह्मण। कर्मनिष्ठ ब्राह्मण। (२) तांत्रिक।

पट्कला—संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में ब्रह्मताल के बार भेदों में से एक भेद।

पट्कसंपत्ति—संज्ञा पुं० [ सं० ] छः प्रकार के कर्म—(१) दाम (२) दम (३) उपरति (४) तितिक्षा (५) धृढा और (६) समाधान।

**पट्फोण-वि०** [ सं० ] छः कोनोंवाला । छः कोना । छः पहला ।  
**पट्फोप-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक पुराने आचार्य का नाम ।  
**पट्चक्र-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) हठ योग में माने हुए कुंडलिनी के ऊपर पढ़नेवाले छः चक्र । (२) किसी के विरुद्ध आयोजन । भीतरी चाल । पड़वंत्र ।  
**फि० प्र०-चलाना** ।—खड़ा करना ।—रचना ।  
**पट्चरख-संज्ञा** पुं० [ सं० ] भ्रमर । भैंरा ।  
**पट्टकतैल-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वैद्यक का एक तेल जिसमें तेल में छः गुना तक्र (मट्ठा) मिलाया जाता है ।  
**पट्टताल-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) रुद्रंग का एक ताल जो आठ मात्राओं का होता है ।  
**विशेष-इसमें पहले २ आघात, १ खाली, फिर ४ आघात और अंत में एक खाली होता है ।**  
**(२) एक प्रकार का ताल जो एक ताला ताल पर पजाया जाता है ।**  
**पट्टित्ता-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] माघ महीने के छठ्ठम पक्ष की एकादशी का नाम । इसमें तिल के प्यजहार और दान का बहुत फल कहा गया है । उ०—यहिकर नाम पट्टित्ता अहर्ह । करि मत नेम निकर अघ दृहई ।—विश्राम सागर ।  
**पट्टपद-वि०** [ सं० ] [ स्त्री० पदपदी ] छः पैरवाला ।  
**संज्ञा** पुं० (१) भ्रमर । भैंरा । (२) दिलनी ।  
**पट्टपदप्रिय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) कमल । (२) नागकेशर का वृक्ष ।  
**पट्टपदातिथि-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) (जहाँ भ्रमर अतिथि रूप में हो अर्थात्) आम का वृक्ष । (२) चंपक । चंपा ।  
**पट्टपदानंदचर्दन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (भ्रमर के आनंद को बढ़ानेवाला) किंकिरात का वृक्ष ।  
**पट्टपदी-वि०** स्त्री० [ सं० ] छः पैरवाली ।  
**संज्ञा** स्त्री० (१) भ्रमरी । भैंरी । (२) एक छंद जिसमें छः पद या चरण होते हैं । छप्पय ।  
**पट्टपितापुत्रक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] संगीत में ताल का एक भेद जिसमें १२ मात्राएँ होती हैं । एक चतुत्, एक लघु, दो गुरु, एक लघु, एक भुत् यह इसका प्रमाण है ।  
**पट्टपक्ष-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, लोकार्थ और तत्त्वार्थ का ज्ञाता । (२) उच्छृंखल । (३) कासुक ।  
**पट्टरस-संज्ञा** पुं० [ सं० ] छः प्रकार के रस या स्वाद । वि० दे० “पडूस” ।  
**यौ०-पट्टरस भोजन ।**

**पट्टराग-संज्ञा** पुं० [ सं० पद+राग ] (१) संगीत के ६ राग—भैरव, मलार, श्रीराग, हिंडोल, मालकोस और दीपक । (२) चक्रेदा । जंजाल । आहंवर । जैसे,—इसमें पड़ा पट्टराग है, हमसे न होगा । (३) संस्रट ।

**पट्टरिपु-संज्ञा** पुं० दे० “पट्टिपु” ।  
**पट्टशाख-संज्ञा** पुं० [ सं० ] हिंदुओं के ६ दंतन ।  
**पट्टशास्त्री-संज्ञा** पुं० [ सं० ] छः दंतनों का जानेवाला ।  
**पट्ट्यांग-संज्ञा** पुं० [ सं० ] रट्टांग नामक राजपूत जिन्हें केवल दो घड़ी की साधना में मुक्ति प्राप्त हुई थी । उ०—एक पट्ट्यांग राजकपि भयज । असुर-विजय दिन सो दिवि गयज ।—रघुनाम ।

**पट्टंग-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वेद के छः अंग—सिद्धा, कथ्य, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष । (२) शरीर के छः अवयव—दो पैर, दो हाथ, सिर और चंद्र ।  
**वि०** जिसके छः अंग या अवयव हों ।

**पट्टंगजित्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (सब अंगों को बस में करनेवाले) विज्यु ।

**पट्टंभि-संज्ञा** पुं० [ सं० ] भ्रमर । भैंरा ।  
**पट्टसूरी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] धैष्यों के रामानुज संप्रदायवालों का मुख्य मंत्र ।

**पट्टतीण-संज्ञा** पुं० [ सं० ] मण्डली जिसे छः अक्षिं कही जाती हैं ।  
**पट्टभि-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) कर्मकांड के अनुसार छः प्रकार की अभि—गाहंपत्य, आहवनीय, वृक्षिणाभि, सम्प्याभि, आहम्य और औपासनाभि । इनमें से प्रथम तीन प्रधान हैं । विशेष—कुछ लोगों ने अभि के ये ६ भेद किए हैं—पूमाभि, मंदाभि, दीपाभि, मध्यमाभि, स्वराभि और भयाभि ।  
**पट्टभिस-संज्ञा** पुं० [ सं० ] युद्ध या योधिसत्य ।  
**पट्टानन-वि०** [ सं० ] जिसे छः मुँह हों ।

**संज्ञा** पुं० (१) कर्तिकेय । (२) संगीत में स्वर साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार होती है—आरोही—सा रे ग म प ध, रे ग म प ध नि, ग म प ध नि सा । अरोही—सा नि ध प म ग, नि ध प म ग रे, ध प म ग रे सा ।

**पट्टपण-संज्ञा** पुं० [ सं० ] धैषक में ये छः गरम मसाले—पीपल, पिपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और काली मिर्च ।

**पट्टगुण-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) छः गुणों का समूह । (२) राजनीति की छः बातें—संधि, विग्रह, यान (बढ़ाई), आसन (विराम) द्वेषी भाव और संश्रय ।

**पट्टग्रंध-संज्ञा** पुं० [ सं० ] मीठी चष वि० दे० “बच” ।  
**पट्टग्रंधा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] इरसा की जड़ जो काश्मीर और कापुल से आती है ।

**पट्टग्रंधिका-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] पीपलामूल । पिपरामूल ।

**पट्टज-संज्ञा** पुं० [ सं० ] संगीत के सात स्वरो में से चौथा स्वर । विशेष—यह गढ़हे के स्वर से मिलता जुलता माना गया है । इसके उच्चारण-स्थान छः कड़े गण हैं—नासा, कंठ, उर, ताल, जिह्वा और दंत; इसी से इसका नाम पट्टज पड़ा । मूल स्थान दंत और अंत स्थान कंठ है । देवता इसके अभि

है। वर्ण रक्त, आकृति ब्रह्मा की, फल, हिमवार, रविवार, छंद अनुष्टुभ और संतति इसकी भैरव राग है।

**पद्मश्रीमं**-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय, भीमांसा आदि हिन्दुओं के छः दर्शन।

**पद्मश्रीनी**-संज्ञा पुं० [ सं० पद्मश्रीनी + ई (भव०) ] दर्शनों का जाने-वाला। ज्ञानी। उ०—पद्मश्रीनी भगवत्सर्वथा घट करि मानि।

**पद्मशुभा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खरवृक्षा।

**पद्मशंभ्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी मनुष्य के विरुद्ध गुप्त रीति से की गई कार्रवाई। भीतरी चाल। (२) जाल। अपटपूर्ण आयोजन।

**क्रि० प्र०**—घलाना।—रचना।

**पद्मयोनि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाजीत। शिलाजतु। रौंग, सीसा, ताँबा, रूपा, सुवर्ण और लोहा इन छः धातुओं में से किसी एक की सुगंध शिलाजीत में अवश्य आती है, इसी से इसे पद्मयोनि कहते हैं। कारण यह है कि ऊपर कही हुई धातुओं में से किसी एक धातु का अंश जिसमें होगा उसी पर्वत से शिलाजीत की उत्पत्ति होगी।

**पद्मरस**-संज्ञा पुं० [ सं० ] छः प्रकार के रस या स्वाद—मधुर, खवण, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल अर्थात् मीठा, नमकीन, तीता, कड़वा, कसैला और खटा।

**पौ०**—पद्मरस भोजन = अनेक प्रकार के व्यंजन या खाद्य पदार्थ।

**पद्मिपु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] काम क्रोध आदि मनुष्य के छः विकार।

**पद्मेजा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खरवृक्षा।

**पद्मक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्तिकेय। पद्मानन।

**पद्मधन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पद्मानन। कार्तिकेय।

**पद्मर्ग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] छः वस्तुओं का समूह या वर्ग। (१) क्षेत्र, होरा, प्रेक्षाग, नवमासा द्वादशता और त्रिंशोदा पद्मवर्ग कहलाते हैं। (ज्योतिष) (२) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और भ्रमर का समूह।

**पद्मिदु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु। (२) गुबरीले की जाति का एक कीड़ा जिसकी पीठ पर छः गोल बिंदियाँ होती हैं। इसे पर्य में 'छठूँ दवा' कहते हैं।

**पद्मिदुतैल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक का एक तैल जिसकी छः बूँद नास छेने से सिर का दर्द दूर होता और अंजल तथा दाँत को छाम पहुँचता है।

**पद्मिरोप**—रेंद की जड़, तगर, सौंफ, सँधानमक, पुत्रजीवा, राजा, जलभंगरा, घायविडंग, मुलेठी, साँठ इन सब का चौगुना जल, भंगने का रस और चौगुना दक्की का दूध और आठ गुना तेल इन सबको कड़ाही में मंद मंद पकावे। जय रसादिक जलकर तेल मात्र रह जाय, सो छान ले।

**पद्मविश**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सामवेद का एक ब्राह्मण।

**पद्मिकार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राणी के छः विकार या परिणाम अर्थात् (१) उत्पत्ति (२) वरीरवृद्धि (३) बालपन (४) प्रौढ़ता (५) बुढ़ता और (६) मृत्यु। (२) काम क्रोध आदि छः विकार।

**पद्ममुख**-वि० [ सं० ] छः मुखवाला।

संज्ञा पुं० पद्मानन। कार्तिकेय।

**पद्मपी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

**पद्मपशक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यंत्र जिससे गद्दान पर नक्षत्रों की स्थिति देखकर यह स्थिर करते हैं कि जद्दान धृष्टी के किस भाग में है।

**पट्टि**-वि० [ सं० ] जो गिनती में पचास से दस अधिक हो। साँठ।

**पट्टिक**-वि० [ सं० ] (१) साठवाला। (२) जो साठ पर खरीदा जाय।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान जो बहुत जल्दी तैयार होता है। साठी धान।

**पट्ट**-वि० [ सं० ] जिसका स्थान पाँचवें के उपरान्त हो। छठा।

**पट्टाक्ष**-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह भोजन जो तीन दिनों के बीच में केवल एक बार किया जाय। (मत की विधि के अनुसार)

**पट्टाक्षकाल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक व्रत जिसमें तीन दिन में केवल एक बार भोजन किया जाता है।

**पट्टिमसं**-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथी।

**पट्टिहायन**-संज्ञा पुं० (१) हाथी। (२) साठी धान।

**पट्टी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी पक्ष का उठा दिन। शुद्ध या कृष्ण पक्ष की छठी तिथि। (२) पौद्ध मतकाओं में से एक। (३) काय्यापानी। डुर्गा। (४) संवंध कारक। (स्वामरण) (५) बालक उत्पन्न होने से छठा दिन तथा उक्त दिन का उत्सव।

**पाँढ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिव का एक नाम। पंड।

**पाँढ्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] हींजहायन। नपुंसकता।

**पाइच**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राग की एक जाति जिसमें केवल छ स्वर ( स, रे, ग, म, प और ध ) लगते हैं। निपाद वर्जित है। जैसे—दीपक और मेघ। पाइच दो प्रकार का होता है—(१) शुद्ध पाइच। (२) मांस पाइच। (३) मिठाई। (३) हलवाई का काम। (४) मनोराम। मनोपिकार। **बाहुप्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छः उत्तम गुणों का समूह। (२) नीति के छः अंग। वि० दे० "वदुयुग"। (३) किसी वस्तु को छः से गुणा करने से प्राप्त गुणनफल।

**पाइसिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसे छःओ रसों का ज्ञान हो।

**पारमार्सिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्तिकेय (जिनका पालन छः कृत्तिकों में किया जाय)।

**पारमार्सिक**-वि० [ सं० ] छः महीने का। छः महीने में होनेवाला। छठे महीने में पद्मनेवाला।

पटकोष-वि० [ सं० ] छः कोनोंवाला । छः कोना । छः पहल्य ।  
पटकोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पुराने आचार्य का नाम ।  
पटचक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हठ योग में माने हुए कुंडलिनी के  
ऊपर पढ़नेवाले छः चक्र । (२) किसी के विरहआयोजन ।  
भीतरी चाल । पट्यंत्र ।

फि० प्र०—खलाना ।—खड़ा करना ।—रचना ।

पट्चरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] भ्रमर । मीरा ।  
पट्टकतेल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक का एक तेल जिसमें तेल में  
छः गुना तक (महा) मिलाया जाता है ।

पट्टताल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शृङ्ग का एक ताल जो आठ  
मात्राओं का होता है ।

विशेष—इसमें पहले २ आघात, १ खाली, फिर ४ आघात  
और अंत में एक खाली होता है ।

(२) एक प्रकार का खाल्य जो एक ताल ताल पर यज्ञाया  
जाता है ।

पट्टिला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माघ महीने के कृष्ण पक्ष की एका-  
दशी का नाम । इसमें तिल के ब्यवहार और दान का बहुत  
फल कहा गया है । उ०—यहिकर नाम पट्टिला अहर्ह ।  
करि प्रत नेम निकर अघ दहर्ह ।—विभ्राम सागर ।

पट्टपद्-वि० [ सं० ] [ स्त्री० पट्टपरी ] छः पैरवाला ।

संज्ञा पुं० (१) भ्रमर । मीरा । (२) किलनी ।

पट्टपद्मि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमल । (२) नागकेशर का  
पुष्प ।

पट्टपातिथि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) (जहाँ भ्रमर अतिथि रूप  
में हो अर्थात्) आम का पुष्प । (२) चंपक । चंपा ।

पट्टपदानंद्यर्द्धन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (भ्रमर के आनंद को  
बढ़ानेवाला) किन्निरात का पुष्प ।

पट्टपद्मी-वि० स्त्री० [ सं० ] छः पैरवाली ।

संज्ञा स्त्री० (१) भ्रमरी । मीरा । (२) एक छंद जिसमें छः पद  
या चरण होते हैं । छप्पय ।

पट्टपितापुत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में ताल का एक भेद  
जिसमें १२ मात्राएँ होती हैं । एक प्युत, एक लघु, दो गुरु,  
एक लघु, एक भुत यह इसका प्रमाण है ।

पट्टप्रज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, लोकार्थ  
और तत्त्वार्थ का ज्ञान । (२) उच्छृंखल । (३) कामुक ।

पट्टरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] छः प्रकार के रस या स्वाद । वि० दे०  
“पट्टरस” ।

यौ०—पट्टरस भोजन ।

पट्टराग-संज्ञा पुं० [ सं० पट्ट+राग ] (१) संगीत के ६ राग—  
भैरव, मलार, धीराग, हिंदोल, मालकोस और दीपक ।  
(२) बखेदा । जंजाल । आटंयर । जैसे,—इसमें यदा पट्ट-  
राग है, हमसे न होगा । (३) शंकर ।

पट्टरिपु-संज्ञा पुं० दे० “पट्टिपु” ।

पट्टशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिंदुओं के ६ दर्शन ।

पट्टशास्त्री-संज्ञा पुं० [ सं० ] छः दर्शनों का जाननेवाला ।

पट्ट्यांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृङ्गा नामक राजपिं जिन्हें केवल दो  
पद्मी की सामना से मुक्ति प्राप्त हुई थी । उ०—एक पट्ट्यांग  
राजकपि भयउ । अमुर-विजय हित सो दिवि गपउ ।—  
रघुराज ।

पट्ट्यंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पद के छः अंग—गिरा, कल्य,  
व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष । (२) शरीर के छः  
अवयव—दो पैर, दो हाथ, सिर और धड़ ।

वि० जिसके छः अंग या अवयव हों ।

पट्ट्यंगजित्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (सय अंगों को यश में करनेवाले)  
विष्णु ।

पट्टंजि-संज्ञा पुं० [ सं० ] भ्रमर । मीरा ।

पट्टंजरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैष्णवों के रामानुज संप्रदायवालों का  
मुख्य मंत्र ।

पट्टंजी-संज्ञा पुं० [ सं० ] मछली जिसे छः अँरें कही जाती है ।

पट्टंजि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कर्मकांड के अनुसार छः प्रकार की  
अभि—गाहंपथ्य, आहवनीय, दुक्षिणाभि, सन्याभि, आच-  
मथ्य और औपासनाभि । इनमें से प्रथम तीन प्रधान हैं ।

विशेष—कुछ लोगों ने अभि के ये ६ भेद किए हैं—धूमाभि,  
मंदाभि, दीपाभि, मध्यमाभि, खराभि और भयाभि ।

पट्टंजि-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुद्ध या बोधिसत्त्व ।

पट्टानन-वि० [ सं० ] जिसे छः मुँह हों ।

संज्ञा पुं० (१) कार्तिकेय । (२) संगीत में स्वर स्थापन की  
एक प्रणाली जो इस प्रकार होती है—आरोही—सा रे ग म  
प ध, रे ग म प ध नि, ग म प ध नि सा । अवरोही—  
सा नि ध प म ग, नि ध प म ग रे, ध प म ग रे सा ।

पट्टपण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में ये छः गरम मसाले—पीपल,  
पिपलामूल, चण्य, चीता, सोंठ और काली मिर्च ।

पट्टगुण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छः गुणों का समूह । (२) राजनीति  
को छः बातें—संघि, विग्रह, यान (यदाह), आसन (विराम)  
हैची भाव और संध्य ।

पट्टग्रंथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] मीठी बच वि० दे० “बच” ।

पट्टग्रंथ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इरसा की जड़ जो काश्मीर और काजुल  
से आती है ।

पट्टग्रंथिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीपलामूल । पिपरामूल ।

पट्टञ्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत के सात स्वरों में से चौथा स्वर ।

विशेष—यह गदहे के स्वर से मिलता जुलता माना गया है ।  
इसके उच्चारण-स्थान छः कंठे गए हैं—नासा, कंठ, उर,  
ताल, जिह्वा और दंत; इसी से इसका नाम पट्टञ्ज पदा ।  
मूल स्थान दंत और अंत स्थान कंठ है । देवता इसके अभि

है। सर्ग रक्त, आकृति ब्रह्मा की, ऋतु, हिमवार, रविवार, छंद अनुष्टुभ और संतति इसकी शैरव राग है।

**पद्मशैल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय, भीमांसा आदि हिन्दुओं के छः दर्शन।

**पद्मशैली**—संज्ञा पुं० [ सं० पद्मशैल + ई (अप०) ] दर्शनों का आने-वाला। शैली। उ०—पद्मशैली अभाव सर्वथा घट करि माने।

**पद्मभुजा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खरबूजा।

**पद्मयंत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी मनुष्य के विरुद्ध गुप्त रीति से की गई कार्रवाई। भीतरी ढाल। (२) जाल। कपटपूर्ण आयोजन।

**क्रि० प्र०—**चलाना।—रचना।

**पद्मयोनि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिलाजीत। शिलाजनु। रंग, सीसा, ताँबा, रुप्य, सुवर्ण और छोहा इन छः धातुओं में से किसी एक की सुगंध शिलाजीत में अवश्य आती है, इसी से इसे पद्मयोनि कहते हैं। कारण यह है कि ऊपर कही हुई धातुओं में से किसी एक धातु का अंश जिसमें होगा उसी पर्वत से शिलाजीत की उत्पत्ति होगी।

**पद्मरस**—संज्ञा पुं० [ सं० ] छः प्रकार के रस या स्वाद—मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल अर्थात् मीठा, नमकीन, तीता, कड़वा, कसैला और खटा।

**यौ०—**पद्मरस भोजन = अनेक प्रकार के व्यंजन या खाद्य पदार्थ।

**पद्मिपु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] काम क्रोध आदि मनुष्य के छः विकार।

**पद्मेजा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खरबूजा।

**पद्मक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्तिकेय। पदानन।

**पद्मवन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पदानन। कार्तिकेय।

**पद्मर्ग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] छः वस्तुओं का समूह या मार्ग। (१) श्रेष्ठ, होर, प्रेक्काण, नवमांसा इन्द्रांसा और त्रिंशंसा पद्वर्ग कहलाते हैं। (अप०तिष) (२) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर का समूह।

**पद्मिदु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु। (२) शुभरीले की जाति का एक कीड़ा जिसकी पीठ पर छः गोल बिंदियाँ होती हैं। इसे पर्य में 'छठ्ठ दवा' कहते हैं।

**पद्मिदुतैल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक का एक तैल जिसकी छः सूँठ नास लेने से सिर का दर्द दूर होता और अंज तथा दाँत को लाभ पहुँचाता है।

**विद्योप**—रेंड की जड़, तगर, सैंक, संधानमक, पुत्रजीवा, राघवा, जलमैंगर, पापविदंग, मुलेठी, सोंठ इन सब का चौगुना जल, भंगरे का रस और चौगुना बकरी का कूथ और आठ गुना तेल इन सबको कढ़ाही में मंद मंद पकावे। जब रसादिक जलकर तेल मात्र रह जाय, तो छान छे।

**पद्मविश**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सामवेद का एक ब्राह्मण।

**पद्मिकार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राणी के छः विकार या परिणाम अर्थात् (१) उत्पत्ति (२) वृद्धि (३) धारण (४) प्रीवता (५) बृहता और (६) मृत्यु। (२) काम क्रोध आदि छः विकार।

**परमुष्ण**—वि० [ सं० ] छः सुँठवाला।

संज्ञा पुं० पदानन। कार्तिकेय।

**पर्यपी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

**पट्टपशक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यंत्र जिससे जहाज पर नक्षत्रों की स्थिति देखकर यह स्थिर करते हैं कि जहाज पृथ्वी के किस भाग में है।

**पट्ट**—वि० [ सं० ] जो गितनी में पचास से दस अधिक हो। साँठ।

**पट्टिक**—वि० [ सं० ] (१) साठवाला। (२) जो साठ पर खरीदा जाय।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान जो बहुत जल्दी तैयार होता है। साठी धान।

**पट्ट**—वि० [ सं० ] जिसका स्थान पाँचवें के उपरान्त हो। छठा।

**पट्टात्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह भोजन जो तीन दिनों के बीच में केवल एक बार किया जाय। (मत की विधि के अनुसार)

**पट्टात्रकाल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक मत जिसमें तीन दिन में केवल एक बार भोजन किया जाता है।

**पट्टिमत्त**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथी।

**पट्टिहायन**—संज्ञा पुं० (१) हाथी। (२) साठी धान।

**पट्टी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी पक्ष का छठा दिन। शुक्ल या कृष्ण पक्ष की छठी तिथि। (२) पोद्दार मातृकाओं में से एक। (३) काय्यापानी। दुर्गा। (४) संवेंध कारक। (प्याकरण)। (५) बालक उत्पन्न होने से छठा दिन तथा उफ दिन का उत्सव।

**पाँड**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम। पंड।

**पाँड्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हंडिदायन। नरुंसकता।

**पांडव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राग की एक जाति जिसमें केवल छ स्वर (स, रे, ग, म, प और ध) लगते हैं। निषाद वर्जित है। जैसे,—दीपक और मेघ। पांडव दो प्रकार का होता है—(१) शुद्ध पांडव। (२) मांस पांडव। (३) मिठाई। (३) हलवाई का काम। (४) मनोराम। मनोरिकार। **पाहुस्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छः उत्तम गुणों का समूह। (२) नीति के छः अंग। वि० दे० "पद्मगुण"। (३) किसी वस्तु को छः से गुणा करने से प्राप्त गुणनकल।

**पांडुसिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जिसे छःओ रसों का ज्ञान हो।

**पारमार्तुर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्तिकेय (रत्नों का पालन) छः हृत्ति-कार्यों ने किया था।

**पारमा संह**—वि० [ सं० ] छः महीने का। छः महीने में होनेवाला। छठे महीने में पढ़नेवाला।



संज्ञा पुं० मृतक संबंधी एक कृत्य जो किसी की मृत्यु के छः महीने पीछे किया जाता है। छमासी।

**वाङ्मय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में एक वनावदी ससक जो मंद से भी गीचा होता है। यह ससक केवल यजाने के काम में आता है।

**विंग**-संज्ञा पुं० [ सं० विज ] (१) व्यविधारी। खेज। कामुक। (२) दूर घीर।

**बोद्ध**-संज्ञा पुं० [ सं० ] छः दौल का पैल। जवान पैल।

**बोद्ध**-वि० [ सं० ] सोलहवाँ।

वि० [ सं० बोद्ध ] जो गिनती में दस से छः अधिक हो। सोलह।

संज्ञा पुं० सोलह की संख्या।

**बोद्ध** फला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ब्रह्मा के सोलह भाग जो क्रम से एक एक करके निकलते और क्षीण होते हैं। वि० दे० "कला"।

**बोद्ध** गण-संज्ञा पुं० [ सं० ] पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच भूत और एक मन इन सब का समूह।

**बोद्ध**दान-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोलह प्रकार के दान जो ये हैं— (१) भूमि (२) आसन (३) पानी (४) कपड़ा (५) दीपक (६) अन्न (७) पान (८) छत्र (९) सुगंधि (१०) फूलमाला (११) फल (१२) सेज (१३) खड़ाऊँ (१४) गाय (१५) सोना और (१६) चाँदी।

**बोद्ध** पूजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोलहो सामग्री के साथ पूजन। वि० दे० "बोद्धोपचार"।

**बोद्ध** मातृका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की देवियों जो सोलह हैं—(१) गौरी (२) पद्मा (३) दाची (४) मेधा (५) सावित्री (६) विजया (७) जया (८) देवसेना (९) स्वधा (१०) स्वाहा (११) क्षाति (१२) दुष्टि (१३) दृष्टि (१४) दुष्टि (१५) मातरः और (१६) आस देवता।

**बोद्ध** शृंगार-संज्ञा पुं० [ सं० ] पूर्ण शृंगार जिसके अंतर्गत सोलह भातें हैं। पूरा सिंगार। वि० दे० "शृंगार"।

**बोद्ध**श्राग् चूर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक चूर्ण जो विषमञ्जर में दिया जाता है।

**बिद्योप**-चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, गिलोय, हृद का

टिलका, मागर मोथा, धनिया, अड़सा, चायमांगा, कटियाली, काकडासिंगी, सोंठ, पिचपापड़ा, भिपंगु पुष्प, पेंसल, पीपल, कचूर सय समान लेकर पीस डाले और ११ टंक प्रति दिन ठंडे जल से आठ दिन तक सेषन करे।

**बोद्ध**शशि-संज्ञा पुं० [ सं० ] केकड़ा।

**बोद्ध**शशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुक्र ग्रह (जिसमें सोलह किरनें मानी गई हैं)।

**बोद्ध**शवर्त्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाल।

**बोद्ध**शशि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह घर या मंदिर जो सोलह कोनों का हो। ऐसे घर में सदा भैरवा रहता है। (बृहत्संहिता)

**बोद्ध**शिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन तौल जो मागधी मान से १६ मात्रो और व्यावहारिक मान से एक तोले के बराबर होती थी।

**बोद्ध**शी-वि० स्त्री० [ सं० ] (१) सोलहवाँ। (२) सोलह वर्ष की (लड़की या स्त्री)। जैसे,—बोद्धशी बाला।

संज्ञा स्त्री० (१) सोलह वर्ष की स्त्री। नव यौवना स्त्री। (२) दस महाविद्याओं में से एक। (३) एक यज्ञपात्र। (४) एक प्राचीन तौल। पल का एक भेद जो मागधी मान से ५ तोले और व्यावहारिक मान से ४ तोले के बराबर होता था। (५) इन सोलह पदार्थों का समूह—ईक्षण, प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इंद्रिय, मन, अक्ष, चिर्य, तप, मंत्र कर्म और नाम। (६) मृतक संबंधी एक कर्म जो मृत्यु के दसवें या ग्यारहवें दिन होता है।

**बौ**—बोद्धशी संपिंडी।

**बोद्ध**शोपवार-संज्ञा पुं० [ सं० ] पूजन के पूर्ण अंग जो सोलह माने गए हैं—(१) आवाहन (२) आसन (३) अर्घ्यपात्र (४) आचमन (५) मधुपर्क (६) स्नान (७) वस्त्राभरण (८) यज्ञोपवीत (९) गंध (चंदन) (१०) दुग्ध (११) धूप (१२) दीप (१३) निवेद्य (१४) तांबूल (१५) परिक्रमा और (१६) बंदना।

**बोद्ध** संस्कार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक रीति के अनुसार गर्माधान से लेकर मृतक कर्म तक के १६ संस्कार जो द्विजातियों के लिये कहे गए हैं। वि० दे० "संस्कार"।

**द्रीधन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० द्रीवित, ध्युत ] धृक्ना।

**धृज्युत**-वि० [ सं० ] धृक्ना हुआ।

स

**स**-हिंदी वर्णमाला का वषोडशवाँ व्यंजन। इसका उच्चारण स्थान दंत है, इसलिये यह दंती स कहा जाता है।

**सं**-प्रत्यय [ सं० सम् ] (१) एक प्रत्यय जिसका व्यवहार शोभा, समानता, संगति, उल्लेखता, निरंतरता, औचित्य आदि सूचित करने के लिये द्रव्य के आरंभ में होता है। जैसे,—

संभोग, संयोग, संताप, संतुष्ट आदि। कभी कभी इसे जोड़ने पर भी मूल शब्द का अर्थ ज्यों का त्यों बना रहता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। (२) से।

**संज्ञाना**-कि० सं० [ सं० संज्ञय ] (१) स्त्रीपना। पोतना। चौका लगाना। (२) संज्ञय करना। (३) यह देखना जितना और

जैसा चाहिये, उतना और वैसा है या नहीं। 'सहेजना।

**सँजपना**—संज्ञा स्त्री० [ सं० दे० "सँजपना" ] उ०—जलधि पार मानस अगम रावण पालित लंक। सोच विकल कपि भालु सब दुहु दिख संकट संक ।—दुलसी।

**संकट**—वि० [ सं० सम + क्त, प्रा० संकट ] (१) एकत्र किया हुआ। (२) घनीभूत। (३) संग। (४) दुर्लभ्य। (५) मयानक। कष्टप्रद। दुःखदायी। (६) संकीर्ण। सँकरा। संग। संज्ञा पुं० (१) विपत्ति। आफन। मुसीबत। उ०—लाहन गे जब तँ तत्र तँ विरहानल जालन से मन दादे। पालत हे मगगायन ग्याल हुतो जब भावत संकटगादे।—दीनदयाल। (२) दुःख। कष्ट। तकलीफ। (३) भीड़। समूह। (४) यह संग पहाड़ी रास्ता जो दो बड़े और ऊँचे पहाड़ों के बीच से होकर गया हो।

संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का वस्त्र।

**संकट चौथ**—संज्ञा स्त्री० [ हि० संकट + चौथ ] माघ मास के कृष्ण पक्ष की ऋतुर्था। इस दिन संकट दूर करनेवाले गणेश देवता के उद्देश्य से मत्त भादि रखा जाता है।

**संकटस्थ**—वि० [ सं० ] (१) संकट में पड़ा हुआ। विपद्ग्रस्त। (२) दुःखी।

**संकटा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रसिद्ध देवी जो संकट या विपत्ति का निवारण करनेवाली मानी जाती हैं। (२) ज्योतिष के अनुसार आठ योगियों में से एक योगिनी। बाकी सात योगिनीयों ये हैं—मंगला, पिंगला, पन्था, प्रमरी, भद्रिका, उल्का और सिद्धि।

**संकटा**—संज्ञा पुं० [ सं० ] धौ का पेड़। घव।

**संकत**—संज्ञा पुं० दे० "संकेत"।

**संज्ञाना**—संज्ञा स्त्री० [ सं० संज्ञा ] (१) संज्ञा करना। संदेह करना। (२) करना। भयभीत होना। उ०—यदि परे पालका धि परी जिय संकनि संसित होनि न सोही।—देव।

**संकर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह पद जो शाब्द देने के कारण उदती है। (२) भाग के जलने का शब्द। (३) दो पदार्थों का परस्पर मिश्रण। दो चीजों का आपस में मिलना। (४) न्याय के अनुसार किसी एक ही स्थान या पदार्थ में भव्यता-भाव और समानाधिकरण का एक ही में होना। जैसे,—मन में मूर्त्तत्व तो है, पर भूतत्व नहीं है; और आकाश में भूतत्व है, पर मूर्त्तत्व नहीं है। परंतु पृथ्वी में भूतत्व भी है और मूर्त्तत्व भी है। (५) यह जिसकी उत्पत्ति मिश्र वर्ण या जाति के पिता और माता से हुई हो। दोगला। संज्ञा पुं० दे० "संकर"।

**संकर**—संज्ञा स्त्री० [ सं० संकर + शरणी ] संकर की पत्नी, पार्वती।

**संकरता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संकर होने का भाव या धर्म। संकरता। मिलावट। पाल मेल।

**सँकरा**—वि० [ सं० संघर्ष ] [ की० संकरी ] जो अधिक चौड़ा या विलून न हो। पतला और तंग। जैसे,—सँकरा रास्ता। संज्ञा पुं० कष्ट। दुःख। विपत्ति।

**मुहा०**—सँकरे में पढ़ना = दुःख में पढ़ना। कष्ट में पढ़ना। संज्ञा स्त्री० [ सं० मूँखला ] मूँखला। सँकल। सँकड़। जंजीर। उ०—धूँधर पार अलकें विष भरे। संकरे प्रेम चहुँ गये परे।—जायसी। संज्ञा पुं० दे० "संकरामरण"।

**सँकराना**—कि० सं० [ हि० संकरा + आना (प्रय०) ] (१) संकुचित करना। तंग करना। (२) पंद करना।

**संकराभ्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वकर।

**संकरित**—वि० [ सं० ] जिसमें मिलावट हो। मिला हुआ।

**संकरिया**—संज्ञा पुं० [ सं० संकर ? ] एक प्रकार का हाथी जो कम-रुखा और मिरगी के बीच की श्रेणी का होता है। इसका मूल्य कमतरिया से कम होता है।

**संकरी**—संज्ञा पुं० [ सं० संकरि ] यह जो मिश्र वर्ण या जाति के पिता और माता से उत्पन्न हो। संकर। दोगला। संज्ञा स्त्री० दे० "संकरी"।

**संकरीकरण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नौ प्रकार के पापों में से एक प्रकार का पाप जो गर्भे, घोड़े, ऊँट, सुग, हाथी, बकरी, भेड़, मीन, सर्प या भैंसे का वध करने से होता है। इसके प्रायश्चित्त के लिये कृच्छ्र या अतिकृच्छ्र मत करने का विधान है। (२) दो पदार्थों को एक में मिलाने की क्रिया। वर्ण-संकरता करना।

**संकर्यण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खींचने की क्रिया। (२) हल से जोतने की क्रिया। (३) कृष्ण के भाई बलराम का एक नाम। (४) एकादश रत्नों में से एक रत्न का नाम। (५) धैर्यता का एक संप्रदाय जिसके प्रयत्नक निश्चयक जाये।

**संकल**—संज्ञा स्त्री० [ सं० मूँखला ] (१) दरवाने में छगने की सिकड़ी या जंजीर। (२) पशुओं को बाँधने का सिकड़। (३) सोने या चाँदी की जंजीर जो गले में पहनी जाती है। जंजीर। संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत सी चीजों को एक स्थान पर एकत्र करना। संकलन। एकत्रीकरण। (२) योग। मिलाना। (३) गणित की एक क्रिया जिसे जोड़ कहते हैं। वि० दे० "संकलन"।

**संकलन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संकलित ] (१) एकत्र करने की क्रिया। संग्रह करना। नाम करना। (२) संग्रह। ढेर। (३) गणित की योग नाम की क्रिया। जोड़। (४) अनेक प्रयोगों से अच्छे अच्छे विषय चुनने की क्रिया। (५) यह प्रयं जिसमें ऐसे खुले हुए विषय हों।

संकल्प-संज्ञा पुं० दे० "संकल्प"।

संकल्पना-कि० सं० [ सं० संकल्प + ना (प्रत्य०) ] (१)

किसी बात का हृदय निश्चय करना। उ०—जैसे पति तेरे लिये मैं संकल्प्यो आप। तैसे तैं पायो सुता अपने पुत्र प्रताप।—लक्ष्मणसिंह। (२) किसी धार्मिक कार्य के निमित्त कुछ दान देना। संकल्प करना।

कि० प्र० विचार करना। इच्छा करना। इरादा करना।

संकला-संज्ञा पुं० [ सं० काल् ] दक्ष द्वीप।

संकलित-वि० [ सं० ] (१) चुना हुआ। संगृहीत। (२) जोड़ लगाया हुआ। योजित। (३) इकट्ठा किया हुआ। एकत्र किया हुआ।

संकल्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कार्य करने की वह इच्छा जो मन में उत्पन्न हो। विचार। इरादा। (२) दान, पुण्य या और कोई देवकार्य आरंभ करने से पहले एक निश्चित मंत्र का उच्चारण करते हुए अपना हृदय निश्चय या विचार प्रकट करना। (३) वह मंत्र जिसका उच्चारण करके इस प्रकार का निश्चय या विचार प्रकट किया जाता है।

विशेष—इस मंत्र में प्रायः संवत्, मास, तिथि, पार, स्थान, दाता या कर्ता का नाम, उपलक्ष्य और दान या कृत्य आदि का उल्लेख होता है।

(४) हृदय निश्चय। पक्का विचार। जैसे,—मैंने तो अब यह संकल्प कर लिया है कि कभी उसके साथ कोई व्यवहार न रखूँगा।

संकल्पना-कि० सं०, प्र० दे० "संकल्पना"।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) संकल्प करने की क्रिया। (२) वासना। इच्छा। अभिलाषा।

संकल्पभय-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव।

संकल्पयोनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव।

संकल्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दक्ष की एक कन्या जो धर्म की भाव्या थी।

संज्ञाना-कि० प्र० [ सं० शंक् ] शक्ति होना। भीत होना।

उटना। उ०—मुँह मिठास हग चीकने, भीँहँ सरल सुभाय।

तऊ परे आदर खरी, छिन छिन हियौ संकाय।—पिहारी।

संकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कृपा करके या धूल जो शायद देने से उड़े। (२) आंग के जलने का शब्द।

इ संज्ञा स्त्री० [ सं० संकेत ] इशारा। संकेत।

संकारना-कि० सं० [ हि० संकार + ना (प्रत्य०) ] संकेत करना। इशारा करना।

संकाश-अव्य० [ सं० ] (१) समान। सदृश। मिलते जुलते।

उ०—देव रिद्ध कर्मकट विकट सुभद्र उन्नत समर सैल संकास रिपु प्राप्तकारी। बद्ध पायोधि-सुर निकर मोचन सबहुल

दहन दस सीस मुज बीस भारी।—गुलसी। (२) समीप निकट। पास।

संकिरत-वि० [ सं० संकष्ट ] जो अधिक चौड़ा न हो। सँकरा। तंग।

संकीर्ण-वि० [ सं० ] (१) जो अधिक चौड़ा या विस्तृत न हो संकुचित। तंग। सँकरा। (२) मिश्रित। मिला हुआ। (३) छुद्र। छोटा। (४) नीच। गुच्छ। (५) वर्ण संकर।

संज्ञा पुं० (१) वह राग या रागिनी जो दो अन्य रागों या रागिनियों को मिलाकर बने। इसके १९ भेद कहे गए हैं—चैत्र, मंगलक, नगनिका, चर्चा, अतिनाद, उन्नवी, दोहा, बहुला, गुल्लला, गीता, गोवि, हेग्ना, कोपी, कारिका, त्रिपदिका और अथा। (२) संकट। विपत्ति।

संज्ञा पुं० [ सं० ] साहित्य में एक प्रकार का गद्य जिसमें कुछ घृतांगि और कुछ अघृतांगि का मेल होता है।

संकीर्णता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) संकीर्ण होने का भाव। (२) तंगी। सँकरापन। (३) नीचता। (४) छुद्रता। ओछापन।

संकीर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भली भँति किसी की कीर्ति का वर्णन करना। (२) किसी देवता की सम्यक् रूप से की हुई वंदना या भजन आदि।

संकोच-संज्ञा पुं० [ सं० ] उराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

संकुचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संकुचित होने की क्रिया। सिकुड़ना। (२) बालकों का एक प्रकार का रोग जिसकी गणना बाल-ग्रह में होती है।

संकुचना-कि० प्र० दे० "संकुचन"।

संकुचाना-कि० प्र० दे० "संकुचाना"।

संकुचित-वि० [ सं० ] (१) संकोच युक्त। छिन्नित। जैसे,—संकुचित षष्टि। (२) सिकुड़ा हुआ। सिमटा हुआ। (३) तंग। सँकरा। संकीर्ण। (४) उदार का उल्टा। अनुदार। छुद्र।

संकुल-वि० [ सं० ] (१) संकुलित। संकीर्ण। घना। (२) भरा हुआ। परिपूर्ण।

संज्ञा पुं० (१) युद्ध। समर। लड़ाई। (२) समूह। झुंड।

(३) भीड़। (४) जनता। (५) परस्पर विरोधी वाक्य।

(६) ऐसे वाक्य जिनमें परस्पर किसी प्रकार की संगति न हो। असंगत वाक्य।

संकुलित-वि० [ सं० ] (१) जो संकुलित हो। भरी हुई। (२) एकत्र। (३) घना।

संकुश-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली जिसे शंकु भी कहते हैं।

संकेत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अपना भाव प्रकट करने के लिये किया हुआ कायिक परिचायन या चिह्न। इशारा। इंगित।

(२) प्रेमी प्रेमिका के मिलने का पूर्व निर्दिष्ट स्थान। वह स्थान जहाँ प्रेमी और प्रेमिका मिलना निश्चित करें। सहैर।  
(३) कामकाज संबंधी इम्तिहान। श्रृंगार चेषा। (४) चिह्न। निशान। (५) पते की बातें। उ०—सत्य जानकी जानि कपि कहे सकल संकेत। द्वािह्नु सुदिक्का लीन्दि सिय मीति प्रतीति समेत।—गुलसी।

**संकेत** †—वि० दे० “संकेत”।

**संकेतना**—कि० सं० [ सं० संकोच ] संकेत में डालना। कष्ट में डालना। आपसि में डालना। उ०—भपुउ चेत, चेतन चित वेता। मैन क्षरोखे जीव संकेता।—जायसी।

**संकेतना** †—कि० सं० [ सं० संकेत ] साँच कर एकत्र करना। समेटना।

**संकोच**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिक्कड़ने की क्रिया। रित्ताव। तनाव। (२) छद्म। धर्म। (३) भय। (४) आगा पीछा। पसो पेश। हिचकिचाहट। (५) कमी। (६) एक प्रकार की मछली। (७) केसर। कुमकुम। (८) एक अलंकार जिसमें 'विकास अलंकार' से विरुद्ध वर्णन होता है या किसी वस्तु का अतिशय संकोच वर्णन किया जाता है। (९) बहुत सी बातों को थोड़े में करना।

**संकोचन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिक्कड़ने की क्रिया।

**संकोचना**—कि० सं० [ सं० संकोच ] संकुचित करना। संकोच करना। उ०—नींद परति राति प्रेम पनु एक भाँति सोचत संकोचत विरंषि हरि हर की।—गुलसी।

**संकोचनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छत्राल, नाम की छता।

**संकोचपत्रक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रसों का एक प्रकार का रोग जिसमें उनके पत्तों में ऊपर कुछ दाने से निकल आते हैं और पत्ते सिक्कड़ जाते हैं।

**संकोचपिष्टुन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कुंडुम। केसर।

**संकोचित**—वि० [ सं० ] (१) संकोच युक्त। जिसमें संकोच हो। (२) जो विकसित या प्रकुलित न हो। अप्रकुलित। (३) लमिता। शर्मिदा।

**संज्ञा पुं०** तलवार के बर्षीस हाथों में से एक हाथ। तलवार चलाने का एक ढंग या प्रकार।

**संकोची**—संज्ञा पुं० [ सं० संकोचिन् ] (१) संकोच करनेवाला। (२) सिक्कड़नेवाला। (३) जिसे संकोच या छद्म हो। धर्म करनेवाला।

**संकोपना**—कि० सं० [ सं० संकोच + ना (प्रत्य०) ] कोष करना। कुद होना। गुरस्ता करना।

**संकोदन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धक्का। इंद्र। सुरपति। उ०—संकोदन छपाल सुरभाता। धरौ मुक्ति मुक्ति के दाता।—निरधर। (२) पुराणातुसार भीष्य मनु के एक पुत्र का नाम। (३) दे० “कंदन”।

**संक्रम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कष्ट या कठिनातापूर्वक करने की क्रिया। संप्रवेश। (२) पुल आदि बनाकर किसी स्थान में प्रवेश करना। (३) पुल। सेतु। (४) प्राप्ति। (५) संक्रमण। संक्रांति।

**संक्रमण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गमन। चलना। (२) अतिक्रमण। (३) सूर्य का एक राशि से निकलकर दूसरी राशि में प्रवेश करना। (४) धूमना। फिरना। पर्यटन।

**संक्रांत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दायभाग के अनुसार वह धन जो कई पीढ़ियों से चला आया हो। (२) सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में जाना। वि० दे० “संक्रांति”।

**वि०** (१) मिला हुआ। प्राप्त। (२) मीठा हुआ। गन।  
**संक्रांति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक राशि से दूसरी राशि में गमन। (२) सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करने का समय।

**विशेष**—प्रायः सूर्य एक राशि में ३० दिन तक रहता है। और जब वह एक राशि से निकलकर दूसरी राशि में जाता है, तब उसे संक्रांति कहते हैं। वास्तव में संक्रांति काल बही होता है, जब सूर्य दो राशियों की ठीक सीमा पर या बीच में होता है। यह संक्रांति काल बहुत थोड़ा होता है। पुराणातुसार यह काल बहुत पुनीत माना जाता है और इस समय लोग ज्ञान, यज्ञ, पूजन इत्यादि करते हैं। इस समय का किया हुआ शुभ कार्य बहुत पुण्यजनक माना जाता है। (३) यह दिन जिसमें सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में जाता है।

**संक्रांतियुक्त**—संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्यों के शुभ अशुभ जानने के हेतु बनाया हुआ मनुष्य के आकार का नक्षत्रों से अंकित एक प्रकार का चक्र जिससे यह जाना जाता है कि मनुष्य के लिये किस संक्रांति का फल शुभ और किसका अशुभ होगा।

**संक्रामक**—वि० [ सं० ] जो संसर्ग या छूट आदि के कारण एक से औरों में फैलता हो। जैसे,—चेपक, देग, महामारी, क्षय आदि रोग संक्रामक होते हैं।

**संक्रामी**—संज्ञा पुं० [ सं० संक्रामिन् ] यह जो लोगों में रोगों का संक्रमण करता हो। रोग फैलानेवाला।

**संक्रोड़**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) परिहास। हँसी उड़ा। (२) एक साम का नाम।

**संक्रोन**—संज्ञा स्त्री० [ सं० संक्रमण ] संक्रमण। संक्रांति। वि० दे० “संक्रांति”। उ०—निष निमि तरनि किमोर थप, पुन्य काल सम देन। काहू पुन्यनि पाहूपत, बीस संधि संक्रोन।—चिहारी।

**संक्रोश**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जोर से शब्द करना। बिलहाना। (२) एक साम का नाम।

**संशय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सम्यक् प्रकार से नाश। विनाश। ध्वंस। बरबादी। (२) प्रलय।

**संसार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह स्थान जहाँ दो नदियाँ आदि मिलती हैं। संगम। (२) एक साम का नाम।

**संक्षिप्त**—वि० [ सं० ] (१) जो संक्षेप में कहा या लिखा गया हो। जो संक्षेप में किया गया हो। खुलासा। (२) थोड़ा अल्प। (३) छोड़ा या फेंका हुआ।

**संक्षिप्तलिपि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक लेखन प्रणाली जिसमें ध्वनियों के लिये ऐसे संक्षिप्त चिह्न या रेखाएँ नियत रहती हैं जिनके द्वारा लिखने से थोड़े काल और स्थान में बहुत सी बातें लिखी जा सकती हैं। व्याख्यान आदि के लिखने में यह अधिक सहायक होती है। व्यापारिक कार्यालयों में भी इसका प्रयोग होता है।

**संक्षिप्ता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ज्योतिष में बुध ग्रह की सात प्रकार की गतियों में से एक प्रकार की गति। बुध जिस समय पुष्य, पुनर्वसु, पूर्व फल्गुनी और उत्तर फल्गुनी नक्षत्र में होता है, उस समय उसकी गति संक्षिप्ता होती है। यह गति २२ दिन तक रहती है।

**संक्षिप्ति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नाटक में चार प्रकार की आरभटियों में से एक प्रकार की आरभटी। जहाँ क्रोध आदि उग्र भावों की निवृत्ति होती है (झैसे, रामचंद्र जी की बाताँ से परशुराम के क्रोध की निवृत्ति होना) वहाँ यह वृत्ति मानी जाती है। वि० दे० "आरभटी"।

**संक्षेप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) थोड़े में कोई बात कहना। (२) संकोचन। घटाना। कम करना। (३) समाहार। संग्रह। समास। (४) चुंबक।

**संक्षेपण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कम करना। संक्षेप कराना। (२) काट छाँट करने की क्रिया।

**संक्षेपतः**—अव्य० [ सं० ] संक्षेप में। थोड़े में। सारांशतः।

**संक्षेपतया**—अव्य० [ सं० ] थोड़े में। संक्षेप में।

**संक्षेपदोष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] साहित्य में एक प्रकार का दोष। जिस बात को जितने विस्तार से कहने या लिखाने की आवश्यकता हो, उसे उतने विस्तार में न कह या लिखकर कम विस्तार से कहना या लिखना, जिससे प्रायः सुनने या पढ़ने वाले की समझ में ठीक ठीक अभिप्राय न आवे।

**संक्षोभ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बंचलता। (२) कंपन। कौपन। (३) विक्षय। (४) उलट पुलट। (५) गर्व। घमंड। अभिमान। शोली।

**संख**—संज्ञा पुं० दे० "शंख"।

**संखमारी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संखमारी। एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक पद में दो यगण (य, च) होते हैं। इसे सोमराजी वृत्त भी कहते हैं।

**संखडुली**—संज्ञा स्त्री० दे० "शंखडुली"।

**संखा**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख की के ऊपरी पाट में लगी हुई लकड़ी की लुँटी जिसमें एक ओर छोटी लकड़ी जड़ी रहती है। हय-यद्। हथ्या।

**संखार**—संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का पक्षी जिसका रंग अलक होता है और जिसकी घोंच छिपटी होती है।

**संखिया**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शृंगिका या शृंग विष। (१) एक प्रकार की बहुत जहरीली प्रसिद्ध उपधातु या पत्थर जो कुमाऊँ, चित्राल स्वात, काश्गर, उचरी बरमा और चीन आदि में पाया जाता है। प्रायः इसका रंग सफेद या मटमैला होता है और यह चिकना तथा चमकीला होता है। जिस समय यह खान से निकलता है, उस समय बहुत कड़ा होता है और बहुत कठिनाता से गलता है। पादचात्य वैज्ञानिक हरताल और मैनसिल को भी इसी के अंतर्गत मानते हैं। भारतवासी प्रायः यही समझते हैं कि यह पत्थर पर बहुत जहरीले बिच्छू के डंक मारने से संखिया बनता है। (२) उक्त धातु का तैयार किया हुआ भस्म जो देशी भी होता है और विहायती भी। यह बाजारों में सफेद, पीले, लाल, काले आदि कई रंगों का मिलता है और प्रायः शीश्यों में काम आता है। कुछ लोग क्षत्रिम रूप से भी संखिया बनाते हैं। यह बहुत विकट विष होता है और प्रायः हत्या आदि के लिये काम में आता है। वैद्यक के अनुसार यह वीर्य तथा बलवर्द्धक, कांतिजनक, लोहभेदक, दाहजनक, वमनकारक, रेचक, त्रिदोषघ्न तथा सब प्रकार के दोषों का नाश करनेवाला माना जाता है। वैद्यक के अतिरिक्त हिकमत और डाक्टरी में भी इसका व्यवहार होता है और उनमें भी इसे बहुत बलवर्द्धक माना गया है। सोमल। संखुल। सम्मुखार।

**पर्याय**—आखुपापाण। शंखविप। शृंगिक। गीरीपापाण।

**संख्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] युद्ध। समर। लड़ाई।

**संख्यक**—वि० [ सं० ] जिसमें संख्या हो। संख्या वाला। विसंख्यक।

**संख्यता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संख्या का भाग या गुण। संख्यात्व।

**संख्या**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वस्तुओं का वह परिमाण जो गिनकर जाना जाय। एक, दो, तीन, चार आदि की गिनती। तादात्त। शुमार। (२) गणित में वह अंक जो किसी वस्तु का, गिनती में, परिमाण बतलावे। अद्द। (३) वैद्यक में संप्राप्ति के पाँच भेदों में से एक भेद। अन्य चार भेद विकल्प, प्राणाय, बल और काल हैं। (४) बुद्धि। (५) विचार।

**संख्यान्**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संख्या। गिनती। (२) गिनने की क्रिया। शुमार। (३) ध्यान। (४) प्रकाश।

**संख्यालिपि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की लेखन प्रणाली जिसमें वर्णों के स्थान पर संख्या-सूचक चिह्न या अंक लिखे जाते हैं।

**संग-संगी पुं०** [ सं० संग ] (१) मिलने की क्रिया । मिलन । (२) संसर्ग । सहवास । सोहबत । जैसे,—पुरे आदमियों के संग में अच्छे आदमी भी बिगड़ जाते हैं ।

**क्रि० प्र०**—करना ।—जोड़ना ।—टूटना ।—रखना ।

**मुहा०**—संग सोना = सहवास करना । समागम करना । उ०—संग सोई तो फिर छात्र क्या ! (कहा०) (किसी के) संग लगना = साथ हो लेना । पीढ़े लगना । (किसी को) संग लेना = अपने साथ लेना या ले चलना । जैसे,—जब चलने लगना, तब हमें भी संग हो लेना ।

(३) विपरीतों के प्रति होनेवाला अनुराग । (४) वासना । भासक्ति । (५) वह स्थान जहाँ दो नदियाँ मिलती हों । नदियों का संगम ।

**क्रि० वि०** साथ । हमराह । सहित । जैसे,—(क) उनके संग चार आदमी आए हैं । (ख) मरने पर क्या कोई हमारे संग जायगा ? (ग) हम भी तुम्हारे संग चलेँगे ।

**संगी पुं०** [ प्रा० ] पत्थर । पाषाण । जैसे,—संगमूसा, संगमरमर, संग असवद ।

वि० पत्थर की तरह कठोर । बहुत कड़ा ।

**विशेष**—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने में उनके आरंभ में होता है । जैसे,—संगदिल = पाषाण हृदय । कठोर हृदय ।

**संग अंगूर**—संगी पुं० [ संग ? दि० अंगूर ] एक प्रकार की वनस्पति जो हिमालय पर पाई जाती है । यह ओषधि के काम में आती है । इसे अंगूर मोका, गिरी घृटी या पेवराज भी कहते हैं ।

**संग असवद**—संगी पुं० [ प्रा० संग + अ० असवद ] काले रंग का एक बहुत प्रसिद्ध परमर जो कान्चे की एक दीवार में लगा हुआ है और जिसे हज़ करने के लिये जानेवाले मुसलमान बहुत पवित्र समसते तथा पूजते हैं । मुसलमानों का यह विश्वास है कि यह पत्थर स्वर्ग से लाया गया है; और इसे पूजने से पापों का नष्ट होना माना जाता है ।

**संग कूपी**—संगी स्त्री० [ ? ] एक प्रकार की वनस्पति जो ओषधि के काम में आती है ।

**संग पारार**—संगी पुं० [ प्रा० संग + पार ] एक प्रकार का पत्थर जो छूछ नीलापन लिए भूरे रंग का और बहुत कड़ा होता है । चकमक पत्थर ।

**संग जराहट**—संगी पुं० [ प्रा० संग + अ० जराहट ] एक प्रकार का सफेद चिकना पत्थर जो घाव भरने के लिये बहुत उपयोगी होता है । इसे पीसकर बारीक नूतों बनाते हैं जिसे "गुच" करते हैं और जो सँधा बनाने के काम में भी आता है । इसका गुण यह है कि पानी के साथ मिलने पर यह कूलता है और सूखने पर कड़ा हो जाता है । इसलिये इससे मूर्तियाँ

आदि भी बनाते हैं । इसे कुलगार, कारसी, सफेद सुरमा या सिलखड़ी भी कहते हैं ।

**संगटन**—संगी पुं० [ सं० सं + दि० गटना ] (१) चित्ती हुई शक्तियों, लोगों, या अंगों आदि को इस प्रकार मिलाकर एक करना कि उनमें नवीन जीवन या बल आ जाय । किसी विनिष्ट उद्देश्य या कार्थ्य सिद्धि के लिये खिले हुए अवयवों को मिलाकर एक और व्यवस्थित करना । एक में मिलाने और उपयोगी बनाने के लिये की हुई व्यवस्था ।

**विशेष**—वास्तव में यह शब्द शुद्ध संस्कृत नहीं है, गलत गढ़ा हुआ है; पर भावकल यह बहुत प्रचलित हो रहा है । कुछ लोग इससे, संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार "संगटित" "संगटनात्मक" आदि शब्द भी बनाते हैं, जो अशुद्ध हैं । कुछ लोगों ने इसके स्थान पर "संगटन" शब्द का व्यवहार करना आरंभ किया है, जो शुद्ध संस्कृत है ।

(२) वह संस्था या संघ आदि जो इस प्रकार की व्यवस्था से सँवार हो ।

**संगठित**—वि० [ दि० संगटन ] जो अली भौति व्यवस्था करके एक में मिलाया हुआ हो । जो व्यवस्थित रूप में और काम करने के योग्य मिलाकर बनाया गया हो ।

**संगत**—संगी स्त्री० [ सं० संगति ] (१) संग रहने या होने का भाव । साथ रहना । सोहबत । संगति । (२) संग रहनेवाला । साथी । (३) वेदयाओं या भौत्यों आदि के साथ रहकर सारंगी, तबला, मँजीरा आदि बजाने का काम ।

**क्रि० प्र०**—बजाना ।—में रहना ।

**मुहा०**—संगत करना = गानेबाने के साथ साथ ठीक तरह से तबला, सारंगी वितार आदि बजाना ।

(४) वह जो इस प्रकार किसी माने या नापनेवाले के साथ रहकर साज बजाता हो । (५) वह मठ जहाँ उदासी या निश्चल आदि साधु रहते हैं । (६) संबंध । संसर्ग । (७) प्रसंग । मैथुन । (८) दे० "संगति" ।

**संगतरा**—संगी पुं० [ पुर्व० ] एक प्रकार की बड़ी और मोड़ी मारंगी। संतरा ।

**संगतराश**—संगी पुं० [ प्रा० ] (१) पत्थर काटने या गढ़नेवाला मजदूर । पत्थर-कट । (२) एक औजार जो पत्थर काटने के काम में आता है ।

**संगति**—संगी स्त्री० [ सं० ] (१) मिलने की क्रिया । मेल । मिलान । (२) संग । साथ । सोहबत । संगत । (३) प्रसंग । मैथुन । (४) संबंध । ताल्लुक । (५) ज्ञान । (६) किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिये बार बार प्रश्न करने की क्रिया । (७) युक्ति । (८) पहले कहीं या खिंची हुई बात के साथ बाद में कहीं या खिंची हुई बात का मेल । आगे पीछे कहे जानेवाले वाक्यों आदि का मिलान ।

क्रि० प्र०—वैटना ।—मिलना ।—लगाना ।—लगाना ।

(९) दे० "संगत" ।

**संगतिया**—संज्ञा पुं० [ हि० संगत + या (प्रत्य०) ] वह जो किसी गाने या नाचनेवाले के साथ रहकर सारंगी, तबला या और कोई साज बजाता हो । सार्जिदा ।

**संगती**—संज्ञा पुं० [ हि० संगत + ती (प्रत्य०) ] (१) वह जो साथ में रहता हो । संग रहनेवाला । (२) दे० "संगतिया" ।

**संगय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संग्राम । युद्ध ।

**संगदिल**—वि० [ फा० ] जिसका हृदय पत्थर की तरह कठोर हो । कठोर हृदय । निर्दय । दयाहीन ।

**संगदिली**—संज्ञा स्त्री० [ फा० ] संगदिल होने का भाव । कठोर-हृदयता । निर्दयता ।

**संगपुस्त**—संज्ञा पुं० [ फा० ] पत्थर की तरह कड़ी पीठवाला, कच्छप । कसुआ । कमठ ।

**संगबसरी**—संज्ञा पुं० [ फा० ] एक प्रकार की मिट्टी जिसमें लोहे का अंश अधिक होता है और जो हस्तो कारण दवा के काम में आती है । ग्रह फारस में होती है और वहाँ से आती है ।

**संगम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दो घलुओं के मिलने की क्रिया । मिलाप । सम्मेलन । संयोग । समागम । मेल । उ०—आ-पुहिं ते उठि जौ चहै तिय पिय के संकेत । निसि दिन तिमिर प्रकास फलु गये न संगम हेत ।—देव । (२) दो नदियों के मिलने का स्थान । जैसे,—गंगा यमुना का संगम प्रयाग में होता है । उ०—ज्योति जगि यमुनासी लमै जग लाल बिलो-चन पाप विपौंहे । सूर सुता शुभ संगम तुंग तरंग सरंगिणि गंग सी सोहै ।—केशव । (३) साथ । संग । सोहवत । उ०—पद्मावत साँ कल्यो विहंगम । कंत लुभाय रई जेहि संगम ।—जायसी । (४) स्त्री और पुरुष का संयोग । मैथुन । प्रसंग । (५) व्योतिप में ग्रहों का योग । कई ग्रहों आदि का एक स्थान पर मिलना या एकत्र होना ।

**संगमन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संयोग । मेल ।

**संगमर**—संज्ञा पुं० [ देश० ] वैश्यों की एक जाति ।

**संगमरैट**—संज्ञा पुं० [ फा० संग + मरैट ] एक प्रकार का बहुत चिकना, मुलायम और सफेद प्रसिद्ध पत्थर जो बहुत कीमती होता है । यह मूर्त्ति, मंदिर तथा महल इत्यादि बनाने में काम आता है । आगरे का ताज महल इसी पत्थर का बना है । भारत में यह जयपुर में अधिक पाया जाता है । इसके अतिरिक्त अजमेर, किशनगढ़ और जोधपुर आदि में भी इसकी कुछ खानें हैं ।

**संगमूक्षा**—संज्ञा पुं० [ फा० ] एक प्रकार का काला, चिकना, कीमती पत्थर जो मूर्त्ति आदि बनाने के काम में आता है ।

**संगयशुब**—संज्ञा पुं० [ फा० ] एक प्रकार का कीमती पत्थर जिसका रंग कुछ हरापन लिये हुए होता है । इसे घो या घिसकर

पीने से दिल का धड़कना कम हो जाता है । इसकी ताबील बनाकर भी लोग पहनते हैं । हील-ट्रिली ।

**संगर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) युद्ध । संमर । संग्राम । (२) आपदा । विपत्ति । (३) अंगीकार । स्वीकार । (४) प्रतिज्ञा । (५) प्रथन । सवाल । (६) नियम । (७) विष । जहर । (८) शमी पृक्ष का फल ।

संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) वह पुस या दीवार जो ऐसे स्थान में बनाई जाती है जहाँ सेना ठहरती है । रक्षा करने के लिये सेना के चारों ओर बनाई हुई खाई, भूस या दीवार । (२) मोरचा ।

**संगरख**—संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी के पीछे चलना । पीछा करना ।  
**संगरा**—संज्ञा पुं० [ फा० संग ? ] (१) कूओं के तख्ते पर बना हुआ वह छेद जिसमें पानी खींचने का पंप बँधाया हुआ होता है । (२) मोटे बॉस का वह छोटा टुकड़ा जिसकी सहायता से पेशाब खोग पत्थर उठाते हैं । संगरा ।

**संगरामल**—संज्ञा पुं० दे० "संग्राम" ।

**संगरासिख**—संज्ञा पुं० [ ? ] ताँपे की मील जो लिजाव बनाने के काम में आती है ।

**संगरेजा**—संज्ञा पुं० [ फा० ] पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े । कंकड़ । बजरी ।

**संगस्त**—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का रेशम जो अश्रुतसर से आता है । यह दो तरह का होता है—परदवानी और बशीरी । यह भारीक और मजबूत होता है; इसलिये गोदा, किनारी आदि बनाने के काम में बहुत आता है ।

**संगव**—संज्ञा पुं० [ हि० संग + गौ ] यह समय जब परचाह बघों को दूध पिलाकर और गौओं को दुहकर चराने के लिये ले जाता है ।

**संगस्तार**—संज्ञा पुं० [ फा० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का प्राण-दंड जो प्रायः अरब, फारस आदि देशों में प्रचलित था । इस दंड में अथवा भी भूमि में आधा गाड़ दिया जाता था और लोग पत्थर भार मारकर उसकी हत्या कर डालते थे । वि० नष्ट । चौपट । ध्वस्त ।

**संगसाल**—संज्ञा पुं० [ फा० ] अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा पर एक पहाड़ी में बटी हुई पत्थर की बहुत बड़ी मूर्त्ति का नाम । विशेष—अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा पर तुर्किस्तान के मार्ग में समुद्र से आठ हजार फुट की ऊँचाई पर हिंदुकुश की घाटी में बहुत सी पुरानी इमारतों के चिह्न हैं । वहीं पहाड़ में बनी हुई दो बड़ी मूर्त्तियाँ भी हैं जिनमें से एक १८० और दूसरी ११७ फुट ऊँची है । यहाँवाले इन्हें संगसाल और शाहयम्मा कहते हैं ।

**संगस्ती**—संज्ञा स्त्री० दे० "सँदस्ती" ।

**संगसुरमा**—संज्ञा पुं० [ फा० ] फाले रंग की वह उपधातु जिसे

रीसकर शौली में छगाने का सुरमा बनाया जाता है। वि० दे० "सुरमा"।

**संग सुलेमानो-संज्ञा पुं०** [ का० संग+स० सुलेमानो ] एक प्रकार के रंगीन पत्थर के नग जिनकी मालाएँ आदि बनाकर मुसलमान, फकीर पहना करते हैं।

**संगाती-संज्ञा पुं०** [ हि० संग+आतो (अव०) ] (१) वह जो संग रहता हो। साथी। (२) दोस्त। मित्र।

**संगिनी-संज्ञा स्त्री०** [ हि० संगी का स्त्री० रूप ] (१) साथ रहनेवाली स्त्री। सहचरी। (२) पत्नी। भाव्या। जोरू।

**संगी-संज्ञा पुं०** [ हि० संग+ई (अव०) ] (१) वह जो सदा संग रहता हो। साथी। (२) मित्र। बंधु।

**संज्ञा स्त्री०** [ देता० ] एक प्रकार का कपड़ा जो विवाह आदि में वर का पात्रमा तथा ब्रिवाँ के लहंगे इत्यादि के बनाने के काम में आता है।

वि० [ का० संग=पत्थर ] पत्थर को। संगीन। जैसे,—संगी मकान।

**संगीत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] श्रव्य गीत और वाद्य का समाहार। वह कार्य जिसमें नाचना गाना और बजाना सीनी हों।

**विशेष**—संगीत का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है; और निम्न निम्न देशों में निम्न निम्न प्रकार से मनोरंजन के लिये गाना बजाना हुआ करता है। संभवतः भारतवर्ष में ही सच से पहले संगीत की ओर लोगों का ध्यान गया था। वैदिक काल में ही यहाँ के लोग मंत्रों का गान करके और उसके साथ साथ हस्तशेष आदि करते और बाजा बजाते थे। धीरे धीरे इस कला ने इतनी उन्नति की कि "सामवेद" की रचना हुई। इस प्रकार मानो सामवेद भारतीय संगीत का मूल से प्राचीन और पूर्व रूप है। पीछे संगीत का बड़ा प्रचार हुआ। सुर, नर सभी इससे प्रेम करने लगे। रामायण और महाभारत के समय में इस देश में इसका बड़ा आदर था। नाचने, गाने और बजाने का अत्यास सभी सम्यं लोग करते थे। संगीत-शास्त्र के प्रथम आचार्य 'भरत' माने जाते हैं। इनके पश्चात् बरहस्पति, मत्स्य, पाणि, नारद, हनुमन् आदि ने संगीत-शास्त्र की आलोचना की। कहते हैं कि प्राचीन यूनान, अरब और फारसवालों ने भारतवासियों से ही संगीत-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी।

कुछ लोगों का मत है कि स्वर, राग, ताल, मूल्य, भाव, कौक और हस्त इन सगुणों के समाहार को संगीत कहते हैं; पर अधिकतर लोग गान, वाद्य और मूल्य को ही संगीत मानते हैं; और यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो शेष चारों का भी समावेश इन्हीं तीनों में हो जाता है। इनमें से गीत और वाद्य को प्रायः संगीत तथा मूल्य को संगीत कहते हैं। संगीत के और भी दो भेद किए गए हैं—मार्ग और देवी।

कहते हैं कि किसी समय महादेव के सामने भरत ने अपना संगीत-विद्या का परिचय दिया था। उस संगीत के पय-प्रदार्थक प्रकाश थे और वह संगीत मुक्तिदाता था। यही संगीत-मार्ग कहलाता था। इसके अनिरेक मिश्र मिश्र देशों में लोग अपने अपने ढंग पर जो गाते दूजाते और नाचते हैं, उसे देवी कहते हैं। कुछ लोग केवल गाने और बजाने को ही और कुछ लोग केवल गाने को ही, भ्रम से, संगीत कहते हैं।

**संगीतविद्या-संज्ञा स्त्री०** दे० "संगीत-शास्त्र"।

**संगीतशास्त्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें गाने, बजाने, नाचने और हाव भाव आदि दिखाने की कला का विवेचन हो।

**संगीति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) वार्त्तालाप। वातचीन। (२) दे० "संगीत"।

**संगीन-संज्ञा पुं०** [ का० ] एक प्रकार का अक्ष जो लोहे का बना हुआ तिरफला और मुकीला होता है। यह बंदूक के सिरे पर लगाया जाता है। इससे दावु की भौंकर मारते हैं।

वि० (१) पत्थर का बना हुआ। जैसे,—संगीन इमारत। (२) मोटा। जैसे,—संगीन काड़ा। (३) टिकाऊ। पायदार। मजबूत। जैसे,—कलायत्त का काम संगीन होता है। (४) विकृत। असाधारण। जैसे,—संगीन जुन। संगीन मानव।

(५) पेशीदा।

**संगुप्त-संज्ञा पुं०** [ सं० संग्रह ] एक बुद्ध का नाम।

**संगुड-संज्ञा पुं०** [ सं० संगुड ] रेखा या लकीर आदि रींचकर निदान की हुई राशि या धर।

**विशेष**—प्रायः लोग शत्रु या और किसी प्रकार की राशि लगाकर उसे गेराओं से ढेर या अंकित कर देते हैं, जिसमें यदि कोई उस राशि में से कुछ चुरावे, तो पता लग जाय। इसी प्रकार अंकित की हुई राशि को संगुड कहते हैं।

**संगुहीत-वि०** [ सं० ] संग्रह किया हुआ। एकत्र किया हुआ। जमा किया हुआ। संकलित।

**संगुहीत-संज्ञा पुं०** [ सं० संगुहीत ] वह जो संग्रह करता हो। एकत्र करनेवाला। जमा करनेवाला।

**संगीतरा-संज्ञा पुं०** [ हि० संगतरा ] एक प्रकार की नारंगी। संगतरा।

**संगीपन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] छिपाने की क्रिया। पोसीदा रखना। छिपाना।

**संगीपनीय-वि०** [ सं० ] छिपाने के योग्य। पोसीदा रखने के लायक।

**संग्रसन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बहुत अधिक भोजन करना।

**संग्रह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) एकत्र करने की क्रिया। जमा करना। संकलन। संघय। (२) वह ग्रंथ जिसमें अनेक विषयों की बातें एकत्र की गई हों। (३) भोजन, पान, औषध इत्यादि



खाने की क्रिया । (४) मंत्र बल से अपने सके हुए अंश को अपने पास लौटाने की क्रिया । (५) सोम्याग । (६) सूची । फेरितल । (७) निर्ग्रह । संयम । (८) रक्षा । विप्रोजत । (९) कञ्ज । कोष्ठबद्धता । (१०) शिव को एक नाम । (११) पाणिग्रहण । विवाह । (१२) जन्मघट । जमाव । (१३) सभा । गोष्ठी । (१४) मैथुन । क्षी-प्रसंग । (१५) ग्रहण करने की क्रिया । (१६) स्वीकार । मंजूरी ।

संग्रहग्रहणी-रंशा स्त्री० दे० "संग्रहणी" ।

संग्रहण-रंशा पुं० [ सं० ] (१) स्त्री को हर ले जाने की क्रिया । (२) ग्रहण । (३) प्राप्ति । (४) नगों को जड़ने की क्रिया । (५) मैथुन । सहवास । (६) ध्वनिघार ।

संग्रहणी-रंशा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का रोग जिसमें भोजन किया हुआ पदार्थ पचता नहीं, बराबर पालने के रास्ते निकल जाता है । इसमें पेट में पीड़ा होती है और दूबले दुर्गंधयुक्त, कमी पतला कमी गाढ़ा, होता है । शरीर दुर्बल और निल्लेज हो जाता है । यह रोग चार प्रकार का होता है—वातज, कफज, पित्तज और सन्निपातज । रात की अर्धरात्रि दिन के समय यह रोग अधिक कष्ट देता है । यह रोग प्रायः अधिक दिनों तक रहता और कठिनता में अच्छा होता है । ग्रहणी ।

संग्रहना-क्रि० स० [ सं० संग्रहण ] संग्रह करना । संघर्ष करना । जमा करना । उ०—संग्रह सनेह यस्य अपेक्ष भक्षाय को । गिद्ध सेवरी को कष्ट करेई सराय को ।—तुलसी ।

संग्रही-रंशा पुं० [ सं० संग्रहण ] (१) संग्रह करनेवाला । जो एकत्र या जमा करता हो । (२) महपुत्र या लगाने आदि उगाहनेवाला कर्मचारी । फर एकत्र करनेवाला ।

संग्रहीता-रंशा पुं० [ सं० संग्रहण ] यह जो संग्रह करता हो । जमा करनेवाला । एकत्र करनेवाला ।

संग्राम-रंशा पुं० [ सं० ] युद्ध । लड़ाई । समर ।

संग्रामजित्-रंशा पुं० [ सं० ] मुमद्रा के उदर से उत्पन्न व्रीहण के एक पुत्र का नाम ।

संग्राम पट्ट-रंशा पुं० [ सं० ] रण में पड़नेवाला एक प्रकार का बाज । रंग भेरी । रण डिमडिम ।

संग्राम भूमि-रंशा स्त्री० [ सं० ] वह स्थान जहाँ संग्राम होता हो । लड़ाई का मैदान । युद्ध-क्षेत्र ।

संग्राह-रंशा पुं० [ सं० ] (१) दस्ता या मूठ पकड़ना । (२) हाथ की बँधी हुई मुट्ठी । मुक्का ।

संग्राहक-रंशा पुं० [ सं० ] वह जो संग्रह करता हो । एकत्र या जमा करनेवाला । संग्रहकारी ।

संग्राही-रंशा पुं० [ सं० संग्रहण ] (१) वह पदार्थ जो कफादि द्रव्य, घात, मंड तथा तरल पदार्थों को धींचता हो । (२)

वह पदार्थ जो मल के पेट से निकलने में बाधक होता है । कण्ठजत करनेवाली चीज । (३) कुटज वृक्ष ।

संग्राह-वि० [ सं० ] संग्रह करने योग्य । जमा करने योग्य । संघ-रंशा पुं० [ सं० ] (१) समूह । समुदाय । दर्ल । गण । (२) मनुष्यों का वह समुदाय जो किसी विशेष उद्देश से एकत्र हुआ हो । समिति । संभा । समाज । (३) प्राचीन भारत के एक प्रकार का प्रजातंत्र राज्य जिसमें शासनाधिकार प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में होता था । (४) इसी संस्था के ढंग पर बना हुआ बौद्ध धर्ममें आदि का धार्मिक समाज जिसकी स्थापना महात्मा बुद्ध ने की थी । पीछे से यह बौद्ध-धर्म के धर्मियों में से एक रत्न माना जाता था । शेष दो धर्म बुद्ध और धर्म थे । (५) संघर्ष आदि के रहने का मंड । संगत ।

संग्रहण-रंशा पुं० [ सं० ] वाग्मत् के पिता का नाम ।

संघचारी-रंशा पुं० [ सं० संघचरिण ] (१) जो अधिकतर लोगों का साथ दे । बहुपक्ष का अनुसरण करनेवाला । बहुमत के अनुसार आचरण करनेवाला । (२) वे जो बुद्ध या संघुद्धों में चलते हैं । जैसे—बुद्ध, रण, हारी इत्यादि । (३) मछली ।

संघट-रंशा पुं० [ सं० संघटन ] (१) संघटन । मिलन । संयोग । (२) परस्पर संघर्ष । युद्ध । लड़ाई । संग्रह ।

संघटन-रंशा पुं० [ सं० ] (१) मेल । संयोग । (२) संघर्ष । संघर्षण । (३) साहित्य में नायक नायिका का संयोग । मिलन । (४) उपकरणों के द्वारा किसी पदार्थ का निर्माण । रचना । (५) बनावट । (६) दे० "संघटन" ।

संघट-रंशा पुं० [ सं० ] (१) रचना । बनावट । गठन । (२) संघर्ष ।

संघट चक्र-रंशा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष में बुद्ध-काल विचारने की नक्षत्रों का एक चक्र ।

विशेष—इस चक्र के द्वारा यह जाना जाता है कि बुद्ध में जीत होगी या हार । यदि बुद्धाय प्रस्थान करनेवाले का जन्म नक्षत्र इस चक्र में जुम होता है, तो वह बुद्ध में विजय लब्ध करेता है; और यदि अशुभ होता है, तो पराजय । स्वरोज्य में इस चक्र का विचारण इस प्रकार दिया है । एक त्रिकोण चक्र बनाकर उस चक्र में देवी रत्नार्थ श्रीचक्र उसमें अधिनी आदि २० नक्षत्र अंकित करने चाहिएँ । नी नक्षत्रों का एक साथ वेध होता है । वेध क्रम इस प्रकार होता है । अधिनी को रत्नती के साथ, चित्र नक्षत्र का रत्नती और मूल के साथ, और ज्येष्ठा का मूल के साथ वेध होता है । यदि राजा का जन्म नक्षत्र इस चक्र वेध में न हो, या सौम्य भद्र सहित वेध हो, तो उस समय बुद्ध नहीं होगा । यदि फल नक्षत्र के साथ वेध हो, तो उस समय भीषण बुद्ध होगा । सौम्य, स्वामी, मित्राभिन्न आदि ग्रहणों से युक्त

तोया अतिचार मनुति गति द्वार भी द्युमाशुभ का निर्यय होता है ।

संघटन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्रतान्त । रचना । गठन । (२) मिलन । संयोग । (३) घटना । (४) दे० "संघटन" ।

संघट्टा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कला । बहरी । खेल ।

संघट्टित-वि० [ सं० ] (१) एकत्र किया हुआ । (२) गठित । निर्मित । मत्ता हुआ । रचित । (३) चलाया हुआ । चालित । (४) अर्पित ।

संघपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो किसी संघ या समूह का प्रधान हो । दलपति । नायक ।

संघपुराणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रातकी । भद्र । प्री ।

संघपाना-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दुखी या अदासीन गौ को, उसका दूध दूधने के लिये, पुराना और दुसखाना ।

विशेष-जब अच्चा देने के उपरांत गौ उस दूध को नहीं चाटती या दूध नहीं पीलती, तब उस दूध को शरीर पर खीरा आदि लगा देने से जिसकी मिश्रण के कारण यह उसे चाटने और दूध पीलने लगती है । इसी प्रकार जब अच्चा भर जाता है और गौ दूध नहीं देती, तब कुछ खोरा उसके बूटने की स्थल में भूसा भरकर उसे गौ के सामने रखकर देने से, जिसे देखकर वह दूध दूधने देती है । गौ के साथ इसी प्रकार को क्रियाएँ करने को "संघपाना" कहते हैं ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक चीज का दूसरी चीज के साथ रगड़ खाना । संघर्षण । रगड़ । घिसाव । (२) दो विरोधी व्यक्तियों या दलों आदि में स्वार्थ के विरोध के कारण होनेवाली प्रतियोगिता या स्पर्धा । (३) वह अहंकार-सूचक वाक्य जो अपने प्रतिपक्षी के सामने अपना बड़प्पन अतलाने के लिये कहा जाय । (४) किसी चीज को घोटने या रगड़ने की क्रिया । रगड़ना । घिसना । (५) धीरे धीरे चलना । टहलना । (६) दाँट लगाना । बाजी लगाना ।

संघर्षण-संज्ञा पुं० दे० "संघर्ष" ।

संघर्षी-संज्ञा पुं० [ सं० ] संघर्षिण । (१) वह जो किसी प्रकार का संघर्ष करता हो । (२) वह जो किसी के साथ प्रतियोगिता करता हो । प्रतिस्पर्धी करनेवाला । (३) रगड़ने या घिसनेवाला ।

संघट्टित-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साय कार्य करने के निमित्त एकत्र होने या समिलित होने की क्रिया । सहयोग ।

संघट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] दल, समूह या संघ आदि में रहनेवाला । वह जो दल अधिक रहता हो ।

संघटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जियों का प्राचीन फल का एक प्रकार का पदार्थ । (२) बड़प्पी जो प्रेमी प्रेमिका को मिलावे । दूती । कहिनी । कुन्नी । (३) युष्म । जोड़ा । (४) सिपाया । (५) कुम्भी ।

संघाटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बौद्ध भिक्षुओं के पहनने का एक प्रकार का सत्र ।

संघाणक-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्लेषना । कण ।

संघात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जमाव । समूह । समष्टि । (२) आघात । चोट । (३) हत्या । धृष । (४) इन्कील नरकों में से एक तरह का नाम । (५) कण । (६) नाटक में एक प्रकार की गति । (७) शरीर । उ०-सो छानच गोचर मुखदाता । देवत चरण तदङ्ग संघाता ।-स्वामी रामहृण । (८) निवास-स्थान । संघात । उ०-हो मुख राते सत्य के प्राता । जहाँ सत्य तर्ह धर्म संघाता ।-जायसी । नि० सधन । निबिद्ध । धन ।

संघातक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घात करनेवाला । प्राण छेनेवाला । (२) वह जो धरदात अन्ता हो । गध करनेवाला ।

संघातचारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] रणतचारी । वह जो अपने वर्ग के और प्राणियों या हलों के साथ मिलकर, या उनका संघ बनाकर रहता हो ।

संघातत्रिपका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शतपुष्पा । सोभा । (२) सौंफ । मिश्रण ।

संघातयत्नप्रवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधुत के अनुसार एक प्रकार का अधिभौतिक और आगतक रोग ।

संघाती-संज्ञा पुं० [ सं० ] संघ, हि० संघ + शती (प्रत्य०) । (१) साथी । सहचर । (२) मित्र ।

संघातु [ सं० ] संघत । संघातक । प्राणनाशक ।

संघार-संज्ञा पुं० दे० "संघार" ।

संघारना-संज्ञा पुं० [ सं० ] संघार । (१) संघार करना । नाश करना । (२) मार-खालना । हत्या करना । उ०-तहाँ निपाद हक प्रौच संघार्यौ । किय विलाप ताकी तिय मान्यौ ।-पद्माकर ।

संघाराम-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्ध भिक्षुओं तथा धर्मणों आदि के रहने का भठ । विहार ।

संघारोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्ध मत के अनुसार एक प्रकार का पाप ।

संघेरना-संज्ञा पुं० [ हि० संघार या संघ + घेरना ] रस्ती से दो गौओं में से एक का दाहिना और दूसरी का बायाँ पैर पकड़ में, इसलिये बाँधना कि जिसमें वे चलने के समय अंगल में बहुत दूर न निकल जायें ।

संघेरा-संज्ञा पुं० [ हि० संघ + घेरना ] वह रस्ती जिससे दो गौओं का एक एक पैर इसलिये एक साथ बाँध दिया जाता है जिसमें वे अंगल में चरती चरती बहुत दूर न निकल जायें ।

संघेला-संज्ञा पुं० [ सं० ] संघ । (१) साथी । सहचर । सौगी । (२) मित्र । दोस्त ।

संघोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] ओर का शब्द । घोष ।

**संच** १-संज्ञा पुं० [ सं० संचय ] (१) संग्रह करने की क्रिया । संचय । एकत्रीकरण । (२) रक्षा । देखभाल । उ०—जननि जनक ते अधिक गाधि सुत करिहैं संच तिहारो । कौशिक शासन सकल शीघ्र धरि सिगरो काज सिधारो ।—रघुराज । संज्ञा पुं० [ सं० ] लिखने की स्थायी ।

**संचकर** १-संज्ञा पुं० [ सं० संचय + कर ] (१) संचय करनेवाला । (२) कृपण । कंजूस ।

**संचना** १-क्रि० सं० [ सं० संचयन ] (१) एकत्र करना । संग्रह करना । संचय करना । उ०—निरपन के घन अहैं स्याम अरु स्यामा दोऊ । सुकवि तिनाहै हम गद्यो और को संचहु कोऊ ।—अभिधादत्त । (२) रक्षा करना । देख भाल करना ।

**संचय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राशि । सङ्ग्रह । ढेर । (२) एकत्र या संग्रह करने की क्रिया । एकत्रीकरण । संकलन । जमा करना । (३) अधिभूता । ज्यादाती । बहुतायत ।

**संचयन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संचय करने की क्रिया । एकत्र या संग्रह करने की क्रिया । जमा करना ।

**संचयिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो संचय करता हो । एकत्र करनेवाला । जमा करनेवाला ।

**संचयी**—संज्ञा पुं० [ सं० संचयिन् ] (१) संचय करनेवाला । जमा करनेवाला । (२) कृपण । कंजूस ।

**संचर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गमन । चलना । (२) सेतु । पुल । (३) जल के निकलने का मार्ग । (४) मार्ग । पथ । रास्ता । (५) स्थान । जगह । (६) देह । शरीर । (७) साथी । सहायक ।

**संचरण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संचार करने की क्रिया । चलना । गमन । (२) प्रसारण । फैलाना । (३) कौपिन ।

**संचरना** १-क्रि० प्र० [ सं० संचरण ] (१) घूमना । फिरना । चलना । उ०—दावहिं ठाँव लीहू सब यौंति । रहा न यौंच जो संचरि चोँढी ।—जायसी । (२) फैलाना । प्रसारित होना । उ०—सरद चौदिनी संचरत चहुँ दिसि आनि । विबुद्धि जोरि कर विनप्रति कुल गुरु जानि ।—तुलसी । (३) चल निकलना । ब्यवहृत होना । प्रचलित होना ।

**संचल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सौचसल लक्षण । सौचर नामक । **संचलान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हिलना डोलना । (२) चलना फिरना । (३) कौपिन ।

**संचलनाड़ी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धमनी । रग । नस ।

**संचान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] दयेन नामक पर्वत । पाञ्च । शिकता ।

**संचाय्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ ।

**संचार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गमन । चलना । (२) फैलने या विस्तृत होने की क्रिया । (३) फ़ाट । विपत्ति । (४) मार्ग । प्रदर्शन । रास्ता । दिखलाने की क्रिया । (५) चलाने की क्रिया ।

(६) सौंप की मणि । (७) देस । (८) प्रहोँ या नक्षत्रों का एक राशि से दूसरी राशि में जाना ।

**विशेष**—ज्योतिष के अनुसार संचार समय में चंद्र जिस रूप का होता है, उसी प्रकार का फल भी होता है । यदि चंद्र शुद्ध होता है, तो साथ में जिस ग्रह का शुभ भाव होता है, उस ग्रह के शुभ फल की वृद्धि होती है । यदि संचार काल में विंदु शुद्ध नहीं होता, तो शुभ भाववाले शुभ ग्रह के शुभ फल में न्यूनता होती है । यदि कोई अशुभ ग्रह शुद्ध चंद्र के साथ होता है, तो अशुभ फल की कमी होती है । फलित ज्योतिष में संचार के संबंध में इसी प्रकार की और भी बहुत सी बातें दी हुई हैं ।

(९) उत्तेजन । (१०) रति-मंदिर की अधिधि ।

**संचारक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संचार करनेवाला । फैलानेवाला । (२) चलानेवाला । (३) दल्पति । नापक । नेता ।

**संचारना** १-क्रि० सं० [ सं० संचरण ] (१) संचार का सकर्मक रूप । किसी वस्तु का संचार करना । (२) प्रचार करना । व्यवहार में प्रयुक्त करना । फैलाना ।

**संचारिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वृत्ती । कुटनी । कुटनी । (२) नाक । नासिका । (३) युग्म । जोड़ा ।

**संचारिणी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) ईसपदी नाम की लता । (२) लाल लजाद ।

**संचारित**—वि० [ सं० ] जिसका संचार किया गया हो । चलया या फैलाया हुआ ।

**संचारी**—संज्ञा पुं० [ सं० संचारिन् ] (१) धूप नामक गंध द्रव्य ।

(२) वायु । हवा । (३) साहित्य में वे भाव जो रस के उपयोग होकर, जल की तरंगों की भाँति, उनमें संचरण करते हैं । ऐसे भाव मुख्य भावों की सृष्टि करते हैं और समय समय पर मुख्य भाव का रूप धारण कर लेते हैं । स्थायी भावों की भाँति ये रस-सिद्धि तक स्थिर नहीं रहते, बल्कि अत्यंत चंचलतापूर्वक सब रसों में संचरित होते रहते हैं । इन्हीं को व्यभिचारी भाव भी कहते हैं । साहित्य में भौतिक लिखे ३३ संचारी भाव गिनाए गए हैं—निर्वेद, रूढ़ि, रांका, असूया, भ्रम, मद, धृति, आलस्य, विगाद, मति, चिंता, मोह, स्वप्न, विवोध, स्थिति, आत्मर्ष, गर्व, उस्तुक्ता, अविदित्य, दीनता, हर्ष, क्रोधा, उम्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, भास, उन्माद, जड़ता, चपलता और वितर्क । (४) संगीत शास्त्र के अनुसार किसी गीत के चार चरणों में से तीसरा चरण । (५) आगन्तुक ।

वि० संचरण करनेवाला । गतिशील ।

**संचाल**—संज्ञा पुं० [ सं० संचालन ] (१) कौपिन । कौपिन । चलन । चलना ।

**संचालक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो संचालन करता हो। चलाने या गति देनेवाला। परिचालक।

**संचालन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चलाने की क्रिया। परिचालन।

(२) काम जारी रखना या चलाना। प्रतिपादन। (३) नियंत्रण। (४) देख रेख।

**संचाली**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुंजा। घुँघरी।

**संचित**—वि० [ सं० ] (१) संभय किया हुआ। जमा किया हुआ। एकत्र किया हुआ। (२) ढेर लगाया हुआ।

**संचिता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की वनस्पति।

**संचिति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक पर एक रखना। सही लगाना।

**संचित्रा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मूलाकर्णी। मूलाकर्णी।

**संचोदक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ललित विस्तार के अनुसार एक देव-पुत्र का नाम।

**संछिन्न**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ग्रहण में एक प्रकार का मोक्ष। राहु यदि प्रायः मंडल में पूर्व भाग से प्रसंगा आरंभ करके फिर पूर्व दिशा को ही चला आवे, तो उसको संछिन्न मोक्ष कहते हैं। फलित ज्योतिष के अनुसार इससे संसार का मंगल और धान्य की वृद्धि होती है।

**संज्ञ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिन का एक नाम। (२) प्रला का एक नाम।

**संज्ञन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बोधने की क्रिया। (२) बंधन। (३) विचारे हुए अंगों आदि को मिलाकर एक करना। संघटन।

**संज्ञती**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैदिक काल का एक प्रकार का अष्ट जिससे षष या हत्या की जाती थी।

**संज्ञमल**—संज्ञा पुं० दे० "संयम"।

**संज्ञमनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यमराज की नगरी। (दि०)

**संज्ञनीपति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यमनीपति ] यमराज। यमदेव। (दि०)

**संज्ञमी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संयमी। (१) नियम से रहनेवाला। संयमी। (२) मती। (३) जितेंद्रिय।

**संज्ञय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छतराष्ट्र का मंत्री जो महामारत के युद्ध के समय छतराष्ट्र को उस युद्ध का विवृणु सुनाता था। कहते हैं कि इसे दिव्य दृष्टि प्राप्त थी; अतः यह हस्तिनापुर में बैठा हुआ कुक्षेत्र में होनेवाली सारी घटनाएँ देखता था और उनका वर्णन अपने छतराष्ट्र को सुनाता था। (२) सुपार्थ का पुत्र। (३) राजन्य के पुत्र का नाम। (४) प्रला। (५) निर।

**संज्ञा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धरती।

**संज्ञात**—वि० [ सं० ] (१) उत्पन्न। (२) प्राप्त।

**संज्ञा** पुं० पुराणानुसार एक जाति का नाम।

**संज्ञापी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संज्ञक या संज्ञक। (१) शालक। किनारा। (२) चौकी और आदि गोद को प्रायः रजहर्षी औ

लिहाएँ आदि के किनारे किनारे लगाई जाती है। गोद। मगजी।

**संज्ञा प्र०**—लगाना।—लगाना।

**संज्ञा पुं०** एक प्रकार का घोड़ा जिसका रंग या तो आधा लाल, आधा सफेद होता है या आधा लाल, आधा हरा।

**संज्ञापी**—वि० [ हि० ] संज्ञक। जिसमें संज्ञक लगी हो। किनारेदार। शालदार।

**संज्ञा पुं०** वह घोड़ा जिसका रंग संज्ञापी हो। आधा लाल आधा हरा घोड़ा।

**संज्ञाय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संज्ञक। (१) एक प्रकार का घोड़ा। वि० दे० "संज्ञक"। उ०—यच कल्याण संज्ञाय बखानी। महि सावर सप्य चुन चुन आनी।—जायसी। (२) एक प्रकार का धमड़ा।

**संज्ञा पुं०** [ सं० ] चूहे के आकार का एक जंतु जो प्रायः तुर्क-स्तान में होता है। इसका मांस वक्षस्थल की पीड़ा, कास और मग के लिये उपकारक माना जाता है। इसकी खाल पर बहुत मूल्यवान् रोएँ होते हैं, और उससे पोर्सीम बनाते हैं।

**संज्ञीदगी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विचार या व्यवहार आदि की गंभीरता।

**संज्ञीदा**—वि० [ सं० ] (१) जिसके व्यवहार या विचारों में गंभीरता हो। गंभीर। शान। (२) समस्तदार। बुद्धिमान्।

**संज्ञीव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मरे हुए को फिर से जिलाना। पुनः जीवन देना। (२) वह जो मरे हुए को जिलावे। फिर से जीवन-दान करनेवाला। (३) यौद्धों के अनुसार एक नरक का नाम।

**संज्ञीवक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो मरे हुए को जीवन दान देता हो। मुरदे को जिलानेवाला।

**संज्ञीवकरणी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार का विद्या जिसके प्रभाव से मृत मनुष्य जीवित हो जाता है। महाभरत में लिखा है कि शुक्राचार्य यह विद्या जानते थे। (२) एक प्रकार की कल्पित ओपिय जिसके सेवन से मृत व्यक्ति जीवित होना माना जाता है।

**संज्ञीघन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भली मूर्ति जीवित श्यतीत करने की क्रिया। (२) जीवन देनेवाला। जिलानेवाला। (३) मनु के अनुसार इक्षीस भरकों में से एक नरक का नाम।

**संज्ञीघनी**—वि० स्त्री० [ सं० ] जीवन-प्रदायनी। जीवन देनेवाली। संज्ञा स्त्री० (१) एक प्रकार की कल्पित ओपिय। कहते हैं कि इसके सेवन से मरा हुआ मनुष्य जी उठता है। (२) वैदिक के अनुसार एक ओपिय का नाम। इसके लिये पहले चापविद्या, सौंठ, पिपली, हृद का छिलका, अँघड़ा, बदेड़ा, बच, गालाघ, भिगवाँ, संशोधित सिंगी, मोहरा इन सबके चूर्ण

को एक दिन शोभुत्र में खरल करके एक रत्ती की गोलियाँ बनाते हैं। कहते हैं कि इसकी एक गोली श्वदरक के रस के साथ खिलाने से अजीर्ण, दो गोलियाँ खिलाने से त्रिपुष्पिका, तीन गोलियाँ खिलाने से सर्पविष और चार गोलियाँ खिलाने से स्तम्बिपत नष्ट होता है।

**संजीवनी-विद्या**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की कल्पित विद्या। कहते हैं कि इस विद्या के द्वारा मरे हुए व्यक्ति को जिलाया जा सकता है। महाभारत में लिखा है कि द्रौपदी के पुत्र शुक्राचार्य यह विद्या जानते थे; और इसी के द्वारा वे उन ईश्यों को फिर से जिला देते थे जो देवताओं के साथ युद्ध करने में मारे जाते थे। देवताओं के कहने से बृहस्पति के पुत्र कथ यह विद्या सीखने के लिये शुक्राचार्य के पास जाकर रहने लगे; और अनेक कठिनाइयाँ सहने के उपरांत अंत में उनसे यह विद्या सीखकर आए।

**संजीवी**-संज्ञा पुं० [ सं० संजीविन् ] यह जो मृतकों को जीवनदान देता हो। मुरदों को जिलानेवाला।

**संयुक्त-वि०** दे० "संयुक्त"।

**संयुक्त**-संज्ञा पुं० [ सं० संयुक्त ] संग्राम। युद्ध। लड़ाई।

**संयुक्त**-संज्ञा स्त्री० [ सं० संयुक्ता ] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में स, ज, ज, ग होते हैं। इसे "संयुक्त" मा "संयुक्ता" भी कहते हैं।

**संजोड़**-क्रि० वि० [ सं० संयोग ] साथ में। संग में। उ०—घरी तीसरी दूसरे पहर गहर जनि होइ। भागिनि भोजन करन को अचरित सखी संजोड़।—द्रेव।

**संजोड़**-संज्ञा-वि० [ सं० संयुक्त, हि० संयोग ], (१) अच्छी तरह संजोया हुआ। सुसज्जित। उ०—सूरः संजोड़ल साजि सुवाजि, सुसेल प्ररे धग-मेल लले हैं। भारी भुजा भारी, भारी सरार, यही प्रियथी स्तन भरीति भले हैं।—दुलसी। (२) एक स्थान पर जमा किया हुआ। एकत्र।

**संजोग**-संज्ञा पुं० दे० "संयोग"। उ०—सरः संजोग मोहि मेखहु कलस जात है मानि। जा दिन दृच्छा मृते वेगि चढ़ाई भति।—जायसी।

**संजोगिनी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० संयोगिनी ] वह स्त्री जो अपने पति या प्रेमी के पास अथवा साथ हो। संयोगिनी। वियोगिनी। से विपरीत।

**संजोगी**-संज्ञा पुं० [ सं० संयोगिन् ] (१) संयुक्त। मिले हुए। (२) भार्या सहित। प्रिया सहित। वि० दे० "संयोगी"। (३) दो जुड़े हुए पिण्डों को जोड़ना सीधे पालनेवाले रखते हैं।

**संजोना**-क्रि०-सं० [ सं० संजोना ] संजित करना। अलंकरण करना। सजाना। उ०—(क) कुल हमरे में होइ यातें पाठें कान धो। विधिवत कथ्य संजोइ निज धर्म संपित करे।—लक्ष्मणसिंह। (ख) हे नियंघना, नृजा पीतें पर पदकर जैसे बने इसे

मना छा तव तक मैं अप्रै जल सँजोती हूँ।—लक्ष्मणसिंह।  
**संजोयना**-संज्ञा पुं० [ हि० संजोना ] संजित करने की क्रिया।

सजाने का अर्थपार।  
**संजोवल**-संज्ञा-वि० [ हि० संजोना ], (१) सुसज्जित। (२) सेना सहित। उ०—होहि संजोवल हँवर जो भोगी। सब दर छेकि धरौह अथ योगी।—जायसी। (३) सातमान। होशियार।

**संजोवा**-संज्ञा पुं० [ हि० संजोना ], (१) सज्जित। शंभार। (२) जमाव। जमपट।

**संजोड़ा**-संज्ञा पुं० [ सं० संयोग ] लकड़ी का वह बीज जो जुवाड़े कपड़ा धुतते समय छत से छटका देते हैं और जिसमें ताल या कंभी लगी रहती है। ठरकी फँकते समय इसे आगे बढ़ा देते हैं और उसके पदचाल इसे खींचकर बाते को कसते हैं। इसे 'हथ्या' भी कहते हैं।

**संज्ञ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सब बातें अच्छी तरह जानता हो। वह जो सब त्रिपयों का अच्छा जानकार हो। (२) पीतकण्ड। श्राद्ध।

**संज्ञक**-वि० [ सं० ] संज्ञावाला। जिसकी संज्ञा हो। (इस शब्द का प्रयोग प्रायः प्रौढिक वयाने में शब्द के अंत में होता है।)

**संज्ञपन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मार डालने की क्रिया। हत्या। (२) कोई बात लोगों पर प्रकट करने की क्रिया। सिद्धांत।

**संज्ञति**-संज्ञा स्त्री० दे० "संज्ञपन"।

**संज्ञा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चेतना। होना। (२) इन्द्रि। श्रुत। (३) ज्ञान। (४) किसी पदार्थ आदि का बोधक शब्द। नाम। आख्या। (५) व्याकरण में वह विकारी शब्द जिसमें किसी यथार्थ या कल्पित वस्तु का बोध होता है। जैसे—मकान, नदी, घोड़ा, राम, कृष्ण, खेल, नाटक आदि। (६) हाथ, आँख या सिर आदि हिलाकर कोई भाव प्रकट करता। संकेत। इशारा। (७) गायत्री। (८) सूर्य की पत्नी का नाम जो विश्वकर्मा की कन्या थी। मातृदेव्य पुराण के अनुसार यम और यमुना का जन्म इसी के गर्भ से हुआ था। वि० दे० "छाय"। (९)।

**संज्ञाकण्य** रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार चेतना लाने वाली एक औषध का नाम।

**विशेष**—इस औषध में शुद्ध सिंगीमुहरा, सेंधा नमक, काली मिर्च, रुद्राक्ष, कटाली, कायफल, महुआ और समुद्र फल आदि पड़ते हैं। इनकी मात्रा बराबर होती है। कहते हैं कि इसके सेवन से मनुष्य का स्त्रियंघत रोग दूर होता है।

**संज्ञान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] संकेत। इशारा।

**संज्ञापन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दूसरों पर कोई बात प्रकट करना। सिद्धांत। (२) कथन।

**संज्ञापुरी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूर्य की पुत्री यमुना का एक नाम।

उ०—संज्ञासूत्रों स्वरूपोंया चंद्रायलि चंडलेण्या। ताप कारनी नयनी चंद्रकौनिका। स्मृता।—गिरिधरदास।

संज्ञासूत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] शक्ति का एक नाम।

संज्ञाहीन-वि० [ सं० ] जिनमें संज्ञा या चेतना न हो। चेतना-रहित। बेहोश। बेसुध।

संज्ञार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत तीव्र ज्वर। बहुत तेज बुलार।

(२) किसी प्रकार का बहुत अधिक ताप। बहुत तेज गरमी।

(३) क्रोध आदि का बहुत अधिक भाव।

संज्ञाला-वि० [ सं० संज्ञा, प्रा० संज्ञा + ला (प्रत्य०) ] संज्ञा संबंधी। संज्ञा का। उ०—पद्मिनी दिन भर विद्यान और संज्ञाली जल मरिगा।—सरस्वती।

संज्ञावती-संज्ञा स्त्री० [ सं० संज्ञा + वती ] (१) संज्ञा के समय जलया जानिवाली दीपक। शाम का चिराग। उ०—चंद्र देल चकई मिलान सर फूल ऐसे विपरीत काल है मुदेह कहियत हैं। धानी संज्ञावती धनसार नीर चंदन। सो बारि लीजियत न अनाद चहियत है—हर्दयरांम। (२) वह गीत जो संज्ञा समय गाया जाता है। प्रायः यह विवाह के अवसर पर होता है।

वि० संज्ञा संबंधी। संज्ञा का।

संज्ञा-संज्ञा स्त्री० [ सं० संज्ञा ] नृत्यतत्त्वा का समय। संज्ञा। शाम। उ०—संग के सकल अंग अचल उछाह भंग भोजन विन नृसत सरोज यन संज्ञा सी।—देव।

संज्ञिया, संज्ञेया-संज्ञा पुं० [ सं० संज्ञा ] यह भोजन जो संज्ञा समय किया जाता है। रात्रि का भोजन।

संज्ञोले-संज्ञा स्त्री० [ सं० संज्ञा ] संज्ञा का समय। शाम का एक। उ०—योग अथाइनि ते उठे गौरज छाई गैल।

चलि बलि अलि अभिसारिके भली संज्ञोलेखिल—बिहारी।

संज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० संज्ञा ] शक्ति। निस्तब्धता। क्षामोशी।

मुहा०—संज्ञ मारना = चुप्पी साधना। चुप रहना। कुञ्ज न बोलना।

न बोलना।

संज्ञा पुं० [ सं० संज्ञा ] (१) शक्त। धूर्त। (२) नीच।

बोहियात।

संज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० संज्ञा ] सौंद।

यौ०—संज्ञसुसंज्ञ।

संज्ञ सुसंज्ञ-वि० [ सं० संज्ञा, हि० संज्ञा + सुसंज्ञ भव० ] हटा कटा।

मोटा ताना। बहुत मोटा।

संज्ञा-संज्ञा पुं० [ सं० संज्ञा ] [ स्त्री० अर्थ० संज्ञा ] लोहे का एक औजार जो दो छद्मों से बनता है। इनके एक सिरे पर घोड़ा सा छोड़कर दोनों छद्मों को आपस में फील से जड़ देते हैं। प्रायः इसे लोहार गरम लोहा आदि पकड़ने के लिये रखते हैं। गड्ढा। जैदूरा।

संज्ञा-संज्ञा स्त्री० [ सं० संज्ञा ] पकड़े छद्मों का एक प्रकार का

सौंटा जिसके दोनों छद्मों का अगला भाग अर्ध वृत्ताकार मुड़ा हुआ होता है। इससे पकड़कर प्रायः चूल्हे पर से गरम यदुली आदि गोल मुँहवाले बरतन उतारते हैं। जैदूरी।

संज्ञा-वि० [ सं० संज्ञा ] मोटा ताना। हट्ट पुं०।

संज्ञा पुं० मोटा और बलवान् मनुष्य।

यौ०—संज्ञा सुमंदा।

संज्ञा-संज्ञा स्त्री० [ हि० संज्ञा ] मदाक की तरह बना हुआ भँस आदि का वह हवा भरा हुआ चमड़ा जिसे मदी आदि पार करने के लिये नाव के स्थान पर काम में लते हैं।

संज्ञा-संज्ञा पुं० [ सं० संज्ञा ] (१) हूँ की तरह का एक प्रकार का गहरी पाँखाना। शौच-रूप।

विशेष—यह जिनके जीवे लोहा हुआ एक प्रकार का गहरा गड्ढा होता है जिसका ऊपरी भाग ढँका रहता है। केवल एक छिद्र बना रहता है जिस पर बैठकर मल त्याग करते हैं। मल उसी में जमा होना जाता है। अधिक दुर्गंध होने पर उसमें खारी नमक आदि कुछ ऐसी चीजें छोड़ते हैं जिनमें मल गलकर गिंठी हो जाता है। इसका प्रचार अधिकतर ऐसे नगरों में है, जिनमें नल नहीं होता और नित्य मल बाहर फेंकने में कठिनाता होती है। पर जब से नल का प्रचार हुआ, तब से इस प्रकार के पाखाने बंद होने लगे हैं।

(२) इसी से मिलता जुलता वह पाखाना जिसका आकार ऊँचे खड़े नल का सा होता है और जिसका नीचे का भाग पृथ्वी तल पर होता है। इसमें मकान से बाहर की ओर एक पिड़की रहती है जिसमें से मेहरत आकर मल उठा ले जाता है।

संज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० संज्ञा ] (१) साधु, संन्यासी, विरक्त वा त्यागी पुरुष। महात्मा। उ०—या जग जीवन को है यहै फल छौंदि भजे रघुराई। शोधि के संत महंतवह पदमाकर बान यहै वहराई।—पद्मनाकर। (२) हरिमक्त। ईश्वर का भक्त। धार्मिक पुरुष। (३) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ होती हैं।

संतत-अर्थ० [ सं० ] सदा। निरंतर। बराबर। लगातार।

संज्ञा संज्ञा स्त्री० दे० "संतति"।

संतत ज्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ज्वर जो आठों पहर रहे। सदा बना रहनेवाला ज्वर।

विशेष—बैद्यक के अनुसार यदि ऐसा ज्वर वायु की प्रबलता के कारण होता है तो लगातार सात दिनों तक, यदि पित्त की प्रबलता के कारण हो तो दस दिनों तक रहता है। इसकी गणना विषम ज्वर में की जाती है।

संतति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बाल बच्चों। सुतान। औलाद। (२) प्रजा। रिवाया। (३) गोत्र। (४) वित्त। प्रसार। फैलाव। समूह। (५) दल। दूध। (६) किसी बात का

लगातार होता रहना । (७) माकडैयपुराण के अनुसार कतु की पत्नी का नाम जो दक्ष की कन्या थी ।

**संततिपथ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मोति जिसके मार्ग से...संतान उत्पन्न होती है । स्त्री की जननद्रिय । भग ।

**संततिहोम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल का एक प्रकार का यज्ञ जो संतान की कामना से किया जाता था ।

**संततेयु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] भागवत के अनुसार रीराध के एक पुत्र का नाम ।

**संततु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार राधा के साथ रहनेवाले एक बालक का नाम ।

**संतपन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह तपने की क्रिया । (२) बहुत अधिक संताप या दुःख देना ।

**संतसं**—वि० [ सं० ] (१) बहुत अधिक तपता हुआ । जला हुआ । दुःख । (२) जिसे बहुत अधिक संताप हो । दुःखी । पीड़ित । (३) विमनस । मलीन मन । (४) बहुत थका हुआ । थोत ।

**संतमस**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अंधकार । तम । अँधेरा । (२) मोह ।

**संतरण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह से तरने या पार होने की क्रिया । (२) तारनेवाला । तारक । (३) नष्ट करनेवाला । नाशक ।

**संतरा**—संज्ञा पुं० [ पुर्त० संगतरा ] एक प्रकार का बड़ा और मीठा नींबू । चढ़ी नारंगी । वि० दे० "संगतरा" ।

**संतरी**—संज्ञा पुं० [ सं० संतरी ] (१) किसी स्थान पर पहरा देनेवाला सिपाही । पहरेदार । उ०—जय पहरा तिनके है गयो । द्वितीय संतरी आवत भयो—रघुराज । (२) द्वार पर खड़ा होकर पहरा देनेवाला । द्वारपाल । दौवारिक ।

**संतर्जन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) डाँट डपट करना । डराना धमकाना । (२) क्रांतिकेय के एक अनुचर का नाम ।

**संतर्दन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] भागवत के अनुसार राजा छेदकेतु के एक पुत्र का नाम ।

**संतर्पण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो भली भाँति वृत्ति करता हो । (२) अच्छी तरह पूज करना । (३) एक प्रकार का चूर्ण जिसमें दाढ़, अनार, खजूर, केला, शकर, लाजा (छाई) का चूर्ण, मधु और घृत पड़ता है ।

**संतस्थान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संतों के रहने का स्थान । साधुओं का निवासस्थान । मठ ।

**संतान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बालबच्चे । लड़के बाले । संतति । औलाद । (२) कल्प वृक्ष । देवतरु । (३) बंदा । कुल । (४) विस्तार । फैलाव । (५) वह प्रवाह जो अविच्छिन्न रूप से चलता हो । धारा । (६) प्रबंध । इतजाम । (७) महाभारत के अनुसार प्राचीन काल के एक प्रकार के अन्न का नाम ।

**संतानक**—वि० [ सं० ] जो दूर तक भ्यात हो । फैला हुआ । विस्तृत ।

**संज्ञा पुं०** (१) कल्प वृक्ष । देवतरु । (२) पुराणानुसार एक लोक जो ब्रह्मलोक से परे कहा गया है ।

**संतान गणपति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्रकार के गणपति का नाम ।

**संतानिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) क्षीर सागर । (२) चाहू का फल । (३) फेन । (४) साड़ी । मलाई । (५) मकड़वाले नाम की पास ।

**संताप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि या धूप आदि का ताप । जलन । आँच । (२) दुःख । कष्ट । (३) प्यथा । (४) स्थानि । (५) मानसिक कष्ट । मनोव्यथा । (६) ज्वर । (७) दायु । हुदमन । (८) दाह नाम का रोग । वि० दे० "दाह" ।

**संतापन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संताप देने की क्रिया । जलाना । (२) बहुत अधिक दुःख या कष्ट देना । (३) कामदेव के पाँच बाणों में से एक बाण का नाम । (४) पुराणानुसार एक प्रकार का अन्न जिसके प्रयोग से दायु को संताप होना माना जाता है ।

वि० (१) ताप पहुँचानेवाला । जलानेवाला । (२) दुःख देनेवाला । कष्ट पहुँचानेवाला ।

**संतापना**—संज्ञा पुं० [ सं० संतापन ] संताप देना । दुःख देना । कष्ट पहुँचाना । सताना । उ०—जाको काम मोघ नित व्यथि । अरु पुनि लोभ सदा संतापै । ताहि असाउ कहत कवि सोई । साउ भेष धरि साउ न होई—सूर ।

**संतापित**—वि० [ सं० ] जिसे बहुत संताप पहुँचाया गया हो । पीड़ित । संतप्त ।

**संतापी**—संज्ञा पुं० [ सं० संतापि ] वह जो संतप्त करता हो । संताप देनेवाला । दुःखदायी ।

**संताप्य**—वि० [ सं० ] (१) जलने के योग्य । तपाने के योग्य । (२) कष्ट या दुःख देने के योग्य । तकलीफ देने के लायक ।

**संति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दान । (२) अथसात । अंत ।

**संतोष**—अव्य० [ सं० संति ? ] बदले में । पूज में । स्थान में । उ०—उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और उसकी संतोष मांस भर दिया ।—द्वयानंद ।

**संतुपित**—संज्ञा पुं० [ सं० ] क्लिप्त विस्तार के अनुसार एक देवपुत्र का नाम ।

**संतुष्ट**—वि० [ सं० ] (१) जिसका संतोष हो गया हो । जिसकी वृत्ति हो गई हो । मृत । (२) जो मान गया हो । जो राजी हो गया हो । जैसे,—इन्हें किसी तरह समझा हुआकर संतुष्ट कर लो; फिर सब काम हो जायगा ।

**संतोष**—संज्ञा पुं० दे० "संतोष" ।

**संतोष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मन की वह वृत्ति या अवस्था

जिसमें मनुष्य अपनी वर्तमान दशा में ही पूर्णसुख का अनुभव करता है; न तो किसी बात की कामना करता है और न किसी बात की शिकायत। हर हालत में प्रसन्न रहना। संतुष्टि। सत। कनायत। उ०—गोधन, गजधन, यज्ञिधन और रत्न धन खात। जय आवत संतोषधन रूप धन पूरि समान।—गुलसी।

**विशेष**—इसमें यहाँ पातंगठ दर्शन के अनुसार "संतोष" योग का एक अंग और उसके नियम के अंतर्गत है। इसकी उत्पत्ति सात्विक वृत्ति से मानी गई है; और कहा गया है कि इसके पैदा हो जाने पर मनुष्य को अनंत और अखंड सुख मिलता है। पुराणानुसार धर्मानुष्ठान से सदा प्रसन्न रहना और दुःख में भी आनंद न होना संतोष कहलाता है।

क्रि० प्र०—काना।—मानना।—रचना।—होना।

(२) मन की वह अवस्था जो किसी कामना या आवश्यकता की भली भाँति पूर्ति होने पर होती है। कृति। दांति। इतमीनान। जैते,—पहले सेना संतोष करा दीजिए; तब मैं आपके साथ चलूँगा। (३) मत्स्यना। सुख। हर। आनंद। जैते,—हमें यह जानकर बहुत संतोष हुआ कि अब आप किसी से वैमनस्य न करेंगे।

**संतोषल**—संज्ञा पुं० दे० "संतोष"।

**संतोषणीय**—वि० [ सं० ] संतोष करने के योग्य।

**संतोषना**—क्रि० सं० [ सं० संतोष + ना (प्रत्य०) ] संतोष दिलाना। संतुष्ट करना। तर्कित करना। उ०—मेनाद मंडा पर पायो। आहुति अगिति त्रिवाह संतोषी निकस्यो यथं यह रतन बनायो। आयुष धरे समेप कषच सति गति चञ्चो रग भूमिदि आयो। मनो मेनायक वसु पावस दान धृष्टि करि सैन स्वपायो।—सूर।

क्रि० प्र० संतुष्ट होना। प्रसन्न होना।

**संतोषित**—वि० [ हि० संतोष, सं० संतुष्ट ] जिसका संतोष हो गया हो। संतुष्ट। उ०—नामदेव कह इतनहि कहैं। इतने महीं संतोषित जैहीं।—रघुराज।

**विशेष**—यह रूप अशुद्ध है; शुद्ध रूप संतुष्ट है। पर 'संतोषित' शब्द का भी प्रयोग कहीं कहीं हिंदी कविता में पाया जाता है।

**संतोषी**—संज्ञा पुं० [ सं० संतोषिन् ] यह जो सदा संतोष रखता हो। जिसे बहुत खालसा न हो। सदा करनेवाला। संतुष्ट रहनेवाला।

**संतोष्य**—वि० [ सं० ] संतोष करने के योग्य।

**संतोष-संज्ञा पुं०** [ सं० ] अग्निदेव का एक नाम जो सद्य प्रकार के फल देनेवाले माने जाते हैं।

**संतोषी-संज्ञा पुं०** दे० "संतोषी"।

**संतोष-संज्ञा पुं०** [ सं० संतोषिन् ] एक वार में पढ़ना हुआ अक्षर।

पाठ। संयुक्त। उ०—कितने कहा कि हम लोग धर्म के संदेरि हैं ? हम लोग गाते पढाते नहीं थे, संघा घोषते थे।—दुर्गाप्रसाद मिश्र।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

**संदंष्ट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सैंडसी नाम का छोटे का औजार।

(२) न्याय या तर्क के अनुसार अपने प्रतिपक्षी को दोनों ओर से उसी प्रकार जकड़ या बाँध देना जिस प्रकार सैंडसी से कोई यरतन पकड़ते हैं। (३) सुधुत के अनुसार सैंडसी के धाकर का, प्रचीन काल का एक प्रकार का औजार जिसकी सहायता से शरीर में गदा हुआ कौटा आदि निकलते थे। कंकयुष।

**संदंष्टिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सैंडसी। (२) बिमटी। (३) कैंची।

**संदंष्ट**—संज्ञा पुं० [ सं० संधि ] दार। छेद। विल।

संज्ञा पुं० [ सं० चंद्र ] चंद्रमा। चंद्र। (दि०)

संज्ञा पुं० [ ? ] दवार। उ०—बोल लिए दशुमति पदुनंदहि। पीत शगोत्रिया की छवि छजति रिगुलता सोरति मनी कंदहि। वाजपति अग्रज अंबाते आउपधान सुत माला गंदहि। मनो सुरमह ते सुरादि कया सोते आवति डुरि संदधि।—सूर।

**संदर्भ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रचना। बनावट। (२) प्रबंध। निबंध। लेख। (३) वह ग्रंथ जिसमें किसी और ग्रंथ के गूढ़ वाक्यों अदि का अर्थ या स्पष्टीकरण आदि हो। (४) कोई छोटी पुस्तक। (५) वह पुस्तक जिसमें अनेक प्रकार की बातों का संग्रह हो। (६) विस्तार। फैलाव।

**संदर्शन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। अवलोकन। (२) परीक्षा। इतराहान। ऑंच। (३) ज्ञान। (४) अहति। सूरत। पाह। (५) रामायण के अनुसार एक द्वीप का नाम।

**संदर्भ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] श्रीसंज्ञा। चंदन। वि० दे० "चंदन"।  
**संदर्भ-वि०** [ सं० संरक्ष ] (१) संदल के रंग का। हलका पीला (रंग)। (२) संदल का। चंदन का। जैते,—संदली कलमदाज।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का हलका पीला रंग जो कपड़े को चंदन के धुएँ के साथ उबालने से आता है। इसमें कपड़े में सुगंधि भी आ जाती है। आजकल कई तरह की सुकनियों से भी यह रंग तैयार किया जाता है। (२) एक प्रकार का हाथी जिसे दौत नहीं होते। (३) घोड़े की एक जाति।

**संदान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार की निहाई जिसका एक कोना सुकीला और दूसरा चौड़ा होता है। अहरन। घन। (२) रस्सी। झोरी। (३) बाँधने की सिक्की अदि। (४)



- बाँधने की क्रिया । (५) हाथी का गंडधूल जहाँ से उसका मद बहता है ।
- संज्ञानिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गांध पैर । विट खदिर । बजुरी ।
- संज्ञानिनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गौरी के रहने का स्थान । गोपाला ।
- संज्ञाच**—संज्ञा पुं० [ सं० ] भागने की क्रिया । पलायन ।
- संज्ञास**—संज्ञा पुं० [ ? ] सफेद डारम धूप । मरहम । कहलवा ।
- विशेष**—इसका पृष्ठ प्रायः पच्छिमी घाट में पाया जाता है । यह सदा हरा रहता है ।
- संज्ञाह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार मुख, तालू और होठों की जलन ।
- संज्ञि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संधि । मेल । संधि । उ०—रूप सँवर संज्ञि सों यहु आणयो अनयास । पाह पूरण रूप को रमि भूमि केशवादास ।—केशव ।
- संज्ञिग**—वि० [ सं० ] जिसमें किसी प्रकार का संदेह हो । संदेहपूर्ण । संशयजनक । सुतयह ।
- संज्ञा पुं० (१) उत्तराभास । मिथ्या उत्तर का एक लक्षण । (२) एक प्रकार का व्यंज्य जिसमें यह नहीं प्रकट होता कि वाचक या व्यंजक में व्यंग्य है ।
- संज्ञिगत्व**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संदिग्ध होने का भाव या धर्म । संदिग्धता । (२) अलंकार शास्त्रानुसार एक प्रकार का दोष जो उस समय माना जाता है जब कि किसी उक्ति का ठीक ठीक अर्थ प्रकट नहीं होता, अर्थात् संबंध में कुछ संदेह बना रहता है ।
- संज्ञिष्ट**—वि० [ सं० ] कथित । कहा हुआ । बताया हुआ ।
- संज्ञा पुं० (१) वार्ता । बातचीत । (२) समाचार । खबर ।
- संज्ञिष्टार्थ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो एक का समाचार दूसरे तक पहुँचाता हो । संदेश ले जानेवाला दूत । कासिद ।
- संज्ञी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शय्या । परलंग । खाट ।
- संज्ञीपक**—वि० [ सं० ] उड़ीपन करनेवाला । उड़ीपन ।
- संज्ञीपन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उड़ास करने की क्रिया । उड़ीपन । (२) कृष्ण के गुरु का नाम । (३) कामदेव के पाँच बाणों में से एक बाण का नाम ।
- वि० उड़ीपन करनेवाला । उत्तेजन करनेवाला ।
- संज्ञीपनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संगीत में पंचम स्वर की चार भ्रतियों में से तीसरी भ्रुति ।
- वि० संज्ञीपन करनेवाली । उड़ीस करनेवाली ।
- संज्ञीपित**—वि० [ सं० ] संगीत । (१) जिसका संज्ञीपन किया गया हो । संज्ञीस । उड़ीस । (२) जलपान हुआ । प्रचलित ।
- संज्ञीप्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूरसिला नामक पृष्ठ ।
- वि० संज्ञीपन करने के योग्य । संज्ञीपनीय ।
- संज्ञुक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संज्ञुक । [ सं० ] संज्ञुक । रुकड़ी, छोदे,

- चमड़े आदि का बना हुआ चौकोर पिढारा जिसमें प्रायः कपड़े, गहने आदि चीजें रखते हैं । पेंटी । बकस ।
- संज्ञुकचा**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संज्ञुक + चः (प्रत्यय) ] छोटा संज्ञुक । छोटा बकस । छोटी पेंटी ।
- संज्ञुकड़ी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संज्ञुक + डी (प्रत्यय) ] छोटा संज्ञुक । छोटा बकस ।
- संज्ञुख**—संज्ञा पुं० दे० “संज्ञुक” ।
- संज्ञुदूर**—संज्ञा पुं० दे० “संज्ञुदूर” । उ०—नवल सिंगार बनाहत कीन्हा । सीस पसाराहिं संज्ञुदूर दीन्हा ।—जायसी ।
- संज्ञेव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हरिवंश के अनुसार देवक के एक पुत्र का नाम ।
- संज्ञेवा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वसुदेव की स्त्री और देवक की कन्या का नाम । इनका दूसरा नाम श्रीदेवा या सुदेवा भी है ।
- संज्ञेश**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समाचार । हाल । खबर । संवाद । (२) एक प्रकार की बँगला मिठाई जो ठेने और चीनी के योग से बनती है । (३) दे० “संज्ञेश” ।
- संज्ञेशहर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संदेश या समाचार ले जानेवाला । वाचावह । दूत । कासिद ।
- संज्ञेशा**—संज्ञा पुं० दे० “संज्ञेश” ।
- संज्ञेशी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संदेश । संदेश लानेवाला । समाचारवाहक । यरीद । दूत ।
- संज्ञेसा**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संदेश किसी के द्वारा जयानी कहलाया हुआ समाचार आदि । खबर । हाल ।
- क्रि० प्र०**—आना ।—जाना ।—पाना ।—भेजना ।—मिलना ।
- संज्ञेह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह ज्ञान जो किसी पदार्थ को वास्तविकता के विषय में स्थिर न हो । किसी विषय में ठीक या निश्चित न होनेवाला मत या विद्वानस । मन की वह अवस्था जिसमें यह निश्चय नहीं होता कि यह चीज ऐसी ही है या और किसी प्रकार की । अनिश्चयात्मक ज्ञान । संशय । शक । शक ।
- क्रि० प्र०**—करना ।—डालना ।—मिटना ।—मिटाना ।—होना ।
- (२) एक प्रकार का अर्थालंकार । यह उस समय माना जाता है जब किसी चीज को देखकर संदेह बना रहता है, कुछ निश्चय नहीं होता । “प्राति” में और इसमें यह अंतर है कि प्राति में तो भ्रमवश किसी एक वस्तु का निश्चय हो भी जाता है, पर इसमें कुछ भी निश्चय नहीं होता । कविता में इस अलंकार के सूचक प्रायः धौं, किष्ठी आदि संदेहवाचक शब्द आते हैं । उ०—(क) की तुम हरिदासम भई कोई । मोरे हृदय प्रीति अति होई । की तुम राम दीन भनुरागी । आए मोहि काल यहभागी ।—तुलसी । (ख)

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है। कुछ आचार्यों ने इसके निम्न गम, निम्नगत और सुदृढ़ ये तीन भेद भी माने हैं।  
संघोष—संघा पुं० [ सं० ] कान में पहनने का कर्णकूल नाम का गहना।

संघोद—संघा पुं० [ सं० ] समूह। सु० ब० उ०—जयति निर्भरानंद संघोद कवि केसरी मुचन भुवनैक भतां—तुलसी।

संद्रव्य—संघा पुं० [ सं० ] गूँथने की क्रिया। गुंथन।

संद्रव्य—संघा पुं० [ सं० ] युद्ध क्षेत्र से भागने की क्रिया। पलायन।

संघर्ष—संघा की० दे० “संघि”।

संघ्य—संघा की० [ सं० ] (१) स्थिति। (२) प्रतिज्ञा। कतार। (३) संघान। संघि। मिठन। (४) संघ्या काल। सौप्त। (५) अनुसंधान। तलाश।

संघाता—संघा पुं० [ सं० संघात् ] (१) शिव। (२) विष्णु।

संघान—संघा पुं० [ सं० ] (१) घनुष पर याण चढ़ाने की क्रिया। लड़ा करने का व्यापार। निशाना छानना। (२) शराव बनाने का काम। (३) मदिरा। शराव। (४) संघहन। योजना। मिठन। (५) अन्वेषण। खोज। (६) मुरदे को जिलाने की क्रिया। संजीवन। (७) सौराष्ट्र या काठियावाड़ का एक नाम। (८) संघि। (९) अच्छे स्वाद की चीज। (१०) कौंती।

संघानना—संघा पुं० [ सं० संघान + ना (प्रत्य०) ] (१) घनुष चढ़ाना। घनुष पर याण चढ़ाकर लड़ा करना। निशाना छानना। (२) याण छोड़ना। शर चलाना। (३) किसी अन्न को प्रयोग करने के लिये ठीक करना।

संघाना—संघा पुं० [ सं० संघानिच् ] अचार। पटाई।

संघानिका—संघा स्त्री० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का अन्न का अचार।

संघानिनी—संघा स्त्री० [ सं० ] गौओं के रहने का स्थान। गोदाल।

संघानी—संघा स्त्री० [ सं० ] (१) एक में मिलने या मिश्रित होने की क्रिया। मिलन। (२) प्राप्ति। (३) संघन। (४) अन्वेषण। तलाश। (५) पालन। (६) कौंती। (७) अचार। पटाई। (८) वह स्थान जहाँ पटाई की जाती है। (९) वह स्थान जहाँ मदिरा बनाई जाती है। (१०) दे० “संघान”।

संघि—संघा स्त्री० [ सं० ] (१) दो चीजों का एक में मिलना। मेल। संयोग। (२) वह स्थान जहाँ दो चीजें एक में मिलती हैं। मिलने की जगह। जोड़। (३) राजाओं या राज्यों आदि में होनेवाली वह प्रतिज्ञा जिसके अनुसार युद्ध बंद किया जाता है, मित्रता या व्यापार संबंध स्थापित किया जाता है, अथवा इसी प्रकार का और कोई काम होता है।

सिरोप—पहले केवल दो कोटर राज्यों में ही संघि हुआ करती थी; पर अब बिना युद्ध के ही मित्रता का बंधन टूट करने, पारस्परिक व्यवसाय-यागिज्य में सहायता देने और मुगलता

उत्पन्न करने अथवा किसी दूसरे राज्य में राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति अथवा रक्षा के लिये भी संघि हुआ करती है। आजकल साम्राज्यगतः राज-प्रतिनिधि एक स्थान पर मिलकर संघि का मसौदा तैयार करते हैं; और तब वह मसौदा अपने अपने राज्य के प्रधान शासक अथवा राजा आदि के पास स्वीकृति के लिये भेजते हैं; और जब प्रधान शासक अथवा राजा उस पर स्वीकृति की छाप लगा देता है, तब वह संघि पूरी समझी जाती है और उसके अनुसार कार्य होता है। जिस पत्र पर संघि की शर्तें लिखी जाती हैं, उसे संघिपत्र कहते हैं। मनु भगवान् ने संघि को राजा के छः गुणों में से एक गुण बताया है। (शेष पाँच गुण ये हैं—विग्रह, दान, आसन, दैव्य और आश्रय।) हमारे यहाँ प्राचीन काल में किसी शत्रु राज्य पर आक्रमण करने के लिये भी दो राजा परस्पर मिलकर संघि किया करते थे। द्वितीयपदेश में संघि सोलह प्रकार की कही गई है—कपाळ, उपहार, संतान, संगत, उपन्यास, प्रतीकार, संयोग, पुरुषांतर, अदृष्टर, आदिष्ट, आत्मादिष्ट, उपग्रह, परिक्रम, ततोच्छिन, परभूगुण और स्फुंभोपनेव। जब संघि करनेवालों में से कोई पक्ष उस संघि की शर्तों को तोड़ता या उनके विरुद्ध काम करता है, तो उसे संघि का भंग होना कहते हैं।

(४) सुलह। मित्रता। मैत्री। (५) शरीर में कोई वह स्थान जहाँ दो या अधिक हड्डियाँ आपस में मिलती हैं। जोड़। गाँठ। जैले,—कुन्नी, घुटना, पोर आदि।

विशेष—वैदिक के अनुसार ये संघियाँ दो प्रकार की हैं—चैद्यावान् और तिष्ठल। सुश्रुत के अनुसार सारे शरीर में सय मिलकर २१० संघियाँ हैं।

(६) व्याकरण में वह विचार जो दो अक्षरों के पास पास आने के कारण उनके मेल से होता है।

विशेष—संघि हिंदी में नहीं होती, संस्कृत के जो सामासिक शब्द आते हैं, उन्हीं के निरूपण के लिये हिंदी में संघि की आवश्यकता होती है। संस्कृत में संघि तीन प्रकार की होती है—(१) स्वर-संघि (जैसे,—राम + भवता = रामावतार); (२) व्यंजन-संघि (जैसे,—जगत् + नाथ = जगन्नाथ); और (३) विसर्ग-संघि (जैसे,—निः + अंतस् = निरंतर)।

(७) नाटक में किसी प्रधान प्रयोजन के साधक कथाओं का किसी एक अल्पवर्षी प्रयोजन के साथ होनेवाला संबंध। ये संघियाँ पाँच प्रकार की कही गई हैं—मुख्य संघि, प्रतिमुख्य संघि, गम संघि, अवमर्त या विमर्त संघि और निर्वहण संघि। (८) बारी भादि करने के लिये दीवार में किना हुआ छेद। संघ। (९) एक युग की समाप्ति और दूसरे युग के आरंभ के बीच का क्षण। युग-संघि। (१०)

किसी एक अवस्था के अंत और दूसरी अवस्था के आरंभ के बीच का समय। वयःसंधि। जैसे,—दौहाय और बाल्य-अवस्था की संधि। (११) स्त्री की जननेंद्रिय। भग। (१२) संघटन। (१३) दो चीजों के बीच की खाली जगह। अवकाश। (१४) भेद। (१५) साधन।

**संधिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वैद्यक के अनुसार सन्निपात रोग का एक भेद। इस रोग में शरीर की संघियों में वायु के कारण अधिक पीड़ा होती है और कफ, संताप, दाहि-हीनता, निद्रा, नास आदि उपद्रव होते हैं। इसका वेग एक सप्ताह तक रहता है।

**संधिकुटुमा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] त्रिसंधि नामक फूलदार पौधा।

**संधिग-संज्ञा पुं०** दे० "संधिक"।

**संधिगुप्त-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह स्थान जहाँ घनु की आनेवाली सेना पर छापा मारने के लिये सैनिक लोग छिपकर बैठते हैं।

**संधिवीर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] संधि लगाकर घोरि करनेवाला। संधिया घोर।

**संधिच्छेद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह (पक्ष) जो संधि के निदमों का भंग करता हो। अहदनामे की शर्तें तोड़नेवाला।

**संधिज-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) (बुआकर सैवार किया हुआ) मय, आसय आदि। (२) यह फोड़ा जो शरीर की किसी रंधि या गड पर हो।

**संधिजीयक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह जो घियों को घुरों से मिलकर जीविका चलाता हो। बुटना। टाल।

**संधित-वि०** [ सं० ] जिसमें संधि हो। संधियुक्त।

संज्ञा पुं० आसय। अर्क।

**संधिनी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) गाभिन गौ। (२) वह गौ जो गाभिन होने पर भी दूध दे। (३) वह गौ जो बिना बछड़े के दूध दे। (४) वह गौ जो दिन रात में केवल एक बार दूध दे।

**संधिप्रच्छादन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] संगीत में स्वर साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार होती है। अरोही—सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध, प ध नि, ध नि सा। अवरोही—सा नि ध, नि ध प, ध प म, प म ग, म ग रे, ग रे सा।

**संधिबंध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सुई रंपा।

**संधिबंधन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] शिरा। माढ़ी। नस।

**संधिमंग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वैद्यक के अनुसार हाथ या पैर आदि के किसी जोड़ का दृटना।

**संधिमग्न-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का रोग जिसमें अंग की संघियों में अत्यंत पीड़ा होती है।

**संधिरंधका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सुरंग। संध।

**संधिराग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सिंदूर। सेंदुर।

**संधिला-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) सुरंग। संध। (२) नदी। (३) मृत्त। शाराय।

**संधियिद्ध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का रोग जिसमें हाथ पैर के जोड़ों में सूजन और पीड़ा होती है।

**संधिवेला-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] राध्या का समय। सायंकाल। शाम।

**संधिसितासित-संज्ञा पुं०** [ सं० ] ओंलों का एक प्रकार का रोग।

**संधिहारक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह घोर जो संधि लगाकर घोरि करता हो। संधिया घोर।

**संधेय-वि०** [ सं० ] जो संधि करने के योग्य हो। जिसके साथ संधि की जा सके।

**संध्य-वि०** [ सं० ] संधि संबंधी। संधि का।

**संध्यक्ष-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह नक्षत्र जिसमें दो राशियाँ हों। दो राशियों के बीच का नक्षत्र। जैसे,—कृत्तिका नक्षत्र, जिसके पहले पाद में मेष राशि और अंतिम तीनों पादों में वृष राशि है।

**संध्या-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) दिन और रात दोनों के मिलने का समय। संधिकाल।

**विशेष**—दिन और रात के मिलने के दो समय हैं—प्रातःकाल और सायंकाल। प्राचीन में कहा है कि रात का अंतिम एक दृष्ट और दिन का पहला एक दृष्ट ये दोनों मिलकर प्रतः संध्या काल होते हैं; और दिन का अंतिम एक दृष्ट और रात का पहला एक दृष्ट ये दोनों मिलकर सायं संध्या काल होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग ठीक दोपहर के समय एक और संध्या मानते हैं, जिसे मध्याह्न संध्या कहते हैं।

(२) दिन का अंतिम भाग। सूर्यास्त के लगभग का समय। शाम। सायंकाल। (३) आर्यों की एक विदित उपासना जो प्रति दिन प्रतः काल, मध्याह्न और संध्या के समय होती है। इसमें ज्ञान और आधम्य करके कुछ विदित मंत्रों का पाठ, अंगन्यस और गायत्री का जप किया जाता है। द्विजातियों के लिये यह उपासना अवश्य कर्त्तव्य कही गई है। (४) एक युग की समाप्ति और दूसरे युग की संधि का समय। दो युगों के मिलने का समय। युग संधि। (५) एक प्राचीन नदी का नाम। (६) सीमा। हद्द। (७) संपात। (८) एक प्रकार का फूल।

**संध्यानाटी-संज्ञा पुं०** [ सं० ] संन्यासोद्वि। शिव। महादेव।

**संध्याशधू-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सन्नि। रात। निद्रा।

**संध्याश्ल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] निशाचर। राक्षस। निश्वर।

**संध्याराग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) रयाम कवथाण राग। संगीत शास्त्र के अनुसार इसका वर्ण काला माना गया है। (२) सिंदूर। सेंदुर।

**संध्याराम-संज्ञा पुं०** [ सं० ] व्रद्धा।

**संध्यास्त-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) भारतीय आर्यों के चार आधमों में से अंतिम आधम। यानप्रथं आधम के पश्चात् का आधम।

**विशेष**—प्राचीन भारतीय धार्यों ने जीवन के चार विभाग किए थे, जो आश्रम कहलते हैं। (दे० "आश्रम") इनमें से अन्तिम आश्रम संन्यास कहलाता है। पचीस वर्ष तक पातमस्य आश्रम में रहने के उपरान्त ७५ वर्ष के अंत में इस आश्रम में प्रवेश करने का विधान है। इस आश्रम में काम्य और नित्य आदि सब कर्म किए तो जाते हैं, पर विलकुल निष्काम भाव से किए जाते हैं; किसी प्रकार के फल की आशा रखकर नहीं किए जाते। वि० दे० "संन्यासी"। (२) भाव प्रकटा के अनुसार मूर्च्छा रोग का एक भेद जो बहुत ही भयानक कहा गया है। यह रोग प्रायः निर्मल मनुष्यों को हुआ करता है और इसमें रोगी के मर जाने की भी आशंका रहती है। साधारण मूर्च्छा से इसमें यह अंतर है कि मूर्च्छा में तो रोगी थोड़ी देर में आप से आप होदा में आ जाता है, पर इसमें बिना औषध और चिकित्सा के होता नहीं होता। (३) जटामासी।

**संन्यासी**—संज्ञा पुं० [ सं० संन्यासिन ] वह जो संन्यास आश्रम में हो। संन्यास आश्रम में रहने और उसके नियमों का पालन करनेवाला।

**विशेष**—संन्यासियों के लिये शास्त्रों में अनेक प्रकार के विधान हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—संन्यासी को सब प्रकार की कृपाओं का परित्याग करके घर बाहर छोड़कर जंगल में रहना चाहिये; सदा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करना चाहिये, कहीं एक जगह जमकर न रहना चाहिये; गिरिक कौपीन पहनना चाहिये; दूध और बमंडलु अपने पास रखना चाहिये; सिर मुँह पाए रहना चाहिये; तिरछा और सूत्र का परित्याग कर देना चाहिये; शिक्षा के द्वारा जीवन निर्वाह करना चाहिये; एकल स्थान में निवास करना चाहिये; सब पदार्थों और सब कार्यों में समदर्शी होना चाहिये; और सद्-पदेश आदि के द्वारा लोगों का कल्याण करना चाहिये। आज कल संन्यासियों के गिरि, पुरी, भारती आदि अनेक भेद पाए जाते हैं। एक प्रकार के कौल या धाममार्गी संन्यासी भी होते हैं जो भव-मोक्ष आदि का भी सेवन करते हैं। इनके अतिरिक्त नागे, दंगली, अघोरी, आकारान्दुसी, मौनी आदि भी संन्यासियों के ही अंतर्गत माने जाते हैं।

**संपत्**—संज्ञा स्त्री० दे० "संपद"

**संपत्कृमार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक रूप।

**संपाति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) देवचर्य। (२) धन। बौद्ध। ज्ञानदाद। मिलकियत। (३) सफलता। पूर्णता। सिद्धि। (४) प्राप्ति। लाभ। (५) अधिभूता। बहुतायत।

**संपत्तोप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वित्तों की जल देने का एक भेद।

**संपद्**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सिद्धि। पूर्णता। (२) देवचर्य।

वैभव। गौरव। (३) सीमागप। अच्छे दिन। भले दिन। सुख की स्थिति।

**पौ०**—संपद विपद।

(४) प्राप्ति। लाभ। फायदा। (५) अधिभूता। बहुतायत।

(६) भेतियों का हार। (७) वृद्धि नाम की औषधि।

**संपदा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० संपद ] (१) धन। बौद्ध। (२) देवचर्य। वैभव।

**संपद**—संज्ञा पुं० [ सं० संपदन ] अशोक के एक पौत्र का नाम।

**संपन्न**—वि० [ सं० ] (१) पूरा किया हुआ। पूर्ण। सिद्ध।

साधित। सुकमल। (२) सहित। युक्त। भरा पूरा।

उ०—ससि-संपन्न-सोह मदि बैसी।—तुलसी। (३) जिसे कुछ कमी न हो। धन धान्य से पूर्ण। सुसाहाल। (४) धनी।

बौद्धमंद।

संज्ञा पुं० सुखादु भोजन। स्वर्जन।

**संपन्नक्रम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की समाधि। (बौद्ध)

**संपराय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रुत्यु। मौत। (२) अनादि काल से स्थिति। (३) सुद। लक्ष्मी। ऋग्दा। (४) आपत्ति।

हुदिन। (५) मविष्य।

**संपर्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संक ] (१) मिश्रण। मिलावट।

(२) मेल। मिलाप। संयोग। (३) लगाव। संसर्ग। वास्ता।

(४) स्पर्श। सटना। (५) योग। जोड़। (मंगल)

**संपा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] त्रियुत्। त्रिमली। उ०—धौंयते चकोर धूर्त

और जति चंद मुख जो न होती टरनि दसन-नुति संपा की।—पूरवी।

**संपाक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अष्टी तरह पकता। (२) आर-

व्यव स्थान। अनलतास। (३) तर्क करनेवाला।

वि० (१) लंपट। (२) धूर्त। (३) अल्प। कम।

**संपाट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी त्रिभुज की बड़ी हुई भुजा पर

संबंध का गिरना। (२) सकल।

**संपात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक साथ गिरना या पड़ना। (२)

संसर्ग। मेल। मिलन। (३) संगम। समागम। (४)

संगम स्थान। मिलने की जगह। (५) वह स्थान जहाँ एक

रेखा दूसरी पर पड़े या सिले। (६) कुदान। उदान। दूट

पड़ना। क्षपट। (७) सुद का एक भेदा। (८) प्रवेना। पहुँच।

पेट। (९) घटित होना। होना। (१०) ब्रह्म पदार्थ के नीचे

पैठी हुई बस्तु। सकलट। (११) अघनिष्ट अंश। न्यवहन से

बचा हुआ भाग।

**संपानि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक गोष जो गार्द का ज्येष्ठ पुत्र

और जयपुत्र का भाई था। (२) माछी नाम राक्षस का उसकी

पत्न्या नामक भार्या से उत्पन्न पारपुत्रों में से एक पुत्र। यह

निभीषण का भ्राता था। (३) राम की सेना का एक बंदर।

संपाती-वि० [ सं० संपातिन् ] [ स्त्री० संपातिनी ] एक साथ कूदने या क्षपटनेवाला ।

संज्ञा पुं० दे० "संपाति" ।

संपादक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संपद्य करनेवाला । कोई काम पूरा करनेवाला । काम अंजाम देनेवाला । (२) प्रस्तुत करनेवाला । तैयार करनेवाला । (३) प्रदान करनेवाला । लाभ करनेवाला । (४) किसी समाचारपत्र या पुस्तक को क्रम आदि लगाकर निकालनेवाला । पृष्ठिटर ।

संपादकत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] संपादन करने का भाव या भवस्था ।

संपादकीय-वि० [ सं० ] संपादक संबंधी । संपादक का ।

संपादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संपादनीय, संपादी, संपाद्य ] (१) किसी काम को पूरा करना । अंजाम देना । (२) प्रस्तुत करना । प्रदान करना । (३) ठीक करना । हुस्तल करना । तैयार करना । (४) किसी पुस्तक या सांबाद्रपत्र आदि को क्रम, पाठ आदि लगाकर प्रकाशित करना ।

संपादयिता-संज्ञा पुं० [ सं० संपादयितृ ] [ स्त्री० संपादयित्री ] संपादन करनेवाला ।

संपादित-वि० [ सं० ] (१) पूर्ण किया हुआ । अंजाम दिया हुआ । (२) तैयार । प्रस्तुत । (३) क्रम, पाठ आदि लगाकर ठीक किया हुआ । (पत्र, पुस्तक आदि )

संपादी-वि० [ सं० संपादिन् ] [ स्त्री० संपादिनी ] संपादन करनेवाला ।

संपिन-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का बौंस जिसका रोकरा यनता है । यह खासिमा की पहचानियों में होता है ।

संपोडन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खूब दवाना या निचोड़ना । खूब मलना । (२) खूब पीड़ा देना । (३) अतिशय पीड़ा । (४) शब्दोंचाचारण का एक दोष ।

संपुट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पात्र के आकार की वस्तु । कटोरे या दोने की तरह चीज जिसमें कुछ भरने के लिये खाली जगह हो । (२) टप्पेर । डीकरा । कपाल । (३) दौना । (४) टकनदार पिचारी या टिठिया । डिठिया । (५) अंजली । (६) फूल के दलों का ऐसा समूह जिसके बीच खाली जगह हो । कोश । (७) कपड़े और गोली मिठी से लपेटा हुआ वह बरतन जिसके भीतर कोई रस या ओषधि छूँक्ते हैं । (८) कटसरैया का फूल । कुर्वक । (९) हिसाब में बाझी या उचार ।

संपुटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० संपुट ] छोटी कटोरी या तपस्त्री जिसमें पूजन के लिये बिसा हुआ चंदन अक्षत आदि रखते हैं ।

संपूर्ण-वि० [ सं० ] (१) खूब भरा हुआ । (२) सब । विलकुल । समस्त । पूरा । (३) समाप्त । पूरतम ।

सौ०—संपूर्णकाम = जिसकी सब बांजना पूरी हुई हो ।

(४) पूर्ण-रूप से युक्त ।

संज्ञा पुं० (१) यह राग जिसमें सातों स्वर लगते हैं । (२) आकाश सूत ।

संपूर्णतः-किं० वि० [ -सं० ] पूरी तरह से । पूर्ण रूप से ।

संपूर्णतया-किं० वि० [ सं० ] पूरी तरह से । भली भौति । अच्छी तरह ।

संपूर्णता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) संपूर्ण होने का भाव । पूरान । (२) समाप्ति ।

संपूर्णा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक बहरी विशेष ।

संपुक्त-वि० [ सं० ] (१) संसर्ग में आया हुआ । घूसा हुआ ।

(२) मिला हुआ । मिश्रित । (३) मेल में आया हुआ ।

संषेरा-संज्ञा पुं० [ हिं० संष + परा (हिं० प्रय०) ] [ स्त्री० संषेरिनी ] संषि पालनेवाला मयूरी । संषि का तमासा दितानेवाला ।

संषोला-संज्ञा पुं० [ हिं० संष + शूल (अथवा प्रय०) ] संषि का दबा ।

संषोलिया-संज्ञा पुं० [ हिं० संष + शी + वाङ् ] संषि एकड़नेवाला । संषेरा ।

संप्रक्षाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पूर्ण विधि से धान करनेवाला ।

(२) एक प्रकार के पति या साधु । (३) प्रजापति के पैर पोंपे हुए जल से उत्पन्न एक, ऋषि ।

संप्रक्षालन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह धोना । एवं धोना । (२) पूर्ण धान । (३) जल-प्रलय ।

संप्रक्षालनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की जीविका या वृत्ति । (यौद्ध)

संप्रक्षाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] योग में समाधि के दो प्रधान भेदों में से एक । वह समाधि जिसमें आत्मना त्रिपर्यो के बोध से सर्वथा निवृत्त न होने के कारण अपने स्वरूप के बोध तक न पहुँची हो ।

विशेष—ध्यान या समाधि की पूर्व दशा में चार प्रकार की समापत्तियाँ कहीं गई हैं जिनमें शब्द, अर्थ, विषय आदि में से किसी न किसी का बोध अवश्य बना रहता है । इन चारों में से किसी समापत्ति के रहने से समाधि संप्रक्षाल कहल्यती है । संप्रक्षाल समाधि या समापत्ति के चार भेद हैं—सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार ।

संप्रति-अर्थ० [ सं० ] (१) इस समय । अभी । आजकल । (२) युकावले में । (३) ठीक तौर से ।

संज्ञा पुं० (१) पूर्व अवसरपिंगी के २४ वें अर्हत का नाम । (जैन) (२) अशोक का पोता । कुनाल एक पुत्र ।

संप्रतिपत्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पहुँच । गुजर । (२) प्राप्ति । लाभ । (३) सम्यक् बोध । ठीक ठीक समझ में आना ।

(४) समझ । बुद्धि । (५) मतिव्यय । एकमत होना ।

एक राय होता । (६) स्वीकृति । मंजूरी । (७) अभियुक्त का न्यायालय में सब बात स्वीकार करना । (सृष्टि) (८)

संपादन । सिद्धि । कार्य की पूर्णता ।

संप्रतिपन्न-वि० [ सं० ] (१) पहुँचा हुआ । गया हुआ । उपस्थित । (२) स्वीकृत । मंजूर । (३) उपस्थित बुद्धि का । तेज समझवाला ।

संप्रत्यय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्वीकृति। मंजूरी। मानने की क्रिया या भाव। (२) दृढ़ विश्वास। पूर्ण यकीन। (३) शीघ्र शीघ्र समूह। सम्यक् बोध। (४) भावना। विचार।  
संप्रदाय-संज्ञा पुं० दे० "संप्रदाय"।

संप्रदातन-संज्ञा पुं० [ सं० ] इच्छीस नरकों में से एक।  
संप्रदान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दान देने की क्रिया या भाव। (२) दीक्षा। मंत्रोपदेश। शिष्य को मंत्र देना। (३) भेंट। नजर। (४) व्याकरण में एक कारक जिसमें शब्द देना क्रिया का लक्ष्य होता है।

विशेष-हिंदी में इस कारक के चिह्न 'को' और 'के लिये' हैं। जैसे,—राम को दो। उसके लिये लाया गया।

संप्रदाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० साम्प्रदायिक ] (१) देनेवाला। दाता। (२) गुरु परंपरागत उपदेश। गुरुमंत्र। (३) कोई विशेष धर्म-संबंधी मत। (४) किसी मत के अनुयायियों की मंडली। फिरका। (५) मार्ग। पथ। (६) परिपाटी। रीति। चाल।

संप्रदायी-संज्ञा पुं० [ सं० संप्रदायिन् ] [ स्त्री० संप्रदायिनी ] (१) देनेवाला। (२) करनेवाला। सिद्ध करनेवाला। (३) किसी संप्रदाय से संबंध रखनेवाला। मत का माननेवाला। मतावलंबी।

संप्रयुक्त-वि० [ सं० ] (१) जोड़ा हुआ। एक साथ किया हुआ। (२) जोता हुआ। नया हुआ। (३) संबद्ध। मिला हुआ। (४) मिटा हुआ। (५) व्यवहार में लाया हुआ। बर्ता हुआ।

संप्रयोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जोड़ने की क्रिया या भाव। एक साथ करना। (२) मेल। मिलान। संयोग। समागम। (३) रति। रमण। (४) धनादि का विनियोग। (५) नक्षत्र में चंद्रमा का योग। (६) इंद्रजाल। (७) यतीकरण प्रवृत्ति कार्य।

संप्रयोगी-संज्ञा पुं० [ सं० संप्रयोगिन् ] [ स्त्री० संप्रयोगिनी ] (१) कामुक। लंपट। (२) इंद्रजालिक। इंद्रजाल दिखातेवाला।

संप्रयोजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संप्रयोजन्य, संयोज्य, संप्रयोजित, संप्रयुक्त, संप्रयोजक्य ] अर्पण तरह जोड़ना या मिलाना।

संप्रयत्तक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चलानेवाला। (२) जारी करनेवाला।

संप्रयत्तन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संप्रयत्तनी, संप्रयत्त ] (१) चलाना। गति देना। (२) सुमाना। (३) जारी करना। आरंभ करना।

संप्रयत्त-वि० [ सं० ] (१) आगे गया हुआ। बढ़ा हुआ। अग्रतर। (२) उपस्थित। मौजूद। प्रस्तुत। (३) जारी किया हुआ। आरंभ किया हुआ।

संप्रयत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आसक्ति। (२) अनुमंत्रण करने की हथौड़ी। (३) उपस्थिति। मौजूदगी। (४) संबधत। मेल।

संप्राप्त-वि० [ सं० ] (१) पहुँचा हुआ। उपस्थित। (२) पाया हुआ। (३) धरित। जो हुआ हो।

संप्राप्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्राप्ति। लाभ। (२) पहुँचना। उपस्थिति। (३) धरित होना। होना। (४) रोग का सन्निकृष्ट कारण। यह पाँच प्रकार का होता है। (१) संपत्ता (२) विकल्प (३) प्राधान्य (४) दल और (५) काल।

संप्रेक्षक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुरोक। देखनेवाला।

संप्रेक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संप्रेक्षित, संप्रेक्ष्य ] (१) अच्छी तरह देखना। (२) खूद देखभाल करना। जाँच करना। निरीक्षण करना।

संप्रेष-संज्ञा पुं० दे० "संप्रेष"

संप्रेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संप्रेषित, संप्रेष्य ] (१) अच्छी तरह भेजना। (२) बुझाना। बरखाल करना। काम से हटाना।

संप्रेषणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूतक का एक कृत्य जो हाइ-ग्राह को होता है।

संप्रेष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञादि में कृत्वियों को खनाता। नियुक्ति। (२) आमंत्रण। आह्वान।

संप्रोक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संप्रोक्षित, संप्रोक्ष्य ] (१) खूब पानी छिड़कना। (२) खूब पानी छिड़क कर (गंदी आदि) साफ करना। धोना।

संसंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संसुत ] (१) जल से तरावोर होना। जल की याद। बहिया। (२) भारी समूह। घनी राति। (३) हलचल। शोरगुल। हहा।

संसुत-वि० [ सं० ] जल से तरावोर। हुवा हुआ।

संफाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेप। भेद।

संफेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) क्रोध से परस्पर भिड़ना। भिड़ंत। लड़ाई। (२) झगडा। कहासुनी। तकरार।

विशेष—नाश्वराक्ष में विमर्श के तरह भेदों में से एक संफेद भी है। जैसे,—राजसभा में द्रुपदतल और दुष्यंत की कहासुनी। आरग्यी के चार भेदों में से भी एक संफेद है जिसमें दो पात्र परस्पर भिड़ते और एक दूसरे को दवाने का प्रयत्न करते हैं। जैसे,—भालती माथन गटक में माथव और अथोरपंट की मुद्रभेद।

संघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक साथ बँधना, जुड़ना या मिलना। (२) लगाव। संपर्क। वास्ता।

विशेष—दुर्दान में संघ हीन प्रकार के कहे गए हैं—समवाय, संयोग और स्वरूप।

(३) एक लड़ में होने के कारण भयना विवाद, दूक आदि संस्कारों के कारण परस्पर लगाव। नाता। रिश्ता। (४) गहरी मित्रता। बहुत मेल जाल। (५) संयोग। मेल। (६) विवाद। सगाई। (७) प्रथ। पोषी। (८) एक प्रकार की हंति या उद्वेग। (९) किसी सिद्धांत या हवाला।

(१०) ध्याकरण में एक कारक जिससे एक शब्द के साथ दूसरे शब्द का संबंध या लगाव सूचित होता है। जैसे,— राम का घोड़ा।

**चिरंशु**—यहुत से ध्याकरण 'संबंध' को शुद्ध कारक नहीं मानते। हिंदी में संबंध के विद्द 'का' 'की' 'के' हैं।

**संबंधातिशयोक्ति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद जिसमें असंबंध में संबंध दिखाया जाता है।

**विशेष**—दे० "अतिशयोक्ति"।

**संबंधी**—वि० [ सं० 'बंधिन्' ] [ स्त्री० संबंधिनी ] (१) संबंध रखनेवाला। लगाव रखनेवाला। (२) विपन्न। सिलसिले या प्रसंग का।

**संज्ञा पुं०** (१) रिश्तेदार। (२) जिसके पुत्र या पुत्री से अपनी पुत्री या पुत्र का विवाह हुआ हो। समथी।

**संबंधु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आत्मीय। भाई बिरादर। (२) मातेदार। रिश्तेदार।

**संब**—संज्ञा पुं० दे० "बंध"।

**संबन्त**—संज्ञा पुं० दे० "संबन्ध"।

**संबन्ध**—वि० [ सं० ] (१) बंधा हुआ। जुड़ा हुआ। लगा हुआ। (२) संबंध-युक्त। मिला हुआ। (३) बंद। (४) संयुक्त। सहित।

**संघर**—संज्ञा पुं० दे० "संघर्ष"।

**संघरण**—संज्ञा पुं० दे० "संवरण"।

**संघल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शालमली। सेमल का वृक्ष। (२) रास्ते का भोजन। खज़र खर्च। (३) गेहूँ की फसल का एक रोग जो पूरव की हवा अधिक चलने से होता है। (४) संख्या। आसु पापाग। सोमल क्षार। वि० दे० "संघल"।

**संवाद**—संज्ञा पुं० दे० "संवाद"।

**संवाध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाधा। अड़चन। कठिनाता। (२) भीड़। संघर्ष। (३) भग। योनि। (४) कष्ट। पीड़ा। (५) नरक का पथ।

वि० (१) संकीर्ण। तंग। (२) जनपूर्ण। भीड़ से भरा। (३) भरा। पूर्ण। संकुल।

**संवाधक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दवानेवाला। सतानेवाला। तंग करनेवाला। (२) बाधा पहुँचानेवाला।

**संवाधन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दवाव। रेलपथ। (२) रोकना। पाधा देना। (३) रोक। फाटक। (४) योनि। भग। (५) शूलपाद। (६) द्वारपाल।

**संथी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० शिथी ] फली।

**संयुक्त**—संज्ञा पुं० दे० "संयुक्त", "संयुक्त"।

**संयुद्ध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जाग्रत। ज्ञानप्राप्त। (२) ज्ञानी। ज्ञानवान्। (३) पूर्ण रूप से जाना हुआ। ज्ञात। (४) युद्ध। (५) जिन।

**संयुद्धि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पूर्ण ज्ञान। सम्यक् बोध। (२) बुद्धिमानी। होशियारी। (३) दूर से पुकार। आह्वान।

**संयुक्त जगनाई**—संज्ञा पुं० [ फा० ] तुर्किस्तान का एक पौधा जो औषध के काम में आता है और जिसकी पत्तियों की नसों मिठाई में पकती हैं।

**संयत्तर**—संज्ञा पुं० [ सं० सं० + हि० बधेण ] निद्रा। नींद। (डिगल) **संबंध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सम्यक् ज्ञान। पूरा बोध। (२) पूर्ण सत्यबोध। पूरी जानकारी। (३) चरित्र। सात्वता। दारस।

**संयोधन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संबोधित, संबोधय ] (१) जगाना। गींद से उठाना। (२) पुकारना। आह्वान करना। (३) ध्याकरण में वह कारक जिससे शब्द का किसी को पुकारने या बुलाने के लिये प्रयोग सूचित होता है। जैसे,—हे राम! (४) जताना। ज्ञान कराना। विदित कराना। (५) नाटक में आकाश-भाषित। (६) समझाना सुझाना। समाधान करना।

**संयोधनाक्ष**—कि० सं० [ सं० ] समझाना। प्रबोध देना। उ०—ज्यों ज्यों ऐसी यातन मंदोदरी सौमेथे स्यों त्यों देव दुख पावे कहैं कैसे समुझाइये। याकी बात माने सिय हैके जाइ निले यह औरन विसारी याकौ सौगुन यदुइये।—हृदयराम।

**संयोधन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसको संबोधन किया जाय। (२) जिसे समझाया या जताया जाय।

**संयोधिया**—संज्ञा पुं० [ देश० ] वैद्यों की एक जाति। **संभ्रम**—वि० [ सं० ] (१) बहुत दृढ़ हुआ। बिलकुल खरित। (२) हारा हुआ। (३) विफल।

**संज्ञा पुं०** शिव का एक नाम।

**संभर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भरण करनेवाला। पोषण करनेवाला। (२) सौभर शील।

**संभरण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संभरणं य, संभृत- ] (१) पालन पोषण। (२) एकत्र करना। संघय। जुटाना। (३) भोजन। विधान। (४) वैधारी। सामान। (५) एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदों में लगाती थी।

**संभरणी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोमरस रखने का एक वनस्पति। **संभरना**—वि० प्र० दे० "संभलना"।

**संभल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कन्यार्थी पुरुष। किसी लड़की से विवाह की इच्छा रखनेवाला ध्याक। (२) जेटक। दलाल। (३) एक स्थान जहाँ विष्णुध्यास नामक ब्राह्मण के घर स्थित दसवीं कलिक अथवातार होनेवाला है। इसे कुछ लोग सुरादायद ज़िले का संभल नाम का कस्तवा बतलाते हैं।

**संभलना**—कि० प्र० [ हि० संभलना ] (१) किसी बोस आदि का कपूर लदा रह-सकना। पकड़ में रहना। धामा का सकना।

जैसे,—यह बोझ हमसे नहीं संभलेगा। (२) किसी सहारे पर रखा रह सकता। आधार पर उभरा रहना। जैसे,— इस खंभे पर यह पाथर नहीं संभलेगा। (३) होशियार होना। सचेत होना। सावधान होना। जैसे,—इन गों के बीच संभल कर रहना। (४) चोट या हानि से बचाव करना। गिरने पड़ने से रकना। जैसे,—यह गिरते गिरते संभल गया। (५) घुरी दूना को फिर सुधार लेना। जैसे,—इस रोज़गार में इतना घाटा उठाओगे कि संभलना कठिन होगा। (६) कार्य का भार उठाया जाना। निर्वाह संभव होना। जैसे,—हमसे इनका एगं नहीं संभलेगा। (७) स्वस्थता प्राप्त करना। आरोग्य लाभ करना। चंगा होना। जैसे,—गोमारी तो बहुत कड़ी चाई, पर अंध संभल रहे हैं।

**संभला**—संज्ञा पुं० [ हि० संभलना ] एक बार विपद कर फिर सुपरी हुई फसल।

**संभली**—संज्ञा स्त्री० [ सं० संभली ] कुटरी। दूरी।

**संभव**—संज्ञा पुं० [ सं० सम्भव ] (१) उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश।

जैसे,—कुमार-संभव। (२) एक साथ होना। मेल। संयोग। समापन। (३) सहवास। प्रसंग। (४) अंतना। आ सकना। समाई। (५) हेतु। कारण। (६) होना। घटित होना। (७) हो सकने के योग्य होना। सुमकिन होना। जैसे,—उसका सुधारना संभव नहीं। (८) परिमाण का एक होना। एक ही बात होना। जैसे,—एक रुपया कहे या सोलह आने। (९) दर्शन। (१०) उपयुक्तता। समीचीनता। सुनासिधत। (११) वर्तमान अवसरिणी के तीसरे अर्धत्। (जैन) (१२) एक लोक का नाम। (बौद्ध) (१३) नात। प्रंस। (१३) सुक्ति। उपाय।

**संभवतः**—अव्य० [ सं० ] हो सकता है। सुमकिन है। गालिबन।  
**संभवतः**—संज्ञा पुं० [ सं० संभवतः ] [ हि० संभवनीय, संभव्य, संभुन ] (१) उत्पन्न होना। पैदा होना। (२) हो सकना। सुमकिन होना। (३) होना। घटित होना।

**संभवना**—कि० सं० [ सं० सम्भव + नां (प्रत्य०) ] उत्पन्न करना। पैदा करना।

कि० प्र० (१) उत्पन्न होना। पैदा होना। (२) संभव होना। हो सकता। उ०—धर्म स्थापन हेतु पुनि धारतो नर अवधार। ताको पुत्र कलत्र सौं नाई संभवत पिपार।—मूर।

**संभवनाथ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्तमान अवसरिणी के तीसरे अर्धत्-कर। (जैन)

**संभवनीय**—वि० [ सं० ] जो हो सकता हो। सुमकिन।  
**संभव्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कपित्थ। कैय।

वि० जो हो सकता हो। संभवनीय। सुमकिन।

**संभार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संभव। एकत्र करना। इकट्ठा

करना। (२) तैयारी। सामान। साज। सामग्री। रसद पगैरह। (३) धन। संपत्ति। वित्त। (४) पूर्णता। अधिकता। (५) समूह। दल। राशि। ढेर। (६) पालन। पोषण।

**संभार**—संज्ञा पुं० [ हि० संभालना सं० संभार ] (१) देख रेख। रखरखाई। निगरानी। (२) पालन पोषण। उ०—करिय संभार कोसलरह।—नुलसी।

**पी०**—सार संभार = पालन पोषण और निरीक्षण का भार। उ०—सब कर सार संभार गोसाईं।—नुलसी।

(३) वरा में रखने का भाव। रोक। निरोध। उ०—रे वृष यालक कालवस बोलत तोहि न संभार।—नुलसी। (४) नन बदन की सुध। होना हवास।

**संभारना**—कि० सं० [ सं० संभार ] (१) दे० "संभालना"। (२) याद करना। स्मरण करना। मन में इकट्ठा करके रखना। उ०—बंदि पितर सब सुकृत संभारे। जो कट्टु पुण्य प्रभाव हमारे। तो सिय-धनुष मृगाल की नाईं। नोरीहि राम, मनस गोसाईं।—नुलसी।

**संभारी**—वि० [ सं० संभारिन् ] [ स्त्री० संभारिणी ] भरा हुआ। पूर्ण।  
**संभाल**—संज्ञा स्त्री० [ सं० संभार ] (१) रक्षा। हिफाजत। (२) पोषण का भार। (३) देख रेख। निगरानी। (४) प्रबंध। हुंनगाम। जैसे,—घर की संभाल वही करता है। (५) संव बदन की सुध। होना हवास। चैन। आर। जैसे,—ब्रह्म इतना चिकल हुआ कि शरीर की संभाल न रही।

**संभालना**—कि० सं० [ सं० संभार ] (१) भार को ऊपर ठहराना। बोझ ऊपर रखे रहना। भार ऊपर ले सकना। जैसे,—इतना भारी बोझ कैसे संभालोगे? (२) रोक या पकड़ में रखना। इस प्रकार धामे रहना कि छूटने या भागने न पावे। रोकें रहना। काबू में रखना। जैसे,—संभालो, नहीं सो छूटकर भाग जायगा। (३) किसी वस्तु को अपनी जगह से हटने, गिरने पड़ने, बिमकने आदि से रोकना। यथा स्थान रखना। द्युत न होने देना। धामना। जैसे,—टोपी संभालना, घोसी संभालना। (४) गिराने से रोकने के लिये सहाय देना। गिरने से बचना। जैसे,—मैंने संभाल लिया, नहीं तो यह गिर पड़ता। (५) रक्षा करना। हिफाजत करना। बच होने या खो जाने से बचना। जैसे,—इस पुस्तक को बहुत संभाल कर रखना। (६) घुरी दूना को प्राप्त होने से बचना। घुराड़ी दूना में सहयता करना। घुराड़ी से बचना। उदार करना। जैसे,—उचने बड़े घुरे दिनां हैं। (७) पालन पोषण करना। परवरिश करना। (८) देख रेख करना। निगरानी करना। (९) प्रबंध करना। हुंनगाम करना। व्यवस्था करना। जैसे,—घर संभालना। (१०) निर्वाह करना। किसी कार्य का भार अपने ऊपर लेना। बलना।



जैसे,—उसका व्यर्थ हम नहीं संभाल सकते । (११) दूना बिगड़ने से बचाना । रोग, व्याधि, आपत्ति इत्यादि की रोक करना । जैसे,—बीमारी बढ़ जाने पर संभालना कठिन होता है । (१२) कोई वस्तु ठीक ठीक है, इसका हतमीनान कर लेना । सहजना । जैसे,—देखो १००) हैं, इन्हें संभालो । (१३) किसी मनोवेग को रोकना । जोर धामना । जैसे,—उसकी कड़ी धातें सुनकर मैं अपने को संभाल न सका ।

**संयोग**—देना ।—लेना ।

**संभाला**—संज्ञा पुं० [ हि० संभालना ] जीवन की ज्योति का बुझने के पूर्व टिमटिमा उठना । मरने के पहले कुछ चेतनता रही आ जाना । चैतन्य थाई होना । जैसे,—कल संभालाँ लिया था, आज मर गया ।

**सि० प्र०**—लेना ।

**संभालू**—पञ्चा पुं० [ हि० सिंधुवार ] प्रवेत सिंधुवार दृष्ट । मेवड़ी ।  
**संभावन**—संज्ञा पुं० [ सं० सम्भावन ] [ वि० संभावनीय, संभावित संभावितव्य, संभाव्य ] (१) कल्पना । भावना । अनुमान । (२) छुटाना । एकत्र करना । योग करना । (३) उपस्थित करना । संपादन । (४) आदर । सम्मान । पूजा । (५) पूज्यबुद्धि । प्रतिष्ठा का भाव । (६) योग्यता । पात्रता । अधिकार । क्राविलीयत । (७) ख्याति । प्रसिद्धि । नाम । (८) स्वीकार ।  
**संभावना**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सम्भावना ] (१) कल्पना । भावना । अनुमान । फ़र्ज़ । (२) पूजा । आदर । सत्कार । (३) किसी बात के हो सकने का भाव । हो सकना । मुमकिन होना । (४) योग्यता । पात्रता । क्राविलीयत । (५) ख्याति । प्रसिद्धि । नामवरी । (६) प्रतिष्ठा । मान । इज्जत । (७) एक अलंकार जिसमें किसी एक धात के होने पर दूसरी धात का होना निर्भर कहा जाता है । उ०—(क) एहि विधि उपजै हरिछ जप होइ सीय समवृल । (ख) सहस जीभ जौ होय, ती बरनै जस आप को ।

**संभावनीय**—वि० [ सं० सम्भावनीय ] (१) जो हो सकता हो । मुमकिन । (२) कल्पना के योग्य । ध्यान में आने लायक । (३) आदर के योग्य । सत्कार के योग्य ।

**संभावितव्य**—वि० दे० “संभावितव्य” ।

**संभावित**—वि० [ सं० सम्भावित ] (१) कल्पित । विचार हुआ । मन में माना हुआ । (२) उद्यता हुआ । उपस्थित किया हुआ । (३) पूजित । आदर । (४) विख्यात । प्रसिद्ध । (५) योग्य । उपयुक्त । क्राविल । (६) संभव । मुमकिन ।

**संभाषितव्य**—वि० [ सं० सम्भाषितव्य ] (१) कल्पना या अनुमान के योग्य । (२) सत्कार के योग्य । (३) जिसका सत्कार होनेवाला हो । (४) संभव । मुमकिन ।

**संभाष्य**—वि० [ सं० सम्भाष्य ] (१) जो हो सकता हो । मुमकिन । (२) प्रशंसनीय । श्लाघ्य । (३) पूजा या सत्कार के योग्य;

अथवा जिसका सत्कार होनेवाला हो । (४) कल्पना या अनुमान के योग्य । ध्यान में आने लायक ।

**संभाष**—संज्ञा पुं० [ सं० सम्भाष ] (१) कथन । संभाषण । बातचीत । (२) वादा । फ़ार ।

**संभाषण**—संज्ञा पुं० [ सं० सम्भाषण ] [ वि० संभाषणीय, संभाषित, संभाष्य ] कथोपकथन । बातचीत ।

**संभाषणीय**—वि० [ सं० ] जो बातचीत करने योग्य हो । जिससे भाषण करना उचित हो ।

**संभवि**—वि० [ सं० सम्भवि ] (१) अच्छी तरह कहा हुआ । (२) जिससे बातचीत हुई हो ।

**संभाषी**—वि० [ सं० सम्भाषी ] [ स्त्री० संभाषिणी ] कहनेवाला । बातचीत करनेवाला ।

**संभाष्य**—वि० [ सं० सम्भाष्य ] भाषण करने योग्य । जिससे बातचीत करना उचित हो ।

**संभिन्न**—वि० [ सं० ] (१) मली भौंति अलग । (२) पूर्ण भन्न । बिलकुल टूटा हुआ । (३) संक्षोभित । चालित । (४) गंदा हुआ । दोस । (५) प्रस्तुटित । खिला हुआ ।

**संभिन्न प्रक्षाप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यर्थ की बातचीत ( बौद्ध शास्त्र में एक पाप ) ।

**संभु**—संज्ञा पुं० दे० “संभु” ।

**संभूत**—वि० [ सं० सम्भूत ] (१) एक साथ उत्पन्न । (२) उत्पन्न । उद्भूत । जात । पैदा । (३) युक्त । सहित । (४) कुछ से कुछ हो गया हुआ । (५) उपयुक्त । योग्य ।

**संभूति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सम्भूति ] (१) उत्पत्ति । उद्भव । (२) बदली । विभूति । वारक्त । (३) योग की विभूति । क्रामात । (४) क्षमता । शक्ति । (५) उपयुक्तता । योग्यता । (६) दस प्रजापति की एक कन्या जो मरीचि की पत्नी थी ।

**संभूय**—अव्य० [ सं० ] एक में । एक साथ । साथे में ।

**संभूय समुत्थान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मिलकर किया हुआ व्यापार । साथे का कारवार । (२) वह विवाद या सुकदमा जो साक्षेदारों में हो ।

**संभूत**—वि० [ सं० सम्भूत ] (१) एकत्र । एकट्ठा । जमा किया हुआ । बटोरा हुआ । (२) पूर्ण । भरा हुआ । लदा हुआ । (३) युक्त । सहित । (४) पाला पोसा हुआ । (५) समारत । सम्मानित । जिसकी इज्जत की गई हो । (६) प्रत्युत । तैयार । (७) निर्मित । बना हुआ ।

संज्ञा पुं० उच्च स्वर । चीख ।

**संभृति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सम्भृति ] (१) एकत्र करने की क्रिया या भाव । (२) सामान । सामग्री । (३) समूह । भीड़ । जमावड़ा । (४) राति । देर । (५) अधिकता । बहुतात । (६) सम्यक भरण पोषण । व्यव पालना पोसना ।

संभृष्ट-वि० [ सं० संभृष्ट ] (१) खूब भुना या खला हुआ। (२) कुदरता। करारा।

संभेद-संज्ञा पुं० [ सं० सम्भेद ] (१) खूब छिदना या भिदना। (२) शिथिल होना। ढीला होकर खिसकना। (३) वियोग। जुदाई। अलग होना। (४) मिले हुए वस्तुओं में परस्पर विरोध उत्पन्न करना। भेदनीति। (५) किस। प्रकार।

(६) भिदना। छटना। मिलना। (७) नदियों का संगम। संभेदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संभेदनां, संभेय, संभित् ] (१) खूब छेदना या आर पार घुसना। घँसना। (२) जुदना। मिलाना। भिदना।

संभोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी वस्तु का भली भाँति उप-योग। सुव्यवहृत व्यवहार। (२) सुरत। रतिक्रीड़ा। मैथुन। (३) श्रंगार रस के तीन भेदों में से एक। संयोग श्रंगार। मिश्राप की दशा। (४) हाथी के कुंभ या मस्तक का एक भाग।

संभोगी-वि० [ सं० सम्भोगिन् ] [ स्त्री० संभोगिनी ] संभोग करने-वाला। व्यवहार कर आनंद लेनेवाला।

संभोग्य-वि० [ सं० ] (१) जिसका व्यवहार होनेवाला हो। जो काम में लाया जानेवाला हो। (२) व्यवहार योग्य। यत्ने लायक।

संभोज-संज्ञा पुं० [ सं० ] भोजन। खाना।

संभोजक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भोजन करनेवाला। भक्षक। खानेवाला। (२) भोजन परसनेवाला।

संभोजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संभोजनीय, संभोग्य, संयुक्त ] (१) भोज। दावत। (२) खाने की वस्तु। खाना।

संभोजनीय-वि० [ सं० ] (१) जो खाया जानेवाला हो। (२) खाने योग्य। भक्षणीय।

संभोग्य-वि० [ सं० ] (१) जो खाया जानेवाला हो। (२) खाने योग्य। भक्षणीय।

संभ्रम-संज्ञा पुं० [ सं० सम्भ्रम ] (१) धूमना। चकर। फेरा। (२) उतावली। हड़बड़ी। आतुरता। (३) घबराहट। व्याकुलता। थकपकाहट। (४) हलचल। धूम। (५) सहम। सिटपिदान।

(६) उक्कड़। गहरी बाह। शौक। हौसला। (७) पूज्य भाव। आदर। मान। गौरव। (८) भूल। चूक। गल्ती। (९) शी। सोमा। छवि। सौंदर्य। (१०) शिव के एक प्रकार के राग।

संभ्रत-वि० [ सं० सम्भ्रान्त ] (१) घुमाया हुआ। चकर दिया हुआ। (२) घबराया हुआ। उद्विग्न। थकपकाया हुआ।

(३) स्फूर्तिपुक्त। तेजस्वी। (४) सम्मानित। प्रतिष्ठित। संभ्रान्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० सम्भ्रान्ति ] (१) घबराहट। उद्वेग। (२) आतुरता। हड़बड़ी। (३) थकपकाहट।

संभ्रान्तनाश-वि० प्र० [ सं० संभ्रान्त ] पूर्णतः सुशोभित होना।

उ०—सम सम्राज सेवा सहित सर्वदा, तुलसि मानस राम पुर विहारि।—तुलसी।

संभ्रत-वि० दे० "सम्भ्रत"।

संमित-संज्ञा स्त्री० दे० "समित"।

संमान-संज्ञा पुं० दे० "समान"।

संमित-वि० दे० "समित"।

संमेलन-संज्ञा पुं० दे० "सम्मेलन"।

संयंता-संज्ञा पुं० [ ए० संयंत ] (१) संयम करनेवाला। रोकने-वाला। निग्रही। (२) शासक। अधिकारी। नेता।

संयंत्रित-वि० [ सं० ] (१) बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। बंद। (२) बंद। (३) रोका हुआ। दबाया हुआ।

संय-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंकाल। पंजर।

संयत्-वि० [ सं० ] (१) संयद। लगा हुआ। (२) अपठित। लगानार।

संयत् पुं० (१) नियत स्थान। यदी हुई जगह। (२) वादा। करार। (३) दगाड़ा। लड़ाई। (४) एक प्रकार की हूँट जो यज्ञ की वेदी धनाने में काम आती थी।

संयत-वि० [ सं० ] (१) यद। बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। (२) पकड़ में रखा हुआ। दबाय में रखा हुआ। (३) रोका हुआ। दमन किया हुआ। काबू में लाया हुआ। बचावृत। (४) बंद किया हुआ। कूँद। (५) क्रमयद। व्यवस्थित।

नियमयद। फायदे का पायद। (६) उच्यत। सँवार। सभ्रद। (७) जिसने इंद्रियों और मन को यत्न में किया हो। चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाला। निग्रही। (८) हृद् के भीतर रखा हुआ। उचित सीमा के भीतर रोका हुआ। रैस,—संयत आहार।

संयत् पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) योगी।

संयतप्राण-वि० [ सं० ] जिसने प्राणवायु या श्वास को यत्न में किया हो। प्रणायाम करनेवाला।

संयतारमा-वि० [ सं० संयतारमन् ] जिसने मन को यत्न में किया हो। चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाला।

संयति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यत्न में रखना। निरोध। रोक।

संयत्तु-वि० [ सं० ] बहुत धनवाला। धनवान।

संज्ञा पुं० सूर्य की सात किरणों में से एक।

संयम-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संयमी, संयमित, संयत ] (१) रोक। दाय। यत्न में रखने की क्रिया या भाव। (२) इंद्रियनिग्रह। मन और इंद्रियों को यत्न में रखने की क्रिया। चित्तवृत्ति का निरोध। (३) दानिकारक या खरी वस्तुओं से बचने की क्रिया। परहेज। जैसे,—संयम से रहो तो जल्दी अच्छे हो जाओगे। (४) बाँधना। पंथन। जैसे,—केदा संयम।

(५) बंद करना। रूँदना। (६) योम में प्याज, धारणा और

- समाधि का साधन । (६) प्रयत्न । उद्योग । कोशिश । (७) धृष्टाक्ष के एक पुत्र का नाम । (८) प्रलय ।
- संयमन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रोक । (२) दमन । दबाव । निग्रह । (३) आत्मनिग्रह । मन को यत्न में रखना । (४) बंद रखना । कूद रखना । (५) धंधन में बाँधना । जकड़ना । कसना । (६) सींचना । तानना । (लगाम आदि) (७) यमपुर ।
- संयमनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यमराज की नगरी । यमपुरी । ( यह मेरु पर्वत पर मानी गई है । ) उ०—इतनी यात के सुनते ही अर्जुन धनुष याण ले वहाँ से उठा और चला चला संयमनी पुरी में धर्मराज के पास गया ।—लल्लू ।
- संयमित**—वि० [ सं० ] (१) रोक में रखा हुआ । काबू में लाया हुआ । (२) दमन किया हुआ । (३) बाँधा हुआ । कसा हुआ । (४) पकड़ में लाया हुआ । कसकर पकड़ा हुआ । (५) जो मन को रोके हो । इंद्रियनिग्रही ।
- संयमी**—वि० [ सं० संयमित् ] (१) रोक या दबाव में रखनेवाला । काबू में रखनेवाला । (२) मन और इंद्रियों को यत्न में रखनेवाला । आत्मनिग्रही । योगी । (३) पुरी या हानिकारक घटनुओं से बचानेवाला । परहेजगार ।
- संज्ञा पुं० शासक । राजा ।
- संयात**—वि० [ सं० ] (१) एक साथ गया हुआ । साथ साथ लगा हुआ । (२) पहुँचा हुआ । प्राप्त । दाखिल ।
- संयाति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नहुष के एक पुत्र का नाम । (२) बहुगव या प्रचिन्वित् के पुत्र का नाम ।
- संयान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संयात, संयायी ] (१) सहमगन । साथ जाना । (२) यात्रा । सफ़र ।
- यौ०**—उत्तम संयान = युद्धे को ले चलना ।
- (३) प्रस्थान । रवानगी । (४) गाड़ी । शकट ।
- संयाध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पकवान या मिठाई । पिराक । गोमिया ।
- संयुक्त**—वि० [ सं० ] (१) जुड़ा हुआ । लगा हुआ । (२) मिला हुआ । जैसे,—संयुक्त अक्षर । (३) संबद्ध । लगाव रखता हुआ । (४) सहित । साथ । (५) पूर्ण । लिपि हुए । समन्वित ।
- संयुक्ता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भगवतवादी । आनर्तकी स्त्रिया । (२) एक छंद का नाम ।
- संयुग्**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेल । मिलान । संयोग । समागम । (२) भिड़ना । भिड़त । (३) युद्ध । लड़ाई । उ०—रोषो स्न रावन, शोलाए थरि यान्दूत जानत जे रीति सय संयुग समाज की । धली चतुरंग चंद्र, चपरि हने नितान, तेना सराहन जोग सति-चरराज थी ।—सुलकी ।

- संयुत**—वि० [ सं० ] (१) जुड़ा हुआ । मिला हुआ । बैधा हुआ । (२) संबद्ध । एक साथ लगा हुआ । (३) सहित । साथ । (४) समन्वित ।
- संज्ञा पुं० एक छंद जिसके प्रत्येक धरण में एक संगण, दो जगम और एक गुरु होता है ।
- संयोग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दो घटनुओं का एकमें या एक साथ होना । मेल । मिलान । मिलावट । मिश्रण । (२) समागम । मिलान ।
- विशेष**—यह श्रंगार रस के दो भेदों में से एक है । इसी को संभोग श्रंगार भी कहते हैं ।
- (३) लगाव । संबंध । (४) सहवास । स्त्री पुरुष का प्रसंग । (५) विवाह संबंध । (६) दो राजाओं की किसी बात के लिये संधि । (७) किसी विषय पर निश्च पक्षियों का एक मत होना । मतैक्य । 'मैद' का उलटा । (८) दो या अधिक व्यंजनों का मेल । (९) जोड़ । योग । मीजन । (१०) दो या कई बातों का इकट्ठा होना । इकट्ठा । जैसे,—(क) जब जैसा संयोग होता है, तब वैसा होता है । (ख) यह तो एक संयोग की बात है ।
- मुहा०**—संयोग से = बिना पहले से निश्चित हुए । इतनाकै । देवराज । जैसे,—यदि संयोग से वे आ जाते, तो हर्षद हो जाता ।
- संयोगपृथक्त्व**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ऐसा पृथक् या अलगव जो नित्य न हो । (न्याय)
- संयोगमंत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विवाह के समय पढ़ा जानेवाला वेदमंत्र ।
- संयोगविह्वल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वे पदार्थ जो परस्पर मिलकर राने योग्य नहीं रहते; और यदि खाए जायें तो रोग उत्पन्न करते हैं । जैसे,—घी और मधु । मछली और दूध ।
- संयोगी**—संज्ञा पुं० [ सं० संयोगिन् ] [ स्त्री० संयोगिनी ] (१) मेल का । मिला हुआ । (२) संयोग करनेवाला । मिलनेवाला । (३) वह पुरुष जो अपनी मित्रा के साथ हो । (४) व्याहृत हुआ । विवाहित ।
- संयोगक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मिलानेवाला । जोड़नेवाला । (२) व्याकरण में वह शब्द जो दो शब्दों या वाक्यों के बीच केवल जोड़ने के लिये आता है ।
- संयोजन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संयोगी, संयोजनीय, संयोग्य, संयोजित ] (१) जोड़ने या मिलाने की क्रिया । (२) सहवास । स्त्री पुरुष का प्रसंग । (३) संसार के धंधन में रखनेवाला । भवबंधन का कारण । (बौद्ध) (४) आयोजन । व्यवस्था । प्रबंध । ईतज्ञान ।
- संयोजना**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आयोजन । व्यवस्था । ईतज्ञान । तैयारी । (२) मेल । मिलान । (३) सहवास । स्त्री पुरुष का

प्रसंग। (४) भवबंधन का कारण। जन्म मरण के चक्र में बद्ध रखनेवाली बातें। (बौद्ध)

विशेष—कामराग, रूपराग, अरूपराग, परिव, मानस, रति, शीलप्रतपरमार्य, विचिक्रिस्ता; औदत्य और अविद्या इन सब की गणना संयोजना में होती है।

संयोजित-वि० [ सं० ] मिलाया हुआ। जोड़ा हुआ।

संयोज्य-वि० [ सं० ] (१) संयोजन के योग्य। मिलाने योग्य। (२) जो मिलाया या जोड़ा जानेवाला हो।

संयोधकवृक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यक्ष का नाम।

सैयोजना-संज्ञा-वि० सं० दे० "सैयोजना"।

संरंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रहण करना। पकड़ना। (२) आतुरता। आवेग। क्षोभ। उद्विग्नता। (३) खलबली। बेकली। (४) उत्कंठा। लालसा। शौङ्ग। उरसाह। (५) क्रोध। कोप। (६) शोक। (७) पेट। ठसक। गर्व। (८) फोड़े या घाव का सूजना या लाल होना। (सुश्रुत) (९) घनत्व। अधिकता। अतिरिक्त। बहुतायत। (१०) आरंभ। शुरु। (११) एक अक्ष का नाम।

संरंक्त-वि० [ सं० ] (१) अनुरक्त। आसक्त। प्रेममग्न। (२) सुंदर। मनोहर। (३) झुपित। क्रोध से लाल।

संरक्षक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ सं० संरक्षिका ] (१) रक्षा करनेवाला। रक्षक। (२) देव रेल और पालन पोषण करनेवाला। (३) सहायक। (४) आश्रय देनेवाला।

संरक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संरक्षि, संरक्षिण, संरक्ष्य, संरक्षणीय ] (१) हानि या नाश आदि से बचाने का काम। हिफाजत। (२) देखरेख। निगरानी। जैसे,—वालक उनके संरक्षण में है। (३) अधिकार। कर्त्तव्य। (४) रोक। प्रतिबंध। (५) रक्ष छोड़ना।

संरक्षणीय-वि० [ सं० ] (१) रक्षा करने योग्य। हिफाजत के लायक। (२) रक्ष छोड़ने लायक।

संरक्षित-वि० [ सं० ] (१) अली-भौति रक्षित। हिफाजत से रखा हुआ। (२) अच्छी तरह बचाया हुआ।

संरक्षितव्य-वि० [ सं० ] (१) जिसका संरक्षण करना हो। (२) जिसका संरक्षण उचित हो।

संरक्षी-वि० [ सं० संरक्षि ] [ सं० संरक्षिणी ] (१) संरक्षण करनेवाला। (२) देव भाल करनेवाला।

संरक्ष्य-वि० [ सं० ] (१) जिसका संरक्षण करना हो। (२) जिसका संरक्षण उचित हो।

संरक्ष्य-वि० [ सं० ] (१) खूब मिला हुआ। खूब जुड़ा हुआ। आच्छिन्न। (२) जो एक दूसरे को खूब पकड़े हुए हो। (३) हाथ में हाथ मिलाए हुए। (४) धुंध। उद्विग्न। (५) जैसा में आया हुआ। उच्चैजित। (६) क्रोध से भरा

हुआ। क्रोधान्। जैसे,—संरक्ष्य बचन। (७) क्रुद्ध। नाराज़। (८) सूजा हुआ। फूला हुआ।

संरोधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ध्यान करनेवाला। आराधना करनेवाला। पूजा करनेवाला।

संरोधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संरोधनीय, संरोधित, संरोध्य ] (१) तुष्टीकरण। प्रसन्न करना। (२) पूजा करना। (३) ध्यान। (४) जयजयकार।

संरोधनीय-वि० [ सं० ] पूजा के योग्य।

संरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कोलाहल। शोर। (२) हलचल। धूम।

संरुद्ध-वि० [ सं० ] वृद्धि। चूर चूर।

संरुद्ध-वि० [ सं० ] (१) अच्छी तरह रोका हुआ। (२) घेरा हुआ। (३) अच्छी तरह बंद। (४) आच्छादित। ढँका हुआ। (५) टसाटस भरा हुआ। (६) मना किया हुआ। वर्जित।

संरुद्ध-वि० [ सं० ] (१) अच्छी तरह चढ़ा हुआ। (२) खूब जमा हुआ। अच्छी तरह लगा हुआ। जिसने खूब जड़ पकड़ी हो। (३) अंकुरित। जमा हुआ। (४) अंगूर फँकता हुआ। पूजता हुआ। सूजता या अच्छा होता हुआ। (घाव) (५) प्रकट। आविर्भूत। निकल पड़ा हुआ। (६) धट। प्रगल्भ। (७) प्रौढ़। दृढ़।

संरोचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम। (रामायण)

संरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रोक। ठँका। रुकावट। (२) गद् आदि को चारो ओर से घेरना। घेरा। (३) परिमिति। हृदयदी। (४) बंद करने या सूँदने की क्रिया। (५) अदचन। बाधा। (६) हिंसा। नाश। (७) क्षेप। फँकना।

संरोधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संरोधनीय, संरोध्य, संरुद्ध ] (१) रोकना। ठँकना। रुकावट डालना। (२) घेरना। (३) दृढ़ बंधना। (४) बंद करना। सूँदना। (५) बाधा डालना। कार्य में हानि पहुँचाना। (६) बंदी काना। फँद करना।

संरोधनीय-वि० [ सं० ] रोकने, ठँकने या घेरने योग्य।

संरोध्य-वि० [ सं० ] (१) जो रोकना, ठँका या घेरा जानेवाला हो। (२) जिसे रोकना या घेरना उचित हो।

संरोपण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संरोपणीय, संरोपित, संरोप्य ] (१) पेड़ पौधा लगाना। जमाना। बैधाना। (२) धाव सुजाना। धाव अच्छा करना।

संरोपित-वि० [ सं० ] जमाया या लगाया हुआ।

संरोप्य-वि० [ सं० ] (१) जो जमाया या लगाया जानेवाला हो। (२) जिसे जमाना या लगाना उचित हो।

संरोपित-वि० [ सं० ] ऊपर लगाया हुआ। छोपा हुआ। लेप किया हुआ। पोता हुआ। (सुश्रुत)

संरोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जमाना। ऊपर धाना या ढँकना। (२) धाव पर पपड़ी जमाना। धाव सूजना। अंगूर फँकना।

- (३) अंकुरित होना । जमना । (४) प्रकट होना । आविर्भूत होना ।
- संरोहण—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संरोहणीय, संरोहा ] (१) जमना । ऊपर छांना । (२) घाव पर पपड़ी जमना । घाव सुखना । (३) 'पेड़ पौधा' जमाना । लगाना ।
- संलक्षण—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संलक्षणीय, संलक्षित, संलक्ष्य ] रूप निश्चित करना । लखना । पहचानना । ताड़ना । तमीज़ करना ।
- संलक्षित—वि० [ सं० ] (१) लखा हुआ । पहचान हुआ । ताड़ा हुआ । (२) रूप निश्चित किया हुआ । लक्षणों से जाना हुआ ।
- संलक्ष्य—वि० [ सं० ] जो लखा जाय । जो पहचाना जाय । जो देखने में आ सके ।
- संलक्ष्य क्रम व्यंग्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यंग्य के दो भेदों में से एक । यह व्यंजना जिसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्राप्ति का क्रम लक्षित हो । (साहित्य)
- विशेष—इसके द्वारा वस्तु और अलंकार की व्यंजना होती है । जैसे,—“पेड़ का पत्ता नहीं हिलता” इसका व्यंग्यार्थ हुआ कि “हवा नहीं चलती” । इसमें वाच्यार्थ के उपरांत व्यंग्यार्थ की प्राप्ति लक्षित होती है । रस व्यंजना या भाव-व्यंजना में क्रम लक्षित नहीं होता, इसी से उसे असंलक्ष्य क्रम कहते हैं ।
- संलग्न—वि० [ सं० ] (१) बिल्कुल लगा हुआ । सदा हुआ । मिल हुआ । (२) भिड़ा हुआ । लड़ाई में गुथा हुआ । (३) संबद्ध । जुड़ा हुआ ।
- संलग्न—संज्ञा पुं० [ सं० ] इधर उधर की बातचीत । प्रलाप । गपवाप ।
- संलय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पक्षियों का उतरना या नीचे बैठना । (२) छीन होने की क्रिया । प्रलय । (३) निद्रा । नींद ।
- संलयन—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संलोन ] (१) पक्षियों का नीचे उतरना या बैठना । (२) लय को प्राप्त होना । छीन होना । (३) नष्ट होना । व्यक्त न रहना ।
- संलाप—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) परस्पर वार्तालाप । आपस की बातचीत । (२) नाटक में एक प्रकार का संवाद जिसमें श्लोभ या आवेग नहीं होता, पर धीरता होती है ।
- संलापक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नाटक में एक प्रकार का संवाद । संलाप । (२) एक प्रकार का उपरूपक या छेदा अभिनय ।
- संलसित—वि० [ सं० ] (१) छीन । भली भँति लिस । (२) खूब लगा हुआ ।
- संलौन—वि० [ सं० ] (१) खूब छीन । शच्छी तरह लगा हुआ । (२) आच्छादित । ढका हुआ । (३) संकुचित । सिकुड़ा हुआ ।
- संलेख—संज्ञा पुं० [ सं० ] पूर्ण संयम । (बौद्ध)

- संलोडन—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संलोडित ] (१) (जल आदि को) खूब हिलाना या चलाना । धुँध करना । मयना । (२) खूब हिलाना डुलाना । क्षकशीरना । (३) उलट पुलट करना । उथल-पुथल करना ।
- संघत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वर्ष । संवत्सर । साल । (२) वर्ष विशेष जो किसी संख्या द्वारा सूचित किया जाता है । 'चली आती हुई वर्ष गणना का कोई वर्ष । सन् । जैसे,—यह कौन संवत है ? (३) महाराज विक्रमादित्य के काल से 'चली हुई' मानी जानेवाली वर्ष-गणना ।
- संघत्सर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वर्ष । साल । (२) पाँच पाँच वर्ष के युगों का प्रथम वर्ष ।
- विशेष—प्रमवादि साठ संवत्सर १२ युगों में विभक्त हैं जिनमें से प्रत्येक युग पाँच पाँच वर्ष का होता है । प्रत्येक युग के प्रथम वर्ष का नाम संवत्सर है । इसका देवता अग्नि कहा गया है ।
- (३) शिव का एक नाम ।
- संघदन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) परस्पर कथन । बातचीत । (२) संवाद । सँदेसा । पिंगाम । (३) विचार । आलोचना । (४) जाँच ।
- संघदना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वधा में करने की क्रिया । वशीकरण । (२) मंत्र, ओपधि आदि से कसी को वधा में करने की क्रिया ।
- संघनन—संज्ञा पुं० दे० “संघदन” ।
- संघनना—संज्ञा स्त्री० दे० “संघदना” ।
- संघर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रोक । परिहार । दूर करना । जैसे,—कालसंघर । (२) इंद्रिय निग्रह । मन को दयाना या वधा में करना । (३) बौद्ध मतानुसार एक प्रकार का मत । (४) यौध । बंद । (५) युल । सेतु । (६) चुनना । पसंद करना । (७) कन्या का वर चुनना ।
- संघरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संघरणीय, संघृत ] (१) हटाना । दूर रखना । रोकना । (२) बंद करना । ठोकना । (३) आच्छादित करना । छोपना । (४) छिपाना । गोपन करना । (५) छिपाव । डुसाव । (६) टकन या परदा । (७) घेरा जिसके भीतर सय लोग न जा सकें । (८) यौध । बंद । (९) सेतु । पुल । (१०) किसी विचलित को दयाने या रोकने की क्रिया । निग्रह । जैसे,—कोध संघरण करना । (११) गुदा के चमड़े की तीन परतों में से एक । (१२) ऊँरु के पिता का नाम । (१३) लेने के लिये पसंद करना । चुनना । (१४) कन्या का विवाह के लिये वर या पति चुनना ।
- संघरणीय—वि० [ सं० ] (१) नियारण करने योग्य । रोकने लायक । (२) संगोपनीय । (३) विवाह के योग्य । वरने योग्य ।

संघर्षना-किं प्र० [ सं० संघर्ष ] (१) घनना । हुस्त होना ।  
(२) सजना । अलंकृत होना ।

छ कि० सं० [ सं० स्मरण, हि० स्मरण ] याद करना । स्मरण करना । उ०—संघर्ष आदि एक करतारु ।—जायसी ।

संघर्षा-वि० दे० "संघर्ष" ।

संघर्षिया-वि० दे० "संघर्ष" । उ०—विरिख संघर्षिया दहिने बोला ।—जायसी ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अपनी ओर समेटना । अपने लिये बटोरना । (२) भक्षण । भोजन । चट कर जाना । (३) क्षपत । छग जाना । (४) एक वस्तु का दूसरी में समा जाना या छीन हो जाना । (५) गुणनफल ।

संघर्जन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संघर्जनीय, संघर्जित, संघर्ज ] (१) छीनना । खसोटना । छे लेना । हरण करना । (२) खा जाना । उड़ा जाना ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जुटना । भिड़ना । (शत्रु से) (२) लपेटने की क्रिया या भाव । लपेट । (३) फेंका । घुमाव । चक्कर । (४) प्रलय । कर्पांत । (५) एक कल्प का नाम । (६) लपेटे या घटोटे हुए वस्तु । (७) विंडी । गोला । (८) घड़ी । टिकिया । (९) घना समूह । घनी राशि । (१०) प्रलय काल के सात में से एक । (११) इंद्र का अनुचर एक मेघ जिससे बहुत जल बरसता है ।

विशेष—मेघों के द्रोण, आवर्त, पुष्कलावर्त आदि कई नाम कहे गए हैं । जिस प्रकार आवर्त जिन जल का माना गया है, उसी प्रकार संघर्ष अत्यंत अधिक जलवाला कहा गया है । (१२) मेघ । बादल । (१३) संघर्षर । वर्ष । (१४) एक दिव्यान्न । (१५) एक वैतु का नाम । (१६) ग्रहों का एक योग । (१७) विभीतक । बहेड़ा ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लपेटनेवाला । (२) छप या नाश करनेवाला । (३) कृष्ण के भाई बलराम । (४) बलराम का अन्न लंगला हल । (५) यदुघनल । (६) विभीतक वृक्ष । बहेड़ा । (७) प्रलय नामक मेघ । (८) प्रलय मेघ की अग्नि । (९) एक नाम । (१०) एक ऋषि ।

संघर्षकल्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रलय का एक भेद । (जौद)

संघर्षकी-संज्ञा पुं० [ सं० संघर्षकी ] कृष्ण के भाई बलराम ।

संघर्षकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक केतु का नाम ।

विशेष—यह संघ्या समय पश्चिम दिशा में उदय होता है और आकाश के वृत्तीयाना तट फैला रहता है । इसके पीछे भूमिल रंग लिए ताप वर्ष की होती है । इसके उदय का कल राजाओं का मान बढ़ा गया है ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संघर्षनीय, संघर्षित, संघर्ष ] (१) लपेटना । (२) फेंका या चक्कर देना । (३) किसी ओर

फिरना । प्रवृत्त होना । (४) पहुँचना । प्राप्त होना । (५) हल नामक अस्त्र ।

संघर्षनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शृष्टि का छप । प्रलय ।

संघर्षनीय-वि० [ सं० ] लपेटने योग्य । फेरने योग्य ।

संघर्षि-संज्ञा स्त्री० दे० "संघर्षि" ।

संघर्षिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लपेटे हुए वस्तु । (२) यत्नी । (३) कमल का बीजा पत्ता । (४) कोई बीजा हुआ पत्ता ।

(५) बलराम का अस्त्र, हल । लंगल ।

संघर्षित-वि० [ सं० ] (१) लपेटा हुआ । (२) फेंका या घुमाया हुआ ।

संघर्षक-संज्ञा पुं० [ सं० ] यदुनेवाला ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संघर्षनीय, संघर्षित, संघर्ष ] (१) शृष्टि की प्राप्त होना । यदना । (२) पालना । पोसना । (३) बढ़ाना । उचित करना ।

संघर्षनीय-वि० [ सं० ] (१) यदने या यदने योग्य । (२) पालने पोसने योग्य ।

संघर्षित-वि० [ सं० ] (१) बढ़ा हुआ । (२) यदया हुआ । (३) पाला पोसा हुआ ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० दे० "संघर्ष" ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संघर्षनीय, संघर्षित ] (१) भिड़ना । जुटना । (शत्रु से) (२) मेल । मिलान । संयोग । (३) मिलावट । मिश्रण ।

संघर्षित-वि० [ सं० ] (१) भिड़ा हुआ । जुटा हुआ । (शत्रु से) (२) मिला हुआ । (३) युक्त । सहित । (४) विरा हुआ ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] बस्ती । गाँव या कस्बा ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यहन करनेवाला । छे जानेवाला । (२) एक वायु जो आकाश के सात मार्गों में से तीसरे मार्ग में रहती है । (३) अग्नि जो सात सिद्धांतों में से एक ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वहन करना । छे जाना । दोना । (२) दिखाना । प्रदर्शित करना ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] यातचीत करने या कथा कहने का ढंग । (यह ६४ कथाओं में से एक है ।)

संघर्षिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिपाई । थंगाटक ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यातचीत । कथोपकथन । (२) खबर । हाल । समाचार । घृष्टान । (३) प्रसंग । कथा । चर्चा । (४) नियति । निवृत्ति । (५) मामला । मुकदमा । ध्वंदा । (६) महमति । एक राय । (७) स्वीकार । राजसंघी ।

संघर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मापन करनेवाला । यातचीत करनेवाला । (२) सहमत होनेवाला । एक-राय होनेवाला । (३) स्वीकार करनेवाला । माननेवाला । राजी होनेवाला । (४) यजनेवाला ।

संवादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संवादीय, संवदित, संवदी, संवाय ]  
 (१) भाषण । वातचीत करना । (२) सहमत होना । एक-  
 मत होना । (३) राजी होना । मानना । (४) घजाना ।  
 संवादिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कीट । कीड़ा । (२) पिपीलिका ।  
 च्यूटी ।  
 संवादित-वि० [ सं० ] (१) बोलने में प्रवृत्त किया हुआ । वातचीत  
 में लगाया हुआ । (२) राजी किया हुआ । मनाया हुआ ।  
 संवादिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) साहस्य । समानता । (२)  
 एक मेल का होना ।  
 संवादी-वि० [ सं० संवादिन ] [ स्त्री० संवादिनी ] (१) संवाद करने-  
 वाला । वातचीत करनेवाला । (२) सहमत होनेवाला । राजी  
 होनेवाला । (३) अनुकूल होनेवाला । (४) घजानेवाला ।  
 संज्ञा पुं० संगीत में वह स्वर जो वादी के साथ सप्त स्वरों  
 के साथ मिलता और सहायक होता है । जैसे,—पंचम से  
 षडज तक जाने में बीच के तीन स्वर संवादी होंगे ।  
 संवार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आच्छादन । ढँकना । छिपाना ।  
 (२) शब्दों के उच्चारण में कंठ का आकुंचन या दबाव ।  
 (३) उच्चारण के बाल प्रयोजों में से एक जिसमें कंठ का  
 आकुंचन होता है । 'विचार' का उलटा । (४) बाधा ।  
 अकुंचन ।  
 संवारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संवारण्य, संवारित, संवार्य ] (१)  
 हटाना । दूर करना । निवारण करना । (२) रोकना । न  
 आने देना । (३) निषेध करना । मना करना । (४)  
 छिपाना । ढँकना ।  
 संवारीय-वि० [ सं० ] (१) हटाने या दूर करने योग्य । (२)  
 रोकने योग्य । (३) छिपाने या ढँकने योग्य ।  
 संवारना-क्रि० स० [ सं० संवार्न ] (१) सजाना । अलंकृत  
 करना । (२) दुस्त करना । ठीक करना । (३) क्रम से  
 रखना । ठीक ठीक लगाना । (४) कार्य सुचारु रूप से  
 संपन्न करना । काम ठीक करना ।  
 मुद्रा—विगड़ी संवारना = विगड़ी बात बनाना ।  
 संवारित-वि० [ सं० ] (१) रोकना । हटाया हुआ । (२)  
 मना किया हुआ । (३) ढँका हुआ ।  
 संवार्प-वि० [ सं० ] (१) हटाने योग्य । दूर करने योग्य । (२)  
 मना करने योग्य । रोकने योग्य । (३) ढँकने या छिपाने  
 योग्य ।  
 संवास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साथ बसना या रहना । (२)  
 परस्पर संबंध । (३) सहावास । प्रसंग । मैथुन । (४)  
 वह खुला हुआ स्थान जहाँ लोग विनोद या मन बहलाव  
 के निमित्त एकत्र हैं । (५) सभा । समाज । (६) मकान ।  
 घर । रहने का स्थान । (७) सार्वजनिक स्थान ।  
 संवाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ले जाना । ढोना । (२) पैर दबाना ।

(३) खुला उपवन जहाँ लोग एकत्र हों । (४) बाजार । मंडी ।  
 (५) पीड़न । सताना । शुल्म ।  
 संवाहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ले जानेवाला । पहुँचानेवाला । (२)  
 ढोनेवाला । (३) बदन मलनेवाला । पैर दबानेवाला । पवि  
 पखोटेनेवाला ।  
 संवाह्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संवाहनीय, संवाहित, संवाही, संवाप ]  
 (१) उदाकर ले चलना । ढोना । (२) ले जाना । पहुँचाना ।  
 (३) चलाना । परिचालन । (४) शरीर की मांसि ।  
 हाथ पैर दबाना या मलना ।  
 संवाहित-वि० [ सं० ] (१) ले गया हुआ । ढोया हुआ । (२) पहुँ-  
 चाया हुआ । (३) चलाया हुआ । परिचालित । (४) जिसका  
 शरीर-मर्दन हुआ हो । जिसके हाथ पैर दबाए गए हों ।  
 संवाही-वि० [ सं० संवाहिन ] [ स्त्री० संवाहिनी ] (१) ले जानेवाला ।  
 पहुँचानेवाला । (२) ढोनेवाला । (३) चलानेवाला । (४)  
 अंग मर्दन करनेवाला । हाथ पैर दबानेवाला ।  
 संवाह्य-वि० [ सं० ] (१) वहन करने योग्य । (२) मलने योग्य ।  
 दबाने योग्य ।  
 संविज्ञ-वि० [ सं० ] (१) क्षुब्ध । उद्विग्न । घबराया हुआ । (२)  
 भौत । आतुर । घरा हुआ ।  
 संविज्ञ-वि० [ सं० ] अच्युती तरह जानकार ।  
 संविज्ञान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मन्त्र्य बोध । पूर्ण ज्ञान । (२)  
 सहमति । एक मत । (३) स्वीकृति । मंजूरी ।  
 संवितिका फल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेव । सेवीफल ।  
 संवित्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रतिपत्ति । (२) अविवाद । ऐक-  
 मत्य । एक राय । (३) चेतना । संज्ञा । (४) अनुभव । (५)  
 बुद्धि ।  
 संविद्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चेतना । चैतन्य । ज्ञान शक्ति ।  
 (२) बोध । ज्ञान । समझ । (३) बुद्धि । महत्त्व । (सांख्य)  
 (४) संवेदन । अनुभूति । (५) योग की एक भूमि जिसकी  
 प्राप्ति प्रणयाम से होती है । (६) समझौता । करार । वादा ।  
 (७) मिलने का स्थान जो पहले से दहाराया हो । (८) बुद्धि ।  
 उपाय । तदनीर । (९) वृत्त । हाल । संवाद । (१०) वैधी  
 हुई परंपरा । रीति । प्रथा । (११) नाम । (१२) तोषण !  
 तुष्टि । (१३) भाँग । (१४) युद्ध । लड़ाई । (१५) युद्ध की  
 लक्षणा । (१६) संकेत । इशारा । निदान । (१७) प्राप्ति !  
 लाभ । (१८) संपत्ति । जायदाद ।  
 संविद्-वि० [ सं० ] चेतन । चेतनायुक्त ।  
 संज्ञा पुं० वादा । समझौता । इकरार ।  
 संविदांमंजरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गौजा ।  
 संविदित-वि० [ सं० ] (१) पूर्णतया ज्ञात । जाना हुआ । (२)  
 हँसा हुआ । खोजा हुआ । (३) सँपाया हुआ । सब की राय

से उहराया हुआ। (४) वादा किया हुआ। जिसका फल हुआ हो। (५) समझाया हुआ। उपदिष्ट।

**संविद्वाद्-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यूरोपीय दर्शन का एक सिद्धांत जिसमें वेदांत के समान धैतन्य के अतिरिक्त और किसी वस्तु की पारमार्थिक सत्ता नहीं स्वीकार की गई है। धैतन्यवाद।

**संविधा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) रहन सहन। आचार व्यवहार। (२) व्यवस्था। आयोजन। प्रबंध। ढील।

**संविधान-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) व्यवस्था। आयोजन। प्रबंध। (२) विधि। रीति। दस्तर। (३) रचना। सजना। (४) विधिप्रता। अनुष्ठान।

**संविधानक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] विधिय क्रिया या व्यापार। अलौकिक घटना।

**संविधि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) विधान। रीति। दस्तर। (२) व्यवस्था। प्रबंध। ढील।

**संविधेय-वि०** [ सं० ] (१) जिसका ढील या प्रबंध करना हो। (२) जिसे करना हो। (३) जिसका प्रबंध उचित हो।

**संविमल-वि०** [ सं० ] (१) अच्छी तरह बँधा हुआ। (२) जिसके सब भंग शीक हिसाब से हों। सुढील। (३) प्रदत्त। दिया हुआ।

**संविमजन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ वि० संविमजन्य ] (१) बँट। बँटाई। (२) साक्षा।

**संविभाग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) पूर्णतया भाग करना। हिस्सा करना। बँट। बँटाई। (२) प्रदान।

**संविषा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] अतीस। अतिविषा।

**संविष्ट-वि०** [ सं० ] (१) आनत। प्राप्त। पहुँचा हुआ। (२) विश्राम करता हुआ। लेटा हुआ। सोया हुआ। (३) निविष्ट। धँदा हुआ।

**संवीक्षण-संज्ञा पुं०** [ सं० संवीक्षण्य, संवीक्षित, संवीक्ष्य ] (१) इधर उधर देखने की क्रिया। अवलोकन। (२) अन्वेषण। पोज। तलाश।

**संवीत-वि०** [ सं० ] (१) आवृत। ढका हुआ। छिपा हुआ। (२) कवच धारण किए हुए। (३) पहने हुए। (४) रूढ़। रुका हुआ। (५) न दिखाई देना हुआ। नजर से मायब। अदृश्य। (६) अनदेखा किया हुआ। जिसे देख कर भी टाल गए हों।

**संज्ञा पुं०** (१) पहनावा। यक। आच्छादन। (२) सचेद फटेनी।

**संवीती-वि०** [ सं० संवीक्षित ] जो यज्ञोपवीत पहने हो।

**संवृक-वि०** [ सं० ] (१) छिपा हुआ। छिपे हुए। (२) उदाया हुआ। खरापा साया हुआ।

**संवृत्त-वि०** [ सं० ] (१) आच्छादित। ढका हुआ। बंद किया हुआ। (२) चिा हुआ। (३) कपेटा हुआ। (४) युक्त। मिला। पूर्ण। (५) मलिन। (६) दबाया हुआ। दमन

किया हुआ। (७) जो किनारे या भला हो गया हो। (८) रँधा हुआ। (गला) (९) धीमा किया हुआ।

**संज्ञा पुं०** (१) वरण देवता। (२) गुप्त स्थान। (३) एक प्रकार का जलवेतस्। एक प्रकार का वंत।

**संवृतकौष्ठ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] कौष्ठवृद्धता। कठिनवृत्त।

**संवृत मंत्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] गुप्त मंत्रगा। भेद की बातचीत।

**संवृति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] ढकने या छिपाने की क्रिया।

**संवृत्त-वि०** [ सं० ] (१) पहुँचा हुआ। समागत। प्राप्त। (२) घटित। जो हुआ हो। (३) जो पूरा हुआ हो। (कामना, इच्छा आदि।) (४) उत्पन्न। पैदा। (५) उपस्थित। मौजूद।

**संज्ञा पुं०** (१) वरुण देवता। (२) एक नाग का नाम।

**संवृत्ति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) निष्पत्ति। सिद्धि। (२) एक देवी का नाम।

**संवृद्ध-वि०** [ सं० ] (१) बढ़ा हुआ। (२) उन्नत।

**संवृद्धि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) बढ़ने की क्रिया या भाव। बढ़ती। अधिकता। (२) घन आदि की अधिकता। समृद्धि।

**संवेग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) पूर्ण वेग या तेजी। (२) आवेग। पवराट्ट। उद्भिप्रता। स्वल्पली। (३) भय। सहम। (४) जोर। अतिरेक।

**संवेजन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ वि० संवेजनीय, संवेजित, संवेज ] (१) उद्भिन्न करना। घबरााना। खलपली डालना। (२) सहमाना। डराना। (३) भड़काना। उोजित करना।

**यौ०—**रोम-संवेजन = रंगते बड़े रीना। पुरुक रोना। नेत्र संवेजन = कर्ण का पिचर्राग लगाना।

**संवेद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सुख दुःख आदि का जान पढ़ना। अनुभव। वेदना। (२) ज्ञान। बोध।

**संवेदन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ वि० संवेदनीय, संवेदित, संवेद्य ] (१) अनुभव करना। सुख दुःख आदि की प्रतीति करना। छेन, आनंद, पीत, ताप आदि को मन में मालूम करना। (२) जताना। प्रकट करना। बोध कराना। (३) नकछिकनी नाम की घास।

**संवेदनीय-वि०** [ सं० ] (१) अनुभव योग्य। प्रतीति योग्य। (२) जताने लायक। बोध कराने योग्य।

**संवेदित-वि०** [ सं० ] (१) अनुभव किया हुआ। प्रतीत किया हुआ। (२) जताया हुआ। बोध कराया हुआ। बताया हुआ।

**संवेद्य-वि०** [ सं० ] (१) अनुभव करने योग्य। प्रतीत करने योग्य। मन में मालूम करने लायक। (२) सूचने की अनुभव करने योग्य। जताने योग्य। बताने लायक।

**यौ०—**स्वसंवेद्य = जानने ही अनुभव करने योग्य। जो हमने जो बताया न जा सके, बार ही स्वयं मालूम किया जा सके।

**संवेद्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) पास जाना। पहुँचना। (२) प्रवेश। घुसना। (३) घटना। आसन जमाना। (४) छटना। सोना।



**संवादन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संवादनीय, संवादि, संवादी, संवाण ]  
 (१) भाषण । यातचीत करना । (२) सहमत होना । एक-  
 मत होना । (३) राजी होना । मानना । (४) वजाना ।  
**संवादिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कौट । कीड़ा । (२) पिपीलिका ।  
 चूँटी ।  
**संवाहित**-वि० [ सं० ] (१) बोलने में प्रवृत्त किया हुआ । यातचीत  
 में लगाया हुआ । (२) राजी किया हुआ । मनाया हुआ ।  
**संवादिता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सादर्य । समानता । (२)  
 एक मेल का होना ।  
**संवादी**-वि० [ सं० संवादिन् ] [ स्त्री० संवादिनी ] (१) संवाद करने-  
 वाला । यातचीत करनेवाला । (२) सहमत होनेवाला । राजी  
 होनेवाला । (३) अनुकूल होनेवाला । (४) वजानेवाला ।  
 संज्ञा पुं० संगीत में वह स्वर जो वार्धा के साथ सच स्वरों  
 के साथ मिलता और सहायक होता है । जैसे,—पंचम से  
 पडज तक जाने में बीच के तीन स्वर संवादी होंगे ।  
**संवाद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आच्छादन । ढाँकना । छिपाना ।  
 (२) शब्दों के उच्चारण में कंठ का आकुंचन या दबाव ।  
 (३) उच्चारण के बाह्य प्रयत्नों में से एक जिसमें कंठ का  
 आकुंचन होता है । 'विचार' का उल्टा । (४) बाधा ।  
 अकुंचन ।  
**संवारण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संवारणीय, संवारित, संवार्य ] (१)  
 हटाना । दूर करना । निवारण करना । (२) रोकना । न  
 आने देना । (३) निषेध करना । मना करना । (४)  
 छिपाना । ढाँकना ।  
**संवारणीय**-वि० [ सं० ] (१) हटाने या दूर करने योग्य । (२)  
 रोकने योग्य । (३) छिपाने या ढाँकने योग्य ।  
**संवारना**-क्रि० सं० [ सं० संवरान ] (१) सजाना । अलंकरण  
 करना । (२) दुरुस्त करना । ठीक करना । (३) क्रम से  
 रखना । ठीक ठीक लगाना । (४) कार्य सुचारु रूप से  
 संपन्न करना । काम ठीक करना ।  
**मुद्दा**—विगड़ी संवारना = विगड़ी बात बनाना ।  
**संवारित**-वि० [ सं० ] (१) रोका हुआ । हटाया हुआ । (२)  
 मना किया हुआ । (३) ठीक हुआ ।  
**संवाद्य**-वि० [ सं० ] (१) हटाने योग्य । दूर करने योग्य । (२)  
 मना करने योग्य । रोकने योग्य । (३) ढाँकने या छिपाने  
 योग्य ।  
**संवास**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साथ बसना या रहना । (२)  
 परस्पर संबंध । (३) सहवास । प्रसंग । मैथुन । (४)  
 वह खुला हुआ स्थान जहाँ लोग चिनोद या मन प्रहलाय  
 के निमित्त एकत्र हों । (५) संभा । समाज । (६) मकान ।  
 घर । रहने का स्थान । (७) सार्वजनिक स्थान ।  
**संवाह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ले जाना । लेना । (२) पर दवाना ।

(३) खुला उपवन जहाँ लोग एकत्र हों । (४) वाजार । मंडी ।  
 (५) पीडन । सताना । ज़ुलम ।  
**संवाहक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ले जानेवाला । पहुँचानेवाला । (२)  
 देनेवाला । (३) धन मलनेवाला । पर दवानेवाला । पाँव  
 पखोटेनेवाला ।  
**संवाहन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संवाहनीय, संवाहित, संवाही, संवाह्य ]  
 (१) उठाकर ले चलना । लेना । (२) ले जाना । पहुँचाना ।  
 (३) चलायाना । परिचालन । (४) शरीर की मालिका ।  
 हाथ पर दवाना या मलना ।  
**संवाहित**-वि० [ सं० ] (१) ले गया हुआ । ढोपा हुआ । (२) पहुँ-  
 चाया हुआ । (३) चलाया हुआ । परिचालन । (४) जिसका  
 शरीर-मर्दन हुआ हो । जिसके हाथ पाँव दबाए गए हों ।  
**संवाही**-वि० [ सं० संवाहिन् ] [ स्त्री० संवाहिनी ] (१) ले जानेवाला ।  
 पहुँचानेवाला । (२) देनेवाला । (३) चलायानेवाला । (४)  
 शंग मर्दन करनेवाला । हाथ पर दवानेवाला ।  
**संवाह्य**-वि० [ सं० ] (१) वहन करने योग्य । (२) मलने योग्य ।  
 दवाने योग्य ।  
**संविज्ञ**-वि० [ सं० ] (१) ध्रुव्य । उद्विग्न । घबराया हुआ । (२)  
 भीत । आतुर । डरा हुआ ।  
**संविद्य**-वि० [ सं० ] अन्धी तरह जानकार ।  
**संविज्ञान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सम्यक् बोध । पूर्ण ज्ञान । (२)  
 सहमति । एक मत । (३) स्वीकृति । मंजूरी ।  
**संवित्तिका** फल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेव । सेवीफल ।  
**संविच्छि**-शब्दा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रतिपत्ति । (२) भविष्यद । देव-  
 मन्थ । एक राय । (३) चेतना । संज्ञा । (४) अनुभव । (५)  
 बुद्धि ।  
**संविद्**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चेतना । चैतन्य । ज्ञान शक्ति ।  
 (२) बोध । ज्ञान । समझ । (३) बुद्धि । महत्त्व । (सांख्य)  
 (४) संवेदन । अनुभूति । (५) योग की एक भूमि जिसकी  
 प्राप्ति प्रणायाम से होती है । (६) समझौता । करार । वादा ।  
 (७) मिलने का स्थान जो पहले से दहाराया हो । (८) युक्ति ।  
 उपाय । तद्विरी । (९) वृत्तान्त । हाल । संवाद । (१०) मैथी  
 हुई परंपरा । रीति । प्रथा । (११) नाम । (१२) तापय ।  
 तृष्टि । (१३) भाँग । (१४) युद्ध । लड़ाई । (१५) युद्ध की  
 ललकार । (१६) संकेत । इशारा । निशान । (१७) प्राप्ति ।  
 लाभ । (१८) संपत्ति । जायदाद ।  
**संविद्**-वि० [ सं० ] चैतन । चेतनायुक्त ।  
 संज्ञा पुं० वादा । समझौता । इकरार ।  
**संविद्मंजरी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गौजा ।  
**संघदित**-वि० [ सं० ] (१) एषंतया ज्ञात । जाना हुआ । (२)  
 हँसा हुआ । खोजा हुआ । (३) तै पाया हुआ । सब की राय

से उदराया हुआ। (४) वादा किया हुआ। जिसका कार  
हुआ हो। (५) समसाया पुसाया हुआ। उपदिष्ट।  
संविदाव-संज्ञा पुं० [ सं० ] यूरोपीय दर्शन का एक सिद्धांत जिसमें  
वेदोंत के समान धैतन्य के अतिरिक्त और किसी वस्तु की  
पारमार्थिक सत्ता नहीं स्वीकार की गई है। धैतन्य वाद।  
संविधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रहन सहन। आचार व्यवहार।  
(२) व्यवस्था। आयोजन। प्रबंध। ढील।  
संविधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्यवस्था। आयोजन। प्रबंध।  
(२) विधि। रीति। दल्लूर। (३) रचना। सजना। (४)  
विधियता। अनुदापन।  
संविधानक-संज्ञा पुं० [ सं० ] विचित्र क्रिया या व्यापार। अली-  
किक घटना।  
संविधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विधान। रीति। दल्लूर। (२)  
व्यवस्था। प्रबंध। ढील।  
संविधेय-वि० [ सं० ] (१) जिसका ढील या प्रबंध करना हो।  
(२) जिसे करना हो। (३) जिसका प्रबंध उचित हो।  
संघिमक-वि० [ सं० ] (१) अच्छी तरह बँधा हुआ। (२) जिसके  
सब अंग ठीक-हिसाब से हों। सुगौल। (३) मद्रत।  
दिया हुआ।  
संघिभजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संविगजर्नय ] (१) रौट।  
बँटाई। (२) साहा।  
संघिभाग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पूर्णतया भाग करना। हिस्सा  
करना। बाँट। बँटाई। (२) मदान।  
संघिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतीस। अतिविधिया।  
संघिद-वि० [ सं० ] (१) आगत। प्राप्त। पहुँचा हुआ। (२)  
विधाम करता हुआ। लेटा हुआ। सोया हुआ। (३)  
निविष्ट। बैसा हुआ।  
संघीसृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० संवीवणीय, संवीधिय, संवीधय ] (१) इधर  
उधर देखने की क्रिया। अवलोकन। (२) अन्वेषण। खोज।  
तलाश।  
संघीत-वि० [ सं० ] (१) आवृत। ढका हुआ। छिपा हुआ। (२)  
कथक धारण किए हुए। (३) पहने हुए। (४) रुद्ध। रुका  
हुआ। (५) न दिखाई देता हुआ। नजर से गायब। अदृश्य।  
(६) अनदेखा किया हुआ। जिसे देख कर भी टाल गये हैं।  
संज्ञा पुं० (१) पहनाया। यक्ष। आच्छादन। (२) सफेद  
कट भी।  
संघीती-वि० [ सं० संवीधिय ] जो यशोपवीत पहने हों।  
संघुक-वि० [ सं० ] (१) घीना हुआ। हल्य किया हुआ। (२)  
उदाया हुआ। सरथा खाया हुआ।  
संघृत-वि० [ सं० ] (१) आच्छादित। ढका हुआ। बंद किया  
हुआ। (२) पिता हुआ। (३) कपेटा हुआ। (४) युक्त।  
सहित। पूर। (५) रहित। (६) दबाया हुआ। दमन

किया हुआ। (७) जो किनारे या अलग हो गया हो। (८)  
हँधा हुआ। (गला) (९) धीमा किया हुआ।  
गंगा पुं० (१) वरुण देवता। (२) गुल स्थान। (३) एक  
प्रकार के जलवेतसू। एक प्रकार का बँत।  
संघृतकोष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कोष्ठपद्धता। कम्पिपत।  
संघृत मंत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुप्त मंत्रणा। भेद की वातचीत।  
संघृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ढकने या छिपाने की क्रिया।  
संघृत्-वि० [ सं० ] (१) पहुँचा हुआ। समागत। प्राप्त। (२)  
घटित। जो हुआ हो। (३) जो पूरा हुआ हो। (कामना,  
इच्छा आदि।) (४) उत्पन्न। पैदा। (५) उपस्थित।  
सौगद।  
संज्ञा पुं० (१) वरुण देवता। (२) एक नाग का नाम।  
संघृत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) निष्पत्ति। सिद्धि। (२) एक देवी  
का नाम।  
संघृत्-वि० [ सं० ] (१) बढ़ा हुआ। (२) उन्नत।  
संघृत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बढ़ने की क्रिया या भाव।  
बढ़ती। अधिकता। (२) धन आदि की अधिकता। समृद्धि।  
संवेग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पूर्ण वेग या तेजी। (२) आवेग।  
परावहट। उद्दिप्तता। पल्लयती। (३) भय। सहस। (४)  
क्षोर। अनिरेक।  
संवेजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संवेजनीय, संवेजित, संवेज ] (१)  
उद्दिप्त करना। पराराना। खलबली डालना। (२) सहमाना।  
हराना। (३) भड़काना। उर्जित करना।  
यौ०—रोम-संवेजन = रंगरेत तरे होना। पुष्क होना। नेत्र  
संवेजन = सगँद या पिचयारी लगाना।  
संवेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुख दुख आदि का जान पड़ना।  
अनुभव। वेदना। (२) ज्ञान। बोध।  
संवेदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संवेदनीय, संवेदिप, संवेप ] (१) अनु-  
भव करना। सुख दुःख आदि की प्रतीति करना। हेच, आनंद,  
द्रीन, ताप आदि को मन में मादस करना। (२) जताना।  
प्ररुट करना। बोध कराना। (३) नकछिकनी नाम की घास।  
संवेदनीय-वि० [ सं० ] (१) अनुभव योग्य। प्रतीति योग्य।  
(२) जताने लायक। बोध कराने योग्य।  
संवेदित-वि० [ सं० ] (१) अनुभव किया हुआ। प्रतीति किया हुआ।  
(२) जतया हुआ। बोध कराया हुआ। बताया हुआ।  
संवेद्य-वि० [ सं० ] (१) अनुभव करने योग्य। प्रतीति करने योग्य।  
मन में मादस करने लायक। (२) दूसरे को अनुभव कराने  
योग्य। जताने योग्य। बताने लायक।  
यौ०—स्वसंवेद्य = जताने हो अनुभव करने योग्य। जो दूसरे को  
बताना न आ सके, आप ही आप मादस किया जा सके।  
संवेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पास जाना। पहुँचना। (२) प्रवेश।  
पुसना। (३) पैटना। आसन जमाना। (४) छेदना। क्षोभा।

पढ़ रहना। (५) कामशास्त्रानुसार एक प्रकार का रतिबंध।  
(६) काष्ठस्य। पीड़ा। पादा। (७) अग्नि देवता, जो रति के अधिष्ठाता माने गए हैं।

**संवेशक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ठीक ठिकाने में। रखनेवाला। नरतीय देनेवाला।

**संवेशन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ संवेपथीय, संवेधित, संवेश ] (१) बैठना। (२) लेटना। पढ़ रहना। सोना। (३) घुसना। प्रवेश करना। (४) रति। रमण। समागम।

**संवेश्य**—वि० [ सं० ] (१) लेटने योग्य। (२) घुसने योग्य।

**संवेष्ट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] लपेटने का कपड़ा इत्यादि। बैठन। आच्छादन।

**संवेष्टन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संवेष्टित, संवेष्टनीय ] (१) लपेटना। रकना। बंद करना। (२) घेरना।

**संवेष्टहार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह का प्यवहार। अच्छा सल्लू। एक दूसरे के प्रति उत्तम आचरण। (२) मामला। प्रसंग। (३) संसर्ग। लगाव। (४) पूरा सेवन। प्यवहार। उपयोग। इस्तेमाल। (५) लेन देन करनेवाला। प्यवसायी।

**संवेष्टनदार**—(६) प्रचलित शब्द। आम फुहम लफूज।  
**संवेष्टान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उत्तरीय वस्त्र। चादर। दुपट्टा। (२) वस्त्र। आच्छादन। कपड़ा।

**संवेष्टाप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आच्छादन। वस्त्र। (२) ओढ़ना।  
**संशस**—वि० [ सं० ] (१) जो शपथमस्त हो। (२) जिसने किसी के साथ प्रतिज्ञा की या शपथ खाई हो। वाप्यद।

**संश्लिष्टक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह थोड़ा जिसने बिना सफल हुए लड़ाई आदि से न हटने की शपथ खाई हो। (२) वह जिसने यह शपथ खाई हो कि बिना मारे न लड़ेंगे। (३) कुक्षेत्र के युद्ध में एक दल जिसने अयुध के वध की प्रतिज्ञा की थी, पर स्वयं मारा गया था।

**संशब्द**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ललकार। (२) निर्बचन। कथन। (३) स्तुति। प्रदांसा।

**संशाम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पूर्ण शान्ति। पूर्ण तुष्टि। कामना की पूर्ण निवृत्ति।

**संशामन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शांत करना। निवृत्त करना। (२) नष्ट करना। न रहने देना। (३) वह औपथ जो दोनों को बिना घटाए बड़ाए शोधन करे।

**संशामनवर्ग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वे ओपथियों जो संशामन करें। जैसे,—देवशाय, कुट, हृदयी आदि।

**संशय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेट रहना। पढ़ रहना। (२) दो या कई बातों में से किसी एक का भी मन में न बैठना। अनिश्चयात्मक ज्ञान। अनिश्चय। संदेह। शक। श्रुयहा। हुयथा।

**विशेष**—यह न्याय के सोलह पदार्थों में से एक है।

(३) आशंका। खतरा। डर। जैसे,—प्राण का संशय में गड़ना। (४) संदेह नामक काव्यालंकार।

**संशयसम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय दर्शन में २४ जातियों अर्थात् संडन की असंगत युक्तियों में से एक। वादी के दांत को लेकर उसमें साध्य और असाध्य दोनों धर्मों का आतोर काके वादी के साध्य विषय को संदिग्ध सिद्ध करने की प्रयत्न।

**विशेष**—वादी कहता है—“शब्द अनित्य है, उत्पत्ति धर्मवाला होने से, घड़े के समान”। इस पर यदि प्रतिवादी कहे—“शब्द नित्य और अनित्य दोनों हुआ, शून्य होने के कारण, घट और घटव्य के समान” तो उसका यह असंगत उत्तर ‘संशयसम’ होगा।

**संशयस्येप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संशय का दूर होना। (२) एक प्रकार का काव्यालंकार।

**संशयारतक**—वि० [ सं० ] जिसमें संदेह हो। संदिग्ध। श्रुपे का। अनिश्चित।

**संशयार्ता**—संज्ञा पुं० [ सं० संशयाम्न ] जिसका मन किसी बात पर विश्वास न करे। विश्वासहीन। संदेहवादी।

**संशयापन्न**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संशयुक। अनिश्चित।

**संशयालु**—वि० [ सं० ] विश्वास न करनेवाला। बात बात में संदेह करनेवाला।

**संशयित**—वि० [ सं० ] (१) संशययुक्त। दुबधा में पड़ा हुआ। (२) संदिग्ध। अनिश्चित।

**संशयिता**—संज्ञा पुं० [ सं० संशयित् ] संशयकर्ता। संशय करनेवाला।

**संशयी**—वि० [ सं० संशयिन् ] (१) संशय करनेवाला। संदेह करनेवाला। (२) शक्यी।

**संशयोपमा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का उपमा अलंकार जिसमें कई वस्तुओं के साथ समानता संगण के रूप में कही जाती है।

**संशयोपेत**—वि० [ सं० ] संशययुक्त। संदिग्ध। अनिश्चित।

**संशरण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इल्लत करना। चूर्ण करना। (२) भंग करना। तोड़ना। (३) युद्ध का आरंभ। दे० “संशरण”। (४) शरण में जाना। पनाह लेना।

**संशरुक**—वि० [ सं० ] (१) तोड़नेवाला। भंग करनेवाला। (२) दलन या मर्दन करनेवाला।

**संशासन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छा शासन। उत्तम राज्य-प्रबंध। (२) आदेश मंत्र।

**संश्लिष्ट**—वि० [ सं० ] (१) साल पर चढ़ाया हुआ। तेज़ किया हुआ। खोला या तीखा किया हुआ। देया हुआ। (२) उद्यत। उत्तार। तत्पर। आमादा। (३) दृढ़। निरुण। पट्ट। (४) कर्कश। कट्ट। अभिय। कठोर। जैसे,—संश्लिष्ट वचन।

**संश्लिष्ट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो नियम प्रत के पालन में

पक्षा हो। कठोरता से नियम या मत आदि का पालन करनेवाला।

**संश्लिष्ट-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) संदाय। संदेह। शक। (२) खूब देना या लेव करना। खूब सात पर चढ़ाना।

**संश्लिष्ट-वि०** [ सं० ] बसा हुआ। बाकी रहा हुआ।

**संश्लेष-वि०** [ सं० ] (१) जो टंडा हुआ हो। (२) टंड से जमा हुआ।

**संशुद्ध-वि०** [ सं० ] (१) यथेष्ट शुद्ध। विशुद्ध। (२) साफ किया हुआ। शुद्ध किया हुआ। (३) चुकाया हुआ। चुकना किया हुआ। बेबाक। (कण आदि) (४) जोया हुआ। परीक्षित। (५) अपराध से मुक्त किया हुआ। जैसे,— संशुद्ध-पातक।

**संशुद्धि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) पूरी सफाई। पूरी पवित्रता। (२) शरीर की सफाई।

**संशुभ्र-वि०** [ सं० ] (१) विचलित सूखा हुआ। सुशुभ्र। (२) नीरस। (३) जो सहदेय न हो। असहिक।

**संशोधक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) शोधन करनेवाला। सुधारनेवाला। दुस्स या टीक करनेवाला। (२) संस्कार करनेवाला। घुरी से अच्छी दशा में लानेवाला। (३) भदा करनेवाला। सुकानेवाला।

**संशोधन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ वि० संशोधनीय, संशोधित, संशुद्ध, संशोध्य ] (१) शुद्ध करना। साफ करना। (२) दुस्स करना। टीक करना। सुधारना। घुटि या दोष दूर करना। कसर या ऐष निकालना। (३) चुकता करना। भदा करना। बेबाक करना। (कण आदि)

**संशोधनीय-वि०** [ सं० ] (१) साफ करने योग्य। (२) सुधारने या टीक करने योग्य।

**संशोधित-वि०** [ सं० ] (१) खूब शुद्ध किया हुआ। (२) सुधारा हुआ। टीक किया हुआ। दुस्स किया हुआ।

**संशोधी-वि०** [ सं० ] [ सं० संशोधिनी ] (१) सुधारनेवाला। दुस्स करनेवाला। (२) साफ करनेवाला।

**संशोध्य-वि०** [ सं० ] (१) साफ करने योग्य। (२) सुधारने या टीक करने योग्य। (३) जिसका सुधार करना हो। (४) जिसे साफ करना हो।

**संशोषण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ वि० संशोषणीय, संशोषित, संशोष्य ] (१) विष्कूल सोपना। जग्न करना। (२) सुखाना।

**संशोषणीय-वि०** [ सं० ] सोपने योग्य।

**संशोषित-वि०** [ सं० ] सोखा हुआ।

**संशोष्य-वि०** [ सं० ] सोपने योग्य। जिसे सोखना या सुखाना हो।

**संश्रयान-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) (श्रीन मे) टिट्टा हुआ। विकृत हुआ। (२) जमा हुआ।

**संश्रय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) संयोग। मेल। (२) संबध। समानता। लगाव। संपर्क। (३) आश्रय। धारण। पनाह। (४) सहारा। अवलंब। (५) राजाओं का परस्पर रक्षा के लिये मेल। अभिसंधि।

**विशेष**—स्मृतियों में यह राजा के छः गुणों में कहा गया है और दो प्रकार का माना गया है—(१) शत्रु से परीक्षित हो कर दूसरे राजा की सहायता लेना; और (२) शत्रु से पहुँचनेवाली हानि की आशा का से किसी दूसरे बलवान् राजा का आश्रय लेना।

(६) पनाह की जगह। धारण-स्थान। (७) रहने या ठहरने की जगह। घर। (८) उददेश्य। लक्ष्य। मतलब। (९) किसी वस्तु का अंग। हिस्सा।

**संश्रयण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ वि० संश्रयणीय, संश्रय, संश्रित ] (१) सहारा लेना। अवलंब पकड़ना। (२) धारण लेना। पनाह लेना।

**संश्रयणीय-वि०** [ सं० ] (१) सहारा लेने योग्य। (२) धारण लेने योग्य।

**संश्रयी-वि०** [ सं० ] संश्रयिन् ] (१) सहारा लेनेवाला। (२) धारण लेनेवाला।

संज्ञा पुं० मूल्य। नौकर।

**संश्रेय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सुनना। कान देना। (२) अंगीकार। स्वीकार। मानना। राजांमदी। (३) वादा। प्रतिज्ञा। करार।

वि० जो सुना जा सके। सुनाई पढ़नेवाला।

**संश्रवण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ वि० संश्रवणीय, संश्रव ] (१) सुनना। खूब कान देना। (२) अंगीकार करना। स्वीकार-करना। (३) वादा करना। करार करना।

**संश्रान्त-वि०** [ सं० ] विन्तुल यका हुआ। शिथिल। पसमाँदा।

**संश्राव-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ वि० संश्रावणीय, संश्रावित, संश्राव्य ] (१) कान देना। सुनना। (२) अंगीकार। स्वीकार।

**संश्रावक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सुननेवाला। श्रोता। (२) चेला। शिष्य।

**संश्रावित-वि०** [ सं० ] (१) सुनाया हुआ। (२) नीर से पद क्र सुनाया हुआ।

**संश्राव्य-वि०** [ सं० ] (१) सुनने योग्य। (२) सुनाई पढ़नेवाला।

**संश्रित-वि०** [ सं० ] (१) ठुड़ा या मिला हुआ। संयुक्त। (२) लगा हुआ। संलग्न। अँटका हुआ। (३) टँगा हुआ। टिक या ठहरा हुआ। (४) आडिगित। संरिहट। गले या छाती से लगाया हुआ। (५) भाग कर धारण में आया हुआ। जिससे जाकर पनाह ली हो। (६) जिसने आश्रय-प्रदान किया हो। जो निर्वाह के लिये किसी के पास गुण-हो।

पङ्क रहना। (५) कामशास्त्रानुसार एक प्रकार का रतिबंध।  
(६) काष्ठासंग। पीड़ा। पाटा। (७) अग्नि देवता, जो रति  
के अधिष्ठाता माने गए हैं।

संश्लेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ठीक ठिकाने से। रखनेवाला। नरतीय  
देनेवाला।

संश्लेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ संश्लेषण, संश्लेषण, संश्लेषण ] (१)  
बैठना। (२) लेटना। पङ्क रहना। सोना। (३) घुसना।  
प्रवेश करना। (४) रति। रमण। समागम।

संश्लेषण-वि० [ सं० ] (१) लेटने योग्य। (२) घुसने योग्य।

संश्लेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] लपेटने का कपड़ा इत्यादि। बैठन।  
आच्छादन।

संश्लेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संश्लेषण, संश्लेषण ] (१) लपेटना।  
ढँकना। बंद करना। (२) घेरना।

संश्लेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह का ध्यवहार। अच्छा  
सलक। एक दूसरे के प्रति उच्चम आचरण। (२) मामला।  
प्रसंग। (३) संसर्ग। लगाव। (४) पूरा सेवन। ध्यवहार।  
उपयोग। इस्तेमाल। (५) लेन देन करनेवाला। ध्यवसायी।  
दुकानदार। (६) प्रचलित शब्द। आम फुहम लफ्फ़।

संश्लेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उत्तरीय वस्त्र। चादर। दुपट्टा।  
(२) वस्त्र। आच्छादन। कपड़ा।

संश्लेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आच्छादन। वस्त्र। (२) ओढ़ना।  
संश्लेषण-वि० [ सं० ] (१) जो शापग्रस्त हो। (२) जिसने किसी  
के साथ प्रतिज्ञा की या शाप खाई हो। वायव्य।

संश्लेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह योद्धा जिसने बिना सफल  
हुए लड़ाई आदि से न हटने की शपथ खाई हो। (२) वह  
जिसने यह शपथ खाई हो कि बिना मारे न लड़ेंगे। (३)  
कुरुक्षेत्र के युद्ध में एक दल जिसने अर्जुन के वध की प्रतिज्ञा  
की थी, पर स्वयं मारा गया था।

संश्लेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लटकना। (२) निर्वचन। क्रयन।  
(३) स्तुति। प्रशंसा।

संश्लेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पूर्ण शान्ति। पूर्ण तुष्टि। कामना की पूर्ण  
निवृत्ति।

संश्लेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शांत करना। निवृत्त करना। (२)  
नष्ट करना। न रहने देना। (३) वह औपध जो दोनों को  
बिना घटाए वदाए शोधन करे।

संश्लेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे औपधियाँ जो संश्लेषक करे।  
जैसे,—देवशाक, कुट्ट, हल्दी आदि।

संश्लेषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लेट रहना। पङ्क रहना। (२)  
द्यो या कई बातों में से किसी एक का भी मन में न  
बैठना। अनिश्चयात्मक ज्ञान। अनिश्चय। संदेह। शक।  
शुभहा। दुष्यहा।

विशेष—यह न्याय के सोलह पदार्थों में से एक है।

(३) आशंका। खतरा। डर। जैसे,—प्राण का संशय में  
गड़ना। (४) संदेह नामक काव्यालंकार।

संशयसम-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय दर्शन में २४ जातियों अर्थात्  
खंडन की असंगत युक्तियों में से एक। वादी के दृष्टांत को  
लेकर उसमें साध्य और असाध्य दोनों धर्मों को आरोप करके  
वादी के साध्य विषय को संदिग्ध सिद्ध करने की प्रयत्न।

विशेष—वादी कहता है—“शब्द अनित्य है, उत्पत्ति धर्मवाला  
होने से, वदे के समान”। इस पर यदि प्रतिवादी कहे—  
“शब्द नित्य और अनित्य दोनों हुआ, मूर्च्छ होने के कारण,  
घट और पटव के समान” तो उसका यह असंगत दत्त  
‘संशयसम’ होगा।

संशयसम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संशय का दूर होना। (२)  
एक प्रकार का काव्यालंकार।

संशयसमक-वि० [ सं० ] जिसमें संदेह हो। संदिग्ध। शुभदे  
का। अनिश्चित।

संशयसमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संशयसमक जिसका मन किसी बात  
पर विश्वास न करे। विश्वासाहीन। संदेहवादी।

संशयसमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संशयसमक। अनिश्चित।

संशयसमक-वि० [ सं० ] विश्वास न करनेवाला। बात बात में संदेह  
करनेवाला।

संशयसमक-वि० [ सं० ] (१) संशयसमक। दुष्यहा में पड़ा हुआ।  
(२) संदिग्ध। अनिश्चित।

संशयसमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संशयसमक। संशय करनेवाला।

संशयसमक-वि० [ सं० ] संशयसमक। (१) संशय करनेवाला। संदेह करने  
वाला। (२) शक्य।

संशयसमक-संज्ञा स्त्री [ सं० ] एक प्रकार का उपमा अलंकार  
जिसमें कई वस्तुओं के साथ समानता संगय के रूप में  
कही जाती है।

संशयसमक-वि० [ सं० ] संशयसमक। संदिग्ध। अनिश्चित।

संशयसमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दलित करना। चूर्ण करना। (२)  
भंग करना। तोड़ना। (३) युद्ध का आरंभ। दे० “संश-  
रण”। (४) शरण में जाना। पनाह लेना।

संशयसमक-वि० [ सं० ] (१) तोड़नेवाला। भंग करनेवाला। (२)  
दलन या मर्दन करनेवाला।

संशयसमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छा शासन। उत्तम राज्य-  
प्रबंध। (२) आदेश मंत्र।

संशयसमक-वि० [ सं० ] (१) सान पर चढ़ाया हुआ। तेज किया  
हुआ। चोखा या तोखा किया हुआ। टिया हुआ। (३)  
उच्चत। उदार। तत्परा। आमादा। (३) दक्ष। निवृत्त।  
पट्ट। (४) कंकट। कट्ट। अमिय। कटोर। जैसे,—संशय  
वचन।

संशयसमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो नियम मन के पालन में

पका हो। कठोरता से नियम या व्रत आदि का पालन करनेवाला।

**संश्लिष्ट-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) संशय। संदेह। शक। (२) लूब देना या लेंग करना। लूब सान पर चढ़ाना।

**संश्लिष्ट-वि०** [ सं० ] बंधा हुआ। बन्दी रहा हुआ।

**संश्लिष्ट-वि०** [ सं० ] (१) जो टंडा हुआ हो। (२) टंड से जमा हुआ।

**संशुद्ध-वि०** [ सं० ] (१) बधेष्ट शुद्ध। विशुद्ध। (२) साफ किया हुआ। शुद्ध किया हुआ। (३) चुकाया हुआ। चुकना किया हुआ। बेबाक। (कण आदि) (४) जींचा हुआ। परिश्रित। (५) अपराध से मुक्त किया हुआ। जैसे,— संशुद्धपातक।

**संशुद्धि-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) पूरी सफाई। पूरी पवित्रता। (२) शरीर की सफाई।

**संशुद्ध-वि०** [ सं० ] (१) बिल्कुल सूखा हुआ। सुख। (२) नीरस। (३) जो सहदेय न हो। अरसिक।

**संशोधक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) शोधन करनेवाला। सुधारनेवाला। दुरुस्त या शीक करनेवाला। (२) संस्कार करनेवाला। गुरी से अच्छी दशा में लानेवाला। (३) अदा करनेवाला। चुकानेवाला।

**संशोधन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] [ वि० संशोधनीय, संशोधित, संशुद्ध, संशोध्य ] (१) शुद्ध करना। साफ करना। (२) दुरुस्त करना। शीक करना। सुधारना। गृष्टि या दोष दूर करना। कसर या ऐय निकालना। (३) चुकता करना। अदा करना। बेबाक करना। (कण आदि)

**संशोधनीय-वि०** [ सं० ] (१) साफ करने योग्य। (२) सुधारने या शीक करने योग्य।

**संशोधित-वि०** [ सं० ] (१) लूब शुद्ध किया हुआ। (२) सुधारा हुआ। शीक किया हुआ। दुरुस्त किया हुआ।

**संशोधी-वि०** [ सं० ] [ सं० संशोधित ] [ सं० संशोधनी ] (१) सुधारनेवाला। दुरुस्त करनेवाला। (२) साफ करनेवाला।

**संशोध्य-वि०** [ सं० ] (१) साफ करने योग्य। (२) सुधारने या शीक करने योग्य। (३) जिसका सुधार करना हो। (४) जिसे साफ करना हो।

**संशोषण-संज्ञा** पुं० [ सं० ] [ वि० संशोषणीय, संशोषित, संशोष्य ] (१) बिल्कुल सोखना। जड़य करना। (२) सुखाना।

**संशोषणीय-वि०** [ सं० ] सोखने योग्य।

**संशोषित-वि०** [ सं० ] सोखा हुआ।

**संशोष्य-वि०** [ सं० ] सोखने योग्य। जिसे सुखाना या सुखाना हो।

**संश्रय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) श्रान मे) टिट्टरा हुआ। बिल्कुल हुआ। (२) जमा हुआ।

**संश्रय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) संयोग। मेल। (२) संबंध। समागम। लगाव। संपर्क। (३) आश्रय। शरण। पनाह। (४) सहारा। अवलंब। (५) राजाओं का परस्पर रक्षा के लिये मेल। अभिसंधि।

**विशेष**—स्मृतिमें में यह राजा के छः गुणों में कहा गया है और दो प्रकार का माना गया है—(१) शत्रु से पीड़ित हो कर दूसरे राजा की सहायता लेना; और (२) शत्रु से पहुँचनेवाली हानि को आसंका से किसी दूसरे बलवान् राजा का आश्रय लेना।

(६) पनाह बंध जगह। शरणस्थान। (७) रहने या ठहरने की जगह। घर। (८) उद्देश्य। लक्ष्य। मतलब। (९) किसी वस्तु का शंग। हिस्सा।

**संश्रयण-संज्ञा** पुं० [ सं० ] [ वि० संश्रयणीय, संश्रया संश्रित ] (१) सहारा लेना। अवलंब पकड़ना। (२) शरण लेना। पनाह लेना।

**संश्रयणीय-वि०** [ सं० ] (१) सहारा लेने योग्य। (२) शरण लेने योग्य।

**संश्रयी-वि०** [ सं० संश्रयिन् ] (१) सहारा लेनेवाला। (२) शरण लेनेवाला।

संज्ञा पुं० भृत्य। नौकर।

**संश्रय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) सुनना। कान देना। (२) अंगीकार। स्वीकार। मानना। राजांमंदी। (३) वादा। प्रतिज्ञा। कुरार।

वि० जो सुना जा सके। सुनाई पढ़नेवाला।

**संश्रयण-संज्ञा** पुं० [ सं० ] [ वि० संश्रयणीय, संश्रु ] (१) सुनना। लूब कान देना। (२) अंगीकार करना। स्वीकार करना। (३) वादा करना। करार करना।

**संश्रय-वि०** [ सं० ] बिल्कुल धका हुआ। शिथिल। पसर्मादा।

**संश्रय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] [ वि० संश्रयणीय, संश्रयित, संश्रय्य ] (१) कान देना। सुनना। (२) अंगीकार। स्वीकार।

**संश्रावक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) सुननेवाला। श्रोता। (२) चेला। शिष्य।

**संश्रावित-वि०** [ सं० ] (१) सुनाया हुआ। (२) जोर से पढ़ कर सुनाया हुआ।

**संश्राव्य-वि०** [ सं० ] (१) सुनाने योग्य। (२) सुनाई पढ़नेवाला।

**संश्रित-वि०** [ सं० ] (१) उड़ना या मिला हुआ। संयुक्त। (२) लगा हुआ। संलग्न। अँटका हुआ। (३) ढँगा हुआ। टिका या टहारा हुआ। (४) आश्रित। संश्लिष्ट। गले या छाती में लगाया हुआ। (५) भाग कर शरण में गया हुआ। जिसने जाकर पनाह ली हो। (६) जिसने आश्रय-ग्रहण किया हो। जो निर्वाह के लिये किसी के पास गया हो।

(७) जिसने सेवा स्वीकार की हो। (८) जो किसी बात के लिये दूसरे पर निर्भर हो। आसरे या भरोसे पर रहने-वाला। पराधीन।

संज्ञा पुं० संश्रुत। श्रुत्य।

संश्रुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रुत सुना हुआ। (२) श्रुत्य पद-पर सुनाया हुआ। (३) स्वीकृत। माना हुआ। मंगर।

संश्रिता-वि० [ सं० ] (१) श्रुत मिला हुआ। जड़ा हुआ। सदा हुआ। (२) एक साथ किया हुआ। (३) सम्मिलित। मिश्रित। (४) एक में मिलाया हुआ। गड़बड़। (५) आलिखित। परिरंभित। भेंटा हुआ।

संज्ञा पुं० (१) रामि। डेर। समूह। (२) एक प्रकार का चेंदोवा या मंडप। (वास्तु)

संश्लेष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेल। मिलाप। संयोग। (२) मिलान। सदाप। (३) आलिखन। परिरंभण। भेंटना।

संश्लेषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संश्लेषणीय, संश्लेषित, संश्लेष ] (१) एक में मिलाना। गुणना। सदाना। (२) लगाना। भेंटवाना। रेंगना। (३) बाँधने या जोड़नेवाली वस्तु।

संश्लोषित-वि० [ सं० ] (१) मिलाया हुआ। जोड़ा हुआ। सदाया हुआ। (२) लगाया हुआ। अटकया हुआ। (३) आलिखन किया हुआ।

संश्लेषी-वि० [ सं० संश्लेषिन् ] [ स्त्री० संश्लेषिणी ] (१) मिलाने-वाला। जोड़नेवाला। (२) आलिखन करनेवाला। भेंटनेवाला।

संश्लेष-संज्ञा पुं० [ सं० संश्लेष ] संशय। आशंका। उ०—करणा करी छोड़ि पयु दीनो जानि सुरन मन संस। सुरदास प्रभु असुर निकंदन दुष्टन के उर गंस।—सूर।

संश्लेष-संज्ञा पुं० दे० "संशय"।

संस्क-वि० [ सं० ] (१) लगा हुआ। सदा हुआ। मिला हुआ। (२) निदा हुआ। ( नाश से ) ( ३ ) संबद्ध। जड़ा हुआ। (४) प्रवृत्त। लगा हुआ। मशगूल। लिप्त। लीन। (५) आसक्त। लुभाया हुआ। लुब्ध। प्रेम में फँसा हुआ। (६) विषय चासना में लीन। (७) युक्त। सहित। पूर्ण। (८) सघन। घना।

संस्क-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लगाव। मिलान। (२) जोड़। बंध। (३) संबंध। (४) आसक्ति। लगन। (५) लीनता। (६) प्रवृत्ति।

संस्क-वि० [ सं० संस्क = अन्न, कसल + आहार ] (१) उपजाऊ। जिसमें पौदावार अधिक हो। (२) लाभदायक। फायदेमंद।

संसद, संसत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समाज। सभा। संवली। (२) राजसभा। दरबार। (३) धर्मसभा। न्यायसभा। न्यायालय। अदालत। (४) चौपीस दिनों का एक पक्ष।

संसताना-वि० म० दे० "सन्सताना"।

संसय-संज्ञा पुं० दे० "संशय"।

संसरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संसरणीय, संसरित संवन ] (१)

चलना। सरकना। गमन करना। (२) सेना की श्वाय यात्रा। (३) एक जन्म से दूसरे जन्म में जाने की परंपरा। भ्रमचक्र। (४) संसार। जगत्। (५) राजपथ। सड़क। रास्ता। (६) नगर के तोरण के पास यात्रियों के लिये विश्राम स्थान। शहर के फाटक के पास मुसाफिरों के ठहरने का स्थान। धर्मशाला। सराय। (७) युद्ध का आरंभ। लड़ाई का छिड़ना।

संसर्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संबंध। लगाव। संपर्क। (२) मेल। मिलाप। संयोग। (३) सहवास। समागम। संग। साथ। (४) स्त्री पुरुष का सहवास। (५) घालमेल। पणाल। (६) बात, पिछादि में से दो का एक साथ प्रकोप। (सुभ्रत) (७) आयदाद का एक में होना। इजमाल। (८) यह विदु जहाँ एक रेखा दूसरी को काटती हो। (सुखसूत्र) (९) रक्त जट्ट। परिचय। घनिष्टता।

संसर्ग-दोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह वुराई जो किसी के साथ रहने से आवे। संगत का दोष।

संसर्ग-विद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लोगों से मिलने जुलने का हुनर। व्यवहार-कुशलता।

संसर्गाभाव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संसर्ग का अभाव। संबंध का न होना। (२) न्याय में अभाव का एक भेद। किसी वस्तु के संबंध में दूसरी वस्तु का अभाव। जैसे,—घर में घड़ा नहीं है। वि० दे० "अभाव"।

संसर्गा-वि० [ सं० संसर्गिन् ] [ स्त्री० संसर्गिणी ] संसर्ग या लगाव रखनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) मित्र। सहचर। (२) वह जो पंतुक संपत्ति का विभाग हो जाने पर भी अपने भाइयों या कुटुंबियों आदि के साथ रहता हो।

संज्ञा स्त्री० बुद्धि। सफाई।

संसर्जन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संसर्जनीय, संसर्जित, संसर्ज्य ] (१) संयोग होना। मिलना। (२) जुड़ना। संबद्ध होना। (३) अपनी ओर मिलाना। राजी करना। (४) हराती। दूर करना। त्याग करना। छोड़ना।

संसर्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रेंगना। सरकना। (२) जिसका धीरे धीरे चलना। (३) वह अधिक मांस जो श्वयं मीमांसा के चर्प में होता है।

संसर्पण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संसर्पणीय, संसर्पित, संसर्पित ] (१) रेंगना। सरकना। (२) जिसका धीरे धीरे चलना। (३) चढ़ना। (४) सहसा आक्रमण। अचानक हमला।

संसर्पा-वि० [ सं० संसर्पिन् ] [ स्त्री० संसर्पिणी ] (१) रेंगनेवाला। सरकनेवाला। (२) फैलनेवाला। संचार करनेवाला। (३) पानी के ऊपर तैरनेवाला। उतरानेवाला। (सुभ्रत)

संसा—संज्ञा पुं० दे० "संशय" । उ०—सत जोजन पर पटक्यो कंसा । भो अग्रान सम वार्हा संसा ।—गोपाल ।

संज्ञा पुं० दे० "सँदस्ता" ।

संसाद—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जमावदा । गोष्ठी । (२) समा । समाज । मंडली ।

संसादन—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संसादनीय, संसादित, संसाव ] (१) जुटाया । एकत्र । करना । (२) तरतीब से लगाना । क्रम-बद्ध करना ।

संसादित—वि० [ सं० ] (१) एकत्र किया हुआ । जुटाया हुआ । (२) तरतीब दिया हुआ । लगाया हुआ । सजाया हुआ ।

संसाधक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पूर्णतया साधन करनेवाला । संपन्न करनेवाला । अंजाम देनेवाला । (२) जीतनेवाला । वश में करनेवाला ।

संसाधन—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संसाधनीय, संसाधित, संसाध्य ] (१) अच्छी तरह करना । पूरा करना । अंजाम देना । (२) तैयारी । आयोजन । (३) जीतना । दमन । करना । वश में करना ।

संसाधनीय—वि० [ सं० ] (१) साधन के योग्य । पूरा करने योग्य । (२) जीतने योग्य । वश में लाने योग्य ।

संसाध्य—वि० [ सं० ] (१) पूरा करने योग्य । (२) जीतने योग्य । दमन करने योग्य । (३) जिसे करना हो । करने योग्य । (४) जिसे जीतना या वश में करना हो ।

संसार—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लगातार एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाता रहना । (२) बार बार जन्म लेने की परंपरा । आवागमन । भवचक्र । (३) जगत । दुनिया । विश्व । सृष्टि । (४) इहलोक । मृत्यूलोक । (५) माया जाल । माया का प्रपंच । जीवन का जंजाल । (६) गृहस्थी । (७) दुर्गंध स्रष्टि । विद् स्रष्टि ।

संसारगुप्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संसार को उपदेश देनेवाला । जगद्गुरु । (२) कामदेव । स्मर ।

संसारचक्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जन्म पर जन्म लेने की परंपरा । नाना धीनियों में भ्रमण । (२) माया का जाल । दुनिया का चक्कर । प्रपंच । (३) जगत की दशा का उलट फेर ।

संसारण—संज्ञा पुं० [ सं० ] चलाना । सरकाना । गति देना ।

संसार-तिलक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का, उत्तम धातु । उ०—कोरहन, बद्धहन, जद्धहन, मिश्रा । औ संसार-तिलक सँदखिला ।—जायसी ।

संसारपथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संसार में आने का मार्ग । (२) स्त्रियों की जननेंद्रिय ।

संसार-भावन—संज्ञा पुं० [ सं० ] संसार को दुःखमय-जानना ।

विशेष—यह ज्ञान चार प्रकार का है—भैरव गति, तिर्यगति, मनुष्य गति और देवगति ।

संसारमार्ग—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्रियों की जननेंद्रिय ।

संसारसारथि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संसार पथ को पार करने-वाला । (२) शिव का एक नाम ।

संसारी—वि० [ सं० संसागिन् ] [ स्त्री० संसारिणी ] (१) संसार-संबंधी । शैकिक । जैसे,—संसारी बातें । (२) संसार में रहनेवाला । संसार की माया में फँसा हुआ । दुनिया के जंजाल में घिरा हुआ । जैसे,—संसारी जीवों के कल्याण के लिये यह कथा है । (३) लोक-व्यवहार में कुशल । बुनियादार । (४) बार बार जन्म लेनेवाला । भवचक्र में बँधा हुआ । जैसे,—संसारी आत्मा ।

संसिक्त—वि० [ सं० ] खूब सींचा हुआ । जिस पर गूब पानी छिड़का गया हो ।

संसिद्ध—वि० [ सं० ] (१) पूर्णतया संपन्न । अच्छी तरह किया हुआ । (२) प्राप्त । लब्ध । (३) अच्छी तरह सीखा या पका हुआ । (भोजन) (४) जो नरोग हो गया हो । चंगा । स्वस्थ । (५) तैयार । उचत । प्रस्तुत । (६) किसी बात में पक्का । कुशल । निपुण । (७) जिसका योग सिद्ध हो गया हो । मुक्त ।

संसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सम्यक् पूर्ति । किसी कार्य का अच्छी तरह पूरा होना । (२) कृतकाम्यता । सफलता । कामयाबी । (३) स्वस्थता । (४) पकता । सीसना । (५) पूर्णता । (६) मुक्ति । मोक्ष । (७) परिणाम । आखिरी नतीजा । (८) पक्की बात । निश्चित बात । न टलनेवाला वचन । (९) निसर्ग । प्रकृति । (१०) स्वभाव । आदत । (११) मदमस्त स्त्री । मदीमा ।

संसी—संज्ञा स्त्री० दे० "सँदसी" ।

संसुप्त—वि० [ सं० ] गूब सोया हुआ ।

संसूचक—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० संसूचिका ] (१) प्रकट करने-वाला । जतानेवाला । (२) भेद खोलनेवाला । (३) समझाने बुझानेवाला । कहने सुननेवाला । (४) ढोंठने झपटनेवाला ।

संसूचन—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संसूचनीय, संसूचिन, संसूच्य ] (१) प्रकट करना । जताना । जाहिर करना । (२) धान खोलना । (३) कहना सुनना । (४) ढोंठना झपटना । भला बुरा कहना । भर्त्सना करना । फटकारना ।

संसूचित—वि० [ सं० ] (१) प्रकट किया हुआ । जताया हुआ । जाहिर किया हुआ । (२) ढोंठ झपटा हुआ । जिसे कुछ कना सुना गया हो ।

संसूची—वि० [ सं० संसूचिय ] [ स्त्री० संसूचिनी ] (१) प्रकट करने-वाला । (२) जतानेवाला । (३) भला बुरा कहनेवाला । फटकारनेवाला ।



**संसूच्य**-वि० [ सं० ] (१) प्रकट करने योग्य । (२) जताने लायक । (३) जिसे जताना या प्रकट करना हो । (४) भला बुरा कहने योग्य । जिसे भला बुरा कहना हो; या जिसके लिये भला बुरा कहना हो ।

**संसृति**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जन्म पर जन्म लेने की परंपरा । आवागमन । भवचक्र । (२) संसार । जगत् । उ०—द्वेष पाप संताप धन धोर संसृति दीन भ्रमत जग जोनि नहि कोपि त्राता ।—मुलसी ।

**संसृष्ट**-वि० [ सं० ] (१) एक साथ उत्पन्न या आविर्भूत । (२) एक में मिला जुला । संक्षिप्त । मिश्रित । (३) संयुक्त । परस्पर लगा हुआ । (४) अंतर्भूत । अंतर्गत । शामिल । (५) जो जायदाद का बँटवारा हो जाने पर भी सम्मिलित हो गया हो । (भाई भादि) (६) हिला मिला हुआ । बहुत मेल किए हुए । बहुत परिचित । (७) संपन्न किया हुआ । अंजाम दिया हुआ । किया हुआ । बनाया हुआ । (८) वमनादि द्वारा शुद्ध किया हुआ । कोड़ा साफ किया हुआ । (९) जुटाया हुआ । इकट्ठा किया हुआ । संपूर्ण ।

संज्ञा पुं० (१) घनिष्टता । हेलमेल । (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।

**संसृष्टत्व**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संसृष्ट होने का भाव । (२) जायदाद का बँटवारा हो जाने के पीछे फिर एक में हीना या रहना । (स्मृति)

**संसृष्टहोम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि और सूर्य की एक ही में मिली हुई आहुति ।

**संसृष्टि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक साथ उत्पत्ति या आविर्भाव । (२) एक में मेल या मिलावट । मिश्रण । (३) परस्पर संबंध । लगाव । (४) हेलमेल । घनिष्टता । मेलमुआर्कफुत । (५) बनाने की क्रिया या भाव । संयोजन । रचना । (६) एकत्र करना । इकट्ठा करना । जुटाना । संग्रह । (७) दो या अधिक काव्यालंकारों का केसा मेल जिसमें सब परस्पर निरपेक्ष हों; अर्थात् एक दूसरे के आश्रित, अंतर्भूत आदि न हों ।

**संसेक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी तरह पानी आदि का छिड़काव ।

**संसेवन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संसेवित, संसेवनीय, संसेव्य ] (१) पूर्णतया सेवन । हाज़िरी में रहना । मौकरी बजाना । (२) खूब हस्तेमाल करना । व्यवहार करना । उपयोग में लाना । बरतना ।

**संस्कारण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ठीक करना । दुरुस्त करना । सजाना । (२) शुद्ध करना । सुधार करना । (३) परिष्कृत करना । सुंदर या अच्छे रूप में लाना । (४) द्विजातियों के लिये चिहिन संस्कार करना । (५) पुस्तकों की एक चार की छपाई । आवृत्ति । ( आधुनिक )

**संस्कर्ता**-संज्ञा पुं० [ सं० ] संस्कार करनेवाला ।

**संस्कार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ठीक करना । दुरुस्ती । सुधार । (२) दोष या ग़ुटि का निकाल जाना । शुद्धि । (३) सजाना । अच्छे या सुंदर रूप में लाना । (४) धो मॉन कर साफ करना । परिष्कार । (५) धन की सफाई । शौच । (६) मनोवृत्ति या स्वभाव का दोषघन । मानसिक शिक्षा । मन में अच्छी बातों का जमाना । (७) शिक्षा, उपदेश, संगन आदि का मन पर पड़ा हुआ प्रभाव । दिल पर जमा हुआ असर । जैसे,—जैसा लड़कपन का संस्कार होता है; वैसा ही मनुष्य का चरित्र होता है । (८) पूर्व जन्म की यासना । पिछले जन्म की बातों का असर जो भात्मा के साथ चला रहता है । जैसे,—विना पूर्व जन्म के संस्कार के विद्या नहीं आती । यह वैशेषिक के २४ गुणों में से एक है । (९) पवित्र करना । धर्म की दृष्टि से शुद्ध करना । (१०) वैकृत्य जो जन्म से लेकर मरण काल तक द्विजातियों के संबंध में आवश्यक होते हैं । वर्णधर्मानुसार किसी व्यक्ति के संबंध में होनेवाला विधान, रीति या रस्म ।

**विशेष**—द्विजातियों के लिये पोढ़दा या द्वादस संस्कार कहे गए हैं । मनु के अनुसार उनके नाम ये हैं—गामांधान, पुंसवन, संमिंतोषयन, जातकर्म, नामकर्म, निष्काम, अन्नप्राशन, चूदाकर्म, उपनयन, केसांत, समावर्तन और विवाह ।

(१०) मृतक की क्रिया । (११) इंद्रियों के विषयों के ग्रहण से उत्पन्न मन पर जमा हुआ प्रभाव । (१२) मन द्वारा कल्पित या आरोपित विषय । अत्रिजात्य प्रतीति । प्रत्यय । ( जैसी जगत् की, जो वास्तविक नहीं है । )

**विशेष**—पंच स्कंधों में चौथा स्कंध 'संस्कार' है जो भव-यणन का कारण कहा गया है ।

(१३) साफ करने या मॉजने का साँवो, पथर आदि । साँवो ।

**संस्कारक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संस्कार करनेवाला । (२) शुद्ध करनेवाला ।

**संस्कारवर्जित**-वि० [ सं० ] वह व्यक्ति जिसका संस्कार न हुआ हो । मात्य ।

**संस्कारहीन**-वि० [ सं० ] जिसका संस्कार न हुआ हो । मात्य ।

**संस्कारी**-वि० [ सं० ] (१) संस्कारवाला । (२) साँवले मात्राओं का एक छंद ।

**संस्कार्य**-वि० [ सं० ] (१) संस्कार करने योग्य । (२) जिसकी सफाई या सुधार करना हो ।

**संसृष्ट**-वि० [ सं० ] (१) संस्कार किया हुआ । शुद्ध किया हुआ । (२) परिमार्जित । परिष्कृत । (३) धो मॉन कर साफ किया हुआ । निष्कार हुआ । (४) पकाया हुआ । सिकाया हुआ । (५) सुधारा हुआ । ठीक किया हुआ । दुरुस्त किया हुआ ।

(१) अन्धे रूप में छाया हुआ। सँवारा हुआ। सजाया हुआ। आगस्ता। (२) जिसका उपनयन आदि संस्कार हुआ हो।  
 संज्ञा स्त्री० भारतीय आर्यों की प्राचीन साहित्यिक भाषा। पुराने आर्यों की लिखने पढ़ने की उच्च भाषा। देववाणी।  
 (विशेष—विद्वानों की राय है कि वेदों (संहिताओं) की भाषा आर्यत प्राचीन, पर बोल चाल की आर्यत भाषा है। जब उस भाषा में परिवर्तन होने लगा और धीरे धीरे उसके समझनेवाले कम होने लगे, तब यास्क ने- निघंटु आदि बनाकर उस मंत्र भाग की भाषा को विद्वानों में सुरक्षित रखा। पीछे जो आर्यत भाषा प्रचलित होती गई, उस पर क्रमशः ऋषिद्वि आदि जनार्थ्य भाषाओं का प्रभाव पड़ता गया। अतः ह्रस्व प्रचलित या लौकिक आर्यत भाषा को शुद्ध, स्पष्टीकृत और सुरक्षित रखने का इन्द्र, ऋक्यायन, पाणिनि आदि वैयाकरणों ने प्रयत्न किया। पाणिनि आदि वैयाकरणों ने दूर दूर तक फैले हुए यथा संभव सब प्रयोगों और रूपों को इकट्ठा करके एक बड़ी प्रकांड भाषा का स्वरूप खड़ा किया। यही 'भाषा' या लौकिक संस्कृत कहलाई जा रूप स्थिर हो जाने के कारण साहित्य की सर्वमान्य भाषा हुई और धरावर रही। लोगों की बोल चाल की भाषा में अंतर पड़ता रहा, पर यह संस्कृत ज्यों की ज्यों रही और विद्वानों तथा शिष्यों द्वारा काम में लाई जाती रही। बोलचाल की भाषाएँ प्राकृत कहलाई और यह संस्कार की हुई प्राचीन भाषा संस्कृत या देववाणी कहलाई।  
 संस्कृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शुद्धि। सफ़ाई। (२) संस्कार। सुधार। परिष्कार। (३) सजावट। आराधन। (४) रहन सहन आदि की रुढ़ि। सभ्यता। शाइल्यगी। (५) २४ वर्ण के घृषों की संज्ञा।  
 संस्कृतिपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संस्कार। संस्कृति।  
 संस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० भवस्वित् ] (१) स्थित होना। गिरना। (२) भूल करना। चूकना।  
 संस्खलित-वि० [ सं० ] (१) स्थित। गिरा हुआ। (२) भूला हुआ। चूका हुआ।  
 संज्ञा पुं० भूल। चूक।  
 संस्रंस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गति का सहसा रोध। एकवारगी रूकावट। (२) संघा का भभाव। निषेधना। रुक हो जाना। हाथ पर रक जाना। (३) शरीर की गति का मारा जाना। छकाया। (४) दृष्टता। धीरता। (५) हठ। टेक। जिद। (६) आघात। टेक। सहारा।  
 संस्तमन-संज्ञा पुं० [ सं० संस्तमनम् ] [ वि० संस्तमनीय, संस्तमिन्, संस्तम्य ] (१) गति का सदसा रुकना या रोकना। एक भारी ठहर जाना। (२) निषेध करना या होना। रुक कर देना या हो जाना। (३) संद करना। (४) सहारा देना। टेकना।

संस्तम्भ-नि० [ सं० ] (१) एकवारगी रुक या ठहरा हुआ। (२) निषेध। रुक। मोचका। (३) महारा दिया हुआ। जिसे टेक या सहारा दिया हो।  
 संस्तर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तह। पहल। (२) घास फूस से बनाया हुआ आच्छादन। (३) घास फूस फैला कर बनाया हुआ विस्तर। कृष्ण-शय्या। (४) विस्तर। शय्या। वि० छितराया हुआ।  
 संस्तरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्याना। फैलाना। पसारना। (२) छितराना। विलेखन। (३) तह चढ़ाना। परत फैलाना। (४) विस्तर। शय्या।  
 संस्तव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रदंसा। स्तुति तारीफ़। (२) निष्क। कथन। उद्देश। (३) परिचय। ज्ञान पहचान।  
 संस्तवन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संस्तवनीय, संस्तव ] (१) स्तुति करना। प्रदंसा करना। (२) यज्ञ गाना। कीर्ति बखानना।  
 संस्तार-संज्ञा पुं० [ सं० ] तह। पहल। (२) विस्तर। शय्या। (३) एक यज्ञ का नाम।  
 संस्ताव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ में स्तुति करनेवाले दास्यों की अवस्थान भूमि। (२) स्तुति। प्रदंसा। (३) परिचय। ज्ञान पहचान।  
 संस्तौण-वि० [ सं० ] (१) फैलाया हुआ। पसारा हुआ। बिछाया हुआ। (२) विलेख। फैलाया हुआ। छितराया हुआ।  
 संस्तुत-वि० [ सं० ] (१) जिसकी त्वय स्तुति या प्रदंसा की गई हो। (२) परिचित। ज्ञात। (३) एक साथ गिना हुआ। गिनती में शामिल किया हुआ।  
 संस्तुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सम्यक् स्तुति। स्वयं प्रदंसा। गहरी तारीफ़।  
 संसयाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संघात। समूह। (२) प्रसार। फैलाव। विद्याने या फैलाने की क्रिया। (३) निवासस्थान। (४) घर। मकान।  
 संस्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) निज देहावासी। स्वदेहावासी। अपने देह का। (२) घर। दूत।  
 संस्था-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ठहरने की क्रिया या भाव। ठहराव। स्थिति। (२) ध्वजस्थ्या। सँघा नियम। विधि। मर्यादा। रुढ़ि। (३) प्रकट होने की क्रिया या भाव। अभिव्यक्ति। प्रकाश। (४) रूप। आकार। आकृति। (५) गुण। सिद्ध। (६) टिकने लगाना। (७) समाप्त। अंत। अन्तमा। (८) जीवन का अंत। मृत्यु। (९) नाम। (१०) प्रलय। (११) यज्ञ का शुद्ध भंग। (१२) बप। हिंसा। (१३) गुप्तचरों या भेदियों का वर्ग।  
 विशेष—ह्रस्वके अंतर्गत चॉच प्रकार के दूत बड़े गए हैं—  
 वणिक, मिथु, छात्र, मित्री (संप्रदायी) और रूपक।

(१४) व्यवसाय । पैसा । (१५) जग्हा । गरीह । (१६) समाज । मंडल । सभा । (१७) राजजा । परमान । (१८) सादर्य । समानता ।

**संस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (१) उठरने की क्रिया या भाव । उठराव । स्थिति । (२) खड़ा रहना । उठा रहना । जमा रहना । (३) सन्निवेश । बैठाना । स्थापन । विन्यास । (४) अस्तित्व । जीवन । (५) सम्भक् पालन । पूरा अनुसरण । पूरी धरती । (६) उठरने या रहने की जगह । डेरा । घर । (७) यस्ती । जनपद । (८) सार्वजनिक स्थान । सर्वसाधारण के इच्छे होने की जगह । (९) रूप । आकृति । शकल । (१०) कांति । सौंदर्य । (११) प्रकृति । स्वभाव । (१२) रोग का लक्षण । (१३) अवस्था । दुसा । हालत । (१४) समष्टि । योग । जोड़ । (१५) टिकाने लगाना । समाप्ति । अंत । स्वातन्त्र्य । (१६) नाश । मृत्यु । (१७) रचना । वनावट । निर्माण । (१८) पड़ोस । सामीप्य । निकटता । (१९) चौमुहानी । चौरास्ता । चौराहा । (२०) आयोजन । प्रबंध । व्यवस्था । डील । (२१) ढाँचा । चौखटा । (२२) साँचा । ढाँचा । डील । स्याका ।

**संस्थापक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ सं० संस्थापिका ]** (१) खड़ा करनेवाला । स्थापित करनेवाला । उठानेवाला । (भवन आदि) (२) कोई नई यात चलावेवाला । जारी करनेवाला । प्रवर्तक । (३) कोई सभा, समाज या सर्वसाधारण के उपयोगी कार्य चालनेवाला । (४) चित्र, खिलौने आदि यानेवाला । (६) रूप या आकार देनेवाला ।

**संस्थापन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ सं० संस्थापनीय, संस्थापित, संस्थाप्य ]** (१) खड़ा करना । उठाना । निर्मित करना । (भवन आदि) (२) स्थित करना । जमाना । बैठाना । (३) कोई नई यात चलायाना । नया काम जारी करना । नया काम खोलना । (४) रूप या आकार देना ।

**संस्थापनीय-वि० [ सं० ]** संस्थापन के योग्य ।

**संस्थापित-वि० [ सं० ]** (१) उठाया हुआ । खड़ा किया हुआ । निर्मित । (२) जमाया हुआ । बैठया हुआ । स्थित किया हुआ । प्रतिष्ठित । (३) जारी किया हुआ । चलाया हुआ । (४) संचित । थरोटा हुआ । (५) ढेर लगाया हुआ ।

**संस्थाप्य-वि० [ सं० ]** (१) संस्थापन के योग्य । (२) जिसका संस्थापन करना हो ।

**संस्थित-वि० [ सं० ]** (१) खड़ा । उठाया हुआ । (२) उठरा हुआ । टिका हुआ । (३) बैठा हुआ । जमा हुआ । दृढ़ता से अड़ा हुआ । (४) रूप में लया हुआ । निर्मित । (५) टिकाने लगाया हुआ । समाप्त । खतम । (६) मृत । 'मरा हुआ' । (८) ढेर लगाया हुआ । थरोटा हुआ ।

**संस्थिति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]** (१) खड़े होने की क्रिया या भाव ।

(२) उठराय । जमाव । (३) बैठने की क्रिया या भाव । (४) एक अवस्था में रहने का भाव । (५) ज्यों का त्यों रहने का भाव । (६) दृढ़ता । धीरता । (७) अस्तित्व । हस्ती । (८) रूप । आकृति । सुरन । (९) व्यवस्था । तरतीब । (१०) गुण । सिद्धत । (१०) प्रकृति । स्वभाव । (११) समाप्ति । स्वातन्त्र्य । (विशेषतः यज्ञादि के लिये) (१२) मृत्यु । मरण । (१३) कोष्ठपद्धता । कृत्रिमपद । (१४) सति । डेर । अडाला ।

**संस्पर्दा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]** (१) किसी के बराबर होने की प्रवृत्ति । बराबरी की चाह । (२) ईर्ष्या । डाह ।

**संस्पर्दी-वि० [ सं० संस्पर्दित् ] [ सं० संस्पर्दीनी ]** (१) बराबरी की इच्छा करनेवाला । (२) ईर्ष्यालु ।

**संस्पर्श-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (१) अच्छी तरह छू जाने का भाव । एक के अंग का दूसरे से लगना ।

**विशेष-**धर्मशास्त्रों में कुछ लोगों का संस्पर्श होने पर द्विजातियों के लिये प्रायश्चित्त का विधान है । यह संस्पर्श दोष शरीर के छू जाने, आलाप, निषेध, सहभोजन तथा एक शय्या पर बैठने या सोने से कहा गया है ।

(२) घनिष्ठ संबंध । गहरा लगाव । (३) मिलाप । मेल । (४) मिलावट । मिश्रण । (५) इन्द्रियों का विषय-प्रदण । (६) थोड़ा सा आविर्भाव । कुछ प्रभाव ।

**संस्पर्शन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ सं० संस्पर्शनीय, संस्पृष्ट ]** (१) छुना । अंग से अंग लगना । (२) मिलना । सटना ।

**संस्पर्शा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]** जनी नामक गंध द्रव्य ।  
**संस्पर्शी-वि० [ सं० संस्पर्शित् ]** स्पर्श करनेवाला । छूनेवाला ।  
**संस्पृष्ट-वि० [ सं० ]** (१) छूआ हुआ । (२) सटा हुआ । छपा हुआ । मिला हुआ । (३) जुड़ा हुआ । परस्पर संबद्ध । (४) पास ही पड़ता हुआ । जो निकट ही हो । (५) श्रेष्ठ मात्र प्रभावित । जिस पर बहुत कम असर पड़ा हो ।

**संस्फाल-संज्ञा पुं० [ सं० ]** मेढ़ । मेप ।

**संस्फुट-वि० [ सं० ]** (१) खूब फूटा या खुल पड़ा हुआ । (२) खूब खिला हुआ । विकसित ।

**संस्फोट-संज्ञा पुं० [ सं० ]** युद्ध । लड़ाई ।

**संस्फोट-संज्ञा पुं० [ सं० ]** युद्ध । लड़ाई ।

**संस्मरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ सं० संस्मरणीय, संस्पृष्ट ]** (१) पूर्ण स्मरण । खूब याद । (२) अच्छी तरह सुमिरना या नाम लेना । (३) संस्कार-जन्य ज्ञान ।

**संस्मरणीय-वि० [ सं० ]** (१) पूर्ण स्मरण करने योग्य । (२) नाम जपने योग्य । (३) महत्व का । भूलनेवाला । जिसकी याद बराबर प्रती रहते । (४) जिसका स्मरण मात्र रह गया हो । अतीत ।

संस्मारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ श्री० संस्मारिका ] स्मरण करानेवाला ।  
याद दिखानेवाला ।

संस्मारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संस्मारित ] (१) स्मरण कराना ।  
याद दिखाना । (२) गिनती करना । गिनना । ( चौपायों के  
विषय में )

संस्मारित-वि० [ सं० ] (१) याद दिलाया हुआ । स्मरण कराया  
हुआ । (२) ध्यान में रखा हुआ । याद किया हुआ ।

संस्मृत-वि० [ सं० ] स्मरण किया हुआ । याद किया हुआ ।

संस्मृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पूर्ण स्मृति । पूरी याद ।

संस्मृ-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० संस्मृ ] (१) एक साथ रहना ।  
(२) पूरा बहाव । (३) बहती हुई बस्तु । (४) बहना हुआ  
जल । (५) एक प्रकार का पिंडदान । (६) किसी वस्तु का  
नोचा हुआ अंश । उखड़ा हुआ चिप्यद । (७) चूना ।  
गिरना । सरना । रसना ।

संस्मरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रहना । प्रवाहित होना । (२)  
चूना । सरना । गिरना ।

सौ०—पार्श्वसंस्मरण = गर्भपात ।

संस्त्रा-संज्ञा पुं० [ सं० संस्त्र ] [ स्त्री० संस्त्री ] (१) आयोजन  
करनेवाला । (२) मिलाने वाला । (३) रचनेवाला ।  
बनानेवाला । (४) निद्वनेवाला । छद्मई में छुटनेवाला ।

संस्त्राव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहाव । प्रवाह । (२) मवाद का  
दृष्टा होना । (सुधुल) (३) किसी द्रव पदार्थ के नीचे  
जमा हुआ पदार्थ । तलछट ।

संस्त्राण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संस्त्राणित, संस्त्राण्य ] (१) बहाना ।  
प्रवाहित करना । (२) बहना । प्रवाहित होना । (३) क्षरना ।  
चूना । टपकना ।

संस्त्राणित-वि० [ सं० ] (१) बहाया हुआ । (२) बहा हुआ ।  
(३) सरा हुआ । (४) टपका हुआ ।

संस्त्राण्य-वि० [ सं० ] (१) बहाने या टपकाने योग्य । (२) जिसे  
बहाना या टपकाना हो ।

संस्वेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वेद । पसीना ।

संस्वेदज-वि० [ सं० ] पसीने से उत्पन्न । ( कुमि भादि)

संस्तुता-संज्ञा पुं० [ सं० संस्तु ] [ स्त्री० संस्तु ] वध करनेवाला ।  
-मारनेवाला ।

संस्तुत-वि० [ सं० ] (१) खूब मिला हुआ । जुड़ा या साथ हुआ ।  
बिड़कल लगा हुआ । पूर्ण संयुक्त । (२) एक हुआ । एक में  
मिला हुआ । (३) संयुक्त । सहित । (४) जो मिलकर टोस  
हो गया हो । मिलकर खूब बैठा हुआ । कड़ा । सख्त ।  
(५) जो विरल या सीना न हो । गहरा हुआ । घना । (६)  
दृढ़ता । मजबूत । (७) एकत्र । इकट्ठा । (८) मिश्रित ।  
मिला हुआ । (९) घोट खाया हुआ । आहत । घायल ।

संस्तु पुं० कृष्य में एक प्रकार की मुद्रा ।

संहतकुलीन-वि० [ सं० ] सम्मिलित परिवार का ।

संहतजातु-संज्ञा पुं० [ सं० ] घुटने मिलाए हुए । जिसने दोनों  
घुटने सत्यप हों । ( घुटने की एक मुद्रा )

संहतपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोभा । दावपुण्या ।

संहतांग-वि० [ सं० ] दृढ़ता । दृढ़-सुष्ट । मजबूत ।

संहतांगलि-वि० [ सं० ] जो हाथ जोड़े हो । कर-यत्न ।

संहतायथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] पयमान नामक अग्नि ।

संहति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मिलाव । मेल । (२) जुटाव ।

यद्यो । इकट्ठा होने का भाव । (३) राशि । ढेर । अडाला ।

(४) समूह । झुंड । (५) परस्पर मिल कर टोस होने

का भाव । निविद्ध संयोग । गठन । टोसपन । घनत्व ।

(६) संधि । जोड़ । (७) परमाणुओं का परस्पर मेल ।

संहतिपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोभा । दावपुण्या ।

संहतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संहत करना । एक में मिलाना ।

जोड़ना । (२) खूब मिलाकर घना या टोस करना । (३) बध ।

मार डालना । (४) संयोग । मेल । मिलावट । (५) कड़ाई ।

दृढ़ता । (६) घुसता । मजबूती । बलिष्ठता । (७) मेल ।

सुभाक्रियत्व । सामंजस्य । अनुकूलता । (८) शरीर । देह । (९)

कवच । पकर । (१०) शरीर का मर्दन । मालिदा ।

संहरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक साथ करना । बटोरना ।

एकत्र करना । संग्रह-करना । (२) एक साथ बँधना ।

गुँथना । ( कैयों का ) (३) जुबबदस्ती से लेना । छीनना ।

(४) संहार करना । नाश करना । ध्वंस करना । (५)

प्रलय ।

संहर्ता-संज्ञा पुं० [ सं० संहर्त ] [ स्त्री० संहर्ती ] (१) इकट्ठा करने-

वाला । बटोरने या समेटनेवाला । (२) नाश करनेवाला ।

(३) वध करनेवाला । मारनेवाला ।

संहर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उमंग से रीझों का खड़ा होना । पुलक ।

उमंग । (२) मय से रोंगटे खड़े होना । (३) चढ़ा ऊपरी ।

एक दूसरे से बढ़ने की चाह । स्पंदन । छाग रुँध । होड़ ।

(४) ईर्ष्या । बह । (५) संघर्ष । रगड़ । (६) मर्दन ।

शरीर की मालिदा ।

संहर्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० संहर्षित, संहर्ष ] पुलकित होना ।

(२) स्पंदन । छाग रुँध । चढ़ा ऊपरी ।

(३) ई० अंधविश्वास ] पुलकित करनेवाला । आनंद से

प्रफुल्लित करनेवाला ।

संहर्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पिबपापदा । पर्यटक । दाहतरा ।

संहर्षित-वि० [ सं० ] पुलकित ।

संहर्षी-वि० [ सं० संहर्षी ] [ स्त्री० संहर्षी ] (१) पुलकित

होनेवाला । (२) पुलकित करनेवाला । (३) स्पंदन या ईर्ष्या

करनेवाला ।

संहात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संघात । समूह । जमापंदा । वि०

दे० "संघात" । (२) एक नरक का नाम । (३) शिव के एक गण का नाम ।

**संहार-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) एक साथ करना । इकट्ठा करना । बटोरना । समेटना । (२) संग्रह । संपन्न । (३) संकोच । आकुंचन । सिकुड़ना । (४) समेट कर बँधना । बँधना । (केतों का) (५) छोड़े हुए बाण को फिर यापस लेना । (६) खुलासा । सार । संक्षेप-कथन । (७) नाश । ध्वंस । (८) समाप्ति । अंत । खातमा । (९) कल्यांत । प्रलय । (१०) एक नरक का नाम । (११) कौदाल । निपुणता । (१२) व्यर्थ करने की क्रिया । निवारण । परिहार । रोक । जैसे,—किसी भय का संहार ।

**संहारक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ स्त्री० संहारिका ] (१) संहार करनेवाला । संहर्ता । नाशक । (२) संग्रहकर्ता । एकत्र करनेवाला ।

**संहारकारी-वि०** [ सं० संहारकारिन् ] [ स्त्री० संहारकारिणी ] संहार या नाश करनेवाला ।

**संहार काण्ड-संज्ञा पुं०** [ सं० ] विश्व के नाश का समय । प्रलय काल । उ०—वेदा बलिष्ठ खर को मकराक्ष आयो । संहार काल अनु काल कराल धायो ।—केशव ।

**संहारनाश-क्रि० सं०** [ सं० संहरण ] (१) मार डालना । उ०—(क) ओहि धनुष रावन संहारा । ओहि धनुष कंसा-सुर मारा ।—जायसी । (२) नाश करना । ध्वंस करना । (ख) उहाँ तो खड्ग नरेंद्रई मारों । इहाँ तो विरह पुंकार संहारों ।—जायसी ।

**संहार भैरव-संज्ञा पुं०** [ सं० ] भैरव के आठ रूपों या मूर्तियों में से एक । काल भैरव ।

**संहार मुद्रा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] तांत्रिक पूजन में अंगों की एक प्रकार की स्थिति, जिसे विसर्जन मुद्रा भी कहते हैं ।

**संहारिक-वि०** [ सं० ] संहार करनेवाला ।

**संघार्य-वि०** [ सं० ] (१) समेटने या बटोरने योग्य । संग्रह करने योग्य । इकट्ठा करने लायक । (२) एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर करने योग्य । हटाने लायक । छे जाने लायक । (३) जिसे छे जाना हो । (४) रोकने योग्य । निवारण या परिहार के योग्य । (५) जिसे रोकना हो । जिसका निवारण या परिहार करना हो ।

**संहित-वि०** [ सं० ] (१) एक साथ किया हुआ । एकत्र किया हुआ । बटोरा हुआ । समेटा हुआ । (२) सम्मिलित । मिलाया हुआ । (३) उदा हुआ । लगा हुआ । संबद्ध । (४) संयुक्त । सहित । अन्वित । पूर्ण । (५) मेल में आया हुआ । मेल मेलवाला । मेली ।

**संहितपुष्पिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) सोभा नाम का साग । (२) धनिया ।

**संहिता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) मेल । मिलावट । संयोग । (२) ध्याकरण या ऋग्वेदाद्य के अनुसार दो अक्षरों का परस्पर मिलकर एक होना । संधि । (३) वह ग्रंथ जिसमें पद पाठ आदि का क्रम नियमानुसार चला जाता हो । कोई ग्रंथ जिसका पाठ प्राचीन काल से श्रुति चला आता हो । जैसे,—मनु, अग्नि आदि की धर्म-संहिताएँ या स्मृतियाँ ।

**विशेष**—स्मृति या धर्म-शास्त्र संबंधी १९ संहिताएँ कही जाती हैं जिनमें मनु, अग्नि, विष्णु, हारित, कार्यायन, बृहस्पति, नारद, परादार, व्यास, दक्ष, गौतम आदि प्रसिद्ध हैं । रामायण को भी कभी कभी संहिता कह देते हैं । वेदव्यास हृत एक "पुराण संहिता" का भी उल्लेख मिलता है । (दे० "पुराण") इसके अतिरिक्त और विषयों के ग्रंथ भी संहिता कहे जाते हैं । जैसे,—भृगुसंहिता (फलित ज्योतिष) गणसंहिता । (कृष्ण की कथा)

(४) वेदों का मंत्र भाग । मुख्य वेद । वि० दे० "वेद" ।

**संहत-वि०** [ सं० ] (१) एकत्र किया हुआ । समेटा हुआ । (२) संशुद्ध । शुद्धा हुआ । (३) नष्ट । ध्वस्त । (४) समाप्त । जतम । (५) निवारित । रोका हुआ ।

**संहति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) बटोरने या समेटने की क्रिया । (२) संग्रह । उदाय । (३) नाश । ध्वंस । (४) प्रलय । (५) अंत । समाप्ति । (६) रोक । परिहार । (७) संशेष । खुलासा । (८) हरण । छीनना । छुट खसोट ।

**संहृष्ट-वि०** [ सं० ] (१) खड़ा । रोम । (२) जिसके रोपें उमंग से खड़े हों । पुलकित । प्रफुल्ल । (३) जिसके रोपें डर से खड़े हों । डरा हुआ । नीत ।

**संहाद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) ऊँचा स्वर । शोर । कोलाहल । चीख । (२) एक असुर जो हिरण्यकशिपु का पुत्र था ।

**संहावन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] चिहाना । कोलाहल करना । शोर मचाना । चीखना ।

**स-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) ईश्वर । (२) शिव । महादेव । (३) सौंप । (४) पक्षी । चिड़िया । (५) वायु । हवा । (६) जीवात्मा । (७) चंद्रमा । (८) भृगु । (९) दीप्ति । कांति । चमक । (१०) ज्ञान । (११) चिंता । (१२) गाड़ी का रास्ता । सड़क । (१३) संगीत में पढ़ा स्वर का सूचक अक्षर । जैसे,—रे, ग, म, ध, नि, स । (१४) छंदः शास्त्र में "सगण" शब्द का सूचक अक्षर या संक्षिप्त रूप । वि० दे० "सगण" ।

उप० एक उपसर्ग जिसका प्रयोग शब्दों के आरंभ में, कुछ विशिष्ट अर्थ उत्पन्न करने के लिये होता है । जैसे,—(क) बहुमीहि समाप्त में "सह" के अर्थ में । जैसे,—सजीव = सह + जीव । सपरिवार = सह + परिवार । (ख) "स्व" या "एक ही" के अर्थ में । जैसे,—सगोत्र । (ग) "सु" के स्थान में । जैसे,—सपत् ।



मिटाई। वि० दे० "शकरपाला" । (२) एक प्रकार का काठुली नीवू । (३) कपड़े पर की एक प्रकार की सिंलाई जो शकरपारे को आकृति की होती है। वि० दे० "शकरपारा" ।  
सकरा-वि० दे० "सँकरा" ।

सकरिया-संज्ञा स्त्री० [ प्रा० शकर ] लाल दारुकन्द । रताल।  
सकरुड-संज्ञा पुं० [ गुज० ] सकरुड या साकुण्ड नाम का वृक्ष जिसकी पत्तियों आदि का व्यवहार औषधि के रूप में होता है। वैद्यक के अनुसार यह कषाय, रुचिकर, दीपन और वातनाशक माना जाता है ।

सकरुण-वि० [ सं० ] जिसे कष्टना हो । दयाशील ।  
सकरुण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो मुनता या मुन सकता हो ।  
वि० कानवाला । जिसे कान हों ।

सकरुण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

सकर्मक क्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्याकरण में दो प्रकार की क्रियाओं में से एक। वह क्रिया जिसका कार्य उसके कर्म पर समाप्त हो । जैसे,—“खाना” । खाने का कार्य उस वस्तु पर समाप्त होता है, जो खाई जाती है; इसलिये यह सकर्मक क्रिया हुई। इसी प्रकार देना, लेना, मारना, उठाना आदि सकर्मक क्रियाएँ हैं ।

सकल-वि० [ सं० ] सब । सर्व । समस्त । कुल ।

संज्ञा पुं० (१) रोहित ऋण । गंधर्षण । रोहित घास । (२) निर्गुण ब्रह्म और सगुण प्रकृति । (३) दर्शन शास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के जीवों में से एक प्रकार के जीव । पशु ।

विशेष—जीव तीन प्रकार के माने गए हैं—विज्ञानाकल, प्रलयकल और सकल। सकल जीव मल, माया और कर्म से युक्त होता है। इसके भी दो भेद कहे गए हैं—पक्क कल्प और अपक्क कल्प ।

सकलकल-वि० [ सं० ] सोलहों कलाओं से युक्त । (चंद्रमा)

सकलधोरा-संज्ञा पुं० दे० "शकरधोरा" (पक्षी) ।

सकलजन्मनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रकृति ।

सकलप्रिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सब को प्रिय हो । सब को अच्छा लगनेवाला । (२) चना । घणक ।

सकललक्ष्मण-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाल निर्यास । धूना । शाल ।

सकलसिद्धि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसे सब सिद्धियाँ प्राप्त हों ।

सकलसिद्धिदा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सतिविकों के अनुसार एक औरवी का नाम ।

सकलता-संज्ञा पुं० [ ? ] (१) ओषुने की रसाई । दुलाई ।

उ०—(क) लघुयोर्घात गत सुनो घात प्रभु काँपि उठे दई सकलता आनि प्राति दिखे मोई है । (ख) घीत लगत सकलता विदित पुरुषोत्तम दीनी । शीघ्र गये हरि संग कृप्य सेवककी कीनी ।—भक्तमाल । (२) भेंट । सौगात । उपहार । उ०—

सौ गाड़ी सकलता-सलौनी । पातसाह को जात पड़ीनी ।  
लाल कवि ।

सकलाघार-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।

सकली-संज्ञा स्त्री० [ हि० ] मत्स्य । मछली ।

सकलौदु-संज्ञा पुं० [ सं० ] पूर्णिमा का चंद्रमा । पूरा चाँद ।

सकलेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।

सकवा-संज्ञा पुं० [ हि० सख ] शाल । अरबकण ।

सकसा-संज्ञा पुं० दे० "शकस" ।

सकसकाना-वि०-क्रि० प्र० [ अनु० ] बहुत डरना । डर के कारण कँपना । उ०—सकसकात तनु भीति पसीना उलटि उलटि तन तीरि जँमाई ।—सूर ।

सकसाना-वि०-क्रि० प्र० [ अनु० ] उर मानना । भयभीत होना । उ०—दस्तेपाज धारत के द्वार ठाढ़े रस्ते पर छिति के अघोसे दस्तवस्त सकसात है ।—मकछेदी ।

सका-संज्ञा पुं० [ प्र० सका ] (१) पानी भरनेवाला, भिरसी । (२) वह जो धूम धूमकर लोगों को पानी पिलाता हो; विशेषतः मशक से (मुसलमानों को) पानी पिलानेवाला ।

सकाकुल-संज्ञा पुं० [ ? ] (१) एक प्रकार का कंद जिसे अंधकंद कहते हैं । (२) एक प्रकार का शतावर । (३) शम्भु कुल मिछी । सुघामूली ।

सकाकुल मिछी-संज्ञा स्त्री० [ ? ] (१) सुघामूली । (२) अंधकंद ।

सकाकोल-संज्ञा पुं० [ सं० ] मनु के अनुसार एक नरक का नाम ।

सकाना-वि०-क्रि० प्र० [ सं० संका ] (१) संका करना । संदेह करना । उ०—(क) जोरि कटक पुनि राजा पर कहीं कीन पवान । त्रिचसहिं भानु अलोप भा घासुक इंद्र सकान ।—जायसी । (ख) देखि सैन ब्रज लोग सकात । यह आयो कौनों कहु घात ।—सूर । (२) भय के कारण संकोच करना । हिचिकना । (३) दुःखी होना । रंज होना ।

क्रि० सं० "सकना" का प्रेरणाार्थक रूप । (क० हास्य)

सकाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह व्यक्ति जिसे कोई कामना या इच्छा हो । (२) वह व्यक्ति जिसकी कामना पूर्ण हुई हो । लब्धकाम । (३) कामवासना युक्त व्यक्ति । मैथुन की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति । कामी । (४) वह व्यक्ति जो कोई कार्य, भविष्य में फल मिलने की इच्छा से करे । जो निर्वार्थ होकर कोई कार्य न करे, यत्कि स्वार्थ के विचार से करे । (५) प्रेम करनेवाला ।

सकामनिर्जरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जिनियों के अनुसार चित्त की वह वृत्ति जिसमें बहुत अधिक क्षणिक मोने पर भी शत्रु या पीड़ा देनेवाले को परम शोचिपूर्वक क्षमा कर दिया जाता है । यह वृत्ति उपजात चित्तवाले साधुओं में होती है ।

सकामा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो मैथुन की इच्छा रखती हो। काम-शीलता। कामवती।

सकामी-संज्ञा पुं० [ सं० सकामिन् ] (१) वह जिसे किसी प्रकार की कामना हो। कामनायुक्त। भासनायुक्त। (२) कामी। विपत्ती।

सकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) 'स' अक्षर। (२) 'स' वर्ण की स्त्री ध्वनि। जैसे,—उसके मुँह से सकार भी न निकल।

सकारना-क्रि० प्र० [ सं० स्वीकार ] (१) स्वीकार करना। मंचूर करना। (२) महात्मनों का हुंसी की मिती पूरी होने के एक दिन पहले हुंसी देसकर उस पर हस्ताक्षर करना।

विशेष—जो लोग किसी महात्मन को हुंसी पर रूप देते हैं, वे मिती पूरी होने से एक दिन पहले अपनी हुंसी उस महात्मन के पास उसे दिलवाने और उससे हस्ताक्षर कराने के लिये ले जाते हैं। इससे महात्मन को दूसरे दिन के दानव्य धन की सूचना भी मिल जाती है और रूप पानेवाले को यह निश्चय भी हो जाता है कि कल सुझे रूप मिल जायेंगे।

सकारना-संज्ञा पुं० [ सं० स्वीकरण ] महात्मनों में यह धन जो हुंसी सकारने और उसका समय फिर से बढ़ाने के लिये लिया जाता है।

सकारि-क्रि० वि० [ सं० सकारि ] (१) प्रातःकाल। सवेरे। तड़के। उ०—(क) अवधेन के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति ले निकसे। अवलोकिहीं सोच विमोचन की टंगि सी रही, जे न उगे विक से।—गुलसी। (ख) गए मयूर समचूर जो हारे। उन्हहिं पुकारे सौस सकारे।—जायसी। (२) निवृत्त समय पर। ठीक वक्त पर। (क०)

सकारौ-क्रि० वि० दे० "सकारे"।

सकालत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सकील या गरिष्ठ होने का भाव। (२) गुल्ता। भारीपन।

सकाद्य-क्रि० प्र० [ सं० ] प्राप्त। निकट। समीप।

सकिलना-क्रि० प्र० [ हि० किसलना या अनु० ] (१) किसलना। सरकना। (२) सिमटना। सिपुटना। उ०—उखरत बार सकिल गई भासा। भयो चहाँ से रधिर् प्रकासा।—रघुराज। (१) हो सकना। पूरा होना। जैसे,—तुम से यह काम नहीं सकिल सकता।

सकीन-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का जंतु।

सकूल-वि० [ सं० ] (१) जो जल्दी हजम न हो। गरिष्ठ। गुरुपाक। (२) भारी। घबनी।

सकुच-संज्ञा पुं० स्त्री० [ सं० संकोच ] संकोच। लाज। शर्म। उ०—(क) सुनु मैया तेरी सौं करौं याकी देव खरन की, सकुच बँधि सौं धारै।—गुलसी। (ख) सकुच मुरत औरंग ही, बिहारी लाज लजाय। बरकि बार हुरि विग भई, बीठ विगई भाय।—बिहारी। (ग) हम सौं उन सौं कीन

सगारै। हम अहीर अथवा मजवासी धै जतुपति जतुराई। कहा भयो जु भए नैद नंदन अय इह पदवी पाई। सकुच न भावत धोप बसत की तजि प्रज गए पराई।—सूर।

सकुचना-क्रि० प्र० [ सं० संतोच, हि० सकुच + ना (प्रय०) ] (१) संकोच करना। लज्जा करना। शरमाना। उ०—(क) सकुची, डरी, मुरी मन बारी। गहू न बाँह रे जोगि गिखारी।—जायसी। (ख) सुनि पग-धुनि चितई हलै, न्हाति दिये ही पीठि। चकी, हुकी, सकुची, डरी, हँसी खनीली वीठ।—बिहारी। (२) (कूलों का) संकुचित होना। बंद होना। जैसे,—कमल संकुचित हो गए। उ०—(क) राम की तो ऐसी यात कंज पात गात जाके सामने मनीच ताहि देव सकुचाइ।—हृदयराम। (ख) गिरिधरदास कइ सकुची कुमोदिनी यौं देखि पर-परुष लजात जैसे पंडिता।—गिरधर।

सकुचाई-संज्ञा स्त्री० [ सं० संकोच, हि० सकुच + चाई (प्रय०) ] (१) संकुचित होने का भाव। (२) संकोच। शर्म। लज्जा। दया।

सकुची-संज्ञा स्त्री० [ सं० सकुच मस्य ] एक प्रकार की मछली जो साधारण मछलियों से मित्र और प्रायः कछुए के भाऊ की होती है। इसके छोटे छोटे चार पैर होते हैं और एक लंबी पूँछ होती है। इसी पूँछ से यह चतु को मारती है। जहाँ पर इसकी चोट लगती है, वहाँ घाव हो जाता है और चमड़ा सड़ने लगता है। कहते हैं कि यह मछली ताड़ के वृक्ष पर चढ़ जाती है। पानी में और जमीन पर दोनों जगह यह रह सकती है।

सकुचीला-वि० [ हि० सकुच + ल (प्रय०) ] जिसे अधिक संकोच हो। संकोच करनेवाला। शरमीला।

सकुचीली-संज्ञा स्त्री० [ हि० सकुचीला ] लाजवती। लजावती लता।

सकुड़ना-क्रि० प्र० दे० "सिकुड़ना"।

सकुन-संज्ञा पुं० [ सं० सकुन ] पक्षी। चिड़िया।

संज्ञा पुं० दे० "सकुन"।

सकुनीली-संज्ञा स्त्री० [ सं० सकुन ] पक्षु। चिड़िया। पक्षी।

सकुपना-क्रि० प्र० दे० "सकोपना"।

सकुहंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] साकुहंड वृक्ष।

सकुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] अथवा कुल। उत्तम कुल। ऊँचा ध्यानदान।

संज्ञा पुं० दे० "सकुची"।

सकुलज-वि० [ सं० ] एक ही कुल में उत्पन्न।

सकुला-संज्ञा पुं० [ सं० कुल ] बौद्ध गिद्धुओं का नेता या सरदार।

सकुलादनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गरीबी। महाराष्ट्री 'खता'।

(२) कुटुंबी।

सकुली-संज्ञा स्त्री० दे० "सकुची"।



सकल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ही कुल का । सगोत्र ।  
 सकृतरा-संज्ञा पुं० एक द्वीप जो अरब सागर में अफ्रीका के पूर्वी  
 तट के समीप है । यहाँ मोती और प्रवाल अधिक मिलते हैं ।  
 सकूनत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रहने का स्थान । निवास स्थान ।  
 पता । जैसे,—अदालत में गवाहों की वन्दित्यपत और सकूनत  
 भी लिखी जाती है ।  
 सकृत्-अव्य० [ सं० ] (७) एक बार । एक भरतया । (२) सदा ।  
 (३) साथ । सह ।  
 संज्ञा पुं० (१) पशुओं का मल । विष्टा । गुह । (२) कौआ ।  
 काक ।  
 सकृत्फल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह चीज जो केवल एक ही बार  
 फलती हो ।  
 सकृत्प्रज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसके एक ही बच्चा हो ।  
 (२) काक । कौआ ।  
 सकृत्प्रजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बंध्यारोग । बंक्षपन । (२)  
 शेरनी । सिंहनी ।  
 सकृत्फला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह जो एक ही बार फले ।  
 (२) कदली । केला ।  
 सकृत्सु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह स्त्री जिसने अभी बालक प्रसव  
 किया हो ।  
 सकृदापारी मार्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्ध मतानुसार एक प्रकार का  
 धार्मिक मार्ग जिसमें जीव केवल एक बार जन्म लेकर  
 मोक्ष प्राप्त करता है ।  
 सकृद्दर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] खचर । अश्वत्तर ।  
 सकृद्भू-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन  
 देश का नाम । (२) इस देश का निवासी ।  
 सकृद्दीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एकबीर या अकलबीर नामक वृक्ष ।  
 सकृद्वंदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी  
 का नाम ।  
 सकेतल-संज्ञा पुं० [ सं० संकेत ] (१) संकेत । इशारा । (२) प्रेमी  
 और प्रेमिका के मिलने का निर्दिष्ट स्थान ।  
 वि० [ सं० संकीर्ण ] संग । संकुचित । संकीर्ण ।  
 संज्ञा पुं० विपत्ति । दुःख । कष्ट । उ०—खिनहि उठै, खिन बाढ़ै  
 अस दिख कैवल सकेत । होतमनहिं घुलार्याहि, सानी ! गहन  
 जिउ छैत ।—जायसी ।  
 सकेतना-संज्ञा-किं० अ० [ हि० संकेत ] संकुचित होना । सिकुड़ना ।  
 उ०—कैवल सकेता कुमुदिनि फूली । चकया विधुरा चकई  
 भूली ।—जायसी ।  
 सकेती-संज्ञा स्त्री० [ हि० संकेत ] विपत्ति । कष्ट । आपत्ति ।  
 सकेलंग-संज्ञा पुं० [ सं० संकीर्ण ] एक प्रकार का वृक्ष जोय हुन ऊँचा  
 होता है । इसकी लकड़ी नरम और सफेद होती है जो इमा-

रत और संदूक आदि बनाने के काम में आती है । यह अधिकतर  
 हिमालय के पूर्वी भाग में पाया जाता है ।  
 सकेलना-किं० सं० [ सं० संकीर्ण ] एकत्र करना । इकट्ठा करना । जमा  
 करना । उ०—(क) अथ हम जाना हो हरि यात्री को खेळ ।  
 रंक बनाय देवाय तमाशा बहुरि सो खेन सकेलं—कवीर ।  
 (ख) कहुँ हरि कथा कहुँ हरि पूजा कहुँ संतन को छेते । जो  
 यनिता सुत यूथ सकेले दुँगी रयनि पनेते ।—नूर ।  
 सकेला-संज्ञा स्त्री० [ सं० संकीर्ण ] एक प्रकार की तलवार जो बड़ी  
 और नरम छोड़े के मेल से बनाई जाती है ।  
 संज्ञा पुं० एक प्रकार का लोहा ।  
 सकोच-संज्ञा पुं० दे० "संकोच" ।  
 सकोड़ना-किं० ता० दे० "सिकोड़ना" ।  
 सकोतरा-संज्ञा पुं० दे० "चकोतरा" ।  
 सकोपना-संज्ञा-किं० अ० [ सं० कोप + ना (प्रत्य०) ] कोप करना ।  
 क्रोध करना । गुस्सा करना । उ०—पुनि पुनि सुनि विपरीत  
 सकोपा । और प्रकर कीन्ह व्यशेषा ।—शंकर दिगिजय ।  
 सकोपित-वि० [ सं० स + उप्रति ] कुपित । क्रुद्ध । गारा ।  
 सकोरा-संज्ञा पुं० [ हि० कपोत ] [ स्त्री० मकोरी ] मिट्टी की एक  
 प्रकार की छोटी बटोरी । कसोरा ।  
 सकरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शकरी ] एक प्रकार का छंद । वि० दे०  
 "शकरी" ।  
 सक्हा-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) मिशाली । मायाली । उ०—उठरि  
 सद्धका से परत पुनि छक्का से सद्धका से भजत मेहुं चावुक  
 खद्धका से । सक्हा से सवारि दैत जीवन समर सदा अनुस्रम  
 वाजी पर प्रान के उचक्का से ।—गोपालचंद । (२) वह जो  
 मशक में पानी भरकर लोगों को पिलाता फिरता हो ।  
 सक्त-वि० [ सं० ] (१) दे० "आसक्त" । (२) मिला हुआ । संय  
 हुआ । संलग्न ।  
 सक्तमूत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] चरक के अनुसार वह व्यक्ति जो थोड़ा  
 थोड़ा करके पेशाब करे ।  
 सक्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "शक्ति" । उ०—पंक कर स्वम वर वरं पर  
 शचिर कटि नूत सर सक्ति सारंगधारी ।—तुलसी ।  
 सक्तु-संज्ञा पुं० [ सं० राक्तु ] सुने हुए अनाज को पीसकर तैयार  
 किया हुआ आटा । सक्त ।  
 सक्तुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सक्त । (२) एक प्रकार का विष  
 जिसकी गोंड में सक्त के समान चूरा भरा रहता है ।  
 सक्तुपिंडी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह जो सक्त बनाता और बेचता हो ।  
 सक्तुफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शमी वृक्ष । सफेद कीचर ।  
 सक्तुफली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शमी वृक्ष । सफेद कीचर ।  
 सक्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का मर्म  
 (स्थान) जो शरीर के गारह मर्म-स्थानों में माना गया है ।

सकधी-संज्ञा पुं० [ सं० सकि० ] (१) हड्डी । अस्थि । हाड । (२) उर । जंवा । जीव । (३) छकड़े या वीलगाड़ी का एक अंग या अंश ।

सकझ-संज्ञा पुं० [ सं० शक ] देवताओं का राजा, इंद्र । वि० दे० "शक" ।

सकघण्ट-संज्ञा पुं० [ सं० शकघन ] इंद्र का अक्ष, वज्र । (दि०)

सकनु-वि० [ सं० ] समान कर्म या प्रज्ञावाला ।

सकपति-संज्ञा पुं० [ सं० शकपति ] विष्णु । (दि०)

सकसन-संज्ञा पुं० [ सं० शकसन ] कुट्टन वृक्ष ।

संक सरोवर-संज्ञा पुं० [ सं० शकसरोवर ] इंद्रकुंड नामक स्थान जो मय में है ।

सकारिण-संज्ञा पुं० [ सं० शकारि ] इंद्र का शत्रु, मेघनाद ।

सक्ष-वि० [ सं० ] (१) अतिक्रमण करने के योग्य । (२) हारत हुआ । पराजित ।

सक्षय-वि० [ सं० ] हारा हुआ । पराभूत ।

सक्षयि-वि० [ सं० ] सेवा करने के योग्य । सेव्य ।

सक्षम-वि० [ सं० ] (१) जिसमें क्षमता हो । क्षमताशाली ।

(२) काम करने के योग्य । समर्थ

सक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० सखि ] (१) सखा । मित्र । साथी । (२) एक प्रकार का वृक्ष ।

सखत-वि० दे० "सखत" ।

सखती-संज्ञा स्त्री० दे० "सखती" ।

सखारथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सखा होने का भाव । सखापन । मिथ्या । दोस्ती ।

सखर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम ।

सखि दे० "सखि" ।

सखरण-संज्ञा पुं० दे० "सिखरन" ।

सखरस-संज्ञा पुं० [ सं० सखर ] (१) मक्खन । मैनू

सखरा-संज्ञा पुं० [ सं० सखर ] (१) सारा । क्षारयुक्त । (२)

निखरा का उल्टा । वि० दे० "सखती" ।

संज्ञा पुं० [ हि० निखरी ] वह भोजन जो धी में न पकाया गया हो । कच्ची रसोई । वि० दे० "सखती" ।

सखरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० निखर या निखरी ] कच्ची रसोई । कच्चा भोजन । जैसे,—दाल, भात, रोटी आदि जो हिंदू लोग चौके के बाहर या किसी अन्य जाति के वादमी के हाथ की नहीं खाते और जिसमें छूत मानते हैं । वि० दे० "निखरी" ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सिखर ] छोटा पहाड़ । पहाड़ी । (दि०)

सखस-संज्ञा पुं० दे० "शखस" ।

सखसाधना-संज्ञा पुं० [ सं० शरत ] (१) पालकी । पीनस ।

(२) आराम करती । (३) पलंग ।

सखा-संज्ञा पुं० [ सं० सखि ] (१) वह जो सदा साथ रहता हो । साथी । संगी । (२) मित्र । दोस्त । (३) सहयोगी ।

सहचर । (४) साहित्य में वह व्यक्ति जो 'नायक' का सहचर हो और जो सुख दुःख में उसके समान सुख दुःख को प्राप्त हो । ये चार प्रकार के होते हैं—पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक ।

सखायत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सखी या दाता होने का भाव । दानशीलता । (२) उदारता । ईशान्ता ।

सखिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सखी होने का भाव । (२) वंधुता । मैत्री । दोस्ती ।

सखित्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] वंधुता । मित्रता । दोस्ती ।

सखिपूर्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] वंधुता । मित्रता ।

सखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सहेली । सहचरी । संगिनी । (२) साहित्य प्रबंधों के अनुसार वह स्त्री जो नायिका के साथ रहनी हो और जिससे वह अपनी कोई बात न छिपावे ।

सखी का चार प्रकार का कार्य होता है—संडन, शिक्षा, उपालंभ और परिहास । (३) एक प्रकार का छंद जिसके

प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ और अंत में १ गण या १ यण होता है । इसकी रचना में आदि से अंत तक दो दो कलें होती हैं—२ + २ + २ + २ + २ + २ और कभी कभी

२ + ३ + ३ + २ + २ + २ भी होता है और विराम ८ और ६ पर होता है । विराम भेद के अनुसार कवियों ने इसके दो

भेद किए हैं—(१) विज्ञात और (२) मनोरम ।

वि० [ सं० सखी ] दाता । दानी । दानशील । जैसे,—सखी से दान भला जो तुम दे जाय । ( कदावत )

सखीभाव-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैश्याओं के अनुसार भक्ति का एक प्रकार जिसमें भक्त अपने आपको छेड़ देवता की पत्नी या

सखी मानकर उपासना करते हैं ।

सखुआ-संज्ञा पुं० [ सं० शखु ] दाल वृक्ष । साम् । वि० दे० "दाल" ।

सखुन-संज्ञा पुं० [ सं० सखुन ] (१) बातचीत । वार्तालाप । (२) कविता । काव्य । (३) कौल । वचन । जैसे,—मरदों का सखुन एक होता है ।

मुहा०—सखुन देना = वचन करना । काव्य करना । सखुन बालना = (१) कोई बात कहना । कुछ चाहना या गौगना ।

उ०—सखुन उन्हीं पर डाले जो हँस हँस रहे मान । (२) प्रशं करना । प्रशंसा । सवाक बोलना ।

(३) कथन । उक्ति ।

सखुनचीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुगुलखोर । चवाई । इधर उधर बात लगानेवाला ।

सखुनचीनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सखुनचीन का भाव । सुगुलखोरी । चवाच ।

सखुन तकिया-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शब्द या वाक्यांश जो कुछ लोगों की जगान पर ऐसा चढ़ जाता है कि बातचीत करने में प्रायः मुँह से निकला करता है । तकिया बलाम ।

**विशेष**—बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो यातपीत करने में बार बार “जो है सो” “क्या नाम” “समझ लीजिए कि” आदि कहा करते हैं। ऐसे ही शब्दों या धारणाओं को सखुन तकिया कहते हैं।

**सखुनदाँ**—संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) वह जो सखुन या काव्य अच्छी तरह समझता हो। काव्य का रसिक। (२) वह जो यात-पीत का मर्म अच्छी तरह समझता हो।

**सखुनदाती**—संज्ञा स्त्री० [ फा० ] (१) यातपीत की समझदारी। (२) काव्य-सम्मंजता। काव्य-रसिकता।

**सखुनपरघर**—संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) वह जो अपनी कही हुई बात का सदा पालन करता हो। जवान या बात का धनी। (२) वह जो अपनी कही हुई अनुचित या गलत बात का भी बराबर समर्थन करता हो। हठी। जिद्दी।

**सखुनशानस**—संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) वह जो सखुन या काव्य भली भाँति समझता हो। काव्य का मर्मज्ञ। (२) वह जो यातपीत का मर्म बहुत अच्छी तरह समझता हो।

**सखुनसंज्ञ**—संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) वह जो वात समझता हो। (२) वह जो काव्य समझता हो।

**सखुनसंजी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सखुनसंज्ञ का भाव।

**सखुनसाज**—संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) वह जो सखुन कहता हो। काव्य-रचना करनेवाला। कवि। शायर। (२) वह जो सदा झूठी बातें गढ़ता हो। अपने मन से झूठी बातें बनाकर कहनेवाला।

**सखुनसाज़ी**—संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) सखुनसाज का भाव या काम। (२) कवि होने का भाव या काम। (३) झूठी बातें गढ़ने का गुण या भाव।

**सखोल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] राजतरंगिणी के अनुसार एक प्राचीन नगर का नाम।

**सख्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सखा का भाव। सखत्व। सपानपन। (२) मित्रता। दोस्ती। (३) वैष्णव मतानुसार ईश्वर के प्रति वह भाव जिसमें ईश्वरावतार को भक्त अपना सखा मानता है। जैसे,—महाम्ना सूरदास का श्रीकृष्ण के प्रति सख्य भाव था।

**सख्यता**—संज्ञा स्त्री० दे० “सख्य”।

**सगंध**—वि० [ सं० ] (१) जिसमें गंध हो। गंधयुक्त। महकदार। (२) जिसे अभिमान हो। अभिमानी।

संज्ञा पुं० जाती।

**सगंधा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का चावल। सुगंधशालि। वासमती चावल।

वि० दे० “सगा”।

**सगंधी**—वि० पुं० [ सं० सम्भिन् ] जिसमें गंध हो। महकदार। वि० दे० “सगा”।

**सग**—संज्ञा पुं० [ फा० ] कुत्ता। कुत्तर। धात।

**सगजवान**—संज्ञा पुं० [ फा० ] वह घोड़ा जिसकी जीम कुत्ते के समान पतली और लंबी हो। ऐसा घोड़ा प्रायः ऐसी समझा जाता है।

**सगड़ी**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सगध ] छोटा सगद।

**सगध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] छंदशास्त्र में एक गण जिसमें दो स्वर और एक गुरु अक्षर होते हैं। इस गण का प्रयोग छंद के आदि में अष्टम है। इसका रूप ॥५ है।

**सगत**—संज्ञा स्त्री० [ सं० राकि ] (१) शिव की भार्या, पार्वती। (हिं०) (२) शक्ति। ताकत। बल। सामर्थ्य।

**सगती**—संज्ञा स्त्री० [ सं० राकि ] (१) पार्वती। (हिं०) (२) शक्ति। ताकत। बल।

**सगदा**—संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का सादक द्रव्य जो अनास से बनाया जाता है।

**सगन**—संज्ञा पुं० (१) दे० “सगण”। (२) दे० “शकुन”।

**सगनौती**—संज्ञा स्त्री० दे० “शकुनौती”।

**सगपन**—संज्ञा पुं० दे० “सगापन”।

**सगपहता**—संज्ञा पुं० दे० “सगपहती”।

**सगपहती**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० साग + पहती = दाल ] एक प्रकार की दाल जो साग मिलाकर बनाई जाती है।

**विशेष**—प्रायः लोग सगपहती बनाने के लिये उड़द की दाल में सोभा पालक या यमुपु का साग मिलाते हैं। कभी कभी अरहर की दाल भी मिलाकर बनाई जाती है।

**सगपिस्ता**—संज्ञा पुं० [ फा० ] लिस्तीड़ा। पशुवार।

**सगपु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अमरही।

**सगयग**—वि० [ श्रु० ] (१) सरायोर। लघपथ। उ० (क)—

बरसावत बहु सुमन को सौरभ मद धारि। सगयग बिंदु मरद सों, प्रज की चलत ब्यारि।—अंधिकादत्त। (ख) पिय चुरयो मुँह चूमि होत रोमांचन सगयग। (२) द्रवित।

उ०—मुरली नलिका सों अमी नाथ रहे बगराय। सगयग होत पपान जिहिं सखे तरु हरियाय। (३) परिपूर्ण।

उ०—कित तूखों रतिराज साज सखे सखि सुख पागे। किहि सुहाग सगयगे भाग काके पुनि जागे।

कि० वि० तेजी से। जल्दी से। चटपट। उ०—उत्तरि पहँग ते न दिवो है धरा पै पग तेऊ सगयग निस्ति दिन चली जाती है।—भूयण।

**सगयगाना**—कि० प्र० [ श्रु० सग पग ] (१) लघपथ होगा। किसी वस्तु से भीगना या सरायोर होना। उ०—तन पुलकित किहि हेतु कपोलन परि गई पीरी। रोम सेद सगयगे चाल हू भई अपीरी।—अंधिकादत्त। (२) सकपकाया। दंकिंत होना। भयभीत होना।

**सगमसा**—संज्ञा पुं० [ हिं० साग + सात ] एक प्रकार का भात जो साग मिलाकर बनाया जाता है। इसमें पकाते समय प्रायः में साग मिला देते हैं।

**सगर-संज्ञा पुं०** [ हिं० सगर ] सगर का कुल या उसका पौधा ।

**संज्ञा पुं०** [ सं० ] अयोध्या के एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा जो बड़े धर्मात्मा तथा प्रजा-रंजक थे । इनका विवाह चित्रमं-  
राजकन्या कौशिकी से हुआ था । इनकी दूसरी स्त्री का नाम  
सुमति था । इन विधवा सहित सगर ने हिमालय पर कठोर  
तपस्या की । इससे संतुष्ट होकर महर्षि भृगु ने इन्हें पर-  
दिया कि तुम्हारी पहली स्त्री से तुम्हारा वंश चलानेवाला पुत्र  
होगा; और दूसरी स्त्री से ६० हजार पुत्र होंगे । सगर की  
पहली स्त्री से असमंजस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बड़ा  
उद्धत था । उसे सगर ने अपने राज्य में निकाल दिया ।  
इसके पुत्र का नाम अंशुमान था । सगर की दूसरी स्त्री से  
६० हजार पुत्र हुए । एक बार सगर ने अधमेध यज्ञ करना  
चाहा । अधमेध का घोड़ा इंद्र ने चुरा लिया और उसे  
पाताल में जा छिपाया । सगर के पुत्र उसे ढूँढ़ते ढूँढ़ते  
पाताल में पहुँचे । वहाँ महर्षि कपिल के समीप अध का  
बैधा पाकर उन्होंने उनका अपमान किया । मुनि ने क्रुद्ध  
होकर उन्हें शाप देकर भस्म कर डाला । सगर ने अपने पुत्रों  
को न जाने पर अंशुमान को उन्हें ढूँढ़ने के लिये भेजा ।  
अंशुमान ने पाताल में पहुँचकर मुनि की प्रसन्न किया और  
वहाँ से घोड़ा लेकर अयोध्या पहुँचा । अधमेध यज्ञ समाप्त  
करके सगर ने तीस सदाह वर्ष राज्य किया । राजा भर्गारथ  
इन्हीं के वंश के थे ।

**सगरा-वि०** [ सं० सकल ] [ श्री० सगरी ] सब । तमाम । सकल ।  
कुल ।

**संज्ञा पुं०** [ सं० सगर ] (१) तालाब । (२) स्त्रील ।

**सगरी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक प्राचीन नगरी का नाम ।

**सगर्भ-वि०** [ सं० ] एक ही गर्भ से उत्पन्न । सहोदर । सगा ।  
( भाई, बहन आदि )

**सगर्भा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) वह स्त्री जिसे गर्भ हो । गर्भवती  
स्त्री । (२) सहोदरा । सगी बहन ।

**सगर्भ्य-वि०** [ सं० ] एक ही गर्भ से उत्पन्न । सहोदर ।

**सगतल-वि०** दे० "सकल" ।

**सगतगो-संज्ञा स्त्री०** [ हिं० सगा + लगना ] (१) किसी से बहुत  
सगापन दिखाने की क्रिया । बहुत आपसदारी दिखलाना ।

**कि० प्र०—**राना । दिखाना ।

(२) सुनामद । बापदूसरी । प्यर्थ की प्रार्थना ।

**सगतल-वि०** [ सं० सकल ] सब । समस्त । कुल ।

**सगतवती-संज्ञा स्त्री०** [ ? ] राने का मांस । गोदत । कलिया ।

**सगपा-संज्ञा पुं०** [ देश० ] सहज । सोभान । सुनगा ।

**सगवारा-संज्ञा पुं०** [ सं० स्वर्, हिं० मवा ] रात्रि के आस पास  
की और उससे संबंध रखती हुई भूमि ।

**सगा-वि०** [ सं० स्वर् ] [ श्री० सगी ] (१) एक माता से उत्पन्न,  
सहोदर । जैसे,—सगा भाई । (२) जो संबंध में अपने ही  
कुल का हो । बहुत ही निकट के संबंध का । जैसे,—सगा  
भावा, सगा भतीजा ।

**सगाई-संज्ञा स्त्री०** [ हिं० सगा + आरं (प्रय०) ] (१) यह निश्चय कि  
भयुक कन्या के साथ अमुक वर का विवाह होगा ।  
विवाह संबंधी निश्चय । मैंगनी । (२) स्त्री पुरुष का वह  
संबंध जो छोटी जालियों में विवाह ही के तुल्य माना जाता  
है । प्रायः पेंसा संबंध विधवा या पति-परित्यक्ता स्त्री के  
साथ होता है । उ०—वह कहीं जो तुम मन पेंसाई भाइ ।  
तो तुम क्यों कीन्हें न सगाई—सूर । (३) संबंध ।  
नाता । रिश्ता । उ०—(क) घोष गाल पशुपाल अधम कुल  
इंसा एक को कौन सगाई । सुरस्याम प्रजावास विस्तार बाधा-  
नंद यशोदा माई ।—सूर । (ख) मातृ पिता प्रिय लोग सपै  
समामति सुभाय सनेह सगाई । संग सुभासिनि भाइ अन्धे  
दिन हैं जनु औषहुते पहनुनाई ।—गुलसी ।

**सगाना-संज्ञा पुं०** [ फा० ] समोला । संजन पहरी ।

**सगापन-संज्ञा पुं०** [ हिं० सगा + पन ] सगा होने का भाव ।  
संबंध की आत्मीयता ।

**सगाधी-संज्ञा स्त्री०** [ फा० सग + धी ] (१) एक प्रकार का  
नेवला । (२) उद्विखलाव नामक जंतु जो पानी में रहता है ।

**सगारत-संज्ञा स्त्री०** [ हिं० सगा + तारत (प्रय०) ] सगा होने का  
भाव । संबंध की आत्मीयता । सगापन ।

**सगुण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) परमात्मा का वह रूप जो सत्व,  
रज और तम तीनों गुणों से युक्त है । साकार ब्रह्म । (२)  
वह संप्रदाय जिसमें ईश्वर का सगुण रूप मान कर अव-  
तारों की पूजा होती है । मध्य काल से उत्तरीय भारत में  
भक्ति मार्ग के दो भिन्न संप्रदाय हो गये थे । एक ईश्वर के  
निर्गुण, निराकार रूप का ध्यान करता हुआ मोक्ष की प्राप्ति  
की आशा रखता था; और दूसरा ईश्वर का सगुण रूप राम,  
कृष्ण आदि अवतारों में मान कर उनकी पूजा कर मोक्ष की  
इच्छा रखता था । पहले मत के धर्मी, नामक आदि मुख्य  
प्रचारक थे और दूसरे के तुलसी, सूर आदि ।

**सगुणता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सगुण होने का भाव । सगुण-पन ।

**सगुणी-वि०** दे० "सगुण" ।

**सगुन-संज्ञा पुं०** (१) दे० "शकुन" । (२) दे० "सगुण" ।

**सगुनाना-कि० सं०** [ सं० शकुन + आना (प्रय०) ] (१) शकुन  
बतलाना । उ०—भाइ कोउ नीकी बात सुनायै । कै मनुष्यन  
ते नंद लाहिले कै व वृत्त कोउ आवै । भौरा इक चहुँ दिसि  
ते उडि उडि कान लागि कहु गायै । उत्तम भाषा अर्थे चदि  
चदि अंग अंग सगुनायै । सुरदास कोऊ ब्रज पेंसा जो ब्रज-  
नाय मिलायै ।—सूर । (२) शकुन निखलाना या देखना ।

**सगुनिया-संज्ञा पुं०** [ सं० राकुन, हिं० सगुन + श्वा (प्रत्य०) ] वह मनुष्य जो लोगों को राकुन घतलता हो। राकुन विचारने और घतलानेवाला। उ०—आगे सगुन सगुनिये ताका। दहिने माछ रूप के हँका।—जायसी।

**सगुनीती-संज्ञा स्त्री०** [ सं० राकुन, हिं० सगुन + श्रौती (प्रत्य०) ] प्रचलित विश्वास के अनुसार वह क्रिया जिससे भाभी शुभाशुभ का निर्णय किया जाता है। राकुन विचारने की क्रिया। उ०—श्रीडी जननि करति सगुनीती। लखमन राम मिलें अथ भोकीं दोउ भगोल्क मोती। इतनी कहत सुकाग उहाँ ते हरी डाल उड़ि बैद्यो। अंचल गाँठ दई दुख भाग्यो सुख जो आनि उर बैद्यो।—सूर।

**सगृह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जिसकी स्त्री वर्तमान हो। घरगृहस्थी-वाला। सपत्नीक।

**सगोती-संज्ञा पुं०** [ सं० सगोथ ] (१) एक गोत्र के लोग। सगोत्र। (२) आपसदारी के या रिश्ते नाते के लोग। भाई बंधु।  
**सगोत्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) एक गोत्र के लोग। सजातीय। (२) कुल। जाति।

**सगोनीमर-संज्ञा पुं०** [ हिं० सगोनी ] सागान। शाल वृक्ष।  
**सगौती-संज्ञा स्त्री०** [ देश० ] खाने का मांस। गोदत। कलिया।  
**सगिध-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सहभोजन। एकत्र भोजन।  
**सगम-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यजमान।

**सघन-वि०** [ सं० ] (१) घना। गहिन। अचिरल। गुंजान। जैसे,—सघन जंगल। उ०—सघन कुंज छाया सुखद शीतल मंद समीर।—विहारी। (२) ठोस। ठस।

**सघनता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सघन होने का भाव। निविदता। अचिरलता। गुंजानी।

**सच-वि०** [ सं० सत्य ] जो यथार्थ हो। सत्य। वास्तविक। ठीक। दे० “सत्य”।

**सचकी-संज्ञा पुं०** [ सं० सचकिन् ] वह जो रथ चलाता हो। सारथी।

**सचन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सेवा करने की क्रिया या भाव। सेवन।  
**सचन-क्रि० प्र०** [ सं० संचन ] (१) संचय करना। एकत्र करना। जमा करना। बटोरना। उ०—दान करन है दुइ जग तरा। रावन सचा भगिन मई जरा।—जायसी।  
**क्रि० प्र०, सं० दे०** “सजना”। उ०—जो कछु सकल लोक कीं शोभा है द्वारिका सची री।—सूर।

**सचनावत्-संज्ञा पुं०** [ सं० ] परमेश्वर, जिसका भजन सब लोग करते हैं।

**सचमुच-प्रत्य०** [ हिं० सच + मुच (प्रत्य०) ] (१) यथार्थतः ठीक ठीक। वास्तव में। यस्तुतः। (२) अवश्य। निश्चय। निरसंदेह।

**सचर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] श्वेत शिरंटी। सफेद कटसरैया।

**सचरना-क्रि० प्र०** [ सं० संचर ] (१) किसी बात का विषयान होना। संचरित होना। फैलना। (२) किसी वस्तु या प्रयास का अधिक व्यवहार में आना। बहुत प्रचलित होना। (३) संचार करना। प्रवेश करना। उ०—कुटिल अलक ध्रुव चार नैन मिलि सचरे श्रवण संमीप सुमीति। वक्र चिलोकेनि भेद भेदिआ जोह कहत सोइ करत प्रतीति।—सूर।

**सचराचर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] संसार की सब चर और अचर वस्तुएँ। स्थावर और जंगम सभी वस्तुएँ।

**सचल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह वस्तु जिसमें गति की सामर्थ्य हो। सचर। चर। जंगम।

वि० चलायमान। चर। चलनेवाला।

**सचल सवयण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सौरचरवल लक्षण। सौचर नमक।

**सचा-संज्ञा पुं०** दे० “सचा”।

**सचाई-संज्ञा स्त्री०** [ सं० सच, प्रा० सच + श्चर (प्रत्य०) ] (१) सच्चा होने का भाव। सत्यता। सच्चापन। (२) वास्तविकता। यथार्थता।

**सचान-संज्ञा पुं०** [ सं० संचान = स्नेह ] द्येन पक्षी। बाज़।

**सचारना-क्रि० प्र०** [ सं० संचारण ] सचरना का सकर्मक रूप। संचरित करना। फैलाना।

**सचावट-संज्ञा स्त्री०** [ हिं० सच + आवट (प्रत्य०) ] सचापन। सचाई। सत्यता। (क्र०)

**सचिक-वि०** [ सं० ] चेतनायुक्त।

**सचिंत-वि०** [ सं० ] जिसे चिंता हो। चिन्तमंद।

**सचिक्रय-वि०** [ सं० ] अत्यंत चिकनता। बहुत अधिक चिकना। जैसे,—सचिक्रय केश।

**सचिकन-वि०** [ सं० सचिकण ] अत्यंत चिकना। अत्यंत स्निग्ध। उ०—सहज सचिकन स्वाम रचि, सुचि सुगंध सुकुमार। गनत न मन पय अपय लखि विधुरे सुधरे वार।—विहारी।

**सचित्-वि०** [ सं० ] चित्त युक्त। जिसे ज्ञान या चेतना हो।

**सचित्त-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जिसका ध्यान एक ही ओर लगा हो।

**सचिह्नक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) क्लिप्तचक्र। (२) जिसकी दृष्टि खराब हो।

**सचिव-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) मित्र। दोस्त। (२) मंत्री। वजीर। (३) सहायक। मददगार। (४) धुरे का वृक्ष।

**सचिवता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सचिव होने का भाव या धर्म।

**सचिवामय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) पांडु रोग। पोलिया। (२) विसर्प रोग।

**सची-संज्ञा स्त्री०** [ सं० सची ] (१) इंद्र की स्त्री का नाम। इंद्रणी। दे० “शची”। (२) अगर। अगुर।

**सचीसुत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) शची का पुत्र, जयंत। (२) धीचैतन्यदेव

**सचु-संज्ञा पुं०** [ सं० ? ] (१) सुख। आनंद। उ०—(क)

मुक्तामाल बाल बग पंगति करत कल्याण कूल । सारस हंस  
मय्य मुक्त सैना, धैर्यवति सम तूल । पुरादिनि फणिना निचोल  
विविध रंग विहंसत सज्जु उपजावै । मूर श्याम आनंद कंद  
की शोभा कहत न आवै ।—सूर । (ख) भैलियन पेसी  
धरति परी । नंद-नंदन देखे सज्जुपावै या साँ रहति उरी ।  
—सूर । (२) प्रसन्नता । सुनति ।

सचेत-वि० [ सं० सचेतन ] (१) चेतनायुक्त । वि० दे० “सचे-  
तन” । (२) सज्जन । समझदार । (३) सजग । सावधान ।  
होशियार । जैसे,—जब यह आया को, तब तूम सचेत  
रहा करो ।

सचेतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह प्राणी जिसे चेतना हो ।  
विवेकयुक्त प्राणी । (२) यह वस्तु जो जागृ न हो । चेतन ।  
वि० (१) चैतन्य । चेतनायुक्त । (२) सावधान । होशि-  
यार । (३) समझदार । चतुर ।

सचेती-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सचेत + ई (प्रत्य०) ] (१) सचेत होने का  
भाव । (२) सावधानी । होशियारी ।

सचेष्ट-वि० [ सं० ] (१) जिसमें चेष्टा हो । (२) जो चेष्टा करे ।  
संज्ञा पुं० [ सं० ] भाग्य प्रकृष । आम या पेड़ ।

सचैयत-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सच + यत (प्रत्य०) ] सचाई । सत्यता ।  
सचापन ।

सचोर-संज्ञा पुं० [ देश० ] गुजराती प्राइमों की एक जाति ।  
सच्चरित-वि० [ सं० ] जिसका चरित अच्छा हो । सचरित ।

सच्चर्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उच्चम आचरण । अच्छा चालचलन ।  
सच्चा-वि० [ सं० सत्य ] [ स्त्री० सच्ची ] (१) सच बोलनेवाला ।

जो कभी झूठ न बोलता हो । सत्यवादी । (२) जिसमें झूठ  
न हो । यथार्थ । ठीक । वास्तविक । जैसे,—सच्चा मामला ।

(३) असली । विशुद्ध । जैसे,—सच्चा सोना । सच्चा धी ।  
(४) बिल्कुल ठीक और पूरा । जितना या जैसा चाहिए,  
उतना या वैसा । जैसे,—(क) तुमने भी उस पर खूब सच्चा  
हाथ मारा । (ख) यह तसवीर बहुत सच्ची जड़ी गई है ।

सच्चाई-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सच्चा + आरं (प्रत्य०) ] सच्चा होने का  
भाव । सचापन । सत्यता ।

सच्चापन-संज्ञा पुं० [ हिं० सच्चा + पन (प्रत्य०) ] सत्य होने का  
भाव । सत्यवा । सचाई ।

सच्चाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो संपत्ति की रक्षा करता हो ।  
सच्चाप-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] झुलड़ी । इतिहा ।

सच्चादृष्ट-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सच्चा + दृष्ट (प्रत्य०) ] सच्चा होने का  
भाष । सचापन । सत्यता ।

सच्चिदानन्द-वि० दे० “सच्चिदानन्द” ।  
सच्चिदानन्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] सत् और चित्त से युक्त, प्रकृष ।

सच्चिदानन्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] (सत्, चित्त और आनंद से युक्त  
होने के कारण) परमात्मा का एक नाम । ईश्वर । परमेश्वर ।

सच्चिदानन्द-वि० [ सं० ] सत् और चैतन्य से युक्त । सत् और  
चैतन्य का स्वरूप ।

सच्छब्द-वि० दे० “स्वच्छब्द” ।  
सच्छील-संज्ञा पुं० दे० “साक्षी” ।

संज्ञा स्त्री० दे० “साक्षी” ।  
सच्च्युति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दल बल सहित चलना ।

सज-संज्ञा स्त्री० [ सं० सज्जा, हिं० सजावट ] (१) सजने की क्रिया  
या भाव ।

यौ०—सजधज ।  
(२) रूप । बनावट । डील । शकल । (३) शोभा । सौंदर्य ।  
सजावट । शंगार ।

संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का बहुत लंबा वृक्ष जिसके पत्ते  
प्रिस्तिर में झड़ जाते हैं । यह हिमालय, बंगाल और दक्षिण

भारत में अधिकता से पाया जाता है । इसके हीर की लकड़ी  
बहुत कड़ी और मजबूत होती है । इसकी लकड़ी का रंग  
खाही छिप हुप भूरा होता है । लकड़ी जहान, नाव

आदि बनाने में काम आती है । इसे कहीं कहीं असीन भी  
कहते हैं ।

सजग-वि० [ सं० जागरण ] सावधान । सचेत । सतर्क । होशियार ।  
उ०—(क) तब आगुड़ बस होइ है जिमि बनिया कर भूत ।  
तदपि सजग रहिप सदा रिषु सम जानि कएत । (ख) जौ  
राजा अस सजग न होई । काकर राज कहीं कर होइ ।  
—जायसी ।

सजड़ा-संज्ञा पुं० दे० “सहजना” । ( वृक्ष )  
सजद्वार-वि० [ हिं० सज + द्वार (प्रत्य०) ] जिसकी आकृति अच्छी  
हो । सुंदर ।

सजधज-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सज + धज अनु० ] बनावट सिंगार ।  
सजावट । जैसे,—उनकी बरात बहुत सजधज से  
निकली थी ।

सजना-संज्ञा पुं० [ सं० सज + ना = सजना ] [ स्त्री० सजनी ] (१)  
अच्छा आदमी । सज्जन । इतीक । (२) पति । मर्ता । उ०—  
महुत नारि सुभाग सुंदरि और धीप कुमारी । सजना  
मीनम नाईं लै लै देहि परस्पर गारि ।—सूर । (३) प्रिय-  
तम । आशाना । यार ।

वि० [ सं० ] जन सहित । जिसमें लोग हों ।  
सजना-क्रि० प्र० [ सं० सज्जा ] (१) भूषण वस्त्र आदि से अपने  
को सजित करना । अलंकृत करना । शंगार करना । उ०—  
तीज परम सौमिन सजने, भूषण बसन सरीर । सचै भरणे  
सुंदर करी, यहै भरणे चरि ।—विहारी । (२) शोभा देना ।  
शोभित होना । मला जान पड़ना । जैसे,—यह सुन्दरता  
भी गई ग्य सजना है ।

क्रि० रा० वस्तुओं को उचित स्थान में रखना जिसमें वे सुंदर जान पड़ें। सजाना। सुसजित करना। साजना। जैसे,—  
मकान सजना, थाली सजना।

धंड़ा पु० दे० "सहिजन"।

सजनीय-वि० [ सं० ] प्रसिद्ध। विख्यात। मगधूर।

सजधज-संज्ञा स्त्री० दे० "सजधज"।

सजल-वि० [ सं० ] (१) जल से युक्त या पूर्ण। जिसमें पानी हो।  
(२) अध्रुपूर्ण (नेत्र)। आँसुओं से पूर्ण (आँख)। उ०—  
लोचन सजल मकरंद भरे अरविंद खुली खुले बूँदपति मधुप  
क्रिशोर की।—काव्य कलाधर।

सजला-वि० [ हि० मँकला का अनु० ] [ हि० सजली ] चार सहो-  
दरों में से तीसरा। मँसले से छोटा, पर सव से छोटे से  
बड़ा।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जल से भरी हुई। जलयुक्त।

सजवाई-संज्ञा स्त्री० [ हि० सजना + पारि (प्रत्य०) ] (१) सजवाने  
की क्रिया। (२) सुसजित करवाने का भाव। (३) सजाने  
की मजदूरी। जैसे,—इस टोपी की सजवाई दो रुपए  
होए हैं।

सजयामा-क्रि० रा० [ हि० सजना का प्रे० रूप ] किसी के द्वारा  
किसी वस्तु को सुसजित कराना। सुसजित करवाना।  
जैसे,—भाज कल महाराज अपनी कोठी सजवा रहे हैं।

सज्जा-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] (१) अपराध आदि के कारण होनेवाला  
दंड। (२) कारागार का दंड। जेल में रखने का दंड।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—भुगतना।—  
मिलना।—होना।

घौ०—सज्जा-याफ़्त। सज्जायाय।

सजाइ-संज्ञा स्त्री० [ फा० सजाया ] सज्जा। दंड। उ०—पहले  
सजाय, ननु कहत सजाय तोहि, बायरी न होहि यानि  
जानि कपिनाह की। आन हनुमान की दोहाई बलयान की,  
सपथ महावीर की जो रहै पीरें बौह की।—तुलसी।

सजाई-संज्ञा स्त्री० [ सं० सजाना + आई (प्रत्य०) ] (१) सजाने की  
क्रिया। सजाने का काम। (२) सजाने का भाव। (३)  
सजाने की मजदूरी।

सजागर-वि० [ सं० ] (१) जागता हुआ। (२) सजग।  
होसियार।

सजाति-वि० [ सं० सजातीय ] एक जाति का। समान जाति का।  
जैसे,—(क) वे तो हमारे सजाति ही हैं। (ख) ये दोनों  
बृक्ष सजाति हैं।

सजातीय-वि० [ सं० ] एक जाति या गोत्र का।

सजात्य-वि० दे० "सजातीय"।

सजान-संज्ञा पुं० [ सं० सजान ] (१) जानकार। जाननेवाला।  
(२) चतुर। होसियार।

सजाना-क्रि० रा० [ सं० सजाना ] (१) वस्तुओं को यथास्थान  
रखना। यथाक्रम रखना। तरतीव लगाना। (२) अलंकरण  
करना। सँवारना। श्रंगार करना।

सजाय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह जो अपनी स्त्री के सहित शर्-  
मान हो।

स्त्री संज्ञा स्त्री० दे० "सजा"।

सजायाफ़ता-संज्ञा पुं० [ फा० सजायाफ़त ] वह जिसने दंड  
विधान के अनुसार दंड पाया हो। वह जो सजा भोग चुका  
हो। व जो कैदखाने हो आया हो।

सजायाय-वि० [ फा० ] (१) जो दंड पाने के योग्य हो।  
दंडनीय। (२) जो कानून के अनुसार सजा पा चुका हो।  
जिसे कारागार का दंड मिल चुका हो।

सजाय, सजाऊ-संज्ञा पुं० [ सं० सजाऊ ] साहिल। शायक।

सजाव-संज्ञा पुं० [ हि० सजाना ] एक प्रकार का दही।

चिरोप-इसे बनाने के लिये दूध को पहले खूब गरम करने  
हैं और तब उसमें जामन छोड़ते हैं। इस प्रकार जमा हुआ  
दही बहुत उत्तम होता है; उसकी साड़ी या मलाई बहुत  
मोटी और चिकनी होती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "सजावट"।

सजावट-संज्ञा स्त्री० [ हि० सजाना + वावट (प्रत्य०) ] (१) सजित  
होने का भाव या धर्म। जैसे,—उनके मकान की सजावट  
भी देखने ही योग्य है। (२) शोभा। (३) तैयारी।

सजावण-संज्ञा पुं० [ हि० सजाना ] (१) सजाने की क्रिया।  
अलंकरण। मंडन। (२) तैयार करने की क्रिया। सुसजित  
करना। उ०—अब तो नाथ विहंगम न कीड़े। सैन सजावन  
शासन दीजे।—चतुराज।

सजावल-संज्ञा पुं० [ तु० सजावल ] (१) सरकारी कर उगाहने-  
वाला कर्मचारी। तहसीलदार। (२) राज कर्मचारी। (३)  
सिपाही। जमादार।

सजावार-वि० [ फा० ] जो दंड का भागी हो। जो सजा पाने के  
योग्य हो। दंडनीय।

सजिना-संज्ञा पुं० दे० "सहिजन"।

सजीउल्ल-वि० दे० "सजीव"।

सजीला-वि० [ हि० सजना + ईला (प्रत्य०) ] [ स्त्री० सजीली ] (१)  
सजधज के साथ रहनेवाला। पैला। छपीला। जैसे,—वह  
बहुत अच्छा और सजीला जवान है। (२) सुंदर। सुडौल।  
मनोहर।

सजीव-वि० [ सं० ] (१) जीव युक्त। जिसमें प्राण हों। उ०—  
हस्ति सिंघली बँधे बारा। जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा।—  
जायसी। (२) फुरतीला। तेज। (३) भोजयुक्त। भोजस्वी।  
जैसे,—उनकी कविता बड़ी सजीव है।

संज्ञा पुं० प्राणी। जीवधारी।

सजीवता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संजीव होने का भाव । सजीव-पन ।  
सजीवम—संज्ञा पुं० [ सं० संजीवन ]—संजीवनी नामक वृत्ति । वि०  
दे० “संजीवनी” ।

सजीवन वृत्ती—संज्ञा स्त्री० [ सं० संजीवनी + वृत्ति ] रुढ़ती ।  
रुढ़तीसी । वि० दे० “संजीवनी” ।

सजीवनमूर, सजीवनमूल—संज्ञा पुं० [ सं० संजीवनी ] संजीवनी  
वृत्ति । वि० दे० “संजीवनी” ।

सजीवनी मंत्र—संज्ञा पुं० [ सं० संजीवन + मंत्र ] (१) वह कल्पित  
मंत्र जिसके संबंध में लोगों का विश्वास है कि मरे हुए  
मनुष्य या प्राणी को जिलाने की शक्ति रखता है । (२) वह  
मंत्र जिससे किसी कार्य में सुभीता हो । उपकारी मंत्रगाय ।

सज्जग—वि० [ हिं० सज्जग ] सजग । सचेत । होशियार ।  
उ०—लोभी चोर वृत्त ठग छोर रहहि यह सुँव । जो यह  
हाट सज्जग ना मँद ताकर धी धीव ।—जायसी ।

सज्जुता—संज्ञा स्त्री० [ सं० संयुगा ] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक  
वर्ण में एक सगण, दो जगण और एक गुरु होना है ।  
( स ज ज ग ) वि० दे० “संयुत” ।

सज्जुरी—संज्ञा स्त्री० [ ? ] एक प्रकार की मिठाई । उ०—(क)  
कमल नयन कतु करो पियारी । घेवर माल्युवा मुक्ति-लह  
सोहर सज्जुरी सरस सवारी । लुबुई लपसी सोव जलेबी  
सोहर जेवहु जो लयी पियारी ।—सूर । (ख) माधुरि अति  
सरस सज्जुरी । सद् परसि धरी पूत पूरी ।—सूर ।

सज्जोना—क्रि० सं० [ हिं० सज्जना ] (१) समित करना । श्रंगार  
करना । (२) सामान इकट्ठा करना । किसी कार्य के  
निमित्त आवश्यक वस्तुएँ एकत्र करना । सामान करना ।  
संरक्षण करना ।

सज्जोप—वि० [ सं० ] (वि) जिनमें समान प्रीति हो ।

सज्जोपण—संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत दिनों से चली आई हुई समान  
प्रीति ।

सज्जल—संज्ञा पुं० “साज” ।

सज्जक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सज्जा । सजावट ।

सज्जण—संज्ञा पुं० [ सं० सज्जा ] (१) फौज की तैयारी । (हिं०)  
(२) दे० “सज्जन” ।

सज्जता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सज्जा का भाव । सजावट ।

सज्जन—संज्ञा पुं० [ सं० सज्ज + जन ] (१) भला आदमी । सन्मुख्य ।  
धरिण । (२) अच्छे कृत्य का मनुष्य । (३) प्रिय मनुष्य ।  
मित्रताम । (४) चौकीदार । संतरी । (५) पाट । (६)  
सज्जाने की क्रिया या भाव । सज्जा ।

सज्जनता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सज्जन होने का भाव । सख्युल्यता ।  
मलयसहाय । मलयसही । सौमन्य । सखुता ।

सज्जनताई—संज्ञा स्त्री० दे० “सज्जनता” ।

सज्जना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह हाथी जिस पर नायक या सरदार  
चढ़ता हो ।

सज्जा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सज्जाने की क्रिया या भाव ।  
सजावट । (२) वेपथुपण ।

सजा स्त्री० [ सं० सज्या ] (१) सोने की चारपाई । शय्या ।  
(२) चारपाई, तोरक, चादर आदि वे सामान जो किसी के  
मरने पर उसके उद्देश्य से महापात्र को दिए जाते हैं । वि०  
दे० “शय्यादान” ।

वि० [ सं० मज्य ] दाहिना । (पश्चिम)

सज्जादा—संज्ञा पुं० [ अ० सज्जाद ] (१) विद्याने का वह कपड़ा  
जिस पर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं । मुसल्ला । जानमात्र ।  
(२) आसन । (३) फकीरों या पीरों आदि की गद्दी ।

सज्जादानशीन—संज्ञा पुं० [ अ० सज्जाद + शीन ] (१) वह  
जो गद्दी और तखिया लगाकर बैठता हो । (२) मुसलमान  
पीर या बड़ा फकीर ।

सज्जित—वि० [ सं० ] (१) जिसकी खूब सजावट हुई हो । सजा  
हुआ । सुशोभित । अलंकृत । आराम्ना । (२) आवश्यक  
वस्तुओं से युक्त । तैयार । जैसे,—युद्ध के निमित्त  
सज्जित सैन्य ।

सज्जी—संज्ञा स्त्री० [ सं० सज्जि, सज्जिका ] एक प्रकार का प्रसिद्ध क्षार  
जो सफेदी लिए हुए भूरे रंग का होता है ।

विशेष—सज्जी दो प्रकार की होती है । एक वह जो मालवावर  
की ओर बनाई जाती है । इसमें बड़ी बड़ी खाइयों में बन्द  
उनमें घुसों की शाखाएँ और पत्ते आदि भर कर भाग लगा  
देते हैं । जब वे जल कर जम जाते हैं, तब उनकी रास को  
खारी कहते हैं । इसी खारी से सूँ में सज्जी बनाते हैं ।  
दूसरे प्रकार की सज्जी खारवाली ज़मीन में होती है । खार  
के कारण भूमि फूल जाती है; और उसी फूली हुई मिट्टी को  
सज्जी कहते हैं । वैद्यक के अनुसार सज्जी गरम, तीक्ष्ण और  
वायुगोला, शूल, घात, कफ, कृमि रोग आदि को शान्त करने-  
वाली मानी जाती है ।

सज्जीखार—संज्ञा पुं० दे० “सज्जी” ।

सज्जी वृत्ती—संज्ञा स्त्री० [ सं० संजीवनी ] क्षुप जाति की एक  
पनस्पति जो प्रति वर्ष उलपन्न होती है । यह ६ से १० इंच  
तक ऊँची होती है । इसकी शाखाएँ कोमल और पत्ते बहुत  
छोटे और तिकोने होते हैं । पुष्प छोटे और एक से तीन तक  
साथ लगते हैं । बीज-कोप ६ इंच तक के घेरे में गोलाकार  
होता है । इसका रंग प्रायः चमकीला गुलाबी होता है ।  
इसमें बहुत ही छोटे छोटे बीज होते हैं । प्रायः इसी के  
दंठलों और पत्तियों से सज्जीदार तैयार होता है । यह क्षुप  
तीन प्रकार का पाया जाता है ।



संज्ञा—संज्ञा स्त्री० “संज्ञा” ।

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० [ सं० संज्ञा ] संज्ञा नामक छंद । वि० दे० “संज्ञा” ।

संज्ञा—वि० [ सं० ] आनंददायक । सुखकारी ।

संज्ञा—सर्व० [ सं० सर्व ] सय । विलकुल । संपूर्ण ।

अर्थ० तमाम । सर्वतः । संपूर्णतः ।

ज्ञान—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसे ज्ञान हो । ज्ञानवाला मनुष्य । (२) बुद्धिमान या चतुर पुरुष । सयाना । (३) उस अवस्था को पहुँचा हुआ पुरुष जिसमें वह विवेक-युक्त हो जाता है । प्रौढ़ । बालिग ।

वि० (१) ज्ञान-युक्त । (२) चतुर । बुद्धिमान । (३) सचेत । सावधान । होशियार ।

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० दे० “संज्ञा” ।

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० [ सं० संज्ञा ] (१) संज्ञावद । (२) तैयारी । (हिं०)

संज्ञा—संज्ञा पुं० [ सं० संज्ञा ] सेना को संज्ञित करने की क्रिया । फौज तैयार करना । (हिं०)

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार का छोटा पक्षी जिसकी पीठ काली, छाती सफेद और चोंच लंबी होती है ।

संज्ञा—संज्ञा पुं० [ हिं० संज्ञा ] [ स्त्री० संज्ञा ] हिस्से-दार । साँझीदार । शरीक ।

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० [ हिं० संज्ञा + ई (प्रत्य०) ] साँझीदार होने का भाव । साझा । शिरकत ।

संज्ञा—संज्ञा पुं० [ सं० ] जटा ।

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] अनाज रखने का एक प्रकार का पात्र ।

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० [ अनु० संज्ञा ] (१) संज्ञाने की क्रिया । धीरे से चंपत होने या बिसकने का व्यापार । (२) संज्ञा पीने का लंबा लचीला पेचा जो भीतर छेदेदार तार देकर बनाया जाता है । यह रबर की नली की भाँति लचीला और लपेटने योग्य होता है । अधिक लंबे बाँस की निगाड़ी रखने में अद्भुत होती है; अतः लोग संज्ञा का व्यवहार करते हैं । (३) पतली लचनेवाली छड़ी । उ०—चिलक चिकनई चटक सँ लफलि संज्ञा लीं आय । नारि सलौनी साँवरी नागिन लीं उलसि जाय ।—विहारी ।

संज्ञा—वि० अनु० संज्ञा से ] धीरे से। प्रसन्न करना । रक्त चक्र होना । चल देना । चंपत होना । उ०—असुर यह घात तकि गयो रण तें संज्ञा विपति ज्वर दियो तव शिव पठाई ।—सूर ।

वि० सं० घालों में से अनाज निकालने के लिये उसे घृतने की क्रिया । घृतना । पीटना ।

संज्ञा—वि० सं० [ अनु० संज्ञा ] (१) किसी को छड़ी, कोड़े आदि से मारना जिसमें “संज्ञा” शब्द हो । जैसे,—दो कोड़े

संज्ञा, ठीक हो जाओगे । (२) संज्ञा संज्ञा या संज्ञा संज्ञा करके हुए हुका पीना । जैसे,—क्या धेड़े संज्ञा रहे हो ।

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० [ अनु० संज्ञा ] (१) संज्ञाने की क्रिया का भाव । (२) संज्ञाने या संज्ञाने की क्रिया । (३) गौ आदि को हॉकने की क्रिया । हटकार । उ०—साधनी पाप रख द्ये संज्ञा हय द्वारकापुरी जय निकट आई ।—सूर ।

संज्ञा—वि० सं० [ अनु० संज्ञा से ] (१) पतली लचीली छड़ी या कोड़े आदि से किसी को संज्ञा से मारना । संज्ञा मारना । (२) संज्ञा मारना । संज्ञा मारना ।

संज्ञा—वि० [ अनु० ] विकना और लंबा । (घाल) उ०—छुटे छुटाये जगत तें संज्ञा सुकुमार । मन बाँधत येनी बँधे नील छवीले धार ।

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० [ अनु० ] लचनेवाली पतली छड़ी । साँझी । संज्ञा—संज्ञा पुं० [ अनु० संज्ञा से ] (१) दे० “संज्ञा” । (२) दौड़ । संपद । जैसे,—एक संज्ञा में तो मुम पर पहुँच जाओगे ।

संज्ञा—संज्ञा मारना = एक संज्ञा में दौड़कर या बहुत जल्दी जाना ।

संज्ञा—वि० अनु० [ सं० संज्ञा + रथा ] (१) दो चीजों का इस प्रकार एक में मिलना जिसमें दोनों के पारस्परिक दूसरे से लग जायँ । जैसे,—दीवार से अलमारी संज्ञा । (२) विपकना । जैसे,—इपती पर कागज संज्ञा । (३) संभोग होना । (वजाह) (४) लाठी या डंडे आदि से मार पीट होना । लाठी सोटा चलना । मार पीट होना । (वदमात्र) (५) साथ होना । मिलना ।

संज्ञा—वि०—जाना ।

संज्ञा—संज्ञा स्त्री० [ अनु० ] (१) संज्ञापिदाने की क्रिया । कर पकाहट । उ०—अरी खरी संज्ञा पट परी, विषु आगे मुग हेरि । संग लगे मयुपन छई भागन गली अंधेरि ।—विहारी । (२) शील । संकोच । (३) संकट । दुविधा । असमंजस ।

वि० अनु०—में पढ़ना ।—में डालना ।

संज्ञा—वि० अनु० [ अनु० ] (१) संज्ञा की ध्वनि होना । (२) दे० “संज्ञापिदाना । उ०—छुटे न लाज न छालची प्यौ लखि नैहर गेह । संज्ञापदात लोचन मरे, भरे संज्ञाप सनेह ।—विहारी ।

वि० सं० संज्ञाप शब्द उत्पन्न करना ।

संज्ञा—वि० [ अनु० ] (१) छोटा मोटा । तुच्छ । जैसे,—संज्ञा पत्र काम करने से न चलेगा । (२) बहुत साधारण । विलकुल मामूली ।

संज्ञा स्त्री० (१) उल्लेख का काम । खड़े का काम । (२) ध्यर्थ का या तुच्छ काम । जैसे,—इसी संज्ञा पत्र में दिन बीत जाता है ।

वि० अनु०—करना ।—लगाना ।

सट सट—कि० वि० [ श्रु० ] (१) सट शब्द के साथ। सटा-सट। (२) शीघ्र। बहुत जल्दी। तुरंत। जैसे,—वह सम काम सट सट निपटा चलता है।

सटाक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंह। शेर।

सटा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तिलवा। (२) जटा। (३) भोजे या शेर के कंधे पर के बाल। अथवा। केदार।

सटाक—संज्ञा पुं० [ श्रु० ] सट शब्द।

सटाकी—संज्ञा स्त्री० [ श्रु० ] चमड़े की वह रस्ती या पट्टी जो पैना के सिरे पर बाँधी जाती है।

विशेष—पैना बॉस का एक पतला छोटा डंडा होता है जिससे हल जोतनेवाला या गाड़ी हँकनेवाला बेल हँकता है। इस पैना को कोड़े का आकार देने के लिये इसमें चमड़े की पतली पतली पट्टियाँ बाँधते हैं। इन्हीं पट्टियों को सटाकी कहते हैं। सटाकी और डंडा दोनों मिलकर 'पैना' होता है।

सटान—संज्ञा स्त्री० [ हि० सटना + आन (प्रय०) ] (१) सटने की क्रिया या भाव। मिलान। (२) दो पक्षों के सटने या मिलने का स्थान। जोड़।

सटाना—कि० सं० [ सं० स + ट्थ या स + निट ] (१) दो चीजों को एक में संयुक्त करना। दो चीजों के पार्श्वों को आपस में मिलाना। मिलाना। जोड़ना। (३) छाटी उठे आदि से छद्दाई करना। मार पीट करना। (बदमाश) (४) स्त्री और पुत्र का संयोग करना। संभोग करना। (शजाक)

सटाय—वि० [ दे० ] (१) हलकों की परिमाणों में, कम। न्यून। (२) हलका। घटिया। खराब।

सटाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंह। केसरी। शेर वधर।

सटि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कच्चा। शरीर।

सटिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यन आदी। जंगली कच्चा।

सटिया—संज्ञा स्त्री० [ हि० सटना ] (१) सोने या चाँदी की एक प्रकार की चूड़ी। (२) चाँदी की एक प्रकार की कलम जिससे खिर्सी मींग में सिद्धू देती है। (३) दे० "साटी"।

सटी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यन आदी। जंगली कच्चा।

सटीक—वि० [ सं० ] जिसमें मूल के साथ टीका भी हो। टीका सहित। व्याख्या सहित। जैसे,—सटीक रामायण।

वि० [ हि० टीक या सं० सटीक ] चिलकुल टीक। जैसा चाहिए, टीक वैसा ही। जैसे,—यह तसवीर यन तो रही है; सटीक उतर जाय, तो बात है।

संयो० वि०—पड़ना।—बँटना।

सटैला—संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का पक्षी।

सट्ट—संज्ञा पुं० [ सं० ] दरवाजे के चौखटे में दोनों ओर की लकड़ियाँ। बाजू।

संज्ञा पुं० दे० "सटा"।

सट्टक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राइस भाषा में प्रयुक्त छोटा रूपक।

जैसे,—राजेश्वर कृत कर्पूरमंजरी है। (२) जीरा मिला हुआ महा।

सट्टा—संज्ञा पुं० [ दे० ] (१) वह इकरारनामा जो कार्तकारों में खेन के साथ आदि के संबंध में होता है। यथा है। (२) वह इकरारनामा जो दो पक्षों में कोई निश्चित काम करने या कुछ शर्तें पूरी करने के लिये होता है। इकरारनामा। जैसे,—बाजेवालों को पैनागी रुपया दे दिया, पर उनसे सट्टा नहीं लिखाया।

संज्ञा पुं० [ हि० हाट या सट्टी ] वह स्थान जहाँ लोग वस्तुएँ खरीदने बेचने के लिये एकत्र होते हैं। हाट। बाजार।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार का पक्षी। (२) बाजा।

सट्टा बट्टा—संज्ञा पुं० [ हि० सटना + श्रु० बट्टा ] (१) मेल मिलान। हेल मेल। (२) उद्देश्य सिद्धि के लिये की हुई धूर्ततापूर्ण युक्ति। चालबाजी।

मुद्दा—सट्टा बट्टा लड़ाना = अपना कार्य सिद्ध करने के लिये किसी प्रकार की युक्ति करना।

सट्टी—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाट या सट्टी ] यह बाजार जिसमें एक ही मेल की एहुत सौ चीजें लोग दूर दूर से लाकर बेचते हैं। हाट। जैसे,—सरकारी की सट्टी, पान की सट्टी।

मुद्दा—सट्टी मचाना = रेशम शीत करना जैसा सट्टी में होता है। बहुत से लोगों का मिलकर जोर जोर से बोलना। जैसे,—पंडित जी के दर्जे में तो लड़कों ने सट्टी मचा रखी है। सट्टी लगाना = बहुत सौ चीजें शहर खर फेला देना। जैसे,—तुमने यहाँ किताबों की सट्टी लगा रखी है।

सटा—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का पक्षी। (२) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

सट्ट—संज्ञा पुं० दे० "हाट"।

सट्टी—संज्ञा स्त्री० [ हि० सट्ट + ई (प्रय०) ] शट होने का भाव। शटता। वि० दे० "शटना"।

सट्टता—संज्ञा स्त्री० [ सं० शट, हि० सट्ट + ता (प्रय०) ] (१) शट होने का भाव। शट का धर्म। शटता। (२) मुँहता। बेवकूफी। उ०—जामी राम व कहि सके भरत लखन सिय प्रीति। सो सुनि समुझि तुलसि कहत इट सट्टता की रीति।—तुलसी।

सडियाना—कि० प्र० [ हि० साड + याना (प्रय०) ] (१) साड धर्म की अवस्था को प्राप्त होना। साड बरस का होना। जैसे,—सादा सो पाडा। (कटा०) (२) बुद्धवस्था को प्राप्त होना। मुद्दा होना। (३) बुद्धवस्था के कारण बुद्धि तथा विवेक शक्ति का कम हो जाना।

विशेष—दस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग व्यक्ति और बुद्धि दोनों के लिये होता है। जैसे,—(क) उनकी बात छोड़ दो; वे तो सडिया गए हैं। (ख) तुमहारी तो अज्ञ सडिया गई है।

संयो० क्रि०—जाना ।

सदुरी—संज्ञा स्त्री० [ हि० सीठी या सौठी ] गेहूँ या जौ आदि के डंढलों का वह मँथीला अंश जिसका भूसा नहीं होता और जो ओसाकर अलग कर दिया जाता है। सदुरी। कूटा। कूटी।

सदुरा—संज्ञा पुं० [ हि० सौडा ] सन का वह डंढल जो सन निकल जाने पर बच रहता है। संडा। सरई। सलई।

सदौरा—संज्ञा पुं० दे० "सौंदर्या"।

सदुँ—संज्ञा पुं० [ टि० ] ऊँट। क्रमेलक।

सड़क—संज्ञा स्त्री० [ अ० शक ] (१) आने जाने का चौड़ा रास्ता। राजमार्ग। राजपथ। (२) रास्ता। मार्ग।

सड़का—संज्ञा पुं० दे० "सटक"।

सड़न—संज्ञा स्त्री० [ हि० सड़ना ] सड़ने की क्रिया या भाव। गलन।

सड़ना—क्रि० प्र० [ सं० मरण ] (१) किसी पदार्थ में ऐसा विकार होना जिससे उसके संयोजक तत्व या अंग बिलकुल अलग अलग हो जायें, उसमें से दुर्गंध आने लगे और वह काम के योग्य न रह जाय। जैसे,—डँगली सड़ना, फल सड़ना। (२) किसी पदार्थ में खमीर उठना या आना।

संयो० क्रि०—जाना।

(३) दुर्दशा में पड़ा रहना। बहुत बुरी हालत में रहना। जैसे,—देशी रियासतों में लोग बरसों तक जेलखाने में यों ही सड़ते हैं।

सड़सठ—संज्ञा पुं० [ हि० सठ, (मान का ४५) + साठ ] साठ और सात की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६७।

वि० जो गिनती में साठ से सात अधिक हो।

सड़सठवाँ—वि० [ हि० सड़सठ + वाँ (प्रत्य०) ] गिनती में सड़सठ के स्थान पर पड़नेवाला।

सड़सी—संज्ञा स्त्री० दे० "सैदसी"।

सड़ा—संज्ञा पुं० [ हि० मड़ना ] वह औषध जो गौमाँ को बचा होने के समय पिलाते हैं। प्रायः यह औषध सड़ाकर बनाते हैं, इसी से इसे सड़ा कहते हैं।

सड़ाईद—संज्ञा स्त्री० दे० "सड़ाईप"।

सड़ाक—संज्ञा पुं० स्त्री० [ अनु० मड़ से ] (१) कोढ़ आदि की फटकार की आवाज जो प्रायः सड़ के समान होती है। (२) शीघ्रता। जल्दी। जैसे,—सड़ाक से चले आओ और चले आओ।

सड़ान—संज्ञा स्त्री० [ हि० सड़ना ] सड़ने का व्यापार या क्रिया। सड़ना।

सड़ाना—क्रि० सं० [ हि० सड़ना का सं० रूप ] सड़ना का संकर्मक रूप। किसी वस्तु को सड़ने में प्रवृत्त करना। किसी पदार्थ में ऐसा विकार उत्पन्न करना कि उसके अवयव गलने लगें और उसमें से दुर्गंध आने लगे। जैसे,—(क) सव आम तुमने रखे रखे सड़ा डाले। (ख) महुए को सड़ाकर शराब बनाई जाती है।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

सड़ाईप—संज्ञा स्त्री० [ हि० सड़ना + पंथ ] सड़ा हुई चीत की गंध।

सड़ाव—संज्ञा पुं० [ हि० सड़ना + आव (प्रत्य०) ] सड़ने की क्रिया या भाव। सड़ना।

सड़ासड़—प्रत्य० [ अनु० सड़ से ]—सड़ शब्द के साथ। जिसमें सड़ शब्द हो। जैसे,—चोर पर सड़ासड़ कोढ़े पड़ने लगे।

सड़ियल—वि० [ हि० सड़ना + डल (प्रत्य०) ] (१) सड़ा हुआ। गला हुआ। (२) निकम्मा। रही। खराप। (३) नीच। तुच्छ। जैसे,—सड़ियल आदमी। सड़ियल एका। सड़ियल तखीर।

सड़—संज्ञा पुं० [ देश० ] वैरवाँ की एक जाति।

सखी—संज्ञा पुं० दे० "सन"।

सखगार—संज्ञा पुं० [ सं० शृंगार ] शृंगार। सजावट। (हि०)

सखसूत्र—संज्ञा पुं० दे० "शणसूत्र"।

सत्—संज्ञा पुं० [ सं० ] महल।

वि० (१) सत्य। (२) साधु। सत्जन। (३) धीर। (४) नित्य। स्थायी। (५) विद्वान्। पंडित। (६) मान्य। पूज्य। (७) प्रसन्न। (८) शुद्ध। पवित्र। (९) श्रेष्ठ। उत्तम। अच्छा। भाल।

सत—वि० दे० "सत्"।

संज्ञा पुं० [ सं० सत् ] सत्यतापूर्ण धर्म।

मुहुँ—सत पर चढ़ना = पति के मृत शरीर के साथ सती होना।

सत पर रहना = पतिव्रता रहना। सती रहना।

वि० दे० "दात"।

सत पुं० [ सं० सत्व ] (१) किसी पदार्थ का मूल तत्व। सार भाग। जैसे,—मुलेठी का सत। (२) जीवनी शक्ति। ताकत। जैसे,—चार दिन के बुखार में शरीर का सत निकल गया।

वि० (१) "सात" (संख्या) का संश्लिष्ट रूप जिसका व्यवहार वैयंगिक शब्द बनाने में होता है। जैसे,—सत-मंजिला।

सतकार—संज्ञा पुं० दे० "सत्कार"।

सतकारना—क्रि० सं० [ सं० सत्कार + ना (प्रत्य०) ] सत्कार करना। आदर करना। सम्मान करना। इज्जत करना। उ०—(क) गुरु को जेठो बंधु विचारयो। करि प्रणाम अतिशय सत्कारयो। (ख) राजा कियो ताहि परनामा। सादर सतकारयो मति-धामा।—खुराज।

सतकोन—वि० [ हि० सत् + कोना ] जिसमें सात कोने हों। सात कोनोंवाला।

सतगँठया—संज्ञा स्त्री० [ हि० सात + गँठ ] एक प्रकार की वनस्पति जिसकी तसरकी बनाई जाती है।

सतगुरु-संज्ञा पुं० [ हि० सत = सच्चा + गुरु ] (१) अग्रगुरु। (२) परमात्मा। परमेस्वर।  
 सतजीत-संज्ञा पुं० दे० "सत्यजित्"।  
 सतजुग-संज्ञा पुं० दे० "सत्ययुग"।  
 सतत-प्रत्यय [ सं० ] निरंतर। सदा। सर्वदा। हमेशा। बराबर।  
 सततग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सदा चल्ता रहता हो।  
 (२) वायु। हवा।  
 सततगति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वायु। हवा।  
 सतत ज्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ज्वर जो दिन में दो बार आवे; या कभी दिन में एक बार और फिर रात को भी एक बार आवे। द्रिकालिक विषम ज्वर।  
 सततसमितामियुक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक योषिसत्व का नाम।  
 सतति-वि० स्त्री० [ सं० ] जो सदा चला करे।  
 सतत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वभाव। प्रकृति।  
 सतदंत-संज्ञा पुं० [ हि० सात + दंत ] वह पशु जिसके सात दाँत हो गए हों।  
 विशेष-प्रायः पशुओं को पूरे दाँत निकल आने के पूर्व उनके दाँतों की संख्या के अनुसार पुकारते हैं। जैसे—बुद्धता, चौदहा, सतदंता आदि शब्द क्रमशः दो, चार और सात दाँतोंवाले पशुओं के लिये प्रयुक्त होते हैं।  
 सतदंत-संज्ञा पुं० [ सं० दंतमंके ] (१) कमल। (२) सौ दलोंवाला कमल।  
 सतप्रत-संज्ञा पुं० [ सं० शतप्रत ] अज्ञा। (हि०)  
 सौ-सतप्रत-सुत = गारद सुनि।  
 सतनजा-संज्ञा पुं० [ हि० सात + जनाज ] सात भिन्न प्रकार के अन्न का मेल। यह मिश्रण जिसमें सात भिन्न भिन्न प्रकार के अनाज हों।  
 सतनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सातनी ] (१) ससपणं वृक्ष। सतिवन।  
 सतिवन। (२) एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जिसकी छाल का रंग कालापन लिए होता है। इसकी लकड़ी संतुक आदि बनाने के काम में आती है। यह बंगाल, दक्षिण भारत और हिमालय में अधिकता से पाया जाता है।  
 सतु-वि० [ सं० ] जिसे तन हो। शरीरवाला।  
 सतुतिया-संज्ञा स्त्री० दे० "सतुतुतिया"।  
 संज्ञा स्त्री० [ हि० सात + पति ] (१) वह स्त्री जिसने सात पति किए हों। (२) बुधली। छिन्ना।  
 सतुदी-संज्ञा स्त्री० दे० "सतपुत्री"।  
 सतुदी-संज्ञा पुं० [ सं० शतपुत्री ] (१) शतपुत्र्या। बॉस। (२) ऊपर। गन्ना।  
 साता-संज्ञा पुं० [ सं० शतपत्र ] शतपत्र। कमल।  
 सातुतिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० सातपुत्रिया ] एक प्रकार की तराई जो प्रायः सय प्रांतों में होती है। इसके बोने या समथ वषां

क्रतु है। इसकी छत्ता भूमि पर फैलती है या मंडे पर चढ़ाई जाती है। इसके फल साधारण तराई से कुछ छोटे होते हैं और पाँच, सात या कभी कभी इससे भी अधिक संख्या में एक साथ गुच्छों में छगते हैं।  
 सतपुरिया-संज्ञा स्त्री० [ ? ] एक प्रकार की जंगली मधुमक्खी।  
 सतफेरा-संज्ञा पुं० [ हि० सात + फेरा ] विवाह के समय होनेवाला ससपुत्री नामक काम। वि० दे० "ससपुत्री"। उ०—फिरहि दोउ सतफेर गुन के। सातहि फेर गँड सो एकै।—जायसी।  
 सतबरवा-संज्ञा पुं० [ सं० सतबर = बौन ] एक प्रकार का वृक्ष जो नेपाल में होता है और जिससे नेपाली कागज बनाया जाता है।  
 सतभइया-संज्ञा स्त्री० [ हि० सात + भाई ] एक प्रकार की मना (पक्षी) जिसे पंगिया मना भी कहते हैं।  
 विशेष-इसकी छंदाई प्रायः एक वालिदत होती है। इसका रंग पीलापन लिए भूरा होता है। इसके पैर और पंजा पीला होता है। ऋतु भेदानुसार यह रंग बदलती है। यह सुंद में रहती है और छोटे, घने वृक्षों या झाड़ियों में घोंसला बनाती है। यह एक बार में प्रायः तीन अंडे देती है। यह बहुत शोर करती है। कहते हैं कि कोयल प्रायः अपने अंडे इसी के घोंसले में रखती है।  
 सतभाव-संज्ञा पुं० [ सं० सतभाव ] (१) सदाव। अच्छा भाव। (२) सतिधायन। (३) सचापन। सचाई।  
 सतमौरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सतमण ] हिंदुओं में विवाह के समय की एक रीति। इसमें घर और घरू को अग्नि की सात बार प्रदक्षिणा करनी पड़नी है। इसे मौरि पढ़ना भी कहते हैं।  
 सतमख-संज्ञा पुं० [ सं० सतमख ] ( जिसने १०० यज्ञ किए हों ) इंद्र। ( हि० )  
 सतमसा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम।  
 सतमासा-संज्ञा पुं० [ हि० सात + मास ] (१) सात मास पर उत्सव शिशु। यह बच्चा जो गर्भ से सातवें महीने उत्पन्न हुआ हो। (ऐसा बच्चा प्रायः बहुत रोगी और दुबला होता है और जल्दी जीता नहीं।) (२) वह रसम जो शिशु के गर्भ में आने पर सातवें महीने की जाती है।  
 सतमूली-संज्ञा स्त्री० [ सं० शतमूली ] सतावर। दातावरी।  
 सतयुग-संज्ञा पुं० दे० "सत्ययुग"।  
 सतरंग-वि० दे० "सतरंगा"।  
 सतरंगा-वि० [ हि० सात + रंग ] जिसमें सात रंग हों सात रंगोंवाला। जैसे—सतरंगा सापा। सतरंगी साड़ी।  
 सतरंज-संज्ञा स्त्री० दे० "सतरंज"। उ०—सतरंज को सो गज

काठ को सथ समाज महाराज वाली रची प्रथमन हनि।—  
तुलसी।

सतरंजी—संज्ञा स्त्री० दे० “सतरंजी”।

सतर—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) लकीर । रेखा ।

क्रि० प्र०—खीचना ।

(२) पंक्ति । झपकी । कतार ।

वि० (१) देढ़ा । यक । उ०—रमन कदौईंसी रमनि सौं रति  
विपरीत खिलास । चितईं करि लोचन सतर समरय सलज  
सहास ।—बिहारी ।

(२) कुपित । क्रुद्ध । उ०—सुनहु रयाम तुमहूँ सरि नाहीं  
पेसे गये पिलाइ । हम सौं सतर होव सूरज प्रभु कमल  
देहु अब जाइ ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० पुं० [ अ० ] (१) मनुष्य का वह अंग जो बका रखा  
जाता है और जिसके न डके रहने पर उसे लम्बा आती है ।  
गुहा इंद्रि ।

मुहा०—बैसतर करना = (१) नंगा करना । (२) बेरजत क ना ।

(२) ओट । आड़ । परदा ।

सतरकी—संज्ञा स्त्री० [ हि० सत्रह ] वह क्रिया जो किसी की मृत्यु  
के पश्चात् सत्रहवें दिन की जाती है । सत्रही ।

सतरह—वि० दे० “सत्तरह” ।

सतराना—क्रि० प्र० [ हि० सत्र या सं० सतरान ] (१) मोध करना ।

कोप करना । उ०—हम ही पर सतरात कनाइ ।—सूर ।

(२) कुड़ना । चिढ़ना । विगड़ना । उ०—(क) जु ज्यौं उरककि  
श्रोपति बदन, झुकति बिहैसि सतराह । तु खौं गुलाल मुठी  
छुटी झलकायवु पिय जाइ ।—बिहारी । (ख) चंद दुति मंद  
भई, फंद में फँसी हौं आय, हं द नंद ठानेगी रे, जारे जुग  
पानि दे । सासु सतराई, जेठपतिनी रिसैदे, चंक बचन  
सुनैहै, छौंड़ि गर की सुजानि दे ।—देव । (ग) लेहु, अब  
लेहु, सब कोऊ न सिखायो मान्यो, सोई सतराह जाइ जाहि  
जाहि रोकिय ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—जाना ।

सतराहटी—संज्ञा स्त्री० [ हि० सतराना + ट्ट (प्रत्य०) ] कोप । गुस्सा ।  
नाराज़गी ।

सतरौ—संज्ञा स्त्री० [ सं० सपंदह ] सपंदह नामक शोपथि ।

सतरौहौं—वि० [ हि० सतराना ] [ स्त्री० सतरौहौं ] (१) कुपित ।  
क्रोधयुक्त । (२) कोपयुक्त । रिसाया हुआ सा । उ०—  
सकुचि न रहिपु स्याम सुनि ये सतरौहैं धैन । देत रबौहैं चित  
कहे नेह नचौहैं नैन ।—बिहारी ।

सतरक—वि० [ सं० ] (१) तर्कयुक्त । युक्ति से युक्त । दलील के  
साथ । (२) सायधान । होशियार । सचेत । खबरदार ।

सतरकता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सतरक होने का भाव । सायधानी ।  
होशियारी ।

सतरप—वि० [ सं० ] वृपित । प्यासा ।

सतलज—संज्ञा स्त्री० [ सं० शतद्रु ] पंजाब की पाँच नदियों में से  
एक । शतद्रु नदी ।

सतलडा—वि० [ हि० सात + लड़ ] [ स्त्री० सतलडी ] जिसमें सात  
लड़ हों । जैसे,—सतलडा हार ।

सतलडी—संज्ञा स्त्री० [ हि० सात + लडी ] गले में पहनने की सात  
लड़ियों की माला या हार ।

सतसती—वि० स्त्री० [ हि० सत्य + सती (प्रत्य०) ] सतवाली । सती ।  
पतिव्रता ।

सतसर्ग—संज्ञा पुं० दे० “सदसर्ग” ।

सतसंग—संज्ञा पुं० दे० “सत्संग” ।

सतसंगति—संज्ञा स्त्री० दे० “सत्संग” ।

सतसंगी—वि० दे० “सत्संगी” ।

सतसई—संज्ञा स्त्री० [ सं० सतराती ] (१) वह ग्रंथ जिसमें सातसौ  
पद्य हों । सातसौ पद्यों का समूह या संग्रह । सतराती ।

विशेष—हिंदी साहित्य में “सतसई” शब्द से प्रायः सात सौ  
दोहे ही समझे जाते हैं । जैसे,—बिहारी की सतसई ।

सतसल—वि० दे० “सदसल” ।

सतसल—संज्ञा पुं० [ देरा० ] शीशम का पेड़ ।

सतह—संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) किसी वस्तु का ऊपरी भाग । बाहर  
या ऊपर का फैलाव । तल । जैसे,—मेज की सतह । समुद्र  
की सतह ।

मुहा०—सतह चौरस या बराबर करना = समतल करना ।  
उभार और गहराई भ्रमण सुखदुःखन निकालना ।

(२) रेखा गणित अनुसार वह विस्तार जिसमें लंबाई  
और चौड़ाई हो, पर मोटाई न हो ।

सतहचर—वि० [ सं० सप्तसप्तति, पा० सत्सप्तति, प्र० सप्तहरी ]

सत्तर और सात । जो गिनती में तीन कम अस्सी हो ।

संज्ञा पुं० सत्तर से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस  
प्रकार लिखा जाता है—७७ ।

सतहचर्यौ—वि० [ हि० सतहचर + यौ (प्रत्य०) ] जिसका सात  
सतहचर पर हो । जो क्रम में सतहचर के स्थान पर  
पढ़ता हो ।

सतांग—संज्ञा पुं० [ सं० सतांग ] रथ । यान । उ०—कोउ ठुरी  
चढ़ि कोउ मर्तंग चढ़ि कोउ सतांग चढ़ि आये । अति उछाव  
नरनाह भरे सब संपति विपुल छुटाये ।—रघुराज ।

सतानंद—संज्ञा पुं० [ सं० ] गौतम ऋषि के पुत्र, जो राजा जनक  
के पुरोहित थे ।

सताना—क्रि० सं० [ सं० संतापन, प्र० संतावन ] (१) संताप देना ।  
कष्ट पहुँचाना । दुःख देना । पीड़ित करना । उ०—(क)

कह्यो सुखहु तुम कंठिहि सतयो । तवें कर रहि गयो  
उचयो ।—सूर । (ख) यह कालिंदी विरह-सतई । बलि

पराग भरल विच आई।—जायसी। (२) संग करना।  
हरान करना। (३) किसी के पीछे पड़ना।

सतायक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वृष या कोड़ जिसमें  
शरीर पर छाल और काली कुंसियाँ निकलती हैं।

सतारु—संज्ञा पुं० दे० "सतायक"।

सतालु—संज्ञा पुं० [ सं० सतालुक मि० का० राफनाव् ] एक पेड़  
जिसके गोल फल खाए जाते हैं। दाफुतालु, आडू।

विशेष—यह पेड़ मशाले कद का होता है और भारत के उंचे  
प्रदेशों में पाया जाता है। पत्ते लंबे, नुकीले और कुछ प्रयामता  
लिए गहरे रंग के होते हैं। पतसद् के पीछे नए पत्ते निकलने के  
पहले इसमें छाल रंग के फूल लगते हैं। फल गूलर की तरह  
गोश और एकने पर हरे और छाल रंग के होते हैं जिनके  
ऊपर बहुत महीन सफेद रोहियाँ होती हैं। ये खाने में बड़े  
मिठे होते हैं। बीज कड़े छिलके के और वादाम की तरह के  
होते हैं। इसकी लकड़ी मजबूत और ललाई लिए होती है  
तथा उसमें से एक प्रकार की हलकी सुगंध निकलती है।

सतायना—संज्ञा—कि० सं० दे० "सताना"।

सतायन—संज्ञा स्त्री० [ सं० सतायनी ] एक झाड़दार बेल जिसकी  
जड़ और बीज औषध के काम में आते हैं। शतभूली।  
नातायनी।

विशेष—यह बेल भारत के प्रायः सब प्रांतों में होती है। इसकी  
टहनियों पर छोटे छोटे महीन करटे होते हैं। पत्तियों सौर्य  
की पत्तियों की सी होती हैं और उनमें एक प्रकार की  
क्षारयुक्त गंध होती है। फूल सफेद होते और गुच्छों में  
लगते हैं। फल जंगली बर के समान होते हैं और एकने पर  
छाल रंग के हो जाते हैं। प्रायः फल में एक या दो बीज  
होते हैं। इसकी जड़ बहुत दुष्टिकारक और दीर्य्यवर्द्धक मानी  
जाती है। स्त्रियों का बृष बढ़ाने के लिये भी यह दी जाती  
है। वैद्यक में इसका गुण शीतल, मजुर, अग्निदीपक, बलकारक  
और दीर्य्यवर्द्धक माना गया है। मृहणी और अतिसार में  
भी इसका काय देते हैं।

सतासी—वि० [ सं० सतासीति, प्रा० सतासी ] अस्सी और सात।  
जो गिनती में अस्सी से सात अधिक हो।

संज्ञा पुं० सात ऊपर अस्सी की संख्या या संक जो इस प्रकार  
लिखा जाता है—८७।

सतासीधो—वि० [ हि० सतासी + धो (धप०) ] जिसका स्थान  
अस्सी से सात अधिक की संख्या पर हो। जो अम में  
सतासी पर पड़ता हो।

सतिल—संज्ञा पुं० दे० "सत्य" या "सत्त्व"।

सतिधन—संज्ञा पुं० [ सं० सतधनं, म० सतधन ] एक सदाबहार बढ़ा  
पेड़ जिसकी छाल भाँद दवा के काम में आती है। ससपणी।  
सतिधन।

विशेष—इसका पेड़ ४०-५० हाथ ऊँचा होता है और भारत के  
प्रायः सब तर स्थानों में पाया जाता है। भारतवर्ष के बाहर,  
आस्ट्रेलिया और अमेरिका के कुछ स्थानों में भी यह मिलता  
है। यह बहुत जल्दी बढ़ता है। पत्ते सेमर के पत्तों के समान,  
और एक सीकें में सात सात लगते हैं। इसकी लकड़ी मुला-  
यम और सफेद होती है और सजावट के सामान बनाने के  
काम में आती है। फूल हरापन लिए सफेद होता है। फूलों  
के झाड़े जाने पर हाथ भर के लागम लंबी पतली रोहदार  
फलियाँ लगती हैं। यह वसंत ऋतु में फूलता और वैशाख  
जेठ में फलता है। फूलों में एक प्रकार की सदायन गंध होती  
है; इसी से फलियों ने कहीं कहीं इस गंध की उपमा गजमद्र  
से दी है। आयुर्वेद के अनुसार इसकी छाल त्रिदोषनाशक,  
अग्निदीपक, ज्वरघ्न और बलकारक होती है। ज्वर दूर करने  
में इसकी छाल का काढ़ा कुनैन के समान ही होता है। ज्वर  
के पीछे की कमजोरी भी इससे दूर होती है।

सती—वि० स्त्री० [ सं० ] अपने पति को छोड़ और किसी पुरुष का  
ध्यान मन में न लानेवाली। स्वाध्यायी। पतिव्रता।

सती स्त्री० (१) दूध प्रजापति की कन्या जो भव या शिव को  
व्याही थी। (२) पतिव्रता स्त्री। (३) बंध स्त्री जो अपने  
पति के शव के साथ चिता में जले। सहगामिनी स्त्री।

सुहा—सती होना = (१) मरे हुए पति के शरीर के साथ चिता में  
जल मरना। सहगमन करना। (२) किसी के पीछे मर मिटना।

(३) मादा। स्त्री पशु। (४) गंधयुक्त सृष्टिका। सौंपी  
मिष्टी। (५) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण  
और एक गुरु होता है। (६) विश्वामित्र की स्त्री का नाम।  
(७) अंगिरा की स्त्री का नाम।

सतीचौरा—संज्ञा पुं० [ सं० सती + चौरा ] वह बेटी या औटा  
बधूता जो किसी स्त्री के सती होने के स्थान पर उल्लेख  
स्मारक में प्रनाया जाता है।

सतीरथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] सती होने का भाव। पतिव्रत्य।

सुहा—सतीत्व विगादना या नष्ट करना = किसी को से  
बलाकार करना।

सतीत्वहरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] पर स्त्री के साथ बलाकार। सतीत्व  
विगादना।

सतीदोषोन्माद—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्रियों का वह उन्माद रोग  
जिसका प्रकोप किसी सतीचौरा को अपवित्र आदि करने के  
कारण होना माना जाता है।

सतीन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का मटर। (२) अप-  
राजित।

सतीपन—संज्ञा पुं० [ सं० सती + पन (कि० प्रत्य०) ] मर्त्य रहने का  
भाव। पतिव्रत्य। सतीपन।

सतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ही आचार्य से पढ़नेवाला । सट-पाठी ब्रह्मचारी ।

सतील-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बसंत । चंद्र । वृणराज । (२) अपराजिता । (३) वायु ।

सतीला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अपराजिता । विष्णुकांता । कोयल लता ।

सतुआ-संज्ञा पुं० [ सं० सतुअ, प्रा० सतुअ ] भ्रष्ट यथादि चूर्ण । मुने हुए जौ और चने का चूर्ण जो पानी डालकर खाया जाता है । सत्तु ।

सतुआन-संज्ञा स्त्री० [ हि० सतुआ ] सतुआ संक्रांति ।  
सतुआ संक्रांति-संज्ञा स्त्री० [ हि० सतुआ + संक्रांति ] मेघ की संक्रांति जो प्रायः वैशाख में पड़ती है । इस दिन लोग सचू दान करते और खाते हैं ।

सतुआ सौंड-संज्ञा स्त्री० [ हि० सतुआ + सौंड ] सौंड की एक जाति ।

सतून-संज्ञा पुं० [ फा० मि० सं० सतून ] स्तंभ । खंभा ।  
सतूना-संज्ञा पुं० [ फा० सतून = खंभा ] बाज़ की एक प्रपट, जिसमें यह पहले शिकार के ठीक ऊपर उड़ जाता है, और फिर एक वाहरी नीचे की ओर उस पर टूट पड़ता है । उ०—काम अपनी चतुरदई तब तक लेखु चलाइ । जय लगी सिर पर देइ नहिं लग्य सतूना आइ ।—रसनिधि ।

सतेर-संज्ञा पुं० [ सं० ] भूसि । भुस । हुप ।

सतेरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्रतु । मौसिम ।

सतेरी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की मधुमक्खनी ।

सतोषनाल-संज्ञा पुं० [ सं० संतोष ] (१) संतोष करना । प्रसन्न करना । (२) संतोष दिलाना । समझाना । बरस देना ।

सतोषण-संज्ञा पुं० दे० "सत्व गुण" ।

सतोषणी-संज्ञा पुं० [ हि० सतोषण + इ (प्रत्य०) ] संतवगुणवाला । उ०—उत्तम प्रकृति का । सांत्विक ।

सतोषद-संज्ञा पुं० दे० "शतोषद" ।

सतौला-संज्ञा पुं० [ हि० सौल + लौल (प्रत्य०) ] प्रसूता की का वह विधिपूर्वक स्नान जो प्रसव के सातवें दिन होता है ।

सतौल-संज्ञा पुं० [ सं० सतसक ] सात छद्द का । सतलडा ।

सतकद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कदंब ।

सतकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० सतकरणीय, संकृत ] (१) सत्कार करना । आदर करना । (२) श्रुतक की अन्तिम क्रिया करना । क्रिया कर्म करना ।

सतकरणीय-वि० [ सं० ] सत्कार करने के योग्य । आदरणीय ।

सतकराव्य-वि० [ सं० ] (१) सत्कार के योग्य । (२) जिसका सत्कार करना हो ।

सत्कर्त्ता-संज्ञा पुं० [ सं० सत्कर्त्तृ ] [ स्त्री० सत्कर्त्त्री ] (१) अच्छा काम करनेवाला । सत्कर्म करनेवाला । (२) आदर सत्कार करनेवाला ।

सत्कर्म-संज्ञा पुं० [ सं० सत्कर्म ] (१) अच्छा कर्म । अच्छा काम । (२) धर्म या उपकार का काम । पुण्य । (३) अच्छा संस्कार ।

सत्कांड-संज्ञा पुं० [ सं० ] चील ।

सत्क्राय दृष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्रुत्यु के उपरान्त, आत्मा, लिङ्ग, शरीर आदि के बने रहने का मिथ्या सिद्धांत । (बौद्ध)

सत्कार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आप हुप के प्रति उत्तम व्यवहार । आदर । सम्मान । स्वातिरदारी । (२) आतिथ्य । मेहमानदारी । (३) पर्व । उत्सव ।

सत्कार्य-वि० [ सं० ] (१) सत्कार करने योग्य । (२) जिसका सत्कार करना हो । (३) जिस (श्रुतक) का किया कर्म करना हो ।

संज्ञा पुं० उत्तम कार्य । अच्छा काम ।

सत्कार्यवाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] सांख्य का यह दार्शनिक सिद्धांत कि बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती, अर्थात् इस जगत् की उत्पत्ति शून्य से नहीं है, किसी मूल सत्ता से है । किसी कारण में कार्य की सत्ता का सिद्धांत । यह सिद्धांत बौद्धों के शून्यवाद का विरोधी है ।

सत्किंक-संज्ञा पुं० [ सं० ] लंबाई की एक प्राचीन नाप जो सवा गज के लगभग होती थी ।

सत्कीर्त्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उत्तम कीर्त्ति । यश । नेरुतामी ।

सत्कुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] उत्तम कुल । अच्छा या यहाँ ध्यानदान । वि० अच्छे कुल का । ध्यानदान ।

सत्कृत-वि० [ सं० ] (१) अच्छी तरह किया हुआ । (२) जिसका आदर सत्कार किया गया हो । आदर । (३) अलंकृत । सजाया हुआ । बनाया हुआ ।

संज्ञा पुं० (१) सत्कार । आदर । (२) सत्कर्म । अच्छा काम । पुण्य ।

सत्क्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सत्कर्म । पुण्य । धर्म का काम । (२) सत्कार । आदर । अच्छा व्यवहार । स्वातिरदारी । (३) आयोजन । तैयारी ।

सत्त-संज्ञा पुं० [ सं० सत्व ] (१) किसी पदार्थ का सार भाग । असूची जड़ । रस । जैसे,—गोहूँ का सत्त । (२) तत्व । काम की वस्तु । जैसे,—अब तो उसमें कुछ भी सत्त बाकी नहीं रह गया ।

सत्त्व-संज्ञा पुं० [ सं० सत्व ] (१) सत्व । सत्व । सत्त्व । (२) सतीत्व । पातिव्रत्य ।

सत्तर-वि० [ सं० सति, प्रा० सतर ] साठ और दस । जो गिनती में साठ से दस अधिक हो ।

संज्ञा पुं० साठ से दस अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७०।

सत्तरवाँ-वि० [ हिं० सत्तर + वाँ (प्रत्य०) ] [ स्त्री० सत्तरवाँ ] जो क्रम में सत्तर के स्थान पर हो।

सत्तरह-वि० [ सं० सत्तरह, प्रा० सत्तरह ] दस और सात। जो गिनती में दस से सात अधिक हो।

संज्ञा पुं० (१) दस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१७। (२) पौंस के खेल में एक दौरे जिसमें दो छके और एक पंजा तीनों एक साथ पड़ते हैं। उ०—हारि पासा सातु-संगति फेरि रसना सारि। दौरे भय के परयो पूरो कुमति पिछली हारि। रावि सग्रह सुनि आरह घोर पाँचो मारि।—सूर।

सत्तरहवाँ-वि० [ हिं० सत्तरह + वाँ (प्रत्य०) ] [ स्त्री० सत्तरहवाँ ] जो क्रम में सत्तरह के स्थान पर पड़े।

सत्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) होने का भाव। अस्तित्व। हस्ती। होना। माव। (२) शक्ति। दम। (३) अधिकार। प्रभुत्व। हुकूमत। (मराठी से यूहति)

मुहा०—सत्ता चलाना = अधिकार चलाना। हुकूमत करना। उ०—जो लोग असभ्य हैं, जंगली हैं, उन पर सत्ता चलाने (हुकूमत करने) में अनिवार्य शासन अच्छा होता है।—महावीरप्रसाद द्विवेदी।

संज्ञा पुं० [ हिं० ] सात या गंजीके का वह पत्ता जिसमें सात घुटियाँ हों।

सत्ताईस-वि० [ सं० सत्तैर्विंशति, प्रा० सत्ताईस ] सात और बीस। जो गिनती में बीस से सात अधिक हो।

संज्ञा पुं० बीस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२७।

सत्ताईसवाँ-वि० [ हिं० सत्ताईस + वाँ (प्रत्य०) ] जो क्रम में सत्ताईस के स्थान पर पड़ता हो।

सत्ताधारी-संज्ञा पुं० [ सं० सत्ताधारी ] अधिकारी। अफसर। हाकिम।

सत्तानवे-वि० [ सं० सत्तानवति, प्रा० सत्तानवर ] नव्वे और सात। जो गिनती में सौ से तीन कम हो।

संज्ञा पुं० सौ से तीन कम की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९७।

सत्तानवेवाँ-वि० [ हिं० सत्तानवे + वाँ (प्रत्य०) ] जो क्रम में सत्तानवे के स्थान पर पड़ता हो।

सत्तावन-वि० [ सं० सत्तानवति, प्रा० सत्तानवरा ] पचास और सात। जो गिनती में सौन कम साठ हो।

संज्ञा पुं० तीन कम साठ की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५७।

सत्तावनवाँ-वि० [ हिं० सत्तावन + वाँ (प्रत्य०) ] जो क्रम में सत्तावन के स्थान पर पड़ता हो।

सत्ताशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] शास्त्रशास्त्र दर्शन की वह शास्त्रात्मिकता जो मूल या पारमार्थिक सत्ता का विवेचन हो।

सत्तासामान्यत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनेक रूपों के भीतर एक सामान्य द्रव्य का अस्तित्व। जैसे,—कुंडल, कंकण आदि अनेक गहनों में 'सोना' नामक द्रव्य सामान्य रूप से पाया जाता है।

चिरोप—इस सत्य का उपयोग वेदांती या दार्शनिक अनेक नाम रूपात्मक जगत् की तरह में किसी एक अनिर्वचनीय और अव्यक्त सत्ता का प्रतिपादन करने में करते हैं।

सत्तासी-वि० [ सं० सत्तासीति, प्रा० सत्तासी ] अस्ती और सात। जो गिनती में सौन कम नव्वे हो।

संज्ञा पुं० तीन कम नव्वे की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८७।

सत्तासीवाँ-वि० [ हिं० सत्तासी + वाँ (प्रत्य०) ] जो क्रम में तीन कम नव्वे के स्थान पर पड़े।

सत्तु-संज्ञा पुं० [ सं० सत्तुक, प्रा० सत्तुअ ] मुने हुए जौ और चने या और किसी अन्न का चूर्ण या आटा जो पानी, घोलकर खाया जाता है।

मुहा०—सत्तु बोधकर पीछे पड़ना = (१) पूरी तैयारी के साथ किसी को रंग करने में लगना। सत्तु काग पंजा धोइकर किसी के विरुद्ध प्रयत्न करना। (२) पूरी तैयारी के साथ किसी काम में लगना। सत्तु काम धाम छोड़कर पलट होना।

सत्पथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उत्तम मार्ग। (२) सदाचार। अच्छी बाल। (३) उत्तम संप्रदाय या सिद्धांत। अच्छा पंथ।

सत्पशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के बलि योग्य अच्छा पशु।

सत्पात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दान आदि देने के योग्य उत्तम व्यक्ति। (२) श्रेष्ठ और सदाचारी। योग्य मनुष्य। (३) कन्या देने के योग्य उत्तम पुरुष। अच्छा वर।

सत्पुरुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] मला आदमी। सदाचारी पुरुष।

सत्प्रतिपक्ष-वि० [ सं० ] जिसका उचित खंडन हो सके। जिसके विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सके।

सत्फल-संज्ञा पुं० [ सं० ] दाहिम। अनार।

सत्यकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सचन को सत्य करना। वादा पूरा करना। (२) वादा पूरा करने की जमानत के तौर पर कुछ पैशायो देना।

सत्य-वि० [ सं० ] (१) जो बात सैरी है, उसके संबंध में वैसा ही (कथन)। यथार्थ। ठीक। शान्तिप्रिय। सही। यथा-सत्य। जैसे,—सत्य बात, सत्य बचन। (२) मसल।



संज्ञा.पुं० (१) वास्तविक बात । ठीक बात । यथार्थ-सत्य । जैसे,—सत्य को कोई छिपा नहीं सकता ।

विशेष—यौद्ध धर्म में चार 'आर्य सत्य' कहे गए हैं—दुःख सत्य (संसार-दुःख रूप है, यह सत्य बात), दुःख समुदय (दुःख के कारण), दुःख निरोध (दुःख रोक जाया है) और मार्ग (निर्वाण का मार्ग) । यौद्ध-दार्शनिक दो प्रकार का सत्य मानते हैं—संश्रुति सत्य (जो बहुमत से माना गया हो) और परमार्थ सत्य (जो स्वतः सत्य हो) ।

(२) उचित पक्ष । न्याय्य पक्ष । धर्म की बात । ईमान की बात । जैसे,—हम सत्य पर दृढ़ रहेंगे । (३) पारमार्थिक सत्ता । वह वस्तु जो सदा ज्यों की त्यों रहे, जिसमें किसी प्रकार का विकार या परिवर्तन न हो । (वेदांत) जैसे,—ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है । (४) ऊपर के सात लोकों में से सप्त से ऊपर का लोक जहाँ ब्रह्मा अवस्थान करते हैं । (५) नवें कल्प का नाम । (६) अध्याय वृक्ष । पीपल का पेड़ । (७) त्रिष्णु का एक नाम । (८) राम-चंद्र का एक नाम । (९) नांदीमुख श्राद्ध के अधिष्ठाता देवता । (१०) विश्वेदेवा में से एक । (११) रापथ । कसम । (१२) प्रतिज्ञा । कौल । (१३) चार युगों में से पहला युग । कृतयुग । (१४) एक विष्याख ।

सत्यकाम-वि० [ सं० ] सत्य का प्रेमी ।

सत्यकीर्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अस्त्र जो मंत्रधल से चलाया जाता था ।

सत्यकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक युद्ध का नाम । (२) केकय देश के एक राजा का नाम । (३) अक्रूर के पुत्र का नाम ।

सत्यजित्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वसुदेव का एक भतीजा । (२) एक दानव । (३) एक यक्ष । (४) तीसवें मन्वन्तर के इंद्र का नाम ।

सत्यतः-प्रव्य० [ सं० ] ठीक ठीक । वास्तव में । सचमुच ।

सत्यता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सत्य होने का भाव । वास्तविकता । सच्चाई । (२) नित्यता ।

सत्यधन-वि० [ सं० ] जिसका सर्वस्व सत्य हो । जिसे सत्य सच से मिय हो ।

सत्यनारायण-संज्ञा पुं० [ सं० ] त्रिष्णु भगवान का एक नाम जिसके संबंध एक कथा रची गई है । इस कथा का आज कल बहुत अधिक है ।

विशेष—ऐसा पता लगता है कि अक्रूर के समय में अक्रूर के नपुं मात 'दीन हंलाही' के प्रचार के लिये पहल यह कथा किसी पंडित से लिखाई गई थी और रूप कुछ दूसरा ही था और संवाद उसमें न पर ताह था नाम था । पीछे पंडित

करके पौराणिक हिंदू धर्म के अनुकूल कर लिया और यह उसी परिवर्तित रूप में प्रचलित हुई । बंग भाषा में भी 'सत्यपीर' की कथा के नाम से यह कथा पाई गई है ।

सत्यपर-वि० [ सं० ] सत्य में प्रवृत्त । ईमानदार ।

सत्यपुरुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर । परमात्मा ।

सत्यप्रतिज्ञ-वि० [ सं० ] प्रतिज्ञा को सत्य करनेवाला । वचन का सचा ।

सत्यफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] बिल्व । श्रीफल । बेल ।

सत्यभामा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्रीकृष्ण की भाउ पट रानियों में से एक जो सत्रजित की कन्या थी । इन्हीं के लिये कृष्ण पारिजात खाने गए थे और इंद्र से लड़े थे ।

सत्ययुग-संज्ञा पुं० [ सं० ] पौराणिक काल गणना के अनुसार चार युगों में से पहला युग । कृत युग ।

विशेष—यह युग सप्त से उत्तम माना जाता है । इस युग में पुण्य और सत्यता की अधिकता रहती है । यह १०२८००० वर्ष का कथा गया है । इसका आरंभ वैशाख शुक्ल तृतीया से माना गया है ।

सत्ययुगाद्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैशाख शुक्ल तृतीया जिस दिन से सत्ययुग का आरंभ माना गया है ।

सत्ययुगी-वि० [ सं० ] सत्ययुग । (१) सत्ययुग का । सत्ययुग संबंधी । (२) बहुत प्राचीन । (३) बहुत सीधा और सभान । सचरित्र । धर्मात्मा । कलियुगी का उल्टा ।

सत्य लोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊपर के सात लोकों में से सप्त से ऊपर का लोक जहाँ ब्रह्मा रहते हैं ।

सत्य वचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सच कहना । यथार्थ कथन । (२) प्रतिज्ञा । कौल । वादा ।

सत्यवती-वि० स्त्री० [ सं० ] (१) सच बोलनेवाली । (२) सत्य या धर्म का पालन करनेवाली ।

संज्ञा स्त्री० (१) मत्स्यगंधा नामक धीवर-कन्या जिसके गर्भ से कुमारी अवस्था में ही पंताशर के संयोग से कृष्ण द्वैपायन या ध्यास की उत्पत्ति हुई थी । (२) शर्मि वृक्ष । (३) गांधी की पुत्री और ऋचीक की पत्नी जिसके कौशिकी नदी हो जाने की कथा प्रसिद्ध है ।

सत्यवति-सुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] सत्यवती के पुत्र वेदव्यास । पुं० विश्वेदेवा में से एक ।

कतार । प्र । (१) सत्य वचन । (२) वादा । प्रकार का मंत्राख । (३) काक ।

सत्यवती । (१) सत्य बोलना । पर रहना । का एक नाम ।

**सत्यवादी-वि०** [ सं० सत्यवादिन् ] [ स्त्री० सत्यवादिनी ] (१) सत्य कहनेवाला । सच बोलनेवाला । (२) प्रतिज्ञा पर हट रहनेवाला । वचन को पूरा करनेवाला । (३) धर्म पर हट रहनेवाला । धर्म कभी न छोड़नेवाला । जैसे,—राजा हरिश्चंद्र यह सत्यवादी थे ।

**सत्यवान्-वि०** [ सं० सत्यवान् ] [ स्त्री० सत्यवती ] (१) सच बोलनेवाला । (२) प्रतिज्ञा पर हट रहनेवाला ।

संज्ञा पुं० शाक्य देश के राजा धृमत्सेन के पुत्र का नाम जिसकी पत्नी सावित्री के पातिव्रत्य के अलौकिक प्रभाव की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है ।

**विशेष**—इनके पिता अंधे हो गए थे और गद्दी से उतार दिए गए थे । वे उदास होकर पुत्र और पत्नी सहित वन में रहते थे । मद्र देश के राजा धृमते धृमते उस वन में आए और उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह सत्यवान् के साथ कर दिया । पर सत्यवान् अल्पयु थे, इस से वे गीम्र भर गए । सावित्री ने अपने पातिव्रत्य के बल से अपने पति को जिला दिया ।

**सत्यव्रत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सत्य बोलने की प्रतिज्ञा या नियम । (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

वि० जिसने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा की हो । सत्य का नियम पालन करनेवाला ।

**सत्यशील-वि०** [ सं० ] [ स्त्री० सत्यशीला ] सत्य का पालन करनेवाला । सधा ।

**सत्यसंकल्प-वि०** [ सं० ] जो विचारे हुए कार्य को पूरा करे । हट संकल्प ।

**सत्यसंध-वि०** [ सं० ] [ स्त्री० सत्यसंधा ] सत्य प्रतिज्ञा । वचन को पूरा करनेवाला । उ०—सत्यसंध हृदयत रघुराई ।—सुलसी ।

संज्ञा पुं० (१) रामचंद्र का एक नाम । (२) भरत का एक नाम । (३) जनमेजय का एक नाम । (४) स्कंद का एक अवतार । (५) धृतराष्ट्र का एक पुत्र ।

**सत्यसंधा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] द्रौपदी का एक नाम ।  
**सत्या-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) सचाई । सत्यता । (२) दुर्गा का एक नाम । (३) सीता का एक नाम । (४) ध्यास की माता सरस्वती ।

**सत्यानास-संज्ञा पुं०** [ सं० सत्ता न नास ] सर्वनास । मरियामेट । प्लस । धराधीनी ।

**सत्यानासी-वि०** [ हिं० सत्यानास + ई (प्रत्य०) ] [ स्त्री० सत्यानासिनी ] (१) सत्यानास करनेवाला । चौपट करनेवाला । (२) धमनाया । बदकिस्मत ।

संज्ञा स्त्री० एक कंदीला पीया जो प्रायः लैंडहरो और उजाड़ स्थानों पर जमता है । घमोई । भड़भोई । स्वर्णक्षीरी । पीतपुष्पा ।

**विशेष**—इसके बीच में गोभी के पौधे की तरह एक कांड ऊपर को गया होता है और चारों ओर नीलापन लिए हरे कटावदार पत्ते निकलते हैं जिन पर चारों ओर विपैले कोंटे होते हैं । इस पौधे को काटने या दबापे से एक प्रकार का पीला दूध या रस निकलता है । फूल पीला, कटोरे के आकार का और देखने में सुंदर, पर गंधहीन होता है । फूल हट जाने पर पुच्छों में फल या बीजकोश लगते हैं जिनमें राई के से काले काले बीज भरे रहते हैं । इन बीजों से एक प्रकार का बहुत तीक्ष्ण तेल निकलता है जो सुजली पर लगाया जाता है । वैद्यक में सत्यानासी कड़वी, दुस्नावद, शीतल तथा क्षुमि रोग, सुजली और विष को दूर करनेवाली मानी गई है ।

**सत्यानुत्-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) हार सच का मेल । (२) वाणिज्य । व्यापार । दुकानदारी ।

**सत्यापन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] असत्यत्व की जाँच । सत्य होने का विश्रय ।

**सत्यापना-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] किसी सौदे या इकरार का पूरा होना ।

**सत्यापाडी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा का नाम ।

**सत्योचर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सत्य बात का स्वीकार । अपराध आदि का स्वीकार । इक्याल । (स्मृति) ।

**सत्योपवापन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नारददा नदी के पश्चिम तट पर स्थित एक पवित्र फलयुक्त वृक्ष । (पुराण)

**सत्रंग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का पौधा ।

**सत्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) यज्ञ । (२) एक क्षेमभाग जो १३ या १०० दिनों में पूरा होता था । (३) परिवेषण । गोपन । (४) वह स्थान जहाँ मनुष्य छिप सकता हो । (५) कोठी । घर । मकान । (६) धोला । प्रांति । (७) घन । (८) ताठल । (९) अंगल । (१०) वह स्थान जहाँ अक्षहायों को भोजन बाँटा जाता है । सत्र । सदावर्त । जैसे,—अत्र सत्रे ।

**सत्रह-वि०** दे० "सत्रह" ।

**सत्राजित-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक यादव जिसकी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्ण की ब्याही थी ।

**विशेष**—इसने सूर्य की तपस्या करके दिव्य स्वर्नतक मणि प्राप्त की थी । उसके लो जाने पर इसने श्रीकृष्ण को चोरी ख्याई । जब श्रीकृष्ण ने यह मणि हँवकर हाथ ही, तब सत्राजित बहुत लजित हुआ और उसने श्रीकृष्ण को अपनी कन्या सत्यभामा ब्याह दी ।

**सत्राजिती-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सत्राजित की कन्या सत्यभामा का एक नाम ।

सत्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत यज्ञ करनेवाला । (२) हाथी ।  
(३) मेघ । बादल ।

सत्रो-संज्ञा पुं० [ सं० सत्रिन् ] (१) यज्ञ करनेवाला । (२) किसी दूसरे राजा के राज्य में अपने राजा या राज्य की ओर से रहनेवाला राजदूत । पलची ।

सत्रु-संज्ञा पुं० दे० "सत्रु" ।

सत्रुघन, सत्रुहन-संज्ञा पुं० दे० "सत्रुघ्न" ।

संश्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सप्ता । होने का भाव । अग्नित्व । हन्ती । (२) सार । तत्व । मूल वस्तु । असलियत । (३) अंसः प्रकृति । खासियत । विशेषता । (४) चित्त की प्रवृत्ति । (५) आम तत्व । चैनम्य । चित्तत्व । (६) प्राण । जीव तत्व । (७) सांख्य के अनुसार प्रकृति के तीन गुणों में से एक जो सब में उत्तम है और जिसके लक्षण ज्ञान, शांति, शुद्धता आदि हैं ।

विशेष—इस गुण के कारण अच्छे कर्मों में प्रवृत्ति, विवेक आदि का होना माना गया है ।

(८) प्राणी । जीवधारी । (९) गर्भ । हमल । (१०) भूत । प्रेत । (११) एतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (१२) दृढ़ता । धीरता । साहस । शक्ति । दम ।

सत्वक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूत मनुष्य की जीवात्मा । प्रेत ।

संश्वगुण-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छे कर्मों की ओर प्रवृत्त करनेवाला गुण । साधु और विवेकशील प्रकृति । वि० दे० "सत्व" ।

संश्वगुणी-वि० [ सं० संश्वगुण्य ] साधु और विवेकी । उत्तम प्रकृति का ।

सत्वधाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] बिष्णु का एक नाम ।

सत्वप्रधान-वि० [ सं० ] जिसकी प्रकृति में सत्वगुण की अधिकता या प्रधानता हो ।

सत्वभारत-संज्ञा पुं० [ सं० ] ध्यास का एक नाम ।

सत्वर-अव्य० [ सं० ] क्षीप्र । जल्द । तुरंत । हतपट ।

सत्वलक्षणा-वि० स्त्री० [ सं० ] जिसमें गर्भ के लक्षण हों । गर्भवती । हामिल ।

सत्ववती-वि० [ सं० ] (१) गर्भवती । (२) सत्वगुणवाली ।

संज्ञा स्त्री० एक तांत्रिक देवी । ( सौद )

सत्वधान-वि० [ सं० सत्वदा ] [ स्त्री० सत्ववती ] (१) प्राणयुक्त । (२) दृढ़तायुक्त । दृढ़ । (३) धीर । साहसी ।

सत्वशाली-वि० [ सं० सत्वशालिन् ] [ स्त्री० सत्वशालिनी ] दृढ़तायुक्त । साहसी । धीर । दमवाला ।

सत्वशील-वि० [ सं० ] सात्विक प्रकृति का । अच्छी प्रकृति का । सदाचारी । धर्मात्मा ।

सत्वस्थ-वि० [ सं० ] (१) अपनी प्रकृति में स्थित । (२) दृढ़ । अविचलित । धीर । (३) सदाक । (४) प्राणयुक्त ।

सत्वोद्देश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उत्तम प्रकृति की अधिकता या उमंग । (२) साहस । उमंग । उरसाह ।

सत्संग-संज्ञा पुं० [ सं० ] साधुओं या सज्जनों के साथ रहना बैठना । अच्छा साथ । भली संगत । अच्छी सोहबत ।

सत्संगति-संज्ञा स्त्री० दे० "सत्संग" । उ०—सत्संगति-महिमा नदि गोई ।—गुलसी ।


सत्संगी-वि० [ सं० सत्संगिन् ] [ स्त्री० सत्संगिनी ] (१) सत्संग करनेवाला । अच्छी सोहबत में रहनेवाला । (२) मेल जोल रखनेवाला । लोगों के साथ यात चीत आदि का व्यवहार रखनेवाला । जैसे,—ये बड़े सत्संगी आदमी हैं ।

सत्समागम-संज्ञा पुं० [ सं० ] भले आदमियों का संसर्ग ।

सत्संसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चित्रकार । चितेता । (२) कवि । (३) एक प्रकार का पौधा ।

सधर-संज्ञा स्त्री० [ सं० सध ] पृथ्वी । भूमि ।

सधरी-संज्ञा स्त्री० दे० "साधरी" ।

सधिया-संज्ञा पुं० [ सं० सधिनक, प्र० सधियन् ] (१) एक प्रकार का मंगल-सूचक या सिद्धिदायक चिह्न जो कलशों, दीवारों आदि पर बनाते हैं और जो संमकोण पर काटती हुई दो रेखाओं के रूप में होता है । स्वास्तिक चिह्न,  उ०—शा

पुहारत अष्ट सिद्धि, करौन सधिया चीतत नवनिधि ।—सूर ।

(२) देवता आदि के पदतल का एक चिह्न । (३) भौं आदि की चौरफाड़ करनेवाला । जराह ।

सदजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीतल से निकलनेवाला एक प्रकार का अंजन ।

सदशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] केकड़ा ।

सद-अव्य० [ सं० सवः ] तक्षक । तुरंत । तत्काल ।

वि० (१) ताजा । (२) नया । नवीन । हाल का ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सत्त्वं ] प्रकृति । आदत्त । देव । उ०—सदन सदन के फिज की सद, न छुटै हरि राय । सचे तिरि विहरत फिरी, कत बिहरत उर आय ।—विहारी ।

संज्ञा पुं० [ सं० सत्त्वं ] (१) सभों की समिति । मंडली । (२) एक छोटा मंडप जो यज्ञशाला में प्राचीन यज्ञ के पूर्व बनाया जाता था ।

[ सं० सदा = आवाग ] गहरियों का एक प्रकार का गीत । (पंजाब)

सदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भूसी सहित अनाज ।

संज्ञा पुं० दे० "सिद्धक" ।

सदका-संज्ञा पुं० [ सं० सदकाः ] (१) वह वस्तु जो ईश्वर के नाम पर दी जाय । दान । (२) वह वस्तु जो किसी के सिर पर से उतार कर रास्ते में रखी जाय । उतारन । उतार ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—करना ।

(३) निहावर ।

मुहा०—सदके जाऊँ = बलि जाऊँ । (मुसल०)

सदान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रहने का स्थान । घर । मकान ।

(२) विराम । स्थिरता । (३) शीथिल्य । थकावट । (४) एक प्रसिद्ध कसाई का नाम जो बड़ा भाग्यदत्तक हो गया है ।

सदान-कि० प्र० [ सं० ] सदान = शिनाय [१] छेद में मे रसना ।

चना । (२) नाय के छेदों में से पानी आना ।

सदपरम-संज्ञा पुं० [ पर० ] हजारा गैदा ।

सदमा-संज्ञा पुं० [ अ० सहनः ] (१) आघात । धक्का । धोत ।

(२) मानसिक आघात । रंज । दुःख ।

कि० प्र०—पहुँचना ।—लगना ।—उठाना ।

(३) बड़ी हानि । भारी कुस्तान ।

कि० प्र०—उठाना ।

सदय-वि० [ सं० ] दयायुक्त । दयालु ।

सदर-वि० [ प्र० ] खास । प्रधान । मुख्य । जैसे,—सदर अभीन ।

सदर दरवाजा ।

संज्ञा पुं० वह स्थान जहाँ कोई बड़ी कचहरी हो या यद्वा

हाकिम रहता हो । केंद्रस्थल ।

वि० [ सं० ] भय युक्त । डरा हुआ ।

सदर आला-संज्ञा पुं० [ अ० ] अदालत का वह हाकिम जो जज के नीचे हो । छोटा जज ।

सदर दरवाजा-संज्ञा पुं० [ अ० + का० ] खास दरवाजा । सामने का द्वार । फाटक ।

सदरबशीर-संज्ञा पुं० [ अ० + का० ] किसी सभा का सभापति । मीर मजलिस ।

सदर बाजार-संज्ञा पुं० [ अ० + का० ] (१) बड़ा बाजार । खास बाजार । (२) छावनी का बाजार ।

सदर बोर्डे-संज्ञा पुं० [ अ० सदर + अं० बोर्डे ] माल की खय मे बड़ी अदालत ।

सदरी-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] विना आस्तीन की एक प्रकार की कुर्ती या बंदी जो और कपड़ों के ऊपर पहनी जाती है । सोनाबंद ।

धियोप—इसका चलन अरब में बहुत अधिक है । मुसलमानों मन के साथ इसका प्रचार अफ़गानिस्तान, तुर्किस्तान और हिंदुस्तान में भी हुआ ।

सदर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) असल बात । मुख्य विषय । साध्य विषय । (२) धनाढ्य पुरुष ।

सदर्थनाल-कि० सं० [ सं० सदर्थ या समर्थन ] समर्थन करना । पुष्टि करना । ससदीक करना ।

सदश-वि० [ सं० ] जिसमें पाद या किनारा हो । किनारेदार । हाथियेदार ।

सदस्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रहने का स्थान । मकान । घर ।

(२) सभा । समाज । मंडली । (३) यज्ञशाला में एक छोटा मंडप जो प्राचीन यज्ञ के पूर्व बनाया जाता था ।

सदसत्-वि० [ सं० ] (१) सच और शूद्र । (२) किसी वस्तु के होने और न होने का भाव । (३) ठुरा और भला । अच्छा और खराब ।

सदसत्प्रियेक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छे और बुरे की पहचान । भले बुरे का ज्ञान ।

सदसि-संज्ञा पुं० दे० "सदस्" ।

सदस्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ करनेवाला । याजक । (२) किसी सभा या समाज में सम्मिलित व्यक्ति । सभासद । मंत्री ।

सदहा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ करनेवाला । याजक । (२) सभासद । किसी सभा या समाज में सम्मिलित व्यक्ति । मंत्री । वि० [ का० ] सैकड़ों ।

संज्ञा पुं० [ देश० ] अनाज लादने की बड़ी बैल गाड़ी ।

सदा-अव्य० [ सं० ] नित्य । हमेशा । सर्वदा । (२) निरंतर । लगातार । बराबर ।

संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) गूँत । प्रतिध्वनि । (२) ध्वनि । आवाज । शब्द । (३) पुकार ।

मुहा०—सदा देना या लगाना = कबीर का भीष्म शाने के लिये पुकारना ।

सदाकृत-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] सचाई । सत्यता ।

सदाकुसुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] ध्रुव । धातकी ।

सदागति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु । पवन । (२) यात । (आयुर्वेद) (३) सूर्य । (४) विष्णु । ब्रह्म ।

सदागतिशुभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुरंड । अंडी का पेड़ ।

सदागम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सज्जन का आगमन । (२) सच्चारात्र । अच्छा सिद्धांत ।

सदाचरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छा चाल चलन । सात्त्विक व्यवहार ।

सदाचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छा आचरण । सात्त्विक व्यवहार । सद्वृत्ति । (२) भिष्ट व्यवहार । भयमनसाहस । (३) रीति । रवाज ।

सदाचारी-संज्ञा पुं० [ सं० सदाचरित् ] [ स्त्री० सदाचारिणी ] (१) अच्छे आचरणवाला पुरुष । अच्छे चाल चलन का आदमी । सद्वृत्तिवाली । (२) धर्मात्मा । पुण्यात्मा ।

सदातन-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिप्यु ।

सदादान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह हाथी जिसे सदा मद बहता हो । (२) घेरावत । (३) गणेश ।

सदानंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सदा आनंद में रहे । (२) शिव । (३) परमेश्वर । (४) विष्णु ।

सदानर्त्त-वि० [ सं० ] जो बराबर मात्वा हो ।

सत्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत यज्ञ करनेवाला । (२) हाथी ।  
(३) मेघ । बादल ।

सत्री-संज्ञा पुं० [ सं० सत्रिन् ] (१) यज्ञ करनेवाला । (२) किसी  
दूसरे राजा के राज्य में अपने राजा या राज्य की ओर से  
रहनेवाला राजदूत । एलची ।

सत्रुञ्ज-संज्ञा पुं० दे० "सत्रु" ।

सत्रुघ्न, सत्रुघ्न-संज्ञा पुं० दे० "सत्रुघ्न" ।

सांघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सत्ता । होने का भाव । अस्तित्व ।  
हस्ती । (२) सार । तत्व । मूल वस्तु । असलियत । (३)  
अंतः प्रकृति । खासियत । विशेषता । (४) चित्त की प्रकृति ।  
(५) आत्म तत्व । चैतन्य । चित्तत्व । (६) प्राण । जीव  
ताप । (७) सांघ्य के अनुसार प्रकृति के तीन गुणों में से  
एक जो सब में उत्तम है और जिसके लक्षण ज्ञान, तापि,  
शुद्धता आदि हैं ।

विशेष—इस गुण के कारण अच्छे कर्म में प्रवृत्ति, विवेक आदि  
का होना माना गया है ।

(८) प्राणी । जीवधारी । (९) गर्भ । हमल । (१०) भूत ।  
प्रेत । (११) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (१२) देवता ।  
धीरता । साहस । शक्ति । दम ।

सत्वक-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रुत मनुष्य की जीवात्मा । प्रेत ।

सत्त्वगुण-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छे कर्मों की ओर प्रवृत्त करनेवाला  
गुण । साधु और विवेकशील प्रकृति । वि० दे० "सत्व" ।

सत्त्वगुणी-वि० [ सं० सत्वगुणिन् ] साधु और विवेकी । उत्तम  
प्रकृति का ।

सत्त्वधाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।

सत्त्वप्रधान-वि० [ सं० ] जिसकी प्रकृति में सत्त्वगुण की  
अधिकता या प्रधानता हो ।

सत्त्वभारत-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यास का एक नाम ।

सत्त्व-अभ्य० [ सं० ] शरीर । शब्द । तुरंत । सतपट ।

सत्त्वलक्षणा-वि० स्त्री० [ सं० ] जिसमें गर्भ के लक्षण हों । गर्भ-  
पती । हामिला ।

सत्त्ववती-वि० [ सं० ] (१) गर्भवती । (२) सत्त्वगुणवाली ।

संज्ञा स्त्री० एक तांत्रिक देवी । ( बौद्ध )

सत्त्वधान्-वि० [ सं० सत्वधन् ] [ स्त्री० सत्वधनी ] (१) प्राणयुक्त ।  
(२) दृढतायुक्त । दृढ़ । (३) धीर । साहसी ।

सत्त्वशाली-वि० [ सं० सत्वशालिन् ] [ स्त्री० सत्वशालिनी ] दृढता-  
युक्त । साहसी । धीर । दमवाला ।

सत्त्वशील-वि० [ सं० ] सात्विक प्रकृति का । अच्छी प्रकृति का ।  
सदाचारी । धर्मात्मा ।

सत्त्वस्थ-वि० [ सं० ] (१) अपनी प्रकृति में स्थित । (२) दृढ़ ।  
अविचलित । धीर । (३) सदाक । (४) प्राणयुक्त ।

सत्त्वोद्देक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उत्तम प्रकृति की अधिकता या  
उभंग । (२) साहस । उभंग । उरसाह ।

सत्त्वसंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] साधुओं या सत्त्वों के साथ उठना  
बैठना । अच्छा साथ । भली संग । अच्छी सोहबत ।

सत्त्वसंगति-संज्ञा स्त्री० दे० "सत्त्वसंग" । उ०—सत्त्वसंगति-महिमा  
नहिं गोई ।—तुलसी ।


सत्त्वसंगी-वि० [ सं० सत्त्वसंगिन् ] [ स्त्री० सत्त्वसंगिनी ] (१) सत्त्व  
करनेवाला । अच्छी सोहबत में रहनेवाला । (२) मेल जोल  
रखनेवाला । लोगों के साथ बात चीत आदि का व्यवहार  
रखनेवाला । जैसे,—वे बड़े सत्त्वसंगी आदमी हैं ।

सत्त्वसमागम-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेल आदमियों का संसर्ग ।

सत्त्वसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विचकार । चित्त । (२) कवि ।  
(३) एक प्रकार का पौधा ।

सत्त्वर-संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वल् ] पृथ्वी । भूमि ।

सत्त्वरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सात्त्वरी" ।

सत्त्विया-संज्ञा पुं० [ सं० स्वस्तिक, प्रा० सत्त्विय ] (१) एक प्रकार का  
मंगल-सूचक या सिद्धिदायक चिह्न जो कलश, दीवार आदि  
पर बनाते हैं और जो समकोण पर काटती हुई दो रेखाओं  
के रूप में होता है । स्वस्तिक चिह्न ।  उ०—दाह

हुहारत अष्ट सिद्धि, करीब सत्त्विया चीतत नवनिधि ।—सूर ।  
(२) देवता आदि के पदतल का एक चिह्न । (३) फोड़े  
आदि की चीरफाड़ करनेवाला । जराह ।

सत्त्वजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीतल से निकलनेवाला एक प्रकार  
का अंजन ।

सत्त्वशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] केकड़ा ।

सत्त्व-अभ्य० [ सं० सत्त्वः ] तक्षण । तुरंत । तत्काल ।

वि० (१) ताजा । (२) नया । नवीन । हाल का ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सत्त्वः ] प्रकृति । आदत्त । देव । उ०—सद्वत्  
सद्वत् के फिरन की सद्वत् न छुट्टे हरि राय । सबै नितै  
बिहरत फिरौ, कत बिहरत उर आय ।—विहारी ।

संज्ञा पुं० [ सं० सद्वत् ] (१) सगो । समिति । मंडली । (२)  
एक छोटा मंडप जो यज्ञशाला में प्राचीन षंढा के पूर्व बनाया  
जाता था ।

[ सं० मदा = भावान ] गहरियों का एक प्रकार का गीत ।  
(पंजाब)

सद्वक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भूसा सहित अनाज ।

संज्ञा पुं० दे० "सिद्धक" ।

सद्वका-संज्ञा पुं० [ प्रा० सद्वकः ] (१) यह वस्तु जो हंवर के नाम  
पर दी जाय । दान । (२) यह वस्तु जो किसी के सिर पर  
से उतार कर रास्ते में रखी जाय । उतारन । उतारा ।  
क्रि० प्र०—उतारना ।—करना ।

(३) निद्रावर ।

मुहा०—सदके जाऊँ = बलि जाऊँ । (मुसल०)

सदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रहने का स्थान । घर । मकान ।

(२) विराम । स्थिरता । (३) वैभिव्य । धकावट । (४) एक प्रसिद्ध कसाई का नाम जो बड़ा भावजक हो गया है ।

सदना-कि० प्र० [ सं० ] सदन = धियान । (१) छेद में से रस्ता ।

बूना । (२) नाव के छेदों में से पानी आना ।

सदपर्व-संज्ञा पुं० [ अ० ] हजारा गैदा ।

सदमा-संज्ञा पुं० [ अ० सद्मः ] (१) आघात । धका । चोट ।

(२) मानसिक आघात । रंज । दुःख ।

कि० प्र०—बहुँचना ।—लगाना ।—उठाना ।

(३) बड़ी हानि । भारी ज़ुकसान ।

कि० प्र०—उठाना ।

सदय-वि० [ सं० ] दयायुक्त । दयालु ।

सदर-वि० [ अ० ] वास्त । प्रधान । मुख्य । जैसे,—सदर अर्थात् ।

सदर दरवाजा ।

संज्ञा पुं० वह स्थान जहाँ कोई बड़ी कचहरी हो या बड़ा हाकिम रहता हो । केंद्रस्थल ।

वि० [ सं० ] भय युक्त । डरा हुआ ।

सदर आला-संज्ञा पुं० [ अ० ] अदालत का वह हाकिम जो जज के नीचे हो । छोटा जज ।

सदर दरवाजा-संज्ञा पुं० [ अ० + ज्ञा० ] खास दरवाजा । सामने का द्वार । फाटक ।

सदरमशीन-संज्ञा पुं० [ अ० + मशी० ] किसी सभा का सभापति । मीर मजलिस ।

सदर बाजार-संज्ञा पुं० [ अ० + ज्ञा० ] (१) बड़ा बाजार । ग्रास बाजार । (२) छावनी का बाजार ।

सदर बोर्ड-संज्ञा पुं० [ अ० सदर + बोर्ड ] माल की सब से बड़ी अदालत ।

सदरी-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] बिना आस्तीन की एक प्रकार की कुर्ती या बंदी जो और कपड़ों के ऊपर पहनी जाती है । सीनाबंद ।

घिशोप—इसका चलन अरब में बहुत अधिक है । मुसलमानों मत के साथ इसका प्रचार अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान और हिंदुस्तान में भी हुआ ।

सदर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) असल बात । मुख्य विषय । साध विषय । (२) धनाग्र पुरष ।

सदर्थनाल-कि० प्र० [ सं० ] सदर्थ या समर्थन । समर्थन करना । पुष्टि करना । तसदीक करना ।

सदश-वि० [ सं० ] जिसमें पाद या किनारा हो । किनारेदार । हासियेदार ।

सदस्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रहने का स्थान । मकान । घर ।

(२) सभा । समान । मंडली । (३) यज्ञशाला में एक छोटा मंडप जो प्राचीन बंदा के पूर्व बनाया जाता था ।

सदसत्-वि० [ सं० ] (१) सच और शूद्र । (२) किसी वस्तु के होने और न होने का भाव । (३) बुरा और भला । अच्छा और खराब ।

सदसद्विवेक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छे और बुरे की पहचान । भले बुरे का ज्ञान ।

सदसि-संज्ञा पुं० दे० "सदस्" ।

सदस्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ करनेवाला । याजक । (२) किसी सभा या समान में सम्मिलित व्यक्ति । सभासद । मंत्री ।

सदहा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ करनेवाला । याजक । (२) सभासद । किसी सभा या समान में सम्मिलित व्यक्ति । मंत्री । वि० [ का० ] मैकड़ों ।

संज्ञा पुं० [ दे० ] अनाज छानने की बड़ी बौल गाड़ी ।

सदा-अव्य० [ सं० ] नित्य । हमेशा । सर्वदा । (२) निरंतर । लगातार । बराबर ।

संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) मूँज । प्रतिध्वनि । (२) ध्वनि । आवाज़ । शब्द । (३) पुकार ।

मुहा०—सदा देना या लगाना = क़रीब का भीप पाने के लिये पुकारना ।

सदाकृत-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] सचाई । सत्यता ।

सदाकुसुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] धव । धातकी ।

सदागति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु । पवन । (२) वात । (आयुर्वेद) (३) नूर्य । (४) विभु । ब्रह्म ।

सदागतिशयु-संज्ञा पुं० [ सं० ] परंड । अंडी का पैद ।

सदागम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समान का आगमन । (२) सत् शास्त्र । अच्छा सिद्धांत ।

सदाचरख-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छा चाल चलन । सात्त्विक व्यवहार ।

सदाचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छा आचरण । सात्त्विक व्यवहार । सद्वृत्ति । (२) सिद्ध व्यवहार । भलमनसाहज़ । (३) रीति । रवाज ।

सदाचारी-संज्ञा पुं० [ सं० मयाचारि ] [ स्त्री० सयाचरिणी ] (१) अच्छे आचरणवाला पुरष । अच्छे चाल चलन का आदमी । सद्वृत्तिशील । (२) धर्मात्मा । पुण्यात्मा ।

सदात्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

सदादान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह हाथी जिसे सदा मद बहता हो । (२) पुरावन । (३) गणेश ।

सदानंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सदा आनंद में रहे । (२) शिव । (३) परमेश्वर । (४) विष्णु ।

सदानर्च-वि० [ सं० ] जो बराबर भाजना हो ।

संज्ञा पुं० ममोला। खंजन।

सदानीरा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कर्तोपा नदी।

सदानोपा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्लानी। प्लापणी।

सदापुर—संज्ञा पुं० [ सं० ] केवटी नोया। कैवर्च मुस्तक।

सदापुरप—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नारिकेल। नारियल। (२)

आक। सफ़ेद मदार। (३) कुंद का फूल।

सदापुरपी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आक। (२) छाल आक। (३)

कपास। (४) महिक्रा। एक प्रकार की चमेली।

सदाप्रसून—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रोहितक वृक्ष। (२) आक।

मदार। (३) कुंद का पौधा।

सदाफरती—वि० दे० “सदाफल”।

सदाफल—वि० [ सं० ] जो सब दिन फले। सदा फलता रहनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) गूदर। ऊमर। (२) धीफल। बेल। (३)

नारियल। (४) कटहल। (५) एक प्रकार का नोवू। उ०—

फरे सदाफर अठर जैमीरी।—जायसी।

सदाफला, सदाफली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जपा पुष्प। गुड-

हर। देवीफूल। (२) एक प्रकार का बेंगन।

सदाघरत—संज्ञा पुं० दे० “सदाघरत”।

सदाघरत—संज्ञा पुं० [ सं० सदाघरत ] (१) नित्य भूखों और दीनों को भोजन दौं देने की क्रिया या नियम। रोज़ की चौरत।

क्रि० प्र०—चलना।—घौटना।

(२) वह अन्न या भोजन जो नियम से नित्य गरीबों को दौंटा जाय। खैरत।

क्रि० प्र०—घौटना।—घौटना।

(३) नित्य होनेवाला दान।

सदाघरती—संज्ञा पुं० [ हि० सदाघरत ] (१) सदाघरत घौंटेनेवाला।

भूखों को नित्य अन्न दौंटेनेवाला। (२) बड़ा दानी। बहुत उदार।

सदाघरतार—वि० [ हि० सदा + फ० बहार = फूल पत्ती का समय ]

(१) जो सदा फूले। (२) जो सदा हरा रहे। जिसका पतखट्ट न हो। जिसमें बराबर नपु पत्ते निकलते और पुराने झड़ते रहें।

विशेष—वृक्ष दो प्रकार के होते हैं। एक तो पतझड़वाले, अर्थात् जिनकी सब पत्तियाँ शिशिर ऋतु में झड़ जाती और घसंत में सब पत्तियाँ नई निकलती हैं। दूसरे सदाघरत अर्थात् वे जिनके पत्ते झड़ने की नियत ऋतु नहीं होती और जिनमें सदा हरी पत्तियाँ रहती हैं।

संज्ञा पुं० एक प्रकार के फूल का नाम।

सदाभद्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गौरीमा का पेड़।

सदामंडलपत्रक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सफ़ेद गद्दहूरना। श्वेत पुनर्नया।

सदामन्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार के क्षय।

सदामांसी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मांस रोहिणी।

सदायोगी—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु।

सदाबद्ध—संज्ञा पुं० [ सं० ] बेल। बिल्व वृक्ष।

सदाशय—वि० [ सं० ] जिसका भाव उदार और श्रेष्ठ हो। उच्च विचार का। अच्छी नीयत का। सज्जन। भलामानस।

सदाशिव—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सदा कल्याणकारी। सदा हृष्ट।

(२) सदा शुभ और मंगल। (३) महादेव का एक नाम।

सदासुहागिन—वि० स्त्री० [ हि० सदा + सुहागिन ] जो सदा सौभाग्य-

वती रहे। जो कभी पतिहीन न हो।

संज्ञा स्त्री० (१) वेदना। रंछी। (विनोद) (२) सिंदूरपुत्री

सदिया—संज्ञा स्त्री० [ फ० सादः = कोरा ] छाल पक्षी का एक भेद जिसका शरीर भूरे रंग का होता है। बिना बिचि की मुनियों।

सदी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सौ वर्षों का समूह। शताब्दी।

(२) किसी विशेष सौ वर्षों के बीच का काल। जैसे, ११ वीं

सदी। (३) सैकड़ा। जैसे,—पूँजी सदी सूद।

सदुपदेश—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छा उपदेश। उत्तम शिक्षा।

(२) अच्छी सलाह।

सदृक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मिठाई। (सुश्रुत)

सदृश—वि० [ सं० ] (१) जो देखने में एक ही सा हो।

एक रूप रंग का। समान। अनुरूप। (२) तुल्य। बराबर।

(३) उपयुक्त। मुनासिब। योग्य।

सदृशता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अनुरूपता। समानता। तुल्यता।

सदेह—क्रि० वि० [ सं० ] इसी शरीर से। बिना शरीर त्याग किए।

जैसे, शिरांकु सदेह स्वर्ग जाना चाहते थे।

सदैव—अव्य० [ सं० ] सदा ही। सर्वदा। हमेशा।

सदोप—वि० [ सं० ] (१) दोपयुक्त। जिसमें दोष हो। (२) अप-

राधी। दोषी।

सद्गति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उत्तम गति। अच्छी अवस्था।

भली हालत। (२) मरण के उपरांत उत्तम लोक की प्राप्ति।

(३) अच्छा चाल चलन।

सद्गुण—संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छा गुण। अच्छी सिफ़त। उ०—

जिमि सद्गुण सज्जन पहुँ आवा।—तुलसी।

सद्गुणी—संज्ञा पुं० [ सं० ] सद्गुणिय। अच्छे गुणवाला।

सद्गुरु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छा गुरु। उत्तम शिक्षक या

आचार्य। (२) वह धर्म शिक्षक या मंत्रदाता जिसके

उपदेश से संसार के बंधनों से छुटकारा और ईश्वर की प्राप्ति हो।

सद्ग्रन्थ—संज्ञा पुं० [ सं० ] सत् + ग्रन्थ ] अच्छा ग्रन्थ। सन्मार्ग बतावे-

वाली पुस्तक। उ०—जिम्मे वारं-विवाद तें लुप्त होहिं  
सद्गंध—गुलसी।  
सहली—संज्ञा पुं० [ सं० राय्, प्र० सं० ] (१) राय्। ध्वनि।  
द्रव्य० [ सं० सय ] तुरंत। फीरन। तत्काल।  
सद्भाव—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छा भाव। प्रेम और हित का  
भाव। शुभचिंतना की वृत्ति। (२) मेल्जोल। मैत्री। (३)  
निष्कपट भाव। सच्चा भाव। अच्छी नीयत। (४) होने का  
भाव। अस्तित्व। हलसी।  
सदा—संज्ञा पुं० [ सं० सगर् ] (१) घर। मकान। रहने का स्थान।  
(२) बैठनेवाला। (३) दर्शक। (४) संभ्राम। युद्ध। (५)  
पृथ्वी और आकाश।  
सद्गिरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० सय ] (१) हथेली। यद्वा सक्न। (२)  
प्रासाद। महल।  
सद्य—अव्य० [ सं० ] (१) आज ही। (२) इसी समय। अभी।  
(३) तुरंत। शीघ्र। तत्काल।  
संज्ञा पुं० शिव का एक नाम। सचो जात।  
सद्यः—अव्य० दे० “सद्य”।  
सद्यःपाक—वि० [ सं० ] जिसका फल तुरंत मिले। जिसके परि-  
णाम में विलंब न हो।  
संज्ञा पुं० रात के चौथे पहर का स्वम ( जो लोगों के विश्वास  
के अनुसार दीकूपघटा करता है )।  
सद्यःप्रसूत—वि० [ सं० ] तुरंत का उत्पन्न।  
सद्यःप्रसूता—वि० स्त्री० [ सं० ] जिते अभी यथा हुआ हो।  
सद्यःशोधा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कपिकच्छु। केवैच। ( केवैच छु  
जाने से तुरंत खुजली और सूजन होती है। )  
सचो जात—वि० [ सं० ] [ स्त्री० सचो जात ] तुरंत का उत्पन्न।  
संज्ञा पुं० (१) शिव का एक स्वरूप या मूर्ति। (२) तुरंत का  
उत्पन्न वस्तु।  
सद्गती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुल्लय की कन्या और भ्रमि की स्त्री।  
सद्गृत्ति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अच्छा चालचलन। उत्तम व्यवहार।  
सधना—वि० प्र० [ हिं० साधना ] (१) सिद्ध होना। पूरा होना।  
सरावा। काम होना। जैसे,—काम सधना। (२) काम चलना।  
मतलब निकलना। (३) अभ्यस्त होना। हाथ धैरता।  
मैजना। मद्रक होना। जैसे,—अभी हाथ सधा नहीं है,  
इसी से देर लगती है। (४) प्रयोजन-सिद्धि के अनुकूल  
होना। नीं पर चढ़ना। जैसे,—विना कुछ खयास रिपू वह  
आदमी नहीं सधेगा। (५) उच्च ढीक होना। निशाना  
ठीक होना। (६) पोंद आदि का शिक्षित होना। निकलना।  
(७) ठीक नपना। नापा जाना। जैसे,—अंतरा सधना।  
सधर—संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊपर का भोंद।  
सधर्म—वि० [ सं० ] (१) समान गुण या क्रियावाला। एक ही  
प्रकार का। (२) मुख्य। समान।

सधया—संज्ञा स्त्री० [ हिं० विष्क ] वह स्त्री जिसका पनि जीवित  
हो। जो विषय न हो। सुहागिन। स्त्रीभाव्यवती।  
सधाना—वि० सं० [ हिं० सधना का प्रेर० ] साधने का काम  
दूसरे से कराना। दूसरे को साधने में प्रवृत्त करना।  
सधावर—संज्ञा पुं० [ हिं० सधवा ] वह उपहार जो गर्भवती स्त्री  
को गर्भ के सातवें महीने दिया जाता है।  
सधूमधर्णा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अमि की सात जिह्वाओं में से एक  
जिह्वा।  
सधौरा—संज्ञा पुं० दे० “सधावर”।  
सधीची—संज्ञा स्त्री० [ सं० सधीचीन = समान उद्देशवाला ] सखी।  
( हिं० )  
सनका—संज्ञा पुं० [ यदु० सन् सन् ] सघाटा। सत्पथता। नीरवता।  
सनंदन—संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक  
मानसपुत्र।  
विशेष—ये कपिल के भी पूर्व सांख्य मत के प्रवर्तक कहे  
गए हैं।  
सौं—सनक सनंदन।  
सन्—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वर्ष। साल। संवत्सर। (२) कोई  
विशेष वर्ष। संवत्। जैसे,—सन् ईसवी, सन् हिजरी।  
सन—संज्ञा पुं० [ सं० सय ] बोया जानेवाला एक प्रसिद्ध पौधा  
जिसकी छाल के रेशे से मजबूत रस्सियाँ आदि बनती हैं।  
विशेष—यह तीन सार्दे तीन हाथ ऊँचा होता है और इसका  
कांड सीधी छड़ी की तरह दूर तक ऊपर जाता है। फूल  
फिले रंग के होते हैं। कुयारी फसल के साथ यह खेतों में  
बोया जाना है और भादों कुआर में तैयार हो जाता है।  
देशदार टिकका अलग करने के लिये इसके डंडल पानी में  
यालकर सड़ाए जाते हैं।  
सं० प्रत्य० [ सं० संग ] अवधि में कारण-कारक का चिह्न  
से। साथ।  
संज्ञा स्त्री० [ ऋतु० ] वेग से निकल जाने का शब्द। जैसे,—  
तीर सन से निकल गया।  
संज्ञा पुं० [ सं० ] महा के चार मानस पुत्रों में से एक  
मानसपुत्र।  
वि० [ ऋतु० मृग सन ] (१) सन्नटे में भावा हुआ।  
स्तब्ध। ठक। (२) मौन। चुप।  
मुहा०—जी सन होना = विषा सम्भ्र होना। धन धान।  
सनई—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सन ] छोटी जाति का सन।  
सनक—संज्ञा स्त्री० [ सं० संक = सय्या ] (१) किसी यात की पुन।  
मन की झोंक। वेग के साथ मन की प्रवृत्ति।  
मुहा०—सनक चढ़ना या सपार होना = उन्ना होना।  
(२) उन्माद की स्त्री वृत्ति। सन्न। उन्नत।  
संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक।



**विशेष**—ये परम ज्ञानी और विष्णु के सभासद माने गए हैं ।

शेष के नाम हैं—सन, सनलुमार और सनंदन ।

**यौ०**—सनकसनंदन ।

**सनकना**—कि० ब्र० [ हि० सनक ] पागल हो जाना । पगलना । झटकी हो जाना ।

कि० ब्र० [ श्रु० सनसन ] वेग से हवा में जाना या फेंक जाना । जैसे,—तीर सनकना, गोले सनकना ।

**सनकाना**—कि० सं० [ हि० सनकना का प्रेर० ] किसी को सनकने में प्रवृत्त करना ।

**सनकारना**—कि० सं० [ हि० सैन + करना ] (१) संकेत करना ।

इशारा करना । (२) इशारे से बुलाना । (३) किसी काम के लिये इशारा करना । उ०—तुलसी समीत-पाल सुमिरे कृपाल राम समय सुकटना सराहि सनकार दी ।—तुलसी ।

**संयो०**—कि०—देना ।

**सनकियाना**—कि० सं० [ सं० संकतन, हि० सं ] इशारा करना । संकेत करना ।

कि० ब्र० दे० “सनकना” ।

कि० सं० दे० “सनकाना” ।

**सनकुर्गी**—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का बड़ा पेड़ ।

**विशेष**—इस के हीर की लकड़ी बहुत मजबूत और स्याही लिए लाल होती है । इसकी कुंसियाँ आदि बनती हैं । यह वृक्ष तिवेवली और द्रायनकोर में अधिक पाया जाता है ।

**सनत्**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मर्यादा ।

**समस्तुमार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक । वैधात ।

**विशेष**—ये सब से पहले प्रजापति कहे गए हैं ।

(२) वारह सार्वभौमों या चक्रवर्तियों में से एक । (जैन)

**सनरत्नजात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्रह्मा के सात मानस पुत्रों में से एक मानसपुत्र ।

**सनत्ता**—संज्ञा पुं० [ हि० सन ] वह वृक्ष जिस पर रेशम के कर्दों पाले जाते हैं । जैसे,—शहनूत, बेर ।

**सनद्**—संज्ञा स्त्री० [ ब्र० ] (१) सक्तिया गाह । (२) भरोसा करने की वस्तु । (३) प्रमाण । सच्यत । दलील । (४) प्रमाणपत्र । सुरतिफिकेट ।

**सनदयाह्ना**—वि० [ ब्र० सनद + प्रा० याहः ] (१) जिसे किसी बात की सनद् मिली हो । प्रमाणपत्र-प्राप्त । (२) किसी परीक्षा में उत्तीर्ण ।

**सनना**—कि० ब्र० [ सं० संभ्रं = पिघल कर मिलना ] (१) जल के योग से किसी पूर्ण के कणों का एक में मिलना या लगना । गीला होकर लेई के रूप में मिलना । जैसे,—आटा सनना । (२) गीली वस्तु के साथ मिलना । आटावित होना । ओत ओत होना । जैसे,—कपड़ा कीचड़ में सन गया । (३) लिप्त होना । पगना । एक में मिलना । लीन होना । उ०—बोलत धैन सनेह सने ।—मूर ।

**संयो०**—कि०—जाना ।

**सननी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सननी ] पानी में भिगाया हुआ भूसा या सूखा चारा जो चौपायों को दिया जाता है । सानी ।

**सनम**—संज्ञा पुं० [ ब्र० ] प्रिय । प्रियतम । प्यारा ।

**सनमान**—संज्ञा पुं० दे० “सम्मान” ।

**सनमानना**—क्रि० सं० [ सं० सम्मान + ना (प्रत्य०) ] मानि कराना । आदर करना । सत्कार करना । उ०—रूप सुनिआने आह पूजि सनमानेउ ।—तुलसी ।

**सनमुख**—क्रि० प्रत्य० दे० “संमुख” ।

**सनसनाना**—कि० ब्र० [ श्रु० सन सन ] (१) हवा में झोंके से निकलने या जाने का शब्द होना । (२) खौलते हुए पानी का शब्द होना । (३) हवा बहने का शब्द होना ।

**सनसनाहट**—संज्ञा पुं० [ हि० सनसनाना ] (१) हवा बहने का शब्द । (२) हवा में किसी वस्तु के वेग से निकलने का शब्द । (३) खौलते हुए पानी का शब्द । (४) सनसनी ।

**सनसनी**—संज्ञा स्त्री० [ श्रु० सन सन ] (१) संवेदन सूत्रों में एक प्रकार का संवेदन । क्षनक्षनाहट । झुनझुनी । जैसे,—रुप पीते ही दरार में सनसनी सी मादम हुई । (२) अत्यंत भय, आश्चर्य आदि के कारण उत्पन्न स्तब्धता । ठक रह जाने का भाव । (३) उद्वेग । घबराहट । खलबली । क्षोभ ।

कि० प्र०—कैलना ।

(४) सखाटा । नीरवता ।

**सनहकी**—संज्ञा स्त्री० [ ब्र० सदनक ] मिट्टी का एक बरतन जो बहुधा सुसम्मान काम में लाते हैं ।

**सनहोना**—संज्ञा पुं० [ देश० ] वह नौद या बड़ा बरतन जिसमें भरे हुए खटाई मिले जल में धोने के पूर्व बरतन फूलने के लिये डाले जाते हैं ।

**सना**—संज्ञा स्त्री० दे० “सनाय” ।

**सनाढ्य**—संज्ञा पुं० [ सं० सन = दक्षिणा + ञ्च्य = संपन्न ] ब्राह्मणों की एक शाखा जो गौड़ों के अंतर्गत कही जाती है ।

**सनातन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल । अत्यंत पुराना समय । अनादि काल । जैसे,—यह बात सनातन से चली आती है । (२) प्राचीन परंपरा यद्दत्त दिनों से चला आता हुआ क्रम । (३) ब्रह्म । (४) विष्णु । (५) वह जिसे सब ब्राह्मणों में भोजन कराना कर्तव्य हो । (६) ब्रह्मा के एक मानसपुत्र ।

वि० (१) अत्यंत प्राचीन । बहुत पुराना । जिसके आदि का पता न हो । अनादि काल का । (२) जो बहुत दिनों से चला आता हो । परंपरागत । जैसे,—सनातन रीति, सनातन धर्म ।

(३) नित्य । सदा रहनेवाला । शाश्वत ।

**सनातन धर्म**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन धर्म । (२) परंपरागत धर्म । (३) वर्तमान हिंदू धर्म का वह स्वरूप जो परंपरा से चला आता हुआ माना जाता है और जिसमें पुराण,

तंत्र, बहुदेवोपासना, प्रतिमापूजन, तीर्थ महात्म्य आदि सब समाज रूप से माननीय हैं। साधारण जनता के बीच प्रचलित हिंदू धर्म।

**सनातन पुराण-संज्ञा** [ सं० ] विष्णु भगवाद् । उ०— पुराण सनातन की वर्ष क्यों न चंचला होय ।—रहीम ।

**सनातनी-संज्ञा** पुं० [ सं० सनातन + ई (प्रत्य०) ] (१) जो बहुत दिनों से चला आता हो । जिसकी परंपरा बहुत पुरानी हो । (२) सनातन धर्म का अनुयायी ।

**सनाथ-वि०** [ सं० ] [ स्त्री० सनाथ ] जिसकी रक्षा करनेवाला कोई स्वामी हो । जिसके ऊपर कोई मद्दगार या सरपरस्त हो । उ०—हैं सनाथ हैं हैं सही जी लघुताहि न भित्तै ।—तुलसी ।

**मुहा०—सनाथ करना** = शरण में लेना । आश्रय देना । सहज बनाना ।

**सनाभि-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) सहोदर भाई । (२) एक ही पूर्वज से उत्पन्न पुरुष । सर्पिंद ।

**सनाभ्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक ही कुल का पुरुष । सात पीढ़ियों के भीतर एक ही पंश का सन्तुष्ट । सर्पिंद ।

**सनाय-संज्ञा** स्त्री० [ प्र० सनाय ] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ दल्लार होती हैं । खण्डपत्री । सोनामुखी ।

**विशेष**—इस पौधे की अधिकतर जातियाँ भरथ, मिथ, यूनान, इटली आदि पश्चिम के देशों में होती हैं । केवल एक जाति का पौधा भारतवर्ष के सिंध, पंजाब, मद्रास आदि प्रांतों में थोड़ा बहुत होती है । इसकी पत्तियाँ इमली की तरह एक सँके के दोनों ओर लगी हैं । एक सँके में ५ से ८ जोड़े तक पत्तियाँ लगी हैं जो देखने में पीलापन लिए हरे रंग की होती हैं । इसमें चिपटी लंबी कलियाँ लगी हैं जो सिर पर गोल होती हैं । इसकी पत्तियों का जुलाब हड्डों और वैद्य दोनों साधारणतः द्रिया करते हैं । कलियों में भी रचन गुण होता है, पर पत्तियों से कम । वैद्यक में सनाय रचक तथा भंडासि, विषम ज्वर, अजीर्ण, स्त्रीहा, यकृत, पांडू रोग आदि को दूर करनेवाली कही गई है ।

**सनासन-संज्ञा** पुं० दे० "सनसन" ।

**सनाह-संज्ञा** पुं० [ सं० सनाह ] कंचक । बकतर । उ०—उडि उडि पहिरि सनाह अभागो । जहँ तहँ, गाल बजावन लागे ।—तुलसी ।

**सनिल-संज्ञा** पुं० दे० "शनि" ।

**सनीचर-संज्ञा** पुं० दे० "शनीचर" ।

**सनीचरी-संज्ञा** पुं० [ हि० सनीचर ] शनि को दत्ता, जिसमें दुःख, व्याधि आदि की अधिकता होती है ।

**मुहा०—मीन की सनीचरी** = मीन दाहि, पर शनि की रिपति को दत्ता । जिसका एक हाथ और मया दोनों का नाश माना जाता है । उ०—

एक लौ कराल कलिकाल मूल मूल ता में कोड़ में की खाज की सनीचरी है मीन की ।—तुलसी ।

**सनीडू-प्रत्य०** [ सं० ] (१) पड़ोस में । बगल में । (२) समीप । निकट ।

**वि०** (१) पड़ोसी । बगल का । (२) पास का । समीप का ।

**सनेह-संज्ञा** पुं० दे० "स्नेह" ।

**सनेहिया-संज्ञा** पुं० दे० "सनेही" ।

**सनेही-वि०** [ सं० सनेही, स्नेह ] स्नेह या प्रेम करनेवाला । प्रेमी । संज्ञा पुं० चाहनेवाला । प्रियतम । प्यारा ।

**सने सने-प्रत्य०** दे० "सनेः सनेः" ।

**सनीचर-संज्ञा** पुं० [ प्र० ] चीड़ का पेड़ ।

**सन्न-संज्ञा** पुं० [ सं० ] चिरींजी का पेड़ । पियाल वृक्ष ।

**वि०** [ सं० सन्न, हि० सुप ] (१) संज्ञा शून्य । संवेदन-रहित ।

विना चेतना का सा । सन्न । जड़ । जैसे,—यह मीपण संवाद सुनते ही वह सन्न रह गया । (२) भीषक । उक ।

संभित । (३) एक दारगी खामोश । सहसा मौन । एक दम सुप । (४) डर से सुप । भय से नीरव । जैसे,—उसके दडिटे ही वह सन्न हो गया ।

**फि० प्र०—करना** ।—होना ।

**मुहा०—सन्न मारना** = सजय खींचना । एक बागी चुप हो जगना ।

**सन्नत-वि०** [ सं० ] (१) हुका हुआ । (२) नीचे गया हुआ ।

**संज्ञा** पुं० राम की सेना का एक बंदर ।

**सन्नति-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) हुकाव । (२) सन्नत । विनय ।

(३) किसी और प्रवृत्ति । मन का हुकाव । (४) कृपा दण्ड ।

मेहरबानी । (५) दक्ष की पुत्री और ऋतु की स्त्री का नाम ।

(६) ध्वनि । आवाज़ ।

**सन्नद्ध-वि०** [ सं० ] (१) बैया हुआ । कसा या जकड़ा हुआ ।

(२) कवच आदि बाँध कर तैयार । (३) तैयार । आमाद ।

उपत । (४) लगा हुआ । जुड़ा हुआ । मिला हुआ । (५)

पास का । समीप का ।

**सन्नप-संज्ञा** पुं० [ सं० ] समूह । हूंड ।

**सन्नाटा-संज्ञा** पुं० [ सं० शून्य, हि० सुत्र + आद्य (प्रत्य०) ] (१) चारों ओर किसी प्रकार का शब्द न सुनाई पड़ने की अवस्था ।

निःशब्दता । नीरवता । निस्तब्धता । जैसे,—मेला उठ जाने पर वहाँ सन्नाटा हो गया ।

**फि० प्र०—करना** ।—छाना ।—कैलना ।—होना ।

(२) किसी प्राणी के न होने का भाव । निर्जन्मता । निरालापन । एकान्तता । जैसे,—वहाँ सन्नाटे में पुकारने से भी

कोई न सुनेगा । (३) अत्यंत भय या आश्चर्य के कारण उत्पन्न मौन और निश्चेष्टता । टक रह जाने का भाव ।

स्तब्धता ।

**मुहा०**—सन्नाटे में आना = ठक रह जाना । स्तम्भित हो जाना ।  
कुद कइते शनै न बनना ।

(४) सहसा मौन । एक दम खामोशी । चुपची ।

**मुहा०**—सन्नाटा खींचना या मारना = एक वाली चुप हो जाना ।  
एक दन मौन हो जाना ।

(५) चढ़ल पहल का अभाव । विनोद या मनोरंजन का न होना । उदासी ।

**मुहा०**—सन्नाटा बीतना = उदासी में समय कटना ।

(६) काम धंधे से गुलज़ार न रहना । जैसे,—अब तो कारखाने में मज़ादा रहता है ।

**वि०** (१) जहाँ किसी प्रकार का शब्द आदि न सुनाई पड़ता हो । नीरव । स्तब्ध । (२) निर्जन । निराला । जैसे,—सन्नाटा मैदान ।

संज्ञा पुं० [ अनु० सन सन ] (१) हवा के जोर से चलने की आवाज़ । वायु के बहने का शब्द । जैसे,—आज तो बड़े सन्नाटे की हवा है ।

**मुहा०**—सन्नाटे का = तन सन शब्द के साथ बहना हुआ ।

(२) हवा धीरते हुए तेजी से निकल जाने का शब्द । वेग से वायु में गमन करने का शब्द ।

**मुहा०**—सन्नाटे के साथ या सन्नाटे ते = बंग वे । भौंके से । बड़ी तेजी से । जैसे,—तीर सन्नाटे से निकल गया ।

**सन्नादन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] राम की सेना का एक वृथप बंदर ।

**सन्नाद्-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) कवच । बकतर । (२) उद्योग । प्रयत्न ।

**सन्नाह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] शुद्ध के योग्य एक विशेष प्रकार का हाथी ।

**सन्निफट-अव्य०** [ सं० ] समीप । पास । निकट ।

**सन्निकर्ष-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ वि० सन्निकृष्ट ] (१) संबंध । लगाव ।

(२) नाता । रिश्ता । (३) सामीप्य । समीपता । (४)

हृदयों का विषयों के साथ संबंध । (न्याय)

**विशेष**—यही ज्ञान का कारण है और लौकिक तथा अलौकिक दो प्रकार का कहा गया है ।

(४) पात्र । आधार । आश्रय ।

**सन्निकाश-वि०** [ सं० ] उसी रूप रंग का । सदृश । समान ।

**सन्निघ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सामीप्य । (२) आमने सामने की स्थिति ।

**सन्निधान-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) आमने सामने की स्थिति । निकटता । समीपता । (२) रचना । धरना । (४) स्थापित करना । (५) किसी वस्तु के रखने का स्थान । (६) वह स्थान जहाँ धन एकत्र किया जाय । निधि ।

**सन्निधि-संज्ञा यी०** [ सं० ] (१) समीपता । निकटता । (२) आमने सामने की स्थिति । (३) पदोत्तर ।

**सन्निपात-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) एक साथ गिरना या पड़ना ।

(२) जुटना । भिड़ना । टकराना । (३) संयोग । मेल । मिश्रण । (४) इकट्ठा होना । एक साथ जुटना । (५) एक साथ और पिच तीनों का एक साथ बिगड़ना । विशेष । सरसाम ।

**विशेष**—यह वास्तव में कोई अलग रोग नहीं है, बल्कि एक विशेष अवस्था है जो ज्वर या और किसी व्याधि के प्रियते पर होती है । यह कई प्रकार का होता है । सब से साधारण रूप यह है जिसमें रोगी का चित्त भ्रंत हो जाता है, बुद्ध अंडबंड बकने लगता है तथा उछलता फूटता है । आयुर्वेद में १३ प्रकार के सन्निपात कहे गए हैं—संधिग, संतुक्, रन्दाह, चित्तभ्रम, शीतांग, तंद्रिक, कंडकुञ्ज, फर्गक, भ्रमनेत्र, रक्तशोथ, प्रलाप, जिह्वक और अभिन्धास ।

(६) एक साथ कई बातों का घटना या ठीक उतरना । (७) समाहार । समूह ।

**सन्निबंध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) एक में यौपना । जकड़ना । (२) लगाव । संबंध । (३) प्रभाव । तासीर । (४) फल । परिणाम ।

**सन्निबद्ध-वि०** [ सं० ] (१) एक में यँधा हुआ । जकड़ा हुआ । (२) लगा हुआ । अड़ा हुआ । फँसा हुआ । (३) सहारे पर टिका हुआ । आश्रित ।

**सन्निभ-वि०** [ सं० ] सदृश । समान । मिलता जुलता ।

**सन्निभृत-वि०** [ सं० ] (१) अच्छी तरह छिपाया हुआ । गुप्त । (२) समस्त वृत्तकर बोलनेवाला ।

**सन्निमज्ज-वि०** [ सं० ] (१) खूब डूबा हुआ । (२) सोया हुआ ।

**सन्निकर-वि०** [ सं० ] (१) रोका हुआ । ठहराया हुआ । अदाया हुआ । (२) दयाया हुआ । दमन किया हुआ । (३) ठसा-ठस भरा हुआ । फसा हुआ ।

**सन्निरोध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) रोक । रुकावट । बाधा । (२) दमन । निवारण । (३) तंगी । संकोच । (४) तंग राना । सँकती गली ।

**सन्निविष्ट-वि०** [ सं० ] (१) एक साथ बैठना हुआ । जमा हुआ । (२) रखा हुआ । धरा हुआ । (३) स्थापित । प्रतिष्ठित । (४) लगा हुआ । जड़ा हुआ । (५) अँटा हुआ । आया हुआ । समाया हुआ । (६) पास का । समीप का । लगा हुआ ।

**सन्निवेश-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) एक साथ बैठना । (२) जमाना । स्थित होना । बैठना । (३) रखना । धरना । ठहराना । (४) लगाना । जड़ना । बैठाना । (५) अँटना । भीतर आना । समाना । (६) स्थिति । आधार । रखने की जगह । (७) आसन । बैठकी । (८) रहने की जगह । निवास । घर । (९) घर या आम के लोगों के एकत्र होने का स्थान । अथाह । चौपाल । (१०) एकत्र होना । जुटना । (११)

समुह । समाज । (१२) दोनर । व्यवस्था । (१३) रचना । (१४) गढ़न । गठन । वनावट । आरूति । (१५) स्तंभ, मूर्ति आदि की स्थापना ।

**सन्निवेशन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] [ वि० सन्निवेशित, सन्निवेशी, सन्निवेश्य, सन्निवेशि ] (१) एक साथ बैठना । (२) बैठना । जमना । (३) रचना । धरना । (४) बैठाना । लगाना । जड़ना । (५) टिकना ठहराना । अड़ना । (६) स्थापित करना । प्रतिष्ठित करना । खड़ा करना । जैसे,—प्रतिमा या स्तंभ का सन्निवेशन । (७) विधान । व्यवस्था ।

**सन्निवेशित-वि०** [ सं० ] (१) धियाया हुआ । जमाया हुआ । (२) ठहराया हुआ । रखा हुआ । (३) स्थापित । प्रतिष्ठित । (४) अँटया हुआ । भीतर डाला हुआ ।

**सन्निहित-वि०** [ सं० ] (१) एक साथ या पास रखा हुआ । (२) समीपस्थ । निकटस्थ । (३) रखा हुआ । धरा हुआ । (४) ठहराया हुआ । टिकाया हुआ । अड़या हुआ । (५) जो कुछ करने पर हो । उद्यत । तैयार ।

**सन्निवेदन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) पशु आदि को चलाना । हँकना । (२) प्रेरित करना । उभारना । उसकना ।

**सन्मान-संज्ञा** पुं० दे० "सम्मान" ।

**सन्मानना-क्रि०** रा० दे० "सन्मानना" ।

**सन्मुख-प्रत्य०** दे० "सन्मुख" ।

**सन्वयसन-संज्ञा** पुं० [ सं० संवयन ] [ वि० संवयन ] (१) फँकना । छोड़ना । अलग करना । डटाना । दूर करना । (२) सांसारिक विषयों का त्याग । दुनिया का अँजाल छोड़ना । (३) रचना । धरना । (४) बैठाना । जमाना । स्थापित करना । (५) खड़ा करना ।

**सन्वयस्त-वि०** [ सं० संवय ] (१) फँका हुआ । छोड़ा हुआ । हटया हुआ । अलग किया हुआ । (२) रखा हुआ । धरा हुआ । (३) बैठाया हुआ । जमाया हुआ । (४) खड़ा किया हुआ ।

**सन्वयस-संज्ञा** पुं० [ सं० संवय ] (१) छोड़ना । दूर करना । त्याग । (२) सांसारिक प्रपञ्चों के त्याग की वृत्ति । दुनिया के जँजाल से अलग होने की अवस्था । वैराग्य । (३) चतुर्थ आश्रम । यति धर्म ।

**विशेष**—यह प्राचीन भारतीय आर्यों या हिंदुओं के जीवन की चार अवस्थाओं में से अंतिम है जो पुत्र आदि के स्वप्नाने हो जाने पर प्रवृत्त की जाती थी । इसमें मनुष्य गृहस्थ छोड़कर जंगल या पृकान्त स्थान में प्रवृत्तचित्त या परलोक-साधन में प्रवृत्त रहते थे और निश्चा द्वारा निर्वाह करते थे । इसमें किसी धारण से दीक्षा लेकर सिर मुँहाने और दंड प्रवृत्त करते थे । सन्वयस्त दो प्रकार का कहा गया है—एक सक्रम अर्थात् जो प्रवृत्तचर्य, गार्हस्थ्य और धानमस्थ आधमके उपरान्त प्रवृत्त किया जाय; दूसरा अक्रम जो बीच में ही वैराग्य उत्पन्न होने

पर धारण क्रिय जाय । बहुत दिनों तक 'सन्वयस' कल्पित माना जाता था; पर संकटाचार्य ने बौद्ध सिद्धांतों और जैन यतियों को अपने अपने धर्म का प्रचार बढ़ाते देख कलकाल में फिर सन्वयस चलाया और गिरि, उरु, भारती आदि दस प्रकार के सन्वयसियों की प्रतिष्ठा की जो दशनामी कहे जाते हैं ।

**क्रि० प्र०**—प्रवृत्त करना ।—लेना ।

(४) सहसा शरीर त्याग । एक वारगी मरण । (५) एक दम धक जाना । चरम दीधित्य । (६) चरोहर । घाती । (७) यात्रा । इकरार । (८) यात्रा । होद । (९) जटामासी ।

**सन्वयसी-संज्ञा** पुं० [ सं० संवयसिन् ] [ स्त्री० संवयसिनी, संवयसिनी ]

(१) वह पुरुष जिसने सन्वयस धारण किया हो । चतुर्थ आश्रमी । (२) वितामी । त्यागी । यति ।

**सपत्नी-संज्ञा** स्त्री० [ हि० सपत्नी ] (१) एक प्रकार का लंबा कीड़ा जो मनुष्यों और पशुओं की आँतों में उत्पन्न होता है । पेट का केशुवा । (२) बेल्ला नामक फूल ।

**सपद्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] अनुवृत्त पक्ष । मुयाफिक राय ।

**वि०** (१) जो अपने पक्ष में हो । तरफदार । (२) समर्थक । पोषक ।

**संज्ञा** पुं० (१) तरफदार । मित्र । सहायक । (२) न्याय में वह बात या दृष्टान जिसमें साध्य अवश्य हो । जैसे,—जहाँ धर्म होता है, वहाँ भाग रहनी है । जैसे,—रसोद्वेष्ट का दृष्टान्त सपक्ष है ।

**सपत्नी-वि०** दे० "सपत्न" ।

**सपटा-संज्ञा** पुं० [ देश० ] (१) सकेद शबनार । (२) एक प्रकार का दाट ।

**सपट्टी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] द्वार के चौखट की दोनों खड़ी लकड़ियाँ । बाजू ।

**सपट्टनी-क्रि०** प्र० दे० "सपरना" ।

**सपट्टाना-क्रि०** सं० दे० "सपराना" ।

**सपट्ट-संज्ञा** पुं० [ सं० ] धैरी । शत्रु । विरोधी ।

**सपत्तजित्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) शत्रु को जीतनेकला । (२) सुदृष्टा के गर्भ से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

**सपत्ताना-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] धैरी । शत्रुता ।

**सपत्तारि-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार का दोस थोस जिसके हंडे या छदियाँ बनती हैं ।

**सपत्नी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] एक ही पति की दूसरी स्त्री । जो अपने की पति की दूसरी स्त्री हो । सौत । सौतिन ।

**सपत्नीक-वि०** [ सं० ] स्त्री के सहित । जोरु के साथ । जैसे,—आप सपत्नीक तीर्थ करने जायेंगे ।

**सपथ-संज्ञा** पुं० दे० "क्षपथ" ।

**सपदि-प्रत्य०** [ सं० ] उसी समय । तुरंत । तभी । अद्व ।

सपन—संज्ञा पुं० दे० "सपना" ।

सपना—संज्ञा पुं० [ सं० सप्त ] (१) वह दृश्य जो निद्रा की दशा में दिखाई पड़े। नींद में अनुभव होनेवाली घात। (२) निद्रा की दशा में दृश्य देखना।

मुहा०—सपना होना = देखने के भी न मिलना। दुर्लभ हो जाना।

सपरदाई—संज्ञा पुं० [ सं० संप्रदायी ] गानेवाली तबलाफ़र के साथ (तबला, सारंगी आदि) बजानेवाला। भँडूवा। समाजी। साजिन्द्रा।

सपरना—क्रि० प्र० [ सं० संपादन, प्रा० संपादन ] (१) किसी काम का पूरा होना। समाप्त होना। निवटना। (२) काम का किया जा सकता। हो सकता। जैसे,—यह काम हमसे नहीं सपरेगा।

मुहा०—सपर जाना = मर जाना।

(२) तैयारी करना। तैयार होना।

सपराना—क्रि० प्र० [ हि० सपराना ] (१) काम पूरा करना। निवटना। खतम करना। (२) पूरा कर सकता। कर सकता।

सपरिकर—वि० [ सं० ] अनुचर वर्ग के साथ। शठ वाट के साथ।

सपरिच्छुद्ध—वि० [ सं० ] तैयारी के साथ। टाट वाट के साथ। शुद्ध के साथ।

सपर्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पूजा। आराधना। उपासना।

सपाट—वि० [ सं० स+पट्, हि० पाट = पीडा ] (१) बराबर। हम-घार। समतल। (२) जिसकी सतह पर कोई उभरी या जमी हुई वस्तु न हो। चिकना।

सपाटा—संज्ञा पुं० [ सं० संपण = सरकना ] (१) चलने, दौड़ने या उड़ने का वेग। शौक। तेजी। जैसे,—सपाटे के साथ दौड़ना। (२) तीव्र गति। दौड़। सपट। क्षपट।

क्रि० प्र०—भरना।—मारना।—लगाना।

यौ०—सैर सपाटा = घूमना फिरना।

सपाद्—वि० [ सं० ] (१) शरण सहित। (२) चतुर्धातु और अधिक के साथ। जिसमें एक का चौथाई और मिला हो। जैसे, सवा दो, सवा तीन, सवा चार।

यौ०—सपाद् दृक्ष = सवा लाख। एक लाख पचीस हजार।

सपिंड—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ही कुल का पुरुष जो एक ही पितरों को पिंडदान करता हो। एक ही खानदान का।

विशेष—छः पीढ़ी ऊपर और छः पीढ़ी नीचे तक के लोग सपिंड की गणना में आते हैं। इनके अतिरिक्त माता, नाना और पड़नाना आदि, कन्या, कन्या का पुत्र और पौत्र आदि तथा पिता माता के भाई बहिन आदि बहुत से आते हैं।

सपिंडी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शूद्रक के निमित्त यह कर्म जिसमें वह और पितरों या परिवार के शूद्र प्राणियों के साथ पिंडदान द्वारा मिलाया जाता है।

सपीतक—संज्ञा पुं० [ सं० ] धीया तुरई। नेलुवा।

सपीतिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लंबी धीया या कट्टू।

सपुलक—वि० [ सं० ] पुलक या हर्ष के साथ।

सपूत—संज्ञा पुं० [ सं० सपुत्र, प्रा० सपुत्र, सपत्त ] वह पुत्र जो अपने कर्तव्य का पालन करे। अच्छा पुत्र। उ०—सूर सुजात सपूत सुलच्छन गनियत गुन गदभाई—सुलसी।

सपूती—संज्ञा स्त्री० [ हि० सपूत + ई० (प्रत्य०) ] (१) सपूत होने का भाव। छायाकी। (२) योग्य पुत्र उत्पन्न करनेवाली माता।

सपेत, सपेद—संज्ञा-वि० [ प्रा० सपेद, मि० सं० श्वेत ] सफेद।

सपेती—संज्ञा स्त्री० दे० "सपेदी"।

सपेरा—संज्ञा पुं० दे० "सैपेरा"।

सपेला—संज्ञा पुं० [ हि० सपि + ऐला (प्रत्य०) ] साँप का छोटा बच्चा।

सपोला—संज्ञा पुं० [ हि० सॉप + ओला (प्रत्य०) ] साँप का छोटा बच्चा।

सप्त—वि० [ सं० ] गिनती में सात।

सप्तऋषि—संज्ञा पुं० दे० "सप्तर्षि"।

सप्तक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सात वस्तुओं का समूह। (२) संगीत में सात स्वरों का समूह।

सप्तकी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कियों का कमरबंद।

सप्तकृत—संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वेदेका में से एक।

सप्तगुण—वि० [ सं० ] सात बार और। सतगुण।

सप्तग्री—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक ही रात्रि में सात ग्रहों का एकत्र होना।

सप्तचत्वारिंश—वि० [ सं० ] सैंतालीसवाँ।

सप्तचत्वारिंशत्—वि० [ सं० ] सैंतालीस।

सप्तच्छुद्ध—संज्ञा पुं० [ सं० ] सप्तपर्ण वृक्ष। छत्रिवन।

सप्तजिह्व—संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि, जिसकी सात जिह्वाएँ मानी गई हैं।

सप्तति—वि० [ सं० ] सत्तर।

सप्ततितम—वि० [ सं० ] सत्तरवाँ।

सप्तत्रिंश—वि० [ सं० ] सैंतीसवाँ।

सप्तत्रिंशत्—वि० [ सं० ] सैंतीस।

सप्तदश—वि० [ सं० ] सत्तरहवाँ।

वि० [ सं० सप्तदशम् ] सत्तरह।

सप्तदशम—वि० [ सं० ] सत्तरहवाँ।

सप्तद्वीप—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार पृथ्वी के सात बड़े और मुख्य विभाग।

विशेष—सात द्वीप ये हैं—जम्बू द्वीप, कुशा द्वीप, उश द्वीप, शाकल द्वीप, क्रौंच द्वीप, शाक द्वीप और पुष्कर द्वीप।

सप्तधातु—संज्ञा पुं० [ सं० ] आयुर्वेद के अनुसार शरीर के सात

संयोजक द्रव्य अर्थात् रक्त, पित्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि और शुक्र ।  
 वि० सात धातुओं से बना हुआ । जैसे,—शरीर ।  
 संज्ञा पुं० चंद्रमा के घोड़ों में से एक ।  
 सप्तधास्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] जौ, धान, उरद आदि सात अन्नों का मेल जो पूजा में काम आता है ।  
 सप्तनाडिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिंघाड़ा ।  
 सप्तनाडी चक्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] फलिष्ठ ज्योतिष में सात देवी देवताओं का एक चक्र जिसमें सप्त नक्षत्रों के नाम भरे रहते हैं और जिसके द्वारा वर्षों का आगम बताया जाता है ।  
 सप्तनामा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आदित्यमन्त्र । हुलहुल नाम का षोडश ।  
 सप्तपंचाशत्—वि० [ सं० ] सत्सत्वनवर्ष ।  
 सप्तपंचाशत्—वि० [ सं० ] सप्तपंचन ।  
 सप्तपत्र—वि० [ सं० ] (१) जिसमें सात पत्रे या दल हों । (२) जिसके वाहन सात घोड़े हों ।  
 संज्ञा पुं० (१) मोतिया । मोगरा बेल । (२) सप्तपर्ण वृक्ष । छतिवन । (३) सूर्य ।  
 सप्तपदी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विवाह की एक रीति जिसमें घर और वधू अग्नि के चारों ओर सात परिक्रमाएँ करते हैं और जिससे विवाह पक्का हो जाता है । भँवर । भँवरी । (२) किसी घात को अग्नि की सहायि देखकर पकड़ करना ।  
 सप्तपदी पूजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विवाह के अवसर पर होनेवाला एक पूजन ।  
 विशेष—इसमें एक लोहा वर और वधू के आगे रखकर वर को उसे पूजने को कहा जाता है, पर वह उसे पैसे से हटा देता है ।  
 सप्तपराक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का तप ।  
 सप्तपर्ण—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छतिवन का पेड़ । (२) एक प्रकार की मिटाई ।  
 सप्तपर्णी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लज्जालु । लज्जावंती लता ।  
 सप्तपलाश—संज्ञा पुं० दे० "सप्तपर्ण" ।  
 सप्तपाताल—संज्ञा पुं० [ सं० ] पृथ्वी के नीचे के सात लोक जिनके नाम ये हैं—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल ।  
 सप्तपुरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तराई की तरह की सप्ततुलिया नाम की तरकारी ।  
 सप्तपुरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सात पवित्र नगर या तीर्थ जो मोक्षदायक कहे गए हैं ।  
 विशेष—अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अर्बतिका (उज्जयिनी) और द्वारका ये सात पवित्र पुरियाँ हैं ।

सप्तप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राज्य के साथ अंग जो ये हैं—राजा, मंत्री, सामंत, देव, कोश, गद्द और सेना ।  
 सप्तयाह—संज्ञा पुं० [ सं० ] चाहीक देश । बल्ल ।  
 सप्तमंगी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैन न्याय या तर्क के सात अवयव जिन पर स्वाहाद की प्रतिष्ठा है ।  
 विशेष—ये सातों अवयव या सूत्र स्वात् शब्द से आरंभ होते हैं । यथा—स्वादन्ति, स्वाप्सन्ति, स्वादस्तिवनास्ति, स्वाद-वक्तव्य, स्वादस्तिचावक्तव्य, स्वादस्तिचावक्तव्य, स्वादस्ति-चनास्तिचावक्तव्य ।  
 सप्तमद्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिरिस । सिरोंप वृक्ष । (२) बेवारी । नयमक्षिक । (३) गुंजा । चिरमदी ।  
 सप्तभुवन—संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊपर के सात लोक । दे० "लोक" ।  
 सप्तभूम—संज्ञा पुं० [ सं० ] मकान के सात खंड या भरातिय ।  
 वि० सात खंडों का । सप्तमंजिला ।  
 सप्तम—वि० [ सं० ] [ जो० सप्तमी ] सातवों ।  
 सप्तमातृका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सात माताएँ या शक्तियों जिनका पूजन विवाह आदि शुभ अवसरों के पहले होता है ।  
 विशेष—इनके नाम ये हैं—ब्राह्मी या ब्राह्मणी, मातृभरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, पृथ्वी या इंद्रांगी और चामुंडा ।  
 सप्तमी—वि० स्त्री० [ सं० ] सातवीं ।  
 संज्ञा स्त्री० (१) किसी पक्ष की सातवीं तिथि । किसी पक्ष का सातवाँ दिन । (२) अधिकरण कारक की त्रिभक्ति का नाम । (व्याकरण)  
 समुष्टिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्वर की एक औषधि जो कई द्रव्यों के योग से बनती है ।  
 सप्तसृष्टिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शक्ति पूजन में काम आनेवाली सात स्थानों की सिद्धी ।  
 विशेष—राजद्वार की, गजपाला की तथा इसी प्रकार और स्थानों की मूर्ती मँगाई जाती है ।  
 सप्तसक—संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर के सात अवयव जिनका रंग लाल होता है । यथा—हृदय, तंत्रा, जीम, अस्ति या पलक का निचबध भाग, ताद और जोड़ ।  
 सप्तसर्प—संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड़ के एक पुत्र का नाम ।  
 सप्तसर्षिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] गणित की एक क्रिया जिसमें सात शक्तियाँ होती हैं ।  
 सप्तसर्षि—संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि का एक नाम ।  
 सप्तर्षि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सात ऋषियों का समूह या मंडल ।  
 विशेष—शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सात ऋषियों के नाम ये हैं—गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, यमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि । महाभारत के अनुसार—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, ऋष्य, पुलस्त्य और वसिष्ठ ।

(२) उत्तर दिशा में स्थित सात तारों का समूह जो ध्रुव के चारों ओर फिरता दिखाई पड़ता है।

सप्तपिंड—संज्ञा पुं० [ सं० ] छहस्फटि।

सप्तपला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सानल। (२) नयमल्लिका। चमेली।

(३) रीठा। (४) गुंजा। घुँघची। चिरमटी।

सप्तप्रादी—संज्ञा पुं० [ सं० सप्तवारि ] सप्तमंगी न्याय का अनुयायी।  
जैन।

सप्तपिंश-वि० [ सं० ] सचाईसर्षो।

सप्तपिंशति-वि० [ सं० ] सत्ताइस।

संज्ञा स्त्री० सत्ताइस की संख्या या अंक।

सप्तपशतिम-वि० [ सं० ] सत्ताइसर्षो।

सप्तशत-वि० [ सं० ] सात सौ।

सप्तशती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सात सौ का समूह। (२) सात सौ पयों का समूह। सतसई। जैसे,—दुर्गासप्तशती, आर्या सप्तशती।

संज्ञा पुं० बंगाल में प्रायगों की एक जाति।

सप्तशिष्य—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नागवह्नी।

सप्तशीर्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम।

सप्तपथ—वि० [ सं० ] सप्तसठर्षो।

सप्तपट्टि-वि० [ सं० ] सप्तसठ।

सप्तसप्तत-वि० [ सं० ] सप्तहत्तरर्षो।

सप्तसप्तति-वि० [ सं० ] सप्तहत्तर।

सप्तसप्तति-वि० [ सं० ] जिसके रथ में सात घोड़े हों।

संज्ञा पुं० सूर्य।

सप्तसागर दान—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दान जिसमें सात पारों में सागर, वृष, मधु, दही आदि रखकर ब्राह्मण को देते हैं।

सप्तसिरा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तांबूल। पान।

सप्तस्पर्द्धा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम। (रामायण)

सप्त स्वर—संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत के सात स्वर—स, क, ग, म, प, ध, नि।

सप्तान्द्रु—संज्ञा पुं० [ सं० ] दानि प्रह।

सप्तान्द्रि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि। (२) दानि। (३) चित्रक वृक्ष। धीता।

सप्तानु—संज्ञा पुं० [ सं० ] सत्ताइस। शकताइस।

सप्ताशीति-वि० [ सं० ] सत्तासी।

सप्ताथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य (जिसके रथ में सात घोड़े हैं)।

सप्ताह—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सात दिनों का काल। इप्ता। (२)

कोई षष्ठ या उप्य कर्म जो सात दिनों में समाप्त हो। (३) भगवत की कथा जो सात ही दिनों में सब पढ़ी या सुनी जाय। (इसका बहुत शुभ कल माना जाता है)।

क्रि० प्र०—बोचना।—सुनना।

सप्तम—संज्ञा पुं० [ दे० ] षष्ठम का पद।

सप्तमाण—वि० [ सं० ] (१) प्रमाण सहित। समूह के साथ। (२) प्रामाणिक। ठीक।

सप्त—संज्ञा पुं० दे० “शफ”।

सप्त—संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) पंक्ति। कृतार।

क्रि० प्र०—बोचना।

(२) लंबी चटाई। सीतल पाटी। (३) विद्यमान। कर्त।  
विस्तर।

सप्तगोल—संज्ञा पुं० दे० “इसवगोल”।

सप्तगोल—संज्ञा पुं० [ सं० ] सप्तगुल, का० शफताइस। एक पद जिसके गोल फल खाए जाते हैं। सत्ताइस। आइस।

विशेष—यह हिंदुस्तान में ठंडी जगहों में होता है। पद मसोले आकार का और लकड़ी लाल मजबूत और सुगंधित होती है। पत्ते लंबे नोकदार तथा काष्ठपत्र छिपे गहरे हरे रंग के होते हैं। पतझड़ के पीछे पत्तियाँ निकलने के पहले ही इसमें फूल लग जाते हैं जो मुख्यतः रंग के होते हैं। फल पकने पर कुछ लाल और कुछ हरे होते हैं और उनके ऊपर महीन महीन रोह्यूसी होती हैं। बीजों में बादाम की तरह का कड़ा छिलका होता है।

सफुर—संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) मर्यान। यात्रा। रास्ते में चलना।

(२) रास्ते में चलने का समय या दूना। जैसे,—सफुर में बहुत सामान नहीं रखना चाहिए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सफुरदाई—संज्ञा पुं० दे० “सफुरदाई”।

सफुर मैना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कैर मानर। सेना के वे सिपाही जो सुरंग खाने तथा खाई आदि खोदने की आगे चलते हैं।

सफुरी—संज्ञा पुं० [ प्र० ] पिच।

सफुरी—वि० [ प्र० ] सफुर में का। सफुर में काम आनेवाला।

यात्रा के समय का। जैसे,—सफुरी विस्तर।

संज्ञा पुं० (१) राह खर्च। रास्ते का सामान। (२) अमूल्य। उ०—धीफल मधुर चित्रीजी आनि। सफुरी चिल्ला अरु नय यानी।—सूर।

सफुरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शफरी। एक प्रकार की मछली। सीते मछली।

सफुरील—संज्ञा पुं० [ ? ] कपूर के छाल तेल से तैयार होनेवाली एक दवा या मसाला।

सफल—वि० [ सं० ] (१) जिसमें फल लगा हो। फल से युक्त।

(२) जिसका कुछ परिणाम हो। जो व्यर्थ न जाय। सार्थक। जैसे,—मुहता परिश्रम सफल हो गया। (३) पूरा होना।

जैसे,—मनोरथ सफल होना। (४) कृतकार्य। कामयाब। जिसका प्रयोजन सिद्ध हुआ हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) अंडकोश युक्त। जो प्रपिया न हो।

सफलक—वि० [ सं० ] जिसके पास ढाल हो।

सफलता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सफल होने का भाव । काम-याबी । सिद्धि । (२) पूर्णता ।

सफला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीप मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी जो विशेष रूप से यत्न का दिन है ।

सफलीकरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सफल करना । (२) सिद्ध करना । पूर्ण करना ।

सफलीभूत—वि० [ सं० ] जो सफल हुआ हो । जो सिद्ध या पूरा हुआ हो ।

सफहा—संज्ञा पुं० [ भ० ] (१) रत्न । तल । (२) वरक । पृष्ठ । पन्ना ।

सफा—वि० [ भ० ] (१) साफ़ । स्वच्छ । निर्मल । (२) पाक । पवित्र । उ०—कोई सफा न देखा दिल का ।—काश्गिह्ना । (३) जो खुदबख्त न हो । चिकना । बराबर ।

सफाई—संज्ञा स्त्री० [ भ० सफा + ई (अय०) ] (१) साफ होने का भाव । स्वच्छता । निर्मलता । (२) मेल, कूड़ा बरकट आदि हटाने की क्रिया । जैसे,—भूकान की सफाई । (३) अर्थ या अभिप्राय प्रकट होने का गुण । (४) स्पष्टता । चित्त से दुर्भाव आदि का निकलना । मन में मेल न रहना । जैसे,—सामने बात धीत कर ले; दिलों की सफाई हो जाय । (५) कपट या कुटिलता का अभाव । दुराव का न होना । जैसे,—भात्र उन्होंने बड़ी सफाई से बात की । (६) दोषारोप का हटाना । हलजाम का दूर होना । निर्दोषिता । जैसे,—उसने अपनी सफाई के लिये बहुत कुछ कहा ।

सुहा—सफाई देना = निर्दोषिता प्रमाणित करना । कसूरवार न होने का मन्त्र देना ।

(७) ऋण का परिशोधन । कर्ज़ या हिसाब का चुकता होना । बंधाई । (८) मामले का निबटारा । निर्णय ।

सफाचट—वि० [ हि० सफा ] (१) एक दम स्वच्छ । चिलकुल साफ । (२) जिस पर कुछ जाना या ख्याति न रह गयी हो । जो विच्छिन्न चिकना हो । जैसे,—मैदान सफाचट होना । खोपड़ी सफाचट होना । (३) जो जमा या ख्याति न रहने दिया जाय । जो निकाल, उखाड़ या नूर कर दिया जाय । जैसे,—वाल सफाचट होना ।

सफतीना—संज्ञा पुं० [ भ० सफतीन, अं० स्वपेना ] (१) बही । किताब । मोट पुक । (२) अदायती परवाना । इच्छलनामा । समन ।

सफरी—संज्ञा स्त्री० [ ? ] (१) चिदियों की आवाज़ । (२) वह स्त्री जो पक्षियों को छलाने के लिये दी जाती है ।

सफा पुं० [ भ० सफरी ] पलकी । राजदूत ।

सफली—संज्ञा स्त्री० [ भ० फली ] पक्षी चहार धीपारी । शहरपनाह । परमेदा ।

सफुफ—संज्ञा पुं० [ भ० ] प्लूरी । फुफ्फू । फंकी ।

सफेद—वि० [ फ० सफेद, सं० श्वेत ] (१) जो चूने के रंग का हो । जिस पर कोई रंग न हो । धौला । श्वेत । चिट्ठा । जैसे,—सफेद घोड़ा । (२) जिस पर कुछ लिखा या चिह्न न हो । कोरा । सादा । जैसे,—सफेद कागज ।

सुहा—किसी का रंग सफेद पड़ जाना = विवर्णना होना । मन आदि से बेहरे का रंग फीका पड़ जाना । स्याह सफेद = भला बुरा । इत अनिष्ट । जैसे,—स्याह सफेद सब उसी के हाथ है ।

सफेद घाघी—संज्ञा स्त्री० [ हि० सफेद + घघ ] एक प्रकार का बड़ा पेड़ । चकड़ी ।

विशेष—यह धूम्र हिमालय पर पाया जाता है । इसकी लकड़ी की कंधियाँ बनाई जाती हैं । इसके फूलों में सुगंध होती है । इसके पत्ते खाद के काम में आते हैं ।

सफेद पलका—संज्ञा पुं० [ फ० सफेद + हि० पलका ] वह ब्यूतर जिसके पर कुछ सफेद और कुछ काले हों ।

सफेदपोश—संज्ञा पुं० [ फ० ] (१) साफ़ कपड़े पहननेवाला । (२) शिक्षित और कुलीन । भलामानस । शिष्ट ।

सफेदा—संज्ञा पुं० [ प्रा० सुफेद ] (१) जस्ते का चूर्ण या भस्म जो दवा तथा छोटे लकड़ी आदि पर रंगाई के काम में आता है । (२) सफेद चमड़ा जो चूने आदि बनाने के काम में आता है । (३) आत्म का एक भेद जो लक्षणज के आसपास होता है । (४) दरबूजे का एक भेद । (५) पंजाब और काश्मीर में होनेवाला एक बहुत ऊँचा और चंभे की तरह सीपानेवाला पेड़ जिसकी छाल का रंग सफेद होता है । इसकी लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है ।

सफेदार—संज्ञा पुं० [ देश० ] ससिम का पेड़ ।

सफेदी—संज्ञा स्त्री० [ फ० सफेदी ] (१) सफेद होने का भाव । श्वेतता । धवलता ।

सुहा—सफेदी आना = बाल सफेद होना । उड़ाया जाना ।

(२) दीवार आदि पर सफेद रंग या चूने की पोताई । पृनाकारी ।

कि० प्र०—करना ।—फेरना ।

(३) सूर्य निकलने के पहले का उज्वल प्रकाश जो पूर्ण दिशा में दिखाई पड़ता है ।

सफ्फाल—संज्ञा पुं० दे० "सफनाल" ।

सय—वि० [ सं० सय, प्रा० सम ] (१) नितने हों, ये तुल्य । समस्त । जैसे,—(क) इतना सुनते ही सय श्लोक वहाँ से चले गए । (ख) सय छितावें अठमारी में रख दो ।

सुहा—सय निलाकर = मिटना हो, जाना । सत । कुल ।

(२) पूरा । सारा । समस्त ।

वि० [ भ० ] छोटा । गीन । अप्रधान ।

विशेष—दस अर्थ में दस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों



के आरंभ में होता है। जैसे,—सब इंस्पेक्टर, सब ओवर-सियर, सब आफिसर।

सप्तक-संज्ञा पुं० [ फ० ] (१) वतना लंबा जितना एक बार में पढ़ाया जाय। पाठ।

क्रि० प्र०—देना।—पढ़ना।—पढ़ाना।—लेना।

(२) शिक्षा। नर्सहित।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लाना।

सयकृत-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] किसी विषय में औरों की अपेक्षा आगे बढ़ जाना। विद्विपता प्राप्त करना।

क्रि० प्र०—घरना।—ले जाना।

सयज-वि० दे० “सत्त्वा”।

सयय-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) कारण। घनह। हेतु। जैसे,—उनके नाराज होने का मुझे दो कोई सयय नहीं मालूम। (२) द्वार। साधन। जैसे,—दिना किसी सयय के वहाँ तक पहुँचना कठिन है।

सवर-संज्ञा पुं० दे० “सत्र”।

सयल-वि० [ सं० ] (१) जिसमें बहुत बल हो। बलवायु। बलशाली। ताकतवर। जैसे—जो सयल होगा, वह निर्बलों पर शासन करेगा। (२) जिसके साथ सेना हो। फौजवाला।

सवा-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] वह हवा जो प्रभात और प्रातश्काल के समय पूर्व की ओर से चलती है।

सवील-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) रास्ता। मार्ग। सड़क। (२) उपाय। तरकीब। यह। जैसे,—वहाँ पहुँचने की कोई सवील निकालनी चाहिए। (३) यह स्थान जहाँ पर पथिकों आदि को धर्मार्थ जल या दारुयत पिछाया जाता है।

क्रि० प्र०—पिलाना।—रखना।—लगाना।

सवृ-संज्ञा पुं० [ अ० ] मिट्टी का पड़ा। भटका। गगरी।

सवुरा-संज्ञा पुं० [ अ० ] काठ या चमड़े आदि का बना हुआ एक प्रकार का लंबा खंड जिससे विधवा या पतिहीना स्त्रियाँ अपनी काम-यासगा नृस करती हैं। (सुसल० वि०)

सवृज-वि० [ अ० ] (१) कथा और ताज (कल-कूल आदि)।

मुहृा०—सञ्ज याग दिखलाना = अपना काम निकालने या फँसाने के लिये दंडी वगे आचार्य दिखाना।

(२) हरा। हरित। (रंग) (३) प्राय।

सञ्ज-व्यत = भाग्यशास्त्र में सात घोड़े हैं।)

सात दिनों का काल। हफ्ता। (२)

कोई यज्ञ या पुण्य कर्म जो सात दिनों में समाप्त हो। (३)

भागवत की कथा जो सात ही दिनों में सब पढ़ी या सुनी जाय। (इसका बहुत शुभ फल माना जाता है।)

क्रि० प्र०—घोचना।—सुनना।

सव्य-संज्ञा पुं० [ देश० ] पक्षम का पेंड़।

(२) भंग। भाँग। बिलया। (३) पत्ता नामक स्त्रियों का कान में पहनने का एक प्रकार का गंधोड़े का एक रंग जिसमें सफेदी के साथ कुछ मिला होता है। (४) वह घोड़ा जो इस रंग का

सञ्जी-संज्ञा स्त्री० [ फ० ] (१) हरी घास और बनस हरियाली। (२) हरी तरकारी। (३) भंग। भाँग।

सञ्ज-संज्ञा पुं० [ अ० ] संतोष। धैर्य।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—रखना।

मुहृा०—किसी का सब पढ़ना = किसी के धैर्यपूर्ण रूप कठ का प्रतिफल होना। जैसे,—तुमने उस मकान ले लिया; तुम पर उसका सब पढ़ा तुम्हारा लड़का मर गया। सब कर बैठना या हानि या प्रतिक्रिया होने पर चुप चाप सब सह लेना। सब किसी का साथ लेना। पैसा कम कलना जिसमें किसी

सञ्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] सञ्ज-संज्ञा पुं० परस्पर जिन्होंने एक साथ ही एक एक के यहाँ रह कर की हो।

समभूत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह स्त्री जिसका पति सभवा।

समा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह स्थान जहाँ बहुत कर बैठे हों। परिषद्। गोष्ठी। समिति। मजलिस विद्वानों की सभा में बैठ कर। (२) यह स्था एक विषय पर विचार करने के लिये बहुत हों। (३) वह संस्था या समूह जो किसी वि करने अथवा कोई कार्य सिद्ध करने के लिये हो। (४) सामाजिक। सामान्य। घर। मकान। (५) रास्ते का सामान। (६) अलकाल की पुस्तक। (७) अति। सफरी। वि

समाकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अति। सफरी। वि

समभा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अति। सफरी। वि

सफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अति। सफरी। वि

सफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अति। सफरी। वि



संज्ञा पुं० [ प्र० ] विप । जहर । उ०—सम खार्यंगे पर तेरी कसम हम न खार्यंगे ।

समकक्ष-वि० [ सं० ] बराबरी का । समान । तुल्य । जैसे,—दर्शन-शास्त्र में वे तुम्हारे समकक्ष हैं ।

समकन्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह कन्या जो विवाह के योग्य हो गई हो । ब्याहने लायक लड़की ।

समकर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव का एक नाम । (२) गौतम बुद्ध का एक नाम । (३) क्यामिति में किसी चतुर्भुज के आगने सामनेवाले कोणों के ऊपर की रेखाएँ ।

समकालीन-वि० [ सं० ] जो ( दो या कई ) एक ही समय में हों । एक ही समय में होनेवाले । जैसे,—तुलसीदासजी जहाँगीर के समकालीन थे ।

समकृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] कफ । श्लेष्मा ।

समकोण-वि० [ सं० ] ( त्रिभुज या चतुर्भुज ) जिसके आगने सामने के दो कोण समान हों ।

समकोल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्पि ।

समकोश-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम ।

समकाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह काथ या कादा जिसका पानी आदि जल बर आठवाँ भाग रह जाय ।

समक्ष-प्रत्य० [ सं० ] आँसों के सामने । सामने । जैसे,—अप्य वह कभी आपके समक्ष न आवेगा ।

समसंधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] नकली भूप ।

समसंधिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] उपासी । खस ।

समग्र-वि० [ सं० ] समस्त । कुल । पूरा । सय । जैसे,—उत्ते समग्र लघुकीयुदी कंठ है ।

समचतुर्भुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह चतुर्भुज जिसके चारो भुज समान हों ।

समचित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसके चित्त की अवस्था सय जगह समान रहती हो । वह जिसका चित्त कहीं दुखी या क्षुब्ध न होता हो । समचेता ।

समचेता-संज्ञा पुं० [ सं० ] मपचेतस् । वह जिसके चित्त की वृत्ति सय जगह समान रहती हो । समचित्त ।

समज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वन । जंगल । (२) पट्टी का छुंड ।

समज्ञा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कीर्ति । यश ।

समतट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समुद्र के किनारे पर का देश । (२) एक प्राचीन प्रदेश का नाम जो आधुनिक बंगाल के पूर्व में था ।

समतल-वि० [ सं० ] जिसका तल सम हो, ऊबड़ खाबड़ न हो । जिसकी सतह बराबर हो । हमचार । जैसे,—इस पहाड़ के ऊपर बहुत दूर तक समतल भूमि चली गई है ।

समता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सम या समान होने का भाव । बराबरी । तुल्यता । जैसे,—इस तरह के कामों में कोई आपकी समता नहीं कर सकता ।

समत्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] हरे, नागरमोया और गुड़ इन तीनों के समान भागों का समूह ।

समत्रिभुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह त्रिभुज जिसके तीनों भुज समान हों ।

समत्त्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] सम या समान होने का भाव । समता । तुल्यता । बराबरी ।

समवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] युद्ध । लड़ाई ।

समदर्शन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सय मनुष्यों, स्थानों और पदार्थों को समान दृष्टि से देखता हो । सब को एक सर्वाँ देखनेवाला । समदर्शी ।

समदर्शी-संज्ञा पुं० [ सं० ] समदर्शी । वह जो सय मनुष्यों, स्थानों और पदार्थों आदि को समान दृष्टि से देखता हो । जो देखने में किसी प्रकार का भेद-भाव न रखता हो । सय को एक सर्वाँ देखनेवाला ।

समदृश्य-संज्ञा पुं० दे० "समदर्शी" ।

समदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह दृष्टि जो सय अवस्थाओं में और सय पदार्थों को देखने के समय समान रहे । समदर्शी की दृष्टि ।

समद्वादशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह क्षेत्र आदि जिसके चारह समान भुज हों । चारह बराबर भुजावाला क्षेत्र ।

समद्वित्रिभुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह चतुर्भुज जिसका प्रत्येक भुज अपने सामनेवाले भुज के समान हो । वह चतुर्भुज जिसके आगने सामने के भुज बराबर हों ।

समधिक-वि० [ सं० ] अधिक । ज्यादा । बहुत ।

समन्तर-वि० [ सं० ] ठीक बराबरवाला । बिलकुल, सय हुआ । बराबरी का ।

समनगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चित्रली । विद्युत् । (२) सूर्य की किरण ।

समनीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] युद्ध । लड़ाई ।

समन्वय-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।

समन्वय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संयोग । मिलन । मिटाप । (२) विरोध का अभाव । विरोध का न होना । (३) कार्य्य कारण का प्रवाह या निर्याह ।

समन्वित-वि० [ सं० ] (१) मिला हुआ । संयुक्त । (२) जिसमें कोई रूकावट न हो ।

समपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धनुष चलानेवालों का एक प्रकार का खड़े होने का ढंग जिसमें वे अपने दोनों पैर बराबर रखते हैं । (२) काम शाब्द के अनुसार एक प्रकार का रति-बंध या आसन ।

समपाद—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दे० "समपाद"। (२) यह छंद या कविता जिसके चारो छरण समान या परापर हों।

समबुद्धि—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जिसकी बुद्धि सुख और दुःख, हानि और लाभ सब में समान रहती हो।

समभिहार—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बार बार होने का भाव। (२) अधिकता। ज्यादाती।

सममति—संज्ञा पुं० दे० "समबुद्धि"।

समयज्ञ—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो समय का ज्ञान रखता हो। समय के अनुसार चलनेवाला। (२) चिप्यु का एक नाम।

समयचचार—संज्ञा पुं० [ सं० ] धर्म।

समयाध्युषित—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह समय जब कि न स्वर्ग ही दिखाई देता हो और न नश्य ही दृष्टिगोचर होते हों। ठीक संव्या का समय।

समयानंद—संज्ञा पुं० [ सं० ] तांत्रिकों के एक वैभव का नाम जिनका पूजन काली-पूजा के समय होता है।

समर—संज्ञा पुं० [ सं० ] युद्ध। संग्राम। लड़ाई। उ०—सरयस खाह भोग करि नागा। समरभूमि भा दुर्लभ प्राणा।—तुलसी।

समरक्षिति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] युद्ध क्षेत्र। लड़ाई का मैदान।

समरज्जु—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भीज गणित में वह रेखा जिससे दूरी या गहराई जानी जाती है।

समरत—संज्ञा पुं० [ सं० ] काम शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रत्नबंध या आसन।

समरपोत—संज्ञा पुं० [ सं० ] लड़ाई का जहाज। सैनिक जहाज।

समरभूमि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] युद्धक्षेत्र। लड़ाई का मैदान। उ०—सरयस खाह भोग करि नागा। समरभूमि भा दुर्लभ प्राणा।—तुलसी।

समरघनुधा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लड़ाई का मैदान। युद्धक्षेत्र।

समरमूर्द्धा—संज्ञा पुं० [ सं० ] समरमूर्द्ध। लड़नेवाली सेना का अगला भाग।

समरशायी—संज्ञा पुं० [ सं० ] समरशायिन्। यह जो युद्ध में मारा गया हो। वीरगति को प्राप्त।

समरांगण—संज्ञा पुं० [ सं० ] लड़ाई का मैदान। युद्धक्षेत्र।

समरोद्देश—संज्ञा पुं० [ सं० ] लड़ाई का मैदान। युद्धक्षेत्र।

समर्थ—वि० [ सं० ] कम दाम का। सस्ता। महर्ष या मईगा का उलटा।

समर्थन—संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी तरह अर्थन वा पूजन करने का काम।

समर्थ—वि० [ सं० ] (१) जिसमें कोई काम करने की सामर्थ्य हो। कोई काम करने की योग्यता या ताकत रखनेवाले। उपयुक्त। योग्य। जैसे,—जाप सब कुछ करने में समर्थ है। (२)

हंथा चौड़ा। प्रवास्त। (३) जो अभिलपित हो। अभीष्ट। (४) युक्ति के अनुकूल। ठीक।

संज्ञा पुं० हित। भलाई।

समर्थक—वि० [ सं० ] जो समर्थन करता हो। समर्थन करनेवाला। संज्ञा पुं० चंद्रन की लफड़ी।

समर्थता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) समर्थ होने का भाव या धर्म। सामर्थ्य। शक्ति। ताकत।

समर्थन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह निश्चय करना कि अमुक बात उचित है या अनुचित। वाजिब और गैर-वाजिब का फैसला करना। (२) यह कहना कि अमुक बात ठीक है। किसी विषय में सहमत होना। किसी के मत का पोषण करना। जैसे,—मैं आपके इस कथन का समर्थन करता हूँ। (३) विवेचन। मीमांसा। (४) विषय। वर्जन। मनाही। (५) संभावना। (६) उदाह। (७) सामर्थ्य। शक्ति। ताकत। (८) विवाद की समाप्ति या अंत करना।

समर्थना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी ऐसे काम के लिये प्रयत्न करना जो असंभव हो। न होने योग्य काम के लिये प्रयत्न। (२) दे० "समर्थन"।

समर्थनीय—वि० [ सं० ] समर्थन करने के योग्य। जिसका समर्थन किया जा सके।

समर्थित—वि० [ सं० ] (१) जिसका समर्थन किया गया हो। समर्थन किया हुआ। (२) जिसकी विवेचना हो चुकी हो। जिस पर अच्छी तरह विचार हो चुका हो। (३) जो निर्मित हो चुका हो। स्थिर किया हुआ। (४) जो हो सकता हो। जो संभव हो। संभावित।

समर्थ्य—वि० [ सं० ] जिसका समर्थन किया जा सके। समर्थन करने के योग्य।

समर्थक—संज्ञा पुं० [ सं० ] घरदान देनेवाले, देवता आदि।

समर्पक—वि० [ सं० ] जो समर्पण करता हो। समर्पण करनेवाला।

समर्पण—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी को कोई चीज आदरपूर्वक भेंट करना। प्रतिष्ठापूर्वक देना। जैसे,—वे यह पुस्तक किसी राजा या रईस को समर्पण करना चाहते हैं। (२) दान। देना। जैसे,—आत्म-समर्पण करना। (३) स्थापित करना। स्थापना।

समर्पित—वि० [ सं० ] (१) जो समर्पण किया गया हो। समर्पण किया हुआ। (२) जिसकी स्थापना करी गई हो। स्थापित।

समर्थ्य—वि० [ सं० ] जो समर्पण किया जा सके। समर्पण करने के योग्य।

समर्पाद्—वि० [ सं० ] (१) निकट। पास। करीब। (२) जिसका चाल चलन अच्छा हो। अच्छे चरित्रवाला।

समल—संज्ञा पुं० [ सं० ] मल। चिटा। पुरीप। गू।

वि० मलीन। मैला। गंदा।

**समयकार-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का नाटक जिसकी कथा-वस्तु का आधार किसी प्रसिद्ध देवता या असुर, आदि के जीवन की कोई घटना होती है। यह वीर रस-प्रधान होता है और इसमें प्रायः देवताओं और असुरों के युद्ध का वर्णन होता है। इसमें तीन अंक होते हैं और विमर्ष संधि के अतिरिक्त दोष चारों संधियों रहती हैं। इसमें विदु या प्रवेदाक नहीं होता।

**समयतार-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) उतरने की जगह। उतार। (२) उतरने की क्रिया। अवतारण।

**समयती-संज्ञा पुं०** [ सं० समयतिन् ] यम का एक नाम। वि० (१) जो समान रूप से स्थित हो। (२) जो पास में स्थित हो।

**समयतांय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह चतुर्भुज जिसकी दोनों लंबी रेखाएँ समान हों।

**समयसरण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह ध्यान जहाँ किसी प्रकार का धार्मिक उपदेश होता हो।

**समयस्कन्द-संज्ञा पुं०** [ सं० ] किले का प्रकार।

**समवाय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) समूह। छुट्ट। (२) न्यायशास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के संबंधों में से एक प्रकार का संबंध। यह संबंध जो अवयवी के साथ अवयव का, गुणी के साथ गुण का अथवा जाति के साथ व्यक्ति का होता है। इस प्रकार का संबंध एक प्रकार का धर्म या गुण माना गया है। ऐसा संबंध नष्ट नहीं होता; इसी से इसकी नित्य संबंध भी कहते हैं। वि० दे० "संबंध"।

**समवायत्व-संज्ञा पुं०** [ सं० ] समवाय का भाव या धर्म। सम-वायता।

**समवायी-वि०** [ सं० समवायिन् ] जिसमें समवाय या नित्य संबंध हो।

**समवृत्त-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह छंद जिसके चारों चरण समान हों।

**समवेत्त-वि०** [ सं० ] (१) एक में मिला या इकट्ठा किया हुआ। एकत्र। (२) जमा किया हुआ। संघित। (३) किसी के साथ एक श्रेणी में आया हुआ। (४) जो किसी के साथ नित्य संबंध के द्वारा संबद्ध हो। नित्य संबंध से बंधा हुआ। संज्ञा पुं० संबंध। छायाव। तात्पर्यक।

**समशीकु-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह समय जब कि सूर्य ठीक क्षिर पर आते हैं। ठीक शोषहर का समय। मध्याह्न।

**समशीतोष्ण कटिबंध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पृथ्वी के वे भाग जो उष्ण कटिबंध के उत्तर में करके रेखा से उत्तर वृत्त तक और दक्षिण में मकर रेखा से दक्षिण वृत्त तक पड़ते हैं। इन भूभागों में न तो बहुत अधिक सर्दी पड़ती है और न बहुत अधिक गरमी; दोनों प्रायः समान भाव में रहती हैं।

**समष्टि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सब का समूह। कुल एक साथ। व्यक्ति का उलटा। जैसे,—आप सब लोगों की अलग अलग बात जाने दें; समष्टि का विचार करें।

**समष्टिल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) कोकुआ नाम का कँटीला पौधा जो प्रायः पश्चिम में नदियों के किनारे होता है। वैद्यक में कटु, उष्ण, रुचिकर, दीपन और कफ तथा वात का नाशन माना है। (२) गंडीर या गिहनी नाम का साग।

**समष्टिला-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) समष्टिल। कोकुआ। (२) जमीकंद। सूरन। (३) गिहनी या गंडीर नाम का साग।

**समष्टीला-संज्ञा स्त्री०** दे० "समष्टिला"।

**समस्त-वि०** [ सं० ] (१) सब। कुल। समग्र। जैसे,—(क) उन्हें समस्त रामायण कंठ है। (ख) इस समय समस्त वैद्य में एक नए प्रकार की जाति हो रही है। (२) एक में मिलाया हुआ। संयुक्त। (३) जो समास द्वारा मिलाया गया हो। समासयुक्त। (४) जो थोड़े में किया गया हो। जो संक्षेप में हो। संक्षिप्त।

**समस्थली-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] गंगा और यमुना के बीच का देश। अंतर्बंद।

**समस्या-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) संघटन। (२) मिलाने की क्रिया। मिश्रण। (३) किसी श्लोक या छंद आदि का वह अंतिम पद या तुकड़ा जो पूरा श्लोक या छंद बनाने के लिये तैयार करके दूसरों को दिया जाता है और जिसके आधार पर पूरा श्लोक या छंद बनाया जाता है।

वि० प्र०—देना।—पूर्ति करना।

(४) कठिन अवसर या प्रसंग। जैसे,—इस समय तो उनके सामने कन्या के विवाह की एक बड़ी समस्या उपस्थित है।

**समस्यापूर्ति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] किसी समस्या के आधार पर कोई छंद या श्लोक आदि बनाना।

**सर्मा-संज्ञा पुं०** [ सं० समय ] समय। वक्त।

**मुहा०—सर्मा बंधना** = (संगीत आदि काव्यों का) इतनी उत्तमता से होना कि सब लेख स्तब्ध हो जायें।

**सर्माजन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] मुथुत के अनुसार आँसुओं में लगाने का एक प्रकार का अंजन जो कई औषधियों के योग से बनता है।

**सर्मांतक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] कामदेव।

**समा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वर्ष। साल।

संज्ञा पुं० दे० "सर्मा"।

**समाकुल-वि०** [ सं० ] जिसकी अङ्ग टिकाने में हो। बहुत अधिक घबराया हुआ।

**समाख्या-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) यथा। कीर्ति। (२) सहा। नाम।

# मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

- (१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (३) गुरु गोविन्दसिंह—लेखक चैष्णीप्रसाद ।  
 (४, ५, ६) आदर्श हिंदू, तीन भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्मा ।  
 (७) राधा जगन्नाथ—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।  
 (८) भीष्म पितृमह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा ।  
 (९) जीवन के आनंद—लेखक गणपति जानकीराम दुबे ।  
 (१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद धी० एस० सी० ।  
 (११) जलचक्र—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (१२) जीवन के आनंद—लेखक गणपति जानकीराम दुबे ।  
 (१३) सुखदेव—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।  
 (१४) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (१५) सिकंदर का अत्याज और पतन—लेखक नंदकुमार देव शर्मा ।  
 (१६) वीरगण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुक्रदेवविहारी मिश्र धी० ए० ।  
 (१७) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी ।  
 (१८) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार ।  
 (१९, २०) हिंदुस्तान, दो खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय धी० ए० ।  
 (२१) महर्षि सुकरात—लेखक चैष्णीप्रसाद ।  
 (२२) ज्योतिर्विवाद—लेखक संपूर्णानंद धी० एस० सी० ।  
 (२३) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुक्रदेवविहारी मिश्र धी० ए० ।  
 (२४) सुंदरधार—समहर्कता पुरोहित हरिनारायण शर्मा धी० ए० ।  
 (२५, २६) जर्मनी का पिकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्मा ।  
 (२७, २८) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मदन द्विवेदी धी० ए० ।  
 (२९) महाराज रणजीतसिंह—लेखक चैष्णीप्रसाद ।  
 (३०, ३१) विभ्रमपंच, दो भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (३२) सतिलयाचार्य—लेखक गोविंदराम केशवराज जोशी ।  
 (३३) रामचंद्रिका—सकलनकर्ता लाला भगवानदीन ।  
 (३४) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ।  
 (३५, ३६) हिंदी नियममाला, दो भाग—संप्रहर्कता श्यामसुन्दरदास धी० ए० ।  
 (३७) सरसुधा—संपादक गणेशविहारी मिश्र, श्यामविहारी मिश्र, शुक्रदेवविहारी मिश्र ।  
 (३८) कर्तव्य—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (३९) पुरुषार्थ—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।  
 (४०) तर्कशास्त्र, पहला भाग—लेखक गुलाबराय एम० ए० ।

०५-जी०

मात्रा की प्रत्येक पुस्तक या उसके किसी भाग का मूल्य १।) है। पर स्वयं प्राहकों को सब पुस्तकें ब्राह्मण यादू भाते में दी जाती हैं । एक काष्ठ भंडारक उत्तमोत्तम पुस्तकों का यहां और नया लघुपत्र भंगयाए ।

हरिद्वयन प्रेस, लिमिटेड  
 बनारस द्वाबनी ।

## आवश्यक सूचना

काशी नागरीप्रचारिणी सभा की प्रबन्ध समिति ने यह निर्णय किया है कि १ वशाख संवत् १९८४ (१४ अप्रैल १९२७) से उसके समस्त ग्रंथों के छापने, प्रकाशित करने तथा बेचने आदि का एक मात्र भार प्रयाग के इंडियन प्रेस लिमिटेड को दिया जाय। वक्त प्रेस ने भी यह भार ग्रहण करना स्वीकार किया है तथा इसका प्रबन्ध अपने श्रेय की काशीस्थ शाखा में किया है। अतएव वक्त तारीख से जिस किसी को सभा की किसी पुस्तक की आवश्यकता हो, वे इस पते पर पत्र लिखें—

मैनेजर, बुकडिपो,

इंडियन प्रेस लिमिटेड, बनारस कैम्प।

सभा से श्रेष्ठतः शब्दसागर की सय संख्याएँ और खेह तथा नागरीप्रचारिणी पत्रिका के प्रचलित वर्ष की संख्याएँ ही प्राप्त हो सकेंगी। नागरीप्रचारिणी पत्रिका के सय पुराने खंडों के लिये भी वक्त प्रेस को ही लिखना होगा। शब्दसागर की संख्याएँ और खेह वक्त प्रेस से भी मिल सकेंगी।

नागरीप्रचारिणी सभा के जिन सभासदों को २१ वें नियम के अनुसार ३ मूल्य पर पुस्तकें मिल सकती हैं, वे यदि इस अधिकार का उपयोग करना चाहें तो उन्हें मंत्री नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस सिटी को एक पत्र लिखना चाहिए। साथ ही यह भी सूचित करना चाहिए कि वे कौन कौन सी पुस्तकें लेना चाहते हैं। प्रेस से सभा की अनुमति के बिना कम मूल्य पर पुस्तकें न प्राप्त हो सकेंगी। ऐसे पत्र सभा द्वारा वक्त प्रेस के पास कारवाई के लिये भेजे जायेंगे।

आशा है, भविष्य में सभा के सदासद तथा पुस्तक-विक्रेता आदि ऊपर दिए हुए विधानों को ध्यान में रख कर कार्य करेंगे जिसमें किसी को व्यर्थ कष्ट न घटाना पड़े।

पुस्तक-प्रकाशन के संबंध का सय पत्र-व्यवहार सभा से ही गंवायत होता रहेगा। जो लोग सभा द्वारा अपनी पुस्तकें प्रकाशित करना चाहें, उन्हें सीधे सभा से ही पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

रामचन्द्र वर्मा,

सभा,

सिटी।

# हिंदी-शब्दसागर

प्रधान

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

संपादक

श्यामसुंदरदास वी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल

रामचंद्र वर्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

१९२७

(मूल्य १)

दाम दय्यं अतिरिक्त



## संकेताक्षरों का विवरण

अ० = अंगरेजी भाषा  
 अर० = अरबी भाषा  
 अनु० = अनुक्रमण शब्द  
 अने० = अनेकार्थीनामनाला  
 अय० = अयबंश  
 अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय  
 अर्द्धमा० = अर्द्ध मासार्थी  
 अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग  
 अल्प्य० = अल्प्य  
 आनंदघन = कवि आनंदघन  
 इच० = इचरानी भाषा  
 इ० = उदाहरण  
 इ चर चरित = उ चर रामचरित  
 इप० = उपसर्ग  
 इम० = इमयलिता  
 इठ० उप० = उठती उपनिषद्  
 इधर = कविरदास  
 देश्य = केशवदास  
 ईक० = ईकण देश की भाषा  
 कि० = क्रिया  
 कि० अ० = किया अकर्मक  
 कि० प्र० = कियाप्रयोग  
 कि० वि० = क्रियाविशेषण  
 कि० स० = क्रिया सङ्क्रमक  
 इ० = अचिन् अर्थात् इसका प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।  
 खानखाना = अहमदुरहीम खानखाना  
 नि० दा० या नि० दास = गिरि-  
 धरदास (बा० गोपालचंद्र)  
 गिरिधर = गिरिधरदास ( कुंड-  
 लियावाले )  
 गुज० = गुजराती भाषा

गुमान = गुमान मिश्र  
 गोपाल = गिरिधरदास ( बा०  
 गोपालचंद्र )  
 धरण = धरणचंद्रिका  
 चिंतामणि = कवि चिंतामणि  
 त्रिपाठी  
 छीत = छीतस्थानी  
 पायसी = मलिक मुहम्मद जायसी  
 जाधा० = जाधा द्वीप की भाषा  
 ज्यो० = ज्योतिष  
 डि० = डिगल भाषा  
 तु० = तुर्की भाषा  
 तुलसी = तुलसीदास  
 तोप = कवि तोप  
 दादू = दादूदास  
 दीनदयालु = दीनदयालु गिरि  
 दूल्हा = कवि दूल्हा  
 दे० = देशो  
 देव = देव कवि ( मैनपुरीवाले )  
 देश० = देशज  
 द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी  
 नागरी = नागरीदास  
 नाभा० = नाभादास  
 निश्चल = निश्चलदास  
 पं० = पंजाबी भाषा  
 पंथाकर = पंथाकर भट्ट  
 पर्या० = पर्याय  
 पा० = पाली भाषा  
 पु० = पुंलिंग  
 पु० हि० = पुरानी हिन्दी  
 पुर्च० = पुर्चाण्टी भाषा  
 पूर्० हि० = पूर्वी हिंदी

प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र  
 प्रत्य० = प्रत्यय  
 प्रा० = प्राकृत भाषा  
 प्रिया० = प्रियादास  
 प्रे० = प्रेरणार्थक  
 प्रे० सा० = प्रेमसागर  
 फ० = फर्रांगिसी भाषा  
 फा० = फारसी भाषा  
 बँग० = बँगला भाषा  
 बरमी = बरमी भाषा  
 बहू० = बहुवचन  
 बिहारी = कवि बिहारीलाल  
 बु० पं० = बु देलपंडी बोली  
 बेनी = कवि बेनी प्रवीन  
 भाव० = भाववाचक  
 भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी  
 मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी  
 मळा० = मळावलम भाषा  
 मल्लू = मल्लूदास  
 मि० = मिलाभो  
 मुदा० = मुदाविर  
 पू० = पूतानी भाषा  
 यो० = यौगिक तथा दो या अ-  
 धिक शब्दों के पद  
 रघु० दा० = रघुनाथदास  
 रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन  
 रघुराज = महाराज रघुराजसिंह  
 रीवांनिसा  
 रसखान = सैयद हमीदीम  
 रसनिधि = राजा वृथीसिंह  
 रहीम = अहमदुरहीम खानखाना  
 लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह

खल्लू = खल्लूलाल  
 खना० = खताली भाषा  
 हिंदुस्तानी = जहाजियों  
 बोली  
 खाल = खाल कवि ( पांले )  
 खै० = खंडित भाषा  
 वि० = विशेषण  
 विश्राम = विद्यामसागर  
 व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकीमुद्रा  
 प्या० = प्याकरण  
 प्यास = अंधिकादत्त प्यास  
 पा० वि० = पांवर दिग्विजय  
 शं० सत० = शंभार सतसई  
 सं० = संखल  
 संयो० = संयोजक अर्थय  
 संयो० क्रि० = संयोज्य  
 सं० = संक्रमक  
 सयल = सयलसिंह चौहान  
 सभा वि० = सभाविलास  
 सर्व० = सर्वमान  
 सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी  
 सुदन = सुदनकवि ( सूर = सुरदास  
 सि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त  
 स्त्री० = स्त्रीलिंग  
 स्पे० = स्पेनी भाषा  
 हि० = हिंदी भाषा  
 इतुमान = इतुमशाउक  
 हरिदास = स्वामी हरिदास  
 हरिधर्म = भारतेंदु हरिश्चंद्र

ॐ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पृथ में प्रयुक्त होता है।

↑ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रातिक है।

↓ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप प्राग्य है।

**समागत**-वि० [ सं० ] जिसका आगमन हुआ हो। आया हुआ।  
जैसे,—उन्होंने समस्त समागत सजनों की यथेष्ट अभ्यर्थना की।

**समागम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आगमन। आना। जैसे—इस पार यहाँ बहुत से विद्वानों का समागम होगा। (२) मिलना। मिलन। मेल। जैसे—दूसरी पहाने आज सब लोगों का समागम हो गया। (३) स्त्री के साथ संयोग करना। मैथुन।

**समाधात**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) युद्ध। लड़ाई। (२) जान से मार डालना। हत्या। मार।

**समाचार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] संवाद। खबर। हाल। जैसे,—कहिये, क्या नया समाचार है।

**यौ०**—समाचारपत्र।

**समाचारपत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० समाचार + पत्र ] वह पत्र जिसमें सब देशों के अनेक प्रकार के समाचार रहते हैं। खबर का कागज। अखबार।

**समाज**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समूह। संघ। गरोह। दल। (२) समा। (३) हाथी। (४) एक ही स्थान पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करनेवाले वे लोग जो मिलकर अपना एक अलग समूह बनाते हैं। समुदाय। जैसे,— शिक्षित समाज, नाबज समाज। (५) वह संस्था जो बहुत से लोगों ने एक-साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्थापित की हो। समा। जैसे,—संगीत समाज, साहित्य समाज।

**समाप्ता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यथा। कीर्ति। बढ़ाई।

**समाप्ता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० समाप्ति ] (१) वह जो माता के समान हो। (२) माता की विपत्ती। विमाता। सौतेली माँ।

**समादर**-संज्ञा पुं० [ सं० ] आदर। सम्मान। खातिर।

**समादरणीय**-वि० [ सं० ] समादर करने के योग्य। आदर सत्कार करने के लायक।

**समादान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] शौद्धों का सांगताहिक नामक नित्यकर्म।  
पुं० पुं० दे० "समादान"।

**समादत्त**-वि० [ सं० ] जिसका अच्छी तरह आदर हुआ हो। सम्मानित।

**समादेय**-वि० [ सं० ] (१) आदर या प्रतिष्ठा करने के योग्य। (२) स्वागत या अभ्यर्थना करने योग्य।

**समादेय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] आशा। हुकुम।

**समाधा**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) निराकरण। निपटारा। (२)

विरोध दूर करना। (३) विदात। (४) दे० "समाधान"।

**समाधान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० समाधानीय ] (१) चिन्तन को तय और से हटाकर मझ की ओर लगाना। मन को एकत्र करके मझ में लगाना। समाधि। प्रणिधान। (२) किसी

के दाँका या प्रश्न करने पर दिया जानेवाला वह उत्तर जिससे जिज्ञासु या प्रश्नकर्ता का संतोष हो जाय। किसी के मन का संदेह दूर करनेवाली बात। (३) इस प्रकार कोई बात कहकर किसी को संतुष्ट करने की क्रिया। (४) किसी प्रकार का विरोध दूर करना। (५) निष्पत्ति। निराकरण। (६) नियम। (७) तपस्या। (८) अनुसंधान। अन्वेषण। (९) ध्यान। (१०)। मत की पुष्टि। समर्थन। (११) नाटक की सुप्रसिद्धि के उपरान्त, परिकर आदि १२ अंगों में से एक अंग। योग को ऐसे रूप में पुनः प्रदर्शित करना जिससे नायक अथवा नायिका का अभिमत प्रतीत हो।

**समाधि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) समर्थन। (२) नियम। (३) प्रहण। करना। अंगीकार। (४) ध्यान। (५) आरोप। (६) प्रतिज्ञा। (७) प्रतिशोध। बदला। (८) विवाद का अंत करना। झगड़ा मिटाना। (९) कोई अर्थात् या असाध्य कार्य करने के लिये उद्योग करना। (१०) चुप रहना। मौन। (११) निद्रा। नींद। (१२) योग। (१३) योग का चरम फल, जो योग के आठ अंगों में से अंतिम अंग है और जिसकी प्राप्ति सब के अंत में होती है। इस अवस्था में मनुष्य सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है; चिन्तन की सब वृत्तियाँ गूँथ हो जाती हैं, बाह्य जागृत् से उसका कोई संबंध नहीं रहता, उसे अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं और अंत में कैवल्य की प्राप्ति होती है। योग दर्शन में इस समाधि के चार भेद धतलाए हैं—संज्ञात समाधि, सचितक समाधि, सविचार समाधि और सानंद समाधि। समाधि की अवस्था में लोग प्रायः पद्मासन लगाकर और अँसि, यंद करके बैठते हैं। उनके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं होती; और ब्रह्म में उनका अवस्थान हो जाता है। वि० दे० "योग" (३६)।

**क्रि० प्र०**—उगना।—लगाना।

(१४) किसी शून्य स्थिति की अस्थिरता, या तप जमीन में गाढ़ना।

**क्रि० प्र०**—देना।

(१५) वह स्थान जहाँ इस प्रकार शव या अस्थियाँ आदि गाड़ी गई हैं। धनुरी। (१६) काव्य का एक गुण जिसके द्वारा दो घटनाओं का द्वैत संयोग से एक ही समय में होना प्रकट होता है और जिसमें एक ही क्रिया का दोनों कर्त्ताओं के साथ अन्वय होना है। (१७) एक प्रकार का अर्थालंकार जो उस समय माना जाता है जब किसी आकस्मिक कारण से कोई कार्य बहुत ही सुगमतापूर्वक हो जाता है। उ०—  
(क) इति-मेरिते तदि अवसर चले पवन दनपास। (ख) मीत गमन अचरोध हित सौमन कछू उपाय। तय ही आकस्मात उँटी घटा बहराय। (ग) रामचंद्र सोचत रहे शवण धवन उपाय। सुपनता साही समय करी उँटीही आय।

समाधिद्वेष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह स्थान जहाँ योगियों आदि के मृत शरीर गाड़े जाते हैं। (२) साधारण मुरदे गाड़ने की जगह। कब्रिस्तान।

समाधिगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम।

समाधित-वि० [ सं० ] जिसने समाधि लगाई हो। समाधि अवस्था की मात्र।

समाधित्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] समाधि का भाव या धर्म।

समाधिदशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह दशा जय योगी समाधि में स्थित होता है और परमात्मा में प्रेमबद्ध होकर निमग्न और तन्मय होता है और अपने आप को भूलकर चारों ओर प्रह्ला ही प्रह्ला देखता है।

समाधि समानता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यौद्धों के अनुसार ध्यान का एक भेद।

समाधिस्थ-वि० [ सं० ] जो समाधि में स्थित हो। जो समाधि लगाए हुए हो।

समाधिस्थल-संज्ञा पुं० दे० "समाधि-क्षेत्र"।

समाधेय-वि० [ सं० ] समाधान करने के योग्य। जिनका समाधान हो सके।

समान-वि० [ सं० ] जो रूप, गुण, मान, मूल्य, महत्व आदि में एक से हों। जिनमें परस्पर कोई अंतर न हो। सम। बराबर। तुल्य। जैसे,—वे दोनों समान विद्वान हैं; उनमें कोई अंतर नहीं है।

मुद्रा—एक समान = एक सा। एक जैसा।

यौ०—समान वर्ष = ऐसे वर्ष जिनका उच्चारण एक ही स्थान से होता है। जैसे,—क, ख, ग, घ समान वर्ष हैं।

संज्ञा पुं० (१) सत्। (२) शरीर के अंगतंत पर्व वायुओं में से एक वायु जिसका स्थान नामि माना गया है।

समानकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वे जो एक ही तरह का काम करते हैं। एक ही तरह का व्यवसाय या कार्य करनेवाले। हम-पेया।

समानकालीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे जो एक ही समय में उत्पन्न हुए या अवस्थित रहे हों। समकालीन।

समानगोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे जो एक ही गोत्र में उत्पन्न हुए हों। सगोत्र।

समानजन्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] समानजन्मन् ] वे जो प्रायः एक साथ ही, अथवा एक ही समय में उत्पन्न हुए हों। जो अवस्था या उम्र में बराबर हों। समवयस्क।

समानतंत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वे जो एक ही काम करते हों। समानकर्म। हम-पेया। (२) वे जो वेद की किसी एक ही शाखा का अध्ययन करते हों और उसी के अनुसार यज्ञ आदि कर्म करते हों।

समानता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] समान होने का भाव। तुल्यता।

बराबरी। जैसे,—इन दोनों में बहुत कुछ समानता देखने में आती है।

समानत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] समान होने का भाव। तुल्यता। बराबरी।

समाननाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] समाननामन् ] वे जिनके नाम एक से ही हों। एक ही नामवाले। नामरासी।

समानयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी तरह अथवा आदरपूर्वक ले जाने की क्रिया।

समानयोनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे जो एक ही योनि या स्थान से उत्पन्न हुए हों।

समानर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे जो एक ही ऋषि के गोत्र या वंश में उत्पन्न हुए हों।

समानस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ दिन और रात दोनों बराबर होते हों।

समानाधिकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याकरण में वह शब्द या वाक्यांश जो वाक्य में किसी समानार्थी शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिये आता है। जैसे,—खोर्सों से लड़ते फिरना, यही आपका काम है। इसमें "यही" शब्द "लड़ते फिरना" का समानाधिकरण है।

समानार्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे शब्द आदि जिनका अर्थ एक ही हो। पर्याय।

समानोदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जिनकी ग्यारहवीं से चौदहवीं पीढ़ी तक के पूर्वज एक हों।

समानोदर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे जिनका जन्म एक ही माता के गर्भ से हुआ हो। सहोदर।

समापक-संज्ञा पुं० [ सं० ] समाप्त करनेवाला। खतम करनेवाला। पूरा करनेवाला।

समापत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक ही समय में और एक ही स्थान पर उपस्थित होना। मिलना।

समापन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समाप्त करने की क्रिया। खतम करना। पूरा करना। (२) मार डालना। हत्या करना। वध। (३) समाधान।

समापनीय-वि० [ सं० ] (१) समाप्त करने योग्य। खतम करने के लायक। (२) मार डालने के योग्य।

समापन्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] मार डालना। हत्या करना। वध। वि० (१) खतम किया हुआ। समाप्त किया हुआ। (२) मिला हुआ। प्राप्त। (३) क्षुद्र। कठिन।

समापिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्याकरण में दो प्रकार की क्रियाओं में से एक प्रकार की क्रिया जिससे किसी कार्य का समाप्त हो जाना सूचित होता है। जैसे,—वह परसों यहाँ से चला गया। इस वाक्य में "चला गया" समापिका क्रिया है।

**समापित**-वि० [ सं० ] समाप्त किया हुआ। स्वतम या पूरा किया हुआ।

**समाप्ती**-संज्ञा पुं० [ सं० समापित् ] वह जो समाप्त करता हो। स्वतम करनेवाला।

**समाप्त**-वि० [ सं० ] जिसका अंत हो गया हो। जो स्वतम या पूरा हो गया हो। जैसे,—(क) जब आप अपनी सय यातें समाप्त कर लीजिएगा, तब मैं भी कुछ कहूँगा। (ख) आपका यह प्रश्न कब तक समाप्त होगा ?

क्रि० प्र०—करना।—होना।

**समाप्तलंभ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] धोखे के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

**समाप्तल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पति। स्वामी। मालिक। श्रीविंद।

**समाप्ति**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी कार्य या बात आदि का अंत होना। उस अवस्था को पहुँचना जब कि उस संबंध में और कुछ भी करने को शक्य न रहे। स्वतम या पूरा होना। (२) प्राप्त होने या मिटने का भाव। प्राप्ति।

**समाप्तिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो समाप्त करता हो। स्वतम या पूरा करनेवाला। (२) वह जो वेदों का अध्ययन समाप्त कर चुका हो।

**समाप्त्य**-वि० [ सं० ] समाप्त करने के योग्य। स्वतम या पूरा करने के लयक।

**समाप्त्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्नान करने की क्रिया। महाना।

**समाप्त्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शास्त्र। (२) समूह। समष्टि।

**समाप्त्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसे शास्त्रों का अच्छा ज्ञान हो। शास्त्रवेत्ता।

वि० शास्त्र संबंधी। शास्त्र का।

**समाप्त्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संयोग। (२) बहुत से लोगों का एक साथ एकत्र होना।

**समारंभ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह आरंभ होना। (२) समारोह। (क०)

**समारंभ्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] गले लगाना। आर्दगिन।

**समारंभ्य**-वि० [ सं० ] समारंभ करने के योग्य।

**समारंभ्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी तरह आराधना या उपासना करना।

**समारोप**-संज्ञा पुं० दे० "आरोप"।

**समारोपण**-संज्ञा पुं० दे० "आरोपण"।

**समारोह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आर्धवर। तद्वक्त मद्धक। धूमधाम। (२) कोई ऐसा कार्यक्रम या उत्सव जिसमें बहुत धूमधाम हो। (३) दे० "आरोह"।

**समारोह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] समान अर्थवाला शब्द। पर्याय।

**समारोह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] समान अर्थवाला शब्द। पर्याय।

**समारोह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] रोहित गुन। रुसा मासक प्राप्त।

**समारोह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] समावृत्ति। भू-गुण।  
**समारोह**, **समारोह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरीर पर केंसर आदि का लेप करना। (२) मार डालना। हत्या करना। वध।

**समारोप**-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी तरह बात चीत करना।

**समारोप**-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी तरह देखना।

**समारोपी**-संज्ञा पुं० [ सं० ] समावृत्ति। वह जो किसी चीज को अच्छी तरह देखता हो।

**समारोपक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो किसी चीज के गुण और दोष देकर बतलाता हो। समारोपना करनेवाला।

**समारोपक**-संज्ञा पुं० दे० "समारोपक"।

**समारोपक**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया।

खर देखना भालना। (२) किसी पदार्थ के दोषों और गुणों को अच्छी तरह देखना। यह देखना कि किसी चीज में कौन सी बातें अच्छी और कौन सी बातें खराब हैं; विरोधतः किसी पुस्तक के गुण और दोष आदि देना। (३) वह कथन, लेख या निबंध आदि जिसमें इस प्रकार गुणों और दोषों की विवेचना हो। आलोचना।

**समारोपी**-संज्ञा पुं० [ सं० ] समावृत्ति। वह जो किसी चीज के गुण और दोष देखना हो। समारोपना करनेवाला।

**समारोप**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वापस आना। लौटना। (२) दे० "समारोप"।

**समारोप**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० समारोपी ] (१) वापस आना। लौटना। (२) प्राचीन वैदिक काल का एक प्रकार का संस्कार। यह संस्कार उस समय होता था, जब बालक या श्रद्धाधारी नियत समय तक गुरुकुल में रहकर और वेदों तथा शान्त्वान्य विद्याओं का अच्छी तरह अध्ययन करने के उपरांत ज्ञातक बनकर घर लौटता था। इस संस्कार के समय कुछ हवन आदि होते थे।

**समारोपनीय**-वि० [ सं० ] (१) लौटने योग्य। वापस होने के लयक। (२) जो समारोपन नामक संस्कार करने के योग्य हो गया हो।

**समारोप**-संज्ञा पुं० दे० "समारोप"।

**समारोप**-वि० [ सं० ] जिसका संयोग या संमग्न हुआ हो।

**समारोप**-वि० [ सं० ] (१) जिसका समावेश हुआ हो। समाया हुआ। (२) जिसका चित्त किसी एक ओर लगा हो। एकाम-वित्त।

**समारोप**-वि० [ सं० ] अच्छी तरह ढका या ढाया हुआ।

**समारोप**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विद्या-अध्ययन करके, समावृत्त संस्कार के उपरांत, घर लौट आया हो। जिसका समावृत्त संस्कार हो चुका हो।

**समारोप**-संज्ञा स्त्री० दे० "समारोप"।

**समावेश**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक साथ या एक जगह रहना ।  
 (२) एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के अंतर्गत होना ।  
 जैसे,—इस एक ही आपत्ति में आपकी सब आपत्तियों का समावेश हो जाता है । (३) चित्त को किसी एक ओर लगाना । मनोनिवेश ।

**समावेशित**-वि० दे० "समाविष्ट" ।

**समाश्रय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आश्रय । सहारा । (२) सहायता । मदद ।

**समाश्रित**-वि० [ सं० ] जिसने किसी स्थान पर अच्छी तरह आश्रय ग्रहण किया हो ।

**समासंग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] मिलन । मिलाप । मेल ।

**समास**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संक्षेप । (२) समर्थन । (३) संग्रह । (४) पदार्थों का एक में मिलना । सम्मिलन । (५) व्याकरण में दो या अधिक शब्दों का संयोग । शब्दों का कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार आपस में मिलकर एक होना । जैसे,—"प्रेमसागर" शब्द प्रेम और सागर का, "पराधीन" शब्द पर और अधीन का, "लंबोदर" शब्द लंब और उदर का सामासिक रूप है ।

**विशेष**—शब्दों का यह सात्त्विक संयोग संधि के नियमों के अनुसार होता है । हिंदी में चार प्रकार के समास होते हैं । (१) अव्ययीभाव जिसमें पहला शब्द प्रधान होता है और जिसका प्रयोग क्रियाविशेषण के समान होता है । जैसे,—यथाशक्ति, यात्रामीन, प्रतिदिन आदि । (२) तत्पुरुष जिसमें पहला शब्द संज्ञा या विशेषण होता है और दूसरे शब्द की प्रधानता रहती है । जैसे,—ग्रंथकर्ता, निशाचर, राजपुत्र आदि । (३) समानाधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय जिसमें दोनों शब्द या तो विशेष्य और विशेषण के समान या उपमान और उपमेय के समान रहते हैं और जिनका विग्रह होने पर परवर्ती एक ही विभक्ति से काम चलता है । जैसे,—छुटभैया, अघमरा, नवरात्र, चौमासा आदि । (४) द्वंद्व, जिसमें दोनों शब्द या उनका समाहार प्रधान होता है । जैसे,—हरि-हर, गाय-बैल, दाल-भात, चिट्ठी-पत्री, अन्न-जल आदि ।

**समासपर**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन नगर का नाम जो भोज राज्य में था ।

**समासोक्ति**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें समान शब्दार्थ, समान लिंग और समान विशेषण आदि के द्वारा किसी प्रस्तुत वर्णन से अमस्तुत का ज्ञान होता है । जैसे,—कुमुदिनिहूँ प्रफुलित भई, सौँन कलानिधि जोय । यहाँ प्रस्तुत "कुमुदिनी" से नायिका का और "कलानिधि" से नायक का ज्ञान होता है ।

**समाहरण**-संज्ञा पुं० दे० "समाहार" ।

**समाहर्त्ता**-संज्ञा पुं० [ सं० समाहर्त्त ] (१) समाहार करनेवाला । (२) वह जो किसी चीज का संक्षेप करता हो । (३) मिलनेवाला ।

**समाहार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत सी चीजों को एक जगह इकट्ठा करना । संग्रह । (२) समूह । राशि । ढेर । (३) मिलना । मिलाप ।

**समाहर्द्ध**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का द्वंद्व समास । वह द्वंद्व समास जिससे उसके पदों के अर्थ के सिवा कुछ और अर्थ भी सूचित होता हो । जैसे,—सेठ-साहूकार, हाथ-पाँव, दाल-रोटी आदि । इनमें से प्रत्येक से उनके पदों के अर्थ के सिवा उसी प्रकार के कुछ और व्यक्तियों या पदार्थों का भी बोध होता है ।

**समाह्ला**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोजिया या वनगोभी नाम की घास । गोजिह्ला ।

**समाह्वान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आह्वान । बुलाना । (२) जूआ खेलने के लिये किसी को बुलाना या लंकाकारना ।

**समित्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] युद्ध । समर । लड़ाई ।

**समिता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बहुत मदीन पीसा हुआ आद्य । मैदा ।

**समितिजय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसने युद्ध में विजय प्राप्त की हो । (२) वह जिसने किसी सभा आदि में विजय प्राप्त की हो । (३) यम । (४) विष्णु ।

**समिति**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सभा । समान । (२) प्राचीन वैदिक काल की एक प्रकार की संस्था जिसमें राजनीतिक विषयों पर विचार हुआ करता था । (३) किसी विशिष्ट कार्य के लिये नियुक्त की हुई कुछ आदमियों की सभा । (४) युद्ध । समर । लड़ाई । (५) समानता । सत्य । (६) सतिपात नामक रोग ।

**समिध**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि । (२) आहुति । (३) युद्ध । समर । लड़ाई ।

**समिद्ध**-वि० [ सं० ] जलता हुआ । प्रज्वलित । प्रदीप्त ।

**समिद्धन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जलाने की लकड़ी । इंधन । (२) जलाने की क्रिया । सुलगाना । (३) उच्चैः जलाने की उद्दीपन ।

**समिध्**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आग जलाने की लकड़ी । इंधन । (२) यज्ञ-कुंड में जलाने की लकड़ी ।

**समिध**-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि ।

**समिध**-संज्ञा पुं० दे० "समीर" ।

**समिध्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंधन ।

**समीक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] युद्ध । समर । लड़ाई ।

**समीकरण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समान करने की क्रिया । तुल्य या बराबर करना । (२) गणित में एक विशेष प्रकार की

क्रिया जिससे किसी व्यक्ति या ज्ञान राशि की सहायता से किसी अर्थक या अज्ञात राशि का पता लगाया जाता है।

**समीकार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो छोटी बड़ी, ऊँची नीची या अच्छी बुरी चीजों को समान करता हो। यथावर करनेवाला।

**समीकृत**-वि० [ सं० ] समान किया हुआ। बराबर किया हुआ।

**समीकृति**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] समान या तुल्य करने की क्रिया। समीकरण।

**समीक्रिया**-संज्ञा स्त्री० दे० "समीकरण"।

**समीक्ष**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। (२) दर्शन। (३) अन्वेषण। जाँच पड़ताल। (४) विवेचन। (५) सांख्य शास्त्र जिसके द्वारा प्रकृति और पुरुष का ठीक ठीक स्वरूप दिखाई देता है।

**समीक्षण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दर्शन। देखना। (२) अनुसंधान। अन्वेषण। जाँच पड़ताल। (३) आलोचना।

**समीक्षा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] [ वि० समीक्षित, समीक्ष्य ] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। (२) आलोचन। समालोचन। समालोचना। (३) बुद्धि। (४) यथ। कोशित। (५) मीमांसा शास्त्र। (६) सांख्य में बतलाए हुए पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार आदि तत्त्व।

**समीक्ष्य**-वि० [ सं० ] समीक्षा करने के योग्य। भली मौति देखने के योग्य।

**समीक्ष्यवादी**-संज्ञा पुं० [ सं० समीक्ष्यवादिन् ] वह जो किसी विषय को अच्छी तरह जाँच या समझकर कोई बात बहता हो।

**समीच**-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र। सागर।

**समीचक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] मैथुन। संभोग। प्रसंग।

**समीची**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्त्रिय। गुणमाल। बंदना।

**समीचीन**-वि० [ सं० ] (१) यथार्थ। ठीक। (२) उचित। लचमिब। (३) न्यायसंगत।

**समीचीनता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] समीचीन होने का भाव या धर्म।

**समीनिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह गीं जो प्रति वर्ष यथा देती हो। हर साल धरनेवाली माय।

**समीप**-वि० [ सं० ] दूर का उलटा। पास। निकट। नजदीक।

**समीपता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] समीप का भाव या धर्म।

**समीपवर्ती**-वि० [ सं० समीपवर्तिन् ] समीप का। पास का। नजदीक का।

**समीपस्थ**-वि० [ सं० ] जो समीप में हो। पास का।

**समीप्य**-वि० [ सं० ] सम संबंधी। सम का।

**समीर**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चाय। हवा। (२) बामी वृक्ष।

**समीरण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चाय। हवा। (२) मंथ-गुलसी। मरुभा। (३) रात्ना चलनेवाला। पथिक। बगोड़ी। (४) मेरणा।

**समीहन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम।

**समीहा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उद्योग। प्रयत्न। चेष्टा। कोशित। (२) इच्छा। श्यांदिन। (३) अनुसंधान। तलाश। जाँच पड़ताल।

**समुद्र**-संज्ञा पुं० दे० "समुद्र"।

**समुद्रफूल**-संज्ञा पुं० [ हि० समुद्र + फूल ] एक प्रकार का विधारा जो वैद्यक के अनुसार मधुर, कर्मला, शीतल और कफ, पित्त तथा रक्षित-विनाश को दूर करनेवाला और गर्भिणी स्त्री को पीड़ा हटानेवाला होता है।

**समुद्रसौख**-संज्ञा पुं० [ हि० समुद्र + सौख्य ] एक प्रकार का ध्रुप जो प्रायः सारे भारत में थोड़ा बहुत पाया जाता है। इसके पत्ते स्त्रीनः पार अंगुल लंबे, अंडाकार और मुकीले होते हैं। डालियों के अंत में छोटे छोटे सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं, जिनमें बहुत छोटे छोटे बीज होते हैं। वैद्यक में यह वातकारक, मलरोधक, पित्तकारक तथा कफकारक कहा गया है।

**समुख**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अच्छी तरह बातें करना जानता हो। बाम्मी।

**समुचित**-वि० [ सं० ] (१) यथेष्ट। उचित। योग्य। ठीक। वाजिब। (२) जैसा चाहिए, विसा। उपयुक्त। जैसे,—आपने उनकी बातों का समुचित उत्तर दिया।

**समुच्चय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत सी चीजों का एक में मिलना। समाहार। मिश्रण। (२) समूह। राशि। ढेर। (३) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार जिसके दो भेद माने गए हैं। एक तो वह जहाँ आश्रय, हर्ष, विषाद आदि बहुत से भावों के एक साथ उद्दिष्ट होने का वर्णन हो। जैसे,—हे हरि तुम विनु राधिका सेज परी अकुल्यति। तरुफाति, कमकति, सपति, सुसकति, सुखी जाति। दूसरा वह जहाँ किसी एक ही कार्य के शिष्टे बहुत से कारणों का वर्णन हो। जैसे,—गंगा गीता गायत्री गनपति गरुड गोपाल। प्रातःकाल जे गर भजे ते म परे भय आल।

**समुचित**-वि० [ सं० ] (१) ढेर लगाया हुआ। राशि के रूप में रखा हुआ। (२) प्रकृत किया हुआ। जमा किया हुआ। संगृहीत।

**समुच्छिदि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नात। बरवादी।

**समुच्छेद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जड़ से उखाड़ना। उत्खनन। (२) ध्वंस। नाश। बरवादी।

**समुच्छेदन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जड़ से उखाड़ना। (२) नष्ट करना। बरवाव करना।

**समुज्यल**-वि० [ सं० ] पूब उजाल। धमस्ता हुआ।

**समुभ**-संज्ञा स्त्री० दे० "सामभ"।

समुद्रयान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समुद्रयात्रा । (२) समुद्र पर चलने की सवारी । जैसे,—जहाज, स्टीमर आदि ।  
 समुद्ररसना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी ।  
 समुद्रस्यधण-संज्ञा पुं० [ सं० ] करकच नाम का उष्ण-जो समुद्र के जल से तैयार किया जाता है । वैद्यक के अनुसार यह लघु, हृद्य, पिताघर्षक, विदाही, क्षीपन, रुचिकारक और कफ तथा घात का नाशक माना जाता है ।  
 समुद्रयसना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी ।  
 समुद्रयद्भि-संज्ञा पुं० [ सं० ] यद्भवानल ।  
 समुद्रयास-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्रवास ] अग्नि ।  
 समुद्रयासी-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्रवासिन् ] (१) वह जो समुद्र में रहता हो । (२) वह जो समुद्र के तट पर रहता हो ।  
 समुद्रसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोती ।  
 समुद्रसुभागा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंगा ।  
 समुद्रस्थली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जो समुद्र के तट पर था ।  
 समुद्रांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समुद्र का किनारा । (२) जायफल ।  
 समुद्रांता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुरालभा । (२) कार्पासी । (३) शृङ्गा । (४) जयासा ।  
 समुद्रावरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] समुद्रावरा ] पृथ्वी ।  
 समुद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धामी ।  
 समुद्रासिसारिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह कल्पित देवबाला जो समुद्र देव की सहचरी मानी जाती है ।  
 समुद्राया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी ।  
 समुद्राश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुंभीर नामक जलजंतु । (२) सेतुबंध । (३) एक प्रकार की भठली जिसे विभिन्न कहते हैं ।  
 समुद्रार्था-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी ।  
 समुद्रावरणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी ।  
 समुद्रिय-वि० [ सं० ] (१) समुद्र संबंधी । समुद्र का । (२) समुद्र से उत्पन्न । समुद्र-जात ।  
 समुद्रोय-वि० [ सं० ] समुद्र संबंधी । समुद्र का ।  
 समुद्रोन्मादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कातिकेय के एक अनुचर का नाम ।  
 समुद्रह-वि० [ सं० ] (१) श्रेष्ठ । उत्तम । बढ़िया । (२) बहन करनेवाला । दोनेवाला ।  
 समुद्राह-संज्ञा पुं० [ सं० ] विवाह । शादी । पालिप्रदण ।  
 समुद्रत-वि० [ सं० ] (१) जिसकी यथेष्ट उन्नति हुई हो । स्थिर बढ़ा । (२) बहुत ऊँचा ।  
 समुद्रांतु-संज्ञा पुं० वास्तु विद्या के अनुसार एक प्रकार का स्तंभ या खंभा ।

समुद्रति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यथेष्ट उन्नति । काफी तरकी । (२) महत्त्वा । पढ़ाई । (३) उन्नता ।  
 समुद्रध-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम ।  
 समुद्रद-वि० [ सं० ] (१) जो अपने आपको बड़ा पंडित समझता हो । (२) अभिमानी । प्रमंछी । (३) उत्पन्न । उद्भूत । जात ।  
 संज्ञा पुं० प्रभु । स्वामी । मालिक ।  
 समुद्रयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ऊपर की ओर उठाने या ले जाने की क्रिया । (२) प्राप्ति । लाभ ।  
 समुद्रपेशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी तरह बैठने की क्रिया । (२) अभ्यर्थना ।  
 समुद्रपद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] होम आदि के द्वारा देवताओं का आर्घ्य करना ।  
 समुद्रास-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० समुद्रस्थित ] (१) उल्लास । आनंद । प्रसन्नता । सुखी । (२) भय आदि का प्रकरण या परिच्छेद ।  
 समुद्र-वि० [ सं० ] (१) ढेर लगाया हुआ । (२) एकत्र किया हुआ । संचित । संगृहीत । (३) पकड़ा हुआ । (४) भोग हुआ । भुक्त । (५) जिसका विवाह हो चुका हो । विवाहित । (६) जो अभी उत्पन्न हुआ हो । सद्यः जात । (७) संगत ।  
 समुद्र, समुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मृग । शंभर या सावर नामक हिरन ।  
 समूल-वि० [ सं० ] (१) जिसमें मूल या जड़ हो । (२) जिसका कोई हेतु हो । कारण सहित ।  
 कि० वि० जड़ से । मूल सहित । जैसे,—किसी का कार्य समूल नष्ट कर देना ।  
 समुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक ही तरह की बहुत सी चीजों का ढेर । राशि । (२) समुदाय । हुंड । गरोह ।  
 समुद्रगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोतिया नामक फूल । गंधराज ।  
 समुद्रनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्लाघ । बुहारी ।  
 समुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वध की अग्नि ।  
 वि० तर्क करने के योग्य । उहाँ करने के योग्य ।  
 समुद्र-वि० [ सं० ] (१) जिसके पास बहुत अधिक संपत्ति हो । संपन्न । धनवान । (२) उत्पन्न । जात ।  
 संज्ञा पुं० महामारत के अनुसार एक नाग का नाम ।  
 समुद्रि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बहुत अधिक संपन्नता । ऐश्वर्य । (२) अमीरी । (३) वृत्तकीर्त्या । सफलता । (३) प्रभाव ।  
 समुद्री-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्रजन्तु । वह जो बराबर अपनी समृद्धि बढ़ाता रहता हो ।  
 संज्ञा स्त्री० दे० "समृद्धि" ।

समेटना-किं सं [ हि० सिगटना ] (१) बिलारी हुई चीजों को इकट्ठा करना। (२) अपने ऊपर लेना। जैसे,—क्रिस्ती का सत्र समेटना।

समेटनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कांचिकेय की एक मातृका का नाम।

समेट-वि० [ सं० ] संयुक्त। मिला हुआ।  
अव्य० सहित। साथ।

संज्ञा पुं० पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

समैध-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार मेरु के अंतर्गत एक पर्वत का नाम।

समोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] समर। युद्ध। लड़ाई।

सम्मंत्रण्य-वि० [ सं० ] (१) मंत्रणा करने योग्य। (२) भली भाँति मनन करने योग्य।

सम्मत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राय। सम्मति। सलाह। (२) अनुमति।

वि० जिसकी राय मिलती हो। सहमत। अनुमत।

सम्मति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सलाह। राय। (२) अनुमति। आदेश। अनुज्ञा। (३) मत। अभिप्राय। (४) सम्मान। प्रतिष्ठा। (५) इच्छा। वासना। (६) आत्मबोध। आत्मज्ञान।

सम्मद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हर्ष। आनन्द। आह्लाद। (२) एक प्रकार की मछली। विष्णुपुराण में लिखा है कि यह मछली अधिक जल में रहती है और बहुत बढ़ी होती है। इसके बहुत बच्चे होते हैं।

वि० सुखी। आनंदित। हर्षयुक्त। प्रसन्न।

सम्मर्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) युद्ध। लड़ाई। (२) समूह। भेद। (३) परस्पर का विवाद। लड़ाई झगड़ा।

सम्मर्दन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भली भाँति मर्दन करने का ध्यावर। (२) वासुदेव के पुत्रों में एक पुत्र। (३) वह जो भली भाँति मर्दन करता हो। अच्छी तरह मर्दन करनेवाला।

सम्मर्दी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सम्मर्द। भली भाँति मर्दन करनेवाला।

सम्मर्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] मर्प। सहन।

सम्माहा-संज्ञा पुं० [ हि० ] अभि। आय। पायक।

सम्मात्-वि० [ सं० ] जिसकी माता पतिव्रता हो। सही मातावाला।

सम्माद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] उन्माद। पागलपन।

सम्मान-संज्ञा पुं० [ सं० ] समादर। इज्जत। मान। गौरव। प्रतिष्ठा।  
वि० (१) मान सहित। (२) जिसका मान पूरा हो। दीक मानवाला।

सम्मानना-संज्ञा स्त्री० दे० "सम्मान"।

क्रि० सं० सम्मान करना। आदर करना।

सम्मानित-वि० [ सं० ] जिसका सम्मान हुआ हो। प्रतिष्ठित। इज्जतदार।

सम्मारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भच्छा मार्ग। सगर्मा। भेद

पद प्राप्त करने का रास्ता। (२) वह मार्ग जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सम्माज्जक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुहारन। झाड़ू। कृष।

सम्माज्जी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] झाड़ू। बुहारी। कृष।

सम्मि-वि० [ सं० ] समान। सदा। अनुरूप। मिलना।

सम्मि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ऊँची और बड़ी कामना। उच्चाकांक्षा।

सम्मिलन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मिलन। मिलाप। मेल।

सम्मिलित-वि० [ सं० ] मिला हुआ। मिश्रित। युक्त।

सम्मिध-वि० [ सं० ] मिला हुआ। संयुक्त।

सम्मिधण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मिलाने की क्रिया। (२) मेल। मिलावट।

सम्मूख-अव्य० [ सं० ] सामने। समक्ष। आगे। जैसे,—बच्चों के सम्मुख इस प्रकार की बातें नहीं कहनी चाहियें।

सम्मूर्खी-संज्ञा पुं० [ सं० ] समूर्खिन। (१) वह जो सामने हो।

(२) वह जिसमें मुख देखा जाय। दर्पण। मुकुट। आह्लाद।

सम्मूर्खीन-वि० [ सं० ] जो समूर्ख हो। सामने का।

सम्मूद्-वि० [ सं० ] (१) मोह-युक्त। सुगंध। (२) निर्बोध। अज्ञान। (३) टूटा हुआ। भंग। (४) ढेर लगाया हुआ। सतिष्ठत।

सम्मूद्पीडिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का शुक रोग जिसमें लिंग टेढ़ा हो जाता है और उस पर पुंसियाँ निकल आती हैं। कहते हैं कि नायु के रुपित होने से हस्तकी उत्पत्ति होती है।

सम्मूर्धुन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भली भाँति व्यास होने की धिया। अभिध्यास। (२) मोह। मूर्च्छा। बेहोशी। (३) रुद्धि। बढ़ती। (४) विस्तार।

सम्मूर्ष्ट-वि० [ सं० ] जिसका संशोधन भली भाँति हुआ हो। अच्छी तरह साफ किया हुआ।

सम्मोहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मनुष्यों का किसी निमित्त एकत्र हुआ समाज। सभा। सभाज। (२) जमावड़ा। जमवट। (३) मेल। मिलाप। संगम।

सम्मोद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रीति। प्रेम। (२) हर्ष। प्रसन्नता। आनंद।

सम्मोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोह। प्रेम। (२) भ्रम। संदेह। (३) मूर्च्छा। बेहोशी। (४) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक घरण में एक तगण और एक गुण होता है।

सम्मोहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो मोह देता हो। मोहक। लुभावना। (२) एक प्रकार का सधिपात ज्वर, जिसमें वायु अति प्रबल होती है। इसके कारण शरीर में पैदा, कंफ, निद्रानाश आदि होता है।

सम्मोहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोहित करने की क्रिया। मुग्ध करना। (२) वह जिससे मोह उत्पन्न होना हो। मोह-



कारक। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का अथ जिससे शत्रु को मोहित कर लेते थे। (४) कामदेव के पाँच बाणों में एक बाण का नाम।

सम्पक्-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्राय। समूह।

वि० पूरा। सब।

क्रि० वि० (१) सब प्रकार से। (२) अच्छी तरह। भली भाँति।

सम्पक्चारित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनियों के अनुसार धर्मग्रन्थ में से एक धर्म। बहुत ही धर्म तथा शुद्धता-पूर्वक जोपरण करना।

सम्पक्ज्ञान-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनियों के धर्मग्रन्थ में से एक। न्याय प्रमाण द्वारा प्रतिष्ठित सात या नौ तत्त्वों का टीका और पूरा ज्ञान।

सम्पक्दर्शन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनियों के अनुसार धर्मग्रन्थ में से एक। रत्नत्रय, सातों तत्त्वों और आत्मा आदि में पूरी पूरी धृष्टा होना।

सम्पक्दर्शी-संज्ञा पुं० [ सं० सम्पक्दर्शिन ] वह जिसे सम्पक्दर्शन प्राप्त हो।

सम्पक्संयुज्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसे सब बातों का पूरा और टीका ज्ञान प्राप्त हो गया हो। (२) युद्ध का एक नाम।

सम्पक्संयोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक युद्ध का नाम।

सम्पक्समाधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यौद्धों के अनुसार एक प्रकार की समाधि।

सम्राज्ञी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सम्राट् की पत्नी। (२) साम्राज्य की अधीश्वरी।

सम्राट्-संज्ञा पुं० [ सं० सम्राज् ] वह बहुत बड़ा राजा जिसके अधीन बहुत से राजा महाराज आदि हों। महारजाधिराज। शाहंशाह।

सयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बंधन। (२) विधामित्र के एक पुत्र का नाम।

सयोनि-वि० [ सं० ] (१) जो एक ही धीन से उत्पन्न हुए हों। (२) एक ही जाति या वर्ग आदि के।

संज्ञा पुं० इंद्र का एक नाम।

सयानिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सयोनि होने का भाव या धर्म।

सर-संज्ञा पुं० [ सं० सरस् ] धनु जलाशय। ताल। तालाब।

संज्ञा पुं० दे० "सर"।

संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) सिर। (२) सिरा। चोरी। उच्च स्थान।

यौ०—सरअंजाम। सरपरस्त। सरपंच। सरदार। सरहद।

मुहा०—सर करना = बंदूक छोड़ना। कथर फारना।

वि० दमन किया हुआ। जीता हुआ। पराजित। अभिभूत।

मुहा०—सर करना = (१) चीटना। बस में चढ़ना। दस्तान। (२) खेल में हटना।

संज्ञा पुं० [ फा० ] एक बड़ी उपाधि जो अंगरेजी सरकार देती है।

सरअंजाम-संज्ञा पुं० [ फा० ] सामान। सामग्री। असबाब।

सरई-संज्ञा स्त्री० दे० "सरहरी"।

सरकंडा-संज्ञा पुं० [ सं० सरकंड ] सरपत की जाति का एक पौधा जिसमें गोथवाली छद्दे होती हैं।

सरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सरकने की किया। खिसकना। चलना। (२) मद्य पात्र। शराब का प्याला। (३) गुड़ की यनी शराब। (४) मद्यपान। शराब पीना। (५) यात्रियों का दल। कारवाँ।

सरकना-क्रि० प्र० [ सं० सरक, सरय ] (१) जमीन से छगे हुए किसी ओर धीरे से चढ़ना। किसी तरफ हटना। खिसकना। जैसे,—थोड़ा पीछे सरको। (२) नियत काल से और आगे जाना। टलना। जैसे,—विवाह सरकना। (३) काम चढ़ना। निर्वाह होना। जैसे,—काम सरकना।

संयो० क्रि०—जाना।

सरकश-वि० [ फा० ] (१) उद्वत। उद्वंड। अक्सद। (२) शासन न माननेवाला। विरोध में सिर उठानेवाला। (३) शरारती।

सरकशी-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] (१) उद्वत। औद्वत्य। (२) नद-सती। शरारत।

सरकार-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] [ वि० सत्कारो ] (१) प्रधान। अधिपति। मालिक। प्रभु। (२) राज्य। राज्य-संस्था। शासन-सत्ता। गवर्नमेंट। (३) राज्य। रियासत। जैसे,—निज़ाम सरकार।

सरकारी-वि० [ फा० ] (१) सरकार का। मालिक का। (२) राज्य का। राजकीय। जैसे,—सरकारी हस्तगाम, सरकारी कागज़।

यौ०—सरकारी कागज़ = (१) राज्य के दफ्तर का कागज़। (२) प्रभिमयी नोट। जैसे,—उसके पास डेढ़ लाख रुपयों के सरकारी कागज़ हैं।

सरखत-संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) वह कागज़ या दस्तावेज़ जिस पर मकान आदि किराए पर दिए जाने की शर्तें होती हैं। (२) दिए और लुकए हुए कर्ण आदि का व्योरा।

सरगना-क्रि० प्र० [ दे० ] सींग मारना। दोली चराना। बंद चढ़ कर पारत करना।

सरगना-संज्ञा पुं० [ फा० ] सरदार अगुवा। जैसे,—धोरों का सरगना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः सुरे अर्थ में ही होता है।

सरगम-संज्ञा पुं० [ हिं० सा, र, ग, म ] संगीत में सात स्वरों के चतुस्र उतार का क्रम । सरगमाम ।

सरगदानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] परेशानी । हैरानी । विघ्न ।

सरगमें-वि० [ का० ] (१) जीविला । आवेदपूर्ण । (२) उमंग से भरा हुआ । उत्साही ।

सरगमी-संज्ञा स्त्री० [ पा० ] (१) जोस । आवेद । (२) उमंग । उत्साह ।

सरगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मधुमक्खी ।

सरजा-संज्ञा पुं० [ का० शरजाद = उच्च पदवाण; श० शरज = सिंह ] (१) श्रेष्ठ व्यक्ति । सरदार । (२) सिंह । उ०—सरजा सिवा जी जंग जीतन पलत है ।—गुणज ।

सरजीवन-वि० [ सं० संजीवन ] (१) संजीवन । जिलावेवाला । (२) हस भस । उपजाऊ ।

सरजोर-वि० [ का० ] (१) जबरदस्त । (२) उईठ । दुर्दमनीय । सरद्वार ।

सरजोरी-संज्ञा स्त्री० [ का० ] (१) ज़यरदस्ती । (२) उईठता ।

सरट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छिपकली । (२) गिरगिट ।

सरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] धीरे धीरे हटना या चलना । आगे बढ़ना । सरकना । खिसकना ।

सरणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मार्ग । रास्ता । (२) पगडंडी । दुर्ग । (३) लक्ष्मी । (४) दर्रा ।

सरता बढ़ता-संज्ञा पुं० [ सं० बचन, हिं० बढ़ना + अतु०, सवना ] बौट । बँवाई ।

मुहा०—सरता बढ़ता करना = भाषण में काम लाना लेना ।

सरद-वि० दे० "सरद" ।

सरदर-वि० [ पा० सरद ] सरद के रंग का । दरापन लिए पीला ।

सर दर-कि० वि० [ का० सर + दर = भाव ] (१) एक सिर से । (२) सब एक साथ मिळा कर । औसत में ।

सरदल-संज्ञा पुं० [ देश० ] दरवाजे का बाजू या साह । कि० वि० दे० "सर दर" ।

सरदा-संज्ञा पुं० [ पा० सरद ] एक प्रकार का बहुत बढ़िया छरजूना जो कानुल से आता है ।

सरदार-संज्ञा पुं० [ पा० ] (१) किसी मंडली का नामक । अग्रवा । श्रेष्ठ व्यक्ति । (२) किसी प्रदेश का दासक । (३) अमीर । रहैस । (४) वेद्योंओं की परिभाषा में यह व्यक्ति जिसका किसी वेद्यों के साथ संबंध हो ।

सरदारी-संज्ञा स्त्री० [ पा० ] सरदार को पंड या भोग ।

सरन-संज्ञा स्त्री० दे० "सरन" ।

सरना-कि० प्र० [ सं० सरण = चलना, सरकना ] (१) चलना । सरकना । खिसकना । (२) हिलना । डोलना । (३) काम चलना । पूरा पड़ना । जैसे,—हूतने से काम नहीं सरगा ।

(४) संपादित होना । किया जाना । निवटना । जैसे,—काम सरना । (५) निर्वाह होना । गुजारा होना । निभना ।

सरनाम-वि० [ पा० ] जिसका नाम हो । प्रसिद्ध । मशहूर । विख्यात ।

सरनामा-संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) किसी लेख या विषय का निर्देश जो ऊपर लिखा रहता है । शीर्षक । (२) पत्र का आरंभ या संयोगन । (३) पत्र आदि पर लिखा जानेवाला पता ।

सरपंच-संज्ञा पुं० [ पा० सर + हिं० पंच ] पंचों में यज्ञ व्यक्ति । पंचायत का समापति ।

सरपट-कि० वि० [ सं० संपण ] बाँधे की बहुत तेज दौड़ जिसमें वह दोनों अगले धर साथ साथ आगे फँकता है ।

क्रि० प्र०—डोड़ना ।—डाठना ।—दौड़ना ।—फँकना ।

सरपत-संज्ञा पुं० [ सं० शरपय ] कुस की तरह की एक घास जिसमें दहनियाँ नहीं होतीं, बहुत पतली (आधे औं भर) और हाथ दो हाथ लंबी पत्तियाँ ही मध्य भाग से निकलकर चारो ओर घनी फँडी रहती हैं । इसके बाँध से पतली छड़ निकलती है जिसमें फूल लगते हैं । यह घास छप्पर आदि छाने के काम में आती है ।

सरपरस्त-संज्ञा पुं० [ पा० ] (१) रक्ता करनेवाला श्रेष्ठ पुरुष । (२) अभिभावक । संरक्षक ।

सरपरस्ती-संज्ञा स्त्री० [ पा० ] (१) संरक्षा । (२) अभिभावकता ।

सरपोष-संज्ञा पुं० [ पा० ] (१) पगड़ी के ऊपर छगाने का एक बड़ाक गहना । (२) दो हाई अंगुल चौड़ा गोटा ।

सरपोश-संज्ञा पुं० [ पा० ] थाल या तबतरी उकने का कपड़ा ।

सरफ़ाराज़-वि० [ पा० ] (१) उच्च पदस्थ । बड़ाई की पहुँचा हुआ । महत्वप्राप्त । (२) धन्य । कृतार्थ ।

मुहा०—सरफ़ाराज़ करना = बेरुका के साथ प्रथम समागम करना । (बागरी)

सरफोका-संज्ञा पुं० दे० "सरकंदा" ।

सरबंधी-संज्ञा पुं० [ सं० शरबंध ] वीरदान्त । घनुर्धर ।

सरब-संज्ञा पुं० दे० "सर्व" ।

सरबराह-संज्ञा पुं० [ पा० ] (१) प्रबंधकर्ता । हुंजनाम करनेवाला । कारिदा । (२) राज-मजदूरों आदि का सरदार ।

सरबराहकार-संज्ञा पुं० [ पा० सरबराह + कार ] किसी कार्य का प्रबंध करनेवाला । कारिदा ।

सरबराही-संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) प्रबंध । हुंजनाम । (२) माल असवाय की निगरानी । (३) सरबराह का पद या कार्य ।

सरबस-संज्ञा पुं० दे० "सर्वस" ।

सरमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) देवताओं की एक कृतिया । त्रियोष-अग्नेय में यह इंद्र की कृतिया यमराज के चार अखिल-पाले कुलों की माता कही गई है । पणि लोग जब इंद्र की या आर्यों की गौरव चुरा ले गए थे, तब यह उन्हें पाकर है ।

लाई थी। महाभारत में इसका उल्लेख देवशुनी के नाम से हुआ है। सरया देवशुनी ऋग्वेद के एक मंत्र की द्रष्टा भी है।  
(२) कुतिया। (३) कदवप की एक स्त्री का नाम।  
(अग्निपुं०)

**सरया-संज्ञा पुं०** [ दे० ] एक प्रकार का मोटा धान जिसका चावल खाल होता है और जो कुआर में तैयार हो जाता है। सारो।

**सरयू-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] उत्तर भारत की एक प्रसिद्ध नदी जिसके किनारे पर प्राचीन अयोध्या नगरी बसी थी। सरस्वती, सिंधु और गंगा आदि नदियों के साथ ऋग्वेद में इसका भी नाम आया है।

**सरर-संज्ञा पुं०** [ हि० संस्कृत ] घोंस या सररंडे की पतली छड़ी जो ताना ठीक करने के लिये जुलाहे लगाते हैं। संधिया। सतगाता।

**सरराना-वि०** [ अ० सरसर ] हवा बहने या हवा में किसी वस्तु के घेग से चलने का शब्द होना। उ०—धरान फर लागे। सररान सूर आगे। चररान बाल उड़ी। सररान तीर मुड़ी।—युद्धन।

**सररत्न-वि०** [ सं० ] [ स्त्री० गरल ] (१) जो संधिया चला गया हो। (२) जो देहा न हो। संधिया। (३) जो कुटिल न हो। जो बालबाल न हो। निष्कण्ट। संधिया साद्रा। भोलाभोला। (४) जिसका करना कठिन न हो। सहज। आसान। (५) ईमानदार। सचा। (६) असली।

संज्ञा पुं० (१) चींद का पेड़ जिससे गंधा विरोज्ञा निकलता है। (२) एक विद्या। (३) अग्नि। (४) एक युद्ध का नाम। (५) सरल का गोंद्र। गंधा विरोज्ञा।

**सररलकट्ट-संज्ञा पुं०** [ सं० ] चिंतांजलि। पियाल वृक्ष।

**सररलकाष्ठ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] चींद की लकड़ी।

**सररलता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) देहां न होने का भाव। संधिापन। (२) निष्कण्टता। सिंधाई। (३) सुगमता। आसानी। (४) सादगी। सादापन। भोलापन। (५) सत्यता। सचाई।

**सररलवृण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] भूतृण। गंधवृण।

**सररलद्रव्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) गंधा विरोज्ञा। (२) तारपीन का तेल। श्रिवेष्ट।

**सररलनिट्यार्स-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) गंधा विरोज्ञा। (२) तारपीन का तेल। श्रिवेष्ट।

**सररलपुंडी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] पहिना मछली।

**सररलरक्षा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] विककता। कैंटाई।

**सररलरस-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) गंधा विरोज्ञा। (२) तारपीन का तेल।

**सररलरस्यंद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) गंधा विरोज्ञा। (२) तारपीन का तेल।

**सररलौग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) गंधा विरोज्ञा। (२) तारपीन का तेल।

**सररला-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) चींद का पेड़। (२) काली तुलसी। कृष्ण तुलसी। (३) मलिका। मोतिया। (४) सफेद निसोय।

**सररलित-वि०** [ सं० ] संधि। या सहज किया हुआ।

**सररधन-संज्ञा पुं०** [ सं० धमण ] अंधक मुनि के पुत्र जो अपने पिता को एक बर्ही में धेडाकर डोया करते थे।

**विशेष—**इनकी कथा रामायण के अयोध्या कांड में उस समय आई है जब दशरथ राम के वन जाने के शोक में प्राणत्याग कर रहे थे। दशरथ ने कौशल्या से अंधक मुनि के शाप की कथा इस प्रकार कही थी। एक बार दशरथ ने जंगली हाथी के धोखे में सरयू नदी के किनारे चल रहे हुए एक तापस-कुमार पर पाण चला दिया। जब वे पास गए, तब तापस-कुमार ने पतलाया कि मैं अपने अंधे माता पिता को एक जगह रख उनके लिये पानी लेने आया था। जब तापस-कुमार मर गया, तब राजा दशरथ शोक करते हुए अंधक मुनि के पास गए और सब वृत्तान्त कह सुनाया। मुनि ने शाप दिया कि जिस प्रकार मैं पुत्र के शोक से प्राणत्याग कर रहा हूँ, उसी प्रकार तुम भी प्राणत्याग करोगे। ठीक वही कथा बौद्धों के नाम जातक में भी है। केवल दशरथ का नाम नहीं है; और ऊपर से इतना और जोड़ा गया है कि अंधे मुनि ने जब पुत्र भगवान् और धर्मकी दुहाई दी, तब एक देवी ने प्रकट होकर तापस-कुमार को जिला दिया। सरयन की पितृभक्ति के गीत गातेवाले भिक्षुओं का एक संप्रदाय अथ भी अवध तथा उसके आस पास के प्रदेशों में पाया जाता है। जान पड़ता है कि यह संप्रदाय पहले बौद्ध भिक्षुओं का ही एक वल था, जैसा कि "सरयन" या धमण नाम से स्पष्ट प्रतीत होता है। बाल्मीकि रामायण में केवल तापस-कुमार कहा गया है, कोई नाम नहीं आया है।

छुपू-संज्ञा पुं० दे० "श्रवण"।

**सररधर-संज्ञा पुं०** दे० "सररोर"।

संज्ञा पुं० [ पा० ] सरदाद। अधिपति।

**सरररिल्ली-संज्ञा स्त्री०** [ सं० सट्टा, प्रा० सरिध + र। ] सरररि। तुलना। समता। उ०—(क) शक्ति जो होइ नहीं सरररि छात्रे। होइ सो अभावस दिनमन छात्रे।—जामसी। (ख) हमहिं हमहिं सरररि कस नाया।—तुलसी।

**सररधा-संज्ञा पुं०** दे० "साला"।

**सररधाक-संज्ञा पुं०** [ सं० शरवक = धाव्य ] (१) संयुट। प्याला। (२) दीया। कसोरा। उ०—राम की रजाय तें रसायनी समीर सुनु उत्तरि पयोधि पार सोधि सररधाक सो। जतुधान पुट

सुद पुत्रपाक लंक जन्त रूप रत्न जतन जाति कियो है सुगोक  
सो।—तुलसी।

सरविस—संज्ञा स्त्री० [ सं० नवित ] (१) नौ झर। (२) सिद्धमत।  
सेवा।

सरवे—संज्ञा पुं० [ सं० सर्व ] (१) जमीन की पैमाइश। (२) यह  
सरकारी विभाग जो जमीन की पैमाइश किया करता है।

सरसंप्रत—संज्ञा पुं० [ सं० ] तिपारा चूहर। पत्रयुक्त वृक्ष।

सरस—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० अक्षया० सरसी ] सरोवर। तालाब।

सरस—वि० [ सं० ] (१) रसयुक्त। रसीला। (२) शीला। भीमा।

सजल। (३) जो सूखा या सुरक्षया न हो। हरा। ताजा।

(४) सुंदर। मगोहर। (५) मयुर। मीठा। (६) जिसमें

भाव जगाने की शक्ति हो। भावपूर्ण। जैसे,—सरस काव्य।

उ०—निम्न कविचंद्र केहि खग न मीका। सरस होहु अयवा

अति भोका।—तुलसी। (७) छपय छंद के ३५ वें अक्षर का

नाम जिसमें ३६ गुण, ८० लघु, कुल ११६ वर्ण या १५२

मात्राएँ होती हैं। (८) रसिक। सहृदय। भायुक्त।

सरसईल—संज्ञा स्त्री० [ सं० भरतृणी, प्र० सरसई ] सरस्वती नदी

या देवी। उ०—सरसई महाविचार-भवाता।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सरम ] (१) सरसता। रसपूर्णता। (२)

हरापन। ताजापन। उ०—निय निज हिय छु लगी चलत

विय लख रेख खरोट। ध्यान देति न सरसई खोंटि खोंटि

खत रोत।—विहारी।

संज्ञा स्त्री० [ हि० सरसो ] फल के छोटे अंकुर या दाने जो पहले

दिखाई पड़ते हैं। जैसे,—आम की सरसई।

सरसठ—वि० संज्ञा पुं० दे० "सद्वृत्त"।

सरसठवों—वि० दे० "सद्वृत्तवों"।

सरसना—कि० प्र० [ सं० सर + न (प्रत्य०) ] (१) हरा होना।

पनपना। (२) बुद्धि को प्राप्त होना। यदना।

उ०—सुकल होत मन कामना-मिदत विचन के द्वंद।

पुन सरसन परपत हाप मुमिस्त लाल मुकुंद। (३)

प्रोषित होना। सोहाना। उ०—बाको बिलोकिरे

जो मुख हंडु ली यह हंडु कहैं लव लेख मैं। येनी प्रवीन

महा सारि छवि जो पर्ये कहैं स्यामल केस मैं।—वेणी।

(४) रसपूर्ण होना। (५) भाव की उमंग से भरना।

सरसभ्जा—वि० [ फ० ] (१) हरा भरा। जो सूखा या सुरक्षया

न हो। लहलहाता। (२) जहाँ हरियाली हो। जो घास

और पेड़ पौधों से हरा हो। जैसे,—सरसभ्जा मैदान।

सर सर—संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) जमीन पर रेंगने का शब्द। (२)

वायु के चलने से उत्पन्न ध्वनि। जैसे,—हवा सर सर चल

रही है।

सरसराना—कि० प्र० [ प्र० सर सर ] (१) सर सर की ध्वनि

होना। (२) वायु का सर सर की ध्वनि करते हुए बहना।

वायु का तेजी से चलना। सरसराना। उ०—सरसराती

हुई हवा केले के पत्तों को हिलाती है।—रत्नावली। (३)

साँप या किसी कीड़े का रेंगना।

सरसराहट—संज्ञा स्त्री० [ हि० सरस + आहट (प्रत्य०) ] (१) साँप

आदि के रेंगने से उत्पन्न ध्वनि। (२) शरीर पर रेंगने का

सा अनुभव। सुनली। सुरसुराहट। (३) वायु बहने का

शब्द।

सरसरी—वि० [ फ० सरसरो ] (१) जम कर या अच्छी तरह नहीं।

जल्दी में। जैसे,—सरसरी नज़र से देखना। (२) चलते

ढंग पर। काम चलाने भर को। स्थूल रूप से। मोटे तौर

पर। जैसे,—अभी सरसरी तौर से कर जाओ।

सरसा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद निसीय। शुद्ध त्रिवृता।

सरसार्द—संज्ञा स्त्री० [ हि० सरम + आर्द (प्रत्य०) ] (१) सरसता।

(२) बोभा। सुंदरता। (३) अधिकता।

सरसाना—कि० सं० [ हि० सरसना ] (१) रसपूर्ण करना। (२)

हरा-भरा करना।

सं० प्र० दे० "सरसना"।

सं०—कि० प्र० शोभित होना। शोभा देना। सुनना। उ०—

(क) है आरु निज अंक में शोभा कहीं न जाई। जिमि जल-

निधि की गोद में शशि शिशु शुभ सरसाई।—गोपाल।

(ख) सुंदर सूधी सुगोल रची विधि कोमलता अति ही

सरसात है।—हरिऔध।

सरसाम—संज्ञा पुं० [ फ० ] सक्थिपात। त्रिदोष। धार्द।

सरसारा—वि० [ फ० सरसारा ] (१) हवा हुआ। मग। (२)

गदाप। चूर। मद्मस्त। (तरो में)

सरसिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) द्विगुपत्री। (२) छोटा ताल।

(३) चावली।

सरसिज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह जो ताल में होता हो।

(२) कमल।

सरसिज्योनि—संज्ञा पुं० [ सं० ] कमल से उत्पन्न, प्रज्ञा।

सरसिख—संज्ञा पुं० [ सं० ] (सर में उत्पन्न) कमल।

सरसी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छोटा ताल। छोटा सरोवर।

चलैप। (२) पुष्करणी। चावली। उ०—कटुला कंठ

बचनहा नीके। नयन सरोज मयन सरसी के।—सूर।

(३) एक वर्ष पूत जिसके प्रत्येक चरण में न, ज, भ, ज, न,

न, र होते हैं।

सरसीक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सास-पत्नी।

सरसीरह—संज्ञा पुं० [ सं० ] (सर में उत्पन्न होनेवाला) कमल।

सरसुता गोस्टी—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] सफेद कटसरिया। भेत सिंदी।

सरसेटना—कि० सं० [ प्र० ] घरी छोटी मुनामा। कटकारना।

मछा नुरा बहना।

सरसों—संज्ञा स्त्री० [ सं० सर्पण ] एक धान्य या पीघा जिसके गोल गोल छोटे बीजों से तेल निकलता है । एक तेलहन ।

विशेष—भारत के प्रायः सभी प्रांतों में इसकी खेती तेल के लिये होती है । इसका डंठल दो तीन हाथ ऊँचा होता है । पत्ते हरे और कटे किनारेवाले होते हैं । ये चिकने होते और डंडी से सटे रहते हैं । फूल चमकीले पीले रंग के होते हैं । फलियाँ दो तीन अंगुल लंबी पतली और गोल होती हैं जिनमें महीन बीज के दाने भरे होते हैं । कार्तिक में गेहूँ के साथ तथा अलग भी इसे बोते हैं । माघ तक यह तैयार हो जाता है । सरसों दो प्रकार की होती है—लाल और पीली या सफेद । इसे लोग मसाले के काम में भी खाते हैं । इसका तेल, जो कबुआ तेल कहलाता है, निरस्य के व्यवहार में आता है । इसके पत्तों का साग बनता है ।

सरस्वती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्राचीन नदी जो पंजाब में यहती थी और जिसकी क्षीण धारा कुरुक्षेत्र के पास अब भी है । (२) विद्या या वाणी की देवी । वाग्देवी । भारती । वारदा ।

विशेष—वेदों में इस नदी का उल्लेख बहुत है और इसके तट का देश बहुत पवित्र माना गया है । पर वहाँ यह नदी अनिश्चित सी है । बहुत से स्थलों में तो सिंध नदी के लिये ही इसका प्रयोग जान पड़ता है । कुरुक्षेत्र के पास से होकर बहनेवाली मध्यदेशवाली सरस्वती के लिये इस शब्द का प्रयोग योदी ही जगहों में हुआ है । कुछ विद्वानों का अनुमान है कि पारसियों के आसन्न प्रांथ में अफगानिस्तान की जिस "हरखैती" नदी का उल्लेख है, वास्तव में यही मूल सरस्वती है । पीछे पंजाब की नदी को यह नाम दिया गया । क्रमेण्ड में इस नदी के समुद्र में गिरने का उल्लेख है । पर पीछे की कथाओं में इसकी धारा लुप्त होकर भीतर भीतर प्रयाग में जाकर गंगा से मिलती हुई कही गई है । वेदों में सरस्वती नदियों की माता कही गई है और उसकी सात बहिनें बताई गई हैं । एक स्थान पर वह स्वर्ण मार्ग से बहती हुई और वृत्रासुर का नाश करनेवाली कही गई है । वेद मंत्रों में जहाँ देवता रूप में इसका आह्वान है, वहाँ पूषा, इंद्र और मरुत आदि के साथ इसका संबंध है । कुछ मंत्रों में यह इंद्रा और भारता के साथ तीन यज्ञ-देवियों में रखी गई है । वाराणसी की संहिता में कहा है कि सरस्वती ने वाष्पा देवी के द्वारा इंद्र को दक्षिण प्रदान की थी । आगे चलकर ब्राह्मण ग्रंथों में सरस्वती वाग्देवी ही मान ली गई है । पुराणों में सरस्वती देवी यज्ञा की पुत्री और खी दोनों कही गई है और उसका वाहन हंस बताया गया है । महाभारत में एक स्थान पर सरस्वती को दक्ष-प्राजापति की कन्या लिखा है । छद्मो और सरस्वती देवी का चैर भी प्रसिद्ध है ।

(३) विद्या । इक्ष्म । (४) एक रागिनी जो संकराभरण और गट नागयण के योग से उत्पन्न मानी जाती है । (५) प्राची पृथी । (६) मालकंगनी । ज्योतिष्मती । खता । (७) सोम खता । (८) एक छंद का नाम । (९) गाय ।

सरस्वती कंठाभरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ताल के राठ गुण्य भेदों में से एक । (२) भोज कृत अलंकार का एक प्रथ । (३) एक पाठशाला जिसे धार के परमारवंशी राजा भोज ने स्थापित किया था ।

सरस्वती-पूजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती का उत्सव जो कहीं वसंतपंचमी को और कहीं आश्विन में होता है ।

सरहंग-राज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेना का अफसर । नायक । कप्तान । (२) महल । पहलवान । (३) जयरदस्त । बलवान । (४) पैदल सिपाही । (५) चौबदार । (६) फौतवाल ।

सरहंगी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सिपहगिरी । सेना की नौकरी । (२) धीरता । (३) पहलवानी ।

सरह—संज्ञा पुं० [ सं० शक, प्रा० सप्त ] (१) पतंग । कर्तिया । (२) टिट्टी । उ०—कटक सरह अस छूट—जायसी ।

सरहज—संज्ञा स्त्री० [ सं० श्यालनाथ ] साले की खी । पत्ती के भाई की खी ।

सरहटी—संज्ञा स्त्री० [ सं० सर्पण ] सर्पाक्षी नाम का पीघा । नकुलकंद ।

विशेष—यह पीघा दक्षिण के पहाड़ों, भासाम, यरमा और लंका आदि में बहुत होता है । इसके पत्ते समवर्ती, २ से ५ इंच तक लंबे तथा १ से ३ इंच तक चौड़े, अंडाकार, अनीदार और नुकीले होते हैं । टहनियों के अंत में छोटे छोटे सफेद रंग के फल आते हैं । बीज वारिक तथा तिकोने होते हैं । सरहटी स्वाद में कुछ खट्टी और कड़वी होती है । कहते हैं कि जब सर्प और नेवले में युद्ध होता है, तब नेवला अपना विष उतारने के लिये इसे खाता है । इसी से हिंदुस्तान और सिंहाल आदि में इसकी जड़ सर्प का विष उतारने की दवा समझी जाती है । इसकी छाल, पत्ती और जड़ का काड़ा पुष्ट होता है और पेट के रूद्ध में भी दिया जाता है ।

सरहटा—संज्ञा पुं० [ देस० ] खलिदान में फैला हुआ अनाज उधारने का झाड़ू ।

सरहतना—संज्ञा स्त्री० [ देस० ] अनाज को साफ करने के लिये फटकना । पछोड़ना ।

सरहद—संज्ञा स्त्री० [ सं० सर + अ० हद ] (१) सीमा । (२) किसी भूमि की चौहद्दी निर्धारित करनेवाली रेखा या पिह । (३) रक्षिा पर की भूमि । सीमांत । सिवान ।

सरहदी—वि० [ सं० सरहद + ई (प्रत्य०) ] सरहद संबंधी । सीमा संबंधी । जैसे,—सरहदी प्रगढ़ ।

सरहना-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] मछली के ऊपर का छिलका । चूई ।  
सरहट-संज्ञा पुं० [ सं० सर + ट ] भद्रमंडल । रामदास । सरपत ।

सरहटा-वि० [ सं० सरल + षट् ] सीधा ऊपर को गया हुआ ।  
जिसमें इधर उधर शालाएँ न निकली हों । (पं०)  
वि० [ सं० सरप ] जिस पर हाथ पर रखने से न जमे ।  
फिसलाने वाला । चिकना ।

सरहरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सर ] (१) मूँज या सरपत की जाति  
का एक पौधा जिसकी छद् पनछी, चिकनी और बिना गोंठ  
की होती है । (२) गंधनी । सर्पाक्षी ।

सरहिंद-संज्ञा पुं० [ का० सर + हिंद ] पंजाब का एक स्थान ।

सरागी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शलका ] छोटे की एक मोटी छद् जिस  
पर पीटकर लोहार बरतन बनाते हैं ।

सराश-संज्ञा स्त्री० [ सं० सर ] चिता । उ०—चंदन अगर मलयगिर  
काया । घर घर कीम्ह सरा रचि ठाढ़ा ।—जायसी ।  
संज्ञा स्त्री० दे० "सराय" ।

सराई-संज्ञा स्त्री० [ सं० शलका ] (१) शलका । सलाई । (२)  
सरकंठे की पतली छद्दी ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० शरप = प्याला ] मिट्टी का प्याला या दीया ।  
संज्ञा ।

सरागा-संज्ञा पुं० [ सं० शलका ] (१) छोटे की सील । पतला  
सीखवा । मुकौली छद् । (२) वह लकड़ी जो छल्ले के बीच  
में लगाई जाती है और जिसके ऊपर छुटाया धूमता है ।

सराजाम-संज्ञा पुं० [ सं० सरजाम ] सामग्री । असयाव । सामान ।

सराघण्टी-संज्ञा पुं० दे० "श्राद्ध" ।

सरागाण्टी-संज्ञा पुं० [ सं० सरागा ] पूर्ण कराना । संपादित  
कराना । (काम) कराना । उ०—सँ ही उनकी मूढ़ घटायो ।  
भयन विपिन सँग ही सँग डोले पेसेहि भेद लखायो । पुरुष  
भँवर दिन चारि थापुनो अपनो चाउ सरायो ।—सूर ।

सराप-संज्ञा पुं० दे० "शाय" ।

सरापना-संज्ञा-संज्ञा पुं० [ सं० शाय, हिं० सरप + ना (प्रय०) ] (१)  
शाय देना । बढ़ा देना । अनिष्ट मनाया । कोसना । (२)  
पुरा भला कहना । गाली देना ।

सराफ-संज्ञा पुं० [ सं० सरफ ] (१) रुपय पैसे या चाँदी सोने का  
लेन देन करनेवाला महाजन । (२) सोने चाँदी का व्यापारी ।  
(३) सोने चाँदी के बरतन, जेवर आदि का लेन देन करने-  
वाला । (४) बढ़ने के लिये रुपय पैसे रखकर बैठनेवाला  
वृक्षानदार ।

सराफा-संज्ञा पुं० [ सं० सराफ ] (१) सराफी का काम । रुपय पैसे  
या सोने चाँदी के लेन देन का काम । (२) वह स्थान जहाँ  
सराफों की दुकानें अधिक हों । सराफों का बाजार ।  
झेड़े,—जमी सराफा नहीं चुला होगा । (३) कोठी । बंक ।  
क्रि० प्र०—खोलना ।

सराफी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सराफ + ई (प्रय०) ] (१) सराफ का  
काम । चाँदी सोने या रुपय पैसे के लेन देन का रोजगार ।  
(२) वह वर्णमाला जिसमें अधिकतर महाजन लोग लिखते हैं ।  
महाजनी । मु डा । (३) नोट, रुपय आदि धुनाने का यद्दा  
जो धुनानेवाले को देना पड़ता है ।

सराय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मृगमृगणा । (२) घोटा देनेवाली  
यस्तु । (३) घोला ।  
संज्ञा पुं० दे० "शराय" ।

सराघोर-वि० [ सं० सरप + हिं० गोर ] बिल्कुल भीगा हुआ । तर-  
बतर । नहाया हुआ । आघ्रावित ।

सराय-संज्ञा स्त्री० [ सं० शराय ] (१) रहने का स्थान । घर । मकान ।  
(२) यात्रियों के ठहरने का स्थान । मुसाफिरखाना ।

मुहा०—सराय का कुत्ता = अपने मतजनब का बर । सवाँ । मत-  
लबी । सराय की मटियारी = लकड़ी और निर्जन्म ली ।

संज्ञा पुं० [ दे० ] गुल्ला नाम का पहाड़ी पेड़ ।

चिश्रेय—यह वृक्ष बहुत ऊँचा होता है और हिमालय पर  
अधिक होता है । इसके हीर की लकड़ी मुगंधित और हलकी  
होती है और मकान आदि बनाने के काम में अती है ।

सराय-संज्ञा पुं० [ सं० शराय ] (१) मद्यपात्र । प्याला (शराय  
पौने का) । (२) कसोरा । कटोरा । (३) दीया । उ०—इति  
जु की आरती यनी । अति विचित्र रचना रचि राखी परति न  
गिरा गनी । कष्टप भय आसन अनूप अति शङ्की शेषवनी ।  
मही सराय सस सागर छत बाती दील यनी ।—सूर । (४)  
एक तौल जो ३४ तोले की होती थी ।  
संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार की पहाड़ी बकरी ।

सरावग-संज्ञा पुं० [ सं० श्रावक ] जैन । सरावगी । उ०—इस  
सीस विलसत त्रिमल तुलसी तरल तरंग । स्वान सरावग  
के कहे लघुला । छई न गंग—तुलसी ।

सरावगी-संज्ञा पुं० [ सं० श्रावक ] श्रावक धर्मावलंबी । जैन धर्म  
माननेवाला । जैन ।

विशेष—प्रायः इस मत के अनुयायी आजकल वैश्य ही अधिक  
पाए जाते हैं ।

सराव-संज्ञा पुं० [ सं० सरप, हिं० सज्जा ] जुते हुए सैत की मिट्टी  
यासत्र करने का पाटा । हँगा ।

सरावसंपुट-संज्ञा पुं० [ सं० सराव + संपुट ] रसीपव कूकने के लिये  
मिट्टी के दो कसोरों का मुँह मिलाकर बनाया हुआ एक  
बरतन ।

सरायिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शरायक" ।

सरासन-संज्ञा पुं० दे० "शरासन" ।

सरासर-संज्ञा पुं० [ सं० शराय ] (१) एक सिर से दूसरे सिर तक । यहाँ  
से वहाँ तक । (२) बिल्कुल । पूर्णतया । जैसे,—जुन सरासर  
झट कहते हो । (३) साक्षात् । प्रत्यक्ष ।

**सरासरी**—संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] (१) आसानी। कुरती। (२) क्षीप्रता। जल्दी। (३) मोक्ष अंदाज। स्थूल अनुमान। (४) यकांया लगान का दावा।

**क्रि० प्र०**—करना।—होना।

**क्रि० वि०** (१) जल्दी में। हृद्यदी में। जमकर नहीं। इतमीनान से नहीं। (२) मोटे तौर पर। स्थूल रूप से।

**सराह**—संज्ञा स्त्री० [ सं० श्राप ] बढ़ाई। प्रशंसा। तारीफ। श्लाघा।

**सराहना**—क्रि० सं० [ सं० श्राप ] (१) तारीफ करना। बढ़ाई करना। प्रशंसा करना। उ०—(क) ऊँचे चित्त सराहियत गिरह कवतार लेत। दग झलकित मुकलित बदन तन पुलकित हित हेत।—विहारी। (ख) जे फल देखी सोइय पीका। ताकर काह सराहे नीका।—जायसी। (ग) सबै सराहत सीय छुनाई।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० प्रशंसा। तारीफ। उ०—श्रीमुख जासु सराहना कीन्धी श्रीहरिचंद।—प्रतापनारायण।

**सराहनीय**—वि० [ हिं० सराहना + ईय (प्रत्य०) ] (१) प्रशंसा के योग्य। तारीफ के लायक। श्लाघनीय। (२) अच्छा। बढ़िया। उम्दा।

**सरि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्षरना। निर्झर।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सरिर ] नदी।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सदृश, प्रा० सरित ] बराबरी। समता। उ०—दाहिम सरि जो न के सका फाटेड हिया दरकि।—जायसी।

वि० सदृश। समान। बराबर।

**सरिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हाँगपत्री। हिंगुपत्री। (२) मोतियों की लड़ी। (३) मुक्ता। मोती। (४) रत्न। (५) छोटा ताल या सरोवर। (६) एक तीर्थ।

**सरिगम**—संज्ञा पुं० दे० “सरगम”।

**सरित्**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी।

**सरिता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सरिव = बहा हुआ ] (१) धारा। (२) नदी। दरिया।

**सरित्कफ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] नदी का फेन।

**सरित्पति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संमुद्र।

**सरित्सुत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (गंगा के पुत्र) भीष्म।

**सरिदिही**—संज्ञा स्त्री० [ प्रा० सर = सरदार + देह = गर्व ] वह नजर या मंत्र जो जमींदार या उसका कारिदा किसानों से हर फसल पर लेता है।

**सरिहरा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (उत्तम नदी) गंगा।

**सरिया**—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] (१) ऊँची भूमि। (२) पंखा या और कोई छोटा सिक्का। (सोना)

संज्ञा पुं० [ सं० सर ] (१) सरकंडे की छड़ जो सुगहले या दूधहले तार बनाने में काम आती है। सरई। (२) पतली छड़।

**सरियाना**—क्रि० सं० [ ? ] (१) तरतीय से लगा कर इकट्ठा करना। बिखरी हुई चीजें ढंग से समेटना। जैसे,—लकड़ी सरियाना, कागज सरियाना। (२) मारना। लगाना। (बाजारू)

**सरिल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सलिल। जल।

**सरिवन**—संज्ञा पुं० [ सं० शालपर्ण ] शालपर्ण नाम का पौधा। त्रिपर्णा। अंशुमती।

**विशेष**—यह छुप जाति की बनीपधि है और भारत के प्रायः सभी प्रांतों में होती है। इसकी ऊँचाई तीन चार फुट होती है। यह जंगली झाड़ियों में पाई जाती है। इसका कांठ सीधा और पतला होता है। पत्ते बेल के पत्तों की भाँति एक सीके में तीन तीन होते हैं। भीष्म ऋतु को छोड़ प्रायः सभी ऋतुओं में इसके फूल फूल देखे जाते हैं। फूल छोटे और आसमानों रंग के होते हैं। फलियाँ चिपटी, पतली और प्रायः आध इंच लंबी होती हैं। सरिवन औषध के काम में आती है।

**सरिवरि**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सरि + सं० वरि, प्रा० वरि, वरि ] बराबरी। समता। उ०—तुम्हारे हमारे सरिवरि कस नाथा।—तुलसी।

**सरिश्ता**—संज्ञा पुं० [ प्रा० सरितः ] (१) अदालत। कचहरी। (२) शासन या कार्यालय का विभाग। सहकमा। दफ्तर। आफिस।

**सरिश्तेदार**—संज्ञा पुं० [ प्रा० सरिश्तः ] (१) किसी विभाग का प्रधान कर्मचारी। (२) अदालतों में देशी भाषाओं में मुकदमों की मिसलें रखनेवाला कर्मचारी।

**सरिश्तेदारी**—संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] (१) सरिश्तेदार होने का भाव। (२) सरिश्तेदार का काम या पद।

**सरिस**—वि० [ सं० सदृश, प्रा० सरित ] सदृश। समान। तुल्य। उ०—(क) जल पर सरिस बिकाइ देखहु मीति क रीति यह।—तुलसी। (ख) उटिके निग मस्तक अयो वाकत असुर महान। वात वेग ते फल सरिस महि मैं गिरे विमान।—निरधरदास।

**सरीका**—वि० दे० “सरीक”।

**सरीकता**—संज्ञा स्त्री० दे० “सिराकत”।

**सरीकता**—संज्ञा स्त्री० [ प्रा० सरीक + सं० ता (प्रत्य०) ] सारता। हिस्सा। शिरकत। उ०—निपट निदरि मोले बचन कठार पानि मानी प्राप्त औचनिपन मानी मौनता गही। रोये मारे लखन अकन अणयोई वारें तुलसी बिनोत बानी विहँसि पेनी कही। सुगस तिहारो भरे भुअन रघु निलक प्रवल

प्रताप भाउ कही सो सखे कही । दृषी सो न खुरीगो  
सरासन महेश जू की रावरी पिनारु में सरीकता कहा  
रही ?—तुलसी ।

सरीका—वि० दे० "सरीका" ।

सरीका—वि० [ सं० सरय, प्र० सरित् ] सद्यः । समान । तुल्य ।

सरीका—संज्ञा पुं० [ सं० शीफल ] एक छोटा पेड़ जिसके फल खाए  
जाते हैं ।

विशेष—इसकी छाल पतली साकी रंग की होती है और पत्ते  
अमरुद के पत्तों के से होते हैं । फूल तीन पल्लवाले, चौड़े  
और कुछ अर्धगोल होते हैं । फल गोलाई लिए हरे रंग का  
होता है और उस पर उभरे हुए दाने होते हैं जो देखने में  
बड़े सुंदर लगते हैं । बीज-कोशों का गूदा बहुत मीठा होता  
है । इस फल में बीज अधिक होते हैं । सरीका गरमी के  
दिनों में फूलता है और कातिक अगहन तक फल पकते हैं ।  
विष्य पर्वण पर बहुत से स्थानों में यह आप से आप उगता  
है । यहाँ इसके जंगल के जंगल खड़े हैं । जंगलों सरीके के  
फल छोटे और गूदा बहुत कम होता है ।

सरीका—संज्ञा पुं० दे० "सरी" ।

सरीसृप—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रंगनेवाला जंतु । जैसे,—सौर्य,  
कनकवरा आदि । (२) सर्प । सौर्य । (३) विष्णु का  
एक नाम ।

सहच—वि० [ सं० ] शोभायुक्त । कतिमाद्य ।

सहज—वि० [ सं० ] रोगी । रोग-युक्त । हम ।

सहय—वि० [ सं० ] श्लोष-युक्त । कुपित ।

सहय—वि० [ सं० ] (१) रूप-युक्त । आकारवाला । (२) एक ही  
रूप का । सदृश । समान । (३) रूपवाद । सुंदर ।  
‡ संज्ञा पुं० दे० "स्वल्प" ।

सरुपा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मूल की स्त्री जो असंख्य स्त्रियों की माता  
कही गई है ।

सरुप—संज्ञा पुं० [ प्र० सरु ] (१) आनंद । सुखी । प्रसन्नता ।  
(२) हलका नशा । नये की तरंग । मादकता ।

सरोख—संज्ञा पुं० [ सं० श्रेष्ठ ] [ को० सरोखी ] अवस्था में बढ़ा  
और समसदर । श्रेष्ठ । चतुर । घालाक । सपाना । उ०—  
(क) तप खन थोला सुभा सरोखा । अगुवा सोई पंग जेहि  
देगा ।—जायसी । (ख) हेति हैति पृष्टे सुनो सरोखी । जनहु  
कुमुदधन सुख देषी ।—जायसी ।

सरोखा—संज्ञा पुं० दे० "श्रेष्ठा" ।

सरोखना—कि० सं० दे० "सद्वेचना" ।

सरोदहन—कि० वि० [ प्र० ] (१) हम समय । अभी । (२)  
किंनराल । अभी के लिये । इस समय के लिये ।

सरो वाङ्मय—कि० वि० [ प्र० ] (१) वाङ्मय में जनता के सामने ।

(२) सुखे आम । सब के सामने ।

सरोदा, सरोला—संज्ञा पुं० [ दे० ] (१) पाल में लगी हुई रस्ती  
जिसे डीला करने से पाल की हुवा निकल जाती है । (२)  
मछली की पंसी की डोरी । शिल ।

सरोस—संज्ञा पुं० [ प्र० सरो ] एक लसदार वस्तु जो ऊँट, गाय,  
भैंस आदि के चमड़े या मछली के पीठे को पकाकर निकालते  
हैं । सहरोस । सरोस ।

विशेष—यह कागज, कपड़े, चमड़े आदि को आपस में जोड़ने  
या चिपकाने के काम में आता है । जिल्दबंदी में इसका व्यव-  
हार बहुत होता है ।

वि० चिपकनेवाला । लसीछा ।

सरोसमाही—संज्ञा पुं० [ प्र० सरोस-माही ] सफेद या काले रंग का  
गोंद के समान एक द्रव्य ।

विशेष—यह एक प्रकार की मछली के पेट से निकलता है  
जिसकी नाक लंबी होती है और जिसे मूत्री का सूअर कहते  
हैं । यह दुर्गंधयुक्त और स्वाद में कड़ुवा होता है ।

सरोट—संज्ञा पुं० [ सं० सारु+वर्ण, हि० निवृत्त ] कपड़ों में  
पड़ी हुई सिलवट । निकन । पली । उ०—तट न सीस  
सरोटि भई सुदी सुखन की मोट । चुप करिये पारी बरति  
सारी परो सरोट ।—बिहारी ।

सरो—संज्ञा पुं० [ प्र० सर्व ] एक सीया पेड़ जो बगीचों में शोभा के  
लिये लगाया जाता है । बनहाउ ।

विशेष—इस पेड़ का स्थान काश्मीर, अफगानिस्तान और  
फारस आदि एशिया के पश्चिमी प्रदेश हैं । फारसी की शायरी  
में इसका उल्लेख बहुत अधिक है । ये शायर नाबिकर के सीधे  
डोल डोल की उपमा प्रायः इसी से दिया करते हैं । यह पेड़  
विलकुल सीधा ऊपर को जाता है । इसकी टहनियाँ पतली  
पतली होती हैं और पत्तियों से गरी होने के कारण दिखाई  
नहीं देती । पत्तियाँ टंडी रेखाओं के जाड़ के रूप में बहुत  
घनी और सुंदर होती हैं । यह पेड़े श्राव की आरि का है,  
और उसी के से फल भी इसमें लगते हैं ।

सरोई—संज्ञा पुं० [ हि० सरो ] एक प्रकार बड़ा पेड़ ।

विशेष—यह एक बहुत ऊँचा होता है । इसकी लकड़ी ललाई  
लिए सफेद होती है और चारपाइयाँ आदि बनाने के काम  
में श्वती है । इसकी छाल से रंग भी निकाला जाता है ।

सरोकार—संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) परस्पर व्यवहार का संबंध ।  
(२) लगाव । शाला । प्रयोजन । मतलब ।

सरोज—संज्ञा पुं० [ सं० ] कमल ।

सरोजसूत्री—वि० स्त्री० [ सं० ] कमल के समान सुगंधाली ।  
सुंदरी ।

सरोजिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कमलों से भरा हुआ ताल ।  
कमलपूर्ण सरसी । (२) कमलों का समूह । कमलवन ।  
(३) कमल का पौध ।



**सरोजी-वि०** [ सं० सरोजिन् ] [ स्त्री० सरोजिनी ] (१) कमलवाला ।  
 (२) जहाँ कमल हैं ।  
**संज्ञा पुं०** (१) (कमल से उत्पन्न) मृदा । (२) बुद्ध का एक नाम ।  
**सरोतस्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) बहुला । एक पक्षी । (२) सास ।  
**सरोह-संज्ञा पुं०** [ फ्रा० ] (१) बरत की तरह का एक प्रकार का बाज ।  
**विशेष**—ह्रसमें तर्त और छोड़े के तार छोरे रहते हैं और ह्रसके आगे का हिस्सा पमड़े से मढ़ा रहता है ।  
 (२) नाचने गाने की क्रिया । गान और नृत्य ।  
**सरोधा-संज्ञा पुं०** [ सं० सरोध ] श्वास का दाहिने या बाएँ नधने से निकलना देखकर भविष्य की बातें कहने की विद्या ।  
**सरोविन्दु-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक गीत ।  
**सरोरुह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] कमल ।  
**सरोला-संज्ञा पुं०** [ देश० ] एक प्रकार की मिठाई ।  
**विशेष**—यह पोस्ते, पुहारे, बादाम आदि नैयों के साथ मीठे की धी और चीनी में पकाकर बनाई जाती है ।  
**सरोवर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) तालाब । पोखरा (२) झील । माल ।  
**सरोय-वि०** [ सं० ] श्लोघयुक्त । कुपित ।  
**सरोसामान-संज्ञा पुं०** [ फ्रा० सर + सामान ] सामग्री । उपकरण । शस्यबाध ।  
**सरोही-संज्ञा स्त्री०** दे० "सिरोही" ।  
**सरो-संज्ञा पुं०** [ सं० सारय ] (१) कयोरी । प्याली । (२) इकन । ढकना ।  
**संज्ञा पुं०** दे० "सरो" ।  
**सरोता-संज्ञा पुं०** [ सं० सार = लोहा + पय; प्रा० सारय ] [ स्त्री० कल्या० मरीची ] सुपारी फाटने का औजार ।  
**विशेष**—यह छोड़े के दो खंडों का होता है । ऊपर का खंड मँड्रासी की आँति धारदार होता है और नीचे का मोटा, जिस पर सुपारी रखते हैं । दोनों खंडों के सिरे टोली फील से जुड़े रहते हैं, जिससे ये ऊपर नीचे धूम सकते हैं । इन्हीं दोनों खंडों के बीच में रखकर और ऊपर से दबाकर सुपारी काटी जाती है ।  
**सरोती-संज्ञा स्त्री०** [ हि० सरोता ] छोटा सरोता ।  
**संज्ञा स्त्री०** [ सं० सारय ] एक प्रकार की हूँख जिसकी छद् पतली होती है ।  
**विशेष**—ह्रस ऊख की गाँठें काली होती हैं और सय तना सफेद होता है ।  
**सर्क-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) मन । चित्त । (२) प्रायु । (३) एक प्रजापति का नाम ।  
**सर्कस-संज्ञा पुं०** [ थं० ] (१) वह स्थान जहाँ जानवरों का खेल दिखाया जाता है । (२) वह मंडली जो पशुओं तथा नदों को साथ रखती है और खेल कूद के तमामो दिप्राती है ।

**सर्का-संज्ञा पुं०** [ थं० सर्कः ] (१) चोरी । (२) दूसरे के भाव वा खेल को चुरा लेने की क्रिया । साहित्यिक चोरी ।  
**सर्कार-संज्ञा स्त्री०** दे० "सरकार" ।  
**सर्कारी-वि०** दे० "सरकारी" ।  
**सर्क्युलर-संज्ञा पुं०** [ थं० ] (१) गदती चिट्ठी । (२) सरकारी आदेशपत्र जो सय दपतरों में घुमाया जाता है । (३) वह पत्र जिसमें किसी विषय की आवश्यक सूचनाएँ रहनी हैं ।  
**सर्ग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) गमन । गति । चलना या बढ़ना । (२) संसार । सृष्टि । जगत् की उत्पत्ति । (३) यहाँ । शोक । प्रवाह । (४) छोड़ना । चलना । फेंकना । (५) छोड़ा हुआ अर्थ । (६) मूल । उद्गम । उत्पत्ति स्थान । (७) प्राणी । जीव । (८) संतति । संतान । भौलाद । (९) स्वभाव । प्रकृति । (१०) प्रवृत्ति । सुकाव । स्थान । (११) प्रयत्न । चेष्टा । (१२) संकल्प । (१३) किसी प्रय (विशेषतः काम्य) का अन्वय । प्रकरण । परिच्छेद । (१४) मोह । मूर्च्छा । (१५) शिव का एक नाम ।  
**सर्गपताली-संज्ञा पुं०** [ सं० सर्ग + पताली + ई (प्रत्यय) ] (१) जिसकी आँतें पेंची हों । पेंचा ताना । (२) वह बैल जिसका एक साँग ऊपर की ओर उठा हो और दूसरा नीचे की ओर झुका हो ।  
**सर्गपुट-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बुद्ध राग का एक भेद ।  
**सर्गबंध-वि०** [ सं० ] जो कई अध्यायों में विभक्त हो । जैसे,— सर्गबंध काव्य ।  
**सर्गुन-वि०** दे० "सयुग" ।  
**सर्जद-संज्ञा पुं०** [ थं० मार्जेन्ट ] (१) हवलदार । जमादार । (२) नागिर । (३) प्रथम श्रेणी का वकील ।  
**सर्ज-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) बड़ी जानि का ढाल वृक्ष । अजकण वृक्ष । (२) साल । धूना । करापल । (३) शलकी वृक्ष । सलई का पेड़ । (४) विजयपाल का पेड़ । असन वृक्ष ।  
**संज्ञा स्त्री०** [ थं० ] एक प्रकार का बड़िया मोटा ऊनी कपड़ा जो प्रायः कोट आदि बनाने के काम में आता है ।  
**सर्जक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) बड़ा साल वृक्ष । (२) विजयसाल । (३) सलई का पेड़ । (४) मड़ा छोड़ने पर गरम दूध का फटाव ।  
**सर्जन-संज्ञा पुं०** [ थं० ] [ वि० सर्जनीय, सर्जित ] (१) छोड़ना । त्याग करना । फेंकना । (२) निकालना । (३) सृष्टि का उत्पन्न होना । सृष्टि । (४) सेना का पिछला भाग । (५) साल का गाँव ।  
**संज्ञा पुं०** [ थं० ] अर्ध चिकित्सा करनेवाला । चीर फाड़ करनेवाला दाक्टर । जराह ।  
**सर्जनी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] गुदा की धलियों में से बीचवाली वली जो मल, पयनादि निकालती है ।

सर्जमणि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भोजरत्न । सेमल का गोंद ।  
 (२) रात । घना । करापल ।  
 सर्जरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धीर फाइ करके चिकित्सा करने की  
 क्रिया या विद्या ।  
 सर्जि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] समी ।  
 सर्जिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] समी खात ।  
 सर्जित्वाट—संज्ञा पुं० [ सं० ] सजी पार ।  
 सर्जु—संज्ञा पुं० [ सं० ] बणिऊ । व्यापारी ।  
 संज्ञा स्त्री० विद्युत् । विबली ।  
 सर्जु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बणिऊ । व्यापारी । (२) गले का हार ।  
 संज्ञा स्त्री० दे० "सरयू" ।  
 सर्जुट—संज्ञा पुं० [ सं० ] दिन ।  
 सर्जिफिकेट—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) परीक्षा में उत्तीर्ण होने का  
 प्रमाणपत्र । सनद । (२) चाल चलन, स्वास्थ्य, योग्यता  
 आदि का प्रमाणपत्र ।  
 सर्त—संज्ञा स्त्री० दे० "सर्त" ।  
 सर्ता—संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्त । घोड़ा ।  
 सर्द—वि० [ प्रा० ] (१) ठंढा । शीतल । (२) सुस्त । फाहिल ।  
 बिला । (३) मंद । धीमा ।  
 सर्दा—सर्द होना = (१) ठंढा पड़ना । शीतल होना । (२)  
 भकर समाप्त हो जाना । (३) मर हो जाना । धीमा हो जाना ।  
 (४) जल्दबाई रहित होना । नुस्त हो जाना । टर जाना ।  
 (५) नरुपसक । नामर्द । (६) वैराद । वेमज्ञा ।  
 सर्दार्थ—संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] सर्द + र्थि० । हाथी की एक बीमारी  
 जिसमें उसके पैर जंकड़ जाते हैं ।  
 सर्दमिज्ञाज—वि० [ प्रा० + मि० ] (१) सुर्दा दिल । जिसमें रक्ताह  
 न हो । (२) जिसमें शील न हो । बेसुरीबत । रुला ।  
 सर्दा—संज्ञा पुं० [ सं० ] यदिया जाति का लंबोतरा सर्पराज जो  
 काबुल से आता है ।  
 सर्दार—संज्ञा पुं० दे० "सरदार" ।  
 सर्दाया—संज्ञा पुं० [ प्रा० ] सर्द + या० । कर्म । समाधि ।  
 सर्दी—संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] (१) सर्द होने का भाव । ठंढ ।  
 शीतलता । (२) आर्द्र । शीत ।  
 मुहा०—सर्दी पड़ना = आर्द्र होना । सर्दी खाना = ठंढ-सदना ।  
 शीत सदना ।  
 (३) शुकाम । नरुला ।  
 (४) सर्द होना ।  
 (५) सर्द होना ।  
 (६) सर्द होना ।  
 (७) सर्द होना ।  
 (८) सर्द होना ।  
 (९) सर्द होना ।  
 (१०) सर्द होना ।  
 (११) सर्द होना ।  
 (१२) सर्द होना ।  
 (१३) सर्द होना ।  
 (१४) सर्द होना ।  
 (१५) सर्द होना ।  
 (१६) सर्द होना ।  
 (१७) सर्द होना ।  
 (१८) सर्द होना ।  
 (१९) सर्द होना ।  
 (२०) सर्द होना ।  
 (२१) सर्द होना ।  
 (२२) सर्द होना ।  
 (२३) सर्द होना ।  
 (२४) सर्द होना ।  
 (२५) सर्द होना ।  
 (२६) सर्द होना ।  
 (२७) सर्द होना ।  
 (२८) सर्द होना ।  
 (२९) सर्द होना ।  
 (३०) सर्द होना ।  
 (३१) सर्द होना ।  
 (३२) सर्द होना ।  
 (३३) सर्द होना ।  
 (३४) सर्द होना ।  
 (३५) सर्द होना ।  
 (३६) सर्द होना ।  
 (३७) सर्द होना ।  
 (३८) सर्द होना ।  
 (३९) सर्द होना ।  
 (४०) सर्द होना ।  
 (४१) सर्द होना ।  
 (४२) सर्द होना ।  
 (४३) सर्द होना ।  
 (४४) सर्द होना ।  
 (४५) सर्द होना ।  
 (४६) सर्द होना ।  
 (४७) सर्द होना ।  
 (४८) सर्द होना ।  
 (४९) सर्द होना ।  
 (५०) सर्द होना ।  
 (५१) सर्द होना ।  
 (५२) सर्द होना ।  
 (५३) सर्द होना ।  
 (५४) सर्द होना ।  
 (५५) सर्द होना ।  
 (५६) सर्द होना ।  
 (५७) सर्द होना ।  
 (५८) सर्द होना ।  
 (५९) सर्द होना ।  
 (६०) सर्द होना ।  
 (६१) सर्द होना ।  
 (६२) सर्द होना ।  
 (६३) सर्द होना ।  
 (६४) सर्द होना ।  
 (६५) सर्द होना ।  
 (६६) सर्द होना ।  
 (६७) सर्द होना ।  
 (६८) सर्द होना ।  
 (६९) सर्द होना ।  
 (७०) सर्द होना ।  
 (७१) सर्द होना ।  
 (७२) सर्द होना ।  
 (७३) सर्द होना ।  
 (७४) सर्द होना ।  
 (७५) सर्द होना ।  
 (७६) सर्द होना ।  
 (७७) सर्द होना ।  
 (७८) सर्द होना ।  
 (७९) सर्द होना ।  
 (८०) सर्द होना ।  
 (८१) सर्द होना ।  
 (८२) सर्द होना ।  
 (८३) सर्द होना ।  
 (८४) सर्द होना ।  
 (८५) सर्द होना ।  
 (८६) सर्द होना ।  
 (८७) सर्द होना ।  
 (८८) सर्द होना ।  
 (८९) सर्द होना ।  
 (९०) सर्द होना ।  
 (९१) सर्द होना ।  
 (९२) सर्द होना ।  
 (९३) सर्द होना ।  
 (९४) सर्द होना ।  
 (९५) सर्द होना ।  
 (९६) सर्द होना ।  
 (९७) सर्द होना ।  
 (९८) सर्द होना ।  
 (९९) सर्द होना ।  
 (१००) सर्द होना ।

सर्पकाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड । उ०—सर्पकाल कालीगृह  
 आए । भगपति बलि यहात सो साए ।—गोपाल ।  
 सर्पगंधा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गंध नाकुली । (२) नकुल  
 कंद । नाकुली । (३) नागदहन नामक जड़ी ।  
 सर्पगति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सर्प की गति । (२) कुटिल  
 गति । कपट की चाल ।  
 सर्पगृह—संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्प का घर । घाँघी ।  
 सर्पघातिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरहँटी । सर्पाक्षी ।  
 सर्पच्छत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] छत्रक । खुमी । कुकुरमुत्ता ।  
 सर्पछिद्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्प का चिह्न । घाँघी ।  
 सर्पण—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० सविट, सर्पण्य ] (१) रँगना ।  
 धीरे धीरे चलना । (२) छोड़े हुए सिर का भूमि से लगा  
 हुआ जाना ।  
 सर्पतनु—संज्ञा पुं० [ सं० ] शृङ्खली का एक भेद ।  
 सर्पतृण—संज्ञा पुं० [ सं० ] नकुलकंद ।  
 सर्पदंढा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिंहली पीपल ।  
 सर्पदंडो—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गोरक्षी । गोरख इमली । (२)  
 गेंगेन । नागयला ।  
 सर्पदंता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिंहली पीपल ।  
 सर्पदंती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नगरदंती । हप्पी कुंदी ।  
 सर्पदंष्ट्रा—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्प का दाँत । (२) जमालगोटा ।  
 सर्पदंष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दंष्टी । उडुंवर पत्ती ।  
 सर्पदंष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शृङ्खली । (२) दंष्टी । उडुं-  
 वरपत्ती । (३) विदुभा । पृथिव्या ।  
 सर्पद्विप—संज्ञा पुं० [ सं० ] मोर । मयूर ।  
 सर्पनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सर्पाक्षी । (२) गंधनाकुली ।  
 सर्पपति—संज्ञा पुं० [ सं० ] शैरनाग ।  
 सर्पपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नागदंती । (२) बॉस खेवसा ।  
 सर्पपिय—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंदन ।  
 सर्पफणुज—संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्पमणि ।  
 सर्पफेणु—संज्ञा पुं० [ सं० ] अकीम । अदिफेन ।  
 सर्पबंध—संज्ञा पुं० [ सं० ] कुटिल या पंचोली चाल ।  
 सर्पबेखि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नागपहड़ी । पान ।  
 सर्पभक्षक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नकुलकंद । नाकुली कंद ।  
 (२) मोर । मयूर पक्षी ।  
 सर्पभुक्त, सर्पभुज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नकुल कंद । (२)  
 मोर । मयूर । (३) सारस पक्षी ।  
 सर्पमाला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरहँटी । सर्पाक्षी ।  
 सर्पयल, सर्पयाग—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यज्ञ जो नागों के संहार  
 के लिये जन्मेजय ने किया था ।  
 सर्पराज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्पों के राजा, शैरनाग । (२)  
 धासुकि ।

सर्पलता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नागवह्नी । पान ।  
 सर्पचह्नी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नागवह्नी । पान ।  
 सर्पविद्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सर्पों को पकड़ने या घस में करने की विद्या ।  
 सर्पव्यूह—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का एक प्रकार का व्यूह जिसकी रचना सर्प के आकार की होती थी ।  
 सर्पशीर्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार की हूँट जो यज्ञ की वेदी बनाने के काम में आती थी । (२) तांत्रिक पूजा में हाथ और पंजे की एक मुद्रा ।  
 सर्पसत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्पयज्ञ ।  
 सर्पसत्री—संज्ञा पुं० [ सं० सर्पसत्रिवृ ] राजा जनमेजय का एक नाम, जिन्होंने सर्पयज्ञ किया था ।  
 सर्पसुगंधा, सर्पसुगंधिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंधनाशुली । सर्पगंधा ।  
 सर्पसहा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरहँदी । सर्पाक्षी ।  
 सर्पहा—संज्ञा पुं० [ सं० सर्पहन् ] सर्प को मारनेवाला, नेवला ।  
 सहा स्त्री० [ सं० ] सरहँदी । सर्पाक्षी । गंडिनी ।  
 सर्पांगी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सरहँदी । (२) सिहली पीपल । (३) नकुल कंद ।  
 सर्पा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सर्पिन । सर्पिणी । (२) फणिलता ।  
 सर्पाक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खदाक्ष । शिवाक्ष । (२) सर्पाक्षी । सरहँदी ।  
 सर्पाक्षी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सरहँदी । (२) गंध नाशुली । (३) सर्पिणी । (४) द्रवत अपराजिता । (५) शंखिनी ।  
 सर्पाख्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] नागकेसर ।  
 सर्पादनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गंध नाशुली । गंध रागना । रास्ता । (२) नकुल कंद ।  
 सर्पादि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्पों का दायु, गरुड़ । (२) नेवला । (३) मयूर ।  
 सर्पावास—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्पों के रहने का स्थान । (२) चंदन । मलयज । संदल ।  
 सर्पाशन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मयूर । मोर । (२) गरुड़ ।  
 सर्पास्थि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्प के समान मुचवाला । (२) खर नामक राक्षस का एक सेनापति जिसे राम ने युद्ध में मारा था ।  
 सर्पि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घृत । घी । (२) एक वैदिक ऋषि का नाम ।  
 सर्पिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छोटा सर्प । (२) एक नदी का नाम ।  
 सर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सर्पिन । मादा सर्प । (२) मुजगी लता ।  
 (३) विशेष—यह सर्प के आकार की होती है और इसमें विष का नाश करने और स्तनों को बढ़ाने का गुण होता है ।

सर्पित—संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्प के काटने का क्षत । सर्पदंश ।  
 सर्पिष्क—संज्ञा पुं० दे० "सर्पिस्" ।  
 सर्पिस्—संज्ञा पुं० [ सं० ] घृत । घी ।  
 सर्पी—वि० [ सं० सर्पिवृ ] [ श्री० सर्पिणी ] रंगनेवाला । धीरे धीरे चलनेवाला ।  
 संज्ञा पुं० दे० "सर्पि" या "सर्पिस्" ।  
 सर्पेट—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंदन ।  
 सर्पोन्माद—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का उन्माद जिसमें मनुष्य सर्प की भाँति छोटता, जीम निम्नलता और क्रोध करता है । इसमें गुड़, दूध आदि खाने की अधिक इच्छा होती है ।  
 सर्फ—संज्ञा पुं० [ म० ] ध्वज किया हुआ । रापा हुआ । खर्च किया हुआ । जैसे,—इस काम में सौ रूपय सर्फ हो गए ।  
 सर्फा—संज्ञा पुं० [ म० सर्फः ] खर्च । ध्वज ।  
 सर्वस—वि० दे० "सर्वस्व" ।  
 सर्व—संज्ञा पुं० दे० "सर्वम्" । उ०—देहि अयलंब न विलंब अंगोत्र-कर चक्रपर तेज बल सर्व रासी ।—तुलसी ।  
 सर्वा—संज्ञा पुं० [ मनु० सर् सर् ] लोहे या लकड़ी की छड़ जिस पर गाराई घूमती है । धुरी । धुरा ।  
 सर्वाङ्ग—संज्ञा पुं० [ म० ] (१) सोने चोरी या रूपय पैसे का व्यापार करनेवाला । (२) बदले के लिये पैसे, रूपय आदि लेकर बैठनेवाला ।  
 मुहा०—सर्वाङ्ग के से टके = यह सौध जिसमें किसी प्रकार की हानि न हो ।  
 (३) धनी । दौलतमंद । (४) पारसी । परखनेवाला ।  
 सर्वाङ्ग नानुष्ठा—संज्ञा पुं० [ म० सर्वाङ्ग + ? ] विवाह आदि शुभ अवसरों पर कोठीवालों या महाजनों का नौकरों की मिठाई, रुपया पैसा आदि पहिना ।  
 सर्वाङ्गा—संज्ञा पुं० दे० "सर्वाङ्ग" ।  
 सर्वाङ्गी—संज्ञा स्त्री० दे० "सर्वाङ्ग" ।  
 सर्व—वि० [ सं० ] सारा । सब । समस्त । तमाम । कुल ।  
 संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम । (२) विष्णु का एक नाम । (३) पारा । पारद । (४) रसोत । (५) शिलाजीत । शिलाजीत ।  
 सर्वकर्त्ता—संज्ञा पुं० [ सं० सर्वकर्त् ] ब्रह्मा ।  
 सर्वकाम—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सब इच्छाएँ रखनेवाला । (२) सब इच्छाएँ पूरी करनेवाला । (३) शिव का एक नाम । (४) एक युद्ध या अर्द्ध का नाम ।  
 सर्वकामद—वि० [ सं० ] [ श्री० सर्वकामदा ] सब कामनाएँ पूरी करनेवाला ।  
 सर्वकाल—कि० वि० [ सं० ] हर समय । सब दिन । सदा ।  
 सर्वकेसर—संज्ञा पुं० [ सं० ] ककुल वृक्ष या पुष्प । मौकसिरी ।

सर्वज्ञान-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोरवा । मुच्छक वृक्ष ।  
 सर्वगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दालचीनी । गुडचक्र । (२)  
 पृष्ठा । झुलपथी । (३) तेजपत्र । (४) नागकेसर । नाग-  
 पुष्प । (५) शीतल चीनी । (६) हौंग । लवंग । (७)  
 अमर । आद । (८) शिलारस । (९) केसर ।  
 सर्वग-वि० [ सं० ] [ श्री० सर्वा ] जिसकी गति सब जगह हो ।  
 जो सब जगह जा सके । सर्वव्यापक ।  
 यज्ञ पुं० (१) पानी । जल । (२) जीव । अत्मा । (३)  
 यज्ञ । (४) शिव का एक नाम ।  
 सर्वगण-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वामी मिट्टी । रेह ।  
 सर्वगत-वि० [ सं० ] जो सब में हो । सर्वव्यापक ।  
 सर्वगत-वि० [ सं० ] जिसकी द्राण सब लोग हैं । जिसमें सब  
 भाग्य हैं ।  
 सर्वगा-संज्ञा श्री० [ सं० ] मिश्रण वृक्ष ।  
 सर्वगामी-वि० दे० "सर्वग" ।  
 सर्वप्रधि, सर्वप्रधिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीपलामूल ।  
 सर्वप्रहापहा-संज्ञा श्री० [ सं० ] नागदमनी । नागद्वीप ।  
 सर्वप्रास-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्र या सूर्य का वह ग्रहण जिसमें  
 उनका मंडल पूर्ण रूप से छिप जाता है । पूर्ण ग्रहण ।  
 त्रयस्य ग्रहण ।  
 सर्वचक्रा-संज्ञा श्री० [ सं० ] और्ध्व की एक तांत्रिक देवी ।  
 सर्वचारी-वि० [ सं० ] सर्वचारि [ श्री० सर्वचारिणी ] । सब में  
 रमनेवाला । व्यापक ।  
 संज्ञा पुं० शिव का एक नाम ।  
 सर्वजनप्रिया-संज्ञा श्री० [ सं० ] ऋद्धि नामक अष्टवर्गव्य ओषधि ।  
 सर्वजनीन-वि० [ सं० ] सब लोगों से संबंध रखनेवाला ।  
 सब का । सार्वजनिक ।  
 सर्वजया-संज्ञा श्री० [ सं० ] (१) सधनय नाम का पौधा जो  
 यगीर्थ में कुर्डी के लिये लगाया जाता है । देवकली । (२)  
 मार्गशीर्ष महीने में होनेवाला छियाँ का एक माघीन पर्व ।  
 सर्वज्ञि-वि० [ सं० ] (१) सब को जितनेवाला । (२) सब से  
 यज्ञ चक्र । उत्तम ।  
 संज्ञा पुं० (१) साठ संवत्सरों में से इक्षीसर्वो संवत्सर ।  
 (२) श्वयु । काष्ठ । (३) एक प्रकार का प्रकार का यज्ञ ।  
 सर्वजीवी-वि० [ सं० ] सर्वजीविण ] जिसके पिता, पितामह और  
 प्रपितामह तीनों जीते हैं ।  
 सर्वस-वि० [ सं० ] [ श्री० सर्वा ] सब कुछ जाननेवाला । जिसे  
 कुछ अज्ञान न हो ।  
 संज्ञा पुं० (१) ईश्वर । (२) देवता । (३) बुद्ध या अर्हंत ।  
 (४) शिव ।  
 सर्वसता-संज्ञा श्री० [ सं० ] सर्वज्ञ होने का भाव ।  
 सर्वसहय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्वज्ञ होने का भाव । सर्वज्ञता ।

सर्वज्ञा-वि० श्री० [ सं० ] सब कुछ जाननेवाली ।  
 संज्ञा श्री० (१) दुर्गा देवी । (२) एक योगिनी ।  
 सर्वज्ञानी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सब कुछ जाननेवाला । सर्वज्ञ ।  
 सर्वज्ञानि-संज्ञा श्री० [ सं० ] सब वस्तुओं की हानि । सर्वनाश ।  
 सर्वतंत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सब प्रकार के तंत्र-सिद्धत ।  
 वि० जिसे सब शास्त्र मानते हैं । सर्वशास्त्र-समत । जैसे,-  
 सर्व-तंत्र सिद्धत ।  
 सर्वत-भय्य० [ सं० ] (१) सब ओर । चारों तरफ । (२) सब  
 प्रकार से । हर तरह से । (३) पूरी तरह से । पूर्ण रूप से ।  
 सर्वतःशुभा-संज्ञा श्री० [ सं० ] केंगनी नाम का अनाज । काहुन ।  
 सर्वतापन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) (सबको तपानेवाला) सूर्य ।  
 (२) कामदेव ।  
 सर्वतिका-संज्ञा श्री० [ सं० ] (१) भंडाकी । बरहंटा । (२) मकौव ।  
 काकनाची ।  
 सर्वतोभद्र-वि० [ सं० ] (१) सब ओर से मंगल । सर्वांश में  
 शुभ या उत्तम । (२) जिसके सिर, दाढ़ी, मूँठ आदि सब  
 के बाल मुँड़े हैं ।  
 संज्ञा पुं० (१) वह चौदोंटा मंदिर जिसके चारों ओर दरवाजे  
 हैं । (२) मुक्त में एक प्रकार का वृक्ष । (३) एक प्रकार का  
 चौदोंटा मांगलिक चिह्न जो पूजा के वस्त्र पर बनाया जाता है ।  
 (४) एक प्रकार का चित्रकाव्य । (५) एक प्रकार की पहेली  
 जिसमें सद्य के खंडाक्षरों के भी अलावा अलग अर्थ लिए  
 जाते हैं । (६) विष्णु का रथ । (७) वाँस । (८) एक गंध-  
 द्रव्य । (९) वह मकान जिसके चारों ओर परिक्रमा का  
 स्थान हो । (१०) हठ योग में बैठने का एक आसन या  
 मुद्रा । (११) नीम का पद ।  
 सर्वतोभद्रकछेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] भगंदर की चिकित्सा के लिये  
 अक्ष से लगाया हुआ चौकोर धारा । (सुश्रुत) ।  
 सर्वतोभद्रा-संज्ञा श्री० [ सं० ] (१) कारमरी वृक्ष । गंभारी । (२)  
 अभिनय करनेवाली । नटी ।  
 सर्वतोभद्रिका-संज्ञा श्री० [ सं० ] गंभारी । कारमरी वृक्ष ।  
 गम्हार वृक्ष ।  
 सर्वतोभाय-भय्य० [ सं० ] सर्व प्रकार से । संपूर्ण रूप से । अच्छी  
 तरह । भली भाँति ।  
 सर्वतोमुख-वि० [ सं० ] (१) जिसका मुँह चारों ओर हो । (२)  
 जो सब दिशाओं में प्रवृत्त हो । (३) पूर्ण । व्यापक ।  
 संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार की वृक्ष-रचना । (२) जल । पानी ।  
 (३) अत्मा । जीव । (४) ब्रह्मा (जिनके चार मुँह हैं) ।  
 (५) शिव । (६) अग्नि । (७) स्वर्ग । (८) आकाश ।  
 सर्वतोवृत्त-वि० [ सं० ] सर्वव्यापक ।  
 सर्वत्र-भय्य० [ सं० ] सब चर्याँ । सब जगह । हर जगह ।  
 सर्वत्रग-वि० [ सं० ] सर्वगामी । सर्वव्यापक ।

संज्ञा पुं० (१) वायु । (२) मनु के एक पुत्र का नाम । (३) भीमसेन के एक पुत्र का नाम ।  
 सर्वत्रगामी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वायु । हवा ।  
 सर्वथा-अव्य० [ सं० ] (१) सब प्रकार से । सब तरह से । (२) बिलकुल । सब ।  
 सर्वद-वि० [ सं० ] सब कुछ देनेवाला ।  
 संज्ञा पुं० शिव का एक नाम ।  
 सर्वदर्शी-संज्ञा पुं० [ सं० सर्वदर्शिन् ] [ स्त्री० सर्वदर्शिणी ] सब कुछ देखनेवाला ।  
 सर्वदा-अव्य० [ सं० ] सब काल में । हमेशा । सदा ।  
 सर्वद्वारिक-वि० [ सं० ] जिसकी विजय-यात्रा के लिये संय दिशाएँ खुली हों । द्विजययी ।  
 सर्वधातुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्वधा । तात्र ।  
 सर्वधारी-संज्ञा पुं० [ सं० सर्वधारिन् ] (१) साठ संवत्सरो में से याहँसर्वो संवत्सर । (२) शिव का एक नाम ।  
 सर्वनाभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का अक्ष ।  
 सर्वनाम-संज्ञा पुं० [ सं० सर्वनामन् ] व्याकरण में यह शब्द जो संज्ञा के स्थान में प्रयुक्त होता है । जैसे,—मैं, तू, वह ।  
 सर्वनाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] सन्ध्यानाश । विध्वंस । पूरी बरबादी ।  
 सर्वनाशी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्वनाश करनेवाला । विध्वंसकारी । चौपट करनेवाला ।  
 सर्वनिधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सब का नाश या घब । (२) एक प्रकार का एकाह यज्ञ ।  
 सर्वनियंता-संज्ञा पुं० [ सं० सर्वनियन्तृ ] सब को अपने नियम के अनुसार ले चलनेवाला । सब को बश में करनेवाला ।  
 सर्वपा-वि० [ सं० ] सब कुछ पीनेवाला ।  
 संज्ञा स्त्री० दैत्यराज बलि की स्त्री का नाम ।  
 सर्वपाचक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुहागा । टंकण क्षार ।  
 सर्वपुष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ ।  
 सर्वप्रिय-वि० [ सं० ] सब को प्यारा । जिसे सब चाहें । जो सब को अच्छा लगे ।  
 सर्वयत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बहुत बड़ी संस्था । (बौद्ध)  
 सर्वयज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] युद्ध करने की एक विधि ।  
 सर्वभद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यकरी । छागी ।  
 सर्वमन्त्री-संज्ञा पुं० [ सं० सर्वमन्त्रिन् ] [ स्त्री० सर्वमन्त्रिणी ] सब कुछ करनेवाला ।  
 संज्ञा पुं० अभि ।  
 सर्वभयोद्भव-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य ।  
 सर्वभाव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संपूर्ण सत्ता । सारा अस्तित्व । (२) संपूर्ण आत्मा । (३) पूर्ण तृप्ति । मन का पूर्ण भंगना ।  
 सर्वभावन-संज्ञा पुं० [ सं० ] महादेव । शिव ।  
 सर्वभूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] सब प्राणी या सृष्टि । पराचर ।

वि० ओ सब कुछ ही या सब में हो । सर्वस्वरूप ।  
 सर्वभूतहित-संज्ञा पुं० [ सं० ] सब प्राणियों की भलाई ।  
 सर्वभूमिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] दारचीनी । गुदत्वक् ।  
 सर्वयोगी-वि० [ सं० सर्वयोगिन् ] [ स्त्री० सर्वयोगिनी ] (१) सब का भागद लेनेवाला । (२) सब कुछ खानेवाला ।  
 सर्वमंगला-वि० [ सं० ] सब प्रकार का मंगल करनेवाला ।  
 संज्ञा स्त्री० (१) दुर्गा । (२) लक्ष्मी ।  
 सर्वमूल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कौड़ी । कपड़क । (२) कोई छोटा सिक्का ।  
 सर्वमूक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (सब को सूसने या ले जानेवाला) काल ।  
 सर्वमेघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सार्वजनिक सत्र । (२) एक प्रकार सोम याग जो दस दिनों तक होता था ।  
 सर्वयोगी-संज्ञा पुं० [ सं० सर्वयोगिन् ] शिव का एक नाम ।  
 सर्वरत्नक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैन शास्त्रानुसार नौ निधियों में से एक ।  
 सर्वरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राल । धूना । कणक । (२) लवण । नमक । (३) एक प्रकार का वाजा । (४) संय विद्याओं में निपुण व्यक्ति ।  
 सर्वरसा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लाजा का मूँद । धान की खीलों का मूँद ।  
 सर्वरसेत्तम-संज्ञा पुं० [ सं० ] नमक । लवण ।  
 सर्वरीक्ष-संज्ञा स्त्री० दे० "शर्वरी" ।  
 सर्वरूप-वि० [ सं० ] जो सब रूपों का हो । सर्वस्वरूप ।  
 संज्ञा पुं० एक प्रकार की समाधि ।  
 सर्वरत्ना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटे का डंडा ।  
 सर्वरिणी-वि० [ सं० सर्वरिणिन् ] [ स्त्री० सर्वरिणिनी ] सब प्रकार के ऊपरी आडंबर रखनेवाला । पापंटी ।  
 संज्ञा पुं० नास्तिक ।  
 सर्वलोकेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) महात्मा । (३) विष्णु । (४) कृष्ण ।  
 सर्वलोचना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वीया जो औषध के काम में आता है ।  
 सर्वलौह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्वधा । तात्र । (२) वाण । तीर ।  
 सर्ववर्णिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गैमारी का पद ।  
 सर्वयज्ञमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुलटा स्त्री ।  
 सर्ववादी-संज्ञा पुं० [ सं० सर्ववादिन् ] शिव का एक नाम ।  
 सर्ववास-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।  
 सर्वविप्रद-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।  
 सर्वविद्-वि० [ सं० ] सर्वज्ञ ।  
 संज्ञा पुं० (१) ईश्वर । (२) भोकार ।  
 सर्ववीर-वि० [ सं० ] जिसके बहुत से पुत्र हों ।

सर्ववेद-वि० [ सं० ] सब वेदों का ज्ञाननेवाला ।  
सर्ववेदस्-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अपनी सारी संपत्ति यज्ञ में दान कर दे ।

सर्ववेदस-संज्ञा पुं० [ सं० ] सारी संपत्ति । सारा माल, मत्त ।  
सर्ववैनायिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] आत्मा आदि सब को नाशवान् माननेवाला । क्षणिकवादी । बौद्ध ।

सर्वव्यापक-संज्ञा पुं० दे० "सर्वव्यापी" ।  
सर्वव्यापी-वि० [ सं० सर्वव्यापिन् ] [ स्त्री० सर्वव्यापिनी ] सब में रहनेवाला । सब पदार्थों में समग्रील ।  
संज्ञा पुं० (१) ईश्वर । (२) शिव ।

सर्वश-मन्थ० [ सं० ] (१) पूरा पूरा । (२) सम्पूर्ण । पूर्णरूप से ।  
सर्वशक्तिमान्-वि० [ सं० सर्वशक्तिन् ] [ स्त्री० सर्वशक्तिनी ] सब कुछ करने की सामर्थ्य रखनेवाला ।  
संज्ञा पुं० ईश्वर ।

सर्वशम्यवादी-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्ध ।  
सर्वेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम ।  
सर्वेश्वर-वि० [ सं० ] सब में बड़ा । सब से उत्तम ।

सर्वश्रेयता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का विषयाब्धि ।  
सर्पणिक । ( सुश्रुत )  
सर्वलगत-संज्ञा पुं० [ सं० ] साठी धान । पक्षिक पान्थ ।

सर्वरुस्थान-वि० [ सं० ] सब रूपों में रहनेवाला । सर्वरूप ।  
सर्वसंहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] काल ।  
सर्वस-वि० दे० "सर्वस्व" ।

सर्वसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] मुँह का एक रोग जिसमें छाले, से पद आते हैं तथा खुजली तथा पीड़ा होती है ।  
चिरोप-वह तीन प्रकार का होता है—वातज, पित्तज और कफज । वातज में मुख में सूई चुभने की सी पीड़ा होती है । पित्तज में पीले या लाल रंग के दाहयुक्त छाले पड़ते हैं । कफज में पीड़ा रहित खुजली होती है ।

सर्वसह-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुरुल । गुरुल ।  
सर्वसाक्षी-संज्ञा पुं० [ सं० सर्वसाक्षिन् ] (१) ईश्वर । परमात्मा ।  
(२) अग्नि । (३) वायु ।

सर्वसाधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोना । स्वर्ण । (२) धन ।  
(३) शिव का एक नाम ।  
सर्वसाधारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] साधारण लोग । जनता । आम लोग ।

वि० जो सब में पाया जाता हो । आम । सामान्य ।  
सर्वसामान्य-वि० [ सं० ] जो सब में एक सा पाया जाय ।  
मायवी ।

सर्वसारंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक भाग का नाम ।  
सर्वसिद्धा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतृप्ती, नवमी और धनुर्दशी से तीन तिथियाँ ।

सर्वसिद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सब कार्यों और कामभाओं का पूरा होना । (२) पूर्ण तर्क । (३) विद्वय ब्रह्म । श्रीफल ।  
घेल ।

सर्वस्तोम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का एकाह यज्ञ ।  
सर्वस्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] जो कुछ अपना हो वह सब । किसी की सारी संपत्ति । सब कुछ । कुल माल मत्ता ।

सर्वस्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पुराह यज्ञ ।  
सर्वस्थी-संज्ञा पुं० [ सं० सर्वस्थिन् ] [ स्त्री० सर्वस्थिनी ] नापित पिता और गोप माता से उत्पन्न एक संकर जाति । ( महावैवर्त्त पुराण )

सर्वहर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सब कुछ हर लेनेवाला । (२) वह जो किसी की सारी संपत्ति का उत्तराधिकारी हो । (३) महादेव । संकर । (४) यमराज । (५) काल ।

सर्वहारी-वि० [ सं० सर्वहारिन् ] [ स्त्री० सर्वहारिणी ] सब कुछ हरण करनेवाला ।

सर्वहित-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धान्य मुनि । गौतम बुद्ध । (२) मरिच । मिर्च ।

सर्पांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्पों शरीर । सारा बदन । जैसे,—सर्पांग में सैल मर्दन । (२) सम अवयव या अंश ।  
(३) सब वेदांग ।

सर्पांगरूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।  
सर्पाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पथ जिसके चारों तरफों के अन्त्या-  
सर एक से हों ।

सर्पाज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वाश्व । शिवाश्व ।  
सर्पाक्षी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुग्धिका । दुग्धिया घास । दुब्दी ।  
सर्पाक्षय-संज्ञा पुं० [ सं० ] पारद । पारा ।

सर्पाणो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा । पार्वती ।  
सर्पातिथि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सब का आतिथ्य करे । वह जो सब भाए गए लोगों का सात्कार करे ।

सर्पात्मा-संज्ञा पुं० [ सं० सर्पात्मन् ] (१) सब की आत्मा । सारे विश्व की आत्मा । संपूर्ण विश्व में व्याप्त चेतन सत्ता । महा ।  
(२) शिव का एक नाम । (३) जिन । अर्हत् ।

सर्पाधिकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सब कुछ करने का अधिकार । पूर्ण प्रभुत्व । परा इक्षित्यार । (२) सब प्रकार का अधिकार ।

सर्पाधिकारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पूरा अधिकार रखनेवाला । वह जिसके हाथ में परा इक्षित्यार हो । (२) हाकिम ।

सर्पाभिसंघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सबको धोखा देनेवाला । (अनु०)  
सर्पाभिसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] बवाई के लिये संपूर्ण सेना की सैयारी या सजाव ।

सर्पामात्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी परिवार या शूद्रस्त्री में रहने-  
वाले घर के प्राणी, नौकर पाकर आदि सब लोग । (स्मृति)

सर्वायनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद निसोय ।  
 सर्वायसाधन—संज्ञा पुं० [ सं० ] सब प्रयोजन सिद्ध होना ।  
 सारे मतलब परे होना ।  
 सर्वायसिद्ध—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिद्धार्थे । शायय मुनि गौतम बुद्ध ।  
 सर्वायसर—संज्ञा पुं० [ सं० ] आधी रात ।  
 सर्वायसु—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य की एक किरण का नाम ।  
 सर्वायशय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सब का शरण या आधार स्थान ।  
 (२) श्रिय का एक नाम ।  
 सर्वाशी—वि० [ सं० सर्वाशिन ] [ स्त्री० सर्वाशिनी ] सब कुछ खानेवाला । सर्वभक्षी । (स्मृति)  
 सर्वास्तिवाद्—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह दार्शनिक सिद्धांत कि सब वस्तुओं की वास्तव सत्ता है, से असत् नहीं है ।  
 विशेष—यह बौद्ध मत की वैभाषिक शाखा के चार भिन्न भिन्न मंतों में से एक है जिसके प्रवर्तक गौतम बुद्ध के पुत्र राहुल माने जाते हैं ।  
 सर्वास्तिवादी—वि० [ सं० सर्वास्तिवादिन् ] सर्वाग्निवाद मत को माननेवाला । बौद्ध ।  
 सर्वास्त्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों की सोलह विद्या-देवियों में से एक ।  
 सर्वे—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भूमि की नाप जोख । पैमाइया । (२) वह सरकारी विभाग जो भूमि को नापकर उसका नक्शा बनाता है ।  
 सर्वेश, सर्वेश्वर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सब का स्वामी । सब का मालिक । (२) ईश्वर । (३) चक्रवर्ती राजा । (४) शिव । (५) एक प्रकार की ओषधि ।  
 सर्वाध—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्वांगपूर्ण सेना । (२) एक प्रकार का मधु या शहद ।  
 सर्वाधि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आयुर्वेद में ओषधियों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत दस जड़ी बूटियाँ हैं ।  
 सर्वाध—संज्ञा पुं० दे० "सर्वाय" ।  
 सर्वाय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सरसों । (२) सरसों भर का मान या सौल । (३) एक प्रकार का विष ।  
 सर्वायफंद—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पोषा जिसकी जड़ विष होती है ।  
 सर्वायक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साँप ।  
 सर्वायकी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक त्रिपैला कीड़ा ।  
 सर्वाय तैल—संज्ञा पुं० [ सं० ] सरसों का तैल ।  
 सर्वायनाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] सरसों का साग ।  
 सर्वायपा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद सरसों ।  
 सर्वायपाण्डु—संज्ञा पुं० [ सं० ] पारस्कर शूद्र सूत्र के अनुसार असुरों का एक भोग ।

सर्वायक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला कीड़ा जिसके काटने से आदमी मर जाता है ।  
 सर्वायिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार का लिंग रोग ।  
 विशेष—इस रोग में लिंग पर सरसों के समान छोटे छोटे दाने निकल आते हैं । यह रोग प्रायः दुष्ट मैथुन से होता है ।  
 (२) मधुरिका रोग का एक भेद । (३) सर्वायक नाम का जहरीला कीड़ा । वि० दे० "सर्वायक" ।  
 सर्वायि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्वायिका । (२) सफेद सरसों । (३) ममोला । खंजन पक्षी । (४) एक प्रकार के छोटे दाने जो शरीर पर निकल आते हैं ।  
 सरसों—संज्ञा स्त्री० दे० "सरसों" ।  
 सरहद्द—संज्ञा स्त्री० दे० "सरहद्द" ।  
 सर्वाय मोन—संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्वाय ? + हि० मोन ] कचिया मोन । काच लवण ।  
 सरल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल । पानी । (२) सरल वृक्ष । (३) एक प्रकार का कीड़ा जो प्रायः घास में रहता है । इसे बोट भी कहते हैं ।  
 सरहद्द—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरहद्दी । (१) शलकी वृक्ष । चीड़ । वि० दे० "चीड़" । (२) चीड़ का गोंद । कुंदुर ।  
 सरलक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुकन्दर । कन्दशाक ।  
 सरलकपात—संज्ञा पुं० [ सं० ] कलुभा । कच्छप ।  
 सरलगम—संज्ञा पुं० दे० "शलगम" ।  
 सरलगो—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शलकी । सरहद्द । चीड़ ।  
 सरलगो—संज्ञा पुं० [ सं० ] सरल = वज्र ] पहाड़ी दरफ का पानी ।  
 सरलगम—संज्ञा पुं० दे० "शलगम" ।  
 सरलगम—वि० [ सं० ] जिसे लज्जा हो । दार्म और हयावाला । लज्जाशील ।  
 सरलगुक—संज्ञा पुं० [ सं० ] चौलाई का साग ।  
 सरलगतत—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरलगतत ] (१) राज्य । यादशाहीत । (२) साम्राज्य । (३) इतंजाम । प्रबंध ।  
 मुहा०—सरलगतत बैठना = प्रबंध टोक होना । इतंजाम बैठना । (४) सुनीता । आराम । जैसे,—पहले जरा सरलगतत से बैठ लो, तब यारें होंगी ।  
 सरलगना—कि० प्र० [ सं० ] शल्य ] (१) सांझा खाना । छिदना । भिदना । (२) किसी छेद में किसी चीज का डालना या पहनाया जाना ।  
 सरलगो—संज्ञा पुं० लकड़ी छेदने का यंत्र ।  
 सरलगो—संज्ञा पुं० [ सं० ] मोती ।  
 सरलगपत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] दाल चीनी । गुड़बक्क ।  
 सरलगय—वि० [ सं० ] सल्य ] नष्ट । बरबाद । जैसे,—साल ही भर में उन्होंने पाप दास की सारी कमाई सल्य कर दी ।

सलमह—संज्ञा पुं० [ य० ] यशुआ नाम का साग ।  
 सलमा—संज्ञा पुं० [ प्र० सलम ] संसे मा चोरी का, यत्रा हुआ चमकदार गोल छपेटा हुआ सार जो टोपी, साड़ी आदि में बेल बूटे बनाने के काम में आता है। पादछा।  
 सलवट—संज्ञा स्त्री० दे० "सिलवट"।  
 सलवन—संज्ञा पुं० [ सं० सलिनव्य ] सलिन ।  
 सलवात—संज्ञा स्त्री० [ य० ] (१) बरकत । (२) रहमत । मेहर-पानी । (३) गाली । दुर्वचन । कुत्राच्य ।  
 क्रि० प्र०—सुनाना ।  
 सलसलबोल—संज्ञा पुं० [ य० ] बहुमूर्त रोग या मधुममेह नामक रोग ।  
 सलसलाना—क्रि० प्र० [ अत० ] (१) धीरे धीरे सुखी होना । सरसराहट होना । (२) गुदगुदी होना । (३) कीर्णों का पेट के चल चलना । सरसराना । रँगना ।  
 क्रि० प्र० (१) सुखलाना । (२) गुदगुदाना । (३) शीघ्रता से कोई कार्य करना ।  
 सलसलाहट—संज्ञा स्त्री० [ अत० ] (१) सलसल, शब्द । (२) सुगन्धी । चारिद्र । (३) गुदगुदी । कुलकुली ।  
 सलसी—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] सान्द्रफल की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो बूक भी कहलाता है। वि० दे० "बूक"।  
 सलहज—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सल ] साले की स्त्री । सरहज ।  
 सलहई—संज्ञा स्त्री० [ सं० सलका ] (१) धातु की यानी हुई कोई पतली छोटी छड़ । जैसे,—सुरमा लगाने की सलहई । घाव में दवा भरने की सलहई । मोटा या गुच्छेद चुनने की सलहई ।  
 मुहा०—सलहई फैला = (१) अर्धों में सुरमा या शीशर लगाना । (२) सलहई गरम करने का करने के लिये अर्धों में लगाना । अर्धों कोनना ।  
 (२) रिवा सलहई ।  
 संज्ञा स्त्री० [ हिं० सलना ] (१) सालने की क्रिया या भाव । (२) सालने की मजदूरी ।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० सलसी ] (१) सलहई । शहकी । (२) चीद की लकड़ी ।  
 सलहाकना—क्रि० प्र० [ सं० सलहा + ना (प्रत्य०) ] सलहई या हसी चार की और किसी चीज से किसी दूसरी चीज पर लकीर लाना । सलहई की सहायता से चिह्न करना ।  
 सलख—संज्ञा स्त्री० [ य० सलख, मि० सं० सलख ] (१) धातु की पत्नी हुई छड़ । शलाका । सलहई । (२) लकीर । खत ।  
 सलामीत—संज्ञा स्त्री० दे० "सिलामीत"।  
 सलहई—संज्ञा पुं० [ सं० सलहई ] (१) गन्ध, मूली, राई, प्याज आदि के पत्तों का अंगरेजी ढंग से निरके आदि में ढाखा हुआ अचार । (२) एक विनाश जाति के कन्द के पत्ते जो प्रायः खरवे

खाए जाते हैं और बहुत पाचक होते हैं। इसके कई भेद होते हैं ।  
 सलाम—संज्ञा पुं० [ य० ] प्रणाम करने की क्रिया । प्रणाम । बंदगी । आदाब ।  
 मुहा०—दूर से सलाम करना = किसी बुरी बखु के पास न जाना । किसी बुरे भावों से दूर रहना । जैसे,—उनको तो हम दूर ही से सलाम करते हैं। सलाम है = हम दूर रहना चाहते हैं । गज भाव । जैसे,—अगर उनका यही रंग बंग है, तो फिर हमारा तो यहाँ से उनको सलाम है। सलाम लेना = सलाम का बकाव देना । सलाम बखुल करना । सलाम देना = (१) सलाम करना । (२) सलाम कहलाना । सलाम करके चलना = किसी से नाराज होकर चचना । भयनज होकर विदा होना । सलाम फैरना = (१) नमाज खत्म करना । (२) किसी से भयसव होकर उसका प्रणाम न स्वीकार करना ।  
 यौ०—सलाम अलैक या सलाम अलैकम = सलाम । अभिवादन ।  
 सलाम काराई—संज्ञा स्त्री० [ य० सलाम + हिं० काराई ] (१) सलाम करने की क्रिया या भाव । (२) वह धन जो कन्या पक्षवाले मिलनी के समय घर पक्ष के लोगों को देते हैं । (मुसल०)  
 सलामत—वि० [ य० ] (१) स्वयं प्रकार की आपत्तियों से बचा हुआ । रक्षित । जैसे,—घर तक सलामत पहुँचें, तब समझना ।  
 यौ०—सही सलामत ।  
 (२) जीवन और स्वस्थ । तंदुरुल और जिंदा । जैसे,—आप सलामत रहें; हमें बहुतैरा मिला करेगा । (३) कायम । बरकतार । जैसे,—सिर सलामत रहे, रोपियाँ बहुत मिलेंगी ।  
 क्रि० वि०—कुशलपूर्वक । रक्षितयत से ।  
 संज्ञा स्त्री० सालिम या पूरा होने का भाव । अर्पणित और संपूर्ण होने का भाव ।  
 सलामती—संज्ञा स्त्री० [ य० सलामत + ई (प्रत्य०) ] (१) तंदुरुस्ती । स्वस्थता । (२) कुशल । होम । जैसे,—तुम तो हमेशा आपकी सलामती चाहते हैं ।  
 मुहा०—सलामती से = ईश्वर की कृपा से । परमात्मा के भयुद्ध से ।  
 विशेष—इस मुहा० का प्रयोग प्रायः शिष्टों और विशेषतः मुसलमान शिष्टों, कोई बात कहते समय, शुभ भावना से करते हैं । जैसे,—सलामती से उनके दो दो लकड़े हैं ।  
 (३) एक प्रकार का मोटा कपड़ा । (४) जीवन । जिंदगी ।  
 सलामी—संज्ञा स्त्री० [ य० सलाम + ई (प्रत्य०) ] (१) प्रणाम करने की क्रिया । सलाम करना । जैसे,—हूँडे की मणामी में १० मिले थे । (२) नश्वों में प्रणाम करने की क्रिया । सैनिकों को प्रणाम करने की प्रजाडी । सिवाहियागा सलाम । जैसे,—सिवाहियों की सलामी, तोरणाने की सलामी



(२) तोपों या बन्दूकों की बाढ़ जो किसी बड़े अधिकारी या माननीय व्यक्ति के आने पर दायी जाती है।  
**मुद्गा**—सलामी उतारना = किसी के स्वागतार्थ बन्दूकों या तोपों की बाढ़ दागना।  
**क्रि० प्र०**—दागना।—दागना।—होना।  
**सलाह**—संज्ञा स्त्री० [ भ० ] सम्मति। परामर्श। राय। मनाबरा।  
**क्रि० प्र०**—पूछना।—देना।—यताना।—लेना।  
**मुद्गा**—सलाह टहरना = राय पकी होना। सम्मति निश्चित होना।  
 जैसे,—सब लोगों की सलाह टहरी है कि कुछ दाय चलें।  
**सलाहकार**—संज्ञा पुं० [ भ० सलाह + कार (प्रत्य०) ] वह जो परामर्श देता हो। राय देनेवाला।  
**सलिल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जल। पानी।  
**सलिलकुंतल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शैबल। सिवार।  
**सलिलक्रिया**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रेत का तर्पण। जलाजलि। उदक क्रिया। वि० दे० “उदकक्रिया”।  
**सलिलचर**—वि० [ सं० ] जल में विचरण करनेवाला। जलचर।  
**सलिलज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमल। पद्म। (२) वह जो जल से उत्पन्न हो। जलजात।  
**सलिलजन्मा**—संज्ञा पुं० [ सं० सलिलजन्मन् ] (१) कमल। पद्म। (२) वह जो जल से उत्पन्न हो। जलजात।  
**सलिलद**—वि० [ सं० ] सलिल देनेवाला। जल देनेवाला। जो जल दे।  
 संज्ञा पुं० मेघ। बादल।  
**सलिलधर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मोघा। मुलक।  
**सलिलनिधि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जलनिधि। समुद्र। (२) सरसी छंद का एक नाम।  
**सलिलपति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल के स्वामी, वरुण। (२) समुद्र। सागर।  
**सलिलप्रिय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूअर। शूकर।  
**सलिलमुच**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मेघ। बादल।  
**सलिलयोनि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वल्गा। (२) वह वस्तु जो जल में उत्पन्न होती हो।  
**सलिलराज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल का स्वामी, वरुण। (२) समुद्र। सागर।  
**सलिलस्थलचर**—वि० [ सं० ] जो जल और स्थल दोनों में विचरण करता हो। जैसे,—हंस, साँप आदि।  
**सलिलजलि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मृतक के उद्देय से दी जानेवाली जलाजलि।  
**सलिलाकर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र। सागर।  
**सलिलाधिप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जल के अधिपतिता देवता, वरुण।  
**सलिलाणैय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र। सागर।  
**सलिलाणैय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र।

**सलिलाशन**—वि० [ सं० ] केवल जल पीकर रहनेवाला।  
**सलिलाशय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जलाशय। तालाब।  
**सलिलाहार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो केवल जल पीकर रहता हो। (२) केवल जल पीकर रहने की क्रिया।  
**सलिलेंद्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जल के अधिपतिता देवता, वरुण।  
**सलिलेंधन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यादवानल।  
**सलिलेचर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जल में रहनेवाला जीव। जलचर।  
**सलिलेश**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जल के अधिपतिता देवता, वरुण।  
**सलिलेशय**—वि० [ सं० ] जल में सोनेवाला। जलदायी।  
**सलिलोद्भव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमल। (२) जल में उत्पन्न होनेवाली कोई चीज। जैसे,—हाथ, घोंघा आदि।  
**सलिलोपजीवी**—वि० [ सं० सलिलोपजीविन् ] केवल जल पर निर्भर रहनेवाला। जलोपजीवी।  
**सलिलौका**—संज्ञा पुं० [ सं० सलिलौकस् ] जोक। जलीका।  
**सलिलौदन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पकाया हुआ अन्न।  
**सलीका**—संज्ञा पुं० [ भ० ] (१) काम करने का ठीक ठीक या अच्छा ढंग। शऊर। तमीज़। (२) हुनर। लियान्त। (३) चाल चलन। यत्न। (४) तहज़ीब। सम्यता।  
**क्रि० प्र०**—आना।—सिखाना।—सिखना।—होना।  
**सलीकामंद**—वि० [ भ० सलीका + मंद (प्रत्य०) ] (१) जिसे सलीका हो। शऊरदार। तमीज़दार। (२) हुनरमंद। (३) सम्य।  
**सलीखा**—संज्ञा पुं० [ ? ] तज। खकुर।  
**सलीता**—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का बहुत मोटा कपड़ा जो प्रायः मारकीन या गन्नी की तरह का होता है।  
**सलीपर**—संज्ञा पुं० [ भ० सलीपर ] (१) एक प्रकार का हलका जूता जिसके पहनने पर पंजा हँका रहता है और पड़ी सुकी रहती है। आराम पाई। सलपट जूती। (२) वह लकड़ी का तपता जो रेल की पटरियों के नीचे बिछाया रहता है। वि० दे० “स्लीपर”। (३) हाल जो पहिए पर चढ़ाई जाती है।  
**सलीमी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सलीमी ] एक प्रकार का कपड़ा।  
**सलीलगजगामी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शूकर का एक नाम।  
**सलीस**—वि० [ भ० ] (१) सहज। सुगम। आसान। (२) जिसका नल परावर हो। समतल। हमवार। (३) महाबरोदार और चल्ती हुई (भाषा)।  
**सलूक**—संज्ञा पुं० [ भ० ] (१) तौर। तरीका। ढंग। (क०) (२) बराबर। व्यवहार। आचरण। जैसे,—अपने साथियों के साथ उनका सलूक अच्छा नहीं होता। (३) मिलाप। मेल। सद्भाव। जैसे,—उनके घर में सब लोग सलूक से रहते हैं। (४) भलाई। मेकी। उपकार। जैसे,—जहाँ तक हो, गरीबों के साथ कुछ न कुछ सलूक करते रहना चाहिए।

सलूग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दाहपर संहिता के अनुसार एक प्रकार के बहुत छोटे कोड़े । (२) जूँ । कील ।

सलूमा-संज्ञा पुं० [ हिं० स+लुन=नमक ] एकी हुई सरकारी या भागी । (पथिम)  
वि० दे० "सलोना" ।

सलूनी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० स+लून=नमक ] वृक्षा शाक । बुक्रिका ।  
सलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] तैत्तिरीय संहिता के अनुसार एक आदित्य का नाम ।

सलौया-संज्ञा स्त्री० [ सं० शल्यी ] शल्यकी । सलई ।  
सलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नगर । शहर । (२) वह जो नगर में रहता हो । नागरिक ।

सलोतर-संज्ञा पुं० [ सं० शल्योत्री ] पशुओं विशेषतः घोड़ों की चिकित्सा का विज्ञान ।

सलोतर-संज्ञा पुं० [ सं० शल्योत्री ] पशुओं विशेषतः घोड़ों की चिकित्सा करनेवाला । चालिहोत्री ।

सलोना-वि० [ हिं० स+लून=नमक ] [ स्त्री० सल्योत्री ] (१) जिसमें नमक पड़ा हो । नमक मिला हुआ । नमकीन । (२) जिसमें नमक या सौंदर्य हो । रसीला । सुंदर । जैसे,—तोरे नेनों धवाम सल्येने, जादू भरी कि क्यारी । (गीत) ।

सलोनापन-संज्ञा पुं० [ हिं० सलोना+पनः(प्रत्य०) ] सलोना होने का भाव ।

सलोना-संज्ञा पुं० [ सं० शल्यी ? ] हिंदुओं का एक स्वीकार जो श्रावण मास में पूर्णिमा के दिन पड़ता है । इस दिन लीय राखी बाँधते और बँधपाते हैं । रक्षा संघन । राखी पूजो ।

सल्ल-संज्ञा पुं० [ सं० सल्ल ] सरल वृक्ष । सरलद्रुम ।  
सल्लकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शल्यी ] (१) शल्यकी वृक्ष । सलई । (२) कुंदुक । शल्यी निर्यास ।

सल्लक्ष्मी-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।  
सल्लम-संज्ञा पुं० स्त्री० [ देस० ] एक प्रकार का मोटा कर्पड़ा । गजो । गाढ़ा ।

सल्लाह-संज्ञा स्त्री० दे० "सलाह" ।  
सल्ली-संज्ञा स्त्री० [ सं० शल्यी ] शल्यकी । सलई ।  
सल्ल-वि० [ देस० ] मूर्ख । बेवकूफ ।

सल्लो पुं० [ हिं० मल्लो ] चमड़े की डोरी ।  
सल्य-संज्ञा पुं० दे० "शल्य" ।  
सल्यशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वृक्ष ।

सल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल । पानी । (२) उपपरस । उपपद्व । (३) पक्ष । (४) सूर्य । (५) संज्ञान । भौलाद । (६) चंद्रमा ।

वि० अज्ञ । अनार्यी ।  
सल संज्ञा पुं० दे० "सल" ।  
सलगात-संज्ञा स्त्री० दे० "सौगात" ।

सलज-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पर्योरी । भ्रमगन्या ।  
सलत-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत" ।

सलरस-वि० [ सं० ] घबरे के सहित । जिसके साथ घबरा हो । जैसे,—दान में सलरस गौ दी जाती है ।

सलन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रसव । घबरा जनना । (२) द्योनाक वृक्ष । सोनापाटा । (३) मज्जलान । (४) सोमपान । (५) यज्ञ । (६) चंद्रमा । (७) पुराणापुराण श्रुत्य के एक पुत्र का नाम । (८) वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम । (९) रोहित मन्वंतर के सप्तपिंशों में से एक ऋषि का नाम । (१०) स्वार्थ-श्रुत मनु के एक पुत्र का नाम । (११) अग्नि का एक नाम ।

सलनकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० सलनकर्मन् ] यज्ञकार्य ।  
सलनमुष्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ का आरंभ ।

सलनिक-वि० [ सं० ] सलन संबंधी । सलन का ।  
सलपरक-वि० [ सं० ] समान अवस्थावाले । बराबर की उमरवाले ।  
सलय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सल्यी । सहचरी । सहेली ।

सल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल । (२) शिव का एक नाम ।  
सल्यरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] पठानी लोथ । सफेद लोथ ।  
सल्य-वि० [ सं० ] (१) समान । सतन । (२) समान वर्ण का । समान जाति का ।

सल्य-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मूर्य की पत्नी छाया का एक नाम ।  
सल्यहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] निसोष । त्रिष्टु ।  
सल्यग-संज्ञा पुं० दे० "स्वगि" ।

सल्य-संज्ञा स्त्री० [ सं० स+ल्य ] चौथाई सहित । संपूर्ण और एक का चतुर्थांश । चतुर्थांश सहित । जैसे,—सवा चार; अर्थात् चार और एक का चतुर्थांश=५ ।

सल्य-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सवा+ई(प्रत्य०) ] (१) ऋण-का एक प्रकार जिसमें मूल धन का चतुर्थांश व्याज में देना पड़ता है । (२) जयपुर के महाराजाओं की एक उपाधि । (३) मूर्य यंत्र संबंधी एक प्रकार का रोग ।  
वि० एक और चौथाई । सवा ।

सल्यगी-संज्ञा पुं० [ सं० ? ] सुहागा । टंकण द्वार ।  
सल्य-संज्ञा पुं० दे० "स्वाद" ।

सल्यविच्छेद-वि० [ हिं० सवाद+रु(प्रत्य०) ] खाने में जिसका स्वाद अच्छा हो । स्वाद देनेवाला । स्वादिष्ट ।  
सल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुभ कृत्य का फल जो स्वर्ग में मिलेगा । पुण्य ।

मुहा०—सल्य कमाना = ऐसा काम करना जिसमें पुण्य हो । पुण्य-कार्य करना ।  
(२) मलाई । नेकी ।

सल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो घोड़े पर चढ़ा हो । अथा-रोही । (२) अथातोही सैनिक । रिसाले-का सियाही ।  
(३) वह जो किसी चीज पर चढ़ा हो ।

वि० किसी चीज पर चढ़ा या बैठा हुआ। जैसे,—वे गाड़ी पर सवार होकर घूमने निकलते हैं।

सवारना—कि० रा० दे० "सवारना"।

सवारी—संज्ञा स्त्री० [ पा० ] (१) किसी चीज पर विशेषतः चलने के लिये चढ़ने की क्रिया। (२) वह चीज जिस पर यात्रा आदि के लिये चढ़ते हैं। सवार होने की वस्तु। चढ़ने की चीज। जैसे,—जोड़ा, हाथी, मोटर, रेल आदि।

मुहा०—सवारी लेना = सवारी के काम में लाना। सवार होना।

(२) वह व्यक्ति जो सवार हो। जैसे,—एककेवाले चार आने की सवारी माँगते हैं। (३) जलस। जैसे,—राजा साहब की सवारी बहुत धूम से निकली थी। (४) कुदती में अपने विपक्षी को जमीन पर गिराकर उसकी पीठ पर बैठना और उसी दशा में उसे चित्त करने का प्रयत्न करना।

क्रि० प्र०—कसना।

(६) संभोग या प्रसंग के लिये स्त्री पर चढ़ने की क्रिया। (शास्त्रारू)

क्रि० प्र०—कसना।—गाँटना।

सवाल—संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) पूछने की क्रिया। (२) वह जो कुछ पूछा जाय। प्रश्न। (३) दरमास। माँग। याचना।

मुहा०—(किसी पर) सवाल देना = (किसी पर) नालिसा करना। करियाद करना।

(४) विनती। निवेदन। प्रार्थना। (५) मिश्रा की याचना। (६) गणित का प्रश्न जो उत्तर निकालने के लिये दिया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—देना।

सवाल जवाब—संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) यहस। वादविवाद। जैसे,—स्व मातों में सवाल जवाब मत किया करो; जो कहा जाय, वह किया करो। (२) तकरार। हुजुत। झगड़ा।

सविकल्प—वि० [ सं० ] (१) विकल्प सहित। संदेह युक्त। सन्दिग्ध। (२) जो किसी विषय के दोनों पक्षों या मतों आदि को, कुछ निर्णय न कर सकने के कारण, मानता हो।

संज्ञा पुं० (१) दो प्रकार की समाधियों में से एक प्रकार की समाधि। यह समाधि जो किसी आलबंन की सहायता से होती है। (२) वेदांत के अनुसार शाता और शैव के भेद का ज्ञान।

सविकार—संज्ञा पुं० [ सं० ] चार प्रकार की सविकल्प समाधियों में से एक प्रकार की समाधि।

सविद्यालय—संज्ञा पुं० [ सं० ] नाट्यशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का पवित्रालय या मञ्जक।

सवितर्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] चार प्रकार की सविकल्प समाधियों में से एक प्रकार की समाधि।

सविता—संज्ञा पुं० [ सं० सवित्र ] (१) सूर्य। दिवाकर। (२) धारह की संख्या। (३) आक। अर्क। मदार।

सवितातनय—संज्ञा पुं० [ सं० सवित्रतनय ] सूर्य के पुत्र, हिरण्यपाणि।

सवितादेवत—संज्ञा पुं० [ सं० सवित्रदेवत ] हस्त नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता देवता सूर्य माने जाते हैं।

सवितापुत्र—संज्ञा पुं० [ सं० सवित्रपुत्र ] सूर्य के पुत्र, हिरण्यपाणि।

सविताफल—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार मेरु के उत्तर के एक पर्वत का नाम।

सवितासुत—संज्ञा पुं० [ सं० सवित्रसुत ] सूर्य के पुत्र, धनीदधर।

सवित्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रसव करना। लड्डका जन्माना।

सवित्रिय—वि० [ सं० ] सूर्य संबंधी। सविता या सूर्य का।

सवित्री—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रसव करनेवाली, धाई। धात्री। धाई। (२) प्रसव करनेवाली, माता। माँ। (३) गौ।

सविद्य—वि० [ सं० ] विद्वान्। पंडित।

सविद्य—वि० [ सं० ] निकट। पास। समीप।

सविमाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] नलों या हृदयिकासिनी नामक गंध द्रव्य।

सविभास—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य का एक नाम।

सविहास—वि० [ सं० ] भोग विलास करनेवाला। विलासी।

सवरीशर्षा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सतावर। शतावरी।

सवेरा—संज्ञा पुं० [ हि० स+सं० वेरा ] (१) सूर्य निकलने के लगभग का समय। प्रातःकाल। सुबह। (२) निश्चित समय के पूर्व का समय। (क्र०)

सवेश—वि० [ सं० ] निकट। समीप।

सवेशीय—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम।

सवेया—संज्ञा पुं० [ हि० सवा + ऐया (प्रत्य०) ] (१) सोलने का एक यांत्र जो सया सेर का होता है। (२) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण और एक गुरु होता है। इसे मालिनी, और दिया भी कहते हैं।

शियेय—दस अर्थ में कुछ लोग इसे खीलिण भी धोलते हैं। (३) वह पहाड़ा जिसमें एक, दो, तीन आदि संख्याओं का सवाया रहता है। (४) दे० "सवाही"।

सव्य—वि० [ सं० ] (१) वाम। बायाँ। (२) दक्षिण। दाहिना।

शियेय—सव्य शब्द का धाम और दक्षिण दोनों अर्थ होता है। पर साधारणतः यह वाम के ही अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(३) प्रतिशूल। विशुद्ध। खिलाफ।

संज्ञा पुं० (१) यज्ञोपवीत। (२) चंद्र या सूर्य ग्रहण के दस प्रकार के प्रासों में एक प्रकार का प्रांस। (३) अंगित के पुत्र का नाम जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा थे। कहते हैं कि

बंगिता के तपस्या करने पर इंद्र ने उनके घर पुत्र रूप में जन्म  
प्रदण किया था, गिनका नाम सम्यं पदा। (४) विष्णु।

सम्यञ्चारी—संज्ञा पुं० [ सं० सम्यञ्चारी ] (१) अर्जुन का एक  
नाम। वि० दे० "सम्यञ्चारी"। (२) अर्जुन वृक्ष। कौह  
वृक्ष।

सम्यञ्चारी—संज्ञा स्त्री० [ सं० सम्यञ्चारी ] अर्जुन।

विशेष—कहते हैं कि अर्जुन द्वाहिने हाथ से भी तीर चला सकते  
थे और बाणों हाथ से भी; इसी लिये उनका यह नाम पदा।  
सम्येषु—संज्ञा पुं० [ सं० ] सारथी।

सम्येषुशुक्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] आँख का एक रोग जिसमें आँख  
की पुतली पर मूढ़ से क्रिय हुए छोटे छेद के समान गहरी  
फुली पड़ती है और आँखों से गरम आँसू निकलते हैं।

सम्यङ्क—वि० [ सं० ] (१) जिसे संका हो। संका युक्त। शक्ति।  
(२) भयभीत। डरा हुआ। (३) भयकारी। भयानक। (४)  
संका उत्पन्न करनेवाला। भ्रामक।

सम्यङ्कना—संज्ञा—कि० प्र० [ सं० सम्यङ्कना (प्रत्य०) ] (१) संका  
युक्त होना। शक्ति होना। (२) भयभीत होना। डरना।

सम्यङ्क्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] रीछ। भाद।

सम्यङ्क्यमय—संज्ञा पुं० [ सं० ] मयण रोग का एक भेद।

विशेष—कौट आदि के चुभ जाने से यह मय उत्पन्न होता है।  
इसमें विद्वह्यान में सुजन होती है और वह पक जाता है।

सम्यङ्क्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जामदग्नी। हाथी शूरी।

सम्यङ्की—संज्ञा पुं० [ सं० ] काञ्च जीरा। कृष्ण जीरा।

सम्यङ्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] अदरक। आदो।

सम्यङ्कपाक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का नेत्र रोग। इस रोग  
में आँखों में से आँसू निकलते हैं और उनमें खुजली तथा  
शोथ होता है। आँखें लाल भी हो जाती हैं।

सम्यङ्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] राशि। चंद्रमा। राशि।

सम्यङ्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] शरक। खरगोद।

सम्यङ्क्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गर्भकनी स्त्री। गनिगी।

सम्यङ्कना—कि० प्र० [ सं० ] सत्य। सत्कला। सितकला।

सम्यङ्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] शता। (१) खरगोद। शरक। (२)  
शिरा।

सम्यङ्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] राशि। राशि। चंद्रमा।

सम्यङ्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] वदा शाल। सर्ज वृक्ष।

सम्यङ्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] राशि। राशि। चंद्रमा।

सम्यङ्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] राशि। राशि। चंद्रमा।

सम्यङ्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्र। जिसके पुत्री या पुत्र से ब्याह  
हुमा हो। पति या पत्नी का पिता। सम्यु। वि० दे०  
"सम्यु"।

सम्यङ्क—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सम्यङ्क्य। (१) सम्यु का पर। पति

या पत्नी के पिता का पर। (२) जेल खाना। चंदी गृह।  
(चंद्रमा)।

सम्यङ्क—वि० [ सं० ] स्वस्थ। [ स्त्री० ] सगी। (१) जो महंगा न हो।  
जिसका मूल्य साधारण से कुछ कम हो। थोड़े मूल्य का।

जैसे,—उन्हीं यह मकान बहुत सस्ता मिल गया। (२)

जिसका मान बहुत उतर गया हो। जैसे,—आजकल सोना  
सस्ता हो गया है।

यौ०—सस्ता समय = ऐसा समय जब कि सब चीजें सस्ती हों।

सुहा०—सस्ता लगना = काम दाम पर बेचना। दाम या भाव कम  
कर देना। सस्ते छटना = जिस काम में अधिक व्यय, परिश्रम या  
कष्ट भादि होने की हो, वह काम थोड़े व्यय, परिश्रम या कष्ट में हो  
जाना।

(३) जो सहज में प्राप्त हो सके। जिसका विशेष आदर न  
हो। (४) घटिया। साधारण। मामूली। (क०)

सस्ताना—कि० प्र० [ हि० सस्ता + ना (प्रत्य०) ] किसी वस्तु का  
कम दाम पर बिकना। सस्ता हो जाना।

कि० सं० किसी चीज का भाव सस्ता करना। सस्ते दामों  
पर बेचना।

सस्ती—संज्ञा स्त्री० [ हि० सस्ता + ई (प्रत्य०) ] (१) सस्ता होने का  
भाव। सस्तापन। अल्पमूल्यता। महँगी का अभाव। (२)

यह समय जब कि सब चीजें सस्ते दाम पर मिलाने करती  
हों। जैसे,—सस्ती में यही कपड़ा तीन आने गज मिला  
करता था।

सस्तीक—वि० [ सं० ] जिसके साथ स्त्री हो। स्त्री या पत्नी के  
सहित। जैसे,—वे सस्तीक यहाँ आनेवाले हैं।

सस्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धान्य। (२) दाह। (३) गुण।  
(४) वृक्षों का फल। (५) दे० "शस्य"।

विशेष—"सस्य" के यौगिक आदि शब्दों के लिये दे०  
"शस्य" के यौगिक शब्द।

सस्यक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार  
की मणि। (२) तलवार। (३) शालि। (४) साधु।

सस्यमारी—संज्ञा पुं० [ सं० ] सम्यञ्चारी। शूना। पृहा।

वि० शस्य या अनाज का नाश करनेवाला।

सस्यसंघर—संज्ञा पुं० [ सं० ] शाल। साहू।

सस्यसंघर—संज्ञा पुं० [ सं० ] सस्यमर। (१) शालकी। शालकी।  
(२) शाल का वृक्ष।

सस्यसंघर—संज्ञा पुं० [ सं० ] सस्यमर। शाल या अश्वत्थ  
वृक्ष। साधु।

सस्य—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अस्ती। गनिकारिका। गनियले।

सहडुक्—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मांस का रस या शोरबा।

विशेष—यकरे आदि पशुओं के मांस भरे बर्तनों के टुकड़ों को  
चोकर घी में हाँग आदि का तड़का देकर पीसी अथ में

भून ले। अन्तर उसे छानकर पानी, नमक, मसाला आदि ढाले और पक जाने पर उतार ले। भावप्रकाश में यह शोरवा शुकुवर्द्धक, मलकारक, रुचिकर, अग्निप्रदीपक, त्रिदोष नाशिक के लिये श्रेष्ठ और धातुपोषक बनाना गया है।

सह-अर्थ्य [ सं. ] सहित । समेत ।

वि० [ सं० ] (१) विद्यमान । उपस्थित । सीगूढ़ । (२) सहिष्णु । सहनशील । (३) समर्थ । योग्य ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साध्यता । समानता । पराधरी । (२) सामर्थ्य । बल । शक्ति । (३) अगहन का महीना । (४) महादेव का एक नाम । (५) रेह का नोन । पांशु छवण ।

संज्ञा स्त्री० समृद्धि ।

सहकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुगमि युक्त पदार्थ । (२) आम का पेड़ । (३) कलमी आम । (४) सहायक । मददगार । (५) साथ मिलकर काम करना । सहयोग ।

सहकारता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सहायता । मदद ।

सहकारभंजिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राचीन काल की एक प्रकार की शीड़ा या अभिनय ।

सहकारिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सहकारी होने का भाव । सहायक होने का भाव । (२) सहायता । मदद ।

सहकारी-संज्ञा पुं० [ सं० सहकारिन् ] । स्त्री० सहकारिणी ] (१) साथ काम करनेवाला । साथी । सहयोगी । (२) सहायक । मददगार । सहायता करनेवाला ।

सहगमन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साथ जाने की क्रिया । (२) पति के शव के साथ पत्नी के सती होने का स्थापार । सती होने की क्रिया ।

सहगामिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह स्त्री जो पति के शव के साथ सती हो जाय । पति की मृत्यु पर उसके साथ जल मरनेवाली स्त्री । (२) स्त्री । पत्नी । सहचरी । साथिन ।

सहगामी-संज्ञा पुं० [ सं० सहगामिन ] । स्त्री० सहगामिनी ] (१) साथ चलनेवाला । साथी । (२) अनुकरण करनेवाला । अनुयायी ।

सहगौनल-संज्ञा पुं० दे० "सहगमन" ।

सहचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्री० सहचरी ] (१) वह जो साथ चलता हो । साथ चलनेवाला । साथी । हमराही । (२) सेवक । दास । शूच्य । नौकर । (३) दोस्त । सखा । मित्र । (४) कटसरैया ।

सहचरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नीली कटसरैया ।

सहचराद्य तैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का तेल ।

विशेष—यह तैल बनाने के लिये नीले फूलवाली कटसरैया, घमास, कथा, जामुन की छाल, आम की छाल, मुलेठी, कमलगुहा सब एक एक टके भर, हेते हैं और उनका, चूर्ण बनाकर १६ सेर जल में ढालकर औद्यते हैं। जब चौथाई रह

जाता है, तब उसे तेल या बकरी के दूध में पकाते हैं ।

कहते हैं कि इसके सेवन से दाँत मजबूत हो जाते हैं ।

सहचरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सहचर का स्त्री रूप । (२) पत्नी । भाव्या । जोरू । (३) सखी । सहोद्री ।

सहचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सदा साथ रहता हो । सहचर । संगी । साथी । (२) साथ । संग । सोहबत ।

सहचार उपाधि लक्षण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की लक्षण जिसमें जड़ सहचारी के कटने से चेतन सहचारी का बोध होता है । जैसे,—“गद्दी को नमस्कार करो” यहाँ गद्दी शब्द से गद्दी पर बैठनेवाले का बोध होता है ।

सहचारिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) साथ में रहनेवाली । सहचरी । सखी (२) पत्नी । स्त्री । जोरू ।

सहचारिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सहचारी होने का भाव ।

सहचारित्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] सहचारी होने का भाव ।

सहचारी-संज्ञा पुं० [ सं० सहचारिन् ] । स्त्री० सहचारिणी ] (१) संगी । सहचर । साथी । (२) सेवक । नौकर ।

सहज-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्री० सहजा ] (१) सहोदर भाई । सगा भाई । एक माँ का जाया भाई । (२) निसर्ग । स्वभाव । (३) ज्योतिष में जन्म छन्द से तृतीय स्थान । भाइयों और बहनों आदि का विचार इसी स्थान को देखकर किया जाता है ।

वि० (१) स्वाभाविक । स्वभावोत्पन्न । प्राकृतिक । जैसे,—काटना तो सौँपों का सहज स्वभाव है । (२) साधारण । (३) सरल । सुगम । आसान । जैसे,—जब तुम से हटना सहज काम भी नहीं हो सकता, तब तुम और क्या करोगे । (४) साथ उत्पन्न होनेवाला ।

सहजकृति-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोना । स्वर्ण ।

सहजबलैव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] नष्टसकता रोग का एक भेद । वह नष्टसकता जो जन्म से ही हो ।

सहजता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सहज होने का भाव । (२) सरलता । स्वाभाविकता ।

सहजन-संज्ञा पुं० दे० "सहजिन" ।

सहजनमा-वि० [ सं० सहज-गन ] (१) एक गर्भ से एक साथ ही होनेवाली दो संतानें । यमज । यमल । जोड़ा । (२) एक ही गर्भ से उत्पन्न । सहोदर । सगा (भाई आदि) ।

सहजन्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक-यक्ष का नाम ।

सहजन्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अप्सरा का नाम ।

सहज पंथ-संज्ञा पुं० [ सं० सहज + पंथ ] गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का एक निम्न वर्ग । इस सम्प्रदाय के प्रवर्तकों के मतानुसार भजन साधन के लिये पहले एक एक नववैवत संघर्ष सुंदर परकीया रमणी की भावदयकता होती है । प्राद रसिक भक्त या पुरु से सम्यक रूप से उपदेश लेकर उस नायिका के प्रति तन मन अर्पण कर साधन भजन करने से अविच्छिन्न प्रसन्न

रसिक विरोधनि श्रीहृण्य की प्राप्ति होती है। सहजियों का कहना है कि इस प्रकार की लीला महाप्रयु सर्वसाधारण को न दिखाकर गुप्त रूप से राय रामानन्द और स्वरूप दामोदर आदि कई मार्मिक भक्तों को बता गए हैं।

**सहजा मित्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वाभाविक मित्र। शास्त्र में भावना, मोक्षोपाय आदि और कुपरो भाई सहजमित्र और वैमात्रेय तथा चचेरे भाई सहज शत्रु बसाए गए हैं। भावने आदि से संपत्ति का कोई संबंध नहीं होता, इसी से ये सहज मित्र हैं। परंतु चचेरे भाई संपत्ति के लिये झगड़ा कर सकते हैं, इससे वे सहज शत्रु कहे गए हैं।

**सहज शत्रु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] शास्त्रों के अनुसार वैमात्रेय या चचेरा भाई जो संपत्ति के लिये झगड़ा कर सकता है। वि० दे० "सहज मित्र"।

**सहजात**-वि० [ सं० ] (१) सहोदर। (२) यमज।

**सहजाधिनाथ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष के अनुसार जन्म कुंडली के तीसरे या सहज स्थान का अधिपति ग्रह।

**सहजानि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पत्नी। स्त्री। जोरू।

**सहजारि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] शास्त्रों के अनुसार वैमात्रेय या चचेरा भाई जो समय पहने पर संपत्ति आदि के लिये झगड़ा कर सकता है। सहज शत्रु।

**सहजार्थ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह अर्थ या यवासीर जिसके मस्ते फटोरे, पीले रंग के और अंदर की ओर मुँहवाले हैं।

**सहजिया**-संज्ञा पुं० [ हि० सहज पंथ ] यह जो सहज पंथ का अनुयायी हो। सहज पंथ को माननेवाला। वि० दे० "सहजपंथ"।

**सहजीवी**-वि० [ सं० सहज वित् ] एक साथ जीवन धारण करनेवाले। साथ रहनेवाले।

**सहजेंद्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म कुंडली के तीसरे या सहज स्थान के अधिपति ग्रह।

**सहज**-संज्ञा पुं० दे० "शहज"।

**सहज महज**-संज्ञा पुं० दे० "श्रावलि"।

**सहजरा**-संज्ञा पुं० [ सं० शहजराह ] विष पापदा। पपटक।

**सहजाना**-संज्ञा पुं० [ हि० सुमताना ] धर्म विद्वाना। धकपट्ट धर करना। विधाम करना। आराम करना। सुसत्ताना।

उ०—सहजत कहीं नरे ये जग में जिन मोत के काज सीस धरे।—लक्ष्मणसिंह।

**सहजत**-संज्ञा पुं० दे० "शहजत"।

**सहज्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) "सह" का भाव। (२) एक होने का भाव। एकता। (३) मेल जोल।

**सहजपा**-संज्ञा स्त्री० दे० "सहजै"।

**सहजान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत से देवताओं के उद्देश्य से एक साथ ही या एक में किया जानेवाला दान।

**सहजानी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० मंजान ] निशानी। पहचान। चिह्न।

उ०—सार्गपाणि मुँदि मुगनैनी मणि मुख मॉह समानी।

घरण चापि महि प्रगट करी विय रोप शीश सहजानी।—सूर

**सहजै**-संज्ञा स्त्री० [ सं० सहजै ] ध्रुप जाति की एक वनीपथि जो पहाड़ी भूमि में अधिक उपजती है। यह तीन चार फुट ऊँची होती है। इसके पत्ते बहुत पौं के पत्तों के समान होते हैं। वर्षा ऋतु में यह उगती है। ध्वने के साथ साथ इसके पौं छोटे छोटे होते जाते हैं। पत्तों की जड़ में फूलों की कलियाँ निकलती हैं। ये फूल दरिबारे के फूलों की भाँति पीले रंग के होते हैं। इसके पौं चार प्रकार के पाए जाते हैं।

**सहजैय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा पांडु के पाँच पुत्रों में से सब से छोटे पुत्र। कहते हैं कि माद्री के गर्भ और अधिनी-कुमारों के औरस से इनका जन्म हुआ था। द्रौपदी के गर्भ से इनमें सुतसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ये बड़े विद्वान् थे। वि० दे० "पांडु"। (२) जरासंध का पुत्र। महाभारत के युद्ध में इसने पांडवों के विपक्षियों का साथ दिया था। यह अभिमन्यु के हाथ से मारा गया था। (३) हरिवंश के अनुसार हर्यंश के एक पुत्र का नाम।

**सहजैया**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सहजै। पीतपुष्पी। वि० दे० "सहजै"। (२) बरियारा। बला। (३) दंड़ोपल। (४) अनंतमूल। शारिवा। (५) सरहँटी। सपंशी। (६) त्रियंगु। (७) नील। (८) सोनपली नामक वनस्पति जो भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में पाई जाती है। यह ध्रुप जाति की वनस्पति है। इसकी ऊँचाई दो फुट तक होती है। इसकी दंडी के नीचे के भाग में पत्ते नहीं होते। पत्ते दो से चार इंच तक चौड़े, गोल और सिरे पर कुछ तिकोने होते हैं। इनकी डंडियाँ १-२ इंच लंबी होती हैं। फूल छोटे छोटे होते हैं। यह औषध के काम में आती है। (९) भागवत के अनुसार वैष्णव की कन्या और यमुदेव की पत्नी का नाम।

**सहजैयी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सहजै। पीतपुष्पी। वि० दे० "सहजै"। (२) सपंशी। सरहँटी। (३) महान्दीली। (४) त्रियंगु।

**सहजैयिगण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सहजै, बला, दानमूली, दातावर, कुमारी, गुडुच, सिही और व्याघ्री आदि ओषधियों का समूह जिसे देवप्रतिमाओं को दान कराया जाता है।

**सहधर्मचरी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्त्री। पत्नी। जोरू।

**सहधर्मचारिणी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्त्री। पत्नी। भार्या।

**सहज**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सहने की क्रिया। बरदायत करना।

(२) क्षमा। क्षान्ति। तितिक्षा। (३) दे० "सहजशील"।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मरत के शीघ्र में या सामने का

सुला छोड़ा हुआ भाग। आँगन। चौक। (२) एक प्रकार का बटिना रेतर्मा कपड़ा। (३) एक प्रकार का थोटा, गफ, चिकना सूती कपड़ा जो समाहर में अच्छा बन्दता है। गाथा।  
**सहनक-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (१) एक प्रकार की छिछली रकामी जिसका व्यवहार प्रायः मुसलमान लोग करते हैं। तयक। (२) बीबी फातिमा की निमाज या 'फातिहा'। (मुसल०)  
**सहनसंहार-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (१) कोप। खगाना। निधि। (२) धन राशि। दीलत। उ०—रागिन दिने बसन मनि भूपण रागा सहन भँडार। मागध रूत भाट नट जाचक जहँ जहँ करहिं क्यार।—तुलसी।

**सहनशील-वि० [ सं० ]** (१) जिसका स्वभाव सहन करने का हो। जो सरलता से सह लेता हो। धरदात करनेवाला। सहिष्णु। (२) संतोषी। सम करनेवाला।

**सहनशीलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]** (१) सहनशील होने का भाव। (२) संतोष। सम।

**सहना-क्रि० म० [ सं० ]** (१) धरदात करना। झेलना। भोगना। जैसे,—(क) अपने पाप के कारण ही तुम इतना दुःख सहते हो। (ख) अब तो यह कष्ट नहीं सहा जाता। (ग) तुम क्यों उसके छिपे बन्दगी सहते हो? (२) परिणाम भोगना। अपने ऊपर लेना। फल भोगना। जैसे,—इस काम में जो घाटा होगा, वह सब तुम्हें सहना पड़ेगा। (३) मोक्ष धरदात करना। भार वहन करना। जैसे,—भला यह लक्ष्मी इतना मोक्ष कहाँ से सहेगी।

**संयो० क्रि०—जाना।—लेना।**

**सहनाई-संज्ञा स्त्री० दे० "सहनाई"।**

**सहनायन-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]** सहनाई + यान (प्रत्य०)। सहनाई बजानेवाली स्त्री। उ०—नटनी डोमिन दारिन सहनायन परकार। निरतत नाद विनोद सो विहसत खेलत नार।—जायसी।

**सहनीय-वि० [ सं० ]** सहन करने के योग्य। जो सहा जा सके। सहा।

**सहपति-संज्ञा पुं० [ सं० ]** दम्पती का एक नाम।

**सहपाठी-संज्ञा पुं० [ सं० ]** सहपाठिन। वह जो साथ में पढ़ा हो। वह जिसने साथ में विद्या का अध्ययन किया हो। सहपाथी।

**सहपिंड-संज्ञा पुं० [ सं० ]** सहपिंड नाम की क्रिया। वि० दे० "सपिंडी"।

**सहभाषी-संज्ञा पुं० [ सं० ]** सहभाषिन। (१) वह जो सहायता करता हो। सहायक। मददगार। (२) सहोदर। (३) वह जो साथ रहता हो। सखा। सहचर।

**सहभू-वि० [ सं० ]** एक साथ उत्पन्न। सहज।

**सहभोजन-संज्ञा पुं० [ सं० ]** एक साथ बैठकर भोजन करना। साथ पाना।

**सहभोजी-संज्ञा पुं० [ सं० ]** सहभोजिन। वे जो एक साथ बैठकर खाते हैं। साथ भोजन करनेवाले।

**सहम-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (१) दर। भय। पीक।

**सुधा०—सहम** घड़ना = दर होना। भय होना।

(२) संकोच। शिवाज। मुलाहज।

**सहमत-वि० [ सं० ]** जिसका मत दूसरे के साथ मिलता हो। एक मन का। जैसे,—मैं इस विषय में आप से सहमत हूँ। कि यह पढ़ा भारी छाटा है।

**सहमना-क्रि० म० [ सं० ]** सहम + ना (प्रत्य०)। भय पाना। भयभीत होना। करना। उ०—सहमी समा सकल जनक-मपु विरल राम ललित औदिक असीस आजा दई है।—तुलसी।

**संयो० क्रि०—जाना।—पढ़ना।**

**सहमरण-संज्ञा पुं० [ सं० ]** स्त्री का पति के साथ मरने का प्यार। सती होने की क्रिया।

**सहमान-संज्ञा पुं० [ सं० ]** ईश्वर का एक नाम।

**सहमाना-क्रि० वा० [ हि० ]** सहमाना या सक०। किसी को सहमने में प्रवृत्त करना। भयभीत करना। डराना।

**संयो० क्रि०—देना।**

**सहमृता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]** वह स्त्री जो अपने मृत पति के साथ जल मरे। सहमरण करनेवाली स्त्री। सती।

**सहयोग-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (१) साथ मिलकर काम करने का भाव। सहयोगी होने का भाव। (२) साथ। संग। (३) मदद। सहायता। (४) आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सरकार के साथ मिलकर काम करने, उसकी काउन्सिलों आदि में सम्मिलित होने और उसके पद आदि ग्रहण करने का सिद्धांत।

**सहयोगी-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (१) सहायक। मददगार। (२) वह जो किसी के साथ मिलकर कोई काम करता हो। सहयोग करनेवाला। साथ काम करनेवाला। (३) हम उमर। समवयस्क। (४) वह जो किसी के साथ एक ही समय में वर्तमान हो। समकालीन। (५) आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में स्वयं कामों में सरकार के साथ मिले रहने, उसकी काउन्सिलों आदि में सम्मिलित होने और उसके पद तथा उपाधियाँ आदि ग्रहण करनेवाला व्यक्ति।

**सहर-संज्ञा पुं० [ सं० ]** प्रातः काळ। सवेरा।

**संज्ञा पुं० [ सं० ]** सहर।

**संज्ञा पुं० दे० "सहर"।**

**संज्ञा पुं० दे० "सिहोर" (प्रभ)।**

**क्रि० वि० [ हि० ]** सहना = सहना या सहना = सहना।

धीरे,। संद्र गति, से। एक एक कर। जैसे,— गुम तो सय काम सहर सहर कर करते हो।

**सहरगदी**—संज्ञा स्त्री० [ अ० सहर + ग०, गद् ] वह भोजन जो किसी दिन निजंठ मत करने के पहले बहुत तड़के या कुछ रात रहे ही किया जाता है। सहरा।

**विशेष**—इस प्रकार का भोजन प्रायः मुसलमान लोग रमजान के दिनों में रोजा रखने पर करते हैं। वे प्रायः ३ बजे रात को उठकर कुछ भोजन कर लेते हैं; और तब दिन भर निजंठ और निराहार रहते हैं। दिवुओं में कियार्थ प्रायः हरतालिका वीज का मत रखने से पहले भी इसी प्रकार बहुत तड़के उठकर भोजन कर लिया करती हैं।

कि० प्र०—जाना।

**सहरना**—कि० प्र० दे० "सिहरना"।

**सहरसा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पने मूँग। जंगली मूँग। सुद्रपर्णी।

**सहरा**—संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) जंगल। वन। भरप्य। (२) सिपाह-गोदा नामक जंतु।

**सहराना**—कि० सं० [ हि० सहराना ] धीरे धीरे हाथ फेरना। सहराना। मलना। उ०—बाप बटानि कोगाह जिबायत बाधिन व सुरभी सुत चौपै। न्योरिन को सहरावत सौपे अहारनि दै बेइहै प्रतिपापै।—गुमान।

कि० प्र० [ हि० सहराना ] धर से कौपना।

**सहरि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य। (२) वृष। सौंड़।

**सहरिया**—संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का गेहूँ।

**सहरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० राहरी ] सफरी मछली। दाफरी। उ०—पात भरी सहरी सखल सुख वारे वारे केवट की जाति क्यु वेद न पवाइहीं। सब परिवार मेरो याही खगे राजा जू ही दीन विचहीन कैसे दूसरी गवाइहीं।—तुलसी।

**संज्ञा स्त्री० [ अ० ]** मत के दिन बहुत तड़के किया जानेवाला भोजन। सहरगदी। वि० दे० "सहरगदी"।

**सहदण्ड**—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा के एक धोड़े का नाम।

**सहद**—वि० [ अ० वि० सं० सरल ] जो कठिन न हो। सरल। सहन। आसान। उ०—दृढ़ सहल जन सहल महल जागल चारिउ श्रम जाम सो। देखल दोष न दीसत रीसत सुनि वेदम गुनेप्राम सो।—तुलसी।

**सहलगरी**—संज्ञा पुं० [ हि० साथ + लगना ] वह जो साथ हो ले। रास्ते का साथी। हमराही।

**सहलाना**—कि० सं० [ हि० सहर + धरे या भद्र ] (१) धीरे धीरे किसी वस्तु पर हाथ फेरना। सहराना। मुहराना। जैसे,—सहलया सहलाना, फेर सहलाना। उ०—वारी फेरी होके सलने सहलाने छगी।—दशाभटा खीं। (२) मलना। (३) सुसुदना।

संयोगे कि०—देना।

कि० प्र०—सुदगुदी होना। सुजलाना। जैसे,—घड़ी देर से फेर का तलुआ सहला रहा है।

**सहलोकधातु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक लोक का नाम।

**सहवन**—संज्ञा पुं० [ देवा० ] एक प्रकार का तेलहन जिससे तेल निकाला जाता है।

**सहयसु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक असुर का नाम जिसका उछेल अश्वेद में है।

**सहयाद्**—संज्ञा पुं० [ सं० ] आपस में होनेवाला तर्क वितर्क। याद विवाद। यहस।

**सहयास**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साथ रहने का व्यापार। संग। साथ। (२) मैथुन। रति। संभोग।

**सहयासी**—संज्ञा पुं० [ सं० सहयासिन् ] साथ रहनेवाला। संगी। साथी। मित्र। दोस्त।

**सहयता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पत्नी। भार्या। जोरू।

**सहसंभव**—वि० [ सं० ] जो एक साथ उत्पन्न हुए हों। सहज।

**सहस**—वि० दे० "सहस्र"।

**सहसकिरण**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसकिरण ] सूर्य। मरोचिमाळी। उ०—सहसकिरिन रूप मन भूछ। जहँ जहँ दृष्टि कमल जनु फूला।—जायसी।

**सहसगो**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसगो ] सूर्य। सहसांगु।

**सहसजीम**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसजीम ] शोपनाग।

**सहसदल**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसदल ] कमल। शतपत्र।

**सहसनयन**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसनयन ] सहस्र भौंलोंवाला, इंद्र।

**सहसफण**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसफण ] हजार फणोंवाला, शोपनाग।

**सहसयदन**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसयदन ] हजार मुखोंवाला, शोपनाग।

**सहसंध**—संज्ञा पुं० दे० "सहस्रबाहु"।

**सहसामुख**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसामुख ] शोपनाग।

**सहसयदन**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसयदन ] शोपनाग।

**सहससीस**—संज्ञा पुं० [ सं० सहससीस ] शोपनाग।

**सहसा**—अव्य० [ सं० ] एक दम से। एकदम। अचानक। अकस्मात्। जैसे,—सहसा बाँधी आई और पाँतों भोर अंधकार छा गया।

**सहसाक्षि**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसाक्षि ] सहस्र भौंलोंवाला, इंद्र।

**सहसाली**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसाली ] इंद्र। सहपादा।

**सहसदृष्ट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वृत्तक पुत्र। गोद लिया हुआ लड़का।

**सहसान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मयूर। मोर पक्षी। (२) वज्र।

**सहसानन**—संज्ञा पुं० [ सं० सहसानन ] सहस्र मुखोंवाला, शोपनाग।

**सहस्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एश का मदीना। पीप मास।



सहस्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] दस सौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००० ।

वि० जो गिनती में दस सौ हो। पाँच सौ का दूना।

सहस्रकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य ।

सहस्रकांडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सहस्र गणना । सफेद दूध । देवों के दूध ।

सहस्रकिरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य । सहस्रारिभ ।

सहस्रगु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य ।

सहस्रचक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] महत्त्वपूर्ण । हजार ओंकेवाला, इंद्र ।

सहस्रचरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

सहस्रचित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

सहस्रजित्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुगमद । कस्तूरी । (२) कृष्ण की पट्टानी जंशवती के दस पुत्रों में से एक । (३) विष्णु का एक नाम ।

सहस्रपी-संज्ञा पुं० [ सं० ] हजार। रथियों की रक्षा करनेवाले, भीष्म ।

सहस्रदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन मछली ।

सहस्रदं-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहुत बड़ा दानी । हजारों गौँद आदि दान करनेवाला । (२) बोभारी मछली । प्राचीन पहिना ।

सहस्रद्विज-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें हजार गौँद या हजार मोहरें दान दी जाती हैं ।

सहस्रदल-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ । कमल ।

सहस्रदृश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) इंद्र ।

सहस्रधारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवताओं आदि को स्नान करने का एक प्रकार का पात्र जिसमें हजार छेद होते हैं । इनहीं छेदों में से जल निकलकर देवता पर पड़ता है ।

सहस्रधी-वि० [ सं० ] बहुत बड़ा बुद्धिमान् । सभ्र समसदा ।

सहस्रधौत-वि० [ सं० ] हजार बार धोया हुआ (धृत आदि) जो ओषधि के काम में आता है ।

सहस्रनयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) इंद्र ।

सहस्रनाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्तोत्र जिसमें किसी देवता के हजार नाम हों । जैसे—विष्णु सहस्रनाम, शिव सहस्रनाम आदि ।

सहस्रनामा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सहस्रनाम । (१) विष्णु । (२) शिव । (३) अमलवैत ।

सहस्रनेत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र । (२) विष्णु ।

सहस्रपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो हजार गाँवों का स्वामी और शासक हो ।

सहस्रपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] कमलपत्र ।

सहस्रपर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दार । तीर । (२) एक प्रकार का वृक्ष ।

सहस्रपर्वा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद दूध । श्वेत दूध ।

सहस्रपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) शिव । (३) एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है ।

सहस्रपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य । (२) विष्णु । (३) सास । काण्डव पक्षी ।

सहस्रधा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) कार्तवीर्यवर्द्धन, जिसके विषय में पुराणों में कई कथाएँ हैं । यह क्षत्रिय राजा कृतवीर्य का पुत्र था । इसका दूसरा नाम वैश्य था ।

इसकी राजधानी माहिष्मती में थी । एक बार यह नर्मदा में स्नानो सहित जलक्रीडा कर रहा था । उस समय इसने अपनी सहस्र मुद्राओं से नदी की धारा रोक दी जिसके कारण समीप में शिवपूजा करते हुए रावण की पूजा में विग्रह पड़ा । उसने क्रोध होकर इससे युद्ध किया, पर परास्त हुआ । एक बार यह अपनी सेना सहित जमदग्नि मुनि के आश्रम के निकट ठहरा था । मुनि के पास कपिला कामधेनु थी । उन्होंने कार्तिकेय का अच्छी तरह से आदर किया । राजाने लालच में आकर मुनि से कामधेनु छीन ली । जमदग्नि ने राजा को रोका और वे मारें गए । कार्तिकेय गौ लेकर चला, पर यह स्वर्ग चली गई । परशुराम उस समय आश्रम में नहीं थे । छौटने पर सब उन्होंने अपने पिता के मारे जाने का हाल सुना, तो उन्होंने कार्तिकेय को मार डालने की प्रतिज्ञा की और अंत में उन्हें मार भी डाला । (३) राजा शक्ति के सब से बड़े पुत्र का नाम ।

सहस्रभ्रातृ-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवों की एक सूची का नाम ।

सहस्रभित्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अमलवैत । (२) कस्तूरी । सुगमद ।

सहस्रभुज-संज्ञा पुं० दे० "सहस्रबाहु" ।

सहस्रभुजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवी का वह रूप जो उन्होंने महिषासुर को मारने के लिये धारण किया था । उस समय उनकी हजार भुजाएँ हो गई थीं, इसी से उनका यह नाम पड़ा था ।

सहस्रसूक्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

सहस्रसूक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] महत्त्वपूर्ण । (१) विष्णु । (२) शिव ।

सहस्रसूक्तिका, सहस्रसूक्ती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कांडवपत्नी । (२) बर्षी देवी । (३) मूसकानी । (४) बर्षी दातावर । (५) वनमूला । सुदृषणी ।

सहस्रसौली-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) अनंतदेव का एक नाम ।

सहस्ररश्मि-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य ।

सहस्रलाचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र ।

सहस्रवाच-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

सहस्रोत्पर्व-वि० [ सं० ] बहुत बड़ा बलवाद् । बहुत ताकतवर ।

सहस्रोत्पर्व्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दूध । (२) बड़ी शतावर ।

सहस्रवेध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चूक नामक पत्थर । (२) कौजी । (३) हाँस ।

सहस्रवेधिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कस्तूरी ।

सहस्रवेधी-संज्ञा पुं० [ सं० सहस्रवेधिन ] (१) हाँस । (२) अलवैत । (३) कस्तूरी ।

सहस्रशब्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेद, जिनकी हजार शाखाएँ हैं ।

सहस्रशिखर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु पर्वत का एक नाम ।

सहस्रशीर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० सहस्रशीर्षिन ] विष्णु ।

सहस्रध्वज-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

सहस्रधृति-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार जम्बू द्वीप के एक चर-पर्वत का नाम ।

सहस्रसाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] अशमेघ यज्ञ ।

सहस्रसाय्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का अयन ।

सहस्रस्तुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भावगत के अनुसार एक नदी का नाम ।

सहस्रस्रोत-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक चर-पर्वत का नाम ।

सहस्रशोभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र का रथ ।

सहस्रगी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मोरशिखा । मयूरशिखा । (२) मधुवील वृक्ष । पीछ ।

सहस्रश-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य ।

सहस्रशुभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] शनि ग्रह ।

सहस्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मायिका । अंबेठा । मोड़िया । (२) मोरशिखा । मयूरशिखा ।

सहस्रात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सहय आँसूवाला, इंद्र । (२) विष्णु । (३) देवीभागवत के अनुसार एक पीठस्थान ।

इस स्थान की देवी उपलक्षी कही गई है ।

सहस्रात्म-संज्ञा पुं० [ सं० सहस्रात्मन ] महा ।

सहस्राधिपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो किसी राजा की ओर से एक हजार गाँवों का शासन करने के लिये नियुक्त हो ।

सहस्रानन-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

सहस्रानीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा शतानीक के पुत्र का नाम ।

सहस्रामुनीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सात ।

सहस्रा-संज्ञा पुं० [ सं० ] हजार दलोंवाला एक प्रकार का कल्पित कमल । कहते हैं कि यह कमल मनुष्य के भस्तरक में उलटा लगा रहता है; और इसी में स्थिति तथा लयवाला पर्यवित्त रहता है ।

सहस्राज-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के एक देवता का नाम ।

सहस्राचिन्स-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) सूर्य ।

सहस्राचरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम ।

सहस्राचर्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवी की एक मूर्ति का नाम ।

सहस्री-संज्ञा पुं० [ सं० सहस्रिन ] यह धीर या नायक जिसके पास हजार योद्धा, घोड़े या हाथी आदि हों ।

सहा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ग्रीकभार । ग्वारपाटा । (२) धनमूर्त । (३) दंडोत्पल । (४) सफेद कटसरैया । (५) ककरी या कंधों नाम का पृथ्व । (६) सरिणी । (७) रासना । (८) सत्यानासी । (९) सेवती । (१०) हेमंत ऋतु । (११) भगद्वन मास । (१२) सपवन । (१३) देवताद वृक्ष । (१४) सेंहड़ी । नलरंजक ।

सहाद-संज्ञा पुं० [ सं० सहाय ] सहायक । मददगार ।

संज्ञा स्त्री० सहायता । मदद ।

सहादेकी-संज्ञा पुं० [ सं० सहाय ] सहायक । मददगार ।

संज्ञा स्त्री० सहायता । मदद ।

सहाउ-संज्ञा पुं० दे० "सहाय" ।

सहाचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पीली कटसरैया । पीली तिंदी । (२) दे० "साधर" ।

सहाद्वय-संज्ञा पुं० [ सं० ] धन मूर्त । जंगली मूर्त ।

सहाध्यायी-संज्ञा पुं० [ सं० सहाध्यायिन ] यह जो साथ पढ़ा हो ।

सहापटी ।

सहानी-संज्ञा पुं० [ सं० शोभन ] एक प्रकार का रंग । वि० दे० "सहानी" ।

सहानी-वि० [ सं० शोभन ] एक प्रकार का रंग जो पीलापन लिए हुए लाल रंग का होता है । जैसे,—सहानी चूड़ियाँ । वि० दे० "सहानी" ।

सहानुगमन-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्री का अपने मृत पति के साथ के साथ जल भरना । सती होना । सहगमन ।

सहानुभूति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किसी को दुःखी देखकर स्वयं दुःखी होना । दूसरे के कष्ट से दुःखी होना । हमदर्दी ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिखाना ।—रखना ।

सहाय-संज्ञा पुं० दे० "सहाय" ।

सहाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सहायता । मदद । सहाते । (२) आश्रय । भरोसा । (३) सहायक । मददगार । (४) एक प्रकार की धनसंपत्ति । (५) एक प्रकार का हंस ।

सहायक-वि० [ सं० ] (१) सहायता करनेवाला । मददगार । (२) (यह छोटी नदी) जो किसी बड़ी नदी में मिलती हो । जैसे,—यमुना जो गंगा की सहायक नदियों में से एक है । (३) किसी की अधीनता में रहकर काम में उसकी सहायता करनेवाला । जैसे,—सहायक संपादक ।

सहायता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी के कार्य-संपादन में शारीरिक या और किसी प्रकार योग देना । देना प्रयत्न

करना जिसमें किसी का काम कुछ भागे बढ़े। मदद। सहाय्य। जैसे,—मकान बनाने में सहायता देना, किताब लिखने में सहायता देना। (२) वह धन जो किसी का कार्य भागे बढ़ाने के लिये दिया जाय। मदद। जैसे,—उन्हें लड़की के द्याह में कई जगहों से सौ सौ रुपए की सहायता मिली।

क्रि० प्र०—करना।—पाना।—मिलना।—होना।

सहायी—संज्ञा पुं० [ सं० सहाय + ई (प्रत्य०) ] (१) सहायक। मददगार। सहायता करनेवाला। (२) सहायता। मदद। सहाय।

संहार—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आम का पेड़। आम्र वृक्ष। सहकार। (२) महाप्रलय। संज्ञा पुं० [ हिं० सहना ] (१) बर्दाश्त। सहनशीलता। (२) सहन करने की क्रिया।

सहारना—क्रि० प्र० [ सं० सहन या हिं० सहारा ] (१) सहन करना। बर्दाश्त करना। सहना। उ०—कठिन बचन सुनि श्रयन जानकी सकी न बचन सहार। तृण अंतर दे, दृष्टि तिरौंठी दुई नैन जलधार।—सूर। (२) अपने ऊपर भार लेना। सँभालना। (३) गयारा करना।

सहारा—संज्ञा पुं० [ सं० सहाय ] (१) मदद। सहायता। क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

(२) जिस पर बोझ डाला जा सके। आश्रय। आसरा। (३) भरोसा। (४) इतमीनाज।

सुहा०—सहारा पाना = मदद पाना। सहारा देना = (१) मदद देना। (२) देक देना। (३) आसरा देना। (४) टोकना। सहारा देना = आसरा टोकना। बशील देना।

सहायिग—संज्ञा पुं० [ सं० साहिप = संबंध ] (१) वह वर्ष जो हिंदू ज्योतिषियों के कथनानुसार शुभ माना जाता है। (२) वे मास या दिन जिनमें विवाह के सुहृत्तें हों। इयाह ज्ञादी के दिन।

सहायक—संज्ञा पुं० [ प्रा० साहक ] छोड़े या परधर का वह लटकन जिसे तारों से लटककर दीवार की सिपाई नापी जाती है। साहक। लटकन। सनसाल। वि० दे० "साहक"। सहिजन—संज्ञा पुं० दे० "सहिजन"।

सहिजन—संज्ञा पुं० [ सं० शोभाजन ] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो भारत के प्रायः सभी प्रांतों में उपलब्ध होता है, पर अवध में अधिक देखता जाता है। इसकी पाल मोटी होती है, पर लकड़ी अधिक कड़ी नहीं होती। पत्ते गुलतुरों के पत्तों की तरह होते हैं। कार्तिक मास से पसंत ऋतु के आरंभ तक इसमें फूल रहते हैं। इसके फूल एक इंच के घेरे में गोलाकार सफ़ेद रंग के होते हैं और बहुत से एक साथ गुच्छे में लगते हैं। इसके फल दस इंच से बीस इंच तक

लंबी फलियों के आकार के होते हैं जिनकी मोटाई एक अंगुल से अधिक नहीं होती। ये फल तरकारी के काम में आते हैं। इसके बीज सफ़ेद रंग के और तिकोने होते हैं। बीजों से उत्पन्न होने के अतिरिक्त यह ढाल लगा देने से भी लग जाता है और शीघ्र फलने लगता है। यह बोधि के काम में भी लाया जाता है। कहीं कहीं नीले रंग के फूलों-वाला सहिजन भी पाया जाता है। शोभाजन। सुगन्ध।

सहिजानी—संज्ञा स्त्री० [ सं० संज्ञान ] निशानी। चिह्न। पहचान। सहित—प्रत्य० [ सं० ] साथ। समेत। संग। युक्त। जैसे,—

सहित और लक्ष्मण सहित रामजी वन गए थे। सहितार्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] सहित का भाव या धर्म। सहितार्य—वि० [ सं० ] सहन करने के योग्य। जो सहता जा सके। सहिदान—संज्ञा पुं० [ सं० संज्ञान ] चिह्न। पहचान। निशान। सहिदानी—संज्ञा स्त्री० [ सं० संज्ञान ] चिह्न। पहचान। निशान।

उ०—(क) सुनो अनुज इह बन श्रवतनि मिलि जानिक मिया हरी। कुछ हक अंगनि की सहिदानी मेरी दृष्टि परी। कटि केहरि कोकिल बाणी अरु शशि मुख प्रभा खरी। मृग मूसी मैनन की सोभा जाति न गुप्त करी।—सूर। (ख) जरि थारि के विधुम धारिधि बुताई लख नाइ माथो पगनि भो द्योवे कर जोरि के।—मातृ कृपा कीये सहिदानी दीये। मुनि सिय दीन्ही है असीस चारू चूदामनि छोरी के।—गुलसी।

सहिधाला—संज्ञा पुं० दे० "सहयाला"। सहिरिया—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] बसंत की वह फसल जो बिना संचे होती है, चाँपी नहीं जाती।

सहिष्ट—वि० [ सं० ] धलवार। ताकतवर। सहिष्णु—वि० [ सं० ] जो कष्ट या पीड़ा आदि सहन कर सके। सहनशील। बरदाश्त करनेवाला।

सहिष्णुता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सहिष्णु होने का भाव। सहनशीलता।

सही—वि० [ प्रा० सहीह ] (१) सत्य। सच। (२) प्रामाणिक। ठीक। यथार्थ। (३) जो गलत न हो। शुद्ध। ठीक।

मुहा०—सही पढ़ना = ठीक उतरना। सच होना। प्रामाणिक होना। सही भ्रंशना = तत्कालीन करना। भंग लेना। उ०—वानी विधि गौरि हर सेसहै गुनेस कही सही भरी छोमस मुसुदिवदु वारिपो।—गुलसी।

(४) इस्ताखर। इस्ताखर। क्रि० प्र०—करना।—लेना। सही सलामत—वि० (१) स्वस्थ। आरोग्य। अला चंगा। तंदुरुस्त। (२) जिसमें कोई दोष या न्यूनता न आई हो। सहुरि—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य। संज्ञा स्त्री० पुत्री।

सहस्रलियत-पंजा खी० [ सं० ] (१) आसानी । सुगमता ।  
 जैसे,—प्रगर भाप भा. जायेंगे, तो मुझे अपने काम में और  
 सहस्रलियत हो जायगी । (२) भद्रव । कायदा । राजर ।  
 जैसे,—शव तम वदे हुए. कुछ सहस्रलियत सीलो ।  
 सहस्रद्वय-वि० [ सं० ] (१) जो दूसरे के दुःख सुख आदि समझने  
 की योग्यता रखता हो । समवेदना युक्त पुरुष । (२)  
 ध्यालु । दयावान । (३) रसिक । (४) सख्य । अल  
 आदमी । (५) सुखभाव । अच्छे मिजाजवाला । (६) प्रसन्न-  
 वित्त । खुदादिल ।  
 सहस्रद्वयता-पंजा खी० [ सं० ] (१) सहस्रद्वय होने का भाव ।  
 (२) संज्ञा । (३) रसिकता । (४) ध्यालुना ।  
 सहस्रज्ञा-संज्ञा पुं० [ देश० ] यह दही को दूध को जमाने के लिये  
 उसमें छोड़ा जाता है । जानत ।  
 सहस्रजना-कि० सं० [ म० सही ? ] (१) भली भाँति जानना ।  
 अच्छी तरह से देखना कि ठीक या पूरा है या नहीं ।  
 सोमालना । जैसे,—स्पष्ट सहस्रजना । कपड़े सहस्रजना ।  
 संयोग कि०—देना ।—उटना ।  
 (२) अच्छी तरह कह सुनकर संपूर्ण करना ।  
 कि० प्र०—देना ।  
 सहस्रजाता-कि० सं० [ हि० सहस्रजना का प्रेर० ] सहस्रजने का काम  
 दूसरे से कराना ।  
 सहस्रतल्लि—पंजा पुं० [ सं० संकेत ] यह निर्दिष्ट स्थान जहाँ प्रेमी  
 प्रेमिका मिलते हैं । अभिसार का पूर्व निर्दिष्ट स्थान । मिलने  
 की जगह ।  
 सहस्रतुक-वि० [ सं० ] जिसका कोई हेतु हो । जिसका कुछ उद्देश्य  
 या मतलब हो । जैसे,—यहाँ यह पद सहस्रतुक भाषा है,  
 निरर्थक नहीं है ।  
 सहस्रवर्षा—पंजा पुं० [ देश० ] हरसिंघार या परिजात का वृक्ष ।  
 सहस्रला—संज्ञा पुं० [ देश० ] यह सहायता जो आसानी या कदत-  
 कार अपने जमींदार की उसके सुदकान्त सेत को कारन  
 करने के बदले में देना है । यह सहायता प्रायः बेगारी और  
 बीज आदि के रूप में होती है ।  
 सहस्रलाबाल-पंजा पुं० [ देश० ] बिरयों की एक जाति ।  
 सहस्रली—पंजा खी० [ सं० सह = हि० पत्नी (पत्न्य०) ] (१) साथ में  
 रहनेवाली स्त्री । संगिनी । (२) अनुचरी । परिचारिका ।  
 दासी ।  
 सहस्रयात्रा—संज्ञा पुं० [ हि० सहाय ] सहायता करनेवाला ।  
 वि० [ सं० सारन ] सहनेवाला । सहन करनेवाला ।  
 सहस्रकि—पंजा खी० [ सं० ] एक प्रकार का कल्पालकर जिसमें  
 'सह' 'संग' 'साय' आदि चर्चों का व्यवहार होता है और  
 अनेक कार्य साथ ही होते हुए निष्पाद जाते हैं । प्रायः इन

अर्थकारों में किया एक ही होती है । उ०—प्रल प्रताप  
 पोता चहाई । नाक, पिनाकी संग सिंघार ।—तुलसी ।  
 सहस्रजा—पंजा पुं० [ सं० ] (१) भूमि । (२) इंद्र ।  
 सहस्रोजन—पंजा पुं० [ सं० ] कल्पियों आदि के रहने की पर्णकुटी ।  
 सहस्रद्वे—पंजा पुं० [ सं० ] प्रारभ प्रकार के पुत्रों में से एक प्रकार  
 का पुत्र । गर्भ की अवस्था में व्याही हुई कन्या का पुत्र ।  
 जिसकी माता विवाह के पूर्व ही से गर्भवती रही हो ।  
 सहस्रद्वर—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ खी० सहोदर ] एक ही उदर से उत्पन्न  
 संतान । एक माता के पुत्र ।  
 वि० सगा । अपना । खास । (क०)  
 सहस्रद्वे—पंजा पुं० [ सं० सगोत्री ] एक प्रकार का वृक्ष जो प्रायः जंगली  
 भेड़ों में होता और विशेषतः शुक्र भूमि में अधिक उत्पन्न  
 होता है । इसका वृक्ष अर्थात् गठीला और साधारण होता है ।  
 प्रायः यह सदा हरा भरा रहता है । पतसद्व में भी  
 इसके पत्ते नहीं गिरते । इसकी छाल मोटी होती है और  
 रंग भूरा खाकी होता है । इसकी लकड़ी सफेद और साधा-  
 रणतः मजबूत होती है । इसके पत्ते हरे, छोटे और सुदुरे  
 होते हैं । फाल्गुन मास तक इसका वृक्ष फूलता फलता है  
 और विसाल से आपाद तक फल पकते हैं । फूल भाप  
 ह्वं संघे, गोल और सफेद या पीलापन लिए होते हैं ।  
 इसके गोल फल गुदेदार होते और बीज गोलाकार होते हैं ।  
 इसकी टहनियों को काटकर लोंग दातुन बनाते हैं । चिकि-  
 रसाशास्त्र के अनुसार यह रक्वित्त, चवासीर, यान, कफ  
 और अतिसार का नाशक है । सिहोर ।  
 पृथ्वी—दाखोट । भूतावास । पीतफलक । पिदाचद ।  
 सहस्रवर्षा—संज्ञा पुं० [ सं० सहस्रवर्ष ] समा. आई । एक माता के पुत्र ।  
 सहा—पंजा पुं० [ सं० ] दक्षिण देश में स्थित एक पर्वत । वि० दे०  
 "सहाद्रि" ।  
 वि० (१) सहने योग्य । सहने लायक । बढ़ावत करने लायक ।  
 (२) आरोग्य । (३) मिय । प्यारा ।  
 पंजा पुं० साधव । समानता । बराबरी ।  
 सहाद्रि—संज्ञा पुं० [ सं० ] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध पर्वत  
 जो बंबई प्रांत में है ।  
 विशेष—पश्चिमीय घाट का वह भाग जो मकराचल पर्वत के  
 उत्तर नीलगिरी तक है, सहाद्रि कहलाता है । पूरे से बंबई  
 जानेवाली रेल इसी की पार काती हुई गई है । सिवाजी  
 प्रायः अपने शत्रुओं से बचने के लिये इसी पर्वत माला  
 में रहते रहे ।  
 सौर्—पंजा पुं० [ सं० स्वामी ] (१) स्वामी । मालिक । (२)  
 ईश्वर । परमात्मा । परमेश्वर । उ०—पूर गीरीस सौर्  
 सीतापनि दिव. हनुमानहि जाद के । मिलिंहीं मोहि कहाँ  
 की वे भव भासमत अवधि अयाई के ।—तुलसी । (३)

पति। शीहर। अर्थात् उ०—(क) चयनो धाय कमठी चदाय फुरकाय ऑल बाँहें जाग सौँहें बांत कट्ट न तनक को।—हृदयराम। (ख) पूस मास सुनि सखिग पै सौँहें चलत सवार। गहि कर बीन प्रवीन तिथ राग्यो राग मलार।—प्रिहारी। (घ) मुसलमान फकीरों का एक उपाधि।

**साँकड़ा**—संज्ञा पुं० [ सं० शृंगल ] (१) शृंगला। जंजीर। सीकड़। (२) सिंकी जो दरवाजे में लगाई जाती है। (३) चोटी का बना हुआ एक प्रकार का गहना जो पैर में पहना जाता है। साँकड़ा।

**साँकड़ा**—संज्ञा पुं० [ सं० शृंगल ] एक प्रकार का आभूषण जो पैर में पहना जाता है। यह मोटी चपटी सिंकी की भाँति होता है। प्रायः मारवाड़ी स्त्रियाँ इसे पहनती हैं।

**साँकर**—संज्ञा स्त्री० [ सं० शृंगल ] शृंगला। जंजीर। सीकड़। उ०—झीड़ा ओसूँ वृंद, करि साँकरि बहनी सजल। कोने बदन नमूद, दग मलग डारें रहें।—प्रिहारी।

**वि०** [ सं० संकीर्ण ] (१) संकीर्ण। तंग। सेकरा। (२) दुःस्वभय। कष्टमय। उ०—सिंहल दीप जो नाहि विवाह। यही ठाढ़ साँकर सब काह।—जायसी।

**साँकरा**—वि० दे० "सँकरा"।

संज्ञा पुं० दे० "साँकड़ा"।

**साँकाहुली**—संज्ञा स्त्री० दे० "साँकाहुली"।

**साँस्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हिंदुओं के छः दर्शनों में से एक दर्शन जिसके कर्त्ता महर्षि कपिल हैं। इस दर्शन में सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम दिया है। इसमें प्रकृति को ही जगत् का मूल माना है और कहा गया है कि सत्य, रज और तम इन तीनों गुणों के योग से सृष्टि का और उसके सब पदार्थों आदि का विकास हुआ है। इसमें ईश्वर की सत्ता नहीं मानी गई है; और आत्मा को ही पुरुष कहा गया है। इसके अनुसार आत्मा अकाल, साक्षी और प्रकृति से निवृत्त है। आत्मा या पुरुष अनुभवोत्तम कहा गया है; क्योंकि इसमें प्रकृति भी नहीं है और विकृति भी नहीं है। इसमें धृष्टि के मुख्य चार विधान माने गए हैं—प्रकृति, विकृति, विकृति-प्रकृति और अनुभव। इसमें आकाश आदि पाँचों भूत और ग्यारह इंद्रियाँ प्रकृति हैं। विकृति या विकार सोलह प्रकार के माने गये हैं। इसमें सृष्टि को प्रकृति का परिणाम कहा गया है; इसलिये इसका मत परिणामवाद भी कहलाता है। वि० दे० "दर्शन"।

**साँस्यायन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन आचार्य जिन्होंने ऋग्वेद के साँस्यय्य ब्राह्मण की रचना की थी। इनके कुछ शीघ्र सूत्र भी हैं। साँस्ययन कामसूत्र इन्हीं का बनाया हुआ है।

**साँग**—संज्ञा स्त्री० [ सं० शक्ति ] (१) एक प्रकार की बरछी जो भाले के आकार की होती है; पर इसकी छेदोई कम होती है और यह फेंककर भारी आती है। शक्ति। (२) एक प्रकार का औजार जो ऊँचा खोदते समय पानी को पाने के काम में आता है। (३) भारी बोझ उठाने का ढंढा।

**साँग**—वि० [ सं० शक्त ] सब अंगों सहित। संपूर्ण।  
बौ०—साँगोपांग।

**साँगम**—संज्ञा पुं० दे० "संगम"।

**साँगी**—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार का रंग जो कपड़े रंगने के काम में आता है। यह जंगार से निकलता है।

**साँगी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० शंकु ] (१) बरछी। साँग। (२) बैलगाड़ी में गाड़ीवान के बैठने का स्थान। जुआ। (३) जाली जो एक या गाड़ी के नीचे लगी रहती है और जिसमें मामूली चीजें रखी जाती हैं।

**साँगुठा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सांगुठा ] (१) गंजा। (२) करंजी।

**साँगोपांग**—प्रत्य० [ सं० साँगोपांग ] अंगों और उपोर्गों सहित। संपूर्ण। समस्त। पूर्ण। जैसे,—(क) विवाह के कृत्य साँगोपांग होने चाहिये। (ख) यज्ञ साँगोपांग पूरा हो गया।

**साँग्राम**—संज्ञा पुं० दे० "संग्राम"।

**साँघाटिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह स्त्री जो प्रेमी और प्रेमिका का संयोग कराती हो। कुदनी। दूर्ता। (२) स्त्री-पसंग। मैथुन। (३) एक प्रकार का वृक्ष।

**साँघात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] समूह। दल।

**साँचल**—वि० पुं० [ सं० सच ] [ स्त्री० साँच ] सत्य। यथार्थ। ठीक। जैसे,—साँच को आँच नहीं। (कहा०)

**साँचला**—वि० [ हि० साँच + ला (प्रत्य०) ] [ स्त्री० साँचली ] जो सच बोलता हो। सचा। सत्यवादी।

**साँचा**—संज्ञा पुं० [ सं० रचना ] (१) वह उपकरण जिसमें कोई तरल पदार्थ ढालकर अध्याय गीली चीज रखकर किसी विशिष्ट आकार प्रकार की कोई चीज बनाई जाती है। फरमा। जैसे,—इंटी का साँचा, दाढ़न का साँचा।

**विशेष**—जब कोई चीज किसी विशिष्ट आकार प्रकार की बनानी होती है, तब पहले एक ऐसा उपकरण बना लेते हैं जिसके अंदर वह आकार बना होता है। तब उसी में वह चीज ढाल या भर दी जाती है; जिससे अभीष्ट पदार्थ बनाना होता है। जब वह चीज जम जाती है, तब उसी उपकरण के भीतरी आकार की हो जाती है। जैसे,—इंटी बनाने के लिये पहले उनका एक साँचा तैयार किया जाता है; और तब उसी साँचे में सुराही, पूना आदि भरकर इंटी बनाते हैं।

**मुहा०**—साँचे में ढला होना = श्रेय प्राप्त होना। बहुत ही संतर

सोना । रूप और आकार आदि में बहुत सुंदर होना । साँचि में डालना = बहुत सुंदर बनाना ।

(२) वह छोटी आकृति जो कोई बड़ी आकृति बनाने से पहले मनुके के तौर पर तैयार की जाती है और जिसे देखकर पढ़ी बड़ी आकृति बनाई जाती है ।

विशेष—प्रायः कारीगर जब कोई बड़ी मूर्ति आदि बनाने लगते हैं, तब वे उसके आकार की मिट्टी, चूने, छिस्तर आदि बरिस आदि की एक आकृति बना लेते हैं; और तब उसी के अनुसार पत्थर या धातु की आकृति बनाते हैं ।

(३) कपड़े पर बेल बूटा छापने का ठण्ठा जो लकड़ी का बनता है । साया । (४) एक हाथ लंबी एक लकड़ी जिस पर सबक बनाने के लिये सज्जा बनाते हैं । (५) जुलाहों की वे दो लकड़ियाँ जिनके बीच में कूँचे के साल की दवाकर कसते हैं ।

साँचिया—संज्ञा पुं० [ हि० साँचा + घवा (प्रत्य०) ] (१) किसी चीज़ का साँचा बनानेवाला । (२) धातु गलाकर साँचे में डालनेवाला ।

साँची—संज्ञा पुं० [ साँची नगर ] एक प्रकार का पान जो पाने में डंडा होता है । वि० दे० "पान" ।

संज्ञा पुं० [ ? ] पुस्तकों की छायाई का यह प्रकार जिसमें पंक्तियाँ साँचे बल में न होकर बेदे बल में होती हैं । इसमें पुस्तकें चौड़ाई के बल में नहीं बल्कि लंबाई के बल में खिंची या छापी जाती हैं । प्राचीन काल के जो लिखे हुए ग्रंथ मिलते हैं, वे अधिकांश ऐसे ही होते हैं । इनमें पृष्ठ लंबा अधिक और चौड़ा कम रहता है; और पंक्तियाँ लंबाई के बल में होती हैं । प्रायः पंखी पुस्तकें चिना सिली हुई ही होती हैं; और उनके पन्ने बिल्कुल एक दूसरे से अलग अलग होते हैं ।

साँझी—संज्ञा स्त्री० [ सं० संघ्या ] संघ्या । शाम । सायंकाल ।

साँझला—संज्ञा पुं० [ सं० संघ्या, हि० सोक + ल (प्रत्य०) ] उत्तरी भूमि जितनी एक हल से दिन भर में जोती जा सकती है । दिन भर में जुत जानेवाली भूमि ।

साँझा—संज्ञा पुं० [ सं० शाब्द ] ध्यापार, ध्यवसाय आदि में होनेवाला हिस्सा । पपी । वि० दे० "सासा" ।

साँझी—संज्ञा स्त्री० [ ? ] देव-मंदिरों आदि में देवताओं के सामने जमीन पर की हुई झूल-पत्तों आदि की सजावट जो प्रायः साधन के बर्ताने में होती है ।

साँट—संज्ञा स्त्री० [ सं० से प्रभु० ] (१) छड़ी । साँटी । पतली कमची । (२) कोढ़ा । (३) शरीर पर का वह लंबा गहरा दाग जो कोई वाँत आदि का आघात पड़ने से होता है ।

कि० प्र०—उभरना ।—पड़ना ।

संज्ञा स्त्री० [ ? ] शाल गद्दहूरना ।

साँटा—संज्ञा पुं० [ हि० साँट = झर्री ] (१) करके के आगे लगा हुआ वह डंडा जिसे ऊपर नीचे करने से ताने के तार ऊपर नीचे होते हैं । (२) कोढ़ा । (३) पूँड । (४) हँस । गधा ।

साँटी—संज्ञा स्त्री० [ सं० यथिका या सट से प्रभु० ] (१) पतली छोटी छड़ी । (२) शॉस की पतली कमची । सासा ।

कि० प्र०—सटकरना ।

संज्ञा स्त्री० [ हि० सट्ना ] (१) मेल मिलाप । उ०—निकस्यो मान गुमान सहित, वह मैं यह होत न जानो । नैननि साँटि करी मिली नैननि ठगही साँ रचि मानो ।—सूर । (२) यद्दल । प्रतिकार । प्रतिहिंसा ।

साँठ—संज्ञा पुं० [ दे० ] (१) एक प्रकार का कड़ा जिसे प्रायः राम-पानाने के किंसात धर में पहनते हैं । (२) दे० "साँकड़ा" । (३) ईंफ । गधा । (४) सरकंडा । (५) वह लंबा डंडा जिससे अन्न पीटकर दाने निकालते हैं ।

साँठी—संज्ञा स्त्री० [ हि० गठि ? ] पूँजी । घन ।

संज्ञा स्त्री० [ दे० ] चुननवा । गद्दहूरना ।

संज्ञा पुं० दे० "साठी" (घन) ।

साँड़—संज्ञा पुं० [ सं० पंड ] (१) वह धूल (या धोड़ा) जिसे लोग केवल जोड़ा खिलाने के लिये पाखते हैं । ऐसा जानवर बधिया नहीं किया जाता और न उससे कोई काम लिया जाता है । (२) वह धूल जो मृतक की स्मृति में बिंदू खोग दागकर छोड़े देते हैं । द्योसर्ग में छोड़ा हुआ दूपम ।

मुहा०—साँड़ की तरह घूमना = भावुर और बेचिना घूमना ।

साँड़ की तरह ढकटना = बहुत जोर से गिराना ।

वि० (१) मजबूत । बलिष्ठ । (२) आवाज । यद्बलन ।

साँड़नी—संज्ञा स्त्री० [ हि० साँड़ ? ] ऊँठी या मादा ऊँट जिसकी बाल बहुत तेज होती हैं । वि० दे० "ऊँट" ।

साँड़ा—संज्ञा पुं० [ हि० साँड़ ] छिरकली की जाति का पर आकार में उससे कुछ बड़ा एक प्रकार का जंगली जानवर । इसकी चरवी निकाली जाती है जो दवा के काम में आती है ।

साँड़िया—संज्ञा पुं० [ हि० साँड़ ? ] (१) तेज चलनेवाला ऊँट । (२) साँड़नी पर सवारी करनेवाला ।

साँड़ियो—संज्ञा पुं० [ हि० ] ऊँट । क्रमेच्छक ।

साँट-वि० दे० "साँट" ।

वि० [ सं० साँट ] जिसका अंत हो । अंतयुक्त । जैसे,—संसार का प्रत्येक पदार्थ साँट है ।

साँटपनछुच्छु—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मत जिसमें मत करनेवाला प्रथम दिवस भोजन त्यागकर गोमूत्र, गोमंघ, दूध, दही और धी की कुछ के जल में मिलाकर पीता है और दूसरे दिन उपवास करता है ।

साँटानिक-वि० [ सं० ] संतान संबंधी । संतान का । औलाद का ।

साँटापिक-वि० [ सं० ] संताप देनेवाला । क्रुष्ट देनेवाला ।

**साँवना-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) किसी दुःखी को सहायुभूतिपूर्वक शान्ति देने की क्रिया। आधासन। डारस। (२) स्नेहपूर्वक कुशल मंगल पूछना और बात चीत करना। (३) प्रणय। प्रेम। (४) संधि। मिलन।

**साँवना-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) दुःखी व्यक्ति को उसका दुःख हलका करने के लिये समझाने सुझाने और शान्ति देने की क्रिया। शान्ति देने का काम। डारस। आध्यासन। (२) चित्त की शान्ति। सुख। (३) प्रणय। प्रेम।

**साँवना-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह वचन जो किसी को साँवना देने के लिये कहा जाय। साँवना का वचन।

**साँपड़ा-संज्ञा पुं०** [ ? ] यदिया का यह हिरसा जो पंच बनाने के लिये पुमाया जाता है। (लुहार)

**साँपरी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० संस्कृत ] (१) चट्टाई। (२) विद्युत्। डासन।

**साँथा-संज्ञा पुं०** [ देश० ] छोटे का एक औजार जो चमड़ा कटने के काम में आता है।

**साँधी-संज्ञा स्त्री०** [ देश० ] (१) वह लकड़ी जो ताने के तारों को ठीक रखने के लिये करघे के ऊपर लगी रहती है। (२) ताने के सूतों के ऊपर नीचे होने की क्रिया।

**साँदा, साँदा-संज्ञा पुं०** [ देश० ] यह लकड़ी आदि जो पशुओं के गले में इसलिये बाँधी जाती है, जिसमें वे भागने न पावें। खगर। डेका।

**साँदीपनि-संज्ञा पुं०** [ सं० साँदीपनि ] साँदीपन के गोप के एक प्रसिद्ध मुनि जो बहुत बड़े धनुर्बद्ध थे और जिन्होंने श्रोत्रुणा तथा बलराम को धनुर्बद्ध की शिक्षा दी थी। विष्णुपुराण, हरिवंश, भागवत आदि में इनके संबंध में कई कथाएँ मिलती हैं।

**साँट्टिक-वि०** [ सं० ] एक ही दृष्टि में होनेवाला। देखते ही होनेवाला। तात्कालिक।

**साँट्टिक न्याय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का न्याय जिसका प्रयोग उस समय किया जाता है, जब कोई चीज देखकर उसी तरह की, पहले देखी हुई, कोई दूसरी चीज याद आ जाती है।

**साँद्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वन। जंगल।  
वि० (१) वना। गहरा। घोर। (२) शूद्र। कोमल। (३) सिन्धु। चिकना। (४) सुंदर। खूबसूरत।

**साँद्रता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] साँद्र होने का भाव।

**साँद्रपुष्प-संज्ञा पुं०** [ सं० ] विभीतक। बहेड़ा।

**साँद्रप्रसाद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का कफज प्रमेह जिसमें कुछ मूत्र तो गाढ़ा और कुछ पतला निकलता है। यदि ऐसे रोगी का मूत्र किसी बरतन में रख दिया जाय, तो उसका

गाढ़ा अंश नीचे बैठ जाता है और पतला अंश ऊपर रह जाता है।

**साँद्रमणि-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

**साँद्रमेह-संज्ञा पुं०** दे० "साँद्रप्रसाद"।

**साँध-संज्ञा पुं०** [ सं० संधान ] वह वस्तु जिस पर निशाना लगाया जाय। लक्ष्य। निशान।

**साँध-वि०** [ सं० ] संधि संबंधी। संधि का।

**साँध पुं०** एक प्राचीन ऋषि का नाम।

**साँधना-क्रि० सं०** [ सं० संधान ] निशाना साधना। लक्ष्य करना। साधना करना। उ०—(क) अग्नि यान दुई गानी साँधे। जग मेधे जो होहि न बाँधे।—जायसी। (ख) सवु धुधुची यह तिलकर मूहों। बिह यान साँधे सांमूहों।—जायसी।

क्रि० सं० [ सं० साधन ] पूरा करना। साधना। उ०—सीस काटि के पैरी बाँधा। पावा दाँव धेर जस साँधा।—जायसी।

क्रि० सं० [ सं० संधि ] (१) एक में मिलाना। मिश्रित करना। उ०—विधिबि मृगन्ह कर आमिष साँधा। तेहि महीं विप्रमासु खल साँधा।—दुलसी। (२) रस्सियों आदि में जोड़

लगाना। (खटा)

**साँधा संज्ञा पुं०** [ सं० संधि ] दो रस्सियों आदि में दी हुई गाँठ। (खटा)

**साँधा संज्ञा पुं०** [ सं० संधि ] दो रस्सियों आदि में दी हुई गाँठ। (खटा)

**साँधा संज्ञा पुं०** [ सं० संधि ] दो रस्सियों आदि में दी हुई गाँठ। (खटा)

**साँधि-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) यह जो मद्य बनाता या बेचता हो। शौडिक। (२) यह जो संधि करता हो। संधि करनेवाला।

**साँधिप्रहृष्टिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] प्राचीन काल का राज्यों का यह अधिकारी जिसे संधि और विग्रह करने का अधिकार हुआ करता था।

**साँध-वि०** [ सं० ] संध्या संबंधी। संध्या का।

**साँधकुसुमा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वे वृक्ष, पीपे और बेल आदि जो संध्या के समय फूलती हैं।

**साँप-संज्ञा पुं०** [ सं० सर्प, आ० सप ] [ स्त्री० साँपिन ] (१) एक प्रसिद्ध रंगनेवाला रंगा कीड़ा जिसके हाथ पैर नहीं होते और जो पेट के बल ज़मीन पर रेंगता है। केवल मोढ़े से बहुत ठंडे देशों को छोड़कर दोष प्रायः समस्त संसार में यह पाया जाता है। इसकी सैकड़ों जातियाँ होती हैं जो आकार और रंग आदि में एक दूसरी से बहुत अधिक भिन्न होती हैं। साँप आकार में दो दाढ़ों से २५-३० कुट तक लंबे होते हैं और मोटे सूत से लेकर प्रायः एक कुट तक मोटे होते हैं। बहुत बड़ी जातियों के साँपों "अन्नगर" कहलाते हैं। कुछ साँपों के सिर पर फन होता है। ऐसे साँप "नाग" कहलाते हैं। साँप पीले, हरे, लाल, काले,

भूरे आदि, अनेक रंगों के होने हैं। साँवों की अधिकांश जातियाँ बहुत बरफोक और, सीधी होती हैं; पर कुछ जातियाँ झहरीली और बहुत ही घातक होती हैं। भारत के गेहुअन, धमिन, नाग और काले साँप बहुत अधिक झहरीले होते हैं; और उनके काटने पर आदमी प्रायः नहीं बचता। इनके मुँह में साधारण दातों के अतिरिक्त एक पतुत बड़ा चुकीला खोलखा दाँत होता है जिसका संबंध जहर की एक थैली से होता है। काटने के समय, यही दाँत शरीर में गद्दाकर वे विष का प्रवेश करते हैं। इस साँप माँसाहारी होते हैं और छोटे-छोटे जीव जंतुओं को निगल जाते हैं। इनमें यह विशेषता होती है कि वे अपने शरीर की मोटाई से कहीं अधिक मोटे जंतुओं को निगल जाते हैं। प्रायः छोटी जाति के साँप पेंडों पर और, यही जाति के जंगलों, पहाड़ों आदि में बाँधों जमीन पर रहते हैं। इनकी उत्पत्ति अंश से होगी है; और मादा हर बार में बहुत अधिक अंडे देती है। साँवों के छोटे बच्चे प्रायः रहित रहने के लिये अपनी माता के मुँह में चले जाते हैं; इसी लिये लोगों में यह प्रवाद है कि साँपिन अपने बच्चों को आग्र ही खा जाती है। इस देश में साँवों के काटने की विक्रिया प्रायः जंगल मंतर और झाड़ू, फूँक आदि से की जाती है। भारतवासियों में यह भी प्रवाद है कि पुराने साँवों के सिर में एक प्रकार की मृगि होती है जिसे वे रात में अंधकार के समय बाहर निकाल कर अपने चारों ओर प्रकाश कर लेते हैं।

**मुहा**—कलेजे पर साँप छोटाना = बहुत अधिक झुकलना या पीदा होना। भयं—दुख होना। (ईश्या आदि के प्रारण) साँप सूँघ जाना = साँप का काट खाना। सर जाना। निर्वाध हो जाना। जैसे,—देखे सोपू है मानों साँप सूँघ गया है। साँप खेताना = मंग बल से या और किसी प्रकार साँप को पकड़ना और लसके शीदा करना। साँप की तरह केंचुली झाड़ना = उपना भदा रंग दोड़क नया सुंदर रूप धारण करना। साँप की लहर = साँप काटने का कष्ट। साँप की लकरी = पूजी पर ख बिध जो साँप के निरुल काने पर टोका है। साँप के मुँह में = बहुत ओसिम में। साँप छट्टेदर की दूदा = भारी भयमंनल की दशा। उबिभा। उ०—सकल सभा की भाद मति भेरी। भाद गति साँप छट्टेदर की।—गुडली। विशेष—कहते हैं कि यदि साँप छट्टेदर को पकड़ने पर खा जाय, तो वह तुरंत मर जाता है; और यदि न खाय और उसे उगल दे, तो अंधा हो जाता है। पय्यां—मुअग। सुनंग। अदि। विपधर। ध्याल। सरीसृप। कुंडली। चतुष्पदा। फणी। विदेशय। उरग। पवग। पवनासन। फणधर। ध्याद। दंष्ट्री। गोकर्ण। गुणपाद। हरि। दिग्दि।

(२) बहुत दुष्ट आदमी। (क०)  
**सांघिक-वि०** [ सं० सांघिक ] संपत्ति से संबंध रखनेवाला।  
 आर्थिक। माही।  
**सांघ-वि०** [ सं० सांघ ] संपत्ति संबंधी। सांघिक का।  
 आर्थिक। माली।  
**साँघरन**—संज्ञा पुं० [ हि० साँघ + राण ] सर्प धारण करनेवाले, सिख। महादेव।  
**साँघाधिक-वि०** [ सं० सांघाधिक ] (१) परलोक संबंधी। पारलौकिक। (२) युद्ध में काम आनेवाला। (३) युद्ध संबंधी। युद्ध का।  
 यथा पुं० युद्ध। समर।  
**साँघा-संज्ञा पुं०** दे० "सियाघा"।  
**साँघातिक-वि०** [ सं० सांघातिक ] संपत्त संबंधी। संपात का।  
**साँघिन-संज्ञा स्त्री** [ हि० साँघ + इन (क्य०) ] (१) साँप की मादा। (२) घोड़े के शरीर पर की एक प्रकार की बीबी जो अशुभ समझी जाती है।  
**साँघिया-संज्ञा पुं०** [ हि० साँघ + ष्या (क्य०) ] एक प्रकार का काला रंग जो प्रायः साधारण साँप के रंग से मिलता जुलता होता है।  
**साँघत-संज्ञा पुं०** [ सं० सांघत ] इसी समय। सघ। अमी। तत्काल।  
 वि० युक्त। मिला हुआ।  
**साँघतिक-वि०** [ सं० सांघतिक ] वर्तमान बाल से संबंध रखनेवाला। वर्तमान कालिक। इस समय का। आधुनिक।  
**साँघाधिक-वि०** [ सं० सांघाधिक ] किसी संप्रदाय से संबंध रखनेवाला। संप्रदाय का।  
**साँघधिक-वि०** [ सं० सांघधिक ] (१) संबंध का। (२) विवाह संबंधी।  
 संज्ञा पुं० की का भाई, साला।  
**साँघ-संज्ञा पुं०** [ सं० सांघ ] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जो जाम्बवी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बाल्यावस्था में इन्होंने बलदेव से अन्न विद्या सीखी थी। बहुत अधिक बलवान् होने के कारण ये दूसरे बलदेव माने जाते थे। अविष्य-पुराण में लिखा है कि ये बहुत सुंदर थे; और अपनी सुंदरता के अभिमान में किसी को कुछ न समझते थे। एक बार इन्होंने दुर्वासस ऋषि का शुक और कृपा शरीर देखकर उनका कुछ परिहास किया था, जिससे दुर्वासस ने इन्हें शाप दिया था कि तुम कोई हो जाओगे। इससे उपरंत एक अन्तर पर रुचिमगी, सत्यमाना और जीवन्तों को छोड़कर श्रीकृष्ण की ओर सब शक्तियाँ आदि इनके रूप पर इतनी मुग्ध हुई थी कि उनका रेत स्थलित हो गया था। इस पर श्रीकृष्ण ने भी इन्हें शाप दिया था कि तुम कोई



धो जाओ। इसी लिए ये कोढ़ी हो गए थे। अंत में इन्होंने नारद के परामर्श से सूर्य की मित्र नामक सृष्टि की उपासना आरंभ की जिससे अंत में इनका शरीर नीरोग हो गया। कहते हैं कि जिस स्थान पर इन्होंने मित्र की उपासना की थी, उस स्थान का नाम "मित्रवण" पड़ा। इन्होंने अपने नाम से सांघपुर नामक एक नगर भी, चंद्रभागा के तट पर, बसाया था। महाभारत के युद्ध में ये जरासंध और दाल्य आदि से बहुत घोरतापूर्वक लड़े थे।

**सांघपुर**—संज्ञा पुं० [ सं० साम्घीपुर ] पंजाब के मुलतान नगर का प्राचीन नाम। यह नगर चंद्रभागा नदी के तट पर है। कहते हैं कि इसे श्रीकृष्ण के पुत्र सांघ ने बसाया था।

**सांघपुराण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक उपपुराण का नाम।

**सांघर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साँभर हरिन। वि० दे० "साँभर"।

(२) साँभर नमक।

संज्ञा पुं० [ सं० संघल ] पापेय। संघल। राह स्वर्ण।

**सांघरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० साम्घरी ] माया। जादूगरी।

**विशेष**—कहते हैं कि इस विद्या का आविष्कार श्रीकृष्ण के पुत्र सांघर ने किया था; इसी से इसका यह नाम पड़ा।

**साँभर**—संज्ञा पुं० [ सं० सम्भल या साम्भल ] (१) राजपूताने की एक झील जहाँ का पानी बहुत खारा है। इसी झील के पानी से साँभर नमक बनाया जाता है। (२) एक झील के जल से बना हुआ नमक। (३) भारतीय सृष्टियों की एक जाति।

**विशेष**—इस जाति का मूग बहुत बढ़ा होता है। इसके कान लंबे होते हैं और सींग बारहसिंगों के सींगों के समान होते हैं। इसकी गणना पर बड़े बड़े बाल होते हैं। अन्धकार के महीने में यह जोड़ा खाता है।

**सांभधी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० साम्भधी ] लाल लोच।

**सांभाप्य**—संज्ञा पुं० [ सं० साम्भाप्य ] संभापण। बात-चीत।

**सांभुदे**—मन्थ० [ सं० सम्भुले ] सामने। सम्मुख।

**साँचक**—संज्ञा पुं० [ देश० ] यह ऋण जो हलवाहों को दिया जाता है और जिसके सूद के बदले में ये काम करते हैं।

संज्ञा पुं० [ सं० संघामक ] साँवों नामक अन्न।

**साँवत**—संज्ञा पुं० [ सं० सामत ] सुभट। घोड़ा। सामंत। वि० दे० "सामंत"।

संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का राग।

**साँवती**—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] धैलगाड़ी या घोड़ा गाढ़े के नीचे लगी हुई जाली जिसमें घास आदि रखते हैं।

**साँवरी**—वि० दे० "साँवला"।

**साँवला**—संज्ञा स्त्री० [ सं० संघाल ] हिं० साँवला ] साँवला होने का भाव। दयामत्ता। दयामल्ला।

**साँवला**—वि० [ सं० संघाल ] [ स्त्री० साँवली ] जिसके शरीर का रंग कुछ कालापन लिये हुए हो। दयाम वण का।

संज्ञा पुं० (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) धति या प्रेमी आदि का बोधक एक नाम। [ इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाँवों आदि में होता है। ]

**साँवलापन**—संज्ञा पुं० [ हिं० साँवला + पन (प्रत्यय) ] साँवला होने का भाव। वण की दयामत्ता।

**साँवों**—संज्ञा पुं० [ सं० संघामक ] केंवनी या चेंवनी की जाति का एक अन्न जो प्रायः सोरे भारत में बोया जाता है। यह प्रायः फांयून चैत में बोया जाता है और जेट में तैयार होता है। यह अन्न बहुत सुपाच्य और बलवर्द्धक माना जाता है और प्रायः चावल की भाँति उबालकर खाया जाता है। कहीं कहीं रोटी के लिये इसका आटा भी तैयार किया जाता है। इसकी हरी पत्तियाँ और टूटल पत्तियों के लिये चारे की भाँति काम में आती हैं; और पंजाब में कहीं कहीं केवल चारे के लिये भी इसकी खेती होती है। अनुमान है कि यह मिश्र या अरब से इस देश में आया है।

**साँस**—संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वास ] (१) नाक या मुँह के द्वारा बाहर से हवा साँचकर अंदर फेफड़ों तक पहुँचाने और उसे फिर बाहर निकालने की क्रिया। आस। दम।

**विशेष**—यद्यपि यह शब्द संस्कृत "श्वस" (पुल्लिग) से निकला है और इसलिये पुल्लिग ही होना चाहिए, परंतु प्रायः लोग इसे स्त्रीलिग ही बोलते हैं। परंतु कुछ अवसरों पर कुछ विशिष्ट क्रियाओं आदि के साथ यह केवल पुल्लिग भी बोला जाता है। जैसे,—इतनी दूर से दौड़े हुए आये हैं, साँस फूलने लगी।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—लेना।

**सुहा०**—साँस अड़ना = दे० "साँस रुकना"। साँस उखड़ना = मरने के समय रोगी का देह रेत पर और बड़े कष्ट से साँस लेना। साँस टूटना। दम टूटना। साँस ऊपर नीचे होना = साँस का ठीक तरह से ऊपर नीचे न चलना। साँस रुकना। साँस खींचना = (१) नाक के द्वारा वायु अंदर की ओर खींचना। साँस लेना। (२) वायु अंदर खींचकर उसे रोक रखना। दम साधना। जैसे,—हिरन साँस खींचकर पड़ गया। साँस चढ़ना = अधिक वेग से या बहुत परिश्रम का काम करने के कारण साँस का बंदी लब्धी आना और जाना। साँस चढ़ना = दे० "साँस खींचना"। साँस छोड़ना = नाक द्वारा अंदर खींची हुई वायु को बाहर निकालना। साँस टूटना = दे० "साँस उखड़ना"। साँस तक न लेना = बिल्कुल सुपचाप रखना। कुछ न बोलना। जैसे,—उनके सामने तो यह लड़का साँस तक नहीं लेता। साँस फूलना = बार-बार साँस आना और जाना। साँस चढ़ना। साँस भरना = दे० "उठी साँस लेना"। साँस रहते = जीते जी। जीवन पर्वत। साँस रुकना = साँस के आने और जाने में बाधा होना। आस की क्रिया में बाधा होना। जैसे,—यहाँ हवा की इतनी कमी है

कि साँस रकता है। साँस लेना = साक के श्वाप त्वापु साँसकर अंदर लेना और फिर उसे बाहर निकालना। उलट्टी साँस लेना = (१) दे० "गहरी साँस लेना"। (२) मरने के समय रोगी का बड़े कष्ट से अंतिम साँस लेना। गहरी साँस भरना या लेना = पुनः श्वापिक दुःख भादि के श्वापेग के कारण बहुत देर तक अंदर की ओर श्वापु साँसने रहना और उमे कुछ देर तक थोक कर बाहर निकालना। ठंडी या लंबी साँस लेना = दे० "गहरी साँस लेना"। (१) अथवाकाश।

मुहा०—साँस लेना = थक जाने पर विश्राम लेना। उठर जाना = जैसे,—(क) घंटों से काम कर रहे हो; अरा साँस ले लो। (ख) वह जब तक काम पूरा न कर लेगा, तब तक साँस लेना होगा। (३) गुंजाइस। दम। जैसे, अभी इस मामले में बहुत कुछ साँस है। (४) वह संधि या दरार जिसमें से होकर हवा जा या आ सकती है।

(किसी पदार्थ का) साँस लेना = किसी पदार्थ में संधि या दरार पड़ना जाना। (किसी पदार्थ का) श्वाप में से फटना। गोचे की ओर चल जाना। जैसे,—(क) इस भूकंप में कई मकानों और दीवारों ने साँस छो दी। (ख) इस भोंवटी में कहीं न कहीं साँस अस्तर है; इसी से पूरी हवा नहीं छगती। (४) किसी अथवाकाश के अंदर भरी हुई हवा।

मुहा०—साँस निकलना = किसी चीज के अंदर भरी हुई हवा का किसी प्रकार बाहर निकलना जाना। जैसे,—टापेर की साँस निकलना, फुटबाल की साँस निकलना। साँस भरना = किसी चीज के अंदर हवा भरना। (६) वह रोग जिसमें मनुष्य बहुत जोरों से साँस पर बहुत कठिनतासे साँस लेता है। दम फूलने का रोग। खास। दमा।

क्रि० प्र०—फूलना। साँसत-संज्ञा स्त्री० [ क्रि० साँस + त (प्रत्य०) ] (१) दम घुटने का सा कष्ट। (२) बहुत अधिक कष्ट या पीड़ा। (३) श्वापेट। मलेका। उ०—सब तात न माते न स्वामी सखा सुत बंधु विवाल विपत्ति बेटियां। साँसति घोर पुकारत आरते कौन सुने चहुँ ओर बेटियां।—गुलशरी।

धौ०—साँसतपर। साँसतघर-संज्ञा पुं० [ क्रि० साँसत + घर ] (१) कारागार में एक प्रकार की बहुत सग और अंधेरी कोठरी जिसमें अपराधियों को विशेष दंड देने के लिये रखा जाता है। काल कोठरी। (२) बहुत सग और छोटा मकान जिसमें हवा या रोशनी न आती हो। साँसना-क्रि० प्र० [ सं० साँसना ] (१) शास्य करना। दंड देना। (२) बढिया। बपटना। (३) कष्ट देना। दुःख देना।

साँसल-संज्ञा पुं० [ दे० ] (१) एक प्रकार का कंबल। (२) बीज बोने की क्रिया। साँसा-संज्ञा पुं० [ सं० साँस ] (१) साँस। भास। जैसे,—जब तक साँसा, तब तक भासा। (कहा०) (२) बीजक। जिंदगी। (३) प्राण। (४) साँस। (५) घोर कष्ट। भारी पीड़ा। तकलीफ। (६) चिंता। फिक। तरबुद।

मुहा०—साँसा पटना = फिक होना। चिंता होना। (५) संशय। संदेह। शक। (६) डर। भय। दहसत।

मुहा०—साँसा पटना = संशय होना। संदेह होना। साँसारिक-वि० [ सं० ] साँसार संबंधी। इस साँसार का। लौकिक। ऐहिक। जैसे,—अब आप सब साँसारिक श्वापों से अलग होकर अमरबुद भजन में लीन रहते हैं।

सा-प्रत्य० [ सं० मत्स्य, मह ] (१) समान। तुल्य। सदृश। शायर। जैसे,—उनका रंग तुम्हीं सा है। (२) एक प्रकार का मानसूचक शब्द। जैसे,—बहुत सा, थोड़ा सा, गुरा सा।

सादक-संज्ञा पुं० दे० "सायक"। सादक्योपीडिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह बदा ग्रंथ जिसमें किसी एक विषय के सब अंगों और उपानों भादि का पूरा पूरा वर्णन हो। (२) वह बदा ग्रंथ जिसमें साँसार भर के सब मुख्य मुख्य विषयों और विज्ञानों भादि का पूरा पूरा विवेचन हो। विश्वकोष। इन्साइक्लोपीडिया।

सादत-संज्ञा स्त्री० [ सं० सादत ] (१) एक घंटे या गार्होपनी का समय। (२) पल। लहमा। (३) मुहूर्त्त। शुभ लग्न। क्रि० प्र०—देवना।—निकलना।—निकलवाना।

साइनबोर्ड-संज्ञा पुं० [ अ० ] वह तखता या दीन भादि का टुकड़ा जिस पर किसी व्यक्ति, दूकान या म्यवसाय भादि का नाम और पता भादि अथवा सर्वसाधारण के सूचनापत्र इसी प्रकार की और कोई सूचना बड़े बड़े अक्षरों में लिखी हो। ऐसा तखता मकान या दूकान भादि के आगे अथवा किसी पेशी जगह लगाया जाता है, जहाँ सब लोगों की दृष्टि पड़े।

साइन्स-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) किसी विषय का विशेष ज्ञान। विज्ञान। शास्त्र। वि० दे० "विज्ञान"। (२) रासायनिक और भौतिक विज्ञान।

साइबड़ी-संज्ञा स्त्री० [ ? ] वह धन की कितान फसल के समय धार्मिक कार्यक्रमों के निमित्त देते हैं।

साइधान-संज्ञा पुं० दे० "साधन"। साइयाँ-संज्ञा पुं० दे० "साई"। उ०—आको राखे साइयाँ मारि न सकिहै कोह। शूल न बौका करि सकै जो जग बैरो होइ।—कथार।

**साहर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] आमदनी के वह साधन जिन पर जमींदारों को लगान नहीं देना पड़ता।—जैसे,—जंगल, नदी, बाग, ताल आदि जो कहीं कहीं सरकारी कर से मुक्त रहते हैं। वि० दे० "सावर"।

**साई**—संज्ञा पुं० [ सं० खाग्री ] (१) स्वामी। मालिक। प्रभु। (२) ईश्वर। परमात्मा। (३) पति। खाविद। (४) एक प्रकार का पद।

**साई**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सात ? ] वह धन जो गाने घजानेवाले या इसी प्रकार के और पेशेदारों को, किसी अवसर के लिये उनकी नियुक्ति पक्की करके, वेधारी दिया जाता है। वेधारी। यथाना।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

**मुहा०**—साई बजाना = जिससे साई ली हो, उसके यहाँ नियत समय पर बाँकर गाना बजाना।

† संज्ञा स्त्री० [ सं० सहाय ] वह सहायता जो किसान एक दूसरे को दिया करते हैं।

संज्ञा स्त्री० [ देश० ] (१) एक प्रकार का कीड़ा जिसके घाव पर बीट कर देने से घाव में कीड़े पैदा हो जाते हैं। (२) वे छद्म जो गांधी के अगले हिस्से में बंधे पल में एक दूसरे को काटते हुए रखे जाते हैं और जिनके कारण उनकी मजबूती और भी बढ़ जाती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "साईकाँटा"।

**साईकाँटा**—संज्ञा पुं० [ हि० साई (संज्ञा) + काँटा ] एक प्रकार का वृक्ष जो बंगाल, दक्षिण भारत, गुजरात और मध्य प्रदेश में पाया जाता है। इसकी लकड़ी सफेद होती है और छाल घमड़ सिंहाने के काम में आती है। इसमें से एक प्रकार का कथ्या भी निकलता है। साई। भोगली।

**साईस**—संज्ञा पुं० [ हि० रसस का प्रभु ] वह आंदूरी जो घोड़े की खरबारी और सेवा करता है, उसे दाना घास आदि देता, मलता और दहलाता तथा इसी प्रकार के दूसरे काम करता है।

**साईसी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० साईस + ई (प्रत्यय) ] साईस का काम, भाव या पद।

**साईमरी**—संज्ञा पुं० [ सं० साईमरी ] साँभर शील या उसके आंस पास का प्रांत जो राजपूताने में है।

**साक**—संज्ञा पुं० [ सं० शाक ] शाक। साम। सक्ती। तरकारी। भाजी। संज्ञा पुं० दे० (१) "सामान"। (२) दे० "शाक"।

**साकचेरि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० शाक = चेरि ? ] मेहदी। नखरजन। हिना।

**साकट**—संज्ञा पुं० [ सं० शाक ] (१) शाक मत का अनुयायी। (२) वह जो मद्य मांस आदि खाता हो। (३) वह जिससे किसी गुण से वीक्षण न ली हो। गुरु रहित। (४) दुष्ट। पाजी। शरीर।

**साकरा**—वि० [ सं० संकीर्ण ] संकीर्ण। साँकरा। संग।

संज्ञा स्त्री० दे० "साकल"।

संज्ञा स्त्री० दे० "साकर"।

**साकल**—संज्ञा स्त्री० दे० "साकल"।

**साकल्य**—संज्ञा पुं० दे० "शाकल्य"।

**साकवरी**—संज्ञा पुं० [ ? ] धूल। धूपम।

**साका**—संज्ञा पुं० [ सं० शाक ] (१) संवत्। शाका।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

(२) स्थापित। प्रसिद्धि। शोहरत। (३) यश। कीर्ति।

(४) कीर्ति का स्मारक। (५) धाक। रोप।

**मुहा०**—साका चलना = प्रभाव माना जाना। उ०—दृश्य मुकुतामाल निरखत वारि अवलि यलक। करज कर पर कमल धारत चलति जहाँ तहाँ साक।—सूर। साका चलना = रोप बमाना। भाक बमाना। साका बोधना = दे० "साका चलाना"।

(६) कोई ऐसा बड़ा काम जो सब लोग न कर सकें और जिसके कारण कर्ता की कीर्ति हो। उ०—गीध मानो गुरु, कपि भालु मानो मीन कै, पुनीत गीत साके सप साहय समय के।—तुलसीदास।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

**साकार**—वि० [ सं० ] (१) जिसका कोई आकार हो। जिसका स्वरूप हो। जो निरकार न हो। आकार; या रूप से युक्त।

(२) मूर्तिमान। साक्षात्। (३) स्थूल।

संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर का वह रूप जो साकार हो। महा का मूर्तिमान रूप।

**साकारता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साकार होने का भाव। साकारपन।

**साकारोपासना**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ईश्वर की वह उपासना जो उसका कोई आकार या मूर्ति बनाकर उसकी उपासना करना। साकिन की मूर्ति बनाकर उसकी उपासना करना।

**साकिन**—वि० [ सं० ] निवासी। रहनेवाला। वासिन्हा। जैसे,—रामलाल साकिन मीजा रामनगर।

**साकी**—संज्ञा पुं० [ देश० ] कपूर कचरी। गंध पलाशी।

**साकी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो लोगों को मद्य पिलाता हो। धराव पिलानेवाला। (२) वह जिसके साथ प्रेम किया जाय। माशुक।

**साकुच**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सक्की मछली। शाकल मख्यं।

**साकुचंड**—संज्ञा पुं० दे० "सकुच ड"।

**साकुच्य**—संज्ञा पुं० [ हि० ] घोड़ा। अश्व। वाणि।

**साकेत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अयोध्या नगरी। अवधपुरी।

**साकेतक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] साकेत का निवासी। अयोध्या का रहनेवाला।

**साकेतन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] साकेत। अयोध्या।

साकोही-संज्ञा पुं० [ सं० साक ] साखू । शाल वृक्ष ।  
 साकुफु-संज्ञा पुं० [ सं० ] जी, जिससे सत्त्वं बनता है ।  
 वि० सत्त्वं संबंधी । सत्त्वं का ।  
 साक्षर-वि० [ सं० ] जिसे अक्षरों का बोध हो । जो पढ़ना  
 लिखना जानता हो । साक्षित ।  
 साक्षात्-वि० [ सं० ] सामने । प्रत्यक्ष ।  
 वि० सूचितान् । साक्षर । जैसे,—आप तो साक्षर सत्य हैं ।  
 संज्ञा पुं० भेंट । मुलाकात । देखा देखा ।  
 साक्षरकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भेंट । मुलाकात । मिलन ।  
 (२) पदार्थों का इन्द्रियों द्वारा होनेवाला ज्ञान ।  
 साक्षात्कारी-संज्ञा पुं० [ सं० साक्षात्कारि ] (१) साक्षात् करने-  
 वाला । (२) भेंट या मुलाकात करनेवाला ।  
 साक्षिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साक्षी का काम । साक्षित्व । गवाही ।  
 साक्षिभूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।  
 साक्षी-संज्ञा पुं० [ सं० साक्षि ] [ मी० साक्षी ] (१) वह मनुष्य  
 जिसने किसी घटना को अपनी आँखों देखा हो । चरमद्वीप  
 गवाह । (२) वह जो किसी बात की प्रामाणिकता बतलाना  
 हो । गवाह । (३) देखनेवाला । दूरक ।  
 संज्ञा स्त्री० किसी बात को कहेकर प्रमाणित करने की क्रिया ।  
 गवाही । बाह्यदत्त ।  
 साक्ष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साक्षी का काम । गवाही । गवा-  
 दत्त । (२) दाय्य ।  
 साख-संज्ञा पुं० [ हि० साखी ] (१) साक्षी । गवाह । (२) गवाही ।  
 प्रमाण । बाह्यदत्त । उ०—(क) तुम वसीठ राजा की ओर ।  
 साख होहु यह भील निहोरा ।—जायसी । (ख) जैसी  
 भुजा कलाई तेहि चिधि जाय न माख । कंकन हाथ होव  
 जेहि तेहि दरपन का साख ।—जायसी ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० साका, हि० साका ] (१) धातु । रोव । (२)  
 मर्यादा । उ०—भीति बेल उरसह अब तव सुजात सुख  
 साख ।—जायसी । (३) वाजार में वह मर्यादा या  
 प्रतिष्ठा जिसके कारण आदमी लेन देन कर सकता हो ।  
 लेन देन का पररापन या प्रामाणिकता । जैसे,—जब तक  
 वाजार में साख बनी भी, तब तक लोग सारों रूप का  
 माल उन्हें उठा देते थे ।  
 कि० प्र०—बनना ।—विगडना ।  
 संज्ञा स्त्री० दे० "साख" या "साखा" ।  
 साखनाह-कि० सं० [ सं० साखि, हि० साख + ना (प्रत्यय) ] साक्षी  
 देना । गवाही देना । बाह्यदत्त देना । उ०—जिन की और  
 कौन पत्त रोखै । जात पति कुल कामि न मानत वेद  
 उरागनि साखि ।—सूर ।  
 साखर-संज्ञा पुं० [ सं० साखर ] जिसे अक्षरों का ज्ञान हो । पदा-  
 लिखता । साक्षर ।

साखा-संज्ञा स्त्री० [ मं० साखा ] (१) वृक्ष की शाखा । डाली ।  
 टहनी । (२) बंध या जानि की शाखा । उपभेद । (३) दे०  
 "शाखा" । (४) वह क्ली जो चक्की के बीच में लगी होती  
 है । चक्की का धुरा ।  
 साखी-संज्ञा पुं० [ सं० साधि ] साक्षी । गवाह ।  
 संज्ञा स्त्री० (१) साक्षी । गवाही ।  
 मुदा-संज्ञा पुं०—साखी प्रकारना = साखी का कुछ कहना । साखी देना ।  
 गवाही देना । उ०—यत्ते योग न आवै मन में तू नीके  
 करि राखि । मूरदास स्वामी के आगे निगम पुकारत  
 साखि ।—सूर ।  
 (२) ज्ञान संबंधी पद या दोहें । वह कविना जिसका विषय  
 ज्ञान हो । जैसे,—कबीर की साखी ।  
 साखू-संज्ञा पुं० [ सं० साख ] शाल वृक्ष । सत्तुभा । अधकण्ठ वृक्ष ।  
 साखीचानक-संज्ञा पुं० [ सं० साखीचारण ] विवाह के अवसर  
 पर घर और वधू के वंश गोत्रादि का चिला चिह्नकर परिचय  
 देने की क्रिया । गोत्रोच्चार ।  
 साखोट-संज्ञा पुं० [ सं० साखोट ] सिहोर वृक्ष । सिहोरा । भूतावास ।  
 वि० दे० "सिहोर" ।  
 साग-संज्ञा पुं० [ सं० साक ] (१) पौधों की खानें योग्य पत्तियाँ ।  
 शाक । भाजी । जैसे,—सोप, पालक, मंसे या वधुप आदि  
 का साग । (२) पकाई हुई भाजी । तरकारी । जैसे,—आख  
 का साग । कुहदे का साग । (वैष्णव) ।  
 यौ०—साग पात = घंट मूल । रखा सूया भोजन । जैसे,—जो  
 कुछ साग पात खना है, कृपा करके भोजन कीजिए ।  
 मुहा०—साग पात समझना = बहुत तुच्छ समझना । कुछ न  
 समझना ।  
 सागर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समुद्र । उदधि । जलधि । वि०  
 दे० "समुद्र" । (२) बड़ा तालाब । झील । जलसाय ।  
 (३) संव्यासियों का एक भेद । (४) एक प्रकार का रूगा ।  
 सागरगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नदी । दरिया । (२) गंगा ।  
 सागरज-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र लक्षण ।  
 सागरजमल-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्रधन । अश्विजकण्ठ ।  
 सागरधरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी । भूमि ।  
 सागरनेमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी ।  
 सागरसुन्दर-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ध्यान या आराधना करने की एक  
 प्रकार की मुद्रा ।  
 सागरमेखल-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी ।  
 सागरलिपि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छलित विलर के अनुसार एक  
 प्राचीन लिपि ।  
 सागरवासी-संज्ञा पुं० [ सं० सागरवासिन् ] (१) वह जो समुद्र में  
 रहता हो । समुद्र में रहनेवाला । (२) वह जो समुद्र के  
 तट पर रहता हो । समुद्र के किनारे रहनेवाला ।

सागरव्यूहगर्भ—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ऋषिसत्व का नाम ।

सागरांबरा—संज्ञा स्त्री० [ सं० सागरम्बरा ] पृथ्वी ।

सागरालय—संज्ञा पुं० [ सं० ] सागर में रहनेवाले, चरुण ।

सागरेश्वर—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक तीर्थ का नाम ।

सागरोत्थ—संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र लवण ।

सागवन—संज्ञा पुं० दे० "सागौन" ।

सागू—संज्ञा पुं० [ अं० सैगो ] (१) ताड़ की जाति का एक प्रकार का पेड़ जो जाया, सुमात्रा, थोनिओ आदि में अधिकता से पाया जाता है और जो बंगाल तथा दक्षिण भारत में भी लगाया जाता है । इसके कई उपभेद हैं जिनमें से एक को माद भी कहते हैं । इसके पत्ते ताड़ के पत्तों की अपेक्षा कुछ लंबे होते हैं और फल मुडौल गोलाकार होते हैं । इसके रेशों से रस्ते, टोकरे और उपरेश आदि बनते हैं । कहीं कहीं इसमें से पाचकर एक प्रकार का मादक रस भी निकाला जाता है; और उस रस से गुद भी बनाया जाता है । जब यह पंद्रह वर्ष का हो जाता है, तब इसमें फल लगते हैं और इसके मोटे तने में, आटे की तरह का एक प्रकार का सफेद पदार्थ उत्पन्न होकर जम जाता है । यदि यह पदार्थ काटकर निकाल न लिया जाय, तो पेड़ सूख जाता है । यही पदार्थ निकालकर पीसते हैं और तब छोटे छोटे दानों के रूप में बनाकर सुखाते हैं । कुछ वृक्ष ऐसे भी होते हैं जिनके तने के टुकड़े टुकड़े करके उनमें से गुदा निकाला जाता है और पानी में घूटकर दानों के रूप में सुखा लिया जाता है । इन्हीं दानों को सागूदाना या साधूदाना कहते हैं । इस वृक्ष का तना पानी में जल्दी गहरी सड़ता; इसलिये उसे खोपला करके उससे नाछी का काम सेते हैं । यह वृक्ष वर्ष भर में यीर्ण से लगाया जाता है । (२) दे० "सागूदाना" ।

सागूदाना—संज्ञा पुं० [ हिं० सागू + दाना ] सागू नामक वृक्ष के तने का गुदा जो पहले आटे के रूप में होता है और फिर घूटकर दानों के रूप में सुखा लिया जाता है । यह बहुत जल्दी पच जाता है, इसलिये यह दुर्बलों और रोगियों को पानी या दूध में उबाल कर, पच्य के रूप में दिया जाता है । इसे साधूदाना भी कहते हैं । वि० दे० "सागू" ।

सागौ—संज्ञा पुं० दे० "सागू" ।

सागौन—संज्ञा पुं० दे० "शाल" (१) ।

साशिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसके पास यज्ञ या इवन की भूमि रहती हो । वह जो बराबर भूमिहोत्र आदि क्रिया करता हो ।

साम्र—वि० [ सं० ] समस्त । कुल । सब ।

साचक्र—संज्ञा स्त्री० [ बु० ] गुप्तलभानों में विवाह की एक रस्म जिसमें विवाह से एक दिन पहले वर पक्षवाले अपने यहाँ

से कन्या के लिये मेहँदी, मेवे, फल तथा कुछ सुगंधित द्रव्य आदि भेजते हैं ।

साचरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक रागिनी, जो कुछ लोगों के मत से

अथ राग की पत्नी है ।

साचिवारिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद पुनर्नवा । गृहहृरना ।

साचिव्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सचिव का भाव या धर्म ।

सचिवता । (२) सहायता । मदद ।

साची कुम्हड़ा—संज्ञा पुं० [ दिता० सानो + कुम्हड़ा ] भतुआ कुम्हड़ा ।

सफेद कुम्हड़ा । पेठा ।

साचीगुण—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक देश का नाम ।

साज—संज्ञा पुं० [ सं० ] पूर्व मादपद नक्षत्र ।

साज़—संज्ञा पुं० [ फा० मि०, सं० सज़ा ] (१) सजावट का काम ।

तैयारी । ठाट बाट । (२) वह उपकरण जिसकी आवश्यकता

सजावट आदि के लिये होती हो । ये चीजें जिनकी सहायता

से सजावट की जाती है । सजावट का सामान । उपकरण ।

सामग्री । जैसे,—धोड़े का साज ( जीन, लगाम, तंग,

दुमची आदि ), लहंगे का साज ( गोटा, पट्टा, किनारी

आदि ) नाव का साज ( खंभे, पट्टे, जौंगले आदि ) बरामदे

का साज ( खंभे, घुड़िया आदि ) ।

यौ०—साज सामान ।

(३) वाद्य । बाजा । जैसे,—तबला, सारंगी, जोड़ी,

सितार, हारमोनियम आदि ।

मुहा०—साज छेड़ना = बाजा बजाना आरंभ करना । साज

मिलाना = बाजा बजाने से पहले उसका सुर आदि ठीक करना ।

(४) लड़ाई में काम आनेवाले हथियार । जैसे,—तलवार,

बंदूक, डाल, भाला आदि । (५) बंदहूयों का एक प्रकार का

रंदा जिससे गोल गलता बनाया जाता है । (६) मेल जोल ।

घनिष्टता ।

यौ०—साज वाज = मेल मेल । घनिष्टता ।

फि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

वि० बनानेवाला । मरम्मत या तैयार करनेवाला । काम

कानेवाला ।

घियोप—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार यौगिक शब्दों

के अंत में होता है । जैसे,—घंड़ीसाज, रंगसाज आदि ।

साजक—संज्ञा पुं० [ सं० ] बाजरा । बजरा ।

साजगिरी—संज्ञा स्त्री० [ देता० ] संपूर्ण जाति का एक राग

जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं ।

साजड़—संज्ञा पुं० [ देता० ] गुद नामक वृक्ष जिससे कतीरा गौद

निकलता है । वि० दे० "गुद" (१) ।

साजन—संज्ञा पुं० [ सं० सजन ] (१) पति । मता । स्वामी । (२)

प्रेमी । वधुभ । (३) इंशर । (४) सजन । भला आदमी ।

साजना-कि० सं० [ सं० सजा ] (१) दे० "सजाना"।

उ०—घड़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा पिरह बुंद दल पाजा।—जायसी। (२) छोटे बड़े पानों को उनके आकार के अनुसार आगे पीछे या ऊपर नीचे रखना। (समोली) सजा पुं० दे० "साजन"।

साज वाज—संज्ञा पुं० [ सं० साज + वाज (अनु०) ] (१) लैवारी। (२) मेल जोल। पतिव्रता।

संधो० कि०—करना।—बढ़ाना।—रखना।—होना।

साजर—संज्ञा पुं० [ देश० ]। गुल्द नामक वृक्ष जिससे कतीरा गोंद निकलता है। वि० दे० "गुल्द" (१)।

साज सामान—संज्ञा पुं० [ प्रा० ] (१) सामग्री। उपकरण। अस्वाय। जैसे,—यारात का सय साज सामान पहले से ही ठीक कर लेना चाहिए। (२) दांड बाट।

साजाज्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] सजाति होने का भाव जो यस्तु के दो प्रकार के धर्मों में से एक है। (बलुओं का दूसरे प्रकार का धर्म वैवाच्य कहलता है।)

सांजिदा—संज्ञा पुं० [ प्रा० साजिदा ] (१) वह जो कोई साज (बाजा) बजाता हो। साज या बाजा बजानेवाला। (२) वेदियों की परिभाषा में तबला, सारंगी या जोड़ी बजानेवाला। सपरदाई। समाजी।

साजिया—संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] (१) मेल। मिलाप। (२) किसी के विरुद्ध कोई काम करने में सहायक होना। किसी को हानि पहुँचाने में किसी को सहाय या मदद देना। जैसे,—हूतना बड़ा मामला थिना उनकी साजिश के दो ही नहीं सकता।

साजुज्य—संज्ञा पुं० दे० "साजुज्य"।

साभा—संज्ञा पुं० [ सं० सदाय ] (१) किसी वस्तु में भाग पाने का अधिकार। शारास्त। हिस्सेदारी। जैसे,—बासी रोटी में किसी का क्या साभा? (कहा०)

कि० प्र०—लगायना।

(३) हिस्सा। भाग। बाँट। जैसे,—उन्के गले के रोजगार में हमारा आधा साभा है।

कि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

साभी—संज्ञा पुं० [ हिं० साभा + र् (प्रत्य०) ] वह जिसका किसी काम या चीज में सांभा हो। सांभेदार। मागी। हिस्सेदार।

सांभेदार—संज्ञा पुं० [ हिं० सांभा + दार (प्रत्य०) ] शरीक होनेवाला। हिस्सेदार। सांभे।

सांभेदारी—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सांभेदार + र् (प्रत्य०) ] सांभेदार होने का भाव। हिस्सेदारी। शारास्त।

सांठ—संज्ञा स्त्री० दे० "साँठ"।

सांठक—संज्ञा पुं० [ ? ] (१) भूमि। डिलका। (२) मिल्डुल गुल्द और निरधक वस्तु। निरुमी चीज। उ०—गज-बानि-

पटा, भले भूरि भंदा, बनिता सुन भीह तकै सय वै। धरमी धन धाम सरीर भंजो, सुर लोकहु चाहि इहै सुख रखै। सय फोकर साठक है तुलसी, अर्धनो न कळ सपनो दिनु है। जारि जाउ सो जीवन जानकीनाथ! नियो जग में तुम्हरो विन ह्वै।—तुलसी। (३) एक प्रकार का छंद।

साटन—संज्ञा पुं० [ अ० सैटिन ] एक प्रकार का बड़िया देशी कपड़ा जो प्रायः एकदम और कई रंगों का होता है।

साटना-कि० सं० [ हिं० सटाना ] (१) दो चीजों का इस प्रकार मिलाना कि उनके तल आपस में मिल जायें। सटाना। जोड़ना। मिलाना। (२) दे० "सटाना"।

साटनी—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] कलंदरों की परिभाषा में मालू का माच।

साटमार—संज्ञा पुं० [ हिं० साँट + मारना ] वह जो हाथियों को (साँट मार मारकर) लड़ाता हो। हाथियों को लड़ानेवाला।

साठी—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] (१) पुनर्नवा। गद्दहपना। (३) सामान। सामग्री। वि० दे० "साँठी"। (३) कसची। साँधी।

साठी—अव्य० [ देश० ] बदले में। परिवर्तन में।

साठ-वि० [ सं० षड् ] पचास और दस। जो पचपन से पँच ऊपर हो।

संज्ञा पुं० पचास और दस के योग की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—५०।

संज्ञा स्त्री० दे० "साठी"।

साठनाठ-वि० [ हिं० साँठ + नाठ (तथ) ] (१) जिसकी पूँजी गप हो गई हो। निर्धन। दरिद्र। उ०—साठनाठ लग बाट को पूँछ। विन जिय किरै मूँज तन हूँछ।—जायसी। (२) नीरस। रुखा। (३) इधर-उधर। चितर बितर। उ०—चेरक लाह इरहि मन जब लहि होइ हाथ फेंट। साठ-नाठ उठि भपु यटाऊ, ना पहिबान न भेंट।—जायसी।

साठसाठी—संज्ञा स्त्री० दे० "साठेसाठी"।

साठा—संज्ञा पुं० [ देश० ] (१) हूँछ। गन्ना। उल। (२) एक प्रकार का धान जिसे साठी कहते हैं। वि० दे० "साठी"।

(३) वह वेत जो बहुत लंबा चौड़ा हो। (४) एक प्रकार की मनुमक्ती जिसे सधुरिया भी कहते हैं।

वि० [ हिं० साठ ] जिसकी अवस्था साठ वर्ष की हो गई हो। साठ वर्ष की उम्रवाला। जैसे,—साठा सो पाय। (कहा०)

साठी—संज्ञा पुं० [ सं० षडिक ] एक प्रकार का धान। कहते हैं कि यह धान ६० दिन में तैयार हो जाता है, इसी से इसे साठी कहते हैं। इसके दाने दो प्रकार के होते हैं—काले और सफेद। काले की अपेक्षा सफेद दानेवाला अधिक अच्छा होता है। इसमें गुण अधिक होता है।

साड़ा-संज्ञा पुं० [ देरा० ] (१) घोड़ों का एक प्राणवातक रोग ।

(२) बाँस का वह डुकड़ा, जो नाप में, मछाहों के पैरने के स्थान के नीचे, लगा रहता है ।

साड़ी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शालिका ] स्त्रियों के पहनने की धोती जिसमें चौड़ा किनारा या बेल आदि बनी होती है । सारी । संज्ञा स्त्री० दे० "साड़ी" ।

साढ़ेसाती-संज्ञा स्त्री० दे० "साढ़ेसाती" । उ०—अवध साढ़ेसाती अनु मोली ।—तुलसी ।

साढ़ी-संज्ञा स्त्री० [ हि० असाढ़ ] वह फसल जो असाढ़ में बोई जाती है । असाढ़ी ।

सांठा स्त्री० [ सं० सार ? ] दूध के ऊपर जमनेवाली थालाई । मछाई । उ०—सब हेरि धरीई साढ़ी । लै, उपर उपरते काढ़ी ।—सूर ।

सांठा स्त्री० [ सं० शाल ] शाल वृक्ष का गाँव ।

(१) संज्ञा स्त्री० दे० "सांठी" ।

साढ़ू-संज्ञा पुं० [ सं० न्यालिशेठी ] साली का पति । पत्नी की यहन का पति ।

साढ़ेचौहारा-संज्ञा पुं० [ हि० साढ़े + चौ (चार) + धरा (भ्रम) ] एक प्रकार की बाँट जिसमें फसल का दूई अंश जमींदार को मिलता है और शेष दूई अंश कान्तकार को ।

साढ़ेसाती-संज्ञा स्त्री० [ हि० साढ़े + सात + ई (भय०) ] शनि ग्रह की साढ़े सात वर्ष, साढ़े सात मास या साढ़े सात दिन आदि की दशा, फलित ज्योतिष के अनुसार जिसका फल बहुत बुरा होता है ।

सुहा०—साढ़ेसाती आना या घटना = दुर्घटा या विपत्ति के दिन आना ।

सात-विं० [ सं० सप्त ] पाँच और दो । छः से एक अधिक ।

सांठा पुं० पाँच और दो के योग की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७ ।

सुहा०—सात पाँच = चालीसी । मकारी । धूर्तता । जैसे,—वह बेचारा सात पाँच नहीं जानता; सीया आदमी है ।

सात पाँच करना = (१) बहाना करना । (२) मगढ़ा करना । उपद्रव करना । (३) चालबाजी करना । धूर्तता करना । सात परदे में रखना = (१) अच्छी तरह छिपाकर रखना । (२) बहुत सँभालकर रखना ।

सात समुद्र पार = बहुत दूर । सातों भूल जाना = दोरा ध्वंसा चला जाना । इन्द्रियों का काम न करना । (पाँच दिशों, मन और बुद्धि से सब मिलकर सात हुए ।) सात राजाओं की साक्षी

देना = बहुत दृढ़तापूर्वक कोई बात कहना । किसी बात की सत्यता पर बहुत बोर देना । उ०—मनसि, बचन भर, कर्मना कहु कहति नाहिन राखि । सूर प्रभु यह बोल हिरव्य सात राजा साखि ।—सूर । सात साँकें बनाना = शिष्ट कर्म के दृष्टे

दिन की एक रीति जिसमें हात सोई गरी जाती है । उ०—साधिये

बनाईकें देहि द्वारे सात साँकें बनाय । नव किसोरी सुदित है हे गदति यशुदा जी के पाँय ।—सूर ।

सातपूती-संज्ञा स्त्री० दे० "सातपूती" ।

सात फरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० साग + फरी ] विवाह की भाँवर नामक रीति जिसमें घर और बंधु, अम्हिकी, सात बार परिक्रमा करते हैं ।

सातमाई-संज्ञा स्त्री० दे० "सतमाइया" ।

सातला-संज्ञा पुं० [ सं० सतला ] एक प्रकार का थूहर जिसका दूध पीले रंग का होता है । सतला । भूरिफना । स्वर्णपुपी ।

विशेष—शालग्राम निर्घट्ट में लिखा है कि यह एक प्रकार की थेल है जो जंगलों में पाई जाती है । इसके पत्ते और के पत्तों की भाँति और फूल पीले होते हैं । इसमें पतली चिपटो फली लगती है जिसे सूँकाकाई कहते हैं । इसके पीज काले होते हैं जिनमें पीले रंग का दूध निकलता है ।

परंतु इंडियन मेडिकल डिप्लोमस के मतानुसार यह छुर जाति की वनस्पति है । इसकी छाल एक से तीन फुट तक लंबी होती है जिसमें रोपे होते हैं । इसके पत्ते एक-दोप लंबे और चौड़ाई इंच चौड़े अंडाकार अनीदार होते हैं ।

बाल के अंत में चारिक फूलों के घने गुच्छे लगते हैं जो लाल रंग के होते हैं । फल चिकने और छोटे होते हैं । यह वनस्पति सुगंधयुक्त होती है । इसका तेल सुगंधित और

उत्तेजक होता है जो मिरगी रोग में काम आता है ।

साती-संज्ञा स्त्री० [ देरा० ] साँप काटने की एक प्रकार की विधि सा जिसमें साँप काटे हुए स्थान को घेरकर उस पर नमक या चारुन मलते हैं ।

सातमक-विं० [ सं० ] आमा के सहित । आरामयुक्त ।

साययज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साययज्ञ । सत्यता । (२) वैद्यक के अनुसार वह रस जिसके सेवन से शरीर का किसी प्रकार का उपकार होता हो और जिसके फल-स्वरूप प्रकृति-विषय कोई कार्य करने पर भी शरीर का अनिष्ट न होता हो । (३) ऋत, काल, देना आदि के अनुकूल पढ़नेवाला आहार विहार आदि ।

साययज्ञि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यादव जिसका दूसरा नाम सुयुधान था । इसके पिता का नाम सत्यक था । महाभारत के युद्ध में इसने पांडवों का पक्ष लिया था । इसने कौरव भूरिभवा को मारा था । श्रीकृष्ण और अर्जुन से इसने अन्न विद्या सीखी थी ।

साययकी-संज्ञा पुं० दे० "साययकि" ।

साययदूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह हीमं जो सरस्वती आदि देवियों या देवताओं के उद्देश्य से किया जाय ।

साययज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक आचार्य का नाम ।

साय्यरथि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो साय्यरथ के बंध में उत्पन्न हुआ हो।

साय्यवत, साय्यवतैय-संज्ञा पुं० [ सं० ] साय्यवती के पुत्र पदव्यास।

साय्यहृदय-संज्ञा पुं० [ सं० ] ब्रह्मण्ड के बंध के एक प्राचीन कल्पि का नाम।

साय्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधक।

साय्याजित-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा शंतालीक जो सत्राजित के बंधन में था।

साय्याजितो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सत्यभामा का एक नाम।

साय्य-वि० [ सं० ] सत्य गुण संबंधी। साय्यिक।

साय्यत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बलराम। (२) श्रीकृष्ण। (३) विष्णु। (४) यदुवंशी। यादव। (५) मनुसंहिता के अनुसार एक वर्गसंकर जाति। (६) एक प्राचीन देश का नाम।

साय्यती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शिशुपाल की माता का नाम।

(२) सुमित्रा का एक नाम।

साय्यती श्रुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साहित्य के अनुसार एक प्रकार की श्रुति जिसका ध्येयहार यीर, रौद्र, अद्भुत और शान्त रसों में होता है। यह श्रुति उस समय सानी जाती है जब कि नायक द्वारा ऐसे सुंदर और आनंदपूर्ण वाक्यों का प्रयोग होता है, जिन्हें उसकी शूरता, दानशीलता, दाक्षिण्य आदि गुण प्रकट होते हैं।

साय्यक-वि० [ सं० ] (१) साय्यगुण से संबंध रखनेवाला। सत्यगुणी। (२) जिसमें सत्यगुण की प्रधानता हो। (३) साय्यगुण से उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) सत्यगुण से उत्पन्न होनेवाले; निसर्गज्ञात अंग विचार। ये आठ प्रकार के होते हैं—स्तंभ, स्वप्न, रोमांच, स्वरसंग, कंप, वैषम्य, अद्भुत और प्रलय। केवल के अनुसार भाव्यो प्रलय नहीं बल्कि प्रलय होता है। (२) साहित्य के अनुसार एक प्रकार की श्रुति जिसका ध्येयहार अद्भुत, यीर, श्रंगार और शान्त रसों में होता है। साय्यती श्रुति। (३) महा। (४) विष्णु।

साय्यकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा का एक नाम।

साय्य-वि० [ सं० ] सत्य गुण से संबंध रखनेवाली। सत्य गुण की। साय्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह वा शक्ति। (१) मिलकर या संग रहने का भाव। संगत। सहचार।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—लगाना।—होना।

मुहा०—साय्य घटना = संग घटना। भ्रम होना। उदा होना। साथ देना = किसी काम में संग रहना। सहाय्य भूति करना या सहाय्य देना। जैसे,—दूसर काम में हम तुम्हारा साथ देंगे। साथ देना = अपने हंग अपना सा से चलना। जैसे,—जब तुम चलने लगना, तो हमें भी साथ ले लेना। साथ सोना =

संगम करना। संगम करना। साथ सोकर मुँह छिपाना = बहुत अधिक बनिष्टता होने पर भी संतोष या दुःख करना। साथ का या साथ को = तरफ़ों, भाग्य भादि को रोटी के साथ खाये जाता है। साथ का खेल = वाय्यवस्था या मित्र। बनान का साथी।

(२) वह जो संग रहता हो। बराबर पास रहनेवाला। साथी। संगी। (३) मेल मिलाप। घनिष्टता। जैसे,—आसकल उन दोनों का बहुत साथ है। (४) कर्तव्यों का हुंड या डुकड़ी। (खलनऊ)

अभ्य० (१) एक संबंधसूचक अव्यय जिससे प्रायः सहचारका बोध होता है। सहित। से। जैसे,—(क) तुम भी साथ चले जाओ। (ख) वह बड़े आराम के साथ सब काम करता है।

मुहा०—साथ ही = मित्र। अनिरक्त। जैसे,—साथ ही यह भी एक बात है कि आप चहाँ नहीं जा सकेंगे। साथ ही साथ = एक साथ। एक स्थिति में। जैसे,—साथ ही साथ दोहराते भी चलो। एक साथ = एक स्थिति में। जैसे,—(क) एक साथ दोनों काम हो जायेंगे। (ख) जब एक साथ इतने आदमी पहुँचेंगे तो वे घबरा जायेंगे।

(२) विपदा। से। जैसे,—सब के साथ लड़ना ठीक नहीं।

(३) प्रति। से। जैसे,—(क) उनके साथ हँसी मजाक मत किया करो। (ख) यहाँ के साथ शिष्टतापूर्वक ध्येयहार किया करो। (४) द्वारा। उ०—नखन साथ तप उदर विदारयो।—सूर।

साथरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० साथरी ] (१) पिछोना। धिस्तार। (२) घटाई। (३) उग्र की बनी घटाई। उ०—रघुपति चंद्र विचार कथ्यो। नातो मानि सगर सागर सों कुस साथरे पण्यो।—सूर।

साथी-संज्ञा पुं० [ सं० ] साथ + ई (अव्य०) [ स्त्री० साथिन ] (१) वह जो साथ रहना हो। साथ रहनेवाला। हमराही। संगी। (२) दोस्त। मित्र।

साद्गी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सादा होने का भाव। सादापन। सरलता। (२) सीधापन। निष्कपयता।

सादा-वि० [ सं० ] सादा [ स्त्री० सादी ] (१) जिसकी बनावट आदि बहुत संक्षिप्त हो। जिसमें बहुत अधिक अंग, उपांग, पंच वा षोडश आदि न हों। जैसे,—चरदा मृत कालने का सय से सादा संग्रह है। (२) जिसके ऊपर कोई अनिष्टक काम न बना हो। जैसे,—सादा दुपटा, सादी जिन्द, सादा लिटौना। (३) जिसमें किसी विशेष प्रकार का मिश्रण न हो। बिना मिलावट का। क्वचित्सं। जैसे,—सादा पानी या सादी भांग, (जिसमें चीनी आदि न मिली हो)। सादी पूरी (जिसमें पोयें आदि न मरी हो)। सादा मोजन (जिसमें अधिक मसाले या भेद आदि न हों)। (४) जिसके कप



कुछ अंकित न हो। जैसे,—सादा कागज, सादा किनारा (जिसमें थेल बूटे आदि न बने हों)। (५) जिसके ऊपर कोई रंग न हो। सफेद। जैसे,—सादे किनारे की धोती। (६) जो कुछ छल कपट न जानता हो। जिसमें किसी प्रकार का आडंबर या अभिमान आदि न हो। सरल हृदय। सीधा। जैसे,—वे बहुत ही सादे आदमी हैं।

घो०—सीधा सादा = सरल हृदय।

(७) वेदकृष्ट। मूर्ख। (क०) जैसे,—(क) वह सादा क्या जाने कि दर्शन किसे कहते हैं। (ख) यहाँ ऐसा कौन सादा है जो तुम्हारी बातें मान ले।

सादापन—संज्ञा पुं० [ क्रा० सादा + पन (प्रत्य०) ] सादा होने का भाव। सादगी। सरलता।

सादी—संज्ञा स्त्री० [ क्रा० सादः ] (१) छाल की जाति की एक प्रकार की छोटी बिड़िया जिसका शरीर भूरे रंग का होता है और जिसके शरीर पर चित्तियाँ नहीं होतीं। बिना चित्ती की मुनियाँ। सड़िया। (२) वह पूरी जिसमें पीठी आदि नहीं भरी होती।

संज्ञा पुं० [ ? ] (१) निकारी। उ०—सहरज सादी संग सिपारे। शूकर गुगा सपन बहु भारे।—रघुराज।

(२) घोड़ा। ( हि० )

संज्ञा स्त्री० दे० "सादी"।

सादूर—संज्ञा पुं० [ सं० शार्दूल ] (१) शार्दूल। सिंह। उ०—चौय दोह सायक सादूरू। पाँची परस ओ कंथन मुरू।—जायसी।

(२) कोई हिंसक पशु।

सादृश्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सदृश होने का भाव। समानता। एक-रूपता। (२) परावरी। तुलना। समान धर्म। (३) कुरंग। मृग।

सादृश्यता—संज्ञा स्त्री० दे० "सादृश्य"।

साध—संज्ञा पुं० [ सं० साधु ] (१) साधु। महात्मा। (२) योगी। (३) अच्छा आदमी। सज्जन।

संज्ञा स्त्री० [ सं० असाध ] (१) रुद्धता। क्याहिता। कामना। उ०—जेहि अस साध होइ जिब खोवा। सो पतंग दीपक नस रोवा।—जायसी। (२) गर्भ धारण करने के सातवें मास में होनेवाला एक प्रकार का उत्सव। इस अवसर पर स्त्री के मायके से मिठाई आदि आती है।

संज्ञा पुं० फंद खायाद और कपड़ों के आस पास पाई जानेवाली एक जाति। इस जाति के लोग मूर्च्छिपूजा आदि नहीं करते, किसी के सामने सिर नहीं झुकाते और केवल एक परमारमा की आराधना करते हैं।

साधक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साधना करनेवाला। साधनेवाला। सिद्ध करनेवाला। (२) योगी। तप करनेवाला। तपस्वी।

(३) जिससे कोई कार्य सिद्ध हो। करण। वसीला।

जरिया। (४) भूत प्रेत आदि को साधने या अपने वश में करनेवाला। भोता। (५) वह जो किसी दूसरे के स्वाध-साधन में सहायक हो। जैसे,—दोनों सिद्ध साधक बनकर आए थे। (६) पुत्रजीव वृक्ष। (७) दौना। (८) पित्त।

साधक—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा का एक नाम जिसे स्मरण करने से सब कार्यों की सिद्धि होती है।

साधन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी काम को सिद्ध करने की क्रिया। सिद्धि। विधान। (२) वह जिसके द्वारा कोई उपाय सिद्ध हो। सामग्री। सामान। उपकरण। जैसे,—साधन के अभाव से मैं यह काम न कर सका। (३) उपाय। युक्ति। हिकमत। (४) उपासना। साधना। (५) सहायता। मदद। (६) धातुओं को शोधने की क्रिया। शोधन। (७) कारण। हेतु। स्वयं। (८) अचार। संचान। (९) मृतक का अंति संस्कार। दाह कर्म। (१०) जाना। गमन। (११) धन। दौलत। द्रव्य। (१२) पदार्थ। चीज। (१३) घोड़े, हाथी और सैनिक आदि जिनकी सहायता से युद्ध होता है। (१४) उपाय। तरकीब। (१५) सिद्धि। (१६) प्रमाण। (१७) तपस्या आदि के द्वारा मंत्र सिद्ध करना। साधना।

साधनता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) साधन का भाव या धर्म। (२) साधन करने की क्रिया। साधना। उ०—कहि आचार भक्त विधभाषी हंस धर्म प्रकटायो। कही विभूति सिद्ध साधनता आधम चार कहायो।—सूर।

साधनहार—संज्ञा पुं० [ सं० साधन + हार (प्रत्य०) ] (१) साधनेवाला। जो सिद्ध करता हो। (२) जो साधा जा सके। सिद्ध होने के योग्य।

साधना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कोई कार्य सिद्ध या संपन्न करने की क्रिया। सिद्धि। (२) किसी देवता या यंत्र आदि को सिद्ध करने के लिये उसकी आराधना या उपासना करना। (३) दे० "साधन"।

क्रि० सं० [ सं० साधन ] (१) कोई कार्य सिद्ध करना। पूरा करना। (२) निशाना लगाना। संचान करना। (३) नापना। पैनाइश करना। जैसे,—लकड़ी साधना। कुंठा साधना। जूता साधना। डोरी साधना। (४) अभ्यास करना। आदत डालना। स्वभाव डालना। जैसे,—योग साधना। तप साधना। उ०—जन हगि पीउ मिले तुहि साधि प्रेम की पीर। जैसे सीप स्वाति कहैं तप समुद्र मैं नीर।—जायसी। (५) शोधना। शुद्ध करना। (६) सचा प्रमाणित करना। (७) पकत करना। उहराना। (८) एकत्र करना। इकट्ठा करना। उ०—वैदिक विधान अनेक लौकिक आंचल सुनि जान कै। पल्लिदान पूजा मूलि कामनि साधि राखी आनि कै।—तुलसी।

साधनी-यंत्रा स्त्री० [ सं० साधन ] लोहे या लकड़ी का एक प्रकार का लंबा औजार जिससे जमीन चौरस करते हैं।

साधनीय-वि० [ सं० ] (१) साधना करने के योग्य। साधने लायक। (२) जो हो सके। जो साधा जा सके।

साधयितव्य-वि० [ सं० ] साधन करने के योग्य। साधने या सिद्ध करने लायक।

साधयिता-संज्ञा पुं० [ सं० साधयितृ ] वह जो साधन करता हो। साधन करनेवाला। साधक।

साधर्म्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] समान धर्म होने का भाव। एक धर्मता। समान धर्मता। तुल्य धर्मता। जैसे,—दूध दोनों में कुछ भी साधर्म्य नहीं है।

साधारण-वि० [ सं० ] (१) जिसमें कोई विशेषता न हो। मामूली। सामान्य। जैसे,—साधारण बात, साधारण काम, साधारण उपाय। (२) आसान। सरल। सहज। (३) सार्वजनिक। आम। (४) समान। सरल। तुल्य।

साधारण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भावप्रकाश के अनुसार यह प्रदेश जहाँ जंगल अधिक हों, पानी अधिक हो, रोग अधिक हों, और जाड़ा तथा गरमी भी अधिक पड़ती हो। (२) ऐसे देश का जल।

साधारण्य गांधार-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का विकृत स्वर जो यंत्रिका नामक ध्रुति से आरंभ होता है। इसमें तीन ध्रुतियाँ होती हैं।

साधारण्यता-मन्त्र्य० [ सं० ] (१) मामूली और पर। आम और पर। सामान्यतः। (२) बहुधा। प्रार्य।

साधारण्यता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साधारण होने का भाव या धर्म। मामूलीपन।

साधारण्य देश-संज्ञा पुं० दे० "साधारण" (१)।

साधारण्य धर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह धर्म जो सब के लिये हो। सार्वजनिक धर्म। (२) वह धर्म जो साधारणतः एक ही प्रकार के सब पदार्थों में पाया जाय। (३) धर्मों वगैरे के कर्तव्य कर्म।

साधारण्य स्त्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेदवा। रंढी।

साधारण्यी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक अक्षरा का नाम। उ०—

महण किया नहिं तिन्हें सुरापुर साधारण्य जिय जानी।

ताते साधारणी नाम तिन लखो जगन उचिखानी।—रघु-

राज। (२) कुंजी। ताडी। धानी।

साधारण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] साधारण होने का भाव या धर्म। साधारणता। मामूलीपन।

साधिका-वि० स्त्री० [ सं० ] सिद्ध करनेवाली। जो सिद्ध करे।

साधिका-संज्ञा स्त्री० गंधरी मीढ़।

साधित-वि० [ सं० ] (१) सिद्ध किया हुआ। जो सिद्ध किया गया हो। जो साधा गया हो। (२) जिसे किसी प्रकार का

बंध दिया गया हो। (३) शुद्ध किया हुआ। शोधित। (४) जिसका वादा किया गया हो। (५) (कण आदि) जो चुकाया गया हो।

साधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसका जन्म उत्तम कुल में हुआ हो। कुलीन। आर्य्य। (२) वह धार्मिक, परोपकारी और सद्गुणी पुरुष जो सत्योपदेन द्वारा दूसरों का उपकार करे। धार्मिक पुरुष। परमार्थी। महात्मा। संत। (३) वह जो शांत, सुशील, सदाचारी वीतराग और परोपकारी हो। भला आदमी। सज्जन।

मुद्दा—साधु साधु कहना = किसी के कोई भग्नादान करने पर उलझी खुल प्रस्ता करता।

(४) वह जिसकी साधना पूरी हो गई हो। (५) साधु धर्म का पालन करनेवाला। जैन साधु। (६) दीना नामक पौधा। दमनक। (७) वरुण वृक्ष। (८) जिन। (९) मुनि। (१०) वह जो सूत्र व्याज से अपनी जीविका चलाता हो। वि० (१) अच्छा। उत्तम। भला। (२) सच्चा। (३) प्रशंसनीय। (४) निपुण। होशियार। (५) योग्य। उपयुक्त। (६) वधित। मुनासिब।

साधुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कदम। कदंब वृक्ष। (२) वरुण वृक्ष।

साधुकारी-संज्ञा पुं० [ सं० साधुकारि ] वह जो उत्तम कार्य करता हो। अच्छा काम करनेवाला।

साधुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसका जन्म उत्तम कुल में हुआ हो। कुलीन।

साधुज्ञात-वि० [ सं० ] (१) सुंदर। खूबसूरत। (२) उज्वल। साफ। स्वच्छ।

साधुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) साधु होने का भाव या धर्म।

(२) साधुओं का धर्म। साधुओं का आचरण। (३) सज्जनता। भलमनसाहत। (४) भलाई। नेकी। (५) सीधापन। सिधाई।

साधुधर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] धर्मों के अनुसार साधुओं का धर्म। यति धर्म।

विशेष—यह दस प्रकार का कहा गया है—शक्ति, मार्दव, आज्ञ, शुक्ति, तप, संयम, सत्य, शीघ्र, अकिंचन और मल।

साधुधी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पत्नी या पति की माता। सास।

साधुपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्थल कमल। स्थल पत्र।

साधुमया-संज्ञा पुं० [ सं० ] साधुओं के रहने की जगह। कुटीर। कुटी।

साधुमती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तांत्रिकों की एक देवी का नाम। (२) बौद्धों के अनुसार दसवीं पृथ्वी का नाम।

साधुवाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी के कोई उत्तम कार्य करने पर "साधु साधु" कहकर उत्तम प्रशंसा करने का काम।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।—मिलना ।

साधुवृत्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कदम का पद । कदम । (२) वरुण वृक्ष ।

साधुवृत्त-वि० [ सं० ] उत्तम स्वभाव और चरित्रवाला । साधु आचरण करनेवाला ।

साधुवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उत्तम और श्रेष्ठ वृत्ति ।

साधु साधु—प्रत्यय० [ सं० ] एक पद जिसका व्यवहार किसी के बहुत उत्तम कार्य करने पर किया जाता है । धन्य धन्य । वाह वाह । बहुत खूब । उ०—स्तुति सुनि मन हर्ष बढ़ायो । साधु साधु कहि सुरनि सुनायो ।—सूर ।

साधू—संज्ञा पुं० [ सं० साधु ] (१) धार्मिक पुरुष । साधु । संत । महात्मा । (२) सजान । भला आदमी । (३) सीधा आदमी । भोला भाला । (४) दे० "साधु" ।

साधो—संज्ञा पुं० [ सं० साधु ] धार्मिक पुरुष । संत । साधु ।

साध्य-वि० [ सं० ] (१) सिद्ध करने योग्य । साधनीय । (२) जो सिद्ध हो सके । पूरा हो सकने के योग्य । जैसे,—यह कार्य साध्य नहीं जान पड़ता । (३) सहज । सरल । आसान । (४) जो प्रमाणित करना हो । जिसे साधित करना हो । (५) प्रतिकार करने के योग्य । (६) जानने के योग्य । संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार के गणदेवता जिनकी संख्या बारह है और जिनके नाम इस प्रकार हैं—मन, मंता, प्राण, नर, अपान, धीर्यवान्, विनिर्भय, नय, दंस, नारायण, वृष और प्रेमूच । शारदीय नवरात्र में इन गणों के पूजन का विधान है । (२) देवता । (३) ज्योतिष में विषम भादि सत्ताहस योगों में से हकीसवों योग, जो बहुत शुभ माना जाता है । कहते हैं कि इस योग में जो काम किया जाता है, वह भली भाँति सिद्ध होता है । जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह असाध्य कार्य भी सहज में कर लेता है और बहुत धीर, धीर, बुद्धिमान तथा विनयशील होता है । (४) तंत्र के अनुसार गुरु से लिए जानेवाले चार प्रकार के मंत्रों में से एक प्रकार का मंत्र । (५) न्याय में वह पदार्थ जिसका अनुमान किया जाय । जैसे,—पर्वत से धूर्ध्र निकलता है; अतः यहाँ अग्नि है । इसमें "अग्नि" साध्य है । (६) कार्य करने की शक्ति । सामर्थ्य । जैसे,—वेह काम हमारे साध्य के बाहर है । (बोल चाल)

साध्यता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साध्य का भाव या धर्म । साध्यत्व ।

साध्यसामानिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साहित्यदर्पण के अनुसार एक प्रकार की लक्षणा ।

साध्यसम—संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में वह हेतु जिसका साधन साध्य की भाँति करना पड़े । जैसे,—पर्वत से धूर्ध्र निकलता है; अतः यहाँ अग्नि है । इसमें "पर्वत" पद है,

"धूर्ध्र" हेतु है और "अग्नि" साध्य है । धूर्ध्र की सहायता से अग्नि का होना प्रमाणित किया जाता है । परंतु यदि पहले यही प्रमाणित करना पड़े कि धूर्ध्र निकलता है, तो इसे साध्यसम कहेंगे ।

साधु—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम ।

साध्यस—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भय । डर । (२) व्याकुलता । घबराहट । (३) प्रतिभा ।

साध्याचार—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साधुओं का सा आचार । (२) सिद्धाचार ।

साध्वी—वि० स्त्री० [ सं० ] (१) पतिव्रता । पतिपरायणा । (स्त्री) (२) शुद्ध चरित्रवाली (स्त्री) । सचरित्रा ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुग्ध पाषाण । (२) मेघा नामक अष्टवर्गीय ओषधि ।

सानंद—संज्ञा पुं० (१) गुच्छ करंज । चिखदल । (२) एक प्रकार की संप्रज्ञात समाधि । (३) संगीत में १६ प्रकार के भुवकों में से एक प्रकार का भुवक जिसका व्यवहार प्रायः धीर रस के वर्णन के लिये होता है ।

वि० आनंद के साथ । आनंदपूर्वक ।

सानंदनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक नदी का नाम ।

सानंदुरी—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम ।

सान—संज्ञा पुं० [ सं० शब्द ] वह पत्थर की चक्की जिस पर अन्नादि तैज किए जाते हैं । शाण । कुर्छ ।

सुहा०—सान, देना = धार, तीक्ष्ण करना = धार, तेज करना ।

सान धरना = अक्ष तेज करना । चोला करना ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सान" ।

सानना—क्रि० सं० [ हि० सन्ना या सक० ] (१) दो वस्तुओं को आपस में मिलाना; विनोदतः चूर्ण आदि को तरल पदार्थ में

मिलाकर गीला करना । मूँधना । जैसे,—जादा सानना ।

(२) सम्मिलित करना । शामिल करना । उचरदायी बनाना ।

जैसे,—आप सुखे तो स्वर्ष ही इस मामले में सानते हैं ।

(३) मिलाना । लपेटना । मिश्रित करना । संयुक्त करना ।

जैसे,—तुमने अपने दोनों हाथ मिट्टी में सान लिए ।

उ०—यह छुनि धावत धरनि चरन की प्रतिमा सगी पंथ

में पाई । वैन नीर रघुनाथ सानिकै शिव सो गत

चढ़ाई ।—सूर ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

क्रि० सं० [ हि० सान + ना (प्रत्यय) ] सान पर चढ़ाकर पार

तेज करना । (क्र०)

सानिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वंशी । मुरली ।

सानी—संज्ञा स्त्री० [ हि० सानना ] (१) वह भोजन जो पानी में

सानकर पशुओं को खिलाया जाता है ।

विशेष—जदि में भूसा भिगो देते हैं और उसमें खली, दाना,

नमक आदि छोटकर उसे पशुओं को खिलाते हैं। इसी को सानी कहते हैं।

(२) अनुचित रीति से एक में मिलाप हुए कई प्रकार के शाय पदार्थ। (धर्म्य) (३) गादी के पहिए में खाने की गिट्टक।  
 संघा स्त्री० दे० "सतई"।

वि० [ अ० ] (१) दूसरा। द्वितीय। जैसे,—औरंगजेब सानी। (२) परायरी का। समानता रखनेवाला। मुकाबले का। जैसे,—इन बातों में तो तुम्हारा सानी और कोई नहीं है।

यौ०—खानानी = जिसके समान और कोई न हो। अद्वितीय।

सानु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पर्वत की चोटी। शिखर। (२) अंत। सिरा। (३) समतल भूमि। चौरस जमीन। (४) वन। जंगल। विशेषतः पहाड़ी जंगल। (५) मार्ग। रास्ता। (६) पथव। पत्ता। (७) सूर्य। (८) विद्वाद्। पंडित।

सानुज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रयौगिक वृक्ष। पुंढेरी। (२) तुंडुव नामक वृक्ष।

सानुमानक—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुंढेरी। प्रयौगिक।

सानुधि—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन गोत्र-प्रयौगिक ऋषि का नाम।

सानोका—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की घास।

सानत—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम।

सान्नाय—संज्ञा पुं० [ सं० ] मंत्रों से पवित्र किया हुआ वह धी जिससे हवन किया जाता है।

सान्नाहिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सांझा पहने हो। कबचकारी।

सांघिष्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सामीपता। सामीप्य। सन्निकटता। (२) एक प्रकार की मुक्ति जिसमें आत्मा का ईर्ष्या के सामीप पहुँच जाना माना जाता है। मोक्ष।

सांघिष्यता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सांघिष्य का धर्म या भाव।

सांघिष्यताही—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का यौनि रोग जो त्रिदोष से उत्पन्न होता है।

सांघिष्यताक—वि० [ सं० ] (१) सांघिष्यता संबंधी। सांघिष्यता का। (२) त्रिदोष संबंधी। त्रिदोष से उत्पन्न होनेवाला (रोग)।

सान्यासिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसने सन्यास ग्रहण किया हो। सन्यासी।

सान्यपुत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल के एक वैदिक आचार्य। सांपल—संज्ञा पुं० दे० "साप"।

सापल्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सपत्नी का भाव या धर्म। सौत-पन। (२) सपत्नी का पुत्र। सौत का लड़का। (३) दास। दुरयन।

सापन—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रोग जिसमें सिर के बाल गिर जाते हैं।

सापना—संज्ञा—कि० सं० [ सं० ] साप, हिं० साप + ना (प्रत्यय)। (१) शाप देना। बददुआ देना। उ०—चहत महाराजि जाग गयो। नीच निसाचर देत दुसई दुख कूस तनु ताप सयो। सापे पाप नये निदरत खल तव यह मंत्र डयो। विप्र साडु सुर-धेनु धरनि हित हरि अवतार लयो। (२) दुर्बचन कहना। गाली देना। कोसना।

सापिंड्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] सापिंड होने का भाव या धर्म। साततंतव—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक धार्मिक संप्रदाय।

सातपदीन—वि० [ सं० ] सातपदी संबंधी। सातपदी का। संज्ञा पुं० मित्रता। दोस्ती।

सातमिक—वि० [ सं० ] सातमी संबंधी। सातमी का।

सातपथाहनि—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक प्राचीन ऋषि का नाम।

साफ—वि० [ अ० ] (१) जिसमें किसी प्रकार की मैल या कूड़ा कचरा आदि न हो। मैल या कूड़ा का उलटा। स्वच्छ। निर्मल। जैसे,—साफ कपड़ा, साफ कमरा, साफ रंग।

(२) जिसमें किसी और चीज की मिलावट न हो। शुद्ध। खालिस। जैसे,—साफ पानी। (३) जिसकी रचना या संघोचक अंगों में किसी प्रकार की छुट्टि या दोष न हो।

जैसे,—साफ लकड़ी। (४) जो स्वच्छतापूर्वक अंकित या चित्रित हो। जो देखने में स्पष्ट हो। जैसे,—साफ लिखाई, साफ छपाई, साफ सतयोर। (५) जिसका तल चमकीला और सफेदी लिए हो। उज्वल। जैसे,—साफ कपड़ा। (६) जिसमें किसी प्रकार का भेदापन या गद्दयद्दी आदि न हो।

जिसे देखने में कोई दोष न दिखाई दे। जैसे,—साफ खेल (इंद्रजाल का व्यापान आदि) के, साफ कुंदान। (७) जिसमें किसी प्रकार का संगड़, पंच या फेर फार न हो। जिसमें कोई बखेड़ा या शंकाट न हो। जैसे,—साफ मामला, साफ बरताव। (८) जिसमें सुँघलापन न हो। स्वच्छ। चमकीला।

जैसे,—साफ शीशा, साफ आसमान। (९) जिसमें किसी प्रकार का छल कपट न हो। निष्कपट। जैसे,—साफ दिल, साफ आदमी।

मुहा०—साफ साफ सुनाना = निकटुल स्पष्ट और ठीक बात कहना। खरी बात कहना।

(१०) जो स्वच्छ सुनाई पड़े या समझ में आवे। जिसके समझने या सुनने में कोई कठिनता न हो। जैसे,—साफ भावना, साफ लिखावट, साफ स्वयं। (११) जिसका तल ऊपर साफ न हो। समतल। हमबार। जैसे,—साफ जमीन, साफ मैदान। (१२) जिसमें किसी प्रकार की विग-

बाधा आदि न हो। (१३) जिसके ऊपर कुछ अंकित न हो। सादा। कोरा। (१४) जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो। बे-मेय। (१५) जिसमें से अनावश्यक या रही अंश-निकास दिया गया हो। (१६) जिसमें से सब चीजें निकाल ली गई हों। जिसमें कुछ तत्व न रह गया हो।

**मुहा०**—साफ करना = (१) मार चलना। बध करना। हत्या करना। (२) नष्ट करना। चौपट करना। भ्रष्टाद करना। न रहने देना। (३) या जाना।

(११) लेन देन आदि का निपटना। चुकता होना। जैसे,—  
हिसाब साफ होना।

**क्रि० वि०** (१) बिना किसी प्रकार के दोष, फलक या अफवाह आदि के। बिना दाम लगे। जैसे,—साफ छटना। (२) बिना किसी प्रकार की हानि या कष्ट उठाए हुए। बिना किसी प्रकार की ऑब सहे हुए। जैसे,—साफ बचना, साफ निकलना। (३) इस प्रकार जिसमें किसी को पता न लगे या कोई बाधक न हो। जैसे,—(माल या ची आदि) साफ उड़ा खाना। (४) बिलकुल। नितांत। जैसे,—साफ इनकार करना, साफ धेयकूफ बनाना। (५) बिना अन्न जल के। निराहार।

**साफल्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सफल होने का भाव। सफलता। कृतकार्यता। (२) सिद्धि। लाभ।

**साफा**—संज्ञा पुं० [ अ० साफ ] (१) सिर पर बाँधने की पगड़ी। सुरेठा। मुडासा। (२) शिकारी, जानवरों को शिकार के लिये या कबूतरों को दूर तक उड़ने के लिये तैयार करने के उद्देश्य से उपवास कराना।

**मुहा०**—साफा देना = उपवास कराना। भूया रखना। (३) निरय के पहनने या ओढ़ने के चप्पों आदि को साधुन लगाकर साफ करना। कपड़े धोना।

**क्रि० प्र०**—देना।—छगाना।

**साफी**—संज्ञा स्त्री० [ अ० साफ ] (१) हाथ में रखने का कूम्हाल। दस्ती। (२) वह कपड़ा जो गाँजा पीनेवाले चिलम के नीचे लपेटते हैं। (३) भाँग छानने का कपड़ा। छनना। (४) एक प्रकार का रंदा जो लकड़ी को बिलकुल साफ कर देता है।

**सायत**—संज्ञा पुं० [ सं० सामंत ] सामंत। सरदार। (हिं०) वि० दे० “सायत”।

**सायन**—संज्ञा पुं० दे० “साधुन”।

**साधर**—संज्ञा पुं० [ सं० साधर ] (१) दे० “सामर”। (२) सामर मृग का चमड़ा जो बहुत मुलायम होता है। (३) दाघर जानि के लोग। (४) धूहर वृक्ष। (५) मिट्टी खोदने का एक औजार। सपरी। (६) एक प्रकार का सिद्ध मंत्र, जो शिव कृत माना जाता है। उ०—स्वार्थ के साथी मेरे हाथ

सो न लेवा देहै काहू तो न पीर रघुबीर दीन जन की। साध सभा साधर लखार भये देव दिव्य दुसह साँसति कीये आगे दै या तन की।—तुलसी।

**साधल**—संज्ञा पुं० [ सं० साध ] घरछी। माला।

**साधस**—संज्ञा पुं० [ क० साधस ] वाह वाही देने की क्रिया। दाढ़। वि० दे० “साधास”।

अभ्य० वाह वाह। धन्य। साधु साधु।

**साधिक**—वि० [ अ० साधिक ] पूर्व का। पहले का। पुराने समय का। उ०—प्रभु जू मैं ऐसो अमल कमायो। साधिक जमा हुती जो जोरी मीजाँकुल तल लायो।—सूर।

**यौ०**—साधिक दस्तूर = जैसा पहले था, वैसा ही। पहले की ही तरह। जिसमें कुछ परिवर्तन न हुआ हो। जैसे,—उसका हाल वही साधिक दस्तूर है।

**साधिका**—संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) जान पहचान। मुलाकत। भेंट।

(२) संबंध। सरोकार। प्यबहार।

**मुहा०**—साधिका पढ़ना = (१) काम पढ़ना। वास्त पढ़ना। (२) मन देत होना। (३) भेड मिलाप होना।

**साधित**—वि० [ क० ] जिसका सच्यत दिया गया हो। प्रमाणित। सिद्ध।

संज्ञा पुं० यह-नक्षत्र या तारा जो चलता न हो, एक ही स्थान पर सदा ठहरा रहता हो।

वि० [ अ० सच्यत ] (१) साच्यत। पूरा। (२) दुरुस्त। ठीक। उ०—दूरे लोचन साधित नहीं तेज।—सूर।

**साधुत**—वि० [ अ० सच्यत ] (१) जिसका कोई अंग कम न हो। साच्यत। संपूर्ण। (२) दुरुस्त। (३) स्थिर। निरुचल।

**साधुन**—संज्ञा पुं० [ अ० ] रासायनिक क्रिया से प्रस्तुत एक प्रसिद्ध पदार्थ जिससे शरीर और बछादि साफ किए जाते हैं। यह सजी, चूने, सोदे, तेल और चर्बी आदि के संयोग से बनाया जाता है। देसी साधुन में चर्बी नहीं डाली जाती; पर बिलायती साधुन में प्रायः चर्बी का मेल रहता है। शरीर में लगाने के बिलायती साधुनों में अनेक प्रकार की सुगंधिर्वा भी रहती हैं।

**साधुना**—संज्ञा पुं० दे० “सागुनाना”।

**साधुनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दास। दाश्या।

**सामंजस्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) औचित्य। (२) उपयुक्तता। (३) अनुकूलता। (४) वैयर्थ्य या विरोध आदि का अभाव।

**सामंत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वीर। योद्धा। (२) किसी राज्य का कोई बड़ा जमींदार या सरदार। (३) पड़ोसी। (४) श्रेष्ठ प्रजा। (५) समीपता। सामीप्य। नजदीकी।

**सामंत भारती**—संज्ञा पुं० [ सं० ] राग महलार और सारंग के मेल से बना हुआ एक प्रकार का संकर राग।

**सामंत सारंग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सारंग राग जिसमें सप्त शुद्ध स्वर लगते हैं ।

**सामंती**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की रागिनी जो मैत्र राग की प्रिया मानी जाती है ।

**संज्ञा स्त्री०** [ सं० सामंत + ई० (प्रत्य०) ] (१) सामंत का भाव या धर्म । (२) सामंत का पद ।

**सामंतीय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन व्यक्ति का नाम ।

**सामंतीभ्यद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] अकवर्षी सम्राट् । शाहनाह ।

**साम**-संज्ञा पुं० [ सं० सामन् ] (१) वे वेद मंत्र ओ प्राचीन काल में यज्ञ आदि के समय गाए जाते थे । (२) धारों वेदों में से तीसरा वेद । वि० दे० "सामवेद" । (३) मीठी बानि करता । मधुर भाषण । (४) राजनीति के चार अंगों या उपायों में से एक । अपने दैरी या विरोधी को मीठी बानि करके प्रसन्न करना और अपनी ओर मिला लेना । (दोष तीन अंग या उपाय दाम, दंड और भेद हैं ।)

**संज्ञा पुं०** दे० "स्याम" और "शाम" (देख) ।

**संज्ञा स्त्री०** दे० "शाम" और "शामा" ।

**सामक**-संज्ञा पुं० [ सं० स्यामक ] सर्वांग नामक जड़ । वि० दे० "सर्वांग" ।

**संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) वह मूल धन जो ऋण स्वरूप लिया या दिया गया हो । कर्ज का बसल रूपया । (२) सान धरने का पत्थर । (३) वह जो साम-वेद का अध्या जाता हो ।

**सामकपुत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सरफोंका घात ।

**सामकारी**-संज्ञा पुं० [ सं० सामकारि ] (१) वह जो मोटे घचन कढ़कर किसी को डारस देता हो । सारतना देनेवाला । (२) एक प्रकार का साम गान ।

**सामग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ सं० सामगी ] (१) वह जो सामवेद का अध्या जाता हो । (२) विष्णु का एक नाम ।

**सामगर्भ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।

**सामगल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का साम । (२) वह जो सामवेद का अध्या जाता हो ।

**सामगाय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सामगान का अध्या जाता हो ।

**सामग्री**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वे पदार्थ जिनका किसी विशेष कार्य में उपयोग होता है । जैसे,—यज्ञ को सामग्री । (२) अस्त्राय । सामान । (३) आवश्यक द्रव्य । जरूरी चीज । (४) किसी कार्य की पूर्ति के लिये आवश्यक वस्तु । सामन ।

**सामग्र्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अन्न-पान । शय्या । (२) साधारण । पत्राना ।

**सामज**-वि० [ सं० ] जो सामवेद से उत्पन्न हुआ हो ।

**संज्ञा पुं०** हाथी ( जिसकी उत्पत्ति मद्रा के सामगान से मानी जाती है ) ।

**सामत**-संज्ञा पुं० दे० "सामंत" ।

**संज्ञा स्त्री०** दे० "सामंत" ।

**सामन्त्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] हर्ष, सेठ और गिलोय इन तीनों का समूह ।

**सामन्त्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] साम का भाव या धर्म । सामता ।

**सामना**-संज्ञा पुं० [ हि० सामने, पु० हि० सानुर् ] (१) किसी के समक्ष होने की क्रिया या भाव । जैसे,—जय हमारा उनका सामना होगा, तब हम उनसे बातें करेंगे ।

**मुद्दा**—सामने आना = धामे जाना । सम्मुख जाना । जैसे,—

अब तो यह कभी हमारे सामने ही नहीं आता । सामने

का = (१) जो समक्ष हो । (२) जो जाने देखने में दुष्म हो ।

जो अपने उपस्थित में दुष्म हो । जैसे,—(क) यह तो हमारे

सामने का लड़का है । (ख) यह तो हमारे सामने की

बात है । सामने करना = किसी के समक्ष उपस्थित करना ।

प्रगे जाना । सामने की बात = कहीं देखी बात । वह बात जो

अपनी उपस्थिति में हुई हो । सामने पढ़ना = दृष्टि के प्रागे

जाना । सामने होना = (विषयो का) परध न करके समक्ष जाना ।

जैसे,—उनके घर की खिर्ची किसी के सामने नहीं होती ।

(२) भेंट । मुलाकात । (३) किसी पदार्थ का अगला भाग ।

भाग की ओर का हिस्सा । आगा । जैसे,—उस मकान

का सामना शालाब की ओर पड़ता है । (४) किसी के

विरुद्ध या विपक्ष में खड़े होने की क्रिया या भाव ।

मुकाबला । जैसे,—(क) यह किसी बात में भापका

सामना नहीं कर सकता । (ख) युद्ध-क्षेत्र में दोनों दलों

का सामना हुआ ।

**मुद्दा**—सामना करना = शृंखला करना । सामने होकर जवा

देना । सुरताजी करना । जैसे,—जरा सा लड़का, अभी से

सच का सामना करता है ।

**सामने**-वि० वि० [ सं० सम्मुख, प्रा० सम्मुख, पु० हि० सानुर् ]

(१) सम्मुख । समक्ष । आगे । (२) उपस्थिति में ।

सौख्युगी में । जैसे,—तुम्हारे सामने उन्हें कौन पड़ेगा ।

(३) सीधे । आगे । जैसे,—सामने जाने पर एक मोड़

मिलेगा । (४) मुकाबले में । विरुद्ध ।

**सामपुष्पि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्र-प्रवर्तक व्यक्ति का नाम ।

**सामयिक**-वि० [ सं० ] (१) समय संबंधी । समय का । (२)

वर्तमान समय से संबंध रखनेवाला ।

**यौ०**—समसामयिक । सामयिकपत्र ।

(२) समय की दृष्टि से उपयुक्त । समय के अनुसार ।

**यौ०**—सामयिकपत्र = समाचारपत्र ।

**सामयोजि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मद्रा । (२) हाथी ।

सामर—संज्ञा पुं० दे० "समर"।

वि० [ सं० ] समर संबंधी। समर का। युद्ध का।

सामरघी—संज्ञा स्त्री० दे० "सामर्थ्य"।

सामराधिप—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का प्रधान अधिकारी। सेनापति।

सामरिक—वि० [ सं० ] समर संबंधी। युद्ध का। जैसे,— सामरिक समाचार।

सामरेय—वि० [ सं० ] समर संबंधी। युद्ध का।

सामर्थ—संज्ञा स्त्री० दे० "सामर्थ्य"।

सामर्थी—संज्ञा पुं० [ सं० सामर्थ्य + ई (प्रत्य०) ] (१) सामर्थ्य रखनेवाला। जिसे सामर्थ्य हो। (२) जो किसी कार्य के करने की शक्ति रखता हो। (३) पराक्रमी। बलवान।

सामर्थ्य—संज्ञा पुं० स्त्री० [ सं० सामर्थ्य ] (१) समर्थ होने का भाव। किसी कार्य के संपादन करने की शक्ति। बल। (२) शक्ति। ताकत। (३) योग्यता। (४) शब्द की व्यंजना शक्ति। शब्द की वह शक्ति जिससे वह भाव प्रकट करता है। (५) व्याकरण में शब्दों का परस्पर संबंध।

सामवायिक—वि० [ सं० ] समवाय संबंधी। (२) समूह या शृंख संबंधी।

संज्ञा पुं० मंत्री। वजीर।

सामवेद—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सामवेद का अच्छा ज्ञाता हो।

सामविप्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ब्राह्मण जो अपने सत्य कर्म सामवेद के विधानों के अनुसार करता हो।

सामवेद—संज्ञा पुं० [ सं० सामन् ] भारतीय आर्यों के चार वेदों में से प्रसिद्ध तीसरा वेद। पुराणों में कहा है कि इस वेद की एक हजार संहिताएँ थीं; परंतु आजकल इनमें से केवल एक ही संहिता मिलती है। यह संहिता दो भागों में विभक्त है, जिनमें से एक "आर्चिक" और दूसरा "उचराचिक" कहलाता है। इन दोनों भागों में जो १८१० ऋचाएँ हैं, उनमें से अधिकांश ऋग्वेद में आई हुई हैं। ये सब ऋचाएँ प्रायः गायत्री छंद में ही हैं। यज्ञों के समय जो स्तोत्र आदि गाए जाते थे, उन्हीं स्तोत्रों का इस वेद में संग्रह है। भारतीय संगीतशास्त्र का आरंभ इन्हीं स्तोत्रों से होता है। इस वेद का उपवेद गान्धर्ववेद है।

सामवेदिक, सामवेदीय—वि० [ सं० ] सामवेद संबंधी।

संज्ञा पुं० सामवेद का ज्ञाता या अनुयायी ब्राह्मण।

सामश्रवा—संज्ञा पुं० [ सं० सामश्रव ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

सामसर—संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का गाना जो हुमरायों में होता है।

सामसाली—संज्ञा पुं० [ सं० साम + साली ] राजनीति के साम, दाम, दंड और भेद नामक अंगों को जाननेवाला। राजनीतिज्ञ।

उ०—जयति राज, राजेंद्र राजीव-लोचन, राम-नाम-कवि कामतर, सामसाली। भनय अंगोधि कुंज-निसाच-निकरं तिमिर घनचोर वर किरिनिमाली।—तुलसी।

सामसावित्री—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का सावित्री मंत्र।

सामसुर—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम गाण।

सामस्तंवि—संज्ञा पुं० [ सं० सामस्तंवि ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

सामस्त—वि० दे० "समस्त"।

सामहि—अव्य० [ सं० सम्बुध ] सामने। सम्मुख। समक्ष।

उ०—(क) तिन सामहि गोरा रन कोपा। अंगद ससि पावै छुई रोपा।—जायसी। (ख) कोप सिंह सामहि रन मेला। लाएन सों ना मरे अकेला।—जायसी।

सामौ—संज्ञा पुं० दे० "सौँ"।

संज्ञा पुं० दे० "सामान"।

संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामा"।

सामाजिक—वि० [ सं० ] (१) समाज से संबंध रखनेवाला। समाज का। जैसे,—सामाजिक कुरीतियाँ, सामाजिक श्रद्धे, सामाजिक व्यवहार। (२) सभा से संबंध रखनेवाला। (३) सहृदय। रसज।

संज्ञा पुं० समासद्व। सदस्य। सभ्य।

सामाजिकता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सामाजिक का भाव। लोकिकता।

सामाधान—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रमन करने की क्रिया। शान्ति। (२) शांका का निवारण। (३) किसी कार्य को पूर्ण करने का व्यापार। संपादन।

सामान—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी कार्य के लिये साधन स्वरूप आवश्यक वस्तुएँ। उपकरण। सामग्री। (२) माल। अस्वाद्य।

मुहा०—सामान यौधना = माल धनवान कोकर चलने की तैयारी करना।

(३) औजार। (४) यंत्रोपकरण। इंतजाम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सामानप्राप्तिक—वि० [ सं० ] एक ही प्राम में रहनेवाले। एक ही गाँव के निवासी।

सामान्य—वि० [ सं० ] जिसमें कोई विशेषता न हो। साधारण। मामूली। वि० दे० "सामान"।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समान होने का भाव। सादृश्य। समानता। बराबरी। (२) वह एक बात या गुण जो किसी जाति या वर्ग की सब चीजों में समान रूप से पाया जाय। जाति-साधारण। जैसे,—मनुष्यों में मनुष्यत्व या गौशों में गोत्व। (वैशेषिक में जो छः प्रदार्थ माने गए हैं, सामान्य उनमें से एक है। इसी को जाति भी कहते हैं।) (३) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार। यह उस समय

माना जाता है जब एक ही भाकार की दो या अधिक ऐसी वस्तुओं का वर्णन होता है जिनमें देखने में कुछ भी अंतर नहीं जान पड़ता। जैसे,—(क) एक रूप तुम आता होऊ।  
(ख) नाहिं, फरक श्रुतिकमल, भद्र हरिलोचन अमितेय।  
(ग) जानी न जात मसाल और याल गोपाल गुडाल  
पछलावत सुकै।

**सामान्य छल—**गंगा पुं० [ सं० ] न्याय शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का छल जिसमें संभावित अर्थ के स्थान में अति सामान्य के योग से असंभूत अर्थ की कल्पना की जाती है। जब वादी किसी संभूत अर्थ के विषय में कोई वचन कहे, तब सामान्य के संबंध से किसी असंभूत अर्थ के विषय में उस वचन की कल्पना करने की क्रिया। वि० दे० "छल" (१)।  
**सामान्य उद्धर—**गंगा पुं० [ सं० ] साधारण उधर। मामूली वृत्तार।  
**सामान्यतः—**अन्व० [ सं० ] सामान्य रूप से। साधारण रीति से।  
साधारणतः। जैसे,—राजनीति में सामान्यतः अपना ही स्वार्थ देखा जाता है।

**सामान्यतया—**अन्व० [ सं० ] सामान्य रूप से। मामूली तौर से।  
सामान्यतः। साधारणतया।

**सामान्यतोदृष्ट—**गंगा पुं० [ सं० ] (१) तर्क और न्याय शास्त्र के अनुसार अनुमान संबंधी एक प्रकार की भूल जो उस समय मानी जाती है जब किसी ऐसे पदार्थ के द्वारा अनुमान करते हैं जो न कार्य हो और न कारण। जैसे कोई आम को बीरते देख यह अनुमान करे कि अन्य वृक्ष भी बीरते होंगे। (२) दो वस्तुओं या बातों में ऐसा साधर्म्य जो कार्य कारण संबंध से मिश्र हो। जैसे बिना चले कोई दूसरे स्थान पर नहीं पहुँच सकता। इसी प्रकार दूसरे को भी किसी स्थान पर भेजना बिना उसके गमन के नहीं हो सकता।

**सामान्य भविष्यत्—**गंगा पुं० [ सं० ] भविष्य किया का वह काल जो साधारण रूप बतलाता है। जैसे,—आवेगा, जायगा, खायगा।

**सामान्य भूत—**गंगा पुं० [ सं० ] भूत किया का वह रूप जिसमें क्रिया की पूर्णता होती है और भूत काल की विशेषता नहीं पाई जाती। जैसे,—चाया, गया, उठा।

**सामान्य सक्षणा—**गंगा स्त्री० [ सं० ] वह गुण जिसके अनुसार किसी एक सामान्य को देखकर उसी के अनुसार उस जाति के और सब पदार्थों का ज्ञान होता है। किसी पदार्थ को देखकर उस जाति के और सब पदार्थों का बोध करानेवाली शक्ति। जैसे,—किसी एक गी या चढ़े को देखकर समस्त गीओं या चढ़ों का जो ज्ञान होता है, वह इसी सामान्य सक्षणा के अनुसार होता है।  
**सामान्य वर्तमान—**गंगा पुं० [ सं० ] वर्तमान किया का वह रूप

जिसमें कर्ता का उसी समय कोई कार्य करते रहना सूचित होता है। जैसे,—जाता है, जाता है।

**सामान्य विधि—**गंगा स्त्री० [ सं० ] साधारण विधि या भाषा। आम हुआ। जैसे,—हिंसा मत करो, शूद्र मत बोलो, चोरी मत करो, किसी का अपकार मत करो आदि सामान्य विधि के अंतर्गत हैं। परंतु यदि यह कहा जाय कि यज्ञ में हिंसा की जा सकती है, अथवा प्राण्य की प्राण रक्षा के लिये शूद्र बोल सकते हो, तो इस प्रकार की विधि विशेष विधि होगी और वह सामान्य विधि की अपेक्षा अधिक मान्य होगी।

**सामान्या—**गंगा स्त्री० [ सं० ] साहित्य के अनुसार वह नायिका जो धन लेकर किसी से प्रेम करती है। गणिका।

**विशेष—**इस नायिका के भी उतने ही भेद होते हैं जितने अन्य नायिकाओं के होते हैं।

**सामायिक—**गंगा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार एक प्रकार का मत या आचरण जिसमें सब जीवों पर सम भाव रखकर पुकार में बैठकर आत्मचिंतन क्रिया जाता है।  
वि० माया-युक्त। माया सहित।

**सामाध्य—**गंगा पुं० [ सं० ] वह भवन या प्रासाद आदि जिसके पश्चिम और धीयिका या सड़क हो।

**सामासिक—**वि० [ सं० ] समास से संबंध रखनेवाला। समास का।

**सामि—**गंगा स्त्री० [ सं० ] निहा। शिफायत।

**सामित्री—**गंगा स्त्री० दे० "सामित्री"।

**सामित्य—**गंगा पुं० [ सं० ] समिति का भाव या धर्म।

वि० समिति का। समिति संबंधी।

**सामिधेनी—**गंगा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का फल मंत्र जिसका पाठ होम की अग्नि प्रज्वलित करने के समय किया जाता है।

**सामिधेन्य—**गंगा पुं० दे० "सामिधेनी"।

**सामिधाना—**गंगा पुं० दे० "सामिधाना"।

**सामिल—**वि० दे० "सामिल"।

**सामिप—**वि० [ सं० ] आसिप सहित। मांस, मत्स्य आदि के सहित। निरासिप का उच्छेद। जैसे,—सामिप भोजन, सामिप श्राद्ध।

**सामिप श्राद्ध—**गंगा पुं० [ सं० ] पितरों आदि के उद्देश्य से किया जानेवाला वह श्राद्ध जिसमें मांस, मत्स्य आदि का भी व्यवहार होता हो। जैसे,—मांसाहक आदि सामिप श्राद्ध हैं।

**सामीक्षी—**गंगा पुं० दे० "स्वामी"।

गंगा स्त्री० दे० "सामी"।

**सामीची—**गंगा स्त्री० [ सं० ] चंद्रता। प्रार्थना। सुति।

**सामीप्य—**गंगा पुं० [ सं० ] (१) समीप होने का भाव। निकटता।

(२) एक प्रकार की मुक्ति जिसमें मुक्त जीव का भगवान के समीप पहुँच जाना माना जाता है।



सामीर-संज्ञा पुं० [ सं० समीर ] समीर । पवन । (डि०)

सामीर्य-वि० [ सं० ] समीर संबंधी । समीर का । हवा का ।

सामुहिक-संज्ञा स्त्री० दे० "समस" ।

सामुदायिक-वि० [ सं० ] समुदाय संबंधी । समुदाय का ।

संज्ञा पुं० बालक के जन्म समय के नक्षत्र से भागें के अठारह नक्षत्र जो फलित ज्योतिष के अनुसार अनुभूत माने जाते हैं और जिनमें किसी प्रकार का शुभ कार्य करने का निषेध है।

सामुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समुद्र से निकला हुआ नमक । वह नमक जो समुद्र के खारे पानी से निकाला जाता है । (२) समुद्रफेन । (३) वह व्यापारी जो समुद्र के द्वारा दूसरे देशों में जाकर व्यापार करता हो । (४) नारियल । (५) शरीर में होनेवाले चिह्न या लक्षण आदि जिन्हें देखकर शुभाशुभ का विचार किया जाता है । वि० दे० "सामुद्रिक" । वि० (१) समुद्र से उत्पन्न । समुद्र से निकला हुआ । (२) समुद्र संबंधी । समुद्र का ।

सामुद्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह ग्रंथ जिसमें मनुष्य के शरीर के चिह्न या लक्षणों आदि के शुभाशुभ फलों का विवेचन हो । (२) दे० "सामुद्र" ।

वि० समुद्र संबंधी । समुद्र का ।

सामुद्रनिष्कृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम । (२) इस जनपद का निवासी ।

सामुद्र मत्स्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र में होनेवाली बड़ी बड़ी मछलियाँ जिनका मांस मनुष्य के अनुसार भारी, चिकना, मधुर, वातनाशक, कफघ्नक, उष्ण और घृष्य होता है ।

सामुद्रस्थलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र तट का प्रदेश । समुद्र के आस पास का देश ।

सामुद्राद्य चूर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का चूर्ण जो सर्पिर, सर्पेर और सेंधा नमक, भजवायन, जवाखार, शयविडंग, हींग, पीपल, चीतामूल और सोंठ को, बराबर मिलाने से बनता है । कहते हैं कि इस चूर्ण का घी के साथ सेवन करने से सद्य प्रकार के उदर रोग दूर होते हैं । यदि भोजन के आरंभ में इसका सेवन किया जाय तो यह बहुत पाचक होता है और इससे कोष्ठवदता दूर होती है ।

सामुद्रिक-वि० [ सं० ] समुद्र से संबंध रखनेवाला । समुद्री । सागर संबंधी ।

संज्ञा पुं० (१) फलित ज्योतिष का एक अंग जिसके अनुसार हथेली की रेखाओं, शरीर पर के तिलों तथा अन्यान्य लक्षणों आदि को देखकर मनुष्य के जीवन की घटनाएँ तथा शुभाशुभ फल बतलाए जाते हैं; यहाँ तक कि कुछ लोग केवल हाथ की रेखाओं को देखकर जन्मकुण्डली तक बनाते हैं । (२) वह जो इस शास्त्र का ज्ञाता हो । हाथ की रेखाओं

तथा शरीर के तिलों और लक्षणों आदि को देखकर जीवन की घटनाएँ और शुभाशुभ फल बतलानेवाला पंडित ।

सामुहिक-अव्य० [ सं० समुह ] सामने । समुख । उ०—जु बुवची वह तिल का मूर्हो । पिरहवान सोंघो सामुहो ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० भाग का भाग या अंश । सामना । (क०)

सामुहिक-वि० [ सं० ] समूह संबंधी । समूह का ।

सामुहिक-अव्य० [ सं० समुख ] सामने । समुख ।

सामुद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] समृद्धि का भाव या धर्म । समृद्धि ।

सामोज्ञ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] दायी ।

सामोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम ।

साम्नी अनुष्टुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १४ वर्ण होते हैं ।

साम्नी उष्णक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १४ वर्ण होते हैं ।

साम्नी गायत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १२ वर्ण होते हैं ।

साम्नी जगती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें २२ संपूर्ण वर्ण होते हैं ।

साम्नी त्रिष्टुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें २२ संपूर्ण वर्ण होते हैं ।

साम्नी पंक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें २० संपूर्ण वर्ण होते हैं ।

साम्नी वृहती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसमें १८ संपूर्ण वर्ण होते हैं ।

साम्मत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सम्मति का भाव ।

साम्मुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह तिथि जो सायंकाल तक रहती हो ।

साम्मुख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुख का भाव । सामना ।

साम्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] समान होने का भाव । तुल्यता । समानता । जैसे,—इन दोनों पुरतकों में बहुत कुछ साम्य है ।

साम्यता-संज्ञा स्त्री० दे० "साम्य" ।

साम्यवाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पारधार्म्य सामाजिक सिद्धांत जिसका आरंभ इधर-सी देह सौ वर्षों से हुआ है । इस सिद्धांत के प्रचारक समाज में बहुत अधिक साम्य स्थापित करना चाहते हैं और उसका वर्तमान वैषम्य दूर करना चाहते हैं । वे लोग चाहते हैं कि समाज से व्यक्तिगत प्रतियोगिता उठ जाय और भूमि तथा उत्पादन के समस्त साधनों पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार न रह जाय, बल्कि सारे समाज का अधिकार हो जाय । इस प्रकार सब लोगों में धन आदि का बराबर बराबर वितरण हो; न तो कोई बहुत गरीब रह जाय और न कोई बहुत अमीर रह जाय । समन्वित्वाद ।

**साय्यावस्था**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह अवस्था जिसमें साय, रज और तम, सीतों गुण बराबर हों, उनमें किसी प्रकार का विकार या वैषम्य न हो। प्रकृति।

**साम्राज्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह राज्य जिसके अधीन बहुत से देश हों और जिसमें किसी एक सम्राट का शासन हो।

सर्वभूमि राज्य। सलतनत। (२) अधिपत्य। पूर्णअधिकार।  
**साम्राज्यलक्ष्मी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तंत्र के अनुसार एक देवी जो साम्राज्य की अधिपती मानी जाती है।

**साम्राज्यिकदम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधमाजरी या गंध विलाव का वीर्य जो गंध द्रव्यों में मिला जाता है। जवादि, नामक कस्तूरी।

**साम्राजिज**-संज्ञा पुं० [ सं० ] यद्वा परेवत।

**साम्ने**-प्रत्यय दे० "सामने"।

**साम्ह**-संज्ञा पुं० (१) दे० "शाक्य"। (२) दे० "सौम"।

**साय**-वि० [ सं० ] संध्या संबंधी। सायंकालीन। संध्याकालीन।

**साय**-संज्ञा पुं० (१) दिन का अंतिम भाग। संध्या। शाम। (२) बाण। तीर।

**सायंकाल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० सायंमहल ] दिन का अंतिम भाग। दिन और रात की संधि। संध्याकाल। संध्या। शाम।

**सायंकालीन**-वि० [ सं० ] संध्या के समय का। शाम का।

**सायंगृह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो संध्या समय जहाँ पहुँचता हो, वहीं अपना घर बना लेता हो।

**सायंतन**-वि० [ सं० ] सायंकालीन। संध्या संबंधी। संध्या का।

**सायंतनी**-वि० दे० "सायंतन"।

**सायंभव**-वि० [ सं० ] संध्या का। शाम का।

**सायंसंध्या**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह संध्या, (उपासना) जो सायंकाल में की जाती है। (२) सरस्वती देवी जिसकी उपासना संध्या के समय की जाती है।

**सायंसंध्या देवता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती का एक नाम।

**सायंस**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विज्ञान। शास्त्र। (२) वह साय जिसमें भौतिक तथा रासायनिक पदार्थों के विषय में विवेचन हो। वि० दे० "विज्ञान"।

**सायन्त**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संध्या का समय। शाम। (२) बाण। तीर।

**सायक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाण। तीर। (२) लड़ा।

उ०-धीर सिरोमनि और बड़े विजई विगई खुनाप सीदाप।

सायकही खुनायक से पून सायक सौपि खुभाय सिपाप।  
तुलसी। (३) एक प्रकार का वृक्ष जिसके प्रत्येक पाद में सगण, भागण, तगण, एक लघु और एक गुरु होता है।

(१) ५, ३, ३, १, १ (५) अक्षरों में। रामसूत। (५) पौध की संख्या। (कामदेव के पाँच बाणों के कारण)।

**सायकपुला**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शायंका। सरकोर।

**सायका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुंजदह। लार्ड।

**सायण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रसिद्ध आचार्य जिन्होंने पातं वेदों के बहुत उत्तम और प्रसिद्ध भाष्य लिखे हैं। इनके पिता का नाम मायण था। पहले ये राजमंथी थे, पर पीछे से संन्यासी होकर गंगेरी मठ के अधिष्ठाता हुए थे। उस समय इनका नाम विद्यारण्य स्वामी हुआ था। इनका समय ईसवी चौदहवीं शताब्दी है। इनके नाम से ही बहुत से संस्कृत ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

**सायणवाद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] आचार्य सायण का मत या सिद्धांत।

**सायणीय**-वि० [ सं० ] सायण संबंधी। सायण का।

**सायत**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक पद या हाई पदी का समय। (२) दंड। पल। लमहा। (३) शुभ मुहूर्त। अच्छा समय।

प्रत्यय दे० "सायत्"।

**सायत**-संज्ञा पुं० दे० "सायण"।

वि० [ सं० ] अयन युक्त। जिसमें अयन हो। (मह आदि) उ०-क) गोविंद ने सुहृत्संवितामणि के संक्रान्ति प्रकरण में सायन संक्रान्ति के ऊपर लिखा है।-मुषाक्र द्वियेदी। (ख) भारतवर्ष के ज्योतिषाचार्यों ने जय देखा कि सायन दूसरे नक्षत्र में गया।-शुक्रप्रसाद।

संज्ञा पुं० सूर्य की एक प्रकार की गति।

**सायव**-संज्ञा पुं० [ सं० ] माख। पति। स्वामी। (हिं०)

**सायधान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सायधान। (१) मकान के सामने हुए से बचने के लिये लगाया हुआ ओसारा। वरामदा। (२) मकान के आगे की ओर बड़ी या निकली हुई वह छानन या छपर आदि जो छाया के लिये बनाई गई हो।

**सायमाहुति**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह आहुति जो संध्या के समय दी जाय।

**सायरी**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सायरी। (१) सायरी। समुद्र। उ०-क) सायरी उबड़ सिलिरी की पाटी। बड़ी पाणि पाहन हिय पाटी। (ख) जह रग बंदन मलय गिरि औ सायरी सब नीर। सब मिलि साय बुधावहि बुझै न भाग सरोर।-जायसी। (२) ऊपरी भाग। तीर।

**सायरी**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह भूमि जिसकी आय पर कर नहीं लगता। (२) सुनकरकात। कुटकर।

तंसा पुं० [ सं० ] (१) वह पट्टा जिससे खेन की मिट्टी बरकर करते हैं। हंसा। (२) एक देवता जो चौपायों का गृहक माना जाता है।

**सायल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्याल करनेवाला। मदनकर्ता। (२) मंगलनेवाला। याचना करनेवाला। (३) निघारी। फकीर। (४) दयवान्त करनेवाला। प्रायना करनेवाला। (५)

उम्मीदवार। आकांक्षी। (६) न्यायालय में परियाद करने  
या। किंसी प्रकार की जरूरी देनेवाला। प्रार्थी।  
सायवस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पान जो सिलहट में  
होता है।

सायवस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

साया-संज्ञा पुं० [ फ्रा० सायः ] (१) छाया। छाँह।

मुहा०—साये में रहना = राख में रहना। संरक्षण में रहना।

(२) परछाईं।

मुहा०—साये से भागना = बहुत दूर रहना। बहुत बचना।

(३) जिन, भूत, प्रेत, परी आदि।

मुहा०—साये में खाना = भूत, प्रेत आदि से प्रभावित होना।

(४) असर। प्रभाव।

मुहा०—साया पहना = किसी की संगत का असर होना। साया  
खलना = (१) झूठा करना। (२) प्रभाव खलना।

संज्ञा पुं० [ सं० शमीज ] (१) घोड़े की तरह का एक पहनावा  
जो प्रायः पाश्चात्य देशों की स्त्रियाँ पहनती हैं। (२) एक  
प्रकार का छोटा छद्म जिससे स्त्रियाँ प्रायः महीन सादियों के  
भीचे पहनती हैं।

सायाबंधी-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० सायः बंधे ] मुसलमानों में विवाह  
के अवसर पर मंडप बनाने की क्रिया।

सायाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] दिन का अंतिम भाग। संध्या का  
समय। शाम।

सायी-संज्ञा पुं० [ सं० सायिर ] घोड़े का सवार। अश्वोराही।

सायुज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक में मिल जाना। ऐसा मिलना  
कि कोई भेद न रह जाय। (२) पौष्ट प्रकार की मुक्तियों में  
से एक प्रकार की मुक्ति जिसमें जीवात्मा परमात्मा में लीन  
हो जाता है। उ०—हरि भे कहतं गरीयसि मेरी। भक्ति  
दोह सायुज्य बढ़री।—गर्ग संहिता।

सायुज्यता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सायुज्य का भाव या धर्म।  
सायुज्यत्व।

सायुज्यत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] सायुज्य का भाव या धर्म।  
सायुज्यत्व।

सारंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का मृग। (२) कोकिल।  
कोयल। उ०—चवन वर सारंग सम।—सूर। (३) रवेण।  
वाँज। (४) सूर्य। उ०—जलसुत दुली दुली है मधुकर द्वे  
पंडी दुख पावत। सुरदास सारंग केहि कारण सारंग कुलहि  
लजावत।—सूर। (५) सिद्ध। उ०—सारंग सम कटि हाय  
माथे विच सारंग राजत। सारंग लये अंग देखि छवि सारंग  
लाजत। सारंग भूषण पीत पट सारंग पद सारंगधर।  
रघुनाथदास बंदन करत सातापनि रघुवंशधर।—विश्राम।  
(६) हंस पक्षी। (७) मयूर। मौर। (८) चातक। (९)  
हाथी। (१०) घोड़ा। अश्व। (११) छाता। छत्र। (१२)

संज्ञ। उ०—सारंग अधर सधर कर सारंग सारंग जानि  
सारंग गति भोरी। सारंग वसन वसन पुनि सारंग वसन  
पीगपट धोरी।—सूर। (१३) कमल। कंज। उ०—(क)  
सारंग वदन बिलास बिलोचन हरि सारंग जानि रति कीन्ही।

सोहत। सारंग ज्यों तनु द्यामवदन छवि सारंग सोहत।—  
विश्राम। (१५) आभूषण। गहना। (१६) सर। तालाब।  
उ०—मानहु उर्मिग चल्यो चाहत है सारंग सुधा भरे।—  
सूर। (१७) भ्रमर। मौरा। उ०—नचत है सारंग सुंदर  
करत शब्द अनेक।—सूर। (१८) एक प्रकार की मधुमक्खी।  
(१९) विष्णु का धनुष। उ०—(क) एकहु बाण शोषो  
न हरि के निकट तब गयो धनुष सारंगधारी।—सूर।  
(२) सर्व परंयमा जोयन सोहैं। नयन बान भी सारंग  
मोहैं।—जायसी। (२०) केंपूर। केंपूर। उ०—सारंग  
लये अंग देखि छवि सारंग लाजत।—विश्राम। (२१)  
लवा पक्षी। (२२) श्रीकृष्ण का एक नाम। उ०—  
गिरिधर प्रजधर मुखीधर धरनीधर पीतांबरधर मुकुटधर  
गोपधर उर्गधर शंखधर सारंगधर चक्रधर गदाधर रस  
धर अधर सुधाधर।—सूर। (२३) चंद्रमा। शशि।  
उ०—तामहि सारंग सुत सोभित है ठाड़ी सारंग  
सोभारि।—सूर। (२४) समुद्र। सागर। (२५) जल।  
पानी। (२६) बाण। शर। तीर। (२७) दीपक। दीया।  
(२८) पपीहा। (२९) शंख। शिब। उ०—जनु पिनाक  
की आश लामि शशि सारंग नारन बचे।—सूर। (३०)  
सुगंधित द्रव्य। (३१) सर्प। साँप। उ०—सारंग चत  
पीठ पर सारंग कनक संभ अहि मनहुँ चढोरी।—सूर।  
(३२) चंद्र। (३३) भूमि। जमीन। (३४) केश। बाल।  
अलक। उ०—दीश गंग सारंग भ्रम सवांग लगावत।—  
विश्राम। (३५) दक्षि। ज्योति। चमक। (३६) शोभा।  
सुंदरता। (३७) स्त्री। नारी। उ०—सुरदास सारंग केहि  
कारण सारंग कुलहि लजावत।—सूर। (३८) रात्रि।  
रात। विभावरी। (३९) दिन। उ०—सारंग सुंदर  
को कहत रात विचस बड़े भांगे।—नंददास। (४०) तल-  
वार। खड्ग। (दि०) (४१) कपोत। कबूतर। (४२) एक  
प्रकार का छद्म जिसमें चार लगन होते हैं। इसे मैनावली भी  
कहते हैं। (४३) छप्पय के २६ वें भेद का नाम।  
विशेष—हसमें ४५ गुरु, ६२ लघु कुल १०० वर्ण या १५२  
माप्राप्य अथवा ४५ गुरु, ५८ लघु, कुल १०२ वर्ण या १४८  
माप्राप्य होती हैं।  
(४४) मृग। हिरन। उ०—(क) श्रवण सुयश सांग नाद

विधि धातक विधि सुख नाम।—सूर। (ख) अरि धार  
 आरि सर्वाह सय सारंग सायकलोचना।—तुलसी। (५५)  
 मेघ । वादल । धन । उ०—(क) करी घटा देखि अंधियारी  
 सारंग शब्द न भावै।—सूर। (ख) सारंग ज्यों तनु स्वाम  
 वदन छवि सारंग मोहनै।—विश्राम। (५६) मोती ।  
 (६०) (५७) कुच । स्तन । (५८) हाथ । कर । (५९)  
 बायस । कौआ । (५०) प्रह । नक्षत्र । (५१) खजग  
 पक्षी । सोनचिड़ी । (५२) हल । (५३) मंडक ।  
 (५४) गगन । आकाश । (५५) पक्षी । चिहिया ।  
 (५६) वस्त्र । कपड़ा । (५७) सारंगी नामक वाद्य यंत्र ।  
 (५८) इन्द्र । भगवान । (५९) काजल । नयनांजन ।  
 (६०) कामदेव । मन्मथ । (६१) विद्युत् । बिजली । (६२)  
 पुष्प । फूल । (६३) संपूर्ण जल का एक राग जिसमें सब  
 शुद्ध स्वर लगते हैं । शास्त्री में यह मेघ राग का सहचर  
 कहा गया है; पर कुछ लोग इसे संकर राग मानते और  
 नट महार तथा देवगिरि के संयोग से बना हुआ बतलाते  
 हैं । इसकी स्वर-लिपि इस प्रकार कही गई है—स रे ग म  
 प ध नि स । स नि ध प म ग रे स । स रे ग म प ध  
 प ध म ग म प म ग म ग रे स । स रे ग रे स ।  
 वि० (१) रंग हुआ । रंगिन । रंगीन । उ०—सारंग  
 वसन वसनि पुनि सारंग वसन पीतपट डोरी।—सूर।  
 (२) सुंदर । सुहावना । उ०—सारंग यचन कहत सारंग  
 सों सारंग रिपु है राखति सीनी।—सूर। (३) सरस ।  
 उ०—सारंग नैन यैव वर सारंग सारंग वदन कही छवि  
 कोरी।—सूर।

सारंगधर—संज्ञा पुं० [ सं० ] कौष । सीतां ।

सारंग मठ—संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में सारंग और नट के  
 संयोग से बना हुआ एक प्रकार का संकर राग ।

सारंगनाथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] काशी के समीप स्थित एक स्थान  
 जो सारनाथ कहलाता है । यही प्राचीन शृंगराव है । यह  
 बौद्ध, जैनियों और हिंदुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है ।

सारंगपाणि—संज्ञा पुं० [ सं० ] सारंग नामक चतुर्धाराय करने-  
 वाले, विष्णु ।

सारंगपाणि—संज्ञा पुं० दे० "सारंगपाणि" । उ०—सुमित श्री  
 सारंगपाणि छन मे सब सोयु गयो । बले सुदित कीसिक  
 कोसलपुर सगुन निसाधु दयो ।—तुलसी ।

सारंगलोचना—सि० स्त्री० [ सं० ] जिसकी अर्ध हिरन की सी  
 हों । शृंगरयनी ।

सारंगी—संज्ञा स्त्री० [ सं० सारंग ] (१) एक प्रकार की छोटी नाय  
 को एक ही लकड़ी की बनती है । (२) एक प्रकार की बड़ी  
 नाय जिसमें ६००० गन माल लादा जा सकता है । (३)

एक रागिनी का नाम जो कुछ लोगों के मत से मेघ राग की  
 पत्नी है ।

सारंगिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो पदियों को पकड़कर  
 अपना निर्वाह करता हो । चिड़ीमार । बहेलिया । (२) एक  
 प्रकार की वृत्त जिसके प्रत्येक पद में नगण, यगण और  
 सगण (न य सं) होते हैं । कवि भिस्वारीदास ने इसे मात्रिक  
 छंद माना है ।

सारंगिका—संज्ञा स्त्री० (१) दे० "सारंगिक" । (२) दे०  
 "सारंगी" ।

सारंगिया—संज्ञा पुं० [ हि० सारंगी + आ (पय०) ] सारंगी बजाने-  
 वाला । सारंगिदा ।

सारंगी—संज्ञा स्त्री० [ सं० सारंग ] एक प्रकार का बहुत प्रसिद्ध  
 वाजा जिसका प्रचार इस देश में बहुत प्राचीन काल से है ।  
 यह काठ का बना हुआ होता है और इसकी लंबाई प्रायः  
 षेड हाथ होती है । इसका सामने का भाग, जो परदा  
 कहलाता है, पाँच छः अंगुल चौड़ा होता है; और नीचे का  
 सिरा अपेक्षाकृत कुछ अधिक चौड़ा और मोटा होता है ।  
 इसमें ऊपर की ओर प्रायः ४ या ५ खुरियों होती हैं जिन्हें कान  
 कहते हैं । उन्हीं खुरियों से लगी हुए लोहे और पीतल के  
 कई तार होते हैं जो बाजे की पूरी लंबाई में होते हुए नीचे  
 की ओर बाँधे रहते हैं । इन्हीं बजाने के लिये लकड़ी का एक  
 लंबा और दोनों ओर कुछ झुका हुआ एक टुकड़ा होता है  
 जिसमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक घोड़े की दुम के बाल  
 बाँधे होते हैं । इसे कमानी कहते हैं । बजाने के समय यह  
 कमानी दाहिने हाथ में ली जाती है; और उसमें लगे  
 हुए घोड़े के बाल से बाजे के तार रीते जाते हैं । ऊपर बाएँ  
 हाथ की उँगलियों द्वारा पर रहती हैं जो बजाने के लिये  
 स्वरों के अनुसार ऊपर नीचे और एक तार से दूसरे तार  
 पर आती जाती रहती हैं । इस बाजे का स्वर बहुत ही  
 मधुर और मीम होता है; इसलिये नाचने गाने का पैना  
 करनेवाले लोग अपने गाने के साथ प्रायः इसी का व्यवहार  
 करते हैं । उ०—विविध पन्नावज आवज संपित विच विच  
 मधुर उर्वग । सुर सहनाई सरस सारंगी उपजन तान  
 सरंग ।—सूर ।

सारंड—संज्ञा पुं० [ सं० ] सौंघ का अंडा ।

सारं—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ में का मूल, मुख्य, काम  
 का या असली भाग । तत्व । सत्त । (२) कथन आदि से  
 निकलनेवाला मुख्य अभिप्राय । निष्कर्ष । (३) किसी पदार्थ  
 में से निकला हुआ निर्वास या अर्थ भादि । रस । (४)  
 धरक के अनुसार धारि के अंतर्गत आठ स्थिर पदार्थ तिनके  
 नाम इस प्रकार हैं—स्यक्, रक, मांस, मेद, मल्लि, मज्जा,  
 शुक्र और सत्व (मन) । (५) जल । पानी । (६) गुदा ।

मग्न। (७) वह जूमि जिसमें दो फसलें होती हैं। (८) गोशाला। बाढ़। (९) खाद। (१०) दूधने के उपरान्त सुरत भीयाया हुआ दूध। (११) आँधवा हुए दूध पर की साड़ी। मलाई। (१२) लकड़ी का हौर। (१३) परिणाम। फल। नतीजा। (१४) घन। दौलत। (१५) नवनीत। मक्खन। (१६) अमृत। (१७) लोहा। (१८) वन। जंगल। (१९) बल। शक्ति। ताकत। (२०) मन्ना। (२१) बज्र क्षार। (२२) वायु। हवा। (२३) रोग। बीमारी। (२४) जूना खेलने का पासा। (२५) अनार का पेड़। (२६) पियाल वृक्ष। चिरांजी का पेड़। (२७) प्रंग। (२८) मुद्र। मूँग। (२९) काय। फाड़ा। (३०) नीली वृक्ष। नील का पीषा। (३१) साल सार। (३२) पना। पतला प्रायत। (३३) कूर। (३४) तलवार। (३५) द्रव्य। (३६) हाड़। अस्थि। (३७) एक प्रकार का मायिक छंद जिसमें २८ मात्राएँ होती हैं और सोलहवीं मात्रा पर विराम होता है। इसके अंत में दो गुरु होते हैं। प्रभाती नामक गीत इसी छंद में होता है। (३८) एक प्रकार का पण वृत्त जिसमें एक गुरु और एक लघु होता है। इसे "श्याल" और "दातु" भी कहते हैं। (३९) "श्याल"। (४०) एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें उत्पत्तार, वस्तुओं का उत्कर्ष या अपकर्ष वर्णित होता है। इसे "उदार" भी कहते हैं। उ०—(क) सब मम प्रिय, सब मम उपजाये। सब ते अधिक मनुज, मोहि भाये। तिन मई द्विज, द्विज मई, ध्रुतिधारी। तिन मई निगम नीति अनुसारी। तिन मई पुनि विरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहु से अति प्रिय, मिश्रानी। तिनमें मोहि अति प्रिय निज दासा। जेहि गति, मोरि न वृसरि आसा। (ख) हे करतार बिने सुचो 'दास' की लोकनि को अवतार कन्यो, जनि। लोकनि को अवतार कन्यो तो मनुष्यन को तो सँवार कन्यो जनि। मानुष हु को सँवार कन्यो तो तिन्हें बिच प्रेम पसार कन्यो जनि। प्रेम पसार करयो तो दयानिधि कैहें वियोग विचार करयो जनि। वि० (१) उत्सम। श्रेष्ठ। (२) इष्ट। मजबूत। (३) न्याय्य। ॐ शंका पु० [ सं० सारिका ] सारिका। मैना। उ०—गहवर हिय शुक सों कहैं सारो।—गुलसी। शंका पु० [ हि० सारना ] (१) गालन। पोषण। रक्षा। उ०—जड़ पंच मिछे जिहि देह करी करनी देसु पाँ भरनीधर की। जन को; कहु क्यो करि है न सँभार जो सार करि सचराचर की।—गुलसी। (२) शय्या। परलम। उ०—रबी सार-दोनों इक पार। होय जुग जुग भावहि कैसासा।—जायसी। शंका पु० [ सं० श्याम, हि० श्याम ] पत्नी का भाई। साल्या।

विशेष—इस द्रव्य का प्रयोग प्रायः गाली के रूप में किया जाता है। सारखदिर—संज्ञा पु० [ सं० ] दुर्गंध खदिर। वृत्तरी। सारखाला—वि० [ सं० सद्य, हि० सरीत्रा ] सद्य। समात। तुल्य। सारगंध—संज्ञा पु० [ सं० ] चंदन। संदल। सारगंधि—संज्ञा पु० [ सं० ] चंदन। सारगमित—वि० [ सं० ] जिसमें तत्व भरा हो। सारयुक्त। तत्वपूर्ण। जैसे,—सारगमित पुस्तक, सारगमित व्याख्यान। सारघ—संज्ञा पु० [ सं० ] वह मनु जो मधुमक्खी तरह तरह के फूलों से संग्रह करती है। वैद्यक में यह लघु, सूक्ष्म, शीतल, कमल और अर्श रोग का नाशक, दीपन, बलकारक, अतिसार, नेत्र रोग तथा पाच में हितकर कहा गया है। सारजंट—संज्ञा पु० [ सं० ] पुलितः के सिपाही का जमादार, विशेषतः गोत या युरेशियन जमादार। सारज—संज्ञा पु० [ सं० ] नवनीत। मक्खन। सारजासव—संज्ञा पु० [ सं० ] एक प्रकार का आसव जो पान, फल, फूल, मूल, सार, दही, पत्ते, छाल और चीनी इन नौ चीजों से बनता है। वैद्यक में यह आसव मन, शरीर और अग्नि को बल देनेवाला, अनिद्रा, शोक और अरुचि का नाश करनेवाला तथा आन्तर्वृद्धक बतलाया गया है। सारटिफिकेट—संज्ञा पु० [ सं० ] प्रशंसापत्र। सनद। सटिफिकेट। सारघ—संज्ञा पु० [ सं० ] (१) एक प्रकार का गंध द्रव्य। (२) आध्यात्मिक वृक्ष। अमड़ा। (३) अतिसार। दस्त की बीमारी। (४) भद्रबला। (५) पारा आदि रसों का संस्कार। शोध-शुद्धि। (६) रावण के एक मंत्री का नाम जो रामचंद्र की सेना में उनका भेद देने गया था। (७) शबिला। (८) गंधप्रसारिणी। (९) नवनीत। मक्खन। (१०) गो। मक्क। सारणा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पारद आदि रसों का एक प्रकार का संस्कार। सारण। सारणि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गंधप्रसारिणी। (२) पुनर्नवा गंदहरना। (३) छोटी नदी। सारणिक—संज्ञा पु० [ सं० ] पथिक। राहगीर। बंदोही। सारणिक—संज्ञा पु० [ सं० ] पथिकों का विनाश करनेवाला, डाह। सारणी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गंधप्रसारिणी। (२) छोटी नदी। (३) दे० "सारिणी"। सारणेश—संज्ञा पु० [ सं० ] एक पर्वत का नाम। सारतंडुल—संज्ञा पु० [ सं० ] चावल। सारतक—संज्ञा पु० [ सं० ] (१) केल का पेड़। (२) वीर का पेड़। सारता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सार का भाव या धर्म। सारत्व। सारतैल—संज्ञा पु० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार अशोक, भगर,

सात, देवदार आदि का तेल जिसका व्यवहार क्षुद्र रोगों में होता है।

सारथि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रथादि का चलायेवाला। सूत। रथनागर। (२) समुद्र। सागर। उ०—भापने बाण को काटि ध्वज हथम के असुरभी सारथी तुरत मारयो।—सूर। सारथिध्वज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सारथि का कार्य। (२) सारथि का भाव या धर्म। (३) सारथि का पद।

सारथ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रथ आदि का चलाना। गाड़ी आदि हकिना। (२) सवारी। (३) सहायता।

सारद-संज्ञा स्त्री० [ सं० शारदा ] सरस्वती। शारदा। उ०—सुक से मुनी सारद सेवकना घिरजीवन लोमस से अभि-काने। येमे भर तो कहां सुलसी जो वै राजिवलोचन राम न जाने।—मुत्तंसी।

वि० शारद। शरद सूर्यपी। उ०—सोहति पीगी सेन में, कनक बरन तन बाल। सारद शारद पीगुरी, भा रद पीजन छाल।—विहारी।

संज्ञा पुं० [ सं० शरद ] शरद ऋतु।

सारदा-संज्ञा स्त्री० दे० "शारदा"।

संज्ञा पुं० [ सं० शरद ? ] स्थल कमल।

वि० स्त्री० [ सं० ] सार देनेवाली। जो सार दे।

सारदातीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ।

सारदा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह लकड़ी जिसमें सार भाग अधिक हो।

सारदासुंदरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा का एक नाम।

सारदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जल पीरल।

वि० दे० "शारदीय"।

सारदूल-संज्ञा पुं० दे० "शारदूल"।

सारदुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रैर का पेड़। (२) यह वृक्ष जिसकी लकड़ी में सार भाग अधिक हो।

सारधाता-संज्ञा पुं० [ सं० साधाय ] यह जो ज्ञान उत्पन्न करता हो। बोध करानेवाला।

सारधान्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] उत्तम धान। बढ़िया चावल।

सारधू-संज्ञा स्त्री० [ हिं० ] पुत्री। बेटी। कन्या।

सारना-कि० म० [ हिं०, सारना का सक० ] (१) पूर्ण करना। समाप्त करना। संपूर्ण रूप से करना। उ०—पति हनुमंत सुमीव कहत है रावण को दल मान्यो।—सूर सुनंत रघुनाथ भयो मुस काज आपनो सारयो।—सूर। (२) साधना। बनाना। दुपल्ल करना। (३) मुसोमिन करना। सुंदर बनाना। (४) द्रव्य देख करना। रक्षक करना। संभालना। (५) आँवों में अंजव आदि लगाना।

सारनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० शारंगनाथ ] बनारस से उत्तर पश्चिम चार मील पर एक प्रसिद्ध स्थान जो हिंदुओं, बौद्धों और जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। यही प्राचीन मृगदेव है जहाँ से मगवान्

बुद्ध ने अपना उपदेश आरंभ (धर्म-वक्त्र प्रवर्तन) किया था। यहाँ सुताई होने पर कई बौद्ध स्तूप, बौद्ध मंदिरों का ध्वंसा-धरोप तथा झिनी ही हिंदू, बौद्ध और जैन मूर्तियाँ पाई गई हैं। इसके अतिरिक्त अशोक का एक स्तंभ भी यहाँ पाया गया है।

सारपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का पत्ती जो चरक के अनुसार विधिकर जाति का है। (२) यह पत्ता जिसमें सार अर्थात् खाद हो।

सारपाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का विषेष्ट कण जिसका उल्लेख सुश्रुत ने किया है।

सारपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] धर्म्यं वृक्ष। घामिन।

सारफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैवैरी नीबू।

सारपथका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेथी।

सारभांड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्यापार की बहुमूल्य वस्तु। (२) खजाना। (३) कानूरी।

सारभाटा-संज्ञा पुं० [ हिं० उबार का अस्तु + भाटा ] उजारभाटा का उल्टा। समुद्र की वह वाड़ जिसमें पानी पहले बढ़कर समुद्र के तट से भागे निकल जाता है और फिर कुछ देर बाद पीछे लौटता है।

सारभुक्-संज्ञा पुं० [ सं० ] छोड़े को गानेवाली, अग्नि। भाग।

सारभूत-वि० [ सं० ] (१) सारस्वरु। (२) श्रेष्ठ। सर्वोत्तम।

सारभूत-वि० [ सं० ] सार ग्रहण करनेवाला। सारप्राही।

सारमंडूक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा जो मेढक की तरह का होता है।

सारमहन्-वि० [ सं० ] अत्यंत मूल्यवान्। बहुत कीमती।

सारमिति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भ्रुति। वेद।

सारमूषिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैवदाली। धपर बेल। बंदल।

सारमेध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जो सारमेधी (१) सरमा की संतान। (२) कुत्ता। (३) सफलक के पुत्र और अन्न के एक भाई का नाम।

सारमेधादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुत्ते का मोजन। (२) सार-धत के अनुसार एक नरक का नाम।

सारलोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] लोहसार। ह्यावात। लोहा।

विशेष—वैद्यक में यह प्रहृष्य, अनिसार, अद्वैग, घात, परिणाम-शूल, सर्दी, पीनस, पित्त और श्वस का नाशक बताया गया है।

सारल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सरल होने का भाव। सरलता।

सारधती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का छंद जिसमें तीन भाग और एक गुरु होता है।

सारपत्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सार ग्रहण करने का भाव। सारप्राहिता।

सारपर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] ये वृक्ष या वनस्पतियाँ आदि जिनमें

से किसी प्रकार का दूध या सफेद तरल पदार्थ निकलता हो। क्षीर-वृक्ष।

सारवर्जित-वि० [ सं० ] जिसमें कुछ भी सार न हो। सार-रहित। निःसार।

सारवाला-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की जंगली घास जो तर जगहों में होती है। यह प्रायः ब्राह्मण वर्षा तक सुरक्षित रहती है। मुनायम होने पर यह पशुओं को खिलाई जाती है।

सारवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] धामिन। पन्चंग वृक्ष।

सारशय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद रंग का पेड़। श्वेत रंगिर।

सारस-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सारसी ] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध सुंदर पक्षी जो पणिया, अफ्रिका, आस्ट्रेलिया और युरोप के उत्तरी भाग में पाया जाता है। इसकी लंबाई षष्ठ के आखिरी तिरे तक चार फुट होती है। पर भूरे होते हैं; सिर का ऊपरी भाग लाल और पैर काले होते हैं। यह एक स्थान पर नहीं रहता, बराबर घूमता करता है। किसानों के नए बीज बोने पर यह वहाँ पहुँच जाता है और बीजों को चर कर जाता है। यह मूँचक, भौसा खाती भी खाता है। यह प्रायः घास फूस के ढेर में घोंसला बनाकर या शँदइरों में रहता है। यह अपने बच्चों का लालन पालन बड़े यत्न से करता है। कहीं कहीं लोग इसे पालते हैं। बाम-पक्षियों में छोड़ देने पर यह कीड़े-मकोड़ों को लाकर उनसे पेड़ पौधों की रक्षा करता है। कुछ लोग भ्रमयत्न हंस को ही सारस मानते हैं। वैद्यक में इसके मांस का गुण मधुर, अम्ल, कण्ठ तथा महातिसार, पित्त, प्रवण्णी और अर्त्त रोगनाशक यथाया गया है।  
पर्याय—पुष्कराक्ष। मधुमग। सरसीक। सरोजव। रसिक। कामी।

(२) हंस। (३) गरुड़ पुत्र। (४) चंद्रमा। (५) खियों का एक प्रकार का कठिभूषण। (६) शील का जल। नदी का जल पहाड़ आदि के कारण रुक कर जहाँ जमा होता है, उसे सारस और उसके जल को सारस जल कहते हैं। ऐसा जल बलकारी, प्यास बुझानेवाला, लघु, रुचिकारक और मल मूत्र रोकनेवाला माना गया है। (७) कमल। जलज।

७०—(क) सारस रस अचयन को मानो तृपित मनुष्य जुग जोर। पान करत कहूँ तृप्ति न मानत पलक न देत अकोर।—सूर। (ख) मंजु अंजन सहित जलकन जुवत लोचन चार। स्वाम सारस मग मानो ससि श्रवत मुधा सिंगार।—तुलसी। (८) छप्यत का ३७ वर्षे भेद। इसमें ३७ गुह, ८७ लघु, कुल १२८ वर्ष का १५१ सायापुं अवया ३७ गुह, ८० लघु कुल ११७ वर्ष का १४८ सायापुं होती है।

सारसक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सारस।

सारसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खियों का कमर में पहनने का मेखला नामक भाभूषण। चंद्रहार। (२) तखवार की चिंटा। कमरबंद।

सारसा-संज्ञा पुं० देश० "सारसा"।

सारसी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आर्यो छंद का २३वाँ मंत्र जिसमें ५ गुह और ४८ लघु सायापुं होती हैं। (२) सारस पक्षी की मादा।

सारसुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुग्गुला। यहुना। ७०—निरखति धिति निर्विनि विष सँग सारसुता की ओर।—सूर।

सारसुती-संज्ञा स्त्री० देश० "सरस्वती"।

सारसंधय-संज्ञा पुं० [ सं० ] संध्या नामक।

सारस्व-वि० [ सं० ] जिसमें बहुत अधिक रस हो। बहुत रमयाला।

संज्ञा पुं० रसदार होने का भाव। रसीलापन।

सारस्वत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दिल्ली के उत्तर पश्चिम का वह भाग जो सरस्वती नदी के तट पर है और जिसमें पंजाब का कुछ भाग सम्मिलित है। प्राचीन आर्य पहले यहीं आकर बसे थे और इसे बहुत पवित्र समझते थे। (२) इस देश के निवासी ब्राह्मण। (३) सरस्वती नदी के पुत्र एक मुनि का नाम। (४) एक प्रसिद्ध व्याकरण। (५) बिल्बंद। (६) वैद्यक में एक प्रकार का चूर्ण जिसके सेवन से उन्माद, वायु-जनित विकार तथा प्रमेह आदि रोगों का दूर होना माना जाता है। (७) वैद्यक में एक प्रकार का औषधयुक्त घृत जो पुष्टिकारक माना जाता है।  
वि० (१) सरस्वती संबंधी। सरस्वती का। (२) सारस्वत देश का।

सारस्वत व्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्रकार का व्रत जो सरस्वती देवता के उद्देश्य से किया जाता है। कहते हैं कि इस व्रत का अनुष्ठान करने से अनुप्य बहुत बड़ा पंडित, भाग्यवान और कुशल हो जाता है और उसे पत्नी तथा मित्रों आदि का प्रेम प्राप्त होता है। यह व्रत बराबर प्रति रविवार या पंचमी को किया जाता है और इसमें किसी अच्छे ब्राह्मण को पूजा करके उसे भोजन कराया जाता है।

सारस्वतीय-वि० [ सं० ] सारस्वती संबंधी। सारस्वती का। सारस्वतोरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह उरसव जिसमें सारस्वती देवी का पूजन किया जाता है।

सारस्वय-वि० [ सं० ] सारस्वती संबंधी। सारस्वती का। सारामिस-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीच का रस। सारामिश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गुलारता। संक्षेप। सार। निबोड़। (२) वाण्यं। मतलब। अभिप्राय। (३) मीना। परि-  
णाम। (४) उपसंहार। परिशिष्ट।

सारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काली निसोद्य । कृष्णविद्युत् ।  
(२) दूध । दूधिया । (३) सातला । (४) धूर । (५) केला ।  
(६) साखिसपत्र ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का अलंकार जिसमें एक वस्तु दूसरी से बढ़कर कही जाती है । जैसे,—ऊपरहुं ते मधुर विपुहृते ते मधुर प्यारी तेरे ओठ मधुरता को सागर हैं ।

संज्ञा पुं० दे० "साखा" ।  
वि० [ स्त्री० सायी ] समस्त । संपूर्ण । सम्पूया । पूरा ।

साराह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जैशीरी गाँव । (२) चाँदनि ।

साराह-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिल ।

सारावती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का छंद जिसे सारावती भी कहते हैं ।

सारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पासा या चौपड़ खेलनेवाला । (२) कृष्ण खेलने का पासा । उ०—बारि पासा साधु-संगति केरि रचना सारि । दौंन अथ के परयो पूरो कुमनि, पिछली हारि ।—धूर । (३) गोटी ।

सारिक-संज्ञा पुं० दे० "सारिका" ।

सारिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मैना नामक पक्षी । वि० दे० "मैना" । उ०—बन उपवन फल पूक सुभग सर शुक्र सारिका हंस पारावत् ।—सूर ।

सारिकामुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुभ्रत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा ।

सारिका-संज्ञा-वि० दे० "सरीखा" ।

सारिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सहदेई । सहदेवी । महावला । पीतपुत्रा । (२) कपास । (३) धमासा । दुराकमा । कपिल सिन्धवा । काला स्त्रीसो । (४) मेष प्रजातिणी । (५) रत्न पुनर्नवा ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सारणी" ।

सारिकलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चौपड़ की गोटी या पासा ।

सारिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का धान ।

सारिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अनंतमूल ।

पर्याय—शारदा । गोपी । गोपकन्या । गोपवहो । प्रतानिका हता । भारकोता । कष्ट सारिया । गोपा । डालल सारिया । अनंता । शारिया । पर्याय ।

(२) काला अनंतमूल ।

पर्याय—रुष्णमूली । कृष्णा । चंदन सारिया । भद्रा । चंदन-गोपा । चंदना । कृष्णवहो ।

सारिधात्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनंतमूल और धयामा हला इन दोनों का समूह ।

सारिध-वि० [ सं० ] (१) सय से सुंदर । (२) सय से श्रेष्ठ ।

सारिधुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि जो ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के प्रकाश थे ।

सारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सारिका पक्षी । मैना । (२) पासा । गोटी । (३) सातला । ससला । धूर ।

संज्ञा स्त्री० दे० "साड़ी" ।

संज्ञा पुं० [ सं०, सारि ] अनुकरण करनेवाला । जो अनुसरण करे ।

साह-संज्ञा पुं० दे० "सार" ।

सारूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] समान रूप होने का भाव । सरूपता ।

सारूप्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पाँच प्रकार की मुक्तियों में से एक प्रकार की मुक्ति जिसमें उपासक अपने उपास्य देव के रूप में रहता है और अंत में उसी उपास्य देवता का रूप प्राप्त कर लेता है । (२) समान रूप होने का भाव । पुरुकरूपता । सरूपता ।

सारूप्यता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सारूप्य का भाव या धर्म ।

सारो-संज्ञा पुं० [ सं०, रावलि ] एक प्रकार का धान जो अगहन मास में तैयार हो जाता है ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सारिका" ।

सारोदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनंतमूल का रस ।

सारोपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साहित्य में एक प्रकार की लक्षणा जो उस स्थान पर होती है जहाँ एक पदार्थ में दूसरे का आरोप होने पर कुछ विसिद्ध अर्थ निकलता है । जैसे,—गामी के दिनों में पानी ही जान है । यहाँ "पानी" में "जान" का आरोप किया गया है; पर अभिप्राय यह निकलता है कि यदि घोड़ी शेर भी पानी न मिले तो जान निकलने लगती है ।

सारोद्रिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का त्रिप ।

सार्गिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो सृष्टि करने में समर्थ हो ।

सार्जट-संज्ञा पुं० दे० "सर्जट" ।

सार्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] राल । धूता ।

सार्जनाक्षि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्र-प्रवर्षक ऋषि का नाम ।

सार्दिकिकेट-संज्ञा पुं० दे० "सार्दिकिकेट" ।

सार्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जंतुओं का समूह । (२) पक्षियों का समूह । (३) समूह । गरोह । छुंढ ।

वि० अर्थ सहित । जिसका कुछ अर्थ हो ।

सार्थक-वि० [ सं० ] (१) अर्थ सहित । (२) सफल । सिद्ध । पूर्ण मनोरथ । (३) उपकारी । शुणकारी । मुकींद ।

सार्थकता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सार्थक होने का भाव । (२) सफलता । सिद्धि ।

सार्थपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] ध्यापार करनेवाला । पणिक । रोमागारी ।

सार्थपन्-वि० [ सं० ] (१) जिसका कुछ अर्थ हो । अर्थ युक्त । (२) यथार्थ । ठीक ।

सार्थिक-वि० [ सं० ] (१) सार्थक । (२) सफल ।



सार्ध-संज्ञा पुं० [ सं० सार्धन् ] रथ हाँकनेवाला। कोचवान।  
सार्धूल-संज्ञा पुं० [ सं० सार्धूल ] सिंह। केसरी। वि० दे०  
“सार्धूल”।

सार्ध-वि० [ सं० ] (१) जिसमें पूरे के अनिश्चित भाषा भी मिला  
या लगा हो। अर्ध युक्त। (२) सहित।

सार्ध-वि० [ सं० ] भींगा हुआ। आर्द्र। मीला।

सार्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] अश्लेषा मन्त्र।

वि० सर्प संबंधी। सर्प का।

सार्ध-संज्ञा पुं० [ सं० सार्ध ] (१) बुद्ध। (२) जिन।

वि० सब से संबंध रखनेवाला। जैसे,—सार्धजनिक, सार्ध-  
कालीन, सार्ध राष्ट्रीय।

सार्धकालिक-वि० [ सं० ] जो सब कालों में होता हो। सब  
समयों का।

सार्धगुण-वि० [ सं० ] सर्वगुण संबंधी।

संज्ञा पुं० खारी नामक।

सार्धजनिक-वि० [ सं० ] सब लोगों से संबंध रखनेवाला। सर्व  
साधारण संबंधी।

सार्धजनान-वि० [ सं० ] सब लोगों से संबंध रखनेवाला। सब  
लोगों का।

सार्धजन्य-वि० [ सं० ] (१) सब लोगों से संबंध रखनेवाला।  
(२) जिसमें सब लोगों को लाभ हो। लोक हितकर।

सार्धश्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्वश होने का भाव। सर्वज्ञता।

सार्धत्रिक-वि० [ सं० ] सब स्वयंनों में होनेवाला। सर्वत्रयायी।

सार्धदेशिक-वि० [ सं० ] संपूर्ण देशों का। सर्वदेश संबंधी।

सार्धभौतिक-वि० [ सं० ] सर्व भूत संबंधी। सब भूतों से संबंध  
रखनेवाला।

सार्धभूम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) समस्त भूमि का राजा। चक्रवर्ती  
राजा। (२) पुरुवंशी अहंयाति का पुत्र (३) भागवत के  
अनुसार विदूरथ के पुत्र का नाम। (४) हाथी।

वि० समस्त भूमि संबंधी। संपूर्ण भूमि का। जैसे,—सार्ध-  
भूमि राजा।

सार्धबह-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीत। शक्तिकासार। सूर्यभार।

सार्धप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सरसों। (२) सरसों को तेल।  
(३) सरसों का सांग।

वि० सरसों संबंधी। सरसों का।

सार्ध-संज्ञा पुं० दे० “सार्ध”।

सार्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] पाँच प्रकार की मुक्तियों में से एक प्रकार  
की मुक्ति।

सालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में तीन प्रकार के रागों में से  
एक प्रकार का राग। यह राग जो बिलकुल शुद्ध हो, जिसमें  
किसी और राग का मेल न हो; पर फिर भी किसी राग का  
आभास जान पड़ता हो।

साल-संज्ञा पुं० स्त्री० [ हि० सलना या सारना ] (१) सालने या  
सलने की क्रिया या भाव। (२) छेद। सुराप। (३) चार-  
पाई के पावों में किया हुआ वह चौंकार छेद जिसमें पाटी  
आदि बँटाई जाती है। (४) धाव। जपम। (५) दुःख।  
पीड़ा। वेदना।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जड़। मूल। (२) कृचबंदों की परि-  
भाषा में खस की जड़ जिससे कृच बनती है। (३) राल।  
धूना। (४) वृक्ष। पेड़। (५) प्रकार। परकोट। (६)  
दीवार। (७) एक प्रकार की मूठली जो भारत, लका और  
चीन में पाई जाती है। (८) सियार। (९) कोट।  
किला। (दि०)

संज्ञा पुं० [ प्रा० ] वर्ष। बरस। बारह महीने।

संज्ञा पुं० दे० “सालि”।

संज्ञा स्त्री० दे० “सालि”।

संज्ञा पुं० दे० “सालि” (वृक्ष)।

साल अमोनिया-संज्ञा पुं० [ अ० ] नौसादर।

सालई-संज्ञा स्त्री० दे० “सलई”।

सालक-वि० [ हि० सालना + क (भय०) ] सालनेवाला। दुःख  
देनेवाला।

सालिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सालगा-संज्ञा पुं० दे० “सलई”।

सालगिरह-संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] बरस गाँठ। जन्म दिन।

सालग्राम-संज्ञा पुं० दे० “शालग्राम”।

सालग्रामी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शालग्राम ] गंडक नदी। इसका यह  
नाम इसलिये पड़ा कि उसमें शालग्राम की शिलाएँ पाई  
जाती हैं।

सालज-संज्ञा पुं० [ सं० ] सजरस। राल। धूना।

सालजक-संज्ञा पुं० दे० “सालज”।

सालद्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] सागौन।

सालन-संज्ञा पुं० [ सं० संवर्षण ] मांस, मूठली या साग सुखी की  
मसालेदार तरकारियाँ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] सजरस। धूना। राल।

सालना-क्रि० प्र० [ सं० राल ] (१) दुःख देना। खटकना।  
कसकना। (२) चुभना। गड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० सं० (१) दुःख पहुँचाना। ध्ययित करना। (२) चुभाना।  
गड़ाना।

सालनियास-संज्ञा पुं० [ सं० ] राल। धूना। सजरस। करायल।

सालपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सतिवन। शालपर्णी।

सालपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रथल कमल। (२) पुँडरी।

सालभजिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुतला। मूर्ति।

**सालम मिथी**-संज्ञा स्त्री [ प्र० साल् + मिथी = मित् + देर, का ]  
 सुधामूली। अमृतोत्था। चोत्कंदा।  
**विशेष**—यह एक प्रकार का क्षुप है जिसकी ऊँचाई प्रायः डेढ़ फुट तक होती है। इसके पत्ते प्याज के पत्ते के समान और पीले रंग के होते हैं। इंडी के अंत में, मूलों का गुच्छा होता है। फल पीले रंग के होते हैं। इसका कंद कसेरु के समान पर चिपटा, सफेद और पीले रंग का तथा कड़ा होता है। इसमें वीर्य के समान गंध आती है और यह खाने में लसीली और फीकी होती है। इसके पौधे भारत के किनारे ही प्रांतों में होते हैं; पर काबुल, बलूच, सुलार आदि देशों की अच्छी होती है। यह आयुर्वेद वीटिक है। पुष्टिक ओषधियों में इसका विशेष प्रयोग होता है। वैद्यक के अनुसार यह स्निग्ध, उष्ण, वाजीकरण, शुक्रजनक, पुष्टिक और क्षमि-प्रदीपक मानी जाती है।  
**सालर**-संज्ञा पुं० दे० "सलई"।  
**सालरस**-संज्ञा पुं० [ सं० ] रस। धना।  
**सालरट्टंग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] दीवार के अंगों का हिरसा।  
**सालरस-संज्ञा पुं०** [ प्र० ] चढ़ ओ दो पक्षों के सगड़े का निपटारा करे। पंच।  
**सालसा**-संज्ञा पुं० [ प्र० ] खून साफ करने का एक प्रकार का अमरेजी रंग का काढ़ा जो अनंतमूल आदि से बनता है।  
**सालसी**-संज्ञा स्त्री [ प्र० ] (१) सालस होने की क्रिया या भाव। दूसरों का सगड़ा निपटारा। (२) पंचायत।  
**सालहज**-संज्ञा स्त्री दे० "सलहज"।  
**साला**-संज्ञा पुं० [ सं० श्यामक ] [ स्त्री० साली ] (१) पत्नी का भाई। (२) एक प्रकार की गाली।  
 संज्ञा पुं० [ सं० सारिका ] सारिका। मैना। उ०—देखत हीमे सोई कृपाल। छरि प्रभात बोलत तब साला—विश्राम।  
 संज्ञा स्त्री दे० "शाला"।  
**सालाना**-वि० [ फ्रा० ] साल का। वर्ष का। वार्षिक। जैसे,—सालाना भेडा, सालाना खंडा।  
**सालावृक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुचा। (२) गीदड़। सिवार। (३) भेड़िया।  
**सालि**-संज्ञा पुं० दे० "शालि"।  
**सालिप्राम**-संज्ञा पुं० दे० "शालप्राम"।  
**सालिनी**-संज्ञा स्त्री दे० "शालिनी"।  
**सालिष मिथी**-संज्ञा स्त्री दे० "सालम मिथी"।  
**सालिम**-वि० [ प्र० ] जो कहीं से खंडित न हो। पूर्ण। संपूर्ण। परा।  
**सालिधाना**-वि० दे० "सालाना"।  
**सालिहोमी**-संज्ञा पुं० दे० "शालिहोमी"।  
**साली**-संज्ञा स्त्री [ फ्रा० साल + ई (प्रय०) ] (१) यह जमीन जो

सालाना देन के हिसाब से खी जाती है। (२) खेती बारी के औजारों की मरम्मत के लिये बड़दू को सालाना खी जानेवाली मजूरी।  
 संज्ञा पुं० दे० "शालि"।  
**सालु**-संज्ञा पुं० [ हिं० सालना ] (१) इंचियां। (२) कट।  
**सालु**-संज्ञा पुं० [ दि० सालना ] (१) एक प्रकार का लाल कपड़ा जो मांगलिक कार्यों में उपयोग में आता है। (पश्चिम) (२) सारी। (हिं०)  
**सालेया**-संज्ञा स्त्री [ सं० ] सौंफ।  
**सालै गुग्गुलु**-संज्ञा पुं० [ फा० सालै, सं० गुग्गुलु ] गुग्गुलु का गोंद या रस। वि० दे० "गुग्गुलु"।  
**सालोबय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पंच प्रकार की मुक्ति में से एक जिसमें मुक्त जीव भावधान के साथ एक लोक में पास करता है। सत्योक्ता।  
**सालमली**-संज्ञा पुं० दे० "शालमली"।  
**साल्य**-संज्ञा पुं० दे० "शाल्य"।  
**साल्येय**-वि० [ सं० ] साल्य या शाल्य संबंधी।  
 संज्ञा पुं० (१) एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश का रहनेवाला।  
**सायकरन**-संज्ञा पुं० [ सं० श्यामकर्ण ] श्याम कर्ण घोड़ा, जिसके सब अंग श्वेत, पर कान काले होते हैं। ( साईस )  
**सायंत**-संज्ञा पुं० [ सं० सामंत ] (१) यह भूस्वामी या राजा जो किसी बड़े राजा के अधीन हो और उसे कर देना हो। करदा राजा। (२) योद्धा। वीर। (३) अधिनायक। (४) उत्तम प्रजा।  
**साय** संज्ञा पुं० [ सं० सायक = शिशु ] बालक। पुत्र। (हिं०)  
 संज्ञा पुं० दे० "साहु"।  
**सायक**-संज्ञा पुं० (१) दे० "दायक"। (२) दे० "श्रायक"।  
**सायकाश**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भवकाय। फुसंत। छुटी। (२) मौक़ा। भवसर।  
 कि० वि० फुसंत से। मुभीते से।  
**सायगी**-संज्ञा पुं० दे० "सरायगी"।  
**सायचेत**-[ सं० सा + हिं० चेत ] सायधान। सतर्क। होशियार। चौकसा।  
**सायचेती**-संज्ञा स्त्री [ हिं० सायचेत + ई (प्रय०) ] सायधानी। सतर्कता। खबरदारी। चौकसापन।  
**सायणिक**-संज्ञा पुं० [ सं० श्रावण ] श्रावण मास। सावन का महीना। (हिं०)  
**सायध**-वि० [ सं० ] जिदनीय। दृषणीय। आपत्तिजनक।  
 संज्ञा पुं० तीन प्रकार की योग शक्तियों में से एक शक्ति जो योगियों को प्राप्त होती है। अन्य दो शक्तियों के नाम निरवच और सुदम हैं।  
**सायधान**-वि० [ सं० ] सचेत। सतर्क। होशियार। खबरदार। सजग। चौकस।

**सावधानता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सावधान होने का भाव। सतर्कता।  
होशियारी। खबरदारी।

**सावन**—संज्ञा पुं० [ सं० भावण ] (१) धावण का महीना। भाद्रपद के  
वाद का और भाद्रपद के पहले का महीना। धावण। (२)  
एक प्रकार का गीत जो धावण महीने में गाया जाता है।  
(पूरव) (३) कजली नामक गीत।  
संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ कर्म का अंत। यज्ञ की समाप्ति।  
(२) यजमान। (३) वरुण। (४) पूरे एक दिन और एक  
रात का समय। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का  
समय। ६० दंड का समय।

**विशेष**—इस प्रकार के ३० दिनों का एक सावन मास होता है;  
और मेरे बारह सावन मासों का एक सावन वर्ष होता है।  
**सावनी**—संज्ञा पुं० [ हि० सावन + ई (प्रत्यय) ] (१) एक प्रकार का धान  
जो भाद्रों में काटा जाता है। (२) तंबाकू जो सावन भाद्रों  
में बोया जाता है, कार्षिक में रोपा जाता है और कागुन में  
काटा जाता है। (३) एक प्रकार का फूल।  
संज्ञा स्त्री० (१) वह वायन जो सावन महीने में वर-पश्चा से  
वधू के यहाँ भेजा जाता है। (२) दे० "धावणी"।  
वि० सावन संबंधी। सावन का।  
संज्ञा स्त्री० दे० "सावन" (२) और (३)।

**साधर**—संज्ञा पुं० [ सं० साधर ] (१) शिव कृत एक तंत्र का नाम।  
इसके संबंध में इस प्रकार की कथा है—एक बार जब शिव  
पार्वती किरात देश में वन में विचारण कर रहे थे, तब पार्वती  
जी ने प्रश्न किया कि प्रभो! अपने संपूर्ण मंत्र कौल दिए हैं;  
पर अब कलिकाल है, इस समय के जीवों का उपकार कैसे होगा।  
तब शिव जी ने उसी वेश में नए मंत्रों की रचना की जो शिवर  
या साधर कहलें हैं। इन मंत्रों को जपने या सिद्ध करने की  
आवश्यकता नहीं; ये स्वयं सिद्ध हैं। न इनके कुछ अर्थ ही  
हैं। (२) एक प्रकार का लोहे का लंबा औजार जिसका एक  
सिरा नुकीला और गुलमेल की तरह होता है। इस पर  
शुभरा रखकर हथौड़े से पीटा जाता है जिससे शुभरा पतला  
और तेज हो जाता है।

संज्ञा पुं० [ सं० साधर ] एक प्रकार का हिरन। उ०—चीते सुरांस  
साधर दृग्ग। राँदा गलीनु डोलत अभंग।—सुदन।  
संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लोथ। (२) पाप। अपराध।  
गुनाह। (३) एक प्रकार का युग।

**साधरक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद लोथ।  
**साधरणी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सम्राजनी ] वह बुद्धारी जो जैन यति  
अपने साथ लिए रहते हैं।

**साधरिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बिना जहरवाली जाँक।  
**साधर्ण**—वि० [ सं० ] सवर्ण संबंधी। समान वर्ण संबंधी।  
संज्ञा पुं० दे० "सावर्णि"।

**साधर्णक**—संज्ञा पुं० दे० "सावर्णि"।

**साधर्णलक्ष्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] चमड़ा।

**सावर्णि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भाद्रवें मनु जो सूर्य के पुत्र थे।

**विशेष**—कहते हैं कि सूर्य की पत्नी छाया अपने पति सूर्य का  
तेज सहन न कर सकने के कारण अपने वर्ण की (सवर्णों)  
एक छाया बनाकर और उसे पति के घर छोड़कर अपने पिता  
के घर चली गईं थी। उसी के गर्भ से सावर्णि मनु की  
उत्पत्ति हुई थी।

(२) एक नग्यंतर का नाम। (३) एक गोत्र का नाम।

**साधर्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० साधर्ष ] वह मकान जिसके उत्तर-दक्षिण  
दिशा में सड़क हो। ऐसा मकान बहुत शुभ माना गया है।  
वि० (१) द्यु। मजबूत। (२) आत्मनिर्भर। स्वावलंबी।

**साधर्षी**—संज्ञा पुं० दे० "साधर्ष"।

**सावित्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य। (२) शिव। (३) वसु।  
(४) ब्राह्मण। (५) सूर्य के पुत्र। (६) कर्ण। (७) गर्भ।  
(८) यज्ञोपवीत। (९) उपनयन संस्कार। यज्ञोपवीत।  
(१०) एक प्रकार का अन्न।

वि० (१) सविता संबंधी। सविता का। जैसे,—सावित्र  
होम। (२) सूर्यबंधी।

**सावित्री**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वेदमाता गायत्री। (२) सर-  
स्वती। (३) प्रद्धा की पत्नी जो सूर्य की पृथ्वी नाम की पत्नी  
से उत्पन्न हुई थी। (४) वह संस्कार जो उपनयन के समय  
होता है और जिसके न होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय और  
पैरय ब्राह्मण या पतित हो जाते हैं। (५) धर्म की पत्नी और  
दक्ष की कन्या। (६) करवप की पत्नी। (७) अष्टावक्र की  
कन्या। (८) मद्र देश के राजा अधपति की कन्या और  
सत्यवान की सती पत्नी।

**विशेष**—पुराणों में इसकी कथा यों है—मद्र देश के धर्मनिष्ठ  
प्रजापिय राजा अधपति ने कोई संतान न होने के कारण  
महावर्षपूर्वक कठिम प्रत धारण किया। वह सावित्री मंत्र  
से प्रति दिन एक ल्यार आहुति देकर, दिन के छठे भाग में  
भोजन करता था। इस प्रकार अठारह वर्ष बीतने पर सावित्री  
देवी ने प्रसन्न होकर राजा को दर्शन दिए और इच्छानुसार  
वर माँगने की कहा। राजा ने बहुत से पुत्रों की कामना  
की। देवी ने कहा कि प्रबंदा की कृपा से तुम्हारे एक कन्या  
होगी जो बड़ी तेजस्विनी होगी। कुछ दिनों बाद बंदी रानी  
के गर्भ से एक कन्या हुई। सावित्री की कृपा से यह कन्या  
हुई थी, इसलिये राजा ने इसका नाम भी सावित्री ही  
रखा। सावित्री अद्वितीय सुदरा थी; पर किसी को इसका  
वर-प्रार्थी होते न देखकर अधपति ने सावित्री से स्वर्ण अपने  
इच्छानुसार वर देकर चरण करने की कहा। तदनुसार  
सावित्री युद्ध मंत्रियों के साथ तपोवन में भ्रमण करने

लगी। कुछ दिनों बाद वह तीर्थों और तपोवनों का भ्रमण कर लौट आई और उसने अपने पिता से कहा—शाक्य देश में धुमसेन नामक एक प्रसिद्ध धर्मान्ना क्षत्रिय राजा थे। वे अंधे हो गए हैं। उनका एक पुत्र है, जिसका नाम सत्यवान है। एक दायु ने उनका राज्य हस्तगत कर लिया है। राजा अपनी पत्नी और पुत्र सहित वन में निवास कर रहे हैं। मैंने उन्हीं सत्यवान को अपने उपयुक्त घर समझकर उन्हीं को पति वरण किया है। नारदजी ने कहा—सत्यवान में और सब गुण तो हैं, पर वह अत्यायु है। आज से एक वर्ष पूरा होने ही वह मर जायगा। इस पर भी सावित्री ने सत्यवान से ही विवाह करना निश्चित किया। विवाह हो गया। एक वर्ष बीतने पर सत्यवान की मृत्यु हो गई। यमराज जब उसका सूक्ष्म शरीर ले चला, तब सावित्री ने उसका पीटा किया। यमराज ने उसे बहुत समझा सुझाकर लौटाना चाहा, पर उसने उसका पीटा न छोड़ा। अंत को यमराज ने प्रसन्न होकर उसकी मनस्वामना पूर्ण की। मृत सत्यवान जीवित होकर उठ बैठा। सावित्री ने मन ही मन जो कामनाएँ की थीं, वे पूरी हुईं। राजा धुमसेन की पुनः दृष्टि प्राप्त हो गई। उसके शत्रुओं का विनाश हुआ और राज्य पुनः उसे प्राप्त हुआ। सावित्री के सौ पुत्र हुए। साथ ही उसके बृद्ध ससुर के भी सौ पुत्र हुए। उसने यह भी वर प्राप्त किया था कि पति के साथ ही मैं वैकुण्ठ जाऊँ। (९) यमुना नदी। (१०) सरस्वती नदी। (११) लक्ष द्वीप की एक नदी। (१२) पार के राजा भोज की पत्नी। (१३) सचवा र्थी। (१४) अर्धला।

सावित्री तीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।  
सावित्री मृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मृत जो रिपुओं पति की दीर्घायु की कामना से ज्येष्ठ कृष्ण १४ को करता है। कहते हैं कि यह मृत करने से खिण्यो विधवा नहीं होती।  
सावित्री सूत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पञ्चोपवीत जो सावित्री दीक्षा के समय धारण किया जाता है।

साशिव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन देव का नाम। अर्जुन के दिग्विजय के प्रकरण में यह उत्तर दिशा में बतलाया गया है। इसे जोतकर अर्जुन यहाँ से आठ घोड़े लाया था। (२) ऋषिक। ऋषियुत्र।

साशुषो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पत्नी या पति की माता। सास।  
सासवत-वि० दे० "सासवत"।  
साशांग-वि० [ सं० ] आठों अंग सहित।

षी०—साशांग प्रणाम = मलक, हाथ, पैर, हृदय, श्रोत्र, जंघ, कनन और मन से भूमि पर सेवक प्रणाम करना।  
मुहा०—साशांग प्रणाम करना = बहुत कनन। दूर रहना। (शंभु) मीने—हम यहाँ से उन्हें साशांग प्रणाम करते हैं।

साशांग योग-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह योग जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठों अंग हों। वि० दे० "योग"।

साष्टी-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक टापू जो बंबई प्रदेश के थाना जिले में है। यहाँवाले इसे फालता और शास्त्र तथा भंगरेज सालसात कहते हैं। यह बंबई से बीस मील ईशान कोण में उत्तर को झुकाता हुआ समुद्र के तट पर बसा है। यहाँ एक किला भी बना है।

सास-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पति या पत्नी की माँ।

सासण-संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० "शासन"।

सासत-संज्ञा स्त्री० दे० "सासित"।

सासनलेट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सफेद जालीदार कपड़ा।

सासारा-संज्ञा पुं० दे० "ससुराल"।

सासा-संज्ञा स्त्री [ सं० ] संदेह। शक। उ०—आइँ बतावन हौं तुम्है राधिके छोजियँ जानि न कीजियँ सासा।—रसकुमुमाकर।

सासा-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वास" या "सास"।

सासु-वि० [ सं० ] प्राणयुक्त। जीवित।

सासु-संज्ञा स्त्री० दे० "सास"।

सासुर-संज्ञा पुं० [ हि० ] ससुर। (१) पति या पत्नी का पिता। ससुर। (२) ससुराल।

सासना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गीतों आदि का गलकंपल।

सासिमत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुद्ध सत्य को विषय बनाकर की जाने वाली भावना।

साह-संज्ञा पुं० [ सं० ] साधु। सज्जन। भला भादमी। शैत,—वह चोर है और तुम बड़े साह हो। (२) श्यापारी। साहूकार। (३) धनी। महाजन। सेठ। (४) लकड़ी या पत्थर का वह लंबा टुकड़ा जो दरवाजे के चौखटे में देहलीज के ऊपर दोनों पारवों में लगा रहता है।

साह-संज्ञा पुं० दे० "साह"।

साहचर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सहचर होने का भाव। साथ रहने का भाव। सहचरता। (२) संग। साथ।

साहना-वि० [ सं० ] साहय = मिथन ] मँसों का जोड़ा खिलाना। पुहाना।

साहनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेना। फौज। उ०—(क) आयेँ धारने-आधम में कियो यह अरंभ प्रमोद प्रकृतला। आयँ निशाचर साहनी साईँ मरीच मुबाहु मुने मय गुहा।—रघुराज। (ख) करन विहार द्विदर मतवारे। गिरि सम वपुष अल्लेख करे। कोटिज वोजि साहनी आवँ। नीर पिवाह वदी अन्हवावेँ।—सबल। (२) सामी। संगी। उ०—(क) हम खेखे तब साय, होइ मँख सब मँखि

जो । कहो वचन कुफलाथ, शकुनी तो शिरमौर मम ।  
 (ख) घरहु भार निम शीश, बैरारहु किन साहनी । हमहि न  
 ओछि महीना मैं खेल्य नृप सदसि महै ।—सबल । (३)  
 पारिपद । उ०—भरत सकल साहनी बोलाए ।—तुलसी ।  
 साहय—संज्ञा पुं० [ अ० साहिव ] [ स्त्री० साहिया ] (१) मित्र ।  
 दोस्त । साथी । (२) मालिक । स्वामी । (३) परमेस्वर ।  
 ईश्वर । (४) एक सम्मानमूचक शब्द जिसका व्यवहार  
 नाम के साथ होता है । महाशय । जैसे,—सुं० कालिका  
 प्रसाद साहय ।

यौ०—साहयजादा । साहय सलामत ।

(५) गोरी जालि का कोई व्यक्ति । किरंगी ।

वि० वाला ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार यौगिक शब्दों के  
 अंत में होता है । जैसे,—साहय इक्याल, साहय तदवीर,  
 साहय दिमाग ।

साहयजादा—संज्ञा पुं० [ अ० साहिव + का० जाय ] [ स्त्री० साहयजादी ]

(१) भले आदमी का लड़का । (२) पुत्र । बेटा । जैसे,—  
 आज आपके साहयजादा कहाँ है ?

साहय सलामत—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] परस्पर मिलने के समय  
 होनेवाला अभियादन । बंदगी । सलाम । जैसे,—जय कभी  
 ये शस्त्रों में मिल जाते हैं, तब साहय सलामत हो जाती है ।

साहयी—वि० [ अ० साहिव + ई० (अव०) ] साहय का । साहय  
 संबंधी । जैसे,—साहयी बाल, साहयी रंग डंग ।

संज्ञा स्त्री० (१) साहय होने का भाव । (२) प्रभुता ।  
 मालिकपन । (३) यदाई । बहूपन । महत्व ।

साहय बुलबुल—संज्ञा पुं० [ अ० साह + अ० बुलबुल ] एक प्रकार का  
 बुलबुल जिसका सिर काला, सारा शरीर सफेद और  
 दुम एक हाथ लंबी होती है ।

साहस—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह मानसिक गुण या शक्ति जिसके  
 द्वारा मनुष्य यथेष्ट बल के अभाव में भी कोई भारी काम  
 कर बैठता है या दृढ़तापूर्वक विपत्तियों तथा कठिनाइयों  
 आदि का सामना करता है । हिम्मत । हियाय । जैसे,—वह  
 साहस करके डाकूओं पर दूट पड़ा ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिखलाना ।—होना ।

(२) जयदस्ती-दूसरे का घन लेना । लटना । (३) कोई  
 बुरा काम । दूष्ट कर्म । (४) द्वेष । (५) अत्याचार । (६)  
 क्रूरता । बेरहमी । (७) पर-की गमन । (८) बलात्कार ।  
 (९) दंड । सजा । (१०) शुमाना । (११) यह, अथि जिस  
 पर यज्ञ के लिये चर पकाया जाता है ।

साहसिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसमें साहस हो । साहस  
 करनेवाला । हिम्मतवर । पराक्रमी । (२) शत्रु । शेर । (३)

मिथ्यावादी । (४) कर्कश वचन बोलनेवाला । (५)  
 परकी गामी ।

विशेष—शास्त्रों में डाका, चोरी, शूद्र बोलना, कठोर वचन  
 कहना और परकी गमन ये पाँचों कर्म करनेवाले साहसिक  
 कहे गए हैं और अत्यंत पापी बनाए गए हैं । धर्मशास्त्रों में  
 इन्हें यथोचित दंड देने का विधान है । स्मृतियों में लिखा  
 है कि 'साहसिक व्यक्ति' की साक्ष्य नहीं माननी चाहिए,  
 क्योंकि ये स्वयं ही पाप करनेवाले होते हैं ।

(६) वह जो दूट करता हो । हठीला । (७) निर्भय । निर्भय  
 निडर ।

साहसी—वि० [ सं० साहसिन् ] (१) वह जो साहस करता हो ।  
 हिम्मती । दिलेर । (२) बलि का पुत्र, जो शाय के काण  
 गवा हो गया था । इसे बलराम ने मारा था ।

साहस्र—वि० [ सं० ] सहस्र संबंधी । हजार का ।

संज्ञा पुं० सहस्र का समूह ।

साहस्रवेधी—संज्ञा पुं० [ सं० साहस्रवेधिन् ] कस्तूरी ।

साहस्रिक—वि० [ सं० ] सहस्र संबंधी । हजार का ।

संज्ञा पुं० किसी पदार्थ के एक सहस्र भागों में से एक भाग ।  
 द्रव्य ।

साहा—संज्ञा पुं० [ सं० साहिव ] (१) वह वर्ष जो हिंदू ज्योतिष के  
 अनुसार विवाह के लिये शुभ माना जाता है । (२) विवाह  
 आदि शुभ कार्यों के लिये निश्चित लग्न या मुहूर्त ।

साहाय्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] सहायता । मदद ।

साहिब—संज्ञा पुं० [ अ० साह ] (१) राजा । (२) दे० "साहु" ।

साहिती—संज्ञा स्त्री० दे० "साहिय" ।

साहित्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एकत्र होना । मिलना । मिलन ।

(२) वाक्य में पदों का एक प्रकार का संबंध जिसमें वे पर-  
 स्पर अपेक्षित होते हैं और उनका एक ही क्रिया से अन्य  
 होता है । (३) किसी एक स्थान पर एकत्र किए हुए लिखित  
 उपदेश, परामर्श या विचार आदि । लिपिबद्ध विचार या ज्ञान ।

(४) गद्य और पद्य सब प्रकार के उन ग्रन्थों का समूह जिनमें  
 सार्वजनीन हित संबंधी रचनाएँ रक्षित रहते हैं । वे  
 समस्त पुस्तकें जिनमें वैदिक साय और मानव भाव बुद्धि-

मत्ता तथा व्यापकता से प्रकट किए गए हों । वादमय । इस  
 अर्थ में यह शब्द बहुत अधिक व्यापक रूप में भी बोला जाता

है (जैसे,—समस्त संसार का साहित्य) और देश, काल,  
 भाषा, या विषय आदि के विचार से परिमित रूप में भी ।

(जैसे,—हिंदी साहित्य, वैज्ञानिक साहित्य, बिहारी का  
 साहित्य आदि ।)

साहिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "साहनी" ।

साहिब—संज्ञा पुं० दे० "साहु" ।

साहिबी—संज्ञा स्त्री० दे० "साहनी" ।

**साहिवाँ**—संज्ञा पुं० दे० "साह" ।  
**साहितो**—संज्ञा स्त्री० [ अ० साहित = समुद्र तट ] (१) एक प्रकार का पत्ती जिसका रंग पाला और लंबाई एक पालिशव से अधिक होती है । यह प्रायः उत्तरी भारत और मध्य प्रदेश में पाया जाता है । यह पेड़ की टहनियों पर प्याले के आकार का घोंसला बनाता है । इसके अर्धों का रंग भूरा होता है । (२) बुलबुल चरम ।

**साही**—संज्ञा स्त्री० [ म० शय्यक ] एक प्रसिद्ध जंतु जो प्रायः दो फुट लंबा होता है । इसका सिर छोटा, गर्धने लंबे, कान और आँखें छोटी और जीभ चिल्ली के समान कटिद्वार होती है । ऊपर शीघ्र के जवड़े में चार दाँतों के अतिरिक्त कुनैन-वाले दो दाँत भेजे तीक्ष्ण होते हैं कि लकड़ी के मोटे तख्त तक को काट डालते हैं । इसका रंग भूरा, सिर और पंख पर काले काले सफेदी लिये छोटे छोटे बाल और गर्दन पर के बाल लंबे और भूरे रंग के होते हैं । पीठ पर लंबे सुकोले काँटे होते हैं । काँटे बहुधा संधि और मोठों वृक्ष की भाँति फिरी रहती हैं । जब यह झुंक होता है, तब काँटे संधि खड़े हो जाते हैं । यह अपने दाँतों पर अपने काँटों से आक्रमण करता है । इसका किया हुआ घाय कठिनता से आराम होता है । इन काँटों से लिखने की कलम बनाई जाती है और चूआकर्म में भी कहीं कहीं इनका व्यवहार होता है । ये जंतु आपस में बहुत लड़ते हैं; हमलिये लोगों का विचार है कि यदि इसके दो काँटे दो आरमियों के दरवाजों पर गाढ़ दिए जायँ, तो दोनों में बहुत लड़ाई होती है । यह दिन में सोता भार रात को जागता है । यह नरम पत्ती, साग, तरकारी और फल खाता है । रात काल में यह घेसुघ पढ़ा रहता है । यह प्रायः जण देशों में पाया जाता है । स्पेन, सिबिली आदि प्रायद्वीपों और अफ्रिका के उत्तरी भाग, एशिया के उत्तर, तातार, ईरान तथा हिंदुस्थान में बहुत मिलता है । इसे कहीं कहीं रोई भी कहते हैं ।

**साहू**—संज्ञा पुं० [ सं० साह ] (१) सज्जन । भलामानस । (२) महा-जन । धनी । साहूकार । चोर का उल्टा ।

**विशेष**—प्रायः वज्रिकों के नाम के झगड़े यह शब्द आता है । इसका कुछ लोग अम से फारसी "दाह" का अपभ्रंश समझते हैं । पर यथार्थ में यह संस्कृत "साधु" का प्राकृत रूप है ।

**साहल**—संज्ञा पुं० [ अ० साहल ] हीवर की सीध नामने का एक प्रकार का वंश जिसका व्यवहार राम और मिथी लोग मकान बनाने के समय करते हैं । यह पत्थर की एक गोली के आकार का होता है और इसमें एक लंबी डोरी खोदी रहती है । इसी डोरी के सहारे से इसे लकड़कार दीवर की टेंदाई या सिधवाई नापते हैं ।

**साहू**—संज्ञा पुं० दे० "साह" ।  
**साहूकार**—संज्ञा पुं० [ हि० साहु + कार (प्रत्य०) ] बड़ा महाजन या व्यापारी । कोटीवाल । धनाढ्य ।

**साहूकारा**—संज्ञा पुं० [ हि० साहूकार + आ (प्रत्य०) ] (१) रुपयों का लेन देन । महाजन । (२) यह वाजार जहाँ बहुत से साहूकार या महाजन कारबार करते हैं ।  
 वि० साहूकारों का । जैसे,—साहूकारा व्यवहार या ध्यान ।  
**साहूकारी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० साहूकार + ई (प्रत्य०) ] साहूकार होने का भाव । साहूकारपन ।

**साहेब**—संज्ञा पुं० दे० "साहब" ।  
**साहूँ**—संज्ञा स्त्री० [ हि० साहूँ ] मुजदब । बाजू । उ०—सकल सुभन मंगल मंदिर के द्वार विसाल सुदाई साहूँ ।—गुलसी ।  
 प्रत्य० [ हि० साहूँ ] सामने । सम्मुख ।

**सिद्ध**—संज्ञा पुं० दे० "सौ" । उ०—रत्न जनम भवने तें हारयो गोविंद गत गहि जानी । निमिष न लीन मयो पारनन सिद्धे विरधा अउच सिरानी ।—तेग बहादुर ।

**सिकना**—कि० अ० [ सं० श्वा = पशु + क्त ] [ हि० सिकना ] अर्ध पर गम होना या पकना । सेंका जाना । जैसे,—रोटी सिकना ।

**सिकोना**—संज्ञा पुं० [ अ० ] कुनैन का पेड़ ।

**सिंग**—संज्ञा पुं० दे० "सिंग" ।

**सिंगड़ा**—संज्ञा पुं० [ सं० शिंग + ङा (प्रत्य०) ] [ स्त्री० अंशु + मिंगरी ]  
 साँग का बना हुआ बालूद रखने का एक प्रकार का बरतन ।

**सिंगरफ**—संज्ञा पुं० [ अ० सिंगरफ ] इंगुर ।

**सिंगरफी**—वि० [ अ० सिंगरफी ] इंगुर का । इंगुर से बना ।

**सिंगरी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सिंगरी ] एक प्रकार की मछली जिसके सिर पर साँग से निकले होते हैं ।

**सिंगरीट**—संज्ञा पुं० [ सं० शिंगरे ] प्रयाग के पश्चिमोत्तर तीसरे कोस पर एक स्थान जो प्राचीन शंभूपुर माना जाता है । यहाँ निपादात्रय गुह की राजधानी थी ।

**सिंगल**—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार की बड़ी मछली जो भारत और बर्मा का नदियों में पाई जाती है । सिंह उ० कुछ तक लंबी होती है ।

**सिंगा**—संज्ञा पुं० दे० "सिंगल" ।

**सिंगा**—संज्ञा पुं० [ हि० सिंग ] बूँदकर बसाया जानेवाला साँग या छोहे का बना एक पाजो । तुर्ही । रणसिंगा ।

**सिंगार**—संज्ञा पुं० [ सं० शिंगार ] (१) सजावट । सजा । बनाव । (२) शोभा । (३) शंगार रस । उ०—साही ते सिंगार रस भरिन क्यो कचि देव । जाकी है हरि देवता सकल देव अधिदेव ।—देव ।

**सिंगारदान**—संज्ञा पुं० [ हि० सिंगार + दान ] [ अ० दान (प्रत्य०) ] यह पाप या जेय संकट जिसमें शीशा, कंधी आदि शंगार की सामग्री रखी जाती है ।

**सिंगारना**—क्रि० सं० [ हि० सिंगार + ना (प्रत्य०) ] वस्त्र, आभूषण, अंगरत्न आदि से शरीर सुसज्जित करना। सजावना। सँवारना।  
 उ०—(क) सुरभी वृषभ सिंगारे बहु विधि हरदी तेल लगाई ।—सूर। (ख) कटे कुंड कुंडल सिंगार गंड पुंछन पें कटि में भुसुंठ सुंठ शंढन की मंडनी ।—गि० दास।  
**सिंगारमेज**—संज्ञा स्त्री० [ सं० शृंगार + मज० मेज ] एक प्रकार की मेज जिस पर दर्शन लगा रहता है और शृंगार की सामग्री सजा रहती है। इसके सामने बैठकर लोग पाल-सँवारते और वस्त्र आभूषण आदि पहनते हैं।

**सिंगारहार**—संज्ञा पुं० [ सं० शृंगार ] हरसिंगार नामक फूल। परजाता। उ०—नागेशर सदवरग नेवारी। औ सिंगारहार फूलवारी ।—जायसी।

**सिंगारिया**—वि० [ सं० शृंगार + रिया (प्रत्य०) ] किसी देवमूर्ति का सिंगार करनेवाला, पुजारी।

**सिंगारी**—वि० पुं० [ हि० सिंगार + री ] शृंगार करनेवाला। सजानेवाला। उ०—समर बिहारी सुर सम बलभारी धरि मल-जुद्धकारी औ सिंगारी भट नेद के ।—गोपाल।

**सिंगात**—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का पहाड़ी बकरा जो कुमायूँ से नैपाल तक पाया जाता है।

**सिंगाहा**—वि० [ हि० सींग + आहा (प्रत्य०) ] [ स्त्री० सिंगाली ] सिंगवाला। जैसे गाय, बैल।

**सिंगासन**—संज्ञा पुं० दे० "सिंहासन"।

**सिंगिया**—संज्ञा पुं० [ सं० शृंगिक ] एक प्रसिद्ध स्थावर विष।  
**विशेष**—इसका पौधा अदरक या हल्दी का सा होता है और शिकिम की ओर नदियों के किनारे की बीचबगली जमीन में उगता है। इसकी जड़ ही विष होती है जो मूलने पर सींग के आकार की दिखाई पड़ती है। लोगों का विश्वास है कि यह विष यदि गाय के सींग में बंध दिया जाय, तो उसका दूध रक्त के समान लाल हो जाय।

**सिंगी**—संज्ञा पुं० [ हि० सींग ] (१) सींग का बना बना हुआ फूँकर बनाया जानेवाला एक प्रकार का बाजा। तुरही।

**विशेष**—इसे शिकारी लोग कुच्चों को शिकार का पत्र देने के लिये बनाते हैं।

(२) सींग का बाजा जिसे योगी लोग फूँकर बनाते हैं।  
 उ०—सिंगी नाद न बाजहीं किन राप सो जोगी ।—दाद।

**क्रि० प्र०**—फूँकना ।—बजाना।  
 (३) घोड़ों का एक वृक्ष लक्षण।

**संज्ञा स्त्री०** (१) एक प्रकार की मछली जो परसतायी पानी में अधिकता से होती है। इसके काटने या सींग गढ़ाने से एक प्रकार का विष बनता है। यह एक फुट के लम्बग लंबी होती है और खाने के योग्य नहीं होती। (२) सींग की नली जिससे घूमनेवाले देहजती जराँठ धारी का रक्त घुसकर निकलते हैं।

**क्रि० प्र०**—लगाना।

**सिंगी मोहरा**—संज्ञा पुं० [ हि० सिंगी + मुहर ] सिंगिया विष।

**सिंगौटी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सींग + औटी (प्रत्य०) ] (१) सींग का आकार। (२) बैल के सींग पर पहनाने का एक आभूषण। (३) सींग का बना हुआ घोंटना। (४) तेल आदि रखने के लिये सींग का पात्र। (५) जंगल में मरे हुए जानवरों के सींग।

**संज्ञा स्त्री०** [ हि० सिंगार + औटी ] सिंदूर, कंधी आदि रखने की धियों की पिटाई।

**सिंघ**—संज्ञा पुं० दे० "सिंह"।

**सिंघल**—संज्ञा पुं० दे० "सिंहल"।

**सिंघली**—वि० दे० "सिंहली"।

**सिंघाड़ा**—संज्ञा पुं० [ सं० शृंगारिक ] (१) पानी में फूलनेवाली एक लता जिसके तिकोने फल खाए जाते हैं। पानी फल।

**विशेष**—यह भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में तालों और जलाशयों में रोप कर लगाया जाता है। इसकी जड़ें पानी के भीतर दूर तक फैलती हैं। इसके लिये पानी के भीतर कीचड़ का होना आवश्यक है, कंकरीली या बलुई जमीन में यह नहीं फल सकता। इसके पत्ते तीन अँगुल चौड़े कटावदार होते हैं जिनके पीचे का भाग ललाई लिए होता है। फूल सफेद रंग के होते हैं। फल तिकोने होते हैं जिनकी दो नोकें कटि या सींग की तरह निकली होती हैं। बीच का भाग खुदुरा होता है। छिलका मोटा पर मुलायम होता है जिसके भीतर सफेद गुद्दा या गिर्रा होती है। ये फल हरे खाए जाते हैं। सूखे फलों की गिर्रा का आटा भी बनाता है जो मृत के दिन फलाहार के रूप में लोग खाते हैं। अथवा बनाने में भी यह आटा काम में आता है। वैद्यकमें सिंघाड़ा शीतल, भारी, कर्मल, घोर्यबर्द्धक, मलरोधक, पातकारक तथा रुषि विकार और त्रिदोष को दूर करनेवाला कहा गया है।  
**पर्याय**—जलफल। वारिकंडक। त्रिकोणफल।

(२) सिंघाड़े के आकार की तिकोनी सिलई या घेल युद्ध।

(३) सोनारों का एक औजार जिससे वे सोने की माला बनाते हैं। (४) एक प्रकार की मुनिया चिड़िया। (५)

समोसा नाम का नमकीन परक्यान जो सिंघाड़े के आकार का तिकोना होता है। (६) एक प्रकार की आविशाबाजी।

(७) रहत की लाट में डोंकी हुई लकड़ी जो लाट को पीठे की ओर घूमने से रोकती है।

**सिंघाड़ी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सिंघाड़ा ] वह तालाब जिसमें सिंघाड़ा रोपा जाता है।

**सिंघाण**—संज्ञा पुं० दे० "सिंहाण"।

**सिंघासन**—संज्ञा पुं० दे० "सिंहासन"। उ०—(क) दुसरेप राउ सिंघासन बैठि विराजहि हो ।—जुद्धसी। (ख) तहाँ

सिंधासन सुभग निहारा । दिव्य कनकमय मणि हुति-  
कारा ।—मधुसूदन ।

**सिंधिनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नासिका । नाक ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सिंधिनी"

**सिंधिया**—संज्ञा पुं० दे० "सिंधिया" ।

**सिंधी**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सींग ] (१) एक प्रकार की छोटी मछली जिसका रंग सुर्भी, लिप हूए होता है । इसके गलफंदे के पास दोनों तरफ दो कोंठे होते हैं । (२) सोंठ । मुंडी ।

**सिंधु**—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का जीरा जो कुच्छ और घृग्घर ( फारस ) से आता है और काले जीरे के स्थान पर विक्रता है ।

**सिंचन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल छिड़कना । पानी के छंटे बाल-  
का तर करना । (२) पैदों में पानी देना । सींचना ।

**सिंचना**—क्रि० प्र० [ हिं० सींचना ] सींचा जाना ।

**सिंचाई**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सिंचन ] (१) पानी छिड़कने का काम ।  
जल के छंटे से तर करने की क्रिया । (२) सींचने का  
काम । बूझों में जल देने का काम । उ०—निज कर पुनि  
पत्रिका बनाई । कुंकुम मलयज पिंडु सिंचाई ।—रघुराज ।  
(३) सींचने का कर या मजूदारी ।

**सिंचाना**—क्रि० सं० [ हिं० सींचना का प्रे० ] (१) पानी छिड़काना ।  
(२) सींचने का काम कराना ।

**सिंचित**—वि० [ सं० ] (१) जल छिड़का हुआ । (२) पानी के  
छंटे से तर किया हुआ । सींचा हुआ ।

**सिंचिता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिंच्यली । पीर ।

**सिंचौनी**—संज्ञा स्त्री० दे० "सिंचाई" ।

**सिंजा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अलंकार ध्वनि । वि० दे० "सिंजा" ।

**सिंजाल पारी**—संज्ञा स्त्री० दे० "गायलीन" ।

**सिंजिल**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सिंजा ] शब्द । ध्वनि । श्रवक । संकार ।  
उ०—सुदनुन चलत भूँवरु वात्रै । सिंजित सुनत हंस  
द्विय लावै ।—लाल कवि ।

**सिंदन**—संज्ञा पुं० दे० "स्यंदन" ।

**सिंदरवानी**—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की हल्दी जिसकी  
बद से एक प्रकार का तीसुर निकलता है जो भसली तीसुर  
में मिला दिया जाता है ।

**सिंदुकर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंदुवार वृक्ष । संभालु ।

**सिंदुर रसना**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मदिरा । शराव । (अनेका०)

**सिंदुरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सिंदुर ] बल्लक की जाति का एक छोटा  
पेड़ जो हिमालय के नीचे के प्रदेश में चार साढ़े चार हजार  
फुट तक पाया जाता है ।

**सिंदुवार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सैमाल वृक्ष । नितुंभी ।

**सिंदूर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रंग को पीसकर बनाया हुआ एक  
प्रकार का लाल रंग का वर्ण जिसे सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ

अपनी माँग में भरती हैं । यह सौभाग्य का चिह्न माना जाता  
है । गणेश और हनुमान की मूर्तियों पर भी यह ची में  
मिलाकर पोता जाता है ।

**सिंदुरेण**—आधुनिक में यह भारी, गरम, टूटी टूटी को जोड़ने-  
वाला, घाव को शोधने और भरनेवाला तथा कोढ़, सुगली,  
और विष को दूर करनेवाला माना गया है । यह घातक  
और अमध्य है ।

**सिंदुर्या**—नागरेणु । वीरज । गणेशभूषण । संप्याराग ।  
शंकराक । सौभाग्य । अरण्य । मंगल्य ।

(२) चतुर्त की जाति का एक पहाड़ी पेड़ जो हिमालय के  
निचले भागों में अधिक पाया जाता है ।

**सिंदूरकारण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सीसा नामक धातु ।

**सिंदूरतिलक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिंदूर का तिलक ।  
(२) हार्थी ।

**सिंदूरतिलका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सधवा स्त्री ।

**सिंदूरदान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विवाह के अवसर की एक प्रधान  
रीति । घर का कन्या की माँग में सिंदूर डालना ।

**सिंदूरपुष्पी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक पौधा जिसमें लाल रंग के  
फूल लगते हैं । वीरपुष्पी । सदा सुहागिन ।

**स्यंद्या**—सिंदुरी । नृणपुष्पी । करच्छदा । शोणपुष्पी ।

**सिंदूरयंदन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विवाह-संस्कार में एक प्रधान  
रीति जिसमें घर कन्या की माँग में सिंदूर डालता है ।

उ०—सिंदूरयंदन, होम छाया होन लागी भाँवरी । सिल  
पोंहनी करि मोहनी मन हारयो मूर्ति साँवरी ।—तुलसी ।

**सिंदूररत्न**—संज्ञा पुं० [ सं० ] रस सिंदूर ।

**सिंदुरेण**—यह पारे और गंधक को अर्चि पर उड़कर बनाया जाता  
है और चंद्रोदय या मकरध्वज के स्थान पर दिया जाता है ।

**सिंदूरिया**—वि० [ सं० सिंदूर + रिया (प्रत्यय०) ] सिंदूर के रंग का ।  
लाल लाल । जैसे,—सिंदूरिया आम ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सिंदूर (शुष्क) ] सिंदूरपुष्पी । सदा सुहागिन  
नाम का पौधा ।

**सिंदुरी**—वि० [ सं० सिंदूर + री (प्रत्यय०) ] सिंदूर के रंग का । उ०—  
भली संश्लोमी मँल सिंदुरी टापे मार ।—अभिकादस ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घातकी । घव । (२) रोचनी ।  
हल्दी । लाल हल्दी । (३) सिंदूरपुष्पी । (४) कपीला ।

(५) लाल चरित्र ।

**सिंदोरा**—संज्ञा पुं० [ हिं० सिंदूर ] लकड़ी की एक श्रविया जिसमें  
स्त्रियों सिंदूर रक्ती हैं । ( यह सौभाग्य की मायमी मानी  
जानी है । )

**सिंध**—संज्ञा पुं० [ सं० सिंधु ] (१) भारत के पश्चिम प्रांत का एक  
प्रदेश जो आंध्रक बंधई प्रांत के अंतर्गत है । संज्ञा स्त्री० (२)  
पंजाब की एक प्रधान नदी । (३) मीरव राग की एक रागिनी ।



**सिंधव**—संज्ञा पुं० दे० "सिंधव"। उ०—(क) सिंधव, फटिक पपान का, ऊपर एकद्व रंग। पानी माँहें देखिये, न्यारा न्यारा अंग।—दाहृदयाल। (ख) सिंधव श्लष आराम मधि सें आन देरायो स्वाम।—सूर।

**सिंधवी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सिंधु ] एक रागिनी जो आभीरी और आशावरी के मेल से बनी मानी जाती है। इसका स्वरूप कान पर कमल का फूल रखे, ढाल वस्त्र पहने, क्रुद्ध और हाथ में त्रिशूल लिए कहा गया है। हनुमत के मत से इस रागिनी का स्वर आम यह है—रा रे ग म प ध नि सा अथवा सा ग म प ध नि सा।

**सिंधुसागर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पंजाब में एक दोआब। सेलम और सिंधु नदी के बीच का प्रदेश।

**सिंधुधारा**—संज्ञा पुं० [ दे० ] श्रावण मास के दोनों पक्षों की तृतीया को लड़की की सुसुराल में भेजा हुआ एकवान भादि।

**सिंधी**—संज्ञा स्त्री० [ दि० सिंध + ई (प्रत्य०) ] सिंध देश की बोली।

**विशेष**—यह समस्त सिंध प्रांत और उसके आस पास लाल बेला, कच्छ और बहावलपुर आदि रियासतों के कुछ भागों में बोली जाती है। इसमें फारसी और धरया भाषा के बहुत अधिक शब्द मिल गए हैं। यह लिपि भी एक प्रकार की अरबी फारसी लिपि में ही जाती है। इसमें सिरकी, लारी और थरेली तीन मुख्य बोलियाँ हैं। परिचामी पंजाब की भाषा के समान इसमें भी दो स्वरों के बीच में कहीं कहीं 'स' पाया जाता है।

वि० सिंध देश का। सिंध देश संबंधी।  
संज्ञा पुं० (१) सिंध देश का निवासी। (२) सिंध देश का घोड़ा जो बहुत तेज और मजबूत होता है। अत्यंत प्राचीन काल से सिंध घोड़े की नस्ल के लिये प्रसिद्ध है।

**सिंधु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नदी। (२) एक प्रसिद्ध नदी जो पंजाब के पश्चिम भाग में है। (३) समुद्र। सागर। (४) चार की संख्या। (५) सात की संख्या। (६) वरुण देवता। (७) सिंध प्रदेश। (८) सिंध प्रदेश का निवासी। (९) ओठों का गोलपन। ओष्ठ की आर्द्रता। (१०) हाथी के सूँढ़ से निकला हुआ पानी। (११) हाथी का मूत्र। गजमूत्र। (१२) श्वेत टंकण। खूब साफ सोहागा। (१३) सिंधुवार का पीया। निर्गुंठी। (१४) सूर्य की जाति का एक राग जो मालकोश का पुत्र माना जाता है। इसमें गांधार और निषाद दोनों स्वर कोमल लगते हैं। इसके गाने का समय दिन की १० दंड से १६ दंड तक है। (१५) गंधर्वों के एक राजा का नाम।

संज्ञा स्त्री० दक्षिण की एक छोटी नदी जो यमुना में मिलती है।

**सिंधुक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] निर्गुंठी। सैभाह वृक्ष।

**सिंधुकन्या**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लक्ष्मी।

**सिंधुकफ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्रफेन।

**सिंधुकर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेत टंकण। सोहागा।

**सिंधुकालक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] नैर्ऋत्य कोण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम।

**सिंधुखेल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंध प्रदेश।

**सिंधुज**—वि० [ सं० ] (१) समुद्र में उत्पन्न। (२) सिंध देश में होनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) संधा नमक। (२) शंख। उ०—जाके श्लेष भूमि जल पटके कहा कहौगे सिंधुज-पानी।—सूर। (३) पारा। (४) सोहागा।

**सिंधुजन्मा**—संज्ञा पुं० [ सं० सिंधुजन्म ] (१) चंद्रमा। (२) संधा नमक।

**सिंधुजा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) (समुद्र से उत्पन्न) लक्ष्मी। उ०—बौर दारत सिंधुजा जय शब्द बोलत सिद्ध। नरद-दिक चित्र मान अशेष भाव प्रसिद्ध।—कैशव। (२) संधा, जिसमें से मोती निकलता है।

**सिंधुजात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिंधी घोड़ा। (२) मोती।

**सिंधुडा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सिंधु ] एक रागिनी जो मालव राग की भाष्या मानी जाती है।

**सिंधुनंदन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (समुद्र का पुत्र) चंद्रमा।

**सिंधुपर्णी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंधारी वृक्ष।

**सिंधुपिय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अगस्त्य ऋषि (जो समुद्र पी गए थे)।

**सिंधुपुत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा। (२) त्रिकुट की जाति का एक पेड़।

**सिंधुपुप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शंख। (२) कर्पूर। कदम। (३) मौलसिरी। बकुल।

**सिंधुमंघज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संधा नमक।

**सिंधुमाता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सिंधुपात्र ] नदियों की माता, सरस्वती।

**सिंधुर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सिंधुप ] (१) हस्ती। हाथी। उ०—चली संग वन राज के, रसे एक वन आई। सिंधुर यूथ बहुत सहै, निकसे सेहि वन माहिं।—सफलसिंह। (२) आठ की संख्या।

**सिंधुरमणि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गजमुक्ता। उ०—पीत वसन कदि फलित कंठ सुंदर सिंधुरमणि माल।—तुलसी।

**सिंधुरवदन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गजवदन। गणेश। उ०—सुप सरसह सिंधुरवदन, रसि सुरसरि सुरगाह। सुमिरि चरुहु मग मुदित मन होइहि सुकृत सहाह।—तुलसी।

**सिंधुरागामिनी**—वि० स्त्री० [ सं० ] गजगामिनी। हाथी की सीं पालवाली। उ०—गावत चरौं सिंधुरागामिनि।—तुलसी।

**सिंधुराव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] निर्गुंठी। सैभाह।

**सिंधुलताम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मूंगा। प्रवाल।

**सिंधुलवण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संधा नमक।

**सिंधुवार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंधुवार। निर्गुंठी।

**सिधुविषय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हलाहल विष जो समुद्र मन्थने पर निकला था। उ०—आस्तीविषय, सिधुविषय पावक सौं तो कट्ट हुनो प्रह्लाद सौं पिता को प्रेम छूट्यो है।—केशव।

**सिधुवृषप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम।

**सिधुवेपथु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गंगाती घृष्ट।

**सिधुशयन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु।

**सिधुसंगंधा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फियकिरी।

**सिधुसर्ज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शाल वृक्ष। साव।

**सिधुसदा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] निगुंडी। सिद्धवार।

**सिधुसुत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जलंधर नामक राक्षस जिसे चित्र जी ने मारा था। उ०—सिधुमुन गर्व गिरि वज्र गौरीस भव दक्ष मय अखिल विध्वंसकर्ता।—तुलसी।

**सिधुसुतासुन**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लक्ष्मी। (२) सौ।

**सिधुसुतासुन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सीप का पुत्र अर्थात् मोती।  
उ०—सिधु सुतासुन वा रिपु गमनी सुन मेरी तू यात —  
सुर।

**सिधुरा**—संज्ञा पुं० [ सं० सिधुर ] संपूर्ण जानि का एक राग जो हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है। यह वीर रस का राग है। इसमें ऋषभ और निषाद स्वर कोमल लगते हैं। गाने का समय दिन में ११ दंड से १५ दंड तक है।

**सिधुरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सिधुर ] एक रागिनी जो हिंडोल राग की पुत्र-वत् मानी जाती है।

**सिधोरा**—संज्ञा पुं० [ हिं० विहुर + भोर (मत्व०) ] सिद्धर रखने का लकड़ी का पात्र जो कई आकार का बनता है। उ०—  
गृह से निकरी सती होन को देखन को जग दौता। अथ तो अरे सरे बनि आई लीन्हा हाथ सिधोरा।—कबीर।

**सिध**—संज्ञा पुं० दे० "सिध"।

**सिधा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सिंधी धान। रामी धान्य। (२) नखी नामक गंध द्रव्य। इहविलसिनी। (३) सौंद।

**सिधी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छिमी। फली। (२) सेम। निष्पावी। (३) घन मूंग।

**सिधाल**—संज्ञा पुं० [ सं० संघाल ] सिद्धवार। निगुंडी।

**सिधपा**—संज्ञा स्त्री० दे० "सिधपा"।

**सिंह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सिंहनी ] (१) सिंह की जाति का सब से बलवान्, पराक्रमी और भयंकर जंगली जंतु जिसके गरवर्ग की मारुतुन पर बड़े बड़े बाल या केसर होते हैं। दोर धवर।

**विशेष**—यह जंतु अथ संसार में बहुत कम स्थानों में रह गया है। भारतवर्ष के जंगलों में किसी समय सर्वत्र सिंह पाए जाते थे, पर अब कहीं नहीं रह गए हैं। केवल गुजरात या काठियावाड़ की ओर कभी कभी दिखाई पड़े जाते हैं। उत्तरी भारत में अंतिम सिंह सन् १८२९ में दिखाई पड़ा

था। आज कल सिंह केवल अफ्रिका के जंगलों में मिलते हैं। इस जंतु का पिछला भाग पतला होता है, पर सामने का भाग अत्यंत भयंकर और विशाल होता है। इसकी आकृति से विशद्वक्षण सेज उपरुता है और इसकी गरज बादल की तरह गूंथती है, इसी से सिंह का गर्जन प्रसिद्ध है। देखने में यह बाघ की अपेक्षा तांत और गंभीर दिखाई पड़ता है और जल्दी क्रोध नहीं करता। रंग इसका ऊँट के रंग का सा और सादा होता है। इसके शरीर पर चिचिवाँ आदि नहीं होतीं। मुँह व्यापक की अपेक्षा कुछ लंबोतरा होता है, बिलकुल गोल नहीं होता। पूँठ का आकार भी कुछ भिन्न होता है। वह पतली होती है और उसके छोर पर बालों का गुच्छा सा होता है। सारे धड़ की अपेक्षा इसका सिर ओर चेहरा बहुत बड़ा होता है जो केसर या बालों के कारण और भी भयंकर दिखाई पड़ता है। कवि लोग सदा से वीर या पराक्रमी पुरुष की उपमा सिंह से देते आए हैं। यह जंगल का राजा माना जाता है।

**पर्याय**—सुरगाराज। सृष्टेन्द्र। केसरी। पंचानन। हरि।

(२) ज्योतिष में मेष आदि बारह राशियों में से पाँचवीं राशि।  
**विशेष**—इस राशि के अंतर्गत मघा, पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा-फाल्गुनी के प्रथम पाद पड़ते हैं। इसका देवता सिंह और वर्ण पीत पूरुष माना गया है। फलित ज्योतिष में यह राशि पित्र प्रकृति की, पूर्व दिशा की स्वामिनी, ऋद्र और वायुवाली कही गई है। इस राशि में उत्पन्न होमेवाला मनुष्य क्रोधी, सेन चलनेवाला, बहुत बोलनेवाला, हँसमुख, चंचल और मात्सर्यिय बतलाया गया है।

(३) धीरता या श्रेष्ठता-वाचक शब्द। जैसे,—पुरुष-सिंह।  
(४) छप्यय छंद का सोलहवाँ भेद जिसमें ५५ गुरु, ४२ लघु कुल ९० वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (५) वास्तु-विद्या में प्रासाद का एक भेद जिसमें सिंह की प्रतिमा से भूषित द्वारह कोने होते हैं। (६) रक्त शिर। लाल सहिजन। (७) एक राग का नाम। (८) वर्षमान अवसरिणी के २४वें अर्द्ध का चिह्न जो जैन लोग रथयात्रा आदि के समय झंडों पर धनते हैं। (९) एक आभूषण जो रथ के पैरों के माथे पर पहनाते हैं। (१०) एक कल्पित पक्षी। (११) बंकेट गिरि का एक नाम।

**सिंहकर्णी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पाण चलाने में इन्होंने हाथ को एक सुदा।

**सिंहकर्मा**—संज्ञा पुं० [ सं० सिंहकर्म्मन् ] सिंह के समान धीरता से काम करनेवाला। वीर पुरुष।

**सिंहकेतु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम।

**सिंहकेलि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रसिद्ध बोधिसत्व मंगुश्री का एक नाम।

सिंहकेसर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिंह की गरदन के बाल ।  
(२) मौलसिरी । बहुल वृक्ष । (३) एक प्रकार की मिठाई ।  
सूत फेनी । काता ।

सिंहग—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।

सिंहघोष—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बुद्ध का नाम ।

सिंहचित्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मयवन । मापपर्णी ।

सिंहच्छुद्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद दूध ।

सिंहतुंड—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेहूँड़ । खुर्ही । शूहर । (२) एक प्रकार की मछली ।

सिंहदंष्ट्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का वाण । (२) शिव का एक नाम ।

सिंहद्वार—संज्ञा पुं० [ सं० ] सदर फाटक जहाँ सिंह की मूर्ति बनी हो । उ०—सिंहद्वार भारती उत्तरत यशुमति, आर्भद-कंद ।—सूर ।

सिंहध्वज—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बुद्ध का नाम ।

सिंहनंदन—संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक ।

सिंहनाद—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिंह की गरज । (२) युद्ध में वीरों की ललकार । (३) सत्यता के निश्चय के कारण किसी बात का निर्याक कथन । जोर देकर कहना । ललकार के कहना । (४) एक प्रकार का पक्षी । (५) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सगण, जगण, सगण, सगण और एक गुरु होता है । कलहंस । नंदिनी । उ०—सजि सी सिंगार कलहंस गती सी । चलि आइ राम छवि मंडप दीसी । (६) संगीत में एक ताल । (७) शिव का एक नाम । (८) रावण के एक पुत्र का नाम ।

सिंहनादक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंघा नामक बाजा ।

सिंहनाद गुग्गुलु—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक योगिक औषध जिसमें प्रधान योग गुग्गुलु का रहता है ।

सिंहनादिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जवासा । धमासा । दुरालभा । हिगुभा ।

सिंहनादी—वि० [ सं० सिंहनादिन् ] [ स्त्री० सिंहनादिनी ] सिंह के समान गरजनेवाला ।

संज्ञा पुं० एक ओषधिसूत्र का नाम ।

सिंहनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सिंह की मादा । शेरनी । (२) एक छंद का नाम । इसके चारों पदों में क्रम से १२, १८, २० और २२ मात्राएँ होती हैं । अंत में एक गुरु और २०, २० मात्राओं पर १ जगण होता है । इसके उलटे को गहिनी कहते हैं ।

सिंहपत्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मापपर्णी ।

सिंहपर्णी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मापपर्णी ।

सिंहपिपली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिंहली ।

सिंहपुच्छ—संज्ञा पुं० [ सं० ] पिठवन । घुमिपर्णी ।

सिंहपुच्छी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चित्रपर्णी । मापपर्णी ।

सिंहपुठप—संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनियों के नौ वासुदेवों में से एक वासुदेव ।

सिंहपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पिठवन । घुमिपर्णी ।

सिंहपीर—संज्ञा पुं० [ सं० सिंह + हि० पीर ] सिंहद्वार । सदर फाटक जिस पर सिंह की मूर्ति बनी हो । उ०—भीर जानि सिंह-पीर त्रियन की यशुमति भवन हुआई ।—सूर ।

सिंहमल—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की धानु या पीतल । पंच-लौह ।

सिंहमुख—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव के एक गण का नाम ।

सिंहमुखी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बॉस । (२) अहसा । वासक । (३) वन उड़ड़ी । (४) खारी मिट्टी । (५) कृष्ण निगुंरी । काला सैमाद ।

सिंहयाना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (सिंह जिसका वाहन हो) दुर्गा ।

सिंहल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक द्वीप जो भारतवर्ष के दक्षिण में है और जिसे लोग रामायणवाली लंका अनुमान करते हैं ।

विशेष—जान पड़ता है कि प्राचीन काल में इस द्वीप में सिंह बहुत पाए जाते थे; इसी से यह नाम पड़ा । रामेश्वर के ठीक दक्षिण पड़ने के कारण लोग सिंहल को ही प्राचीन लंका अनुमान करते हैं । पर सिंहलवासियों के बीच न तो यह नाम ही प्रसिद्ध है और न रावण की कथा ही । सिंहल के दो इतिहास पाठी भाषा में लिखे मिलते हैं—महावंशी और दीपवंसी, जिनसे वहाँ किसी समय यहाँ की बस्ती होने का पता लगता है । रावण के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि उसने लंका से अपने भाई यहाँ को निकालकर राक्षसों का राज्य स्थापित किया था । वंग देस के विजय नामक एक राजकुमार का सिंहल विजय करना भी इतिहासों में मिलता है । ऐतिहासिक काल में यह द्वीप स्वर्णभूमि या स्वर्णद्वीप के नाम से प्रसिद्ध था, जहाँ दूर देशों के व्यापारी मोती और मसाले आदि के लिए आते थे । प्राचीन अरब स्वर्णद्वीप को "सरनदीव" कहते थे । रत्न-परीक्षा के ग्रंथों में सिंहल-मोती, मानिक और नीलम के लिए प्रसिद्ध पाया जाता है । भारतवर्ष के कलिंग, ताड-लिप्ति आदि प्राचीन बंदरगाहों से भारतवासियों के जहाज़ बराबर सिंहल, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों की ओर जाते थे । गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त (सत्र ४०० ईसवी) के समय फाहियान नामक जो चीनी यात्री भारतवर्ष में आया था, वह हिंदुओं के ही जहाज़ पर सिंहल होता हुआ चीन को लौटा था । उस समय भी यह द्वीप स्वर्णद्वीप या सिंहल ही कहलाता था, लंका नहीं । इधर की कहानियों में सिंहलद्वीप पश्चिमी किनारे के लिए प्रसिद्ध है । यह प्रवाद विशेषतः गोरखवंशी साधुओं

में प्रसिद्ध है जो सिंहल को एक प्रसिद्ध द्वीप मानते हैं। उनमें कथा चली आती है कि गोरखनाथ के युद्ध मर्यादनाथ (महेंद्रनाथ) सिद्ध होने के लिए सिंहल गए, पर परिस्थितियों के जाल में फँस गए। जब गोरखनाथ गए तब उनका उद्धार हुआ। वान्प्रभ में सिंहल के निवासी बिलकुल काले और भदे होते हैं। वहाँ इस समय द्योजातियों, यस्तो है—उत्तर की ओर तो तामिल जाति के लोग हैं और दक्षिण की ओर आदिम सिंहली निवास करते हैं।

(२) सिंहल द्वीप का निवासी।

सिंहलक-वि० [ सं० ] सिंहल सम्बंधी।

संज्ञा पुं० (१) पीतल। (२) दारचीनी।

सिंहलद्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंहल नाम का द्वीप जो भारत के दक्षिण में है। वि० दे० "सिंहल"।

सिंहलद्वीपी-वि० [ सं० ] (१) सिंहल द्वीप में होनेवाला। (२)

सिंहल द्वीप का निवासी। उ०—कनक हाट सब कुदकुद लीपी। शैठ महानजन सिंहलद्वीपी।—जायसी।

सिंहलस्थ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिंहली। सिंहली पीपल।

सिंहलांगुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पिठवन। पृथिवर्णी।

सिंहला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सिंहल द्वीप। लंका। (२) रंग।

(३) पीतल। (४) छाल। बकला। (५) दारचीनी।

सिंहलायान-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का ताड़ जो दक्षिण में होता है।

सिंहली-वि० [ हि० सिंहल + ई (प्रत्य०) ] (१) सिंहल द्वीप का।

(२) सिंहल द्वीप का निवासी।

विशेष—सिंहली काले और भदे होते हैं। वे अधिकांश हीन-यान शाखा के बंधे हैं। पर बहुत से सिंहली मुसलमान भी हो गए हैं।

संज्ञा स्त्री० सिंहली पीपल।

सिंहली पीपल-संज्ञा स्त्री० [ सं० सिंधलपिपली ] एक लता जिसके बीज दवा के काम में आते हैं।

विशेष—यह सिंहल द्वीप के पहाड़ों पर उत्पन्न होती है। इसका रंग और रूप सोंप के समान होता है और बीज लंबे होते हैं। यह चरपरी, गरम तथा हृत्ति रोग, कफ, खास और वात की पीड़ा को दूर करनेवाली बन्दी गई है।

सिंहलील-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संगीत में एक ताल। (२)

(२) काम शास्त्र में एक निबंध।

सिंहलदना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अद्भुत। (२) मापवर्णों।

वन उद्गी। (३) खारी मिट्टी।

सिंहलसभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अद्भुत।

सिंहलवाहना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा देवी।

सिंहलवाहिनी-वि० स्त्री० [ सं० ] सिंह पर चढ़नेवाली।

संज्ञा स्त्री० दुर्गा देवी। उ०—रूप रस पूर्वा महादेवी देव-देवन की सिंहासन यैत्री सौंहे सोई सिंहवाहिनी।—देव।

सिंहलिकम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) षोड़ा। (२) संगीत में एक ताल।

सिंहलिकांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिंह की बाल। (२) षोड़ा।

(३) दो गणन और सात या सात से अधिक यगणों के दंडक का एक नाम।

सिंहलिकांत-गामिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बुद्ध के अस्ती अनु-भ्यंजनों (छोटे लक्षणों) में से एक।

सिंहलिक्रीड-संज्ञा पुं० [ सं० ] दंडक का एक भेद जिसमें ९ से अधिक यगण होते हैं।

सिंहलिक्रीडित-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संगीत में एक ताल।

(२) एक प्रकार की समाधि। (३) एक बोधिसत्व का नाम। (४) एक छंद का नाम।

सिंहलियुग्मित-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की समाधि। (बौद्ध)

सिंहलिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मापवर्णों।

सिंहल्युता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वन उद्गी। मापवर्णों।

सिंहलस्थ-वि० [ सं० ] (१) सिंह राशि में स्थित (बृहस्पति)।

(२) एक पर्व जो बृहस्पति के सिंह राशि में होने पर होता है।

विशेष—सिंहस्थ में विवाह आदि शुभ कार्य वर्जित हैं।

सिंहस्था-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा।

सिंहधनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंह के समान दाढ़ या दाढ़ की हड्डी जो कि बुद्ध के बचीस प्रधान लक्षणों में से एक है।

वि० जिसकी दाढ़ सिंह के समान हो।

संज्ञा पुं० गौतम बुद्ध के पितामह का नाम।

सिंह-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नाड़ी शक्ति। करेसू। (२)

भटकरेसू। कटाई। कटकारी। (३) बृहती। वनमंडा।

संज्ञा पुं० (१) नाग देवता। (२) सिंह लक्ष्म। (३) वह समय जब तक सूर्य इस लक्ष्म में रहता है।

सिंहाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नाक का मल। नकटी। रेंट।

(२) लोहे का सुरवा। जंग।

सिंहाणक-संज्ञा पुं० [ सं० ] नाक का मल। नकटी। रेंट।

सिंहान-संज्ञा पुं० दे० "सिंहाण"।

सिंहानन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कृष्ण निपुंडी। काला संभाल।

(२) वासक। अद्भुत।

सिंहाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिंहली पीपल।

सिंहावलोकन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिंह के समान पीछे देखते हुए आगे बढ़ना। (२) आगे बढ़ने के पहले पिछली बातों का संक्षेप में कथन। (३) पद्य-रचना की एक युक्ति जिसमें पिछले चरण के अंत के कुछ शब्द या वाच्य लेकर

अगला चरण चलता है। उ०—गाय गीर्वा मोहनी सुराग

बौंसुरी के बीच कानन सुहाय मार-मंत्र को सुनायगो ।  
नायगो री नहे ढोरी मेरे गर में फँसाय हिरदै थल बीच चाय-  
बेलि को बँपायगो ।—दीनदवाल ।

सिंहायलोकित—संज्ञा पुं० दे० "सिंहावलोकन" ।

सिंहासन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा या देवता के बैठने का  
आसन या चौकी ।

विशेष—यह प्रायः काठ, सोने, चाँदी, पीतल आदि का बना  
होता है । इसके इत्थों पर सिंह का आकार बना होता है ।

(२) कमल के पत्ते के आकार का बना हुआ देवताओं का  
आसन । (३) सोलह रतिबंधों के अंतर्गत चौदहवाँ बंध ।

(४) मंडूर । लौहकिट । (५) दोनों भौंहों के बीच में  
बैठकों के आकार का चंद्रन या रोली का तिलक ।

सिंहासनचक्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष में मनुष्य के  
आकार का सत्साइस कोठों का एक चक्र जिसमें नक्षत्रों के  
नाम भरे रहते हैं ।

सिंहास्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वासक । अडूसा । (२)  
कोविदार । कचनार । (३) एक प्रकार की यज्ञ मण्डली ।

सिंहिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक राक्षसी जो राहु की  
माता थी ।

विशेष—यह राक्षसी दक्षिण समुद्र में रहकर उड़ते हुए जीवों  
की परछाईं देवकर ही उनको खींचकर खाती थी । इसको  
छेका जाते समय इनुमान ने मारा था । उ०—जलधि  
लंघन सिंह, सिंहिका मद मधन, रजनिचर नगर उत्पात-  
केनू ।—तुलसी । (२) शोभन छंद का एक नाम । इसके  
प्रत्येक पद में १४, १० के विराम से २४ मात्राएँ और  
अंत में अगण होता है । (३) दाशायणी देवी का  
एक रूप । (४) देवें घुटनों का कन्या जो विवाह के अयोग्य  
कही गई है । (५) अडूसा । (६) दनभंडा । (७)  
कंठकारी ।

सिंहिकास्तु—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंहिका का पुत्र, राहु । उ०—  
ललित श्री गोपाल लोचन स्वाम सोभा दून । मगहु मयंकहि  
अंक दीन्ही सिंहिका के स्तु ।—सूर ।

सिंहिकेय—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( सिंहिका का पुत्र ) राहु ।

सिंहिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मादा सिंह । शेरनी । उ०—भान  
संग सिंहनी रति भजगुत वेद विरद अमुर कर आह ।  
सूरदास प्रभु वेगि न आवहु प्राण गपु कंहा लैही आह ।  
—सूर ।

सिंहो—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सिंह की मादा । शेरनी । (२)  
अडूसा । (३) चुहरी । बृह । (४) सुदपर्णी । (५) चंद्र-  
शेखर के मत से आर्या का पचीसवाँ भेद । इसमें ३ गुण  
और ५१ लघु होते हैं । (६) बृहती लता । (७) सिंघा

नाम का वाजा । (८) पीली कौड़ी । (९) नाडी शाक ।  
करेसू । (१०) राहु की माता सिंहिका ।

सिंहीलता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बैंगन । भंडा ।

सिंहेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा ।

सिंहोड़—संज्ञा पुं० दे० "सिंहुद" या "बृह" ।

सिंहोदरी—वि० स्त्री० [ सं० ] सिंह के समान पतली कमरवाली ।

उ०—सकल सिंगार करि सोई आठु सिंहोदरी सिंहासन  
बैठी सिंहवाहिनी भवानी सी ।—देव ।

सिंहोन्नता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वसंततिलका वृक्ष का दूसरा नाम ।

सिंहराज—वि० [ सं० शीतल, प्रा० सीप्रः ] ठंडा । शीतल । उ०—

मिअरे बदन सुखि गए जैसे । परसत तुहिन ताम रस  
जैसे ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० छाया । छाह । उ०—सिरसि देपारो छाल नोरम

नयन विसाल सुंदर बदन ठाढ़े सुर तरु सिंभरे ।—तुलसी ।

† संज्ञा पुं० दे० "सियार" ।

सिंघाना—कि० सं० दे० "सिलाना" ।

सिंघामंग—संज्ञा पुं० [ ? ] सुमाद्रा द्वीप में पाया जानेवाला एक  
प्रकार का बंदर ।

सिंघार—संज्ञा पुं० [ सं० श्याल ] [ स्त्री० सिंघारी ] श्याल । गोदूद ।

उ०—भयो चलत असगुन अति भारी । रवि के आछत  
फँकर सिंघारी ।—सखलसिंह ।

सिउरना—कि० सं० [ देश० ] छाजन के लिए मुठों को कौटिल्यों  
पर बिछाकर रखी से बौंधना ।

सिंकजयीन—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिरके या नीचू के रस में पका  
हुआ शरबत । (यह सफरा और बलगम के लिए हितकर है)

सिंकजा—संज्ञा पुं० दे० "सिंकज" ।

सिंकदरा—संज्ञा पुं० [ का० सिंकदर ] रेल की लाइन के किनारे ऊँचे  
खंभे पर लगा हुआ हाथ या डंडा जो छुक्कर आती हुई गाड़ी  
की सूचना देता है । सिंगनल ।

विशेष—कन्या प्रसिद्ध है कि सिंकदर थाददाह जब सारी  
दुनिया जीत कर समुद्र पर भ्रमण करने गया, तब यद्वागनल  
के पास पहुँचा । वहाँ उसने जहाजियों को सावधान करने के  
लिये खंभे के ऊपर एक हिलता हुआ हाथ लगाया । विया जो  
उपर जाने से यात्रियों को बराबर मना करता रहता है और  
"सिंकदरी मुजा" कहलाता है । इसी कहानी के अनुसार  
लोग सिंगनल को भी "सिंकदरा" कहने लगे ।

सिंकटा—संज्ञा पुं० [ देश० ] [ स्त्री० अस्ता० सिकटी ] खपड़े या  
मिट्टी के दूदे बरतनों का छोटा डुकड़ा ।

सिंकडो—संज्ञा स्त्री० [ सं० श्लोक ] (१) कियाइ की लुंडी । सौकल ।  
जंजीर । (२) जंजीर के आकार का सोने का माले में पहनने  
का गहना । (३) करधनी । तागड़ी । (४) चारपाई में

छगी हुई वह दाँवनी जो एक दूसरी में गूँथ कर लगाई जाती है।

सिकड़ी पनवाँ—संज्ञा पुं० [ हि० सिकट + पान ] गले में पहनने की वह सिकड़ी जिसके बीच में पान सी चौकी होती है।

सिकता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बाढ़। रेत। उ०—बारि मधे धन होइ वर सिकता तें वर तेल। विनु हरि भंजन न भव तरिअ यह सिकता अपेल।—तुलसी। बहुरई जमीन। (३) प्रमेह का एक भेद। पयरी। (४) धानी। दाकरा। (५) छोगिको दाक।

सिकतामेह—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें पेशाब के साथ बाढ़ के से कण निकलते हैं।

सिकतावर्त्म—संज्ञा पुं० [ सं० सिकतावर्त्म ] भौल की पलक का एक रोग।

सिकतिल—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रेतीला।

सिकतर—संज्ञा पुं० [ सं० सेक्रेटरी ] किसी संस्था या सभा का मंत्री। सेक्रेटरी।

सिकरवार—संज्ञा पुं० [ देश० ] क्षत्रियों की एक शाखा। उ०—वीर वदगुमर जसउत सिकरवार, होत अक्षवार जे करत निरवार हैं।—मूदन।

सिकरी—संज्ञा स्त्री० दे० "सिकड़ी"।

सिकली—संज्ञा स्त्री० [ सं० सिकली ] धाराधार हथियारों को मँजने और उन पर सान चढ़ाने की क्रिया। उ०—सकल कवीरा योई वीरा भनहुँ हो हुसियारा। कह कवीर गुरु सिकली दरयन हर वन करी सुकरा।—कवीर।

सिकलीगढ़—संज्ञा पुं० दे० "सिकलीगर"।—बहुई संगतरार विसाती। सिकलीगढ़ कहार की पाती।—गिरधरदास।

सिकलीगर—संज्ञा पुं० [ सं० सिक + गर ] तलवार और छुरी आदि पर बाढ़ रखनेवाला। सान धरनेवाला। चमक देनेवाला। उ०—यों छवि पावत है लखी भंजन आँजि नैन। सरस बाढ़ सैफन भरी जनु सिकलीगर मैन।—रसनिधि।

सिकसोनी—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] काकज्या।

सिकहर—संज्ञा पुं० [ सं० शिवय + पर ] छंकार। झंकार।

सिकडुली—संज्ञा स्त्री० [ हि० सिक + ली ] मूँज, कास आदि की बनी छोटी दलिया।

सिकाकोल—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] दक्षिण की एक नदी।

सिकार—संज्ञा पुं० दे० "सिकार"।

सिकारी—वि० संज्ञा पुं० दे० "सिकारी"।

सिकुड़ना—संज्ञा स्त्री० [ सं० संकुचन ] (१) दूर तक फैली वस्तु का समेटकर थोड़े स्थान में होना। संकुच। आकुंचन। (२) वस्तु के सिकटने से पदा हुआ चिह्न। आकुंचन का चिह्न। मल। शिकन। सिलवट।

सिकुड़ना—क्रि० प्र० [ सं० संकुचन ] (१) दूर तक फैली वस्तु का समेटकर थोड़े स्थान में होना। सुकड़ना। आकुंचित होना। यदुरना। (२) संकीर्ण होना। नंग होना। (३) बल पड़ना। शिकन पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

सिकुरना—क्रि० प्र० दे० "सिकुड़ना"।

सियोड़ना—क्रि० प्र० [ हि० सिकुड़ना ] (१) दूर तक फैली हुई वस्तु को समेटकर थोड़े स्थान में करना। संकुचन करना। (२) समेटना। यदुरना। (३) संकीर्ण करना। तंग करना।

संयो० क्रि०—देना।

सिकोरना—क्रि० प्र० दे० "सिकोड़ना"। उ०—सुनि भय मरकटु नाक सिकोरी।—तुलसी।

सिकोरा—संज्ञा पुं० दे० "सकोरा" या "कसोरा"।

सिकोली—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] बाँस के कटों, कास, मूँज, बँत आदि की बनी दलिया। उ०—प्रसारी जल की मयनी में शरीर ठलाय सिकोली में बीड़ा ठलाय, कसँड़ी में चरणामृत ठलाय, पाठे पात्र सब धोय साजि के दिजाने धरिये।—बहुभयुष्टि मार्ग।

सिकोही—वि० [ सं० शिवोद = तड़क मड़क ] (१) आनवानवाला। गर्वाला। दुपंचाला। (२) वीर। बहादुर। उ०—तरवार सिकोही सोहती। लाज सिकोही कोहती।—गोपाल।

सिकड़—संज्ञा पुं० [ सं० ] चँसुरी में लगाने की जीभी या उसके स्वर को मधुर बनाने के लिए लगाया हुआ तार।

सिकड़—संज्ञा पुं० दे० "सिकड़"।

सिकर—संज्ञा पुं० दे० "सिकड़"। उ०—अकरि अकरि करि इकरि इकरि घर पकरि पकरि कर सिद्धर किरायते।—गोपाल।

सिक्का—संज्ञा पुं० [ सं० सिक्का ] (१) मुहर। मुद्रा। छाप। टप्पा। (२) रुपय, पैसे आदि पर की राजकीय छाप। मुद्रित चिह्न। (३) राज्य के चिह्न आदि से अंकित धातु खंड जिसका व्यवहार देश के लेन देन में हो। टकसाल में उल्टा हुआ धातु का टुकड़ा जो निर्दिष्ट मूल्य का धन माना जाता है। रुपया, पैसा, अक्षरकी आदि। मुद्रा।

मुद्रा—सिक्का घटना या जमाना = (१) अधिष्ठान स्थापित होना। प्रमुख होना। (२) आतंक जमाना। प्रधानता प्राप्त होना। रोच जमाना। धाक जमाना। सिक्का घटना या जमाना = (१) अधिष्ठान स्थापित करना। प्रमुख जमाना। (२) आतंक जमाना। प्रधानता प्राप्त करना। रोच जमाना। सिक्का पड़ना = सिक्का चलना। (३) पड़क। तमंग। (५) माल का वह दाम जिसमें दलाली न शामिल हो। (दलाल), (६) मुहर पर अंक बनाने का टप्पा। (७) नाव के मुँह पर लगी एक हाथ ऊँची लकड़ी। (८) मोहो की गावदुम पतली नली जिससे जलती हुई मसाल पर तेल टपकाने हैं। (९) वह धन जो

लडकी का पिता लडके के पिता के पास सगाई पकी होने के लिए भेजता है ।

सिक्की-संज्ञा स्त्री० [ प्र० सिक्कः ] (१) छोटा सिक्का । (२) भाट का आने सिक्का । अठारी ।

सिक्कण-संज्ञा पुं० दे० "सिक्क" ।

सिक्क-वि० [ सं० ] (१) सिंचित । सींचा हुआ । (२) भीगा हुआ । सर । गीला ।

सिक्कथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उथाले हुए चावल का दाना । भात का एक दाना । सीध । (२) भात का ग्रास या पिंड । (३) मोम । (४) मोतियों का गुच्छा ( जो धौल में एक धरणा हो ) । ३२ रत्नी तौल का मोतियों का समूह । (५) नील ।

सिक्कथक-संज्ञा पुं० दे० "सिक्कथ" ।

सिखंडी-संज्ञा पुं० दे० "सिखण्डी" ।

सिख-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिखा ] सीख । शिक्षा । उपदेश । उ०—(क) राधा जू सों कहा कहीं ऐसिन की सुनै सिख, सौंपिन सहित विष रहित फननि की ।—केशव । (ख) किराँ न गोकुल कुल बधू, काहि न किहि सिख दीन । कौने तगी न कुल गली छै मुरली मुर लीन—बिहारी ।

सिखा स्त्री० [ सं० शिखा ] सिखा । घोटी । जैसे,—नख सिख ।

संज्ञा पुं० [ सं० शिख ] (१) सिप्य । चेल । (२) गुद नानक तथा गुरु गोविंदसिंह आदि दस गुरुओं का अनुयायी संप्रदाय । नानकपंथी ।

विशेष—इस संप्रदाय के लोग अधिकतर पंजाब में हैं ।

सिख इमल्लो-संज्ञा पुं० [ हि० सिख + इम० इत्म या इमला ] भाल को नाचना सिखाने की रीति ।

विशेष—बलंदर लोग पहले हाथ में एक छोटे की चूड़ी पहनते हैं और उसे एक लकड़ी से बजाते हैं । इसी के इतारे पर भाल को नाचना सिखाते हैं ।

सिखना-संज्ञा पुं० दे० "सिखना" ।

सिखर-संज्ञा पुं० दे० "सिखर" ।

संज्ञा पुं० दे० "सिखर" ।

सिखरन-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिखरं ] दही मिला हुआ घीनी का शरबत जिसमें केसर, रासी आदि मसाले पड़े हैं । उ०—(क) बासोंधी सिखरन अति सोमी । मिलै मिरच मेटत चक चौंधी ।—सूर । (ख) सिखरन सीध छनाई काढ़ी । जामा दही दूधि सों साढ़ी ।—जायसी ।

सिखलाना-संज्ञा पुं० दे० "सिखलाना" ।

सिखाना-संज्ञा स्त्री० दे० "सिखाना" ।

सिखाना-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिखणः ] (१) शिक्षा देना । उपदेश

देना । बतलाना । (२) पढ़ाना । (३) घमकाना । बंड देना । ताड़ना करना ।

यौ०—सिराना पढ़ाना—जाते बताना । चालकी सिखाना । जैसे,—उसने गवाहों को सिखा पढ़ाकर त्व पका कर दिया है ।

सिखावन-संज्ञा पुं० [ सं० शिखा + हि० वन ] (१) शिक्षा । उपदेश । उ०—(क) सागिरे सिगार ससिमुखी काज, सजनी धं प्याई बेल मंदिर सिखावन निधानै स्त्री ।—प्रताप-नारायण । (ख) सचिव सिखावन मधुर सुनायी । सुदित सद्गुरु परनाम सुहायी ।—पद्माकर । (२) सिखाने का काम ।

सिखावन-संज्ञा पुं० [ सं० शिखणः ] सीख । शिक्षा । उपदेश । उ०—(क) का मैं मरन सिखावन सिखी । आयो मरे मीध हति लिखी ।—जायसी । (ख) उनको यह मैं शीघ्र सिखावन । थाहहु मध्यम कांड सुहावन ।—विधाम ।

सिखावना-संज्ञा पुं० दे० "सिखाना" ।

सिखिर-संज्ञा पुं० (१) दे० "सिखर" । (२) पारसनाथ पहाड़ जो जैनों का तीर्थ है ।

सिखी-संज्ञा पुं० दे० "सिखी" । उ०—(क) शुनि सुनि उतै लिखी नाचै, सिखी नाचै हते, पी करै पपीहा उतै हते प्यारी स्त्री करै ।—प्रतापनारायण । (ख) सिखी सिखिर तनु धतु विराजति सुमन सुगंध भवाल ।—सूर ।

सिगनल-संज्ञा पुं० दे० "सिक्कंदल" ।

सिगरा-संज्ञा-वि० [ सं० समग ] (स्त्री० सिगरी) सब । संपूर्ण । सारा । उ०—(क) थ्यों पदमाकर सासिही ते सिगरी निशि बैलि कला परगासी ।—पद्माकर । (ख) सिगरे जग मौसि हँसायत है । रघुबंसिंह पाप नसायत है ।—केशव ।

सिगरेट-संज्ञा पुं० [ अंग० ] तंबाकू भरी हुई कागज़ की बची निसका धुआँ लोग पीते हैं । छोटा सिगार ।

सिगरो, सिगरी-संज्ञा-वि० दे० "सिगरा" । उ०—(क) सिगरोई वृष पियो मेरे मोहन बलहि न देगहु बाटी । सूरदास मँद लेहु दोहनी दुहहु लाल की नाटी ।—सूर । (ख) कुल भंडन छत्रसाल बुंदेल । आपु गुरु सिगरी जग चेल ।—काल कवि ।

सिगा-संज्ञा स्त्री० [ अंग० सेहगार ] चौबीस शोभाओं में से एक । (संगीत)

सिगार-संज्ञा पुं० [ अंग० ] चुस्ट ।

सिगोती-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की छोटी चिड़िया ।

सिगोन-संज्ञा स्त्री० [ सं० सिगता, सिगता ] नालों के पास पाई जानेवाली लाल रेत मिली मिट्टी ।

सिचान-संज्ञा पुं० [ सं० संचान ] बाज पक्षी । उ०—निति संसी हंसी बच्यु, मानो इति अनुमान ।—बिरह भगवि कपटनि सके, सपट न सीध सिचान ।—बिहारी ।

सिच्छा—संज्ञा स्त्री० दे० "सिद्धा" । उ०—सैन्येन सप साय है मन में सिच्छा भाव । निल भाषन शृंगार रसं सकल रसन को राव ।—मुवाक ।

सिञ्जदा—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रथाम । दंडवन । माथा टेकना । सिर झुकाना । (सुसल०)

सिजल—वि० [ हिं० सजीला ] जो देखने में अच्छा लगे । सुंदर ।

सिजली—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार का पौधा जो दवा के काम में आता है ।

सिजाहर—संज्ञा पुं० [ व्दा० ] पाल के चौदेंटे किनारे से बँधा हुआ रस्ता, जिसके सहारे पाल चढ़ाया जाता है ।

सिक्कना—कि० प्र० [ सं० सिद्ध ] अर्थ पर पकना । सिखाया जाना ।

सिक्काना—कि० सं० [ सं० सिद्ध, प्र० सिक्क + णाना (अध०) ] (१)

अर्थ पर गलाना । पकाकर गलाना । (२) पकाना । रौबना ।

उबालना । (३) मिट्टी को पानी देकर पीर से कुचल और साफ करके परतन बनाने योग्य बनाना । (४) शरीर को तपाना या कष्ट देना । तपसा करना । उ०—लेते बैठे भरि पानि सुनस सुरदावि रिझाहै । पपीहरयो तप साधि जपी तन सपन सिझाहै ।—मुवाकर ।

सिटकनी—संज्ञा स्त्री० [ अतु० ] कियार्थों के बंध करने या बंधाने के लिए लगी हुई लोहें या पीतल की छद्म । अंगरी । चटकनी । चटखनी ।

सिटनल—संज्ञा पुं० दे० "सिगनल" ।

सिटपिटाना—कि० प्र० [ अतु० ] (१) दब जाना । मंद पड़ जाना । (२) किंकर्तव्य-विमुक्त होना । स्वच्छ हो जाना । (३) सङ्कुचाना । उ०—पहले सो पंच जी बहुत सिटपियाये, किंतु सर्वों का बहुत कुछ आग्रह देख समापति की हुई पर जा रहे ।—बालमुकुंद ।

सिटो—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नगर । शहर ।

सिटी—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सीटना ] बहुत बड़ बड़कर बोलना । वाक्यपठना ।

मुहा०—सिटी मूलना = धरा जाना । सिटपिया जाना ।

सिट्टी—संज्ञा स्त्री० दे० "सीठी" ।

सिठनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० श्रित्त ] विवाह के अवसर पर गाई जानेवाली गायी । सीठना ।

सिठार—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सीठी ] (१) फीकापन । नीरसता । (२) मंदता ।

सिद्ध—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सिद्धी ] (१) पागलपन । उन्माद । बाबलापन । (२) सनक । धुन ।

कि० प्र०—बढ़ना ।

मुहा०—सिद्ध सपार होना = सनक होना । धुन होना ।

सिद्धपन, सिद्धपना—संज्ञा पुं० [ हिं० सिद्ध + पन (अध०) ] (१)

पागलपन । बाबलापन । (२) सनक । धुन ।

सिद्धयिज्ञा—संज्ञा पुं० [ हिं० सिद्धी + ज्ञान ] [ स्त्री० सिद्धयिज्ञी ]

(१) पागल । बाबला । (२) बेचकूक । मूर्ख । बुद्ध ।

सिद्धिया—संज्ञा स्त्री० [ हिं० शीथे ] वेद हाथ लंबी लकड़ी जिसमें

धुनते समय बादल बँधा रहता है ।

सिद्धी—वि० [ सं० श्रुतीक ] [ स्त्री० सिद्धिनी ] (१) पागल । दीवाना ।

बाबला । उन्मत्त । (२) सनकी । धुनवाला । (३) मन-मौजी । मनमाना काम करनेवाला ।

सितंबर—संज्ञा पुं० [ सं० ] अँगरेजी नवम् महीना । अक्टूबर से

पहले और अगस्त के पीछे का महीना ।

सित-वि० [ सं० ] (१) श्वेत । सफेद । उज्जल । शुद्ध ।

उ०—अरुण शशिव सित धनु उजहार । करत जगत में तुम

अवतार ।—सूर । (२) उज्जल । शुभ्र । दीप्त । धमकीला ।

(३) सच्छ । साफ़ । निर्मल ।

संज्ञा पुं० (१) शुद्ध मद्र । (२) शुक्लाचार्य्य । (३) शुद्ध पक्ष ।

उज्जला पात्र । (४) चीनी । शक्कर । (५) सफेद कचनार ।

(६) स्फंद के एक अनुचर का नाम । (७) सूखी । मूछकी

(८) चंदन । (९) भोजपत्र । (१०) सफेद तिल ।

(११) शीत ।

सितकंगु—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शाल । सज्जनिवास ।

सितकण्ठ—वि० [ सं० ] जिसकी गर्दन सफेद हो । सफेद

गर्दनवाला ।

संज्ञा पुं० सुगंधी । दालूह पक्षी ।

संज्ञा पुं० [ सं० शितिकण्ठ ] महादेव । शिव । उ०—नीलकंठे

सितकंठं शंभु हर । महाकाल कंकाल कृपाकर ।—सतलसिंह ।

सितकटभी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पेड़ ।

सितकर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भीमसेनी कपूर । (२) चंद्रमा ।

सितकरा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नीली वृक्ष ।

सितकर्णी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अन्नसा । वासक ।

सितकाच—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हलध्वी शीता । (२) बिलौर ।

सितकारिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मला या भरियारा नामक पौधा ।

सितकुंजर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पेशावती हाथी । (२) पेशावत

हाथीवाले) इन्द्र ।

सितकुंभी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्वेत पाटल । सफेद पॉदर का पेड़ ।

सितदार—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुहागर ।

सितधुआ—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद फूल की भटकटैया । श्वेत

कंठकारी ।

सितचिह्न—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेत मछली । छिपुआ मछली ।

सितच्छत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेत रातछत्र ।

सितच्छुआ, सितच्छुआ—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सौंफ ।

(२) सोया ।

सितच्छुद्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हंस । मराल । (२) छाल

सर्दिन । रफ शोभात्रय ।



सितच्छदा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद दूध ।  
 सितजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मधुखंड । मधुवाकंठा ।  
 सितजफल—संज्ञा पुं० [ सं० ] मधु नारियल ।  
 सितजात्रक—संज्ञा पुं० [ सं० ] कलमी आम ।  
 सितता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेदी । श्वेतता ।  
 सितनुरग—संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्जुन ।  
 सितदर्भ—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेत छत्र ।  
 सितदीधिति—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( सफेद किनवाला ) चंद्रमा ।  
 सितदीप्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद जीरा ।  
 सितद्रु—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की लता ।  
 सितद्रुम—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुक्रवर्ण वृक्ष । अर्जुन । (२) मोरटे । क्षीर मोरटे ।  
 सितद्रिज—संज्ञा पुं० [ सं० ] हंस ।  
 सितधातु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुक वर्ण की धातु । (२) खरी । खरिया मिट्टी । हुजरी ।  
 सितपक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] हंस ।  
 सितपच्छु—संज्ञा पुं० दे० "सितपक्ष" ।  
 सितपर्णी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अर्कपुष्पी । अंधाहुली ।  
 सितपुंखा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पीथा ।  
 सितपुष्प—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तगर का पेड़ या फूल । गुल घोंदनी । (२) एक प्रकार का गला । (३) सिरिस का पेड़ । श्वेत रोहित । (४) पिंड खजूर ।  
 सितपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मला । बरियारा । (२) कंधी का पीथा । (३) एक प्रकार की चमेली । मलिका ।  
 सितपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद दागवाला कोढ़ । श्वेत कुष्ठ । फूल । चरक ।  
 सितपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्वेत अपराजिता । (२) कैवर्त मुस्तक । वैद्यकी जोधा नाम की घास । (३) कौंस नामक वृक्ष । (४) नागदंती । (५) नागवही । पाग ।  
 सितप्रभ—संज्ञा पुं० [ सं० ] चाँदी ।  
 सितमानु—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा । उ०—सुखदि अरक को छुटियो अंधसि करै दुसिमान । विन विभावर्ये के नहीं जगमगात सितमान ।—रामसहाय ।  
 सितभ—संज्ञा पुं० [ पा० ] (१) गजप । अनर्थ । श्राफ्त । (२) अनीसि । सुलभ । अल्पाचार ।  
 सितमंगर—संज्ञा पुं० [ का० ] जालिम । अन्यायी । दुःखदायी ।  
 सितमणि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्फटिक । चिह्नौर ।  
 सितमरिच—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सफेद मिर्च । (२) दामु बीज । सहिजन के बीज ।  
 सितमाप—संज्ञा पुं० [ सं० ] राजमाप । कोथिया । घोड़ा ।  
 सितरंज—संज्ञा पुं० [ सं० ] कपूर । कर्पूर ।

सितरंजन—संज्ञा पुं० [ सं० ] पीत वर्ण । पीला रंग ।  
 सितरश्मि—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( सफेद किरनोंवाला ) चंद्रमा ।  
 सितराग—संज्ञा पुं० [ सं० ] चाँदी । रजत । रीप्य ।  
 सितरुचि—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 सितरुती—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] गंध पलाती । कपूर कचरी ।  
 चिरोप—पहाड़ी लोग इसकी पत्तियों की चटाइयों बनाते हैं ।  
 सितलता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भ्रमन्वही नामक लता ।  
 सितली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शीतल । यह पत्तीना, जो बेहोती या अधिक पीड़ा के समय दारों से निकलता है ।  
 कि० प्र०—छटना ।  
 सितवराह—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेत वराह ।  
 सितवराहपत्नी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी । धरती । उ०—सित वराह तिय ख्यात सुनस गरसिंह कोप घर । सँग भट यावन सहस सवै श्रुपति सम धनुषर ।—गोपाल ।  
 सितवर्णा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खिरनी । क्षरिणी ।  
 सितपर्णभू—संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद पुनर्वा ।  
 सितवल्लीज—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जंगली जामुन । कठ जामुन ।  
 सितवल्लीज—संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद मिर्च ।  
 सितयात्री—संज्ञा पुं० [ सं० ] सितवान् । अर्जुन ।  
 सितघार, सितवारक—संज्ञा पुं० [ सं० ] शालिख शाक । प्राणि शाक ।  
 सितधारिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंहली । सिंहली पीपल ।  
 सितशिथिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का गेहूँ ।  
 सितशिव—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संधा नामक । (२) दामी का पेड़ ।  
 सितशूक—संज्ञा पुं० [ सं० ] जौ । यय ।  
 सितशरणा—संज्ञा पुं० [ सं० ] थन चूरण । सफेद जमीकंद ।  
 सितशृंगी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतीस । अतिविषा ।  
 सितसति—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( सफेद घोड़ेवाले ) अर्जुन ।  
 सितसागर—संज्ञा पुं० [ सं० ] क्षीर सागर । उ०—सित सागर ते छवि उज्यल जा की । जनु बैठक सोहत है कमला की ।—गुमान ।  
 सितसार, सितसारक—संज्ञा पुं० [ सं० ] शालिख शाक । प्राणि शाक । लोह मारक ।  
 सितसिंधु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) क्षीर समुद्र । (२) गंगा ।  
 सितसिंहो—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद भटकटैया । श्वेत कटकारी ।  
 सितसिद्धार्थ—संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद या पीली सरसों जो मंत्र या हाथ कूंक में काम आती है ।  
 सितसूर्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हुरहुर । आदित्यमक्ता ।  
 सितहृण—संज्ञा पुं० [ सं० ] हृणों की एक खाखा ।  
 सितार्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मडली । शालुकागई माष्य ।

सितांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्वेत रोहितकं वृक्ष। रोहिद्रासफेद। (२) बेलानां। वार्षिकी पुष्प वृक्ष।  
 सितांबर-वि० [ सं० ] श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले।  
 संज्ञा पुं० जैनों का श्वेतवस्त्रोत्प्रेरदाय।  
 सितांशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा। (२) कर्पूर।  
 सिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चीनी। शकर। शर्करा। उ०—  
 दृष्य भौटि सेहि सिता मिलारै। मैं नारायण भोग लगाऊँ।—  
 रघुराज। (२) शुद्ध पक्ष। उ०—चैत चार नौमी सिता  
 मध्य गतन गत भानु। नखत जोग मद्र खान भल दिन  
 मंगल मोद विधानु।—गुलसी। (३) मलिका। मोतिया।  
 (४) श्वेत कंदकारी। सफेद भटकटैया। (५) बकुची।  
 सोमरात्री। (६) विदारीकंद। (७) श्वेतदूब्यां। (८)  
 चंदनी। चंद्रिका। (९) कुड़ुबिनी का पौधा। (१०) मय।  
 द्राव्य। (११) विंग। (१२) प्रायमाण लता। (१३)  
 अकंपुनी। अंभाहुली। (१४) वच। (१५) सिंहली पीपल।  
 (१६) आमड़ा। आम्रातक। (१७) गोरोचन। (१८) वृद्धि  
 नामक अष्टवर्गीय औषधि। (१९) चंदी। रजत। रूपा।  
 (२०) श्वेत निसोष। (२१) त्रिसंधि नामक पुष्प वृक्ष।  
 (२२) पुनर्वन। सफेद गदहचूरनाम। (२३) पहाड़ी  
 अषाजितानां। (२४) सफेद पादर। पाटला वृक्ष। (२५)  
 सफेद सेम। (२६) सूर्या। गोकर्णों लता। सुरा।  
 सितांशु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तारीफ़। प्रशंसा। (२)  
 धन्यवाद। शुक्रिया। (३) वाहवाही। तावासी।  
 सितांशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मधु शर्करा। शहद से बनाई  
 हुई शकर। (२) मिको।  
 सिताशय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद मिर्च।  
 सिताशया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद दूध।  
 सितांग्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंठा। कंदक।  
 सितांजाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद मिर्च।  
 सितादि-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर-आदि का कारण या पूर्व-  
 कारण, गुण।  
 सितादन-वि० [ सं० ] सफेद मुँहवाला।  
 संज्ञा पुं० (१) गरद। (२) वेत। त्रिख वृक्ष।  
 सितापौग-संज्ञा पुं० [ सं० ] मयूर। मोर।  
 सितापौग-वि० [ सं० ] शिव। सुरंत। इत्यपट।  
 उ०—सीतम भावत जानि कै मिलि मैं सिताये। हित  
 मम कै कर दैत है अमुवन को छिरकाव।—रसनिधि।  
 सिताम-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्पूर।  
 सिताभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लक। लकड़ा लुप।  
 सिताम्र सिताम्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सफेद बादल। (२)  
 कर्पूर। कर्पूर।  
 सितामोघा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद पौधा। श्वेत पाटला।

सितायुध-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मछली।  
 सितार-संज्ञा पुं० [ सं० ] सात + तार, फा० सेहतार। एक प्रकार का  
 प्रसिद्ध बाजा जो छोटे हुए तारों की उँगली से स्तनकारने से  
 बजता है। एक प्रकार की घोषा।  
 विशेष—यह फाट की दो दाईं हाथ लंबी और ४-५ अंगुल  
 चौड़ी पट्टी के एक छोर पर गोल कट्टी की लंबी जड़कर  
 बनाया जाता है। इसका ऊपर का भाग समतल और  
 चिपटा होता है और नीचे का गोल। समतल भाग पर तीन  
 से लेकर सात तार लंबाई के बल में बंधे रहते हैं।  
 सितारवाज-संज्ञा पुं० [ हि० सितार + वाज० वाज ] सितार बजाने-  
 वाला। सितारिया।  
 सितारा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सितार। (१) तारा। नक्षत्र। (२)  
 भाग्य। प्रारब्ध। नसीब।  
 मुद्गा०—सितार चमकना = भाग्योदय होना। कच्ची किरमत  
 होना। सितारा बज्जं होना = दे० 'मिताव चमकना'। सितारा  
 मिलना = (१) फलित ज्योतिष में मद्र मैत्री मिलना। गयना  
 बैठना। (२) मन मिलना। पत्थर प्रेम होना।  
 (३) चंदी या सोने के पथर की बनी हुई छोटी गोल चिंदी  
 के आकार की चिन्किया जो कामदार घोषी, जूते आदि में  
 डँकी जाती है या सोभा के लिये दाँध पर चिपकाई जाती  
 है। चमकी।  
 संज्ञा पुं० दे० "सितार"। उ०—जलतरंग कानून अमृत  
 कुंडली सुवीना। सारंगी ररबाव सितारा महुचर कीना।—  
 मयून।  
 सितारापेठानी-वि० [ सं० ] (घोड़ा) जिसके माथे पर अँगूठे  
 से छिन्न जाने योग्य सफेद टीका या चिंदी हो। (देखा घोड़ा  
 बहुत ऐसी समझा जाता है।)  
 सितारिया-संज्ञा पुं० [ सं० ] सितार + रिया ] सितार बजानेवाला।  
 सितारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सितार। छोटा सितार। घोषा तबूरा।  
 सितारेहिंदू-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की उपाधि जो सरकारों  
 की ओर से सम्मानार्थ दी जाती है।  
 विशेष—यह शब्द बाल्खव में अँगरेजी वाक्य "इतार ऑफ़े  
 इंडिया" का अनुवाद है।  
 सितालक, सितालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेत शर्करा सफेद मयूर।  
 सिताहाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अमृतघड़ी। अमृतलकी।  
 (२) सफेद दूध।  
 सितालि कटभूमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चिह्नी वृक्ष। सफेद कटमी।  
 सितालिक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ताक की लीपी। जल लीपे।  
 शक्ति। सिद्धी।  
 सिताय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घरसात में उगनेवाला एक पौधा जो  
 दवा के काम में आता है। सर्पदंष्ट्रा। पीतपुष्पा। त्रिपापेठ।  
 शृंगार। त्रिकोणीजा।

**विशेष**—यह पौधा हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा और झाड़दार होता है। इसकी पत्तियाँ दृढ़ से मिलती जुलती होती हैं। इसके ढंठल भी हरे रंग के होते हैं। इसका मूसला कंधई रंग का और बहुत चारिक रेनों से युक्त होता है। इसमें अंगुल डेढ़ अंगुल घेरे के गोळ पले फूल लगते हैं। इसके फलों की नोक पर बैंगनी रंग का लंबा सूत सा निकला होता है। फलों के भीतर तिकीने कंधई रंग के बीज होते हैं। यही बीज विशेषतः औषध के काम में आते हैं और सिताच के नाम से दिकते हैं। ये बहुत कड़वे और गंधयुक्त होते हैं। इस पौधे की जड़ और पत्तियाँ भी दवा के काम में आती हैं। वैद्यक में सिताच गरम, कड़वी, दस्तापर तथा वात कफ को नाश करनेवाली, रुधिर को शुद्ध करनेवाली, यक्ष्म और दूध को बढ़ानेवाली तथा पित्त के रोगों में लाभकारी कही गई है।

**सिताचमेद**—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक पौधा जिसके सब अंग औषध के काम में आते हैं।

**विशेष**—इसकी पत्तियाँ लंबी, सँटीली और कटाचदार होती हैं और उनमें से छेद की सी कटु गंध आती है। फूल पीला-पन लिपु होते हैं। फलों में चार बीजकोट होते हैं जिनमें से प्रत्येक में ७ या ८ बीज होते हैं।

**सिताचर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सिरियारी। सुनिष्कार शाक। सुसना का साग।

**सिताचरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बकची। सोमराजी।

**सिताभ्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अर्जुन का एक नाम। (२) चंद्रमा।

**सितासित**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्वेत और दयाम। सफेद और काला। उ०—कुच तंत्रम जलधार बलिमिलि रोमावलि रंग। मनो मेरु की तरहटी भयो सितासित संग।—भतिराम। (२) बलदेव। (३) शुक्र के सहित शनि। (४) जमुना के सहित गंगा।

**सितासित रोग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अल्वि का एक रोग।

**सितासिता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बकची। सोमराजी।

**सिताह्वय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुक्र ग्रह। (२) श्वेत रोहित वृक्ष। (३) सफेद फूलों का सहिजन। (४) सफेद या हरे ढंठल की तुलसी।

**सिति**—वि० दे० "सिति"।

**सितिकंठ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शितिकंठ। नीलकंठ। शिव। महादेव।

**सितिमा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्वेता। सफेदी।

**सितिचार**, **सितिचारक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शितिचार। (१) सिरियारी शाक। सुसना का साग। (२) कुड़ा। कुटज वृक्ष। कोरैया।

**सितिवास**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शितिवासम्। (नीले यक्ष्माले) बलराम।

**सितिसारक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शोनि शाक। शालिख शाक।

**सितुई**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुक्ति ताल की सीपी। सुतही। सितुही।

**सितुही**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुक्ति ताल की सीपी। सुतही।  
**सितून**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्तंभ। खंभा। धूनी। (२) छत। मीनार।

**सितेतर**—वि० [ सं० ] (श्वेत से भिन्न) काला या नीला।  
संज्ञा पुं० (१) कृष्ण धान्य। काला धान। (२) कुलधी। कुरधी।

**सितेतरगति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्नि। आग।

**सितोत्पल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद कमल।

**सितोदर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (श्वेत उदरवाला) कुंवर।

**सितोदरा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (श्वेत उदरवाली) एक प्रकार की कौड़ी।

**सितोद्भव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंदन। संदल।

वि० चीनी से उत्पन्न या बना हुआ।

**सितोपल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कठिनी। खदी। खरिया मिट्टी। दुब्दी। (२) विहोर। शकटिक मणि।

**सितोपला**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मिट्टी। (२) धोनी। शकर।

**सिधिलल**—वि० दे० "सिधिल"।

**सिद्**—संज्ञा पुं० [ दे० ] याकली।

**सिद्का**—संज्ञा पुं० दे० "सद्का"।

**सिद्दी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेदर। सीन दरवाभोंवाला कमरा या बरामदा। विदुचारी दालान। उ०—श्रु बेलिन वृत्त संयुत सोई। परदा सिद्दीन लगे मन मोई।—गुमान।

**सिदामा**—संज्ञा पुं० दे० "श्रीदामा"।

**सिद्धिक**—वि० [ सं० ] सिद्धिक। सच्चा। सत्य। उ०—अथा वक्र सिद्धिक सयाने। पहिले सिद्धिक दीन वै आने।—जायसी।

**सिद्गुंड**—संज्ञा पुं० [ सं० ] षड वर्णसंकर पुरप जिसका पिता माह्वण और माता पराजकी हो।

**सिद्ध**—वि० [ सं० ] (१) जिसका साधन हो चुका हो। जो पूर्ण हो गया हो। जो किया जा चुका हो। संपन्न। संपादित। निपट्रा हुआ। अंजाम दिया हुआ। जैसे,—कार्य सिद्ध होना। (२) प्राप्त। सफल। हासिल। उपलब्ध। जैसे,—मनोरथ सिद्ध होगा, प्रयत्न सिद्ध होगा, उद्देश्य सिद्ध होना। (३) प्रयत्न में सफल। कृतकार्य। जिसका मतलब पूरा हो चुका हो। कामयाब। (४) जिसका तप या योग साधन पूरा हो चुका हो। जिसने योग या तप द्वारा अलौकिक लाभ या सिद्धि प्राप्त की हो। पहुँचा हुआ। जैसे,—यावा जो यद् सिद्ध महात्मा है। (५) कामयाबी। योग की विभूतियाँ दिखानेवाला। (६) मोक्ष का अधिकारी। (७) लक्ष्य पर पहुँचा हुआ। निशाने पर बैठा हुआ। (८) जो ठीक पड़ा हो। जिस (कर्म) के अनुसार कोई बात हुई हो। जैसे,—बचन सिद्ध होना, भागीवार्द सिद्ध होना। (९) जो तर्क या प्रमाण द्वारा निश्चित हो।

प्रमाणित । सावित । निरूपित । जैसे,—अपराध सिद्ध करना । कथन को सत्य सिद्ध करना । व्याकरण का प्रयोग सिद्ध करना । (१०) जिसका फैसला या निवेदना हो गया हो । फैसल । निर्णीत । (११) घोषित । अज्ञात किया हुआ । सुकृता । (अज्ञ आदि) (१२) संबन्धित । अंतर्भूत । जैसे,—स्वभाव-सिद्ध बात । (१३) जो अनुकूल किया गया हो । कार्य-साधन के उपयुक्त बनाया हुआ । सौ पर चढ़ा हुआ । जैसे,—उसको हम कुछ हरप देकर सिद्ध कर देंगे । (१४) आँच पर मुलायम किया हुआ । सीसा हुआ । पका हुआ । उबला हुआ । जैसे,—सिद्ध अन्न । (१५) प्रसिद्ध । विख्यात । (१६) बना हुआ । तैयार । प्रस्तुत ।

संज्ञा पुं० (१) वह जिसने योग या तप में सिद्धि प्राप्त की हो । योग या तप द्वारा अलौकिक शक्ति प्राप्त पुरुष । जैसे,—यहाँ एक सिद्ध आए हैं । (२) कोई ज्ञानी या भक्त महात्मा । मोक्ष का अधिकारी-पुरुष । (३) एक प्रकार के देवता । एक देवयोगी ।

विशेष—सिद्धों का निवास स्थान भुवर्लोक कहा गया है । वायुपुराण के अनुसार उनकी संख्या आठसौ हजार है और वे सूर्य के उत्तर और 'सप्तर्षि' के दक्षिण अंतरिक्ष में वास करते हैं । वे भस्म कड़े गए हैं, पर केवल एक केश भर तक के लिए । कहीं कहीं सिद्धों का निवास गंधर्व, किन्नर आदि के समान हिमालय पर्वत भी कहा गया है ।

(४) अर्हत । जिन । (५) ज्योतिष का एक योग । (६) व्यवहार । मुकुटभा । नामाला । (७) काला चतुर । (८) गुह । (९) ज्योतिष में विषम आदि २० योगों में से एक ही संज्ञा योग । (१०) कृष्ण सिद्धवार । काली गिरुंठी । (११) सफेद सरसों ।

सिद्धक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सैमाट । सिद्धवार वृक्ष । (२) शाह वृक्ष । सायू ।

सिद्धकाम-सिं० [ सं० ] (१) जिसकी कामना पूरी हुई हो । जिसका प्रयोजन सिद्ध हो चुका हो । (२) सफल । कृतार्थ ।

सिद्धकामेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कामारण्य अर्थात् दुर्गा की पंचपूजित के अंतर्गत प्रथम मूर्ति ।

सिद्धकारी-संज्ञा पुं० [ सं० सिद्धकारि ] [ खो० सिद्धकारी ] धर्म-शास्त्र के अनुसार आचरण करनेवाला ।

सिद्धक्षेत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह स्थान जहाँ योग या तंत्र प्रयोग अच्छी सिद्ध हो । (२) दंडक-घन के एक विशेष भाग का नाम ।

सिद्धगंगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मंदाकिनी । 'अक्षय गंगा' स्वयं गंगा ।

सिद्ध गति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैन मतानुसार वे 'कर्म' जिनके अनुपपन्न सिद्ध हो ।

सिद्धगुटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह मंत्र-सिद्ध गोली जिसे मुँह में रख लेने से अदृश्य होने आदि की अद्भुत शक्ति आ जाती है ।

सिद्धग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का ग्रह जो उन्माद रोग उत्पन्न करता है ।

सिद्धजल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंजी । (२) भीटा हुआ जल ।

सिद्धता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सिद्ध होने की अवस्था । (२) प्रमाणितता । सिद्धि । (३) पूर्णता ।

सिद्धत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिद्धता ।

सिद्धदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव । महादेव ।

सिद्धधातु-संज्ञा पुं० [ सं० ] पात । पाद ।

सिद्धनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिद्धेश्वर । महादेव । (२) गुरुवर ।

सिद्धनामक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अदम्य वृक्ष । आडुआ ।

सिद्धपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी प्रतिज्ञा या बात का वह अंश जो प्रमाणित हो चुका हो । (२) प्रमाणित बात । सावित बात ।

सिद्धपथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] आकाश । अंतरिक्ष ।

सिद्धपात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंद के एक अनुचर का नाम ।

सिद्धपीठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ योग, तप या तांत्रिक प्रयोग करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त हो । उ०—साइसी समीरसुत नीरनिधि लंघि रुचि लंक सिद्धपीठ निशि जागो है मसान सो ।—बुलसी ।

सिद्धपुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक कल्पित नगर जो किसी के मत से पृथ्वी के उत्तरी छोर पर और किसी के मत से दक्षिण या पाताल में है । (ज्योतिष)

सिद्धपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] कनवीर । कनेर का पेड़ ।

विशेष—यह सिद्ध लोगों को मिय और यंत्रसिद्धि में प्रयुक्त किया जाता है ।

सिद्धप्रयोजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद सरसों । श्वेत सरपं ।

सिद्धभूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिद्धपीठ । सिद्धक्षेत्र ।

सिद्धमंत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिद्ध किया हुआ मंत्र ।

सिद्धमातृका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक देवी का नाम । (२) एक प्रकार की लिपि ।

सिद्धमोक्षक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुरुजबोब की पौड़ी । तपराजसंज्ञक ।

सिद्धयामल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक तंत्र का नाम ।

सिद्धयोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ज्योतिष का एक योग । (२) एक योगिक रसौपध ।

सिद्धयोगिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक योगिनी का नाम ।

सिद्धयोगी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिद्धयोगिन् । शिव । महादेव ।

सिद्धर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रायज्ञ जो कंस की आज्ञा से कृष्ण

को मारने आया था। उ०—सिद्धरं बॉमन करम कसाई।  
 कही कंस सो बचन सुनाई।—सूर।  
**सिद्धरत्न-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) पारा। पारद। (२) रसेंद्र दर्शन  
 के अनुसार यह योगी जिससे पारा सिद्ध हो गया हो।  
 सिद्ध रसायनी।  
**सिद्धरसायन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] यह रसौषध जिससे दीर्घ जीवन  
 और प्रभूत शक्ति प्राप्त हो।  
**सिद्धसल्ल-वि०** [ सं० ] जिसका विधाना खूब सधा हो। जो  
 कभी न चूके।  
**सिद्धचरित-संज्ञा** पुं० [ सं० ] संज्ञा आदि की वस्ति या पित्रकारी।  
 (आयुर्वेद)  
**सिद्धविद्या-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] एक महाविद्या का नाम।  
**सिद्धविनायक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] गणेश की एक मूर्ति।  
**सिद्धशिला-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] जैन मत के अनुसार ऊर्ध्वलोक का  
 एक स्थान।  
**विशेष**—कहते हैं कि यह शिला स्वर्गपुरी के ऊपर ४५ लाख  
 योजन लंबी, इतनी ही चौड़ी तथा ८ योजन मोटी है।  
 मोती के श्वेतहार या गो-दुग्ध से भी उज्वल है; सोने के  
 समान दमकती हुई और स्फटिक से भी निर्मल है। यह  
 चौदहवें लोक की शिला पर है और इसके ऊपर शिवपुर  
 धाम है। यहाँ मुक्त पुरुष रहते हैं। यहाँ किसी प्रकार का  
 बंधन या दुःख नहीं है।  
**सिद्धसंकल्प-वि०** [ सं० ] जिसकी सब कामनाएँ पूरी हों।  
**सिद्धसरित्-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) आकाश गंगा। (२) गंगा।  
**सिद्धसलिल-संज्ञा** पुं० [ सं० ] काँजी। सिद्धजल।  
**सिद्धसाधक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला,  
 कल्प वृक्ष।  
**सिद्धसाधन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) सिद्धि के लिये योग या तंत्र की  
 क्रिया का अनुष्ठान। (२) सफेद सरसों। (३) प्रमाणित  
 यात को फिर प्रमाणित करना।  
**सिद्धसाधित-वि०** [ सं० ] जिसने ध्यवहार द्वारा ही चिकित्सा  
 का अनुभव प्राप्त किया हो, शास्त्र के अध्ययन द्वारा नहीं।  
**सिद्धसाध्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मंत्र।  
 वि० (१) जो किया जानेवाला काम पूरा कर चुका हो।  
 (२) प्रमाणित। साधित।  
**सिद्धसिधु-संज्ञा** पुं० [ सं० ] आकाश गंगा।  
**सिद्धसुसिद्ध-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मंत्र।  
**सिद्धसेन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] काशिकेय।  
**सिद्धसेवित-संज्ञा** पुं० [ सं० ] शिव या भैरव का एक रूप।  
**सिद्धस्थाली-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] सिद्ध योगियों की बटोई  
 जिसमें से आवश्यकतानुसार जितना चाहे उतना भोजन  
 निकाला जा सकता है।

**विशेष**—कहते हैं कि इस प्रकार की एक बटोई ग्यास्त जी ने  
 पांडवों के वनवास के समय द्रौपदी को दी थी।  
**सिद्धहस्त-वि०** [ सं० ] (१) जिसका हाथ किसी काम में मँज  
 हो। (२) कार्य कुशल। प्रवीण। निपुण।  
**सिद्धांगना-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] सिद्ध नामक देवताओं की स्त्रियाँ।  
**सिद्धांजन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह अंजन जिसे आँख में लगा देने  
 से भूमि के नीचे की वस्तुएँ (गढ़े खजाने आदि) भी दिखाई  
 देने लगती हैं।  
**सिद्धांत-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) मूली भौतिक सोच विचार वर  
 स्थिर किया हुआ मत। यह बात जिसके सदा सत्य होने  
 का निश्चय मन में हो। उसूल। (२) प्रधान लक्ष्य। मुख्य  
 उद्देश्य या अभिप्राय। ठीक मतलब। (३) वह बात जो  
 विद्वानों या उनके किसी वर्ग या संप्रदाय द्वारा सत्य मानी  
 जाती हो। मत।  
**विशेष**—न्याय शास्त्र में सिद्धांत चार प्रकार के कहे गए हैं—  
 सर्वतंत्रसिद्धांत, प्रतितंत्रसिद्धांत, अधिकरणसिद्धांत और  
 अभ्युपगम सिद्धांत। सर्वतंत्र वह सिद्धांत है जिसे विद्वानों के  
 सब वर्ग या संप्रदाय मानते हैं; अर्थात् जो सर्वसम्मत हो।  
 प्रतितंत्र वह सिद्धांत है जिसे किसी शाखा के दार्शनिक मानते  
 हैं और किसी शाखा के जिसका विरोध करते हैं। जैसे,—  
 पुरुष या आत्मा असंख्य हैं, यह सांख्य का मत है, जिसका  
 वेदान्त विरोध करता है। अधिकरण वह सिद्धांत है जिसे  
 मान लेने पर कुछ और सिद्धांत भी साध्य मानने ही पड़ते  
 हैं—जैसे, यह मान लेने पर कि आत्मा केवल द्रष्टा है, कर्ता  
 नहीं, यह मानना ही पड़ता है कि आत्मा मन आदि इंद्रियों  
 से ग्रह्यक कोई सत्ता है। अभ्युपगम वह सिद्धांत है जो  
 स्पष्ट रूप से कहा न गया हो, पर सब स्थलों को विचार  
 करने से प्रकट होता हो। जैसे, न्यायसूत्रों में कहीं-यह स्पष्ट  
 नहीं कहा गया है कि मन भी एक इंद्रिय है, पर मन-संबंधी  
 सूत्रों का विचार करने पर यह बात प्रकट हो जाती है।  
 (४) सम्मति। पक्की राय। (५) निर्णित अर्थ या विषय।  
 ज्ञानतीता। तत्व की बात।  
**कि० प्र०**—निकलना।—निकलना।—पर पहुँचना।  
 (१) पृथ पक्ष के खंडन के उपरांत स्थिर मत। (२) किसी  
 शास्त्र (गोविप, गणित आदि) पर लिखी हुई कोई विशेष  
 पुस्तक। जैसे,—सूर्य्य सिद्धांत, यद्वा सिद्धांत।  
**सिद्धांतह-संज्ञा** पुं० [ सं० ] सिद्धांत को जाननेवाला। तत्त्वज्ञ।  
 विद्वान्।  
**सिद्धांताचार-संज्ञा** पुं० [ सं० ] तंत्रिकों का आचार। एकाम  
 चित्त से शक्ति की उपासना।  
**सिद्धांतित-वि०** [ सं० ] तर्क द्वारा प्रमाणित। निर्णित। निरूपित।  
 साधित।

सिद्धांती-संज्ञा पुं० [ सं० सिद्धान्ति ] (१) सांख्यिक । (२) शास्त्र के तथ को जाननेवाला ।

सिद्ध तोय-वि० [ सं० ] सिद्धांत संबंधी ।

सिद्धा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सिद्ध की स्त्री । देवांगना । (२) एक योगिनी का नाम । (३) ऋद्धि नाम की जड़ी । (४) चंद्रशेखर के मन से आर्या छंद का १५वाँ भेद, जिसमें १३ गुरु और ३१ लघु होते हैं ।

सिद्धार्थ-संज्ञा स्त्री० [ सं० सिद्ध + र्थि० आर् ] सिद्धपन । सिद्ध होने की अवस्था । ढ०—हृत्-सूत्र जटा यदाकर सिद्धार्थ करते और जप पुरश्चरण आदि में कैसे रहते हैं ।—न्यायनंद ।

सिद्धापगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आकाश गंगा । (२) गंगा नदी ।

सिद्धार्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मंत्र ।

सिद्धार्थ-वि० [ सं० ] जिसकी कामनाएँ पूर्ण हो गई हों । सफल मनोरथ । पूर्णकाम ।

संज्ञा पुं० (१) गौतम बुद्ध । (२) रुद्र के गणों में से एक । (३) राजा दशरथ का एक मंत्री । ढ०—एष्ट जयंतौ भरु विजय, सिद्धारथ पुत्रि नाम । तथा अर्ध साधक अपर, त्यों अशोक मलिधाम ।—रघुराज । (४) साठ संवत्सरों में से एक । (५) जैनों के २४वें अर्हत् महावीर के पिता का नाम । (६) वह मयन जिसमें पश्चिम और दक्षिण और बड़ी शालाएँ ( कमरे या हाथ ) हों ।

सिद्धार्थक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) द्रवत सर्पप । सफेद सरसों । (२) एक प्रकार का मरहम ।

सिद्धार्थमति-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम ।

सिद्धार्था-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जैनों के बोधि अर्हत् की माता का नाम । (२) सफेद सरसों । (३) देवी अंजीर । (४) साठ संवत्सरों में से ५३वें संवत्सर का नाम ।

सिद्धार्थी-संज्ञा पुं० [ सं० सिद्धार्थिन् ] साठ संवत्सरों में से ५३वें संवत्सर का नाम ।

सिद्धासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] हठ योग के ८४ आसनों में से एक प्रधान आसन ।

विशेष—महेंद्रिय और भूहेंद्रिय के बीच में बाएँ पैर का तट्टा तथा दाहिने के ऊपर दाहिना पैर और छाती के ऊपर शिबुक रखकर दोनों मूर्धों के मध्य भाग को देलना 'सिद्धासन' कहलाता है ।

सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काम का पूरा होना । पूर्णता । यथोक्त निश्चलता । जैले,—कार्य सिद्ध होना । (२) सफलता । कृतकार्यता । कामयाबी । (३) छद्मबोध । निदाना मारना । (४) परिशोध । बेबाकी । चुकता होना । (५) कृष्ण का । (६) प्रमाणित होना । साबित होना । (६) किसी बात का दृष्टाया जाना । निश्चय । पक्का होना । (७) निर्णय । फैसला । निश्चयता । (८) हल होना । (९)

परिपक्वता । पकना । सीसला । (१०) वृद्धि । भावोद्भव । सुल-समृद्धि । (११) तप या योग के पूरे होने का अलौकिक फल । योग द्वारा प्राप्त अलौकिक शक्ति या संपन्नता । विभूति । विशेष—योग की अष्टसिद्धियाँ प्रसिद्ध हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लविमा, प्राप्ति, प्राकाश्य, हंसाय और वशित । पुराणों में ये आठ सिद्धियाँ और बतलाई गई हैं—अंजन, गुटका, पाहुका, घातुभेद, बेताल, वज्र, रसायन और योगिनी । सांग्य में सिद्धियाँ इस प्रकार कही गई हैं—तार, सुतार, तारता, रम्यक, आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ।

(१२) मुक्ति । मोक्ष । (१३) अद्भुत प्रवीणता । कौशल । निपुणता । कमाल । दक्षता । (१४) प्रभाव । असर । (१५) नाटक के छत्तीस लक्षणों में से एक जिसमें अभिमत वस्तु की सिद्धि के लिये अनेक वस्तुओं का कथन होता है । जैसे,—कृष्ण में जो गीति थी, अर्जुन में जो विक्रम था, सब आपकी विजय के लिये आप में आ जाय । (१६) ऋद्धि या वृद्धि नाम की ओषधि । (१७) वृद्धि । (१८) संगीत में एक ध्रुति । (१९) दुर्गा का एक नाम । (२०) वृक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म की पत्नी थी । (२१) गणेश की दो स्त्रियों में से एक । (२२) मेवांसिगरी । (२३) भौंता । विजया । (२४) छप्पय छंद के ४१वें भेद का नाम जिसमें ३० गुरु और १२ लघु कुल १२२ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं । (२५) राजा जनक की पुत्रयज्ञी । छद्मनिधि की पत्नी ।

सिद्धि-वि० [ सं० ] सिद्धि देनेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) वृद्ध कौरव । (२) पुत्रप्राप्त वृक्ष ।

सिद्धिदाता-संज्ञा पुं० [ सं० सिद्धिदात ] [ स्त्री० सिद्धिदात्री ] (सिद्धि देनेवाले) गणेश ।

सिद्धिप्रद-वि० [ सं० ] [ स्त्री० सिद्धिप्रदा ] सिद्धि देनेवाला ।

सिद्धिभूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्थान जहाँ योग या तप शीघ्र सिद्ध होता हो ।

सिद्धियाधिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह यात्री जो योग की सिद्धि प्राप्त करने के लिये यात्रा करता हो ।

सिद्धियोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष में एक प्रकार का शुभ योग ।

सिद्धियोगिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक योगिनी का नाम ।

सिद्धिरस-संज्ञा पुं० दे० "सिवरस" ।

सिद्धिराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम ।

सिद्धिज्ञी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटी तिपोलिया । छोटी भंडी ।

सिद्धिसाधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सफेद सरसों । (२) दमनक । दौने का पौधा ।

सिद्धिस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुण्य स्थान । तीर्थ । (२) आयुर्वेद के ग्रंथ में चिकित्सा का प्रकरण ।

सिद्धीश्वर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) एक पुण्य क्षेत्र का नाम ।

सिद्धेश्वर—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ श्री० सिद्धेश्वरी ] (१) वृद्ध सिद्ध । महायोगी । उ०—सरथनाथ आदिक सिद्धेश्वर । श्री दीलादि यज्ञं श्री शंकर ।—शंकरादिपुत्रजय । (२) शिव । महादेव । (३) गुल्लुर्मा । गंखोदरी ।

सिद्धोदक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कौजी । कांजिक । (२) एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

सिद्धीध—संज्ञा पुं० [ सं० ] तांत्रिकों के गुरुओं का एक वर्ग । मंत्र-शास्त्र के आचार्य ।

विशेष—इस वर्ग के अंतर्गत ये पाँच योगी या ऋषि हैं—  
नाद, करपथ, दांसु, भार्गव और कुलकौशिक ।

सिद्ध-वि० दे० "सिद्ध" ।

संज्ञा श्री० चार हाथ की एक लंबी लकड़ी जिसमें सीढ़ी बँधी रहती है ।

सिधरी—संज्ञा श्री० [ दे० ] एक प्रकार की मटली ।

सिधवारि—संज्ञा श्री० [ हिं० सीधा, सिधवाना ] गाड़ी के पहिए निकालने के समय गाड़ी को उठाए रखने के लिये लगाई हुई टेक ।

सिधवाना—वि० सं० [ हिं० सीधा ] सीधा कराना ।

सिधार्ह—संज्ञा श्री० [ हिं० सीधा ] सीधापन । सरलता ।

सिधानाल—वि० प्र० [ सं० सिद्ध = दूर गिना हुआ, दृष्टया हुआ + आना (प्रय०) ] सिधारना । जाना । गमन करना । प्रस्थान करना । चलना । उ०—(क) लायक हे भृगुनायक सो धनु सायक सौपि सुभाय सिधाए ।—तुलसी । (ख) चाहे न चंप कली की धली मलिनी नलिनी की दिदान सिधाये ।—केशव । (ग) उपसेन सब कुटुम है ता दारे सिधायो ।—मूर ।

सिधारना—वि० प्र० [ हिं० सिधाना ] (१) जाना । गमन करना । प्रस्थान करना । विदा होना । रवाना होना । उ०—(क) हरि वैकुण्ठ सिधारे पुनि ध्रुव आपे अपने धाम । कीर्त्यों राज सीस पट वर्पन कीन्है भजन फाम ।—सूर । (ख) सुदित नयन फल पाह गाइ गुन सुर सानंद सिधारे ।—तुलसी । (ग) सूकर थान समेत सवै हरिचन्द्र के सत्य सदेह सिधारे ।—केशव । (२) मरना । स्वर्गवास होना । जैसे,—वे तो बल रात्रि में ही सिधार गए ।

संयो० क्रि०—जाना ।

सिद्धिकि० सं० दे० "सुधारना" । उ०—आगन हीरन सौंजि सँवारो । उजनि में करि दंत सिधारो ।—गुमान ।

सिद्धि—संज्ञा श्री० दे० "सिद्धि" ।

सिद्धि गुटका—संज्ञा श्री० दे० "सिद्ध गुटिका" ।

सिधु—संज्ञा पुं० दे० "सीधु" ।

सिधोरी—संज्ञा श्री० दे० "सिधवाई" ।

सिधम—वि० [ सं० ] (१) सफेद दागवाला । (२) दूधत कृशवाला । सिधमपुष्पिका—संज्ञा श्री० [ सं० ] सेंहुआ । छीप । क्लिप्त ।

सिधमल—वि० [ सं० ] छोटा रोगवाला । सेहुँपवाला ।

सिधमला—संज्ञा श्री० [ सं० ] सूखी मटली ।

सिधय—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुण्य नक्षत्र ।

सिध—वि० [ सं० ] (१) साधु । (२) सफल । असर करनेवाला । संज्ञा पुं० वृद्ध । पेड़ ।

सिधक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वृद्ध ।

सिन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरीर । देह । (२) वस्त्र । पहनावा ।

(३) मास । कौर । (४) कुंभी का पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है और जिसकी छाल का काढ़ा आम और अतीसार में दिया जाता है ।

वि० (१) काना । एक आँख का । (२) सित । दूधत ।

संज्ञा पुं० [ प्र० ] उग्र । अवस्था । यमस ।

सिनक—संज्ञा श्री० [ सं० सिषायक ] कपाल के दोनों आदि का मल जो नाक से निकलता हो । रेंट । नेत्र ।

सिनकना—वि० प्र० [ सं० सिषायक + ना ] जोर से हवा निकालकर नाक का मल बाहर फेंकना । सौँस के झोंके से नाक से रेंट निकालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

सिनट—संज्ञा पुं० [ सं० सेनेट ] (१) शासन का समस्त अधिकार रखनेवाली सभा । (२) विश्व-विद्यालय का प्रबंध करनेवाली सभा ।

सिनि—संज्ञा पुं० [ सं० शिनि ] (१) एक यादव का नाम जो सारथिक का पिता था । उ०—सिनि स्मंदन चरि । चलेउ सदाइ चंदन जुनुंदन ।—गोपाल । (२) क्षत्रियों की एक प्राचीन शाखा ।

सिनी—संज्ञा पुं० दे० "शिनि" । उ०—चलेउ सिंगीपति विरित भरि धरनीपति अति मति ।—गोपाल ।

संज्ञा श्री० [ सं० ] सिनीवाली ।

सिनीत—संज्ञा श्री० [ दे० ] सात रस्तियों को मटकर बनाई गई चिपटी रस्ती । (छक्करी)

सिनीवाली—संज्ञा श्री० [ सं० ] (१) एक वैदिक देवी, मंत्रों में जिसका आह्वान सरस्वती आदि के साथ मिलता है ।

विशेष—अग्नेय में यह बौद्ध कटिवाली । सुंदर भुजाओं और उँगलियोंवाली कही गई है और गर्भप्रसव की अधिष्ठात्री देवी मानी गई है । अथर्व वेद में सिनीवाली को विष्णु की पत्नी कहा है । पीछे की श्रुतियों में जिस प्रकार राधा शुक पक्ष की द्वितीया की अधिष्ठात्री देवी कही गई है, उसी प्रकार सिनीवाली शुक पक्ष की प्रतिपदा की, जब कि नया चंद्रमा प्रत्यक्ष निकले नहीं दिखता देता, देवी बताई गई है ।

(२) शुक पक्ष की प्रतिपदा । (३) अंगिरा की एक पुत्री का नाम । (४) बुराई । (५) एक नदी का नाम । (मार्कंडेय

पुराण) उ०—सिनिवाली, रानी, कुहू, मंदा, राका, जानु ।  
सरस्वती अरु अनुमती सातो नदी बलानु ।—कंदाव ।

सिने-संज्ञा पुं० [ देश० ] खेत की पहली जोटाई ।

सिपाही-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा०. सीपीनी ] (१) मिठाई । (२) बतारो या मिठाई जो किसी खुशी में बाँटी जाय । (३) बतारो या मिठाई जो किसी पीर या देवता को चढ़ाकर प्रसाद की तरह बाँटी जाय ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—बाँटना ।

सिपर-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] चार रोकने का हथियार ।—ढाल ।

उ०—तूल झूल झाल तूल झाल तूल नूल नील डील, तूल नील सैल साथ पै सिपर है ।—गिरधर ।

सिपरा-संज्ञा स्त्री० दे० "सिप्रा" ।

सिपहगरी-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] सिपाही का काम । युद्ध व्यवसाय ।

सिपहसालार-संज्ञा पुं० [ फ्रा० ] कौज का सव से बढ़ा अकसर । सेनापति । सेनानायक ।

सिपाई-संज्ञा पुं० दे० "सिपाही" । उ०—कड़ो सिपाई अबाई चोताई । इतै भागि अय कह सिर नाई ।—पुराण ।

सिपारस-संज्ञा स्त्री० दे० "सिफारिस" ।

सिपास्ती-वि० दे० "सिफारसी" ।

सिपारा-संज्ञा पुं० [ फ्रा० ] इरान के तीस भागों में से कोई एक । (इरान तीस भागों में विभक्त किया गया है जिनमें से प्रत्येक सिपारा कहलाना है ।)

सिपाय-संज्ञा पुं० [ फ्रा० सेवपाय ] लकड़ी की, एक प्रकार की टिकरी या तीन पायों का ढाँचा जो छकड़े आदि में अंगो की ओर भड़ान के लिये दिया जाता है ।

सिपाया भाथी-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० सेवपाय + हि० भाथी ] छोहारों की हाथ से चलाई जानेवाली चौकनी ।

सिपास-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] (१) धन्यवाद । मुक्तिया । कृतज्ञता-प्रकाशन । (२) प्रसंसा । स्तुति ।

सिपासनामा-संज्ञा पुं० [ फ्रा० ] मिठाई के समय या अभिनन्दनपत्र ।

सिपाह-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] कौज । सेना । कटक । लडकर । उ०—अरि अय चाइ चले संगर उछाह रेल विविध सिपाह हमराह जनुवाह के ।—गोपाल ।

सिपाहगिरी-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] सिपाही का काम या पेशा । अन्न व्यवसाय ।

सिपाहियाना-वि० [ फ्रा० ] सिपाहियों का सा ।—सैनिकों का सा । जैसे,—सिपाहियाना रंग, सिपाहियाना हाड ।

सिपाही-संज्ञा पुं० [ फ्रा० ] (१) सैनिक । लड़नेवाला । यूर । पोहर । चौकी आदमी । (२) कास्टेलिल । तिलंगा । (३) चपरासी । अरुकी ।

सिपुई-संज्ञा पुं० दे० "सुपई" ।  
सिप्पर-संज्ञा स्त्री० दे० "सिपर" । उ०—शम क्षमन सिप्पर मेल

सॉरिप जिह जगो दीसियं । मनु सहित उद्गम नव ग्रहनु मिल बुद्ध रकि बरीसियं ।—सुजान ।

सिष्पा-संज्ञा पुं० [ देश० ] (१) निशाने पर किया हुआ धार । लक्ष्य बेष । (२) कार्य साधन का उपाय । डौल । युक्ति । तदर्थ । टिप्पस ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—लगाना ।

मुहा०—सिष्पा भिदना या लड़ना = (१) युक्ति या तदर्थी होना । प्रविधि होना । (२) युक्ति सकल होना । शर उधर की कोशिश कामयाब होना । सिष्पा भिदना या लड़ना = युक्ति या तदर्थी करना । लोगों से मिलकर बन्दे कार्य साधन में सहायक बनाना । शर उधर कह मुनकर कोशिश करना । जैसे,—जगह के लिये उसने बहुत सिष्पा लड़वाया, पर न मिली ।

(३) डौल । सूत्रपात । प्रारंभिक कार्रवाई ।

मुहा०—सिष्पा जमाना = डौल खरा करना । किसी काम को जीन देना । किसी कार्य के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करना । मूँधना बाँधना ।

(४) रंग । प्रभाव । धाक ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—जमाना ।

सिष्पी-संज्ञा स्त्री० दे० "सीपी" ।

सिप्र-संज्ञा पुं० [ म० ] (१) एक सरोवर का नाम । (२) चंद्र । (३) पत्नीना । धर्म ।

सिप्रा-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) महिषी । अँस । (२) एक नील । (३) चियों का कठिबंध । (४) मालवा की एक नदी जिसके किनारे वज्रैत ( प्राचीन उज्जयिनी ) बसा है ।

सिफत-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) विशेषता । गुण । (२) लक्षण । (३) स्वभाव । (४) सुरत । पाह ।

सिफर-संज्ञा पुं० [ म० सरफर ] दाय्य । मुद्या । विन्ती ।

सिफलागी-संज्ञा स्त्री० [ म० + सिफतः ] भोछापन । कमीनापन ।

सिफला-वि० [ म० ] (१) नीचा । कमीना । (२) छिछोरा । भोछा ।

सिफलापन-संज्ञा पुं० [ म० सिफतः + हि० पन (अप०) ] (१) छिछोरापन । भोछापन । (२) कमीनापन ।

सिफा-संज्ञा स्त्री० दे० "सिफा" ।

सिफारिष-संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] (१) किसी के दोष क्षमा करने के लिये किसी से कहना सुनना । (२) किसी के पक्ष में कुछ कहना सुनना । किसी का कार्य सिद्ध करने के लिये किसी से अनुरोध । (३) नीकरी देनेवाले से किसी नीकरी चाहनेवाले की सारीफ । नीकरी दिलाने के लिये किसी की प्रसंसा । जैसे,—नीकरी तो सिफारिस से मिलती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

सिफारिशी-वि० [ फ्रा० ] (१) सिफारिसवाला । जिसमें सिफारिस हो । जैसे,—सिफारिशी चिट्ठी । (२) जिसकी सिफारिस की गई हो । जैसे,—सिफारिशी-स्टूट ।



सिफारिशो टट्ट-संज्ञा पुं० [ फा० + सिफारिशो हि० टट्ट ] यह जो केवल सिफारिश या बुधामद से किसी पद पर पहुँचा हो।

सिक्का-संज्ञा स्त्री० दे० "सिक्का"।

सिमंत-संज्ञा पुं० दे० "सीमंत"। उ०—स्वाम के सीस सिमंत सराहि सनाल सरोज फिराई के मारो।—मन्नालाल।

सिमई-संज्ञा स्त्री० दे० "सिबई", "सिबयौ"।

सिमट-संज्ञा स्त्री० [ हि० सिमटना ] सिमटने की क्रिया या भाव।

सिमटना-क्रि० प्र० [ सं० सिमन = चक्र + ना ] (१) दूर तक फैली हुई वस्तु का थोड़े स्थान में आ जाना। मुकड़ना। संकुचित होना। (२) सिक्कन पढ़ना। सुलवट पढ़ना। (३) हथर उपर बिलरी हुई वस्तु का एक स्थान पर एकत्र होना। वेरोर जाना। बटुरना। इकट्ठा होना। उ०—(क) सिमिटि सिमिटि जल भरहि तलावा।—तुलसी। (ख) गोपी ग्याल सिमिटि सभ सुंदर सज्यो सिंगार नमो।—सूर। (घ) ध्वस्यित होना। तरसीय से लगना। (५) पूरा होना। निबटना। जैसे,—सारा काम सिमट गया। (६) संकुचित होना। लज्जित होना। (७) सहमना। सिटपिटा जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

सिमटी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार का कपड़ा जिसकी गुना-यट खेस के समान होती है।

सिमरखा-संज्ञा पुं० दे० "सिंगरफ़"।

सिमरगोला-संज्ञा पुं० [ सिमर ? + गोला ] एक प्रकार की मेहराव।

सिमरना-क्रि० सं० दे० "सुमिरना"। उ०—(क) राम नाम का सिमरनु छोड़िआ माना हाय बिकाना।—तेगबहादुर। (ख) सिमरे ओ एक-थार ताको राम बार थार बिसरे बिसरे नहीं सो क्यों बिसराइये।—दुदयराज।

सिमरिख-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की चिड़िया।

सिमल-संज्ञा पुं० [ सं० सीर = हल + भाज ] (१) हल का जूआ। (२) जूए में पड़ी हुई लैटी।

सिमला शालू-संज्ञा पुं० [ हि० शिमला + शालू ] एक प्रकार का पहाड़ी बड़ा आलू। मरखुली।

सिमाना-संज्ञा पुं० [ सं० सीमाना ] सियाना। हद।

सिमा-क्रि० सं० दे० "सिलाना"। उ०—लामो घेगि यादी छन मन की प्रवीन। जानि लायो दुख मानि व्योत लई सो सिमाई कै।—नाभा।

सिमिटना-क्रि० प्र० दे० "सिमटना"। उ०—(क) यह सुनि जहाँ तहाँ ते सिमिटे भाइ होइ एक ठौर।—सूर। (ख) बलबल बूँद जाल अंतरंगत सिमिटि होत एक पास। एकदि एक खात लालव बस-नहि देसत निज भास।—तुलसी।

सिमृति-संज्ञा स्त्री० दे० "स्मृति"। उ०—दुपद सुता की लखा राखी। वेद पुरान सिमृति सभ सापी।—लाल कवि।

सिमेट-संज्ञा पुं० [ अंग० सीमेट ] एक प्रकार का लसदार गाता जो मूलने पर बहुत कड़ा और मजबूत हो जाता है।

सिमेटगाली-क्रि० सं० दे० "सिमेटना"।

सिय-संज्ञा स्त्री० [ सं० सीता ] सीता। जानकी। उ०—उपदेश यह जेहि तात तुम तें राम सिय मुख पावहीं।—तुलसी।

सियना-क्रि० प्र० [ सं० नृजन ] उत्पन्न करना। पचना। उ०—जेहि विरचि रचि सीय सैंवारी औ रोमहि ऐसो रूप दियो री। तुलसिदास तेहि चतुर विधाता निज कर यह संजोग सियो री।—तुलसी।

† क्रि० प्र० दे० "सीना"।

सियरा-वि० [ सं० सीरल, पा० सीरध ] [ कौ० सियरी ] (१) ठंडा। शीतल। उ०—(क) प्रथम सुपेत कि रातां पियरां। अवरण वरण कि ताता सियरा।—कबीर। (ख) सियरे बदन सुखि गप कैसे। परसत तुदिन तामरस जैसे।—तुलसी। (२) कचा।

सियराई-संज्ञा स्त्री० [ हि० सियरा + ई (प्रत्यय) ] शीतलता। ठंडक। उ०—मुकुलित कुसुम नयन निद्रा तमि रूप सुषो सियराई।—सूर।

सियराना-क्रि० प्र० [ हि० सियरा + ना ] ठंडा होना। शूणना। शीतल होना। उ०—(क) हारन सौं हहरात हियो मुकुला सियरात सुवेसर ही को।—पद्माकर। (ख) पादप पुहुमि नव पलन ते पूरि आये हरि आये सियराते भाए ते शुमारना।—रघुराज।

सियरी-वि० दे० "सियरा"। उ०—(क) होवे परी सियरी पर्यक पै थीती धरीन छरी छरी सोचे।—पद्माकर। (ख) खरे उपचार छरी सियरी सियरे तें खरोई खोरा तन छोईं।—केदाव।

सिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० सीता ] सीता। जानकी। उ०—रत भंगद इक बचन कबो। तो करि सिधु सिया सुधि लखे किहि बल इतो लखो।—सूर।

सियाना-वि० दे० "सयाना"। क्रि० सं० दे० "सिलाना"।

सियानोय-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का पत्थर।

सियापा-संज्ञा पुं० [ फा० सियादपोरा ] मरे हुए मनुष्य के शोक में कुछ काल तक धतुत सरी छियों के प्रति दिन इकट्ठा होकर रोने की रीति। (यह रिवाज पंजाब आदि पश्चिमी प्रांतों में पाया जाता है।)

सियार-संज्ञा पुं० [ सं० श्याम, प्रा० शिभा ] [ कौ० शियापी शियारिन ] शीतल। जंघुक।

सियार लाठी-संज्ञा पुं० [ देश० ] अमलतास।

**सियारा-संज्ञा पु०** [ सं० सीमा, प्रा० सीमा + रा ] जुती हुई जमीन बराबर करने का लकड़ी का फावड़ा ।

संज्ञा पु० दे० "सियाला" ।

**सियारी-संज्ञा स्त्री०** दे० "सियार" ।

**सियाल-संज्ञा पु०** [ सं० श्याल ] श्याल । गीदड़ । उ०—चहुँ

दिसि सूर सौर करि धावे ज्यों केहरिहि सियाल ।—तूर ।

**सियाला-संज्ञा पु०** [ सं० शीतकाल ] शीतकाल । जाड़े का मौसम ।

**सियाला पोका-संज्ञा पु०** [ हि० सीप + पोका = पोना ] एक बहुत छोटा कीड़ा जो सफेद चिपड़े कोड़ा के भीतर रहता है और

पुरानी खोनी मिट्टीवाली दीवारों पर मिलता है । खोना पोका ।

**सियाली-संज्ञा स्त्री०** [ दे० ] एक प्रकार की चिपड़ी ।

वि० जाड़े के मौसम की फसल । खरीफ ।

**सियावड़-संज्ञा पु०** दे० "सिभावड़ी" ।

**सियावड़ी-संज्ञा स्त्री०** [ दे० ] (१) अनाज का वह हिस्सा जो

खेत कटने पर खलिदान में से साधुओं के निमित्त निकाला

जाता है । (२) वह काली हुई जो खेतों में चिपड़ियों को

ढराने और फसल को नज़र से बचाने के लिये रखी जाती है ।

**सियासत-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] देश का शासन प्रबंध तथा व्यवस्था ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० शासन ] (१) दंड । पंहुन । (२) कट ।

यंत्रणा ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

**सियाह-वि०** दे० "स्याह" ।

**सियाहगोश-संज्ञा पु०** [ फ़० ] (१) काले कानवाला । (२)

गिद्धी की जाति का एक जंगली जानवर । बनविलाव ।

**विशेष**—इसके अंग लंबे होते हैं । पूँछ पर बालों का गुच्छा

होता है और रंग भूरा होता है । खोपड़ी छोटी और दंत

लंबे होते हैं । कान पादर की ओर काले और भीतर की

ओर सफेद होते हैं । इसकी लंबाई प्रायः ४० इंच होती है ।

यह घास की झाड़ियों में रहता और चिपड़ियों को मारकर

खाता है । इसकी कुदान ५ से ६ फुट तक की होती है ।

यह सास और सीतल का शत्रु है । यह बड़ी सुगमता से

पाहा और चिपड़ियों का शिकार करने के लिये सिखाया जा

सकता है । इसे अभीर लोग शिकार के लिये रखते हैं ।

बनविलाव ।

**सियाहा-संज्ञा पु०** [ फ़० ] (१) भाव व्यर्थ की बही । रोझनामचा ।

बही खाता । (२) सरकारी पुराने का वह रजिस्टर जिसमें

जमींदारों से प्राप्त मासुगुजारी लिखी जाती है । (३) वह

सूची जिसमें कायतकारों से प्राप्त खाना दर्ज होता है ।

**सुहा०**—स्याहा करना = सिद्धा की कितान में लिखना । टंकना ।

चमना ।

**सियाहानगीस-संज्ञा पु०** [ फ़० ] सियाहा का लिखनेवाला ।

सरकारी खजाने में सियाहा लिखने के लिये नियुक्त मर्चाबारी ।

**सियाही-संज्ञा स्त्री०** दे० "स्याही" ।

**सिर-संज्ञा पु०** [ सं० शिरस् ] (१) शरीर के सप से भगले या

उपरी भाग का गोल तल जिसके भीतर मस्तिष्क रहता है ।

कपाल । खोपड़ी । (२) शरीर का सप से भगला या ऊपर

का गोल या लंबोतरा अंग जिसमें आँख, कान, नाक और

मुँह ये प्रधान अवयव होते हैं और जो गरदन के द्वारा यह

से जुड़ा रहता है ।

**सुहा०**—सिर आँखों पर होना = सपसे (बोध) होना । माननीय

होना । जैसे,—आपकी भाखा सिर आँखों पर है । सिर

आँखों पर धँसना = बहुत श्रद्धा रखना करना । बड़ी श्रद्धा

करना । (भूल भ्रत या देवी देवता का ) सिर भाना =

आभरा होना । प्रभाव होना । खेलना । सिर उठाना = (१) उभर

आदि से कुछ पुराना पाना । जैसे,—जब से बच्चा पढ़ा है, तब

से सिर नहीं उठाया है । (२) विरोध में खड़ा होना । शत्रुता के

विशे मशरूफ होना । मुकाबिले के लिये तैयार होना । जैसे,—बागियों

ने फिर सिर उठाया । (३) ऊभ मचाना । रग फुसाद करना ।

शरण करना । उपज्र करना । (४) खतराना । शकड़ दिखाना ।

घमंट करना । (५) सामने मुँह करना । मगबर ताकना । कर्जिन न

होना । जैसे,—ऊँची नीची सुनता रहा, पर सिर न उठाया ।

(६) प्रतिष्ठा के साथ खड़ा होना । इज्जत के साथ लोगों से निभना ।

जैसे,—जाय तक भारतवासियों की यह दगा है, तब तक

सम्पन्न अतिथियों के बीच ये बैसे सिर उठा सकते हैं ? सिर

उठाने की फुरसत न होना = जरा सा काम छोड़ने की छुट्टी न

मिलना । कार्य की अधिकता होना । सिर उठाकर चलना =

खरा कर चलना । घमंट दिखाना । शकड़ कर चमना । सिर

उतारवाना = सिर कटाना । मरवा डालना । सिर उतारना =

सिर काटना । मार डालना । (किरी की) सिर ऊँचा करना =

सम्मान का पात्र बनाना । इज्जत देना । (अदना) सिर ऊँचा

करना = प्रतिष्ठा के साथ लोगों के बीच खड़ा होना । दत भादयियों

में इज्जत बनाए रखना । सिर आँधकार पढ़ना = चिन्ता शीर

शोक के कारण सिर नीचा किए पढ़ना या बैठ रहना । सिर

काटना = प्रसिद्ध होना । प्रसिद्धि प्राप्त करना । सिर करना =

(मियों के) बल सेनापना । नौरी दूँपना । (कोई बस्तु) सिर

करना = खबरदारी देना । शब्दा के विरुद्ध मद्दुर करना । गजे

मदना । सिर काटना = सिर उतारना । मार डालना । सिर का

बोस टलना = निश्चिन्ता होना । कंभट टलना । सिर का बोस

टालना = बंगार टालना । श्रद्धा नरह न करना । बी श्वाभर न

करना । सिर के बल चलना = बहुत अधिक श्रद्धापूर्वक विधि

के पात्र जाना । सिर खाली करना = (१) बरबाद करना । (२)

माया पथी करना । शोक विचार में डूबना होना । सिर खाना =

बकवाद बंके की उताना । बर्षों की बर्षों बंके रंग करना । सिर

खपाना = (१) मोचने निभाने में डूबना होना । (२) कार्य में

स्वप्न होना। सिर खुजलाना = मार खाने को जी चाहना।  
 शान्त होना। नटखटी भूकना। सिर चकराना = दे० "सिर  
 घूमना"। सिर चढ़ा = मुँह लगा। लाटना। घृष्ट। सिर चढ़ाना =  
 (१) माथे से लगाना। पूज्य भाव दिखाना। (२) बहुत बढ़ा देना।  
 मुँह लगाना। गुस्ताख बनाना। (३) किसी देवी देवता के सामने  
 सिर काटकर बलि चढ़ाना। सिर घूमना = (१) सिर में दर्द  
 होना। (२) पहराहट या मोह होना। बेहोशी होना। सिर चढ़कर  
 घोलना = (१) भूत प्रेत का सिर पर आकर बोलना। (२) स्वयं  
 झूठ हो जाना। झिपाय न झिपना। सिर चढ़कर भरना =  
 किसी को अपने घून का उत्तरदायी ठहराना। किसी के ऊपर जान  
 देना। सिर चला जाना = मृत्यु हो जाना। सिर जोड़कर  
 बैठना = मिलकर बैठना। सिर जोड़ना = (१) एकज होना।  
 पंचायत करना। (२) एका करना। पटथेन रचना। सिर  
 हाड़ना = बालों में कंधी करना। सिर झुकाना = (१) सिर  
 नताना। नमस्कार करना। (२) लज्जा से गिरन नीची करना।  
 (३) सादर स्वीकार करना। चुप चाप मान लेना। सिर टकराना =  
 सिर फोड़ना। प्रत्येन परिश्रम करना। (किसी के) सिर  
 खालना = सिर मड़ना। दूसरे के ऊपर कार्य का भार देना।  
 सिर टूटना = (१) सिर फटना। (२) लुप्त भंगना होना।  
 सिर तोड़ना = (१) सिर फोड़ना। (२) खूब मारना पीटना।  
 (३) बरा में करना। सिर देना = प्राण निदान करना। जान  
 देना। सिर धरना = सादर स्वीकार करना। मान लेना। कर्गोकर  
 करना। (किसी के) सिर धरना = शरीर करना। लगाना।  
 मढ़ना। उत्तरदायी बनाना। सिर धुनना = शोक या पढ़ना से  
 सिर पीटना। पढ़ताना। हाथ मलना। शोक करना। सिर नंगा  
 करना = (१) सिर खोलना। (२) बज्रत उठाना। सिर नचाना =  
 (१) सिर झुझना। नमस्कार करना। (२) किन्ती बनना। दीन  
 बनना। आजिजी करना। सिर मिखाया = सिर चकराना।  
 (अपना सिर) नीचा करना = लज्जा से सिर झुकाना।  
 शर्माना। (दूसरे का) सिर नीचा करना = प्रतिष्ठा रोना।  
 मर्त्यादा नष्ट करना। सिर नीचा होना = (१) अतिप्रतिष्ठा होना।  
 इज्जत विगटना। मान भंग होना। (२) पराजय होना। हार  
 होना। (३) लज्जा होना। सिर पचाना = (१) परिश्रम करना।  
 लोभ करना। (२) सोचने विचारने में हैरान होना। सिर  
 पटकना = (१) सिर फोड़ना। सिर धुनना। (२) बहुत परिश्रम  
 करना। (३) शकृतीस करना। हाथ मलना। सिर पर धा  
 पड़ना = अपने ऊपर पड़ना होना। ऊपर धा बनना। सिर पर  
 धा जाना = बहुत समीप धा जाना। थोड़े ही दिन और रह जाना।  
 सिर पर उठा लेना = ऊपर जोतना। धूम मचाना। (अपने)  
 सिर पर पाँव रखना = बहुत बड़े भाग जाना। हवा होना।  
 (किसी के) सिर पर पाँव रखना = किसी के साथ बहुत  
 उदत्ता का व्यवहार करना। सिर पर पृथ्वी उठाना =

बहुत उपात करना। सिर पर पड़ना = (१) जिम्मे पड़ना।  
 (२) अपने ऊपर पड़ने होना। गुजरना। सिर पर खेलेना = जान को  
 जोखों में टालना। सिर पर खून चढ़ना या सवार होना =  
 (१) जान लेने पर उताह होना। (२) बंधा के कारण प्राण में न  
 रहना। सिर पर रखना = प्रतिष्ठा करना। मान करना। सिर  
 पर छप्पर रखना = बोक से ढकाना। ढवाल टालना। सिर पर  
 मिट्टी डालना = शोक करना। सिर पर लेना = ऊपर लेना।  
 जिम्मे लेना। सिर पर दौतान चढ़ना = गुस्सा चढ़ना। सिर पर  
 पर खूँ न रँगना = ध्यान न होना। नैत न होना। होत न  
 भाना। सिर रहना = मान रहना। प्रतिष्ठा बनी रहना। (किसी  
 के) सिर डालना = माथे मड़ना। शरीरपण करना। सिर पर  
 बीतना = सिर पर पड़ना। सिर पर होना = थोड़े ही दिन रह  
 जाना। बहुत निकट होना। (किसी का किसी के) सिर पर  
 होना = संरक्षक होना। रखा करनेवाला होना। सिर पर हाथ  
 धरना या रखना = (१) संरक्षक होना। सहायक होना। (२)  
 शपथ खाना। सिर पड़ना = (१) जिम्मे पड़ना। भार ऊपर  
 दिया जाना। (२) हिरसे में आना। सिर पर हाथ फेरना =  
 प्यार करना। आभास देना। धारस बंधाना। सिर फिरना =  
 (१) सिर घूमना। सिर चकराना। (२) पागल हो जाना। उमर  
 होना। (३) बुद्धि नष्ट होना। सिर फोड़ना = (१) लज्जा भंगना  
 करना। (२) कपाल क्रिया करना। सिर फेरना = कड़ा  
 मानना। शब्दा करना। शस्तीकार करना। सिर बौधना = (१)  
 सिर पर आक्रमण करना। (पंडेवाजी) (२) चोटी करना। सिर  
 मूँचना। (३) थोड़े की लुभाय इस प्रकार पकड़ना कि चले ममय  
 थोड़े थो गदैन शोधी रहे। सिर चेचना = सिर देना। सोन की  
 नोधी करना। सिर भारी होना = सिर में पौड़ा होना। सिर  
 धूमना। सिर मारना = (१) समझने समझते हैरान होना।  
 (२) सोचने विचारने में हैरान होना। सिर संपाना। (३) विज्ञाना।  
 पुकारना। (४) बहुत प्रयत्न करना। अत्यंत श्रम करना। सिर  
 मूँदना = (१) बाल बनवाना। (२) जोगी बनना। कर्तरी लेना।  
 तन्वासी होना। सिर मुदाते ही ओले पड़ना = प्रारंभ में ही  
 कार्य विगटना। कार्यारंभ होते ही विघ्न पड़ना। सिर मड़ना =  
 जिम्मे करना। इच्छा के विरुद्ध सुदूर करना। सिर रँगना =  
 सिर फोड़ना। सिर रोहू लोहान करना। सिर रहना = (१)  
 किसी के पीछे पड़ना। (२) संत दिन परिश्रम करना। सिर सकेदे  
 होना = मुद्दावरुधा धा जाना। सिर पर सेहरा होना = किसी  
 कार्य का थप प्राप्त होना। बाहबादी मिलना। सिर सहलाना =  
 सुशामक करना। प्यार करना। सिर से बला टालना = बेगार  
 रहना। जी लगाकर काम न करना। सिर से दोस्त उतरना =  
 (१) अकष्ट दूर होना। (२) निश्चिन्ता होना। सिर से पानी  
 गुजरना = महान की पराजय होना। प्रलय हो जाना। सिर  
 पोटाना = सिर गुमाना। सिर से पैर तक = शर्म से जं

रक्त । चोटी से पड़ी तक । सर्वांग में । पूर्णतया । सिर से पैर तक भाग लगना = अर्थात् शेष चटना । सिर से चलना = बहुत सम्मान करना । सिर के बल चलना । सिर से सिरवाहा है = सिर के साथ पगड़ी है । मरघर के साथ कीज बरकर रहेगी । मालिक के साथ उसके आश्रित बरकर रहेगी । सिर से कफ़न बाँधना = मरने के लिये उष्यत होना । सिर से खेलना = सिर पर भूल आना । सिर से खेल जाना = प्रायः दे देना । सिर पर सौंग होना = कोई विशेषता होना । खगुलियन होना । सुरखान का पर होना । सिर का पसीना पर तक आना = बहुत परिश्रम होना । (किसी का किसी के) सिर होना = (१) पीछे पड़ना । पीछा न छोड़ना । साथ साथ लगा रहना । (२) बार बार किसी बात का आग्रह करने नंग करना । (३) उलक पड़ना । भगवत करना । (किसी बात के) सिर होना = नाद लेना । समक लेना । (दोष आदि किसी के) सिर होना = जिम्मे होना । उपर पड़ना । जैसे,—यह अपराध तुम्हारे सिर है ।

(२) उपर का छोर । सिरा । चोटी ।

सिरा पुं० [ सं० सिर ] पिपरासूल । विप्यलीमूल ।

**सिरई**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सिर + ई (प्रत्यय) ] चारपाई में सिरहाने की पट्टी ।

**सिरकट**—वि० [ हि० सिर + कटना ] [ स्त्री० सिरकटी ] (१) जिसका सिर कट गया हो । जैसे,—सिरकटी खाना । (२) दूसरों क, सिर काटनेवाला । अनिष्ट करनेवाला । बुराई करनेवाला । अपकारी ।

**सिरका**—संज्ञा पुं० [ अ० ] धूप में पकाकर खटा किया हुआ ईस, अंगूर, जामुन आदि का रस ।

**चियोत्र**—ईश, अंगूर, खट्टर, जामुन आदि के रस को धूप में पकाकर सिरका बनाया जाता है । यह रस में अत्यंत खटा होता है । वैद्यक में यह तीक्ष्ण, गरम, रुचिकारी पाचक, हृलक, रुखा, दस्तावर, रक्त पित्रकारक तथा कफ, कृमि और पांडु रोग का नाश करनेवाला कड़ा तथा है । यूनानी मतानुसार यह कुछ गरमी लिए ठंडा और रक्त, त्रिगुणतायोगक, नसों और छिद्रों में शीघ्र ही प्रवेश करनेवाला, गाढ़े दोषों को छीटनेवाला, पाचक, अत्यंत छुपाकारक तथा शोथ का उद्घाटक है । यह बहुत से रोगों के लिये परम उपयोगी है । उ०—अर्द्ध मिथौरी सिरका बरा । सौंठ लय के सरसा धरा ।—जायसी ।

**सिरकाकश**—संज्ञा पुं० [ अ० ] अरक खाँचने का एक प्रकार का संज्ञ ।

**सिरकती**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सरकटा ] (१) सरकंडा । सरई । सरहरी । (२) सरकंडे या सरई की पतली तीलियों की बनी हुई टट्टी जो प्रायः दीवार या गादियों पर धूप और धरा में यथायथ के लिये डालते हैं । उ०—विदित म सगमुय के सके अँविया बंधी लजोर । बरनी सिरकित भोट है हेत

मोहन भोर ।—रसनिधि । (३) बॉस की पतली नली जिसमें बेल बूटें काढ़ने का कलावत् भर रहता है ।

**सिरखप**—वि० [ हि० सिर + खपना ] (१) सिर खपानेवाला । (२) परिश्रमी । (३) निश्चय का पक्का ।

**सिरखपी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सिर + खपना ] (१) परिश्रम । ईरानी । (२) जोशिम । साहसपूर्ण कार्य ।

**सिर खिली** संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की चिड़िया जिसका संपूर्ण शरीर मर्ममाला, पर चोंच और पैर काले होते हैं ।

**सिरखिस्त**—संज्ञा पुं० [ अ० शीरखिस्त ] एक प्रसिद्ध पदार्थ जो कुछ पेड़ों की पत्तियों पर ओस की तरह जम जाता है और दवा के काम में आता है । यव बरकर । यवास शर्करा ।

**सिरगा**—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] बाँड़े की एक जाति । उ०—सिरगा समेटा स्वाह सेलिया सूर सुरंगा । हुसकी वैच-कल्यान कुमेता केहर रंगा ।—सूदन ।

**सिरगिरी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सिर + गिरि = चोटी ] (१) कलमी : निया । (२) चिड़ियों के सिर की कलमी ।

**सिरगोला**—संज्ञा पुं० [ ? ] दुग्ध पाषाण ।

**सिरसुरदी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सिर + सुरा = धूमना ] ज्वरकुंड गुण ।

**सिरचंद**—संज्ञा पुं० [ हि० सिर + चंद ] एक प्रकार का अर्द्ध चंद्राकार गहना जो हार्थी के मस्तक पर पहनाया जाता है । उ०—सिरचंद चंद दुर्बद दुमि आनंद कर मनिमय बसि ।—गोपाल ।

**सिरजक**—संज्ञा पुं० [ सं० सूर, हि० सिरजना ] बनानेवाला । रचनेवाला । सृष्टिकर्ता । उ०—अथ बंदी कर जोरि कै, जग सिरजक करता । रामकृष्ण पद कमल युग, जाको सदा अधार ।—रघुराज ।

**सिरजनहार**—संज्ञा पुं० [ सं० सृजनी + हि० हार = वाण ] (१) रचनेवाला । बनानेवाला । सृष्टिकर्ता । कर्षी । उ०—हे गुसाईं तू सिरजनहार । तुझ सिरजा एहि समुंद्र अषार ।—जायसी । (२) परमेश्वर । उ०—माया सगी न मन सग, सगा न यह संसार । परशुराम यह जीव को, सगा सो सिरजनहार ।—रघुराज ।

**सिरजनाळ**—कि० सं० [ सं० सज्ज ] रचना । उत्पन्न करना । सृष्टि करना । उ०—जग सिरजत पाळत संहारत पुनि बयों बहुरि करयो ।—पूर ।

कि० सं० [ सं० संजय ] संजय करना । हिक्राजत से रचना ।

**सिरजित**—वि० [ सं० सजित ] सिरया हुआ । रचा हुआ । उ०—नुम जदुनाय अनन्य उपासी । नहिं मम सिरजित लोक विलासी ।—रघुराज ।

**सिरताज**—संज्ञा पुं० [ सं० सिर + ताज = ताज ] (१) मुकुट । (२) शिरोमणि । सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति या वस्तु । सब से उत्कृष्ट व्यक्ति या वस्तु । उ०—(क) राम को विसारिवो निपेध-सिरताज रे । राम नाम महामनि, कनि जगजाल रे ।—

तुलसी। (ख) कुंजन में क्रीड़ा करे मनु चाही को राज।  
कंस सकुच नहि मानई रहत भयो सिरताज।—सूर। (३)  
सरदार। अग्रगण्य। अगुआ। मुखिया। उ०—सूर  
सिरताज महाराजनि के महाराज, जाको नाम लेत ही  
सुखेत होत उसरो।—तुलसी।

सिरतान-संज्ञा पुं० [ हि० सिर + तान ] (१) असामी। कारतकार।  
(२) मालगुजार।

सिर ता पा-क्रि० वि० [ पा० स + ता + पा = पर ] (१) सिर से  
पाँव तक। नख से लेकर शिख तक। उ०—केस मेधावरि  
सिर ता पाहि।—जायसी। (२) आदि से अंत तक। संपूर्ण।  
विलकुल। सरासर।

सिरती-संज्ञा स्त्री० [ हि० सिर ] जमा जो असामी जमींदार  
को देता है। लगान।

सिरघ्राण-संज्ञा पुं० दे० “सिरघ्राण”।

सिरदार-संज्ञा पुं० दे० “सरदार”। उ०—(क) अज पर गन  
सिरदार महरि वृ ताकी करत नहाई।—सूर। (ख)  
सिरदार अक्षत खेत में। भजि गण बहुत अचेत में।—सूदन।

सिरदारी-संज्ञा स्त्री० दे० “सरदारी”। उ०—साहिजहाँ  
यह चित्त विचारी। दारा कीं दीन्ही सिरदारी।—लाल कवि।

सिरदुआली-संज्ञा स्त्री० [ हि० सिर + आ० दुआल ] लगाम के  
कंधों में लगा हुआ कानों के पीछे तक का घोड़ों का एक  
साम जो चमड़े या सूत का बना होता है।

सिरनामा-संज्ञा पुं० [ पा० सर + नामः = पत्र ] (१) लिफाफे पर लिखा  
जानेवाला पत्र। (२) पत्र के आरंभ में पत्र पानेवाले का नाम,  
उपाधि, अभिवादन आदि। (३) किसी लेख के विषय का  
निर्देश करनेवाला शब्द या वाक्य जो ऊपर लिख दिया  
जाता है। शीर्षक। हेडिंग। सुर्ली।

सिरनेत-संज्ञा पुं० [ हि० सिर + सं० नेत्री = भङ्गी या भेरी ] (१)  
पगड़ी। पटा। चीरा। उ०—(क) दे नेही मत डगमगी  
बाँध प्रीति सिरनेत।—रसनिधि। (ख) अधम उचारन  
बिरद की हुम बाँधी सिरनेत।—रसनिधि। (२) क्षत्रियों  
की एक शाखा जो अपना मूल स्थान श्रीनगर ( गढ़वाल )  
घटाती है। उ०—पुनि सिरनेतह देस सिघारा। कीन्हे  
ध्याह, उछाह अपारा।—रघुराज।

सिरपाव-संज्ञा पुं० दे० “सिरोपाव”। उ०—कीरतसिंह भी घोड़े  
और सिरपाव पाकर अपने शप के साथ स्वसत हुआ।—  
देषीप्रसाद।

सिरपंच-संज्ञा पुं० [ पा० सर + पंच ] (१) पगड़ी। (२) पगड़ी के ऊपर  
का छोटा कपड़ा। (३) पगड़ी पर बाँधने का एक आभूषण।  
उ०—कलगी, तुरी और जग सिरपंच सुकुंठल—सूदन।

सिरपोश-संज्ञा पुं० [ पा० शपोश ] (१) सिर पर का आवरण।  
टोप। कुलाह। (२) बंदूक के ऊपर का कपड़ा। (लङ्करी)

सिरफूल-संज्ञा पुं० [ हि० सिर + फूल ] सिर पर पहना जानेवाला  
छियों का एक आभूषण। उ०—(क) छतियों पर लोल  
लुई अलकें सिरफूल अरुसि सो हीं दुति दे।—पद्मालाल।  
(ख) येनी चुनी चमकै किरनैं सिर फूल लख्यो रवि तू  
अनूपमें।—मन्नालाल।

सिरफेंटा-संज्ञा पुं० [ हि० सिर + फेंटा ] साफ़ा। पगड़ी। मुरेश।  
उ०—पीरो शगा पटुका बिन टोर छरी कर, लाल जरी सिर-  
फेंटा।—मन्नालाल।

सिरबंध-संज्ञा पुं० [ हि० सिर + बंध + सं० ] साफ़ा।

सिरबंधी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सिर + बंध + स्त्री ] माथे पर पहनने का  
छियों का एक आभूषण।

सड़ा पुं० [ हि० सिर + बंद ] रेशम के काँड़े का एक भेद।

सिरयोभी-संज्ञा पुं० [ हि० सिर + बोफ ] एक प्रकार के पतले  
बाँस जो पाटन के काम में आते हैं।

सिरमनि-संज्ञा पुं० दे० “सिरोमणि”।

सिरमौर-संज्ञा पुं० [ हि० सिर + मौर ] (१) सिर का मुकुट।  
(२) सिरनाज। शिरोमणि। प्रधान या श्रेष्ठ व्यक्ति। उ०—  
सहज सखोने राम लखन लखित नाम जैसे सुने तैसे  
हुँअर सिरमौर हैं।—तुलसी।

सिररह-संज्ञा पुं० दे० “शिरोरह”। उ०—विद्युरित सिररह-  
वस्थ कुंचित सिच सुमन ज्य, मविजुत सिसु-फनि-अनीक  
ससि समीप आइ।—तुलसी।

सिरवा-संज्ञा पुं० [ हि० सिर ] यह कपड़ा जिससे खलियान में  
अनाज बरसाने के समय हवा करते हैं। ओसाने में हवा  
करने का कपड़ा।

मुहा०—सिरवा मारना = भूला उड़ाने के लिये कपड़े आदि से  
दबा करना।

सिरघार-संज्ञा पुं० दे० “सिघार”।

संज्ञा पुं० [ हि० सिर + घार ] जमींदार का वह कारिदा जो  
उसकी खेती का प्रबंध करता है।

सिरस-संज्ञा पुं० [ सं० शिरोप ] शीशम की तरह का लंबा एक  
प्रकार का लंबा पेड़।

विशेष—इसका वृक्ष थड़ा किन्तु अचिरस्थायी होता है।  
इसकी छाल भूरापन लिए हुए खाकी रंग की होती है।  
लकड़ी सफ़ेद या पीले रंग की होती है, जो टिकाऊ नहीं होती।  
होर की लकड़ी कालापन लिए भूरी होती है। पत्तियाँ  
इमली की पत्तियों के समान परंतु उनसे लंबी चौड़ी होती  
हैं। चैत-वैशाख में यह वृक्ष फूलता फलता है। इसके फूल  
सफ़ेद, सुगंधित, अत्यंत कोमल तथा मनोहर होते हैं। कवियों  
ने इसके फूल की कोमलता का वर्णन किया है। इसके  
वृक्ष से बबूल के समान गोंद निकलता है। इसकी छाल,  
पत्ते, फूल और बीज औषध के काम में आते हैं। इसके

तोन भेद होते हैं—काला, पीला और लाल। आयुर्वेद के अनुसार यह चारपा, शीतल, मधुर, कड़वा, कसैला, हलका तथा घात, पिच, कफ, मूत्रन, विसर्प, खौसी, घाव, विप-विकार, रधिर-विकार, कोढ़, खुजली, बवासीर, पसिने और त्वचा के रोगों को हरण करनेवाला है। पूतानी मतानुसार यह ठंडा और रूखा है। उ०—(क) वाम विधि मेरो मुख सिरस मुमन ताको छल हुरी कोह कुलिस ले देई है।—पुलसी। (ख) फूलों की के काम-याग हैं, यह सय कहते आते हैं। सिरस फूल से भी मृदुतर, हम उसके वाहु बताते हैं।—अदाचीनसाद द्विवेदी।

**सिरसा**—संज्ञा पुं० दे० "सिरस"।

**सिरसी**—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार का तीतर।

**सिरहाना**—संज्ञा पुं० [ सं० सिरस् + आधान ] चारपाई में सिर को ओर का भाग। खाट का सिरा। मुँदपारी। उ०—दूरी लट्टे लटकें सिरहाने द्वे, कैल रघो मुखवेद को पानी।

**सिराँचा**—संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का पतल बॉस जिससे कुरसियाँ और मोढ़े बनते हैं।

**सिरा**—संज्ञा पुं० [ हिं० सिर ] (१) संधाई का अंत। संधाई के दो छोरों में से कोई एक। छोर। टोक। जैसे,—एक सिरे से दूसरे सिरे तक। (२) ऊपर का भाग। शीर्ष भाग। (३) अंतिम भाग। आखिरी हिस्सा। (४) आरंभ का भाग। शुरु का हिस्सा। जैसे,—(क) सिरे से कदो, मैंने सुना नहीं। (ख) अथ यह काम नए सिरे से करना पड़ेगा। (ग) सिरे से आखीर तक। (घ) गोरु। अनी। (६) भ्रम भाग। भगला हिस्सा।

**मुहा०**—सिरे का = अन्वय करने का। पूरे सिरे का। सिरे का रंग = सर से प्रथम रंग। केस रंग। ( रंगरेज )

संज्ञा स्त्री० [ सं० सिरा ] (१) रक्त-नाड़ी। (२) सिंचाई की नाली। (३) खेत की सिंचाई। (४) पानी की पतली धारा। (५) नगर। कलसा। डोल।

**सिराना**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सिरा + ना ] (१) ठंडा होना। शीतल होना। (२) मंद पड़ना। हतोरसाह होना। उमंग न रह जाना। हार जाना। उ०—यज्ञायुष जल धरपि सिराने। परयो धरन तथ प्रभु करि जाने—सूर। (३) समाप्त होना। पूनम होना। अंत को पहुँचना। जैसे,—वाम सिराना। (४) शांत होना। मिटना। दूर होना। उ०—अथ रघुनाथ मिलाऊँ तुमको मुँदरि सोग मिराह—सूर। (५) म्यतीन होना। धीव जाना। गुजर जाना। उ०—येहँ विरगोवी अमर निधरक फिरी कहाइ। त्रिन विदुरे तिनके न इहि पावस भायु सिराह—विहारी।

† (६) भ्रम से दृढ़ी मिलना। कुसत मिलना।

कि० सं० (१) ठंडा करना। शीतल करना। (२) समाप्त करना। कृतम करना। (३) म्यतीन करना। विताना।

**सिरापत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अश्वय वृक्ष। पीपल का वृक्ष।

(२) एक प्रकार की लवण।

**सिरामूल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गांधि।

**सिरामोक्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] क्रमद खुलवाना। गरीर का दूषित रक्त निखलवाना।

**सिरार**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सिरा ] वह लकड़ी जो पाई के सिरे पर लगाई जाती है। (जुलाहे)

**सिराल**—वि० [ सं० ] जिसमें बहुत नमों या रेते हों।

**सिरालक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का अंगूर।

**सिराला**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार का पौधा। (२) कमरस का फल। कर्मरंग फल।

**सिराली**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सिर ] मयूर-सिखा। मोर की कलगी।

**सिराघन**—संज्ञा पुं० [ सं० सिर = दल ] जुना हुआ खेत बराबर करने का पाटा। हंगा।

**सिरायना**—संज्ञा स्त्री० [ सं० दे० "सिराना" ] उ०—जोह जोह भाये मेरे प्यारे। सोह सोह हैंहँ तु हुलारे। कड़ी है सिरावन सीरा। कद्य हठ न करी यलवीरा—सूर।

**सिरावृक्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सोसा नामक पानु।

**सिराहर्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुलक। रोमांच। (२) आँप के छोरों की लाली।

**सिरिन**—संज्ञा पुं० [ दे० ] रक्त सिरीय वृक्ष। लाल सिरस।

**सिरियारी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सिरियारी ] सुनिष्णक शाक। सुसना का साग। हापीनुंठी।

**सिरिश्ता**—संज्ञा पुं० [ फा० सिरिश्ता ] विभाग। मुहकमा।

**सिरिश्तेदार**—संज्ञा पुं० [ फा० ] अदालत का वह कर्मचारी जो मुकदमों के कागज पत्र रजता है।

**सिरिश्तेदारी**—संज्ञा स्त्री० [ फा० ] सिरिश्तेदार का काम या पद।

**सिरिस**—संज्ञा पुं० दे० "सिरस"।

**सिरो**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) करपा। (२) कलहारी। लंगली।

संज्ञा स्त्री० [ सं० भी ] (१) लक्ष्मी। (२) शोभा।

कति। (३) रोली। रोचना। उ०—(क) पथकी है गुलाल

को पूँचुर में पारी गोरी लला मुख मीदि सिरी—संभु।

(ख) सोन रूप भल भए पसगा। धवल सिरी पोतहि घर थारा—जायसी।

**सिरोय**—'धी' का लाल चिह्न तिलक में रोली से बनता है; इसी से रोली को भी 'धी' या 'सिरी' कहते हैं।

(४) माथे पर का एक गहना। उ०—सुंदा दूँद लई जैसो पैसो रद दरसायै सोहै लखी सोस भारी सिरी कुंभ पर है। गोपाल।

सिरीज-संज्ञा पुं० [ अ० ] मंगल और बृहस्पति के बीच का एक ग्रह जिसका पता आधुनिक पश्चात्य ज्योतिषियों ने लगाया है।

विशेष—यह सूर्य से प्रायः साढ़े अष्टादस कोटि मील की दूरी पर है। इसका व्यास १७६० मील का है। इसे निज पक्षा में सूर्य के चारों तरफ घूमने में १६८० दिन लगते हैं। १९वीं शताब्दी में सिसली नामक उपद्वीप में यह ग्रह पहले देखा गया था। इसका वर्ण लाल है और यह आठवें परिमाण के तारों के समान दिखाई पड़ता है।

सिरी पंचमी-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रीपंचमी"।

सिरीस-संज्ञा पुं० दे० "सिरस"।

सिरोना-संज्ञा पुं० [ हि० सिर + शोना ] रस्सी का बना हुआ मंडरा जिस पर यज्ञ रखते हैं। हँडुरी। विद्वान्।

सिरोपाद्य-संज्ञा पुं० [ हि० सिर + पाद्य ] सिर से पैर तक का पहनावा (अंगा, पगड़ी, पाजामा, पटकर और हुपट्टा) जो राज-दरबार से सम्मान के रूप में दिया जाता है। सिलभत।

सिरोमनि-संज्ञा पुं० दे० "शिरोमणि"।

सिरोरुह-संज्ञा पुं० दे० "शिरोरुह"।

सिरोही-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार की चिड़िया जिसकी चौंच और पैर लाल और शेष शरीर काला होता है।

संज्ञा पुं० (१) राजपूताने में एक स्थान जहाँ की बनी हुई तलवार बहुत ही लचीली और बढ़िया होती है। उ०—  
। तलवार सिरोही सोहती लख सिरोही मोहती। निमि सेना  
द्रोही जोहती लज शरोही मोहती।—गोपाल। (२)  
तलवार।

सिर्का-संज्ञा पुं० दे० "सिरका"।

सिर्फ-कि० वि० [ अ० ] केवल। मात्र।

वि० (१) एक मात्र। अकेला। (२) शुद्ध। प्वालिस।

सिरी-वि० दे० "सिरी"।

सिल-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिल्प ] (१) पत्थर। चट्टान। शिला।

(२) पत्थर की चौकोर पटिया जिस पर बटे से मसाला आदि पीसते हैं।

यौ०—सिल बटा।

(३) पत्थर का गढ़ा हुआ चौकोर टुकड़ा जो द्मारतों में लगता है। चौकोर पटिया। (४) काठ की पटरी जिस पर दवाकर रुई की पुनी बनाई जाती है।

संज्ञा पुं० [ सं० शिल ] कटे हुए खेत में गिरे अनाज चुनकर निवोह करने की धृति।

वि० दे० "सिल", "सिलौत"।

संज्ञा पुं० [ दे० ] बलून की जाति का एक पहाड़ी पेड़ जो हिमालय पर होता है। खंज। मारु।

संज्ञा पुं० [ अ० ] तपेदिक। राजयज्ञमा। क्षय रोग।

सिलक-संज्ञा स्त्री० [ हि० सल्ल = ल्याकर ] (१) लड़ी। हार।

(२) पंक्ति।

संज्ञा पुं० तागा। धागा।

सिलफो-संज्ञा पुं० [ दे० ] बेल। उ०—सुरभी सिलफो सुदाफल  
बेल ताल माहूर।—अनेकार्य।

सिलखड़ी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सिल + खट्टिया ] (१) एक प्रकार का पिकना मुलायम पत्थर जो बरतन बनाने के काम में आता है।

विशेष—इसकी चुकनी चीजों को चमकाने के लिये पालिश व रोगन बनाने के भी काम में आती है।

(२) सेत खड़ी। खरिया मिट्टी। हुदी।

सिलखरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलखड़ी"।

सिलगना-कि० प्र० दे० "सुलगना"। उ०—(क) विरहिन पै  
आयी मनी मैन दैन तरवदा। जुगनु नारी जासुगी सिलगत  
व्याहमि व्याह।—रसनिधि। (ख) आग भी अतिशयान  
में सिलग रही है। हवा उस समय सँद चल रही थी।—  
शिवप्रसाद।

सिलपक्षी-संज्ञा पुं० दे० "सिलप"। उ०—विश्वकर्मा सुनिहार  
धुति धरि सुख सिलख, दिखाने। तेहि देखे त्रय तप  
नारी भ्रज वषु मन सवने।—सूर।

सिलपच्ची-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलपची"।

सिलपट-वि० [ सं० शिल्पाट ] (१) साफ, बराबर। चोस।

कि० प्र०—करना।—होना।

(२) मिसा हुआ। मिया हुआ। (३) चौपट। सच्चाप।

संज्ञा पुं० [ अ० सिलप ] पड़ी की ओर खुली हुई जली।

चट्टी। चप्पल।

सिलपोदनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सिल + पोदना ] विवाह की एक  
रीति। उ०—सिद्ध वंदन होम लाया होन लागी, भौकरी।  
सिल पोदनी करि मोहनी मन हरयो मुरति, सवरी।—  
तुलसी।

विशेष—विवाह में मातृकापूजन के समय घर और मन्थ्या के  
माता पिता सिल पर थोड़ी सी भिंगोई हुई उरलनी धात  
रखकर पीसते हैं। इसी को सिलपोदनी कहते हैं।

सिलफुची-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलमची"।

सिलफोडा-संज्ञा पुं० [ हि० सिल + फोदना ] पापण भेद। पत्थर  
चुर नाम का पौधा।

सिलबदभा-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का बौस जो परती  
बंगाल की ओर होता है।

सिलमाडूर-संज्ञा पुं० [ अ० सेल-मेकर ] पाल बनानेवाला।  
(लखकरी)।

सिलवट-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] मुकड़ने से पड़ी हुई लकीर। चुनट।  
बल। शिकन। सिकुड़न। बली।

कि० प्र०—डालना।—पड़ना।

# मनोरंजन पुस्तकमाला

अथ तक निम्नलिखित पुरतकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

- (१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (३) गुरु गोविन्दसिंह—लेखक वेंशीप्रसाद ।  
 (४, ५, ६.) आदर्श हिंदू, तीन भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्मा ।  
 (७) राणा जंगमहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।  
 (८) भोग्य पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा ।  
 (९) जीवन के आनंद—लेखक गणपतिजानकीराम दुये ।  
 (१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बा० एस्.सी० ।  
 (११) लालचीन—लेखक ब्रजनंदनसहाय ।  
 (१२) कथोर-यचनावली—संग्रहकर्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय ।  
 (१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बा० ए० ।  
 (१४) युद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।  
 (१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (१६) सिन्धु का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमार देव शर्मा ।  
 (१७) धीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुक्रदेवविहारी मिश्र बा० ए० ।  
 (१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी ।  
 (१९) शासनपरिनि—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार ।  
 (२०, २१) हिंदुस्तान, दो खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय बा० ए० ।  
 (२२) पि सुकरात—लेखक वेंशीप्रसाद ।  
 (२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बा० एस्.सी० ।  
 (२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुक्रदेवविहारी मिश्र बा० ए० ।  
 (२५) सुंदरसार—संग्रहकर्ता पुरोहित हरिनारायण शर्मा बा० ए० ।  
 (२६, २७) जर्मनी का विकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्मा ।  
 (२८) हृषिकौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसादासह एल० ए० जी० ।  
 (२९) कर्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम० ए० ।  
 (३०, ३१) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी बा० ए० ।  
 (३२) महाराज रणजोतसिंह—लेखक वेंशीप्रसाद ।  
 (३३, ३४) विश्वप्रपंच, दो भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।  
 (३५) अहिलयायाई—लेखक गोविंदराम केशवराम जोशी ।  
 (३६) रामचंद्रिका—संकलनकर्ता लाला भगवानदीन ।  
 (३७) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ।  
 (३८, ३९) हिंदी नियंघमाला, दो भाग—संग्रहकर्ता श्यामसुन्दरदास बा० ए० ।  
 (४०) सूरसुधा—संपादक गणेशविहारी मिश्र, श्यामविहारी मिश्र, शुक्रदेवविहारी मिश्र ।  
 (४१) कर्तव्य—लेखक रामचंद्र वर्मा ।  
 (४२) संक्षिप्त रामस्वयंवर—संपादक ब्रजरजदास ।  
 (४३) शिशुपालन—लेखक मुकुन्दस्वरूप वर्मा ।  
 (४४) शाही हृदय—लेखक मफजलाल गुप्त गुरू ।  
 (४५) पुस्त्यार्थ—लेखक जगन्मोहन वर्मा ।  
 (४६, ४७) तर्कशास्त्र, दो भाग—लेखक गुलाबराय एम० ए० ।

माला की प्रत्येक पुस्तक या उसका किसी भाग का मूल्य १।) है। पर स्थायी प्राहकों को सब पुस्तकें वारह बारह आने में दो जाती हैं ।

एक काष्ठ भेकरक उच्चमोचम पुस्तकों का बड़ा और नया खूबीयत संग्रहालय ।

इण्डियन प्रेस लिमिटेड,  
 बनारस द्वाबनी ।



## आवश्यक निवेदन

हिन्दी शब्दसागर अब समाप्ति पर है। यह शब्द कोश प्रायः दो या तीन संख्याओं में समाप्त हो जायगा, और इसकी समाप्ति में अधिक से अधिक ४-५ मास का समय लगेगा। विचार यह होता है कि इस शब्दसागर में जो शब्द छूट गए हैं, वे अन्त में परिशिष्ट रूप में दे दिए जायें। कोश-कार्यालय में इस प्रकार के कुछ शब्दों का संग्रह प्रस्तुत है; परंतु यह संग्रह किसी प्रकार पूर्ण नहीं कहा जा सकता। अतः कोश के ग्राहकों तथा हिंदी के अन्त्यान्त्य समस्त विश्वाम्नी पाठकों, समालोचकों, सम्पादकों तथा दूसरे विद्वानों से सभा का नम्र निवेदन है कि आप लोगों के देखने में जो शब्द इस शब्दसागर में छूटे हुए हों, वे सब यथासाध्य द्युपत्ति और अर्थ आदि के सहित सभा में लिख भेजने की कृपा करें। उन लोगों के थोड़ा थोड़ा कष्ट उठाने पर ही इस कोश के एक अंगव की बहुत बड़ी पूर्ति हो जायगी। जो लोग इस प्रकार सभा में शब्द संग्रहीत करके भेजने की कृपा करेंगे, सभा उनकी अत्यन्त अनुग्रहीत होगी। यदि इस कार्यों के लिये पुरस्कार की आवश्यकता होगी, तो उस पर भी सभा विचार करेगी।

नागरीप्रचारिणी सभा  
काशी।  
१५-११-२७.

रघुमसुन्दरदास  
सम्पादक  
हिंदी शब्दसागर।

# हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

संपादक

श्यामसुंदरदास वी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल

रामचंद्र वर्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

१९२७

मूल्य १)

डाक न्यंय अतिरिक्त

## संकेताक्षरों का विवरण

५० = शंकरजी भाषा  
 ५१ = शरपी भाषा  
 ५२ = शुकनास वाङ्म  
 ५३ = शनैकर्थनाममाहा  
 ५४ = अपभ्रंश  
 ५५ = अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय  
 ५६ = अर्जुन भाषा  
 ५७ = अक्षय प्रयोग  
 ५८ = अक्षय  
 ५९ = आनन्दवन = कवि आनन्दवन  
 ६० = इयराती भाषा  
 ६१ = उदाहरण  
 ६२ = उदारचरित = उदारचरितचरित  
 ६३ = उपसर्ग  
 ६४ = उभयलिङ्ग  
 ६५ = उष = उषवीर्य उपनिषद्  
 ६६ = कवीरदास  
 ६७ = केदायदास  
 ६८ = कौकिल्य देश की भाषा  
 ६९ = क्रिया  
 ७० = क्रिया अक्रमक  
 ७१ = क्रियाप्रयोग  
 ७२ = क्रियाविशेषण  
 ७३ = क्रियासूत्र  
 ७४ = कश्चित् अर्थात् इसका प्रयोग  
 बहुत कम देखने में आया है।  
 ७५ = खानखाना = अशुभुरहीम खानखाना  
 ७६ = या गि = शास्त्र = गिरि-  
 धरदास (शं गोपालचंद्र)  
 ७७ = गिरिधर = गिरिधरदास (कुंड-  
 लियावाले)  
 ७८ = गुजराती भाषा

गुमाव = गुमान मिश्र  
 गोपाल = गिरिधरदास ( , या  
 गोपालचंद्र )  
 घरण = घरणचंद्रिका  
 चित्तामणि = कवि चित्तामणि  
 त्रिपाठी  
 छीन = छीनस्वामी  
 जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी  
 जाया = जाया द्वीप की भाषा  
 ज्यो = ज्योतिष  
 डि = डिगल भाषा  
 दु = दुर्की भाषा  
 तुलसी = तुलसीदास  
 तोप = कवि तोप  
 दादू = दादूदास  
 दीनदयालु = दीनदयालु गिरि  
 दूल्हा = कवि दूल्हा  
 दे = देशी  
 देव = देव कवि ( मैनपुरीवाले )  
 देश = देशज  
 द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी  
 नागरी = नागरीदास  
 नाभा = नाभादास  
 निश्चल = निश्चलदास  
 पं = पंजाबी भाषा  
 पद्माकर = पद्माकर अह  
 पर्या = पर्याय  
 पा = पांडी भाषा  
 पु = पुराण  
 पुं = पुरानी दिन्दी  
 पुत्र = पुत्रगाणी भाषा  
 पू = पूरबी हिंदी

प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र  
 प्रत्यय = प्रत्यय  
 प्रा = प्राकृत भाषा  
 प्रिया = प्रियादास  
 प्रे = प्रयागक  
 प्रे = प्रे = प्रेनसागर  
 फ = फरासीसी भाषा  
 फा = फारसी भाषा  
 बेंग = बेंगल भाषा  
 बरनी = बरनी भाषा  
 बटु = बटुवचन  
 बिहारी = कवि बिहारीलाल  
 बुं = बुं = बुं देलखरी बोली  
 बेनी = कवि बेनी प्रवीण  
 भाव = भाववाचक  
 भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी  
 मनिराम = कवि मनिराम त्रिपाठी  
 मल = मलयालम भाषा  
 मल्लूक = मल्लूकदास  
 मि = मिलाओ  
 मुहा = मुहाविर  
 यू = यूनानी भाषा  
 यौ = यौगिक तथा दो या श-  
 चिक पदों के पद  
 रघु = रघुनाथदास  
 रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन  
 रघुराज = महाराज रघुराजसिंह  
 रीवांनिरां  
 रसखान = रसखान इमामीन

लब्ध = लब्धवाचक  
 लता = लताकरी भाषा कर्णा  
 हिंदुस्तानी सहजिबों का  
 योरी  
 लाल = लाल कवि ( अग्रप्रकाश  
 वाले )  
 छे = छेदिन भाषा  
 वि = विदेशी  
 विश्राम = विश्रामसागर  
 व्यंग्यापं = व्यंग्यापं होमुदी  
 स्वा = स्वाकृत  
 स्वास = अंबिकादत्त स्वास  
 रां = दि = शंकर दिग्गज  
 शं = शंकर सतसई  
 सं = संस्कृत  
 संयो = संयोजक अक्षय  
 संयो = कि = संयोज्य  
 स = सक्रमक  
 सवल = सवलसिंह चौहान  
 समा वि = समावितास  
 सर्व = सर्वनाम  
 सुपाकर = सुपाकर द्विवेदी  
 सूदन = सूदनकवि  
 सूर = सूरदास  
 सि = सिंघों द्वारा प्रयुक्त  
 सी = सीलिङ्ग  
 स्पे = स्पेनी भाषा  
 हि = हिंदी भाषा  
 हनुमान = हनुमानदास  
 हरिदास = स्वामी हरिदास  
 हरिश्चंद्र = भारतेंदु

१ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त होता है।  
 २ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्राकृतिक है।  
 ३ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप प्राग्ग्य है।

सिलावाना—कि० सं० [ हि० सोना का धे० ] किसी को सने में प्रहृत करना। सिलाना।

सिलासिला—संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) बैधा हुआ तार। क्रम परंपरा। (२) श्रेणी। पंक्ति। जैसे,—पहाड़ों का सिलसिला। (३) श्रृंखला। जंजीर। लड़की। (४) व्यवस्था। तरतीब। जैसे,—इसविषयों को सिलसिले से रख दो। (५) कुल परंपरा। वंशानुक्रम।

वि० [ सं० सिल ] (१) भोगा हुआ। आड़े। गीटा। (२) जिस पर पैर फिसले। रपटनवाला। (३) चिकना। उ०—बैँदी भाल समोल मुख, सीस सिलसिले धार। दग भोजि राम बारी, पैसी मइज सिंगार।—बिहारी।

सिलसिलाबंदी—संज्ञा स्त्री० [ फ० + बन्ध० ] (१) क्रम का बंधन। तरतीब। (२) ब्यापारबंदी। पंक्ति बँधाई।

सिलसिलेधार—वि० [ प्र० + फ० ] तरतीबधार। क्रमानुसार।

सिलह—संज्ञा पुं० [ प्र० सिलह ] हथियार। चाक। उ०—आपु गुसल करि सिलह करि हूँ नगर दोइ। दैत नगर तीसरे छे सवार सब कोइ।—सूदन।

सिलहखाना—संज्ञा पुं० [ प्र० सिलह + खाना ] अस्त्रागार। हथियार रखने का स्थान।

सिलहट—संज्ञा पुं० [ देश० ] (१) आसाम का एक नगर। (२) एक प्रकार का भगदनी खान। (३) एक प्रकार की नारंगी जो सिलहट (आसाम) में होती है।

सिलहटिया—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की ताव जिसके आगे पीछे दोनों तरफ के सिके लंबे होते हैं।

सिलहार, सिलहारा—संज्ञा पुं० [ सं० शिल्पकार ] खेत, में गिरा हुआ अनाज धीननेवाला।

सिलहिला—वि० [ हि० सोल, सीट + हीला = जोकर ] [ स्त्री० किलहिला ] जिस पर पैर फिसले। रपटनवाला। कोबड़ से चिकना। उ०—वर कबीर का शिखर पर, जहाँ सिलहली गैल। पाँव न टिके पिपीलिका, झुक न कादे गैल।—कबीर।

सिलही—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार का पत्ती।

सिला—संज्ञा स्त्री० दे० "सिला"। उ०—दूँदें सिला सब चंद्रमुखी परसे पर मंजुल कंज विहारे। कीन्ही मंडी रघुनंदन जू कदना करि कानन को पग धारे।—मूलसी।

संज्ञा पुं० [ सं० सिल ] (१) खेत से कटी फसल उठा ले जाने के पथान् गिरा हुआ अनाज। कटे खेत में से उना हुआ दाना। उ०—करीं जो बधु धरौं सधि पवि सुखल सिधा बयोरी। पंडि उर बरवस दयानिधि दंभ लेत अजोरी।—मूलसी।

कि० प्र०—उनना।—वीनना।

(२) पछोदने या फटने के लिये रखा हुआ अनाज का ढेर।

(३) कटे हुए खेत में गिरे अनाज के दाने चुनने की क्रिया। सिलहृषि।

संज्ञा पुं० [ प्र० सिलह ] बदला। प्यज। पलटा। प्रतीकार।

मुहा०—सिले में = बदले में। उल्लव में।

सिलार्ह—संज्ञा स्त्री० [ हि० सोना + आर्ह (अप्य०) ] (१) सोने का काम। सुई का काम। (२) सोने का ढंग। जैसे,—इस कोट की सिलार्ह अच्छी लड़ी है। (३) सोने की मजदूरी। (४) टैंक। सोचन।

संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक कीड़ा जो प्रायः ऊपर या ऊपर के खेतों में छग जाता है। इसका शरीर भूरापन, छिप हुए गहरा लाल होता है।

सिलाजीत—संज्ञा पुं० [ सं० शिल्पजु ] पत्थर की चट्टानों का लसदार पसेध जो लड़ी भारी पुष्ट माना जाता है। वि० दे० "सिलाजु"।

सिलाना—कि० सं० [ हि० सोना का धे० ] सोने का काम दूसरे से करना। सिलवाना।

कि० सं० दे० "सिराना"।

सिलापाक—संज्ञा पुं० [ हि० शिला + पाक ] पथरकूल। छरीला। झील।

सिलाबी—वि० [ हि० सीट, सोल + बा० धा० = पानी ] सोदबाला। तर।

सिलारस—संज्ञा पुं० [ सं० शिलारस ] (१) सिरहक वृक्ष। (२) सिरहक वृक्ष का निर्यास या गोंद जो बहुत सुगंधित होता है।

विशेष—एक पेड़ एसियाई कीचक के दक्खिन के जंगलों में बहुत होता है। इसका निर्यास 'सिलारस' के नाम से बिकता है और औषध के काम में भाता है।

सिलाघट—संज्ञा पुं० [ सं० शिला + घट ] पत्थर काटने और गढ़नेवाले। संगतसाध। उ०—अली-अरदात छाँ को लिखा कि प्लासी बेलदार और सिलाघट भेज कर रत्ना चौदा करे।—देवीप्रसाद।

सिलासा—संज्ञा पुं० [ सं० शिपासार ] लोहा।

सिलाह—संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) निरह यकतर। कवच। उ०—आली की बाँगी कसी यों उरोजनि मानो सिपाही सिलाह किये है।—महाकाल। (२) अछ-पात्र। हथियार।

सिलाहखाना—संज्ञा पुं० [ प्र० + फ० ] हथियार रखने का स्थान। शस्त्रालय। अस्त्रागार।

सिलाहयंद—वि० [ प्र० + फ० ] सतक। हथियारबंद। शस्त्रों से सुसजित।

सिलाहर—संज्ञा पुं० [ सं० शिल्प + हर ] (१) खेत में से एक एक दाना अन्न धीनकर, निबोह करनेवाला अनुप्य। सिला धीननेवाला। (२) अकिंचन। दरिद्र।

सिलाहसाज—संज्ञा पुं० [ प्र० + फ० ] हथियार बनानेवाला।

सिलाही-संज्ञा पुं० [ अ० सिलाह + ई (प्रत्य०) ] - दाय्य धारण करने-वाला । सैनिक । सिपाही ।

सिलिगिया-संज्ञा स्त्री० [ सिलिगि ] पूरबी हिमालय के सिलांग प्रदेश में पाई जानेवाली एक प्रकार की भेड़ ।

सिलिप-संज्ञा पुं० दे० "सिलिप" । उ०—खेती, वनि, विद्या, वनिज, सेवा सिलिप सुकाज । तुलसी सुरतार, सुरपेनु महि, अभिमत भोग विलास ।—मुछसी ।

सिलिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० सिला ] एक प्रकार का पत्थर जो मकान बनाने के काम में आता है ।

सिलियार, सिलियारा-संज्ञा पुं० दे० "सिलाहर" ।

सिलिसिलिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोंद । लासा ।

सिलीध-संज्ञा पुं० दे० "सिलीध" ।

सिलीमुख-संज्ञा पुं० दे० "सिलीमुख" ।

सिलेट-संज्ञा स्त्री० दे० "स्लेट" ।

सिलौध-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की यड़ी मछली जो भारत और यमा की नदियों में पाई जाती है । यह छः फुट तक लंबी होती है ।

सिलौच-संज्ञा पुं० [ सं० शिलोच ] एक पर्वत जो गंगों तट पर विश्वामित्र के सिद्धाश्रम से मिथिला जाते समय राम को मार्ग में मिला था । उ०—यह हिमवंत सिलौच नामा । शृंग गंग तट अति अभिरामा ।—रघुराज ।

सिलौआ-संज्ञा पुं० [ देश० ] सन के मोटे रेसो जिनसे डोकरी बनाई जाती है ।

सिलौट, सिलौटा-संज्ञा पुं० [ हिं० सिल + पड़ा ] (१) सिल । (२) सिल तथा पड़ा ।

सिलौटी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सिल + शीटी (प्रत्य०) ] मार्ग, मसाला आदि पीसने की छोटी सिल ।

सिलक-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) रेताम । (२) रेतामो कपड़ा ।

सिलप-संज्ञा पुं० दे० "सिलिप" ।

सिल्लकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गल्लकी वृक्ष । सलई का पद ।

सिल्ला-संज्ञा पुं० [ सं० शिल ] (१) अनाज की मालियाँ या दाने जो फसल कट जाने पर खेत में पड़े रह जाते हैं और जिन्हें चुनकर कुछ लोग निर्याद करते हैं ।

मुहा०—सिल्ला बीनना या चुनना = खेत म गिरे अनाज के दाने चुनना । उ०—कविता खेती उन लई, सिल्ला विनन मरु । (२) खलियान में गिरा हुआ अनाज का दाना । (३) खलियान में धरसाने के स्थान पर लगा हुआ भूसे का ढेर जिसमें कुछ दाने भी चले जाते हैं ।

सिल्ली-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिला ] (१) पत्थर का सात आठ अंगुल लंबा छोटा टुकड़ा जिस पर घिसकर नाई उठते की धार तेज करते हैं । इपियार की धार खोली करने का पत्थर । सान । (२) आरे से चौरकर पेदी से निकाला हुआ लपटा ।

फलक । पटरी । (३) पत्थर की छोटी पतली पटिया ।

नदी में यह स्थान जहाँ पानी कम और धारा बहुत होती है । (मासी) ।

संज्ञा स्त्री० [ हिं० सिला ] फटकने के लिये लगाया हुआ अनाज का ढेर ।

संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार का जलपशु जिसका तिल किया जाता है ।

विशेष—यह हाथ भर के लगभग लंबा होता है और तल के किनारे दलदलों के पास पाया जाता है । यह मछली पकड़ने के लिये पानी में गोता लगाता है ।

सिलह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिलारस नामक गंध द्रव्य । (२) सिलारस का पेड़ ।

सिलहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिलारस नामक गंध द्रव्य । कपित्थ कपिचंचल ।

सिलहकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह पेड़ जिससे सिलारस निकलता है । (२) कुंदुरु । शल्लुकी निर्यास ।

सिघ-संज्ञा पुं० दे० "शिव" ।

सिघई-संज्ञा स्त्री० [ सं० सभिना = गेहूँ का गुँथा हुआ भाग ] गुँथे हुए आटे के सूत के से सूखे लच्छे जो दूध में पकाकर खा जाते हैं । सिघैयाँ ।

मुहा०—सिघैयाँ यटना या तोड़ना = गोल आटे की हथेलियों बीच में रखते हुए सूत के से लच्छे बनाना । सिघैयाँ बनाना सिघैयाँ पूरना = दे० "सिघैयाँ बनाना" ।

सिघक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सीनेवाला । (२) दूरी ।

सिघक-संज्ञा पुं० [ सं० ] हामी । हस्ती । गज ।

सिघलिगी-संज्ञा स्त्री० दे० "सिघलिगी" ।

सिघस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वध । कपड़ा । (२) पथ । शोक ।

सिघा-संज्ञा स्त्री० दे० "शिव" ।

प्रत्य० [ अ० ] अतिरिक्त । छोड़कर । अलावा । बाद देकर जैसे,—तुम्हारे सिघा और यहाँ कोई नहीं आया ।

वि० अधिक । ज्यादा । फालतू ।

सिघार-प्रत्य० दे० "सिघाव", "सिघा" ।

सिघार-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की मिट्टी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सिघारई" ।

सिघान-संज्ञा पुं० [ सं० सीघान ] (१) किसी प्रदेश का अति भाग जिसके आगे दूसरा प्रदेश पड़ता हो । हद्द । सरहद्द सीमा । (२) किसी गाँव के छोर पर की भूमि । गाँव की हद्द । सीमा । (३) गाँव के अंतर्गत भूमि । (४) फसल क्षेत्रवार हो जाने पर जमींदार और किसान में अनाज का बँटवारा ।

सिघाय-कि० वि० [ अ० सिघा ] अतिरिक्त । अलावा । छोड़कर बाद देकर ।

वि० (१) भावव्यक्तता से अधिक। ज़रूरत से ज्यादा।  
बेशी। (२) अधिक। ज्यादा। (३) ऊपरी। वालाई।  
मामूली से अतिरिक्त और।

संज्ञा पुं० यह आमदनी जो मुकदर वसूली के ऊपर हो।

सिवार-संज्ञा स्त्री० पुं० [ सं० शैवाल ] पानी में बालों के लच्छों की तरह फैलनेवाला एक तृण।

विशेष—यह नदियों में प्रायः होता है। इसका रंग हलका हरा होता है। यह चीनी साक्त करने तथा दवा के काम में आता है। वैद्यक में यह कर्मला, कड़वा, मधुर, शीतल, हलका, तिग्म, नमकीन, दस्तावर, धाव को भरनेवाला तथा विश्व को नाश करनेवाला कहा गया है। उ०—(क) पग न इत उत धरत पावत उरसि मोह सिवार।—पूर।  
(ख) चलती लता-सिवार की, जल तरंग के संग।  
बढ़वानल को जनु धरये, धूम धूमरो रंग।—तुलसी।

सिवाल-संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "सिवार"। उ०—नीलाश्वर नील जाल बीच हो उरसि सिवाल लट जाल में लपटि परयो।—देव।

सिवाल-संज्ञा पुं० [ सं० शैवाल ] शिव का मंदिर।

सिवाली-संज्ञा पुं० [ सं० शैवाल ] एक प्रकार का मरकत या पषा जिसका रंग फुल-हलका होता है और जिसमें कमी कमी लछाई की भी कुछ आभा रहती है।

सिवि-संज्ञा पुं० दे० "शिवि"।

सिविका-संज्ञा स्त्री० दे० "सिविका"। उ०—राजा की रजाइ पाह सचिव सहेली प्राइ सतानंद व्याण सिय सिविका चढाई के।—तुलसी।

सिविर-संज्ञा पुं० दे० "सिविर"। उ०—बसत सिविर मधि मगध अंध सुत। जिमि उदगन मधि रवि ससि छवि सुत।—गि० दास।

सिविल-वि० [ अं० ] (१) नगर संबंधी। नागरिक।  
(२) नगर की शान्ति के समय-देख रेल या चौकसी करनेवाला। जैसे,—सिविल पुलिस। (३) मुक्की। माली। (४) शालीन। सभ्य। मिलनसार।

सिविल सर्जन-संज्ञा पुं० [ अं० ] सरकारी बड़ा डाक्टर जिसे जिले भर के अस्पतालों, जेलखानों तथा पागलखानों को देखने का अधिकार होता है।

सिविल सर्विस-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] अंगरेजी सरकार की एक विशेष परीक्षा जिसमें उपायों व्यक्ति देश के प्रबंध और शासन में ऊँचे पद पर नियुक्त होते हैं।

सिविलियन-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) सिविल सर्विस-परीक्षा पास किया हुआ मनुष्य। (२) मुक्की अफसर। देश के शासन और प्रबंध विभाग का कर्मचारी।

सिवैर्यो-संज्ञा स्त्री० दे० "सिवैर्य"।

सिप-संज्ञा स्त्री० [ अ० सिप ] संज्ञा की दोरी। उ०—हस्ती

हाथ सिप सब बीला। दौड़ भाय इक पाहहिं छीला।—जायसी।

स्त्री० वि० दे० "सिप"।

सिप-संज्ञा पुं० दे० "सिप"। उ०—नाय रजायसु राय को ऋपराज योलाए। सिप्य सचिव सेवक सखा सादर सिर नाए।—तुलसी।

सिसकना-क्रि० प्र० [ अनु० या सं० सीर+करण ] (१) भीतर हो भीतर रोने में रुक रुककर निकलती हुई साँस छोड़ना। जैसे,—लड़का सिसक सिसककर रोता है। (२) रोक रोककर लंबी साँस छोड़ने हुए भीतर ही भीतर रोना। शब्द निकालकर न रोना। तुलकर न रोना।

मुद्दा०—सिसकती मिनरती=मेथी कुँजे गंर रोने स्या का (ख)।

(३) जी धक्कना। धक्कनी होना। बहुत भय लगना। जैसे,—बड़ाँ जाते हुए जी सिसकता है। (४) उलटी साँस लेना। हँसकियाँ भरना। मरने के निकट होना। (५) तरसना (प्राप्ति के लिये) रोना। (पाने के लिये) प्याकुल होना। उ०—मसुहिं थिलेकि मुनिगन पुलके कहत भुरि भाग भए सब नीच नारि नर हैं। तुलसी से सुख लाहु लहत किरत कोल जाको सिसकत सुर विधि हरि हर है।—तुलसी।

सिसकारना-क्रि० प्र० [ अनु० सी सी+करना ] (१) जीम दवाते हुए वायु मुँह से छोड़ना। सीटी का सा शब्द मुँह से निकालना। सुसकारना। (२) इस प्रकार के शब्द से कुत्ते को किसी ओर लपकाना। लहकारना।

संयो० क्रि०—देना।

(३) जीम दवाते हुए मुँह से साँस साँचकर सी सी शब्द निकालना। अर्थात् पीड़ा या आनंद के कारण मुँह से साँस साँचना। शीकार करना।

सिसकारी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सिसकारना ] (१) सिसकारने का शब्द। जीम दवाते हुए मुँह से वायु छोड़ने का शब्द। सीटी का सा शब्द। (२) कुत्ते को किसी ओर लपकाने के लिये सीटी का शब्द। (३) जीम दवाते हुए मुँह से साँस साँचना का शब्द। अर्थात् पीड़ा या आनंद के कारण मुँह से निकला हुआ 'सी सी' शब्द। शीकार।

क्रि० प्र०—देना।—भरना।

सिसकी-संज्ञा स्त्री० [ अनु० सी सी वा सं० सीर ] (१) भीतर ही भीतर रोने में रुक रुककर निकलती हुई साँस का शब्द। तुलकर न रोने का शब्द। रुकनी हुई लंबी साँस भरने का शब्द।

क्रि० प्र०—भरना।—लेना।

(२) मिसकारी। शीकार।

**सिसिवाँद**—संज्ञा स्त्री० [ १ + गंध ] मछली की सी गंध। विसावंध।  
**सिसिर**—संज्ञा पुं० दे० "सितिर"। उ०—(क) चलत चलत  
 लै के चले, सय सुख संग ल्हाय। प्रीयम वासर सिसिर  
 निसि, पिय मो पास बसाय।—विहारी। (ख) पावस  
 परपि रहे उधारे। सिसिर समै बसि नीर मझारे।—पद्माकर।  
**सिसु**—संज्ञा पुं० दे० "सिशु"। उ०—(क) लोचनाभिराम  
 यनस्याम राम रूप सिसु, सखी कहँ सखी सेाँ तू प्रेम पय  
 पालि री।—तुलसी। (ख) देवर फूल हने जु सिसु उठी  
 हरति अँग फूल। हँसी करत औषध सखिनि देह ददोरनि  
 भूल।—विहारी।  
**सिसुता**—संज्ञा स्त्री० दे० "सिशुता"। उ०—(क) स्वाम के  
 संग सदा बिलखी सिसुता में सुता में कष्ट नहीं जाण्यो।—  
 देव। (ख) खुदी न सिसुता की झलक, झलक्यो जेवन भंग।  
 दीपति देखि दुहुन मिलि, दिपति ताफता रंग।—विहारी।  
**सिसुपाल**—संज्ञा पुं० दे० "सिशुपाल"।  
**सिसुमारचक**—संज्ञा पुं० दे० "सिशुमारचक"। उ०—एक एक  
 भग देखि अनेकन उडगन वारिय। बसत मनहुँ सिसुमार-  
 चक तन हमि निरधारिय।—गि० दास।  
**सिसुवा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सृष्टि करने की इच्छा। रचने या  
 बनाने की इच्छा।  
**सिसुजु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सृष्ट करने की इच्छा रखनेवाला। रचना  
 का इच्छुक। उ०—जाकी मुसुजु जे प्रेम लुभुजु गुण यह  
 विश्व सिसुजु सदा ही। काल जिशुजु सखुजु कृपा की  
 स्वपानन स्वधर स्वपक्ष प्रिया ही।—रघुराज।  
**सिसोदिया**—संज्ञा पुं० [ सिधो (स्थान) ] गुहलौत राजपूतों की एक  
 शाखा जिसकी प्रतिष्ठा क्षत्रिय कुलों में सय से अधिक है और  
 जिसकी प्राचीन राजधानी चित्तौड़ और आधुनिक राजधानी  
 उदयपुर है।  
**चित्रोय**—अत्रियों में चित्तौड़ या उदयपुर का घराना सुवर्ण-  
 वंशीय महाराज रामचन्द्र की वंश परंपरा में माना जाता  
 है। इन क्षत्रियों का पहले गुजरात के यहुभीपुर नामक  
 स्थान में जाना कहा जाता है। वहाँ से यापारावल ने  
 आकर चित्तौड़ की तत्कालीन सोरी शासक से एकत्र अपनी  
 राजधानी बनाया। मुसलमानों के आने पर भी चित्तौड़  
 स्वतंत्र रहा और हिन्दू शक्ति का प्रधान स्थान माना जाता  
 था। चित्तौड़ में बड़े बड़े पराक्रमी राणा ही गुप्त हैं।  
 राणा समरसिंह, राणा कुंभा, राणा सांगा आदि मुसलमानों  
 से बड़ी वीरता से लड़े थे। प्रसिद्ध वीर महाराणा प्रताप किस  
 प्रकार अक्रूर से अपनी स्वाधीनता के लिये लड़े, यह प्रसिद्ध  
 ही है। सिसोद नामक स्थान में कुछ दिन धसन के कारण  
 गुहिलौतों की यह शाखा सिसोदिया कहलाई।  
**सिञ्ज**—संज्ञा पुं० दे० "सिञ्ज"।

**सिस्व**—संज्ञा पुं० दे० "सिस्व"।  
**सिद्धा**—संज्ञा पुं० [ कां० सेप + अ० हर् ] यह स्थान जहाँ तीन  
 हर् मिलती हैं।  
**सिद्धार्थ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अड्डता। वासक वृक्ष।  
**सिद्धरना**—किं० अ० [ सं० रोन + ना ] (१) ठंड से कौपना।  
 (२) कौपना। कंठित होना। (३) भयभीत होना।  
 दहलना। उ०—छनक बियोग कुं याद परे अतिसे हिय  
 सिद्धरत।—ध्यास। (४) रोंगे खड़े होना।  
**सिद्धरा**—संज्ञा पुं० दे० "सेहरा"।  
**सिद्धराना**—किं० सं० [ हिं० सिद्धरना ] (१) सरदी से कौपना।  
 शीत से कंठित करना। (२) कौपना। कंठित करना।  
 (३) भयभीत करना। दहलाना।  
 किं० सं०, किं० अ० दे० "सहलाना"।  
**सिद्धरी**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सिद्धरना ] (१) शीतकंप। ठंड के  
 कारण कँपपी। (२) कंप। कँपपी। (३) मय।  
 दहलना। (४) जूझी का सुवार। (५) रोंगे खड़े होना।  
 लोमहर्ष।  
**सिद्धरु**—संज्ञा पुं० [ देश० ] संभाल। सिद्धवार।  
**सिद्धलाना**—किं० अ० [ सं० शीतल ] (१) सिराना। ठंडा होना।  
 (२) शीत खा जाना। सीढ़ खाना। नम होना। (३) ठंड  
 पड़ना। सरदी पड़ना।  
**सिद्धलाना**—संज्ञा पुं० [ हिं० सिद्धलाना ] सरदी। ठंड। जादा।  
**सिद्धली**—संज्ञा स्त्री० [ सं० शीतली ] शीतली जटा। शीतली छता।  
**सिद्धान**—संज्ञा पुं० [ सं० सिद्धय ] मंदूर। जोड़किट्ट।  
**सिद्धाना**—किं० अ० [ सं० शिष्या ] (१) शिष्या करना। डाढ़ करना।  
 (२) किसी अच्छी वस्तु को देखकर इस बात से दुखी होना  
 कि वैसी वस्तु हमारे पास नहीं है। स्वप्न करना।  
 उ०—द्वारिका की देखि छयि सुर असुर सकल सिद्धान्त।—  
 सुर। (३) पाने के लिये ललचना। लुभाना। उ०—सुर  
 प्रभु को निरखि गोपी मनहि मनहि सिद्धान्ति।—सुर।  
 (४) मुख्य होना। मोहित होना। उ०—(क) सुर स्वाम  
 मुख निरखि जसोदा मनही मनहि सिद्धानी।—सुर। (ख)  
 लाल अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिद्धान्ति।—  
 विहारी।  
 किं० सं० (१) शिष्या की दृष्टि से देखना। (२) अभिलाष  
 की दृष्टि से देखना। ललचना। उ०—समभ समाज राज  
 दसरथ को लोकप सुकल सिद्धान्ति।—तुलसी।  
**सिद्धारना**—किं० सं० [ देश० ] (१) तलाश करना। ढूँढना।  
 (२) छुटाना। उ०—हम कल्पन को म्याह विचारो। इनहि  
 जोग पर तुमहु सिद्धान्ति।—पद्माकर।  
**सिद्धिकन**—किं० अ० [ सं० शुष्क ] सूखना। (कसल का)  
**सिद्धुड**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेहुँद का पेड़। खुसी। धूर।

**सिंहोड़, सिंहोरा**—संज्ञा पुं० [ सं० सिंहुड ] बृहत् । सेहूँड़ ।  
स्त्री । उ०—येगि बोलि, बलि, बरनिपु करवृत्ति कजोरे ।  
तुलसी बलि रूथो पई सठ सासि सिंहोरे ।—तुलसी ।

**सौंक**—संज्ञा स्त्री० [ सं० शौक ] (१) मूँज या सरपत की जाति के एक पीपे के बीच का सीधा-पतला कांड जिसमें फूल या वृथा लगता है । मूँज आदि की पतली तीली ।

**विशेष**—इस कांड का पेरा मंटी सूई के बराबर होता है और यह कई कामों में आता है । बहुत सी चीजों को एक में बाँधकर धातु बनाते हैं । उ०—सौंक धतुप हित सिखन सकुचि प्रभु छीन । मुदित माँगि हक धनुही नृप हँसि दीन ।—तुलसी ।

(२) किसी नृप का सूक्ष्म कांड । किसी घास का महीन डंडल । (३) किसी घास फूस के महीन डंडल का टुकड़ा । तिनका । (४) शंख । तीली । सूई की तरह पतला लंबा खंड । (५) नाक का एक गहना । लौंग । कील । उ०—जदित नीलमनि जगमगति सौंक मुहाई नाक । मनी अली चंपक कली बसि रस लेत निसौंक ।—विहारी । (६) कपड़े पर की सड़ी महीन धारी ।

**सौंकपाट**—संज्ञा स्त्री० [ देस० ] एक प्रकार की बत्तख ।

**सौंकर**—संज्ञा पुं० [ हिं० सौंक ] सौंक में लगा फूल या वृथा ।

**सौंका**—संज्ञा पुं० [ हिं० सौंक ] पेंड़ पौधों की बहुत पतली उप-शाखा या टहनियों जिसमें पत्तियाँ गुठी रहनी या फूल लगते हैं । बाँधी । जैसे,—नीम का सौंका ।

**सौंकिया**—संज्ञा पुं० [ हिं० सौंक + श्या (शब्द०) ] एक प्रकार का रंगीन कपड़ा जिसमें सौंक सी महीन सूधी धारियाँ जिलजुल पास पासे होती हैं । जैसे,—सौंकिये का पायजामा ।

वि० सौंक सा मतब्ध ।

**मुहा०**—सौंकिया पहलवान = दुबला पतला आदमी जो अपने को बड़ा बली समझता हो ।

**सौंग**—संज्ञा पुं० [ सं० शृंग ] (१) सुरवाल कुट पशुओं के सिर के दोनों ओर शाला के समान निकले हुए कड़े तुड़ीले अथवा जिनसे वे आक्रमण करते हैं । विषाण । जैसे,—गाय के सौंग, हिरन के सौंग ।

**विशेष**—सौंग कई प्रकार के होते हैं और उनकी योजना भी भिन्न भिन्न उपादानों की होती है । गाय, भैंस आदि के पोले सौंग ही असली सौंग हैं जो अंडपातु और चूने आदि से संघटित संतुओं के योग से बने होते हैं और बराबर रहते हैं । बारहसिंगों के सौंग टूट्टी के होने हैं और हर साछ गिरते और मरू निकलते हैं ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—मारना ।

**मुहा०**—(किसी के सिर पर) सौंग होना = जोर विरोधता देना । जोर व्यक्तित्व देना । जैसे से बड़कर जोर बनाना (व्यंग्य) ।

सौंग कटाकर बछड़ों में मिलना = रूढ़े होकर बंधों में मिलना । किसी सामने का बंधों का साथ देना । सौंग दिखाना = भंगूटा दिखाना । जोरें बखु न देना और चिदान । सौंग निकलना = (१) चौपाय का जवान होना । (२) खतराना । पागलपन करना । मनकना । कहीं सौंग समाना = कही दिखाना मिलना । शरप मिलना । सौंग पर मारना = कुद्व न समझना । तुच्छ समझना । कुद्व परना न करना ।

(२) सौंग का बना एक बाजा जो फूँक कर बजाया जाता है । सिंगी । उ०—सौंग बजावत देखि सुकवि मेरे दग अँटके ।—ध्यास । (३) पुरुष की इन्द्रिय । (बाजाक)

**सौंगड़ा**—संज्ञा पुं० [ हिं० सौंग + ङा (प्रत्य०) ] (१) बारूद रखने का सौंग का चोंगा । बारूददान । (२) एक प्रकार का बाजा जो मुँह से बजाया जाता है । सिंगी ।

**सौंगना**—क्रि० सं० [ हिं० सौंग ] सौंग देखकर चोरी के पशु एक-दुना । चोरी के चौपायों की शिनाहत करना ।

**सौंगरी**—संज्ञा स्त्री० [ देस० ] एक प्रकार का लोबिया या फली जिसकी तरकारी होती है । मोगरे की फली । सौंगर । उ०—सूरन करि तरि सरस तोहई । सेनि सौंगरी छमकि शोरई ।—सूर ।

**सौंगी**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सौंग ] (१) हरिन के सौंग का बना बाजा जो मुँह से बजाया जाता है । सिंगी । उ०—सौंगी संव सेग डक बाजे । बंसकार महुआ सूर साजे ।—जायसी । (२) यह पौला सौंग जिससे जराई शरीर से दूषित रक्त खींचते हैं ।

**मुहा०**—सौंगी लगाना या तोड़ना = (१) सौंगी से रक्त खींचना । (२) चुनन करना । (बाजार)

(३) एक प्रकार की मछली जिसके मुँह के दोनों ओर सौंग से निकले रहते हैं । तोमड़ी । उ०—सौंगी, भाकुर विनि सब धरी ।—जायसी ।

**सौंगन**—संज्ञा पुं० [ देस० ] जोड़ों के भांये पर दो या अधिक औंरीयाला टीका ।

**सौंच**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सौचन ] (१) सौंचने की क्रिया या भाव । सिंघाई । (२) छिद्रकाव ।

**सौंचना**—क्रि० सं० [ सं० सिंचन ] (१) पानी देना । पानी से भरना । आश्रयाणी करना । पढ़ाना । जैसे,—खेत सौंचना, धगीचा सौंचना । उ०—अति अनुराग मुधाकर सौंचते दादिम बीज समान ।—सूर । (२) पानी छिद्रकर तर करना । भिगोना । (३) छिद्रकना । (पानी आदि) डालना या छितराना । उ०—(क) मार सुमार करी हरी अरी मरी हित मारि । सौंच गुडाय धरी धरी अरी बरोहि न मारि ।—विहारी । (घ) अर्चि पय उफनात सौंचत सखिल ज्यों सकुचाइ ।—तुलसी ।



सौचो-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सौचन ] सौचने का समय ।  
 सौच्य-संज्ञा पुं० [ सं० सीमा ] सीमा । दृढ़ । गम्यार्थ । उ०—  
 (क) भावत देखि आतुल बल सौच्यो।—तुलसी । (ग)  
 सुखनि की सौच्य सोहै सुजस समूह फैले मानो अमरावती  
 को देखि कै हंसतु है।—गुमान । (ग) सुख की सौच्य  
 अवधि आनंद की अवधि थिलोकीहैं जाईहैं।—तुलसी ।  
 मुहा०—सौच्य चरना या कौटुंब = भणिकार दिखाना । दबाना ।  
 चरदावती करना । उ०—हैं कके दै सीस रंस के जो दृष्टि जन की  
 सौच्य चरै।—तुलसी ।  
 सी-वि० स्त्री० [ सं० सम, दि० सा ] सम । समान । तुल्य । सदृश ।  
 जैसे, वह सी बातही सी है । उ०—(क) मूरति की सुरति  
 कही न परे तुलसी पे जाई सोई जाके उर कसकै कक  
 सी।—तुलसी । (ख) दुर्गे न निचर घटौ दिष्ट प रावरी  
 कुचाल । विप सी लागति है बुरीहैंसी खिसी की लाल।—  
 विहारी । (ग) सरद चंद की चौदनी मंद परति सी  
 जाति ।—पद्माकर ।  
 मुहा०—अपनी सी = अपने भरसक वहाँ तक करने से हो सके,  
 यहाँ तक । उ०—मैं अपनी सी बहुत करी, री।—मूर ।  
 संज्ञा स्त्री० [ भुज० ] वह शब्द जो अत्यंत पीड़ा या आनंद-  
 रसावाहक के समय मुँह से निकलता है । दर्दकार । सिस-  
 कारी । उ०—“सी” करनवारी सेद-सीकरनवारी रति सी  
 करन कारी सो बसिकरनवारी है।—पद्माकर ।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० सीत ] मीठकी बोआई ।  
 सीउञ्ज-संज्ञा पुं० [ सं० सीत ] शीत । ठंडा । उ०—(क) कीन्हैसि  
 धूप सीउ भी छाहैं।—जायसी । (ख) जहाँ भातु तहैं रदा  
 न सीऊ।—जायसी ।  
 सीकचा-संज्ञा पुं० [ सं० सीख ] छोड़े की छद् ।  
 सीकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल कण । पानी की बूँद । छोट ।  
 उ०—(क) भ्रम स्वेद सीकर गुंठ मंत्रित रूप अंबुज  
 कोर।—सूर । (ख) राम नाम रति स्वाति सुधा मुभ सीकर  
 प्रेम पिपासा।—तुलसी । (२) पसीना । स्वेद । कण ।  
 उ०—ज्ञान सीकर सी कहिपु धक सोवत ते अकुलाय उठी  
 बयो।—केशव ।  
 संज्ञा संज्ञा स्त्री० [ सं० शृंगल ] जंजीर । सिकड़ी । उ०—भट  
 धरे अही कर में पड़े सिकर-मुंडन मैं लसत।—गि० दास ।  
 सीकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] डाल का पत्रा हुआ भाग ।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० सीकल ] हथियारों का मोरचा खुड़ाने की  
 क्रिया । हथियार-की सफाई ।  
 सीकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊसर । उ०—सिंह दाहुँल एक हर  
 जोतिनि सीकल पोढ़नि धाना।—कवीर ।  
 सीका-संज्ञा पुं० [ सं० रोपक ] सोने का एक आभूषण जो  
 पर पहना जाता है ।

संज्ञा पुं० [ सं० शिखा ] ऊपर टाँगने की सुतदी आदि की  
 जाती जिस पर वृक्ष वृद्धी आदि का घरतन रखते हैं । छोटा  
 सिकहर ।  
 सीकाकारि-संज्ञा स्त्री० [ ? ] एक प्रकार का वृक्ष जिसकी  
 फलियाँ रीठे की भाँति सिर के बाल आदि मलने के काम  
 में आती हैं । कुछ लोग इसे सातल भी मानते हैं ।  
 सीको-संज्ञा स्त्री० [ हिं० साका ] छोटा सीका या छीका । छोटा सिकहर ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छेद । घुराए । (२) मुँह । मुँहा ।  
 सीकुर-संज्ञा पुं० [ सं० शूक ] गेहूँ, जौ आदि की बाल के ऊपर  
 निकले हुए बाल के से कड़े सूत । शूक । उ०—गदत पाँह  
 जय भाह, यड़ी विधा सीकुर करत । बयों न पीर सरसाह  
 याके हिय भूपति लुम्बो।—गुमान ।  
 सीको-संज्ञा पुं० दे० “सीम” ।  
 सीख-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिक्षा, प्रा० शिक्षा ] (१) शिक्षाने की क्रिया  
 या भाव । शिक्षा । तालिम । (२) वह यात जो सिखाई  
 जाय । (३) परामर्श । सलाह । मंत्रण । उपदेश । उ०—  
 याकी सीख मुनी प्रज फोरे।—सूर ।  
 सीख-संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] (१) छोड़े की लंबी पतली छद् ।  
 शालका । तीली । (२) वह पतली छद् जिसमें गोद पर  
 मांस भूतते हैं । (३) बंधी सूई । सूआ । शंकु । (४) छोड़े  
 की छद् जिससे गहान के पेंडे में आया हुआ पानी नापते  
 हैं । (ख०)  
 सीखचा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छोड़े की सीख जिस पर मांस  
 लपेटकर भूतते हैं । (२) छोड़े की छद् ।  
 सीखन-संज्ञा संज्ञा स्त्री० [ हिं० सीखना ] शिक्षा । सीख ।  
 सीखना-क्रि० सं० [ सं० शिक्षण, प्रा० शिक्षण ] (१) ज्ञान प्राप्त  
 करना । जानकारी प्राप्त करना । किसी से कोई बात जानना ।  
 जैसे,—विद्या सीखना, कोई बात सीखना । (२) किसी  
 कार्य के करने की प्रणाली आदि समझना । काम करने का ढंग  
 आदि जानना । जैसे,—सितार सीखना, शतरंज सीखना ।  
 संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।  
 सांगा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सौचा । सौचा । (२) प्यापार ।  
 पेदा । (३) विभाग । महकना ।  
 सौ—सौमेवार = प्योरेव ।  
 (४) एक प्रकार के वाक्य जो मुसलमानों के विवाह के  
 समय कहे जाते हैं ।  
 संज्ञा पुं० दे० “सिगात” ।  
 सीगारा-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोटा कपड़ा ।  
 संज्ञा पुं० दे० “सिगात” ।  
 सीचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] खारी पानी से मिट्टी निकालने का एक ढंग ।  
 सीचाप-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यक्षिणी  
 स्त्री० दे० “सीस” ।

संज्ञा पुं० [ देश० ] धूर । सेहूँदा ।  
 सौजन्य-क्रि० प्र० दे० "सौजन्य" ।  
 सौकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सिद्धि, प्रा० सिद्धि ] सौजन्य की क्रिया या भाव । गरमी से गलाव ।

सौभना-क्रि० प्र० [ सं० सिद्ध, प्रा० सिद्ध + ना ] (१) अर्च या गरमी पाकर गलना । पकना । घुटना । जैसे,—दाल सौभना, रसोई सौभना । (२) अर्च, या गरमी से मुलायम पदना । ताव खाकर नरम पदना । (३) सूखे हुए चमड़े का नसावे आदि में भीग कर मुलायम होता । (४) ताप या कष्ट सहना । झेना झेलना । (५) कायदेना सहना । तप करना । तपस्या करना । उ०—(क) पृष्ट वहि लागि जनम भरि सीहा । चड़े न भौरहि, भोही रीसा—जायसी । (ख) गनिका गीष अजामिल आदिक है कासी प्रयाग क्य सोझे—तुलसी । (६) सरदी से गलना । बहुत ठंड खाना । (७) ऋण का निपटारा होना ।

सौट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बैठने का स्थान । आसन ।  
 संज्ञा स्त्री० सौटने की क्रिया या भाव । जीट ।  
 सौटना-क्रि० सं० [ वृत्० ] रींग मारना । खोली मारना । बंद बंद कर पातें करना ।

सौट पटा-संज्ञा स्त्री० [ हि० सौटना + (ऊट) पर्याय ] बंद बंद कर की जानेवाली पातें । घमंड भरी बात ।  
 सौटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सौट ] (१) यह पतला महीन शब्द जो ओठों को मोल सिक्केदार नीचे की ओर आघात के साथ वायु निकालने से होता है ।

क्रि० प्र०—बजाना ।  
 मुदा-सौटी देना = सौटी के शब्द से डुलना या भीर धीरे संवेत करना ।

(२) इसी प्रकार का शब्द जो किसी वाग्नि या पंख आदि के भीतर की हवा निकालने से होता है । जैसे,—रेल की सौटी ।  
 मुहा०—सौटी देना = (१) सौटी का शब्द निकालना । जैसे,—रेल सौटी दे रही है । (२) सौटी से सावधान करना ।  
 (३) यह बजाना या खिलौना जिसे बूँकने से उक प्रकार का शब्द निकले ।

सौठ-संज्ञा स्त्री० दे० "सौटी" ।  
 सौठना-संज्ञा पुं० [ सं० अशुद्ध, प्रा० अशुद्ध + ना ] अश्लील गीत जो विषय विवाहादि सामाजिक अवसरों पर गाती है । सौठनी । विवाह की गाली ।

सौठनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सौठना ] विवाह की गाली ।  
 सौठा-सि० [ सं० शिष्ट, प्रा० सिद्ध = बजा हुआ ] नीरस । फीका । बिना स्वाद का । बेजायका ।  
 सौठापन-संज्ञा पुं० [ हि० सौठा + पन ] नीरसता । फीकापन ।  
 सौठी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिष्ट, प्रा० सिद्ध = बजा हुआ ] (१) किसी पद, कृत्, पत्रे आदि का रस निकल जाने पर बचा हुआ

निकम्मा अंश । यह वस्तु जिसका रस या सार निकट्ट गया हो । धूर । जैसे,—अनार की सौठी, माँग की सौठी, पान की सौठी । (२) निस्तार वस्तु । सारहीन पदार्थ । (३) नीरस वस्तु । फीकी चीज ।

सौट्ट-संज्ञा स्त्री० [ सं० सौट ] सौट । तरी । नमी ।  
 सौट्टी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सौट्टी ] (१) किसी ऊँचे स्थान पर क्रम क्रम से चढ़ने के लिये एक के ऊपर एक बना हुआ पैर रखने का स्थान । तिसैनी । जीना । पेंदी । (२) बॉक्स के दो बहों का बना लंबा ढाँचा, जिसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर रखने के लिये ढाँचे लगे रहते हैं और जिसे मिट्टाकर किसी ऊँचे स्थान तक चढ़ते हैं । बॉक्स की पनी पेंदी ।  
 क्रि० प्र०—लगाना ।

यो-सौट्टी का टंडा = पैर रखने के लिये बॉक्स की सौट्टी में नया हुआ टंडा ।

मुहा०—सौट्टी सौट्टी चढ़ना = क्रम क्रम से ऊपर धीरे धीरे चढ़ना । धीरे धीरे उन्नति करना ।

(३) उत्तरोपर उन्नति का क्रम । धीरे धीरे आगे बढ़ने की परंपरा । (४) हैंड प्रेंस का एक दुर्गा जिस पर दाढ़ण रखकर छापने का प्रेस काम रहता है । (५) बुद्धिया के आकार का लकड़ी का पाया जो खंडसाल में चीनी साफ करने के काम में आता है । (६) एक गारादीदार लकड़ी जो गिरदानक की आड़ के लिये लपेटन के पास गढ़ी रहती है । (सुहादे)

सौतल-संज्ञा पुं० दे० "सौतल" ।  
 सौतलपकड़-संज्ञा पुं० [ हि० सौतल + पकड़ना ] एक रोग जो हाथी को शीत से होता है ।

सौतल-संज्ञा-वि० दे० "सौतल" ।  
 सौतलचीनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सौतलचीनी" ।

सौतलपाटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सौतल + हि० पाटी ] (१) एक प्रकार की चट्टिया चिकनी चटाई । (२) पूर्व बंगाल और आसाम के जंगलों में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी जिससे चटाई या सौतलपाटी बनती है । (३) एक प्रकार का पारिदार काष्ठ ।

सौतल चुकनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सौतल + चुकनी ] (१) सत्त । सत्तुआ । (२) सत्तों की बानी । (साठु)

सौतला-संज्ञा स्त्री० दे० "सौतला" ।  
 सौता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह देवा जो जमीन जोतते समय हल की फाल के धँसे से पत्ती जाती है । फूँट ।

विशेष—वेदों में सौता कृषि की अधिष्ठात्री देवी और कई मंत्रों की देवता है । वैजिरीय माहर्षि में सौता ही सावित्री और पाराशर गुरुमूय में इन्द्र-पत्नी कही गई है ।  
 (२) सिपिला के राजा सौरभ्य जनक की कन्या जो धीरामचंद्र जी की पत्नी थी ।

विशेष—इनकी उत्पत्ति की कथा यों है कि राजा जनक ने संतति के लिये एक यज्ञ की विधि के अनुसार अपने दाय से भूमि जोती। खूबी हुई भूमि की कुंड (सीता) से सीता उत्पन्न हुई। सयानी होने पर सीता के विवाह के लिये जनक ने धनुष्यह किया, जिसमें यह प्रतिज्ञा थी कि जो कोई एक विशेष धनुष को चढ़ाये, उससे सीता का विवाह हो। अयोध्या के रामा दशरथ के पुत्र कुमार रामचंद्र ही उस धनुष को चढ़ा और द्रोह सके, इससे उन्हीं के साथ सीता का विवाह हुआ। जब मिमाता की कुटिलता के कारण रामचंद्र जी शीघ्र अभियेक के समय पिता द्वारा १४ वर्षों के लिये वन में भेज दिए गए, तब पतिपरायणा सती सीता उनके साथ वन में गई और वहाँ उनकी सेवा करती रहीं। वन में ही लंका का राजा रावण उन्हें हर ले गया, जिस पर राम ने बंदरों की बड़ी भारी सेना लेकर लंका पर चढ़ाई की और राजसराज रावण को मारकर वे सीता को लेकर १४ वर्ष पूरे होने पर फिर अयोध्या आए और राजसिंहासन पर बैठे।

जिस प्रकार महाराज रामचंद्र विष्णु के अवतार माने जाते हैं, उसी प्रकार सीता देवी भी लक्ष्मी का अवतार मानी जाती हैं और मक जन राम के साथ बराबर इनका नाम भी जपते हैं। भारतवर्ष में सीता देवी सतियों में निरोमणि मानी जाती हैं। जब राम ने लोक मर्यादा के अनुसार सीता की अभिपरीक्षा की थी, तब स्वयं अभिवेद ने सीता को लेकर राम को सौंपा था।

पर्याय—वैदेही, जानकी, मैथिली, भूमिसंभवा, अयोनिजा।

यौ०—सीता की मरिचा = एक प्रकार का गेंदना-जो किराँ हथ

में गुदानी है। सीता की रसोई = (१) एक प्रकार का गेंदना।

(२) बचों के खेलने के लिए रसोई के छोटे छोटे बरतन।

सीता की पंजीरी = कर्तव्यहीन गाम की लता।

(३) यह भूमि जिस पर राजा की सैती होती हो। राजा की निज की भूमि। सीर। (४) दायापणी देवी का एक रूप या नाम। (५) आकाश गंगा की उन चार धाराओं में से एक जो मेघ पर्वत पर गिरने के उपरांत हो जाती हैं।

विशेष—यह नदी या धारा अक्षांश वर्ष-या हीन में मानी गई है। (पुराण)

(६) मदिरा। (७) कच्ची का पौधा। (८) पाताल गरुडी लता। (९) एक वर्णभूति जिसके प्रत्येक चरण में रगण, तगण, मगण, पांगण और रगण होते हैं। उ०—राम सीता

राम सीता राम सीता गाव रे।

सीताकुंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह कुंड जो सीता देवी के संघर्ष से पवित्र तीर्थ माना जाता हो।

विशेष—इस नाम के अनेक कुंड और झरने भारतवर्ष में

प्रसिद्ध हैं। जैसे,—(१) मुँगीर से चार कोस पर गाम पानी का एक कुंड है। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि जब देवताओं ने सीता जी की पूजा नहीं स्वीकार की, तब वे फिर अभिपरीक्षा के लिये अभिकुंड में कूट पड़ीं। आग षट् चुस गई और उसी स्थान पर पानी का एक सीता निकल आया। (२) भागलपुर जिले में मंदार पर्वत पर एक कुंड। (३) चंपारन जिले में मोतिहारी से ६ कोस पूर्व एक कुंड। (४) चटगाँव जिले में एक पर्वत की चोटी पर एक कुंड। (५) मिरजापुर जिले में विष्णुचल के पास एक झरना और कुंड।

सीताजानि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (यह जिसकी पत्नी सीता है) श्रीरामचंद्र।

सीतातीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक तीर्थ। (वायु पुराण)

सीताद्रव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] खेती के उत्पादन। कान्तकारी का सामान।

सीताधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] हलधर। बलराम जी।

सीताध्यक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह राज-कर्मचारी जो राजा की निज की भूमि में खेती चारी आदि का प्रबंध करता हो।

सीतानयमौद्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मृत।

सीतानाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीरामचंद्र।

सीतापति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (सीता के स्वामी) श्रीरामचंद्र।

सीतापहाड़-संज्ञा पुं० [ सं० ] सीमा-दि० पहाड़। एक पर्वत जो बंगाल के चटगाँव जिले में है।

सीताफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरीफा। (२) कुन्हाड़।

सीतायज्ञ-संज्ञा पुं० [ सं० ] हल जोतने के समय होनेवाला एक यज्ञ।

सीतारमण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (सीता के पति) रामचंद्रजी।

सीतारघन, सीतारौनक्ष-संज्ञा पुं० दे० "सीतारमण"।

सीताहोष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] जुते हुए पैत का निद्रो का बेल। (गोबिल धातकव्य)

सीताघट-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रयाग और चित्रकूट के बीच एक स्थान जहाँ षट् भूष के नीचे राम और सीता दोनों ठहरे थे।

सीताघर-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीरामचंद्र।

सीतावल्लभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सीतापति, रामचंद्र।

सीताहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पौधा।

सीतोनिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मटर। (२) डाल।

सीतीलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मटर।

सीतकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह वाद्य जो अत्यंत पीड़ा या आनंद के समय शूद्र से साँस खींचने से निकलता है। छी सी वाद्य। सिसकारी।

सीतकार बाहुत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] धंशी के छः दोषों में से एक दोष।

विरोध—छं: दोष ये हैं—सीकार बाहुल्य, साध्य, विस्वर, संश्लित, लघु और अमधुर।

सीध—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धान्य। धान। (२) खेत।

सीध—संज्ञा पुं० [ सं० विक्रय ] पके हुए अन्न का दाना। भात का दाना। उ०—कहि संसन की सीध प्रसादी। आयो मुक्ति मुक्ति मर्यादी।—रघुराम।

सीधनीय—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम गान।

सीध—संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याज पर रूपाय देना। सुदखीरी। कृसीद।

सीधना—कि० प्र० [ सं० सीधति ] दुख पाना। कष्ट, खेदना। उ०—(क) जयपि माध वचित न होत, अन्न प्रसु सौं करी दिवारी। मुलविदास सीधत निसु दिन देवतं तुम्हार निजु-राई।—गुलसी। (ख) सीधत चाउ, साधुता सोचति, विरसत फल, हुलसति खलई है।—गुलसी।

सीधी—संज्ञा पुं० [ दे० ] शक जाति का मनुष्य।

सीध—संज्ञा पुं० [ सं० ] आलस्य। काहिली। सुस्ती।

सीध—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सीधा ] (१) ठीक सामने की स्थिति। समुद्र विस्तार या लंबाई। वह लंबाई जो विना कुछ भी इधर उधर मुड़े एक तरफ चली गई हो। जैसे,—नाक की सीध में चले जाओ। (२) लक्ष्य। निशाना।

मुहा०—सीध बांधना = (१) सड़क, क्यारी आदि बनाने में पहले रेखांश बनाना। (२) निराशा साधना। लक्ष्य ठीक करना।

सीधा—वि० [ सं० शुध, ज्ञ० सूधा, सूधो ] [ स्त्री० सीधी ] (१) जो बिना कुछ भी इधर उधर मुड़े लगातार किसी ओर चला गया हो। जो वेग न हो। जिसमें फेर या घुमाव न हो। खटक। सरल। ऋतु। जैसे,—सीधी लकड़ी, सीधा रास्ता। (२) जो किसी ओर ठीक प्रवृत्त हो। जो ठीक लक्ष्य की ओर हो।

मुहा०—सीधा करना = लक्ष्य की ओर लगाना। निराशा साधना (संज्ञा आदि को)। सीधी राह = सुमार्ग। मन्दा आलस्य। सीधी सुनाना = (१) साफ साफ कहना। खर, धर, कहना। लगी लिपटी न चलना। (२) मन्दा रूप कहना। दुर्बल न कहना। गति धी देना। सीधा भावना = सामने करना। मिट जाना।

(३) जो कुरिल या कपटी न हो। जो चालबाज न हो। सरल प्रकृति का। निष्कपट। भोला भाव। (४) शांत और सुनोच। शिष्ट। भला। जैसे,—सीधा भादमी।

मुहा०—सीधी तरह = शिष्ट व्यवहार से। नरमी से। जैसे,—(क) सीधी तरह बोली। (ख) वह सीधी तरह न मानेगा।

(५) जो नरहृदय या उम्र में हो। जो बदमास न हो। अनु-कूल। शांत प्रकृति का। जैसे,—सीधा जानवर, सीधा लड़का।

सी०—सीधा सादा = (१) भोला भाव। निष्कपट। (२) विषम। बनबट या संज्ञक नष्टक न हो।

मुहा०—(किसी को) सीधा करना = संज्ञक ठीक करना। शानन करना। शक्ति पर खाना। शिवा देना। सीधा दिन = मन्दा दिन। शुभ दिन या सुदृष्ट। जैसे,—सीधा दिन देखकर यात्रा करना।

(१) जिसका करना कठिन न हो। सुकर। आसान। सहल। जैसे,—सीधा काम, सीधा सवाल, सीधा ढंग। (२) जो दुर्बल न हो। जो जल्दी समझ में आवे। जैसे,—सीधी सी यात नहीं समझ में आती। (३) दहिना। बापों का उलटा। जैसे,—सीधा हाथ।

कि० वि० ठीक सामने की ओर। सममुख। संज्ञा पुं० [ सं० अस्ति ] (१) पिना एका हुआ अन्न। जैसे,—दाल, चावल, भात। (२) वह विना पका हुआ अन्न जो प्राण्य या पुरोहित आदि को दिया जाता है। जैसे,—एक सीधा इस प्राण्य को भी दे दो।

कि० प्र०—रूना।—देना।—निष्कलना।—मनसना।

सीधापन—संज्ञा पुं० [ हिं० सीधा + पन(प्रत्यय) ] सीधा होने का भाव। सिधाई। सरलता। भोलापन।

सीधु—संज्ञा पुं० [ सं० ] गुद या ईश्व के रस से बना मद्य। गुद की श्राव्य।

सीधुगंध—संज्ञा पुं० [ सं० ] मौलसिरी। एकल।

सीधुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गैमारी। कारमरी वृक्ष।

सीधुपुष्प—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कदंब। कदम। (२) मौल-सिरी। बहुल।

सीधुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धातकी। धव। धी।

सीधुरस—संज्ञा पुं० [ सं० ] आम का पेड़।

सीधुरास—संज्ञा पुं० [ सं० ] विजौरा नीरु। मानुखंग वृक्ष।

सीधुरासिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] कसीस।

सीधुवृक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] धूर। सुही वृक्ष।

सीधुसंज्ञ—संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुल का पेड़। मौलसिरी।

सीधे—कि० वि० [ हिं० सीधा ] (१) सीध में। परांश सामने की ओर। समुच्च। (२) बिना कहीं मुड़े मा रके। जैसे,—सीधे वहीं जाओ। (३) बिना और कहीं होवे हुए। जैसे,—सीधे राजा साहब के पास जाकर कहे। (४) मुलापमियत से। नरमी से। शिष्ट व्यवहार से। जैसे,—वह सीधे रूपया न देगा। (५) शिष्टता के साथ। शान्ति के साथ। जैसे,—सीधे बैठो।

सीध—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुदर। सलदर।

सीन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दरम। दरमपट। (२) बिपेटर के रंगमंच का कोई परदा जिस पर नाटकवाच कोई दरम चित्रित हो।

सीनरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माहुरिक दरम।

सीना—क्रि० सं० [ सं० सीन ] (१) कपड़े, चमड़े आदि के दो टुकड़ों को सूई के द्वारा तागा पिरोकर जोड़ना। रोंकों से मिलाना या जोड़ना। टाँका मारना। जैसे,—कपड़े सीना, जूते सीना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

सौ०—सीना पिरोना = सिलाना तथा बेलपट्टे आदि का काम करना।

संज्ञा पुं० [ फ्रा० सीनः ] छाती। बद्धस्थल।

सौ०—सीनाजोर। सीनाबंद। सीनातोड़।

मुहा०—सीने से लगाना = छाती से लगाना। आश्लिष्यत करना।

संज्ञा पुं० [ सं० सीमिक ] (१) एक प्रकार का कीड़ा जो ऊनी कपड़ों को काट डालता है। सीवी।

क्रि० प्र०—लगना।

(२) एक प्रकार का रेशम का कीड़ा। छोटा पाट।

सीनातोड़—संज्ञा पुं० [ फ्रा० सीनः + हि० तोड़ना ] छुरती का एक पेश।

विशेष—जय पहलवान अपने जोड़ की पीठ पर रहता है, तब एक हाथ से यह उसकी कमर पकड़ता है और दूसरे हाथ से उसके सामने का हाथ पकड़ और खींचकर झटके से गिराता है।

सीनापनाह—संज्ञा पुं० [ फ्रा० ] जहाज के निचले खंड में लंबाई के बल दोनों ओर का किनारा। (लडा०)

सीनार्यंद—संज्ञा पुं० [ फ्रा० ] (१) अँगिया। चोली। (२) गरीयान का हिस्सा। (३) यह बोझ जो अगले पैरों से लँगड़ाता हो।

सीनापाँह—संज्ञा पुं० [ फ्रा० सीनः + हि० पाँह ] एक प्रकार की कसरत जिसमें छाती पर भाप देते हैं।

सीनियर—वि० [ फ्रा० ] (१) बड़ा। वयस्क। (२) श्रेष्ठ। पुर में ऊँचा। जैसे,—सीनियर मंत्र। सीनियर परीक्षा।

सीनी—संज्ञा स्त्री० [ फ्रा० ] तद्वती। घाली।

सीप—संज्ञा पुं० [ सं० मुक्ति, प्रा० मुक्ति ] (१) कड़े आवरण के भीतर बंद रहनेवाला शंख, घोंघे आदि की जाति का एक जलजंतु जो छोटे तालाबों और झीलों से लेकर बड़े बड़े समुद्रों तक में पाया जाता है। मुक्ति। मुक्तमाता। मुक्तगृह। सीपी। सितुही।

विशेष—जालों के सीप लंबोतरे होते हैं और समुद्र के चौष्टे, चिपम आकार के और बड़े बड़े होते हैं। इनके ऊपर दोहरे संयुक्त के आकार का बहुत कड़ा आवरण होता है जो खुलना और बंद होता है। इसी संयुक्त के भीतर सीप का कीड़ा (जो बिना अस्थि और रीढ़ का होता है) जमा रहता है। ताल के सीपों का आवरण ऊपर से कुछ फाड़ा या मँडल-तथा समतल होता है, यद्यपि प्रान से देपने से उस पर महीन, महीन, पारियों दिखाई पड़ती है। इस पर आवरण का भीतर की ओर रहने

वाला पारय, बहुत ही उज्वल और चमकीला होता है, जिस पर प्रकाश पड़ने से कई रंगों की आभा भी दिखाई पड़ती है। समुद्र के सीपों के आवरण के ऊपर पानी की लहरों के समान टेढ़ी पारियों या लहरिया होती है। समुद्र के सीपों में ही मोती उत्पन्न होते हैं। जब इन सीपों की भीतरी खोली और कड़े आवरण के बीच कोई रोगप्रसूतका यादरी पदार्थ का कण पहुँच जाता है; तब जंतु की रक्षा के लिये उस कण के चारों ओर आवरण ही की शंख धातु का एक चमकीला उज्वल पदार्थ जमने लगता है जो धीरे धीरे कड़ा पद जाता है। मही मोती होता है। समुद्री सीप प्रायः छिछले पानी में चट्टानों में चिपके हुए पाए जाते हैं। ताल के सीपों के संयुक्त भी कीड़ों को साफ करके काम में लाए जाते हैं। बहुत से स्थानों में छोटे छोटे बच्चों को इसी से दूध पिलते हैं।

(२) सीप नामक समुद्री जलजंतु का सफेद कड़ा, चमकीला आवरण या संयुक्त जो घन, चाकू के बँटे आदि मनाने के काम में आता है। (३) ताल के सीप का संयुक्त जो चम्मूच आदि के समान काम में लाया जाता है। (४) वह लंबोतरी प्रायः जिसमें देवपूजा या तर्पण आदि के लिये जल रखा जाता है।

सीपरङ्गी—संज्ञा पुं० [ फ्रा० सिर ] डाल। उ०—मेरे पुन की लाज इहाँ ली दृष्टि मिय प्राण दये है। लागत सांगि विभीषण ही, पर सीपर आडु भये है।—तुलसी।

सीपसुत—संज्ञा पुं० [ हि० सीप + सं० सुत ] मोती।

सीपिज—संज्ञा पुं० [ हि० सीपी + सं० ज ] मोती। उ०—लाला हों वारी तेरे मुख पर कुटिल बालक मोहन मन विहँसत भुङ्कती विकट नैनन पर। दमकति है है वैतुलिया पिहँसति मानी सापिज घर कियो चारित्र पर।—सूर।

सीपी—संज्ञा स्त्री० दे० "सीप"।

सीपी—संज्ञा स्त्री० [ अनु० सी पी ] वह शब्द जो पीढ़ी या अर्यत आनंद के समय मुँह से साँस खींचने से उत्पन्न होता है। सी सी शब्द। सिसकारी। शीकार। उ०—नाक चढ़े सीपी करं जिते छबीली छेल। फिरि फिरि भूलि वही गई पिय कँकरीली गैल।—विहारी।

सीमा—संज्ञा पुं० [ देश० ] दहज।

सीमंत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बियों की माँग। (२) अस्थि-संचाल। हड्डियों का संधि स्थान। हड्डियों का जोड़। सुश्रुत के अनुसार इनकी संख्या १४ है। यथा—शिर में १, वक्षण अर्थात् मूत्राशय तथा जंघा के संधिस्थान में १, पैर में ३, दोनों घोंटों में २-३, त्रिक या रीढ़ के नीचे के भाग में १ और मस्तक में ११ भागप्रकाश के अनुसार हड्डियों का संधिस्थान सीमा रहता है; इसलिये

हृत्से सीमंत कहते हैं। (३) हिन्दुओं में एक संस्कार जो प्रथम गर्भस्थिति के चौथे, छठे या आठवें महीने में किया जाता है। (४) "सीमंतोत्थपन"।

सीमंतक-यंत्रा पुं० [ सं० ] (१) मॉग निकालने की क्रिया। (२) हंगुर। सिंदूर (जो चिप्यों मॉग के बीच में लगाती हैं)। (३) जैनों के सात नरकों में से एक नरक का अधिपति। (४) नरकावास। (५) एक प्रकार का मानिक या रत्न।

सीमंतधान-वि० [ सं० धीमेनवत् ] [ सी० सीमंतवर्गे ] जिसे मॉग हो। जिसकी मॉग निकली हो।

सीमंतित-वि० [ सं० ] मॉग निकाला हुआ। जैसे,—सीमंतित केश।

सीमंतिनी-यंत्रा सी० [ सं० ] स्त्री। नारी। ( चिप्यों मॉग निकालती हैं, इसलिये उन्हें सीमंतिनी कहते हैं। )

सीमंतोन्नयन-यंत्रा पुं० [ सं० ] दिनों के दस संस्कारों से तीसरा संस्कार।

विशेष—गर्भस्थिति के तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार करने के पश्चात् चौथे, छठे या आठवें महीने में यह संस्कार करने का विधान है। इसमें पशु की मॉग निकाली जाती है। कहते हैं कि इस संस्कार के द्वारा गर्भरूप संतान के गर्भ में रहने के दोषों का निवारण होता है।

सीम-यंत्रा पुं० [ सं० सीमा ] सीमा। हृद। पराकाष्ठा। सरहद। मर्यादा।

मुहा०—सीम धरना या बँडाना = अधिकार दाना। दाना। चरकरही करना। उ०—है काके है सीस हंस के जो हडि धन की सीम चरे।—तुलसी।

सीमल-यंत्रा पुं० दे० "सेमल"।

सीमलिंग-यंत्रा पुं० [ सं० ] सीमा का चिह्न। हृद का निदान।

सीमांत-यंत्रा पुं० [ सं० ] (१) सीमा का अंत। वह स्थान जहाँ सीमा का अंत होता हो। जहाँ तक हृद पहुँचती हो। (२) सरहद। (३) गाँव की सीमा। (४) गाँव के अंतर्गत धर की जमीन। सिंवाता।

सीमांतपूजन-यंत्रा पुं० [ सं० ] घर का पूजन या अगवानी जब वह वारात के साथ गाँव की सीमा के भीतर पहुँचता है।

सीमांतपंच-मेला पुं० [ सं० ] आचरण का नियम या मर्यादा।

सीमा-यंत्रा स्त्री० [ सं० ] (१) मॉग। (२) किसी प्रदेश या वस्तु के विस्तार का अंतिम स्थान। हृद। सरहद। मर्यादा।

मुहा०—सीमा से बाहर जाना = अति से अधिक बढ़ जाना। मर्यादा का उल्लंघन करना। हृद से पकड़ा बढ़ना।

सीमातिक्रमणोत्सव-यंत्रा पुं० [ सं० ] युद्धयात्रा में सीमा पार करने का उत्सव। विजय यात्रा। विजयोत्सव।

विशेष—प्राचीन काल में विजयादसमी को क्षत्रिय राजा अपने राज्य की सीमा लाँवते थे।

सीमा[पाल-यंत्रा पुं० [ सं० ] सीमा रक्षक। सीमा की रक्षवाली करनेवाला।

सीमाय-यंत्रा पुं० [ सं० ] पारा।

सीमाबद्ध-यंत्रा पुं० [ सं० ] रेखा से घिरा हुआ। हृद के भीतर किया हुआ।

सीमाविवाद-यंत्रा पुं० [ सं० ] सीमा संबंधी विवाद। सरहद का झगड़ा। अठारह प्रकार के व्यवहारों में या मुकदमों में से एक।

विशेष—स्त्रुतियों में लिखा है कि यदि दो गाँवों में सीमा संबंधी झगदा हो, तो राजा को सीमा निर्देश करके झगदा मिटा डालना चाहिए। इस काम के लिये जेठ का महीना श्रेष्ठ बताया गया है। सीमा स्थल पर बड़, पोपल, साल, पलास आदि बहुत दिन टिकनेवाले पेड़ लगाने चाहिए। साथ ही ताहाय भूआँ आदि बनवा देना चाहिए; क्योंकि ये सब शिष्ट शोध मिटनेवाले नहीं हैं।

सीमादृष्ट-यंत्रा पुं० [ सं० ] वह दृष्ट जो सीमा पर लगा हो। हृद यतानेवाला पेड़।

विशेष—मनुसंहिता में सीमा स्थान पर बहुत दिन टिकनेवाले पेड़ लगाने का विधान है। यहुधा सीमा विवाद सीमा का वृक्ष देखकर मिटाया जाता था।

सीमाबंधि-यंत्रा स्त्री० [ सं० ] दो सीमाओं का एक जगह मिलान।

सीमासेतु-यंत्रा पुं० [ सं० ] वह पुरता या मंडू जो सीमा निर्देश करता है। हृदबंधी।

सीमिक-यंत्रा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का वृक्ष। (२) दीमक। एक प्रकार का छोटा कीड़ा। (३) दीमकों का लगाया हुआ मिट्टी का ढेर।

सीमोल्लंघन-यंत्रा पुं० [ सं० ] (१) सीमा का उल्लंघन करना। सीमा को लाँवना। हृद पार करना। (२) विजय यात्रा। वि० दे०—"सीमातिक्रमणोत्सव"। (३) मर्यादा के विरुद्ध कार्य करना।

सीय-यंत्रा स्त्री० [ सं० मीना ] सीता। जानकी।

सीयक-यंत्रा पुं० [ सं० ] मालवा के परमार राजवंश के दो प्राचीन राजाओं के नाम जिनमें से पहला दुस्रवीं शताब्दी के आरंभ में और दूसरा ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में था। इसी वृत्तरे सीयक का पुत्र मुंज था जो प्रसिद्ध राजा भोज का पाया था।

सीयन-यंत्रा स्त्री० दे० "सीवन"।

सीर-यंत्रा पुं० [ सं० ] (१) हल। (२) हल जोतनेवाले बैल। (३) सूर्य। (४) भर्तृ। आक का पीया।

यंत्रा स्त्री० [ सं० मार = ह ] (१) वह जमीन जिसे भू-स्वामी या जमींदार स्वयं जोतना आ रहा हो, भांग्य जिस पर उसकी

निज की खेती होती आ रही हो। (२) यह जमीन जिसकी उपज या आमदनी कई हिस्सेदारों में बँटती हो। (३) सासा। मेल।

मुहा०—सौर में = एक साथ मिलकर। इकट्ठा। एक में। जैसे,—  
भाइयों का सौर में रहना।

संज्ञा पुं० [ सं० सौर = रक्त नाड़ी ] रक्त की नाड़ी। रक्त की नली।

मुहा०—सौर सुलवाना = नस्तर से शरीर का दूधित रक्त निकलवाना। फसल सुलवाना।

छं० वि० [ सं० शीतल, प्रा० सोमद्, हिं० सोद्, सीरा ] ठंडा। शीतल। उ०—सौर समीर धीर भति सुरभित यहत सदा मन भायो।—रघुराज।

संज्ञा पुं० (१) चौपायों का एक संक्रामक रोग। (२) पानी की कटा। (लडा०)

सौरक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हल। (२) सिद्धमार। वृत्त। (३) सूर्य।

छं० संज्ञा पुं० [ हिं० सीरा ] ठंडा करनेवाला। उ०—देखियत है करणा की मूरति सुनियत है परपीरक। सोह करौ जो मिटे हृदय को दाहु पर उर सौरक।—मूर।

सीरल—संज्ञा पुं० दे० “शीर्ष”।

सीरधर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हल धारण करनेवाला। (२) बलराम।

सीरध्वज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा जनक का नाम। (२) बलराम का नाम।

सीरनी—संज्ञा पुं० [ सं० ] बघों का पहनावा।

सीरनि—संज्ञा स्त्री० [ प्रा० शीरीनी ] मिठाई।

सीरपाणि—संज्ञा पुं० [ सं० ] हलधर। बलदेव।

सीरभृत्—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हलधर। बलदेव। (२) हल धारण करनेवाला।

सीरघाह—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हल धारण करनेवाला। हलवाहा। (२) जमींदार की ओर से उसकी खेती का प्रबंध करनेवाला कारिदा।

सीरघाहक—संज्ञा पुं० [ सं० ] हलवाहा। किसान।

सीरपक्ष—संज्ञा पुं० दे० “शीर्ष”।

सीरा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम।

संज्ञा पुं० [ प्रा० शीर ] (१) पकाकर मछु के समान गाढ़ा किया हुआ चीनी का रस। घासानी। (२) मोहनयोग। हलवा।

संज्ञा पुं० [ हिं० शिर ] खारपाई का वह भाग जिधर लेटने में सिर रहता है। सिरहाना।

छं० वि० [ सं० शीर, प्रा० सोमद्, ] [ स्त्री० सीरी ] (१) ठंडा। शीतल। उ०—सीरी पीन अगिनि सी दाहति, कोकिल भनि दुखदाई।—मूर। (२) वांत। मीन।

सुपचाप। उ०—दुर्जन हैसि न कोय आयु सीरे है रहिए।—गिरिवर।

सीरी—संज्ञा पुं० [ सं० सीरिव ] (हल धारण करनेवाले) बलराम। वि० स्त्री० दे० “सीरा”।

सीरोसा—संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की मिठाई।

सोसंध—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की मछली।

विशेष—बैद्यक में यह श्लेष्मायुर्दक, शृष्य, पाक में मजुर और गुफ, वात पित्त हर, हृद्य और आमवातकारक कही गई है।

सील—संज्ञा स्त्री० [ सं० शील, प्रा० सोमद् ] भूमि में जल की आइता। सीद्। नमी। तरी।

सला पुं० [ सं० शलाका ] लकड़ी का एक टाप लंबा और जिस पर दूधियाँ गोल और सुदील की जाती हैं।

छं० संज्ञा पुं० दे० “शील”।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मुहर। मुद्रा। ठप्पा। छाप। (२) एक प्रकार की समुद्री मछली जिसका घमंदा और तेल बहुत काम आता है।

सीसा—संज्ञा पुं० [ सं० शिल ] (१) अनाज के ये दाने जो फसल के पत्र पत में पड़े रह जाते हैं, और जिन्हें तपस्वी का गरीब लोग चुनते हैं। सिहा। उ०—(क) कविता खेती उन लई, सीसा विगत मजूर। (ख) विप समान सब विषय विहाई। वसैं तहाँ सीला विनि खाई।—रघुराज।

(२) खेत में गिरे दानों को चुनकर निवाह करने की सुनियों की हृत्ति।

वि० [ सं० शीतल ] [ स्त्री० सीली ] गीला। आर्द्र। तर। नम।

सीचक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सीनेवाला। सिलाई करनेवाला।

सीचक्री—संज्ञा पुं० [ सं० सीमांत ] ग्राम का सीमांत। सिवाना। (हिं०)

सीचन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सीने का काम। सिलाई। (२) सीने से पढ़ी हुई लकीर। कपड़े के दो टुकड़ों के बीच का सिलाई का जोड़ा। (३) दरा। दराज। सचि। (४) वह रेखा जो अक्षकोश के बीचोबीच से लेकर मलद्वार तक जाती है।

सीचना—संज्ञा पुं० दे० “सिषाना”।

कि० सं० दे० “सीना”।

सीचनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह रेखा जो सिंग के नीचे से गुदा तक जाती है।

विशेष—सुश्रुत में यह चार प्रकार की कही गई है—गोकर्णिक, गुलसीकनी, वेहित और क्लृप्तगि।

सीधी—संज्ञा स्त्री० दे० “सीधी”।

सीस—संज्ञा पुं० [ सं० शीर्ष ] (१) सिर। माथा। मस्तक। (२) कंधा। (हिं०) (३) अंतरीप। (लडा०)

संज्ञा पुं० दे० “सीसा”।

सीसक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सीसा नामक धातु।

**सीसज-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिद्धू ।**  
**सीसताज-संज्ञा पुं० [ हिं० सीस + तज ]** यह टोपी या ढकन जो शिकार पकड़ने के लिये पाले हुए जानवरों के सिर चढ़ा रहता है और शिकार के समय खोला जाता है। कुल्हड़ा।  
 उ०—**गुलसी** निहारि कपि भातु किलकटा लललता खलि  
 अ०—**कंगालः** पतरी सुनाज की । राम-रुख निखि हरप्यो  
 हिय हनुमान मानो खेल्वार खोली सीसताज बाज की ।—  
 गुलसी ।

**सीसताप-संज्ञा पुं० [ सं० ]** अकगानिस्तान और फारस के बीच का प्रदेश। सीस्तान।

**सीसप्रान-संज्ञा पुं० [ सं० शिस्काण ]** टोप। शिरकाण। उ०—  
 सीसप्रान - भवनसज्जत। मनिहाटक मय नाह। लहु हेरपि  
 दरसजहु सिर यह सोभा जिहि माह।—रामारवमेघ ।

**सीसपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ]** सीसा धातु।

**सीसपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ]** सीसा धातु।

**सीसफूल-संज्ञा पुं० [ हिं० सास + फूल ]** सिर पर पहनने का फूल के आकार का एक गहना।

**सीसम-संज्ञा पुं० दे० "सीसम"** ।

**सीसमदल-संज्ञा पुं० [ जा० शीश + म० मद्द ]** यह मकान जिसकी दीवारों में चारो ओर शीशो अड़े हों।

**सीसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१)** सरमा नाम की देवताओं की कुतिया का पति। (पाराशर गृह्य) (२) एक बालग्रह जिसका रूप कुत्ते का माना गया है।

**सीसल-संज्ञा पुं० [ दे० ]** एक प्रकार का पेड़ जो केन्द्रेय या फेतकी की तरह का होता है और जिसका रस। बहुत काम आना है। रामर्योत।

**सीसा-संज्ञा पुं० [ सं०, सीसक ]** एक मूल धातु जो बहुत भारी और नीलावन, लिये काले रंग की होती है।

**विशेष—**आधुनिक रसायन में यह मूल द्रव्यों में माना गया है। यह पीटने से फैल सकता है और तार के रूप में भी हो सकता है, पर कुछ कठिनाता से। इसका रंग भी जल्दी बदला जा सकता है। इसकी चट्टी, कलियाँ और बंदूक की कलियाँ आदि बनती हैं। इसका घनत्व ११.३० और परमाणु मान २०१.४ है। सीसा दूसरी धातुओं के साथ बहुत कठरी मिल जाता और कई प्रकार की मिश्र धातुएँ बनाने में काम आता है। चाँप के टावरण की धातु इसी के योग से बनती है।

आधुनिक में सीसा सस धातुओं में है और अन्य धातुओं के समान यह भी रसोपध के रूप में व्यवहृत होता है। इसका भरम कई रोगों में दिया जाता है। वैषक में सीसा आधु, भीर्य और वारि को बढानेवाला, मेहनतकर, उष्ण तथा कक और वायु को नष्ट करनेवाला माना जाता है। इसकी आपत्ति

की क्या भावप्रकाश में इस प्रकार है। वायुकि एक नाग-कन्या देवकत मोहित हुए। उन्हीं के स्खलित पीर्य से इस धातु की उत्पत्ति हुई।

**पर्याय—**सीस। सीसक। गंधपदमव। सिद्धूकारण। वर्द। स्वर्गादि। यवनेष्ट। सुवर्णक। वप्रक। विषट। जद। सुजंगम। उरग। डुरंग। परिपिष्टक। बहुमल। चीनपिष्ट। प्रपु। महाबल। स्यु कृष्णायस। पम। तारशुद्धिकर। सिरावृत्त। वयोवंग।

**संज्ञा पुं० दे० "शीसा"** ।

**सीसी-संज्ञा स्त्री० [ जतु० ] (१)** पीसा या अत्यंत आनंद के समय मुँह में सँस खींचने से निकला हुआ शब्द। शीकार। सिसकारी। उ०—सीसी किए तें सुषा सीसी सी डरकि जानि ।

**क्रि० प्र०—**करना।

(२) शीत के कष्ट के कारण निकला हुआ शब्द।

**संज्ञा स्त्री० दे० "सीसी"** ।

**सीसी-संज्ञा पुं० दे० "सीसम"** ।

**सीसोपधातु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिद्धू । हंगुर ।**

**सीसोदिया-संज्ञा पुं० दे० "सिसोदिया"** ।

**सीह-संज्ञा स्त्री० [ सं० सीप = मय ]** महक। गंध।

**संज्ञा पुं० [ दे० ]** साही नामक जंतु। सेही।

**संज्ञा पुं० दे० "सिंह"** ।

**सीहगोस-संज्ञा पुं० [ जा० सियहगोस ]** एक प्रकार का जंतु जिसके कान काले होते हैं। उ०—कैसय सरभसिंह सीहगोस रोस गनि कूकरनि पास ससा सूकर गहाप है।—देताव।

**सीहुँट-संज्ञा पुं० [ सं० ]** सेहुँट का पेड़। स्तुही। यूहर।

**सुंछी-प्रत्य० दे० "सुं"** ।

**सुंछड़-संज्ञा पुं० [ दे० ]** साधुओं का एक संमदाय।

**सुंग वंश-संज्ञा पुं० [ सं० ]** मौर्य वंश के अंतिम सम्राट् इहद्रथ के प्रधान सेनापति पुष्यमित्र द्वारा प्रतिष्ठित एक प्राचीन राजवंश।

**विशेष—**इसमे १८४ वर्ष पूर्व पुष्यमित्र ने इहद्रथ को नारकर मौर्य साम्राज्य पर अपना अधिकार जमाया। यह राजा वैदिक या मल्लज धर्म का पक्का अनुयायी था। जिस समय पुष्यमित्र मगध के सिंहासन पर बैठा, उस समय साम्राज्य गर्मदा के किनारे तक था और उसके अंतर्गत आधुनिक बिहार, संयुक्त प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि थे। कर्लिन के राजा क्षात्रवेष्ट तथा पंजाब और काठल के वधन (यूतांगी) राजा मिनांडर (बौद्ध मिल्द) ने सुंग राज्य पर कई बार चढ़ाईयों की, पर वे हटा दिए गए। यवनों का जो प्रसिद्ध आक्रमण साकेत (अजोध्या) पर हुआ था, वह पुष्यमित्र के ही राज्यकाल में। पुष्यमित्र के समय का उसी के किस्ती



सामंत या कर्मचारी का एक शिलालेख अभी हाल में अयोध्या में मिला है जो अशोक लिपि में होने पर भी संस्कृत में है। यह लेख नागरी-प्रचरिणी पत्रिका में प्रकाशित हो चुका है। इसी प्रकार के एक और पुराने लेख का पता मिला है, पर यह अभी प्राप्त नहीं हुआ है। इससे जान पड़ता है कि पुष्यमित्र कभी कभी साकेत (अयोध्या) में भी रहता था और वह उस समय एक समृद्धिशाली नगर था।

पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने विदर्भ के राजा को परास्त करके दक्षिण में यमुना नदी तक अपने पिता के राज्य का विस्तार बढ़ाया। जैसा कि कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक से प्रकट है, अग्निमित्र ने विदिशा को अपनी राजधानी बनाया था जो यंत्रवती और विदिशा नदी के संगम पर एक अत्यंत सुंदर पुरी थी। इस पुरी के खंडहर भिलसा (ग्वालियर राज्य में) से थोड़ी दूर पर दूर तक फैले हुए हैं। चक्रवर्ती सम्राट् द्युमने की कामना से पुष्यमित्र ने इसी समय बड़ी धूमधाम से अभ्येध यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ के समय महाभाष्यकार पतंजलि जी विद्यमान थे। अध-रक्षा का भार पुष्यमित्र के पौत्र (अग्निमित्र के पुत्र) वसुमित्र को सौंपा गया जिसने सिंधु नदी के किनारे यवनों को परास्त किया। पुष्यमित्र के समय में वैदिक या ब्राह्मण धर्म का फिर से उदयान हुआ और बौद्ध धर्म दबने लगा। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार पुष्यमित्र ने बौद्धों पर बड़ा अत्याचार किया और वे राज्य छोड़कर भागने लगे। ईसा से १४० वर्ष पहले पुष्यमित्र की मृत्यु हुई और उसका पुत्र अग्निमित्र सिंहासन पर बैठा। उसके पीछे पुष्यमित्र का भाई सुज्येष्ठ और फिर अग्निमित्र का पुत्र वसुमित्र गद्दी पर बैठा। फिर धीरे धीरे इस वंश का प्रताप घटता गया और यमुने ने विधासघात करके कण्व नामक ब्राह्मण राजवंश की प्रतिष्ठा की।

**सुँघनी-संज्ञा स्त्री** [ हिं० सूँघना ] तंबाकू के पत्ते की लय धारीक छुकी जो सुँधी जाती है। हुलास। नस्य। मगजरोशन।

**क्रि० प्र०—सूँघना।**

**सुँघाना-क्रि० सं०** [ हिं० सूँघना का प्रेर० ] भाषाणं कराना। सूँघने की क्रिया कराना।

**सुँठि-संज्ञा स्त्री** दे० "सुँठि", "सौंठ"।

**सुँड-संज्ञा पुं०** दे० "सुँड", "सूँड"।

**सुँडदंड-संज्ञा पुं०** "सुँडदंड"।

**सुँडभुसुँड-संज्ञा पुं०** [ सं० शुब्भुसुँडि ] हाथी जिसका अर्ध सूँड है। उ०—सुँडि चित्रित सुँडभुसुँड पै, सोभित कंचन कुंड पै। रूप सजेव चलत जदु सुँड पै, जिमि गज मृग सिर सुँड पै।—गोपाल।

**सुँडबल-संज्ञा पुं०** [ देश० ] लड्डू गंधे की पीठ पर रखने की गद्दी।

**सुँडा-संज्ञा स्त्री** [ हिं० सूँड ] सूँड। सुँड।

**संज्ञा पुं०** [ देश० ] लड्डू गंधे की पीठ पर रखने की गद्दी या गद्दा।

**सुँडाल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] हाथी। हस्ती। उ०—सुँडाल चलन सुँडनि उठाइ। त्रिनकें जँरीर शनशनत पाइ।—सूदन।

**सुँडाली-संज्ञा स्त्री** [ सं० सुँडाल = सूँडवाली ] एक प्रकार की मछली।

**सुँडो बँत-संज्ञा पुं०** [ देश० ] एक प्रकार का बँत जो बंगाल, आसाम और खसिया की पहाड़ी पर पाया जाता है।

**सुँद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) एक मानर का नाम। (२) एक राक्षस का नाम। (३) विष्णु। (४) संह्राद का पुत्र। (५) एक असुर जो निसुँद का पुत्र और उपसुँद का भाई था।

**विशेष—सुँद और उपसुँद दोनों यद्ये मलवान असुर थे। इन्हें कोई हरा नहीं सकता था। तिलोत्तमा नाम की अप्सरा के लिये दोनों आपस में ही लड़कर मर गए थे।**

**सुँदर-वि०** [ सं० ] [ स्त्री० सुँदरी ] (१) जो देखने में अच्छा लगे। विपदशनं। रूपवान्। शोभन। खरिच। सुवसूत। मनोहर। मनोज्ञ। (२) अच्छा। भला। बढ़िया। (३) श्रेष्ठ। शुभ। जैसे,—सुँदर मुहूर्त्त।

**संज्ञा पुं०** (१) एक प्रकार का पेड़। (२) कामदेव। (३) एक नाग का नाम। (४) लंका का एक पर्वत।

**सुँदरक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) एक तीर्थ का नाम। (२) एक हृद का नाम।

**सुँदर काँड-संज्ञा पुं०** [ सं० ] रामायण के पूर्ववर्त काँड का नाम जो लंका के सुँदर-पर्वत के नाम पर रखा गया है।

**सुँदरता-संज्ञा स्त्री** [ सं० ] सुँदर होने का भाव। सौंदर्य। सुवसूती। रूपलावण्य।

**सुँदरताई-संज्ञा स्त्री** दे० "सुँदरता"। उ०—अंग विलोकि त्रिलोक में ऐसी को नारि निहारिन नार नवाई। सुरतिवत शंगार समीप शंगार किये जानो सुँदरताई।—केसव।

**सुँदरत्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सुँदरता। सौंदर्य।

**सुँदरम्मन्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] जो अपने को सुँदर मानता या समझता हो।

**सुँदरवती-संज्ञा स्त्री** [ सं० ] एक नदी का नाम।

**सुँदरापा-संज्ञा पुं०** [ सं० सुँदर + हिं० आपा (प्रय०) ] सुँदरता।

**सुँदरी-वि० स्त्री** [ सं० ] रूपवती। सुवसूत।

**संज्ञा स्त्री** (१) सुँदर स्त्री। (२) हल्दी। हरिद्रा। (३) एक प्रकार का बड़ा जंगली पेड़।

**विशेष—यह पेड़ सुँदर घन में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और नाव, संबुक, मेज, कुर्सी आदि सामान बनाने के काम में आती और इमारतों में भी लगती है। खारी पानी के पास ही यह पेड़ उम सकता है। मीठा पानी पाने से सूख जाता है।**

(४) त्रिसुर सुंदरी देवी । (५) एक योगिनी का नाम ।  
 (६) संध्या नामक छंद का एक भेद जिसमें आठ राग और एक ताल होता है । उ०—सय सौ गदि पानि मिले रघुनंदन भेंटि कियो सब को सुखभागी । (७) वारद अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें एक गण, दो भगण और एक रागण होता है । हुतविलंबित । (८) त्रैलोक्य अक्षरों की एक वर्णवृत्ति ।  
 (९) एक प्रकार की मछली । (१०) मालववान, राजस की पत्नी जो नर्मदा नामक नदी की कन्या थी ।

सुंदरेभर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिवजी की एक मूर्ति ।  
 सुंदरीदन-संज्ञा पुं० [ सं० सुंदर + भूदन ] अच्छा भात । अच्छी तरह पका हुआ चावल ।

सुँधावट-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुंध, हि० सोधा + वट (फल०) ] सोंधे होने का भाव । सोँधापन । सोंधी महक ।  
 सुँधिया-संज्ञा स्त्री० [ हि० सोधा + या (फल०) ] (१) एक प्रकार की अगर । (२) गुनगात में होनेवाली एक प्रकार की वनस्पति जो पशुओं के चारे के काम में आती है ।

सुपसुंठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपूरक । कपूर कचरी ।  
 सुँधा-संज्ञा पुं० [ दे० ] (१) हृषिक । (२) दागी हुई तोप या बंदूक की गरम नली को ठंडा करने के लिये उस पर डाला हुआ गोला कपड़ा । पुचारा । (लक्ष०) (३) तोप की नली साफ करने का गज । (लक्ष०) (४) छोटे का एक औजार जिससे छुहार छोड़े में सूरख करते हैं ।

सुँधी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] छेनी जिसमें छोड़े में छेद किया जाता है ।  
 सुँधुल-संज्ञा पुं० दे० "सुँधुल" ।

सुँभ-संज्ञा पुं० (१) दे० "सुँभ" । (२) दे० "सुँभ" ।  
 सुँभा-संज्ञा पुं० दे० "सुँभा" ।

सुँभी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] छोटी छेदने का एक औजार जिसमें नोक नहीं होती ।

सुँसारी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार का लंबा काला क्रीड़ा जो अनाज के लिये हानिकारक होता है ।  
 सुँउप० [ सं० ] एक उपसर्ग जो संज्ञा के साथ लगकर विशेषण का काम देता है । जिस छंद के साथ यह उपसर्ग लगता है, उसमें श्रेष्ठ, सुंदर, अच्छा, बढ़िया आदि का भाव आ जाता है । जैसे—सुनांभ, सुपंच, सुगील, सुवास आदि ।

वि० (१) सुंदर । अच्छा । (२) उत्तम । श्रेष्ठ । (३) शुभ । भला ।

संज्ञा पुं० (१) उत्कर्ष । उन्नति । (२) सुंदरता । सुन्दरता । (३) हर्ष । आनंद । प्रसन्नता । (४) पूजा । (५) समृद्धि । (६) अनुमति । आज्ञा । (७) कष्ट । त्रकलीक ।

सुँभ्य० [ सं० ] स्त्रीया, पंचमी और पछि विभक्ति का चिह्न ।

सुँभ्य० [ सं० ] स्त्री । यह ।  
 सुँभ्यता-संज्ञा पुं० [ सं० सुँभ, प्रा० सुँभ, हि० सुँभ ] सुग्गा । शुक्र । सोता । उ०—सुँभ्यत रहै सुँभ्यक मिठ अर्थहि काल सो भाव । सयु अहे जो करिया कबहुँ सो धरै नाव ।

सुँभन-संज्ञा पुं० [ सं० सुँभ, प्रा० सुँभ ] आनन । पुत्र । पैदा । लड़का । उ०—यहु दिन धौं कय आईहैं छैरै सुँभन विवाह । निज नयन हम देखिदैं हे विधि यहू । उरसाह ।—स्वामी रामकृष्ण ।

सुँभनजद-संज्ञा पुं० दे० "सोनजद" । उ०—कोई सुँभनजद ज्यों केसर । कोई सिंगारहार जागेसर ।—जायसी ।  
 सुँभना-संज्ञा-कि० प्र० [ हि० उगना = उगना या हि० सुँभन ] उत्पन्न होना । उगना । उदय होना । उ०—जैसो सोधो ग्यान प्रकाशत पाप दोष सय मुअत । धर्म सिंगार आदि सतगुन से तनमन के सुख सुअत ।—देव स्वामी ।

सुँभ्यता-संज्ञा पुं० दे० "सुँभ्य" ।  
 सुँभ्यदंता-वि० [ हि० सुँभ्य + दंता = दाँतकाम ] सुँभ्य के से दाँतोंवाला ।

सुँभ्य पुं० एक प्रकार का हाथी जिसके दाँत पृथ्वी की ओर झुके रहते हैं । पैसा हाथी पैसो समझा जाता है ।  
 सुँभ्यो पतासी-संज्ञा पुं० [ सं० स्वर्ण + पातास ] वह पैस जिसका एक सींग स्वर्ण की ओर और दूसरा पातास की ओर अर्थात् एक आकार की ओर और दूसरा जमीन की ओर रहता है ।

सुँभ्यसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छा भंवसर । अच्छा मौका ।  
 सुँभ्या-संज्ञा पुं० दे० "सुँभ्या" ।  
 सुँभ्यद-संज्ञा पुं० [ हि० ] स्मरण । याद ।

सुँभ्यन-संज्ञा पुं० दे० "स्वान" । उ०—सुँभ्यन एक त्रिंज अयो न सुँभ्यन बहुत जेतन में कीनेउ ।—तैग बहादुर ।  
 सुँभ्यना-संज्ञा पुं० [ हि० ] सूना का भेषण । उष्य कराना । पैदा कराना । सूने में प्रवृत्त कराना ।

सुँभ्यामी-संज्ञा पुं० दे० "स्वामी" । उ०—सुँभ्यत सुँभ्यता का करन सुँभ्यामी सुँभ्य ताहि चिसरायै । जन मानके कोटन में कोऊ भजन राम को पावै ।—तैग बहादुर ।  
 सुँभ्यार-संज्ञा पुं० [ सं० सुँभ्यार ] रसोहया । भोजन प्रदानेवाला । पाकहार । उ०—परसन छगे सुँभ्यार विषुष जन जेवहि । देहि गारि बरगारि मोद मन भेवहि ।—सुलसी ।

सुँभ्यार-वि० [ सं० ] उन्नत दाण्ड करनेवाला । मीठे स्वर से बोलने या बजनेवाला । उ०—नाना सुँभ्यार-धरती नट चेतकी ज्यारी गिते । तेडी तमोली रमक सूँभ्य चिपझारक पुर तिते ।—रामानवमेघ ।

सुँभ्यसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पैसने का सुँभ्य असन या पीदा ।  
 सुँभ्यसिन-संज्ञा स्त्री० दे० "सुँभ्यसिनी" ।

**सुभासिनी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुभासिनी ? ] स्त्री, विरोपतः  
 भास पास में रहनेवाली स्त्री । उ०—(क) विप्र वधू सन-  
 मानि सुभासिनि जयं पुरजनः बहिराह । सनमाने अथनीस  
 असीसत ईसुर में समनाह ।—तुलसी । (ख) देव पितर  
 गुर विप्र पूजि नृप दिए दान रुचि जानी । मुनि वनिता  
 पुरनारि सुभासिनि सहस्र भौंति सनपाइ अभाइ असीसत  
 निकसत जाचक जन भये दानी ।—तुलसी ।  
**सुभाहित**-संज्ञा पुं० [ सं० सु+आहत ? ] तलयार के ३२ हाथों में  
 से एक हाथ । उ०—तिनि सध्व जानु विजानु संकोषित  
 सुभाहित विप्र को । शन लवन कुद्व छिप्र संर्येतर तथा  
 उचरत को ।—रघुराज ।  
**सुरया**-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सूर्या ] एक प्रकार की विद्यिया ।  
**सुरै**-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरै" ।  
**सुकंकवत्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम जो मार्कंडेय  
 पुराण के अनुसार मेरु के दक्षिण में है ।  
**सुकंटका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घृत कुमारी । धी कुभार ।  
 गुभार पाठा । (२) पिंड खजूर ।  
**सुकंट**-वि० [ सं० ] (१) जिसका कंट सुंदर हो । (२) जिसका  
 स्वर मीठा हो । सुरीला ।  
 सदा पुं० [ सं० ] रामचंद्र के सखा, सुमीयं । उ०—याकि  
 से घीर विदारि सुकंट थप्यौ हार्ये सुर बागंन धामे । पल  
 में दल्यौ दासरथी दसकंधंरं लंक विभीषण राज विराने ।—  
 तुलसी ।  
**सुकंद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] कसेरू ।  
**सुकंदक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाराही कंद । मिर्चोली कंद ।  
 गेंदी । (२) प्याज । (३) महामारत के अनुसार एक प्राचीन  
 देश का नाम । (४) इस देश का निवासी ।  
**सुकंदकरण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्याज । इयेत पलांडु ।  
**सुकंदन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वैजयंती तुलसी । (२) वरंकर ।  
 बयई तुलसी ।  
**सुकंदी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लक्ष्मणाकंद । पुत्रदा । (२) यंध्या-  
 कर्कोटकी । बौद्धकरोड़ा ।  
**सुकंदी**-संज्ञा पुं० [ सं० सुकंदी ] सूरन । जमीकंद ।  
**सुक**-संज्ञा पुं० [ सं० शुक्र ] (१) सीता । शुक्र । कीर । सुग्गा ।  
 (२) म्यास पुत्र । शुक्रदेव मुनि । (३) एक राक्षस जो  
 रावण का दूत था ।  
**सुक्र**-संज्ञा पुं० [ सं० सुक्र ] शिरीष वृक्ष । सिरस का पेड़ ।  
**सुकृ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] अंगिता वंश में उत्पन्न एक ऋषि जो  
 ऋग्वेद के कई संग्रहों के द्रष्टा थे ।  
**सुकृचय**-संज्ञा पुं० [ सं० संकोच ] संकोच । (दि०)  
**सुकृचान्ता**-वि० अ० दे० "सुकृचान्ता" ।  
**सुकृटि**-वि० [ सं० ] अच्छी कमरवाली । जिसकी कमर सुंदर हो ।

**सुकृट्ट**-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिरीष वृक्ष ।  
 वि० सिरस का पेड़ । अत्यंत कड़ु । बहुत कड़ुभा ।  
**सुकृडना**-वि० अ० दे० "सुकृडना" ।  
**सुकृदेय**-संज्ञा पुं० दे० "सुकृदेय" ।  
**सुकृना**-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का धान जो मोदी महीने  
 के अंत और आदिपन के आरंभ में होता है ।  
**सुकृनासाक्ष**-वि० [ सं० शुक्र + नासिका ] जिसकी नाक शुक्र पत्ती  
 की ठोर के समान हो । सुन्दर नाकवाला ।  
**सुकृत्या**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शर्पाति राजा की कन्या और श्वेत  
 ऋषि की पत्नी ।  
**सुकृपर्दा**-वि० [ सं० ] (वह स्त्री) जिसने उत्तमता से केत रक्षित  
 हो । जिसने उत्तमता से चोटी की हो ।  
**सुकृपिच्छक**-संज्ञा पुं० [ हिं० ] गंधक ।  
**सुकृमारा**-वि० दे० "सुकृमारा" ।  
**सुकृमाराता**-संज्ञा स्त्री० दे० "सुकृमाराता" ।  
**सुकृर**-वि० [ सं० ] जो अनायास किया जा सके । सहज में होने  
 वाला । सुसाध्य ।  
**सुकृरता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुकृ का भाव । सहज में होने  
 का भाव । सुकरत्वं । सौकर्यं । (२) सुन्दरता । उ०—जहाँ  
 क्रिया की सुकृरता परणत काज विरोध । तहाँ कहत प्यापगत  
 हैं औरी बुद्धि विषोय ।—मतिराम ।  
**सुकृरा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुरील गाय । अच्छी और सीधी गी ।  
**सुकृराना**-संज्ञा पुं० दे० "सुकृराना" । उ०—अहन अन्वारे के मो  
 अति ही मदन मनेज । देखे तुव दग वार्ये रव सुकृराना  
 भेज ।—रतन टपारा ।  
**सुकृरित**-वि० [ सं० सुकृत ] शुभ । सत् । अच्छा । मला ।  
 उ०—सुकृरित मारु चालना । सुरा न कयहूँ होइ । अश्रित  
 खात परानियाँ सुभा न सुनिया कोइ ।—दादू ।  
**सुकृरीहार**-संज्ञा पुं० [ सुकृरी + हिं० हार ] गले में पहनने का  
 एक प्रकार का हार ।  
**सुकृरीक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] हस्तीकंद । हारीकंद ।  
 वि० जिसके कान सुन्दर हों । अच्छे कानोंवाला ।  
**सुकृरीका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मृगंकरणी । मृगसाकनी नाम  
 की लता । (२) महाबल ।  
**सुकृपी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इन्द्रवारुणी । इन्द्रायन ।  
**सुकृर्म**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छा काम । साकर्म । (२) देव-  
 ताओं की एक श्रेणि या कोटि ।  
**सुकृर्म**-संज्ञा पुं० [ सं० सुकृर्म ] (१) विपकर्म । आदि सत्साईत  
 योगों में से सातवों योग । ज्योतिष में यह योग सब प्रकार  
 के कार्यों के लिये शुभ माना गया है और कहा गया है कि  
 जो वालक इस योग में जन्म लेता है, वह परोपकारी, कला-  
 कुशल, यशस्वी, साकर्म करनेवाला और सदा प्रसन्न रहनेवाला

होता है। (२) उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य। (३) विद्वयकर्मा। (४) विश्रामित्र।

**सुकर्मा-वि०** [ सं० सुकर्मन् ] (१) अच्छा काम करनेवाला। (२) धार्मिक पुण्यवान्। (३) सदाचारी।

**सुकल-यंज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) वह जो अपनी संपत्ति का उपयोग दान और भोग में करता है। दाता और भोक्ता। (२) मधुर, पर अरुष्ट शब्द करनेवाला।

**संज्ञा पुं० दे० "सुकु"**। उ०—दिन दिन बढ़े बढ़ाह अनेदा। जैसे सुकल पत्र को चंदा।—लाल कवि।

**संज्ञा पुं० [ देश० ]** एक प्रकार का आमात्रो सागर के अंत में होता है।

**सुकधाना-किं० प्र० [ ? ]** अचंभे में आना। आश्चर्यान्वित होना। उ०—परदे पालावर लसे, धेरु दाय नहि पाय। गिरवानहु आवि तीन सकि रीसहुगे सुकधान।—रामसहाय।

**सुकवि-यंज्ञा पुं०** [ सं० ] अच्छा कवि। उत्तम काव्यकर्ता।

**सुकहाह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] करेले की छटा।

**वि० सुंदर** बालवाला।

**सुकालिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] करेले की लता।

**सुकाली-संज्ञा पुं०** [ सं० सुकालिन् ] अन्नर। भौता।

**वि० सुंदर** बालवाला।

**सुकाल-संज्ञा पुं०** [ सं० सु+दि० काज ] उत्तम कार्य। अच्छा काम। सुकार्य।

**सुकालिज-संज्ञा पुं०** [ सं० सुकलिज ] मोती। (दि०)

**सुकानाळ-किं० सं० दे० "सुखाना"।**

**सुकामप्रत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह प्रत जो किसी उत्तम कामना से किया जाता है। कामप्रत।

**सुकामा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] श्रायमाण लता। श्रायमान।

**सुकार-वि०** [ सं० ] [ स्त्री० सुकार्प ] (१) सहज साध्य। सहज में होनेवाला। (२) सहज में धन में आनेवाला (घोड़ा या गाय आदि)। (३) सहज में प्राप्त होनेवाला।

**संज्ञा पुं०** (१) अच्छे स्वभाव का घोड़ा। (२) कुंभद्राष्टि।

**सुकाल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सुसमय। उत्तम समय। (२) वह समय जो अन्न आदि की उपज के विचार से अच्छा हो। अकाल का उल्टा।

**सुकालिन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पित्तों का एक गण। मनु के अनुसार ये शब्दों के पित्त माने जाते हैं।

**सुकालुका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] भटकटैया।

**सुकामनाळ-किं० सं० दे० "सुखाना"।** उ०—भूमि भार दीये को कि मुर दीये लीये को, समुद्र कीच कीये को कि पान के सुकामने।—हनुमन्नाटक।

**सुकामन-वि०** [ सं० ] अव्यक्त दीप्तिमान्। बहुत प्रकाशमान्। बहुत चमकीला।

**सुकाष्ठक-यंज्ञा पुं०** [ सं० ] देवदार।

**सुकाष्ठा-यंज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) कुटकी। (२) काष्ठ कटली। बनकुटली। कटकेला।

**सुकिजल-यंज्ञा पुं०** [ सं० ] शुभ कर्म। उत्तम कार्य। उ०—सोचत ह्यभि मानि मन गुनि गुनि गये निघटि फल सकल सुकिज के।—सुलसी।

**सुकियाळ-संज्ञा स्त्री०** [ सं० खकीया ] वह स्त्री जो अपने ही पति में अनुराग रखती हो। स्वकीया नायिका। उ०—सा नायक की नायका मंथनि सीनि यलान। सुकिया परकीया अवर सामान्या सुप्रमान।—केशव।

**सुकी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० सुक ] सोते की मादा। सुग्गी। सारिका। तोती। उ०—हृजत हैं कलहंस कपोत सुकी सुक सोए कैं सुनि ताहू। मैकहू क्यॉन न लखा सकुचौ जिय जागत हूँ गृह लोग लजाहूँ।—देव।

**सुकीउळ-संज्ञा स्त्री०** [ सं० खकीया ] अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली स्त्री। स्वकीया नायिका। उ०—याही के निहारे भूँडे सॉंचे राम मारे वाली लोग कदत तीप ले दई सुकीउ ई। सुच्ये जाको नाँव मेते देत देत गाँव सब शाखाएण राउर विमूरति सुमीउ है।—हनुमन्नाटक।

**सुकुंतल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

**सुकुंद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] राह। धृता।

**सुकुंदक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] प्यात्र।

**सुकुंदन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] रवंरी। बघई तुलसी।

**सुकुशार-वि०** [ स्त्री० सुकुशी ] दे० "सुकुमार"। उ०—हह न होइ जैसे माखन घोरी। तव वह सुख पहचानि मानि सुख देती जान ह्यनि हुति थोरी। उन दिननि सुकुशार हते हरि हौं जानत अपने मन भोरी।—सूर।

**सुकुष्ट संज्ञा पुं०** [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

**सुकुडना-किं० प्र० दे० "सिकुडना"।**

**सुकुतिळ-संज्ञा स्त्री०** [ सं० सुकि ] सीप। सुक्ति। उ०—परन परमानंद वही अहिवदन श्लाहल। कदलीगत घनसार सुकुति मई सुका कोलाहल।—सुधाकर।

**सुकुमार-वि०** [ सं० ] [ स्त्री० सुकुमारी ] जिसके अंग बहुत कोमल हों। अति कोमल। नासुक।

**संज्ञा पुं०** (१) कोमलतर शालक। नासुक लटका। (२) कल। ईल। (३) वनचंपा। (४) अयामार्ग। लटजीरा। (५) सर्वाँ धान। (६) केंगनी। (७) एक देश का नाम। (८) एक नगर का नाम। (९) काव्य का एक गुण। ( जो काव्य कोमल अक्षरों या शब्दों से युक्त होता है, यह सुकुमार गुण विभिन्न कहलाता है। ) (१०) तंबाकू का पत्ता। (११) पैठक में एक प्रकार का मोदक जो निसोय, चीनी, राहद, इलायची

और काली मिर्च के योग से बनता है और जो विरेचक तथा रक्त पित्र और वायु रोगों का नाशक माना जाता है ।  
**सुकुमारक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) तंबाकू का पत्ता । (२) तेजपत्र । तेजपत्ता । (३) सर्बो धान । (४) सुंदर बालक ।  
**सुकुमारता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सुकुमार होने का भाव या धर्म । कोमलता । सौकुमार्य । नवजात ।  
**सुकुमाप्यन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक कल्पित धन जो भागवत के अनुसार मेरु के नीचे है । कहते हैं कि इसमें भगवान् शंकर भगवती पार्वती के साथ क्रीड़ा किया करते हैं ।  
**सुकुमारा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) जूही । (२) नवमल्लिका । (३) कदली । केला । (४) स्टब्दा । (५) मालती ।  
**सुकुमारिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] केले का पेड़ ।  
**सुकुमारी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) नवमल्लिका । घमेली । (२) धारिणी नाम की ओपधि । (३) वन मल्लिका । (४) एक प्रकार की फली । जैसे मूँग आदि की । (५) थड़ा केला । (६) ऊल । (७) कदली वृक्ष । केले का पेड़ । (८) त्रिसंधि नामक फूलदार पेड़ । (९) स्टब्दा नामक गंध द्रव्य । (१०) कन्या । (११) लड़की । बंदी ।  
 वि० कोमल शंभोवाली । कोमलांगी ।  
**सुकुरनाड-किं०** प्र० दे० "सिकुडना" । उ०—सुकुर बिलोको लाल रहे क्यों पुकुर पुकुर है । सरमाने हो कहा रहे क्यों अंग सुकुर कै ।—अधिकादत्त श्यास ।  
**सुकुडुर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बालकों का एक प्रकार का रोग जिसकी गणना बालमर्दों में होती है ।  
**सुकुल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) उत्तम कुल । श्रेष्ठ वंश । (२) वह जो उत्तम कुल में उत्पन्न हो । कुलीन ।  
 संज्ञा पुं० दे० "शुल" ।  
**सुकुलता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सुकुल का भाव । कुलीनता ।  
**सुकुलवेद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] शुक्र + हि० वेत । एक प्रकार का वृक्ष ।  
**सुकुवाँद, सुकुवाँद-वि०** दे० "सुकुमार" । उ०—भीचक ही घर माँस साँस ही अगिनि छागी थड़ो अनुरागी रहि गई सोउ धारिये । कहे आयो नाथ सप कीजिये जू अंगीकार हँसे सुकुवार हरि मोहि को निहारिये ।—भक्तमाल ।  
**सुकुसुमा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] स्कंद की एक मातृका का नाम ।  
**सुकुत्त-वि०** [ सं० ] (१) उत्तम और शुभ कार्य करनेवाला । (२) धार्मिक । पुण्यवान् ।  
**सुकुत्त-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) पुण्य । सत्कार्य । भला काम । (२) दान । (३) पुस्तकार । (४) देवा । मेहरबानी ।  
 वि० (१) भाग्यवान् । किस्तवत् । (२) धर्मशील । पुण्यवान् । (३) जो उत्तम रूप से किया गया हो ।  
**सुकुत्तकर्म-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सुकुत्तकर्मन् । पुण्य कर्म । सत्कार्य । शुभ कार्य ।

वि० पुण्यात्मा । धर्मात्मा ।  
**सुकुत्तमत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का मत जो प्रायः द्वादशी के दिन किया जाता है ।  
**सुकुतात्मा-वि०** [ सं० ] सुकृतात्मान् । वह जो सुकृत करता हो । धर्मात्मा । पुण्यात्मा ।  
**सुकृति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] शुभ कार्य । अच्छा काम । पुण्य । सत्कर्म ।  
**सुकृतिरव-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सुकृति का भाव या धर्म ।  
**सुकृती-वि०** [ सं० ] सुकृतिन् । (१) धार्मिक । पुण्यवान् । सत्कर्म करनेवाला । (२) भाग्यवान् । सत्करीवर । (३) बुद्धिमान् । शक्यमंद ।  
 संज्ञा पुं० दत्तवं मन्वन्तर के एक ऋषि का नाम ।  
**सुकृत्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) उत्तम कार्य । पुण्य । धर्मकार्य । (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
**सुकैत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] आदित्य । सूर्य ।  
**सुकैतन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] भागयन के अनुसार सुनीय राजा के पुत्र का नाम । कहीं कहीं इनका नाम निवेतन भी मिलता है ।  
**सुकैतु-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) चित्रकेतु राजा का नाम । (२) ताड़का राक्षसी के पिता का नाम । (३) सागर के पुत्र का नाम । (४) नन्दिचर्दन का पुत्र । (५) केतुमंत के पुत्र का नाम । (६) सुनीय राजा के पुत्र का पुत्र । (७) वह जो मनुष्यों और पक्षियों की योधी समझता हो ।  
 वि० उत्तम केशोवाला ।  
**सुकेश-संज्ञा पुं०** दे० "सुकेशि" ।  
 वि० [ स्त्री० ] सुकेशा । उत्तम केशोवाला । जिसके बाल सुंदर हों ।  
**सुकेशि-संज्ञा पुं०** [ सं० ] विद्युत्केश राक्षस का पुत्र तथा मात्यवान्, सुमाली और माली नामक राक्षसों का पिता । कहते हैं कि जब इसका जन्म हुआ था, तब इसकी माता इसे मंथर पर्वत पर छोड़कर अपने पति के साथ विहाय करने चली गई थी । उस समय पार्वती के कहने पर महादेव जी ने इसे चिरजीवी होने और आकाश में गमन करने का वरदान दिया था । पीछे से इसने एक गंधर्व कन्या के साथ विवाह किया था, जिससे उक्त तीनों पुत्र हुए थे । इन्हीं पुत्रों से राक्षसों का वंश चला था ।  
**सुकेशी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) उत्तम केशोवाली स्त्री । वह जो जिसके बाल बहुत सुंदर हों । (२) महाभारत के अनुसार एक अस्त्र का नाम ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] सुकेशिन् । [ स्त्री० ] सुकेशिनी । वह जिसके बाल बहुत सुंदर हों ।  
**सुकेशर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सिंह । शेर ।

**सुकोली**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्षीर काकोली नामक कंद । पयस्का । पयस्विनी ।

**सुकोशला**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नगरी का नाम ।

**सुकोशा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कोशासकी । तरुई । तरौई ।

**सुकुडि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मूला चंदन जो बंधक में भ्रूणकृच्छ्र, पित्तक और दाह को दूर करनेवाला तथा शीतल और सुगंधिदायक बताया गया है ।

**सुकान**-संज्ञा पुं० [ ? ] पतवार । (जहाज की) (लक्ष०)

**सुहा**—सुधान पकड़ना या मारना = जहाज चलाना । (लक्ष०)

**सुधानी**-संज्ञा पुं० [ ? ] गलाह । माद्री । (लक्ष०)

**सुपल**-संज्ञा पुं० दे० "सुख" । उ०—जे जन भीजे रामरस विरसित कबहुँ न रहल । अनुभव भाव न दूरसे ते नर सुकृत्र न दुकृत्र ।—कबीर ।

**सुक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल की एक प्रकार की कौड़ी जो पानी में घी या तेल, नमक और कंद या फल आदि मिलाकर बनाई जाती थी । वैद्यक में इसे रक्तपिच और कफनाशक, बहुत उष्ण, तीक्ष्ण, शक्तिर, दीपन और कृमिनाशक माना है ।

**सुका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] द्रमही ।

**सुक्ति**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन पर्वत का नाम ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सुक्ति" ।

**सुक**-संज्ञा पुं० दे० "सुक" ।

संज्ञा पुं० भस्मि । (दि०)

**सुकुतु**-वि० [ सं० ] उषम कर्म करनेवाला । सत्कर्म करनेवाला ।

**सुकृत्या**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुभ कर्म करने की इच्छा ।

**सुकृति**-संज्ञा पुं० दे० "सुकृत्" । उ०—कहिं सुमति सय कोप सुमित सत जनम क जागै । सौ सुसति मिलि जायै सत रिखि सौँ सत भागै ।—सुधाकर ।

**सुकीड़ा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अक्षरा का नाम ।

**सुकुड**-वि० दे० "सुकु" । उ०—उनइस तैतालीस को संवत माघ सुमास । सुकु पंचमी को भयो सुकवि लेख परकास ।—अधिकारदत्त व्यास ।

**सुक्षत्र**-वि० [ सं० ] (१) अर्थात् धनशाली । (२) सुराज्यशाली ।

(३) शक्तिशाली । बलवान् । दृढ़ ।

संज्ञा पुं० निरमित्र के पुत्र का नाम ।

**सुसद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुंदर यशशाला । यशिया यश-मंडप ।

**सुसाम**-वि० दे० "सुसम" । उ०—कारण सुधम तीग देह धरि भक्ति हेत नृण तोरी । धर्मनि निरति परति गुरु गुरति आदि के काज बनोरी ।—कबीर ।

**सुसिति**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुंदर निवासस्थान । (२) यह जो सुंदर स्थान में रहता हो । (३) वह जिसे मयेध पुत्र पीतादि हों । धन धारण और संतान भादि से सुखी ।

**सुखेत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मार्कंडेय पुराण के अनुसार दक्षयें मनु के पुत्र का नाम । (२) वह पर जिसके दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की ओर दीवारें या मकान आदि हों । पूर्व ओर से खुला हुआ मकान जो बहुत शुभ माना जाता है ।

**सुखंकर**-वि० [ सं० ] सुखकर । सुकर । सद्गन ।

**सुखंकारी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जीवन्ती । दोदी । वि० दे० "जीवन्ती" ।

**सुखंडरा**-संज्ञा पुं० [ देश० ] वैद्यों की एक जाति ।

**सुखंडी**-संज्ञा स्त्री० [ दि० सूचना ] एक प्रकार का रोग जिसमें धारी सुखकर कौटा हो जाता है । यह रोग बच्चों को बहुत होता है ।

वि० बहुत दुखला पतला ।

**सुखंद**-वि० [ सं० सुखंद ] सुखदायी । आनंददायक । उ०—धनगन पैली बनबदन सुमन सुरति मकरंद । सुंदर नायक श्रीरवन दक्षिण पवन सुखंद ।—रामसहाय ।

**सुख**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मन की वह उत्तम तथा मिय अनुभूति जिसके द्वारा अनुभव करनेवाले का विदोष समाधान और संतोष होता है और जिसके बराबर बने रहने की वह कामना करता है । यह अनुकूल और मिय वेदना जिसकी सब को अभिलाषा रहती है । दुःख का उलटा । आराम । जैसे,—(क) वे अपने बाल-बच्चों में यदु सुख से रहते हैं । (ख) जहाँ तक हो सके, सब को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

**विशेष**—कुछ लोग सुख को हर्ष का पर्यायवाची समझते हैं; पर दोनों में अंतर है । कोई उषम समाचार सुनने अथवा कोई उषम पदार्थ प्राप्त करने पर मन में सहसा जो वृत्ति उत्पन्न होती है, वह हर्ष है । परंतु सुख इस प्रकार आह्लासिक नहीं होता; और वह हर्ष को अपेक्षा अधिक स्थायी होता है । अनेक प्रकार की चिंताओं, कष्टों आदि से निरंतर बचे रहने पर और अनेक प्रकार की वासनाओं आदि की वृत्ति होने पर मन में जो मिय अनुभूति होती है, वह सुख है । हमारे यहाँ कुछ लोगों ने सुख को मन का और कुछ लोगों ने आत्मा का धर्म माना है । न्याय और वैशेषिक के अनुसार सुख आत्मा का एक गुण है । यह सुख दो प्रकार का कहा गया है—(१) नित्य सुख जो परमात्मा के विशेष गुण के अंतर्गत है और (२) जन्म सुख जो जीवात्मा के विशेष सुख के अंतर्गत है । यह धन वा मिय की प्राप्ति, आरोग्य और भोग आदि से उत्पन्न होता है । सांख्य और पांजल के मत से सुख प्रकृति का धर्म है और इसकी उत्पत्ति सब से होती है । गीता में सुख तीन प्रकार का कहा गया है—(१) सात्विक, जो ज्ञान, वैराग्य और त्याग आदि के द्वारा प्राप्त होता है । (२) राजसिक, जो विषय तथा इंद्रियों के संयोग से उत्पन्न होता है । (जैसे संगीत सुनने, सुंदर रूप देखने, स्वादिष्ट भोजन करने और संयोग

आदि से होता है।) और (३) तामस, जो आलस्य और उन्माद आदि के कारण उत्पन्न होता है।

पर्याय—म्रीति। मोद। आमोद। प्रमोद। आनंद। हर्ष। सौख्य।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—भोगना।—गिलना।

मुहान्—सुख मानना = परिस्थिति आदि की अनुकूलता के कारण ठीक श्रवण में रहना। जैसे,—यह पेड़ सभी प्रकार की जमीनों में सुख मानता है। सुख छटना = कथेष्ट सुख का भोग करना। भोग करना। श्रानंद करना। सुख की नींद सोना = निश्चिन्त होकर आनंद से सोना या रहना। खूब मजे में समय बिताना।

(२) एक प्रकार का वृक्ष जिसके प्रत्येक चरण में ८ स्रगण और २ लघु होते हैं। (३) आरोग्य। तंदुरुस्ती। (४) स्वर्ग। (५) जल। पानी। (६) वृद्धि नाम की अष्टयुगीय ओषधि।

सुखशासन-संज्ञा पु० [ सं० सुख + आसन ] सुखपाल। पालकी। दोली। उ०—चंद्रि सुखआसन वृषति सिधायो। तर्हो कहार एक दुख पायो।—सूर।

सुखकंद-वि० [ सं० सुख + कंद ] सुखमूल। सुख देनेवाला। आनंद देनेवाला। उ०—अहो पवित्र प्रभाव यह रूप नयन सुखकंद। रामायन रचि मुनि दियो वानिहि परम अमंद।—सीताराम।

सुखकंदन-वि० दे० "सुखकंद"। उ०—श्रीवृषभानु सुता दुलही दिन जोरी बनी विधना सुखकंदन। रसखानि न आवत मो पै कयो कहु दोऊ कँडे छवि प्रेम के फंदन।—रसखान।

सुखकंदर-वि० [ सं० सुख + कंदर ] सुख का घर। सुख का आकर। उ०—सुंदर गंदमहर के मंदिर प्रगथ्यो पूत सकल सुखकंदर।—सूर।

सुखकली-वि० [ हिं० मूला ] सूखा। शुष्क। उ०—सुखक वृक्ष एक जक उवाया। समुसि न परी विषय कहु माया।—कवीर।

सुखकर-वि० [ सं० ] (१) सुख देनेवाला। सुखदा। (२) जो सद्गज में सुख से किया जाय। सुकर। (३) हलके हाथवाला। उ०—परम निपुण सुखकर घर नापितं लीन्हो सुरत सुलाहं। क्रम सों धारि कुमारम को नृप दिय मुंडन करवाई।—रघुराज।

सुखकरण-वि० [ सं० सुख + करण ] सुख उत्पन्न करनेवाला। आनंद देनेवाला। उ०—सय सुत्तकरण हरण दुख भारी। जय जाहि निघ बैलकुमारी।—विश्राम।

सुखकरन-वि० दे० "सुखकरण"। उ०—सुखवरन सय से परम कपय वैसु बरकर धरत हैं। सुर मपुर तान बंधान तें प्रभु मनुहुं को मन हरत हैं।—गिरधरदास।

सुखकारक-वि० [ सं० ] सुखदायक। सुख देनेवाला। आनंददायक।

सुखकारी-वि० [ सं० सुखकारि ] सुख देनेवाला। आनंददायक। सुखहृत-वि० [ सं० ] जो सुख या आराम से किया जाय। सुकर। सहज।

सुखक्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुख से किया जानेवाला काम। सहज काम। (२) वह काम जिसे करने से सुख हो। आराम देनेवाला काम।

सुखगंध-वि० [ सं० ] जिसकी गंध आनंद देनेवाली हो। सुगंधित।

सुखग-वि० [ सं० ] सुख से जानेवाला। आराम से चलने या जानेवाला।

सुखगम-वि० [ सं० ] सरल। सुगम। सहज।

सुखगमय-वि० [ सं० ] (१) सुख से जाने योग्य। आराम से जाने योग्य। (२) जिसमें सुखपूर्वक गमन किया जा सके।

सुखग्राह-वि० [ सं० ] सुख से ग्रहण योग्य। जो सहज में लिया जा सके।

सुखचर-वि० [ सं० ] सुख से चलनेवाला। आराम से चलनेवाला।

सुखचार-संज्ञा पु० [ सं० ] उपन घोड़ा। बंदिया घोड़ा।

सुखजनक-वि० [ सं० ] सुखदायक। आनंददायक। सुखदा।

सुखजननी-वि० [ सं० ] सुख उपजानेवाली। सुख देनेवाली। उ०—मदन जीविका सुखजननि, मनमोहनी विलास। निपट कृपाणी कपट की रति, दोभा सुखवास।—केशव।

सुखजात-वि० [ सं० ] सुखी। प्रसन्न।

सुखद्व-वि० [ सं० सुख + द्व ] सुख का जाननेवाला। सुख का ज्ञाता। उ०—जागरेत भाखि सुत सुखमा मिलाख जे सुखज सुखभापो है तुरीयमय मोमे हैं। गुणग्रये भेद के अवस्था प्रय खेदहू के छटन के लच्छ से बिलच्छन बखाने हैं।—चरणचंद्रिका।

सुखडैना-संज्ञा पु० [ हिं० सुखना + डैना (प्रय०) ] पैलों का एक प्रकार का रोग जो उनका तालू सुख या फूट जाने से होता है। इसमें बैल खाना पीना छोड़ देता है जिससे वह बहुत दुखला हो जाता है।

सुखदहन-वि० [ सं० सुख + हिं० दहन ] सुख देनेवाला। सुखदायक। उ०—समन सुखदहन भक्तजन कंठाभरत।—सरस्वती।

सुखना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुख का भाव या धर्म। सुखत्व।

सुखधर-संज्ञा पु० [ सं० सुख + धर ] सुख का स्थल। सुख देनेवाला स्थान। उ०—निपट भिन्न वा सय सों जो परल्ले हो सुखधर। विविध प्राप्त सों प्रिय हैं वे भूमि भयंकर।—श्रीधर पाठक।

**सुखद-वि०** [ सं० ] [ स्त्री० गुण्य ] सुख देनेवाला । आनंद देनेवाला । सुखदायी । आरामदेह ।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु का स्थान । विष्णु का भासन । (२) विष्णु । (३) एक प्रकार का ताल । (संगीत)

**सुखदनिर्घोष-वि०** दे० "सुखदानी" । उ०—सुंदर श्याम सरोज वरन तन सब अँग सुभग सकल सुखदनिर्घोष ।—तुलसी ।

**सुखदा-वि०** स्त्री० [ सं० ] सुखदेनेवाली । आनंद देनेवाली । सुखदायिनी ।

संज्ञा स्त्री० (१) गंगा का एक नाम । (२) अक्षरा । (३) यामी वृक्ष । (४) एक प्रकार का छंद ।

**सुखदासन-वि०** दे० "सुखदायिनी" । उ०—आह हुती अन्ध-यावन नादनि, साँघो छिपे कर सूपे सुमाहनि । कंघुकि छोरि उठै उपदेश्ये को दूर से अँग की सुखदासनि ।—देव ।

**सुखदार-वि०** दे० "सुखदायी" ।

**सुखदात-वि०** दे० "सुखदाता" । उ०—जो सब देव को देव अहे, दिजमकि में जाकी धनी निपुणार्ह । दासन को सिंगरो सुखदात प्रयात स्वरूप मनोहरारह्य ।—रघुनाथ ।

**सुखदाता-वि०** [ सं० सुखदात ] सुख देनेवाला । आनंद देनेवाला । आराम देनेवाला । सुखद ।

**सुखदान-वि०** [ सं० सुख+दान ] [ स्त्री० सुखदानी ] सुख देनेवाला । आनंद देनेवाला । उ०—(क) खेलति है गुदियान को खेल छये संग मैं सजनी सुखदान री ।—सुंदरीसर्वव । (ख) जब हुमं फूलन के दिवस आयत है सुखदान । फूली अँग समाति नहि उरचय करति महान ।—लभमंगल ।

**सुखदानी-वि०** स्त्री० [ द्वि० सुखदान ] सुख देनेवाली । आनंद देनेवाली ।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार का वृक्ष जिसके प्रत्येक धरण में ८ सराग और १ गुरु होता है । इसे सुंदरी, मछी और चंद्रकला भी कहते हैं ।

**सुखदाय-वि०** दे० "सुखदायक" ।

**सुखदायक-वि०** [ सं० ] सुख देनेवाला । आराम देनेवाला । सुखद ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का छंद ।

**सुखदायिनी-वि०** स्त्री० [ सं० ] सुख देनेवाली । सुखदा ।

संज्ञा स्त्री० मांसरोहिणी नाम की छता । रोहिणी ।

**सुखदायी-वि०** [ सं० सुखदायि ] [ स्त्री० सुखदायिनी ] सुख देनेवाला । आनंद देनेवाला । सुखद ।

**सुखदायो-वि०** दे० "सुखदायी" । उ०—द्वेषि श्याम मन हृष्य यद्वायो । नैसिय करदे चाँदिनी निर्मल वेसोद्द रास रंग उपजायो । वैसिष कनकराल सब सुंदरि यह सोभा पर मन छटायायो । वैसी हृष-मुना पवित्र तट तिसोह कल्पवृक्ष सुखदायो ।—सूर ।

**सुखदाय-वि०** दे० "सुखदायी" । उ०—जह दल चंदन चक्र-दर चंडशिला हरि ताव । अष्ट वस्तु मिलि होत है चरणशुत सुखदाय ।—विद्याम ।

**सुखदास-संज्ञा** पुं० [ देव० ] एक प्रकार का धान जो अगहन महीने में तैयार होता है और जिसका प्यावल बरसों तक रह सकता है ।

**सुखदेनी-वि०** दे० "सुखदायिनी" । उ०—राजत रोमन की तन राजिव है रसवीज नदी सुखदेनी । भागे भई प्रतिपिबित पाठे विद्विषित जो सुगनेनी कि बेनी ।—सुंदरीसर्वव ।

**सुखदेन-वि०** दे० "सुखदायी" । उ०—तिय के मनमंशु मनोरथ आनि कहे हृदयमन जगे पै जगे । सुखदेन सरोज कली से मले उभरे ये उरोज छगे पै छगे ।—सुंदरीसर्वव ।

**सुखदेनी-वि०** [ सं० सुखदायिनी ] सुख देनेवाली । आनंद देनेवाली । सुखद । उ०—माल गुड़ी गुन छाल छटै लपटी हर मोतिन की सुखदेनी ।—केशव ।

**सुखदोहा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] वह नाप जिसको दुहने में किसी प्रकार का कष्ट न हो । बहुत सहज में दूही गा सकनेवाली गौ ।

**सुखधाम-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) सुख का घर । आनंद स्थान । (२) वह जो स्वयं सुखमय हो; या जो बहुत अधिक सुख देनेवाला हो । (३) पैकुंड । स्वर्ग ।

**सुखनाश-क्रि०** प्र० दे० "सुखना" ।

**सुखपर-वि०** [ सं० ] सुखी । सुख । प्रसन्न ।

**सुखपाल-संज्ञा** पुं० [ सं० सुख+पाल (की) ] एक प्रकार की पालकी जिसका ऊपरी भाग तिताले के तिरकर का सा होता है । उ०—(क) सुखपाल और चंडोलों पर और रथों पर जितनी रानियाँ और महारानी छत्रमिवास पीछे चली जाती थीं ।—शिवप्रसाद । (ख) घोंदन के रथ दोह दिये जरापाक मछी सुखपाल सुहाई ।—रघुनाथ । (ग) हम सुखपाल छिपे छपे हाजिर लगन कहार । पहुँचायी मन मजिल तक तुहि है पान अथार ।—रतनहजार ।

**सुखपूर्वक-क्रि०** वि० [ सं० ] सुख से । आनंद से । आराम के साथ । मजे में । जैसे,—आप यदि उनके यहाँ पहुँच जायेंगे तो बहुत सुखपूर्वक रहेंगे ।

**सुखपेय-वि०** [ सं० ] जिसके पीने में सुख हो । जिसके पान करने से आनंद मिले । सुपेय ।

**सुखप्रद-वि०** [ सं० ] सुख देनेवाला । सुखदायक । सुखद ।

**सुखप्रसवा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] सुख से प्रसव करनेवाली स्त्री । आराम से संतान जननेवाली स्त्री ।

**सुखभंज-संज्ञा** पुं० [ सं० ] सफेद मिर्च ।

**सुखमन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] सुख सहज । शंतशिर ।

**सुखमन-संज्ञा** पुं० [ सं० सुख ] सुप्रसा नाम की नारी । मन्थनारी । वि० दे० "सुप्रसा" । उ०—इहाँ पिगला



सुखमन नारी । स्नि समाधि लागि गइ तारी ।—  
जायसी ।

**सुखमा-संज्ञा स्त्री** [ सं० सुखमा ] (१) शोभा । छवि । उ०—तिय  
मुख सुखमा सो दगनि बँधौं प्रेम अपार । रही अलक है  
छगी मलुं बटुरी पुतरी तार ।—सुवारक अली । (२) एक  
प्रकार का वृक्ष जिसमें एक तगण, एक यगण, एक भगण  
और एक गुरु होता है । इसे वामा भी कहते हैं ।

**सुखमानी-वि०** [ सं० सुखमानिन् ] सुख माननेवाला । हर अवस्था  
में सुखी रहनेवाला ।

**सुखमुख-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यक्ष ।

**सुखमोद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] लाल सहिजन । शोभांजन वृक्ष ।

**सुखमोदा-संज्ञा स्त्री** [ सं० ] शकती का वृक्ष । सलई ।

**सुखरात्रि-संज्ञा स्त्री** [ सं० ] दिवाली की रात । कार्तिक महीने  
की अमावस्या की रात ।

**सुखरासल-वि०** [ सं० सुव + राशि ] जो सर्वथा सुखमय हो ।  
सुख की राशि । उ०—मंदिर के द्वार रूप सुंदर निहारो  
करै लख्यो शीत गात सकलास दई दास है । सोचे संग  
जाइये की रीति को प्रमान वई वैसे सय जानो माधवदास  
सुखरास है ।—अक्तमाल ।

**सुखरासी-वि०** दे० "सुखरास" ।

**सुखलाना-कि० सं०** दे० "सुखलाना" ।

**सुखवंत-वि०** [ सं० सुखवन् ] (१) सुखी । प्रसन्न । सुख । (२)  
सुखदायक । आनंद देनेवाला । उ०—इसके कुंद कली से  
वृंत । घचन सोसले हैं सुखवंत ।—संगीत शाकुंतल ।

**सुखवन्त-वि०** [ सं० ] सुखयुक्त । सुखी । प्रसन्न ।

**सुखवत्ता-संज्ञा स्त्री** [ सं० ] सुख का भाव या धर्म । सुख ।  
आनंद ।

**सुखवन्त-संज्ञा पुं०** [ हि० सुखना ] (१) वह फसल जो सूखने के  
लिये धूप में डाली जाती है । (२) वह कमी जो किसी  
चीज में उसके सूखने के कारण होती है ।  
**संज्ञा पुं०** [ हि० सुखना ] वह शाल जिसे लिले हुए अक्षरों  
आदि पर डालकर उनकी स्याही सुखाते हैं । उ०—किलक  
कल है जाइ मसीहू होत सुखा सी । खाजा के परतन की  
सी छवि पय प्रकासी । सुखपन की पारुडु तहाँ चीनी ती  
बरकी । सुकवि करै किमि कविता मउरे यधु अपर की ।—  
अधिकादत्त व्यास ।

**सुखवर्चस्व-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सज्जी मिट्टी । सज्जिका क्षार ।

**सुखवर्चस्व-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सज्जी मिट्टी ।

**सुखया-संज्ञा पुं०** [ सं० सुख ] सुख । आनंद । मोद । उ०—  
सुखया सकल बजविरता के घर, दुख नैहर गवन नादि  
देत ।—रामकृष्ण धर्मो ।

**सुखवारी-संज्ञा पुं०** [ सं० सुख + वारि ] वह जो इंद्रिय सुख को

ही सब कुछ समझता या मानता हो । वह जो भोग विलास  
आदि को ही जीवन का मुख्य उद्देश्य समझता हो ।  
विलासी ।

**सुखवार-वि०** [ सं० सुख + हि० वार (मय०) ] [ स्त्री० सुखवारी ]  
सुखी । प्रसन्न । सुखा । उ०—जहाँ दीन, घरहीन परी ठिठ-  
रत बुद नारी । रही कदाचित कबहुँ गाम में सो सुखवारी ।  
सोय चुकी पै निरदोषिन की सुनि सुनि ख्यारी ।—श्रीधर  
पाठक ।

**सुखवास-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) तरबूज । शीतवृन्त । (२) वह  
स्थान जहाँ का निवास सुखकर हो । आनंद का स्थान ।  
सुख की जगह ।

**सुखसंदूहा-संज्ञा स्त्री** [ सं० ] जो गाप सुख से दूही जाय ।  
जिस गाप को दूहने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो ।

**सुखसंदोहा-संज्ञा स्त्री** दे० "सुखसंदूहा" ।

**सुखसलिल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] उष्ण जल । गरम पानी ।

**विशेष**—पानी गरम करने से उसमें कोई द्रव्य नहीं रह जाता ।  
यैषक में ऐसा जल बहुत उपकारी बताया गया है, और  
इसी लिये "सुखसलिल" कहा गया है ।

**सुखसाध्य-वि०** [ सं० ] जिसका साधन सुकर हो । जिसके  
साधन में कोई कठिनाई न हो । सुख से या सहज में होने-  
वाला । सुकर । सहज ।

**सुखांत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) वह जिसका अंत सुखमय हो ।  
सुखद परिणामवाला । जिसका परिणाम सुखकर हो । (२)  
पादचार्य नाटकों के दो भेदों में से एक वह नाटक जिसके  
अंत में कोई सुखपूर्ण घटना (जैसे संयोग, अमीध, सिद्धि,  
राज्य-प्राप्ति आदि) हो । दुःखांत का उलटा ।

**सुखांडु-संज्ञा पुं०** [ सं० ] गरम जल । उष्ण जल ।

**सुखा-संज्ञा स्त्री** [ सं० ] वरुण की पुरी का नाम ।

**सुखाधार-संज्ञा पुं०** [ सं० ] स्वर्ग ।

**वि०** सुख का आधार । जिस पर सुख अवलंबित हो ।  
जैसे,—हमारे तो आप ही सुखाधार हैं ।

**सुखाना-कि० सं०** [ हि० सुखना का प्रेर० ] (१) किसी गीली  
या नम चीज को धूप या हवा में अथवा आँच पर इस  
प्रकार रखना या ऐसी ही और कोई क्रिया करना जिससे  
उसकी आर्द्रता या नमी दूर हो या पानी सुख जाय ।

जैसे,—थोती सुखाना, दाल सुखाना, मिर्च सुखाना, जल  
सुखाना । (२) कोई ऐसी क्रिया करना जिससे आर्द्रता दूर  
हो । जैसे,—इस चित्त ने तो मेरा सारा खून सुखा दिया ।

कि० प्र० दे० "सुखना" ।

**सुखानी-संज्ञा पुं०** [ ? ] मछली । मछाह । (लडा०) ।

**सुखायत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सहज में बस में आनेवाला घोड़ा ।  
सोला और सभा हुआ घोड़ा ।

**सुखारा**—वि० [ सं० सुख + हि० आण (प्रत्य०) ] (१) जिसे यथेष्ट सुख हो। सुखी। आनंदित। प्रसन्न। उ०—(क) हृदि विधान निसि रहई सुखारे। करहि हूँच उठि बदे सकरे।—गिरधरदास। (ख) नित ये मंगल मोद अजय सब विधि सुख लोग सुखारे।—तुलसी। (२) सुख देनेवाला। सुखद। उ०—जै भगवान प्रधान अज्ञान समान दृष्टि न ते जन सारा। हेतु विचार हिये जग के भग त्यागि लखै निज रूप सुखारा।

**सुखारि**—वि० [ सं० ] उत्तम हृदि भक्षण करनेवाले (देवता आदि)।  
**सुखारी**—वि० दे० "सुखारा"। उ०—(क) मुयो असुर-सुर मये सुखारी।—सूर। (ख) चौरासी रूप के अघकारी। भक्त भये सुनि नाद सुखारी।—गिरधरदास।

**सुखारो**—वि० दे० "सुखारा"।

**सुखार्थी**—वि० [ सं० सुखार्थि ] [ स्त्री० सुखार्थिनी ] सुख चाहनेवाला। सुख की इच्छा करनेवाला। सुखकामी।

**सुखाला**—वि० [ सं० सुख + हि० आण (प्रत्य०) ] [ स्त्री० सुखाली ] सुखदायक। आनंददायक। उ०—छगै सुखाली साँस दिवस की तरुनाई से ताप नसे।—सरस्वती।

**सुखालुका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की जीवन्ती। छोटी। वि० दे० "जीवन्ती"।

**सुखान्त**—वि० दे० "सुखवन्"।

**सुखाघटी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक स्वर्ग का नाम।

**सुखाघटीदेव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] बुद्धदेव जो सुखाघटी नामक स्वर्ग के अधिष्ठाता माने जाते हैं। (बौद्ध)

**सुखाघटीश्वर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बुद्ध देव। (२) बौद्धों के एक देवता।

**सुखाग्रल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार वृषभ राजा के एक पुत्र का नाम।

**सुखाग्रह**—वि० [ सं० ] सुख देनेवाला। आराम देनेवाला। सुखद।

**सुखाग्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो स्वाने में बहुत अच्छा जान पड़े। (२) तरबूत। (३) वरुण देवता का एक नाम।

वि० जिसे सुख की आशा हो।

**सुखाग्रक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] तरबूत।

**सुखाग्र**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुख की आशा। आराम की उम्मीद।

**सुखाग्र्य**—वि० [ सं० ] जिस पर सुख अचलित हो। सुखाधार।

**सुखासन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह आसन जिस पर बैठने से सुख हो। सुपद आसन। (२) नाव पर बैठने का उत्तम आसन। (३) पालकी। छोटी। उ०—चढ़ि सुख आसन नृपति सिंघासो। सर्हो कहार एक दुख पायो।—सूर।

**सुखासिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्वास्थ्य। तंदुरुती। (२) आराम। सुख।

**सुखिन्ना**—वि० दे० "सुखिया"। उ०—कहु नानक सोई नर सुखिभा राम नाम गुन गावै। अजर सकल जगु माया मोहिआ निर्भे पद नहि पावै।—तेगबहादुर।

**सुखित**—वि० [ हि० सुखना ] सुखा हुआ। सुख। उ०—पंथ धरित मद् मुक्ति सखित सरसिंदुर जोवत। काकोदर कर-कोरा उदर तर बेहरि सोवत।—केशव। वि० दे० "सुखी"। वि० [ हि० सुखी ] सुखी। आनंदित। प्रसन्न। सुख। उ०—(क) औरनि के औगुननि तजि कविजन राय होत हैं सुखित सेरो किंसियर न्हाय कै।—मतिराम। (ख) दग फिर कीहि अथलुके देह थकीहँ दार। सुखत सुखित सी देखियत, दुखित गरम के मार।—बिहारी।

**सुखिता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुखी होने का भाव। सुख। आनंद।  
**सुखित्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुखी होने का भाव। सुख। सुखिता। आनंद। प्रसन्नता।

**सुखिया**—वि० [ हि० सुख + रण (प्रत्य०) ] जिसे सब प्रकार का सुख हो। सुखी। प्रसन्न। उ०—लखि के सुंदर वस्तु अरु मधुर गीत सुनि कोइ। सुखिया जनहू के हिये उल्कडा एहि होइ।—लक्ष्मणसिंह।

**सुखिर**—संज्ञा पुं० [ देश० ] साँप के रसने का बिल। बंधी। उ०—याकी अंसि साँपिनि कदत ग्यान सुखिर साँ लहलही दयाम महा चपल निहारी है।—गुमान।

**सुखी**—वि० [ सं० सुखि ] सुख से युक्त। जिसे किसी प्रकार का कष्ट न हो, सब प्रकार का सुख हो। आनंदित। सुख। जैसे,—जो लोग, सुखी हैं, वे दीन दुखियों का हाल बया जालें।

**सुखीन**—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का पक्षी जिसकी पीठ लाल, छाती और गर्दन सफेद तथा बाँच-बिपटी होती है।

**सुखीनल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार राजा वृषभ के एक पुत्र का नाम।

**सुखेतर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुख से निम्न अर्थात् दुःख। क्लेश। कष्ट।

**सुखेन**—संज्ञा पुं० दे० "सुखेण"। उ०—(क) सुखीय विभीषण जावयंत। अंगद केशर सुखेन संत।—सूर। (ख) बरन सुखेन सरत परजन्वहु भारत हनुमानहि उतपन्वहु।—पद्माकर।

**सुखेलक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसके प्रत्येक चरण में न, ज, भ, ङ, र आता है। इसे प्रमदिका और प्रमदक भी कहते हैं।

**सुखेष्ट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] दिन। महादेव।

**सुखेना**—वि० [ सं० सुख + रण ] सुख देनेवाला। उ०—जो मुंभुह भावै मुनिजन प्यावै कागमुंभुहि सुखेना।—विभ्राम।

सुखोरसय-संज्ञा पुं० [ सं० ] पति । स्वामी ।  
 सुखोदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गरम जल । सुखसलिल ।  
 सुखोद्य-वि० [ सं० ] सुख से उच्चारण योग्य । जिसके उच्चारण में कोई कठिनाई न हो (संघ, नाम आदि) ।  
 सुखोजिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सखी मिट्टी । सज्जिका क्षार ।  
 सुख्य-संज्ञा पुं० दे० "सुख" ।  
 सुख्याति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रसिद्धि । शोहरत । कीर्ति । धरा ।  
 वड़ाई ।

सुगंध-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अच्छी और मिय महक । सुघास ।  
 सौरभ । सुगन्ध । वि० दे० "गंध" ।

क्रि० प्र०—भागा ।—उटना ।—निकटना ।—फैलना ।

(२) वह पदार्थ जिससे अच्छी महक निकलती हो ।

क्रि० प्र०—मलना ।—लगाना ।

(३) गंध नृण । गंधेज घास । रसघास । भगिया घास ।  
 (४) श्रीखंड चंदन । (५) शयूर चंदन । (६) गंधराज । (७)  
 नीळा कमल । (८) राल । धूना । (९) काला जीरा । (१०)  
 गंडक । प्रन्धिपर्ण । गण्डिवन । (११) पलुभा । पलुबालुक ।  
 (१२) बृहद् गंधनृण । (१३) भूतृण । (१४) घना । (१५)  
 भूपलवा । (१६) लाल सहिजन । रक्तशिम्पु । (१७) शालि-  
 धान्य । वासमती चायल । (१८) मरजा । मरवक । (१९)  
 माधवी लता । (२०) कसेरु । (२१) सफेद ज्वार । (२२)  
 शिलारस । (२३) तुंगुय । (२४) केवड़ा । द्रपेत फेतकी ।  
 (२५) रसा घास जिससे तेल निकलता है । (२६) एक  
 प्रकार का कीड़ा ।

वि० सुगंधित । सुवासित । महचदार । सुगन्धदारः । उ०—

(क) शीतल मंद सुगंध समीर से मन की कली मानों फूल  
 सी खिल जाती थी ।—शिवप्रसाद । (ख) अंजलिगत शुभ  
 सुमन, जिमि सम सुगंध कर दोउ ।—तुलसी ।

सुगंधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्लेष्मणुष्यी । गुग्गु । गोमा ।  
 (२) रक्त शालिधान्य । साठी धान्य । (३) धरणी कंद ।  
 कंदाहु । (४) गंधतुलसी । रक्त तुलसी । (५) गंधक ।  
 (६) बृहद् गंधनृण । (७) नारंगी । (८) कर्कोटक । ककोड़ा ।

सुगंधकेसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] लाल सहिजन । रक्तशिम्पु ।

सुगंधकोकिला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का गंध द्रव्य ।  
 गंधकोकिला ।

विशेष—भावप्रकाश में इसका गुण गंधमालती के समान  
 अर्थात् तीक्ष्ण, उष्ण और कफनाशक बताया गया है ।

सुगंधगंधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधक ।

सुगंधगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दाह हलदी । दाह हरिद्रा ।

सुगंधगण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुगंधित द्रव्यों का एक गण या वर्ग  
 जिसमें कपूर, कस्तूरी, लता कस्तूरी, गंध मात्रांरवीर्ष, चोरक,  
 श्रीखंडचंदन, पीला चंदन, शिलानुत, लाल चंदन, भगर,

काला भगर, देवदार, पतंग, सरल, तगर, पमाक, गुगल,  
 सरल का गाँद, राल, कुंदूरु, शिलारस, होवान, लौंग,  
 जावित्री, जायफल, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, दाल,  
 चीनी, तेजपत्र, नागकेसर, सुगंधवाला, खस, वालखंड,  
 केसर, गोरोचन, नख सुगंध, वीरन, नेत्रवाला, जटामांसी,  
 नागरमोथा, मुलेटी, अजिहालदी, कचूर, कपूरकचरी आदि  
 सुगंधित पदार्थ कहे गए हैं ।

सुगंधचंद्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंधेज घास । गंधारण । गंध  
 पलाशी । कपूर कचरी ।

सुगंधसुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधनृण । रसा घास ।

सुगंधप्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंदन, यला और नागकेसर इन तीनों  
 का समूह ।

सुगंधत्रिकला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जायफल, लौंग और इलायची  
 अथवा जायफल, सुपारी तथा लौंग इन तीनों का समूह ।

सुगंधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जीरा ।

सुगंधनाकुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का रासना ।

सुगंधपत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सतावर । शतावरी ।  
 शतमूली । (२) कठजामुन । क्षुद्रजम्बू । (३) वनभंडा ।  
 कड़ाई । वृहती । (४) छोटी धमांसा । क्षुद्र दुरालभा । (५)  
 अपराजिता । (६) लाल अपराजिता । रक्तपराजिता । (७)  
 जीरा । (८) बरियारा । बला । (९) विपारा । बृहदांशु ।  
 (१०) रद जटा । खदलता । ईशरी ।

सुगंधपत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जावित्री । (२) रदजटा ।

सुगंधप्रियंगु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फूलफेन । फूलप्रियंगु । गंध  
 प्रियंगु ।

विशेष—पैद्यक में इसे कसला, कटु, द्रातल और घोरजनक  
 तथा वमन, दाह, रक्तविमर, ज्वर, प्रमेह, मेद रोग आदि को  
 नाश करनेवाला बताया है ।

सुगंधफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंकोल । ककरोल ।

सुगंधवाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुगंध + हि० वाला । ध्रुप जाति की  
 एक प्रकार की बनौपधि जो पश्चिमोत्तर प्रदेश, सिंध, पश्चिमी  
 प्रायद्वीप, लंका आदि में अधिकता से होती है । सुगंध के  
 लिये लोग इसे बगीचों में भी लगाते हैं । इसका पौधा सीपा,  
 गाँठ और गेपुंदर होता है तथा पत्ते ककड़ी के पत्तों के  
 समान २ १/२ इंच के घेरे में मोलाकर, कटे किनारेवाले तथा  
 ३ से ५ नोकवाले होते हैं । पत्र-दंड लंबा होता है और  
 शाखाओं के अंत में लंबे सीकों पर गुलाबी रंग के फूल होते  
 हैं । बीजकोष कुछ लंबाई लिये मोलाकार होता है । पौधक  
 में इसका गुण शीतल, रूखा, हलका, दीपक तथा केदों को  
 सुंदर करनेवाला और कफ, पित्त, हृत्वांस, ज्वर, अतिसार,  
 घाय, बिसर्प, हृद्रोग, आमातिसार, रक्तजाव, रक्तपित्त, रक्त-  
 विकार, सुजकी और दाह को नाश करनेवाला बताया गया है ।

पृथ्वीं—वायुः । त्वरिदः । हीवेरः । कुंतलः । केरयः । वारिः ।  
सुगंधभूषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] रसायनं वासः । भगिया वासः ।  
वि० दे० "भूषण" ।

सुगंधमय-वि० [ सं० ] जो सुगंध से भरा हो । सुगंधित ।  
सुवासित । सुगंधद्वार ।

सुगंधमुपधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कस्तुरी । कस्तुरिका । सुगनामि ।  
सुगंधमुद्रपतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का बिलाव जिसका  
मूल गंधयुक्त होता है । सुरक बिलाव । सुगंध मार्जार ।

सुगंधमूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] हरफारेवडी । लवलीकल ।  
विशेष—यैषक में इसे हरिहर-विकार, बवासीर, कफ चित्तनाशक  
तथा हृदय को हितकारी बताया गया है ।

सुगंधमूला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्थल कमल । स्थल पत्र ।  
(२) रासन । रासन । (३) अंबला । (४) गंधपलाशी ।  
(५) कपर कचरी । (६) हरफारेवडी । लवली वृक्ष ।

सुगंधमूली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंधपलाशी । गंधसारी । कपर  
कचरी ।

सुगंधमृषिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घड़दर ।  
सुगंधपरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुगंध + दि० य । एक प्रकार का फूल ।  
सुगंधपरीक्षित-संज्ञा पुं० [ सं० ] रोहित धांस । गंधेज धांस ।  
मिरचिया गंध । भगिया धांस ।

सुगंधवलकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] दालचीनी । सुद्विक ।  
सुगंधपैरजाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधेज धांस । रोहित धांस ।  
सुगंधशाली-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का बंदिमा धालिधान ।  
धोसमनी चावल ।

विशेष—यैषक में यह चावल बलकारक तथा कफ, पित्त और  
ज्वरनाशक बताया गया है ।

सुगंधप्रद-संज्ञा पुं० [ सं० ] जो सुगंध प्रद, यथा जायफूल,  
कंकोल (शीतल चीनी) लैंग, दलायची, कपर और सुपारी ।  
सुगंधसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] सागौन । शाल वृक्ष ।

सुगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रासन । रासन । (२) काला  
जीरा । कृष्ण जीरक । (३) गंधपलाशी । गंधसारी । कपर  
कचरी । (४) रुद्रजवा । शंकरजवा । (५) रातपुष्पी । सांफ ।  
(६) बॉस ककोदा । यन ककोदा । चंपा ककौंठी । (७)  
नेवारी । भयमोहिदा । (८) पीली जूरी । स्वर्णमृषिका ।  
(९) मकुलकंद । (१०) अंसवरा । शृद्धा ।  
(११) संगपत्री । (१२) सख्डी । बालुकी । वृष्टी । (१३)  
माषपीला । अतिमुक्तक । (१४) काशी अमृतमूला । (१५)  
सकंद अमृतमूला । (१६) चित्री नीच । भात लुंग ।  
(१७) तुलसी । (१८) गंध कोरिलो । (१९) तिगुंडी ।

सुगंधिका-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गाँडर की जड़ । खस । बीरन ।  
उशीर । (२) कुँदा । कुमुदिनी । लाल कमल । (३) पुष्कर  
मूल । पुदकर मूल । (४) गौरसुवर्ण शाक । वि० दे० "गौर  
सुवर्ण" । (५) काला जीरा । कृष्ण जीरक । (६) मोषा ।  
मुस्तक । (७) पलुभा । पलवालुक । (८) माषीपत्र । सुर-  
पर्ण । (९) तिलारस । सिद्धक । (१०) शासमनी चावल  
महाशालि । (११) कैय । कपिस्य । (१२) गंधक । गंध  
पाषाण । (१३) सुलतान चंपक । पुषाण ।

सुगंधिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कस्तुरी । सुगनामि । (२) केवडा ।  
पीली केतकी । (३) सफेद धनंत मूल । दयेन सारिया ।  
(४) कृष्ण निगुंडी । (५) सिंह । केमरी ।

सुगंधिकुसुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पीला कनेर । पीत कर्पूर ।  
(२) भसवरा । शृद्धा । (३) यह फूल जिसमें किसी प्रकार  
की सुगंध हो । सुगंधित फूल ।

सुगंधिकृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिलारस । सिद्धक ।  
सुगंधित-वि० [ सं० ] सुगंधि । जिसमें अच्छी गंध हो । सुगंधयुक्त ।  
सुगंधद्वार । सुवासित ।

सुगंधिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुगंधि । अच्छी महक । सुगंध ।  
सुगंधितेज-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंसा या गंधेज नाम की धांस ।  
भगिया धांस । रोहित मृषा ।

सुगंधित्रिफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंधक, सुपारी और लैंग  
इन तीनों का समूह ।

नील सिंधुवार । (२०) पलुभा । पलवालुक । (२१) वन-  
मलिका । सेवती । (२२) बकुची । सोमराजी । (२३)  
२२ पीठ स्थानों में से एक पीठ स्थान में स्थित देवी का  
नाम । देवी भागवत के अनुसार इस देवी का स्थान माधव-  
वन में है ।

सुगंधाढ्य-वि० [ सं० ] सुगंधित । सुवासित । सुगंधयुक्त । सुगंधद्वार ।  
सुगंधाढ्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) त्रिपुरमाली । त्रिपुरमलिका ।  
शुभ मलिका । (२) शासमनी चावल । सुगंधित दालिघांस ।

सुगंधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी महक । सौरभ । सुगंध ।  
सुवास । सुगंध ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द संस्कृत में उल्लिखित है, पर हिंदी में  
इस अर्थ में कोलिंग ही बोला जाता है ।

(२) परमाणु । (३) धाम । (४) कुसेरु । (५) गंधवृण ।  
भगिया धांस । (६) पीपलामूल । पिप्पलीमूल । (७)  
धनिया । (८) मोषा । मुस्तक । (९) पलुभा । पलवालुक ।  
(१०) फूट । कचरिया । गोरख ककड़ी । अजुर । सुमोडु ।  
विमिटा । (११) यमई । बबैरिका । यन तुलसी । (१२)  
यमर चंदन । बबैर चंदन । (१३) सुंदरु । तुंडरु । (१४)  
अमृतमूल ।

वि० दे० "सुगंधित" ।

सुगंधिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गाँडर की जड़ । खस । बीरन ।  
उशीर । (२) कुँदा । कुमुदिनी । लाल कमल । (३) पुष्कर  
मूल । पुदकर मूल । (४) गौरसुवर्ण शाक । वि० दे० "गौर  
सुवर्ण" । (५) काला जीरा । कृष्ण जीरक । (६) मोषा ।  
मुस्तक । (७) पलुभा । पलवालुक । (८) माषीपत्र । सुर-  
पर्ण । (९) तिलारस । सिद्धक । (१०) शासमनी चावल  
महाशालि । (११) कैय । कपिस्य । (१२) गंधक । गंध  
पाषाण । (१३) सुलतान चंपक । पुषाण ।

सुगंधिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कस्तुरी । सुगनामि । (२) केवडा ।  
पीली केतकी । (३) सफेद धनंत मूल । दयेन सारिया ।  
(४) कृष्ण निगुंडी । (५) सिंह । केमरी ।

सुगंधिकुसुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पीला कनेर । पीत कर्पूर ।  
(२) भसवरा । शृद्धा । (३) यह फूल जिसमें किसी प्रकार  
की सुगंध हो । सुगंधित फूल ।

सुगंधिकृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिलारस । सिद्धक ।  
सुगंधित-वि० [ सं० ] सुगंधि । जिसमें अच्छी गंध हो । सुगंधयुक्त ।  
सुगंधद्वार । सुवासित ।

सुगंधिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुगंधि । अच्छी महक । सुगंध ।  
सुगंधितेज-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंसा या गंधेज नाम की धांस ।  
भगिया धांस । रोहित मृषा ।

सुगंधित्रिफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंधक, सुपारी और लैंग  
इन तीनों का समूह ।

सुगंधिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भारामशीतला नाम का शाक जिसे सुनदिनी भी कहते हैं। (२) पीली कंतकी।

सुगंधिपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धारा कदंब। केलिकदंब। (२) वह फूल जिसमें सुगंधि हो। सुशब्दार फूल।

सुगंधिफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीतलचीनी। कयाव चीनी। कंकौल।

सुगंधिमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुगंधिमातृ। पृथिवी।

सुगंधिमूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] शत। उदीर।

सुगंधिमृषिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छट्टंदर।

सुगंधी-वि० [ सं० ] सुगंधिन् जिसमें अच्छी गंध हो। सुवासित। सुगंध युक्त। सुशब्दार।

संज्ञा पुं० पल्लभा। पल्लवालुक।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुगंधि। अच्छी महक। सुशब्द। सुगंधि।

सुगत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बुद्ध देव का एक नाम। (२) बुद्ध भगवान् के धर्म को माननेवाला। भौद्ध।

सुगतत्रैघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुद्ध भगवान्।

सुगति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मरने के उपरांत होनेवाली उचम गति। मोक्ष। उ०—सयरी गीघ सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ। नाम उधारे अमित एल वेद विदित गुन गाथा-तुलसी। (२) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सात मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है। इसे शुभगति भी कहते हैं।

सुगान-संज्ञा पुं० [ देश० ] छकड़े में गाड़ीवान के बैठने की जगह के सामने आड़ी छानी हुई दो लकड़ियों, जिनकी सहायता से बैल खोल लेने पर भी गाड़ी खड़ी रहती है।

सुगाना-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुक्, हि० सुग्गा। सुग्गा। तोता। सूआ। संज्ञा पुं० दे० "सहिजन्"।

सुगभस्ति-वि० [ सं० ] दीसिमात्। प्रकाशमान। चमकीला।

सुगम-वि० [ सं० ] (१) जो सहज में जाने योग्य हो। जिसमें गमन करने में कठिनता न हो। (२) जो सहज में जाना, किया या पाया जा सके। आसानी से होने या मिलनेवाला। सरल। सहज। आसान।

सुगमता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुगम होने का भाव। सरलता। आसानी। जैसे,—यदि आप उनकी सम्मति मानेंगे, तो आपके कार्य में बहुत सुगमता हो जायगी।

सुगम्य-वि० [ सं० ] जिसमें सहज में प्रवेश हो सके। सरलता से जाने योग्य। जैसे,—जंगली और पहाड़ी प्रदेश उतने सुगम्य नहीं होते, जितने खुले मैदान होते हैं।

सुगर-संज्ञा पुं० [ सं० ] विगारक। हिंगुल।

सुगरूप-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की सवारी जो प्रायः रैतीले देशों में काम आती है।

सुगर्भक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सीरा। प्रपुत्र।

सुगल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सु+हि० गल=गाज। बालि का भाई सुग्रीव। उ०—बुनि पावस मई बसे प्रवर्षण वर्षा वर्णन-कीन्मो। सरद सराहि-सकोप सुगल पई लपन पठै-त्रिमि दीग्गो।—रघुराज।

सुगवि-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णुपुराण के अनुसार प्रसंभृत के एक पुत्र का नाम।

सुगहनावृत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह घेरा या बाढ़ जो यज्ञस्थल में अशुद्धियों आदि को रोकने के लिये लगाई जाती है। कुंवा।

सुगाध-वि० [ सं० ] (नदी) जिसमें सुख से जान किया जा सके; अथवा जिसे सहज में पार किया जा सके।

सुगानाल-कि० प्र० [ सं० ] शोक। (१) दुःखित होना। (२) विगड़ना। नाज होना। उ०—आशुहि ते कहूँ जान न देही ना तेरी कहु अक्य कहानी। सुर दयाम के संग ना जैही आ कारण तू मोहि सुगानी।—सूर।

कि० प्र० [ सं० ] संदेह करना। शक करना। उ०—जो पावैरु अपनी जड़ताई। सुहईहि सुगाह मापु कुरिछाई।—गुलसी।

सुगीत-संज्ञा पुं० दे० "सुगीतिका"।

सुगीतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १५+१० के विराम से २५ मात्राएँ और आदि में लघु और अंत में गुरु लघु होते हैं।

सुगुहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुगुहा। गुंवासिनी नृण। गुंवाला। नृणपत्नी।

सुगुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किराँच। कौठ। कविकच्छु। वि० दे० "कौठ"।

सुगुरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुगुर। वह जिसने अच्छे गुरु से मंत्र लिया हो।

सुगृह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का बसल या हंस।

सुगृही-वि० [ सं० ] सुगृहीन् (१) सुंदर घरवाला। जिसका घर बढ़िया हो। (२) सुंदर स्त्रीवाला। जिसकी पत्नी सुंदर हो। संज्ञा पुं० सुश्रुत के अनुसार प्रतद जाति का एक पक्षी। सुगृह।

सुगैया-संज्ञा स्त्री० [ हि० ] सुग्गा। अंगिया। चोली। उ०—मोहि कवि सोचत विपेरिगो सुपेनी पनी, सोरिगो हिये को हरा, दोरिगो सुगैया को।—रसकुसुमाकर।

सुगीतम-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाक्य मुनि। गौतम।

सुग्गा-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुक्। [ स्त्री० ] सुग्गी। तोता। सूआ। शुक्। सुगापंकी-संज्ञा पुं० [ हि० ] सुग्गा+पंख। एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में होता है और जिसका खाल बरतों तक रह सकता है।

सुग्गा सौंप-संज्ञा पुं० [ हि० ] सुग्गा+सौंप। एक प्रकार का सौंप।

सुप्रधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चोरक नाम गंध द्रव्य । (२)

पीपलामूल । पिप्पलीमूल ।

सुप्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] कलित ज्योतिष के अनुसार शुभ या अष्टमे प्रह । जैते,—शुद्धस्वप्ति, शुभ आदि ।

सुप्रीध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) थालि का भाई, यानरी का राजा और धीरामचंद्र का सखा ।

विशेष—जिस समय धीरामचंद्र सीता को हँदते हुए किंकिया पहुँचे थे, उस समय मत्तंग आश्रम में सुप्रीध से उनकी भेंट हुई थी। हनुमानजी ने धीरामचंद्रजी से सुप्रीध की मित्रता करा दी। थालि ने सुप्रीध को राज्य से भगा दिया था। उसके कहने से धीरामचंद्र ने थालि का वध किया, सुप्रीध को किंकिया का राज्य दिलाया और थालि के पुत्र अंगद को सुवराज बनाया। शवण को जीतने में सुप्रीध ने धीरामचंद्र की बहुत सहायता की थी। सुप्रीध सूर्य के पुत्र माने जाते हैं। वि० दे० “थालि” ।

(२) विष्णु या रुद्र के चार घोड़ों में से एक । (३) शुभ और निशुभ का दूत जो भगवती चंडी के पास उन दोनों का विवाह संबंधी सँदेश लेकर गया था । (४) वर्तमान अक्षरसंज्ञी के नवें अर्द्ध के पिता का नाम । (५) इंद्र । (६) शिव । (७) पाताल का एक नाग । (८) एक प्रकार का अक्ष । (९) शंख । (१०) राजहंस । (११) एक पर्वत का नाम । (१२) एक प्रकार का मंडप । (१३) नायक ।

वि० जिसकी प्रीया सुंदर हो । सुंदर गार्दनवाला ।

सुप्रीधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अप्सरा का नाम ।

सुप्रीधी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दक्ष की एक पुत्री और कश्यप की पत्नी जो घोड़ों, ऊँटों तथा गव्यों की जननी कही जाती है ।

सुप्रीधेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] धीरामचंद्र ।

सुघट-वि० [ सं० ] (१) अच्छा बना हुआ । सुंदर । सुडौल ।

उ०—शुद्धि धरत चंचल कपोल खुदु बोल अमृत सम ।

सुघट भीरु रस सीध कंठ सुकना विघटत तम ।—हनुमन्नाटक ।

(२) जो सहज में हो या बन सकता हो ।

सुघटित-वि० [ सं० ] सुघट । जिसका निर्माण सुंदर हो । अच्छी तरह से बना हुआ । उ०—पवल धाम मनि-सुघट-पट-सुघटित नाता भौति । सिपनित्रास सुंदर सदन सोमा किनि कहि जाति ।—तुलसी ।

सुघड़-वि० [ सं० ] सुघट । (१) सुंदर । सुडौल । उ०—नील परेव कंठ के रंगा । हृष से कंध सुघड़ सब अंगा ।—उत्तर रामचरित । (२) निपुण । कुशल । दक्ष । प्रवीण । जैते,—सुघड़ बाह ।

सुघड़ई-संज्ञा स्त्री० [ हि० सुघड़ + ई (अप०) ] (१) सुंदरता । सुडौलपन । अच्छी बनावट । उ०—विषय के भोगों में मस हृष विना ही उस (राजा) को, अधिक सुघड़ई के

कारण विलासिनियों के भोगने योग्य को, वृथा हँव्यों करने-वाली जरा ने ही व्यवहार में असमर्थ होकर भी हरा दिया ।—लक्ष्मणसिंह । (२) चतुरता । निपुणता । कुशलता । उ०—इसमें यही बुद्धि और सुघड़ई का काम है ।—ठाकुरप्रसाद ।

सुघड़ता-संज्ञा स्त्री० [ हि० सुघड़ + ता (अप०) ] (१) सुघड़ होने का भाव । सुंदरता । मनोहरता । (२) निपुणता । कुशलता । दक्षता । सुघड़पन ।

सुघड़पन-संज्ञा पुं० [ हि० सुघड़ + पन (अप०) ] (१) सुघड़ होने का भाव । सुघड़ई । सुंदरता । (२) निपुणता । दक्षता । कुशलता ।

सुघड़ारै-संज्ञा स्त्री० दे० “सुघड़ई” ।

सुघड़पा-संज्ञा पुं० [ हि० सुघड़ + पाग (अप०) ] (१) सुघड़ई ।

सुंदरता । सुडौलपन । (२) दक्षता । निपुणता । कुशलता ।

सुघर-वि० दे० “सुघड़” । उ०—(क) संयुत सुमन सुबेली सी सेली सी गुणप्राम । लसत हवेली सी सुवर निरखि भवेली याम ।—प्रभाकर । (ख) सुघर सीति बस प्रिय सुनत दुलहिनि सुदुहु हुलास । लखी सखी तन दीति करि सगरव सलस हहास ।—अंबिकादत्त ।

सुघरता-संज्ञा स्त्री० दे० “सुघड़ता” ।

सुघरपन-संज्ञा पुं० दे० “सुघड़पन” । उ०—छन में जैहै सुवरपनो पीरो परिहै तन । परकर परि कै सुकवि फेर फिरि भावत रहि मन ।—अंबिकादत्त ।

सुघरारै-संज्ञा स्त्री० [ हि० सुघड़ + आर (अप०) ] (१) दे० “सुघड़ई” । उ०—(क) काम माग करने के कारण जिन्हें न मोई सुघरारै । ऐने शिव को किया चाहती है अपना पति सुखदारै ।—महावीरप्रसाद द्विवेदी । (ख) सुघरारै सुकाम चिरंजिवि है, तिष तेरे नितंबनि की छवि में ।—सुंदरीसर्वस्व । (२) संपूर्ण जाति की एक रागिनी । इसके गाने का समय दिन में १० से १६ बजे तक है ।

सुघरारै कारड़ड़ा-संज्ञा पुं० [ हि० सुघरारै + कारड़ड़ा ] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सप्त शुद्ध स्वर लगते हैं ।

सुघरारै टोड़ी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सुघरारै + टोड़ी ] संपूर्ण जाति की एक रागिनी ।

सुघरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सु + घरी ] अच्छी घड़ी । शुभ समय । उ०—आनंद की सुघरी उभरी सिंगरे मगवांछित काम भए हैं ।—श्यामशर्माहीमुदी ।

वि० स्त्री० [ हि० सुघड़ ] सुंदर । सुडौल । उ०—(क) भाग सोहाग भरी सुघरी पति प्रेम प्रगाली क्या अपदेना ।—सुंदरीसर्वस्व । (ख) सुंदरि ही सुघरी ही सखीनी ही सील भरी रस रूप सनाई ।—देव ।

**सुघोष**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चौथे पांडव नकुल के दास का नाम । (२) एक युद्ध का नाम । (३) एक प्रकार का यंत्र ।  
 वि० जिसका स्वर सुंदर हो। अच्छे गले या आवाजवाला ।

**सुचंग**-संज्ञा पुं० [ हिं० ] घोड़ा ।

**सुचंयुक्ता**-संज्ञा स्त्री [ सं० ] यथा चंचुकशाक । महाचंचु । दीर्घपत्री ।

**सुचंदन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] परतंग या बहम नाम की लकड़ी जिसका प्यवहार औषध और रंग आदि में होता है ।  
 रक्तसार । सुरंग ।

**सुचंद्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक देवगंधर्व का नाम । (२) सिद्धिका के पुत्र का नाम । (३) इक्ष्वाकुवंशी राजा हेमचंद्र का पुत्र और पूज्य का पिता ।

**सुचंद्रा**-संज्ञा स्त्री [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक प्रकार की सम्राधि ।

**सुचक्षु**-वि० दे० "सुचि" ।

**सुचक्रु**-संज्ञा पुं० [ सं० सुचक्रु ] (१) गूलर । उडुयूर । (२) दिव का एक नाम । (३) विद्वान् व्यक्त । पंडित ।  
 वि० जिसके नेत्र सुंदर हों । सुंदर आँलौवाला ।

**सुचक्रु**-संज्ञा स्त्री [ सं० ] एक नदी का नाम ।

**सुचना**-कि० सं० [ सं० संचय ] संचय करना । एकत्र करना । इकट्ठा करना । उ०—संहर फल नहि खात है सरवर पियाहि न पानि । कहि रहीम परकाज हित संपत्ति सुचहि मुजाम ।—रहीम ।

**सुचरित**, **सुचरित्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसका चरित्र शुद्ध हो । उत्तम आचरणवाला । नेकचलन ।

**सुचरित्रा**-संज्ञा स्त्री [ सं० ] प्रति परायणा स्त्री । साध्वी । सती ।

**सुचर्मा**-संज्ञा पुं० [ सं० सुचर्म ] भोजपत्र ।

**सुचा**-वि० दे० "सुचि" । उ०—सील सुचा ध्यान धोवती काया कलस प्रेम जल ।—दादू ।

**सुचाना**-कि० सं० [ हिं० सोचना का प्रे० ] (१) किसी को सोचने या समझने में प्रवृत्त करना । सोचने का काम दूसरे से करना । (२) दिखलाना । (३) किसी का ध्यान किसी यात की ओर आकृष्ट करना ।

**सुचारु**-संज्ञा स्त्री [ सं० सु + हिं० चाल ] सुचाल । अच्छी चाल ।  
 उ०—थाई भाव विरु है विभाव अनुभावनि सौ सातुकनि संतत द्वै संहरि सुचारु है ।—द्वै ।

वि० [ सं० सुचारु ] सुचारु । सुंदर । मनोहर । उ०—भजहुँ हौ रामत जोरधि संट करत सांख्य विस्तार । साध्यापन-से बहुत महासुनि सेवत चरण सुचार ।—चूट ।

**सुचारा**-संज्ञा स्त्री [ सं० ] यदुवंशी बकल की पुत्री जो अश्व की संत थी ।

**सुचांड**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रविमणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण का एक पुत्र । (२) विश्वकसेन का पुत्र । (३) प्रतीर्थ । (४) बाहु की पुत्र ।

वि० अत्यंत सुंदर । अतिशय मनोहर । बहुत स्वमूर्त । जैसे वहाँ के सय कार्य बहुत ही सुचारु रूप से संपन्न हो गए ।

**सुचाल**-संज्ञा स्त्री [ सं० सु + हिं० चाल ] उत्तम आचरण । अच्छी चाल । सदाचार । उ०—कह गिरिधर, कविराय यदन की याही बानी । बलिये चाल सुचाल रखिये शपयो पानी ।—गिरिधर ।

**सुचाली**-वि० [ सं० सु + हिं० चाल + ई (प्रत्यय) ] जिसके आचरण उत्तम हों । अच्छे चाल चलनवाला । सदाचारी ।

**सुचितार्थ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार मार के पुत्र का नाम ।

**सुचि**-वि० दे० "सुचि" । उ०—(क) सहज सचिकन स्वाम रचि सुचि सुगंध सुकुमार । गन तन मन पथ अपय लखि विधुरे सुधरे थार ।—विहारी । (ख) तुलसी कहत बिचारि गुरु राम सरिस नहि भांग । जासु क्रिया सुचि होतें रचि विसद विवेक भमान ।—तुलसी ।  
 संज्ञा स्त्री [ सं० सूचि ] सूई । उ०—सुचिधेपे से नाकी सकांन तहाँ परतीत को टांकी लदावंगो है ।—हरिचंद्र ।

**सुचिकरमा**-वि० दे० "सुचिकर्मा" । उ०—बलेउ सुभसे नरेस छत्रधरमा सुचिकरमा । विसुकरमा कृत सुरप धैडि रथ कंचन यरमा ।—गोपाल ।

**सुचित**-वि० [ सं० सुचित ] (१) जो (किसी काम से) निवृत्त हो गया हो । उ०—(क) ऐसी आज्ञा कर यमराज जब सुचित भय, तब नारद मुनि ने फिर उनसे पूछा कि किस कारण से तुम इहाँ से भाग गए? तो सुभ से कहे ।—सदल मिश्र । (ख) अतिथि साउ प्रति सवनि खवाई । मैं हूँ सुचित भई पुनि खाई ।—रघुराज । (२) निश्चित । चिंत रहित । बेचिन्क । (३) एकाग्र । स्थिर । सावधान । उ०—(क) सुचित सुनहु हरि सुजस कह बहुरि भई जो बात ।—गिरिधरदास । (ख) इहि विधान एकादशी करे सुचित चिंत होइ ।—गिरिधरदास ।  
 वि० [ सं० सुचि ] पवित्र । शुद्ध । (क) ।

**सुचितार्थ**-संज्ञा स्त्री [ हिं० सुचित + ई (प्रत्यय) ] (१) सुचित होने का भाव । निश्चितता । बेचिन्की । उ०—(क) इमि देव हुंदुमी हरपि बरसत फूल सुफल मनोरंभो भो सुख सुचितई है ।—तुलसी । (ख) सुकवि सुचितई पहें सय हँदें कबै मरन ।—अधिकदास । (२) एकाग्रता । स्थिरता । शांति । (३) छुटी । फुसत । उ०—सुचित न भयो सुचितई कही कहाँ से होइ ।—अधिकदास ।

**सुचिती**-वि० [ हिं० सुचि + ई (प्रत्यय) ] (१) जिसका चित्त किसी बात पर स्थिर हो । जो बुझा में न हो । स्थिरचित्त । शांत । उ०—(क) सुचिती है और । सय ससिहि मिलैक आय ।

(क) ससिंह विलोक्य आय सर्प करि करि मन सुचिती।—  
अपिदात्त । (२) निश्चित । चिता रहित । कैकिक ।  
उ०—आय सीं आय के धाय कयो कहुं धाय के पछिपे कांन  
उई है । धिंति रही सुचि ती सी कदा मुनि मेरो सबै सुधि मूलि  
गई है ।—सुंदरीसर्वस ।

सुचित्त-वि० [ सं० ] (१) जिसका चित्त स्थिर हो । स्थिर चित्त ।  
शान्त । (२) जो (किसी काम से) निवृत्त हो गया हो । जो  
छुटी पा गया हो । निश्चित । उ०—(क) प्राज्ञों को नाना  
प्रकार के दान दे नित्य कर्म से सुचित हो ।—लल्लू । (ख)  
बन्या तो पराया धन है ही, उसको पति के धरे भेज दिया;  
सुचित हो गए ।—संगीत शार्ङ्गदल ।  
कि० प्र०—होना ।

सुचित्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुगंधी । मत्स्यरंग पक्षी ।  
(२) चित्रसर्प । पितला सर्प ।

सुचित्रवीजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मायपिटंग । विडंग ।  
सुचित्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चिमिटा या कूट नामक फल ।

सुचिर्मत-वि० [ सं० ] सुचि + मत् । शुद्ध । आचरणवाला । सदा-  
धर्मता । शुद्धाचारी । पवित्र । उ०—सुचिर्मत सुचिर्मत  
सुसंत सुसौल संधान सिरामनि रथे । सुरतीरथा सुमनावन  
आवत पावन होते है तात न द्ये ।—तुलसी ।

सुचिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत अधिक समय । दीर्घ काल ।  
वि० (१) बहुत दिनों तक रहनेवाला । (२) पुराना ।  
प्राचीन ।

सुचिराशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुचि + शुभ । देवता ।

सुची-संज्ञा स्त्री० दे० "सूची" । उ०—सोइ सुरपति लके नारि  
सुची सी । जिस दिन ही रंगारती, काम हेतु गौतम गदि  
सयज निगम देव है साची—कवीर ।

सुचीरा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुचारा" ।

सुचीरौषधज-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुंभाओं के एक राजा का नाम ।  
(बीड़)

सुचिक्रिडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हसही ।

सुचुटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चिमटा । (२) सैंडली ।

सुचेत-वि० [ सं० ] सुचेत + च । सावधान । सतर्क । होसि-  
वार । उ०—(६) कोई नुगे में संता हो कोई सुचेत हो ।  
दिलबर गले से लिपटा हो सरसों का रोते हो ।—नजीर ।  
(७) भाई तुम सुचेत रहो, कटो को दपि बड़ी पैनी है ।—  
सोताराम ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।—रहना ।

सुचेतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिन्ता । (दि०)

सुचेता-वि० दे० "सुचेत" । उ०—सुंदरता सौभाग्य निकेता ।  
पंचनलोचन भदार्हि सुचेता ।—शं० दि० ।

सुचेतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुंदर और महीन कपड़ा । पद ।  
वि० जिसका वस्त्र उच्चम हो ।

सुचेष्टरूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुदृश्य ।

सुच्छंद-संज्ञा स्त्री०-वि० दे० "स्वच्छंद" । उ०—(क) वैदि हकत हांय  
सुच्छंदा । स्वधिप मट्ट परमावदा ।—निश्चल । (ख) निपट  
लागत अगम अ्यों मलचरदि गमन सुच्छंद ।—तुलसी । (ग)  
सकै सताइ न पल हईरै विरहा-अनिल सुच्छंद । न जरे ने  
न जरे रई प्रीतम तुव सुच्छंद ।—रतनहजारा ।

सुच्छली-वि० दे० "स्वच्छ" । उ०—(क) सुच्छ पर हरथ तेन  
सुच्छ अंशर धरे तुच्छ नहि चीर रस रंग रचे ।—सूदन ।  
(ख) कही मैं तो नून तुच्छ बोले हमहूँ ते सुच्छ जाने कोऊ  
नाहिं तुहई मेरी मति भीजिए ।—नामादास ।

सुच्छत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शतदू या सतलज नदी का एक  
नाम ।

सुच्छमल-वि० दे० "सूदन" ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] घोड़ा । (दि०)

सुजंगो-संज्ञा पुं० [ सं० ] गढ़वाली । भाँत के ये चौधे जिनमें प्रीज होते  
हैं । गढ़वाल में इन्हें सुजंगो या कलंगो कहते हैं ।

सुजङ्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] सलवार ।

सुजङ्गी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कटारी ।

सुजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सजन । सत्पुरुष । भलामानस । भला  
आदमी । शरीर ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] खजन । परिवार के लोग । आत्मीय जन ।  
उ०—(क) प्रांगत भीख फिरत घर घर ही सुजन कुटुंब  
वियोगी ।—सूर । (ख) दरपित सुजन सखा त्रिय वालक  
कृष्ण मिलन त्रिय माए ।—सूर । (ग) रामराज नहिं कोऊ  
रोगी । नहिं दुरभिक्ष न सुजन-वियोगी ।—पद्मकर ।

सुजनता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुजन का भाव । सौजन्य । भद्रता ।  
महलमसत ।

सुजनौ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खोदनी । एक प्रकार की बड़ी-चादर जो  
कई परत की होती और बिनाने के काम आती है । यह  
बीच-बीच में बहुत लम्बी में सी हुई रहती है ।

सुजन्मा-वि० [ सं० ] सुजन्म । (१) जिसका उत्तम रूप से जन्म हुआ  
हो । उत्तम रूप से जन्मा हुआ । सुजातक । (२) विवाहित  
। जो पुरुष का औरस पुत्र । (३) अच्छे-कुछ में उत्पन्न ।  
उ०—मूतक घर के आत पास पीले हुए उस सुजन्मा के  
स्वामाधिक तेज से आधी रात के दीपक सहज ही मं-  
द ज्योति हो गये ।—लक्ष्मणसिंह ।

सुजल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कमल । पद्म ।

सुजल्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] पद भाषण जो सहृदयता, उदाहरण,  
उत्कर्ष तथा भावपूर्ण हो । उत्तम भाषण ।

सुजस-संज्ञा पुं० दे० "सुपस" । उ०—सुगसं बजानत बाद



वि० (१) पार्थिव । (२) उत्पन्न । जात ।  
 † संज्ञा पुं० [ ? ] मीस की संज्ञा । कोढ़ी ।  
**सुतकरी**—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] खियों के पहनने की मूत्ती ।  
**सुतजीवक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुत्रजीव वृक्ष । पितृव्यजिया । वि० दे० "पुत्रजीव" ।  
**सुतत्व**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुत का भाव या धर्म ।  
**सुतदा**—वि० स्त्री० [ सं० ] सुत या पुत्र देनेवाली ।  
 संज्ञा स्त्री० दे० "पुत्रदा" (लता) ।  
**सुतना**—संज्ञा पुं० दे० "सूधन" ।  
 कि० प्र० दे० "सूतना" ।  
**सुतनु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक गंधर्व का नाम । (२) उम्रमेन के एक पुत्र का नाम । (३) एक पंजर का नाम ।  
 वि० सुंदर शरीरवाला ।  
 संज्ञा स्त्री० (१) सुंदर शरीरवाली स्त्री । लुहांगी । (२) आहुक की पुत्री और अमर की पत्नी का नाम । (३) उम्रमेन की एक कन्या का नाम । (४) यमुदेव की एक उप-पत्नी का नाम ।  
**सुतसुता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुतवृ होने का भाव । (२) शरीर की सुंदरता ।  
**सुतप**—वि० [ सं० ] सोम पान करनेवाला ।  
**सुतपस्वी**—वि० [ सं० सुतपस्विन् ] अत्यंत तपस्या करनेवाला । बहुत अच्छा और बड़ा तपस्वी ।  
**सुतपा**—संज्ञा पुं० [ सं० सुतपस् ] (१) सूर्य । (२) एक सुनि का नाम । (३) रीच्य मनु के एक पुत्र का नाम । (४) विष्णु ।  
**सुतपादिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटी जाति की एक प्रकार की हंसपट्टी लता ।  
**सुतपेय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ में सोम पीने की क्रिया । सोमपान ।  
**सुतयाग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह यज्ञ जो पुत्र की ह्मत्ता से किया जाता है । पुत्रोष्टि यज्ञ ।  
**सुतर**—संज्ञा पुं० दे० "सुतुर" । उ०—(क) स्य के आगे सुतर सवार अपार शंभार बनाये । धरे जसुक तिन शीतिन पर सहित निसान सुहाये ।—रघुराज । (ख) सँग सवालास सवार । गज श्योहि अमित तयार । यह सुतर प्यारे यूह । कवि को कहे करि उह ।—कवीर ।  
 वि० [ सं० ] सुख से तैरने या पार करने योग्य । जो सुख या आश्रम से पार किया जा सके । ( नदी आदि )  
**सुतरनाल**—संज्ञा स्त्री० दे० "सुतुरनाल" । उ०—तिमि घरनाल और करगाल सुतरनाल जंजाल । गुर गुराय रहै कले भले । सहै खाने विपुल बवाल ।—रघुराज ।  
**सुतरा**—अप्र्यु० [ सं० सुतपस् ] (१) अतः । इसलिये । निदान । (२) अपितु । और भी । किं बहुना । (३) भगवा । उपाहार । (४) अर्थात् । (५) अवश्य ।

**सुतरी**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुतरी ] सुतरी । उ०—नौकत शरत द्वार द्वारान में गंज सुतरी सहनाई । औरहु विविध मनोहर वाजे यंत्रत मधुर सुर छाई ।—रघुराज ।  
 संज्ञा पुं० [ देश० ] वह बैलें जिसका ऊँट का सा रंग हो । यह मध्यम श्रेणी का, मजबूत और तेज माना जाता है ।  
 संज्ञा स्त्री० "बह" एकद्वी जो पार्श्व में सर्पाती अंगुल करने के लिये सर्पों के दोनों तरफ लगी रहती है । इसे जुलाहों की परिभाषा में सुतरी कहते हैं ।  
 संज्ञा स्त्री० दे० "सुतारी" ।  
 संज्ञा स्त्री० दे० "सुतली" ।  
**सुतेरगाही**—संज्ञा पुं० दे० "सुतेरगाही" ।  
**सुतकारी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोमिया । घघरवेल । बंधाल । देवदासी । वि० दे० "देवदासी" ।  
**सुतहैन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कोकिल पक्षी । कोयल ।  
**सुतल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सात पाताल लोकों में से एक (किसी उपलोक के मत से दूसरा और किसी के मत से छठा) लोक । विशेष—भगवत के अनुसार इस पाताल लोक के स्वामी विरोचन के पुत्र बलि हैं । देवी भगवत में लिखा है कि विष्णु भगवान् ने बलि को पाताल भेजकर संसार की सारी संपदा दी थी और स्वयं उसके द्वार पर पहरा दिते थे । एक बार रावण ने इसमें प्रवेश करना चाहा था, पर विष्णु भगवान् ने उसे अपने पैर के अंगूठे से हजारों बोजन दूर फेंक दिया । वि० दे० "लोक" ।  
**सुतली**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुत + ली (स्त्री) ] रुई, खन या इसी प्रकार के और रेशों के सूतों या धोरों को एक में बटकर बनाया हुआ लंबा और ऊँचा मोटा खंड जिसका उपयोग चीरें बाँधने, कूँप से पानी खींचने, पलंग छानने तथा इसी प्रकार के और कामों में होती है । रस्सी । धोरी । सुतरी ।  
**सुतचर्म**—वि० [ सं० ] पुत्रवाला । जिसके पुत्र हो ।  
**सुतघस्करा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सात पुत्र प्रसव करनेवाली स्त्री ।  
 यह स्त्री जिसके सात पुत्र हों ।  
**सुतवाना**—वि० सं० दे० "सुलवाना" । उ०—फिर सेज-चदुर की अच्छा विडोना करना पलंग पर सुतवापा ।—लल्लु ।  
**सुतश्रेणी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मूसाकानी । मृषिकण्ठी । वि० दे० "मूसाकानी" ।  
**सुतस्थान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जन्म-कुंडली में लग्न से पंचम स्थान । विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार सुतस्थान पर जितने ग्रहों की दृष्टि रहती है, उतनी ही सन्तानें होती हैं । पुंलिंग ग्रहों की दृष्टि से पुत्र और स्त्री ग्रहों की दृष्टि से कन्याएँ होती हैं ।  
**सुतहर**—संज्ञा पुं० दे० "सुतार" । उ०—सुतुरि सुतारक तिय बदन । सुतरी श्रलक अभिराम । मनी सोम पर सुत है राखी सुतहर ।  
 सुतारक—सुतारक ।

सुतहा-संज्ञा पुं० [ हि० सूत + हा (अर्थ०) ] सूत का व्यापारी। सूत बेचनेवाला।

वि० सूत का। सूत संबंधी।

संज्ञा पुं० दे० "सुतही"।

सुतहार-संज्ञा पुं० दे० "सुतार"। उ०—कनक रत्नमय पालनो रघ्यो मनहुँ मार सुतहार। विविध खेलौना किंकिनी लग्यो मंडल सुतुताहार।—सुतही।

सुतहियुक योग-संज्ञा पुं० [ सं० ] विवाह का एक योग।

विशेष—विवाह के समय लग्न में यदि कोई दोष हो और सुतहियुक योग हो, तो सारे दोष दूर हो जाते हैं।

सुतही-संज्ञा पुं० दे० "सुतही"।

सुतहीनिया-संज्ञा पुं० दे० "सुधीनिया"।

सुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लड़की। कन्या। पुत्री। बेटी। (२) सखी। सहेली। (हि०)

सुतारमज-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सुतारमज ] (१) लड़के का लड़का। पोता। (२) लड़की का लड़का। नाती।

सुतानां-कि० सं० दे० "सुलाना"।

सुतापति-संज्ञा पुं० [ सं० ] कन्या का पति। दामाद। जामाता।

सुतार-संज्ञा पुं० [ सं० सूतकार ] (१) बर्तन। (२) तिन्पकार। कारीगर।

वि० [ सं० सु + तार ] अच्छा। उत्तम। उ०—कनक रत्नमणि पालनो अति गदनी काम सुतार। विविध खेलौना भौति भौति के गजमुका बहुधार।—सूर।

संज्ञा पुं० सुधीता।

कि० प्र०—धरना।

वि० [ सं० ] (१) अर्थात्, उच्चवर्ण। (२) जिसकी आँख की पुनलियाँ सुंदर हों। (३) अर्थात् उच्च।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का सुगंधि द्रव्य। (२) एक भाषा का नाम। (३) सांख्यदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सिद्धि। गूढ से पदे हुए अर्थात्मशास्त्र का ठीक ठीक अर्थ समझना।

संज्ञा पुं० [ देश० ] हुदहुद नामक पत्थर।

सुतारका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] औदों की चौबीस शास्त्र देवियों में से एक देवी का नाम।

सुतार-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सांख्य के अनुसार नौ प्रकार की सिद्धियों में से एक। (२) सांख्य के अनुसार आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक। वि० दे० "सुतार"।

सुतारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सूतकार ] (१) मोचियों का सूआ जिससे वे जूता सीते हैं। (२) सुजार या बर्तन का नाम।

संज्ञा पुं० [ हि० सुतार ] तिन्पकार। कारीगर। उ०—हरिजन मणि की कोठी आप सुतारी आईं। सुपट्टन रयागत देक निज तेहि ते छोट्यो नादि।—विश्राम।

विशेष—ज्योतिष के अनुसार ब्रह्मों के सुतुंग स्थान पर रहने से शुभ फल होता है।

सुतार्थी-वि० [ सं० सुतार्थि ] पुत्र की कामना करनेवाला। जिसे पुत्र की अभिलाषा हो। पुतार्थी।

सुताली-संज्ञा स्त्री० दे० "सुतारी"।

सुतासूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुत्री का पुत्र। दौहित्र। नाती।

सुतिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पितृपापघ्न। परपटक।

वि० जो बहुत तिक्त हो। अधिक तीता।

सुतिकक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिरायता। (२) परहद। पारिभद्र। (३) पितृपापघ्न।

सुतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तोरई। कोशातकी। (२) सहई। सहली।

सुतिनक्ष-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुतनु ] सुंदर यात्रा। रूपवती स्त्री। (क०) उ०—जो नहि देती अतन कहुँ दगन हरयली आप मन मानस जे सुतिन के को सर करती जाप।—रतनु-हजार।

सुतिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसके पुत्र हो। पुत्रवती।

सुतिया-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] सोने या चाँदी का एक गहना जो बियाँ गले में पहनती है। हँसली।

सुतिहार-संज्ञा पुं० दे० "सुतार"। उ०—(क) मोनिन शालरि नाना भौति खिलौना रमे विषयकर्म सुतिहार। देखि देखि क्लिष्टत दैतिला दो रगत कीदत विविध विहार।—सूर।

(ख) विषयकर्म सुतिहार धृतिधरि सुलग सिलप दिखाने। तेहि देखे प्रय ताप गारी ब्रजबधु मनभावना।—सूर।

सुती-संज्ञा पुं० [ सं० सुति ] (१) वह जो पुत्र की इच्छा करता हो। (२) वह जिसे पुत्र हो। पुत्रवाला।

सुतीक्षण-संज्ञा पुं० दे० "सुतीक्षण"। उ०—दरदान द्वियो सुतीक्षण गौतम पंचवटी पगधारे। तहाँ दृष्ट सूर्यनला गारी करि यिन नाक उधारे।—सूर।

सुतीक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्रहय मुनि के भाई जो बनवास के समय धीरामचंद्र से मिले थे। (२) सहिजन। सोमानन।

वि० अर्थात् तीक्ष्ण। बहुत तेज।

सुतीक्षणक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुच्छक या मोला नामक वृक्ष। वि० दे० "मोला"।

सुतीक्षणक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरसों। सरपंग।

सुतीखनक्ष-संज्ञा पुं० दे० "सुतीक्षण"। उ०—तीखन-सन को कियो सुतीखन को द्विज तुलसी।—सुधाकर।

सुतीच्युतक्ष-संज्ञा पुं० दे० "सुतीक्षण"।

सुतीर्थराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

सुतुंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तारियल का पेड़। (२) ब्रह्मों का उपासना।

विशेष—ज्योतिष के अनुसार ब्रह्मों के सुतुंग स्थान पर रहने से शुभ फल होता है।

वि० अन्यत् उच्य । बहुत् ऊँचा ।

सुनुआ-संज्ञा पुं० दे० "सुनुदी" ।

सुनुदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० नुक्ति ] (१) सीपी, जिससे प्रायः छोटे बच्चों को दूध पिलाते हैं । (२) वह सीप जिसके द्वारा पोस्त से अफीम खुरची जाती है । सुनुआ । सुनुदा । मूरी । (३) वह सीप जिससे अचार के लिये कच्चा आम छीला जाता है । इसे बीच में बिसकर इसके तल में छेद कर लेते हैं; और उसी छेद के चारों ओर के तेज किनारों से आम छीलते हैं । सीपी ।

सुनुन-संज्ञा पुं० [ का० ] संभ्रा । स्तंभ ।

सुनुतेकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो यज्ञ करता हो । यज्ञकारी । दत्विक ।

सुनुतेजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धामिन । धन्वन वृक्ष । (२) बहुत नुकीला तीर ।

वि० (१) नुकीला । (२) तेज । धारदार ।

सुनुतेजा-संज्ञा पुं० [ सं० मुनेत्र् ] (१) जैनों के अनुसार गत उत्सर्पिणी के दूसरे अर्द्ध का नाम । (२) घृषमद का पुत्र । (३) हुनहुर । आदित्यभक्ता ।

वि० बहुत तेज या धारदार ।

सुनुतेमन-संज्ञा पुं० [ सं० सुनेमन् ] एक वैदिक आचार्य का नाम ।

सुनुतेला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यद्दी मालकंगनी । महाश्रयोतिष्मती खता ।

सुनुतोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] संतोप । सप्त ।

वि० जिसका संतोप हो गया हो । संतुष्ट । प्रसन्न ।

सुनुचा-वि० [ हि० सोना ] सीया हुआ । सुपुस । (पश्चिम)

सुनुचुरा-संज्ञा पुं० [ हि० चुर या का० शुडर ? ] खुलाहों के करघे का एक बॉस जिसमें कंधी बँधी रहती है । कुलबॉस ।

सुनुथना-संज्ञा पुं० दे० "सुथन" ।

सुनुथ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ के लिये सोमरस निकालने का दिन ।

सुनुवामा-संज्ञा पुं० [ सं० सुवाम् ] (१) इंद्र । (२) पुराणानुसार एक मनु का नाम । (३) वह जो उत्तम रूप से रक्षा करता हो ।

सुनुथना-संज्ञा पुं० दे० "सुथन" ।

सुनुथनिया-संज्ञा स्त्री० दे० "सुथनी" ।

सुनुथनी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] (१) किरियों के पहनने का एक प्रकार का टीला पापजामा । सुथन । (२) पिंडाल । रताष्ट ।

सुनुथरा-वि० [ सं० स्वच्छ या रसरथ ] [ स्त्री० मूषरी ] स्वच्छ । निर्मल । साफ ।

पिशोप-इस शब्द का प्रयोग प्रायः "साफ" शब्द के साथ होता है । जैसे,—साफ सुथरा मकान । उ०—(क) लरिकाईं कहूँ नेक न छाड़त सोई रहो सुथरी तेजरियाँ । आप हरि यह बात सुनत ही धाई लिये यशुमंति महतरियाँ ।—सूर ।

(ख) मोतिन मँग भरी सुथरी लयै कंठ सिरिगर; सी अगवाही ।—सुंदरीसर्वस्व ।

सुथराई-संज्ञा स्त्री० [ हि० सुथरा + ई (प्रत्य०) ] सुथरापन । स्वच्छता । निर्मलता । साफाई ।

सुथरापन-संज्ञा पुं० [ हि० सुथरा + पन (प्रत्य०) ] सुथराई । स्वच्छता । निर्मलता । साफाई ।

सुथरेशाही-संज्ञा पुं० [ सुथराह (महात्मा) ] (१) पुरु । नानक के सिष्य सुथरासाह का पलाया संप्रदाय । (२) इस संप्रदाय के अनुयायी या माननेवाले जो प्रायः सुथरासाह और मंगल नानक आदि के यथाए हूए भजन गायकर भिक्षा माँगते हैं ।

सुधौनिया-संज्ञा पुं० [ देश० ] मन्सूर के ऊपरी भाग में, वह छेद या घर जिसमें पाल लगाने के समय उसकी रस्सी पहनाई जाती है । (लता०)

सुधुंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] बेंत । वेप्र ।

सुधुंदिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गोरख इमली । गोरखी । प्रसुंदी । अजुंदी ।

सुधुंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो अभिनय करता हो । नेट । (२) नर्तक । नाचनेवाला ।

वि० सुंदर दाँतोवाला ।

सुदंता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार एक अप्सरा का नाम ।

सुदंतौ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हथनी । हस्तिनी । (२) एक दिग्गज की हथनी का नाम ।

सुदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हृष्ण का पुत्र । (२) सैबर का एक पुत्र । (३) एक राक्षस का नाम ।

वि० सुंदर दाँतोवाला ।

सुदंष्ट्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक किरिरी का नाम ।

सुदक्षिण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पीड़क राजा का पुत्र । (२) विदर्भ का एक राजा ।

सुदक्षिणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) राजा दिलीप की पत्नी का नाम । (२) पुराणानुसार धृक्णी की एक पत्नी का नाम ।

सुदक्षिधका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्रुद्ध नामक वृक्ष । दुग्धा ।

सुदक्षिण-संज्ञा पुं० दे० "सुदक्षिण" । उ०—चलेउ सुदक्षिण । दृक्ष समर जुष दक्षिण दक्षिण ।—गिरधर ।

सुदक्ष-कि० [ सं० ] [ स्त्री० सुनुती ] सुंदर दाँतोवाला ।

सुदती-वि० [ सं० ] सुंदर दाँतोवाली स्त्री । सुदंता । सुंदरी ।

उ०—(क) धीर धरो सोच न करो मोद भरो यदुगाय । सुदति सँदेसे सनि रही अथरनि में सुसुकयै ।—शं०

सत० । (ख) मौन भरी सब संपति दंपति श्रीपति ज्यो सुख सिद्ध में सोवै । देव सो देवर प्राण सो पूत सुकौन

दशा सुदती जिहि रोवै ।—बैशाख ।

सुदमन-संज्ञा पुं० [ सं० ] आम । आश्रुवृक्ष ।

सुदरसन-संज्ञा पुं० दे० "सुदरान" । उ०—नकुल सुदरसन दर-

सनु दरसनी क्षेम करी सुपचाप । दस दिसि देखत सगुन  
सुम पुजहि मन अमिहाय ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० दे० "सुदर्शन" ।

सुदर्शनपानि—संज्ञा पुं० दे० "सुदर्शनपानि" । उ०—ज्यों धाय  
गजराज उधारन सपदि सुदर्शनपानि ।—तुलसी ।

सुदर्मा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का मृग जिसे इक्षुदर्मा भी  
कहते हैं ।

सुदर्शन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णुमगवार के चक्र का नाम ।

(२) सिव । (३) अग्नि का एक पुत्र । (४) एक विद्याधर ।

(५) मत्स्य । मछली । (६) जंबू वृक्ष । जामुन । (७) नौ

यलदेवोंमें से एक । (अन) (८) वर्तमान अवसर्पाणा के

अष्टारहवें अर्हण के पिता का नाम । (अन) (९) ब्रह्मण का

पुत्र । (१०) ध्रुवसंधि का एक पुत्र । (११) अर्धसिद्धि का

पुत्र । (१२) दधीचि का एक पुत्र । (१३) अजमीद का एक

पुत्र । (१४) भरत का एक पुत्र । (१५) एक नाग अमुर ।

(१६) प्रतीक का जामाना । (१७) सुमेरु । (१८) एक द्वीप

का नाम । (१९) गिद्ध । (२०) एक प्रकार की संगीत रचना ।

(२१) सन्वासियों का एक दंड जिसमें छः गोंडें होती हैं ।

इसे वे भूत प्रेतों से अपना बचाव करने के लिये अपने पास

रखते हैं । (२२) मदनमस्त । (२३) सोमवह्नी । वि० दे०

"सुदर्शना" ।

वि० ओ देखने में सुंदर हो । मियदर्शन । सुखदर्शन । सुंदर ।

मनोरम ।

सुदर्शन चूर्ण—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार ज्वर को एक

प्रसिद्ध औषध ।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है—त्रिफला, दारहल्दी,

दूर्वा कटियाली, कनेर, काली मिर्च, पीपल, पीपलामूल,

सोनी, गुडुच, धनियाँ, भद्रसा, इटकी, प्रायमान, पिच

पायदा, नामस्त्रोया, कमलनग, नीम की छाल, पोहकरमूल,

मूंगने के बीज, मुलहठी, अजवायन, इंद्रवय, भारंगी, फिट-

करी, बच, राज, कमलगदा, पचक्राष्ट, चंदन, अलीस, खरौंटी,

धावविंडंग, चित्रक, देवदार, चन्द, खर्वग, पंशलोचन,

पत्रज, सब चीजें बराबर बराबर और इन सब की सौल से

आधा चिरायता लेकर सब को कूट पीसकर चूर्ण बनाते हैं ।

नामा एक दंड प्रति दिन सुबहे दंडे जल के साथ है । कहते हैं

कि इसके सेवन से सब प्रकार के ज्वर यहाँ तक कि विषम

ज्वर भी दूर हो जाता है । इसके सिवा सर्पिसि, सारि, पांडू,

हृद्रोग, बवासीर, गुल्म आदि रोग भी नष्ट होते हैं ।

सुदर्शनचंद्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार ज्वर की एक

औषध ।

सुदर्शन दौप—संज्ञा पुं० [ सं० ] जंबू द्वीप का एक नाम ।

सुदर्शनपाणि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (हाथ में सुदर्शनचक्र धारण करने-  
वाले) श्रीयुष्म ।

सुदर्शनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सोमवह्नी । चक्रांगी । मधु-  
पत्निका ।

विशेष—यह ध्रुव जाति की चतुस्पर्ति है । यह शेषैदार होती

होती है । पचे तीन से छः इंच के घेरे में गोलाकार तथा

त्रिकोणकार से होते हैं । इसमें गोल फूलों के गुच्छे लगते

हैं जिनका रंग नारंगी का सा होता है । वैद्यक के अनुसार

इसका गुण मधुर, गरम और कफ, सूजन, तथा वातरक्त

को दूर करनेवाला है ।

(२) एक प्रकार की मंत्रिा । (३) एक गंधर्वी का नाम ।

(४) पद्म सरोवर । (५) जंबू वृक्ष । (६) इंद्रपुरी ।

अमरावती । (७) शुक्र पक्ष की एक रात्रि । (८) आज्ञा ।

आदेश । हुक्म । (९) एक प्रकार की औषध ।

वि० स्त्री० जो देखने में सुंदर हो । सुंदरी ।

सुदर्शनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इंद्रपुरी । अमरावती ।

सुदल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मोरद या क्षीर मोरद नाम का लता ।

(२) मुचुंड । (३) सेना । दल ।

वि० अच्छे ढलों या पर्चोंवाला ।

सुदला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सरियन । शालपर्णी । (२) सेवती ।

सुदर्शन—वि० [ सं० ] [ स्त्री० सरना ] सुंदर दौतीवाला ।

जिसके सुंदर दौत हों । सुदंत ।

सुदंत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शाक्यमुनि के एक शिष्य का नाम ।

(२) एक प्रकार की समाधि । (३) दत्तधन्वा का पुत्र ।

वि० अग्नि दाता । बहुत सीधा । (घोड़ा)

सुदाम—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धीरुष्म के सखा एक गोप का

नाम । (२) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद ।

(३) दे० "सुदामा" ।

सुदामन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा ज्ञानक के एक मंत्री का

नाम । (२) एक प्रकार का दैवाद्य ।

सुदामा—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक दक्षिण माल्य जो

धीरुष्म का सहपाठी और परम सखा था और जिसे पीछे

धीरुष्म ने मेधर्षयान् बना दिया था । (२) धीरुष्म का एक

गोप सखा । (३) कंस का एक माळी जो धीरुष्म से उस

समय मथुरा में मिला था, जब वे कंस के बुलाने से यहाँ

गए थे । (४) एक पर्वत । (५) इंद्र का हाथी । देरावत ।

(६) समुद्र । धारण । (७) मेघ । बादल । (८) एक गंधर्व

का नाम ।

संज्ञा स्त्री० (१) स्कंध की एक मात्रिका । (२) रामायण के

अनुसार उत्तर भारत की एक नदी का नाम ।

वि० उत्तम रूप में दान करनेवाला । दान देनेवाला ।

सुदामिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भागवत के अनुसार शमीक की पत्नी का नाम ।

सुदाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उत्तम दान । (२) यशोपवीत-संस्कार के समय ब्रह्मचारी को दी जानेवाली शिक्षा । (३) विवाह के भवसर पर कन्या या जामाता को दिया जानेवाला दान । दहेज । (४) वह जो उक्त प्रकार के दान करे । (अर्थात् पिता माता आदि)

सुदारु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवदार । देवदार । (२) धूप सरल । सरल वृक्ष । (३) विष्य पर्वत का एक अंश । पारिप्राय पर्वत ।

सुदारुण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का देवदार ।  
वि० अत्यंत मृदू या भयानक ।

सुदायन-संज्ञा पुं० दे० "सुदामन" । उ०—जाय सुदायन कळों जनक सों आवत रघुकुल नाहा । देखन को धापु पुरवासी भरि उमाह मन मोहा ।—रघुराज ।

सुदास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) द्विबोदास का पुत्र तथा त्रिभु का दास । (२) क्लृप्तुर्ण का पुत्र । (३) सर्वकाम का पुत्र । (४) ध्यवन का पुत्र । (५) बृहद्रथ का एक पुत्र । (६) एक प्राचीन जनपद ।

वि० इंद्रवर की सम्यक् रूप से पूजा या आराधना करनेवाला ।

सुद्धि-संज्ञा स्त्री० दे० "सुद्धी" ।

सुद्धिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सु + दिन ] शुभ दिन । अच्छा दिन । सुवारक दिन । उ०—(क) सुनि तथास्तु कहि सुदिन विचारी । कर्वाहै मख राख तयारी ।—रघुराज । (ख) तहाँ सुरंत सुमंत गणक गण ल्यायों ललकि लियाहै । गुरु घसिष्ठ आज्ञा-सुसार ते क्षिन्धो सुदिन बनाहै ।—रघुराज । (ग) अस कहि कौशिक सुदिन बनायो । तहाँ सुरंत प्रस्थान पढायो ।—रघुराज ।

सुद्धिनत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुद्धिन का भाव ।

सुद्धिनाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुण्य दिन । पुणवाह । शुभ दिन । प्रसास दिन ।

सुद्धि-वि० [ सं० ] बहुत दीक्षिमान् । उज्वल । चमकीला ।

सुद्धिवाते-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुद्धिवाति । एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

सुद्धि-वि० [ सं० ] (१) सुतोक्षण (जैसे दत्त) । (२) बहुत चिकना या उज्वल ।

सुदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुद्ध या शुद्ध ] किसी मास का उजाला पक्ष । शुद्ध पक्ष । जैसे,—सायन सुदी ६ ।

सुदीति-संज्ञा पुं० [ सं० ] अगिरस गोत्र के एक ऋषि का नाम ।

संज्ञा स्त्री० सुदीति । उज्वल दीप्ति ।

वि० बहुत दीक्षिमान् । चमकीला ।

सुदीपति-संज्ञा स्त्री० दे० "सुदीप्ति" । उ०—याजनु है मृदु हास सुदंग सुदीपति दीपनि को उजियारो ।—केशव ।

सुदीप्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बहुत अधिक प्रकाश । खूब उजाला ।

सुदीर्घ-संज्ञा पुं० [ सं० ] विचित्र । विचित्रक ।

वि० बहुत लंबा । अति विस्तृत ।

सुदीर्घधर्मा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अपराजिता । कोयल । लता । असनपर्णी ।

सुदीर्घफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ककड़ी । ककड़ी ।

सुदीर्घफलिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का जंगल ।

सुदीर्घराजोवफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की ककड़ी ।

सुदीर्घा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धीना ककड़ी ।

वि० स्त्री० अति दीर्घ । बहुत लंबी ।

सुदुघ-वि० [ सं० ] अच्छा दूध देनेवाली । खूब दूध देनेवाली । (गौ )

सुदुघा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अच्छा और बहुत दूध देनेवाली गाय ।

सुदूर-वि० [ सं० ] बहुत दूर । अति दूर । जैसे,—सुदूर पूर्व में ।

सुदूरमूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] घंमासा । हिंदुशा ।

सुदृढ़-वि० [ सं० ] बहुत दृढ़ । खूब मजबूत । जैसे,—सुदृढ़ बंधन ।

सुदृढ़व्यचा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गम्हार । गंभारी ।

सुदृष्टि-संज्ञा पुं० [ सं० ] गिद्ध ।

संज्ञा स्त्री० उत्तम दृष्टि ।

वि० (१) दूरदर्शी । (२) दूरदृष्टि ।

सुद्वेक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुद्वेष्ण पर्वत का एक नाम । (महाभारत)

सुद्वेष्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उत्तम देवता । (२) उत्तम क्रीड़ा

करनेवाला । (३) एक कारवप । (४) अक्षर का एक पुत्र ।

(५) वीरू वासुदेव का एक पुत्र । (६) देवक का एक पुत्र ।

(७) विष्णु का एक पुत्र । (८) अंबरीष का एक सेनापति ।

(९) एक ब्राह्मण जिसने दमयंती के कहने से राजा नल का

पता लगाया था । (१०) पराश्व गुहर्व के नौ पुत्रों में से

एक जो ब्रह्मा के श्राप से हिरण्यवर्ष देव्य के घर उलपल हुआ

था । (११) ह्यंश्व का पुत्र और काशी का राजा ।

सुद्वेवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अरिह की पत्नी । (२) विक्रान्त की पत्नी ।

सुद्वेवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भागवत के अनुसार नाभि की पत्नी और ऋषभ की माता ।

सुदेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुंदर देश । उत्तम देश । अच्छा

मुक । (२) उपयुक्त स्थान । उचित स्थान । उ०—दृष्टि

जात होत तहाँ भूषण सुदेश केश दृष्ट जात होत सय मितल

शंभार है ।—भूषण ।

वि० सुंदर । उ०—(क) अति सुदेश मृदु हारत चिकुर मन

मोहन मुख बगराह । मानों प्रगत कंज पर मंजुल अलि

अवली फिरि आह ।—मूर । (ख) स्वाम सुंदर सुदेश पीत-

पद दीर्घा मुकुट उर माला । जनु घन दामिनि रवि तारागग  
 उदित एक ही काला ।—सूर । (ग) छन्दन चारु मुकुटिया  
 देवी मेरी सुमग सुदेत सुभापु ।—गुलसी । (घ) सीय  
 स्वर्णवद जनकपुर सुनि सुनि सकल नरेश । आपु साज  
 समाज सुनि भूयन बसन सुदेस ।—गुलसी ।

सुदेष्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दक्खिणी के गर्भ से उत्पन्न धातुकल्प  
 का एक पुत्र । (२) एक प्राचीन जनपद का नाम । (३)  
 पुराणानुसार एक पर्यत का नाम ।

सुदेस-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बलि की पत्नी । (२) विराट की  
 पत्नी और बीषक की बहन ।

सुदेष्ण-संज्ञा स्त्री० दे० "सुदेष्णा" ।

सुदेस-संज्ञा पुं० दे० "सुदेस" ।

सुदेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुंदर देह । सुंदर शरीर ।  
 वि० सुंदर । कमनीय । उ०—बले विदेह सुदेह हृदय हरि-  
 नेह बसाए । जरासंध बल अंध मैन सन बंध मिलाए ।—  
 निररधर ।

सुदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सौभाग्य । अच्छा भाग्य । अच्छी  
 किस्मत । (२) अष्टा संयोग ।

सुशोभनी-वि० [ सं० ] अधिक दृष देनेवाली । (गौ भादि)

सुशोभ-वि० स्त्री० [ सं० ] बहुत दृष देनेवाली (गौ) ।

वि० पुं० दानशील । उदार ।

सुशोह-वि० [ सं० ] सुख या आराम से दूहने योग्य । जिसे दूहने

में कोई कष्ट न हो ।

सुश्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह पेट का जमा हुआ सूया मल

को कुलाकर निकाला जाय ।

सुसु-वि० दे० "सुसु" ।

सुसु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सहित । समेत । मिलाकर । जैसे,—

उसके सुसु सल भादनी थे ।

सुसु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जनाता ।

सुसु-संज्ञा पुं० दे० "सुसु" ।

सुसु-संज्ञा स्त्री० दे० "सुसु" । उ०—(क) दिग्गजि गाई बगीर

की बेली कोनी सुसु । होनहार जैसी बटू तीसी ये मन

सुसु ।—सूदन । (ख) पैठी हो भवितव्यता तीसी उपरी

सुसु । होनहार दिरे देवी विस्तार जाय सब सुसु ।—लखन ।

गुहा स्त्री० दे० "सुसु" ।

सुसु-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुदुपैती राजा पायवद के पुत्र का नाम ।

सुसु-वि० [ सं० ] एक प्रकारका । सुसु ।

सुसु-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैश्वानर मनु का पुत्र जो हृद नाम से

किये चर्चा जा पहुँचा । महादेवजी ने उसे शाप दिया,  
 जिससे वह खी हो गया । एक बार सोम का पुत्र बुध उसे  
 देव कामात्मक हो गया और उसके सहवास से उसके गर्भ  
 से पुदुवना का जन्म हुआ । अंत को बुध की अपराधना करने  
 पर महादेवजी ने उसे शापमुक्त कर दिया और यह फिर  
 पुत्र हो गया ।

सुसु-वि० [ सं० ] सट्ट ] द्यायान् । कृपालु । (वि०)

सुध-संज्ञा पुं० [ हि० सीधा + क्रम वा सु + धं ? ] अष्टा रंग ।

उ०—(क) नृप करहि नट नटी गारि नर अपने अपने रंग ।  
 मनहुँ मदनरति विविध धेप धरि नरत सुदेह सुधंग ।—  
 गुलसी । (ख) कबहुँ छलत सुधंग गति सो कबहुँ उषटन  
 धन । लोल कुंडल रोहमंडल चपल धननि सैन ।—सूर ।

सुध-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुध (पृथि) (१) रसुति । स्मरण । याद । धन ।

कि० प्र०—करना ।—रचना ।—होना ।

सुधा०—सुध दिलाता = बाद दिगाना । (सुध ब्रजना । सुध न

रहना = विमृष्ट हो जाना । भूल जाना । याद न रहना । जैसे,—

उपहारी तो किसी को सुध ही नहीं रह गई थी । सुध

विसरना = विमृष्ट होना । भूल जाना । सुध विसराना या

विसराना = किसी को भूल जाना । किसी को स्मरण न

रचना । उ०—मुझे कौन भनरीत सिरसाई, राजग सुध विसराई ।—

गीत । सुध भूलना = दे० "सुध विसरना" । सुध भुलाना = दे०

"सुध विसरना" ।

(२) चेतना । होना ।

सु०—सुध सुध = दोरा इवाम ।

सुधा०—सुध विसरना = भूले होना । दोरा में न रहना । सुध

विसराना = भूले करना । दोरा में न रहने देना । उ०—काग्या

ने कैसी बाँसुरी बजाई, मोरी सुध सुध विसराई ।—गीत ।

सुध न रहना = दोरा न रचना । भूले हो जाना । उ०—सुध

न रही देवतु रई कठ न लरि विनु गोहि । देरे भनदेवै

पुठे कठिन दुहुँ विधि गोहि ।—रतनहजार । सुध संभा-

लना = दोरा संभाजना । दोरा में जाना ।

(३) पथर । पना ।

सुहा०—सुध लेना = पना लेना । पना बाल धनना । सुध

रचना = बोलनी रचना । उ०—(क) प्रसमन को विलंब

भयो सब सत्राजिन सुध खीकी ।—सूर । (ख) परदिई दे

जागत लहा सुध से जागत भादि । कसो विचारे मेरिया

दुख पाछे किन जादि ।—रतनहजार ।

वि० दे० "सुध" । उ०—सुधत गौर में मयाय से धन

भार रहे सुध होय देह ।—कवीर ।

गुः स्त्री० दे० "सुधा" । उ०—जादे रस का हँसुहूँ कागुन

सुधट्ट न पाजत रोज ।—देव दयाजी ।

सुधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] परागसु तंत्रके के ती पुषों में से एक को

पिशेष—अग्निपुराण में हगरी कथा इस प्रकार दी है—एक  
 बार हिमालय में महादेवजी पारंगीनी के साथ शीघ्रा कर  
 रहे थे । उस समय वैश्वानर मनु का पुत्र हृद तिसार के

प्रहा के श्राप से (कोलकल्प में) हिरण्यनाभ दैत्य के नौ पुत्रों में से एक हुआ था।

वि० बहुत धनी। यज्ञ अभीर।

**सुधनु**-संज्ञा पुं० [ सं० सुधनुस ] (१) राजा कुरु का एक पुत्र जो सूर्य की पुत्री तपती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (२) गौतम बुद्ध के एक पूर्वज।

**सुधन्वा**-वि० [ सं० सुधन्व ] (१) उत्तम धनुष धारण करनेवाला। (२) अच्छा धनुर्धर।

राजा पुं० (१) विष्णु। (२) विश्वकर्मा। (३) आगिरस। (४) वीराज का एक पुत्र। (५) संभूत का एक पुत्र। (६) वृष का एक पुत्र। (७) दाशरथ का एक पुत्र। (८) विदुर। (९) एक राजा जिसे मान्धाता ने परास्त किया था। (१०) मार्य वैश्य और सवर्णा स्त्री से उत्पन्न एक जाति।

**सुधन्वाचार्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] मार्य वैश्य और सवर्णा स्त्री से उत्पन्न एक संकर जाति।

**सुध सुध**-संज्ञा स्त्री० [ सं० शुद्ध + बुद्धि ] होश हवास। चेत। ज्ञान। वि० दे० "सुध"।

**सुद्धा**-सुध सुध जाती रहना = होश हवास जाना रहना। सुध सुध टिकाने न होना = बुद्धि टिकाने न होना। होश हवास टुल्ल न होना। सुध सुध मारी जाना = बुद्धि का नैप हो जाना। होश हवास न रहना।

**सुधमना**-वि० [ हिं० सुध = होश + मन ] [ स्त्री० सुधमनी ] जिसे होना हो। सचेत। उ०—जय कर्ण के सुधमनी होति तय मुनी पहले रघुनाथ गात तकि पाए परिके। भावते की मूरति को ध्यान आप ल्यावति है आँखें सुँदि रावति है आँसुन सों भरिके—रघुनाथ।

**सुधर**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अर्धव का नाम। (जैन) राजा पुं० [ हिं० ] यथा नामक पत्नी।

**सुधरना**-क्रि० प्र० [ सं० शोधन, हिं० सुधना ] विगढ़े हुए का बनना। दोष या त्रुटियों का दूर होना। संशोधन होना। संस्कार होना। जैसे—काम सुधरना, भाषा सुधरना, धाल सुधरना, धर सुधरना।

संयो० क्रि०—जाना।

**सुधराई**-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुधरना + राई (प्रत्य०) ] (१) सुधरने की क्रिया। सुधरने का काम। सुधार। (२) सुधरने की मजदूरी।

**सुधाघ**-संज्ञा पुं० [ हिं० सुधना + आघ (प्रत्य०) ] सुधराई। बनाव। संशोधन।

**सुधर्म**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उत्तम धर्म। पुण्य; कर्त्तव्य। (२) जैन तीर्थंकर महावीर के दस मिथ्यों में से एक। (३) किन्नरों के एक राजा का नाम।

वि० धर्मपरायण। धर्मनिष्ठ।

**सुधर्मनिष्ठ**-वि० [ सं० ] अपने धर्म पर दृढ़ रहनेवाला। सुधर्मी।

**सुधर्मा**-वि० [ सं० सुधर्म ] अपने धर्म पर दृढ़ रहनेवाला।

धर्मपरायण।  
संज्ञा पुं० (१) गृहस्थ। कुटुंब पालक। कुटुंबी। (२) क्षत्रिय। (३) दशाओं का एक राजा। (४) हदनेमि का पुत्र। (५) जैनों के एक गणाधिप।

संज्ञा स्त्री० देवसभा।

**सुधर्मी**-वि० [ सं० सुधर्म ] धर्मपरायण। धर्मनिष्ठ।

संज्ञा स्त्री० देवसभा।

**सुधयाना**-क्रि० स० [ हिं० सुधरना का प्रे० रूप ] दोष या त्रुटि दूर कराना। शोधन कराना। ठीक कराना। टुल्ल कराना। सुधार्-प्रत्य० दे० "सुद्धा"। उ०—हाथी सुधार् सव्य हाथी पर्यो खेत। संमाम में खामि के काम के हेत।—सूदन।

**सुधांग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा।

**सुधांशु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

**सुधांशु तैल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपूर का तैल।

**सुधांशुरक्त**-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोती। मुक्ता।

**सुधा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अच्छा। पीयूष। अमी। (२) मकरंद। (३) गंगा। (४) जल। (५) दूध। (६) रस। अर्क। (७) मृत्तिका। अमोघफली। (८) भाँवला। आँसु। (९) हर्ष। हरीतकी। (१०) सेहूँदा। धूर। (११) सरिवा। शालपर्णी। (१२) बिजली। विष्णु। (१३) श्रेष्ठी। धाती। जमीन। (१४) विष। जहर। हलाहल। (१५) चूना। (१६) इंट। इटका। (१७) गिलोय। गुडुची। (१८) रत्न की स्त्री। (१९) एक प्रकार का वृत्त। (२०) पुत्री। (२१) वधू। (२२) धाम। घर। (२३) मधु। शहद।

**सुधाई**-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुधा = सौधा ] सौधापन। सिधाई। सरलता। उ०—(क) सुधी सुधाई सुधाकर सौ मुल्ल शोध लई यमुधा की सुधाई। सुधे स्वभाव वसि सजनी वसो करे किये अति टेढ़े कर्हाई।—केशव। (ख) सील सुधाई सौर तैं सज गति कुटिल कमान। भांवे छिहा धैठ हैं भाँवे विच नैदान।—रतनहजारा।

**सुधाकंड**-संज्ञा पुं० [ सं० ] कोकिल। कोयल।

**सुधाकर**-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा।

**सुधाकार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चूना पोतनेवाला। सफेदी करनेवाला। (२) मिस्सरी। रास। मजूर।

**सुधाक्षार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] चूने का खार।

**सुधाक्षत**-वि० [ सं० ] सफेदी किया हुआ। जिस पर चूना पड़ा हुआ हो।  
**सुधाघट**-संज्ञा पुं० [ सं० सुधा + घट ] चंद्रमा। उ०—मुक्ता

माळ नंदनंदन-उरं भर्षं सुधापट कति । तनु श्रीकंड मेघ  
उज्ज्वल अति देखि महावल भौंति ।—सूर ।

सुधाजीवी-संज्ञा पुं० [ सं० सुधाजीविन् ] यह जो चूना - पोतकर  
जोषिका निर्वाह करता हो । सफेदी करनेवाला मजदूर ।

सुधासु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोना ।

सुधासुदक्षिण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो यज्ञादि में सुवर्ण  
दक्षिणा देता हो ।

सुधादीधिति-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधांशु । चंद्रमा ।

सुधाद्रव-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की घटनी ।

सुधाधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधा + धर = धारण करनेवाला । चंद्रमा ।

उ०—(क) श्रीसुवीर कछो सुन वीर वृक्ष धारी कियौ राहु  
हरायो । नाउँ सुधावर है विष को घर ल्याई विरंचि कळक  
लगावो ।—द्वनुमन्नाटक । (ख) धार सुधाधर सुधाधर तें सु

मनो धसुधा में सुधा दरकी परे ।—सुंदरीसर्वस्व ।

वि० [ सं० सुधा + धर ] जिसके अधरों में अमृत हो ।

उ०—वातो मृग अंक कई तोसों मृगनी सवे पासो सुधा-  
धर तोहें सुधाधर मानिये ।—केदाव ।

सुधाधरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधाधर । चंद्रमा । (हिं०)

सुधाघवल-वि० [ सं० ] (१) चूने के समान सफेद । (२)  
चूना पतला हुआ । सफेदी किया हुआ ।

सुधाघवलित-वि० दे० "सुधाघवल" ।

सुधाधाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधा + धाम । चंद्रमा । उ०—धूमपुर  
के निकट मानों धूमकेतु की तिखा की धूमयोनि मधुरेवा  
सुधाधाम की ।—केदाव ।

सुधाधार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) सुधा का आधार ।  
अमृतपात्र ।

सुधाधी-वि० [ सं० ] सुधा के समान । अमृत के तुल्य ।

उ०—या कदि कौंतिह्वदि वह आधीं । देत भये चूप कीर  
सुधाधी ।—पद्माकर ।

सुधाधौत-वि० [ सं० ] चूना किया हुआ । सफेदी किया हुआ ।

सुधाधनजर-वि० [ सं० ] सुधा वा हिं० सूधा = सोधा + नजर । दूधा-  
वाह । झुपाण्डु । (हिं०)

सुधाधान-किं० सं० [ हिं० ] सुध कराना । चैन कराना ।  
साधन कराना । याद दिलाना ।

किं० सं० (१) शोधने को काम दूसरे से कराना । दुकान  
कराना । ठीक कराना । (२) लज या कुंडली आदि ठीक  
कराना । उ०—डिय सुरत ज्योतिषी बुलाई । लज चरी  
संव भौंति सुधाई ।—रघुराज ।

सुधानिधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । उ०—मनहुँ सुधा-  
निधि रंपत धन पर अमृतधारा चहुँ ओर ।—सूर ।

(२) समुद्र । उ०—श्रीतामालुन उदार सुधानिधि अवनि  
कल्पवट ।—नाभादास । (३) बंडक वृक्ष का एक भेद ।

हसमें ३२ वर्ष होते हैं और १६ पार कम से गुण लघु  
आते हैं ।

सुधानिधि रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का रस  
जो पारे, पंचक, सोना मक्खी और लोहे आदि के योग से  
बनता है । इसका ध्वजदार रसविष में किया जाता है ।

सुधापय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधापयस् । घृष्ट का दूध । सुही क्षीर ।

सुधापाणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] धन्वंतरी । पीयूषपाणि ।

विशेष—पुराणों के अनुसार समुद्रमंथन के समय धन्वंतरी  
जी हाथ में सुधा या अमृत लिए हुए निकले थे; इसी से  
उनका नाम सुधापाणि या पीयूषपाणि पड़ा ।

सुधापापाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद खली ।

सुधामधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] अक्षरकारी किया हुआ मकान ।

सुधाभिचि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेदी की हुई दीवार ।

सुधाभुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमृत भोजन करनेवाले, देवता ।

सुधाभृति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) यज्ञ ।

सुधामोजी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधाभोजिन् । अमृत भोजन करनेवाले,  
देवता ।

सुधाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधामन् । (१) चंद्रमा । (२) एक प्राचीन  
ऋषि का नाम । (३) वैतक मन्त्रों के देवताओं का एक  
गण । (४) पुराणानुसार कौब द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष के  
राज का नाम ।

सुधामय-वि० [ सं० ] [ स्त्री० ] सुधामयी । (१) सुधा से भरा  
हुआ । अमृत स्वरूप । (२) चूने का बना ।

संज्ञा पुं० राजभवन । राजघासादे ।

सुधामयूख-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

सुधामुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अप्सरा का नाम ।

सुधामुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साळम मिथी । साळव मिथी ।

सुधामोदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] यवात शर्करा । शीशिरवस्त ।

सुधामोदकज-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरजजीवन की खाई । तवराज  
खाई ।

सुधायोनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

सुधार-संज्ञा पुं० [ हिं० ] सुधरना । सुधरने की किया या भाव ।  
दोष या गृहियों का दूर किया जाना । संशोधन । संस्कार ।  
इसलहा ।

सि० प्र०—करना ।—होना ।

सुधारक-संज्ञा पुं० [ हिं० ] सुधार + क (प्रत्य०) । (१) वह जो दोषों  
या गृहियों का संशोधन या सुधार करता हो । संस्कारक ।  
संशोधक । (२) वह जो धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक  
सुधार या उन्नति के लिये प्रयत्न या आंदोलन करता हो ।

सुधारना-किं० सं० [ हिं० ] सुधरना । दोष या गृहों को दूर करना ।  
विगड़े हुए को बनाना । सुस्त करना । संशोधन करना ।  
संस्कार करना । संशोधन ।



वि० [ स्त्री० सुधारनी ] सुधारनेवाला । ठीक करनेवाला ।  
(क) उ०—अगति गोपाल की सुधारनी है । नर देहें, जगत  
अधारनी है जगत उधारनी है ।—गिरधर ।

सुधारश्मि—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

सुधार—वि० [ हिं० सूधा + श्मत् (श्रय०) ] सीधा । सरल ।  
निष्कट । उ०—गायो घोष बढ़े श्वापारी । लखि पेलि  
गुणगान योग की प्रज्ञ में धनि उत्तारी । फाटक दै के हाटक  
नागत भोग निपट सुधारी । इनके कहे कौन बहकवै ऐसो  
धौत अतारी ।—सूर ।

सुधारु—संज्ञा पुं० [ हिं० सुधारना + ऊ (श्रय०) ] सुधारनेवाला ।  
संशोधक ।

सुधालता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की गिलोय ।

सुधावर्षी—वि० [ सं० सुधावर्षिन् ] अमृत बरसानेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) प्रज्ञा । (२) एक वृद्ध का नाम ।

सुधावास—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) खीरा । अणुपु ।

सुधावासा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खीरा । अणुपु ।

सुधाशर्करा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खली । खरी ।

सुधाश्रया—संज्ञा पुं० [ सं० सुधा + श्रवण ] अमृत बरसानेवाला ।

उ०—चल्यो तया सो तस दवा दुति भूरि धवामट । सुधां-  
श्रया सिर छत्र हवा जब सुरय नवा पट ।—गोपालचंद्र ।

सुधासदन—संज्ञा पुं० [ सं० सुधा + सदन ] चंद्रमा । उ०—सरद  
सुधा सदन छविदि निद्रे बदन, अरुन आवत, नव नलिन  
लोचन धार ।—तुलसी ।

सुधासित—वि० [ सं० ] सफेदी किया हुआ । चूना पुता हुआ ।

सुधासू—संज्ञा पुं० [ सं० ] अमृत उत्पन्न करनेवाला, चंद्रमा ।

सुधासूति—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) यज्ञ । (३)  
कमल ।

सुधास्पर्धी—वि० [ सं० सुधास्पर्धिन् ] अमृत की बराबरी करनेवाला ।  
अमृत के समान मधुर । (भाषण आदि)

सुधास्रवा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गले के अंदर की घंटी । छोटी  
जीम । कौवा । (२) रुद्रवंसी । रुद्रंती ।

सुधाहर—संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड़ ।

सुधाहृत—संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड़ ।

सुधि—संज्ञा स्त्री० दे० "सुध" । उ०—(क) यह सुधि आवत  
तोहि सुदामा । जब हम तुम बन गये लकरियेन पटप गुरु  
की भासा ।—सूर । (ख) रामचंद्र विख्यात नाम यह सुर  
मुनि की सुधि लीनी ।—सूर ।

सुधित—वि० [ सं० ] (१) सुख्यस्थित । (२) सुधा या अमृत  
के समान ।

सुधिति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुदर । कुहवाड़ी ।

सुधी—संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्वान् स्वप्ति । पंडित । शिक्षक ।

वि० (१) उत्तम बुद्धिवाला । बुद्धिमान ।—चतुरः । (२)  
धार्मिक ।

सुधीर—वि० [ सं० ] जिसमें यथेष्ट धैर्य हो । धैर्यवान् ।

सुधुसानी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुराणानुसार, पुष्कर द्वीप के सात  
खंडों में से एक । उ०—एक सुधुसानी कहे और मनोजव  
जातु चिचरोक है तीसरो चौथो गणि पपमातु । पंचम जनि  
पुरोजवहि छयो विमल बहु रूप । विशधातु है सात जो यह  
खंडनि को रूप ।—केशव ।

विशेष—यह शब्द संस्कृत के कोशों में नहीं मिलता ।

सुधूपक—संज्ञा पुं० [ सं० ] धीवेट ।

सुधूम्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वादु, नामक राव द्रव्य ।

सुधुप्रवर्ण—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक  
जिह्वा का नाम ।

सुधृति—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक रागा का नाम जो मिथिला  
के महावीर का पुत्र था । (२) राग्यवर्द्धन का पुत्र ।

सुधोद्भव—संज्ञा पुं० [ सं० ] पर्यन्तरि ।

विशेष—समुद्रमंथन के समय पर्यन्तरि सुधा लिए हुए  
निकले थे, इसी से इन्हें सुधोद्भव कहते हैं ।

सुधोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हरीतकी । हरे । हड़ ।

सुनंद—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक देवपुत्र । (२) श्रीकृष्ण का एक  
पार्षद । (३) बलराम का मूपल । (४) कुंज में देव का  
मूपल जो विश्वकर्मा का बनाया हुआ माना जाता है । (५)  
वारह प्रकार के रात्रभयनों में से एक ।

विशेष—यह सुनंद नामक राजप्रासाद राजाओं के लिये विशेष  
शुभकर माना गया है । कहते हैं कि इसमें रहनेवाले राजा  
को कोई परास्त नहीं कर सकता । पुष्पि, कल्पतरु के  
अनुसार इस भवन की लंबाई राजा के हाथ के परिमाण से  
२१ हाथ और चौड़ाई ४० हाथ होनी चाहिए ।  
(६) एक बौद्ध धावक ।  
वि० आनंददायक ।

सुनंदन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुराणानुसार, कृष्ण के एक पुत्र का  
नाम । (२) उरीप भीरु का एक पुत्र । (३) भुवन्दन  
का भाई ।

सुनंदा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उमा । गौरी । (२) उमा की एक  
सखी । (३) कृष्ण की एक पत्नी । (४) बाहु और बालि की  
माता । (५) चेदि के राजा सुबाहु की बहन । (६) सर्व-  
भोग की पत्नी । (७) भरत की पत्नी । (८) प्रतीप की  
पत्नी । (९) एक नदी का नाम । (१०) सर्वांगसिद्धि नंद  
की बड़ी स्त्री । (११) सफेद गौ । (१२) गोरोचना ।  
गोरोचन । (१३) अर्धपत्नी । इसरील । (१४) एक निधि ।  
(१५) नारी । स्त्री । औरत ।

सुनंदिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आरामशीतला नामक पत्रद्राक ।

(२) एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में स्रज स्रज जग  
: : रहते हैं । इसे प्रयोपिता और मंजुमापिगी भी कहते हैं ।

सुन-वि० दे० "सुत्र" ।

सुनका-संज्ञा पुं० [ दे० ] चौपायों का एक रोग जो उनके कंठ  
में होता है । गारा । सुरक्या ।

सुनकातर-संज्ञा पुं० [ हिं० सोना + कातर ? ] एक प्रकार का सर्प ।

सुनकिरवा-संज्ञा पुं० [ हिं० सोना + किरवा = कौड़ा ] एक प्रकार का  
कौड़ा जिसके पर पक्षे के रंग के होते हैं । उ०—गोरी

गदकारी परे हँसत कपोलनि गाढ़ । कैसी लसति गँवारि यद्  
सुनकिरवा की भाड़ ।—विहारी ।

सुनक्षय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उच्चम नक्षत्र । (२) एक राजा का  
नाम जो मरुदेश का पुत्र था । (३) निरमिय का पुत्र ।

वि० उच्चम नक्षत्रवाला ।

सुनक्षत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कर्म मास का दूसरा नक्षत्र ।  
(२) कापिकेय की एक मातृका ।

सुनखर्ब-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का धान जो अधिन के  
भंत और कापिके के प्रारंभ में होता है ।

सुनगुन-संज्ञा पुं० [ हिं० सुनना + गुन० गुन ] (१) किसी बात  
का भेद । बोह । सुराग ।

क्रि० प्र०—मिलना ।—लगना ।

(२) कानाहत्ती ।

सुनजर-वि० [ सं० सु + जर० जर ] दयावान् । क्षुण्ड । (हिं०)

सुनत-संज्ञा स्त्री० दे० "सुसत" ।

सुनतिष्ठा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुसत" । उ०—(क) जो तुरक  
तुरकिनी जाया । पेटे काहे न सुनति कराया ।—कबीर ।

(ख) कासिहु वे कला जाती मपुरा मसीद होती सिखाजी न  
होते तो सुनति होत राव की ।—मूरण ।

सुनता-क्रि० सं० [ सं० श्रवण ] (१) श्रवणेंद्रिय के द्वारा शब्द का  
ज्ञान प्राप्त करना । कानों के द्वारा उनका विषय ग्रहण  
करना । श्रवण करना । जैसे,—फिर आवाज दो; उन्होंने

सुना न होगा ।

(संयो० क्रि०—पढ़ना ।—रखना ।

सुहा०—सुनी अनुसुनी कर देना = कोई बात सुनकर भी धर पर  
प्यान न देना । किमी बात को दाल जाना ।

(२) किसी के कपन पर ध्यान देना । किसी की उक्ति पर  
ध्यानपूर्वक विचार करना । कान देना । जैसे,—क्या सुनना,

पाठ सुनना, सुकृतमा सुनना । (३) भली धुरी या उल्टी  
—सौधी बातें श्रवण करना । जैसे,—(क) मातृस होता है,

मम भी कुछ सुनना चाहते हो । (ख) जो एक बड़ेगा,  
पद शर सुनना ।

सुनका-संज्ञा स्त्री० [ ? ] अंग्रिय का एक रोग ।

सुनबहरी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुत्र + बहरी ] एक प्रकार का रोग  
जिसमें पैर फूल जाता है । खीरद । फीलपा ।

सुनय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुनीति । उच्चम नीति । (२)  
परिहृत राजा का पुत्र । (३) श्रत का एक पुत्र । (४)

खनित्र का पुत्र ।

सुनयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] शृंग । हरिन ।

वि० [ खे० सुनयना ] सुंदर भौंखोवाला । सुलोचन ।

सुनयना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) राजा जनक की पत्नी । (२)  
नारी । स्त्री । शौरत ।

सुनर-संज्ञा पुं० [ सं० सु + नर ] अश्विन । (हिं०)

सुनरिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुंदरी ] सुंदर नारी । सुंदर स्त्री ।  
उ०—प्यारे की पियरिया जगत से नियरिया, सुनरिया

भनूरी तोरी चाल ।—बख्शोर ।

सुनवाई-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुनना + वाई (प्रत्य०) ] (१) सुनने की  
क्रिया या भाव । (२) सुकृदमे आदि का पेशा होकर सुना

जाना । (३) किसी शिकायत या फरियाद आदि का सुना  
जाना । जैसे,—तुम लाख बिछाया करो; यहाँ कुछ सुनवाई

ही नहीं होगी ।

सुनवैया-वि० [ हिं० सुनना + वैया (प्रत्य०) ] (१) सुननेवाला ।  
(२) सुनानेवाला । उ०—मंगल सदा ही करै राम है

प्रसन्न सदा राम रसिकावली सुनैया सुनवैया को—शुभराज ।

सुनस-वि० [ सं० ] सुंदर नाकवाला ।

सुनसर-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का गहना ।

सुनसान-वि० [ सं० शून्य + स्थान ] (१) जहाँ कोई न हो । खाली ।  
निर्जन । जनहीन । उ०—(क) ये तेरे वनपंथ परे सुनसान

उजारू ।—धीधर पाठक । (ख) स्वामी हुए बिना सेवक के  
नगर मनुष्यों बिन सुनसान ।—धीधर पाठक । (ग) सुन-

सान कहूँ, गमीर धन कहूँ सोर वनपशु करत हैं ।—उत्तर  
रामचरित । (२) उजाड़ । धीरान ।

संज्ञा पुं० सखाया । उ०—निशा काल भतिशय अंधियारा  
छाय रहा सुनसान ।—धीधर पाठक ।

सुनह-संज्ञा पुं० [ सं० ] जट्ट का एक पुत्र ।

सुनहरा-वि० दे० "सुनहला" ।

सुनहरी-वि० दे० "सुनहला" ।

सुनहला-वि० [ हिं० सोना + हला (प्रत्य०) ] [ स्त्री० सुनहला ]  
सोने के रंग का । सोने का सा । जैसे,—सुनहला काम ।

सुनहला रंग ।

सुनार-संज्ञा स्त्री० दे० "सुनवाई" ।

सुनाइत-संज्ञा पुं० [ सं० ] फाली छद्दी । कपूर । कर्पूरक ।

सुनाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख ।

वि० सुंदर शब्दवाला ।

सुनाना-क्रि० ग० [ हिं० सुनना का प्रे० रूप ] (१) दूसरे को

सुनने में प्रवृत्त करना। कर्णगोचर कराना। श्रवण कराना।

(२) खरी खोटी कहना। जैसे,—सुनने भी उसे खूब सुनाया।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

सुनानी—संज्ञा स्त्री० दे० “सुनावनी”।

सुनाभ—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुदर्शन चक्र। (२) मेनाक पर्वत।

(३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (४) वरुण का एक मंत्री। (५) गण्ड का एक पुत्र। (६) एक प्रकार का मंत्र जिसका प्रयोग अर्धों पर किया जाता था।

वि० सुंदर नाभिवाला।

सुनाभक—संज्ञा पुं० दे० “सुनाभ”।

सुनाभा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कटभी। करही। हरिमल।

सुनाभि—वि० [ सं० ] सुंदर नाभिवाला।

सुनाम—संज्ञा पुं० [ सं० ] यश। कीर्ति। श्रुति।

सुनाम द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक व्रत जो वर्ष की बारहों शुक्ला द्वादशियों को किया जाता है। अगहन महीने की शुक्ला द्वादशी को इस व्रत का आरंभ होता है। अमिपुराण में इसका बड़ा माहात्म्य लिखा है।

सुनाम—संज्ञा पुं० [ सं० सुनामन् ] (१) कंस के आठ भाइयों में से एक। (२) सुभेमु के एक पुत्र का नाम। (३) स्कंद का एक पार्षद। (४) वैनतेय का एक पुत्र।

वि० यशस्वी। कीर्तिवाली।

सुनामिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रायमाण्य रत्न। प्रायमान।

सुनाम्नी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवक की पुत्री और वसुदेव की पत्नी।

सुनायक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम। (२) एक दैत्य का नाम। (३) वैनतेय के एक पुत्र का नाम।

सुनार—संज्ञा पुं० [ सं० स्वर्णकार ] [ स्त्री० सुनारिन, सुनारी ] सोने, चाँदी के गहने आदि बनानेवाली जाति। स्वर्णकार।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुतिया का दूध। (२) साँप का अंडा। (३) चटक पक्षी। गौरा। गौरैया।

सुनारी—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुनार + ई (प्रत्य०) ] (१) सुनार का काम। (२) सुनार की स्त्री। उ०—धाँड़ जनी नायन नदी प्रकट परोसिन नारि। मालिन परहन सिषिपिनी सुरहेरनी सुनारि।—केशव।

सुनाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] रक्त कमल। लाल कमल। लामप्रक।

सुनालक—संज्ञा पुं० [ सं० ] अगस्त। वक्रपुष्प वृक्ष।

सुनावनी—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुना + आवनी (प्रत्य०) ] (१) कहीं विदेह से किसी संबंधी आदि की मृत्यु का समाचार आना।

क्रि० प्र०—आना।

(२) यह ज्ञान आदि कृत्य जो परदेस से किसी संबंधी की मृत्यु का समाचार आने पर होता है।

क्रि० प्र०—में जाना।

सुनासा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कौभा टोही। काकनासा।

सुनासिक—वि० [ सं० ] जिसकी नाक सुंदर हो। सुंदर नाकवाला। सुनास।

सुनासिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कौभाटोही। काकनासा।

सुनासीर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र। (२) देवता।

सुनाहकल—क्रि० वि० दे० “नाहक”।

सुनिद्र—वि० [ सं० ] जिसे अच्छी नींद आई हो। अच्छी तरह सोया हुआ। सुनिद्रित।

सुनिन्द—वि० [ सं० ] सुंदर माद या शब्द करनेवाला।

सुनियाना—क्रि० प्र० [ हिं० सुन + याना (प्रत्य०) ] (कसल का) रोग से सूख जाना या मारा जाना। (रहेखंड)

सुनिहदन—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का वरितकर्म।

सुनिर्यास—संज्ञा पुं० [ सं० ] लिंगिनी नामक वृक्ष।

सुनिश्चित—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बुद्ध का नाम।

वि० दृढ़ता से निश्चय किया हुआ। मली भक्ति निश्चित किया हुआ।

सुनिश्चितपुर—संज्ञा पुं० [ सं० ] काश्मीर का एक प्राचीन नगर।

सुनिपण्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] चौपनिया या सुसना नाम का साग। शिरियारी। उटंगन।

विशेष—कहते हैं कि यह साग खाने से अच्छी नींद आती है; इसी से इसका नाम सुनिपण्य (जिससे अच्छी नींद आवे) पड़ा है।

सुनिपण्यक—संज्ञा पुं० दे० “सुनिपण्य”।

सुनिखिन्ना—संज्ञा पुं० [ सं० ] तेज धारवाली तलवार।

सुनीच—संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष के अनुसार किसी ग्रह का किसी राशि में किसी विशेष अंश का अवस्थान।

जैसे,—रवि यदि मेष या तुला राशि में हो तो भीवस्य कहलाता है; और इसी तुला राशि के किसी विशेष अंश में पहुँच जाने पर सुनीच कहलाता है।

सुनीत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बुद्धिमत्ता। समझदारी। (२) नीतिमत्ता। (३) एक राजा का नाम जो सुबल का पुत्र था।

सुनीति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उच्चम नीति। (२) राजा उत्तानपाद की पत्नी और भुव की माता।

विशेष—विष्णुपुराण में लिखा है कि राजा उत्तानपाद की पौ पत्नियों थीं—सुनीति और सुरुचि। सुरुचि की राजा बहुत चाहता था और सुनीति से बहुत घृणा करता था। सुनीति की भुव नामक एक पुत्र हुआ जिसने पति द्वारा भगवान् की प्रसन्न कर राजसिंहासन प्राप्त किया। वि० दे० “भुव”।

संज्ञा पुं० (१) शिव। (२) विदूरथ का एक पुत्र।

सुनीध—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कृष्ण का एक पुत्र। (२) संतति

का पुत्र । (३) सुपेण का एक पुत्र । (४) सुयल का एक पुत्र । (५) सिद्धपाल का एक नाम । (६) एक दानव का नाम । (७) एक प्रकार का वृत्त ।

वि० न्यायपरायण । नीतिमान् ।

**सुनीया**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मृत्यु की पुत्री और अंग की पत्नी ।  
**सुनील**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अनार का पेड़ । दाहिम वृक्ष । (२) लामजक । छाल फमल ।

वि० अत्यंत नील वर्ण । बहुत नीला ।

**सुनीलक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नील भृंगराज । काला भृंगरा । (२) नीलकान्ति मणि । नीलम ।

**सुनीला**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चणिका का पुत्र । चणिका दास । (२) नीलापराजिता । नीली अपराजिता । नीली कोयल । (३) अतसी । तीसी ।

**सुनु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] जल ।

**सुनेत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एतारा का एक पुत्र । (२) तेरहवें मनु का एक पुत्र । (३) वीरों के अनुसार भार का एक पुत्र । (४) चक्रवाक । चक्रवा ।

वि० सुंदर नेत्रोंवाला । सुलोचन ।

**सुनेत्रा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सांख्य के अनुसार नौ तृष्टियों में से एक ।  
**सुनैया**-वि० [ हिं० सुनना + यैया (श्रव्य०) ] सुननेवाला । जो सुने । उ०—श्रीपदी विचारे रघुराज आज जाति छान सय है परैया पे न देर को सुनैया है ।—रघुराज ।

**सुनोची**-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का घोड़ा । उ०—अरदा औ जाग निरही से जग जाहर, जंवाहर, हुकुम सौं जंवाहर छलक के । मंगसी सुंजनस सुनोची स्वामकनं स्याह, सिरगा सजाये जे न मंदिर अलक के ।—सूदन ।

**सुस्र**-वि० [ सं० श्रव्य ] निजीव । स्वदन-हीन । निस्तव्य । अद्वय । निरचेष्ट । निश्चल । जैसे,—उंट के मारे उसके हाथ पैर सुस्र हो गये । उ०—(क) यह यात सुस्रर भाग्यवती सुस्र सी हो गई ।—श्रद्धागम । (ख) तहाँ रगो चिरहागि-नाहि क्यो चलि कै ऐलत । सुकवि सुस्र द्वै जाय न प्यारी देखत देखत ।—अंबिकादत्त । (ग) निरखि कंस की छाती धंड़की । सुस्र समान भई गति धंड़ की ।—निरखदास ।

संज्ञा पुं० शून्य । सिकर । उ०—(क) प्रथा सुस्र दस युग विन झंक गने नहि जाते ।—श्रद्धागम । (ख) अगनित बहत उद्यत लखक इक बँदी दीने । कछो सुस्र को ऐसो गुन को गनित संवीने ।—अंबिकादत्त ।

वि० दे० "सुस्रसान" ।  
**सुस्रत**-संज्ञा स्त्री० [ भ० ] सुस्रसामानों की एक रस जिसमें लवङ्गे की लिण्ड्रिप के अगले भाग का दवा हुआ चमड़ा काट दिया जाता है । लवना । सुस्रदामानी ।

**सुस्रसान**-वि० दे० "सुस्रसान" ।

**सुस्रा**-कि० सं० दे० "सुनना" ।

संज्ञा पुं० [ सं० श्रव्य ] बिंदी । सिकर । जैसे,—एक (१) पर सुस्रा (२) लगाने से दस (१०) होता है ।

**सुस्रा**-संज्ञा पुं० [ भ० ] सुस्रसामानों का एक भेद जो चारों खलीफाओं को प्रधान मानता है । चारवारी ।

**सुस्रख**-वि० [ सं० ] (१) सुंदर तीरों से युक्त । (२) सुंदर परों से युक्त ।

**सुस्रंध**-संज्ञा पुं० [ सं० ] उच्चम मार्ग । सुमार्ग । सत्यम । सन्मार्ग ।

**सुस्रक**-वि० [ सं० सुपक ] अच्छी तरह पका हुआ । सुपक । उ०—गोपाल राह दधि मँगत भरु रोटी । मातन सहित देहि मेरि जननी सुस्रक समंगल मोटी ।—सूर ।

**सुस्रक**-वि० [ सं० ] अच्छी तरह पका हुआ ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] सुगंधित आम ।

**सुस्रक**-वि० [ सं० ] जिसके सुंदर पंख हों । सुंदर पंखोंवाला ।

**सुस्रदमा**-वि० [ सं० सुस्रदम् ] जिसकी पलकें सुंदर हों । सुंदर पलकोंवाला ।

**सुस्रच**-संज्ञा पुं० [ सं० सुस्रच ] (१) चांडाल । डोम । उ०—शुलसी भगत सुस्रच भलो भई रहनि दिन राम । ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम ।—शुलसी । (२) मंगी । (हिं०)

**सुस्रट**-वि० [ सं० ] सुंदर वस्त्रों से युक्त । अच्छे वस्त्रोंवाला ।

संज्ञा पुं० सुंदर वस्त्र ।

**सुस्रड़ा**-संज्ञा पुं० [ देश० ] लंगर का अँकड़ा जो जमीन में घँसत जाता है ।

**सुस्रत**-वि० [ सं० सु + हिं० पत = प्रतिष्ठा ] प्रतिष्ठायुक्त । मान-युक्त । उ०—वह जूठो शक्ति जानि वदन त्रिषु रच्यो चिरंछि है री । सौंयो सुस्रत विचारि दयाम हित सु पूँ, रही छटि छे री ।—सूर ।

**सुस्रतिक**-संज्ञा पुं० [ हिं० ] रात को पढ़नेवाला ढाका ।

**सुस्रत्य**-संज्ञा पुं० दे० "सुस्रम" । उ०—इत अवध में श्रीराम छठमन वृद्ध पितु दत्तारथ की । सेव( करत नित रहत भे गदि रीति निगम सुस्रत्य की ।—पद्माकर ।

**सुस्रत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तेजपत्र । तेजपत्ता । (२) आदित्य पत्र । हुहुरद का एक भेद । (३) पहिल्याक नाम की धातु । (४) ईयुदी । गौंदी । हिंगोट । (५) एक पीताम्बिक पत्ती । वि० (१) सुंदर परों से युक्त । (२) जिसके पंख सुंदर हों । सुंदर पंखोंवाला ।

**सुस्रप्रक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सहिजन । शिम्पु ।

**सुस्रप्रा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रज्जुदा । (२) शतावरी । सतावर । (३) शालपर्णी । सारिवन । (४) शमी । टोंकर । सकेद कीकर । (५) पालक का सारा ।

सुप्रसिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जनुका । पपंटी ।  
सुप्रसित-वि० [ सं० ] पंखों या तीरों से युक्त । जिसमें पंख या तीर हों ।

सुप्रसत्री—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पौधा । गंगापत्री ।  
वि० [ सं० ] सुप्रसित्र् पंखों या तीरों से भली भाँति युक्त ।

सुप्रसथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उत्तम पथ । अच्छा रास्ता ।  
सन्मार्ग । सदाचरण । (२) एक वृक्ष का नाम जो एक रंगण, एक नगण, एक भगण और दो गुरु का होता है ।

वि० [ सं० ] सु+पथ ] समतल । हमंवार । (जर्मान)  
उ०—किर्षीं हरि मनोरथ रथ की सुप्रसथ भूमि मीनरथ  
मनहूँ की गति न सकति हूँ ।—केदार ।

सुप्रसथ्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह आहार या भोजन जो रोगी के लिये हितकर हो । अच्छा पथ्य । (२) आम ।

सुप्रसथ्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सफेद यधुआ । यद्दा यधुआ ।  
ध्वेत चिह्नी । (२) लाल यधुआ । लघु वास्तूक ।

सुप्रसद्—वि० [ सं० ] सुंदर परींचाला ।

सुप्रसद्वि—वि० [ सं० ] (१) सुंदर परींचाला । (२) तेज चखनेवाला ।

सुप्रसथा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यच । यचा ।

सुप्रसन्धी—संज्ञा पुं० दे० "स्वम" । उ०—(क) नित के जागत  
मिदि गयो वा सँग सुपन मिछाप । चित्र दरशहूँ कौं लभ्यो  
आँखिन आँसू पाप ।—लक्ष्मणसिंह । (ख) आज मैं निहारे  
फारे काहूँ कौं सुपन बीच उठि कै सकारे जमुना पै जलकौं  
गई । सवही तैं दीनघाल है रही मनोवा लट् परी भट्ट  
मेरी भटमेठी मग मैं भई ।—दीनदयाल ।

सुप्रसनक-वि० [ सं० ] स्वम । स्वम देखनेवाला । जिसे स्वम दिखाई  
देता हो ।

सुप्रसना—संज्ञा पुं० दे० "स्वम" । उ०—तहाँ भूर देख्यो अस  
सुप्रसना । पकरपौ पर गाद्री अपना ।—निश्चल ।

सुप्रसनाना—संज्ञा पुं० [ हि० ] सुप्रसना । स्वम देना । स्वम दिखाना ।  
(क०) उ०—बिहल तन मन धकित भई सुनि सा प्रतच्छ  
सुप्रसनाये । गदगद कंड सूर कोरलधुर सोर सुनत दुख  
पाये ।—सूर ।

सुप्रसकास—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुप्रकारा ] साप । गरमी । (हि०)

सुप्रसंडट—संज्ञा पुं० दे० "सुप्रसिंडट" ।

सुप्रसण—संज्ञा पुं० दे० "सुप्रण" ।

सुप्रसज—संज्ञा पुं० दे० "सुप्रज" ।

सुप्रसमसुरिता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बौद्धों की एक देवी का नाम ।

सुप्रसरायल—संज्ञा पुं० [ सं० ] छपेछाने में कागज आदि की एक  
नास जो २२ इंच चौड़ी और २९ इंच लंबी होती है ।

सुप्रसस—संज्ञा पुं० दे० "स्वस" । उ०—राम सुप्रस स्य  
कौतुक निरखि सखी मुख लट्टै ।—सूर ।

सुप्रसिंडट—संज्ञा पुं० [ सं० ] निरीक्षण करनेवाला । निगरानी

करनेवाला । प्रधान निरीक्षक । जैसे,—पुस्तक-विभाग का  
सुप्रसिंडट, तार-विभाग का सुप्रसिंडट ।

सुप्रसर्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गरुड़ । (२) मुसल । (३) पक्षी ।  
चिड़िया । (४) किरण । (५) विष्णु । (६) एक असुर का  
नाम । (७) देव गंधर्व । (८) एक पर्वत का नाम । (९)  
घोड़ा । अथ । (१०) सोम । (११) १०३ वैदिक मंत्रों की  
एक शाखा का नाम । (१२) अंतरिक्ष का एक पुत्र । (१३)  
सेना की एक प्रकार की ग्यूह रचना । (१४) नागकेसर ।  
नागपुष्प । (१५) अमलतास । स्वर्णपुष्प । (१६) सुंदर  
पत्र या पत्ता ।

विशेष—सुंदर किरणों से युक्त होने के कारण इस शब्द का  
प्रयोग चंद्रमा और सूर्य के लिये भी होता है ।

वि० (१) सुंदर पचींचाला । (२) सुंदर परींचाला ।

सुप्रसर्षक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गरुड़ या कोई दिव्य पक्षी । (२)  
अमलतास । स्वर्णपुष्प । आरमथ । (३) संतवन । सतीना ।  
ससर्पण ।

वि० (१) सुंदर पचींचाला । (२) सुंदर परींचाला ।

सुप्रसर्षकुमार—संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनियों के एक देवता ।

सुप्रसर्षकेतु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु ।

विशेष—विष्णु भगवान् की ध्यता में केतु या गरुड़ जी विराजते  
हैं, इसी से विष्णु का नाम सुप्रसर्षकेतु पड़ा ।  
(२) श्रीकृष्ण ।

सुप्रसर्षालु—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दैत्य का नाम ।

सुप्रसर्षराज—संज्ञा पुं० [ सं० ] पक्षिराज । गरुड़ ।

सुप्रसर्षसद्—वि० [ सं० ] पक्षी पर चढ़नेवाला ।  
संज्ञा पुं० विष्णु ।

सुप्रसर्षाड—संज्ञा पुं० [ सं० ] शूद्रा मांता और सूत पिता से  
उत्पन्न पुत्र ।

सुप्रसर्षा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) परिनी । कमलिनी । (२) गरुड़  
की माता का नाम । (३) एक नदी का नाम ।

सुप्रसर्षाप्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] नागकेसर । नागपुष्प ।

सुप्रसर्षिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्वर्ण जीवन्ती । पीली जीवन्ती ।  
(२) रेणुका । रेणुका बीज । (३) पलाची । (४) शालपर्णी ।  
सरिवन । बाकुची । बकुची ।

सुप्रसर्षी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गरुड़ की माता । सुप्रर्णा । (२)  
मादा चिड़िया । (३) कमलिनी । परिनी । (४) एक देवी  
जिसका उल्लेख कद्दू के साथ मिलता है । इसे कुछ लोग

छंदों की माता या वाग्देवी भी मानते हैं । (५) अग्नि की  
सात जिह्वाओं में से एक । (६) रात्रि । रात । (७) पलासी ।  
(८) रेणुका । रेणुका बीज ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] सुप्रसिन्द् । गरुड़ ।

सुप्रसर्षीतनय—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुप्रर्णा के पुत्र, गरुड़ ।

**सुपर्व**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुपर्ण के पुत्र, गरुड ।  
**सुपर्व**—संज्ञा पुं० [ सं० सुपर्ण ] (१) देवता । (२) पर्व । शुभ  
 सुहर्ष । शुभ काल । (३) बौद्ध । बंदा । (४) वाण । वीर ।  
 (५) भूय । धूर्त्त ।

वि० (१) सुंदर जोड़वाला । जिसके जोड़ या गोंडें सुंदर  
 हों । (२) सुंदर पर्व या अष्टायवाहा (अंश) ।

**सुपर्व**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चचेत दुर्गा । सफेद दूध ।

**सुपर्व**—संज्ञा पुं० [ हि० ] राजा ।

**सुपारिणी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आश्वरिणी । अंडा हलदी ।  
 अमिया हलदी ।

**सुपाष्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विह्वलवण । बिरिया या साँबर गोन ।  
 कटीला नमक ।

**सुपात्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो किसी कार्य के लिये योग्य था  
 उपयुक्त हो । अच्छा पात्र । जैसे,—सुपात्र को दान देना,  
 सुपात्र को कन्या देना ।

**सुपात्र**—वि० [ सं० ] सहज में पार होने योग्य । जिसे पार करने  
 में कोई कठिनाता न हो ।

**सुपात्रा**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शाय्य सुनि ।

वि० उत्तम रूप से पार करनेवाला । अत्यंत पारग ।

**सुपारा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साँप के अनुसार नीं तुष्टियों में  
 से एक ।

**सुपारी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सुप्रिय ] (१) नारियल की जाति का एक  
 पेड़ जो ४० से १०० फुट तक ऊँचा होता है । इसके पत्ते  
 नारियल के समान ही झाड़दार और एक से दो फुट तक  
 लंबे होते हैं । साँका ४-६ फुट लंबा होता है । इसमें छोटे  
 छोटे फूल लगते हैं । फल १।१-२ इंच के घेरे में गोलाकार  
 या अंडाकार होते हैं और उन पर नारियल के समान ही  
 छिलके होते हैं । इसके पेड़ बंगाल, आसाम, मैसूर, कनाड़ा,  
 मालाबार तथा दक्षिण भारत के अन्य स्थानों में होते हैं ।  
 सुपारी (फल) टुकड़े करके पान के साथ खाई जाती है ।  
 यों भी लोग खाते हैं । यह औषध के काम में भी आती है ।

पैयक के अनुसार यह भारी, क्षीतल, क्ली, कटैली, कफ  
 विघ्न नाशक, मोहकारक, रुचिकारक, दुर्गंध तथा सुँद की  
 निरसता दूर करनेवाली है । छालिया । कसैली । डली ।

**पर्व्य**—संज्ञा पुं० । पूर । कमुक । गुवाक । खपुर । सुरजन ।  
**पर्व्य**—संज्ञा पुं० । पर्व्य । पर्व्य । पर्व्य । पर्व्य । पर्व्य ।  
 गोपद । राजवाल । छटाफल । क्रमु । क्रमुकी । अकोट ।  
 संतुसार ।

**पौ**—चिकनी सुपारी ।

**मुहा**—सुपारी लगना = सुपारी का कनेजे में अटकना । सुपारी  
 खाते समय, कभी कभी पेट में 'उतरते समय अटक जाती  
 है । इसी को सुपारी लगना कहते हैं । उ०—राधिका शौंकि

सरोजन है कवि केदाव रीति गिरे सुविहारी । सोर भयो  
 सक्चे समुझे हरवाहि कथो हरि लागि सुपारी ।—केदाव ।  
 (२) लिंग का अग्र भाग जो प्रायः सुपारी (फल) के आकार  
 का होता है । (बाजार)

**सुपारी का फूल**—संज्ञा पुं० [ हि० सुपारी + फूल ] मोचरस या सेमर  
 का गोंद ।

**सुपारीपाक**—संज्ञा पुं० [ हि० सुपारी + सं० पाक ] एक पौष्टिक  
 औषध ।

**विशेष**—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पहले भांड  
 टके भर चिकनी सुपारी का कपड़ाल चूर्ण, भांड टके भर  
 गौ के घी में मिलाकर उसे तीन बार गाव के दूध में डाल-  
 कर घीभी आँच में खोवा बनाते हैं । फिर बंग, नागकेसर,  
 नागरमोथा, चंदन, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, भौंवाला,  
 कोयल के बीज, जायफल, धनिया, चिरौंजी, तज, पत्रज,  
 हलायची, सिंघार, बंदालोचन, दोनों जीरे (प्रत्येक पाँच  
 पाँच टंक) इन सब का मदीन कपड़ाल चूर्ण उक्त लोवे में  
 मिलाकर ५० टंक भर मिश्री की घाघनी में डालकर एक  
 टके भर की गोलीयों बना ली जाती हैं । एक गोली सबेरे  
 और एक गोली संध्या को खाई जाती है । इसके सेवन से  
 शुक्रद्रोप, प्रमेह, मूत्र, जीर्णज्वर, अग्लविघ्न, मंदाग्नि और  
 बर्सा का निवारण होकर शरीर पुष्ट होता है ।

**सुपार्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) परास पीपल । गजदंड । गर्द-  
 मोट । (२) पाकर । शूभ वृक्ष । (३) पनारप का एक  
 पुत्र । (४) श्रुतायु का पुत्र । (५) इन्द्रेमि का पुत्र । (६)  
 एक पर्वत का नाम । (७) एक राक्षस का नाम । (८)  
 संपाति (गिद्ध) का घेडा । (९) देवी भागवत के अनुसार  
 एक पीठ स्थान । यहाँ की देवी का नाम नारायणी है ।  
 (१०) वैश्याँ के २४ जिनों या तीर्थकर्तों में से सातवें  
 तीर्थकर ।

वि० सुंदर पार्यवाला ।

**सुपास**—संज्ञा पुं० [ दे० ] सुख । आराम । सुभीता । उ०—(क)  
 चली नसी वृन्दावन माहीं । सकल सुपास सहित सो  
 भाहीं ।—विधाम । (ख) जाया ताकी सधन निहारी । घेडा  
 सिमित सुपास विचारी ।—विधाम । (ग) यात्रियों के  
 लिये सब तरह का सुपास और आराम है ।—गदाधरसिंह ।

**सुपासी**—वि० [ हि० सुपास + दे० (सु०) ] सुख देनेवाला । आनंद-  
 दायक । उ०—(क) धालक सुमग देखि पुरवासी । होत  
 मद्द सय, तासु सुपासी ।—सुवराज । (ख) पौडवा भक्त  
 अनन्य सुपासी । पयहारी के शिष्य सुपासी ।—सुवराज ।

**सुपिंगला**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जीवंती । डोडी ताक । (२)  
 उपोत्पत्ती । मालकंगनी ।

**सुपीत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गजर । गजूर । (२) पीली कसरैया ।

पीत सिंदी। (३) पीतसार या चंदन। (४) उंगीतिप में पाँचवें सुहृत् का नाम।  
 वि० (१) उत्तम रूप से पीया हुआ। (२) विलकुल पीला। गहरा पीला।  
 सुपीन-वि० [ सं० ] बहुत मोटा या बड़ा।  
 सुपुंसी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसका पति सुपुरुष हो।  
 सुपुट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कोलकंद। चमार आलू। (२) विष्णुकंद।  
 सुपुटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेवती। पनमहिक्का।  
 सुपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जीवक वृक्ष। (२) उत्तम पुत्र।  
 वि० जिसका पुत्र सुंदर और उत्तम हो। अच्छे पुत्रवाला।  
 सुपुत्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जतुका, लता। पपड़ी।  
 वि० सुंदर या उत्तम पुत्रवाली।  
 सुपुरुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुंदर पुरुष। (२) सपुरुष। सज्जन। भला मानस।  
 सुपुर्द-संज्ञा पुं० दे० "सुपुर्द"।  
 सुपुष्करा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्थल कमलिनी। स्थल पद्मिनी।  
 सुपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लौंग। लवंग। (२) आहुल्य। तरबट। तरबट। (३) प्रपौडरीक। पुंडेरिया। पुंडेरी। (४) परिपाथ्य ' परास पीपल। (५) मुचकुंद वृक्ष। (६) शहपुल। वृत्। (७) मल्लदार। (८) पारिमद्र। फरहद। (९) शिरीष। सिरिस। (१०) हरिद्र। हलदुआ। (११) बड़ी सेवती। राजतरुणी। (१२) द्रवैतार्क। सफेद भाक। (१३) देवदार। देवदार।  
 वि० सुंदर पुष्पों या फूलोंवाला। जिसमें सुंदर फूल हों।  
 सुपुष्पक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिरीष वृक्ष। सिरिस। (२) मुचकुंद। (३) शैतार्क। सफेद भाक। (४) हरिद्र। हलदुआ। (५) गर्दभांड। परास पीपल। (६) राजतरुणी। बड़ी सेवती।  
 सुपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) क्रोशातकी। तरौई। तुराई (२) श्लोणपुष्पी। गुमा। (३) शतपुष्पा। सौंक। (४) शतपत्री सेवती।  
 सुपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रकार का विधारा। जीर्णदार। (२) शतपुष्पी। सौंक। (३) मिश्रेया। सोआ। (४) पाटला। पाटल। (५) महिषवही। पाताल गोरही। (६) शतपुष्पी। बनसनई।  
 सुपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्रेत अपराजिता। सफेद कौयल लता। (२) शतपुष्पी। सौंक। (३) मिश्रेया। सोआ। (४) कदली। केला। (५) श्लोणपुष्पी। गुमा। (६) वृद्धदार। विधारा।  
 सुपूत-वि० [ सं० ] अत्यंत पूत या पवित्र।  
 वि० [ सं० ] सु + हि० पूत ] अच्छा पुत्र। सुपुत्र। सपूत।

सुपूती-संज्ञा स्त्री० [ हि० सुपूत + ई (प्रत्य०) ] (१) सुपूत होने का भाव। सपूत-पन। उ०—करै सुपूती सोइ सुत रीको।—कबीर। (२) अच्छे पुत्रवाली स्त्री।  
 सुपूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] चीजपूर। विजौरा नीचू।  
 वि० सहज में पूर्ण होने योग्य।  
 सुपूरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अगस्त। धकवृक्ष। (२) विजौरा नीचू।  
 सुपेतो-संज्ञा स्त्री० दे० "सफेदी"।  
 सुपेदी-वि० दे० "सफेद"।  
 सुपेदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेदी। (१) सफेदी। उज्वलता। (२) ओढ़ने की रजाई। (३) विद्याने की तोनाक। (४) बिछौना। विस्तर।  
 सुपेली-संज्ञा स्त्री० [ हि० रूप + एली (प्रत्य०) ] छोटा रूप।  
 सुपेदा-संज्ञा पुं० दे० "सफेदा"।  
 सुप्त-वि० [ सं० ] (१) सोया हुआ। निद्रित। शयित। (२) सोने के लिये लेटा हुआ। (३) ठिठुरा हुआ। (४) बंद। मुँदा हुआ। सुद्रित। (जैसे फूल) (५) अकर्मण्य। बेकार। (६) सुस्त।  
 सुप्तक-संज्ञा पुं० [ सं० ] निद्रा। नींद।  
 सुप्तघातक-वि० [ सं० ] (१) निद्रित अवस्था में हनन या वध करनेवाला। (२) हिल। खँखार।  
 सुप्तप्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम।  
 वि० दे० "सुप्तघातक"।  
 सुप्तजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्द्धरात्रि। (इस समय प्रायः लोग सोए रहते हैं।)  
 सुप्तबान-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वप्न।  
 विशेष—निद्रितावस्था में जो स्वप्न दिखाई देता है, वह जाग्रत अवस्था के समान ही जान पड़ता है; इसी से उसे सुप्तजन कहते हैं।  
 सुप्तता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुप्त होने का भाव। (२) निद्रा। नींद।  
 सुप्तप्रसुद्ध-वि० [ सं० ] जो अभी सोकर उठा हो।  
 सुप्तप्रलपित-संज्ञा पुं० [ सं० ] निद्रितावस्था में होनेवाला प्रलाप। सोए सोए बकना।  
 सुप्तमाली-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुप्तमालिन् । पुराणानुसार तेईसमें कल्प का नाम।  
 सुप्तवाक्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] निद्रित अवस्था में कहे हुए वाक्य या वाक्य।  
 सुप्तविग्रह-वि० [ सं० ] निद्रित। सोया हुआ।  
 सुप्तविहान-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वप्न। सुपना। यवायं।  
 सुप्तस्थ-वि० [ सं० ] निद्रित। सोया हुआ।  
 सुप्तांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह अंग जिसमें चैष्टा न हो। निरचैष्ट अंग।

सुहांगता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुहांग का भाव । अंगों की निरुच्येता ।

सुप्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) निद्रा । नींद । (२) निद्रास । उँचाई । (३) अंग की निरुच्येता । सुहांगता । (४) प्रत्यय । विधास । पनवार ।

सुप्तोत्थित-वि० [ सं० ] निद्रा से जागरित । जो अभी सोकर उठा हो ।

सुप्रकेत-वि० [ सं० ] ज्ञानवान् । बुद्धिमान् ।

सुप्रचेता-वि० [ सं० ] सुप्रवेत्स् [ बहुत बुद्धिमान् । बहुत समझदार ।

सुप्रज-वि० दे० "सुप्रजा" ।

सुप्रजा-वि० [ सं० ] सुप्रज्स् [ उत्तम और बहुत संतान से युक्त । उत्तम और अधिक संतानवाला ।

संज्ञा स्त्री० (१) उत्तम संतान । अच्छी औलाद । (२) उत्तम प्रजा । अच्छी रिआया ।

सुप्रजात-वि० [ सं० ] बहुत सी संतानोंवाला । जिसके बहुत से बाल बच्चे हों ।

सुप्रज्ञ-वि० [ सं० ] बहुत बुद्धिमान् ।

सुप्रतर-वि० [ सं० ] सहज में पार होने योग्य (नदी आदि) ।

सुप्रतार-वि० दे० सुप्रतर" ।

सुप्रतिज्ञ-वि० [ सं० ] जो अपनी प्रतिज्ञा से न हटे । दृढप्रतिज्ञ ।

सुप्रतिभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मंदिरा । शराव ।

सुप्रतिभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राजा का नाम ।

सुप्रतिष्ठ-वि० [ सं० ] (१) उत्तम प्रतिष्ठावाला । जिसकी लोग खूब प्रतिष्ठा या आदर सम्मान करते हों । (२) बहुत मसिद्ध । सुविख्यात । महादूर । (३) सुंदर दौंगोंवाला ।

संज्ञा पुं० (१) सेना की एक प्रकार की ब्यूह रचना । (२) एक प्रकार की समाधि । ( शीघ्र )

सुप्रतिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में पाँच वर्ण होते हैं । इनमें से तीसरा और पाँचवाँ गुरु तथा पहला, दूसरा और चौथा वर्ण लघु होता है । (२) मंदिर या प्रतिमा आदि की स्थापना । (३) स्कंद की एक मारुका का नाम । (४) अभिषेक । (५) उत्तम स्थिति । (६) मुनामं । प्रसिद्धि । शोहरत ।

सुप्रतिष्ठित-वि० [ सं० ] (१) उत्तम रूप से प्रतिष्ठित । (२) सुंदर दौंगोंवाला ।

संज्ञा पुं० (१) गूल्द । उदुंबर । (२) एक प्रकार की समाधि ।

सुप्रतिष्ठितचरित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम ।

सुप्रतिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अक्षर का नाम ।

सुप्रतीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तिरप । (२) कामदेव । (३) ईशान कोण का दिग्गज ।

वि० (१) सुरूप । सुंदर । स्ववसूत । (२) सायु । सज्जन ।

सुप्रतीकनि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुप्रतीक नामक दिग्गज की स्त्री ।

सुप्रद्वि-वि० [ सं० ] बहुत उदार । बड़ा दानी । दाता । सुप्रदर्श-वि० [ सं० ] जो देखने में सुंदर हो । मियदर्शन । खूबसूरत ।

सुप्रदोहा-वि० [ सं० ] सहज में दूही जानेवाली (गाय) । जिस (गाय) की दूहने में कोई कठिनाई न हो ।

सुप्रधृष्य-वि० [ सं० ] जो सहज में अभिभूत या पराजित किया जा सके । आसानी से जीता जानेवाला ।

सुप्रयुद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्लाघ्य युद्ध ।

वि० जिसे यथेष्ट बोध या ज्ञान हो । अत्यंत बोधयुक्त ।

सुप्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक दानव का नाम । (२) जैनियों के नौ बलों (जिनों) में से एक । (३) पुराणनुसार शास्त्रकी द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष ।

वि० (१) सुंदर प्रभा या प्रकाशयुक्त । (२) सुंदर । सुरूप । स्ववसूत ।

सुप्रमदेष-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिशुपाल-वध के प्रणेता महाकवि भाष के पितामह का नाम ।

सुप्रमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वयुची । सोमराजी । (२) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक । (३) स्कंद की एक मारुका का नाम । (४) सात सरस्वतियों में से एक । (५) सुंदर प्रकार ।

संज्ञा पुं० एक वर्ष का नाम जिसके देवता सुप्रम माने जाते हैं ।

सुप्रभात-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुंदर प्रभात या प्रातःकाल । (२) मंगलसूचक प्रभात । (३) प्रातःकाल पढ़ा जानेवाला स्तोत्र ।

सुप्रमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पुराणनुसार एक नदी का नाम । (२) वह रात जिसकी प्रभात सुंदर हो ।

सुप्रमाध-संज्ञा पुं० [ सं० ] जिसमें सब प्रकार की दक्षिण्यें हों । सर्वशक्तिमान् ।

सुप्रयुक्तशर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो वाण चलाने में सिद्धहस्त हो । अच्छा धनुर्धर ।

सुप्रयोगविशिख-संज्ञा पुं० दे० "सुप्रयुक्तशर" ।

सुप्रयोगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वायुपुराण के अनुसार दक्षिणात्य की एक नदी का नाम ।

सुप्रलम्ब-वि० [ सं० ] जो अनायास प्राप्त किया जा सके । सहज में मिल सकनेवाला । सुलभ ।

सुप्रलाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवचन । सुंदर भाषण ।

सुप्रसन्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुबेर का एक नाम ।

वि० (१) अत्यंत प्रयुक्त । (२) अत्यंत-निर्मल । (३) हर्षित । बहुत प्रसन्न ।

सुप्रसन्नक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जंगली बघरी । वन पर्वतिका । हृष्णामक ।



सुप्रसारा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रसारिणी कृता । गंधप्रसारिणी । पसरना ।

सुप्रसाद—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) विष्णु । (३) स्कंद का एक पार्यद । (४) एक अमुर का नाम । (५) अत्यंत प्रसन्नता ।

वि० अत्यंत प्रसन्न या कृपासु ।

सुप्रसादा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

सुप्रसारा—संज्ञा स्त्री० दे० सुप्रसारा ।

सुप्रसिद्ध—वि० [ सं० ] बहुत प्रसिद्ध । सुविख्यात । बहुत मशहूर ।

सुप्रिय—संज्ञा पुं० [ सं० ] यौद्धों के अनुसार एक गंधर्व का नाम । वि० अत्यंत प्रिय । बहुत प्यारा ।

सुप्रिया—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक अम्बरा का नाम । (२) सोलह माप्राओं का एक वृक्ष जिसमें अंतिम धर्म के अति-तिव्र शेष सब वर्ण लघु होते हैं । यह एक प्रकार की चौपाई है । यथा—तबहुँ न लखन उतर कछु दयऊ ।

सुप्रमीम कोर्ट—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रधान या उच्च न्यायालय । सभ से यदी कचदरी ।

सुप्रियोप—ईरट इंडिया कंपनी के राजत्व काल में कलकत्ते में सुप्रमीम कोर्ट था, जिसमें तीन जज बैठते थे । अनन्तर महा-रानी विक्टोरिया के राजत्व काल में सुप्रमीम कोर्ट तोड़ दिया गया और उसके स्थान पर हाई कोर्ट की स्थापना की गई ।

सुफरा—संज्ञा पुं० [ देरा० ] टेगुल पर बिछाने का कपड़ा ।

सुफल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छोटा अमलतास । कर्णिकार । (२) बादाम । (३) अनार । दाहिम । (४) धैर । पदर । (५) मूँग । मुद्ग । (६) कैश । कपित्थ । (७) विजोरा नीबू । मानुलंग । (८) सुंदर फल । (९) अच्छा परिणाम ।

वि० (१) सुंदर फलवाला । (अ) (२) सुफल । कृत-कार्य । कृतार्थ । कामयाब ।

सुफलक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यादव जो अहूर का पिता था ।

सुफला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) इंद्रायण । इंद्रवाणी । (२) पेटा । कुम्हदा । कुम्भाड । (३) गंभारी । कोरमेरी । (४) केला । कदली । (५) मुनका । कपिला शंखा ।

वि० (१) सुंदर या बहुत फल देनेवाली । अधिक फलोंवाली । (२) सुंदर फलवाली । जैसे,—तलवार ।

सुफेद—वि० दे० "सफेद" ।

सुफेन—संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्रफेन ।

सुबंध—संज्ञा पुं० [ सं० ] तिल ।

वि० अच्छी तरह बंधा हुआ ।

सुबंधु—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

वि० उत्तम बंधुओंवाला । जिसके अच्छे बंधु या मित्र हों । सुबद्धा—संज्ञा पुं० [ देरा० ] टलही चाँदी । ताँबा मिली हुई चाँदी ।

सुबधु—वि० [ सं० ] (१) धूर । (२) चिकनी भौहवाला ।

सुबरनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० सुवर्ण ? ] छड़ी ।

सुबल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिवजी का एक नाम । (२) एक पक्षी ( धैतयेय की संतान ) । (३) सुमति के एक पुत्र का नाम । (४) गंधार का एक राजा जो शकुनि का पिता और धतराष्ट्र का ससुर था । (५) पुराणानुसार भीत्य मनु के पुत्र का नाम । (६) श्रीकृष्ण का एक सखा ।

वि० अत्यंत धलवान् । बहुत मजबूत ।

सुबलपुर—संज्ञा पुं० [ सं० ] कौकट राज्य का एक प्राचीन नगर ।

सुबह—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रातःकाल । सवेरा ।

सुबहान—संज्ञा पुं० दे० "सुमान" । उ०—भाव आतदा अरा कुरसी सुरते सुबहान । सिरः सिफत करदा वृद्धं मारफत मुकाम । —दादू ।

सुबहान अस्त्रा—प्रत्य० [ सं० ] भरवी का एक पद जिसका प्रयोग किसी बात पर हर्ष या आश्चर्य प्रकट करते हुए किया जाता है । बाह बाह ! क्यों न हो ! धन्य है ।

सुबाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक देवता । (२) एक उपनिषद् का नाम । (३) उत्तम बालक ।

वि० निर्मोघ । अयोध । अज्ञान ।

सुबास—संज्ञा स्त्री० [ सं० सु + बास ] अच्छी महक । सुगंध । संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का धान जो अगहन, महीने में होता है और जिसका चावल वर्षों तक रह सकता है । (२) सुंदर निवासस्थान ।

सुबासना—संज्ञा स्त्री० [ सं० सु + बास ] सुगंध । सुबासु । अच्छी महक । उ०—कहि छहि कौन सकै दुरी सोनसुदी में जाइ । तन की सहज सुबासना देती जो न बताइ ।—विहारी ।

वि० सं० सुवासित करना । सुगंधित करना । महकाना ।

सुबासिक—वि० [ सं० सु + बास ] सुवासित । सुगंधित । सुबासुदार । उ०—रहा जो फनक सुबासिक डाऊँ । कस न होए हीरा मनि नाऊँ ।—जायसी ।

सुवासित—वि० दे० "सुवासित" ।

सुबाहु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक नागासुर । (२) स्कंद का एक पार्यद । (३) एक दानव का नाम । (४) एक राजस का नाम । (५) एक यक्ष का नाम । (६) धतराष्ट्र का पुत्र और चेदि का राजा । (७) पुराणानुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम । (८) राघुनाथ का एक पुत्र । (९) प्रतिबाहु का एक पुत्र । (१०) कुवलयाभ का एक पुत्र । (११) एक बोधिसत्व का नाम । (१२) एक वानर का नाम ।

वि० दृव या सुंदर बाहोंवाला । जिंदगी बाहें अच्छी और मजबूत हों ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सुबाहु ] एक अम्बरा का नाम ।

सुबाहुक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यक्ष का नाम ।

सुबाहुशुभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीरामचंद्र का एक नाम ।

सुविस्ता-संज्ञा पुं० दे० "सुमीता" ।

सुवीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । महादेव । (२) पीतदाना ।

सससस । (३) उचम कीज ।

वि० उचम, बीजवाला । जिसके बीज उचम हैं ।

सुवीता-संज्ञा पुं० दे० "सुमीता" ।

सुवुक-वि० [ का० ] (१) हलका । कम बोझ का । भारी का

उलटा । (२) सुंदर । खूबसूरत । उ०—यसन फटे उपटे

सुवुक निवुक ददोरे हाय ।—रामसहाय ।

यो०—सुवुक रंग = सोना रंगने का एक प्रकार ।

संज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति । इस जाति के घोड़े मेहनती

और हिम्मती होते हैं । इनका कद मझोला होता है । दौड़ने

में ये बड़े तेज होते हैं । इन्हें दौड़ाक भी कहते हैं ।

सुवुक रंदा-संज्ञा पुं० [ का० सुवुक + वि० रंदा ] छोड़े का एक

औजार जो बद्धियों के पेशकरा की तरह का होता है ।

इसकी चार तेज होती है । इससे बत्तनों की कोर आदि

पीलते हैं ।

सुबुद्धि-वि० [ सं० ] उचम बुद्धिवाला । बुद्धिमान् ।

संज्ञा स्त्री० उचम बुद्धि । अच्छी अक्ल ।

सुबुध-संज्ञा पुं० [ सं० बुधि ] बुद्धि । अक्ल । (वि०)

वि० [ सं० ] (१) बुद्धिमान् । अकर्मन्दा । (२) सावधान । सतर्क ।

सुबू-संज्ञा पुं० दे० "सुबह" । उ०—जो निसि दिवस न हरि

भजि पये । तदपि न ह्यसि सुबु बिचरये ।—विश्राम ।

सुबूत-संज्ञा पुं० दे० "सबूत" ।

संज्ञा पुं० [ भ० ] यह जिससे कोई बात साधित हो । प्रमाण ।

सुबोध-वि० [ सं० ] (१) अच्छी बुद्धियाला । (२) जो कोई बात

सहज में समझ सके । जिसे अनायास समझाया जा सके ।

संज्ञा पुं० अच्छी बुद्धि । अच्छी समझ ।

सुमहाण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) विष्णु । (३)

कालिकेय । (४) उन्नता पुरोधित या उसके तीन सहकारियों

में से एक । (५) दक्षिण भारत का एक प्राचीन प्रांत ।

वि० महाण्ययुक्त । जिसमें महाण्य हो ।

सुमहाण्य क्षेत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ जो मद्रास

प्रदेश के दक्षिण कर्नाड़ा जिले में है ।

सुमहाण्य तीर्थ-संज्ञा पुं० दे० "सुमहाण्य क्षेत्र" ।

सुमहा धासुदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रीकृष्ण ।

सुमहा-संज्ञा पुं० [ सं० ] नारिषल का पेड़ । नारिषल वृक्ष ।

सुमह-वि० दे० "सुभ" ।

सुमहा-वि० [ सं० ] (१) सुंदर । मनोहर । मनोरम । पेश्वर-

माली । (२) भाववान् । सुभाकिम्पन । (४) शिव । शिव-

मग । (५) सुखद । आनंददायक ।

संज्ञा पुं० (१) शिव । (२) सोहता । टंकग । (३) चंपा ।

चंपक । (४) अनोक पृष्ठ । (५) पीली कटसरैया । पीत-

सिंधी । काल कटसरैया । रफासिंधी । (७) भूरि छरीला ।

पत्थर का फूल । शैलेय । शैलाण्य । चिलापुष्प । (८)

गंधक । गंध पाषाण । (९) सुबल के एक पुत्र का नाम ।

(१०) जैनों के अनुसार यह कर्म जिससे जीव सौभाग्यवान्

होता है ।

सुमगता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुभग होने का भाव । (२)

सुंदरता । सौंदर्य । खूबसूरती । (३) प्रेम । (४) स्त्री के

द्वारा होनेवाला सुख ।

सुमगदत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] भौमसुर का पुत्र ।

सुमगसेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन राजा जो सिक्किम के

आक्रमण के समय पश्चिम भारत के एक प्रांत में शासन

करता था ।

सुमगा-वि० [ स्त्री० ] (१) सुंदरी । खूबसूरत (स्त्री) । (२) (स्त्री)

जिसका पति जीवित हो । सौभाग्यवती । सुहागिन ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यह स्त्री जो अपने पति को शिव

हो । शिवतमा पत्नी । (२) स्कंद की एक मातृका का नाम ।

(३) पाँच वर्ष की कुमारी । (४) एक प्रकार की रागिनी ।

(५) केवडी मोया । केवर्त्त सुलका । (६) नीली दूब । नील

दूर्वा । (७) हल्दी । हरिद्रा । (८) तुलसी । सुस्ता । (९)

दक्षिणा । श्रियंगु । बनिता । (१०) कस्तूरी । सुगमभि ।

(११) सोना केला । सुवर्ण कदली । (१२) बेला । मोतिया ।

यनमहिष्का । (१३) चमेली । जाती पुष्प ।

सुमगानंदमाध-संज्ञा पुं० [ सं० ] सांघिकों के अनुसार एक मेरु

का नाम । काली पूजा के समय इनकी पूजा का भी

विधान है ।

सुमगाह्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कैथलिका कता । (२) हल्दी ।

(३) सरियन । (४) तुलसी । (५) नीली दूब । (६)

सोना केला ।

सुमगा-वि० दे० "सुभग" । उ०—मालव भूप उदग चलेउ

कर खग जग जित । तन सुभग आभरत मग जगमग

नग सित ।—वि० दास ।

सुमट-संज्ञा पुं० [ सं० ] महान् योद्धा । अच्छा सैनिक । उ०—

रुम और कलिंग को राउ मारयो, प्रथम यहुरि तिनके

बहुत सुमट मारे ।—सूर ।

सुमटवर्त-वि० [ सं० सुमट + वर्त ] अच्छा योद्धा । उ०—छायी

वलराम यह सुमटवर्त है कौज हल मुसल शय अपना

सँभारयो ।—सूर ।

सुमट चर्मा-संज्ञा पुं० एक हिंदू राजा जो ईश्वरी १२वीं शताब्दी के

अंत और १३वीं के प्रारंभ में विद्यमान था ।

सुमट-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्पण विधान व्यक्ति । बहुत यज्ञ पंडित ।

सुभद्र-संज्ञा पुं० [ सं० सुभद्र ] सुभद्र । शूरवीर । (दि०)  
 सुभद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) सनतकुमार का नाम ।  
 (३) वसुदेव का एक पुत्र जो पौरुषी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । (४) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम । (५) इधमनिहृ के एक पुत्र का नाम । (६) ह्यश्र द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम । (७) सौभाग्य । (८) कल्याण । मंगल ।  
 वि० (१) भाग्यवान् । (२) भला । सज्जन ।

सुभद्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवरथ । (२) घेल । चिरन्तवृक्ष ।  
 सुभद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्रीकृष्ण की बहन और अर्जुन की पत्नी ।

विशेष—एक बार अर्जुन दैवतक पर्वत पर सुभद्रा को देखकर मोहित हो गया । यह देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सुभद्रा को बलपूर्वक हरण कर उससे विवाह करने का आदेश दिया । तदनुसार अर्जुन सुभद्रा को द्वारका से हरण कर ले गया ।

(२) दुर्गा का एक रूप । (३) पुराणासुसार एक गौ का नाम । (४) संगीत में एक ध्रुति का नाम । (५) दुर्गम की पत्नी । (६) अनिरुद्ध की पत्नी । (७) एक चत्वर का नाम । (८) बलि की पुत्री और अर्वाक्षित की पत्नी । (९) एक नदी । (१०) सरियन । अर्नवमूल । इयामलता । (११) गंभारी । कादमरी । (१२) मकड़ा घास । घृतमंडा ।

सुभद्राणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] त्रायमान । त्रायमाण लता । त्रायंती ।  
 सुभद्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्रीकृष्ण की छोटी बहन । (२) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में न न र ल ग ( III, III, 5, 1, 5 ) होता है ।

सुभद्रेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्जुन ।

सुभद्रेश-वि० दे० "सुभद्र" । उ०—सुभद्र समुद्र अस नयन दुष्ट, मानिक भरे तरंग । आवाही तीर फिरोवाही, काल भँवर तेहि संग ।—जायसी ।

सुभद्र-वि० [ सं० ] उत्तम रूप से उत्पन्न ।

संज्ञा पुं० (१) एक इक्ष्वाकुवंशी राजा का नाम । (२) सार संवरसरो में से अंतिम संवरसर का नाम ।

सुभद्रसचर-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो पति को अत्यंत प्रिय हो । सुभगा स्त्री ।

सुभांजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुभांजन वृक्ष । सहिजन ।

सुभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० शुभा ] (१) सुभा । (२) गोमा । (३) पर नारी । (४) हरीतकी । इद्र । उ०—सुभा सुभा सोभा सुभा सुभा सिद्ध पर नारि । बहुरी सुभा हरीतकी हरिपद की रजधार ।—भक्तिकार्यं ।

सुभाह-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव" । उ०—कमलनाल सज्जन द्विपौ दोनौ एक सुभाह ।—रसनिधि ।

वि० वि० सहज भाव से । स्वभावतः । उ०—(क) कंठक

सौं कंठक काव्यो अपने हाथ सुभाह ।—सूर । (ख) भंग सुभाह सुवास प्रकाशित लोपिही केराव वयो करिके ।—केशव ।

सुभाउ-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव" । उ०—सुभ प्रसन्न शीतल सुभाउ, निन देखन नैन सिराइ ।—सूर ।

सुभाग-वि० [ सं० ] भाग्यवान् । सुख किस्मत ।

संज्ञा पुं० दे० "सौभाग्य" ।

सुभागा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रीद्राश की एक पुत्री का नाम ।

सुभागी-वि० [ सं० सुभाग ] भाग्यवान् । भाग्यशाली । सुव-किस्मत । उ०—कीन होगा जो न लेगा उस सुभा का स्वाद । छोड़ प्रतिकर्षण अपना और व्यर्थ विवाद । जो सुभागी थल सकेगे वह रसाल प्रसाद । ये कदापि नहीं करेंगे नागरी प्रतिवाद ।—सरस्वती ।

सुभागीन-संज्ञा पुं० [ सं० सौभाग्य + ई० (मय०) ] [ स्त्री० सुभागीन ] अच्छे भाग्यवाला । भाग्यवान् । सुभाग । उ०—कौक कलानि कै बेनी प्रवीन वही अवलानि मैं एक पदी है । भाग्य लै विपरीत मैं आँषी, सुभागीन यौं मुख पेसी कदी है ।—सुंदरीसर्वस्व ।

सुभाय-वि० [ सं० ] अत्यंत भाग्यशाली । बहुत बड़ा भाग्यवान् । संज्ञा पुं० दे० "सौभाग्य" ।

सुभान-मव्य० [ सं० सुवहान ] धन्य । वाह वाह । जैसे,—सुभान तेरी कुदरत ।

यौ०—सुभान आँखा = ईश्वर फय है । ( प्रायः इस पद का व्यवहार कोई अद्भुत पदार्थ या अनोखी घटना देखकर किया जाता है । )

सुभानो-संज्ञा पुं० [ सं० ] शोभना ] शोभित होना । देखने में भला जान पड़ना । ( क० ) उ०—भो निकुंज सुखपुंज सुभाना । मंडप मंडन मंडित नाना ।—गोपाल ।

सुभानु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चतुर्थ हुतास नामक युग के दूसरे वर्ष का नाम । (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम । वि० सुंदर या उत्तम प्रकाश से युक्त । सुप्रकाशमान् ।

सुभाय-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव" । उ०—फल आप तरुवर हुके झुकत मेघ जल लाय । विभौ पाय सज्जन हुके यह पर-कामि सुभाय ।—लक्ष्मणसिंह ।

सुभायक-वि० [ सं० स्वाभाविक ] स्वाभाविक । स्वभावतः । उ०—अभिमान सचिद्विषय दयाम सुगंध के धामदु ते जे सुभायक के । प्रतिबृल भये दुखदुल सवै कियौ शाक अंगार के घायक के ।—केशव ।

सुभाष-संज्ञा पुं० दे० "स्वभाव" । उ०—(क) क्या सुभाष परंयो सखि तेरो यह भिनवत हौं नोहि ।—सूर । (ख) और के हास विलास न भावत सापुन को यह सिद्ध सुभाष ।—केशव ।

**सुभाषित-वि०** [ सं० ] उत्तम रूप से भाषणा की हुई (औप्य) ।  
**सुभाषण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सुयुवात के एक पुत्र का नाम ।  
 (२) सुंदर भाषण ।

**सुभाषित-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक पुत्र का नाम ।  
 वि० सुंदर रूप से कहा हुआ । अच्छी तरह कहा हुआ ।  
**सुभाषी-वि०** [ सं० सुभाषि ] उत्तम रूप से बोलनेवाला ।  
 मिष्टभाषी ।

**सुभास-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सुधन्वा के एक पुत्र का नाम ।  
 वि० सुप्रकाशमान् । खूब चमकीला ।  
**सुभिद्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पुरातन काल या समय जिसमें मिश्रा  
 या भोजन खूब मिले और अन्न खूब हो । सुकाल । उ०—  
 पुनि पद परत जलद बहु वर्षे । भयो सुभिद्य प्रजा सख  
 हूयै ।—रघुवाज ।

**सुभिद्या-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] धी के पुत्र । धातु पुत्रिका ।  
**सुभिद्यज-संज्ञा पुं०** [ सं० ] उत्तम चिकित्सा करनेवाला । अच्छा  
 चिकित्सक ।

**सुभी-वि० स्त्री०** [ सं० शुभ ] सुभकारक । मंगलकारक । उ०—  
 है जलधार द्वार सुकृता गर्भो बक पंगति कुमुदमाल सुभी ।  
 गिरा गैरीर गरज मनु सुनि सखी स्यानि के श्रवण देख  
 भी ।—सूर ।

**सुभीता-संज्ञा पुं०** [ देश० ] (१) सुगमता । आसानी । सह-  
 ज्यित । (२) सुभवसर । सुयोग । (३) आराम ।  
 घन । (क०)

**सुभीम-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक दैव्य का नाम ।  
 वि० अत्यंत भीषण । बहुत भयावता ।

**सुभीमा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम ।  
**सुभीरक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बाक का पेड़ । पलाश वृक्ष ।  
**सुभुज-वि०** [ सं० ] सुंदर सुजाओंवाला । सुबाहु ।

**सुभुजा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक अप्सरा का नाम ।  
**सुभूता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] उत्तर दिशा का नाम जिसमें प्राणी  
 भले प्रकार स्थित होते हैं । (छांदोग्य) ।

**सुभूति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) कुदाक । क्षेम । मंगल । (२)  
 उन्नति । तरक्की ।

**सुभूतिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बेल का पेड़ । विष्य वृक्ष ।  
**सुभूम-संज्ञा पुं०** [ सं० ] काचवीर्य जो वैनिर्यो के आठवें चक्र-  
 वर्त्तों थे ।

**सुभूमि-संज्ञा पुं०** [ सं० ] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम ।  
**सुभूमिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम जो  
 महाभारत के अनुसार सारस्वती नदी के किनारे था ।

**सुभूमिप-संज्ञा पुं०** [ सं० ] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम ।  
**सुभूमप-संज्ञा पुं०** [ सं० ] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम ।  
 वि० सुंदर भूषणों से अलंकृत । जो अच्छे अलंकार पहने हों ।

**सुभूयित-वि०** [ सं० ] वृत्तम रूप से भूयित । अच्छी भाँति  
 अलंकृत ।

**सुभूप-वि०** [ सं० ] अत्यंत । बहुत अधिक ।  
**सुभोग्य-वि०** [ सं० ] सुख से भोगने योग्य । अच्छी तरह भोगने  
 के लायक ।

**सुभौटील-**संज्ञा स्त्री० [ सं० शोभा ] शोभा । उ—मौन से कौन  
 सुभौटी रहे, तिन बोले सुले पर को न कियारो ।—हनुमान ।  
**सुभौम-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वैनिर्यो के एक वक्रवर्त्तों राजा का नाम  
 जो काचवीर्य का पुत्र था ।

**सुभौष्य-**जैन हरिवंश में लिखा है कि जब परशुराम ने कार्त-  
 वीर्यार्जुन का वध किया, तब काचवीर्य की पत्नी अपने बच्चे  
 सुभौम को लेकर कुशिकान्नम में चली गई और वहाँ उसका  
 कालन पालन तथा शिक्षा दीक्षा हुई । बड़े होने पर सुभौम  
 ने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिये बीस बार  
 पृथ्वी को माहलन-शूट्य किया और इस प्रकार क्षत्रियों  
 का प्राधान्य स्थापित किया ।

**सुभ्र-वि० दे० "शुभ्र"**  
 संज्ञा पुं० [ टि० ] जमीन में का थिल ।

**सुभ्राज-संज्ञा पुं०** [ सं० ] देवभ्राज के एक पुत्र का नाम ।  
**सुभ्रु-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) नारी । स्त्री । औरत । (२) स्कंद  
 की एक मातृका का नाम ।

वि० सुंदर औरतवाला । जिसकी भैंवें सुंदर हों ।  
**सुभ्रमंगल-वि०** [ सं० ] अत्यंत शुभ । कल्याणकारी । (२)  
 सदाधारी ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का विप ।  
**सुभ्रमंगला-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) मकड़ा नामक घास । (२)  
 स्कंद की एक मातृका का नाम । (३) एक अप्सरा का नाम ।

(४) एक नदी जो कालिकापुराण के अनुसार हिमालय से  
 निकलकर मणिपट्ट ( कामाक्षा ) प्रदेश में बहती है ।  
**सुभ्रमंगली-संज्ञा स्त्री०** [ सं० सुभ्रमंगल ] विवाह में सप्तपदी पूजा के  
 बाद पुरोहित को दी जानेवाली दक्षिणा ।

**विशेष-**सप्तपदी पूजा के बाद कन्या-पक्ष का पुरोहित घर के  
 हाथ में संधुदर देता है और घर उठे पक्ष के मन्तक में खना  
 देता है । इसके उपरान्त में पुरोहित को जो नेग दिया जाता  
 है, उसे सुभ्रमंगली कहते हैं ।

**सुभ्रमंगा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] पुराणानुसार एक नदी का नाम ।  
**सुभ्रमंत-संज्ञा पुं०** [ सं० सुभ्रमन् ] राजा दशरथ का मंत्री और सारथि ।  
 जब रामचंद्र वन की जाने लगे थे, तब यही सुभ्रमंत (सुभ्रमन्)  
 उन्हें रथ पर बैठाकर कुछ दूर छोड़ गया था ।

**सुभ्रमंतु-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) एक सुनि का नाम जो वेदव्यास के  
 शिष्य, अथर्ववेद के शास्त्रप्रचारक तथा एक स्मृति या  
 धर्मशास्त्र के प्रणेता थे । (२) जङ्ग के एक पुत्र का नाम ।

**सुमिप्रानन्दन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] लक्ष्मण और रामुद्र ।  
**सुमिष्य-वि०** [ सं० ] उत्तम मित्रोंवाला । जिसके अच्छे मित्र हों ।  
**सुमिरण्ड-संज्ञा** पुं० दे० "सरण" ।  
**सुमिरनाक्षी-क्रि०** सं० दे० "सुमरना" । उ०—जैहि सुमिरत सिधि होइ गणनायक करिवर वदन ।—तुलसी ।  
**सुमिरनी-संज्ञा** स्त्री० दे० "सुमरनी" । उ०—अपनी सुमिरनी दारि दीन्यो तुस्त ही धारा बदी ।—रघुराज ।  
**सुमिरिनिया-संज्ञा** स्त्री० दे० "सुमरनी" । उ०—पीतम, इक सुमिरिनिया मुहि देइ जाहु—रहीम ।  
**सुमुख-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) गणेश । (३) गरुड़ के एक पुत्र का नाम । (४) द्रोण के एक पुत्र का नाम । (५) एक नागासुर । (६) एक असुर । (७) किवरों का राजा । (८) एक ऋषि । (९) एक वानर । (१०) पंडित । आचार्य । (११) एक प्रकार का जल पशु । (१२) एक प्रकार का शाक । (१३) एक राजा का नाम । (१४) राई । राजिका । राजसर्प । (१५) वनधर्मरी । जंगली धर्मरी । (१६) श्वेत तुलसी । (१७) सुंदर मुख ।  
**वि०** (१) सुंदर मुखवाला । (२) सुंदर । मनोरम । मनोहर । (३) प्रसन्न । (४) अनुकूल । कृपालु ।  
**सुमुष्वा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] सुंदरी स्त्री ।  
**सुमुष्वी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) यह स्त्री जिसका मुख सुंदर हो । सुंदर मुखवाली स्त्री । (२) दर्पण । आइना । (३) संगीत में एक प्रकार की मृदंग । (४) एक अक्षरा का नाम । (५) एक वृक्ष जिसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं । इनमें से पहला आठवाँ तथा ग्यारहवाँ लघु और अन्य अक्षर गुरु होते हैं । (६) नील अपराजिता । नीली कोयल । (७) शंखपुष्पी । शंखाहुली । कौटियाली ।  
**सुमुष्टि-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वक्रायन । विपमुष्टि । महानिय ।  
**सुमुष्टि-संज्ञा** पुं० [ सं० ] शिव के एक गण का नाम ।  
**सुमूल-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) सफेद सार्दिजन । श्वेत सिद्धु । (२) उत्तम मूल ।  
**वि०** उत्तम मूलवाला । जिसकी जड़ अच्छी हो ।  
**सुमूलाक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] गाजर ।  
**सुमूला-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) चरित्रन । शालपर्णी । (२) पिडभन । शृण्णिपर्णी ।  
**सुमृग-संज्ञा** पुं० [ सं० ] यह भूमि जहाँ बहुत से जंगली जानवर हों । शिकार खेलने के लिये अच्छा मैदान ।  
**सुमृत-संज्ञा** स्त्री० दे० "स्मृति" । उ०—धृति-गुरु साधु-सुमृत-संसत यह हृदय सदा दुखकारी ।—तुलसी ।  
**सुमृति-संज्ञा** स्त्री० दे० "स्मृति" । उ०—देव कवितान पुण्य कीरति वितान, तेरे सुमृति पुराण गुण मान क्षुति भरिये ।—देव ।

**सुमेखल-संज्ञा** पुं० [ सं० ] मूँज । मुंजतण ।  
**सुमेडो-संज्ञा** स्त्री० [ दे० ] खाट सुनने का वाद्य ।  
**सुमेध-संज्ञा** पुं० [ सं० ] रामायण के अनुसार एक पर्वत का नाम ।  
**सुमेध-वि०** दे० "सुमेधा" । उ०—ताहि कहत आच्छेप हँ भूपन सुकवि सुमेध ।—भूपण ।  
**सुमेधा-वि०** [ सं० सुमेध ] उत्तम बुद्धिवाला । सुबुद्धि । सुद्धिमान् ।  
**संज्ञा** पुं० (१) चासुप मन्वंतर के एक ऋषि का नाम । (२) वेदमित्र के एक पुत्र का नाम । (३) पौर्वर्ष मन्वंतर के विशिष्ट देवता । (४) पितरों का एक गण या भेद ।  
**संज्ञा** स्त्री० मालकंगनी । ज्योतिषमती लता ।  
**सुमेध्य-वि०** [ सं० ] अत्यंत पवित्र । बहुत पवित्र ।  
**सुमेर-संज्ञा** पुं० [ सं० सुमेर ] (१) सुमेर पर्वत । उ०—(क) शोभित सुंदर केराव कामिनि जिमि सुमेर पर घन सह दामिनि ।—गिरिधर । (ख) संपति सुमेर की कुवेर की छे पाये ताहि, मुस्त लुदावत विलंब उर धारे ना ।—पद्मकर । (२) गंगाजल रखने का बड़ा पात्र ।  
**सुमेर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) एक पुराणोक्त पर्वत जो सोने का कहा गया है ।  
**विशेष**—भागवत के अनुसार सुमेर पर्वतों का राजा है । यह सोने का है । इस भूमंडल के सात द्वीपों में प्रथम द्वीप जंघ द्वीप के—जिसकी लंबाई ४० लाख कोस और चौड़ाई ४ लाख कोस है—नी चर्चों में से इच्छावृत्त नामक अर्धवृत्त वर्ण में यह स्थित है । यह ऊँचाई में उक्त द्वीप के वित्तार के समान है । इस पर्वत का शिरोभाग ३२० हजार कोस, मूल देश ६४ हजार कोस और मध्य भाग ४ हजार कोस का है । इसके चारों ओर मंदर, मेरु मंदर, सुपाथ और कुमुद नामक चार आश्रित पर्वत हैं । इनमें से प्रत्येक की ऊँचाई और फैलाव ४० हजार कोस है । इन चारों पर्वतों पर आम, जामुन, कदंब और बड़ के पेड़ हैं जिनमें से प्रत्येक की ऊँचाई चार सौ कोस है । इनके पास ही चार हृद भी हैं जिनमें पहला दूध का, दूसरा मधु का, तीसरा कल के रस का और चौथा शुद्ध जल का है । चार उद्यान भी हैं जिनके नाम नंदन, धैरथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र हैं । देवता इन उद्यानों में सुरांगनाओं के साथ विहार करते हैं । मंदार पर्वत के देवच्युत वृक्ष और मेरु पर्वत के जंघ वृक्ष के फल, बहुत स्थूल और विराटकाय होते हैं । इनसे दो नदियाँ—अस्पोदा और जंघ नदी—बन गई हैं । जंघ नदी के किनारे की जमीन की मिट्टी तो रस से सिक्त होने के कारण सोना ही हो गई है । सुपाथ पर्वत के महाकदंब वृक्ष से जो मधुचागा प्रवाहित होती है, उसका पान करके चाहे के मंत्र से गिर्बली हुई सुगंध चार सौ कोस तक

जाती है। सुमेरु पर्वत का चट्टक तो कल्पतरु ही है। वहाँ के लोग आजीवन सुख भोगते हैं। सुमेरु के पूर्व जउर और देवकूट, पश्चिम में पुल और पारिपात्र, दक्षिण में कैलास और कारवीर गिरि तथा उत्तर में त्रिशंग और मकर पर्वत स्थित हैं। इन सब की ऊँचाई कई हजार कोस है। सुमेरु पर्वत के ऊपर मध्य भाग में मद्राक्ष की पुरी है, जिसका विस्तार हजारों कोस है। यह पुरी भी सोने की है। तृप्तिहपुराण के अनुसार सुमेरु के तीन प्रधान रंग हैं जो स्फटिक, वैदूर्य और रत्नमय हैं। इन रंगों पर २१ रत्न हैं जिनमें देवता लोग निवास करते हैं।

(२) सिपची का एक नाम। (३) जप माला के बीच का बड़ा दाना जो और सब दानों के ऊपर होता है। इसी से जप का आरंभ और इसी पर उसकी समाप्ति होती है।

(४) उत्तर भूय। वि० दे० "भुव"। (५) एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १२ + ५ के विश्राम से १७ मात्राएँ होती हैं, अंत में छद्म गुरु नहीं होते, पर यगण अत्यंत श्रुतिमयुर होता है। इसकी १,० और १५वीं मात्राएँ छद्म होती हैं। किसी किसी ने इसके एक चरण में १९ और किसी ने २० मात्राएँ मानी हैं। पर यह सर्वसम्मत नहीं है।

वि० (१) बहुत ऊँचा। (२) बहुत सुंदर।

सुमेरुश्या-संज्ञा की० [ सं० ] सुमेरु पर्वत से निकली हुई नदी।

सुमेरुवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह रेखा जो उत्तर भूय से २३½ अक्षांश पर स्थित है।

सुमेरुसमुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] उत्तर महासागर।

सुखी-वि० [ सं० सुखिन् ] (१) दयालु। कृपालु। मेहरवान। (२) अनुकूल।

सुम्मा-संज्ञा पुं० [ देश० ] बकरा। (याजारू) (२) दे० "सुवा"।

सुम्मी-संज्ञा की० [ देश० ] (१) सुनारों का एक औजार जिससे वे सुकी और थोड़ी की नोक उभाड़ते हैं। (२) दे० "सुंकी"।

सुम्मीदार सधरा-संज्ञा पुं० [ हि० सुम्मी + धा० दार (अध०) + सधरा (श्रीजार) ] यह सधरा जिसमें कठोरे परात में सुँवकी निकालते हैं।

सुम्ह-संज्ञा पुं० [ सं० सुम्भ ] एक जाति का नाम। संज्ञा पुं० दे० "सुम्भ"।

सुम्हार-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का धान जो सुम्ह-प्रदेश में होता है।

सुम्पधर-संज्ञा पुं० दे० "स्वयंपर"।

सुम्पु-संज्ञा पुं० [ सं० सुम्पु ] महाभारत के अनुसार सुम्पु के पुत्र का नाम।

सुम्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रश्मि प्रजापति के एक पुत्र का नाम जो आकृति के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (२) वसिष्ठ के

एक पुत्र का नाम। (३) भुव के एक पुत्र का नाम। (४) उशीनर के एक राजा का नाम। (५) उत्तम वज्र।

वि० उत्तमता या सफलता से यज्ञ करनेवाला। जिसने उत्तमता से यज्ञ किया हो।

सुम्प-संज्ञा की० [ सं० ] महामौम की पत्नी का नाम।

सुम्प-वि० [ सं० ] (१) उत्तम रूप में संयत। सुसंयत। (२) जिर्णद्विज।

सुम्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार देवताओं का एक गण जिनका जन्म सुम्प की पत्नी दक्षिणा के गर्भ से हुआ था।

सुम्प-संज्ञा की० [ सं० ] प्रियंगु।

सुम्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] अष्टा यज्ञ। अच्छी कीर्ति। सुम्पति।

सुम्पिनि। सुनाम। जैसे,—आजकल चारों ओर उम्पका सुम्प फैल रहा है।

वि० [ सं० सुम्पान् ] उत्तम यज्ञवाला। यज्ञस्वी। कीर्तिमान्।

संज्ञा पुं० भागवत के अनुसार अशोकवर्षण के पुत्र का नाम।

सुम्प-संज्ञा की० [ सं० ] (१) त्रिवोदास की पत्नी का नाम। (२) एक अर्द्धक की माता का नाम। (३) परीक्षित की एक धी का नाम। (४) एक अप्सरा का नाम। (५) अथसर्पिणी।

सुम्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] रवत मनु के पुत्र का नाम।

सुम्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] हरिवंश के अनुसार नहुष के एक पुत्र का नाम।

सुम्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] ललितविस्तार के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

सुम्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु। (२) राजभयन। राज-मासाद। (३) एक प्रकार का मेघ। (४) एक पर्वत का नाम।

सुम्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] धर्मयुद्ध। न्यायसम्मत युद्ध।

सुम्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुन्दर योग। संयोग। सुम्पवर। अच्छा मौका। जैसे,—बड़े माग्य से यह सुम्प हाथ आया है।

सुम्प-वि० [ सं० ] बहुत योग्य। लायक। काबिल। जैसे,—उनके दोनों पुत्र सुम्प हैं।

सुम्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] छताट्ट के बड़े पुत्र दुर्वाधन का एक नाम।

सुरंग-वि० [ सं० ] (१) जिसका रंग सुंदर हो। सुंदर रंग का। (२) सुंदर। सुशील। उ०—(क) सब पुर देखि धनुषपुर-देख्यो देखे महल सुरंग।—सूर। (ख) अठकायलि सुकाबलि गौंधी डोर सुरंग सिनाई।—सूर। (ग) गति हेरि कुरंग कुरंग फिरै धनुषंग सुरंग सुरंग बने।—गि० दास।

(३) रत्नपूर्ण। उ०—रत्ननिघ सुंदर मीत के रंग सुर्चहि नैन। मन पट की कर देत है सुरत सुरंग ये नैन।—रत्ननिधि।

संज्ञा पुं० (१) निगरक। दिग्गुल। (२) पतंग। बकम। (३) नारंगी। नारंग। (४) रंग के अनुसार धौंसों का एक भेद।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सुरंगा ] (१) जमीन या पहाड़ के नीचे शोधकर या बारूद से उद्धार बनाया हुआ रास्ता जो लोगों के आने जाने के काम में आता है। जैसे,—इस पहाड़ में रेल कई सुरंगों पार करके जाती है। (२) किले या दीवार आदि के नीचे जमीन के अंदर खोदकर बनाया हुआ वह रास्ता जिसमें बारूद आदि भरकर और उसमें आग लगाकर किला या दीवार उड़ाते हैं। उ०—भरि बारूद सुरंग लगायें। पुरी सहिते जदु भटन उडुयें।—गोपाल।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—लगाना।

(३) एक प्रकार का यंत्र जिसमें बारूद से भरा हुआ एक पीपा होता है और जिसके ऊपर एक तार निकला हुआ होता है। यह यंत्र समुद्र में डूबा दिया जाता है और इसका तार ऊपर की ओर उठा रहता है। जब किसी जहाज का पेंटा इस तार से छू जाता है, तो अपनी भीतरी विद्युत्-शक्ति की सहायता से बारूद में आग लग जाती है जिसके फटने से ऊपर का जहाज फटकर टूट जाता है। इसका व्यवहार प्रायः शत्रुओं के जहाज नष्ट करने में होता है।

(४) वह सुराज जो चोर लोग दीवार में बनाते हैं। सेंथ।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—सेंथ मारना = सेंथ लगाकर चोरी करना।

सुरंगद-संज्ञा पुं० [ सं० ] पर्वत। यक्षम। आल।

सुरंगधनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] गेरु मिट्टी।

सुरंगधुक-संज्ञा पुं० [ सं० सुरंगधुक ] सेंथ लगानेवाला। चोर।

सुरंगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कैवर्तिका लता। (२) सेंथ।

सरंगिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मूर्वा। सुहरी। सुरनहार।

(२) उपोदिका। पोहें का साग। (३) श्वेत काकमाची।

सफेद मकोय।

सरंगी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) फाकनासा। कीभायेयी। (२)

पुत्राग। सुलतान चंपा। (३) रक्त शोभांजन। लाल

सर्द्विजन। (४) आल का पेड़ जिससे आल का रंग बनता है।

सरंजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुपारी का पेड़।

सरंधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन जनपद का नाम।

(२) इस जनपद का निवासी।

सुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवता। (२) सूर्य। (३) पंडित।

विद्वान्। (४) मुनि। कृषि। (५) पुराणानुसार एक प्राचीन

नगर का नाम जो चंद्रप्रभा नदी के तट पर था। (६) अग्नि

का एक विशिष्ट रूप।

संज्ञा पुं० [ सं० सुर ] स्वर। ध्वनि। आवाज। वि० दे०

“स्वर”।

यौ०—सुरतान। सुरदीप।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—देना।—भरना।—मिलाना।

मुहा०—सुर में सुर मिलाना = हाँ में हाँ मिलाना। नापड़ना।

करना। सुर भरना = किली गाने या बजानेवाले को सहारा देने के लिये उसके साथ कोई एक सुर अथवा नाया बजाने आदि से निकालना।

सुरकंत-संज्ञा पुं० [ सं० सुर + कान्त ] इंद्र। उ०—प्रतिमंत

महा छितिकंत मनि थदि द्विदंत सुरकंत सम।—नि० दास।

सुरक-संज्ञा पुं० [ सं० सुर ] नाक पर का वह तिलक जो भाल की

आकृति का होता है। उ०—चौरि-पनिचं श्रुकुं-धनुसु

धषिकु समरु, तजि कानि । हनुतु तरुनं मृग तिलकसेतु

सुरक-भाल, भरि तानि।—विहारी।

संज्ञा स्त्री० [ हि० सुरकना ] सुरकने की क्रिया या भाव।

सुरकना-क्रि० सं० [ भृत् ] (१) किसी तरल पदार्थ को धीरे

धीरे हवा के साथ खींचते हुए पीना। (२) हवा के साथ

ऊपर की ओर धीरे धीरे खींचना।

सुरकरी-संज्ञा पुं० [ सं० सुरकरिन् ] देवताओं का हाथी। दिग्गज।

सुरराजः। उ०—तु तू इच्छा वाके करि विमल पानी विपन

की। हुके आयो, लये तन गगन में ज्यों सुरकरी।—राजा

लक्ष्मणसिंह।

सुरकली-संज्ञा स्त्री० [ हि० सुर + कली ] एक रागिनी का नाम।

सुरकानन-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के विहार करने का घन।

सरकाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के शिल्पकार, विश्वकर्मा।

सरकाम्युक्-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रधनुष।

सुरकाष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवदारु। देवकाष्ठ।

सर कुदायल-संज्ञा पुं० [ सं० सुर = स्वर + सं० कु + हि० दाय =

धोला ] स्वर के द्वारा धोला देना। स्वर बदलकर धोलना,

जिससे लोग धोले में आ जायें। उ०—चौक चाप करि

कृप दारु परिवार बाँधि घर। मुक्ति मोल करि खड्ग खोलि

सिंघिदि निचोळ घर। हय कुदाय दे सुरकुदाय गुन गाव रंक

को। जातु भाव शिवधाम धाव धन ह्याउ लंक को।—देशव।

सुरकुनड-संज्ञा पुं० [ सं० ] बृहत्संहिता के अनुसार ईशान कोण

में स्थित एक देव का नाम।

सरकुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का निवासस्थान।

सुरकुन्-संज्ञा पुं० [ सं० ] विधामित्र के एक पुत्र का नाम।

सरकृता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गिलोय। गुडुची।

सुरकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं या इंद्र की ध्वजा

(२) इंद्र। उ०—श्रावणाल के वचन सुनत नृप उठे सामान

समेत। लेन चले मुनि की। अणुवाई जिमि विधि कई

सुरकेतु।—सुरराज।

सरकक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कोशम। कोशात्र। (२) सोन

गेरु। स्वर्णैरितिक।

सरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक मुनि का नाम। (२) पुराणा-

नुसार एक पर्वत का नाम।

वि० उचम रूप से रचित। जिसकी भली भाँति रक्षा की

गई हो।

**सुरक्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] उत्तम रूप से रक्षा करने की क्रिया ।  
रक्षवाली । विफाज्ज ।  
**सुरक्षित**—वि० [ सं० ] जिसकी भली भाँति रक्षा की गई हो ।  
उत्तम रूप से रक्षित । अच्छी तरह रक्षा किया हुआ ।  
**सुरक्षी**—संज्ञा पुं० [ सं० सुरक्षित ] उत्तम या विश्वस्त रक्षक । अच्छा  
अभिभावक या रक्षक ।  
**सुरखंडनिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की वीणा जो सुर-  
मंडलिका भी कहलाती है ।  
**सुरख**—वि० दे० "सुखे" । उ०—हरपि दिपे पर निय धरयो सुरख  
सीप को हार ।—पद्मकर ।  
**सुरखा**—वि० दे० "सुर्य" । उ०—सुरखा अह संजाय सुग्मई  
भयलप भारी ।—सूदन ।  
संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का लंबा पीया जिसमें पचे  
बहुत कम होते हैं ।  
**सुरसाय**—संज्ञा पुं० [ का० ] चकवा ।  
**सुहा**—सुरसाय का पर लगना = विजयपता या विरोधना होना ।  
अनोखापन होना । जैसे—सुम में क्या कोई सुरसाय का पर  
लगा है, जो पहले तुम्हें दें ।  
संज्ञा स्त्री० एक नदी का नाम जो बलरूप में यद्वती है ।  
**सुरजिया**—संज्ञा पुं० [ प्रा० सुर्वे + श्वा (प्रत्य०) ] एक प्रकार का  
पक्षी जो सिर से गरदन तक लाल होता है । इसकी पीठ  
भी लाल होती है, पर चोंच पीली और पैर काले होते हैं ।  
**सुरजिया बगला**—संज्ञा पुं० [ हि० सुर्वे + बगला ] एक प्रकार का  
बगला जिसे याप बगला भी कहते हैं ।  
**सुरक्षी**—संज्ञा स्त्री० [ का० सुर्वे ] (१) हँडों का बनाया हुआ महीन  
चूरा जो इमारत बनाने के काम में आता है । (२) दे०  
"सुर्वी" ।  
यी०—सुरली घना ।  
**सुरसुरु**—वि० दे० "सुर्वसु" । उ०—अलहदाद मल सेहि कर  
गुरु । दीन दुषी रोसन सुरसुरु ।—जायसी ।  
**सुरगंड**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का फोड़ा ।  
**सुरगङ्गा**—संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग" । उ०—जीव्यी सुरग जीति  
दिशि चारयी ।—लाल कवि ।  
**सुरगज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं या इंद्र का हाथी ।  
**सुरगति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दैवी गति । भावी ।  
**सुरगवेशी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वनेश्या ] अक्षरा । (हिं०)  
**सुरगमै**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देव संताप ।  
**सुरगाय**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सुर + गी ] कामधेनु ।  
**सुरगायक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के गायक, गंधर्व ।  
**सुरगिरि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के रहने का पर्वत, सुमेरु ।  
**सुरगी**—संज्ञा पुं० [ सं० स्वगी ] देवता । (हिं०)  
**सुरगी नदी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वगी + नदी ] गंगा । (हिं०)

**सुरगुह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के गुह, रहस्य ।  
**सुरगुह विचस**—संज्ञा पुं० [ सं० ] रहस्यविचार ।  
**सुरगुह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का मंदिर । सुरकुल ।  
**सुरगैया**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सुर + गैया ] कामधेनु ।  
**सुरग्रामणी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का नेता, इंद्र ।  
**सुरचाप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रधनुष ।  
**सुरच्छन**—संज्ञा पुं० दे० "सुरक्षण" । उ०—रत परम विचच्छन  
गम तर धरम सुरच्छन काम कर ।—गि० दास ।  
**सुरजःफल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कटहल । पनस ।  
**सुरज**—वि० [ सं० सुजन्म् ] ( फूल ) जिसमें उत्तम या मसुर  
पराग हो ।  
संज्ञा पुं० दे० "सुर्वे" ।  
**सुरजन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का वर्ग । देवसमूह ।  
वि० (१) राजन । सुजन । (२) चतुर । चालाक । उ०—  
कद्यो पैक समुसाह सुहि सुरजन मीतम आप । बस मन मैं  
मन कौ हरी क्यों न विरह संताप ।—रसनिधि ।  
**सुरजनपन**—संज्ञा पुं० [ हिं० सुजन + पन (प्रत्य०) ] (१) सजनता ।  
भरमनसत । (२) चालाकी । होशियारी । चतुराई ।  
**सुरजा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक अक्षरा का नाम । (२)  
पुराणानुसार एक नदी का नाम ।  
**सुरजेठो**—संज्ञा पुं० [ सं० सुरज्येठ ] प्रह्ला । (हिं०)  
**सुरज्येठ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं में बड़े, प्रह्ला ।  
**सुरभन**—संज्ञा स्त्री० दे० "सुलभन" । उ०—गरजन मै पुनि आप  
ही बरसन मै पुनि आप । सुरसन मै पुनि आप त्यों उररुन  
मै पुनि आप ।—रसनिधि ।  
**सुरभना**—क्रि० प्र० दे० "सुलभना" । अरी करेनै गैन तुव सरसि  
करेनै धार । आजहँ सुरसत नाहि ते सुर हित करत पुकार ।  
—रसनिधि ।  
**सुरभाना**—क्रि० सं० दे० "सुलभाना" । उ०—ज्यों सुरसाईं री  
नँदलाल सों अरुसि रदो मन मेरो ।—चूर ।  
**सुरभायना**—क्रि० सं० दे० "सुलभाना" । उ०—उरदयो काहू  
रुख में कहँ न चलक चीर । सुरभायन के मिस सऊ रिठकी  
भोरि सरीर ।—लक्ष्मणसिंह ।  
**सुरटीम**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुर + टीम ] स्वर का आलाप । सुर  
की सान ।  
**सुरत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रति मीमांसा । कामवेष्टि । संभोग ।  
मैथुन । उ०—सुरत ही सय रैन पीती कोक पूरण रंग ।  
नरद दामिनि संग सोहद भरे आलस अंग ।—चूर ।  
(२) एक वीर मिथु का नाम ।  
संज्ञा स्त्री० [ सं० स्थिति ] स्थान । याद । सुय । उ०—(क)  
धीर मद्यत मन रुन नरौं कदत, परन तैं धन । सुरत सुरत  
की सुरत के सुरत सुरत हैंति ; गैन ।—शंभार-सतसई ।



(७) करत महातर विपिन वधि चलो गयो करता । तहँ  
अरुंड लागी सुरन गया तैल की धार—रुसाज ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिलाना ।—होना ।—लगना ।

मुहा०—सुरत विसारना = भूल जाना । विरक्त होना । सुरत  
सँभालना = देश सँभालना ।

सुरतखानि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रति या संभोग जनित खानि या  
निषिद्धता ।

सुरतताही—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दूती । (२) शिरोमाल्य ।  
सेहरा ।

सुरतबंध—संज्ञा पुं० [ सं० ] संभोग का एक प्रकार ।

सुरतरंगिणी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंगा ।

सुरतरु—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवतरु । कल्पवृक्ष ।

सुरतरुचर—संज्ञा पुं० [ सं० ] कल्पवृक्ष ।

सुरतांत—संज्ञा पुं० [ सं० ] रति या संभोग का अंत ।

सुरता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुर या देवता का भाव या कार्य ।  
देवत्व । (२) सुर समूह । देव समूह । देव जाति । (३)

संभोग का आनंद । (४) एक अप्सरा का नाम ।  
संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की पॉल की नली जिसमें से  
दाना छोड़कर बोया जाता है ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रूठि, दि० मुल ] (१) चिन्ता । ध्यान ।  
(२) चेत । सुख । उ०—छोटि शासना पौष की अरहंत

की ना मानि । सुरता छोटि पिशाचता काहे को करि यानि ।  
सुरतांत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं के पिता, देवयप ।  
(२) देवताओं के अधिपति, इंद्र ।

सुरतान—संज्ञा स्त्री० [ हि० धर + तान ] स्वर का आलाप । सुर दीप ।  
हरंदा पुं० दे० "सुलतान" ।

सुरति—संज्ञा स्त्री० [ सं० सु + रति ] विशार । भोग-विलास ।  
कामकेलि । संभोग । उ०—विरभी सुरति रघुनाथ कुंजवाम

पीच, काम बस वाम करे ऐसे भाव थपनो । जवनि सो  
मसकै सिकोरै नाक, ससकै मरौरै मँहँ हंस कै संसैर दारे  
कपनो ।—काम्यकलाधर ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रूठि ] स्मरण । सुधि । चेत । उ०—छिन  
छिन सुरति करत यदुपति की परत न मनं समुदायो ।  
गोडुलनाथ हमारे हित छगि छिपिहुँ बयौं न पदायो ।—सूर ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिलाना ।—छगना ।—होना ।

संज्ञा स्त्री० दे० "सूरव" । उ०—सोवत जागत सपनबस  
रस रिस धन कुचैन । सुरति इयाम घन की सुरति विसरैह  
विसरै न ।—विहारी ।

सुरतिगोपना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह नायिका जो रति-प्रीति करके  
आई हो और अपनी सखियों आदि से यह बात छिपाती हो ।

सुरति-रव—संज्ञा पुं० [ सं० ] रति-प्रीति के समय होनेवाली  
भूषणों की पंक्ति ।

सुरतिवंत—वि० [ सं० सुर + वन्त ] कामातुर । उ०—हरि हँसि  
भामिनी उर लाइ । सुरतिवंत गुपाल रोसै जानी भति  
सुखदाइ ।—सूर ।

सुरतिविचित्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मध्या के चार भेदों में से  
एक । वह मध्या जिसकी रति-क्रिया विचित्र हो । उ०—  
मध्या आरुद्ध यौवना प्रगलभवंचना जान । प्रादुर्भूत मनो-  
भवा सुरतिविचित्रा मान ।—केशव ।

सुरती—संज्ञा स्त्री० [ सुरत (नगर) ] खाने का संवाहक के पत्तों का  
चूरा जो पान के साथ याँ पाँ ही चूना मिलाकर खाया  
जाता है । खैनी ।

विशेष—अनुमान किया जाता है कि पुचंगालाखों ने पहले  
पहल इसका प्रचार सुरत नगर में किया था, इसी से  
इसका यह नाम पड़ा ।

सुरतुंग—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरपुत्राग नामक वृक्ष ।

सुरतोपक—संज्ञा पुं० [ सं० ] कौस्तुभ मणि ।

सुरत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोना । स्वर्ण । (२) माणिक्य । खाल ।  
वि० (१) सर्वश्रेष्ठ । (२) उत्तम रत्नों से सुकृ ।

सुरत्राण—संज्ञा पुं० दे० "सुरघाता" । उ०—बाजत घोर निसान  
सान सुरत्राण लजावत ।—गि० दास ।

सुरघाता—संज्ञा पुं० [ सं० सुर + घात ] (१) विष्णु । श्रीकृष्ण ।  
(२) इंद्र ।

सुरध—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक चंद्रवंशी राजा जो पुराणों के  
अनुसार स्वर्तोषिप मन्वन्तर में हुए थे और जिन्होंने पहले  
पहल दुर्गा की आराधना की थी । दुर्गा के घर से ये सार्वर्गि  
मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए । दुर्गा सप्तमती में इनका  
विरक्त वंशज है । (२) द्रुपद के एक पुत्र का नाम । (३)  
जयद्रथ के एक पुत्र का नाम । (४) सुदेव के एक पुत्र का  
नाम । (५) जनमेजय के एक पुत्र का नाम । (६) अधिरथ  
के एक पुत्र का नाम । (७) कुंडक के एक पुत्र का नाम ।

(८) रणक के एक पुत्र का नाम । (९) चंपकपुरी के राजा  
हंसध्वज का पुत्र । (१०) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] सुपन्न ] कुतूंब द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष ।  
सुरथा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक अप्सरा का नाम । (२)  
पुराणानुसार एक नदी का नाम ।

सुरथाकार—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वप का नाम ।

सुरथान—संज्ञा पुं० [ सं० सुर + थान ] स्वर्ण । (हि०)

सुरदार—वि० [ हि० धर + दार ] जिसके गले का स्वर सुंदर  
हो । सुस्वर । सुरीला ।

सुरदाह—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवदार । देवदार वृक्ष ।

सुरदीर्घिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आकृति गंगा ।  
सुरहुंहुमि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) देवताओं का नगाड़ा । (२)  
हुलसी ।

सुरदेवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] योगमाया जिसने यशोदा के गर्भ में अवतार लिया था और जिसे कंस पटकने चला था ।  
 सुरदेश-संज्ञा पुं० [ सं० सुर + देश ] स्वर्ग । देवलोक ।  
 सुरद्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवदारु । सुरद्रुम ।  
 सुरद्रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कल्पवृक्ष । (२) देवगल । बड़ा नरकट । बड़ा नरसल ।  
 सुरद्विप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं का हाथी । देवहस्ती । (२) इंद्र का हाथी । देगावत ।  
 सुरद्विप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं का शत्रु । अभुर । दानव । राक्षस । (२) राटु ।  
 सुरधनुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरधनुष । इंद्रधनुष ।  
 सुरधाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वधाम । देवलोक । स्वर्ग ।  
 मुदा०—सुरधाम सिंघारना = गन जाना ।  
 सुरधुनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंगा ।  
 सुरधूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] धूप । रात । मजूरस ।  
 सुरधेनु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुर + धेनु ] देवताओं की गाय, कामधेनु ।  
 सुरध्वज-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरकेतु । इंद्रध्वज ।  
 सुरनंदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम ।  
 सुरनगर-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ग ।  
 सुरनदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गंगा । (२) आकाश गंगा ।  
 सुरनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र ।  
 सुरनायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरपति । इंद्र ।  
 सुरनारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवांगना । देवयाला । देववधु ।  
 सुरनाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञा नरसल । देवनल ।  
 सुरनाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरनाथ । देवराज इंद्र । उ०—परिधा  
 र्हे जावव हेरि हयो । सुरनाह, तये गत चेत भयो ।—  
 गिरिधर ।  
 सुरनिम्नगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंगा ।  
 सुरनिर्गंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] तेजपत्रा । तेजपत्र । पत्रज ।  
 सुरनिर्हरिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आकाश गंगा ।  
 सुरनिलय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुमेरु पर्वत, जहाँ देवता रहते हैं ।  
 सुरपल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरपति । इंद्र । उ०—या कहि सुरप गयहु  
 सुरधाम ।—पद्मधर ।  
 सुरपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवराज इंद्र ।  
 सुरपतिगुरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] गृहस्पति ।  
 सुरपतिचाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र-धनुष ।  
 सुरपति-तनय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र का पुत्र, जयंत । (२)  
 अर्जुन ।  
 सुरपतिव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरपति का भाव या पद ।  
 सुरपथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] आकाश ।  
 सुरपन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरपुत्र । पुत्राग । सुरग्री । मुलतान चंया ।

सुरपर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सुगंधित शाक ।  
 पय्या०—देवपर्ण । सुगंधिक । माधीपत्र । गंधपत्रक ।  
 विशेष—यह क्षुप जाति की सुगंधित वनस्पति है । पैयक  
 के अनुसार यह कटु, तण्डु तथा कृमि, खास और कास की  
 नाशक तथा क्षीपन है ।  
 सुरपण्डित-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुत्राग वृक्ष ।  
 सुरपण्डिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुत्राग । मुलतान चंया ।  
 सुरपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पलसरी । पलसरी । (२)  
 पुत्राग । पुलाक ।  
 सुरपर्वत-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुमेरु ।  
 सुरपादप-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवद्रुम । कल्पवृक्ष ।  
 सुरपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुर + पालक ] इंद्र । उ०—सुराग सहित  
 तहें आह के वज्र हन्यो सुरपाल ।—गिरिधर ।  
 सुरपालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र ।  
 सुरपुत्राग-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पुत्राग जिसके गुण  
 पुत्राग के समान ही होते हैं ।  
 सुरपुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सुरपुरी ] देवताओं की पुरी,  
 अमरावती ।  
 मुदा०—सुरपुर सिंघारना = गन जाना । गन हो जाना ।  
 सुरपुरकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र । उ०—रूप कैतु दल के केतु  
 सुरपुरकेतु छन महें मोहहीं ।—गि० दास ।  
 सुरपुरीचा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरपुरेभम् ] देवताओं के पुरोहित,  
 गृहस्पति ।  
 सुरप्रतिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवमूर्ति की स्थापना ।  
 सुरप्रिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र । (२) गृहस्पति । (३) एक  
 प्रकार का पक्षी । (४) अगस्त्य । अगस्तिया । (५) एक  
 पर्वत का नाम ।  
 सि० जो देवताओं को प्रिय हो ।  
 सुरप्रिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक अप्सरा का नाम । (२)  
 चमेठी । जाली शूद्र । (३) सौरज केला । स्वर्ण रत्ना ।  
 सुरफौक ताक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुर + फौक = काजी + ताक ] सुरभंग  
 का एक ताल । इसमें तीन आघात और एक गाली होता है ।  
 + + +  
 कैमे, —या पेदे, नागय, पेदे नाग, गरी, पेदे नाग । पा ।  
 सुरपहाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुर + पा० बहार ] सिंगार की तरह का  
 एक प्रकार का बाजा ।  
 सुरवाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवता की स्त्री । देवांगना ।  
 सुरसूत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुरवेदी । एक पौधा जो बंगाल और  
 वहीसे से लेकर मद्रास और सिंदल तक होता है ।  
 इसकी जड़ की छाल से एक प्रकार का सुंदर लाल रंग  
 निकलता है जिससे मण्डलीपट्टर, तेलोर आदि स्थानों में  
 कपड़े रंगे जाते हैं । पिरबल ।

सुरवृच्छ-संज्ञा पुं० दे० "सुरवृक्ष" । उ०—मुख ससि सर  
गर अधिक वचन धी अमृत देसी । सुर सुरभी सुरवृच्छ  
देनि करतल महै वीसी ।—गि० दास ।

सुरवेल-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुर+वेली ] कल्प लता ।

सुरभंग-संज्ञा पुं० [ सं० स्वर भंग ] प्रेम, आनन्द, मय आदि में  
होनेवाला स्वर का विपर्ययास जो सात्विक भावों के  
अंतर्गत है । उ०—(क) स्तंभ स्वेद रोमांच सुरभंग कंपं  
वैवर्ण । अग्रप्रलाप थलानिए आशो नाम सुवर्ण ।—देशव ।  
(ख) निसि जागै पागे अमल हित को दरसन पाइ । बोल  
पावरो होत जो सो सुरभंग धताइ ।—काम्य कलापर । (ग)  
क्रोध हरख मद् भीत तैं वचन और विधि होय । ताहि  
कहत सुरभंग हैं कवि कोविद सब कोय ।—मतिराम ।

सुरभयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं का निवासस्थान ।  
मंदिर । (२) सुरपुरी । अमरावती ।

सुरभान-संज्ञा पुं० [ सं० सुर+भानु ] (१) इंद्र । उ०—राघे सों  
रस यरनि न जाइ । जा रस को सुरभान शोभ दियो, जो  
हैं पियो अङ्गलाइ ।—सूर । (२) सूर्य । उ०—सुनि सजनी  
सुरभान है अति मलान सतिमंद । पूनो रजनी में जु गिलि  
देत उगिलि यह चंद्र ।—शंभार सतसई ।

सुरभि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वसंत काल । (२) चैत्रमास । (३)  
सोना । स्वर्ण । (४) गंधक । (५) चंपक । चंपा । (६)  
जायफल । (७) कदंब । (८) बकुल । मौलसिरी । (९)  
शमी । सफेद कीकर । (१०) कण शुगुल । (११) गंध  
तृण । रोहिस घास । (१२) राल । धूना । (१३) गंधकल ।  
(१४) बरैत चंदन । (१५) यह अग्नि जो यज्ञयूप की स्थापना  
में प्रज्वलित की जाती है ।

संज्ञा स्त्री० (१) पृथ्वी । (२) गौ । (३) गायों की अधिष्ठात्री  
देवी तथा गौ जाति की आदि जननी । (४) कार्तिकेय की  
एक मातृवा का नाम । (५) सुरा । शराव । (६) गंगावती ।  
(७) वनमहिष्ठा । सेवती । (८) तुलसी । (९) शल्लकी ।  
सलई । (१०) रुद्रजटा । (११) एलवालुक । एलुवा ।  
(१२) सुगंधि । सुगंध ।

वि० (१) सुगंधित । सुवासित । (२) मनोरम । सुंदर ।  
मिव । (३) उत्तम । श्रेष्ठ । बढ़िया । (४) सदापारी ।  
गुणावान ।

सुरभिकान्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वासंती पुत्र्य वृक्ष । नेवारी ।

सुरभिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्ण कदली । सोना केली ।

सुरभिगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेजपत्ता ।

वि० सुगंधित । सुवासित । सुगंधदार ।

सुरभिगंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चमेली ।

सुरभिचन्द्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैय । कवित्थ ।

सुरमित-वि० [ सं० ] सुगंधित । सुवासित ।

सुरमितनय-संज्ञा पुं० [ सं० ] धैल । साँद ।

सुरमितनया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गाय ।

सुरमिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुरभि का भाव । (२) सुगंधि ।  
सुगंध ।

सुरमिचिकला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जायफल, सुपारी और छौं  
इन तीनों का समूह ।

सुरमितवक्-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बड़ी हलायची ।

सुरभिदारु-संज्ञा पुं० [ सं० ] धूप सरल ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह सरल, कटु, तिक्त, उष्ण तथा  
कफ, घात, त्वचा रोग, सूजन और म्रग का नाशक है । यह  
कोठे को भी साफ करता है ।

सुरभिपत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राजजंबू वृक्ष । गुलाब जामुन । वि०  
दे० "गुलाब जामुन" ।

सुरभिपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साँद । (२) धैल ।

सुरभिर्मजरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्वेत तुलसी ।

सुरभिमान-वि० [ सं० सुरभिपद ] सुगंधित । सुवासित ।  
संज्ञा पुं० अग्नि ।

सुरभिमास-संज्ञा पुं० [ सं० ] चैत्र मास । चैत का महीना ।

सुरभिमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] वसंत ऋतु का आरंभ ।

सुरभिघटकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] दालचीनी । गुदधक्क ।

सुरभिघाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव का एक नाम ।

सुरभिशाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सुगंधित शाक ।

सुरभिपक्-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के वैद्य, अधिनीकुमार ।

सुरभिसमय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वसंत ।

सुरभिप्रवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शल्लकी । सलई ।

सुरभी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुगंधि । सुगंध । (२) गाय ।

(३) सलई । शल्लकी । (४) किंबोछ । कौंच । कपिकण्डु ।

(५) बयई तुलसी । वन तुलसी । (६) रुद्रजटा । शंकर  
जटा । (७) एलुवा । एलवालुक । (८) माचिका शाक ।

मोहवा । (९) सुगंधित शालिधान्य । (१०) सुरामांसी ।

पुकांगी । (११) रासन । राजा । (१२) चंदन ।

सुरभीगोत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धैल । (२) साँद ।

सुरभीपट्टन-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन  
नगर का नाम ।

सुरभीपुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोलोक । उ०—अत्र विष्णु अनंदि  
सुकुंद प्रभो । सुरभीपुर नायक विश्वविभो ।—गिरिधर ।

सुरभीमूत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोमूत्र । गोमूत ।

सुरभीरसा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सलई । शल्लकी ।

सुरभूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंद्र । (२) विष्णु । उ०—सुनि  
वचन सुजाना रोदनें दाना होइ बालक सुरभूप ।—तुलसी ।

सुरभूपण-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के पहने का मोतियों का हार  
जो चार हाथ लंबा होता है और जिसमें १००८ दाने होते हैं ।

सुरभूषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवद्वार । देवदास । (२) कल्पवृक्ष ।

सुरभोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमृत । उ०—सोम सुधा पीयूष मधु

भाग्यकार सुभोग । अमी अमृत जहाँ हरि कथा मते रहत  
सुख लोग ।—नंददास ।

सुरमौल-संज्ञा पुं० दे० "सुरमयन" ।

सुरमंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं का मंडल । (२) एक प्रकार का धाजा । इसमें एक तल्ले में तार जड़े होते हैं । इसे जमीन पर रखकर मित्रता से बजाते हैं ।

सुरमंडलिका-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसंडनिका" ।

सुरमंजरी-संज्ञा पुं० [ सं० सुरमणि ] घुहरपति ।

सुरमंदिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का स्थान । मंदिर । देवालय ।

सुरमर्द-वि० [ का० ] सुरमे के रंग का । हल्का नीला । सफेदी लिए नीला या काला ।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का रंग जो सुरमे के रंग से मिलता जुलता था हल्का नीला होता है । (२) इस रंग में रंगा हुआ एक प्रकार का कपड़ा जो प्रायः अस्त्र आदि के काम में आता है । (३) इस रंग का कव्चर ।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया जो बहुत काली होती है और जिसकी गरदन हरे रंग की और चमकदार होती है ।

सुरमर्द कलम-संज्ञा स्त्री० [ का० ] सुरमा लगाने की सलाई । सुरमचू ।

सुरमचू-संज्ञा पुं० [ का० सुरम+चू (प्रत्य०) ] सुरमा लगाने की सलाई ।

सुरमणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिन्तामणि । उ०—लोचन नील सरोज से भूपर मसि बिंदु विराज । जनु बिजु मुखउरि अमिय को रम्यक राख्यो रसराज ।—तुलसी ।

सुरमण्य-वि० [ सं० ] बहुत अधिक रमणीय । बहुत सुंदर ।

सुरमा-संज्ञा पुं० [ का० सुरमः ] एक प्रकार का प्रसिद्ध खनिज पदार्थ जो प्रायः नीले रंग का होता है और जिसका महीन चूर्ण चिबूयों आँखों में लगाती हैं । यह फारस में लंदील, पंजाब में शेलम तथा बरमा में टेनासरिम नामक स्थान में पाया जाता है । यह बहुत भारी, चमकीला और सुरसुरा होता है । इसका व्यवहार कुछ औषधियों में तथा कुछ धातुओं को रूढ़ करने में होता है । प्रायः छापे के सीसे के अक्षरों में उन्हें मजबूत करने के लिये इसका मेल दिया जाता है । आज कल जापान में जो सुरमा मिलता है, वह प्रायः काबुल और सुसारे के गलोन नामक धातु का चूर्ण होता है ।

कि० प्र०—वेना ।—लगाना ।

यौ०—सफेद सुरमा = दे० "सुगम कंठ" ।

संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का पर्वत । वि० दे० "सुरमा" ।

संज्ञा स्त्री० एक नदी जो भातम के सिहहट जिले में बहती है ।

सुरमादानी-संज्ञा स्त्री० [ का० सुरमः+दान (प्रत्य०) ] एकड़ी या धातु का शीशीनुमा पात्र जिसमें सुरमा रखा जाता है ।

सुरमानी-वि० [ सं० सुरमणिय ] अपने को देवता समझनेवाला ।

सुरमा सफेद-संज्ञा पुं० [ का० ] (१) एक प्रकार का खनिज पदार्थ जो 'जिप्सम' नाम से प्रसिद्ध है । इसका रंग पीलापन लिए सफेद होता है । इसमें 'पेरिस ग्लास्स' बनाया जा सकता है जिससे एलफ़ेने दाहप और रबड़ की मोहर के साँचे बनाए जाते हैं । यह मुख्यतः शीशे और धातु की चीजों जोड़ने के काम में आता है । (२) एक खनिज पदार्थ जो फिट्फरी के समान होता है और काबुल के पहाड़ों पर पाया जाता है । आँखों की जलन, प्रमेह आदि रोगों में इसका प्रयोग होता है ।

सुरमृत्तिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोपीचंदन । सौराष्ट्र मृत्तिका ।

सुरमेदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महामेदा ।

सुरमैत्र-वि० दे० "सुरमर्द" ।

सुरमौर-संज्ञा पुं० [ सं० सुर+मौर ] विष्णु । उ०—जाके विलोकित लोकप होन विसोक लई सुरलोक सुवृष्टि । सी कमला तजि चंचलता अरु कोटि कला रिख्ये सुरमौरहि ।—तुलसी ।

सुरम्य-वि० [ सं० ] अत्यंत मनोरम । अत्यंत रमणीय । बहुत सुंदर ।

सुरपा-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की दूर्ति जो शाही काठने के काम में आती है ।

सुरयान-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं की सवारी का रथ ।

सुरयुधती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अष्टरा ।

सुरयोषित-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अष्टरा ।

सुररई-संज्ञा पुं० [ सं० सुरराज ] (१) इंद्र । (२) विष्णु ।

उ०—रात्री ते वृक्षेड सुररई । मर्गि जो कहु बाको भाई । रमानाथ नारी से भाष्य । मोगहु पर जो मन अभिलाषा ।—विधाम ।

सुरराज, सुरराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र ।

सुरराजगुरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] घृहस्पति ।

सुरराजता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुरराज का भाव या पद । इंद्रत्व । इंद्रपद ।

सुरराजवस्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] पिंडली । इंद्रवस्ति ।

सुरराज वृक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] पारिजात । परजाता ।

सुरराजा-संज्ञा पुं० [ सं० सुरराज ] इंद्र ।

सुरराय-संज्ञा पुं० दे० "सुरराज" ।

सुरराय-संज्ञा पुं० दे० "सुरराज" । उ०—नल कृत तुल लरि सिपु में भये चकित सुरराय ।—प्रभाकर ।

सुररिपु-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के दातु, असुर । राक्षस ।

**सुररूप-संज्ञा** पुं० [ सं० सुर + हि० रूप = रूढ ] कल्पवृक्ष ।  
उ०—राम नाम सज्जन सुररूपा । राम नाम कलि शत्रुक  
विपूया ।—सुरराज ।

**सुरपद्म-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) देवताओं में श्रेष्ठ, इंद्र । (२)  
शिव । महादेव ।

**सुरपिं-संज्ञा** पुं० [ सं० सुर + पिं ] देवकृपि । देवपिं ।

**सुरलता-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] बड़ी मालकंगनी । महाग्यातिपमती  
लता ।

**सुरललना-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] देवबाला । देवांगना ।

**सुरला-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) गंगा । (२) एक नदी का नाम ।

**सुरलासिका-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) वंशी । (२) वंशी की ध्वनि ।

**सुरली-संज्ञा** स्त्री० [ सं० सुर + लि० रली ] सुंदर क्रीड़ा । उ० लखि  
सु उदर रोमायली अली चली यह बात । नाम लली सुरली  
करे मनु त्रिचली के पात ।—शंभार सतसई ।

**सुरलोक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] स्वर्ग । देवलोक ।

**सुरवधू-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] देवताओं की पत्नी । देवांगना ।

**सुरवर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] देवताओं में श्रेष्ठ, इंद्र ।

**सुरवर्म-संज्ञा** पुं० [ सं० सुरवर्म् ] देवताओं का मार्ग । आकाश ।

**सुरवह्निभा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] श्वेत दूर्वा । सफेद दूब ।

**सुरवल्ली-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] तुलसी ।

**सुरवस-संज्ञा** पुं० [ देश० ] जुलाहों की वह पतली हलकी छड़ी,  
पाख बाँस या सरकंडा जिसका व्यवहार ताना तैयार करने  
में होता है ।

**विशेष**—ताना तैयार करने के लिए जो लकड़ियों जमीन में  
गाड़ी जाती हैं, उनमें से दोनों सिरों पर रहनेवाली लकड़ियाँ  
सो मोटी और मजबूत होती हैं जिन्हें परिया कहते हैं, और  
इनके बीच में थोड़ी थोड़ी दूर पर जो चार चार पतली  
लकड़ियाँ एक साथ गाड़ी जाती हैं, वे सुरवस या सुरस  
कहाती हैं ।

**सुरवा-संज्ञा** पुं० [ सं० सुवस् ] छोटी करछी के आकार का लकड़ी  
का बना हुआ एक प्रकार का पात्र जिससे, हवन-आदि में  
ची की आहुति देते हैं । ध्रुवा ।

१ संज्ञा पुं० दे० "शोरवा" ।

**सुरवाड़ी-संज्ञा** स्त्री० [ हि० सुर + वाड़ी (प्रत्य०) ] सुभारों के रहने  
का स्थान । सुभारवाड़ा ।

**सुरवाणी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] देववाणी । संस्कृत भाषा ।

**सुरवाहल-संज्ञा** पुं० [ प्रा० शलवार ] पायजामा । पैजामा ।

संज्ञा पुं० [ ? ] सेहरा ।

**सुरवास-संज्ञा** पुं० [ सं० ] देवस्थान । स्वर्ग ।

**सुरवाहिनी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] गंगा ।

**सुरविटप-संज्ञा** पुं० [ सं० ] कल्पवृक्ष ।

**सुरवीथी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] तक्षश्री का मार्ग ।

**सुरवीर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] इंद्र । उ०—गने पदाती धीर स्व अति-  
पाती रनधीर । दोउ आँखें राती किये लखि मोहे सुरवीर ।—  
गि० दास ।

**सुरवृक्ष-संज्ञा** पुं० [ सं० ] कल्पतरु ।

**सुरवैला-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम ।

**सुरवेष्टम-संज्ञा** पुं० [ सं० सुरवेष्टम् ] स्वर्ग । देवलोक ।

**सुरवैरी-संज्ञा** पुं० [ सं० सुरवैरि ] देवताओं के शत्रु, असुर ।

**सुरशत्रु-संज्ञा** पुं० [ सं० ] असुर ।

**सुरशत्रुहनु-संज्ञा** पुं० [ सं० ] असुरों का नाश करनेवाले, शिव ।

**सुरशयनी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] आपद् मास के शुद्ध पक्ष की  
एकादशी । विष्णुशयनी एकादशी ।

**सुरशास्त्री-संज्ञा** पुं० [ सं० सुरशास्त्रि ] कल्पवृक्ष ।

**सुरशिल्पी-संज्ञा** पुं० [ सं० सुरशिल्पि ] विश्वकर्मा ।

**सुरश्रेष्ठ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) वह जो देवताओं में श्रेष्ठ हो ।

(२) विष्णु । (३) शिव । (४) गणेश । (५) धर्म ।

(६) इंद्र ।

**सुरश्रेष्ठा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] महाती ।

**सुरसंभवा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] झुरझुर । आदित्यभक्ता ।

**सुरस-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) बोल । हीरा बोल । ध्वरं रस ।

(२) दालचीनी । गुड़त्वक । (३) तेजपत्र । तेजपत्र । (४)

रुसा घास । गंधवृक्ष । (५) तुलसी । (६) सौभाग्य ।

सिधुवार । (७) दालमली वृक्ष का निर्यास । मोघरस ।

(८) पीतशाल ।

वि० (१) सरस । रसीला । (२) स्वादिष्ट । मधुर । (३)

सुंदर । उ०—हरि दयाम घन तन परम सुंदर तद्विषवसुन

विरामई । अंग अंग भूषण सुरस शशि पूरणकला जनु

भ्राजई ।—सूर ।

संज्ञा पुं० दे० "सुरवस" ।

**सुरसख-संज्ञा** पुं० [ सं० ] देवताओं के सखा, इंद्र ।

**सुरसंत-संज्ञा** स्त्री० [ सं० सुरसन्ती ] सरस्वती । (हिं०)

**सुरसंतजनक-संज्ञा** पुं० [ सं० सुरसन्ती + जनक ] महा । (हिं०)

**सुरसतीश-संज्ञा** स्त्री० [ सं० सुरसती ] (१) सरस्वती । उ०—उर

उरवी सुरसरि सुरसती जमुना मिलहि प्रयाग जिमि ।—

गि० दास । (२) एक प्रकार की नाव जो तीस हाथ लंबी

होती है और जिसका आगम तथा पीछा आठ आठ हाथ

चौड़ा होता है । इस नाव के पंढे में एक कुंड बना रहता है

जिसमें उतर कर लोग स्नान कर सकते हैं ।

**सुरसत्तम-संज्ञा** पुं० [ सं० ] देवताओं में श्रेष्ठ, विष्णु ।

**सुरसदन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] देवताओं के रहने का स्थान, स्वर्ग ।

**सुरसप्त-संज्ञा** पुं० [ सं० सुरसप्तम् ] स्वर्ग ।

**सुरसमिध-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] देवदास ।

**सुरसर**—संज्ञा पुं० [ सं० सुर + सर ] मानसरोवर । उ०—सुरसर सुभाग वनज वन-चारी । टापर जोग किं हंरतुमारी ।—तुलसी ।

गंगा स्त्री० दे० "सुरसर" ।

**सुरसरसुता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरयू नदी । उ०—तुलसी-उर सुर-सर-सुता लसत सुधल अनुमानि ।—तुलसी ।

**सुरसरि**, **सुरसरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सुरसरि ] (१) गंगा । उ०—सुरसरि जय श्रुव कपर आवै । उनको अपनी जल परसावै ।—सूर । (२) गोदावरी । उ०—सुरसरि ते आगे चले मिलिहैं कपि सुधीव । देहैं सीता की खरि याई सुख भति जीव ।—केशव ।

गंगा स्त्री० (१) कावेरी नदी । (शिव०) (२) दे० "सुरसुती" ।

**सुरसरित्**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंगा ।

**सुरसरिता**—संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसरित्" । उ०—भानुहूँ सुरसरिता विमल, जल उछलल सुग मीन ।—विहारी ।

**सुरसर्पक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की सरसों । देवसर्प ।

**सुरसा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक प्रसिद्ध नारामाता जो समुद्र में रहती थी और जिसने हनुमान् जी को समुद्र पार करने के समय रोका था ।

निशेष—जिस समय हनुमान् जी सीता जी की खोज में लगे जा रहे थे, उस समय देवताओं ने सुरसा से, जो समुद्र में रहती थी, कहा कि तुम विकराल राक्षस का रूप धारण कर उनको रोको । इससे उनकी बुद्धि और बल का पता लग जायगा । तदनुसार सुरसा ने विकराल रूप धारण कर हनुमान् जी को रोक बर कहा कि मैं तुम्हें खाऊँगी । यह कहकर उसने मुँह फैलाया । हनुमान् जी ने उससे कहा कि जानकी जी की भयर राम जी को देख मैं तुम्हारे पास आऊँगा । सुरसा ने कहा कि ऐसा नहीं हो सकता । पहले तुम्हें मेरे मुँह में प्रवेश करना होगा, क्योंकि मुझे ऐसा पर मिला है कि सब को मेरे मुँह में प्रवेश करना पड़ेगा । यह कह वह मुँह फैलाकर हनुमान् जी के सामने आई । हनुमान् जी ने अपना शरीर उससे भी अधिक बढ़ाया । ज्यों ज्यों सुरसा अपना मुँह बढ़ाती गई, त्यों त्यों हनुमान् जी भी अपना शरीर बढ़ाने लगे । अंत में हनुमान् जी ने बहुत छोटा रूप धारण करके उसके मुँह में प्रवेश किया और बाहर निकलकर कहा—देहि, अब तो तुम्हारा वर सफल हो गया । इस पर सुरसा ने हनुमान् जी को आशीर्वाद दिया और उनकी सफलता की कामना की । (रामायण)

(२) एक अश्वत्थ का नाम । (३) एक राक्षसी का नाम ।

(४) तुलसी । (५) राक्षस । रांसा । (६) सौंफ । मिश्रया ।

(७) माछी । (८) बड़ी चानेपत्ती । सतावर । (९) वृद्धी ।

श्वेत मृषिका । (१०) सफेद निसीम । श्वेत विवृता ।

(११) सलई । सलकी । (१२) नील सिंधुवार । निगुडी ।

(१३) कटाई । पनभंडा । वृद्धती । चाचांकी । (१४) अर-कटैया । कटेरी । कटकारी । (१५) एक प्रकार की रागिनी ।

(१६) दुर्गा का एक नाम । (१७) म्हादव की एक पुत्री का नाम । (१८) पुराणानुसार एक नदी का नाम । (१९)

अंशुदा के नीचे का चुकीला भाग । (२०) एक वृत्त का नाम ।

**सुरसाई**—संज्ञा पुं० [ सं० सुर + ङि० साई = स्तानी ] (१) इंद ।

उ०—आपु लसैं जैसे सुरसाई । सय नरेन जनु सुर समुदाई ।

—सखलसिंह । (२) शिव । उ०—सब विद्या के ईश गुसाई ।

चरण बंदि विनवों सुरसाई ।—तंकरदिव्यजय । (३) निष्पु ।

उ०—गोले मधुर धवन सुरसाई । मुनि कहैं चले विकल की नारी ।—तुलसी ।

**सुरसाप्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संभाळ की मंजरी । सिंधुवार मंजरी ।

**सुरसाप्रज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेत तुलसी ।

**सुरसाप्रणी**—संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसाप्रज" ।

**सुरसादिवर्ग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में कुछ विविध भेषजियों का एक वर्ग । यथा—तुलसी (सुरसा), श्वेत तुलसी, गंध-वृण, गंधेज घास, (सुगंधक), काली तुलसी, कसौंधी

(कासमई), लट्ठीसा (अणामां), पापविंदग (विडंग), कायफल (कटफल), सगहळ (निगुडी), दमनेटी (भारंगी), मकोय (काकमांघी), बहायन (विपमुष्टिक), मूसाकानी

(मूपाकनी), नीला सगहळ (नील सिंधुवार), सुई कदंब (शुंमि कदंब) । वैद्यक के अनुसार यह प्रयोग कफ, कृमि, सर्दी, अदधि, आस, खाँसी आदि का नाश करनेवाला और प्रगशोधक है ।

एक दूसरा वर्ग इस प्रकार है—सफेद तुलसी, काली तुलसी, छोटे पत्तोंवाली तुलसी, बघई (बवरी), मूसाकानी, कायफल, कसौंधी, नकटिकनी (टिकनी), सगहळ, भारंगी, सुई कदंब, गंधवृण, नीला सगहळ, मोठी नीम (केडर्य) और अतिमुक्त लता (मायवी लता) ।

**सुरसारी**—संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसरी" ।

**सुरसालु**—संज्ञा पुं० [ सं० सुर + लु० सान्ना ] देवताओं को सतानेवाला । उ०—राम नाम नरबेसरी कंककसिंधु कलि कालु । जाक जन प्रह्लाद निमि पालिहि दलि सुरसालु ।—तुलसी ।

**सुरसाष्ट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सगहळ, तुलसी, माछी, वनभंडा, कटकारी और पुनर्वना हल सप्त का समूह ।

**सुरसाहस**—संज्ञा पुं० [ सं० सुर + हा० साधव ] देवताओं के स्वामी ।

उ०—ब्रह्म जो श्यांक वेद कहे गम नहाँ गिरा गुन शान गुनी को । जो करता भरता, हरता सुर साहिव साहिव दीन हुनी को ।—तुलसी ।

**सुरसिंधु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गंगा ।

सुरसुंदर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुंदर देवता ।

वि० देवता के समान सुंदर । अर्थात् सुंदर ।

सुरसुंदरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अम्बरा । (२) दुर्गा । (३) देवकन्या । (४) एक योगिनी का नाम ।

सुरसुंदरी मुद्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार वाजीकरण या बल वीर्य यद्दाने की एक औषध जो अभ्रक, स्वर्ण-माक्षिक, हीरा, स्वर्ण और पारे को सम भाग में लेकर टिन्डल (समुद्रफल) के रस में घोटकर पुटपाक के द्वारा प्रस्तुत की जाती है ।

सुरसुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सुसुत ] देवपुत्र ।

सुरसुरभी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुर + सुरभी ] देवताओं की गाय । कामधेनु । उ०—सुख सति सर गर अधिक धचन श्री भमृत जैसी । सुर सुरभी सुरवृष्ट देनि करतल महुँ वैसी ।—गि० दास ।

सुरसुराना-कि० प्र० [ भ्रु० ] (१) कीर्तों आदि का रेंगना । (२) सुजली होना ।

सुरसुराहट-संज्ञा स्त्री० [ हि० सुरसुराना + आहट (प्रत्य०) ] (१) सुरसर होने का भाव । (२) सुजलाहट । (३) युद्धुदी ।

सुरसुरी-संज्ञा स्त्री० [ भ्रु० ] (१) दे० "सुरसुराहट" । (२) एक प्रकार का कीड़ा जो चावल, गेहूँ आदि में होता है ।

सुरसेनाप-संज्ञा पुं० [ सं० सुर + सेनापति ] देवताओं के सेनापति, कर्त्तिहेय ।

सुरसेना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवताओं की सेना ।

सुरसैर्यो-संज्ञा पुं० [ सं० सुर + हि० सैर्यो = स्वामी ] इंद्र । उ०—गुल्लरी बाल केलि सुख निरखत वरपत सुमन सहित सुरसैर्यो —गुल्लरी ।

सुरसैनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरसायनी" ।

सुरस्कंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक असुर का नाम ।

सुरस्त्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अम्बरा ।

सुरस्त्रीश-संज्ञा पुं० [ सं० ] अम्बराओं के स्वामी, इंद्र ।

सुरस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के रहने का स्थान । स्वर्ग । सुरलोक ।

सुरस्रवंती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आकाश गंगा ।

सुरस्रोतस्विनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंगा ।

सुरस्वामी-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के स्वामी, इंद्र ।

सुरहरा-वि० [ भ्रु० ] जिसमें सुरसुर शब्द हो । सुरसुर शब्द से युक्त । उ०—पेरि हग फीके मुख लेति सुरहरी देव सौंसे सुरहरी गुज सुरी हरहरी की ।—देव ।

सुरही-संज्ञा स्त्री० [ हि० सोलह ] (१) एक प्रकार की सोलह पिचो कौर्दियाँ जिनसे जुआ खेलते हैं । (२) कौर्दियों से होनेवाला जुआ ।

विशेष—हस जप में कौर्दियाँ मुट्टी में

फँकी जाती हैं और उनकी चित्त-घट की गिनती से हार जीत होती है । प्रायः बड़े जुआरी लोग इसी से जुआ खेलते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सुत्मी ] (१) चमरी गाय । (२) एक प्रकार की घास जो पड़ती जमीन में होती है ।

सुरहीनी-संज्ञा पुं० [ कर्ना० सुरहीनेय ] पुत्राग जाति का एक पद जो पश्चिमी घाट में होता है । यह प्रायः डेढ़ सौ फुट तक ऊँचा होता है ।

सुरांगना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) देवपत्नी । देवांगना । (२) अम्बरा ।

सुरांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम ।

सुरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मद्य । मदिरा । वारणी । पाराव । दारू । वि० दे० "मदिरा" । (२) जल । पानी । (३) पीने का पात्र । (४) सर्प ।

सुराई-संज्ञा स्त्री० [ सं० श्रु + आइ (प्रत्य०) ] शूराता । वीरता । यहादुरी । उ०—सुर महिसुर हरिजन भर गाई । हमरे डुल इष्ट पर न सुराई ।—गुल्लरी ।

सुराक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मूँहो जहाँ शराय जुआई जाती है । (२) नारियल का पद । नारिकेल शूदा ।

सुराकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० सुप्रकर्म ] यह यज्ञ कर्म जो सुरा द्वारा किया जाता है ।

सुराकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] शराय जुआनेवाला । शराय बनानेवाला । शौडिक । कलदार ।

सुराकुंभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह पात्र या पड़ा जिसमें मद्य रखा जाता है । शराय रखने का घड़ा ।

सुरास-संज्ञा पुं० [ का० सुरास ] छेद । छिद्र । संज्ञा पुं० दे० "सुरास" ।

सुराग-संज्ञा पुं० [ सं० श्रु + ग ] (१) गाढ़ म्रम । अर्थात् म्रम । अर्थात् अनुराग । उ०—मुनि याजति धीन प्रवीन नवीन सुराग हिये उपजावति सी ।—केशव । (२) सुंदर राग । उ०—गाय गोरी मोहनी सुराग वसुरी के बीच कानन सुहाय मारमंत्र कौं सुनायो ।—पीनदयाल ।

संज्ञा पुं० [ सं० सुग ] सूत्र । टोह । पता ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।—लगाना ।

सुरागाय-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुर + गाय ] एक प्रकार की दो नस्ली गाय जिसकी पूँछ गुफ्फेदार होती है और जिससे चँवर बनता है । यह एक प्रकार के जंगली साँड़—जो तिब्बत और हिमालय में होते हैं और जिनके बाल लंबे और मुझायम होते हैं—और भारतीय गाय के संयोग से उत्पन्न है । यह प्रायः पहाड़ों पर ही रहती है । मैदान का जल-वायु इसके होता ।

सुरा [ सं० ] (१) यह स्थान जहाँ मद्य विकता हो । (२) देवगृह ।

सुराग्रह—संज्ञा पुं० दे "सुराग्रह" (१) ।  
 सुराग्रह—संज्ञा पुं० [ सं० ] मद्य पीने का एक प्रकार का पात्र ।  
 सुराग्रह—संज्ञा पुं० [ सं० ] अमृत ।  
 सुराग्रह—संज्ञा पुं० दे० "सुराग्रह" ।  
 सुराचार्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के आचार्य्य बुदरायति ।  
 सुराज—संज्ञा पुं० (१) दे० "सुराज्य" । (२) दे० "स्वराज्य" ।  
 सुराजक—संज्ञा पुं० [ सं० ] भृंगराज । भीमरा ।  
 सुराजाह—संज्ञा पुं० [ सं० सुपंज् ] उत्तम राजा । अच्छा राजा ।  
 सुराज्य—संज्ञा पुं० दे० "सुराज्य" ।  
 सुराजिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छिपकली ।  
 सुराजीव—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 सुराजीवी—संज्ञा पुं० [ सं० सुगोविन् ] शराव बुजाने या बेचने-  
 वाला । शौडिक । कलवार ।  
 सुराज्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राज्य जिसमें प्रधानतः शासिनों के  
 हित पर दृष्टि रखकर शासन कार्य किया जाता हो । वह  
 राज्य या शासन जिसमें सुख और शान्ति विराजती हो ।  
 अच्छा और उत्तम राज्य ।  
 सहा पुं० दे० "स्वराज्य" ।  
 सुराहत—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ मर विक्रता हो ।  
 शरायखाना । कलवरिया ।  
 सुरापी—संज्ञा स्त्री० [ सं० पु + रत्ना ] लकड़ी का वह ढंडा या छबेदा  
 जिससे भंगराज के दाने निकालने के लिये बाल भादि  
 पीटते हैं ।  
 सुराद्रि—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का पर्वत, सुमेरु ।  
 सुराधम—वि० [ सं० ] देवताओं में निरुद्ध ।  
 सुराधो—वि० [ सं० सुराधर् ] (१) अंतम दान देनेवाला । बहुत  
 चढ़ा दानवा । उदार । (२) धनी । धनी ।  
 संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम ।  
 सुराधाती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह कुंभी या छेदा चढ़ा जिसमें  
 मदिरा रखी जाती है । शराव रखने की गगरी ।  
 सुराधिप—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के स्वामी, इंद्र ।  
 सुराधीश—संज्ञा पुं० दे० "सुराधिप" ।  
 सुराध्वज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महा । (२) भ्रूकुण्ड । (३) शिव ।  
 सुराध्वज—संज्ञा पुं० [ सं० ] मद्यपात्र का वह चिह्न जो प्राचीन  
 काल में मद्य पान करनेवालों के मस्तक पर लोहे से द्रुग  
 कर दिया जाता था ।  
 विशेष—मनु ने मद्य-पान की गणना पार महापातकों में की  
 है, और कहा है कि राजा को उचित है कि मद्य पान करने-  
 वाले के मस्तक पर मद्य-पात्र का चिह्न लोहे से दगवत  
 अंकित करा दे । यही चिह्न सुराध्वज कहलाता था ।  
 सुरानक—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का नगाड़ा ।  
 सुरानीक—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं की सेना ।

सुराप—वि० [ सं० ] (१) सुरा या मद्य-पान करनेवाला । मद्यप ।  
 शरापी । (२) बुद्धिमान् । धनीपी ।  
 सुरापग—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवताओं की नदी । गंगा ।  
 सुरापण, सुरापान—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मद्य-पान करने की  
 क्रिया । शराव पीना । (२) मद्य-पान करने के समय मद्य-  
 जानेवाले चटवटे पदार्थ । घाट । अवदन ।  
 सुरापान—संज्ञा पुं० [ सं० ] मदिरा रखने या पीने का पात्र ।  
 सुरापाना—संज्ञा पुं० [ सं० सुपानाः ] पूर्व देश के लोग । (सुरापान  
 करने के कारण इस देश के लोगों का यह नाम पड़ा है ।)  
 सुरापी—वि० दे० "सुराप" ।  
 सुरापीथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरापान । मद्यपान । शराव पीना ।  
 सुराधिभ—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरा का समुद्र ।  
 विशेष—पुराणों के अनुसार यह सान समुद्रों में से तीसरा  
 है । मार्कंडेयपुराण में लिखा है कि लवण समुद्र से दूना  
 द्रुघ समुद्र और द्रुघ समुद्र से दूना सुरा समुद्र है ।  
 सुरामाग—संज्ञा पुं० [ सं० ] शराव की मॉई ।  
 सुरामंड—संज्ञा पुं० [ सं० ] शराव की मॉई ।  
 सुरामत्त—वि० [ सं० ] शराव के नदी में चूर । मद्योन्मत्त ।  
 मतवाला ।  
 सुरामेह—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह जिसके मुँह में शराव हो ।  
 (२) एक मागासुर का नाम ।  
 सुरामेह—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार प्रमेह रोग का  
 एक भेद ।  
 विशेष—कहते हैं कि इस रोग में रोगी को शराव के रंग का  
 पेशाव होता है । पेशाव शीशी में रखने से नीचे गाढ़ा और  
 ऊपर पतला दिखलाई पड़ता है । पेशाव का रंग मटमैला  
 या लाली लिए होता है ।  
 सुरामेही—वि० [ सं० धामेदिन् ] सुरामेह रोग से पीड़ित । जिसे  
 सुरामेह रोग हुआ हो ।  
 सुरामुध—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का मद्य ।  
 सुराराधि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवताओं की माता, अद्रिति ।  
 सुरारि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) असुर । राक्षस । (२) एक दैत्य  
 का नाम ।  
 सुरारिभ—संज्ञा पुं० [ सं० ] असुरों का नाश करनेवाले, विष्णु ।  
 सुरारिहंता—संज्ञा पुं० [ सं० सुपरिहंत ] असुरों का नाश करने-  
 वाले, विष्णु ।  
 सुरारिहन्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] असुरों का नाश करनेवाले, शिव ।  
 सुरारी—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की परसवती घास जो  
 राजपूताने और बुंदेलखंड में होती है । यह घारे के लिये  
 बहुत अच्छी समझी जाती है । इसे लप भी कहते हैं ।  
 सुरार्हिन—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरा या देवताओं की पीसा देनेवाले,  
 असुर ।



सुरार्ह—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हरिचंद्रन । (२) स्वर्ण । सोना ।

(३) कुंकुमागर्ध चंद्रन ।

सुरार्हक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धरार्क । धवई । (२) वैजयंती ।  
सुरासती ।

सुराल—संज्ञा पुं० [ सं० ] धना । राल ।

सुरालिय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं के रहने का स्थान ।  
स्वर्ग । (२) सुमेरु । (३) देवमंदिर । (४) वह स्थान जहाँ  
सुरा मिलती हो । शारायखाना । कलबरिया ।

सुरालिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सातला या ससला नाम की घेल  
जो जंगलों में होती है । इसके पत्ते सैर के पत्तों के समान  
छोटे छोटे होते हैं । इसका फल पीला होता है और इसमें एक  
प्रकार की पसली चिपटी फली लगती है । फली में काले  
बीज होते हैं जिसमें से पीले रंग का दूध निकलता है ।  
वैद्यक के अनुसार यह लघु, तिक्त, कटु तथा कफ, पित्त,  
बिरफोट, म्रण और शोथ को नाश करनेवाली है ।

सुराय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का घोड़ा । (२)  
उच्चम श्वनि ।

सुरायती—संज्ञा स्त्री० [ सं० सुराश्विनि ] कश्यप की पत्नी और  
देवताओं की माता, अदिति । उ०—विनाता सुत खगनाथ  
चंद्र सोमावति केरे । सुरायती के सूर्य रहत जग जांसु  
उजरे ।—विश्राम ।

सुरावनि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) देवताओं की माता, अदिति ।  
(२) पृथिवी ।

सुरायारि—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरा समुद्र । वि० दे० "सुराश्वि" ।

सुरावास—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुमेरु ।

सुरावृत्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य ।

सुराश्रय—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुमेरु ।

सुराष्ट्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन देश का नाम जो  
भारत के पश्चिम में था । किसी के मत से यह सूरत और  
किसी के मत से काठियावाड़ है । (२) राजा दशरथ के  
एक मंत्री का नाम ।

वि० जिसका राज्य अस्था हो ।

सुराष्ट्रज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गोपीचंद्रन । सौराष्ट्र मृतिका ।  
(२) काली मूँगा । कृष्ण मुद्ग । (३) लाल कुल्फी । रक्त  
कुल्थ । (४) एक प्रकार का विष ।

वि० सुराष्ट्र देश में उत्पन्न ।

सुराष्ट्रजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोपीचंद्रन ।

सुराष्ट्रीश्रवा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कितकरी ।

सुरासंधान—संज्ञा पुं० [ सं० ] दाराय बुझाने की क्रिया ।

सुरासमुद्र—संज्ञा पुं० दे० "सुराश्वि" ।

सुरासय—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का

आसय जो तीक्ष्ण, दलकारक, मूत्रवर्द्धक, कफ और वायुनाशक  
तथा मुखविषय कदा गया है ।

सुरामार—संज्ञा पुं० [ सं० ] मय का सार जो अंगूर या माद्री  
खमीर से बनता है । इसके बिना शराय नहीं बनती ।  
इसमें नशा होता है ।

सुरासुर—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुर और असुर । देवता और दानव

सुरासुरगुरु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) कश्यप ।

सुरासुपद—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं का घर । देवगृह । मंदिर

सुराही—संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) जल रखने का एक प्रकार

प्रसिद्ध पात्र जो प्रायः मिट्टी का और कभी कभी पीतल

जैसे आदि धातुओं का भी बनता है । यह बिल्कुल गो

हंठी के आकार का होता है, पर इसका मुँह ऊपर की ओर

कुछ दूर तक निकला हुआ गोल नली के आकार का हो

है । प्रायः गरमी के दिनों में पानी ठंडा करने के लिये

इसका उपयोग होता है । इसे कहीं कहीं कुम्भा भी कहते हैं

यौ०—सुराहीदार ।

(२) पात्र, जोदान या बरेली के छटके हुए सूत में धुँ

के ऊपर लगानेवाला सोने या चाँदी का सुराही के आकर

का बना हुआ छोटा लंबोतरा टुकड़ा । (३) कपड़े की एक

प्रकार की काट जो पान के आकार की होती है । इस

मछली की दुम की तरह कुछ कपड़ा तिकोना लगा रहता है

( दर्जा ) (४) नैचे में संय से ऊपर की ओर यह भाग

सुराही के आकार का होता है और जिस पर चिह्न र

जाती है ।

सुराहीदार—वि० [ प्र० सुराही + दा० ] सुराही के आकार का

सुराही की तरह का गोल और लंबोतरा । जैसे,—सुराहीद

गरदन । सुराहीदार मोती ।

सुराह—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवदार । (२) मरुहा । महवक

(३) हलदुवा । हरिद्रु ।

सुराहय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का पीया । (२) देवदार

सुरि—वि० [ सं० ] बहुत धनी । बड़ा अमीर ।

सुरिय—संज्ञा पुं० [ सं० सुर ] ईंद्र । ( हिं० )

सुरियाखारी—संज्ञा पुं० [ प्र० शोरा + हिं० खार ] शोरा ।

सुरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] देवपत्नी । देवांगना ।

सुरीला—वि० [ हिं० सुर + ईला (शर०) ] : [ स्त्री० सुरीली ] स्त्री

सुरवाला । मयूर शरवाला । जिसका सुर मीठा हो

सुखर । सुकंड । जैसे,—सुरीला माला, सुरीला बामन

सुरीला गंधिया, सुरीली तान ।

सुरंग—संज्ञा पुं० [ सं० ] सहिजन । सोमोजन वृक्ष ।

सुरंगयुक्त—संज्ञा पुं० दे० "सुरंगयुक्त" ।

सुरंगा—संज्ञा स्त्री० दे० "सुरंग" ।

सुरंगाहि—संज्ञा पुं० [ सं० ] संघ रगानेवाला शेर । संधिया शेर

सुखदला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम ।  
 सुखकम—वि० [ सं० ] अच्छी तरह प्रकाशित । प्रदीप्त ।  
 सुखल—वि० [ सं० सु + कल = प्रशंसि ] अनुकूल । सद्य ।  
 प्रसन्न । उ०—सुखल जानकी जानि कपि कहे सकल संकेत ।—तुलसी ।  
 वि० दे० "सुखी" । उ०—रंच न देरि करहु सुखल भव हरि हेरि परं न । विनय भयन मो सुनि भये सुखल तरनि के नैन ।—शंभार सतसई ।  
 सुखलुरु—वि० [ का० सुखलुरु ] जिसे किसी काम में यश मिला हो । यशस्वी । उ०—भलहदाद मल तेहिकर गुरु । दीन दुनी रोसन सुखलुरु ।—जायसी ।  
 सुखल—संज्ञा पुं० [ सं० ] उज्वल प्रकाश । अच्छी रोशनी ।  
 वि० सुंदर प्रकाशवाला ।  
 सुखलि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) राजा उत्तमपाद की दो पत्नियों में से एक जो उत्तम की माता थीं । ध्रुव की विमाता ।  
 (२) उत्तम रुचि । (३) अत्यंत प्रसन्नता ।  
 वि० (१) उत्तम रुचिवाला । जिसकी रुचि उत्तम हो । (२) स्वाधीन । (वि०)  
 संज्ञा पुं० (१) एक गांधर्व राजा का नाम । (२) एक पक्ष का नाम ।  
 सुखचिर—वि० [ सं० ] (१) सुंदर । दिव्य । मनोहर । (२) उज्वल । प्रकाशमान् । दीर्घायुवाली ।  
 सुखज—वि० [ सं० ] बहुत बीमार । अस्वस्थ । दण्ड ।  
 संज्ञा पुं० दे० "सूर्य" । उ०—सहै ही से सय ऊपजं चंद्र सुखज आकाश ।—दादू ।  
 सुखजमुखी—संज्ञा पुं० दे० "सूर्यमुखी" । उ०—विचरि चहुँ दिशि लखत है धर पतैं भुजराज । चंद्रमुखी कों उरि सखी सुखजमुखी सी भाज ।—शंभार-सतसई ।  
 सुखद्रि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शतद्रु या वर्तमान सतलज नदी का एक नाम ।  
 सुखल—संज्ञा पुं० [ दे० ] मूँगफली पीपे का एक रोग जिसमें कुछ कीड़ों के खाने के कारण उसके पत्ते और टंडल टूटने लगे जाते हैं । इस पीपे में यह रोग प्रायः सभी जगहों में होता है और इससे पत्ती हानि होती है ।  
 सुखवा—संज्ञा पुं० दे० (१) "शोरवा" । (२) दे० "सुरवा" ।  
 सुखव—वि० [ सं० ] [ स्त्री० वृत्त्य ] (१) सुंदर रूपवाला । रूपवान् । स्वप्नरत्न । (२) विद्वान् । बुद्धिमान् ।  
 संज्ञा पुं० (१) सित्र का एक नाम । (२) एक असुर का नाम ।  
 (३) कपल । वृक्ष । (४) पलास पीपल । परिषाघर्ष ।  
 (५) कुछ विशिष्ट देवता और भ्यक्ति ।  
 विश्वियेय—कामदेव, दौनों अधिनीकुमार, नडल, पुरहवा, नल-ध्रुव और गांधर्व ये सुरूप कहलाते हैं ।

संज्ञा पुं० दे० "स्वरूप" । उ०—रूप सवाई दिन दिन चदा । विधि सुरूप जग ऊपर गदा ।—जायसी ।  
 सुरूपक—वि० दे० "स्वरूप" ।  
 सुरूपता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुरूप होने का भाव । सुंदरता । स्वसूती ।  
 सुरूपा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सरिबन । शालपर्णी । (२) यमनेत्री । भारंगी । (३) सेवती । वनमल्लिका । (४) वेला । धार्मिकी मल्लिका । (५) पुराणानुसार एक गौ का नाम ।  
 वि० स्त्री० सुंदर रूपवाली । सुंदरी ।  
 सुरूहक—संज्ञा पुं० [ सं० ] खजर । गईमाभ ।  
 सुरेंद्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुरराज । इंद्र । (२) छोकपाल । राजा ।  
 सुरेंद्रकंद—संज्ञा पुं० दे० "सुरेंद्रक" ।  
 सुरेंद्रक—संज्ञा पुं० [ सं० ] कटु धारण । काटनेवाला अर्जाकंद । जंगली ओल ।  
 सुरेंद्रगोप—संज्ञा पुं० [ सं० ] वीर बहूटी । इंद्रगोप नामक कीड़ा ।  
 सुरेंद्रचाप—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रधनुष ।  
 सुरेंद्रजिह्व—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र की जीतनेवाला, गरुड़ ।  
 सुरेंद्रता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुरेंद्र होने का भाव या धर्म । इंद्रत्व ।  
 सुरेंद्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] वृद्धस्पति ।  
 सुरेंद्रमाला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक कितरी का नाम ।  
 सुरेंद्रलोक—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रलोक ।  
 सुरेंद्रवज्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वर्ण वृत्त का नाम जिसमें दो वगण, एक जगण और दो गुरु होते हैं । इंद्रवज्रा ।  
 सुरेंद्रवती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वाघी । इंद्राणी ।  
 सुरेंद्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक कितरी का नाम ।  
 सुरेखा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुंदर रेखा । (२) हाथ पाँव में होनेवाली वे रेखाएँ जिनका रहना शुभ समझा जाता है ।  
 सुरेजय—संज्ञा पुं० [ सं० ] वृद्धस्पति ।  
 सुरेज्ययुग—संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिष के अनुसार वृद्धस्पति का युग जिसमें पाँच वर्ष हैं । इन पाँचों वर्षों के नाम ये हैं—अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा और घाता ।  
 सुरेज्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तुलसी । (२) प्राण्णी ।  
 सुरेणु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रसरेणु । (२) एक प्राचीन राजा का नाम ।  
 संज्ञा स्त्री० (१) स्वाधीनी की पुत्री और विषयवान् की पत्नी । (२) एक नदी का नाम जो सप्त सरस्वतियों में सप्तमी जाती है ।  
 सुरेणु पुष्पचक्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार कितरों के एक राजा का नाम ।  
 सुरेतना—कि० सं० [ ? ] सराय अनाज से भरे अनाज को भंडना करना ।

सुरेतर-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमुर ।  
 सुरेता-वि० [ सं० सुरेतस् ] बहुत वीर्यवान् । अधिक सामर्थ्यवान् ।  
 सुरेतोधा-वि० [ सं० सुरेतोषत् ] वीर्यवान् । वीर्य संपन्न ।  
 सुरेध-संज्ञा पुं० [ ? ] ईस । मिशुमार । उ०—रथ सुरेध मुञ्ज  
 मीन समाना । शिरकच्छप गजप्राह प्रमाना ।—विश्राम ।  
 सुरेनुका-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरेणु" । उ०—सोमनाथ विरंत है  
 आल नाथ एकंग । हरिदोष नैमिप सदा अंशतोशु विग्रंग ।  
 प्रगट प्रभासु सुरेनुका हर्म्य जापु उज्जैन । शंकर पूनि  
 पुष्कर अरु प्रयाग दृग्मनै ।—देशय ।  
 सुरेम-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरहस्ती । देवहस्ती ।  
 वि० सुरधर । सुरील ।  
 सुरेयट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सुपारी का पेड़ । रामपूज ।  
 सुरेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं के स्वामी, इंद्र । (२)  
 शिव । (३) विष्णु । (४) कृष्ण । (५) लोकपाल ।  
 सुरेशलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रलोक ।  
 सुरेशी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा ।  
 सुरेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं के स्वामी, इंद्र । (२)  
 प्रधा । (३) शिव । (४) रुद्र ।  
 वि० देवताओं में श्रेष्ठ ।  
 सुरेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) देवताओं की स्वामिनी, दुर्गा ।  
 (२) रुद्रमी । (३) राधा । (४) स्वर्ग गंगा ।  
 सुरेष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सफेद अगस्त का पुष्प । (२) लाल  
 अगस्त । (३) सुर पुत्राग । (४) निपमछी । बड़ी  
 मौलसिरी । (५) साक्ष बृक्ष । साक्ष ।  
 सुरेष्टक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शाल । साक्ष । अथकण ।  
 सुरेष्टा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राची ।  
 सुरेष्ट-संज्ञा पुं० दे० "सुरेन" ।  
 सुरे-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार की अनिष्टकारी घास जो गर्मी  
 के मौसिम में पैदा होती है ।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० सुरमी ] माय । (दि०)  
 सुरैत-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुरैति ] वह स्त्री जिससे विवाह संबंध न  
 हुआ हो, बल्कि जो यौही घर में रख ली गई हो । उपपत्नी ।  
 रखनी । रखेली । सुरैतिन ।  
 सुरैतवाल-संज्ञा पुं० [ हिं० सुरैत + बाल ] सुरैत का लड़का ।  
 सुरैतघामा-संज्ञा पुं० दे० "सुरैतवाल" ।  
 सुरैतिन-संज्ञा स्त्री० दे० "सुरैत" ।  
 सुरोचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञवाहु के एक पुत्र का नाम ।  
 (२) एक वर्ष का नाम ।  
 सुरोचना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कांसिकेय की एक मायका का नाम ।  
 सुरोचि-वि० [ सं० सुरोचि ] सुंदर । उ०—गिरि जात न जानत  
 पानन खाव बिरी कर पंकज के दल की । बिहँसी साथ गोपुं  
 सुता हरि लोचन मूँदि सुरोचि दगंचल की ।—देशय ।

सुरोची-संज्ञा पुं० [ सं० सुरोचि ] वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम ।  
 सुरोत्तम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवताओं में श्रेष्ठ, विष्णु । (२) सुर्व ।  
 सुरोत्तमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अक्षरा का नाम ।  
 सुरोत्तर-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंदन ।  
 सुरोद-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरा समुद्र । मदिरा का समुद्र ।  
 संज्ञा पुं० दे० "सरोद" ।  
 सुरोदक-संज्ञा पुं० दे० "सुरोद" ।  
 सुरोदय-संज्ञा पुं० दे० "स्वरोदय" ।  
 सुरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणापुरा तंसु के एक पुत्र का नाम ।  
 सुरोधा-संज्ञा पुं० [ सं० सुरोषत् ] एक गोय प्रवर्तक कृषि का नाम ।  
 सुरोमा-वि० [ सं० सुरोमत् ] सुंदर रोमोंवाला । जिसके रोम  
 सुंदर हों ।  
 संज्ञा पुं० एक यज्ञ का नाम ।  
 सुरोपय-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के एक सेनापति का नाम ।  
 सुरौका-संज्ञा पुं० [ सं० सुरोकम् ] (१) स्वर्ग । (२) देवमंदिर ।  
 सुर्व-वि० [ सं० ] रक्त वर्ण का । लाल ।  
 संज्ञा पुं० गहरा लाल रंग ।  
 सुर्व-वि० [ सं० ] (१) जिसके मुख पर तेज हो । तेजस्वी ।  
 कतिपान् । (२) प्रतिष्ठित । सम्मान्य । (३) किसी कार्य  
 में सफलता प्राप्त करने के कारण जिसके मुँह की लाली  
 रह गई हो ।  
 सुर्वकई-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुर्वक होने का भाव । (२) यज्ञ ।  
 कीर्ति । (३) मान । प्रतिष्ठा ।  
 सुर्खा-संज्ञा पुं० [ सं० सुर्व ] एक प्रकार का क्यूतर जो लाल रंग  
 का होता है ।  
 सुर्खाचि-संज्ञा पुं० दे० "सुरखाच" ।  
 सुर्खा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लाली । ललाई । अरुणता ।  
 (२) लेख आदि का शीर्षक, जो प्राचीन हस्तलिखित  
 पुस्तकों में प्रायः लाल स्याही से लिखा जाता था । (३)  
 रफ । लहू । खून । (४) दे० "सुरखी" ।  
 सुर्खादार सुरमई-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सुरमई या  
 बैंगनी रंग जो कुछ लाली लिए होता है ।  
 सुर्जना-संज्ञा पुं० दे० "सहजिन" ।  
 सुर्ता-वि० [ हिं० सुर्ति = संधि ] समझदार । होशियार । बुद्धिमान् ।  
 उ०—हीरा खाल की कोठरी मोलिया भरे अंबर । सुर्ता सुर्ता  
 चूनिया मूख रहे श्लक्ष मार ।—कबीर ।  
 सुर्ता-संज्ञा स्त्री० दे० "सुर्ती" ।  
 सुर्मा-संज्ञा पुं० दे० "सुरमा" ।  
 सुर्मा-संज्ञा पुं० [ दे० ] (१) एक प्रकार की मछली । (२) येली ।  
 बटुआ ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तेज, हवा ।  
 कि० प्र०—चलना ।

सुलक-पंशा पुं० दे० "सोलक" । उ०—तप सुलकं रूप भार्गव  
पायो । द्वे सुत निज तप मैह जनेमायो ।—रघुराज ।

सुलकी-पंशा पुं० दे० "सोलकी" । उ०—पौरव पुंहीर परिवार औ  
पंचार बंस, सेंगर सिधोदिया सुलकी दितवार हैं ।—सूदन ।

सुलक्ष-वि० दे० "सुलक्षण" ।

सुलक्षण-वि० [ सं० ] (१) शुभ लक्षणों से युक्त । अच्छे लक्षणों-  
वाला । (२) भाग्यवान् । किस्मतवर ।

पंशा पुं० (१) शुभ लक्षण । शुभ चिह्न । (२) एक प्रकार  
का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ होती हैं ।  
सात मात्राओं के बाद एक गुरु, एक लघु और तय विराम  
होता है ।

सुलक्षणार्थ-पंशा पुं० [ सं० ] सुलक्षण का भाव । सुलक्षणता ।

सुलक्षणा-पंशा स्त्री० [ सं० ] पार्ष्णी की एक सखी का नाम ।

वि० स्त्री० शुभ लक्षणों से युक्त । अच्छे लक्षणोंवाली ।

सुलक्षणी-वि० स्त्री० दे० "सुलक्षणा" ।

सुलगना-कि० प्र० [ सं० घृ + हि० लगना ] (१) (लकड़ी, कोयले  
आदि का) जलना । प्रखलित होना । दहकना । (२) बहुत  
अधिक संताप होना ।

सुलगाना-कि० सं० [ हि० सुलगना का सं० रूप ] (१) जलाना ।  
दहकाना । प्रखलित करना । जैसे,—लकड़ी सुलगाना, धाग  
सुलगाना, कोयला सुलगाना ।

संयो० कि०—डालना ।—देना ।—रखना ।

(२) संतप्त करना । दुःखी करना ।

सुलग-पंशा पुं० [ सं० ] शुभ सुहृत् । शुभ लग्न । अच्छी सायत ।  
वि० [ सं० ] दक्षता से लगा हुआ ।

सुलच्छन-वि० दे० "सुलक्षण" । उ०—(क) ग्रह भेषज-जल  
पवन पट पाद कुजोग सुजोग । होइ कुवस्त सुवस्त जंग  
लखहि सुलच्छन होय ।—तुलसी । (ख) रूप लक्ष्मो  
ततच्छन भरम हर । परम सुलच्छन परम धरा ।—पि० दास ।

सुलच्छनी-वि० दे० "सुलक्षण" । उ०—जाय सुहागिनि परति  
जो अपने पीहर धाम । खोग सुरी शंका करै यदपि सती  
हू धाम । याने चाहत वंशुजन रहे सदा पतिगैह । प्रयुदा  
नरि सुलच्छनी विनहु धिया के नेह ।—लक्ष्मणसिंह ।

सुलच्छ-वि० [ सं० सुलक्ष ] सुंदर । उ०—सुलछ लोचन चारु  
भासा परम शचिर बनाइ । सुगल न्वंजन-लरत भवनिंत बीच  
कियो बनाइ ।—भूर ।

सुलक्षन-पंशा स्त्री० [ हि० सुलक्षना ] सुलक्षने की क्रिया या भाव ।  
सुलक्षण ।

सुलक्षना-कि० प्र० [ हि० उलक्षना ] किसी उलझी हुई वस्तु की  
उलझन दूर होना या शुद्धना । उलझन का सुलझना । शुष्पी  
का सुलझना । जटिलताओं का निवारण होना ।

सुलक्षना-कि० सं० [ हि० सुलक्षना का सं० रूप ] किसी उलझी  
हुई वस्तु की उलझन दूर करना । उलझन या गुथी  
खोलना । जटिलताओं को दूर करना ।

सुलक्षोध-पंशा पुं० [ हि० सुलक्षना + शब्द (प्रब०) ] सुलक्षने की  
क्रिया या भाव । सुलक्षण ।

सुलटा-वि० [ हि० उलटा ] [ लो० मुलटा ] सीधा । उलटा का  
विपरीत ।

सुलतान-पंशा पुं० [ फा० ] बादशाह । सम्राट् ।

सुलताना चंपा-पंशा पुं० [ फा० सुलतान + हि० चंपा ] एक प्रकार  
का पेड़ जो मद्रास प्रांत में अधिकता से होता है और कहीं  
कहीं संयुक्त प्रांत तथा पंजाब में भी पाया जाता है । इसके  
हीरे की लकड़ी खाली लिए भूरे रंग की और बहुत मजबूत  
होती है । यह इमारत, मसूह आदि बनाने के काम में  
आती है । रेल की लाइन के नीचे पट्टी की जगह रखने के  
भी काम में आती है । संस्कृत में इसे पुत्राण कहते हैं ।

सुलतानी-पंशा स्त्री० [ फा० सुलतान ] (१) बादशाही । बादशाहत ।  
राज्य । उ०—चंद्रि घौरादर देखाई रानी । धनि हुई भस  
जाकर सुलतानी ।—जायसी । (२) एक प्रकार का वधिया  
मट्टीन रेसमी कपड़ा ।

पि० लाल रंग का । उ०—सोई हुतो पलंगा पर बाल सुले  
भैवरातहि जात कोऊ । जैसे उरोजन कंचुकी ऊपर लालन  
के घरचे हग दोऊ । सो एवि पीतम देखि एके कवि तोप  
कहै उपमा यह होऊ । मानो मदे सुलतानी पनात में साह  
गनोर के गुंथज दोऊ ।—तोप ।

सुलपक्ष-वि० (१) दे० "स्वल्प" । उ०—नृपति उग्रतति गति  
संगीत पद सुनत कोकिला लाजति । सूरदयाम नागर अर  
नागिरी छलना सुलप मंडली राजति ।—सूर । (२) मंद ।  
उ०—पक्षि सुलप गज हंस मोहति कौक बला प्रवीन ।  
—सूर ।

पंशा पुं० [ सं० घृ + श्रावण ] सुंदर आलाप । (क०)

सुलफ-वि० [ सं० घृ + हि० लवना ] (१) लचीला । लचनेवाला ।  
(२) नासुक । कोमल । सुलापम । उ०—(क) दौरघ  
उत्तास है है सतिमुग्घी सिद्धकति सुलफ सुलीनो लंक  
लक्षकै लक्षकै लक्षकै ।—देव । (ख) योगी सियरात द्वित  
जानि कै प्रमात दिग दाले करि पीतम के गग सुलफनि  
के ।—देव ।

सुलफा-पंशा पुं० [ फा० सुलफ ] (१) वह तमाकू जो चिलम में  
बिना तवा रखे भर कर दिया जाता है । (२) सूखा तमाकू  
जिसे गोंडे की तरह पतली चिलम में भर कर पीते हैं ।  
कंकड़ । (३) परस ।

पौ०—सुलफेजा ।

कि० प्र०—भरना ।—पीना ।

**सुलफेयाज-वि०** [ हि० सुल्फा + फा० बाज ] गौजा या चरस पत्रिका। गौजदी या चरसी।  
**सुल्लय-संज्ञा** पुं० [ हि० ] गंधक।  
**सुलभ-वि०** [ सं० ] (१) सुगमता से मिलने योग्य। सहज में मिलनेवाला। जिसके मिलने में कठिनाई न हो। (२) सहज। सरल। सुगम। आसान। (३) साधारण। सामूली। (४) उपयोगी। लाभकारी।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्निहोत्र की अग्नि।  
**सुलभता-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) सुलभ का भाव। सुलभत्व। (२) सुगमता। आसानी।  
**सुलभत्व-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) सुलभ का भाव। सुलभता। (२) सुगमता। सरलता। आसानी।  
**सुलभा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) वैदिक काल की एक प्रसववादिनी स्त्री का नाम। (गृह्यसूत्र) (२) तुलसी। (३) मयवन। जंगली उदक। मांसपर्णी। (४) तमाकू। धूपपत्रा। (५) बेला। वार्षिकी मल्लिका।  
**सुलभमेतर-वि०** [ सं० ] (१) जो सहज में प्राप्त न हो सके। दुर्लभ। (२) कठिन। (३) महार्थ। महंगा।  
**सुलभ्य-वि०** [ सं० ] सुगमता से मिलने योग्य। सहज में मिलनेवाला। जिसके मिलने में कठिनाई न हो।  
**सुललित-वि०** [ सं० ] अति ललित। अत्यंत सुंदर।  
**सुल्लस-संज्ञा** पुं० [ ? ] स्वर्धेन देश का एक प्रकार का लोहा।  
**सुल्लह-संज्ञा** स्त्री० [ फा० ] (१) मेल। मिलाप। (२) यह मेल जो किसी प्रकार की लड़ाई या झगडा समाप्त होने पर हो। (३) दो राजाओं या राज्यों में होनेवाली संधि।  
 यौ०—सुल्लहनामा।  
**सुल्लहनामा-संज्ञा** पुं० [ अ० सुल्लह + फा० नामः ] (१) यह कागज जिस पर दो या अधिक परस्पर लड़नेवाले राजाओं या राष्ट्रों की ओर से मेल की शर्तें लिखी रहती हैं। संधिपत्र। (२) वह कागज जिस पर परस्पर लड़नेवाले दो व्यक्तियों या दलों की ओर से समझौते की शर्तें लिखी रहती हैं; अथवा यह लिखा रहता है कि अब हम लोगों में किसी प्रकार का झगडा नहीं है।  
**सुल्लाक-संज्ञा** पुं० [ फा० सुल्लख ] सुराल। छेद। (लदान)  
 संज्ञा स्त्री० दे० "सल्लख"।  
**सुल्लाखना-वि०** [ सं० सु + हि० लखना = देखना ] सोने या चाँदी को तपाकर परखना।  
**सुल्लागना-वि०** [ सं० ] दे० "सुलगना"। उ०—अग्निनि सुल्लागत मोरयो न अंग मन विकट बनावत बेहु। बकती कहाँ सुरी कहि कहि करि करि तामस तेहु।—सूर।  
**सुस्ताना-वि०** [ सं० ] [ हि० सोना का प्रेर० ] (१) सोने में प्रवृत्त करना। शयन कराना। निद्रित कराना। (२) लिटाना। डाल देना।

**सुल्लाम-वि०** दे० "सुलभ"।  
**सुल्लामी-संज्ञा** पुं० [ सं० सुल्लामिन् ] एक प्राचीन फरि का नाम।  
**सुल्लक-संज्ञा** पुं० दे० "सल्लक"।  
**सुल्लोक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक आदित्य का नाम।  
**सुल्लोषक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] अच्छा लेख या निबंध लिखनेवाला। जिसकी रचना उत्तम हो। उत्तम ग्रंथकार या लेखक।  
**सुल्लेमाँ-संज्ञा** पुं० दे० "सुलेमान"। उ०—हाथ सुलेमाँ केरि अँगूठी। जग कहै दान दीन्ह भरि मूठी।—जायसी।  
**सुल्लेमान-संज्ञा** पुं० [ फा० ] (१) यहूदियों का एक प्रसिद्ध बादशाह जो पैगंबर माना जाता है। कहते हैं कि इसने देवों और परियों को वश में कर लिया था और यह पशुपतियों तक से काम लिया करता था। इनका जन्म ई० पू० १०३३ और मृत्यु ई० पू० ९७५ माना जाता है। (२) एक पहाड़ जो बलोचिस्तान और पंजाब के बीच में है।  
**सुल्लेमानी-संज्ञा** पुं० [ फा० ] (१) वह घोड़ा जिसकी आँखें सफेद हों। (२) एक प्रकार का दोंरंगा पत्थर जिसका कुछ भंश काला और कुछ सफेद होता है।  
 वि० सुलेमान का। सुलेमान संबंधी। जैसे,—सुलेमानी नमक।  
**सुल्लोक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] स्वर्ग।  
**सुल्लोचन-वि०** [ सं० ] [ श्री० सुलोचना ] सुंदर आँखेंवाला। जिसके नेत्र सुंदर हों। सुनेत्र। सुचयन।  
 संज्ञा पुं० (१) हरिन। (२) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (किसी किसी के मत से दुर्वाचन का ही यह एक नाम था।)  
 (३) एक दैत्य का नाम। (४) रुक्मिणी के पिता का नाम। (५) चकोर।  
**सुल्लोचना-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) एक अच्छा का नाम। (२) राजा माधव की पत्नी का नाम जो आदर्श पत्नी मानी जाती है। (३) वासुकी की पुत्री और मेघनाद की पत्नी का नाम।  
**सुल्लोचनी-वि०** स्त्री० [ सं० सुलोचना ] सुंदर नेत्रोंवाली। जिसके नेत्र सुंदर हों। उ०—सुंदरि सुलोचनि सुचचनि सुदति, तैसे तेरे सुल आखर परप हख मानिये।—केदाव।  
**सुल्लोम-वि०** [ सं० ] [ स्त्री० सुलेमा ] सुंदर लोमों या रोमों से युक्त। जिसके रोम सुंदर हों।  
**सुल्लोमनी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] जयामांसी। बालछद्म।  
**सुल्लोमश-वि०** दे० "सुलोम"।  
**सुल्लोमशा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) काकजंघा। (२) जयामांसी।  
**सुल्लोमा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) ताप्रवही। (२) मांस रोहिणी।  
 वि० दे० "सुलोम"।  
**सुल्लोह-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यदिया लोहा।  
**सुल्लोहक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] पीतल।  
**सुल्लोहित-संज्ञा** पुं० [ सं० ] सुंदर रक्त वर्ण। अच्छा लाल रंग।

वि० सुंदर रफ वर्ण से युक्त । सुंदर लाल रंगवाला ।  
**सुलोहिता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम ।  
**सुलोही**-संज्ञा पुं० [ सं० सुलोहित ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
**सुलतान**-संज्ञा पुं० दे० "सुलतान" ।  
**सुल्फ**-संज्ञा पुं० [ देश० ] (१) बहुत चर्दी या तेज रूप । (२) नाव । किरती । (छना०)  
**सुधंश**-संज्ञा पुं० [ सं० ] भागवत के अनुसार वसुदेव के एक पुत्र का नाम ।  
**सुधंशेयु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुफेद रंग या लाल श्वेतयु ।  
**सुधंश**-संज्ञा पुं० दे० "सुधंश" । उ०—गिरिधर भद्रज सुधंश चर्यो जदुवंश भवान् ।—गोपाल ।  
**सुध**-संज्ञा पुं० दे० "सुध" । उ०—हिंदुधान पुत्र्य गादक वनिक तामु निबादक साहि सुध । बरबाद वान किरधान परि जस जहाय विवराज तुय ।—भूषण ।  
**सुधका**-वि० [ सं० सु+कृ ] सुंदर धोलनेवाला । उत्तम ध्याध्यान देनेवाला । चाकपू । ध्याध्यान कुशल । वाग्मी ।  
**सुधक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव । (२) रूद्र के एक पारिपद का नाम । (३) शंभु के एक पुत्र का नाम । (४) वन तुलसी । धन बर्यरी ।  
 वि० सुंदर सुंदरवाला । सुमुख ।  
**सुधज्ञ**-वि० [ सं० सुधज् ] सुंदर या विशाल घघडावाला । जिसकी छाती सुंदर या चौड़ी हो ।  
**सुधज्ञा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मय दानव की पुत्री और त्रिजटा तथा विभीषण की माता का नाम ।  
**सुधज्य**-वि० [ सं० ] सहज में कहा जानेवाला । जिसके उच्चारण में कोई कठिनाई न हो ।  
**सुधजन**-वि० [ सं० ] (१) सुंदर धोलनेवाला । सुधका । वाग्मी । (२) मिष्टनाथी ।  
**सुधजमी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक देवी का नाम । ( बंगाल की जियाँ में इस देवी की पूजा का अधिक प्रचार है । )  
 वि० सुंदर वधन धोलनेवाली । मधुर भाषिणी । उ०—सुंदरि सुलोचनि सुवचनि सुदृति तीमे तेरे मुख आखर पररूप रूप मानिये ।—केशव ।  
**सुधजा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक गंधर्वी का नाम ।  
**सुधज्ञ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र का एक नाम ।  
**सुधटा**-संज्ञा पुं० दे० "सुधटा" । उ०—पिंजर पिंड सरीर का सुधया सहज समाद् ।—दाद ।  
**सुधण**-संज्ञा पुं० [ सं० सुधण ] सोना । सुधर्ष । (हिं०)  
**सुधपद**-वि० [ सं० ] [ को० सुधपदा ] सुंदर सुधवाला । जिसका मुख सुंदर हो । सुमुख ।  
 संज्ञा पुं० वन तुलसी । बरबरक ।

**सुधवना**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुंदरी स्त्री ।  
**सुधन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य । (२) अग्नि । (३) चंद्रमा ।  
 संज्ञा पुं० (१) दे० "सुधन" । उ०—सुरसरि-सुधन रगभूमि आवे ।—सूर । (२) दे० "सुधन" । उ०—नामिनि दमक देवी शीघ की द्रिपति देखि देखि धुम सेन देखि सदन सुधन को ।—केशव ।  
**सुधनारा**-संज्ञा पुं० दे० "सुधन" । उ०—एक दिना ती धर्म सुधनारा । दुपदी हेतु संग सुधनारा ।—सचलसिंह ।  
**सुधुपु**-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुधुपु ] एक अस्त्र का नाम ।  
 वि० सुंदर शरीरवाला । सुदेह ।  
**सुधया**-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुधयत् ] प्रौढ़ स्त्री । मध्यमा स्त्री ।  
**सुधरकोष्ठा**-संज्ञा पुं० [ सं० सुधर+कोष्ठा ] यह दवा जिसमें पाल भर्राई उदता । (महाद्व)  
**सुधरण**-संज्ञा पुं० दे० "सुधर्ष" ।  
**सुधर्चक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सखी । स्वर्णिकाक्षर । (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
**सुधर्चनी**-संज्ञा स्त्री० दे० "सुधर्चक" ।  
**सुधर्चल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन देश का नाम । (२) काला नमक । शीतपल लवण ।  
**सुधर्चला**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूर्य की पत्नी का नाम । (२) परमेष्ठी की पत्नी और प्रतीह की माता का नाम । (३) प्राज्ञी । (४) तीसरी । अतसी । (५) हुरहुर । आदित्यभक्ता ।  
**सुधर्चसी**-संज्ञा पुं० [ सं० सुधर्चसि ] शिव का एक नाम ।  
**सुधर्चा**-संज्ञा पुं० [ सं० सुधर्चत् ] (१) गरुड के एक पुत्र का नाम । (२) रूद्र के एक पारिपद का नाम । (३) दसवें मनु के एक पुत्र का नाम । (४) धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।  
 वि० तेजस्वी । शक्तिवाद् ।  
**सुधर्चिक**-संज्ञा पुं० दे० "सुधर्चक" ।  
**सुधर्चिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सखी । स्वर्णिकाक्षर । (२) पहाड़ी छता । जनुका ।  
**सुधर्ची**-संज्ञा पुं० दे० "सुधर्चक" ।  
**सुधर्जिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पहाड़ी छता । जनुका ।  
**सुधर्ष**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोना । स्वर्ण । (२) धन । संपत्ति । दौलत । (३) प्राचीन काल की एक प्रकार की स्वर्ण-मुद्रा जो दस माने की होती थी । (४) सोलह माने का एक नाम । (५) स्वर्ण मंत्रिक । (६) हरिचंद्र । (७) नाग-केशर । (८) हलदी । हरिद्रा । (९) चन्दा । (१०) कण-गुग्गुल । (११) पीला चन्दा । (१२) पीली सरसों । गीर संपेप । (१३) एक प्रकार का यज्ञ । (१४) एक वृक्ष का नाम । (१५) एक देव गंधर्व का नाम । (१६) दशरथ के

एक मंत्री का नाम । (१०) अंतरीक्ष के एक पुत्र का नाम ।  
(१८) एक मुनि का नाम ।  
वि० (१) सुंदर वर्ण या रंग का । उज्ज्वल । (२) सोने के रंग का । पीला ।

सुवर्णक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोना । (२) सोने की एक प्राचीन तौल जो सोलह मासे की होती थी । सुवर्ण कर्प । (३) पीतल जो देखने में सोने के समान होता है । (४) अमलतास । आरम्यप वृक्ष । (५) सुवर्णक्षीरी ।  
वि० (१) सोने का । (२) सुंदर वर्ण या रंग का ।

सुवर्णकदली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंपा केला । चंपक रंभा ।  
सुवर्णकमल-संज्ञा पुं० [ सं० ] लाल कमल । रक्त कमल ।  
सुवर्णकरणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुवर्ण + करण्य एक प्रकार की जड़ी । इसका गुण यह बताया जाता है कि यह रोगजनित विवर्णता को दूर कर सुवर्ण अर्थात् सुंदर कर देती है ।  
उ०—दक्षिण शिखर द्रोणगिरि माई । औपवि चारिहु अई तहाँ हीं । एक विशाल्यकरनी सुवराई । एक सुवर्णकरनी मनभाई । एक संजीवनकरनी जोई । एक संपानकरन मुदभाई ।—रघुरान ।

सुवर्णकर्त्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवर्णकर्त्तुं सोने के गहने बनानेवाला । सुनार । स्वर्णकार ।  
सुवर्णकर्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोने की एक प्राचीन तौल जो सोलह मासे की होती थी ।  
सुवर्णकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोने के गहने बनानेवाला, सुनार ।  
सुवर्णकैतकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लाल कैतकी । रक्त कैतकी ।  
सुवर्णकेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीढ़ों के अनुसार एक नागासुर का नाम ।

सुवर्णक्षीरिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कटेरी । राव्यानासी । कटुपर्णी । स्वर्णक्षीरी ।  
सुवर्णगणित-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीजगणित का वह अंग जिसके अनुसार सोने की तौल आदि मानी जाती है और उसका हिसाब लगाया जाता है ।  
सुवर्णगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बोधिसत्व का नाम ।  
सुवर्णगिरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजगृह के एक प्रबंध का नाम । (२) असोक की एक राजधानी जो किसी के मत से राजगृह में और किसी के मत से पश्चिमी घाट में थी ।  
सुवर्णगैरिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] लाल गेरू ।

पर्या०—स्वर्णधातु । सुरसकं । संपन्न । वभ्रुधातु । शिलाधातु ।  
सुवर्णगोत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक प्राचीन राज्य का नाम ।  
सुवर्णगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] रौंका । चंग ।  
सुवर्णचूड़-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गरुड़ के एक पुत्र का नाम । (२) एक प्रकार का पक्षी ।

सुवर्णचूल-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्णचूड़" ।  
सुवर्णजीविक संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जो सोने का प्यापार करती थी ।

सुवर्णता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुवर्ण का भाव या धर्म । सुवर्णत्व ।  
सुवर्णतिलका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मालकंगनी । ज्योतिष्मती । लता ।  
सुवर्णदग्धी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कटेरी । भटकटैया । स्वर्णक्षीरिणी ।  
सुवर्णद्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुमात्रा टापू का प्राचीन नाम ।  
सुवर्णधेनु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दान देने के लिये सोने की बनाई हुई गौ ।

सुवर्णकुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बड़ी मालकंगनी । महाज्योतिष्मती लता ।  
सुवर्णपद्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड़ ।

वि० सोने के पंखोंवाला । जिसके पर सोने के हैं ।  
सुवर्णपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पक्षी ।  
सुवर्णपद्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] लाल कमल । रक्त कमल ।  
सुवर्णपद्मा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्ण गंगा ।  
सुवर्णपाद्वं-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम ।  
सुवर्णपालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का सोने का बना हुआ पात्र ।

सुवर्णपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़ी सेवती । राजतरुणी ।  
सुवर्णप्रभास-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक पक्ष का नाम ।

सुवर्णप्रसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पलुआ । पलुवालुक ।  
सुवर्णप्रसव-संज्ञा पुं० [ सं० ] पलुआ । पलुवालुक ।  
सुवर्णफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंपा केला । सुवर्ण कदली ।  
सुवर्णयिदु-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
सुवर्णभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईरान कोण में स्थित एक देश का नाम ।  
विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार सुवर्णभू, घसुवन, द्विषिट, पौरव आदि देव रेवती, अधिनी । और भरणी, वसुध्री में अवस्थित हैं ।

सुवर्णभूमि-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) का एक नाम ।  
सुवर्णमाक्षिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोना मक्खी । स्वर्णमाक्षिक ।  
सुवर्णमापक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बारह पौन का एक मान जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था ।

सुवर्णमित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुदागा, जिसकी सहायता से सोगा जल्दी गल जाता है ।

सुवर्ण वषिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंगाल की एक वषिक जाति ।  
हिंदू राज्य काल में इस जाति के लोग सोने का कारबार करते थे और अन्य भी घड़ने करते हैं । यह जाति निरत और पतित समझी जाती है । ब्राह्मण और काम्यथ इसके यहाँ का जल नहीं ग्रहण करते । बंगाल में इन्हें "सोनार पेगो" कहते हैं ।

सुवर्णसुखरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम ।  
 सुवर्णमेखली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक भस्त्रा का नाम ।  
 सुवर्णयूयिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोनजुही । पीली जुही ।  
 पीतयूयिका ।  
 सुवर्णदमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बंधा केल । सुवर्ण कदली ।  
 सुवर्णरूप्यक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) का एक प्राचीन नाम ।  
 सुवर्णरेखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम जो बिहार के राँची जिले से निकलकर मानभूम, सिहभूम और उड़ीसा होती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है । इसकी कई शाखाएँ हैं ।  
 सुवर्णरेतस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोध्रप्रवर्षक ऋषि का नाम ।  
 सुवर्णरेता-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवर्णरेतसु शिव का एक नाम ।  
 सुवर्णरौमा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवर्णोन्नत (१) मेंडू । सेप (२) महारोम के एक पुत्र का नाम ।  
 वि० सुनहरे रौप्य या बालोंवाला ।  
 सुवर्णलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मालकंगनी । ज्योतिष्मती लता ।  
 सुवर्णवर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।  
 वि० सोने के रंग का । सुनहरा ।  
 सुवर्णवर्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हलदी । हरिद्रा ।  
 सुवर्णशिलेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।  
 सुवर्णश्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आत्मान की एक नदी जो महपुत्र की मुख्य शाखा है ।  
 सुवर्णश्रीवी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवर्णश्रीविर महाभारत के अनुसार संजय के एक पुत्र का नाम ।  
 सुवर्णसंस्क-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्णकर्म" ।  
 सुवर्णसिद्ध-संज्ञा पुं० दे० "स्वर्णसिद्ध" ।  
 सुवर्णसिद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो इंद्रजाल या जादू के बल से सोना बना या प्राप्त कर सकता हो ।  
 सुवर्णस्तेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोने की चोरी ( जो मनु के अनुसार पाँच महापातकों में से एक है ) ।  
 सुवर्णस्तेयी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवर्णसिद्धि सोना चुरानेवाला जो मनु के अनुसार महापातकी होता है ।  
 सुवर्णस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन जनपद का नाम । (२) सुमात्रा द्वीप का एक प्राचीन नाम ।  
 सुवर्णहलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वृक्ष ।  
 सुवर्ण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भक्ति की सात जिह्वाओं में से एक का नाम । (२) हनुमान की पुत्री और सुहोत्र की पत्नी का नाम । (३) हलदी । हरिद्रा । (४) काला अगर । कृष्णायुष । (५) खिरंदी । बरिधारा । बला । (६) कंठी । सत्यानासी । स्वर्णरीरी । (७) इंद्रायन । इंद्रायणी ।

सुवर्णार-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोने की खान, जिससे सोना निकलता है ।  
 सुवर्णार-संज्ञा पुं० [ सं० ] दिव्य का एक नाम ।  
 सुवर्णस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नागकेसर । (२) धवरा । पुस्तर । (३) एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।  
 सुवर्णम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शंखपद के एक पुत्र का नाम । (२) रेवटी । रामायणमणि ।  
 सुवर्णार-संज्ञा पुं० [ सं० ] कचनार । रक्त कांचन वृक्ष ।  
 सुवर्णविमासा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक गंधर्वा का नाम ।  
 सुवर्णह्वा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली जुही । सोनजुही । स्वर्णयूयिका ।  
 सुवर्णिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली जीवंती । स्वर्ण जीवंती ।  
 सुवर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मृत्सकनी । आसुपर्णी ।  
 सुवर्णुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] तरशूज ।  
 सुवर्णम-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवर्णम । छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।  
 वि० उत्तम कवच से युक्त । जिसके पास उत्तम कवच हो ।  
 सुवर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (२) एक बौद्ध आचार्य का नाम ।  
 सुवर्णा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मोतिया । महिष्ठा ।  
 सुवर्णरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुत्रदात्री लता ।  
 सुवर्णिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जनुका नाम की लता । (२) सोमराजी ।  
 सुवर्णजिज-संज्ञा पुं० [ सं० ] मूँगा । प्रवाल ।  
 सुवर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बकुची । सोमराजी । (२) कुटकी । कटुकी । (३) पुत्रदात्री लता ।  
 सुवर्णत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चैत्र पूर्णिमा । चैत्रायली । (२) मदनोत्सव जो चैत्र पूर्णिमा को होता था ।  
 सुवर्णतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मदनोत्सव जो प्राचीन काल में चैत्र पूर्णिमा को होता था । (२) वारंती । नेवारी ।  
 सुवर्णता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) माधवी लता । (२) चमेडी । जातीपुष्प ।  
 सुवर्णत-वि० [ सं० ] स्व + वत् + क्त जो अपने यश या अधिकार में हो ।  
 उ०—वरुण कुपेर अग्नि यम मारुत सुवर्ण कियो क्षण मायें—सूर ।  
 सुवर्णा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम ।  
 सुवर्ह-वि० [ सं० ] (१) सहज में यत्न करने या उठाने योग्य । जो सहज में उठाया जा सके । (२) धैर्यवान् । धीर ।  
 संज्ञा पुं० एक प्रकार की घास ।  
 सुवर्हा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घीगा । गीन । (२) रोहालिका । (३) रासन । राखा । (४) सैनाद । नील सिधवार । (५) रज्जया । (६) हंसपदी । (७) मृत्सकनी । तालगुडी । (८) सलई । पाहकी । (९) गंधनावृत्ती । नकुलकंद । (१०) निस्तोष । विवृत्त ।



**सुपाँगी**-संज्ञा पुं० दे० "स्वाँग" ।  
**सुपाँगी**-संज्ञा पुं० दे० "स्वाँगी" ।  
**सुवा**-संज्ञा पुं० दे० "सुभा" । उ०—सुवा चलि ता बन को रस पीये ।  
 जा बन राम नाम अमृतरस श्रवणपात्र भरि लीये ।—सूर ।  
**सुवाश्व**-वि० [ सं० ] सुंदर वचन बोलनेवाला । मधुरभाषी ।  
 सुवागी ।  
**सुवागामी**-वि० [ सं० सुवागिन् ] बहुत सुंदर बोलनेवाला । ध्याएयान-  
 पट्ट । सुवाक ।  
**सुवाजी**-वि० [ सं० सुवाजिन् ] सुंदर वस्त्रों से युक्त (सीर) ।  
**सुवानाक्षी**-क्रि० सं० दे० "सुलाना" । उ०—पाँडव न्योते  
 अंधसुत्र घर के बीच सुवाय । अर्द्ध रात्रि चहुँ ओर ते दीनी  
 आग लगाय ।—लल्लुलाल ।  
**सुवामा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वर्तमान रामगंगा नदी का प्राचीन नाम ।  
**सुवार**-संज्ञा पुं० [ सं० सूकार ] रसोद्भवा । भोजन बनाने-  
 वाला । पाचक । उ०—सुनु नृप नाम जयंत हमारा । राज  
 सुधिदिर केर सुवारा ।—सबलसिंह ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० सु + वार ] उत्तम वार । अच्छा दिन ।  
 उ०—भयाद की अंधियारी अष्टमी मंगलवार सुवारी रामा ।  
 —हिंदी प्रदीप ।  
**सुवार्त्ता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम ।  
**सुवाल**-संज्ञा पुं० दे० "सवाल" ।  
**सुवालुका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की छता ।  
**सुवास**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुगंध । अच्छी महक । सुवात् ।  
 (२) उत्तम निवास । सुंदर घर । (३) शिव जी का एक  
 नाम । (४) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में  
 न, ज, ल ( III, ISI, I ) होता है ।  
 वि० [ सं० सुवासत् ] [ की० सुवास ] सुंदर वस्त्रों से युक्त ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० श्वास ] श्वास । साँस । ( हि० )  
**सुवासक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] तरबूज ।  
**सुवासन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] दसवें मनु के एक पुत्र का नाम ।  
**सुवासरा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हालों नाम का पौधा । चंसुर ।  
 चंद्रशूर ।  
**सुवासिका**-वि० [ सं० सुवासिक ] सुवास करनेवाली । सुगंध  
 करनेवाली । उ०—केजाव सुगंध श्वास सिद्धनि के शुद्ध  
 किर्वाँ परम प्रसिद्ध शुभ शोभत सुवासिका ।—केजाव ।  
**सुवासित**-वि० [ सं० ] सुवासयुक्त । सुगंधयुक्त । सुवायुद्दार ।  
**सुवासिनी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुवावस्था में भी पिता के  
 यहाँ रहनेवाली स्त्री । चिरंटी । (२) सधवा स्त्री ।  
**सुवासी**-वि० [ सं० सुवासिन् ] उत्तम या भय भवन में रहनेवाला ।  
**सुवास्तु**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम ।  
 संज्ञा पुं० (१) सुवास्तु नदी के निकटवर्ती देव का नाम ।  
 (२) इस देव के रहनेवाले ।

**सुवास्तुक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक राजा  
 का नाम ।  
**सुवाह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एकदं के एक पारिपद का नाम ।  
 (२) अच्छा घोड़ा ।  
 वि० (१) सहज में उठाने योग्य । (२) सुंदर घोड़ोंवाला ।  
**सुवाहन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन मुनि का नाम ।  
**सुविक्रम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वात्समी के एक पुत्र का नाम ।  
 वि० अत्यंत साहसी, दक्षिणाली या वीर ।  
**सुविक्रांत**-वि० [ सं० ] अत्यंत विक्रमवाली । अतिदाय पराक्रमी ।  
 अत्यंत साहसी या वीर ।  
 संज्ञा पुं० (१) शूर । बहादुर । (२) वीरता । बहादुरी ।  
**सुविक्रम**-वि० [ सं० ] अतिशय विद्वक्त । बहुत वैश्वी ।  
**सुविषयात्**-वि० [ सं० ] बहुत प्रसिद्ध । सुप्रसिद्ध । बहुत महादूर ।  
**सुविगुण**-वि० [ सं० ] (१) जिसमें कोई गुण या योग्यता न हो ।  
 गुणहीन । योग्यता रहित । (२) अत्यंत दुष्ट । नीच । पाजी ।  
**सुविग्रह**-वि० [ सं० ] सुंदर शरीर या रूपवाला । सुदेह । सुरूप ।  
**सुविचार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूक्ष्म या उत्तम विचार ।  
 (२) अच्छा फैसला । सुंदर न्याय । (३) हरिमणी के गर्भ  
 से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र का नाम ।  
**सुविचारित**-वि० [ सं० ] सूक्ष्म या उत्तम रूप से विचार किया  
 हुआ । अच्छी तरह सोचा हुआ ।  
**सुविद्य**-वि० [ सं० ] अतिशय विद्य या बुद्धिमान् । बहुत चतुर ।  
**सुविज्ञान**-वि० [ सं० ] (१) जो सहज में जाना जा सके । (२)  
 अतिशय चतुर या बुद्धिमान् ।  
**सुविज्ञेय**-वि० [ सं० ] जो सहज में जाना जा सके । सहज में  
 जानने योग्य ।  
 संज्ञा पुं० शिव जी का एक नाम ।  
**सुचित**-वि० [ सं० ] सहज में पहुँचने योग्य । सहजमें पाने योग्य ।  
 संज्ञा पुं० (१) अच्छा मार्ग । सुपथ । (२) कल्याण ।  
 (३) सौभाग्य ।  
**सुचितत**-वि० [ सं० ] अच्छी तरह फैला हुआ । सुविस्तृत ।  
**सुचितल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु की एक प्रकार की मुर्ति ।  
**सुचित**-वि० [ सं० ] बहुत धनी । बड़ा अमीर ।  
**सुचिति**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक देवता का नाम ।  
**सुचिद्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पंडित । विद्वान् ।  
**सुचिद्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अंतःपुर या रनियास का रक्षक ।  
 सौविद् । कंचुकी । (२) एक राजा का नाम । (३) तिलक ।  
 तिलकगुण्य वृक्ष ।  
**सुचिद्वध**-वि० [ सं० ] बहुत चतुर । बहुत चालाक ।  
**सुचिदत्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा ।  
**सुचिद्वज**-वि० [ सं० ] (१) अतिशय सावधान । (२) सहदय ।  
 (३) उदार । दयालु ।

संज्ञा पुं० (१) हृषा। दया। (२) धन। संपत्ति।  
 (३) कुटुंब। (४) शान।  
**सुविदर्भ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जाति का नाम।  
**सुविदला**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसका ब्याह हो गया हो। विवाहिता स्त्री।  
**सुविद्वान्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] अंतर्पुर। ज्ञानाखाना। जगना महल।  
**सुविदित**-वि० [ सं० ] भली भौति विदित। अच्छी तरह जाना हुआ।  
**सुविद्य**-वि० [ सं० ] उत्तम विद्वान्। अच्छा पंडित।  
**सुविद्युत्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक असुर का नाम।  
**सुविद्य**-वि० [ सं० ] अच्छे स्वभाव का। सुशील। नेक मित्राज।  
**सुविधा**-संज्ञा स्त्री० दे० "सुनीता"।  
**सुविधि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] धैरियों के अनुसार वसंतमान अवसर्पणी के नवें अर्द्धव का नाम।  
**सुविनीत**-वि० [ सं० ] (१) अतिशय नम्र। (२) अच्छी तरह सिखाया हुआ। सुशिक्षित (अति घोड़ा या और कोई पशु)।  
**सुविनीता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह गौ जो सहज में दूही जा सके।  
**सुविभु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राजा का नाम जो विभु का पुत्र था।  
**सुविशाला**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कांसिकेय की एक मान्वा का नाम।  
**सुविशु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक लोक का नाम।  
**सुविष्ट**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुविष्टान् [ तिब का एक नाम।  
**सुवीर**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रुद्र का एक नाम। (२) शिव जी का एक नाम। (३) शिवजी के एक पुत्र का नाम। (४) सुविमान् के एक पुत्र का नाम। (५) देवप्रवा के एक पुत्र का नाम। (६) क्षेम के एक पुत्र का नाम। (७) सिनि के एक पुत्र का नाम। (८) वीर। घोड़ा। (९) एकवीर वृक्ष। (१०) छाठ की रक्षी। (हिं०)  
 वि० अतिशय वीर। महान् योद्धा।  
**सुवीरक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) येर। बदरी। (२) एकवीर वृक्ष। (३) सुरमा।  
**सुवीरज**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरमा। सौवीराज।  
**सुवीरास**-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्जी। कानिक।  
**सुवीर्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] येर। बदरी फल।  
 वि० महान् शक्तिशाली। बहुत बड़ा बहादुर।  
**सुवीर्यो**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वन कपास। वन कार्पासी।  
 (२) यही शतावरी। महा शतावरी। (३) कलपनी हींग।  
 बिकामाली। नादी हींग।  
**सुवृत्त**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूरन। जमोईद। भोल।  
 वि० (१) सघरित्र। (२) युगवान। (३) साडु। (४) सुंदर उद्योबद्ध (काम्य)।  
**सुवृत्ता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक अक्षता का नाम। (२)

क्रिगमि। काकोली दासा। (३) सेवती। दातपत्री। (४) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १९ अक्षर होते हैं, जिनमें १,७,८,९,१०,११,१४ और १७वाँ अक्षर गुरु तथा अन्य अक्षर लघु होते हैं।  
**सुवृत्ति**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उत्तम वृत्ति। उत्तम जीविका।  
 (२) सदाचार। पवित्र जीवन।  
 वि० (१) जिसकी वृत्ति या जीविका उत्तम या पवित्र हो।  
 (२) सदाचारी। सघरित्र।  
**सुवृत्त**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वृष्टिण दिशा के दिग्गज का नाम।  
 वि० (१) बहुत वृद्ध। (२) बहुत प्राचीन।  
**सुवेगा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मालकंगनी। महाश्रोतिष्मती लता। (२) एक गिदनी का नाम।  
**सुवेणा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हरिवंश के अनुसार एक नदी का नाम। महाभारत में भी इसका उल्लेख है।  
**सुवेद**-वि० [ सं० ] आध्यात्मिक ज्ञान में पारंगत। अध्यात्मशास्त्र का अच्छा ज्ञाता।  
**सुवेदा**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवेद [ एक वैदिक ऋषि का नाम।  
**सुवेद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] त्रिकृत पर्यंत का नाम, जो रामायण के अनुसार समुद्र के किनारे लंका में था और जहाँ रामचंद्र जी सेना सहित ठहरे थे। उ०—कौतुक ही वारिधि बँपाह उतारे सुवेद तट जाह। तुलसिदास गद्द देति फिरे कपि प्रभु भागमनु सुनाह।—तुलसी।  
 वि० (१) बहुत हुका हुआ। प्रगत। (२) शांत। नम्र।  
**सुवेश**-वि० [ सं० ] (१) भली भौति या अच्छे कपड़े पहने हुआ। यज्जदि से सुसंस्थित। सुंदर धेनुकु। (२) सुंदर। रूपवान।  
 संज्ञा पुं० सफेद रँग। श्वेतशु।  
**सुवेशता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुवेश का भाव या धर्म।  
**सुवेशी**-वि० दे० "सुवेश"।  
**सुवेश**-वि० दे० "सुवेश"।  
**सुवेशित**-वि० दे० "सुवेश"। उ०—गलीचे पर एक सुवेशित यवन बैठा पान खा रहा था।—गदाधरसिंह।  
**सुवेशी**-वि० दे० "सुवेश"।  
**सुवेश**-वि० दे० "सुवेश"।  
**सुवेशल**-वि० [ सं० ] सुवेश + हिं० ल (प्रत्य०)। सुंदर। मनोहर।  
 उ०—सुमग सुसन बंपुर रचिर कांत काम कमनीय। रम्य सुवेशल भय अरु दर्शनीय रमणीय।—अनेकार्थे।  
**सुवैण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सु + वैण (वचन)। मित्रता। दोस्ती। (हिं०)  
**सुवैया**-वि० [ हिं० ] सोना + वैया (प्रत्य०)। सोनेवाला।  
**सुवो**-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुक्र। शुक्र पत्नी। सुग्गा। तोता। (हिं०)  
**सुव्यक्त**-वि० [ सं० ] उत्तम रूप से व्यक्त। बहुत स्पष्ट। सुप्रकाशित।  
**सुव्यवस्थित**-वि० [ सं० ] उत्तम रूप से व्यवस्थित। जिसकी व्यवस्था भली भौति की गई हो।

सुव्यूहसुखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक जप्सरा का नाम ।

सुव्यूहा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुव्यूहसुखा" ।

सुव्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्कंद के एक अनुचर का नाम ।

(२) एक प्रजापति का नाम । (३) रीच्य भनु के एक पुत्र का नाम । (४) उनीनर के एक पुत्र का नाम । (५)

त्रियमत्त के एक पुत्र का नाम । (६) महत्वाची । (७)

धर्ममान भवत्सर्पिणी के २०वें अर्हत् का नाम । इन्हें मुनि

सुव्रत भी कहते हैं । (८) भावी उत्सर्पिणी के ११वें

अर्हत् का नाम ।

वि० (१) दृढ़ता से मृत पालन करनेवाला । (२) धर्मनिष्ठ ।

(३) विनीत । नम्र (घोड़ा या गाय आदि पशुओं के लिये) ।

सुव्रता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गंधपलाशी । कपूर कचरी । (२)

सहज में दृष्टी जानेवाली गाय । (३) गुणवती और

पतिप्रता पत्नी । (४) एक जप्सरा का नाम । (५) दक्ष की

एक पुत्री का नाम । (६) वर्तमान कल्प के १५वें अर्हत्

की माता का नाम ।

सुशक-वि० [ सं० ] सहज में होने योग्य । सुकर । आसान ।

सुशक-वि० [ सं० ] अच्छी शक्तिवाला । शक्तिशाली । तात्कालिक ।

सुशक्ति-वि० दे० "सुशक" ।

सुशब्द-वि० [ सं० ] अच्छा शब्द या ध्वनि करनेवाला । जिसकी

आवाज अच्छी हो ।

सुशरण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव । महादेव ।

सुशरीर-वि० [ सं० ] जिसका शरीर सुंदर हो । सुधौल । सुबेह ।

सुशुर्मा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुशुर्मा ] (१) एक मनु के एक पुत्र का

नाम । (२) एक वैशालि का नाम । (३) एक काव्य का

नाम । (४) निंदित मालिन ।

सुशुल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सैर । खदिर ।

सुशुवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काला जीरा । कृष्ण जीरक । (२)

कनेला । धारवेष्ट । (३) काली जीरी । सूक्ष्म कृष्ण जीरक ।

(४) करंड ।

सुशांत-वि० [ सं० ] अत्यंत शांत । स्थिर । उ०—बहुत काल हीं

विचरे जल में तब हरि भये सुशांति । बस प्रलय विविध

चानकर सृष्टि रची बहु भाँति ।—सूर ।

सुशांता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राजा विशिष्यज की पत्नी का नाम ।

सुशांति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तीसरे मन्वन्तर के इंद्र का नाम ।

(२) भजमींद्र के एक पुत्र का नाम । (३) शांति के एक पुत्र

का नाम ।

सुशाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अद्रक । आद्रक । (२) शौलाई

का सारंग । तेंदुलीय शाक । (३) पंचु । चंच । (४) मिट्टी ।

सुशाकक-संज्ञा पुं० दे० "सुशाक" ।

सुशार्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] शालकापन गौत्र के एक वैदिक आचार्य

का नाम ।

सुशास्य-वि० [ सं० ] सहज में शासित या नियंत्रित होने योग्य ।

सुशिक्षित-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की शिष्या ।

सुशिक्षित-वि० [ सं० ] उच्चम रूप से शिक्षित । अच्छी तरह

शिक्षा पाया हुआ । जिसने विशेष रूप से शिक्षा पाई हो ।

सुशिख-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि का एक नाम ।

सुशिखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मोर की चोटी । मयूर शिखा ।

(२) सुर्ण की कलगी । सुमुद्रकेश ।

सुशिर-वि० [ सं० ] सुशिरण । सुंदर सिरवाला । जिसका सिर

सुंदर हो ।

संज्ञा पुं० वह यात्रा जो सुँह से फूँककर बगया जाता हो ।

जैसे,—चंशी आदि । (संगीत)

सुशीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पीला चंदन । हरिचंदन । (२)

पाकर । हृत्पल्लव वृक्ष । (३) जलधैत । जलधैतसा ।

वि० अत्यंत शीतल । बहुत ठंडा ।

सुशीतल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गंधवृण । (२) सफेद चंदन ।

(३) नागदमनी । नागदमन ।

वि० अत्यंत शीतल । बहुत ठंडा ।

सुशीतला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शीता । मृगुप । (२) ककड़ी ।

ककटिका ।

सुशीता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सेयती । दातपत्नी । (२) स्थल

कमल ।

सुशीम-संज्ञा पुं० दे० "सुपीम" ।

सुशील-वि० [ सं० ] [ स्त्री० ] सुशीला ] (१) उत्तम शीलवाला ।

(२) उत्तम स्वभाववाला । शीलवान् । (३) सचरित्र ।

साधु । (४) विनीत । नम्र । (५) सरल । सीधा ।

सुशीलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुशील का भाव । सुशीलत्व ।

(२) सचरित्रता । (३) नम्रता ।

सुशीला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) श्रीकृष्ण की एक पत्नी का नाम ।

(२) राधा की एक अनुचरी का नाम । (३) यम की पत्नी

का नाम । (४) सुदामा की पत्नी का नाम ।

सुशीली-वि० [ सं० ] सुशीलन् ] दे० "सुशील" ।

सुशीविका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मंडी । पाराहीकंद ।

सुश्रंग-वि० [ सं० ] सुंदर श्रंगयुक्त । सुंदर सींगवाला ।

संज्ञा पुं० श्रंगी कपि । उ०—कश्यपसुत सुधिभांडकं है

सिष्य सुश्रंग । महाधरजस्त वनादि में वनचारिन के उंग ।—

पद्मकार ।

सुश्रुत-वि० [ सं० ] अत्यंत चत । बहुत भागम ।

सुशोभन-वि० [ सं० ] (१) अत्यंत शोभायुक्त । दिग्गम । (२)

जो देखने में बहुत भला मालूम हो । बहुत सुंदर ।

प्रियदर्शन ।

सुशोभित-वि० [ सं० ] उच्चम रूप से शोभित । अत्यंत शोभायमान ।

सुधम-संज्ञा पुं० [ सं० ] धर्म के एक पुत्र का नाम ।

सुधवा-संज्ञा पुं० [ सं० सुधवत् ] (१) एक प्रजापति का नाम ।  
 (२) एक ऋषि का नाम (३) एक नागाधुर का नाम ।  
 वि० (१) उत्तम इति से युक्त । (२) प्रसिद्ध । कीर्तिमान् ।  
 संज्ञा स्त्री० एक वैदर्भी का नाम जो जयासेन की पत्नी थी ।  
 सुधार्थ-वि० [ सं० ] जो सुनने में अच्छा जान पड़े ।  
 सुश्री-वि० [ सं० ] (१) बहुत सुंदर । शोभायुक्त । (२) बहुत धनी । धरा भरी ।  
 सुश्रीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सलई । शलकी ।  
 वि० दे० "सुश्री" ।  
 सुश्रुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्र के एक प्रसिद्ध आचार्य जिनका रचा हुआ "सुश्रुत संहिता" नामक ग्रंथ बहुत मान्य समझा जाता है । गल्प पुराण में लिखा है कि ये विश्वामित्र के पुत्र थे और इन्होंने कशी के राजा दिवोदास से, जो धन्वंतरि के अवतार थे, शिक्षा पाई थी । आयुर्वेद के आचार्यों में इनका और इनके ग्रंथ का भी बड़ी स्थान है, जो चरक और उनके ग्रंथ का है । (२) सुश्रुत का रचा हुआ सुश्रुत संहिता नामक ग्रंथ । (३) गोष्ठी आदिके अंत में प्राण से यह पूछना कि आप वृत्त हो गए न ।  
 वि० (१) अच्छी तरह सुना हुआ । (२) प्रसिद्ध । महाहूर ।  
 सुश्रुतसंहिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आचार्य-सुश्रुत का बनाया हुआ आयुर्वेद का एक प्रसिद्ध और सर्वमान्य ग्रंथ ।  
 सुधूम-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार धर्म के एक पुत्र का नाम ।  
 सुध्वजा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुध्रवा" ।  
 सुध्रवा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुध्रवा" ।  
 सुध्रोष्ण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हरिद्वंश के अनुसार एक नदी का नाम ।  
 सुध्रोष्णि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक देवी का नाम ।  
 वि० सुंदर नितम्बवाली ।  
 सुरलोक-वि० [ सं० ] (१) पुण्यतमा । पुण्यकीर्ति । (२) सुप्रसिद्ध । महाहूर ।  
 सुपथि-संज्ञा पुं० [ सं० सुपथि ] - (१) रामायण के अनुसार मांथाता के एक पुत्र का नाम । (२) पुराणानुसार प्रसुधुत के एक पुत्र का नाम ।  
 सुपथ-संज्ञा पुं० दे० "सुल" ।  
 सुपद्मा-संज्ञा पुं० [ सं० सुपद्म ] एक ऋषि का नाम ।  
 सुपम-वि० [ सं० ] (१) बहुत सुंदर । शोभायुक्त । (२) सम । समान ।  
 सुपमसुपम-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैन मतानुसार कालचक्र के दो आरे ।  
 सुपमना-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपुत्रा" । उ०—(क) इंगला विंगला सुपमना नारी । घृण्य सदन में बसाई सुरारी।—चूर ।  
 (ख) गंधनाथ दिग्दह एक सम शक्तिवे । चरु सुपमना पाठ भरी रस चासिये।—कवीर ।

सुपमनि-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपुत्रा" । उ०—इंगला विंगला सुपमनि नारी बंध नाल की सुधि पाई।—कवीर ।  
 सुपमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) परम शोभा । अत्यंत सुंदरता । (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक अक्षर में दस अक्षर रहते हैं जिनमें ३, ४, ८ और ९वाँ गुरु तथा अन्य अक्षर छुटते हैं । (३) एक प्रकार का पौधा । (४) जैनों के अनुसार काल का एक नाम ।  
 सुपमाशाली-वि० [ सं० ] जिसमें बहुत अधिक शोभा या सुंदरता हो ।  
 सुपयी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) करेला । कारवेला । (२) कोली । क्षुद्र कारवेला । (३) जोरा । जोरक ।  
 सुपाङ्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव जी का एक नाम ।  
 सुपाना-संज्ञा-क्रि० प्र० दे० "सुखाना" । उ०—स्वामयन सचिपद मुलसी साल सफल सुपति।—मुलसी ।  
 सुपारा-संज्ञा-वि० दे० "सुखारा" । उ०—रावन यश सद्धित संहारा । सुनत सकल जग भएउ सुपारा।—रामायणमेध ।  
 सुपि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छिद्र । छेद । स्राव । बिल ।  
 सुपिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीतलता । टंडक ।  
 वि० शीतल । टंडा ।  
 सुपिनिधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णुपुराण के अनुसार एक राजा का नाम ।  
 सुपिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वॉल । (२) वेत । (३) भस्म । आंग । (४) चूहा । (५) संगीत में वह यंत्र जो वायु के जोर से बजता हो । (६) छेद । स्राव । (७) वायुमंडल । (८) डोंग । खबंग (९) काठ । लकड़ी ।  
 वि० छिद्रयुक्त । छेदपाला । पोला ।  
 सुपिरच्छेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की यंत्रो ।  
 सुपिरविचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] बिल, विशेषकर सौर का बिल ।  
 सुपिरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कलिका । विदुम छता । (२) नदी ।  
 सुपिलीका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की विधिवा ।  
 सुपीम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का सर्प । (२) चंद्रकोट मणि ।  
 वि० (१) शीतल । टंडा । (२) मनोरम । मनोश । सुंदर ।  
 सुपुपु-वि० [ सं० सुपुपु ] सोने की इच्छा कानेपाला । निद्रातुर ।  
 सुपुत-वि० [ सं० ] गहरी नींद में सोया हुआ । अच्छी तरह सोया हुआ । गौर निद्रित ।  
 संज्ञा स्त्री० दे० "सुपुति" ।  
 सुपुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घोर निद्रा । गहरी नींद । (२) अज्ञान । (वेदांत) (३) पार्श्वजलनन के अनुसार विद्य की एक वृत्ति या अनुभूति । कहते हैं कि इस अवस्था में जीव नित्य मल्ल की प्राप्ति करता है, परन्तु उसे इस वान का ज्ञान नहीं होता कि मैंने मल्ल की प्राप्ति की है ।

सुपुत्र-वि० [ सं० ] सोने की इच्छा करनेवाला । निद्रागुर ।  
 सुपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शयन की अभिलाषा । सोने की इच्छा ।  
 सुपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दृढ़ योग और तंत्र के अनुसार  
 शरीर के अंतर्गत तीन प्रधान नाडियों में से एक ।

विशेष—दस नाडियों में इडा, पिंगला और सुपुत्रा ये तीन  
 प्रधान नाडियाँ मानी गई हैं । कहते हैं कि इडा और  
 पिंगला नाडियों के मध्य में सुपुत्रा है; अर्थात् नासिका  
 के वाम भाग में इडा, दक्षिण भाग में पिंगला और मध्य  
 भाग (मदरंभ्र) में सुपुत्रा नाड़ी स्थित है । सुपुत्रा  
 त्रिगुणमयी और चंद्र, सूर्य तथा अग्नि स्वरूपिणी है ।

(२) वैद्यक के अनुसार चौदह प्रधान नाडियों में से एक जो  
 नाभि के मध्य में स्थित है और जिससे अन्य सब नाडियाँ  
 लिपटी हुई हैं ।

सुपेण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु का एक नाम । (२) एक  
 गंधर्व का नाम । (३) एक यक्ष का नाम । (४) एक  
 नागासुर का नाम । (५) दूसरे मनु के एक पुत्र का नाम ।  
 (६) धीरुष्ण के एक पुत्र का नाम । (७) धूरसेन के एक  
 राजा का नाम । (८) परीक्षित के एक पुत्र का नाम । (९)  
 छतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (१०) यक्षुदेव के एक पुत्र  
 का नाम । (११) विश्वगर्भ के एक पुत्र का नाम । (१२)  
 द्रौपदी के एक पुत्र का नाम । (१३) एक वानर का नाम ।  
 रामायण आदि के अनुसार यह वरुण का पुत्र, धात्री का  
 ससुर और सुभीम का वधु था । इसने राम-रावण के युद्ध  
 में रामचंद्र की विशेष सहायता की थी । (१४) करीदा ।  
 करमर्दक । (१५) पेंस । बेतस छत्ता । नम्रक ।

सुपेरिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काली निसोथ । कृष्ण त्रिवृता ।

सुपेणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] निसोथ । त्रिवृता ।

सुपोपति-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपुति" । उ०—सुत्रातमा प्रकाशित  
 भोपति । तस्य अवस्था आदि सुपोपति ।—विश्राम ।

सुपोति-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपुति" । उ०—जायुत नारी  
 सुपोति सुरिया, भीरु गोपा में घर छाये ।—कवीर ।

सुपोमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भागवत के अनुसार एक नदी का नाम ।

सुपर्कत-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार धर्मनेत्र के एक पुत्र  
 का नाम ।

सुष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० सुष्ट का मनु० ] अच्छा । भला । दुष्ट का  
 उलटा । जैसे,—बादशाह अपनी सेना लेकर सुष्ट अर्थात्  
 नृणवर पशुओं की रक्षा के निमित्त दुष्ट अर्थात् मांसाहारी  
 जीवों के नाश करने को चढ़ता था ।—शिवप्रसाद ।

सुष्टु-अर्थ० [ सं० ] (१) अतिशय । अत्यंत । (२) भली भँति ।  
 अच्छी तरह । (३) यथायोग्य । ठीक ठीक ।

सुष्टु पुं० (१) प्रशंसा । तारीफ । (२) सत्य ।

सुष्टुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मंगल । कल्याण । भलाई । (२)

सौभाग्य । (३) सुंदरता । उ०—शब्दों की बुरोखी सुष्टुता  
 द्वारा मन को चमकृत करने की शक्ति ।—निबंधमालाद्वारा ।

सुष्मंत-संज्ञा पुं० दे० "सुकंत" ।

सुष्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] रस्सी । रज्जु ।

सुष्मनाड-संज्ञा स्त्री० दे० "सुपुत्रा" । उ०—चंद्र सूरहि बंद के  
 मगं सुष्मनागत दीश । प्राणरोचन को करै जेहि हेत सर्व  
 भ्रपीश ।—केशव ।

सुसंकुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक राजा  
 का नाम ।

सुसंक्षेप-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।

सुसंग-संज्ञा पुं० [ सं० सु + हि० संग ] उत्तम संगति । ससंग ।  
 अच्छी सोहयत ।

सुसंगत-वि० [ सं० ] उत्तम रूप से संगत । बहुत युक्ति-युक्त ।  
 बहुत उचित ।

सुसंगति-संज्ञा स्त्री० [ सं० सु + हि० संगत ] अच्छी संगत ।  
 अच्छी सोहयत । ससंग । सायुसंग ।

सुसंधि-संज्ञा पुं० दे० "सुसंधि" ।

सुसंभाव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] रैवत मनु के एक पुत्र का नाम ।

सुस-संज्ञा स्त्री० दे० "सुसा" । उ०—परी कामवन्त ताकी सुस  
 जाके मुंड दन कीने हाव भाव चित्त चाव एक बंद सों । दीप  
 सुत सैन है सुनैनन चलय रही जानकी निद्रार मन रही न  
 अनंद दौ ।—हनुमत्साटक ।

सुसकना-कि० भ० दे० "सिसकना" । उ०—(क) पालने झूलो  
 भै छाल पियारे । सुसकनि की हौं बलि बलि करी तिल  
 तिल इठ न करहु जे दुखारे ।—सूर । (ख) कपिपति काम  
 सँवार, बाली अथ सुसकत परयो । तय ताहरी की नार  
 रघुपति सों बिनती करे ।—हनुमत्साटक । (ग) अति क्रोर  
 दोउ काल से भरम्यो अति शक्षक्यो । जागि परयो तहँ कोउ  
 नहीं गिय ही जिय सुसकयो ।—सूर । (घ) धूँवट में सुसकै  
 भरे सौंसै ससै सुखनाह के सौँहँ न खोलै ।—सुंदरीसर्वस्व ।

सुसकल्यो-संज्ञा पुं० [ सं० राग ] खरगोश । खरहा । दासा । (डि०)

सुसका-संज्ञा पुं० [ अ० ] हुका । (सुनार)

सुसजित-वि० [ सं० ] भली भँति सजा या सजाया हुआ ।  
 भली भँति श्रंगार किया हुआ । सौभाग्यमान ।

सुसताना-कि० भ० [ का० सुसत + आना (प्रत्य०) ] धर्म मिटाना ।  
 यथावत दूर करना । विश्राम करना । आराम करना ।  
 जैसे,—इतनी दूर से आते आते थक गए हैं; जरा सुसता हँ,  
 तो आगे चलें ।

सुसती-संज्ञा स्त्री० दे० "सुस्ती" ।

सुसंख्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कालिका पुराण के अनुसार राजा  
 जनक की एक पत्नी का नाम ।

सुसब्द-संज्ञा पुं० [ सं० सुसत्त्वं ] कीर्ति । यश । (डि०)

**सुसमय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वे दिन जिनमें अकाल न हो । अच्छा समय । सुकाल । सुमिदा ।

**सुसमा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्नि । (हिं०)

ल संज्ञा स्त्री० दे० "सुप्रमा" ।

**सुसमुम्भिल्ल**—वि० [ सं० सु + हिं० समभ ] अच्छी समसवाला । सुबुद्धि । समसदा । उ०—नाम रूप बुद्ध ईस उपाधी । अकथ भनादि सुसासुति साधी ।—तुलसी ।

**सुसर**—संज्ञा पुं० दे० "ससुर" । उ०—यू ने स्वर्गवासी सुसर की दोनों रानियों की समान भक्ति से बंदना की ।—लक्ष्मणसिंह ।

**सुसरण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।

**सुसरा**—संज्ञा पुं० दे० "ससुर" । उ०—कोई कोई दुष्ट राजपूत अपनी लक्ष्मियों को मार डालते हैं कि जिसमें किसी का सुसरा न बनना पड़े ।—शिवप्रसाद ।

**विशेष**—इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाड़ी में अधिक होता है ।

जैसे,—(क) सुसरे ने कम तौला है । (ख) सुसरा कहीं का ।

**सुसरार**—संज्ञा स्त्री० दे० "सुसराल" ।

**सुसरारि**—संज्ञा स्त्री० दे० "सुसराल" ।

**सुसराल**—संज्ञा स्त्री० [ सं० श्वराज्य ] सुसर का घर । सुसराल ।

**सुसरित**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सु + सरित ] नदियों में श्रेष्ठ, गंगा । उ०—गे मुनि अवध थिलोकि सुसरित नहापठ । सतानंद दस कोटि नाम फल पापठ ।—तुलसी ।

**सुसुरी**—संज्ञा स्त्री० (१) दे० "ससुरी" । (२) दे० "सुरसुरी" ।

**सुसुतु**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अश्वेद के अनुसार एक मन्त्री का नाम ।

**सुसुर्मा**—संज्ञा पुं० दे० "सुसुर्मा" ।

**सुसह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।

वि० सहज में उठाने या सहने योग्य । जो सहज में उठारा या सहन किया जा सके ।

**सुसाक्षी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बहन । भगिनी । स्वसा । उ०—पंचवटी सुंदर छवि रामा । मोहत भई सुपनया यामा । रामन सुसा रामे से भाषा । पुनि सीता भोजन अमिलाषा ।—गिरिधरदास ।

संज्ञा पुं० [ देस० ] एक प्रकार का पदार्थ । उ०—जै हनत सुसा सुसर उत्तंग ।—भूदन ।

**सुसाहटी**—संज्ञा स्त्री० दे० "सोसाहटी" ।

**सुसाध्य**—वि० [ सं० ] [ संज्ञा सुसाधन ] जिसका सहज में साधन किया जा सके । जो सहज में किया जा सके । सुखसाध्य । सहज साध्य ।

**सुसानाक्षी**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० ] सिसकना । उ०—रामहिं राघव विदेश बसे सुन सोच क्रियो यह बात न संगी । एक उपाय करौ छुनि मत है वर बेलेडै मांग सुर्गमी । नृपण वारन अर्धर छेत है जात सुसात सुपाइन संगी । दौर

वली पिय पै पर मांगत मानहु काल काल भुजंगी ।—हनुमत्साष्टक ।

**सुसार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नीलम । इंद्रील मणि । (२) डाल है । रक्त खरिद वृक्ष ।

**सुसारयत्**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विहारी । स्फटिक ।

**सुसिकता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चीनी । दाकता ।

**सुसिद्धि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साहित्य में एक प्रकार का अलंकार । जहाँ परिश्रम एक मनुष्य करता है, पर उसका फल दूसरा भोगता है, वहाँ यह अलंकार माना जाता है । उ०—साधि साधि औरै मरै औरै भौमै सिद्ध । तासौ बहत सुसिद्धि । सब, जे है बुद्धि समृद्धि ।—केदार ।

**सुसिर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] दाँत का एक रोग, जो घागभट के अनुसार, पिच और रक्त के कृषित होने से होता है । दाँतों की जड़ फूल जाती है, उसमें बहुत दर्द होता है, खून निकलता है और मांस कटने या गिरने लगता है ।

**सुसीतलतार**—संज्ञा स्त्री० दे० "सुसीतलता" ।

**सुसीता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेवती । शतपत्री ।

**सुसीम**—वि० [ ? ] सीतल । ठंढा । (हिं०)

**सुसीमा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कैनों के अनुसार छठे अर्हत् की माता का नाम ।

**सुसुकना**—कि० प्र० दे० "सिसकना" ।

**सुसुड़ी**—संज्ञा स्त्री० [ सुर उर से षु० ] एक प्रकार का कीड़ा जो जी में लगता है और उसके सार भाग को खा जाता है । सुसुरी ।

**सुसुनिया**—संज्ञा पुं० [ देस० ] एक पहाड़ जो बंगाल प्रदेश के बर्कित्ता जिले में है । यहाँ चौथी शताब्दी का एक शिलालेख है जिससे जाना जाता है कि शुद्धर के राजा चंद्रवर्मा ने इस पहाड़ पर एक स्वामी की स्थापना की थी ।

**सुसुषि**—संज्ञा स्त्री० दे० "सुसुषि" । उ०—सुख दुख हैं मत के धरम नहीं आतमा मर्हि । जहाँ सुसुषि मैं दंष्ट्रदुख मन विन माँहि नौहि ।—दीनदयाल ।

**सुसुरमिया**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चमेली । जाती पुष्प ।

**सुसुद्धम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] परमाणु ।

वि० अव्यंत सूक्ष्म । बहुत घारीक या छोटा ।

**सुसुद्धमपत्रा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आकाशमांसी । जटामांसी । बालछद्म ।

**सुसुद्धमेश**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( परमाणुओं के प्रभु या स्वामी ) विष्णु का एक नाम ।

**सुसुने**—संज्ञा पुं० दे० "सुसुने" ।

**सुसुंघयी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिंध देश की अच्छी घोड़ी ।

**सुसुी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सरगोश । खरहा । (हिं०)

**सुसोमग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] दांतव्य सुख । पति पत्नी संपंथी सुख ।

सुस्कंदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्षर वृक्ष ।  
 सुस्कंधमार-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार एक मार का नाम ।  
 सुस्त-वि० [ का० ] (१) जिसके शरीर में बल न हो। दुर्बल । कमजोर । (२) चिंता या लजा आदि के कारण निस्तेज । उदास । हतमन । जैसे,—उस दिन की बात का जिक्र आते ही वह सुस्त हो गया । (३) जिसका वेग, प्रबलता या गति आदि कम हो, अथवा घट गई हो ।  
 कि० प्र०—पढ़ना ।—होना ।  
 (४) जिसे कोई काम करने में आवश्यकता से अधिक समय लगता हो । जिसमें सत्परता का अभाव हो । आलसी । जैसे, तुम्हारा नौकर बहुत सुस्त है । (५) जिसकी गति मंद हो । धीमी चालवाला । जैसे,—(क) छोटी लाइन की गार्दियाँ बहुत सुस्त होती हैं । (ख) तुम्हारी घड़ी कुछ सुस्त जान पड़ती है । (६) जिसकी बुद्धि तीव्र न हो । जो जल्दी कोई बात न समझता हो । जैसे,—वह लड़का दरजे भर में सब से ज्यादा सुस्त है । (७) अस्वस्थ । रोगी । बीमार । (लटा०)  
 सुस्तना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुंदर छातियोंवाली स्त्री । सुंदर स्तनों से युक्त स्त्री । (२) वह स्त्री जो पहली बार रजस्वला हुई हो ।  
 सुस्तनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुस्तना" ।  
 सुस्तपाँव-संज्ञा पुं० [ का० सुस्त + हि० पाँव ] स्लोप नामक जंतु का एक भेद । इन जंतुओं के केंचिले दाँत नहीं होते, पर जो कुचलनेवाले दाँत होते हैं, वे छोटे छोटे और कुंद होते हैं । ऊपर और नीचे के जपड़ों में आठ आठ डारें होती हैं, पर उनमें दोस हड्डी और दाँतों की जड़ नहीं होती ।  
 सुस्त रीछ-संज्ञा पुं० [ का० सुस्त + हि० रीछ ] एक प्रकार का रीछ जो पहाड़ों पर पाया जाता है । इसका शरीर सुरसुरा और घेंचल होता है । इसके हाथों में बहुत शक्ति होती है जिससे यह अपना आहार टुकड़ा कर सकता है । इसके पंजे लंबे और मजबूत होते हैं, जिनसे यह अपने रहने के लिये माँद भी खोद लेता है ।  
 सुस्ताना-कि० प्र० दे० "सुस्ताना" ।  
 सुस्ती-संज्ञा स्त्री० [ का० सुस्त ] (१) सुस्त होने का भाव । (२) आलस्य । निधिलता । काहिली । डिहाई । (३) बीमारी । (लटा०)  
 सुस्तुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुपाप के एक पुत्र का नाम ।  
 सुस्तैन-संज्ञा पुं० दे० "स्वस्त्ययन" । उ०—पृथ्वि विप्र सुस्तैन चैन भरि मंगल साजु सँवारे । कौशल्या कैकेयी सुमित्रा भूपति सँग बैठारे । धैरे भूपति कनकासन पै करन लगे कुल रीती । नीरि गणेश पुति पृथिवीपति करी आद जस नीती ।—रघुराज ।

सुस्थ-वि० [ सं० ] (१) भला चंगा । नीरोग । स्वस्थ । तंदुरुस्त । (२) सुखी । प्रसन्न । खुश । (३) भली भाँति स्थित । सुस्थित । सुस्थिर । (४) सुंदर ।  
 सुस्थचित्त-वि० [ सं० ] जिसका चित्त सुखी या प्रसन्न हो ।  
 सुस्थता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुस्थ होने का भाव या धर्म । (२) नीरोगता । आरोग्य । स्वास्थ्य । तंदुरुस्ती । (३) कुशल क्षेम । (४) प्रसन्नता । आनंद ।  
 सुस्थयत्व-संज्ञा पुं० दे० "सुस्थता" ।  
 सुस्थमानस-वि० दे० "सुस्थचित्त" ।  
 सुस्थल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम ।  
 सुस्थापती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संगीत में एक प्रकार की रागिनी का नाम ।  
 सुस्थित-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह वास्तु या भवन जिसके चारों ओर धीथिका या मार्ग हों । (२) घोड़े का एक प्रह जिससे प्रस्त होने पर वह बराबर दिनदिनामा और अपने आप को देखा करता है । (३) एक वैनाचार्य का नाम ।  
 वि० [ स्त्री० सुस्थिता ] (१) उत्तम रूप से स्थित । दृढ़ । अविचल । (२) स्वस्थ । (३) भाग्यवान् ।  
 सुस्थितरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुस्थित होने का भाव । (२) सुख । प्रसन्नता । (३) निवृत्ति ।  
 सुस्थिति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उत्तम स्थिति । अच्छी अवस्था । (२) मंगल । कुशल क्षेम । (३) आनंद । प्रसन्नता ।  
 सुस्थिर-वि० [ सं० ] [ स्त्री० सुस्थिरा ] अत्यंत स्थिर या दृढ़ । अविचल ।  
 सुस्थिरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रक्तवाहिनी नस । लाल रग ।  
 सुस्ना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खैसारी । त्रिपुट ।  
 सुस्नात-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसने यज्ञ के उपरान्त स्नान किया हो ।  
 सुस्मित-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सुस्मिता ] हँसमुख । हँसोड़ ।  
 सुस्नीता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुस्नीतम् । हरिचंद्रा के अनुसार एक नदी का नाम ।  
 सुस्वध-संज्ञा पुं० [ सं० ] पितरों की एक श्रेणी या वर्ग ।  
 सुस्वधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कवचांग । मंगल । (२) सौभाग्य । सुदाकिस्ती ।  
 सुस्वन-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्द ।  
 वि० (१) उत्तम शब्द या ध्वनियुक्त । (२) बहुत ऊँचा । उल्लस । (३) सुंदर ।  
 सुस्वप्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुभ स्वप्न । अच्छा सपना । (२) शिव जी का एक नाम ।  
 सुस्वर-वि० [ सं० ] [ स्त्री० सुस्वरा ] सुंदर या उत्तम स्वर युक्त । जिसका सुर या कंठजनित मधुर हो । सुकंठ । सुरीला ।

संज्ञा पुं० (१) सुंदर या उत्तम स्वर। (२) गरुड़ के एक पुत्र का नाम। (३) शंख। (४) जैनों के अनुसार यह कर्म जिससे मनुष्य का स्वर मधुर और सुरीला होता है।

सुस्वरता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुस्वर का भाव या धर्म। (२) यंत्रों के बीच गुणों में से एक।

सुस्वाद्यु—वि० [ सं० ] अर्थात् स्वाद युक्त। बहुत स्वादिष्ट। बहुत जायकेदार। सुखा जायका।

सुहंगम—वि० [ हि० महंगा का मनु० ] कम मूल्य का। सस्ता। महंगा का उलटा।

सुहंगमक—वि० [ सं० हंगम ] सहज। आसान।

सुहंगा—वि० [ हि० महंगा का मनु० ] सस्ता। जो महंगा न हो।

सुहृदाक—वि० [ हि० हृदाकना ] [ स्त्री० हृदयी ] सुहावना। सुंदर।

उ०—सुनु ए कपटी द्वाकथ हृदी दोउ राम रथी न कच्छु कपटी। हर धूगटी कमठी सपटी सम तारे रथी जनपाचकटी। न रथी रतिनाथ छटी तिनको नित नाचत मुक नदी सुहृदी।

—रघुमहाकट।

सुहृद्—संज्ञा पुं० [ सं० सुहृद् ] सुमत्। बोधा। शूरवीर। (हिं०)

सुहृदीक—संज्ञा स्त्री० दे० "सोहृदी"।

सुहृदु—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक असुर का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

सुहृदत—संज्ञा स्त्री० दे० "सोहृदत"।

सुहृद—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक असुर का नाम।

सुहृदाना—कि० सं० दे० "सहृदाना"।

सुहृद—संज्ञा पुं० दे० "सुहृ" (राग)। उ०—सारंग गुंड मलार सोरठ सुहृद सुधरनि बाजहीं। बहु भौति तान तरंग सुनि गंधर्षु किरर होजहीं।—मुद्ररसी।

सुहृषि—संज्ञा पुं० [ सं० सुहृषि ] (१) एक आंगिरस का नाम। (२) सुमनु के एक पुत्र का नाम।

सुहृवीक—संज्ञा स्त्री० दे० "सुहृ" (राग)। उ०—राग रात्री सँधि मिलाई गाँवे सुधर मलार। सुहृवी सारंग रोडी भैरवी केदार।—धूर।

सुहृस्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

वि० [ धरतर ] सुंदर हाथोंवाला।

सुहृस्ती—संज्ञा पुं० [ सं० सुहृस्ति ] एक जैन आचार्य का नाम।

सुहृस्त्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

सुहृदा—संज्ञा पुं० [ हिं० सुहा ] [ स्त्री० सुही ] लाल नामक पक्षी।

सुहृदाग—संज्ञा पुं० [ सं० सोमन्य ] (१) स्त्री की सचवा रहने की अवस्था। अहिवात। सोमन्य।

सुहृदा—सुहाग मनाना = सुन्दर सोमन्य की कामना करना। पति-मूल के अलङ्घन करने के लिये कामना करना। सुहाग भरना = भोग भंगना।

(२) वह वध जो वर विवाह के समय पहनता है। जामा।

५७६

(३) मांगलिक गीत जो वर पक्ष की छियाँ-विवाह के अवसर पर गाती हैं।

संज्ञा पुं० दे० "सुहागा"।

सुहागान—संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"।

सुहागान—संज्ञा पुं० [ सं० सुग ] एक प्रकार का क्षार जो गरम गंधरी सोलों से निकलता है। यह तिब्वत, लद्दाख और कार्मोर में बहुत मिलता है। यह छीट छापने, सोना गलाने तथा औषध के काम में आता है। इसे घाव पर छिड़कने से घाव भर जाता है। मीना इसी का किया जाता है और चीनी के बनेंनो पर इसी से चमक दी जाती है। पैतक के अनुसार यह कटु, उष्ण तथा कफ, पित्त, श्लेष्मी और श्यास को हरनेवाला है।

पर्या०—लोहद्रात्री। टंकण। सुमग। स्वर्णपाचक। रस-शोधन। कनकक्षार आदि।

सुहागिन—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुहाग + इन (प्रत्य०) ] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सचवा स्त्री। सोमन्यवती।

उ०—(क) मान कियो सपने में सुहागिन भौंईं बड़ी मति-राम रिहौईं।—मतिराम। (ख) वध सुहृदी नंदलाल पै भई सुहागिन आइ।—रसनिधि।

सुहागिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"। उ०—जाय सुहागिनि वसति जो अपने पीहर धाम। लोग सुरी शंका करें यदपि सती हू धाम—शुद्धमणिसिंह।

सुहागिलक—संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिन"। उ०—तोसों दुरावति हैं न कछु जिहि तें न सुहागिलक सौति कहावे।—रघुगार्थ-कौमुदी।

सुहाता—वि० [ हिं० सहना ] जो सहता जा सके। सहने योग्य। सह्य।

उ०—(क) वही (बापु) मध्याह्नकालीन सूर्य की तीक्ष्ण तपन को सुहाता करती है।—गोलविनोद। (ख) तेल को तपाकर सुहाता सुहाता कान में डालो।—नृत्यामृत-सागर।

सुहृान—संज्ञा पुं० [ सं० सोमन ] (१) वैद्यों की एक जाति। (२) दे० "सोहृान"।

सुहृाना—संज्ञा पुं० [ सं० सोमन ] (१) शोभायमान होना। शोभा देना। उ०—(क) शंकर दील तालालक मध्य किर्षी शुक की अवली फिरि आहै। नारद बुद्धि विचारद होम किर्षी तुलसी-दल माल सुहाहै।—केदार। (ख) यज्ञ नाम हरि तय चलि भाप। कोटि अर्क सम तेज सुहाप।—गि० दास। (ग) कामदेव यहै पूजती ऐसी रही सुहाय। नव पहलव युत पैद जनु लता रही छपदाय।—बालमुकुंद गुप्त। (२) अच्छा लगना। भला मालूम होना। उ०—(क) भयो उदास—सुहात न कछु ये छन सोवत छन जाग।—धूर। (ख) कूली लता ह्रम कुंज सुहृान लगे।—मुंदरीसर्वथ।

वि० दे० "सुहावना"। उ०—(क) सारी दुखी हन वसंत



की वायु से कैसी सुहावी हो रही है।—हरिभद्र। (ख) सौमिन दियो सुदाग ललन हू भायु सयानी। जामिनि यामिनि रयाम काम की समै सुहानी।—र्यास।

**सुहायारु-**वि० [ हि० सुदान ] [ खी० सुदां ] जो देखने में भला जान पड़ता हो। सुहावना। सुंदर। उ०—(क) सर्व सुहाये ही हर्ष भये सुहाये ठाम। गोरे मुँह देँदी लर्म अरुन पीत सित रयाम।—बिहारी। (ख) यमुना पुलिन महिमा मनोहर परद सुहाई यामिनि। सुंदर शशि गुण रूप राग निधि अंग अंग अभिरामिनि।—सूर। (ग) भयहु यतावत राह सुहाई। तप तिहि सौं धोले दुहु भाई।—पद्माकर। (घ) मेरे तो नाहिने चंचल लोचन नाहिने केराव यानि सुहाई। जानों न भूषण भेद के भावन भूलहु नैनहि भीई चढ़ाई।—केराव।

**सुहायी-**संज्ञा खी० [ सं० सु + आहार ] सादी पूरी नाम का पकवान जिसमें पीठी आदि नहीं भरी रहती। उ०—(क) कान्ह कुँवर को कनछेदनी है हाथ सुहायी मेली गुर की।—सूर। (ख) धी न लगे, सुहायी होय। (कहा०)

**सुहाल-**संज्ञा पुं० [ सं० सु + आहार ] एक प्रकार का नमकीन पकवान जो मीठे का बनता है। यह बहुत मोहनदार होता है; और इसका आकार प्रायः तिकोना होता है।

**सुहाली-**संज्ञा स्त्री० दे० “सुहायी”।

**सुहावरु-**वि० [ हि० सुदान ] सुहावना। सुंदर। भला। अच्छा। उ०—(क) सारवर एक अनूप सुहावा। नाना जंतु कमल बहु छाया।—सचल। (ख) देखि मानसर रूप सुहावा। हिय हुलास पुरहनि होइ छावा।—जायसी।

संज्ञा पुं० [ सं० सु + धाव ] सुंदर हाव। उ०—किथौ यह केराव शंगार की है सिद्धि किथौ भाग की सहेली के सुहाग को सुहाव है।—वेराव।

**सुहावता-**वि० [ हि० सुदान ] [ खी० सुदावती ] अच्छा लगने वाला। सुहावना। भला। उ०—इस समय इसके मन-भावती सुहावती बात कहूँ।—लछू।

**सुहावन-**वि० दे० “सुहावना”। उ०—जगमगाव नृप गात परम पर परम सुहावन।—गिरिधर।

**सुहावना-**वि० [ हि० सुदान ] [ खी० सुदावनी ] जो देखने में भला मालूम हो। सुंदर। प्रियदर्शन। मनोहर। जैसे,—सुहावना समय, सुहावना हृदय, सुहावना रूप। कि० प्र० दे० “सुदाना”। उ०—कहु औरहु बात सुहावत है।—श्रीनिवांस।

**सुहावनपवन-**संज्ञा पुं० [ हि० सुदानवा + पवन (ध्रुव०) ] सुहावना होने का भाव। सुंदरता। मनोहरता।

**सुहावता-**वि० दे० “सुहावना”। उ०—पारसी पति की पीपर पत्र लिख्यौ किथौ मोहिनी मंत्र सुहावली।—सुंदरी-सर्वस्व।

**सुहास-**वि० [ सं० ] [ खी० सुहासा ] चारु या मधुर हास्ययुक्त। सुंदर या मधुर मुसकानवाला। उ०—उततें नेकु इती विरै राति विरै तजि कोह। तेरो यदन सुहास सौं ससि प्रकास सौं सोह—शंगार सतसई।

**सुहासी-**वि० [ सं० सुहासि ] [ खी० सुहासिनी ] सुंदर हँसने वाला। मधुर मुसकानवाला। चाहासी।

**सुहित-**वि० [ सं० ] (१) बहुत व्यापकारी। उपयोगी। (२) किया हुआ। संपादित। (३) वृत्त। संतुष्ट। (४) उपयुक्त। ठीक।

**सुहिता-**संज्ञा खी० [ सं० ] (१) भक्ति की एक जिज्ञा का नाम। (२) रुद्रजटा।

**सुहिया-**संज्ञा स्त्री० दे० “सुहा”।

**सुहृ-**संज्ञा पुं० [ सं० ] उम्रसेन के एक पुत्र का नाम।

**सुहृत्-**संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छे हृदयवाला। (२) मित्र। सखा। बंधु। दोस्त। (३) ज्योतिष के अनुसार लग्न से चौथा स्थान जिससे यह जाना जाता है कि मित्र आदि कैसे होंगे।

**सुहृत्ता-**संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सुहृत् होने का भाव या धर्म। (२) मित्रता। दोस्ती।

**सुहृद्-**संज्ञा पुं० दे० “सुहृत्”।

**सुहृद्-**संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।

**सुहृदय-**वि० [ सं० ] (१) अच्छे हृदयवाला। उन्नतमना। (२) सहृदय। स्नेहशील।

**सुहेलरा-**संज्ञा वि० दे० “सुहेला”। उ०—आज सुहेलरो सोहावन सतगुरु आये मोरे धाम।—कबीर।

**सुहेला-**वि० [ सं० शुभ ? ] (१) सुहावना। सुंदर। उ०—(क) विद्युरंसा जब भँटे सो जानै जेहि नेह। सुक्ल सुहेला उगवै दुःख झरै जिमि मेह।—जायसी। (ख) सौँस समै ललना मिलि कारै खरो जहाँ नँदलाल अलखेली। खेलन की निधि चोढ़नी माई वनै न मतो मतिराम सुहेली।—मतिराम। (२) सुखदायक। सुखद। उ०—मना नीत सुहेला। विद्युरन खरा दुहेला।—दादू।

संज्ञा पुं० (१) मंगल गीत। (२) स्तुति। स्तव।

**सुहेसा-**वि० [ सं० शुभ ] अच्छा। सुंदर। भला।

**सुहोता-**संज्ञा पुं० [ सं० सुहोत्र ] (१) वह जो उत्तम रूप से हवन करता हो। अच्छा होता। (२) सुमन्यु के एक पुत्र का नाम। (३) वितथ के एक पुत्र का नाम।

**सुहोत्र-**संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक वैदिक ऋषि का नाम। (२) एक पाईस्वय का नाम। (३) एक आश्रय का नाम। (४) एक कीरव का नाम। (५) सहदेव के एक पुत्र का नाम। (६) सुमन्यु के एक पुत्र का नाम। (७) सुहृत्पुत्र के एक पुत्र का नाम। (८) सुहृत्पुत्र के एक पुत्र का नाम। (९) सुधन्वा के एक पुत्र का नाम। (१०) एक दैत्य का नाम।

(११) एक वाग्न का नाम । (१२) वित्त के एक पुत्र का नाम । (१३) क्षत्रवृद्ध के एक पुत्र का नाम ।

सुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन प्रदेश जो गौड़ देश के पश्चिम में था । (२) धननों की एक जाति ।

सुखक-संज्ञा पुं० दे० "सुख" ।

सुखी-प्रव्य० [ सं० सह ] कारण और अघातान का चिह्न । सौं । से । उ०—(क) कदा दिनं सुखं सुनुइ पिपारे।—रघुराज ।

(ख) कहत धरि ये धरन की नई अरनई बाल । जाके रंग रंगि स्वाम सु विदित कहावत छाल।—रंगार सतसई ।

सुख-संज्ञा स्त्री० दे० "सुख" ।

सुखना-कि० सं० [ सं० सं + प्राण्य ] (१) प्राणैदिय या नाक द्वारा किसी प्रकार की गंध का महण या अनुभव करना । आघ्राण करना । वास लेना । महक लेना ।

मुदा०—सिर सुखना = बनों का गंध-कामना के लिये छोटी का मस्तक सुखना । बरों का गहदर होकर छोटी का मस्तक सुखना । जमीन सुखना = पिनक लेना । जैना ।

(२) बहुत अल्प आहार करना । बहुत कम भोजन करना । (स्यंग्य) जैसे,—आप तो खाली सुखकर उठ घैठे । (३) (साँप का) काटना । जैसे,—बोलता क्यों नहीं ? क्या साँप सुख गया है ?

सुखा-संज्ञा पुं० [ हि० सुखना ] (१) वह जो नाक से केवल सुखकर यह धतलता हो कि असुक स्थान पर जमीन के अंदर पानी या खजाना आदि है । (२) सुखकर तिकार तक पहुँचनेवाला कुत्ता । (३) भेदिया । जासूस । मुखबिर ।

सुखी-संज्ञा स्त्री० दे० "सौंद" ।

सुख-संज्ञा स्त्री० [ सं० शुण्ट ] हाथी की नाक जो बहुत लंबी होती और मोचे की और प्रायः जमीन तक छटकती रहती है । यह लंबाई में प्रायः हाथी की ऊँचाई तक होती है । इसमें दो नयने होते हैं । हाथी इसी से हाथ का भी काम लेता है । यह इतनी मजबूत होती है कि हाथी इससे पेड़ उखाड़ सकता है और भारी से भारी चीज उठाकर फेंक सकता है । इसी से यह खाने के चीजें उठाकर मुँह में रखता और दमकल की तरह पानी फेंकता और पीता है । इससे यह जमीन पर से सुई तक उठा सकता है । मुंड । मुँदादंड ।

सुख-संज्ञा पुं० [ हि० सुख + सं० दंड ] हाथी । (हिं०)

सुखदल-संज्ञा पुं० [ सं० सुख + दल (मत्स्य १) ] हाथी । (हिं०)

सुखा-संज्ञा पुं० [ सं० सुख ] हाथी की सुई या नाक । (हिं०)

सुखाल-संज्ञा पुं० दे० "सुखाल" ।

सुखी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुख" ।

सुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुखी ] एक प्रकार का सफेद कीड़ा जो कपास, अनाज, रईसी, ऊख आदि के पौधों को क्षति पहुँचाता है ।

सुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० रोषण ] सजी मिट्टी ।

सुख-संज्ञा स्त्री० [ सं० सिनुगार ] एक प्रसिद्ध बड़ा जल-जंतु जो लंबाई में ८ से १२ फुट तक होता है और जिसके हर एक जबड़े में तीस दाँत होते हैं । यह पानी के यहाय में पाया जाता है और एक जगह नहीं रहता । साँस लेने के लिये यह पानी के ऊपर आता है और पानी की सतह पर बहुत थोड़ी देर तक रहता है । शीत काल में कभी कभी यह जल के बाहर निकल आता है । इसकी अर्धें बहुत कमजोर होती हैं और यह मड़मड़े पानी में नहीं देख सकता । इसका आहार मछलियाँ और शिंगवा है । यह जल में फँसाकर या बलियों से मार मारकर पकड़ा जाता है । इसका तेल जलने तथा कई दूसरे कामों में आता है । सुँस । सुस । सुसमार ।

सुखी-प्रव्य० [ सं० मनुष्य, पु० हि० सोई ] समुदाय । सामने ।

सुखर-संज्ञा पुं० [ सं० सुख, सूकर ] [ स्त्री० सुखी ] (१) एक प्रसिद्ध स्तन्यपायी वन्यजंतु जो मुख्यतः दो प्रकार का होता है—(१) वन्य या जंगली और (२) प्राण्य या पालतू । प्राण्य सुखर घास आदि के सिवा विद्या भी खाता है, पर जंगली सुखर घास और कंद मूल आदि ही खाता है । यह प्राण्य सूकर की अपेक्षा बहुत बड़ा और बलवान् होता है । यह प्रायः मनुष्यों पर ही आक्रमण करता, और उन्हें मार डालता है । इसके कई भेद हैं । इसका खोग शिकार करते हैं और कुछ जातियाँ इसका मांस भी खाती हैं । राजपूतों में जंगली सुखरों के शिकार की प्रथा बहुत दिनों से प्रचलित है । इसके शिकार में बहुत अधिक धीरता और साहस की आवश्यकता होती है । कहीं कहीं इसकी चरबी में घुरियाँ पकाई जाती हैं; और इसका मांस पकाकर या अचार के रूप में खाया जाता है । वैद्यक के मत से जंगली सुखर का मांस सूद, बल और धीर्यवर्द्धक है ।

पदार्थ०—सूकर । सूकर । दंष्ट्री । भूदार । स्थूलनासिक । दंतयुग्म । वक्रवक्र । दूर्ध्वतर । आरानिय । भूक्षित । स्तन्य-रोमा । मुखलंगल आदि ।

(२) एक प्रकार की गाली । जैसे,—सुखर कहीं का ।

सुखरधियानी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुखर + धियाना = धनना ] (१) वह स्त्री जो प्रति वर्ष बच्चा जनती हो । धरस-धियानी । धरसाइन । (२) हर साल अधिक बच्चे जनने की क्षिया ।

सुखरमुखी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुखर + मुखी ] एक प्रकार की बड़ी ज्वार ।

सुखी-संज्ञा पुं० [ सं० सुख, प्रा० सुम ] सुगा । तोता । शुक्र । कीर । उ०—सूभा सरस मिलत प्रीतम सुख सिनुवीर रस मान्यो । जानि प्रमात प्रमानी मायो मोर भयो दोष जान्यो ।—मूर । सं० पु० [ हिं० मूर ] (१) बड़ी सुई । (२) साँप । (दना०)

सूत्रान-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो बरसा, चरमाँच और स्वाम में होता है। इसके पत्ते प्रति वर्ष झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी हमारत और नाव के काम में आती है। इससे एक प्रकार का तेल भी निकलता है।

सूर्ह-संज्ञा स्त्री० [ सं० सूची ] (१) पक्षे लोहे का छोटा पतला तार जिसके एक छोर में बहुत बारीक छेद होता है और दूसरे छोर पर तेज नोक होती है। छेद में तागा विरोधक इससे कपड़ा। सिया जाता है। सूची।

यौ०-सूर्ह तागा। सूर्ह डोरा।

क्रि० प्र०-पिरोना।-सीना।

मुहा०-सूर्ह का भाला या फावड़ा बनाना=जय ली बात की बहुत बहा बनाना। बात का बर्तगड करना।

(२) पिन। (३) महीन तार का काँटा। तार या लोहे का काँटा जिससे कोई बात सूचित होती है। जैसे,—बढ़ी की सूर्ह, तराजू की सूर्ह।

(४) अनाज, कपास आदि का अँतुआ। (५) सूर्ह के आकार का एक पतला तार जिससे गोदना गोदा जाता है। (६) सूर्ह के आकार का एक तार जिससे पगड़ी की चुनन बँधते हैं।

सूर्ह डोरा-संज्ञा पुं० [ हिं० सूँ + डोरा ] मालखंभ की एक कसरत।

विशेष—पहले सीधी पकड़ के समान मालखंभ के ऊपर चढ़ने के समय एक यगल में से पाँच मालखंभ को लपेटते हुए बाहर निकालना और सिर को उठाना पड़ता है। उस समय हाथ घुटने का बड़ा उर रहता है। इसमें पीठ मालखंभ की तरफ और मुँह लँगो की तरफ होता है। जब पाँच नीचे आ चुकता है, तब ऊपर का उलटा हाथ छोड़कर मालखंभ को छाती से लगाए रहना पड़ता है। यह पकड़ बड़ी ही कठिन है।

सूक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वाण। (२) वायु। हवा। (३) कमल। (४) हृद के एक पुत्र का नाम।

श्री संज्ञा पुं० दे० "शुक"। उ०—नासिक देख लजाने उ सूधा। सूक आइ बेसरि होइ ऊआ।—जायसी।

सूकना-क्रि० प्र० दे० "सूखना"। उ०—(क) माँगी पर कोटि चोट बढ़ये न चूकत है, सूकत है सुख सुधि भाये वहाँ हाल है।—भक्तमाल। (ख) जैसे सूकत सलिल के विकल मीन गति होय।—दीनदयाल।

सूकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूअर। शूकर। (२) एक प्रकार का हिरन। (३) कुम्हार। कुंभकार। (४) सफेद धान। (५) एक नरक का नाम।

सूकरकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाराहीकंद।

सूकरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का शालिधान्य।

सूकरक्षेत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जो मथुरा जिले में है और जो अर्थ "सोरो" नाम से प्रसिद्ध है।

सूकरखेत-संज्ञा पुं० दे० "सूकरक्षेत्र"।

सूकरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूअर होने का भाव। सूअर की अवस्था। सूअरपन।

सूकरदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का गुदग्रंथ (काँच निकलने का) रोग जिसमें गुजली और दाढ़ के साथ बहुत दर्द होता है और ज्वर भी हो जाता है।

सूकरनयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] काठ में किया जानेवाला एक प्रकार का छेद।

सूकरपादिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किवोच। कपिकच्छु। कौल। (२) सेम। कौलशिपी।

सूकरमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक नरक का नाम।

सूकराकंठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बराहकंठा।

सूकराक्षिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का नेत्र रोग।

सूकरास्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक बौद्ध देवी का नाम जिसे बाराही भी कहते हैं।

सूकराहय-संज्ञा पुं० [ सं० ] गठिचन। अंधिपण।

सूकरिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पौधा।

सूकरिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की चिड़िया।

सूकरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूअरी। शूकरी। मादा सूअर। (२) बाराहकंठा। (३) बाराहीकंद। गेंडी। (४) एक देवी का नाम। बाराही। (५) एक प्रकार की चिड़िया।

सूकरेष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कतेरु। (२) एक प्रकार का पक्षी।

सूक्री-संज्ञा पुं० [ सं० ] सपादक = चतुर्बास सहित [ स्त्री० सूकी ] बार आने के मूल्य का सिद्धा। चवत्री।  
वि० दे० "सूला"।

सूक्री-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सूका = चवत्री ? ] रिधत। घूस।

सूक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वेदमंत्रों या ऋचाओं का समूह। वैदिक स्तुति या प्रार्थना। जैसे,—देवी सूक, अग्नि सूक, श्रीसूक आदि। (२) उत्तम कथन। उत्तम भाषण। (३) महद्वाक्य।

वि० उत्तम रूप से कथित। मझी भक्ति कहा हुआ।

सूक्तचारी-वि० [ सं० सूक्तचारि ] उत्तम-वाक्य या परामर्श माननेवाला।

सूक्तदर्शी-संज्ञा पुं० [ सं० सूक्तदर्शि ] वह ऋषि जिसने वेदमंत्रों का अर्थ किया हो। संवद्रष्टा।

सूक्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मैना। चारिका।

सूक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उत्तम उक्ति या कथन। सुंदर पद या वाक्य आदि। धविया कथन।

सूक्तिरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का करताल या शार्ङ्ग।

(संगीत)

सूक्ष्मल-वि० दे० "सूक्ष्म" । उ०—साँचे की सी धारी भवि  
सूक्ष्म सुधारि, क्यौं केतोदास अंग अंग भौंद के उतारी  
सी।—केशव ।

सूक्ष्म-वि० [ सं० ] [ ली० सूक्ष्मा ] (१) बहुत छोटा । जैसे,—  
सूक्ष्म जंतु । (२) बहुत धारीक या महीन । जैसे,—सूक्ष्म यात ।  
सूक्ष्म पुं० (१) परमाणु । अणु । (२) परमेश । (३) लिपि  
शरीर । (४) शिव का एक नाम । (५) एक दानव का  
नाम । (६) एक काव्यालंकार जिसमें विषयवृत्ति को सूक्ष्म  
वेद्या से ललित करने का वर्णन होता है । यथा—कौंगलूँ मोव  
प्रभाव ते जाँन जिय की यात । इंगित ते आकार ते कहि  
सूक्ष्म भवदात।—केशव । (७) निर्ममली । (८) जीरा ।  
जीरक । (९) छल । कपट । (१०) रीटा । भरिष्क । (११)  
सुपारी । पूरा । (१२) बहू ओपधि जो रोमकूप के मार्ग से  
शरीर में प्रविष्ट करे । जैसे,—नीम, राइद, जेडी का तेल,  
सँघा नमक आदि । (१३) बृहत्संहिता के अनुसार एक  
देश का नाम । (१४) जैनियों के अनुसार एक प्रकार का  
कर्म जिसके उदय से मनुष्य सूक्ष्म जीवों की योगि में  
जन्म लेता है ।

सूक्ष्म कृष्णफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कड जागुन । छोटा जागुन ।  
छुद्र जंत्र ।

सूक्ष्मकोण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह कोण जो समकोण से छोटा हो ।

सूक्ष्मघटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सनई । छुद्र रागपुष्पी ।

सूक्ष्मचक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चक्र ।

सूक्ष्मतंडुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पोस्त दाना । खसखस । (२)  
सर्जरस । धूता ।

सूक्ष्मतंडुला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पीपल । पिप्पली । (२)  
राल । सर्जरस ।

सूक्ष्मता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूक्ष्म होने का भाव । धारीकी ।  
महीनपन । सूक्ष्मत्व ।

सूक्ष्मतुंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुभक्त के अनुसार एक प्रकार का बीदा ।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यंत्र जिसके द्वारा देखने  
पर सूक्ष्म पदार्थ बड़े दिखाई देते हैं । अणुवीक्षण यंत्र ।  
सुदृशीत ।

सूक्ष्मदर्शिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूक्ष्मदर्शी होने का भाव ।  
सूक्ष्म या धारीक बात सोचने समझने का गुण ।

सूक्ष्मदर्शी-वि० [ सं० सूक्ष्मदर्शी ] (१) सूक्ष्म विषय को समझने-  
वाला । धारीक बात को सोचने-समझनेवाला । कुशाग्र-  
बुद्धि । (२) अर्थत बुद्धिमान् ।

सूक्ष्मदल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की सरसों । देवसर्पण ।

सूक्ष्मदला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धमासा । दुरालभा ।

सूक्ष्मद्वार-संज्ञा पुं० [ सं० ] काठ की पतली पट्टी ।

सूक्ष्मदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बहू दृष्टि जिससे बहुत ही सूक्ष्म  
बातें भी दिखाई दें या समझ में आ जायें ।

संज्ञा पुं० वह जो सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें भी देख या समझ  
लेता हो ।

सूक्ष्मदेही-संज्ञा पुं० [ सं० सूक्ष्मदेहिन ] परमाणु जो बिना अनुवीक्षण  
यंत्र के दिखाई नहीं पड़ता ।

वि० सूक्ष्म शरीरवाला । जिसका शरीर बहुत ही सूक्ष्म या  
छोटा हो ।

सूक्ष्मनाभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।

सूक्ष्मपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धनिया । धन्याक । (२) काली  
जीरी । वनजीरक । (३) देवसर्पण । (४) छोटा बैर । छडु  
पट्टी । (५) माथीपत्र । सुरपण । (६) जंगली बरैरी । वन  
बरैरी । (७) लाल ऊत । छोटिलेनु । (८) कुर्कुरीदा ।  
कुर्कुरीदा । (९) कीकर । बबूल । (१०) धमासा । दुरालभा ।  
(११) उदुद । भाय । (१२) भर्कपत्र ।

सूक्ष्मपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पिचपापदा । पर्यटक । (२)  
वन तुलसी । वन-बरैरी ।

सूक्ष्मपत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वन जांमुन । (२) शतमूली ।  
(३) बृहती । (४) धमासा । (५) अपराजिता या कोयल नाम  
की लता । (६) लाल अपराजिता । (७) जौरे का पौधा ।  
(८) बला ।

सूक्ष्मपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सौंठ । शतपुष्पा । (२)  
सत्तावर । शतावरी । (३) छडु झाड़ी । (४) पौई ।  
छुद्रपौदकी ।

सूक्ष्मपत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आकाला मांसी । (२) सत्तावर ।  
शतावरी ।

सूक्ष्मपर्णा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विघारा । बृद्धाक । (२)  
छोटी रागपुष्पी । छोटी सनई । (३) वनमंदा । बृहती ।

सूक्ष्मपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राम तुलसी । रामदूती ।

सूक्ष्मपाद-वि० [ सं० ] छोटे पैरवाला । जिसके पैर छोटे हों ।

सूक्ष्मपिप्पली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जंगली पीपल । वनपिप्पली ।

सूक्ष्मपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सनई । रागपुष्पी ।

सूक्ष्मपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शंखिनी । (२) पवतिष्का  
नाम की लता ।

सूक्ष्मफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लिखोदा । मूकमुंदार । (२)  
छोटा बैर । सूक्ष्म बदर ।

सूक्ष्मफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मुँई भाँवल । भूम्यामलकी ।  
(२) ताळीसपत्र । (३) मालकंगनी । महात्पौतिष्मती लता ।

सूक्ष्मबदरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शारव । भूवदरी ।

सूक्ष्मबीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] पोस्तदाना । खसखस ।

सूक्ष्मभूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] आकाशादि छुद्र भूत जिनका पंचीकरण  
न हुआ हो ।

विशेष—सांख्य के अनुसार पंच तन्मात्र अर्थात् वायु, स्वप्न, रूप, रस और गंध तन्मात्र ये अलग अलग सूक्ष्म भूत हैं। इन्हीं पंच तन्मात्र से पंच महाभूतों की उत्पत्ति हुई है। पंचोद्भूत होने पर आकाशादि भूत स्थूल भूत कहलाते हैं। वि० दे० "तन्मात्र"।

सूक्ष्ममत्तिका—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सूक्ष्ममत्तिका ] मच्छद्। मत्तक।

सूक्ष्ममत्ति—वि० [ सं० ] तीक्ष्ण बुद्धि। जिसकी बुद्धि तेज हो।

सूक्ष्ममूला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जियंती। (२) ब्राह्मी।

सूक्ष्मलोभाङ्ग—संज्ञा पुं० [ सं० ] जैन मतानुसार मुक्ति की चौदह अवस्थाओं में से दसवीं अवस्था।

सूक्ष्मवल्ली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) ताम्रवल्ली। (२) जतुका नाम की लता। (३) करेली। लघु कारवेल।

सूक्ष्म शरीर—संज्ञा पुं० [ सं० ] पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच सूक्ष्म भूत, मन और बुद्धि इन सत्रह तत्वों का समूह।

विशेष—सांख्य के अनुसार शरीर दो प्रकार का होता है—स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। हाथ, पैर, मुँह, पेट आदि अंगों से युक्त शरीर स्थूल शरीर कहलाता है। परन्तु इस स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर इसी प्रकार का एक और शरीर बच रहता है, जो उक्त सत्रह अंगों और तत्वों का बना हुआ होता है। इसी को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। यह भी माना जाता है कि जब तक मुक्ति नहीं होती, तब तक इस सूक्ष्म शरीर का आवागमन बराबर होता रहता है। स्वर्ग और नरक आदि का भोग भी इसी सूक्ष्म शरीर को करना पड़ता है।

सूक्ष्मशर्करा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बालू। बालुका।

सूक्ष्मश्याक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की बजुरी जिसे जल बजुरी कहते हैं।

सूक्ष्मशक्ति—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का महीन सुगंधित चावल जिसे सौरों कहते हैं।

विशेष—धैर्यक के अनुसार यह मजुर, लघु तथा पिच, अर्श और दाहनाशक है।

सूक्ष्मपट्टचरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सूक्ष्म कीड़ा जो पलकों की जड़ में रहता है।

सूक्ष्मस्फोट—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कोढ़। विचित्रिका रोग।

सूक्ष्मा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जूही। सूयिका। (२) छोटी हलायची। (३) कलगी नाम का पौधा। (४) मूसली।

तालमूली। (५) बालू। बालुका। (६) सूक्ष्म प्रदामोती। (७) विष्णु की नौ शक्तियों में से एक।

सूक्ष्माद्य—वि० [ सं० ] सूक्ष्म दृष्टिवाला। तीव्रदृष्टि। तेज नजर।

सूक्ष्मारमा—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूक्ष्मत्वत्तु। शिव। महादेव।

सूक्ष्माहा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महामेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

सूक्ष्मेत्तिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूक्ष्म दृष्टि। तेज नजर।

सूक्ष्मेला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटी हलायची।

सूक्ष्म—वि० दे० "सूखा"। उ०—(क) धन में रूब सूख हर

हर ते। मनु नृप सूख बरूप न करते।—गिरिपर। (ख)

धर्मपाश भर कालपाश पुनि दुख दारन दोउ फौसी। सूख

बोध लीसै असनी युग रघुनेदन सुखरासी।—रघुराज।

(ग) सूक्ष्म शरीर निष्ठ विमि सारस यदन मलीन।—

दांकर दिग्गजय।

सूक्ष्मा—कि० प्र० [ सं० ] शुष्क, हिं० सूखा + ना (प्रत्य०) ] (१)

आर्द्रता या गीलापन न रहना। नमी या तरी का निकल

जाना। रस-हीन होना। जैसे,—कपड़ा सूखना। पत्ता

सूखना। फूल सूखना। (२) जल का पिछकूल न रहना

या बहुत कम हो जाना। जैसे,—तालाय सूखना, नदी

सूखना। (३) उदास होना। तेज नष्ट होना। जैसे,—

चेहरा सूखना। (४) नष्ट होना। बरबाद होना। जैसे,—

फसल सूखना। (५) डरना। सन्न होना। जैसे,—जान

सूखना। (६) दुबला होना। कृश होना। जैसे,—लड़का

सूख गया।

मुहा०—सूखकर कौटा होना = भयंते हुए होना। बहुत दुबला

पड़ना होना। सूखे सेत लहलहाना = भयंते दिन आना।

संयो० कि०—जाना।

सूखर—संज्ञा पुं० [ ? ] एक शैव संप्रदाय।

सूखा—वि० [ सं० ] शुष्क [ स्त्री० सूखी ] (१) जिसमें जल न रह

गया हो। जिसका पानी निकल, उड़ या जल गया हो।

जैसे,—सूखा तालाय, सूखी नदी, सूखी धोती। (२)

जिसका रस या आर्द्रता निकल गई हो। रस-हीन। जैसे,—

सूखा पत्ता, सूखा फूल। (३) उदास। तेज-रहित।

जैसे,—सूखा चेहरा। (४) हृदयहीन। कठोर। लड़।

जैसे,—बढ़ बढ़ा सूखा आदमी। (५) कोरा।

जैसे,—सूखा अन्न, सूखी तरकारी। (६) केवल। निरा।

खाली। जैसे,—(क) यह सूखा शोकीबाज है। (ख) उसे

सूखी तनसाह मिलती है।

मुहा०—सूखा टालना या टरकाना = भाकोंवा या शकक आदि

को बिना उसकी कामना पूरी किए लीयाना। सूखा जवाब देना =

साफ इन्कार करना।

संज्ञा पुं० (१) पानी न भरसना। दृष्टि का अभाव। अवर्षण।

अनादृष्टि। उ०—धारह मासउ उपजई नहाँ किया परदेस।

दादू सूखा ना पढ़ई हम भाये उस देस।—दादू।

कि० प्र०—पड़ना।

(२) नदी के किनारे की जमीन। नदी का किनारा। लह

पानी न हो।

मुहा०—सूने पर लगाना = नाव आदि का किनारे लगाना ।

(१) पेसा स्थान जहाँ जल न हो । (४) सूखा हुआ संघाट का पत्ता जो सूना मिलाकर खाया जाता है । (५) एक प्रकार की खाँसी जो बच्चों को होती है, जिससे वे प्रायः मर जाते हैं । हज्या हज्या । (६) खाना अंग न लगाने से या रोग आदि के कारण होनेवाला दुबलापन ।

मुहा०—सूखा लगाना = पेना रोग लगाना अथिने शरीर विककुल सूख बाप ।

(७) भाँग ।

सूचरक-वि० दे० "सुपद" ।

सूच-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुत्ता का अङ्कुर ।

वि० [ सं० शुचि ] निर्मल । पवित्र । (हिं०)

सूचक-वि० [ सं० ] [ की० सूचिका ] सूचना देनेवाला । यतानेवाला । दिखानेवाला । ज्ञापक । बोधक ।

संज्ञा पुं० (१) सूई । सूची । (२) सीनेवाला । दरजी । (३) नाटककार । सूत्रधार । (४) कथक । (५) बुद्ध । (६) सिद्ध । (७) पिताच । (८) कुत्ता । (९) बिहारी । (१०) कौआ । (११) सियार । गीदूद । (१२) कटहरा । जँगला । (१३) बरामदा । छत्ता । (१४) खँची दीवार । (१५) खल । विश्वासघातक । (१६) गुप्तचर । भेदिना । (१७) आयोग्य माता और क्षत्रिय पिता से उत्पन्न पुत्र । (१८) एक प्रकार का महीन चावल । सूक्ष्म शाब्दिकार्थ । सोरों । (१९) सुगलक्षोर । पिशुन ।

सूचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ की० सूचनी ] (१) बताने या जताने की क्रिया । ज्ञापन । (२) सुगंधि फैलाने की क्रिया ।

सूचना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह यात जो किसी को बताने, जताने या सावधान करने के लिये कही जाय । प्रकट करने या जतलाने के लिये कही हुई यात । विश्रापन । विश्रसि ।

सि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।—मिलना ।

(२) वह पत्र आदि जिस पर किसी को बताने या सूचित करने के लिये कोई यात लिखी हो । विश्रापन । हस्तद्वार ।

(३) अनिनय । (४) दृष्टि । (५) वेधना । छेदना । (६) भेद लेना । (७) बिसा ।

सूचि० प्र० [ सं० सूचन ] बतलाना । जतलाना । प्रकट करना ।

उ०—हृदय अनुभव हँदु प्रकासा । सूचत किरन मनोहर हासा ।—मुलसी ।

सूचनापत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र या विश्रसि जिसके द्वारा कोई बात लोगों को बतलाई जाय । वह पत्र जिसमें किसी प्रकार की सूचना हो । विश्रापन । विश्रसि । हस्तद्वार ।

सूचनीय-वि० [ सं० ] सूचना करने के योग्य । जताने लायक ।

सूचयित्तव्य-वि० दे० "सूचनीय" ।

सूचा-संज्ञा स्त्री० दे० "सूचना" ।

सूचिका-वि० [ हिं० सूचि ] जो होता में हो । सावधान ।

उ०—नागमती कहँ अगम जनाया । गई तपनि बरया जनु आवा । रही जो मुह नागिन जस द्या । जित पाएँ तन कै भइ सूचा ।—जायसी ।

सूचि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूई । (२) एक प्रकार का वृष्य । (३) केवड़ा । केतकी पुष्प । (४) सेना का एक प्रकार का व्यूह जिसमें मोर्चे से बहुत तेज और कुशल सैनिक अथ भाग में रखे जाते हैं और शेष पिछले भाग में होते हैं । (५) कटहरा । जँगला । (६) दरवाने की सितकनी । (७) निषाद पिता और यैरव्य माता से उत्पन्न पुत्र । (८) एक प्रकार का मैथुन । (९) सप बनानेवाला । सूत्रकार । (१०) कण । (११) कुत्ता । श्वेतदर्न । (१२) दृष्टि । नजर । (१३) दे० "सूची" ।

वि० [ सं० शुचि ] पवित्र । शुद्ध । (हिं०)

सूचिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिलाई के द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला, दरजी । सूचिक ।

सूचिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूई । (२) हाथी की सूँड । हस्तिशुंड । (३) एक भप्सरा का नाम । (४) केवड़ा । केतकी ।

सूचिकाधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथी । हस्ति ।

सूचिकाभरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो सधियात, विद्युच्चिका आदि प्राणनासक रोगों की अंतिम औषध मानी गई है । पिच्छक अंतिम अवस्था में ही इसका प्रयोग किया जाता है । यदि इससे फल न हुआ तो, कहते हैं, फिर रोगी नहीं बच सकता । इसके बनाने की कई विधियाँ हैं । एक विधि यह है कि रस, गंधक, सीसा, काष्ठपिप और काले सॉण का विष इन सब को खरल कर क्रम से रोहित मछली, भँस, मोर, बकरे और सूअर के पित्त में भावना देकर सरसों के बराबर गोली बनाई जाती है जो अदरक के रस के साथ दी जाती है ।

दूसरी विधि यह है कि काष्ठ पिप, सर्प विष, दाहसुष प्रत्येक एक एक भाग, हिंगुल तीन भाग, इन सब को रोहित मछली, भँस, मोर, बकरे और सूअर के पित्त में एक एक दिन भावना देकर सरसों के बराबर गोली बनाते हैं जो नागिलक के जल के साथ देते हैं । तीसरी विधि यह है कि विष एक पल और रस चार माते, इन दोनों को एक साथ दाराय घृत में बंद करके सुखाते हैं और बाद दो पहर तक बराबर आँव देते हैं । सधियात के रोगी को—चाहे यह अचेत हो या मृतप्राय—सिर पर उल्टुरे से क्षत कर सूई की नोक से यह रस टोकर उसमें भर देते हैं । सॉण के काटने पर भी इसका प्रयोग किया जाता है । कहते हैं कि इन सब प्रयोगों के कारण रोगी के शरीर में बहुत अधिक

गरमी आने लगती है; इसी लिये इनके उपरांत अनेक प्रकार के शीतल उपचार किए जाते हैं।  
**सूचिकासूत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंख।  
**सूचित**-वि० [ सं० ] (१) जिसकी सूचना दी गई हो। जताया हुआ। बताया हुआ। कहा हुआ। ज्ञापित। प्रकाशित। (२) बहुत उपयुक्त या योग्य। (३) जिसकी हिंसा की गई हो।  
**सूचिपत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का ऊख। (२) शिरियारी। चौपतिया। सिनिवार शाक। (३) दे० "सूचीपत्र"।  
**सूचिपत्रक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का ऊख। (२) शिरियारी। चौपतिया। सिनिवार शाक।  
**सूचिपुष्प**-संज्ञा पुं० [ सं० ] केवड़ा। केतकी वृक्ष।  
**सूचिभेद्य**-वि० [ सं० ] (१) सूई से भेदन होने योग्य। (२) बहुत घना। जैसे,—सूचिभेद्य अंधकार।  
**सूचिमल्लिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नेवारी। नवमल्लिका।  
**सूचिरदन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] नेचला।  
**सूचिरोमा**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूचियोग्यन् सूजर। बंराह।  
**सूचिषट्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] गन्ध।  
**सूचिचदन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नेचला। नकुल। (२) मच्छर। मराक।  
**सूचिशालि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का महीन चावल। सूक्ष्म शालिधान्य। सोरों।  
**सूचिशिखा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूई की नोक।  
**सूचिसूत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूई में पिरोने या सीने का धागा।  
**सूची**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूचिन् (१) चर। भेदिया। (२) पिछुन। सुगुलखोर। (३) खल। हुष्ट।  
 संज्ञा स्त्री० (१) कपड़ा सीने की सूई। (२) रष्टि। नजर। (३) केतकी। केवड़ा। (४) सेना का एक प्रकार का व्यूह, जिसमें सैनिक सूई के आकार में रखे जाते हैं। (५) सफेद कुत्ता। (६) एक ही प्रकार की बहुत सी चीजों या उनके अंगों, विषयों आदि की नामावली। तालिका। फेहरिस्त।  
**यौ०**—सूचीपत्र।  
 (७) साक्षी के पाँच भेदों में से एक भेद। वह साक्षी जो बिना छुलाए स्वयं आकर किसी विषय में साक्ष्य दे। स्वयमुक्ति। (८) पिंगल के अनुसार एक रीति जिसके द्वारा मासिक छंदों की संख्या की शुद्धता और उनके भेदों में आदि-अंत लघु या आदि-अंत गुरु की संख्या जानी जाती है। (९) सुश्रुत के अनुसार सूई के आकार का एक प्रकार का बंत्र जिसके द्वारा शरीर के शक्तों में ढोंके लगाए जाते थे।  
**सूचीक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] मच्छर आदि ऐसे जंतु जिनके टंक सूई के रूपमान होते हैं।

**सूचीकर्म**-संज्ञा पुं० [ सं० सूचिकर्मन् ] सिलाई या सूई का काम जो ६४ कलाओं में से एक है।  
**सूचीदल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सितारवा या सुनिष्पणक नामक शाक। शिरियारी।  
**सूचीपत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वण पत्र या पुस्तिका आदि जिसमें एक ही प्रकार की बहुत सी चीजों अथवा उनके अंगों की नामावली हो। तालिका। (२) ध्वजसंघियों का वह पत्र या पुस्तक आदि जिसमें उनके यहाँ मिलनेवाली सब चीजों के नाम, दाम और विवरण आदि दिए रहते हैं। तालिका। फेहरिस्त।  
**सूचीपत्रक**-संज्ञा पुं० दे० "सूचीपत्र"।  
**सूचीपत्रा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोंडर वृक्ष। गंड वृक्षा।  
**सूचीपत्रा**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का एक प्रकार का व्यूह।  
**सूचीपाश**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूई का छेद या नाका जिसमें धागा पिरोया जाता है।  
**सूचीपुष्प**-संज्ञा पुं० दे० "सूचिपुष्प"।  
**सूचीभेद**-वि० दे० "सूचिभेद्य"।  
**सूचीमुख**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूई की नोक या छेद जिसमें धागा पिरोया जाता है। (२) एक नरक का नाम। (३) हीरक। हीरा। (४) कुना।  
**सूचीरोमा**-संज्ञा पुं० दे० "सूचिरोमा"।  
**सूचीघक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (२) एक असुर का नाम।  
**सूचीवक्त्र**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह योनि जिसका छेद इतना छोटा हो कि वह पुरुष के संसर्ग के योग्य न हो। वैद्यक के अनुसार यह शीस प्रकार के योनि रोगों में से एक है।  
**सूच्यमल्ल**-वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—ब्रह्म लीं सूच्यम है कति राधे कि, देखी न काहू सुनी सुन राखी।—सुंदरीसर्वत।  
**सूच्य**-वि० [ सं० ] सूचना के योग्य। जताने लायक।  
**सूच्यग्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूई का अग्र भाग। सूई की नोक।  
**सूच्यग्रस्तंभ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] मीनार।  
**सूच्यग्रस्तूलक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का तृण जूना। उल्लू। उल्लय।  
**सूच्याकार**-वि० [ सं० सूची + आकार ] सूई के आकार का। लंबा और नुकीला।  
**सूच्यार्थ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] साहित्य में किसी पद आदि का वह अर्थ जो शब्दों की व्यंजना शक्ति से जाना जाता हो।  
**सूच्यार्थ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] चूहा। सूपिक।  
**सूच्याह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिरियारी। सितारवा। सुनिष्पणक शाक।  
**सूक्ष्म**-वि० दे० "सूक्ष्म"। उ०—कियों बासुकीं भं सु वासु कीनो रथ ऊपर। आदि शक्ति की शक्ति कियों सोहति सूक्ष्मतर।—गिरिघर।

सूक्तिमयी-वि० दे० "सूक्ति" । उ०—जाके बैसी पीर है तैसी करह प्रकार । को सूक्तिम को सहन में को निरतक वेदि वार ।—दादू ।

सूजंघ-संज्ञा स्त्री० [ सं० जंघ ] सूजंघ । सूजङ्ग । (दि०)

सूजन-संज्ञा स्त्री० [ हि० सूजना ] (१) सूजने की क्रिया या भाव । (२) सूजने की अवस्था । कुञ्ज । शोथ ।

सूजना-क्रि० प्र० [ पा० सोजिष, मि. सं० रोष ] रोग, चोट या घात प्रकोप आदि के कारण शरीर के किसी अंग का फूलना । शोथ होगा ।

सूजनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सूजनी" ।

सूजा-संज्ञा पुं० [ सं० सूज, हि० सूज, सूजी ] (१) यदी मोटी सूई । सूधा । (२) लोहे का एक बीजार जिसका एक तिरा तुकीला और दूसरा चिपटा और छिद्रा हुआ होता है । इससे कृत्र्यंद लोग कूँचे को टुकरा बाँधते हैं । (३) रेशम फेनेवालों का सूज के आकार का लोहे का एक बीजार जो मसैरू में लगा रहता है । (४) लूँटा जो छकड़ा गाड़ी के पीछे की ओर बसे टिकाने के लिये लगाया जाता है ।

सूजाफ-संज्ञा पुं० [ का० ] सूत्रंद्रिय का एक प्रदाहयुक्त रोग जो वृषित लिंग और योनि के संसर्ग से उत्पन्न होता है । इस रोग में लिंग का सूँद और जिद्र सूज जाता है; ऊपर की छाल सिमट जाती है तथा उसमें सूजली और पीड़ा होती है । सूत्रनाली में बहुत जलन होती है, और उसे दवाने से सफेद रंग का गाढ़ा और लसीला मवाद निकलता है । यह पहली अवस्था है । इसके बाद सूत्रनाली में घाव हो जाता है, जिससे सूत्रत्याग करने के समय अव्यत कष्ट और पीड़ा होती है । इंद्रिय के छेद में से पीव के समान पीला मवाद या कमी कमी पतला स्राव होने लगता है । शरीर के निच निच अंगों में पीड़ा होने लगती है । कमी कमी पेशाब बंद हो जाता है या रक्त स्राव होने लगता है । छियाँ को भी इससे बहुत कष्ट होता है, पर उतना नहीं जितना पुरुषों को होता है । इसका प्रभाव गर्भनाश पर भी पड़ता है जिससे छियाँ बन्धा हो जाती हैं । औपसंगिक प्रमेह ।

सूजी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सूजि = सूज ] गेहूँ का दरदरा भाटा जो दलुआ, छद्द तथा दूसरे पकवान बनाने के काम में आता है ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० [ सूजी ] (१) सूई । उ०—तादिव सौं मेह भर निर मेरे गेहूँ आह गूजन न देत कदि मैं ही देखैगो बनाय । घरग्यों न माने केहूँ मोदि छागे दर यही कमल से कर कहूँ सूजी मति गदि जाय ।—कार्यकलाप (२) वह सूधा जिससे यदोपित लोग कंबल की परिधियाँ सते हैं ।

संज्ञा पुं० [ सं० सूजी ] कपड़ा सुनिवाला । दुरमी । सूचिक । उ०—एक सूजी ने भाय दूँ कवत कर सदे हो कर जोद के ४=०

कहा, महाराज !..... दया कर कहिए तो बाये पहारकै ।—छन्द ।

संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार का खरस जो माँद और पूने के मेल से बनता है और बाजों के पुर्वे जोड़ने के काम में आता है ।

सूभ-संज्ञा स्त्री० [ हि० सूभना ] (१) सूभने का भांर । (२) रहि । नजर ।

यौ०—सूभवृक्ष = समक । अन्न ।

(३) मन में उत्पन्न होनेवाली अच्छी कल्पना । उद्भावना । उपज । जैसे,—कवियों की सूभ ।

सूभना-क्रि० प्र० [ सं० भूभान ] (१) दिखाई देना । देष्ट पदना । प्रत्यक्ष होना । नजर आना । जैसे,—इमें कुछ गहाँ सूभ पड़ता । उ०—आँसि न जो सूदत न कानन तैं सुनियत केसोराह जैसे हुम शोकन में गाये ही ।—केशव । (२) ध्यान में आना । खयाल में आना । जैसे,—(क) इतने में उसे एक पेशी घात सूझी जो मेरे लिये अत्यंत भय थी । (ख) उसे कोई बात ही नहीं सूझती । उ०—भसमंगल मन को जिते सो उपाह न सूझै ।—तुलसी ।

क्रि० प्र०—रूना ।—पदना ।

(३) छुड़ी पाना । मुक होना । उ०—रामा लियो चोर सों गोला । गोला देत चोर अस गोला । जो मोहि जनम कियो मैं चोरी । दूई दहन लौ मोरि गदोरी । अस कहि सो गोला दे सूयो । साहु सिपाही सौं हुत यूयो ।—रघुराज ।

सूभवृक्ष-संज्ञा स्त्री० [ हि० सूभना + वृक्ष ] देवने और समशने की शक्ति । समस्त । अह ।

सूभना-संज्ञा पुं० [ देश० ] काशी संगीत में एक मुकाम (राग) के पुत्र का नाम ।

सूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] पढ़ने के सप करपे, विशेषतः कोट और पतलन आदि ।

यौ०—सूटकेस ।

सूटकेस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का विषय यक्ष जिसमें पढ़ने के कपड़े रखे जाते हैं ।

सूटा-संज्ञा पुं० [ अ० ] सूँद से तयाष्ट, धरम या गौँजे का पुर्माँ जोर से सौंभना ।

क्रि० प्र०—भारना ।—लगाना ।

सूटरी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] भूसा । सडुरी ।

सूड-संज्ञा स्त्री० दे० "सूँद" ।

सूडो-संज्ञा पुं० [ सं० सूड ] शुक पत्ती । तोता । (दि०)

सूत-संज्ञा पुं० [ सं० सू ] (१) रुई, रेशम आदि का मदीन वार जिससे कपड़ा बुना जाता है । संतु । सूता ।

क्रि० प्र०—कातना ।



**मुद्गा**—सूत सूत = जग जग । तनिक तनिक । सूत बराबर = बहुत सूतम । बहुत महीन ।

(२) रुद्ध का बड़ा हुआ तार जिससे कपड़ा आदि सीते हैं । तागा । धागा । डोरा । सूत्र । (३) बच्चों के गले में पहनने का गंदा । (४) करघनी । उ०—कुंजगृह मंजु मधु मधुप भमंद् रावें तामे काल्हि स्वामे विपरीत रति राचीरी । द्विजदिव कौर कलकंड की पुनि जैसी तैसिये अभूत भाई सूत पुनि माचीरी ।—रसकसुमाकर ।

**क्रि० प्र०**—पहनना ।

(५) नापने का एक मान । ( ४र सूत की एक पट्टन, चार पट्टन का एक तसू और चौबीस तसू का एक इमारती गज होता है । ) (६) पत्थर पर निदान डालने की डोरी । संगतराश लोग इसे कोयला मिले हुए तेल में डुबाकर इससे पत्थर पर निदान कर उसकी सीध में पत्थर काटते हैं । (७) लकड़ी धीरने के लिये उस पर निदान डालने की डोरी ।

**मुद्गा**—सूत धरना = निदान बरना । रेता खींचना । बड़े लोग जब किसी लकड़ी को चारने लगते हैं, तब सीधी बिछरों के लिये सूत को किसी रंग में डुबाकर उससे उस लकड़ी पर रेता करते हैं । इसी को सूत भरना करते हैं । उ०—मनहुँ मानु मंडलहि सवारत, धरयो सूत विधि सुत विचित्र मति ।—तुलसी ।  
संज्ञा पुं० [ सं० ] [ जी० सूतो ] (१) एक वर्षासंकर जाति, मनु के अनुसार जिसकी उत्पत्ति क्षत्रिय के औरस और ब्राह्मणी के गर्भ से है और जिसकी जीविका रथ हाँकना या । (२) रथ हाँकनेवाला । सारथि । उ०—कर लगामे लै सूत भूत मजबूत बिसागत । देखि बृहदरथपूत सुरथ सूत्रज रथ खानत ।—गि० दास । (३) बंदी जिनका काम प्राचीन काल में राजाओं का यशोगान करना या । भाट । चारण । उ०—(क) मागध सूत और बंदिजन और और येन गयो ।—सूर । (ख) बहु सूत मागध बंदिजन नृप मचन गुनि दरपित चले ।—रामाधमच । (४) पुराणवक्ता । पौराणिक । उ०—बोचन लते सूत पुराणा । मागध वंशावली बखाना ।—रघुराज ।

**विशेष**—सब से अधिक प्रसिद्ध सूत होमहरणं हुए है, जो वेदव्यास के शिष्य थे और जिन्होंने वैशंपायण में ऋषियों को सब पुराण सुनाए थे ।

(५) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम । (६) बड़ई । सूत्रकार । सूत्रधार । (७) सूर्य । (८) पारा । पारद ।

वि० [ सं० ] (१) प्रसूत । उलपंत । (२) मेरणा किया हुआ । मेरित ।

संज्ञा पुं० [ सं० सूत्र ] बोद्धे अक्षरों या शब्दों में ऐसा पद या वचन जो बहुत अर्थ प्रकाशित करता हो । उ०—केहि विधि

करिय प्रबोध सकल दरसन अक्षराने । सूत सूत मई सदस सूत किय फल न सुझाने ।—सुभाकर ।

वि० [ सं० सूत्र = सूत ] भला । अच्छा । उ०—करमहीन बाना भगवान । सूत कुसूत लियो पहिचान ।—कबीर ।  
संज्ञा पुं० दे० "सुत" । उ०—उत्तमी सोच के मनहि मैं खयो आहूँ भूत । यहै विचारत हूँ तदपि नृप न छोडू । सूत सूत ।—पद्माकर ।

**सूतक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जन्म । (२) अशौच जो संतान होने पर परिवारवालों को होता है । जननाशौच । (३) मरणाशौच जो परिवार में किसी के मरने पर होता है । (४) सूर्य या चंद्रमा का ग्रहण । उपराग ।

**क्रि० प्र०**—घृटना ।—लगना ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] पारा । पारद ।

**सूतक गेह**—संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार" ।

**सूतका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसने अभी हाल में प्रसव किया हो । सद्यःप्रसूता । जघा ।

**सूतकागृह**—संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार" ।

**सूतकादि लेप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में किरंग घात पर लगाने का लेप जिसमें पारंग, हिंगुल, हीना कसीस तथा आंबिकासार संघक पड़ती हैं । इसके दाने की विधि यह है कि एक चीज छुद करके खरल की जाती है । अनंतर सूखी चुकनी या पानी आदि में मिंगोकर किरंग घात पर लगाई जाती है ।

**सूतकाध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह खाद्य पदार्थ जो संतान-जन्म के कारण अशुद्ध हो जाता है । (२) सूतकी के घर का भोजन ।

**सूतकाशौच**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह अशौच जो संतान होने पर होता है । जननाशौच ।

**सूतकी**—वि० [ सं० सूतकिन् ] (१) घर या परिवार में संतान-जन्म के कारण जिसे अशौच हो । (२) परिवार में किसी की मृत्यु होने के कारण जिसे सूतक लगा हो ।

**सूतग्रामणी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गाँव का मुखिया ।

**सूतज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्ण ।

**सूततनय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्ण ।

**विशेष**—अधिरथ सारथि ने अर्जुन को पाला था; इसी लिये कर्ण सूत-तनय या सूतपुत्र कहलाते हैं ।

**सूतता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूत का भाव, धर्म या कार्य ।

(२) सारथि का कार्य ।

**सूतधार पगरना**—संज्ञा पुं० [ हिं० सूतधार + पगरना ] सोने या चाँदी के नक्षत्रों की एक छेनी जो सरावने के काम में आती है ।

**सूतधार**—संज्ञा पुं० [ सं० सूतधार ] बड़ई । उ०—अगर चंद्रप की पालनो गढ़ई गुर डार सुचार । लै आयो गदि डोलनी विदवकमाँ सो सुतधार ।—सूर ।

सूतनेदन-गंगा पुं० [ सं० ] (१) उमथ्रवा । (२) कर्ण ।  
 सूतना-किं प्र० दे० "सोना" । उ०—(क) सूते सपने ही  
 सदै संस्रन संताप रे।—जुलसी । (ख) श्रीरसुनाथ वसिष्ठ ते  
 कयो स्वप्न के मादि । देखत हौं मैं दशसुधि भयपरा सूतन  
 नाहि।—विश्राम । (ग) मोर तोर में सदै विद्युत् । जननी  
 उदर गर्भ महें सूता।—कबीर ।

सूतपुत्र-घटा पुं० [ सं० ] (१) सारथि का पुत्र । (२) सारथि ।  
 (३) कर्ण । (४) कौचक ।

सूतपुत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्ण ।

सूतफूल-संज्ञा पुं० [ हिं० सूत + फूल ] गद्दीन भाटा । मैदा । (क०)

सूतराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] पारत । पारद ।

सूतलड-संज्ञा पुं० [ हिं० सूत + लड ] अरदट । रईट ।

सूतप्रथा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गाय ।

सूतसय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

सूता-संज्ञा पुं० [ सं० सूत ] (१) कपड़ा, रेशम आदि का तार

जिससे कपड़ा बुना जाता है । तंतु । सूत । (२) एक  
 प्रकार का भूरे रंग का रेशम जो मालदह (बंगाल) से  
 आता है । (३) जूते में वह बारीक चमड़ा जिसमें टूक का  
 पिछला हिस्सा आकर मिलता है । (बमरत) ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह स्त्री जिसने यथा जना हो । प्रसूता ।

संज्ञा पुं० [ सं० शुक्ति ] वह स्त्रीपुं जिसे डोटे में की अफीम  
 काछते हैं ।

सूति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जन्म । (२) प्रसव । जनन । (३)  
 उत्पत्ति का स्थान या कारण । इदगम । (४) फल या फसल  
 की उत्पत्ति । वैदावा । (५) वह स्थान जहाँ सोमरस  
 निकाला जाता था । (६) सोमरस निकालने की क्रिया ।  
 (७) सीमा । सीमन । (क०)

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम ।  
 (२) हंस ।

सूतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह स्त्री जिसने अभी हाल में  
 बच्चा जना हो । सद्यजन्मना । जन्मा । (२) वह गाय  
 जिसने हाल में बच्चा जना हो । (३) दे० "सूतिका रोग" ।

सूतिकागार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह कमरा या कोठरी जिसमें स्त्री  
 बच्चा जने । सौरी । प्रसवगृह । भित्ति ।

सूतिकागार-वैद्यक के अनुसार, सूतिकागार भाट हाथ लंबा और  
 चार हाथ चौड़ा होना चाहिए तथा इसके उत्तर और पूर्व की  
 ओर द्वार होने चाहिये ।

सूतिकागृह-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार" ।

सूतिकागेह-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार" ।

सूतिकाग्रयम-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार" ।

सूतिका रोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रसूता को होनेवाले रोग जो वैद्यक  
 के अनुसार अनुचित आहार, विहार, हंस, विषमासन तथा

अजीर्णवत्या में भोजन करने से होते हैं । प्रसूता के अंगों  
 का हटना, अग्निमांश, निर्वलता, शरीर का कर्पिता, सूजन,  
 प्रहणी, अतिसार, झूठ, खँसी, उबर, नाक मुँह से फफ  
 निकलना आदि सूतिका रोग के लक्षण हैं ।

सूतिकाकाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रसव करने या बच्चा जनने का समय ।

सूतिकाघस्रम रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूतिका रोग की एक औषध  
 जो पारे, गंधक, सोने, चाँदी, स्वर्णमासिक, कपूर, अभ्रक,  
 हरताल, अफीम, जायत्री और जायफल के संयोग से बनती  
 है । ये सत्र चीजें बराबर बराबर लेकर इनमें मोषे, चिरंटी  
 और मोबरस की भावना दी जाती है । अनंतर दो दो रची  
 की गोठियों बनाई जाती हैं । वैद्यक के अनुसार इसके सेवन  
 से सूतिका रोग शीघ्र दूर हो जाता है ।

सूतिकापास-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार" ।

सूतिकापत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संतान के जन्म से छठे दिन  
 होनेवाली पूजा तथा अन्य कृत्य । छठी ।

सूतिकाहर रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूतिका रोग की एक औषध  
 जिसमें हिंगुल, हरताल, फाल्गु-भस्म, छौड, खरपर, धतूरे के  
 बीज, यवशार और सुहागे का खावा बराबर बराबर पक्ता है ।  
 इन चीजों में बहदे के काथ की भावना देकर अर के बराबर  
 गोश्री बनाते हैं । कहते हैं कि इसके सेवन से सूतिका रोग  
 दूर हो जाता है ।

सूतिगृह-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार" ।

सूतिमारुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रसव-पीड़ा । यथा जनने के समय  
 की पीड़ा ।

सूतिमास-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मास जिसमें किसी स्त्री को  
 संतान उत्पन्न हो । प्रसवमास । वैजनन ।

सूतिघान-संज्ञा पुं० दे० "सूतिमारुत" ।

सूती-वि० [ हिं० सूत + ई (अण०) ] सूत का बना हुआ । जैसे,—  
 सूती कपड़ा । सूती गलीचा ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० शुक्ति ] (१) स्त्रीपुं । उ०—सूती में नहि  
 सिधु समाई।—विश्राम । (२) वह स्त्रीपुं जिसे डोटे में  
 की अफीम काछते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सूत ] सूत की पत्ती । भाटिन ।

सूतीघर-संज्ञा पुं० दे० "सूतिकागार" ।

सूतकार-संज्ञा पुं० दे० "सूतकार" ।

सूतार-वि० [ सं० ] बहुत धैर्य । बहुत यत्नर ।

सूतघान-वि० [ सं० ] चतुर । होशियार ।

सूतपर-संज्ञा पुं० [ सं० ] साराप सुबाने की क्रिया । सुत-संधान ।

सूतसलावती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माईवपुत्राण के अनुसार एक  
 नदी का नाम ।

सूत्य-संज्ञा पुं० दे० "सूत्य" ।

सूत्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यज्ञ के उपरान्त होनेवाला स्नान ।

अवभृत् । (२) सोमरस निकालने की क्रिया । (३) सोमरस पीने की क्रिया ।

सूत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूत । तंहु । तार । तागा । दोरा । (२) यज्ञसूत्र । यज्ञोपवीत । जनेऊ । (३) प्राचीन काल का एक मान । (४) रेखा । लकीर । (५) करघनी । कटि-भूषण । (६) नियम । ध्यवस्था । (७) बोधे धश्रों या प्राश्रों में कदा हुआ ऐसा पद या वचन जो बहुत अर्थ प्रकट करता हो । सारगमित संक्षिप्त पद या वचन । जैसे,—ब्रह्मसूत्र, व्याकरण सूत्र ।

विशेष—हमारे यहाँ के दुर्शन भादि द्राक्ष तथा व्याकरण सूत्र रूप में ही प्रथित हैं । ये सूत्र देखने में तो बहुत छोटे वाक्यों के रूप में होते हैं, पर उनमें बहुत गूढ़ अर्थ गमित होते हैं । (८) कारण । निमित्त । मूल । (९) पता । सूत्राग । (१०) एक प्रकार का वृक्ष ।

सूत्रकंठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ब्राह्मण । (सूत्र कंठस्थ रहने के कारण अथवा गले में यज्ञसूत्र पहनने के कारण ब्राह्मण सूत्रकंठ कहलाते हैं ।) (२) क्यूतर । कपोत । (३) खंजन । खंजरीट ।

सूत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूत । तंहु । तार । (२) हार । (३) धाते या मँद्रे की बनी हुई सिवई ।

सूत्रकर्त्ता-संज्ञा पुं० [ सं० सूत्रकर्त्तृ ] सूत्र ग्रंथ का रचयिता । सूत्र-प्रणेत ।

सूत्रकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० सूत्रकर्मन् ] (१) यदई का काम । (२) मेमार या राज का काम ।

सूत्रकर्मरुत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यदई । (२) गृह-निर्माणकारी । वास्तुशिल्पी । मेमार । राज ।

सूत्रकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसने सूत्रों की रचना की हो । सूत्र-रचयिता । (२) यदई । (३) छुलाहा । तंतुवाय । (४) मकड़ी ।

सूत्ररुत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूत्र रचयिता । सत्रकार । (२) यदई । (३) मेमार । राज ।

सूत्रकोण-संज्ञा पुं० [ सं० ] घनरूप ।

सूत्रकोणक-संज्ञा पुं० दे० "सूत्रकोण" ।

सूत्रकोश-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूत की अंटी । पेंचक । लच्छा ।

सूत्रक्रीडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का सूत का खेल, जो ६४ कलाओं में से एक है ।

सूत्रगंडिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का लकड़ी का औजार । जिसका उपयोग प्राचीन काल में तंतुवाय लोग करवा चुनने में करते थे ।

सूत्रग्रंथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूत्र रूप में रचित ग्रंथ । वह ग्रंथ जो सूत्रों में हो । जैसे,—सांख्यसूत्र ।

सूत्रग्रह-वि० [ सं० ] सूत धारण या ग्रहण करनेवाला ।

सूत्रण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूत्र धारण या रचने की क्रिया । (२) सूत घटने की क्रिया ।

सूत्रतंतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूत । तार ।

सूत्रतकुटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तक्रडा । टेकुया ।

सूत्रदरिद्र-वि० [ सं० ] (घर) जिसमें सूत कम हो । सूत्रहीन । शैसरा । सिंहड ।

सूत्रधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सूत्रों का पंडित हो । (२) दे० "सूत्रधार" (१) । उ०—विधि हरि वंदित पाप जग-नाटक के सूत्रधर ।—शंकर दि० ।

वि० सूत्र या सूत धारण करनेवाला ।

सूत्रधार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नाट्यशाला का व्यवस्थापक या प्रधान नट, जो, भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार, पूर्व रंग अर्थात् नदी पाठ के उपरान्त खेले जानेवाले नाटक की प्रस्तावना करता है । वि० दे० "नाटक" । (२) यदई । सुतार । काणशिल्पी । (३) इंद्र का एक नाम । (४) पुराणानुसार एक वर्णसंकर जाति जो लकड़ी आदि बनाने और चीरने या गढ़ने का काम करती है । ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति शूद्रा माता और विधकर्म पिता से है ।

सूत्रधारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूत्रधार अर्थात् नाट्यशाला के व्यवस्थापक की पत्नी । नदी ।

संज्ञा पुं० [ सं० सूत्रधारिन् ] सूत्र धारण करनेवाला ।

सूत्रधृक्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दे० "सूत्रधार" । (२) वास्तु-शिल्पी । मेमार । राज ।

सूत्रपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रारंभ । शुरु । जैसे,—इस काम का सूत्रपात हो गया ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

सूत्रपिटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्ध सूत्रों का एक प्रसिद्ध संग्रह । वि० दे० "त्रिपिटक" ।

सूत्रपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपास का पीया ।

सूत्रमिद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपड़े सीनेवाला । दरजी ।

सूत्रभृत्-संज्ञा पुं० दे० "सूत्रधार" ।

सूत्रमध्यभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञधृक् । शहकी निर्वास । कुंडुर । धूना ।

सूत्रयंत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) करघा । ढरकी । (२) सूत का बना जाल ।

सूत्रधी-वि० [ सं० सूत्र ] सूत्र जानने या रचनेवाला । उ०—त्रिवेदः त्रिकाळः त्रयी वेदकर्त्ता । त्रिधोता कृती सूत्रधी लोकभर्त्ता ।—केशव ।

सूत्रला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तकला । टेकुया ।

सूत्रवाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूत चुनने की क्रिया । वयन । चुनार ।

सूत्रविद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूत्रों का ज्ञाता या पंडित ।

सूत्रधीया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राचीन काल की एक प्रकार की धागा जिसमें तार की जगह यज्ञाने के छिपे सूत्र लगे रहते थे।

सूत्रोपटन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कपड़ा। टाकी। (२) बुनने की क्रिया। घबन।

सूत्रशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर।

सूत्रांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] उत्तम कौशल।

सूत्रांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वीर सूत्र।

सूत्रांतक-वि० [ सं० ] वीर सूत्रों का ज्ञाता या पंडित।

सूत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० सूत्रकार ] मरुड़ी। (अनेकार्थ)

सूत्रामा-संज्ञा पुं० [ सं० सूत्रामय ] (१) जीवामा। (२) एक प्रकार की परम सूक्ष्म वायु जो धनंजय से भी सूक्ष्म कही गई है।

सूत्रामा-संज्ञा पुं० [ सं० सूत्रामय ] इंद्र का एक नाम।

सूत्राली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) माला। द्वार (२) गले में पहनने की मेखला।

सूत्री-संज्ञा पुं० [ सं० सूत्रिन् ] (१) कौम। काठ। (२) दे० "सूत्रधार" (३)।

वि० सूत्रयुक्त। जिसमें सूत्र हो।

सूत्रीय-वि० [ सं० ] सूत्र-संबंधी। सूत्र का।

सूधन-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] पायजामा। सुधना। उ०—धैनी सुभग नितंबनि शोभत मंदगामिनी नारी। सूधन जवन बाँधि नारायेंद तिरनी पर छवि भारी।—सूर।

संज्ञा पुं० घरमा, स्वाम और मणिपुर के जंगलों में होनेवाला एक प्रकार का पेड़। इसकी छकड़ी बहुत अच्छी होती है और इसका रस वारगिप्त का काम देता है। इसे 'खेक' भी कहते हैं।

सूधनी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] (१) छियों के पहनने का पायजामा। सुधना। (२) एक प्रकार का कंद।

सूधारो-संज्ञा पुं० [ सं० सूत्रकार पु० हि० सुधार ] बढ़ई। सुवार। छाती।

सूध-संज्ञा पुं० [ जा० ] (१) छाम। फायदा। (२) व्याज। वृद्धि। कि० प्र०—होना।—पढ़ना।—पाना।—लेना।—देना।—रहना।

सूहा०—सूध दर सूध = व्याज पर ध्यान। चक्रवर्ति। सूध पर रगामा = सूध लेकर शय्या उभार देना।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रसोईघा। सूपकार। पाचक। (२) पक्षी हुई दाल, रसा, सरकारी आदि। व्यंजन। (३) सारथि का काम। सारथ्य। (४) अरण्य। पार। (५) शीप। घेव। (६) एक प्राचीन जनपद का नाम। (७) शोध। लोभ।

सूधक-वि० [ सं० ] विनाश करनेवाला।

सूधकरम-संज्ञा पुं० [ सं० सूधकरम् ] रसोईघा का काम। रंधन। पाक क्रिया। भोजन बनाना।

सूधकशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० सूधकाला ] रसोईघर। पाकशाला। (हि०)

सूधखोर-संज्ञा पुं० [ जा० ] वह जो सूध मूद या व्याज लेता हो। सूधता-संज्ञा स्त्री० दे० "सूधत्व"।

सूधत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूध या रसोईघा का पद या काम। रसोईदारी।

सूधन-वि० [ सं० ] विनाश करनेवाला। जैसे,—मधुसूधन, रिपुसूधन। उ०—नमो नमस्ते धारंवार। मदन-सूधन गोविंद सुरार।—सूर।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पद या विनाश करने की क्रिया। हनन। (२) अंगीकार या स्वीकार करने की क्रिया। अंगीकरण। (३) फेंकने की क्रिया। (४) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम जो मधुसूधन के रहनेवाले थे और जिसका लिखा "सुमानचरित्र" वीर रस का एक प्रसिद्ध काव्य है।

सूधर-संज्ञा पुं० [ सं० शूद्र ] शूद्र। (हि०)

सूधशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्थान जहाँ भोजन बनता हो। रसोईघर। पाकशाला।

सूधशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] भोजन बनाने की कला। पाकशास्त्र। सूा-संज्ञा पुं० [ देश० ] उमों के गरोह का वह भादमी जो यात्रियों को फुसलाकर अपने दल में ले जाता है। (उम०)

सूधाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] रसोईघों का मुखिया या सरदार। पाकशाला का अधिकारी।

सूधित-वि० [ सं० ] (१) आहत। घायल। जखमी। (२) जो नष्ट हो गया हो। विनष्ट। (३) जो मार खाया गया हो। निहत्त।

सूधित-वि० [ सं० ] वध या विनाश करनेवाला।

संज्ञा पुं० रसोईघा। पाकरुर्षा। पाचक।

सूधी-वि० [ य० सू ] (१) (सूनी या रकम) जो सूध या व्याज पर हो। व्याय। (२) व्याज पर लिया हुआ (रुपया)।

सूध-संज्ञा पुं० दे० "सूध"।

सूधल-वि० [ सं० ] "सूधा"। उ०—(क) नाथ करहु वालक पर जोह। सूध दूध मुर करिय न कोह।—तुलसी। (ख) काह करवें ससि सूध सुभाऊ। दाहिन वाम न जानवें काऊ।—तुलसी।

वि० दे० "सूध"। उ०—माया सों मन मीगदा ज्यों कौंसी करि दूध। है कोई संसार में मन करि देवह सूध।—दाद।

कि० वि० सीधा। उ०—दूसरा मारग सुनु मन छाई। देश विदुषं सूप यह जाई।—सबलसिंह।

सूधनाल-कि० प्र० [ सं० शुद्ध ] सिद्ध होगा। सत्य होगा। शीर होना। उ०—ऐसे सुनिष्ठ किया जो दूधा। सुनि हरि तामु मनोरथ दूधा।—गिरिधरदास।

सूधरा-वि० दे० "सूधा" ।  
 सूधा-वि० [ सं० युद्ध ] [ स्त्री० स्त्री ] (१) सीधा । सरल । भोला । निष्कपट । उ०—को अस दीन दयाल भयो दशरथ के लाल से सूधे सुभाषन । दैरे गमंद उवारिये को प्रभु वाहन छोड़ि उवाहने पावन ।—पद्माकर । (२) जो टेढ़ा न हो । सीधा । उ०—इमि कहि सवन सहित तप ऊषी । गव नंद गृह गदि मग सूधो ।—निरिधरदास । (३) इस प्रकार पड़ा हुआ कि मुँह, पैर आदि क्षीर का भागला भाग ऊपर की ओर हो । चित । (४) सम्मुख का । सामने का । उ०—मुदित मन वर यदन सोभा उदित अधिक उछाहु । मनहुँ वृरि कलंक करि ससि समर सूधो राहु ।—गुरुसी । (५) जो उलटा न हो । जो ठीक और साधारण स्थिति में हो । (६) जो सीधी रेखा में चला गया हो । जिसमें चक्रता न हो । उ०—सूधी अँगुरि न निकसै चीज ।—जायसी ।  
 मुहा०—सूधी सूधी सुनाना = खी खी करना । सूधी सहना = खी खी हुनना । उ०—करहुँ किर पाँव न देहीं यहाँ भजि जैहैं तहाँ जहाँ सूधी सहै ।—पद्माकर ।  
 विशेष—और अधिक अर्थों तथा मुहावरों के लिये दे० "सीधा" ।  
 सूधे-कि० वि० [ हि० सूधा ] सीधे से । उ०—(क) सूधे दान काहे न हेत ।—सूर । (ग) हों यह ई बड बहुत कहायत सूधे कहत न यात । योग न युक्ति ध्यान नहि पूजा सुद भये शकुलात ।—सूर । (ग) भाई, सोतै करि चाको मामिनी भाग बड़े वरा चौकड़ि पायो । काह ज्यों सूधे जू चाहत नहिँन चाहति हे अब याह लगायो ।—केशव ।  
 मुहा०—सूधे सूधे = कोप । साफ साफ । उ०—सूधे सूधे जशाय न दीजै ।—विश्राम ।  
 सून्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रसव । जनन । (२) कली । कलिका । (३) फूल । पुष्प । प्रसून । (४) फल । (५) पुत्र । वि० [ सं० ] (१) खिला हुआ । विकसित (पुष्प) । (२) उपपन्न । जात ।  
 स्त्रीसंज्ञा पुं० दे० "शून्य" । उ०—(क) तुलसी निज मग कामना चाहत सून् कहै सेद । यवन गाय सय के विविध कहतु पयस केदि देह ।—तुलसी । (ख) नाम राम को अंक है सय सापन है सून् । अंक मये कहुँ हाथ नहिँ अंक रहे दस गुन ।—तुलसी ।  
 स्त्रीवि० [ सं० शून्य ] (१) निर्जन । जनशून्य । सूना । सुनसान । खाली । उ०—(क) इहाँ देखि पर सून् चोर मूसन मन लायो । हीरा हेम निकारि भवन बाहर धरि आयो ।—विश्राम । (ख) इनहुँ सक्रम हमको पहुँदि काल । श्रथ मोहिँ छात जगत जंजाल । नहिँ कल विना शेषपद देखे । विन प्रभु जगत सून् मम लेखे ।—सुरराज । (ग) मंदिर सून् पिउ धनतै यसा । सेज नागिनी किर किर उसा ।

—जायसी । (२) रहित । हीन । उ०—निरसि रापण भयावन अवावन महा जागकी हरण करि चलो दाठ जात है । अन्यो अति कोप करि हुनन की घोप करि लोप करि धर्म भव क्यों न उहहात है । जानि थल सून् नृप सूत रमणी हरी क्री करणी कठिन भव न यचि जात है ।—सुरराज ।  
 संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का बहुत यदा सदा बहार पड़ जो शिमले के आस पास के पहाड़ों पर बहुत होता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और हमारतों में लगती है । इसे 'चिन' भी कहते हैं ।  
 सून्शर-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव ।  
 सून्सान-वि० दे० "सुनसान" ।  
 सूना-वि० [ सं० शून्य ] [ स्त्री० स्त्री ] - जिसमें या जिस पर पौधे न हो । जनहीन । निर्जन । सुनसान । खाली । जैसे,—सूना घर, सूना रास्ता, सूना सिंहासन । उ०—(क) जते हुरी निज गोकुल में हरि आये तहाँ लखि के मग सूना । तासों कहीं पदमाकर यों अरे साँवरो वावरे तैं हमैं छू ना ।—पद्माकर । (ख) राम कहीं गए रो माता । सून् भवन सिंहासन मूने नाहीं दशरथ ताता ।—सूर ।  
 स्त्री० प्र०—पदना ।—करना ।—होना ।  
 मुहा०—सूना लगना या सूना सूना लगना = निर्जल मालूम होना । उदात्त मालूम होना ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० शून्य ] एकान्त । निर्जन स्थान ।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पुत्री । बेटी । (२) वह स्थान जहाँ पशु मारे जाते हैं । बूढ़खाना । कसाईखाना । (३) मांस विक्रय । मांस की विक्री । (४) मूढत्व के यहाँ ऐसा स्थान या चूल्हा, चक्री, ओखली, घड़ा, झाड़ू में से कोई चीज जिससे जीवहिसा की संभावना रहती है । वि० दे० "पंचसूना" । (५) मलमुंठी । जीभी । (६) हाथी के अंडुक का दस्ता । (७) हत्या । पान ।  
 सूनाद्वीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] चूल्हा, चक्री, ओखली, मूसल, झाड़ू और पानी के अड़े से होनेवाली जीवहिसा का द्वीप या पाप ।  
 वि० दे० "पंचसूना" ।  
 सूनापन-संज्ञा पुं० [ हि० सूना + पन (फल) ] (१) सूना होने का भाव । (२) सन्नदात । एकान्त ।  
 सूनिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मांस बेचनेवाला । व्याध ।  
 सूनी-संज्ञा पुं० [ सं० सूनिन् ] मांस बेचनेवाला । व्याध । बूध ।  
 सूनु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुत्र । संतान । (२) छोटा भाई । (३) अनुज । (३) नाती । दौहित्र । (४) एक वैदिक ऋषि का नाम । (५) सूर्य । (६) आक । अर्क वृक्ष । (७) यह जो सोम रस सुचता हो ।  
 सूनु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कन्या । पुत्री । बेटी । लड़की ।  
 सूनुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सत्य और मित्र भागण (जो धैर

धर्मानुसार सदाचरण के पाँच गुणों में से एक है। (२) शानंद । संगल ।  
 मि० (१) सत्य और मित्र । (२) अनुकूल । दयालु ।  
**सूत्रा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सत्य और मित्र भाषण । (२) सत्य । (३) धर्म की पत्नी का नाम । (४) उच्चापवाद की पत्नी का नाम । (५) एक भस्त्रा का नाम ।  
**सूत्रद-वि०** दे० "सूत्रमाद" ।  
**सूत्रमाद-वि०** [ सं० ] जिसे उन्माद रोग हुआ हो । पागल ।  
**सूप-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) मूँग, मसूर, भरहर आदि की पकी हुई दाल । (२) दाल का जूस । रसा । (३) रसे की तरकारी आदि व्यंजन । (४) बरतन । भाँडा । भाँट । (५) रसोहया । पाचक । (६) वाण । तीर ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० शब्० ] अनाज फटकने का बना हुआ पात्र । सरई या सौंक का छान । उ०—(क) देखो अद्भुत भविष्यति की गति कैसी रूप धरयो है हो । तीन लोक जाके उद्भवन सो सूप के कोन परयो है हो ।—सूर । (ख) राजन दीन्हे हाथी रानिन्ह हार हो । मरिगे रतन पदारथ सूप हनार हो ।—तुलसी ।  
**क्रि० प्र०**—फटकना ।  
**सुधा०**—सूप भर = बहुत सा । बहुत अधिक ।  
 संज्ञा पुं० [ देश० ] (१) कपड़े या सन का झाड़ू जिससे जहान के रूके आदि साफ किए जाते हैं । (लक्ष्म०) (२) एक प्रकार का काला कपड़ा ।  
**सूपक-संज्ञा** पुं० [ सं० सू० ] सूपहया । उ०—धीर सूर विद्वान् जो मिष्ट बनाये अन्न । सूपक कीर्ति ताहि जो पुत्र पीत्र संवन्न ।—सीताराम ।  
**सूपकर्त्ता-संज्ञा** पुं० दे० "सूपकार" ।  
**सूपकार-संज्ञा** पुं० [ सं० ] भोजन बनानेवाला । रसोहया । पाचक । उ०—तहाँ सूपकारन मुनिराई । मुनिन हेत किय पाक बनाई ।—रामाधमेव ।  
**सूपकारी-संज्ञा** पुं० दे० "सूपकार" । उ०—आसन उचित सपहि सूप दीन्हे । बोलि सूपकारी सप दीन्हे ।—तुलसी ।  
**सूपठर-संज्ञा** पुं० दे० "सूपकार" ।  
**सूपचक्षी-संज्ञा** पुं० दे० "धष्य" । उ०—सूपच रस स्वादे का जानी ।—विधाम ।  
**सूप भरना-संज्ञा** पुं० [ हि० सूप + भरना ] सूप की तरह का सरई का एक बरतन । सूप से इसमें अंतर इतना ही है कि हर दो सरइयों के बीच में एक सरई नहीं होती जिसके कारण सूप के बीच में ही भरना सा बन जाता है । इससे बारीक अनाज नीचे गिर जाता है और मोटा ऊपर रह जाता है ।  
**सूपड़ा-संज्ञा** पुं० [ हि० सू० ] सू० । छात्र । (हिं०)  
**सूपधूपक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] होंग ।

**सूपधूपन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] होंग ।  
**सूपनखा-संज्ञा** स्त्री० दे० "सूपनखा" । उ०—सूपनखा रावन के बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी ।—तुलसी ।  
**सूपपर्णी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] वनसूंग । मूँगवन । सुद्वर्णी ।  
**सूपशाख-संज्ञा** पुं० [ सं० ] भोजन बनाने की कला । पाकशास्त्र ।  
**सूपश्रेष्ठ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] मूँग । सुद ।  
**सूपस्थान-संज्ञा** पुं० [ सं० ] पाकशाखा । रसोईघर ।  
**सूप्रांग-संज्ञा** पुं० [ सं० ] होंग । हिण्डु ।  
**सूप्रा-संज्ञा** पुं० [ हिं० सू० ] सू० । छात्र । शूय ।  
**सूपिक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) पकी हुई दाल या रसा आदि । (२) सूपकार । रसोहया ।  
**सूपिय-वि०** दे० "सूप्य" ।  
**सूपोदन-संज्ञा** पुं० [ सं० सूप + ओदन ] दाल और भात ।  
**सूप्य-वि०** [ सं० ] (१) दाल या रसे के लायक । (२) सूप संबंधी ।  
 संज्ञा पुं० रसेदार खाद्य-पदार्थ ।  
**सूप-संज्ञा** पुं० [ म० ] (१) परम । ऊन । (२) यह लता जो देसी काशी स्वाहीवाली दावात में बाछा जाता है ।  
 संज्ञा पुं० दे० "सूप" ।  
**सूपी-संज्ञा** पुं० [ सं० ] मुसलमानों का एक धार्मिक संप्रदाय । इस संप्रदाय के लोग एकेश्वरवादी होते हैं और साधारण मुसलमानों की अपेक्षा अधिक उदार विचार के होते हैं ।  
 वि० (१) ऊनी धष्य पहननेवाला । (२) साफ । पवित्र । (३) निरपराध । निर्दोष ।  
**सूप-संज्ञा** पुं० [ देश० ] लौवा । (सुनार)  
**सूपड़ा-संज्ञा** पुं० [ सं० सुवर्ण ] वह चाँदी जिसमें ताँबे और जस्ते का मेल हो । (सुनार)  
**सूपड़ी-संज्ञा** स्त्री० [ देश० ] पैसे का आठवाँ भाग । दमड़ी । (सुनार)  
**सूया-संज्ञा** पुं० [ प्रा० ] (१) किसी देव का कोई भाग या खंड । प्रांत । प्रदेश ।  
 यौ०—सुवेदार ।  
 (२) दे० "सुवेदार" । उ०—कीन्को समर वीर परिपाटी । कीन्को सूया का सिर काटी ।—रघुराज ।  
**सुवेदार-संज्ञा** पुं० [ प्रा० सू० + दार (सत्य०) ] (१) किसी सुये या प्रांत का बाड़ा अफसर या शासक । प्रादेशिक शासक । (२) एक छोटा पौजी ओहदा ।  
**सुवेदार मेजर-संज्ञा** पुं० [ प्रा० सुवेदार + अं० मेजर ] कौन का एक छोटा अफसर ।  
**सुवेदारी-संज्ञा** स्त्री० [ प्रा० ] (१) सुवेदार का ओहदा या पद । (२) सुवेदार का काम । (३) सुवेदार होने की अवस्था ।  
**सुमरल-वि०** [ सं० शम ] (१) सुंदर । दिव्य । (२) श्वेत ।

संकेत । उ०—इस संरोध तर्हों रमें सुभर हरि जल नीर ।  
शानी आर पलायिमें शिमल सदा हो सरीर ।—दादू ।

सूम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वृष । (२) जल । (३) भाकाश ।  
(४) रज्ज्व ।

संज्ञा पुं० मूल । पुष्प । (डि०)

वि० [ प्र० शस=अनुभ ] कृपण । कंचुप । वली ।

उ०—मरे सुम जनमान मरे कृत्वका षट् । मरे कर्कसा  
नारि मरे की वसभ निरुट्ट ।—गिरिधरदास ।

सुमलू-संज्ञा पुं० [ देश० ] चित्रा या धीता नामक पौधा ।

सुमो-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] टूटी हुई चारपाई की रस्सी ।

सुमो-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक बहुत बड़ा पेड़ जो मध्य तथा दक्षिण  
भारत के जंगलों में होता है । इसकी लकड़ी हमारतों में  
लगी और मेज, कुर्सी आदि बनाने के काम में आती है ।  
इसे रोहन और सोहन भी कहते हैं ।

सय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोम रस निरालये की किया ।  
(२) यज्ञ ।

सूरजान-संज्ञा पुं० [ जा० ] बैसर की जाति का एक पौधा जिसका  
कंद दवा के काम में आता है ।

विशेष—यह पश्चिमी हिमालय के सुम शीतोष्ण प्रदेशों में  
पहाड़ों की ढाल पर घासों के बीच उगता है और एक  
कालिष्ठ अंश होता है । फ़ारस में भी यह बहुत होता है ।  
इसमें बहुत कम पत्ते होते हैं और प्रायः फूलों के साथ  
निकलते हैं । फूल लंबे होते हैं और सफ़ी में लगते हैं ।  
इसकी जड़ में लहसुन के समान, पर उससे बड़ा कंद  
होता है जो कड़वा और मीठा दो प्रकार का होता है ।  
मीठा कंद फ़ारस से आता है और राने की दवा में  
काम आता है । कड़वा कंद केवल तेल आदि में मिलाकर  
मालिश के काम आता है । इसके बीज विपैले होते हैं,  
इससे बड़ी सावधानी से थोड़ी मात्रा में दिए जाते हैं ।  
यूनानी चिकित्सा के अनुसार सूरजान रुझा, रुचिकर  
तथा घात, कफ, पांडुरोग, शीघ्रा, संघिघात आदि को दूर  
करनेवाला माना जाता है ।

सूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ जी० सूरी ] (१) सूर्य । उ०—सूर उदय  
आये रही दगन साँस सी फूलि ।—निहारी । (२) अर्ध  
पृष्ठ । आरु । मदार । (३) पंचित । धातव्य । (४) वर्तमान  
अवसर्पिणी के सप्तहवें अर्धव कुंभ के पिता का नाम ।  
(५) मसूर । (६) दे० "सूरदास" । उ०—सु  
संछेप सूर धरत अत्र लघु मति दुबल बाल । (७) अंधा ।  
(सूरदास अंध थे, इससे 'अंध' के अर्थ में यह शब्द प्रचलित  
हो गया ।) (८) छपर्युच्छेद के ७१ भेदों में से ५१वें भेद  
का नाम जिसमें १६ गुण, १२० लघु, कुल १२६ गुण और  
१५२ भाषाएँ होती हैं ।

संज्ञा पुं० [ सं०, यर ] सूर्यीर । घण्टुर । उ०—पूर खल  
करनी करहिं कहि न जनावहि आप ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० [ सं० शकर, प्रा० संभर ] (१) सुवर्ण । (२)  
रंग का बोधा ।

संज्ञा पुं० दे० "शूल" । उ०—(क) कर्षाटी विष  
मूरसुत सूर किगवत ।—गोपाल । (न) दादू तिल तक  
सुना सुमिरत लगा सूर ।—दादू ।

संज्ञा पुं० [ देश० ] पठानों की एक जाति । जैसे,—सूर  
सूर । उ०—जाति सूर भी खोई सुरा ।—जायसी ।

सूरकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] जमीकंद । सूरन । ओल ।

सूरफाँव-संज्ञा पुं० दे० "सूर्यकांत" ।

सूरकुमार-संज्ञा पुं० [ सं० शूर = शरसेन + कुमार = पुत्र ] वसुदेव ।  
उ०—सेज रूप भे सूर कुमारा । जिमि उदयस्थ था  
उजियारा ।—भि० दास ।

सूरकृत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] विधामित्र के एक पुत्र का नाम ।

सूरज-संज्ञा पुं० [ सं० सूर्य ] (१) सूर्य । वि० "सूर्य" ।

मि० प्र०—अस्त होना ।—उगना ।—उदय होना  
निकलना ।—द्वयना ।—छिपना ।

मुद्गा उ०—मूरज पर धूकना = किसी निरपेय या साधु व्यक्ति  
लांघन लगाना जिसे कारण स्वयं लांघित होना पड़े । सूर्य  
दीपक दिखाना = (१) जो स्वयं अत्यंत शुष्क हो, उसे सु  
भलाना । (२) जो स्वयं विन्यात हो उसका परिचय देना ।  
(३) एक प्रकार का गोदना जो खिया दाढ़िने हाथ में  
है । (३) दे० "सूरदास" ।

संज्ञा पुं० [ सं० सूर + ज ] (१) दानि । (२) सुभीत ।  
उ०—(क) मूरज मुसल नील पट्टिन परिप नल जासवत  
असि हनु तोमर प्रहारे हैं । परशा सुखेन कुत केसरो गवप  
शूल विभीषण रावामज भिदिपाल तारे हैं ।—रामचंद्रिका ।

(ख) करि आदित्य अष्ट नष्ट यम करौं अष्ट वसु । श्वनि भोरि  
समुद्र करौं गंधर्व सवै पशु । बलिह अवेर कुपेर बलिहि गरि  
देवें इंद्र अथ । विद्यायुनि अर्षय करौं विनि सिद्धि सिध  
सय । छे करौं अग्निदीति की दासि दिति अनिल अनल सिद्धि  
जाहि जल । सुमि मूरज सूरज उगत ही करौं अमुर ससा  
सय ।—केशव ।

सूरजतनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सूर्यतनया" । उ०—सुद्वि  
कथां कहै है अपनी । हां कन्या हौं सूरजतनी । कालिंदी है  
मेरो नाम । पिता दियो जल में विश्राम ।—लल्लुलाल ।

सूरज भगत-संज्ञा पुं० सुभ + भक्त । एक प्रकार की गिलहरी  
जो ल  
भा  
जा  
में प्राई





## आवश्यक निवेदन

हिन्दी शब्दसागर शब्द समाप्ति पर है। यह शब्द-कोश प्रायः दो या तीन संख्याओं में समाप्त हो जायगा; और इसकी समाप्ति में अधिक से अधिक ४-५ मास का समय लगेगा। विचार यह होता है कि इस शब्दसागर में जो शब्द छूट गए हैं, वे अन्त में रिशिष्ट रूप में दे दिए जायें। कोश-कार्यालय में इस प्रकार के कुछ शब्दों का संग्रह प्रस्तुत है; परंतु यह संग्रह किसी प्रकार पूर्ण नहीं कहा जा सकता। अतः कोश के ग्राहकों तथा हिंदी के अन्यान्य समस्त विद्यार्थी पाठकों, समालोचकों, सम्पादकों तथा दूसरे विद्वानों से समा का नम्र निवेदन है कि आप लोगों से देखने में जो शब्द इस शब्दसागर में छूटे हुए हैं, वे सब यथासाध्य व्युत्पत्ति और अर्थ आदि के सहित समा में लिख भेजने की कृपा करें। उन लोगों के थोड़ा थोड़ा कष्ट उठाने पर ही इस कोश के एक अभाव की बहुत बड़ी पूर्ति हो जायगी। जो लोग इस प्रकार समा में शब्द संगृहीत करके भेजने की कृपा करेंगे, समा उनकी अत्यन्त अनुग्रहीत होगी। यदि इस कार्य के लिये पुरस्कार की आवश्यकता होगी, तो उस पर भी समा विचार करेगी।

नागरीप्रचारिणी सभा  
काशी।  
१५-११-२७.

रयामसुन्दरदास  
सम्पादक  
हिन्दी शब्दसागर।



# संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेजी भाषा  
 अ० = अरबी भाषा  
 अनु० = अनुकरण शब्द  
 अति० = अतिशयोक्ति नाममात्र  
 अर्ध० = अर्धशब्द  
 अर्थोपमा = अर्थोपमासिद्ध उपाध्याय  
 अर्थना० = अर्थ, नामादी  
 अर्थवा० = अर्थवाचक प्रयोग  
 अर्थव्य० = अर्थव्यय  
 अर्थव्ययन० = कवि अर्थव्ययन  
 अर्थव्य० = अर्थव्यय  
 उ० = उदाहरण  
 उपरथरिग = उपरथरिग  
 उप० = उपसर्ग  
 उभ० = उभयलिङ्ग  
 क० = क० = कठवर्ती उपनिषद्  
 कर्षा० = कर्षण  
 केशव० = केशवदास  
 कौक० = कौकिल्य देश की भाषा  
 क्रि० = क्रिया  
 क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक  
 क्रि० प्र० = क्रिया प्रयोग  
 क्रि० वि० = क्रिया विशेषण  
 क्रि० सु० = क्रियासकर्मक  
 क० = कवित्त अर्थान्द्र इत्युक्ता प्रयोग  
 बहुल कम देखने में आया है।  
 खानखाना० = मन्दिरादीम खानखाना  
 गि० दा० या गि० दास = गिरि-  
 परदास (दा० गोपालचंद्र)  
 गिरिपर = गिरिपरदास (कंठ-  
 लिपावाले)  
 गुज० = गुजराती भाषा

गुमान = गुमान मिश्र  
 गोपाल = गिरिपरदास (पो०  
 गोपालचंद्र)  
 परण = परणचंद्रिका  
 चित्तमणि = कवि चित्तमणि  
 त्रिपाठी  
 छीत = छीतस्वामी  
 जायसी = जलिक मुहम्मद जायसी  
 जावा० = जावा द्वीप की भाषा  
 ज्यो० = ज्योतिष  
 डि० = डिगल भाषा  
 तु० = तुर्की भाषा  
 तुलसी = तुलसीदास  
 तोप = कवि तोप  
 दादू = दादूदास  
 दीनदास = दीनदास गिरि  
 दूल्हा = कवि दूल्हा  
 दे० = देशी  
 देव = देव कवि (गंगपुरीवाले)  
 देश० = देशी  
 द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी  
 नागरी = नागरीदास  
 नामा = नामादास  
 निश्चल = निश्चलदास  
 पं० = पंजाबी भाषा  
 पञ्जा० = पञ्जाब भद्र  
 पर्या० = पर्याय  
 पां० = पांसी भाषा  
 पुं० = पुलिग  
 पुं० हि० = पुरानी हिन्दी  
 पुर्ण० = पुर्ण शाल्य भाषा  
 पू० हि० = पूर्वी हिन्दी

प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र  
 प्रथ० = प्रथम  
 प्रा० = प्राकृत भाषा  
 प्रिया० = प्रियादास  
 प्र० = प्रणालयक  
 प्र० = प्रणालयक  
 फा० = फारसी भाषा  
 बंग० = बंगाल भाषा  
 बरनी० = बरनी भाषा  
 बहु० = बहुवचन  
 पिहारी = कवि विदारीलाल  
 बु० = बु देलखंडी बोली  
 यनी = कवि येनी प्रवीन  
 भाव० = भाववाचक  
 भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी  
 मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी  
 मला० = मलायलम भाषा  
 मल्लक = मल्लकदास  
 मि० = मिलाओ  
 मुहा० = मुहाविर  
 यू० = यूनानी भाषा  
 यौ० = यौगिक तथा दो या अ-  
 धिक शब्दों के पद  
 रघु० दा० = रघुनाथदास  
 रघुनाथ = रघुनाथ चंद्रोजन  
 रघुराज = महाराज रघुराजसिंह  
 रौबरीरज  
 रसखान = सैयद हुमादीम  
 रसनिधि = राजा पूरबीसिंह  
 रहीम = अयूरुहीम खानखाना  
 लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह

लखनऊ  
 कदा० = कदाही भाषा  
 हिंदुस्तानी = जूनीयों की  
 बोली  
 लाक = लाक कवि (उज्जयिनी)  
 लख० = लखनऊ  
 वि० = विशेषण  
 विश्राम = विश्रामसागर  
 व्यंग्याय = व्यंग्यायकीमुद्रा  
 व्या० = व्याकरण  
 व्यास = अविश्वरूप व्यास  
 वा० दि० = वांकर विविजय  
 व्यं० = व्यंगार सतस  
 सं० = संस्कृत  
 संयो० = संयोजक अर्थव्यय  
 संयो० क्रि० = संयोजक क्रिया  
 सं० = सकर्मक  
 सबल = सबलसिंह चौहान  
 समा वि० = समाविज्ञाप  
 संघ० = संघनाम  
 सुपाकर = सुपाकर द्विवेदी  
 सूदन = सूदनकवि (भरतपुरवाले)  
 सुर = सुरदास  
 रित्र० = रित्रयो द्वारा प्रयुक्त  
 स्त्री० = स्त्रीलिङ्ग  
 स्पे० = स्पेनी भाषा  
 हि० = हिन्दी भाषा  
 इनुमान = इनुमानदास  
 हरिदास = स्वामी हरिदास  
 हरिचंद्र = भारतवृद्ध हरिचंद्र

ॐ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त होता है।

ॐ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग मौखिक है।

ॐ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप प्राग्य है।

सूरजमुनी-संज्ञा पुं० [ सं० सूर्यमुनी ] (१) एक प्रकार का पौधा जिसमें पीले रंग का बहुत बड़ा फूल लगता है ।

विशेष—यह ४-५ हाथ ऊँचा होता है । इसके पत्ते टंडल की ओर चौड़े और आगे की ओर पतले तथा कुछ सुरदुरे और रोहँदार होते हैं । फूल का मंडल एक दक्षिण के कर्ण होता है । पौध में एक स्थूल केंद्र होता है जिसके चारों ओर गोलाई में पीले पीले फूल निकले होते हैं । सूर्यास्त के लगभग यह फूल नीचे की ओर झुक जाता है और सूर्योदय होने पर फिर ऊपर उठने लगता है । इसमें कुसुम के से बीज पड़ते हैं । इसके बीज हर भ्रतु में बोए जा सकते हैं, पर गर्मी और जाड़ा इसके लिये अच्छा है । यह पौधा दूषित वायु को शुद्ध करनेवाला माना जाता है । वैद्यक में यह उष्ण-वीर्य, गमिदीपक, रसायन, चरपरा, कृष्णा, क्लेश, कृष्ण, दस्तावर, स्वर शुद्ध करनेवाला, तथा कफ, खात, रक्तविकार, खाँसी, ज्वर, विस्कोटक, कोष्ठ, प्रमेह, पयवी, मूत्रकृष्ण, गुल्म आदि का नाशक कहा गया है ।

पर्याय—आदित्यमका । परदा । सुरचंचल । सूर्यलता । अकंक्षाता । भास्वरोष्ठा । निष्कान्ता । सुतेना । सौरि । अकंक्षिता ।

(२) एक प्रकार की अतिशयजी । (३) एक प्रकार का छत्र या पंखा । (४) यह हलकी चट्टी जो संध्या सवेरे सूर्य-मंडल के आसपास दिखाई पड़ती है ।

सूरजसुत-संज्ञा पुं० [ हि० सूर + सं० सुत ] सुमीन । उ०—अंगद जो तुम पै बंल होती । तो यह सूरज को सुत को तो ? ।—केतव ।

सूरजसुता-संज्ञा स्त्री० दे० "सूर्यसुता" ।

सूरजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूर्य की पुत्री यमुना ।

सूरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूरज । जमीकंद ।

सूरत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रूप । आकृति । शर । उ०—(क) इनकी सूरत तो राजकुमारी की सी है ।—बालमुकुंद शूर । (२) मन धन पै इगं जोहरी, चले जात यह मात । छवि मुग्धा मुकुते मिले मिहि सूरत की दाट ।—रसनिधि ।

पौ०—सूरत शक्य = चेहरा मोहरा । आकृति ।

सूरता०—सूरत विगाढ़ना = चेहरा बिगड़ना । चेहरे की रंगत फीकी पड़ना । सूरत विगाढ़ना = (१) चेहरा विगाढ़ना । कुरूप करना । बदस्त बनाना । निरूप करना । (२) अप्रयत्नित करना । (३) दड देना । सूरत पताना = (१) रूप बनाना । (२) पैल बदलना । (३) मुँह बनाना । नक-मी-सिरोव्या । धरषि प्रकट करना । (४) निर्वै बनाना । सूरत दिवाना = छानने जाना ।

(२) छवि । शोभा । सौंदर्य । उ०—सूरति की सूरति कही न परे तुलसी पै, जानै सोई जाके उर कसकै करक सी ।—तुलसी । (३) उपाय । सुक । उंग । सद्यौर । दब । जैते,—(क) यह उगसे छुटकारा पाने की कोई सूरत नहीं देखता ।

भा । (ख) यथा यथा करने की कोई सूरत निकालो । उ०—आदें में उगके जिनै की कौन सूरत थी ।—शिवप्रसाद ।

कि० प्र०—देखना ।—निकालना ।

(४) अवस्था । दशा । हालत । जैते,—उस सूरत में तुम क्या करोगे ? उ०—आपको खयाल न गुजरे कि हमारी किसी सूरत में तहकी हुई ।—केतवराम ।

संज्ञा पुं० [ सं० सोपण ] बंधई प्रदेश के अंतर्गत एक नगर । संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का जड़लता पौधा जो दक्षिण हिमालय, भासात, चरमा, लंका, पैराक और जावा में होता है । इसे चोरपट्टा भी कहते हैं । जि० दे० "चोरपट्ट" । संज्ञा स्त्री० [ सं० सू ] कुरान का कोई प्रकार ।

ल्यंज्ञा स्त्री० [ सं० स्थिति ] सुष । स्मरण । ध्यान । याद । वि० दे० "सूरति" । जैते,—सब ज्ञानंद में ऐसे मग्न थे कि कृष्ण की सूरत किसी को भी न थी ।—लल्लू ।

वि० [ सं० सूरत ] अनुकूल । मेहरबान । कृपालु ।

सूरता०-संज्ञा स्त्री० दे० "सूरता" । उ०—विश्रवासी के डगन में नहीं निपुत्रता होय । कदा सूरता तामु हनि रह्यो गोद जो सोय ।—रंगिदास ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सीपी माय ।

सूरतारू०-संज्ञा स्त्री० दे० "सूरता" । उ०—यत्नन घोर जोर पवन चलत जैसो अंधर सों सोमित रहत मिलि कै अनेक । पुत्र जे धरत तिन्हें तोषत है भली भाँति सूर सूरतारू कोष करत सहित टोक ।—गोपाळ ।

सूरति०-संज्ञा स्त्री० दे० "सूरत" । उ०—(क) सूरति की सूरति कही न परे तुलसी पै, जानै सोई जाके उर कसकै करक सी ।—तुलसी । (ख) बंद भयो मुखचंद सली छलि सूरति काम की कान्ह की नोरी । कोमल पंकज कै पदपंकज प्राणविपारे की सूरति पी की ।—केतव ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० स्थिति ] सुष । स्मरण । ध्यान । याद । उ०—कुलसिदास खुबीर की सोना सुमिरि भई है मगन नहिं तम की सूरति ।—तुलसी ।

सूरतो खपरा-संज्ञा पुं० [ सूरतो = सूरत शहर का, सं० खरपे ] खपतिया ।

सूरदास-संज्ञा पुं० [ सं० ] उत्तर भारत के एक प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त महाकवि और महाराम जो श्रृंगे थे ।

विशेष—ये हिंदी भाषा के दो सर्वश्रेष्ठ कवियों में से एक हैं । जिस प्रकार रामचरित का गान कर गोस्वामी तुलसीदास जी अमर हुए हैं, उसी प्रकार धीकृष्ण की छीला कई सहस्र पदों में गाकर सूरदास जी भी । ये अक्षर के काल में वर्चमान थे । देसा प्रसिद्ध है कि बादशाह अकबर ने इन्हें अपने दरबार में कसबपुर, सिंघरी में तुलसीदास, पर ये न गए । इन्होंने यह पद कहा—"मो को कहा शिकरी सों काम" ।

इस पर तानसेन के साथ अकबर स्वयं इनके दर्शन को मथुरा गया। इनका जन्म संवत् १५४० के लगभग ठहरता है। ये बल्लभाचार्य की शिष्यपरंपरा थे और उनकी श्रुति इन्होंने कई पदों में की है; जैसे,—भरोसो रद्द इन चरनन केरो। श्रीवल्लभ नखचंद्र छटा यिनु हो हिय मोह भंधेरो ॥ इनकी गणना 'अष्टछाप' अर्थात् प्रज्ञ के आठ महाकवियों और भक्तों में थी। अष्टछाप में ये कवि गिने गए हैं—कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास और सूरदास। इनमें से प्रथम चार कवि तो बल्लभाचार्य जी के शिष्य थे और दोष सूरदास आदि चार कवि उनके पुत्र विठ्ठलनाथ जी के। अपने अष्टछाप में होने का उल्लेख सूरदास जी स्वयं करते हैं।—“थापि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप”। श्री विठ्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ जी ने अपनी “चौरासी वैष्णवों की यात्रा” में सूरदास जी को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है और उनके पिता का नाम 'रामदास' बताया है। सूरसारथिली में के एक पद में इनके वंश का जो परिचय है, उसके अनुसार ये महाकवि चंद्र वरदाई के वंशज थे और सात भाई थे। पर उक्त पद के असली होने में कुछ लोग संदेह करते हैं। इनका जन्म-स्थान भी अनिश्चित है। कुछ लोग इनका जन्म दिल्ली के पास सीही गाँव में बतलाते हैं। जनश्रुति इन्हें जन्मोद्य कहेती है, पर ये जन्मांध न थे। ऐसी भी किंवदंती है कि किसी पर-छी के सौंदर्य पर मोहित हो जाने पर इन्होंने नेत्रों का दोष समझ उन्हीं फोड़ डाला था। भक्तमाल में लिखा है कि आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत हुआ और ये एक बार अपने माता पिता के साथ मथुरा गए। वहाँ से वे घर लौट कर न गए; कहा कि यहाँ कृष्ण की शरण में रहूँगा। चौरासी यात्रा के अनुसार ये गजघाट में रहते थे जो आगरा और मथुरा के बीच में है। यहाँ पर ये विठ्ठलनाथ जी के शिष्य हुए और उन्हीं के साथ गोकुलस्वामी श्रीनाथ जी के मंदिर में बहुत काल तक रहे। इसी मंदिर में रहकर ये पद बनाया करते थे। यों तो पद बनाने का इनका नित्य नियम था, पर मंदिर के उत्सवों पर उसी छीला के संबंध में बहुत से पद बनाकर गाया करते थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये एक बार कूर्प में गिर पड़े और छः दिन तक उसी में पड़े रहे। सातवें दिन स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने हाथ पकड़कर इन्हें निकाला। निकलने पर इन्होंने यह दोहा पढ़ा—“बाहें छुड़ाए जात ही निबल जाति के मोहिं। हिरदै सौं जय जायहौ, मरद बरौंगे तोहिं।” इसमें संदेह नहीं कि प्रज्ञ भाषा के ये सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, क्योंकि इन्होंने केवल प्रज्ञ भाषा में ही कविता की है, अवधी में नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी का दोनों भाषाओं

पर समान अधिकार था और उन्हींने जीवन की नाता परिस्थितियों पर रसपूर्ण कविता की है। सूरदास में केवल गंगा और वासुदेव की पराकाष्ठा है। संवत् १६०७ के पूर्व इनका सूरसागर समाप्त हो गया था; क्योंकि उसके पीछे इन्होंने जो “साहित्य लहरी” लिखी है, उसमें संवत् १६०७ दिनांक हुआ है।

**सूरन-संज्ञा पुं०** [ सं० सूयण ] एक प्रकार का कंद जो सब शाकों में श्रेष्ठ माना गया है। जमीकंद। ओल। शूण। सूरन।

**विशेष**—सूरन भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र होता है, पर गंगाल में अधिक होता है। इसके पीछे २ से ४ हाथ तक होते हैं। पत्तों में बहुत से कटाव होते हैं। इसके दो भेद हैं। सूरन गंगली भी होता है जो खाने योग्य नहीं होता और बेतार कटौला होता है। खेत के सूरन की तरकारी, बजार आदि बनते हैं जिन्हें लोग थड़े चाव से खाते हैं। वैद्यक में यह अग्निदीपक, रुखा, कसैला, सुजली उत्पन्न करनेवाला, चरपरा, विष्टंभकारक, विशद, रुचिकारक, लघु, झीहा तथा गुल्मनाशक और अर्श (धवासीर) रोग के लिये विशेष उपकारी माना गया है। दाद, खाज, रक्तविकार और कोढ़पालों के लिये इसका खाना निषिद्ध है।

**पद्यो०**—शूण। सूरकंद। कंदल। अर्शोन्न आदि।

**सूरपनखा**—संज्ञा स्त्री० दे० “शूरपनखा”। उ०—सूरपनखु तहँहि चलि आई। काटि धरन भर नाक भगाईं।—तमाकर।

**सूरपुत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (सूर्य के पुत्र) सुभीव। उ०—सूरपुत्र तय जीवन जाययो। यालि जोर बहु भौंति यखान्यो।—केशर।

**सूरपार**—संज्ञा पुं० [ ? ] पायजामा। सूयन।

**सूरधीर**—संज्ञा पुं० दे० “शूरवीर”।

**सूरमस**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद और उसके निवासी।

**सूरमा**—संज्ञा पुं० [ सं० सरमानी ] मोटा। वीर। बंहादुर।

उ०—और बहुत उमड़े सुमट कहीं कहीं लगी नाईं। उतै समद के सूरमा भिरे रोप रन पाईं।—लाल कवि।

**सूरमान**—संज्ञा पुं० [ हिं० सूमान + पत्न ] घोरत्व। शूरता। बहादुरी।

**सूरमुखी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यमुखी शीशा। उ०—बहु साँग भलग्न मधि लसत, सूरमुखी रथ छत्रवर। मनु चले जात मुनि दंड चधि उडगन मैं ससि दिवसकर।—गोपाल।

**सूरमुखी मनि**—संज्ञा पुं० [ सं० सूर्यमुखी मणि ] सूर्यकोट मणि। उ०—सुरछल धारहु और अमल बहु भूय किरावहिं। सूरमुखी मनि जडित अनेकन सोभा पावहिं।—गिरिधरदास।

**सूरवाँ**—संज्ञा पुं० दे० “सूरमा”।

**सूरस**—संज्ञा पुं० [ देश० ] परिया की लकड़ी। (खुलाह)।

**सूरसागर**—संज्ञा पुं० हिंदी के महाकवि सूरदास कृत ग्रंथ का नाम जिसमें श्रीकृष्ण छीला अनेक राग रागिनियों में वर्णित है।

सूर-सार्वभौम-संज्ञा पुं० [ सं० सूर + सार्वभौम ] (१) सुद्धमन्त्री । (२) नायक । सरदार । उ०—धनु विद्युरी चमक्राय वान जल परपि अमोलो । गरजि जलद्द सम जलद्द सूर सार्वभौम यह बोले ।—गिरिधरदास ।

सूरसूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शनि ग्रह । (२) सुधीव ।  
सूरसूता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (सूर्य की पुत्री) यमुना । उ०—  
ज्योति जगि जमुना सी छवि जग लोचन छलित पाप विगोई । सूरसूता शुभ संगम तुंग तरंग तरंग तरंग सी सोई ।—केशव ।

सूरसूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य के सारथि अरुण ।  
सूरसेन-संज्ञा पुं० दे० "सूरसेन" ।  
सूरसेनपुर-संज्ञा पुं० [ सं० सूरसेन + पुर ] मथुरा । उ०—  
विजसेन नृप धरयो सेन सह सूरसेनपुर । शपटि चले निमि सेन लेन जै देन चैन उर ।—गोपाल ।

सूरा-संज्ञा पुं० [ हिं० मूरी ] एक प्रकार का कीड़ा जो अनाज के गोले में पाया जाता है । यह किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता । अनाज के व्यापारी इसको शुभ समझते हैं ।

सूरा पुं० [ म० ] कुरान का कोई एक प्रकारण ।  
सूराख-पञ्चा पुं० [ का० ] (१) छेद । छिद्र । (२) शाला । द्राना । घर । (लघ०)

सूरिजान-संज्ञा पुं० दे० "सूरजान" ।

सूरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यज्ञ करानेवाला । ऋविज्ञ । (२) पंडित । विद्वान् । आचार्य । (विशेषकर जैनाचार्यों के नामों के पीछे यह शब्द उपाधि स्वरूप प्रयुक्त होता है ।) (३) बृहस्पति का एक नाम । (४) कृष्ण का नाम । (५) यादव । (६) सूर्य ।

सूरी-संज्ञा पुं० [ सं० सूरिन् ] विद्वान् । पंडित । आचार्य ।  
संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) विद्युपि । पंडिता । (२) सूर्य की पत्नी । (३) कुंसी । (४) राई । राजसंपन्न ।

सूरी संज्ञा स्त्री० दे० "सूली" । उ०—नृप कह देहु चोर कहें सूरी । संतवेष यह चोर कसुरी । तुलत वृत पुर थादिर लाई । सूरी महीं दिय मुनिहिं चवाई ।—रघुराज ।

सूरी संज्ञा पुं० [ सं० सूर ] माला । उ०—पटकवी कंस ताहि गति रुती । धनुक गिरयो तपे गहि सूरी ।—  
गोपाल ।

सूरज-संज्ञा पुं० दे० "सूर्य" ।  
सूर्यो-संज्ञा पुं० दे० "सूर्य" । उ०—जीवहि का संसा पदा को काको तारहिं । दावु सोई सूर्यो जो भाप उबारहिं ।  
—दाद ।

सूर्ये-संज्ञा पुं० [ सं० ] शनि की हाथ भर की एक लकड़ी जिससे घड़ेरिपे योगे में से लाना निकालते हैं ।

सूर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनादर ।

सूर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] उद्भ । भाप ।

सूर्यनखा-संज्ञा स्त्री० दे० "सूर्यनखा" ।  
सूर्यि, सूर्यी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लोहे की बनी स्त्री की प्रतिमूर्ति ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि गुप्तकाली से धर्मिचार करनेवालों अपने पाप को कटकर तपी हुई लोहे की शय्या पर शयन करे अथवा तपी हुई लोहे की स्त्री की प्रतिमूर्ति का आलिंगन करे । इस प्रकार मरने से उसका पाप नष्ट होता है ।

(२) पानी का नल ।

सूर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सूर्या, सूर्याणी ] (१) अंतरिक्ष में पृथ्वी, मंगल, शनि आदि ग्रहों के बीच सध से बढ़ा ज्वलंत पिंड जिसकी सध ग्रह परिक्रमा करते हैं । वह बढ़ा गोला जिससे पृथ्वी आदि ग्रहों को गरमी और रोशनी मिलती है । सूरज । आपताप ।

विशेष—सूर्य पृथ्वी से चार करोड़ पैंसठ लाख मील दूर है । उसका व्यास पृथ्वी के व्यास से १०८ गुना अर्थात् ४३२००० कोस है । वनफल के हिसाब से देखें तो जितना स्थान सूर्य घेरे हुए है, उतने में पृथ्वी के ऐसे ऐसे १२५०००० पिंड आवेंगे । सारांश यह कि सूर्य पृथ्वी से बहुत ही बड़ा है । परंतु सूर्य जितना बड़ा है, उसका गुल्ब उतना नहीं है । उसका सापेक्ष गुल्ब पृथ्वी का चौथाई है । अर्थात् यदि हम एक टुकड़ा पृथ्वी का और उतना ही बड़ा टुकड़ा सूर्य का लें तो पृथ्वी का टुकड़ा तौल में सूर्य के टुकड़े का चौगुना होगा । कारण यह है कि सूर्य पृथ्वी के समान ठोस नहीं है । वह तरल ज्वलंत द्रव्य के रूप में है । सूर्य के तल पर कितनी गरमी है, इसका जल्दी अनुमान ही नहीं हो सकता । वह २०००० डिग्री तक अनुमान की गई है । इसी ताप के अनुसार उसके अपरिमित प्रकाश का भी अनुमान करना चाहिये । प्रायः हम लोगों को सूर्य का तल बिलकुल स्वच्छ और निष्कलंक दिखाई पड़ता है, पर उसमें भी बहुत से काले धब्बे हैं । इनमें विचित्रता यह है कि एक निश्चित नियम के अनुसार ये धब्बे बढ़ते रहते हैं, अर्थात् कभी इनकी संख्या कम हो जाती है, कभी अधिक । जिस वर्ष इनकी संख्या अधिक होती है, उस वर्ष में पृथ्वी पर सुंदक शक्ति का क्षेम बहुत बढ़ जाता है और विद्युत् की शक्ति के अनेक कांड दिखाई पड़ते हैं । कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इन छोट्टों का वर्ष से भी संबंध है । जिस साल ये अधिक होते हैं, उस साल वर्षा भी अधिक होती है । भारतीय ग्रंथों में सूर्य की गगना नव ग्रहों में है । आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार सूर्य ही मुख्य पिंड है जिसके पृथ्वी, शनि, मंगल आदि ग्रह अनुचर हैं और उससे निरंतर परिक्रमा किया करते हैं । वि० दे० "क्षतोल" ।

सूर्य की उपासना प्रायः सब सभ्य प्राचीन जातियों में प्रचलित थी। आर्यों के अतिरिक्त असीरिया के असुर भी 'सूर्य' (सूर्य) की पूजा करते थे। अमेरिका के मैक्सिको प्रदेश में यसनेवाली प्राचीन सभ्य जनता के भी बहुत से सूर्य मंदिर थे। प्राचीन आर्य जातियों के तो सूर्य प्रधान देवता थे। भारतीय और पारसीक दोनों शाखाओं के आर्यों के बीच सूर्य को मुख्य स्थान प्राप्त था। यद्यो में पहले प्रधान देवता सूर्य, अग्नि और इंद्र थे। सूर्य आकाश के देवता थे। इनका रथ सात घोड़ों का कहा गया है। आगे चलकर सूर्य और सविता एक माने गए और सूर्य की गणना द्वादश आदित्यों में हुई। ये आदित्य षण् के १२ महीनों के अनुसार सूर्य के ही रूप थे। इसी काल में सूर्य के सप्तभि अरण (सूर्योदय की ललाह) कहे गए जो लौकिक माने गए हैं। सूर्य ही का नाम विवस्वत् या विवस्वत् भू या जिनकी कई पत्नियाँ कही गई हैं, जिनमें संज्ञा प्रसिद्ध है।

पर्या०—भारतः। मानु। प्रभाकर। दिनकर। दिनपति। मातृदं। रवि। तरणि। सहजानु। तिग्मदीपिति। मरीचि-माली। चंडकर। आदित्य। सविता। सुर। विवस्वत्। (२) वारह की संख्या। (३) अर्क। भाक। मंशार। (४) बलि के एक पुत्र का नाम।

सूर्यकमल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूरजमुखी फूल।

सूर्यपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य की किरण।

सूर्यकांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का रफ़्टिक या बिहीर, सूर्य के सामने रखने से जिसमें से अग्नि निकलती है। सूर्यकांतमणि। यथा—चंद्रकान्ति अमृत उपजावै। सूर्यकांति में अग्नि प्रजावै।—रत्नपरीक्षा।

पृथार्णो—सूर्यमणि। तपनमणि। रविकांत। सूर्याश्मा। उजलनदना। दहनोपम। दीप्तोपल। तापन। अर्कोपल। अतिगर्भं।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह उष्ण, निर्मूल, रसायन, घात और श्लेष्मा को हटानेवाला और बुद्धि बढ़ानेवाला है। (२) सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा।

विशेष—यह विशेष बनावट का गहरे पेटे का गोल शीशा होता है जो सूर्य की किरणों को एक केंद्र पर एकत्र करता है, जिससे ताप उत्पन्न हो जाता है। इसके भीतर से देखने पर चक्षुष्ये वदे आकार की दिखाई पड़ती है।

(३) एक प्रकार का फूल। आदित्यपर्णी। (४) एक पर्वत का नाम। (साकंठेयपुराण)

सूर्यकांति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूर्य की दीप्ति या प्रकाश। (२) एक प्रकार का पुष्प। (३) तिल का फूल।

सूर्यकाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दिन का समय। (२) फलित ज्योतिष में शुभाशुभ निर्णय के लिये एक चक्र।

सूर्यकालानलचक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ज्योतिष-चक्र जिससे मनुष्य का शुभाशुभ जाना जाता है।

सूर्यकांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का ताल। (संगीत) (२) एक प्राचीन जनपद।

सूर्यक्षय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य मंडल।

सूर्यगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक बोधिसत्व का नाम। (२) एक बौद्ध सूत्र का नाम।

सूर्यग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नव ग्रहों में से प्रथम ग्रह सूर्य। (२) सूर्यग्रहण। (३) राहु और केतु। (४) जलपात्र या घड़े का पेंटा।

सूर्यग्रहण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य का ग्रहण। वि० दे० "ग्रहण"। सूर्यचक्षु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यचक्षुश्च रामायण के अनुसार एक राजस का नाम।

सूर्यज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) क्षत्रिण ग्रह। (२) यम। (३) सावर्णि मनु। (४) रेवंत। (५) सुमीव। (६) कर्ण।

सूर्यजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यमुना नदी।

सूर्यतनय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) क्षत्रिण। (२) सावर्णि मनु। (३) रेवंत। (४) सुमीव। (५) कर्ण।

सूर्यतनया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यमुना।

सूर्यतापिनी संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम।

सूर्यतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

सूर्यदास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संस्कृत के एक प्राचीन कवि का नाम। (२) हिंदी के प्रसिद्ध कवि सुरदास।

सूर्यदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] भगवान् सूर्य।

सूर्यध्वज-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।

सूर्यनंदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) क्षत्रिण। (२) कर्ण।

सूर्यनगर-संज्ञा पुं० [ सं० ] काश्मीर के एक प्राचीन नगर का नाम।

सूर्यनाभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दानव का नाम। (हरिवंश)

सूर्यनारायण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य देवता।

सूर्यनेत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

सूर्यपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य देवता।

सूर्यपत्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संज्ञा। छाया।

सूर्यपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इसरमूल। अर्कपत्री। (२) डुरडुर। आदित्यमत्ता। (३) मदार का पौधा।

सूर्यपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) इसरमूल। अर्कपत्री। (२) मखन। यम उर्वरी। मापपर्णी।

सूर्यपर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यपर्णम्। यह काल जिसमें सूर्य किसी नई राशि में प्रवेश करता है।

सूर्यपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य की किरण।

सूर्यपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दानि । (२) यम । (३) वरुण ।  
 (४) अश्विनी कुमार । (५) सुप्रिय । (६) कर्ण ।  
 सूर्यपुत्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यमुना । (२) विष्णु ।  
 विजली । (क०)  
 सूर्यपुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] कादमीर के एक प्राचीन नगर का नाम ।  
 सूर्यपुराण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक छोटा ग्रंथ जिसमें सूर्य  
 महात्म्य वर्णित है ।  
 सूर्यप्रदीप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का ध्यान या समाधि ।  
 (यौद)  
 सूर्यप्रभ-वि० [ सं० ] सूर्य के समान दीप्तिमान् ।  
 संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार की समाधि । (२) श्रीकृष्ण की  
 पत्नी । लक्ष्मणा के प्रासाद का भवन का नाम । (३) एक  
 धोषितव्य का नाम । (बुद्ध) (४) एक नाग का नाम ।  
 सूर्यप्रभाष-वि० [ सं० ] सूर्य से उत्पन्न ।  
 संज्ञा पुं० (१) दानि । (२) कर्ण ।  
 सूर्यप्रशिक्ष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] जनक का एक नाम ।  
 सूर्यप्रथि चक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ज्योतिषिक जिससे कोई  
 कार्य प्रारंभ करते समय उसका शुभाशुभ निकालते हैं ।  
 सूर्यविष-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य का मंडल ।  
 सूर्यमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दुपहरिया । बंधूक पुष्प वृक्ष ।  
 (२) सूर्य का उपासक ।  
 सूर्यमकक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य की उपासना करने-  
 वाला । (२) दुपहरिया । बंधूक ।  
 सूर्यमक्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हुहुर । आदित्यमक्ता ।  
 सूर्यभा-वि० [ सं० ] सूर्य के समान दीप्तिमान् ।  
 सूर्यमागा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम ।  
 सूर्यमानु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रामायण के अनुसार एक यक्ष  
 का नाम । (२) एक राजा का नाम ।  
 सूर्यभ्राता-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यभ्रात्र । ऐरावत हाथी का नाम ।  
 सूर्यमंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य का घेरा ।  
 पद्यों—परिधि । परिवेष्ट । मंडल । उपसूर्यक ।  
 (२) रामायण के अनुसार एक गंधर्व नाम ।  
 सूर्यमणि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्यकांत मणि । (२) एक  
 प्रकार का पुष्पवृक्ष ।  
 सूर्यमाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (सूर्य की माला धारण करनेवाले)  
 शिव । महादेव ।  
 सूर्यमास-संज्ञा पुं० दे० "धैरमास" ।  
 सूर्यमुखी-संज्ञा पुं० दे० "सूरजमुखी" ।  
 सूर्यरश्मि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य की किरन । (२) सुविता  
 का एक नाम ।  
 सूर्यरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह नक्षत्र जिसमें सूर्य की रिपति हो ।  
 सूर्यतता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हुहुर । हुलहुल । आदित्यमका लता ।

सूर्यलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य का लोक ।  
 विशेष—कहते हैं कि युद्ध में मरनेवाले और काशी-खंड के  
 अनुसार सूर्य के भेक भी इसी लोक को प्राप्त होते हैं ।  
 सूर्यलोचना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक गंधर्वी का नाम ।  
 सूर्यवंश-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्षत्रियों के दो भादि और प्रधान कुलों  
 में से एक जिसका आरंभ इक्ष्वाकु से माना जाता है ।  
 विशेष—पुराणानुसार परमेस्वर के पुत्र प्रजा, प्रजा के मरीचि,  
 मरीचि के कश्यप, कश्यप के सूर्य, सूर्य के धैवस्वत मनु  
 और धैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु थे । इक्ष्वाकु का नाम वैदिक  
 ग्रंथों में भी आया है । ये इक्ष्वाकु त्रेतायुग में अयोध्या के  
 राजा थे । त्रेता और द्वापर की संधि में इसी वंश में द्वापर  
 के यहाँ श्रीरामचंद्र ने जन्म लिया था । द्वापर के प्रारंभ में  
 श्रीरामचंद्र के पुत्र कुश हुए । कुश के वंश ने सुमित्र तक,  
 कलियुग में एक हजार वर्ष राज्य किया । इसके बाद इस वंश  
 की विधाति हुई ।  
 सूर्यवंशी-वि० [ सं० ] सूर्यवंशिर । सूर्यवंश का । जो क्षत्रियों  
 के सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ हो ।  
 सूर्यवंश्य-वि० [ सं० ] सूर्यवंश में उत्पन्न ।  
 सूर्यवक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की शोषधि ।  
 सूर्यवर्-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की शोषधि ।  
 सूर्यवर्चस्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक देवगंधर्व का नाम । (२)  
 एक ऋषि का नाम ।  
 वि० सूर्य के समान दीप्तिमान् ।  
 सूर्यवर्मा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यवर्मर । जित्तर्ष के एक राजा का  
 नाम । (महाभारत)  
 सूर्यवल्गमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हुहुर । आदित्यमक्ता ।  
 (२) कमलिनी । पद्मिनी ।  
 सूर्यवल्ली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दधिपार । शंघाहुली । अर्क-  
 पुष्पी । (२) क्षीर काडोली ।  
 सूर्यवान्-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यवर्ष । रामायण के अनुसार एक  
 वंश का नाम ।  
 सूर्यवार-संज्ञा पुं० [ सं० ] रश्मिवार । आदित्यवार ।  
 सूर्यविघ्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु ।  
 सूर्यचित्तोक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक मांगलिक कृत्य जिसमें  
 बचे को सूर्य का दर्शन कराया जाता है । यह बचे के चार  
 महीने के होने पर किया जाता है ।  
 सूर्यवृद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आर्क । मदार । अर्कवृक्ष । (२)  
 दधिपार । शंघाहुली । अर्कपुष्पी ।  
 सूर्यवेश्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यनेत्र । सूर्य मंडल ।  
 सूर्यवत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक मत जो सूर्य भगवान् के शीष्य  
 रश्मिवार को किया जाता है । (२) ज्योतिष में एक धर्म ।  
 सूर्यशत्रु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम । (रामायण)



सूर्यशिष्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) याज्ञवल्क्य का एक नाम ।

(२) जनक का एक नाम ।

सूर्यशोभा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूर्य का प्रकाश । धूप ।

(२) एक प्रकार का फूल ।

सूर्यश्री—संज्ञा पुं० [ सं० ] विधेदेवा में से एक ।

सूर्यसंक्रमण—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य का एक राशि से दूसरी

राशि में प्रवेश । सूर्य की संक्रांति । वि० दे० "संक्रांति" ।

सूर्यसंक्रांति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूर्य का एक राशि से दूसरी

राशि में प्रवेश । वि० दे० "संक्रांति" ।

सूर्यसंधा—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य । (२) आक । अर्क वृक्ष ।

(३) केसर । कुंडम । (४) तौबा । तात्र । (५) एक प्रकार

का मानिक या चुन्नी ।

सूर्यसदृश—संज्ञा पुं० [ सं० ] खीलावत्र का एक नाम । (बौद्ध)

सूर्यसाम—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यसामन्त् । एक साम का नाम ।

सूर्यसारथि—संज्ञा पुं० ( सूर्य का साथि ) अरुण ।

सूर्यसावर्णि—संज्ञा पुं० [ सं० ] मार्कंडेयपुराण के अनुसार आठवें

मनु का नाम । ( ये सूर्य के औरस हैं और संज्ञा के गर्भ से

उत्पन्न माने जाते हैं । )

सूर्यसावित्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विधेदेवा में से एक । (२)

प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम ।

विशेष—इसके साथ का उपदेश पहले पहल सूर्य से प्राप्त

कहा गया है ।

सूर्यसुत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शनि । (२) कर्ण । (३) सुमीव ।

सूर्यसूक्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम जिसमें

सूर्य की स्तुति की गई है ।

सूर्यसुत—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य का सारथि, अरुण ।

सूर्यस्तुत—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार

का यज्ञ ।

सूर्योद्यु—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य की किरण ।

सूर्यो—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूर्य की पत्नी संज्ञा ।

विशेष—कई मंत्रों में यह सूर्य की कन्या भी कही गई है ।

कहीं ये सविता या प्रजापति की कन्या और अग्निनीकुमारों

की स्त्री कही गई है और कहीं सोम की पत्नी । एक मंत्र

में इनका नाम ऊर्जांनी आया है और ये पूजा की भगिनी

कही गई है । सूर्या सावित्री ऋग्वेद के सूर्यसूक्त की ऋषा

मानी जाती हैं ।

(२) नवोद्गा । नवविवाहिता स्त्री । (३) इंद्रवारुणी ।

सूर्याकर—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रचीन जनपद का नाम ।

(रामायण)

सूर्याक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) एक राजा का नाम ।

(महाभारत) (३) एक बंधर का नाम । (रामायण)

वि० सूर्य के समान आँसूवाला ।

सूर्याग्नी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूर्य की पत्नी, संज्ञा ।

सूर्यातप—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य की गरमी । धूप । घाम ।

सूर्यात्मज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दानि । (२) कर्ण । (३) सुमीव ।

सूर्याद्रि—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम । (मार्कंडेयपुराण)

सूर्यापीड—संज्ञा पुं० [ सं० ] परीक्षित के एक पुत्र का नाम ।

सूर्यापान—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यास्त का समय ।

सूर्यालोक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य का प्रकाश । (२) गरमी ।

आतप ।

सूर्यावर्त्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हुलहुल का पीवा । आदित्य-

भक्ता । (२) सूर्यचंचल । ब्रह्मसोचली । (३) गज विष्णुली ।

गजपीपल । (४) एक प्रकार की सिर की पीड़ा । आधासीसी ।

विशेष—यह रोग वातज कहा गया है । इसमें सूर्योदय के

साथ ही मस्तक में दोनों भ्रंशों के बीच पीड़ा आरंभ होती

है और सूर्य की गरमी बढ़ने के साथ साथ बढ़ती जाती

है । सूरज ढलने के साथ ही पीड़ा घटने लगती है और

शान्त हो जाती है ।

(५) एक प्रकार का ध्यान या समाधि । (बौद्ध) (६) एक

प्रकार का जल-पात्र ।

सूर्यावर्त्त रस—संज्ञा पुं० [ सं० ] आस रोग की एक रसीपथ जो

पारे, गंधक और ताँबे के संयोग से बनती है ।

सूर्याश्रम—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यारमन्त् । सूर्यकाम्त मणि ।

सूर्याश्व—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य का घोड़ा । चातुट । हरित् ।

सूर्यास्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य का ढूबना । सूर्य के ढिपने

का समय । सायंकाल ।

क्रि० प्र०—होना ।

सूर्याह्न—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तौबा । तात्र । (२) आक । मदार ।

अर्कवृक्ष । (३) महेंद्रवारुणी । बड़ी इंद्रायन ।

सूर्येहुसंगम—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य और चंद्रमा का संगम या

मिलन अर्थात् दोनों की एक राशि में स्थिति । भ्रमावस्था ।

सूर्योद्-वि० [ सं० ] अतिथि (जो सूर्यास्त होने पर अर्थात्

संध्या समय आता है ) ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यास्त का समय ।

सूर्योत्थान—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्योदय । सूर्य का चढ़ना ।

सूर्योदय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य का उदय या निकलना ।

(२) सूर्य के निकलने का समय । प्रातःकाल ।

क्रि० प्र०—होना ।

सूर्योदयगिरि—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह कल्पित पर्वत जिसके पीठे

से सूर्य का उदित होना माना जाता है । उदयाचल ।

सूर्योद्यान—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यवन नामक तीर्थ ।

सूर्योपनिषद्—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम ।

सूर्योपस्थान—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य की एक प्रकार की उपासना ।

विशेष—प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल को संध्या करते समय

सूर्योपासक हो एक धर से खड़े होकर सूर्य की उपासना करने का विधान है।

**सूर्योपासक-पंथा पुं० [ सं० ]** सूर्य की उपासना करनेवाला। सूर्यपूजक। सौर।

**सूर्योपासना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]** सूर्य की आराधना या पूजा।  
**सूल-संज्ञा पुं० [ सं० श्ल० ] (१)** बरछा। भाड़ा। साँगा। उ०—

(क) पर्म चर्म कर कृपान सूल मेल धनुषवान, धरनि दलनि दानव दल रन बरालिका। (ख) देखि ज्वाला जाल हाहाकार दसकंध सुनि कश्यो धरो धरो धाप धीर बलवान हैं। लिए सूल मेल प्राप्त परिष प्रचंड दंड भानन सनीर धीर धरे धनुवान हैं।—सुलसौ। (२) कोई चुभनेवाली लुकीली चीज। काँटा। उ०—(क) सर सों समीर लाग्यो सूल सों सहेकी सय विप सों चिनोद लाग्यो बन सों नियास री।—मतिराम। (ख) देती नचाई कै नाच वा रौंड को छाल रितावन को फल पेंती। सेती सदा रसखानि लिये कुबरी के करजनि सूल सी भेती।

**क्रि० प्र०—**चुभना।—लगना।

(३) माला चुभने की सी पीढ़ा। कसक। उ०—(क) सूल उठ्यो तन हूल गयो मन भूल गये सय खेल खिलौना।—सुदीप्तसर्वस्व। (ख) निन निज भाषा ज्ञान के मित्त न हिय को सूल।—हरिभ्रंज। (ग) बसिहीं बन छलिहीं सुनिन भरिहीं फल दूल मूल। भरत राज करिहीं भवधि मोदि न कहु अय सूल।—पद्माकर। (घ) ददं पीढ़ा। जैते,—पेट में सूल।

**क्रि० प्र०—**उठना।—मिटना।

**विशेष—**इस शब्द का खीलिया प्रयोग भी सूर् आदि कवियों में मिलता है। जैते,—मेरे मन हलनी सूल रही।—सूर।

(५) भाड़ा का ऊपरी भाग। माला के ऊपर का फुलरा। उ०—मनि कूल रचित मलदूल की क्षाल न जाके लूल कोट। सजि सोहे उपरि दुकूल वर सूल सय अरि शूल सोड।—गोपाल।

**सूलघट-संज्ञा पुं० दे० “शूलघट”।**

**सूलघारी-संज्ञा पुं० दे० “शूलघर”।**

**सूलना-क्रि० सं० [ हिं० सूल + ना (अव०) ]** भाले से छेदना। पीड़ित करना।

क्रि० प्र० भाले से छेदना। पीड़ित होना। ग्वथित होना। दुखना। उ०—कूलि उठ्यो छुंदावन, भूलि उठे खग सुग, सुलि उठ्यो वर, विरहागि ब्यापारि है।—देव।

**सूलपानिक-संज्ञा पुं० दे० “शूलपानि”।**

**सूली-संज्ञा स्त्री० [ सं० श्ल० ] (१)** प्रांग दंड देने की एक प्राचीन प्रथा जिसमें दंडित मनुष्य एक लुकीले छोटे के ढंटे पर बैठा दिया जाता था और उसके ऊपर सुँगरा मारा जाता था। (२) काँटी।

**वि० प्र०—**चदना।—चवाना।—देना।—पाना।—मिलना।

(३) एक प्रकार का नरम लोहा जिसकी छट्टें बनती हैं। (लुहार)

संज्ञा पुं० [ देरा० ] दक्षिण दिशा। (लटा०)

क्रि० संज्ञा पुं० [ सं० सूलिन् ] महादेव। शिव। उ०—चंदन की लु लोकी में दैति लु न्हाई लुन्दारि सी जोति समूली। अंबर के धर अंबर पूजि बरंवर देव दिगंबर सूली।—देव।

**सूचना-संज्ञा-क्रि० प्र० [ सं० ध्रुवण ]** बहना। प्रवाहित होना।

उ०—कहा करौं अति सूये नयना उमगि चलत पग पानी। धूर सुमेर समाद कहाँ घौं बुद्धिवासना पुानी।—सूर।

संज्ञा पुं० दे० “सूभा”। उ०—सेमर केरा सूवना सिहुले पैठा जाय। बाँच चहोरि सिर पुनै यह बाही को भाय।—अबीर।

**सूवर-संज्ञा पुं० दे० “सूभर”।**

**सूधा-संज्ञा पुं० [ ? ]** फारसी संगीत के अनुसार २४ शोभाओं में से एक।

संज्ञा पुं० [ सं० शुक्र ] तोता। सुगा। सूभा।

**सूस-संज्ञा पुं० [ सं० मि० सं० शिशुमार ]** मगर की तरह का एक यज्ञ जलजंतु जो गंगा में बहुत होता है। सूईस।

**विशेष—**इसका रंग काला होता है और यह प्रायः जल के ऊपर आया करता है, पर किनारे पर नहीं आता। यह पहिचाना या मगर के समान जल के बाहर के जंतु नहीं पकड़ता। उ०—सिर बिनु कवच सहित उतराहीं। जहाँ तहाँ सुभट प्राह अनु जाहँ। विनु सिर ते न जात पहिचाने। मनहुँ सूस जल में उतराने।—सखल।

**सूसमार-संज्ञा पुं० [ सं० शिशुमार ]** सूस।

**सूसला-संज्ञा पुं० [ सं० शरा ]** शरगोष्ठ।

**सूसिल-संज्ञा पुं० दे० “सूस”।** उ०—फिरत चक्र भावतं अनेका।

उछरिदं शीश सुदि दिग एका।—रघुनाथदास।

**सूसी-संज्ञा स्त्री० [ देरा० ]** एक प्रकार का धारोदार या धारधाने-दार कपड़ा।

**सूदा-संज्ञा पुं० [ हिं० तोहना ] (१)** एक प्रकार का लाल रंग।

(२) संपूर्ण जाति का एक संकर राग।

**विशेष—**किसी के मत से यह विभास और मालथी के मेल से और किसी किसी के मत से विभास और धागिधरी के मेल से बना है। इसमें गांधार, धैवत और निषाद तीनों कोमल लगते हैं। इसके गाने का समय ६ दंड से १० दंड तक है। हनुमत् के मत से यह दीपक राग का और अन्य मतों से हिंदोल या भैरव राग का पुत्र है। कुछ लोगों ने इसे रागिनी कहा है और भैरव की पुत्रपत्नी बताया है।

वि० [ स्त्री० लृही ] विशेष प्रकार के लाल रंग का। लाल।

उ०—सजि सुहे दुकूल सयै सुख साधा।—पद्माकर।

सूहा कान्हडा-संज्ञा पुं० [ हि० सूहा + कान्हडा ] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं ।  
 सूहा टोडो-संज्ञा स्त्री० [ हि० सूहा + टोडो ] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिणी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं ।  
 सूहाविलासल-संज्ञा पुं० [ हि० सूहा + विलास ] संपूर्ण जाति का एक संकर राग ।  
 सूहा श्याम-संज्ञा पुं० [ हि० सूहा + श्याम ] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं ।  
 सही-वि० स्त्री० दे० "गूहा" ।  
 सूखला-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखला" । उ०—गुरुसिदास प्रभु मोह संपला छूटहि तुम्हरे छोरे ।—गुलसी ।  
 सूखल-संज्ञा पुं० दे० "शंख" ।  
 सूखेपुर-संज्ञा पुं० दे० "शंखेपुर" । उ०—सीता सचिव सहित दोउ भाई । सूखेपुर पहुँचे जाई ।—गुलसी ।  
 सूखी-संज्ञा पुं० दे० "शंखी" ।  
 सूख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देववात के एक पुत्र का नाम । (भरवेद) (२) मनु के एक पुत्र का नाम । (३) उराणोक एक यज्ञ जिसमें छहसुभ्र हुए थे और जिस यज्ञ के छोटा भारत खुद में पांडवों की ओर से लड़े थे । (४) ययातिवंश के बालनर के एक पुत्र का नाम ।  
 सूख्यी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भजमान की दो पत्नियों का नाम । (हरि०)  
 सूखरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सूख्यी" ।  
 सूखड़-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खान । सुखली । फंडु ।  
 सूख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) झूल । भाला । (२) घाण । तीर । (३) वायु । हवा । (४) कमल का फूल ।  
 सू संज्ञा पुं० [ सं० सू, सूक ] माळा । उ०—दरसन हू माँसे जम-सैनिक जिमि नह यालक सेनी ।.....सूर परस्पर करत कुलाहल, गर सूक यह रावैनी ।—सूर ।  
 सूकाल-संज्ञा पुं० दे० "शुक्ल" । उ०—गुरुसिदास हरिनाम सुधा सनि सठ हठि पयित विषय विष मारी । सूकर स्वान सुकाल सरिस जन जनमत जगत जननि दुख लागी ।—गुलसी ।  
 सूक-संज्ञा पुं० दे० "सूक" ।  
 सूकणी-संज्ञा स्त्री० दे० "सूक" ।  
 सूक्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जोंक ।  
 सूक्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] ओठों का चोर । मुँह का कोना ।  
 सूकणी-संज्ञा स्त्री० दे० "सूक" ।  
 सूकल-संज्ञा पुं० [ सं० सूक ] (१) बरछा । भाला । (२) घाण । तीर ।  
 सूहा पुं० [ सं० सूत्र, सूक ] माळा । गजरा । हार । उ०—  
 खेतत दृष्टि गण सुकला-स्य सुकुतदृष्ट छद्राने । मनु अपार सुख लेन तारकन द्वार द्वार दरसाने ।—रघुराज ।

सुगाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सुगली ] (१) सियार । शुगाल । (२) एक प्रकार का वृक्ष । (३) एक वैश्य का नाम । (४) कंचोरपुर के राजा वासुदेव का नाम । (हरिवंश) (५) प्रतापक । भूर्ण । धोखेबाज । (६) कायर । भीरु । डरपोक । (७) दुःखील मनुष्य । बर्दमिजाज भादमी ।  
 सुगालकंडक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सत्यानासी का पौधा । कटेरी । स्वर्णक्षीरी । भद्रभाद्र ।  
 सुगालकोलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] बेर का पद या फल ।  
 सुगालधंटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तालमखाना । कोकिलाक्ष ।  
 सुगालजंजु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तरवृक्ष । गोडुंब । (२) क्षयैती । छोटा बेर ।  
 सुगालरूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिब । महादेव ।  
 सुगालचन्दन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक भसुर का नाम । (हरिवंश)  
 सुगालघास्तुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] यधुशा साग का एक भेद ।  
 सुगालविप्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पिठवन । वृषिपर्णा ।  
 सुगालचूंत-संज्ञा स्त्री० दे० "सुगालविद्या" ।  
 सुगालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सियारिन । गीदड़ी । (२) खेमड़ी । (३) विद्वारीकंद । भूमिकुण्डा । (४) पलायन । भगदड़ । (५) दंगफसाद । हंगामा ।  
 सुगालिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सियारिन । गीदड़ी ।  
 सुगाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सियारिन । गीदड़ी । (२) खेमड़ी । (३) पलायन । भगदड़ । (४) उपद्रव । हंगामा । (५) तालमखाना । कोकिलाक्ष । (६) विद्वारीकंद ।  
 सुगिन्यी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुगिन्यी" ।  
 सुजक-संज्ञा पुं० [ सं० सूज ] सृष्टि करनेवाला । उत्पन्न करनेवाला । सजक ।  
 सुजनक-संज्ञा पुं० [ सं० सूज, सजन ] (१) सृष्टि करने की क्रिया । उत्पादन । (२) सृष्टि । उत्पत्ति । (३) छोड़ना । निकालना ।  
 सुजनहार-संज्ञा पुं० [ सं० सूज, सजन + हि० हार ] सृष्टिकर्ता । सृष्टि रचनेवाला । उत्पन्न करनेवाला । बनानेवाला ।  
 सुजना-संज्ञा-कि० सं० [ सं० सूज + हि० ना (प्रत्य०) ] सृष्टि करना । उत्पन्न करना । रचना करना । बनाना । उ०—(क) तपस्व ते जाग सूजह विधाता । तपस्व विष्णु भये परिप्राता ।—गुलसी । (ख) कत विधि सूजी नारि जा माहीं । पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।—गुलसी । (ग) जाके अंध मोर अवतारा । पालत सूजत हरत संसारा—सुबलसिंह । (घ) ए महि परहि दासि कुसपाता । सुभाग सेज कत सूजत विधाता ।—गुलसी ।  
 सुजय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पक्षी ।  
 सुजया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नीलमखिका ।  
 सुज्य-वि० [ सं० ] (१) जो उत्पन्न किया जानेवाला हो । (२) जो छोड़ा या निकाला जानेवाला हो ।

रुचि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु । (२) चंद्रमा ।

संज्ञा पुं० सी० अंकुश ।

रुचिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अंकुश ।

संज्ञा स्त्री० धुक । निष्ठीवन । छार ।

रुची-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दाँती । हँसिया ।

रुचीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु । (२) भ्रमि । (३) वज्र ।

(४) महोन्मत्त या उन्मत्त व्यक्ति ।

रुचीका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धुक । छार ।

रुच-वि० [ सं० ] (१) जो खिसक गया हो । सरका हुआ । (२)

गत । जो चला गया हो ।

रुचा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गमन । पलायन ।

रुचि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मार्ग । रास्ता । (२) जन्म । (३)

आवागमन । (४) निर्माण ।

रुच्यन्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रजापति । (२) विसर्प । सरकना ।

(३) बुद्धि ।

रुचवरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माता ।

रुचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्प । सर्प ।

रुदाकु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु । (२) अग्नि । (३) वनाग्नि ।

दायानल । (४) वज्र । (५) गोघ । गोह । (६) शृंग ।

(७) नदी ।

रुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक असुर । (हरिवंश) (२) चंद्रमा ।

रुपमन्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सर्प । (२) शिशु । (३) सपत्नी ।

रुपाट-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुल के नीचे की छोटी पत्नी ।

रुपाटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चोंच । चंचु ।

रुपाटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चोंच । चंचु ।

रुप-वि० [ सं० ] (१) चिकना । चिम्ब । (२) जिस पर हाथ

या पैर फिसले ।

संज्ञा पुं० (१) चंद्रमा । (२) मधु । दाहद ।

रुप्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम । सिन्धु नदी ।

रुचिद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दानव जिसे इंद्र ने मारा था । (क्रव्ये)

रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक असुर का नाम ।

रुमर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का पशु ( किसी के मत

से बाल शृंग ) । (२) एक असुर का नाम ।

रुमल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक असुर का नाम । (हरिवंश)

रुच-वि० [ सं० ] (१) उत्सुक । वैदा । (२) निमित्त । रचित ।

(३) धुक । (४) छोड़ा हुआ । निकाला हुआ । (५) व्याग्रा

हुआ । (६) निश्चित । संकल्प में पड़ा । तैयार । (७) बहुल ।

(८) अलंकृत । सजित ।

संज्ञा पुं० संद्र । विदुक ।

रुच्यमाद्यत-वि० [ सं० ] पेट की वायु को निकालनेवाला । (सुभ्रुग)

रुचि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उत्पत्ति । पैदाइश । बनने या पैदा

होने की क्रिया या भाव । (२) निर्माण । रचना । बनापट ।

४=२

(३) संसार की उत्पत्ति । जगत् का आविर्भाव । दुनिया की

पैदाइश । (४) उत्पन्न जगत् । संसार । दुनिया । पचास

पदार्थ । जैसे,—रुचि भर में देसा कोई न होगा । (५)

प्रकृति । निसर्ग । कुदरत । (६) शनशीलता । उदारता ।

(७) गंभीरी का पैदा । खंभारी । (८) एक प्रकार की ईंट जो

यज्ञ की वेदी बनाने के काम में आती थी ।

रुसा पुं० उग्रसेन के एक पुत्र का नाम ।

रुचिर्त्ता-संज्ञा पुं० [ सं० रुचिर्त्त ] (१) रुचि या संसार की

रचना करनेवाला, मद्रा । (२) ईश्वर ।

रुचिकृन्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रुचिकर्त्ता । (२) विचपापदा ।

पपटक ।

रुचिदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रुचि नामक अष्टवर्गीय ओषधि ।

रुचिपत्तन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की मंत्रदाति ।

रुचिप्रदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गर्भदात्री क्षुप । श्वेत कंटकारी । सकेद

भटकटैया ।

रुचिविज्ञान-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह विज्ञान या शास्त्र जिसमें रुचि

की रचना आदि पर विचार किया गया हो ।

रुचिशाल-संज्ञा पुं० दे० "रुचिविज्ञान" ।

सैंक-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सैंकना ] (१) आँच के पास या दहकते

अंगारे पर रखकर भूनने की क्रिया । (२) आँच के द्वारा

गर्मी पहुँचाने की क्रिया । जैसे,—दर्द में सैंक से बहुत

राम होया ।

किं० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।

यी०—सैंकसाँक ।

संज्ञा स्त्री० छोटे की कमची जिसका व्यवहार छीपी कपड़े

छापने में करते हैं ।

सैंकना-किं० सं० [ सं० शेषण = बलाना, तथाना ] (१) आँच के

पास या आग पर रखकर भूनना । जैसे,—रोटी सैंकना ।

(२) आँच के द्वारा गर्मी पहुँचाना । भाप दिखाना । आग

के पास छेजाकर गर्म करना । जैसे,—हाथ पर सैंकना ।

संयो० किं०—झालना ।—देना ।—उठाना ।

मुहा०—आँल सैंकना = सुंदर रूप देना । नकारा करना । पूर

सैंकना = पूर में रखकर शरीर में गर्मी पहुँचाना । पूर खाना ।

सैंकी-संज्ञा स्त्री० [ प्रा० सीनी, हिं० सीनिकी, सनहकी ] तरतरी ।

रक्षकी ।

संगर-संज्ञा पुं० [ सं० शंगर ] (१) एक पौधा जिसकी फलियों की

तरकारी बनती है । (२) इस पौधे की फली । (३) बयल की

फलियाँ या छीमी जो मँस, बकरी, ऊँट आदि को खाने को दी

जाती है । (४) एक प्रकार का अगहनी घान जिसका चावल

बहुत दिनों तक रहता है ।

संज्ञा पुं० [ सं० शृंगवत् ] क्षत्रियों की एक जाति या शाखा ।

उ०—रूप, रायी, गौह, हादा, चहुवल, मौर, सोमर,

बैदर, जादी अंग जितवार हैं। पीरच, पुंढीर, परिहार औ  
पवार धैस, संगर, सिसोदिया, सुलकी दितवार हैं।—सुदन।  
संगरा—संज्ञा पुं० [ देश० ] यह डंडा जिसमें लटका कर भारी  
पत्थर या धरन एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं।  
सैंजी—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की घास जो पंजाब में  
को बीपारों लिखाई जाती है।

विशेष—यह कपास के साथ बोई जाती है।  
हैंटर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गोलाई या घुस के बीच का बिंदु। केंद्र।  
मध्यबिंदु। (२) प्रधान स्थान। जैसे,—परीक्षा का सेंटर।

सैंटा—संज्ञा पुं० [ देश० ] (१) मूँज या सरकंडे के सैंके का निचला  
मोटा मजबूत हिस्सा जो मोड़े आदि बनाने के काम में आता  
है। कक्षा। (२) एक प्रकार की घास जो छपर छाने के काम  
में आती है। (३) छलाहों की यह पोली लकड़ी जिसमें  
उरी फँसाई जाती है। डोंड।

सैंड—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का खनिज पदार्थ जिसका  
व्यवहार सुनार करते हैं।

सैंत—संज्ञा स्त्री० [ सं० संवति = (१) क्रियापत्, (२) समूह, परि ]  
(१) कुछ व्यय का न होना। पास का कुछ न लगना। कुछ  
खर्च न होना।

यौ०—सैंतमेंत।  
मुहा०—सैंत का = (१) जिसमें कुछ दाम न गया हो। जो बिना  
मूल्य दिए मिले। जिसके मिलने में कुछ खर्च न हो। मुक्त का।  
जैसे,—(क) सैंत का सौदा नहीं है। (ख) सैंत की चीज  
की कोई परवा नहीं करता। ली (२) बहुत सा। डेर का डेर।  
बहुत ज्यादा। उ०—(क) चरहु लु मिलि उनही पै जैये,  
जिन्ह तुम टोकन पंथ पठाए। सखा संग लीने लु सैंत के  
फिरत रैन दिन बन में धाए। नार्दिन राज कंस को जान्यो  
बाट रोक्ते फिरत पराए।—सूर। (ख) धनयो गाँव लेहु  
गैदरानी। बढ़े बाप की बेटी ताते पूतहि भले पदावति  
बानी।।।।। सुनु मैया ! धाके गुन मोसों, इन मोहि  
लियो छुलाई। दधि में परी सैंत। की. चंटी, मोपि सयै  
पदाई।—सूर। ( यह मुखरप पूर्वी श्रवणी का है और बली,  
गंडे, फेजाबाद आदि जिलों में बोला जाता है )। सैंत में = (१)  
बिना कुछ दाम दिए। बिना कुछ खर्च किए। बिना मूल्य के। मुक्त  
में। जैसे,—यह घड़ी मुझे सैंत में मिल गई। (२) व्यर्थ।  
निष्प्रयोजन। फजूल। जैसे,—यहाँ सैंत में खगड़ा लेते हो।

सैंतना—संज्ञा स्त्री०—कि० सं० दे० "सैंतना"।

सैंतमेंत—कि० वि० [ हि० सैंत + मेंत (भुज०) ] (१) बिना दाम दिए।  
मुफ्त में। फोक्ट में। सैंत में। उ०—कलकी और महीन  
बहुत में सैंतमेंत विकारें।—सूर। (२) व्यर्थ। फजूल।  
निष्प्रयोजन। बेमतलब। जैसे,—यहाँ सैंतमेंत खगड़ा मोल  
लेते हो ?

सैंति, सैंती—संज्ञा स्त्री० दे० "सैंत"।

प्रत्य० [ प्रा० स्तुति; पंचमी विभक्ति ] पुरानी हिंदी की कण  
और भगवान की विभक्ति। से। उ०—(क) सोहि पीर जो  
प्रेम की पाका सैंती खेल।—कबीर। (ख) हिंदू व्रत एकादशि  
साथें दूध सिधादा सैंती।—कबीर। (ग) राजा सैंति कुँवर  
सय कहइयों। भस भस मच्छ समुद मई अहइयों।—जायसी।  
(घ) संजीवनि तब कचहि पदाई। ता सैंती यों क्यो  
समुसाई।—सूर।

सैंथा—संज्ञा पुं० दे० "सैंथ"।

सैंथी—संज्ञा स्त्री० [ सं० शक्ति ] बरछी। माछा। शक्ति। शबल।  
उ०—इंद्रजीत लीनी जय सैंथी देवन हहा कर्यो। छरी  
विग्रु राशि यह मानो भूतल बंधु पर्यो।—सूर।

सैंदू—संज्ञा स्त्री० दे० "सैंध"।

सैंदुर—संज्ञा पुं० [ सं० सिन्दूर ] हंगुर की चुकनी। सिंदूर।  
उ०—(क) माँग में सैंदुर सोहि रयो गिरधारन है उपमान  
तिहँ पुर। मानो मनोज की लगी कृपान, परयो कटि बीच  
ते राहु पहादुर।—सुंदरीसचरंत्व। (ख) बिन सैंदुर जानवें  
मैं दिना। उँवियर पंथ रहनि मैंह किना।—जायसी।

विशेष—सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ इसे माँग में भरती हैं। यह  
सौभाग्य का चिह्न माना जाता है। विवाह के समय पर  
कन्या की माँग में सिंदूर डालता है और उसी घड़ी से वह  
उसकी स्त्री हो जाती है।

कि० प्र०—पहनना।—देना।—भरना।—लगाना।

मुहा०—सैंदुर चढ़ना = स्त्री का विवाह होना। सैंदुर देना =  
विवाह के समय पति का पत्नी की माँग भरेना। उ०—राम सीप  
सिर सैंदुर देहँ। सोमा कदि न जात विधि केहँ।—गुलशरी।

सैंदुरदानी—संज्ञा स्त्री० [ हि० सैंदुर + दानी ] सिंदूर रखने की  
डिबिया। सिंदुरा।

सैंदुरा—वि० [ हि० सैंदुर ] [ स्त्री० सैंदुरी ] सिंदूर के रंग का।  
छाल। जैसे,—सैंदुरी गाय। सैंदुरा आम।

संज्ञा पुं० सिंदूर रखने का डिब्बा। सिंदुरा।

सैंदूरिया—संज्ञा पुं० [ सं० सिंदुरिका, सिंदुरी ] एक सदाबहार लीपा  
जिसमें सिंदूर के रंग के छाल फूल लगते हैं।

विशेष—इसके पत्ते ६-७ अंगुल लंबे और ४-५ अंगुल चौड़े  
नुकीले और शर्षवी के पत्तों से मिलते-जुलते होते हैं। फूल  
दो टाई अंगुल के घेरे में पाँच दलों के और सिंदूर के रंग  
के छाल होते हैं। इस लीपे की गुलाबी, बैंगनी और सफेद  
फूलवाली जातियाँ भी होती हैं। गरमी के दिनों में यह  
फूलता है और परसात के अंत में इसमें फल लगने लगते  
हैं। फल लंबोतरे, गोल, छलाई लिए भूरे तथा कोमल  
महीन महीन कोंटों से युक्त होते हैं। रुड़े का रंग छाल  
होता है। गूदों के भीतर जो बीज होते हैं, उन्हें पानी में



(३) अभिषेक । (४) सैल-सेचन या मर्दन । तेल छानना या मलना । (बैद्यक) (५) एक प्राचीन जाति का नाम ।

सेकड़ा-संज्ञा पुं० [ दे० ] यह धातुक या छड़ी जिससे हलपाहे बेल हॉकते हैं । पैना ।

सेकतव्य-वि० [ सं० ] (१) सँचने योग्य । (२) जिसे सँचना या तर करना हो ।

सेकपात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सँचने का बरतन । ढोल । ढोलची ।

सेकमाजन-संज्ञा पुं० दे० "सेकपात्र" ।

सेकमिथ्रात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह खाद्य पदार्थ जिसमें दही पदा हो ।

सेकिम-वि० [ सं० ] सँचा हुआ । तर किया हुआ । (२) ढाला हुआ (लोहा) ।

सेला पुं० [ सं० ] मूली । मूलक ।

सेकुवा-संज्ञा पुं० [ दे० ] काठ के दूसे का लंबा फरछा या डीवा जिससे हलवाई दूध आँटाते हैं ।

सेकुरी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] धान । (सुमार)

सेका-वि० [ सं० सेकृ ] [ स्त्री० सेक्री ] (१) सँचनेवाला । (२) बरदानेवाला । जो गाय, घोड़े आदि को बरदाता है ।

सेला पुं० पति । शौहर ।

सेकू-संज्ञा पुं० [ सं० ] सँचने का बरतन । जल उलीचने का बरतन । ढोल । ढोलची ।

सेक्रेटरी-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) वह उच्च कर्मचारी या अफसर जिसके अधीन सरकार या शासन का कोई विभाग हो । मंत्री । सचिव । जैसे,—फारेन सेक्रेटरी । स्टेट सेक्रेटरी । (२) वह पदाधिकारी जिस पर किसी संस्था के कार्य संपादन का भार हो । जैसे,—कॉमेस सेक्रेटरी । (३) वह व्यक्ति जो दूसरे की ओर से उसके भाइयानुसार पत्र व्यवहार आदि करे । मुंशी । जैसे,—महाराज के सेक्रेटरी ।

सेक्रेटरियट-संज्ञा पुं० [ अ० ] किसी सरकार के सेक्रेटरियों का कार्यालय या दफतर । शासक या गवर्नर का दफतर ।

सेकेशन-संज्ञा पुं० [ अ० ] विभाग । जैसे,—दूस दरजे में दो सेकशन हैं ।

सेखल-संज्ञा पुं० दे० "शेष" (८) । उ०—महिमा अमित न सकहिं कहि सइस सारदा सेल ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० दे० "शेष" (४) । उ०—पियत यात तन सेख कियो द्विज रात बिहरि बन । मिटै यासना नाहिं विना हरि पद रज के तन ।—सुधाकर ।

संज्ञा पुं० दे० "शेष" । उ०—हनमें इते यलवान हैं । उत सेख मुगल पठान हैं ।—सूदन ।

सेखर-संज्ञा पुं० दे० "शेखर" । उ०—मोर मुकुट की चंद्रिकन यौं राजत नंदनदं । मनु ससि-सेखर को अकस किये सेखर सतचंद ।—बिहारी ।

सेखाचत-संज्ञा पुं० [ प्रा० शेष ] राजपूतों की एक जाति या शाखा । शोखाचत ।

विशेष—इनका स्थान राजपूताने का शोखावाटी नाम का कसबा है ।

सेखी-संज्ञा स्त्री० दे० "शेखी" ।

सेगव-संज्ञा पुं० [ सं० ] केकड़े का बच्चा ।

सेगा-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) विभाग । महकमा । (२) विषय । पवाई या विद्या का कोई क्षेत्र । जैसे,—यह इतहान में दो सेगों में फेल हो गया ।

सेगुन-संज्ञा पुं० दे० "सगुन" ।

सेगोन, सेगौन-संज्ञा पुं० [ दे० ] मटमैले रंग की छाल मिट्टी जो नालों के पास पाई जाती है ।

सेचक-वि० [ सं० ] सँचनेवाला । छिड़कनेवाला । तर करनेवाला ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] मेघ । बादल ।

सेचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० सेचनीय, सेचित, सेच्य ] (१) जल सँचने । सिंचाई । (२) मार्जन । छिड़काव । छंटी देना ।

(३) अभिषेक । (४) डलाई (घातु की) । (५) (नाब से) जल उलीचने का बरतन । लोहेंदी ।

सेचनक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अभिषेक ।

सेचनघट-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह बरतन जिससे जल सँचा जाता है ।

सेचनीय-वि० [ सं० ] सँचने योग्य । छिड़कने योग्य ।

सेचित-वि० [ सं० ] (१) जो सँचा गया हो । तर किया हुआ । (२) जिस पर छंटी दिए गए हों ।

सेच्य-वि० [ सं० ] (१) सँचने योग्य । जल छिड़कने योग्य । (२) जिसे सँचना हो । जिसे तर करना हो ।

सेछागुन-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का पक्षी ।

सेज-संज्ञा स्त्री० [ सं० शय्या, प्रा० सड़ा ] शय्या । पलंग और बिछोना । उ०—(क) सेज रुचिर रुचि राम ठढाये । प्रेम समेत पलंग पौदाये ।—तुलसी । (ख) चॉदनी महल फैल्यो चॉदनी करस, सेज, चॉदनी बिछाय छपि चॉदनी रिसे रही ।—प्रतापसाहि ।

सेजपाल-संज्ञा पुं० [ सं० शय्यापाल, हिं० सेज + पाल ] राजा की शय्या या सेज पर पहरा देनेवाला । शयन-गृह पर पहरा देनेवाला । शयनगार-रक्षक । शय्यापाल । उ०—राजा उस समय शय्या पर पौड़े थे और सेजपाल लोग अन्न बाँधे पहरा दे रहे थे ।—गदाधरसिंह ।

सेजरिया-संज्ञा स्त्री० दे० "सेज" । उ०—रस रँग परी है देखों छाल की सेजरिया ।—कथोर ।

सेजा-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का पेड़ जो आसाम और बंगाल में होता है और जिस पर दूसर के कीड़े पाले जाते हैं ।

सेजिया-संज्ञा स्त्री० दे० "सेज" ।

सेज्या-संज्ञा स्त्री० दे० "शय्या" । उ०—सूर श्याम सुख जानि मुदित मन सेज्या पर सँग है पौदावति ।—सूर ।

सेमदादि-संज्ञा पुं० दे० "साम्प्रदायि" । उ०—सेमदादि से गिरि  
 बहु रहई । गंगादि सरिता बहु बहई ।—यसुनभद्रात् ।  
 सेमना-किं० प्र० [ सं० सेन = दूर करना, हवाना ] दूर होना ।  
 हटना । उ०—सो दारू किस काम की जागें दूर न जाइ ।  
 दादू काटइ रोग को सो दारू ले छाइ । अनुभव काटइ रोग  
 को अनहद उपजइ भाइ । जैसे काजर निर्मला पावइ रधि  
 लव छाइ ।—दादू ।  
 सेट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन योद्ध या मान ।  
 संज्ञा पुं० [ देश० ] कौल, नाद, उपस्थ आदि के बाल या रोपें ।  
 संज्ञा पुं० [ भं० ] एक ही प्रकार या मेल की कई चीजों का  
 समूह । जैसे—किनासों का सेट, पाने के बरतनों का सेट ।  
 सेटना-किं० प्र० [ सं० भय = विधात करना ] (१) समझना ।  
 मानना । उ०—जो कलिकाल शुभे भव मेरत । शरणगत  
 भयराज लघु सेतत ।—रघुराज । (२) कुछ समझना ।  
 महत्व स्वीकार करना । जैसे,—अपने आगे यह किसी को  
 नहीं सेटता ।  
 सेटु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेत की कढ़वी । फूट । (२) कघरी ।  
 पहेंवा ।  
 सेठ-संज्ञा पुं० [ सं० सेठी ] [ की० सेठनी ] (१) यदा साहूकार ।  
 महाजन । कोठीवाल । (२) बच्चा या योक्तृ स्थापरी । (३)  
 घनी मनुष्य । मालदार आदमी । लखपती । (४) घनी और  
 प्रतिष्ठित यणिकों की उपाधि । (५) सचिवों की एक जाति ।  
 (६) दूला । (हिं०) (७) सुनार ।  
 सेठन-संज्ञा पुं० [ देश० ] साहू । उद्यारी ।  
 सेठा-संज्ञा पुं० दे० "सेत" ।  
 सेठ्ठा-संज्ञा पुं० [ देश० ] भादों में होनेवाला एक प्रकार का पान ।  
 सेठ्ठी-संज्ञा स्त्री० [ सं० वेदि, प्र० वेदि, हिं० वेदि ] सहेली ।  
 सरी । (हिं०)  
 सेद-संज्ञा पुं० [ भं० सेन ] बादमान । पाल । (लडा०)  
 मुहा०—सेद करना = पाल जाना । जहाज खोजना । सेद  
 खोलना = पाल खोलना । (लडा०) सेद बवाना = पाल में से  
 हवा निकालना जिसमें वह लपेटे जा सके । (लडा०) सेद  
 सचवाना = लपेटे की घोबर पाल दानना ।  
 सेदखाना-संज्ञा पुं० [ भं० सेन + खाना ] (१) जहाज में वह  
 कमरा या कोठरी जिसमें पाल भरे रहते हैं । (२) वह कमरा  
 या कोठरी जहाँ पाल काटे और बनाए जाते हैं । (लडा०)  
 सेदा-संज्ञा पुं० दे० "सेदा" ।  
 सेत-संज्ञा पुं० दे० "सेतु" । उ०—काज क्रियो नहिं समै पर  
 पदमनिं फिरि काह । मूर्ख सरिता नेत ज्यों जोचन विनी  
 विषाह ।—दीनदयाल ।  
 सेवि-दे० "सेत" । उ०—यहै सेत सारी पैठी फातुष के  
 पास प्यारी, कदत बिहारी माल प्यारी थीं बिने गई ।—दूदह ।

सेतकुली-संज्ञा पुं० [ सं० श्वेतकुलीय ] सर्पों के अटकुल में से एक ।  
 सर्पद जाति के नाग । उ०—भोको तुम भव यज्ञ करावहु ।  
 तद्वर कुट्टिय समेत जवायहु । विप्रन सेतकुली जब जारी ।  
 तव राजा तिनसों उचारी ।—सूर ।  
 सेतद्वीप-संज्ञा पुं० दे० "श्वेतद्वीप" ।  
 सेतदुति-संज्ञा पुं० [ सं० श्वेतपुत्रि ] चंद्रमा ।  
 सेतना-किं० प्र० दे० "सेतना" ।  
 सेतयंघ-संज्ञा पुं० दे० "सेतुयंघ" ।  
 सेतया-संज्ञा पुं० [ सं० शुक्ति, हिं० शिवुरी ] पत्ते छोटे की करछी  
 जिससे अधीम काठते हैं ।  
 सेतयारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० सिन्धु = बाण + यारी (प्रय०) ] हरापन  
 लिपु हुए पलुई चिकनी मिट्टी ।  
 सेतपाल-संज्ञा पुं० [ देश० ] धरनों की एक जाति ।  
 सेतपाह-संज्ञा पुं० [ सं० श्वेतपादन ] (१) धनुं । (२) चंद्रमा ।  
 (हिं०)  
 सेतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० साकेत ? ] क्षयोरथा ।  
 सेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बंधन । बंधन । (२) मिट्टी का  
 ढँचा पटाव जो कुछ दूर तक चला गया हो । बाँध । धुस्त ।  
 (३) मैद । उद्वि । (४) किसी नदी, जलशय, गढ़े, खाई  
 आदि के आरपार जाने का रास्ता जो लकड़ी, बाँध, छोटे  
 आदि विधाकर या पक्षी जोड़ाई करके बना हो । पुल ।  
 उ०—भायत जानि भानुकुल केतु । सरितन्द जनक यैपाप  
 सेतु ।—तुलसी ।  
 किं० प्र०—बनाना ।—बँधना ।  
 (५) सीमा । हृदयदी । (६) मर्यादा । नियम या व्यवस्था ।  
 मतिबंध । उ०—असुर गारि भाषहिं सुरन्द राखहिं निज  
 धुतिमेतु । जग विस्तारहिं विशद जस, रामजनम कर हेतु ।  
 —तुलसी । (७) प्रणव । भौंकार । (८) टीका या व्याख्या ।  
 (९) परल पक्ष । बरना । (१०) एक प्राचीन स्थान ।  
 (११) हनुम के एक पुत्र और यमु के भाई का नाम ।  
 क्षवि० दे० "सेत" ।  
 सेतुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुल । (२) बाँध । धुस्त । (३)  
 बरण वृक्ष । बरना ।  
 सेतुकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेतु-निर्माता । पुल बनानेवाला ।  
 सेतुकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० सेतुकर्म ] सेतु या पुल बनाने का काम ।  
 सेतुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] दशिणापर्व के एक स्थान का नाम ।  
 सेतुपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामचंद्र के ( जो महास भ्रमंड के भद्रा  
 जिले के अंतर्गत हैं ) राजाओं की बंध परंपरागत उपाधि ।  
 सेतुप्रद-संज्ञा पुं० [ सं० ] हनुम का एक नाम ।  
 सेतुयंघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुल की बँधारी । (२) वह पुल  
 जो खंडा पर बनाई के समय रासबंध की से समुद्र पर  
 बँधवाया था ।



विशेष—नल नील ने यंदरों की सहायता से दिलाएँ पाटकर यह पुल बनाया था। वाल्मीकि ने यहाँ शिव की स्थापना का कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल लंका से डौलते समय रामचंद्र ने सीता से कहा है—“यहाँ पर सेतु बंधने के पहले शिव ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया था।” (युद्धकांड १२५वाँ अध्याय।) पर अध्यात्म भादि विरुद्धी रामायणों में शिव की स्थापना का वर्णन है। इस स्थान पर रामेश्वर महादेव का दर्शन करने के लिये लाखों यात्री जाया करते हैं। ‘सेतुबंध रामेश्वर’ हिंदुओं के चार मुख्य धामों में से एक है। आजकल कन्याकुमारी और सिंहल के बीच के डिटले समुद्र में स्थान स्थान पर जो चट्टानें निकली हैं, वे ही उस प्राचीन सेतु के चिह्न बतलाई जाती हैं।

सेतुबंधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेतु निर्माण। पुल बंधना। (२) पुल। (३) बंध। मेढ़।

सेतुबंध रामेश्वर-संज्ञा पुं० दे० “सेतुबंध” (२) और “रामेश्वर”। सेतुमेढ़-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेतु भंग। पुल का टूटना। बंध का टूटना।

सेतुमेढ़ी-संज्ञा पुं० [ सं० सेतुमेदिर् ] दंती। उदुंबरपर्णा। त्रिरीफल।

सेतुवा-संज्ञा पुं० दे० “सूत”। उ०—सोह सुजाह सेतुवा बनघायो। तामें चारिउ भाग लगायो।—रघुनाथदास।

सेतुवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] वरण वृष्ट। धरना। सेतुशैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पहाड़ जो दो देशों के बीच में हो। सर-हृद का पहाड़।

सेतुपाम-संज्ञा पुं० [ सं० सेतुपाम् ] एक साम का नाम। सेत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्वेदी। जंजीर। शंखला।

सेधिया-संज्ञा पुं० [ सेलू० चेदि, चेदिग, हिं० सेठिया ] नेत्रों की चिकित्सा करनेवाला। आँखों का इलाज करनेवाला।

सेद्व-संज्ञा पुं० दे० “स्वेद”। उ०—कान में कामिनी के यह आनिके धोल परयो जनु यत्र सो नायो। सूखि गयो अँग पीरो भयो रँग, सेद्व कपोलन में रँग धायो।—रघुनाथ धंदीजन।

सेद्वज-वि० दे० “स्वेदज”। उ०—बिन सनेह हुष होय न कैसे। शुक् मूषक सुत सेद्वज जैसे।—रघुनाथदास।

सेदरा-संज्ञा पुं० [ फ्रा० सेह = चीन + दर = दरवाजा ] यह मकान जो चीन तरफ से खुला हो। तिवरी।

सेदुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राजा का नाम। (महाभारत)। सेद्वव्य-वि० [ सं० ] (१) निवारण योग्य। हटाने या दूर करने योग्य। (२) जिसे हटाना या दूर करना हो।

सेध-संज्ञा पुं० [ सं० ] निषेध। निवारण। मनाही। सेधक-वि० [ सं० ] प्रतिरोधक। हटाने या रोकनेवाला।

सेधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साही नाम का जानवर जिसकी पीठ पर कँडे होते हैं। खारपुरत।

सेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरिर। (२) जीवन। (३) बंगाल की बीच जाति की उपाधि। (४) एक भक्त नाई।

विशेष—इसकी कथा भक्तमाल में इस प्रकार है। यह रीतों के महाराज राजाराम की सेवा में था और बड़ा भारी भक्त था। एक दिन साधु-सेवा में लगे रहने के कारण वह समय पर राजसेवा के लिये न पहुँच सका। उस समय भगवान् ने इसका रूप धर कर राजमनन में जाकर इसका काम किया। यह प्रजात शांत होने पर यह विरक्त हो गया और राजा भी परम भक्त हो गए।

(५) एक राक्षस का नाम। वि० [ सं० ] (१) जिसके क्षिर पर कोई मालिक हो। सनाय। (२) आश्रित। अधीन। तावे।

संज्ञा पुं० [ सं० सेन ] याज्ञ पदवी। उ०—ज्यों गच बाँच भिलोकि सेन जदु छौँह भापने तन की। टूटत भति भातुर अहारपस, छति विसारि आनन की।—तुलसी।

ॐ संज्ञा स्त्री० दे० “सेना”। उ०—हय गय सेन चलै जग पुरी।—जायसी।

ॐ संज्ञा स्त्री० दे० “सेध”।

सेनक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शंकर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश) (२) एक वैयाकरण का नाम।

सेनजित्-वि० [ सं० ] सेना को जीतनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) एक राजा का नाम। (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (३) विश्वजित् के एक पुत्र का नाम। (४) गृहकर्मा के एक पुत्र का नाम। (५) कृपाध के एक पुत्र का नाम। (६) विशाद के एक पुत्र का नाम।

संज्ञा स्त्री० एक भप्सरा का नाम।

सेनप-संज्ञा पुं० [ सं० सेन + प = पति ] सेनापति। उ०—सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सय करे।—तुलसी।

सेनपति-संज्ञा पुं० दे० “सेनापति”। उ०—करि पुनि उपवन वारिहु तोरी। पंच सेनपति सेन मरोरी।—पद्माकर।

सेनयंश-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंगाल का एक हिंदू राजवंश जिसने ११वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक राज्य किया था।

सेनस्कंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंकर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश) सेनांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेना का कोई एक अंग। जैसे,—पैदल, हाथी, घोड़े, रथ। (२) फौज का हिस्सा। सिपाहियों का दल या टुकड़ी।

सेना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) युद्ध की शिक्षा पाए हुए और अक्षयक्ष से सजे मनुष्यों का बड़ा समूह। सिपाहियों का गरोह। फौज। पलटन।

विशेष—भारतीय युद्धकला में सेना के चार अंग माने जाते थे—पदाति, अघ, गज और रथ। इन अंगों से पूर्ण समूह

सेनाकदलता था। सैनिकों या सिपाहियों को समय पर वेतन देने की व्यवस्था आजकल के समान ही थी। यह वेतन कुछ तो भले या अनाज के रूप में दिया जाता था और कुछ मकड़। महाभारत (समापर्व) में नारद ने दुषिष्ठिर की उपदेश दिया है कि "कश्चिदलस्य भक्तं च वेतनं चयथोचितम्। सगम्राहकाले दानम्पं ददासि न विकर्षसि" ॥ चतुरंग दल के अतिरिक्त सेना के और चार विभाग होते थे—विष्टि, नौका, चर और देशिक। सब प्रकार के सामान लदाने और पहुँचाने का प्रबंध 'विष्टि' कहलाता था। 'नौका' का भी कदाई में काम पड़ता था। चरों के द्वारा प्रतिपक्ष के समाचार मिलते थे। 'देशिक' स्थानीय सहायक हुज्जा करते थे जो अपने स्थान पर पहुँचने पर सहायता पहुँचाकर करते थे। सेना के छोटे छोटे दलों को 'गुप्त' कहते थे।

पट्याँ—चतुरंग। बल। ध्वजिनी। पाहिनी। घृतना। अनीहिनी। चम्पू। सैन्य। वरुथिनी। अनीक। धक। वाहना। गुदिमनी। वरचक्षु।

(२) भाला। बरछी। शक्ति। सर्ग। (३) इंद्र का यज्ञ। (४) इंद्राणी। (५) वर्तमान अवस्थाएँ के तीखरे अर्धचंद्र शंभर की माता का नाम। (जैन) (६) एक उपाधि जो पहले अधिकतर वैद्यकों के नामों में लगी रहती थी। जैसे, वसंत सेना।

किं० तां० [ सं० सेवन ] (१) सेवा करना। सिद्धमत करना। किसी को भाराम देना या उसका काम करना। नौकरी पजाना। टहल करना। उ०—सेइय देसे स्वामि को जो राई निज मान।—कवीर।

मुहान्—चरण सेना = तुच्छ से तुच्छ चाकरी बनाना।

(२) आराधना करना। पूजना। उपासना करना। उ०—(क) ताते सेइय श्री जदुराई। (ख) सेवत सुलभ उदार कल्पतरु पारवतीपति परम सुजान।—गुलसी। (३) निवर्णक व्यवहार करना। काम में खाना। इस्तेमाल करना। नियम के साथ खाना पीना या लगाना। उ०—(क) आसव सेइ सिखाए सखीके के सुंदरि मंदिर में सुए सोवे।—देव। (ख) निचट लजीवी नवह लिय यहकि पारनी सेइ। त्यों त्यों भति मीठी लयें ज्यों ज्यों वीठो देइ।—पिदाारी। (४) किसी स्थान को लगातार न छोड़ना। पक्षा रहना। निरंतर बात करना। जैसे—चारपाई सेना, कोठी सेना, सीधे सेना। उ०—(क) सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेतु कलि कासी।—तुलसी। (ख) उचम परल सेधें सुवन, नीच नीच के बंस। सेवत गीध भसान को, मानसरोवर हंस।—श्रीनदवा। (५) लिपि बँडे रहना। दूर न करना। जैसे,—फौज सेना। (६) मादा चिकिया का गरीम पहुँचाने के लिये अपने अंशों पर बैठना।

सेनाकद—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का पार्श्व। फौज का पार्श्व। सेनाकर्म—संज्ञा पुं० [ सं० सेनाकर्म ] (१) सेना का संचालन या व्यवस्था। (२) सेना का काम।

सेनागोप—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का संरक्षक। सेना का एक विशेष अधिकारी।

सेनाग्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का अग्रभाग। फौज का अग्रभाग हिस्सा। सेनाचर—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना के साथ जानेवाला सैनिक। योद्धा। सिपाही।

सेनाजीव—संज्ञा पुं० दे० "सेनाजीवी"। सेनाजीवी—संज्ञा पुं० [ सं० सेनाजीवी ] यह जो सेना में रहकर अपनी जीविका चलाये। सैनिक। सिपाही। योद्धा।

सेनादार—संज्ञा पुं० [ सं० सेना + दार ] सेनानायक। फौजदार। उ०—महदाराव हुडकर भाग्य के बल से पेशवा यहादुर की सेना का सेनादार हो गया।—शिवप्रसाद।

सेनाधिकारी—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनानायक। फौज का अफसर। सेनाधिनाय—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति। फौज का अफसर। सिपहसालार।

सेनाधिप—संज्ञा पुं० [ सं० ] फौज का अफसर। सेनापति। सेनाधिपति—संज्ञा पुं० [ सं० ] फौज का अफसर। सेनापति। सेनाधीश—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति।

सेनाव्यक्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] फौज का अफसर। सेनापति। सेनानायक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का अफसर। फौजदार। सेनानी—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेनापति। फौज का अफसर।

(२) कार्तिकेय का एक नाम। (३) एक रत्न का नाम। (४) धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (५) शंकर के एक पुत्र का नाम। (६) एक विशेष प्रकार का पौधा।

सेनापति—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेना का नायक। फौज का अफसर। (२) कार्तिकेय का एक नाम। (३) शिव का नाम। (४) धतराष्ट्र के एक पुत्र का एक नाम। (५) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम।

सेनापर्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति का कार्य या पद। सेनापति का अधिकार।

सेनापाल—संज्ञा पुं० [ सं० सेना + पाल ] सेनापति। उ०—दृष्टये दोखने भूप तय सेनापाल सुलाप। पाइ सुधामा वीर जे सुखी लेहु छुदाय।—सयलसिंह।

सेनापृष्ठ—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का पिछला भाग। सेनाप्रणेत—संज्ञा पुं० [ सं० सेनाप्रणेत ] सेनानायक। फौज का मुखिया।

सेनाबंध—संज्ञा पुं० [ सं० सेना + बंध ] शूरवीर (दि०) सेनाभिगोहा—संज्ञा पुं० [ सं० सेनाभिगोह ] सेनारक्षक। सेनापति। सेनामुख—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेना का अग्रभाग। (२) सेना का एक खंड जिसमें ३ या ९ हाथी, ३ या ९ रथ, ९ या

विशेष—नल नील ने बंदरों की सहायता से त्रिलोचन पाटकर यह पुल बनाया था। वाल्मीकि ने यहाँ शिव की स्थापना का कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल लंका से लौटते समय रामचंद्र ने सीता से कहा है—“यहाँ पर सेतु बंधने के पहले शिव ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया था।” (युद्धकांड १२५वर्ष अध्याय।) पर अध्यात्म भादि पिछली रामायणों में शिव की स्थापना का वर्णन है। इस स्थान पर रामेश्वर महादेव का दर्शन करने के लिये लाखों यात्री जाया करते हैं। ‘सेतुबंध रामेश्वर’ हिंदुओं के चार मुख्य धर्मों में से एक है। आगरा कन्याशुभारी और सिंदहर के बीच के छिछले समुद्र में स्थान स्थान पर जो चट्टानें निकली हैं, वे ही उस प्राचीन सेतु के विह्वल बतलाई जाती हैं।

सेतुबंधन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेतु निर्माण। पुल बंधना। (२) पुल। (३) बंधन। मेड़।

सेतुबंध रामेश्वर—संज्ञा पुं० दे० “सेतुबंध” (२) और “रामेश्वर”। सेतुमेड़—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेतु अंग। पुल का टूटना। बंधन का टूटना।

सेतुमेड़ी—संज्ञा पुं० [ सं० सेतुमेरि ] दंतौ। उदुंबरपर्णी। त्रिरीफल।

सेतुवा—संज्ञा पुं० दे० “सूस”। उ०—सोह मुजाह सेतुवा बनवायो। तामें चारिठ भाग लगायो।—रघुनाथदास।

सेतुवृक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० ] वरुण वृक्ष। वरना।

सेतुशैल—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह पहाड़ जो दो देशों के बीच में हो। सर-हद का पहाड़।

सेतुषाम—संज्ञा पुं० [ सं० सेतुषाम ] एक साम का नाम।

सेत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] बेड़ी। जंजीर। शंखला।

सेठिया—संज्ञा पुं० [ सं० सेठ्यू, चेठि, चेठिया, हिं० सेठिया ] नेत्रों की चिकित्सा करनेवाला। आँखों का इलाज करनेवाला।

सेद—संज्ञा पुं० दे० “स्वेद”। उ०—कान में कामिनी के यह आनिकें बोल परयो जनु चर्र सो नायो। सुखि गयो अँग पीरो भयो रीग, सेद कपोलन में रोग धायो।—रघुनाथ बंदीजन।

सेदज—वि० दे० “स्वेदज”। उ०—यिन सनेह दुप होय न कैसे। शुक्र मूषक सुत सेदज जैसे।—रघुनाथदास।

सेदरा—संज्ञा पुं० [ सं० सेह = तीन + द (= दत्तवाग) ] यह मकान जो तीन तरफ से खुला हो। त्रिदरी।

सेदुक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राजा का नाम। (महाभारत)

सेद्वय—वि० [ सं० ] (१) निवारण योग्य। हटाने या दूर करने योग्य। (२) जिसे हटाना या दूर करना हो।

सेध—संज्ञा पुं० [ सं० ] निषेध। निवारण। मनाही।

सेधक—वि० [ सं० ] प्रतिरोधक। हटाने या रोकनेवाला।

सेधा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साधी नाम का जानवर जिसकी पीठ पर कटि होते हैं। खारपुस्त।

सेन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरीर। (२) जीवन। (३) बंगाल की बंध जाति की उपाधि। (४) एक भक्त नाई।

विशेष—इसकी कथा भक्तमाल में इस प्रकार है। यह रविवार के महाराज राजाराम की सेवा में था और बहुत भारी भक्त था। एक दिन सातु-सेवा में लगे रहने के कारण यह समय पर राजसेवा के लिये न पहुँच सका। उस समय भगवान् ने इसका रूप धर कर राजभवन में जाकर इसका काम किया। यह वृत्तान्त ज्ञात होने पर यह विरक्त हो गया और राजा भी परम भक्त हो गए।

(५) एक राक्षस का नाम।

वि० [ सं० ] (१) जिसके सिर पर कोई मालिक हो। सनाध। (२) आश्रित। अधीन। तावे।

सना पुं० [ सं०, रयेन ] वाज पक्षी। उ०—ज्यों गच कंच बिलोकि सेन जद छोई भापने तन की। दूटत भति आपुर अहारवस, छति बिसारि आनन की।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० दे० “सेना”। उ०—हय गय सेन चले जग पूरी।—जायसी।

‡ संज्ञा स्त्री० दे० “सेंध”।

सेनक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शंकर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश) (२) एक पैशाकरण का नाम।

सेनजित्—वि० [ सं० ] सेना को जीतनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) एक राजा का नाम। (२) श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। (३) विधजित् के एक पुत्र का नाम। (४) घृहकर्मा के एक पुत्र का नाम। (५) कृशाध के एक पुत्र का नाम। (६) विचद के एक पुत्र का नाम।

संज्ञा स्त्री० एक अक्षरा का नाम।

सेनप—संज्ञा पुं० [ सं० सेना + प = पति ] सेनापति। उ०—सुर सचिव सेनप यहूतेरे। नृप गृह सरिस सदन सप कैरे।—तुलसी।

सेनपति—संज्ञा पुं० दे० “सेनापति”। उ०—कवि पुनि उपवन याहिहु तोरी। पंच सेनपति सेन मरौरी।—पद्माकर।

सेनवंश—संज्ञा पुं० [ सं० ] बंगाल का एक हिंदू राजवंश जिसने १४वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक राज्य किया था।

सेनस्कंध—संज्ञा पुं० [ सं० ] शंकर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश) सेनांग—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेना का कोई एक अंग। जैसे,—पैदल, हाथी, घोड़े, रथ। (२) कौज का हिरवा। सिपाहियों का दल या टुकड़ी।

सेना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) युद्ध की शिक्षा पाए हुए और अक्षरक से सजे मनुष्यों का बड़ा समूह। सिपाहियों का गरोह। कौज। पलटन।

विशेष—भारतीय युद्धकला में सेना के चार अंग माने जाते थे—पदाति, अश्व, गज और रथ। इन अंगों से पूर्ण समूह

सेनाकदलता था। सैनिकों या सिपाहियों को समय पर वेतन देने की व्यवस्था आजकल के समान ही थी। यह वेतन कुछ तो भत्ते या अनाज के रूप में दिया जाता था और कुछ नक़द। महाभारत (समापर्व) में मारद ने बुधधिर को उपदेश दिया है कि "कचिद्दल्य भक्तं च वेतनं च योर्भितम्। सम्प्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विकर्षसि" ॥ चतुरंग दल के आतिरिक्त सेना के और चार विभाग होते थे—विष्टि, नौका, चर और देशिक। सब प्रकार के सामान लदाने और पहुँचाने का प्रबंध 'विष्टि' कदलता था। 'नौका' का भी कर्वाई में काम पढ़ता था। चरों के द्वारा प्रतिपन्न के समाचार मिलते थे। 'देशिक' स्थानीय सहायक हुआ करते थे जो अपने स्थान पर पहुँचने पर सहायता पहुँचाया करते थे। सेना के छोटे छोटे दलों को 'गुप्त' कहते थे।

**पर्यायों—**चतुरंग। बल। अजिनी। याहिनी। वृत्तना।

अनीकिनी। चम्पू। सैन्य। यष्टिनी। अनीक। पक। वाहना। गुप्तिनी। वरचक्षु।

(२) माला। बरछी। शक्ति। सौंग। (३) इंदू का वज्र। (४) इन्द्राणी। (५) वर्षमान अवसर्पिणी के तीसरे अर्धत् शंभय की माता का नाम। (६) (७) एक उपाधि जो पहले अधिकतर वैश्याओं के नामों में लगी रहती थी। जैसे, वसंत सेना।

किं तं [ सं० सेवन ] (१) सेवा करना। लिदमल करना। किसी को आराम देना या उसका काम करना। नौकरी बनाना। टहल करना। उ०—सैद्य ऐसे स्वामि की जो राखे निज मान।—कवीर।

**मुहा०—**चरण सेना = गुच्छ से गुच्छ चाकी बनाना।

(२) आराधना करना। पूजना। उपासना करना।

उ०—(क) ताते सैद्य श्री अद्भुतार्ह। (ख) सेवत मुलम उदार कवचतप पावतीपति परम सुमान।—गुलसी। (३) नियमपूर्वक व्यवहार करना। काम में लाना। इस्तेमाल करना। नियम के साथ खाना पीना या लगाना।

उ०—(क) भासव सेद्द सिखापु सखीन के सुंदरि मंदिर में सुख सोवै।—देव। (ख) निपट छजीछी नवल तिप यहँकि वापनी सेद्द। ए्यों ए्यों अति मीठी लगी ज्यों ज्यों यीते देह।—विहारी। (४) किसी स्थान को लगाना न छोड़ना। पढ़ा रहना। निरंतर बात करना। जैसे—चारपाई सेना, कोठी सेना, सीधे सेना। उ०—(क) सैद्य सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।—गुलसी। (ख) उपम धल सैधे सुजन, नीच नीच के बँस। सेवत गीध मसान हो, मानद्योवर हंस।—हीनदनाल। (५) लिप बैठे रहना। दूर न करना। जैसे,—कोड़ा सेना। (६) मादा चिड़िया का गारमी पहुँचाने के लिये अपने अंडों पर बैठना।

**सेनाकदल—**संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का पार्थ। फौज का बाजू।

**सेनाकर्म—**संज्ञा पुं० [ सं० सेनाकर्म ] (१) सेना का संचालन या व्यवस्था। (२) सेना का काम।

**सेनागोप—**संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का संरक्षक। सेना का एक विशेष अधिकारी।

**सेनाग्र—**संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का अग्रभाग। फौज का अग्रलाहिस्ता।

**सेनाचर—**संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना के साथ जानेवाला सैनिक। योद्धा। सिपाही।

**सेनाजीव—**संज्ञा पुं० दे० "सेनाजीवी"।

**सेनाजीवी—**संज्ञा पुं० [ सं० सेनाजीवि ] यह जो सेना में रहकर अपनी जीविका चलावे। सैनिक। सिपाही। योद्धा।

**सेनादार—**संज्ञा पुं० [ सं० सेना + दार ] सेनानायक। फौजदार। उ०—महाराज हुक्कर भाग्य के बल से पेशवा बहादुर की सेना का मेनादार हो गया।—सिधमपाद।

**सेनाधिकारी—**संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनानायक। फौज का अफसर।

**सेनाधिनाय—**संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनारति। फौज का अफसर। सिपहसालार।

**सेनाधिप—**संज्ञा पुं० [ सं० ] फौज का अफसर। सेनापति।

**सेनाधिपति—**संज्ञा पुं० [ सं० ] फौज का अफसर। सेनापति।

**सेनावीर—**संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति।

**सेनाय्यक्ष—**संज्ञा पुं० [ सं० ] फौज का अफसर। सेनापति।

**सेनानायक—**संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का अफसर। फौजदार।

**सेनानी—**संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेनापति। फौज का अफसर।

(२) कार्तिकेय का एक नाम। (३) एक रत्न का नाम। (४) पतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (५) दोषर के एक पुत्र का नाम। (६) एक विशेष प्रकार का पौसा।

**सेनापति—**संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेना का नायक। फौज का अफसर। (२) कार्तिकेय का एक नाम। (३) शिव का नाम। (४) पतराष्ट्र के एक पुत्र का एक नाम। (५) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम।

**सेनापत्य—**संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति का कार्य या पद। सेनापति का अधिकार।

**सेनापाल—**संज्ञा पुं० [ सं० सेना + पाल ] सेनापति। उ०—हरये बोसो भूप तव सेनापाल बुलाय। याद सुधमां वीर जे सुखी केहु छुदाय।—सबलसिंह।

**सेनापृष्ठ—**संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का पिछला भाग।

**सेनाप्रज्ञेता—**संज्ञा पुं० [ सं० सेनापते ] सेनानायक। फौज का मुखिया।

**सेनापेध—**संज्ञा पुं० [ सं० सेना + पेध ] दूरवीर (हिं०)

**सेनाभिमोक्ष—**संज्ञा पुं० [ सं० सेनाभिमोक्ष ] सेना-रक्षक। सेनापति।

**सेनामुख—**संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेना का अग्रभाग। (२) सेना का एक खंड जिसमें ३ या ९ हाथी, ३ या ९ रथ, ९ या

१५ घोड़े और १५ या ४५ पैदल होते थे। (३) नगर-द्वार के सामने का रास्ता।

सेनायोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] सैन्य सभा। फौज की तैयारी।

सेनावास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह स्थान जहाँ सेना रहती हो। छावनी।

विशेष-बृहत्संहिता के अनुसार जहाँ राय, कोयल, हठी, तुप, केव, गड्डे न हों; जो स्थान ऊसर न हो; जहाँ केकड़े न हों; जहाँ हिलक जंतुओं और नृशों के बिल और घलमीक न हों तथा जिस स्थान की भूमि धनी, चिकनी, सुगंधित, मधुर और समतल हो, ऐसे स्थान पर राजा को सेनावास या छावनी बनानी चाहिए।

(२) बेरा। सेमा। निविर। केंप।

सेनावाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनानायक।

सेनाग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] युद्ध के समय मित्र मित्र स्थानों पर की हुई सेना के मित्र मित्र अंगों की स्थापना या नियुक्ति। सैन्य विन्यास। वि० दे० "भ्यूह"।

सेनासमुद्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सम्मिलित सेना। एकत्र हुई सेना।

सेनास्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिपाही। फौजी आदमी।

सेनास्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छावनी। (२) निविर। खेमा। डेरा।

सेनाहम-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंकर के एक पुत्र का नाम। (हरिवंश)

सेनिल-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रेणी"। उ०-अनु कलिद्रग्निदिनि मनि नील सिखर पर सिध सति लसति हंस सेनि संकुल अधिकौहै-तुलसी।

सेनिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० श्रेनिका ] (१) बाज पक्षी की मादा।

मादा बाज पक्षी। उ०-दयामदेह दुहूल दुति छवि लसत तुलसी माल। तद्विघ्न घन संयोग मानो सेनिका शुक्र जाल-सूर। (२) एक छंद। दे० "द्वयेनिका"। उ०-आठ और आठ दीति दे रक्षो। लोकनाथ आश्रचर्य वै रक्षो-गुमान।

सेनी-संज्ञा स्त्री० [ ज्ञ० सीनी ] (१) तरतरी। रकायी। (२) नक्षत्राशीदार छोटी छिछली थाली।

संज्ञा स्त्री० [ सं० श्रेनी ] (१) बाज की मादा। मादा बाज पक्षी। (२) दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप की पत्नी ताम्रा से उत्पन्न पाँच कन्याओं में से एक।

संज्ञा स्त्री० [ सं० श्रेणी ] (१) पंक्ति। कतार। उ०-जोयन फूलयो बसंत लसै तेहि अंगलता अलि-सेनी।-येनी। (२) सीढ़ी। जीना।

संज्ञा पुं० बिराट्ट के यहाँ अज्ञातवास करते समय का सहदेव का रखा हुआ नाम। उ०-नाम धनंजय को कसो बृहन्नदां कृपि प्यास। सेनी सहदेवहि कसो सकल गुणन की रास।-सुबल।

सेनेट-संज्ञा स्त्री० [ ज्ञ० ] (१) प्रधान व्यवस्थापिका सभा। कानून बनानेवाली सभा। (२) विधविधालय की प्रबंधकारिणी सभा।

सेफ-संज्ञा पुं० दे० "शेफ"।

राश पुं० [ ज्ञ० ] लोहे का बड़ा मजबूत बरत जिसमें रोकड़ और बहुमूल्य पदार्थ रहे जाते हैं।

सेफालिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शेफालिका"।

सेय-संज्ञा पुं० [ ज्ञ० ] नाशपाती की जाति का मछोले आकार का एक पेड़ जिसका फल मेवों में गिना जाता है।

विशेष-यह पेड़ पश्चिम का है, पर बहुत दिनों से भारतवर्ष में भी हिमालय-प्रदेश (काश्मीर, कुमाऊँ, गढ़वाल, कर्गिदा आदि) और पंजाब आदि में रूपाया जाता है; और अथ सिंध, मध्यभारत और दक्षिण तक फैल गया है। काश्मीर में कहीं कहीं यह जंगली भी देखा जाता है। इसके पत्ते कुछ कुछ गोल और पीछे की ओर कुछ सफेदी लिए और रोहदार होते हैं। फूल सफेद रंग के होते हैं, जिन पर 'लाल लाल छंटे' से होते हैं। फल गोल और 'पकने पर' हल्के हरे रंग के होते हैं; पर किसी किसी का कुछ भाग बहुत सुंदर लाल रंग का होता है जिससे देखने में बढ़ा सुंदर लगता है।

गूदा इसका बहुत मूलायम और मीठा होता है। मध्यम श्रेणी के फलों में कुछ खटास भी होती है। सेय फागुन से वैशाख के अंत तक फूलता है और जेठ से फल लगने लगते हैं। भादों में फल अच्छी तरह पक जाते हैं। ये फल बढ़े पाचक माने जाते हैं। भायप्रकाश के अनुसार सेव वातविघ्ननाशक, पुष्टिकारक, कफकारक, भारी, पाक में मधुर, शीतल तथा शुक्रकारक है। भावप्रकाश के अतिरिक्त किसी प्राचीन ग्रंथ में सेव का उल्लेख नहीं मिलता। भायप्रकाश ने सेव, सिंचितिकाफल आदि इसके कुछ नाम दिए हैं।

सेभ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीतलता। शैत्य। ठंडक।

वि० शीतल। ठंडा।

सेमंतिका-संज्ञा स्त्री० दे० "सेमंती"।

सेमंती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद गुलाब का फूल। सेवती।

सेम-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिषी ] एक प्रकार की फली जिसकी तरकारी खाई जाती है।

विशेष-इसकी लता लिपटती हुई बढ़ती है। पत्ते एक एक सींके पर तीन तीन रहते हैं और वे पान के आकार के होते हैं। सेम सफेद, हरी, मजंदा आदि कई रंगों की होती है। फलियाँ लंबी, चिपटी और कुछ टेढ़ी होती हैं। यह हिंदुस्तान में प्रायः सर्वत्र योई जाती है। वैद्यक में सेम मधुर, शीतल, भारी, फसैली, थलकारी, वातकारक, दाहजनक, दीपन तथा पित्त और कफ का नाश करनेवाली मानी गई है।

सेम-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिषी ] एक प्रकार की फली जिसकी तरकारी खाई जाती है।

विशेष-इसकी लता लिपटती हुई बढ़ती है। पत्ते एक एक सींके पर तीन तीन रहते हैं और वे पान के आकार के होते हैं। सेम सफेद, हरी, मजंदा आदि कई रंगों की होती है। फलियाँ लंबी, चिपटी और कुछ टेढ़ी होती हैं। यह हिंदुस्तान में प्रायः सर्वत्र योई जाती है। वैद्यक में सेम मधुर, शीतल, भारी, फसैली, थलकारी, वातकारक, दाहजनक, दीपन तथा पित्त और कफ का नाश करनेवाली मानी गई है।

सेम-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिषी ] एक प्रकार की फली जिसकी तरकारी खाई जाती है।

विशेष-इसकी लता लिपटती हुई बढ़ती है। पत्ते एक एक सींके पर तीन तीन रहते हैं और वे पान के आकार के होते हैं। सेम सफेद, हरी, मजंदा आदि कई रंगों की होती है। फलियाँ लंबी, चिपटी और कुछ टेढ़ी होती हैं। यह हिंदुस्तान में प्रायः सर्वत्र योई जाती है। वैद्यक में सेम मधुर, शीतल, भारी, फसैली, थलकारी, वातकारक, दाहजनक, दीपन तथा पित्त और कफ का नाश करनेवाली मानी गई है।

सेम-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिषी ] एक प्रकार की फली जिसकी तरकारी खाई जाती है।

विशेष-इसकी लता लिपटती हुई बढ़ती है। पत्ते एक एक सींके पर तीन तीन रहते हैं और वे पान के आकार के होते हैं। सेम सफेद, हरी, मजंदा आदि कई रंगों की होती है। फलियाँ लंबी, चिपटी और कुछ टेढ़ी होती हैं। यह हिंदुस्तान में प्रायः सर्वत्र योई जाती है। वैद्यक में सेम मधुर, शीतल, भारी, फसैली, थलकारी, वातकारक, दाहजनक, दीपन तथा पित्त और कफ का नाश करनेवाली मानी गई है।

सेम-संज्ञा स्त्री० [ सं० शिषी ] एक प्रकार की फली जिसकी तरकारी खाई जाती है।

यी०—सेम का गोंद = एक प्रकार के कचनार का गोंद जो देखपट्टन की ओर से भाता है; और रक्षियजुलान वा रज खोन्ने के शिप्रे दिया जाता है। वि० दे० "कचनार"।

**सेमर**—संज्ञा पुं० [ हि० सेम ] हल्का सव्ज रंग।

वि० हल्के हरे रंग का।

संज्ञा स्त्री० दे० "सेवई"। उ०—मोतीचूर मूर के मोदक ओदक की दजियारी जी। सेमई सेव सैजना सूरन सोया सरस सोहारी जी।—विश्राम।

**सेमर**—संज्ञा पुं० [ दे० ] दलदली जमीन।

संज्ञा पुं० दे० "सेमल"।

**सेमल**—संज्ञा पुं० [ सं० शास्त्रम् ] पत्ते झानेवाला एक बहुत बड़ा पेड़ जिसमें बड़े आकार और मोटे दलों के छाल फूल लगते हैं, और जिसके फलों या दोंडों में केवल रुई होती है, गुदा नहीं होता।

**विशेष**—इसके पत्र और दालों में दूर दूर पर कटि होते हैं। पत्ते लंबे और तुकीले होते हैं; तथा एक एक टाँड़ी में पंजे की तरह पाँच पाँच छः छः खगे होते हैं। फूल मोटे दल के, बड़े बड़े और गहरे छाल रंग के होते हैं। फूलों में पाँच दल होते हैं और उनका घेरा बहुत बड़ा होता है। फायुन में अब इस पेड़ की पत्तियाँ पिल्लुल शब्द जाती हैं और यह दुँडा हो जाता है, तब यह हर्दी लाल फूलों से गुंठा हुआ दिखाई पड़ता है। दलों के शब्द जाने पर बोधा या फल रह जाता है जिसमें बहुत मुलायम और चमकीली रुई या पूर के भीतर यिनौले के से बीज बंद रहते हैं। सेमल के छोटे या फूलों की निस्तारता भारतीय कविपरंपरा में बहुत काल से प्रसिद्ध है और यह अनेक आभ्युक्तिर्या का विषय रहा है। "सेमर सेइ सुधा पठवाने" यह एक कहानत सी हो गई है। सेमल की रुई रेशम सी मुलायम और चमकीली होती है और गर्दी तथा तकियों में भरने के काम में आती है, क्योंकि कानों नहीं आ सकती। इसकी लकड़ी पानी में खूब उतरती है और नाव बनाने के काम में आती है। आयुर्वेद में सेमल बहुत उपकारी औषधि मानी गई है। यह मजुर, कर्तार, मीठल, हल्का, सिंगय, पिच्छल तथा झुक और कफ को दवानेवाला कहा गया है। सेमल की छाल कसैली और कफनाशक, फूल शीतल, कढ़वा, भारी, कसैला, वातकारक, मलरोधक, रुखा तथा कफ, पित्त और रक्तविकार को दान्त करनेवाला कहा गया है। फल के गुण फूल ही के समान हैं। सेमल के नए पीपे की जड़ को "सेमल का मूसला" कहते हैं, जो बहुत पुष्टिकारक, कामोद्दीपक और नपुंसकता को दूर करनेवाला माना जाता है। सेमल का गोंद मोषरस कहलाता है। यह अतीसार को दूर करनेवाला और बलकारक कहा गया है। इसके बीज रित्नाशकारक

और मदकारी होते हैं; और कटों में फोड़े फुंसी, घाव, छीव आदि दूर करने का गुण होता है।

फूलों के रंग के भेद से सेमल तीन प्रकार का माना गया है—यूक तो साधारण लाल फूलोंवाला, दूसरा सफेद फूलों का और तीसरा पीले फूलों का। इनमें से पीले फूलों का सेमल कहीं देखने में नहीं आता। सेमल भारतवर्ष के गरम जंगलों में तथा बरमा, सिङ्गल और मलाया में अधिकता से होता है।

**पट्ट्यां**—शास्त्रम्। शास्त्रम्। पिच्छला। मोचा। स्थिराह। तुलफला। नुरारोहा। शास्त्रम्। शास्त्रम्। अयुष्णी। पूरणी। निर्गयपुष्पी। तुलनी। कुकुटी। रक्तपुष्पा। कंटकारी। मोचणी। शीमूल। कदला। चिरजीवी। पिच्छल। रक्तपुष्पक। तुलशूष। मोचायप। कंटकट्टम। कुकुटी। रक्तोत्पल। यन्त्रपुष्प। बहुवीर्यं। यमदुम। दीर्घदुम। स्पूलफल। दीर्घायु। कंटकाष्ट। निस्सारा। दीर्घपादा।

**सेमलमूसला**—संज्ञा पुं० [ सं० शास्त्रम् मूल ] सेमल की जड़ जो वैद्यक में वीर्यवर्द्धक, कामोद्दीपक और नपुंसकता नष्ट करनेवाला मानी गई है।

**सेमलसफेद**—संज्ञा पुं० [ सं० स्त्रेण शास्त्रम् ] सेमल का एक भेद जिसके फूल सफेद होते हैं।

**विशेष**—यह सेमल के समान ही विनाश होता है। इसका उत्पत्ति स्थान मलाया है। हिंदुस्थान के गरम जंगलों और सिङ्गल में पाया जाता है। नए शूष की छाल हरे रंग की और पुराने की भूरे रंग की होती है। पत्ते सेमल के समान ही एक साथ पाँच पाँच सात सात रहते हैं। फूल सेमल के फूल से छोटे और मसैले सफेद रंग के होते हैं। इसके फल छत्र बड़े, गोल, घुँघले और पाँच फाँकवाले होते हैं। फलों के अंदर बहुत कोमल रुई होती है और रुई के बीच में चिपटे बीज होते हैं। वैद्यक में सेमल के समान ही इसके भी गुण बताए गए हैं।

**सेमा**—संज्ञा पुं० [ हि० सेम ] यही सेम।

**सैमिटिक**—संज्ञा पुं० [ सं० शास्त्र (रंग का नाम तथा रसार्थ की संज्ञा में से पत्र) ] (१) मनुष्यों के आधुनिक वर्ग-विभाग में से यह वर्ग जिसके अंतर्गत यहूदी, अरब, सीरियन, मिथी आदि छाल समुद्र के आस पास बसनेवाली नई पुरानी जातियाँ हैं। मूसा, ईसा और मुहम्मद हसी वर्ग के थे जिन्होंने पीगवरी मत खलाए। यह वर्ग आर्य वर्ग से निम्न है जिसमें हिंदू, पारसी, युरोपियन आदि हैं। (२) उक्त वर्ग के लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषाओं का वर्ग जिसके अंतर्गत इब्रानी और अरबी तथा असीरियन, फिनोशियन आदि प्राचीन भाषाएँ हैं। यह वर्ग आर्यवर्ग से सर्वथा निम्न है जिसके अंतर्गत संस्कृत, पारसी, लैटिन, ग्रीक आदि प्राचीन भाषाएँ

और हिंदी, मराठी, बँगाली, पंजाबी, पदमो, गुजराती आदि उत्तर भारत की भाषाएँ तथा अँगरेजी, फ़ारसीसी, जर्मन आदि योरप की आधुनिक भाषाएँ हैं।

**सेमीकोलन-संज्ञा पुं० [ अ० ]** एक विराम निसका चिह्न इस प्रकार है—;

**सेयम-संज्ञा पुं० [ सं० ]** विद्वामिन्न के एक पुत्र का नाम।

**सेर-संज्ञा पुं० [ सं० सेर ] (१)** एक मान या तौल जो सोलह छट्ठक या धम्मसी तोले की होती है। मन वा चाळीसवाँ भाग। (२) १०६ डोली पान। (संघोली)

**संज्ञा स्त्री० [ दे० ]** एक प्रकार की मछली।

**संज्ञा पुं० [ दे० ]** एक प्रकार का धान जो अगहन महीने में तैयार हो जाता है और निसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

**संज्ञा पुं० दे० "सेर"। उ०—**अरि भजा ज्य पे सेर हैं।  
—गोपाल।

**वि० [ अ० ]** वृत्त। उ०—रे मन साहसी साहस राखु सुसाहस साँ सब जेर फिरेंगे। ज्यों पदमाकर वा सुख में दुख र्यों दुख में सुख सेर फिरेंगे।—पद्माकर।

**सेरन-संज्ञा स्त्री० [ दे० ]** एक घास जो राजपूताने, बुँदेलखंड और मध्य भारत के पहाड़ी हिस्सों में होती है।

**सेरपा-संज्ञा पुं० [ सं० शट ]** वह कपड़ा जिससे हवा करके अन्न धासते समय भूसा उड़ाया जाता है। झली। परती।

**संज्ञा पुं० [ हि० सिर ]** चारपाई की वे पाटियाँ जो सिरहाने की ओर रहती हैं।

**संज्ञा पुं० [ हि० सेराना = टंडा करना, शांत करना ]** दीवाली के प्रातःकाल 'दरिहर' (दरिद्रिता) भगाने की रस जो सूप पकाकर की जाती है।

**सेरसाहि-संज्ञा पुं० [ अ० सेरसाह ]** दिल्ली का बादशाह पोरसाह। उ०—सेरसाहि देहली सुलतानू।—जायसी।

**सेरशी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सेर ]** एक प्रकार का कर या छगान जो किसान को फसल की उपज के अपने हिस्से पर देना पड़ता था।

**सेरा-संज्ञा पुं० [ हि० सिर ]** चारपाई की वे पाटियाँ जो सिरहाने की ओर रहती हैं।

**संज्ञा पुं० [ प्रा० सेरव ]** आपवाशी की हुई ज़मीन। सींची हुई ज़मीन।

**सेराना-संज्ञा पुं० [ सं० शीतल, प्रा० सीभह, हि० सीपर, सीप ]**  
(१) टंडा होना। शीतल होना। उ०—नैन सेराने, भुलि गह, देखे दरस तुगहार।—जायसी। (२) वृष्ट होना। वृष्ट होना। (३) जीवित न रहना। जीवन समाप्त होना। (४) समाप्त होना। खतम होना। उ०—उठ्यो अलारा

नृत्य सेराना। अपने गृह सुर कियो पयाना।—सबल।  
(५) चुकना। सी होना। करने को न रह जाना। उ०—पंथी कहीं कहीं सुसताई। पंथ चले तब पंथ सेराई।—जायसी।  
कि० सं० (१) टंडा करना। शीतल करना। (२) मूर्ति आदि जल में प्रवाह करना या भूमि में गाड़ना। जैसे,—तोत्रिया सेराना।

**सेराव-वि० [ अ० ] (१)** पानी से भरा हुआ। (२) सिंचा हुआ। तराशेर।

**सेराधी-संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] (१)** भवाव। सिंचाई। (२) तरी।

**सेरात-संज्ञा पुं० [ सं० ]** हलका पीलापन।  
वि० हलका पीला। पीताभ।

**सेराह-संज्ञा पुं० [ सं० ]** वृष के समान सफेद रंग का घोड़ा। दुग्ध वर्ण का अरव।

**सेरी-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१)** वृत्ति। संतोष। (२) मन का भरना। भगाने का भाव।

**सेरीना-संज्ञा स्त्री० [ हि० सेर ]** अनाज या चारे का वह हिस्सा जो अनामी जर्मिंदार को देता है।

**सेर-वि० [ सं० ]** बाँधनेवाला। जकड़नेवाला।  
**सेरशा-संज्ञा पुं० [ ? ]** वैश्य। (सुनार)  
↑ संज्ञा पुं० दे० "सेरवा"।

**सेकराह-संज्ञा पुं० [ सं० ]** वह सफेद घोड़ा जिसके मांसे पर दाग हो।

**सेकवा-संज्ञा पुं० [ ? ]** मुजरा सुननेवाला या वेदयागामी। (वेदपा)

**सेका-संज्ञा पुं० [ सं० सेक ]** लिटोदे का पेड़। छमेदा।

**सेल-संज्ञा पुं० [ सं० शल, प्रा० सेल ]** बरछा। भांछ। सॉग।  
उ०—(क) बरसहि यान सेल धनघोरा।—जायसी। (ख) देखि ज्वालाजाल हाहाकार दुसकंध सुनि, कश्यो धरो धरो पाप धीर धलवान हैं। लिये सुल सेल प्राप्त परिष प्रचंड दंड, भाजन सनीर धीर धरे धनुवान हैं।—तुलसी।

**विद्योष-संज्ञा पुं०** यद्यपि यह द्वादश कांठ धरी में आया है, पर प्राकृत ही ज्ञान पड़ता है, संस्कृत नहीं।

**संज्ञा स्त्री० [ दे० ]** बही। माछा। उ०—सर्पों की सेल पहने मुंडमात्र गले में डाले... कहने लगे।—लहू।

**संज्ञा पुं० [ दे० ]** नाव-से पानी उलीचने का काठ का यंत्रन।

**संज्ञा पुं० [ सं० सिलना = एक पौधा जिसके रेशों से रस्ते बने थे ]**  
(१) एक प्रकार का सन का रस्सा जो पहाड़ों में पुल बनाने के काम में आता है। (२) हल में लगी हुई वह नली जिसमें से होकर बूँद में का बीज जमीन पर गिरता है।

**संज्ञा पुं० [ अ० शेल ]** तोप का वह गोला जिसमें गोळियाँ आदि भरी रहती हैं। (कॉजी)

**यौ०—सेल का गोला।**

सेलजड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलखड़ी", "लदिवा"।  
 सेलज-संज्ञा पुं० [ सं० ] लुटेरा। डाह।  
 सेलना-कि० प्र० [ सं० सेल, सेज = आना ] मर जाता। बेल  
 बसना। जैसे,—वह सेल गया। (थाकाह)  
 सेल-संज्ञा पुं० [ सं० शक, शक = झिझक; मड़ली का सेरा ] (१)  
 रेशमी चादर या हुपट्टा। (२) साफ। रेशमी दिरोबंध।  
 उ०—कोऊ कुंड़ बेल कोऊ भूखन नपेला धरे कोऊ पाग  
 सेल कोऊ सजे साज छेला सो।—गोपाल।  
 संज्ञा पुं० [ सं० शक्ति ] वह धान जो भूसी छटिने के पहले  
 कुछ उबाल लिया गया हो। मुंजिया धान।  
 सेलिया-संज्ञा पुं० [ देरा० ] धोड़े की एक जाति। उ०—सिरगा  
 समेदा क्याह सेलिया सूर सुरंगा। मुसकी पैबकप्यान कुमेदा  
 केदरि रैगा।—सूदन।  
 सेलिस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सफेद हिरन।  
 सेली-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सेल ] छोटा भाला। बरछी। उ०—लहलहे  
 जोवन लुहारनि लुहारी में दि सारसी लहलहाति लोहसार  
 सेलि सी। भुकुटी कमान खरी देव दगन वान भरी, जोयन  
 की सान धरी धार विप मेलि सी।—देव।  
 संज्ञा स्त्री० [ हिं० सेज ] (१) छोटा हुपट्टा। (२) गाँती।  
 (३) सूत, ऊन, रेशम या बालों की बन्दी या माला जिसे  
 योगी यती लोग में डालते या सिर में लपेटते हैं। उ०—  
 (क) भोसरी की सोरी काँधे, आँतनि की सेवही बाँधे, मूँड़  
 के कमंडल खपर किए कोरि कै।—तुलसी। (ख) सीस  
 सेली केस, मुदा कनक-बीरी, वीर। विरह अहम चढ़ाई वैरी,  
 सहज कंया घोर।—सूर। (घ) छिपों का एक गहन।  
 उ०—मनि इंद्रनील सु वप्रगाह कून सेली भली।—रघुराज।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० शक = मड़ली का मेश ] एक प्रकार की  
 मछली।  
 संज्ञा स्त्री० [ देता० ] दक्षिण भारत का एक छोटा पेड़ जिसकी  
 लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है और सेती के औजार  
 बनाने के काम में जाती है।  
 सेलु-संज्ञा पुं० [ सं० ] लिखोवा। बलेप्राप्तक। लमेड़ा।  
 सेलून-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जहाज का प्रधान कमरा। (२)  
 बर्षिया कमरे के समान सजा हुआ रेल का बड़ा और लंबा  
 कच्चा जिसमें रागा, महाराजा और बड़े बड़े अफसर सफर  
 करते हैं। (३) सार्वजनिक आभोद प्रमोद का स्थान। (४)  
 अँगरेजी डंग के बाल बगानेवाले हज्जामों की बुकाग। (५)  
 जलपान का स्थान। (६) वह स्थान जहाँ अँगरेजी शराब विकती  
 है। (७) जहाज में कप्तान के स्थान की जगह। (लना०)  
 सेलो-संज्ञा पुं० [ देता० ] साधादार जमीन।  
 सेला-संज्ञा पुं० [ सं० शक ] एक प्रकार का अन्न। भाज्या। सेल।  
 सेल-संज्ञा पुं० दे० "सेल"। उ०—गोलिन तीरन की शर छाई।

मची सेल समसेन वाई। ल्यों लच्छे रावत प्रभु आगे।  
 सेहन मार करी रिस पागे।—हाल कवि।  
 सेरहा-संज्ञा पुं० [ सं० शक्ति ] एक प्रकार का अगहनी धान जिसका  
 पात्रल बहुत दिनों तक रह सकता है।  
 संज्ञा पुं० दे० "सेला"।  
 सेरही-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सेज, सेवा ] (१) छोटा हुपट्टा। (२)  
 गाँती। (३) रेशम, सूत, बाल आदि की बन्दी या माला।  
 उ०—भोसरी की सोरी काँधे, आँतनि की सेवही बाँधे,  
 मूँड़ के कमंडल, खपर किए कोरि कै। जोगिनी सुदंग मुंड  
 मुंड यनों तापसी सी तीर तीर वैरीं सो समर-सरि रोरि  
 कै।—तुलसी। वि० दे० "सेली"।  
 सेवै-संज्ञा पुं० [ देरा० ] एक प्रकार का ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी  
 कुछ पीछापान या ललाई लिए सफेद रंग की, नरम, चिकनी,  
 चमकीली और मजबूत होती है। इसकी आलमारी, मेज,  
 कुर्सों और आरायसी चीजें बनती हैं। बरमा में इस पर  
 सुदाई का काम अच्छा होता है। इसकी छाल और जड़  
 औषध के काम आती है और फल खाया जाता है।  
 इसकी कठम भी लगती है और बीज भी बोया जाता है।  
 यह दूध पहाड़ों पर तीन हजार फुट की ऊँचाई तक  
 मिलता है। यह बरमा, आसाम, अन्धप्र, बरार और  
 मध्य प्रांत में बहुत होता है। कुमार।  
 सेवै-संज्ञा स्त्री० [ सं० सेविका ] गुँधे हुए मीठे के सून के से लच्छे  
 जो घी में तलकर और दूध में पकाकर खाए जाते हैं।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० स्थान, हिं० सार्वा ] एक प्रकार की लंबी  
 घास जिसमें साँवें की सी वाडें लगती हैं जो धारे के काम  
 में आती हैं।  
 सेवै-संज्ञा स्त्री० [ देरा० ] एक प्रकार का पाल जो युक्त प्रदेश  
 में होता है।  
 सेवै-संज्ञा पुं० [ सं० सामन ? ] एक राग जो हनुमत के अनुसार  
 मेघ राग का पुत्र है।  
 सेवै-संज्ञा पुं० दे० "सेवक"। उ०—तई कहा सत्य कहु  
 भूभा। चितु सत जस सेवर कर भूभा।—जायसी।  
 सेव-संज्ञा पुं० [ सं० सेविका ] सूत या दोरी के रूप में वेसन का  
 एक प्रकार।  
 विशेष-गुँधे हुए बेहम को छेददार चौकी या हरने में दबाते  
 हैं जिससे उसके तार से बनकर छोलते घी या तेल की  
 कढ़ाई में गिरते और पकते जाते हैं। यह अर्पिच्छर  
 नमकीन होता है। पर गुड़ में पागकर मीठे सेव भी  
 बनाते हैं।  
 संज्ञा स्त्री० दे० "सेवा"। उ०—कई जो सेव तुम्हारी सो  
 सेह भी बिच्छु, शिव मह मम रूप सारे।—सूर।  
 संज्ञा पुं० दे० "सेव"।



**सेवक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ जो० सेवता, सेवकी, सेवकनी, सेवकिन, सेवकिनी ] (१) सेवा करनेवाला। खिदमत करनेवाला। श्रुत्य। परिचारक। नौकर। चाकर। उ०—(क) मंत्री, श्रुत्य, सखा मों सेवक यारें कहत सुजान।—सूर। (ख) सिमुपन तें पितु, मातु, वंशु, गुरु, सेवक, सचिव, सखाड। कहत राम त्रिषु धदन रिहौहैं सपनेहु लखेउ न काउ।—गुलसी। (ग) ब्याहिके भाई है जा दिन सों रवि ता दिन सों लखी छाहैं न बांकी। है गुरु लोग सुखीं रघुनाथ, निहाल हैं सेवकनी सुखदा की।—रघुनाथ। (घ) उन्होंने श्रीरौद्र नामक एक सेवकनि से कहला भेजा।—गदापरसिंह। (च) अष्टसिद्धि नयनिद्धि देहुं मथुरा घर घर को। रामा सेवकिनी देखुं करि कर जेरै दिन जाम।—सूर। (छ) सेवकी सदा की बारभू दस वीस भाई पहुँ रघुनाथ छकीं यारुनी अमल सों।—रघुनाथ। (ज) दायज बसन मनि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी।—गुलसी। (२) भक्त। आराधक। उपासक। पूजा करनेवाला। जैसे,—देवी का सेवक। उ०—मानिए कहै जो वारिधार पै द्वारि की अँगार बरसाइयो यतावै वारि दिन को। मानिए अनेक विपरीत की प्रतीति, पै न भीति भाई मानिए भयानी-सेवकन की।—चरणचंद्रिका। (३) व्यवहार करनेवाला। काम में लागेवाला। इस्तेमाल करनेवाला। जैसे,—मज-सेवक। (४) पढा रहनेवाला। छोड़कर नहीं न जानेवाला। भास करनेवाला। जैसे,—तीर्थ-सेवक। (५) सीनेवाला। घरजी। (६) बोरा।

**सेवकाई**-संज्ञा स्त्री० [ सं० सेवक + आई (प्रत्य०) ] सेवक का काम। सेवा। दहल। खिदमत। उ०—(क) करि पूजा सय विधि सेवकाई। गयउ राठ गृह विदा कराई।—गुलसी। (ख) करहु सुकल आपन सेवकाई। करि हित हरहु पाप गलभाई।—गुलसी। (ग) नाना भौति करहु सेवकाई। अस कहि भ्रम चले जदुराई।—सबलसिंह।

**सेवकालु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] दुग्धपेया नामक पीया। निशाभंग।

**सेवडा**-संज्ञा पुं० [ ? ] (१) जैन साधुओं का एक भेद। (२) एक ग्राम देवता।

संज्ञा पुं० [ हि० सेव ] मैदे का एक प्रकार का मोटा सेव या पकवान।

**सेवति**-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति"। उ०—शशिहि चकोर रविहि भरविंद्र। परिधा कों सेवति करविंद्र।—गोपाल।

**सेवती**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुलाब का एक भेद जिसके फूल सफेद रंग के होते हैं। सफेद गुलाब। चैती गुलाब।

**विरोप**—वैद्यक में यह शीतल, तिक्त, कटु, लघु, प्राहक, पाचक, पौर्णप्रसाधक, त्रिदोषनाशक तथा वीर्यवर्द्धक कही गई है।

**पर्या०**—शतपत्री। सेमंती। कर्णिका। चारुकेवारा। मदाकुमारी। गंधाद्रग। लक्षपुष्पा। अतिमंजुला।

**सेवधि**-संज्ञा पुं० दे० "शेवधि"।

**सेधन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० सेवनीय, सेवित, सेव्य, सेवित्त्व ] (१) परिचर्या। खिदमत। (२) उपासना। आराधना। पूजन। (३) प्रयोग। उपयोग। नियमित व्यवहार। इस्तेमाल। जैसे,—सुरा-सेवन, औषध-सेवन। (४) छोड़कर न जाना। यास करना। लगातार रहना। जैसे,—तीर्थ-सेवन, गंगतट-सेवन। (५) संभोग। उपभोग। जैसे,—घ्नी-सेवन। (६) सीना। गूँथना। (७) बोरा।

संज्ञा पुं० [ हि० सार्थ ] सार्थों की तरह की एक घास जो चारे के काम में आती है और जिसके गहौन दांते बाजों में मिलाकर मरस्थल में खाए भी जाते हैं। सेवई। सर्वई।

**सेधना**-संज्ञा-कि० सं० दे० "सेना"।

**सेधनी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूई। सूची। सिवनी। (२) सीवन। जोड़। टाँका। संपिस्थान। (३) शरीर के वे अंग जहाँ सीवन सी दिखाई देती हो। ऐसे स्थान सात हैं—पाँच मस्नक में एक जीभ में भीर एक लिंन में। (४) जुड़ी। जुही।

संज्ञा स्त्री० [ सं० सेवनी ] दासी। उ०—निज सेविकी पंदिचानि के बहई अनुग्रह आनि है। करिहैं पतित्र पतित्र मेरी जीभ अवगुण घानि है।—गुमान।

**सेधनीय**-वि० [ सं० ] (१) सेवा योग्य। (२) पूजा के योग्य। (३) व्यवहार योग्य। (४) सीने योग्य।

**सेधर**-संज्ञा पुं० दे० "शवर"। उ०—हरिचू तिनको दुखित देख। कियो तुरत सेवरी को भेष।

**सेधरा**-संज्ञा पुं० दे० "सेवरा"। उ०—सेवरा, सेवरा, यान पर सिध, साधक, अक्षयूत। आसन मारे धँड सय जारि आतमा भूत।—जायसी।

**सेधरी**-संज्ञा स्त्री० दे० "शवरी"। उ०—बहुरि कबंधि निररि प्रभुं गीच कीन्ह उदार। सेवरी भवन प्रवेश करि पंपासरहि निहार।—रामाधर्म्य।

**सेधल**-संज्ञा पुं० [ दे० ] ब्याह की एक रस।

**विशेष**—इसमें घर की कोई संधिया आत्मीयां घर के हाथ में पीतल की एक थाली देती है जिस पर एक धीया रहता है, अनंतर उसके हुएट्टे के दोनों छोर पकड़कर पहले उस थाली से घर का माया और फिर अपना माया छूती है।

**सेधांजलि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भक्त या सेवक का दोनों हाथों के जुड़े हुए संयुक्त में स्वामी या उपास्य को कुछ अर्पण।

**सेधा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दूसरे को आराम पहुँचाने की क्रिया। खिदमत। दहल। परिचर्या। जैसे,—हमारी बीमारी में इसने यही सेवा की।

**धौ**—सेवा-शुभ्रपा। सेवा रहल।

(२) दूसरे का काम करना। नौकरी। चाकरी।

विशेष—आप की सेवा के अतिरिक्त और प्रकार की सेवा-वृत्ति अथम करी गई है।

(३) आराधना। उपासना। पूजा। जैसे,—ठाकुर की सेवा।  
मुहा०—सेवा में = पास। समीप। समने। जैसे,—(क) मैं कल आपकी सेवा में उपस्थित हूँगा। (ख) मैंने आपकी सेवा में एक पत्र भेजा था। (आधारार्थ, प्रायः शर्तों के लिये)

(४) आश्रय। शरण। जैसे,—आप मुझे अपनी सेवा में ले लेंगे तो बहुत अच्छा था। (५) रक्षा। हिक्काजत। जैसे,—(क) सेवा विना वे पीछे सूख गए। (ख) वे अपने शरीर की यही सेवा करते हैं। उ०—वे अपने बालों की यही सेवा करती हैं।—महाधीरप्रताप द्विवेदी। (९) संभोग। मैथुन। जैसे,—खी-सेवा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सेवाकाहु—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेवा काल में स्वर-परिवर्तन या आवाज बदलना (अर्थात् कभी जोर से बोलना, कभी मुलायमता से, कभी क्रांति से और कभी दुःख भाव से।)

सेवाजन—संज्ञा पुं० [ सं० ] नौकर। सेवक। दास।

सेवा दहल—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेवा-निर्दिष्ट दहल परिचर्या। सिद्धमत्त। सेवा-मुद्रण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सेवाती—संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति"। उ०—(क) रातुरंग जिति दौक धांती। नैन हाउ होइ सीप सेवाती।—जायसी।

(ख) नवन छागु तेहि भासग पटुमांजलि जेहि दीप। जइस सेवातिहि सेवई यन पातक जल सीप।—जायसी।

सेवाधर्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेवक का धर्म या कर्तव्य।

सेवापन—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेवा-निर्दिष्ट पन (श्रम्य०)। दासत्व। सेवावृत्ति। नौकरी। दहल।

सेवापंदगी—संज्ञा स्त्री० [ सेवा + का + पंदगी ] आराधना। पूजा। उ०—यह मसीति यह देवहरा सतगुरु दिया दिखाइ। भीतरि सेवा पंदगी याहर काहे जाइ।—दादू।

सेवापति—वि० [ प्र० सेवा ] अधिक। ज्यादा। श्रम्य० दे० "सिवा", "सिवाय"।

सेवार—संज्ञा स्त्री० [ सं० सेवान ] (१) बालों के लच्छों की तरह पानी में फैलनेवाली एक घास। उ०—(क) संभु, भेक, सेवार समाना। इहाँ न विषय-कथा रस नावा।—मुलसी।

(ख) राम भी जादवन सुभट ताके हते खीर की नहर सरिता पदाई। सुभट मगो मरु भर केस सेवार शयीं, धनुष स्वच चरम करम बनई।—सूर।

विशेष—यह अर्थात् जिस कोटि का उल्लिख है, जिसमें अर्द्ध भादि अलग यहाँ दोनों। यह गृण नदियों और तालों में होता है और चीनी साफ करने तथा औषध के काम में आता है। पैगक में सेवार कर्मली, कंदूरी, मण्डू, चोखल,

हलकी, जिम्ब, दुस्सावर, नमकीन, घाव भरनेवाली तथा त्रिदोषनाशक बताई गई है।

(२) मिट्टी की तहें जो किसी नदी के आस-पास जमी हों। † संज्ञा पुं० पान। (सुनार)

सेघार—संज्ञा पुं० दे० "सेवदा"।

सेघाल—संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "सेवार"। उ०—रूब बंध कुवल्य नहिम अनिल ध्योम वृणवाल। मरकत मणि हय मूर के नील वर्ण सेवाल।—केशव।

सेघावृत्ति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नौकरी। दासत्व। चाकरी की श्रविका।

सेघिय बैंक—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह बैंक जो छोटी छोटी रकमें ध्याज पर ले। (ये बैंक टाकसानों में होते हैं जहाँ गरीब और मध्य विक्त के लोग अपनी बचत के रूप जमा करते हैं।)

सेचि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पदर फल। बेर। (२) सेव (इस अर्थ में पीछे प्रयुक्त हुआ है)।

संज्ञा पुं० "सेवी" का यह रूप जो समास में होता है।

सेचि दे० "सेव्य", "सेवित"। उ०—जय जय जग-जननि देवि, सुनर सुनि-असुर-सेवि, सुकि सुकि-दायिनि दुखहरनि कालिका।—तुलसी।

सेविका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सेवा करनेवाली। दासी। परिचारिका। नौकरानी। (२) सेवई नामक पशुवन।

सेवित—वि० [ सं० ] (१) जिसकी सेवा या दहल की गई हो। परिचरित। उपचरित। (२) जिसकी पूजा की गई हो। पूजित। उपासित। आराधित। उ०—जयवृत् रवि कोटि खमाना। सुनिगन-सेवित ज्ञान निधान।—गिरिधरदास।

(३) जिसका प्रयोग या व्यवहार किया गया हो। स्वबहन। (४) आश्रित। (५) उपभोग किया हुआ। उपभुक्त।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पदर फल। बेर। (२) सेव।

सेवितव्य—वि० [ सं० ] (१) सेवा के योग्य। उपासना के योग्य। (२) आश्रय के योग्य। आश्रयणीय। (३) स्तनी के योग्य।

सेविता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सेवक का कर्म। सेवा। दास वृत्ति। (२) उपासना। (३) आश्रय।

संज्ञा पुं० [ सं० ] सेवित। सेवा करनेवाला। सेवक।

सेवी—वि० [ सं० ] सेवित। (१) सेवा करनेवाला। सेवारत। (२) पूजा करनेवाला। आराधना करनेवाला। (३) संभोग करनेवाला।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः शौमिक शब्द के अंत में हुआ करता है। जैसे,—साहिबसेवी, स्वदेवसेवी, चरणसेवी, श्रीसेवी।

सेव्य—वि० [ सं० ] [ स्त्री० सेव्या ] (१) सेवा के योग्य जिसकी सेवा करना उचित हो। सिद्धमत्त के अर्थक। (जैसे,—पुद्,

स्वामी, पिता) उ०—नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लैं।—तुलसी। (२) जिसकी सेवा करनी हो या जिसकी सेवा की जाय। जैसे,—वे तो हमारे हर प्रकार से सेव्य हैं। (३) पूजा के योग्य। आराधना योग्य। जिसकी पूजा या उपासना कर्त्तव्य हो। जैसे,—ईश्वर। (४) व्यवहार योग्य। काम में लाने लायक। इस्तेमाल करने लायक। (५) रक्षण के योग्य। जिसकी हिफाजत मुनासिब हो। (६) संभोग के योग्य।

संज्ञा पुं० (१) स्वामी। मालिक।

यौ०—सेव्य-सेवक।

(२) खस। उशीर। (३) अश्वत्थ। पीपल का पेड़। (४) हिजाल वृक्ष। (५) लामञ्जक वृक्ष। लामञ्ज घास। (६) गौरैया पक्षी। (७) एक प्रकार का मय। (८) सुगंधवाला। (९) लाल चंदन। (१०) समुद्री नमक। (११) दही का थका। (१२) जल। पानी।

सेव्य सेवक—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वामी और सेवक।

यौ०—सेव्य सेवक भाव = स्वामी और सेवक के बीच जो भाव होना चाहिये, वह भाव। उपास्य को स्वामी या मालिक के रूप में समझना। ( भक्ति मार्ग में उपासना जिन जिन भावों से की जाती है, वह उनमें से एक है। )

सेव्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बंदा या बाँदा नामक पौधा जो दूसरे पेड़ों के ऊपर उगता है। बंदाक। (२) अँचला। आमलकी। (३) एक प्रकार का जंगली अनाज या धान।

सेशन—संज्ञा पुं० [ अंग० ] (१) न्यायालय, पार्लमेंट, व्यवस्थापिका समा आदि संस्थाओं का एक बार निरंतर कुछ दिनों तक होनेवाला अधिवेशन। लगातार कुछ दिन चलनेवाली बैठक। जैसे,—(क) हाई कोर्ट का सेशन शुरू हो गया। (ख) पार्लमेंट का सेशन अक्टूबर में शुरू होगा।

मुहा०—सेशन सपुर्द करना = दौरे सपुर्द करना। (भाषागी या मुकदमे को) विचार या फैसले के लिये सेशन-जज के पास भेजना। (दावेबनी, खून आदि के मामले सेशन जज के पास भेजे जाते हैं।) सेशन सपुर्द होना = दौरे सपुर्द होना। सेशन जज के पास विचार भेजा जाना।

(२) शूल या कालेज की एक साथ निरंतर कुछ दिनों तक होनेवाली पढ़ाई। जैसे,—कालेज का सेशन शुरू है, से शुरू होगा। (३) दौरा अदालत।

सेशन कोर्ट—संज्ञा पुं० [ अंग० ] जिले की यह बड़ी अदालत जहाँ जुरी या असेसर्स की सहायता से डाकेजनी, खून आदि फौजदारी के बड़े मामलों का विचार होता है। दौरा अदालत।

सेशन जज—संज्ञा पुं० [ अंग० ] यह जज जो खून आदि के बड़े बड़े मामलों का फैसला करता है। दौरा जज।

सेश्वर—वि० [ सं० ] (१) ईश्वर युक्त। (२) जिसमें ईश्वर की सत्ता मानी गई हो। जैसे,—न्याय और योग सेश्वर दर्शन हैं।

सेषः—संज्ञा पुं० दे० "शेष" (८)। उ०—तपबल संसु कहि संहारा। तपबल शेष धरइ महि भारा।—तुलसी। संज्ञा पुं० दे० "शेष"।

सेसः—संज्ञा पुं० वि० दे० "शेष"। उ०—(क) सेस छबीहि न कहि सकै अगम कबीहि सुधीर। स्वाम सवीहि विलोकि कै वाम भई तसवीर।—गंगार-सतसई। (ख) तर्वाइ सेस रहि जात पार नहि कोऊ पावत। या सौ जग मैं सेस नाम सुर नर गुनि गावत।—गोपाल।

सेसनागः—संज्ञा पुं० दे० "शेषनाग"।

सेसरंगः—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेष + रंग। सफेद रंग। (शेष का रंग श्वेत माना गया है।) उ०—गहि कर केस हमेस परहि दायक कलेस को। येस सेस-रंग वसन तेज मोहल दिनेस को।—गोपाल।

सेसर—संज्ञा पुं० [ का० ] सेष = तीन + सर = बानी। (१) ताश का एक खेल जिसमें तीन तीन ताश हर एक भादमी को बाँटे जाते हैं और बिनियों को जोड़कर हार जीत होती है। ९ भाते पर 'सेसर' होता है। आठवाले को दबि का दूना और नौवाले को त्रिगुना मिलता है। (२) जालसाजी। (३) जाल। उ०—मदमाती मनोज के आसय साँ, अँग जासु मनो रँग केसरि को। सहजै नथ नाक तँ खोलि धरो, करयो कौन धौ फंद या सेसरि को।—सुंदरी-सर्वस्व।

सेसरिया—वि० [ हिं० ] सेसर + रिया (श्रवण)। छल कपट कर दूसरों का माल मारनेवाला। जालिया।

सेसी—संज्ञा पुं० [ देग० ] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी के सामान बनते हैं। पगूर।

विशेष—इसकी लकड़ी भीतर से काली निकलती है। यह आसाम और तिलहट की पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी पहाड़ियों में बहुत होता है। लकड़ी से कई तरह की सजावट की और कीमती चीज़ें तैयार की जाती हैं। इसे आराम में जलाने से बहुत अच्छी गंध निकलती है।

सेह—संज्ञा पुं० दे० "सेहा"। वि० [ का० ] तीन। (हिंदी में यह शब्द फ़ारसी के कुछ यौगिक शब्दों के साथ ही मिलता है।)

सेहखाना—संज्ञा पुं० [ का० ] सेह = तीन + खाना = घर। तिमंत्रिज्ज मकान।

सेहत—संज्ञा स्त्री० [ अंग० ] (१) सुख। चैन। राहत। (२) रोग से छुटकारा। रोगमुक्ति। बीमारी से आराम।

कि० प्र०—पाना।—मिलना।—होना। सेहतखाना—संज्ञा पुं० [ अंग० ] सेहत + का० खाना। पेशाब आदि

करने और नहाने-धोने के लिये साहज पर बनी हुई एक छोटी सी कोठरी। (लघु०)

सैद्यना-कि० सं० [ सं० सद्य + दस्त = सद्य + ना (प्रत्य०) ]

(१) हाथ से खींचकर साफ करना। सैतना। (२)

साधना। सुधारना।

सेहरा-संज्ञा पुं० [ हि० सिर + हर, दा० ] (१) कूल की या तार और गोदों की बनी मालाओं की पंक्ति या जाल जो दूल्हे के मौर के नीचे लटकता रहता है। (२) विवाह का मुकुट। मौर। उ०—(क) गजवर-गति श्रावण पग धरनि धरत पाव, लट्कत सिर सेहरो मनो तिथी दिशं ब सुभाष।—सूर। (ख) मानिक सुपथा पदिक मोतिन जाल सोदत सेहरा।—नघराज।

क्र० प्र०—श्रयना।—वर्षना।

सुहा-क्रि० के सिर सेहरा श्रयना = किसी का कूलकार्य होगा।

श्रीों से अधिक यश या कीर्ति होना। भय भिलन। सेहरा श्रयनाई = वह नेग जो दूधरे को सेहरा बॉनेने पर दिया जाता है। सेहरे जलबे की = जो विधिवत्क स्याद कर भाई हो। (मुद्र०)

(३) ये मंगलिक गीत जो विवाह के अवसर पर घर के यहाँ गाए जाते हैं।

सेहरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शरी ] छोटी मछली। सहरी।

सेहवन-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का रोग जो नेहों के छोटे पीपों को होता है।

सेहद्वारी-संज्ञा पुं० [ प्रा० ] एक उपधि जो मुसलमान बादशाहों के समय में सरदारों और दरबारियों को मिलती थी। (ऐसे लोग या तो तीन हजार सवार या सैनिक रख सकते थे अथवा तीन हजार सैनिकों के नायक बनाए जाते थे।)

सेहा-संज्ञा पुं० [ हि० सैष ] कुर्छों धोदनेवाला।

सेदियान-संज्ञा पुं० [ हि० सेदियान ] वह बुहारी या कृषा जिससे खलियान साफ किया जाता है।

सेही-संज्ञा स्त्री० [ सं० सेष, सेषी ] छोमड़ी के आकार का एक जंतु जिसकी पीठ पर कड़े और तुकीले कटि होते हैं। साही। फारपुरत।

विशेष—कुद्द होने पर यह जंतु कौंटों को खदे कर लेता है और इनसे घोट करता है। लंबाई में ये कौंटे एक बालियत तक होते हैं।

सेहूँडा-संज्ञा पुं० [ सं० सेहूँड ] यूहर का पद। उ०—छतौ मेह बागद दिवे भरै लखाय न टौक। बिरह तचे उधरयो सु भय सेहूँड को सो भौंक।—विहारी।

सेहुँडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यूहर। सेहुँड।

सेहुँडा-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चर्म रोग जिसमें शरीर पर भूरी भूरी मदीन विचिर्षा सी पद जाती है।

सेहुँद्यान-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का कामकला जिमके बीज से तेल निकलता है।

सैगर-संज्ञा पुं० दे० "सैगर" (३)।

सैगुर-संज्ञा पुं० [ सं० स्वामी + नर = सगैर ] पति। (दि०)

सैतना-कि० सं० [ सं० संचय + हि० ना (प्रत्य०) ] (१) संचित

करना। एकत्र करना। धरोरना। इकट्ठा करना। उ०—

(क) सोई प्रपय दरब नई सैतो। दरबहि तें सुनु यावें

पूती।—जायसी। (ख) फायु खेलि पुनि दाद बहोरी।

सैतब खेद, बढ़ाडव क्षोरी। जायसी। (ग) कदा होत जल

महा प्रलय को राख्यो सैति सैति है जेह। सुव पर एक

बूँद नहि पहुँची निहारि गय सय मेह।—सूर। (२) हाथों

से समेटना। इपर उधर से सरका कर एक जगह करना।

धरोरना। उ०—सखि भवन मुनि कौसिला लख सुदर

करनि है हरनि। खेति भरि भिं अंक, सैतति पैत जनु दुहुँ

करनि।—जुलसी। (३) सहेजना। सँभालकर रखना।

सावधानी से अपनी रक्षा में करना। सावधान। जैसे,—

जो रूप मैंने दिव है, सैतकर रखना। (४) मार डलना।

ठिकाने लगाना। (बजारू) (५) धन मारना। घोट लगाना।

सैतालिस-वि० दे० "सैतालीस"।

सैतालीस-वि० [ सं० सत्रचत्वारिंशत्, पा० सत्रचत्वारिंशत्ति, प्रा०

सत्रचत्वारिंशत् ] जो गिनती से चालीस से सात अधिक हो।

चालीस और सात।

संज्ञा पुं० चालीस से सात अधिक की संख्या या अंक जो

इस प्रकार लिखा जाता है—४७।

सैतालीसवाँ-वि० [ हि० सैतालीस + वाँ (प्रत्य०) ] जो क्रम में

चालीस और चत्तुर्थाँ के उपरांत हो। क्रम में जिसका

स्थान सैतालिस पर हो।

सैतिस-वि० दे० "सैतिस"।

सैतीस-वि० [ सं० सत्रविंशत्, पा० सत्रविंशत्ति, प्रा० सत्रविंशत् ] जो

गिनती में तीस से सात अधिक हो। तीस और सात।

संज्ञा पुं० तीस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस

प्रकार लिखा जाता है—३७।

सैतीसवाँ-वि० [ हि० सैतीस + वाँ (प्रत्य०) ] जो क्रम में छत्तीस

और चत्तुर्थाँ के उपरांत हो। क्रम में जिसका स्थान सैतीस

पर हो।

सैदूर-वि० [ सं० ] सिंदूर से रंगा हुआ। सिंदूर के रंग का।

सैधय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सैधा नमक। त्रि० दे० "सैधा"।

(२) सिंध देश का पौदा। सिंधी पौदा। (३) सिंध के

राजा जयद्रथ का नाम। (४) सिंध देश का निवासी।

वि० (१) सिंध देश में उत्पन्न। (२) सिंध देश का। सिंधु

देशीय। (३) समुद्र संबंधी। समुद्रीय। (४) समुद्र में

उत्पन्न

सैंधवक-वि० [ सं० ] सैंधव संबंधी ।  
 सैंधवपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] सैंधव = सिंध निवासी + पति = राजा ]  
 सिंध-वासियों के राजा जयद्रथ । उ०—सोमदत्त दक्षिणदि  
 सुयेना । सैंधवपति अरु शक्य गरेना ।—सयलसिंह ।  
 सैंधवादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अग्निदीपक चूर्ण जिसमें  
 सैंधा नमक, हर्ष, पीपल और चीतामूल धराय पड़ता है ।  
 सैंधवायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक ऋषि का नाम । (२)  
 उनके वंशज ।  
 सैंधवारण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वन का नाम । (महाभारत)  
 सैंधवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संपूर्ण जाति की एक रासिनी जो वैश्व  
 राम की पुत्रपथ मानी गई है । यह दिन के दूसरे पहर  
 की दूसरी घड़ी में गार्हं जाती है । इसकी ध्वर-लिपि इस  
 प्रकार है—धा सा रे म म प प च ध । सा नि ध ध प प  
 म ग ग ग ग रे सा । धा सा रे म म ग रे ग रे म प ग रे ।  
 नि नि ध म प म ग रे । प प म रे ग ग ग रे सां । किसी  
 किसी के मत से यह पाठ्य है और इसमें ति वर्जित है ।  
 सैंधी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की मदिगा जो खरू या ताड़  
 के रस से बनती है । लक्ष्मी ।  
 विशेप—वैद्यक में यह रीतल, कपाय, अम्ल, विचदाहनाशक  
 तथा पातवर्द्धक मानी गई है ।  
 सैंधुश्रिंश-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक सांभ भेद का नाम ।  
 सैंधु-संज्ञा स्त्री० दे० “सैंधवी” । उ०—करि लावदार दीरघ  
 दवान । गहि सेल सौंण हुव, सावधान । केतेक धीर संधी  
 कमान । केतेन तेग रापी भुजान । गुन गाइक किय वीरु  
 बखान । सैंधु सुर परिय विहीं धान ।—सूदन ।  
 सैंधुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] नमूना । जैसे,—कपड़े का सैंधुल ।  
 सैंधु-संज्ञा पुं० दे० “सैंधु” ।  
 सैंधु-संज्ञा पुं० दे० “सौमर” । उ०—सञ्जी सौंघर सैंघर सोरा ।  
 सौंलाहली सीप सिचोरा ।—सूदन ।  
 सैंह-वि० [ सं० ] (१) सिंह संबंधी । सिंह का । (२) सिंह के  
 समान ।  
 सैं-वि० दे० “सौंह” ।  
 सैंहल-वि० [ सं० ] [ स्त्री० सैंहली ] सिंहल द्वीप संबंधी ।  
 सिंहल द्वीप का । सिंहली । सिंहल में उत्पन्न ।  
 सैंहली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की पीपल । सिंहली पीपल ।  
 विशेप—वैद्यक के अनुसार यह कटु, उष्ण, दीपन, कोष्ठ-  
 शोधक, कफ, खास और वायुनाशक है ।  
 पट्यां—संपंदना । सर्पाक्षी । उक्कटा । पार्वती । झेलजा ।  
 ब्रह्मभूमिजा । लंबवीजा । साग्रा । भद्रिजा । सिंहलभा ।  
 जीवला । लंबदंष्टा । जीवनेत्री । जीवाला । कुहंथी ।  
 सहद्रिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जाति का नाम ।  
 सहिक-संज्ञा पुं० (सिंहिका से उत्पन्न) राहु ।

वि० सिंह के समान ।  
 सैंहिकेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (सिंहिका के पुत्र) राहु ।  
 सैंहुड़-संज्ञा पुं० दे० “सैंहुड़” ।  
 सैंह-संज्ञा पुं० [ हिं० गेहूं का अणु० ] गेहूं के वे दाने जो छोटे,  
 काले और बेकार होते हैं ।  
 सैं-वि०, संज्ञा पुं० [ सं० ] राव, प्रा० सय [ सौ ] । उ०—संघत  
 सोहह सैं इकतीसा । करहें कया हरिपद धरि सीसा ।—  
 तुलसी ।  
 शिरोप—इसका प्रयोग अधिकतर किसी संख्या के आगे  
 होता है ।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० सूत्र ] (१) तय्य : सार । माहा । (२)  
 धीर्य । दक्षि । भोज । उ०—विनती सौं परसत सदा  
 तीसों प्रसदा मन । विनुमे देखत सद्यु भई । यह री जाके  
 तान ।—गोपाल । (३) यद्वृत्ति । वरकत । लाभ ।  
 सैंकट-संज्ञा पुं० [ सं० शतकंठक ] बबूल की जाति का एक पेड़  
 जिसकी छाल सफेद होती है । चौला खैर । कुमठिया ।  
 शिरोप—यह बंगाल, बिहार, आसाम तथा दक्षिण और मध्य  
 प्रदेश आदि में विंध्य की पहाड़ियों पर होता है ।  
 सैंकड़ा-संज्ञा पुं० [ सं० शतकाण्ड, प्रा० सयकंड ] (१) सौ का  
 समूह । शत समष्टि । जैसे,—२ सैंकड़े आम । (२) १०६  
 बोली पान । (संबोली) ।  
 सैंकड़े-वि० [ हिं० सैंकड़ा ] प्रति सौ के हिसाब से । प्रांत  
 शत । फी सदी । जैसे,—५ सैंकड़े ध्यान ।  
 सैंकड़ों-वि० [ हिं० सैंकड़ा ] (१) कई सौ । (२) बहुत संख्यक ।  
 गिनती में बहुत । जैसे,—सैंकड़ों आदमी ।  
 सैंकत-वि० [ सं० ] [ स्त्री० सैंकती ] (१) रेतीला । बलुआ ।  
 बालुकामय । (२) बालू का बना ।  
 संज्ञा पुं० (१) बलुआ किनारा । रेतीला शट । (२) रेतीली  
 मिट्टी । बलुई जमीन (३) एक ऋषिवंश ।  
 सैंकतिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साधु । संन्यासी । क्षणिक ।  
 (२) यह सूत्र या सूत्र जो मंगल के लिये फलाई या गले में  
 धारण किया जाता है । मंगल सूत्र । गंधा या रक्षा ।  
 वि० (१) सैंकत संबंधी । (२) धर्म या संदेह में रहनेवाला ।  
 संदेहजीवी । अविश्चारी ।  
 सैंकती-वि० [ सं० सैंकतिन् ] सिकंतायुक्त । रेतीला । बलुआ ।  
 (शट वा किनारा) ।  
 सैंकतेष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] आद्रक । आद्रक (जो बलुई जमीन  
 में अधिक होता है) ।  
 सैंकयत-संज्ञा पुं० [ सं० ] पागिनि के अनुसार एक प्राचीन  
 जन्मपद या जाति का नाम ।  
 सैंकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] हथियारों को साफ करने और उन पर  
 सान चढ़ाने का काम ।

सैकृतार-संज्ञा पुं० [ प्र० सैकृत + ग ] तलवार, सुरी. आदि पर वाद रखनेवाला। सान धरनेवाला। चमक देनेवाला। सिकलीगर।

सैकान-संज्ञा पुं० [ सं० सैक (शय) ] (१) घड़े की तरह का मिट्टी का एक यतन जिससे कोहू से गन्ने का रस निकाल कर पकाने के लिये कड़ाहे में डालते हैं। (२) मिट्टी का छोटा यतन जिससे देशम रंगने का रंग ढाला जाता है। (३) खेल से कट कर भाई हुई रबी फसल का अटाला। राशि।

सैकी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सैक ] छोटा सैक।

सैक्य-वि० [ सं० ] (१) पक्का सुक। (२) सिंघन संबंधी।

सैका पुं० सोन पीतल। शुक पिपल।

सैक्य-वि० [ सं० ] जिसमें चीनी हो। मीठा।

सैकसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] योर की एक जाति जो पहले लर्मनी के उत्तरी भाग में रहती थी। फिर बर्बोस और छटी शताब्दी में इसने इंग्लैंड पर धावा किया और वहाँ बस गई।

सैजन-संज्ञा पुं० दे० "सैजिन"।

सैक-संज्ञा पुं० [ देश० ] गेहूँ की कटी हुई फसल जो दौड़ गई हो, पर भाँसाई न गई हो।

सैण-संज्ञा पुं० [ सं० स्वजन ] मित्र। (हि०)

सैतय-वि० [ सं० ] सेतु संबंधी।

सैतयादिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बाहुदा नदी का नाम।

सैथि-संज्ञा स्त्री० [ सं० शक्ति, प्रा० सति भयवा सहन, प्रा० सहय, हि० सैथी ] बरछी। सौंग। छोटा भाया। उ०—पहर रात भर भाई लाई। गोखिन सर सैथिन सर लाई। खाइ पाइ सय सान भायान। होह मानि तजि कोह परानी।—हाल कवि।

सैद-संज्ञा पुं० दे० "सैयद"। उ०—रफ़ी बहुरि सुरमी बलवाना। मोल सैद अर मुगल पठाना।—रघुराजसिंह।

सैदपुरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की नाव जिसके आगे पीछे दोनों ओर के सिंघे खड़े होते हैं।

सैदातिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिद्धांत को जाननेवाला। सिद्धांतज्ञ। विद्वान्। सत्वज्ञ। (२) सांघिक।

वि० सिद्धांत संबंधी। तत्व संबंधी।

सैधक-वि० [ सं० ] सिंधक वृक्ष की लकड़ी का बना हुआ।

सैघिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वृक्ष।

सैन-संज्ञा स्त्री० [ सं० संघवन, प्रा० सवयान ] (१) अपना भाव प्रकट करने के लिये भाँल या उँगली से किया हुआ इंगित या इशारा। संकेत। इंगित। इशारा। उ०—(क) अरेपि धवायनि धांकनी, बळति चहुँ दिख सैन। तदपि न छॉडत दुहुनि के हँसी रचॉलै नैन।—विहारी। (ख) सुनि अर्थेण देनावन देवान अभिमान कर नैन की सैन अँगद सुझायो।

देखि लंकेय करिभेदा दर दर हँस्यो सुन्यो भद कटक को पार पायो।—सूर। (ग) सीतवि सभय देखि रघुनाई। कदा अनुज सन सैन सुझाई।—जुलही।

संयो० हि०—करता।—देना।—मारता।

(२) चिह्न। निशान। सूचक पस्तु। लक्षण। उ०—यद् धमजन नख रतन की सैन जुड़ी अँग मैन। गील निचोल चिते भये तरुनि चोल रँग नैन।—शंभार-सतसई।

सैण-संज्ञा पुं० दे० "शयन"। उ०—(क) भजन विद्या करि रैन मुस, जाइ कीन्ह गृह सैन।—गोपाल। (ख) सानि सैन भूषण बसन सय की नजर बचय। रदी पीडि मिस नीड के दग दुवार से आय।—पद्माकर। (ग) जानि परंगी जाव हो रात कहुँ करि सैन। छाल छलौई नैन लखि सुनि भनसौई येन।—शंभार-सतसई।

सैण-संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"। उ०—(क) सस दीप के कपि दल भाये जुरी सैन अति भारी। सीता की मुधि लेन बले कपि हूँत विपिन मँसारी।—सूर। (ख) सजी सैन छवि बरनि न जाई। मनु विधि करामाति सब आई।—गोपाल।

सैण-संज्ञा पुं० दे० "श्वेन"। उ०—चलो प्रसैन समिन सैन जिमि श्वर खंगन पर।—गोपाल।

सैनक-संज्ञा पुं० [ प्रा० सनी, सदनक ] थाली। तिकापी। तरतरी।

सैनपति-संज्ञा पुं० दे० "सेनापति"। उ०—चहुँ सैनपतीनु घुलाइ लियं। तिन सौं यह आइहु आयु दियं।—सूदन।

सैनमोग-संज्ञा पुं० [ सं० शयन + मोग ] शयन समय का भोग। रात्रि का नैवेद्य जो मंदिरों में चढ़ता है। उ०—अये दिन गोनि ये सौ भूष के अर्पिन नाई, रहे हरि लीन प्रमु क्षीच परे उमारिये। दियो सैनमोग आप लक्ष्मी जूँ ल पधारी, हाटक की यारी शनसन पाँव धारिये।—भक्तमाल।

सैना-संज्ञा स्त्री० दे० "सेना"। उ०—भीत नीत की चाल ये चळ जानतहूँ रैन। छवि सैना सनि धायहीं अबलन ये छव नैन।—रसनिधि।

सैना-वि० [ सं० ] सेना के अग्र भाग का।

सैना-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनाधी या सेनापति का कार्य। सैनापरय। सेनापतित्व।

सैनापति-संज्ञा पुं० दे० "सेनापति"।

सैनापरय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति का पद या कार्य। सेनापतित्व।

वि० सेनापति-संबंधी।

सैनिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेना या सैन्य का आदेशी। सिपाही। हदकरी। तिलंगा। (२) सैन्यरक्षक। प्रहरी। संतरी। (३) समवेत सेना का भाग या दल। (४) वह जो किसी प्राणी का बंध करने के लिये निवृत्त किया गया हो। (५) संवर के एक पुत्र का नाम।

वि० सेना-संबंधी। सेना का।  
**सेनिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० श्येनिका ] एक छंद का नाम। उ०—सो  
 सुजाननंद सोचि वा घरी। भाइयो प्रजेस पास ता घरी।  
 सोल भोगि श्रीप्रजेस सीं तथे। दि निसान कूच के चम्पू  
 सयै।—सूदन।  
**सेनी**-संज्ञा पुं० [ सेना भगत नारे ] नाई। द्रवाम। उ०—द्रदान  
 हू नातो यम सैनिक जिमि नह बालक सेनी। एक नाम लेल  
 सय भाई पीर सुभूमि रमेनी।—सूर।  
 संज्ञा स्त्री० दे० “सेना”। उ०—जामि कठिन कलकाल  
 कुटिल नृप संग सजी भय सेनी। जनु ता लगि तरवार  
 त्रिविक्रम धरि करि बोग उपनी।—सूर।  
**सेनू**-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का बृहदार कपड़ा। नीनु।  
**सेनेय**-वि० [ सं० सेना + य (प्रत्य०) ] सेना के योग्य। लड़ने  
 के योग्य। उ०—कैतवेय नृप चल्तो श्रेय गुनि यल भमेय  
 तन। सँग अजेय सेनेय सेन पर प्रान सेय रन।—गोपाल।  
**सेनेय**, **सेनेय**-संज्ञा पुं० [ सं० सेन्य + ईत = सेनेय ] सेनापति।  
 उ०—हंसि योले सेनेश कुमार। कहिये नाथ सहित  
 विस्तार।—सचलसिंह।  
**सेन्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सैनिक। सिपाही। (२) सेना।  
 फौज। (३) सेनादल। पलटन। (४) प्रहरी। संतरी। (५)  
 शिविर। छावनी।  
 वि० सेनासंबंधी। फौज का।  
**सेन्यकक्ष**-संज्ञा पुं० दे० “सेनाकक्ष”।  
**सेन्यक्षोभ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का विद्रोह। फौज की बगावत।  
**सेन्यनायक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का अध्यक्ष। सेनापति।  
**सेन्यनिवेशग्रामि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्थान जहाँ सेना पड़ाव  
 डाले। शिविर। पड़ाव। छावनी।  
**सेन्यपति**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति।  
**सेन्यपाल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति।  
**सेन्यपृष्ठ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] फौज का पिछला हिस्सा। सेना का  
 पश्चाद् भाग। प्रतिग्रह। परिग्रह।  
**सेन्यपास**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पड़ाव। छावनी।  
**सेन्यशिर**-संज्ञा पुं० [ सं० सेन्यशिरस् ] सेना का अग्र भाग।  
**सेन्याधिपति**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति।  
**सेन्याध्वज**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति।  
**सेन्योपवेशन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का पड़ाव।  
**सेफ**-संज्ञा स्त्री० [ अ० सेफ ] तलवार। उ०—(क) यों छवि पावत  
 छि लखी अंजन आँजि नैन। सरस याद सैफन धरी जनु  
 चिकलीगर मैन।—रसनिधि। (ख) कोउ, कहति भामिनि  
 भ्रुकुटि विद्ध विलोकि श्रवण समीपलौ। ये साफ सैफ  
 करै फल नहि छमे जानि त्रिय सजनी पलौ।—रघुराज।  
**सेफग**-संज्ञा पुं० [ सं० शतक १ ] डाल देवदार।

**विशेष**—इसका सुंदर पेड़ चटगाँव से सिक्किम तक और  
 कोकण और दक्षिण में मौर, मालाबार और लंका तक के  
 जंगलों में पाया जाता है। इसकी लकड़ी पीलावन लिये  
 भूरे रंग की होती है और मेज, कुर्सी, यात्रों के संकुके  
 भादि बनाने के काम में आती है।  
**सेफा**-संज्ञा पुं० [ अ० सेफ ] जिट्टेसाओं का एक औजार जिससे  
 वे कितायों का हाथिया काटते हैं।  
**सेफी**-वि० [ अ० सेफ = तलवार ] तिरछा। उ०—नेहनि डर  
 भावत ह्यही जयहीं धीरज सैमा। सैफी हेरन में पठे देखी  
 तेरे नैन।—रसनिधि।  
**सेमंतिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिंदूर। सेंदुर। (सपवाँ छियों के  
 सीमंत अर्थात् माँग में लगाने के कारण सिंदूर का यह  
 नाम पड़ा।)  
**सेम**-संज्ञा पुं० [ देश० ] चीवरों के एक देवता या भूत।  
**सेय्य**-संज्ञा पुं० [ अ० ] [ स्त्री० सेयदानी, सेयानी ] (१) मुहम्मद  
 साहब के नाती हुसैन के बंदा का भाइया। (२) मुसलमानों  
 के चार वर्गों या जातियों में दूसरी जाति। उ०—सैयद  
 अजरफ पीर पियारा। जेद मोहि ईन्ह पंथ उजियारा।—  
 जायसी।  
**सेय्यो**-संज्ञा पुं० [ सं० स्वामी, हिं सार ] स्वामी। पति।  
 उ०—(क) सेय्यो भये सिल्लगांवा यहुअर चली नदारा।—  
 गिरिधर। (ख) अपने सेय्यो बोधी पाट। से रे वैंवी हाटे  
 हाट।—कबीर।  
**सेया**-संज्ञा स्त्री० दे० “शय्या”। उ०—सेया असन बसन मुख  
 दोई। कल्प वृक्ष नामक तप सोई।—गोपाल।  
**सेरंध**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सेरंधी ] (१) मुहम्मद। पर का  
 नौकर। (२) एक संकर जाति जो स्त्रियों में दस्यु और  
 अयोग्य से उत्पन्न कही गई है।  
**सेरंधिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] परिचारिका। दासी।  
**सेरंधी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सेरंध नामक संकर जाति की  
 स्त्री। (२) अंतपुर या जंगल में रहनेवाली दासी। अंतपुर  
 परिचारिका। महलिका। (३) स्त्री-कारीगर जो दूसरों के  
 घरों में काम करे। स्वतंत्रा शिल्पजीवनी। (४) द्रौपदी का  
 एक नाम।  
**विशेष**—जब पाँचों पांडवों ने छत्रवेश में राजा विराट के  
 यहाँ सेवा वृत्ति स्वीकार की थी, तब द्रौपदी ने भी उनके  
 साथ ही, एक वर्ष तक सेरंधी का काम किया था। इसी से  
 द्रौपदी का नाम सेरंधी पड़ा।  
**सेरिंध**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद। (बृहत्संहिता)  
 संज्ञा पुं० दे० “सेरंध”।  
**सेरिंधी**-संज्ञा स्त्री० दे० “सेरंधी”।  
**सेर**-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) मन बढ़ाने के लिये घुमना फिरना।

मनोरंजन या वास्तुशेखन के लिये भ्रमण। उ०—राहर की सैर करते हुए राजा के महलों के गोचे आए।—लक्षु०।

क्रि० प्र०—इना।—होगा।

(२) बहार। मीज। आनंद। (३) मित्रमंडली का कहीं बगीचे भादि में खान पान और नाच रंग। (४) मनोरंजक इत्यय। कौतुक। तमाशा। उ०—मम बंधु को तैं हने पाकि, विशेष हेईं बैर। तब पुत्र पौर सँहारि मैं दिखरायहीं रन-सैर।—रघुराज।

धौ०—सैर-सपाटा।

वि० [ सं० ] सैर या हल-संबंधी।

सरंगांध-संज्ञा पुं० [ का० ] सैर करने की जगह।

सैरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कासिक महीना। (२) वृहस्पतिता के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

सैरिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हलवाहा। हलपर। किसान। कृषक। (२) हल में खननेवाला धूल। (३) आक्रान्त।

वि० सैर-संबंधी। हल-संबंधी।

सैरिम-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ खी० सैरीनी ] (१) मैसा। महिप। (२) स्वर्ग। आक्रान्त।

सैरिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मैसा। महिप।

सैरिष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद। (साकेदेवपुराण)

सैरीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सफेद कटसरैया। श्वेत सिंटी। (२) नीली कटसरैया। नील सिंटी।

सैरीयक-संज्ञा पुं० दे० "सैरीय"।

सैरेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद फूलवाली कटसरैया। श्वेत सिंटी।

सैरेयक-संज्ञा पुं० दे० "सैरेय"।

सैर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] अक्षवाह नामक वृण।

सैरल-संज्ञा स्त्री० दे० "सैर"। उ०—(क) गोप अधाइन वें उठे गोरज छाई गैल। चलि बलि अलि अभिसार कों अली सँहोली सैल।—विहारी। (ख) मोदि मयुर मुसकान सों सवै गौरि के छैल। सकल सैल यनकुंज में सरुनि सुरति की सैल।—मतिराम।

सैल पुं० दे० "सैल"।

सैल स्त्री० दे० "सैल"।

सैल स्त्री० [ सं० ] सैलव। (१) बाढ़। जलप्लावन। (२) प्योत। बहाव।

सैलकुमारी-संज्ञा स्त्री० दे० "सैलकुमारी"।

सैलग-संज्ञा पुं० [ सं० ] लुटेरा। डाकू।

सैलज-संज्ञा स्त्री० दे० "सैलजा"।

सैलमुता-संज्ञा स्त्री० दे० "सैलमुता"।

सैला-संज्ञा पुं० [ सं० ] रावण। [ खी० भव्य० संज्ञा ] (१) लकड़ी की गुल्ली या पयड़ जो किसी छेद या संधि में टँका जाय। किसी छेद में राखने या फँसाने का टुकड़ा। मेल। (२)

लकड़ी का छोटा टंडा या मेल। (३) लकड़ी का छोटा टंडा या मेल जो हल के जूए के दोनों सिरों के छेदों में इसलिये डालने हैं जिसमें जूआ बेलों के गले में फँसा रहे। (४) नाव की पतवार की मुठिया। (५) वह सुँगरी जिससे कटी हुई फसल के टंडल दाना सादने के लिये पीटते हैं।

संज्ञा पुं० [ सं० ] रावण, प्रा० सावण। [ खी० भव्य० संज्ञा ] चीरा हुआ टुकड़ा। पैला। जैसे,—लकड़ी का सैला।

सैल/मजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रोगव्यक्त। पार्वती।

सैलानी-वि० [ फ़ा० ] सैर दि० संज्ञा ] (१) सैर करने में जिसे आनंद आवे। सैर करनेवाला। मनमाना घूमनेवाला। (२) आनंदी। मयमोती।

सैलाय-संज्ञा पुं० [ फ़ा० ] बाढ़। जलप्लावन।

सैलाया-संज्ञा पुं० [ फ़ा० ] संज्ञा ] वह फसल जो पानी में डूब गई हो।

सैलायी-वि० [ फ़ा० ] जो बाढ़ आने पर डूब जाता हो। बाढ़वाला। जैसे,—सैलायी ज़मीन।

सैला स्त्री० तैरी। सोल। सीढ़।

सैलि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वृहस्पतिता के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

सैली-संज्ञा स्त्री० [ हि० ] सैण। (१) छोटा मैला। (२) ढाक की जड़ के रेशों की बनी रस्सी।

सैली स्त्री० [ दे० ] यह टोकरा जिसमें किसान तिथी का चावल टुकड़ा करते हैं।

सैल्ल-संज्ञा पुं० दे० "सैल्ल"।

सैल्ल-संज्ञा पुं० दे० "सैल"।

सैपल-संज्ञा पुं० दे० "सैवाल"। उ०—नाभि सरसि त्रिवली नितेनिका रोमराजि सैवल छवि पायति।—तुलसी।

संघलिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "संघलिनी"।

सैवाल-संज्ञा पुं० दे० "सैवाल"।

सैव्य-संज्ञा पुं० दे० "सैव्य"।

सैस-वि० [ सं० ] (१) सौते का बना हुआ। (२) सीसा-संबंधी।

सैसक-वि० दे० "सैस"।

सैसप-संज्ञा पुं० दे० "सैसप"।

संसवता-संज्ञा स्त्री० दे० "संसवता"। उ०—संसवता में हे सखी जीवन कियो प्रवेस। कहा कहीं छवि रूप की नसदिय अंग सुरेस।—सूर।

सैसिकत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद। (महाभारत)

सैसिरिध-संज्ञा पुं० दे० "सैसिरिध"।

सैहथी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रासिक, प्रा० सधि, भयवा सं० सहाय, प्रा० सहाय ] रासिक। रासि। सधि। उ०—(क) मद्यमंत्र पदि मैहथी रावणः कर चमकाय। काल,जलद, में भीहुरी जनु प्रगटी दे भाय।—इनुमप्राक। (ख) कपो लंकरति मातें



तोही। दूनी कपट सैधथी मोहीं।—हनुमदाटक। (ग)  
आपुस मौस इसातर कीनी। कर उलछारि सैधथी लीनी।  
—लाल कवि।

सैधा—गङ्गा पुं० [ सं० सेक = सिचाई + हा (हि० प्राय०) ] [ श्री०  
अन्या० शैवी ] पानी, रस आदि ढालने का मिट्टी का बरतन।

सँही—संज्ञा स्त्री० [ हिं० सैधा ] छोटा सैहा।

सौंझी—प्रत्य० [ प्रा० मुन्नी ] करण और अपादान कारक का चिह्न।  
द्वारा। से। उ०—(क) बार बार करतल कहँ मलिके। निज  
कर पीठ रदन सौं दलिके।—गोपाल। (ख) गिरत सिद्ध  
मतवारिन की मॉगिन सौं, चहुँ ओर फैलि रही जासु अरुनाई  
है।—बालमुकुन्द गुप्त।

वि० दे० “सा”। उ०—तीन सौं धीर समीर लगे पद्माकर  
ब्रह्मिह बोलत नाहीं।—पद्माकर।

मध्य० दे० “सौह”। उ०—अपुरा मै भैम बडे राम दयाम  
बल पाय नारयो कंस राय करे करम अलीके सौं। ताको  
धैर लैहो मारि सद्युन नसेहोँ मदि जामे परँ पापिन के मुख  
फेरि फीके सौं। धनी धरनी के नीके आपुनी भानीके संग  
आयेँ खुर जिके मोन जी के गरजी के सौं।—गोपाल।

कि० वि० संग। साथ। उ०—मन हरि सौं तनु घरदि  
चलावति। ज्यों गजमच जाल अकुन कर गुरुजन सुधि  
आवति।—सूर।

एव० दे० “सो”। उ०—राज समाज खबर सौं धरनी।  
आंगं शूषदल सौं भरि धरनी।—गोपाल।  
गङ्गा स्त्री० दे० “सौह”। उ०—बान मुने ते बहुत हँसोगे  
चरण काल की सौं। मेरी देह छुटत यम पठये जितक दूत  
घर मो।—सूर।

सौंहाटी—संज्ञा पुं० [ हिं० सटना ? ] चिमटा। दस्तपनाह।

सौंच—संज्ञा पुं० दे० “सोच”।

सौंचर नमक—संज्ञा पुं० [ सं० सौचरल + का० नमक ] एक प्रकार  
का नमक जो मामूली नमक तथा हृद, बडेदे और सजी के  
संयोग से बनाया जाता है। काला नमक। वैद्यक में यह  
उष्णवीर्य, कटु, रोचक, भेदक, क्षीपक, पाचक, स्नेहयुक्त,  
वाननादाक, अत्यंत पित्तजनक, विनाश, हलका, डकार को  
शुद्ध करनेवाला, सूक्ष्म तथा विरंच, आनाह और छाल का  
नाश करनेवाला माना गया है।

पट्याँ—अक्ष। सौचरल। रुच्य। दुर्गंध। शूलनाशन।  
रुचक। कृष्णलवण आदि।

सौंजा—संज्ञा स्त्री० दे० “सौंज”।

सौंटा—संज्ञा पुं० दे० “सौंटा”।

सौंटा—संज्ञा पुं० [ सं० शुचक या हिं० सटना ] (१) मोटी लंबी सौंधी  
लकड़ी या बॉस जिसे हाथ में ले सकें। मोटी छड़ी। डंडा।  
(२) लट्टी।

कि० प्र०—चलाना।—जमाना।—बौंचना।—मारना।

मुहा०—सौंटा चलना = सोंटे से मारपीट होना। सौंटा चलाना =  
सोंटे से प्रहार करना। सौंटा जमाना = दे० “सौंटा चलाना”।

संज्ञा पुं० (१) भंग घोंटने का मोटा डंडा। भंग-घोटना।

उ०—तन कर कूँडी मन कर सौंटा प्रेम को भँगिया रागि  
पियावै।—कवीर। (२) लोपिया का पोथा। रबॉस। (३)

मस्तूल बनाने लायक लकड़ी। (लक्ष०)

सौंटाघरदार—संज्ञा पुं० [ हिं० सौंटा + का० घरदार ] सौंटा या  
आसा लेकर किसी राजा या अमीर की सवारी के साथ  
चलनेवाला। आसाघरदार। बल्लमदार।

सौंठ—संज्ञा स्त्री० [ सं० शुण्ठी ] मुखपाया हुआ अदरक। शुठि। शुंठी।  
चिरोप—वैद्यक के अनुसार, सौंठ रुचिकर, पाचक, हलकी,  
स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाक में मधुर, वीर्यवर्द्धक, सारक, कफ,  
वात, त्रिबंध, हृद्रोग, श्लेष्मपद, शोक, बवासीर, अफास,  
उदर रोग तथा वात रोग नाशक है।

सौंठमिट्टी—संज्ञा स्त्री० [ सौंठ + हिं० मिट्टी ] एक प्रकार की पीले  
रंग की मिट्टी जो ताल या धान के खेत में पाई जाती है।  
यह कायिस बनाने के काम में आती है।

सौंठराय—संज्ञा पुं० [ हिं० सौंठ + राय = राज ] कंगूसां का सरदार।  
भारी मवल्लीचूस। (व्यंग्य)

सौंठौरा—संज्ञा पुं० [ हिं० सौंठ + प्रा० (प्रत्य०) ] एक प्रकार का  
सूजी का लड्डू जिसमें मेवों के सिधा सौंठ भी पड़ती है।  
यह लड्डू प्रायः प्रसूती स्त्री को खिलाया जाता है।

सौंठकहा—संज्ञा पुं० [ दे० ] घी। (सुनार)

सौंघल—मध्य० दे० “सौह”। उ०—यह बचामा है कौन की छवि  
धामा मुसकाय। सौंघ चढ़ी चदि कौंघ स्त्री बोंघ गई  
चख छाय।—शंभार-सतसई।

सौंधा—वि० [ सं० शुंगं ] [ श्री० सोंधी ] : (१) शुंगंधयुक्त।  
शुंगंधित। सुशुभदार। महकनेवाला। उ०—(क) सौंधे  
समीरन को, सरदार मलिनन को मनसा फलदायक। किमुक  
आलन को यहदुम मानिगी बालकहूँ को मनायक।—  
रसकुसुमाकर। (ख) सहर सहर सौंधी सीतल समीर दोलें,  
घहर घहर घन धोरिकेँ घहरिया।—देव। (ग) सौंधे कँसी  
सौंधी देह सुधा सौं सुधारी, पाईं धारी देवलीक तँ कि  
सिधु ते उधारी सी।—केशव। (२) मिट्टी के नए बरतन  
या सूखी जमीन पर पानी पड़ने या चना, बैसन आदि  
भुनने से निकलनेवाली शुंगंध के समान। जैसे,—सौंधी  
मिट्टी, सौंधा चना।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का शुंगंधित मसाला जिसेसे जिर्मा  
केदा घोंती है। उ०—(क) आह हुनी अन्धवावन नादिनि  
सौंधो लिये कर सूधे सुमादिनि। कंबुकि छोरि उतै उपदेशे  
को हंगुर से अँग की सुखदादिनि। (ल) सौंधे की सुवात

आस पास भरि भवन, रघो भरत उसाँस बास बासन  
 बासत है।—देव। (ग) देखी है गुपाल एक गोपिका में  
 देवता सी, सोने को शरीर सब सोधि की सी बास है।—  
 केशव। (घ) लहू के फूल बैठि कुलहारी। पान अपराध  
 धरे सँवारी। सोधा सूप बँड है गोवी। फूल कपूर खिरीरी  
 बर्षी।—जायसी। (२) एक प्रकार का सुगंधित मसाला  
 जो बंगाल में छियाँ नारियल के तेल में उसे सुगंधित करने  
 के लिये मिलती है।

संज्ञा पुं० सुगंध। उ०—(क) सूरदास प्रभु की यानक देखे  
 गोपी खाल टारे न टरत निपट आये सोधि की लपट।—  
 सूरदास। (ख) सोधि को अधार किसमिस तिनको अहार  
 पारि को सो अंक लंक चंद सरमाती है।—भूपण। (ग)  
 यद्दी सो सोने सोधि भरी सो रूप भाग। सुनत रुचि भइ  
 रानी दिये छोन अस लाग।—जायसी।

संधिया—संज्ञा पुं० [ हि० संधि = युक्ति + रना (प्रय०) ] सुगंध  
 वृण। रोहिण वृण। गंधेज पास।

संधी—संज्ञा पुं० [ हि० संधि ] एक प्रकार का बघिया धान जो  
 दलदली जमीन में होता है।

संधु—वि० दे० "संध्या"। उ०—सोयु सुरहुम विदुम विष  
 है फलो दल फूलन वारयो दूरे।—देव।

संधपना—कि० ता० दे० "संधपना"। उ०—राम को राजलक्ष्मी  
 संधो।—लक्ष्मणसिंह।

संधनिया—संज्ञा पुं० [ सं० ट्यर्च ] एक प्रकार का आम्रपूज जो  
 नाक में पढ़ना जाता है। उ०—पहुँबी करनी पदिक उर  
 हरि नख कंडुला कंड मंथु गजमनिया। रधि रधि वुक द्विज  
 अधर नासिका अति सुंदर रामत संधनिया।—सूर।

सोई—संज्ञा स्त्री० दे० "सोई"। उ०—प्यारे को प्यार परो-  
 सिनि सोई क्यो तुम सो तब साधु न लेखी। मोही को  
 हाथी कही हागरो करि सोई करी तब भीरक लेखी।—  
 क्षमाकलापर।

प्रय० दे० "सोई"। उ०—बाउर अंध प्रेम फर लागू।  
 सोई पसा कइ सूस न आगू।—जायसी।

सोईट—वि० [ ? ] सीधा सादा। सरल।

सोहील—प्रय० दे० "सोई"। उ०—(क) भाग्य रिछोहीं न  
 सोहीं चितोचि किती न सखी प्रति प्रीति यथाई।—देव।

(ख) हतने में सोहीं आ एक बोली प्रजनारी।—लहू।

सो—उर्ध्व० [ सं० स ] बह। उ०—(क) ब्याही सो सुजान शील  
 रूप बगुदेव जू कीं विदित जहान जाकी अतिहि बधाई है।—  
 गोपाल। (ख) सो मो सग कइ जातु न कैसे। साक-बनिक  
 मनियन-गुन जैसे।—तुलसी। (ग) अरे क्या मैं जो मज  
 सो सुखमन मैं गाह।—रसनिधि।

सो वि० दे० "सा"। उ०—(क) विधि-हरि-हर-भय वेद

प्रमान सो। अगुन अनुपम गुन निधान सो।—तुलसी।  
 (ख) नासिका सरोज गंधवाह से गुणगंधवाह, दारयो से  
 दशन कैसे सो बौद्धी सो हास है।—केशव।

प्रय० अतः। इसलिये। निदान। जैसे,—पराधीनता संध  
 दुःखों का कारण है; सो, माद्यों, इससे मुक्त होने के  
 उद्योग में लगे रहिये। उ०—सो अब हम तुम सों मिले  
 जुद्ध। नय अंग लहहु वि समर सुद्ध।—गोपाल।

सोही—[ सं० ] धावती का एक नाम।

सोइहम् [ सं० स + अइम् ] वही मैं हूँ—अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ।

विशेष—वेदांत का सिद्धांत है कि जीव और ब्रह्म एक ही है;  
 दोनों में कोई अंतर नहीं है। जीव और ब्रह्म नहीं ब्रह्म ही  
 है। इसी सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिये वेदांतियों लोग  
 कहा करते हैं—सोइहम्; अर्थात् मैं वही ब्रह्म हूँ। उप-  
 निषदों में भी यह बात "अहं ब्रह्मास्मि" और "तत्त्वमसि"  
 रूप में कही गई है।

सोइहमस्मि [ सं० स + अइम् + अस्मि ] वही मैं हूँ—अर्थात्  
 मैं ही ब्रह्म हूँ। वि० दे० "सोइहम्"।

सोइयता—कि० प्र० दे० "सोयता"। उ०—(क) गारे गारत  
 कपोल पर अलक अडोल सोइयत। सोअति है सोपिनि  
 मनो पंकज पात विटाय।—सुभारक। (ख) सुखमोत जहाँ  
 बसत जे जागत सोअत रामें राम बके।—देवस्यामी।

सोइर—संज्ञा स्त्री० दे० "सोरी"।

सोभ्रा—संज्ञा पुं० [ सं० मित्रेया ] एक प्रकार का साग जिसका धुप  
 १ से ३ फुट तक ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ बहुत सूक्ष्म  
 और फूल पीले होते हैं। वैद्यक के अनुसार यह धरपरा,  
 कड़वा, हलका, पित्तजनक, अग्निशीलक, गरम, मेघान्तक,  
 वस्तिर्कर्म में प्रशस्त तथा कफ, वात, उज्व, दूध, योनिदूध,  
 आध्मान, नेत्ररोग, प्रण और कृमि का नाशक है।

पट्टा—सत्ताहा। शतपुण्या। शतश्री। शतपुत्रिका।  
 कारयी। तालपत्रा। मायवी। शोकका। मिस्री।

सोई—संज्ञा स्त्री० [ सं० सेत, हि० सोग ] वह जमीन या गड्ढा जहाँ  
 पाद या पत्ती का पानी दबा रह जाता है जिसमें अगदनी  
 धान की फसल रोपी जाती है। बावर।

सोई दे० "बही"। उ०—(क) मेरी भयदाया हरी राधा  
 नागरि सोई। आ तन की सोई परे ख्याम हरित झुति होई।  
 —विहारी। (ख) सातों द्वीप कहे शुक मुनि ने सोई कहत  
 अब सूर।—सूर। (ग) सोई रघुवर सोई लडिअन सीता।  
 —देव। सती अति भई सभिता।—तुलसी।

प्रय० दे० "सो"। सोई में स्वशुश्राव्य जाती थी।  
 —प्रताप।

सोक—संज्ञा पुं० [ दे० ] धारपाई पुनने के समय पुगावट में-का  
 वह छेद जिसमें से रस्सी या निवार निकाल कर कसते हैं।

संज्ञा पुं० दे० "शोक" । उ०—समन पाप-संताप-सोक के ।  
मिय पालक पर-लोक-लोक के ।—तुलसी ।

सोकन-संज्ञा पुं० दे० "सोखन" ।

सोकना-क्रि० स० [ सं० शोक ] शोक करना । दुःख करना ।  
रंज करना । उ०—तुव पन पालि विपिन करि देहौं । पुनि  
तुप पद पंकज सिर नैहौं । सौं सुनि नृपति मनहि मन  
सोख्यौ । पुनि पुनि रामवन्दन भवलोचक्यौ ।—प्रभाकर ।  
हि० स० दे० "सोखना" । उ०—(क) भाट मास जो मूर्ध  
जल सोकता है, सोई चार महीने बरसता है ।—लड्डू । (ख)  
बुंद सोकियो कुहा महा समुद्र चीजई ।—केशव ।

सोकनी-वि० [ ? ] कालापन लिये सफेद रंग का (धूल) ।

सोकरहा-संज्ञा पुं० [ हिं० सोकार ] वह आदमी जो कूँप पर खड़ा  
होकर पानी से भरे हुए चरसे या मोट को नाली में उलटकर  
ब्याली करता है । धारा ।

सोकार-संज्ञा पुं० [ हिं० सोकरना, सोखना ] वह स्थान जहाँ खेत  
सोचनेवाले कूँप से मोट निकालकर गिराते हैं । सिंचाई के  
लिये पानी गिराने की कूँप पर की नाली । छिउल्लास । चौड़ा ।  
सोकिता-वि० [ सं० शोक ] शोकयुक्त । उ०—मुहिं स्वार्थ वीठ  
धनायो तुमकॉं जब सोकिता देख्यौ ।—प्रभाप ।

सोकरन-संज्ञा पुं० दे० "सोपन" ।

सोखक-वि० [ सं० शोषक ] (१) शोषण करनेवाला । (२) नाप  
करनेवाला । उ०—थलि थलि चंद्रमुखी सौंवे सखा पै वेगि,  
सोखक जु केसोदास भरि मुख साज के । चवि चदि पवन  
सुरंगन गगन पन, चाहत फिरत चंद योधा यमराज के ।  
—धैरव ।

सोखता-वि० दे० "सोखता" । उ०—मैं सोहदा तन सोखता  
विरहा दुप्य जारह ।—दादू ।

संज्ञा पुं० दे० "सोपता" ।

सोखन-संज्ञा पुं० [ दे० ] (१) स्थायी लिये सफेद रंग का धूल ।  
(२) एक प्रकार का जंगली धान जो नदी की घाटी में बहुत  
उत्तमीन में बोया जाता है ।

सोखना-क्रि० स० [ सं० शोषण ] (१) शोषण करना । रस खींच  
लेना । चूस लेना । सुखा डालना । उ०—(क) यह मिठी  
.....पानी को खूब सोखती है ।—खैती विद्या । (ख) सेर  
भर चावल सेर ही भर घी सोखता है ।—निवप्रसाद ।  
(ग) उदित अगस्त पंथजल सोपना । जिमि छोभिह सोखह  
संतोपा ।—तुलसी । (घ) उवै रुखाई है धनो थोरो मो पै  
नेह । जाही भंग लगाइए सोई सोखि देह ।—रसनिधि ।  
(२) पीना । पान करना । (ध्वंग्य)

संयो० क्रि०—जाना ।—डालना ।—लेना ।

सोखरी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सोखना या सुखाना ] पेट का सूखा  
हुआ महुआ ।

सोखा-संज्ञा पुं० [ सं० सूचन या चोखा ] (१) चतुर मनुष्य ।  
होदिवार आदमी । (२) जादूगर ।

सोखाई-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सोखा ] जादू । दोग ।

संज्ञा स्त्री० [ हिं० सोखना ] (१) सोखने की क्रिया या भाव ।  
(२) सोपने या सोखाने की मजदूरी ।

सोखता-संज्ञा पुं० [ प्रा० ] एक प्रकार का मोटा सुरदुरा कागज  
जो स्थायी सोख लेता है । स्थायी-सोख । स्थायी-पट ।  
ब्लॉटिंग पेपर ।

वि० जरा हुआ । उ०—मैं सोहदा तन सोखता, विरहा  
दुख जारह ।—दादू ।

सोगंद-संज्ञा स्त्री० दे० "सौगंद" ।

सोगल-संज्ञा पुं० [ सं० शोक ] शोक । दुःख । रंज । उ०—(क)  
निसि दिन राम राम की भक्ती, मय रज नहिं दुख सोग ।  
—सूर । (ख) चित पितु-घातक जोग लखि भवौ भयै सुत  
सोग । फिर हुलस्यौ जिय जोयसी समुद्रयो जारज जोग ।  
—विहारी । (ग) तंत उहि सोग विछोह कर भोजन परान  
पेट । पुनि बिसरा भा सँवरना जनु सपने भंइ मंत ।—  
जायसी ।

मुहा०—सोग मनाना = किसी विय या संबंधी के मर जाने पर  
शोक-मूचक चिह्न धारण करना और किसी प्रकार के उम्र या मनो-  
विनोद आदि में सम्मिलित न होना ।

सोगन-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सोगंद ] सौगंद । कसम । (हिं०)

सोगिनी-वि० स्त्री० [ हिं० सोग ] शोक करनेवाली । शोकार्णी ।  
शोकाकुला । शोकमग्ना । उ०—मुल कहत आनु बधि एट  
धरि तरयहुँ चौंसठ जोगिनी । विलयात किंरें धन पाव  
प्रति मगध सुंदरी सोगनी ।—गोपाल ।

सोगी-वि० [ सं० शोक, हिं० सोग ] [ स्त्री० सोगिनी ] शोक मनावे-  
वाला । शोकार्त्ता । शोकाकुल । दुःखित ।

सोच-संज्ञा पुं० [ सं० शोच ] (१) सोचने की क्रिया या भाव ।  
जैसे,—तुम अच्छी तरह सोच लो कि तुम्हारे इस काम का  
क्या फल होगा ।

यौ०—सोच समस्त । सोचविचार ।

(२) पिता । किक । जैसे,—(क) तुम सोच मत करो, ईश्वर  
महा करेगे । (ख) तुम किस सोच में धेडे हो ? (३) शोक ।  
दुःख । रंज । अफसोस । उ०—(क) तुलसी के दुहैं हाथ  
भोचक हैं, ऐसी ठाउँ जाके मुएँ जिए सोच करिई न  
लरिओ ।—तुलसी । (घ) नेह के मोहैं बुलायो इति अवं  
योत मेह महीतल को है । आई मसार महावत मे तन मैं  
धम सीकर को. कलको है । न मिले अवं नीलकिशोर पिया  
हियो बेनी प्रवीन कहे कलको है । सोच नहीं धन पावन को  
सखि सोच यहै उनके छलको है ।—बेनी प्रवीन । (४)  
पंछताया । प्रधात्ताप । उ०—देखिके उगा को हृद छलित

भय कस्यो मैं कौन यह काम कीनो । इन्द्रजित कहावत हौं  
तो आयुको समुझि मन माहिं है रथो खीनो । घटमुंज रूप  
हरि भाई दूरतन दियो कस्यो शिव सोच दीखे विहाई ।—सूर ।

सोचक-संज्ञा पुं० [ सं० सोचिक ] दारजी । (हिं०)

सोचना-किं० प्र० [ सं० सोचन ] (१) किसी प्रकार का निर्णय करने, परिणाम निकालने या भवितव्य को जानने के लिये बुद्धि का उपयोग करना । मन में किसी बात पर विचार करना । गौर करना । जैसे,—(क) मैं यह सोचना हूँ कि तुम्हारा भविष्य क्या होगा । (ख) कोई बात कहने से पहले सोच लिया करो कि वह कहने लायक है या नहीं । (ग) इस बात का उत्तर मैं सोचकर दूँगा । (घ) तुम तो सोचते सोचते सारा समय बिता दोगे । उ०—सोचत है मन ही मन मैं अथ कीर्ति कहा बतियाँ जगदाईं । नीचो भयो मज्ज को सब सीस मळोन भई रसखानि हुहाई ।—रसखान । (२) चिन्ता करना । फिक्र करना । उ०—(क) कौनहुँ हितन आहरो प्रीतम जाके घाम । ताको सोचति सोच हिय कैशव उकाधाम ।—केशव । (ख) अथ हरि भाईहैं जिन सोचै । सुन विपुमुखी वारि नयनन से अथ वृ काहे सोचै ।—सूर । (३) खेद करना । दुःख्य करना । उ०—माथे हाथ भूँड़ि दोड खोचन तनु धरि सोनु लाग जनु सोचन ।—तुलसी ।

सोच विचार-संज्ञा पुं० [ हिं० सोच + सं० विचार ] समझ-बूझ । गौर । जैसे,—(क) सोच विचार कर काम करो । (ख) अच्छी तरह सोच विचार लो ।

सोचाना-किं० सं० दे० "सुधाना" । उ०—सुदिन सुनस्त सुवरी सोचाई । येगि वेदविधि लगन पचाई ।—तुलसी ।

सोचुल संज्ञा पुं० दे० "सोच" । उ०—सती सर्भांत महेश पहि चली हृदय बद्ध सोचु ।—तुलसी ।

सोच-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सूचना ] (१) सूजने की क्रिया, मांस या अन्नका सूजन । शोथ । (२) दे० "सौज" । उ०—तुलसी समिध सोज संकज्य कुंड ललि जातुपान पुंग फल अब तिल धान है ।—तुलसी ।

सोजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूई । उ०—अरे निरदईं मालिया कहुँ जताय यह बात । केहि हित सुमनन तोरि तैं छेदत सोमन गात ।—रसनिधि । (२) काँटा । (छत्त०)

सोजनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुजनी" ।

सोझाक-संज्ञा पुं० दे० "सूजाक" ।

सोझिय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूजन । कुलाय । शोथ ।

सोझक-वि०, किं० वि० दे० "सोसा" । उ०—कई कबीर नर पडे न सोझ । मटक मुये चस बन के रोझ ।—कबीर ।

सोझा-वि० [ सं० समृद्ध, म० प्र० समृद्ध ] [ स्त्री० सोधी ] सीपा । सरल । उ०—दाद सोसा राम रस अहित बाया कृष्ण ।—शारदा ।

सोझोवा-संज्ञा पुं० [ ? ] जवान बटवा ।

सोटा-संज्ञा पुं० दे० "सोंटा" ।

संज्ञा पुं० दे० "सुभटा" । उ०—हैं सँदेस सोडा गा तहाँ ।

सूझी देखि रतन को जहाँ ।—जायसी ।

सोड-संज्ञा स्त्री० दे० "सोंड" ।

सोड मिट्टी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोंड मिट्टी" ।

सोडा-संज्ञा पुं० [ अंग० ] एक प्रकार का क्षार पदार्थ जो सजी को रासायनिक क्रिया से साफ करके बनाते हैं । इसके कई भेद हैं । जिसे लोग सिर धोने के काम में लाते हैं, उसे अंगरेजी में "सोडा क्रिस्टल" कहते हैं । यह सजी को उचालकर बनाते हैं । ठंडा होने पर साफ सोडा गीचे बँट जाता है । जो सोडा साबुन, कागज, कपड़े आदि पानाने के काम में आता है, उसे "सोडा कार्बिक" कहते हैं । यह चूने और सजी के संयोग से बनाता है । दोनों को पानी में घोल कर उबालकर पानी उड़ा देते हैं । इसी प्रकार "याइकारबोनेट आफ सोडियम" भी साबुन, कपड़े आदि पानाने के काम में आता है । यह नमक को धर्मोभिया में घोलकर कारबोनिक गैस की भाष का तरारा देने से निकलता है । इसे एकत्र करके तपाने से पानी और कारबोनिक गैस उड़ जाता है । जो सोडा खाने के काम में आता है, उसे "याइकारबोनेट आफ सोडा" कहते हैं । यह सोडे पर कारबोनिक गैस का तरारा देने से बनाता है ।

सोडावाटर-संज्ञा पुं० [ अंग० ] एक प्रकार का पाचक पानी जो प्रायः मामूली पानी में कारबोनिक एसिड का संयोग करके बनाते हैं और बोतल में हवा के जोर से बँट करके रखते हैं । चिलायती पानी । खारा पानी ।

सोड-वि० [ सं० ] (१) सहनशील । सहिष्णु । (२) जो सहन किया गया हो ।

सोडर-वि० [ देश० ] भोंदू । नेवकृत । उ०—(क) गदहों में हम सोडर गदह हैं ।—यालकृष्ण भट्ट । (ख) भगति सुतिप के हाथ सुमिरिनी सोदत दोडर । सोडर खोडर बूड लड डिज खोंडर ओडर ।—सुधाकर ।

सोडवद-वि० [ सं० ] जिसने सहन किया हो । सहनेवाला ।

सोडव्य-वि० [ सं० ] सहन करने के योग्य । सह्य ।

सोडी-वि० [ सं० सोडिय ] जिसने सहन किया हो । सहनकारी ।

सोएक-वि० [ सं० सोपे ] लाल रंग का । रफ ।

सोएत-संज्ञा पुं० [ सं० सोपिय ] खून । खोहू । रक्त । (हिं०)

सोत-संज्ञा पुं० दे० "स्रोत" या "सोता" । उ०—(क) खोल खोचनी कंड हलि संख समुद के सोत । अर उदि कान्न कौं गये केकी गोल कपोल ।—यंगराम-सतसई । (ख) धन कुल की मरजाद कहु प्रेम पय नहिं होत । राव रंक सय एक से क्लान प्रेम रस सोत ।—हरिभद्र । (ग) वैरि-शु-

घरन कलानिधि मलीन भयो सकल मुखतो परपाणिप को सोता है ।—गनिराम ।

सोता-पंजा पुं० [ सं० सोता ] (१) जल की बराबर वहनेवाली या निकलनेवाली छोटी धारा । झरना । चरना । जैसे,—पहाड़ का सोता, झर्रे का सोता । उ०—(क) भूख लगे सोता मिले उथरे भर दिन मैल । पी तिनको पानी तुरत लीजौ भवनी गैल ।—लक्ष्मणसिंह । (ख) दस दिसा निर्मल मुदित उदगन भूमिमंडल सुरप छयो । सागर सरित सोता सरोवर सयन उज्वल जल भयो ।—गिरिधरदास । (२) नदी की धारा । नहर । उ०—जिसका (जमना की नहर का) एक सोता पश्चिम में हरियाने तक पहुँचकर रंगिस्तान में खप जाता है ।—तियप्रसाद ।

सोतिया-संज्ञा स्त्री० [ हि० सोता + श्या (प्रत्य०) ] सोता । उ०—नौ दस मदिया भगम वहे सोतिया विचै में पुरहन दहवा लागल रे री ।—कबीर ।

सोतिहा-संज्ञा पुं० [ हि० सोता + हा (प्रत्य०) ] कृष्ण जिसमें सोते का पानी आता है ।

सोती-संज्ञा स्त्री० [ हि० सोता ] मोत । धारा । सोता । उ०—वेदि पर पुरि धरी जो मोती । जवैना मसि गौं कइ सोती ।—जायसी ।

संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाती" । उ०—एक वर्ष यरथो नहि सोती । भयो न मान सरोवर मोती ।—रघुराजसिंह ।

संज्ञा पुं० दे० "श्रोत्रिय" ।

सोतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम निकालने की क्रिया ।

सोत्कंठ-वि० [ सं० ] उत्कंठापुक्त । उनमना ।

सोत्क-वि० [ सं० ] जिसे उत्कंठा हो । उत्कंठापूर्ण ।

सोत्कर्ष-वि० [ सं० ] उत्कर्षयुक्त । उत्तम । दिव्य ।

सोत्प्राप्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चाट । प्रिय बात । (२) शब्दयुक्त हास्य । सदाशब्द हास्य । यथा—सोत्प्राप्त आच्युतितकमच्युतितक तथा अष्टाशो महाहासो हासः प्रहास इत्यपि ।—शब्द रसावली ।

वि० (१) यदाकर कहा हुआ । अतिरंजित । (२) व्यंग्ययुक्त । जिसमें व्यंग्य हो ।

सोत्प्रेक्ष-वि० [ सं० ] उपेक्षा के योग्य । उदासीनतापूर्वक ।

सोत्संग-वि० [ सं० ] शोकाकुल । दुःखित ।

सोत्सर्ग संहित-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संल मूत्र आदि का इस प्रकार यत्पूर्वक त्याग करना जिसमें किसी व्यक्ति को कष्ट या जीव को भाषातः न पहुँचे । (सैन)

सोत्सव-वि० [ सं० ] (१) उत्सवयुक्त । उत्सव संहित । (२) प्रफुल्ल । प्रसन्न । खुश ।

सोत्सुक-वि० [ सं० ] उत्सुकतायुक्त । उत्सुकता संहित । उत्कंठित ।

सोत्सेक-वि० [ सं० ] अभिमानी । घमंडी । घुँट्ट ।

सोत्सेध-वि० [ सं० ] उद्य । जँघा ।

सोत्प-संज्ञा पुं० दे० "शोध" ।

सोत्कुम्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कूप्य जो पित्तों के उद्देश्य में किया जाता है ।

सोत्धिल-वि० [ सं० ] लघु । अल्प । थोड़ा । कम ।

सोत्दन-संज्ञा पुं० [ देश० ] कनोदे के काम में कामज का एक टुकड़ा जिस पर सूई से छेद कर घेल घूट बनाए होते हैं । जिस कपड़े पर घेल घूटा बगाना होता है, उस पर हते श्वकर बारीक रात बिछा देते हैं, जिससे कपड़े पर निदान बन जाता है ।

सोत्दय-वि० [ सं० ] ध्यान या सुंद समेद । शुद्धियुक्त ।

सोत्दर-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सोदरा, सोदरी ] सहोदर भ्राता । सगा भाई ।

वि० एक गर्भ से उत्पन्न ।

सोत्दरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सहोदरा भगिनी । सगी बहिन ।

सोत्दरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोदरा" । उ०—काम की दुहाई कै सुदाई सखी माधुरी की इंदिरा के मंदिर में श्राई उपनति है । सुरनि की सुरी कियौ मोदहू की सोदरी कि चातुरी की माता ऐसी बातनि सिजति है ।—केशव ।

सोत्दरीय-वि० दे० "सोदर" ।

सोत्दर्य-संज्ञा पुं० वि० दे० "सहोदर" ।

सोत्द्योग-वि० [ सं० ] उद्योगी । कर्मशील ।

सोत्सहेग-वि० [ सं० ] विचलित । चिंतित ।

सोत्श्ल-संज्ञा पुं० [ सं० शोभ ] (१) खोज । खबर । पता । रोह ।

उ०—(क) हम सोता के सोध बिहीना । नहि कहि ज्यराज प्रवीना ।—तुलसी । (ख) मोही सौं रुडि के रूडि रहे कियो कोई कहूँ यष्ट सोध न पावै ।—देव । (२) संशोधन । सुधारन । उ०—जल प्रयोध जग सोध मन की निरोध कुल सोध । करहि ते फोकट पंच मरहि सपनेहु सुख न सुबोधे ।—तुलसी । (३) सुकता होना । भदा होना ।

बेयाक होना । जैसे,—ऋण का सोध होना ।

संज्ञा पुं० [ सं० शोध ] (१) महल । प्रासाद । (हि०) (२)

महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम ।

सोत्शक-संज्ञा पुं० दे० "शोधक" ।

सोत्शणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० शोधनी ] श्राद्ध । बुहारी । मांजनी । (हि०)

सोत्शन-संज्ञा पुं० [ सं० शोधन ] हँड । खोज । तलाश । उ०—अति शोधन रत सोधन संदा भरि बल शोधन पन किये । दुरजोधन प्रथितामह लखो सह सत शोधक संग लिये ।—गोपाल ।

सोत्शन-वि० [ सं० शोधन ] (१) शोधन करना । शुद्ध करना । साफ करना । उ०—(क) बसि सकोच दसंबदन यस सौँच दिसावति बाल । सिध होँ सोधति तिय तनदि लगनि भगनि की जवाल ।—विहारी । (ख) शोधि भवनि

शय करि जोजन धरि प्रमान । भति विविध रचना रची  
 मंदप विपुल बितान । (२) गल्ली या दोष दूर करना ।  
 (३) विचार कर देखना । ठीक करना । निश्चित करना ।  
 निर्णय करना । उ०—(क) ग्रह तिथि नखत जोगु वर वारु ।  
 क्षयत सोधि बिधि कीन्ह विचारु ।—तुलसी । (ख)  
 समुक्ति करम गति धीरज कीन्ह । सोधि सुगम मगु  
 तिन्ह करि दीन्हा ।—तुलसी । (घ) सोजना । हूँटना ।  
 उ०—(क) पृथि कुमो कर भीषण माहीं । सोधेउँ सकल  
 विश्व भन माहीं ।—तुलसी । (ख) प्याते दुपहर जेठ के  
 थके सवे जल सोधि । मरुपर पाप मतीह मारु कहत  
 पयोधि ।—विहारी । (ग) मैं सोधि बरजौ बार बार । सं यन  
 सोभ्यो दादु डादु । सब कूलन में कियो है भोग । सुख न  
 भयो तन बाख्यो रोग ।—कबीर । (घ) धातुओं का भीषण  
 रूप में श्वभहार करने के लिये संस्कार । शैले, —पारा  
 सोधना । (१) ठीक करना । दुरुस्त करना । सुधारना । (२)  
 ऋण चुकाना । अदा करना । (३) प्रसंग करना । संभोग  
 करना । (वाजस्य)

**सोपध**—संज्ञा पुं० [ ? ] जल का किनारा । (दि०)  
**सोधाना**—कि० सं० [ हि० सोधना का प्रे० रूप ] (१) सोधने का  
 काम दूसरे से कराना । (२) ठीक कराना । दुरुस्त कराना ।  
 उ०—(क) राजा अवध गहागहे आनंद बधाये । नामकरन  
 खुबरानि के नृप सुदिन सोधाये ।—तुलसी । (ख) मुसु  
 पाइ बात चलाह सुदिन सोधाह गिरिदि सिपाह कै ।—  
 तुलसी । (ग) सत गुरु विष बोलाय के छाम सोधायहीं ।  
 समन कुटुम परिवार सुमंगल गावहीं ।—कबीर ।  
**सोपुल**—संज्ञा पुं० दे० "सोप" ।

**सोना**—संज्ञा पुं० [ सं० सोप ] एक प्रसिद्ध नद का नाम जो  
 मध्य प्रदेश के अमरकंटक की अशिरवका भूमि से, नर्मदा के  
 उद्गम स्थान से दो दार्द मील पूर्व से, निकला है और उत्तर  
 में मध्य प्रदेश तथा बूंदेलखंड होता हुआ पूर्व की ओर  
 प्रवाहित हुआ है और बिहार में दानापुर से १० मील उत्तर  
 गंगा में मिला है । बिहार में इस नद का पाठ कोई अढ़ाई  
 सौ मील लंबा है । वर्षा ऋतु में समुद्र सा जान पड़ता है ।  
 इसमें कई शाला-नदियाँ मिलती हैं जिनमें कोइल प्रधान  
 है । गरमी में इस नद में पानी बहुत कम हो जाता है ।  
 वैद्यक के अनुसार इसका जल रुचिकर, संताप और  
 शोषाघ्न, पथ्य, अग्निवर्द्धक, बल और शीर्षाण को बढ़ाने-  
 वाला माना गया है । उ०—सोानुं राम-समर-जस पावन ।  
 मिलउ महानद सोन मुहावन ।  
 पय्याँ—शोण । शोणभद्र । हिरण्यवाह ।

संज्ञा पुं० दे० "सोना" । उ०—(क) परी नाथ कोह खूबे न  
 पता । माराग मानुष सोन उछारां ।—जायसी । (ख)

दमयंती के बचन न भाये । नल राजा सय द्रव्य गँवाये ।  
 सोन रूप जो छाव भुवारा । घरत दाउँ पल मह सय हाता ।  
 —सखलसिंह ।  
 संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का नलपत्ती । उ०—कुरहिं  
 सारस करहिं हुलासा । जीवग मान सो एकहि पास ।  
 बोल्हि सोन एक यगलेदी । रथी अबोल मीत जल-भेदी ।  
 —जायसी ।  
 वि० [ सं० सोप ] लाल । अरुण । रक्त । उ०—सुमग सोन  
 सरसीरह खेचन । बदन मयंक तापत्रय-मोचन ।—तुलसी ।  
 संज्ञा स्त्री० [ हि० सोना ] एक प्रकार की बेल जो बारहो महीने  
 भरावर हरी रहती है । इसके फूल पीले रंग के होते हैं ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० सोनक ] लहसुन । (दि०)

**सोनकिरवादा**—संज्ञा पुं० [ हि० सोना + किरवा = कौड़ा ] (१) एक  
 प्रकार का कौड़ा जिसके पर पक्षे के रंग के चमकौले होते  
 हैं । (२) लुगण ।

**सोनकोकर**—संज्ञा पुं० [ हि० सोना + कीकर ] एक प्रकार का बहुत  
 बढ़ा पद जो उत्तर बंगाल, दक्षिण भारत तथा मध्य भारत  
 में बहुत होता है । इसके हीरे की लकड़ी मूसली सी, पर  
 बहुत ही कड़ी और मजबूत होती है । यह हमारा और  
 खेती के धोआर बनाने के काम में आती है । इसका गोंद  
 कीकर के गोंद के समान ही होता है और प्रायः भीषण  
 आदि में काम आता है ।

**सोनकोला**—संज्ञा पुं० [ हि० सोना + केला ] चंपा केला । सुवर्ण  
 कदली । पीला केला । वैद्यक में यह शीतल, मधुर,  
 अग्निदीपक, दलकारक, दीर्घवर्द्धक, भारी तथा तृपा, दाह,  
 पात, पित्त और कफ-नाशक माना गया है ।

**सोनगढ़ी**—संज्ञा पुं० [ सोनगढ़ (स्थान) ] एक प्रकार का गहर ।  
**सोनगहरा**—संज्ञा पुं० [ हि० सोना + गहर ] गहरा सुनहरा रंग ।  
**सोनागेरु**—संज्ञा पुं० दे० "सोनागेरु" ।  
**सोनचंपा**—संज्ञा पुं० [ हि० सोना + चंपा ] पीला चंपा । सुवर्ण  
 चंपक । स्वर्ण चंपक ।

**विशेष**—वैद्यक के अनुसार यह चरपात्र, कड़वा, कसैला, मधुर,  
 शीतल तथा विष, कृमि, सूत्रकृच्छ्र, कफ, पात और रक्तपित्त  
 को दूर करनेवाला है ।

**सोनचिरी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सोना + चिरी = चिड़िया ] मटी ।  
 उ०—पातरे अंग उड़े विनु पाँखु कोमल भापनि प्रेम सिरी  
 की । जोयन रूप अनुप निहारि के हाज मँरि निधिराम सिरी  
 की । कौल से वैन कलानिधि सो मुख को गूँदी कोटि कला  
 गहिरी की । बँस के हीस अकास में नाचत को न टँकै  
 एवि सोनचिरी की ।—देव ।

**सोनजरख**—संज्ञा स्त्री० दे० "सोनजद" । उ०—कोइ गुलबल  
 सुदरसन कृपा । कोइ सोनजरद पाव भल पूजा ।—जायसी ।

सोनजुई—संज्ञा स्त्री० [ हि० सोना + जुई ] पीली जुही। स्वर्ण यूथिका।

सोनजुही—संज्ञा स्त्री० [ हि० सोना + जुही ] एक प्रकार की जुही जिसके फूल पीले रंग के होते हैं, पर जिसमें सफेद जुही से सुगंधि अधिक होती है। पीली जुही। स्वर्ण-यूथिका।

उ०—(क) देसी सोनजुही फिरति सोनजुही से अंग।  
दुति छपदिनि पट सेत हूँ करति यनोदी रंग।—विहारी।  
(ख) हूँ रीसी लख रीसिही छविहि छबिले लाल। सोनजुही सी होति दुति मिलत मालती माल।—विहारी।

सोनपेड़की—संज्ञा स्त्री० [ हि० सोना + पेड़की ] एक प्रकार का पक्षी जो सुनहलापन लिए हरे रंग का होता है। इसकी चोंच सफेद तथा पैर लाल होते हैं।

सोनभद्र—संज्ञा पुं० दे० “सोन”। उ०—सोनभद्र तट देना नवेला। तहाँ वसैं बहु अबुध बवेला—सुरराज।

सोनहला—संज्ञा पुं० [ हि० सोना + हला (प्रत्य०) ] भटकटैया का काँटा। (कठार)

विशेष—पालकी के जाने समय जत्र कहीं रास्ते में भटकटैया के काँटे पड़ते हैं, तब उनसे बचने के लिये आगे के कहार “सोनहला है” कह कर पीछे के कटारों को सचेत करते हैं।  
वि० दे० “सुनहला”।

सोनहा—संज्ञा पुं० [ सं० शुन = कुसा ] कुत्ते की जाति का एक छोटा जंगली जानवर जो झुंड में रहता है और प्रदाहिंसक होता है। यह शेर को भी मार डालता है। कहते हैं कि जहाँ यह रहता है, वहाँ शेर नहीं रहते। इसे ‘कोगी’ भी कहते हैं। उ०—डाहन दारे सोनहा दोरे सिंह रहे वन घेरे। पाँच कुटुंब मिलि जूशन लागे बाजन बाज घनेरे।—कबीर।

सोना—संज्ञा पुं० [ सं० सोन ] (१) सुंदर उज्वल पीले रंग की एक प्रसिद्ध बहुमूल्य धातु जिसके सिक्के और गहने आदि बनते हैं। यह रामों में या रत्ने अथवा पहाड़ों की दरारों में पाया जाता है। यह प्रायः कंकड़ के रूप में मिलता है। कंकड़ को चूर कर और पानी का तरासा देकर धूल, गिट्टी आदि बहा दी जाती है और सोना अलग कर लिया जाता है। कभी कभी सोना पिशुद अवस्था में भी मिल जाता है। पर प्रायः छोटे, तँबे तथा अन्य धातुओं से मिली हुई अवस्था में ही पाया जाता है। यह सीसे के समान नरम होता है, पर चौड़ी, तँबे आदि के मेल से यह कड़ा हो जाता है। यह बहुत यज्ञनी होता है। भारीपन में ज़ेडिम और हरिदियम धातुओं के साथ इसका स्थान है। यह पीटकर इतना पतला किया जा सकता है कि पारदर्शक हो जाता है। इस प्रकार का इसका बहुत पतला तार भी बनाया जा सकता है। सोने पर जंग नहीं लगता। इस पर कोई खास तेजाब असर नहीं करता। हाँ, गंधक और

दोरे के तेजाब में आँच देने से यह गल जाता है। हिंदुस्तान में प्रायः सभी प्रांतों में सोना पाया जाता है, पर मैसूर और हैदराबाद की खानों में अधिक मिलता है। पिछली शताब्दी में कैलिफोर्निया और आस्ट्रेलिया में भी इसकी बहुत बड़ी खानें मिली हैं।

सोना सब धातुओं में श्रेष्ठ माना गया है। हिंदू इसे बहुत पवित्र और लक्ष्मी का रूप मानते हैं। कमर और पैर में सोना पहनने का निषेध है। सोना कितनी ही रसौफों में भी पड़ता है। वैद्यक में यह त्रिदोषनाशक तथा पलवीर्य, यरण शक्ति और कांतियुद्धक माना गया है।

पृथ्या०—स्वर्ण। कनक। कांचन। हेम। रागिय। हिरण्य। तपनीय। चांपेय। दांतकुंभ। हाटक। जातरूप। रम। महारजत। भस्म। गैरिक। छोहर। चामीकर। कार्पस्वर। मनोहर। तेज। दीशक। कर्पर। कर्पूर। कर्पूर। अग्निवीर्य। मुख्यधातु। भद्र। उदसारक। पातकौम। भूरि। कल्याण। स्वर्णमणि। प्रभव। अग्नि। अग्निशिख। भास्कर। मांगल्य। आभेय। मरु। चंद्र। उज्वल। भृंगार। कलशोत। पिजान। जोषव। अग्निबीज। द्रविण। अग्निम। वीश। अर्पिजर। सोमैजक। जांबुवद। निष्क। रत्न। अष्टापद।

मुहा०—सोने का घर मिटो होना = लाल का घर। खूब होना। सारा वैभव नष्ट होना। सोने में घुन लगना = असंभव बात का होना। भ्रमदेवी होना। उ०—काहू बीटी लागे पाँच, काहू यम मारे काल, सुनो ही न देख्यो घुन लागो है कनक को।—दत्तमहाटक। सोने में सुगंध = किसी बहुत बढ़िया चीज में और अधिक विशेषता होना।

क्रि० प्र०—गलना।—गलाना।—तपना।—तपाना।  
(२) अत्यंत बहुमूल्य वस्तु। बहुत महँगी चीज। (३) अत्यंत सुंदर वस्तु। उज्वल या कान्तिमान् पदार्थ। जैसे, शरीर सोना हो जाना। (४) एक प्रकार का इस। राजहंस।

संज्ञा पुं० मसोले कद का एक धातु जो बरार और दारजिलिंग की तराहियों में होता है। इसमें कलियाँ लगती हैं जिनका शुरुव्या बनता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और इमारत तथा चैती के औज़ार बनाने के काम में आती है। चीरने के समय लकड़ी का रंग अंदर से गुलाबी निकलता है, पर हवा लगने से वह काला हो जाता है। कोलपार।  
संज्ञा स्त्री० प्रायः एक हाथ लंबी एक प्रकार की मछली जो भारत और यरमा की नदियों में पाई जाती है।

क्रि० प्र० [ सं० रायन ] (१) उस अवस्था में होना जिसमें चेतन किराणें एक जाती हैं और मन तथा मस्तिष्क दोनों विधायन करते हैं। सँद लेना। शयन करना। आँसु लगना।  
संयो० क्रि०—जाना।

मुदा०—सोते जागते = २२ वरी । २२ समय ।

(२) शरीर के किसी अंग का सुख होना । जैसे,—अंगे पैर सो गय । ( यह क्रिया प्रायः एक अंग को एक ही अवस्था में कुछ अधिक समय तक रखने पर प्रायः हो जाती है । )

सोनामैक—संज्ञा पुं० [ हि० सोम्य + मैक ] गेरू का एक भेद जो सामूली गेरू से अधिक लाल और मुलायम होता है । वैद्यक के अनुसार यह स्निग्ध, मधुर, कर्मला, नेत्रों को हितकर, शीतल, बलकारक, मण-शोधक, विनाद, कांतिजनक तथा दाह, पित्त, कफ, रक्त-विकार, ज्वर, विष, विरकोटक, वमन, अग्निदग्ध्रयण, बवासीर और रक्तपिच को नाश करनेवाला है ।  
पर्याय०—मुवर्गैयिक । सुरकः । स्वर्ण धातु । सिला धातु । संध्याम । बभ्रुधातु । सुरकक ।

सोनापाठा—संज्ञा पुं० [ सं० सोण + हि० पाठ ] (१) एक प्रकार का ऊँचा वृक्ष जो भारत और लंका में सर्वत्र होता है । इसकी छाल चौथाई इंच तक मोटी, हरापन लिए पीले रंग की, चिकनी, हलकी और मुलायम होती है । काटे से इसमें से दूरा रस निकलता है । लकड़ी पीलापन लिए सफेद रंग की, हलकी और खोलकी होती है और जलने के सिवा और किसी काम में नहीं आती । पेड़ की टहनियों पर तीन से पाँच फुट तक लंबी सुखी हुई साँके होती हैं जो भीतर से पोली होती हैं । प्रत्येक प्रधान साँक पर पाँच पाँच गाँडे होती हैं और उन गाँडों के दोनों ओर एक एक और साँक होती है । पहली साँक को चार गाँडे साँके सहित क्रम क्रम से छोटी रहती हैं । इनमें पहली गाँड पर तीन जोड़े पत्ते, दूसरी और तीसरी गाँड पर एक एक जोड़ा और चौथी गाँड पर तीन पत्ते लगे रहते हैं । दूसरी और तीसरी साँकों पर भी इसी क्रम से पत्ते रहते हैं । चौथी गाँडवाली साँक पर पाँच पाँच पत्ते (दो जोड़े और एक छोर पर) होते हैं । पाँचवाँ पर तीन पत्ते (एक जोड़ा और एक छोर पर) होते हैं । इसी प्रकार अंत में तीन पत्ते होते हैं । पत्ते करंज के पत्तों के समान २॥ से ४॥ इंच तक चौड़े, लंबोत्तरे और कुछ मुकड़े होते हैं । फूल १-२ फुट लंबी बंदी पर २॥-३ इंच लंबोत्तरे और सिद्धसिंदेवार भाते हैं । फूलों के भीतर का रंग पीलापन लिए छाल और बाहर का रंग नीलापन लिए लाल होता है । फूलों में पाँच पंचादियों और भीतर पीले रंग के पाँच केसर होने हैं । फूल बहुधा गिर जाता करते हैं, इसलिये जितने फूल भाते हैं, उतनी फलियाँ नहीं छातीं । फलियाँ २-२॥ फुट लंबी और ३-४ इंच चौड़ी, घिपटी तथा तरवार की तरह कुछ मुड़ी हुई देवी, नोकवाली होती हैं । इनके अंदर भोजयत्र के समान तहदार पत्ते सटे रहते हैं और इन पत्तों के बीच में छोटे, गोल और हलके बीज होते हैं । फलियाँ और बीजमल फलियाँ प्रायः कड़ी ही गिर जाया

करती हैं । कांसिक और अगहन के आरंभ तक इसके वृक्ष पर फूल फल भाते रहते हैं और सोन काल के अंत और वसंत ऋतु में फलियाँ एक पर गिर जाती हैं और बीज हवा में उड़ जाते हैं । इन बीजों के गिरने से वर्षा ऋतु में पीछे बरख होते हैं ।

वैद्यक के अनुसार यह कसैला, हृद्युष, घरपर, शीतल, रक्त, मलशोधक, बलकारी, शीतघ्नक, जठराग्नि को दीप्त करनेवाला तथा वात, पित्त, कफ, त्रिगुण, ज्वर, सक्षिपान, अरुचि, आमवात, कृमि रोग, यमन, खाँसी, अतिसार, लूणा, जोड़, थास और वस्ति रोग का नाश करनेवाला है । इसकी छाल, फल और बीज औषध के काम में भाते हैं, पर छाल का ही अधिक उपयोग होता है । इसका कच्चा फल कसैला, मधुर, हलका, हृद्य और कंठ को हितकारी, रचिकर, पाचक, अग्निदीपक, गरम, बद्ध, क्षार तथा वात, गुल्म, कफ बवासीर और कृमिरोग का नाश करनेवाला है ।

पट्यां०—श्वोनाक । शुक्रनास । कट्वंग । कटभर । मयूरजंघ । आलुफ । म्रियजीवी । कुटशर ।

(२) इसी वृक्ष का एक और भेद जो संयुक्त प्रदेश, पश्चिमोत्तर प्रदेश, पन्जाब, कर्नाटक, वारमंडल के किनारे तथा बिहार में अधिकता से होता है और राजपूताने में भी कहीं कहीं पाया जाता है । यह पेड़ ६० से ८० फुट तक ऊँचा होता है और पत्तेवाली साँक प्रायः ८ इंच से १ फुट तक लंबी होती है और कहीं कहीं साँकों की लंबाई २-३ फुट तक होती है । साँकों पर आठ से चौरह जोड़े समवर्ती पत्ते होते हैं । इसके फूल बड़े और कुछ पीले होते हैं । फलियाँ ताँबे के रंग की छोटी लंबी तथा चौथाई इंच चौड़ी, गोल, दोनों ओर मुकीली और जड़ की ओर पेंटी सी रहती हैं । पेड़ की छाल सफेद रंग की होती है । इसका गुण भी न० (१) के समान ही है ।

पर्याय०—डुंडुक । दीपवृंत । टिंडुक । कीरनासान । पुनिवृक्ष । पुनिवार । मुनिवृष्या । मुनिवृक्ष आदि ।

सोनापेट—संज्ञा पुं० [ हि० सोण + पेट = गर्भ ] सोने की खान ।

सोनाफूल—संज्ञा पुं० [ हि० सोण + फूल ] एक झाड़ी जो आसाम और आसिया पहाड़ियों पर होती है और जिसकी पत्तियों से एक प्रकार का मूरा रंग निकलता है । इसकी छाल के रसों से रसियाँ बनती हैं । इन्से गुलाबजम भी बहते हैं ।

सोनामपत्ती—संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वर्णमपत्तिक ] (१) एक रत्नित पदार्थ जो भारत में कई स्थानों में पाया जाता है । भायुर्षेद में इसकी गणना उपधातुओं में है । इसमें सोने का कुछ अंश और गुण वर्धमान रहने के कारण इसका नाम स्वर्ण-माशिक पड़ा है । सोने के अभाव में, औषधियों में इसका उपयोग किया जाता है । सोने के सिवा मय्य धातुओं का



सन्निधन रहने से इसमें और भी गुण था गढ़ हैं। उपपातु होने के कारण, यथोचित रीति से शोधन कर इसका व्यवहार करना चाहिए, अन्यथा यह मंदाग्नि, यलहानि, विट्भित्त, नेत्ररोग, केश, गंडमाला, क्षय, आपमान, कृमि आदि अनेक रोग उत्पन्न करती है। शोधितावस्था में यह योग्यवर्द्धक, नेत्रों के लिये हितकर, स्वरशोधक, श्वषायी, कोष, रूजन, प्रमेह, यवासीर, यस्त्रि, पांडुरोग, उदर प्वाधि, विषरिक्तार, कंठरोग, सुजली, क्षय, भ्रम, झुलास, मूर्च्छा, खोसी, श्वास आदि रोगों को नाश करनेवाली मानी गई है।  
**पश्यां**—स्वर्णमाक्षिक। माक्षिक। हेममाक्षिक। धातुमाक्षिक। स्वर्णवर्ण। स्वर्णद्वय। पीतमाक्षिक। माक्षिकधानु। तारपीज। मधुमाक्षिक। तीक्ष्ण। मधु धातु।  
 (२) एक प्रकार का रेशम का कीड़ा।

**सोनामाली-संज्ञा** स्त्री० दे० "सोनामवली"।  
**सोनार-संज्ञा** पुं० दे० "सुनार"।  
**सोनिजरवृक्ष-संज्ञा** स्त्री० दे० "सोनजई"।  
**सोनिजल-संज्ञा** पुं० दे० "सोणित"।  
**सोनी-संज्ञा** पुं० [ हिं० सोना ] सुनार। स्वर्णकर। उ०—द्वैष दिखावति कंचन सी तन भीमन को मन तावै अगोनी। सुंदर साँचे में दै भरि कादी सी धारने हाय गदी विधि सोनी।—द्वैव।  
**संज्ञा** पुं० [ दे० ] तुन की जाति का एक वृक्ष।  
**सोनेइया-संज्ञा** पुं० [ दे० ] धेड़ों की एक जाति।  
**सोनेया-संज्ञा** स्त्री० [ दे० ] देवदात्री। घणारयेल। चंदाऊ। वि० दे० "देवदाली"।  
**सोप-संज्ञा** पुं० [ दे० ] एक प्रकार की छपी हुई चादर।  
**संज्ञा** पुं० [ अं० ] साधुन।  
**संज्ञा** पुं० [ अं० ] व्याप ] बुहारी। झाड़ू। (लरा०)  
**सोपत-संज्ञा** पुं० [ सं० सूयधि ] सुवीता। सुपास। धाराम का प्रबंध। उ०—एक घण वागत बहुत जिनन ते छुटत तनु है हैं प्यारे। कत रगो है है को सोपत वृष वदन दोउ वारे।—रघुराज।  
**कि०** प्र०—घैथना।—घौथना।—घैठना।—घैठाना।—लगना।—लगाना।

**सोपाक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) यह व्यक्ति जो चंडाल पुरुष और पुकसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो। चंडाल। कपाक। (२) काशीपथि वेचनेवाला। वनोपथि वेचनेवाला।  
**सोपान-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (२) सीढ़ी। जीना। (२) जैनों के अनुत्तर मोक्ष प्राप्ति का व्याप।  
**सोपानित-वि०** [ सं० ]। सोपान से युक्त। सीढ़ियों से युक्त। उ०—सरयू तीर हेम सोपानित सब धल कवदि प्रकाश।—रघुराज।

**सोपारी-संज्ञा** स्त्री० दे० "सुपारी"।  
**सोपि-वि०** [ सं० सः + अपि ] (१) वही। उ०—भाकर चारि जीव जग गहर्ही। कासी मरत परम पद लहर्ही। सोपि राम महिमा सुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया।—तुलसी। (२) यह भी। उ०—सब ते परम मनोहर गोपी। नंदवंदन के नेह मेह जिनि लोक लीक लोपी। वरि कुवजा के रंगहि राचे तदपि तजी सोपी। तदपि न तजै भजै निसि पासर नैकहु न कोपी।—सूर।  
**सोफता-संज्ञा** पुं० [ सि० सुवीग ] (१) एकत स्थान। निराही जगह। उ०—(क) इनका मन किसी और बात में लगा हुआ है, तुम कदों की यात फिर कभी सोफते में पड़े लेना।—अद्दाराम। (ख) यह उसे सोफते में ले गया। (२) रोग आदि में कुछ कमी होना।

**सोफियाना-वि०** [ अ० सूफी + स्थाना (का० क्य०) ] (१) सूफियों का। सूफी संबंधी। (२) जो देखने में सादा पर बहुत अछा लगे। जैसे,—सोफियाना कपड़ा, सोफियाना ढंग।  
**सोफिये-सूफी** लोग प्रायः बहुत सादे, पर सुंदर ढंग से रहते थे, इसी से इस शब्द का इस अर्थ में व्यवहार होने लगा।  
**सोफी-संज्ञा** पुं० दे० "सूफी"। उ०—सोह जोगी सोह जंगमा सोह सोफी सोह सेर।  
**सोप-संज्ञा** पुं० दे० "सोप" (१)।  
**सोमन-संज्ञा** पुं० दे० "सुवर्ण"।  
**सोमल-संज्ञा** स्त्री० दे० "शोभा"। उ०—अति सुंदर लीतल सोम यसे। जहाँ रूप अनेकन लोभ लसै।—केदार।  
**संज्ञा** पुं० [ सं० ] गंधर्वों के नगर का नाम।  
**सोमन-संज्ञा** पुं० दे० "शोमन"।  
**सोमना-संज्ञा**—कि० प्र० [ सं० शोमन ] सोहना। शोभित होना। उ०—(क) सिंधु में यद्व्याप्ति की जनु ग्वालमाल विराजै। पचरागनि सों किंवाँ दिवि धूरि पूरित सोमई।—केदार। (ख) कुंडल सुंदर सोमिअै स्वाम गांते छवि दान।—केदार।

**सोमर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] यह कोठरी या कमरा जिसमें ब्रिज्या प्रसंग करती है। सौरी। अंबाछाना। सुतिकागर।  
**सोमरि-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक वैदिक ऋषि।  
**सोमोजन-संज्ञा** पुं० दे० "शोभाजन"।  
**सोमाकारी-वि०** [ सं० सोमाकर ] जो देखने में अच्छा हो। सुंदर। यद्विया। उ०—शोदा परध ते लडा मानी रूप कियो भिदुरारि। तिलक ललित छलाट केसरविदु सोमाकारि।—सूर।  
**सोमायमान-वि०** दे० "शोमायमान"।  
**सोमित-वि०** दे० "शोमित"।  
**सोम-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काक की एक छता की नाम जिसका रस पीले रंग का और मादक होता था और जिसे प्राचीन वैदिक ऋषि पान करते थे। इसे परधर से कुषक कर

रसमिकाउते ये और यह रस किसी उनी कण्डे में छान लेते थे। यह रस यज्ञ में देवताओं को चढ़ाना जाता था और अग्नि में इसकी आहुति भी दी जाती थी। इसमें दूध या मधु भी मिलाया जाता था। ऋग्वेद संहिता के अनुसार इसका उपरति स्थान भुजवान् पर्वण है; इसी लिये हमें भोजवत भी कहते थे। इसी संहिता के एक दूसरे सूक्त में कहा गया है कि इयेन पक्षी ने इसे स्वर्ग से लाकर इंद्र को दिया था। ऋग्वेद में सोम की शक्ति और गुणों की बड़ी स्तुति है। यह यज्ञ की आत्मा और अमृत कहा गया है। देवताओं को यह परम प्रिय था। वेदों में सोम का जो वर्णन आया है, उससे जान पड़ता है कि यह बहुत अधिक बलवर्द्धक उत्साहवर्द्धक, पाचक और अनेक रोगों का नाशक था। वैदिक काल में यह अमृत के समान बहुत ही दिव्य पेय समझा जाता था, और यह माना जाता था कि इसके पान से हृदय से सय प्रकार के पापों का नाश तथा सत्य और धर्मभाव की वृद्धि होती है। यह सय खतारों का पति और राजा कहा गया है। आर्यों की ईरानी शाखा में भी इस छता के रस का बहुत प्रचार था। पर पीछे इस छता के पदचानकचाले ग रह गए। यहाँ तक कि आधुनिक के सुश्रुत आदि भावार्थों के समय में भी इसके संबंध में कल्पना ही कल्पना रह गई जो सोम (चंद्रमा) शब्द के आधार पर की गई। पारसी लोग भी आजकल जिस 'होम' का अपने कर्मकांड में व्यवहार करते हैं, वह असली सोम नहीं है। वैदिक में सोमछता की गणना त्रिव्योपधियों में है। यह परम रसायन मानी गई है और लिखा गया है कि इसके पंद्रह पत्ते होते हैं जो शुद्ध पक्ष में—प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक—एक एक करके उत्पन्न होते हैं और फिर कृष्णपक्ष में—प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक—पंद्रह दिनों में एक एक करके वे सय पत्ते गिर जाते हैं। इस प्रकार अमावस्या को यह छता पत्रहीन हो जाती है।

पश्यां०—सोमवह्नी। सोमा। क्षीरी। द्वित्रियया। शणा। यशधेष्ठा। पनुजला। सोमाह्वी। गुरुमवह्नी। पञ्जवह्नी। सोमक्षीरा। यगाह्व।

(२) एक प्रकार की छता जो वैदिक काल के सोम से निम्न है। यह दूसरी सोमछता दक्षिण की सूखी पथरीली जमीन में होती है। इसका ध्रुव शकटदार और गाँठदार तथा पत्रहीन होता है। इसकी शाखा राजहंस के पर के समान मोटी और हरी होती है और दो गोंदों के बीच की शाखा ४ से ५ इंच तक लंबी होती है। इसके फूल लहसुन लिये बहुत दसके हरे रंग के होते हैं। कलियाँ ४-५ इंच लंबी और त्रिहार्द इंच गोल होती हैं। धीज चिपटे और ३ से ३ इंच तक लंबे होते हैं। (३) वैदिक काल के एक प्राचीन देवता

जिनकी ऋग्वेद में बहुत स्तुति की गई है। इंद्र और बरुण की भाँति इन्हें मानवी रूप नहीं दिया गया है। ये सूर्य के समान प्रकाशमान, बहुत अधिक वेगवान्, जेता, योद्धा और सय को संपत्ति, भद्र तथा गौ, घैल आदि देनेवाले माने जाते थे। ये इंद्र के साथ उसी के रथ पर बैठकर लड़ाई में जाते थे। कहीं कहीं ये इंद्र के सारथी भी कहे गए हैं। आर्यों की ईरानी शाखा में भी इनकी पूजा होती थी और भावस्ता में इनका गाम हओम या होम आया है। (४) चंद्रमा। (५) सोमवार। (६) सोमरस निकालने का दिन। (७) कुपेर। (८) यम। (९) वायु। (१०) अमृत। (११) जल। (१२) सोमयज्ञ। (१३) एक यानर का नाम। (१४) एक पर्वत का नाम। (१५) एक प्रकार की ओषधि। (१६) स्वर्ग। आकाश। (१७) अष्ट बसुओं में से एक। (१८) पितरों का एक वर्ग। (१९) मर्दू। (२०) कौजी। (२१) हनुमंत के अनुसार माळकोश राग के एक पुत्र का नाम।—संगीत। (२२) विवाहित पति।—सत्यायनकाण्ड। (२३) एक बहुत बड़ा ऊँचा पेंद्र जिसकी लकड़ी अंदर से बहुत मजबूत और बिकनी निकलती है। चीरने के बाद इसका रंग लाल हो जाता है। यह प्रायः इमारत के काम में आती है। शासाम में इसके पत्तों पर मृग रोगों के कीड़े पाले जाते हैं। (२४) एक प्रकार का स्त्रीरोग। सोमरोग। (२५) यज्ञशब्द। यज्ञ की सामग्री। संज्ञा पुं० [ सं० सोमन् ] (१) यह जो सोम रस चुखाता था बनाता हो। (२) सोमयज्ञ करनेवाला। (३) चंद्रमा। सोमक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक ऋषि का नाम। (२) एक राजा का नाम। (३) भागवत के अनुसार कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (४) हृपद वंश, या इस वंश का कोई राजा। (५) छियों का सोम नामक रोग। (६) सहदेव के एक पुत्र का नाम।

सोमकर—संज्ञा पुं० [ सं० सोम+कर ] चंद्रमा की किरण। उ०—मधुर मिया घर सोमकर मासन दाल समान। बालक बायें सोतरी कबिहुल उफि प्रमान।

सोमकर्म—संज्ञा पुं० [ सं० सोमकर्मन् ] सोम प्रस्तुत करने की क्रिया। सोम रस तैयार करना।

सोमकल्प—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार २१वें कल्प का नाम। सोमकांत—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रकांत मणि।

वि० (१) चंद्रमा के समान प्रिय। (२) जिसे चंद्रमा प्रिय हो। सोमकाम—वि० [ सं० ] सोमपान करने का हृत्तुक। सोमकामी—संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमपान करने की इच्छा।

सोमकीर्ति—संज्ञा पुं० [ सं० ] धरातल के एक पुत्र का नाम।

सोमकुल्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माकंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सुनिमयण रहने से इसमें और भी गुण आ गए हैं। उपधातु होने के कारण, यथोचित रीति से शोधन कर इसका व्यवहार करना चाहिए, अन्यथा यह मंदाग्नि, गलहानि, विट्प्रभिता, नेत्ररोग, कोष्ठ, गंडमाला, क्षय, आपमान, कृमि आदि अनेक रोग उत्पन्न करती है। श्लोषितावस्था में यह योग्यवर्द्धक, नेत्रों के लिये हितकर, स्वरसोधक, व्यव्यायी, कोष्ठ, सूजन, प्रमेह, यवासीर, यस्त्रि, पांडुरोग, उदर व्याधि, विपरिहार, कंठरोग, सुजली, क्षय, भ्रम, हुहास, मूच्छा, प्लौंस, श्वास आदि रोगों को नाश करनेवाली मानी गई है।  
**पर्याय**—स्वर्णमाक्षिक। माक्षिक। हेममाक्षिक। पातुमाक्षिक। स्वर्णवर्ण। स्वर्णोद्गीय। पीतमाक्षिक। माक्षिककथातु। तापीज। मयुनाक्षिक। सीक्षण। मयु पातु।

(२) एक प्रकार का देसम का कीड़ा।

सोनामाखी—संज्ञा स्त्री० दे० “सोनामखली”।

सोनार—संज्ञा पुं० दे० “सुनार”।

सोनिजखड्ग—संज्ञा स्त्री० दे० “सोनजर्द”।

सोनिज—संज्ञा पुं० दे० “सोणित”।

सोनी—संज्ञा पुं० [ हिं० सोना ] सुनार। स्वर्णकर। उ०—देव दिखावति कंचन सी तन औरम को मन तार्य अगोनी। सुंदर सोचि में दै भरि काड़ी सी आनने हाथ रदी विधि सोनी।—देव।

संज्ञा पुं० [ देस० ] तुन की जाति का एक वृक्ष।

सोनेइया—संज्ञा पुं० [ देस० ] बैर्यों की एक जाति।

सोनेया—संज्ञा स्त्री० [ देस० ] देवदात्री। घपरथेल। बंदाक। चि० दे० “देवदाली”।

सोप—संज्ञा पुं० [ देस० ] एक प्रकार की छरी हुई चादर।

संज्ञा पुं० [ अ० ] सायुज।

सुपुं [ अ० स्था ] सुहारी। झाड़ू। (लघा०)

सोपत—संज्ञा पुं० [ सं० सूपत ] सुधीरा। सुपास। धाराम का प्रबंध। उ०—एक पग यागत बहुत दिनन ते कृत तनु है है प्यारे। कसत रखो है है को सोपत कृष यदन जोउ वार।—सुभारज।

कि० प्र०—सैधना।—बोधना।—बैठना।—बैठाना।—लगाना।—लगाना।

सोपाक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह व्यक्ति जो चंडाल पुरुष और पुकसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो। चंडाल। श्वपाक। (२) काष्ठोपधि बेचनेवाला। धनीपधि बेचनेवाला।

सोपान—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) सीढ़ी। ज़ीना। (२) जैनों के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का उपाय।

सोपानित—वि० [ सं० ] सोपान से युक्त। सीढ़ियों से युक्त। उ०—सरयू तीर हेम सोपानित सब धल करहि प्रकाश।—सुभारज।

सोपारी—संज्ञा स्त्री० दे० “सुपारी”।  
 सोपि—वि० [ सं० स०+प्रपि ] (१) बही। उ०—आकर धरि जीव जग अहर्ही। कासी भरत परम पद लहई। सोपि राम महिमा सुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाय।—तुलसी। (२) वह भी। उ०—सय ते परम मनोहर गोपी। नंदनंदन के नेह मेह जिन लोक लीक छोपी। धरि कुंजवा के रंगहि राचे तदपि सजी सोपी। तदपि न तद्वै भजे। निसि बालर नैकहु न कोपी।—सूर।

सोफता—संज्ञा पुं० [ सि० सुमीता ] (१) एकान्त स्थान। निराली जगह। उ०—(क) इनका मन किसी और बात में लगा हुआ है, तुम क्यों की बात फिर कभी सोफते में पड़ लेना।—भद्वाराम। (ख) वह उसे सोफते में ले गया। (२) रोग आदि में छुट कमी होना।

सोफियाना—वि० [ अ० सूफी + श्याना (फा० प्राय०) ] (१) सूफियों का। सूफी संघधी। (२) जो देखने में सादा पर बहुत भला लगे। जैसे,—सोफियाना कपड़ा, सोफियाना ढंग।

चिशोप—सूफी लोग प्रायः बहुत सादे, पर सुंदर ढंग से रहते थे; इसी से इस शब्द का इस अर्थ में व्यवहार होने लगा।  
 सोफी—संज्ञा पुं० दे० “सूफी”। उ०—सोह जोगी सोह जंगमा सोह सोफी सोह सेख।

सोय—संज्ञा पुं० दे० “सोय” (१)।

सोप्रनी—संज्ञा पुं० दे० “सुवर्ण”।

सोभ—संज्ञा स्त्री० दे० “सोभा”। उ०—अति सुंदर क्रीतल सोभ वसे। जहाँ रूप अनेकन लोभ लसे।—केशव।

संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधकों के नगर का नाम।

सोभन—संज्ञा पुं० दे० “सोभन”।

सोभना—संज्ञा स्त्री० [ सं० सोभन ] सोहना। शोभित होना। उ०—(क) सिधु में यद्वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजई। पधरागनि साँ किर्यौ दिवि पूरि पूरित सोभई।—केशव। (ख) कुंडल सुंदर सोभियै स्वामि गात छबि दान।—केशव।

सोभर—संज्ञा पुं० [ ? ] यह कोठरी या कमरा जिसमें स्त्रियाँ प्रसय करती हैं। सौरी। जंघालाना। स्तिकागार।

सोभरि—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक ऋषि।

सोभार्जन—संज्ञा पुं० दे० “शोभार्जन”।

सोभाकारी—वि० [ सं० सोभाक ] सो देखने में अच्छा हो। सुंदर। यक्षिया। उ०—दीपा परच दे छाया मानौ रूप कियो त्रिपुतारि। तिलक ललित लछटा केसरविनु सोभाकारी।—सूर।

सोभायमान—वि० दे० “शोभायमान”।

सोभित—वि० दे० “शोभित”।

सोम—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काक की एक लता का नाम जिसका रस पीले रंग का और मादक होता था और जिसे प्राचीन वैदिक ऋषि पान करते थे। इसे परश्व से कुचल कर

रस निकालते थे और यह रस किसी ऊनी कपड़े में छान लेते थे। यह रस यज्ञ में देवताओं को चढ़ाया जाता था और अग्नि में इसकी आहुति भी दी जाती थी। इसमें दूध या मधु भी मिलाया जाता था। ऋद्ध संहिता के अनुसार इतका उत्पत्ति स्थान भुजबान् पर्वत है; इसी लिये इसे भोजवत भी कहते हैं। इसी संहिता के एक दूसरे सूक्त में कहा गया है कि इयने पत्थरी ने इसे स्वर्ग से लखर इन्द्र को दिया था। ऋग्वेद में सोम की शक्ति और गुणों की बड़ी स्तुति है। यह यज्ञ की आत्मा और अमृत रहा गया है। देवताओं को यह परम प्रिय था। वेदों में सोम का जो वर्णन आया है, उससे ज्ञान पड़ता है कि यह बहुत अधिक बलवर्द्धक उत्साहवर्द्धक, पाचक और अनेक रोगों का नाशक था। वैदिक काल में यह अमृत के समान बहुत ही दिव्य पेय समझा जाता था, और यह माना जाता था कि इसके पान से इन्द्र से सब प्रकार के पापों का नाश तथा सत्य और धर्मभाव की वृद्धि होती है। यह सब लताओं का पति और राजा कहा गया है। आर्यों की ईरानी शाखा में भी इस लता के रस का बहुत प्रचार था। पर पीछे इस लता के पदचानथाले ग रह गए। यहाँ तक कि आयुर्वेद के सुश्रुत आदि आचार्यों के समय में भी इसके संबंध में कल्पना ही कल्पना रह गई जो सोम (चंद्रमा) शब्द के आधार पर की गई। पारसी लोग भी आजकल जिस 'होम' का अपने कर्मकांड में व्यवहार करते हैं, वह असली सोम नहीं है। वैचक में सोमलता की गणना दिव्योपधिओं में है। यह परम रसायन मानी गई है और लिखा गया है कि इसके पंद्रह पत्ते होते हैं जो शुरु पक्ष में—प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक—एक एक करके उत्पन्न होते हैं और फिर कृष्णपक्ष में—प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक—पंद्रह दिनों में एक एक करके वे सब पत्ते गिर जाते हैं। इस प्रकार अमावस्या को यह लता पत्रहीन हो जाती है।

**पर्व्यां—सोमवह्नी।** सोमा। क्षीरी। द्विजप्रिया। शणा। यशोधरा। धनुलता। सोमाह्वी। गुरुमवह्नी। पञ्चवह्नी। सोमक्षीरा। यशाह्व।

(२) एक प्रकार की लता जो वैदिक काल के सोम से निकलती है। यह दूसरी सोमलता दक्षिण की सूखी पयरीली जमीन में होती है। इसका शृंग श्राद्धार और गौडार तथा पत्रहीन होता है। इसकी शाखा राजहंस के पर के समान मोटी और हरी होती है और दो गोंडों के बीच की शाखा ४ से ६ इंच तक लंबी होती है। इसके फूल लहसुने लिये बहुत हल्के हरे रंग के होते हैं। फलियाँ ४-५ इंच लंबी और त्रिहार्द ईंच गोल होती हैं। पीन बिपटे और ३ से ६ इंच तक लंबे होते हैं। (३) वैदिक काल के एक प्राचीन देवता

जिनकी ऋग्वेद में बहुत स्तुति की गई है। इन्द्र और यज्ञ की भाँति इन्हें मानवी रूप नहीं दिया गया है। ये सूर्य के समान प्रकाशमान, बहुत अधिक वेगवान्, जेता, मोढ़ा और सब को संपत्ति, भय तथा गौ, बैल आदि देनेवाले माने जाते थे। ये इन्द्र के साथ उसी के रथ पर बैठकर लड़ाई में जाते थे। कहीं कहीं ये इन्द्र के सारथी भी कहे गए हैं। आर्यों की ईरानी शाखा में भी इनकी पूजा होती थी और आवस्ता में इनका नाम हजोम या होम आया है। (७) चंद्रमा। (५) सोमवार। (६) सोमरस निकालने का दिन। (७) कुचेर। (८) यम। (९) वायु। (१०) अमृत। (११) जल। (१२) सोमयज्ञ। (१३) एक बानर का नाम। (१४) एक पर्वत का नाम। (१५) एक प्रकार की औषधि। (१६) स्वर्ग। आकाश। (१७) अष्ट वसुओं में से एक। (१८) पितृओं का एक वर्ग। (१९) मर्दि। (२०) कौमी। (२१) हनुमंत के अनुसार मालकोश राग के एक पुत्र का नाम।—संगीत। (२२) विवाहित पति।—सत्यार्थप्रकार। (२३) एक बहुत बड़ा ऊँचा पर्व जिसकी लकड़ी अंदर से बहुत मजबूत और चिकनी निकलती है। चीरने के बाद इसका रंग लाल हो जाता है। यह प्रायः इमारत के काम में आती है। शासाम में इसके पत्तों पर मूंगा रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। (२४) एक प्रकार का खीरोग। सोमरोग। (२५) यज्ञद्रव्य। यज्ञ की सामग्री। संज्ञा पुं० [ सं० सोमम् ] (१) वह जो सोम रस चुआता था यनाता हो। (२) सोमयज्ञ करनेवाला। (३) चंद्रमा। सोमक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक ऋषि का नाम। (२) एक राजा का नाम। (३) भागवत के अनुसार कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (४) हुपद पंच, या इस पंच का कोई राना। (५) खियों का सोम नामक रोग। (६) सहदेव के एक पुत्र का नाम।

**सोमकर—संज्ञा पुं०** [ सं० सोम + कर ] चंद्रमा की किरण। उ०—मधुर प्रिया घर सोमकर माखन दास समान। बालक बापों तीवरी कबिकुल उक्ति प्रमान।

**सोमकर्म—संज्ञा पुं०** [ सं० सोमकर्त् ] सोम प्रस्तुत करने की क्रिया। सोम रस तैयार करना।

**सोमकल्प—संज्ञा पुं०** [ सं० ] पुराणानुसार २१वें कल्प का नाम।

**सोमकांत—संज्ञा पुं०** [ सं० ] चंद्रकांत मणि।

वि० (१) चंद्रमा के समान प्रिय। (२) जिसे चंद्रमा प्रिय हो।

**सोमकाम—वि०** [ सं० ] सोमपान करने का इच्छुक। सोमकामी।

संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमपान करने की इच्छा।

**सोमकीर्ति—संज्ञा पुं०** [ सं० ] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

**सोमकुल्या—संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] मार्कण्डेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सोमकेवट-संज्ञा पुं० [ सं० ] वामन पुराण के अनुसार एक राक्षस का नाम जो भरद्वाज के शिष्य थे।

सोमकृतपीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम।

सोमकस्तु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमयज्ञ।

सोमक्षय-संज्ञा पुं० [ सं० ] अभावस्या, जिसमें चंद्रमा के दर्शन नहीं होते।

सोमक्षीरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोमवह्नी। सोमराजी। घकुची।

सोमक्षीरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यकुची। सोमवह्नी।

सोमखंडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यकुची। सोमवह्नी।

सोमपण्डक-संज्ञा पुं० [ सं० ] नैवाल के एक प्रकार के शैव साधु।

सोमगंधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] रक्त पत्र। लाल कमल।

सोमगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम।

सोमगर्भा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यकुची। सोमराजी। सोमवह्नी।

सोमगिरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम। (२) मेरु-ज्योति। (३) एक आचार्य का नाम।

सोमगृष्टिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पेठा। गुप्तांड लता।

सोमगोपा-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि।

सोमग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा का ग्रहण। (२) घोड़ों का एक ग्रह जिससे ग्रस्त होने पर वे कौपा करते हैं।

सोमग्रहण-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा का ग्रहण।

सोमघृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्री-रोगों की एक औषध जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—सफेद संरसों, घृत, माही, शंखाहुली, पुनर्गंधा, दूधी ( क्षीरकाकोली ) खिरंटी, कुटकी, खंमारी के फल ( जरिदक ), फालसा, दाण्ड, अनन्मूल, काला अर्जुनमूल, हलदी, पाठा, देवदारु, दालचीनी, सुलेठी, मंजीठ, त्रिफला, फूल मिरिंगु, अहुरि के फूल, हुरहुर, सांघर नमक और गेरू ये सब मिलाकर एक सेर घृतपाक विधि के अनुसार चार सेर गौ के घी में पाक करना चाहिए। गर्भवती स्त्री को दूसरे महीने से छः महीने तक इसका सेवन कराया जाता है। इससे गर्भ और योनि के समस्त दोषों का निवारण होता है, रज-वीर्य शुद्ध होता है और स्त्री पल्पि तथा सुंदर संतान उत्पन्न करती है। पुरुषों को भी दूषित वीर्य की शुद्धि के लिये दिया जा सकता है।

सोमचमस-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमपान करने का पात्र।

सोमज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शुभ ग्रह। (२) दूध।

वि० चंद्रमा से उत्पन्न।

सोमजात्री-संज्ञा पुं० दे० "सोमयात्री"। उ०—व्याध अपराध की साथ राक्षी कौन / पिंगला कौन मति भक्ति मेई। कौन थीं सोमजात्री अजामिल अथम / यौन गजराज धीं याजपेई। —गुलसी।

सोमतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक तीर्थ का नाम जिसका उद्देश्य महाभारत में है।

सोमदर्शन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक यज्ञ का नाम। (शौड)

सोमदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक गंधर्वा का नाम। (सामा०)

(२) गंधपलशि। कपूर कचरी।

सोमदिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम + दिन। सोमवार। चंद्रवार।

उ०—स गोरस खेती सकल विप्र काज सुभ साज। राम

अनुग्रह सोम दिन प्रमुदित प्रजा सुराज।—गुलसी।

सोमदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोम देवता। (२) चंद्रमा देवता। (३) कथासरित्सागर के रचयिता का नाम जो काशमीर में ११वीं शताब्दी में हुए थे।

सोमदेवत-वि० [ सं० ] जिसके देवता सोम हैं।

सोमदेवश्य-वि० दे० "सोमदेवत"।

सोमदैवत-संज्ञा पुं० [ सं० ] गृध्रिना नक्षत्र।

सोमधान-वि० [ सं० ] जिसमें सोम हो। सोमयुक्त।

सोमधारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आकाश। आसमान। (२) स्वर्ग।

सोमधेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद।

सोमनदी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमनदी। (१) महादेव के एक अनुघर का नाम। (२) एक प्राचीन वैयाकरण का नाम।

सोमनदीश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव जी के एक लिंग का नाम।

सोमन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमन। एक प्रकार का अन्न। उ०—तया पिदाच अन्न अरि मोहन लेखु राज हुल्लेहे। तामस सोमन लेखु बार बहु शत्रुन को दरभेहे।—रघुराज।

सोमनस-संज्ञा पुं० दे० "सोमनस्य"। उ०—पारिमात्र सोमनस अह अविज्ञात सुरवर्ष। रमणक अत्याजन सहित देउ सुरोवन हर्ष।—केशव।

सोमनाथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक। (२) काठियावाड़ के पश्चिम तट पर स्थित एक प्राचीन नगर जहाँ उक्त ज्योतिर्लिंग का मंदिर है। मंदिर के विपुल धन-रत्न की प्रसिद्धि सुन सन् १०२४ ई० में महमूद गज़नवी ने इस पर चढ़ाई की और यहाँ से कर्दोही की संपत्ति उसके हाथ लगी। मूर्ति तोड़ने पर उसमें से बहुमूल्य हीरे पत्थे आदि रत्न निकले थे। आसपास के लोगों ने महमूद के काम में याधा दी थी, पर वे सकल नहीं हुए। अन्ततः यह देवदामा नामक एक दानव को यहाँ का शासक नियुक्त कर गजनी लौट गया। चौतुक्यराज दुर्लभराज ने उससे सोमनाथ का उद्धार किया। इसके बाद राठौरों ने उस पर अधिकार जमाया। पर सन् १३०० में यह फिर मुसलमानों के अधिकार में आ गया। आज कल यह जूनागढ़ के नवाब पंश के शासनाधीन है। इले सोमनाथपट्टन या सोमनाथ-पत्तन भी कहते हैं।

सोमनाथ रत्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक रसौषध जिसके

वनाने की विधि इस प्रकार है—कण्ड (पारिमद्र) के रस में घोषा हुआ पाग दो-तोले और मूसाकानी के रस में घोषी हुई गंधक दो तोले, दोनों की कजली कर उसमें आठ तोले छोटा मिलाकर धीकभार के रस में घोंटते हैं। फिर अन्नक, वंग, सपरिया, चाँदी, सोनामस्की तथा सोना एक एक तोला मिलाकर धीकभार के रस में भावना देते हैं। इसकी दो दो रत्ती की गोली बनाई जाती है जो शहद के साथ खाई जाती है। इसके सेवन से सब प्रकार के प्रमेह और सोमरोग का निवारण होता है।

सोमनेत्र-वि० [ सं० ] (१) सोम जिसका नेता या रक्षक हो। (२) सोम के समान नेत्रोंवाला।

सोमप-वि० [ सं० ] (१) जिसने यज्ञ में सोमरस पान किया हो। (२) सोमरस पीनेवाला। सोमपायी। सोमपा। संज्ञा पुं० (१) सोमयज्ञ करनेवाला। (२) विश्वेदेवा में से एक का नाम। (३) रूद्र के एक पारिपुत्र का नाम। (४) हरिवंश के अनुसार एक असुर का नाम। (५) एक ऋषि-वंश का नाम। (६) पितरों की एक श्रेणी। (७) शुहरसंहिता के अनुसार एक जनपद का नाम।

सोमपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (सोम के स्वामी) इंद्र का एक नाम। सोमपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुद्र जाति की एक घास। दाम। दमर। सोमपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हरिवंश के अनुसार एक लोक का नाम। (२) एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महा-भारत में है।

सोमपर्व-संज्ञा पुं० [ सं० सोमपर्व ] सोम उत्सव का काल। सोमपान करने का उत्सव या पुण्य काल।

सोमपां-वि० [ सं० ] (१) जिसने यज्ञ में सोमपान किया हो। (२) सोमपान करनेवाला। सोमपायी। संज्ञा पुं० (१) सोमयज्ञ करनेवाला। (२) पितरों की एक श्रेणी (विशेष कर माइनों के विरू पुरुष)। (३) ब्राह्मण।

सोमपात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोम रखने का बरतन। (२) सोम पीने का बरतन।

सोमपान-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम पीने की क्रिया। सोम पीना।

सोमपायी-वि० [ सं० सोमपायि ] [ स्त्री० सोमपायिनी ] सोम पीनेवाला। सोमपान करनेवाला।

सोमपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोम का रक्षक। (२) गंधर्व जो सोम की रक्षा करनेवाले माने गए हैं।

सोमपायन-वि० [ सं० ] सोमपान करनेवाला। जो सोम पान करता हो।

सोमपीती-संज्ञा स्त्री० [ सं० सोम+पीती ] रगदा हुआ चंद्रन रखने का बरतन।

सोमपीति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सोमपान। (२) सोमयज्ञ।

सोमपीती-संज्ञा पुं० [ सं० सोमपीति ] सोमपान करनेवाला। सोम पीनेवाला।

सोमपीथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमपान। सोम पीने की क्रिया। सोमपीथी-वि० [ सं० सोमपीथि ] सोमपान करनेवाला। सोमपायी।

सोमपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम या चंद्रमा के पुत्र, पुष्य।

सोमपुरुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोम का रक्षक। (२) सोम का अनुचर या दास।

सोमपृष्ठ-वि० [ सं० ] (पर्वत) जिस पर सोम हो।

सोमपेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक यज्ञ जिसमें सोमपान क्रिय जाता था। (२) सोमपान। सोम पीने की क्रिया।

सोमप्रदेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमवार को किया जानेवाला एक ऋत जिसमें दिन भर उपवास करके संध्या को शिवजी की पूजा कर भोजन किया जाता है। स्कंदपुराण में लिखा है कि यह ऋत मनस्वामना पूर्ण करनेवाला है। आज कल लोग प्रायः श्रावण के सोमवारों को ही यह ऋत करते हैं। सोमप्रत।

सोमप्रभ-वि० [ सं० ] सोम या चंद्रमा के समान प्रभावाला। कांतियान्।

सोमप्रवाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमयज्ञ में घोषणा करनेवाला।

सोमप्रवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुमुद। (२) सूर्य। (३) पुष्य। सोमयेल-संज्ञा स्त्री० [ सं० सोम+येल ] गुलचंदनी या चाँदी का पीया।

सोममद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम का पीना। सोमपान।

सोममया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नर्मदा नदी का एक नाम।

सोमभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा के पुत्र) पुष्य। (२) चौथे कृष्ण वासुदेव का नाम। (तीन)

वि० (१) सोम से उत्पन्न। (२) चंद्रवंशीय।

सोमभूत-वि० [ सं० ] सोम छानेवाला।

सोमभोजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शहद के एक पुत्र का नाम। (२) सोमपान।

सोममज-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमयज्ञ।

सोममद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोम का नशा। (२) सोम का रस जिसके पीने से नशा होता है।

सोमयज्ञ-संज्ञा पुं० दे० "सोमयाग"।

सोमपाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक श्रैवाणिक यज्ञ जिसमें सोमरस पान किया जाता था।

सोमयात्री-संज्ञा पुं० [ सं० सोमयात्रि ] वह जो सोमयाग करता हो। सोमयाग करनेवाला।

सोमयोधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवता। (२) माइण। (३) पीत चंद्रन। हरि चंद्रन।

सोमरस-वि० [ सं० ] सोम का रसक।

सोमरत्नी-वि० दे० "सोमरक्ष" ।

सोमरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमलता का रस । वि० दे० "सोम" ।

सोमराज्ञा-संज्ञा पुं० [ देश० ] (१) जुते हुए खेत का दुमारा जोता जाना । दो चरस । (२) समचतुर्भुज खेत का चौड़ाई में जोता जाना ।

सोमराग-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का राग (संगीत) ।

सोमराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

सोमराजसुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा का पुत्र, सुभ ।

सोमराजिका-संज्ञा स्त्री० दे० "सोमराजी" । (१)

सोमराजी-संज्ञा पुं० [ सं० सोमराजिन् ] बकुची । बकुची । वि० दे० "बकुची" ।

संज्ञा स्त्री० (१) बकुची । (२) एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में छः वर्ण होते हैं । यह दो यगण का वृक्ष है । इसे मांखनारी भी कहते हैं । उ०—चमू बाल देखो । सुरंगी सुभेलो । धरं याहि भाजी । कहैं सोमराजी ।  
—छंद प्रभाकर ।

सोमराजी तैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुष्ठदि चर्मरोगों को एक तैलीय पद जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—बकुची का काढ़ा, हल्दी, दाहदहली, सफेद सारसों, कुट्ट, करंज, पंचवार के बीज, अमठतास के पत्ते, ये सब चीजें एक सेर लेकर चार सेर सारसों के तेल और सोलह सेर पानी में पकाते हैं । इस तेल के छगाने से अठारहों प्रकार के कोढ़, नासूर, दुष्ट प्रण, नीलिका, ध्वंग, कुंसी, गंभीर संज्ञक चातरक, कंडू, कच्छु, दाढ़ और खाज का निवारण होता है । इसका एक और भेद होगा है जो महासोमराजी तैल कहलाता है । यह कुष्ट रोग के लिये परम उपकारी माना गया है । इसके बनाने की विधि इस प्रकार है । चित्रक, कलियारी, सोंठ, कुट्ट, हल्दी, करंज, हरताल, सैनसिल, विष्णुकांता, आक, कौर, छतिवन, गाय का गोबर, खैर, नीम के पत्ते, मिर्च, कहींदी, ये सब चीजें दो दो तोले लेकर इनका काढ़ा कर १२।। सेर बकुची के काढ़े और ६४ सेर पानी और १६ सेर गोमूत्र में पकाते हैं ।

सोमराज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रलोक ।

सोमराष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम ।

सोम रोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] विषों का एक रोग, जिसमें पीचक के अनुसार अति, मैथुन, शोक, परिश्रम आदि कारणों से शरीरस्य जलीय घातु क्षुब्ध होकर योनिः मार्ग से निकलने लगती है । यह पदार्थ श्वेत वर्ण, ह्रस्व और गंध-रहित होता है । इसमें कोई वेदना नहीं होती, परः वेग इतना प्रबल होता है कि सदा नहीं जाता । रोगिणी अत्यन्त क्रुद्ध और दुर्बल हो जाती है । रंग पीला पड़ जाता है । शरीर विपिल

और अकर्मण्य हो जाता है । सिर में दर्द हुआ करता है । गला और तालू सूखा रहता है । प्यास बहुत लगती है । खाना पीना नहीं रुचता और मूच्छां आने लगती है । यह रोग पुरुषों के बहुमूल्य रोग के सत्तम होता है ।

सोमधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

सोमल-संज्ञा पुं० [ सं० ] संख्या का एक भेद जिसे सफेद संघल भी कहते हैं ।

सोमलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गिलोय । गुहूची । (२) माही । संज्ञा स्त्री० दे० "सोम" (१) ।

सोमलतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गिलोय । गुहूची । (२) दे० "सोम" (१) ।

सोमलदेधो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राजतरंगिणी के अनुसार एक राजपुत्री का नाम ।

सोमलोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा का लोक । चंद्रलोक ।

सोमवंश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुषिष्टिर का एक नाम । (२) चंद्रवंश । उ०—सोमदत्त भरि जोम चलेव भट सोमवंश वर । पुलकि रोमबल तोम महत्त मुद्रोम रोमघर ।—गिरिधर ।

सोमवंशीय-वि० [ सं० ] (१) चंद्रवंश में उत्पन्न । (२) चंद्रवंश संबंधी । चंद्रवंश का ।

सोमवंश्य-वि० दे० "सोमवंशीय" ।

सोमवत्-वि० [ सं० ] [ स्त्री सोमवती ] (१) सोमयुक्त । चंद्रयुक्त । (२) चंद्रमा के समान ।

सोमवती-संज्ञा स्त्री० दे० "सोमवती अमावस्या" ।

सोमवती अमावस्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोमवार को पड़नेवाली अमावस्या जो पुराणानुसार पुण्य तिथि मानी जाती है ।

प्रायः लोग इस दिन गंगा स्नान और दान-पुण्य करते हैं ।

सोमवती तीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

सोमवर्धस्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विद्वेदेवाओं में से एक का नाम । (२) एक गर्भव का नाम । (हरिवंश) ।

वि० सोम के समान तेजयुक्त ।

सोमवल्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सफेद । खैर । श्वेत खरिर् । (२) कायकल । कटफल । (३) करंज । (४) रीठा करंज । गुच्छ पुष्पक । (५) धूर । बकर ।

सोमवह्निका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) माही । (२) एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में रगण, जगण, रगण, जगण और रगण होते हैं । इसे 'चामर' और 'तृण' भी कहते हैं ।

उ०—रोग रोज शधिके । खंखीन संग भाइके । खेल रास कान्ह संग चित हर्ष लाइके । यॉसुरी समान शोल संस गाल गाइके । कृणही रिहायही सु चामरे दुलाइ के ।—छंदः प्रभाकर । (३) दे० "सोम" (१) ।

सोमवह्निका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बकुची । सोमराजी । (२) दे० "सोम" (१) ।

सोमयज्ञी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गिलोय । गुडूची । (२) बकुली । सोमराजी । (३) छिन्टी । पाताल गारुड़ी । (४) माही । (५) सुदर्शन । (६) लताकरंज । कटकरंजा । (७) गजरीबल । गजपिप्पली । (८) बन कभास । वनकापास । (९) दे० "सोम" (१) ।

सोमधामी-वि० [ सं० सोमधामिन् ] सोम वमन करनेवाला ।  
संज्ञा पुं० यह ऋषियुग्म जो खूब सोम पान करता हो ।  
सोमधापयप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ऋषि-वंश का नाम ।  
सोमधार-संज्ञा पुं० [ सं० ] सात धारों में से एक धार जो सोम  
(१) अर्थात् चंद्रमा का माना जाता है । यह रविवार के बाद  
और मंगलवार के पहले पड़ता है । चंद्रवार ।

सोमधारी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोमवती अमावस्या" ।  
वि० सोमधार संबंधी । सोमधार का । जैसे,—सोमधारी  
वाजार, सोमधारी अमावस्या ।

सोमधासर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमवार । चंद्रवार ।  
सोमधिकयी-संज्ञा पुं० [ सं० सोमधिक्यिन् ] सोम रस घेचनेवाला ।  
विशेष—मनु में सोम रस घेचनेवाला दान के अयोग्य कहा  
गया है । उसे दान देने से दाना दूसरे जन्म में विष्टा जाने-  
वाली धोनि में उत्पन्न होता है ।

सोमधीधो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंद्रमंडल ।  
सोमधृत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कायफल । कटफल । (२)  
सफेद सैर । श्वेत सविर ।

सोमधृद-वि० [ सं० ] जो खूब सोम पान करता हो । जिसकी  
उमर सोम पान करने में ही बीती हो ।

सोमधेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन मुनि का नाम ।  
सोमप्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक-साम का नाम । (२) दे०  
"सोमप्रयोग" ।

सोमकलशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की ककड़ी ।  
सोमशुभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक ऋषि का नाम ।  
सोमसंमया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंधकलाती । कपूर कचरी ।  
सोमसंस्था-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोमयज्ञ का एक प्रारंभिक कृत्य ।  
सोमसंघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपूर । कपूर ।  
सोमसद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] मनु के अनुसार विराट् के पुत्र और  
सायनाग के पिता ।

सोमसलिल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम का जल । सोमरस ।  
सोमसंघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ में किया जानेवाला एक प्रकार  
का कृत्य जिसमें सोम का रस निकाला जाता था ।

सोमसाम-संज्ञा पुं० [ सं० सोमसामिन् ] एक साम का नाम ।  
सोमसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सफेद सैर । श्वेत सविर । (२)  
पयल । बीकर । कपूर ।

सोमसिधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।  
सोमसिद्धांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक शुद्ध का नाम । (२)

यह पाछ मिसेसे भविष्य की बातें जानी जाती हैं ।  
ज्योतिष-शास्त्र ।

सोमसुंदर-वि० [ सं० ] चंद्रमा के समान सुंदर । बहुत सुंदर ।  
सोमसुव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोम रस निकालनेवाला । (२)  
यज्ञ में सोम रस चढ़ानेवाला ऋषियुग्म ।

सोमसुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( चंद्रमा के पुत्र ) बुध ।  
सोमसुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( चंद्रमा की पुत्री ) नर्मदा नदी ।  
सोमसुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोम का रस निकालने की क्रिया ।  
सोमसुत्या-संज्ञा स्त्री० दे० "सोमसुति" ।  
सोमसुखा-संज्ञा पुं० [ सं० सोमसुखिन् ] वह जो यज्ञ में सोम रस  
चढ़ाता हो ।

सोमसुव-संज्ञा पुं० [ सं० सोमसुवन् ] एक वैदिक ऋषि का नाम ।  
सोमसुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिवलिंग की जलधरी से बल निकलने  
का स्थान या नाली ।

सोमसेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमर के एक पुत्र का नाम ।  
सोमसूति-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
सोमसौग-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम याग का एक अंग ।  
सोमसौधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा की किरण । (२) सोम  
लता का अक्षर । (३) सोम याग का एक अंग ।

सोमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सोम लता । (२) महाभारत के  
अनुसार एक अप्सरा का नाम । (३) मारकंडेय पुराण के  
अनुसार एक नदी का नाम ।

सोमावय-संज्ञा पुं० [ सं० ] छाल कमल ।  
सोमाद्-वि० [ सं० ] सोम भक्षण करनेवाला ।  
सोमाधार-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार के पितर ।  
सोमापि-संज्ञा पुं० [ सं० ] सप्तदेव के एक पुत्र का नाम । (पुराण)  
सोमाप्यण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम और प्यण नामक देवता ।  
सोमापौषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम और प्यण का । सोम और  
प्यण संबंधी ।

सोमामा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंद्रमा की छिरणें । चंद्रावली ।  
सोमापान-संज्ञा पुं० [ सं० ] -मदोने भर का एक मत जिसमें २०  
दिन दूध पीकर रहने और ३ दिन तक उपवास करने का  
विधान है ।

विशेष—याज्ञवल्क्य के अनुसार यह मत करनेवाला पहले  
सप्ताह (सात रात) गौ के चार सानों का, दूसरे सप्ताह  
तीन सानों का, तीसरे सप्ताह दो सानों का और ६ रात एक  
सान का दूध पीए और तीन दिन उपवास करे ।

सोमारुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोम और रुद्र नामक देवता ।  
सोमारुद्र-वि० [ सं० ] सोम और रुद्र का । सोम और रुद्र  
संबंधी ।

सोमाचर्ची-संज्ञा पुं० [ सं० सोमाचर्चिन् ] देवताओं के एक प्रासाद  
का नाम । (सामा०) ।



सोमार्द्धधारी-संज्ञा पुं० [ सं० सोमार्द्धधारि ] (मस्तक पर अर्द्ध चंद्र धारण करनेवाले) शिव ।

सोमाल-वि० [ सं० ] कोमल । नरम । मृदालयम ।

सोमालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुष्कराज । पुष्पराग मणि ।

सोमावती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंद्रमा की माता का नाम ।

उ०—विनता सुत खनाथ चन्द्र सोमावति केरे । सुरावती के सूर्य रहत जग जानु उजरे ।—विभ्राम ।

सोमावर्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] वायुपुराण के अनुसार एक स्थान का नाम ।

सोमाश्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

सोमाश्रयाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम । (२) शिव जी का स्थान ।

सोमाष्टमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोमवार को पढ़नेवाली अष्टमी तिथि ।

सोमाष्टमी व्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का व्रत जो सोमवार को पढ़नेवाली अष्टमी को किया जाता है ।

सोमाख-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का अस्त्र जो चंद्रमा का अस्त्र माना जाता है । उ०—सोमाखहु सौराख सुनिज निज रूपनि धरिं । रामहिं सों कर जोरि सबै बोलैं हक धरिं ।—पद्माकर ।

सोमाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा का दिन, सोमवार ।

सोमाहुत-वि० [ सं० ] जिसकी सोम रस द्वारा वृत्ति की गई हो ।

सोमाहुति-संज्ञा पुं० [ सं० ] मार्गव क्रषि का नाम । ये मंत्रद्रष्टा थे । संज्ञा स्त्री० सोम की आहुति ।

सोमाह्वा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महा सोमलता ।

सोमिन्नि-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोमिन् । लक्ष्मण । (हिं०)

सोमिन्-वि० [ सं० ] सोमिन् । जिसमें सोम हो । सोमयुक्त ।

संज्ञा पुं० (१) सोम की आहुति देनेवाला । (२) सोम यज्ञ करनेवाला । सोमयाजक ।

सोमोप-वि० [ सं० ] सोम संबंधी । सोम का ।

सोमैंद्र-वि० [ सं० ] सोम और इंद्र का । सोम और इंद्र संबंधी ।

सोमेष्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोम यज्ञ ।

सोमेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक दिवालिंग जो काशी में स्थापित है । कहते हैं, भगवान सोम ने यह शिवलिंग प्रतिष्ठित किया था । (२) दे० "सोमनाथ" । (३) श्रीकृष्ण का एक नाम । (४) एक देवता का नाम । (राज०) (५) संगीत शास्त्र के एक आचार्य का नाम ।

सोमेश्वर रस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रसौषधि जो "भैषज्य-रत्नावली" के अनुसार सब प्रकार के प्रमेह, मूत्रघात, सन्निपातिक ज्वर, भगंदर, यकृत, झीहा, उदर रोग तथा सोम रोग का शीघ्र शमन करनेवाली है । इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—लेमल की छाल, कोह (अर्जुन) की

छाल, लोष, भगर, गनिवारी की छाल, रक चंदन, हकी, दाहलदी, आँवला, अनारदाना, गोखरू, कै.पीज, जासुन की छाल, फस और गुग्गुलु प्रत्येक चार चार तोले और पात, गंधक, छोहा, धनिया, मोथा, हलायची, तेजपत्ता, पत्राक (पत्रकाष्ठ), पाद (पात्र), रसीन, वायविसंग, सुहागा और जीरा आध आध तोला इन सब का खूब धारिक चूर्ण कर दो दो रत्ती की गोली बनाते हैं । बकरी के दूध या नारियल के जल के साथ इसका सेवन किया जाता है ।

सोमोद्गीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का साम ।

सोमोत्पत्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा का जन्म । (२) भगवत्पत्ता के उपरान्त चंद्रमा का फिर से निकलना ।

सोमोद्भव-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( चंद्रमा को उत्पन्न करनेवाले ) श्री कृष्ण का एक नाम ।

वि० चंद्रमा से उत्पन्न ।

सोमोद्भवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नर्मदा नदी का एक नाम ।

सोमैवी-संज्ञा स्त्री० दे० "सोमवती भगवत्पत्ता" ।

सोम्य-वि० [ सं० ] (१) सोमयुक्त । (२) सोम संबंधी । सोम का । (३) सोमपान के योग्य । (४) सोम की आहुति देनेवाला ।

सोयक-सर्व० [ हिं० सो + धी, ई ] यही ।

सर्व० दे० "सो" । उ०—कै लखु कै यद् मोत मल, सम, सनेह दुख सोय । तुलसी उर्षी पूत मधु सरिस, मिले महा विप होय ।—तुलसी ।

सोया-संज्ञा पुं० दे० "सोभा" ।

सौरंजान-संज्ञा स्त्री० दे० "सूरंजान", "सुरंजान" ।

सौरक-संज्ञा पुं० [ प्रा० शौर ] (१) शौर । हहा । कोलाहल ।

उ०—(क) भएउ कोलाहल अवध अति सुनि मूपराउ शौर ।—तुलसी । (ख) शौर भयी घोर चारो ओर नम मंडल में आप घन, आप घन आवकै उचारिगे । (२) प्रसिद्धि । नाम । उ०—तुम अनियारे दगन को सुनिपत जग में शौर ।—रसनिधि ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राय, प्रा०, सफ । जड़ । मूल ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] घक्र गति । टेढ़ी चाल ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] शोर । तट । किनारा ।

मुहा०—सौर पढ़ना = (गहाक का) किनारे लगना ।

सौरट्ट-संज्ञा पुं० दे० "सौरट" ।

सौरठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] शौरट्ट । (१) भारत का एक प्रदेश जो राजस्थान के दक्षिण-पश्चिम पड़ता है । गुजरात और दक्षिणी काठियावाड़ का प्राचीन नाम । (२) सौरठ देवा की राजधानी, सुरत । उ०—तूय हक धीरभद्र अस नामा । सौरठ नगर माहिं सेहि धामा ।—विभ्राम । संज्ञा पुं० स्त्री० ओढव, कालि का एक राग जो हिंदोल का पुत्र कड़ा गया है ।

**विशेष**—इसमें गांधार और धैवत स्वर पाँतल हैं। यह पंचम, झरवी, गुर्जरी, गांधार और कल्याण के संयोग से बना माना जाता है। इसके गाने का समय रात १६ दूँध से २० दूँध तक है। बंगदेश के कई संगीतवाच्य इसे संपूर्ण जाति का राग कहते हैं। कोई सोरठ को पादवजाति की रागिनी मानते हैं।

**मुहा०**—खुली सोरठ कहना = सुने भ्राम कहना। कहने में संयोग या भय न करना।

**सोरठ मझार**—संज्ञा पुं० [ हि० सोरठ + मझार ] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

**सोरठा**—संज्ञा पुं० [ सं० सोराष्ट्र, हि० सोरठ (देग) ] अद्वनालीस मात्राओं का एक छंद जिसके पहले और तीसरे चरण में ग्यारह ग्यारह और दूसरे तथा चौथे चरण में तेरह तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके सम चरणों में जागण का निषेध है। दोहे को उलट देने से सोरठा हो जाता है। उ०—जेंहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर यदन। करठ अनुग्रह सोह, बुद्धिरासि सुम गुन सदन।—तुलसी।

**विशेष**—जान पढ़ता है कि इस छंद का प्रचार अथर्ववेद काल में पहले पहल सोरठ या सोराष्ट्र-देश में हुआ था, इसी से यह नाम पड़ा।

**सोरठी**—संज्ञा स्त्री० [ सोरठ (देग) ] एक रागिनी जो सिंधुदा और बहस के संयोग से बनी है। हनुमत् के मत से यह मेघ राग की पत्नी है।

**सोरथ**—वि० [ सं० ] कुल कसैला, मीठा, खटा और नमकीन। चरपरा।

**सोरन**—संज्ञा पुं० [ सं० सोरथ ] जमीकंद। सूरन।

**सोरनी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सोरना + ई (प्रत्य०) ] (१) झाड़। बुनारी। कुवा। (२) झुंका का एक संस्कार जो तीसरे दिन होता है और जिसमें उसकी चिता की राख चटोर कर नदी या जलाशय में फेंक दी जाती है। त्रिरात्रि।

**सोरबा**—संज्ञा पुं० दे० "सोरबा"।

**सोरभाषी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० यमघषी ] तोप या बंदूक। (हिं०)

**सोरह**—वि० संज्ञा पुं० दे० "सोह"। उ०—संघतं सोरह सै इकतीसा। करउँ कया हरिपद धरि सीसा।—तुलसी।

**सोरहिया**—संज्ञा स्त्री० दे० "सोरही"।

**सोरही**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सोरह ] (१) जूमा खैलने के किये सोलह चिपी कीदियों का समूह। (२) वह जूमा जो सोलह कीदियों से खेला जाता है। (३) कटी हुई फूसल की सोलह कीदियों का गुच्छा जो घोड़ा (जिससे खेत की पैदावार का धंधान लगाते हैं) जैसे,—की घोड़ा सौ सोलही)

**सोराह**—संज्ञा पुं० दे० "सोरा"। उ०—सोतलतार सुंरंथ की पट्टे न मदिमा सूर। पीनसवारे जौं तैवै सोरा जानि कर।—विदारी।

**सोराघास**—संज्ञा पुं० [ सं० ] बिना नमक का मांस का रसा। बिना नमक का शोरण।

**सोराष्ट्रिक**—संज्ञा पुं० दे० "सौराष्ट्रिक"।

**सोरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सवय = बहना या चूना ] बरतन में महीन छेद जिसमें से होकर पानी आदि टपक कर बह जाता हो।

**सोर्णधु**—वि० [ सं० ] जिसकी दोनों भँवों के बीच रोपों की भँवरी सी हो।

**सोलंकी**—संज्ञा पुं० [ देग ] क्षत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसका अधिकार गुजरात पर बहुत दिनों तक था।

**विशेष**—ऐसा माना जाता है कि सोलंकीयों का राज्य पहले अयोध्या में था जहाँ से वे दक्षिण की ओर गए और वहाँ से फिर गुजरात, कश्मिराबाद, रामपूताने और बथेलखंड में उनके राज्य स्थापित हुए। उसी भारत में जिस समय यानेधर और कर्जौज के परम प्रतापी सम्राट् हर्षवर्द्धन का राज्य था, उस समय दक्षिण में सोलंकी सम्राट् द्वितीय पुलकेशी का राज्य था, जिससे हर्षवर्द्धन ने हार खाई थी। सोर्ण का बथेल बंधा हुआ सोलंकी यंत्र को एक शाखा है। इस समय सोलंकी और बथेल अपने को अभि-वंशी बतलाते हैं और अपने मूल पुरुष पातुवय को वशिष्ठ ऋषि द्वारा आशु पर के यज्ञ-कुंड से उत्पन्न करते हैं। पर यह बात पृथ्वीराज रासो आदि पीठ के ग्रंथों के आधार पर ही कल्पित जान पड़ती है, क्योंकि वि० सं० ६३५ से लेकर १६०० तक के अनेक शिलालेखों, दानपत्रों आदि में इनका चंद्रवंशी और पांडवों के बंधाधर होना लिखा है। बहुत दिनों तक इनका मुख्य स्थान गुजरात था।

**सोल**—वि० [ सं० ] (१) शीतल। ठंडा। (२) कसैला, खटा और शीता।

संज्ञा पुं० (१) शीतलता। ठंडापन। (२) कसैलापन, खटापन, शीतापन, चरपरापन आदि। (३) स्वाद। जायका।

**सोलपौल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कैकड़ा। (हिं०)

**सोलपौल**—वि० [ हिं० पौल + धनु० सोल ] वेफापदा। ध्यर्ष का।

**सोलह**—वि० [ सं० सोरथ, प्रा० सोलथ, सोरह ] जो गिनती में दस से छः अधिक हो। पोट्टा।

संज्ञा पुं० दस और छः की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१६।

**मुहा०**—सोलहो आने = संदूधे। पूरा पूरा। जैसे,—तुम्हारी बात सोलहो आने सही है। सोलह सोलह गंवे सुनाना = खूब गाथियाँ देना।

**सोलह नहवाँ**—संज्ञा पुं० [ हिं० सोलह + नह = नव ] बह हाथी जिसके सोलह नख या नाखून हों। सोलह नाखूवाका हाथी। (यह ऐसी समझा जाता है।)

**सोलाहवाँ**—वि० [ हिं० सोलह + वाँ (प्रत्य०) ] [ स्त्री० सोलहवाँ ]

जिसका स्थान पंद्रहवें स्थान के बाद हो। जिसके पहले पंद्रह और हैं।

**सोलह सिंगार**-संज्ञा पुं० [ हि० सोलह + सिंगार ] पूरा सिंगार जिसके अंतर्गत अंग में उबयत लगाना, नहाना, स्वच्छ चख धारण करना, याद सँवारना, काजल लगाना, सँदुर से माँग पर सला, महावर लगाना, माल पर तिलक लगाना, चिबुक गहरि बनाना, मेहदी लगाना, सुगंध लगाना, आभूषण पहनना, फूलों की माला पहनना, मिस्सी लगाना, पान चाना और होठों को लाल करना ये सोलह बातें हैं।

**सोलहरी**-संज्ञा स्त्री० दे० "सोरही"।

**सोलाना**-कि० सं० दे० "सुलाना"।

**सोलाली**-संज्ञा स्त्री० [ ? ] पृथ्वी। (हि०)

**सोलास**-वि० [ सं० ] उदासयुक्त। प्रसन्न। आनंदित।

कि० वि० उदास के साथ। आनंद-पूर्वक।

**सोलास-वि०** [ सं० ] परिहास-युक्त। व्यंग्य हास्ययुक्त। चुटकी के साथ।

संज्ञा पुं० व्यंग्य। परिहास। चुटकी।

**सोल्लुंठोकि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] परिहास युक्त वचन। व्यंग्योक्ति।

दिल्ली। खोली ठोली। उट्टा। चुटकी।

**सोवज**-संज्ञा पुं० दे० "सावज"। "सौजा"। उ०—जब सोवज

पिंजर धर पाया बाज रखा पन माहीं।—दादू।

**सोवड़**-संज्ञा पुं० [ सं० सूत का आ० सूत्रा ] वह कोठी जिसमें

त्रिषो बचा जनती है। स्तिकागार। सौरी।

**सोवशी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० शोषनी ] छहारी। सादू। (हि०)

**सोवण**-संज्ञा पुं० [ हि० सोवण ] सोने की किया या भाव।

उ०—सुरापान करि सोवण जावै। कबहुँ न जान्यो गहन कमानै।—रघुराज।

**सोवणा**-कि० प्र० दे० "सोना"। उ०—(क) क्योंकिरि हठी

मानिये सखि सपने की-प्रात। जो हरि हरयो सोवत हियो

सो न पाइयत प्रात।—प्रभाकर। (ख) पंच यक्ति-पद

मुक्ति सुखित सरसिपुर जोवत। काकोदर कर कोरा उदर

तर केहरि सोवत।—केशव।

**सोवा**-संज्ञा पुं० दे० "सोभा"। उ०—साय चना सँग सब

चोराई। सोवा भर सरसों सरसाई।—सूर।

**सोवाक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुहागा।

**सोवाना**-कि० सं० दे० "सुलाना"। उ०—प्रसुहि सोवाय समाल

उतारी। लियो आपने गळ मई धारी।—रघुराज।

**सोवारी**-संज्ञा पुं० [ ? ] पंद्रह मासों का एक साल जिसमें

पाँच आषाढ और तीन खाली होते हैं। इस का षोडश

है।—धिन धा धिन धा फल तागे दिनतों तेदे कता गदिधेन धा।

**सोवाल**-वि० [ सं० ] काले या धूप के रंग का। पुंल। धूमल।

**सोवैयाली**-संज्ञा पुं० [ हि० सोवना + श्या (श्या०) ] सोनेवाला।

उ०—धमके कहु यो-ध्रम के उठि आवै छपवति छार

सोवियन तें।

**सोशल** वि० [ प्र० ] समाज संबंधी। सामाजिक। वैमि—सोशल

कान करस।

**सोशलिज्म**-संज्ञा पुं० दे० "साम्यवाद"।

**सोशलिस्ट**-संज्ञा पुं० दे० "साम्यवादी"।

**सोप**-वि० [ सं० ] खारी मिट्टी मिला हुआ। क्षार, कृत्तक

मिश्रित।

**सोपक**-संज्ञा पुं० दे० "शोपक"। उ०—सम प्रकास तस पाव

दुहुँ नाम भेद विधि कीह। ससि सोपक सोपक समुसि

जग जस अपजस कीह।—तुलसी।

**सोपाक**-संज्ञा पुं० दे० "शोपक"। उ०—मोहन बसीकरन उबावन।

सोपन दीपन धंभन यतन।—गोपाल।

**सोपना**-कि० प्र० दे० "सोखना"।

**सोपु**, **सोसु**-वि० [ हि० सोखना ] सोखनेवाला। उ०—दंभ ह

कलि नाम कुंभज सोच सागर-सोपु।—तुलसी।

**सोपणीय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वास्तु-विद्या के अनुसार एक प्रकार

का भवन जिसके पूर्व भाग में वीथिका हो। (शुद्धसंहिता)।

**सोप्यंती**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो प्रसव करनेवाली हो।

आसन्न-प्रसवा।

**सोप्यंतीकर्म**-संज्ञा पुं० [ सं० सोप्यंतीकर्म ] आसन्न-प्रसवा स्त्री के

संबंध में किया जानेवाला कृष्य या संस्कार।

**सोप्यंती स्नान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का संस्कार।

**सोप्यंती होम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का होम जो आसन्न-

प्रसवा स्त्री की ओर से किया जाता है।

**सोसन**-संज्ञा पुं० [ का० सोसन ] (१) फारस की ओर का एक प्रदेश

जुल का पौधा जो भारतवर्ष में हिमालय के पश्चिमोत्तर

भाग अफ़्ग़ानिस्तान आदि प्रदेशों में भी पाया जाता है।

विशेष—इसकी जड़ में से एक साथ ही कई ठंठल निकलते हैं।

पत्ते कोमल, रेसोदार, हाथ भर के लंबे, आध अंगुल चौड़े और

नोकदार होते हैं। फूलों के दल नीलापन लिए हलक, छोरे

पर सुकीले और आध अंगुल चौड़े होते हैं। बीज-कोश ५ या

६ अंगुल लंबे, छ-पहले और चौंधार होते हैं। हकीमी में

फूल और पत्ते औषध के काम में आते हैं और गरम, रुखे

तथा क्रूर और वातनाशक माने जाते हैं। इसके पत्तों का

रस सिर दर्द और आँसु के रोगों में दिया जाता है। इसे

दोभा के लिये पगीचे में लगाते हैं। फ़ारसी के शायर जीम

की उपमा इसके दल से दिया करते हैं।

**सोसनी**-वि० [ का० सोसन ] सोसन के फूल के रंग का। लाली

लिए नीला। उ०—(क) सोसनी दुकूलनि; दुराये रूप

रोसनी है वृंदार धावरी की धूमनि शुभाय कै। कहे पदना

कर र्यों उरोजत ये तंग अंगिया है, तनी तननि तनाय के ।  
—पञ्चाकर । (ख) अंग अंग की सोसनी में सुभ सोसनी  
घोर सुभयो वित पाइन । जानि चली हूज ठाकुर पे ठमका  
ठमकी ठमकी ठकुराइन ।—पञ्चाकर ।

**सोसायटी, सोसायटी**—यंग सी० [ सं० ] (१) समाज । गोधी ।  
जैसे,—हिंदू सोसायटी । बंगाली सोसायटी । (२) संगत ।  
सोदयत । जैसे,—उसकी सोसायटी अच्छी नहीं है ।

**सोसिमल**— दे० “सोऽइम” । उ०—लिंग शरीर नाम  
तव पावै । जय नर अजपा में मन लावै । अजपा कि जो  
सोसिम उसासा । सुमिरे नाम सहित विधासा ।—विश्राम ।

**सोहँ**—कि० वि० दे० “सोहँ” । उ०—सोहँ भौहन एँतति  
है कैसो तुम हिरदय । सुकवि लखी, नहिं सुनी यात पेसी  
कहुँ निरदय ।—व्यास ।

**सोहँ**— दे० “सोऽइम” । उ०—मान लगे प्रह्न जिय  
काहीं । सोहँ रदन मची पहुँ पाहीं ।—रघुप्राज ।

**सोहंग**— दे० “सोऽइम” । उ०—साधु सजे मिलि धंटे  
भाई । बहु विधि भक्ति करो चित लाई । कई कथीर सुनो  
मह साधो । वोहंग सोहंग श्राद्ध अराधो ।—कवीर ।

**सोहंगम**— दे० “सोऽइम” । उ०—सुरति, सोहंगम  
वेरि है, अम सोहंगम नाम । सार श्राद्ध टकसार है, कोह  
विरले पावे नाम ।—कवीर ।

**सोहंजि**—यंग पुं० [ सं० ] कुंतिमोक्ष के एक पुत्र का नाम ।  
(भाग०)

**सोहागी** यंग सी० [ दि० सोहाग ] । (१) तिलक चन्दे के बाद की  
एक रत्न जिसमें लक्ष्मीदेवता के चर्चों से लक्ष्मी के लिये  
करदे, गहने, मिठाई, मेवे, फल, खिलौने आदि सजाकर  
भेजे जाते हैं । उ०—अति उत्तम विचारि कै जोरी । भद्र  
सुन्दर संघंघदि जोरी । भेज्यो तिलक दाम भरि, बहँगी ।  
रामरु सुना हित सागह सोहँगी । (२) सिद्ध, मंडवी आदि  
सुहाग की पत्नयें ।

**सोहायला**—यंग पुं० [ दि० सुहाय या सोहाय ] [ सी० सोहँगी ]  
लक्ष्मी की कैंगुदेवार विधिया जिसमें विवाह के दिन  
सिद्ध भर कर देते हैं । सिद्धरा ।

**सोहादा**—यंग पुं० दे० “सोहदा” ।

**सोहन**—वि० [ सं० सोहन, प्रा० सोहण ] [ सी० सोहनी ] अच्छा  
लगनेवाला । सुंदर । सुदायना । मनभावना । मनोहर ।  
उ०—(क) तहँ मोहन सोहन राजत है । निदि देवि  
मनोभव छात्रत है ।—गोपाल । (ख) हीर जराऊ झुंऊ  
हीर कंचन को सोहन ।—गोपाल ।

यंग पुं० सुंदर सुदर । नायक । उ०—प्यारी की पीक कपोल  
में पीके बिलोकि सखीन हँसी उच्यो सी । सोहन सोह न  
छोचन होत सुलोचन सुंदरि जाति गरी सी ।—देव ।

यंग सी० एक यंगी चिड़िया जिसका शिकार करते हैं ।  
**विशेष**—यह बिहार, उड़ीसा, छोटा नागपुर और बंगाल को  
छोड़ हिंदुस्तान में सर्वत्र पाई जाती है । यह कीड़े, मकोड़े,  
अनाज, फल, पत्त, के अंडर आदि सब कुछ खाती है । पूँछ  
से लेकर चोंच तक इसकी लंबाई डेढ़ हाथ तक होती है और  
यज्ञन भी बहुत भारी प्रायः दस सेर तक होता है । इसका  
मांस बहुत स्वादिष्ट कहा जाता है ।

यंग पुं० एक यंगी पेंड जो मध्य भारत तथा दक्षिण के जंगलों  
में बहुत होता है ।

**विशेष**—इसके हीर की लक्ष्मी बहुत कड़ी, मजबूत, चिकनी,  
टिकाऊ तथा लहलाई लिए काले रंग की होती है । यह  
मकानों में लगती तथा भेज, फुरसी आदि सजावट के  
सामान बनाने के काम में आती है । सोहन शिशिर में पत्ते  
झाड़नेवाला पेंड है । इसे रोहन और सुमी भी कहते हैं ।

यंग पुं० [ प्रा० सोहण ] एक प्रकार की यद्युतों की रेशी  
या रंदा ।

यौ०—तिकागिया सोहन = तीन कोने की रेशी ।

**सोहन चिड़िया**—यंग सी० दे० “सोहन” ।

**सोहन पपड़ी**—यंग सी० [ दि० सोहन + पपड़ी ] एक प्रकार की  
मिठाई जो जमे हुए कतरों के रूप में होती है ।

**सोहन हलवा**—यंग पुं० [ दि० सोहन + हलवा ] एक प्रकार  
की स्वादिष्ट मिठाई जो जमे हुए कतरों के रूप में और घी  
से तैर होती है ।

**सोहना**—कि० प्र० [ सं० सोहन, प्रा० सोहण ] (१) शोभित होना ।

सुंदरता के साथ होना । सजना । उ०—(क) नासिक  
कीर, कंबलमुच सोहा । पदमिनि रूप देखि जग मोहा ।—  
जायसी । (ख) काक पच सिर सोहत नीके ।—मुलसी ।

(ग) रस-जडित कंकन बानुपद नगन मुद्रिका सोहै ।—सूर ।

(घ) सोहत भोदे पीत पद होना सलोजे गात ।—बिहारी ।

(२) अच्छा लगना । उपयुक्त होना । फयना । जैसे,—(क)

यह सोपी तुम्हारे सिर पर नहीं सोहती । (ख) ऐसी बातें  
तुम्हें नहीं सोहतीं । उ०—(क) यह पाप क्या हम लोगों  
को सोहता है ।—प्रताप । (ख) ऐसी नीति तुम्हें नहीं  
सोहत ।—गोपाल ।

† वि० [ सी० सोहनी ] सोहन । सुहायना । सोभायुक्त ।  
सुंदर । मनोहर । जैसे,—सोहनी लक्ष्मी । सोहना यगीचर ।

कि० सं० [ सं० सोहन ] श्वेत में उगी घास निवालकर अलग  
करना । निराना ।

यंग पुं० [ प्रा० सोहण ] कपड़ों का एक चुकीला और  
जिससे वे धरिया या कुजली में, साँचे में गली धातु गिराने  
के लिये, टेढ़ करते हैं ।

**सोहनी**—यंग सी० [ सं० सोहनी ] (१) झाड़ू । शहारी । सरहद ।

- (२) खेत में से उगी घास खोदकर निकालने की क्रिया। निराई।
- वि० स्त्री० [ हि० सोहना ] सुंदर। सुहावनी। मनभावनी। उ०—सौवरी सी रही सोहनी सुरति हेतल जो कुवती नहि मोई ?—सुंदरी-सर्वेश्वर।
- संज्ञा स्त्री० सोहिनी रागिणी।
- सोहाय्यत-संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) संग साथ। संगत। (२) संभोग। छी-प्रसंग।
- सोहामस्मि दे० सोहमस्मि"। उ०—सोहमस्मि हति वृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोह परम प्रचंडा।—तुलसी।
- सोहर-संज्ञा पुं० [ हि० सोहना, सोहला ] (१) एक प्रकार का मंगल गीत जो खिर्यो घर में बचा पैदा होने पर गाती है। सोहला। उ०—रानि कौसिया छोटा जायो रघुकुच-कुमुद जुनहैया। सोहर सोर मनोहर नोहर भाचि रखी चहुँ पैया।—रघुराज। (२) मांगलिक गीत। उ०—कौसिल्य सीते करि भांग। चलीं अवध मंदिर अनुरागे। सहसन संग सहचरी भायें। महा मनोहर सोहर गावैं।—रघुराज।
- संज्ञा स्त्री० [ सं० सूक्या ] स्तिकाग्रह। सौंद। सौरी।
- संज्ञा स्त्री० [ दे० ] (१) नाव के भीतर की पाटन या ऊँचाई। (२) नाव का पाल खींचने की रस्ती।
- सोहराना-कि० सं० दे० "सहलाना"। उ०—कुचह लिये तरवा सोहराई। भा जोगी कोठ संग न छाई।—जायसी।
- सोहला-संज्ञा पुं० [ हि० सोहना ] (१) वह गीत जो घर में बचा पैदा होने पर खिर्यो गाती है। उ०—गौरि गनेस मनाऊँ हो देवी सारद तोहि । गाऊँ हरि जू को सोहलो मंग और य भावै मोहि।—सूर। (२) मांगलिक गीत। उ०—दो-ननियों के रूप में सारंगियों छेद छेद सोहले गावो।—दृशाबहा। (३) किसी देवी देवता की पूजा में गाने का गीत। जैसे,—माता के सोहले।
- सोहाहन-वि० दे० "सुहावना"। उ०—संग गाँउ को गोधन ले सिगरो रघुनाथ भरे मन चाहन में। नहि जानि वे जात रहे कितकी वन भीतर कुंज सोहाहन में।—रघुनाथ।
- सोहाई-संज्ञा स्त्री० [ हि० सोहना ] (१) खेत में उगी घास निकालने का काम। निराई। (२) इस काम की मजदूरी।
- सोहागा-संज्ञा पुं० दे० "सुहाग"। उ०—(क) घाह सौं पल्लि यातं चिन्ने की सखीनि सौं सीखे सोहाग की रोतेहि।—देवें। (ख) छागि छागि पग सयनि सिय भेटति अति अनुराग। हृदय असीसहि प्रेमयस रहिहहु भरी सोहाग।—तुलसी।
- संज्ञा पुं० दे० "सुहाग"।
- सोहागा-संज्ञा पुं० [ सं० समभाग, प्र० सर्वहाग ] खेत हुए खेत की मिट्टी बराबर करने का पाटा। मैदा। हंगा।

- संज्ञा पुं० दे० "सुहागा"।
- सोहागिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिनी"।
- सोहागिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिनी"। उ०—अति सभेम सिय पायें परि बहु विधि देदिं भस्मीस। सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जय लग महि अहि-सीस।—तुलसी।
- सोहागिल-संज्ञा स्त्री० दे० "सुहागिनी"। उ०—सिय पद सुमिरी सुतीय यहि सस गुन मंगल जानु। स्वामि सोहागिल भागु यहि पुत्र काय कल्याणु।—तुलसी।
- सोहाता-वि० [ हि० सोहना ] [ स्त्री० सोहाती ] सुहावना। शोभित। सुंदर। अच्छा। उ०—माधुरी मुरति देखि विना पदमाकर छागें न भूमि सोहाती।—पद्माकर।
- सोहाता-कि० प्र० [ सं० शोभन, प्र० सोहना ] (१) शोभित होना। शोभावमान होना। सुंदरता के साथ होना। सजना। उ०—(क) आवहिं हुंडु सो पतिहि पति। मवन सोहाई सो भतिहि अति।—जायसी। (ख) गोरें गात कपोल पर अलक अडोल सोहाय।—मुबारक। (ग) वन उपवन सौं सरित सोहाप।—तुलसी। (२) खिचकर होना। अच्छा लगना। प्रिय लगना। रचना। जैसे,—तुम्हारी यातें हमें नहीं सोहाती। उ०—(क) मपूउ हुलास नवल फलु माहाँ। खन न सोहाइ धूप ओ छाहाँ।—जायसी। (ख) पिय बिनु मनहि अतरिया मोदि न सोहाइ।—रहीम। (ग) राम सोहाती तोहि तौ नू सयहि सोहातो।—तुलसी।
- सोहाया-वि० [ हि० सोहाना का कर्तव्य ] [ स्त्री० सोहाई ] शोभित। शोभावमान। सुंदर। उ०—(क) सरद सोहाई आई राति। दस दिशि कूलि रही यनत्रलि।—सूर। (ख) एहि प्रकार वन मनहि देलाई। करिहउं रघुपति-कथा सोहाई।—तुलसी।
- सोहायो-वि० "सोहाया"।
- सोहरद-संज्ञा पुं० दे० "सोहाद"।
- सोहारी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सोहाना = वचना ] पूती। उ०—मोती-पूर पूर के मोदक भोदक की उजियारी जी। सेमई सेवें सजना सूरन सोया सरस सोहारी जी।—विश्राम।
- सोहाल-संज्ञा पुं० दे० "सुहाल"।
- सोहाली-संज्ञा स्त्री० [ ? ] ऊपर के दंतों का मयदा। ऊपरी दंतों के निकलने की जाह।
- संज्ञा स्त्री० दे० "सुहारी"।
- सोहावन-वि० दे० "सुहावना"। उ०—(क) इंक वन प्रभु कीन्ह सोहावन। जतनन अमित नाम किय पावन।—तुलसी। (ख) कुहभदि मोर सोहावन छाग। होई कोराहर धोलहि कागा।—जायसी।
- सोहावना-वि० दे० "सुहावना"।
- कि० प्र० दे० "सोहाना"। उ०—(क) कंजल सो रंग

मोहं समल जलद् जोहि उजल वान पर रदन सोहावने।  
 —गोपाल। (ख) बरि लै कमान हाथ मोद सौं किरावते।  
 भावते बजावते सोहावते देसावते।—गोपाल।  
**सोहासित**—वि० [ हि० सोहास = स्वना ] (१) प्रिय लगने-  
 वाद्य। देखकर। (२) ठुकर सोहाती। उ०—राजसूय है  
 भाई तेरी। मानहु हंस बात सति मैरी। घैमे कही सोहा-  
 सित भावै। पै मन मई संका हटि राखै।—रघुराज।  
**सोहि**—कि० वि० दे० “सोह”। उ०—वेदवती दुशशीला ते  
 कही रहे मैं सोहि। तब पुर पति विनासिहीं, हेतु गई सोहि  
 सोहि।—त्रिधाम।  
**सोहिनी**—वि० स्त्री० [ हि० सोहना ] सुहावनी। शोभायमान।  
 सुंदर। उ०—सँग हीन्हें बहु अच्योहिनी। गज रय, सुरगण  
 सोहिनी।—गोपाल।  
 यंका स्त्री० कण्य रस की एक रागिनी।  
 विशेष—यह पादव जाति की है और इसमें पंचम ध्रुवित है।  
 कोई इसे भैरव राग की और कोई भैरव राग की प्रथम  
 मानते हैं। हनुमन् के अनुसार यह भाळकोस राग की पत्नी  
 है। इसके गाने का समय रात्रि २१ दूँध से २९ दूँध तक है।  
 यंका स्त्री० [ सं० शोथनी ] शाब्द। सुहाती।  
**सोहिल**—संज्ञा पुं० [ म० सुहैल ] एक तारा जो चंद्रमा के पास  
 दिखाई पड़ता है। अगस्त्य तारा। उ०—(क) हीर फूल  
 पहिरे बनिपारा। जनहु सार ससि सोहिल का।—  
 ज्ञापसी। (ख) सोहिल सरिस उर्वी रन माहीं। कडक-धटा  
 जेहि पाई उपाहीं।—ज्ञापसी।  
**सोहिला**—संज्ञा पुं० दे० “सोहला”। उ०—(क) भाहु इंद्र भठरी  
 सौं मिळा। सब कँलास होदि सोहिला।—ज्ञापसी। (ख)  
 सहेली सुनु सोहिलो रे।—तुलसी। (ग) सदन सदन सुप  
 सोहिलो सुहावनी तें, गाई उठीं भाई उठीं, क्षण किति छै  
 गये।—रघुराज।  
**सोही**—कि० वि० [ सं० समुद्र, मा० समुद्र, हि० सोई ] सामने।  
 आगे। उ०—उमसने का स्वदरुप बन रानी के सोहीं जा  
 बोला—सु सुसने मिल।—ललु।  
**सोही**—कि० वि० दे० “सोई”, “सोई”।  
**सोही**—कि० वि० [ सं० समुद्र, मा० समुद्र, हि० सोई ] सामने।  
 आगे। उ०—दूँघट में सुवके भैरे सासैं ससैं सुल नाहके  
 सोहीं न सोहे।—मेनी।  
**सोहीटी**—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] १ या २ इंच चौड़ी एक लकड़ी जो  
 क्षपती के सामने देवा के नीचे, नाथ की लंभाई में लगाई  
 जाती है। (महाद)  
**सो**—संज्ञा स्त्री० दे० “सोह”। उ०—(क) सुंदर स्वाम हंसन  
 सतनी सो बंध बधा की सो री।—सूर। (ख) बानन की  
 सो बधा की सो मोहन मोह गज की सो गोरस की सो।—

देव। (ग) सारे बात तोरे गांत भंगे जात हा हा छात कहै  
 तुलसी सरापि राम की सों डेरि के।—तुलसी।  
 भय्ये० दे० “सौं”, या “सा”। उ०—चाही तें यह  
 भादरे जगत माहि सध कोइ। बोले जय बुलादये धनबोले  
 सुंप होई।—डुका सौं कहु कौन पै जात निपाही सायें।  
 जाकी स्वासा रहत है लगी स्वास के साथ।—रसनिधि।  
 प्रत्ये० दे० “सौं” या “से”। उ०—लै वाम बाहुबल तादि  
 राखत कंठ सौं ससि खसि परे। तिमि धरे दक्षिन बाहु कोहै  
 गोद में विच ले गिरे।—हरिदचंद्र।  
**सौंकारा**—संज्ञा पुं० [ सं० सकाल ] प्रातःकाल। सवेरा। तड़का।  
**सौंकरे**—कि० वि० [ सं० सकाल, पू० हि० सकारे ] (१) तड़के।  
 सवेरे। (२) समय से कुछ पहले। अदरी।  
**सौंघाई**—संज्ञा स्त्री० [ ? ] अधिक्ता। बहुतायत। ज्यादाती।  
 उ०—काक कंक लेह सुजा उदाहीं। एक ते छीन एक लेह  
 खाहीं। एक कहहि पेंसिउ सौंघाई। सठहु तुन्दार दरिद्र न  
 जाई।—तुलसी।  
**सौंघी**—वि० [ ? ] (१) अच्छा। उ०—जौ चितबलि सौंघी लगी  
 चितहूरे सये। तुलसीदास भयनाइये कीजी न डोल अथ  
 जीवन अवधि नित मेरे।—तुलसी। (२) उचित। ठीक।  
**सौंचना**—संज्ञा स्त्री० [ सं० शौच ] मलत्याग। शौच।  
**सौंचना**—कि० सं० [ सं० शौच ] (१) शौच करना। मल त्याग  
 करना। (२) मल त्याग के उपरांत हाथ-पैर आदि धोना।  
**सौंचर**—संज्ञा पुं० दे० “सौंचर नमक”। उ०—सज्जी सौंचर सेंबर  
 सोरा। सौंघाहूली रीप सकोरा।—सूरन।  
**सौंचर नमक**—संज्ञा पुं० दे० “सौंचर नमक”।  
**सौंचाना**—कि० सं० [ हि० सौंचना का प्रे० ] शौच कराना। मल-  
 त्याग कराना। इगाना। उ०—काधी रोटी कुचकुची परती  
 माछी बार। पूहर वही सराहिये परसत टपके छार। परसत  
 टपके छार सपटि लरिका सौंचाये। पृतर पौंठे हाथ दोउ  
 कर सिर सजुकावै।—गिरिधर।  
**सौंज**—संज्ञा स्त्री० दे० “सौंज”। उ०—(क) हरि को दृष्टन करि  
 सुख पायो पूजा यहु विधि कीन्हों। धति भावने भये तब  
 मन में सौंज बहुत विधि दीन्हों।—सूर। (ख) आये नाथ  
 द्वारका नीके रचयो सँदिये छाय। व्याद केलि विधि रची  
 सकल सुल सौंज गनी नहि जाय।—सूर। (ग) चिनती  
 करत गोविंद गोसाहूँ। ई सय सौंज अनंत लोच-पति निपट  
 रंक की नाई।—सूर।  
**सौंइ**, **सौंइगा**—संज्ञा पुं० [ हि० सोना + भोदना ] भोदने का भारी  
 कण्टा। जैसे,—रजाई, लिहाफ आदि।  
**सौंठी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीपल। पिपली। शंठी।  
**सौंठुल**—संज्ञा पुं० [ सं० समुद्र ] मयूक। समुद्र। उ०—रान  
 नीर से हूँ के चकोर मयू जेहि ठौर पै पायो बरो सुख है।

सूकर या सूकर संबंधी । (२) सूकर सा । (३) चारु-  
 भयतार संबंधी ।  
 संज्ञा पुं० दे० "सौकर तीर्थ" ।  
 सौकरिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौकर तीर्थ ।  
 वि० सूकर संबंधी । सूकर का । सौकर ।  
 सौकर तीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।  
 सौकरायण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिकारी । शिकार करनेवाला ।  
 ग्वाघ । अहेरी । (२) एक वैदिक शाचार्य का नाम ।  
 सौकरिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूकर का शिकार करनेवाला ।  
 (२) शिकारी । ग्वाघ । (३) सूकर का ध्यापार करनेवाला ।  
 साकराय-वि० [ सं० ] सूकर संबंधी । सूकर का ।  
 सौकर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुकर का भाव । सुकृता ।  
 सुसाध्यता । (२) सुविधा । सुभीता । (३) सूकर का भाव  
 या धर्म । सुकृता । सुभरण ।  
 सौकीन-संज्ञा पुं० दे० "सौकीन" ।  
 सौकीनी-संज्ञा स्त्री० दे० "सौकीनी" ।  
 सौकुमारिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुकुमार का भाव या धर्म ।  
 सुकुमारता ।  
 सौकुमार्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुकुमार का भाव । सुकुमारता ।  
 कोमलता । नाजुकपन । (२) यौवन । जवानी । (३) काश्य  
 का एक गुण जिसके लाने के लिये आम्र और धूति कटु  
 द्रव्यों का प्रयोग स्वाद्य माना गया है ।  
 वि० सुकुमार । कोमल । नाजुक ।  
 सौकृति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम ।  
 (२) उक्त ऋषि के गोत्र का नाम ।  
 सौकृत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) योग, यज्ञादि पुण्यकर्म का सम्यक  
 अनुष्ठान । (२) दे० "सौकर्म" ।  
 सौकृत्यायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सुकृत्य के गोत्र में उत्पन्न  
 हुआ हो ।  
 सौक्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक गोत्र का नाम । (२) एक  
 प्राचीन ऋषि का नाम ।  
 सौक्तिक-वि० [ सं० ] सूक्त संबंधी । सूक्त का ।  
 संज्ञा पुं० वह जो सिरका भादि बनाता हो । शौक्तिक ।  
 सौक्ष्म-संज्ञा पुं० दे० "सौक्ष्म्य" ।  
 सौक्ष्मिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीक कीड़ा । सूक्ष्म कीट ।  
 सौक्ष्म्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूक्ष्म का भाव । सूक्ष्मता । बारीकी ।  
 सौख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुख का भाव या धर्म । सुखता ।  
 सुख । आराम । (२) सुख का अर्थ ।  
 सौ० संज्ञा पुं० दे० "सौक" ।  
 सौख्यानिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाट । बंदी । स्तावक ।  
 सौख्यारत्रिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंदी । वैतालिक । स्तुतिपाठक ।  
 अर्थिक ।

सौखशयिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैतालिक । स्तुतिपाठक । बंदी ।  
 अर्थिक ।  
 सौखशायनिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैतालिक । स्तुतिपाठक ।  
 अर्थिक । बंदी ।  
 सौखशायिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैतालिक । स्तुतिपाठक ।  
 अर्थिक । बंदी ।  
 सौखसुप्तिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैतालिक । स्तुतिपाठक । बंदी ।  
 सौखा-वि० [ हिं० सुख ] सहज । सरल ।  
 सौखिक-वि० [ सं० ] सुख चाहनेवाला । सुखार्थी ।  
 सौखी-संज्ञा पुं० [ का० शोष या शौकीन ] गुंडा । बदमाश ।  
 सौखीन-संज्ञा पुं० दे० "सौकीन" ।  
 सौख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुख का भाव । सुखता । सुखत्व ।  
 (२) सुख । आराम । आनंद-मंगल ।  
 सौख्य-वि० [ सं० ] सुख देनेवाला । आनंद देनेवाला । सुखद ।  
 सौख्यदायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुख । सुखद ।  
 सौख्यदायी-वि० [ सं० ] सौख्यदायक । सुख देनेवाला । सुखद ।  
 सौगंध-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सौगंध । रायण । कसम । सौंढ । उ० —  
 नगर नारि को यार भूलि परतीति न कीजे । सौ सौ सौगंध  
 खाय चिंत में पूक न कीजे ।—गिरधर ।  
 कि० प्र०—खाना—देना ।  
 सौगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुगंधित । तेल, इत्र आदि का  
 व्यापार करनेवाला । गंधी । (२) सुगंध । सुगन्ध । (३)  
 अगिया घास । भृशृण । कण्ठ । (४) एक वर्ण संकर जति  
 जिसका उल्लेख महाभारत में है ।  
 वि० सुगंध-युक्त । सुगंधित । सुगन्धार ।  
 संज्ञा स्त्री० दे० "सौगंध" ।  
 सौगंधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] नील कमल । नील कमल ।  
 सौगंधिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नील कमल । नील पत्र । (२)  
 लाल कमल । रक्त कमल । (३) सफेद कमल । श्वेत कमल ।  
 कद्दार । (४) गंध वृण । भृशृण । रामकपूर । (५) रुसा  
 घास । रोहिण वृण । (६) गंधक । गंध पाषाण । (७)  
 सुखराज । पत्रराग मणि । (८) एक प्रकार का कीड़ा जो  
 स्वेप्मा से उत्पन्न होता है । (धरक) (९) सुगंधित तेल, इत्र  
 आदि का व्यवसाय करनेवाला । गंधी । (१०) एक प्रकार  
 का नरुंसक जिसे किसी पुरुष की हृद्दी अथवा स्त्री की योनि  
 सूंघने से बढ़ीपन होता है । नास्त्योपनि । (बैद्यक) (११)  
 दालचीनी, इलायची और तेजपत्रा इन तीनों का समूह ।  
 त्रिसुगंधि । (१२) एक पर्वत का नाम । (भागवत)  
 वि० सुगंधित । सुवासित । सुगन्धार ।  
 सौगंधिक घन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कमल का घना हुंड । कमल  
 का घन या अंगल । (२) एक शीर्ष का नाम । (सहाभारत)

**सौगंधिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुयेर की नगरी की नदी का नाम ।  
(वाल्मीकि रामायण)  
**सौगंधिप्रफ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद बरंगी । अंतरांका ।  
**सौगंध्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुगंधि का भाव या धर्म । सुगंधता ।  
सुगंधत्व ।  
**सौगत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुगत (बुद्ध) का अनुयायी । बौद्ध ।  
(२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।  
**सु० (१)** सुगत संबंधी । (२) सुगत मत का ।  
**सौगतिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बौद्ध धर्म का अनुयायी । (२)  
बौद्ध सिद्धि । (३, नास्तिक । शून्यवादी । (४) अनीश्वरवादी ।  
**सौगम्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुगम का भाव । सुगमता । आसानी ।  
**सौगरिया**—संज्ञा पुं० [ ? ] क्षत्रियों की एक जाति या वंश ।  
उ०—गौर मुगोदुल रामसिंह परताप कमठ कुल । रामचंद्र  
कुल पांडु भेद चहुँवान खग सुल । सूरतराम प्रसिद्ध  
कुसल तन भरु पाशरिया । वैमसिंह प्रविसिंह भमरवाला  
सौगरिया ।—मूदन ।  
**सौगात**—संज्ञा स्त्री० [ पुं० ] वह वस्तु जो परदेन से इष्टमित्रों को  
देने के लिये लाई जाय । भेंट । उपहार । नजर । तोहफ़ा ।  
जैसे,—हमारे लिये बंबई से क्या सौगात लाए हो ?  
क्रि० प्र०—देना ।—मिलना ।—लाना  
**सौगाती**—वि० [ हिं० सौगात ] (१) सौगात के ल्यायक । उपहार  
के योग्य । (२) उत्तम । बढ़िया । उमदा ।  
**सौघा**—वि० [ हिं० महंगा का अनु० ] सस्ता । अल्प मूल्य का ।  
कम दाम का । महंगा का उलटा । उ०—महँगे मणि कंचन  
किये सौघो जग जल नाज ।—तुलसी ।  
**सौचल**—संज्ञा पुं० दे० “सौच” । उ०—सकल सौच करि जाइ  
नहाये । नियम निबाहि सुनिहि सिर नाये ।—तुलसी ।  
**सौचि**—संज्ञा पुं० दे० “सौचिक” ।  
**सौचिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूची कर्म या सिलाई द्वारा जैविक  
निर्वाह करनेवाला । दरजी । सूचिक । सूचनित् ।  
**सौचिक्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूचिक का कार्य । दरजी का काम ।  
सौने का काम ।  
**सौचिचि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सुचिच के अपत्य हो ।  
**सौचीक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ में एक प्रकार की भक्ति ।  
**सौचुक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] भूतिराज के पिता का नाम ।  
**सौचुक्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूचक का भाव या कर्म । सूचकता ।  
**सौज्ञ**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राणा, मि० प्र० सात्र ] उपकरण । सामग्री ।  
साज सामान । उ०—(क) कहीं लगी सगुझाई सूर सुनि  
वाति मिलन की भीधि तरी । लहु सँभरि देहु पिय भयनी  
चिन प्रमान संव सौज्ञ प्ररी ।—सूर । (ख) जन पुकारे हरि  
पै जाइ । जिनकी यह सब सौज्ञ राधिका तेरे तनु सब लई  
छेदाई ।—सूर । (ग) जिन हरि सौज्ञ पोरि, जग खाई ।

विगत दसन ते होंदि बनाई ।—रामायण । (घ) अलि  
सुगंध बस रहे छुगाई । भोग सौज्ञ सब सजी बनाई ।—  
रामायण ।

वि० [ सं० ] सौनस् । शक्तिशाली । बलवान् । ताकतवर ।

**सौजन्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुजन का भाव । सुजनता । मल-  
मनसत ।

**सौजन्यता**—संज्ञा स्त्री० दे० “सौजन्य” । उ०—बर्षों महादाय, पदी  
सौजन्यता है ।—अयोध्यासिंह ।

**विशेष**—शुद्ध भाववाचक शब्द “सौजन्य” ही है । उसमें भी  
“ता” प्रत्यय लगाकर जो “सौजन्यता” रूप बनाया जाता है,  
वह अशुद्ध है ।

**सौजस्क**—वि० दे० “सौज” ।

**सौजात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुजात के वंश में उत्पन्न व्यक्ति ।

**सौजामि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन कृषि का नाम ।

**सौड**—संज्ञा पुं० दे० “सौड” ।

**सौदल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन आचार्य का नाम ।

**सौत**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कृषि की के बति या प्रेमी की  
दूसरी स्त्री या प्रेमिका । किसी स्त्री की प्रेम-प्रतिद्वंद्विनी ।  
सपत्नी । सौक । सवत । उ०—(क) देह दुलैया की भई  
‘उगो’ ज्यों जोवन जोति । त्यों त्यों लखि सौतें सबै बदन मलिन  
हुति होति ।—विहारी । (ख) काल ग्याही भई हों तो धाम  
दृन न गई पुनि आनहूते मेरे सीस सौत को पसाई है ।—  
दत्तमन्त्राटक ।

**सुहा०**—सौतिया ढाह = (१) दो सौतों में होनेवाली ढाह या  
रेश्या । (२) द्वेष । बघन ।

वि० [ सं० ] (१) सूत से उत्पन्न । (२) सूत संबंधी ।  
सूत का ।

**सौतन**—संज्ञा स्त्री० दे० “सौत” । उ०—कान्ह भये बस बँसुरी  
के अथ कौन सखी हमको पहिई । निस चौस रई संग  
साय लगी यह सौतन तापन क्यों सहिई ।—रसखान ।

**सौतनि**—संज्ञा स्त्री० दे० “सौत” । उ०—यांपुत्र तो उर उरज  
भर भरि तदनुई विक्रसत । बोसनि सौतनि के हिये आवत  
रंघि उसास ।—विहारी ।

**सौति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूत के अपत्य, कर्ण ।

संज्ञा स्त्री० दे० “सौत” । उ०—(क) पिथुरो जावक सौति  
पग निरलि हँसी गहि गँस । सछन हँसीहीं लखि लखी  
आधी हँसी उवास ।—विहारी । (ख) गुर छोगनि के पग  
छागति प्यार सौ प्यारी क्यूँ लखि सौति जरी ।—देव ।

**सौतिन**—संज्ञा स्त्री० दे० “सौत” । उ०—(क) चौक चौक चकई  
सौ सौतिन की कूटां चली सौ तें भई दीन भरिबिंद गति मंद  
ज्यों ।—कंदाय । (ख) नायक के मंगनि में नहाये सुधां सो  
सब सौतिन के कोचननि सौन सौ छाह्ये ।—मतिराम ।



**सौतुक**—संज्ञा पुं० दे० "सौतुल" । उ०—देखि वंदन बहृत  
भाई सौतुक की सपने ।—सूर ।

**सौतुल**—संज्ञा पुं० दे० "सौतुल" । उ०—पिय मिलाप को  
सुख सपनी कछो न जाय अनूप । सौतुल सो सपनो भयो  
सपनो सौतुल रूप ।—मतिराम ।

**सौतुप**—संज्ञा पुं० दे० "सौतुल" । उ०—पुनि पुनि करं प्रनामु  
न भावत कबु कहि । देखीं सपन कि सौतुप ससितेपर  
सहि ।—गुलसी ।

**सौतेला**—वि० [ हि० सौत + एल (प्रत्य०) ] [ स्त्री० सौतेली ] (१)  
सौत से उत्पन्न । सौत का । जैसे—सौतेला लड़का । (२)  
जिसका संबंध सौत के रिश्ते से हो । जैसे,—सौतेला  
भाई । ( माँ की सौत का लड़का ) सौतेली माँ ( अर्थात्  
माँ की सौत ) सौतेले मामा ( अर्थात् नानी की सौत का  
लड़का या सौतेली माँ का भाई ) ।

**सौत्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूत या सारथि का काम ।

वि० सूत या सारथि संबंधी । (२) सुत्य संबंधी । सोमा-  
गिय्य संबंधी ।

**सौत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मन्त्रण ।

वि० (१) सूत्र का । (२) सूत्र संबंधी । सूत्र का (३) सूत्र  
में उल्लिखित या कथित ।

**सौत्रांतिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों का एक भेद । इनके मत से  
अनुमान प्रयत्न है । इनका कहना है कि बाहर कोई पदार्थ  
सांगोपांग प्रत्यक्ष नहीं होता; केवल एक देश के प्रायश्च  
होने से शेष का ज्ञान अनुमान से होता है । ये कहते हैं कि  
सब पदार्थ अपने लक्षण से लक्षित होते हैं और लक्षण सदा  
लक्ष्य में वर्तमान रहता है ।

**सौत्रामण्य**—वि० [ सं० ] [ स्त्री० सौत्रामण्यां ] इंद्र संबंधी । इंद्र का ।  
संज्ञा पुं० एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का याग । एकाह ।

**सौत्रामण्य धनु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सौत्रामण्य धनुष । इंद्र धनुष ।  
**सौत्रामण्यी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इंद्र के प्रीत्यर्थ किया जानेवाला  
एक प्रकार का यज्ञ ।

**सौत्रिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुखाह । सुखाय । (२) वह  
जो हुना जाय । सुनी हुई वस्तु ।

**सौत्यन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुत्यन के अपत्य या वंशज ।

**सौदंति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुदंत के अपत्य या वंशज ।

**सौदंतेय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुदंत के अपत्य ।

**सौददा**—वि० [ सं० ] (१) सुदक्ष संबंधी । सुदक्ष का । (२)  
सुदक्ष से उदात्त ।

**सौदसेय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुदक्ष के अपत्य या वंशज ।

**सौदस्त**—वि० [ सं० ] (१) सुदक्ष संबंधी । सुदक्ष का । (२)  
सुदक्ष से उत्पन्न ।

**सौदर्य**—वि० [ सं० ] (१) सरोदर या सगे भाई संबंधी । (२)  
सौंदर्य या भाई का सा ।

संज्ञा पुं० अतृत्व । भाईपन ।

**सौदर्शन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] बाह्योक्त जाति के एक गाँव का नाम ।

**सौदा**—संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) वह चीज जो खरीदी या बेची जाती  
हो । क्रय-विक्रय की वस्तु । चीज । माल । जैसे,—(क)  
चलो बजार से कुछ सौदा ले आवें । (ख) तुम्हारा सौदा  
अच्छा नहीं है । (ग) आप क्या क्या सौदा लाजियगा ?

उ०—(क) व्योपार सो बाँ का बहुत किया, अब बाँ का  
भो कुछ सौदा हो ।—नजीर । (ख) और यन्त्रि में नहीं  
एवहा होत मूल में हानि । सूर स्वामि की सौदा साँचो  
कहा हमारो मानि ।—सूर । (२) लेन-देन । व्यवहार ।

उ०—(क) क्या खूब सौदा नबद है उस हाथ दे इस हाथ  
ले । (ख) दरजी को सुरपी दरकार नहीं, वह गेहूँ लेना  
चाहता है; अतः उन दोनों का सौदा नहीं हो सकता ।—  
मिथवंधु । (घ) प्रायः सभी बैंकें एक दूसरे से हिसाब  
रखती हैं । इस प्रकार सौदे का काम कागजी घोड़ों (बैंकों)  
द्वारा चलता है ।—मिथवंधु । (च) जरासुत सो और कोठ  
नहि मिले मोहि दखला । जो करै सौदा समर को सहज  
हमि या सौदा ।—गोपाल ।

**सुहा**—सौदा पटना = क्रय-विक्रय की बात चीज ठीक होना ।  
जैसे,—तुमसे सौदा नहीं पटेगा । उ०—भाखिर इसी बहाने  
मिलर वार से नजीर । कपड़े बला से फट गये सौदा सो  
पट गया ।—नजीर ।

(३) क्रय-विक्रय । खरीद-फरोख्त । व्यापार । उ०—और  
यन्त्रि में नहीं लाहा होत मूल में हानि । सूर स्वामि को  
सौदा साँचो कहे हमारो मानि ।—सूर । (४) खरीदने या  
बेचने की बात चीज पक्की करना । जैसे,—उन्होंने पवास  
गॉट का सौदा किया । उ०—राजा सुद विजारात करता है,  
दिना उसकी आज्ञा के रोंगा, हाथी दौत; सीसा ह्यादि  
का कोई सौदा नहीं कर सकता ।—शिवप्रसाद ।

**यौ**—सौदापन = व्यापारी । सौदा सुलुफ = खरीदने की चीज ।  
बंतु । सौदापत = व्यवहार । उ०—सुहद समाज दुगारबासी  
ही को सौदासूत जब जाको काजु तब मिलें पायें परि सी ।  
—गुलसी ।

**क्रि० प्र०**—करना ।—पटना ।—लेना ।—होना ।

संज्ञा पुं० [ का० ] (१) पागलपन । बावकापन । दीवानापन ।

उन्माद । (२) उद्वेग के एक प्रसिद्ध कवि का नाम ।

संज्ञा पुं० [ दे० ] ये एक छँटकर सव किए हुए पाम जो  
धोली में सद्द गये हैं । ( तंगोली )

**सौदार**—संज्ञा पुं० [ अ० सौदा + ई (प्रत्य०) ] जिसे सौदा या पारल-  
पन हुआ हो । पागल । बावका ।

**सुदा०**—किसी का सौदाई होना = किसी पर बहुत अधिक आसक्त होना । सौदाई बनाना = अपने ऊपर किसी को आसक्त करना ।  
**सौदागर**—संज्ञा पुं० [ का० ] व्यापारी । व्यवसायी । तिजारात करनेवाला । जैसे,—कपड़ों का सौदागर, घोड़ों का सौदागर ।  
**सौदागर बन्धु**—संज्ञा पुं० [ का० नौदागर + दि० बन्धु ] सौदागर अथवा सौदागर का छद्मक ।  
**सौदागरी**—संज्ञा स्त्री० [ का० ] सौदागर का काम । व्यापार । व्यवसाय । तिजारात । रोजगार ।  
**सौदामनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बिजली । विद्युत् । (२) एक प्रकार की विद्युत् या बिजली । मालाकार विद्युत् । (३) कद्रयप और विनता की एक पुराणी का नाम । (विष्णुपुराण) (४) एक अप्सरा का नाम । ( बालरामायण ) (५) एक रागिनी जो मेघ राग की सहचरी मानी जाती है ।  
**सौदामनीय**—वि० [ सं० ] सौदामनी या विद्युत् के समान । सौदामनी या विद्युत् सा ।  
**सौदामिनी**—संज्ञा स्त्री० दे० "सौदामनी" । उ०—बर्षा वरनहूँ हंस वक दादुर घातक मोर । केतक कंज कद्रय जल सौदामिनि घनघोर ।—केदाव ।  
**सौदामिनीय**—वि० दे० "सौदामनीय" ।  
**सौदामेय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुदागा के अपत्य या वंशज ।  
**सौदाप्ती**—संज्ञा स्त्री० "सौदामनी" ।  
**सौदायिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह धन आदि जो स्त्री को उसके विवाह के अवसर पर उसके पिता-माता या पति के यहाँ से मिले । दाय भाग के अनुसार इस प्रकार मिला हुआ धन स्त्री का हो जाता है । उस पर उसी का सोलहों भागे अधिकार होता है; और किसी का कोई अधिकार नहीं होता ।  
वि० दाय संबंधी । दाय का ।  
**सौदास**—संज्ञा पुं० [ सं० ] इक्ष्वाकु वंशी एक राजा का नाम । ये राजा सुदास के पुत्र और ऋतुपर्ण के पीय थे । इन्हें मित्र-सह और कर्मपराद भी कहते हैं ।  
**सौदासि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक गोत्र प्रवर्धक प्रारिष का नाम । (२) इन ऋषि के गोत्र का नाम ।  
**सौदेय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुदेव के पुत्र, द्विषोदास ।  
**सौद्युम्नि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुद्युम्न के अपत्य ।  
**सौद्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भवन । प्रासाद । अट्टलिका । महल । उ०—जहाँ विमान घनितान के श्रमजल हरत अनूप । सौद्य-पताकनि के पसन होइ बिजन अनुरूप ।—मतिराम । (२) चौड़ी । रजत । (३) दुधिया पत्थर । दुग्ध धापाग ।  
वि० सफेदी, पलस्तर या अस्तरकारी किया हुआ ।  
**सौधक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] परावसु गंधर्ष के नौ पुत्रों में से एक । उ०—महा कल्प महँ हो गंधर्व । नाम परावसु तेहि सुत

सर्वा । मंदर मंत्र मंदी सौधक । सुधन सुदेव महाविक्र नामक ।—गोपाल ।  
**सौधकार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सौध बनानेवाला । प्रासाद या भवन बनानेवाला । राजा । मेमार ।  
**सौधना**—क्रि० सं० दे० "सौधना" । उ०—तातें लेनी सौधौ याको । तव उपाय करिहैं मैं ताको ।—सूदन ।  
**सौधन्य**—वि० [ सं० ] सुधन से उत्पन्न ।  
**सौधन्या**—संज्ञा पुं० [ सं० सौधन्य ] (१) सुधन्या के पुत्र, ऋषु । (२) एक वर्णसंकर जाति ।  
**सौधर्म**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनियों के देवताओं का निवास स्थान । कद्रय-भवन ।  
**सौधर्मज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सौधर्म में उत्पन्न एक प्रकार के देवता । (जैन)  
**सौधर्म्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुधर्म का भाव । (२) साधुता । भलमनसत ।  
**सौधाकार**—वि० [ सं० ] सुधाकर या चंद्रमा संबंधी । चंद्रमा का ।  
**सौधात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] माह्यग और शृजकंडी से उत्पन्न संतान । ( शृजकंड एक वर्णसंकर जाति थी जो माह्य माह्यग और माह्यगी से उत्पन्न थी । )  
**सौधातकि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधता के अपत्य ।  
**सौधात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक के चौदह भागों में से एक का नाम ।  
**सौधात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] त्रिव का मंदिर । त्रिपालय ।  
**सौधावति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधावति के अपत्य ।  
**सौधुतेय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुधुति के अपत्य या वंशज ।  
**सौधोतकि**—संज्ञा पुं० दे० "सौधातकि" ।  
**सौनंद**—संज्ञा पुं० [ सं० ] बलराम के मूलक का नाम ।  
**सौनदा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यस्मिणी की पत्नी का नाम । (मारकंडेय पुराण)  
**सौनदी**—संज्ञा पुं० [ सं० सौनन्दि ] बलराम का एक नाम जो अपने पास सौनंद नामक मूसल बधते थे ।  
**सौन**—क्रि० वि० [ सं० समुल ] सामने । प्रत्यक्ष । उ०—म्याह कियो कुल हट बसिह अरिह टरे घर को नृप धार्ये । है सुत चार विवाहत ही घरी जानकी तात सयै सुसुदायै । सौन भये अपसौन सयै पय कौप उठै मिय में दुख पायै ।—हनुमत्प्राटक ।  
**सौना**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कसाई । चूचक । (२) वह ताजा मांस जो चिक्री के लिये रखा हो ।  
वि० पशुबध-दाला या कसाई खाने का । पशुबधदाला संबंधी ।  
**सौनक**—संज्ञा पुं० दे० "सौनक" । उ०—सौनक सुनि आसीन तहँ अति उदार तप रासि । भगन राम सिय ध्यान महँ, वेद रूप आमासि ।—रामाचमपे ।

**सौनना**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सौन्दन ] कपड़ों को धोने से पड़ते उनमें रेह भादि लगाना । रेह की नौद में कपड़े भिगोना । सौन्दना । (धोयी) उ०—तन मन हाय कै सौजन कीन्हा धोवन जाय साधु की नगरी । कहहि कबीर सुनो भाइ साधु, विन सतसंग कयहूँ नहि सुपरी ।—कवीर ।

**सौनव्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सौनव्यायनी ] सुनु के अर्थात् ।  
**सौनहोत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० सौनहोत्र ] (१) वह जो शुनहोत्र के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो । शुनहोत्र का अर्थात् । (२) गृहसमूह ऋषि ।

**सौनाल**—संज्ञा पुं० दे० "सौना" । उ०—घरि सौमि कै पंजर राखी अमृत पिवाइ । विप की कीरा रहत है विप ही में सुख पाइ ।—रसनिधि ।  
पंजरा पु० दे० "सौदन" ।

**सौनाग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] धैयाकरणों की एक शाखा का नाम, जिसका उल्लेख पर्वजलि के महाभाष्य में है ।

**सौनामि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सुनाम के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो ।

**सौनिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मांस घेचनेवाला । कसाई । वैतसिक । मांसिक । (२) बहेलिया । व्याध । बौटिक ।

**सौनीतेय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुनीति के पुत्र, भ्रुव ।

**सौपथि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुपथ के अर्थात् ।

**सौपना**—संज्ञा पुं० दे० "सौपना" ।

**सौपर्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पद्मा । मरकत । (२) सौंठ । मुंडी । (३) गरुड़ जी के अर्ध का नाम । गरुड अक्षर । (४) ऋग्वेद का एक सूक्त । (५) गरुड़ पुराण ।

वि० सुपर्ण अथवा गरुड़ संबंधी । गरुड़ का ।

**सौपर्यकेतव**—वि० [ सं० ] विष्णु संबंधी । विष्णु का ।

**सौपर्यव्रत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का व्रत । गरुड़ व्रत ।

**सौपर्यो**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पाताल-गरुड़ की लता । जल-जमनी ।

**सौपर्योय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुपर्णों के पुत्र, गरुड़ ।

**सपर्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुपर्ण पक्षी ( बाज या चील ) का स्वभाव या धर्म ।

वि० दे० "सौपर्ण" ।

**सौपर्व**—वि० [ सं० ] सुपर्व संबंधी । सुपर्व का ।

**सौपस्ती**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्र प्रवर्तक ऋषि का नाम ।

**सौपाक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वर्षासंकर जाति जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

**सौपातय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि ।

**सौपायनि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सुपामा के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो । सुपामा का गोत्रज ।

**सौपिक**—वि० [ सं० ] (१) सूप या व्यंजन डाला हुआ । (२) सूप या व्यंजन संबंधी ।

**सौपिण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सुपिण के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो । सुपिण का गोत्रज ।

**सौपिणी**—संज्ञा पुं० दे० "सौपिण" ।

**सौपुण्ड्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सुपुण्ड्र के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो । सुपुण्ड्र का गोत्रज ।

**सौप्तिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रात को सोते हुए मनुष्यों पर आक्रमण । रात्रियुद्ध । निशा-रण । रात्रि-भारण । (२) महा-भारत के दसवें पर्व का नाम, जिसमें सोते हुए पांडवों पर आक्रमण करने का वर्णन है ।  
वि० सुप्त संबंधी ।

**सौप्रजास्त्व**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी संतानों का होना । अच्छी आलाद होना ।

**सौप्रतीक**—वि० [ सं० ] (१) सुप्रतीक दिग्गज संबंधी । (२) हाथी का । हाथी संबंधी ।

**सौफ**—संज्ञा स्त्री० दे० "सौफ" ।

**सौफिया**—संज्ञा स्त्री० [ हि० सौफ ] रुसां नाम की घास जब कि यह पुरानी और स्थूल हो जाती है ।

**सौफियाना**—वि० दे० "सौफियाना" ।

**सौयल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गंधार देश के राजा सुयल का पुत्र, शकुनि । उ०—(क) जात भयो ताही समय समाभजन कुरुनाथ । विभ्रण दुःखदासन कर्ण सौयल शकुनी साथ । (ख) गंधार धरापति सुत सुमन मगध राज हित रस रसो । मठ सौयल सौयल संग ले जंग रंग करिये लसो ।  
—गोपाल ।

**सौयलक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( सुयल का पुत्र ) शकुनि ।

वि० सौयल (शकुनि) संबंधी । सौयल (शकुनि) का ।

**सौयली**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुयल की पुत्री, गंधारी । ( धृतराष्ट्र की पत्नी )

वि० सौयल (शकुनि) संबंधी । सौयल ।

**सौयलेय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (सुयल के पुत्र) शकुनि का एक नाम ।

**सौयलेयी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (सुयल की पुत्री और धृतराष्ट्र की पत्नी) गंधारी का एक नाम ।

**सौयलय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम । (महाभारत)

**सौयिगा**—संज्ञा स्त्री० [ देस० ] एक प्रकार की सुलसुल जो पश्चिम भारत की छोड़कर प्रायः दोष समस्त भारत में पाई जाती और कठु के अनुसार रंग बदलती है । यह लंबाई में प्रायः एक बालित से कुछ कम होती है । इसके ऊपर के पर सदा हरे रहते हैं । यह कीड़े मकोड़े खाती और एक बार में तीन अंडे देती है ।

**सौवीर**—संज्ञा पुं० दे० "सौवीर" ।

**सौभ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा हरिश्चंद्र की उस कल्पित नगरी का नाम जो आकाश में मानी गई है । कामचारिपुर ।

(महाभारत) । (२) शाल्वों के एक नगर का नाम । (महाभारत) । (३) एक प्राचीन जनपद का नाम । (महाभारत) । (४) एक जनपद के राजा । (महाभारत) उ०—अभिमान सहित सिद्ध प्रांत हर पर कुपान चमकावती । नृप सीम लक्ष्यो मगधेश हित सिंह समान हिंसावती ।—गोपाल ।

**सौमिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हुणद का एक नाम ।

**सौमग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुमग होने का भाव । सौभाग्य ।

सुगकिसती । सुगनसीवी । (२) सुल । आनंद । मंगल ।

(३) देश्यर्ष । संपदा । धन-शौलन । (४) सुंदरता । सौंदर्य ।

व्यवृत्ती । (५) वृहच्छोक के एक पुत्र का नाम । (भागवत)

वि० सुमग पक्ष से उत्पन्न था बना हुआ । (चरक) ।

**सौमगात्स**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुल । आनंद । मंगल ।

**सौमद्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुमद्रा के पुत्र, अग्निमनुषु । (२)

एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है । (३)

यह युद्ध जो सुमद्रा-हत्या के कारण हुआ था ।

वि० सुमद्रा संबंधी ।

**सौमद्रैय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुमद्रा के पुत्र, अग्निमनुषु । (२)

बहेदा । विभक्तिक वृत्त ।

**सौमर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक वैदिक ऋषि का नाम । (२)

एक साम का नाम ।

वि० सौमर संबंधी । सौमर का ।

**सौमरायण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो सौमर के गोत्र में उत्पन्न

हुआ हो । सौमर का गोत्रज ।

**सौमरि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम, जो बड़े

संपत्ति थे । कहते हैं कि एक दिन यमुना में एक मत्स्य की

मछलियों से भोग करने देखकर इनमें भी भोग-लाहला

उत्पन्न हुई । वे सम्राट् मान्धाता के पास पहुँचे, जिनके

पचास कन्याएँ थीं । ऋषि ने उनसे अपने लिए एक कन्या

मार्गी । मान्धाता ने उत्तर दिया कि यदि मेरी कन्याएँ

स्वयंवर में आपको घरमात्य पहना दें, तो आप उन्हें ग्रहण

कर सकते हैं । सौमरि ने समझा कि मेरी कुटीरी देखकर

सम्राट् ने डालमडोल की है । पर मैं अपने आपको ऐसा

पनाडंगा कि राजकन्याओं की जो बात ही क्या, देवान्गारों

भी सुझे चरण करने को उरुकुल होंगी । तपोशल से ऋषि का

वैसा ही रूप हो गया । जब वे सम्राट् मान्धाता के अंतःपुर

में पहुँचे, तब राजकन्याएँ उनका दिव्य रूप देख मोहित हो

गईं और सब ने उनके गले में वरमात्य डाल दिया । ऋषि

ने अपनी मंत्र-शक्ति से उनके लिये अलग अलग पचास,

भवन बनवाए और उनमें वांग लंगवाए । इस प्रकार ऋषि

जो भोग-विद्यम में रत हो गए । पचास परिवारों से उन्होंने

पर्व बनाए, पुत्र उत्पन्न किए । वह्वाचार्य नामक एक ऋषि

ने उन्हें इस प्रकार भोग-रत देख एक दिन, एकत में बैठकर

उन्हें समझाया कि यह आप क्या कर रहे हैं । इससे तो आप का तपोव्रत नष्ट हो रहा है । ऋषि को भारमग्लानि हुई । वे संसार त्याग भाग्यचिंतन के लिये वन में चले गए । उनकी परिश्रमों उनके साथ ही गईं । कठोर तपस्या करने के उपरांत उन्होंने शरीर त्याग दिया और परब्रह्म में छीन हो गए । उनकी परिश्रमों ने उनका सहगमन किया । (भागवत)

**सौमव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संस्कृत के एक वैयाकरण का नाम ।

**सौमांजन**—संज्ञा पुं० दे० "शोमांजन" ।

**सौभागिनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० सौभाग्य ] सधवा स्त्री । सौहागिन ।

उ०—सौभागिनी करै कम रीता । तऊ ताकि बड़ि पति की

भोग ।—विधाम ।

**सौभागिनैय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] उस स्त्री का पुत्र जो अपने पति

को प्रिय हो । सुभगा या सुहागिन का पुत्र ।

**सौभाग्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छा भाग्य । अच्छा प्रारब्ध ।

अच्छी किस्मत । सुगकिसती । सुगनसीवी । (२) सुख ।

आनंद । (३) कल्याण । कुशल-शेम । (४) स्त्री के सधवा

रहने की अवस्था । पति के जीवित रहने की अवस्था ।

सुहाग । महिवात । (५) अनुत्तम । (६) देश्यर्ष । वैभवा ।

(७) सुंदरता । सौंदर्य । व्यवृत्ती । (८) मनोरंजना । (९)

शुभकामना । मंगल कामना । (१०) सफलता । चाकल्य ।

कामयावी । (११) जोतिष में विक्रम आदि सप्ताहस्त

योगों में से चौथा योग जो बहुत शुभ माना जाता है ।

(१२) सिद्ध । (१३) सुहागा । टंकण । (१४) एक प्रकार

का पीषा । (१५) एक प्रकार का व्रत ।

**सौभाग्य चिंतामणि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सत्संपात ज्वर की एक

औषध ।

**विशेष**—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है । सुहाग का जग,

विष, जीरा, मिर्च, हल्, पहेदा, आंवला, सेंधा, ककंच, विट,

सोंचर और सौमर नमक, अम्रक और गंधक—ये सब चीजें

बराबर लेकर खरल करते हैं— फिर संभाल (निगुदी), शोफ-

लिका, अंगरा (चंद्रगण), अडूसा (वासुक) और लडनीरा

(अपामार्ग) के पत्तों के रस में अच्छी तरह भावना देने के

उपरांत एक एक रत्ती की गोली बनाते हैं । सत्संपातिक

ज्वर की यह उच्चम औषध मानी गई है ।

**सौभाग्य व्रतीया**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मात्र छह पक्ष की व्रतीया

जो बहुत पवित्र मानी गई है ।

**सौभाग्य व्रत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक व्रत जिसके फलान छह

व्रतीया को करने का विधान है ।

**विशेष**—वाराह पुराण में इसका वदा माहात्म्य वर्णित है ।

यह व्रत जो-उत्पन्न दोनों के लिये, सौभाग्यदायक बताया

गया है ।

सुका । (१२) मृगशिरा नक्षत्र । (१३) मृगशिरा नक्षत्र पर रहनेवाले पंच तारों का नाम । (१४) आर्या उंद का एक भेद ।

सौम्यी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चंद्रिनी । चंद्रिका ।

सौपयस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कई सामों के नाम । (२) वृण या घास की प्रभुता ।

सौर-वि० [ सं० ] (१) सूर्य-संबंधी । सूर्य का । (२) सूर्य से उपपन्न । (३) सूर्य का अनुसारी । जैसे,—सौर मास । (४) दिव्य सुर या देवता-संबंधी ।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य के पुत्र, दानि । (२) सूर्य का उपासक । सूर्य का मक । (३) वीसवें कल्प का नाम । (४) तुंगुह । (५) धनिया । (६) एक साम का नाम । (७) दृष्टिहीन आँख ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० राट, हि० सोड ] चादर । ओढ़ना । उ०—भयनो पहुँच विचारि कै करतव करिप दौर । तेतो पवि पसारिपु जेती लामि सौर ।—रहीम ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० राट्टी ] सौरी मछली ।

विशेष—यह मछली आकार की होती है और इसके दाँसों में एक ही कँटा होता है ।

सौरप्रोथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन देश का नाम । (तुहरसंहिता)

सौरठवाल-संज्ञा पुं० [ सं० सीपू, हि० सौरठ + वाहा ] विनयों की एक जाति ।

सौरज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तुंगुह । तुंगुह । (२) धनिया । धान्यक ।

संज्ञा पुं० दे० "सौर्य" । उ०—सौरज धीर तेहि रथ चाका । सख्य लील दृढ़ ध्वजा पताका ।—तुलसी ।

सौरख-वि० [ सं० ] सूत्र-संबंधी ।

सौरत-संज्ञा पुं० [ सं० ] रतिक्रीड़ा । केलि । संभोग ।

वि० सुरत-संबंधी । रतिक्रीड़ा-संबंधी ।

सौरत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] रतिकुल । संभोग ।

सौर विवस-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक सुयोदय से दूसरे सुयोदय तक का समय । ६० द्रव्य का समय ।

सौरद्रोषि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटी सईया ।

सौरधी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का तैय्या या सितार ।

सौरनक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक व्रत जो रविवार को हस्त नक्षत्र होने पर सूर्य के प्रीत्यर्थ किया जाता है । (नरसिंह पुराण)

सौरपत-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्योपासक । सूर्य-पूजक ।

सौरपरिकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य के चारों ओर भ्रमण करनेवाले ग्रहों का मंडल । सौर जगत् ।

सौरपि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गोत्र-प्रवचक ऋषि ।

सौरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुरभि का भाव या धर्म । सुगंध । सुवाह । महक । उ०—विमिथ समीर सुगान सौरस मिलि मत्त मधुप तुंभार ।—सूर । (२) केसर । कुंकुम । जाफरान ।

(३) तुंगुह नामक गंध इन्ध्र्य । तुंगुह । (४) धनिया । धान्यक । (५) बोल । हीताबोल । प्रीजाबोल । (६) एक प्रकार का मसाला । (७) आम । आम्र । उ०—सौरस पलुव मदन बिलोका । मयठ कोप कपेठ त्रयलोका ।—तुलसी । (८) एक साम का नाम ।

वि० (१) सुगंधित । सुगंधयुक्त । सुवाहदार । (२) सुरभि (गाय) से उत्पन्न ।

सौरमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वर्ण-वृत्त का नाम जिसके पहले चरण में सगण, जगण; सगण और छपु, दूसरे में नगण सगण, जगण और गुरु, तीसरे में रगण, नगण, भागण और गुरु तथा चौथे में सगण, जगण, सगण, जगण और गुरु होता है । उ०—सब थागिबे भंसंत काम । शरण गहिबे सदा हरी । दुःख भौ जनित जायै टरी । मजिबे भडो निरि हरी हरी हरी ।

सौरममय-वि० [ सं० ] सौरभ-युक्त । सुगंध-युक्त । सुगंधित । सौरमित-वि० [ सं० नीम ] सौरभ-युक्त । महकनेवाला । सुगंधित । सुवाहदार ।

सौरमेघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (सुरभि का पुत्र) सौँद । वृषभ । वि० सुरभि-संबंधी । सुरभि का ।

सौरमेघक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौँद । वृष ।

सौरमेयी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गाय । गौ । (२) एक मधुसूक्त का नाम । (महाभारत)

सौरभ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुगंध । सुवाह । (२) मनोसुता । सुंदरता । स्वसुरती । (३) गुण-गौरव । कीर्ति । प्रतिष्ठा । नेकनामी । (४) कुयेर का एक नाम ।

सौर मास-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह महीना जो सूर्य के किसी एक राशि में रहने तक माना जाता है । उतना काल जितने तक सूर्य किसी एक राशि में रहे । एक संक्रांति से दूसरी संक्रांति तक का समय ।

विशेष—सूर्य एक वर्ष में क्रम से मेघ, वृष आदि बारह राशियों की भोग करता है । एक राशि में वह प्रायः ३० दिन तक रहता है । प्रायः इतने दिन का ही एक सौरमास होता है ।

सौर धर्म-संज्ञा पुं० दे० "सौर संवत्सर" ।

सौर संवत्सर-संज्ञा पुं० [ सं० ] उतना काल जितना सूर्य को मेघ, वृष आदि बारह राशियों पर घूम आने में लगता है । एक मेघ संक्रांति से दूसरी मेघ संक्रांति तक का समय ।

सौरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुरसा नामक पीपे से निकला या बना हुआ । (२) सुरसा का अणव या पुत्र । (३) जू । (४) नमकीन रसा या शोषा ।

सौर सिद्धांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष का एक सिद्धांत गंध । सौर सूक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम जिसमें सूर्य की स्तुति है । सूर्य-सूक्त ।

सौरसेन-संज्ञा पुं० दे० "शूरसेन" और "शौरसेन" ।  
 सौरसेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंद का एक नाम । कश्चित्केय ।  
 सौर सैधव-वि० [ सं० ] (१) गंगा का । गंगा-संबंधी । (२) गंगा से उत्पन्न । (मिथे, भीष्म)  
 संज्ञा पुं० सूर्य का घोड़ा ।  
 सौरस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरस्ता । रसीला होने का भाव ।  
 सौराज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्द्ध राज्य । सुराज्य । सुरासन ।  
 सौराटो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक शक्ति । (संगीत)  
 सौराव-संज्ञा पुं० [ सं० ] नमकीन रसा या खोरवा ।  
 सौराष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गुजरात-काठियावाड़ का प्राचीन नाम ।  
 सूरत के भास पास का प्रदेश । सौरट देश । (२) उक्त प्रदेश का निवासी । (३) कुंदुश नामक गंध-द्रव्य । शलुकी-  
 नियांस । (४) कौसा । कौसा । (५) एक धर्म श्रुत का नाम ।  
 वि० सौरट प्रदेश का ।  
 सौराष्ट्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौराष्ट्र या सौरट प्रदेश का रहने-  
 वाला । (२) पंचलौह । (३) एक प्रकार का विप ।  
 वि० सौराष्ट्र या सौरट प्रदेश-संबंधी । सौरट देश में उत्पन्न ।  
 साराष्ट्र-भृशिका संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोपी चंदन ।  
 सौराष्ट्र-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोपी-चंदन ।  
 साराष्ट्रिक-वि० [ सं० ] सौराष्ट्र या सौरट देश-संबंधी । गुजरात  
 काठियावाड़ संबंधी ।  
 संज्ञा पुं० (१) सौरट देश का निवासी । (२) कौसा नाम  
 की धातु । (३) एक प्रकार का चिपैला कंद ।  
 विशेष-इसके पत्ते पलास के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं ।  
 यह कंद काले अंगार के समान काला और कटुप की तरह  
 चिपटा और फैला हुआ होता है ।  
 सौराष्ट्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोपी चंदन ।  
 सौराष्ट्रीय-वि० [ सं० ] सौरट प्रदेश का । गुजरात-काठियावाड़ का ।  
 सौराष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का दिव्यास्त्र । उ०—  
 सोमास्त्रद्वु सौराष्ट्र सु निज निज रूपनि धारं । रामहि सौं  
 कर जोरि सवैं भोले हूक धारं ।—पद्मकार ।  
 सौरिध-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० सौरिणी ] (१) ईशान कोण में  
 स्थित एक प्राचीन जनपद । (इंद्रसंहिता) (२) उक्त  
 जनपद का निवासी ।  
 सौरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य के पुत्र । (२) विमोक्षार ।  
 असम वृक्ष । (३) हुलहुल का पौधा । आदिशयभक्ता । (४)  
 एक मोत्रप्रवर्तक कृषि । (५) दक्षिण का एक प्राचीन  
 जनपद । (इंद्रसंहिता) ।  
 संज्ञा पुं० दे० "शौरि" । उ०—अंतःपुर में तुरत ही मयो  
 सौर चहुँ ओर । धैरायो पर्यंक में रंकिहि सौरि किशोर ।—  
 रघुनाथ ।  
 सौरिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धर्मेश्वर इन्द्र । (२) स्वर्ग ।

वि० (१) स्वर्गीय । (२) सुरा या मय संबंधी (कण) ।  
 साराय के कारण होनेवाला (कर्म) ।  
 सौरिकीर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] दक्षिण का एक प्राचीन जनपद ।  
 (बृहत्संहिता)  
 सौरिज-संज्ञा पुं० [ सं० ] भीष्मक नामक मणि ।  
 सौरि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूतिका । वह कोठरी या कमरा जिसमें  
 स्त्री बसा जने । सूतिकागार । जाना । जन्माखाना ।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सूर्य की पत्नी । (२) सूर्य की पुत्री  
 और पुरु की माता तापती । वैवस्वती । (३) गाय । गौ ।  
 (४) हुलहुल पौधा । आदिशयभक्ता ।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राहरी । एक प्रकार की मछली । शफुकी  
 मत्स्य ।  
 विशेष-भाव-प्राप्त के अनुसार इसका मांस मयुर, कर्मला  
 और हय है ।  
 सौरिय-वि० [ सं० ] सूर्य-संबंधी । सूर्य का ।  
 संज्ञा पुं० (१) एक वृक्ष जिसमें से त्रिपेला गोंद निकलता है ।  
 (२) इस वृक्ष से निकला हुआ विप ।  
 सौरिय, सौरियक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद कटसरैया । श्वेत सिंदी ।  
 सौर्य-वि० [ सं० ] सूर्य-संबंधी । सूर्य का ।  
 संज्ञा पुं० (१) सूर्य का पुत्र, सति । (२) एक संवत्सर का  
 नाम । (३) हिमालय के दो शृंगों का नाम ।  
 सौर्यपुष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।  
 सौर्यमगधत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन विषाकरण का नाम  
 जिसका उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य में है ।  
 सौर्ययाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य और यम-संबंधी । सूर्य और  
 यम का ।  
 सौर्यी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौर्य । हिमालय का एक नाम ।  
 सौर्योदयिक-वि० [ सं० ] सूर्योदय-संबंधी ।  
 सौलकी-संज्ञा पुं० दे० "सौलकी" ।  
 सौलहाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुभ या अच्छे लक्षणों का होना ।  
 सुलक्षणता ।  
 सौलभ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुलभता ।  
 सौल, सौला-संज्ञा पुं० [ हिं० साहुल ] (१) राजगौरों का साकुल ।  
 साहुल । (२) हल के ऊपर की ऊपर की गाँठ ।  
 सौल्यिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] टंडेर । साधु-सुदृक ।  
 सौय-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनुशासन । आदेश ।  
 वि० (१) अपने संबंध का । भवना । निज का । (२)  
 स्वर्गीय ।  
 सौय-वि० [ सं० ] स्वर-संबंधी ।  
 सौयचर्चल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सौय नमक । (२) सजी  
 मिट्टी । सजिका क्षार ।  
 वि० सुयचर्चल-संबंधी ।

सौचर्जली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खद की पत्नी का नाम ।  
 सौचर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक कर्प भर सोना । (२) सोने की बानी । (३) सोना । सुवर्ण ।  
 वि० [ स्त्री० सौचर्णी, सौचर्णी ] (१) सोने का । सोने का बना ।  
 (२) तौल में कर्प भर । १६ मासे भर ।  
 सौचर्णभेदिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फूलफेन । फूलमिषंगु । मिषंगु ।  
 सौचर्णिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुनार । स्वर्णकार ।  
 वि० एक सुवर्ण भर । एक कर्प या १६ मासे भर ।  
 सौचर्णिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का विपैला कीड़ा ।  
 (सुश्रुत)  
 सौचर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुदौढ़ ।  
 सौचरित-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुरोहित । कुलपुरोहित । (२) दे० "स्वारययन" ।  
 वि० स्वस्ति कहनेवाला । मंगल चाहनेवाला । मंगलाकांक्षी ।  
 सौचध्यायिक-वि० [ सं० ] जो स्वाध्याय करता हो । वेदपाठ करनेवाला । स्वाध्यायी ।  
 सौवास-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की सुगंधित तुलसी ।  
 सौवासिनो-संज्ञा स्त्री० दे० "सुवासिनी" ।  
 सौवारत-वि० [ सं० ] (१) सुवास-युक्त । भवन निर्माण की कुशलता से युक्त । अच्छी कारीगरी का (मकान) । (२) अच्छे स्थान पर बना हुआ (मकान) ।  
 सौविद-संज्ञा पुं० [ सं० ] अंतःपुर या रनिवास का रक्षक । कंचुकी । सुविद ।  
 सौविदल-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा का यह प्रधान कर्मचारी जिसके पात्र राजा की मुद्रा आदि रहती हो ।  
 सौविदल-संज्ञा पुं० दे० "सौविदल" ।  
 सौविष्ट-वि० [ सं० ] स्विष्टकृत् नामक शक्ति-संबंधी ।  
 (गृह्यसूत्र)  
 सौविष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिंधु नदी के आस-पास के एक प्राचीन प्रदेश का नाम । उ०—सिंधु और सौवीरहु सोरठ जे भूरति रनघीरा । न्योति पठावहु सकल महीपन, बाकी रई न सोरा ।—रघुराज । (२) उक्त प्रदेश का निवासी या राजा । (३) वेर का पेड़ या फल । यदर । (४) जो दो सङ्घर बनाई हुई एक प्रकार की कौड़ी ।  
 वि० य०—यक में यह अग्निदीपक, विरेचक तथा कफ, प्रहणी, अग्नि, उदावर्च, अस्थिर शूल आदि दोषों में उपकारी माना जाता है ।  
 सौवीरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दे० "सौवीर" । (२) जपद्रव्य का एक नाम ।  
 सौवीरपोषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाह्यिक देशवासी । बाह्यिक ।  
 विशेष—उक्त देशवासी जो या गेहूँ की कौड़ी बहुत पिया करते थे, इसी से उनका यह नाम पड़ा है ।

सौवीरसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरमा । श्रोतोऽञ्जन ।  
 सौवीरञ्जन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरमा ।  
 सौवीरा-संज्ञा स्त्री० दे० "सौवीरी" ।  
 सौवीरामल-संज्ञा पुं० [ सं० ] औ या गेहूँ की कौड़ी ।  
 सौवीरिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] येर का पेड़ या फल ।  
 सौवीरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) संगीत में एक प्रकार की मूच्छना जिसका स्वरग्राम इस प्रकार है—म, प, ध, नि, स, रे, ग, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म । (२) सौवीर की राजकुमारी ।  
 सौवीर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौवीर का राजा । (२) महान् वीरता । बहुत अधिक पराक्रम ।  
 सावीर्य-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सौवीर की राजपुत्री ।  
 सौमत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुमत् का भाव । एकनिष्ठा । भक्ति । (२) आज्ञापालन ।  
 सौगम्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुमति । सुशक्ति ।  
 सौशाल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम । (महाभारत)  
 सौशील्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुशीलता । संचरित्रता । साधुता ।  
 सौश्रवण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुश्रवण के अर्थ, उपगु । (२) सुमत् । सुकीर्ति (३) दो सामों के नाम ।  
 वि० जिसका अच्छा नाम या यश हो । कीर्तिमान् । यशस्वी ।  
 सौश्रव-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऐश्वर्य । वैभव ।  
 सौश्रुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सुश्रुत के गोप में उपलब्ध हुआ हो । सुश्रुत-गोत्रज ।  
 वि० (१) सुश्रुत का रचा हुआ । (२) सुश्रुत-संबंधी ।  
 सौयाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।  
 सौपिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मसूँहों का एक रोग ।  
 विशेष—इसमें कफ और पित्त के विकार से मसूँहें सूज जाते हैं; उनमें दर्द होता है और छार गिरती है ।  
 (२) वह पंथ जो बायु के जोर में चलता हो । फूँककर या हवा भरकर बजाया जानेवाला यंत्र । जैसे,—बंसो, तुहरी, सहनाई आदि ।  
 सौपर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] पोषाणन ।  
 सौपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य की किरणों में से एक ।  
 सौष्ठव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुदौर्जन । उपयुक्तता । (२) सुंदरता । सौंदर्य । (३) तेजो । कुरती । क्षिप्रता । लाघव । (४) शरीर की एक मुद्रा । (नृत्य) (५) गंतक का एक अंग ।  
 सौसनी-संज्ञा पुं० दे० "सौसन" ।  
 सौसनी-संज्ञा पुं० दे० "सौसनी" । उ०—पहिरी री बेहूनी सुरंग चूनी ल्याय । पहिरे सारी सौसनी कारी देह दिलाय ।  
 —शृंगार-सतसह ।  
 सौलुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन स्थान का नाम जिसका वहीसे महामांथ्य में है ।

सौहार्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्या में होनेवाला एक प्रकार का कीदा ।  
सौस्थिर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अच्छी स्थिति । (२) प्रहों का  
शुभ स्थान में होना ।

विशेष-बृहस्पतिता में लिखा है कि प्रहों का सौस्थिर्य, अर्थात्  
शुभ स्थान में स्थिति, देखकर राजा यदि भाग्यफल करे तो  
वह स्वयं पौरुषवाला होने पर भी पराया धन पाता है ।

सौस्नातिक-वि० [ सं० ] यह प्रश्न कि यज्ञ के उपरांत स्नान  
सफल हुआ या नहीं ।

सौस्वर्ष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुस्वरा या उत्तम स्वर होने का भाव ।  
सुस्वरता । सुगीलपन ।

सौहं-संज्ञा स्त्री० [ सं० शश्व, प्रा० सवह ] प्रायण । कसम । उ०—  
हम शीघ्र मनभावते लखि तय सुंदर गाल । दौंड रूप धर  
लाल सिर मैना सौहं खात ।—रसनिधि ।

क्रि० प्र०—काना ।—खाना ।

क्रि० वि० [ सं० सगुह, प्रा० सम्पुह ] सामने । आगे ।  
उ०—रंग भरे अंग असौहं सरसौहं सौहं सौहं करि भौहं  
रस भावनि भरत है ।—देव ।

सौहन-संज्ञा पुं० [ देस० ] देस का चौथाई भाग । छद्दाम ।  
दुकदा । (सुनार)

सौहद-संज्ञा पुं० दे० "सौहद" ।

सौहारा-संज्ञा पुं० [ हि० सुहृत् ] सुनार । (पश्चिम)

सौहविष-संज्ञा पुं० [ सं० ] कई सामों के नाम ।

सौहार्ग-संज्ञा पुं० [ देस० ] दो भर का याद या बटखरा । (सुनार)

सौहार्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुहृद का भाव । मित्रता । मैत्री ।  
सख्य । दोस्ती । (२) सुहृद या मित्र का पुत्र ।

सौहार्दनिधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] राम का एक नाम ।

सौहार्घ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौहार्द । मित्रता । बंधुत्व । दोस्ती ।

सौहार्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रुचि । संतोष । (२) मनोरमता ।  
मनोश्रवा । सुंदरता । (३) पूर्णता ।

सौहं-संज्ञा स्त्री० [ प्रा० सोहन ] (१) एक प्रकार की रेती । (२)  
एक प्रकार का हथियार ।

क्रि० वि० [ हि० सोह ] सामने । आगे । उ०—कहि  
भावति है सु कदावत ही सुम, नाहीं तो ताकि सके हम  
सौहं । तेहि पड़े कदा चलिऐ कबहूँ जिहि कौटो लगी पग  
पीर दुलौहीं ।—केनव ।

सौहार्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मित्रता । स्नेह संबंध । सख्य ।  
दोस्ती । (२) सुहृत् । मित्र । दोस्त । (३) एक प्राचीन  
जनपद । (महाभारत)

वि० सुहृद या मित्र संबंधी ।

सौहृदय, सौहृदय्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौहार्द । मित्रता । दोस्ती ।

सौहृद-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौहार्द । मित्रता । बंधुता । दोस्ती ।

सौहोत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुहोत्र के अथवा अजमीठ और पुहमीठ  
नामक वैदिक ऋषि ।

सौह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुस देश का राजा ।

स्कंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का काले रंग का जानवर जो  
अमेरिका में पाया जाता है । इसका शरीर अगारह सप्  
और पूँछ बारह सप् लंबी होती है । गारदन से पूँछ तक दो  
सफेद धारियाँ होती हैं और माथे पर सफेद टीका होता है ।  
नाक लंबी, पर पतली तथा कान छोटे और गोल होते हैं ।  
बाल लंबे और मोटे होते हैं । इसके शरीर से ऐसी दुर्गंध  
आती है कि पास रहना नहीं जाता ।

स्कंद-वि० [ सं० ] जो उछले । उछलनेवाला । छल्ला मारनेवाला ।

स्कंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उछलनेवाली वस्तु । (२) निकलना ।  
घटना । गिरना । (३) विनाश । ध्वंस । (४) पारा । पारद ।  
(५) कातिकेय का एक नाम । देव-सेनापति ।

विशेष-ये शिव के पुत्र, देवताओं के सेनापति और युद्ध के  
देवता माने जाते हैं । पुराणों में इनके जन्म के संबंध में  
अनेक कथाएँ दी हैं । महावैवर्षेय पुराण में लिखा है कि शिव  
जी एक बार पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे थे । उस समय  
उनका वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा । पर पृथ्वी उसे सहन  
न कर सकी और उसने अति को दे दिया जिससे इनकी  
उत्पत्ति हुई । एक और पुराण में लिखा है कि शिव और  
पार्वती के विदार के समय अग्नि-देवता ब्राह्मण का वेष  
धारण करके मिश्रा भाँगने आए थे । शिव जी ने क्रोध में  
आकर अपना वीर्य उन्हें दे दिया । अग्नि-देवता वह वीर्य  
पी गए, पर सहन न कर सके; अतः उन्होंने उसे गंगा जी  
में वमन कर दिया । गंगा में वह वीर्य छः भागों में पड़ा  
था; पर पीछे से ये छः भाग मिलकर एक शरीर हो गए  
जिसमें छः मुख हुए । वहाँ से इन्हें छः कृत्तिकाएँ उदा लाई  
और ये छः मुँहों से उन छः कृत्तिकाओं के स्नान-दान करने  
लगे । इसी लिए ये पद्मानन और कातिकेय कहलाए । इसी  
प्रकार और भी कई कथाएँ हैं । ये बहुत सुन्दर रहे गए हैं  
और इनका वाहन मोर माना जाता है । इनके बख का  
नाम शक्ति है और इनकी कात्ति सपाप हुए सोने के समान  
कड़ी गई है । यह भी कथा है कि पार्वती जी ने  
एक बार कहा था कि जो कोई सच से पहले पृथ्वी  
की प्रदक्षिणा करके भावेगा, उसके साथ क्रुद्धि-सिद्धि का  
विवाह होगा । तद्नुसार स्कंद मोर पर चढ़कर पृथ्वी  
प्रदक्षिणा करने निकले । पर गणेश जी ने सोचा कि माता  
ही पृथ्वी का रूप है; अतः उन्होंने पार्वती जी की प्रदक्षिणा  
करके उन्हें प्रणाम किया । पार्वती ने उनके साथ क्रुद्धि-  
सिद्धि का विवाह कर दिया । अथ स्कंदे छोटकर आए, तब  
उन्होंने देखा कि गणेश का विवाह हो गया है; अतः उन्होंने



सदा कुंभारे: रत्न का प्रण किया। पर तंत्रों में इनके विवाहित होने का भी उल्लेख मिलता है और इनकी पत्नी देवसेना कही गई है जो पृथी देवी के नाम से पूजी जाती है। इन देवसेना के अन्न और वाहन आदि भी कार्तिकेय के अर्घों और वाहन के समान ही कहे गए हैं। स्कंद ने तारक और कौच आदि अनेक राक्षसों का वध किया था।

**पय्यां०**—महासेन। पदानन। सेनानी। अभिभू। विनाय। त्रिसिवाहन। पाण्मातुर। शक्तिपर। कुमार। भाग्येय। मयूरकेतु। भूवेश। कामजित्। काव। शिशु। शुभानन। अमोघ। रौद्र। प्रिय। चंद्रानन। पृथोमिय। रेवतीसुत। प्रभु। नेता। सुव्रत। ललित। गांग। स्वामी। द्वादश-लोचन। महाबाहु। युद्धरंग। रत्नसूनु। गौरीपुत्र। गुह।

(६) शिवजी का एक नाम। (७) पंडित। विद्वान्। (८) राजा। (९) शरीर। देह। (१०) बालकों के नीं प्राणघातक प्रहों या रोगों में से एक जिसमें बालक कभी-प्रकार और कभी डरकर रोता, नाखूनों और दंतों से अपना शरीर नोचता, जमीन खोदता, दंत पीसता, होंठ चबाता और चिड़हाता है। इसकी दोनो भँहें फटका और एक भँव बड़ा कर्ती है; मुँह टेढ़ा हो जाता है; दूध से अरुचि हो जाती है; शरीर दुबल और दिग्विह्व हो जाता है; श्वेतना शक्ति नहीं रहती; नींद नहीं आती; दस्त हुआ करते हैं और शरीर से मछली तथा रक्त की दुर्गंध आती है। वि० दे० "बालग्रह"। (११) नदी का किनारा।

**स्कंदक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो उछले। (२) वैनिक। सिपाही। (३) एक प्रकार का चंद।

**स्कंदगुप्त**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गुप्त वंश के एक प्रसिद्ध सम्राट का नाम जिनका समय ई० ४५० से ४६७ तक माना जाता है। ये गुप्तवंश के प्रतापी सम्राट समुद्रगुप्त के प्रपौत्र थे। इन्होंने पुत्रप्रतिग्रह, हर्णों तथा नागवंशियों को हराया था। इनका दूसरा नाम क्रमादित्य था।

**स्कंदगुरु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।

**स्कंदग्रह**—संज्ञा पुं० दे० "स्कंद" (१०)।

**स्कंदजननी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (स्कंद या कार्तिकेय की माता) पार्वती।

**स्कंदजित्**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (स्कंद को जीतनेवाले) विष्णु का एक नाम।

**स्कंदता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्कंद का भाव या धर्म।

**स्कंदतप**—संज्ञा पुं० दे० "स्कंदता"।

**स्कंदन**—संज्ञा पुं० [ सं० ]—[ वि० स्कंदित, स्कंदनीय ]—(१) कोठा साफ होना। रेचन। (२) सोखना। शोषण। (३) जाना। यमन। (४) निकलना। बहना। गिरना। स्थलन। पतन। (५) खल का जमना।

**स्कंदपुर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन नगर का नाम। (राज-तारंगिणी)

**स्कंदपुराण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अठारह पुराणों में से एक प्रसिद्ध पुराण का नाम; जिसके अंतर्गत सनखुमार संहिता, सुत-संहिता, दंकर-संहिता, वैष्णव-संहिता, ब्राह्म-संहिता और सौरसंहिता नामक छः संहिताएँ तथा महाेश्वर खंड, वैष्णव खंड, ब्रह्मखंड, काशीखंड, रेवाखंड, तापीखंड और प्रभास खंड नामक सान खंड तथा कितने ही माहात्म्य आदि माने जाते हैं। इनमें से काशीखंड ही सबसे अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध है।

**स्कंदफला**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रज्जु। खजूर का बूट।

**स्कंदमाता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्कंदमातृ (स्कंद की माता) दुर्गा।

**स्कंदरेश्वरतीर्थ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

**स्कंदविशाल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम।

**स्कंद पृथी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चैत सुदी ६ को कार्तिकेय के देवसेनापति पर पर अभिषिक्त होने की तिथि मानी जाती है। विशेष—बाराह पुराण में लिखा है कि इस दिन जो लोग व्रत रह कर स्कंद की पूजा करते हैं, उनकी मनस्कामना सिद्ध होती है।

(२) कार्तिक या अगहन सुदी छठ। गुहपृथी। (३) तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम जो स्कंद की आर्या कही गई है।

**स्कंदशक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पारा। पारव।

**विशेष**—कहते हैं कि शिवजी के शीर्ष से पारे की उत्पत्ति हुई है; इसी से इसे स्कंदशक या शिवशक कहते हैं।

**स्कंदापस्मार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बालग्रह या रोग जिसमें बालक अचेत हो जाता है और उसके मुँह से फेन निकलता करता है। चैतन्य होने पर यह द्रोण पर पटकता और बार बार जमाई लेता है। उसके शरीर से खून और पीप की सी दुर्गंध आती है।

**स्कंदापस्मारी**—वि० [ सं० ] स्कंदापस्मारि। स्कंदापस्मार ग्रह या रोग से आक्रांत। जिस पर स्कंदापस्मार ग्रह का आक्रमण हुआ हो।

**स्कंदित**—वि० [ सं० ] निकल हुआ। गिरा हुआ। सड़ा हुआ। स्थलित। पतित। उ०—स्कंदित भव हर धौरज यति। स्कंद नाम देवन दिव ताति।—पद्मकर।

**स्कंदी**—वि० [ सं० ] स्कंदित। (१) बहनेवाला। गिरनेवाला। पतन-शील। (२) उछलनेवाला। फटनेवाला।

**स्कंदोपनिषद्**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम।

**स्कंदोल**—वि० [ सं० ] टंढा। शीतल। सर्द। संज्ञा पुं० टंडक। शीतकृता।

**स्कंध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंधा। मोटा। (२) वृक्ष की देवी या सने की वह भाग जहाँ से ऊपर चक्कर डालियाँ निकलती

हैं। कौंड। प्रकांड। दंड। (३) डाल। शाला। (४) समूह। गरोह। सुंड। (५) सेना का अंग। व्यूह। (६) ग्रंथ का विभाग जिसमें कोई पूरा प्रसंग हो। खंड। जैसे,— भागवत का दशम स्कंध। (७) मार्ग। (८) शरीर। देह। (९) राजा। (१०) वह वस्तु जिसका राज्याभिषेक में उपयोग हो। जैसे,—जल, धन आदि। (११) मुनि। आचार्य। (१२) युद्ध। संग्राम। (१३) संधि। शचीनामा। (१४) कंकपक्षी। सफेद घील। (१५) एक नाग का नाम। (महाभारत) (१६) आर्य छंद का एक भेद। (१७) यौद्धों के अनुसार रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार ये पाँचो पदार्थ। यौद्ध लोग इन पाँचों स्कंधों के अतिरिक्त प्रत्येक आत्मा का स्वीकार नहीं करते। (१८) दर्शन-शास्त्र के अनुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पाँच विषय।

स्कंधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] आर्यागीत या संज्ञा नामक छंद का एक नाम।

स्कंधचाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] बहोनी जिस पर कर्दार बोझ होते हैं। विहंगिका।

स्कंधज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सलई। शकुकी वृक्ष। (२) बड़। बट वृक्ष।

स्कंधतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष।

स्कंधदेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंधा। मोढ़ा। (२) पेड़ का तना या भड़। (३) हाथी की गर्दन जिस पर महावत बैसता है। आसन।

स्कंधपरिनिर्वाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] यौद्धों के अनुसार शरीर के पाँचो स्कंधों का नाश। मृत्यु।

स्कंधपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम। (माकडेशपुराण)

स्कंधपीठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंधे की हड्डी। मोढ़ा।

स्कंधप्रदेश-संज्ञा पुं० दे० "स्कंधदेश"।

स्कंधफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नारियल का पेड़। नारिकेल वृक्ष। (२) गुलर। बहुबेर वृक्ष।

स्कंधबंधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौंफ। मखरिका।

स्कंधबीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह वनस्पति या वृक्ष जिसके स्कंध से ही शाखाएँ निकलकर जमीन तक पहुँचती, और वृक्ष का रूप धारण करती हैं। जैसे,—बड़, पाकर आदि।

स्कंधमण्डि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का जंतर या तावीज।

स्कंधमण्डक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंक पक्षी। सफेद घील।

स्कंधमार-संज्ञा पुं० [ सं० ] यौद्धों के चार मार्गों में से एक।

स्कंधरुद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़। बट वृक्ष।

स्कंधवह-संज्ञा पुं० दे० "स्कंधवाह"।

स्कंधवाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़े वस्तु जो कंधों के बल बोझ रीतिना हो। जैसे,—बैल, घोड़ा आदि।

स्कंधवाहक-वि० [ सं० ] कंधे पर बोझ उठानेवाला। जो कंधे पर बोझ उठाता हो।

संज्ञा पुं० दे० "स्कंधवाह"।

स्कंधशाखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वृक्ष की मुख्य शाखा या डाल।

स्कंधशिर-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंधशिरम् कंधे की हड्डी। मोढ़ा।

स्कंधशृंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] भैंस। महिष।

स्कंधा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) डाल। शाखा। (२) लता। बेल।

स्कंधास-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्त्तिकेय के अनुचर देवताओं का एक गण।

स्कंधासि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मोटे लकड़ों की भाग।

स्कंधावार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजा का ठेरा या सिविर।

कंध। (२) छावनी। सेनानिवास। उ०—विता से स्कंधावार में जाने की आज्ञा माँगी।—महाभारतसिंह। (३) राजा का निवासस्थान। राजधानी। (हेम) (४) सेना। कौज। (५) वह स्थान जहाँ बहुत से व्यापारी या धनी-मदिर डेरा डालकर ठहरे हैं।

स्कंधिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बैल। वृष।

स्कंधी-वि० [ सं० ] स्कंधिम् कंध से युक्त। तने से युक्त।

संज्ञा पुं० वृक्ष। पेड़।

स्कंधेमुख-वि० [ सं० ] जिसका मुख कंधे पर हो।

संज्ञा पुं० स्कंद के एक अनुचर का नाम।

स्कंधोमीवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वृष्टती नामक ऋणवृत्त का एक भेद।

स्कंधोपनेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामायण में होनेवाली एक प्रकार की संधि।

स्कंधय-वि० [ सं० ] (१) स्कंध या कंधे का। स्कंध संबंधी।

(२) स्कंध के समान।

स्कंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खंभा। स्तंभ। (२) विध को धारण करनेवाला, परमेश्वर।

स्कंधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] खंभा। स्तंभ।

स्कंधसर्जन-संज्ञा पुं० दे० "स्कंधसर्जनी"।

स्कंधसर्जनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बैलगाड़ी के जूए की घील या सँटी जिससे बैल इधर उधर नहीं हो सकते।

स्कंध-वि० [ सं० ] (१) गिरा हुआ। पतित। ध्युत। स्खलित। (जैसे, वीर्य) (२) गया हुआ। गत। (३) सूना। शुष्क।

स्कंधान-संज्ञा पुं० [ सं० ] दान्य। आवाज।

स्कंधाद-वि० [ सं० ] स्कंध-संबंधी। स्कंध का।

संज्ञा पुं० स्कंधपुराण।

स्कंधादायन-संज्ञा पुं० दे० "स्कंधादायन्य"।

स्कंधादायन्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंध के गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

स्कंधी-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंधिम् स्कंध के सिद्ध या उतकी शाखा के अनुयायी।

स्काखर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो स्कूल में पढ़ता हो। छात्र।

निर्गामी । (२) यह जिसने बहुत विद्याप्ययन किया हो । उद्यम कोटि का विद्वान् व्यक्ति । पंडित । आलिप्त ।

स्कालरशिप-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) यह वृत्ति या निर्धारित धन जो विद्यार्थी को किसी स्कूल या कालेज में शिक्षा प्राप्त करने के लिये नियमित रूप से सहायतार्थ दिया जाय । छात्रवृत्ति । पजीकृत । (२) विद्वत्ता । पालिष्य ।

स्क्रीम-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] किसी बड़े काम को करने का विचार या आयोजन । भावी कार्यों के संबंध में व्यवस्थित विचार । योजना ।

स्कूल-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) वह विद्यालय जहाँ किसी भाषा, विषय या कला आदि की शिक्षा दी जाती हो । (२) वह विद्यालय जहाँ एंग्लिस या मैट्रिकुलेशन तक की पढ़ाई होती हो । (३) विद्यालय । मदरसा ।

मुहा०—स्कूल से निकलना = स्कूल की पढ़ाई समाप्त करके स्कूल छोड़ना । जैसे,—वह हाल में ही स्कूल से निकलकर कालेज में मर्ती हुआ है ।

स्कूलमास्टर-संज्ञा पुं० [ अं० ] स्कूल या अँगरेजी विद्यालय में पढ़ानेवाला । शिक्षक ।

स्कूली-वि० [ अं० स्कूल + ई (अण०) ] (१) स्कूल का । स्कूल संबंधी । जैसे,—स्कूली पढ़ाई, स्कूली किताबें । (२) स्कूल में पढ़नेवाला । जैसे,—स्कूली लड़का ।

स्कॉटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पक्षी ।

स्कू-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह कील या काँटा जिसके मुकीले भाँधे भाग पर चक्रदार गद्दारियाँ बनी होती हैं और जो ठोंक कर नहीं, बरिक घुमाकर जड़ा जाता है । पेंच ।

क्रि० प्र०—कसना ।—खोलना ।—जड़ना ।—निकालना ।

स्वधर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फाड़ना । चीरना । टुकड़े टुकड़े करना । विदारण । (२) हिंसा । हत्या । वध । (३) सताना । बर्षादन । (४) स्थिरता । स्थैर्य ।

स्वल्पित-वि० [ सं० ] (१) गिरा हुआ । निकला हुआ । पतित । घ्युत । (२) फिसला हुआ । सरका हुआ । (३) लड़खड़ाया हुआ । विचलित । (४) चूका हुआ । उ०—वे अपने को जितना प्रातिशोध, स्वल्पित-बुद्धि या सचूक समझते हैं ।—महावीरप्रसाद ।

संज्ञा पुं० (१) मूल । चूक । ध्राति । (२) धर्मयुद्ध के नियमों को छोड़कर, युद्ध में छल कपट या घात करना ।

स्टॉप-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) एक प्रकार का सरकारी कागज जिस पर भर्तीदाया लिखकर अदालत में दाखिल किया जाता है या जिस पर किसी मंत्रार की पदवी लिखा पढ़ी की जाती है । यह निम्न मिथ मूल्यों का होता है; और विभिन्न कार्यों के लिये विभिन्न मूल्य का व्ययहत होता है । ऐसे कागज पर

की हुई लिखा पढ़ी बिलकुल पक्की समझी जाती है । (२) डाक का टिकट । (३) मोहर । छाप ।

स्टारल-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] (१) टंग । तरीका । (२) देवी । पद्धति । (३) लेखन-शैली ।

स्टॉक-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) बिक्री या बेचने का माल । (दुकान-दार) जैसे,—उसकी दुकान में स्टॉक कम है । (२) वह धन या पूँजी जो व्यापारी लोग या उनका कोई सख्त किसी काम में लगाता हो । किसी सारे के काम में लगाई हुई पूँजी । (३) सरकारी कागजों में व्याज पर लगाया हुआ धन । सरकारी कर्ज की हुंटी । (४) रसद । सामान । (५) वह स्थान जहाँ बिक्री का सामान जमा हो । भंडार ।

स्टॉक एक्सचेंज-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) वह मकान, स्थान या बाड़ा जहाँ स्टॉक या शेयर खरीदे और बेचे जाते हैं । (२) स्टॉक का काम करनेवालों या दलालों की संघटित समा ।

स्टॉक प्रोकर-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह दलाल जो दूसरों के लिये स्टॉक या शेयरों की खरीद, बिक्री का काम करता हो ।

स्टिचिंग मशीन-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] एक प्रकार की किताब सीने की कल जिसमें लोहे के तारों से सिलाई होती है ।

स्टीम-संज्ञा पुं० [ अं० ] भाप । जलवाष्प ।

मुहा०—स्टीम भरना = बोर दिलाना । उत्साहित करना । उत्तेजन देना ।

स्टीम इंजिन-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह इंजिन जो खोलते हुए पानी में से निकलनेवाली भाप के जोर से चलता हो । जैसे,—रेल का इंजिन, जहाज का इंजिन ।

स्टीमर-संज्ञा पुं० [ अं० ] स्टीम या भाप के जोर से चलनेवाला जहाज । धूमपोत ।

स्टूल-संज्ञा पुं० [ अं० ] तीन या चार पायों की बिना दासने की छोटी ऊँची चौकी जिस पर एक ही आदमी बैठ सकता है । तिपाई । टूल ।

स्टेज-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) नाट्य-मंदिर या थियेटर के अंदर जमीन से कोई तीन हाथ ऊँचा बना हुआ मंच जिस पर नाटक खेला जाता है । रंगमंच । रंगभूमि । रंगपीठ । (२) मंच ।

स्टेज मनेजर-संज्ञा पुं० [ अं० ] रंगमंच का प्रबंधक या व्यवस्थापक ।

स्टेट-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) किसी देश की वह समस्त प्रजा या समाज जो अपना शासन आप ही करता हो । सम्य या स्वतंत्र समाज या राष्ट्र । (२) वह शक्ति जिसके द्वारा कोई सरकार किसी देश का शासन करता हो । (३) ऐसे राष्ट्रों में से कोई एक जिनका कोई सम्मिलित संघ हो; और जो व्यक्तिगत स्वतंत्र होने पर भी किसी एक; ब्रह्मना प्रतिक्रिया

सरकार से संबद्ध हों। जैसे,—अमेरिका के यूनाइटेड स्टेट्स। (७) आधुनिक भारत का कोई स्वतंत्र देशी राज्य। जैसे,—जयपुर एक बहुत बड़ा स्टेट है। संज्ञा पुं० [ सं० एस्टेट ] (१) बड़ी धनीदारी। (२) स्थावर और जंगम संपत्ति। मनकूला और गिरमनकूला जायदाद। जैसे,—ये पाँच लाख रुपयों का स्टेट छोड़कर मरे थे।

स्टेशन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह स्थान जहाँ निर्दिष्ट समय पर नियमित रूप से रेलगाड़ियाँ उतरा करती हैं। रेलगाड़ियों के उतरने और मुसाफिरों के उन पर उतरने चढ़ने के लिये बनी हुई जगह। (२) वह स्थान जहाँ कुछ लोगों की, रहने के लिये नियुक्ति हो। वह जगह जहाँ किसी विशिष्ट कार्य के लिये कुछ लोगों की नियुक्ति और निवास हो। जैसे,— पुलिस स्टेशन।

स्टोइक—संज्ञा पुं० [ सं० ] जीमो नामक एक यूनानी विद्वान् का खड़ाया हुआ संप्रदाय। इस संप्रदायवालों का सिद्धांत है कि मनुष्य को विषय-सुखों का त्याग करके बहुत संयम-पूर्वक रहना चाहिए।

स्ट्रैट—संज्ञा पुं० [ सं० ] जलसंक्रमरूप-भण्ड।

स्टर्लिंग—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का चांदा जिस पर बमशा मढ़ा होता था।

स्टैंब—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ऐसा पीया जिसकी एक जड़ से कई पीथ निकलें और जिसमें कवी लकड़ी या बंडल न हो। गुम। (२) घास की आँटी। (३) रोहिदा। रोहतक वृक्ष। (४) एक पर्वत का नाम।

स्टैंबक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गुच्छ। (२) नकलिकनी। हाथक वृक्ष। छिन्ननी।

स्टैंबकरि—संज्ञा पुं० [ सं० ] घान।

स्टैंबकारि—वि० [ सं० ] गुच्छे बनानेवाला।

स्टैंबघन—संज्ञा पुं० [ सं० ] दली जिससे चांस आदि काटते हैं। हँसिया।

स्टैंबघात—संज्ञा पुं० दे० "स्तंबघन"।

स्टैंबघ्न—संज्ञा पुं० दे० "स्तंबघन"।

स्टैंबघुर—संज्ञा पुं० [ सं० ] सात्रक्षिपुर का एक नाम।

स्टैंपमित्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] जरिता के एक पुत्र का नाम। (महाभारत)

स्टैंबहनन—संज्ञा पुं० [ सं० ] घास आदि खोदने की सुरपी।

स्टैंबी—संज्ञा पुं० [ सं० स्तम्भ ] घास खोदने की सुरपी।

स्टैंबेरम—संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथी। हस्ति।

स्टैंबेरमासुर—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अक्षुर का नाम। गंत्रासुर।

स्टैंम—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खंभा। धंभा। घूनी। (२) वेद का रत्न। सफरुंध। (३) साहित्यपूर्ण के अनुसार एक प्रकार का साविक भाव। किसी कारण से संपूर्ण भंगों की गति का

अवरोध। जड़ता। अंचलता। उ०—देखा देवी भंड, छुट तय तें संकुच गई, मिटि कुल फानि, कैतो धुँपुट को करियो। छागी टककी, उर उदी भकभकी, गति थकी, मनि छकी; देसो गेह को उपरियो। चित्र कैसे छिले हीज ठाढ़े रहे; "काशिराम" नाहीं परवाह छाए छाए करो छरियो। बंसी को बरियो नटनागर विसरि गयो, नागरि विसरि गई गागरि को भरियो।—रसकुसुमाकर। (४) प्रतिबंध। रुकावट। (५) एक प्रकार का तांत्रिक प्रयोग जिससे किसी की चेष्टा या दाकि को रोकते हैं। (६) काव्य में साविक भावों में से एक। (७) एक ऋषि का नाम। (विष्णुपुराण) (८) अविमान। दंभ। (९) रोग आदि के कारण होनेवाली बेहोशी।

स्तंभक—वि० [ सं० ] (१) रोकनेवाला। रोपक। (२) कटन करनेवाला। (३) धीर्य रोकनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) खंभा। धंभा। (२) तिव का एक नाम।

स्तंभकर—वि० [ सं० ] (१) रोकनेवाला। रोपक। (२) जपता करनेवाला।

संज्ञा पुं० घेरा। वेष्टन।

स्तंभकी—संज्ञा पुं० [ सं० स्तम्भिक ] प्राचीन काल का एक प्रकार का चांदा जिस पर बमदा मढ़ा होता था।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक देवी का नाम।

स्तंभता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्तंभ का भाव। (२) जड़ता।

स्तंभतीर्थ—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन स्थान का नाम जो आन कल संगल के नाम से प्रसिद्ध है। किसी समय यह एक प्रसिद्ध तीर्थ और व्यापार का बहुत बड़ा केंद्र था।

स्तंभन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रुकावट। अवरोध। निवारण। (२) विरोधतः धीर्य आदि के स्खलन में बाधा या विलंब। (३) यह धीर्य जिससे धीर्य का स्वरूपन विलंब से हो। धीर्यपात रोकनेवाली दवा।

विरोध—इस अर्थ में लोग प्रम से इस शब्द का, स्तंभक के स्थान पर प्रयोग करते हैं।

(३) सदा। टेकान। टेक। (४) वह या निषेध करना। जड़ीकर। (५) रक्त के प्रवाह या गति का रोकना। (६) एक प्रकार का तांत्रिक प्रयोग जिससे किसी की चेष्टा या दाकि को रोकते हैं। (७) वह धीर्य जो स्त्री, उंबी और कसैली हो, जिसमें पाचन-दाकि कम हो और जो वायु करनेवाली हो। कच्च। मलावरोधक। (८) कामदेव के पाँच वाणों में से एक। (शिव चार वाण्ये हैं—उन्मादन, शोषण, हासन और सम्मोहन।)

स्तंभनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का इद्रजाल या जादू।

स्तंभनीय—वि० [ सं० ] स्तंभन के योग्य।

स्तंभवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राण को जहाँ का तहाँ, रोक देना, जो प्राणायाम का एक अंग है।

स्तंभि-संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र। सागर।

स्तंभिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चौकी या आसन का पाया।

(२) छोटा खंभा। खंभिया।

स्तंभित-वि० [ सं० ] (१) जो अग्र या अचल हो गया हो।

बहीमूत। निश्चल। निस्तम्ब। सुप्त। (२) उदरा या

उदराया हुआ। स्थित। (३) रुका या रोका हुआ। अवस्त।

निवारित।

स्तंभिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] योग के अनुसार पाँच धारणाओं में से एक।

स्तंभी-वि० [ सं० स्तम्भिन् ] (१) स्तंभ या खंभों से युक्त। (२)

रोकनेवाला। दाम्भिक।

संज्ञा पुं० समुद्र।

स्तनंधय-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० स्तनंधया, स्तनंधयी ] (१) दूध

पीता बच्चा। स्तनपायी शिशु। (२) बछड़ा। बरस।

वि० दूधपीता। स्तनपान करनेवाला।

स्तन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्त्रियों या मादा पशुओं की छाती

जिसमें दूध रहता है। जैसे,—भी का स्तन।

मुद्गा—स्तन पिलाना = स्तन दुँह में लगाकर उसका दूध पिलाना।

स्तन पीना = स्तन दुँह में लगाकर उसका दूध पीना।

स्तनकील-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार स्त्रियों की छाती में

होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा।

स्तनकुंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम। (महाभारत)

स्तनचूचुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन का अग्र भाग। कुच के

ऊपर की छुँडी। चूची। देवनी।

स्तनध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) (शेर की) दहाड़। गरज। गर्जन।

(२) धोर या भीषण नाद। गद्गदवाहट।

स्तनधु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (शेर की) दहाड़। गरज।

स्तनधात्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (छाती का) दूध पिलानेवाली।

स्तनन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ध्वनि। नाद। शब्द। भावात्। (२)

बादलों की गद्गदवाहट। मेघगर्जन। (३) कराह। आह।

आर्चस्वनि।

स्तनप-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० स्तनपा, स्तनपायिका ] दूध पीता

बच्चा। शिशु।

वि० स्तन पीनेवाला।

स्तनपान-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन में का दूध पीना। स्तन्यपान।

स्तनपायिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दूध पीती बच्ची। बहूत छोटी

छड़की। दुग्ध-पीय्या।

स्तनपायी-वि० [ सं० स्तनपायिन् ] जो माता के स्तन से दूध

पीता हो।

स्तनपोषिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन

जनपद जिसे स्तनपायिक, स्तनपोषिक और स्तनपोषिक भी कहते थे।

स्तनयाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन जनपद। (विष्णुपुराण)

(२) इस देश का निवासी।

स्तनमर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्तूल या पुष्ट स्तन। बड़ी और

भरी छाती। (२) वह पुष्ट निसका स्तन या छाती की के

समान हो।

स्तनभच-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रति बंधन का संयोग

आसन।

वि० स्तन से उत्पन्न।

स्तनमध्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] दोनों स्तनों के बीच का स्थान।

स्तनमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन या कुच का अग्र भाग।

चूचुक। चूची।

स्तनयिरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेघ गर्जन। बादलों की गद्गद

वाहट। (२) मेघ। बादल। (३) विद्युत्। बिजली। (४)

मोथा। मुस्तक। (५) शय्य। सोता। (६) रोग। बीमारी।

स्तनरोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] गर्भवती और प्रसूता स्त्रियों के स्तनों

में होनेवाला एक प्रकार का रोग।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह रोग वायु, पित्त और कफ के

कृतित होने से होता है। इसमें स्तन का मांस और रक्त

दूषित हो जाता है। इसके पाँच भेद हैं—नातन, पित्तन,

कफन, स्रष्टिपातन और आर्गुज।

स्तनरोहित-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन या कुच के अग्र भाग के ऊपर

दोनों ओर का अंग जो सुश्रुत के अनुसार परिमाण में दो

अंगुल होता है।

स्तनविद्रधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन पर होनेवाला फोड़ा। यम्ली।

स्तनधुँत-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन या कुच का अग्र भाग। चूचुक।

चूची।

स्तनशिला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्तन का अग्र भाग। चूचुक।

देवनी। चूची।

स्तनशोथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रोग जिसमें स्तन सूँ

जाते हैं।

स्तनांतर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हृदय। दिल। (२) स्तन या

छाती पर का एक चिह्न जो वैद्यकचूचक समझा जाता है।

स्तनभुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] वक्ष प्राणी जो अपने बच्चों को स्तन

से दूध पिलाता हो।

स्तनाभोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन की पूर्णता या पुष्टता।

स्तम्भित-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेघ गर्जन। बादलों की गद्गद

(२) ध्वनि। शब्द। भावात्। (३) करतल ध्वनि। ताली

पजाने का शब्द।

वि० (१) ध्वनित। निनादित। तालित। (२) गर्जन किया

हुआ। गमित।

स्तनितकुमार-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के देवताओं का एक नाम ।  
 इन्हें शुक्लाधीश भी कहते हैं ।  
 स्तनिकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैंप का पद । विरूकत वृक्ष ।  
 स्तनी-वि० [ सं० ] स्तनियुक्त । जिसके स्तन हो । स्तनयुक्त ।  
 स्तनवाला ।  
 स्तन्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] दूध । दुग्ध ।  
 वि० जो स्तन में हो ।  
 स्तन्यग्रनन-वि० [ सं० ] दूध दस्य कराने या बदानेवाला ।  
 स्तन्यदा-वि० स्त्री० [ सं० ] जिसके स्तनों में से दूध निकलता हो ।  
 दूध देनेवाली ।  
 स्तन्यदान-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन से दूध पिलाना ।  
 स्तन्यप-वि० [ सं० ] [ स्त्री० ] स्तन्यप । स्तन या दूध पीनेवाला ।  
 संज्ञा पुं० दूध पीता बच्चा । शिशु ।  
 स्तन्यपान-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन में का दूध पीना ।  
 स्तन्यपायी-वि० [ सं० ] स्तन्यपान करने वाला । जो स्तन से दूध पीता हो ।  
 स्तन पीनेवाला । दूध पीना ।  
 स्तन्यरोमा-संज्ञा पुं० [ सं० ] अश्वत्थ माता का दूध पीने से होनेवाला रोग ।  
 स्तन्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कलमी शाक । कलमी साग ।  
 स्तन्य-वि० [ सं० ] (१) जो जड़ या भवज हो गया हो ।  
 अजीव्य । स्तमित । स्पंदनहीन । निश्चेत । सुख । (२)  
 मज्जती से बढ़ाया हुआ । (३) दृढ़ । स्थिर । (४) मंद ।  
 धीमा । सुस्त । (५) दुर्गमही । हठी । (६) अमिमानी ।  
 प्रमंही ।  
 संज्ञा पुं० बंसी के छः दोषों में से एक जिसमें उसका स्वर कुछ धीमा होता है ।  
 स्तन्यदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्तन्य का भाव । जड़ता । स्पंदन-  
 हीनता । (२) स्थिरता । दृढ़ता । (३) बढ़ापन । कथिरता ।  
 स्तन्यपाद-वि० [ सं० ] जिसके पैर जड़ गये हो । जड़ ।  
 लैगना । पंगु ।  
 स्तन्यपादा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्तन्यपाद का भाव । जड़ता ।  
 पंगुता । लैगनापन ।  
 स्तन्यप्रति-वि० [ सं० ] मंद बुद्धि । ऊँट जेहन ।  
 स्तन्यमेद-वि० [ सं० ] जिसकी पुरपंद्रिय में जड़ता आ गई हो ।  
 ह्रीव । मूर्खक ।  
 स्तन्यरोमा-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तन्यरोमा । सुभ्र । सुकर ।  
 वि० जिसके रोम या रोंगे रंटे हो गये हो । स्तमित ।  
 स्तन्यसंसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राजस का नाम ।  
 स्तन-संज्ञा पुं० [ सं० ] बकरा ।  
 स्तर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सह । परत । तबक । धर । (२)  
 सेज । प्राय्या । तप्य । (३) भ्रूगर्भ-शाक के अनुसार भूमि

आदि का एक प्रकार का विभाग जो उसकी मित्र मित्र  
 कारों में बनी हुई वहाँ के आहार पर होता है ।  
 स्तरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फैलाने या बिखेरने की क्रिया ।  
 (२) अक्षरकारी । पलस्तर । (३) बिछाना । बिस्तर ।  
 स्तरणीय-वि० [ सं० ] (१) फैलाने या बिखेरने योग्य । (२)  
 बिछाने के योग्य ।  
 स्तरिमा-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तरिगन् । सेज । प्राय्या । तप्य ।  
 स्तरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भूषा । भूष ।  
 स्तरीमा-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तरीगन् । सेज । प्राय्या ।  
 स्तरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] दात्र । पैरी ।  
 स्तर्य-वि० [ सं० ] (१) फैलाने या बिखेरने योग्य । (२) बिछाने  
 योग्य । स्तरणीय ।  
 स्तव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी देवता का उद्दीयद् स्वरूप-  
 कथन या गुण-गान । स्तुति । स्तोत्र । जैसे,—स्तवस्तव,  
 दुर्गास्तव । (२) ईश-प्रार्थना ।  
 स्तवक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फूलों का गुच्छा । गुच्छक ।  
 गुच्छस्ता । (२) समूह । ढेर । (३) पुस्तक का कोई अध्याय  
 या परिच्छेद । जैसे,—प्रथम स्तवक, द्वितीय-स्तवक । (४)  
 मोर की पूँछ का पंख । (५) स्तव । स्तोत्र । (६) वह जो  
 किसी की स्तुति या स्तव करता हो । गुणधीर्जन करनेवाला ।  
 स्तव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तुति । स्तव । स्तोत्र ।  
 स्तव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तुति करने की क्रिया । गुण धीर्जन ।  
 स्तव । स्तुति ।  
 स्तवनीय-वि० [ सं० ] स्तव या स्तुति करने के योग्य । प्रशंसा  
 के योग्य ।  
 स्तवरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] घेरा । वेष्टन ।  
 स्तवि-संज्ञा पुं० [ सं० ] साम गान करनेवाला । साम गायक ।  
 स्तवितव्य-वि० [ सं० ] स्तव के योग्य । प्रशंसा के योग्य ।  
 स्तविता-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तवियुक्त । स्तव या स्तुति करनेवाला ।  
 गुण गान करनेवाला ।  
 स्तव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर का एक नाम ।  
 स्तव्य-वि० [ सं० ] स्तव या स्तुति के योग्य । स्तवनीय ।  
 स्तापु-संज्ञा पुं० [ सं० ] चौर ।  
 स्तारा-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पौधा ।  
 स्ताप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्तव । स्तुति । गुण गान । (२)  
 स्तव करनेवाला । गुण गान करनेवाला ।  
 स्तायक-वि० [ सं० ] (१) स्तव या स्तुति करनेवाला । गुण-  
 धीर्जन करनेवाला । प्रशंसक । (२) बंदीजन ।  
 स्तावर-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की बेल ।  
 स्ताया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक अक्षर का नाम । (आयसनेयी-  
 संहिता)  
 स्ताव्य-वि० [ सं० ] स्तव के योग्य । प्रशंसा के योग्य ।

स्तिगोमूरी-संज्ञा पुं० [ ? ] जहाम का पाल और उसकी रस्ती । (छाया)

स्तिपा-संज्ञा पुं० [ सं० ] आश्रितों की रक्षा करनेवाला । गृहपालक ।

स्तिभि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कूलों का गुच्छ । गुच्छक । स्तवक । (२) समुद्र । (३) भयरोध । प्रतिबंध ।

स्तिमिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुच्छा । स्तवक ।

स्तिमित-वि० [ सं० ] (१) भीगा हुआ । तर । नम । आर्द्र । (२) स्थिर । निश्चल । (३) शांत । (४) प्रसन्न । संतुष्ट । संज्ञा पुं० (१) नमी । आर्द्रता । (२) स्थिरता । निश्चलता ।

स्तिपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्थिर जल ।

स्तीम-वि० [ सं० ] सुस्त । अलस । धीमा ।

स्तीमित-वि० दे० "स्तिमित" ।

स्तीर्य-वि० [ सं० ] कौलाया हुआ । विखेरा हुआ । छितराया हुआ । विलुप्त । विकीर्ण । संज्ञा पुं० शिव के एक अशुचर का नाम । (शिवपुराण)

स्तीर्वि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अशुच्य । (२) आकार । (३) जल । (४) स्तम्भ । (५) शरीर । (६) मय । (७) वृण । वासपात । (८) इंद्र ।

स्तुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अपरय । संतान ।

स्तुष्टि-संज्ञा पुं० [ सं० ] भरवृक्ष नामक पक्षी । मरद्धान पक्षी ।

स्तुत-वि० [ सं० ] (१) जिसकी स्तुति या प्रार्थना की गई हो । कीर्तित । प्रशंसित । (२) पूजा हुआ । बहा हुआ । संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम । (२) स्तव । स्तुति । प्रशंसा ।

स्तुतस्तोम-वि० [ सं० ] जिसका गुण-गान या प्रार्थना की गई हो । कीर्तित । प्रशंसित ।

स्तुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गुणकीर्तन । स्तव । प्रशंसा । शरीर । बड़ाई ।

स्ति० प्र०—करना । (२) दुर्गा का एक नाम । (देवीपुराण) (३) प्रतिद्वंद्वों की परी का नाम । (भागवत)

संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम ।

स्तुतिगीतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रशंसा का गीत ।

स्तुतिपाठक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंदी जिसका काम प्राचीन काल में राजाओं की स्तुति या यज्ञोपनिषद् करना था । स्तुतिपाठ करनेवाला । चारण । भाट । मागध । शूत ।

स्तुतिपाद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रशंसात्मक कथन । यज्ञोपनिषद् । गुणगान ।

स्तुतिपाद्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्तुति या प्रशंसा करनेवाला । प्रशंसक । (२) सुशामदी । पाठकर । उ०—धनेधर भी स्तुतिपाद्क को यथाभवाद्क जानकर उसी से वार्यालाप करता है—गदाधरसिंह ।

स्तुतिव्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो स्तुति करे । स्तुतिपाठक ।

स्तुत्य-वि० [ सं० ] स्तुति या प्रशंसा के योग्य । प्रशंसनीय ।

स्तुत्यव्रत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हिरण्यरेता के एक पुत्र का नाम । (२) एक वर्ष का नाम जिसके अधिपत्या देवता स्तुत्यव्रत माने जाते हैं । (भागवत)

स्तुर्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नुलिका नामक गंध द्रव्य । मन्डी । पवारी । (२) गोपीचंद्रन । सौराष्ट्री ।

स्तुनक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बकरा ।

स्तुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार की भग्नि । (२) बकरा ।

स्तुभूयन-वि० [ सं० ] स्तुति करनेवाला ।

स्तुय-संज्ञा पुं० [ सं० ] घोड़े के तिर का एक अंग ।

स्तुधत्-वि० [ सं० ] स्तुति करनेवाला । संज्ञा पुं० (१) स्ताधक । स्तुति करनेवाला । (२) उपासक । पूजक ।

स्तुवि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्तुति करनेवाला । स्तावक । (२) उपासक । पूजक । (३) यह ।

स्तुवेय्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र ।

स्तुवेय्य-वि० [ सं० ] (१) स्तुति करने योग्य । स्तुत्य । (२) श्रेष्ठ । उत्तम । अच्छा ।

स्तूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मिट्टी आदि का ढेर । भयला । रासि । (२) ऊँचा दृढ़ या टीला । (३) मिट्टी, ईंट, पथर आदि का बना ऊँचा दृढ़ या टीला, जिसके नीचे भगवान् बुद्ध या किसी बौद्ध महात्मा की मूर्ति, दाँत, केसू या इसी प्रकार के अन्य स्मृति-चिह्न संरक्षित हों । (४) केसुगुच्छ । छट । (५) मकाम में कांसुस से बड़ा शहीर । जोता ।

स्तुत-वि० [ सं० ] (१) ढका हुआ । आच्छादित । (२) ढका हुआ । विलुप्त ।

स्तुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ढकने की क्रिया । आच्छादन ।

स्तेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चोर । चौर । तस्कर । (२) एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य । चोर नामक गंध द्रव्य । (३) चोरी करना । चुराना ।

स्तेम-संज्ञा पुं० [ सं० ] नमी । गीलापन । आर्द्रता ।

स्तेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] चोरी । चौर्य ।

वि० जो चोरी गया हो या चुराया जा सके ।

स्तेयकृत-वि० [ सं० ] चोरी करनेवाला । चोर ।

स्तेयफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेजबल का पेड़ ।

स्तेयी-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तेयिन् । (१) चोर । चौर । (२) मूढ । धनसूचिका । चूहा । (३) सुधार ।

स्तेन-संज्ञा पुं० दे० "स्तेन्य" ।

स्तेन्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चोर का काम । चोरी । (२) चोर । तस्कर ।

स्तोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शूद्र । विदु । (२) परीदा । चातक ।

स्तोत्रक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) परीक्षा । वातक । (२) बडनाग विष । बरसनाग विष ।

स्तोत्रकथ्य-वि० [ सं० ] स्तव या स्तुति के योग्य । स्तुत्य ।

स्तोता-वि० [ सं० स्तोत्र ] स्तुति करनेवाला । उपासना करनेवाला । प्रार्थना करनेवाला ।

संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम ।

स्तोत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी देवता का छंदोबद्ध स्वरूप कथन या गुणकीर्तन । स्तव । स्तुति । जैसे,—सहिष्णु स्तोत्र ।

स्तोत्रिय, स्तोत्रीय-वि० [ सं० ] स्तोत्र संबंधी । स्तोत्र का ।

स्तोत्रमं—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सामवेद का एक भंग । (२) जड़ या निरुच्यैव करना । संतमन । (३) तिरस्कार करना । अपेक्षा करना । भवशा करना ।

स्तोमित-वि० [ सं० ] (१) जिसकी स्तुति की गई हो । स्तुति किया हुआ । (२) जिसका जय जयकार किया गया हो ।

स्तोम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्तुति । प्रार्थना । (२) यज्ञ । (३) एक विशेष प्रकार का यज्ञ । (४) यज्ञकारी । यज्ञ करनेवाला । (५) समूह । राशि । (६) दस धन्वतर अर्थात् धार्लीस हाथ की एक माप । (७) मस्तक । सिर । (८) घन । दौलत । (९) अनाज । दास्य । (१०) एक प्रकार की हूट । (११) छोड़े की नोकवाला ढंहा या सौदा । वि० । देवा । पर्व ।

स्तोमायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ में बलि दिया जानेवाला पशु ।

स्तोमीय-वि० [ सं० ] स्तोम संबंधी । स्तोम का ।

स्तोम्य-वि० [ सं० ] स्तुति के योग्य । प्रार्थना के योग्य । स्तुत्य ।

स्तोपिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अस्थि, नख, केश आदि रचुति बिद्ध जो स्तव के शीघे संरक्षित हों । युद्ध द्रव्य । (२) वह मार्गनी जो जैन धरति अपने पास रखते हैं ।

स्तोम-वि० [ सं० ] स्तोम संबंधी । स्तोम का ।

स्तोभिक-वि० [ सं० ] स्तोम युक्त । जिसमें स्तोम हो ।

स्तयान-वि० [ सं० ] (१) घना । कड़ा । कठोर । (२) चिकना । चिन्ध । (३) शत्रु या ध्वनि करनेवाला ।

संज्ञा पुं० (१) घनापन । घनाव । (२) प्रतिघ्वनि । आवाज ।

(३) आलस्य । अकर्मण्यता । (४) सत्कर्म में चित्त का न धराना । (५) अशुत ।

स्तयानरि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह निद्रा जिसमें वायुदेव का आधा बल होता है । जिसे यह निद्रा शोधी है, वह उठ कर कुछ काम करके फिर लेट जाता है और इस प्रकार वास्तव में वह सोता हुआ काम करता है, पर काम की जेहे सुष नहीं रहती । (जैन)

स्तयापन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जन-समूह । भीड़ । मत्तमा ।

स्त्येन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घोर । डाह । (२) अथवा ।

स्त्येन-संज्ञा पुं० [ सं० ] घोर । डाह ।

वि० घोड़ा । कम । अथवा ।

स्त्रियमन्य-वि० [ सं० ] जो अपने को स्त्री माने या समझे ।

स्त्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नारी । औरत । जैसे,—कमालोत्तम

स्त्री जाति का आभूषण है । (२) पत्नी । जोरु । जैसे,—वह

अपनी स्त्री और बाल-पत्नी के साथ भाया है । (३) माता ।

जैसे,—स्त्री-पशु । (४) सफेद ब्यूटी । (५) प्रियंगु लता ।

(६) एक वृक्ष का नाम जिसमें दो गुरु होते हैं । उ०—

गंगा धावो । कामा पावो । इसका वृक्षरा नाम कामा है ।

संज्ञा स्त्री० दे० "हस्तिरी" ।

स्त्रीकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] संभोग । मैथुन ।

स्त्रीकाम-वि० [ सं० ] स्त्री की कामना या इच्छा करनेवाला ।

जिसे औरत की प्रवादित हो ।

स्त्रीकोश-संज्ञा पुं० [ सं० ] खड्ड । कटार ।

स्त्रीक्षीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्री के स्तन का दूध ।

स्त्रीगमन-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्री-संसर्ग । संभोग । मैथुन ।

स्त्रीगुरु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो दीक्षा या मंत्र देती हो ।

दीक्षा देनेवाली स्त्री ।

विशेष—संत्रों में सदाचारिणी और माछ पारंगत स्त्रियों से

दीक्षा या मंत्र लेने का विधान है ।

स्त्रीग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष के अनुसार शुभ, चंद्र और

शुक्र ग्रह ।

विशेष—ज्योतिष में पुरुष, स्त्री और स्त्रीय तीन प्रकार के ग्रह

माने गए हैं जिनमें शुभ, चंद्र और शुक्र स्त्री-ग्रह हैं । वातबंध

के पंचम स्थान पर इन ग्रहों की स्थिति या दृष्टि रहने से

स्त्री संतान होती है, और छमा आदि में रहने से संतान

स्त्री-स्वभाववाची होती है ।

स्त्रीघोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रकृष्ट । प्रमात । मातृशब्द । तद्भा ।

स्त्रीघ्न-वि० [ सं० ] स्त्री का पत्नी की हत्या करनेवाला । स्त्री घातक ।

स्त्रीचंचल-वि० [ सं० ] कामी । छंपट ।

स्त्रीचिचहारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्रीचिचहारि । सहिजन ।

शोभाजन ।

वि० स्त्री का चिच हरण करनेवाला ।

स्त्रीचिह्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] योनि । भग, स्तन आदि जो स्त्री होने

के चिह्न हैं ।

स्त्रीचौर-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामी । छंपट । व्यभिचारी ।

स्त्रीजननी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जो केवल कन्या उत्पन्न करे ।

(मनु)

स्त्रीजित्-वि० [ सं० ] स्त्री या पत्नी के बश में रहनेवाला । जोरु

का गुलाम ।

स्त्रीता-संज्ञा स्त्री० दे० "स्त्रीय" ।



ई। यह रंगाल में बहुत होता है। वैद्यक में यह शीतल, कड़वा, कसैला, चरपरा, हलका, स्तनों को रूढ़ करनेवाला तथा फफू, पित्त, मूत्रकृच्छ, अरुमरी, वात, घृक्ष, वमन, दाह, मोह, प्रमेह, रक्तविकार, श्वास, अपस्मार, विप और कास का नाश करनेवाला माना गया है।

पट्यां—पत्राचारिणी । अतिवर्षा । पत्राहा । चारिणी ।  
(अथपत्रा । पत्रा । सारदा । सुगंधमूला । छंदुरहा । लक्ष्मी ।  
श्रेष्ठा । सुपुष्करा । रम्या । पत्रावती । स्थलरहा । पुष्करणी ।  
पुष्करपत्रिका । पुष्करनाडी ।

स्थलकमलिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्थल कमल का पौधा ।  
स्थलकाली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा की एक सहचरी का नाम ।  
स्थलकुमुद—संज्ञा पुं० [ सं० ] कनेर । करवीर ।  
स्थलपत्र—वि० [ सं० ] स्थल या भूमि पर रहने या विचरण करनेवाला । स्थलचर ।

स्थलपत्रा—वि० [ सं० स्वभावान्वित् ] स्थल पर रहने या विचरण करनेवाला । स्थलपत्र । स्थलचर ।

(स्थलचर—वि० [ सं० ] स्थल पर रहने या विचरण करनेवाला ।  
स्थलचारी—वि० [ सं० स्वभावान्वित् ] स्थल पर रहने या विचरण करनेवाला । स्थलचर ।

स्थलज—वि० [ सं० ] (१) स्थल या भूमि में उत्पन्न । स्थल में उत्पन्न होनेवाला । (२) स्थल मार्ग से जानेवाले माल पर लगानेवाला ( कर, चुंगी या महसूल ) ।

स्थलजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुलेठी । मधुपट्टी ।

स्थलनलिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "स्थलकमलिनी" ।

स्थलनीरज—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्थलकमल ।

(स्थलपत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्थलकमल । (२) मानकचू । मानक । (३) सैवरी गुलिया आदि । चातपत्र ।

स्थलपद्मिनी—संज्ञा स्त्री० दे० "स्थलकमलिनी" ।

स्थलपिंडा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पिंड खजूर । पिंडी । खजूरिका ।

स्थलपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुल मन्मथी । स्रंक्ष नामक क्षुप ।

स्थलमंत्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मनमंत्रा । वृहती ।

स्थलमंजरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छटजीरा । अपामार्ग ।

स्थलमकंद—संज्ञा पुं० [ सं० ] करैदा । करमदक ।

स्थलयुद्ध—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह युद्ध या संग्राम जो स्थल या भूभाग पर होता है। सुदकी की लड़ाई ।

स्थलरहा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्थलकमल ।

स्थलविप्रह—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह लड़ाई या युद्ध जो स्थल या भूभाग पर होता है। सुदकी की लड़ाई ।

स्थलविहंग—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्थल पर विचरण करनेवाले मोर आदि पक्षी ।

स्थलशृंगार—संज्ञा पुं० [ सं० ] गोलरू । गोधुर ।

स्थलशृंगारक—संज्ञा पुं० दे० "स्थलशृंगार" ।

स्थलसीमा—संज्ञा स्त्री० [ सं० स्थलसीमन् ] देश की सीमा । सरहद ।

स्थला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जलस्थल भूभाग । सुदक जमीन ।

स्थली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जलस्थल भू भाग । सुदक जमीन भूमि । (२) ऊँची समः भूमि । (३) स्थान । जग । जैसे,—वहाँ एक सुंदर घरस्थली है ।

स्थलीदेवता—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राण्य देवता ।

स्थलीय—वि० [ सं० ] (१) स्थल या भूमि संबंधी । स्थल का । भूमि का । जमीन का । उ०—जिते कभी स्थलीय सयस जखीय संग्राम से भय उत्पादन नहीं हुआ।—अधोष्पासिह । (२) किसी स्थान का । स्थानीय ।

स्थलेयु—संज्ञा पुं० [ सं० ] रौद्राद्य के एक पुत्र का नाम । (हरिवंश)

स्थलेरहा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पीडुआर । पृथकुमारी । (२) कुस्ती । दग्धाश्रुष ।

स्थलेशय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (स्थल अर्थात् भूमि पर सोनेवाले)

कुसुंरंग, कस्तूरी, मृग आदि ।

स्थलौक—संज्ञा पुं० [ सं० स्थलौक् ] स्थल पर रहनेवाला पशु । स्थलचर जीव ।

स्थवि—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धैर्य । धैर्य । (२) स्वर्ग । (३) जुलाहा । संतुवाय । (४) अग्नि । भाग । (५) कीर्ती या उतंका चारिण । (६) फल । (७) जंगम ।

स्थविका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की मस्ती ।

स्थविर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वृद्ध । बुद्ध । उ०—उनका प्रभाव स्थविर और युवां सय पर संग्राम हुआ।—अधोष्पासिह ।

(२) प्रजा । (३) वृद्ध और पूष्य गौड मिथु । (४) छरील ।

(५) शैलेय । (६) विधाता । वृद्धदारक । (६) कर्ष्य । (७) धीरों का एक संग्रहाय ।

वि० वृद्ध और पूष्य ।

स्थविराद्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] विधाता । वृद्धदारक ।

स्थविरा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गोरखमुंठी । महाश्रावणिका । (२) वृद्धा की । वृद्धी औरत ।

स्थविष्ठ—वि० [ सं० ] अत्यंत स्थूल । बहुत मोटा ।

स्थविल—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो व्रत के कारण भूमि या वन स्थल पर सोता है । स्थविलताया ।

वि० व्रत के कारण भूमि पर शयन करनेवाला ।

स्थार्ह—वि० दे० "स्थायी" ।

स्थाय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शव । लाश । (२) शिव के एक अनुचर का नाम ।

स्थायु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संस । यून । स्तंभ । (२) पैर का वह पक्ष जिसके ऊपर की-दालियाँ और पत्ते आदि न रह गये हों । टूंड । (३) शिव का एक नाम । (४) बृक प्रकार का माला या बरती । (५) हल का एक भाग । (६) जीवक नामक अष्टर्गाव औषधि । (७) धूपघड़ी का कंटा । (८)

सपेद स्थलियों का विल। (९) यह वस्तु जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके। स्थिर वस्तु। स्थावर पदार्थ। (११) ग्यारह खों में से एक का नाम। (१२) एक प्रजापति का नाम। (१३) एक नगर का नाम। (१४) एक राक्षस का नाम।

वि० स्थिर। अचल।

स्थावरीय-वि० [ सं० ] स्थानों या स्थित संबंधी। स्थि का।  
स्थावुकर्णो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यद्य ईदामय। महेन्द्रवास्नी लता।  
स्थावुतीर्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुक्षेत्र के थानेपर नामक स्थान का प्राचीन नाम जो किसी समय बहुत प्रसिद्ध तीर्थ माना जाता था।

स्थावुविश्व-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (शिव की दिशा) उत्तर पूर्य दिशा। (बृहत्संहिता)

स्थावुमती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी। (रामायण)

स्थावु रोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] छोड़े को होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें उसकी जीव में मंग या फोड़ा निकलता है। यह दूषित रक्त के कारण होता है। यह प्रायः बरसात में ही होता है।

स्थावुवट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक तीर्थ का नाम। (महाभारत)

स्थावुवीश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्थावुतीर्थ में स्थित एक प्रसिद्ध शिवलिंग। (धामन पुराण)

स्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रहना। ठिकान। स्थिति। (२) भूमि भाग। भूमि। जमीन। मैदान। जैसे,—समा के सामनेवाला स्थान बड़ा रम्य है। (३) वह अवकाश जिसमें कोई चीज रह सके। जगह। ठाम। स्थल। जैसे,—सय

सामाज्य अपने अपने स्थान पर बैठ गए। (४) देना। धर। आना। जैसे,—मैं आप के स्थान पर गया था, आप मिले नहीं। (५) काम करने की जगह। पद। ओहदा। जैसे—उनके दफ्तर में कोई स्थान खाली है। (६) पद। दर्जा। जैसे,—कारास्थ पंक्ति में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। (७) मूँह के अंदर का वह अंग या स्थल जहाँ से किसी वर्ण या नाद का उच्चारण हो। जैसे,—कंठ, ताल, मूर्धा, घंठ, ओष्ठ। (स्वाकल्प) (८) राज्य। देश। (९) मंदिर। देवालय। (१०) किसी राज्य का मुख्य अंधार या बल जो पार माने गए हैं। यथा—सेना, कीश, नगर और देस। (मनु) (११) गढ़। दुर्ग। (१२) सेना का अपने बचाव के लिये कटे रहना। (मनु) (१३) आखेट में शरि

की एक प्रकार की सुत्रा। (१४) (माल का) जखीरा। (१५) युद्ध। (१६) अथर्व। (१७) शोध। (१८) शोध। (१९) धारण। (२०) उद्देश्य। (२१) शोध। (२२) शोध। (२३) शोध। (२४) शोध। (२५) शोध। (२६) शोध। (२७) शोध। (२८) शोध। (२९) शोध। (३०) शोध।

परिच्छेद। (३१) नीतिविद्वां के शिष्य के अंतर्गत एक वर्ग।

(२०) किसी अभिनेता का अभिनय या अभिनयगत चरित्र। (२१) वेदी। (२२) एक मंत्रव्यं राजा का नाम। (रामायण)

स्थानक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जगह। ठाम। (२) नगर। शहर। (३) पद। स्थिति। दर्जा। (४) मूल्य में एक प्रकार की सुत्रा। (५) आलवाल। वृक्ष का छाया। (६) फल।

स्थानकचला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वनतुलसी। छर्पी।

स्थानचितक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का वह अधिकारी जो सेना के लिये छावनी की व्यवस्था करता हो।

स्थानच्युत-वि० [ सं० ] (१) जो अपने स्थान से गिर गया हो। अपनी जगह से गिरा हुआ। जैसे,—स्थानच्युत कमल। (२) जो अपने पद से हटा दिया गया हो। अपने ओहदे से हटाया हुआ। जैसे,—स्थानच्युत कर्मचारी।

स्थानतव्य-वि० [ सं० ] रहने के योग्य। रहने के योग्य। स्थिति के योग्य।

स्थानपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्थान या देस का रक्षक। (२) प्रधान निरीक्षक। (३) धीकीदार। पहरदार।

स्थानभूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रहने की जगह। मकान।

स्थानघट्ट-वि० दे० "स्थानच्युत"।

स्थानभृग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंकड़ा। कंकट। (२) मछली। मत्स्य। (३) कठुआ। कच्छप। (४) मगर। मकर।

स्थानविद्-वि० [ सं० ] स्थानीय विषयों का ज्ञाता या जानकार।

स्थान धीरासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्थान करने की एक प्रकार की सुत्रा या भासन।

स्थानांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैन धर्मशास्त्र का तीसरा अंग।

स्थानांतर-संज्ञा पुं० [ सं० ] दूसरा स्थान। प्रकृत या प्रस्तुत से भिन्न स्थान।

स्थानांतरित-वि० [ सं० ] जो एक स्थान से हट या उठकर दूसरे स्थान पर गया हो। जो एक जगह से दूसरी जगह पर गेला या पहुँचाया गया हो। जैसे,—(क) मालु कापालय चौक से दशाक्षमेध स्थानांतरित हो गया। (ख) सि० सिंह काशी से आजमगढ़ स्थानांतरित कर दिए गए हैं।

स्थानाच्युत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिस पर किसी स्थान की रक्षा का भार हो। स्थान-रक्षक।

स्थानापन्न-वि० [ सं० ] दूसरे के स्थान पर अर्थात्पी रूप से काम करनेवाला। कायम मुकाम। पत्रजी। जैसे,—स्थानापन्न मंत्रिष्टेय।

स्थानिक-वि० [ सं० ] वस स्थान का जिसके नियमों में कोई उल्लेख हो। उल्लिखित, वक्ता या लेखक के स्थान का। जैसे,—स्थानिक घटना, स्थानिक समाचार। संज्ञा पुं० (१) वह जिस पर किसी स्थान की रक्षा का भार हो। स्थान रक्षक। (२) मंदिर का प्रबंधक।

स्थानी-वि० [ सं० स्थावित्र् ] (१) स्थानयुक्त। पदयुक्त। (२) दृढ़रत्नेवाला। स्थायी। (३) उचित। उपयुक्त। ठीक।

स्थानीय-वि० [ सं० ] (१) उस स्थान या नगर का जिसके संबंध में कोई दृष्टि हो। उल्लिखित, यत्ना या लेखक के स्थान का। मुकामी। स्थानिक। जैसे,—स्थानीय पुलिस कर्मचारी। स्थानीय समाचार। (२) जो किसी स्थान पर स्थित हो।

संज्ञा पुं० नगर। शहर। कस्बा।

स्थानेश्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कुरुक्षेत्र का थानेश्वर नामक स्थान जो किसी समय एक प्रसिद्ध तीर्थ था। (२) दे० "स्थानाध्यक्ष"।

स्थापक-वि० [ सं० ] रखने या खड़ा करनेवाला। कायम करनेवाला। स्थापनकर्ता।

संज्ञा पुं० (१) देव प्रतिमा या मूर्ति बनानेवाला। (२) सूत्रधार का सहकारी। सहकारी रंगमंचाध्यक्ष। (नाटक) (३) कोई संस्था खोलने या खड़ी करनेवाला। संस्थापक। प्रतिष्ठाता। (४) जो किसी के पास कोई चीज जमा करे। भ्रामन रखनेवाला।

स्थापत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्थापति का कार्य। भवन-निर्माण। राजगीरी। मेमारी। (२) वह विद्या जिसमें भवन-निर्माण संबंधी सिद्धांतों आदि का विवेचन हो। (३) अंतःपुर-रक्षक। रनिवास की रखवाली करनेवाला। (४) स्थानरक्षक का पद।

स्थापत्यवेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] चार उपवेदों में से एक जिसमें वास्तुशास्त्र या भवन-निर्माण कला का विषय वर्णित है। कहते हैं कि इसे विश्वरुमां ने धार्ववेद से निकाला था।

स्थापन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रखा करना। उठाना। (२) रखना। धैठाना। जमाना। (३) नया काम खोलना। नया काम जारी करना। (४) जकड़ना। पकड़ना। (५) (प्रमाणपूर्वक किसी विषय को) सिद्ध करना। साबित करना। प्रतिपादन। (६) (शरीर की) रक्षा या आयु-वृद्धि का उपाय। (७) रक्त का झ्राव) रोकने का उपाय। (८) समाधि। (९) पुंसवन। (१०) मकान। घर। आवास। (११) अन्न की राशि। (१२) निरूपण।

स्थापननिक्षेप-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्हत् की मूर्ति का पूजन। (जैन)

स्थापना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) प्रतिष्ठित या स्थित करना। धैठाना। धारणा। दृढ़तापूर्वक रखना। (२) रंजना। जमा कर रखना। (३) (प्रमाणपूर्वक किसी विषय को) सिद्ध करना। साबित करना। प्रतिपादन। (४) व्यवस्थापन। निर्देश। (नाटक)

स्थापनासत्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी प्रतिमा या चित्र आदि में स्वयं उस वस्तु या व्यक्ति का आरोप करना जिसकी वह

प्रतिमा या चित्र हो। जैसे,—पार्थनाथ की प्रतिमा को "पार्थनाथ की प्रतिमा" न कह कर "पार्थनाथ" कहना। (जैन)

स्थापनिक-वि० [ सं० ] जमा किया हुआ।

स्थापनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पादा। पाठा।

स्थापनीय-वि० [ सं० ] स्थापित करने के योग्य। जो स्थापन करने के योग्य हो।

स्थापयिता-वि० [ सं० स्थापयित् ] प्रतिष्ठा या स्थापन करनेवाला। संस्थापक। स्थापक।

स्थापित-वि० [ सं० ] (१) जिसकी स्थापना की गई हो। कायम किया हुआ। प्रतिष्ठित। (२) जो जमा किया गया हो। (३) जो जमा कर रखा गया हो। रक्षित। (४) व्यवस्थित। निर्दिष्ट। (५) निश्चित। (६) दृढ़ता हुआ। जमा हुआ। दृढ़। मजबूत। (७) स्थापित।

स्थापी-संज्ञा पुं० [ सं० स्थापित् ] प्रतिमा निर्माण करनेवाला। मूर्ति बनानेवाला।

स्थाप्य-वि० [ सं० ] स्थापित करने के योग्य। जिसकी स्थापना की जा सके अथवा जो स्थापित करने के योग्य हो।

संज्ञा पुं० (१) देव प्रतिमा। (२) धरोहर। भ्रामनत।

स्थाम-संज्ञा पुं० [ सं० स्थाम् ] (१) सामर्थ्य। शक्ति। (२) घोड़े की दिनहिनादृष्ट। अश्वधोष। (३) स्थान। जगह। मुकाम।

स्थाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आधार। पात्र। (२) दे० "स्थाम"।

स्थायी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पृथ्वी। धरती।

स्थायिता-संज्ञा स्त्री० दे० "स्थायित्व"।

स्थायित्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्थायी होने का भाव। टिकाव। दृढ़ता। (२) स्थिरता। दृढ़ता। मजबूती।

स्थायी-वि० [ सं० स्थायिन् ] (१) दृढ़रत्नेवाला। टिकनेवाला। जो स्थिर रहे। (२) बहुत दिन चलनेवाला। जो बहुत दिन चले। टिकाऊ। जैसे,—(क) अथ यह मकान पहले की अपेक्षा अधिक स्थायी हो गया है। (ख) अथ हमारे यहाँ धीरे धीरे स्थायी साहित्य की भी सृष्टि होने लगी है। (३) बना रहनेवाला। स्थितिशील। स्थिर। (४) विश्वास करने योग्य। विश्वस्त।

स्थायी भाव-संज्ञा पुं० [ सं० ] साहित्य में तीन प्रकार के भावों में से एक जिसकी रस में सदा स्थिति रहती है। ये सदा स्थिति में संस्कार रूप से वर्तमान रहते हैं और विभाव आदि में अभिव्यक्त होकर रसत्व को प्राप्त होते हैं। ये विरक्त अथवा अविरक्त भावों में नष्ट नहीं होते, बल्कि उन्हें जो अपने आप में समा लेते हैं। ये संप्रिया में भी हैं; यथा—(१) रति। (२) हास्य। (३) शोक। (४) क्रोध। (५) उरसाह। (६) भय। (७) निन्दा। (८) विस्मय और (९) निर्वेद।

स्थापुक-वि० [ सं० ] । रहनेवाला । टिकनेवाला । रहनेवाला ।

सिद्धिशील ।

संज्ञा पुं० गाँव का अथवा या निरीसक ।

स्थाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आधार । पात्र । धरतन । (२) थाल । परत । पाली । (३) देग । देगधी । पतीला । बटलोही । (४) दाँती के नीचे का और मसूहों का भीतरी भाग ।

स्थापक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीठ की एक इट्टी ।

स्थालिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मल की दुर्गाप ।

स्थालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की मक्खी ।

स्थाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हंडी । हँडिया । (२) मिट्टी की रिकामी । (३) एक प्रकार का धरतन जो सोम का रस बनाने के काम में आता था । (४) पात्र का पैद । पाटला घृक्ष ।

स्थालीद्रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंझिया पीपल । नंदी वृक्ष ।

स्थालीपर्णी-संज्ञा स्त्री० दे० "नालिपर्णी" ।

स्थालीपाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आहुति के लिये दूध में पकाया हुआ चावल या जौ । एक प्रकार का चरु । (२) वैद्यक में छोटे की एक पाक विधि ।

स्थालीपुलाक न्याय-संज्ञा पुं० [ सं० ] जिस प्रकार हॉडी का एक चावल टोकर सब चावलों के एक जाने का अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार किसी एक बात को देखकर उस संबंध की सब बातों का मात्न होना । जैसे,—मैंने उनका एक ही ब्याख्यान सुनकर स्थालीपुलाक न्याय से सब विषयों में उनका मत जान लिया ।

स्थालीविल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पाकपात्र ( बटलोही या हॉडी आदि ) का भीतरी भाग ।

स्थालीविलीय-वि० [ सं० ] पाकपात्र ( देग, हॉडी आदि ) में उबलने या पकने योग्य ।

स्थालीवृक्ष-संज्ञा पुं० दे० "स्थालीद्रुम" ।

स्थावर-वि० [ सं० ] (१) जो चले नहीं । सदा अपने स्थान पर रहनेवाला । अचल । स्थिर । (२) जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया न जा सके । जंगम का उल्टा । अचल । गैर-मनकूला । जैसे,—स्थावर संपत्ति ( मकान, भोग, गाँव आदि ) (३) स्थायी । स्थितिशील । (४) स्थावर संपत्ति संबंधी ।

संज्ञा पुं० (१) पहाड़ । पर्वत । (२) अचल संपत्ति । गैर-मनकूला आपदाद । ( जैसे,—जमीन, घर आदि ) (३) वह संपत्ति जो बंधा परंपरा से परिवार में रहित हो और जो बेची न जा सके । ( जैसे,—बक आदि ) (४) घटुप की घोंटी । मरया । विद्या । (५) तीन दर्शन के अनुसार पृकेंद्रिय पदार्थ आदि जिनके वधि भेद बड़े गढ़े हैं—(१) पृथ्वीकाय,

(२) अणुकाय, (३) तेजस्काय, (४) वायुकाय और (५) वनस्पतिकाय ।

स्थावरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्थावर होने का भाव । स्थिरता ।

स्थावरताप-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

स्थावरनाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पाप कर्म जिसके उद्घप से जीव स्थावर काय में जन्म प्रदण करते हैं । ( जैन )

स्थावरराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिमालय ।

स्थावर विष-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह विष जो सुशुभ के अनुसार, बृहत्सूल, पत्तों, फल, फूड, छाल, दूध, सार, गोद, धातु और कंद में होता है । स्थावर पदार्थों में होनेवाला जहर । वैद्यक में यह ज्वर, हिचकी, दंतदुर्घ, गलपेदना, पमन, अरुचि, स्वास, मूर्च्छा और श्वाग उत्पन्न करनेवाला पतया गया है ।

स्थावरवादि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वस्तुनाम विष । वज्रनाम विष ।

स्थाविर-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुद्धावस्था । वार्धक्य । बुढ़ीली ।

विशेष—७० से ९० वर्ष तक स्थाविरावस्था मानी गई है । ९० वर्ष के उपरांत मनुष्य 'वर्णीयसू' कहलाता है ।

स्थासक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरीर को चंदन आदि से धर्मित या सुगंधित करना । (२) पानी का छलछला । जलबुदबुद । (३) घोड़े के साग्र पर छलछल के आकार का एक गहना ।

स्थिरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्थिर । चूनद ।

स्थित-वि० [ सं० ] (१) अपने स्थान पर ठहरा हुआ । टिकाया हुआ । अचलस्थित । जैसे,—इस मवन की छत संभों पर स्थित है । (२) ईडा हुआ । आसीन । जैसे,—वे अपने आसन पर स्थित हो गए । (३) अपनी प्रतिज्ञा पर दया हुआ । जैसे,—वह अपनी बात पर स्थित है । (४) स्थिमान । वर्तमान । मौजूद । जैसे,—परमार्थ सर्वत्र स्थित है । (५) रहनेवाला । निवासी । जैसे,—(क) स्वार्थ-स्थित देवा । (ग) दुर्गस्थित सेना । (६) पसा हुआ । अवस्थित । जैसे,—वह नगर गंगा के बाएँ किनारे पर स्थित है । (७) लडा हुआ । ऊर्ध्व । (८) अचल । स्थिर । (९) लगा हुआ । संलस । मशगूल ।

संज्ञा पुं० (१) अवस्थान । निवास । (२) कुल मंडा ।

स्थितता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्थित होने का भाव । ठहराव । अवस्थान । स्थिति ।

स्थितधी-वि० [ सं० ] (१) जिसका मन किसी बात से हॉडि-डोल न होना हो । जिसकी बुद्धि सदा स्थिर रहनी हो । स्थिर-बुद्धि । (२) जिसका चित्त दुःख में विचलित न हो, सुन की गिरे चाह न हो और जिसमें राग, आसक्ति, भय या क्रोध न रह गया हो । ब्रह्मबुद्धि-संपन्न ।

स्थितमन्त्र-वि० [ सं० ] (१) जिसकी विवेक-बुद्धि स्थिर हो । (२)

जो समस्त मनोविकारों से रहित हो। आत्म द्वारा आत्मा में ही संतुष्ट रहनेवाला। आत्म-संतोषी।

**स्थितयुद्धिदत्त-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बुद्ध का एक नाम।

**स्थिति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) रहना। ठहरना। टिकाव। ठहराव। जैसे,—इस छत की स्थिति इन्हीं खंभों पर है। (२) निवास। अवस्थान। जैसे,—यहाँ कय तक आपकी स्थिति रहेगी? (३) अवस्था। दशा। हालत। जैसे,—उनकी स्थिति बहुत शोचनीय है। (४) पद। दर्जा। जैसे,—वे उन्नत करते हुए इस स्थिति को पहुँच गए। (५) एक स्थान या अवस्था में रहना। अवस्थान। (६) निरंतर बना रहना। अस्तित्व। (७) पालन। (८) नियम। (९) निष्पत्ति। निर्णय। (१०) मर्यादा। (११) सीमा। दृढ़। (१२) निश्चिन्ता। (१३) स्थिरता। (१४) ठहरने का स्थान। (१५) ढंग। तरीका। (१६) आकार। आकृति। रूप। स्वरूप। (१७) संयोग। मीका।

**स्थितिता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) स्थिति का भाव या धर्म। (२) स्थिरता।

**स्थितिस्थापक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह गुण जिसके रहने से कोई वस्तु साधारण स्थिति में आने पर फिर अपनी पूर्व अवस्था को प्राप्त हो जाय। किसी वस्तु को अनुकूल परिस्थिति में फिर उसकी पूर्व अवस्था पर पहुँचानेवाला गुण। जैसे,—वैत लचकाने से लचक जाता है और छोड़ देने से फिर (इसी गुण के कारण) ज्यों का त्यों हो जाता है।

वि० (१) किसी वस्तु को उसकी पूर्व अवस्था को प्राप्त करानेवाला। (२) जो सहज में लचक या झुक जाय और छोड़ देने पर फिर ज्यों का त्यों हो जाय। लचीला। लचकदार। लचलचा। (जैसे, वैत)

**स्थितिस्थापकता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] स्थितिस्थापक होने की अवस्था या गुण। अनुकूल परिस्थिति में फिर अपनी पूर्व अवस्था को पहुँच जाने का गुण या शक्ति। लचीलापन। लचक।

**स्थिर-वि०** [ सं० ] (१) जो चलता या हिलता डोलता न हो। निश्चल। ठहरा हुआ। जैसे,—(क) हम लोग देखते हैं कि पृथ्वी स्थिर है; पर वह एक घंटे में ५८ दृष्टान मील चलती है। (ख) और लोग उठकर चले गए, पर वह अपने स्थान पर स्थिर रहा। (२) निश्चित। जैसे,—(क) उन्होंने कलकत्ते जाना स्थिर किया है। (ख) आप स्थिर जानिए कि वह कभी सफल न होगा। (३) दांत। जैसे,—आप बहुत उन्चेजित हो गए हैं, जरा स्थिर होइए। (४) दृढ़। अटल। जैसे,—वे अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर हैं। (५) स्थायी। सदा धना रहनेवाला। जैसे,—इस संसार में कीर्ति ही स्थिर

रहती है। (६) नियत। मुकर्रर। जैसे,—यहाँ चलने का समय स्थिर हो गया। (७) विश्वल। विश्वसनीय।

संज्ञा पुं० (१) स्थिर का एक नाम। (२) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (३) ज्योतिष में एक योग का नाम। (४) ज्योतिष में वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ ये चारों राशियाँ जो स्थिर मानी गई हैं। कहते हैं कि इन राशियों में कोई काम करने से वह स्थिर या स्थायी होता है। जो बालक इनमें से किसी राशि में जन्म लेता है, वह स्थिर और गंभीर स्वभाववाला, क्षमाशील तथा दीर्घमूत्री होता है। (५) देवता। (६) साँड़। वृष। (७) मोक्ष। मुक्ति। (८) वृक्ष। पेड़। (९) धौ। धव वृक्ष। (१०) पहाड़। पर्वत। (११) दानि ग्रह। (१२) एक प्रकार का छंद। (१३) एक प्रकार का मंत्र जिससे द्वात्रिंशत् अभिर्मंत्रित किए जाते थे। (१४) वह कर्म जिससे जीव को स्थिर अवयव प्राप्त होते हैं। (जैन)

**स्थिरक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सागोन। दाक वृक्ष।

**स्थिरकर्मा-वि०** [ सं० स्थिरकर्मा ] स्थिरता या दृढ़ता से काम करनेवाला।

**स्थिरकुसुम-संज्ञा पुं०** [ सं० ] मौलसिरी। पकल वृक्ष।

**स्थिरगंध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] चंपा। चंपक वृक्ष।

वि० जिसकी सुगंध स्थिर रहती हो। स्थिर या स्थायी गंधयुक्त।

**स्थिरगंधा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) कैवदा। कैतकी। (२) पादर। पाटल।

**स्थिरचक्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] मंत्रघोष या मंत्रुची नामक प्रसिद्ध घोषितत्व का एक नाम। वि० दे० "मंत्रघोष"।

**स्थिरचित्त-वि०** [ सं० ] जिसका मन स्थिर या दृढ़ हो। जो जल्दी जल्दी अपने विचार न बदलता हो, अथवा घबराता न हो। दृढ़चित्त।

**स्थिरचेता-वि०** दे० "स्थिरचित्त"।

**स्थिरच्छद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] मोनपत्र। भूर्जपत्र।

**स्थिरच्छाद्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] छाया देनेवाले पेड़। छायातरु।

**स्थिरजिह्व-संज्ञा पुं०** [ सं० ] मछली। मत्स्य।

**स्थिरजीविता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सेमल का पेड़। सालमल वृक्ष।

**स्थिरजीवी-संज्ञा पुं०** [ सं० स्थिरजीवि ] कौआ, जिसका जीवन बहुत दीर्घ होता है।

**स्थिरता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) स्थिर होने का भाव। ठहराव। निश्चलता। (२) दृढ़ता। मजबूती। (३) स्थायित्व। (४) धीरता। धैर्य।

**स्थिरत्व-संज्ञा पुं०** दे० "स्थिरता"।

**स्थिरद्वंद्व-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सौंप। सपें। सुजं। (२) वाराह रूपी विष्णु का नाम। (३) ध्वनि।

**स्थिरधी**-वि० [ सं० ] जिसकी बुद्धि या चित्त स्थिर हो।  
 दृढ़ चित्त।  
**स्थिरपद्म**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साद से मिलता जुलता एक प्रकार का पेड़। शीताल। (२) एक प्रकार का खरूर का पेड़। हिताल।  
**स्थिरपुष्प**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंपे का पेड़। चंपक वृक्ष। (२) मौलसिरी का पेड़। बकुल वृक्ष। (३) तिलपुष्पी। तिलकपुष्प वृक्ष।  
**स्थिरपुष्पी**-संज्ञा पुं० [ सं० स्थिरपुष्प ] तिलपुष्पी। तिलकपुष्प वृक्ष।  
**स्थिरफला**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुन्हेदे या फेंटे की लता। कुम्भांड लता।  
**स्थिरबुद्धि**-वि० [ सं० ] जिसकी बुद्धि स्थिर हो। ठहरी हुई बुद्धिवाला। दृढ़चित्त।  
**स्थिरमति**-वि० दे० "स्थिरबुद्धि"।  
**स्थिरमद्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोर। मयूर।  
**स्थिरमना**-वि० दे० "स्थिरचित्त"।  
**स्थिरमुद्रा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लाल कुलियो। रक्त कुलरथ।  
**स्थिरदोषि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह वृक्ष जो सदा छाया देता हो। छायावृक्ष।  
**स्थिरयौवन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्याधर।  
 वि० जो सदा जवान रहे।  
**स्थिररंगा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नील का रौंया।  
**स्थिररात्रिय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिताल वृक्ष।  
**स्थिररागा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दारहलदी। दारहरिद्र।  
**स्थिरसाधनक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सैनाल। सिंदुवार वृक्ष।  
**स्थिरसार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सागौन। शाक वृक्ष।  
**स्थिरा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दृढ़चित्तवाली स्त्री। (२) पृथ्वी। (३) सखिन। शालपर्णी। (४) ककोली। (५) सेमल। शालमल वृक्ष। (६) यमरौं। यमरुद्र। (७) मयपन। मापपर्णी। (८) मूसानानी। मूषाकर्णी।  
**स्थिरायु**-संज्ञा पुं० [ सं० स्थिरायु ] सेमल का पेड़। शालमल वृक्ष।  
 वि० (१) जिसकी आयु बहुत अधिक हो। चिरजीवी। (२) जो कभी मरे नहीं। अमर।  
**स्थिरीकरण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्थिर करने की क्रिया। (२) दृढ़ करना। मजबूत करना। (३) पुष्टि। समर्थन।  
**स्थूल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का लंबा तंबू। पट्टवास।  
**स्थूल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) निचामित्र के एक पुत्र का नाम। (महाभारत)।  
**स्थूला**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घर का संभा। धूनी। (२) पेड़ का तना या टूट। (३) छोड़े का पुतला। (४) निहाई। भूमि। (५) एक प्रकार का रोग।

**स्थूलाकर्ष**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का वृह। (२) एक यक्ष का नाम। (महाभारत) (३) एक रोग-मह का नाम। (हरिवंश) (४) एक प्रकार का याग।  
**स्थूलापल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का एक प्रकार का वृह।  
**स्थूल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शील। प्रकाश। (२) चंद्रमा।  
**स्थूल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मनुष्य। आदमी। (२) सौंद। वृष।  
**स्थूरिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बलि गाय का नयना। धूरिका। सुरिका।  
**स्थूरी**-संज्ञा पुं० [ सं० स्थूरि ] मोक्ष ला देनेवाला पशु। छद् घोड़ा या बिल।  
**स्थूल**-वि० [ सं० ] (१) जिसके अंग फूले हुए या भारी हों। मोटा। पीन। जैसे,—स्थूल देह। उ०—दैत्यो मत तप्य भति सुंदर। स्थूल शरीर-रहित सख द्वंदर।—सूर। (२) जो यथेष्ट स्पष्ट हो। जिसकी विशेष ध्याव्या करने की आवश्यकता न हो। सहज में दिखाई देने या समझ में आने योग्य। मूढ़म का बलदा। जैसे,—स्थूल सिद्धांत, स्थूल संबन्ध। (३) मूर्ख। जड़। (४) जिसका तल सम न हो। संज्ञा पुं० (१) यह पदार्थ जिसका साधारणतया इन्द्रियों द्वारा ग्रहण हो सके। यह जो स्वप्न, प्राण, दृष्टि आदि की सहायता से जाना जा सके। गोधर विहं। उ०—जो स्थूल होने के प्रथम देखने में आकर फिर न देख पड़े, उसको हम विनास कहते हैं।—दशानंद। (२) बिष्णु। (३) समृद्ध। राशि। वर। (४) कटहल। (५) त्रिपुंज। कैंगनी। (६) एक प्रकार का कर्दव। (७) शिव के एक गण का नाम। (८) अन्नमय कोश। (९) वैद्यक के अनुसार शरीर की सातवों त्वचा। (१०) दूध या तूत का वृक्ष। (११) ईल। उत्र।  
**स्थूलकंगु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] परक धान्य। चैना।  
**स्थूलकंटक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] बल्लू की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जाल बंधकर या भारी भी कहते हैं।  
**स्थूलकंटकिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेमल का वृक्ष। शालमल।  
**स्थूलकंटफल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पनस। कटहल।  
**स्थूलकंटो**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बड़ी कटाई। बनसंटा। वृहयो।  
**स्थूलकंद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लाल छद्गुन। (२) जर्मिकंद। सूरन। भोल। (३) जंगली सूरन। बनभोल। (४) हाथीकंद। (५) मानकंद। (६) संभारोह। मुंजाल।  
**स्थूलक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वृष। उलप। उलक।  
**स्थूलकथा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मंगरैला।  
**स्थूलकर्ष**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम। (महाभारत)।  
**स्थूलक**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शौंया हलदी।  
**स्थूलकुमुद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सपौद कनेर।

स्थूलकेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।  
 (महाभारत)  
 स्थूलदोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाण । तीर ।  
 स्थूलश्रृंगि-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुलजन । महामदा ।  
 स्थूलचंचु-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाचंचु नामक साग । यद्वा चंच ।  
 स्थूलचंपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद चंपा ।  
 स्थूलचाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] रूई धुनने की धुनकी ।  
 स्थूलचूड़-संज्ञा पुं० [ सं० ] किरात ।  
 स्थूलज्ञाघा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नौ समिधाओं में से एक ।  
 (गृह्यसूत्र)  
 स्थूलजिह्व-वि० [ सं० ] जिसमें जीभ बहुत बड़ी हो ।  
 संज्ञा पुं० एक प्रकार के भूत ।  
 स्थूलजोरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मँगौरा ।  
 स्थूलतंडुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मोटा धान ।  
 स्थूलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्थूल होने का भाव । स्थूलत्व ।  
 (२) मोटापन । मोटाई । (३) मारीपन ।  
 स्थूलताल-संज्ञा पुं० [ सं० ] धीताल । हिताल ।  
 स्थूलतिडुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] धावनूस । मकर तेंदुभा ।  
 स्थूलतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दारहल्दी ।  
 स्थूलत्व-संज्ञा पुं० दे० "स्थूलता" ।  
 स्थूलत्वचा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंभारी । कारभरी वृक्ष ।  
 स्थूलदंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] महानल । यद्वा नरकट ।  
 स्थूलदर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूँज नामक वृण ।  
 स्थूलदर्भा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूँज नामक वृण । स्थूलदर्भ ।  
 स्थूलदर्शक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह यंत्र जिसकी सहायता से सूक्ष्म  
 वस्तु स्पष्ट और बड़ी दिखाई दे । सूक्ष्मदर्शक यंत्र ।  
 स्थूलदला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीडुभार । ग्वारपाडा ।  
 स्थूलनाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवनल । यद्वा नरकट ।  
 स्थूलनास, स्थूलनासिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूंभर । घुंकर ।  
 वि० जिसकी नाक बड़ी या लंबी हो ।  
 स्थूलनिपु-संज्ञा पुं० [ सं० ] महानिपु । यद्वा नीपु ।  
 स्थूलनील-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाज नामक पक्षी ।  
 स्थूलपट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपास ।  
 स्थूलपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दमनक । दौना नामक क्षुप ।  
 (२) सत्यपर्ण । सतिवन ।  
 स्थूलपर्षी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सत्यपर्ण । उतिवन ।  
 स्थूलपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथी । (२) वह जिसे फीलपा  
 रोग हो । स्त्रीपाद रोग से युक्त व्यक्ति ।  
 स्थूलपिंडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विंद खन्ड ।  
 स्थूलपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बक या अगस्त  
 (२) गुलमखमली । झंडुक ।  
 स्थूलपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आस्कीता । हापरमास्

स्थूलपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शंखिनी । यवतिका ।  
 स्थूलमियंगु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बरक धान्य । चैना ।  
 स्थूलफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेमल । शाल्मली । (२) बदा नीच ।  
 स्थूलफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) क्षुपपुष्पी । बन सनई ।  
 (२) सेमल । शाल्मली ।  
 स्थूलशर्बुरिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बबूल का पेड़ ।  
 स्थूलयालुका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम  
 जिसका उल्लेख महाभारत में है ।  
 स्थूलभंटा-संज्ञा पुं० दे० "बनभंटा" ।  
 स्थूलभद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार के जैन जो धृतकेवलिक  
 भी कहलाते हैं ।  
 स्थूलभंजरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अणामागं । चिचडा ।  
 स्थूलभरिच-संज्ञा पुं० [ सं० ] शीतलचीनी । कषायचीनी ।  
 ककौल ।  
 स्थूलमूल, स्थूलमूलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] यड़ी मूली ।  
 स्थूलसहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्थलपदा ।  
 स्थूलरोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोटे होने का रोग । मोटाई की व्याधि ।  
 स्थूलसत्त्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो बहुत अधिक दान  
 करता हो । बहुत यद्वा दानी । (२) यद्वा पंडित । विद्वान् ।  
 (३) कुनड ।  
 स्थूलसत्विता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दानशीलता । (२) पांडित्य ।  
 विद्वत्ता । (३) कृतज्ञता ।  
 स्थूलसद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो बहुत अधिक दान  
 करता हो । बहुत यद्वा दानी । (२) किसी निपय की ऊपरी  
 या मोटी धातें बनाता ।  
 स्थूलयत्नहृत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] भारंगी । बभनेटी ।  
 स्थूलचटकल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लोथ । लोभ्र । (२) पठानी  
 लोथ । पट्टिका लोभ्र ।  
 स्थूलघृत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] मौलसिरी का पेड़ । बकुल ।  
 स्थूलघृतफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] मैनफल । मदनफल ।  
 स्थूलवेदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जलपीपल । यज्ञपीपल ।  
 स्थूलशर-संज्ञा पुं० [ सं० ] रामशर । भद्रमुंज ।  
 स्थूलशालि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मोटा चावल ।  
 स्थूलतंडुल ।  
 स्थूलशिथी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्वेत निष्पावी । सफेद सेम । परसेमा ।  
 स्थूलशिरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्थूलशिरस् । एक प्राचीन ऋषि का  
 नाम । (महाभारत)  
 स्थूलशीर्षिका-संज्ञा पुं० [ सं० ] छोटी च्यूँसी ।  
 स्थूलशरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सुरन या अमीकंद ।  
 पुं० [ सं० ] रामशर । भद्रमुंज ।  
 स्थूल [ सं० ] यद्वाहर । लकुच ।  
 [ सं० ] हाथी का सूँड़ ।

स्थूलांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का चावल ।  
 स्थूलांत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] यद्दी अंतर्दी ।  
 स्थूलान्ना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंधपत्र ।  
 स्थूला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यद्दी हलायची । (२) गजवीपल ।  
 (३) सोभा नामक साग । दातपुष्पा । (४) सौंफ । मिश्रैया ।  
 (५) कपिल द्राक्षा । मुनका । (६) करास । (७) ककड़ी ।  
 स्थूलान्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम जो फर का स्थायी था । (रामायण)  
 स्थूलाजाजी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मंगरीखा ।  
 स्थूलाच-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन कवि का नाम । (महाभारत) (२) एक राक्षस का नाम । (रामायण) ।  
 स्थूलात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] ककड़ी आम ।  
 स्थूलास्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सौंफ । सप ।  
 स्थूलो-संज्ञा पुं० [ सं० स्थूलिन् ] ऊँट ।  
 स्थूलैरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] यद्दी परुड ।  
 स्थूलैला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यद्दी हलायची ।  
 स्थूलोच्चय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गंदोपल । (२) हाथी की मध्यम चाल, जो न बहुत तेज हो और न बहुत सुस्त ।  
 स्थूय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो किसी विवाद का निर्णय करता हो । निर्णायक । (२) पुरोहित ।  
 ति० स्थापित करने योग्य ।  
 स्थैर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्थिर होने का भाव । स्थिरता । (२) दृढ़ता । मजबूती ।  
 स्थारी-संज्ञा पुं० [ सं० स्थौरिन् ] बौद्ध दोनेफाला घोड़ा । लुद्ध घोड़ा ।  
 स्थौल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की अधिपर्णा । धुनेर ।  
 स्थौर-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह भार को पीठ पर लादा जाय ।  
 स्थौरी-संज्ञा पुं० [ सं० स्थौरिन् ] घोड़े, बैल, खरार-आदि जिनकी पीठ पर भार लादा जाता हो ।  
 स्थौल्यविहि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो स्थूलविह के वंश या गोत्र में उत्पन्न हुआ हो ।  
 स्थौल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्थूल का भाव । स्थूलता । (२) भारीपन । (३) शरीर की मेढ़ हृदि जो वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग है । मोटापन ।  
 स्तपन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ ति० कथित ] नहाने की क्रिया । स्नान ।  
 स्तपित-वि० [ सं० ] जिसने स्नान किया हो । नहाया हुआ ।  
 स्तसा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्नायु ।  
 स्ना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह यमदा जो नाय या पैल आदि के गले के नीचे छटकता है । ली ।  
 स्नात-वि० [ सं० ] जिसने स्नान किया हो । नहाया हुआ ।  
 स्नातक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसने ब्रह्मचर्य-व्रत की समाप्ति पर स्नान करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश किया हो ।

विशेष-प्राचीन काल में यालक गुरुकुलों में वेदों तथा अन्यान्य विधाओं का अध्ययन समाप्त करके पचीस वर्ष की अवस्था में जब घर की लौटते थे, तब वे स्नातक कहलाते थे । ये स्नातक तीन प्रकार के होते थे । जो स्नातक २५ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य का पालन करके बिना वेदों का पूरा अध्ययन किए ही घर लौटते थे, वे व्रत स्नातक कहलाते थे । जो जोग २५ वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी गुरु के यहाँ ही रहकर वेदों का अध्ययन करते थे और गृहस्थ आश्रम में नहीं आते थे, वे विद्यास्नातक कहलाते थे । और जो जोग ब्रह्मचर्य का पूरा पूरा पालन करके गृहस्थ आश्रम में आते थे, वे उभयस्नातक या विद्यामन स्नातक कहलाते थे । इधर हाल में भारत में थोड़े से गुरुकुल और ऋषिकुल आदि स्थापित हुए हैं । उनकी अवधि और परीक्षाएँ समाप्त करके भी जो युवक निकलते हैं, वे भी स्नातक ही कहलाते हैं ।  
 स्नान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शरीर को स्वच्छ करने या उसकी निधिलता दूर करने के लिये उसे जल से धोना; अथवा जल की बहती हुई धारा में प्रवेश करना । अथवाहन । नहाना । वि० दे० "नहाना" (१) । (२) शरीर के अंगों को धूप या वायु के सामने इस प्रकार करना कि जिसमें उनके ऊपर उसका पूरा प्रभाव पड़े । जैसे,—जातप स्नान, वायु स्नान ।  
 स्नानकलश-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह घड़ा जिसमें स्नान करने का पानी रहता है ।  
 स्नानकुंभ-संज्ञा पुं० दे० "स्नानकलश" ।  
 स्नानगृह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह कमरा, कोठरी या इसी प्रकार का और घिरा हुआ स्थान जिसमें स्नान किया जाता है ।  
 स्नानतृण-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुत जिसे हाथ में लेकर नहाने का दाखों में विधान है ।  
 स्नानयात्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को होने-वाला एक उत्सव जिसमें विष्णु की मूर्ति को महारंजान कराया जाता है । इस दिन जगन्नाथ जी के दर्शन का बहुत साहाय्य कहा गया है ।  
 स्नानघटा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह घट जिसे पहनकर स्नान किया जाता है ।  
 स्नानशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नहाने का कमरा या कोठरी । स्नानगृह । गुसलखाना ।  
 स्नानीय-वि० [ सं० ] (१) जो नहाने के योग्य हो । (२) जिससे नहाया जा सके ।  
 स्नायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्नान । नहाना ।  
 स्नायविक-वि० [ सं० ] स्नायु संबंधी । स्नायु का ।  
 स्नायवीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्मद्रिय । जैसे,—हाथ, पैर, आँख आदि ।



स्नायी-संज्ञा पुं० [ सं० स्नायिन् ] वह जो स्नान करता हो ।  
नहानेवाला ।

स्नायु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शरीर के अंदर की वह वायुवाहनी  
नाड़ियाँ या नसें जिन्से स्पर्श का ज्ञान होता अथवा वेदना  
का ज्ञान एक स्थान से दूसरे स्थान या मस्तिष्क आदि तक  
पहुँचता है । ये सफेद, चिकनी; कड़ी और सन के गुच्छों के  
समान होती हैं और शरीर की भाँस पेशियों में फैली रहती  
हैं । हमारे यहाँ वैद्यक में कहा गया है कि शरीर में से  
पसीना निकलने और लेप आदि को रोम छिद्र में से भीतर  
खींचने का व्यापार इन्हीं से होता है; और इनकी संख्या  
१०० बराबर है । इन्हें यात-रज्जु, नाड़ी या कंडरा भी  
कहते हैं ।

स्नायुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] नहरुआ नामक रोग ।

स्नायुरोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] नहरुआ या बाला नामक रोग ।

स्नायुशूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का  
रोग जिसमें स्नायु में शूल के समान तीव्र वेदना होती है ।  
यह वेदना चमड़े के नीचे के भाग में होती है और शरीर के  
किसी स्थान में हो सकती है । इसके अर्धमेद ऊर्ध्वमेद  
और अयोमेद ये तीन मेद कहे गए हैं ।

स्नायुधर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्नायुधर्म । शूल का एक प्रकार का  
रोग जिसमें उसकी कौड़ी या सफेद भाग पर एक छोटी  
गॉड सी निकल जाती है ।

स्निग्ध-वि० [ सं० ] जिसमें स्नेह या तेल लगा हो अथवा  
घर्षमान हो ।

संज्ञा पुं० (१) लाल रेंड । (२) धूप सरल या सरल नामक  
वृक्ष । (३) मोम । (४) गंधा विरोजा । (५) दूध पर की  
मलाई ।

स्निग्धकरंज-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुच्छकरंज ।

स्निग्धच्छद-संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़ का पेड़ । घट वृक्ष ।

स्निग्धच्छदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बैर का पेड़ ।

स्निग्धजीरक-संज्ञा पुं० [ सं० ] यथावगोल । ईसपगोल ।

स्निग्धतंडुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] साठी धान ।

स्निग्धता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्निग्ध या चिकना होने का  
भाव । चिकनापन । चिकनाहट । (२) मित्र होने का भाव ।  
मित्रता ।

स्निग्धत्व-संज्ञा पुं० दे० "स्निग्धता" ।

स्निग्धदल-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुच्छकरंज ।

स्निग्धदारु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) देवदारु का पेड़ । (२) धूप  
सरल । (३) अशकण या शाल नामक वृक्ष ।

स्निग्धनिर्मल-संज्ञा पुं० [ सं० ] काँसा नामक धातु ।

स्निग्धपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घृतकरंज । धीरंज । (२)

गुच्छ करंज । (३) भगवतवह्नी । अयंतकी लता । (४)  
मन्नर या मानुर नाम की घास ।

स्निग्धपत्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बैर । बदरी । (२) पाक  
का साग । (३) खोनी का साग । (४) गंधारी । कामरी ।  
खुमेर ।

स्निग्धपत्री-संज्ञा स्त्री० दे० "स्निग्धपत्रा" ।

स्निग्धपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शुभिपर्णी । पिडवन । (२)  
सूया । मरोड़फली ।

स्निग्धपिंडीतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मैनफल का वृक्ष ।

स्निग्धफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुच्छकरंज ।

स्निग्धफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) फूट नामक फल । (२)  
नकुलकंद । नाकुली ।

स्निग्धयीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] यथावगोल । ईसपगोल ।

स्निग्धमज्जाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] बादाम ।

स्निग्धराजि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सोंप जिसे  
उत्पत्ति, सुधृत के अनुसार, काले सोंप और राजमती आदि  
की सोंपिन से होती है ।

स्निग्धा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि ।  
(२) मज्जा । अस्तिसार । (३) विककत । बईची ।

वि० स्त्री० जिसमें स्नेह हो । स्नेह-युक्त ।

स्नुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्नुही । बूहड़ ।

स्नुकच्छद-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्षीरकुंडुकी, क्षीरी या क्षीरसागर  
नामक वृक्ष ।

स्नुकच्छदीपम-संज्ञा पुं० [ सं० ] चाराही कंद । मंडी ।

स्नुदल-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्नुही । बूहड़ ।

स्नुपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पुत्रयधु । लड़के की स्त्री । (२)  
स्नुही । बूहड़ ।

स्नुहा, स्नुही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्नुही बूहड़ ।

स्नुहीक्षीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] बूहड़ का दूध ।

स्नुहीधीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] बूहड़ का यीन ।

स्नुहा-संज्ञा पुं० [ सं० ] उत्पल । कमल ।

स्नेय-वि० [ सं० ] (१) स्नान करने के योग्य । नहाने लायक ।  
(२) जो नहाने की हो ।

स्नेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रेम । प्रणय । प्यार । सुहृत्त्व ।

(२) चिकना पदार्थ । चिकनाहटवाली चीज । जैसे,—भी,  
तेल, चरबी आदि । विशेषतः तेल । (३) कोमलता । (४)

एक प्रकार का राग जो हनुमंत के मत से हिंदोल राग का  
पुत्र है । (५) सरसों । (६) सिर के अंदर का गुदा । भेजो ।

(७) दूध पर की साड़ी । मलाई ।

स्नेहकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] अशकण या शाल नामक वृक्ष ।

स्नेहगर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिल ।

स्नेहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिकनाहट उत्पन्न करना । चिकनाई

हाना । (२) शरीर में तेल लगाया । (३) कफ । स्लेषमा ।

बलगम । (४) मज्जन । नेत्रनीत ।

स्नेहवाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जिसके साथ प्रेम किया जाय । प्रेमनाम । प्यारा । प्रिय ।

स्नेहवान-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की क्रिया जिसमें कुछ विशिष्ट रोगों में तेल, घी, चर्बी आदि पीने हैं । इससे भस्म पीत होती है, कोड़ा राफ होता है और शरीर कोमल तथा हलका होता है ।

विशेष—हमारे यहाँ स्नेह चार प्रकार के माने गए हैं—तेल, घी, घसा और मसा । खाली तेल पीने को साधारण पान कहते हैं । यदि तेल और घी मिलाकर पीया जाय तो उसे घमक; इन दोनों के साथ यदि घसा भी मिला दी जाय तो उसे त्रिघृत; और यदि चारों साथ मिलाकर पीए जायें तो उसे महास्नेह कहते हैं ।

स्नेहविहीनक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मैनफळ ।

स्नेहपूर-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिल ।

स्नेहफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिल ।

स्नेहबीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिरीसी ।

स्नेहभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] कफ । श्लेष्मा । बलगम ।

स्नेहसुष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] तेल । रोगन ।

स्नेहरंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिल ।

स्नेहवर्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेदा नामक की अष्टवर्गीय ओषधि । स्नेहवस्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार दो प्रकार की वस्ति या पिचकारी देने के क्रियाओं में से एक जिसमें पिचकारी में तेल मंत्रक गुदा के द्वारा रोगी के शरीर में प्रविष्ट किया जाता है । प्रा० अजीर्ण, उन्माद, शोक, मूच्छा, अरिचि, क्षास, कफ और श्व आदि के लिये यह वस्ति उपयुक्त कही है । इसका व्यवहार प्रायः वायु का प्रकोप शांत करने और कोष्ठ शुद्धि के लिये किया जाता है ।

स्नेहविद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवदार ।

स्नेहवृक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवदार ।

स्नेहसा-संज्ञा पुं० [ सं० ] मन्ना नामक धातु । अस्थिसार ।

स्नेहाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्षीरक । चिराग ।

स्नेहित-वि० [ सं० ] (१) जिसमें स्नेह हो या लगाया गया हो । चिकना । (२) जिसके साथ स्नेह या प्रेम किया जाय । मधु । मित्र ।

स्नेही-संज्ञा पुं० [ सं० स्नेहिन् ] यह जिसके साथ स्नेह या प्रेम किया जाय । प्रेमी । मित्र ।

-वि० जिसमें स्नेह हो । स्नेहयुक्त । चिकना ।

स्नेहु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रोग । व्याधि । भीमारी । (२) चंद्रमा ।

स्नेहोत्तम-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिल का तेल ।

स्नेह-वि० [ सं० ] जिसके साथ स्नेह किया जा सके । स्नेह या प्रेम करने के योग्य ।

स्पर्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] शर्बों की तरह का एक प्रकार का बहुत सुलायन और रेसोदार पदार्थ जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं । इन्हीं छेदों से यह बहुत सा पानी सोख लेता है; और जब इसे दबाया जाता है, तब इसमें का सात पानी बाहर निकल जाता है । इसी लिए प्रायः लोग स्नान आदि के समय शरीर मलने के लिये अथवा कुछ विशिष्ट पदार्थों को धोने या गिगोने के लिए अथवा गीले तल पर का पानी सुखाने के लिये इसे काम में लाते हैं । यह वास्तव में एक प्रकार के निद्र कोटि के समुद्री जीवों का भागस या ढँचा है जो भूमध्य सागर और अमेरिका के आस पास के समुद्रों में पाया जाता है । इसकी कड़े जावियाँ और प्रकार होते हैं । सुरक्ष वादक ।

स्पर्द-संज्ञा पुं० दे० "स्पर्दन" ।

स्पर्दन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी चीज का घीरे घीरे हिलना । कर्षना । (२) (अंगों आदि का ) प्रस्तुण । फड़कना ।

स्पर्दिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) रजश्चला । रजो-वर्गमवाली स्त्री । (२) वह भी जो बराबर दूध देनी रहे । सदा दूध देनेवाली स्त्री । कामधेनु ।

स्पर्दी-वि० [ सं० स्पर्दिन् ] जिसमें स्पर्दन हो । हिलने, कर्षने का फड़कनेवाला ।

स्पर्-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।

स्पर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैदिक काष्ठ की एक प्रकार की लता का नाम ।

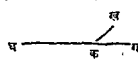
स्पर्श-संज्ञा पुं० दे० "स्पर्शात्" ।

स्पर्शनीय-वि० [ सं० ] (१) संवर्षण के योग्य । (२) स्पर्श के योग्य । जिसके साथ स्पर्श की जा सके ।

स्पर्श-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) संवर्ष । रगड़ । (२) किसी के मुकाबिले में आगे बढ़ने की हज्जा । होड़ । (३) साहस । बीसला । (४) साम्य । बराबरी । (५) ईर्ष्या । द्वेष ।

स्पर्शी-वि० [ सं० स्पर्शिन् ] जिसमें स्पर्श हो । स्पर्श करनेवाला ।

संज्ञा पुं० ज्यामित में किसी कोण में की वस्तु की कभी जितनी की वृद्धि से वह कोण १८० अंश का अथवा अर्द्ध-वृत्त होता है । जैसे,—

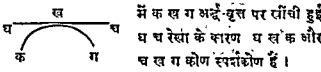


में घ क ए कोण ख क ग का स्पर्शी है ।

स्पर्श-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दो वस्तुओं का आपस में हतना पास पहुँचना कि उनके तंत्रों का कुछ कुछ अंश आपस में सट या लग जाय । छुना । (२) सम्बन्ध का वह गुण जिसके कारण ऊपर पढ़नेवाले-दूधाय या किसी चीज के सतने

का ज्ञान होता है। नैययिकों के अनुसार यह २४ प्रकार के गुणों में से एक है। (३) स्वर्गद्वय का विषय। (४) पीड़ा। कष्ट। (५) दान। (६) वायु। (७) एक प्रकार का रतिबंध या आसन। (८) व्याकरण में उच्चारण के आभ्यंतर प्रयत्न के चार भेदों में से "स्पष्ट" नामक भेद के अनुसार "क" से लेकर "म" तक के २५ व्यंजन जिनके उच्चारण में वागिन्द्रिय का द्वार बंद रहता है। (९) प्रदण या उपराम में सूर्य अथवा चंद्रमा पर छाया पड़ने का आरंभ।

स्पर्शकोष संज्ञा पुं० [ सं० ] गणित में वह कोण जो किसी वृत्त पर खींची हुई स्पर्श रेखा के कारण उस वृत्त और स्पर्श रेखा के बीच में बनता है। जैसे,—



में क ख ग अर्द्धवृत्त पर खींची हुई घ च रेखा के कारण घ ख क और च ख ग कोण स्पर्शकोण हैं।

स्पर्शजन्य-वि० [ सं० ] जो स्पर्श के कारण उत्पन्न हो। संक्रामक। छुतहा। जैसे,—बुद्ध, दीतला, हैजा आदि स्पर्शजन्य रोग हैं।

स्पर्शतन्मात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्पर्श भूत का आदि, अभिन्न और सूक्ष्म रूप। वि० दे० "तन्मात्र"।

स्पर्शता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्पर्श का भाव या धर्म। स्पर्शत्व।

स्पर्शदिशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह दिशा जिनसे सूर्य या चंद्रमा को ग्रहण लगा हो। चंद्रमा या सूर्य पर ग्रहण की छाया आने की दिशा।

स्पर्शन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छूने की क्रिया। स्पर्श करना। (२) दान। देना। (३) संबंध। लगाव। तात्पुक। (४) वायु। हवा।

स्पर्शना संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छूने की दक्ति या भाव।

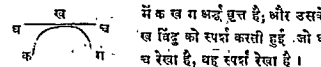
स्पर्शनीय-वि० [ सं० ] स्पर्श करने योग्य। छूने के लायक।

स्पर्शेन्द्रिय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह इंद्रिय जिससे स्पर्श किया जाता है। छूने की इंद्रिय। त्वर्गेंद्रिय। त्वचा।

स्पर्शमण्डि-संज्ञा पुं० [ सं० ] पारस पत्थर जिसके स्पर्श से लोहे का सोना होना माना जाता है।

स्पर्शरसिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामुक। लंपट।

स्पर्शरेखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गणित में वह सीधी रेखा जो किसी वृत्त की परिधि के किसी एक बिंदु को स्पर्श करती हुई खींची जाय। जैसे,—



में क ख ग अर्द्धवृत्त है; और उसके ख बिंदु को स्पर्श करती हुई जो घ च रेखा है, वह स्पर्श रेखा है।

स्पर्शलज्जा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लज्जालु या लज्जवंती नाम की लता।

स्पर्शजन्मा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बौद्धों की एक देवी का नाम।

स्पर्शशुद्धा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शातावर।

स्पर्शलकोच-संज्ञा पुं० [ सं० ] लज्जालु या लज्जवंती नाम की लता।

स्पर्शलकोच-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्पर्शलकोचिन् विद्याद्वय।

स्पर्शलचारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्पर्शलचारिन् शूद्र रोग का एक भेद।

स्पर्शलस्पंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेढक।

स्पर्शलहानि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शूद्र रोग में हथिरे के दूषित होने के कारण हिंग के चमड़े में स्पर्शलज्ञान न रह जाना।

स्पर्शल-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुलटा। पुश्तकी। दुश्चरित्रा स्त्री। छिनाल।

स्पर्शलक्रामक-वि० [ सं० ] ( रोग या दोष आदि ) जो स्पर्शल या संसर्ग के कारण उत्पन्न हो। संक्रामक। छुतहा।

स्पर्शलज्ञि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसे स्पर्शल ज्ञान हो।

स्पर्शलस्पर्शल-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्पर्शल + स्पर्शल ] छूने या न छूने का भाव या विचार। इस बात का विचार कि अमुक पदार्थ छूना चाहिए और अमुक पदार्थ न छूना चाहिए। छुतहात।

स्पर्शलिक-वि० [ सं० ] स्पर्शल करनेवाला। संज्ञा पुं० वायु। हवा।

स्पर्शल-वि० [ सं० ] स्पर्शल करनेवाला। स्पर्शल करनेवाला। जैसे,—गगनस्पर्शल। मर्मस्पर्शल।

स्पर्शलेंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह इंद्रिय जिससे स्पर्शल का ज्ञान होता है। त्वर्गेंद्रिय। त्वचा।

स्पर्शलपल्ल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पारस पत्थर। स्पर्शलमणि।

स्पर्शल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चर। दूत। (२) युद्ध। लड़ाई।

स्पष्ट-वि० [ सं० ] जिसके देखने या समझने आदि में झुग भी कठिनता न हो। साफ दिखाई देने या समझ में आनेवाला। जैसे,—(क) इसके अक्षर दूर से भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। (ख) जिसमें किसी प्रकार की लगावट या दबि-पेच न हो। जैसे,—"मैं तो स्पष्ट कहता हूँ; चाहे किसी को सुरा लगे और चाहे भला।"

मुद्गल—स्पष्ट कहना या सुनाना = विशुद्ध साफ साफ करना। बिना कुछ द्वेषान अथवा किसी का कुछ ध्यान किए कहना।

संज्ञा पुं० (१) अर्थोक्ति में प्रतीति का स्फुट साधन जिससे यह जाना जाता है कि जन्म के समय अथवा किसी और विशिष्ट काल में कौन सा ग्रह किस राशि के कितने अंश, कितनी कला और कितनी चिह्नला में था। इसकी आवश्यकता ग्रहों का ठीक ठीक फल जानने के लिये होती है। (२) व्याकरण में वर्णों के उच्चारण का एक प्रकार का प्रयत्न जिसमें दोनों हाँठ एक दूसरे से छू जाते हैं। जैसे,—प या म के उच्चारण में स्पष्ट प्रयत्न होता है।

स्पष्ट कथन-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याकरण में कथन के दो प्रकारों में से एक जिसमें किसी दूसरे की कही हुई बात ठीक उसी रूप में कही जाती है, जिस रूप में वह उसके मुँह से निकली हुई होती है। जैसे,—कृष्ण ने साफ साफ कह दिया— "मैं उन्मने किसी प्रकार का संबंध न रखता।" इसमें लक्ष्य

ने वक्ता कृष्ण का कथन उसी रूप में रहने दिया है, जिस रूप में वह उसके मुँह से निकला था।

**स्पष्टतया**-कि० वि० [ सं० ] स्पष्ट रूप से। साफ साफ। उ०—

(क) इससे यह स्पष्टता प्राप्त होता है कि समालोचना के सामान्य रूप का अर्थ मूल शीघ्र का रूप या उसका खंडन है।—गंगाप्रसाद। (ख) उपा. काल की श्वेतता समुद्र में स्पष्टतया दृष्टि पड़ती थी।

**स्पष्टता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्पष्ट होने का भाव। सफाई।

अर्थ,—उसकी बातों की स्पष्टता मन पर विशेष रूप से प्रभाव डालती है।

**स्पष्ट प्रयत्न**-संज्ञा पुं० दे० "स्पष्ट"। (२)

**स्पष्टवक्ता**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो साफ साफ बातें कहता हो। वह जो कहने में किसी का गुलाबना या रिभावत न करता हो।

**स्पष्टवादी**-संज्ञा पुं० [ सं० स्पष्टवादिन् ] वह जो साफ साफ बातें कहता हो। स्पष्टवक्ता। उ०—ऐसी हालत में स्पष्टवादी, निदा, समदर्शी, कुशाग्रबुद्धि और सच्चे तार्किकों की उपस्थिति ही बंद हो जाती है।—द्विवेदी।

**स्पष्टस्थिति**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ज्योतिष में रश्मियों के अंश, कला, विकला आदि में (चालक के जन्म की) दिखलाई हुई प्रदोषों की ठीक ठीक स्थिति।

**स्पष्टीकरण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्पष्ट करने की क्रिया। किसी बात को स्पष्ट या साफ करना। उ०—ऐसी बातें बहुत ही थोड़ी हैं जिनका मतलब विना विवेचना, टीका या स्पष्टीकरण के समझ में आ सकता है।—द्विवेदी।

**स्पष्टीकरण**-वि० [ सं० ] जिसका स्पष्टीकरण हुआ हो। साफ या खुलासा किया हुआ।

**स्पष्टीक्रिया**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ज्योतिष में वह क्रिया जिससे प्रदोषों का किसी विशिष्ट समय में किसी राशि के अंश, कला, विकला आदि में अन्वेषण जाना जाता है। उ०—पहले जब अयनाश का शान नहीं था, तब स्पष्टीक्रिया से जो ग्रह आता था, उसे लोग ग्रह ही के नाम से पुकारते थे।—सुधाकर।

**स्पष्ट संज्ञा पुं० दे० "हस्तात"।**

**स्पष्टि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शरीर में रहनेवाली आत्मा।

रूढ़। (२) यह कथित सूक्ष्म शरीर जिसका सृष्टु के समय शरीर से निकलना और आकाश में विचरण करना माना जाता है। सूक्ष्म शरीर। (३) जीवन-शक्ति। (४) एक प्रकार का बहुत तेज भाद्रक द्रव पदार्थ जिसका व्यवहार अंगरेजी शराबी, दुबानों और सुगंधियों आदि में मिलाने अथवा लंघनों आदि के जलाने में होता है। फूल शराब। (५) किसी पदार्थ का

सत या मूल तत्व। जैसे,—स्पष्टिद एमोनिया अर्थात् अमोनिया का सत।

**स्पीच**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह जो कुछ मुँह से बोला जाय। कथन। (२) वाक्शक्ति। बोलने की शक्ति। (३) किसी विषय की ज्ञानी की हुई विस्तृत व्याख्या। वक्तृता। व्याख्यान। लेखन।

**स्पिन किशमिशी**-संज्ञा पुं० [ विशेषीय ] एक प्रकार का यदिया अंगूर जो फ्रेटा-पिनीन प्रांत में होता है।

**स्पृक्षा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अक्षरगण। (२) छत्राल। छात्रवृत्ति। (३) ब्राह्मी बूटी। (४) मालती। (५) सेवती। शतपत्री। (६) गंगापत्री। पात्रीछता।

**स्पृन्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल की एक प्रकार की ईंट जिसका व्यवहार यज्ञ की वेदी आदि बाने में होता था।

**स्पृष्ट**-वि० [ सं० ] स्पष्ट करनेवाला। छुनेवाला।

**स्पृष्टा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शरिणी। सर्पकंचालिका। (२) कंदमरी। बेंदाई। रंगनी।

**स्पृष्टी** संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कंदमरी। केंदाई।

**स्पृष्ट्य**-वि० [ सं० ] जो स्पष्ट करने के योग्य हो। छुने के लायक।

**स्पृष्ट** वि० [ सं० ] जिसने स्पष्ट किया हो। छुआ हुआ।

**स्पृष्टरोदनिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छत्राल, या लज्जवंती नाम की लता।

**स्पृष्टास्पृष्ट**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] परस्पर एक दूसरे को छुने की क्रिया। छुआछूत।

**स्पृष्टि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छुने की क्रिया। स्पष्टन।

**स्पृष्टरथ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० राक्षसीय ] अभिलाषा। इच्छा।

**स्पृष्टणीय**-वि० [ सं० ] (१) जिसके लिये अभिलाषा या कामना की जा सके। वांछनीय। (२) गौरवशाली। गौरव या बढ़ाई के योग्य।

**स्पृष्टयालु**-वि० [ सं० ] (१) जो स्पृष्ट या कामना करे। स्पृष्टा करनेवाला। (२) लोभी। लालची।

**स्पृष्टा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अभिलाषा। इच्छा। कामना। स्वादिष्ट। (२) व्यापद्वारा के अनुसार किसी ऐसे पदार्थ की प्राप्ति की कामना जो धर्म के अनुकूल हो।

**स्पृष्टी**-वि० [ सं० ] (१) कामना या इच्छा करनेवाला। (२) स्पृष्टन करनेवाला।

**स्पृष्टा**-संज्ञा पुं० [ सं० ] विज्रीत नीच।

वि० जिसके लिये कामना या स्पृष्टा की जा सके। वांछनीय।

**स्पृष्टल**-वि० [ सं० ] (१) जिसमें औरों की अपेक्षा कोई विशेषता हो। विशिष्ट। खास। (२) जो विशेष रूप से किसी एक काम के लिये हो। जैसे,—स्पृष्टल गादी।

संज्ञा स्त्री० वह रत्नगादी जो किसी विशिष्ट कार्य, उद्देश्य

या व्यक्तिके लिये चले । जैसे,—लाट साहब की स्पेशल, पारात की स्पेशल ।

सिप्रग-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] छोड़े की सीधी, पत्तार, तार या इसी प्रकार की और कोई लचीली वस्तु जो दाब पड़ने पर दब जाय और दाब हटने पर फिर अपने स्थान पर आ जाय । कमानी । वि० दे० "कमानी" (१) ।

सिप्रगदार-वि० [ अं० सिप्रग + का० दार (प्रत्य०) ] जिसमें सिप्रग या कमानी लगी हो । कमानीदार ।

सिप्रगुश्लिज्जम-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह विद्या या क्रिया जिसके द्वारा किसी स्वर्गीय या मृत व्यक्तिके की आत्मा मुखाई जाती है और उसमें यात-पीत की जाती है । भूतविद्या । आत्मविद्या ।

सिप्रस-संज्ञा पुं० [ अं० ] पाश्चात्य चिकित्सा में चिपटी लकड़ी का वह टुकड़ा जो शरीर की किसी टूटी हुई हड्डी आदि को फिर यथास्थान धैराकर, उस अंग को सीधा या ठीक स्थिति में रखने के लिये उस पर बाँधा जाता है । पटी । पटरी ।

स्फट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फट फट शब्द । (२) साँप का फन ।

स्फटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साँप का फन ।

स्फटिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का सफेद बहुमूल्य पत्थर या रत्न जो बाँचे के समान पारदर्शी होता है और जिसका व्यवहार मालापै, मूर्तियाँ तथा दस्तों आदि बनाने में होता है । इसके कई भेद और रंग होते हैं । बिहीर । (२) सूर्य-कांत मणि । (३) शीशा । काँच । (४) कपूर । (५) फिटकरी ।

स्फटिकविष-संज्ञा पुं० [ सं० ] दारुमोच नाम का विष ।

स्फटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फिटकरी ।

स्फटिकाभ्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फिटकरी ।

स्फटिकाचल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कैलास पर्वत जो दूर से देखने में स्फटिक के समान जाम पड़ता है ।

स्फटिकात्मा-संज्ञा पुं० [ सं० स्फटिकात्मन् ] बिहीर । स्फटिकमणि ।

स्फटिकाभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपूर ।

स्फटिकारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फिटकरी ।

स्फटिकोत्पिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कपूर । (२) जस्ता नाम की धातु । (३) चंद्रकांत मणि ।

स्फटिकोपल-संज्ञा पुं० [ सं० ] बिहीर । स्फटिक ।

स्फटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फिटकरी ।

स्फाटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्फटिक । बिहीर । (२) पानी की धूर ।

स्फाटिक-संज्ञा पुं० दे० "स्फटिक" ।

वि० स्फटिक संबंधी । बिहीर का ।

स्फाटिकोपल-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्फटिक । बिहीर ।

स्फाटीक-संज्ञा पुं० दे० "स्फटिक" ।

स्फार-वि० [ सं० ] (१) प्रचुर । विपुल । बहुल । (२) विकट ।

स्फारण-संज्ञा पुं० दे० "स्फुरण" ।

स्फाल-संज्ञा पुं० दे० "स्फूर्ति" ।

स्फिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चूतड़ ।

स्फिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चूतड़ ।

स्फीत-वि० [ सं० ] (१) बढ़ा हुआ । वृद्धित । (२) फूला हुआ । (३) स्फुट ।

स्फीतता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्फीत होने का भाव या धर्म । (२) वृद्धि । (३) मोटाई । (४) स्फुटि ।

स्फीति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वृद्धि । यदृती ।

स्फुट-वि० [ सं० ] (१) जो सामने दिखाई देता हो । प्रकाशित । व्यक्त । (२) खिला हुआ । विकसित । जैसे,—स्फुटित कमल । (३) स्पष्ट हुआ । साफ । (४) शुद्ध । सफेद । (५) फुटकर । भयग भयग ।

संज्ञा पुं० जन्मकुंडली में यह दिखाना कि कौन सा ग्रह किस राशि में कितने अंश, कितनी कला और कितनी विच्छल में है ।

स्फुटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष्मती लता । मालकंगनी ।

स्फुटता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्फुट होने का भाव या धर्म ।

स्फुटख-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्फुट का भाव या धर्म । स्फुटता ।

स्फुटखचा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महाज्योतिष्मती । मालकंगनी ।

स्फुटध्वनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] सफेद पंडुक (पक्षी) ।

स्फुटन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फटना या फूटना । (२) विकसित होना । खिलना ।

स्फुटफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुवृक्ष ।

स्फुटबंधना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मालकंगनी । ज्योतिष्मती ।

स्फुटरंगिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की लता जिसका व्यवहार औषध में होता है ।

स्फुटवटकली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ज्योतिष्मती । मालकंगनी ।

स्फुटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साँप का फन ।

स्फुटि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पाद्रेस्फोटक नाम का रोग । पैर की विवाई फटना । (२) फूट नाम का फल ।

स्फुटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) फूट नामक फल । (२) फिटकरी ।

स्फुटित-वि० [ सं० ] (१) विकसित । खिला हुआ । (२) जो स्पष्ट किया गया हो । प्रकट किया हुआ । (३) हँसता हुआ ।

स्फुटितकांडभ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पैर के अनुसार हड्डी टूटने का एक भेद । हड्डी का टुकड़े टुकड़े होकर खिल जाना ।

स्फुटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पाद्रेस्फोट नामक रोग । पैर की विवाई फटना । (२) फूट नाम का फल ।

स्फुटीकरण-संज्ञा पुं० [ सं० स्फुट + करण ] स्पष्ट करना । प्रकट या स्पष्ट करना ।

स्फुटकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] अक्षि । भाग ।

स्फुटकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] फुटकार। फुटकार।  
 स्फुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वायु। इया। (२) दे० "स्फुरण"।  
 स्फुरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी पदार्थ का जाा जरा हिलना।  
 (२) भंग का फटकना। (३) दे० "स्फूर्ति"।  
 स्फुरण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भंगों का फटकना।  
 स्फुरतिष्ठ-संज्ञा स्त्री० दे० "स्फूर्ति"।  
 स्फुरित-वि० [ सं० ] जिसमें स्फुरण हो। हिलने या फटकनेवाला।  
 संज्ञा पुं० दे० "स्फुरण"।  
 स्फुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्फूर्ति। (२) तंत्र। खेमा।  
 स्फुलमंजरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुलकुल नामक पौधा।  
 स्फुल्लिग-संज्ञा पुं० [ सं० ] अमि का छोटा धन। आग की चिनगारी।  
 स्फुल्लिगिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अमि की साग जिहाओं में से एक।  
 स्फूर्जक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तिट्टुक या तेंदू नाम का वृक्ष।  
 (२) सोनापत्ता।  
 स्फूर्ज्यु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विजयी की कड़क। (२) बौलाई  
 का नाम।  
 स्फूर्जन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तिट्टुक या तेंदू नाम का वृक्ष।  
 (२) यक्षिया पीपल। नंदीतर।  
 स्फूर्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धीरे धीरे हिलना। फटकना।  
 स्फुरण। (२) कोई काम करने के लिये मन में उत्पन्न  
 होनेवाली हलकी उद्येचना। (३) फुगती। तेजी। जैसे,—  
 स्तान करने से शरीर में स्फूर्ति आती है।  
 स्फोट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अंदर भरे हुए किसी पदार्थ का  
 अपने ऊपरी आवरण को तोड़ या भेदकर बाहर निकलना।  
 फटना। जैसे,—आलामुखों का स्फोट। (२) शरीर में  
 होनेवाला फोड़ा, फुंसी आदि। (३) सोती। युक्त। (४)  
 सर्वदर्शन संग्रह के अनुसार नित्य शब्द जिससे वर्णमय  
 शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है। जैसे,—कमल शब्द में  
 क, म और ल से तीन वर्ण हैं; और इन तीनों के अलग  
 अलग उच्चारण से कुछ भी अभिप्राय नहीं निकलता। परंतु  
 तीनों वर्णों का साथ साथ उच्चारण करने पर जो स्फोट  
 होता है, उसी से कमल शब्द का अभिप्राय जाना जाता है।  
 कुछ लोग इसी स्फोट (नित्य शब्द) को संसार का कारण  
 मानते हैं।  
 स्फोटक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) फोड़ा। फुंसी। (२) मिलावटी।  
 भट्टावक। ( जिसका तेल छानने से शरीर में फोड़ा सा हो  
 जाता है। )  
 स्फोटन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अंदर से फोड़ना। (२) विदारण।  
 फाटना। (३) प्रकट या प्रकटित करना। (४) शब्द।  
 भाषा। (५) मुद्गन के अनुसार वायु के प्रकोप से होने-  
 वाली मग की बीदा जिसमें मग पडता हुआ सा जान  
 पड़ता है।

स्फोटलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कणफोड़ा नाम की लता।  
 स्फोटवादी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्दवादि। वह जो स्फोट या अनित्य  
 शब्द को ही संसार का मूल हेतु या कारण मानता हो।  
 स्फोटवीजक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भट्टावक। मिलावटी।  
 स्फोटहेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] भट्टावक। मिलावटी।  
 स्फोट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सॉप का फन। (२) सफेद  
 अनंतमूल।  
 स्फोटादन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कश्मीरवायु मुनि का एक नाम।  
 स्फोटिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पथर या जमीन आदि तोड़ने फाड़ने  
 का काम।  
 स्फोटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छोटा फोड़ा। फुंसी। (२)  
 हायुजिका नामक पत्ती।  
 स्फोटिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ककड़ी।  
 स्फोता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अनंतमूल। शक्ति। (२) सफेद  
 आक। सफेद भट्टार।  
 स्मद्धि-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।  
 स्मय-संज्ञा पुं० [ सं० ] गर्व। अभिमान। शोभा।  
 वि० अहृता। विलक्षण।  
 स्मर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कामदेव। सदन। उ०—(क) मदन  
 मनोभय मन मथन, पंचस्र रत्न मार। मोनकेतु कंदर्पहरि  
 व्यापक विरह विदार।—अनेकार्य। (ख) स्मर अरवाकां  
 हित माल। ताको कहत विसाल।—सुमान। (२) स्मरण।  
 स्मृति। याद। (३) शुद्ध राग का एक भेद। (संगीत)  
 स्मरकथा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्रियों के संबंध की या शृंंगार रस  
 की ऐसी बातें जिनसे काम उत्पन्न हो।  
 स्मरकार-वि० [ सं० ] जिससे काम का उद्देश्य हो। कामोद्देशक।  
 स्मरकूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] मग। योनि।  
 स्मरकूपिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मग। योनि।  
 स्मरगुच्छ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ब्रीहण का एक नाम। (२) वह  
 जो काम कला की शिक्षा दे।  
 स्मरगुच्छ-संज्ञा पुं० [ सं० ] मग। योनि।  
 स्मरचंद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रतिबंध।  
 स्मरचक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्री संभोग के लिये एक प्रकार का  
 रतिबंध।  
 स्मरच्छुद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] मग। योनि।  
 स्मरस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी वस्ती, मुनी, वीथी या अनुभव  
 में आई हुई बात का फिर से मन में आना। याद आना।  
 आधान। जैसे,—(क) मुझे स्मरण नहीं आता कि आरने  
 उस दिन क्या कहा था। (ख) वे एक एक बात अली भोति  
 स्मरण रखते हैं।  
 सुप्त-संज्ञा पुं०—स्मरण दिलाना—भूषा दूरे शान थाट कराना। जैसे,—  
 उनके स्मरण दिलाने पर मैं सय बातें मुमस गया।

(२) नौ प्रकार की भक्तियों में से एक प्रकार की भक्ति जिसमें उपासक अपने उपास्यदेव को वराहर याद किया करता है। उ०—ध्रुवण, कीर्तन, स्मरणपाद, रत, अरचन वन्दनदास। सख्य और आत्मा निवेदन, प्रेमलक्षणा जास ।—सूर। (३) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें कोई बात या पदार्थ देखकर किसी विशिष्ट पदार्थ या बात का स्मरण हो आने का वर्णन होता है। जैसे,—कमल को देखकर किसी के सुन्दर नेत्रों के स्मरण हो आने का वर्णन। उ०—  
(क) सूल होत नवनीत निहारी। मोहन के मुख जोग विचारी। (ख) लखि दानि मुख की होत मुधि तन मुधि घन को जोहि।

**स्मरणपत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र जो किसी को कोई बात स्मरण दिलाने के लिये लिखा जाय।

**स्मरणशक्ति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह मानसिक शक्ति जो अपने सामने होनेवाली घटनाओं और सुनी जानेवाली बातों का प्रहण करके रख छोड़ती है; और आवश्यकता पड़ने, प्रसंग आने या मस्तिष्क पर जोर देने से वह घटना या बात फिर हमारे मन में, स्पष्ट कर देती है। याद रखने की शक्ति। याददातर। जैसे,—(क) आपकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र है। (ख) अभ्यास से किसी विशिष्ट विषय में स्मरणशक्ति बहुत बढ़ाई जा सकती है।

**स्मरणासक्ति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भगवान् के स्मरण में होनेवाली आसक्ति जिसके कारण भक्त दिन रात भगवान् या इष्टदेव का स्मरण करता है। उ०—(यह भक्ति) एक रूप ही होकर गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दासासक्ति, सध्यासक्ति, फांतासक्ति, वासस्थयासक्ति, आत्मनेवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति रूप से एकादश प्रकार की होती है।—हरिश्चंद्र।

**स्मरणीय**—वि० [ सं० ] स्मरण रखने योग्य। याद रखने लायक। जो मूलने योग्य न हो। जैसे,—यह घटना भी स्मरणीय है।

**स्मरता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्मर या कामदेव का भाव या धर्म। (२) स्मरण का भाव या धर्म।

**स्मरदशा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह दशा जो प्रेमी या प्रेमिका के न मिलने पर उसके विरह में होती है। विरह की अवस्था।

**स्मरदहन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव को भस्म करनेवाले, शिव।

**स्मरदीपन**—वि० [ सं० ] जिससे काम उत्तेजित हो। कामोत्तेजक।

**स्मरध्वज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुरुष वा लिंग। (२) स्त्री की योनि। भग। (३) वाद्य। बाजा।

**स्मरध्वजा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चाँदी की रात।

**स्मरनाक्ष**—क्रि० सं० [ सं० स्मरण + ना (कृप०) ] स्मरण करना। याद करना। उ०—तुम्हीं देखिये की महा-चाह भाई, बिलोधि, बिचारी, साराई, स्मरें जू। रहै: धैरि न्यारी, घटा

देखि करी, बिहारी, बिहारी, बिहारी, रै जू॥ भई काल बौरी सि दौरी फिरी, आहु भाई दसा ईस का धौं करे जू।  
बिया मैं प्रसी सी, भुजंगें डसी सी, छरी सी, मरी सी, घरी सी, भरे जू।—रसकुसुमाकर।

**स्मरप्रिया**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कामदेव की पत्नी, रति।

**स्मरमंदिर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] योनि। भग।

**स्मरलेखनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शारिका पक्षी। मैना।

**स्मरवधू**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कामदेव की पत्नी, रति।

**स्मरवह्नि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्निरुद्ध का एक नाम।

**स्मरवीथिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेदवा। रंडी।

**स्मरवृद्धि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कामवृद्धि या कामज नामक छुप।

**स्मरशत्रु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव का वृहन करनेवाले, महादेव।

**स्मरशाख**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शाख जिसमें काम कला का विवेचन हो। कामशाख।

**स्मरसख**—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा।  
वि० जिससे काम की उत्तेजना हो। कामोत्तेजक।

**स्मरस्तंभ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुरुष की इंद्रिय। लिंग।

**स्मरस्मारा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सेवती।

**स्मरस्मर्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गीत।

**स्मरहर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

**स्मरामार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] भग। योनि।

**स्मराकुश**—संज्ञा पुं० [ सं० ] लिंग।

**स्मराधिवास**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अपोक वृक्ष।

**स्मराभ्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कलमी आम। राजाभ्र।

**स्मरारि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव के शत्रु, महादेव। उ०—  
स्मरारि संस्मर निज रूपा। यथा दिखावहि विमल स्वरूपा।  
शंकरदिविजय।

**स्मरासव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ताड़ में निकलनेवाला ताड़ी नामक मादक द्रव्य। (२) थूक।

**स्मरार्णव**—संज्ञा पुं० दे० "स्मरण"।

**स्मरार्णव**—वि० [ सं० ] स्मरण रखने योग्य। याद रखने लायक। स्मरणीय।

**स्मरार्णव**—संज्ञा पुं० [ सं० स्मरार्णव ] वह जो स्मरण रखे। याद रखनेवाला।

**स्मरार्णव**—वि० [ सं० ] स्मरण रखने योग्य। याद रखने लायक। स्मरणीय।

**स्मरशान**—संज्ञा पुं० दे० "दमशान"।

**यिरोप**—दमशान के यौगिक दार्ष्ट्यों के लिये देखो "दमशान" के यौगिक।

**स्मरक**—वि० [ सं० ] स्मरण करानेवाला। याद दिलानेवाला।

संज्ञा पुं० (१) वह कृत्य, पदार्थ या वस्तु आदि जो किसी की स्मृति बनाए रखने के लिये प्रस्तुत किया जाय।

यादगार । जैसे,—सहाराज तिया जी का स्मारक । महाराजी विद्योदिया का स्मारक । (२) वह चीज जो किसी की अपना स्मरण रखने के लिये नृी जाय । यादगार । जैसे,—मेरे पास यही एक पुस्तक तो भायका स्मारक है ।

स्मारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्मरण करने की क्रिया । याद दिलाना । स्मारणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मांसी का मही नाम की वनस्पति जिसके सेवन से स्मरण शक्ति का बदन माना जाता है ।

स्मारित-संज्ञा पुं० [ सं० ] कृतसाक्षी के पाँच भेदों में से एक । वह साक्षी जिसका नाम पत्र पर न लिखा हो, परंतु अर्थों अपने पक्ष के समर्थन के लिये स्मरण करके मुलाये ।

स्मारत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ये कृत आदि जो स्मृतियों में लिखे हुए हैं । (२) वह जो स्मृतियों में लिखे अनुसृत सब कृत्य करता हो । (३) वह जो स्मृतियों आदि का अच्छा ज्ञाता हो । स्मृति दास्य का पंडित । वि० स्मृति संबंधी । स्मृति का ।

स्मारत्त-वि० [ सं० ] स्मृति संबंधी । स्मृति का । स्मित-संज्ञा पुं० [ सं० ] मंद हास्य । घीमी हँसी । उ०—धम अभिजाय सगर्व स्मित, कोष द्रव भय भाव । उपजत एकद्वि जा रहै, तहँ किलिहुं चिह्न हाय ।—केदाव ।

वि० लिखा हुआ । विकसित । प्रस्तुतित । स्मृत-वि० [ सं० ] याद किया हुआ । जो स्मरण में आया हो । उ०—(क) एक यात यह भी स्मृत रक्खो कि जहाँ सचिप्ट होती है, वहाँ ये सात गुण और उसके साथ निवास करते हैं ।—भद्राराम । (ग)...जो अब तक स्मृत थे, अर्थात् प्रसन्नता प्राप्त होती थी ।—अयोध्यासिंह ।

स्मृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्मरण शक्ति के द्वारा संचित होने-वाला ज्ञान । (२) स्मरण । याद । (३) दृश की कथा और अंगिरा की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न एक कन्या । (४) हिंदुओं के धर्म शास्त्र जिनकी रचना ऋषियों और मुनियों आदि ने वेदों का स्मरण या चिंतन करके की थी और जिसमें धर्म, दर्शन, आचार व्यवहार, प्रायश्चित्त, शासननीति आदि के विवेचन हैं । विशेष—हिंदुओं के धार्मिक ग्रंथ दो भागों में विभक्त हैं—श्रुति और स्मृति । इनमें से वेद, प्राण्य और उपनिषद् आदि "श्रुति" के अंतर्गत हैं (दे० "श्रुति") और दीप धर्मशास्त्रों को स्मृति कहते हैं । स्मृति के अंतर्गत नीचे लिखे ग्रंथ आते हैं—(क) छः वेदांग । (ख) गृह्य, आश्वलायन, सांख्ययान, गोमिह, पारस्कर, बौधायन, भारद्वाज और आपस्तंबादि सूत्र । (ग) मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, क्षारी, उत्तमसू, अंगिरा, यम, कण्वक, शुहरति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, बशिष्ठ, जगद्गुरु आदि सूत्र आदि के रचे हुए धर्मशास्त्र । (घ) रामायण और

महाभारत आदि इतिहास । (च) अठारहो पुराण और (छ) सब प्रकार के नीति-शास्त्र के ग्रंथ ।

(५) (अठारह धर्मशास्त्रों के कारण) १८ की संख्या । (६) एक प्रकार का छंद । (७) इच्छा । कामना ।

स्मृति कार-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्मृति या धर्मशास्त्र, पदानेपाल । स्मृति कार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह औषध जिसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है ।

स्मृतिवर्द्धिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राप्ति नामक वनस्पति जिसके सेवन से स्मरण शक्ति तीव्र होती है ।

स्मृतिशास्त्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] धर्मशास्त्र । वि० दे० "स्मृति" । स्मृतिहिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नंदशुषुषी नाम की लता ।

स्यंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) टपकना । घूना । रसना । पहना । (२) गलना । पानी होना । (३) पसीना निकलना । स्वेदोत्पन्न । (४) एक प्रकार का पशुरोग । (५) बंदना ।

स्यंदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] तेंदु । तित्क वृक्ष । स्यंदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घूना । टपकना । रसना । क्षरण । (२) गलना । पानी हो जाना । (३) जाना । चलना । गमन । (४) रथ विरोधतः युद्ध में काम आनेवाला रथ । उ०—चदि स्यंदन चंदन सीस वै चंदन करि तिजवर पश्रि । नंद नंदनपुर तकते भयो सुभट सुसर्वा परि मदिह ।—गोपाल । (५) घात । हवा । (६) गत उत्सर्पिणी के २३वें अर्ध का नाम । (वि०) (७) तिनसुना । तिनस वृक्ष । (८) जल । (९) जियन । तसवीर । (१०) घोड़ा । तुरंग । (११) एक प्रकार का मंत्र जिससे अन्न मंत्रित किए जाते थे । (१२) तेंदु । तित्क वृक्ष ।

स्यंदन तैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार की तैलौषध जो मार्गद्वर के लिये उपकारी मानी जाती है । इसके बगाने की विधि इस प्रकार है—जोना, भाक, किराँत, पाप, कटुमर, सफेद कनेर, गूदर, इलाय, बरिलारी, बप, सजी और मालकंगनी, इन सब छ कक, जो कुछ मिश्राए एक सेर हो, ४ सेर तिल के तेल में पकाया जाय । इसके लगाने से मार्गद्वर नष्ट जाता है । इसे नित्येदन तैल भी कहते हैं ।

स्यंदनद्रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तिनसुना । तिनस वृक्ष । (इसके लकड़ी रस के परिपि आदि बगाने के काम में प्रायः की; इली से दसका नाम स्यंदनद्रुम पदा ।) (२) तेंदु । तित्क ।

स्यंदनोदर-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह योद्धा जो रथ पर दुर करत हो । रथी ।

स्यंदनद्रुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) तिनसुना । तिनस वृक्ष । (२) तेंदु । तित्क वृक्ष ।

स्यंदनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] तिनसुना । तिनस वृक्ष ।



स्यंदनिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छोटी नदी । नहर । (२)

खार की बूँद ।

स्यंदनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शूद्र । खार । (२) मृत्त नदी ।

स्यंदिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन नदी का नाम । (शापायण)

स्यंदिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शूद्र । खार । (२) यह माय

जिसने एक साध दो बच्चों को जन्म दिया दो ।

स्यमंतक—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणिक एक प्रसिद्ध मणि ।

विशेष—भागवत पुराण में इस मणि की कथा इस प्रकार है—

यह मणि सत्राजित् नामक यादव ने अपनी तपस्या से सूर्य-

नारायण को प्रसन्न कर प्राप्त की थी। यह सूर्य के समान

प्रभा-विशिष्ट थी। यह प्रति दिन आठ गार (१ गार = २०

गुला = २००० पल) सोना देती थी। जिस स्थान या नगर

में यह रहती थी, वहाँ .रोग, शोक, दुःख, क्षीरप्रय आदि

का नाम न रहता था। यादवों के कहने से श्रीकृष्ण ने राजा

उग्रसेन के लिये यह मणि माँगी, पर सत्राजित् ने नहीं दी।

सत्राजित् से उसके भाई प्रसेन ने यह ले ली और कंट में

धारण कर आसक्त को गया। वहाँ एक सिंह ने उसे मार

दाला। मणि लेकर सिंह एक गुफा में सुता। गुफा में

रीठों का राजा जांबवंत रहता था। मणि के प्रकाश से गुफा

को प्रकाशमान् देखकर जांबवंत आ पहुँचा और उसने सिंह

को मार कर मणि हस्तगत की। इधर श्रीकृष्ण पर यह

कलंक लगा कि उन्होंने प्रसेन को मार कर मणि ले दी है।

यह सुन श्रीकृष्ण जांबवंत की गुफा में पहुँचे और उसे

परास्त कर उन्होंने मणि का उद्धार किया। जांबवंत ने

श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान् जान कर अपनी कन्या जांबवंती

उसके धारण की। श्रीकृष्ण ने लौटकर वही मणि सत्राजित्

को दे दी। सत्राजित् इसलिये बहुत लजित और दुखी

हुआ कि मैंने श्रीकृष्ण पर शत्रुता कलंक लगाया था। उसने

भक्ति भाव से अपनी कन्या सत्यभामा और मणि श्रीकृष्ण को

भेंट की। सत्यभामा को तो श्रीकृष्ण ने अंगीकार कर लिया,

पर मणि लौटा दी। अनंतर सत्राजित् को मार कर शतधन्या

ने मणि ले ली। अंत में शतधन्या श्रीकृष्ण के हाथों मारा

गया और मणि सत्यभामा को मिल गई। कहते हैं, श्रीकृष्ण

ने मादों की चौय का चंद्रमा देखा था, इसी से उन पर

मणि-हरण का शत्रुता कलंक लगा था। इसी से मादों मदीने

की चौय का चंद्रमा लोग नहीं देखते ।

स्यमंत पंचक—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक तीर्थ का नाम जहाँ, भागवत

के अनुसार, परशुराम ने पितरों का शोणित से तर्पण

किया था ।

स्यमिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चींटियों या दीमकों का बनाया

हुआ मिट्टी का घर । शोमि । चरमीक । (२) एक प्रकार

का वृक्ष ।

स्यमीक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शोमि । चरमीक । (२) चमर ।

फल । (३) यादव । मेव । (४) जल । (५) एक प्राचीन

राजवंश का नाम ।

स्यमीका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नील का पीया । (२) एक

प्रकार का बीदा ।

स्यारत—अर्थ० [ सं० ] बदधिप् । शायद ।

स्यारत—संज्ञा पुं० [ सं० ] जैन दर्शन जिसमें एक पद्म से

निष्पन्न, अग्निरायण, सूर्यदेव, विष्णुयण, सरय, अक्षय्य मादि

अनेक विरुद्ध धर्मों का सापेक्ष स्वीकार किया जाता है और

कहा जाता है कि स्यार्य यह भी है, स्यार्य यह भी है आदि ।

अनेकान्तवाद ।

स्यारत—वि० दे० "स्यारना" । उ०—(क) में सुत सुता स्यार

सुख पागे ।—स्यारना । (ख) त्रिपन्न चार वेधन न स्यार

के ।—देव ।

स्यारण—संज्ञा पुं० दे० "स्यारणन" ।

स्यारणपत—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्यारना + पत (प्रत्य०) । (१) चतुरता ।

चतुराई । (२) चालाकी । धूर्तता ।

स्यारणपन—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्यारना + पन (प्रत्य०) । (१) चतुरता ।

दुस्त्रिमात्री । होशियारी । (२) चालाकी । धूर्तता ।

स्यारना—वि० [ सं० ] स्यारणे [ जो० ] स्थाने । (१) चतुर । दुस्त्रिमात्र ।

होशियार । जैसे,—(क) तुम स्यारने होकर ऐसी बातें करते

हो ! (ख) वे यह स्यारने हैं; उनके भागे तुम्हारी दाल नहीं

घलने की । (३) चालाक । वादर्थी । धूर्त । जैसे,—उसे

तुम कम मत समझो; यह बड़ा स्यारना है । (३) जो अर

वालक न हो । बड़ा । चयस्क । चालिय । जैसे,—(क) जब

लड़का स्यारना हो जाय, तब उसका व्याह करना चाहिए ।

(ख) उषों उषों यह स्यारना हो रहा है; स्वों स्वों चिह्न

रहा है ।

संज्ञा पुं० (१) वडा-वृद्ध । वृद्ध पुरुष । जैसे,—(क) स्यारनों

का कहना मानना चाहिए । (ख) पहले घर के स्यारनों से

पूछ लो; फिर यह काम करो । (३) यह जो शब्द-पूर्वक करता

हो । शब्द-पूर्वक करनेवाला । अंतर-अंतर करनेवाला । भोला ।

(३) गाँव का मुखिया । नंबरदार । (५) चिह्नचक्र ।

हकीम ।

स्यारनाचारी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्यारना + चार (प्रत्य०) । यह स्यार

जो गाँव के मुखिया को मिलता है ।

स्यारणपन—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्यारना + पन (प्रत्य०) । (१) स्यारने

होने की अवस्था । लड़कान के बाद की अवस्था । बालिका

होने की अवस्था । युवावस्था । जैसे,—उसका व्याह स्यारने-

पन में हुआ था । (२) चतुराई । चतुरी । होशियारी ।

(३) चालाकी । धूर्तता ।

स्यारपा—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्यारणपत । नरे हुए मनुष्य के शोक में

। कुछ काल तक घर की तथा नाते रिश्ते की स्थितियों के प्रति दिन एकत्र होकर रोने और शोक मनाने की रीति ।

विद्येय—मुसलमानों तथा पंजाब के हिंदुओं में यह चाल है कि घर में किसी की, विशेषकर जवान-मनुष्य की मृत्यु होने पर स्त्रियों एकत्र होकर रोती पीठती हैं। वे दिन रात में एक ही वार भोजन करती हैं और घर के बाहर नहीं निकलतीं। हसी को स्वापा कहते हैं।

मुहा०—स्वापा पढ़ना = (१) रीति विधान मथना। (२) बिल्कुल उपास या हननान होना। जैसे,—इस बाजार में तो सर्वेदास ही स्वापा पढ़ जाता है।

स्वायासक—अन्त्ये दे० "शाबास"। उ०—यार बार कह मुज स्वाकाइ। क्रियो सख पितु विष्णु विष्वाइ।—रघुसात।

स्वामक—संज्ञा पुं० दे० "दयाम"। उ०—विष्णु अति प्यारी रोहिनी तामें जनमें स्वाम। अति समिधि के चंद्र के पूरन मन के काम।—ध्यात।

वि० दे० "दयाम"। उ०—नील सरोरह स्वाम सदन अरुन वारिज वदन। करहु सो मम दर धाम सदा छी सागर-सयन।—गुलसी।

संज्ञा पुं० भारतवर्ष के पूर्व के एक देश का नाम।

स्वामक—संज्ञा पुं० दे० "दयामक"। उ०—स्वामक नामक वीर चलेउ मनुदेव अनुज भेदि।—गोपाल।

स्वामकरन—संज्ञा पुं० दे० "दयामकरन"। उ०—स्वामकरन ध्यानिउ ह्य होते। ते तिन्ह रथह सारथिजु जाते।—गुलसी।

स्वामकरन—संज्ञा पुं० दे० "दयामकरन"। उ०—कहूँ अरुन तन पुँरग बरुया। कितहूँ स्वामकरन के ज्या।—ताम्रशमेध।

स्वामता—संज्ञा स्त्री० दे० "दयामता"। उ०—मारेउ राहु ससिदि कह कोई। उर भई परी स्वामता सोई।—गुलसी।

स्वामल—वि० दे० "दयामल"। उ०—छता ओट तप सखिन छलाये। स्वामल गौर कितोर सुदाये।—गुलसी।

स्वामलता—संज्ञा स्त्री० दे० "दयामलता"। उ०—स्वच्छता सोहि रही धनमें उन अंक में स्वामलता सरसावत।—रसकुसुमाकर।

स्वामलिया—संज्ञा पुं० दे० "सौलिया"। उ०—रंगी गयी मन पट अरी स्वामलिया के रंग। कारी कामर पै पड़े अय बर्षी बूयो रंग।—रसनिधि।

स्वामा—संज्ञा स्त्री० दे० "दयामा"।

स्वारी—संज्ञा पुं० [ हि० सियार ] [ स्त्री० स्वारी ] सियार। गीदड़। श्याल। उ०—स्वार कटकटे छगे सयन साँ छटे लगे अंग सँव छटे लगे सोमित की बट्टे छगे।—गोपाल।

स्वारकाँटा—संज्ञा पुं० [ स्वार ] + [ हि० काँटा ] सत्त्वानाक्षी। स्वर्णक्षीरी।

स्वारपन—संज्ञा पुं० [ हि० सियार ] + [ पन (अन्त्ये) ] सियार या गीदड़ का सा स्वभाव। श्याल प्रकृति। उ०—आयो सुनि कान्द

। भूखी सकल हुस्वारपन, स्वारपन कंस को न कहते सिराह है।—रसकुसुमाकर।

स्वारलाठी—संज्ञा स्त्री० [ हि० स्वार ] + [ लाठी ] धमलतास।

स्वारी—संज्ञा स्त्री० [ हि० सियार ] सियार की मादा। सियारी। सियारिन। गीदड़ी। श्याली। उ०—बोलेहि भारतार अह स्वारी। हारहुगे मनु कहत पुकारी।—गोपाल।

स्वायल—संज्ञा पुं० [ सं० ] पक्षी का भाई। साया। दयाल। दयालक। उ०—सुनत स्वायल के वयन महीपति पड़े सुमंत तुरंता। भ्रातन सहित राम बुलवायो भाये अति विलसंत।—रघुराम।

संज्ञा पुं० दे० "सियार" या "स्वार"। उ०—सरमा से कुत्ते स्वायल आदि उपग्रह हो गए।—सरपार्थ प्र०।

स्वायलकाँटा—संज्ञा पुं० दे० "स्वारकाँटा"।

स्वायलक—संज्ञा पुं० [ सं० ] पक्षी का भाई। साया।

स्वाया—संज्ञा पुं० [ दे० ] बहुतायत। अधिकता। ज्यादाती।

स्वायलिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पक्षी की छोटी बहन। साया।

स्वायलिया—संज्ञा पुं० [ हि० सियार ] सियार। गीदड़। श्याल। उ०—श्रीहृण्य के पुत्र दंडन मुनि को स्वायलिया ले गया।—सरपार्थ प्र०।

स्वाली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पक्षी की बहन। साया। स्वायलिका।

स्वालो—संज्ञा पुं० [ हि० स्वाल ] स्त्रियों के ओढ़ने की चादर। ओढ़नी। उर्दनी।

स्वालो—संज्ञा पुं० [ सं० स्वाल, हि० साल ] पक्षी का भाई। साला। (हि०)

स्वाह—वि० [ सं० ] काल। कृष्ण वर्ण का।

संज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति। उ०—सिरगा समेदा स्वाह सेकिया सूर सुरंगा। मुसकी पैँचकहपानि कुमेता केहरि रंगा।—सूदन।

स्वाह करवा मुलकट—संज्ञा पुं० [ ? ] लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का ढप्पा जिससे कपड़ों पर बेल छूटे छापे जाते हैं।

स्वाहगोसर—संज्ञा पुं० दे० "सियाहगोत"। उ०—धीते सुरोस सावर दर्बंग। गैरा मालीनु डोलत अमंग। अह स्वाहगोसर विभंग अंग। रिच्छादि सैरिहा छुटे अंग।—सूदन।

स्वाह जमान—संज्ञा पुं० [ सं० स्वाह + पवान ] वह हाथी या घोड़ा जिसकी जगमग स्वाह हो। (देसे हाथी घोड़े देवी समझे जाते हैं।)

स्वाह जीरा—संज्ञा पुं० [ सं० स्वाह + हि० जीरा ] काला जीरा। वि० दे० "काला जीरा"।

स्वाह ताल—संज्ञा पुं० [ सं० स्वाह + हि० ताल ] वह हाथी या घोड़ा जिसका ताल बिलकुल स्वाह हो। (देसे हाथी घोड़े देवी समझे जाते हैं।)

स्याहदिल-वि० [ पा० ] जो दिल का काला हो। खोटा। दुष्ट।

स्याहभूरा-वि० [ का० स्याह + हि० भूरा ] काला। (रंग)।

स्याहा-संज्ञा पुं० दे० "सियाहा"। उ०—प्रसू जू मैं ऐसो अमल कमायो। साविक जमा हुती जो जोरी मित जालिक तल छायो। वासिलवाकी स्याहा मुजमिल सब अधर्म की पाकी। चित्रगुप्त होत मुस्वीकी शरण गहूँ मैं काकी।—सूर।

स्याही-संज्ञा स्त्री० [ का० ] (१) एक प्रसिद्ध रंगीन सरल पदार्थ जो प्रायः काला होता है और जो लिखने, छापने आदि के काम में आता है। लिखने या छापने की रोशनाई। मसि। उ०—हरि जाय चेत चित खल स्याही हरि जाइ करि जाय कानद कलम टाँक जरि चाय।—काव्यकलाधर। (२) कालापन। कालिमा। उ०—स्याही धारन हैं गहूँ मन हैं भई न कूर। समुस चतुर चित पात यह रहत बिसर बिसर।—रसनिधि।

मुद्रा०—स्याही जाना = बालों या कालापन जाना। बघानी का बोलना। उ०—स्याही गहूँ सफेदी आई दिल सफेद अजहूँ न हुआ।—कवीर। (२) कालिल। कालिमा। जैसे,—उसने अपने पाप दादों के नाम पर स्याही पोत दी।

क्रि० प्र०—पोतना।—लेपना।

(४) कड़वे तेल के दीप में पारा हुआ एक प्रकार का काजल जिससे गोदना गोदते हैं।

संज्ञा स्त्री० [ सं० शल्यकी, हिं० स्याही ] साही। शल्यकी। सैह। वि० दे० "साही"।

स्युघक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद। (विष्णुपुराण)।

स्यू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूत। सूत्र।

स्यूत-वि० [ सं० ] बुना हुआ। सीपा हुआ। सूजित।

संज्ञा पुं० मोटे कपड़े का धैला। धैली।

स्यूति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सीना। सीवन। (२) बुनना। घपन। (३) धैला। (४) संतति। संतान। औलाद।

स्यून-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किरण। रश्मि। (२) सूर्य। (३) धैला।

स्यूम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किरण। रश्मि। (२) जल।

स्यूमरश्मि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक ऋषि का नाम।

स्यो, स्योळ-ग्रन्थ० [ सं० सह ] सह। सहित। उ०—(क) सुनि शिप कंतदंत, वृन धरिके स्यो परिधार सिवारो।—सूर। (ख) राम कह्यो उडि बाधरगई। राजसिरी सखि स्यो तिय पाई।—केशव। वि० दे० "सौ"।

स्योत-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोटे कपड़े का धैला। धैली।

स्योती-संज्ञा स्त्री० दे० "सेवती"।

स्योन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किरण। रश्मि। (२) सूर्य। (३) धैला। (४) सुख। आनंद।

स्योनाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोनापाका। स्योनाक वृक्ष।

स्योनाक-संज्ञा पुं० [ सं० स्योनाक ] सोनापाका। स्योनाक वृक्ष।

स्योहार-संज्ञा पुं० [ दे० ] वैद्यकों की एक जाति।

स्यंगळ-संज्ञा पुं० दे० "स्यंग"। उ०—अंगिया छुनकारी खरी सित गारी की सेद कनी कुछ दूपर लौं। मनो सिधु मये सुधा फेन वटयो सो चढयो गिरि संगनि उपर लौं।—सुंदरी-सर्वस्व।  
स्यंसन-वि० [ सं० ] मलभेदक। दस्त खानेवाला। दस्तावर। विरेचक।

संज्ञा पुं० (१) वह औषध जो कोठे के वात आदि दोष तथा मल को नियत समय के पहले ही बखाल उदा मार्ग से निकाल दे। मलभेदक औषध। दस्त खानेवाली दवा। विरेचन। (२) अक्षयपतन। अंध। (३) कबे गर्भ का गिरना। गर्भपात। गर्भघात।

स्यंसिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार का योनि रोग जिसमें प्रसंग के समय रगड़ लगने पर योनि बाहर निकल आती है और गर्भ नहीं बहरता। प्रसंसिनी।

स्यंसिनीफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिरस। शिरीष वृक्ष।

स्यंसी-संज्ञा पुं० [ सं० संसिन् ] (१) पीछे दृष्टा। (२) सुपारी का पेड़। पूग वृक्ष।

वि० (१) गिरनेवाला। पतनशील। (२) असमय में गिरनेवाला। (गर्भ)

स्यक्-संज्ञा स्त्री० पुं० [ सं० ] (१) फूलों की माला। (२) एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार नगण और एक सगण होता है तथा ६ और ९ पर यति होती है। उ०—नचहु सुखद यमुमति सुत सहिता। लहहु जनम इह सखि सुख भनिता।—छंदःप्रभाकर। (३) एक प्रकार का वृक्ष। (४) ज्योतिष में एक प्रकार का योग।

स्यक-संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "सक"। (१) व०—(क) सक चंदन वनितादिक भोग। देखि हरख विसमयवस लोग।—गुलसी। (ख) सक चंदन पनिता विनोद सुख यह जर जरन बितायो।—सूर।

स्यगळ-संज्ञा स्त्री० पुं० दे० "सक"। (१) उ०—अबह पान सब काहु पाये। स्या चंदन-भूषित छवि छये।—गुलसी।

स्यगाल-संज्ञा पुं० [ सं० स्याल ] शिपारी। गौदड़। (हिं०)

स्यजोह-संज्ञा पुं० [ सं० ] अक्षि।

स्यधरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ( म र भ न य य य ) ३३३ ३३३ ३३३ ॥ १३३ १३३ १३३ होता है और ७, ७, ७ पर यति होती है। उ०—भोरे भौने ययू यो कहहु सुत कहौं लिये आवते हो। भा का आनंद भानी हुम फिरि फिरि के माथ जो नापते हो। बोले माता ! विलोकयो फिरत सह चहु बाग में छपयते ज्यो। कादी माला समारे बिपुल रिपुषी अथलो जीति केल्यो।—छंदःप्रभाकर। (२) एक बौद्ध देवी का नाम।

स्वयान्-वि० [ सं० स्वयन् ] माला से युक्त । मालाधारी ।  
 स्रग्विणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) एक वृत्त का नाम जिसके  
 प्रत्येक चरण में चार राग होते हैं । उ०—रासी राधिका  
 स्वाम सौं ब्यो करे । सीख भो मान ले । मान काहे धरे ।  
 चित्त में सुदरी शीघ्र न क्षानिये । स्रग्विणी मूर्च्छि को हृष्य  
 की धारिये ।—छंदःप्रभाकर । (२) एक देवी का नाम ।  
 स्रग्वी-वि० [ सं० स्रग्वी ] माला से युक्त । मालाधारी ।  
 स्रज्-संज्ञा स्त्री०, पुं० दे० "स्रज्" ।  
 स्रज्-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक त्रिघेदेवा का नाम ।  
 संज्ञा स्त्री० माला । उ०—स्वयं सुमन सज पहिरी जैतैं ।  
 समय राजरहित नृप तैतैं ।—पद्माकर ।  
 स्रजनाल-कि० सं० दे० "स्रजना" । उ०—(क) विषय स्रजहु  
 पालहु-पुनि हरहु । त्रिकाळहु संतत सुख करहु ।—  
 रामायमेध । (ख) धरि सत रज तम रूप स्रजति पालति  
 संधारति ।—धुन्द ।  
 स्रज्या-संज्ञा पुं० [ सं० स्रज्यन् ] (१) माला बनानेवाला । माली ।  
 मालाकार । (२) रस्ता । रज्जु । (३) प्रजापति ।  
 स्रजिक्ता-वि० [ सं० स्रजिक्ता ] छाल । (हिं०)  
 स्रज्जाल-संज्ञा स्त्री० दे० "स्रज्जाल" । उ०—सदा विना धरम नहिं  
 होई । विनु माहि गंध कि पावह कोई ।—तुलसी ।  
 स्रपाटी-संज्ञा स्त्री० [ ? ] पत्ती की चौंच । (हिं०)  
 स्रम-संज्ञा पुं० दे० "धम" । उ०—(क) स्वयं स्रज्जत न स्रम  
 ध्या देखि बिहंग विचार । बाज पराये पानि परि तू पंछी  
 हि न मार ।—विहारी । (ख) रामचरित-सर विन भन्दावै ।  
 सो स्रम जाह न कोटि उपाये ।—तुलसी ।  
 स्रमित-वि० दे० "श्रमित" । उ०—प्रथम धाम सिवपुर सब  
 लोका । निरे समित प्याहुल भव सोका ।—तुलसी ।  
 स्रवती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नदी । दरिया । (२) एक प्रकार  
 की वनस्पति ।  
 स्रव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहना । बहाव । प्रवाह । (२)  
 क्षरता । निक्षेप । प्रसवण । (३) सूत्र । प्रलाव । पेशाव ।  
 संज्ञा पुं० दे० "श्रवण" ।  
 स्रवण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बहना । बहाव । प्रवाह । (२)  
 कचे गर्म का गिरना । गर्मपात । गर्मलाव । (३) शूल ।  
 सूत्र । पेशाव । (४) पत्तीना । प्रस्वेद । पर्मावेंदु ।  
 स्रवतोया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बर्दसी । रजर्वती ।  
 स्रवप्रमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह स्त्री या गाय जिसका गर्भ गिर  
 गया हो ।  
 स्रवद्रंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेला । प्रदर्शनी । तुमाइना ।  
 (२) बाजार । हाट ।  
 स्रवत-संज्ञा पुं० दे० "श्रवण" । उ०—(क) रामचरित मानस  
 पहि नामा । सुगत स्वयं पादय विज्ञाना ।—तुलसी ।

(ख) स्वयं नाहि, पै सब किहु सुना । हिया नाहि पै सब  
 किहु गुना ।—जायसी ।  
 स्रवता-कि० प्र० [ सं० स्रवण ] (१) बहना । चूना । टपकना ।  
 उ०—(क) लुट काल के पीछे हम उस ढेर को टीला बना  
 देते हैं और बर्षों से जल खरने लगता है ।—शुद्धाराम ।  
 (ख) प्रेम विषय जनु रामहिं पायो । खतत भयहु पय उर  
 जन छावो ।—पद्माकर । (ग) लज्जायन नाहिं रहेउ सँभारा ।  
 श्रवत नयन भग से जळधारा ।—तुलसी । (२) गिरना ।  
 उ०—अति गर्व गनइ न सगुन असगुन खरहिं आयुध  
 हाथ तैं ।—तुलसी ।  
 कि०सं० (१) बहाना । टपकाना । उ०—(क) अभूत हूतै अमल  
 कति गुण खरति निधि आनंद । सुर तीनों लीक परस्यो सुर  
 असुर जस छंद ।—सूर । (ख) गोद राखि पुनि हृदय  
 लगाये । खतत प्रेमरस पयद सुहाये ।—तुलसी । (२)  
 गिराना । उ०—चकत दसानन झोलति अवनी । गर्जत  
 गर्भे खरविं सुरावनी ।—तुलसी ।  
 स्रवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मरोड़ फली । मुरहरी । मूवर्वा ।  
 (२) डोटी । जीवती ।  
 स्रवण-वि० [ सं० ] सृष्टि करने के योग्य । सृष्टि करने या रचने  
 के लिए उपयुक्त । जिसकी सृष्टि की जा सके ।  
 स्रवा-संज्ञा पुं० [ सं० स्रव ] (१) सृष्टि या विश्व की रचना करने-  
 वाले, प्रजा । (२) विष्णु । (३) शिव ।  
 वि० सृष्टि करनेवाला । निर्माता । रचयिता ।  
 स्रवता-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रवण" ।  
 स्रवण-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रवण का कार्य । सृष्टि करने या रचने  
 का काम ।  
 स्रवतर-संज्ञा पुं० [ सं० स्रवत ] घास पात का विखानन । (हिं०)  
 स्रव-वि० [ सं० ] (१) गिरा हुआ । पतित । ध्रुत । (२)  
 निथिल । ढीला ढाला । (३) हिलता हुआ । (४) घँसा  
 हुआ । जैसे,—श्रवत नेत्र । (५) अलग किया हुआ ।  
 स्रवतर-संज्ञा पुं० [ सं० ] शैल का भासन ।  
 स्रव किशामिथी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हलके रंग का एक  
 प्रकार का छोटा अंगूर जो बेटा जिले में होता है और  
 जिसको सुखाकर किशामिथी बनाते हैं ।  
 स्रवण-संज्ञा पुं० दे० "श्रावण" । उ०—विप्र श्रावण से दूनउँ भाई ।  
 तामस अक्षर देह तिन्ह पाई ।—तुलसी ।  
 स्रवपित-वि० दे० "श्रावित" । उ०—(क) ग्य त्रिप्राक गुरु  
 श्रावित मे हे । कहहु जाइ किमि स्वर्ग सदैहै ।—पद्माकर ।  
 (ख) तू सारे लोर और धन के पशु से भी अधिक श्रावित  
 होगा ।—सत्यार्थ ।  
 स्रव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) (खल, मवाद आदि का) बहना ।  
 क्षरना । क्षरण । (२) कचे गर्म का गिरना । गर्मपात ।

गर्भलाव । (३) वह जो बह, रस या चूर निकलता हो ।  
(४) निर्यास । रस ।

सावक-वि० [ सं० ] बहाने, सुभाने या टपकानेवाला । सावकानेवाला ।

संज्ञा पुं० काली मिर्च । गोल मिर्च ।

सावकव-संज्ञा पुं० [ सं० ] पदार्थों का वह धर्म जिसके कारण कोई अल्प पदार्थ उनमें से होकर निकल या रस जाता है । जैसे,—बलुप परपर में से पानी जो रस रस कर निकल जाता है, वह उसके सावकव गुण के कारण है ।

सावण-वि० दे० "सावक" ।

सावणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] क्वदि नामक भटवर्गीय औषध ।

संज्ञा स्त्री० दे० "श्रावणो" ।

सावित-वि० [ सं० ] बहा, रसा या सुभाकर निकाला हुआ । जिसका साव कराया गया हो ।

सावी-वि० [ सं० ] सावित्र । यहानेवाला । सुभानेवाला । रसानेवाला । साव करानेवाला । क्षरण करानेवाला ।

साव्य-वि० [ सं० ] बहाने योग्य । क्षरण के योग्य ।

सांग-संज्ञा पुं० दे० "शंग" । उ०—सत सत सर मरे दस भाज । गिरि सिंगद जनु प्रसिर्दि ध्याला ।—तुलसी ।

सिज्ज-संज्ञा पुं० दे० "सिजन" । उ०—विस्व सिजनं भादिक तुम करहू । मोहि जन जानि दुसह दुख हरहू ।—रामानुज ।

सिप-संज्ञा स्त्री० दे० "धिय" । उ०—मुख मकरंद भरे सिप मूला । निरखि राम-नन-भँवर न भूला ।—तुलसी ।

सुक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लकड़ी की छोटी करछी जिससे हवनदि में घी की आहुति देते हैं । सुवा ।

सुमदाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंटाई । विककत वृक्ष ।

सुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन नगर का नाम जो हस्तिनापुर के उत्तर में था । (एहलंदिता)

सुमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सजी मिट्टी । सजिका क्षार ।

सुक्-संज्ञा स्त्री० दे० "सुक" ।

सुत-वि० [ सं० ] बहा हुआ । सुभा हुआ । क्षरित ।

वि० दे० "श्रुत" । उ०—सदपि जया सुत कर्द्वे यवानी । सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी ।—तुलसी ।

सुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हिंगपत्री । हिंगुपत्री ।

सुति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बहाव । क्षरण ।

संज्ञा स्त्री० दे० "श्रुति" । उ०—एहि महँ रघुपति नाम उदार । अति पाथन पुरान सुति सारा ।—तुलसी ।

सुतिकीर्त्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रुतिकीर्त्ति" । उ०—मोडवी सुतिकीर्त्ति उमिला कुँरि लई हँकारि कै ।—तुलसी ।

सुतिमाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुति + मायक ] विष्णु । उ०—छीर-सिंधु गयने मुनिनाया । जई बस श्रीनिवास सुतिमाया ।—तुलसी ।

सुध-संज्ञा पुं० दे० "सुवा" ।

सुवतरु-संज्ञा पुं० [ सं० ] विककत वृक्ष ।

सुवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लकड़ी की बनी हुई एक प्रकार की छोटी करछी जिससे हवनदि में घी की आहुति देते हैं ।

सुरमा । उ०—चाप सुवा सर आहुति जानू । कोप मोर अति घोर कृतानू ।—तुलसी ।

विशेष—इस अर्थ में हिंदी में यह शब्द प्रायः पुष्टि-बोला जाता है ।

(२) सलई । दाहकी वृक्ष । (३) मरोदफली । सुवां ।

सू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लकड़ी की बनी हुई एक प्रकार की छोटी करछी जिससे हवनदि में घी की आहुति देते हैं ।

सुव । सुवा । सुरमा । (२) क्षरनां । निक्षरं ।

स्रोत-संज्ञा पुं० दे० "श्रेणी" । उ०—देव द्रुग च्छिर नर सेनी । सादर मज्जहि सकळ त्रिवेनी ।—तुलसी ।

स्रोत-संज्ञा पुं० [ सं० ] लोचन् । (१) पानी का बहाव या क्षरना । जल-प्रवाह । धारा । (२) नदी । (३) वैद्यक के अनुसार शरीरस्थ छिद्र या मार्ग जो पुराणों में प्रधानतः ३ और खियों में ११ माने गए हैं । इनके द्वारा प्राण, अन्न, जल, रस, रक्त, मोस, मेद, मल, मूत्र, शुक्र और आसंच का शरीर में संचार होना माना जाता है । (४) यंत्रपरंपरा । कुलधारा ।

स्रोत आपत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बौद्ध-शास्त्र के अनुसार निर्वाण साधना की प्रथम अवस्था जिसमें सांसारिक बंधन तिथिल होने लगते हैं ।

स्रोत आपन्न-वि० [ सं० ] जो निर्वाण साधना की प्रथम अवस्था पर पहुँचा हो ।

स्रोतईश-संज्ञा पुं० [ सं० ] नदियों का स्वामी, समुद्र । सागर ।

स्रोतपत-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्रोत + पति ] समुद्र । (हिं०)

स्रोतस्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्रोत का एक नाम । (२) घोर । घोर ।

स्रोतस्यती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी ।

स्रोतसिंधी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी ।

स्रोता-संज्ञा पुं० दे० "श्रोता" । उ०—ते श्रोता बकशा समसीला । समदरसी जानहि हरिखीला ।—तुलसी ।

स्रोतोऽजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] आँसों में लगाने का सुरमा ।

स्रोतोऽनुगत-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की समाधि । (बौद्ध)

स्रोतोऽज-संज्ञा पुं० [ सं० ] आँसों में लगाने का सुरमा ।

स्रोतोद्भव-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुरमा ।

स्रोतोवह-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी ।

स्रोतोवहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी ।

स्रोत-संज्ञा पुं० दे० "ध्रुवण" । उ०—जोह कहे बतिपाई कियो कहीं छोग कहै, उगहीं की सुनोषी ।—रसकुसुमाकर ।

श्लोक्त-संज्ञा पुं० दे० "श्लोक्त" । उ०—मारि-तरवारि प्राण

पर के निकारि लेत भल धारि और भूमि खोजित के दोष सौं ।—गोपाल ।

श्रीगमत्—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।

श्रीमिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सजो । समिका क्षार ।

श्रीत—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साम का नाम ।

श्रीतिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सीप । शुकिक ।

श्रीपर—संज्ञा पुं० [ सं० रिखर ] एक प्रकार की जूनी जो पड़ी की ओर से सुली होती है । घटी ।

श्री—कुल श्रीपर = श्रीपर के भाकर का एक प्रकार का जूना जो शीशे दरी को धीरे भी साधारण जूतों की मति बंद रहता है ।

संज्ञा पुं० [ सं० ] लकड़ी का वह चौपटल लंबा टुकड़ा या धरन जो प्रायः रेल की पटरियों के नीचे बिठी रहती है ।

स्लेज—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की बिना पहिए की गाड़ी जो बर्फ पर पस्तिदती हुई चलती है ।

स्लेट—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की चिकने पथर की चौकोर पौरस पतली पट्टी जिस पर आरंभिक श्रेणियों के विद्यार्थी अक्षर और अंक लिख कर अभ्यास करते हैं । इस पर लिखा हुआ हाथ से पोंछने अथवा पानी से धोने से मिट जाता है ।

स्लेसम अंग—संज्ञा पुं० [ सं० स्लेसा + अंग ] लक्ष्मण का वृक्ष । (हिं०) स्लो—वि० [ सं० ] (१) धीमी चाल से चलनेवाला । मंदगति ।

शैले,—स्लो पैसंजर । (२) सुस्त । काहिल ।

संज्ञा पुं० पड़ी की चाल का मंद या धीमा होना ।

स्लोथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का बहुत सुस्त जानवर जो दक्षिण अमेरिका के जंगलों में पाया जाता है । इसके दौँत बहुत कम होते हैं और प्रायः कटीले नहीं होते । किसी किसी के तो बिल्कुल दौँत ही नहीं होते । यह पेड़ों की पत्तियों खाकर गुमारा करता है । जब तक पेड़ की सय पत्तियाँ नहीं खा लेता, तब तक उस पेड़ से नहीं उतरता । यह हिंदाक जंगु नहीं है । पर यदि कोई इस पर आक्रमण करे तो यह अपने नाखूँ से अपनी रक्षा का संकटा है ।

स्वः—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ग ।

स्वःपथः—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( स्वर्ग का मार्ग ) मृत्यु ।

स्वःपालः—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ग का रक्षक ।

स्वःपुत्रः—संज्ञा पुं० [ सं० ] कई नामों के नाम ।

स्वःसरिता—संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वःसरित् ] गंगा ।

स्वःसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अम्सरा ।

स्वः—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अपने आप । निज । आत्म । (२) विष्णु का एक नाम । (३) भार्गवपु । गोती । सर्वंघी । शक्ति । (४) धन । दौलत ।

—वि० अदना । निज का । जैसे,—स्वदेव, स्वराज्य, स्वशक्ति ।

उ०—श्रेय वृद्ध योगिका चलाँ स्वसात साजिकर मंद मंद

हास है छापें हैंस गति को ।—लक्ष्मण ।

स्वकंपन—संज्ञा पुं० [ सं० ] वायु । हवा ।

स्वकंपला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक नदी का नाम । (भाकंडेयपुराण)

स्वकर्मी—वि० [ सं० स्वकर्मी ] केवल अपने ही काम से मतलब रखनेवाला । स्वार्थी । सुदगरज ।

स्वकीया—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साहित्य में नायिका के दो प्रधान भेदों में से एक । अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली नायिका या स्त्री ।

विशेष—स्वकीया दो प्रकार की कही गई हैं—(१) ज्येष्ठा और (२) कनिष्ठा । अवस्थानुसार इनके तीन और भेद किए गए हैं—मुग्धा, मध्या और प्रीडा । (दे० ये शब्द)

स्वकुलद्वय—संज्ञा पुं० [ सं० ] मलती ( जो अपने वंश का आप ही नाम करती है । )

स्वक्षुद्र—वि० दे० “स्वच्छ” । उ०—अति स्वक्ष सुंदर देम फटिक की शिला गति कै गली ।—गुमान ।

स्वगत—संज्ञा पुं० दे० “स्वगत कथन” ।

किं वि० आप ही आप ( कहना या बोलना ) । इस प्रकार ( कहना या बोलना ) जिसमें और कोई न सुन सके । अपने आप से ।

स्वगत-कथन—संज्ञा पुं० [ सं० ] नाटक में पात्र का आप ही आप बोलना ।

विशेष—जिस समय रंगमंच पर कई पात्र होते हैं, उस समय यदि उनमें से कोई पात्र अन्य पात्रों से छिपाकर इस प्रकार कोई बात कहता है, मानों वह किसी को सुनाना नहीं चाहता और न कोई उसकी बात सुनता ही है, तो ऐसे कथन को स्वगत, अर्थात् या आत्मगत कहते हैं ।

स्वगुप्ता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कीड । केवाँड । (२) छजाड । छजाड ।

स्वगृह—संज्ञा पुं० [ सं० ] कलिहार नामक पक्षी ।

स्वग्रह—संज्ञा पुं० [ सं० ] बालकों को होनेवाला एक प्रकार का रोग ।

स्वच्छन्द—वि० [ सं० ] (१) जो किसी दूसरे के नियंत्रण में न हो और अपनी ही इच्छा के अनुसार सब कार्य करे । स्वाधीन । स्वतंत्र । आजाद । उ०—(क) सषधि भोति अधिकार छदि अमिमानी नृप वंद । नहिं सहिहै आपमान. सब, राजा होह स्वच्छंद ।—हरिश्चंद्र । (ख) सुख सौं ऐसो मोद रहे रीतें मत्त माहीं । विश, दूरपा, अपथि रहित स्वच्छंद सदाहीं ।—धीधर । (ग).....कुतुबरीन- देवक के समय तक यह स्वच्छंद राज्य था ।—बाहकृष्ण । (२) अपने इच्छानुसार चलनेवाला । मनमाना काम करनेवाला । निरंक्रुष । (३) (जंगलों आदि में) अपने आप से होनेवाला (बीधा या वनस्पति) ।

संज्ञा पुं० स्वंद का एक नाम ।

किं वि० मनमाना । बेधक । निर्वंद । स्वच्छंदतापूर्वक ।

उ०—(क) बालक रूप है के दसंरथ सुत. करत. केलि  
स्वच्छंद १—सूर। (ख) इस पर्वत की रम्य-जडी में मैं  
स्वच्छंद विचरता हूँ।—श्रीधर।

स्वच्छंदचारिणी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेदया । रंभी ।  
स्वच्छंदचारिणी—वि० [ सं० स्वच्छंदचारिण् ] [ स्त्री० स्वच्छंदचारिणी ]  
अपने इच्छानुसार चलनेवाला । स्वेच्छाचारी । मनमौजी ।  
स्वच्छंदता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वच्छंद होने का भाव । स्वतंत्रता ।  
आजादी ।

स्वच्छंद नायक—संज्ञा पुं० [ सं० ] सञ्जिपात ज्वर की एक औषध  
जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पारा, गंधक, लोहा  
और चोदी बराबर बराबर लेकर हृषहृष्ट, सग्धाह, तुलसी,  
सफेद चीता, लाल चीता, अदरक, माँग, हरे, मकोप और  
पंचपिच में भावना दे, मूषा में बंद कर बालुका यंत्र में  
पाक करते हैं । इसकी मात्रा एक मासे की कही गई है ।

स्वच्छंद भैरव—संज्ञा पुं० [ सं० ] उग्र सञ्जिपात ज्वर की एक  
औषध, जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पारा १  
तोला, गंधक १ तोला, दोनों की कजली कर, उसमें  
शोधित स्वर्णमाक्षिक १ तोला मिलाते हैं; फिर क्रम से  
रुद्रजटा, सग्धाह, हरे, आंवला और चिपकंडाली के रस  
( एक एक तोला ) में घोटते हैं । इसकी मूँग के बराबर  
गोली बनती है ।

स्वच्छ—वि० [ सं० ] (१) जिसमें किसी प्रकार की मूल या गंदगी  
आदि न हो । निर्मल । साफ । (२) उज्ज्वल । शुभ्र । (३)  
स्पष्ट । साफ़ । (४) स्वस्थ । नीरोग । (५) शुद्ध । पवित्र ।  
(६) निष्कपट ।

संज्ञा पुं० (१) बिहौर । रफटिक । (२) घेर । बदरी वृक्ष ।  
(३) मोती । मुक्का । (४) अन्नक । अयरक । (५) सोना-  
माखी । स्वर्णमाक्षिक । (६) रूपामाखी । रौप्य माक्षिक ।  
(७) विमल नामक उपधातु । (८) सोने और चोदी का  
मिश्रण ।

स्वच्छता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वच्छ होने का भाव । निर्मलता ।  
विशुद्धता । सफाई ।

स्वच्छमाह—कि० सं० [ सं० स्वच्छ ] निर्मल करना । शुद्ध करना ।  
पवित्र करना । साफ करना । उ०—दूधक मुनि जात भोगी  
मुनि दिव्य शोष तिन । गिरि बाल दिन संत जरेठ देश सो  
स्वच्छिदे ।—विश्राम ।

स्वच्छपत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] अयरक । अन्नक ।  
स्वच्छमण्डि—संज्ञा पुं० [ सं० ] बिहौर । रफटिक ।

स्वच्छबालुका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विमल नामक उपधातु ।  
स्वच्छा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्वेतदूर्वा । सफेद दूब ।

स्वच्छी—वि० दे० “स्वच्छ” । उ०—एक वृक्ष में सम है पश्री ।  
कल भोगी हक वृजों स्वच्छी ।—विचार-सागर ।

स्वज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पुत्र । घेदा । (२) खून । रक्त ।  
(३) पक्षीना । स्वेद ।

वि० अपने से उत्पन्न ।

स्वजन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अपने परिवार के लोग । आत्मीय-  
जन । (२) सगे संबंधी । रिश्तेदार ।

स्वजनता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्वजन होने का भाव ।  
आत्मीयता । (२) नातेदारी । रिश्तेदारी ।

स्वजन्मा—वि० [ सं० स्वजन्मन् ] जो अपने आप उत्पन्न हुआ हो ।  
अपने आप से उत्पन्न ( ईश्वर आदि ) । उ०—तुम अज्ञात  
सर्वश हो, तुम स्वजन्मा सब के कर्ता हो, तुम अनीत सब के  
ईश्वर हो, एक सर्वरूप हो ।—लक्ष्मण ।

स्वजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कन्या । पुत्री । घेदी ।

स्वजात—वि० [ सं० ] अपने से उत्पन्न ।  
संज्ञा पुं० पुत्र । घेदा ।

स्वजाति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अपनी जाति । अपनी कौम ।  
जैसे,—उन्होंने अपनी कन्या का विवाह स्वजाति में न करके  
दूसरी जाति में किया ।

स्वजातिग्रिप—संज्ञा पुं० [ सं० ] (अपनी जाति से द्वेष करनेवाला)  
कुत्ता ।

स्वजातीय—वि० [ सं० ] (१) अपनी जाति का । अपने वर्ग का ।  
जैसे,—अपने स्वजातियों के साथ खान पान करने में कोई  
हानि नहीं है । (२) एक ही वर्ग या जाति का ।  
जैसे,—ये दोनों पीधे स्वजातीय हैं ।

स्वतंत्र—वि० [ सं० ] (१) जो किसी के अधीन न हो । स्वाधीन ।  
मुक्त । आजाद । जैसे,—(क) आयरलैंड पहले आंगरेजों के

अधीन था, पर अब स्वतंत्र हो गया । (ख) मैनाल राज्य ने  
सब गुलामों को स्वतंत्र कर दिया । (२) अपने इच्छानुसार  
चलनेवाला । मनमानी करनेवाला । स्वेच्छाचारी । निरंकुश ।

जैसे,—यहाँ के राज्यधिकारी परम स्वतंत्र हैं, खूब मनमानी  
कर रहे हैं । उ०—परम स्वतंत्र न सिर पर कोई । भावहि  
मनहिं करहु तुम्ह सोई ।—तुलसी । (३) अलग । उदा ।  
विश्व । प्रथक् । जैसे,—(क) राजनीति का विषय ही स्वतंत्र  
है । (ख) इस पर एक स्वतंत्र लेख होना चाहिये । (४)

किसी प्रकार के बंधन या नियम आदि से रहित अथवा मुक्त ।  
जैसे,—ये स्वतंत्र विचार के मनुष्य हैं । (५) बयरक ।  
खाना । बालिग ।

स्वतंत्रता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वतंत्र होने का भाव । स्वाधीनता ।  
आजादी ।

स्वतंत्री—वि० [ सं० स्वतन्त्रिन् ] स्वाधीन । मुक्त । आजाद ।

स्वतन्त्र—अव्य० [ सं० स्वतन्त् ] अपने आप । आप ही । जैसे,—(क)  
उसने मुझसे कुछ माँगा नहीं, मैंने स्वतन्त्र उसे दस रुपए दे  
दिए । (ख) वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए, इससे वे स्वतन्त्र नित्य

स्वरूप है। (ग) वेद ईश्वर-कृत होने के कारण स्वतः प्रमाण है। (घ) पत्नी का उद्घात स्वतः सिद्ध है।

स्वतोविरोध-संज्ञा पुं० [ सं० स्वतः + विरोध ] आप ही अपना विरोध या खंडन करना।

स्वतोविरोधी-संज्ञा पुं० [ सं० स्वतः + विरोधी ] अपना ही विरोध या खंडन करनेवाला। उ०—नास्तिकों के विषय में ऐसा नियम बनाना स्वतोविरोधी है, यह सुद ही अपना खंडन करता है।—द्विवेदी।

स्वपच-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी वस्तु को पाने, पास रखने या स्वयंदार में खाने की योग्यता जो न्याय और लोकोक्ति के अनुसार किसी को प्राप्त हो। किसी वस्तु को अपने अधिकार में रखने, काम में खाने या लेने का अधिकार। अधिकार। दक। जैसे,—(क) इस संपात पर हमारा स्वपच है। (ख) उन्होंने अपनी तुलक का स्वाव वेच दिया। (ग) भारतवासी अपने स्वधों के लिये आंदोलन कर रहे हैं।

संज्ञा पुं० "स्व" का भाव। अपना होने का भाव। उ०—तृतीय यह कि जो स्वत्व, परत्व, नीध अर्थ का विचार त्याग कर समस्त जीवों पर समान इच्छीभूत हो।—भद्राराम।

स्वत्याधिकारी-संज्ञा पुं० [ सं० स्वत्याधिकारि ] (१) वह जिसके दाघ में किसी विषय का पूरा स्वयं हो। (२) स्वामी। मालिक।

स्वदान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्वाद लेना। आस्वादन। पाना। भक्षण। (२) छोटा।

स्वदेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह देश जिसमें किसी का जन्म और पालन-पोषण हुआ हो। अपना और अपने पूर्वजों का देश। मातृभूमि। वतन।

स्वदेशी-वि० [ सं० स्वदेशीय ] (१) अपने देश का। अपने देश-संबंधी। जैसे,—स्वदेशी भाई। स्वदेशी उद्योग धंधा। स्वदेशी रीति। (२) अपने देश में उत्पन्न या बना हुआ। जैसे,—स्वदेशी वस्त्र। स्वदेशी औषध।

स्वधर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] अपना धर्म। अपना कर्तव्य। कर्म।

स्वधा-प्रत्यय [ सं० ] एक ऋच् या मंत्र जिसका उच्चारण वेदतामों या पितरों को इवि देने के समय किया जाता है। विशेष—अनु के अनुसार धाद के उपरंत स्वधा का उच्चारण धादकर्ता के लिये षष्ठा आशीर्वाद।

संज्ञा स्त्री (१) पितरों को दिया जानेवाला भय या भोजन। पित्रु भक्ष। उ०—मेरे पीछे पिंड का कोष देख मेरे पुरखे स्वधा इच्छी करने में लगे हुए, धाद में इच्छापूर्वक भोजन नहीं करते।—छद्मण। (२) दक्ष की एक कन्या जो पितरों की पत्नी कही गई है।

स्वधाकर, स्वधाकार-वि० [ सं० ] धाद करनेवाला। धादकर्ता।

स्वधाधिप-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि।

स्वधाप्रिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि। (२) काला तिल।

स्वधाभुक्-संज्ञा पुं० [ सं० स्वधामुक् ] (१) पितर। (२) देवता।

स्वधाभोजी-संज्ञा पुं० [ सं० स्वधाभोजि ] पितर। पितृगण।

स्वधाशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पितर। पितृगण।

स्वधिति-संज्ञा पुं० स्त्री [ सं० ] (१) कुशादी। कुशर। (२) वज्र।

स्वधिस्रान-वि० [ सं० ] भच्छी स्थिति या स्थान से युक्त।

स्वधीत-वि० [ सं० ] भच्छी तरह पढ़ा हुआ। सम्पक् रूप से अध्ययन किया हुआ।

स्वनंदा-संज्ञा स्त्री [ सं० ] दुर्गा।

स्वन-संज्ञा पुं० [ सं० ] शब्द। ध्वनि। आवाज। उ०—सुरगन मिलि जय नय स्वन कीन्हा। मसुहि छृण परम पद दीन्हा।—गीताङ्क।

स्वनचक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का संभोग भासन या रतिबंध।

स्वनामा-वि० [ सं० स्वनाम् ] जो अपने नाम के कारण प्रसिद्ध हो। अपने नाम से विख्यात होनेवाला।

स्वनामधन्य-वि० [ सं० ] अपने नाम के कारण धन्य होनेवाला। जो अपने नाम के कारण धन्य हो। जैसे,—स्वनामधन्य पं० बाल गंगाधर तिलक।

स्वनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शब्द। आवाज। (२) अग्नि। धाग।

स्वनित-वि० [ सं० ] ध्वनित। शब्दित।

संज्ञा पुं० (१) शब्द। ध्वनि। आवाज। (२) मेघ गर्जन। बादलों की गद्गद्गाह्वद। (३) गर्जन। गरज।

स्वनितास्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] चौलाई का शाक। संडुलीय दाफ।

स्वनीरसाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] गंडा। गंडक।

स्वपच-संज्ञा पुं० दे० "स्वपच"। उ०—स्वपच सवर खस जमन बद्ध पावैर कोल कितात। राम कहत पावत परम होत भुपन विष्यात।—तुलसी।

स्वपन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नींद। निद्रा। (२) सपना। स्वप्न। एवाच।

स्वपनाङ्गी-संज्ञा पुं० दे० "सपना" या "स्वप्न"। उ०—स्वपना में तादि राज मिछो है हास्मि हुकुम दोहाई। आगि परे कहुँ लाव न लसकर पलक लुके सुधि पाई।—कवीर।

स्वपनीय-वि० [ सं० ] निद्रा के योग्य। सोने लायक।

स्वपिंडा-संज्ञा स्त्री [ सं० ] पिंड लखर। पिंड खट्टी।

स्वसव्य-वि० [ सं० ] निद्रा के योग्य।

स्वप्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोने की क्रिया या अवस्था। निद्रा। नींद। (२) निद्रावस्था में कुछ मूर्च्छियों, चित्रों और विचारों आदि की संवध, या असंबद्ध अंशका का मन में भाव। निद्रावस्था में कुछ घटना आदि दिखाई देना। जैसे,—इयद



कई दिनों से मैं भीषण स्वप्न देखा करता हूँ। (१) यह घटना आदि जो इस प्रकार निद्रित अवस्था में दिखाई दे कथवा मन में आते। जैसे,—उन्होंने अपना साग स्वप्न कहे सुनाया।

**विशेष—**प्रायः पूरी नींद न खाने की दशा में मन में अनेक प्रकार के विचार उठा करते हैं जिनके कारण कुछ घटनाएँ मन के सामने उपस्थित हो जाती हैं। इसी को स्वप्न कहते हैं। यद्यपि घास्तव में उक्त समय नेत्र बंद रहते हैं और इन बातों का अनुभव केवल मन को होता है, तथापि योख पाल में इसके साथ "देखना" क्रिया का प्रयोग होता है।

(२) मन में उठनेवाली उँधी कल्पना या विचार, विशेषतः ऐसी कल्पना या विचार जो सद्म में कार्य रूप में परिणत न हो सके। जैसे,—आप तो बहुत दिनों से इसी प्रकार के स्वप्न देखा करते हैं।

**स्वप्नकृ-वि०** [ सं० स्वप्नकृ ] सोनेवाला। निद्राशील।

**स्वप्नकृत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] शिरिचारी। सुनिपण्णक प्राक।

**विशेष—**कहते हैं, इस शाक के खाने से नींद आती है; इसी से इसका नाम स्वप्नकृत (नींद खानेवाला) पड़ा।

**स्वप्नगृह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सोने का कमरा। शयनागार। शयनगृह।

**स्वप्नदर्शी-वि०** [ सं० स्वप्नदर्शिनृ ] (१) स्वप्न देखनेवाला। (२) यही यही कल्पनाएँ करनेवाला। मनमोदक खानेवाला।

**स्वप्नदोष-संज्ञा पुं०** [ सं० ] निद्रावस्था में धीर्यपात होना जो एक प्रकार का रोग माना जाता है।

**विशेष—**स्वप्नावस्था में स्त्री-प्रसंग या कोई कामोद्दीपक द्रव्य देखकर दुर्बलेंद्रिय लोगों का प्रायः धीर्यपात हो जाता है। यह एक भयंकर रोग है जो अधिक स्त्री-प्रसंग या अस्वाभाविक कर्म से धातुशीलता होने के कारण होता है। कभी कभी बहुत गरम धात्र खाने और कोष्ठवद्धता से भी स्वप्नदोष हो जाता है।

**स्वप्ननेशन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (निद्रा का नाश करनेवाले) सूर्य।

**स्वप्ननिशेतन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सोने का कमरा। शयनगृह। शयनागार।

**स्वप्नस्थान-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सोने का कमरा। शयनगृह। शयनागार।

**स्वप्नानाळ-कि०** ल० [ सं० स्वप्न+आना (प्रत्य०) ] स्वप्न देना। स्वप्न दिखाना। उ०—हारि गयो हीरा नहि पायो। तब अंगद को हरि स्वप्नयो।—रघुसंज्ञ।

**स्वप्नानु-वि०** [ सं० ] सोनेवाला। निद्राशील। निद्रालु।

**स्वप्नकाश-वि०** [ सं० ] जो आप ही प्रकाशमान हो। जो अपने ही तेज से प्रकाशमान हो।

**स्वप्नप्रकृतिक-वि०** [ सं० ] जो बिना किसी कारण के स्वयं अपने प्रकृति से ही हो। प्राकृतिक रूप से होनेवाला।

**स्वप्नप्रसिक्तिक-वि०** [ सं० ] जो बिना किसी की सहायता के अपना सारा काम स्वयं करता हो। जैसे,—सूर्य जो आप ही प्रकाश देता है।

**स्वप्नरत्न-संज्ञा पुं०** दे० "सुवर्ण"।

**स्वप्नधीज-संज्ञा पुं०** [ सं० ] आभा।

**स्वप्नमद्रा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] गंभारी। गंभारी वृक्ष।

**स्वप्नमाउळ-संज्ञा पुं०** दे० "स्वभाव"। उ०—पूर को स्वभाव विना युद्ध न करे यरान कायर ज्यों कहा था धैरे शोष हरिये।—हनुमच्छाटक।

**स्वप्नभाव-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सारा धना रहनेवाला मूल का प्रधान गुण। साक्षर। जैसे,—जल का स्वभाव शीतल होता है। (२) मन की प्रकृति। मित्राज। प्रकृति। जैसे,—(क) उसका स्वभाव बड़ा कठोर है। (ख) कवि स्वभाव से ही सौंदर्य-मिथ होते हैं। (ग) भात्रकल उनका स्वभाव है उर बढ़ गया है। (३) आदत। यान। जैसे,—उत्ते लड़ने का स्वभाव पढ़ गया है।

**मि० प्र०—**डालना।—पड़ना।

**स्वप्नभावकृपण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] मत्सा का एक नाम।

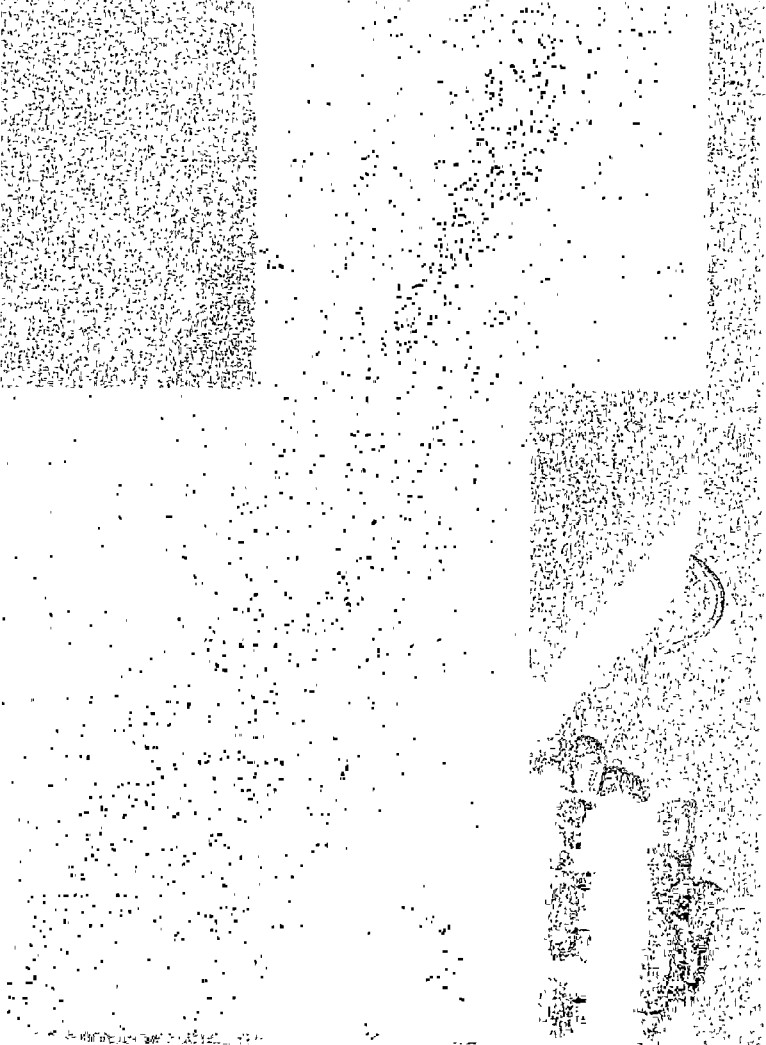
**स्वप्नभावज-वि०** [ सं० ] जो स्वभाव या प्रकृति से उत्पन्न हुआ हो। प्राकृतिक। स्वाभाविक। सहज।

**स्वप्नभावत-प्रत्य०** [ सं० स्वप्नभावत् ] स्वप्नभाव से। प्राकृतिक रूप से। सहज ही। जैसे,—कोई अन्याय होता हुआ देखकर मनुष्य को स्वभावतः क्रोध आ जाता है।

**स्वप्नभावसिद्ध-वि०** [ सं० ] स्वप्नभाव से ही होनेवाला। सहज। प्राकृतिक। स्वाभाविक। उ०—प्रमूर्ण पातों का संशोधन करने की योग्यता मनुष्य में स्वभावसिद्ध है।—दिवेदी।

**स्वप्नभाविक-वि०** दे० "स्वाभाविक"।

**स्वप्नभाषोक्ति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक प्रकार का अपभ्रंशकार जिसमें किसी का जाति या अवस्था आदि के अनुसार यथावत् और प्राकृतिक स्वरूप का वर्णन किया जाय। इसके दो भेद कहे गए हैं—सदृश और प्रतिज्ञापद। जहाँ किसी विषय का चिह्नकल सहज और स्वाभाविक वर्णन होता है, वहाँ सहज स्वभाषोक्ति अलंकार होता है; और जहाँ अपने सहज स्वभाव के अनुसार प्रतिज्ञा या शपथ आदि के साथ कोई बात कही जाती है, वहाँ प्रतिज्ञापद स्वभाषोक्ति होती है। उ०—(क) सीस मकूट कटि काष्ठनी कर मुरली उर माल! यदि धानिक मों उर यसी सदा बिहारीखल। (सहज) (ख) सोरों छत्रक दंड जिमि तुव प्रलाय बलनाभं। जो न करी प्रभुपद सपथ पुनि न घरी घनु हाथ। (प्रतिज्ञापद)



## सूचना

हिन्दी शब्दसागर की इस ४०वीं संख्या में "हेमवत" तक के शब्द आ चुके हैं। अब 'ह' के बहुत थोड़े शब्द बचे हुए हैं जो छप भी चुके हैं। यह निश्चय किया गया है कि इस शब्दसागर में जो शब्द किसी कारण से छूट गए हैं, वे अन्त में दे दिए जायें। कोश-विभाग में आजकल इसी प्रकार के छूटे शब्दों का संग्रह हो रहा है, जो सम्भवतः इसी जून मास के अन्त तक समाप्त हो जायगा। अतः कोश के ग्राहकों, अनुग्राहकों तथा हिन्दी के अभ्यास्य प्रेमियों से निवेदन है कि उनके ध्यान में जो शब्द इस कोश में छूटे हुए हैं, उनकी सूची, यथासाध्य अर्थ और उदाहरण सहित बहुत शीघ्र नीचे लिखे पते पर भेज कर समा की अनुगृहीत करें। ऐसे शब्द उपयुक्त समझे जाने पर इसी के अन्त में दे दिए जायेंगे। समा चाहती है कि ये छूटे हुए शब्द और भूमिका आदि शीघ्र ही प्रकाशित हो जायें। अतः शब्द भेजनेवाले महानुभावों को शीघ्रता करनी चाहिए। आशा है कि दो या अधिक से अधिक तीन संख्याओं में यह कोश समाप्त हो जायगा।

श्यामसुन्दरदास,

सम्पादक शब्दसागर

नागरीप्रचारिणी सभा,

बनारस सिटी।



# संकेताचरों का विवरण

अं० = अंगरेजी भाषा  
 अ० = भारतीय भाषा  
 अनु० = अनुकरण द्राव्य  
 अने० = अनेकार्थनाममात्रा  
 अर० = अक्षरंश  
 अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय  
 अडमा० = अडमा भाषा  
 अररा० = अरराथक प्रयोग  
 अर० = अरथ  
 अर्निदधम = कवि अर्निदधम  
 अर० = अरराती भाषा  
 अ० = अररादरण  
 उपरवारत = उत्तमनामपरिश्र  
 अ० = अरपमग  
 उम० = उमराधिक  
 अ० उ० = कठपंती उपनिषद्  
 ऊर्वार = ऊर्वारदास  
 ऊंशव = ऊंशवदास  
 ऊंक० = ऊंकण देश की भाषा  
 ऊि० = ऊिया  
 ऊि० अ० = ऊिया अक्षमक  
 ऊि० प्र० = ऊियाप्रयोग  
 ऊि० वि० = ऊियाविशेषण  
 ऊि० स० = ऊियासकर्मक  
 ऊं = ऊविण अर्थोत्सुक प्रयोग  
 अदुत कम देखने में आया है।  
 खानला० = अदुरहीम खानखाना  
 गि० या० या गि० = दास = गिरि-  
 परदास (बा० गोपालचंद्र)  
 गिरिपर = गिरिपरदास ( ऊंठ  
 लियावाल )

गुमान = गुमान मिश्र  
 गोपाल = गिरिपरदास ( बा०  
 गोपालचंद्र )  
 चरण = चरणचंद्रिका  
 चितामणि = कवि चितामणि  
 चिपाडी = चिपाडी  
 चीत = चीतस्वामी  
 जायसी = मजिह मुहम्मद जायसी  
 जाया० = जाया हीप की भाषा  
 जयो० = ज्योतिष  
 टि० = टिगळ भाषा  
 तु० = तुरी भाषा  
 तुलसी = तुलसीदास  
 तोप = कवि तोप  
 ठाडू = ठाडूदास  
 दीनदयालु = दीनदयालु गिरि  
 दूळदू = कवि दूळदू  
 दे० = देसी  
 देय = देय कवि ( मैनपुरीवाल )  
 देण० = देणज  
 द्विपेशी = महावीरदास द्विपेशी  
 नागरी = नागरीदास  
 नाभा० = नाभादास  
 निश्रल = निश्रलदास  
 पं० = पं भाषी भाषा  
 परा० = पराकर अट्ट  
 पर्या० = पर्याय  
 पा० = पाली भाषा  
 पु० = पुडिग  
 पु० हि० = पुतानी हिन्दी  
 पुसं० = पुसं गाला भाषा

प्रताप = प्रतापगताधम मिश्र  
 प्राय० = प्रायय  
 प्रा० = प्राकृत भाषा  
 प्रिया० = प्रियादास  
 प्र० = प्रेरणापंक  
 प्र० सा० = प्रसन्नार  
 फ० = फारसी भाषा  
 फा० = फारसी भाषा  
 बंग० = बंगला भाषा  
 परमा० = परमी भाषा  
 पट्ट० = पट्टवचन  
 विहारी = कवि विहारीलाल  
 पु० स० = पु डेहलसी बाली  
 येनी = कवि येनी प्रदीन  
 माव० = माववाचक  
 मल्लक = मल्लकदास  
 मि० = मिलाधी  
 गुदा० = गुदाबिरे  
 गु० = गुनानी भाषा  
 यो० = यौगिक तथा दो या अ-  
 धिक शब्दों के पद  
 रघु० वा० = रघुनाथदास  
 रघुनाथ = रघुनाथ अदीजन  
 रघुराज = महाराज रघुराजसिंह  
 रीमनिरेन  
 रसखान = सिधद हमझीम  
 रसनिधि = राजा रघुनाथसिंह  
 रहीम = अदुरहीम खानखाना

रकटवाल  
 रदा० = रदाकी भाषा जगन्नाथ  
 हिंदुस्तानी जहानवी की  
 पोली  
 राल = राल कवि ( अग्रप्रकाश  
 वाल )  
 ल० = लटिन भाषा  
 वि० = विदेशीय  
 विशान = विशानसंग  
 स्वंगपाप० = स्वंगपापदीपुडा  
 दया० = दयाकरण  
 व्यास = जतिरदाद व्यास  
 दा० दि० = दाक विविधजय  
 श्र० सत = शंगार सगसर  
 स० = समकृत  
 सपेठ = सपेठसिंह घोषान  
 समा वि० = समाविशाल  
 सर्व० = सर्वनाम  
 सुधाकर = सुधाकर द्विपेशी  
 सुदन = सुदनकवि ( भरतपुरवाले )  
 सुर = सुरदास  
 सिरि० = सिरिणी द्वारा प्रयुक्त  
 स्त्री० = स्त्रीलिंग  
 स्व० = स्वामी भाषा  
 हि० = हिन्दी भाषा  
 हनुमान = हनुमानदास  
 हरिदास = चरामी हरिदास  
 हरिदथद = भासंधु हरिदथद

1. यह चिह्न इस शब्द की सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।  
 2. यह चिह्न इस भाषा की सूचित करता है कि शब्द का यह रूप प्राय है।

स्वभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ब्रह्मा का एक नाम । (२) विष्णु का एक नाम । (३) शिव का एक नाम ।

वि० जो अपने आप से उत्पन्न हुआ हो । आप से आप होनेवाला ।

स्वभूमि-संज्ञा पुं० [ सं० ] उग्रसेन के एक पुत्र का नाम । (विष्णुपुराण)

स्वमीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संघसर । वर्ष ।

स्वयं-प्रत्यय [ सं० स्वयम् ] (१) सुद । आप । उ०—(क) मैं स्वयं हृद्दारे साथ चलकर देखूँगा कि इस पक्षी की परीक्षा में कैसे उतरते हो । भयोपवा० । (ख) आप स्वयं अपनी कृपा से सब जीवों में प्रकाशित हुईए ।—इयानंद । (२) आप से आप । अपने ही से । सुद बसुद । जैसे,—आप के सब काम तो स्वयं ही हो जाते हैं ।

स्वयंमुक्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कौटिल्य । केचोच ।

स्वयंजयोति-संज्ञा पुं० [ सं० ] परमेश्वर । परमात्मा ।

स्वयंदूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] बह पुत्र जो अपने माता-पिता के मर जाने अथवा उनके द्वारा परिष्यक्त होने पर अपने आप को किसी के हाथ सौंप दे और उसका पुत्र बन जाय ।

स्वयंदूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह नायक जो अपना दूतत्व आप ही करे । नायिका पर अपनी कामवासना स्वयं ही प्रकट करनेवाला नायक । उ०—अपत हूँ ता दिन को खुनाय की होहाई जो दिन सों सुन्वी दे मैं प्यारी तेरे नाम को । साईं भयो सिद्धि भायु औचक मिथी हौ मोहि ऐसी दुपहरी में बडी हो काहु काम को । यह वर मँगत हौं मेरे पर कृपा करि मेरी कही कीमि सुल दीरि तन छाम को । यह सुल ठाम को भ्राम को निहारी नेक मेरे कहे परिक निवारि छाँदी पास को ।—रघुनाथ ।

स्वयंपूनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह परकीया नायिका जो अपना दूतत्व आप ही करती हो । नायक पर स्वयं ही वासना प्रकट करनेवाली नायिका । उ०—ऐसे मने रघुनाथ कही हरि कामकजा निधि के मद गारे । झौंकि सरोसे सौं आनत देखि धरी मैं भाइके आपने द्वारे । वीरि सरूप सौं भीगी समेह सौं सोली हरे रस आखर भारे । ठाढ़ हो तोसैं कहींगी कट्टु अरे स्वालक्यी पक्षी औंतिनवारे ।—मुद्ररी सर्वस्व ।

स्वयंपतित-वि० [ सं० ] जो आप से आप गिरे । जैसे,—बृहत् से एक का (आप से आप) गिरा हुआ फल ।

स्वयंप्रकाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो आर ही मान बिना किसी दूसरे की सहायता के प्रकाशित हो । उ०—(क) जो आप स्वयंप्रकाश और धूम्रादि तेजस्वी छौंका का प्रकाश करनेवाला है, इससे उस ईश्वर का नाम "संज्ञस" है ।—उपमाथे० । (ख)..... सौं उस परम सकिमान् सर्वज्ञ स्वयंप्रकाश परमात्मा के समीप जाते हैं प्रभ शक्ति से रहित

काष्ठवत् मीन होके खड़ा रहा ।—केनोपनिषद् । (२) परमात्मा । परमेश्वर ।

स्वयंप्रभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धैरियों के अनुसार भावी २४ महंतों में से चौथे भाईव का नाम । (२) दे० "स्वयंप्रकाश" ।

स्वयंप्रमाणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ईंद्र की एक अप्सरा का नाम जिसे भय दानव हर ज्ञाया था और जिसके गर्भ से उसने मंदोदरी नामक कन्या उत्पन्न की थी । जब हनुमान आदि बानर सीता को ढूँढ़ने निकले थे, तब मार्ग में एक गुफा में इससे उनकी भेंट हुई थी ।

स्वयंप्रमाणा-वि० [ सं० ] जो आर ही प्रमाण हो और जिसके लिये किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता न हो । जैसे,—वेद आदि स्वयंप्रमाण हैं ।

स्वयंपल-वि० [ सं० ] जो आप ही अपना फल हो और किसी दूसरे कारण से न उत्पन्न हुआ हो ।

स्वयंभु-संज्ञा पुं० [ सं० स्वयम् ] (१) ब्रह्मा । (२) वेद । (३) महादेव । शिव । (४) भग । (५) जैनियों के नौ वासुदेवों में से एक । (६) यमर्षा ।

वि० जो आप से आप उत्पन्न हो । अपने आप पैदा होनेवाला ।

स्वयंभुवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वयम्भुव ] (१) उमाकृ का पत्नी । (२) शिवलिंगी नाम की लता । मापगर्णी । मखवन ।

स्वयंभु-संज्ञा पुं० [ सं० स्वयम् ] (१) ब्रह्मा । (२) काल । (३) कामदेव । (४) विष्णु । (५) शिव । (६) मापगर्णी । मखवन । (७) शिवलिंगी नाम की लता । (८) दे० "स्वायंभुव" । उ०—बहुते स्वयंभु मनु तप कीनो । साहु को हरिन् वर दीनो ।—सूर ।

वि० जो आप से आप उत्पन्न हुआ हो ।

स्वयंभूत-वि० [ सं० स्वयम्भूत ] जो आप से आप उत्पन्न हुआ हो । अपने आप पैदा होनेवाला ।

स्वयंभोज-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा शिवि के एक पुत्र का नाम (भागवत)

स्वयंघर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध विधान जिसमें विवाह योग्य कन्या कुछ उपस्थित प्यक्तियों में से अपने लिये स्वयं घर चुनती थी । उ०—(क) स्त्री स्वयंघर कथा सुहाई । सखित सुहावनि सो छवि छाई ।—तुलसी । (ख) जनक विदेह कियो लु स्वयंघर य नृप विप्र घोलाये । तोरन घनुष देय स्वयंघर को काहु यत न पाये ।—सूर । (ग) मारि नादका वज्र कथाय । विश्वामित्र आनंद भयो । सौष स्वयंघर जानि सूर प्रभु को ऋषि है ता ठौर गयो ।—सूर ।

विशेष—प्राचीन काल में भारतीय आर्यों विशेषतः क्षत्रियों या राजाओं में यह प्रथा थी कि जब कन्या विवाह के

योग्य हो जाती थी, तब उसकी सूचना उपयुक्त व्यक्तियों के पास भेज दी जाती थी, जो एक निश्चित समय और स्थान पर आकर एकत्र होते थे। उस समय वह कन्या उन उपस्थित व्यक्तियों में से जिसे अपने लिये उपयुक्त समझती थी, उसके गले में वरमाला या जयमाला डाल देती थी; और तब उसी के साथ उसका विवाह होता था। कभी कभी कन्या के पिता की ओर से, बह-परीक्षा के लिये, कोई दार्त भी लगा दी जाती थी; और वह दार्त पूरी करनेवाला ही कन्या के लिये उपयुक्त पात्र समझा जाता था। सीता जी और द्रौपदी का विवाह इसी प्रथा के अनुसार हुआ था।

(२) वह स्थान जहाँ इस प्रकार लोगों को एकत्र करके कन्या के लिये पर चुना जाय।

**स्वयंवरण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] कन्या का अपने इच्छानुसार अपने लिये पति मनोनीत करना। स्वयंवर। वि० दे० "स्वयंवर"। (१)

**स्वयंवर-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वह स्त्री जो अपने लिये स्वयं ही उपयुक्त घर को चरण करे। अपने इच्छानुसार अपना पति नियत करनेवाली स्त्री। पतिवरा। वर्या। उ०—ये हम लोगों के देश की प्राचीन स्वयंवर थीं।—हिंदीमदीय।

**स्वयंवर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह बाजा जो चावी देने से आप से आप बजे। जैसे,—अरगन आदि।

वि० स्वयं अपने आपकी धारण करनेवाला। जो आप ही अपने आप को बहान करे।

**स्वयंविकीर्त-वि०** [ सं० ] (दास आदि) जिसने स्वयं ही अपने आप को बेचा हो।

**स्वयंश्रेष्ठ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] निच।

**स्वयंसिद्ध-वि०** [ सं० ] (१) (वात) जो आप ही आप सिद्ध हो। जिसकी सिद्धि के लिये और किसी तक, प्रमाण या उपकरण आदि की आवश्यकता न हो। जैसे,—आग से हाथ जलता है, यह तो स्वयंसिद्ध बात है। (२) जिसने आप ही सिद्धि प्राप्त की हो। जो बिना किसी की सहायता के सिद्ध या सफल हुआ हो।

**स्वयंसेवक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] [ औ० स्वयंसेविका ] यह जो बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य में अपनी इच्छा से योग्य दे। स्वैच्छासेवक।

**स्वयंसारिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] पुराणानुसार दुःसह की पत्नी निर्मादि के गर्भ से उत्पन्न आठ कन्याओं में से एक। कहते हैं कि यह भोजनशाला में से अन्नपत्रा अन्न, गौ के स्तन में से दूध, तिलों में से तेल, कपास में से सूत आदि दरग बर ले जाती है, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

**स्वयमर्जित-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह धन-संपत्ति जो स्वयं उपार्जन की गई हो और जिसमें अपने किसी संबंधी या दाय्याद

आदि को कोई हिस्सा न देना पड़े। खास अपनी कमाई हुई दौलत। (स्मृति)

**स्वयमीश्वर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] परमेश्वर। परमात्मा।

**स्वयमुक्ति-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पाँच प्रकार के साक्षियों में से एक प्रकार का साक्षी। वह साक्षी जो बिना बादी या प्रतिवादी के बुलाए स्वयं ही आकर किसी घटना या व्यवहार आदि के संबंध में कुछ कहे। (व्यवहार)

**स्वयमेव-किं वि०** [ सं० ] आप ही आप। खुद ही। स्वयं ही।  
**स्वयोनि-वि०** [ सं० ] जो अपना कारण अथवा अपनी उत्पत्ति का स्थान आप ही हो।

**स्वर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) स्वर। (२) परलोक। (३) आकाश।

**स्वर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) प्राणी के कंठ से अथवा किसी पदार्थ पर आघात पड़ने के कारण उत्पन्न होनेवाला शब्द, जिसमें कुछ कोमलता, तीमता, मृदुता, कड़ुता, उदात्तता, अनुदात्तता आदि गुण हों। जैसे,—(क) मैंने आप के स्वर से ही आप को पहचान लिया था। (ख) दूर से कोयल का स्वर सुनाई पड़ा। (ग) इस छड़ को टॉकने पर कैसा अच्छा स्वर निकलता है। उ०—ले ले नाम प्रेम संरस स्वर कोसल्या कल कीरति गायै।—तुलसी। (२) संगीत में वह शब्द जिसका कोई निश्चित रूप हो और जिसकी कोमलता या तीमता अथवा उतार चढ़ाव आदि का, सुनते ही, सहज में अनुमान हो सके। सुर। उ०—चारों प्रोतंन श्रमिंत जानि के जननी तय पौदाये। चांपत चरण जननि अप अपनी कसुक मधुर स्वर गाये।—सूर।

**विशेष-यों तो स्वरों की कोई संख्या पतलाई ही नहीं जा सकती, परंतु फिर भी सुमीते के लिये सभी देवों और सभी कालों में सात स्वर नियत किए गए हैं। हमारे यहाँ इन सातों स्वरों के नाम क्रम से पड़न, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद रखे गए हैं जिनके संक्षिप्त रूप सा, रे, ग, म, प, ध, और नि हैं। वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके सिद्ध किया है कि किसी पदार्थ में २५६ बार कंप होने पर पड़न, २५८ कंप होने पर ऋषभ, ३२० बार होने पर गांधार स्वर उत्पन्न होता है; और इसी प्रकार बढ़ते बढ़ते ४८० बार कंप होने पर निषाद स्वर निकलता है। तापस्वयं यद्यपि कंपन जितना ही अधिक और जल्दी जल्दी होता है, स्वर भी उतना ही ऊँचा चढ़ता जाता है। इस क्रम के अनुसार पड़न से निषाद तक सातों स्वरों के समूह को सप्तक कहते हैं। एक सप्तक के उपरांत दूसरा सप्तक चलता है, जिसके स्वरों की कंपन-संख्या इस संख्या से दूनी होती है। इसी प्रकार तीसरा और चौथा सप्तक भी होता है। यदि प्रत्येक स्वर की कंपन-संख्या नियत में आधी हो, तो स्वर बार्धक नीचे होते जायेंगे और उन स्वरों**

का समूह नीचे का सप्तक कहलावेगा। हमारे-यहाँ यह भी माना गया है कि ये सारों स्वर क्रमशः सोर, गौ, बकरी, कौंच, कोयल, घोड़े और हाथी-के स्वर से लिए गए हैं, अर्थात् ये सय प्राणी क्रमशः इन्हीं स्वरों में योजित हैं; और इन्हीं के अनुकरण पर-स्वरों की यह संख्या नियत की गई है। भिन्न भिन्न स्वरों के उच्चारण-स्थान भी भिन्न भिन्न कहे गए हैं। जैसे,—नासा, कंठ, ज़र, ताल, जीभ और दाँत इन छः स्थानों में उत्पन्न होने के कारण पहला स्वर पहलू-कहलाता है। जिस स्वर की गति नाभि से सिर तक पहुँचे, वह कपथ कहलाता है, आदि। ये सब स्वर गले से तो निकलते ही हैं, पर धारों से भी उद्यो प्रकार निकलते हैं। इन सारों स्वरों में से सा और प-तो शुद्ध स्वर कहलाते हैं, क्योंकि इनका कोई भेद नहीं होता; पर दोष पाँचों स्वर कोमल और तीव्र दो प्रकार के होते हैं। प्रत्येक स्वर दो दो तीन तीन भागों में बँटा रहता है, जिनमें से प्रत्येक भाग "भ्रूति" कहलाता है।

**सुहा०**—स्वर उतारना=स्वर नीचा या धीमा करना। स्वर चढ़ाना=स्वर ऊँचा या तेज करना। स्वर निकालना=स्वर उत्पन्न करना। स्वर भरना=सम्पन्न के लिये किसी एक ही स्वर का कुछ समय तक उच्चारण करना। स्वर मिलाना=किसी धुनार् पत्रे हुए स्वर के अनुसार स्वर उत्पन्न करना।

(१) व्याकरण में वह वर्णारम्भ शब्द जिसका उच्चारण आप से आप स्वतंत्रतापूर्वक होता है-और जो किसी व्यंजन के उच्चारण में सहायक होता है। हिन्दी वर्णमाला में ११ स्वर हैं—अ, भा, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ और औ। (४) वेदपाठ में होनेवाले शब्दों का उतार चढ़ाव। (५) नासिका में से निकलनेवाली वायु या श्वास।  
**संज्ञा पुं०** [सं० स्वर] आकाश। उ०—परमेश्वर अरु जीव जो महानाद स्वरचारि। पंचम विदुः पृथक् अवतर माया दिव्य निहारि।—विश्वामिः।

**स्वरकर**—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके सेवन से गले का स्वर तीव्र और सुंदर होता है।

**स्वरकवच**—संज्ञा पुं० दे० "स्वरभंग"।

**स्वरलु**—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत महानदी का एक नाम।

**विश्वेय**—मार्कंडेयपुराण में लिखा है कि जय भगीरथ गंगा को स्वर्ग से इस लोक में लाए, तब उसकी चार धाराएँ हो गईं। उन्हीं में से एक धारा मेरु पर्वत के पश्चिमी भाग में चली गई जो स्वरलु या शतु कहलाती है।

**स्वरगण**—संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग"। उ०—भरती सेत स्वराग लहि कान्दा। सकल समुद्र जानी भा ठाना।—गायत्री।

**स्वरार**—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार वायु के प्रकोप से होनेवाला गले का एक रोग जिसमें गला सूखता है, भावान

घैठ जाती है, खाद्य हुए पदार्थ जल्दी गले के नीचे नहीं उतरते और श्वासवादिनी नाड़ी दृषित हो जाती है।

**स्वरता**—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर का भाव या धर्म। स्वरत्व।

**स्वरनाद्री**—संज्ञा पुं० [सं० स्वरनादित्] वह धामा जो मुँह से फूँककर बनाया जाता हो। (संगीत)

**स्वरनाभि**—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का धामा जो मुँह से फूँककर बनाया जाता था।

**स्वरपत्तन**—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद।

**स्वरप्रधान**—संज्ञा पुं० [सं०] राग का एक प्रकार। वह राग जिसमें स्वर का ही आग्रह या प्रधानता हो, ताल की प्रधानता न हो।

**स्व(भंग)**—संज्ञा पुं० [सं०] आवाज का पैदान जो वैयक के अनुसार एक रोग माना गया है। कहा गया है कि बहुत जोर जोर से बोलने या पढ़ने, विष पान करने, गले पर भारी आघात लगने या शीत आदि के कारण वायु कुपित होकर स्वर-नाली में प्रविष्ट हो जाती है, जिससे ठीक ठीक स्वर नहीं निकलता। इसी को स्वरभंग कहते हैं।

**स्वरभंगी**—संज्ञा पुं० [सं० स्वरभंगित्] (१) वह जिसे स्वरभंग रोग हुआ हो। वह जिसका गला घैठ गया हो और मुँह से सात भावान न निकलती हो। (२) एक प्रकार का पक्षी।

**स्वरमानु**—संज्ञा पुं० [सं०] सत्यनामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीहृण्य के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम।

**स्वरभाव**—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में भाव के चार भेदों में से एक। बिना अंग संवालय किए केवल स्वर से ही दुःख सुख आदि का भाव प्रकट करता।

**स्वरभेद**—संज्ञा पुं० [सं०] गला या आवाज घैठ जाना। स्वरभंग।

**स्वरमंडल**—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते हैं।

**स्वरमंडलिका**—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा।

**स्वरलासिका**—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंदी या मुसली नाम का धागा जो मुँह से फूँककर बनाया जाता है।

**स्वरवाही**—संज्ञा पुं० [सं० स्वरवाहित्] वह धामा जिसमें से केवल स्वर निकलता हो और जो ताल आदि का स्पृक न हो।

**स्वरवेधी**—संज्ञा पुं० दे० "शब्दवेधी"। उ०—स्वरवेधी सय गल विशाता वैयक लक्ष विहीना। परमुख पेलि न पदहू महारत कर लायव लवलीना।—रामस्वयंवर।

**स्वरशास्त्र**—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें स्वर संबंधी सब बातों का विवेचन हो। स्वर-विज्ञान।

**स्वरसंक्राम**—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में स्वरों का आरोह और अवरोह। स्वरों का उतार और चढ़ाव।



स्वरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक के अनुसार पत्नी आदि को मित्रो-  
कर और अच्छी तरह पूट, पीस और छानकर निकाला  
हुआ रस ।

स्वरसमुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का  
बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे ।

स्वरसा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कवित्व पत्रक नाम की ओपधि ।  
(२) छाल । लह ।

स्वरसाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] गला घीट जाना । स्वरभंग ।

स्वरसादि-संज्ञा पुं० [ सं० ] ओपधियों को पानी में भौंटाकर  
तैयार किया हुआ काढ़ा । कपाय ।

स्वरसाम-संज्ञा पुं० [ सं० खरसाम् ] एक साम का नाम ।

स्वरांत-वि० [ सं० ] ( शब्द ) जिसके अंत में कोई स्वर हो ।  
जैसे,—माला, योगी ।

स्वरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्रथा की बढ़ी पत्नी का नाम जो गायत्री  
की सपत्नी कही गई है ।

स्वराज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राज्य जिसमें कोई राष्ट्र या किसी  
देश के निवासी स्वयं ही अपना शासन और अपने देश का  
सब प्रबंध करने हों । अपना राज्य ।

स्वराट्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) व्रद्धा । (२) ईश्वर । (३) एक  
प्रकार का वैदिक छंद । (४) वह वैदिक छंद जिसके  
सब पादों में मिलकर नियमित यणों में दो यण क्रम हों ।  
(५) वह राजा जो किसी ऐसे राज्य का स्वामी हो, जिसमें  
स्वराज्य शासन प्रणाली प्रचलित हो । उ०—जो पिता  
के सहस्र सय प्रकार से हमारा पालन करनेवाला स्वराट्  
... .. ।—द्वयानंद ।

वि० जो स्वयं प्रकाशमान हो और दूसरों को प्रकाशित करता  
हो । उ०—जो सर्वत्र व्याप्त अभिवांशी ( स्वराट् )  
स्वयं प्रधान रूप और ( कालाति ) प्रलय में सब का काल  
और काल का भी काल है, इसलिये परमेश्वर का नाम  
कालाति है ।—सत्याधर्म ।

स्वरापगा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आकाश गंगा । मंदाकिनी ।

स्वरापक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अक्षरों का वृद्ध ।

स्वरापु-संज्ञा पुं० [ सं० ] यथा या वच नाम की ओपधि ।

स्वराष्टक-संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में एक प्रकार का संकर राग  
जो धंमाली, भीरव, गंधार, पंचम और गुमरी के मेल से  
बनता है ।

स्वराष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अपना राष्ट्र या राज्य । (२)  
प्राचीन सुराष्ट्र नामक देश का एक नाम । (३) तामस मनु के  
पिता का नाम जो पुराणानुसार एक सार्वभौम और प्रतिबद्ध  
राजा थे और जिन्होंने बहुत से यज्ञादि किए थे ।

स्वरित-संज्ञा पुं० [ सं० ] उच्चारण के अनुसार स्वर के तीन भेदों  
में से एक । यह स्वर जिसमें उच्चारण और अनुच्चारण दोनों गण

हों । यह स्वर जिसका उच्चारण न बहुत जोर से हो और न  
बहुत धीरे से । मध्यम रूप से उच्चरित स्वर ।

वि० (१) जिसमें स्वर हो । स्वर से युक्त । (२) शून्यता हुआ ।

स्वरित्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वरित का भाव या धर्म ।

स्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वज्र । (२) यज्ञ । (३) वाण । तीर ।  
(४) सूर्य की किरण । (५) एक प्रकार का विष्णु ।

स्वरुचि-वि० [ सं० ] जो सब काम अपनी रुचि के अनुसार  
करे । स्वतंत्र । स्वाधीन । आज्ञात् ।

स्वरूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आकार । आकृति । शक्त । उ०—  
अपने अंत आप हरि प्रकटे पुरुषोत्तम निज रूप ।  
नारायण भुव भार हरो है अति आनंद स्वरूप ।—सूर ।  
(२) मूर्ति या चित्र आदि । उ०—द्विप में स्वरूप सेवा  
करि अनुराग भरे डरे और जीवनि की जीवन को दीजिए ।—  
नामा । (३) देवताओं आदि का धारण किया हुआ रूप ।  
(४) वह जो किसी देवता का रूप धारण किए हो । (५)  
पंडित । विद्वात् । (६) स्वभाव । (७) आत्मा ।

वि० (१) सुंदर । सुवर्ण । (२) तुल्य । समान । उ०—  
इतनि रूप भइ कथां जेहि स्वरूप नहि कोय । घन सुदेस  
रूपता जहाँ जनम अस होय ।—जायसी ।  
प्रथम रूप में । तीर पर । जैसे,—उन्होंने प्रमाण-स्वरूप  
महाभारत का एक छोक कह सुनाया ।

विशेष—इस अर्थ में यह दार्शनिक दार्ष्टान्तिक के अंत में ही आता  
है । जैसे,—आधार-स्वरूप ।

संज्ञा पुं० दे० "सारूप्य" । उ०—हम सांख्यीय स्वरूप  
सरोपियों रहत समीप सदाई । सो तजि कहत और की और  
तुम अलि बढ़े अदाई ।—सूर ।

स्वरूपश-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो परमात्मा और आत्मा का स्वरूप  
पहचानता हो । तावश । उ०—... क्योंकि वह अपने  
स्वरूपही पर किस नाते दसपिस होगा ?—हरिश्चंद्र ।

स्वरूपता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वरूप का भाव या धर्म ।

स्वरूपेद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनियों के अनुसार दया वह या जीव-  
रत्ना जो हृदय और परलोक में सुख पाने के लिये लोगों  
की देखादेखी की जाय । यद्यपि यह ऊपर से देखने में दया  
ही जान पड़ती है, परंतु वास्तव में मन के भाव से नहीं  
बल्कि स्वार्थ के विचार से होती है ।

स्वरूप प्रतिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जीव का अपनी स्वाभाविक  
शक्तियों और गुणों से युक्त होना ।

स्वरूपमान-संज्ञा पुं० [ सं० स्वरूपवत् ] स्वरूपवात् । सुंदर ।  
सुवर्ण । उ०—और स्वरूपमान लोगों के सहस्रों छु  
छु संसृष्ट उदगनों की भक्ति यत्र तत्र छिटे हुए थे ।—  
अयोध्या ।

स्वरूपघान-वि० [ सं० स्वरूपवत् ] [ स्वरूपवती ] जिसका स्वरूप

अच्छा हो। सुंदर। एवमूरत। उ०—अर्थात् उस परम अद्भुत विरोध स्वरूपवान् परमात्मा के...—केनोपनिषद्।  
स्वरूप-संबंध—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह संबंध जो किसी के परस्पर शीक अनुसर होने के कारण स्थापित होता है।

स्वरूपामास—संज्ञा पुं० [ सं० ] कोई वास्तविक स्वरूप न होने पर भी उसका आभास दिखाई देना। जैसे,—गंधर्वनगर, जिसका वास्तव में कोई स्वरूप नहीं होता, पर फिर भी स्वरूपामास होता है।

स्वरूपी—वि० [ सं० स्वर्गीय ] (१) स्वरूपवाला। स्वरूपयुक्त। उ०—नमो नमो गुददेव जू, सायु स्वरूपी देव। आदि अंत गुण काल के, ज्ञानवाहरे भेष।—कबीर। (२) जो किसी के स्वरूप के अनुसार हो, अथवा जिसने किसी का स्वरूप धारण किया हो। उ०—उपेति स्वरूपी हाकिमा जिन जमल पसारा हो।—कबीर।

संज्ञा पुं० दे० "साख्य"।

स्वरूपोपनिषद्—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक उपनिषद् का नाम।

स्वदेव—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूर्य की पत्नी संज्ञा का एक नाम।

स्वरोचित्—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार स्वरोचित् मनु के पिता का नाम जो कलि नामक गंधर्व के पुत्र थे और वसुधिनी नाम की अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

स्वरोद्—संज्ञा पुं० [ सं० स्वरोद् ] एक प्रकार का माया जिसमें बजाने के लिए सार लगे होते हैं।

स्वरोद्दय—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शास्त्र जिसके द्वारा दृष्टा, विंगला और सुपुष्टा आदि नादियों के आसों के द्वारा सब प्रकार के शुभ और अशुभ फल जाने जाते हैं। दाहिने और बाएँ नयने के निकलते हुए आसों को देखकर शुभ और अशुभ फल कहने की विद्या।

स्वर्गीया—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्ग की नदी, मंदाकिनी।

स्वर्ग—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दिव्युओं के सात लोकों में से तीसरा लोक जो ऊपर आकाश में सूर्यलोक से लेकर भुवलोक तक माना जाता है। किसी किसी पुराण के अनुसार यह भुवनेद पर्वत पर है। देवताओं का निवासस्थान यहाँ स्वर्गलोक माना गया है और कहा गया है कि जो लोग अनेक प्रकार के पुण्य और साधनों के माते हैं, उनकी भासाएँ इसी लोक में जाकर निवास करती हैं। यज्ञ, दान आदि जितने पुण्य कार्य किए जाते हैं, वे सब स्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से ही किए जाते हैं। कहते हैं कि इस लोक में केवल सुख ही सुख है; दुःख, शोक, रोग, मृत्यु आदि का नाम भी नहीं है। जो प्राणी जिनमें ही अधिक साधनों करता है, वह जल्द ही अधिक समय तक इस लोक में निवास करने का अधिकारी होता है। परंतु पुण्यों का क्षय हो जाने अथवा अधिक पुण्य हो जाने पर जीव को फिर कर्मानुसार प्रतीर

धारण करना पड़ता है; और यह कम तब तक चलता रहता है, तब तक उसकी मुक्ति नहीं हो जाती। यहाँ अष्टो बड़े कलायाले वृक्षों, मनोहर वादिकाओं और अप्सराओं आदि का निवास माना जाता है। स्वर्ग की कल्पना नरक की कल्पना के विपरीत विरुद्ध है। उ०—(क) भसन पसन पसु वस्तु विविधि विधि सब मन महि रहू जैसे। स्वर्ग नरक चर अचर लोक बहु बसत मय मन तैते।—तुलसी। (ख) स्वर्ग-भूमि पाताल के, भोगहि सर्व समान। शुभ संतति निज नेत्रबल, करत राज के काज।—निबल। (ग)... देवकी के आठवें गर्भ में लक्ष्मी होगा, सो न हो लक्ष्मी हुई; यह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई।—लखरू।

विशेष—प्रायः सभी धर्मों, देशों और जातियों में स्वर्ग और नरक की कल्पना की गई है। ईसाइयों के अनुसार स्वर्ग ईश्वर का निवास-स्थान है और यहाँ फिरते तथा धर्मात्मा लोग अनंत सुख का भोग करते हैं। मुसलमानों का स्वर्ग विहित कहलाता है। मुसलमान लोग भी विहित को खुद और फिरतों के रहने की जगह मानते हैं और कहते हैं कि शीनदार लोग मरने पर यहाँ जायेंगे। इनका विहित इंग्रिय-सुल की सब प्रकार की सामग्री से परिपूर्ण कहा गया है। यहाँ दूध और चाद की नदियों तथा समुद्र हैं, अंगूरों के वृक्ष हैं और कभी वृद्ध न होनेवाली अप्सराएँ हैं। यहूदियों के यहाँ तीन स्वर्गों की कल्पना की गई है।

पथ्यां—स्वर्। नाक। त्रिदिव। त्रिदशालय। सुरलोक। सी। मन्दर। देवलोक। उद्व्यलोक। शक्रभुवन।

मुष्टां—स्वर्ग के पंथ पर धर देना = (१) मरना। (२) जान जोरिम में चलना। उ०—कहो सो तोहि सिंहलपद है खंड सात पदाय। करि न कोई जीति जिय स्वर्ग पंथ दे पाय।—जायसी। स्वर्ग जाना या सिधारना = मरना। देवत होना। जैसे,—वे हीस ही यर्ष की अवस्था में स्वर्ग सिचारे। (किसी की मृत्यु पर दूसके सम्मानार्थ उसका स्वर्ग जाना या सिधारना कहा जाता है।) उ०—बहुते और बर्षवर् मये। पहुँच न सके स्वर्ग कहँ मये।—जायसी।

यो०—स्वर्ग सुख = बहुत अधिक और तब रोति वा सुख। वेना सुख वेता स्वर्ग में मिलन है। जैसे,—सुखे तो केवल अधी भरषी सुखके पदने में ही स्वर्ग सुख मिलता है।

यो०—स्वर्ग की धार = भाकात मंगा। उ०—नासिक सीन स्वर्ग की धारा। सीन लोक जनु बेहर हाता।—जायसी। (२) ईश्वर। उ०—न जनों स्वर्ग वात थीं कहाँ। कहँ न अपर वही फिर चाहा।—जायसी। (१) सुख। (२) वह स्थान जहाँ स्वर्ग का सुख मिले। बहुत अधिक आनंद का स्थान। (३) आकाश। उ०—(क) हीं तैहि दीप पतंग होद पर। निव जति काद स्वर्ग के परा।—जायसी। (७)

लाक्षागृह पावक तत्र जारा । लागी जाय स्वर्ग सों धारा ।  
 —सबल । (६) प्रलय । (क०) उ०—भा परलै अस  
 सयही जाना । कादा स्वर्गें स्वर्ग नियराना ।—जायसी ।  
 स्वर्गकाम—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो स्वर्ग की कामना रखता  
 हो । स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा रखनेवाला ।  
 स्वर्गगणित—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्गें जाना । मरना ।  
 स्वर्गगमन—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्गें सिधारना । मरना ।  
 स्वर्गगामी—वि० [ सं० स्वर्गगामिन् ] (१) स्वर्ग की ओर गमन  
 करनेवाला । स्वर्गें जानेवाला । (२) जो स्वर्ग की ओर गमन  
 कर चुका हो । मरा हुआ । मृत । स्वर्गिय ।  
 स्वर्गगत—वि० [ सं० ] जो स्वर्ग चला गया हो । स्वर्गगत । मरा  
 हुआ । स्वर्गिय ।  
 स्वर्गतरंगिणी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी ।  
 स्वर्गतरु—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कल्पतरु वृक्ष । (२) पारिजात ।  
 परजाता ।  
 स्वर्गति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्ग की ओर जाने की क्रिया ।  
 स्वर्गगमन ।  
 स्वर्गद—वि० [ सं० ] जो स्वर्ग पहुँचता हो । स्वर्ग देनेवाला ।  
 उ०—(क) सतगुण, रजगुण तमोगुण प्रपविधि के मुनिवाच ।  
 मोक्षद स्वर्गद सुखद हैं परिहीं सुखप्रद साँच ।—विभ्राम ।  
 (ख) स्वर्गद नर्कद कर्म अनंसा । साधन सकल कही  
 मतिवंता ।—रघुराज ।  
 स्वर्गवायक—वि० दे० "स्वर्गद" ।  
 स्वर्गधेनु—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कामधेनु ।  
 स्वर्गनदी—संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वर्ग + नदी ] आकाशगंगा । उ०—  
 पद्मपाद सुनि गुरु आदेशा । स्वर्गनदी महँ कीन्ह प्रवेशा ।—  
 शंकरदिग्वि० ।  
 स्वर्गपति—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्र ।  
 स्वर्गपुरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इंद्र की पुरी अमरावती ।  
 स्वर्गपुष्प—संज्ञा पुं० [ सं० ] लींग ।  
 स्वर्गभूमि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम जो  
 वाराणसी के पश्चिम ओर था । कहते हैं कि इसी स्थान पर  
 भगवती ने दुर्गा नामक राक्षस का नाश किया था जिसके  
 कारण उनका नाम दुर्गा पड़ा था ।  
 स्वर्गमंदाकिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्गगंगा । मंदाकिनी ।  
 स्वर्गमन—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्गें जाना । स्वर्गगमन । मरना ।  
 स्वर्गयोनि—संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ, दान आदि से शुभकर्म जिनके  
 कारण मनुष्य स्वर्गें जाता है ।  
 स्वर्गलाम—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ग की प्राप्ति । स्वर्गें पहुँचना ।  
 मरना ।  
 स्वर्गलोक—संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग" (१) ।

स्वर्गलोकेश—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्वर्ग के स्वामी, इंद्र । (२)  
 शरीर । तन ।  
 स्वर्गधू—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अप्सरा ।  
 स्वर्गवाणी—संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वर्ग + वाणी ] आकाशवाणी । उ०—  
 वेद धन ते कन्या भयऊ । वेदन स्वर्गवाणि तौ कियऊ ।  
 सबल ।  
 स्वर्गवास्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्वर्ग में निवास करना । स्वर्ग  
 में रहना । (२) स्वर्ग को प्रस्थान करना । मरना । जैसे,—  
 परमों उनके पिता का स्वर्गवास्त हो गया ।  
 स्वर्गवासी—वि० [ सं० स्वर्गवासिन् ] [ स्त्री० स्वर्गवासिनी ] (१)  
 स्वर्ग में रहनेवाला । (२) जो मर गया हो । मृत । जैसे,—  
 स्वर्गवासी राजा शिष्यप्रासाद जी ।  
 स्वर्गसार—संज्ञा पुं० [ सं० ] षट्सहस्र ताल के चौदह भेदों में से  
 एक । ( संगीत )  
 स्वर्गस्त्री—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अप्सरा ।  
 स्वर्गस्थ—वि० [ सं० ] (१) स्वर्ग में स्थित । स्वर्ग का । (२) जो  
 मर गया हो । मृत । स्वर्गवासी ।  
 स्वर्गपगा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्गगंगा । मंदाकिनी ।  
 स्वर्गामी—वि० [ सं० स्वर्गगामिन् ] जो स्वर्गें चला गया हो ।  
 स्वर्गगामी ।  
 स्वर्गरुद्ध—वि० [ सं० ] स्वर्गें सिधारा हुआ । स्वर्गें पहुँचा हुआ ।  
 मृत । स्वर्गवासी ।  
 स्वर्गरोहण—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्वर्ग की ओर जाना या चढ़ना ।  
 (२) स्वर्गें सिधारना । मरना ।  
 स्वर्गवास्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ग में निवास करना । स्वर्गवास ।  
 स्वर्गगिरि—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुमेरु पर्वत, जिसके शृंग पर स्वर्ग  
 की स्थिति मानी जाती है ।  
 स्वर्गियधू—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अप्सरा ।  
 स्वर्गी—वि० [ सं० स्वर्गिन् ] (१) स्वर्ग का निवासी । स्वर्गवासी ।  
 (२) स्वर्गगामी ।  
 संज्ञा पुं० देवता ।  
 स्वर्गीय—वि० [ सं० ] [ स्त्री० स्वर्गीया ] (१) स्वर्ग-संबंधी । स्वर्ग  
 का । जैसे,—मुझे पृकॉत-वास में स्वर्गीय सुख प्राप्त होता  
 है । (२) जिसका स्वर्गवास हो गया हो । जो मर गया हो ।  
 जैसे,—स्वर्गीय भारतेन्दु जी । उ०—श्रीमान्, स्मृतिमंदिर  
 बनवाकर स्वर्गीया महारानी चित्रशेरिया का ऐसा खासक  
 बनवा देंगे ।—जिबवंशु ।  
 स्वर्चन—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह अग्नि जिसमें से सुंदर अवाला  
 निकलती हो ।  
 स्वर्चत्तार—संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्जित्कार । सन्मी मिट्टी ।  
 स्वर्जार्ति श्रुत—संज्ञा पुं० [ सं० ] वैशक में एक प्रकार का श्रुत जो  
 गी के घी में सजी, जवाहार, कमीला, मँहदी, सुहागा और

सपेद्र कथे के चूर्ण को सरल करने से बनता है। कहते हैं कि इसे घाव पर लगाने से उसमें के कीड़े मर जाते हैं, सूजन कम हो जाती है और वह जल्दी भर जाता है।  
**रश्जि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सजी मिट्टी। (२) चोरा।  
**र्यजिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सजी मिट्टी।  
**र्यजिकाक्षार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सजी मिट्टी।  
**र्यजिकाद्य तैल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो तिल के तेल में सजी, मूली, होंग, पीपल और सोंठ आदि बीटा कर बनाया जाता है। यह तेल कान के दर्द और धरोवन आदि के लिये उपयोगी माना जाता है।  
**र्यजिकापाक्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सजी मिट्टी।  
**र्यजित्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसने स्वर्ग पर विजय प्राप्त कर ली हो। स्वर्गजित। (२) एक प्रकार का यज्ञ।  
**र्यजित**-संज्ञा पुं० [ सं० स्वर्जित् ] एक प्रकार का यज्ञ।  
**र्यजी**-संज्ञा पुं० [ सं० स्वर्जित् ] सजी मिट्टी।  
**र्यर्ण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुवर्ण या सोना नामक बहुमुख्य धातु। (२) धवरा। (३) गौरसुवर्ण नाम का साग। (४) नागकेसर। (५) पुराणानुसार एक नदी का नाम। (६) कामरूप देश की एक नदी का नाम।  
**र्यर्णकंडु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] धना। शल  
**र्यर्णकण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्णमुगुल।  
**र्यर्णकदली**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोनकेला। सुवर्ण कदली।  
**र्यर्णकमल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] छाल कमल।  
**र्यर्णकाय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड़।  
 वि० जिसका शरीर सोने का अथवा सोने का सा हो।  
**र्यर्णकार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की जाति जो सोने चोरी के आभूषण आदि बनाती है। सुनार।  
**र्यर्णकुट**-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिमालय की एक चोटी का नाम।  
**र्यर्णकुत्**-संज्ञा पुं० दे० "स्वर्णकर"।  
**र्यर्णकेतकी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली केतकी जिससे हथ और तैल आदि बनाया जाता है।  
**र्यर्णकीरी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हेमपुष्पा। सारयानाशी। भरमोद्।  
**र्यर्णक्रीडा**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार पूर्व वंग के एक नद का नाम।  
**र्यर्णगर्माचल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिमालय की एक चोटी का नाम।  
**र्यर्णगिरि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुमेरु पर्वत।  
**र्यर्णगैरिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोना गेरू।  
**र्यर्णग्रीध**-संज्ञा पुं० [ सं० ] काचिदेय के एक भनुर का नाम।  
**र्यर्णग्रीषा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कालिका पुराण के अनुसार एक नदी का नाम जो नाटक शैल के पूर्वी भाग से निकली हुई और गंगा के समान पवित्र कही गई है।  
**र्यर्णचूड**, **र्यर्णचूल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीलकण्ठ नामक वक्षी।

**र्यर्णज**-वि० [ सं० ] (१) सोने से उत्पन्न। (२) सोने से बना हुआ।  
**र्यर्णज पुं०** (१) वंग नाम की धातु। रौं। (२) सोनामरुवी।  
**र्यर्णजातिका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली चमेठी।  
**र्यर्णजाती**-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वर्णजातिका"।  
**र्यर्णजीर्घंसी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली जीवती।  
**र्यर्णजीवा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली जीवती।  
**र्यर्णजीवी**-संज्ञा पुं० [ सं० स्वर्णजीविन् ] वह जो सोने के आभूषण आदि बनाकर जीविका निर्वाह करता हो। सुनार।  
**र्यर्णजूही**-संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वर्णजूहिका ] पीली जूही।  
**र्यर्णतीर्थ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।  
**र्यर्णद्व**-वि० [ सं० ] (१) स्वर्ण या सोना देनेवाला। (२) स्वर्ण या सोना दान करनेवाला।  
**र्यर्णद्व**-संज्ञा पुं० वृद्धिकाली। बरहंडी।  
**र्यर्णदी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मंदाकिनी। स्वर्णगा। (२) वृद्धिकाली। बरहंडा। (३) कामायवा के पास की एक नदी का नाम।  
**र्यर्णदीघति**-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि।  
**र्यर्णदुग्धा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्णदूध। सरयानाशी। भरमोद्।  
**र्यर्णदु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] भारवच। अमरुताप्त।  
**र्यर्णधातु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुवर्ण। सोना। (२) स्वर्ण-गैरिक। सोनागेरू।  
**र्यर्णनाम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार के शालग्राम।  
**र्यर्णनिम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोनागेरू। स्वर्णगैरिक।  
**र्यर्णपक्ष**-संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड़।  
**र्यर्णपत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोने का पत्र या तपक।  
**र्यर्णपत्री**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्णमुखी। सोनामुखी। सनाप।  
**र्यर्णपद्मा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्णगा। मंदाकिनी।  
**र्यर्णपर्णी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीली जीवती।  
**र्यर्णपेटी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वैद्यक में एक प्रसिद्ध औषध जो संप्रक्षयी रोग के लिये सब से अधिक गुणकारी मानी जाती है। इसके बनाने के लिये एक तोले सोने की पहले आठ तोले पारे में गठी भक्ति सरल करते हैं और तब उसमें आठ तोले गंधक मिलाकर उसकी कजली तैयार करते हैं। इसके सेवन के समय रोगी को उतना अधिक वृष खिलाया जाता है जितना वह पी सकता है।  
**र्यर्णपाटक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोदागा, जिसके मिलाने से सोना गल जाता है।  
**र्यर्णपारवेत्त**-संज्ञा पुं० [ सं० ] बश पारवेत्त।  
**र्यर्णपुष्प**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भारवच। अमरुताप्त। (२)

चंपा। चंपक। (३) बधूल। कीकर। (४) कपित्थ। कैष।  
 (५) सफेद कुम्हड़ा। पेरा।  
 स्वर्णपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कलिहारी। लंगली। (२)  
 सानला नाम का धूप। (३) मेदासिंघी। (४) सोनुली।  
 स्वर्णुली। आरग्वध। (५) स्वर्ण केतकी।  
 स्वर्णपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्वर्ण केतकी। पीला केवड़ा।  
 (२) सातला नाम का धूप। (३) अमलतास। आरग्वध।  
 स्वर्णप्रस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार जंबू द्वीप के एक  
 उपद्वीप का नाम।  
 स्वर्णफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] धरुवा।  
 स्वर्णफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्णकरली। चंपा केला।  
 स्वर्णपीज-संज्ञा पुं० [ सं० ] धरुवे का पीज।  
 स्वर्णभाज-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य।  
 स्वर्णभूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यह स्थान जहाँ सय प्रकार के  
 सुख हों। बहुत उत्तम भूमि। (२) दारचीनी। गुडश्क।  
 स्वर्णभूषण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आरग्वध। अमलतास। (२)  
 सोनागुरु। स्वर्णैरिक।  
 स्वर्णभृंगार-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीला भंगार।  
 स्वर्णमंडन-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोना गुरु। स्वर्णैरिक।  
 स्वर्णप्रय-वि० [ सं० ] जो मिलकुल सोने का हो। जैसे,—  
 स्वर्णमय सिंहासन।  
 स्वर्णमाशिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोनामक्की नामक वृषपातु। वि०  
 दे० "सोनामक्की"।  
 स्वर्णमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वर्णमातृ ] (१) हिमालय की एक  
 छोटी नदी का नाम। (२) जाग्रुन।  
 स्वर्णमुली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्णपत्री। सनाय।  
 स्वर्णमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोने का सिक्का। अक्षरपी।  
 स्वर्णसूचिका, स्वर्णसूची-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीछी जूही।  
 स्वर्णरंभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्ण करली। चंपा केला।  
 स्वर्णरीति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राजपीतल। सोनापीतल।  
 स्वर्णरेखा-संज्ञा स्त्री० दे० "सुवर्णरेखा"।  
 स्वर्णरोमा-संज्ञा पुं० [ सं० स्वर्णरोमन् ] एक सूर्यवंशी राजा का  
 नाम जो राजा महारोमा का पुत्र और ह्रस्वरोमा का पिता था।  
 स्वर्णरत्ना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मालकंगनी। उपातिष्मती।  
 (२) पीछी जीवंती। स्वर्णजीवंती।  
 स्वर्णली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोनुली नामक छुप। स्वर्णपुष्पी।  
 स्वर्णवज्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का लोहा।  
 स्वर्णवर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कणगुगुल। (२) हरताल। (३)  
 सोनागुरु। स्वर्णैरिक। (४) दादहली।  
 स्वर्णवर्षाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कंकड़। सुरक्षा संग।  
 स्वर्णवर्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दलदी। (२) दादहली।

स्वर्णवर्षामा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जीवंती।  
 स्वर्णवदफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोनापाठा। प्रयोनाक। भरख।  
 स्वर्णवल्ली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सोनावही। रकफल। (२)  
 स्वर्णुंजी नामक छुप। (३) पीछी जीवंती।  
 स्वर्णविट्टु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु। (२) प्राचीन काल के  
 एक तीर्थ का नाम। ( महाभारत )।  
 स्वर्णशिख-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्णचूड़ या नीलकंठ नामक पक्षी।  
 स्वर्णशंखी-संज्ञा पुं० [ सं० स्वर्णशंखिन् ] पुराणानुसार एक पर्वत  
 का नाम जो सुमेरु पर्वत के उत्तर ओर माना जाता है।  
 स्वर्णशोफालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आरग्वध। अमलतास।  
 (२) सँभाल। पीला सिंधुभार।  
 स्वर्णसिद्ध-संज्ञा पुं० दे० "स्वसिद्ध"।  
 स्वर्णहासि-संज्ञा पुं० [ सं० ] आरग्वध। अमलतास।  
 स्वर्णग-संज्ञा पुं० [ सं० ] आरग्वध। अमलतास।  
 स्वर्णकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह स्थान जहाँ सोना उत्पन्न होता  
 हो। सोने की खान।  
 स्वर्णद्वि-संज्ञा पुं० [ सं० ] उड़ीसा प्रदेश का भुवनेश्वर नामक  
 तीर्थ जो स्वर्णचल भी कहलाता है।  
 स्वर्णमि-संज्ञा पुं० [ सं० ] हरताल।  
 स्वर्णमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पीछी जूही।  
 स्वर्णरि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गंधक। (२) सीसा नामक धातु।  
 स्वर्णालु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोनुली। स्वर्णुंजी।  
 स्वर्णह्वि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्णक्षीरी। सत्यानासी। भरभौंद।  
 स्वर्णिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धनिया।  
 स्वर्णुंजी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का छुप जो सोनुली  
 कहलाता है। इसे देमपुष्पी और स्वर्णपुष्पा भी कहते हैं।  
 धैरक के अनुसार यह कटु, तीक्ष्ण, कषाय और घ्ननाशक  
 होता है।  
 स्वर्णपधातु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोनामक्की नामक वृषपातु।  
 स्वर्णुनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंगा।  
 स्वर्णगरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्ण की पुरी, अमरावती।  
 स्वर्णद्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्णग।  
 स्वर्पति-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ण के स्वामी, इंद्र।  
 स्वर्णानय-संज्ञा पुं० [ सं० ] गोमेद मणि। राहुरस।  
 स्वर्णानु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राहु। (२) सार्यभामा के गर्भ से  
 उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।  
 स्वर्णोनि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन जनपद का नाम।  
 स्वर्णोक-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ण।  
 स्वर्णचू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अक्षरा।  
 स्वर्णवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंगा।  
 स्वर्णविट्टु-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो यज्ञ आदि करके स्वर्ण जाता हो।  
 स्वर्णवद-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अक्षरा।

स्वधैय-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्ग के वैद्य, अग्निनी-कुमार ।  
 स्वधलीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक दानव का नाम ।  
 स्वधत्व-वि० [ सं० ] बहुत धोका । बहुत कम । जैसे,—स्वधत्व  
 मात्रा में मकरध्वज देने से भी बहुत लाभ होता है । उ०—  
 (क) अतिथि करीबन शाप न आए चौक भयो जिय भारी ।  
 स्वधत्व शाक से मृत किए सब कठिन आपदा टारी ।—सूर ।  
 (ख) कदव वपं भट चलोवो किए संकलर विजय को । समुक्ति  
 अलर दल परन स्वधत्व लेस न भय को ।—गिरधरदास ।  
 संज्ञा पुं० नखी या हट्टविलासिनी नामक गंधद्रव्य ।  
 स्वधत्वकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] कलेरु ।  
 स्वधत्वकाष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] साँल आहू ।  
 स्वधत्वकेशर-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्वनार ।  
 स्वधत्वकेशी-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वयंभेदिय मूलनेश नामक पौधा ।  
 स्वधत्वघंटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बनसनई ।  
 स्वधत्वचंद्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गौरैया नामक पक्षी ।  
 स्वधत्वजंबुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] लोमड़ी ।  
 स्वधत्वतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] केसुक । केसुआ ।  
 स्वधत्वनख-संज्ञा पुं० [ सं० ] नखी या हट्टविलासिनी नामक  
 गंधद्रव्य ।  
 स्वधत्वपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गौरवाक । पहाड़ो महुआ ।  
 स्वधत्वपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मेदा नाम की अष्टगव्यी ओषधि ।  
 स्वधत्वफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हाऊरे । हनुया ।  
 स्वधत्वयय-संज्ञा पुं० [ सं० ] जौ नामक अन्न ।  
 स्वधत्वकृपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शगपुष्पी । बनसनई ।  
 स्वधत्वचर्तुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] मटर ।  
 स्वधत्वचक्रला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तेजबल । तेजोवती ।  
 स्वधत्वचिटप संज्ञा पुं० [ सं० ] केसुक । केसुआ ।  
 स्वधत्वचिराम ज्वर-संज्ञा पुं० [ सं० ] उंहर उंहर कर थोड़ी देर के  
 लिये उतर कर फिर आनेवाला ज्वर ।  
 स्वधत्वशुद्धा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बनसनई । शगपुष्पी ।  
 स्वधत्वशृंगाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] रोहित मृग । बनरोह ।  
 स्वधत्वग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्षा का न होना । अनाशुधि ।  
 स्वधत्वनख-संज्ञा पुं० दे० "सुवर्ण" ।  
 स्वधवर्णी रेखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुवर्णरेखा ] एक नदी जो छोटा  
 नागपुर से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है ।  
 स्वधवर्ण-वि० [ सं० ] (१) जो अपने वदन में हो । (२) जिसका  
 अपने आप पर अधिकार हो । जो अपनी इन्द्रियों को वन में  
 रखता हो । जितेंद्रिय ।  
 स्वधवशाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वयं का भाव या धर्म ।  
 स्वधवशिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वैदिक छंद ।  
 स्वधव्य-वि० [ सं० ] जो अपने ही वदन में हो । अपने आप पर  
 अधिकार रखनेवाला ।

स्वधवदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] निसोय । प्रिद्वृत ।  
 स्वधासिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह कन्या अथवा विवाहिता स्त्री  
 जो अपने पिता के घर रहती हो ।  
 स्वधासी-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वधासिन् ] एक क्षाम का नाम ।  
 स्वधीज-वि० [ सं० ] जो अपना धीज या कारण आप ही हो ।  
 संज्ञा पुं० आत्मा ।  
 स्वधुत्-संज्ञा पुं० दे० "ससुर" ।  
 स्वधसंभव-वि० [ सं० ] जो आत्मा से उत्पन्न हो । आत्मसंभव ।  
 स्वधसंभूत-वि० [ सं० ] जो आप से आप उत्पन्न हो ।  
 स्वसंधिदू-वि० [ सं० ] जिसका ज्ञान इन्द्रियों से न हो सके ।  
 अगोचर ।  
 स्वसंधेय-वि० [ सं० ] ( ऐसी बात ) जिसका अनुभव वही कर  
 सकता हो जिस पर वह भीती हो । केवल अपने ही अनुभव  
 होने योग्य ।  
 स्वसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घर । मकान । (२) दिन ।  
 स्वसा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वयं भगिनी । बहिन । उ०—तेहि  
 अवसर रावण स्वसा सूपनखा तहँ आहू । रामस्वरूप मोहित  
 बचन बोली गरम बढ़ाहू ।—विधाम । (२) तेजबल ।  
 तेजवली । तेजोवती ।  
 स्वसुर-संज्ञा पुं० दे० "ससुर" ।  
 स्वसुराल-संज्ञा स्त्री० दे० "ससुराल" ।  
 स्वस्ति-प्रत्य० [ सं० ] कल्याण हो । मंगल हो । ( आतोवां )  
 उ०—नंबराय घर टोटा जायो महर महा सुख पायो ।  
 विप्र तुलाय वेद ध्वनि कीही स्वस्ती बचन पढ़ायो ।—सूर ।  
 विशेष—प्रायः वान लेने पर ब्राह्मणालोग "स्वस्ति" कहते हैं,  
 जिसका अभिप्राय होता है—दाता का कल्याण हो ।  
 संज्ञा स्त्री० (१) कल्याण । मंगल । (२) पुराणानुसार ब्रह्मा  
 की तीन स्त्रियों में से एक स्त्री का नाम । उ०—ब्रह्मा कहँ  
 जानत संसारा । गिन सिरग्यो जग कर विस्तारा । तिनके  
 भवन सीनि रहँ हूखी । संध्या स्वस्ति और सावित्री ।  
 —विधाम । (३) सुख ।  
 स्वस्तिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घर जिसमें पश्चिम ओर एक  
 दाखान और पूर्व ओर दो दाखान हों । कहते हैं कि ऐसे  
 घर में रहने से गृहस्थ की स्वस्ति अर्थात् कल्याण होता है,  
 इसी लिये इसे स्वस्तिक कहते हैं । (२) सिरियारी ।  
 सुसना नाम का साग । (३) लहसुन । (४) रताछ ।  
 रक्तानु । (५) मूली । (६) हठयोग में एक प्रकार का  
 आसन । (७) एक प्रकार का मंगल द्रव्य जो विवाह आदि  
 के समय धातल को पीसकर और पानी में मिलाकर तैयार  
 किया जाता है और जिसमें देवताओं का निवास माना जाता  
 है । (८) प्राचीन काल का एक प्रकार का यंत्र जो शरीर में  
 गढ़े हुए धातल आदि को बाहर निकालने के काम में आता

था। यह अठारह अंगुल तक लंबा होता था और सिंह, श्वाल, मृग आदि के आकार के अनुसार १८ प्रकार का होता था। (९) वैद्यक में फोड़े आदि पर बाँधा जानेवाला यंत्र या पट्टी जिसका आकार त्रिकोना होता था। (१०) चौराहा। चौमुहानी। (११) साँप के फन पर की नीली रेखा। (१२) प्राचीन काल का एक प्रकार का मंगल चिह्न जो शुभ अवसरों पर मंगलिक द्रव्यों से अंकित किया जाता था और जो कई आकार तथा प्रकार का होता था। आज



यह प्रचलित है।

कल इसका मुख्य आकार प्रायः किसी मंगल कार्य के समय गणेश पूजन करने से पहले यह चिह्न बनाया जाता है। आज कल लोग इसे भ्रम से गणेश ही कहा करते हैं। (१३) शरीर के विशिष्ट अंगों में होनेवाला उक्त आकार का एक चिह्न जो सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार बहुत शुभ माना जाता है। कहते हैं कि रामचंद्र जी के धरण में इस आकार का चिह्न था। जैनी लोग जिन देवता के २४ लक्षणों में से इसे भी एक मानते हैं। उ०—स्वस्तिक अष्टश्लोक धी केरा। हलमूसल पद्मग दार हेरा।—विभ्राम। (१४) प्राचीन काल की एक प्रकार की यदिया नाव जो प्रायः राजाओं की सवारी के काम में आती थी।

स्वस्तिक यंत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का यंत्र जिसका व्यवहार शरीर में धँसे हुए शल्य को निकालने के लिये होता था। वि० दे० "स्वस्तिक"। (८)

स्वस्तिकर—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल के एक शौत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

स्वस्तिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चमेली।

स्वस्तिकाहृय—संज्ञा पुं० [ सं० ] चौड़ाई का साग।

स्वस्तिकरुत्—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।  
वि० मंगल करनेवाला। कल्याणकारी।

स्वस्तिकद—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।  
वि० मंगल या कल्याण देने अथवा करनेवाला।

स्वस्तिकपुर—संज्ञा पुं० [ सं० ] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

स्वस्तिकमती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कालिकेय की एक मानुका का नाम।

स्वस्तिकमुख—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शासण। (२) वह जो राजाओं की स्तुति करता हो। बंदी। स्तुतिपाठक।

स्वस्तिकाचक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो मंगलसूचक बात कहता हो। (२) वह जो आशीर्वाद देता हो।

स्वस्तिकाचन—संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्मकांड के अनुसार मंगल कार्यों के आरंभ में किया जानेवाला एक प्रकार का धार्मिक कृत्य जिसमें गणेश का पूजन होता है, कलश स्थापित किया

जाता है और कल मंगल-सूचक ग्रंथों का पाठ किया जाता है। उ०—एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरपी नंदरानी। विम सुलाय स्वस्तिवाचन करिरोहिणी नैन सिरानी।—सुर। स्वस्तेन—संज्ञा पुं० दे० "स्वस्त्ययन"।

स्वस्त्ययन—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का धार्मिक कृत्य जो किसी विशिष्ट कार्य की अशुभ बातों का नाश करके शुभ की स्थापना के विचार से किया जाता है। उ०—पढ़न लगे स्वस्त्ययन प्रह्वऋषि गाइ उठों सम नारी। लै नरनाथ अंक रघुनाथहि रंगनाथ संभारी।—रघुराज।

स्वस्त्यात्रेय—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैदिक ऋषि का नाम।

स्वस्थ-वि० [ सं० ] (१) जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो। जिसे किसी प्रकार का रोग न हो। निरोग। तंदुरुस्त। भला चंगा। जैसे,—इधर महीं तो से वे बीमार थे; पर धर्य बिलकुल स्वस्थ हो गए हैं। (२) जिसका चित्त ठिकाने हो। सावधान। जैसे,—आप सो घबरा गए; ज़रा स्वस्थ होकर पहले सब बातें सुन तो लीजिए।

स्वस्थचित्त-वि० [ सं० ] जिसका चित्त ठिकाने हो। शान्तचित्त।

स्वस्थता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) स्वस्थ का भाव या धर्म। निरोगता। तंदुरुस्ती। (२) सावधानता।

स्वच्छीय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (स्वस्) बहिन का लड़का। मानजा।

स्वहानांकि—किं प्र० दे० "सोहानां"। उ०—सय आचार्यन के मधि माहीं। रामानुज मुनि सरिस स्वहार्हा।—रघुराज।

स्वार्थिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] डोल या मुड़ंग बजानेवाला।

स्वर्ग—संज्ञा पुं० [ सं० ] सु + अंग अथवा स्व + अंग [ (१) कृत्रिम या बनावटी वेप जो अपना वास्तविक रूप छिपाने या दूसरे का रूप धरने के लिये धारण किया जाय। भेष। (२) रूप। उ०—(क)...अप चलो अपने अपने स्वर्ग सजें।—हरिश्चंद्र। (ख) कै एक स्वर्ग बनाह कै नाचौ बहुत, विधि नाच। रीसत नहि रिसवार वह बिना दिये के साँच।—रसनिधि।

क्रि० प्र०—मरना।—बनना।—बनाना।—सजना।

(२) मज़ाक का खेल या तमाशा। नकल। उ०—(क) बहु वासना विविध कंबुकि भ्रूषण लोभादि भरयी। चर धरु अवर भंगन जल थल में कौन स्वर्ग न करी।—तुलसी। (ख) पं बहु विस्तृत टाढ बाट निस्सि नाच स्वर्ग सयं। धन अधिकारि के अरु लंपटा करतब के।—धोधर। (३) धोखा, देने की बनाया हुआ कोई रूप। जैसे,—वह बीमार नहीं है; उसने बीमारी का स्वर्ग रचा है।

क्रि० प्र०—स्वर्गना।

सुहा०—स्वर्ग बनाना = धोखा देने या कोई कल व्यवहार करने के लिये कोई रूप धारण करना।

स्वर्गना—किं प्र० [ सं० ] स्वर्ग बनाना। बनावटी वेप

या रूप धारण करगा। उ०—भीम अर्जुन सहित विप्र को रूप धरि हरि. जरासंध सों बुद गोंगो। द्वियो उनपै कछो—  
 हुम कोऊ हाथिया रूपट करि विप्र को स्वांगि स्वांगी।—पूर।  
**स्वांगी—संज्ञा पु०** [ हि० स्वांग ] (१) वह जो स्वांग सजकर जीविका उपार्जन करता है। नकल करनेवाला। नकाल।  
 उ०—(क) जैसे कि बौम, भौद, नट, वेश्या, स्वांगी, यहूतपी या प्रदांसक को देना।—अध्वराम। (ख) जिन प्रथमै करि पाठे छाँड़। तिन्हँ जानिये स्वांगी भाड़ा।—विभ्राम। (२) अनेक रूप धारण करनेवाला। बहुरूपिया। उ०—स्वांगी से ए मए रहत है छिन ही छिन ए और।—सूर।  
 वि० रूप धारण करनेवाला। उ०—छाँपी सी यह बात है सुनिवै सज्जन संत। स्वांगी सौ यह एक है वा के स्वांग अनंत।—रसनिधि।

**स्वांत—संज्ञा पु०** [ सं० ] (१) अंतःकरण। मन। (२) अपना अंत या मृत्यु। (३) अपना राज्य या प्रदेश। (४) युद्ध। युद्ध।  
**स्वांतज—संज्ञा पु०** [ सं० ] (१) प्रेम। (२) मनोज्ञ। कामदेव।  
**स्वांस—संज्ञा शी०** दे० "सांस"। उ०—पंकज सों मुख गो सुरसाइ लगी लपटै जिस स्वांस दिया की।—रसखान।  
**स्वांसा—संज्ञा पु०** [ दे० ] वह सोना जिसमें ताँबे का थोटा मिला हो। ताँबे का खोट मिला हुआ सोना।  
 संज्ञा पु० दे० "सांस"। उ०—स्वांसा सार रखी मेरो साहव।—कबीर।

**स्वाक्षर—संज्ञा पु०** [ सं० ] हस्ताक्षर। दातखत। जैसे,—(क) उन्हीने उस पर स्वाक्षर कर दिव। (ख) उनके स्वाक्षर से एक सूचना निकली है।

**स्वाक्षरित—वि०** [ सं० ] अपने हस्ताक्षर से युक्त। अपना हस्ताक्षर किया हुआ। अपना दस्तखत किया हुआ। जैसे,—उमके स्वाक्षरित सूचनापत्र से सारी बातों का पता लगा है।

**स्वागत—संज्ञा पु०** (१) किसी अतिथि या विशिष्ट उपज के पचाने पर उसका सादर अभिनंदन करना। सम्मानार्थ, आगे बढ़ कर लेना। आगवानी। अभ्यर्थना। पेशवाई। जैसे,—उमका स्वागत होगे ने वहाँ उरसाह और उमंग से दिया। (२) एक शब्द का नाम।

**स्वागतकारिणी—समा—संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] स्थानीय लोगों की वह समा जो उस स्थान में निम्नित किसी विराट समा या सम्मेलन आदि का प्रबंध करने और आनेवाले प्रतिनिधियों के स्वागत, निवासस्थान, भोजन आदि की व्यवस्था करने के लिये संघटित हो।

**स्वागतकारी—वि०** [ सं० ] स्वागतकारी। स्वागत या अभ्यर्थना करनेवाला। पेशवाई करनेवाला।

**स्वागतपतिका—संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] अथस्यानुसार नायिका के दस्त

भेदों में से एक। वह नायिका जो अपने पति के परदेस से लौटने से प्रसन्न हो। आगत-पतिका।

**स्वागतविषया—संज्ञा पु०** [ सं० ] वह वस्तु जो अपनी पक्षी के परदेस से लौटने से उत्साहपूर्ण और प्रसन्न हो।

**स्वागता—संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक धरण में ( र, न, म, ग, य ) ५:५ + ॥१ + ५॥ + ५५ होता है। यथा—रानि। भोगि गहि नाथ कन्हाई। साय गोपजन आवत घाई। स्वागताय सुनि आठुर माता। घाह देखि मुद सुंदर गाता।—छंदःप्रभाकर।

**स्वागतिक—वि०** [ सं० ] स्वागत करनेवाला। आनेवाले की अभ्यर्थना या सत्कार करनेवाला।

**स्वागम—संज्ञा पु०** [ सं० ] स्वागत। अभिनंदन।

**स्वाच्छंद्य—संज्ञा पु०** दे० "स्वच्छंदता"।

**स्वाजन्य—संज्ञा पु०** दे० "स्वजनता"।

**स्वाजीव, स्वाजीव्य—वि०** [ सं० ] (वह स्थान या देश आदि) जहाँ कृषि वाणिज्य आदि जीविका का साधन सुलभ हो। जैसे,—स्वाजीव्य देश।

**स्वातंत्र—संज्ञा पु०** दे० "स्वातंत्र्य"।

**स्वातंत्र्य—संज्ञा पु०** [ सं० ] स्वतंत्र का भाव या धर्म। स्वतंत्रता। स्वाधीनता। आज़ादी। जैसे,—उस देश में भाषण और लेखन-स्वातंत्र्य नहीं है।

**स्वातल—संज्ञा स्त्री०** दे० "स्वाति"। उ०—स्वात वृद्ध पातक मुख परी। सोप ससुंद मोती बहु भरी।—जायसी।

**स्वाति—संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] पंद्रहवाँ नक्षत्र जो कफित ज्योतिष के अनुसार शुभ माना गया है। इस नक्षत्र में जन्मनेवाला कामदेव के समान रूपवान्, विद्या का प्रिय और सुखी होता है।

**विशेष—**कहते हैं कि पातक दसी नक्षत्र में वरसनेवाला पानी पीता है और इसी नक्षत्र में वर्षा होने से सीप में मोती, बॉस में पंखडोवन और सौर में त्रिप उत्पन्न होता है। उ०—(क) जेहि चाहत नर नारि सप अति भारत एदि भौंति। त्रिप पातक पातकि त्रिपति वृष्टि सरद रिदु स्वाति।—दुलसी। (ख) भेद मुकता के जेते, स्वाति ही में होत तेते रतनन हूँ को कहुँ रूखिहू न होत भ्रम।—रसकुसुमाकर।  
 संज्ञा स्त्री० उर और आग्नेयी के एक पुत्र का नाम।  
 वि० स्वाति नक्षत्र में उत्पन्न।

**स्वातिकारी—संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] कृषि की देवी। (पास्तकर वृद्धसुत्र)

**स्वातिपंथ—संज्ञा पु०** [ सं० ] स्वाति + पंथ। आकाश-पंथ। उ०—चंद्री विदुपक पदत बहु विधि सुपस सुकि समेत। यह भानुगुल कीरति उदय जो स्वाति पंथ सपेत।—धुरान।

**स्वातियोग—संज्ञा पु०** [ सं० ] ज्योतिष के अनुसार भाषाद् के शुक्र पक्ष में स्वाति नक्षत्र का चंद्रमा के साथ योग।



**स्वातिसुत**-संज्ञा पुं० [ सं० स्वाति + सुत ] मोती । मुक्ता । उ०—  
 (क) स्वातिसुत माला विराजत दयाम तन यौ भाद् । मनो  
 गंगा नीरि उर हर लिये कंठ लगाद् ।—मूर । (ख) येनी  
 दृष्टि छँटे धरानी मुकुट लटकि लटकानो । फूक पसत सिर  
 से भव न्यारे सुभग स्वातिसुत मानो ।—मूर ।

**स्वातिसुवन**-संज्ञा पुं० [ सं० स्वाति + हिं० सुवन ] मोती । मुक्ता ।  
 उ०—अतसी कुसुम कलेवर वृद्ध प्रतिनिवित निरधार ।  
 गयोति प्रकाश सुवन में खोलत स्वातिसुवन आकार ।—मूर ।

**स्वाती**-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाति" । उ०—स्त्रीय मुखहि बरनिय  
 केहि भौती । जनु चातकी पाद् जल स्वाती ।—तुलसी ।

**स्वाद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी पदार्थ के खाने या पीने से रसनेद्रिय  
 को होनेवाला अनुभव । जायका । जैसे,—(क) इसका स्वाद  
 खटा है या मीठा, यह तुम क्या जानो । (ख) आज भोजन  
 में बिलकुल स्वाद नहीं है । (२) रसानुभूति । आनंद ।  
 मजा । जैसे,—(क) उनकी कविता ऐसी सरस और सरल  
 होती है कि सामान्य जन भी उसका स्वाद ले सकते हैं ।  
 (ख) जान पड़ता है, भाप को लगाने लगाने में क्या स्वाद  
 मिलता है ।

**क्रि० प्र०**—लेना ।—मिलना ।

**मुद्गा**—स्वाद चखाना = किसी ची उरके फिर हृद भरपण का  
 दंड देना । बदला लेना । जैसे,—मैं तुम्हें इसका स्वाद  
 चखाऊँगा ।

(३) खाद । हूडा । कामना । उ०—(क) गंधमादनर  
 स्वाद चल्गेन धन सरिस नाद करि । है द्वित भासिरवाद्  
 परम अहलाद् हृदय भरि ।—गोपाल । (ख) द्वित भरपदि  
 वासिरवाद् पदि । नमत तिरहँ अहलाद् नदि । नृप लसेउ  
 सुरथ जय स्वाद चदि । कत सिंह सम नाद वदि ।—  
 गोपाल । (७) मीठा रस । (डि०)

**स्वावृक**-संज्ञा पुं० [ सं० स्वावृ ] वह जो भोग्य पदार्थ प्रस्तुत होने  
 पर चलता है । स्वाधुविवेकी । उ०—स्वादक चतुर यत्नायत  
 जाहीं । स्वपकार बहु विरचत तौहीं ।—रामाधनेय ।

**विशेष**—राजा महाराजों की पाकशालाओं में प्रायः ऐसे कर्म-  
 चारी होते हैं जो भोग्य पदार्थ प्रस्तुत होने पर पहले चख  
 लेते हैं कि पदार्थ उत्तम बना है या नहीं । ऐसे ही लोग  
 स्वादक कहलाते हैं ।

**स्वादन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चखना । स्वाद लेना । (२) रस  
 ग्रहण । मजा लेना । आनंद लेना ।

**स्वाधनीय**-वि० [ सं० ] (१) स्वाद लेने के योग्य । (२) रस  
 लेने के योग्य । मजा लेने के योग्य । (३) जायकेदार ।  
 स्वादिष्ट ।

**स्वादित**-वि० [ सं० ] (१) चखा हुआ । रस लिया हुआ । (२)  
 स्वाद-युक्त । जायकेदार । (३) प्रीत । प्रसन्न ।

**स्वादित्य**-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वाद का भाव । स्वाधु ।

**स्वादिष्ट**, **स्वादिष्ट**-वि० [ सं० स्वादिष्ट ] जो खाने में बहुत अच्छा  
 जान पड़े । जिसका स्वाद अच्छा हो । जायकेदार । सुस्वाद ।  
 जैसे,—स्वादिष्ट भोजन ।

**स्वादी**-वि० [ सं० स्वादि ] (१) स्वाद चखनेवाला । उ०—बहु  
 सुत मागध यंत्री जन नृप यवन पुनि इरचित चले । पुनि  
 वैध पौरानिक सभाचातुर विपुल स्वादी भले ।—रामाधनेय ।  
 (२) मजा लेनेवाला । रसिक ।

**स्वादीला**-वि० [ सं० स्वाद + ला (कृ०) ] स्वादयुक्त । स्वादिष्ट ।  
 उ०—वास के स्वादीले प्रासों काके..... यह रातेधर  
 उसकी ( नंदिनी माय की ) सेवा में तारत हुआ ।—  
 लक्ष्मणसिंह ।

**स्वाधु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मधुर रस । मीठा रस । मधुरता ।  
 (२) शुद्ध । (३) जीवक नामक अष्टयर्गोद भोषधि । (४)  
 अगर । अगुत्सार । (५) महुआ । मधुकू । शुद्ध । (६)  
 चिरीमी । पिपाळ । (७) ममला नींबू । (८) फूस ।  
 काशानुग । (९) घेर । यदर । (१०) सेंधा नमक । सेंधव  
 लवण । (११) नूथ । दुग्ध ।

संज्ञा स्त्री० दास्य । दाशा ।

वि० (१) मीठा । मधुर । मिष्ट । (२) जायकेदार । मजेदार ।  
 स्वादिष्ट । (३) मनोज्ञ । सुंदर ।

**स्वाधुकंदक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विकंकत वृक्ष । (२) गोतरु ।  
 गोधुर ।

**स्वाधुकंद**-संज्ञा पुं० [ सं० ] भूमि कुम्भांड । भुईं कुहड़ा । (२)  
 सफेद पिपाळ । (३) कोची । केउँभा । केमुक ।

**स्वाधुकंदक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] कोची । केउँभा । केमुक ।

**स्वाधुकंदा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विदारी कंद ।

**स्वाधुकर**-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल की एक प्रकार की वर्ण-  
 संकर जाति जिसका वल्लेख महाभारत में है ।

**स्वाधुका**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नागदंती ।

**स्वाधुकोपातकी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तोरई ।

**स्वाधुखंड**-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुद्ध ।

**स्वाधुगंध**-संज्ञा पुं० [ सं० ] लाल संहिनन । रक्त शोभांजन ।

**स्वाधुगंधच्छुदा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काजी तुलसी । कृष्ण तुलसी ।

**स्वाधुगंधा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शुद्ध कुहड़ा । भूमि कुम्भांड ।  
 (२) लाल संहिनन । रक्त शोभांजन ।

**स्वाधुगंधि**-संज्ञा पुं० [ सं० ] लाल संहिनन । रक्तशोभांजन ।

**स्वाधुता**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) स्वाधु का भाव या धर्म । (२)  
 मधुरता ।

**स्वाधुतिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीलू फल ।

**स्वाधुतिकफल**-संज्ञा पुं० [ सं० ] नींबू का पेड़ ।

**स्वाधुध्वा**-संज्ञा पुं० [ सं० स्वाधुध्वा ] कामदेव ।

स्वाहुपटोलिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] परवल की कला ।  
 स्वाहुपत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] परवले की कला ।  
 स्वाहुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दूधी । दुग्धिका ।  
 स्वाहुपाकफला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मद्यीय । काकमाषी ।  
 स्वाहुविंदा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विंदा खजूर । विंही खजूर ।  
 स्वाहुपुष्प—संज्ञा पुं० [ सं० ] काली कटमी ।  
 स्वाहुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दूधी । दुग्धिका ।  
 स्वाहुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कटमी का पेड़ ।  
 स्वाहुफल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घेर । बदरी फल । (२) चामिन । धन्व वृक्ष ।

स्वाहुफला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) घेर । बदरी वृक्ष । (२) खजूर का पेड़ । खजूर वृक्ष । (३) डेले का पेड़ । कदली वृक्ष । (४) मुनका । कपिल दाशा ।

स्वाहुश्रीज—संज्ञा पुं० [ सं० ] पीपल । अथवा वृक्ष ।  
 स्वाहुमन्त्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वाहुमन्त्र । पद्मारी पीपल । अखरोट ।  
 स्वाहुमस्तका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खजूर का पेड़ । खजुरी वृक्ष ।  
 स्वाहुमांसी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काठोली नामक अष्टवर्गीय भोपधि ।  
 स्वाहुमाषी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मयवन । मापवर्णी ।  
 स्वाहुमूल—संज्ञा पुं० [ सं० ] गात्र । गर्जरे ।  
 स्वाहुस्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) काठोली । (२) मय । मद्रिा । शराव । (३) दास । दाशा । (४) सतार । वातावरी । (५) अमड़ा । आस्रातक फल । (६) मरोदकली । मूवां ।

स्वाहुल—संज्ञा पुं० [ सं० ] क्षीर मूवां ।  
 स्वाहुलता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विदारी कंद ।  
 स्वाहुलुंगि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) संतरा । (२) मोटा नींबू । स्वाहुमांशुंग ।

स्वाहुशुंठी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सफेद कटमी ।  
 स्वाहुशुद्ध—संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्री नमक ।  
 स्वाद्य—वि० [ सं० ] स्वाद्य लेने के योग्य । चलने के योग्य ।  
 उ०—पद्मार्थ वास्व में रोयक और बिरतुन हैं; याने पदछे ये स्वरय और स्वर हैं और पीछे प्रेय, स्वाद्य और पेय ।—  
 चंद्रधर मुंकेरी ।

स्वाहुगुह—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की क्षार की लकड़ी ।  
 स्वाहुस्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अनार का पेड़ । दाहिम वृक्ष । (२) नारंगी का पेड़ । नागरंग वृक्ष । (३) कदंब वृक्ष ।  
 स्वाह्वी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दास । दाशा । (२) मुनका । कपिलदाशा । (३) फूट । चिर्मटिका । (४) खजूर का पेड़ । खजूर वृक्ष ।

स्वाधिष्ठान—संज्ञा पुं० [ सं० ] हठ योग में माने हुए कुंडलिनी के ऊपर पढ़नेवाले छः चक्रों में से दूसरा चक्र । इसका स्थान

विश्व के मूल में, रंग पीला और देवता प्रथा माने गए हैं । इसके दक्षों की संख्या छः और अक्षर व से ल तक हैं ।

स्वाधीन—वि० [ सं० ] (१) जो अपने सिवा और किसी के अधीन न हो । स्वतंत्र । आज़ाद । खुद मुफ्तार । (२) किसी का बंधन न माननेवाला । अपने इच्छानुसार चलनेवाला । मनमाना काम करनेवाला । निरंकुश । श्राव्य । जैसे,—  
 (क) वह लड़का आजकल स्वाधीन हो गया है, किसी की बात नहीं सुनता । (ख) उसका पति बचा मरा, वह बिल्कुल स्वाधीन हो गई ।

संज्ञा पुं० समर्पण । हवाला । सपुर्द । जैसे,—अंत में छाचार होकर १९ जून को तीसरे पहर अपने को नवाब के स्वाधीन कर दिया ।—द्विवेदी ।

स्वाधीनता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वाधीन होने का भाव । स्वतंत्रता । आज़ादी । खुदमुफ्तारी । जैसे,—स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है ।

स्वाधीनपतिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह नायिका जिसका पति उसके वश में हो । पति को वशीभूत करनेवाली नायिका । साहित्य में इसके चार भेद कहे गए हैं; यथा—मुग्धा, श्रूया, प्रीति और परकीया ।

स्वाधीनमूर्च्छा—संज्ञा स्त्री० दे० "स्वाधीनपतिका" ।  
 स्वाधीनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वाधीन । स्वाधीनता । स्वतंत्रता । आज़ादी । उ०—शिलरकलाओं से जन्मी है, विविध सौख्य संपत्ति प्रथा । धन, धैर्य, ध्यौपाद, बहूपन, स्वाधीनी, संतोष तथा ।—श्रीधर ।

स्वाध्याय—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वेदों की निरंतर और नियमपूर्वक आहुति या अभ्यास करना । वेदाध्ययन । धर्मग्रंथों का नियमपूर्वक अनुशीलन करना । (२) किसी विषय का अनुशीलन । अध्ययन । (३) वेद ।

स्वान—संज्ञा पुं० [ सं० ] शत्रु । भाग्य । घट्यदाहट ।  
 संज्ञा पुं० दे० "श्वान" । उ०—खर श्वान सुभर श्वाल मुख गन वेप भगनित को गनै । महु जिनिस प्रेत विसाच जोगि जमात भरनत नहि बनै ।—तुलसी ।

स्वानाञ्जलि—संज्ञा स्त्री० दे० "शुलाना" । उ०—(क) सुल दे सखीन बीच दे के सोई खाप के खवाह कहु स्वाय वश कीनी परमसु है ।—केशव । (ख) भाजु हों राखीं गी स्वाय वन्है रघुनाथ कृपा निशि मेरे करोगे । मैं उडि जाउँगी छोड़ि के पास जगह के सेज पै पायै धरौगे ।—रघुनाथ ।

स्वाप—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नींद । निद्रा । (२) स्वप्न । स्वाप । (३) अज्ञान । (४) निरसंपत्ता ।

स्वापक—वि० [ सं० ] नींद लानेवाला । निद्राकारक ।

स्वापन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का अन्न जिससे चातु निर्दिन किए जाते थे । उ०—वर विद्याधर

अन्न नाम नन्दन जे। ऐसी। मोहन स्थापन समन सौम्यकर्मण पुनि तैसी।—पत्राकार। (२) नींद खानेवाली औषध। वि० नींद खानेवाला। निद्राकारक।

स्वामि-वि० [ सं० ] स्वाम-संबंधी। स्वाम का।

स्वाध-संज्ञा पुं० [ अं० ] कपड़े या सन की बुढ़ारी या शाडू जिससे जहाज के डेक भादि साफ किए जाते हैं। (लदा०)

स्वामाधिक-वि० [ सं० ] (१) जो स्वभाव से उत्पन्न हुआ हो। जो आप ही आप हो। (२) स्वभावसिद्ध। प्राकृतिक। नैसर्गिक। सहज। कुदरती। जैसे,—(क) जल में शीतलता होना स्वाभाविक है। (ख) उसका द्रुत आचरण देखकर उनका क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। (ग) उस कवि ने कादमीर का बरा ही स्वाभाविक वर्णन किया है।

स्वामाधिकी-वि० [ सं० ] स्वभावसिद्ध। प्राकृतिक। जैसे,—हे जल! आप में शीतलता का होना तो सहज बात है; स्पष्टता भी आप में स्वाभाविकी है.....।—द्विवेदी।

स्वामाव्य-वि० [ सं० ] स्वयं उत्पन्न होनेवाला। आप ही आप होनेवाला।

संज्ञा पुं० स्वभावता। स्वभाव का भाव।

स्वामि-संज्ञा पुं० दे० "स्वामी"। उ०—सेवक स्वामि सखा सिय पीके। हित निरुपधि सब विधि तुलसी के।—तुलसी।

स्वामिकार्त्तिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव के पुत्र कार्तिकेय। देव सेनापति। वि० दे० "स्कंद"। उ०—धरे चाप इक्षु हाय स्वामि कार्तिक घल सोहत।—गोपाल। (२) छः आघात और दस मात्राओं का ताल जिसका योल इस प्रकार  
+ १ १ १ १  
है—धा धि धा भे ना ग ति न तिरकित ति ना ति ना ति ना के चा धि ना।

स्वामिकुमार-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव के पुत्र कार्तिकेय का एक नाम। स्वामिकार्त्तिक।

स्वामिजंघी-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वामिगुरुविन् परशुराम का एक नाम।

स्वामिता-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वामित्व"।

स्वामित्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वामी होने का भाव। प्रभुता। प्रभुत्व। मालिकत्व।

स्वामिनी-संज्ञा स्त्री० दे० "स्वामिनी"।  
स्वामिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मालिकिनी। स्ववाधिकारिणी। (२) घर की मालिकिनी। गृहिणी। (३) अपने स्वामी या प्रभु की पत्नी। (४) धीराधिका। ( वल्लभ संभदाय ) उ०—  
× × × सहित स्वामिनी अंतरजामी।—गोपाल।

स्वामी-संज्ञा पुं० [ सं० स्वामिन् ] [ स्त्री० स्वामिनी ] (१) वह जिसके आश्रय में जीवन निर्वाह होता हो। वह जो ज़ीविका चलता हो। मालिक। प्रभु। अन्नदाता। जैसे,—वे मेरे स्वामी हैं। मैं उनका नमक खाता हूँ। उनकी आज्ञा का पालन करना

मेरा परम धर्म है। (२) घर का कर्त्तापत्ता। घर का प्रधान। पुरुष। जैसे,—वे ही इस घर के स्वामी हैं, उनकी आज्ञा के बिना कोई काम नहीं हो सकता। (३) स्ववाधिकारी। मालिक। जैसे,—इस नाट्यशाला के स्वामी एक बंगाली सज्जन हैं। (४) पति। सौहर। (५) ईश्वर। भगवान। (६) राजा। नरपति। (७) कार्तिकेय। (८) साधु, संन्यासी और धर्माचार्यों की उपाधि। जैसे,—स्वामी शंकराचार्य, स्वामी दयानंद, तैलंग स्वामी, श्रीधर स्वामी। (९) सेना का नायक। (१०) शिव। (११) विष्णु। (१२) गरुड़। (१३) वास्त्यायन मुनि का एक नाम। (१४) गत उत्सर्गिणी के ११वें अर्हत् का नाम।

स्वाम्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वामी होने का भाव। स्वामित्व। प्रभुत्व। प्रभुता। मालिकत्व।

स्वाम्युपकारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] घोड़ा। भध।

स्वार्थभुव-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार चौदह मनुओं में से पहले मनु जो स्वयंभू ब्रह्मा से उत्पन्न माने जाते हैं।

विशेष—श्रीमद्भागवत में लिखा है कि ब्रह्मा ने इस संसार की सृष्टि करके अपने दाहिने हाथ से स्वार्थभुव मनु की और बाएँ हाथ से द्वातरुपा नाम की स्त्री उत्पन्न की थी; और दोनों में पति-पत्नी का संबंध स्थापित किया था। इनसे प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र तथा भाङ्गति, देवहूति और प्रसूति नाम की तीन कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं। इन्हीं से आगे और सृष्टि चली थी।

स्वार्थभुवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राणी।

स्वार्थभू-संज्ञा पुं० दे० "स्वार्थभुव"।

स्वार्थत्त-वि० [ सं० ] जो अपने आर्यत्त या अधीन हो। जिस पर अपना ही अधिकार हो।

स्वार्थत्त शासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शासन या हुकूमत जो अपने आर्यत्त या अधिकार में हो। स्वानिक स्वराज्य। जैसे,—मुनिसिंप्रिडिती और ज़िला बोर्ड स्वार्थत्तशासन या स्वानिक स्वराज्य के अंतर्गत हैं।

स्वार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घोड़े के घंटे का शब्द। (२) बाइल की गद्गदाइट। मेघध्वनि। वि० स्वर संबंधी।

स्वारथ-संज्ञा पुं० दे० "स्वार्थ"। उ०—स्वारथ साधक कुटिल तुष्ट सदा कपट व्योहार।—तुलसी।  
वि० [ सं० ] सार्थ। सिद्ध। फलीभूत। सार्थक।

उ०—सेवा सधे भई अथ स्वारथ।—सूर।  
स्वारथी-वि० दे० "स्वार्थी"। उ०—आप्रे देव सदा स्वारथी। यवन कहहि जनु परमारथी।—तुलसी।

स्वारस्य-वि० [ सं० ] (१) सरसता। रसीलापन। उ०—कथाओं का स्वारस्य कम हो गया है।—द्विवेदी। (२) स्वामाधिक्यता।

स्वाराज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह शासन प्रबंध जिसका संचालन-मंत्र अपने ही देश के लोगों के हाथों में हो। वह शासन या राज्य जिस पर किसी बाहरी शक्ति का नियंत्रण न हो। स्वाधीन राज्य। (२) स्वर्ग का राज्य। स्वर्ग लोक।

स्वाराट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० स्वाट्ट ] ( स्वर्ग के राजा ) ईश्वर।

स्वारी-संज्ञा स्त्री० दे० "सवारी"।

स्वारीचित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( स्वरीचित्र के पुत्र ) दूसरे भद्र का नाम। मार्कंडेयपुराण में इनका नाम ह्युतिमान कहा गया है; और श्रीमद्भागवत के अनुसार वे अग्नि के पुत्र हैं। वि० दे० "मनु"।

स्वार्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अपना उद्देश्य। अपना मतलब। अपना प्रयोजन। जैसे,—यह ऊपर से उनका मित्र बनकर नीतर ही भीतर स्वार्थ साधन कर रहा है। (२) अपना लाभ। अपनी मलाई। अपना हित। जैसे,—(क) इसमें उसका स्वार्थ है, इसी से वह इतनी दौड़-धूप कर रहा है। (ख) वह अपने स्वार्थ के लिये जो चाहे सो कर सकता है। (ग) वे जिस काम में अपने स्वार्थ की हानि देखते हैं, उसमें कभी नहीं पड़ते।

मुहा०—( किसी बात में ) स्वार्थ लेना = दिलवारी लेना। अनुपाण रखना। जैसे,—राजकीय बातों में स्वार्थ लेनेवाले जो लोग योग्य में यह समझते हैं कि राजसत्ता की हद्द होनी चाहिए, वे बहुत थोड़े हैं।—द्विवेदी।

विशेष—यह मुहा० अँगोली मुहा० का अधिकल अनुवाद है, अतः प्रयुक्त नहीं है।

(३) अपना धन।  
वि० [ सं० सार्थक ] सार्थक। सफल। जैसे,—आपका दर्शन पाव जन्म स्वार्थ किया।—छन्दः।

स्वार्थता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वार्थ का माय या धामने। सुदगरजी।  
उ०—यह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और मिश्रुद्धिता का प्रभाव है।—स्वार्थप्रकाश।

स्वार्थत्याग-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( दूसरे के लिये कर्त्तव्यबुद्धि से ) अपने स्वार्थ या हित को निहाय करना। किसी भले काम के लिये अपने हित या लाभ का विचार छोड़ना। जैसे,—देश-बंधु दास ने देश के लिये बड़ा भारी स्वार्थ त्याग किया कि रा। छात्र धार्मिक भाव की वैरिस्ट्री छोड़ दी।

स्वार्थत्यागी-वि० [ सं० स्वाथ्यागिन् ] जो ( दूसरे के लिये कर्त्तव्य बुद्धि से ) अपने स्वार्थ या हित को निहाय कर दे। दूसरे के भले के लिये अपने हित या लाभ का विचार न रखनेवाला। जैसे,—इस समय देश में स्वार्थत्यागी नेताओं की आवश्यकता है।

स्वार्थ पंडित-वि० [ सं० ] अपना मतलब साधने में चतुर। बड़ा भारी स्वार्थी या सुदगरज।

स्वार्थपर-वि० [ सं० ] जो केवल अपना ही स्वार्थ या मतलब देखे। अपना स्वार्थ या मतलब साधनेवाला। स्वार्थी। सुदगरज।

स्वार्थपरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वार्थपर होने का भाव। सुदगरजी।

स्वार्थपरायण-वि० [ सं० ] स्वार्थपर। स्वार्थी। सुदगरज।

स्वार्थपरायणता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वार्थपरायण होने का भाव। स्वार्थपरता। सुदगरजी।

स्वार्थसाधक-वि० [ सं० ] अपना मतलब साधनेवाला। अपना काम निकालनेवाला। सुदगरज।

स्वार्थसाधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] अपना मतलब साधना। अपना प्रयोजन सिद्ध करना। अपना काम निकालना।

स्वार्थाय-वि० [ सं० ] जो अपने स्वार्थ के वश बंधा हो जाता हो। अपने हित या लाभ के सामने और किसी बात का विचार न करनेवाला।

स्वार्थी-वि० [ सं० स्वाथिन् ] अपना ही मतलब देखनेवाला। मतलबी। सुदगरज।

स्वात्म-संज्ञा पुं० दे० "सवाल"। उ०—नाथ कछो वकील करि दीजे। ग्वाह स्वात्म तेहि मुख रूप कीजे।—रघुराज।

स्वात्म-संज्ञा पुं० [ सं० आत् ] सौत्त। आत्।

स्वात्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० आत् ] सौत्त। आत्। उ०—हुका सौ कहु कौन पै जात निबाही साथ। जाकी स्वात्ता रहत है लगी स्वास के साथ।—रत्ननिधि।

स्वास्थ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीरोग या स्वस्थ होने की अवस्था। नीरोगता। भारोग्य। संदुरुस्ती। जैसे,—उनका स्वास्थ्य आत्तकल अच्छा नहीं है।

स्वास्थ्यकर-वि० [ सं० ] स्वस्थ करनेवाला। संदुरुस्त करनेवाला। भारोग्यकर। जैसे,—देवघर यदा स्वास्थ्यकर स्थान है।

स्वाहा-अव्य० [ सं० ] एक शब्द पर संज्ञ जिसका प्रयोग देवताओं को हवि देने के समय किया जाता है। जैसे,—इंद्राय स्वाहा।

मुहा०—स्वाहा करना = नष्ट करना। फूँक जाना। जैसे,—उसने पाप दादे की सारी संपत्ति ही दी बरस में स्वाहा कर डाली। स्वाहा होना = नष्ट होना। बर्बाद होना। जैसे,—उनका सारा धन मामले मुकदमे में स्वाहा हो गया।  
संज्ञा स्त्री० अग्नि की पत्नी का नाम।

स्वाहाह्वत्-वि० [ सं० ] यज्ञ करनेवाला। यज्ञकर्ता।

स्वाहाप्रसन्न-संज्ञा पुं० [ सं० स्वाहा + प्रसन्न ] देवता। ( हिं० )

स्वाहापति-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि।

स्वाहामिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि।

स्वाहाभुक्-संज्ञा पुं० [ सं० स्वाहाभुज् ] देवता।

स्वाहाह-वि० [ सं० ] स्वाहा के योग्य। हवि पाने के योग्य।

स्वाहायज्ञम-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि।

स्वाहाशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवता।

स्वाह्येय-संज्ञा पुं० [ सं० ] कात्तिकेय का एक नाम ।  
स्विन्न-वि० [ सं० ] (१) पसीने से युक्त । स्वेद विनिष्ट । (२)  
सीसा हुआ । उबला हुआ । ( वैसे अद्यादि )

स्विच्छृङ्ख-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ ।  
स्वीकारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अपना करना । अपनाना ।  
अंगीकार करना । क्यूं करना । (२) पत्नी को ग्रहण करना ।  
विवाह करना । (३) मानना । राजी होना । सम्मत होना ।  
घबन देना । प्रतिज्ञा करना ।

स्वीकारणीय-वि० [ सं० ] स्वीकार करने के योग्य । मानने  
के योग्य ।  
स्वीकर्त्तव्य-वि० [ सं० ] स्वीकार करने के योग्य । मानने  
के योग्य ।

स्वीकर्त्ता-वि० [ सं० स्वीकर्त्तु ] स्वीकार करनेवाला । मंजूर  
करनेवाला ।

स्वीकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अपनाने की क्रिया । अंगीकार ।  
क्यूं । मंजूर । (२) लेना । ग्रहण । परिग्रह । (३) प्रतिज्ञा ।  
घबन । इकरार । कौल ।

स्वीकार्य-वि० [ सं० ] स्वीकार करने के योग्य । मानने के योग्य ।  
स्वीकृत-वि० [ सं० ] स्वीकार किया हुआ । क्यूं किया हुआ ।  
माना हुआ । अंगीकृत । मंजूर ।

स्वीकृति-वि० [ सं० ] स्वीकार का भाव । मंजूरी । सम्मति ।  
रजामंदी । जैसे,—(क) वायसराय ने उस 'मिल' पर अपनी  
स्वीकृति दे दी । (ख) उनकी स्वीकृति से यह नियुक्ति हुई है ।  
क्रि० प्र०—देना ।—मॉगना ।—मिलना ।—लेना ।

स्वीय-वि० [ सं० ] अपना । নিজ का ।  
संज्ञा पुं० अपने आदमी । स्वजन । आत्मीय । संबंधी । नाते-  
रिपतेदार ।

स्वीया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अपने ही पति में अशुराग रखनेवाली  
स्त्री । वि० दे० "स्वकीया" ।

स्वेक्ष-वि० दे० "स्व" । ठ०—जहाँ अभेद करि हुहुन सों करत  
और स्वे काम । भनि भूपन सख कहत है साधु नाम  
परिनाम ।—भूषण ।

स्वेच्छा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अपनी इच्छा । अपनी मर्जी ।  
वे सब काम स्वेच्छापूर्वक करते हैं ।

स्वेच्छाचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तमाना काम करना ।  
आवे, वही करना । यथेच्छाचार ।

स्वेच्छाचारिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वच्छाचार का भाव वा  
निरंकुशता । उच्छ्रय ।

स्वेच्छाचारी-वि० [ सं० ] स्वच्छाचार का भाव वा  
वाला । भगमाना ।  
जैसे,—वहाँ के पुलिस

स्वेच्छामृत्यु-संज्ञा पुं० [ सं० ] भीषण पितामह, जो अपने इच्छा-  
नुसार मरे थे ।

वि० अपने इच्छानुसार मरनेवाला ।  
स्वेच्छासेवक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० स्वेच्छासेविका ] वह जो  
बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य में अपनी  
इच्छा से योग दे । स्वयंसेवक ।

स्वेतक्षि-वि० दे० "श्वेत" ।  
स्वेतरंगी-संज्ञा स्त्री० [ सं० श्वेत + हि० रंगी ] कीर्त्ति । यश । (हि०)

स्वेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पसीना । प्रवेद । (२) भाप ।  
वाष्प । (३) ताप । गरमी । (४) पसीना लानेवाली औषध ।  
वि० पसीना लानेवाला ।

स्वेदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कात्ति लौह ।  
वि० पसीना लानेवाला । धर्मदायक ।

स्वेदच्युपक-संज्ञा [ सं० ] ठंडी हवा । शीतल वायु ।  
स्वेदज-वि० [ सं० ] पसीने से उत्पन्न होनेवाला । गर्म भाप वा  
उष्ण वाष्प से उत्पन्न होनेवाला । ( जूँ, खीर, खटमल,  
मच्छर आदि कीड़े मकोड़े । )

स्वेदजल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पसीना । प्रवेद ।  
स्वेदज शाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का शाक जो भूमि  
गोबर, पॉस, लकड़ी आदि में उत्पन्न होता है । भुईंफोद ।  
छत्तीना । भुईंछत्ता । छत्रा । छत्राक ।

घिशोप—वैद्यक में यह शीतल, दोषनाशक, पिच्छिल, भारी  
तथा वमन, अतिसार उर और कफ रोग को उत्पन्न  
करनेवाला माना गया है ।

स्वेदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पसीना निकलना । (२) धैर्य का  
एक यंत्र जिसकी सहायता से ओषधियाँ शोषी जाती हैं ।

घिशोप—एक हडिया में तरल पदार्थ ( जल, स्वरस, कषा  
आदि ) भरकर उसका मुँह कपड़े से भली मॉति बाँध देते  
हैं । फिर उस कपड़े के ऊपर उस औषधि की, जिसका स्वेदन  
करना होता है, पोटी रखकर मुँह बन्दने से अर्जनी ताह  
ठक देते हैं और घरतन को धीमी आँच पर चढ़ा देते हैं ।  
इस क्रिया से भाप के द्वारा वह ओषधि शोषी जाती हैं ।

स्वेदन का भाव ।  
] हवा । वायु ।  
] (१) तथा (२) रसोईघर । पारु  
या भमका ।

का रस ।  
से युक्त । (१)  
प्रकार....

अपने मुख की भाव से नेत्रों को स्वैदित कर दो।—  
नूतनाभूतसागर।

स्वैदी-वि० [ सं० स्वैदिन् ] पसीना छानेवाला। धर्मकारक।

स्वैद्य-वि० [ सं० स्वैद्य ] स्वैद्य के योग्य। पसीने के योग्य।

स्वैद्य-वि० [ सं० स्वैद्य ] अपना। निज का। (दि०)

सर्वं दे० "सो"। उ०—सो सुखती सुधिमंत सुसंत  
सुसील सयान सिद्धिमनि स्वै—नुलसी।

स्वैर-वि० [ सं० ] (१) अपने हृच्छानुसार चलनेवाला। मनमाना काम  
करनेवाला। स्वच्छंद। स्वतंत्र। स्वाधीन। यथेच्छाचारी।

(२) धीमा। मंद। (३) यथेच्छ। मनमाना। ऐच्छिक।

स्वैरचारिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मनमाना काम करनेवाली  
स्त्री। (२) स्वनिचारिणी स्त्री।

स्वैरचारी-वि० [ सं० स्वैरचारि ] मनमाना काम करनेवाला।  
स्वैच्छाचारी। निरंकुश।

स्वैरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यथेच्छाचारिता। स्वच्छंदता।

स्वैरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वोत्पत्त के एक पुत्र का नाम। (२)

एक वर्ष का नाम जिसके देवता स्वैरथ माने जाते हैं।  
(विष्णुपुराण)

स्वैरपत्नी-वि० [ सं० स्वैरपत्नि ] अपने हृच्छानुसार चलने या  
काम करनेवाला। स्वैच्छाचारी।

स्वैरवृत्त-वि० [ सं० ] अपने हृच्छानुसार चलने या काम करने-  
वाला। स्वैच्छाचारी।

स्वैराचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] जो जो में आवे, वही करना। मन-  
माना काम करना। स्वैच्छाचार। यथेच्छाचार।

स्वैरिध्री-संज्ञा स्त्री० दे० "सिरिध्री"।

स्वैरिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वनिचारिणी स्त्री।

स्वैरिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यथेच्छाचारिता। स्वच्छंदता।  
स्वाधीनता।

स्वैरी-वि० [ सं० स्वैरिन् ] स्वैच्छाचारी। स्वतंत्र। निरंकुश।  
अथाप्य।

स्वोपार्जित-वि० [ सं० ] अपना उपार्जन किया हुआ। अपना  
कमाया हुआ। जैसे,—उनकी सारी संपत्ति स्वोपार्जित है।

स्वोरस-संज्ञा पुं० दे० "स्वरस"।



## ह

ह—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का सैंतीसवाँ अक्षर जो उच्चारण-  
विभाग के अनुसार उभय वर्ण कहलाता है।

हंका-संज्ञा स्त्री० दे० "हॉक"।

हंकाङ्गा-कि० प्र० [ हि० हॉक ] क्षणद्वये हुए जोर जोर से  
बिहाना। हथके साथ बोलना। छलकारना।

हंकरना-कि० प्र० दे० "हंकरना"।

हंकारनाञ्जी-कि० सं० [ हि० हॉक ] (१) हॉक देकर सुलाना।  
जोर से आवाज लगाकर किसी दूर के मनुष्य को संबोधन  
करना। (२) सुलाना। पुकारना। उ०—सोहन खाल सखा-  
हंकराप।—सूर। (३) पुकारने का काम दूसरे से कराना।

सुलवाना। उ०—राजा मंत्र सेवक हंकारे। भौति भौति  
की वस्तु मँगारें।—विश्राम।

हंकाराया-संज्ञा पुं० [ हि० हंकारा ] (१) सुलाने की क्रिया या  
भाव। सुलाहट। पुकार। (२) सुलाना। श्योता। निमंत्रण।

हंकारा-संज्ञा पुं० [ हि० हॉक ] गोर के सिद्धा का एक ढंग जिसमें  
बहुते से लोग डोल, तासे भादि यगाते और शोर करते हुए,  
जिस स्थान पर गोर होता है, उस स्थान के चारों ओर से  
चलते हैं और इस प्रकार गोर को हॉक कर उस स्थान की  
ओर ले जाते हैं जहाँ सिद्धा उसे मारने के लिये बंधक गोर  
बैठे रहते हैं।

हंकाराना-कि० सं० [ हि० हॉकना का प्रेर० रूप ] (१) हॉक  
लगवाना। सुलवाना। दूसरे से सुलाने का काम कराना।

(२) पशुओं या चौपायों को आवाज देकर हटवाना या  
किसी ओर भगाना।

संयो० कि०—देना।

हंकावैयाञ्जी-संज्ञा पुं० [ हि० हॉकना + वैया (प्रय०) ] हॉकनेवाला।

हंका-संज्ञा स्त्री० [ हि० हॉक ] छलकार। दूधट। उ०—सुका दे  
दसानन को, हंका दे सुयंका बीर, हंका दे विजय को कपि  
हृदि परयो लंका में।—पद्माक्षर।

कि० प्र०—देना।—मारना।

हंकारे-संज्ञा स्त्री० [ हि० हॉकना ] (१) हॉकने की क्रिया या भाव।  
(२) हॉकने की मजदूरी।

हंकाराना-कि० सं० [ हि० हॉक ] (१) चौपायों या जानवरों को  
आवाज देकर हटाना या किसी ओर ले जाना। हॉकना।

(२) पुकारना। सुलाना। (३) दूसरे से हॉकने का काम  
कराना। हंकाराना।

हंकार-संज्ञा स्त्री० [ सं० हंकार ] (१) आवाज लगाकर सुलाने की  
क्रिया या भाव। पुकार। (२) वह ऊँचा नाद जो किसी को  
सुलाने या संबोधन करने के लिये किया जाय। पुकार।

मुहा०—हंकार पढ़ना = सुलाने के लिये आवाज लगाना। पुकार मनेना।

स्वाद्येय-संज्ञा पुं० [ सं० ] काचित्केय का एक नाम ।  
 स्वित्त-वि० [ सं० ] (१) पसीने से युक्त । स्वेद विविध । (२)  
 सीसा हुआ । उबला हुआ । ( जैसे अघादि )  
 स्विकृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ ।  
 स्वोत्करण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भवना करना । अपनाना ।  
 अंगीकार करना । क्यूल करना । (२) पत्नी को प्रहण करना ।  
 विवाह करना । (३) मानना । रामी होना । सम्मत होना ।  
 वचन देना । प्रतिज्ञा करना ।  
 स्वोत्कर्णोप-वि० [ सं० ] स्वीकार करने के योग्य । मानने  
 के योग्य ।  
 स्वोत्कर्तृद्वय-वि० [ सं० ] स्वीकार करने के योग्य । मानने  
 के योग्य ।  
 स्वोत्कर्ता-वि० [ सं० स्वीकर्त् ] स्वीकार करनेवाला । मंजू  
 करनेवाला ।  
 स्वोत्कार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अपनाने की क्रिया । अंगीकार ।  
 क्यूल । मंजू । (२) लेना । प्रहण । परिग्रह । (३) प्रतिज्ञा ।  
 वचन । हुक्म । कौल ।  
 स्वोत्कार्य-वि० [ सं० ] स्वीकार करने के योग्य । मानने के योग्य ।  
 स्वोत्कृत-वि० [ सं० ] स्वीकार किया हुआ । क्यूल किया हुआ ।  
 माना हुआ । अंगीकृत । मंजू ।  
 स्वोत्कृति-वि० [ सं० ] स्वीकार का भाव । मंजूरी । सम्मति ।  
 राजमंदा । जैसे,—(क) वायसराय ने उस 'बिल' पर अपनी  
 स्वोत्कृति दे दी । (ख) उनकी स्वोत्कृति से यह नियुक्ति हुई है ।  
 क्रि० प्र०—देना ।—मानना ।—मिलना ।—लेना ।  
 स्वोप-वि० [ सं० ] अपना । निज का ।  
 संज्ञा पुं० अपने आदमी । स्वजन । आत्मीय । संबंधी । माते-  
 रिदत्तेदार ।  
 स्वोपा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अपने ही पति में अनुत्पन्न रखनेवाली  
 स्त्री । वि० दे० "स्वकीया" ।  
 स्वेच्छ-वि० दे० "स्व" । उ०—जहाँ जमेद करि हुहुन सों कारत  
 और स्वे काम । भनि भूपन सय कहत है तासु नाम  
 परिनाम ।—भूषण ।  
 स्वेच्छा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अपनी इच्छा । अपनी मर्जी । जैसे,—  
 वे सब काम स्वेच्छापूर्वक करते हैं ।  
 स्वेच्छाचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्तमाना काम करना । जो जी में  
 आवे, वही करना । यथेच्छाचार ।  
 स्वेच्छाचारिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वेच्छाचार का भाव या धर्म ।  
 निरंकुशता । उच्छृंखलता ।  
 स्वेच्छाचारी-वि० [ सं० स्वेच्छाचारिन् ] अपने इच्छानुसार चलने-  
 वाला । मनमाना काम करनेवाला । निरंकुश । अवाध्य ।  
 जैसे,—वहाँ के पुलिस कर्मचारी वदे स्वेच्छारी हैं ।

स्वेच्छामृत्यु-संज्ञा पुं० [ सं० ] भीषण पितामह, जो अपने इच्छा-  
 नुसार मरे थे ।  
 वि० अपने इच्छानुसार मरनेवाला ।  
 स्वेच्छालेखक-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० स्वेच्छालेखिका ] वह जो  
 बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य में अपनी  
 इच्छा से योग दे । स्वयंसेवक ।  
 स्वेच्छ-वि० दे० "स्वेत" ।  
 स्वेत्तरंगी-संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वेत + हि० रंगी ] कृत्ति । पदा । (हि०)  
 स्वेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पसीना । प्रस्वेद । (२) भाप ।  
 वाष्प । (३) ताप । गरमी । (४) पसीना छानेवाली औषध ।  
 वि० पसीना छानेवाला ।  
 स्वेदक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कति लौह ।  
 वि० पसीना छानेवाला । घर्मद्रायक ।  
 स्वेदच्युपक-संज्ञा [ सं० ] ठंडी हवा । शीतल वायु ।  
 स्वेदज-वि० [ सं० ] पसीने से उत्पन्न होनेवाला । गर्म भाप या  
 उष्ण वाष्प से उत्पन्न होनेवाला । ( जूँ, लीक, खटमल,  
 मच्छर आदि कीड़े मकोड़े । )  
 स्वेदजल-संज्ञा पुं० [ सं० ] पसीना । प्रस्वेद ।  
 स्वेदज शाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का शाक जो भूमि  
 गोबर, पौंस, लकड़ी आदि में उत्पन्न होता है । भुईंफोद ।  
 छतीना । भुईंछत्ता । छत्ता । छत्ताक ।  
 शिरोप-वैद्यक में यह शीतल, दोषनाशक, चिकित्सक, भारी  
 तथा वमन, अतिसार उच्च और कफ रोग को उत्पन्न  
 करनेवाला माना गया है ।  
 स्वेदन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पसीना निकलना । (२) धैर्य का  
 एक यंत्र जिसकी सहायता से ओषधियाँ शोधी जाती हैं ।  
 शिरोप-एक हँडिया में तरल पदार्थ ( जल, स्वरस, काष्ठ  
 आदि ) भरकर उसका मुँह कपड़े से ढली भाँति बाँध देते  
 हैं । फिर उस कपड़े के ऊपर उस औषधि की, जिसका स्वेदन  
 करना होता है, पीटली रखकर मुँह ठकने से अशुद्धी ताह  
 रोक देते हैं और वरतन को धीमी भाँच पर चढ़ा देते हैं ।  
 इस क्रिया से भाप के द्वारा वह औषधि शोधी जाती हैं ।  
 स्वेदनत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वेदने का भाव ।  
 स्वेदनाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] हवा । वायु ।  
 स्वेदनिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तवा (२) रसोईपर । पाक-  
 शाला । (३) शराब छुआने का बरतन या भभका ।  
 स्वेदनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तवा ।  
 स्वेदमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वेदमातृ ] शरीर में का रस ।  
 स्वेदायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] रोम कूप । कोम छिद्र ।  
 स्वेदित-वि० [ सं० ] (१) स्वेद से युक्त । पसीने से युक्त । (१)  
 भफारा दिया हुआ । सँका हुआ । उ०—इस प्रकार ...

अपने मुख की भाप से नेत्रों को स्वैदित कर दो।—  
नूनामृतसागर।

स्वैदी-वि० [ सं० स्वैदिन् ] पत्नीमा छानेवाला। धर्मकारक।

स्वैद्य-वि० [ सं० ] स्वैद्य के योग्य। पत्नी के योग्य।

स्वैल-वि० [ सं० स्वोय ] अथवा। निज का। (दि०)

सर्व० दे० "सो"। उ०—सो सुकृती सुधिमंत सुसंत  
सुसील सयाम सरोमनि स्वै।—तुलसी।

स्वैर-वि० [ सं० ] (१) अपने हृष्टानुसार चलनेवाला। मनमाना काम  
करनेवाला। स्वच्छंद। स्वसंग। स्वाधीन। यथेच्छाचारी।  
(२) धीमा। मंद। (३) यथेष्ट। मनमाना। ऐच्छिक।

स्वैरचारिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मनमाना काम करनेवाली  
स्त्री। (२) स्वभिचारिणी स्त्री।

स्वैरचारी-वि० [ सं० स्वैरचार्त् ] मनमाना काम करनेवाला।  
स्वैच्छाचारी। निरंकुश।

स्वैरता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यथेच्छाचारिता। स्वच्छंदता।

स्वैरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वोत्पत्पत् के एक पुत्र का नाम। (२)

एक वर्ष का नाम जिसके देवता स्वैरथ माने जाते हैं।  
( विष्णुपुराण )

स्वैरथर्षी-वि० [ सं० स्वैरथिन् ] अपने हृष्टानुसार चलने या  
काम करनेवाला। स्वैच्छाचारी।

स्वैरधुत्त-वि० [ सं० ] अपने हृष्टानुसार चलने या काम करने-  
वाला। स्वैच्छाचारी।

स्वैराचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] जो जी में आवे, यही करना। मन-  
माना काम करना। स्वैच्छाचार। यथेच्छाचार।

स्वैरिधी-संज्ञा स्त्री० दे० "सैरिधी"।

स्वैरिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वभिचारिणी स्त्री।

स्वैरिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यथेच्छाचारिता। स्वच्छंदता।  
स्वाधीनता।

स्वैरी-वि० [ सं० स्वैरिन् ] स्वैच्छाचारी। स्वतंत्र। निरंकुश।  
अवाप्य।

स्वोपार्जित-वि० [ सं० ] अपना उपार्जन किया हुआ। धर्मना  
कमाया हुआ। जैसे,—उनकी सारी संपत्ति स्वोपार्जित है।

स्वोरस-संज्ञा पुं० दे० "स्वरस"।

## ह

ह—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का तीसरीसर्वा व्यंजन जो उच्चारण-  
विभाग के अनुसार ऊप्य वर्ण कहलाता है।

हृक-संज्ञा स्त्री० दे० "हृक"।

हृकङ्गा-कि० प्र० [ हि० हृक ] झगड़ते हुए जोर और से  
विद्वाना। दूर के साथ बोलना। ललकारना।

हृकरना-कि० प्र० दे० "हृकङ्गा"।

हृकारनाञ्जि-कि० सं० [ हि० हृक ] (१) हृक देकर बुलाना।  
जोर से आवाज लगाकर किसी दूर के मनुष्य को संबोधन  
करना। (२) बुलाना। पुकारना। उ०—मोहन स्वाल ससा-  
हृकाप।—चूट। (३) पुकारने का काम दूसरे से कराना।  
बुलवाना। उ०—राजा सब सेवक हृकाराई। भौंति भौंति  
की चतुर् मैगाई।—विश्राम।

हृकराया-संज्ञा पुं० [ हि० हृकराया ] (१) बुलाने की क्रिया या  
भार। बुलाइत। पुकार। (२) बुलाया। न्योता। निमंत्रण।

हृकषा-संज्ञा पुं० [ हि० हृक ] शेर के शिकार का एक ढंग जिसमें  
बहुत से लोग होल, तारो आदि बजाते और शोर करते हुए,  
जिस स्थान पर शेर होता है, उस स्थान के चारों ओर से  
चलते हैं और इस प्रकार शेर को हृक कर उस मधान की  
ओर ले जाते हैं जहाँ शिकारी उसे मारने के लिये बंदूक भरे  
केटे रहते हैं।

हृकषाना-कि० सं० [ हि० हृकषा का प्रे० रूप ] (१) हृक  
लगवाना। बुलवाना। दूसरे से पुकारने का काम कराना।

(२) पशुओं या चीपियों को भावजन देकर हटवाना या  
किसी ओर भगाना।

संयो० कि०—देना।

हृकषीयाञ्जि-संज्ञा पुं० [ हि० हृकषा + षीया (प्रय०) ] हृकनेवाला।

हृका-संज्ञा स्त्री० [ हि० हृक ] ललकार। दपट। उ०—संका-  
दसानन को, हृका है सुबंका धीर, टंका है विजय को कर्पि  
कृदि परयो लंका में।—पचाकर।

कि० प्र०—देना।—मारना।

हृकार-संज्ञा स्त्री० [ हि० हृकार ] (१) हृकने की क्रिया या भाव।  
(२) हृकने की मजदूरी।

हृकाना-कि० सं० [ हि० हृक ] (१) चीपियों या जानवरों को  
भावजन देकर हटाना या किसी ओर ले जाना। हृकना।

(२) पुकारना। बुलाना। (३) दूसरे से हृकने का काम  
कराना। हृकवाना।

हृकार-संज्ञा स्त्री० [ सं० हृकार ] (१) भावजन लगाकर बुलाने की  
क्रिया या भाव। पुकार। (२) वह ऊँचा शब्द जो किसी को  
बुलाने या संबोधन करने के लिये किया जाय। पुकार।

मुहा०—हृकार पढ़ना = बुलाने के लिये भावजन लगाना। पुकार मँवना।



हंकार-संज्ञा पुं० दे० "अहंकार" ।

संज्ञा पुं० [ सं० हंकार ] वीरों का दर्पनाद । ललकार । द्रष्ट ।

हंकारना-कि० प्र० [ हि० हंकार ] (१) आवाज देकर किसी को संबोधन करना । जोर से पुकारना । जैसे स्वर से बुलाना ।

देरना । नाम लेकर चिहाना । उ०—ऊँचे तर यदि दयाम सखन को बारांभार हंकारत ।—सूर । (२) अपने पास आने को कहना । बुलाना । पुकारना । उ०—(क) धाम दामिनी-येग हंकारी । भोदि सौपा होये रिस भारी ।—जायसी ।

(ख) देखी जनक भीर भइ भारी । शुचि सेवक सब लिए हंकारी ।—तुलसी ।

संयो० कि०—देना ।—लेना ।

(३) बुद्ध के लिये आह्वान करना । ललकारना । हॉक देना । उ०—देखत तहाँ लुरे भट भारी । एक एक सन भिरे हंकारी ।—रघुराज ।

हंकारना-कि० प्र० [ हि० हंकार ] हंकार शब्द करना । धीरनाद करना । दपटना ।

हंकार-संज्ञा पुं० [ हि० हंकारना ] (१) पुकार । बुलाहट । (२) निमंत्रण । आह्वान । बुलौवा । म्योता । उ०—गुरु वसिष्ठ कई गपुड हंकारा । आप द्विजन्म सहित नृपद्वारा ।—तुलसी ।

कि० प्र०—जाना ।—भेजना ।

हंगामा-संज्ञा पुं० [ फ्रा० हंगामः ] (१) उपद्रव । हलचल । दंगा । बलवा । भारपीट । लड़ाई झगडा ।

कि० प्र०—करना ।—मचना ।—होना ।

(२) गोरगुल । कलकल । हडा ।

हंगोरी-संज्ञा पुं० [ देग० ] एक बहुत बड़ा पेड़ जो दार्जिलिंग के पहाड़ों में होता है । इसकी एकड़ी बहुत मजबूत होती है और मेज, कुरसी, भालमारी आदि सजावट के सामान बनाने के काम में आती है । पहाड़ी लोग इसका फल भी खाते हैं ।

हंजि-संज्ञा पुं० [ सं० ] हॉक ।

हंटर-संज्ञा पुं० [ अ० हंट ? ] लंबी चाबुक । शोदा ।

कि० प्र०—जमाना ।—मानना ।—लगाना ।

हंठना-कि० प्र० [ सं० भ्रम्यन्तु प्र० अष्टन क्रमवा भंडन = नरखटी ] (१) घूमना । फिरना । जैसे,—काशी हंठे, प्रयाग मुंठे ।

(२) घ्यर्थे, ह्पर उधर फिरना । आचार घूमना । (३) ह्पर उधर हँदना । छानबीन करना ।

हंठल-संज्ञा पुं० [ अ० हंठल ] (१) बेट । दस्ता । मुठिया ।

(२) किसी कल या पंच का वह भाग जो हाथ से पकड़ कर घुमाया जाता है ।

हंढा-संज्ञा पुं० [ सं० भाँक ] पीतल या ताँबे का बहुत बड़ा बरतन जिसमें पानी भरकर रखा जाता है ।

हंङ्क-संज्ञा पुं० [ देग० ] सौलने का वाट । ( सुनार )

हंङ्गिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० भाँक ] (१) बड़ छोटे के आकार का

मिट्टी का बरतन जिसमें चावल ढाल पकाते या कोई वस्तु रखते हैं । हंङ्गी ।

मुहा०—हंङ्गिया पढ़ाना = कोई वस्तु पकाने के लिये पानी रखकर हॉँटी आँच पर रखना ।

(२) इस प्रकार का शीशे का पात्र जो शोभा के लिये लटकया जाता है और जिसमें मोमबत्ती जलाई जाती है ।

(३) जी, चावल आदि भोजन सजाकर बनाई हुई तराच ।

हंङ्गी-संज्ञा स्त्री० दे० "हंङ्गिया", "हंङ्गी" ।

हंत-प्रत्य० [ सं० ] खेद या शोकमूचक शब्द ।

हंतकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] अतिथि या सन्यासी आदि के लिये निकाला हुआ भोजन जो पुष्कल का धौगुना अर्थात् मोर के सोलह अंगों के परावर होना चाँहिए ।

हंता-संज्ञा पुं० [ सं० हंट ] [ स्त्री० हंती ] मारनेवाला । बध करनेवाला । जैसे,—शत्रुहंता, विरूहंता ।

हंथोरी-संज्ञा स्त्री० दे० "हथोरी" ।

हंथोरा-संज्ञा पुं० दे० "हथोरा" ।

हंदा-संज्ञा पुं० [ सं० हंतकार ] पुरोहित या ब्राह्मण के लिये निकाला हुआ भोजन ।

विशेष—पंजाब के खत्री-ब्राह्मणों में यह प्रथा है कि सवेरे की रसोई में से कुछ भंडा अपने पुरोहित के लिये भलग कर देते हैं । इसी को हंदा कहते हैं ।

हँफनिल-संज्ञा स्त्री० [ हि० हँफना ] हँफने की क्रिया या भाव । अधिक परिश्रम के कारण जल्दी जल्दी और जोर जोर से चलती हुई साँस । हॉक ।

मुहा०—हँफनि मिटाना = दम लेना । दम मारना । सुलाना । धकावट दूर करना । उ०—वात कदिये में नंदलाल की उतावक बहा, ढाल ती हरिनैनी हँफनि मिटाए ले ।—सिब ।

हंपा-प्रत्य० [ हि० हाँ ] सम्मति या स्वीकृति-सूचक अव्यय । हॉँ । ( राजपूताना )

हंभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गाय या बैल आदि के बोलने का शब्द । हँमाने का शब्द ।

हंस-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चपल के आकार का एक जलपक्षी जो बड़ी बड़ी झीलों में रहता है ।

विशेष—इसकी गरदन मसल से लंबी होती है और कभी कभी उसमें बहुत सुंदर घुमाव दिलाई पड़ता है । यह पृथ्वी के प्रायः सब भागों में पाया जाता है और छोटे छोटे जलजंतुओं और उद्भिद पर निर्वाह करता है । यद्यपि हंस का रंग श्वेत ही प्रसिद्ध है, पर आस्ट्रेलिया में काले रंग के हंस भी पाए जाते हैं । योरप में इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक 'यूक हंस' ; दूसरी 'त्यूर्य हंस' । यूक हंस बोलते नहीं, पर त्यूर्य हंस की आवाज बड़ी कड़ी होती है । अमेरिका में भूरे और चितक्यरे हंस भी होते हैं । चितक्यरे हंस का सारा

शरीर सफेद होता है, केवल सिर और गरदन कालापन लिए छापी रंग की होनी है। भारतवर्ष में हंस सब दिन नहीं रहते। वर्षा ऋतु में उनका मान सरोवर आदि तिब्बत की दहलों में चला जाना और शरदऋतु में लौटना प्रसिद्ध है। यह पक्षी अपनी शुभ्रता और सुंदर चाल के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। कवियों में तथा जनसाधारण में इसके मोती लुंगने और नीरखीर विनैक करने ( वृष में से पानी अलग करने ) का प्रवाद चला आता है जो कहना मात्र है। युरोप के पुतने कवियों में भी ऐला प्रवाद था कि यह पक्षी बहुत सुंदर राग गाता है, विशेषतः मरते समय। ( किसी गान्ध के आगे लगकर यह शब्द श्रेष्ठता का वाचक भी होता है, जैसे, कुल-हंस। उ०—विधि के समान है, विमानीकृत रात्रहंस विविध विद्युद्युत मेघ से भवत है। —केराव । )

(२) सूर्य। उ०—हंस-यंस, दसरथ जनक, रामलपन से माई।—तुलसी।

पौ०—हंसयंस। हंससुता।

(३) महा। परमात्मा। (४) शुद्ध आत्मा। माया से निर्मित आत्मा। उ०—जे पृथि धीर समुद्र मई परे। जीउ गैवाद् हंस होइ वरे।—जायसी। (५) जीवात्मा। जीव। उ०—सिर पुलि हंसा चले हो रमैया राम।—कबीर। (६) विष्णु। (७) विष्णु का एक भवता।

विशेष—एक बार सनकादिक ने ब्रह्मा से जाकर पूछा—“कृपा कर बताइए कि विषय को चित्त ग्रहण किए हुए है या विषय ही चित्त को ग्रहण किए है। ये दोनों ऐसे मिले हुए हैं कि हमसे अलग नहीं करते यनता।” जब ब्रह्मा उत्तर न दे सके, तब सनकादिक को अपने ज्ञान का बना गर्व हो गया। इस पर ब्रह्मा ने भक्तिपूर्वक भगवान् का ध्यान किया। तब भगवान् हंस का रूप धारण करके सामने आए और सनकादिक से बोले—“तुम्हारा यह प्रश्न ही अज्ञानपूर्ण है। विषय और उनका चित्तन दोनों ही भाया हैं, अर्थात् एक है।” इस प्रकार सनकादिक का ज्ञानगर्व दूर हो गया। (८) उदार और संयमी राजा। श्रेष्ठ राजा। (९) संप्राप्तियों का एक भेद। उ०—कहि आचार भक्तिविधि भाली हंस धर्म प्रगटायो।—चूर। (१०) एक मंत्र। (११) प्राणवायु। (१२) घोड़ा। (१३) सिंघ। महादेव। (१४) ईश्या। द्वेष। (१५) दीक्षागृह। आचार्य्य। (१६) पर्वत। (१७) काम-देव। (१८) मँसा। (१९) दोहे के नवें भेद का नाम जिसमें १४ गुरु और २० लघु वर्ण होते हैं। (पिंगल) (२०) एक पर्याय जिसके प्रत्येक धरण में एक भगण और दो गुरु होते हैं। इसे 'पँसिक' भी कहते हैं। उ०—राम धरती। (२१) एक प्रकार का वृष्य। (२२) आसद् का एक भेद जो

हंस के आकार का बनाया जाता था। यह बारह हाथ चौड़ा और एक टांड का होता था और इसके ऊपर एक शंख बनाया जाता था। ( वास्तु विद्या )

हंसक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हंस पक्षी। (२) धीर की उँगलियों में पहनने का एक गहना। बिलुभा। उ०—ते नगरी ना नागरी प्रतिपद हंसक हीन।—केराव।

हंसकूट-संज्ञा पुं० [ सं० ] धैल के कंधों के बीच उठा हुआ ध्वज। चिह्न।

हंसगति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हंस के समान सुंदर पीमी चाल (२) ब्रह्मत्व की प्राप्ति। सायुज्य मुक्ति। (३) धीस मावाओं के एक छंद का नाम जिसमें ग्यारहवीं मात्रा पर विराम होता है। इसी छंद की बारहवीं मात्रा पर पति मानकर मंजुलिका भी कहते हैं।

हंसगदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] त्रिपदाभिणी स्त्री।

हंसगर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रत्न का नाम। ( रत्नपरीक्षा )

हंसगामिनी-वि० स्त्री० [ सं० ] हंस के समान सुंदर मंद गति से चलनेवाली।

हंस चौपड़-संज्ञा पुं० [ सं० हंस + हि० चौपड़ ] एक प्रकार का पुराना चौपड़ का खेल जो पासों से खेला जाता था।

विशेष—इसकी तपती में १२ घर होते थे। एक ६३वें घर केंद्र में होता था, जो जीत का घर होता था। तपती के प्रत्येक चौथे और पाँचवें घर में एक हंस का चित्र होता था। खेलनेवाले का पाँसा जब हंस पर पड़ता था, तब वह दूनो चाल बल सकता था।

हंसजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( सूर्य की कन्या ) यमुना।

हंसता-मुपदी-संज्ञा पुं० [ हि० हंसता + मुल ] हंसते चेहरवाला। प्रसन्नमुख। उ०—जो देखा सो हंसतामुची।—जायसी।

हंसदफरा-संज्ञा पुं० [ ? ] ये रस्से जो छोटी नाव में उसकी मजदूरी के लिये बंधे रहते हैं।

हंसदाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] धूप। गुराल।

हंसन-संज्ञा स्त्री० [ हि० हंसना ] (१) हंसने की क्रिया या भाव। (२) हंसने का रंग।

हंसना-कि० प्र० [ सं० हंसन ] (१) आनंद के वेग से कंड से एक विशेष प्रकार का आघात-रूप स्वर निकालना। सुती के मारे मूँद फँसाकर एक तरह की आवाज करना। शिल-सिंहाना। टट्टा मारना। हास करना। कहकहा लगाना।

सुयो० कि०—देना।—पड़ना।

पौ०—हंसना धोलना = आनंद की वाद्ययंत्र करना। जैसे,—चार दिन की विदगी में हंस बोल छो। हंसना खेलना = आनंद करना।

मुहा०—किसी व्यक्ति पर हंसना = विनोद की बात कहकर फिली की तुच्छ भा सूँठ ठहराना। उपहास करना। जैसे,—तुम दूसरों

पर तो बहुत हँसते हो, पर आप कुछ नहीं कर सकते। किसी वस्तु पर हँसना = विनोद की बात कहकर किसी वस्तु को तुच्छ या घुंघो उठाना। उपहास करना। व्यंग्यपूर्ण निशाना करना। भनादर करना। उ०—(क) हँसिये जोग, हँसे नहिं खोरी।—तुलसी। (ख) हँसिह मलिन खल त्रिमल बतकही।—तुलसी। हँसते हँसते = प्रसन्नता से। खुशी से। बिना किसी प्रकार का बह या भाव अनुभव किए। जैसे,—(क) राजपूतों ने हँसते हँसते युद्ध में प्राण दिए। (ख) मैं हँसते हँसते यह सब बंध सह लेंगा। हँसते हुए = दे० “हँसने हँसते”। हँसता मुँह या चेहरा = प्रसन्न मुख। ऐसा चेहरा जिससे प्रसन्नता का भाव प्रकट होता हो। ठंडा कर हँसना = जोर से हँसना। भद्दास करना। उ०—दोड़ एक संग न होदिं भुवाळ। हँसय ठडाइ, फुलाउय गाळ।—तुलसी। बात हँसकर उठाना = ध्यान न देना। तुच्छ, साधारण या हल्का-समझकर विनोद में डाल देना। जैसे,—मैं काम की बात कहता हूँ, तुम हँसकर उड़ा देते हो।

(१) रमणीय लगना। मनोहर जान पड़ना। गुलजार या रौनक होना। जैसे,—यह जमीन कैसी हँस रही है। (२) केवल मनोरंजन के लिये कुछ कहना या करना। दिखाना करना। हँसी करना। मज़ाक करना। मसखरापन करना। जैसे,—मैं तो बॉं ही हँसता था, कुछ तुम्हारी छड़ी लिए नहीं लेता था। (३) भानंद मानना। प्रसन्न या सुखी होना। खुशी मनाना। जैसे,—यह तो दुनिया है; कोई हँसता है, कोई रोता है। कि० सं० किसी का उपहास करना। व्यंग्य या हँसी की बात कहकर किसी को तुच्छ या मूर्ख उठाना। विनोद के रूप में किसी को हेरा, घुरा या मूर्ख प्रकट करना। भनादर करना। हँसी उठाना। जैसे,—तुम दूसरों को तो हँसते हो, पर अपना दाँप नहीं देखते।

हंसनादिनी-वि० स्त्री० [ सं० ] सुंदर बोलनेवाली। मधुरभाषिणी। हंसनिष्ठा-संज्ञा स्त्री० दे० “हंसन”। हंसनी-संज्ञा स्त्री० दे० “हंसी”। हंसपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक तील या मांस। कर्पू। हंसपद्मी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक लता का नाम। हंसपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] दिगुल। ईगुर। सिगरफ। हंसपाद्री-संज्ञा स्त्री० दे० “हंसपद्मी”। हंस-मंगला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक संकर रागिनी जो शंकराभरण, सौरभ और अश्वाने के मेल से बनी है।

हंसमाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हंसों की पंक्ति। (२) एक वर्ण श्लोक का नाम। हंसमुख-वि० [ हि० हंसना + मुख ] (१) प्रसन्नवदन। जिसके चेहरे से प्रसन्नता का भाव प्रकट होता हो। (२) विनोदशील। हंसहारमियं-उठोळ। हँसी दिखाना करनेवाला। सुहलबाण।

हंसरथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] मन्ना (जिनका वाहन हंस है)। हंसराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक बूटी जो पहाड़ों में चढ़ानों से लगी हुई मिलती है। समलपत्ती। विशेष—यह एक छोटी घास होती है जिसमें चारों ओर भाउ दस अंगुल के सूत के से डंडल फैलते हैं। इन डंडलों के दोनों ओर बंद मुठ्ठी के आकार की छोटी छोटी कटावदार पत्तियाँ गुंथी होती हैं। यह बूटी देखने में बड़ी सुंदर होती है, इससे बगीचों में कंकड़ पथर के ढेर खदे करके इसे लगाते हैं। वैद्यक में यह गरम मत्ती जाती है और ज्वर में दी जाती है। कहते हैं, इससे बवासीर से खून जाना भी बंद हो जाता है।

(२) एक प्रकार का अगहनी धान। हंसली-संज्ञा स्त्री० [ सं० संतली ] (१) गरदन के नीचे और छाती के ऊपर की घन्घाकार हड्डी। (२) गले में पहनने का कियों का एक गहना जो मंडलानार और दोस होता है। यह बीच में मोटा और छोरों पर पतला होता है।

हंसलोमश-संज्ञा पुं० [ सं० ] कसीस। हंसयश-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्यवंश। उ०—हंस यंस, प्रसयप जनक, राम लपन से भाइ।—तुलसी।

हंसपत्ती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक लता का नाम। हंसयाहन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मन्ना (जिनकी सवारी हंस है)। हंसयाहनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती (जिनकी सवारी हंस है)। हंससुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यमुना नदी। उ०—हंससुता की सुंदर कगरी भी कुंजान की छाहीं।—सूर।

हंसांघि-संज्ञा पुं० [ सं० ] दिगुल। ईगुर। सिगरफ। हंसाई-संज्ञा स्त्री० [ हि० हंसना ] (१) हँसने की क्रिया या भाव। (२) उपहास। छोटों में निंदा। बदनामी। उ०—सूरदास कृपित रंग राते मज में होति हँसाई।—सूर।

यो०—जगत-हँसाई। हंसाना-कि० सं० [ हि० हँसना ] दूसरे को हँसने में प्रवृत्त करना। कोई ऐसी बात करना जिससे दूसरा हँसे। संयो० कि०—देना।

हंसामिरव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंदी। हंसपल्ल-संज्ञा स्त्री० दे० “हँसाई”। हंसारुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] मन्ना (जो हंस पर सवार होते हैं)। हंसारुद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सरस्वती। हंसालि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ३० मात्राओं का एक छंद जिसमें बीसवीं मात्रा पर पति और अंत में यगण होता है। हंसिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हंस की मादा। हंसी। हंसिनी-संज्ञा स्त्री० दे० “हंसी”। हंसिया-संज्ञा पुं० [ सं० संत ] (१) कोहे का एक धारदार भोजार जो अर्धचंद्राकार होता है और जिससे पेत की फसक या

सरकारी आदि काटी जाती है। (२) छोटे की धारदार भद्रेचंद्राकार पट्टी जिससे कुम्हार गीली मिट्टी काटते हैं। (३) चमड़ा छीलकर चिकना करने का औजार। (४) हाथी के भंडुका का देहा भाग।

संज्ञा स्त्री० [ सं० हनु ] गरदन के नीचे की घन्वाकार हड्डी। हंसली।

हंसि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हंस की मादा। की हंस। (२) दूध देनेवाली माय की एक भट्टी। जाति। (पंजाब) (३) बाईस अक्षरों की एक वर्णमाला जिसके प्रत्येक चरण में दो मण्डल, एक तगम, तीन नगण, एक सगण और एक गुण होता है (sss, sss, sss, ll, ll, ll, ll, s, s)।

हंसि—संज्ञा स्त्री० [ हि० हंसना ] (१) हंसने की क्रिया या भाव। हास। उ०—बरना पितै हंसि औ रागु।—जायसी।

कि० प्र०—भाना।

यौ०—हंसि सुश्री = प्रसन्नता। हंसि उट्टा = पानंद मोहा। मजाक।

मुहा०—हंसि छुटना = हंसो आना। हास की मुद्रा प्रकट होना।

(२) हंसने हंसाने के लिये की हुई बात। मजाक। दिखगो। मनोरंजन। विनोद। जैये,—जुमतो हंसि हंसि में रोने लगते हो।

कि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—हंसि खेल = (१) विनोद और मीमांसा। (२) साधारण बात। समझ बात। आसान बात। हंसि उठोली = विनोद और हास। दिखगो।

मुहा०—हंसि समझना या हंसि खेल समझना = साधारण बात समझना। आसान बात समझना। कठिन न समझना। जैये,—डोडर बनाना क्या हंसि खेल समझ रखा है? हंसि में उद्वाना = किसी बात को भी हो दिखगो समझकर ध्यान न देना। साधारण समझकर खयाल न करना। परिहास की बात कहकर टाल देना। हंसि में छे जाना = किसी बात को मजाक समझना। किसी बात का पेटा धरै समझना मानो वह ध्यान देने की नहीं है, केवल मन बहलाने की है। जैये,—जुम तो मेरी बात हंसि में छे जाते हो। हंसि में छाँसी = दिखगो की मानवीत होते होते मगझा या मारपीट की नीबत भाना।

(३) किसी व्यक्ति को मूर्ख या वस्तु को तुच्छ ठहराने के लिये कही हुई विनोदपूर्ण टाँकी। अन्यायपूर्ण हास। उपहास। म्यंग्यपूर्णनिद्रा।

कि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हंसि उद्वाना = ध्यंग्यपूर्ण निद्रा करना। उपहास करना। चतुराई की धीक दायर कनादर प्रकट करना।

(४) छोका निद्रा। वदनामी। अन्याय। जैये,—ऐसा काम न करो जिसमें पीछे हंसि हो। उ०—(क) हंसि हीन छापी या मज में काहदि जाइ सुनावी।—सूर। (ख) रीत सरोजम के परे, हंसि ससी की हाँद।—विहारी।

कि० प्र०—होना।

हंसि—संज्ञा स्त्री० [ हि० हंसना + ईश (अप०) ] [ स्त्री० हंसली ]

हंसो मजाक करनेवाला। हंसोइ।

हंसुआ, हंसुआ—संज्ञा पुं० दे० “हंसिया”।

हंसुली—संज्ञा स्त्री० दे० “हंसली”।

हंसोली—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] नाय को क्रिन्ने पर से खींचने की रस्सी। गूत।

हंसोइ—वि० [ हि० हंसना + ओइ (अप०) ] हंसो उट्टा करनेवाला। दिखगोमान। मसखरा। चुहलमान। विनोदप्रिय।

हंसोर—वि० दे० “हंसोइ”।

हंसोहो—वि० दे० “हंसोहो”।

हंसोहो—वि० [ हि० हंसना ] [ स्त्री० हंसोहो ] (१) ईष्युदा हास-युक्त। कुछ हंसो लिये। हासोमुल। उ०—(क) मयो हंसोहो वदन ग्यारि को सुनत नयाम केधन। (ख) लखत हंसोहो नैन यदति राधा मुल मोरी। (२) हंसने का स्वभाव रखनेवाला। जवरी हंस देनेवाला। उ०—(क) सहज हंसोहो जानि के सोहँ करति न मन।—विहारी। (ख) नेकु हंसोहो बानि तजि, छथयो परन मुल नीदि।—विहारी। (३) परिहासयुक्त। दिखगो का। मजाक से भरा। उ०—नेकु न मोहि सुहायँ भरी सुन थोक विहारे हंसोहो भये।—दांयु।

ह—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हास। हंसि। (२) गिय। महादेव। (३) जल। पानी। (४) दृश्य। सिफर। (५) योग का एक भासव। विष्कंभ। (६) ध्यान। (७) युम। मंगल। (८) आकाश। (९) स्वर्ग। (१०) रक। खूत। (११) भय। (१२) ज्ञान। (१३) चंद्रमा। (१४) विष्णु। (१५) युद्ध। बड़ाई। (१६) घोड़ा। मष। (१७) गर्व। चमंड। (१८) वैद्य। (१९) कारण। हेतु।

हई—संज्ञा पुं० [ सं० हयिन्, रवी ] युद्धसवार। संज्ञा स्त्री० [ हि० ह + आधर्म्य सूचक शब्द ] आधर्म्य। अचरज। तभयुत्तव। उ०—हो हिय रहति हई उई नई जुगुति जग भोय। अलिन भॉलि छगे खरी देह दूरी होय।—विहारी।

हई—कि० प्र० दे० “हो”।

सर्व० दे० “हो”।

हका—संज्ञा पुं० [ अनु० ] वह घका जो सहसा चकचका उठने या भयरा उठने से हृदय में लगाता है। चक। वि० दे० “चक”।

हक—वि० [ प्र० ] (१) जो हक न हो। सच। सत्य। (२) जो धर्म और नीति के अनुसार हो। पात्रिय। ठीक। उचित। न्याय्य। जैये,—हक बात।

यो०—हक नाहक।

संज्ञा पुं० (१) किसी वस्तु को पाने, पास रखने या भयवद्धार में खाने की योग्यता को न्याय या छोकराति के अनुसार किसी

को प्राप्त हो। किसी वस्तु को अपने कब्जे में रखने, काम में खाने या लेने का अधिकार। स्वरव। जैसे,—(क) इस जमीन पर हमारा हक है। (ख) तुम्हें इस जमीन पर पैदा लगाने का क्या हक है ?

यो०—हकदार। हकशाफा।

(२) कोई काम करने या किसी से कराने का अधिकार जो किसी की आज्ञा, लोकरीति या न्याय के अनुसार प्राप्त हो। अधिकार। इत्तिपार। जैसे,—(क) तुम्हें दूसरे के लड़के को मारने का क्या हक है ? (ख) तुम्हें हमारे भादमी से काम कराने का कोई हक नहीं है।

मुहा०—हक दबाना या मारना = किसी को उस वस्तु या बात से संबंधित रखना जिसका उसे अधिकार प्राप्त हो। हक पर लड़ना = अपने न्यायपुत्र अधिकार के लिये प्रयत्न करना। किसी ऐसी वस्तु को पाने, पास रखने, काम में खाने भयवा कोई ऐसी बात करने के लिये विरोधियों के विरुद्ध उद्योग करना जो न्याय या रीति के अनुसार कोई पा सकता हो, काम में ला सकता हो भयवा कर सकता हो। रख रखा के हेतु प्रयत्न करना। हक दबना या मारा जाना = उस वस्तु या बात से संबंधित होना जिसका न्याय से अधिकार प्राप्त हो। वह वस्तु न पाना या वह काम न करने पाना जो न्यायतः वह पा सकता या कर सकता हो। स्वरव की दानि होना। हक साबित करना = वह सिद्ध करना कि किसी वस्तु को पाने, रखने या काम में खाने भयवा कोई काम करने का हमें अधिकार है। स्वरव प्रमाणित करना। हक में = दित के लिये। काम की दृष्टि से। पक्ष में। विषय में। जैसे,—(क) ऐसा करना तुम्हारे हक में अच्छा न होगा। (ख) हम तुम्हारे हक में दुःखा करेंगे।

(३) कर्त्तव्य। फर्ज।

मुहा०—हक भदा करना = वह बात कराना जो न्याय, नीति आदि की दृष्टि से कारणीय हो। कर्त्तव्य पालन करना। जैसे,—चे दोस्ती का हक भदा कर रहे हैं।

(४) वह वस्तु जिसे पाने, पास रखने या काम में खाने का भयवा वह यात जिसे करने का न्याय से अधिकार प्राप्त हो। जैसे,—(क) यह खरवा तो नीकरी का हक है। (ख) यहाँ टहलना हमारा हक है। (५) यह द्रव्य या धन जो किसी काम या व्यवहार में किसी की रीति के अनुसार मिलता हो। किसी मामले में दस्तर के सुतायिक मिलनेवाली कुछ रकम। दस्तरी। जैसे,—(क) ५५ सैकड़ा तो पुरोहित का हक है। (ख) हमारा हक देकर तब जाइए। (ग) अदायत में मुहरिरी का हक भी तो देना पड़ता है।

कि० प्र०—चाहना।—प्रेना।—पाना।—मार्गना।

मुहा०—हक दबाना या मारना = वह रखमान देना जो किसी की रीति के अनुसार की जाती हो। जैसे,—नीकरी का हक मारकर भाप राजा न हो जायेंगे।

(६) डीक बात। वाजिप यात। उचित बात। (७) उचित पक्ष। न्यायप पक्ष। जैसे,—मैं तो हक पर हूँ, मुझे किस बात का डर है।

मुहा०—हक पर होना = न्याय पक्ष का अवलंबन करना। उचित बात का सामर्थ्य करना।

(८) सुहा। ईश्वर। (मुसलमान)

हकदार—संज्ञा पुं० [ प्र० हक + का० दार ] यह जिसे हक हासिल हो। स्वरव या अधिकार रखनेवाला। जैसे,—इस जायदाद के मितने हकदार हैं, सभ हाज़िर हों।

हक नाहक—प्रत्य० [ प्र० + का० ] (१) बिना उचित अनुचित के विचार के। ज़बरदस्ती। धीमा धीमी से। जैसे,—यहाँ हकनाहक बेचारी की धोत्र ठे रहे हो ? (२) बिना कारण या प्रयोजन। निष्प्रयोजन। व्यर्थ। फ़ज़ूल। जैसे,—यहाँ हकनाहक लड़ रहे हो।

हकयक—वि० दे० "हफा यफा"।

हकयकाना—कि० प्र० [ प्र० हक + काना ] किसी ऐसी बात पर, जिसका पहले से अनुमान तक न रहा हो भयवा जो अनपेक्षित या भयानक हो, स्तम्भित हो जाना। टक रह जाना। हफा यफा हो जाना। सहसा निश्चेत और मौन होकर मुँह ताकने लगना। घबरा जाना।

हक मालिकाना—संज्ञा पुं० [ प्र० + का० ] किसी चीज़ या जायदाद के मालिक का हक।

हक मीरुसी—संज्ञा पुं० [ प्र० ] वह अधिकार जो वित्तरपरता से प्राप्त हो। वह हक जो वाप दादों से चला आता हो।

हकला—वि० [ हि० हकलना ] रुक रुक कर थोड़नेवाला। धार्मिक के हकलनेवाला। कारण किसी वाक्य की एक साथ न थोड़ सकनेवाला।

हकलाना—कि० प्र० [ प्र० हक ] स्वर-नाली के डीक काम न करने या जीभ तेजी से न चलने के कारण थोड़ने में अटकना। रुक रुक कर थोड़ना।

हकलाहा—वि० दे० "हकला"।

हकशाफा—संज्ञा पुं० [ प्र० ] किसी जमीन को खरीदने का औरों से ऊपर या अधिक वह हक या स्वरव जो गाँव के (जिसमें पंथी हुई जमीन हो) हिस्सेदारों अथवा पड़ोसियों को प्राप्त हो। (यदि कोई इस प्रकार की जमीन बेच देता है, तो जिसे इस प्रकार का स्वत्व प्राप्त होता है, वह अदायत के द्वारा उतना ही—या जितना अदायत ठहरा दे—वाम देकर यह जमीन ले सकता है।)

हकार—संज्ञा पुं० [ सं० ] ह अक्षर या वर्ण।

हकारना—कि० प्र० [ दे० ] (१) पाल तानना या खंडा करना।

(२) हँसना या निवाना उठाना। (लफ़री)।

हकीकत—संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) तत्वा। सच्चाई। असलियत।

सायता। (२) सय्य। ठीक बात। असल असल बात।  
 (३) ठीक ठीक वृत्त। असल हाल। साय वृत्त। जैसे,—  
 उसकी हकीकत यों है।  
 मुद्दा—हकीकत में = वास्तव। सचपुच। हकीकत खुलना =  
 असल बात का पता लग जाना। ठीक ठीक बात मालूम हो जाना।  
 हकीकी-वि० [ म० ] (१) सचा। ठीक। सय्य। (२) खास  
 अपना। सगा। आत्मीय। जैसे,—हकीकी भाई। (३)  
 ईश्वरोन्मुख। भगवत्संघी। जैसे,—हकीकी।  
 हकीम-संज्ञा पुं० [ म० ] (१) विद्वान्। भावार्थ। जैसे,—हकीम  
 भरत। (२) यूनानी रीति से चिकित्सा करनेवाला। वैद्य।  
 चिकित्सक।  
 हकीमी-संज्ञा स्त्री० [ म० हकीम + ई (प्रत्य०) ] (१) यूनानी  
 आयुर्वेद। यूनानी चिकित्सा शास्त्र। (२) हकीम का पेशा  
 या काम। वैदगी। जैसे,—वे छलनऊ में हकीमी करते हैं।  
 हकीयत-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) स्वाव। अधिकार। (२) वह  
 वस्तु या जायदाद जिस पर हक हो। (३) अधिकार होने  
 का भाव। जैसे,—मुम अपनी हकीयत साबित करो।  
 हकीर-वि० [ म० ] (१) निवृत्त कुल महत्त्व न हो। बहुत  
 छोटा। दुच्छ। नाधीन। (२) उपेक्षा के योग्य।  
 हकीर-संज्ञा पुं० [ म० ] 'हक' का बहुवचन। कई प्रकार के स्वत्व  
 या अधिकार।  
 हकीमत-संज्ञा पुं० दे० "हुकूमत"।  
 हक-संज्ञा पुं० [ म० ] हाथी की सुंठाने का शब्द।  
 ईंसा पुं० दे० "हक"।  
 हका-संज्ञा पुं० [ म० हक ] वह नोट या पुराना जो कोई गले का  
 व्यापारी किसी अज्ञामी के लगान की जमानत के रूप में  
 जमींदार को देता है।  
 हकाफ-संज्ञा पुं० [ ? ] नग जड़नेवाला। नग को काटने, सान  
 पर चढ़ाने, जड़ने शादि का काम करनेवाला। जड़िया।  
 हका बका-वि० [ म० हक, थक ] किसी ऐसी बात पर 'स्वमित'  
 जिसका पहले से अनुमान तक न रहा हो अथवा जो अन-  
 होनी या भयानक हो। सहसा निश्चेत और मौन होकर मुँह  
 चाकटा हुआ। भीषक। घबराया हुआ। चित्रलिखा सा।  
 ठक। जैसे,—यह सुनते ही वह हका बका हो गया।  
 हका-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिह्नकार खुलने का शब्द। उकार।  
 हगनहदी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हगना ] (१) मध्यभाग की इन्द्रिय।  
 सुर। (२) वह स्थान जहाँ लोग पाखाना फिरते हैं।  
 हगना-कि० प्र० [ सं० हग ] (१) मलोरसंग करना। मल त्याग  
 करना। झाड़ा फिरना। पाखाना फिरना।  
 संयोग कि०—देना।  
 मुद्दा—हग भरना या मारना = (१) हग देना। मलोरसंग कर  
 देना। (२) अर्थ मयशीन होना। बहुत दर जाना।

(२) हवाव के बारे कोई वस्तु दे देना। श्राव मारकर मदा  
 कर देना। जैसे,—दया होगा तो सम दया हा होगा।  
 हगना-संज्ञा स्त्री० दे० "हगनहदी"।  
 हगना-कि० प्र० [ हि० हगना का सं० ] (१) हगने की क्रिया  
 करना। पाखाना फिरने पर विवश करना।  
 संयोग कि०—देना।  
 (२) पाखाना फिरने में सहायता देना। मध्यभाग काना।  
 जैसे,—बच्चे को हगाना।  
 हगास-संज्ञा स्त्री० [ हि० हगना + आत् (प्रत्य०) ] हगने की हच्छा।  
 मलरथाग का वेग या दृष्टा।  
 कि० प्र०—उगना।  
 हगोडा-वि० [ हि० हगना + ओदा (प्रत्य०) ] [ स्त्री० हगोकी ] बहुत  
 हगनेवाला। बहुत झाड़ा फिरनेवाला।  
 हचकना-कि० प्र० [ म० हच हच ] चारपाई, गादी आदि का  
 शीका खाना या बार बार हिलना। धके से हिलना डोलना।  
 हचका-संज्ञा पुं० [ हि० हचकना ] धका। शीका।  
 कि० प्र०—देना।—मारना।  
 हचकाना-कि० प्र० [ हि० हचकना का सं० ] धके से हिलाना।  
 शीका देकर हिलाना।  
 हचकोला-संज्ञा पुं० [ हि० हचकना ] वह धका जो गाड़ी, चारपाई  
 आदि पर उठाना या हिलाने कोलने से लगे। धचका।  
 हचना-कि० प्र० [ म० हच हच ] किसी काम के करने में संकोच  
 या आगाधीता करना। हिचकना।  
 हज-संज्ञा पुं० [ म० ] मुसलमानों का फावे के दर्शन के लिये मक्के  
 जाना। मुसलमानों की मक्के की तीर्थ-यात्रा। जैसे,—सपर  
 पूहे सा के सिद्धी हज को चला।  
 हजाम-संज्ञा पुं० [ म० ] पेट में पचने की क्रिया या भाव। पाचन।  
 वि० (१) जो पाचन शक्ति द्वारा रस या धातु के रूप में  
 हो गया हो। पेट में पचा हुआ। जैसे,—दूध हजाम होना,  
 रोटी हजाम करना।  
 कि० प्र०—करना।—होना।  
 (२) बेईमानी से दूसरे की वस्तु लेकर न घी हुई। बेईमानी  
 से लिया हुआ। अनुचित रीति से अधिकार किया हुआ।  
 उदाया हुआ। जैसे,—(क) दूसरे का माल या रुपया हजाम  
 करना। (ख) दूसरे की चीज़ हजाम करना।  
 कि० प्र०—काना।—होना।—कर जाना।—कर लेना।  
 मुद्दा—हजाम होना = बेईमानी से ली हुई वस्तु का अपने पास  
 रहना। जैसे,—बेईमानी का माल हजाम न होना।  
 हज़रत-संज्ञा पुं० [ म० ] (१) महात्मा। महापुरुष। जैसे,—  
 हज़रत मुहम्मद। (२) अर्थ आदर का संबोधन। महाशय।  
 (३) मरखट या खोटा आदमी। (अर्थ) जैसे,—आप  
 बड़े हज़रत हैं, यों ही श्रमदा लगाया करते हैं।

हज़ारत सलामत-संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) याददाहों या भवावों के लिये संवीधन का शब्द । (२) याददाह ।

हज़ाम-संज्ञा पुं० दे० "हजाम" ।

हज़ामत-संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) हजाम का काम । चाल बनाने का काम । दाढ़ी के बाल मूँढ़ने और सिर के बाल मूँढ़ने या काटने का काम । क्षीर । (२) बाल बनाने की मज़दूरी । (३) सिर या दाढ़ी के बदे हुए बाल जिन्हें कटाना या मूँढ़ना हो ।

मुहा०—हज़ामत यदना = बालों का यदना । हज़ामत बनाना = (१) दाढ़ी या सिर के बाल साफ़ करना या काटना । (२) हटना । धन हाथ करना । माल लेना । जैसे,—धूर्तों ने वहाँ उंसकी खूब हज़ामत बनाई । (३) दंड देना । मारना पीटना । हज़ामत बनवाना = दाढ़ी के बाल साफ़ करना या सिर के बाल कटाना । हज़ामत होना = (१) किसी के धन का धोखा देकर हाथ होना । लूट होना । (२) दंड होना । शासन होना । मार पचना । जैसे,—बचा की वहाँ खूब हज़ामत हुई ।

हज़ार-वि० [ प्र० ] (१) जो गिनती में दस सौ हो । सहस्र । (२) बहुत से । अनेक । जैसे,—बनमें हज़ार पेड़ हैं, पर वे हैं तो तुम्हारे भाई ।

संज्ञा पुं० दस सौ की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१००० ।

कि० वि० कितना हो । चाहे जितना अधिक ।—जैसे,—तुम हज़ार कदो, तुम्हारी बात मानता कौन है ?

हज़ाररहो-वि० [ प्र० ] (१) हज़ारों । सहस्रों । (२) बहुत से । हज़ार-वि० [ प्र० ] ( फुल ) जिसमें हज़ार या बहुत अधिक पेंसदियाँ हों । सहस्रदल । जैसे,—हज़ारा गेंदा ।

संज्ञा पुं० (१) कुदारा । फ़ौयारा । (२) एक प्रकार की आतिदायाज़ी ।

हज़ारी-संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) एक हज़ार सिपाहियों का सरदार । यह सरदार या नायक जिसके अधीन एक हज़ार फौज हो ।

यौ०—पंज हज़ारी । दस हज़ारी ।

विशेष—इस प्रकार के पद बकबर ने सरदारों और राजाओं महाराजाओं को दे-रखे थे ।

यौ०—हज़ारी बज़ारी = सरदारों से लेकर बनियों तक सब । अमीर गरीब सब । सर्वभारण्य ।

(२) व्यभिचारिणी का पुत्र । दोगला । वर्ण संकर ।

हज़ारों-वि० [ प्र० हज़ार + ओं (प्रत्ये०) ] (१) सहस्रों । (२) बहुत से । अनेक । न जाने कितने । जैसे,—तुम्हारे ऐसे हज़ारों आते हैं ।

हज़ार-संज्ञा पुं० दे० "हज़ार" ।

हज़ारी-संज्ञा पुं० [ प्र० हज़ार ] [ स्त्री० हज़ारी ] किसी बादशाह या राजा के सदा पास रहनेवाला सेवक ।

हज़ो-संज्ञा स्त्री० [ प्र० हज्व ] निदा । तुहाई । अपकीर्ति । बदनामी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

हज़-संज्ञा पुं० दे० "हज" ।

हज़ाम-संज्ञा पुं० [ प्र० ] हज़ामत बनानेवाला । सिर और दाढ़ी के बाल मूँढ़ने या काटनेवाला । माई । नारित ।

हट-संज्ञा स्त्री० दे० "हट" ।

हटका-संज्ञा स्त्री० [ हि० हटकना ] (१) चारण । वर्जन ।

मुहा०—हटक मानना = मना करने पर किसी काम से रुकना । निषेध का पालन करना । उ०—बंसी-पुनि मृदु कान परत ही गुरजन-हटक न मानति ।—सूर ।

(२) गाथों को हॉकने की क्रिया या भाव ।

हटकन-संज्ञा स्त्री० [ हि० हटकना ] (१) चारण । वर्जन । मना करना । (२) चौपायों को फेरने का काम । हॉकना । (३) चौपायों को हॉकने की छड़ी या छारी ।

हटकना-क्रि० स० [ हि० हट = दूर होना + करना ] (१) मना करना । निषेध करना । वर्जन करना । किसी काम से हटाना या रोकना । उ०—(क) तुम्ह हटकहु औ पहहु उचारा । कहि प्रतापु, बल रोप हमारा ।—तुलसी । (ख) सुनीं भाय सिगरीं जमुना-तट हटवयो, कोठ न मायों ।—सूर । (२) चौपायों को किसी ओर जाने से रोक कर दूसरी ओर फेरना । रोक कर दूसरी तरफ़ हॉकना । उ०—(क) पायँ परि चिनती करीं हँ हटक लावो गाय ।—सूर । (ख) माधव जू ! नेकु हटकी गाय ।—सूर ।

मुहा०—हटक = (१) हठार । नबरदती । (२) विना कारण ।

हटका-संज्ञा पुं० [ हि० हटकना = टोकना ] किचावों को खुलने से रोकने के लिये लगाया हुआ काठ । क्लिष्टी । भंगल । ब्यौदा ।

हटतार-संज्ञा पुं० दे० "हटतार" ।

संज्ञा स्त्री० [ हि० हटतार ] माला का सूत । उ०—प्रित, प्रित हटतार ते नेह जू सरसे आह । हिय तामि, कीं रसिकनिधि येधि तुस्त ही जाह ।

हटताल-संज्ञा स्त्री० [ हि० हट = टुकान + ताल = ताल ] किसी कर या महसूल से अथवा और किसी बात से अस्तोप प्रकट करने के लिये टुकानदारों का टुकान यंद कर देना अथवा काम करनेवालों का काम यंद कर देना । हटताक ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

हटना-क्रि० प्र० [ सं० पटन ] (१) किसी स्थान को त्याग कर दूसरे स्थान पर हो जाना । एक जगह से दूसरी जगह पर जा रहना । चिसरकना । सरकना । टकना । जैसे,—(क) धोड़ा पीछे हटो । (ख) जता हटकर बैठो । (ग) उधौने बहुत जोर लगाया, परं पर्यंर जगह से न हटा ।

संयोगे० क्रि०—हटना बटना = ठोक स्थान से कुछ दूर उभर होना या सरकना ।

(२) पीछे की ओर धीरे धीरे जाना । पीछे सरकना । जैसे,—आंखों की मार से सेना हटने लगी । (३) विमुख होना । नी चुराना । करने से भागना । जैसे,—में काम से नहीं हटना ।

मुहा०—( किसी बात से ) पीछे न हटना = मुँद न मोरना । विमुख न होना । उत्तर या प्रत्युत्तर करना । कोई काम करने को तैयार रहना । जैसे,—जो बात मैं कह चुका हूँ, उससे पीछे न हटूँगा ।

(४) सामने से दूर होना । सामने से चला जाना । जैसे,—हमारे सामने से हट जाओ, नहीं तो मार खाओगे ।

मुहा०—हटकर सड़ = बल । दूर हो । ( शक्ति प्रयत्न )

(५) किसी बात का नियत समय पर न होकर और धामे किसी समय होना । टकना । जैसे,—विवाह की तिथि भय हट गई । (६) न रह जाना । दूर होना । मिटना या नास्त होना । जैसे,—आपदा हटना, संकट हटना, सुजन हटना । (७) मत, प्रतिज्ञा आदि से विचलित होना । बात पर रद्द न रहना ।

ऊँ [ हि० हटना ] मना करना । निषेध करना । पारण करना । वसित करना । रोकना । उ०—देत दुःख मार मार कोऊ नहि हटत ।—सूर ।

हटनी उड़ी—संज्ञा स्त्री० [ हि० हटना + उड़ना ] माछसंभ की एक कसरत जिसमें पीठ के चञ्च होकर ऊपर जाते हैं ।

हटयथा—संज्ञा पुं० [ हि० हट + यथा ] [ स्त्री० हटयर्थे ] हाट या माधार में बैठकर सौदा बेचनेवाला । दूकानदार ।

हटघाई—संज्ञा स्त्री० [ हि० हट + घाई (प्रय०) ] सौदा लेना या बेचना । मय-विक्रय । खरीद फरोख्त । उ०—साधो ! करी हटघाई हाट बटि जाई ।—कबीर ।

हटघाना—क्रि० सं० [ हि० हटाना का प्रेरणार्थ० ] हटाने का काम दूसरे से कराना । हटाने में प्रयुक्त करना । दूसरे से स्थानान्तरित कराना ।

हटघार—संज्ञा पुं० [ हि० हट + घार, (वाल) ] बाजार में बैठकर सौदा बेचनेवाला । दूकानदार ।

हटाना—क्रि० सं० [ हि० हटाना का सं० ] (१) एक स्थान से दूसरे स्थान पर करना । एक जगह से दूसरी जगह पर ले जाना । सरकाना । सिसकाना । किसी ओर चलाना या बढाना । जैसे,—बौकी घाई ओर हटा दो ।

संयोगे० क्रि०—देना ।—लेना ।

(२) किसी स्थान पर न रहने देना । दूर करना । जैसे,—(क) बाघाई हस कीठरी में ले हटा दो । (ख) हस भादमी को यहाँ से हटा दो । (३) आक्रमण द्वारा भागना । स्थान

छोड़ने पर विवश करना । जैसे,—थोड़े से धीरों ने बाघु की सारी घेना हटा दी । (४) किसी काम का करना या किसी बात का विचार या प्रसंग छोड़ना । जाने देना । जैसे,—(क) खतम करके हटाओ, कय तक यह काम लिप्ट बँडे रहोगे ? (ख) बलेशा हटाओ । (५) किसी मत, प्रतिज्ञा आदि से विचलित करना । बात पर रद्द न रहने देना । टिगाना ।

हटवारा—संज्ञा पुं० [ हि० हट + वारा (प्रय०) ] (१) दूकानदार । (२) अनाम लौकनेवाला । बया ।

हटती—संज्ञा स्त्री० [ हि० हट + ती (प्रय०) ] देह की गटना । धारीर का टाँचा । जैसे,—दसकी हटती बहुत अच्छी है ।

हट्ट—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बाजार । (२) दूकान ।

यौ०—बौहट्ट = बाजार का चौक ।

हट्टचौरक—संज्ञा पुं० [ सं० ] बाजार में घूमकर चोरी करने या माल उचकनेवाला । चार्ह । गिरफ्तार ।

हट्टा कट्टा—वि० [ सं० हट + कट्ट ] [ स्त्री० हट्टी कट्टी ] हट्ट पुष्ट । मोटा ताजा । मजबूत । हट्टीय ।

हट्ट—संज्ञा स्त्री० पुं० [ सं० ] [ वि० हट्टी, हट्टीय ] (१) किसी बात के लिये अड़ना । किसी बात पर जम जाना कि ऐसा ही हो ।

टेक । निद्र । दुरामह । जैसे,—(क) नाक घटी, पर हट न हटी । (ख) तुम तो हर बात के लिये हट करने लगते हो ।

(ग) बर्षों का हट ही तो है ।

यौ०—हठधर्मी । हठधर्मी ।

मुहा०—हठ पकड़ना = किसी बात के लिये जम जाना । दिर करना । दुरामह करना । हठ रराना = जिस बात के लिये कोई धरे, उसे पूरा करना । हठ में पढ़ना = हठ करना । उ०—मन हठ परा न मान सिसावा ।—तुलसी । हठ सौदना—हठ ठानना । उ०—धर्मो हठ सौदित रही रो, सजनी ! टेरत दयाम सुजान ।—सूर । हठ घडिना = हठ बढाना ।

(२) हट्ट प्रतिज्ञा । अटल संकल्प । हट्टपूर्वक किसी बात का प्रहण । उ०—(क) जो हठ राई धर्म की, सेहि गलि करता । (ख) तिरिया सेक, हमीर हट चढ़ि न दूजी मार ।

मुहा०—हठ करना = हठ ठानना ।

(३) बलाकार । जबरदस्ती । (४) बाघु पर पीछे से आक्रमण । (५) अयदय होने की क्रिया या भाव । अयदयभावित्ता । अतिवायव्यता ।

हठधर्मी—संज्ञा पुं० [ सं० ] अपने मत पर उचित अनुचित या सत्य असत्य का विचार छोड़कर जमा रहना । दुरामह । फटपण ।

हठधर्मी—संज्ञा स्त्री० [ सं० हठ + धर्मी ] (१) सत्य असत्य, उचित अनुचित का विचार छोड़कर अपनी बात पर जमे रहना । दूसरे की बात गारा भी न मानना । दुरामह । (२) अपने मत या संप्रदाय की बात छोड़कर अड़ने की क्रिया या प्रवृत्ति ।



विचारों की संकीर्णता। कटरपन। जैसे,—यह मुसलमानों की हठधर्मा है कि वे स्वयं छेड़छाड़ करते हैं।

हठमात्र-किं प्र० [ हिं० हठ+मा (प्रत्य०) ] (१) हठ करना। जिद पकड़ना। दुरामह करना। उ०—(क) वरुणो नेकु न मानत वयोहँ सखि ये नैन हठे।—सूर। (ख) जो पी तुम या भाँति हटैहो।—सूर।

मुहा०—हठ कर=मलज्ज। जबरदस्ती। किसी का कहना न मानकर। उ०—सुनि हठि चला महा अभिमानी।—मुलसी। (२) प्रतिज्ञा करना। हठ संकल्प करना।

हठ योग—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह योग जिसमें चित्तवृत्ति हठात् बाह्य विषयों से हटाकर अंतर्मुख की जाती है और जिसमें शरीर को साधने के लिये यड़ी कठिन कठिन मुद्राओं और आसनों आदि का विधान है। नेती, धोती आदि क्रियाएँ इसी योग के अंतर्गत हैं। कायव्यूह का भी इसमें विशेष विस्तार किया गया है और शरीर के भीतर कुंडलिनी, अनेक प्रकार के चक्र तथा मणिपुर आदि स्थान माने गए हैं। श्यामभाराम की हठप्रदीपिका इसका प्रधान ग्रंथ माना जाता है। मरुचंद्रनाथ और गोरखनाथ इस योग के मुख्य आचार्य हो गए हैं। गोरखनाथ ने एक ग्रंथ भी चलाया है जिसके अनुयायी कनकटे कहलाते हैं। पर्वजलि के योग के दार्शनिक अंश को छोड़कर उसकी साधना के अंश को लेकर जो विस्तार किया गया है, यही हठ योग है।

हठविद्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हठयोग।

हठशील—वि० [ सं० ] हठ करनेवाला। हठी। जिद्दी।

हठात्—प्रत्य० [ सं० ] (१) हठपूर्वक। दुरामह के साथ। छोड़ने के मना करने पर भी। (२) ज़बरदस्ती से। बलात्। (३) अवश्य। ज़रूर।

हठारकार—संज्ञा पुं० [ सं० ] बलाकार। ज़बरदस्ती।

हठिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कोलाहल। शोर। हड़गुला।

हठी—वि० [ सं० ] हठिन् । हठ करनेवाला। अपनी बात पर अड़नेवाला। जिद्दी। टेकी।

हठीला—वि० [ सं० ] हठ+ईला (प्रत्य०) [ स्त्री० ] हठीली (१) हठ करनेवाला। हठी। जिद्दी। उ०—तू भजहँ तजि मान हठीली कहीं तोहि समुदाय।—सूर। (२) हठ-प्रतिज्ञ। बात का पक्का। अपने संकल्प या वचन को पूरा करनेवाला। (३) हड़कई में जमा रहनेवाला। पीर। उ०—पैसो तोहि न वृत्तिष हनुमान हठीले।—मुलसी।

हड़—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हठिन्की (१) एक यद्वा पेड़ जिसके पत्ते महप के से चौड़े चौड़े होते हैं और शिविर में शव जाते हैं। यह उत्तर भारत, मध्य प्रदेश, बंगाल और मद्रास के जंगलों में पाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत चिकनी, साफ, मजबूत और गूरे रंग की होती है जो हमारात में लगाने,

और खेती तथा सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। इसका फल व्यापार की एक यद्वा प्रसिद्ध वस्तु है और भारत प्राचीन काल से औषध के रूप में काम में लाया जाता है। वैद्यक में हड़ के बहुत अधिक गुण लिखे गए हैं। हड़ भेदक और कोष्ठ शुद्ध करनेवाली औषधों में प्रधान है और संकोचक होने पर भी पाचक चूर्णों में इसका योग रहा करता है। हड़ की कई जातियाँ होती हैं जिनमें से दो सर्व-साधारण में प्रसिद्ध हैं—छोटी हड़ और बड़ी हड़ या हरी। छोटी हड़ में भी जो छोटी जाति होती है, वह जौंगी हड़ कहलाती है। वैद्यक में हड़ शीतल, कसैली, मूत्र खानेवाली और रेचक मानी जाती है। पाचक, चूर्ण आदि में छोटी हड़ का ही अधिकतर व्यवहार होता है। त्रिफला में बड़ी हड़ (हरी) की जाती है। बड़ी हड़ का व्यवहार चमड़ा सिसाने, कपड़ा रँगने आदि में बहुत अधिक होता है। हड़ में कसाव-सार बहुत अधिक होता है, इससे यह संकोचक होती है। वैद्यक में हड़ सात प्रकार की कही गई है—विजया, रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया, जीवंती और चेतकी। (२) एक प्रकार का रहना जो हड़ के आकार का होता और नाक में पहना जाता है। लटकन।

हड़क—संज्ञा स्त्री० [ भ्रु० ] (१) पागल कुत्ते के काठने पर पानी के लिये गहरी आकुलता।

किं० प्र०—उठना।

(२) किसी वस्तु को पाने की गहरी इच्छा। पागल करनेवाली चाह। उरकट इच्छा। रटं। धुन। जैसे,—तुम्हें जो उस किताब की हड़क सी लग गई है।

किं० प्र०—लगना।

हड़कत—संज्ञा स्त्री० दे० “हड़जोड़”।

हड़कना—किं० प्र० [ हिं० हड़क ] किसी वस्तु के अभाव से दुःखी होना। तरसना।

हड़काना—किं० सं० [ दे० ] (१) आक्रमण करने, घेरने, तंग करने आदि के लिये पीछे लगा देना। लहकारना। पीछे छोड़ना। (२) किसी वस्तु के अभाव का दुःख देना। तरसना। जैसे,—बयों बघो की ज़रा ज़रा सी चीज के लिये हड़कते हो। (३) कोई वस्तु मँगिनेवाले को न देकर मगा देना। नार्हा करके हटा देना। उ०—हड़काया भला, परकाया नहीं भला। (कहा०)

हड़काया—वि० [ हिं० हड़कना ] [ स्त्री० ] हड़कार (१) पागल। बावला। ( कुत्ते के लिये ) जैसे,—हड़काई कुतिया। (२) किसी वस्तु के लिये उतावला। घबराया हुआ।

हड़गीला—संज्ञा पुं० दे० “हड़गीला”।

हड़गीला—संज्ञा पुं० [ हिं० हड़+गीला ] एक चिदिया का-

नाम। घाले की जाति का एक पक्षी जिसकी टोंगें और चोंच बहुत लंबी होती है। दूला। चनियारी।

हड़जोड़-संज्ञा पुं० [ हि० बाड़ + जोड़ना ] एक प्रकार की लता जिसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं। यह भीनरी चोट के स्थान पर लगाई जाती है। कहते हैं कि इससे छूटी हुई हड़ी भी जुड़ जाती है।

हड़ताल-संज्ञा स्त्री० [ सं० हट = दूकान या बजार + ताल ] किसी कर या महसूल से भयना और किसी बात से असंतोष प्रकट करने के लिये दूकानदारों का दूकान बंद कर देना या काम करनेवालों का काम बंद कर देना।

कि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा स्त्री० दे० "हरताल"।

हड़ना-कि० प्र० [ हि० हड़ा ] तोड़ में जाँवा जाना।

संयो० कि०—जाना।

हड़प-वि० [ भृ० ] (१) पेट में डाला हुआ। निगला हुआ।

(२) गायब किया हुआ। अनुचित रीति से ले लिया हुआ। उदाया हुआ।

मुहा०—हड़प करना = गायब करना। भैरवानी से ले लेना। अनुचित रीति से भ्रष्टाचार करना। जैसे,—दूसरे का दरवाड़ा हठी तरह हड़प कर लगे ?

हड़पना-कि० सं० [ भृ० हड़प ] (१) मुँह में डाल लेना। खा जाना। (२) दूसरे की वस्तु अनुचित रीति से ले लेना। गायब करना। उदाया लेना। जैसे,—दूसरे का माल या दरवाड़ा हड़पना।

हड़फूटना-संज्ञा स्त्री० [ हि० हाड़ + फूटना ] शरीर के भीतर का यह दर्द जो हड्डियों के भीतर तक मान पड़े। हड्डियों की पीड़ा।

हड़फूटना-संज्ञा स्त्री० [ हि० हड़फूटना ] चमगादड़। (खोग चमगादड़ की हड़की की सुरिया घेर के दर्द में पहगते हैं।)

हड़फोड़-संज्ञा पुं० [ हि० बाड़ + जोड़ना ] एक प्रकार की चिड़िया।

हड़पड़-संज्ञा स्त्री० [ भृ० ] उतावलेपन की मुद्रा। जल्दबाजी प्रकट करनेवाली गति विधि।

मुहा०—हड़पड़ करना = जल्दी मथाना। जल्दबाजी करना।

हड़पड़ाना-कि० प्र० [ भृ० ] जल्दी करना। उतावलापन करना। शीघ्रता के कारण कोई काम धराहरट से करना। आतुर होना। जैसे,—भभी हड़पड़भो मत, गाड़ी आने में देर है।

संयो० कि०—जाना।

कि० सं० किसी को जल्दी करने के लिये कहना। जैसे,—तुम जाकर हड़पड़भो तब वह घर से चलेगा।

संयो० कि०—देना।

हड़पड़िया-वि० [ हि० हड़पड़ + रिया (अर्थ०) ] हड़पड़ी करने-

वाला। जल्दी मथानेवाला। जल्दबाज। उतावला। आतुरता प्रकट करनेवाला।

हड़पड़-संज्ञा स्त्री० [ भृ० ] (१) जल्दी। उतावली। शीघ्रता।

(२) शीघ्रता के कारण भातुरता। जल्दी के कारण धराहरट। जैसे,—हड़पड़ में काम ठीक नहीं होता।

कि० प्र०—करना।—पढ़ना।—लगना।—होना।

मुहा०—हड़पड़ में पढ़ना = ऐसी विधि में पढ़ना जिसमें काम बहुत जल्दी जल्दी करना पड़े। उतावली की दशा में होना।

हड़पड़ाना-कि० सं० [ भृ० ] जल्दी करने के लिये उकसाना। शीघ्रता करने की प्रेरणा करना। जल्दी मथाकर दूसरे को धराहरट। जैसे,—वह क्यों न चलेगा, जब जाकर हड़पड़भो, तब उठेगा।

हड़हा-संज्ञा पुं० [ हि० हाड़ ] जंगली बैल।

संज्ञा पुं० [ हि० हाड़ ] वह जिसने किसी के पुरखे की हत्या की हो।

वि० [ हि० हाड़ ] [ स्त्री० हारो ] जिसकी देह में हड्डियाँ ही रह गई हों। बहुत दुबला पतला।

हड़ना-संज्ञा पुं० [ भृ० ] (१) चिड़ियों को उड़ाने का शब्द जो घेत के रखवाले करते हैं।

मुहा०—हड़ना हड़ना करना = बौचकर चिड़िया उड़ाना।

(२) पथकला बंदूक।

हड़वारिख-संज्ञा स्त्री० दे० "हड़वार"।

हड़वारल-संज्ञा स्त्री० [ हि० हाड़ + सं० अरि ] (१) हड्डियों की पंक्ति या समूह। (२) हड्डियों का ढाँचा। ठरती। उ०—राम सरासन तें चले तीर, रहे न शरीर हड़वारि फूटी।—मुलसी। (३) हड्डियों की माला। उ०—कापरि कया हड़वारि बाँधे। मुंडमाळ औ हत्या काँधे।—जायसी।

हड़ि-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल की काठ की पैड़ी जो पिर में डाल दी जाती थी।

हड़ीला-वि० [ हि० हाड़ + रला (अर्थ०) ] (१) जिसमें हड़ी हो।

(२) जिसकी देह में केवल हड्डियाँ रह गई हों। बहुत दुबला पतला।

हड़िया-संज्ञा स्त्री० [ सं० हरिया ] एक प्रकार की हड़री जो कटक में होती है।

हड़ना-संज्ञा पुं० [ सं० रथिका ] पर्वत जाति का एक कीट जो मधुमक्खियों के समान छत्ता धनाकर अंडे देता है। मित्र। बरें। तैरीया।

हड़नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० अरिष, प्रा० अरिष, अरिषि। (सं० कौशों का 'हड़' शब्द देवामाया से हो लिया जान पड़ा है) ] शरीर की तीन प्रकार की वस्तुओं—कठोर, कोमल और ह्रव—में से कठोर वस्तु जो भीतर ढाँचे या आधार के रूप में होती है। अरिष।

विशेष—शरीर के ढाँचे या ढाँची में अनेक आकार और प्रकार की हड्डियाँ होती हैं। यद्यपि ये खंड खंड होती हैं, पर एक दूसरी से जुड़ी होती हैं। मनुष्य के शरीर में दो सौ से अधिक हड्डियाँ होती हैं। हड्डियों के खंड खंड जुड़े रहने से अंगों में लचीलापन रहता है जिससे वे बिना किसी कठिनाता के अच्छी तरह ढिल ढुल सकते हैं। शरीर में हड्डियों के होने से ही हम सीधे खड़े हो सकते हैं। यद्यपि में हड्डियाँ मुलायम और लचीली होती हैं, इसी से यच्चे यर्ष सचा यर्ष तक खड़े नहीं हो सकते। युवावस्था आने पर हड्डियाँ अच्छी तरह हड़ और कड़ी हो जाती हैं। युवापे में वे जीर्ण और कड़ी हो जाती हैं और सहज में टूट सकती हैं।

शरीर की और वस्तुओं के समान हड्डी भी एक समीच वस्तु है; उसमें भी रफ का संचार होता है। इसमें चूने का अंश कुछ विशेष होता है। किसी हड्डी के टुकड़े को लेकर कुछ देर तक गंधक के तेजाब में रखें तो उसका कड़ापन दूर हो जायगा।

**मुहा०—**हड्डी उखड़ना = हड्डी का जोड़ खुल जाना। हड्डी का जोड़ खुलना = हड्डी उखड़ना। हड्डी टूटना = हड्डी फूटना। हड्डियाँ गढ़ना या तोड़ना = खूद मारना। खूद पीटना। हड्डियाँ निकल आना = गाँस न रहने के कारण हड्डियाँ दिखाई पड़ना। शरीर बहुत दुबला होना। पुरानी हड्डी = पुराने भादमी का हड शरीर। पुराने समय का मन्वृत भादमी। जैसे,—यह पुरानी हड्डी है, युवापे में भी तुम्हें पंटाड सकते हैं।

(२) कुल। यंत्र। खानदान। जैसे,—हड्डी देखकर विवाह करना।

**हृत्-वि०** [ सं० ] (१) यध किया हुआ। मारा हुआ। जो मारा गया हो। (२) जिस पर आपात किया गया हो। जिस पर चोट लगाई गई हो। पीटा हुआ। लाँछित। (३) खोया हुआ। गँवाया हुआ। जो न रह गया हो। रहित। विहीन। जैसे,—श्रीहृत्, हृत्साह। (४) जिसमें या जिस पर ठोकर रखी हो। जैसे,—हृत् रेणु। (५) नष्ट किया हुआ। बिगाड़ा हुआ। चौपट किया हुआ। खराब किया हुआ। (६) संग किया हुआ। ईरान। (७) पीछित। मस्त। (८) स्पर्श किया हुआ। लगा हुआ। जिससे छु गया हो। (ज्योतिष) (९) गया बीता। निहृत्। निरुग्मा। (१०) गुणा किया हुआ। गुणित। (गणित)

**हृत्क-**संज्ञा स्त्री० [ सं० हृत्क = काटना ] देही। येड़ जाती। अमतिष्ठा।

**क्रि० प्र०—**करना। होना।

**यौ०—**हृत्क इज्जती। हृत्क इज्जती।

**हृत्क इज्जती—**संज्ञा स्त्री० [ सं० हृत्क + इज्जत ] अमतिष्ठा। मान-हानि। येड़ जाती। जैसे,—उसने उज्ज अलवार पर हृत्क-इज्जती का दावा किया है।

**हृत्कान-वि०** [ सं० ] ज्ञान-शून्य। अचेत। येदोहा। संज्ञा-शून्य।

**हृत्कैच-वि०** [ सं० ] दुई का मारा। अभागा।

**हृत्कना-क्रि०** सं० [ सं० हृत्क + ना (दि० प्रत्ये०) ] (१) यध करना।

मार डालना। उ०—ऊहाँ राम-नन हर्तौ प्रचारी—तुलसी।

(२) मारना। पीटना। प्रहार करना। (३) अन्यया करना।

पालन न करना। भंग करना। न मानना। उ०—मद्यपान

रत, स्त्रीजित होई। सखिपात युत यातुल जोई। देखि देखि

तिनको सच भोगी। तासु मात हति पाप न छागै।—केशव।

**हृत्कप्रभ-वि०** [ सं० ] जिसकी कति या तेज नष्ट हो गया हो।

प्रभा-रहित।

**हृत्कप्रभाघ-वि०** [ सं० ] (१) जिसका प्रभाव न रह गया हो।

जिसका असर जाला रहा हो। (२) जिसका अधिकार न

रह गया हो। जिसकी बात कोई न मानता हो।

**हृत्कजि-वि०** [ सं० ] बुद्धि-शून्य। मूर्ख।

**हृत्कमागी-वि०** [ सं० हृत्क + दि० भाग्य ] [ स्त्री० हृत्कमागिनी, हृत्क-

भागिनी ] अभागा। भाग्यहीन।

**हृत्कमाग्य-वि०** [ सं० ] भाग्यहीन। वदकिसस्त।

**हृत्कवाना-क्रि०** सं० [ हि० हृत्कना का प्रेरणा ] यध कराना।

मरवाना।

**हृत्कवीर्य-वि०** [ सं० ] बल रहित। शक्तिहीन।

**हृत्क-वि०** स्त्री० [ सं० ] नष्ट चरित्र की। व्यभिचारिणी।

स्त्री० [ सं० ] रोना का मूलकाल ] धां।

**हृत्काना-क्रि०** सं० दे० "हृत्काना"।

**हृत्कश-वि०** [ सं० ] जिसे आशान न रह गई हो। निराश। नाउम्मीद।

**हृत्कहृत्-वि०** [ सं० ] मारे गये और घायल। जैसे,—उस युद्ध

में हृत्कहृत्तों की संख्या एक हजार थी।

**हृत्कसाह-वि०** [ सं० ] जिसे कुछ करने का उत्साह न रह गया

हो। जिसे कोई बात करने की उमंग न हो।

**हृत्क-संज्ञा पुं०** दे० "हाथ"।

**हृत्क-संज्ञा पुं०** [ हि० हृत्क, हाथ ] (१) किसी भारी औजार का

यह भाग जो हाथ से पकड़ा जाता हो। दस्ता। मूठ। (२)

रेशमी कपड़े बुननेवालों के कंधे में लकड़ी का वह ढाँचा जो

छत से लगाकर नीचे लटकता रहता है और जो हथौर उपर

झलता रहता है। (३) तीन हाथ के लगभग लंबा लकड़ी

का बड़ा जो एक छोर पर हाथ की हथेली के समान चौड़ा

और गहरा होता है और जिससे खेत की गलियों का पानी

घातों और उखीचा जाता है। हाथा। हथेरा। (४) निवार

बुनने में लकड़ी का एक औजार जो एक छोर कुछ पतला

होता है और कंधी की भीति सूत बँटाने के काम में आता

है। (५) एक प्रकार का भँदा रंग जो सुर्खों लिए पीला या

नटमैला होता है। (६) पत्थर या हृत् जो दंड करते समय

हाथ के नीचे रखा लेते हैं। (७) बेल के फलों का चौद

या गुच्छां । पंशा । (८) ऐयन से बना हाथ के पंजे का विद्ध जो प्यान भादि के भवसर पर खीवार पर बनाया जाता है । हाथ का छाया । (९) गधेरियों का वह औजार जिससे वे कंगल बुनते समय पटिया ठोकते हैं ।

हरया जड़ी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हाथी + जड़ी ] एक छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ सुगंधित होती हैं और जो भारतवर्ष के कई भागों में पाया जाता है । इसकी पत्तियों का रस घाव और कोढ़े आदि पर रखा जाता है । विषहृत् और भिद्र के डंक मारे हुए स्थान पर भी यह लगाया जाता है । संस्कृत में इसे हस्तिशुंडा कहते हैं ।

हरयी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हया, हय ] (१) किसी औजार या हथियार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाय । दस्ता । सूँठ । (२) चमड़े का वह टुकड़ा जिसे छीपी रंग छापते समय हाथ में लगा लेते हैं । (३) वह लकड़ी जिससे कढ़ाई में ईस का रस चलाते हैं । (४) गोमुली की तरह का ऊनी धैल जिससे घोड़े का घन पोंछते हैं । (५) बाघ गिरह लंबी लकड़ी जिसमें पीतल के छः दंत लगे रहते हैं और जो कपड़ा बुनते समय उसे ताने रहने के लिये लगाई जाती है ।

हरये-क्रि० वि० [ हि० हाय, हय ] हाथ में ।

मुद्रा—हथे चढ़ना = (१) हाथ में धाना । श्रविकार में धाना । मन होना । (२) धरा में होना । प्रभाव के नीचे धाना ।

हरयेदंड-संज्ञा पुं० [ हि० हया + दंड ] वह दंड ( कसरत ) जो जैवों में हाथ या पांश पर हाथ रखकर किया जाता है ।

हरया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मार डालने की क्रिया । धय । शून । क्रि० प्र०—फाना ।—होया ।

मुद्रा—हथा लगाना = हथ्या का पाप लगाना । किसी के बंध का तोप कर धाना । जैसे—गाय मारने से हथा लगती है ।

(२) धरान करनेवाली बात । संसट । बलेडा । जैसे,—  
(क) कहाँ की हथा लाए, हटाओ । (ख) चलो, हथा उठो ।

मुद्रा—हथा उठाना = संकट हटाना । हथ्या बिर लगाना = बलेके बंध काफ देना । संकट लाना ।

हरयारो-संज्ञा पुं० दे० "हथारा" ।

हरयार-संज्ञा पुं० [ सं० हया + कार ] [ जौ० हयारिन ] हथ्या करनेवाला । बंध करनेवाला । जान लेनेवाला । हिंस्र करनेवाला ।

हरयारो-संज्ञा स्त्री० [ हि० हयाप ] (१) हथ्या करनेवाली । प्राण लेनेवाली । (२) हथ्या का पाप । प्राणघथ का दोष । पुत्र का शत्रुय ।

क्रि० प्र०—उगना ।

हय-संज्ञा पुं० [ हि० हाय ] 'हाय' का संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार समस्त पदों में होता है । जैसे,—हयकंडा, हयलेवा ।

हय-उधार-संज्ञा पुं० [ हि० हाय + उधार ] यह कर्ज जो घोड़े

द्विनों के लिये यों ही बिना किसी प्रकार की लिखा पदों के लिया जाय । हयफेर । दस्तागर्द ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

हयकंडा-संज्ञा पुं० [ सं० हय, हि० हाय + सं० कंड ] (१) हाथ को इस प्रकार जल्दी से और ठंग के साथ चलाने की क्रिया जिससे देवनेवालों को उसके द्वारा किए हुए काम का ठीक ठीक पता न लगे । हाथ की सफाई । हस्तलाघव । हस्तकीचल । जैसे,—प्राज्ञीगरो के हयकंडे । (२) गुप्त चाल । चालकी का ठंग । चतुराई की युक्ति । जैसे,—ये सब हयकंडे में खूब पदधानता हैं ।

हयकड़ी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हाय + कड़ा ] घोरी से बंधा हुआ छोड़े का कड़ा जो कैदी के हाथ में पहना दिया जाता है ( जिसमें वह भाग न सके ) ।

क्रि० प्र०—पुं० ।—डालना ।

हयकरा-संज्ञा पुं० [ हि० हाय + करान ] (१) धूमिले की कमना में बंधा हुआ कपड़े या रस्सी का टुकड़ा जिसे धुनिए हाथ से पकड़े रहते हैं । (२) चमड़े का दस्ताना जिसे चारों के लिये केंटीले झाड़ काटते समय पहन लेते हैं ।

हयकरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हाय + कड़ा ] दूकान के क्रियादों में लगा हुआ एक प्रकार का ताब जो एक कड़ी से जुड़े हुए छोड़े के दो कर्कों के रूप में होता है और दोनों ओर ताले के अंगुठे की तरह खुला रहता है । इसी में हाथ डालकर छुंजी लगा दी जाती है ।

हयकल-संज्ञा पुं० [ हि० हाय + कल ] (१) पैव कसने के लिये छुहारों का एक औजार । (२) करवे की दो शेरियाँ जिनका एक छोर तो हथे के ऊपर बंधा रहता है और दूसरा लगे में । (३) तार मूँठने के लिये एक औजार जो भाद्र अंगुल का होता है और जिसमें पैचकना लगा होता है । (४) दे० "हयकरा" ।

हयकोड़ा-संज्ञा पुं० [ हि० हाय + कोड़ा ] कुतरी का एक पैव ।

हयकंडा-संज्ञा पुं० दे० "हयकंडा" ।

हयहुट-वि० [ हि० हाय + हुटना ] जिसका हाथ मारने के लिये बहुत जल्दी हुटना या उठता हो । जिसकी मार बैठने की आशय हो ।

हयपरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हाय + परा ] लकड़ी की पटरी जो नाव से लगाकर जमीन तक दो आधमी इसकिये पकड़े रहते हैं जिसमें उस पर से होकर लोग उतर जायें ।

हयनाल-संज्ञा पुं० [ हि० हाथी + नाल ] वह तोप जो हाथियों पर चढ़ती थी । गडानाल ।

हयनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हाथी + नी (भय०) ] हाथों की मादा ।

हयफूल-संज्ञा पुं० [ हि० हाय + फूल ] (१) एक प्रकार की आलसयात्री । (२) हथेली की पीठ पर पहनने का एक

विशेष—शरीर के हाँचे या ठररी में अनेक आकार और प्रकार की हड्डियाँ होती हैं। यद्यपि ये रंग खंड होती हैं, पर एक दूसरी से जुड़ी होती हैं। मनुष्य के शरीर में दो सौ से अधिक हड्डियाँ होती हैं। हड्डियों के खंड खंड जुड़े रहने से अंगों में लचीलापन रहता है जिससे वे बिना किसी कठिनता के अच्छी तरह दबि लुल सकते हैं। शरीर में हड्डियों के होने से ही हम सीधे खड़े हो सकते हैं। वयवन में हड्डियाँ मुलायम और लचीली होती हैं; इसी से बच्चे वर्ष सवा वर्ष तक खड़े नहीं हो सकते। युवावस्था आने पर हड्डियाँ अच्छी तरह दृढ़ और कड़ी हो जाती हैं। बुढ़ापे में वे जीर्ण और कड़ी हो जाती हैं और सहज में टूट सकती हैं।

शरीर की और वस्तुओं के समान हड्डियाँ भी एक सजीव वस्तु हैं; उसमें भी रक्त का संचार होता है। इसमें चूने का भंडा कुछ विशेष होता है। किसी हड्डियों के टुकड़े को लेकर कुछ देर तक गंधक के तेजाब में रखें तो उसका कदापन दूर हो जायगा।

**मुहा०—**हड्डी उखड़ना = हड्डी का जोड़ तुलना। हड्डी का जोड़ तुलना = हड्डी उखड़ना। हड्डी टूटना = हड्डी फूटना। हड्डियों गढ़ना या तोड़ना = खूब मारना। खूब पीटना। हड्डियाँ निकल आना = मांस न रहने के कारण हड्डियाँ दिखाई पड़ना। शरीर बहुत दुबला होना। पुरानी हड्डी = पुराने आदमी का हड्डी शरीर। पुराने समय का मन्वृत आदमी। जैसे,—यह पुरानी हड्डी है, बुढ़ापे में भी तुम्हें पंछाड़ सकते हैं। (२) कुल। पंश। खानदान। जैसे,—हड्डी देकर विवाह करना।

**हृत्-वि० [ सं० ]** (१) वध किया हुआ। मारा हुआ। जो मारा गया हो। (२) जिस पर आघात किया गया हो। जिस पर चोट लगाई गई हो। पीटा हुआ। तोड़ित। (३) खोया हुआ। गँवाया हुआ। जो न रह गया हो। रहित। विहीन। जैसे,—श्रीहत, हृत्तोसाह। (४) जिसमें या जिस पर टोकर लगी हो। जैसे,—हृत् रेणु। (५) नष्ट किया हुआ। बिगाड़ा हुआ। चौपट किया हुआ। खराब किया हुआ। (६) संग किया हुआ। ईरान। (७) पीड़ित। (८) मत्त। (९) स्पर्श किया हुआ। लगा हुआ। जिससे छू गया हो। (उपोत्तिप) (१०) गया पीता। निरुद्ध। निरुक्ता। (११) गुणा किया हुआ। गुणित। (गणित)

**हृत्क-संज्ञा** स्त्री० [ भ० हृत्क = कान्ठ ] देही। धेड़ जाती। अमतिष्ठा।

**हृत्क्रि० प्र०—**रत्ना। होना।

**यौ०—**हृत्क इज्जत। हृत्क इज्जती।

**हृत्क इज्जती—**संज्ञा स्त्री० [ भ० हृत्क + इज्जत ] अमतिष्ठा। मान-दानि। चंद्रज्जती। जैसे,—उसने उस अलखार पर हृत्क-इज्जती का दाना किया है।

**हृत्कान-वि० [ सं० ]** ज्ञान-शून्य। अचेत। बेहोश। संज्ञा-शून्य।  
**हृत्कैच-वि० [ सं० ]** दई का मारा। अभागा।

**हृत्कना-कि० सं० [ सं० हृत् + ना (दि० प्रय०) ]** (१) वध करना। मार डालना। उ०—कहाँ राम रन हईं प्रवारी—तुलसी। (२) मारना। पीटना। प्रहार करना। (३) अन्यथा करना। पालन न करना। भंग करना। न मानना। उ०—सवयान रत, स्त्रीगित होई। सतिगत युत वातुल जोई। देख देखि तिनको सध भागै। तासु बात हृत्ति पाप न लागै।—केशव।

**हृत्कप्रभ-वि० [ सं० ]** जिसकी कविता या तेज नष्ट हो गया हो। प्रभा-रहित।

**हृत्कप्रभाच-वि० [ सं० ]** (१) जिसका प्रभाव न रह गया हो। जिसका असर जाता रहा हो। (२) जिसका अधिकार न रह गया हो। जिसकी बात कोई न मानता हो।

**हृत्कबुद्धि-वि० [ सं० ]** बुद्धि-शून्य। मूर्ख।

**हृत्कभागी—**वि० [ सं० हृत् + दि० भाग्य ] [ स्त्री० हृत्कभागिनी; हृत्-भागिनी ] अभागा। भाग्यहीन।

**हृत्कभाग्य-वि० [ सं० ]** भाग्यहीन। सद्किस्मत।

**हृत्कधाना-कि० सं० [ दि० हृत्काना का प्रेरणा० ]** वध करना। मरवाना।

**हृत्कचौट्य-वि० [ सं० ]** बल रहित। शक्तिहीन।

**हृत्का-वि० स्त्री० [ सं० ]** नष्ट चरित्र की। व्यभिचारिणी।  
**हृत्ककि० सं० [ स्त्री० ]** रोना का मूतकाल। धा।

**हृत्काना-कि० सं० दे० "हृत्काना"।**

**हृत्काश-वि० [ सं० ]** जिसे आना न रह गई हो। निराश। नाउम्मीद।

**हृत्काहृत्-वि० [ सं० ]** मारे गए और धायल। जैसे,—उस बुढ़ में हृत्काहृत् की संख्या एक हजार थी।

**हृत्कोसाह-वि० [ सं० ]** जिसे कुछ करने का उत्साह न रह गया हो। जिसे कोई बात करने की उमंग न हो।

**हृत्क—**संज्ञा पुं० दे० "हाथ"।

**हृत्क—**संज्ञा पुं० [ दि० हृत्क, हाथ ] (१) किसी भारी औजार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाता हो। दस्ता। मूठ। (२) रेशमी कपड़े बुननेवालों के करघे में लकड़ी का वह टाँचा जो छत से लगाकर नीचे लटकता रहता है और जो धंधर उभर झुलता रहता है। (३) तीन हाथ के लगभग लंबा लकड़ी का बंधा जो एक छोर पर हाथ की हथेली के समान चौड़ा और गहरा होता है और जिससे चेत की नाडियों का पानी चारों ओर उलीचा जाता है। हाथा। धेरा। (४) नियार बुनने में लकड़ी का एक औजार जो एक ओर कुछ पतला होता है और कंधी की मॉति सूत धराने के काम में आता है। (५) एक प्रकार का अर्ध रंग जो मुँहों लिए पीला या मटमैला होता है। (६) पथर या ईंट जो दंड धरते समय हाथ के नीचे रखे जाते हैं। (७) बेल के फलों का घोंद

यां गुच्छा। पंजा। (८) देवन से बना हाथ के पंजे का चिह्न जो पूजन आदि के अवसर पर हाथों पर बनाया जाता है। हाथ का छाया। (९) गधेरियों का वह धौतार जिससे वे कंठ धुनते समय पटिया ठोकते हैं।

**हत्यां जड़ों-संज्ञा स्त्री** [ हि० हाथी + जड़ो ] एक छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ सुरंगित होती हैं और जो आतसर्षप के कई भागों में पाया जाता है। इसकी पत्तियों का रस घाव और फोड़े आदि पर रखा जाता है। विषट् और मिट्ट के बंक मोटे हुए स्थान पर भी यह लगाया जाता है। संस्कृत में इसे हस्तिशुंटा कहते हैं।

**हृथी-संज्ञा स्त्री** [ हि० हृथ, घाव ] (१) किसी औजार या हथियार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाय। दस्ता। सूँठ। (२) चमड़े का वह टुकड़ा जिसे छोटी रंग छावते समय हाथ में लगा लेते हैं। (३) वह लकड़ी जिससे कढ़ाई में ईँक का रस चलाते हैं। (४) गोमुथी की तरह का ऊनी थैला जिससे घोड़ों का पदन पोछते हैं। (५) बारह गिरह लंबी लकड़ी जिसमें पीतल के छः दौँत लगे रहते हैं और जो कपड़ा धुनते समय उसे ताने रहने के लिये लगाई जाती है।

**हृथे-कि० वि०** [ हि० हाथ, हत्य ] हाथ में।

**मुह्रा-हृथे चन्दन** = (१) हाथ में धान। अन्विकार में धान। मत होना। (२) बत में होना। प्रभाव के मोडर माना।

**हृथेदंड-संज्ञा पुं०** [ हि० हत्या + दंड ] यह दंड (कसरत) जो ऊँची हुँट या पाथर पर हाथ रखकर किया जाता है।

**हृथ्या-संज्ञा स्त्री** [ सं० ] (१) मार चलने की क्रिया। यथ। खून। **कि० प्र०**—करना।—होना।

**मुह्रा-हृथ्या लगना** = हत्या का पाप लगना। किली के बथ का शेष लकर भाग। जैसे—गाय मारने से हृथ्या लगती है।

(२) ईशान करनेवाली यात। संसद। बलेडा। जैसे,—  
(क) कहीं की हत्या लप, हदाओ। (ख) चलो, हत्या टली।

**मुह्रा-हृथ्या टलना** = संकट दूर होना। हृथ्या सिर लगाना = बड़े का काम देना। संकट लादना।

**हृथ्यारो-संज्ञा पुं०** दे० "हृथ्यारा"।

**हृथ्यारा-संज्ञा पुं०** [ सं० हृथ्या + कार ] [ सं० हृथ्यारिन ] हृथ्या करनेवाला। यथ करनेवाला। जान लेनेवाला। हिंसा करनेवाला।

**हृथ्यारी-संज्ञा स्त्री** [ हि० हृथ्या ] (१) हृथ्या करनेवाली। प्राण लेनेवाली। (२) हृथ्या का पाप। प्राणघथ का शेष। खून का अज्ञाय।

**कि० प्र०**—लगना।

**हृथ-संज्ञा पुं०** [ हि० हाथ ] 'हाथ' का संक्षिप्त रूप जिसका स्पवहार समस्त पदों में होता है। जैसे,—हथकंठा, हथलेवा।

**हृथ-अधार-संज्ञा पुं०** [ हि० हाथ + आधार ] यह कर्ज जो घोड़े

दिवों के लिये पौं ही बिना किसी प्रकार की लिखा पदों के लिया जाय। हथकेर। दस्तगदर्दों।

**कि० प्र०**—देना।—लेना।

**हृथकंठा-संज्ञा पुं०** [ सं० हस्त, हि० हाथ + सं० कंठ ] (१) हाथ को इस प्रकार अट्टी से और डंग के साथ चलाने की क्रिया जिससे देरनेवालों को बसके द्वारा किए हुए काम का ठीक ठीक पता न लगे। हाथ की सफाई। हस्तलापन। हस्त-कौशल। जैसे,—बाजीगरों के हृथकंठे। (२) गुप्त चाल। चाछाकी का डंग। चतुराई की युक्ति। जैसे,—ये सभ हृथकंठे में खूब पहचानता हूँ।

**हृथकड़ी-संज्ञा स्त्री** [ हि० हाथ + कड़ा ] बोरी से बंधा हुआ छोटे का कड़ा जो कैरी के हाथ में पहना दिया जाता है (जिसमें वह भाग न सके)।

**कि० प्र०**—पहनना।—ढालना।

**हृथकरा-संज्ञा पुं०** [ हि० हाथ + कराना ] (१) धुनिये की कमान में बँधा हुआ कपड़े या रस्सी का टुकड़ा जिसे धुनिये हाथ से पकड़े रहते हैं। (२) चमड़े का दस्ताना जिसे पार के लिये कँटीले हाड़ काटते समय पहन लेते हैं।

**हृथकरी-संज्ञा स्त्री** [ हि० हाथ + कड़ा ] दूकान के क्रियादों में लगा हुआ एक प्रकार का ताला जो एक कड़ी से जुड़े हुए छोटे के दो कपड़ों के रूप में होता है और दोनों ओर ताले के धँकड़े की तरह खुला रहता है। इसी में हाथ बाँधकर कुंजी लगा दी जाती है।

**हृथकल-संज्ञा पुं०** [ हि० हाथ + कल ] (१) पंच कसने के लिये लुहारों का एक औजार। (२) करवे की दो धोरियाँ जिनका एक छोर तो हृथे के ऊपर बँधा रहता है और दूसरा लगे में। (३) तार मुँडने के लिये एक औजार जो भाट अंगुल का होता है और जिसमें पंचकडा लगा होता है। (४) दे० "हृथकरा"।

**हृथकोड़ा-संज्ञा पुं०** [ हि० हाथ + कोडा ] कुन्ती का एक पैव।

**हृथकंठा-संज्ञा पुं०** दे० "हृथकंठा"।

**हृथकुट-वि०** [ हि० हाथ + हृथ्या ] जिसका हाथ भारने के लिये बहुत लकड़ी छूटता या उठता हो। जिसको मार सँठने की आदत हो।

**हृथधरी-संज्ञा स्त्री** [ हि० हाथ + धरना ] लकड़ी की पट्टी जो नाव से लगाकर जमीन तक दो आदमी इसलिये पकड़े रहते हैं जिसमें उस पर से होकर लोग बतर जायँ।

**हृथनाल-संज्ञा पुं०** [ हि० हाथी + नाल ] यह शेष जो हाथियों पर चळती थी। गजनाल।

**हृथनी-संज्ञा स्त्री** [ हि० हाथी + नी (प्रब०) ] हाथों की मादा।

**हृथपूत-संज्ञा पुं०** [ हि० हाथ + पूत ] (१) एक प्रकार की आतशायनी। (२) हथेली की पीठ पर पहनने का एक

जदाऊ गहना जो सिकड़ियों के द्वारा एक ओर तो धँगुधियों  
मे धँधा रहता है और दूसरी ओर कलाई से। हथसँकर।  
हथसंकर।

हथफेर-संज्ञा पुं० [ हिं० हाथ + फेरना ] (१) प्यार करते हुए  
दारीर पर हाथ फेरने की क्रिया। (२) रुपये पैसे के लेन  
देन के समय हाथ से कुछ चालाकी करना जिससे दूसरे के  
पास कम या बराबर सिको जायें। हाथ की चालाकी।  
(३) दूसरे के माल को चुपचाप ले लेना। किसी की वस्तु  
या धन को सफाई से उड़ा लेना।

क्रि० प्र०—करना।

(७) थोड़े दिनों के लिये बिना लिखा पढ़ी के लिखा या दिया  
हुआ कर्ज। हाथ-उधार।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

हथपेंटा-संज्ञा पुं० [ हिं० हाथ + पेंटा ] एक प्रकार की कुदाली जो  
पाड़े गले काटने के काम में आती है।

हथरकी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हाथ + रखना ] चमड़े की थैली जो  
कोष्ठ में गन्ने डालनेवाला हाथ में पहने रहता है।

हथली-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हाथ ] चरखे की मुठिया जिसे पकड़ कर  
चरखा चलाते हैं।

हथलेधा-संज्ञा पुं० [ हिं० हाथ + लेना ] विवाह में घर का कन्या  
का हाथ अपने हाथ में लेने की रीति। पाणिग्रहण। उ०—सेद  
सलिल, रोमांच कुल गहि बुलुही अरु नाथ। दियो दियो  
सँग हाथ के हथलेधा ही हाथ।—विहारी।

हथवाँस-संज्ञा पुं० [ हिं० हाथ + वाँस (वप०) ] नाव चलाने के  
सामान। जैसे,—लग्गा, पतवार, उँड़ा इत्यादि। उ०—  
अस विचारि गुह जाति सन कहेउ सजग सप होहु। हथ-  
वाँसहु पोरहु तरनि कीजिय धाथरोहु।—तुलसी।

हथवाँसना-क्रि० सं० [ हिं० हाथ + वाँसना ] किसी व्यवहार  
में छाई जानेवाली वस्तु में पहले पहल हाथ लगाना।  
काम में लगाना। व्यवहार करना।

हथसंकर-संज्ञा पुं० [ हिं० हाथ + संकर ] हथेली की पीठ पर  
पहनने का एक गहना जो मूल के आकार का होता है और  
जिसमें पतली सिकड़ियाँ लगी होती हैं। हथमूल।

हथसँकरा-संज्ञा पुं० दे० “हथसंकर”।

हथसार-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हाथी + सं० शाला, हिं० सार ] वह। घर  
जिसमें हाथी रखे जाते हैं। फ्रीलखाना। गजशाला।

हथा-संज्ञा पुं० [ हिं० हाथ ] गीले पिते हुए चापक और हव्दी  
पोत कर बनाया हुआ पंजे का चिह्न। ऐसन का धावा।  
( यह पूजन आदि में दीवार पर बनाया जाता है। )

हथाहथोली-संज्ञा पुं० [ हिं० हाथ ] (१) एक के हाथ से दूसरे के  
हाथ में बराबर जाते हुए। हाथी हाथ। (२) शीघ्र। तुरंत।

हथिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० हतिनी, प्रा० हथिणी ] हाथी की मादा।

हथिया-संज्ञा पुं० [ सं० हस्त, प्रा० हथ (नपत्र) ] हस्त नक्षत्र।

संज्ञा स्त्री० [ हिं० हाथ ] कंधी के ऊपर की लकड़ी। (उल्लाहे)  
हथियाना-क्रि० सं० [ हिं० हाथ + आना (प्रय०) ] (१) हाथ में  
करना। अधिकार में करना। ले लेना। (२) दूसरे की वस्तु  
धोखा देकर ले लेना। उड़ा लेना। (३) हाथ में पकड़ना।  
हाथ से पकड़कर काम में लाना।

हथियार-संज्ञा पुं० [ हिं० हथियाना = हाथ से पकड़ना ] (१) हाथ  
से पकड़कर काम में लाने की साधन-वस्तु। यह वस्तु  
जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय। औजार। (२)  
तलवार, भाला आदि आक्रमण करने या मारने का साधन।  
अथ शस्त्र।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

मुहा०—हथियार बाँधना या लगाना = भ्रम शूल धारण करना।

हथियार उठाना = (१) मारने के लिये भ्रम हाथ में लेना।

(२) लड़ाई के लिये तैयार होना। हथियार करना = हथियार  
चलाना।

(३) हिलोँदिया। (बाजारू)

हथियारबंद-वि० [ हिं० हथियार + बन्दा, सं० बंध ] जो  
हथियार बाँधे हो। सशस्त्र। जैसे,—हथियारबंद सिपाही।

हथुई मिट्टी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हाथ + मिट्टी ] गीली मिट्टी का बड़  
लेप जो कच्ची दीवार का खुरदुरापन दूर करने के लिये  
लगाया जाता है।

हथुई रोटी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हाथ + रोटी ] वह रोटी जो गीले  
आटे को हाथ से गड़कर बनाई गई है।

हथेरा-संज्ञा पुं० [ हिं० हाथ + परा (प्रय०) ] तीन साढ़े तीन हाथ  
लंबा लकड़ी का यह बड़ा जिसका एक सिरा हथेली की तरह  
थोड़ा होता है और जिससे खेती की नाली का पानी धारों  
और सिंचाई के लिये उलीचते हैं। हाथा।

हथेरीली-संज्ञा स्त्री० दे० “हथेली”।

हथेल-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हाथ ] वह लचीली कमाची जिस पर  
सुना हुआ करदा तानकर रखा जाता है। पतिक।  
पनखट। (उल्लाहे)

हथेली-संज्ञा स्त्री० [ सं० हस्ततल, प्रा० हस्ततल ] (१) हाथ की  
कलाई का चौड़ा सिरा जिसमें अँगुलियाँ लगी होती हैं।  
हाथ की गद्दी। हस्ततल। करतल।

मुहा०—हथेली में आना = (१) हाथ में आना। अधिकार में  
आना। मिलना। प्राप्त होना। (२) वस्तु में होना। हथेली में  
करना = अपने अधिकार में करना। ले लेना। हथेली सुगलाना =  
द्रव्य मिलने का भाग्य सूचित होना। कुछ मिलने का राज्ञ  
होना। ( यह अर्थ है कि जब हथेली गुनजाती है, तब कुछ मिलता  
है। ) हथेली का फकीला = धर्मन सुकुमार वस्तु। बहुत बहुत  
धन जिसके दृष्टने, सुने का मदा पर रहे। हथेली देना या

छगाना = हाथ या सहाय देना । सहायता करना । मदद करके सहायता । हथेली बजाना = ताली पीटना । किसीकी हथेली में बाल जमे हैं ? = कौन क्या संसार में है ? जैसे,—किसीकी हथेली में धाल जमे हैं जो उसे मार सकता है । हथेली से = निवृत्त चौरस या तषाट । समतल । हथेली पर जान होना = पेशी स्थिति में पटना जिसमें प्राण जाने का भय हो । जान जोहो होना ।

(२) चारसे की मुठिया जिसे पकड़कर खाना चलाते हैं ।

हथोरी-छापी-छापी ली० दे० "हथेली" । उ०—जानी रकत हथोरी बूझी । रवि परमात ताव, वै जूझी ।—जायसी ।

हथोटी-छापी ली० [ हि० हाथ + ठोटी (मय०) ] (१) किसी काम में हाथ लगाने का दंग । हाथ से करने का दब । हस्तशील । जैसे,—अभी तुम्हें इसकी हथोटी नहीं मालूम है, इसी से देर लगती है । (२) किसी काम में लगा हुआ हाथ । किसी काम में हाथ डालने की क्रिया या भाव । जैसे,—उसकी हथोटी बड़ी मनहूस है । जिस काम में हाथ लगाता है, वह चोपट हो जाता है ।

हथोटी-छापी पुं० [ हि० हाथ + थोटी (मय०) ] [ ली० भवना + हथोरी ]

(१) किसी वस्तु को टोंकने, पीटने या गड़ने के लिये साधन वस्तु । लुहारों या सुनारों का वह औजार जिससे वे किसी धातुखंड को तोड़ने, पीटने या गड़ते हैं । मारतौल । (२) कील टोंकने, चूँटे गड़ने आदि का औजार ।

हथोड़ी-छापी ली० [ हि० हथोड़ा ] छोटा हथोड़ा ।

हथोना-छापी पुं० [ हि० हाथ + थोना (मय०) ] बूढ़े और दुलहन के हाथ में मिठाई रखने की शक्ति ।

हथ्यार-छापी-छापी पुं० दे० "हथियार" ।

हद-छापी ली० [ म० ] (१) किसी वस्तु के विस्तार का अंतिम सिरा । जिसो चीज की छंवाई, चौड़ाई, ऊँचाई वा गहराई की सय से अधिक पहुँच । सीमा । मर्यादा । जैसे,—सदक की हद, गाँव की हद ।

हौ०—हदबंदी । हदसमाभत ।

मुहा०—हद बँधना = सीमा निर्धारित होना । यह उदरपया बाना कि किसी चीज का । येरा मयवा संभार, चौकारे यहाँ तक है । हद बँधना = सीमा निर्धारित करना । हद तोड़ना = सीमा के बाहर पाना वा कुछ करना । सीमा का भतिकमण करना । हद से बाहर = उदरपरं हरे सीमा के भागे । हद कायम करना = दे० "हद बंधना" ।

(२) किसी वस्तु या बात का सय मे अधिक परिमाण जो उदरपया गया हो । अधिक से अधिक संख्या वा परिमाण जो साधारणतः माना जाता हो या उचित हो । जैसे,—

(क) उस मेले में हद से ज्यादा आदमी आए । (ख) उसने मिहनुष की हद कर दी । उ०—बैला की चौकिड, कुँरा

धार करे करे, कुदि कुदि केदरी कलंक लंक हद ली ।—केशव ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—हद से ज्यादा = बहुत अधिक । अर्थतः । हद व हिसाब नहीं = बहुत ही ज्यादा । अर्थतः । भाव । अविशेष ।

(१) किसी बात को उचित सीमा । कोई बात कहाँ तक करनी चाहिए, इसका नियत मान । कोई काम, व्यवहार या भावण कहाँ तक ठीक है, इसका अंदाज । मर्यादा । जैसे,—तुम तो हर एक बात में हद से बाहर चले जाते हो ।

मुहा०—हद से गुजरना = मर्यादा का भतिकमण करना । जहाँ तक उचित हो, उससे किसी बात में भागे पड़ना ।

हद समाभत-छापी ली० [ म० ] किसी बात का दावा करने के लिये समय की नियत अवधि । चद मुकररे यत जिसके भीतर अदालत में दावा करना चाहिए । (कचहरी)

मुहा०—हद समाभत होना = हद समाभत पूरी होना । दावा करने की अवधि का शीत जाना ।

हद सियासत-छापी ली० [ म० ] किसी न्यायालय के अधिकार की सीमा । उतना स्थान जितने के भीतर के मुकदमे कोई अदालत ले सके ।

हदीस-छापी ली० [ म० ] मुसलमानों का वह धर्मग्रंथ जिसमें सुहम्द साहब के काव्यों के कुशल और मित्र मित्र अवसरों पर कहे हुए वचनों का संग्रह है और जिसका व्यवहार बहुत कुछ ग्मृति के रूप में होता है ।

हनन-छापी पुं० [ सं० ] [ वि० हननीय, हनित ] (१) मार डालना । धध करना । जान मारना । (२) धाघत करना । चोट लगाना । पीटना । (३) गुणन । गुणा करना । खरब देना । (गणित)

हनना-छापी-कि० ल० [ सं० हनन ] (१) मार डालना । धध करना । प्राण लेना । उ०—हन गई हने निसावर जेते ।—दुलसी । (२) धाघत करना । चोट मारना । प्रहार करना । कत्त कर मारना । उ०—(क) मुष्टिक एक ताहि कवि हनी । (ख) भायव ही उर-महँ हनेउ मुष्टि-प्रहार प्रथो ।—गुलसी । (३) पीटना । टोंकना । (४) लकड़ी से पीट या टोंक कर बमाना । उ०—जोगीद सिद्ध मुनीस देय बिलोकि प्रमु दुँहुनि हनी ।—गुलसी ।

हननीय-वि० [ सं० ] (१) हनन करने योग्य । मारने योग्य । (२) जिसे मारना हो ।

हनपनी-छापी पुं० [ सं० ] मुसलमानों में सुविधों का एक संग्रह । हनवाना-कि० ल० [ हि० हनना वा मरणा० ] हनने का कार्य दूसरे से कराना । मरवाना ।

कि० प्र० दे० "गहबाना", "गहलाना" ।

हनाना-कि० म० दे० "नदाना" ।



हनुमन्त-संज्ञा पुं० दे० "हनुमन्त" ।

हनु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दाढ़ की हड्डी । जवड़ा । छ(२) हड्डी । धिबुक ।

हनुका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दाढ़ की हड्डी । जवड़ा ।

हनुमद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रोग जिसमें जवड़े बैठ जाते हैं और जल्दी खुलते नहीं । ( यह किसी प्रकार की घोट लगने आदि से वायु कुपित होने के कारण होता है । )

हनुमेद-संज्ञा पुं० [ सं० ] जवड़े का सुलना ।

हनुमंत-संज्ञा पुं० दे० "हनुमान्" ।

हनुमंत छड़ी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हनुमन्त + छना ] मालखंभ की एक कसरत जिसमें सिर नीचे और पैर ऊपर की ओर करके सामने छाते हैं और फिर ऊपर खसकते हैं ।

हनुमंतो-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हनुमन्त ] मालखंभ की एक कसरत जिसमें एक पाँव के अंगूठे से यँत पकड़कर खूब तानते हैं और फिर दूसरे पाँव को अंठी देकर और उससे यँत पकड़कर बैठते हैं ।

हनुमत्कवच-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हनुमान को प्रसन्न करने का एक मंत्र जिसे लोग ताबीज वगैरह में रखकर पहनते हैं । (२) हनुमान् जी को प्रसन्न करने की एक स्तुति ।

हनुमान्-वि० [ सं० हनुमत् ] (१) दाढ़वाला । जवड़ेवाला । (२) भारी दाढ़ या जवड़ेवाला । महावीर ।

संज्ञा पुं० पंपा के एक वीर यंदर जिन्होंने सीता-हरण के उपरांत रामचंद्र की बड़ी सेवा और सहायता की थी । ये लंका में जाकर सीता का समाचार भी लाए थे और रावण की सेना के साथ यद्दी वीरता के साथ लड़े थे । ये अपने अपार बल, वीरता और वेग के लिये प्रसिद्ध हैं । और यंदरों के समान इनकी उरगति भी विष्णु के अवतार राम की सहायता के लिये देवाना से हुई थी । इनकी माता का नाम अंजना था और ये वायु या मरुत्व देवता के पुत्र कहे जाते हैं । कहीं कहीं इन्हें शिव के वीर्य या अंश से भी उत्पन्न कहा है । ये रामभक्तों में सब से आदि कहे जाते हैं और राम ही के समान इनकी पूजा भी भारत में सर्वत्र होती है । ये यक्षप्रदाता माने जाते हैं और हिंदू पंडितवान या योद्धा इनका नाम लेते हैं और इनकी वपासना करते हैं ।

हनुमान बैठक-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हनुमान् + बैठक ] एक प्रकार की बैठक (कसरत) जिसमें एक पैर पंखरे की तरह आगे बढ़ाते हुए बैठते उठते हैं ।

हनुमोल-संज्ञा पुं० [ सं० ] दाढ़ का एक रोग जिसमें बहुत दर्द होता है और मुँह खोलते नहीं बनता ।

हनुल-वि० [ सं० ] छुट या टढ़ दाढ़शाल । मजबूत जवड़ेवाला ।

हनुफाल-संज्ञा पुं० [ सं० हनु + फल ] एक सायिक

छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह मात्राएँ और अंत में एक लघु होते हैं ।

हनुमान्-संज्ञा पुं० दे० "हनुमान्" ।

हनुमन्-प्रबन्ध [ फा० ] अभी । अभी तक । जैसे,—हनुमन् दिही दूर है । उ०—कवि सेवक पूरे भए तौ कहा पैं हनुज है मीज मनोज ही की।—सेवक ।

हनुव-संज्ञा पुं० [ देरा० ] दिंडोल राग के एक पुत्र का नाम ।

हप-संज्ञा पुं० [ अनु० ] मुँह में चट से लेकर आँठ बंद करने का वाद्य । जैसे हप से खा गया ।

मुहा०—हप कर जाना = ऋत से मुँह में डालकर खा-जाना । पटपट चढ़ा जाना । उ०—देखते देखते सारा भात हप कर गया ।

हपटाना-कि० प्र० [ हिं० हॉकना ] हॉकना ।

हस्तगाना-संज्ञा पुं० [ फा० ] गाँव के पटवारी के सात बागज जिनमें बहू जमीन, लगान आदि का छेपा रहता है—खसरा, बहीखाता, जमाबंदी, खयादा, सुसारख, रोजनामचा और जिसवार ।

हस्ता-संज्ञा पुं० [ फा० ] सात दिन का समय । सप्ताह ।

हस्ती-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] एक प्रकार की जूती ।

हयकना-कि० प्र० [ अनु० हप ] मुँह धाना । खाने या दाँत काटने के लिये हाट से मुँह खोलना ।

कि० सं० दाँत काटना । जैसे,—कुत्ते ने पीछे से आकर हबक लिया ।

हबर दबर, हबर हबर-कि० वि० [ अनु० हबक ] (१) जल्दी जल्दी । उतावली से । जल्दघामी से । जैसे,—घर में तलया नहीं टिकता, हबर दबर लाई, फिर बाहर जा झमकीं । (२) जल्दी के कारण ठीक तौर से नहीं । हड़बड़ी से । जैसे,—इस तरह हबर दबर करने से काम नहीं होता ।

हबराना-कि० प्र० दे० "हड़बड़ाना" ।

हबरश-संज्ञा पुं० [ वृ० हप ] अफ्रिका का एक प्रदेश जो मिस्र के दक्षिण पड़ता है और जहाँ के लोग बहुत काले होते हैं ।

हबरशी-संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) हबर देश का निवासी जो बहुत काला होता है । उ०—तिल न होइ मुख मीत पर जानी चाको हेत । रूप-खलना की मनी हपसी चौकी देत ।—रसनिधि ।

विशेष—हबरशियों का रंग बहुत काला, कद नाटा, बाज सुँवराले और आँठ बहुत मोटे होते हैं । पदके से गुलाम बनाए जाते थे और बिकते थे ।

(२) एक प्रकार का अंगूर जो जामुन की तरह काला होता है ।

हबरशी सनर-संज्ञा पुं० [ फा० ] अफ्रिका का गेंदा जिसके दो तौंग या खौंग होते हैं ।

हबीब संज्ञा पुं० [ म० ] (१) दोस्त । मित्र । (२) मिय ।

यौ०—सुरा का हवीच = पैगमर मुहम्मद साहब को सुरा के पत्र भिज माने जाते हैं।

हृष्य-संज्ञा पुं० [ अ० हृष्य या हृष्य ] (१) पानी का बरूटा।

पुछा। (२) निरास, बात। हृद मूढ की बात।

उ०—सायु जाँने मदासाइ, खल जाँने मदा खल, बानी हृदी साँची कोटि उठत हृष्य हैं।—पुछती।

हृष्येली-संज्ञा स्त्री० दे० "हृष्येली"।

हृष्यो हृष्यो-संज्ञा पुं० [ हि० हृष्य भन्तु० उभ्याः ] जेर जेर से साँच या पसली चलने की बीमारी जो बच्चों को होती है।

हृष्युलू आस-संज्ञा पुं० [ अ० ] एक प्रकार की मेहँदी जो बगीचों में लगाई जाती है और रवा के काम में आती है।

विष्णायती मेहँदी।

विशेष—हृष्यकी परिचों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकाला जाता है जिसका लेप, हृमिग होने के कारण, घाय पर किया जाता है। हृस तेल से बाल भी बढ़ते हैं। इसके फल भूमिहार और संमहणी में दिए जाते हैं और गरिया का रस दूर करने और खूत रोकने के काम में आते हैं।

हृस-संज्ञा पुं० [ अ० ] कैद। कारावास।

यौ०—हृस येना।

हृसयेजा-संज्ञा पुं० [ अ० + का० ] अनुचित रीति से खरी करना।

वेजा तौर पर कहीं कैद रखना। (कानून)

हम-सर्व० [ सं० भद्र्य ] उचम पुरुष बहुवचन सूचक सर्वनाम शब्द। "हम" का बहुवचन।

संज्ञा पुं० अहंकार। 'हम' का भाव। उ०—जब 'हम' था तब गुण नहीं, जब गुण तब 'हम' गाँह।—कबीर।

अभ्य० [ का० ] (१) साथ। संग। (२) समान। गुण्य।

यौ०—हम अहं। हमदर्दी। हमजिस। हमजोकी।

हम-असर-संज्ञा पुं० [ का० + अ० ] (१) वे जिन पर एक ही प्रकार का प्रभाव पड़ा हो। समान संस्कार पर प्रवृत्तिवाले।

(२) एक ही समय में होनेवाले। साथी। संघी।

हम-जिस-संज्ञा पुं० [ का० ] एक ही बर्ग या जाति के प्राणी। एक ही प्रकार के व्यक्ति।

हमजोकी-संज्ञा पुं० [ का० + हि० जोकी ? ] साथी। संगी। सहयोगी। सखा।

हमवाह-संज्ञा स्त्री० [ हि० हम + वा (अभ्य०) ] अहंभाव। अहंकार।

हमदर्दी-संज्ञा पुं० [ का० ] दुःख का साथी। दुःख में सहानुभूति रखनेवाला।

हमदर्दी-संज्ञा स्त्री० [ का० ] दूसरे के दुःख से दुखी होने का भाव। सहानुभूति। जैसे,—मुझे उसके साथ कुछ भी हमदर्दी नहीं है।

हमनिवाला-संज्ञा पुं० [ का० ] एक साथ बँधकर भोजन करनेवाले। आहार विहार के साथ। वनिष्ठ मित्र।

हम पच्छी-सर्व० [ हि० हम + पच्छ ] हम लोग। हमारा-सर्व० दे० "हमारा"।

हमराह-अभ्य० [ का० ] (कहीं जाने में किसी के) साथ। संग में। जैसे,—लड़का उसके हमराह गया।

मुदा०—हमराह करना = साथ में करना। संग में भगाना। हमराह होना = साथ आना।

हमल-संज्ञा पुं० [ अ० ] छी के पेट में बच्चे का होना। गर्भ। वि० दे० "गर्भ"।

कि० प्र०—होना। मुदा०—हमल गिरना = गर्भगत होना। पेट से बच्चे का पूरा रूप रित्त निकल जाना। हमल गिरना = गर्भगत करना। पेट के बच्चे को रित्त समव रूप पूरा निकाल देना। हमल रहना = गर्भ रहना। पेट में बच्चे को रोकना होना।

हमला-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) लड़ाई करने के लिये बल पड़ना। युद्ध यात्रा। चढ़ाई। घावा। जैसे,—मुगलों के कई हमले हिंदुस्तान पर हुए। (२) मारने के लिये हाथपटना। प्रहार करने के लिये पैग से पड़ना। आक्रमण। (३) प्रहार। धार। (४) किसी को हानि पहुँचाने के लिये किया हुआ प्रयत्न। जुकसान, पहुँचाने की, कार्रवाई। (५) विशेष में कही हुई बात। वाच्य द्वारा भाषण। क्र० ध्वं०। जैसे,—यह हमला हमारे ऊपर है, हम इसका जवाब देंगे।

कि० प्र०—करना।—होना। हमघतन-संज्ञा पुं० [ अ० + अ० ] एक ही प्रदेश के रहनेवाले।

स्वदेशवासी। देश भाई। हमवार-पि० [ अ० ] जिसकी सतह बराबर हो। जो ऊँचा नीचा न हो। जो उबड़ छाबड़ न हो। समतल। सपाट।

जैसे,—प्रमीन हमवार करना। कि० प्र०—करना।—होना।

हमघतन-संज्ञा पुं० [ अ० + अ० ] एक ही प्रदेश के रहनेवाले। स्वदेशवासी। देश भाई।

हमवार-पि० [ अ० ] जिसकी सतह बराबर हो। जो ऊँचा नीचा न हो। जो उबड़ छाबड़ न हो। समतल। सपाट। जैसे,—प्रमीन हमवार करना।

कि० प्र०—करना।—होना। हमसबक-संज्ञा पुं० [ का० ] एक साथ पढ़नेवाले। सहपाठी।

हमसद-संज्ञा पुं० [ का० ] दोबो में बराबर भादमी। गुण, बल या पद में समान व्यक्ति। जोड़ का भादमी। बराबरी का भादमी।

हमसरी-संज्ञा स्त्री० [ का० ]—समानता का भाव। बराबरी। जैसे,—वह तुमसे हमसरी का दावा रखता है।

कि० प्र०—करना।—होना। हमसाया-संज्ञा पुं० [ का० ] पड़ोसी।

हमहमी-संज्ञा स्त्री० दे० "हमाहमी"। हमाम-संज्ञा पुं० [ अ० अम्माम ] महाने का घर जहाँ गरम पानी रहता है। स्नानगार। उ०—मैं तबवा प्रय ताप सों राखयो दियो हमाम। मक कपहँ आवे हूँ पुलक पसीजे स्थाम।—गिहारी।

हमारा-सर्व० [ हि० हम + आ (अभ्य०) ] [ स्त्री० हमारी ] 'हम' का संयुक्तप्रकार रूप।

हमाल-संज्ञा पुं० [ सं० हमाल ] (१) भार उठानेवाला। बोस ऊपर लेनेवाला। (२) सँभालनेवाला। रक्षा करनेवाला। रक्षक। रखवाला। उ०—पंडित प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल, चहुँ चक्र को भूमाल, भयो दंडक जहान को।—भूषण। (३) (बोस उठानेवाला) भजदूर। कुली। उ०—पलक पल्लो भर इन लिया तेरा नाज उठाइ।—जैन-हमालन दे शरे दरस-भजूरी आइ।—रसनिधि।

हमालसल-संज्ञा पुं० [ सं० हिमालय ] सिंहल या सीलोन का सय से ऊँचा पहाड़ जिसे 'आद्रम की चोटी' कहते हैं। हमालहमी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हम ] (१) अपने अपने लाभ का आतुर प्रयत्न। बहुत से लोगों में से प्रत्येक का किसी वस्तु को पाने के लिये अपने को भागे करने की पुनः। स्पर्धप्रयत्न। (२) अपने को ऊपर करने का प्रयत्न। अहंकार।

हमीर-संज्ञा पुं० दे० "हमीर"। हमें-सर्व० [ हिं० हम ] 'हम' का कर्म और संप्रदान कारक का रूप। हमको। जैसे,—(क) हमें बताओ। (ख) हमें दो। हमेल-संज्ञा स्त्री० [ सं० हमाल ] सिंको या सिंके के आकार के घातु के गोल टुकड़ों की माला जो राले में पहनी जाती है। (यह प्रायः अक्षरफिरोप या पुराने रुपयों को ताने में गोंय कर बनती है।)

हमेव-संज्ञा पुं० [ सं० भरम + एव ] अहंकार। अभिमान। मुहा०—हमेव टूटना = गर्व चूर्ण होना। शेरो विद्वल जाना। हमेशा-संज्ञा पुं० [ सं० ] सय-दिन या सय-समय। सदा। सदैव। सदैव। जैसे,—(क) वह हमेशा ऐसा ही कहता है। (ख) इस दवा को हमेशा पीना।

मुहा०—हमेशा के लिये = सव दिन के लिये। हमेसल-संज्ञा पुं० दे० "हमेसा"। हमें-संज्ञा पुं० दे० "हमें"।

हम्माम-संज्ञा पुं० [ सं० ] गहाने की कोठरी जिसमें गरम पानी रखा रहता है और जो भाग या भाग से गरम रम्पी जाती है। स्नानागार।

हम्मोर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो नांकराभरण और मारु के मेल से बना है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और इसके गाने का समय संध्या को एक से पाँच दंड तक है। यह राग, धर्म संबंधी उरसवों या हास्य रस के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाता है। (२) रावणमोरगढ़ का एक अत्यंत घोर चौहान राजा जो सन् १३०० ई० में अलाउद्दीन खिलजी से बड़ी भीरुता के साथ लड़कर मारा गया था।

हम्मोर नट-संज्ञा पुं० [ सं० ] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो नट और हम्मोर के मेल से बना है। इसमें, सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

हयंद-संज्ञा पुं० [ सं० द्यौः ] बढ़ा या अंचला घोड़ा।

हय-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० हया, दधी ]—(१) घोड़ा। अथ। (२) कविता में सात की मात्रा सुचित करने का शब्द। (उच्चैःश्रवा के सात मूँह के कारण)। (३) चार मात्राओं का एक छंद। (४) इंद्र का एक नाम। (५) धनु राशि।

हयगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] काला नमक। हयगृह-संज्ञा पुं० [ सं० ] अश्वशाला। सुदुसार। हयग्रीव-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक अवतार।

विशेष—मधु और कैटभ नाम के दो देव जप वेद को उठा ले पधे; तब वेद के उद्धार और उन राक्षसों के विनाश के लिये भगवान् ने यह अवतार लिया था।

(२) एक असुर या राक्षस जो कन्यारत में प्रह्ला की मित्रा के समय वेद उठा ले गया था। विष्णु ने असुर अवतार लेख वेद का उद्धार और इस राक्षस का वध किया था। (३) एक और राक्षस का नाम। (रामायण) (४) तांत्रिक यौद्ध के एक देवता।

हयग्रीवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा का एक नाम।

हयन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्ष। साल।

हयनाड-संज्ञा पुं० [ सं० हय, प्रा० हय + ना (हिं० प्रत्यय) ] (१) वध करना। मार डालना। हनन करना। उ०—उप महँ सकल निशाचर हये। (२) मारना। पीटना। चोट लगाना।

(३) पीटकर यजाना। टोंकर यजाना। उ०—देवन-हये निसान।—तुलसी। (४) नष्ट करना। न रहने देना। उ०—प्रति प्रतीति रीति परिमिति पति हेतुवाद हटि हेरि हई है।—तुलसी।

हयनाल-संज्ञा स्त्री० [ सं० हय + हिं० नाल ] वह तोप जिसे घोड़े खींचते हैं।

हयप्रिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] जो। वत।

हयमिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जंगली खजूर। खजूरी।

हयमारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] करवीर। कनेर।

हयमारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कनेर। (२) अक्षय्य। पीपल।

हयमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक देव का नाम जिसके संबंध में प्रसिद्ध है कि यहाँ घोड़े के से मुँहवाले आदमी बसते हैं। (२) जीवें भ्रष्टि का मोक्ष रूपी तेज जो समुद्र में स्थित होकर बध्वावल कहलाता है। (रामायण)

हयमेघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] गद्यमेघ यज्ञ।

हयशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अश्वशाला। सुदुसार। अस्तबल।

हयशिर-संज्ञा पुं० [ सं० हयशिर ] (१) एक क्रयि का नाम।

(२) एक दिव्यायुध का नाम। (रामायण)

हयशीर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का हयग्रीव स्वरूप।

हय्यांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] धनु राशि।

हया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लजा। शान। धर्म।

**यो०**—हरयादर । हरयावारी । येहया । येहयाई ।  
**हयात**—संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] किंदगी । जीवन ।  
**यो०**—हीन हयात = निरधी भर के लिये । किन्ती के जीवन काल तक । जैसे,—मुझकी हीन हयात । हीन-हयात में = निरधी में । जीने की जीवन काल में ।  
**हयादार**—संज्ञा पुं० [ य० हया + प्र० दार ] वह जिसे हया है । लज्जाशील । श्रमदार ।  
**हयादारी**—संज्ञा स्त्री० [ य० हया + प्र० दारी ] हयादार होने का भाव । लज्जाशीलता ।  
**हयानन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हयमीव । (२) हयमीव का स्थान । (वाल्मीकि)  
**हयायुर्वेद**—संज्ञा पुं० [ सं० ] घोड़े की विक्रिया का शास्त्र । वासिष्ठोपनिषद् ।  
**हयारि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] बरवीर । क्रनेर ।  
**हयाशन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का धूप का घोष जो मध्य भारत तथा गया और झाडाबाद के पहाड़ों में बहुत होता है ।  
**हयी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घोड़ी ।  
**यी** पुं० [ सं० ] हयिर । घुड़सवार ।  
**हर**—वि० [ सं० ] (१) हराण करनेवाला । ले लेनेवाला । छीनने या छुटनेवाला । जैसे,—धनहर, वखहर, पययतोहर । (२) बुर करनेवाला । मिटानेवाला । न रहने देनेवाला । जैसे,—भोगहर, पापहर । (३) बध करनेवाला । नाश करनेवाला । मारनेवाला । जैसे,—अधुरहर । (४) ले जानेवाला । पहुँचानेवाला । वाहक । जैसे,—सँदेहार ।  
**यी** पुं० (१) शिव । महादेव । (२) एक राक्षस जो वसुधा के गर्भ से उत्पन्न माली नामक राक्षस के चार पुत्रों में से एक था और जो विभीषण का मंत्री था । (३) वह संख्या जिससे भाग दें । भाजक । (गणित) (४) निम्न में नीचे की संख्या । (गणित) (५) क्षत्रि । भाग । (६) गद्दा । (७) हृष्यक के हस्तों में देव का नाम । (८) टण्ण के पहले अक्षर का नाम ।  
**यी** संज्ञा पुं० [ सं० ] हल ।  
**यी०**—हरयाहा । हरवल । हरीरी । हरदा ।  
**वि०** [ य० ] प्रत्येक । एक एक । जैसे,—(क) हर राक्षस के पास एक एक बंदूक थी । (ख) वह हर रोज आता है ।  
**यी०**—हरकाता । हरजाई ।  
**युहा०**—हर एक = प्रत्येक । एक एक । हर कोई या हर किसी = प्रत्येक मनुष्य । सब कोई या सब किसी । सर्वव्यापारय । जैसे,—(क) हर किसी के पास ऐसी चीज नहीं निकल सकती । (ख) हर कोई यह काम नहीं कर सकता । हर दूजा या हर बार = प्रत्येक अवसर पर । हर रोज = प्रति दिन । निम्न । हर हाल में = प्रत्येक, दूरा में । हर दम = प्रति, पण । सदा ।

जैसे,—वह हर दम यहाँ पढ़ा रहता है । हर हमेशा = सदा । सर्वथा ।  
**हरपल**—मन्थ० [ हि० हरता ] (१) धीरे धीरे । मंद गति से । आदिस्ते से । उ०—हेरत ही हरि को हरपण दिये हरि के हरपे चलि आई ।—वेनी । (२) तीव्रता से नहीं । जोर से नहीं ।  
**हरकत**—संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) गति । चाल । हिलना-छोलना । (२) वेष्टा । किया । (३) बुरी चाल । बुरा कारवाँदा । दुष्ट चमत्कार । नटखती । उ०—(क) तुम्हारी सप हरकतें हम देख रहे हैं । (ख) यह सब उसी की हरकतें हैं । (ग) नादाहस्ता हरकत, बेजा हरकत ।  
**कि० प्र०**—करना ।—होना ।  
**हरकना**—कि० प्र० दे० "हरकना" ।  
**हरकार**—संज्ञा पुं० [ ज्ञ० ] (१) चिट्ठी पत्री ले जानेवाला । सँदेहार के जानेवाला । (२) चिट्ठीसँदेहार ।  
**हरकैस**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हकिंदा । एक प्रकार का धान जो भगहन में तैयार होता है ।  
**हरखल**—संज्ञा पुं० दे० "हर्ष" ।  
**हरखना**—कि० प्र० [ हि० हरख + ना (प्रत्य०) ] हर्षित होना । प्रसन्न होना । खुश होना । उ०—कौतुक देखि सकल धुर हरले ।—तुलसी ।  
**हरखाना**—कि० प्र० दे० "हरखना" । उ०—तुरत ठठे लखमन हरवाई ।—तुलसी ।  
**कि० सं०** [ हि० हरवण ] प्रसन्न करना । खुश करना । आनंदित करना ।  
**हरगिजु**—मन्थ० [ य० ] किसी दशा में । कदापि । कभी ।  
**जैसे**—वह वहाँ हरगिजु न जायगा ।  
**हरगिरि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कैलास पर्वत ।  
**हरगिला**—संज्ञा पुं० दे० "हृग्गिला" ।  
**हरगोरी रस**—संज्ञा पुं० [ सं० ] रस सिद्ध । (आयुर्वेद) ।  
**हरचंद**—मन्थ० [ य० ] (१) किन्ता ही । बहुत या बहुत बार ।  
**जैसे**—मैंने हरचंद मना किया, पर उधने न माना ।  
**(२) यद्यपि । अतएव ।**  
**हरज**—संज्ञा पुं० दे० "हर्ज" ।  
**हरजा**—संज्ञा पुं० [ य० ] हर + ना (अट) । संगतताशां की यह ठीकी जिससे वे सतह की हर जगह घराव, बरने हैं । औरस करने को, छेनी । औरसी ।  
**संज्ञा पुं० दे० (१) "हरज", "हर्ज" । (२) "हरजाना" ।**  
**हरजाई**—संज्ञा पुं० [ य० ] (१) हरज जगह-भूमनेवाला । जिसका कोई ठीक ठिकाना न हो । (२) बहला । अत्याचार ।  
**संज्ञा स्त्री० (१) ध्वनिधारिणी की । कुलजा । (२) वेदया । रंटी । खानगी ।**

**हरजाना**—संज्ञा पुं० [ ध्रं० ] (१) लुकसान पूरा करना। हानि का बदला। क्षतिपूर्ति। (२) वह धन या वस्तु जो किसी को उस लुकसान के बदले में (उसके द्वारा जिससे या जिसके कारण लुकसान पहुँचा हो) दी जाय, जो उसे उठाना पड़ा हो। हानि के बदले में दिया जानेवाला धन। क्षतिपूर्ति का द्रव्य। जैसे,—अगर तुमने वक्त पर चीज न दी तो १००) हरजाना देना होगा।

**क्रि० प्र०**—देना।—मँगना।—लेना।

**हरदृष्ट**—वि० [ सं० दृष्ट ] हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा। मजबूत। रद अंगोवाला। उ०—द्वार हरदृष्ट साजि, गैवर गरद सम पंदर के ठह कौज जुरी तुरकाने की।—भूषण।

**हरदिया**—संज्ञा पुं० [ हि० रद ] रदित के बेल हँकनेवाला।

**हरड़ा**—संज्ञा पुं० दे० "हरद", "हरा"।

**हरण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जिसकी वस्तु हो, उसकी इच्छा के विरुद्ध लेना। छीगना, लूटना या चुराना। जैसे,—धन हरण, बख हरण। (२) दूर करना। हटाना। न रहने देना। मिटाना। जैसे,—योग हरण, संकट हरण, पाप हरण। (३) नाश। विनाश। संहार। (४) ले जाना। बहना। जैसे,—संदेश हरण। (५) भाग देना। तफ़्सील करना। (गणित) (६) दायजा जो विवाह में दिया जाता है। (७) वह भिक्षा जो यज्ञोपवीत के समय प्रसवारी को दी जाती है।

**हरता**—संज्ञा पुं० दे० "हर्ता"।

**हरता धरता**—संज्ञा पुं० [ सं० हर्ता + धर्ता (वैदिक) ] (१) रक्षा और नाश दोनों करनेवाला। वह जिसके हाथ में धनाना विनाशना या रखना मारना दोनों हों। सब अधिकार रखनेवाला स्वामी। (२) संय वात का अधिकार रखनेवाला। सब कुछ करने की शक्ति या अधिकार रखनेवाला। पूर्ण अधिकारी। जैसे,—माज कल यही उनकी सारी जायदाद के हस्ता धरता हो रहे हैं।

**हरताल**—संज्ञा स्त्री० [ सं० हरताल ] एक क्षनिज पदार्थ जिसमें सी में ६१ भाग संलिया और ३९ भाग गंधक का योग रहता है। यह लानो में रोदों के रूप में स्वामान्विक मिलता है और बनाना भी जा सकता है। यह पीले रंग का और चमकीला होता है। इसमें गंधक और संलिया दोनों के सम्मिलित गुण होते हैं। वैद्य लोग इसको क्षोषकर गलित कुप, वात रक्त श्वादि रोगों में देते हैं जिससे पाच भर जाते हैं। आयुर्वेद में हरताल की गणना उपधातुओं में है। इसमें स्थायी या रंग उड़ाने का गुण होता है, इससे पुराने समय में पोंथी लिखनेवाले किसी शब्द या अक्षर को उड़ाने के समान पर उस पर चुकी हुई हरताल लगा देते थे जिससे कुछ दिनों में वे अक्षर उड़ जाते थे। रंगई में भी इसका

व्यवहार होता है और छोट छापनेवाले भी अपनी प्रकिया में इसका व्यवहार करते हैं।

**पर्यां**—पिजर। ताल। मोदत। विद्यालक। चित्रगंध।

**मुहा०**—(किसी बात पर) हरताल लगाना—मठ करना। किया न किया यादर करना। रद करना। जैसे,—तुमने तो मेरे सब कामों पर हरताल फेर दी।

**हरताली**—वि० [ हि० हरताल ] हरताल के रंग का।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का गंधकी या पीला रंग।

**हरतालिश्वर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रसोपध जो हरताल के योग से बनती है।

**विशेष**—पुनर्नवा (गन्धपूरना) के रस में हरताल को खरल करके टिकिया बनाते हैं। फिर उस टिकिया को पुनर्नवा की राख में रखकर मिट्टी के बरतन में ढाल मंद आँच पर बदा देते हैं। इस प्रकार पाँच दिन तक बदा टिकिया पकती है; फिर ठंडी करके रख ली जाती है। इस मसम की एक रस्ती गिलोय के काढ़े के साथ सेवन करने से वात रक्त, अठारह प्रकार के ऊध, फिरंग वात, विसर्प और फोड़े आराम हो जाते हैं।

**हरतेज**—संज्ञा पुं० [ सं० हरतेजस ] पारा। पारद। (जो शिव की नीरव्य समझा जाता है)

**हरदूल**—संज्ञा स्त्री० दे० "हर्दी"। उ०—कनक फलस तोरेन मनि जाला। बरद, दूय, दधि, अच्छत, माला।—मुक्कसी।

**हरदा**—संज्ञा पुं० [ हि० हर्दा ] कीटाणुओं का समूह जो पीली या गेरू के रंग का चुकनी के रूप में फसल की पत्तियों पर जम जाता है और बड़ी हानि पहुँचाता है। रोहई।

**हरदिया**—वि० [ पू० हि० हर्दी ] हर्दी के रंग का। पीला।

संज्ञा पुं० पीले रंग का धोड़ा।

**हरदिया देव**—संज्ञा पुं० दे० "हरदोल"।

**हरदी**—संज्ञा स्त्री० दे० "हर्दी"।

**हरदू**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बड़ा पर्व जो हिमालय में जमुना के पूर्व तीन हजार कुट सरक के ऊँच लेकिन तर स्थानों में होता है। इसकी ढाल अंगुल भर मोटी, बहुत सुखामय, सुरदुरी और सफेद होती है। मीठर की लकड़ी बहुत मजबूत और पीले रंग की होती है और साफ करने से बहुत चमकती है। इससे खेतों के और सजावट के सामान, बंदूक के कुंडे, कंचियों और नाथें बनती हैं।

**हरदोल**—संज्ञा पुं० [ सं० हरदोल ] ओझा के राजा सुसारासिंह (सं० १६२९-३५ ई०) के छोटे भाई जो बड़े सपने और आधुनिक थे। एक बार जब महाराज सुसारासिंह दिल्ली के बादशाह के काम से गंध थे, तब वे राज्या का प्रबंध अपने छोटे भाई हरदोलसिंह या हरदोलसिंह के ऊपर छोड़ गये थे। इनके सुशासन में वैदिकों की नहीं चलने पाती थी।

हसते जब महाराज दुस्तरासिंह छोटकर भाए, तब उंन सय ने मिलकर राजा को यह सुसाया कि हरदौल के साथ महारानी (उनकी भावज) को अनुचित संबंध है। महारानी अपने देवर को बहुत प्यार करती थीं और हरदत्त भी उन्हें अपनी माता के समान मानते थे। राजा ने अपने सौंदहे की यात रानी से कही; और यह भी कहा कि हम तुम्हें सची सभी मान सकते हैं जब तुम अपने हाथ से हरदौल को विप हो। रानी ने अपने सतील की मर्यादा के विचार से स्वीकार किया और हरदौल को विप मिठी मिठाई खिलाने को सुलाया। हरदौल के आने पर रानी ने सब व्यवस्था कही। सुनते ही हरदौल ने कहा कि माता, तुम्हारे सतीत्व की मर्यादा की रक्षा के लिये मैं सहर्ष इसे खाऊँगा। हतना कहकर वे भावज के हाथ से मिठाई लेकर शरत से खा गए और थोड़ी देर में परलोक सिपारे। इस घटना का प्रजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा और सब लोग हरदौल की देवता के समान पूजा करने लगे। धीरे धीरे इनकी पूजा का प्रचार बहुत बढ़ा और सारे बुंदेलखंड में ही नदी बल्कि युक्त प्रांत और पंजाब तक ये पूजने लगे। इनकी चौराी या वेदी स्थान स्थान पर बनी मिलती है और बहुत से घरानों में ये कुल-देवता माने जाते हैं। इन्हें 'हरदिया देव' भी कहते हैं।

**हरद्वार**—संज्ञा पुं० दे० "हरद्वार"।

**हरना**—किं० सं० [सं० हरव] (१) जिसकी वस्तु हो, उसकी दृष्टा के विषय लेना। धीनना, छटना या जुगना। (२) दूर करना। हटाना। न रहने देना। (३) मिटाना। नाश करना। जैसे,—दुष्ट या पीड़ा हरना, संबट हरना। उ०—मेरी भव-चापा हरी राधा नागरि सोद।—विहारी। (४) के जाना। उठकर ले जाना। वहने करना।

**मुहा०**—मन हरना = मन खीनना। मन बाधपित करना। मोहित करना। तुगना। उ०—हरि दिव्यराय मोहनी मूरति मन हरि लियो हमारो।—सूर। प्राण हरना = (२) मार गलना। (२) बहुत संताप या दुःख देना। उ०—मिलत एक दायन दुःख देहीं। विदुरस एक मान हरि लेहीं।—तुलसी।

**छेकिं० प्र०** [हिं० हारना] (१) गुण आदि में हारना। (२) पराजित होना। परात होना। (३) यकना। निधिल होना। हिसाव हारना।

**छीं संज्ञा पुं० दे० "हरिन"।**

**हरनाकसछी**—संज्ञा पुं० दे० "हरिण्यकसिनु"। उ०—हरनाकस औ कंस को गयो हुहुन को राज।—गिरिधर।

**हरनाकछी**—संज्ञा पुं० दे० "हरिण्यास"।

**हरनी**—संज्ञा स्त्री० [हिं० हरिन] हरिन की मादा। स्त्री।

**संज्ञा स्त्री०** [हिं० हर] कपड़ों में हट (हरी) का रंग देने को किया।

**हर-परवररी**—संज्ञा स्त्री० [हिं० हर, हल+परवना] किसानों की औतों का एक टोटका जो वे पानी न बरसने पर करती हैं।

**हरपा**—संज्ञा पुं० [दे०] सुनारों का तराजू रखने का दिव्या।

**हरपुजी**—संज्ञा स्त्री० [हिं० हर, हल+पूजा] कार्तिक में हल का पूजन जो किसान करते हैं। इस पूजन में किसान उत्सव करते और मिठाई आदि बाँटते हैं।

**हरप्रिय**—संज्ञा पुं० [सं०] कवीर। कनेर।

**हरफू**—संज्ञा पुं० [म०] मनुष्य के मुँह से निकलनेवाली ध्वनियों के संकेत जिनका व्यवहार खिलने में होता है। अक्षर। वर्ण।

**मुहा०**—किसी पर हरफू आना = दोष लगना। कपूर लगना।

जैसे,—तुम बेफिक्र रहो, तुम पर जरा भी हरफू न आवेगा।

**हरफ उठाना** = मगर पहचान कर पड़ लेना। जैसे,—अब तो

बधा हरफू उठा लेता है। हरफू घैठाना = क्षणिक के अक्षर

क्रम से रखना। तरफ बमाना। हरफू बनाना = (२) सुंदर

मगर लिखना। (२) मगर लिखने का आवास करना। (३)

किसी दरवाजे में जाक के लिये फेरफार करना। किसी पर हरफू

खाना = दोष देना। बल्लाम लगाना। लादित करना।

**हरफूगीर**—वि० [का०] (१) अक्षर अक्षर का गुण दोष दिखाने-

वाला। बहुत बारीकी से दोष देखने या पकड़नेवाला।

(२) बाल की खाल निकालनेवाला।

**हरफूगीरी**—संज्ञा स्त्री० [प्र०] बहुत बारीकी से गुण दोष देखना।

बड़ी सूत्रम परीक्षा। बाल की खाल निकालना।

**हरफा**—संज्ञा पुं० [दे०] कटा चारा या भूसा रखने का घर जो

लकड़ी के पेरे से बनाया जाता है।

**हरफारेषडी**—संज्ञा स्त्री० [सं० हरिपर्वी] (१) कमरव की जाति

का एक पेड़ जिसमें अचिहों के से छोटे छोटे फल लगते हैं

जो खाने में कुछ लयमिटे होते हैं। इसे संस्कृत में 'खवली'

कहते हैं। (२) उक पेड़ का फल।

**हरबर**—संज्ञा पुं० दे० "हृदय", "हृदयकी"।

**हरवरानाछी**—किं० प्र० दे० "हृदयदाना"।

**हरबा**—संज्ञा पुं० [म० हरत] अक्षर। हयियार।

**पी०**—हरबा हयियार।

**हरबीड**—संज्ञा पुं० [सं०] पात। पारद।

**हरबौंग**—वि० [हिं० हर, हल+बौंग=लड] (१) रौंगार। लड-

मार। अंबलड। (२) मूल। जड़।

**संज्ञा पुं०** अंधेर। सुवासन। गद्बदरी।

**किं० प्र०**—मचना।

**हरभूली**—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का धवरा जिसके बीज

पास से बंधों में आते और बिकते हैं।

**हरम**—संज्ञा पुं० [म०] अंतःपुर। जनानस्थान।

**संज्ञा स्त्री०** (१) जगानस्थान में दाखिल की हुई स्त्री। मुवाही।

रलेकी स्त्री। (२) दासी। (३) स्त्री। बेगम।

यी०—हरमसरा = अंत:पुर । वनानपाना ।

हरमज्जदगी—संज्ञा स्त्री० [ प्रा० हरमज्जः ] : दारारतः । नटवटी ।

वदमापी ।

हरयेल—अव्य० दे० "हरयु" ।

हरयवल—संज्ञा स्त्री० [ हिं० हर + वल (प्रत्य०) ] : वह रणया जो हलवाहों को विना व्याज के पेशागी या उधार दिया जाता है ।

ॐ संज्ञा पुं० दे० "हरावल" ।

हरयवली—संज्ञा स्त्री० [ तु० हरवली ] सेना की अल्पशक्ता । फौज की अफसरों । उ०—जो नदि देती अतन कहुँ एगन हरयवली आय । मन ममास जे सुतिन के को सर करतो जाय ।—रसनिधि ।

हरयल्लम—संज्ञा पुं० [ सं० ] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक । (संगीतशास्त्रोद्धार) ।

हरवा—संज्ञा पुं० दे० "हर" । उ०—संपक हरवा अँग मिल अधिक सुदाइ जानि परे सिय हियरे जब कुँमिलाइ ।—तुलसी । वि० दे० "हरवा" ।

हरवाना—कि० प्र० [ हिं० हरवत् ] जल्दी करना । शीघ्रता करना । उतावली करना । हड़बड़ी मचाना । उ०—हरवाइ जाय सिय पायँ परी । कपिनारि सुँधि सिर, गोद धरी ।—केशव ।

हरवात—संज्ञा पुं० [ देश० ] : एक प्रकार की घास जिसे 'सुरारी' भी कहते हैं ।

हरवाह, हरवाहा—संज्ञा पुं० [ हिं० हर, हल + सं० वाह ] हल चलानेवाला मजदूर या पौधर । हलवाहा ।

हरवाहन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (सिय की सवारी)—थैल ।

हरवाही—संज्ञा स्त्री० [ हिं० हरवाह + ही (प्रत्य०) ] (१) हलवाहे का काम । (२) हलवाहे की मजदूरी ।

हरशंकरा—संज्ञा स्त्री० [ सं० हरशंकर ] पीपल और पकड़ के एक साथ लगे हुए पेड़ जो बहुत पवित्र माने जाते हैं ।

हरशेखरा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंगा (जो दिव के सिर पर रहती है) ।

हरपल्लु—संज्ञा पुं० दे० "हर्ष" ।

हरपना—कि० प्र० [ हिं० हरप, हर्ष + ना (प्रत्य०) ] (१) हर्षित होना । प्रसन्न होना । खुश होना । उ०—हरये पुर नर नारि सब मिटा मोहमय सुल ।—तुलसी । (२) पुलकित होना । रोमांच से प्रफुल्ल होना । उ०—नाइ खन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरपत गात ।—तुलसी ।

हरपाना—कि० प्र० [ हिं० हरप + प्राणा (प्रत्य०) ] (१) हर्षित होना । प्रसन्न होना । खुश होना । उ०—जे पर भनित सुनत, हरपाहं ।—तुलसी । (२) पुलकित होना । रोमांच से प्रफुल्ल होना ।

कि० प्र० हर्षित करना । प्रसन्न करना ।

हरपित—वि० दे० "हर्षित" ।

हरसना—कि० प्र० दे० "हरपना" ।

हरसाना—कि० प्र० दे० "हरपना" ।

हरसिगार—संज्ञा पुं० [ सं० हार + सिगार ] : सुतोले, कड़ु का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी और ३-४ अंगुल चौड़ी और किनारों पर कुछ फटावदार होती हैं । पतली मोक

कुछ दूर तक निकली होती है । यह पेड़ फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है और विषय पर्वत के कई स्थानों पर जंगली होता है । यह चरद भरत में कुँआर से अगहन तक फूलता है । फूल में छोटे छोटे पाँच, दल और नारंगी रंग की लंबी गोली ढोंडी होती है । फूल पेड़ में बहुत काळ तक लगे नदी रहते, बराबर हरा करते हैं । खँदियों को लोग पीला रंग निकालने के लिये सुखाकर खाते हैं । इसकी पत्ती ज्वर की बहुत अच्छी औषधि समझी जाती है । इसे "परजाता" भी कहते हैं ।

हरसौधा—संज्ञा पुं० [ हिं० हरिस ] : कोरहू में बढ़, स्थान या पाद जिस पर घेड़कर थैल हँके जाते हैं ।

हरहट—वि० [ हिं० हरकना ] नटखट (थैल) । जो बार बार खेत चरने दौड़े या हथर उधर भागता फिरे (बापाया) । हरहाई । जैसे,—हरहट गैया ।

हरहा—वि० दे० "हरहट" ।

संज्ञा पुं० [ देश० ] मेदिनी । हक ।

हरहाई—वि० स्त्री० [ हिं० हरहा ] नटखट (गाय) । (गाय) जो बार बार खेत चरने दौड़े या हथर उधर भागती फिरे । हरहट । उ०—जिमि कपिलहि धाले हरहाई ।—तुलसी ।

हरहार—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) (शिव का हार) सर्प । उ०—हृदि हित करि प्रीतम हियो कियो सु सोति सिगार । अपने कर मोलिन गुह्यो भयो हरा हरहार ।—बिहारी ।

(२) शेषनामा ।

हरहोरवा—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की चिड़िया ।

हर्रासि—संज्ञा पुं० [ प्र० हर = गम होना + सं० अंश ] : संद खर । हरागत ।

हर्रा—वि० [ सं० हरित, प्रा० हरिअ ] : [ स्त्री० हरी ] : (१) घास या पत्ती के रंग का । हरित । सज्ज । जैसे,—हर्रा कपड़ा । हरी पत्ती ।

यी०—हरा भर ।

(२) प्रफुल्ल । प्रसन्न । ताजा । जैसे,—(क) नहाने से जो हरा हो गया । (ख) माँ बेटे को देप हरी हो गई । (ग) हरा, मस खेहरा ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

(३) जो मुरझाया न हो । सजाव । ताजा । जैसे,—पानी देने से पीछे हरे हो गए । (४) (घास) जो मूला या भरा न हो । जैसे,—पक्षा लगने से घाव फिर हरा हो गया ।

(५) दाना या फल जो पका न हो। जैसे,—हरे भमरूद, हरे घट, हरे घाने।  
**मुहा०**—हरा प्राण = केवल धनी ह्यमानेवाची पर-श्रीधे 'लुप्य न उदर-भोग्यो नात'। स्वयं आशा न भोगेवाळो मत। हरा भरा = (१) जो भूना या सुरक्षाय न हो। (२) जो बरे वेष्ट पोषी और पास भाद से भरु हो। जैसे,—नेरी गोद हरी भरी रहे। हरे में भाँस होना या फूलपा = हरिणी लुफना। मग वृद्ध ररना और अग्रम का ध्यान न रखना।  
 सेंडा पुं० (१) घास या पत्ती का सा रंग। हरित वर्ण। जैसे,—नीला और पीला मिलाने से हरा बन जाता है। (२) चीनीयों को खिलाने का ताजा धारा।  
 सेंडा पुं० [ हिं० हार ] हार। माला। उ०—(क) धनने कर भोविन मुझे भयो हरा दरहर।—विहारी। (ख) कुच हुंदन को बहिराय हरा सुल सौंघी सुरा मरकावति है।—श्रीधर पाठक।  
 सेंडा ली० [ सं० ] हर या महादेव की स्त्री। पार्वती।  
 हराही—सेंडा ही० [ हिं० हर, हल ] रोत का उतना भाग मितना एक हल के एक चक्र में जुट जाता है। बाढ़। जैसे,—प हराई हो गई।  
**मुहा०**—हराई फौदना = जुगाई की मूर सुष्ट करना।  
 सेंडा ली० [ हिं० हारना ] हारने की किया या भाव। हार।  
 हरानत—सेंडा पुं० [ सं० ] रावण का एक नाम।  
 हरांना—कि० प्र० [ हिं० हारना, या हराणा ] (१) युद्ध में प्रतिद्वंद्वी को हराता। मारना या नेकाम करना। परास्त करना। पराजित करना। शिकस्त देना। जैसे,—लड़ाई में हराता। (२) शत्रु को विफल मनोरथ करना। हृदयन की नाशमथाय करना। (३) अग्रम में शिथिल करना। और अधिक धम के योग्य न रखना। यकाना।  
 संयो० क्रि०—देना।  
 हरापन—सेंडा पुं० [ हिं० हरा + पन (अन०) ] हरे होने का भाव। हरितता। सज्जी।  
**हराम**—वि० [ अ० ] निषिद्ध। विधि-विरुद्ध। पुरा। अनुचित। दूषित। जैसे—मुसलमानों के लिये सूद खाना हराम है।  
 सेंडा पुं० (१) यह पदु या बात जिसका धर्मशास्त्र में निषेध हो। चरित बात या वस्तु। (२) सूअर (जिसके खाने भादि का इसलाम में निषेध है)। उ०—आँघरो, अधम, जद, जागरो मरा जवन, सूकर के सावक कका टकेल्यो मग में। तिरो दिष्टे हररि, "हराम हो! हराम हयो" हाय हाय करत परीगो काल-कौग में।—तुलसी।  
**मुहा०**—(कोई बात) हराम करना = किसी बात का करना मुश्किल कर देना। देखा करना कि कोई काम काम से न कर सके। जैसे—मुझे तो काम के मारे पाना पीना हराम कर दिया।

(कोई बात) हराम होना = किसी बात का करना मुश्किल हो जाता। कोई बात न करने पाना। जैसे,—रात मर हतना और हुआ कि नौद हारम हो गई।  
 (३) येईमानी, अधर्म। जुगाई। पाप। जैसे,—(क) हराम का रुचवा हम नहीं लेते। (ख) हराम की कौड़ी। (ग) हराम की कमाई।  
**मुहा०**—हराम का = (१) जो येईमानी से प्राप्त हो। (बी) पाप या अधर्म से कमाया गया है। (२) मुल का। जो बिना मिदहत या वयम के मिले। जैसे,—हराम का धाना।  
 यो०—हरामखोर।  
 (१) सी पुरुष का अनुचित संबंध। अविचार। जैसे,—हराम का लड़का।  
 यो०—हरामजुदा।  
**मुहा०**—हराम का पिह्ला = (२) दोगला। वर्णसंकर। (२) दुष्ट। पाजी। बदमास। (गाडी) हराम का पेट = अविचार से खा हुआ गर्म।  
**हरामकार**—सेंडा पुं० [ अ० + कार० ] (१) निषिद्ध कर्म करनेवाला। हरे काम करनेवाला। (२) अविचारी।  
**हरामकारी**—सेंडा स्त्री० [ अ० + कार० ] (१) निषिद्ध कर्म। पाप। जुगाई। (२) अविचार। परकीमन।  
**हरामखोर**—सेंडा पुं० [ अ० + ख० ] (१) पाप की कमाई खानेवाला। अनुचित रूप से धन पैदा करनेवाला। (२) बिना मिदहत मजदूरी किए यों ही किसी का धन लेनेवाला। मुफ्तखोर। (३) अपना काम न करनेवाला। आलसी। निकम्मा।  
**हरामजादा**—सेंडा पुं० [ अ० + जा० ] [ स्त्री० हरामखोर ] (१) अविचार से उत्पन्न पुरुष। दोगला। वर्णसंकर। (२) दुष्ट। पाजी। बदमास। बूढ। (गाडी)  
**हरामी**—वि० [ अ० हराम + ई (अव०) ] (१) अविचार से उत्पन्न। (२) दुष्ट। पाजी। नरुजट। (गाडी)  
**हरारत**—सेंडा स्त्री० [ अ० ] (१) गर्मी। ताप। (२) दलक उबर। उबरा। मंद उबर।  
**हरावरिल**—सेंडा स्त्री० दे० "हरावरि"।  
 सेंडा पुं० दे० "हरावल"।  
**हरावल**—सेंडा पुं० [ अ० ] (१) सेना का अग्रका भाग। सिपाहियों का यह दल जो पीठ में सूद के भरी रहता है। (२) ठों या काष्ठों का सरदार जो भागे चलता है।  
**हरास**—सेंडा पुं० [ अ० हारा ] (१) भय। डर। (२) धारका। लटका। अंधेरा। उ०—अंतहु उचित नृपदि बनवासु। वय बिलोकि हिप रोद हरासु।—तुलसी। (३) विपाद। दुख। रंज। उ०—रात सुनाई कीन्ह बनवासु। सुनि मन मणउ न हरप हरासु।—तुलसी। (४) निराय। ताउम्मेदी।



हराहर—संज्ञा पुं० दे० "हलाहल" ।  
हरि-वि० [ सं० ] (१) विंगल वर्ण। भूरा या चादामी । (२) पीला । (३) हरे रंग का । हरा । हरित् ।  
संज्ञा पुं० (१) विष्णु । भगवान् । (२) इंद्र । (३) घोड़ा ।  
(४) चंद्र । (५) सिंह । (६) सिंह राशि । (७) सूर्य ।  
(८) क्रिन् । (९) चंद्रमा । (१०) गीत । (११) शुक ।  
सूत्रा । तोता । (१२) मोर । मयूर । (१३) कोकिल ।  
कोयल । (१४) हंस । (१५) मेढक । मंडूक । (१६) सर्प ।  
सर्प । (१७) अग्नि । आग । (१८) वायु । (१९) विष्णु  
के अवतार भीष्म । (२०) धीराम । उ०—हरि हित हरहु  
चाप गरुआई—तुलसी । (२१) शिव । (२२) यम । (२३)  
शुक । (२४) गरुड के एक पुत्र का नाम । (२५) एक  
पर्यंत का नाम । (२६) एक वर्ष या भूभाग का नाम ।  
(२७) अठारह वर्षों का एक छंद या छत्त । उ०—चानर  
गन बानन सन केशव जयई मुरयो । रावन दुखदावन  
जगपावन समुहै जुरयो । (२८) बौद्धशास्त्रों में एक बड़ी  
संख्या का नाम ।

हरिभर—वि० [ सं० हरि ] पेट की पसी के रंग का । हरा ।  
सम्भ्र । उ०—हरिभर भूमि कुसुमी चोला ।—जायसी ।  
संज्ञा पुं० एक रंग का नाम जो पेट की पसियों के समान  
होता है । उ०—अज्ञव खंडेउ ऊल जिमि सुनिहै हरिभरह  
सुस ।—तुलसी ।

हरिभराना—कि० प्र० दे० "हरिभाना" ।

हरिभराली—संज्ञा स्त्री० [ हि० हरिभर + ई (प्रत्य०) ] (१) हरे रंग  
का विस्तार । (२) घास और पेंद पौधों का समूह ।  
हरिपाली ।

हरिभाना—कि० प्र० [ हि० हरिभर ] हरा होना । सम्भ्र होना ।  
सुहावा न रहना । ताज़ा होना ।

हंयो० कि०—आना ।—उठना ।

हरिभाली—संज्ञा स्त्री० [ सं० हरि + बालि ] (१) हरेपन का  
विस्तार । (२) घास और पेंद पौधों का पीला हुआ समूह ।  
जैसे,—सड़क के दोनों ओर बड़ी सुंदर हरिभाली है ।

हरिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] लाल या भूरे रंग का घोड़ा ।

हरिकथा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भगवान् या उनके अवतारों का  
चरित्र-वर्णन ।

हरिकर्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ ।

हरिकारा—संज्ञा पुं० दे० "हरकारा" ।

हरिकीर्त्तन—संज्ञा पुं० [ सं० ] भगवान् या उनके अवतारों की  
स्तुति का गान । भगवान् का भजन ।

हरिकेलीय—संज्ञा पुं० [ सं० ] योग देवा का एक नाम ।

हरिकेश—वि० [ सं० ] भूरे बालोंवाला ।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य की सात प्रधान कलाओं में से एक ।

(२) शिव का एक नाम । (३) एक दश का नाम जो  
शिव को प्रसन्न करके गणों का एक नायक हुआ था ।  
दंष्टपणि । (४) श्यामक नामक यादव का पुत्र जो बसुदेव  
का भतीजा लगता था ।

हरिकांता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की लता ।

हरिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] पट्टे के पास एक तीर्थ का नाम ।

हरिगंध—संज्ञा पुं० [ सं० ] पीला चंदन ।

हरिगीता—संज्ञा स्त्री० दे० "हरिगीतिका" ।

हरिगीतिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोलह और बारह के विराम से  
अठारह मात्राओं का एक छंद जिसकी पाँचवीं, बारहवीं,  
अठारहवीं और छत्तीसवीं मात्रा छुपी होनी चाहिए । अंत  
में छुपी गुरु होता है । उ०—निज दास ज्यों रघुवंस-भूपन  
कवहुँ मम सुमिरन करयो ।

हरिचंद—संज्ञा पुं० "हरिचंद्र" ।

हरिचंदन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का चंदन । (२)  
स्वर्ग के पाँच वृक्षों में से एक ।

चिशेष—शेष चार वृक्षों के नाम ये हैं—पारिजात, मंदार,  
संतान और कल्प वृक्ष ।

(३) कमल का पराग । (४) केसर । (५) चंद्रिका । चँदनी ।

हरिचर्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याघ्रचर्म । बाघचर्म ।

हरिचाप—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रधनुष ।

हरिजटा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक राजसी जिसे राघव ने सीता  
को समझाने के लिये नियत किया था । ( वाल्मीकि )

हरिजन—संज्ञा पुं० [ सं० ] भगवान् का दास । ईश्वर का भक्त ।

हरिजानल—संज्ञा पुं० दे० "हरियानल" ।

हरिय—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० हरिणी ] (१) स्युग । हिरन । (२)  
हिरन की एक जाति ।

विशेष—शेष चार जातियों के नाम ये हैं—कृष्य, रुद्र, शृष्य  
और स्युग ।

(३) हंस । (४) सूर्य । (५) एक लोक का नाम । (६)

विष्णु का एक नाम । (७) शिव का एक नाम । (८) एक  
नाग का नाम ।

वि० भूरे या चादामी रंग का ।

हरियकलोक—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

हरियनयना, हरियनयनी—वि० स्त्री० [ सं० ] हिरन की आँखों  
के समान सुंदर आँखोंवाली । सुंदरी ।

हरियण्णुता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वर्णाईसम वृत्त का नाम  
जिसके विषम चरणों में ३ सगण, एक छुपी और एक गुरु  
होता है तथा सम में एक नगण, दो भगण और एक रागण  
होता है ।

हरियालदाय, हरियालछुन—संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

हरियालदय—वि० [ सं० ] ( हिरन सा ) दरपोका पुत्रदिक ।



हराहर-संज्ञा पुं० दे० "हलाहल" ।  
हरि-विं० [ सं० ] (१) विगलं वर्णं । भूरा या बादामी । (२) पीला । (३) हरे रंग का । हरा । हरिः ।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु । भगवान् । (२) इंद्र । (३) घोड़ा । (४) बंदर । (५) सिंह । (६) सिंह गति । (७) सूर्य । (८) क्रिन् । (९) चंद्रमा । (१०) गीतद । (११) शुक । सृजा । तोता । (१२) मोर । मयूर । (१३) कोकिल । कोयल । (१४) हंस । (१५) मेढक । मंडक । (१६) सर्प । सर्प । (१७) भक्ति । भाग । (१८) वायु । (१९) विष्णु के अवतार भीष्म । (२०) श्रीराम । उ०—हरि हित हरहु वाप गदभाई—मुलसी । (२१) शिव । (२२) यम । (२३) शुक । (२४) गरुड़ के एक पुत्र का नाम । (२५) एक पर्यंत का नाम । (२६) एक वर्ष या भूभाग का नाम । (२७) अष्टादश वर्षों का एक छंद या छत । उ०—यानर गन यानन सन केशव जयहीं सुरयो । रावन दुखदावन जगपावन समुहें शुरयो । (२८) बौद्धशास्त्रों में एक बड़ी संख्या का नाम ।

हरिभर-विं० [ सं० हरिः ] पद की पत्नी के रंग का । हरा । सद्ग । उ०—हरिभर भूमि कुसुंभी घोला—जायसी ।  
संज्ञा पुं० एक रंग का नाम जो पद की पत्तियों के समान होता है । उ०—अजगव खंडे उल जिमि मुनिहि हरिभरह घृसा—मुलसी ।

हरिभराना-कि० प्र० दे० "हरिभाना" ।  
हरिभरती-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हरिभर + ई (प्रत्य०) ] (१) हरे रंग का विस्तार । (२) घास और पद पौधों का समूह । हरिवाली ।

हरिभाना-कि० प्र० [ हिं० हरिभर ] हरा होना । सद्ग होगा । मुरझाया न रहना । सज्ज होना ।

संयो० कि०—आना ।—ढटना ।

हरिभाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० हरि + भालि ] (१) हरेपन का विस्तार । (२) घास और पद पौधों का फैला हुआ समूह । जैसे,—सदक के दोनों ओर बड़ी सुंदर हरिभाली है ।

हरिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] छाल या भूरे रंग का घोड़ा ।

हरिकथा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भगवान् या उनके अवतारों का चरित्र-वर्णन ।

हरिकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ ।

हरिकारा-संज्ञा पुं० दे० "हरिकारा" ।

हरिकीर्तन-संज्ञा पुं० [ सं० ] भगवान् या उनके अवतारों की स्तुति का गान । भगवान् का भजन ।

हरिकेशीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंग देस का एक नाम ।

हरिकेश-विं० [ सं० ] भूरे बालोंवाला ।

संज्ञा पुं० (१) सूर्य की सप्त प्रधान कलाओं में से एक ।

(२) शिव का एक नाम । (३) एक यज्ञ का नाम जो शिव को प्रसन्न करके गणों का एक नायक हुआ था । दंडपाणि । (४) इयामक नामक यात्र का पुत्र जो बसुदेव का भतीजा लगता था ।

हरिकांता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की लता ।

हरिकोत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] परने के पास एक तीर्थ का नाम ।

हरिगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीला चंदन ।

हरिगीता-संज्ञा स्त्री० दे० "हरिगीतिका" ।

हरिगीतिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोलह और बारह के विराम से अष्टाईस मात्राओं का एक छंद जिसकी पौर्ववी, बारहवीं, उन्नीसवीं और छत्तीसवीं मात्रा छुपी होनी चाहिए । अंत में छुपी गुप्त होता है । उ०—निज दास ज्यों रघुवंस-भूषण कवहुँ मम सुमिरन करयो ।

हरिचंद्र-संज्ञा पुं० "हरिचंद्र" ।

हरिचंद्रन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का चंदन । (२) स्वर्ग के पाँच वृक्षों में से एक ।

विशेष—शेष चार वृक्षों के नाम ये हैं—पारिजात, मंदा, संतान और कल्प वृक्ष ।

(३) कमल का पराग । (४) केसर । (५) चंद्रिका । चंद्रनी ।

हरिचर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याघ्रचर्म । बाघचर्म ।

हरिचाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंद्रधनुष ।

हरिजटा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता को समझाने के लिये नियत किया था । ( वाल्मीकि )

हरिजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] भगवान् का दास । ईश्वर का भक्त ।

हरिजान-संज्ञा पुं० दे० "हरियान" ।

हरिण-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० हरिणी ] (१) मृग । हिरन । (२) हिरन की एक जाति ।

विशेष—शेष चार जातियों के नाम ये हैं—कश्यप, रुरु, रूप्य और मृग ।

(३) हंस । (४) सूर्य । (५) एक लोक का नाम । (६)

विष्णु का एक नाम । (७) शिव का एक नाम । (८) एक नाग का नाम ।

वि० भूरे या बादामी रंग का ।

हरिकलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

हरिकानयना, हरिकानयनी-विं० स्त्री० [ सं० ] हिरन की आँसों के समान सुंदर आँसुवाली । सुंदरी ।

हरिकण्ठुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वर्णाईसम वृत्त का नाम जिसके विषम चरणों में ३ सगण, एक छुप और एक गुप्त होता है तथा सम में एक नगण, दो अंगण और एक रगण होता है ।

हरिकण्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।

हरिकण्ठ-विं० [ सं० ] ( हिरन सा ) इरपोक । बुद्धिक ।

हरियाणी-वि० स्त्री० [ सं० ] हरिन की भौंलों के समान सुंदर भौंलावाली। सुंदरी।

हरिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मादा हरिन। हरिन की मादा। (२) मँजोड़। (३) जूदे चमेली। (४) कामशास्त्र के अनुसार स्त्रियों की चार जातियों का भेदों में से एक जिसे त्रिणी भी कहते हैं।

विशेष—दो अच्छी जाति की स्त्रियों में यह गल्पम है। 'पद्मिनी' से इसका स्थान दूसरा है। यह पद्मिनी की अपेक्षा कम सुकुमार तथा खंचल और भीक्षणील प्रकृति की होती है। (५) एक धर्मग्रन्थ का नाम जिसमें सत्रह अध्याय होते हैं। इसका स्वरूप इस प्रकार है—म. स. म. र. स. १० गुं. (॥ ॥ ११ ॥ २२ ॥ ३३ ॥ ४४ ॥ ५५ ॥ ६६ ॥ ७७ ॥ ८८ ॥ ९९ ॥)। (६) इस वर्णों का एक गुण। उ०—हूलन की शुभ गोंद नहै। हूँचि सची जनु दारि दहै।—केसव।

हरित्-वि० [ सं० ] (१) भूरे या बादामी रंग का। कपिश। (२) हरे रंग का। हरा। सन्त। संज्ञा पुं० (१) सूर्य के घोड़े का नाम। (२) भरकन। पसा। (३) सिंह। (४) सूर्य। (५) विष्णु। (६) एक प्रकार का मृग। (७) हलदी।

हरित-वि० [ सं० ] (१) भूरे या बादामी रंग का। (२) पीला। जूदे। (३) हरे रंग का। हरा। सन्त। संज्ञा पुं० (१) सिंह। (२) कदवय के एक पुत्र का नाम। (३) यदु के एक पुत्र का नाम। (४) युवनाथ के एक पुत्र का नाम। (५) द्वादश अर्च्यतर का एक देवगण। (६) सेना। (७) सन्त। हरियाणी। (८) सन्त। शाक भागी। हरित कपिश-वि० [ सं० ] पीलावन या हरापन-लियू भूरा। खीद के रंग का।

हरित गोमय-संज्ञा पुं० [ सं० ] ताड़ा गोबर। (गोमिळ गुलः) हरित मण्डि-संज्ञा पुं० [ सं० ] भरकत। पसा। उ०—हरित-मनिन्द के पत्र कल पदुमाग के फूल। रचना देखि विचित्र अति मन विरंचि कर भूल।—तुलसी।

हरिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) दुर्वा। दूब। मोल दुर्वा। (२) हल्दी। (३) हरे या भूरे रंग का अंगूर। (४) भूरे रंग की माष। (५) स्वरभक्ति का एक भेद। (६) हरि या विष्णु का भाव। विष्णुपन।

हरिताल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हरिताल नाम की धातु। वि० दे० "हरताल"। (२) एक प्रकार का कव्तर जिसका रंग कुछ पीलापन या हरापन लियू होता है।

हरितालक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दे० "हरताल"। (२) नाटक के अन्तिम में नारी में रंग आदि पोतने का क्रम। हरिताली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) भालकंगनी। (२) तलवार का वह भाग जो धारदार होता है। (३) भादों की शुद्ध

तृतीया। वि० दे० "हरितालिका"। (४) आकाश में भेव भादि की पतकी घसी या रेखा। (५) वायु।

हरितालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भादों के शुद्ध पक्ष की तृतीया। तीज।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ निर्जल व्रत रखतीं और नग्न वस्त्र पहनकर शिव-पार्षती का पूजन करती हैं।

हरिदभे-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सद्गा घोड़ा। (२) सूर्य (जिनका घोड़ा हरिच माना गया है)।

हरिदास-संज्ञा पुं० [ सं० ] भगवाण का सेवक या भक्त।

हरिदिन, हरिदिघस-संज्ञा पुं० [ सं० ] पृक्षादी।

हरिदिशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पूर्व दिशा (जिसके खेरुपाल या अविद्यता इह हैं)।

हरिवेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु। (२) श्रवण नक्षत्र (जिसके अविद्यता विष्णु हैं)।

हरिद्रभे-संज्ञा पुं० दे० "हरिद्र"।

हरिद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] पीला चंदन।

हरिद्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पीला चंदन। (२) एक नाम का नाम।

हरिद्रखंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक औषध जिसके सेवन से दाद, सुनधी, जोड़े फुंसी और कृष्ण रोग दूर होता है।

विशेष—सोह, काली मिर्च, पिपली, तम, पत्रज, वायविडंग, नागकेसर, निमोय, प्रिकला, केसर और नागरमोथा सब टके टके भर लेकर चूर्ण करे और गाय के घी में सान डाले और ४ टके भर हलदी का चूर्ण ४ सेर दूध में मिलाकर खोया बना ले। फिर मिथी की पादानी में सबको मिलाकर टके टके भर की गोलीयाँ बाँधे ले।

हरिद्रांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कपूतर।

हरिद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हलदी। (२) एक नदी का नाम। (३) वन। जंगल। (अनेकार्थ) (४) संगल। (अनेकार्थ) (५) सीसा धातु। (अनेकार्थ)।

हरिद्रा गणपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] गणपति या गणेश जी की एक मूर्ति जिन पर मंत्र पढ़कर हलदी अर्घाई जाती है।

हरिद्राहय-संज्ञा पुं० [ सं० ] हलदी और दाढ़ हलदी।

हरिद्रा प्रमेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रमेह का एक भेद जिसमें पेशाब हलदी के समान पीला आता है और जलन होती है।

हरिद्रामेह-संज्ञा पुं० दे० "दन्दिद्रामेह"।

हरिद्रा राग-संज्ञा पुं० [ सं० ] साहित्य में पूर्व राग का एक भेद। यह प्रेम जो हलदी के रंग के समान कथा हो, स्थायी या पक्का न हो।

विशेष—पूर्व राग के कुलुंब राग, मंजिशा राग आदि कई भेद किये गए हैं।

हरिद्रा-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ से गंगा पृक्षाई



हरियाली—संज्ञा स्त्री० दे० "हरियाली"।

हरियाली—संज्ञा स्त्री० [ सं० हरित + आलि = बलि, समृद्ध ] (१) हरेपन का विस्तार। हरे रंग का फैलाव। (२) हरे हरे पद-पौधों या घास का समृद्ध या विस्तार। जैसे,—बरसात में भारी भार हरियाली छा जाती है।

मुद्गा—हरियाली सूतना = चारों ओर आनंद ही आनंद दिखाने पड़ना। मोन की बातों की ओर ही ध्यान रहना। आनंद में मग रहना। जैसे,—अभी तो हरियाली सूत रही है; जब सब देते पढ़ेंगे, तब मादूम होगा।

(३) हरा चारा जो चौपायों के खाने के लिये दिला जाता है।

हरियाली तीज—संज्ञा स्त्री० [ हि० हरियाली + तीज ] सावन वारी तीज।

हरियावाँ—संज्ञा पुं० [ दे० ] फसल की एक चट्टाई जिसमें ९ भाग असामी और १ भाग जमींदार होता है।

हरिल—संज्ञा पुं० दे० "हरिल"।

हरिलीला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यौद्ध अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसका स्वरूप इस प्रकार है—“सर्षी कही भरत यात सयै सुजान।”—केदाव

विशेष—यदि अंतिम वर्ण छपू लें तब तो इसे अलग छंद कह सकते हैं; पर यदि अंतिम छपू वर्ण को गुरु के स्थान पर मानें तो यह प्रसिद्ध चरंततिलका वृत्त ही है। केदाव ने ही इसको यह नाम दिया है।

हरिलोक—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु लोक। वैकुण्ठ।

हरिलोचन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कंकड़ा। (२) वल्लू।

हरिचंदा—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कृष्ण का कुल। (२) एक ग्रंथ जो महाभारत का परिशिष्ट माना जाता है और जिसमें कृष्ण तथा उनके कुल के माद्यों का सविस्तर वृत्त दिया गया है।

हरिचंप—संज्ञा पुं० [ सं० ] संवृष्टीय के नौ रंशों में से एक।

हरिचण्डा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लक्ष्मी। (२) गुलछी। (३) अधिक मात्रा की कृष्ण एकदशी।

हरिवास्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] अध्याय। पीपल।

हरियासत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सूर्य का दिन। रविवार। (२) विष्णु का दिन। एकदशी।

हरियाहन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गण्ड। (२) सूर्य का एक नाम। (३) इंद्र का एक नाम।

हरिशंकर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु और शिव। (२) एक रसोप्य जो पारे, और अमक के योग से बनती है और प्रमेह में दी जाती है।

पियोप—ग्रह पारे और अमक को लेकर सात दिन तक भाँडले के रस में घोले हैं; फिर सुखाकर एक रबी की मात्रा में रने हैं।

हरिश्चयनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भाग्य शुद्ध एकदशी। (पुराणों के अनुसार इस दिन विष्णु भागवान शेष की शय्या पर सोते हैं और फिर कालिक की प्रार्थना की एकदशी को उठते हैं।)

हरिश्चर—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव। महादेव।

विशेष—त्रिपुर विनाश के समय शिव ने विष्णु भगवान् को अपने धनुष का बाण बनाया था; इसी से इनका यह नाम पड़ा है।

हरिश्चंद्र—वि० [ सं० ] सोने की सी चमकवाला। स्वर्णम। (वैरिक)

संज्ञा पुं० सूर्य वंश का अष्टादसवाँ राजा जो त्रिशंकु का पुत्र था। पुराणों में यह बड़ा ही दानी और सत्यव्रती प्रसिद्ध है। मार्कंडेयपुराण में इसकी कथा विस्तार से आई है। इंद्र ने इंद्र्यावत विश्वामित्र को इनकी परीक्षा के लिये भेजा। विश्वामित्र ने इनसे सारी पृथ्वी दान में ली और फिर ऊपर से दक्षिणा माँगने लगे। अंत में राजा ने रानी सहित अपने को बंधक रूप की दक्षिणा चुकाई। वे क्षात्री में दोन के सेवक होकर इमशान पर मुर्दा खानेवालों से कर वसूल करने लगे। एक दिन उनकी रानी ही अपने सूत पुत्र को इमशान में लाई। उसके पास कर देने के लिये कुछ सो द्रव्य नहीं था। राजा ने उससे भी कर नहीं छोड़ा और आधा करन कटवाया। इस पर भगवान ने प्रकट होकर पुत्र को जिला दिया और अंत में अयोध्या की प्रजा सहित सबको वैकुण्ठ भेज दिया। महाभारत में राजसूय यज्ञ करके राजा हरिश्चंद्र का स्वर्ग प्राप्त करना लिखा है। ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःनीक की गाथा के प्रसंग में हरिश्चंद्र का नाम आया है; पर वहाँ कथा दूसरे ढंग की है। उसमें हरिश्चंद्र इहवाक वंश के राजा वैपस के पुत्र कहे गए हैं। गाथा इस प्रकार है—

नारद के उपदेश से राजा ने पुत्र की कामना करके बरुण से यह प्रतिज्ञा की कि जो पुत्र होगा, उसे बरुण को भेंट करूँगा। बरुण के घर से जब राजा को पुत्र हुआ, तब उसका नाम उन्होंने रोहित रखा। जब बरुण पुत्र भोगने लगे, तब राजा बराबर टालते गए। जब रोहित बड़ा होकर दास धारण के योग्य हुआ, तब वह भरत स्वीकार न कर जंगल में निकल गया और इंद्र के उपदेशानुसार इंद्र उषर फिरता रहा। अंत में वह अमीगर्च नामक एक ऋषि के आश्रम पर पहुँचा और उनमें सौ गायों के बटले में शुनःनीक नामक उनके मछले पुत्र को लेकर अपने पिता के पास आया जिसे बरुण के कोप से, जलोद्भर रोग हो गया था। शुनःनीक को दूध में बलि देने के लिये जब सब रीत्यारिद्ध हो चुकीं, तब शुनःनीक अपने सुतमरे के लिये सब देवताओं को म्युक्ति करने लगा। अंत में इंद्र के उपदेश से बरुण



मृदि दिप नैन।—सूर। (व्य) आरहितें तंनि मान तिया  
हरद हरदप गावै लगी जैरे।—पद्मकर।

हरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बहुत बड़ी संख्या। (बौद्ध)

हरणा-वि० दे० "हरण"।

हरणा-वि० दे० "हरण"।

हरफु-संज्ञा पुं० [ प्र० हरक का बहु० ] अक्षर। हरफु।

हरे-संज्ञा पुं० [ सं० ] 'हरि' शब्द का संबोधन का रूप।

हरे-वि० [ हि० हरण ] (१) धीरे से। आदिस्ता से।

तेजी के साथ नहीं। मंद। उ०—लान के साज धरेदे रहे

तब नैनन ले मन ही सौं मिलाए। कैसी करीं—जब क्यों

निकलें री हरे हरे हरि में हरि आया।—केशव। (२)

जो उँवा या जोर का न हो। जो तीव्र न हो। (शब्द)

उ०—दूरि तें दीरव, देव, गण सुनि के पुनि रोस महा चित

धीन्ये। संग की ओर उठी हँसि कै तब हेरि हरे हरि जू

हँसि दीन्ये।—देव। (३) जो कठोर या तीव्र न हो।

हलका। कोमल। (आघात, तर्का) आदि।

यौ०—हरे हरे = धीरे धीरे। उ०—रोस दरसाय बाल हरि

तन हेरि हेरि फूल की छरी सौं छरी मारती हरे हरे।

हरेणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मटर। (२) बाद जो हृद बाँधने के

लिये लगाई जाय।

हरेना-संज्ञा पुं० [ हि० हरा ] वृक्षविशेष प्रकार का चारा जो

व्यानेवाली गाय को दिया जाता है।

हरेरा-वि० दे० "हरा", "हरियरा"।

हरेय-संज्ञा पुं० [ देग० ] (१) मंगोल का देश। (२) मंगोल

जाति। उ०—पछिउँ हरेय दानिह जो पीठी। सो पुनि

फिरा सौँह के दूठी।—जायसी।

हरेया-संज्ञा पुं० [ हि० हरा ] हरे रंग की एक चिड़िया जिसकी

बोंब काली, पैर पीले और लंबाई १४ या १५ अंगुल होती

है। यह युक्त प्रांत, मध्य-भारत और बंगाल में पाई जाती

है। यह पेड़ की जड़ और रेशों से कठोर के आकार का

गोंसला बनाती और दो अंडे देती है। यह बहुत अच्छा

बोलती है, इससे इसे "हरी मुञ्जमुञ्ज" भी कहते हैं।

हरै-वि० दे० "हरे"।

हरैना-संज्ञा पुं० [ हि० हर (हल) + नैना (पय०) ] [ स्त्री० ] बल्ब०

हरैनी। (१) वह टेढ़ी गावड़म लकड़ी जो हल के छटे

(हरिस) के एक छोर पर आड़े बल में लगी रहती है और

जिसमें लोहे का फाल बाँका रहता है। (२) बेल गाड़ी के

सामने की ओर निकली हुई लकड़ी।

हरैनी-संज्ञा स्त्री० दे० "हरैना"।

हरैया-संज्ञा पुं० [ हि० हरया ] हरनेवाला। दूर करनेवाला।

उ०—दसराय के भेद हँ दुम-हरया।—तुलसी।

हरोना-संज्ञा पुं० [ हि० हरा ] एक प्रकार की अरहर जो रायपुर

जिले में बहुत होती है।

हरोल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल"।

हरोल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल"। उ०—जुरे दुहुन के टा समकि

रके न हौने चीर। हलकी पीत हरोल ज्यौ परत गोल पर

भीर।—विहारी।

हर्ज-संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) काम में रुकावट। याया। अद्वचन।

जैसे,—नौका के न रहने से यद्वा हर्ज हो रहा है। (२)

हानि। तुकसान। जैये,—हनके यहाँ रहने से आपका

बचा हर्ज है ?

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हर्सा-संज्ञा पुं० [ सं० हर् ] [ स्त्री० हर्षी ] (१) हरण करनेवाला।

दूर करनेवाला। (२) नाश करनेवाला।

हर्सा-संज्ञा पुं० [ सं० ] हरण करनेवाला। हर्सा।

हर्दा-संज्ञा पुं० दे० "हलदी"।

हर्दी-संज्ञा स्त्री० दे० "हलदी"।

हर्द-संज्ञा पुं० दे० "हरण"।

हर्दा-संज्ञा पुं० दे० "हरण"।

हर्म्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) राजभवन। महल। प्रसादा। (२)

बड़ा भारी महान। इबेली। (३) नरक।

हर्म्यपृष्ठ-संज्ञा पुं० [ सं० ] महान की पाठन या छत।

हर्-संज्ञा स्त्री० दे० "हर्", "हृद"।

हर्-संज्ञा पुं० [ सं० हरीणी ] बड़ी जाति की हृद जिसका उपयोग

त्रिकला में होता है और जो रंगाई के काम में आती है। वि०

दे० "हर्", "हृद"।

सुहा०—हर् का कर्म में = राते में मैल या गोबर दे। (पाठको के

कथा)

हर्-संज्ञा स्त्री० दे० "हृद"।

हर्-संज्ञा स्त्री० [ हि० हर् ] (१) हाथ में पहनने का एक गहना

जिसमें हृद के से सोने या चाँदी के दाने घाट में गुंछे रहते

हैं। (२) माला या कंठे के दोनों छोरों पर का चिपटा दाना

जिसके आगे सुराही होती है।

हर्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रकुलता या भय के कारण रोगियों का

खड़ा होना। (२) प्रकुलता। आनंद। सुनी। मोद।

चित्त प्रसादन।

क्रि० प्र०—करना।—मनामा।—होना।

विशेष—साहित्य में हर्ष की गिनती संचारी भावों में है।

(३) धर्म के पुत्रों में से एक। (४) कृष्ण के एक पुत्र का

नाम। (भागवत)

यौ०—हर्ष विपाद = सुतो और रंज।

हर्षक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हर्ष करनेवाले। आनंददायक। (२)



चित्रगुप्त के एक पुत्र का नाम । (३) मगध के सिमुनाक वंश का एक प्राचीन राजा ।

हर्षकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुख करनेवाला । आनंद देनेवाला । हर्षकारक ।

हर्षकीलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामशास्त्र में एक प्रकार के भासन का नाम ।

हर्षचरित-संज्ञा पुं० [ सं० ] वाण कवि का रचित एक प्रसिद्ध गद्य काव्य जिसमें उनके भाष्यदाता सम्राट् हर्षवर्द्धन का वृत्तान्त है ।

हर्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्रफुल्लना या भय से रोंगटों का खदा होना । जैसे,—खोमहर्षण । (२) प्रफुल्लित करना या होना । (३) कामदेव के पाँच धारणों में से एक । (४) आँसु का एक रोग । (५) एक प्रकार का आद्य । (६) फलित ज्योतिष में एक योग । (७) काम के वेग से इंद्रिय का तनाव । (८) अक्षय का एक संहार ।

हर्षधारिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बौद्ध प्रकार के तालों में से एक । (संगीत)

हर्षनाम-कि० प्र० [ सं० हर्षण ] प्रफुल्लित होना । सुख होना । प्रसन्न होना ।

हर्षनिश्चयी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की रागिनी का नाम । (संगीत)

हर्षवर्द्धन-संज्ञा पुं० [ सं० ] भारत का वैस क्षत्रिय-वंशी एक सम्राट् जिसकी सभा में वाण कवि रहते थे । यह बौद्ध था और इसका राज्य विक्रम की सततवीं शताब्दी में था । प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युएनसांग इसी के समय में भारतवर्ष में आया था ।

हर्षनाम-कि० प्र० [ सं० हर्ष + नामा (दि० प्रत्य०) ] आनंदित होना । प्रसन्न होना । प्रफुल्ल होना ।

कि० सं० हर्षित करना । आनंदित करना ।

हर्षित-वि० [ सं० ] आनंदित । प्रसन्न । प्रफुल्ल । सुखा ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

हर्षुल-वि० [ सं० ] हर्षित रहनेवाला । सुखमिग्नान ।

संज्ञा पुं० (१) प्रेमी । नायक । नियतम । (२) हिरन । मृग । (३) एक बुद्ध का नाम ।

हर्षुला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह कन्या जिसकी डुई में घाल या दाढ़ी हो । शावों में ऐसी कन्या विवाह के अयोग्य कही गई है ।

हर्षुल्ल-वि० [ सं० ] खुशी से फूला हुआ ।

हर्षा-संज्ञा पुं० [ सं० हर्षणा ] हल का लंबा लट्टा । हरिसु । हलीया ।

हल-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुद्ध ब्यंजन जिसमें स्वर न मिला हो ।

विशेष—लिखने में अक्षर के नीचे एक छोटी तिरछी लकीर

बना देने से यह सूचित होता है । जैसे,—'दृषक्' शब्द में 'क' के नीचे ।

हलंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] शुद्ध ब्यंजन जिसके उच्चारण में स्वर न मिला हो । वि० दे० "हल्" ।

विशेष—ब्यंजन दो रूपों में आते हैं—सस्वर और हलंत ।

हल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह यंत्र या औजार जिससे बीज बोने के लिये जमीन जोती जाती है । यह भीजार जिसे खेत में सघ जगह फिरा कर जमीन को खोदते और सुरमती करते हैं । सौर । खंगल ।

विशेष—यह खेतों का मुख्य औजार है और सात भाग हाथ लंबे लट्टे के रूप में होता है, जिसके एक छोर पर दो बाईं हाथ का लकड़ी का टेढ़ा टुकड़ा भाँड़ बल में जड़ा रहता है । इसी भाँड़ी लकड़ी में जमीन खोदनेवाला खोहे का फाल बाँधा रहता है । लंबे लट्टे को 'हरिस' या 'हर्सा' और भाँड़ी जड़ी लकड़ी को 'हरना' कहते हैं ।

कि० प्र०—चलाना ।

मुहा०—हल जोतना = (१) खेत में हल चलाना । (२) खेती करना ।

(२) एक अक्षर का नाम । (३) जमीन मापने का लट्टा ।

(४) उत्तर के एक देश का नाम । (शुहरसंहिता) (५) पर

की एक रेखा या चिह्न । (सामुद्रिक)

संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) हिसाब लगाना । गणित करना । (२)

किसी कठिन बात का निरण । किसी समस्या का समाधान या उत्तर निकालना । जैसे,—यह मुश्किल किसी तरह हल होती दिखाई नहीं देती ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

हलकंप-संज्ञा पुं० [ हि० हलना (दिलना) + कं + प्र० ] (१) भारी दहा

या उथल पुथल । हलचल । आंदोलन । हड़कंप । उ०—

जब अद्वैत सौं आयो नहीं । तब हलकंप परयो पुर नहीं ।

—रघुसाज ।

कि० प्र०—मचाना ।—मघाना ।

(२) चारों ओर फैली हुई घबराहट । लोगों के बीच फैला हुआ आयेग या आकुलता । उ०—सयुक्त के दल में हलकंप परयो सुनि के चूप केरि अर्थाई ।

कि० प्र०—डालना ।—पढ़ना ।

हलक-संज्ञा पुं० [ प्र० ] गले की नली । कंठ ।

मुहा०—हलक के नीचे उतरना = (१) मुँह में दाढ़ी हुई बाल का पेट में से जानेवाले खेत में जाना । पेट में जाना । (२) (किन्नी श्राव का) मन में बैठना । सन्न होना ।

हलकई-संज्ञा स्त्री० [ हि० हलका + ई (प्रत्य०) ] (१) हलकापन ।

(२) ओछापन । दुच्छता । (३) हेटी । अगतिका । जैसे,—

वहाँ जाने से कोई हलकई न होगी ।—यालकृष्ण भट ।

हलकफुद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] हल की यह लकड़ी जो लट्टे के एक

छोर पर भाड़े बल में उड़ी रहती है और जिसमें फाल डोंका रहता है। हरना।

हलकना-कि० प्र० [सं० हलकन = हिलना भववा 'हल हल' अनु०]

(१) किसी वस्तु में भरे बल का हिलाने से हिलना डोलना या शब्द करना। जैसे,—दौड़ने से पैरों में पानी हलकना है। (२) हिलोरें लेना। तरंग मारना। छहराना। (३) बत्ती की लौ का झिलझिलाना। (४) हिलना। डोलना। उ०—पानिप के भारत से भारत न गात, हलकं लखि लखि जाति कचमारन के हलकैं।—द्विजदेव।

हलका-वि० [सं० लुक्, प्रा० लृक्, विपर्यय 'लुक्' ] [सी० हलकी]

(१) जो तौल में भारी न हो। जिसमें यजन या गुलब न हो। 'भारी' का उलटा। जैसे,—यह परपर हलका है, तुम उठा सोगे। (२) जो गाढ़ा न हो। पतला। जैसे,—हलका शाबत। (३) जो गहरा या घटकीला न हो। जो शोबं न हो। जैसे,—हलका रंग, हलका हरा। (४) जो गहरा न हो। थपका। जैसे,—किनारे पर पानी हलका है। (५) जो उपजाऊ न हो। जो उर्वरा न हो। जैसे,—यहाँ की जमीन हलकी है, पैदावार कम होती है। (६) जो अधिक न हो। कम। थोड़ा। जैसे,—(क) हलका भोजन। (ख) हमें हलके दामों का एक थोड़ा चाहिए। (७) जो जोर का न हो। मंद। थोड़ा थोड़ा। जैसे,—हलका दर्द, हलका उपर। (८) जो ऊठोर या प्रचंड न हो। जो जोर से न पढ़ा या पैदा हो। जैसे,—हलका चपत, हलकी चोट। (९) जिसमें गंभीरता या बद्धपन न हो। भोला। गुच्छ। दुया। जैसे,—हलका भादमी, हलकी बात। (१०) जो करने में सहज हो। जिसमें कम परिश्रम हो। आसान। सुघर-साध्य। जैसे,—हलका काम। (११) जिसके ऊपर किसी कार्य या कर्तव्य का भार न हो। जिसे किसी बात के करने की फिक्र न रह गई हो। निश्चित। जैसे,—कन्या का विवाह करके भव से हलके हाथ गये। (१२) प्रकुल। तामा। (१३) जो मोटा न हो। छीना। पतला। महीन। जैसे,—(क) हलका कपड़ा। (ख) नहाने से बदन हलका हो जाता है। (१४) कम भयदा। पटिया। जैसे,—यह माल उससे कुछ हलका पढ़ा है। (१५) जिसमें कुछ गाना न हो। खाली। हँसा। उ०—सखि ! प्रात सुनौ एक मोहन की, निकसे मटकी सिर है हलकैं। सुनि बाँधि छरै सुनिप नत नार कहुँ कहुँ सुंदरी छलकैं।—केनाव।

सुहा०—हलका करना = मजानिप करना। मुचद उठराना। लोगों की इष्टि में प्रसिद्धा कम करना। जैसे,—तुमने दस आदमियों के बीच में हलका किया। हलकी बात = (१) थोड़ी या मुचद बात। (२) डरी बात। हलके भारी होना = (१) कपना। भार अनुभव करना। बोध मा समझना। जैसे,—चार दिन में तुम्हारे

यहाँ से चले जायेंगे, क्यों हलके भारी हो रहे हो। (२) मुचदा प्रकट करना। लोगों की नजर में भोदा बनना। हलकी भारी बोलना = खोटे वचन कहना। डरी खोटी सुनाना। बुरे शब्द मुँह से निकालना। लोगों की दृष्टि में हलका होना = भोदा या मुचद समझा जाना। प्रतिष्ठा खोना। हुए समझा जाना। हलके हलके = धीरे धीरे। मंद गति से। आहिस्ता आहिस्ता। हलका सोना = हलका सुनहरी रंग। (रंगरंग)

हलका-वि० [सं० हल हल] पानी की हिलोर। तरंग। छहर।

हलका-संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) घुस। मंडल। गोलाई। (२) घेरा। परिधि। (३) मंडकी। झुंड। दल। (४) हाथियों का झुंड। उ०—सत्ता के सपुत भाऊ तेरे दिए हलकनि बरनी उँचाई कवियाजन की मति मैं। मयुकर कुल कटीयन के कपोलन तँ उड़ि उड़ि पियत भयत उदुपति मैं।—मतिराम। (५) कई गाँवों या कस्बों का समूह जो किसी काम के लिये नियत हो। जैसे,—याने का हलका, पटवारियों का हलका। (६) गले का पड़ा। (७) छोटे का बंद जो पहिए के घेरे में जड़ा रहता है। डाल।

हलकाई-संज्ञा स्त्री [ हि० हलक + ई (प्रत्य०) ] (१) हलकापन। लघुता। (२) भोलापन। नीचता। (३) भ्रमविद्या। हेठी।

हलकाना-वि० दे० "हैरान"।

हलकाना-कि० प्र० [ हि० हलक + ना (प्रत्य०) ] हलका होना। बोस कम होना।

कि० रा० [ हि० हलकना ] (१) किसी वस्तु में भरे हुए पानी को हिलाना या हिलाकर घुलाना। (२) हिलोरा देना। कि० सं० दे० "हिलाना"।

हलकापन-संज्ञा पुं० [ हि० हलका + पन (प्रत्य०) ] (१) हलके होने का भाव। भार का अभाव। लघुता। (२) भोलापन। नीचता। मुच्छुद्धि। खोटाई। (३) भ्रमविद्या। हेठी। इज्जत की कमी।

हलकारा-संज्ञा पुं० दे० "हरकार"।

हलकारी-संज्ञा स्त्री [ हि० हल + कारी ] कपड़ा रँगने के पहले उसमें फिटकरी, हद या तेजाब आदि का घुट देना जिसमें रंग पैदा हो।

संज्ञा स्त्री [ प्र० हलका + पेय ] हलदी के योग से बने हुए रंग के द्वारा कपड़ों के किनारे पर की छपाई।

हलकारी-संज्ञा पुं० [ अनु० हल हल ] हिलोरा। तरंग। छहर।

हल-गोलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कीड़ा।

हलप्रार्थी-वि० [ सं० हलप्रार्थि ] हल पकड़नेवाला। हल की मूँट पकड़कर योग जोतनेवाला।

विशेष—हल पकड़ना बहुत ख्यातों में प्रायजनों और क्षत्रियों के लिये निविद्ध समझा जाता है।

संज्ञा पुं० खेती करनेवाला । किसान ।

हलचल-संज्ञा स्त्री० [ हि० हलना + चलना ] (१) लोगों के बीच पैली हुई अथवा, चबराहट; दौड़ धूप, शोर गुल आदि ।

हलचली-पुं० । जैसे,—सिपाहियों के शर में घुसते ही हलचल मच गई । (ख) सिपाही ने मुगलों की सेना में हलचल डाल दी ।

कि० प्र०—डालना ।—घड़ना ।—मचना ।—मथाना ।

(२) उषणव । रूंगा । (३) हिलना डोलना । कंप । विचलन ।

वि०—द्वार, उधार, हिलता डोलना हुआ । दगमगाता हुआ । कपासमान ।

हलजोवी-वि० [ सं० हलजीव ] हल-चलाकर अर्थात् खेती करके निर्वाह करनेवाला । किसान ।

हलजुता-संज्ञा पुं० [ हि० हल + जुतना ] (१) सुष्ठु रूपक ।

मम्बूजी किसान । (२) गँवार ।

हलड़ा-संज्ञा पुं० दे० "हलरा" ।

हलदंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] हल का लंबा लट्टा । दरिस ।

हलदी-संज्ञा स्त्री० दे० "हलदी" ।

हलदू-हात-संज्ञा स्त्री० [ हि० हास + हाथ ] त्रिपाद के तीन या पाँच दिन पहले घर और कन्या के दारी में दूधड़ी और तेल लगाने की रस्म । हृदी चढ़ना ।

हलदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० हरिद्रा ] (१) जेदू दो हाथों ऊँचा एक पौधा जिसमें चारों ओर टहनियाँ नहीं निकलतीं, काँड के चारों हाथ पौन हाथ लंबे और तीन चार अंगुल चौड़े पत्ते निकलते हैं । इसकी जड़, जो गॉड के रूप में होती है, व्यापार की एक प्रसिद्ध वस्तु है; क्योंकि यह मसाले के रूप में नियत के व्यवहार की भी वस्तु है और रँगाई तथा औषध के काम में भी आती है । गॉड पीसने पर बिलकुल पीली हो जाती है । इससे दाल, नरकारी आदि में भी यह चली जाती है और इसका रंग भी बनता है । इसकी खेती हिंदुस्तान में प्रायः सब जगह होती है । हलदी की कई जातियाँ होती हैं । साधारणतः दो प्रकार की हलदी देखने में आती है—एक बिलकुल पीली, दूसरी लाल या ललाई लिए जिसे रोचनी हलदी कहते हैं । वैद्यक में यह गरम, पाचन, शक्तिवर्द्धक और कृमिघ्न मानी जाती है । रँगाई में काम आनेवाली हलदी की जातियाँ ये हैं—लोकादी, हलदी, मोयला हलदी, उजाला हलदी और आँग हलदी ।

(२) एक पौधे की गॉड जो मसाले आदि के रूप में व्यवहार में आई जाती है ।

मुहा०—हलदी उठना या चढ़ना = विवाह के तीन या पाँच दिन पहले दूधे और हलदुन के शर में हलदी और तेल लगाने की रस्म होना । हलदी लगना = विवाह होना । हलदी लगाने के घैठना =

(२) कोई काम पाम न करना; एक बगह बैठा रहना । (२) धर्म में पूजा रहना । धर्मों की बहुत लगाना । हलदी लगी न फिटकिरी = बिना कुछ खर्च किए । मुफ में ।

हलदू-संज्ञा पुं० [ हि० हलदू (हृदी) ] एक बहुत बड़ा और ऊँचा पेड़ जिसकी जेदू अंगुल मोटी, सफेद और सूरदुही लाल होती है । भीतर की लकड़ी पीली और बहुत मजबूत होती है । यह पेड़ तर जगहों में—जैसे, हिमालय की तलहटी में—होता है । लकड़ी बहुत बज्जी होती है तथा साफ करने से चमकती है । इससे खेती और सजावट के सामान जैसे, मेज, कुर्सी, आलमारी, कपियाँ, बंदूक के कुंदे इत्यादि बनते हैं । इस पेड़ की कर्म भी कहते हैं ।

हलधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हल को धारण करनेवाला । (२) बलराम जी ( जो हल नामक अस्त्र धारण करते थे ) ।

हलाना-वि०-कि० प्र० [ सं० हलान = टोकना, काट लेना ] (१) हिलना डोलना । उ०—(क) अंगनि—उत्तम जंग खेतवार जोर मिट्टे बिखरत दिखरि हलत कलकत है ।—मतिराम । (२) घुसना । प्रवेश करना । घैठना । जैसे,—पानी में हलना, घर में हलना ।

हलपत-संज्ञा पुं० [ हि० हल + पट, पाय ] हल की शाही लगी हुई लकड़ी जो बीच में चौड़ी होती है । परिहत ।

हलपायि-संज्ञा पुं० [ सं० ] बलराम । ( जो हाथ में हल लिए रहते थे ) ।

हलफु-संज्ञा पुं० [ म० ] यह बात जो ईश्वर को साक्षी मानकर बही जाय, किसी पवित्र वस्तु की शपथ । कंसम । खीमंथ ।

मुहा०—हलफ उठाना या देना = शपथ खिना या काने की करना । हलफ उठाना या देना = शपथपूर्वक कहना । कसम खाना । ईश्वर को साक्षी देकर कहना ।

हलफुनामा-संज्ञा पुं० [ म० + फा० ] वह कागज जिस पर कोई बात ईश्वर को साक्षी मानकर अथवा शपथपूर्वक लिखी गई हो ।

हलफा-संज्ञा पुं० [ म० हल हल ] हिलोर । लहर । उत्तरंग ।

कि० प्र०—उठना ।

मुहा०—हलफा मारना = लहर में मारना । लहराना ।

हलध-संज्ञा पुं० [ दे० ] [ वि० हलध ] पारस की ओर के एक देश का नाम जहाँ का शीशा प्रसिद्ध था ।

हलधरा-संज्ञा पुं० [ हि० हल + धरा ] चलचली । हलचल । घूम । हलधी, हलधी-वि० [ हल धरा ] हलध देश का (शीशा) । पड़िया (शीशा) । उ०—नैन सनेहन के मनी हलधी सीसा भाव ।

गुण प्रगट सिन में मीत सुसुध दूरसाय ।—रसनिधि ।

हलमली-संज्ञा पुं० दे० "हलचल" ।

हलमली-संज्ञा स्त्री० [ हि० हलम, हलमं ] चलचली । हलचल । चबराहट ।

संज्ञा स्त्री० [ शब्० हलश्चभ्र ] त्वरा । जवरी । हयवदी ।  
 हलभूति-संज्ञा पुं० [ सं० ] शंकराचार्य का एक नाम ।  
 हलभ्रुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] बकराम ।  
 हलमरिया-संज्ञा स्त्री० [ पुरा० भावमारी ] जहाज के नीचे का  
 खाना । (लघ०)  
 हलमिल लैला-संज्ञा पुं० [ सिंहली ] एक प्रकार का वड़ा पेड़ जो  
 सिडक या सीलोन में होता है और जिसकी लकड़ी बहुत  
 मजबूत होती है और खेती के सामान आदि बनाने के काम  
 में आती है । मैसूर में भी यह पेड़ पाया जाता है ।  
 हलमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] हल का फाल ।  
 हलमुखी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक धरण में  
 कम से सगण, नगण और सगण आते हैं ।  
 हलमाना-क्रि० सं० [ दि० दिहोग ] ( वधों को ) हाथ पर लेकर  
 दूर उधर हिलाना डुलाना । प्यार से हाथ पर डुलाना ।  
 उ०-(क) जमुना हरि पारने सुलाये । हलरावै मलहरावै  
 जोड़ सोई कसु गावै ।-सूर । (ख) लै उठेग कबहुँक  
 हलरावै । कबहुँ पाखने पाखि सुलावै ।-तुलसी ।  
 हलघत-संज्ञा स्त्री० [ हि० हल + घत (प्रत्य०) ] वर्ष में पहले पहल  
 खेत में हल ले जाने की रीति या कृत्य । हराती ।  
 हलघा-संज्ञा पुं० [ भ० ] (१) एक प्रकार का मीठा भोजन या  
 मिठाई जो मैदे या सूजी को घी में खूब भूज कर उसे दारवत  
 या घाहनी में पकाने से बनती है । मोहनभोग । (२)  
 गीजी और मुछापम चीज ।  
 यो०-सोहन हलघा ।  
 मुहा०-हलघे माँडे से काम = बेवकल्पसम्पन्न से ही प्रयोजन ।  
 काम धी से मजबूत । जैसे,—तुम्हें तो बनने हलघे माँडे से  
 काम, किसी का चाहे कुछ हो । हलघा निकालना = बहुत  
 पीटना । खूब मारना । जैसे,—मारते मारते हलघा निकाल देंगे ।  
 हलघारन-संज्ञा स्त्री० [ हि० हलघार ] (१) हलघाई की घी । (२)  
 यह घी जो मिठाई बनाने का काम करती है ।  
 हलघाई-संज्ञा पुं० [ भ० हलघा + ई (प्रत्य०) ] [ स्त्री० हलघारन ]  
 मिठाई बनाने और बेचनेवाला । मिठाई बनाने का व्यवसाय  
 जोधिका खानेवाला ।  
 हलघाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो दूसरे के यहाँ हल जोतने का  
 काम करता हो । हल चलाने का काम करनेवाला मजदूर  
 या नौकर ।  
 विरोध-हल चलाने के लिये गाँवों में चमार आदि नौधे  
 जाति के लोग ही रहते जाते हैं ।  
 हलघाहा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जमीन की एक नाप जिसका व्यवहार  
 प्राचीन काल में होता था ।  
 हलघा पुं० दे० "हलघाई" ।  
 हलहल-संज्ञा पुं० [ सं० ] हल चलाना ।

संज्ञा पुं० [ भनु० ] किसी वस्तु में भरे जल के हिलने डोलने  
 का शब्द ।  
 हलहला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आनंदसूचक ध्वनि । किलकार ।  
 हलहलाना-क्रि० सं० [ दि० हलना या भनु० हलहल ] (१) ऐसी  
 वस्तु को हिलाना जिसके भीतर पानी भरा हो । (२) खूब  
 और से हिलाना डुलाना । झकझोरना ।  
 कि० भ० कर्तव्यता । धरधाराना । कर्षित होना । जैसे,—मार  
 सुवार के हलहला रहा है ।  
 हलाक-वि० [ भ० हलाकत ] मारा हुआ । बच किया हुआ ।  
 मुहा०-हलाक करना = मार डालना । बच बनाना ।  
 हलाकन-संज्ञा स्त्री० [ भ० ] (१) हत्या । कथ । मार डालना ।  
 (२) मृत्यु । विनाश ।  
 हलाकान-वि० [ भ० हलाक या हैलन ] परेशान । शैतान । तंग ।  
 क्रि० प्र०-करना ।-होना ।  
 हलाकानी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हलाकान ] तंग होने की क्रिया या  
 भाव । परेशानी । हैरानी ।  
 हलाकी-वि० [ भ० हलाक + ई (हि० प्रत्य०) ] हलाक करनेवाला ।  
 मार डालनेवाला । मासू । पातक । उ०-जोगकथा पठई  
 घन को, सप सो स्रष्ट चेरी की चाल चलाकी । ऊधे जू !  
 क्यों न कहै कुबरी जो वरी नदनगर हेरि हलाकी ।-तुलसी ।  
 हलाकू-वि० [ भ० हलाक + क (प्रत्य०) ] हलाक करनेवाला ।  
 संज्ञा पुं० एक तुर्क सरदार या बादशाह जो चंगेज़ ख़ाँ का  
 पोता या और उसी के समान धूर तथा हयाकारी था ।  
 हलाना-क्रि० सं० दे० "हिलाना" ।  
 हलाभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह घोड़ा जिसकी पीठ पर काले या  
 गदरे रंग के रोएँ बराबर कुछ दूर तक चले गए हों ।  
 हला भला-संज्ञा पुं० [ हि० भला + हला भनु० ] (१) निबटारा ।  
 निरपेय । जैसे,—बहुत दिनों से यह पीठे लगा है, इसका  
 भी कुछ हला भला कर दो । (२) परिणाम । फल । उ०-  
 भले ही भले नियमों जो माली यह देखिये ही को हला हु  
 भला । मित्रही मत ही मित्रियोह कट्टे, मित्रियो न अलौकिक  
 नंदलला ।-केशव ।  
 हलामियोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्ष में पहले पहल खेत में हल ले  
 जाने की रीति या कृत्य । हलवत । हराती ।  
 हलायुध-संज्ञा पुं० [ सं० ] बकराम ।  
 हलाल-वि० [ भ० ] जो धर्मशास्त्र के अनुसार उचित हो ।  
 जिसकी आंश 'धर्मशास्त्र में हो । जो दाम या मुसल-  
 मानी धर्मग्रन्थक के अनुसार हो । जो दाम न हो ।  
 विधि-विहित । जायज़ ।  
 यो०-हलालखोर । नमकहंजलाक ।  
 संज्ञा पुं० यह पशु जिसका मांस खाने की मुसलमानी धर्मग्रन्थक  
 में आजा है । यह जानवर जिसके खाने का निषेध न हो ।

**मुद्दा**—हलाल करना = (१) ईमानदारी के साथ व्यवहार करना । बदले में पूरा काम करना । उ०—जिसका खाना, उसका हलाल करके खाना । (२) खाने के लिये पशुओं की मुतममानी शरभ के मुताबिक ( धीरे धीरे गला रेत कर ) मारना । बूढ़ करना । हलाल का = धर्मशास्त्र के अनुसार । ईमानदारी से पाया हुआ । जैसे,—हलाल का खपया ।

**हलालखोर—संज्ञा पुं०** [ भ० + ख० ] [ खी० हलालखोरी, हलालखोरिण ] (१) हलाल की कमाई खानेवाला । मिदमत करके जीविका करनेवाला । (२) मीठा या कूड़ा करकट साफ करने का काम करनेवाला । मेहतर । भंगी ।

**हलालखोरी—संज्ञा स्त्री०** [ भ० हलाल + खो० खोर ] (१) हलालखोर की स्त्री । (२) पाखाना ठठाने या कूड़ा करकट साफ करने का काम करनेवाली स्त्री । (३) हलालखोर का काम । (४) हलालखोर का भाव या धर्म ।

**हल्लाहल्ला—संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) यह प्रचंड विष जो समुद्र मथन के समय निकला था और जिसके प्रभाव से सारे देवता और असुर व्याकुल हो गए थे । इसे अंत में शिव जी ने धारण किया था । (२) महा विष । भारी जहर । उ०—धिक तो कहीं जो अजहूँ तु जिये । खल, जाय हल्लाहल्ल क्यों न परिषं ?—केदार । (३) एक ज्वरहीला बीधा जिसके पचे ताड़ के से, कुछ नीलापन लिए तथा फल गाय के थन के आकार के सफेद सफेद लिये गए हैं । इसका कंद या जड़ की गाँठें भी गाय के थन के आकार की कहीं गाँठें हैं । लिखा है कि इसके आस पास घास या पेड़ पीधे नहीं उगते और मनुष्य केवल इसकी महक से मर जाता है । ( भावप्रकाश )

**हलिद्वय—संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का सिद्ध ।

**हलिमिया—संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) मद्य । मदिरा । (२) ताड़ी ( जो बलरामजी को प्रिय थी ) ।

**हलिमा—संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] स्कंद या कुमार की मातृकाओं में से एक ।

**हली—संज्ञा पुं०** [ सं० हलिव् ] (१) ( हल नाम का अन्न धारण करनेवाले ) बलराम । (२) किसान ।

**हलीम—संज्ञा पुं०** [ सं० ] केतकी ।

संज्ञा पुं० [ देश० ] मदर के उठल जो बंधई की ओर काटकर चौपायों को खिलाए जाते हैं ।

वि० [ भ० ] सीधा । हात ।

संज्ञा पुं०, एक प्रकार का खाना जो, मुहरम में बनता है । ( मुसलमान )

**हलीमक—संज्ञा पुं०** [ सं० ] पांडु रोग का एक भेद ।

**विशेष—**यह वात पिच के कोप से उत्पन्न कहा गया है ।

इसमें रोगी के चमड़े का रंग कुछ हरापन, कालापन या भूमिलपन लिए पीला हो जाता है । उसे तंद्रा, मंदाग्नि,

जीर्ण ज्वर, भरुचि और श्रॉति तथा उसके शंभों में पीदा रहती है ।

**हलीसा—संज्ञा पुं०** [ सं० हलोषा ] नाव खिने का छोटा बाँड़ा जिसका एक जोड़ा लेकर एक ही भादमी गाने चला सकता है । चप्पू । ( लडा० )

**मुद्दा**—हलीसा तानना = बोल, नुशाना ।

**हलुकी—वि०** दे० "हलका" ।

**हलुकही—संज्ञा स्त्री०** दे० "हलकाई" ।

**हलुवा—संज्ञा पुं०** दे० "हलवा" ।

**हलुवाई—संज्ञा पुं०** दे० "हलवाई" ।

**हलुहार—संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह घोडा जिसके अंदकोश कालें हैं और जिसके माथे पर दाग हो ।

**हलोर—संज्ञा पुं०** दे० "हिलोर" ।

**हलोसा—संज्ञा पुं०** दे० "हलीसा" ।

**हलोरा—संज्ञा स्त्री०** [ हिं० हलना या हलु० हललु ] हिलोरा । तरंग । लहर ।

**हलोरना—कि० रा०** [ हिं० हिलोर + ना० (भव०) ] (१) पानी में हाथ टाककर उसे हिलाना डुलाना । जल को हाथ के आघात से तरंगित करना । (२) मथना । (३) अनाज फटकना । (४) दोनों हाथों से या बहुत अधिक मान में किसी पदार्थ का विशेषतः द्रव्य का संमोह करना । जैसे,—आज कल यह रंग के व्यापार में खूब रूपसे हलोर रहे हैं ।

**हलोरा—संज्ञा पुं०** [ हिं० हलना या हलु० हललु ] हिलोरा । तरंग । लहर । उ०—सोई सितसिन को मिलियो, तुलसी हुलसि विध हरि हलोरे । मानी हरे, तुन, चाप, चरौ बगरे सुरपेनु के घौल कलोरे ।—तुलसी ।

**हलका—वि०** दे० "हलका" ।

**हलद—संज्ञा स्त्री०** दे० "हलद" ।

**हलदहात—संज्ञा स्त्री०** [ हिं० हल्ली + हाथ ] विवाह के तीन या पाँच दिन पहले घर और कन्या के शरीर में हलदी लगाने की रीति । हल्ली, चंदना ।

**हलदी—संज्ञा स्त्री०** दे० "हलदी" ।

**हल्लाक—संज्ञा पुं०** [ सं० ] काल कमल ।

**हल्लान—संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) करवट बदलना । (२) श्वर से उधर दिखना डोलना ।

**हल्ला—संज्ञा पुं०** [ मडु० ] (१) एक या अधिक मनुष्यों का ऊँचे स्वर से बोलना । चिल्लाहट । शोरगुल । कोलाहल ।

कि० प्र०—करना ।—मचना ।—मथाना ।—होना ।

बो०—हल्ला गुल्ला = शोर गुल ।

(२) लड़ाई के समय की लड़काना । धावे के समय किया हुआ शोर । हॉक । (३) सेना का वेग से किया हुआ

आक्रमण। धावा। हमला। जैसे,—राजपूतों ने एक ही दले में किला छे लिया।

हस्तोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) नाट्यशास्त्र में अठारह उपरूपकों में से एक।

विशेष—इसमें एक ही अंक होता है और मूल्य की प्रधानता रहती है। इसमें एक पुरुष पात्र और सारा, भाउ या दस स्त्रियों पात्री होती हैं।

(२) मंदल बंधकर होनेवाला एक प्रकार का नाच जिसमें एक पुरुष के आदेश पर कई स्त्रियाँ नाचती हैं।

हृदय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी देवता के निमित्त भक्ति में दी हुई आहुति। यत्नि। (२) भक्ति। आग।

हृदय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी देवता के निमित्त मंत्र पढ़कर धी, जौ, तिल आदि भक्ति में डालने का कृत्य। होम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) भक्ति। आग। (३) भक्तिकुंड। (४) भक्ति में आहुति देने का यज्ञपात्र। हवन करने का यज्ञपात्र। धवा।

हृदयनीच-वि० [ सं० ] ओ हवन के योग्य हो या जिनके आहुति के रूप में भक्ति में डालना हो।

सहा पुं० यह पदार्थ जो हवन करने के समय भक्ति में डाला जाता है। जैसे,—धी, जौ आदि।

हृदयलदार-संज्ञा पुं० [ प्र० हवाक = सुदुर्गो + ल० दार = रत्नकेवाला ]

(१) बादशाही जमाने का वह अफसर जो राजकर की ठीक ठीक वस्तुओं और फसल की निगरानी के लिये तैनात रहता था। (२) कौम में यह सब से छोटा अफसर जिसके मातहत थोड़े से सिपाही रहते हैं।

हृदय-संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) लालसा। कामना। चाह। जैसे,—हमें भय किसी बात की हृदय नहीं है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—हृदय पकाना = अपने कामना करण करना। केशव मन में ही किसी कामना की पूर्ति का अनुमान किया करना। मनोवशक प्रभा। हृदय पूरी करना = शब्दा पूर्ण करना। हृदय पूरी होना = शब्दा पूर्ण होना।

(२) मुष्णा। जैसे,—उड़ते हुए पर हृदय न गई।

हवा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह सूक्ष्म प्रवाह रूप पदार्थ जो भूमण्डल की चारों ओर से घेरे हुए है और जो प्राणियों के जीवन के लिये सब से अधिक आवश्यक है। वायु। पवन। वि० दे० "वायु"।

क्रि० प्र०—माना।—चलना।—बहना।

बौ०—हवाझोरी। हवाचक्की।

मुहा०—हवा उड़ना = खर फौलना। बात फौलना का प्रसिद्ध होना।

हवा उड़ना = (१) भ्रमोत्पन्न होना। धारण। (२) किंवदन्ती उभाना। पत्रप्रार फौलना। हवा करना = पंखे से हवा का

भौका जाना। पंखा दफिना। हवा के रुख जाना = भिन्न ओर की हवा बहती हो, उसी ओर जाना। हवा के मुँह पर खाना = दे० "हवा के रुख जाना"। (लश०) हवा के थोड़े पर

सवार = बहुत सजाली में। बहुत बख्ती में। हवा गिरना = हवा गमना। तेज हवा का चलना बंद होना। हवा खाना = (१)

शुद्ध वायु के लिये वाहर निकलना। बाहर घूमना। टहलना। (२) प्रयोगन सिद्ध तक न पहुँचना। बिना सफलता प्राप्त किए यों ही रह जाना। अश्रुकार्य होना। जैसे,—पत्त पर तो भाद नहीं,

अथ जाओ, हवा खाओ। हवा गँठ में बाँधना = असंभव बात के लिये प्रयत्न करना। मनहोनी बात के पीछे ईशान होना। हवा फाँक कर रहना या हवा पीकर रहना = बिना आहार के रहना। (श्वभ्य) जैसे,—कुछ खाने की नहीं पाते तो क्या हवा पीकर

रहते हो? हवा पकड़ना = पार में हवा भरना। (लश०) हवा बताना = किसी वस्तु से बंचित रहना। टाल देना। शर उभर यो बात कह कर हवा देना। जैसे,—वह अपना काम निकाल कर तुम्हें हवा घटा देगा। हवा बाँधकर जाना = हवा की

नाच से उलझ जाना। भिन्न ओर से हवा आनी हो, उस ओर जाना (विशेषतः नाच के लिये)। हवा बाँधना = (१) लंबी चौड़ी बातें कहना। शैली दफिना। बड़ बड़कर बोलना। (२) बिना बड़ की बात कहना। गप हौकना। झूठी बातें जोड़ जोड़ कर कहना। हवा पलटना, फिरना या बदलना = (१) दूसरी ओर की हवा

चलने लगना। (२) दरीपर होना। दूसरी स्थिति या अवस्था होना। दालन बदलना। हवा भर जाना = सुशी या पमंद से फूल जाना। हवा बिरादना = (१) मंत्रमत्क रोग फैलना। ववा वा मरी फैलना। (२) शीत या चाल विगमना। उरें विचार फैलना। दिमाग में

हवा भर जाना = सिर किरना। उन्माद होना। बुद्धि ठीक न रहना। हवा देना = (१) मुँह से हवा छोड़कर दहकना। फूँटना। (भाग के थिये)। (२) बाहर हवा में रखना। खेले स्थान में खाना

जहाँ सूँध हवा लगे। जैसे,—हवन कपड़ों की कभी कभी हवा दे दिया करो। (३) भगदे का बदाना। भगन उकमाना। हवा खा = विस्तृत नहीं या दलना। हवा से लड़ना = किसी से अक्रोधा लड़ना। हवा से वारें करना = (१) बहुत तेज दौटना या चटना। (२) प्राण ही प्राण या अपने बहुत बोलना।

हवा लगना = (१) हवा का भौका बदन पर पड़ना। वायु का रसते होगा। (२) बात रोग से ग्रस्त होना। (३) उन्माद होना। सिर फिर जाना। बुद्धि ठीक न रहना। किसी की हवा लगना = किसी को श्रमन का प्रभाव पड़ना। सुदहन का प्रसर होना। किनी के दोषों का किनी में खाना। जैसे,—पुण्डें भी उसी की हवा

लगनी। हवा हो जाना = (१) मरुत चरु देना। गाय जाना। (२) बहुत तेज दौटना या चटना। जैसे,—चातुक पदते ही यह थोड़ा हवा हो जाता है। (३) न रह जाना। एक बरगी गाय हो अना। प्रभा हो अना। जैसे,—बहुत भाशा खगाए

हवा से लड़ना = (१) मंत्रमत्क रोग फैलना। ववा वा मरी फैलना। (२) शीत या चाल विगमना। उरें विचार फैलना। दिमाग में हवा भर जाना = सिर किरना। उन्माद होना। बुद्धि ठीक न रहना। हवा देना = (१) मुँह से हवा छोड़कर दहकना। फूँटना। (भाग के थिये)। (२) बाहर हवा में रखना। खेले स्थान में खाना

जहाँ सूँध हवा लगे। जैसे,—हवन कपड़ों की कभी कभी हवा दे दिया करो। (३) भगदे का बदाना। भगन उकमाना। हवा खा = विस्तृत नहीं या दलना। हवा से लड़ना = किसी से अक्रोधा लड़ना। हवा से वारें करना = (१) बहुत तेज दौटना या चटना। (२) प्राण ही प्राण या अपने बहुत बोलना।

हवा लगना = (१) हवा का भौका बदन पर पड़ना। वायु का रसते होगा। (२) बात रोग से ग्रस्त होना। (३) उन्माद होना। सिर फिर जाना। बुद्धि ठीक न रहना। किसी की हवा लगना = किसी को श्रमन का प्रभाव पड़ना। सुदहन का प्रसर होना। किनी के दोषों का किनी में खाना। जैसे,—पुण्डें भी उसी की हवा

लगनी। हवा हो जाना = (१) मरुत चरु देना। गाय जाना। (२) बहुत तेज दौटना या चटना। जैसे,—चातुक पदते ही यह थोड़ा हवा हो जाता है। (३) न रह जाना। एक बरगी गाय हो अना। प्रभा हो अना। जैसे,—बहुत भाशा खगाए

हवा से लड़ना = (१) मंत्रमत्क रोग फैलना। ववा वा मरी फैलना। (२) शीत या चाल विगमना। उरें विचार फैलना। दिमाग में हवा भर जाना = सिर किरना। उन्माद होना। बुद्धि ठीक न रहना। हवा देना = (१) मुँह से हवा छोड़कर दहकना। फूँटना। (भाग के थिये)। (२) बाहर हवा में रखना। खेले स्थान में खाना

जहाँ सूँध हवा लगे। जैसे,—हवन कपड़ों की कभी कभी हवा दे दिया करो। (३) भगदे का बदाना। भगन उकमाना। हवा खा = विस्तृत नहीं या दलना। हवा से लड़ना = किसी से अक्रोधा लड़ना। हवा से वारें करना = (१) बहुत तेज दौटना या चटना। (२) प्राण ही प्राण या अपने बहुत बोलना।

हवा लगना = (१) हवा का भौका बदन पर पड़ना। वायु का रसते होगा। (२) बात रोग से ग्रस्त होना। (३) उन्माद होना। सिर फिर जाना। बुद्धि ठीक न रहना। किसी की हवा लगना = किसी को श्रमन का प्रभाव पड़ना। सुदहन का प्रसर होना। किनी के दोषों का किनी में खाना। जैसे,—पुण्डें भी उसी की हवा

लगनी। हवा हो जाना = (१) मरुत चरु देना। गाय जाना। (२) बहुत तेज दौटना या चटना। जैसे,—चातुक पदते ही यह थोड़ा हवा हो जाता है। (३) न रह जाना। एक बरगी गाय हो अना। प्रभा हो अना। जैसे,—बहुत भाशा खगाए

हवा से लड़ना = (१) मंत्रमत्क रोग फैलना। ववा वा मरी फैलना। (२) शीत या चाल विगमना। उरें विचार फैलना। दिमाग में हवा भर जाना = सिर किरना। उन्माद होना। बुद्धि ठीक न रहना। हवा देना = (१) मुँह से हवा छोड़कर दहकना। फूँटना। (भाग के थिये)। (२) बाहर हवा में रखना। खेले स्थान में खाना

जहाँ सूँध हवा लगे। जैसे,—हवन कपड़ों की कभी कभी हवा दे दिया करो। (३) भगदे का बदाना। भगन उकमाना। हवा खा = विस्तृत नहीं या दलना। हवा से लड़ना = किसी से अक्रोधा लड़ना। हवा से वारें करना = (१) बहुत तेज दौटना या चटना। (२) प्राण ही प्राण या अपने बहुत बोलना।

ये, पर सारी बातें हवा हो गईं। कहीं की हवा खाना = कहीं जाता। कहीं की हवा खिलाना = कहीं भोजना। जैसे,— तुम्हें जेलखाने की हवा खिलायेंगे।

(२) भूत। भैत। (जिनका शरीर वायव्य माना जाता है)

(३) अष्टदा नाम। प्रसिद्धि। क्वाति। (४) ध्यापारियों या महाजनों में धाक। बहूपन या उत्तम व्यवहार का विधास। सास।

मुहा०—हवा उलटना = (१) गम न रह जाना। प्रसिद्धि न रहना। (२) सास न रह जाना। शजार में निशाम ठठ जाना। हवा बँधना = (१) अष्टदा नाम हो जाना। लोगों के बीच प्रसिद्धि हो जाना। (२) शजार में सास होना। व्यवहार में लोगों के बीच प्रसिद्धि धारणा होना।

(५) किसी बात की सनक। धुन।

हवाई-वि० [ अ० हवा + ई० (हि० प्रय०) ] (१) हवा का। वायु-संबंधी। (२) हवा में चलनेवाला। जैसे,—हवाई जहाज। (३) बिना जड़ का। जिसमें सत्य का आधार न हो। कल्पित या झूठ। निर्मूल। जैसे,—हवाई खबर, हवाई बात।

संज्ञा स्त्री० हवा में कुछ दूर तक बढ़े शौक से जाकर घुस जानेवाली एक प्रकार की आतशबाज़ी। यान। आसमानी।

मुहा०—(मुँह पर) हवाहवाई उड़ना = चेहरे का रंग पीला पड़ जाना। आकृति से मय, लज्जा या उदासी प्रकट होना। विवर्णता होना।

हवागीर-संज्ञा पुं० [ का० ] आतशबाज़ी के बान बनानेवाला। हवाचक्की-संज्ञा स्त्री० [ हि० हवा + चक्की ] आटा पीसने की वह चक्की जो हवा के जोर से चलती हो।

हवादार-वि० [ धा० ] जिसमें हवा आती जाती हो। जिसमें हवा आने जाने के लिये काफी छेद, खिड़कियाँ या दरवाजे हों। जैसे,—हवादार कमरा, हवादार मकान, हवादार निजरा।

संज्ञा पुं० वह हलका तख्त जिस पर धैराकर या दराह को गहक या किले के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे।

हवान-संज्ञा पुं० [ अ० हवा, हवाई ] एक प्रकार की छोटी तोप जो जहाजों पर रहती है। कोठी तोप। (लज०)

हवाना-संज्ञा पुं० [ हवाना दीप ] संभाषक का एक नेद। अमेरिका के हवाना नामक स्थान का संवाद।

हवाल-संज्ञा पुं० [ अ० अववाल ] (१) हाल। दशा। अवस्था। (२) गम। परिणाम। उ०—कस्ती पाती राति है ताकी काशी खाल। जो नर बकरी खात है तिनका कौन हवाल ?

—कमीर। (३) संवाद। समाचार। वृत्त।

यौ०—डाल हवाल। हवालदार-संज्ञा पुं० दे०—“हवालदार”।

हवाला-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) किसी बात की पुष्टि के लिये किसी के वचन या किसी पटना की ओर संकेत। प्रमाण का उल्लेख। (२) उदाहरण। द्ष्टांत। मिसाल। नज़ीर।

क्रि० प्र०—देना।

(३) अधिकार या कब्जा। सुपुर्वाई। जिम्मेदारी।

मुहा०—(किसी के) हवाले करना = किसी को देना। किसी के सुपुर्द करना। सौंपना। जैसे,—जिसकी धोज है, उसके हवाले करो। (किसी के) हवाले पटना = परा में आ जाना। हार में आ जाना। अंगुल में माना। उ०—अप हँसै कहा भरविंद सो आनन इंदु के आय हवाले परयो।—पद्माकर।

हवालात-संज्ञा पुं० स्त्री० [ अ० ] (१) पहले के भीतर रखे जाने की क्रिया या भाव। नज़ारबंदी। (२) अभियुक्त की वह साधारण कैद जो मुकदमे के फैसले के पहले उसे भागने से रोकने के लिये दी जाती है। हानत। (३) वह मकान जिसमें ऐसे अभियुक्त रखा जाते हैं।

क्रि० प्र०—में देना।

मुहा०—हवालात करना = पररे के भीतर बंद करना।

हवास-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) इन्द्रियों। (२) संवेदन। (३) चेतना। संज्ञा। होश। सुष।

यौ०—होश हवास।

मुहा०—हवास गुम होना = होश ठिकाने न रहना। अय प्रदि से स्तंगित होना। ठक रह जाना।

हवि-संज्ञा पुं० [ सं० हविष ] देवता के निमित्त अग्नि में दिया जानेवाला घी, जौ या हसी प्रकार की सामग्री। वह द्रव्य जिसकी आहुति दी जाय। हवन की वस्तु।

हविषी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हवन-कुंड।

हविषीनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सुरमी। कामधेनु।

हविर्भुज-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि।

हविर्भू-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हवन की भूमि। (२) कुंदम की पुत्री जो पुलस्त्य की पत्नी थी।

हविष्मती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कामधेनु।

हविष्मान्-वि० [ सं० हविष्मत् ] [ स्त्री० हविष्मती ] हवन करनेवाला। संज्ञा पुं० (१) अंगिरा के एक पुत्र का नाम। (२) छे भन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक। (३) पितरों का एक गण।

हविष्यद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] विषामित्र के एक पुत्र का नाम।

हविष्य-वि० [ सं० ] (१) हवन करने योग्य। (२) जिसकी आहुति दी जानेवाली हो।

संज्ञा पुं० वह वस्तु जो किसी देवता के निमित्त अग्नि में डाली जाय। बलि। हवि।

हविष्यात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह अन्न या आहार जो वृष के समान किया जाय। खाने की पवित्र वस्तुएँ। जैसे,—नी, तिल, गूंग, आवल इत्यादि।

**द्विसर्ग**—संज्ञा स्त्री० दे० "द्वयस" ।  
**द्वयीत** संज्ञा पुं० [ १ ] लक्ष्मियों का बना हुआ एक बंत्र जिसमें  
 लंगर दालने के समय जहाज की रस्सियाँ बाँधी या लपेटी  
 जाती हैं । (लडा०)

**द्वयेती**—संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) पका बढ़ा मकान । प्रासाद ।  
 हर्ग । (२) पत्नी । स्त्री । जोर ।

**द्वय्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हवन की सामग्री । यह वस्तु जिसकी  
 किसी देवता के अर्घ्य अग्नि में भाहुति दी जाय । जैसे,—  
 धी, जौ, तिल आदि ।

**द्वियोग**—देवताओं के अर्घ्य जो सामग्री हवन की जाती है, वह  
 द्वय्य कहलाती है; और पितरों को जो अर्घ्य की जाती है,  
 वह कथ्य कहलाती है ।

**द्यो**—हृद्य कथ्य ।

**द्वय्यमुज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि ।

**द्वय्ययोनि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देवता ।

**द्वय्यघाट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि देवता ।

**द्वय्यघाट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि । (२) अभय वृद्ध ।  
 पीपल ( जिसकी लकड़ी की भारणी बनती है ) ।

**द्व्यपाशन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि ।

**द्व्यशमत**—संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) गौरव । बढ़ाई । (२) वैभव ।  
 पेश्चर्य ।

**द्व्यसंतिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अँगीठी । गोरसी ।

**द्व्यसद**—संज्ञा पुं० [ प्र० ] ईर्ष्या । डाह ।

**द्व्यसन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हँसना । (२) परिहास । दिहाड़ ।  
 (३) विनोद । (४) स्कंद के एक अनुचर का नाम ।

**द्व्यसंज्ञा** पुं० [ प्र० ] अली के दो वेदों में से एक जो पत्नी के  
 साथ लड़ाई करने में सारे गा प थे और जिनका शोक पत्नी  
 सुखमान मुहरम में मनाते हैं ।

**द्व्यसव**—प्रत्य० [ प्र० ] अनुसार । रूप से । मुताबिक । जैसे,—द्व्यसव  
 हैसियत, द्व्यसव कानून ।

**द्व्यसरत**—संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] रंज । अफ़सोस । शोक ।

**द्व्यसावर**—संज्ञा पुं० [ हि० रंज ] लुकी रंग की एक बड़ी चिड़िया  
 जिसकी गरदन एक हाथ लंबी और चौंच केले के फल के  
 समान होती है । इसके बगल के कुछ पर और पैर लाल  
 होते हैं ।

**द्व्यसिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हँसने की क्रिया या भाव ।  
 हँसी । (२) उपहास । ठट्ठा ।

**द्व्यसित**—वि० [ सं० ] (१) जो हँसा गया हो । जिस पर लोग  
 हँसते हों । (२) जो हँसा हो ।

**द्व्यसि** पुं० (१) हास । हँसना । (२) हँसी ठट्ठा । उपहास ।  
 (३) कामदेव का धनुष ।

**द्व्यसिर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का सूअर ।

**द्व्यसिन**—वि० [ प्र० ] सुंदर । खूबसूरत ।

**द्व्यस्त**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथ । (२) हाथों की सूँड़ । (३)  
 कुहनी से लेकर उँगली के जोर तक की लंबाई या भाग ।  
 एक नाप जो २४ अंगुल की होती है । हाथ । (४) हाथ का  
 लिखा हुआ लेख । लिखावट । (५) एक नक्षत्र जिसमें पाँच  
 तारे होते हैं और जिसका आकार हाथ का सा माना गया  
 है । वि० दे० "नक्षत्र" । (६) संगीत या नृत्य में हाथ  
 दिखाकर भाव बताना ।

**द्व्यशोष**—यह संगीत का सातवाँ भेद कहा गया है और दो  
 प्रकार का होता है—लयाभित और भावाभित ।

(०) वायुदेव के एक पुत्र का नाम । (८) छंद का एक  
 धरण । (९) गुच्छ । समूह । जैसे,—केदारस्त ।

**द्व्यस्तक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथ । (२) संगीत का ताल ।  
 (३) प्राचीन काल का एक बाजा जो हाथ में लेकर बजाया  
 जाता था । करताल । (४) हाथ से बजाई हुई ताली ।

**द्व्यस्तकार्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथ का काम । (२) दलकारी ।  
**द्व्यस्तकोहली**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घर और कन्या की कलाई में  
 मंगल सूत्र बाँधने की क्रिया या रीति ।

**द्व्यस्तकौशल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ की सफाई । किसी काम में  
 हाथ बलाने की निपुणता ।

**द्व्यस्तकिया**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हाथ का काम । (२)  
 दस्तकारी । (३) हाथ में हँड़िय-संचालन । सरका कूटना ।

**द्व्यस्तक्षेप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी काम में हाथ डालना । किसी  
 होते हुए काम में कुछ कार्रवाई कर बैठना या बात भिदाना ।  
 दखल देना । जैसे,—हमारे काम में तुम द्व्यस्तक्षेप क्यों  
 करते हो ? हम जैसे चाहेंगे वैसे करेंगे ।

**द्व्यक्रि० प्र०**—करना ।—होना ।

**द्व्यस्तगत**—वि० [ सं० ] हाथ में आया हुआ । प्राप्त । लब्ध ।  
 हासिल । जैसे,—वह पुस्तक किसी प्रकार द्व्यस्तगत की ।

**द्व्यक्रि० प्र०**—करना ।—होना ।

**द्व्यस्तग्रह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथ पकड़ना । (२) पाणिग्रहण ।  
 विवाह ।

**द्व्यस्तचापल्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ की फुरती । हाथ की सफाई ।  
**द्व्यस्ततल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हथेली ।

**द्व्यस्तत्राय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्यों के आघात से रक्षा के लिये  
 हाथ में पहना जानेवाला दस्ताना ।

**द्व्यस्तधारण्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ पकड़ना । (२) हाथ  
 का सहारा देना । (३) पाणिग्रहण करना । विवाह करना ।  
 (४) वार को हाथ पर रोकना ।

**द्व्यस्तपर्या**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का ताड़ ।

**द्व्यस्तपृष्ठ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हथेली का पिछला या उल्टा भाग ।



हस्तविद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर में सुगंधित द्रव्यों का लेपन करना ।

हस्तमण्डि-संज्ञा पुं० [ सं० ] कलाई में पहनने का रत्न ।

हस्तमैथुन-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ के द्वारा इंद्रिय संचालन ।

हस्तरेखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हथेली में पड़ी हुई लकीरें ।

विशेष—हस्त रेखाओं के विचार से सामुद्रिक में शुभाशुभ फल का निर्णय होता है ।

हस्तरोधी-संज्ञा पुं० [ सं० ] हस्तरोधिविद् । हाथ का एक नाम ।

हस्तलक्षण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हथेली की रेखाओं द्वारा शुभाशुभ सूचना । (२) अथर्ववेद का एक प्रकरण ।

हस्तलाघव-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ की फुरती । हाथ की सफाई । किमी काम में हाथ चलाने की निपुणता ।

हस्तलिखित-वि० [ सं० ] हाथ का लिखा हुआ । (ग्रन्थ आदि)

हस्तलिपि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हाथ की लिखावट । लेख ।

हस्त-घात रक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रोग जिसमें हथेलियों में छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं और धीरे धीरे सारे शरीर में फैल जाती हैं ।

हस्त-वारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वार या आघात की हाथ पर रोकना ।

हस्त-सूत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूत का कंगन जिसमें कपड़े की पोटली बंधी होती है और जो विवाह के समय वर और कन्या की कलाई में पहनाया जाता है ।

हस्ताक्षर-संज्ञा पुं० [ सं० ] अपने हाथ से लिखा हुआ अपना नाम जो किसी लेख आदि के नीचे लिखा जाय । दस्ताख्त ।

हस्तामलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथ में लिया हुआ औंखला । (२) वह वस्तु या विषय जिसका अंग प्रारंभ हाथ में लिए हुए आँखले के समान, अचरी तरह समझ में आ गया हो । वह चीज या बात जिसका हर एक पहलू साफ साफ जोहिर हो गया हो । जैसे,—यह पुस्तक पढ़ जाहए; सारा विषय हस्तामलक हो जायगा ।

हस्ताहस्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हाथा बाँधी । हाथ पाई । मुठभेड़ । चपत या धुँपे की लड़ाई ।

हस्ति-संज्ञा पुं० दे० "हस्ती" ।

हस्तिकंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पौधा जिसका कंद खाया जाता है । हाथी कंद ।

हस्तिकन्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का गहरीला कीड़ा । (सुश्रुत)

हस्तिकन्द-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिंह । (२) व्याघ्र । बाघ ।

हस्तिकर्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़ी जाति का कर्ज या कंजा । वि० दे० "कर्ज" ।

हस्तिकर्षा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अंटी का पेड़ । परंदा । रेंदा ।

(२) पलाश । टसू का पेड़ । (३) कच्छ । बंदा । (४) शिव के गर्भों में से एक । (५) गण देवताओं में से एक ।

हस्तिकर्षिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हठयोग का एक आसन ।

हस्तिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्राचीन बाजा जिसमें बजाने के लिये तार छगा रहता था ।

हस्तिकाह्नी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हाथी की जीभ । (२) दाहिनी आँख की एक नस ।

हस्तिदंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथी दाँत । (२) दीवार में गढ़ी हुई कपड़े आदि टाँगने की खूँटी । (३) मूली ।

हस्तिदंती-संज्ञा पुं० [ सं० ] मूली ।

हस्तिनख-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हाथी के नाखून । (२) पद बुज या टीला जो गड़ की दीवार के पास उन स्थानों पर बना होता है जहाँ चढ़ाव होता है ।

हस्तिनापुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रवंशियों या कौरवों की राजधानी जो वर्तमान दिल्ली नगर से कुछ दूर पर थी ।

पट्यां—गजाह्वय । नाग-साह्वय । नागाह्वय ।

विशेष—यह नगर हस्तिना नामक राजा का बसाया हुआ था । इसका स्थान दिल्ली से दक्षिण-पूर्व २८ कोस पर विहित किया गया है ।

हस्तिनासा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हाथी की सूँड़ ।

हस्तिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मादा हाथी । हथिनी । (२) एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य । इहविलासिनी । (३) काम-शास्त्र के अनुसार स्त्री के चार भेदों में से सब से

निकट भेद ।

विशेष—इसका शरीर स्थूल, भौंठ और उँगलियों मोटी और आहार तथा कामवासना अन्य प्रकार की सब लियों से अधिक कही गई है ।

हस्तिपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] महावत । फीलवान ।

हस्तिपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] टुरई । तरौई । कोयातकी ।

हस्तिपर्णी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ककड़ी ।

हस्तिपिप्पली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंज पिप्पली ।

हस्तिपृष्ठक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्राचीन नगर जिसके पास बुटिका नाम की नदी बहती थी ।

हस्तिप्रमेह-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मूत्र के साथ हाथी के मूद का सा पदार्थ बिना वेग के तार सा निकलता है और पेशाब उदर उदर कर होता है ।

हस्तिमल्ल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ऐरावत । (२) गणेश । (३) पाताल का एक नाग जिसे शंख भी कहते हैं । (४) राख का वेर । (५) धूल की वर्षा । (६) पाला ।

हस्तिमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] गजानन । गणेश ।

हस्तिश्यामक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काला सारवा । (२) काजरा ।

हस्ती-संज्ञा पुं० [ सं० ] हस्तिविद् । (१) हस्तिनी । (१) हाथी ।

(हस्ती चार प्रकार के कहे गए हैं—भद्र, मंद्र, सुग और मिश्र।) (२) अक्षमोक्ष। (३) एतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (४) चंद्रवंशी राजा सुहोय के एक पुत्र जिन्होंने हस्तिनापुर बसाया था।  
संज्ञा स्त्री० [ का० ] अस्तित्व। होने का भाव। जैसे,—हस्तमें तो उनकी हस्ती ही मिट जायगी।

मुद्रा०—(किसी की) ब्यां हस्ती है = क्या गिनती है। कोई महत्व नहीं। तुच्छ है।

हस्ते—प्रत्यय [ सं० ] हाथ से। मारफत। जैसे,—१००) उसके हस्ते मिले।

हस्त्यश्वन—संज्ञा पुं० [ सं० ] लोमान का चौथा।

हृदर—संज्ञा स्त्री० [ हिं० हृदर ] (१) भ्रांशट्ट। कैंपकैंपी। (२) भय। डर।

हृदरना—कि० प्र० [ भृ० ] (१) कौपना। धरयाना। उ०—पहल पहल को रूई कौपि। हृदरि हृदरि अशिकी द्विय कौपि।

—जायसी। (२) डर के मारे कौप उठना। दहलना। बहुत डर जाना। भ्रांशना। उ०—जाय। भजो रघुनाथ मिले रजनीचर-सेन दिये हृदरी। (३) दृंग रह जाना। चकित रह जाना। आश्चर्य से ठक रह जाना। (४) कोई बात बहुत अधिक देखकर धुंध होना। डहलना। सिद्धान्त।

उ०—काम योग नंदन की उपमा न येत भै, देखि के विभाव आके सुराष्ट्र हृदरा।—कोई कवि। (५) कोई पाप बहुत अधिक देखकर-दंग होना। अधिकता देखकर भयपडना। उ०—डहर डहर परे बहरी कदरि उठै, हृदरि हृदरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै।—गुलसी।

संघो० कि०—उठना।—जाना।

हृदराना—कि० प्र० [ भृ० ] (१) कौपना। धरयाना। (२) डर के मारे कौपना। दहलना। भ्रांशना। उ०—बंधल चपेट चरन भ्रमेट पाई, हृदरानी कौपै भदरानी ज्ञानुधान की।

—गुलसी। (३) डरना। भयभीत होना। (४) दे० "हृदराना"।

कि० सं० दहलना। भयभीत करना।

हृदलाना—कि० प्र० दे० "हृदरना"।

हृदलाना—कि० प्र०, कि० सं० दे० "हृदराना"।

हृदर—संज्ञा स्त्री० [ भृ० ] (१) हँसने का शब्द। हहा। जैसे,—ब्यां हहा हहा करते हो? (२) दीनतासूचक शब्द। गिदगिदाने का शब्द। अत्यंत अनुनय विनय का शब्द। (३) विनती। चिरीती। गिदगिदाहट।

कि० प्र०—करना।

मुद्रा०—हदा राना = हाथ राना। बहुत गिदगिदाना। बहुत विनती करना।

(४) हाकाकार।

हाँक—प्रत्यय [ सं० भा० ]—(१) स्वीकृति-सूचक शब्द। सम्मति-सूचक शब्द। यह शब्द जिसके द्वारा यह प्रकट किया जाता है कि हम यह बात करने को तैयार हैं। जैसे,—प्रभ—तुम वहाँ जाओगे? उत्तर—"हाँ"। (२) एक शब्द जिसके द्वारा यह प्रकट किया जाता है कि वह बात जो पृथी जा रही है, ठीक है। जैसे,—प्रभ तुम वहाँ गए थे। उत्तर—हाँ।

मुद्रा०—हाँ करना = (१) स्वीकार होना। समान होना। रानी होना। (२) ठीक मान लेना। वह मानना कि कोई बात ऐसी ही है। हाँ न करना = शर चर की बात कहकर बरदी स्वीकार न करना। न मानना। न राजी होना। हाँ हाँ करना = (१) स्वीकार-सूचक शब्द कहना। मान लेना। जैसे,—अभी तो हाँ हाँ कर रहा है, पीछे धोखा देगा। (२) बात न चाहना। 'ठीक है' 'ठीक है' कहना। (३) सुसामद करना। हाँ जो हाँ की करना = सुसामद करना। चाबूड़ी करना। हाँ में हाँ

मिलाना = (१) बिना विचार किए बात का समर्थन करना। प्रसन्न करने के लिये किसी के मन की बात कहना। (२) सुसामद करना। चाबूड़ी करना।

(३) कोई बात स्वीकार न करने पर भी दूसरे रूप में स्वीकार स्वीकार करनेवाला शब्द। वह शब्द जिसके द्वारा किसी बात का दूसरे रूप में, या अर्थानुसार माना जाना प्रकट किया जाता है। (यह बात तो नहीं है या ऐसा तो मैं नहीं कर सकता) पर इतना हो सकता है, या इतनी बात मानी जा सकती है। जैसे,—(क) तुम्हें हम अपने साथ तो न ले चलेंगे, हाँ, पीछे ले आ सकते हो। (ख) हमारे सामने तो वह कुछ नहीं कहता; हाँ औरों से कहता हो तो नहीं जानते। (४) दे० "वहाँ"।

हाँक—संज्ञा स्त्री० [ सं० हुंकार ] (१) किसी को बुलाने के लिये जोर से निकाला हुआ शब्द। जोर की पुकार। उच्च स्वर से किया हुआ संघोषण।

यौ०—हाँक पुकार।

मुद्रा०—हाँक देना या हाँक लगाना = जोर से पुकारना। हाँक मारना = दे० "हाँक लगाना"। हाँक पुकार कर कहना = बंदे की चोट कहना। सबके सामने निर्भय और निरसंकोच कहना। सबकी धुनकर कहना।

(२) लड़ाई में धावा या आक्रमण करते समय, सर्वसूचक चिन्हाहट। डाँट। दपट। ललकार। हुंकार। गर्दन। उ०—रजनिचर-धरनि, धर गर्भ-धर्मक चक्रव सुलत इतुमान की हाँक थीकी। (३) बगवते का शब्द। ब्रह्माह दिव्याने क शब्द। यदात्र। उ०—गुलसी उठ हाँक दसाजान, दे० अथेव भी वीर की धोर परे—गुलसी। (४)

हाँक—संज्ञा स्त्री० [ सं० हुंकार ] (१) किसी को बुलाने के लिये जोर से निकाला हुआ शब्द। जोर की पुकार। उच्च स्वर से किया हुआ संघोषण।

यौ०—हाँक पुकार।

मुद्रा०—हाँक देना या हाँक लगाना = जोर से पुकारना। हाँक मारना = दे० "हाँक लगाना"। हाँक पुकार कर कहना = बंदे की चोट कहना। सबके सामने निर्भय और निरसंकोच कहना। सबकी धुनकर कहना।

(२) लड़ाई में धावा या आक्रमण करते समय, सर्वसूचक चिन्हाहट। डाँट। दपट। ललकार। हुंकार। गर्दन। उ०—रजनिचर-धरनि, धर गर्भ-धर्मक चक्रव सुलत इतुमान की हाँक थीकी। (३) बगवते का शब्द। ब्रह्माह दिव्याने क शब्द। यदात्र। उ०—गुलसी उठ हाँक दसाजान, दे० अथेव भी वीर की धोर परे—गुलसी। (४)

हाँक—संज्ञा स्त्री० [ सं० हुंकार ] (१) किसी को बुलाने के लिये जोर से निकाला हुआ शब्द। जोर की पुकार। उच्च स्वर से किया हुआ संघोषण।

यौ०—हाँक पुकार।

मुद्रा०—हाँक देना या हाँक लगाना = जोर से पुकारना। हाँक मारना = दे० "हाँक लगाना"। हाँक पुकार कर कहना = बंदे की चोट कहना। सबके सामने निर्भय और निरसंकोच कहना। सबकी धुनकर कहना।

(२) लड़ाई में धावा या आक्रमण करते समय, सर्वसूचक चिन्हाहट। डाँट। दपट। ललकार। हुंकार। गर्दन। उ०—रजनिचर-धरनि, धर गर्भ-धर्मक चक्रव सुलत इतुमान की हाँक थीकी। (३) बगवते का शब्द। ब्रह्माह दिव्याने क शब्द। यदात्र। उ०—गुलसी उठ हाँक दसाजान, दे० अथेव भी वीर की धोर परे—गुलसी। (४)

हाँक—संज्ञा स्त्री० [ सं० हुंकार ] (१) किसी को बुलाने के लिये जोर से निकाला हुआ शब्द। जोर की पुकार। उच्च स्वर से किया हुआ संघोषण।

यौ०—हाँक पुकार।

मुद्रा०—हाँक देना या हाँक लगाना = जोर से पुकारना। हाँक मारना = दे० "हाँक लगाना"। हाँक पुकार कर कहना = बंदे की चोट कहना। सबके सामने निर्भय और निरसंकोच कहना। सबकी धुनकर कहना।

(२) लड़ाई में धावा या आक्रमण करते समय, सर्वसूचक चिन्हाहट। डाँट। दपट। ललकार। हुंकार। गर्दन। उ०—रजनिचर-धरनि, धर गर्भ-धर्मक चक्रव सुलत इतुमान की हाँक थीकी। (३) बगवते का शब्द। ब्रह्माह दिव्याने क शब्द। यदात्र। उ०—गुलसी उठ हाँक दसाजान, दे० अथेव भी वीर की धोर परे—गुलसी। (४)

सहायता के लिये की हुई पुकार। उ०—बसंत भी सहित  
चूँड़ के बीच गजराज की हाँक पे दौरि आए।—मूर।

**हाँकना**—कि० सं० [ हि० हाँक + ना (प्रत्य०) ] (१) जोर से  
पुकारना। चिल्लाकर बुलाना। (२) ललकारना। लड़ाई में  
पावे के समथ गर्व से चिल्लाना। हुंकार करना। उ०—भूमि  
पर भट भूमि कराहन, हाँक हने हनुमान हजीले—मुलसी।  
(३) मद बढ़ कर बोलना। लंबी चौड़ी बातें कहना।  
सीटना। जैसे,—(क) हमारे सामने यह हतना नहीं  
हाँकता। (ख) दोषी हाँकना। (ग) हाँकना। (घ) वह  
दुकानदार पहचु दाम हाँकता है। (ङ) मुँह से बोलकर  
या चाबुक आदि मारकर जानवरों ( घोड़े, बैल आदि ) को  
भागें बढ़ाना। जानवरों को चलाना। जैसे,—धैल हाँकना।  
(५) खींचनेवाले जानवर को चलाकर गाड़ी, रथ आदि  
चलाना। गाड़ी चलाना। उ०—खोज मारि रथ हाँकह  
ताता।—मुलसी। (६) मारकर या बोलकर चौपायों को  
भगाना। चौपायों को किसी स्थान से हटाना। जैसे,—चेत  
में गाएँ पड़ी हैं, हाँक दो।

**संयो०** क्रि०—देना।

(७) पंखा हिलाना। बीजन बुलाना। झलना। (८) पंखे  
से हवा पहुँचाना। हवा करना। जैसे,—मुझे मत हाँको,  
उन लोगों को हाँको।

**हाँगर**—संज्ञा पुं० [ देग० ] एक प्रकार की बड़ी मछली।

**हाँगा**—संज्ञा पुं० [ सं० थंग ] (१) धारी का बल। घूला। साकत।

**सुहा०**—हाँगा छुटना = बल काम न करना। साबस छटना।  
हिम्मत न रहना।

(२) ज़बरदस्ती। अत्याचार। धींगाधोंगी। जैसे,—पुलिस-  
वाले सबके साथ हाँगा करते हैं।

**हाँगी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाँ ] हामी। स्वीकृति।

**सुहा०**—हाँगी भरना = हामी भरना। स्वीकार करना। मानना या  
अंगीकार करना। उ०—छारि टारी पुलक, प्रसेद हू निवारि  
धारी, नेक रसना हू ते भरी न कहु हाँगी री। एते पै रसो  
न प्रल मोहन लट्ट पै भट्ट, टुक टुक टुक टुक के जो छटक भई  
आँगरी।—पद्माकर।

**हाँङ्गना**—कि० प्र० [ सं० मण्डन ] व्यर्थ धर धर घूमना।  
आवारा घूमना।

वि० [ स्त्री० हाँङ्गी ] हाँङ्गनेवाला। व्यर्थ धर उधर घूमने-  
वाला। आवारा फिरनेवाला। जैसे,—हाँङ्गी नारि।

**हाँड़ी**—संज्ञा पुं० [ सं० नाँद, हि० हंडा ( 'हंडिका' प्रकृत से लिया प्रयोज  
रोगा है ) ] (१) मिट्टी का मछोका बरतन जो बटलोई के  
आकार का हो। हँडिया।

**सुहा०**—हाँड़ी उबलना = (१) हाँडी में पकाई जानेवाली चीज का  
गारम होकर ऊपर आना। (२) सुती से फूलना। खताना। हाँड़ी

पकना = (१) हाँडी में पकाई जानेवाली चीज का पकना। (२) बकार  
होना। मुँह से बहुत बातें निकलना। (३) भीतर ही भीतर की  
सुक खरी होना। कीड़े पटक रचा जाना। कीड़े मालूम ठेकर  
किया जाना। जैसे,—भीतर ही भीतर खूब हाँड़ी पक रही  
है। किसी के नाम पर हाँड़ी कोठना = किसी के बने जाने पर  
प्रसन्न होना। हाँड़ी चढ़ना = कीड़े चोख पकाने के लिये हाँडी का  
भाग पर रखा जाना। उ०—जैसे हाँडी काठ की चढ़ी न दूजी  
वार। चाबडी हाँड़ी = यह भोजन जिनमें बहुत सी चीजें एक में  
मिश्र गई हों।

(२) हसी आकार का शरीर का पात्र जो सजावट के लिये  
कमरे में टाँगा जाता है और जिसमें मोमबत्ती जलाई जाती है।

**हाँता**—वि० [ सं० हान = क्षोभ हुआ ] [ स्त्री० हाँती ] (१) अभाग  
किया हुआ। त्याग किया हुआ। छोड़ा हुआ। (२) दूर  
किया हुआ। हटया हुआ। उ०—(क) प्रिया, बचन कस  
कदसि कुमाँती। भीरु प्रतीति प्रीति करि हाँती।—मुलसी।  
(ख) जानत प्रीति रीति रघुराई। नाते सब हाँते करि  
राखत राम-सनेह सगाई।—मुलसी। (ग) कँव, सुनु गंत,  
कुल अंत किए अंत दानि, हाँतो कीन्ही हीय तें भरोसो भुज  
पीस गो।—मुलसी।

**हाँपना**—कि० प्र० दे० "हाँकना"।

**हाँफना**—कि० प्र० [ अनु० हँक हँक या सं० हाफिक ] कड़ी मिहनत  
करने, दौड़ने या रोग आदि के कारण जोर जोर से और  
जल्दी जल्दी साँस लेना। सीम थास लेना। जैसे,—वह धार  
कदम चलता है तो हाँफने लगता है।

**हाँफा**—संज्ञा पुं० [ हि० हाँफना ] हाँफने की क्रिया या भाव। तीम  
और क्षिप्र थास। जल्दी जल्दी चलती हुई साँस।

**क्रि० प्र०**—छुटना।

**हाँफती**—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाँफना ] हाँफने की क्रिया या भाव।  
तीम और क्षिप्र थास। जल्दी जल्दी चलती हुई साँस।

**हाँघीरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की शगिनी।

**हाँमैला**—संज्ञा पुं० [ देग० ] एक प्रकार की चिड़िया।

**हाँस**—वि० [ सं० ] हँस-संबंधी।

**हाँसा**—संज्ञा स्त्री० दे० "हँसी"।

**हाँसना**—कि० प्र० दे० "हँसना"।

**हाँसल**—संज्ञा पुं० [ हि० हाँस ] घोड़ों का एक भेद। वह घोड़ा  
जिसका रंग मेंहड़ी सां लाल और चारों पैरें लाल काले हों।  
कुम्भत दिनाई। उ०—हाँसल गौर गियाह बखाने।—  
जायसी।

**हाँसधरा**—संज्ञा स्त्री० दे० "हँसली"।

**हाँसिल**—संज्ञा स्त्री० [ थ० हामर ] (१) रस्सा लपेटने की गाँड़ी।

(२) लंगर की रस्सी। पागर। (लखरी)

**क्रि० प्र०**—तानना।

**हाँसी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० हात ] (१) हँसी। हँसने की क्रिया या भाव । (२) परिहास। हँसी उड़ा। दिखगो। मज़ाक़। उठोली। उ०—(क) निगुन कौन रेश को वासी। ऊपों। नेक़ु इमर्द। समुदायवुद, वृत्ति सचि न हाँसी।—सूर। (ख) हमरे प्राण अघात हेत दे, तुम जानत हो हाँसी।—सूर। (३) उपहास। निंदा। उ०—(क) ऊपों, कहीं सो बहुरि न कहियो। हाँसी होन छणी, या मन में, अनबोले ही रहियो।—सूर। (ख) जेते पंद्रदार दरवार सरदार सब ऊपर प्रताप दिखोपति को अभंग भो। मतिराम कहे करवाल के कसिया केते गादर से बूँड, जग हाँसी को प्रसंग भो।—मतिराम।

**कि० प्र०**—करना।—होना।  
**हाँसल**—संज्ञा पुं० दे० "हाँसल"।  
**हाँहाँ**—मव्य० [ हिं० भहाँ = नहीं ] निषेध या धारण करने का शब्द। यह शब्द जिसे बोलकर किसी को कोई काम करने से रोकटप रोकते हैं। जैसे,—हाँहाँ! यह क्या कर रहे हो?  
**हा—मव्य०** [ सं० ] (१) शोक या दुःखसूचक शब्द। (२) आश्चर्य या आश्चर्यसूचक शब्द। (३) मयसूचक शब्द।  
**घो०**—हा हा।

**संज्ञा पुं०** हनन करनेवाला। मारनेवाला। बध या नाश करनेवाला। उ०—कौन शत्रु तैं हथ्यो कि ज्ञान राघुदा लिया।—देशप।  
**हाई**—क—मव्य० दे० "हाय"।

**हाइफन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक विरामचिह्न जो एक में समस्त दो या अधिक शब्दों के बीच में लगाया जाता है। जैसे,—रघुकुल कमल दिवाकर।

**हाई**—संज्ञा स्त्री० [ सं० हाव ] (१) दया। हाउत। अवस्था। जैसे,—अपनी हाई और पर छाई। (२) दंग। घात। तौर। उ०। उ०—ऊपों, दीनी प्रीति दिनाई। पातनि सुहद, करम कपटी के, चले घोर की हाई।—सूर।

**हाई कोर्ट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] हिंदुस्तान में किसी प्रांत की दीवानी और फौजदारी की सबसे बड़ी अदालत। सबसे बड़ा न्यायालय।

**विशेष**—हिंदुस्तान के प्रत्येक बड़े स्ये में एक हाई कोर्ट है। जैसे,—कलकत्ता हाई कोर्ट। इलाहाबाद हाई कोर्ट।

**हाइपोथिया**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शरीर के भीतर एक प्रकार का उपवद्र या व्याधि जो पागल कुत्ते, गीदद आदि के काटने से होता है। इसमें मनुष्य प्यास के मारे ब्याकुल रहता है, पर पानी सामने आने से पिछाड़ भागता है। उल्लालक।

**हाइस्कूल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अंगरेजी की बड़ी पाठशाला जिसमें कालेज की पढ़ाई के पहले की पूरी पढ़ाई होती है।

**हाउस**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) घर। मकान। जैसे,—बोर्चिंग

हाउस, फानी हाउस। (२) कोठी। बड़ी दुकान। जैसे,—हाउस की दहाली। (३) सभा। मंडली। जैसे,—हाउस आफ़ लाईंस।

**हाऊ**—संज्ञा पुं० [ मनु० ] एक कल्पित मयानक जंतु जिसका नाम बर्षों को घराने के लिये लिया जाता है। हीवा। भकाऊँ। जूद। उ०—खेचन दूरि जात कित कान्हा। माऊ सुन्यो वन हाऊ आयो तुम महीं जानत मान्हा।—सूर।

**हाकल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है। इसके पहले और दूसरे चरण में ११ और तीसरे और चौथे चरण में १० अक्षर होते हैं।

**हाकलिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पंद्रह अक्षरों का एक वर्णवृत्त। उ०—नीरम तैं निकहाँ तिय सयै। सोहति हैं बिलु मूयन सयै।

**हाकली**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दस अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तीन मगण और एक गुरु होता है।

**हाकिनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की घोर देवी। (तंत्र)

**हाकिम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हुकूमत करनेवाला। पातक। गवर्नर। प्रधान अधिकारी (२) बड़ा अफसर।

**हाकिमी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० हाकिन + ई (प्रत्य०) ] हाकिम का काम। हुकूमत। प्रमुख।—पासन। उ०—कहाँ हाकिमी करत है, कहीं बंदगी भाय। हाकिम यंदा आप ही दूजा नहीं देखाय।—रसनिधि।

**वि०** हाकिम का। हाकिम-संबंधी।

**हाँकी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक खेल जिसमें एक टेढ़ी लकड़ी या दंडे से गेंद मारते हैं। चीगान की तरह का एक अंगरेजी खेल।

**हाजत**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) ज़रूरत। आवश्यकता। (२) चाह। (३) पहले के भीतर रखा जाना। हिरासत। हवालात।

**मुहा०**—हाजत में देना = पहले के भीतर देना। हवालात में बाधना। हाजत में रखना = हवालात में रखना।

**हाज़म**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पाचन क्रिया। पाचन-शक्ति। भोजन पचने की क्रिया।

**मुहा०**—हाज़मा विगदना = भन्न न पचना।

**हाज़िम**—वि० [ सं० ] हज़म करनेवाला। भोजन पचानेवाला। पाचक।

**हाज़िर**—वि० [ सं० ] (१) सम्मुख उपस्थित। सामने आया हुआ। मौजूद। विद्यमान। जैसे,—(क) तुम उस दिन हाज़िर नहीं थे। (ख) जो कुछ मेरे पास है, हाज़िर है।

(२) कोई काम करने के लिये सज्जद। मस्तुत। तैयार। जैसे,—मेरे लिये जो हुआ होगा, मैं हाज़िर हूँ।

**कि० प्र०**—करना।—होना।

**मुहा०**—हाज़िर आना = हाज़िर होना।

**हाज़िर-जवाब-वि०** [ प्र० ] उत्तर देने में निपुण । जोड़ की तोड़ बात कहने में चतुर । बात का चटपट अच्छा जवाब देने में होशियार । उपस्थित बुद्धि का । प्रत्युत्पन्न-मति । जैसे,—बीरबल बहु हाज़िर-जवाब थे ।

**हाज़िर-जवाबी-संज्ञा** स्त्री० [ प्र० हाज़िरजवाब + रे ( हि० प्रत्य० ) ] चटपट उत्तर देने की निपुणता । उपस्थित बुद्धि । प्रत्युत्पन्न-मतिर । जैसे,—बीरबल की हाज़िरजवाबी से अकपार बहुत खुश रहता था ।

**हाज़िरयाश-वि०** [ प्र० + का० ] (१) सामने मौजूद रहनेवाला । परावर सेवा में रहनेवाला । (२) लोगों के पास जाकर बराबर मिलने जुलनेवाला ।

**हाज़िरयाशी-संज्ञा** स्त्री० [ प्र० + का० ] (१) सेवा में निरंतर उपस्थिति । (२) लोगों से जाकर मिलना जुलना । खुशामद ।

**हाज़िराई-संज्ञा** पुं० [ प्र० हाज़िर + आर ( हि० प्रत्य० ) ] (१) भूतप्रेत बुलाने या दूर करनेवाला । ओहो । सयाना । (२) जादूगर ।

**हाज़िरात-संज्ञा** स्त्री० [ प्र० ] यंदना या पूजा आदि के द्वारा किसी के ऊपर कोई भावना बुलाना जिससे वह हमारे और अनेक प्रकार की बातें कहने लगता है ।

**हाजी-संज्ञा** पुं० [ प्र० ] (१) हज करनेवाला । तीर्थाटन के लिये मक़े मदीने जानेवाला । (२) वह जो हज कर आया हो । (मुसल०)

**हाट-संज्ञा** स्त्री० [ सं० हट ] (१) यह स्थान जहाँ कोई व्यवसायी बेचने के लिये चीज़ें रखकर बैठता है । दूकान । (२) वह स्थान जहाँ बिक्री की सब प्रकार की वस्तुएँ रहती हैं । बाजार ।

**यौ०—हाटघाट ।**

**मुहा०—हाट करना** = (१) दूकान रखकर बैठना । (२) सीढ़ा लेने के लिये बाजार जाना । जैसे,—वह की हाट बाजार करती है ।

**हाट बाजार करना** = सीढ़ा लेने बाजार जाना । **हाट खोलना** = (१) दूकान रखना । (२) दूकान पर आकर बिक्री की चीज़ें निकाल कर रखना । **हाट लगाना** = दूकान या बाजार में बिक्री की चीज़ें रखी जाना । **हाट चढ़ाना** = बाजार में बिक्री के लिये जाना । उ०—पंडित होई सो हाट न चढ़ा ।—जायसी । (३) बाजार लगाने का दिन ।

**हाटक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) एक देश का नाम । ( महाभारत ) (२) सोना । स्वर्ण । उ०—हाटक दी कर हाटक माँगत भीरी निपट बिचारी ।—सूर ।

**हाटकपुर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] ( सोने की पनी हुई ) लंका ।

**हाटकलोचन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] हिरण्यलक्ष्मण । उ०—कनक-कसिपु भर हाटकलोचन । जगत विदित सुरपति-यद-नोचन ।—जुलसी ।

**हाटकतीय-वि०** [ सं० ] (१) सोने का । सोना-संबंधी । (२) सोने का पना हुआ ।

**हाटकेश-संज्ञा** पुं० [ सं० ] शिव की एक मूर्ति या रूप का नाम जिसकी उपासना गोदावरी के तट पर होती है ।

**हाड़ी-संज्ञा** पुं० [ सं० हड्ड ] (१) हड्डी । अस्थि । उ०—चरा-चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की परि । तुलसी परमसे हाद परि परिई सुहुमी नीर ।—तुलसी । (२) बंध या जालि की मर्यादा । कुलीनता ।

**हाड़ना-कि०** सं० [ सं० हारण ] तीलने में वस्तुन आदि के कारण किसी पलड़े के मारी पढ़ने पर दूसरे पलड़े पर पतंगर आदि रखकर दोनों पलड़े ठीक बराबर करना । अहाँका करना । पढ़ा करना ।

**कि०** सं० दे० "हाड़ना" ।

**हाड़ा-संज्ञा** पुं० [ हि० भार, आर = रंक ] लाल रंग की बड़ी मिट्टी । छाल तैतिया ।

**संज्ञा** पुं० शक्तिवर्षों की एक शाखा ।

**हाड़ी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० हाकिम ] (१) ज़मीन में पत्थर गाड़कर बनावया हुआ गड्ढा जिसमें अनाज रखकर साफ़ करने के लिये मूसल से कूटते हैं । (२) वह गड्ढेदार पत्थर जिस पर रखकर पीठने से पीतल आदि की चद्दर कटोरनुमा बन जाती है ।

**संज्ञा** पुं० [ सं० भाषि ] (१) एक प्रकार का बगला । (२) कौआ ।

**हात-वि०** [ सं० छोटा हुआ । त्यागा हुआ ।

**हातव्य-वि०** [ सं० ] छोड़ने योग्य । त्याग्य ।

**हाता** संज्ञा पुं० [ प्र० हातः ] (१) घेरा हुआ स्थान । वह जगह जिसके चारो ओर दीवार खिंची हो । बाड़ा । (२) देश-विभाग । मंडल । हलका या सूबा । मांत । जैसे,—संगाल हाता । पंवाई हाता । (३) रोक । दब । सीमा ।

**वि०** [ सं० हात ] [ स्त्री० हाती ] (१) लक्ष्य । दूर किया हुआ । इटाया हुआ । उ०—(क) कंत सुनु मंत, कुल भंत कियु भंत हानि हातो कीमि हीय सँ भरोसो भुज बीध को ।—तुलसी । (ख) जानत प्रीति रीति रघुराई । माते सब हाते करि रावत राम-सनेह, सगई ।—तुलसी । (ग) मधुकर ! रह्यो जोग लौं मातो । कतेहि बकत येकाम काम बिनु, होय न छाँते हातो ।—घूर । (घ) हरि से हियु सँ भ्रमि सुल्लि हू न कौमि मान हातो कियु हिय हू सँ होत हित हानियै ।—केशव । (२) नष्ट । धरबाद ।

**संज्ञा** पुं० [ सं० हात ] मारनेवाला । धप करनेवाला । (समास में)

**हातिम-संज्ञा** पुं० [ प्र० ] (१) निपुण । चतुर । कुशल । (२) किसी काम में पक्का आदमी । उत्साह । जैसे,—वह लड़के

में बड़े हाथिम हैं। (३) एक-प्राचीन अरब संस्कार जो बड़ा दानी, परोपकारी और उदार प्रसिद्ध है।

**मुहा०**—हाथिम की कंधर पर-छात मारना = बहुत अधिक खराबा वा परोपकार करना। (खंथ)

(घ) अर्थत दानी मनुष्य। अर्थत उदार मनुष्य।

**हाथ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मनुष्य। मीत। (२) सद्क।

**हाथ**—संज्ञा पुं० [ सं० हस्त, प्रा० हथ ] (१) मनुष्य, बंदर आदि प्राणियों का वह अंग जिससे वे पदुओं को पकड़ते या छूते हैं। बाहु से लेकर पंजे तक का अंग विशेषतः कड़ाई और हुयेली या पंजा। कर। हस्त।

**मुहा०**—हाथ आना, हाथ पकटना, हाथ चटना = दे० "हाथ में आना वा पकटना। हाथ में आना, पकटना = अधिकार वा वश में आना। कब्जे वा कानू में आना। मिलना वा हथियार में हो

जाना। जैसे,—(क) सच बड़ी छे लेगा, तुम्हारे हाथ में कुछ भी न भावेगा। (ख) अब तो बड़ हमारे हाथ में है, जैसा कहेंगे वैसा करेगा। (किसी को) हाथ उठाना = सलाम करना। प्रणाम करना। (किसी पर) हाथ उठाना = किसी को मारने के लिये थपड़ या धुंसा जाना। मारना। जैसे,—पधे पर हाथ उठाना अच्छी बात नहीं। हाथ उठाकर देना = अपनी तुली से देना। जैसे,—कमी हाथ उठाकर एक पैसा भी तो नहीं दिया है। हाथ उठाकर कोसना = शाप देना। किसी के अनिष्ट की इशार से प्रार्थना करना। हाथ उठरना = हाथ की हड्डी उड़क जाना। हाथ ऊँचा होना = (१) दान देने में मद्ध होना।

(२) देने लायक होना। खर्च करने लायक होना। संपन्न होना। हाथ कट जाना = (१) कुड़क करने लायक न रह जाना। लापस वा सहायक का अभाव हो जाना। (२) प्रतिष्ठा आदि से बढ

सो जाना। इच्छानुसार कुल करने के लिये स्वधर्म न रह जाना। हाथ कटा देना = (१) अपने को कुल करने योग्य न रहना। साधन वा सहायक छो देना। (२) अपने को प्रतिष्ठा आदि से बढ कर देना। कोई पैसा काम करना जिससे इच्छानुसार कुल करने की स्वार्थता न रह जाय। बंध जाना। हाथ करना = हाथ चटना।

भार करना। प्रहार करना। हाथ का हाटा = भविष्यतः। जिस पर एतबार न किया जा सके। शोचनीय। बेमान। हाथ का दिया = दान दिया हुआ। सद्क। जैसे,—(क) तुम्हारे हाथ का दिया हम कुछ भी नहीं जानते। (ख) हाथ दिया साध जाना है। हाथ का सचा = (१) ईमानदार। (२) मनुष्य वा कर्त्तव्य। पैसा वा करनेवाला को खाली न भाय। (३) पैसा लौकिक काम करनेवाला जिसमें मूल बूक न हो। हाथ की मील =

बोहर हाथ में भाटा भाटा रहनेवाला। साधारण बल। तुम्हें बल। जैसे,—क्या पैसा हाथ की मील है। (किसी के) हाथ की चिह्नी या पुरजा = किसी की लिखी हुई चिट्ठी या पुरजा। रहलोल। हाथ की छकीर = (१) हुयेली में बनी हुई छकीर।

हस्तरेखा जिनसे गुणगुण फल कष्ट जाना है। (२) भाग्य। किम्वत । हाथ के नीचे आना या हाथ टाले आना = कानू में आना। बरा में होना। ऐसी स्थिति में पटना कि जो बाल चाहे करारे भा सके। हाथ खाली जाना = (१) वार चूटना। प्रहार न बैठना। (२) कुंकि सक्क न होना। चाल चूक जाना। हाथ खाली होना = पास में कुछ द्रव्य न रह जाना। क्या पैसा न रहना। हाथ खाली न होना = काम में फंसा रहना। पुरसत न होना। हाथ खुलाना = (१) माले को भी करना। थपड़ लगाने को इच्छा होना। (२) मिलने का भाग्य होना। प्राप्ति के लक्ष्य दिखाने पड़ना। (३) पैसा बिधास दे कि बच हुयेली में सुलभाइ, होती है, तब कुछ मिलना है। हाथ खींचना =

(१) किसी काम से अलग हो जाना। योग न देना। (२) खर्च बंद कर देना। देना बंद कर देना। हाथ खुलना = (१) दान में प्रवृत्ति होना। (२) खर्च करना। जैसे,—मण के मारे उनका हाथ नहीं खुलता है। हाथ खोलना = (१) खूब दान देना। खैरात करना। (२) खूब खर्च करना। हाथ गरम होना = दे० "तुम्हारे गरम होना"। हाथ चलना = (१) किसी काम में हाथ का हिलना बोलना। जैसे,—अभ्यास न होने से उसका हाथ जल्दी जल्दी नहीं चलता। (२) मारने के लिये हाथ चटना। थपड़ या धुंसा बनना। जैसे,—तुम्हारा हाथ बड़ी जल्दगी चल जाता है। हाथ चखाना = (१) किसी काम में हाथ हिलाना

चलाना। (२) मारने के लिये थपड़ चानना। मारना। (३) किसी वस्तु को छूने या लेने के लिये हाथ चखाना। जैसे,—छाती पर हाथ चखाना। हाथ चूमना = किसी की कला-निपुणता पर मुग्ध होकर उसके हाथों को चूम कराना। किसी की कारीगरी पर तनना मुग्ध होना कि उसके हाथों को प्रेम को दृष्टि से देखना।

जैसे,—(क) इस चित्र को देखकर जी चाहता है कि चित्रकार के हाथ चूम लें। (ख) यह काम कर डालो तो हाथ चूम लें। हाथ चालाक या हाथ-चला = (१) पुरती से दूसरे की चीज उद्य लेनेवाला। दूसरे की वस्तु लेने में हाथ की सहाई दिखानेवाला। (२) किसी काम में हाथ की सहाई दिखानेवाला। हाथ चालाकी = हाथ की सहाई वा पुरती। हस्तचौरा। हस्तचलन। हाथ चाटना = धामने रखा चीजन कुल भी न छोड़ना, सब सा जाना। सब खात भी न रह

होना। हाथ छुटना = मारने के लिये हाथ चटना। (किसी पर) हाथ छोड़ना = मारना। प्रहार करना। हाथ जड़ना = थपड़ मारना। प्रहार करना। हाथ जोड़ना = (१) प्रणाम करना। नमस्कार करना। (२) अनुनय विनय करना। (३) प्रार्थना करना। (दूर से) हाथ जोड़ना = संसर्ग वा संघर्ष न रहना। किनारे रहना। पीदा छुगना। जैसे,—पेमे भादमियाँ को हम दूर ही से हाथ जोड़ते हैं। हाथ गुला-होना = हाथ में खाने पीने की चीज बची रहना वा हाथ का दुध में पड़ जाना। (पैसा हाथ

हस्तरेखा जिनसे गुणगुण फल कष्ट जाना है। (२) भाग्य। किम्वत । हाथ के नीचे आना या हाथ टाले आना = कानू में आना। बरा में होना। ऐसी स्थिति में पटना कि जो बाल चाहे करारे भा सके। हाथ खाली जाना = (१) वार चूटना। प्रहार न बैठना। (२) कुंकि सक्क न होना। चाल चूक जाना। हाथ खाली होना = पास में कुछ द्रव्य न रह जाना। क्या पैसा न रहना। हाथ खाली न होना = काम में फंसा रहना। पुरसत न होना। हाथ खुलाना = (१) माले को भी करना। थपड़ लगाने को इच्छा होना। (२) मिलने का भाग्य होना। प्राप्ति के लक्ष्य दिखाने पड़ना। (३) पैसा बिधास दे कि बच हुयेली में सुलभाइ, होती है, तब कुछ मिलना है। हाथ खींचना =

(१) किसी काम से अलग हो जाना। योग न देना। (२) खर्च बंद कर देना। देना बंद कर देना। हाथ खुलना = (१) दान में प्रवृत्ति होना। (२) खर्च करना। जैसे,—मण के मारे उनका हाथ नहीं खुलता है। हाथ खोलना = (१) खूब दान देना। खैरात करना। (२) खूब खर्च करना। हाथ गरम होना = दे० "तुम्हारे गरम होना"। हाथ चलना = (१) किसी काम में हाथ का हिलना बोलना। जैसे,—अभ्यास न होने से उसका हाथ जल्दी जल्दी नहीं चलता। (२) मारने के लिये हाथ चटना। थपड़ या धुंसा बनना। जैसे,—तुम्हारा हाथ बड़ी जल्दगी चल जाता है। हाथ चखाना = (१) किसी काम में हाथ हिलाना

चलाना। (२) मारने के लिये थपड़ चानना। मारना। (३) किसी वस्तु को छूने या लेने के लिये हाथ चखाना। जैसे,—छाती पर हाथ चखाना। हाथ चूमना = किसी की कला-निपुणता पर मुग्ध होकर उसके हाथों को चूम कराना। किसी की कारीगरी पर तनना मुग्ध होना कि उसके हाथों को प्रेम को दृष्टि से देखना।

जैसे,—(क) इस चित्र को देखकर जी चाहता है कि चित्रकार के हाथ चूम लें। (ख) यह काम कर डालो तो हाथ चूम लें। हाथ चालाक या हाथ-चला = (१) पुरती से दूसरे की चीज उद्य लेनेवाला। दूसरे की वस्तु लेने में हाथ की सहाई दिखानेवाला। (२) किसी काम में हाथ की सहाई दिखानेवाला। हाथ चालाकी = हाथ की सहाई वा पुरती। हस्तचौरा। हस्तचलन। हाथ चाटना = धामने रखा चीजन कुल भी न छोड़ना, सब सा जाना। सब खात भी न रह

होना। हाथ छुटना = मारने के लिये हाथ चटना। (किसी पर) हाथ छोड़ना = मारना। प्रहार करना। हाथ जड़ना = थपड़ मारना। प्रहार करना। हाथ जोड़ना = (१) प्रणाम करना। नमस्कार करना। (२) अनुनय विनय करना। (३) प्रार्थना करना। (दूर से) हाथ जोड़ना = संसर्ग वा संघर्ष न रहना। किनारे रहना। पीदा छुगना। जैसे,—पेमे भादमियाँ को हम दूर ही से हाथ जोड़ते हैं। हाथ गुला-होना = हाथ में खाने पीने की चीज बची रहना वा हाथ का दुध में पड़ जाना। (पैसा हाथ

हस्तरेखा जिनसे गुणगुण फल कष्ट जाना है। (२) भाग्य। किम्वत । हाथ के नीचे आना या हाथ टाले आना = कानू में आना। बरा में होना। ऐसी स्थिति में पटना कि जो बाल चाहे करारे भा सके। हाथ खाली जाना = (१) वार चूटना। प्रहार न बैठना। (२) कुंकि सक्क न होना। चाल चूक जाना। हाथ खाली होना = पास में कुछ द्रव्य न रह जाना। क्या पैसा न रहना। हाथ खाली न होना = काम में फंसा रहना। पुरसत न होना। हाथ खुलाना = (१) माले को भी करना। थपड़ लगाने को इच्छा होना। (२) मिलने का भाग्य होना। प्राप्ति के लक्ष्य दिखाने पड़ना। (३) पैसा बिधास दे कि बच हुयेली में सुलभाइ, होती है, तब कुछ मिलना है। हाथ खींचना =

अयुध माना जाता है। ( किसी काम में ) हाथ जंमना = दे० "हाथ बैठना"। हाथ झाड़ना = (१) रुझाने में खूब राख चलाना। खूब हथियार चलाना। (२) धार करना। प्रहार करना। मूव मारना। हाथ छुलाने या हिलाने आना = कुछ भी रोक न आना। छाठी हाथ छोटाना। हाथ झाड़ देना = छाठी हाथ हो जाना। कह देना कि मेरे पास कुछ नहीं है। हाथ झाड़कर खड़े हो जाना = छाठी हाथ दिखा देना। कह देना कि मेरे पास कुछ नहीं है। जैसे,—तुम्हारा क्या? तुम तो हाथ झाड़कर पड़े हो जाओगे, सारा खर्च हमारे ऊपर पड़ेगा। हाथ टेकना = सहाय देना। हाथ डालना = (१) किसी काम में हाथ लगाना। योग देना। (२) दखल देना। (३) को को हाथ लगाना। (४) सूटना। मार मारना। हाथ सक्ना = दूसरे के देने के आसरे रहना। दूसरे के आश्रित रहना। हाथ तंग होना = खर्च करने के लिये रुपया पैसा न रहना। निर्धन होना। हाथ धिरकाना या गधाना = नाचने या खेलने में हाथ मटकाना या हिलाना। हाथ हिलाना = नजर भ्रमकाना। भूत प्रेत की बाधा रात करने के लिये सवाने को दिखाना। हाथ दिखाना = (१) मविष्य शुभाशुभ ज्ञानने के लिये सामुद्रिक-माननेवाले से हाथ की रेखाओं का विचार कराना। (२) वैष को नाड़ी दिखाना। हाथ देखना = (१) नाड़ी देखना। (२) सामुद्रिक का विचार करना। हाथ देना = (१) सहाय देना। (२) बाजी लगाना। (३) गुप्त रूप से तोड़ा तै करना। (४) शीघ्र प्रसन्नना। (५) भूत प्रेत को बाधा का विचार कराना। (६) रोचना। मना करना। ( किसी का ) हाथ धरना = (१) कोई काम करने से रोचना। जैसे,—जिसको को चाहें दें, कोई हाथ धर सकता है। (२) किसी को सहाय देना। अपनी रखा में लेना। (३) पाणिप्रदण्य करना। विवाह करना। ( किसी पर ) हाथ धरना = किसी को भारीबाद देना। ( किसी वस्तु या बात से ) हाथ धोना = छोड़ देना। प्रसि की संगमना न रखना। नष्ट करना। जैसे,—(क) ज्ञान से हाथ धोना। (ख) मकान से हाथ धोना। हाथ धोकर पीछे पड़ना = (१) किसी काम में भी जान से लग जाना। सब कुछ छोड़कर पछुत हो जाना। किसी को हानि पहुँचाने में सब काम भंथा छोड़कर लग जाना। जैसे,—न जाने क्यों वह आज कल हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ा है। हाथ न रखने देना या पुठे पर हाथ न धरने देना = (१) बहुत तेजी दिखाने। हाथ रखो ही छोड़ने दूँने या दौड़ने लगना। (फोड़े के लिये) (२) जप भी बाणों में न आना। थोड़ी तो बात भी मानने के लिये तैयार न होना। दृढ़ रहना। जैसे,—उसे कैसे राभी करे, हाथ तो रखने ही नहीं देता। हाथ पकड़ना = (१) किसी काम से रोचना। (२) सहाय देना। (३) भाग्य देना। शरय में लेना। रक्क होना। (४) पाणिप्रदण्य करना। विवाह करना। हाथ पकड़ना = (१) हाथ लगाना। हाथ धू जाना। (२) भाग्य पचना। शक्ता पचना। सूट होना। जैसे,—आज बाजार

में हाथ पटु गया। हाथ पत्थर = तले दबना = (१) सुरिकर में फँसना। संकट या कठिनता की स्थिति में पचना। (२) कुछ कर पर न सजना। कुछ करने की शक्ति या शक्करा न रहना। (३) लाचार होना। विवरा होना। (४) किसी बल्ले हुए काम को बंद करने के लिये विवरा होना। हाथ पर गंगाजली रखना = गंगा की शरय देना। फसल खिलाना। हाथ पर नाग खिलाना = फेनो ज्ञान जोड़ने में डालना। प्राण संकट में डालना। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना = खाली बैठे रहना। कुछ काम भंथा न करना। हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना = निराश हो जाना। हाथ पर हाथ मारना = (१) प्रतिष्ठा-पचना। किसी बात को दृढ़ करना। किसी बात को पक्का करना। (२) बाणी लगाना। हाथ पसारना या फैलाना = कुछ मँगना। याचना करना। ( किसी के भागे ) हाथ पसारना या फैलाना = (किसी से) कुछ मँगना। याचना करना। जैसे,—इम गरीब हैं तो किसी के भागे हाथ फैलाने तो नहीं जाते। हाथ पसारना = इस संसार से टोली हाथ जाना। परलोक में कुछ साथ न ले जाना। हाथ पाँव चलना = काम भंथे के लिये सामर्थ्य होना। कार्य करने की योग्यता होना। जैसे,—हृत्तने बड़े हुए, तुम्हारे हाथ पाँव नहीं चलते हैं। हाथ पाँव चलाना = काम भंथा करना। हाथ पाँव टूटना = (१) अंग मंग होना। (२) शरीर में पीडा होना। हाथ पाँव ठंडे होना = (१) शरीर में गरमी न रह जाना। मरणावस्य होना। (२) भय या आशंका से संबंध हो जाना। ठक हो जाना। हाथ पाँव सोदना = (१) अंग मंग करना। (२) हाथ पाँव धरना। हर के बारे में बँधवैरी होना। हाथ पाँव निकालना = (१) शरीर हट-पुष्ट होना। मोय ताजा होना। (२) शीघ्र का प्रतिक्रमण करना। हट से गुजरना। (३) नटबटी करना। शरारत करना। (४) डेकड़ाद करना। हाथ पाँव फूलना = भय से स्तम्भ होना। हर या शोक से धरत जाना। हाथ पाँव बचाना = अपने शरीर को रखा करना। जैसे,—हाथ पाँव बचाकर काम करना। हाथ पाँव पटकना = हृत्पयना। हाथ पाँव मारना या हिलाना = (१) तैरने में हाथ देर चलाना। (२) शोक, दुःख या पीडा से हृत्पयना। तपचना। (३) शीघ्र प्रयत्न करना। बहुत कोशिश करना। जैसे, उत्तने बहुत हाथ पाँव मारे पर उठे छे न सका। (४) बहुत परिश्रम करना। खूब मिहनत करना। हाथ पाँव से छूटना = अच्छी तरह बंधा दिया होना। सखन में डुराव-दूरक प्रसव होना। (खि०) हाथ पाँव धारना = (१) साहस होना। विमत्त शरय। (२) निराश होना। हाथ पीछे पड़ना = (१) किसी प्रकार विवाह कर देना। (२) विवाह करना। ( हिंदुओं में विवाह के समय शरीर में हल्दी लगाने की रीति है। ) हाथ पीर जोड़ना = बहुत विनयी करना। अनुभव-विषय करना। हाथ फँकना = हाथ चलाना। नार करना। हथियार चलाना। ( किसी पर ) हाथ फेरना = धार से शरीर सहायना। धार

करना । ( किसी वस्तु पर ) हाथ फेरना = किसी वस्तु को उठा लेना । से लेना । हाथ बँध होना = दे० "हाथ तंग होना" । हाथ बढ़ाना = (१) कोई वस्तु लेने के लिये हाथ फैलाना । (२) हद से बाहर जाना । सीमा का अधिकतम पार करना । ( किसी काम में ) हाथ बँटाना = शामिल होना । शरीक होना । योग देना । हाथ बँधकर खड़ा होना = हाथ जोड़कर खड़ा होना । हाथ बाँधे खड़ा रहना = सेना में बन्दर करियत रहना । खिदमत में हाज़िर रहना । ( किसी के ) हाथ बिकना = किसी को मोह दिया जाना । ( किसी व्यक्ति का ) किसी के हाथ बिकना = किसी का मजदूर दास होना । किसी का लाठी तुलाम होना । किसी के मिल्कुल क़रीब होना । ( किसी काम में ) हाथ बँटना या ज़माना = सम्पादन होना । मरक होना । ऐसा सम्पादन होना कि हाथ बन्दर ठीक चला करे । ( किसी पर ) हाथ बँटना या ज़माना = किसी पर ठीक मोर भरपूर मजदूर या बार पढ़ना । बार छाड़ी न जाना । हाथ भर भरना = काम करते करते हाथ थक जाना । हाथ भरना = हाथ में रंग या महार लगावना । हाथ बँटना = सम्पादन होना । मरक होना । हाथ बँटना = सम्पादन करना । हाथ मेलना = (१) मूल पूँज का नुमा परिणाम होने पर सम्पत्त पश्चात्ताप करना । बहुत पसंदाना । (२) निपटा और दुखी होना । हाथ मारना = (१) मार पबी करना । हद प्रविष्टा करना । (२) बाजी लगाना । ( किसी वस्तु पर ) हाथ मारना = उठा लेना । चादर बर लेना । बेरमानी से ले लेना । ( भोजन पर ) हाथ मारना = (१) खर खाना । (२) बड़े बड़े कीट मूँह में डालना । हाथ मारकर भागना = दौड़ते कीट पकड़ने का खेल खेचना । हाथ मिलावना = (१) मंड होने पर प्रेमपूर्वक एक दूसरे का हाथ पकड़ना । (२) लजना । धँसा क़ाना । (३) सौधा पटक लेना । हाथ मँडना = दे० "हाथ मलना" । हाथ में करना = (१) बरा में करना । कायू में करना । (२) क़धिकार में करना । से लेना । प्राप्त करना । (सग) हाथ में करना = मोहित करना । लुभाना । प्रेम में कँडाना । हाथ में डीकरा लेना = मिश्रवृत्ति का मन्तव्य होना । मोह मँगना । मँगना से जाना । हाथ में पक़ना = (१) क़धिकार में जाना । (२) बरा में होना । कायू में जाना । हाथ में खाना = दे० "हाथ में करना" । हाथ में खेना = (१) करने का मात कर लेना । किने लेना । (२) क़धिकार में करना । हाथ में हाथ देना = पाणिपत्रक क़तना । ( क़मा को ) ब्याह देना । हाथ में होना = (१) क़धिकार में होना । क़त में होना । (२) बरा में होना । क़रीब होना । उ०—हाति लाम जीवन मरान वसंत भयवसंत विधि हाथ = तुलसी । हाथ में गुन या हुन होना = किसी क़ण में निपुणता होना । हाथ रँगना = (१) हाथ में मैदी छिगाना । (२) किसी नुरे काम में बरकर करने को क़ान्दित करना । क़रक़ क़ाये पर लेना । (३) रितावत लेना । धूम लेना । ( किसी

का ) हाथ रोकना = कोई काम न करने देना । कुछ करते समय हाथ काम लेना । कुछ करते से मना करना । ( क़पना ) हाथ रोकना = (१) किसी काम का करना बंद कर देना । किसी काम से क़ण्य हो जाना । विरत हो जाना । (२) मारने के लिये हाथ उठाकर रह जाना । (३) खर्च करते समय क़ाणा पोधा खोचना । सँवाकर खर्च करना । जैसे,—भ्रामदुनी घट गई है तो हाथ रोककर खर्च किया करो । हाथ रोपना या ओढ़ना = हाथ फैलाना । मँगना । ( कोई वस्तु ) हाथ लगाना = (१) हाथ में जाना । मिल्कना । प्राप्त होना । जैसे,—तुम्हारे हाथ तो कुछ भी न लगा । (२) गयित करते समय बर संख्या को क़तिम संख्या से लेने पर बच रहती है । जैसे,—२ के २ रूप्ते, हाथ लगा १ । ( किसी काम में ) हाथ लगाना = (१) भार न होना । शुरु किया जाना । जैसे,—जब काम में हाथ लग गया तंग हुआ समझो । (२) किसी के द्वारा किया जाना । किसी का लगाव होना । जैसे,—मिस्र काम में तुम्हारा हाथ लगता है, वह चौपट हो जाता है । ( किसी वस्तु में ) हाथ लगाना = छू जाना । स्पर्श होना । ( किसी काम में ) हाथ लगाना = (१) श्रम करना । शुरु करना । (२) करने में प्रवृत्त होना । योग देना । जैसे,—जिस काम में तुम हाथ लगाओगे, वह धरो न भ्रष्टा होना । ( किसी वस्तु में ) हाथ लगाना = धूना । स्पर्श करना । हाथ लगे मैठा होना = इतना खबड और पवित्र होना कि हाथ से छूने से मेल होना । हाथ साधना = (१) यह देखने के लिये कोई काम करना कि उसे क़ागे क़च्छी तरह कर सकने दें या नहीं । (२) सम्पादन करना । मरक करना । (३) दे० "हाथ साक़ करना" । ( किसी पर ) हाथ साफ़ करना = किसी को मारना । ( किसी वस्तु पर ) हाथ साफ़ करना = बेरमानी से ले लेना । क़न्दाय से हरक़ करना । उठा लेना । ( भोजन पर ) हाथ साफ़ करना = खर खाना । हाथ किसी के तिर पर रखना = किसी की रथा का मार ग्रहण करना । शरण या कामय में लेना । सुंरपी होना । ( क़पने या किसी के तिर पर ) हाथ रखना = तिर को क़तम खाना । शरण बँडना । हाथ से = द्वारा । मारक़व । जैसे,—(क) तुम्हारे हाथ से यह काम हो जाता तो अर्धता या । (ख) तुमने किस के हाथ से हरथा पाया ? हाथ से जाना या निच्छल जाना = (१) क़धिकार में न रहना । क़ब्जे में न रह जाना । (२) बरा में न रह जाना । कायू में न रह जाना । जैसे,—बीजू हाथ से निकल जाना, भयसर हाथ से जाना । हाथ से हाथ मिलावना = धन देना । खेपने करना । करने हाथ से दूसरे के हाथ पर कुछ रखना । जैसे,—आज पक़ावती है, कुछ हाथ मिलाओ । हाथ दिखाते खाना = (१) खाली हाथ होना । कुछ मत क़ाके न भ्रम । (२) बिना क़न्वय सिद्ध हुए क़ौटना भ्रम । हाथों में क़ाँद भ्रम = (१) पुन बरक़ होना । लक़ड़ा पैदा होना । (प्रि०) मत ख़ादी बरक़ मिल्कना । हाथों में रज़ना = बरे लक़ भ्रम या बरक़ सम्पन्न



से रखना। हाथों हाथ = एक के हाथ से दूसरे के हाथ में होते हुए। जैसे,—चीज हाथों हाथ वहाँ पहुँच गई। हाथों हाथ बिक जाना या उड़ जाना = खूब बिकी होता। बड़ी गदरो माँग देना। जैसे,—ऐसी उपयोगी वस्तुतक हाथों हाथ बिक जायगी। हाथों हाथ लेना = बड़े आदर और सम्मान से स्वागत करना। (किसी के) हाथ-बैचना = किसी को गुरुत्व लेकर देना। (किसी के) हाथ भेजना = किसी के हाथ में देकर भेजना। किसी के हाथ में बित्त करना। (किसी के) हाथों = किसी के हाथ।

(२) लंबाई की एक माप जो मनुष्य की कुहनी से लेकर पंजे के छोर तक की मानी जाती है। चौबीस अंगुल का मान। जैसे,—दस हाथ की पोती। बीस हाथ जमीन।

मुहा०—हाथों कलेजा उठलना = (१) बहुत जी भरकरना। (२) बहुत खुशी होना। हाथ भर कलेजा होना = (१) बहुत खुशी होना। आनंद से फूलना। (२) उरसाह होना। साहस बँपना।

(३) तान, तूप आदि के लेख में एक एक आधमी के खेलने की थारी। दाँवें। जैसे,—अभी चार ही हाथ तो हमने खेला है।

मुहा०—हाथ मारना = दाँवें जीतना।

(७) किसी कार्यालय के कार्यकर्ता। कारखाने में काम करनेवाले आधमी। जैसे,—आज कल हाथ कम हो गए हैं; इसी से देर हो रही है। (५) किसी औजार या हथियार का वह भाग जो हाथ से पकड़ा जाय। वस्ता। मुठिया।

हाथकंडा—संज्ञा पुं० दे० "हथकंडा"।

हाथड़—संज्ञा पुं० [ हि० हाथ ] जाँते या चक्की की मुठिया।

हाथतोड़—संज्ञा पुं० [ हि० हाथ + तोड़ना ] कुदती का एक पेच जिसमें जोड़ का पंजा उलटा पकड़ कर मरोड़ते हैं और उसी मरोड़े हुए हाथ के ऊपर से अपनी उसी बगल की टाँगें जोड़ की टाँगों में फँसाकर उसे बित्त करते हैं।

हाथ-धुलाई—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाथ + धुलाई ] वह पैंची रकम जो चमारों को मरे हुए चौपायों के फँसने के लिये दी जाती है।

हाथपान—संज्ञा पुं० [ हि० हाथ + पान ] हाथफूल के समान हथेली की पीठ पर पहनने का एक गहना जो पान के आकार का होता है और जंजीरों के द्वारा अँगुठियों और कलाई से लगाकर मॉया जाता है।

हाथफूल—संज्ञा पुं० [ हि० हाथ + फूल ] हथेली की पीठ पर पहनने का फूल के आकार का एक गहना जो तिकदियों के द्वारा अँगुठियों और कलाई से लगाकर मॉया जाता है।

हाथवाई—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाथ + बँध ] बँध कराने (कसरत) का एक ढंग।

हाथा—संज्ञा पुं० [ हि० हाथ ] (१) किसी औजार या हथियार का वह भाग जो मुट्टी में पकड़ा जाता है। वस्ता। (२) दो तीन

हाथ लंबा लकड़ी का एक औजार जिससे सिचाई करने समय खेत में आधा हुआ पानी उलीच कर चारों ओर पहुँचाते हैं।

(३) पंजे की छाप या चिह्न जो गोलि पिसे चावल और हल्दी आदि पोत कर दीवार पर छापने से बनता है। छाप।

(उत्सव, पूजन आदि में चिप्राई ऐसा छापना होती है।)

हाथा-छुँटी—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाथ + छुँटना ] (१) प्यवहार में कपट या बेईमानी। चालाकी। धूर्तता। चालबाजी। (२) चालबाजी या बेईमानी से अपना पैसा उड़ाना। माल हज़म कराना।

कि० प्र०—करना।—होना।

हाथाजोड़ी—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाथ + जोड़ना ] (१) एक पौधा जो औषध के काम में आता है। (२) सरकड़े की वह जड़ जो दो मिले हुए पंजों के आकार की बन जाती है। (इसका रखना लोग बहुत फलदायक मानते हैं।)

हाथापाई—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाथ + पाई ] ऐसी लड़ाई जिसमें हाथ पैर चलाए जायँ। मुठभेड़। मिर्झत। धौलपण्य।

कि० प्र०—करना।—होना।

हाथावाई—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाथ + बँध ] हाथापाई।

हाथाहाथी—संज्ञा पुं० [ हि० हाथ + हाथ ] (१) हाथोंहाथ। (२) धूर्त। जकड़ी।

हाथी—संज्ञा पुं० [ सं० हस्तिन्, हस्ती, प्रा० हथी ] [ [ को० हस्तिन् ] एक बहुत बड़ा स्तनपायी जंतु जो सूँड़ के रूप में बनी हुई नाक के कारण और सप जानवरों से विशद्वान दिखाई पड़ता है।

विशेष—यह जमीन से ७-८ हाथ ऊँचा होता है और इसका धड़ बहुत चौड़ा और मोटा होता है। धड़ के हिसाब से टाँगें छोटी और खंभे की तरह मोटी होती हैं। पैर के पंजे गोल चक्राकार होते हैं। आँलें पीलवौल के हिसाब से छोटी और कुछ उदापन लिये होती हैं। जीम लंबी होती है। पूँह के छोर पर बालों का गुच्छा होता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है नाक जो एक गावटुम नली के समान जमीन तक खटकती रहती है और सूँड़ कड़ाहती है। यह सूँड़ हाथ का भी काम देती है। इससे हाथी छोटी से छोटी वस्तु जमीन पर से उठा सकता है और पैद की बड़ी बड़ी बालों को तोड़कर सूँड़ में डाल लेता है। इससे वह अपने बालों को लपेट कर पटक देता या धीरे डालता है। सूँड़ में पानी भर कर यह अपने ऊपर डालता भी है। नर के मुख-विबर के दोनों छोरों पर हाथ के समान लंबे और ५-६ अंगुल चौड़े गोल छँटे की तरह के सफेद चमकीले दाँत निकले होते हैं जो केवल विश्वायती होते हैं। इन दाँतों का पचन बहुत अधिक—७५ से १०५ सेर तक—होता है। इसके पान गोल रूप की तरह के होते हैं। मस्तक चौड़ा और पीछे से कुछ

विभक्त दिखाई पड़ता है। सिर की हड्डियाँ जालीदार होती हैं। पसलियाँ भीत जोड़ी होती हैं। हाथी पृथ्वी के गरम भागों में—विशेषतः हिंदुस्तान और अफ्रिका में—पाए जाते हैं। अफ्रिका और हिंदुस्तान के हाथियों में कुछ भेद होता है। अफ्रिका के हाथी के दो निकले हुए दाँतों के सिवा चार दाढ़ें होती हैं और हिंदुस्तानी के दो ही। अफ्रिका के हाथी का मस्तक गोल और कान इतने बड़े होते हैं कि सारे कंधे को ढँके रहते हैं। बरमा और स्वाम की ओर सफेद हाथी भी पाए जाते हैं जिनका बहुत अधिक भाद्र और मोल होता है। हिंदुस्तान के हाथियों के भी अनेक भेद होते हैं जैसे,—दूँतला, मक्का (बिना दाँत का), पहँगदाँत, गनेसा, सुभद्रदाँत, पधरदाँत, सँकरिया, अंकुसदाँत या मुंदा हथ्यादि। कोई कोई हिंदुस्तानी हाथी के दो प्रधान भेद करते हैं—एक कमरिया, दूसरा मिरगी या शिकारी। कमरिया का नारी भारी और सूँढ़ लंबी होती है। मिरगी कुछ अधिक ऊँचा और ऊँरतीला होता है और उसकी सूँढ़ भी कुछ छोटी होती है। सवारी के लिये कमरिया हाथी अधिक पसंद किया जाता है और शिकार के लिये मिरगी। हाथी गहरे जंगलों में खुद घोंपकर रहते हैं और मनुष्य की तरह एक पार में एक पंचा देते हैं। हाथी की बाढ़ १८ से २४वें वर्ष तक जारी रहती है। पहले हुए हाथी ती वर्ष से अधिक जीते हैं। जंगली और भी अधिक जीते होंगे। हिंदुस्तान में हाथी रखने की रीति अत्यंत प्राचीन काल से है। प्राचीन समय में राजाओं के पास हाथियों की भी बड़ी बड़ी सेनाएँ रहती थीं जो शत्रु के दल में घुसकर भयंकर संहार करती थीं। हाथी रखना अमीरी का बड़ा भारी चिह्न समझा जाता है। अफ्रिका के जंगलों इतक मोस भी जाते हैं। हाथी एकदूने के कई उपयोग हैं। अधिकतर गद्दा खोदकर हाथी फँसाए जाते हैं।

थी०—हाथीनाल, हाथीपाँव, हाथीनदीन, हाथीखाना, हाथीदाँत।

सुहा०—हाथी सा = बहुत मोटा। अर्थ = खूबकाय। हाथी की साह = पायास गोपा। धर। हाथी पर चढ़ना = बहुत भारी होना। हाथी परचना = बहुत भारी होना। जैसे,—तुम्हें धेड़मानी करके हाथी बंध लोगे ? निदान का हाथी = सेना या जुएरा में पर हाथी जिसपर अंग और बंका रहता है। हाथी के संग गाँव खाना = बन्धन की बराबरी करना।

ॐ एषा की० [ हि० हाथ ] हाथ का सहारा। कारावलय। उ०—दस्तागीर गाँव कर हाथी। यह अथगाढ़ कीहूँ वेदि हाथी।—अथहा।

हाथीखाना—संज्ञा पुं० [ हि० हाथी + खाना ] यह घर जिसमें हाथी रखे जाय। फ्रीडखाना।

हाथीचक्र—संज्ञा पुं० [ हि० हाथी + चक्र ] एक प्रकार का पौधा जो औषध के काम में आता है।

हाथीदाँत—संज्ञा पुं० [ हि० हाथी + दाँत ] हाथी के सूँढ़ के दोनों छोरों पर हाथ केद हाथ निकले हुए सफेद दाँत जो केवल दिखावटी होते हैं।

विशेष—यह बहुत दोस, मजबूत और घमकीला होता है और अधिक मूल्य पर बिकता है। इससे अनेक प्रकार के सजावट के सामान बनते हैं। जैसे,—चायू के बेंद, कंधियों, झुरसियों, मोदे के फ्रेम हथ्यादि। इस पर लकड़ी की यड़ी ही सुंदर होती है।

हाथीनाल—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाथी + नाल ] यह पुरानी तोप जिसे हाथियों की पीठ पर रखकर ले जाते थे। हथनाल। गजनाल।

हाथीपाँव—संज्ञा पुं० [ हि० हाथी + पाँव ] (१) एक रोग जिसमें टोंगें फूलकर हाथी के पैर की तरह मोटी और बेहोळ हो जाती हैं।

फ्रीडपाँव। (२) एक प्रकार का चढ़िया सफेद कथा।

हाथीपीच—संज्ञा पुं० [ हि० हाथी + पीच ] एक प्रकार का हाथी-चक्र जो राम और रूम की ओर से आता है और औषध के काम का होता है।

हाथीघब—संज्ञा स्त्री० [ हि० हाथी + घब ] एक पौधा जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

हाथीवान—संज्ञा पुं० [ हि० हाथी + वान (पत्य०) ] हाथी की, रक्षा करने और उसे चखाने के लिये नियुक्त पुरुष। फीलवान। महावत।

हादसा—संज्ञा पुं० [ प्र० ] घुरी घटना। दुर्घटना। आपस।

हान०—संज्ञा स्त्री० दे० "हानि"।

हानि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) न रह जाने का भाव। नान। अभाव। क्षय। जैसे,—प्राणहानि, तिथिहानि। (२) नुकसान। हानि। लाभ का उलटा। पास के द्रव्य भादि में सृष्टि या कमी। घाटा। योदा। जैसे,—इस व्यापार में बड़ी हानि। (३) स्वास्थ्य में पाधा। संदुस्ती में फ़तारी। जैसे,—जिस वस्तु से हानि पहुँचती है, उसे बर्बाद खाते हो ? (४) अनिष्ट। अपकार। घुराई।

कि० प्र०—करना।—होना।

सुहा०—हानि उठाना = नुकसान तहना। हानि पहुँचना = नुकसान होना = हानि पहुँचाना = नुकसान करना।

हानिकर—वि० [ सं० ] हानि करनेवाला। जिससे नुकसान पहुँचे। (२) अनिष्ट करनेवाला। घुरा परिणाम उपस्थित करनेवाला। (३) स्वास्थ्य में सृष्टि या पाधा पहुँचानेवाला। संदुस्ती बिगाड़नेवाला। रोगी बनानेवाला।

हानिकारक—वि० दे० "हानिकर"। हानिकारी—वि० दे० "हानिकर"।

हाफिज़-संज्ञा पुं० [ म० ] यह धार्मिक मुसलमान जिसे खुरान कठ है।

हाविस-संज्ञा पुं० [ दे० ] जहाज़ का खंगर उखाड़ने या खींचने की क्रिया।

हामी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हॉ ] 'हॉ' करने की क्रिया या भाव। स्वीकृति। स्वीकार।

मुहा०—हामी भरना = किसी बात के उजर में 'हॉ' करना। स्वीकार करना। मंजूर करना। मानना।

हाय-प्रत्य० [ सं० हा ] (१) शोक और दुःख सूचित करनेवाला एक शब्द। चोर दुःख या शोक में मुँह से निकलनेवाला एक शब्द। आह। (२) कष्ट और पीड़ा सूचित करनेवाला शब्द। शारीरिक थप्या के समय मुँह से निकलनेवाला शब्द।

क्रि० प्र०—करना।  
मुहा०—हाय मारना = (१) शोक से हाय हाय करना। काटना। (२) दहल जाना। स्तम्भित हो जाना।

संज्ञा स्त्री० कष्ट। पीड़ा। दुःख। जैसे,—गरीब की हाय का फल तुम्हारे लिये अच्छा नहीं। उ०—तुलसी हाय गरीब की हरि सों सहीं न जाय। (खलित)

मुहा०—(किसी की) हाय पढ़ना = पहुँचाए हुए दुःख या कष्ट का हरा फल मिठना। जैसे,—इतने गरीबों की हाय पढ़ रही है, उसका कभी भला न होगा।

हायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्ष। संवत्सर। साल।  
हायनक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मोटा चावल जो छाल होता है।

हायल-वि० [ सं० हाय = क्षोभ हुआ, भा० हाय, भयवा हि० पायल ] पायल। शिथिल। मूर्च्छित। बेकाम। उ०—क्रिय हायल चित धाय सगि यजि पायल तुय पाय। पुनि सुनि सुनि मुख मधुर सुनि, क्यों न छाल ललचाय।—विहारी।

वि० [ घ० ] दो धातुओं के बीच में पड़नेवाला। व्यवधान रूप से स्थित। रोकनेवाला। अंतरवर्ती।

हाय हाय-अव्य० [ सं० हा हा ] शोक-दुःख या शारीरिक कष्ट-सूचक शब्द। दे० 'हाय'।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।  
संज्ञा स्त्री० (१) कष्ट। दुःख। शोक। (२) व्याकुलता। धरनाहट। आकुलता। परेशानी। संशय। जैसे,—(क) तुम्हें सो रूपए के लिये सदा हाय हाय रहती है। (ख) जिंदगी भर यह हाय हाय न मिटेगी।

हार-संज्ञा स्त्री० [ सं० हारि ] (१) युद्ध, क्रीड़ा, प्रतिद्वंद्विता आदि में शत्रु के समूह असफलता। लड़ाई, खेल, बाजी या कवा जपरी में जोड़ या प्रतिद्वंद्वी के सामने न जीत सकने का भाव। पराजय। शिकस्त। जैसे,—लड़ाई में हार, खेल में हार इत्यादि।

क्रि० प्र०—मानना।—होना।  
यो०—हारजीत।

मुहा०—हार खाना = हारना। हार देना = पराजित करना। हारना।

(२) शिथिलता। श्रंति। थकावट। (३) हानि। क्षति। हरण। (४) जूती। राग्य हारा हरण। (५) युद्ध। (६) विरह। वियोग।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोने, चाँदी या मोतियों आदि की माला जो गले में पहनी जाय।

विशेष—किसी के मत से इसमें ६४ और किसी के मत से १०८ दाने होने चाहिये।

(२) ले जानेवाले। पहन करनेवाला। (३) मनोहर। मन हरनेवाला। सुंदर। (४) अंकगणित में भाजक। (५) विंगल या छंदःशास्त्र में गुरु मात्रा। (६) नाश करनेवाला। संज्ञा पुं० [ दे० ] (१) धन। जंगल। (२) नाव के बाहरी तख्ते। (३) चरने का मैदान। चरागाह। गोधारणभूमि। (४) खेल। प्रत्य० दे० "हारा"।

हारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हरण करनेवाला। लेनेवाला। (२) जानेवाला। (३) मन हरनेवाला। मनोहर। सुंदर। (४) चोर। लुटेरा। (५) धूर्त। खल। (६) गणित में भाजक। (७) हार। माला।

हारमुटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हार की गुरिया। माला के दाने।  
हारदक्ष-वि० दे० "हारिक"।

हारना-क्रि० प्र० [ सं० हार+ना (हि० प्रत्य०) ] (१) युद्ध, क्रीड़ा, प्रतिद्वंद्विता आदि में शत्रु के सामने असफल होना। लड़ाई, खेल, बाजी या छाग-कॉट में दूसरे पक्ष के मुकाबिले में न जीत सकना। पराभूत होना। पराजित होना। शिकस्त खाना। जैसे,—लड़ाई में हारना, खेल या बाजी में हारना।

संयो० क्रि०—जाना।  
(२) व्यवहार या अभियोग में दूसरे पक्ष के मुकाबिले में कृतकार्य न होना। मुकदमा न जीतना। जैसे,—मुकदमे में हारना। (३) श्रंत होना। शिथिल होना। थक जाना। प्रयत्न में निराशा होना। असमर्थ होना। जैसे,—जब यह उसे न ले सका, तब हारकर बैठ गया।

यो०—हारा मॉदा।  
मुहा०—हारे दर्जे = (१) सब जगहों से निगरा शेर और कुब वन न चलने पर। (२) लाचार शेर। विवरा शेर। हारकर = (१) असमर्थ शेर। (२) लाचार शेर।  
क्रि० घ० (१) लड़ाई, बाजी आदि की सफलता के साथ न पूरा करना। जैसे,—बाजी हारना, दौब हारना। (२)

नष्ट करना या न प्राप्त करना । गवौता । खोना । जैसे,—  
प्राण हारना, धन हारना । (३) छोड़ देना । न रख  
सकना । जैसे,—दिम्पल हारना । (४) दे देना । जैसे,—  
बचन हारना ।

हारफलक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वर्ष छद्मियों का हार ।  
हारबंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक चित्र-काम्य जिसमें पंच हार के  
आकार में रखे जाते हैं ।

हारभूषा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] द्राक्षा । हार्य । भंगूर ।  
हारमौनियम-संज्ञा पुं० [ सं० ] संदूक के आकार का एक अंतरंगी  
शामा जिसपर उँगली रखने से अनेक प्रकार के स्वर  
निकलते हैं ।

हारपट्टि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हार या माला की छड़ी ।  
हाररत्न-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की विद्विद्या जो प्रामःभयने  
चंगुल में कोई छकड़ी या तिनका लिए रहती है । हारिल ।  
हारवारक-संज्ञा स्त्री० दे० "हृदकदी" ।  
हारसिंगार-संज्ञा पुं० [ हिं० हार + सिंगार ] हारसिंगार का पैदा  
या फूल । परजाता ।

हारहारा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का भंगूर ।  
हारहृद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन देश का नाम । (२)  
उक्त देश का निवासी ।

हारहृद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मद्य ।  
हारहृदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का भंगूर ।  
हारहृदिका-संज्ञा स्त्री० दे० "हारहृदा" ।  
हारहृद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्राचीन देश का नाम । (२)  
उक्त देश का निवासी ।

हारार्थ-प्रत्यय [ सं० ] हार+रखनेवाला [ की० ] हारि ] एक पुराना  
प्रायय जो किसी शब्द के आगे लगाकर कर्त्तव्य, धारण या  
संयोग आदि सूचित करता है । यादा । जैसे,—करनेहारा,  
देनेहारा, लकड़हारा हत्यादि ।

संज्ञा स्त्री० [ दे० ] द्विगण-परिमित के होने की ब्या ।  
हारि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हार । परामय । परामय । निरक्षर ।  
(२) परिकों का दल । कारवाँ । (३) हरण करनेवाला ।  
(४) मन हरनेवाला ।  
संज्ञा स्त्री० दे० "हार" ।

हारित-वि० [ सं० ] (१) हरण कराया हुआ । (२) छाया हुआ ।  
जिसे छे भाप हो । (३) छिना हुआ । (४) लोधा हुआ ।  
छोड़ा हुआ । गँवाया हुआ । (५) बंधित । (६) हारा हुआ ।  
(७) मोहित । मुग्ध ।

संज्ञा पुं० (१) लोता । सूसा । (२) एक वर्णवृत्त जिसमें एक  
सगण और दो गुरु होते हैं ।

हारिद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का विष जिसका पौधा  
दरद्री के समान होता है और जो दरद्री के नेत्रों में डी

उगता है । इसकी गंध बहुत ज़हरीली होती है । (२) एक  
प्रकार का प्रमेह जिसमें दरद्री के समान पीला पेशाब  
भाता है ।

हारिनाभ्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संगीत में एक मूरछेना जिसका  
स्वरप्राम इस प्रकार है—ग, म, प, ध, नि, स, रे । स, रे,  
ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प ।

हारिल-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की विद्विद्या जो प्रायः अपने  
चंगुल में कोई छकड़ी या तिनका लिए रहती है । इसका  
रंग हरा, पिर पीले और चौंच कासनी रंग की होती है ।  
हरियल । उ०—हमारे हरि हारिल की लकरी ।—सूर ।

हारी-वि० [ सं० ] हारिन् [ की० ] हारिणी ] (१) हरण करनेवाला ।  
छीननेवाला । (२) छे जानेवाला । पहुँचानेवाला । छेकर  
चलनेवाला । (३) चुरानेवाला । छटनेवाला । (४) दूर  
करनेवाला । हटानेवाला । (५) नाश करनेवाला । ध्वंस  
करनेवाला । (६) बमूल करनेवाला । उगाहनेवाला । (७) कर  
या महसूल (७) जीतनेवाला । (८) मन हरनेवाला ।  
मोहित करनेवाला । (९) हार पहननेवाला ।  
संज्ञा पुं० एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक सगण और  
दो गुरु होते हैं ।

हारीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खोर । लुटेरा । बाहु । चाई । (२)  
खोरी । लुटेरापन । चाईपन । (३) कण्व ऋषि के एक शिष्य  
का नाम । (४) जाषाल ऋषि के पुत्र का नाम । (५)  
परेयां । कव्तर ।

हारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हरण करनेवाला । छीननेवाला ।  
(२) छे जानेवाला ।

हारौल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल" ।

हार्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] रतेह ।  
वि० हृदय संबंधी । हृदय का ।

हारिक-वि० [ सं० ] (१) हृदय-संबंधी । हृदय का । (२) हृदय  
में निकल हुआ । सधा । जैसे,—हारिक सहायुक्ति ।  
हारिक ट्रेम ।

हारिक्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] मित्रभाव । मित्रता । सुहृदभाव ।

हार्य-वि० [ सं० ] (१) हरण करने योग्य । छीनने या छेने योग्य ।  
(२) जो हरण किया जानेवाला हो । जो लिया या छीना  
जानेवाला हो । (३) जो छिछाया या धुपर उधर किया  
जानेवाला हो । (४) जिसका अभिनय किया जानेवाला हो ।  
(माटक) (५) जो भाग दिया जानेवाला हो । भाग्य ।  
(गणित)

हार्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का चंदन ।

हार्य-संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) दया । भवस्था । जैसे,—भव दनया  
नया दाह है ? (२) परिश्रमि । माता । (३) तयाद ।  
समाधार । बुधात । जैसे,—यदुन दिनों से दनका बुज हाल

नहीं मिला। (३) जो बात हुई हो, उसका ठीक ठीक उद्देश। इतिवृत्त। व्योस। विवरण। कैफियत। (५) कथा। आख्यान। चरित्र। जैसे,—इस किताब में हासिम का सारा हाल है। (६) ईश्वर के भक्तों या साधकों की यह अवस्था जिसमें वे अपने को बिलकुल भूल कर ईश्वर के प्रेम में डीन हो जाते हैं। सन्नयता। छीनता। (मुसल०)

**मुहा०—**(किसी पर) हाले आना = ईश्वर-प्रेम का उद्रेक होना। प्रेम की बेहोरी छाना।

वि० वर्तमान। चलता। उपस्थित। जैसे,—जमाना हाल।

**मुहा०—**हाल में = बोधे ही दिन हुए। जैसे,—वे अभी हाल में आए हैं। हाल का = बोधे दिनों का। नया। ताजा।

मव्य० (१) इस समय। अभी। उ०—बात कहिये में नंदबाल की वताल कहा? हाल तो हरिनैनी! हँफनि मिटाय लै।—शिव। (२) सुरत। शीघ्र। उ०—संग हित हाल करि जायक निहाल करि, गुपता बहाल करि कीरति बिसाल की।—गुलाब।

संज्ञा स्त्री० [ हि० हालना ] (१) हिलने की क्रिया या भाव। कंप। (२) झटका। झोंका। धका।

वि० प्र०—लगना।

(२) लोहे का बंद जो पहिप के चारो ओर घेरे में चढ़ाया जाता है।

संज्ञा पुं० [ थं० ] बहुत चढ़ा कमरा। खूब लंबा चौड़ा कमरा।

**हालक—**संज्ञा पुं० [ सं० ] पीलापन लिए भूरे रंग का पोड़ा।

**हालगोला**—संज्ञा पुं० [ हि० हाल + गोला ] बौद्ध। उ०—किधौं बिचत चौमान के मूल सोहैं। हिये हेन के हालगोला बिमोहैं।—केसव।

**हालडाल—**संज्ञा पुं० [ हि० हालना + डालना ] (१) हिलने की क्रिया या भाव। गति। (२) कंप। (३) हलकंप। हलचल।

**हालत—**संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) दशा। अवस्था। जैसे,—अब उस बीमार की क्या हालत है? (२) आर्थिक दशा। सांपत्तिक स्थिति। जीवन-निर्वाह की गति। जैसे,—भय जनकी हालत ऐसी नहीं है कि कुछ अधिक दे सकें। (३) चारो ओर की वस्तुओं और ग्याणों की स्थिति। संयोग। परिस्थिति। जैसे,—ऐसी हालत में हम, सिवा हट जाने के और क्या कर सकते थे?

**हालना—**क० क्रि० प्र० [ सं० हलना ] (१) हिलना। डोलना। गतिवान् होना। हरकत करना। (२) कंवना। (३) हलना। उ०—(क) भुच हालति जानि अकास हिये। जनु धंभित वीरनि वीर किये।—केसव। (ख) भूतल भूधर हाले अघातक आप-भरण के दुंदुभि। बाजे।—केसव। (ग)

हालति न चंप-उत्ता डोलत समीरन के पानी कल कोकिल कलित कंट परिगे।

**हालरा—**संज्ञा पुं० [ हि० हालना ] (१) बच्चों को हाथ में लेकर दिखाने की क्रिया। बच्चों को लेकर दिखाना डुलाना। (२) शोंका। (३) छहर। हिलोरें।

**हालहुल—**संज्ञा स्त्री० [ हि० हल्ला ] (१) हल्ला गुल्ला। कोलाहल। शोरगुल। (२) हलकंप। हलचल। आंदोलन।

**हालौं—**मव्य० [ का० ] यद्यपि। गो कि। ऐसी बात है, फिर भी। जैसे,—वह ज्यादा हिम्मत रखता है, हालौंकि तुमसे कमजोर है।

**हाला—**संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मदिरा। मद्य। शराब।

**हालाहल—**संज्ञा पुं० दे० “हलाहल”।

**हालिक—**वि० [ सं० ] हल संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) कृषक। किसान। खेतिहर। (२) एक प्रकार का छंद। (३) पशुओं का यथ करनेवाला। कसाई।

**हालिनी—**संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की छिपकली।

**हालिस—**संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का पौधा जिसके बीज औषध के काम में आते हैं। चंसुर। चंद्रसुर। हाळो।

**चिशोष—**यह सारे पृथिव्या में लगाया जाता है। इसके बीजों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकलता है। बीज बाजार में बिकते हैं और पुष्ट माने जाते हैं। प्रदोषी और चर्म रोग में भी इनका ब्यवहार होता है।

**हाली—**मव्य० [ अ० हाल ] जल्दी। शीघ्र।

**ह्यौं—**हाली हाळी = बन्दी बन्दी। शीघ्रता से।

**हालु—**संज्ञा पुं० [ सं० ] दौत।

**हालूक—**संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार की भेद जो तिरब, के पुरबी भाग में होती है और जिसका जल बहुत अच्छा होता है।

**हालो—**संज्ञा पुं० दे० “हालिम”।

**हालट—**संज्ञा पुं० [ थं० ] दल या सेना का चलते हुए टहर जाना। टहराव।

**चिशोष—**सर्व कर्तनी हुई या चलती हुई सेना को टहराने के लिये यह शब्द जोर से बोला जाता है।

**हाव—**संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पास गुजरने की क्रिया या भाव। पुकार। गुलाहट। (२) संयोग समय में नायिका की स्वाभाविक चेष्टाएँ जो पुरुष को आकर्षित करती हैं।

**चिशोष—**साहित्य में ग्यारह हाव, गिनाए, गर, हैं—होला, विहास, चिच्छिं, विभ्रम, किलकिंचित, मोहावित, चिचोक, विहृत, कुटमित, ललित और हेला। भाव-विधान में “हाव” अनुभाव के ही अंतर्गत है।

**ह्यौं—**हावभाव।

**हालक—**संज्ञा पुं० [ सं० ] हपन या यज्ञ करनेवाला।

दाखिनवस्ता-संज्ञा पुं० [ का० ] सरल और घटा । खल छोटा ।  
 दाखनीय-वि० [ सं० ] हवन करने योग्य ।  
 दाखमात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिरों की वह वेष्टा जिससे पुरुषों  
 का वित्त आकर्षित होता है । मात्र नवरा ।

क्रि० प्र०-करना ।-दिघाना ।

दाखर-संज्ञा पुं० [ देत० ] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो अक्व,  
 रातपत्ताने, माषवेदा और मद्रास में बहुत होता है ।  
 इसकी लकड़ी मजबूत, बेजनी और भूरे रंग की होती है  
 और खेती के सामान ( हल, पटे आदि ) बनाने के काम  
 में जाती है ।

दायला याचला-वि० [ हि० बावला ] [ स्त्री० दायली भावली ]  
 पागल । सनकी ।

दाशिया-संज्ञा पुं० [ श० दाशियः ] (१) किसी कौड़ी हुई वस्तु का  
 किनारा । कोर । पाइ । बारी । जैसे,—किताब का दाशिया  
 कपड़े का दाशिया । (२) गोट । मगजी ।

क्रि० प्र०-घसाना ।-छगाना ।

(३) दाशिय या किनारे पर का लेख । नोट ।

मुहा०-दाशिय का गवाह = वह गवाह जो साक्षी जिसका नाम किसी  
 दलाली के किनारे पने हो । दाशिया घसीना = किसी बात में  
 मनोरंजन आदि के लिये कुछ मोर बात जोरना । नमक मिचने छगाना ।

दास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हंसने की क्रिया या भाव । हँसी ।  
 (२) परिहास । दिखगी । उहा । मजाक । (३) निंदा का  
 भाव लिये हुए हँसी । उपहास ।

यौ०-दास परिहास, दास विहास ।

वि० श्वेत वर्ण । उज्वल ।

दासक-संज्ञा पुं० [ सं० ] हँसानेवाला ।

दासकर-वि० [ सं० ] हँसानेवाला । जिसमें हँसी भावे ।

दासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हँसाना । (२) हँसानेवाला ।

दासनिर्क-संज्ञा पुं० [ सं० ] विनोद या मीढ़ का साथी ।

दासयती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तांत्रिक बौद्धों की एक देवी ।

दासशील-वि० [ सं० ] हँसानेवाला । हँसीदा । विनोदी ।

दासिद्-वि० [ प्र० ] हंसद करनेवाला । दाह करनेवाला । हँस्यालु ।

दासिल-वि० [ प्र० ] प्राप्त । उदय । पाया हुआ ।

मुहा०-दासिल करना = प्राप्त करना । लाभ कमाना । जैसे,—

दौलत दासिल करना, इकम दासिल करना । दासिल  
 होना = प्राप्त होना । मिलना ।

संज्ञा पुं० (१) गणित करने में किसी संख्या का वह भाग या

अंक जो शेष भाग के कहीं रहने जाने पर बच रहे ।

क्रि० प्र०-आना ।

(२) उपज । पैदावार । (३) लाभ । मज्जा । (४) गणित

की क्रिया का फल । जैसे,—हासिल जरब, हासिल  
 सङ्गतीम । (५) जमा । छगान । वसूली ।

दासी-वि० [ सं० दासिन् ] [ स्त्री० दासिनी ] (१) हँसनेवाला ।  
 जैसे,—चाह दासिनी । (२) श्वेत । सफेद ।

दास्य-वि० [ सं० ] (१) हँसने योग्य । जिस पर लोग हँसें ।  
 (२) उपहास के योग्य ।

संज्ञा पुं० (१) हँसने की क्रिया या भाव । हँसी । (२) नी  
 स्यायी भावों और रसों में से एक । (३) उपहास ।  
 निंदापूर्ण हँसी । (४) उहा । उडोली । दिखगी । मजाक ।

दास्य कथा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हँसी की बात ।

दास्यकर-वि० [ सं० ] (१) हँसानेवाला । (२) जिसमें हँसी  
 भावे ।

दास्यास्वद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दास्य का स्थान या विषय ।  
 वह जिसे देखकर लोग हँसें । (२) उपहास का विषय । वह  
 जिसके बेदंगेपन पर लोग हँसी उड़ावे ।

दास्योत्पाद्क-वि० [ सं० ] जिससे लोगों को हँसी भावे ।  
 उपहास के योग्य ।

दा हृत-प्रत्यय० [ सं० ] अर्थात् शोषसूचक शब्द ।

दा हा-संज्ञा पुं० [ शब्द० ] (१) हँसने का शब्द । वह आवाज  
 जो जोर से हँसने पर आदमी के मुँह से निकलती है ।

यौ०-हाहा हीही, हाहा डीडी = हँसी उट्टा । विनोद ।

मुहा०-हाहा हीही करना = (१) हँसना । (२) हँसी उट्टा  
 करना । विनोद मीढ़ करना । हाहा हीही होना या मचना =  
 हँसी होना ।

(२) गिबगिदाने का शब्द । अनुनय विनय का शब्द ।  
 यौनता या बहुत विनती की पुकार । दुहाई ।

मुहा०-हाहा करना = गिबगिदाना । बहुत विनती करना । दुहाँ  
 देना । उ०-हाहा के हारि रहे मोहन परी परे जिन्ह छाति  
 मारे ।-देशव । हाहा खाना = बहुत गिबगिदाना । कर्ण  
 यौनता और नयता से पुकारना । बहुत विनती करना । उ०-  
 साँझ लँजुमति अति तरमति हरि बसि हाहा खान ।  
 -सूर ।

मंजु पुं० [ सं० ] एक गंधर्व का नाम ।

हाहाकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] मय के कारण बहुत आदमियों के मुँह  
 से निकलता हुआ हाहा शब्द । धराराहट की विहाहट । मय,  
 दुःख या पीड़ा सूचित करनेवाली जन-समूह की पुकार ।  
 कुहराम ।

क्रि० प्र०-करना ।-मचना ।-घबना ।-होना ।

हाहाडीडी-संज्ञा स्त्री० [ शब्द० हाहा + हि० उट्टा ] हँसी उट्टा ।  
 विनोद मीढ़ । जैसे,—मुहारा सारा दिन हाहा डीडी में  
 जाता है ।

हाहाहृता-संज्ञा पुं० [ शब्द० ] हाहाकार । मय का कोकाहल ।

हाहली-संज्ञा पुं० [ हाह० ] (१) हहागुहा । कोलाहल । (२) हलचक्र । धूम ।

हाहवेर-संज्ञा पुं० [ देहा० हाह + वि० वेर ] जंगली वेर । सन्देशी ।

हाहकरना-कि० प्र० [ अनु० दिन दिन ] दिनदिनाना । घोड़ों का बोलना । हाँसना ।

हाहकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रैभावे का वह वाद्य जो गाय अपने बछड़े को बुलाते समय करती है । (२) बाघ के बोलने का वाद्य । (३) सामगान का एक भाग जिसमें उद्गाता गीत के बीच बीच में 'हिं' का उच्चारण करता है । (४) व्याघ्र । बाघ ।

हाह-संज्ञा पुं० दे० "हांग" ।

हाहा पुं० [ सं० ] एक देश का नाम । ( माक० पु० )

हाहगन वेर-संज्ञा पुं० [ हिं० हाहगन + वेर ] इंदुदी घुस । हाहगन । हाहगन । गोदी ।

हाहगलाची-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक यज्ञिणी का नाम । (बौद्ध)

हाहगलाज-संज्ञा स्त्री० [ सं० हाहगलाज ] दुर्गा या देवी की एक मूर्ति या भेद जो सिंध और बिल्खिस्तान के बीच की पहाड़ियों में है । यहाँ अँधेरी गुफा में बोलि के उसी प्रकार दर्शन होते हैं जिस प्रकार काँदे की ज्वालामुखी में । कराची बंदर से उत्तर की ओर समुद्र के किनारे किनारे ४५ कोस चलकर लोग यहाँ पहुँचते हैं ।

हाहगली-संज्ञा स्त्री० [ देहा० ] एक प्रकार का संघात ।

हाहगलचूर्ण-संज्ञा पुं० [ हिं० हाहगल + चूर्ण ] चैक में प्रसिद्ध एक अजीर्णनाशक और पाचक चूर्ण ।

विशेष—सोड, पीपल, काली मिर्च, अममोदा, सफेद जीरा, स्याह जीरा, सुनी हांग और सेंधा नमक इन सबको एक साथ चूर्ण कर डाले । सेवन की मात्रा १ या २ टंक ।

हाहगु-संज्ञा पुं० [ सं० ] हांग ।

हाहगुप्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंदुदी । हाहगु ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इंदु । सिगरफ । (२) एक नदी का नाम ।

हाहगुला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रदेश का नाम जो सिंध और बिल्खिस्तान के बीच में है और जहाँ 'हाहगुलाज' या 'हाहगुलाज देवी' का स्थान है ।

हाहगुलाज-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा या देवी का एक रूप ।

हाहगुलाज देवी ।

हाहगुलोत्थर वल-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंदु से बनी हुई एक रसीध जिसे प्रायः बरबर चाल उतर की चिकित्सा में होता है ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिजाल नाम का पौधा ।

हाहगोट-संज्ञा पुं० [ सं० हाहगुल, प्रा० हाहगुल ] एक साददार कटीला जंगली पेड़ जो मसोले आकार का होता है और जिसकी छपर छपर सीरी निकली हुई टहनियाँ गोल गोल

और छोटी तथा दयामता लिये गहरे हरे रंग की पत्तियों से गुठी होती हैं । इसमें यादाम की तरह के गोल छोटे फल लगते हैं जिनकी गुठलियों से बहुत अधिक तेल निकलता है । छाल और पत्तियों में कसाव होता है । प्राचीन काल में जंगल में रहकर सपत्या करनेवाले मुनियों और तपस्वियों के लिये यह पेड़ बड़े काम का होता था; इसी से इसे 'सापस-तह' भी कहते थे । इंदुदी ।

पट्यां-इंदुदी । हाहगुल । जंगली यादाम ।

हाहगुल-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हांग के योग से बनी हुई एक विशेष प्रकार की गोड़ी जिसके सेवन से पेट का दर्द दूर होता है ।

विशेष—सुनी हांग, अमलपेत, काली मिर्च, पीपल, अमवापन, काला नमक, सॉमर नमक, सेंधा नमक इन सबको पीसकर विजोरी नीपू के रस में गोलियाँ बनाते हैं जो गरम पानी के साथ खाई जाती हैं ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] हांग के योग से बनी हुई एक गुठली जो गुठम, अनाह, अर्च, संप्रहणी, उदावर्ण, शूल और उन्माद आदि रोगों में दी जाती है ।

विशेष—सुनी हांग, पिपलामूल, धनिया, जीरा, पच, चय, चीता, पाडा, कचूर, अमलपेत, सॉमर नमक, काला नमक, सेंधा नमक, जवाबहार सब्जी, अनारदाना, हृद का छिन्का, पुष्करमूल, डसिरा, क्षाऊ की जड़, इन सब का चूर्ण कर डाले और अमरक तथा विजोरी के रस के साथ साथ उर देकर सुखा डाले ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाहगुल । भावत । जोट । (लवली)

हाहगुल-कि० प्र० [ सं० हाहगुल ] हचला करना । भाहना ।

हाहगुल-संज्ञा स्त्री० दे० "हाहगुल" ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथी के पैर में बाँधने की रस्सी या जंजीर ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] घूमना । फिरना ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित ज्योतिषी ।

हाहगुल-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गा का एक नाम ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० [ देहा० हाहगुल + प्रा० यादाम ] अंजन या पूजा में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा पेड़ जिसमें एक प्रकार का गोद निकलता है और जिसके बीजों में बहुत सार तेल होता है ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार की समुद्री मछली की हड्डी जो 'समुद्रफेन' के नाम से प्रसिद्ध है । (२) नदी । नर । पुरुष । (३) अनार का पेड़ ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिप का एक नाम ।

हाहगुल-संज्ञा पुं० दे० "हाहगुल" । "उ०-प्रेम 'पैग बोरी गोरी

नवल किस्तोरी भोरी झलति हिंदोरी यों सुहांई सखियान ले।—पद्माकर ।

हिंदोरी-बंशा शी० [ हिं० हिंदीय ] छोटा हिंदोल ।

हिंदोल-बंशा शी० [ सं० हिन्दोल ] (१) हिंदोल । (२) एक राग जो गांधार स्वर की संतान कहा गया है । एक मत से यह ओढ़्य जाति का है और इसमें पंचम तथा गांधार बसित हैं । इसकी प्रथम वसंत और पार मंगल है । रागने का समय रात को २१ या २६ दंड से लेकर २९ दंड तक । ऐसा प्रसिद्ध है कि यह राग यदि श्राद्ध भाया जाय तो हिंदोला भाप से भाप चलने लगता है । हनुमत् के मत से इसका रराग्राम इस प्रकार है—सा ग म प नि सा नि प म ग सा । विलायली, भूपाली, मालश्री, पटमंजरी और ललित इसकी चिन्माँ तथा पंचम, वसंत, विहाग, सिधुदा और सोरठ इसके पुत्र माने गए हैं । पुत्रवधू—सिधुरई, गांधारी, मालिनी और त्रिवेणी ।

हिंदोलना-बंशा पुं० दे० "हिंदोला" ।

हिंदोला-बंशा पुं० [ सं० हिन्दोल ] (१) नीचे ऊपर घूमनेवाला एक चक्र जिसमें लोगों के घेड़ने के लिये छोटे छोटे मंच बने रहते हैं । चिनोद या मन बहलव के लिये लोग इसमें घेड़कर नीचे ऊपर घूमते हैं । सावन के महीने में इस पर झूलने की विशेष चाळ है । (२) पालना । (३) झूला ।

हिंदोली-बंशा शी० [ सं० ] एक रागिनी जो हनुमत् के मत से हिंदोल राग की मिया है ।

हिंताल-बंशा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का जंगली खजूर जिसके पेड़ छोटे छोटे—जमीन से दो तीन हाथ ऊँचे—होते हैं । यह पेड़ देखने में बहुत सुंदर होता है और दक्षिण के जंगलों में बलुछों के किनारे और गीली जमीन में बहुत पाया जाता है । अमरकंटक के भास पास यह बहुत होता है । संस्कृत के पुराने कवियों ने इसका बहुत वर्णन किया है ।

हिंदू-बंशा पुं० [ सं० ] हिंदोस्तान । भारतवर्ष ।

विशेष—यह शब्द वास्तव में 'सिधु' शब्द का फ़ारसी उच्चारण है । प्राचीन काल में भारतीय आर्यों और पारसीक आर्यों के बीच बहुत कुछ संबंध था । पशु करानेवाले पाजक पतवार एक देश से दूसरे देश में आते जाते थे । साक्रीय के मग माल्य फारस के पूर्वोत्तर भाग से ही भाए हुए हैं । ईसा से ५०० वर्ष पहले वारा ( दारयबहु ) प्रथम के समय में सिधु नद् के आसपास के प्रदेश पर पारसियों का अधिकार हो गया था । प्राचीन पारसी भाषा में संस्कृत के 'स' का उच्चारण 'ह' होता था । जैसे,—संस्कृत 'सप्त', फ़ारसी 'हफ्त' । इसी नियम के अनुसार 'सिधु' का उच्चारण प्राचीन पारस देश में 'हिंदु' या 'हिंद' होता था । पारसियों के धर्मग्रंथ 'आस्ता' में 'हफ्तहिंद' का बहोष दे जो वेदों

में भी 'सप्तसिधु' के नाम से आया है । धीरे धीरे 'हिंद' शब्द सारे देश के लिये प्रयुक्त होने लगा । प्राचीन यूनानी जब फ़ारस आए, तब उन्हें इस देश का परिचय हुआ और वे अपने उच्चारण के अनुसार फ़ारसी 'हिंद' को 'इंड' या 'इंडिका' कहने लगे, जिससे आजकल 'इंडिया' शब्द बना है ।

हिंदवाना-बंशा पुं० [ सं० हिंद + वान ] तरपुत्र । कहींदा ।

हिंदी-बंशा शी० [ सं० ] हिंद या हिंदोस्तान की भाषा । हिंदी भाषा जो उत्तरीय भारत के अधिकतर भाग में बोली जाती है ।

हिंदी-वि० [ सं० ] हिंद का । हिंदुस्तान का । भारतीय । बंशा पुं० हिंद का रहनेवाला । हिंदुस्तान या भारतवर्ष का निवासी । भारतवासी ।

बंशा शी० (१) हिंदुस्तान की भाषा । भारतवर्ष की बोली ।

(२) हिंदुस्तान के उत्तरी या प्रथम भाग की भाषा जिसके अंतर्गत कई बोखियाँ हैं और जो बहुत से अंगों से सारे देश की एक सामान्य भाषा मानी जाती है ।

विशेष—मुसलमान पहले पहले उत्तरी भारत में ही आकर जमे और दिल्ली, आगरा और जौनपुर आदि बगड़ी राजधानियाँ हुईं । इसी से उत्तरी भारत में प्रचलित भाषा को ही उन्होंने 'हिंदी' या 'हिंदी' कहा । काव्यभाषा के रूप में सौरसेनी या नागर अपभ्रंश से विकसित भाषा का प्रचार तो मुसलमानों के जाने के पहले ही से सारे उत्तरी भारत में था । मुसलमानों ने आकर दिल्ली और मेरठ के भास पास की भाषा को अपनाया और उसका प्रचार बढ़ाया । इस प्रकार वह भी देश के एक बड़े भाग की सिधे बोलचाल की भाषा हो गयी । सुसो ने उसमें कुछ पद्य रचना भी आरंभ की जिसमें पुरानी काव्यभाषा या मजमाया का बहुत कुछ आभास था । इससे स्पष्ट है कि दिल्ली और मेरठ के आसपास की भाषा ( जंगी बोली ) को, जो पहले केवल एक प्रांतिक बोली थी, साहित्य के लिये पहले पहले मुसलमानों ने ही लिया । मुसलमानों के अपनाने से खड़ी बोली सिधे बोलचाल की भाषा तो मानी गई, पर देश के साहित्य की सामान्य काव्यभाषा वहीं मने ( जिसके अंतर्गत राजस्थानी भी आ जाती है ) और अवधी रही । इस बीच में मुसलमान खड़ी बोली को भरयी, फ़ारसी द्वारा थोड़ा बहुत बनाव बलकृत करते रहे; यहाँ तक कि धीरे धीरे उन्होंने अपने लिये एक साहित्यिक भाषा और साहित्य अलग कर लिया जिसमें विदेशी भावों और संस्कारों की प्रधानता रही । चार्य देवें की बात यह है कि यह साहित्य तो पचमय ही रहा, पर सिधे बोलचाल की भाषा के रूप में खड़ी बोली का प्रचार उत्तरी भारत के एक कोने में दूसरे कोने तक हो गया । जब अंगरेज भारत में आए, तब उन्होंने इसी बोली को सिधे

उत्तरी भारत में आये, तब उन्होंने इसी बोली को सिधे



जनता में प्रचलित पाया। अतः उनका ध्यान अपने सुवीते के लिये स्वभाषतः इसी खड़ी बोली की ओर गया और उन्होंने इसमें गद्य साहित्य के आविर्भाव का प्रयत्न किया। पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मुसलमानों ने अपने लिये एक साहित्यिक भाषा उर्दू के नाम से अलग कर ली थी। इसी से गद्य-साहित्य के लिये एक ही भाषा का व्यवहार असंभव प्रतीत हुआ। इससे कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज के प्रोफेसराने से खड़ी बोली के दो रूपों में गद्य साहित्य का निर्माण आरंभ हुआ—उर्दू में अलग और हिंदी में अलग। इस प्रकार 'खड़ी बोली' का ग्रहण हिंदी के गद्य-साहित्य में हो गया, पर पद्य की भाषा बहुत दिनों तक एक ही—वही प्रथमभाषा—रही। भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय तक यही अवस्था रही। पीछे हिंदी साहित्य-सेवियों का ध्यान गद्य और पद्य की एक भाषा करने की ओर गया और बहुत से लोग 'खड़ी बोली' के पद्य की ओर देने लगे। यह बात बहुत दिनों तक एक आंदोलन के रूप में रही; फिर क्रमशः खड़ी बोली में ही बराबर हिंदी की कविताएँ लिखी जाने लगीं। इस प्रकार हिंदी साहित्य के भीतर अब तीन बोलियों भा गईं—खड़ी बोली, प्रथमभाषा और अवधी। हिंदी साहित्य की जानकारी के लिये अब इन तीनों बोलियों का जानना आवश्यक है। साहित्यिक खड़ी बोली की हिंदी और उर्दू से साक्षात् हो जाने से साधारण बोल-बाल की मिथी जुड़ी भाषा की अंगरेज़ हिंदुस्तानी कहने लगे हैं।

**हिंदी रैवद**—संज्ञा पुं० [ जा० ] एक प्रकार का पौधा जो हिमालय में ११००० से १२००० फुट की ऊँचाई तक उगता है। यह काश्मीर, लद्दाख, नेपाल, सिक्किम और भूटान में पाया जाता है। इसकी जड़ औषध के काम में आती है और चीनी रैवद या रैवदचीनी कहलाती है। इसका रंग भी मैला होता है और सुगंध भी कम होती है, पर चीनी रैवद की गन्ध यह बाजारों में बराबर बिकती है। चीनी जाति का पौधा तिब्बत के दक्षिण-पूर्व भाग में तथा चीन के पश्चिमोत्तर भाग में होता है और उसकी जड़ काइसोफेनिक एसिड के अंश के कारण पीसने पर खूब पीली निकलती है। रैवद की जड़ दवा के काम में आती है और पुष्प उदरदुःखनाशक तथा कुछ रैवक होती है। यह आमतौर पर उपयोगी होती है, पर ग्रहणी में नहीं।

**हिंदुस्तान**—संज्ञा पुं० [ जा० हिंदोस्तान ] (१) भारतवर्ष। वि० दे० "हिंदू"। (२) भारतवर्ष का उत्तरीय मध्य भाग जो दिल्ली से लेकर पटना तक और दक्षिण में नर्मदा के किनारे तक माना जाता है। यह प्रायः हिंदुस्तान कहा जाता है। पंजाब, बंगाल, महाराष्ट्र आदि के निवासी इस भू-भाग की

प्रायः हिंदुस्तान और यहाँ के निवासियों को हिंदुस्तानी कहा करते हैं।

**हिंदुस्तानी**—वि० [ जा० ] हिंदुस्तान का। हिंदुस्तान संबंधी। संज्ञा पुं० (१) हिंदुस्तान का निवासी। भारतवासी। (२) उत्तरीय भारत के मध्यभाग का निवासी। भारतवासी। (पंजाबी, बंगाली आदि से भेद सूचित करने के लिये।) संज्ञा स्त्री० (१) हिंदुस्तान की भाषा। (२) बोलचाल या व्यवहार की वह हिंदी जिसमें न तो बहुत अरबी फारसी के शब्द हों, न संस्कृत के।

**हिंदुस्थान**—संज्ञा पुं० [ जा० हिंदू + सं० स्थान ] हिंदुस्तान। भारतवर्ष।

**हिंदू**—संज्ञा पुं० [ जा० ] भारतवर्ष में वसनेवाली आर्य-जाति के पंजाब जो भारत में प्रचलित या प्रचलित आर्य धर्म, संस्कार और समाज-व्यवस्था को मानते चले आ रहे हैं। वेद, स्मृति, पुराण आदि अथवा इनमें से किसी एक के अनुसार चलनेवाला। भारतीय आर्य-धर्म का अनुयायी।

**विशेष**—यह नाम प्राचीन पारसियों का दिया हुआ है जो उनके द्वारा संसार में सर्वत्र प्रचलित हुआ। प्राचीन भारतीय आर्य अपनी धर्म-व्यवस्था को "धर्मोत्तम-धर्म" के नाम से पुकारते थे। प्राचीन अनार्य द्रविड़ जातियों को उन्होंने अपने समाज में मिलाया, पर उन्हें अपनी धर्मव्यवस्था के भीतर करके अर्थात् सिद्धांत रूप में किसी आर्य ऋषि, राजा इत्यादि की संतति मानकर। पीछे शक, हूण और यवन आदि भी जो मिले, वे या तो वसिष्ठ ऋषि द्वारा उत्पन्न (नाय से सही) वीरों के पंजाब माने जाकर अथवा प्राक्षणा के दर्शन से पतित क्षत्रिय माने जाकर। सरासरी यह कि भारतीय आर्य अपनी धर्मव्यवस्था को मनुस्मृति की तरह फैलाने नहीं थे; भासपास की या आई हुई जातियाँ उसे सम्प्रता के संस्कार के रूप में आपसे आप ग्रहण करती थीं। प्राचीन काल में आर्य-सम्प्रता के दो केंद्र थे—भात और पारस। इन दोनों में भेद बहुत कम था। हूणों ने पहले पारसी सम्प्रता ग्रहण की, फिर भारत में आकर वे भारतीय आर्यों में मिले। शक जाति तो आर्य जाति की ही एक शाखा थी। पीछे जब पारस-निवासी मुसलमान हो गए तब उन्होंने 'हिंदू' शब्द के साथ 'काफिर', 'काला', 'कुदरा' आदि कुप्रसिद्ध अर्थों की योजना की। अब तक वे आर्य-धर्म के अनुयायी रहे, तब तक 'हिंदू' शब्द का प्रयोग आदर के साथ 'हिंदू के निवासी' के अर्थ में ही करते थे। यह शब्द इसलाम के प्रचार के बहुत पहले का है (दे० 'हिंदू')। अतः पीछे से मुसलमानों के बुरे अर्थ की योजना करने से यह शब्द पुरा नहीं हो सकता। मेरुत्र आदि कुछ आधुनिक ग्रंथों में इस शब्द को संस्कृत सिद्ध करने का जो

प्रथम किया गया है, उसे कवना मात्र ही समझना चाहिए।

हिंदुकुश-संज्ञा पुं० [ प्रा० ] एक पर्वत-श्रेणी जो अफगानिस्तान के उत्तर में है और हिमालय से मिली हुई है।

हिंदुवन-संज्ञा पुं० [ प्रा० हिंदु + वन (व्य०) ] हिंदू होने का भाव या गुण।

हिंदोरना-कि० सं० [ सं० हिंदोल + न (हि० प्रथ०) ] पानी के समान पतली चीज़ में हाथ या कोई चीज़ डालकर उधर उधर घुमाना। घँघोड़ना। फेंटना।

हिंदोल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हिंदोल। झुला। (२) हिंदोल नाम का राग।

हिंदोस्तान-संज्ञा पुं० दे० "हिंदुस्तान"।

हिंदोस्तानी-वि०, संज्ञा पुं०, संज्ञा स्त्री० दे० "हिंदुस्तानी"।

हिंयोः-संज्ञा पुं० दे० "यहाँ"।

हिंय-संज्ञा पुं० दे० "हिम"।

हिंवार-संज्ञा पुं० [ सं० हिमाञ्च ] हिम। बर्फ। पहाड़।

मुहा०-हिंवार पदना=(१) बर्फ गिरना। (२) बहुत सदी पदना। बहुत भार होना।

हिंस-संज्ञा स्त्री० [ सं० हेय या हनु० हिं [ हिं ] घोड़ों के बोलने का शब्द। हींस। दिनदिनाइट। उ०-गरजहिं गज, घंटाघुनि घोरा। रथ रथ बाजि-हिंस चहुँ ओरा।-तुलसी।

हिंसक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हिंसा करनेवाला। हत्यारा।

घातक। मारने या पीड़ित करनेवाला। बध करने या कट पहुँचानेवाला। (२) सुराई करनेवाला। हानि करनेवाला।

(३) जीवों को मारनेवाला पशु। खूँखार जानवर। (४) शत्रु। दुश्मन। (५) मारण, उछाटन आदि प्रयोग करनेवाला मापण। साम्रिक मापण।

हिंसन-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ हिंसनोप, हिंसि, हिंस्य ] (१) जीवों का बध करना। जान मारना। घात करना। (२) जीवों को पीड़ा पहुँचाना। कट देना। सताना। पीड़न। (३) सुराई करना। भविष्य करना या साहना।

हिंसनीय-वि० [ सं० ] (१) हिंसा करने योग्य। (२) जिसकी हिंसा की जानेवाली हो।

हिंसा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) बध या पीड़ा। जीवों को मारना या सताना। प्राण मारना या कट देना। (२) हानि पहुँचाना। भविष्य करना।

विशेष-हिंसा तीन प्रकार से हो सकती है-मनसा, पादा और कर्मसा। पुराणों में हिंसा खोभ की कन्या और अधर्म की भार्या कही गई है। जैन धार्यानुसार हिंसा चार प्रकार की होती है-आकृती हिंसा, वपं हिंसा, प्रमाद हिंसा और बल हिंसा।

विशेष-हिंसा तीन प्रकार से हो सकती है-मनसा, पादा और कर्मसा। पुराणों में हिंसा खोभ की कन्या और अधर्म की भार्या कही गई है। जैन धार्यानुसार हिंसा चार प्रकार की होती है-आकृती हिंसा, वपं हिंसा, प्रमाद हिंसा और बल हिंसा।

विशेष-हिंसा तीन प्रकार से हो सकती है-मनसा, पादा और कर्मसा। पुराणों में हिंसा खोभ की कन्या और अधर्म की भार्या कही गई है। जैन धार्यानुसार हिंसा चार प्रकार की होती है-आकृती हिंसा, वपं हिंसा, प्रमाद हिंसा और बल हिंसा।

हिंसाकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बध या पीड़ा पहुँचाने का कर्म।

मारने या सताने का काम। (२) दूसरे का भविष्य करने के लिये मारण उछाटन, पुराण आदि तांत्रिक प्रयोग।

हिंसारमक-वि० [ सं० ] जिसमें हिंसा हो। हिंसा से युक्त।

हिंसारु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हिंस्र पशु। खूँखार जानवर। (२) बाघ। शेर।

हिंसालु-वि० [ सं० ] (१) हिंसा करनेवाला। मारने या सतानेवाला। (२) हिंसा की प्रवृत्तिवाला।

हिंसितथ्य-वि० [ सं० ] हिंसा करने योग्य या जिसकी हिंसा करनी हो।

हिंस्रीर-वि० [ सं० ] हिंसा करनेवाला। सतानेवाला। संज्ञा पुं० बाघ।

हिंस्य-वि० [ सं० ] (१) हिंसा के योग्य। (२) जिसकी हिंसा होनेवाली हो।

हिंस-वि० [ सं० ] हिंसा करनेवाला। खूँखार। जैसे,—हिंस्र पशु।

हिं-एक पुरानी विभक्ति जिसका प्रयोग पहले तो सब कारकों में होता था, पर पीछे कर्म और सम्प्रदान में ही ('को' के अर्थ में) रह गया। जैसे,—रामहिं प्रेम समेत लखि।

विशेष-पहली में तृतीया और पंचमी की विभक्ति के रूप में 'हिं' का ध्वन्यक्षर मिलता है। पीछे प्राकृतों में संबंध के लिये भी विकल्प से अयादान की विभक्ति जाने लगी और सब कारकों का काम कभी कभी संबंध की विभक्ति से ही चलाया जाने लगा। 'रातो' आदि की पुरानी हिंदी में 'ह' रूप में भी यह विभक्ति मिलती है। अपभ्रंश में 'हे' और 'हे' रूप संबंध विभक्ति के मिलते हैं। यह 'हिं' या 'ह' विभक्ति संस्कृत के 'भिसु' या 'ग्यसु' से निकली जान पड़ती है।

मुक्तमव्यं दे० "ही"।

हिंस्र-संज्ञा पुं० [ प्रा० ] (१) हृश्य। (२) छाती।

हिंस्रा-संज्ञा पुं० [ प्रा० हिंस्र ] (१) हृश्य। (२) छाती। उ०-हिंसा धार कुच कंचन छाड़ू।-जायसी।

हिंसाउर्-संज्ञा पुं० दे० "हिंसाय"।

हिंसाय-संज्ञा पुं० [ हिं० हिंस्र + भाव (भाव प्रथ०) ] साहस। जिगर। हिंमत। वि० दे० "हियाय"। उ०-भँवर जो मनसा मानसर लीन्द कँवलरस जाइ। धुन जो हिंभाव न कै सका शूर काठ तस छाइ।-जायसी।

हिंकडा-संज्ञा पुं० [ प्रा० से=तीन + कोरी ] तीन कोरी कपड़ों का समूह। (घोड़ी)

हिंकमत-संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] (१) विया। शक्वज्ञान। (२) कला की गल। निर्माण की वृत्ति। कोई चीज़ बनाने या निकालने की शक्ति। जैसे,—हिंकमते चीन, हुस्वते बंगाल। (३) कार्य सिद्ध करने की युक्ति। तद्वीर। उपाय। जैसे,—इसके हाथ से कन्या निकालने की तुम्हीं कोई हिंकमत सोचो।

कि० प्र०—रुग्नां।—निकाटना।—छागाना।

(४) घुराई का दंग। चाल। पालिसी। जैसे,—ऐसे मौके पर हिकमत से काम लेना चाहिए। (५) किरायत। (६) हकीम का काम या पेशा। हकीमी। वैद्यक। (७) मलाही। (छदक०)

हिकमतो-वि० [ म० हिकमत ] (१) कार्य-साधन की युक्ति निकालनेवाला। सद्गीर सोचनेवाला। उपाय निकालनेवाला। कार्यवद्। (२) चतुर। चालाक। (३) किरायती। हिकलाना-कि० प्र० दे० "हकलाना"।

हिकायत-संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] कथा। कहानी। प्रसंग।

हिकाल-संज्ञा पुं० [ ? ] यौद्ध सन्यासियों या मिथुओं का दंड।

हिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हिचकी। (२) बहुत हिचकी आने का रोग।

विशेष—वायु का पसलियों और अंतर्दियों को पंडित करते हुए ऊपर चढ़कर गले से श्वासे से निकलना ही हिक्का या हिचकी है। वैद्यक में वायु और कफ के मेल से पाँच प्रकार की हिक्का बहो गई हैं—असजा, यमला, छुदा, गंभीरा और महती। पेट में अफरा, पसलियों में तनाव, कंठ और हृदय का भारी होना, मुँह कसला होना हिक्का होने के पूर्व लक्षण हैं। गरम, बाद्दी, गरिष्ठ, रुखी और वासी चीजें खाना, मुँह में घूल जाना, यकावट, मलमूत्र का वेग रोकना हिक्का के कारण कहे गए हैं। जिस हिक्का में रोगी को कंप हो, ऊपर की ओर दृष्टि चढ़ जाय, आँख के सामने अँधेरा छा जाय, शरीर दुबला होता जाय, छाँक बहुत आवे और भोजन में अरुचि हो जाय, वह असाध्य कही गई है।

(३) रोने या सिसकने का यह शब्द जो रुक रुककर आवे।

हिकिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हिक्का। हिचकी।

हिकतो-वि० [ सं० हिकित् ] जिसे हिक्का रोग हो। हिचकी का रोगी।

हिकक-संज्ञा स्त्री० [ हि० हिककना ] किसी काम के करने में यह रुकावट जो मन में मालूम हो। आगा पीछा।

हिककना-कि० प्र० [ सं० हिका या हनु० दिच + ना (प्रत्य०) ] (१) हिचकी लेना। वायु का उठा हुआ श्वाँक कंठ से निकालना। (२) किसी काम के करने में कुछ अनिच्छा, भय या संकोच के कारण प्रवृत्त न होना। आगा पीछा करना। जैसे,—वहाँ जाने से तुम हिचकते क्यों हो ?

हिककिचाना-कि० प्र० दे० "हिककना"।

हिककिचाहट-संज्ञा स्त्री० दे० "हिकक"।

हिककिची-संज्ञा स्त्री० दे० "हिकक"।

हिककी-संज्ञा स्त्री० [ प्रत्य० दिच या सं० हिका ] (१) पेट की वायु

(का श्वाँक) के साथ ऊपर चढ़कर कंठ में धक्का देते हुए

निकलना। उदरस्थ वायु के कंठ में आघात या शब्द के साथ

निकलने की क्रिया।

कि० प्र०—भाना।—छेना।

मुहा०—दिचकियाँ छागना = मरने के समय वायु का कंठ में से एक एक भावत करते हुए निकलना। मरणांतर भ्रमणा होना। मरने के निकट होना।

(२) रह रुककर सिसकने का शब्द। रोने में रह रुककर कंठ से साँस छोटना।

कि० प्र०—वैधना।

हिचर मिचर-संज्ञा पुं० [ हि० हिचक ] (१) किसी काम के करने में भय, संकोच या कुछ अनिच्छा के कारण रुकना या देर करना। आगा-पीछा। सोच-विचार। (२) किसी काम को न करना पदे, इसलिये देर करना या इधर उधर की बात कहना। टाठमटूल।

कि० प्र०—करना।—होना।

हिजड़ा-संज्ञा पुं० दे० "हीजड़ा"।

हिजरी-संज्ञा पुं० दे० "हीजरी"।

हिजरी-संज्ञा पुं० [ प्र० ] मुसलमानी सन् या संवत् जो मुहम्मद साहब के मक़े से मदीने भागने की तारीख ( १५ जुलाई सन् ६२२ ई० अर्थात् विक्रम संवत् ६०४ भाषण शुद्ध २ का सायंकाल ) से चला है।

विशेष—खड़ीका उमर ने विद्वानों की सम्मति से यह हिजरी सन् स्थिर किया था। हिजरी सन् का वर्ष शुद्ध चंद्र वर्ष है। इसका प्रत्येक मास चंद्रदर्शन ( छंद द्वितीया ) से आरंभ होता है और दूसरे चंद्रदर्शन तक माना जाता है। हर एक तारीख सायंकाल से आरंभ होकर दूसरे दिन सायंकाल तक मानी जाती है। इस सन् के बारह महीनों के नाम इस प्रकार हैं—मुहर्रम, सफर, रबीउल अख्यल, रबीउलसानी, जमादिउल अख्यल, जमादिउल आखिर, रजब, श्राबान, रमजान, शववाल, जिक्काद और जिठहिज। चांद्रमास २९ दिन, ३१ घड़ी, ५० पल और ७ विपल का होता है; इससे चांद्रवर्ष सौरवर्ष से १० दिन, ५३ घड़ी, ३० पल और ६ विपल के फ़रीब कम होता है। इस हिजाब से सौर वर्ष में ३ चांद्रवर्ष २४ दिन और ९ घड़ियाँ बढ़ जाती हैं। अतः इसवी सन् या विक्रम संवत् से हिजरी सन् का कोई निश्चित अंतर नहीं रहता, जिससे दिए हुए हिजरी सन् में कोई निश्चित संवत् या जोड़कर इसवी सन् या विक्रम निकालें। इसके लिये गणित करना पड़ता है।

हिजाज़-संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) अरब के एक भाग का नाम जिसमें मक्का और मदीना नामक नगर हैं। (२) फारसी संगीत के १२ सुफ़ारों में से एक।

हिजाब-संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) परदा। (२) धाम। हवा। छाया।

हिजल-संज्ञा पुं० दे० "हिजल"।

॥ संज्ञा पुं० दे० "हीमदा" ।

हिजल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पेड़ ।

हिजले-संज्ञा पुं० [ सं० हिज्ज ] किसी शब्द में आप हुप अक्षरों को मात्रा सहित कहना ।

कि० प्र०—करना ।

हिज्ज-संज्ञा पुं० [ प्र० ] सुदाई । विवोग । बिछोड़ ।

हिज्जना-कि० सं० दे० "हज्जना" ।

हिज्ज-संज्ञा पुं० [ ? ] [ क्र० हिज्जी ] संज्ञा । (हिं०)

हिज्जि-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम जिसे भीम ने पांडवों के वनवास के समय मारा था ।

हिज्जिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हिज्जि राक्षस की बहिन जो पांडवों के वनवास के समय भीम को देखकर मोहित हो गई थी और जिसके साथ, हिज्जि को मार चुकने पर, भीम ने विवाह किया था । इस विवाह से भीम को घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ।

हिजोर, हिजोला-संज्ञा पुं० दे० "हिंजोला" ।

हित-वि० [ सं० ] (१) लाभदायक । उपकारी । फायदेमंद ।

(२) अनुकूल । सुचारु । (३) अच्छा व्यवहार करनेवाला ।

मलाई करने या चाहनेवाला । सजाव रखनेवाला । खैरप्राद ।

संज्ञा पुं० (१) लाभ । फायदा । (२) कल्याण । मंगल ।

मलाई । उपकार । बेहतरी । उ०—राम-विमुख सुत तें

हित-वानी ।—तुलसी ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—हितकर । हितकारी ।

(१) अनुकूलता । सुचारुकृत । (२) स्वास्थ्य के लिये

लाभ । तंदुरुस्ती को फायदा । (३) प्रेम । स्नेह । अनुराग ।

उ०—हित करि दयाम सौं कह पायो ?—सूर । (४)

मित्रता । खैरप्रादी । (५) भला चाहनेवाला आदमी । मित्र ।

(६) संबंध । नाता । रिश्ता । (७) संबंधी । नातेदार ।

रिश्तेदार ।

शब्द० (१) (किसी के) लाभ के हेतु । स्वातिर । प्रसन्नता

के लिये । (२) निमित्त । हेतु । कारण । लिये । वास्ते ।

उ०—हरि हिव हरहु आप गरुवाई ।—तुलसी ।

हितक-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी जानवर का पच्चा ।

हितकर-वि० [ सं० ] (१) मलाई करनेवाला । उपकार या कल्याण करनेवाला । (२) लाभ पहुँचानेवाला । उपयोगी । फायदेमंद । (३) शरीर को आराम या आरोग्यता देनेवाला । स्वास्थ्यकर ।

हितकर्त्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] मलाई करनेवाला ।

हितकाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] मलाई की कामना या इच्छा । खैरप्रादी ।

वि० मलाई चाहनेवाला ।

हितकारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मलाई करनेवाला । उपकार या कल्याण करनेवाला । (२) लाभ पहुँचानेवाला । फायदेमंद । (३) स्वास्थ्यकर ।

हितकारी-वि० [ सं० हितकारिण ] [ स्त्री० हितकारिणी ] (१) हित या मलाई करनेवाला । उपकार या कल्याण करनेवाला । (२) लाभ पहुँचानेवाला । फायदेमंद । (३) स्वास्थ्यकर ।

हितचिंतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भला चाहनेवाला । खैरप्राद ।

हितचिंतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी की मलाई की कामना या इच्छा । उपकार की इच्छा । खैरप्रादी ।

हितताल-संज्ञा स्त्री० [ सं० हित + ताल ] मलाई । उपकार ।

हितवचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मलाई का वचन । कल्याण का उपदेश । बेहतरी की सलाह ।

हितवचना-कि० प्र० दे० "हिताना" ।

हितवादी-वि० [ सं० हितवादिण ] [ स्त्री० हितवादिनी ] हित की बात कहनेवाला । बेहतरी की सलाह देनेवाला ।

हिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नाडी । यस्त । (२) एक विशेष प्रकार की रक्तवाहिनी नस या शिरा ।

हिताई-संज्ञा स्त्री० [ सं० हित + आई (हिं० प्रत्य०) ] नाता । रिश्ता । संबंध ।

हितानाल-कि० प्र० [ सं० हित + आना (प्रत्य०) ] (१) हितकारी होना । अनुकूल होना । (२) प्रेमयुक्त होना । उ०—बाँधो देखि दयाम को परबस गोपी परम हितानी ।—सूर । (३) प्यारा लगना । अच्छा लगना । माना । रुचिकर होना । उ०—येये करम नाहि प्रसु भेरे जाते तुमहि हितैहीं ।—सूर ।

हितावह-वि० [ सं० ] जिससे मलाई हो । हितकारी । कल्याणकारी ।

हिताहित-संज्ञा पुं० [ सं० ] मलाई पुराई । लाभ हानि । गुण उरुसान । उपकार और अपकार । जैसे,—जिसे अपने हितहित का ध्यान नहीं, वह बावला है ।

हिती-वि० [ सं० हित + ई (हिं० प्रत्य०) ] (१) हित् । मलाई चाहनेवाला । खैरप्राद । (२) मित्र । दोस्त ।

हितु-संज्ञा पुं० दे० "हित"; "हित्" ।

हितुआ, हितुवाई-संज्ञा पुं० दे० "हित्" ।

हित्-संज्ञा पुं० [ सं० हित ] (१) मलाई करने या चाहनेवाला । खैरप्राद । दोस्त । उ०—सखि सब कौतुक देखनहारो । जे कहवत हित् हमरो ।—तुलसी । (२) संबंधी । नातेदार । (३) सुहृद । स्नेही ।

हितेच्छा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मलाई की चाह । खैरप्रादी । उपकार का ध्यान ।

हितेच्छु-वि० [ सं० ] भला चाहनेवाला । खैरप्राद । कल्याण मनानेवाला ।

हितैषिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मलाई चाहने की वृत्ति । खैरप्रादी ।

द्वि० प्र०—करना।—निकालना।—लगाना।

(४) चतुर्थाई का दंग। चाल। पाखिसी। जैसे,—पेमे मौड़े पर द्विक्रमस से काम लेना चाहिए। (५) किरपायत। (६) हकीम का काम या पेशा। हकीमी। वैद्यक। (७) महाही। (कदक०)

द्विक्रमती—वि० [ प्र० द्विक्रम ] (१) कार्य-साधन की सुक्ति निकालनेवाला। तद्बीर सोचनेवाला। उपाय निकालनेवाला। कार्यपटु। (२) चतुर। चालाक। (३) किरपायती।

द्विक्रमाना—क्रि० प्र० दे० "द्विक्रमाना"।

द्विक्रायत—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] कथा। कहानी। प्रसंग।

द्विक्रल—संज्ञा पुं० [ ? ] बौद्ध सन्यासियों या भिक्षुओं का दंड।

द्विघा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) द्विचकी। (२) बहुत द्विचकी आने का रोग।

विशेष—वायु का पसलियों और अंतर्दियों को पीदित करते हुए ऊपर चढ़कर गले से स्रटके से निकलना ही द्विघा या द्विचकी है। वैद्यक में वायु और कफ के मेल से पाँच प्रकार की द्विघा बहती गई है—भ्रजजा, यमला, सुदा, गंभीरा और महती। पेट में अफरा, पसलियों में तनाव, कंठ और हृदय का मारी होना, भूँह कसैला होना द्विघा होने के पूर्व लक्षण हैं। गरम, वादी, गरिष्ठ, रूबी और वासी चीजें खाना, भूँह में धूल जाना, घकावट, मलमूत्र का वेग रोकना द्विघा के कारण कहे गए हैं। जिस द्विघा में रोगी को कंप हो, ऊपर की ओर दृष्टि चढ़ जाय, आँख के सामने धँपेरा छा जाय, शरीर दुबला होता जाय, ठीक बहुत खावे और भोजन में अरुचि हो जाय, वह असाध्य कही गई है।

(३) रोने या सिसकने का वह दाढ़ जो एक एककर आवे।

द्विघिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] द्विघा। द्विचकी।

द्विघो—वि० [ सं० द्विघिन् ] जिसे द्विघा रोग हो। द्विचकी का रोगी।

द्विचक—संज्ञा स्त्री० [ द्वि० द्विचकना ] किसी काम के करने में यह रक्यावट जो मन में मालूम हो। आगा पीछा।

द्विचकना—क्रि० प्र० [ सं० द्विका या द्वु० द्विच + ना. (प्रत्य०) ]

(१) द्विचकी लेना। वायु का उठा हुआ झोंका कंठ से निकालना। (२) किसी काम के करने में कुछ अनिच्छा, भय या संकोच के कारण प्रष्टन न होना। आगा पीछा करना। जैसे,—बर्दा जाने से तुम द्विचकते क्यों हो ?

द्विचकियाना—क्रि० प्र० दे० "द्विचकना"।

द्विचकियाहट—संज्ञा स्त्री० दे० "द्विचक"।

द्विचकियी—संज्ञा स्त्री० दे० "द्विचक"।

द्विचकी—संज्ञा स्त्री० [ द्वु० द्विच या सं० द्विका ] (१) पेट की वायु का झोंक के साथ ऊपर चढ़कर कंठ में घका देते हुए निकलना। उदरस्थ वायु के कंठ में आघात या दाढ़ के साथ निकलने की क्रिया।

द्वि० प्र०—भाना।—छेना।

सुदा०—द्विचकियाँ लगना = मरने के समय वायु का कंठ में से एक एककर आघात करते हुए निकलना। मरणावस्थ अवस्था होना। मरने के निकट होना।

(२) रह रहकर सिसकने का दाढ़। रोने में रह रहकर कंठ से साँस छोटाना।

द्वि० प्र०—घँपना।

द्विचर मिचर—संज्ञा पुं० [ द्वि० द्विचक ] (१) किसी काम के करने में भय, संकोच या कुछ अनिच्छा के कारण रुकना या देर करना। आगा-पीछा। सोच-विचार। (२) किसी काम को न करना पड़े, इसलिये देर करना या हथर उधर की बात कहना। टालमटूल।

द्वि० प्र०—करना।—होना।

द्विजड़ा—संज्ञा पुं० दे० "द्विजड़ा"।

द्विजरी—संज्ञा पुं० दे० "द्विजरी"।

द्विजरी—संज्ञा पुं० [ अ० ] सुखलमानी सन् या संवत् जो सुहृत्संघ साध्य के मके से मंदिने आगने की तारीख (१५ जूलाई सन् १९२२ ई० अर्थात् विक्रम संवत् १७९ आषण शुक्ल २ का सायंकाल) से चला है।

विशेष—लक्ष्मीका उमर ने विद्वानों की सम्मति से यह द्विजरी सन् स्थिर किया था। द्विजरी सन् का वर्ष शुद्ध चांद्र वर्ष है। इसका प्रत्येक मास चंद्रवर्षान (शुक्ल द्वितीया) से आरंभ होता है और दूसरे चंद्रवर्षान तक माना जाता है। हर एक तारीख सायंकाल से आरंभ होकर दूसरे दिन सायंकाल तक मानी जाती है। इस सन् के बारह महीनों के नाम इस प्रकार हैं—सुहरम, सफर, रबीठल अश्वल, रबीउरस्सानी, जमादिठल अश्वल, अमादिठल अश्वल, रजब, शाबान, रमजान, शवाल, जिदकार और ज़िलहिज। चांद्रमास २९ दिन, ३१ घड़ी, ५० पल और ७ विपल का होता है; इससे चांद्रवर्ष सौरवर्ष से १० दिन, ५३ घड़ी, ३० पल और ६ विपल के फरक कम होता है। इस हिसाब से सौर वर्ष में ३ चांद्रवर्ष २४ दिन और ९ घड़ियाँ बंध जाती हैं। अतः इसी सन् या विक्रम संवत् से द्विजरी सन् का कोई निश्चित अंतर नहीं रहता, जिससे दिव्य हुए द्विजरी सन् में कोई निश्चित संख्या जोड़कर इसी सन् या विक्रम निकाल लें। इससे लिपे गणित करना पड़ता है।

द्विजाज—संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) अरब के एक भाग का नाम जिसमें मक्का और मदीना नामक नगर हैं। (२) फारसी संगीत के १२ सुकामों में से एक।

द्विजाय—संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) परदा। (२) धाम। इया। कज्जा।

द्विज्ज—संज्ञा पुं० दे० "द्विज्ज"।

॥ संज्ञा पुं० दे० "हीमदा" ।  
 हिजाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पद ।  
 हिज्जे-संज्ञा पुं० [ अ० हिज्जः ] किसी शब्द में आप ह्रस्व अक्षरों को मात्रा सहित कहना ।  
 कि० प्र०—करना ।  
 हिज्ज-संज्ञा पुं० [ अ० ] खुदाई । विभोग । विद्रोह ।  
 हिटकना-कि० सं० दे० "हटकना" ।  
 हिडंब-संज्ञा पुं० [ ? ] [ की० हिदंबी ] भैंसा । (हिं०)  
 हिडिंब-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राक्षस का नाम जिसे भीम ने पांडवों के वनवास के समय मारा था ।  
 हिडिंबा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हिडिंब राक्षस की बहिन जो पांडवों के वनवास के समय भीम को देखकर मोहित हो गई थी और जिसके साथ, हिडिंब को मार चुकने पर, भीम ने विवाह किया था । इस विवाह से भीम को घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ।  
 हिडोर, हिडोला-संज्ञा पुं० दे० "हिदोला" ।  
 हित-वि० [ सं० ] (१) लाभदायक । उपकारी । फायदेमंद । (२) अनुकूल । सुवाचिक । (३) अच्छा व्यवहार करनेवाला । भलाई करने या चाहनेवाला । सद्भाव रखनेवाला । सैरखाह । संज्ञा पुं० (१) लाभ । फायदा । (२) कल्याण । मंगल । भलाई । उपकार । येहत्तरी । उ०—राम-विमुख सुत तें हित-दानि ।—गुलसी ।  
 हि० प्र०—करना ।—होना ।  
 यौ०—हितकर । हितकारी ।  
 (१) अनुकूलता । सुवाचिकता । (२) स्वास्थ्य के लिये लाभ । तंदुहस्ती को फायदा । (३) प्रेम । स्नेह । अनुराग । उ०—हित करि श्याम सों कह पायो ?—सूर । (४) मित्रता । सैरखाही । (५) भला चाहनेवाला भावना । मित्र । (६) संबंध । मोता । रिश्ता । (७) संबंधी । नातेदार । रिश्तेदार ।  
 मू० (१) (किसी के) लाभ के हेतु । पारित । प्रसधता के लिये । (२) विमिष्ट । हेतु । कारण । लिये । वास्ते । उ०—हरि हित इरहु पाप गरवाई ।—गुलसी ।  
 हितक-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी जानवर का चरवा ।  
 हितकर-वि० [ सं० ] (१) भलाई करनेवाला । उपकार या कल्याण करनेवाला । (२) लाभ पहुँचानेवाला । वपयोगी । फायदेमंद । (३) शरीर को आराम या भारीग्यता देनेवाला । स्वास्थ्यकर ।  
 हितकर्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] भलाई करनेवाला ।  
 हितकाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] भलाई की कामना या इच्छा । सैरखाही ।  
 वि० भलाई चाहनेवाला ।

हितकारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भलाई करनेवाला । उपकार या कल्याण करनेवाला । (२) लाभ पहुँचानेवाला । फायदेमंद । (३) स्वास्थ्यकर ।  
 हितकारी-वि० [ सं० हितकारि ] [ स्त्री० हितकारिणी ] (१) हित या भलाई करनेवाला । उपकार या कल्याण करनेवाला । (२) लाभ पहुँचानेवाला । फायदेमंद । (३) स्वास्थ्यकर ।  
 हितचिंतक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भला चाहनेवाला । सैरखाह ।  
 हितचिंतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी की भलाई की कामना या इच्छा । उपकार की इच्छा । सैरखाही ।  
 हितताल-संज्ञा स्त्री० [ सं० हित + ताल ] भलाई । उपकार ।  
 हितवचन-संज्ञा पुं० [ सं० ] भलाई का वचन । कल्याण का उपदेश । येहत्तरी की सलाह ।  
 हितवनाश-कि० प्र० दे० "हिताना" ।  
 हितवादी-वि० [ सं० हितवादि ] [ स्त्री० हितवादिनी ] हित की बात कहनेवाला । येहत्तरी की सलाह देनेवाला ।  
 हिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नाछी । वरदा । (२) एक विशेष प्रकार की रक्तवाहिनी नस या शिरा ।  
 हितार-संज्ञा स्त्री० [ सं० हित + आरे (हिं० प्रत्य०) ] नाता । रिश्ता । संबंध ।  
 हितानाश-कि० प्र० [ सं० हित + आना (प्रत्य०) ] (१) हितकारी होना । अनुकूल होना । (२) प्रेमयुक्त होना । उ०—बाल्यो देखि श्याम को परबस गोपी परम हितानी ।—सूर । (३) प्यार लगना । अच्छा लगना । भावना । रचिकर होना । उ०—प्रेमे करम नाहि प्रभु मेरे जाते तुमहि हितैहीं ।—सूर ।  
 हितवध-वि० [ सं० ] जिससे भलाई हो । हितकारी । कल्याणकारी ।  
 हितहित-संज्ञा पुं० [ सं० ] भलाई घुलाई । लाभ हानि । मरुत नुकसान । उपकार और अपकार । जैसे,—जिसे अपने हितहित का ध्यान नहीं, वह वायछा है ।  
 हितो-वि० [ सं० हित + ई (हिं० प्रत्य०) ] (१) हित् । भलाई चाहनेवाला । सैरखाह । (२) मित्र । दोस्त ।  
 हित्-संज्ञा पुं० दे० "हित"; "हित्" ।  
 हितुग्रा, हितुवा-संज्ञा पुं० दे० "हित्" ।  
 हित्-संज्ञा पुं० [ सं० हित ] (१) भलाई करने या चाहनेवाला । सैरखाह । दोस्त । उ०—सखि सख कौतुक देखनहारो । जेह कदावत हित् हमारे ।—गुलसी । (२) संबंधी । नातेदार । (३) सुहृद । स्नेही ।  
 हितेच्छा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भलाई की चाह । सैरखाही । उपकार का ध्यान ।  
 हितेच्छु-वि० [ सं० ] भला चाहनेवाला । सैरखाह । कल्याण मनानेवाला ।  
 हितैषिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भलाई चाहने की इच्छा । सैरखाही ।

द्वितीय-वि० [ सं० द्वितीय ] [ स्त्री० द्वितीयी ] भला चाहनेवाला ।  
 खैरखाह । कल्याण मनानेवाला ।  
 संज्ञा पुं० दोस्त । मित्र । सुहृद ।  
 द्वितोक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] द्वि के वचन । भलाई का उपदेश ।  
 कल्याणकारी उपदेश । नेक सलाह ।  
 द्वितोपदेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) भलाई का उपदेश । नेक सलाह । (२) विष्णुधर्मो रचित संस्कृत का एक प्रसिद्ध ग्रंथ जिसमें व्यवहार-नीति की शिक्षा को लिप्युक्त उपदेश और कहानियाँ हैं ।  
 द्वितोना-संज्ञा-कि० प्र० दे० "द्विताना" ।  
 द्विदायत-संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) पथ प्रदर्शन । रास्ता दिखाना । (२) अधिकारी की शिक्षा । आदेश । निर्देश ।  
 द्विनदिना-कि० प्र० [ अतु० दिन दिन + करना ] घोड़े का बोलना ।  
 द्विनदिनाना ।  
 द्विनती-संज्ञा स्त्री० [ सं० दोनता ] हीनता । तुच्छता । छोटापन ।  
 द्विनवाना-संज्ञा पुं० दे० "द्विदवाना" ।  
 द्विनदिनाना-कि० प्र० [ अतु० दिन दिन ] घोड़े का बोलना ।  
 हींसना ।  
 द्विनदिनादृष्ट-संज्ञा स्त्री० [ द्वि० द्विनदिनाना ] घोड़े की बोली ।  
 द्विना-संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] मेहरी ।  
 द्विफाज्ञात-संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] (१) किसी की वस्तु को इस प्रकार रखना कि वह नष्ट होने या चिगड़ने न पावे । रक्षा । जैसे,—इस चीज को द्विफाज्ञात से रखना । (२) बचाव । देख-रेख । खबरदारी । सावधानी । जैसे,—वहाँ लड़कों की द्विफाज्ञात करेगा ?  
 द्वि० प्र०—करना ।—रखना ।  
 द्विष्या-संज्ञा पुं० [ प्र० द्विष्यः ] (१) दाना । (२) दो जी की एक तौल ।  
 मुहा०—द्विष्या भर = जरा सा । थोड़ा ।  
 (३) दान ।  
 यौ०—द्विष्यानामा ।  
 द्विष्यानामा-संज्ञा पुं० [ प्र० + नाम० ] दानपत्र ।  
 द्विमंचल-संज्ञा पुं० दे० "द्विमाचल" ।  
 द्विमंत-संज्ञा पुं० दे० "द्विमंत" ।  
 द्विम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पाला । बर्फ । जल का वह दोस रूप जो सरदी से जमने के कारण होता है । तुपार । (२) जाड़ा । ठंड । (३) जाड़े की ऋतु । (४) चंद्रमा । (५) चंद्रन । (६) कपूर । (७) रौंका । (८) मोती । (९) ताजा मक्खन । (१०) कम्बु । (११) पृथ्वी के विभागों या वर्षों में से एक । (१२) वह दवा जो रातभर ठंडे पानी में मिगोकर सधेरे मलकर छान ली जाय । ठंडा काय या काढ़ा ।  
 सेप्रादा ।

वि० टंडा । सर्द ।  
 द्विम-उपल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ओला । पथर । जमा हुआ पेट ।  
 उ०—जिमि द्विम-उपल कुरी दलि गरहीं ।—तुलसी ।  
 द्विम ऋतु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जाड़े का मौसिम । हेमंत ऋतु ।  
 द्विमक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ताजीरापत्र ।  
 द्विमकण-संज्ञा पुं० [ सं० ] बर्फ या पाके के महीन टुकड़े ।  
 द्विमकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।  
 द्विमकिरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 द्विमखंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] द्विमाख्य पहाड़ ।  
 द्विमगु-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 द्विमगुह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह घर या कोठी जो बहुत ठंडी हो और जिसमें ठंडक के सामान इकट्ठे हों । सर्दलाना ।  
 द्विमज-वि० [ सं० ] (१) बर्फ में होनेवाला । (२) द्विमाख्य में होनेवाला । (३) द्विमाख्य से उत्पन्न ।  
 संज्ञा पुं० मैनाक पर्वत ।  
 द्विमजा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) खिरनी का पेड़ । (२) यवनाख से निकली हुई चीनी । (३) पार्वती ।  
 द्विमतैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपूर देकर बनाया हुआ तेल ।  
 द्विमवीचिस्ति-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 द्विमवृष्ठा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] खिरनी । खीरिणी ।  
 द्विमदुम-संज्ञा पुं० [ सं० ] यकायन का पेड़ ।  
 द्विमपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] पाला पड़ना । बर्फ गिरना ।  
 द्विमप्रस्थ-संज्ञा पुं० [ सं० ] द्विमाख्य पहाड़ ।  
 द्विमभाजु-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 द्विममयूख-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 द्विमयुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कपूर ।  
 द्विमरश्मि-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 द्विमरुचि-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 द्विमर्तु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] द्विम ऋतु । जाड़े का मौसिम ।  
 द्विमवत्-संज्ञा पुं० "द्विमवात्" ।  
 द्विमवत्खंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्कंद पुराण के एक खंड या विभाग का नाम ।  
 द्विमवत्सुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] मैनाक पर्वत ।  
 द्विमवत्सुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पार्वती ।  
 द्विमवत्-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोती ।  
 द्विमघान-वि० [ सं० द्विमवत् ] [ स्त्री० द्विमवती ] बर्फनाला ।  
 जिसमें बर्फ या पाला हो ।  
 संज्ञा पुं० (१) द्विमाख्य पहाड़ । (२) कैलास पर्वत ।  
 द्विमघालुका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कपूर ।  
 द्विमशर्करा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की चीनी जो यवनाख से निकाली जाती है ।  
 द्विमशैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] द्विमाख्य पहाड़ ।

हिमशैलजा-गंगा की० [ सं० ] पार्वती ।  
 हिमचूत-गंगा पुं० [ सं० ] चंद्रमा ।  
 हिमहासक-गंगा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पत्थर ।  
 हिमांक-गंगा पुं० [ सं० ] कपूर ।  
 हिमांशु-गंगा पुं० [ सं० ] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।  
 हिमाकृत-गंगा की० [ म० ] वैद्यकी मूर्ध्ति ।  
 हिमाचल-गंगा पुं० [ सं० ] हिमालय पहाड़ ।  
 हिमानी-गंगा की० [ सं० ] वर्षा का देर । पाले का समूह ।  
 हिमाद्रि-गंगा पुं० [ सं० ] हिमालय पहाड़ ।  
 हिमाब्ज-गंगा पुं० [ सं० ] नील कमल ।  
 हिमाश्र-गंगा पुं० [ सं० ] कपूर ।  
 हिमामदस्ता-गंगा पुं० [ फ्रा० खानदस्ताः ] सरल और बढ़ा ।  
 हिमायत-गंगा की० [ म० ] (१) रक्षा । अग्निभाक्ता । संरक्षा ।  
 (२) पक्षपात । (३) मंथन । समर्थन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

हिमायती-वि० [ फ्रा० ] (१) पक्ष करनेवाला । पक्ष लेनेवाला ।  
 समर्थन करनेवाला । मंथन करनेवाला । (२) सारप्रदाय ।  
 सहायता करनेवाला । मददगार ।

हिमाराति-गंगा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि । आग । (२) सूर्य ।  
 (३) विप्रक बुद्ध । पीता । (४) आक । मदार ।

हिमाल-गंगा पुं० दे० "हिमालय" ।

हिमालय-गंगा पुं० [ सं० ] (१) भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर  
 पारपर फैला हुआ एक बहुत बड़ा और ऊँचा पहाड़ जो  
 संसार के सब पर्वतों से बड़ा है । इसकी ऊँची चोटियाँ  
 सदा बर्फ से ढकी रहती हैं और सबसे ऊँची चोटी २९००२  
 फुट ऊँची है । यह संसार की सबसे ऊँची चोटी मानी  
 गई है । उत्तर भारत की सबसे बड़ी नदियाँ इसी पर्वत-राज  
 से निकली हैं । पुराणों में यह पर्वत मेना या मेनका का  
 पति और पार्वती का पिता माना गया है । गंगा भी इसकी  
 बड़ी पुत्री कही गई है । (२) सफेद रंग का पद ।

हिमादा-गंगा पुं० [ म० ] (१) कपूर । (२) जंबू द्वीप के एक वर्ष  
 या खंड का नाम ।

हिमाद्वय-गंगा पुं० [ सं० ] कपूर ।

हिमिच्छ-गंगा पुं० दे० "हिम" ।

हिमेय-गंगा पुं० [ सं० ] हिमालय ।

हिमोत्तरा-गंगा की० [ सं० ] एक प्रकार की दाढ़ । अंगूर ।

हिंस-गंगा पुं० [ सं० ] बुध ग्रह ।

हिम्मत-गंगा की० [ म० ] (१) कोई कठिन या कष्टसाध्य काम  
 करने की मानसिक दृढ़ता या बल । साहस । गिम्ता ।  
 (२) बहादुरी । पराक्रम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—हिम्मत हारना = साहस छोड़ना । जसाह न रहना ।

हिम्मत पढ़ना = साहस होना ।

हिम्मती-वि० [ फ्रा० ] (१) हिम्मतवाला । साहसी । दृढ़ ।  
 (२) पराक्रमी । बहादुर ।

हिय-गंगा पुं० [ सं० इय, प्रा० हिम ] (१) हृदय । मन । उ०—  
 चले माँट, हिय हरप न थोरा । (२) छाती । पक्षस्थल ।  
 विशेष दे० "हिया" ।

मुहा०—हिय हारना = हिम्मत छोड़ना । साहस न रहना ।

उ०—तेहि कारन भावत हिय हारे । कामी-काक-पलाक  
 बेचारे ।—मुलसी ।

हियरा-गंगा पुं० [ हिं० हिय + रा (स्वार्थ प्रथम०) ] (१) हृदय ।  
 मन । उ०—(क) कौमु थरपि हियरे हरपि, सीता सुखद  
 सुभाय । निरलि निरगि पिय सुत्रिकदि बरनति है बहु  
 भाय ।—केदाव । (ख) मैसुक हेरि हरयो हियरा मनमोहन  
 मेरो अचानक ही । (२) छाती । पक्षस्थल । उ०—हियरा  
 छगि भाभिमि सोइ रही ।—उद्दमग० ।

हियरौ-प्रथम० दे० "यहाँ" ।

हिया-गंगा पुं० [ सं० इय, प्रा० हिम म ] (१) हृदय । मन ।  
 उ०—अव धौं विनु मानगिया रहिई कहि कौन हिय अवलंब  
 हिये ।—केदाव । (२) छाती । पक्षस्थल । उ०—(क)  
 बनमाल हिये अरु विप्रलयत ।—केदाव । (ख) हिया धार,  
 लुच कंधन लाइ ।—जायसी ।

मुहा०—हिये का अंधा = अज्ञान । पूर्ण । हिये की फूटना = फान  
 न रहना । फगान रहना । बुद्धि न होना । हिया शीतल या उँदा  
 होना = मन में झूठ शक्ति होना । मन तुल और आनंदित होना ।  
 हिया जलना = कर्त्तव्य कर्म में होना । उ०—फूर फुडार  
 निहारि तजे फल ताकि यहि जो हियो जरई ।—केदाव ।  
 हिये लगना = गले से लगना । छाती से लगना । आदिगन  
 करना । उ०—बयो हडि मान गई सजनी उठि बेगि गोवाल  
 हिये किन लागे ?—दांकर । हिये में छोन सा छाटना = बहुत  
 बुरा लगना । अत्यंत अशुभकर होना । उ०—सुनत रुति मह  
 रानी, हिये लोन अस लाग ।—जायसी । हिये पर पत्थर  
 धरना = दे० "कनेजे पर पत्थर धरना" । हिया फटना = कलेजा  
 फटना । अत्यंत शोक या दुःख होना । हिया भर आना = कलेजा  
 भर आना । शोक या दुःख का हृदय में अत्यंत वेग होना । हिया  
 भर लेना = दुःख से लंबी माँट लेना । विशेष—मुहा० दे०  
 "जो" और "कनेजा" ।

हियाव-गंगा पुं० [ हिं० हिय + व (स्वार्थ प्रथम०) ] कोई कठिन काम  
 करने की मानसिक दृढ़ता । साहस । हिम्मत । जीवट ।  
 उ०—भैरं जो मनसा मानसर छीन्ह कैंबरस जाय ।  
 चुन जो हियाव न के सका इर काठ तम प्राय ।—जायसी ।  
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।



**मुद्रा**—हियाव लुटना = (१) मानसिक दृढ़ता आना । साहस हो जाना । हिमाल बँपना । (२) संकोच, हिचक या मय न रहना । शक्य लुटना । दियाव पड़ना = हिमत् होना । साहस होना ।

**हिरंगु**—संज्ञा पुं० [ सं० ] राहु ग्रह ।

**हिर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] कपड़े आदि की पट्टी ।

**हिरकाना**—क्रि० प्र० [ सं० हिरकू = समीप ] (१) पास होना । निकट जाना । (२) हटने समीप होना कि स्पर्श हो । सटना । मिड़ना । जैसे,—हिरक कर बैठना ।

**संयो० क्रि०**—जाना ।

**हिरकाना**—क्रि० प्र० [ सं० [ हि० हिरकना ] (१) पास करना । नज़दीक ले जाना । (२) हटने समीप ले जाना कि स्पर्श हो जाय । सटना । मिड़ाना ।

**संयो० क्रि०**—देना ।

**हिरगुनी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० वीण + गुन = सूत ] एक, प्रकार की बड़िया कलास जो सिंध में होती है ।

**हिरण्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोना । स्वर्ण । (२) धौवर्ण । (३) कौड़ी ।

संज्ञा पुं० दे० "हिरण्य", "हरिण्य" ।

**हिरण्य-वि०** [ सं० ] सुनहरा । सोने का ।

**संज्ञा पुं०** (१) हिरण्यगर्भ । ब्रह्मा । (२) एक ऋषि । (३) जंबू द्वीप के नौ खंडों या चर्पों में से एक जो श्वेत और श्रेण्यवान् पर्वतों के बीच कहा गया है । (४) उक्त चर्प का शासक, अयोध्या का पुत्र । (भावगत) ।

**हिरण्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सोना । स्वर्ण । (२) धौवर्ण । (३) कौड़ी । (४) एक मान या तोल । (५) धन । (६) हिरण्यमय वस्त्र या बंध । (७) एक देव । (८) नित्य । तत्त्व । (९) ज्ञान । (१०) ज्योति । वेज । प्रकाश । (११) अमृत ।

**हिरण्य-कशिपु-वि०** [ सं० ] सोने के तक्षिपु या गद्दीवाला ।

**संज्ञा पुं०** एक प्रसिद्ध विष्णु-विरोधी वैश्य-राजा का नाम जो प्रह्लाद का पिता था ।

**विशेष**—यह कश्यप और त्रिपु का पुत्र था और भगवान् का बड़ा भारी विरोधी था । इसे ब्रह्मा से यह वर मिला था कि मनुष्य, देवता या और किसी प्राणी से दुग्धारा वध नहीं हो सकता । इससे यह अत्यंत प्रबल और अजेय हो गया । जब इसने अपने पुत्र प्रह्लाद को भगवान् की भक्ति करने के कारण बहुत सताया और एक दिन उसे खंभे से बाँध और तलवार खींचकर बार बार कहने लगा कि 'मत्ता ! अब तेरा भगवान् कहाँ है ? भाकर तुझे बचावे ।' तब भगवान् नृसिंह ( आधा सिंह आधा मनुष्य ) का रूप धारण करके खंभा फाड़कर प्रकट हुए और उसे फाड़ डाला । भगवान् का चौथा अवतार नृसिंह इसी वैश्य को मारने के लिये हुआ था ।

**हिरण्य-कश्यप-संज्ञा पुं०** दे० "हिरण्य-कशिपु" ।

**हिरण्य-कामधेनु**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दान देने के निमित्त बनी हुई सोने की कामधेनु गाय । ( ऐसी गाय का दान ११ महादानों में है । )

**हिरण्यकार**—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर्णकार । सुनार ।

**हिरण्यकेश**—संज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम ।

**हिरण्यगर्भ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह ज्योतिर्मय अंड जिससे ब्रह्मा और सारि सृष्टि की उत्पत्ति हुई । (२) ब्रह्मा ।

**विशेष**—ब्रह्म ने जल या समुद्र की सृष्टि करके उसमें अपना बीज डाला, जिससे एक अत्यंत देदीप्यमान ज्योतिर्मय या स्वर्णमय अंड की उत्पत्ति हुई । यह अंड सूर्य से भी अधिक प्रकाशवान् था । इसी अंड से सृष्टि-निर्माता ब्रह्मा प्रकट हुए जो ब्रह्म के व्यक्त या सगुण रूप हुए । वेदों की व्याख्या के अनुसार ब्रह्म की वाक् या प्रकृति पहले रजोगुण की प्रवृत्ति से दो रूपों में विभक्त होती है—सत्त्वप्रधान और तमःप्रधान । सत्त्वप्रधान के भी दो रूप हो जाते हैं—शुद्ध सत्त्व ( जिसमें सत्त्वगुण पूर्ण होता है ) और अशुद्ध सत्त्व ( जिसमें सत्त्व अंशतः रहता है ) । प्रकृति के इन्हों भेदों में प्रतिबिंबित होने के कारण ब्रह्म कभी ईश्वर या हिरण्यगर्भ और कभी जीव कहलाता है । जब वाक् या प्रकृति के तीन गुणों में से शुद्ध सत्त्व का उत्कर्ष होता है तब उसे माया कहते हैं ; और उस माया में प्रतिबिंबित होनेवाले ब्रह्म को सगुण या व्यक्त ईश्वर, हिरण्यगर्भ आदि कहते हैं । अशुद्ध सत्त्व की प्रधानता को भविष्य कहते हैं और उसमें प्रतिबिंबित होनेवाले ब्रह्म को जीव या प्राण कहते हैं ।

(३) सूक्ष्म शरीर से युक्त-आरमा । (४) एक मंत्रकार ऋषि । (५) विष्णु ।

**हिरण्यनाभ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु । (२) मैत्राक पर्वत । (३) वह मकान जिसमें तीन बड़ी शालाएँ ( कमरे ) पूर्व, पश्चिम और उत्तर की ओर हों और दक्षिण की ओर कोई शाला न हो । (दुर्वासंदिता) ।

**हिरण्यपुर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] असुरों का एक नगर जो समुद्र के पार वायु-मंडल में स्थित कहा गया है । ( हरिवंश )

**हिरण्यपुष्यी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार पौधा ।

**हिरण्यबोद्ध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिव का एक नाम । (२) सोन नदी । (३) एक नाग का नाम ।

**हिरण्यविद्ध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि । भाग । (२) एक पर्वत । (३) एक तीर्थ ।

**हिरण्यरेता**—संज्ञा पुं० [ सं० हिरण्यरेतः ] (१) अग्नि । भाग । (२) सूर्य । (३) दिव । (४) बारह आदित्यों में से एक । (५) चित्रक वृक्ष । चीता ।

हिरण्यरोम-संज्ञा पुं० [ सं० हिरण्यरोम ] (१) लोहपाल जो मरीचि के पुत्र हैं । (२) भीष्मक का नाम (महाभारत)

हिरण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी देवता या मंदिर पर बड़ा हुआ धन । देवस्व । देवोत्तर संपत्ति ।

हिरण्यवान-वि० [ सं० हिरण्यवर ] [ स्त्री० हिरण्यवती ] सोने-वाला । जिसमें या जिसके पास सोना हो ।

संज्ञा पुं० अग्नि ।

हिरण्यपाह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) निव । (२) सोन नद ।

हिरण्यवीर्य्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि । (२) सूर्य्य ।

हिरण्यस्वर-संज्ञा पुं० [ सं० हिरण्यस्व ] एक तीर्थ (महाभारत) ।

हिरण्यवा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रसिद्ध वैद्य जो हिरण्य-कशिपु का भाई था । यह कश्यप और इति से स्वपुत्र हुआ था । इसने पृथ्वी को लेकर पाताल में रख छोड़ा था । महा आदि देवताओं को प्रार्थना पर विष्णु ने घाराह अंबतार धारण करके इसे मारा और पृथ्वी का उद्धार किया । (२) वसुदेव के छोटे भाई इयामक के एक पुत्र का नाम ।

हिरण्यगण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] दान देने के लिये बनाई सोने के घोड़े की मूर्ति । इसका दान १९ महादानों में है ।

हिरदय-संज्ञा पुं० दे० "हृदय" ।

हिरदावल-संज्ञा पुं० [ सं० ह्रदवत् ] घोड़े की छाती की भौरी (धूमे हुए सोई) जो यज्ञ भारी दोग मानी जाती है ।

हिरत-संज्ञा पुं० [ सं० हरिय ] [ स्त्री० हिरिनी ] हरित । मृग । वि० दे० "हरित" ।

मुद्गा-हिरन हो जाना = मग्न जाना । बहुत तेजी से भागना ।

हिरनसुरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० हिरन + सुर ] एक प्रकार की लता या पेड़ जो घरसात में उगती है और जिसके पत्ते हिरन के पुर से मिलते लुकते होते हैं ।

हिरनाकुस-संज्ञा पुं० दे० "हिरण्यकशिपु" । उ०-हिरनाकुस और कंस को गोपों दुहुन की राज ।-गिरधर ।

हिरनोटा-संज्ञा पुं० [ सं० हरिणोटा ] हिरन का बच्चा । मृग शायक ।

हिरफत-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) ध्वजसाय । पैसा । व्यापार । (२) हाथ की करीगरी । दस्ताकारी । (३) हुनर । कला-कौशल । (४) जुगुराई । चालाकी । (५) चालबाज़ी । धूर्तता ।

हिरफतयाज्ञ-वि० [ म० + ज्ञ० ] चालबाज़ । धूर्त ।

हिरमञ्जी-संज्ञा स्त्री० [ म० ] लाल रंग की एक प्रकार की मिट्टी, जिससे कपड़े, दीवार आदि रंगते हैं ।

हिरमिञ्जी-संज्ञा स्त्री० दे० "हिरमञ्जी" ।

हिरवा-संज्ञा पुं० दे० "हीरा" ।

हिरवा चाय-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हीरा + चाय ] एक प्रकार की सुगंधित चास जिसकी जड़ में से नीचू की सी सुगंध आती है और जिससे सुगंधित तेल बनता है ।

हिरसा-संज्ञा स्त्री० दे० "हिंस" ।

हिरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रक्तनाड़ी या शिरा ।

हिराती-वि० [ दे० हिरात ] हिरात नामक स्थान जो अफ़ग़ानिस्तान के उत्तर में है ।

संज्ञा पुं० एक जाति का घोड़ा जिसका डील डील औसत दुर्जे का और हाथ पैर दोहरे होते हैं । यह गरमी में नहीं थकता ।

हिराना-वि० [ सं० हरय ] (१) खो जाना । गायब होना । गुम होना । (२) न रह जाना । अभाव होना । उ०-गुन ना हिरानो गुनगाहक हिरानो है ।

संयो० क्रि०-जाना ।

(३) मिटना । दूर होना । उ०-लखि तोपिन को प्रेम भुलायो । कजो को सब ज्ञान हिरायो ।-सूर । (४) आश्चर्ये से अचने को भूल जाना । हक्का-बक्का होना । दंग रह जाना । अर्थात् चकित होना । उ०-धोमा-कोस घनन न मेरो घनश्याम नित नई नई रुचि तन हेरत हिराहृ ।-केदार । (५) अपने को मूल जाना । आपा खोना । उ०-जौ लहि आप हिराद न कोई । तौ लहि हेरत पाव न सोई ।-जायसी ।

क्रि० सं० भूल जाना । ध्यान में न रहना । उ०-विकल भई तन दुसा हिरानी ।-सूर ।

क्रि० प्र० [ हिं० हिराना = प्रवेश करना ] खेतों में अँधू बकरी गाय आदि चौपाए रखना जिसमें इनकी लँटी या गोबर से खेत में खाद हो जाय ।

हिरावल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल" ।

हिरास-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] (१) भय । प्राप्त । (२) नैराश्य । नाउत्तमैदी । (३) रंज । पेद । निराशा ।

वि० [ फा० हिरास ] (१) निरास । नाउत्तमैद । हतास । (२) निरास । उदासीन ।

हिरासत-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) पहरा । चौकी । ऐसी स्थिति जिसमें कोई मनुष्य इधर उधर भाग न सके । (२) क़ैद । नजरबंदी ।

मुद्गा-हिरासत में करना = कैद करना । पहले के अंदर करना । सिपाहियों के पहले में देना ।

हिरासाँ-वि० [ फा० ] (१) निरास । नाउत्तमैद । (२) हिम्मत हारा हुआ । परत । (३) उदासीन । निरास ।

हिराँजी-संज्ञा स्त्री० दे० "हिरमञ्जी" ।

हिरौल-संज्ञा पुं० दे० "हरावल" ।

हिराँ-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) लालक । लूणा । सोम । (२) इच्छा का देव । कामना की उर्मग ।

मुद्गा-हिराँ छूटना = मन में लालक होना । इच्छा होना । हिंसं दिलाना = (१) प्रसन्न करना । उपमन करना । लालसा जगाना । कामना उपेजित करना । (२) लालक दिलाना । हिंसं मिरगना =

(१) इच्छा का वेग शान्त होना। (२) काम का वेग शान्त होना।  
 हिसा मिटाना = (१) इच्छा पूरी करना। लज्जा पूरी करना।  
 २) काम का वेग शान्त करना।  
 (३) किसी की देखादेखी कुछ काम करने की इच्छा।  
 यौ०—स्पदा।  
 यौ०—हिसाहिसा।  
 हिलंदा—संज्ञा पुं० [ देश० ] [ खी० हिलेरी ] मोटा साड़ा आदमी।  
 तगदा आदमी।  
 हिलफना—कि० प्र० [ अयु० या सं० शिवा ] (१) हिचकियाँ  
 लेना। हिचकना। (२) सिसकना।  
 कि० सं० [ देश० ] सुकोड़ना। ( सुँह ) घँटना।  
 कि० प्र० दे० “हिरकना”।  
 हिलकी—संज्ञा स्त्री० [ अयु० या सं० शिवा ] (१) हिचकी। (२)  
 भीतर ही भीतर रोने से रह रहकर वायु के निकलने का सौंका  
 या आवाज। सिसकने का शब्द। सिसक। उ०—(क) उर  
 लाय लई अकुलाय तऊ अधिरातिरु छौं हिलकीन रहीं।—  
 केशव। (ख) कमल-नयन हरि हिलकि न रोवै बंधन छोरि  
 जासोवै।—सूर।  
 कि० प्र०—लेना।—भरना।  
 हिलकोर, हिलकोरा—संज्ञा पुं० [ सं० बिल्लो ] हिलोश। लहर।  
 तरंग।  
 मुहा०—हिलकोरे लेना = लहराना। तरंगित होना।  
 हिलकोरना—कि० सं० [ हिं० हिलकोर + ना (प्रय०) ] पानी को  
 हिलाकर तरंगें उठाना। जल को धुन्ध करना।  
 संयो० कि०—डालना।—देना।  
 हिलसम—संज्ञा स्त्री० [ हिं० हिलगना ] (१) लगाव। संबंध। (२)  
 लगन। प्रेम। (३) परिचय। हेलमेल। हिलने मिलने या  
 परचने का भाव।  
 हिलगत—संज्ञा स्त्री० [ हिं० हिलगना ] (१) परचने का भाव।  
 (२) देव। आदृत। मान।  
 हिलगना—कि० प्र० [ सं० अघिलग, प्र० अहिलग ] (१) अटकना।  
 टँगना। किसी वस्तु से लगाकर उठरना। (२) फँसना।  
 घसाना। (३) हिलमिल जाना। (४) परचना।  
 कि० प्र० [ सं० हिल्लू = पास ] पास होना। दूतने समीप  
 होना कि स्पर्श हो। सटना। मिट्टना। वि० दे० “हिरकना”।  
 हिलगाना—कि० सं० [ हिं० हिलगना ] (१) अटकना। टँगना।  
 किसी वस्तु से लगाकर उठराना। (२) फँसना। घसाना।  
 (३) मेल जोल में करना। घनिष्ठता स्थापित करना। (४)  
 परचना। परिचित और अनुरक्त करना। जैसे,—बच्चे को  
 हिलगाना।  
 कि० सं० [ सं० हिल्लू = पास ] सटाना। मिटाना। वि० दे०  
 “हिरकाना”।

हिलाना—कि० प्र० [ सं० हल्लन = हल्लर वधर लुटकना ] (१) डोलना।  
 चलायमान होना। स्थिर न रहना। हलकत करना। जैसे,—  
 पेड़ की पत्तियाँ हिलाना। घड़ी का लंगर हिलाना।  
 संयो० कि०—जाना।—उठना।  
 मुहा०—हिलाना डोलना = (१) चलायमान होना। (२) चलना।  
 फिरना। घूमना। दहलना। जैसे,—दाम को कुछ हिला टोका  
 करो। (३) धम करना। काम धंसा करना। (४) प्रयत्न करना।  
 उद्योग करना। जैसे,—बिना हिले डोले कोई काम नहीं  
 हो सकता।  
 (२) अपने स्थान से टकना। सरकना। चलना। जैसे,—  
 जो लड़का अपनी जगह से हिलेगा, वह मार पायागा। (३)  
 कौपना। कंपित होना। धरधाराना। जैसे,—हिलने में  
 हाथ हिलना, जाड़े से घटन हिलना। (४) खूब जमकर  
 पैदा न रहना। अपने स्थान पर ऐसा कदा, जमा, या लगा  
 न रहना कि छूने से हथर उधर न करे। ढीला होना।  
 जैसे,—घाँत हिलना। (५) क्षमना। लहराना। नीचे ऊपर  
 या उधर उधर डोलना। जैसे,—(क) बहुत से लड़के हिल  
 हिलकर पक्ते हैं। (ख) मुट्टों का सिर हिलना। (६)  
 घुसना। पैठना। प्रवेश करना। ( विशेषतः पानी में )  
 कि० प्र० [ हिं० हिलगना ] (१) परिचित और अनुरक्त  
 होना। परचना। मेल जोल में होना। घनिष्ठता का अनुभव  
 करना। जैसे,—(क) यह बच्चा तुमसे बहुत हिल गया है।  
 (ख) बिल्ली उससे खूब हिल गई है।  
 यौ०—हिलाना मिलना = (१) मेल जोल के साथ होना। घनिष्ठ  
 संबंध रखना। (२) मेल जोल से होना। एकता साथ रखना।  
 (३) एक को हीना। परस्पर गहरे मिय-होना। जैसे,—दोनों  
 खूब हिल मिल गए हैं।  
 मुहा०—हिल मिलकर = (१) मेल जोल के साथ। घनिष्ठता और  
 मैत्री के साथ। एक ही होकर। गुल्ल के साथ। (२) सम्मिलित  
 होकर इकट्ठा होकर। एकत्र होकर। उ०—हिल मिल पाया  
 परस्पर खेल्हि, सोभा घरनि न जाई।—गीत। हिलाना मिश्र  
 या हिला गुला = (१) मेल जोल में भाया हुआ। घनिष्ठ संबंध  
 रखता हुआ। सुदृढ़ भाव रखता हुआ। (२) पक्का हुआ। परिचित  
 और अनुरक्त। जैसे,—यह बच्चा तुमसे खूब हिला  
 गुला है।  
 कि० प्र० [ देश० ] प्रवेश करना। घुसना। ( विशेषतः  
 पानी में )  
 हिलसा—संज्ञा स्त्री० [ सं० हिलसा ] एक प्रकार की मछली जो  
 चिपटी और बहुत कटिंदार होती है।  
 हिलाना—कि० सं० [ हिं० हिलाना ] (१) डुलाना। चलायमान  
 करना। हलकत देना। जैसे,—दूँडे बँडे पर हिलाना।  
 (ख) लड़ी हिलाना। (२) स्थान से उठाना। टाकना।

दराना। जैसे,—(क) जब हम पैद गए, तब कौम हिला सकता है। (ख) इस मारी पत्थर को जगह से हिलाना मुश्किल है। (३) कंगाना। कपित करता। (४) नीचे ऊपर या इधर उधर डुलाना। सुलाना। जैसे,—मुगदर हिलाना, खिर हिलाना।

संयो० क्रि०—ढाकना।—देना।

क्रि० ता० [ हि० हिलाना ] (१) परिचित और अनुरक्त करना। परचना। घनिष्ठता स्थापित करना। जैसे,—छोटे बच्चे को हिलाना, जानवरों को हिलाना।

क्रि० सं० [ देरा० ] प्रवेश करना। घुसाना। पैठाना। ( विशेषतः पानी में )

हिलोहर, हिलोरा—संज्ञा पुं० [ सं० हिलोहर ] हवा के झोंके आदि से जल का उठना और गिरना। तरंग। लहर। मौम। उ०—साँदे सितासित को मिलियो, तुलसी झूलै दिय हेरि हिलोरे।—तुलसी।

क्रि० प्र०—उठना।

मुहा०—हिलोरे लेना = तरंगित होना। लहराना।

हिलोराना—क्रि० ता० [ हि० हिलोरा + ना (प्रय०) ] (१) जल को धुप्य और तरंगित करना। पानी को हल प्रकार हिलाना कि लहरें उठें। (२) लहराना। इधर उधर हिलाना डुलाना।

हिलोल—संज्ञा पुं० दे० "हिलोल"। "हिलोर"।

हिलोल—संज्ञा पुं० दे० "हिलोरे"।

हिलोल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हिलोरा। तरंग। लहर। (२) भावद की तरंग। मौज। (३) एक शक्तिबंध या भासन। ( कामशास्त्र ) (४) एक राग का नाम। हिंदोल।

हिलोलान—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० हिलोलित ] (१) तरंग उठना। लहराना। (२) दोलन। झुलना।

हिल्ले—संज्ञा पुं० [ सं० हिम ] बर्फ। पाला।

हिल्ले—संज्ञा पुं० [ सं० हिम + भाति ] बर्फ। पाला। तुपार।

मुहा०—हिल्ले होना = बहुत ठंडा होना। बहुत सर्द होना।

हिस—संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) अनुभव। ज्ञान। (२) संज्ञा। होय। चेतना।

मुहा०—बैहिस व हरकत = निश्चेष्ट और निःसंघ। बेहोश और घुन। हिसका—संज्ञा पुं० [ सं० ईर्ष्या, हिं० हींस ] (१) ईर्ष्या। डाढ़। (२) स्वर्णा। देखादेखी किसी बात की हल्ला। (३) किसी की बराबरी करने की इच्छा।

यौ०—हिसका हिसकी = परस्पर स्वर्णा। एक दूसरे के बराबर होने की घुन।

हिसाव—संज्ञा पुं० [ म० ] (१) गिनती। गणित। लेखा। कोई संख्या, वस्तु परिमाण आदि में कितनी उहरेगी, इसके निर्णय की प्रक्रिया। जैसे,—(क) अपने रुपये का हिसाव करो

कितना होगा। (ख) यह हिसाव लगाओ कि यह चार घंटे में कितनी दूर जायगा।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

यौ०—हिसाव किताय, हिसाम बशी, हिसारप्योर।

(२) लेन देन या भामदनी, खर्च आदि का लिखा हुआ व्योरा। लेखा। उचापत।

मुहा०—हिसाव चलना = (१) लेन देन का लेखा रहना। (२) उधार लिखा जाना। हिसाव चुकाना या चुकता करना = जो कुछ विभे निकलता हो उसे देना। देना साफ करना। हिसाव जाँचना = लेखा देखना कि ठीक है या नहीं। हिसाव जोड़ना = भ्रम्य भ्रम्य कई रकमों की गीबान लगाना। कई भ्रम्य भ्रम्य भ्रमों का योगफल निकालना। हिसाव करना = जो विभे धरना हो उसे देना। तनखाइ, राम या मजदूरी के मदे जो कुछ बचया निकलता हो, उसे चुकाना। जैसे—हमारा हिसाव कर दीजिये, भय हम नौकरी न करेंगे। हिसाव देना = लेखा समझाना। जमा खर्च का व्योरा बताना। हिसाव पर चढ़ना = बर्दी में लिखा जाना। लेखे में टँकना। हिसाव बराबर करना = (१) कुछ दे या लेकर लेना और देना बराबर करना। लेन देन का हिसाब साफ करना। (२) भगना काय पूरा करना। हिसाव वैशाक करना = दे० "हिसाव चुकाना"। हिसाव बंद करना = लेखा धो न चलाना। लेनदेन बंद करना। हिसाब में जमा होना =

(१) किसी से पारें हुई रकम का लिखा जाना। (२) लेन देन के लेखे में पाने से ऊपर पारें हुई रकम का भ्रम्य लिखा जाना। हिसाब में लगाना = उधार या लेन देन में शामिल करना। हिसाब लेना = यह पृथक् कि कितनी रकम कहां खर्च हुई। (किसी से)

हिसाब समझाना = (किसी से) भामदनी और खर्च का व्योरा पृथक्। हिसाब समझाना = भामदनी खर्च आदि का व्योरा बताना। वैहिसाव = (१) बहुत अधिक। अत्यंत। इतना कि पिनती या नाप आदि न हो सके। हिसाब रखना = भामदनी, खर्च आदि का व्योरा लिखकर रखना। भाय व्यय आदि का लेखबंद विवरण रखना। हिसाब चलाना या लगाना = लेख निकलना। लघोयत लिखना। हिसाव छेड़ना = (१) ठीक ठीक लेखा आदि वैशाक प्रबंध हो जाना। इच्छातुसार सब गणनों की व्यवस्था होना।

(२) सुचीता होना। सुपाम होना। भावरकता पूरी होना। जैसे,—इतने से हमारा हिसाब नहीं धैटेगा। हिसाब से =

(१) भंडाज से। संवम से। परिमित। जैसे,—हिसाब से खर्च किया करो। (२) लेखे के अनुसार। लिखे हुए व्योरे के सुचारिक। जैसे,—हिसाब से तुम्हारा जितना निकले उतना खो।

येंदा या देदा हिसाव = (१) कठिन कार्य। मुश्किल काम। (२) अन्वयस्था। गणक व्यवहार या रीति। पचा

हिसाव = ठोक ठोक हिसाब। पूरा हिसाब। सुपम विवरण। कचा हिसाव = रमल विवरण। मोय व्योरा। पैसा व्योरा जो

हिसाव में जमा होना =

(१) किसी से पारें हुई रकम का लिखा जाना। (२) लेन देन के लेखे में पाने से ऊपर पारें हुई रकम का भ्रम्य लिखा जाना। हिसाब में लगाना = उधार या लेन देन में शामिल करना। हिसाब लेना = यह पृथक् कि कितनी रकम कहां खर्च हुई। (किसी से)

हिसाब समझाना = (किसी से) भामदनी और खर्च का व्योरा पृथक्। हिसाब समझाना = भामदनी खर्च आदि का व्योरा बताना। वैहिसाव = (१) बहुत अधिक। अत्यंत। इतना कि पिनती या नाप आदि न हो सके। हिसाब रखना = भामदनी, खर्च आदि का व्योरा लिखकर रखना। भाय व्यय आदि का लेखबंद विवरण रखना। हिसाब चलाना या लगाना = लेख निकलना। लघोयत लिखना। हिसाव छेड़ना = (१) ठीक ठीक लेखा आदि वैशाक प्रबंध हो जाना। इच्छातुसार सब गणनों की व्यवस्था होना।

(२) सुचीता होना। सुपाम होना। भावरकता पूरी होना। जैसे,—इतने से हमारा हिसाब नहीं धैटेगा। हिसाब से =

(१) भंडाज से। संवम से। परिमित। जैसे,—हिसाब से खर्च किया करो। (२) लेखे के अनुसार। लिखे हुए व्योरे के सुचारिक। जैसे,—हिसाब से तुम्हारा जितना निकले उतना खो।

येंदा या देदा हिसाव = (१) कठिन कार्य। मुश्किल काम। (२) अन्वयस्था। गणक व्यवहार या रीति। पचा

हिसाव = ठोक ठोक हिसाब। पूरा हिसाब। सुपम विवरण। कचा हिसाव = रमल विवरण। मोय व्योरा। पैसा व्योरा जो

हिसाव में जमा होना =

(१) किसी से पारें हुई रकम का लिखा जाना। (२) लेन देन के लेखे में पाने से ऊपर पारें हुई रकम का भ्रम्य लिखा जाना। हिसाब में लगाना = उधार या लेन देन में शामिल करना। हिसाब लेना = यह पृथक् कि कितनी रकम कहां खर्च हुई। (किसी से)

हिसाब समझाना = (किसी से) भामदनी और खर्च का व्योरा पृथक्। हिसाब समझाना = भामदनी खर्च आदि का व्योरा बताना। वैहिसाव = (१) बहुत अधिक। अत्यंत। इतना कि पिनती या नाप आदि न हो सके। हिसाब रखना = भामदनी, खर्च आदि का व्योरा लिखकर रखना। भाय व्यय आदि का लेखबंद विवरण रखना। हिसाब चलाना या लगाना = लेख निकलना। लघोयत लिखना। हिसाव छेड़ना = (१) ठीक ठीक लेखा आदि वैशाक प्रबंध हो जाना। इच्छातुसार सब गणनों की व्यवस्था होना।

(२) सुचीता होना। सुपाम होना। भावरकता पूरी होना। जैसे,—इतने से हमारा हिसाब नहीं धैटेगा। हिसाब से =

(१) भंडाज से। संवम से। परिमित। जैसे,—हिसाब से खर्च किया करो। (२) लेखे के अनुसार। लिखे हुए व्योरे के सुचारिक। जैसे,—हिसाब से तुम्हारा जितना निकले उतना खो।

येंदा या देदा हिसाव = (१) कठिन कार्य। मुश्किल काम। (२) अन्वयस्था। गणक व्यवहार या रीति। पचा

हिसाव = ठोक ठोक हिसाब। पूरा हिसाब। सुपम विवरण। कचा हिसाव = रमल विवरण। मोय व्योरा। पैसा व्योरा जो

भ्रूय हो। चलता हिंसाय = तेन देन का लेखा जो जारी हो।  
तेन देन या उधार बिन्दी का जारी सिद्धसिद्ध।

(२) गणित विद्या। यह विद्या जिसके द्वारा संख्या, मान  
आदि निर्धारित हो। जैसे,—यह लड़का हिंसाय में कमजोर  
है। (३) गणित विद्या का प्रश्न। गणित की समस्या।  
जैसे,—चार में से मैंने दो हिंसाय किए हैं।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

(४) प्रत्येक वस्तु या निर्दिष्ट संख्या या परिमाण का मूल्य  
जिसके अनुसार कोई वस्तु बेची जाय। भाव। दर। रेट।  
जैसे,—नारंगियाँ किस हिंसाय से छापे हो?

मुद्दा०—हिंसाय से = (१) परिमाण, क्रय या गति के अनुसार।  
अनुसार। मुनाबिक। जैसे,—जिस हिंसाय से दुर्द बेड़ेगा  
उसी हिंसाय से बुखार भी। (२) विचार से। ध्यान से।  
शेका से। जैसे,—कद के हिंसाय से हाथी की भालें जोटी  
होती हैं।

(५) नियम। फ़ायदा। व्यवस्था। यँघो हुई रोति या ढंग।  
जैसे,—तुम्हारे जाने आने का कोई हिंसाय भी है, या यँघो ही  
जब चाहते हो चल देते हो? (६) निर्णय। निश्चय।  
धारणा। समझ। मत। विचार। राय। जैसे,—(क) हमारे  
हिंसाय से जैसे तुम लेंगे वे। (ख) हमारे हिंसाय से तो  
दोनों बराबर हैं।

मुद्दा०—अपने हिंसाय या अपने हिंसाय से = अपनी समक के  
अनुसार। अपनी जान में। अपने विचार में। लेले में। जैसे,—  
अपने हिंसाय तो हम अच्छा ही करते हैं, तुम जैसा समझो।

(७) हाल। दशा। अवस्था। स्थिति। जैसे,—उनका हिंसाय  
न प्यो, खूब मनमानी कर रहे हैं। (८) चाल। व्यवहार।  
रहन। जैसे,—उनका यही हिंसाय है, कुछ सुधार नहीं रहे  
हैं। (९) ढंग रीति। तरीका। जैसे,—(क) तुम्हें ऐसे  
हिंसाय से चलना चाहिए कि कोई घुरा न कह सके। (ख)  
उनका हिंसाय ही कुछ और है। (१०) किराया।  
मितव्यय। जैसे,—वह बड़े हिंसाय से रहता है, तब रुपया  
बचाता है। (११) हृदय या प्रकृति की परस्पर  
अनुकूलता। मेल।

मुद्दा०—हिंसाय बैठना = पटरी बैठना। मेल मिलना। प्रकृति की  
समानता होना।

हिंसाय किताय—संज्ञा पुं० [ भ० ] आगदनी, खर्च आदि का  
ध्वीरा जो लिखा हो। वस्तु या धन की संख्या, आय,  
व्यय आदि का लेखबद्ध विवरण। लेखा। जैसे,—कहाँ कुछ  
हिंसाय भी रखते हो कि यँघो ही समानता खर्च करते हो।

मुद्दा०—हिंसाय किताय देखना = लेखा जीवना।

(२) ढंग। चाल। रीति। फ़ायदा। जैसे,—उनका हिंसाय  
किताय ही कुछ और है।

हिंसाय चोर—संज्ञा पुं० [ भ० हिंसाय + चि० चोर ] यह जो व्यवहार  
या लेखे में कुछ रकम द्रव्य लेता हो।

हिंसाय बही—संज्ञा स्त्री० [ भ० हिंसाय + हि० बही ] यह पुस्तक  
जिसमें आय व्यय या देन देन आदि का ध्यौरा लिखा  
जाता हो।

हिंसाय—संज्ञा पुं० [ का० ] फारसी संगीत की २४ शोभाओं में  
से एक।

हिंसिया—संज्ञा स्त्री० [ सं० हिंया ] (१) दूसरे की देखादेखी कुछ  
करने की प्रवृत्त दृष्टा। रूपदारी। परावरी करने का भाव।  
दोड़। (२) समता। तुल्य भावना। पटतर। उ०—  
जँ अस्त हिंसिया करहि नर जद विवेक अभिमान। पाहि  
कलपु भरि नरक महुँ, जीय कि ईस समान।—तुलसी।

हिंसा—संज्ञा पुं० [ भ० हिंसः ] (१) उतनी वस्तु जितनी कुछ  
अधिक वस्तु में से अलग की जाय। भाग। अंश। जैसे,—  
१०० के २५—२५ के चार हिंसे करो। (ख) जमीन चार  
हिंसों में बँट गई।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—लगाना।

(२) टुकड़ा। खंड। जैसे,—इस गन्ने के चार हिंसे  
करो। (३) उतना अंश जितना प्रत्येक को विभाग करने  
पर मिले। अधिक में से उतनी वस्तु जितनी बाँटे जाने पर  
किसी को प्राप्त हो। बखरा। जैसे,—तुम अपने  
हिंसे में से कुछ जमीन इसको दे दो। (४) बाँटने की  
क्रिया या भाव। विभाग। तक्सीम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—लगाना।

(५) किसी विस्तृत वस्तु (जैसे,—पेट, घर आदि) का  
विशेष अंश जो और अंशों से किसी प्रकार की सीमा द्वारा  
अलग हो। विभाग। खंड। जैसे,—(क) इस मकान के  
पिछले हिंसे में किताबेंदार हैं। (ख) कोठी का अछा  
हिंसा उसके अधिकार में है। (४) किसी बड़ी या विस्तृत  
वस्तु के अंतर्गत कुछ वस्तु या अंश। अधिक के भीतर का  
कोई खंड या टुकड़ा। जैसे,—यह पैड़ हुनिया के हर हिंसे  
में पाया जाता है। (५) अंग। अवयव। अंतर्भूत वस्तु।  
जैसे,—बदन के किस हिंसे में दर्द है? (६) किसी वस्तु  
के कुछ अंश के भोग का अधिकार। किसी व्यवसाय के  
हानि-लाभ में योग। साझा। शिरकत। जैसे,—कंपनी में  
हिंसा, दूकान में हिंसा, मकान में हिंसा।

हिंसेदार—संज्ञा पुं० [ भ० हिंसः + का० दार (क्रय०) ] (१) किसी  
वस्तु के किसी भाग पर अधिकार रखनेवाला। यह जिसे  
किसी वस्तु कुछ अंश के भोग का अधिकार हो। वह जिसे  
कुछ हिंसा मिला हो। जैसे,—इस मकान के चार हिंसेदार  
हैं। (२) किसी व्यवसाय के हानि लाभ में औरों के साथ  
सम्मिलित रहनेवाला। शोभाग में शरीक। साझेदार।

जैसे,—कंपनी के हिस्सेदार, बंके के हिस्सेदार । (३) भागी ।  
कारीक ।

हिदिनामा—कि० प्र० [ मनु० दि० रि० ] पोढ़ों का बोलना ।  
दिनहिदिनामा । हींसना । उ०—देखि दक्षिन दिशि ह्य  
हिदिनाहीं । जनु मितु पंख बिहग अकुलाहीं—तुलसी ।

हींग—संज्ञा स्त्री० [ सं० हिंज ] (१) एक छोटा पौधा जो अफगानिस्तान  
और फ़ारस में भाप से भाप और बहुत होता है । (२)  
इस पौधे का जमाया हुआ दूध या गाँद जिसमें यदी तीक्ष्ण  
गंध होती है और जिसका व्यवहार दवा और निर्य के  
मसाले में ब्यार के लिये होता है ।

विशेष—हींग का पौधा दो तरह का होता है और  
इसकी पत्तियों का समूह एक गोल राशि के रूप में  
होता है । इसकी कई जातियाँ होती हैं । कुछ के पौधे तो  
साठ ही दो साठ रहते हैं और कुछ की पंदा बहुत दिनों  
तक रहती है, जिसमें से समय समय पर नई नई टहनियाँ  
और पत्तियाँ निकला करती हैं । पिछले प्रकार के पौधों की  
हींग घटिया होती है और 'हींगदा' कहलाती है । हींग के  
पौधे अफगानिस्तान, फ़ारस के पूर्वी हिस्से ( सुरासान,  
यज्द ) तथा तुर्किस्तान के दक्षिणी भाग में बहुतायत से  
होते हैं । पर भारत में जो हींग आती है, वह कंचारी हींग  
( अफगानिस्तान की ) है । हींग का व्यवहार ब्यार के  
अतिरिक्त औषध में भी होता है । यह शूलनाशक, वायु-  
नाशक, कफ निघालनेवाली, कुछ रेशक और उत्तेजक होती  
है । पेट के दर्द, वायुगोत्र और हिस्टीरिया ( मूठों रोग )  
में यह बहुत उपकारी होती है । आयुर्वेद में इसके योग से  
कई पाचक पूर्ण और गोलियाँ बनती हैं । हींग में व्यापारी  
बनेक प्रकार की मिलावट करते हैं । शुद्ध साठिस हींग  
'गलाब हींग' कहलाती है ।

हींगदा—संज्ञा पुं० [ हि० हींग + दा (प्रत्य०) ] एक प्रकार की  
घटिया हींग ।

हींछा—संज्ञा स्त्री० दे० "हृच्छा" ।

हींठी—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की जौक ।

हींस—संज्ञा स्त्री० [ सं० ह्य ] पोढ़े या गंधे के बोलने का वाद्य ।  
रैक या दिनहिनाइट ।

हींसना—कि० प्र० [ हि० हीन + ना ] (१) पोढ़े का बोलना ।  
दिनहिदिनामा । उ०—हींसत ह्य, बहु धारन गाँव । जहाँ  
तहाँ वीरध हुँदुमि गाँव ।—केशव । (२) गद्दे का बोलना ।  
रैकना ।

हींसा—संज्ञा पुं० दे० "हिरसा" ।

हींसी—संज्ञा स्त्री० [ मनु० ] हींसने का वाद्य ।

हींम्य—[ सं० हि (निश्चयार्थक) ] एक अम्य जिसका व्यवहार

जोर देने के लिये या निश्चय, अनन्यता, अल्पता, परिमित  
तथा स्वीकृति आदि सूचित करने के लिये होता है ।

जीवे,—(क) आज हम रुपये लेदी लेंगे । (ख) यह गोपाल  
ही का काम है । (ग) मेरे पास दस ही रुपये हैं । (घ)  
अभी यह प्रयाग ही तक पहुँचा होगा । (च) अच्छा भाई  
दम न जायेंगे, गोपाल ही जायें । इसके अतिरिक्त और  
प्रकार के भी प्रयोग इस वाद्य के होते हैं । कभी इस वाद्य  
से यह ध्वनि निकलती है कि "भीरों की मान जाने दीमिय"  
जैसे,—तुम्हीं बतानो, इसमें हमारा क्या दोष ?

संज्ञा पुं० दे० "हिय", "हृद्य" ।

कि० प्र० प्रजमाया के 'हीनो' (= होना) क्रिया के भूतकाल  
'ही' (= या) का स्त्री रूप । धी । उ०—एक दिवस मेरे  
गुद भाप, मैं ही मथति दही ।—सूर ।

हीम—संज्ञा पुं० दे० "हिय" ।

हीक—संज्ञा स्त्री० [ सं० हिका ] (१) हिकी ।

कि० प्र०—आना ।

(२) हलकी अरुचिकर गंध । जैसे,—बकरी के दूध में से  
एक प्रकार की हीक आती है ।

कि० प्र०—आना ।

मुद्दा—हीक मारना = बसाना । रद रद हुंगी करना ।

हीचकना—कि० प्र० [ मनु० हिच० ] हिचकना । आगामीछा  
करना । जवदी प्रवृत्त न होना । उ०—कहत सारदहुँ के  
अति हीचे । सागर सोप कि जाहि उलीचे ।—तुलसी ।

हीछना—कि० प्र० [ हि० हींछ + ना ] हृच्छा करना । चाहना ।

हीछा—संज्ञा स्त्री० दे० "हृच्छा" ।

हीज—वि० [ देश० ] आठसी । महर । काहिल ।

हीठना—कि० प्र० [ सं० ऋषि, प्रा० ऋषिट्टा ] (१) पास जाना ।

समीप होना । पटकना । जैसे,—उमे अपने यहाँ हीठने न

देना । उ०—(क) क्षा क्षा अरुसि सरहसि किज जाना । हीठत

हुँदत जाइ पराना ।—कबीर । (ख) बहुत दिवस मैं हीठिया

शून्य समाधि लगाय । कहा परिगा गाँद में, दूरि परे

पछियाय ।—कबीर । (२) जाना । पहुँचना । उ०—(क)

जेदि बन सिंद न संचरे, पंछी नहीं उदाय । सो बन कबिरा

हीठिया, शून्य समाधि लगाय ।—कबीर । (ख) मन तो

कहै कब लाइए, चित्त कहै कब जाई । छै मासे के हीठ ते

आध कोस पर गाँव ।—कबीर ।

हीन—वि० [ सं० ] (१) परिवर्तक । छोटा हुआ । (२) रहित ।

जिसमें न हो । शून्य । वंचित । खाली । बिना । कबीर ।

जैसे,—शक्तिहीन, धनहीन, बलहीन, धीहीन । (२)

निद्रा कोटि का । नीचे दर्जे का । निहृष्ट । घटिया । जैसे,—

हीन जाति । (३) छोटा । नीच । घुरा । अल्प । खराब ।

कुसित । जैसे,—हीन कर्म । (४) तुच्छ । नापीन ।

जिसमें कुछ भी महत्व न हो। (५) सुख सम्बुद्धि रहित।  
हीन। जैसे,— हीन दूना। (६) पथभ्रष्ट। भटका हुआ।  
साथ या रास्ते से अलग जा पड़ा हुआ। जैसे,—पथहीन।  
(७) अल्प। कम। थोड़ा।

संज्ञा पुं० प्रमाण के अयोग्य साक्षी। घुरा गयाह।

विशेष—हीन साक्षी स्मृतियों में पाँच प्रकार के कहे गए हैं—  
जन्मवादी, क्रियावादी, नोपस्थायी, निरुत्तर और आहूत-  
प्रपञ्चयी।

(१) अधम नायक। (सद्विद्य)

हीनकर्मा-वि० [ सं० ] (१) यज्ञादि विधेय कर्म से रहित। अपना  
निर्दिष्ट कर्म या आचार न करनेवाला। जैसे,— हीनकर्मा  
ब्राह्मणः। (२) निकृष्ट कर्म करनेवाले। घुरा काम  
करनेवाला।

हीनकुल वि० [ सं० ] घुरे या नीच कुल का। घुरारै नदानं वा।

हीनक्रम संज्ञा पुं० [ सं० ] काव्य में एक दोष जो उस स्थान पर  
माना जाता है जहाँ जिस क्रम से गुण गिनाए गए हों, उसी  
क्रम से गुणी न गिनाए जायें। जैसे,—जग की रचना कहि  
कौन करी। केहू राखन कीजिय पैत्रधरी। भति कोपि कै  
कौन सँवार करै। हरिजू, हरजू, विधि बुद्धि ररे। यहाँ  
प्रश्नों के क्रम से उत्तर इस प्रकार होना चाहिए था—“विधि  
जू, हरिजू, हर बुद्धि ररे”। पर वैसा न होकर क्रम का  
भंग कर दिया गया है।

हीनचरित-वि० [ सं० ] जिसका आचरण घुरा हो।

हीनता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) अधभाव। राहिय। कमी।

(२) क्षुद्रता। दुच्छता। (३) ओछापन। (४) निम्न  
निकृष्टता।

हीनत्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] हीनता।

हीनपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गिरा हुआ पक्ष। तर्क में किसी  
की ऐसी बात जो प्रमाण द्वारा सिद्ध न हो सके। ऐसी  
बात जो दलीलों से साबित न हो सके। (२) कमज़ोर  
सुक्रदमा।

हीनयत्न-वि० [ सं० ] शक रहित या जिसका यत्न घट गया हो।  
शक्तिरहित। कमज़ोर।

हीनवाद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव के एक गुण का नाम।

हीनबुद्धि-वि० [ सं० ] बुद्धि-रहित। दुर्बुद्धि। जड़। मूर्ख।

हीनमति-वि० [ सं० ] बुद्धि-रहित। जड़। मूर्ख।

हीनमूर्ख-संज्ञा पुं० [ सं० ] कम दाम। (याज्ञवल्क्य)

हीनयान-संज्ञा पुं० [ सं० ] यौद्ध सिद्धांत की आदि और प्राचीन  
शाखा जिसके ग्रंथ पांडी भाषा में हैं।

विशेष—इस शाखा का प्रचार एशिया के दक्षिण भागों में—  
सिंहल, परमा और स्वाम आदि देशों में—है; इसी से यह  
दक्षिण शाखा के नाम से भी प्रसिद्ध है। 'यान' का अर्थ है

निर्वाण या मोक्ष की ओर ले जानेवाला रथ। हीनयान के  
सिद्धांत सीधे सादे रूप में अर्थात् उसी रूप में जिध रूप  
में गौतम बुद्ध ने उनका उपदेश किया था, हैं। पीछे 'महा-  
यान' शाखा में न्याय, योग, संन्र आदि यद्दुत से विषयों  
के सम्मिलित होने से जटिलता आ गई। वैदिक धर्मानुयायी  
गैयारिकों के साथ खंडन बंदन में प्रवृत्त होनेवाले बौद्ध  
महायान शाखा के थे जो क्षत्रियवाद आदि सिद्धांतों पर  
बहुत जोर देते थे। हीनयान साराधना और उपासना का  
तत्व न रहने से जनसाधारण के लिये रूखा था; इससे  
'महायान शाखा' के बहुत अनुयायी हुए। जो बुद्ध, बोधि-  
सत्त्वों, बुद्धि की शक्तियों ( जो तांत्रिकों ) की महाविपार्थ  
हैं, आदि के अनुग्रह के लिये पूजा और उपासना में प्रवृत्त  
रहने लगे। 'हीनयान' का यह अर्थ लिया गया कि उसमें  
बहुत कम लोगों के लिये जगह है।

हीनयोग-वि० [ सं० ] योग-भ्रष्ट।

संज्ञा पुं० उचित परिमाण से कम औपधि मिलाना।  
(आयुर्वेद)

हीनयोनि-वि० [ सं० ] नीच जाति का। जिसकी उत्पत्ति अच्छे  
कुल में न हो।

हीनरस-संज्ञा पुं० [ सं० ] काव्य में एक दोष जो किसी रस का  
वर्णन करते समय उस रस के विरुद्ध प्रसंग छाने से होता  
है। यह वास्तव में रस-विरोध ही है, जैसा कि केशव के  
इस उदाहरण से प्रकट होता है—'द्वि दधि', 'दीनो उचार  
हो केशव', 'दागि कदा जब मोल ले वैई'। 'दीने बिना  
तो गईं लु गईं, 'न गईं, न गईं घर ही फिरि जैई'। 'तो हित  
वैर क्रियो', 'हित को कब ? वैर किए मए नीकेह वैई'। इस  
प्रश्नोत्तर में जो रोग भरी कहा सुनी है, वह अंगार रस की  
पोषक नहीं है।

हीनवर्ण-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीच जाति या वर्ण। शूद्र वर्ण।

हीनवाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मिथ्या तर्क। फुल्ल की बहस।  
कमज़ोर दलील। (२) मिथ्या साक्ष्य। इस्वी गवाही जितमें  
पुकार विरोध हो।

हीनवादी-संज्ञा पुं० [ सं० ] हीनवादिन्। [ स्त्री० हीनवादिनी ] (१)

यह जिसका छाया हुआ अभियोग गिर गया हो। वह  
जिसका दावा खारिज हो गया हो। 'वह जो मुक्रदमा हार  
जाय। (२) परस्पर विरोधी कथन करनेवाला। विप्राप  
बयान करनेवाला गवाह।

हीनधीर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] हीनयत्न। कमज़ोर।

हीन-द्वयात्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जीवन काल। 'यह' समय  
जिसमें कोई जीता रहा हो।

मुहूर्त-हीन-द्वयात् में = जीवन काल में। जितनी में। कौते की।  
अर्थ = जब तक जीवन रहे, 'तब तक।' जब तक कोई जीता

रहे तब तक । जिदगी भर तक के लिये । जैसे,—हीन-हयात मुभाप्री ।

**हीनांग-वि० [ सं० ]** (१) जिसका कोई अंग न हो । उद्धित अंगवाला । जैसे,—खला, डँगड़ा इत्यादि । (२) जो सर्वांग-पूर्ण न हो । अपूर्ण । नायुक्मल ।

**हीनार्थ-वि० [ सं० ]** (१) जिसका कार्य सिद्ध न हुआ हो । विफल । (२) जिसे लाभ न हुआ हो ।

**हीनोपमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]** काव्य में वह उपमा जिसमें बड़े उपनेय के लिये छोटे उपमान लाया जाय । बड़े की छोटे से उपमा ।

**हीयञ्-संज्ञा पुं०** दे० "हिय" ।

**हीयराञ्-संज्ञा पुं०** दे० "हियरा" ।

**हीयाञ्-संज्ञा पुं०** दे० "दिया" ।

**हीर-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (१) हीरा नामक रत्न । (२) पत्र । विजली । (३) सर्प । सर्प । (४) सिंह । (५) मोती की माला । (६) शिव का एक नाम । (७) छप्पय के १२वें भेद का नाम । (८) एक वर्णद्वय जिसके प्रत्येक चरण में मंग, सगण, नराण, जगण, नागण हीर रणण होते हैं । (९) एक मात्रिक छंद जिसमें १,१ और ११ के विराम से २३ मात्राएँ होती हैं ।

**हीरा पुं० [ हिं० हीरा ]** (१) किसी वस्तु के भीतर का सार भाग । मूदा या सत । सार । जैसे,—औ का हीर, गेहूँ का हीर, सौंफ का हीर । (२) लकड़ी के भीतर का सार भाग जो छाल के नीचे होता है । जैसे,—इसके हीर की लकड़ी मजबूत होती है । (३) शरीर की सार वस्तु । घानु । यीर्य । जैसे,—उसकी देह का हीर तो निकल गया । (४) शक्ति । बल ।

**हीरक-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (१) हीरा नामक रत्न । (२) हीर छंद ।

**हीरा-संज्ञा पुं० [ सं० हीरक ]** (१) एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो अपनी चमक और कड़ाई के लिये प्रसिद्ध है । यज्ञमणि ।

**विशेष्य-आधुनिक रसायन-शास्त्र के अनुसार हीरा कायन या कोयले का ही विशेष रूप है जो प्राकृतिक दशा में पाया जाता है । यह संसार के सब पदार्थों से कड़ा होता है ; इसी से कवि लोग कठोरता के उदाहरण के लिये इसका नाम छाया करते हैं, वैसे कि तुलसीदास जी ने कहा है— "सिरिस सुमन किसि येही हीरा ।" यह अधिकतर तो सफ़ेद अर्थात् बिना रंग का होता है ; पर पीले, हरे, नीले और कभी कभी काले हीरे भी मिल जाते हैं । यह रत्न सबसे बहुमूल्य माना जाता है और मित्र मित्र रंगों की आना या छाया देता है । रत्नरीक्षा की पुस्तकों में हीरे की पाँच छायाएँ कही गई हैं—खाल, प्रीली, काळी, हरी और श्वेत । व्यवहार के लिये हीरा कई रूपों में काटा जाता है जिससे प्रकाश छोड़ने**

के पदलों के बंध जाने से इसकी आभा बढ़ जाती है । इसके पहलू काटने में भी बड़ी तारीफ़ है । बहुत अच्छे हीरे को 'पहले पानी' का हीरा कहते हैं । रत्न-परीक्षा में हीरे के पाँच गुण कहे गए हैं—अठपहलू, उक्रेना होना, लघु, उज्वल और तुकीला होना । मुख्य दोष है—मसदोष । यदि बीच में मल (मैल) दिखाई दे तो बहुत क्षुब्ध कहा गया है । भाग कल हीरा दक्षिण अश्विना में बहुत पाया जाता है । भारतवर्ष की खानें अब प्रायः खाली हो गई हैं । 'पद्मा' आदि कुछ स्थानों में अब भी थोड़ा बहुत निकलता है । किसी समय दक्षिण भारत हीरे के लिये प्रसिद्ध था । जगप्रसिद्ध 'कोहेनूर' नाम का हीरा गोलकुंडे की खान का कहा जाता है ।

**यौ०—**हीरा कट = कई पदलों का कायन । वायमंड कट । डबल काट । **मुद्दा०—**हीरा खाना या हीरे की कनी चाटना = हीरे का चूर खारक आन-रहना करना ।

(२) बहुत ही अच्छा आदमी । नररत्न । (लाक्षणिक) जैसे,—वह हीरा आदमी था । (३) बहुत उत्तम वस्तु । बहुत बढ़िया या खोबी चीज़ । (लाक्षणिक) (४) दुबे भेदे की एक जाति ।

**हीरा कसीस-संज्ञा पुं० [ हिं० हीर + सं० कसीस ]** छोड़े का वह विकार जो गंधक के रासायनिक योग से होता है और जो देखने में कुछ हरापन लिए मटमैले रंग का होता है ।

**विशेष्य—**छोड़े की गंधक के तेज़ाब में गलाने से हीरा कसीस निकल सकता है ; पर इस क्रिया में लगत अधिक पड़ती है । खान के मैले छोड़े को हवा और सीध में छोड़ देने से भी कसीस निकलता है । हवा और सीध के प्रभाव से एक प्रकार का रस निकलता है जिसमें कसीस और गंधक का तेज़ाब दोनों रहते हैं । छोड़ेचूर का थोड़ा योग कर देने से सब का हीरा कसीस हो जाता है । हलका व्यवहार स्याही, रंग आदि बनाने में तथा औषध के लिये भी होता है ।

**हीरादोषो-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हीरा + दोष ]** विजयसाल का गौंद जो दूब के काम में आता है ।

**हीरानखी-संज्ञा पुं० [ हिं० हीरा + नख ]** एक प्रकार का बढ़िया धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका धावल बहुत महीन और सफ़ेद होता है ।

**हीरानाई-कि० सं० [ हिं० हिजना = धुलाना ]** खाद के लिये खेत में गाय, भेड़, शकरी आदि रखना ।

**हीरामन-संज्ञा पुं० [ हिं० हीरा + मणि ]** सूप या तोते की एक कल्पित आति जिसका रंग सोने का सा माना जाता है । इस प्रकार के तोते का पौर्ण कदलिनियों में बहुत आता है ।

**हील-संज्ञा पुं० [ दे० ]** भारत के पश्चिमी किनारे पर और सिंधल में पाया जायेवाला एक सदाबहार पेड़ जिससे एक प्रकार



का लसीला मोंद निकलता है। यह मोंद पाहर भेजा जाता है। इस पेद को 'भारद्व' और 'गोरक' भी कहते हैं।  
 † संज्ञा स्त्री० [ हि० गोड ] पनाले आदि का मंडा कीचड़। गलीज।

हीलना—क्रि० प्र० दे० "हिलना"।

हीला—संज्ञा पुं० [ प्र० हीलः ] (१) यथाना। मिस। किसी बात के लिये गद्दा हुआ कारण।

क्रि० प्र०—करना।—हूँवना।—होना।

यौ०—हीला हवाला = शर उबर का बहाना।

(२) किसी बात की सिद्धि के लिये निकला हुआ मार्ग। निमित्त। द्वार। यसीला। व्याज। जैसे,—हसी हीले से उसे चार पीसे मिल जायेंगे।

मुहा०—हीला निकलना = पला निकलना। टंग निकलना।

† संज्ञा पुं० [ हि० गोड ] कीचड़।

हूँ—अभ्य० दे० "हूँ"।

अभ्य० (१) एक शब्द जो किसी बात को सुननेवाला यह सूचित करने के लिये बोळता है कि हम सुन रहे हैं। (२) स्वीकृति-सूचक शब्द। हाँ।

हूँकारना—क्रि० प्र० दे० "हूँकारना"।

हूँकरना—क्रि० प्र० दे० "हूँकारना"।

हूँकार—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) लखनार। द्रव्य। घटने का शब्द। (२) धोर शब्द। गर्जन। गरज। (३) सीधकार। बिगवाड़। चिट्ठाहट।

हूँकारना—क्रि० प्र० [ सं० हूँकार + ना (प्रत्य०) ] (१) लखनारना। द्रव्यना। घटना। घोर शब्द करना। गर्जन करना। गर्जना। गरजना। (२) चित्ताघटना। चिट्ठाना।

हूँकारी—संज्ञा स्त्री० [ अनु० हूँ + कारना ] (१) 'हूँ' करने की क्रिया। यका की बात सुनना सूचित करने का शब्द जो श्रोता बीच बीच में बोळता जाता है। (२) स्वीकृति-सूचक शब्द। मानना या कबूल करना प्रकट करने का शब्द। हाँ।

संज्ञा स्त्री० [ सं० हूँडि = परि + धारी ] सुमाय के साथ हूँडी लकीर जो अंक के आगे रूपया या रुकम सूचित करने के लिये लगा दी जाती है। बिकारी। जैसे,—१; ॥१।

हूँड—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मेढ़ा। मेप। (२) बाघ। व्याघ्र। (३) सूअर। प्राम शूकर। (४) जड़वृद्धि। मूर्ख। (५) राक्षस। (६) अनाज की धाल। (७) एक धर्वर जाति। (महाभारत)

हूँडन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शिंच के एक गण का नाम। (काशी संघ) (२) सुन या स्वयं हो जाना। मारा जाना। (अंग का)

हूँडा—संज्ञा पुं० [ सं० ] भाग के प्रदकने का शब्द।

संज्ञा पुं० [ हि० हूँडी ] यह रूपया जो किसी किसी जाति में पर पदा से कन्या के रिता की ब्याह के लिये दिया जाता है। हुंसा भाड़ा—संज्ञा पुं० [ हि० हूँडी + भाड़ा ] महसूक, भाड़ा आदि सब कुछ पैसक कहीं पर माल पहुँचाने का ठेका।

हुँडार—संज्ञा पुं० [ सं० हुँड = मेघ + परि = शत्रु ] मेदिनी। बीग।

हुँदायन—संज्ञा स्त्री० [ हि० हूँडी ] (१) वह रुकम जो हुँडी लिखने के समय दस्तर की तरफ पर काटी जाती है। (२) हुँडी की दूर।

हुँडी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) वह पत्र या कागज़ जिस पर एक महाजन दूसरे महाजन को, जिससे लेन-देन का व्यवहार होता है, कुछ रूपया देने के लिये लिखकर किसी को रूप के बदले में देता है। निधिपत्र। छोटपत्र। चेक।

क्रि० प्र०—बेचना।—लिपना।—लेना।

यौ०—हुँडी-पुराता, हुँडी-बही।

मुहा०—(किसी पर) हुँडी बनना = किसी के नाम हुँडी लिखना। हुँडी का व्यवहार = हुँडी के द्वारा लेन-देन का व्यवहार। हुँडी पटना = हुँडी के रूप का नुकसा होना। हुँडी भेजना = हुँडी के द्वारा धोरे रकम भेजा करना। हुँडी का न पटना = हुँडी के रूप का नुकसा न होना। हुँडी सकारना = हुँडी के रूप का देना स्वीकार करना। दर्जनी हुँडी = वह हुँडी जिसके रूप से रिपति को नुकसा कर देने का नियम हो। मियादी हुँडी = वह हुँडी जिसके रुपये को मिति के बाद देने का नियम हो।

(२) उधार रूपया देने की एक रीति जिसके अनुसार लेनेवाले को साल भर में २०) का २५) या १५) का २०) देना पड़ता है।

हुँडी यही—संज्ञा स्त्री० [ हि० हुँडी + यही ] यह किताब या बही जिसमें सब तरह की हुँदियों की नक़ल रहती है।

हुँडी बेंत—संज्ञा पुं० [ देश० हुँडी + हि० बेंत ] एक प्रकार का बेंत जिसे मयूरी बेंत भी कहते हैं।

हुँत—अभ्य० [ प्रा० विभक्ति 'हिते' ] (१) पुरानी हिंदी की पंचमी और तृतीया की विभक्ति। से। उ०—(क) तेहि बंदि हुँत सुटे जो पाया। (ख) जब हुँत कहिगं पंरि सँदेसी। (ग) तब हुँत तुम बिनु रहै न जोऊ।—जायसी। (२) लिये। नितिप। घास्ते। खातिर। उ०—तुम हुँत मँडप गहँ परदेसी।—जायसी। (३) द्वारा। झरिये से। उ०—उब हुँत देखै पापैउ दरस गोसाईँ कैर।—जायसी।

हुँथा—संज्ञा पुं० [ देश० ] ससुद्र की चढ़ती लहर। ज्वार। (लता०)

हुँमी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गाय के ईमाने का शब्द।

हुँगी—अ० [ विदिक सं० उप = भोर, प्रागे; प्रा० उप, हि० क ] अतिरेक-सूचक शब्द। कथित के अतिरिक्त और भी। जैसे,—रामहु = राम भी। हमहु = हम भी। उ०—हमहु कहब सब उकरमुवाती।—तुलसी।

**दुर्भा**—प्रत्य० दे० "वहर्भा" ।  
 संज्ञा पुं० [ भृजु० ] गीदूषों के बोलने का वाद्य ।  
**दुष्माना**—कि० प्र० [ भृजु० दुर्भा ] "दुर्भा दुर्भा" करना । ( गीदूषों का ) बोलना । उ०—अंगुक्त-निकर करकट कहहिं । खादि, दुर्भादि, अभादि वपददि ।—दुलसी ।  
**दुष्क**—संज्ञा पुं० [ भ० ] (१) कैंटिया । देखी कील । (२) दो वस्तुओं को एक में जोड़ने का सूका दुष्भा कैंटा । अँकुसी । अँकुषी । (३) नाय में वह लक्ष्मी जिसमें टाँड़े को उड़ारा या फँसाकर बछाते हैं ।  
 संज्ञा स्त्री० [ देरा० ] एक प्रकार का दर्द जो प्रायः पीठ में किसी स्थान की नस पर होता है ।  
**कि० प्र०—**पढ़ना ।  
**दुष्कना**—संज्ञा पुं० [ देरा० ] एक पक्षी जो 'सोहन-चिदिया' के नाम से प्रसिद्ध है ।  
**कि० प्र० [ देरा० ]** भूल जाना । विस्मृत होना ।  
**कि० सं०** धार या निदाना चूकना । छद्म प्रप होना ।  
 खाड़ी जानी ।  
**दुष्करना**—कि० प्र० दे० "दुष्करना", "दुष्कारना" ।  
**दुष्कर पुकार**—संज्ञा स्त्री० [ भृजु० ] कलेजों की धक्कन । दिख की केंपकैनी । हृत्कंघ । घबराहट । अचीरता ।  
**मुद्दा**—कलेजा दुष्कर पुकार करना = (१) मय या भाराघ से हृदय में बैरकैनी या भाराघि होना । डर या घबराहट से दिक् धरकना । (२) मय या घबराहट होना । चित्त अचीर होना ।  
**दुष्कारना**—कि० प्र० दे० "दुष्कारना" ।  
**दुष्कर्म**—संज्ञा पुं० दे० "दुष्कर्म" ।  
**दुष्कर दुष्कर**—संज्ञा स्त्री० [ भृजु० ] दुर्बलता, रोग आदि में भास का स्पन्द । जर्द्री जर्द्री सौँस चकने की चक्कन ।  
**कि० प्र०—**करना ।—होना ।  
**दुष्कर्मत**—संज्ञा स्त्री० [ भ० ] (१) अधीनता में रखने की अवस्था, क्रिया या भाव । भाड़ा में रखने का भाव । प्रभुत्व । शासन । आधिपत्य । अधिकार ।  
**कि० प्र०—**करना ।—होना ।  
**मुद्दा**—दुष्कर्मत चक्रना = प्रभुत्व माना जाना । अधिकार माना जाना । दुष्कर्मत चक्राना = प्रभुत्व या अधिकार से चम होना ।  
 चरती को चरना देना । शैते,—उठो कुछ करो, धँडे धँडे दुष्कर्मत चक्राने से काम न होना । दुष्कर्मत जताना = अधिकार या भाषन प्रकट करना । प्रभुत्व प्रदर्शित करना । शेष दिखाना ।  
 (२) राग्य । शासन । राजनीतिक आधिपत्य । शैते,—वहाँ की अँतारों की दुष्कर्मत है ।  
**दुष्का**—संज्ञा पुं० [ भ० ] (१) तंबाकू का धूम्र सँचने के लिये विशेष रूप से बना हुआ एक लघु यंत्र जिसमें दो नलियाँ होती हैं—एक पानी भरें पेंडे से ऊपर की ओर चढ़ी जाती

है जिस पर तंबाकू सुलगाने की चिखम पैगई जाती है और दूसरी उसी पेंडे से बगल की ओर भाकी या तिरछी जानी है जिसका छोर मुँह में लगाकर पानी से होकर भाता हुआ तंबाकू का धूम्र सँचते हैं । गद्गद्दा । फुरसी ।  
**पौ०—**दुष्का पानी ।  
**मुद्दा**—दुष्का पीना = दुके की नली से तंबाकू का धूम्र मुँह में डीबना । दुष्का युद्धुद्दाना = दुष्का पीना । दुष्का शाना करना = दुके का पानी बदलना । दुष्का भरना = चिखम पर भाग तंबाकू बरीह रखकर दुष्का पीने के लिये तैयार करना ।  
 (२) दिवरा जानने का यंत्र । कंवास । (छा००)  
**दुष्का पानी**—संज्ञा पुं० [ भ० दुष्का + दि० पानी ] एक दूसरे के हाथ से दुष्का तंबाकू पीने और पानी पीने का व्यवहार । बिरादरी की रादरमा । आने जाने और खाने पीने आदि का सामाजिक व्यवहार ।  
**विशेष—**जिस प्रकार एक दूसरे के साथ जाना-पीना एक आति या बिरादरी में होने का चिह्न समझा जाता है, उसी प्रकार कुछ जातियों में एक दूसरे के हाथ का दुष्का पीना भी । ऐसी जातियों जब किसी को समान या बिरादरी से अलग करती हैं, तब उसके हाथ का पानी और दुष्का दोनों पीना बंद कर देती हैं ।  
**मुद्दा**—दुष्का पानी बंद करना = बिरादरी से अलग करना । समाज से बाहर करना । ( दंढलख ) दुष्का पानी बंद होना = बिरादरी से अलग किया जाना । समाज से बाहर लेना ।  
**दुष्काम**—संज्ञा पुं० [ भ० 'हाकिम' का बहुवचन रूप ] हाकिम लोग । अधिकारीवर्ग । बड़े भूजसर ।  
**दुष्क**—संज्ञा पुं० [ देरा० ] एक जाति का बंदर ।  
**दुष्कर्म**—संज्ञा पुं० [ भ० ] (१) बड़े का बचन जिसका पाठन कसैथ हो । कुछ करने के लिये अधिकार के साथ कहना । आज्ञा । आदेश ।  
**कि० प्र०—**करना ।—होना ।  
**मुद्दा**—दुष्कर्म उठाना = (१) दुष्क रद करना । मारा फेरना । दुष्कम धारी न रखना । (२) भाषा पाठन करना । सेवा करना । अधीनता में रहना । दुष्कर्म उठाना = भाषा का निपटारा करना । एक भाषा के विरुद्ध दूसरी भाषा प्रयत्न करना । दुष्कम की सामील = भाषा का पाठन । दुष्कर्म के मुनाषित काराबारे । दुष्कर्म चक्राना = (१) भाषा प्रवर्धित करना । (२) भाषा देना । अधिकारपूर्वक दूसरे को कुछ करने के लिये कहना । भाषन दिखाने हुए दूसरे की क्षम में लगाना । शैते,—धँडे धँडे दुष्कर्म चक्राने हो, सुद जाकर क्यों नहीं करते ? दुष्कम जारी करना = भाषा का प्रचार करना । दुष्कर्म तोड़ना = भाषा मंग करना । आदेश के विरुद्ध कर्ष्य करना । बड़े के बचन का पाठन न करना । दुष्कर्म देना = भाषा करना । दुष्कर्म चक्राना या बज्रा करना = (१) भाषा पाठन करना । बड़े

के कहे भनुसार करना। (२) सेवा करना। दुष्कर्म मानना = भावा पालन करना। बड़े के कहे भनुसार चलना। दुष्कर्म मिलना = भाग्य दिया जाना। आदेश होना। जैसे,—मुझे क्या दुष्कर्म मिलता है ? जो दुष्कर्म = जो दुष्कर्म होता है, उसे मैं करूँगा। (नौकर)

(२) कुछ करने की स्वीकृति। अनुमति। इजाजत। जैसे,—(क) सवारी निकालने का दुष्कर्म हो गया। (ख) घर जाने का दुष्कर्म मिल गया।

मुद्दा—दुष्कर्म लेना = भाग्य प्राप्त करना। अनुमति लेना। जैसे,—मुझे दुष्कर्म लेकर जाना चाहिए था।

(३) अधिकार। प्रमुख। शासन। इस्तिपार। जैसे,—दुष्कर्म बना रहे। (आशीर्वाद)

मुद्दा—दुष्कर्म में होना = अधिकार में होना। अधीन होना। शासन में होना। जैसे,—(क) मैं तो हर घड़ी दुष्कर्म में शामिल रहता हूँ। (ख) यह किसी के दुष्कर्म में नहीं है, मनमानी करता है।

(४) किसी कृत्या या धर्मशास्त्र की आज्ञा। विधि। नियम। शिक्षा। उपदेश। (५) तारा का एक रंग जिसमें काले रंग का पाव बना रहता है।

दुष्कर्मचौल—पंजा सी० [ ? ] लज्ज का गोंद।

दुष्कर्मनामा—पंजा पुं० [ म० + फा० ] वह कागज जिस पर कोई दुष्कर्म लिखा गया हो। आज्ञापत्र।

क्रि० प्र०—देना।—लिखना।—भेजना।

दुष्कर्मवरदार—पंजा पुं० [ म० + फा० ] (१) आज्ञानुवर्ती। आज्ञा के अनुसार चलनेवाला। आज्ञाकारी। सेवक। अधीन।

दुष्कर्म वरदारी—पंजा सी० [ म० + फा० ] (१) आज्ञा पालन। आज्ञाकारिता। (२) सेवा।

दुष्कर्म वि० [ म० दुष्कर्म ] (१) दूसरे की आज्ञा के अनुसार ही काम करनेवाला। दूसरे के कहे मुताबिक चलनेवाला। पशापीन। जैसे,—मैं तो दुष्कर्म पंदा हूँ; मेरा क्या क्रूर ? (२) न चूकनेवाला। ज़रूर असर करनेवाला। अपूर्क। अचर्य। जैसे,—दुष्कर्म दया। (३) न खाली जानेवाला। अवश्य लक्ष्य पर पहुँचनेवाला। जैसे,—वह दुष्कर्म तीर चलाता है। (४) अवश्य कर्तव्य। न टालने योग्य।

न्याजिमी। ज़रूरी।

दुष्कर्मकी—पंजा सी० दे० "दुष्कर्मकी"।

पंजा सी० [ दे० ] एक प्रकार की सुंदर लता या पेड़ जिसके फूल ललाई लिए सफेद और सुगंधित होते हैं।

दुष्कर्म—पंजा पुं० [ म० ] भीड़। जमावड़ा।

दुष्कर्म—पंजा पुं० [ म० ] (१) किसी बड़े का सामीप्य। नज़र का सामना। सम्मुख स्थिति। सम्पन्नता।

मुद्दा—(किसी के) दुष्कर्म में = (बड़े के) सामने। भले। जैसे,—वह सब बांदाशाह के दुष्कर्म में छाप गया।

(२) बांदाशाह या हाकिम का दरबार। कचहरी।

मुद्दा—दुष्कर्म सहसील = सदा वरसील। वह तरसील जो पिते के प्रधान नगर में हो। दुष्कर्म महाल = वह महान बिल्ली मालजुगरी सीधे सरकार के यहाँ दाखिल हो, लगान के रूप में किसी नमींदार को न दो जाती हो। वह नमीन जिससे नमींदार सरकार हो।

(३) बहुत बड़े लोगों के संबोधन का शब्द। (४) एक शब्द जिसके द्वारा अधीन कर्मचारी अपने बड़े अफसर को या नौकर अपने मालिक को संबोधन करते हैं।

दुष्कर्म—पंजा सी० [ म० दुष्कर्म + रं० (दि० प्रथ०) ] बड़े का सामीप्य या सम्पन्नता। नज़र का सामना।

पंजा पुं० (१) प्राप्त सेवा में रहनेवाला। नौकर। (२) दरबारी। मुसाहब।

वि० दुष्कर्म का। सरकारी।

दुष्कर्म—पंजा सी० [ म० ] (१) स्वयं का तर्क। फजूल की दलील। (२) विवाद। झगड़ा। तकरार। कदासुनी। चतुर्द्व।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

दुष्कर्म—पंजा पुं० [ सं० ] (१) मेढ़ा। (२) एक प्रकार का अन्न।

दुष्कर्मना—क्रि० प्र० [ दे० ] बच्चे का रो रोकर उसके लिये ब्याकुलता प्रकट करना जिससे वह बहुत हिल्ला हो।

दुष्कर्मना—पंजा पुं० [ मनु० दुष्कर्म + हि० दंग ] हल्लागुहा और उल्लूक। धमाचौकड़ी। उपद्रव। उत्पात।

क्रि० प्र०—मचाना।—मचाना।

दुष्कर्म—पंजा पुं० [ सं० दुष्कर्म ] एक प्रकार का बहुत छोटा बोल जिससे प्रायः कठार या धीमर बजाते हैं।

दुष्कर्म—पंजा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का बहुत छोटा बोल। दुष्कर्म नाम का यज्ञ। (२) दास्युह पक्षी। (३) मतवाला आदमी। मदोन्मत्त पुरुष। (४) कोहे की साम जड़ा हुआ टंडा। लोहयंत्र। (५) आंगल। बेंबड़ा।

दुष्कर्म—पंजा पुं० दे० "दुष्कर्म"।

दुष्कर्म—वि० [ सं० ] हयम किया हुआ। आहुति दिया हुआ। हवन करते समय अग्नि में डाला हुआ।

पंजा पुं० (१) हवन की वस्तु। हवन की सामग्री। (२) शिव का एक नाम।

क्रि० प्र० 'होना' क्रिया का प्राचीन भूतकालिक रूप। था।

उ०—हुत पहिले औ अब है रोहै।—जायसी।

हुतभाह—पंजा पुं० [ सं० ] अग्नि। आग।

हुतभुक्, हुतभुज—पंजा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि। आग। (२) चित्रक। चीते का पेड़।

हुतबह—पंजा पुं० [ सं० ] अग्नि। आग।

हृत्शेष-संज्ञा पुं० [ सं० ] हवन करने से बची हुई सामग्री ।  
 हुता-कि० प्र० [ हि० हुत ] 'होना' क्रिया का पुरानी अवधि  
 हिंदी का भूतकालिक रूप । था । उ०—गगन हुता, गहि  
 गहि हुती, हुते चंद गहि सूर ।—जायसी ।  
 हुताग्नि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जिसने हवन किया हो । (२)  
 अग्निहोत्री । (३) यज्ञ या हवन की भाग ।  
 हुताश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) 'आहुति खानेवाला' अग्नि ।  
 भाग । (२) तीन की संख्या । (३) चित्रक । चित्ते का पद ।  
 हुतायान-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्नि । भाग ।  
 हुतिक-मध्य० [ प्रा० हितो ] (१) भगवान् और करण कारक का  
 विद्वांसे । द्वारा । (२) भोर से । तरफ से । वि० दे०  
 "हुति" ।  
 संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हवन । यज्ञ ।  
 हुतियन-संज्ञा पुं० [ देस० ] सेमल का पेड़ ।  
 हुँते-मध्य० [ प्रा० हितो ] (१) से । द्वारा । (२) भोर से । तरफ से ।  
 हुतो-कि० प्र० [ 'होना' कि० का प्रभू भूतकालिक रूप ] था ।  
 हुत्कच-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दैत्य का नाम ।  
 हुवकागा-कि० स० [ देस० ] उसकाना । उभराना ।  
 हुवना-कि० प्र० [ सं० हुवन ] स्वाध्व होना । रकना ।  
 हुवहुव-संज्ञा पुं० [ म० ] एक विद्विवा जो हिंदुस्तान और ब्रमा  
 में प्रायः स्रव जगद पाई जाती है । इसकी छाती और  
 गरदन से रंग की तथा छोटी और बड़े, काले और सफेद  
 होते हैं । चोंच एक अंगुल लंबी होती है ।  
 हुवारना-कि० स० [ देस० ] रहसी पर लटकाना । टँगना ।  
 (उत्प०)  
 हुदा-संज्ञा स्त्री० [ देस० ] एक प्रकार की मछली ।  
 हुं संज्ञा पुं० [ म० भोरवा ] ओहदा । पद ।  
 हुन-संज्ञा पुं० [ सं० हृण, हन = खोने का एक सिक्का ] (१) मोहर ।  
 भवारफो । स्वर्णमुद्रां । (२) सोना । सुवर्ण ।  
 मुहा०—हुन बरसना = धन की बहुत अधिकता होना ।  
 हुनना-कि० स० [ सं० हु, हुन + हि० प्रत्य०-ना ] (१) अग्नि में  
 दालना । आहुति देना । (२) हवन करना ।  
 हुनर-संज्ञा पुं० [ का० ] (१) कला । कारीगरी । (२) गुण ।  
 कला । (३) कौशल । युक्ति । चतुराई ।  
 हुनरमंद-वि० [ का० ] कला-कुशल । निपुण ।  
 हुनरा-वि० [ का० हुन ] यह बंदर या भाइ जो नाचना और  
 खेल दिखाना सीख गया हो । ( कर्लर )  
 हुनिया-संज्ञा स्त्री० [ देस० ] भैंसों की एक जाति जिसका ऊन  
 अच्छा होता है ।  
 हुन-संज्ञा पुं० दे० "हुन" ।  
 हुष, हुष्य-संज्ञा पुं० [ म० ] (१) अनुसंग । प्रेम । (२) धरदा ।  
 (३) होसला । उमंग । उत्साह ।

हुमकना-कि० प्र० [ मनु० हु (भय का शब्द) ] (१) उठकना  
 कूटना । (२) जमे हुए पत्र से उठकना या धरदा पहुँचाना ।  
 पैरों से जोर लगाना । (३) पैरों को आघात के लिये जोर  
 से ठराना । कसकर पैर खानना । उ०—हुमकिं खात कूबर  
 पर मारा ।—तुलसी । (४) चलने का प्रयत्न करना । चलने  
 के यत्निके जोर लगाकर पैर रखना । हुमकना । (बर्षों का)  
 हुमगना-कि० प्र० दे० "हुमकना" ।  
 हुमा-संज्ञा स्त्री० [ का० ] एक कल्पित पक्षी जिसके संबंध में प्रसिद्ध  
 है कि वह हठियों ही खाता है और जिसके ऊपर उसकी छाया  
 पड़ जाय वह यादशाह हो जाता है ।  
 हुमेल-संज्ञा स्त्री० [ म० हमायन ] (१) अर्थात्तियों या स्वयं को  
 मूँचकर बनी हुई एक प्रकार की माला जिसे ब्रिज्यों पहनती  
 है । (२) घोड़ों के गले का एक गहना ।  
 हुम्मा-संज्ञा पुं० [ हि० वमंग ] लहरों का उठना । धान । (उत्प०)  
 हुर्दंग, हुर्दंगा-संज्ञा पुं० दे० "हुर्दंग" ।  
 हुर्मत-संज्ञा स्त्री० [ म० ] आयरु । इज्ञान । मान । मध्यांदा ।  
 हुर्दुर-संज्ञा पुं० दे० "हुलहुल" ।  
 हुर्दुरिया-संज्ञा स्त्री० [ मनु० सं० हुदुली ] एक प्रकार की चिड़िया ।  
 हुर्जिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] निपाद और कवरी की से उत्पन्न एक  
 संकर जाति ।  
 हुर्दक-संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथी का लंकुर ।  
 हुर्मयी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का मूल्य । उ०—उलथा,  
 ठेकी, आलमस, दिंद । पछि हुर्मयी निःशोक चिंद ।—  
 केशव ।  
 हुर्दा-संज्ञा पुं० [ म० ] एक प्रकार की हर्षवर्धन ।  
 हुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का दो-पारा छुरा ।  
 हुलकना-कि० प्र० [ मनु० हुलक ] कै करना । घमन करना ।  
 हुलकी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हुलकता ] (१) कै । घमन । उलटी ।  
 (२) हैजे की बीमारी ।  
 हुलना-कि० प्र० [ हि० हुलना ] हाड़ी भादि को ठेलना । रेलना ।  
 पेलना ।  
 हुलसना-कि० प्र० [ हि० हुलस + ना (प्रत्य०) ] (१) उछाल में  
 होना । आनंद से कूलना । उमगना । छुती से भरना ।  
 (२) उमरना । उठना । (३) उमरना । बढ़ना । उ०—संशु  
 प्रसाद सुमति दिव हुलसी । रामपति मानस कवि  
 तुलसी ।—तुलसी ।  
 हुल कि० स० आनंदित करना । प्रकृष्टित करना ।  
 हुलसाना-कि० स० [ हि० हुलसाना ] उछालित करना । आनंदपूर्ण  
 करना । हर्ष की उमंग उत्पन्न करना ।  
 कि० प्र० दे० "हुलसना" । उ०—राम अनुज-मन की गति  
 जानी । भागतबउलथा दिव हुलसानी ।—तुलसी ।  
 हुलसी-संज्ञा स्त्री० [ हि० हुलसना ] (१) उछाल । उछाल । आनंद

की उमंग । उ०—रामहिं द्विय पावन तुलसी सी । तुलसिदास द्वित द्विय हुलसी सी ।—तुलसी । (२) किसी किसी मत से तुलसीदास जी की, माता का नाम ।

हुलहुल-पंशा पुं० [ ? ] एक छोटा परसाती पीषा जिसके कई भेद होते हैं । साधारण जाति के पीषे में सफेद फूल और रंग की सी लंबी फलियाँ लगती हैं । पीले, लाल और बैंगनी फूलवाले पीषे भी पाए जाते हैं । पत्तियाँ गोल और फीकेदार होती हैं जो धुँधे दूर करने की दवा मानी जाती हैं । कान के दर्द में प्रायः इन पत्तियों का रस खाला जाता है । पत्तियों का साग भी खाते हैं । अर्कपुष्टिका । सूरजवर्षा ।

हुला-पंशा पुं० [ हिं० हुलना ] लाठी का छोर या नोक । हुलाना-कि० सं० [ हिं० हुलना ] लाठी, भाले आदि को छोर से ठेलना । पेलना ।

हुलाल-पंशा स्त्री० [ हिं० हुललना ] तरंग । लहर । हुलास-पंशा पुं० [ सं० उहास ] (१) आनंद की उमंग । उहासा । हर्ष की प्रेरणा । खुशी का उमड़ना । आह्लाद । (२) उल्साह । होसला । तथीयत का बढ़ना । उ०—सुतहि राज, रामहि पनबासू । देहु लेहु सब सवति हुलासू ।—तुलसी । (३) उमंगना । बढ़ना ।

पंशा स्त्री० सुँवनी । मजरोदान । हुलासदानि-पंशा स्त्री० [ हिं० हुलास + दान ] सुँवनीशानी । हुलासी-वि० [ हिं० हुलास ] (१) आनंदी । (२) उल्साही । होसलेवाला ।

हुलिंग-पंशा पुं० [ सं० ] मध्यदेश के अंतर्गत एक प्रदेश का नाम । हुलिया-पंशा पुं० [ सं० हुलिया ] (१) दाकल । आकृति । रूप रंग । (२) किसी मनुष्य के रूप रंग आदि का विवरण । दाकल सूत और धन पर के निशान धगीरह का ध्योरा ।

हुला—हुलिया लिखाना = किसी भागे हुए, खोए हुए या लानता भादमी का पता लगाने के लिये उसकी शकल सूत आदि पुलिस में दर्ज कराना ।

हुलु-पंशा पुं० [ सं० ] मेधा । हुलुक-पंशा पुं० [ देहा० ] एक जाति का बंदर । विशेष—इसकी लंबाई घिस इक्कीस इंच और रंग प्रायः सफेद होता है । यह आसाम के जंगलों में हूँह में रहता है और जल्दी पालतू हो जाता है ।

हुलैया-पंशा स्त्री० [ हिं० हुलना ] हूँह के-पहले नाव का उगमनाम ।

हुल्ल-पंशा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मूष्य । हुल्लड-पंशा पुं० [ मनु० सं० हुल्लड ] (१) दोस्त । हला । कोशाल । (२) उपद्रव । ऊपम । धूम । (३) इलचल । आंदोलन । (४) दंगा । बलवा । क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—मचना ।—मचाना ।

हुल्लास-पंशा पुं० [ सं० उहास ] चौपाई और त्रिमंगी के मेल से बना हुआ एक छंद ।

हुल्ल-मव्य० [ मनु० ] एक निषेधवाचक शब्द । अनुचित बात हूँह से निकालने पर रोकने का शब्द ।

हुल्लियार-वि० दे० “होतियार” ।

हुल्लैन-पंशा पुं० [ म० ] मुहम्मद साहब के दामाद भली के बेटे जो करबला के मैदान में मारे गए थे और शीघ्र मुसलमानों के पूज्य हैं । मुहम्मद हूँह के शोक में मनाया जाता है ।

हुल्लैनी-पंशा पुं० [ म० हुल्लैन ] (१) अंगूर की एक जाति । (२) फ़ारस संगीत के याह मुकामों में से एक ।

हुल्लैनी कान्हड़ा-पंशा पुं० [ का० हुल्लैनी + हिं० कान्हड़ा ] संतर्पण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं ।

हुल्ल-पंशा पुं० [ म० ] (१) सौंदर्य । सुंदरता । छावप्य । यौ०—हुल्लपरस्त ।

(२) तारीफ की बात । खूबी । उल्कार । जैसे,—हुल्ल इतज़ाम । (३) अनुष्ठान । विचित्रता । जैसे,—हुल्ल इतफ़ाक ।

हुल्लदान-पंशा पुं० [ म० हुल्ल + हिं० दान ] पानदान । खासदान । हुल्लपरस्त-पंशा पुं० [ म० + का० ] सौंदर्योपासक । सुंदर रूप का प्रेमी । रूप का लोभी ।

हुल्लपरस्ती-पंशा स्त्री० [ म० + का० ] सौंदर्योपासना । सुंदर रूप का प्रेम । रूप का लोभ । हुल्ल्यार-वि० दे० “होतियार” ।

हुल्लय-पंशा पुं० [ सं० ] एक नरक का नाम । हुल्ल-पंशा पुं० [ सं० ] एक शंख का नाम । हुल्ल ।

हुल्ल-मव्य० [ मनु० ] (१) किसी प्रदान के उत्तर में स्वीकार-सूचक शब्द । (२) समर्थन-सूचक शब्द । (३) एक शब्द जिसके द्वारा सुननेवाला यह सूचित करता है कि मैं कही जाती हुई बात या प्रसंग ध्यान से सुन रहा हूँ । मव्य० दे० “हूँ” । सर्व-वर्षमान-कालिक किया “हूँ” का उच्चारण एक यचन का रूप । जैसे,—“मैं हूँ” ।

हुल्लना-कि० प्र० [ मनु० ] (१) गाय का बछड़े की याद में गाय और कोई दुग्ध सूचित करने के लिये घीरे घीरे बोलना । हुल्लकना । उ०—ऊधो ! इतनी कहियो जाय । अलि हलागाम भई हँ सुम विनु बहुत दुखारी गाय । जल समूह, बरसत अँसियत न हँ कति खीन्हँ गर्व । जहाँ जहाँ गो-शौन करते इँकति सोइ सोइ ठावें ।—सूर । (२) हुल्लकार शब्द करना । धीरों का ललकारना या दपटना । (३) सिसक कर रोना । कोई बात याद कर करके रोना ।

हूँ-नि० [ सं० भ्रूयुष्ये, प्रा० भ्रूयुष्यत् । ( सं० 'भ्रूयुष' कश्चित् ज्ञान प्रकाश है ) ] साद्ये तीन ।

हूँडा-संज्ञा पुं० [ हि० हूँ ] साद्ये तीन का पशुवा ।

हूँड़-संज्ञा स्त्री० [ हि० हूँ ] देवों की सिंघाई में किसानों की एक दूसरे को सहायता देने की रीति ।

हूँस-संज्ञा स्त्री० [ सं० हूँस ] (१) दूसरे की बदती देख कर जलना । हूँसी । दाह । (२) दूसरे की कोई बस्तु देख कर उसे पाने के लिये दुखी रहना । आँसु गढ़ाना । (३) घुरी नज़र । देख । जैसे,—पंचे को हूँस लगी है ।

क्रि० प्र०—छगना ।

(४) घुरा मला कहते रहने की क्रिया । कोसना । फटकार । जैसे,—दिन रात तुम्हारी हूँस कौन सदा करे ।

हूँसना-क्रि० सं० [ हि० हूँस ] नज़र छगाना ।

क्रि० प्र० (१) हूँसी से जलाना । (२) किसी वस्तु पर आँसु गढ़ाना । छलचाना । (४) भला घुरा कहना । कोसना ।

(५) रह रहकर विदना ।

हूँड-अव्य० [ वैदिक सं० वृ = प्राणे, भी । प्रा० वृ, हि० ऊ ] एक अतिरेक-बोधक शब्द । भी । उ०—तुमहूँ कायद मनो मप भायु काळि के दानि ।—बिहारी ।

संज्ञा पुं० गीदद के बोलने का शब्द ।

हूँक-संज्ञा स्त्री० [ सं० हिंस ] (१) हृदय की पीड़ा । छाती या कलेजे का दर्द जो रह रहकर उठता है । साँल ।

क्रि० प्र०—उठना ।—मारना ।

(२) दर्द । पीड़ा । कसक । (३) मानसिक वेदना । संताप । दुःख । उ०—भूँलि हूँ चूक परी जो कहूँ तिहि चूक की हूँक न जाति दिये सैं ।—बघाकर । (४) चड़क । भाँसका । लटक ।

हूँकना-क्रि० प्र० [ हि० हूँक + ना ( प्रत्य० ) ] (१) साँलना ।

तुलना । दर्द, करना । कसकना । (२) पीड़ा से चौक उठना । उ०—(क) कुच-नूषी अथ पीठि गदोडैं । गदैं जो हूँकि गादू रस घोडैं ।—जायसी । (ख) ल्यों प्रभाकर पेरी पलासन, पावक सी मनी हूँकन छागी । वै प्रजवारी बेवारी बधूँ यन बावरी लीं दिये हूँकन छागीं ।—बघाकर ।

हूँचक-संज्ञा पुं० [ देस० ] मुद्र । ( हि० )

हूँटना-क्रि० प्र० [ सं० हूँ = चकना ] (१) हटना । टलना । (२) मुदना । पीठ फेरना ।

हूँटा-संज्ञा पुं० [ हि० हूँटा ] (१) किसी को चाही वस्तु न देकर उसे बिदना के लिये अंगूठा दिखाने की अतिशय मुद्रा । टेंगा ।

(२) आँसुओं या गँवारों का बासवीत या विषाद में पँक दिखाते हुए हाथ मटकाने की मुद्रा । मही या गँवारू चेष्टा ।

मुद्रा-हूँटा देना = टेंगा दिखाना । अशिष्टता से हाथ मटकाना । मही चेष्टा करना । उ०—(क) नागरि विविच-विक्रान्त तजि

पसी गँवैलिन माहि । मुद्रमि में मनियो किली हूँरी ई अठिहाडि ।—बिहारी । (ख) गदराने तग गोरीटी, ऐपन भादू लिहार । हूँची ई अठिहाय दग, कदैं गँवारि सु मार ।—बिहारी ।

हूँड़-वि० [ हृण (गति) ] (१) हूँड़ । उड़ड़ । गनगद । (२) असाधधान । भ्रूणपर । ध्यान न रखनेवाला । (३) गावदी । भगवती । (४) हठी । जिद्दी ।

हूँड़ा-संज्ञा पुं० [ देस० ] एक प्रकार का बाँस जो पच्छिमी घाट (मलय पर्वत) के पहाड़ों से लेकर कन्याकुमारी तक होता है ।

हृण-संज्ञा पुं० [ देस० ] एक प्राचीन मंगोल जाति जो पहले चीन की पूरबी सीमा पर लुम्भाय किया करती थी, पर पीछे अत्यंत प्रबल होकर एशिया और योरोप के सम्य क्षेत्रों पर आक्रमण करती हुई फैली ।

विशेष—हूणों का इतना भारी दल चलता था कि उस समय के बड़े बड़े छम्भ साम्राज्य उनका अवरोध नहीं कर सकते थे । चीन की ओर से हटाए जाकर हूण लोग तुर्किस्तान पर अधिकार करके सन् ४०० ई० से पहले यक्षु नद (आरसस नदी) के किनारे भा बसे । यहाँ से उनकी एक शाखा ने तो योरोप के रोम साम्राज्य की जड़ दिखाई और रोप पारस साम्राज्य में घुसकर लूट-पाट करने लगे । पारसावले इन्हें 'दैताल' कहते थे । कालिदास के समय में हूण यक्षु के ही किनारे तक आए थे, भारतवर्ष के भीतर नहीं घुसे थे; क्योंकि रघु के विजयजय के वर्णन में कालिदास ने हूणों का बल्लेख नहीं पर किया है । कुछ आधुनिक प्रतियों में 'यक्षु' के स्थान पर 'सिंधु' पाठ कर दिया गया है, पर वह ठीक नहीं । प्राचीन मिस्री हुई रघुवंश की प्रतियों में 'यक्षु' ही पाठ पाया जाता है । यक्षु नद के किनारे से जब हूण लोग फारस में बहुत उपद्रव करने लगे, तब फारस के प्रसिद्ध बादशाह बहुराम गोर ने सन् ४२५ ई० में उन्हें पूर्ण रूप से परास्त करके यक्षु नद के उस पार भगा दिया । पर बहुराम गोर के पौत्र फ़ीरोज़ के समय में हूणों का प्रभाव फारस में बढ़ा । वे धीरे धीरे फारसी सभ्यता प्रहण कर लुके थे और अपने नाम आदि फारसी बर्ग के रखने लगे थे । फ़ीरोज़ को हराने-वाले हूण बादशाह का नाम सुयानेवाज था । जब फारस में हूण साम्राज्य स्थापित न हो सका, तब हूणों ने भारतवर्ष की ओर रुख किया । पहले उन्होंने सीमांत प्रदेश कपिशा और गांधार पर अधिकार किया । फिर मध्य-देश की ओर बढ़ाई पर बढ़ाई करने लगे । गुप्त सम्राट कुमारगुप्त इन्हें बढ़ाई पर रोकना मारा गया । इन चढ़ाईयों से तुम्हालीन गुप्त साम्राज्य निर्वर्ण पड़ने लगा । कुमारगुप्त के पुत्र महाराज स्कंदगुप्त बढ़ी योग्यता और वीरता से जीवन भर हूणों से लड़ते रहे । सन् ४५० ई० अंतर्वेद, मगध आदि पर स्कं-

गुप्त का अधिकार बराबर पाया जाता है। सन् १९५ के उपरोक्त हृण प्रयत्न करने और अंत में स्फुटगुप्त हृणों के साथ युद्ध करने में मरि गपुः। सन् १९९ ई० में हृणों के प्रतापी राजा सुरमान शाह (सं० तोरमाण) ने गुप्त साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर पूर्ण अधिकार कर लिया। इस प्रकार गांधार, काश्मीर, पंजाब, राजपूताना, मालवा और काठियावाड़ उसके शासन में आए। सुरमान शाह या तोरमाण का पुत्र मिहिरगुल्ल (सं० मिहिरगुल्ल) यदा ही अत्याचारी और निर्दय हुआ। पहले वह पीयूष था, पर पीछे क्रूर दीव्य हुआ। गुप्तवंशीय नरसिंहगुप्त और मालव के राजा यशोधर्मन् से उसने सन् ५३२ में गहरी हार खाई और अपना हथर का सारा राज्य छोड़ वह काश्मीर भाग गया। हृणों में ये ही दो सम्राट् बहुल योग्य हुए। कहने की आवश्यकता नहीं है हृण लोग कुल और प्राचीन जातियों के समान धीरे धीरे भारतीय सभ्यता में मिल गए। राजपूतों में एक बाला हृण भी है। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि राजपूताने और गुजरात के कुनबी भी हृणों के परदास हैं।

हृदा-संज्ञा पुं० दे० "हृल", "हृला"।

हृनिया-संज्ञा स्त्री० [ हृय (देश०) ] एक प्रकार की भेड़ जो तिब्बत के पश्चिम भाग में पाई जाती है।

हृय-संज्ञा स्त्री० दे० "हृय"।

हृयहृ-वि० [ हृ० ] ययों का र्यों। ठीक वीसा ही। विपकुल समान।

हृय-संज्ञा पुं० [ सं० ] आह्वान। आवाहन। जैसे,—देव-हृय, पितृ हृय।

हृद-संज्ञा स्त्री० [ हृ० ] सुसलमानों के स्वर्ग की अप्सरा।

हृदहृण-संज्ञा पुं० [ सं० ] हृणों की एक जाति जिन्हने योरप में जाकर हलचल मचाई थी। श्वेतहृण।

हृरा-संज्ञा पुं० दे० "हृला"।

हृराहृरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक खोहरी या उत्सव जो दीवाली के तीसरे दिन होता है।

हृल-संज्ञा स्त्री० [ सं० श्ल० ] (१) माल, डडे, घुरे आदि की नोक या सिरों को जोर से ठेलने अथवा भोंकने की क्रिया। (२) लासा लगाकर चिड़िया फँसाने का यंत्र। (३) हुक। शूल। पीड़ा। (छाती या हृदय की) उ०—कोकिल के की कोलाहल हृल उठी उठी वर में मति की गति लखी।—केशव।

क्रि० प्र०—उठना।

संज्ञा स्त्री० [ मनु० सं० हृल्ल ] (१) कोलाहल। हल्ला। धूम। (२) हर्षध्वनि। आनन्द का शब्द। (३) ललकार। (४) सुसी। आनन्द।

यौ०—हृल्लल्ल।

हृलना-क्रि० सं० [ हि० हृल+ना (प्रत्य०) ] (१) छाती, माले, घुरे आदि की नोक या सिरों को जोर से ठेलना या घुसाना। सिरों या फल को जोर से ठेलनाया घुसाना। मोटना। गडाना। उ०—हृल्ल इत पर मैंन महावत, छात्र के शर्दि परे गथि पायें।—पद्माकर। (२) शूल बल्लय करना।

हृय-वि० [ हि० हृय ] (१) असम्बन्ध। खंगली। उमट्ट। (२) अशिष्ट। बेहूदा।

हृसङ्ग-वि० दे० "हृस"।

हृद्-संज्ञा स्त्री० [ मनु० ] हुंकार। कोलाहल। युद्धगाद। उ०—(क) चले हृद् करि यूयप यंदर।—तुलसी। (ख) जय जय जय रघुपंस-मनि धाप कपि दद हृद्।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

हृद्-संज्ञा पुं० [ मनु० ] अग्नि के जलने का पात्र। छपट के उठने या लहराने का शब्द। धाँप धाँप। जैसे,—हृद् करे जलना।

संज्ञा पुं० [ सं० ] एक गंधर्व का नाम।

हृद-वि० [ सं० ] (१) जिसे ले गए हो। पहुँचाया हुआ। (२) हरण किया हुआ। लिया हुआ।

हृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) ले जाना। हरण। (२) नाम। (३) हृत्।

हृत्कंप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) हृदय की कंपकंपी। दिल की धक्कन। (२) जो का दहकना। अत्यंत भय। दहकात।

हृत्पिण्ड-संज्ञा पुं० [ सं० ] हृदय का कोरा या धैली। कलेजा।

हृद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] हृदय। दिल।

हृदयंगम-वि० [ सं० ] मन में भाषा हुआ। मन में पैदा हुआ समझ में आया हुआ। जिसका सम्पर्क हो गया हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

हृदय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) छाती के भीतर बाईं ओर स्थित मांसकोय या धैली के आकार का एक भीतरी अवयव जिसमें स्फुटन होता है और जिसमें से होकर शुद्ध रक्त रक्त नादियों के द्वारा सारे शरीर में संचार करता है। दिल। कलेजा। वि० दे० "कलेजा"।

मुहा०—हृदय धक्कना = (१) हृदय का स्फुटन करना या हृत्न। (२) भय या शरोंका होना।

(२) छाती। यक्षस्थल।

मुहा०—हृदय से-छगाना = शक्तिगन करना। भेंटना। हृदय विदीर्ण होना = अत्यंत शोक होना। वि० दे० "छाती"।

(३) अंशकरण या रागात्मक अंग। प्रेम, हृदय, लोक, कल्याण, क्रोध आदि मनोविकारों का स्थान। जैसे,—उसे हृदय नहीं है, सनी-पैसा निष्ठुर कर्म करता है।

मुहा०—हृदय उमडना = मन में प्रेम, शोक या कल्याण का पैप

उपयुक्त होना। हृदय भर आना = दे० "हृदय समरुता"। वि० दे० "जी", "कलेजा"।

(७) अंतःकरण। मन। जैसे, — यह अपने हृदय की बात किसी से नहीं कहता।

मुद्रा—हृदय की गति = (१) मन का दुर्भाव। (२) काट। कुटिलता। वि० दे० "जी", "मन"।

(५) अंतरात्मा। विचित्र-बुद्धि। जैसे, — हमारा हृदय गवाही नहीं देता। (१) किसी वस्तु का सार भाग। (२) तत्व। सारांश। (८) गुण यात। गूढ़ रहस्य। (९) अत्यंत प्रिय व्यक्ति। प्राणोपाहार।

हृदयप्रद—संज्ञा पुं० [ सं० ] कलेजा पकड़ने का रोग। फलेने का द्य या घेंसना।

हृदयप्राण-संज्ञा पुं० [ सं० हृदयप्राण ] [ जी० हृदयप्राण ] (१) मन को मोहित करनेवाला। (२) रुचिकर। भावनेवाला।

हृदयचौर-संज्ञा पुं० [ सं० ] मन को मोहनेवाला।

हृदयनिकेत-संज्ञा पुं० [ सं० ] मनसिद्धि। कामदेव। उ०—सकल कला करि कोटि विधि हारिउ सेन समेत। चली न अचक सभापि सिध, कोपेउ हृदय-निकेत। — तुलसी।

हृदय-पुरुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] हृदय की पड़कन या स्पर्शक।

हृदय-प्रभाषी-वि० [ सं० हृदय-प्रभाषि ] [ जी० हृदय-प्रभाषी ] (१) मन को क्षुब्ध या चंचल करनेवाला। (२) मन मोहनेवाला।

हृदयप्रसन्न-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रेमपात्र। प्रियतम।

हृदयघान-वि० [ सं० हृदयघ्न ] [ जी० हृदयघनी ] (१) जिसके मन में प्रेम, करुणा आदि कोमल भाव उत्पन्न हों। सहृदय। (२) मायुक। शलिक।

हृदय-चिदारक-वि० [ सं० ] (१) अत्यंत शोक उत्पन्न करनेवाला। (२) अत्यंत करुणा या दया उत्पन्न करनेवाला। जैसे, — हृदय-चिदारक घटना।

हृदयवेधी-वि० [ सं० हृदय-वेधि ] [ जी० हृदय-वेधी ] (१) मन को अत्यंत मोहित करनेवाला। जैसे, — हृदय-वेधी कथा। (२) अत्यंत शोक उत्पन्न करनेवाला। (३) बहुव्यय या पुरा लगनेवाला। अत्यंत कटु। जैसे, — हृदय-वेधी वचन।

हृदय-संगीत-संज्ञा पुं० [ सं० ] हृदय की गति का एक ज्ञान। चित्र एकवचारी घेडाम हो जाना।

हृदयस्पर्शी-वि० [ सं० हृदयस्पर्शि ] [ जी० हृदयस्पर्शी ] (१) हृदय पर प्रभाव डालनेवाला। दिल पर असर करनेवाला। (२) चित्त को द्रवीभूत करनेवाला। जिससे मन में दया या करुणा हो।

हृदयहारी-वि० [ सं० हृदयहारि ] [ जी० हृदयहारि ] मन मोहनेवाला। जी को छुमानेवाला।

हृदयालु-वि० [ सं० ] (१) सहृदय। मायुक। (२) सुगीक। हृदयेय, हृदयेभ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ जी० हृदयेधी ] (१) प्रेमपात्र। प्यारा। प्रियतम। (२) प्रति।

हृदयोन्मादिनी-वि० जी० [ सं० ] (१) हृदय को उन्नत या पागल करनेवाली। (२) मन को मोहनेवाली।

सहा जी० संगीत में एक श्रुति। हृदि-संज्ञा पुं० [ सं० हृद का अक्षरार्थ ] हृदय में। उ०—हृदि विपति भयकंद विमंगय। हृदि, पति राम काममद गंजय। — तुलसी।

हृदत-वि० [ सं० ] (१) हृदय का। मन का। अंतरिक। भीतरी। जैसे, — हृदत भाव। (२) मन में दंड या जवाहिरा। समझ या ध्यान में आया हुआ।

हु० प्र०—करना।—होना। (३) मनवाह। प्रिय। रुचिकर।

हृद्रोल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पर्वत का नाम।

हृद्य-वि० [ सं० ] (१) हृदय का। भीतरी। (२) हृदय को रुचनेवाला। अच्छा लगनेवाला। (३) सुंदर। लुभावना। (४) हृदय को शीतल करनेवाला। हृदय को हितकारी।

(५) खाने में अच्छा। सुखादु। स्वादिष्ट। ज्ञापकदार। संज्ञा पुं० (१) कविता। कैय। (२) शत्रु को वशीभूत करने का एक मंत्र। (३) सफेद बीरा। (४) दही। (५) मद्य।

महप की शाय। हृद्यगंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सेल का पद या फल। (२) सौंदर्यमक।

हृद्यशु-संज्ञा पुं० [ सं० ] चंद्रमा। हृद्या-संज्ञा जी० [ सं० ] (१) हृदि नाम की ओषधि या प्रथी। (२) पत्थरी।

हृदि-संज्ञा जी० [ सं० ] (१) हृत्। आनंद। (२) कांति। चमक। दमक। (३) शब्द भादमी।

हृदीक-संज्ञा पुं० [ सं० ] हृदिम। जी०—हृदीकेता।

हृदीकेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विष्णु का एक नाम। (२) श्रीकृष्ण। (३) राम का महोना। (४) हरिद्वार के पास एक तीर्थस्थान।

हृदु-वि० [ सं० ] (१) हृदि होनेवाला। प्रसन्न। (२) शूट मोलनेवाला।

—संज्ञा पुं० (१) अग्नि। (२) सूर्य। (३) चंद्र। हृद-वि० [ सं० ] (१) हृदि। अत्यंत प्रसन्न। आनंदयुक्त। जी०—हृद-हृद। हृद-हृद। (२) सदा। ठंडा हुआ। (तोप) (३) उरुडा हुआ। कड़ा पड़ा हुआ।

हृदपुष्ट-वि० [ सं० ] मोटा वाता। प्यारा। मगधा।



दृष्टवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिरण्यक्ष दैत्य के नौ पुत्रों में से एक ।  
 (गर्गसंहिता)  
 दृष्टि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) हर्ष । प्रसन्नता । (२) इतराना ।  
 गर्व से झूलना ।  
 दृष्टयोनिसंज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का ननुंसक । इर्व्यक  
 ननुंसक ।  
 दृष्यका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संशय में एक मूर्च्छना जिसका स्वर  
 आम इस प्रकार है—य धं नि स रे ग म । घ नि स रे  
 ग म प ध नि स रे ग ।  
 हँहँ-संज्ञा पुं० [ ऋ० ] (१) धीरे से हँसने का शब्द । (२)  
 शीतल-मूचक शब्द । गिद्धगिद्धाने का शब्द ।  
 मुहा०—हँहँ करना = गिद्धगिद्धाना । शीतला दिखाना ।  
 हँगाँ-संज्ञा पुं० [ सं० ] अन्वय = पोतना । जूते हुए खेत की मिट्टी  
 बराबर करने का पाटा । मैड़ा । पंढरा ।  
 हे-प्रत्य० [ सं० ] संयोगन का शब्द । पुकारने में नाम लेने के  
 पहले कड़ा जानेवाला शब्द ।  
 ह्यं किं प्र० ब्रज 'हो' (= था) का बहुवचन । थे ।  
 हेउँती-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] देसावरी रुई । ( बुनिया )  
 हेकड़-वि० [ हिं० दिया + का ] (१) दृष्ट-दृष्ट । मङ्गल । कड़े  
 बदन का । मोटा ताना । (२) जयरदस्ती । प्रबल । प्रचंड ।  
 बली । (३) अन्वय । उमड़ । (४) तौल में पूरा । जो  
 बजन में द्यता न हो । जैसे,—उसकी तौल हेकड़ है ।  
 हेकड़ी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हेकर ] (१) अधिकार या बल दिखाने  
 की क्रिया या भाव । अन्वय । उमरता । जैसे,—हेकड़ी मत  
 दिखाओ, सीधे से बात करो । (२) जयरदस्ती । बलाकार ।  
 जैसे,—अपनी हेकड़ी से वह दूसरों की चीजें छे लेता है ।  
 हेच-वि० [ का० ] (१) गुच्छ । नाचीत्र । किसी गिगती में नहीं ।  
 (२) जिसमें कुछ सत्य न हो । निःसार । पोच ।  
 हेठा-वि० [ सं० ] अन्वयः प्रा० मट्टक । (१) नीचा । जो नीचे  
 हो । (२) घट कर । कम ।  
 कि० नि० नीचे ।  
 संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) विज्ञ । वाचा । (२) हानि । (३)  
 भाषात । घोट ।  
 हेठा-वि० [ हिं० हेठ ] (१) नीचा । जो नीचे हो । (२) प्रतिष्ठा  
 या बढ़ाई में घटकर । कम । (३) गुच्छ । नीचे ।  
 हेठापन-संज्ञा पुं० [ हिं० हेठ + पन (प्रत्य०) ] गुच्छता । नीचता ।  
 क्षुद्रता ।  
 हेठी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हेठा ] (१) प्रतिष्ठा में कमी । मानहानि ।  
 गौरव का नाश । हीनता । सौहीन ।  
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।  
 (२) जहाज में पाल का पाया । (लना०)

हेठ-संज्ञा पुं० [ अं० ] ऊँचा अफसर । प्रधान । जैसे,—हेठ मास्टर  
 हेठ कानस्टिबल ।  
 हेठ्ठा-संज्ञा पुं० [ देश० ] मांस । गोस्त ।  
 हेठ्ठी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सेढी ] चौपायों का समूह जिसे बनजारे  
 पिन्डी के लिये लेकर चलते हैं ।  
 संज्ञा पुं० [ हिं० महेठ ] शिकारी । प्याच ।  
 हेतु-संज्ञा पुं० दे० "हेतु" ।  
 हेति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यंत्र । आला । (२) अक्ष । (३)  
 पाय । घोट । (४) भाग की छपट । छौ । (५) सूर्य की  
 किरन । (६) धनुष की टंकार । (७) बीजार । यंत्र । (८)  
 अंजुर । अंधुवा ।  
 संज्ञा पुं० (१) प्रथम राक्षस राजा जो भयुमास या वैश्रव  
 सूर्य के रथ पर रहता है । यह प्रहेति का भाई और  
 विद्युक्तेश का पिता कहा गया है । (वैदिक) (२) एक भयुर  
 का नाम । (भागवत)  
 हेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह बात जिसे ध्यान में रखकर कोई  
 दूसरी बात की जाय । प्रेरक भाव । अनिर्णय । उद्देश्य ।  
 जैसे,—उसके आने का हेतु क्या है ? तुम किस हेतु वहाँ  
 जाते हो ? (२) वह बात जिसके होने से ही कोई दूसरी  
 बात हो । कारण या उत्पादक विषय । कारण । ब्रह्म ।  
 संभव । जैसे,—बूध विद्युत् के कारण ही है । उ०—(क)  
 कौन हेतु बन विचरतु स्वामी ?—तुलसी । (ख) वेदि हेतु  
 रानि रिसानि परंस्त पानि पंतिदि निवातु है—तुलसी ।  
 (३) वह व्यक्ति या वस्तु जिसके होने से कोई बात हो ।  
 कारण व्यक्ति या वस्तु । उत्पन्न करनेवाला व्यक्ति या वस्तु ।  
 उ०—महीं सकल अनरथ कर-हेतु ।—तुलसी । (४) वह  
 बात जिसके होने से कोई दूसरी बात सिद्ध हो । प्रमाणित  
 करनेवाली बात । सापेक्ष विषय । जैसे,—जो हेतु हमने  
 दिया, उससे यह सिद्ध नहीं होता ।  
 विशेष—न्याय में तर्क के पाँच अर्थों में से 'हेतु' दूसरा  
 अर्थ है जिसका लक्षण है—“उदाहरण के साधर्म्य या  
 वैधर्म्य से साध्य के धर्म का साधन” । जैसे,—प्रतिज्ञा—वह  
 पर्वत बलिमान है । हेतु—न्यायिक यह धूमवान् है । उ०—जो  
 धूमवान् होता है, वह बलिमान होता है, जैसे,—सोहीवर ।  
 (५) तर्क । दलील ।  
 यौ०—हेतुविद्या, हेतुशास्त्र, हेतुवाद ।  
 (६) मूल कारण । (बीद) ।  
 विशेष—बीददर्शन में 'मूल कारण' को 'हेतु' शब्द भाग्य  
 कारणों को 'प्रत्यय' कहते हैं ।  
 (७) एक अर्थालंकार जिसमें हेतु और हेतुमान् का अर्थ  
 से कथन होता है, अर्थात् कारण ही कार्य कह दिया जाता

है। जैसे,—युग ही चल है। उ०—मो संपति जयुपति  
सदा विपति-विदारनहार।  
विशेष—ऊपर दिया हुआ लक्षण कंद्रत का है। जिसे साहित्य-  
वर्णनकार ने भी माना है। कुछ भाष्यकों ने किसी चमत्कार-  
पूर्ण हेतु के कथन को ही 'हेतु' अलंकार माना है और  
किसी किसी ने उसे काव्य छिंग ही कहा है।

संज्ञा पुं० [ सं० हित ] (१) लगाव । प्रेम-संबंध । (२)  
प्रेम । प्रीति । अनुसंग । उ०—यति हिय हेतु अधिक  
अनुसंगी । बिहँसि उमा पोछी प्रिय बानी ।—तुलसी ।

हेतुमेद—संज्ञा पुं० [ सं० ] ज्योतिष में ग्रहयुद्ध का एक भेद ।  
( सुहृत्संहिता )

हेतुमात्र—वि० [ सं० हेतुमत्र ] [ स्त्री० हेतुमत्री ] जिसका कुछ हेतु  
या कारण हो ।

संज्ञा पुं० वह जिसका कुछ कारण हो । कार्य ।

हेतुवाद—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सब बातों का हेतु ईश्वरों या  
सबके विषय में तर्क करना । तर्कविद्या । (२) कुतर्क ।  
नास्तिकता । उ०—रात्र-समाप्त हुआज कोटि कटु कल्पत  
कल्प कुचाल नई है । नीति प्रतीति प्रीति परिमिति पति  
हेतुवाद हटि हेरि हई है ।—तुलसी ।

हेतुवादी—वि० [ सं० हेतुवादि ] [ स्त्री० हेतुवादिनी ] (१) तार्किक ।  
दलील करनेवाला । (२) कुतर्की । नास्तिक ।

हेतुविधा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तर्कविधा ।

हेतुशास्त्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] तर्कशास्त्र ।

हेतुद्विधा—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बहुत बड़ी संख्या । (बौद्ध)

हेतुहेतुमद्भाव—संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्य-कारण भाव । कारण और  
कार्य का संबंध ।

हेतुहेतुमद्भाव काल—संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याकरण में क्रिया के  
भूतकाल का वह भेद जिसमें ऐसी दो बातों का न होना  
सूचित होता है जिनमें दूसरी पहली पर निर्भर होती है।  
जैसे,—यदि धूम सुससे मंगिते तो मैं अवश्य देता ।

हेतुपमा—संज्ञा स्त्री० दे० "अपेक्षा" (२) ।

हेतुपमद्विती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह अपेक्षा अलंकार जिस में प्रकृत के  
विषय का कुछ कारण भी दिया जाय । वि० दे० "अपेक्षा" ।

हेतुभासा—संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में किसी बात को सिद्ध करने  
के लिये उपस्थित किया हुआ वह कारण जो कारण सा  
प्रतीत होता हुआ भी ठीक कारण न हो । असंगतहेतु ।

विशेष—हेतुभासा पूर्व प्रकार का कहा गया है—सव्यभिचार,  
बिन्द, प्रकरणसम, साध्यसम और कालातीत । (१) जो हेतु  
और दूसरी बात भी उसी प्रकार सिद्ध करे-गर्भात् ऐकांतिक  
न हो वह "सव्यभिचार" कहलाता है । जैसे, शब्द निरप है  
क्योंकि यह अमूर्त है; जैसे—परमाणु । यहाँ अमूर्त होने जो  
भेद दिया गया है; वह बुद्धि का उदाहरण लेने से शब्द को

अनित्य भी सिद्ध करता है । (२) जो हेतु प्रतिष्ठा के ही  
विरुद्ध पड़े, वह विरुद्ध कहलाता है । जैसे,—घट उत्पत्ति  
घर्मवाला है, क्योंकि वह निरप है । (३) जिस हेतु में  
जिज्ञास्य विषय (प्रश्न) ज्यों का त्यों चना रहता है, वह  
'प्रकरण सम' कहलाता है । जैसे,—शब्द अनित्य है, उसमें  
नित्यता नहीं है । (४) जिस हेतु को साध्य के समान ही  
सिद्ध करने की आवश्यकता हो, उसे 'साध्यसम' कहते हैं ।  
जैसे,—छाया दृश्य है क्योंकि उसमें गति है । यहाँ छाया में  
स्वतः गति है, इसे साधित करने की आवश्यकता है । (५)  
यदि हेतु ऐसा दिया जाय जो कालक्रम के विचार से साध्य  
पर न पड़े, तो वह कालातीत कहलाता है । जैसे,—शब्द  
निरप है, क्योंकि उसकी अभिव्यक्ति संयोग से होती है ।  
जैसे—घट के रूप की । यहाँ घट का रूप दीर्घक के संयोग  
के पहले भी था, पर ढोल का शब्द लकड़ी के संयोग के पहले  
नहीं था ।

हेमंत—संज्ञा पुं० [ सं० ] छः ऋतुओं में से पाँचवाँ ऋतु जिसमें  
अगहन और पूस के महीने पड़ते हैं । जाड़े का मौसम ।  
शीतकाल ।

हेमंतनाथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] कपिल । कैप ।

हेम—संज्ञा पुं० [ सं० हेमन् ] (१) हिम । पाला । बर्फ । उ०—  
ऊयो । अथ यह ससुस मई । नैर्दग्धन के अंग अंग प्रति  
उपमा न्याय दई । आनन हँदु बरन सभमुद्य तनि करये तें  
न नई । गिरमोही नहि नैह; कुमुदिनी अंतहि हेम हई ।—  
सूर । (२) स्वर्णलंक । सोने का टुकड़ा । (३) सोना ।  
सुवर्ण । स्वर्ण । (४) कपिल । कैप । (५) नाग केसर ।  
(६) एक मासे की लील । (७) वादामी रंग का घोड़ा ।  
(८) बुद्ध का एक नाम ।

हेमफंदल—संज्ञा पुं० [ सं० ] रंग ।

हेमकान्ति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) धन-हलदी । (२) अर्धा-हलदी ।

हेमकूट—संज्ञा पुं० [ सं० ] हिमालय के उत्तर का एक पर्वत जो  
पुराणानुसार किडरुप वर्ष और भारतवर्ष की सीमा पर  
स्थित है ।

हेमकेश—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव का एक नाम ।

हेमगंधिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रेणुका नामक गंध-द्रव्य ।

हेमगर्भ—संज्ञा पुं० [ सं० ] उत्तर दिशा का एक पर्वत । (भारतमी०)

हेमगिरि—संज्ञा पुं० [ सं० ] शुभेक पर्वत ( जो सोने का कहा  
गया है ) ।

हेमगौर—संज्ञा पुं० [ सं० ] विकिरित वृक्ष ।

हेमग्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] सीसा चातु ।

हेमघ्ना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हलदी ।

हेमचंद्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जो विताळ  
का पुत्र था । (२) एक पसिद्ध जैन भाषाव्यंजो ईश्वरी

सन् १०८९ और ११०३ के बीच हुए थे और गुप्तसत्त के राजा कुमारपाल के गुरु थे। इन्होंने व्याकरण और कौश के कई ग्रंथ लिखे हैं। जैसे,—अनेकार्थकौश, भूमिदान चिन्तामणि, संस्कृत और प्राकृत का व्याकरण, देशीनाममाला, उणादिस्त्र वृत्ति इत्यादि।

हेमज-संज्ञा पुं० [ सं० ] शौंवा।

हेमतर-संज्ञा पुं० [ सं० ] धरुवा।

हेमता-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीला घोषा। वृत्तिया।

हेमताल-संज्ञा पुं० [ सं० ] उत्तराखंड का एक पहाड़ी देश।

हेमतुला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तौल में किसी के बराबर सोने का दान। सोने का तुलादान।

हेमवृता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक भस्तरा। (हरिवंश)

हेमदुग्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुल्म। ऊमर।

हेमधन्वा-संज्ञा पुं० [ सं० ] हेमधन्व ११वें मनु-के एक पुत्र का नाम।

हेमपर्वत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुमेरु पर्वत। (२) दान के लिये सोने की राशि। (यह महादानों में है।)

हेमपुष्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंपा। (२) अशोक। (३) नागकेसर। (४) भमलतास। गिरमाला।

हेमपुरिषका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सोनजुही। (२) गुदहर।

हेमपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) मजीठ। (२) मूखली कंद। (३) कंटकारी।

हेमफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का केला।

हेममय-वि० [ सं० ] सुनहरा।

हेममाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यम की पत्नी का नाम।

हेममाली-संज्ञा पुं० [ सं० ] हेममालिन् ] (१) सूर्य। (२) एक राक्षस जो खर का सेनापति था।

हेमयूथिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सोनजुही।

हेमरागिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हलदी।

हेमरेणु-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रसरेणु।

हेमलंघ, हेमलंघक-संज्ञा पुं० [ सं० ], वृहस्पति के साठ संवत्सरो में से ११वाँ संवत्सर।

हेमल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोनार। (२) कसौटी। (३) गिरगिट। (४) छिपकली।

हेमवल-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोती। मुक्ता।

हेमशिखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्णक्षीरी का पौधा।

हेमसागर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पौधा जो बगीचों में लगाया जाता है और पंजाब के पहाड़ों में आप से आप उगता है। इसे 'जड़म हयात' भी कहते हैं।

हेमसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीलाघोषा। वृत्तिया।

हेममुत्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पारंगती। दुर्गा।

हेमांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चंपा। (२) सिंह। (३) मेरुपर्वत।

(४) प्रह्ला। (५) विष्णु। (६) गरुड़।

हेमांगद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सोने का विजायठ। (२) वह जो सोने का विजायठ पहने हो। (३) यमुदेव के एक पुत्र का नाम। (४) कलिय देश के एक राजा का नाम।

हेमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) माधवी लता। (२) वृक्षी। (३) सुंदरी स्त्री। (४) एक भस्तरा जिससे संदीवरी उत्पन्न हुई थी।

हेमाचल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुमेरु पर्वत।

हेमाद्रि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सुमेरु पर्वत। (२) एक मसिह ग्रंथकार जो ईसा की १३वीं शताब्दी में विद्यमान था और जिसने पाँच खंडों (दान, व्रत, तीर्थ, मोक्ष और परितोष) में 'चतुर्वर्ग चिन्तामणि' नाम का एक बड़ा ग्रंथ लिखा है।

हेमाद्रिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्वर्णक्षीरी नाम का पौधा।

हेमाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक राग जो दीपक का पुत्र कहा जाता है।

हेमियानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रुपया पैसा रखने की जालीदार लंबी थैली जो कमर में बांधी जाती है।

हेम-संज्ञा पुं० [ सं० ] मंगल ग्रह।

हेम-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संकीर्ण राग का एक भेद।

हेम-वि० [ सं० ] (१) छोड़ने योग्य। न प्रहण करने योग्य। त्याग्य। (२) बुरा। झराब। निरुद्ध। उपादेय का उलटा। (३) जानेवाला। जाने योग्य।

हेर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गणेश। (२) भैंसा। (३) चिरीबल नायक। (४) एक बुद्ध का नाम।

हेर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चिरीट। (२) हलदी। (३) भापुरी माया।

हेर-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हेरना ] हूँद। तलाश। खोज।

हेर-संज्ञा पुं० [ सं० ] "अहेर"।

हेरफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव के एक गुण का नाम।

हेरना-संज्ञा-क्रि०-सं० [ सं० ] शब्द, हिं०-भैर ] (१) हूँदना। खोजना। तलाश। करना। पता लगाना। उ०—(क)

छागीं सय मिलि हेरे, बुदि बुदि एक साय। कोइ वरी मोती लेह, काहूँ सोया हाय।—आयसी। (ख) बहु प्रकार गिरि कानन हेरदि। कोइ पुनि मिलि साहि सय वेरदि।—पुलसी। (२) देखना। ताकना। अवलोकन करना। उ०—(क) छद् वेतन मग जीव घनेरे। जे बितप प्रभु, बिद्ध प्रभु हेरे। ते सब भए परमपद-जोग।—पुलसी।

(ख) अलि! एकत पाय पायँन परे हूँ आय, हूँ न तब हेरी वा गुनान, यमगारे सौं।—पद्माकर। (ग) क्यों हँसि हेरि हरयो हिंपरा ?—घनानंद। (३) खोजना। परखना।

विचारना । उ०—हाथे हेत हेरि हर ही को । किय भूपन तियभूपन तिय को ।—तुंरुसी ।

हेरना फेरना—क्रि० सं० [ हेला वृत् + हि० फेला ] (१) इधर का उधर करना । (२) अदृष्ट बदल करना । बदलना । परिवर्तन करना ।

मुहा०—हेर फेर कर = घुम फिर कर । उधर उधर होते हुए ।

हेर फेर—संज्ञा पुं० [ हि० हेला + फेरना ] (१) घुमाव । चक्र । (२) वचन की यकृत । बात का आडंबर । जैसे, हमें हेर फेर की बात नहीं भाती । (३) कुटिल युक्ति । दार्पण्य । बाल । (४) अदृष्ट-बदल । उलट पलट । इधर का उधर और उधर का इधर होना । क्रम विपर्यय । जैसे,—अधरों का हेर फेर हो गया । (५) अंतर । फुके । जैसे—दोनों के दाम में ५) का हेर फेर है । (६) अदृष्टा बदला । विनिमय । देन-देन या स्वीद-फरोख्त का व्यवहार । जैसे,—वहाँ निय लखों का हेर फेर होता है ।

हेरना—संज्ञा पुं० [ हि० हेला ] सलसा । हूँद । खोज । क्रि० प्र०—पढ़ना ।

हेरघाना—क्रि० सं० [ हि० हेला ] खोना । गंवाना ।

क्रि० सं० [ हि० हेला का प्रे० ] हूँदवाना । सलास कराना ।

हेराना—क्रि० प्र० [ सं० हारण ] (१) खो जाना । असाधारणी के कारण पात से निकल जाना । न जाने क्या होना । न जाने कहाँ चला जाना या न रह जाना । उ०—हेरि रही क्यूँ तें यहि रौं मूर्खी को हेरानो कहुँ गग मेरो ।—शंभू ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(२) न रह जाना । कहीं न मिलना । अभाव हो जाना ।

उ०—गुन न हेराने, गुन-नाहक हेराने है । (३) लुप्त हो जाना । गूट हो जाना । तिरछित हो जाना । खपता होना ।

उ०—रहा जो रावन केर पसेरा । गा हेराप, कहुँ मिले न हेरा ।—जायसी । (४) फीका पड़ जाना । मंद पड़ जाना ।

कमिहीन होना । उ०—आनन के दिग होत सखी अखिंद की दुखिहूँ है हेरानी । (५) भ्राम-विस्मृत होना ।

अपनी श्रुत-श्रुत भूलना । छीन होना । सम्मय होना ।

उ०—सो छपि हेरि हैराप रहे हरि, कौन को रसिधो काको मनावन ।

क्रि० सं० [ हि० हेला का प्रे० ] खोजवाना । हूँदवाना । सलास कराना । उ०—हार गैवाँद सो ऐमै रोवा । हेरि हेराह लेदु को रोवा ।—जायसी ।

हेराफेरी—संज्ञा स्त्री० [ हि० हेला + फेरना ] (१) हेरफेर । अदृष्ट-बदल । (२) यहाँ की चीज यहाँ और यहाँ की चीज यहाँ होना । इधर का उधर होना या करना । जैसे,—घोर खोरी से गया तो क्या हेराफेरी से भी गया ।

हेरिफ—संज्ञा पुं० [ सं० ] भेद देनेवाला दूत । गुप्तचर ।

हेरियाना—क्रि० प्र० [ हेरा० ] जहाज़ के अगले वालों की रसियत या तान कर बोलना । हेरिया मारना । (कसा०)

हेरी—संज्ञा स्त्री० [ संघीय दे + ङी ] पुकार । डेर ।

मुहा०—हेरी देना = बिनाकर नाम लेना । पुकारना । भ्रातृ देना । देना । उ०—हेरी देत सखा सम आप चले चरावन गीवाँ ।—सूर ।

हेरक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गणेश का एक नाम । (२) महाकाल शिव का एक गण । (३) एक बोधिसत्व का नाम । (४) एक प्रकार के नास्तिक ।

हेल—संज्ञा पुं० [ हि० हिलना ] घनिष्ठता । मेलजोड़ । ( यह शब्द अकेले नहीं आता, 'मेल' के साथ आता है । )

यो०—हेलमेल ।

संज्ञा पुं० [ हि० होल ] (१) कीचड़, गोबर इत्यादि । (२) गोबर का खेप । जैसे,—दो हेल गोबर साल जा । (३) मैला । मलीज़ । (४) पृष्ठा । घिन ।

हेलान—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गुच्छ समझना । परवा न करना । तिरस्कार करना । अघंसा करना । (२) क्रीड़ा करना । खेल करना । किलेज करना । (३) अपराध । क्रूर ।

हेलना—क्रि० प्र० [ सं० हेलना ] (१) क्रीड़ा करना । खेल करना । (२) खिन्दा करना । हँसी उठाना । डिडोली करना । उ०—मोहिं न भावत ऐसी हँसी 'द्विजदेव' सयें गुम नाहक हेलति ।—द्विजदेव । (३) खेल समझना । परवा न करना । उ०—को शुभ अस वन फिरहु अकेले सुंदर जुवा जीव पर हेले ।—गुरुसी ।

क्रि० सं० (१) गुच्छ समझना । अघंसा करना । तिरस्कार करना । (२) ध्यान न देना । परवा न करना ।

† क्रि० प्र० [ हि० हिलना, हलना ] (१) प्रवेश करना । घुसना । दाखिल होना । ( विरोधतः पानी में ) (२) सैरना ।

हेल मेल—संज्ञा पुं० [ हि० हेलमेल ] (१) मिलने जुटने, आने जाने, साथ उठने बैठने आदि का संबंध । घनिष्ठता । मित्रता । रम्य जुट । जैसे,—दस बदे आदमियों से उनका हेल्मेल है । (२) संग । साथ । जुहवाव । (३) परिषय ।

क्रि० प्र०—करना ।—बहाना ।—होना ।

हेलया—क्रि० वि० [ सं० ] (१) खेल ही खेल में । (२) सटन में ।

हेला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) गुच्छ समझना । अघंसा । तिरस्कार ।

(२) ध्यान न देना । बेपरवाई । (३) खेल । खेलपाद ।

क्रीड़ा । (४) बहुत सटन वान । बहुत आसक्त काम । (५) मंगारचेरा । प्रेम की क्रीड़ा । केन्द्र । (६) साक्षिप में अनुभावार्तगत एक प्रकार का 'दाव' अर्थात् संयोग-समय में मित्रों की मनेहार सेवा । नायक से मित्रों के समय नायिका की विविध विताम्य या खिन्दा-सूचक मुद्रा ।

## सूचना

हिन्दी शब्दसागर की इस ४०वीं संख्या में "हेमवत" तक के शब्द आ चुके हैं। अब "ह" के बहुत छोटे शब्द रह गए हैं जो छप भी चुके हैं। यह निश्चय किया गया है कि इस शब्दसागर में जो शब्द किसी कारण से छूट गए हैं, वे अन्त में दे दिए जाएँ। कोश-विभाग में आजकल इसी प्रकार के छूटे शब्दों का संग्रह हो रहा है, जो सम्भवतः इसी जून मास के अन्त तक समाप्त हो जायगा। अतः कोश के ग्राहकों, अनुग्राहकों तथा हिन्दी के आग्यान्व प्रेमियों से निवेदन है कि उनके ध्यान में जो शब्द इस कोश में छूटे हुए हो, उनकी सूची, यथासाध्य अर्थ और उदाहरण सहित बहुत शीघ्र नीचे लिखे पते पर भेज कर समा को अनुग्रहीत करें। ऐसे शब्द उपयुक्त समझे जाने पर इसी के अन्त में दे दिए जाएँगे। समा चाहती है कि ये छूटे हुए शब्द और भूमिका इत्यादि शीघ्र ही प्रकाशित हो जायँ। अतः शब्द भेजनेवाले महानुभावों को शीघ्रता करना चाहिए। आशा है कि दो या अधिक से अधिक तीन संख्याओं में यह कोश समाप्त हो जायगा।

श्यामसुन्दरदास,

सम्पादक शब्दसागर

नागरीप्रचारिणी समा

बनारस सिटी



## संकेताचरो का विवरण

अं० = अंगरेजी भाषा  
 अ० = अरबी भाषा  
 अनु० = अनुकरण शब्द  
 अने० = अनेकार्थनाममाला  
 अप० = अपभ्रंश  
 अयोध्या = अयोध्यासिंह  
 उपाध्याय  
 अर्द्धमा० = अर्द्धमागधी  
 अल्पा० = अल्पाधिक प्रयोग  
 अव्यय० = अव्यय  
 आनेदघन = कवि आनेदघन  
 इय० = इब्रानी भाषा  
 उ० = उदाहरण  
 उत्तरचरित = उत्तररामचरित  
 उप० = उपसर्ग  
 उभ० = उभयलिङ्ग  
 उठ० उप० = कठवल्ली  
 उपनिषद्  
 फकीर = फकीरदास  
 केशव = केशवदास  
 फोक० = फोकण देश की भाषा  
 क्रि० = क्रिया  
 क्रि०अ० = क्रिया अकर्मक  
 क्रि०प्र० = क्रियाप्रयोग  
 क्रि० वि० = क्रियाविशेषण  
 क्रि० स० = क्रिया सकर्मक  
 क० = कश्चित्, अर्थात् इस  
 का प्रयोग बहुत कम  
 देखने में आया है

गुज० = गुजराती भाषा  
 गुमान = गुमान मिश्र  
 गोपाल = गिरिधरदास  
 ( वा० गोपालचंद्र )  
 चरण = चरणचंद्रिका  
 चिंतामणि = कवि चिंतामणि  
 त्रिपाठी  
 छीत = छीतस्वामी  
 जायसी = मलिक मुहम्मद  
 जायसी  
 जावा० = जावा द्वीप की भाषा  
 ज्योति० = ज्योतिष  
 डि० = डिगल भाषा  
 तु० = तुर्की भाषा  
 तुलसी = तुलसीदास  
 तोप = कवि तोप  
 दादू = दादूदास  
 दीनदायाल = कवि  
 दीनदायाल गिरि  
 दुलह = कवि दुलह  
 दे० = देखा  
 देव = देव कवि  
 (मैनपुरीवाले)  
 देश० = देशज  
 द्विवेदी = महाशय्यप्रसाद  
 द्विवेदी  
 नागरी = नागरीदास  
 नाभा = नाभादास

पुस्त० = पुस्तकाली भाषा  
 पू० हि० = पूर्वी हिंदी  
 प्रत्याप = प्रत्यपनगण मिश्र  
 यनी = कवि यनी प्रवीण  
 भाव = भाववाचक  
 भू = भू

लक्ष्मणसिंह = राजा  
 लक्ष्मणसिंह  
 लक्ष्मणसिंह  
 स० सत० = सतार सतार  
 स० = सस्कृत  
 स० = सयोजक अव्यय  
 स० क्रि० = सयोज्य क्रिया  
 स० = सकर्मक  
 स० = सवर्तसिंह लोहान  
 मा० वि० = सभावितास  
 पू० = सवनाम  
 सदन = सदन कवि  
 ( भरतपुरवाले )  
 सर = सरदास  
 खि० = खिया द्वारा  
 खी० = खीलिंग  
 स्पे० = स्पेनी भाषा  
 हि० = हिंदी भाषा  
 उनमान = हनुमन्नाटक

गाम्भरदास ( वा०  
 गोपालचंद्र )  
 गिरिधर = गिरिधरदास  
 ( इटलियावाले )

पा० = पाली भाषा  
 पु० = पुस्तिक  
 पू० हि० = पुस्तानी हिंदी

मुहा० = मुहायय  
 यू० = यूनानी भाषा  
 यो० = योगिक तथा यो  
 या अधिक शब्दों के पद  
 युराज = महाराज  
 युराजसिंह योवानरेश  
 यवान = संयुक्त इब्राहीम  
 रहीम = अष्टुरहीम  
 खानखाना

सदन = सदन कवि  
 ( भरतपुरवाले )  
 सर = सरदास  
 खि० = खिया द्वारा  
 खी० = खीलिंग  
 स्पे० = स्पेनी भाषा  
 हि० = हिंदी भाषा  
 उनमान = हनुमन्नाटक  
 हास्वद = भारतदु हास्वद

**द्वैतधर्मी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उमा । (२) गंगा ।  
 (१) सफेद फूल की वध । (२) हरीतीक्ष्णी । हृद । (३)  
 अक्षरी । अक्षरी । तीक्ष्णी । (४) रेणुका नामक गंधद्रव्य ।  
**द्वैता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) सोनतुड़ी । (२) जूद चमेकी ।  
**द्वैती**—वि० स्त्री० [ सं० ] सोने की । सोने की बनी ।  
**द्वैती**—संज्ञा स्त्री० (१) बेतकी । (२) सोनतुड़ी ।  
**द्वैतगंधी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक दिन पहले के दूध के गन्धजन से  
 बनाया हुआ घी । ताजे मखन का घी ।  
**द्वैतगंध**—वि० [ सं० ] गणेश-संबंधी ।  
**द्वैतगंध** पुं० गणेश का उपासक संवदाय । गणेश्वर ।  
**द्वैतगंध**—वि० [ सं० ] (१) द्विगंध संबंधी । सोने का । सोने का  
 बना हुआ । (२) सोना उपास करनेवाला ।  
**द्वैतगंधक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सोनार ।  
**द्वैत**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आश्चर्य । अचरज । अचंभा ।  
 तमसुध । (२) एक सुकाम या फारसी राग का पुत्र ।  
**द्वैतान**—वि० [ सं० ] (१) आश्चर्य से । स्तब्ध । अचिंत ।  
 दृग् । मौचक्य । जैसे,—(क) मैं उसे एकपासी यहाँ देख-  
 कर दैतान हो गया । (ख) ताज की फारीशरी देत लोग  
 दैतान हो जाते हैं । अम, कष्ट या संकट से व्याकुल । विकल ।  
 (२) परेशान । ध्यस्त । तंग । जैसे,—तुमने मुझे नाटक  
 धूप में दैतान किया ।  
**द्वैत** पुं०—काना ।—होना ।  
**द्वैतान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यशु । जानवर । 'द्वैतान' का बलदा ।  
 (२) लक्ष्मणस्य । वेदकृष्ण या गौरी आदमी । उजड़  
 आदमी ।  
**द्वैतानी**—वि० [ सं०—दैतान ] (१) यशु का । (२) यशु के करने  
 योग्य । जैसे,—द्वैतानी काम ।  
**द्वैतियत**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) योग्यता । सामर्थ्य । शक्ति ।  
 (२) विषय । धनपद । समाई । विसरत । आर्षिक दशा ।  
 जैसे,—उसकी द्वैतियत देखी नहीं है कि गादी धोधा रख  
 सके । (३) मूल्य । (४) श्रेणी । वरजा । जैसे,—इस मकान  
 की द्वैतियत के हिसाब से ३०००) दाम बहुत है । (५)  
 मान-अभ्यासा । प्रतिष्ठा । (६) धन । दौलत । आयदा ।  
 जैसे,—उसने अपनी द्वैतियत पैदा की है ।  
**द्वैतय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक क्षत्रिय वंश जो यदु से उत्पन्न  
 कहा गया है । दुराणों में हंस यदु की पौत्र दाक्षायण कदी  
 गई है—तादजय, वीरिहोत्र, आर्यय, गुंडिकेर और जात ।  
 लिखा है कि द्वैतयों ने शकों के साथ साथ भारत के अनेक  
 देशों को जीता था । प्राचीन काल का दस उग्र का सब से  
 प्रसिद्ध राजा कार्तवीर्य सहलाहून हुआ था जिसे पाशुसाम  
 ने मारा था ।

**द्वैतय**—इतिहास में द्वैतय वंश कलचुरि के नाम से प्रसिद्ध  
 है । विजय संवत् ५५० और ७९० के बीच द्वैतयों का राज्य  
 वेदि देश और गुजरात में था । द्वैतयों ने एक संवत्  
 भी चलाया था जो कलचुरि संवत् कहलाता था और  
 विक्रम संवत् ३०६ से आरंभ होकर १३वीं शताब्दी तक  
 हथर उधर चलता रहा । द्वैतयों का शंखलायत्र इतिहास  
 विक्रम संवत् ९२० के आसपास से मिलता है इससे पूर्व  
 चोलुग्यों आदि के प्रसंग में हथर उधर उल्लेख मिलता है ।  
 कौकिलदेव ( वि० सं० ९२०-९६० ) के, सुभक्तुंग, यालदप  
 केयूरवर्ष ( संवत् ९९० के लगभग ), शंकरगुण, सुवराज-  
 देव ( वि० १०५० के लगभग ) गंगिदेव, कर्णदेव आदि  
 बहुत से नाम मिलालेखों में द्वैतय राजाओं के मिलते हैं ।  
 (२) द्वैतयवंशी कार्तवीर्य सहलाहून । (३) पश्चिम दिशा  
 का एक पर्वत । (बृहत्संहिता)  
**द्वैतयराज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] द्वैतयवंशी कार्तवीर्य सहलाहून ।  
 व०—जय हन्वी द्वैतयराज हन विदु उग्र छितिमंडल करयो ।  
 —केशव ।  
**द्वै**—अभ्य० [ हा हा । ] शोक, रोद या दुःख-सूचक शब्द । हाय ।  
 अफसोस । हा हँस ।  
**द्वै**—कि० प्र० सत्कार्य क्रिया 'द्वै' का बहुवचन संभाव्य काल  
 का रूप । जैसे,—(क) सायद ये वहाँ हों । (ख) यदि वे  
 वहाँ हों तो यह कह देना ।  
**द्वै**—संज्ञा पुं० [ सं०—द्वै, पुं० ] (१) प्राणियों के मुख चिबुर का  
 उभरा हुआ किनारा जिससे दाँत ढँके रहते हैं । भोष्ठ ।  
 रक्षक ।  
**द्वै**—संज्ञा पुं०—द्वैतना या चबना = पीने की वधि या घीम कृत  
 करना । द्वैत चाटना = किसी बहुत सादित वस्तु को खाकर  
 प्रशंसा प्रकट करना । और खाने की इच्छा या लालच करना ।  
 जैसे,—हलवा पेसा बना था कि लोग द्वैत चाटते रह गए ।  
**द्वै**—विचक्रना = पीने की वधि का नाम दुनकर लालच होना ।  
**द्वै**—शून्यता = द्वैत का शून्यता । द्वैत हिलाना = शोकने  
 के लिए मुँह खोलना । पीटना ।  
**द्वै**—वि० [ हि० द्वैत+क (अभ्य०) ] मोटे होवेवाला ।  
**द्वै**—संज्ञा स्त्री० [ हि० द्वैत ] (१) बारी । किनारा । भौंड । (२)  
 छोटा टुकड़ा ।  
**द्वै**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुद्गलने का शब्द या संज्ञोचन ।  
 कि० प्र० (१) सत्कार्य क्रिया 'द्वै' के अभ्युपगम  
 संभाव्य काल तथा मध्यमपुत्र बहुवचन के वर्तमान काल  
 का रूप । जैसे,—(क) सायद यह हो । (ख) तुम  
 वहाँ हो ।  
 (२) प्रस की वर्तमान कालिक क्रिया 'द्वै' का सामान्य भूत  
 का रूप । भा ।



**होई**—संज्ञा स्त्री० [ दि० होना ] एक पूजन या त्योहार जो होयाली के भाट दिन पहले होता है। इसमें ऐसी दो किर्तियों की कथा कही जाती है जिनमें से एक को संतान होती ही नहीं थी और दूसरी की संतान हो दोकर मर जाती थी।

**होगला**—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का बरसल या नरकट।

**होजन**—संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का हातिया या किनारा जो कपड़ों में बनाया जाता है।

**होटल**—संज्ञा पुं० [ अंग० ] यह स्थान जहाँ मुख्य लेकर लोगों के भोजन और ठहरने का प्रबंध रहता है।

**होड़**—संज्ञा स्त्री० [ सं० धार = लक्ष्मी, विचार ] (१) दूसरे के साथ ऐसी प्रतिज्ञा कि कोई बात हमारे कथन के अनुसार न हो तो हम हार मानें और कुछ दें। शर्त। पाज़ी।

कि० प्र०—बदना।—लगाना।

(२) एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न। किसी बात में दूसरे से अधिक होने का प्रयत्न। स्पर्धा। (३) यह प्रयत्न कि जो दूसरा करता है, हम भी करेंगे। समान होने का प्रयत्न। बराबरी। उ०—होड़ सी परी है मानी घन घनदयाम जू सों दामिनी को कामिनी को दोऊ अंक में भैं।—तोष।

कि० प्र०—पढ़ना।

(४) भड़। हठ। जिद्द।

संज्ञा पुं० [ सं० ] तर्रदा। नाव।

**होड़ायाही**—संज्ञा स्त्री० [ दि० होड़ + बदना ] होड़ाहोड़ी।

**होड़ाहोड़ी**—संज्ञा स्त्री० [ दि० होड़ ] (१) दूसरे के बराबर होने या दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न। लाम डॉट। चढ़ा ऊपरी। (२) शर्त। पाज़ी।

**होट**—वि० [ सं० ] चुराया हुआ। चोरी का।

**होत**—संज्ञा स्त्री० [ दि० होना या सं० भूति ] (१) पास में घन होने की दशा। आच्छता। संपन्नता। उ०—(क) होत की जोत है। (ख) होत का वाय, अनहोत की माँ। (२) वित्त। सामर्थ्य। घन की योग्यता। मकदूर। समार्थ।

**होतय**, **होतय्य**—संज्ञा पुं० [ सं० भवितव्य ] होनेवाला। यह जो होने को हो। होनेहार।

**होतव्यता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० भवितव्यता ] होनेवाली बात। वह बात जिसका होना भूय हो। होनेहार। उ०—जैसी हो होतव्यता, वैसी उपजै सुदि।

**होता**—संज्ञा पुं० [ सं० होत ] स्त्री० होती यज्ञ में आहुति देनेवाला। मंत्र पढ़कर भूमिखंड में हवन की सामग्री डालनेवाला।

**विशेष**—यह चार प्रधान ऋषिवर्गों में है जो ऋग्वेद के मंत्र पढ़ता और देवताओं का शाहान करता है। इसके तीन पुरुष या सहायक होते हैं—मैश्रावरण, अश्वत्थाक और प्रावस्तुव।

**होनाहार**—वि० [ दि० होना + हार (प्रत्यय) ] (१) जो होनेवाला है। जो अवश्य होगा। जो होने को है। भावी। (२) जिसके

बचने या श्रेष्ठ होने की आशा हो। अच्छे लक्षणोंवाला। जिसमें भावी उपलब्धि के चिह्न हों। जैसे,—होनाहार लड़का। उ०—होनाहार बिरयान के होत चीकने पात।

संज्ञा पुं०—यह बात जो होने को हो। वह बात जो अवश्य हो। वह बात जिसका होना ईश्वी विधान में निश्चित हो। होनी। भवितव्यता। उ०—हम पर कीमत रोख कालपति जानि न जाई। होनाहार है रहे मिटे मेरी न मिशई। होनाहार है रहे मोह मय सय को छुटे। होय तिनका यत्र, यत्र तिनका है छुटे।—केशव।

**होना**—कि० प्र० [ सं० भवन; प्रा० होन ] (१) प्रधान सत्कार्य किया। अस्तित्व रखना। कहीं विद्यमान रहना। उपस्थित या मौजूद रहना। जैसे,—उसका होना और न होना बराबर है। (ख) संसार में ऐसा कोई नहीं है। उ०—गगन हवा, नहिं महि हृत्ति, हुते चंद्र नहीं सूर।—जायसी।

**विशेष**—शुद्ध सत्ता के अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग साधारण रूप 'होना' के अतिरिक्त केवल सामान्य कालों में ही होता है। जैसे,—वह है, मैं था, वे होंगे। और कालों में प्रयुक्त होने पर यह क्रिया विकार, निर्माण, घटना, अनुष्ठान आदि का अर्थ देती है। हिंदी में यह क्रिया बड़े महात्व की है, क्योंकि खड़ी बोली में सय क्रियाओं के अधिकतर 'हाल' इसी क्रिया की सहायता से बनते हैं। काल-निर्माण में यह सहायक क्रिया का काम देती है। जैसे,—वह चलता है, वह चलता था, वह चलता होगा, यह चला है, हय्यदि, हय्यदि। इस क्रिया के काल-सूचक रूप अनियमित या रूप होते हैं जैसे,—है, था, होगा। सामान्य वर्तमान के दो रूप होते हैं—एक तो 'है' जो शुद्ध सत्ता बोधक है; दूसरा "होता है" जो प्रसंग के अनुसार सत्ता और विकार दोनों सूचित करता है; जैसे,—(क) जो फूर होता है, वह दया नहीं करता। (ख) देखो अभी यह काल से सफ़ेद होता है।

**मुहा०**—किसी का होना = (१) किसी के अधिकार में, श्रेष्ठ या भाग्यवर्ती होना। दास होना। सेवक होना। उ०—तुजसी तिहारी, तुम ही तैं तुलसी को हित, सखि कहीं जोरी तो छेईं माखी पीय की।—तुलसी। (२) किसी का प्रेमी या प्रेयवात्र होना। उ०—(क) सब भक्ति सों कान्ह तिहारी मय सखि भी तुम हूँ भइ कान्ह केरी।—कोई कवि। (ख) अथ तो कान्ह मय कुंभमा के क्यों करिईं प्रज फेरो।—सूर। (२) किसी का भागीय, जुड़नी या संरंभी होना। सगा होना। जैसे,—जो तुम्हारा हो, उससे कदो सुनो, मुससे मतलब। उ०—देस में रहैगे, परदेस में रहैगे, काहू भेस में रहैगे तक राखे कदावैगे—अनीस। कहीं का हो रहना = (कहीं से) न लौटना। कहीं रह जाना। अधिक बित्त लगा देना। बढ़त रुक या ठहर जाना। जैसे,—यह बढ़ा सुस्त है; जहाँ

जाता है, यहाँ का हो रहता है। (कहाँ से) होकर या होते हुए = (२) गुजारे हुए। बीच से। मध्य से। जैसे,—इस रास्ते या मझसे से होकर मत जाना। (२) बीच में डरते हुए। बीच में बक कर डरल बातचीत या काम करते हुए। जैसे,—चीक जा रहे हो तो उनके यहाँ से होते जाना। (३) पहुँचना। जाना। मिठना। जैसे,—जब उधर जा ही रहे हो तो उनके यहाँ भी होते आना। हो आना = मेट काले के लिये जाना। मिल आना। जैसे,—बहुत दिनों में नहीं गए हो, ज़रा उनके यहाँ हो आओ। होते पर = पास में पन होने की दशा में। संघर्ष में। जैसे—ये सुख होते पर की वानें हैं। होता सोता = जो बनना होना हो। श्लाघीय। कुटुंबी। संघर्षी। जैसे,—अपने होते सोतो को कोसो। (खि०) कौन होता है? = संघर्ष में क्या है। कौन संघर्षी है। कौन लगना है। जैसे,—ये तुम्हारे कौन होते हैं?

(२) विकार-सूचक क्रिया। एक रूप से दूसरे रूप में आना। अन्य दशा, स्वरूप या गुण प्राप्त करना। सूरत या हाडत बदलना। जैसे,—(क) तुम क्या से क्या हो गए? (ख) कुर्लंग में पदकर यह लडका ख़राब हो गया। (ग) तुम्हारे कइसे ने पीतल सोना ही जायगा!

संयो० कि०—जाना।

मुहा०—हो धैरता = (१) बन जाना। भरने की सतकने लगना या प्रकट करने लगना। लगाने लगना। जैसे,—देखते देखते यह कवि हो बैठा। (२) मांसिक बर्ग में होना। स्वल्पना होना। (३) क्रिया जाना। साधित किया जाना। कार्य का संपन्न किया जाना। भुगतना। सरना। जैसे,—(क) काम हो रहा है। (ख) छपाई कब होगी?

संयो० कि०—जाना।

मौ०—होना जाना, होता हवाना। जैसे,—यह सब होता जाता रहेगा, तुम उधर का काम देखो।

मुहा०—हो जाना या चुकना = समाप्ति पर पहुँचना। पूरा होना। ख़तम होना। करने की न पर जाना। सिद्ध होना। हो चुकना = (१) मर जाना। जैसे,—वैद्य के पहुँचते पहुँचते तो यह हो चुका। (२) न रह जाना। टुट होना। जैसे,—यदि ऐसे ही रूपदेवक हैं तो हिंदू धर्म ही चुका। वस हो चुका = कुछ न होना। कुछ भी काम न हुनेना। काम न पूरा होना। (नैवश्य सूबक) हो फिर क्या है? = फिर तो कुछ करने को रह ही न जायगा। सब ही सब काम सिद्ध रहभयो। (४) बचना। निर्माण किया जाना। तैयार होने की हाडत में रहना। प्ररुत किया जाना। जैसे,—(क) खाना होना, रसोई होना, दाह होना। (ख) अमी कोट हो रहा है, कुरते में पीठे हाथ लगोगा।

विशेष—मदान आदि बढ़ी वस्तुओं के धनने के अर्थ में इस क्रिया का व्यवहार नहीं होता।

(५) घटना-सूचक क्रिया। किसी घटना या व्यवहार का प्रस्तुत रूप में आना। घटित किया जाना। कोई बात या संयोग भा पदना। जैसे,—(क) अंधेर होना, ग़ज़ब होना, वाक़या होना। (ख) कोई ऐसी वैसी बात हो जायगी तो कौन निम्मेदार होगा?

मुहा०—होकर रहना = प्रवय घटित होना। न रहना। बकर होना। जैसे,—जो होनेवाला रहता है, वह होकर रहता है। तो क्या हुआ? = तो कोई इजं ग़र्षा। तो कुछ हुआ या दोष नहीं। जैसे,—टूटा है तो दया हुआ, काम तो पैया। हुआ हुआ = (१) बस रहने दो, तुमसे न कले बनेगा रा न पूरा होगा। (२) बहुत कर मुके, धन चुप रहे। श्रीर बोलने की बकरन नहीं। हो न हो = प्रवय। निश्चय। बुर। निरसंदेह। जैसे,—दो न हो, यह उली की कारवाई है। जो हुआ सो हुआ = (१) भीती बात आने दो। गुबरी बात की भोर ध्यान न दो या परना न करो। (२) जो हुआ वह अब भी न होगा। उ०—जाहू लला! जो भई सो भई अब नेद की बात चलाइ पा ना।—कोई कवि। हो पढ़ना = न परना। जान या मनवान में कोई दोष भा भूल हो जाना।

(६) किसी रोग, व्याधि, अस्वस्था, प्रेतवाधा आदि का आना। किसी मजँ या बीमारी का घेरना। जैसे,—(क) उसको क्या हुआ है? (ख) कौड़ा होना, रोग होना हत्यादि। (७) भीतना। गुज़रना। जैसे,—दस दिन हो गए, यह न खौटा। (८) परिणाम निकलना। किसी कारण से कार्य का विकास पाना। फल देखने में आना। जैसे,—(क) समझाने से क्या होगा? (ख) मारने पीटने से कुछ न होगा।

मुहा०—होता रहेगा = फल निकला जायगा। परिणाम बचका न होगा। (गण०)

(९) अतार देखने में आना। प्रभाव या गुण दिखाई पड़ना। जैसे,—इस दवा में कुछ न होगा। (१०) जनमना। जन्म लेना। उद्भव पाना। जैसे,—उस की को एक लडकी हुई है। (११) काम निकलना। प्रयोजन या कार्य संचना। जैसे,—१० से क्या होगा? और डामो।

यौ०—होना। जाना।

(२) काम विगड़ना। इनि पहुँचना। दासि धारना। जैसे,—तुम्हारे नाराज़ होने से हमारा क्या हो जायगा?

यौ०—होना जाना।

होनिहार—छा पुं० रे० "होनहार"।

होनी-बंशा की० [ हि० होना ] (१) उरपत्ति। पैदाइश। (२) यह बात भी हो गई है। दाह। घृषान। (३) होनेवाली बात

या घटना। यह बात जिसका होना भ्रूव हो। वह बात जिसका होना दैवी विधान में निश्चित हो। भाषी। भवितव्यता। उ०—दूरे रहै होनी प्रयास विना, अनहोनी न है सकै कोटि उपाई।—पद्माकर। (४) हो सकनेवाली बात। यह बात जिसका होना संभव हो।

होहार-संज्ञा पुं० [ देहा० ] सोहन विद्या का एक भेद। तिस्र। संज्ञा पुं० घोड़ा। (हिं०)

होम-संज्ञा पुं० [ सं० ] देवताओं के उद्देश्य से अग्नि में घृत, जौ आदि डालना। दहन। यज्ञ। आहुति देने का कर्म।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—होम कर देना = (१) बला डालना। भयम कर देना।

(२) नष्ट करना। पराद करना। (३) उत्सर्ग करना। छोड़ देना।

होमकाष्ठी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यज्ञ की अग्नि दहकाने की कुँडली।

होमकुंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] होम की अग्नि रखने का गड्ढा।

होमना-क्रि० सं० [ सं० ] होम न+ना (प्रत्य०)। (१) देवता के उद्देश्य से अग्नि में शालना। दहन करना। आहुति देना।

संयो० क्रि०—देना।

(२) उत्सर्ग करना। छोड़ देना। उ०—नंदलाल के हेतु आशुतो सुख वै होमति।—सुकवि।

(३) नष्ट करना। बरनाद करना।

होमि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अग्नि। (२) घृत। (३) जल।

होमियोपैथिक-वि० [ सं० ] (१) चिकित्सा की होमियोपैथी नामक पद्धति के अनुसार। (२) होमियोपैथी के अनुसार चिकित्सा करनेवाला।

होमियोपैथी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] योदे दिनों से निकला हुआ पाथाय चिकित्सा का एक सिद्धांत या विधान जिसमें विषों की अल्प से अल्प मात्रा द्वारा रोग दूर किए जाते हैं। रोग के समान लक्षण उत्पन्न करनेवाले द्रव्यों द्वारा रोगनिवारण की पद्धति।

विशेष—इस सिद्धांत के अनुसार कोई रोग उसी द्रव्य से दूर होता है जिसके खाने से स्वस्थ अनुप्य में उस रोग के समान लक्षण प्रकट होते हैं। इसमें सखिया, कुचका आदि अनेक विषों को स्पिरिट में डालकर उनकी मात्रा को निरंतर हलकी करते जाते हैं।

होमीय-वि० [ सं० ] होम-संबंधी। होम का। जैसे,—होमीय द्रव्य।

होम्य-वि० [ सं० ] होम-संबंधी। होम का।

संज्ञा पुं० घृत। घी।

होर-वि० [ मनु० ] रहारा हुआ। चलने से रुका हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

होरमा-संज्ञा पुं० [ देहा० ] एक प्रकार की घास या चारा। सर्बिक।

होरस्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] पर्व चिंतना। पर्यटन की गोल छोटी चौकी जिस पर चंद्रन चिसते या रोटी बेलते हैं। चौका।

होरा-संज्ञा पुं० दे० "होला"।

संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्तानी भाषा से गृहीत। (१) एक अक्षरात्र का २४वाँ भाग। पंटा। चाँद पक्षी का समय। (२) एक राशि या लग्न का आधा भाग। (३) जन्मकुंडली। (४) जन्मकुंडली के अनुसार फलाफल-निर्णय की विद्या। जातक शास्त्र।

होरिल-संज्ञा पुं० [ देहा० ] नवजात बालक। नया पेशा लड़का। (गीत)

होरिहारक्षी-संज्ञा पुं० [ हिं० होरी ] होली खेलनेवाला। उ०—होन लगी मजगलिन में होरिहारन की घोष।—पद्माकर।

होरी-संज्ञा स्त्री० दे० "होली"।

संज्ञा स्त्री० [ हिं० होर = ठहरा हुआ ] एक प्रकार की बड़ी नाव जो जहाज़ों पर का माल छादने और उतारने के काम में आती है।

होल-संज्ञा पुं० [ देहा० ] पश्चिमी एशिया से आया हुआ एक पौधा जो घोड़ों और घोषियों के चारे के लिये लगाया जाता है।

होलाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाग में खुनी हुई चने, मटर आदि की हरी फलियाँ। होला। होरा। होरहा।

होला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] होली का खोहार।

संज्ञा पुं० सिसों की होली जो होली के दूसरे दिन होती है।

संज्ञा पुं० [ सं० ] होलाक। (१) भाग में भूनी हुई चने या मटर की फलियाँ। (२) चने का हरा दाना। होरा। होरहा।

होलाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाग की गरमी पहुँचा कर पक्षीना खाने की एक क्रिया। एक प्रकार की खेदन-विधि। (भायुवेद)

होलाका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] होली का खोहार।

होलाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] होली के पहले के आठ दिन जिनमें विवाह-कृत्य नहीं किया जाता। जस्ता बस्ता।

होलिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) होली का खोहार। (२) लकड़ी, घास फूस आदि का वह ढेर जो होली के दिन जलाया जाता है।

यो०—होलिका दहन।

(३) एक राक्षसी का नाम।

होली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] होलिका। (१) हिंदुओं का एक बड़ा खोहार जो फाल्गुन के अंत में वसंत ऋतु के आरंभ पर मनाया जाता है और जिसमें लोग एक दूसरे पर रंग अबीर आदि डालते तथा अनेक प्रकार के विनोद करते हैं।

विशेष—प्राचीन काल में जो मनुसंहिता का 'वसंतोत्सव' होता था, उसी की यह परंपरा है। इसके साथ होलिका राक्षसी की शक्ति का कृत्य भी मिला हुआ है। वसंत

पंचमी के दिन से लकड़ियों आदि का ढेर एक मैदान में हड़्ढा किया जाता है जो वर्ष के अंतिम दिन जलाया जाता है। इसी को होली जलाना या संघर्ष जलाना कहते हैं। बोते हुए वर्ष का अंतिम दिन और आनेवाले वर्ष का प्रथम दिन दोनों इस उत्सव में सम्मिलित रहते हैं।

**मुहा०**—होली खेलना = होकी का खेल मनाना। एक दूसरे पर रंग भरी आदि डालना। उ०—नैन नचाय कही मुसकाय "छला फिर आइयो खेलन होरी"।—पद्मकर । 'होली का भेड़वा = बेरंगा पुला जी विनोद के लिये खना किया जाता है।

(२) लकड़ी, घास फूस आदि का ढेर जो होली के दिन जलाया जाता है। (३) एक प्रकार का गीत जो होली के उत्सव में गाया जाता है।

गंझा सी० [ देश० ] एक कैंटीला शब्द या पौधा।

**होल्डर**—गंझा पु० [ अ० ] अंग्रेजी कलम का वह हिस्सा जो हाथ से पकड़ा जाता है और जिसमें लिखने की निच या जीभ छोटी जाती है।

**होददना**—कि० सं० [ देश० ] धान के तेल में घास पात दूर करने के लिये हल चलाना। ( पंजाब )

**होश**—गंझा पु० [ अ० ] (१) बोध या ज्ञान की वृत्ति। संज्ञा। चेतना। चेत। जैसे,—वह होश में नहीं है।

**कि० प्र०**—करना।—होना।

**बी०**—होना व हवास = चेतना और बुद्धि।

**मुहा०**—होना उदना या जाता रहना = मय या अराधा से विलग होना। विलग रहना। सुप्त रूप भूल जाना। तन मन की संभाल न रहना। जैसे,—बंदूक देखते ही उसके होश उड़ पड़। होश करना = सचेत होना। बुद्धि ठोक करना। होश दंग होना = विलग चकित होना। आश्चर्य में स्तब्ध होना। मन में अत्यंत आश्चर्य उत्पन्न होना। होश पकड़ना = धूपे में होना। चेतना प्राप्त करना। होश संभालना = प्रवराय बंदने पर सब बातें समझने बूझने लगना। सजाना होना। अनजान नालक न रहना। जैसे,—मैंने तो जब से होश संभाला, तब से तेहे ऐसा ही देखता हूँ। 'होश में आना = चेतना प्राप्त करना। बोध या ज्ञान की वृत्ति फिर काम करना। वेतुष न रहना। मुद्विषत या संशयल्य न रहना। होश की हवा करो = बुद्धि ठोक करी। समक बूक कर बोजे। होश ठिकाने होना = (१) बुद्धि ठोक होना। भाँति या मोह दूर होना। (२) विलग स्वरूप होना। पकड़वट, बराहट, दर या ग्याकुल्ला दूर होना। विलग की प्रतीता या ग्याकुल्ला मिटना। (३) अहंकार या गर्व मिटना। बंद पाकर भूल का पड़ना होना। जैसे,—वह मार खायागा तब उसके होश ठिकाने होंगे। (२) स्मरण। सुष। याद।

**कि० प्र०**—करना होना।

**मुहा०**—होना दिखाना = उप काना। स्मरण कराना। याद दिखाना।

(३) बुद्धि। समझ। अह।

**यो०**—होशमंद।

**होशमंद**—वि० [ अ० ] समझदार। बुद्धिमान्।

**होशियार**—वि० [ अ० ] (१) चतुर। समझदार। बुद्धिमान्।

(२) दक्ष। निपुण। कुशल। जैसे,—वह इस काम में बड़ा होशियार है। (३) सचेत। सावधान। खपरदार। जैसे,—इतना खोकर अथ से होशियार हो जाओ।

**मुहा०**—होशियार रहना = चौकसी करते रहना। किसी मजिद मे बचने का बराबर ध्यान रखना।

(४) जिसने होश संभाला हो। जो अनजान बालक न हो। सजाना। (५) चालाक। धूर्त।

**होशियारी**—गंझा सी० [ अ० ] (१) समझदारी। बुद्धिमानी। चतुराई। (२) दक्षता। निपुणता। (३) चौकस। बुद्धि। सावधानी। जैसे,—इसे होशियारी से पकड़ना; नहीं तो दूट जायगा।

**होसली**—गंझा पु० दे० "होत"।

गंझा पु० दे० "होत"।

**होली**—सर्व० [ सं० अर्थ ] ब्रज भाषा का उत्तम पुराण एक बचन सर्वनाम। मैं।

कि० प्र० 'होना' क्रिया का वर्तमान कालिक उत्तम पुराण एक बचन रूप। हूँ।

**होँकना**—कि० प्र० [ हि० हुँकार ] (१) गरजन। हुँकार करना। (२) हॉकना।

**होँस**—गंझा सी० दे० "होँस"।

**होँस**—मध्य० [ हि० होँ ] स्वीकृति सूचक वाक्य। हॉँ। (मध्यप्रदेश) कि० प्र० (१) होना क्रिया का मध्यम पुराण एक वचन का वर्तमान कालिक रूप। हो। (२) होना का भूत काल। या। वि० दे० "हो"।

**होँसा**—गंझा पु० [ अ० ] लकड़ों को बराने के लिये एक कल्पित मयानक यस्तु का नाम। हाक। भकाळ। गंझा सी० दे० "होँसा"।

**होँका**—गंझा पु० [ अ० ] हाव = मुँह बाने का शब्द। (१) मरुधवापन। धाने का गहरा छालक। (२) प्रमल छोम। तुष्णा।

**होँज़**—गंझा पु० [ अ० ] (१) पानी जमा रहने का चदबधा। कुंड। (२) कटोरे के आकार का मिट्टी का बहुत बड़ा बरतन। मँद।

**होँव**—गंझा पु० [ अ० ] बीया हुआ बहुत छोटा कलाप। कुंड। (२) कटोरे के आकार का मिट्टी का बहुत बड़ा बरतन जिसमें चौपाय खाते पीते हैं तथा रंगरेज़, घोड़ी आदि कपड़े डुबाते हैं। मँद।

होवा-संज्ञा पुं० [ प्रा० होवः ] हाथी की पीठ पर कसा जानेवाला आसन जिसके चारों ओर रोक रहती है और पीठ टिकाने के लिये गड़ी रहती है ।

क्रि० प्र०—कसना ।

संज्ञा पुं० [ अ० होज, हिं० होद ] [ स्त्री० होरी ] कठोरे के आकार का मिट्टी, पत्थर आदि का बहुत बड़ा बरतन जिसमें चौपायों को चारा दिया जाता है । नौद ।

होरा-संज्ञा पुं० [ प्रतु० हाव, हाव ] शोर । गुल । इहा । कोलाहल ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचना—होना ।

होस-संज्ञा पुं० [ म० ] दर । भय । दहनाव ।

यौ०—होसनाक, होसदिल ।

मुहा०—होस पैठना या बैठना = जो मैं दर लगाना । हृदय में मय उत्पन्न होना ।

होसदिल-संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] (१) कलेजा धड़कना । दिल की धड़कन । (२) दिल धड़कने का रोग ।

वि० (१) जिसका दिल धड़कता हो । (२) वृद्धन में पढ़ा हुआ । डरा हुआ । (३) घबराया हुआ । स्वाकुल । जिसका जी टिकाने न हो ।

होसदिल-वि० [ प्रा० होसदिल ] [ स्त्री० होसदिली ] दरपोक । बुझदिल ।

होसनाक-वि० [ म० + प्रा० ] डरावना । भयानक ।

होली-संज्ञा स्त्री० [ सं० हला = भय ] वह स्थान जहाँ भय उतरता और विकृता है । आबकारी । कलबरिया ।

होले-क्रि० वि० [ हिं० हलण ] (१) धीरे । आहिस्ता । मंद गति से । श्रमता के साथ नहीं । जैसे,—होले होले चलना । (२) हलके हाथ से । ज़ोर से नहीं । जैसे,—होले होले मारना ।

होवा-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] वेगवरी मतों के अनुसार सप से पहली स्त्री जो पृथ्वी पर आदम के साथ उरुपन्न की गई और जो मनुष्य-जाति की आदि माता मानी जाती है । संज्ञा पुं० दे० "हीमा" ।

होस-संज्ञा स्त्री० [ अ० हवत ] (१) चाह । प्रबल इच्छा । लालसा । कामना । उ०—(क) सही विभूषण बसने सब पिया मिलन की होस ।—पद्माकर । (ख) होस मैं सिंगरी सजनी कबहूँ हरि सों, हंसि बात कहीगी ।—केदाव । (२) उमंग । हर्षोत्कंठा । उ०—रति विपरीत की पुनीत परिपाटी मनी होसन हिलोरे की सुपाटी में पवति है ।—पद्माकर । (३) होसला । उरसाह । साहसपूर्ण इच्छा ।

होसला-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) किसी काम को करने की आनन्दपूर्ण इच्छा । उत्कंठा । लोभरा । जैसे,—उसे अपने बेटे का स्वाह देखने का होसला है ।

मुहा०—होसला निकलना = उच्छ्वासी होना । क्रमान निकलना ।

(२) उरसाह । आनन्दपूर्ण साहस । जोश और हिम्मत ।

जैसे,—फिर कभी मुझसे लड़ने का होसला न करना ।

मुहा०—होसला पस्त होना = उरसाह न रह जाना । जोरा उठा पचना । हिमत् न रहना ।

(३) प्रफुल्लता । उमंग । यवी हुई तबीयत । जैसे,—उसने बड़े होसले से बेटे का व्याह किया है ।

होसलामंद-वि० [ प्रा० ] (१) लालसा रखनेवाला । (२) यवी हुई तबीयत का । उमंगवाला । (३) उरसाही । साहसी ।

होसल-मव्य० दे० "यहाँ" ।

होसल-संज्ञा पुं० दे० "हियो", "हिया" । उ०—(क) लक्ष्मण के पुरिखान कियो पुष्टपारप सो न कछो परई । येप बनाय कियो बनितान को देखत केदाव । होसल ।—केदाव ।

(ख) कई परमाकर ह्यो यौयनु बसनवारी, वं प्रज बसनवारी हो हंनहारी है ।—पद्माकर ।

हुद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बड़ा ताल । हील । (२) सरोवर । तालाव । (३) नाद । श्रुति । आभाज़ । (४) किरण । (५) मेढ़ा ।

हुदिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी ।

हसित-वि० [ सं० ] छोटा किया हुआ । कम किया हुआ । घटा हुआ । जिसका हास हुआ हो ।

हृस्व-वि० [ सं० ] (१) छोटा । जो पढ़ा न हो । (२) नाटा । छोटे आकार का । (३) कम । थोड़ा । (४) नीचा । जैसे,—हृस्व द्वार । (५) तुच्छ । नाथीज़ ।

विशेष—भ्रमंगला में दीर्घ की अपेक्षा कम खींचकर बोले जानेवाले स्वर अथवा स्वरयंत्रजन्य 'हृस्व' कहलाते हैं । जैसे,—भ, ह, क, कि, कु हृस्व वर्ण हैं और आ, ई, ऊ, का, की, कू दीर्घ ।

संज्ञा पुं०—(१) वामन । बौना । (२) दीर्घ की अपेक्षा कम खींच कर बोला जानेवाला स्वर । एक मात्रा का स्वर । जैसे,—भ, ह, क, इ ।

हृस्वजात रोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक रोग जिसमें दिव के समय यस्तुर्ष बहुत छोटी दिखाई पड़ती है ।

हृस्वता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] छोटाई । छोटापन । अल्पता । लघुता ।

हृस्वपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का महुआ ।

हृस्वपर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] पकड़ । पाकर का पेड़ ।

हृस्वफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] खजूर या सुहारा ।

हृस्वफला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भूमिजन्म । छोटी जाति की जामुन जो नदियों के किनारे होती है ।

हृस्वमूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] काल गन्धा ।

हृस्वांग-वि० [ सं० ] नाटा । टेंगना । बौना ।

संज्ञा पुं० जीवक नाम का वीध ।

ह्रस्वादि-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाक का पौधा । मदार । भकं ।  
 हाद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ध्वनि । शब्द । आवाज । (२) मादक  
 की गरज । मोह गर्जन । (३) शब्दस्फोट । (४) एक नाग  
 का नाम । (५) हिरण्यकशिपु के एक पुत्र का नाम ।  
 हादिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) नदी । (२) एक नदी का नाम  
 जिसे 'हादिनी' और 'हरपारा' भी कहते थे । (वाल्मीकि०)  
 (३) चित्रकी । वज्र ।  
 हादी-वि० [ सं० ] हादिर् [ स्त्री० ] हादिनी ] शब्द करनेवाला ।  
 गर्जन करनेवाला ।  
 हास-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पहले से छोट या कम हो जाने की  
 क्रिया या भाव । कमी । घटती । घटाव । क्षीणता । क्षीणता ।  
 भवन्ति । घटती । (२) शक्ति, वैभव, गुण आदि की कमी ।  
 (३) ध्वनि । आवाज ।  
 हासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कम करना । घटाना ।  
 हो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) लज्जा । शर्म । शर्म । हया । संकोच ।  
 (२) दश प्रजापति की कन्या जो धर्म की पत्नी मानी  
 जाती है ।  
 होक-संज्ञा पुं० [ सं० ] नेवला ।  
 होका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लज्जा । लज्जाशीलता । हया ।  
 होकु-वि० [ सं० ] लज्जाला । लज्जाशील । शर्माला ।  
 संज्ञा पुं० (१) चिह्नी । (२) लाल । (३) रँग ।  
 होण-वि० [ सं० ] लजित । शर्मिदा । शैले,—हीण मुख ।  
 हीत-वि० [ सं० ] लजित । लजाया हुआ ।  
 होति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] लज्जा । शर्म । हया । संकोच ।  
 होमान-वि० [ सं० ] होमन् [ स्त्री० ] होमती ] लज्जाशील । हयादर ।  
 शर्मदर ।  
 संज्ञा पुं० विधेदेवा में से एक ।  
 होमूढ-वि० [ सं० ] लज्जा से घबराया हुआ । लज्जा के कारण  
 निश्चेष्ट । लाज से दबा हुआ ।  
 होवेर-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुगंधवाला ।  
 ह्राद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) आनन्द । खुशी । प्रफुल्लन । (२)  
 हिरण्यकशिपु के एक पुत्र का नाम ।  
 ह्राद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० ] हादनीय, हादित ] आनन्दित  
 करना । सुख करना ।  
 हादिनी-वि० स्त्री० [ सं० ] आनन्दित करनेवाली ।  
 संज्ञा स्त्री० (१) चित्रकी । वज्र । (२) धूप का पौधा । (३)  
 एक शक्ति या देवी का नाम । (४) एक नदी का नाम ।  
 दे० "हादिनी" ।

ह्रलन-संज्ञा पुं० [ सं० ] हृष्य उधर झुकना या गिरना पड़ना ।  
 लक्ष्मणाना । धराना ।  
 ह्रौं-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की औरजो माराय ।  
 ह्रिस्की-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की औरजो माराय ।  
 ह्रैल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक बहुत बड़ा समुद्री जंतु जो भाग कर  
 पाए जानेवाले पृथ्वी पर के सय जीवों से बड़ा होता है ।  
 विशेष—ह्रैल ८० या ९० फुट तक लंबे होते हैं । इसकी  
 खाल के नीचे चरबी की एक बड़ी मोटी तह होती है ।  
 भागे की ओर दो पर होते हैं जिनसे यह पानी ठेलता  
 और अपनी रक्षा करता है । किसी किसी प्राति के ह्रैल  
 की दुम के पास भी एक पर सा होता है । पूँछ के बल  
 ये जंतु पानी के बाहर छूट का आते हैं । मछली के समान  
 ह्रैल अंडज जीव नहीं है, विषम है । मादा मछी देती है  
 और अपने देा धने से दूध पिछाती है । बहुत छोटे छोटे  
 कान भी ह्रैल को होते हैं । यह जंतु छोटी छोटी मछलियाँ  
 खा कर रहता है । यह बहुत देर तक पानी में दूध नहीं  
 रह सकता । फेफड़े या गलफड़े के अतिरिक्त देा छेद इसके  
 सिर में होते हैं जिनसे यह साँस भी लेता है और पानी  
 का फुहरा भी छोड़ता है । आँखें बहुत छोटी होती हैं ।  
 पृथ्वी के उत्तरी भाग के समुद्रों में ह्रैल बहुत पाए जाते हैं  
 और उनका शिकार होता है । ह्रैल की हड्डियाँ से हाथीदंत  
 की तरह अनेक प्रकार के सामान बनते हैं । इसकी अंतदियों  
 में एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य जमा हुआ मिलता  
 है जो 'अंबर' के नाम से प्रसिद्ध है और जो भारतवर्ष,  
 अफ्रिका और दक्षिण अमेरिका के समुद्रतट पर बहता हुआ  
 पाया जाता है ।  
 प्राणी-विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि ह्रैल पूर्व कल्प में  
 स्थलचारी जंतु था और पानी के किनारे दलदलों में रहा  
 करता था । क्रमशः पृथ्वी पर मेसी अवस्था आती गई  
 जिससे बसका जमीन पर रहना कठिन होता गया और  
 स्थिति परिवर्तन के अनुसार ह्रैल के अवयवों में परिवार  
 होता गया । यहाँ तक कि लाखों वर्ष के अनंतर ह्रैलों में  
 जल में रहने के उपयुक्त अवयवों का विधान हो गया ।  
 जैसे, उनके अगले देर मछली के डैने के रूप में हो गए,  
 यद्यपि उनमें हड्डियाँ थे ही यन्हीं रहीं जो छोड़े, गधे आदि  
 के अगले पैरों में होती हैं । हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में  
 'तिमिगिल' नामक एक बड़े भारी मत्स्य या जलजंतु का  
 बहुरंग मिलता है जो संभव है, ह्रैल ही हो ।



# छूटे हुए शब्द और अर्थ



अंकमरु-संज्ञा पुं० [ सं० अंक ] गोद । मोद । उ०—मिन्हिं जो विखुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत ।—जायसी ।

अंकुर-संज्ञा पुं० दे० “अंकुर” । उ०—तय भा पुनि अंकुर सिरजा दीपक निरमला ।—जायसी ।

अंगडु-खंगडु-संज्ञा पुं० [ अणु ] लकड़ियों का टूटा फूटा सामान । काठ कबाड़ ।

अंगसंधि-संज्ञा स्त्री० दे० “संध्यंग” ।

अंगारपरथु-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजय गंधर्व का एक नाम । वि० दे० “विजय” ।

अंगुलिप्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह तलय तारोंवाला धाजा जो कमानों से नहीं धरिंक डँगली में मित्राव पहन कर धनाया जाता है । जैसे,—सितार, बोन, एकतारा आदि ।

अंजल-संज्ञा पुं० [ सं० अज + जल ] अन्नजल । दानापानी । उ०—जय अंजल सुँह सोया, समुद्र न सँवरा जगि । अय धरि काढ़ मच्छ जिमि, पानी मीगत लागि ।—जायसी ।

अँजोरा-संज्ञा पुं० [ सं० अजल ] प्रकाश । रोशनी । उ०—दिया मँदिर निमि करे अँजोरा । दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा ।—जायसी ।

अंबर सेक्रेटरी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मंत्री जो मुख्य मंत्री के अधीन हो । सहकारी सचिव । सहायक मंत्री । जैसे,—अंबर सेक्रेटरी फार हँडिया ( सहकारी भारत सचिव ) ।

अंदा-संज्ञा पुं० [ सं० अंत या निह ] शरीर । देह । हिंड । उ०—भासन, बासन, मानुस अंदा । मण्डीसँद ओ ऐस पलँडा ।—जायसी ।

अंतःकलह-संज्ञा पुं० दे० “एहकलह” ।

अंतराष्ट्रीय-वि० दे० “सार्वराष्ट्रीय” ।

अंतःशय्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शय्य के घरा में पड़ी हुई सेना ।

अंतपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) सीमासूचक । सरहद का पहरेदार ।

अंतमेद्वी-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का व्यूह । मध्यमेद्वी व्यूह का विपरीत ।

अंतरपतित शाय-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सौरा पटाने की दल्हरी । दलाली ।

अंतर प्रादेशिक-वि० [ सं० ] जिसका संबंध अपने प्रांत या प्रदेश से हो । अपने प्रदेश या प्रांत में होनेवाला । जैसे,—अंतर प्रादेशिक अघराय ।

अंतरराष्ट्रीय-वि० दे० “सार्वराष्ट्रीय” ।

अंतरिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दो मकानों के बीच की गली ।

अंतर्धि-संज्ञा पुं० [ सं० ] दो लड़नेवाले राज्यों के बीच में पड़नेवाला राज्य ।

अंधर-वि० [ सं० अंधकार ] अँधेरा । अंधकारमय । प्रकाशरहित । उ०—नलत चहुँ दिति रोवहिं, अंधर धरति भकास ।—जायसी ।

अंधराजा-संज्ञा पुं० [ सं० ] शास्य और नीति आदि ने अनभिज्ञ अशिवकी राजा ।

अशेष-वागम्य ने अर्धशास्य में राजा के दो भेद किए हैं—एक अंधराजा, दूसरा चलितशास्य राजा । चलितशास्य वह है जो जान नरु कर दास्य की मर्यादा का उल्लंघन करता हो । इन दोनों में वागम्य ने अंधराजा को ही अच्छा कहा है जो योग्य मंत्रियों के होने पर अच्छा शासन कर सकता है ।

अंधलैग्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] अतिशक्ति सेना । वि० दे० “सिखडूट” ।

अंधाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० अंधपत्नी ] चौरपत्नी नामक ध्रुप । वि० दे० “चौरपत्नी” ।

अंधियारी-संज्ञा स्त्री० [ हि० अंधेरा ] ( १ ) अंधकार । अंधेरा । ( २ ) वह पट्टी जो उपद्रवी घोड़ों, सिकारी पक्षियों और चीतों आदि की आँखों पर हस्तिलिये धँपी रहती है कि किसी को देख कर उपद्रव न करे ।

अँधेरा उजाहा-संज्ञा पुं० [ हि० अंधेरा + उजाहा ] कागज को एक विशेष प्रकार से कढ़े तहाँ में छपेट कर बनाया हुआ एक प्रकार का शिलौला जिसके भीतरी दो भाग सादे और दो भाग रंगीन होते हैं और जो हाथ की चारों डँगलियों की



सहायता से खोला और मूँदा जाता है। इससे कर्मा तो उसका सादा अंध दिखाई पड़ता है और कर्मी रंगीन।

**अंधेरा गुप**-संज्ञा पुं० [ हि० अंधेरा + गुप ] इतना अधिक अंधकार कि कुछ दिखाई न दे। घोर अंधकार। जैसे,—इस कोठरी में तो बिल्कुल अंधेरा गुप है।

**अंधेरी**-संज्ञा स्त्री० [ ? ] दक्षिण भारत का एक स्थान। उ०—गढ़ गुंजालियर परी मथानी। औ अंधियार मया भा पानी।—जायसी।

**अंधेरी**-संज्ञा स्त्री० दे० "अहोरी"।

**अंधर डंवर**-संज्ञा पुं० [ सं० अंधर = अंधकार ] वह लाठी जो सूर्य के अस्त होने के समय पश्चिम दिशा में दिखाई देती है। उ०—बिन सतसार न लागई, ओठे जन की प्रीत। अंधर डंवर साँस के, ज्यों बाहू की भीत।

फि० प्र०—फूलना।

**अंधा**-संज्ञा पुं० [ सं० अंध, हि० अंध ] उ०—बसै सीन जल धरती अंधा बसै अकास।—जायसी।

**अंधारी**-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] पटसन। ( दक्षिण )

**अंधौरी**-संज्ञा स्त्री० दे० "अहोरी"।

**अंध**-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( < ) किसी कारवार का हिस्सा। ( ९ ) फायदे का हिस्सा।

**अंध**-संज्ञा पुं० [ सं० अंध ] कन्या। उ०—अंसनि धनु सर-क-कमलनि कटि कसे हैं निखग बनाई।—गुलसी।

**अंधड़ा**-संज्ञा पुं० [ देश० ] लौलने का वाट। बटखरा।

**अंधस्पात**-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्षय मास।

**अन्करथ**-वि० [ सं० अन्करथीय ] जो कहा न जा सके। न कहने योग्य। अकथनीय। उ०—मसि गैना लिखनी बरनि, रोह रोह लिखा अकथ।—जायसी।

**अफना**-वि० प्र० [ सं० अफना ] ऊचना। उकताना। धवराना। उ०—दौड़ दौड़ आने से झुरगत के अको मत क्या करे। उस बिचारे की तबीयत तुम पे है आई हुई।—झुरगत।

**अंधा** पुं० [ सं० अंध ] ज्वार की वह थाल जिसके दाने निकाल लिए गए हों। ज्वार की सुलदी।

**अकरासी**-वि० स्त्री० [ सं० अकर = आकल्प ] गर्भवती। जो हमल से हो।

**अकथनी**-संज्ञा पुं० [ हि० अक ] आक का पेड़। मदार।

**अकासी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० अकास ] चील नामक पक्षी।

**यौ**—धौरी अकासी या सफेद अकासी—एक प्रकार की चील जिसे क्षेमकरी चील भी कहते हैं। इसका सिर सफेद और शेष सारे अंग छाल रंग के होते हैं। उ०—थारुँ अकासी धौरी आई।—जायसी।

**अकिल दाद**-संज्ञा स्त्री० [ प्र० अक + हि० दाद ] वह दाँत जो मनुष्यों के वयस्क होने पर बचीस दाँतों के अतिरिक्त

निकलता है। कहते हैं कि इस दाँत के निकलने पर मनुष्य का लक्ष्मण जाना रहता है और वह समसुदार हो जाता है।

**अकृतचिकीर्षा**-(६वि) संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सामाजिक उपायों से गद्द संधि करना तथा उसमें छोटे बड़े तथा समान राजाओं के अधिकारों का उचित ध्यान रखना।

**अकृतशुलक**-वि० [ सं० ] ( १ ) जिसने महसूल या बुंगी न दी हो। ( २ ) जिस पर महसूल न लगा हो। ( भाळ )

**अकोप्या पण्यवात्रा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सिद्धे का चलन। सिद्धे के चलने में किसी प्रकार की रुकावट न होना।

**अजजल**-वि० [ सं० अजल ] ( १ ) न खाने योग्य। अमद्य। उ०—सख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सों धारत।

विहरत पंख फुलाय नहीं खज अखज विचारत।—दीन-दयाल। ( २ ) निरुद्ध। घुरा। खराब।

**अखद्वारनधीस**-संज्ञा पुं० दे० "पत्रकार"।

**अगनिउल**-संज्ञा पुं० [ सं० अग्निय ] आग्नेय कोण। उत्तर पूर्व का कोना। उ०—तीज पुकादसि अगनिउ मौर। चौथ दुवादसि नैकत वौर।—जायसी।

**अगमन**-कि० वि० [ सं० अग, हि० अगने ] आगे। उ०—( क ) नैन भिखारि न मानहि सीखा। अगमन दीरि लेहि पै भीला।—जायसी। ( ख ) स्तनसेन आवै जेहि घाटा। अगमन होइ बैठि तेहि घाटा।—जायसी।

**अगरो**-वि० [ सं० अग ] सामने। आगे। उ०—चेला पूरै गुरु कहै तेहि कस अगरो होइ।—जायसी।

**अगवना**-वि० प्र० [ हि० अगने + ना (प्रत्यय०) ] कोई काम करने के लिये उद्यत होना। आगे बढ़ना।

**अगसार**-वि० [ सं० अग ] आगे। उ०—हस्ति क जूह आय आगसारी। हनुवैन नवै लँगूर पसारी।—जायसी।

**अगान**-वि० [ सं० अगान ] अज्ञान। अनजान। नासमझ। उ०—बालक अगाने हठी और को न मानें थात बिना रिप-मातु हाथ भोजन न पाइए।—हनुमन्नाटक।

**अगाह**-वि० [ हि० अगने ] आगे से। पहले से। उ०—चौदक गहन अगाह जनावा।—जायसी।

**अगिदधा**-वि० [ सं० अग्नि + दाध ] आग से जला हुआ। दग्ध। उ०—तेहि साँपा राजा अगिदधा।—जायसी।

**अगिदाह**-संज्ञा पुं० दे० "अग्निदाह"। उ०—जस तुम क्या कीन्ह अगिदाह।—जायसी।

**अगिया**-संज्ञा पुं० [ हि० अग ] एक प्रकार एक छोटा कीड़ा जिसके शरीर में लगने से पीले पीले छाले पड़ जाते हैं।

**अगिया बैताल**-संज्ञा पुं० [ हि० अग + बैताल ] ( १ ) एक कश्चित बैताल जिसके संघर्ष में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि यह बड़ा दुष्ट था और बड़े आश्चर्यजनक रूप

करता था। (२) वह जिसका स्वभाव बहुत कोधी और विचित्रिदा हो।

**अगियारी**—वि० [ हि० भाग + शर (प्रत्य०) ] ( लकड़ी, कोयला आदि ) जिसको भाग बहुत देर तक ठडरे या तेज हो।

संज्ञा पुं० दे० "अगियारी"।

**अगियारी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० भाग + शरती (प्रत्य०) ]—यह पदार्थ जो भस्म में धातु को सुगन्धित करने के लिये डाला जाय। धूप देने की वस्तु।

**अगीठा**—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का पीठा जिसके पत्ते पान के आकार के पर उससे कुछ बड़े होते हैं। इसमें कैय की तरह का एक प्रकार का कुछ चिपटा फल लगता है जिसकी सतह पर छोटे छोटे दाने रहते हैं।

**अगुसरना**—संज्ञा पुं० [ हि० अगु + सरना (प्रत्य०) ] अमसर होना। आगे यचना। उ०—एका परग न सो अगुसरई।—जायसी।

**अगुडना**—संज्ञा पुं० [ सं० अगुड ] वारों ओर से घेरना।

**अगुठा**—संज्ञा पुं० [ सं० अगुठ ] घेरा। महासिरा। उ०—गेहि कारन गढ़ कीन्ह अगुठी।—जायसी।

**अगुठा**—संज्ञा पुं० [ हि० अगुठ ] आगे। सामने। उ०—याजन ब्राह्मि होइ अगुठा।—जायसी।

**अगोटना**—संज्ञा पुं० [ सं० अगुट ] वारों ओर से घेरना। उ०—सतु कोट जो आइ अगोटी। मीठी खाँद जँबापुहु रोटी।—जायसी।

**अगोरी**—संज्ञा पुं० [ हि० अगोरी ] (१) अगोरेने या रखवाली करने की क्रिया। चौकसी। निगरानी। (२) खेत की कटाई या फसल की दबाई के समय की वह निगरानी जो जमींदार लोग कारखतार से उपज का भाग लेने के लिये अपनी और से कराते हैं।

**अगौरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० अगु + गौरी (प्रत्य०) ] ऊल वा गन्ने का वह ऊपरी भाग जिसमें गौँठें बहुत पास पास होती हैं। कंबा।

**अगुई**—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] अवध में अधिकतम से होनेवाला एक प्रकार का मसोले आकार का वृक्ष जिसकी पत्तियाँ प्रायः हाथ भर लंबी होती हैं। यह नेपाल, भूटान, बरमा और जावा में भी पाया जाता है। इसमें पीले रंग के २-३ इंच चौड़े फूल और छोटे अमरुत के आकार के फल लगते हैं।

**अग्निकार्य**—संज्ञा पुं० दे० "प्रतिसारण"।

**अग्निजीवी**—संज्ञा पुं० [ सं० अग्निजीवि ] आग के सहारे काम करनेवाले। जैसे, छहार, सुनार।

**अग्निदंड**—संज्ञा पुं० [ सं० ] आग में जलाने का दंड।

**अग्निद**—संज्ञा पुं० [ सं० ] आग लगानेवाला।

**अग्निदमनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का धूप, जिसे दमनी भी कहते हैं। गतिवारी।

**अधमर्षण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कठिन मत्त जो प्रायश्चित्त रूप में किया जाता था। ( स्मृति )

**चिरीय**—इसमें तीन दिन तक कुछ न खाने, त्रिकाल खान करने और पानी में डूब कर अधमर्षण मंत्र जपने का विधान है।

**अच्छ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वर वर्ण।

**अच्छल व्यूह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अक्षत व्यूह का एक भेद जिसमें हाथी, घोड़े और रथ एक दूसरे के आगे पीछे रखे जाते थे।

**अखित**—संज्ञा पुं० [ सं० ] रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो भोग्य, दम्य, अचेतन स्वरूप, नदामक और भोग्यत्व के विकार से युक्त माना जाता है। इसके भोग्य, भोगोपकरण और भोगायन ये तीन प्रकार माने गए हैं।

**अच्छूत**—वि० [ सं० अ + च्छू + हि० च्छू ] (२) जो छूने योग्य न हो। न छूने योग्य। नीच जाति का। अंखज जाति का। अक्षय्य। जैसे,—मेहवर, डोम, धमार आदि अछूत जातियाँ भी अपना अपना संघटन कर रही हैं।

संज्ञा पुं० (१) वह जो छूने योग्य न हो। अछूत या अक्षय्य जाति का मनुष्य। अंखज जाति का मनुष्य। जैसे,—(क) अछूत उद्धार। (ख) आर्य समाज ने तीन सौ अछूतों को शुद्ध कर अपने में मिला लिया।

**अज्ञान**—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] वह पुकार जो प्रायः मसजिदों के मीनारों पर मुसलमानों को नमाज के समय की सूचना देने और उन्हें मसजिद में बुलाने के लिये की जाती है। बाँग।

**अजुगति**—संज्ञा स्त्री० दे० "अजगुत"।

**अज्ञा**—संज्ञा स्त्री० दे० "आज्ञा"। उ०—होइ अज्ञा घनवास तो जाऊँ।—जायसी।

**अज्ञातध्वामिक (धन)**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह धन जिसके मालिक का पता न हो। जैसे,—भारों में पड़ा हुआ या जमीन में गड़ा धन।

**अट**—संज्ञा स्त्री० [ हि० अटक ] प्रतियंत्र। दारत। कैद। जैसे,—गुम तो हर बान में एक अट लगा देते हो।

**अटपाटी खटपाटी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० अट + पाटी ] खट खटोला। योरिया योरना। साज सामान।

**मुहा०**—अटपाटी खटपाटी लेकर पढ़ना = खिल्ल और उदासीन होकर अलग पढ़ रहना। रुठ कर अलग बैठना।

**अटवी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) जंगल। वन। (२) लंबा चौड़ा साक मैदान।

**अटवीयल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जंगलियों की सेना।

**अटसट**—वि० [ अनु० ] (१) उल्टपटौंग। अंध बंध। जैसे,—गुम तो सदा यों ही अटसट बका करते हो। (२) बहुत ही साधारण या निम्न कोटि का। इधर उधर का। जैसे,—उस कोठी में बहुत सा अट सट सामान पड़ा है।

**अट्टालक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] किले का पुर्ग।

अडई—संज्ञा स्त्री० [ सं० अटनी ] अष्टमी तिथि । उ०—सतमी  
पूर्विते वा सब आछी । अडईं अमावस हुँसन लाछी ।  
—जायसी ।

अडई—वि० [ सं० अटनी ] उपद्रवी । उत्पाती । प्ररीर ! उ०—  
हँ हरि आठहु गौठ अडईं ।—केशव ।

अडगाड़ा—संज्ञा पुं० [ स्तु० ] ( १ ) बँल गाड़ियों और सगाड़ों  
आदि के ठहरने का स्थान । ( २ ) वह स्थान जहाँ बिक्री  
के लिये घोड़े, बँल आदि रहते हैं ।

अडारल—वि० [ सं० अराल ] टेढ़ा । तिरछा । उ०—जग डोलै  
खोलत नैनाहौं । उलटि अडार जाहिँ पल माहौं ।—जायसी ।

अडारना—क्रि० प्र० [ हिं० जलना ] डालना । देना । उ०—  
पाँउ सुनत धनि आपु बिसारि । चित्त लखै, तनु खाइ  
अडारै ।—जायसी ।

अडचायक—संज्ञा पुं० [ ? ] वह जो दूसरों को काम में लगाता  
हो । दूसरों से काम लेनेवाला । उ०—पहिलेइ रचे पारि  
अडचायक । भए सब अडवैनक के नायक ।—जायसी ।

अडवैया—संज्ञा पुं० दे० “अडचायक” ।

अतिचार—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) तमासायीनी का दुर्म । नाच  
रंग के समाजों में अधिक समिलित होने का अपराध ।

विशेष—चंद्रयुग के समय में जो रसिक और रँगोले बार बार  
निषेध करने पर भी नाचरंग के समाजों में समिलित होते  
थे, उन पर तीन पण जुरमाना होता था । रात में ऐसे अप-  
राध करने पर दंड और अधिक होता था । ब्राह्मण को जुड़ी  
या अपवित्र वस्तु छिला देने या दूसरे के घर में घुसने पर  
भी अतिचार दंड होता था ।

अतिरिक्त पत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह विज्ञापन, समाचार या  
सूचना आदि जो अलग छाप कर किसी समाचार पत्र के  
साथ बाँटी जाय । कोटपत्र । विशेषपत्र ।

अतिव्यय कर्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] फल्लखर्ची का काम ।

अतिसंधि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( १ ) सामर्थ्य से अधिक सहायता  
देने की शक्ति । ( २ ) एक मित्र की सहायता से दूसरे मित्र  
या सहायक की प्राप्ति ।

अनुल—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ४ ) तिलक । तिलपुष्पी । ( ५ ) कफ ।  
श्लेष्मा । बलगम ।

अत्यन्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) वृक्षाम्ल । विषायिल । ( ३ )  
विजयी नाबीवृ ।

वि० बहुत अधिक खड़ा ।

अत्यय—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का जुरमाना  
या अर्थ दंड ।

अत्यावाय—संज्ञा पुं० [ सं० ] राजविद्रोहियों की अधिकता ।

अत्याहित कर्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] अवाचित कर्मन ] मुंडा । बधनाश ।

अधना—क्रि० प्र० [ सं० अल + ना (अध०) ] अस्त होना । दूबना ।

उ०—( क ) मिलि चलि, चलि मिलि, मिलि चलत भौवन  
अथयो भातु । भयो मुहुरत भौर की पौरिहिं प्रथम  
मिलानु ।—विहारी । ( ख ) केइ यह बसन बसत उंगारा ।  
गा सो चाँद अथवा लेइ तारा ।—जायसी । ( ग ) सुरत  
उये बिहानहिं आई । पुनि सौं अर्थ कहाँ कहाँ जाई ?—  
जायसी ।

अधैया—संज्ञा स्त्री० दे० “अथाई” ।

अदत्त—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह वस्तु जिसके दिए जाने पर भी लेने-  
वाले को उसके रखने का अधिकार न हो ।

विशेष—नारद ने अदत्त के ये सोलह भेद किये हैं—१. भय-  
जो वस्तु डर के मारे दी गई हो । २. क्रोध—लड़के आदि  
पर क्रोध निकालने के लिये । ३. शोकवेग में । ४. रक्त-  
असाध्य रोग से घबरा कर । ५. उल्लोच—घूस के रूप में ।  
६. परिहास—हँसी हँसी में । ७. धन्यास—बढ़ाने में आकर  
अथवा देना देली । ८. छल—जो धोखे में उचित से अधिक  
दे दिया गया हो । ९. बाल—देनेवाला यदि बालक अर्थात्  
नापालिग हो । १०. मूढ़—जो धोखे में आकर बेवकूफी से  
दिया गया हो । ११. अस्वतंत्र—जो दास के द्वारा या ऐसे  
के द्वारा दिया गया हो जिसे देने का अधिकार न हो । १२.  
आप्तं—जो बेचनी या दुःख से घबरा कर दिया गया हो ।  
१३. मत्त—जो नशे की शौक में दिया गया हो । १४.  
उन्मत्त—जो पागल होने पर दिया गया हो । १५. कार्य-  
जो लाभ की इच्छा आशा दिखा कर प्राप्त किया गया हो और  
१६. अधर्म कार्य—धर्म के नाम पर जो अधर्म के लिये  
लिया गया हो ।

अविध्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] तीन प्रकार के नायकों में से एक । वह  
नायक जो लौकिक हो । मनुष्य नायक । जैसे,—मालती  
माधव नाटक में माधव ।

अविध्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तीन प्रकार की नायिकाओं में से  
एक । वह नायिका जो लौकिक हो । जैसे,—मालती-माधव  
में मालती ।

अदृष्ट नर संधि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह संधि या इकरार जो  
दूसरे के साथ इस आशय से किया जाय कि वह किसी तीसरे  
से कोई काम सिद्ध करा देगा ।

अद्वै—वि० [ सं० ] ( २ ) (वह पदार्थ) जिसे देने को कोई बाध्य न  
किया जा सके ।

विशेष—नारद के अनुसार अन्याहित, याचितक, रोग में  
प्रतिजात, सामान्य पदार्थ, स्त्री, पुत्र, परिवार होने पर  
सर्वस्व, तथा निक्षेप ये आठ पदार्थ नहीं देने चाहिये ।  
इनको प्रतिज्ञा कर लुकने पर भी न दे । ऐसा करने पर वह  
राज्यापराधी न समझा जायगा । (नारद-स्मृ० ४।४-५) दण्ड  
के मत से स्त्री की संपत्ति को भी अद्वै समझना चाहिये ।

मनु ने लिखा है कि 'जो लोग अवेद्य को प्रहण करते हैं या दूसरे व्यक्ति को देते हैं, उनको चोर के सदृश ही समझना चाहिए।' यही बात नारद ने पुत्र की है (ना. स्मृ० ५-१२) वाञ्छवल्क्य ने लिखा है कि स्त्री पुत्र को छोड़कर अन्य पदार्थों को कुटुम्ब की आत्मा से दे सकता है (या० स्मृति २-१७५)। इसी के सदृश वशिष्ठ का मत है कि 'इकलौते पुत्र को न कोई ले सकता है और न दे सकता है' (य० स्मृ० १५. ३-४)। वशिष्ठ को ही कायायन भी पुत्र करता है। वह लिखता है कि स्त्रीपुत्र पर मिलकीयत शासन के मामले में है, न कि दान के मामले में।

**अद्रिजा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (३) सिंहली पीपल।

**अद्वैष्य मित्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह मित्र, (व्यक्तियां राष्ट्र) जिसकी मित्रता में किसी प्रकार का स्वैदेह न हो।

**विशेष**—यह जिसकी मैत्री स्वीकृत न हो, जो विरचित, सुशील और उपकारी हो तथा विपत्ति पढ़ने पर जिसके साथ छोड़ने की आशंका न हो अद्वैष्य मित्र है।

**अधः-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] दश दिशाओं में से एक। पैर के ठीक नीचे की दिशा।

**अधकहा-वि०** [ हि० आधा + कहां ] आधा कहा हुआ। अस्पष्ट रूप से या आधा उच्चारण किया हुआ। उ०—गाहक गाँव और गह, रहै अधकहँ दैन। देखि तिसिंहँ दिपनयन किए तिसिंहँ दैन।—विहारी।

**अधचना-संज्ञा पुं०** [ हि० आधा + चना ] गेहूँ और चने का मिश्रण। यह मिश्रण जिसमें आधा चना और आधा गेहूँ हो।

**अधनियौ-वि०** [ हि० आधा + माना + द्या (प्रत्य०) ] आध आने का। आध आनेवाला। जैसे—अधनियौ टिकट।

**अधश्री-संज्ञा स्त्री०** दे० "अधस्ता"।

**अधर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (३) भग या यौनि के दोनों पार्वं।

**अधर्म मंत्र युद्ध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह युद्ध जो दोनों ओर के लोगों को नष्ट करने के लिये ही छेड़ा गया हो।

**अधघाता-संज्ञा पुं०** [ हि० दिव्यना ] तरबूज।

**अधस्वस्थितक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नीचे की ओर का वह स्थान या बिन्दु जो पृथ्वी पर के किसी स्थान या बिन्दु के ठीक नीचे हो। शीर्ष बिन्दु से ठीक वपरीत दिशा का बिन्दु जो क्षितिज का दक्षिणी ध्रुव है।

**अधान्यपाय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह स्थान या उपनिवेश जिसमें धान न पैदा होता हो।

**विशेष**—धान्य के अनुसार जलयुक्त उपनिवेश में भी वही उपनिवेश या प्रदेश उच्चम है जिसमें धान पैदा होता हो। परन्तु यदि धान पैदा करनेवाला उपनिवेश छोटा हो और धान न पैदा करनेवाला उपनिवेश बहुत बड़ा हो, तो दूसरा ही ठीक है।

**अधार-संज्ञा पुं०** दे० "आधार"।

**अधिकार-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (७) नाट्य-शास्त्र के अनुसार रूपक के प्रधान फल का स्वामित्व या उसकी प्राप्ति की योग्यता।

**अधिकारी-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (४) नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक का वह पात्र जिसे रूपक का प्रधान फल प्राप्त होता है।

**अधियल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] गर्भ-स्थि के तेरह अंगों में से एक। वह धोखा जो किसी को बेप पढ़ले हुए देख कर होता है। (नाट्य-शास्त्र)

**अधियान-संज्ञा पुं०** [ हि० आधा ] (२) छोटी माला। सुमिनी।

**अधियारिण-संज्ञा स्त्री०** [ हि० आधा + धारिण (प्रत्य०) ] (१) सौत। सपत्नी। (२) यरावरी का दाया रखने और आधे हिस्से की हिस्सेदार स्त्री।

**अधीनता-संज्ञा-क्रि० प्र०** [ सं० अधीन + ता (प्रत्य०) ] अधीन होना। वश में होना। उ०—यह सुनि कंस खड्ग है धायो तब देवै आधीनी हो। यह कन्या जो परमपुत्र मुनि मोहि दासी जनि कर दीन्ही हो—सूर।

**अधीसारक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वेदयाओं के पास यारंवार जानेवाला। विशेष—चंद्रगुप्त के समय में इनको कठोर दंड दिया जाता था।

**अधेली-संज्ञा स्त्री०** [ हि० आधा + एला (प्रत्य०) ] आधा रूप या आठ आने का सिद्धांत। अठकी।

**अधौरी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो हिमालय की तराई में जम्मु से आसाम तक और दक्षिण भारत तथा चरमा के जंगलों में अधिकता से पाया जाता है। इसकी छाल चिकनी और सखी रंग की होती है। इसकी छाल और पत्तियाँ धमड़ा सिसाने के काम में आती हैं और लकड़ी से हल तथा नावें बनती हैं। इसकी लकड़ी का कोयला भी अच्छा होता है। यह चेत से जेट तक फूलता और वर्षा ऋतु में फलता है। फल बहुत समय तक वृक्ष पर रहते हैं। इसकी छाल से एक प्रकार का सीटा और खाने योग्य गोद निकलता है। बकली। धीरा। शेर।

**अध्यक्ष-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (४) सफेद मदार। श्वेतार्क। (५) क्षीरिका। तिरनी।

**अध्यग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (२) जैट।

**अध्यनिवेश-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पहाव।

**अनकाट्टी-वि०** [ हि० अन (प्रत्य०) + काट्टना = निकालना ] बिना निकाला हुआ। उ०—साकहि मरे चढ़ै अनकाट्टे।—जायसी।

**अनखाहट-संज्ञा स्त्री०** [ हि० अनखाना + आहट (प्रत्य०) ] अनखाने या क्रोध दिखलाने की क्रिया या भाव। अनख। उ०—माखीं मनुहारितु भरी गाखी खरी मिठाहिं। पाकीं अति अनखाहटी मुखकाहट चिनु नाहिं।—विहारी।

**अनखुला-वि०** [ हि० अन (प्रत्य०) + खुला ] ( १ ) जो खुला न हो । बंद । ( २ ) जिसका कारण प्रकट न हो । उ०—केसरि केसरिखुसुम के रहे आंग लपटाइ । लगे जानि नख अनखुली कत बोलतु अनखलाइ ।—बिहारी ।

**अनगवना** क-कि० प्र० [ हि० अन + गवना = आगे होना ] जान बूझ कर देर करना । विलंब करना । उ०—मुँहु धोषति पद्मी घसनि इसति अनगवति तार । घसति न इंदीघर नयनि कालिंदी के नर ।—बिहारी ।

**अनगाना** क-कि० प्र० [ हि० अन + गगना = आगे बढ़ना ] ( १ ) विलंब करना । देर करना । ( २ ) टाल मटोल करना ।

**अनचाखा-वि०** [ हि० अन + चखना ] बिना चखा या खाया हुआ । उ०—दारिडं दाख पुटे अनचाखे ।—जायसी ।

**अनध्यास-वि०** [ ? ] भूला हुआ । विस्मृत ।

**अनन्याधिकार-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह पदार्थ जिसके वेचने या बनाने का किसी एक धर्मिक या कंपनी को ही अधिकार हो । पेटेंट । हुआरा ।

**अनपाकर्म-संज्ञा** पुं० [ सं० ] प्रतिज्ञा के काम न करना । इकरार के मुताबिक तनसाह या भद्रदूरी न देना । जैसे—मजदूरी न देना, दी हुई वस्तु लौटा लेना ।

**चिशेष-स्मृतियों** तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग इसी अर्थ में है । अनपाकर्म संबंधी श्रमदा दो प्रकार का है । एक तो वेतन संबंधी और दूसरा दान संबंधी । पराशर ने लिखा है कि श्रमी या मृत्यु को उसके काम के बदले वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का नाम वेतनस्थानपाकर्म है । इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना दत्तस्थानपाकर्म है ।

**अनपाकर्म विघाद-संज्ञा** पुं० [ सं० ] मजदूरों और काम करानेवाले पूँजीपतियों के बीच वेतन संबंधी श्रमदा ।

**चिशेष-नाद** ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थात् पूँजीपति श्रमियों को निश्चित की हुई श्रुति दे । ( ना० रसू० ६०२ )

**अनपास-संज्ञा** पुं० [ हि० अन + पास = पारा ] मोक्ष । मुक्ति । उ०—जेकर पास अनपास, कहु दिय किकर सँभारि के ।—जायसी ।

**अनमाया** क-वि० [ हि० अन (प्रत्य०) + मायना = मापना ] जिसकी माप न हो सकती हो । न नापा जाने योग्य । उ०—मेंटीमाहु अरत भरतानुज क्यों कहीं प्रेम अमित अनमायो ।—तुलसी ।

**अनरसो-कि०** वि० दे० "अतरसी" ।

**अनरुच-वि०** [ हि० अन + रुच ] जो पसंद न हो । न रुचनेवाला । अरुचिकर । उ०—दसन गपु के पचा कपोला । धन गपु अनरुच देइ घोला ।—जायसी ।

**अनर्थ क्रय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] बाजारी कीमत से अधिक या कम कीमत पर खरीदना ।

**अनर्थ विक्रय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] बाजारी कीमत से अधिक कीमत या कम कीमत पर बेचना । ( धानव्य ने इस श्रवण में १००० पण देइ लिखा है । )

**अनर्जित आय-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] वह आय या लाभ जो बस्तु के एकाएक सहँगे हो जाने पर उसके उत्पन्न करने या बेचनेवाले को ही जाय अर्थात् जिसकी संभावना पहले न रही हो ।

**अनर्थ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] ( ५ ) भय की प्राप्ति ।

**अनर्थ-अनर्थानुबंध-संज्ञा** पुं० [ सं० ] किसी शक्तिशाली राजा को लड़ने के लिये उभाइ कर आप अलग हो जाना । वह अर्थ के भेदों में से है ।

**अनर्थ-अर्थानुबंध-संज्ञा** पुं० [ सं० ] अपने लाभ के लिये शत्रु या पड़ोसी को धन तथा सैन्य ( कोदा-दण्ड ) द्वारा सहायता पहुँचाना ।

**अनर्थ निरनुबंध-संज्ञा** पुं० [ सं० ] किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाइ कर तथा लड़ने के लिये मोत्साहित कर स्वयं प्रयत्न हो जाना । वह अर्थ के भेदों में से है ।

**अनर्थसंशयापद-संज्ञा** पुं० [ सं० ] शत्रुओं के साथ-मियों की लड़ाई का अवसर ।

**अनर्थसिद्धि-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] चल मित्र तथा आकंद ( वह मित्र जो शत्रु या विजिगीपु के आश्रय में हो ) का मेल या संधि ।

**अनर्थानुबन्ध-संज्ञा** पुं० [ सं० ] शत्रु का इस प्रकार नाश न होना कि अनर्थ की आशंका मिट जाय ।

**अनर्थार्थपद-संज्ञा** पुं० [ सं० ] चारों ओर से शत्रुओं का भय ।

**अनर्थार्थसंशय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] ऐसी स्थिति जिसमें एक ओर तो अर्थ प्राप्ति की संभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका ।

**अनर्घसित संधि-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] औपनिवेशिक संधि । जंगल या ऊसर जमीन पसाने के संबंध में दो पड़ोसों या राष्ट्रों की संधि ।

**चिशेष-औपनिवेशिक संधि** के विषय में धानव्य ने लिखा है कि यह प्रायः विवादप्रस्त विषय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि में उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है । साधारणतः जलप्रायः भूमि ही उत्तम है ।

**अनामेल-संज्ञा** पुं० दे० "एनामेल" ।

**अनार-संज्ञा** पुं० [ फ० ] ( ३ ) वह रस्सी जिसमें दो छपर एक साथ मिला कर बाँधे जाते हैं ।

**अनारकिस्ट-संज्ञा** पुं० [ अं० ] वह जो राज्य में विद्रोह को उत्तेजन दे या अशांति उत्पन्न करे । वह जो राज्य या राज्य-व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था उलट देना चाहता हो । आराजक । विद्रुवर्धनी ।

**अनाकी-संज्ञा** स्त्री० [ अं० ] ( १ ) राज्य या राजा न रहने की

अवस्था । शासन या राज्य व्यवस्था का अभाव । शांति और व्यवस्था का अभाव । राजनीतिक उथल-पुथल । अराजकता । विद्रोह । ( २ ) एक मतवाद जिसके अनुसार समाज सभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या शासन व्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्ति-स्वायंभ्य हो जायगा । अराजकवाद । अतिशित सैन्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] तोड़ी या सेना से अलग की हुई सेना । अपगत सैन्य ।

अतिरथसम-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक । यदि कोई कहे कि घट का सादरय शब्द में है, इससे घट की भीति शब्द भी अनिश्चय होगा । तो इस पर यह कहना कि किसी न किसी बात में घट का सादरय सभी वस्तुओं में होगा । तो क्या फिर सभी वस्तुएँ अनिश्चय होंगी ? इसी प्रकार का उत्तर अतिरथसम कहलाता है ।

अतिभृत संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यदि कोई राजा किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उपजाऊ भूमि को खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को उसको देकर संधि कर ले तो ऐसी संधि को अतिभृत संधि कहते हैं ।

अनिपायउल-संज्ञा पुं० दे० "अन्याय" । उ०—साय कहुहु तुम मोरौं दहुँ काकर अनियाउ ।—जायसी ।

अनिर्दिष्ट भोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों को मालिक की आज्ञा के बिना काम में खाना ।

विशेष—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर के तुल्य ही कहा गया है । स्मृतियों में इस द्रोप के करनेवाले के लिये निम्न निम्न अर्थ दंड हैं ।

अनिवाह्य पश्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पदार्थ या माल जिसका राग या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो ।

अनिल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) सामान का दहन ।

अतिष्कासिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पर्देनशीन औरत ।

विशेष—चंद्रपुत्र के समय में यह नियम था कि पर्देनशीन औरतों से घरों के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको वहाँ पर बैठना पहुँचा दिया जाता था ।

अतिप्रवृत्तिक-वि० [ सं० ] राष्ट्र या राज्य के अतिष्ठ-साधन में तत्पर । बागी ।

विशेष—घागरय के समय में इन्हें अग्नि में जलने का द्रष्ट मिला था ।

अनिष्ट-वि० [ सं० ] ( १ ) जिसने आज्ञा या अधिकार न प्राप्त किया हो । ( २ ) जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो ।

अतिशुद्धोपभोका-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो बिना मालिक की आज्ञा के घरोंहर रसों हुई वस्तु काम में लाये ।

अनीस-वि० [ ? ] जिसका कोई रक्षक न हो । भनाय । उ०—

बाल-दूसां जैसे दुख पाए । अति अनीस नहि जाए रानाए । —तुलसी ।

अनु-प्रश्न० [ ? ] हौं । ठीक है । उ०—( क ) तुम अनु पुत्र मतें तम सेठ । ऐसन मेउ न जानै केउ ।—जायसी । ( ख ) अनु तुम कही नीक यह सोभा । पै कुल सोइ भैंबर जेहि सोभा ।—जायसी ।

अनुकूला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( २ ) दुर्गा देव ।

अनुग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ३ ) राज्य या राजा की रूपा से प्राप्त सहायता । सरकारी रिभावत ।

अनुज्ञातक्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] सरकार की ओर से दिया हुआ कुछ वस्तुओं को खचने का ठेका ।

अनुत्ताप-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार दस छेदों में से एक ।

अनुरपत्तिसम-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक । यदि किसी वस्तु के प्रसंग में कोई हेतु कहा जाय और उत्तर में उसी वस्तु के प्रसंग में यह

कहा जाय कि जब तक उस वस्तु की उपपत्ति ही नहीं हुई, तब यह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा ? तो ऐसे उत्तर को अनुपत्तिसम कहेंगे । जैसे—यदि वादी कहे—"शब्द अनित्य है; क्योंकि प्रयत्न से उत्पन्न होता है ।" इस पर प्रतिवादी कहे—

"यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है, तो प्रयत्न से पहले इसकी उपपत्ति नहीं होगी । और जब शब्द उत्पन्न ही नहीं हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा ? जब

इस गुण का आधार भी नहीं रहा, तब वह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है ?" इसी प्रकार का उत्तर अनुपत्तिसम कहलाता है ।

अनुद्रुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में ताल का एक भेद ।

अनुपकारी मित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] शत्रु राजा का मित्र ।

अनुपलब्धिसम-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक । यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर में प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं ।

अनुपाश्रया भूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह भूमि जो बचनेवालों के अतिरिक्त और दूसरों को आश्रय देने में असमर्थ हो अर्थात् जिसमें और लोगों के बसने की गुंजाइश न हो ।

अनुरक्त-प्रवृत्ति-वि० [ सं० ] ( राजा ) जिसकी प्रजा उसमें अनुरक्त हो । प्रजा-प्रिय ।

अनुकूपा सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्गों, भाई, बंधुओं आदि को साम दान आदि द्वारा पक्ष में करना ।

अनुलोमा सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पौर जनपद तथा सेना-पतियों को दान तथा भेद से अपने अनुकूल बनाना ।

**अनखुला-वि०** [ हि० अन (प्रत्य०) + खुला ] ( १ ) जो खुला न हो। बंद। ( २ ) जिसका कारण प्रकट न हो। उ०—केसरि केसरिखुसुम के रहे अंग लयटाइ। लगे जानि नख अनखुली कत बोलत अनखान् ।—विहारी।

**अनगवना-क०** अ० [ हि० अन + अगवना = अग्रे होना ] जान बूझ कर देर करना। विलंब करना। उ०—मुँहुँ धोयति पृथी घसति हसति अनगवति तीर । धसति न इंदीवर नयनि कालिंदी के नीर ।—विहारी।

**अनगाना-क०** अ० [ हि० अन + अगवना = अग्रे बढ़ना ] ( १ ) विलंब करना। देर करना। ( २ ) डाल मटोल करना।

**अनचाखा-वि०** [ हि० अन + चखना ] चिना चखा या खाया हुआ। उ०—दरिअँ दाल पुटे अनचावे ।—जायसी।

**अनध्यास-वि०** [ ? ] भूला हुआ। विस्मृत।

**अनन्याधिकार-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह पदार्थ जिसके बेचने या बनाने का किसी एक व्यक्ति या कंपनी को ही अधिकार हो। पेटेंट। इजारा।

**अनपाकर्म-संज्ञा पुं०** [ सं० ] प्रतिज्ञा के काम न करना। इकार के मुताबिक तनखाह या मजदूरी न देना। जैसे—मजदूरी न देना, दी हुई वस्तु लौटा लेना।

**विशेष-स्मृतियों तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग इसी अर्थ में है। अनपाकर्म संबंधी श्रगदा दो प्रकार का है। एक तो वेतन संबंधी और दूसरा दान संबंधी। परावर ने लिखा है कि धर्मा या भृत्य को उसके काम के बढ़े वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का नाम वेतनस्थानपाकर्म है। इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना दत्तस्थानपाकर्म है।**

**अनपाकर्म विचाव-संज्ञा पुं०** [ सं० ] मजदूरों और काम कराने वाले पूँजीपतियों के बीच वेतन संबंधी श्रगदा।

**विशेष-नाद ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थात् पूँजीपति भृत्यों को निमित्त की हुई स्मृति दे। (ना० रघु० ६०२)**

**अनफाँस-संज्ञा पुं०** [ हि० अन + फाँस = पारा ] मोझ। मुक्ति। उ०—जेकर पास अनफाँस, कहु हिय किकिर सँभारि के ।—जायसी।

**अनमाया-वि०** [ हि० अन (प्रत्य०) + मायना = मायना ] जिसकी माप न हो सकती हो। न नापा जाने योग्य। उ०—मेंटी मालु भरत भरतानुज क्योँ कहँ प्रेम अमित अनमायो।—तुलसी।

**अनरसो-क०** वि० दे० अतरसोँ ।

**अनरुच-वि०** [ हि० अन + रुचि ] जो पसंद न हो। न रुचने वाला। अरुचिकर। उ०—दूसन गप के पवा कपोल। धैन गप अनरुच देह बोला।—जायसी।

**अनर्घ कथ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बाजारी कीमत से अधिक, या कम कीमत पर खरीदना।

**अनर्घ विक्रय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बाजारी कीमत से अधिक कीमत या कम कीमत पर बेचना। (चाणक्य ने इस भवपार में १००० पण दंड लिखा है।)

**अनर्जित आय-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वह आय या लाभ जो वस्तु के पकाएक माँहगे हो जाने पर उसके उत्पन्न करने या बेचने वाले को हो जाय अर्थात् जिसकी संभावना पहले न रही हो।

**अनर्ध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] ( ४ ) भय की प्राप्ति।

**अनर्थ-अनर्थानुबंध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] किसी शक्तिशाली राजा को लड़ने के लिये उभाड़ कर आप भला हो जाना। यह अर्थ के भेदों में से है।

**अनर्थ-अर्थानुबंध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] अपने लाभ के लिये शत्रु या पड़ोसी को धन तथा सैन्य (कोश-दण्ड) द्वारा सहायता पहुँचाना।

**अनर्थ निरनुबंध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाड़ कर तथा लड़ने के लिये प्रोत्साहित कर स्वयं ग्रथक हो जाना। यह अर्थ के भेदों में से है।

**अनर्थसंशयापद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] शत्रुओं के साथ मित्रों की लड़ाई का अवसर।

**अनर्थसिद्धि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] चल मित्र तथा आरूढ़ (वह मित्र जो शत्रु या विजिगीषु के आश्रय में हो) का मेल या संधि।

**अनर्थानुबंध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] शत्रु का इस प्रकार नाश न होना कि अनर्थ की आशंका मिट जाय।

**अनर्थापद-संज्ञा पुं०** [ सं० ] चारों ओर से शत्रुओं का भय।

**अनर्थार्थसंशय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] ऐसी स्थिति जिसमें एक ओर तो अर्थ प्राप्ति की संभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका।

**अनवसित संधि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] औपनिवेशिक संधि। जंगल या उत्तर जमीन बसाने के संबंध में दो पक्षों या राष्ट्रों की संधि।

**विशेष-औपनिवेशिक संधि के विषय में चाणक्य ने लिखा है कि यह प्रायः विवाहप्रस्त विषय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि में उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है। साधारणतः जलप्रायः भूमि ही उत्तम है।**

**अनामेल-संज्ञा पुं०** दे० "पुनामेल"।

**अनार-संज्ञा पुं०** [ फा० ] ( ३ ) वह रस्सी जिसमें दो छपर एक साथ मिला कर बाँधे जाते हैं।

**अनारकिस्ट-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जो राज्य में विद्रोह को उचोन्नत दे या अशांति उत्पन्न करे। वह जो राज्य या राज्य-व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था उलट देना चाहता हो। अराजक। विद्रुषणपी।

**अनाकी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] ( १ ) राज्य या राजा न रहने की

अवस्था । शासन या राज्य व्यवस्था का अभाव । शक्ति और व्यवस्था का अभाव । राजनीतिक उचलपुचल । अराजकता । विग्रह । (२) एक मतवाद जिसके अनुसार समाज सभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या दासन व्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्ति-स्वातंत्र्य हो जायगा । अराजकवाद । अनिदित्त सैन्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] तोड़ी या सेवा से अलग की हुई सेना । अपसृत सैन्य ।

अनिरयसम-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक । यदि कोई कहे कि घट का सारदय शब्द में है, इससे घट की भाँति शब्द भी अनित्य होगा । तो इस पर यह कहना कि किसी न किसी बात में घट का सारदय सभी वस्तुओं में होगा । तो क्या फिर सभी वस्तुएँ अनित्य होंगी ? इसी प्रकार का उत्तर अनिरयसम कहलाता है ।

अनिभृत संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यदि कोई राजा किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उपजाऊ भूमि को खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को उसको देकर संधि कर ले तो दूसरी संधि को अनिभृत संधि कहते हैं ।

अनिघाउल-संज्ञा पुं० दे० "अन्याय" । उ०—साय कइहु तुम मोसों दूहें काकर अनियाउ ।—जायसी ।

अनिर्दिष्ट भोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों को मालिक की आज्ञा के बिना काम में खाना ।

विरोध—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर के तुल्य ही कहा गया है । स्थितियों में इस दोष के करनेवाले के लिये निम्न निम्न अर्थ दूँ हैं ।

अनिघाउल पापय-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह पदार्थ या माल जिसका राज्य या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो ।

अनिल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) सागौन का वृक्ष ।

अनिष्कालिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रदैनशीन औरत ।

विशेष—चंद्रगुल के समय में यह नियम था कि प्रदैनशीन औरतों से घरों के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको वहाँ पर बतन पहुँचा दिया जाता था ।

अनिष्टप्रवृत्तिक-वि० [ सं० ] राष्ट्र या राज्य के अनिष्टसाधन में तत्पर । बागी ।

विशेष—चाणक्य के समय में इन्हें अग्नि में जलाने का दण्ड मिलता था ।

अनिष्टद-वि० [ सं० ] (१) जिसने आज्ञा या अंधकार न प्राप्त किया हो । (२) जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो ।

अनिष्टदोषभोका-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो बिना मालिक की आज्ञा के परोहर रखी हुई वस्तु काम में लावे ।

अनीस-वि० [ ? ] जिसका कोई रक्षक न हो । अनाथ । उ०—

बाल-दसा जेते दुसं पाए । अनि अनीस नहिं जाए गनए ।  
—तुलसी ।

अनु-प्रत्य० [ ? ] ही । ठीक है । उ०—(क) तुम अनु गुप्त मत से मत सेऊ । प्रेमन सेठ न जानि केऊ ।—जायसी । (ख) अनु तुम कही नीक यह सोना । पै कुल सोइ भँवर जहि लोभां ।—जायसी ।

अनुकृता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) दली वृक्ष ।

अनुग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) राज्य या राजा की रूपा से प्राप्त सहायता । सरकारी रियायत ।

अनुज्ञातप्रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सरकार की ओर से दिया हुआ कुछ वस्तुओं को बँचने का टैका ।

अनुज्ञाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार इस संज्ञा में से एक ।

अनुदपत्तिसम-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक । यदि किसी वस्तु के प्रसंग में कोई हेतु कहा जाय और उत्तर में उसी वस्तु के प्रसंग में यह कहा जाय कि जब तक उम वस्तु की उत्पत्ति ही नहीं हुई, तब यह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा ? तो ऐसे उत्तर को अनुदपत्तिसम कहेंगे । जैसे—यदि वादी कहे—“शब्द अनित्य है, क्योंकि प्रयत्न से उत्पन्न होता है ।” इस पर प्रतिवादी कहे—“यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है, तो प्रयत्न से पहले इसकी उत्पत्ति नहीं होगी । और जब शब्द उत्पन्न ही नहीं हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा ? जब इस गुण का आधार भी नहीं रहा, तब यह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है ?” इसी प्रकार का उत्तर अनुदपत्तिसम कहलाता है ।

अनुदुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में ताल का एक भेद ।

अनुपकारी मित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] दातु राजा का मित्र ।

अनुपलब्धि संम-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक । यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर में प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं ।

अनुपाश्रया भूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह भूमि जो बसनेवालों के अतिरिक्त और दूसरों को आश्रय देने में असमर्थ हो अर्थात् जिसमें और लोगों के बसने की गुंजाहट न हो ।

अनुरक-प्रकृति-वि० [ सं० ] (राजा) जिसकी प्रजा उसमें अनुरक्त हो । प्रजा-प्रिय ।

अनुरूपा सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पुत्रों, भाई, बंधुओं आदि को साम दान आदि द्वारा पक्ष में करना ।

अनुलोमा सिद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पौर जानपद तथा सेना-पतियों को दान तथा भेद से अपने अनुकूल करना ।



**अनुशक्ति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सी से अधिक सैनिकों का नायक ।  
 सी से ज्यादा सिपाहियों का अफसर ।  
**विशेष**—इसका स्थान शतानीकों के ऊपर होता था जिन्हें यह  
 सैनिक निद्रा देता था ।  
**अनुशप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] काम से छी हुई छुट्टी । श्वसत ।  
**विशेष**—चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इसके संबंध में बहुत  
 नये नियम दिए हैं ।  
**अनुशय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) दान-संबंधी श्रावणों का निर्णय,  
 फल या फँसला । ( अर्थशास्त्र )  
**अनुशयी**—संज्ञा पुं० [ सं० अनुशयिन् ] यह राजकर्मचारी जो दान  
 संबंधी श्रावणों का निर्णय करता था । ( अर्थशास्त्र )  
**अनुवर्धा**—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव  
 जो ४८ हाथ लम्बी, २४ हाथ चौड़ी और २४ ही हाथ  
 ऊँची होती थी ।  
**अनुवप्राम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] नदी के किनारे का गाँव ।  
**विशेष**—चंद्रगुप्त के समय में यह राजनियम था कि बरसात  
 के दिनों में ऐसे गाँव के लोगों को नदी का किनारा छोड़  
 कर किसी दूसरे दूरवर्ती स्थान पर बसना पड़ता था ।  
**अनुवप्राप्त सैन्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह सेना जिसके अनुकूल भद्र  
 न पड़ती हो ।  
**विशेष**—कौटिल्य के अनुसार ऐसी सेना ऋतु के अनुकूल  
 बख, अख, कबच आदि का प्रबंध हो जाने पर युद्ध कर  
 सकती है, पर अभूमि प्राप्त ( अनुपयुक्त भूमि में फँसी )  
 सैन्य युद्ध करने में असमर्थ हो जाती है ।  
**अनेता**—संज्ञा पुं० [ दे० ] मालती नाम की लता । ( देहरादून )  
**अनौधि**—क्रि० वि० [ हि० अन + अधि ] शीघ्र । जल्दी ।  
**अन्यक्रीत**—वि० [ सं० ] दूसरे का खरीदा हुआ ।  
**अन्यजात**—वि० [ सं० ] खोई हुई या नष्ट ( घरतु ) ।  
**अन्ययायाही**—संज्ञा पुं० [ सं० अन्ययाहिन् ] विना पुंगी या मह-  
 सुल दिए ही माल ले जानेवाला । ( अर्थशास्त्र )  
**अन्यसंभूय ऋय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] थोक का दूसरा दाम जो पहले  
 दाम पर न चिकने पर लगाया जाय ।  
**विशेष**—चंद्रगुप्त के समय में बहुत से पदार्थ ऐसे थे जिनकी  
 विक्री राज्य की ओर से ही होती थी ।  
**अन्याय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना के किसी एक अंग की अधिकता ।  
 ( अर्थशास्त्र )  
**अन्यायन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सामान जो वधू अपने पिता के  
 घर से ल्याई हो ।  
**अन्याहित**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) निक्षेप या न्यास के धन को  
 एक महाजन के यहाँ से उठा कर दूसरे के यहाँ रखने  
 का विधान ।  
**अन्यहा**—संज्ञा पुं० [ सं० प्रथ ] अंधा । नेत्रहीन ।

**अपःप्रवेशन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पानी में डुबा कर मारने का वह  
 जो राज-विद्रोही ब्राह्मणों को दिया जाता था । ( कौ० )  
**अपकर्ष**—सम—संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में जाति के चौबीस बंधों  
 में से एक । दशांत में जो न्यूनताएँ हैं, उनका साध्य में आरोप  
 करना । जैसे,—यह कहना—“यदि घट का साध्य शब्द में  
 है, तो जिस प्रकार घट का प्रत्यक्ष श्रवणेंद्रिय से नहीं होता,  
 उसी प्रकार शब्द का भी श्रवणेंद्रिय से प्रत्यक्ष नहीं होता ।”  
**अपक्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) वह जो राज्य के पक्ष में न हो ।  
 ( २ ) जिससे राज्य की कोई लाभ न हो । ( ३ ) वह जिसका  
 किसी से देल मेल न हो । यह जो किसी के साथ मिल जुल  
 कर न रह सकता हो ।  
**विशेष**—चाणक्य ने ऐसे मनुष्यों के लिये लिखा है कि उन्हें  
 कहीं अलग अपना उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए ।  
**अपचरित प्रकृति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह राजा जिसकी प्रजा  
 अत्याचार से तंग हो ।  
**अपती**—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] प्रायः एक बालिदत-चोड़ा एक तल्ला  
 जो नाव की लंबाई में मरिया के दोनों सिरों पर लगाया  
 जाता है । ( महाह )  
**अपनी**—सर्व० [ हि० मरना ] हम । ( मध्यप्रदेश )  
**अपनय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) अनौत्ति । ( २ ) संधि आदि उचित  
 रीति पर न करने का व्यवहार जिससे विपत्ति की संभावना  
 हो जाती है । ( अर्थशास्त्र )  
**अपनर्मक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का हार ।  
**अपना**—सर्व० [ सं० मराने ] ( २ ) आप । निज । जैसे,—अपने  
 को, अपने में, अपने पर ।  
**अपनाइयत**—संज्ञा स्त्री० दे० “अपनायत” ।  
**अपनायत**—संज्ञा स्त्री० [ हि० मरना + यत् ( सं० ) ] ( १ ) अपना  
 होने का भाव । अपनापन । आत्मियता । ( २ ) आपसदारी  
 का संबंध । बहुत पास का रिश्ता ।  
**अपराधी-साती**—संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी अपराध के मामले  
 का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार करता है  
 और अपने साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है ।  
 वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता  
 है । हकवाली गवाह । मुनजरिम हककारी । सरकारी  
 गवाह ।  
**अपरिपणित संधि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की कपट-संधि  
 जो केवल धोखे में रखने के लिये की जाय ।  
**विशेष**—दंग यह है कि किसी अभिमानी, मूर्ख, आलसी या  
 दुर्बलसनी राजा को यदि नीचा दिखाना हो तो उसने यों ही  
 कहता रहे कि “हम तुम तो एक हैं” पर किसी प्रयोगन की  
 बात न करे । इस प्रकार उसे संधि के विवादात्त में रख  
 उसकी कमजोरियों का पता लगाता रहे और मौका पढ़ने

पर उस पर आक्रमण कर दे। इस ऋषट् संधि का उपयोग दो सामंत राजाओं को लड़ा कर उनके राज्य को हृदय करने के लिये भी हो सकता है। (कौ०)

**अपरेटस-संज्ञा पुं०** [ अ० ] वह यंत्र जो किसी विशेष कार्य या परीक्षा-कार्य के लिये बना हो। यंत्र। औजार। परीक्षा-यंत्र।  
**अपस्तुत-वि०** [ सं० ] युद्ध से भागा हुआ। भगोड़ा।

**विशेष**—कौटिल्य के अनुसार अपस्तुत और अनिस्तुत (सेवा में अलग किए हुए या देश से निकाले हुए) सैनिकों में अपस्तुत अच्छे हैं। उनसे युद्ध में फिर काम लिया जा सकता है।

**अपसौना-कि०** अ० [ ? ] जाना। पहुँचना। प्राप्त होना।  
**उ०**—(क) जीव कादि है तुम्ह अपसई। यह भा कया जीव मुम भई।—जायसी। (ख) जनु जमकात करहि सब भवई। जिउ लेह चहहि सरग अपसवई।—जायसी।

**अपहरण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (४) महस्ली माल को दूसरी वस्तुओं में टिपा कर महसूल से बचाना। (कौ०)

**अपेक्षाकृत-कि०** वि० [ सं० ] अपेक्षा + कृत। मुकाबले में। तुलना में। जैसे,—गरमी में दिन अपेक्षाकृत घटा होता है।

**अपेलेट साहज-संज्ञा पुं०** [ अ० ] प्रेसिडेंसी हाईकोर्ट का वह विभाग जहाँ जज अपनी निर्धारित सीमा के अंतर्गत सब श्रावणी और कीजदारी अदालतों का नियंत्रण करते हैं और अपीलें सुनते हैं। इसे अपेलेट जुरिसिडिक्शन भी कहते हैं।  
**अप्रतिस्वयदा भूमि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वह भूमि जो एक दूसरी से पृथक् हो। (कौ०)

**अप्रतिहत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] अंकुश।

**अप्रतिहत द्यूह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह अर्धहत द्यूह जिसमें हाथी घोंदें रथ तथा प्यादे एक दूसरे के पीछे हों। (कौ०)

**अप्रवृत्तग्रथ-वि०** [ सं० ] निम्नकी ओर से आक्रमण न हुआ हो।

**अप्राप्तिसम-संज्ञा पुं०** [ सं० ] न्याय में जाति या असत् वस्त्र के जोरस भेदों में से एक। यदि किसी के उचर में कहा जाय—“तुम्हारा हेतु और साधन दोनों एक आधार में वर्तमान हैं या नहीं? यदि वर्तमान हैं, तो दोनों परापर हैं। फिर तुम कितने हेतु बहोगे और कितने साधन?” तो इसे प्राप्तिसम कहेंगे। और यदि साधन ही इतना और कहा जाय—“यदि दोनों एक आधार में नहीं रहते, तो तुम्हारा हेतु साधन का साधन कैसे कर सकता है?” तो इसे अप्राप्तिसम कहेंगे।

**अप्रिय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (२) वैत। वैतस।

**अप्लु प्रवेशन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का घुड़ जिसमें अपराधी जल में डुबाकर मारा जाता था। (कौ०)

**अबंध-वि०** [ सं० ] अ + बंधन। जो किसी के बंधन में न हो। अव्यद। बंधनहीन। निरंकुश।

**अबाध-वि०** [ सं० ] अबाध। जो रोका न जा सके। अबाध्य।

**उ०**—भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवध चितवनि चितई है।—तुलसी।

**अधरा-संज्ञा पुं०** [ का० ] (२) न गुलनेवाली गाँव। उलसन।

**अधक-संज्ञा स्त्री०** [ का० ] भौह। धू।

**अधासल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] आवास। रहने का स्थान। घर। मकान।

**उ०**—ऊँचे अत्रास, बहु ध्वज प्रकास। सोभा बिलास, सोमि प्रकास।—केशव।

**अभंग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें एक लघु, एक गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं। (२) एक प्रकार के पद या भजन जिनका व्यवहार मराठी में होता है। जैसे,—सुकाराम के अभंग।

**अभय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] डरारि। छस।

**अभयचारी-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वे जंगली पशु जिनके मारने की आज्ञा न हो।

**अभयघन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जंगल जिसे कटने की आज्ञा न हो। रक्षित वन।

**अभयघन परिग्रह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] रक्षित वन संबंधी राजनियम का भंग। जैसे,—उसमें घुसना, पैद कटना, लकड़ी तोड़ना इत्यादि।

**अभिज्ञान-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (४) मुद्रा की छाप। मुहर।

**अभिधर्म-पिटक-संज्ञा पुं०** दे० “विपिक”।

**अभितन्द-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (६) भास।

**अभिप्लव-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) उपद्रव। उग्रात। फसाद। (२)

गवामयन यज्ञ में प्रति मास का पंचमांश जो छः छः दिनों का होता था और जिनमें से प्रत्येक का अलग अलग नाम होता था। (३) स्तोम आदि का पाठ जो एक अभिप्लव में होता था।

**अभिपय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (६) वींठी।

**अभिहित संधि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वह संधि जिसकी लिखा पढ़ी न हुई हो। (कौटिल्य)

**अभूताहरण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नाथ्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का कपटयुक्त या न्यंग्यपूर्ण बचन-कहना। यह गर्भसंधि के तरह भंगों में से एक है।

**अभूमिप्राप्त सैन्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह सेना जो अनुपयुक्त भूमि में पड़े गई हो। ऐसी जगह पड़ी हुई फौज गहाँ से लड़ना असंभव हो। (कौटिल्य)

**अभृत सैन्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह सेना जिसे बैतन या भत्ता न मिला हो।

**विशेष**—कौटिल्य के अनुसार यह व्याधिन (धीमार) सैन्य से उपयोगी है, क्योंकि बैतन पा जाने पर वी व्याकर लड़ सकता है। (कौ०)

**अभेद्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] हीरा। हीरक।

अर्द्धाली-संज्ञा स्त्री० [ सं० अर्द्धालि ] यह चौपाई जिसमें दो ही चरण हों। आधी चौपाई। जैसे,—राम भजन विघु सुनहु रगेसा। मिठे न जोबन केर कहेसा।

अर्द्धमाणय-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) यह शीपक हार जिसके बीच में मणि हो। ( कौ० ) ( २ ) दस मोतियों की माला।

अर्द्धमासभूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मजदूर या नौकर जिसे अर्द्ध-मासिक (१५ दिन पर) वेतन मिलता हो।

अर्द्धहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] ६४ मोतियों की माला।

अर्धा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ऐसे २५ मोतियों का गुच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ना हो।

विशेष-बराहमिहिर के समय में एक अर्धा का दाम १३० कार्षाण था। उस समय कार्षाण में दस मासे चाँदी होती थी और वह सोलह मोटे (गोरखपुरी) पैसे के बराबर होता था।

अर्षण प्रतिभू-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह प्रतिभू (जामिन) जो किसी की इस प्रकार जमानत करे कि यदि वह ऋण का धन न देगा, तो मैं दूँगा।

अर्भ-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ५ ) नेत्रवाला। ( ६ ) कुशा।

अर्भक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) नेत्रवाला। ( ३ ) कुशा।

अर्ल-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ खो० कौटिल ] इंग्लैंड के सामंतों और बड़े बड़े भूमिधिकारियों को यंत्रापरंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि जिसका दर्जा मार्किंस के नीचे और बारकौंट के ऊपर है।

विशेष-३० "टय क"।

अर्श-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ३ ) चरखी जिस पर ऊन काता जाता है।

अर्शो-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) भिलावों। ( ३ ) सम्बिलार। ( ४ ) तेजबल। ( ५ ) सफेद सरसों।

अर्लकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ३ ) वह हाथ भाव या क्रिया आदि जिससे स्त्रियों का सौंदर्य बढ़े।

अर्लई-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ऐल नाम की कैंटीली रत्ता जिसकी प्रायः सेतों में चाद लगाई जाती है। ऊरु।

अर्लक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) हरताल। ( ३ ) सफेद आरु। द्रव्य मंदार।

अर्लता-संज्ञा पुं० [ सं० ] अलकक ( १ ) वह छाल रंग जो स्त्रियों परों में लगाती हैं। ( २ ) खसी की मूर्खेन्द्रिय। जैसे,—अलते की बोटी।

अर्लथी तालथी-संज्ञा स्त्री० [ सं० अर्थी ] अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं अथवा बहुत कठिन उर्दू। जैसे,—आप अपनी अलथी चलथी छोड़कर सीधी तरह से हिंदी में बातें कीजिए।

अर्लवेला-संज्ञा पुं० [ सं० ] अलथ्य। नारियल का बना हुआ हुका। उ०—साय के पान बिदोरात होंड हैं बैदि सना में पिपे अलवेला।—बंदा गोपाल।

अर्लथ्य व्यायामाभूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ऐसी भूमि जिसमें सैन्य संग्रह न हो सके। ( कौ० )

अर्लसान-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अलथ्य। आलस। सुस्ती। उ०—औं खिन मैं अलसानि, चितौन में मंडु विलासन की सरसाई।—मतिराम।

अर्लहदी-संज्ञा पुं० दे० "अहदी"।

अर्लहनियों-संज्ञा पुं० [ सं० ] जो कोई काम न कर सकता हो। अकर्मण्य। अहदी।

अर्लुक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्लु, मुलारा।

अर्लिटमेटम-संज्ञा पुं० [ सं० ] (किसी देश या राज्य का दूसरे देश या राज्य से) अंतिम प्रस्ताव, सूचना, पत्र या शर्तों के अस्वीकृत होने पर युद्ध के सिवा उपायान्तर नहीं रहता। अंतिम पत्र। अंतिम सूचना। जैसे,—जापान ने चीन को अर्लिटमेटम दिया है कि २४ घंटे के अंदर टिनसिन खाली कर दो।

अर्लपप्रसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] छोटी सी जांगलिक सेना या जांगलिक सहायता। (कौ०)

अर्लपभूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वार्षिक भुक्ति (भत्ता का वेतन) पाने वाला कर्मचारी।

अर्लपव्यय-संज्ञा पुं० [ सं० ] जो काम केवल कुछ भत्ता (पाने पाने का खर्च) मात्र देने से हो जाय।

अर्लपव्ययारंभ-वि० [ सं० ] बहुत कम खर्च में बननेवाला। (कौ०)  
अर्लपस्वार्-संज्ञा पुं० [ सं० ] आराम करने के स्थान या अवसर का बहुत कम मिलना। (कौ०)

अर्लकाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] जगह। ज़मीन।

विशेष—चाणक्य ने अनवसित संधि प्रकरण में इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग किया है।

अर्लक्रीतक-वि० [ सं० ] माँग कर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।

विशेष—अवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचिकक के समान ही दंड का विधान था।

अर्लपुं० [ सं० ] किराये या भाड़े पर लिया हुआ माल।

अर्लपोषक-संज्ञा पुं० [ सं० ] झड़ी खबरें उढ़ानेवाला। (इतके चंद्रगुप्त मौर्य के समय में फारसी पर चढ़ाने का दंड दिया जाता था।)

अर्लपरे-संज्ञा पुं० [ सं० ] पर या पर। समेल। संसद। संवेदो।

अर्लपरेना-संज्ञा पुं० [ सं० ] उदास ? न मनने देना। न रहने देना। उ०—मोरानाय मोरे हो सरोप होत थोरे दोष पोष तोपि थापि आपने न अवडरिये।—तुलसी।

† कि० सं० [ हि० ] अर्लपरे + ना (प्रत्य०)। चक्र में डालना। फेर में डालना। फँसाना। उ०—(क) पंच कहे सित्र सती चियाही। पुनि अर्लपरे मरायनिह ताही।—तुलसी। (ख)

भोरानाथ भोरे ही सरोप होत घोरे शोप पोपि तोपि थापी  
अवनी न अवधेरिये।—गुलसी।

**अधडेरा**—वि० [ १ ] (१) घुमाव किरायवाला। चहरदार। (२)  
= यद्यप। कुडप। उ०—जननी जनक तज्यो जनमि काम विनु  
विधिहु ज्ययो अवधेर।—गुलसी।

**अधनीप**—संज्ञा पुं० [ सं० अधनी + प = पति ] राजा। उ०—दीप  
दीप हू के अधनीपन के अधनीप।—केशव।

**अधमरी संधि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नाश्र्वाद्य के अनुसार पंच  
प्रकार की संधियों में से एक।

**अधरवर्षाभिनिवेश**—संज्ञा पुं० [ सं० ] छंदों जातियाँ से बसता  
हुआ उपनिवेश।

**अधरोहक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] अधगंध। असगंध।

**अधशीघ्र क्रिया**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] विरक मित्र या राज्यापराध  
के कारण यहिष्कृत प्यक्तिके साथ फिर संधि करना।

**अधश्य सैन्य**—वि० [ सं० ] ( राजा या राष्ट्र ) जिसकी सेना तथा  
में न हो।

**विशेष**—पुराने नानिज्ज इसकी अपेक्षा अध्वरिधत-सैन्य अध्छा  
समस्तते थे। पर कौटिल्य के मत में अधश्य सेना सत्त  
आदि उपायों से यदा में की जा सकती है, अतः यही अध्छी है।

**अधसर-प्राप्त**—वि० [ सं० ] जिम्मे अपने काम से सदा के लिये  
अधसर ग्रहण कर लिया हो। जिसने पेश्वान के ली हो।  
जैसे,—अधसर-प्राप्त सिंहासित है।

**अधस्कंदक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जो रास्ते चलते लोगों को मारे  
पड़े। गुंडा।

**अधस्कंदित-भमी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मजदूरी या शेतवाह लेकर  
भाग जानेवाला मजदूर।

**अधस्कर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह नल जिम्मे पायाला ग्रह कर  
बाहर जाता हो। डून।

**अधस्था परिणाम**—संज्ञा पुं० दे० "परिणाम"। ( योग )

**अधवारता**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) रोकना। मना करना।  
(२) दे० "धारता"।

**अधवास**—संज्ञा पुं० [ सं० ] बासस्थ। एक प्रकार के दिगंबर जैन जो  
"नग्न" के अंतर्गत हैं।

**अधिशत क्रय**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गुप्त स्थान से या मालिक  
के अनजान में कोई पदार्थ माल लेना। (२) व्यवहार में  
आधा माल नष्ट हो जाना।

**अधिदध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] भेड़ी का वृष।

**अधिमाल्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] गणित में यह राशि जिसकी किसी  
गुणक के द्वारा भाग न किया जा सके। निश्चेद।

**अधिशेष सम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में जाति के चौबीस भेदों  
में से एक। यदि यादी किसी वस्तु के सादृश्य के आधार पर  
कोई धान सिद्ध करे—उदाहरणार्थ घट के सादृश्य से शम्भ

को अनिय सिद्ध करे, और उसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि  
यदि प्रयत्न के उत्पन्न होने के कारण ही घट के समान शब्द  
भी अनिय हो, तो इतना अल्प सादृश्य तो सभी वस्तुओं में  
होना है; और ऐसे सादृश्य के कारण सभी चीजों के धर्म  
एक मानने पहुँचें, तो ऐसा उत्तर अविशेष सम कहा जायगा।

**अधिसहा**—वि० [ सं० ] रोग उत्पन्न करनेवाला या गुण-रहित  
( पदार्थ )।

**विशेष**—ऐसे पदार्थ यंत्रवाला घट का भागी होता था।

**अधिसहा दुर्ग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह दुर्ग जिसमें शत्रु प्रवेश न  
कर सकता हो। ( शौ० )

**अधी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) यन कुलधी।

**अधुदिक**—वि० [ सं० ] जिस पर स्वाज्ञ न लगता हो।

**अधुधा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (३) स्थल कमल। स्थलपत्र। (४)  
गोरखमुंडी। (५) अंबिला।

**अशन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) चीता। चित्रक लकड़ी। (४)  
निलार्वा। (५) असन वृक्ष।

**अशुभ्रपा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जिसकी आज्ञा में रहना चाहिए, उसको  
आज्ञा में न रहने का अपराध।

**विशेष**—पारिवारिक स्थनस्था की दृष्टि से इस अपराध का  
राज्य की ओर से दंड होता था। जैसे,—यदि पुत्र पिता की  
आज्ञा न माने तो यह दंडनीय कहा गया है। (स्मृति०)

**अश्मंतक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (४) पाषाणभेद। (५) लिखाँदा।  
(६) कचनार।

**अश्म**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (४) सोनामवली। (५) लोहा।

**अश्वव्यूह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह व्यूह जिसमें कवचधारी ( लोहे  
की पाकरवाले ) घोड़े सामने और साधारण घोड़े पक्ष  
और कक्ष में हों।

**अश्वमेध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) एक प्रकार की तान जिसमें पदज  
स्वर की छोड़कर शेष छः स्वर लगते हैं।

**अश्वारि**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) कर्बीर। कनेर।

**अश्विनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (३) जटामासी। घालछट।

**अभियुगल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] दो कल्पित देवता जो प्रगत के समय  
घोड़ों या पक्षियों से जुते हुए मोने के रथ पर चढ़कर आकाश  
में निकलते हैं। कहते हैं कि यह लोगों को सुख-सौभाग्य प्रदान  
करते हैं और उनके दुःख तथा दरिद्रता भाँड़ करते हैं। कहीं  
कहीं यही अश्विनीकुमार भी माने गए हैं। कहते हैं कि दर्शीचि  
से मधु-विद्या सीखने के लिये इन्होंने उनका सिर काटकर  
अलग रख दिया था, और उनके घड़े पर घोड़े का सिर रख  
दिया था; और तब उनसे मधु-विद्या सीखी थी। वि० दे०  
"दधीचि"।

**अष्टक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (६) भात कणियों का एक गण।

अष्टघाती-वि० [ सं० अष्टा घातु ] (४) वह जिसके माता-पिता का ठीक ठिकाना न हो। दोगला। वर्णसंकर।

अष्टपदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) बेल नाम का फूल या उसका पौधा।

अष्ट प्रकृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शुक्रावृत्ति के अनुसार राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमंत्र, पंडित, मंत्री, प्रधान, सचिव, अमात्य, प्राद्विभाक् और प्रतिनिधि। किसी किसी के अनुसार—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, बल, कोप, सामंत और प्रजा राज्य के ये आठ अंग।

विशेष—महाभारत, मनुस्मृति आदि में पहले सात ही अंग कहे गये हैं।

अष्टमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (३) क्षीर काकोली। पयस्वा।

अष्टयुगी-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) नीति शास्त्र के अनुसार किसी राज्य के ऋषि, बस्ती (बाजार आदि), दुर्ग, सैत, हस्तिबंधन, खान, कर-प्रहण और सैन्य-संस्थापन का समूह।

अष्टावक्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) वह मनुष्य जिसके हाथ पैर आदि कई अंग टेढ़े भेड़े हों।

असंहत व्यूह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना को छोटे छोटे समूहों में अलग अलग खड़ा करना।

असकारभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह भूमि जिसमें बहुत थोड़े धर्म से अन्न पैदा हो। (२) कम मेहनत और थोड़ी वर्षा से हो जानेवाली फसल। (कौ०)

असगुणियाँ-संज्ञा पुं० [ हि० असगुण + रण (प्रत्य०) ] वह मनुष्य जिसका मुँह देखना लोग अशुभ समझते हैं। मनहूस।

असदभाव-संज्ञा पुं० [ सं० ] नव्य न्याय के अनुसार एक दोष जो तर्क के अवयवों के प्रयोग में होता है।

असमेध-संज्ञा पुं० दे० "अधमेध" उ०—इस असमेध जगत जेड़ कीन्हा।—जायसी

असल-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का लंबा झाड़ जो मध्य प्रदेश, संयुक्त प्रांत, दक्षिण भारत और राजपूताने में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लंबी होती हैं और बालियाँ नीचे की ओर झुकी हुई होती हैं। इसकी छाल से चमड़ा तैयारया जाता है, और बीज, छाल तथा पत्तियों का औषध में व्यवहार होता है। अकाल पड़ने पर इसकी पत्तियाँ लाल भी जाती हैं। इसकी दहलियों की दातुन बहुत अच्छी होती है। जब जाड़े के दिनों में यह फूलता है, तब बहुत सुंदर जान पड़ता है।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) लोहा नामक धातु।

असहयोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) साथ मिलकर काम न करने का भाव। (२) आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सरकार के साथ मिलकर काम न करने, उसकी संस्थाओं

में सम्मिलित न होने और उसके पद आदि ग्रहण न करने का सिद्धांत। तर्क मवालात। नान-कोभापरेशन।

असहयोग वाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने का सिद्धांत।

असहयोगवादी-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने के सिद्धांत को माननेवाला मनुष्य।

असही-संज्ञा स्त्री० [ ? ] ककड़ी या कंधी नाम का पौधा।

असहा व्यूह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह "दंडव्यूह" जिसके दोनों पक्ष फैला दिए गए हों। (कौ०)

असाईक-संज्ञा पुं० [ सं० असाक्षीय ] वह जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। उ०—बोला गंधर्वसेन रिताई। कस जोगी कस भॉट असाई।—जायसी।

असाध-संज्ञा वि० दे० "असाध्य"।

असारमांड-संज्ञा पुं० [ सं० ] घटिया माल। (कौ०)

असित-संज्ञा पुं० [ सं० ] (५) घी का पेंद।

असिता संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नीली नाम का पौधा।

असिद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का बड़ा और ऊँचा वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और प्रायः इमारत के काम में आती है। इसकी छाल से चमड़ा भी तैयारया जाता है।

असीन-संज्ञा पुं० [ दे० ] सज नाम का वृक्ष। वि० दे० "सज"।

असु-संज्ञा पुं० [ सं० अश्व ] घोड़ा। अश्व। उ०—असु-दल गज-दल दूनी संगी। औघन तबल सुसांक बाजे।—जायसी।

असुर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (६) समुद्री लवण। (७) देवदार।

असुरविजयी-संज्ञा पुं० [ सं० अशुरविजयि ] वह राजा जो पाप-जित की भूमि, धन, स्त्री, पुत्र आदि के अतिरिक्त उसकी जाति भी लेना चाहे।

विशेष—कोटिल्य ने लिखा है कि दुर्बल राजा ऐसे शत्रु को भूमि आदि देकर जहाँ तक दूर रख सके, अच्छा है।

असेसमेट-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) मालगुजारी या लगान लगाने के लिये जमीन का मोल ठहराने का काम। बंदोबस्त। (२) कर या टैक्स लगाने के लिये यही खेतों की जाँच का काम।

असेसर-संज्ञा पुं० [ अं० ] (२) वह जो यही खाला जाँचकर कर या महसूल की रकम निश्चित करता है। (३) वह जो जमीन का मोल ठहरा कर लगान या मालगुजारी की रकम निश्चित करता है। कर लगानेवाला।

अस्तनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसके स्तन बहुत ही छोटे और नहीं के समान हों।

अस्ताचल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक कल्पित पर्वत जिसके संबंध में

होगों का यह विश्वास है कि भ्रम होने के समय मूर्ख ही इसी की भाँड़ में छिप जाता है। पश्चिमांचल।

अक्ष-पंखा पुं० [ सं० ] (५) केंसर। (६) बाल।

अक्षय-पंखा पुं० [ सं० ] (३) जोंक जो लहू (भ्रम) पंती है।

अस्थामिक द्रव्य-पंखा पुं० [ सं० ] वह धन जिस पर किसी की मिलकियत न हो। (पराधर)

अस्थामि-विक्रीत-पंखा पुं० [ सं० ] मालिक की चीरी से बेचा हुआ।

विशेष—नारद ने कहा है कि ऐसी वस्तु का पता लगने पर मालिक उसका हकदार होता है। पर मालिक की इस बात की सूचना राज्य को कर देनी चाहिये।

अस्थामि-संहत (सेना)-वि० [ सं० ] (सेना) जिसका सेना-नायक न मारा गया हो।

अहकनाश-कि० सं० [ हि० अहक + ना (क्य०) ] हट्टा करना। लालसा करना।

अहधिराज-वि० दे० "रिधर"। उ०—सर्व नास्ति वह अहधिर देस साज जोहि केर।—जायसी।

अहनाश-कि० प्र० [ सं० अति ] वर्तमान रहना। होना। उ०—  
(क) राजा सँति कुँअर सब कहहीं। अस अत मच्छ समुद  
मई अहहीं।—जायसी। (ख) जब लगी गुरु ही अहना न  
धीनहा। कोटि कैतरपट भीच्छि दीनहा।—जायसी।

अहनिस्त्रि-कि० वि० दे० "अहनिद्रा"। उ०—मुयों मुयों अह-  
निस्त्रि चित्ताई। ओही रोस भागवद पै खाई।—जायसी।

अहर-पंखा पुं० [ दे० ] छीपियों का रंग रखने का मिट्टी का बरतन। धैरा।

अहिखा-पंखा स्त्री० [ सं० ] (५) कंटकवाली या हँस नाम की घास।

अहीक-पंखा पुं० [ सं० ] बौद्ध शास्त्रानुसार दस छेत्तों में से एक।

अहुझी-पंखा स्त्री० [ दे० ] धीप के महीन टुकड़ों को मिलाकर पंकाया हुआ चावल।

अहेतुसम-पंखा पुं० [ सं० ] न्याय में जालि के चौकीस भेदों में से एक। यदि बायीं कोई हेतु उपस्थित करे और उसके उच्चर में बह कथा जाय कि तुम्हारा यह हेतुमूल, भविष्य या वर्त्तमान किसी काल में हेतु नहीं हो सकता, तो ऐसा उच्चर अहेतु सम कहलावेगा।

आर्द्रना-पंखा पुं० [ पा० ] (२) किवाड़े का दिलहा। वि० दे० "दिकहा"।

बौ०—आर्द्रना = यह किवाड़ा जिसमें आर्द्रना या दिलहा हो।  
आकर-पंखा पुं० [ सं० ] (५) सलवार पहाने के बत्तीस हाथों या सरकीयों में से एक।

आकरी-पंखा पुं० दे० "आकरिक"

पंखा स्त्री० [ सं० आकर ] खान खोदने का काम। उ०—

चाकरी न भाकरी न खेनी न बनिज भाँव जानत न कर कहु  
किसव कयाक है।—जुलसी।

आकली-पंखा स्त्री० [ दे० ] चटक पक्षी। गौरैया।

आकाश-पंखा पुं० [ सं० ] (५) अथक। अथक।

आकाशयोधी-पंखा पुं० [ सं० आकाशयोधि ] वह लोग जो ऊँची जमीन या टीले पर से लड़ाई कर रहे हों। (कौ०)

आकिलखानी-पंखा पुं० [ आकिलखा (नाम) ] एक प्रकार का रंग जो कालापन लिये लाल होता है। एक प्रकार का सैरा या काकरोत्री रंग।

आकुल-पंखा पुं० [ सं० ] खबर। अथवर।

आक्रन्द-पंखा पुं० [ सं० ] (८) प्रधान शत्रु के पीछे रह कर सहायता करनेवाला शत्रु राजा या राष्ट्र।

आक्षिप श्रृण-पंखा पुं० [ सं० ] जूधा खेलने में किया हुआ ऋण।

आसु-पंखा पुं० [ सं० ] (३) सूजर। शूकर।

आखुपापाण-पंखा पुं० [ सं० ] (२) संलिया नामक विप।

आगङ्गा-कि० वि० दे० "आगे"। उ०—घित छोले नहीं खँडी टरई। पल पल पेरि आग भनुसरई।—जायसी।

पंखा पुं० दे० "आगा"। उ०—रु रिस भीन देखैसि आगु। रिस मई काकर भण्ड सोहागु।—जायसी।

आगत-पंखा पुं० दे० "आयात"। जैसे,—आगत-कर।

आगम-पंखा पुं० [ सं० ] (२३) तंत्रशास्त्र का वह अंग जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, उनका साधन, पुरश्चरण और चार प्रकार का ध्यान योग होता है।

आघाट-पंखा पुं० [ सं० ] गाँव की सीमा। गाँव की हद्द। सिवाल।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन शिलालेखों में मिलता है। 'आघाटक' या 'आघाटन' शब्द भी इसी अर्थ में आते हैं।

आचमन-पंखा पुं० [ सं० ] (५) सुगंधवाला। नेत्रवाला।

आचरित धारण-पंखा पुं० [ सं० ] ऋण का यह चुकता जो की पुत्र को बाँधने या दरवाने पर धरना देने से हो।

आचारी-पंखा स्त्री० [ ? ] हुरदुर। हिलमोषिक।

आछेछी-कि० वि० [ हि० अछा ] भले प्रकार से। अच्छी तरह से। मली नाँति। उ०—तिनके लच्छन लच्छ अथ, आछे कहीं बखानि—मतिराम।

आजीव-पंखा पुं० [ सं० ] (१) उचित खान या भोजन। वाग्निष आामदनी।

विशेष—जो लोग कारागारों तथा अस्मियों की आामदनी को घटाने का यत्न करते थे, उनके ऊपर आामदनी ने १००० पण नुरमाना करना लिखा है।

(२) राज्य कर। सरकारी टैक्स या भदसूल।

विशेष—यह मित्र मित्र पदावों पर लगता था।

आशाधि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह गिरवी जो राजा की आज्ञा में रखी या रखाई गई हो ।  
 आशापत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) वह पत्र जिसके द्वारा राजा सामंत, भृत्य, राष्ट्रपाल आदिमें कोई आज्ञा दे ।  
 आटोक्रैट—संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) निरंकुश या स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् । वह राजा या शासक जो दूसरों पर अपनी शक्ति का अत्याचर रूप से प्रयोग या मनमानी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता हो । (२) वह जिसे किसी विषय में अमर्यादित अधिकार प्राप्त हों या जो किसी विषय में अपना अमर्यादित अधिकार मानता हो । मनमानी करनेवाला । स्वेच्छाचारी । निरंकुश ।  
 आटोक्रैसी—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) दूसरों पर अनियंत्रित या अमर्यादित अधिकार जो किसी एक ही व्यक्ति को हो । दूसरों पर मनमानी करने का अधिकार । स्वेच्छाचारिता । निरंकुशता । (२) किसी निरंकुश स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् की शक्ति । एक-त्रंता ।  
 आडिटर—संज्ञा पुं० [ अ० ] आय व्यय का चिढ़ा जाँचनेवाला । आय व्यय परीक्षक ।  
 आद्वकी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) सौराष्ट्र मुक्तिका । गोपीचंद्र ।  
 आदृतदार—संज्ञा पुं० [ हिं० आदृत + दार (प्रत्यय) ] वह जो व्यापारियों का माल अपने यहाँ रखकर वृकानदारों के हाथ बेचता हो । आदृत का काम करनेवाला । अदृतिया ।  
 आत्त प्रतिदान—संज्ञा पुं० [ सं० ] जो मिला हो, उसके लौटाना । (कौ०)  
 आत्मगुप्ता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) शतावर ।  
 आत्मधारण भूमि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह अधीन राज्य या भूमि जिसका शासन-प्रबंध वहाँ की सेना और संपत्ति से हो जाय, साम्राज्य को उसके शासन का कुछ खर्च न उठाना पड़े । (कौ०)  
 आत्मरत—संज्ञा पुं० [ सं० ] महेंद्रवराणी । यथी इन्द्रायन ।  
 आत्मविक्रता—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह दास जो अपने आपको बेचकर दास हुआ हो ।  
 आत्मविचय—संज्ञा पुं० [ सं० ] अपनी तलाशी या मंगा होली देना ।  
 आत्मशासन—संज्ञा पुं० दे० "स्वराज्य" । (कौ०)  
 आत्मामिष संधि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह संधि जो स्वयं सेना के साथ शत्रु के पास जाकर की जाय । (कामंदकीय)  
 आधी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] श्याद, हिं यावी । पूँजी । धन । उ०—साधी आधि निजाधि जो सके साथ निरवाहि ।—जायसी ।  
 अ० संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अर्थ-संपन्नता । अमीरी । सुख-हाली ।  
 आधि—संज्ञा पुं० [ सं० ] परमात्मा । परमेश्वर । उ०—आधि कियुत भादस सुजहि ते अत्यूल भए ।—जायसी ।

आधिपति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह, संधि जो प्रयत्न शत्रु को कोई भूमिबंद देने की प्रतिज्ञा करके की जाय । (कामंद०)  
 आधी—क्रि० वि० [ सं० ] आधि । बिलकुल । नितान्त । उ०—आधि ।  
 उ०—मानु न जानसि बालक आधी । हों यावला सिंधु रन-वादी ।—जायसी ।  
 आर्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह छात्र जो मुगलता से प्राप्त हो, सुरक्षित रखा जा सके तथा शत्रु द्वारा न लिया जा सके । (कौ०)  
 आघाता—संज्ञा पुं० [ सं० ] गिरवी रखनेवाला । बंधक रखनेवाला ।  
 आधान—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) गिरवी या बंधक रखना । (कौ०)  
 आधिकारिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] दरयकाय की वस्तु के दो वेदों में से एक । मूल कथावस्तु । वि० दे० "वस्तु" (५) ।  
 आधिपाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राज-कर्मचारी जो जमा की हुई धरोहर की रक्षा का प्रबंध करता था ।  
 आधिभोचन—संज्ञा पुं० [ सं० ] गिरवी या बंधक छुड़ाना ।  
 आनंद—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) मय । दारय ।  
 आनर—संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) सम्मान-बिद्ध । उपाधि । (२) सम्मान ।  
 आनुमहिक कर नीति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राज्य की वह नीति जिसके अनुसार कुछ विशेष मालों पर रियायत की जाती है ।  
 आनुमहिक दारोदय शुल्क—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सुग्री जो कुछ खास खास पदार्थों पर कम ली जाय ।  
 आनुवंशिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] वंश-परंपरा में चला आया हुआ । वंशानुक्रमिक ।  
 आनुवेश्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पड़ोसी । प्रतिवेशी । (२) वह पड़ोसी जिसका वंश धरने मकान से दाहिने या बाएँ हो । प्रतिवेश्य का उलटा ।  
 आपरहत ऋण संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ऋण जो कोई आपत्ति पड़ने पर लिया जाय ।  
 आपदर्थ—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह धन या संपत्ति जिसके प्राप्त करने पर आगे चल कर अपना अनिष्ट हो ।  
 विशेष—जिस संपत्ति के लेने पर शत्रुओं की संख्या बढ़े, धन या क्षय बढ़े अथवा दूसरों को बहुत कुछ देना पड़े, वह आपदर्थ है । कौटिल्य ने आपदर्थ के अनेक दृष्टों दिए हैं; जैसे वह संपत्ति जो कुछ दिनों पीछे मिलनेवाली हो, जिसे पीछे से कृपित होकर परिणामाह छान ले, जो मित्र के नाते या संधिभंग द्वारा हो, जिसके ग्रहण के विरुद्ध सारा मंडल हो इत्यादि । (कौ०)  
 आपीड़—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) एक प्रकार का विषम वृत्त जिसके प्रथम चरण में ८, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में २० अक्षर होते हैं । इसमें समस्त चरणों के समस्त वर्ण लघु होते हैं; केवल अंत के दो वर्ण गुरु होते हैं ।  
 आधुन—सर्व० [ हिं० भाष ] (२) खुद । स्वयं । उ०—कद्यु आधुन

अथ अथगति चरति । कल पतितन कर्ह उरथ फलति ।—  
देशव ।

**भाषाशास्त्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पार्लेमेंट या व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों का वह समूह या दल जो संविधान या शासन का विरोधी हो । जैसे,—पार्लेमेंट की कामन्स सभा में भाषाशास्त्र के लीडर ने होम सेक्टर पर वोट आफ सेन्सर या निन्द्यात्मक प्रस्ताव उपस्थित किया ।

**भाषादार-संज्ञा पुं०** [ का० ] वह आदमी जो तोप में बुँवा और पानी का पुषारा देना है । उ०—केतेक जालदार भाषादार छाषदार हो ।—चूदन ।

**विशेष**—पुरानी पाल की तीर्थों में जब एक बार गोला छूट जाता था, तब नल को ठंडा करने के लिये एक छद्म में लपेटे हुए चीपड़ों को मिगोकर उस पर पुषारा दिया जाता था, जिसमें नल के गरम होने के कारण यह गोला आप ही आप न छूट जाय ।

**भाषा-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (२) काला अणु । (३) छुट नाम की अपेक्षि ।

**भाषा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (४) बसूल का पेड़ ।

**भाषाश्री-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (२) भारतवर्ष की एक प्राचीन भाषा जो ईसवी दूसरी या तीसरी शताब्दी में तिब्ब, मुलतान तथा उत्तरी पंजाब में बोली जाती थी । आगे चलकर ईसवी छठी शताब्दी में यह भाषा "अपभ्रंश" के नाम से प्रसिद्ध हुई थी । उस समय इस भाषा में साहित्य का भी निर्माण होने लगा था ।

**भाष्यंतर आतिथ्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] देश के भीतर आया हुआ विदेशी माल ।

**भाष्यंतर कोष-संज्ञा पुं०** [ सं० ] मंत्रो, पुरोहित, सेनापति, युवराज आदि का विद्रोह । ( की० )

**भाषिन्ना-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] यह भूमि या राज्य जिसमें राजमत्त और राजद्रोही दोनों समान रूप से हों ।

**विशेष**—कौटिल्य ने कहा है कि राजमत्त जनता के सहारे ही भाषिन्ना भूमि पर शासन किया जाय । ( की० )

**भाषिरत्न-संज्ञा पुं०** [ सं० ] भाषिण्डा किम्बि । भाषिरत्न अधिकारी । उ०—नव-नारायण तन मुलुक रुदि बोषन-भाषिर और ।

पदि भदि तें बदि घटे रकम करी और की और ।—विहारी ।

**भाषिरत्न-वि०** [ सं० ] लहा । अमल । उ०—अई सो कदुभा अई सो मीठा । अई सो आमिल अई सो सोडा ।—जायसी ।

**भाषीद संज्ञा पुं०** [ सं० ] (४) दानावर ।

**भाषति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] भाषी भाव । भाग होनेवाली भाषादनी । ( की० )

**भाषवचन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] जमावचन । भाषदनी और क्षय । ( की० )

**भाषव-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (३) अणु नामक लकड़ी । (४) रत्न । मणि ।

**भाषाया-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह वस्तु या माल जो व्यापार के लिये विदेश से अपने देश में लाया या मँगवाया गया हो । आगत । जैसे,—भाषायात कर । भाषायात व्यापार ।

**भाषायातिका संज्ञा पुं०** [ सं० ] दस हजार सिपाहियों का अणुवृत्त ।

**भाषायाधीय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) कौजी सिपाही । (२) सैनिक या रंगरूट देनेवाला गाँव । ( की० )

**भाषायाधीय काय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह राष्ट्र जिसमें कौज में काम करनेवाले लोगों की संख्या अधिक हो । ( की० )

**भाषायाधि निषेध-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) उपलब्ध । माल की माँग पूरी करना । (२) माल पैदा करने या बनाने की लागत । ( की० )

**भाषा-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (५) हरताल ।

**भाषारत्न-संज्ञा पुं०** [ सं० ] लाल चूदन ।

**भाषारवेष्ट्रा-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) थियेटर आदि में सामने बैठकर बाजा बजानेवालों का दल । (२) थियेटर में वह स्थान जहाँ बाजा बजानेवाले एक साथ बैठकर बाजा बजाते हैं । (३) थियेटर में सय से जगो की सीटें या आसन ।

**भाषारकनेज-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह स्थान जहाँ अनाथ बच्चों की रक्षा या पालन होता है । अनाथालय । अतीमलाना । जैसे,—हिन्दू आरकनेज ।

**भाषाराम कुरसी-संज्ञा स्त्री०** [ का० ] एक प्रकार की लंबी कुरसी जिसमें पीछे की ओर कुछ लंबोनाटा टासना होता है और दोनों ओर हाथ या पैर रखने के लिये लंबी पटरियाँ लगी होती हैं । इस पर आदमी बैठा हुआ भाराम से लेट भी सकता है ।

**भाषारामाधिपति-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बगियों का अफसर ।

**विशेष**—युक्त नीति के अनुसार फल पूल के पीछे बोनो में निरुपु खाद तथा पानी देने का समय ज्ञाननेवाला, जहाँ पृथिवी को पहचाननेवाला आरामाधिपति होना चाहिये ।

**भाषारी-संज्ञा स्त्री०** [ देव० ] (१) बसूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जालघुरक या स्पूलफर्टक भी कहते हैं । (२) दुग्ध सैर । बसुरी ।

**भाषारुक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (२) आलू पुलारा ।

**भाषारोह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (८) चूना । नित्य । (९) ग्रहण के दस भेदों में से एक जिसमें मल ग्रह की आहुत करनेवाला ग्रह ( साहू ) वस्तुगत्तर ग्रहमंडल को आहुत करके पुनः दिखाई पड़ता है । फलित ज्योतिष के अनुसार इस प्रकार के ग्रहण के फल स्वरूप राजाओं में परस्पर संदेह और विरोध उत्पन्न होता है ।

**भाषारो-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) कौतल । कृतितय । क्षारीगति । (२)



कला । विद्या । शिल्प । हुनर । जैसे,—चित्रकारी । (३) चित्रकार या भास्कर का काम या व्यवसाय । (४) विश्व-विद्यालय का वह विभाग जिसमें चिकित्सा, विज्ञान और व्यवहारशास्त्र (वकालत) को छोड़ अन्य सब विषयों, विद्याओं और भाषाओं की उच्च शिक्षा दी जाती हो । जैसे,—आर्ट्स कालेज ।

**आर्टिकल्स ऑफ एक्सोसियेशन**—संज्ञा पुं० [अं०] किसी संस्था या उपाययुक्त स्टॉक कंपनी या सहमिलित पूँजी से खुलनेवाली कंपनी की नियमावली ।

**आर्टिस्त्री**—संज्ञा स्त्री० [अं०] तोपखाना ।

**आर्टिस्ट**—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी कला में, विशेषकर दलित कला (चित्रकारी, तद्वन कला, संगीत, नृत्य आदि) में कुशल हो ।

**आर्टिस्ट**—संज्ञा पुं० [अं०] (३) कोई वस्तु भेजने, पहुँचाने या सुईया करने के लिये मौखिक या लिखित आदेश । मॉग । जैसे,—(क) वे आदमी फागज की एक गाँठ का आर्टिस्ट दे गए हैं । (ख) आज-कल बाहर से बहुत कम आर्टिस्ट आते हैं । (ग) आर्टिस्ट के साथ चौथाई दाम भेजना चाहिए ।

**फ़ि० प्र०**—आना ।—देना ।—मिलना ।

**यौ०**—आर्टिस्ट-संग्राहक । आर्टिस्ट-संग्राहक ।

(३) स्थिरता । शांति । जैसे,—सभामें वड़ा हो हवा मचा, लोग 'आर्टिस्ट' 'आर्टिस्ट' कहने लगे । (४) क्रम । सिलसिला ।

**आर्टिस्टी**—वि० [अं०] आर्टिस्ट + ई (प्रत्य०) । आर्टिस्ट संबंधी । आर्टिस्ट का ।

**आर्टिगरी**—वि० [अं०] साधारण । मामूली । जैसे,—आर्टिगरी मैबर, आर्टिगरी शेर ।

**आर्टिनेंस**—संज्ञा पुं० [अं०] वह आदेश या हुक्म जो किसी देस के अधिकारी (भारत में वाइसराय) विशेष अवसरों पर जारी करते हैं और जो कुछ काल के लिये कानून माना जाता है । अस्थायी व्यवस्था या कानून । जैसे,—नये आर्टिनेंस के अनुसार बंगाल में किजने ही युवक गिरफ्तार किए गए ।

**विशेष**—भारत में वाइसराय अपने अधिकार से, बिना कौन्सिल की सम्मति लिए, आर्टिनेंस जारी कर सकते हैं । ऐसे आर्टिनेंस का काल छः महीने का होता है । पर आवश्यकता पड़ने पर यह बढ़ाया भी जा सकता है ।

**आर्थी**—संज्ञा स्त्री० दे० "कैतवपद्धति" ।

**आर्थोडॉक्स**—वि० [अं०] जो अपने धार्मिक मत या सिद्धांत पर अटल हो । अपने धार्मिक मत या सिद्धांत से दस से मस न होनेवाला । कठोर । सनातनी । जैसे,—परिपद के आर्थोडॉक्स हिंदू मेम्बरों ने शारदा विवाह बिल का घोर विरोध किया ।

**आर्टी**—संज्ञा स्त्री० [अं०] (४) अदरक । आदी । (५) अतीस ।

**आर्मी**—संज्ञा पुं० [अं०] हथियार । अस्त्र दाल । जैसे,—आर्मी पैकट ।

**आर्मी पुलिस**—संज्ञा स्त्री० [अं०] ब्राइट पोकिंग ] हथियारबंद पुलिस । सशस्त्र पुलिस ।

**आर्मी**—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की गाड़ी जिस पर गोलियों से बचाव के लिए लोहा मड़ा रहता है । बल्लारदार गाड़ी ।

**विशेष**—ऐसी गाड़ियों सेना के साथ रहती हैं ।

**आर्मी**—संज्ञा स्त्री० [अं०] सेना । फौज । जैसे,—इंडियन आर्मी ।

**विशेष**—आर्मी शब्द देश की समूची स्थल सेना का बोधक है ।

**आलू**—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का कैंटोला पौधा । स्वाद कड़ा । किंगरूई । वि० दे० "किंगरूई" ।

**आलू दम**—संज्ञा पुं० दे० "दम आलू" ।

**आयुष्मन्त**—संज्ञा पुं० [अं०] योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विग्रहों में से एक प्रकार का विग्रह या उपसर्ग जिसमें उनका ज्ञान भाकूल हो जाता है और उनका चित्त नष्ट हो जाता है । (साकेतय पु०) ।

**आयुष्मन्त**—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की लता जिसे बर्मन और भगवतवली भी कहते हैं ।

**आवाय**—संज्ञा पुं० [अं०] झूठे बयानों से बची हुई सेना । (कौ०)

**विशेष**—कौटिल्य ने कहा है कि परवाय तथा प्रत्यावाय से जो सेना तीन गुनी से आठ गुनी तक हो, उसका आवाय बना देना चाहिए ।

**आवेशनिक**—संज्ञा पुं० [अं०] मित्रों को दिया जानेवाला भोज । (कौ०)

**आशय**—संज्ञा पुं० [अं०] (५) कटहल । पनस ।

**आशानिवेदि**—संज्ञा स्त्री० [अं०] विजय से हताश सेना । **विशेष**—कौटिल्य ने लिखा है कि आशानिवेदि तथा परिग्रह (भगोड़े) सेना में आशानिवेदि उत्तम है; क्योंकि वह अपना स्वार्थ देखकर युद्ध के लिये तैयार हो जाती है ।

**आपाद्**—संज्ञा पुं० [अं०] (६) पल्लव । ढाक ।

**आसन**—संज्ञा पुं० [अं०] (८) उपेक्षा की नीति से काम करना । यह प्रकट करना कि हमें कुछ परवा नहीं है ।

**विशेष**—हस्त नीति के अनुसार शत्रु के चढ़ आने या घेरने पर भी राजा लोग नाच-रंग का सामान करते हैं ।

(९) उदासीन या तटस्थ रहने की नीति । आक्रमण को रोकें रहने की नीति । (कौ०) (१०) एक दूसरे की शक्ति नष्ट करने में असमर्थ होकर दो राजाओं का संधि करके सुव्याप रह जाना ।

**विशेष**—यह पाँच प्रकार का कहा गया है—विग्रहासन, संघानासन, संभ्रूयासन, प्रसंगानसन और उपेक्षानसन ।

**संज्ञा पुं० [अं०]** जीवक नाम की अष्टवर्गीय औषधि । (९) जीवक । जीरा ।

**आसामुखी**—वि० [अं०] आसामुखी ] किसी के झूठे का

भासा देखनेवाला । मुखापेक्षी । उ०—जो जाकर उस भासावृत्ति । कुछ महँ ऐसन मारं दुखी ।—जायसी ।

भासा-रंका पुं० [ सं० ] छद्मादि । निम्न आदि से मिलनेवाली सहायता । ( की० )

भासोन पाठ्य-रंका पुं० [ सं० ] नाट्यशास्त्र के अनुसार छास्य के दस अंगों में से एक । शोक और विता से युक्त किसी अभूषितवागी नायिका का बिना किसी धागे या साज के धँसी ही गाना ।

भासुर-रंका पुं० [ सं० ] भसुर । भसुर । राक्षस । उ०—काहू फहँ सुर भासुर मारौ ।—केशव ।

भासुरी-रंका स्त्री० [ सं० ] (३) शक्ति । सौ । (४) सरसों ।

भासुरी सृष्टि-रंका स्त्री० [ सं० ] वैदी भाषति । जैसे, भाग लगाना, पानी की भाद, सुभिन्न आदि ।

भाहार्य-रंका पुं० [ सं० ] (२) अभिनय के चार प्रकारों में से एक । वेप-भूषा आदि धारण करके अभिनय करना ।

भाहार्योदक सेतु-रंका पुं० [ सं० ] वह नहर जिसमें किसी स्थान से खींच कर पानी लाया गया हो । वि० दे० "सेतुबंध" ।

भाहिनक-रंका पुं० [ सं० ] गिरवी या बंधक रखा हुआ माल ।

भाहिनवास-रंका पुं० [ सं० ] ऋण के बदले में अपने की गिरवी रखकर बना हुआ दास । कर्ज पटाने के लिये बना हुआ गुलाम ।

भाजर-रंका पुं० दे० "समुंदर फल" ।

भादित्यल-वि० [ सं० ] उद्योग धंधा संबंधी । तिल्य संबंधी । औद्योगिक । जैसे,—भादित्यल कानकरेन्स ।

भादित्य-रंका स्त्री० [ सं० ] उद्योग धंधा । तिल्य ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] (पुस्तक के) विषयों की अक्षरक्रम से बनी हुई सूची । विषयानुक्रमिका ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] माल मँगाने के समय भेजी जानेवाली माल की वह सूची जो किसी व्यापारी के पास माल की माँग के साथ भेजी जाती है ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का गुण ।

भादित्य-रंका स्त्री० [ सं० ] (२) माल की माँग ।

विशेष—भादित्य अर्थशास्त्र में माँग या Demand शब्द का व्यवहार जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में भादित्य ने 'भादित्य' शब्द का प्रयोग किया है । उसने 'भादित्यशास्त्र' अधिकांश में लिखा है कि भादित्य अर्थशास्त्र की 'भादित्य' और

याने के व्यय को सदा समझता रहे । (३) गणित में श्रेणीय की दूसरी शक्ति ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] वह जो गुप्त रूप से किसी बात का भेद लगाकर पुलिस को बताता है । गोइत्या । भेदिया । जैसे,—वह पुलिस का भादित्य है ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] संस्था । समाज । मंडल ।

भादित्य-रंका पुं० दे० "सार्वभारतीय" । जैसे,—भादित्य-रंका पुत्रिचिदान ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] बीच का । मध्य का । मध्यम । जैसे,—भादित्य-रंका पुत्र ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] (१) व्यक्तियों का भास में मिलना । एक दूसरे का मिलाप । भेंट । मुलाकात । जैसे,—प्रयाग के एक संवाददाता ने उस दिन स्वराज्य पार्टी की स्थिति जानने के लिये उसके नेता पं० मोतीलाल नेहरू से भादित्य किया था ।

क्रि० प्र०—भादित्य ।—देना ।

(२) अक्षर में विचारों का आदान प्रदान । वाचस्व । जैसे,—समाचारपत्रों में एक संवाददाता और मालवीय जी का जो भादित्य था, उसमें मालवीय जी ने देना की बर्तमान राजनीतिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किए हैं ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] (१) व्यापारी द्वारा भेजे हुए माल की सूची जिसमें उस माल के दाम आदि का ध्योरा रहता है । धीजक । रवीती । (२) ध्यान का कागज ।

भादित्य-रंका पुं० दे० "धीमा" । जैसे,—भादित्य भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] साम्राज्य या सत्ता संबंधी । राजकीय । शाही । जैसे,—भादित्य संबंधित ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] (१) साम्राज्य सरकार । (२) वही सरकार ।

विशेष—भादित्य सरकार को भी भादित्य-रंका पुं० अर्थात् वही सरकार कहते हैं ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] साम्राज्य की वस्तुओं पर उसके अधीनस्थ देश में इस प्रकार आयात-निर्गत कर धंडाने की नीति जिससे वह दूसरे देशों के मुकाबले में सस्ता माल बेच सके । साम्राज्य की वही वस्तुओं को प्रस्ताता देना ।

भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] वह सेना जो भारत के देशी राजवाड़े भारत सरकार के सहायता में अपने यहाँ रहते हैं और जिसकी देखभाल विदिना अफसर करते हैं ।

विशेष—आयकाल में सरकार इस सेना से काम लती है ।

भादित्य-रंका पुं० दे० "आयात" । जैसे,—भादित्य-रंका पुं० [ सं० ] (३) सदिरा । श्रावण ।

इलता-रंका पुं० [ सं० ] ममीले आकार का एक प्रकार का बालू जो दक्षिण भारत के मैदानों और पहाड़ों में होता है । इसमें

यहूत बड़े बड़े फूल और फल लगते हैं। इसके छोटे छोटे कहीं से बहुत अच्छा कागज बनता है।

**इलेक्ट्रो-वि०** [ अं० ] बिजली द्वारा तैयार किया हुआ। इलेक्ट्रिक का। जैसे,—इलेक्ट्रो टाइप, इलेक्ट्रो ग्रेट।

संज्ञा पुं० तस्वीर आदि का वह ठप्पा या ब्लाक जो बिजली की सहायता से तैयार किया गया हो।

**इल्ली-संज्ञा** स्त्री० [ ? ] च्यूटी आदि के बच्चों का वह पहला रूप जो अंडे से निकलने के उपरांत सुतंत होता है।

**इसारत-** - + संज्ञा स्त्री० । फा इसार ] इशारा। संकेत। उ०—मुख सों न कही कछु हाथ की इसारत सों गारी दै दै आपनी केयारी दोऊ दै गई।—रघुनाथ।

**इहलौकिक-वि०** [ अं० ] इहलोक संबंधी। इस लोक का। सांसारिक। (२) इस लोक में सुख देनेवाला।

**इंदरी** + संज्ञा स्त्री० [ सं० कुंभरी ] कपड़े की बनी हुई कुंडलाकार गद्दी जिसे घड़ा या और कोई बोस उठाते समय सिर पर रख लेते हैं। उ०—आई संग आलिन कैं ननद पटाई नीड सोहत सुहाई चही इंदरी सुपट की। फई पदमाकर गभीर जमुना के तीर लागी घट अरन नचेली नेह अटकी।—पदमाकर।

**ईटना** + क्रि० प्र० [ सं० १४ ] चाह करना। इच्छा करना।

**ईश्वर्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वैचरक के अनुसार एक प्रकार के नपुंसक जिन्हें उस समय कामोत्तेजना होती है जिस समय वे किसी दूसरे को मैथुन करते हुए देखते हैं।

**ईश-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (८) पारद। पारा।

**ईश्वर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (४) पारद। पारा। (५) पीतल। (६) रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो संसार का कर्ता, अपादान, अंतर्गामी और ऐश्वर्य तथा वीर्य आदि संपन्न माना जाता है। ( शेष दो पदार्थ चिच्च और अचिच्च हैं। )

**ईसन** + संज्ञा पुं० [ सं० ईसान ] ईशान कोण। पूर्य और उत्तर के बीच का कोना। उ०—सतमी एजिउं वायव आछी। धठई अमावस ईसन लाछी।—जायसी।

**ईसर** + संज्ञा पुं० [ सं० ऐश्वर्य ] धन-संपत्ति। ऐश्वर्य। वैभव। उ०—कहेहि न रोव बहुत तैं रोवा। अर ईसर भा दारिद रोजा।—जायसी।

**ईस्ट-संज्ञा** पुं० [ अं० ] पूर्व दिशा।

**ईंधा** [ ईंधा स्त्री० [ हि० ईंधन ] (१) ऊँधने की क्रिया या भाव। (२) निद्रागम। श्रापकी।

। क्रि० प्र०—आना।—लगना।

**उकौना** + संज्ञा पुं० [ हि० उकौना ? ] गर्भवती स्त्री में होनेवाली अनेक प्रकार की प्रयत्न इच्छाएँ। दोहड़।

क्रि० प्र०—उठना।

**उक्त-प्रत्यय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] लास्य के दस अंगों में से एक। उक्ति प्रत्युक्ति से युक्त, उपालंभ के सहित, अलोक, ( अभिय या

मिथ्या ) सा, प्रतीत; होनेवाला और विलासपूर्ण अर्थ से सुसंपन्न गान। ( नाट्यशास्त्र )

**उक्थ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (४) कृपभक्त नाम की अष्टवर्गीय शोषधि।

**उगरन** + क्रि० प्र० [ सं० भ्रम ]। सामने आना। निकलना। उ०—गवन करै कहँ उगरै कोई। सनमुख सोम लाभ बहुत होई।—जायसी।

**उष्ठा** + संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की घास।

**उच्छिन्न संधि-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] वह संधि जो उपजाऊ या खनिज पदार्थों से परिपूर्ण भूमि का दान करके की जाय।

**उच्छुष्क-वि०** [ सं० ] बिना चुंगी या महसूल का।

। क्रि० वि० बिना चुंगी या महसूल दिए। ( कौ० )

**उभरना** + क्रि० सं० [ सं० उव + सण ] ऊपर की ओर उठाना। ऊपर विसताना। उ०—कर उठाइ धूँवटु करत उठान पट-गुँसरोट। सुख-मोटे लट्टी ललन लखि ललना की लौट।—बिहारी।

**उट्टी-संज्ञा** स्त्री० [ देश० ] लाग डौँट में धुरी तरह अंगठी धार मानना।

क्रि० प्र०—खुलवाना।—बोलना।

**उलकट-संज्ञा** पुं० [ अं० ] छपाई के काम में आनेवाला एक प्रकार का ठप्पा जो कुछ विशिष्ट प्रकार की मुलायम लकड़ियों पर खोद कर तैयार किया जाता है।

**विशेष**—पहले चित्र आदि किसी मुलायम लकड़ी पर उलटा खोद देते हैं; और या तो उसी को प्रेस पर छापते हैं अथवा उससे इलेक्ट्रो आदि ब्लाक तैयार करते हैं।

**उड्डसना** + क्रि० प्र० [ सं० विनट ? ] अंग होना। नष्ट होना। उ०—उड्डसा नाच, नचनियों मारा। रहसे मुदक बजाइ के तारा।—जायसी।

**उड्डाक** + संज्ञा पुं० [ सं० उड्डायक ] वह जो ( गुड्डी आदि ) उड़ता हो। उड़नेवाला। उ०—कहा भयो जी बीछुरे मो मन तो मन साथ। उड़ी जाहु कितहूँ तऊ गुड्डी उड्डाक हाथ।—बिहारी।

**उड्डाका-संज्ञा** पुं० [ हि० उड्डा + पात्र ( प्रत्य० ) ] (१) वह जो उड़ सकता हो। उड़नेवाला। (२) वह जो वायुयान आदि पर उड़ता हो। हवाई जहाज पर उड़नेवाला।

**उड्डी-संज्ञा** स्त्री० [ हि० उड्डना ] (२) कलैया। कलाबाजी।

**उड्डु-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (४) पानी। जल।

**उड्डुपति-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (२) सोम लता।

**उतराई-संज्ञा** स्त्री० [ हि० उतरना ] (२) नाच आदि पर से उतरने का स्थान। (४) नीचे की ओर उल्टी हुई जमीन। उतार। ढाल।

**उरकट-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) मूज। (२) ईंख। गधा। (३) ढालचीनी। (४) तज। (५) तेजपत्ता।

**उत्तम मित्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह जो राष्ट्र-या राजा के लिये सब से उत्तम मित्र हो। उत्तम मित्र के कौटिल्य ने छः भेद दिए हैं—(१) नित्यमित्र, (२) वर्यमित्र (३) लघुत्वान मित्र (४) चिन्तितमह मित्र (५) मदन मित्र, (६) अद्वेष्य मित्र।  
**उत्तमा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) दूधी। हुमिषका। (५) इंदीवरा। युग्मफल। उत्तरन।

**उत्तमोत्तमक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] लास्य के दस अंगों में से एक। क्रीप अधता प्रसन्नताजनक, आक्षेपयुक्त, रसरण, ह्राप और भाव से संयुक्त विचित्र पद्य-रचना युक्त गान। (नाट्यशास्त्र)  
**उत्तरीय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (२) एक प्रकार का बहुत बड़ा सन जो बहुत मजबूत होता और सहज में फाटा जा सकता है। यह बहुत सुलायम और चमकीला होता है और सब सनो से अच्छा समझा जाता है।

**उत्पथिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वे लोग जो नगर में हजर उधर आ जा रहे हों।

**उत्संग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] राजकुमार के जन्म पर प्रजा तथा करद राजाओं से मजरावे या उपहार के रूप में प्राप्त धन।

**उत्साह शक्ति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] चढ़ाई तथा युद्ध करने की शक्ति।  
**उत्साहसिद्धि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वह कार्य जो कि उत्साहशक्ति (लड़ने भिड़ने के साहस) से सिद्ध हो।

**उद्भ्रंज स्थाप-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पानी रखने का स्थान या सुसलखाना।  
**उद्कचरय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह चोर या यातक जो दान करके हुए मनुष्य को पानी के भीतर ही भीतर खींच ले जाय। पनहुश। उडुआ। (कौ०)

**उदपात-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (२) तालाब के आस-पास की भूमि या टीला।

**उदरदास-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जो जन्म से ही दास हो या दास का पुत्र हो।

**विशेष-प्रेते मनुष्य को छोड़ दूसरे किसी मनुष्य को बेचना अपराध माना जाता था।**

**उदार-संज्ञा पुं०** [ दे० ] युद्ध नाम का वृक्ष। (अवध)  
**संज्ञा पुं०** [ सं० ] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों हेतुओं का एक भेद या अवस्था जिसमें कोई क्रोधा अपने पूर्ण रूप में बसमान रहता हुआ अपने विषय का प्रमथ करता रहता है।

**उदासीन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (५) यह दूरवर्ती राष्ट्र का राजा जो शक्तिशाली तथा निग्रह अनुग्रह में समर्थ हो। (कौ०)

**उदासीन मित्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह मित्र राजा जिसके संबंध में यह निश्चय न हो कि यह सहायता में लूट करने का कष्ट उठावेगा।

**विशेष-जिस राजा के पास बहुत अधिक उपजाऊ जमीन होगी, जो बलवान, संतुष्ट तथा आलसी होगा और कष्ट से**

दूर भागनेवाला होगा, उसे सहायता के लिये लूट करने की काम परवा होगी। (कौ०)

**उदाहृति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का उल्लंघनयुक्त वचन कहना, जो नार्मसंधि के तौरह अंगों में से एक है। जैसे,—रत्नावली में विदूषक का यह कथन—(हर्ष से) आज मेरी बात सुनकर प्रिय मित्र को जैसा हर्ष होगा, वैसा तो कीर्त्तिका भी राज्य पाने से भी न हुआ होगा। अच्छा अब चलकर यह शुभ संवाद सुनाऊँ।

**उद्गतार्थ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह पदार्थ या धरोहर जिसका पढ़े पढ़े ही भोग आदि के बढ़ने से दाम बढ़ गया हो।

**उद्ग्रथ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] कर के रूप में एकत्र किया हुआ धान्य।

**उद्ग्राह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] कर के रूप में एकत्र किया हुआ धन।

**उद्दिष्ट-संज्ञा पुं०** [ सं० ] किसी वस्तु का वह भोग जो मालिक से आज्ञा प्राप्त करके किया जाय। (परासार)

**उद्दव्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यौद्ध शास्त्रानुसार दस छेदों में से एक छेद।

**उद्धृत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] गाँव के वे वृद्ध जन जो गाँव संबंधी पुरानी घटनाओं से परिचित तथा समय बढ़ने पर उनको प्रकाशित करनेवाले हों।

**विशेष-मध्य काल में सीमा संबंधी झगड़ों का इन्होंने लोगों के साक्ष्य के अनुसार निर्णय किया जाता था। आज कल पटवारी ही इन लोगों का स्थानापक है।**

**उद्यानक द्यूह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह असंभूत ध्यूह जिसके चारों अंग असंभूत हों।

**उद्भ्रंग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सारस्वत कोप के अनुसार उद्भ्रंय तथा उद्ग्राह। (२) डाक्टर सुहृद के मत से यह भ्रष्ट जो राजा के अंग के रूप में गाँवों से इकट्ठा किया गया हो।

**उद्भेक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (३) बकायन। महाजिय।

**उद्ग्रह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (३) उद्यान वायु जिसका स्थान कंड में माना गया है। वि० दे० "उद्यान"।

**उद्गाप-संज्ञा पुं०** [ सं० ] खेती। फसल।

**विशेष-चंद्रगुप्त के समय में राज्य का यह नियम था कि यदि कृषक खेती न करें तो उनको राज्य कर इकट्ठा करनेवाले समाहर्ता के कारिंदे शायद करते थे कि वह गरमी की फसल तैयार करें।**

**उन्नंत-वि०** [ सं० ] अनुन्नत या नल। हुआ हुआ। नल। उ०—उड़ी कोप लक्ष दारिद्र्य दाया। भई उन्नंत प्रेम के साला—जायसी।

**वनदीर्हा-वि०** [ सं० ] अश्वि, दि० उनीश। मींद्र से भरा हुआ। ऊँचता हुआ। उनीदा। उ०—पार्यों सोर सुहाग की दलु चित्तु ही पिय-नेह। वनदीर्हा अश्विर्वा कर्क के अलसीर्हीं देद।—विहारी।

उपसर्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) वह पदार्थ जिसका घृत्तबिंदु ऊपर की ओर उठा हुआ हो। जैसे,—उपसर्गदर पीसा।  
 उपसर्ग-क्रि० प्र० [ सं० उपवन ] झुकना। नत होना। उ०—  
 लागि सुहाई हरका खोरी। उचै रही केरा की खोरी।—जायसी।  
 उपग्रह संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह संधि जो सब कुछ देकर अपनी प्रणालिका के लिये की जाय। (कौ०)  
 उपचारच्छल-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय में विकल्प या विरुद्ध अर्थ के निर्देशन द्वारा सजाय या अभिप्रेत अर्थ का निषेध करना। जैसे,—जादी ने कहा कि “गद्दी से हुकुम हुआ”, इस पर प्रतियोगी कह कि “गद्दी तो जड़ है; वह कैसे हुकुम दे सकती है?” तो यह उसका उपचारच्छल है।  
 उपदंश-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें पुरुष की लिंगेन्द्रिय पर नाखून या दाँत लगने के कारण घाव हो जाता है।  
 उपदाम्राहक-वि० [ सं० ] घूस लेनेवाला। रिशवत लेनेवाला। रिशवती।  
 विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि न्यायाधीश के चरित्र की परीक्षा के लिये सुकिया पुलिस का कोई आदमी उससे जाकर कहे कि एक मेरा मित्र राज्यापराध में पँस गया है। आप कृपा कर उसको छोड़ दीजिए और यह धन ग्रहण कीजिए। यदि वह धन ग्रहण कर ले तो राज्य उसको “उपदाम्राहक” समझ कर राज्य के बाहर निकाल दे। (कौ०)  
 उपदेशना-क्रि० सं० [ सं० उपदेश + ना (प्रत्य०) ] उपदेश करना। शिक्षा देना। नसीहत करना। उ०—द्विदहिं बहुरि बुलाइ नरेसा। सौंपि गयंइ यूष उपदेशा।—सखल।  
 उपधियुक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] मिलावटी। जो असली या खालिस न हो (माल)। (कौ०)  
 उपना-क्रि० प्र० [ सं० उत्पन्न ] उत्पन्न होना। पैदा होना। उ०—रुधर सहित यही विस्मिय बेगि पठयो सुनि हरि हिय गार गृह उपयो है।—तुलसी।  
 उपनिधि-शोका-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मनुष्य जिसने दूसरे की रखी धरोहर का स्वयं प्रयोग किया हो। (चंद्रगुप्त के समय में ऐसे लोग देश काल के अनुसार उसका बदला या भोग-पेसन देने के लिए बाध्य किए जाते थे।)  
 उपनिपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा, चोर, भाग और पानी आदि से माल का खराब या नष्ट होना। वि० दे० “दोष”। (कौ०)  
 उपनिषिष्ट (सैन्य)-वि० [ सं० ] सुशिक्षित और अनुभवी।  
 विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि उपनिषिष्ट तथा समास (एक ही वंश की लड़ाई जाननेवाली) सैन्य में उपनिषिष्ट सैन्य ही उत्तम है, क्योंकि उपनिषिष्ट को भिन्न भिन्न स्थानों में लड़ना आता है और यह छावनी के अतिरिक्त भी लड़ाई कर सकती है। (कौ०)

उपन्यास संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह संधि जो किसी कल्याणकारी शुभ कर्म की दृष्टि से की जाय। (कामंद०)  
 उपमाता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दूध पिलानेवाली स्त्री। दाई। घाय।  
 उपराज-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] उपज। पैदावार।  
 उपराहना-क्रि० सं० [ ? ] प्रशंसा करना। सराहना। उ०—  
 आम जो फरि के नवै तराहीं। फल अमृत भा सब उपराहीं।—जायसी।  
 उपरिकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कर जो उन किसानों से लिया जाता था जिनका जमीन पर मौरूसी या अन्य किसी प्रकार का हक नहीं होता था।  
 उपरिचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक वस्तु का नाम। वि० दे० “वेदिराज” (२)।  
 उपरुद्ध सैन्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] शत्रु के द्वारा रोकी हुई सेना।  
 विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि उपरुद्ध तथा परिश्रित (सब ओर से घिरी हुई) सेना में उपरुद्ध अच्छी है, क्योंकि वह किसी एक ओर से निकल कर युद्ध कर सकती है। परिश्रित सब ओर से घिर जाने के कारण ऐसा नहीं कर सकती। (कौ०)  
 उपवन-क्रि० प्र० [ सं० उदय ] उदय होना। उगना। उ०—  
 मोद भरी गोद लिये लालति सुमिश्रा देखि देव कहै सबको सुकृत उपविधौ है।—तुलसी।  
 उपवास या उपवासी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे नीच जाति के लोग जिनको गाँव के मामलों में विशेष अधिकार न हो। वि० दे० “ग्रामिक”।  
 उपविक्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] चोरी से या संदेह की अवस्था में किसी माल का खरीदा या बेचा जाना।  
 विशेष—बृहस्पति के अनुसार घर के भीतर, गाँव के बाहर या रात में किसी नीच जाति के आदमी से कम दाम में कोई वस्तु खरीदना उपविक्रय के अंतर्गत है। ऐसा माल खरीदनेवाला अपराधी होता था। पर यदि वह खरीदने के पहले राज्य को सूचना दे देता था तो अपराधी नहीं होता था। (नारद)  
 उपविष प्रणिधि-संज्ञा पुं० [ सं० ] विष या चंद्र मंत्र आदि द्वारा मनुष्यों को गुप्त रूप से मारनेवाला।  
 विशेष—कौटिल्य के समय में ऐसे गुप्तचर उन लोगों के रूप के लिये नियुक्त किए जाते थे जिनसे राजा असंतुष्ट होता था या जो बागी समझे जाते थे।  
 उपवेधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो रास्ते चलते लोगों को तंग करे या लूटे। गुंडा। बदमाश।  
 उपशान्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] गाँव का चौपाल जहाँ धैर्य कर पंचायत होती थी या गाँव भर के लोग उत्सव आदि मनाते थे।  
 आप हुप साधु संन्यासी दूरी में धैर्य कर उपदेश देते तथा न्यास लोग कथा पुराण सुनाते थे। (कौ०)  
 उपसर्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (४) योगियों के योग में होनेवाला

विश्व जो पौष प्रकार का कहा गया है—प्रतिम, ध्रुवण, दैव, भ्रम और आयसक । ( मार्कंडेय पु० )

उपस्कर-वंश पुं० [ सं० ] (५) जीवन विवाह के लिये भाग्यदक पदार्थ । रसद या सामान । ( कौ० )

उपस्थान-वंश पुं० [ सं० ] (६) प्रधुन राज-कर इकट्ठा करना और पुराना धाकी घसूल करना ।

उपस्थापक-वंश पुं० [ सं० ] वह जो विषय को विचार और स्वीकृति के लिये किसी मन्त्रा में उपस्थित करे । उपस्थित करनेवाला ।

उपहार-संधि-वंश स्त्री० [ सं० ] वह संधि जिसमें संधि करने से पूर्व एक पक्ष को दूसरे को कुछ उपहार में देना पड़े । ( कामंद० )

उपाङ्गी-वंश पुं० [ हि० उरुना = उभरना ] किसी तीव्र औषध आदि के कारण शरीर की राल का उड़ने लगना ।

मुहा०—उपाङ्ग करना = किसी वस्तु का शरीर वा हाथे जाडना या बहा की खाल उठाना ।

उपाती-वंश स्त्री० [ सं० कपति ] उत्पत्ति । पैदाइश । उ०—सुषुप्ति से ही सुषु उपाती । सुषुप्ति में उपजे यह भौति ।—जायसी ।

उपाध-वंश पुं० [ सं० ] मंत्रों में जानेवाली पगटंडी । टाँड़ । मंड ।

उपेक्ष-वंश पुं० [ सं० ] (३) भासन नीति का एक भेद । अथवा प्रदर्शित करते हुए आक्रमण न करना ।

उपेक्षावान-वंश पुं० [ सं० ] शत्रु से छुटी पाकर उसके सहायक मित्रों पर चढ़ाई । ( कामंद० )

उपेक्षासन-वंश पुं० [ सं० ] शत्रु की उपेक्षा करते हुए सुषुचाप बंद रहना, उस पर चढ़ाई आदि न करना । ( कामंद० )

उपेक्षा-वंश-कि० प्र० [ ? ] उड़ना । घुस हो जाना । उ०—देखत उरै करूर ज्यों उरै जाइ जनि खाल । छिन छिन जाति परी खरी छीन छरीली बाल ।—बिहारी ।

उपना-वंश-कि० प्र० (१) दे० “उजना” । (२) दे० “ऊचना” ।

उपहृता-वंश-कि० प्र० [ सं० बहहन ] ऊपर की ओर उठना । उभरना । उ०—जायन सपै उरैह उरैह । भौति भौति सग ल्याग उरैह ।—जायसी ।

उभटना-वंश-कि० प्र० [ हि० उभना ] अहंकार करना । अभिमान करना । शैली करना ।

उभयतोऽर्धापद-वंश पुं० [ सं० ] जिपर से काम की संभावना दिखाई पड़ती हो, उधर ही शत्रु की बाधां । ऐसा करते हैं तो भी बाधा और घेसा करते हैं तब भी । ( कौ० )

उभयतोऽनर्थापद-वंश पुं० [ सं० ] ऐसी स्थिति जिसमें दो ही मार्ग हों और दोनों अनिष्टकर हों । ( कौ० )

उभयतोऽभागी-वंश पुं० [ सं० ] वह राजा जो अभिन्न तथा भासा

( साथी ) दोनों का साथ ही उपकार करे । ( कौ० )

उभयविभिन्न-वंश पुं० [ सं० ] वह राजा जो दो लड़नेवाले पक्षों में से किसी के प्रति उदासीनता न प्रकट करे अर्थात् दोनों का मित्र बना रहे ।

उभरौर्हा-वि० [ हि० उभार + चौहा ( प्रत्य० ) ] उभार पर आया हुआ । उभरा हुआ । उ०—भायुक कु उभरौर्हा भयौ, कहुकु पयौ भरभ्राह । सीप-हरा कैं मिस हियौ निसि दिन हेरन जाइ ।—बिहारी ।

उभरा-वंश स्त्री० [ सं० ] (८) चंद्रकांत मणि ।

उभ्मेद्वार-वंश पुं० [ प्र० ] (७) वह जो किसी स्थान या पद के लिये अपने को उपस्थित करता या किसी के द्वारा किया जाता है । पदार्थ । जैसे,—(क) वे व्यवस्थापिका परिषद् की मंत्री के लिये उभ्मेद्वार हैं । (ख) वे धनारस द्विजीवन से कॉन्सिल के लिये उभ्मेद्वार खड़े किए गए हैं ।

उरंग-वंश पुं० [ सं० ] (२) नागकेशर ।

उरगना-वंश-कि० प्र० [ सं० उरोगण ] स्वीकार करना । अंगीकार करना । अंगेजना । उ०—आय मरथ कह घी करै तिय मॉहि सुनी । जो डूप देह तो है उरगो यह यात सुनी ।—देवाव ।

उरए-वंश पुं० [ सं० ] (२) युरेनस नामक ग्रह जो पृथ्वी से बहुत अधिक दूर होने के कारण एक भूमिल स्थिर तारे या नक्षत्र के समान जान पड़ता है । पृथ्वी से सूर्य जितनी दूरी पर है, उसकी अपेक्षा यह प्रायः १९ गुनी अधिक दूरी पर है । यद्यपि प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों को बहुत दिनों पहले से इसका ज्ञान था, पर पाश्चात्य ज्योतिषियों में से हर्शल ने १७८१ ई० में इसका पता लगाया था । इसकी परिधि ३१,००० मील है । प्रायः ८४ वर्ष और १ सप्ताह में इसका एक परिक्रमण होता है । इसके चार उपग्रह हैं, जिनमें से दो हतने छोटे हैं कि बिना बहुत अच्छी दूरबीन के दिखाई नहीं देते । युरेनस ।

उरस्य-वंश पुं० [ सं० ] सेना का भ्रम भाग ।

विशेष—कीटिल्य ने लिखा है कि पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में पौष धनुष का अंतर होना चाहिए । स्पूह रचना के मसंग में पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में मित्र भ्रम प्रकार की सेनाओं के रखने के नियम बताए गए हैं । ( कौ० )

उराना-वंश-कि० प्र० [ हि० ओर + अना ( प्रत्य० ) ] समाप्त होना । खतम होना । वि० दे० “ओराना” । उ०—देखत उरै करूर ज्यों उरै जाइ जनि खाल । छिन छिन जाति परी खरी छीन छरीली बाल ।—बिहारी ।

उल्लभा-वंश पुं० दे० “उल्लभन” । उ०—शीर वियोग के ये उल्लस निकसै जिन रे तियरा हियरा तें ।—आहुट ।

उत्तरना-वंश-कि० प्र० [ सं० विमृत्त ] विस्मृत होना । भूलना । याद न रहना ।

उत्सार्ना—क्रि० सं० [ सं० उद् + सार्ण ] मकान, दीवार आदि बनाकर खंडी करना।  
 उखल—वि० [ सं० उख ] तपा हुआ। गरम। उ०—उख काल भर देह खिन मगपंथी सन उख। धातक पतियाँ ना रची अनजल संचि रूख।—सुखसी।  
 उखड़—संज्ञा पुं० [ सं० उख ] पहाड़ के नीचे की सूची जमीन। भाभर। ( कुमाऊँ )  
 उखल—संज्ञा पुं० [ सं० उखल ] एक प्रकार का लृण या घास।  
 ऊटक नाटक—संज्ञा पुं० [ सं० उटक + नाटक ] हथर उधर का काम। यह काम जिसका कुछ निश्चय न हो। जैसे,—(क) बैठने से तो काम चलेगा नहीं, कुछ ऊटक नाटक करना ही होगा। (ख) वह ऊटक नाटक करके किसी प्रकार गुजर फरता है।  
 ऊड़ना—क्रि० सं० [ सं० ऊ; ] विवाह करना। शादी करना। उ०—विरिष खाह नव जोयन सी निरिया सीं ऊड़।—जायसी।  
 ऊतर—संज्ञा पुं० [ ? ] (२) बहाना। मिस। उ०—ऊतर कौन हूँ के पदमाकर दे किंर कुंजगलीन में फेरी।—पदमाकर।  
 ऊपड़—संज्ञा स्त्री० दे० “ओप”। उ०—तौ निरमल मुख देखे जोग होह तेहि ऊप।—जायसी।  
 ऊरु—संज्ञा स्त्री० दे० [ ] ऐल नाम की कैंटीली लता। अलई। वि० दे० “ऐल”।  
 ऊर्द्ध—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दस दिशामों में से एक। सिर के ठीक ऊपर की ओर की दिशा।  
 ऊर्ध्वा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक विशेष प्रकार की प्राचीन नौका जो ३२ हाथ लंबी, १६ हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊँची होती थी।  
 ऊह—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किंवदंती। अफवाह।  
 ऋण—संज्ञित दास—संज्ञा पुं० [ सं० ] दे० “करणमोक्षित”।  
 ऋणलक्ष्य-पत्र—संज्ञा पुं० यह लेन देन के व्यवहार का पत्र जो साक्षियों के सामने लिखा गया हो। दस्तावेज।  
 एरुडेमी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) शिक्षालय। विद्यालय। स्कूल। (२) वह सभा या समाज जो शिल्पकला या विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित हुआ हो। विज्ञान समाज।  
 एकतोमोगी मित्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह वरद मित्र जो एक साथ एक ही को लाभ पहुँचा सके, अर्थात् अहित की नहीं। उभय-तोमोगी का बल्य। ( कौ० )  
 एकत्री—संज्ञा स्त्री० [ हि० एक + त्राना ] मिट्टिा भारत का निकल घातु का एक छोटा सिक्का जो एक अरने या चार पैसे मूल्य का होता है।  
 एकपत्नी व्रत—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) केवल एक विवाहिता पत्नी को छोड़कर और किसी स्त्री से विवाह या प्रेम-संबंध न करने का व्रत।  
 एकपाद वध—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक पैर काट देने का दंड। ( जो

लोग साधारण द्रव्य की चोरी करते थे, उनको एक पैर काट देने का दंड मिलता था। प्रायः ३०० पण देकर वे इस दंड से मुक्त भी हो सकते थे। )  
 एकमुख विक्रय—संज्ञा पुं० [ सं० ] सब के हाथ एक दाम पर बेचना। बँधी कीमत पर बेचना।  
 विशेष—चंद्रगुप्त के समय में पण्यवाहुल्य ( माल की पूरी भागदानी ) होने पर व्यापारियों की माल बँधी कीमत पर बेचना पड़ता था। वे भाव घटा यदा नहीं सकते थे। ( कौ० )  
 एकलेखा संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का फूल या उसका पौधा।  
 एकघामा—संज्ञा पुं० [ सं० एकघामस ] एक प्रकार के दिग्गवर बैन जो मद्र के अंतर्गत हैं।  
 एकसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] केवल एक ही उपाय से होनेवाली सिद्धि। ( कौ० )  
 एकहस्त्या—संज्ञा पुं० [ हि० एक + हाथ ] किसी विषय, विशेष कर व्यापार या रोजगार को अपने हाथ में करना, दूसरे को न करने देना। किसी व्यापार या बाजार पर अपना एक मात्र अधिकार जमाना। एकाधिकार जैसे,—रुई के व्यापार को उन्होंने एकहस्त्या कर लिया।  
 क्रि० प्र०—करना।  
 एकहस्तपाद वध—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक हाथ और एक पैर काटने का दंड।  
 विशेष—चंद्रगुप्त के समय में जो लोग ऊँचे वर्ण के लोगों तथा गुरुओं के हाथ पैर मरोड़ देते थे या सरकारी घोड़े गधियों पर बिना आज्ञा के चढ़ते थे, उनको यह दंड दिया जाता था। प्रायः ७०० पण देकर लोग इस दंड से मुक्त हो जाते थे।  
 एकहस्त वध—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक हाथ काटने का दंड।  
 विशेष—जो लोग नकली कौड़ी पासा आदि बना कर खेलते थे या हाथ की सफाई से बाजी जीतते थे, उनको यह दंड दिया जाता था। जो लोग इस दंड से बचना चाहते थे, उनको ४०० पण देना पड़ता था। ( कौ० )  
 एकांग वध—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक अंग काटने का दंड। ( कौ० )  
 एकाग्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त निरंतर किसी एक ही विषय की ओर लगा रहता है। ऐसी अवस्था योग साधना के लिये अनुकूल और उपयुक्त कही गई है। वि० दे० “चित्तभूमि”।  
 एकामता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) योगदर्शन के अनुसार चित्त की एक भूमि जिसमें किसी प्रकार की चंचलता या अधिरता नहीं रह जाती और योगी का मन बिलकुल शांत रहता है।  
 एकागल—संज्ञा पुं० [ सं० ] खरूँवेध नाम का योग।  
 एकाधली—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मोतियों की एक हाथ लंबी माला जिसमें मोतियों की संख्या नियत न हो। ( कौ० । धराह० )

विशेष—यदि इस माला के बीच में मणि होनी थी तो इसकी  
: "यसी" संज्ञा थी।।

एक्सपर्ट—संज्ञा पुं० [ अं० ] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान  
हो। किसी विषय में पारंगत। विशेषज्ञ।

एक्सपोर्ट—संज्ञा पुं० दे० "निर्गत"। जैसे,—एक्सपोर्ट लव्हीटी।

एक्सप्रोसिव—संज्ञा पुं० [ अं० ] भमक उठनेवाला पदार्थ।  
विस्फोटक पदार्थ। गंधक,—पारुद आदि। जैसे,—एक्सप्रो-  
सिव पेश्ट।

एक्सटाइज—संज्ञा पुं० [ अं० ] वह टैक्स या कर जो नमक और  
: आषकारों की चीजों पर लगाता है। नमक और आषकारों  
की चीजों पर लगानेवाला टैक्स या कर। महसूल। शुंणी।

एक्सप्रिमेंशन—संज्ञा पुं० [ अं० ] परीक्षा। इन्तिहाल।

एग्जिबिट—संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) प्रदर्शनी आदि में दिखाई जानेवाली  
वस्तु। (२) वह वस्तु जो अदालत में किसी मामले में प्रमाण  
स्वरूप दिखाई जाय। अदालत में किसी मामले के संबंध  
में प्रमाण स्वरूप उपरिचय की जानेवाली वस्तु। जैसे,—  
नं० ३० एग्जिबिट एक तैज छुरा था।

एग्जिबिशन—संज्ञा पुं० [ अं० ] प्रदर्शनी। नुमाइश। जैसे,—एग्पा-  
यर एग्जिबिशन।

एजुकेशन—संज्ञा पुं० [ अं० ] शिक्षा। तालीम। जैसे,—प्राइमरी  
एजुकेशन।

एजुकेशनल—वि० [ अं० ] शिक्षा संबंधी। जैसे,—एजुकेशनल  
सौसाइटी।

एजेंट—संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) वह राजपुरष या अफसर जो अंगरेज  
सरकार या बड़े खात के प्रतिनिधि रूप से किसी देशी  
राज्य में रहता हो। (२) दे० "एजेंट-गवर्नर-जनरल"।

एजेंट-गवर्नर-जनरल—संज्ञा पुं० [ अं० ] वह राजपुरष या  
अफसर जो बड़े खात के एजेंट या प्रतिनिधि रूप से कई  
देशी राज्यों की राजनीतिक दृष्टि से देख भाल करता हो।

एजेंडा—संज्ञा पुं० [ अं० ] किसी सभा का कार्यक्रम।

एजेंसी—संज्ञा स्त्री० [ अं० ] (१) वह स्थान जहाँ सरकार या गव-  
र्नर जनरल (बड़े खात) का एजेंट या प्रतिनिधि रहता हो  
या जहाँ उसका कार्यालय हो। (२) वह प्रांत जो राजनीतिक  
दृष्टि से एजेंट के अधिकार-भुक्त हो। जैसे,—राजपूताना  
एजेंसी, मध्य-भारत एजेंसी।

विशेष—हिंदुस्थान में पूर्व रेजिडेंसियाँ (इंद्राबाद, मीसूर,  
बनोदा, काश्मीर और सिक्किम में) और चार एजेंसियाँ  
(राजपूताना, मध्य-भारत, विलोचिस्तान तथा पश्चिमोत्तर  
सीमा प्रांत में) हैं। एक एक एजेंसी के अंतर्गत  
कई राज्य हैं। इन एजेंसियों में सब मिलकर कोई  
१०५ राज्य या रियासतें हैं। प्रत्येक एजेंसी में गवर्नर जन-  
रल या बड़े खात का एजेंट या प्रतिनिधि रहता है। इन

एजेंटों के सहायताधे रियासतों में पोलिटिकल अफसर रहते  
हैं। जिस स्थान पर ये लोग रहते हैं, वहाँ प्रायः अंगरेज  
सरकार की छावनी होती है और कुछ फौज रहती है।

एडवोकेट—संज्ञा पुं० [ अं० ] वह वकील जो साधारण वकीलों से  
पद में बढ़ा हो और जो पुलिस कोर्ट से लेकर हाई कोर्ट तक  
में बहस कर सके।

एडवोकेट जनरल—संज्ञा पुं० [ अं० ] सरकार का प्रधान कानूनी  
परामर्शदाता और उसकी ओर से मामलों की पैरवी  
करनेवाला।

विशेष—भारत में बंगाल, मद्रास और बंबई में एडवोकेट  
जनरल होते हैं। इन तीनों में बंगाल के एडवोकेट जनरल  
का पद बढ़ा है। बंगाल सरकार के सिवा भारत सरकार भी  
(कॉंसिल के याह) कानूनी मामलों में इनसे सलाह लेती  
है। जजों की भर्ति इन्हें भी सहाय्य नियुक्त करते हैं।

एनडोर्स—संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) हुंडी आदि की पीठ पर हस्ताक्षर  
करना। (२) हुंडी या चेक की पीठ पर हस्ताक्षर करके उसे  
हस्तांतरित करना। (३) सुकारना।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।

एनामेल—संज्ञा पुं० [ अं० ] कुछ विशिष्ट क्रियाओं से प्रस्तुत किया  
हुआ एक प्रकार का लेप जो चीनी मिट्टी या लोहे आदि के  
वस्तुओं तथा धातु के और अनेक पदार्थों पर लगाया जाता  
है। यह कई रंगों का होता है और सूखने पर बहुत अधिक  
कड़ा तथा चमकीला हो जाता है। कभी कभी यह पारदर्शी  
भी बनाया जाता है।

एप्रवर—संज्ञा पुं० [ अं० ] किसी फौजदारी के मामले का वह अभि-  
युक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने  
साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त  
या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। अपराधी-  
साही। मुजरिम-इफ्तारी। इकवाली गवाह। सरकारी  
गवाह।

विशेष—एप्रवर मामला हो जाने पर छोड़ दिया जाता है।

एफिडेविट—संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) नापय। हलफ। (२)  
हलफनामा।

एग्जिबिशन—संज्ञा पुं० [ अं० ] एक देश से दूसरे देश या राज्य में  
बताने के लिये जाना। देशांतराधिवास।

एम्बुलेंस—संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) बुद्ध क्षेत्र का अस्पताल जिसमें  
घायलों की मरहम-पट्टी आदि की जाती है। मैदानी  
अस्पताल। (२) एक प्रकार की गाड़ी जिसमें घायलों या  
बोमारों को माराम से लेटाकर अस्पताल आदि में  
पहुँचाते हैं।

एम्बुलेंस कार—संज्ञा पुं० दे० "एम्बुलेंस" (२)।



**परोसेन-संज्ञा पुं०** [ अं० ] एक प्रकार की उड़ने की मशीन। वायु-यान। हवाई जहाज।

**पल्लकौहल-संज्ञा पुं०** [ अं० ] एक प्रसिद्ध मादक तरल पदार्थ जो कई चीजों का समीर उठाकर बनाया जाता है। इसका कोई रंग नहीं होता। इसमें स्फिरिट की सी महक आती है। यह पानी में भली भौंति घुल जाता है और स्वाद में बहुत तक्ष्ण होता है। इसमें गॉद, तेल तथा इसी प्रकार के और अनेक पदार्थ बहुत सहज में घुल जाते हैं; इसलिये रंग आदि बनाने तथा औषधों में इसका बहुत अधिक व्यवहार होता है। शराय इसी से बनती है। मिस शराय में इसकी मात्रा जितनी ही अधिक होती है, वह शराय उतनी ही तेज होती है। फूल-शराय।

**पल्ला-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (३) बनरीडा।

**पंशा पुं०** [ देश० ] एक प्रकार की कँटीली लता जिसकी पत्तियों की पत्रनी बनाई जाती है। चि० दे० "रसौल"।

**पल्लार्म-संज्ञा पुं०** [ अं० ] विपद् या खतरे का सूचक शब्द या संकेत।

**पल्लार्म चेन-संज्ञा स्त्री०** [ अं० ] वह जंजीर जो रेल गादियों के अंदर लगी रहती है और किसी प्रकार की विपद् की आशंका होने पर, जिसे खींचने से रेल खड़ी कर दी जाती है। खतरे की जंजीर। विपद्-सूचक श्रृंखला।

**पेल्लार्म घेल-संज्ञा पुं०** [ अं० ] वह घंटा जो विपद् या खतरे की सूचना देने के लिये बजाया जाता है। विपद्-सूचक घंटा। खतरे का घंटा।

**पेल्लेपटर-संज्ञा पुं०** दे० "निर्वाचक"।

**पेल्लेपटरेट-संज्ञा पुं०** दे० "निर्वाचक संघ"।

**पेल्लेपट्रेड-वि०** दे० "निर्वाचित"।

**पेल्लेपशान-संज्ञा पुं०** दे० "निर्वाचन"।

**पेल्लेडरमैन-संज्ञा पुं०** [ अं० ] म्युनिसिपल कारपोरेशन का सदस्य जिसका दर्जा मेयर या प्रधान के बाद और साधारण कौन्सलर या सदस्य से ऊँचा होता है। जैसे,—कलकत्ता कारपोरेशन के पेल्लेडरमैन।

**विशेष—**इंग्लैण्ड आदि देशों में पेल्लेडरमैन को, म्युनिसिपैलिटी के सदस्य होने के सिवा, स्थानिक पुलिस मैजिस्ट्रेट-के भी अधिकार प्राप्त होते हैं। सन् १७२६ ई० में बम्बई, मद्रास और कलकत्ते आदि में जो मेयर-कोर्ट स्थापित किए गए थे, उनमें भी पेल्लेडरमैन थे।

**पेल्लेन्डू-संज्ञा पुं०** [ अं० ] (१) वह स्थान जो वृक्ष लता आदि से आच्छादित हो। कुंज। (२) रास्ता। मार्ग। जैसे,—विचरंजन पेल्लेन्डू।

**पसंभली-संज्ञा स्त्री०** [ अं० ] (१) सभा। परिपद्। मंडल। मजलिस। जैसे,—डेजिस्ट्रेटिव पसंभली। (२) समूह। जमाव। मजमा।

**पसंस-संज्ञा पुं०** [ अं० ] (१) रासायनिक प्रक्रिया से लौहा हुआ फूलों की सुगंधि का सार। पुष्पसार। अन्न। (२) वनस्पति आदि का खींचा हुआ सार। अन्न। (३) सुगंधि। -

**पस्टिमेट-संज्ञा पुं०** [ अं० ] अंदाज। तखमीन। अनुमान। जैसे,—इसमें कितना खर्च पड़ेगा, इसका पस्टिमेट दीजिए।

**फ्रि० प्र०-देना**—बताना।—उगाना।

**पेंद्रजातिक कर्म-संज्ञा पुं०** [ सं० ] जादू के काम। माया के काम। ऐसे कर्म जिनसे लोग धोखा खाएँ।

**विशेष—**अर्थशास्त्र के औपनिषदिक खंड के दूसरे प्रकरण में इस प्रकार के अनेक उपाय बताए हैं, जिनसे मनुष्य कुसूप हो जाता था, याल सफेद हो जाते थे, वह कोरी की तरह या काला हो जाता था, आग से जलता नहीं था, अतद्धन हो सकता था और उसकी छाया नहीं पड़ती थी। (कौ०)

**पेक्ट-संज्ञा पुं०** [ अं० ] (१) किसी राजा, राजसभा, व्यवस्थापिका सभा या न्यायालय द्वारा स्वीकृत सर्वसाधारण संबंधी कोई विधान। राजविधि। कानून। आईन। जैसे,—प्रेस ऐक्ट, पुलिस ऐक्ट, म्युनिसिपल ऐक्ट। (२) नाटक का एक अंश या विभाग। अंक।

**पेक्टिंग-संज्ञा स्त्री०** [ अं० ] नाटक में किसी पात्र या भूमिका का अभिनय करना। रूपाभिनय। धरियाभिनय। जैसे,—महाभारत नाटक में वह हुशौंघन रूप में बहुत ही सुंदर और स्वाभाविक ऐक्टिंग करता है।

**फ्रि० प्र०-करना**।

**पेक्ट्रेस-संज्ञा स्त्री०** [ अं० ] रंगमंच पर अभिनय करनेवाली स्त्री। अभिनेत्री।

**पेक्ट्रिक-वि०** [ सं० ] जो अपनी इच्छा या पसंद पर निर्भर हो। अपनी इच्छा या पसंद से लिया या दिया जाने वाला। वैकल्पिक। जैसे,—उन्होंने संस्कृत ऐक्टिक विषय लिया है।

**पेट्रेस्टिंग अफसर-संज्ञा पुं०** [ अं० ] वह अफसर जिसके सामने निर्वाचन संबंधी 'वोट' लिखे जाते हैं और जो साक्षी स्वरूप रहता है। वोट लिखे जाने के समय साक्षी स्वरूप उपस्थित रहनेवाला अफसर।

**पेटमिनिस्ट्रेटर-संज्ञा पुं०** [ अं० ] वह जिसके अधीन किसी राज्य या रियासत या यकी ज़मींदारी का प्रबंध हो।

**पेटमिनिस्ट्रेशन-संज्ञा पुं०** [ अं० ] (१) प्रबंध। व्यवस्था। बंदोबस्त। (२) शासन। हुकूमत। (३) राज्य। सरकार।

**विशेष—**गवर्नरी प्रायिन्साल, गवर्नमेंट या प्रादेशिक सरकार कहलाती है; और चीफ कमिश्नरी, लोकल पेटमिनिस्ट्रेशन या स्थानीय सरकार कहलाती है।

**देवदारज**-संज्ञा पुं० [ अं० ] यह जो परामर्श या सलाह देता हो। परामर्शदाता। सलाहकार। सलाह देनेवाला। जैसे,—  
लोगल देवदारज।

**देवदारजरी**-वि० [ अं० ] सलाह या परामर्श देनेवाली। जैसे,—  
देवदारजरी कौंसिल।

**देविशमल**-वि० [ अं० ] अतिरिक्त। जैसे,—देविशमल मैजिस्ट्रेट।  
**देवत**-वि० दे० "इतना"। उ०—तुम सुखिया अपने घर राजा।  
जोखिं देत सहहु केहि काजा। जायसी।

**देमेचर**-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह जो कला विशेष पर विशेष रुचि और अनुराग के कारण शौकिया तौर से उसका अभ्यास करता और अपनी कलाभिजात दिखाकर धन उपार्जन नहीं करता। शौकीन। जैसे,—(क) देमेचर इमिटिक छत्र।  
(ख) वह देमेचर होने पर भी बड़े बड़े ऐक्टों के फान काटता है।

**देरिहंटोकैली**-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] (१) एक प्रकार की सरकार जिसमें राजसत्ता या शासन सूय बड़े बड़े भूम्यधिकारियों (सरदारों) या पेशव-संपन्न नगरिकों के हाथों में रहती है। सरदार-तंत्र। कुलीन तंत्र। अभिजात तंत्र। (२) ऐसे लोगों की समष्टि या समाज। अभिजात समाज। कुलीन समाज।

**पेल**-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की कैंटीली लता जिसकी पत्तियाँ प्रायः एक फुट लंबी होती हैं। यह देहरादून, रुहेलखंड, अथप और गोरखपुर की नम जमीन में पाई जाती है। प्रायः होंतों आदि के चारों ओर इसकी वाड़ लगाई जाती है। कहीं कहीं इसकी पत्तियाँ घमघा सिदाने के काम में भी आती हैं। अलहई। करू।

**पेसा**-वि० दे० "पेसा"। उ०—आम न पास न मानस अंदा।  
अप चौखंड जो पेस पन्डो।—जायसी।

**पेसन**-वि० दे० "पेसा"।  
कि० वि० दे० "पेसे"।

**शोक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (५) समूह। डेर। उ०—पर घर घर नारी लसै, दिव्य रूप के ओक।—मतिराम।

**ओट**-संज्ञा स्त्री० [ सं० वट ] (५) यह छोटी सी शीवार जो प्रायः रातमहलों या बड़े बड़े जगाने मकानों के सुष-द्वार के ठीक आगे, अंदर की ओर, परदे के लिये धनी रहती है। धूपट की शीवार। गुलाम गर्दित।

**छंदा** पुं० [ देश० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसमें धासान के दिनों में सफेद और पीले सुगंधित फूल तथा लाल की तरह के फूल लगते हैं। इन फूलों के अंदर चिकना गुदा होता है, और इनका ब्यवहार खाद्य के रूप में होता है। वियरु में यह फल खिचकर, अंम घालनादाक, मल-रोधक और निपात कहा गया है।

**पय्या**—भव। भव्य। भविष्य। भावन। परकशोधन।  
लोकक। संपुरांग। कुसुमोदर।

**ओड़**-संज्ञा पुं० [ ? ] वह जो गदहों पर इंट, चूना, मिट्टी आदि बोता हो। गदहों पर माल डोनेवाला व्यक्ति। उ०—बलवी जाहूँ को करे हाथिन को ब्यापार। नहिं जानतु रहि पुर बसै धोषी ओड़ कुम्हार।—विहारी।

**ओरती**-संज्ञा स्त्री० दे० "ओलती"। उ०—रोवति भई न साँस संभारा। नैन खुवाहँ जस ओरति धारा।—जायसी।

**ओरहा**-संज्ञा पुं० दे० "होरहा"।

**ओरिजिनल सारड**-संज्ञा पुं० [ अं० ] प्रेसिडेंसी हाई कोर्ट का यह विभाग जहाँ प्रेसिडेंसी नगर के दीवानी मामले दायर किए जाते तथा उन मामलों का विचार होता है जिन्हें प्रेसिडेंसी मैजिस्ट्रेट द्वारा सपुर्द करते हैं। इन चीजदारी मामलों का विचार करने के लिये प्रायः प्रति मास एक दौरा अश्रावत धैरती है। इसे ओरिजिनल श्रिस्टिकसन भी कहते हैं।

**ओलियाका**-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] (१) वह सरकार जिसमें राजसत्ता या शासन सूय इने गिने लोगों के हाथों में हो। कुछ लोगों का राज्य या शासन। स्वल्प भ्यक्ति-तंत्र। (२) ऐसे लोगों का समाज।

**ओलियाना**-कि० सं० [ हि० ओल ] ओली में भरना। गोद में भरना।

कि० सं० [ हि० हूँना ] प्रविष्ट करना। चुलेदना। घुसाना।  
जैसे,—पेट में सांग ओलियाना।

**ओपघा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० औपघ ] औपघ। दवा। उ०—कीहेसि पान फूल बहु ओपु। कीहेसि बहु ओपघ बहु रोग।—जायसी।

**ओहाना**-कि० सं० [ सं० अभाषण ] टटलों आदि को ऊपर उठाकर हिलाते हुए उनके दानों का ठेर लगाने के लिये नीचे गिराना। खरही करना।

**औगा**-वि० [ सं० भाग्य या गुण ] [ श्री० श्रीग ] (१) मूक। गूँगा।  
(२) न बोलनेवाला जुप्या। उ०—सुनि खग कस्त शंभ औगी रहि समुति मेम-पथ न्यारो। गप ते प्रभु पहुँचाह फिरे पुनि करत करम गुन गारो।—तुलसी।

**औजना**-कि० सं० [ ? ] एक वरतन में से दूसरे वरतन में ढाकना। डेंडलना। उलटना।

**औडपाय**-संज्ञा पुं० [ देश० ] नटपटी। चारतन। उत्पत्त।  
उ०—अनयन औडपाय रावरे गने न जाहिं बैरु भाहिं समकि करैया अति मान की। तुम जोई सोई कही, बेज जोई सोई सुनै तुम जीम पानरे वे पातरी है कान की।—पेशव।

**औसमर्णिक**-वि० [ सं० ] दूसरे से सूद पर लिया हुआ (धन)। (शुक्र०)

**औदक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह उपनिवेश जिसमें जल की बहुत ताप हो। (कौ०)

**श्रीदैनिक-संज्ञा** पुं०. [ सं०. ] प्रकाः चावलः अर्थात् भात-दाल  
बचनेवाला । ( कौ० )

**श्रीदूर्ध्व-वि०** [ सं० ] उदर संबंधी । पेट का । औदूरिक ।

**श्रीपनिधिक-वि०** [ सं० ] (२) विधास पर किसी के यहाँ धरो-  
हर रखा हुआ ( धन ) । ( शुक्र० )

**श्रीपनिवेशिक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] उपनिवेश में रहनेवाला । जैसे,—  
दक्षिण अफ्रिका के भारतीय औपनिवेशिक ।

वि० उपनिवेश का । उपनिवेश संबंधी । जैसे,—औपनि-  
वेशिक सचिव ।

**श्रीपनिषदिक कर्म-संज्ञा** पुं० [ सं० ] शत्रु का नाश करनेवाले  
कर्म । नाशक काम । ( कौ० )

**श्रीपन्यासिक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] उपन्यास लिखनेवाला । उपन्यास  
लेखक । जैसे,—शारद याचू बँगलों के प्रसिद्ध औपन्यासिक हैं ।

विशेष—इस अर्थ में हस शब्द का प्रयोग बहुत हाल में  
बंगालियों की देखादेखी होने लगा है ।

**श्रीपायनिक-वि०** [ सं० ] उपहार या नजराने में मिला हुआ या  
दिया जानेवाला ( पदार्थ ) । ( कौ० )

**श्रीला दौला-वि०** [ देश० ] जिसे किसी बात का ध्यान या चिंता  
न हो । ला-परवाह । जैसे,—याचू साहब श्रीला दौला  
आदमी ठहरे; जिस पर प्रसन्न हुए, उसे निहाल कर दिया ।

**श्रीसी-संज्ञा** स्त्री० दे० "श्रीली" ।

**श्रीकृत कर्मांत-संज्ञा** पुं० [ सं० ] तारों से कवच ( बस्तर ) बनाने  
का कारखाना ।

**श्रीकण-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पाद्य राग जो गांधार  
से आरंभ होता है और जिसमें पंचम स्वर वर्जित है ।

इसमें प्रायः मध्यम स्वर का अधिक प्रयोग होता है । इसके  
गाने का समय दोपहर के उपरांत संध्या तक है ।

**श्रीकुष्ठ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार की पहाड़ी मिट्टी जो भाय-  
प्रकाश के अनुसार हिमालय के सिखर पर उत्पन्न होती है ।

कहते हैं कि यह सफेद और पीली दो प्रकार की होती है ।  
सफेद को नालिक, और पीली को रेणुक कहते हैं । रेणुक ही

अधिक गुणवाली समझी जाती है । वैद्यक के अनुसार यह  
गुरु, तिग्म, विरेचक, तिक्त, कटु, उष्ण, वर्णकारक और  
कृमि, शोथ, गुल्म तथा कफ की नाशक होती है ।

**श्रीकृत्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] विरंग रंगदायक । रेचक । पुलक ।  
शोधक । कालपालक ।

**श्रीचुक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) कंचुक के आकार का कवच जो घुटने  
तक होता था । ( कौ० )

**श्रीद्वय-संज्ञा** स्त्री० [ सं०. ] किसी एक प्रकार का कैंडीला पेंड  
जिसकी लकड़ी के यज्ञ-पात्र बनते हैं । इसकी पत्तियाँ छोटी

छोटी और कण्ठ धर के समान गोल होते हैं, जो दवा के कर्म  
में आते हैं ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** स्त्री० [ हिं. कथी ] (१) हमली की वे छोटी फलियाँ  
जिनमें बीज न पड़े हों । कटुली ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** स्त्री० दे० "खारेजा" ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** स्त्री० [ सं०. ] कठकी । भटकटैया ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० [ सं०. ] नियंत्रण । काबू । जैसे,—इतनी बड़ी  
समा पर कंट्रोल करना हँसी खेल नहीं है ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] छद्म में गले की रक्षा के लिये बनी  
हुई लोहे की जाली या पटी । ( कौ० )

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वृक्ष ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० [ सं०. ] कथा = गुरु । गुदुदी पहननेवाला । कर्जर ।  
उ०—जोगि जती भर आबदि कंधी । पृष्ट पिपहि जान कोइ  
पंथी ।—जायसी ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० [ सं०. ] (३) संगीत में एक प्रकार का ताल  
जिसमें क्रम से दो हुत, एक लघु और दो गुरु होते हैं ।

इसके पलायन के बांल इस प्रकार हैं—तक जग पिमि तंरु  
धाकृत धीकृत उधिभिगन थो थोस ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० [ सं०. ] कंधा काटने का दंड । ( कौ० )

विशेष—किले में घुसने या छेप लगाने आदि के लिये चंद्रगुप्त  
मौर्य के समय में यह दंड प्रचलित था । प्रायः लोह २००  
पण देकर इस दंड से बच जाते थे ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० [ सं०. ] (२०) जल उ०—ति न नगरी ना नागरी  
प्रति पद हंस क हीन ।—केशव ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० दे० "शुकुद" ( पक्षी ) ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** स्त्री० [ सं०. ] काक = कौवा + मारना । एक प्रकार की  
बड़ी लता जो अवय, बंगाल और दक्षिणी भारत में पाई जाती

है । इसकी पत्तियाँ चार से आठ इंच तक लंबी होती हैं,  
और फूल नीलापन लिए पीले रंग के और बहुत सुगंधित

होते हैं । इसमें छोटे छोटे तीक्ष्ण फल लगते हैं जो मछलियों  
और कौवों के लिये मादक होते हैं । विहायत में जी की

शराय में इसका मेल दिया जाता है ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० दे० "काकरेजा" ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० दे० "काकरेजी" ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० [ सं०. ] ककौट, प्रा० ककोडक । ककोडा । खेरसा ।  
काकड़-संज्ञा पुं० दे० "काकड़" ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** स्त्री० [ सं०. ] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी  
पत्तियाँ चार के काम में आती हैं । वि० दे० "कटसेमल" ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० [ सं०. ] (१८) सेना के अगल बगल का भाग ।  
( कौ० )

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** पुं० [ सं०. ] एक प्रकार का वृक्ष जिसके दूध से  
रसक बनता है । वि० दे० "रसक" (२) ।

**श्रीद्वितीय-संज्ञा** स्त्री० [ हिं. ] कागज । मध्य और पूर्वी हिमालय में  
होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी, जो नेपाल, भूटान, बरमा,

चीन और जापान में बहुत अधिकता से होती है। नेपाली कागम इसी के डंडलों से बनता है और नेपाल में इसी लिये यह सादी बहुत लगाई जाती है। अरबों।

**कचौरना**-कि० सं० [ मनु० ] धोनी हुएदे आदि कपड़ों को पटक पटक कर धोना। कपड़ा धोना।

**कचियों**-संज्ञा पुं० [ सं० काच ] एक प्रकार का नमक जो फॉव से बनाया जाता है। काच लवण।

**कच्ची कुर्की**-संज्ञा स्त्री० [ हि० कच्चा + तु० कुर्की ] यह कुर्की जो प्रायः महाजन लोग अपने मुकदमे का फैसला होने से पहले ही इस आशय से जारी कराते हैं जिसमें मुकदमे के फैसले तक मुसलह अपना माल असबाब इधर उधर न कर दे। वि० दे० "कुर्की"।

**कच्छ**-संज्ञा पुं० [ ? ] तुन का पेंद। उ०—राम मत्स्य हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीर दुलारी।—तुलसी।

**कच्छरीय**-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो "नस" के अन्तर्गत हैं।

**कच्छा**-संज्ञा पुं० [ सं० कच्छ ] (२) कई बड़ी बड़ी नावों, विशेषतः पईलों को एक में मिला कर तैयार किया हुआ बड़ा वेड़ा या नाव।

**कछियाना**-संज्ञा पुं० [ हि० बाघी ] (१) यह स्थान जहाँ काछी लोग रहते हैं। काछियों की बस्ती। (२) वह स्थान जहाँ काछी लोग साम्राज्य आदि होते हैं।

**कछौदा**-संज्ञा पुं० दे० "कजूर"।

**कजली**-संज्ञा स्त्री० [ हि० काजल ] (१०) एक प्रकार की मटली।

**कजकरंज**-संज्ञा पुं० [ सं० करंज ] कंजा नाम का पौधा। वि० दे० "कंजा" (१)।

**कजघरा**-संज्ञा पुं० [ हि० बाघ + घरा ] (३) अदालत में वह स्थान जहाँ विचार के समय अभियुक्त और अपराधी खड़े किए जाते हैं।

**कजनेसली**-संज्ञा पुं० [ हि० काटना + नस ] काटने और नष्ट करने की क्रिया। उ०—पेंद तिलोरी और जल हंसा। हिरदय वैदि विरह कजनेसा।—जायसी।

**कजमी**-संज्ञा पुं० [ दे० ] मसोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते कुछ गोलाई लिए लंबे होते हैं, और फल अंडररुके के समान छोटे होते हैं। इसका व्यवहार औषध में होता है। वैद्यक में यह मनेह, खयासीर, नाडीमण, विप, क्षुमि, छीर और कफ का नाशक कहा गया है। कजमी। हरिसुध।

**कजराकल**-वि० [ हि० काटना ] काटनेवाला। उ०—सर्कार के सेवके सराहिबे सुमिरके की राम सो न साहिब न कुमति कजराका।—तुलसी।

**कटान**-संज्ञा स्त्री० [ हि० काटना + मान (प्रत्य०) ] बटने की क्रिया या भाव। कटाई।

**कटुभा**-वि० [ हि० कटना ] कई खंडों में पटा हुआ। टुकड़े टुकड़े। उ०—कटुभा बटुभा मिला सुवास्। सीसा अवनन भौंति गरास्।—जायसी।

**कटुपर्णी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भद्रभौंड। सत्यानाशी।

**कटुभंग**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की जंगली भोंग जिसकी पत्तियाँ खाने में बहुत कड़वी होती हैं।

**कटोरी**-संज्ञा स्त्री० [ हि० कटोरा ] (५) कूड़ में बाहर की ओर हरी पत्तियों का वह कटोरी के आकार का अंदा जिसके अंदर उपद्रव रहते हैं।

**कट्टा**-संज्ञा पुं० [ हि० काठ ] लाल गेहूँ जो प्रायः मध्यम धेगी का होता है।

**कठघोड़ा**-संज्ञा पुं० दे० "घुड़चढ़ा"।

**कठवेर**-संज्ञा पुं० [ हि० काठ + वेर ] घूँट नाम का पेंद या शाद जिसकी छाल चमड़ा रंगने के काम में आती है। वि० दे० "घूँट"।

**कठमेमल**-संज्ञा पुं० [ हि० काठ + मेमल ] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो प्रायः सारे उत्तरी भारत और बरमा में पाया जाता है। यह वर्षा ऋतु में फूलता और जाड़े में फलता है। इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं। ककी। तिरसन।

**कठसेमल**-संज्ञा पुं० [ हि० काठ + सेमल ] सेमल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष।

**कठसोला**-संज्ञा पुं० [ हि० काठ + सोला ] सोला की जाति की एक प्रकार की झाड़ी या छोटा पौधा जो प्रायः सारे भारत, स्वाम और जापान में होता है। वर्षा ऋतु में इसमें सुंदर फूल लगते हैं।

**कड़कड़ाना**-कि० सं० [ मनु० ] धी को साफ और सोंधा करने के लिये थोड़ी देर तक हलकी आँच पर तपाना।

**कड़ी**-संज्ञा स्त्री० [ हि० कड़ा ] (५) लगाम। उ०—हरि घोड़ा मझा कड़ी, चासुकि पीठि पलान। चँदि सुखम दोउ पाँवड़ा चढ़सी सत सुजान।—कबीर।

**कड़ूला**-संज्ञा पुं० [ हि० कड़ा + ल (प्रत्य०) ] हाथ या पैर में पहनने का, बच्चों का, छोटा कड़ा।

**कटनी**-संज्ञा स्त्री० [ हि० काटना = निकालना ] बरसात में जमीन की यह अंतिम छुटाई जिसके बाद अनाज बोया जाता है।

कि० प्र०—काटना (जोतना)।

**कतराई**-कि० वि० [ सं० ] नितांत। निपट। चिलकूल। जैसे,—अँ उनसे कतराई कोई तमल्लुक नहीं रखना चाहना।

**कतरधाना**-कि० सं० [ हि० कतराना ] कतरने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को कतरने में प्रवृत्त करना।

कतरा रसाज-संज्ञा पुं० [ हि० कतरा + रसा ? ] खँडरा नाम का पकवान जो बंसन से बनता है ।  
 कतरी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] वह यंत्र जिसकी राहापता से जहाज पर नावें रखी जाती हैं । (ख०)  
 कतली-संज्ञा स्त्री० [ हि० कतरा ] (१) मिठाई या पकवान आदि के चौकीर काटे हुए छोटे टुकड़े । (२) चीनी की चारानी में पागे हुए खरबूजे या पोस्त आदि के बीज ।  
 कतवाखाना-संज्ञा पुं० [ हि० कतवा + का + खाना ] वह स्थान जहाँ कड़ा फरकट फँका जाता हो । कड़ाखाना ।  
 कतान-संज्ञा पुं० [ ? ] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का बहुत बढ़िया कपड़ा जो अलसी की छाल से बनता था । कहते हैं कि यह कपड़ा इतना कोमल होता था कि चंद्रमा की चाँदनी पड़ने से फट जाता था । (२) एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्रायः बनारस में साढ़ियों और दुपट्टों में होता है ।  
 कतौनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० काटना ] (१) कातने की क्रिया या भाव । (२) कातने की मजदूरी । (३) किसी काम में अनावश्यक रूप से बहुत अधिक विलंब करना । (४) निरर्थक और तुच्छ काम ।  
 कत्तारी-संज्ञा पुं० [ दे० ] मशरों आकार का एक प्रकार का सदा-बहार वृक्ष जो हिमालय में हजारों से कुमाऊँ तक, ५००० फुट की ऊँचाई तक, और कहीं कहीं छोटा नागपुर और भासाम में भी पाया जाता है । इसकी टहनियाँ बहुत लंबी और कोमल होती हैं और इसके पत्ते प्रायः एक बालिखत लंबे होते हैं । इसके फूल, जो जाड़े में फूलते हैं, मधुमक्खियों के लिये बहुत आकर्षक होते हैं । कत्तावा ।  
 कत्तावा-संज्ञा पुं० दे० "कत्तारी" ।  
 कतल-संज्ञा पुं० दे० "कतल" ।  
 कतल-ग्राम-संज्ञा पुं० [ म० ] सप्त लोगों की वह हत्या जो चिना किसी छोटे बड़े या अपराधी निरपराध का विचार किए की जाय ।  
 कथ-कीकर-संज्ञा पुं० [ हि० कथा + कीकर ] कीकर की जाति का वह वृक्ष जिसकी छाल से कथा या वर निकलता है । वर का पेड़ ।  
 कथावस्तु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नाटक वा आख्यान आदि का कथन या कहानी । वि० दे० "वस्तु" (५) ।  
 कदंबपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गोरखमुंडी ।  
 कदर्थना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्दशा । दुर्गति । उ०—हा हा करे तुलसी दयानिधान राम ऐसी कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की ।—तुलसी ।  
 कदर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह कंगूरा राजा जो कोरा एकटा करने के पीछे प्रजा पर अत्याचार करे और राज्य की आमदनी को राज्य की भलाई में न खर्च करे । (कौ०) ।

कदीमी-वि० [ म० ] प्राचीन काल का । पुराने समय का ।  
 कनकनंदी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सिय के एक प्रकार के गण ।  
 कनकुटकी-संज्ञा स्त्री० [ हि० कुटकी ] रेवट चीनी की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो खासिया की पहाड़ी, पूर्वी बंगाल और लंका आदि में होता है । इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है जो दवा और रँगई के काम में आती है ।  
 कनकुट-संज्ञा पुं० दे० "कुरकुट" ।  
 कनकोवा-संज्ञा पुं० [ हि० कना + कौवा ] एक प्रकार की वास जो प्रायः मध्य भारत और बुंदेलखंड में होती है ।  
 कनका-संज्ञा पुं० [ सं० कापट = कासा ] (१) काँपल । (२) शाखा । डाल ।  
 कनकोदनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० कान + कोदना ] छोड़े, ताँबे आदि के कड़े तार का बना हुआ एक उपकरण जिसका एक सिरा कुछ चिपटा करके मोड़ा हुआ होता है और जिससे कान में की मेल निकाली जाती है । प्रायः हज्जाम लोग अपनी नहरनी का दूसरा सिरा भी इसी आकार का रखते हैं ।  
 कनकतुंड-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का बड़ा मंदक जो बहुत जहरीला होता है और बहुत ऊँचा उछलता है ।  
 कनमनाना-कि० म० [ अनु० ] (१) सोने की अवस्था में व्याकुलता के कारण कुछ हिलना जुलना । (२) किसी प्रकार की गति करना; विशेषतः कोई काम होता देखकर उसके विरुद्ध बहुत ही साधारण या थोड़ी चेष्टा करना । जैसे,—तुम्हारे सामने इतना बड़ा अनर्थ हो गया; और तुम कनमनापू तक नहीं ।  
 कनमैलियाँ-संज्ञा पुं० [ हि० कान + मैल + रवा (प्रय०) ] वह जो लोगों के कान की मैल निकालता हो ।  
 कनपल-संज्ञा पुं० [ सं० कनक ] सोना । सुवर्ण । उ०—वह जो मेघ, गढ़ हाग अकासा । विशुटी कनय-कोट चहुँ पांसा ।—जायसी ।  
 कनवासर, कनवैसिंग-संज्ञा पुं० [ म० ] वह जो कनवैसिंग करता हो । वह जो 'वोट' 'आउट' आदि मॉिंगता या संग्रह करता हो । कनवैसिंग करनेवाला ।  
 कनवासिंग, कनवैसिंग-संज्ञा स्त्री० [ म० ] (१) वोटों या मत-दाताओं से वोट मॉिंगना । वोट पाने के लिये उद्योग करना । लोगों को पक्ष में करने के लिए समझाना सुझाना । लोकमत को पक्ष में करने का उद्योग करना । जैसे,—(क) उनके आदमी जिले भर में उनके लिये बड़े जोंरों से कनवैसिंग कर रहे हैं; उन्हीं को अधिक 'वोट' मिलने की पूरी संभावना है । (ख) उन्हें सभापति पद पर धराने के लिये खुद कनवैसिंग हो रही है । (२) किसी कंपनी या फर्म के लिये माल आदि का 'आउट' प्राप्त करने का उद्योग करना । जैसे,—मिस्टर शर्मा गंगा आयन पैटरी के लिये

पाहर कनर्वसिंग कर रहे हैं; विल्ले महीने उन्हीं कीस हजार रुपए के आर्डर भेजे हैं।

**कनसरी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] हजर नामक पेड़। वि० दे० "हजर"।

**कनेरी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० कैनी (यू) ] प्रायः तोते के आकार की एक प्रकार की बहुत सुंदर चिड़िया जिसका स्वर बहुत कोमल और मधुर होना है और जो इसी लिए पाली जाती है। इसकी कई जातियाँ और रंग हैं; पर प्रायः पीले रंग की कनेरी बहुत सुंदर होती है।

**कन्सरवेंसी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सरकारी निरीक्षण या देख रेख। जैसे,—कन्सरवेंसी इन्स्पेक्टर।

**कन्सरवेटर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] देख रेख करनेवाला। निरीक्षक। जैसे,—जंगल विभाग का कन्सरवेटर।

**कन्सरवेटिव-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) वह जो राज्य या शासन प्रणाली में क्रांतिकारी या चरम प्रकार के परिवर्तन का विरोधी हो। वह जो प्रजा-सत्तात्मक शासन प्रणाली का विरोधी हो। दोरी। (२) वह जो प्राचीनता का, पुरानी बातों का, पक्षपाती और नवीनता का, नई बातों का, किसी प्रकार के सुधार या परिवर्तन का विरोधी हो। वह जो परंपरा से चली आई हुई धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं और रीति रवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। वह जो कुसंस्कार या अशुद्धता से सधी उन्नति का विरोधी हो।

वि० जो देश की नागरिक और धार्मिक संस्थाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन या प्रजासत्ता के प्रवर्तन का विरोधी हो। जो परंपरा से चली आई हुई सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं या रीति रवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। परिवर्तन-विमुख। सुधार-विरोधी। सनातनी। पुराणमय। लकीर का फकीर। जैसे,—वाल विवाह जैसी नाशकारी प्रथा का समर्थन उन्हीं लोगों ने किया जो कन्सरवेटिव थे—लकीर के फकीर थे।

**कप-संज्ञा पुं०** [ सं० ] प्याला।

**कपालसंधि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] ऐसी संधि जिसमें किसी पक्ष को दबना पड़े। समान संधि।

**कपाल-संधय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह राष्ट्र या राज्य जो दो शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच में हो और दोनों का मित्र बना रहे।

**कपासी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (३) एक प्रकार का झाड़ू या छोटा वृक्ष जो प्रायः सारे भारत, मलय द्वीप, जावा और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह गरमी और धरसात में फूलना और जार में फलता है। इसी का फल मरोड़फली कहलाता है जो पेट के मरोड़ दूर करने के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

**कपिल-संज्ञा स्त्री०** [ सं० कपिल ] कर्पूर। कीर्ण। उ०—द्रोण

सो पहाड़ लियो हवाल ही उलारि कर कंडुक उयो कपिलेख बेल कैसो फल भो।—गुलसी।

**कफली-संज्ञा पुं०** [ हि० खषे ] एक प्रकार का गेहूँ जिसे खपली भी कहते हैं। वि० दे० "खपली"।

**कबरा-संज्ञा पुं०** [ हि० कौर ] कतील की जाति को एक प्रकार की फैलेवाली झाड़ी जो उत्तरी भारत में अधिकता से पाई जाती है। इसके फल खाए जाते हैं और उनसे एक प्रकार का तेल भी निकाला जाता है। इसका व्यवहार औषधि के रूप में भी होता है। कौर।

**कबल-कि०** वि० [ सं० कबल ] पहले। पूर्व में। पेशतर। जैसे,— मैं आपके पहुँचने के कबल ही वहाँ से चला जाऊँगा।

**कबारना-कि०** सं० [ ? ] उखाड़ना। उत्पादन करना।

**कबीला-संज्ञा पुं०** [ फा० ] (अफगानिस्तान और भारत की पश्चिमी सीमा में) एक ही पूर्व-पुरुष के वंशजों का ज़या या टोली जो प्रायः एक साथ रहती है। गेल।

**कवृतरजाना-संज्ञा पुं०** [ फा० ] वह स्थान जहाँ पाले हुए बहुत से कवृतर रखे जाते हैं। कवृतरों का बड़ा दरवा।

**कब्र-कि०** वि० दे० "कबल"।

**कामची-संज्ञा स्त्री०** [ गु० ] (२) पंजा लदान में हाथ का हरका जिससे डँगलियाँ हट जाती हैं।

**कामशल-वि०** [ सं० ] व्यापार संबंधी। व्यापारिक।

**कामलपाणि-वि०** [ सं० ] जिसके हाथ कमल के समान हैं। उ०—विनायक एक हूँ मैं भावे ना विनाक ताहि, कीमल कमलपाणि राम कैसे व्यावई।—कैदाव।

**कमादच-संज्ञा स्त्री०** [ फा० कमान ] (१) छोटी कमान। कमान-चा। (२) सारंगी बजाने की कमान। उ०—चीना येनु कमादच गहे। बाजे तहँ अमृत गहगहे।—जायसी।

**कमाच-संज्ञा पुं०** [ ? ] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ०—काम जो आवै कामरी का कै करिय कमाच।—गुलसी।

**कमानिया-वि०** [ हि० कमान + या (प्रत्य०) ] (१) जिसमें किसी प्रकार की कमान लगी हो। (२) जिसमें किसी प्रकार की मेहराब या अर्द्धवृह को मेहराबदार।

**कमिटी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सभा। समिति।

**कमिश्नरी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० कमीशर ] (१) वह मन्त्रालय जो किसी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। डिवीजन। जैसे,—ज्वाहरस एक कमिश्नरी है। (२) कमिश्नर की कचहरी। जैसे,—कमिश्नरी में मामला चल रहा है। (३) कमिश्नर का काम या पद। जैसे,—उन्हींने कई वर्ष तक कमिश्नरी की थी।

**कमोड़-संज्ञा पुं०** [ सं० ] छोड़े या चीनी मिट्टी आदि का बना हुआ, कढ़ाही के आकार का एक प्रकार का अँगरेजी दंग का पात्र जिसमें पाखाना चिखते हैं। गमल।

**कम्प्यूनि-संज्ञा पुं०** [ जा० ] सरकारी विज्ञप्ति या सूचना। यह

कतरा रसाज-संज्ञा पुं० [ हि० कनवा + रसा ? ] खैंडरा नाम का पकवान जो घेसत से यनता है ।

कतरी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] वह यंत्र जिसकी सहायता से जहाज पर नावें रखी जाती हैं । ( लघ० )

कतली-संज्ञा स्त्री० [ हि० कतला ] (१) मिठाई या पकवान आदि के चौकोर काटे हुए छोटे टुकड़े । (२) चीनी की चादानी में पागे हुए सरबूजे या पोस्त आदि के बीज ।

कतवारखाना-संज्ञा पुं० [ हि० कतवार + फा० खाना ] यह स्थान जहाँ कूड़ा फरकट फेंका जाता हो । कूड़ाखाना ।

कतान-संज्ञा पुं० [ ? ] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का बहुत बढ़िया कपड़ा जो अलसी की छाल से यनता था । कहते हैं कि यह कपड़ा इतना कोमल होता था कि चंद्रमा की चँदनी पड़ने से फट जाता था । (२) एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्रायः बनारसी साधियों और दुपट्टों में होता है ।

कतौनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० कताना ] (१) कातने की क्रिया या भाव । (२) कातने की मजदूरी । (३) किसी काम में अनावश्यक रूप से बहुत अधिक विलंब करना । (४) निरर्थक और सुष्ठ काम ।

कत्तारी-संज्ञा पुं० [ दे० ] मसाले आकार का एक प्रकार का सदा-यहारा वृक्ष जो हिमालय में हजारा से कुमाऊँ तक, ५००० फुट की ऊँचाई तक, और कहीं कहीं छोटा नागपुर और आसाम में भी पाया जाता है । इसकी टहनियाँ बहुत लंबी और कोमल होती हैं और इसके पत्ते प्रायः एक बालिवरत लंबे होते हैं । इसके फूल, जो जाड़े में फूलते हैं, मधुमिरिखियों के लिये बहुत आकर्षक होते हैं । कत्तावा ।

कत्तावा-संज्ञा पुं० दे० "कत्तारी" ।

कतल-संज्ञा पुं० दे० "कतल" ।

कतल-ग्राम-संज्ञा पुं० [ अ० ] सब लोगों की यह हथ्या जो बिना किसी छोटे बड़े या अपराधी निरपराध का विचार किए की जाय ।

कथ-श्रीकर-संज्ञा पुं० [ हि० कथा + श्रीकर ] कीर की जाति का यह वृक्ष जिसकी छाल से कथा या खैर निकलता है । खैर का पेड़ ।

कथायस्तु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नाटक या आपत्यन आदि का कथन या कहानी । वि० दे० "वस्तु" ( ५ ) ।

कदंबपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मोरपसुंभी ।

कदंबना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्दशा । दुर्गति । उ०—हा हा करे तुलसी दयानिधान राम ऐसी कासी की कदंबना कराल कलिकाल की ।—तुलसी ।

कदंब-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह कंजस राजा जो कोश इकट्ठा करने के पीछे मजा पर आयाचार करे और राज्य की आमदमी को राज्य की भलाई में न खर्च करे । ( की० )

कदीमी-वि० [ अ० ] प्राचीन काल का । पुराने समय का ।

कनकनदी-संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव के एक प्रकार के गंग ।

कनकटकी-संज्ञा स्त्री० [ हि० कटकी ] रमंद धानी की जाति का एक प्रकार का बुद्ध जो खासिया की पहाड़ी, पूर्वी बंगाल और लंका आदि में होता है । इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है जो दवा और रँगई के काम में आती है ।

कनकूट-संज्ञा पुं० दे० "कुरकुंड" ।

कनकौषा-संज्ञा पुं० [ हि० कन + कौषा ] एक प्रकार की वास जो प्रायः मध्य भारत और बुंदेलखंड में होती है ।

कनका-संज्ञा पुं० [ सं० काण्ड = शाखा ] (१) कौंफल । (२) शाखा । डाल ।

कनजोदनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० कान + जोदनी ] छोटे, तौबे आदि के कड़े तार का बना हुआ एक उपकरण जिसका एक सिरा कुछ विपटा करके मोड़ा हुआ होता है और जिससे कान में की मील निकाली जाती है । प्रायः हजाम लोग अपनी नहरनी का दूसरा सिरा भी इसी आकार का रखते हैं ।

कनतूत-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का बड़ा मंडक जो बहुत जहरीला होता है और बहुत ऊँचा उड़लता है ।

कनमनागा-वि० अ० [ अनु० ] (१) सोने की अवस्था में व्याकुलता के कारण कुछ हिलना उलटना । (२) किसी प्रकार की गति करना; विचोपत; कोई काम होता देखकर उसके विरुद्ध बहुत ही साधारण या थोड़ी चेष्टा करना । जैसे,—तुम्हारे सामने इतना बड़ा अनर्थ हो गया; और तुम कनमनाए तक नहीं ।

कनमैलिया-संज्ञा पुं० [ हि० कान + मेल + रया ( प्रत्य० ) ] यह जो लोगों के कान की मील निकालता हो ।

कनयल-संज्ञा पुं० [ सं० कनक ] सोना । सुवर्ण । उ०—यह जो मेघ, गढ़ लाग अकासा । बिजुरी कनय-कोट बहूँ पासा ।—जायसी ।

कनयासर, कनयैसर-संज्ञा पुं० [ अ० ] वह जो कनवैसिंग करता हो । वह जो 'बोट' 'भाडर' आदि माँगता या संग्रह करता हो । कनवैसिंग करनेवाला ।

कनवासिंग, कनवैसिंग-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) बोटों या मत-दाताओं से बोट माँगना । बोट पाने के लिये उद्योग करना । लोगों को पक्ष में करने के लिये समझाना सुझाना । लोकमत को पक्ष में करने का उद्योग करना । जैसे,—(क) उनके आदमी मिले भर में उनके लिये बड़े जोरों से कनवैसिंग कर रहे हैं; उन्हीं को अधिक 'बोट' मिलने की पूरी संभावना है । (ख) उन्हें सभापति पद पर बैठाने के लिये खूब कनवैसिंग हो रही है । (२) किसी कंपनी या फर्म के लिये माल आदि का 'भाडर' प्राप्त करने का उद्योग करना । जैसे,—मिस्टर शर्मा गंगा धारण पैस्टरी के लिये

घावर कनवैसिंग कर रहे हैं; फिले महीने उन्होंने बिस हजार रुपए के आर्डर भेजे हैं।

**कनसोरी-संघा सी०** [ दे० ]। हावर नामक पड़। वि० दे० "हावर"।

**कनेरी-संघा सी०** [ सं० कनेरी (यू०) ] प्रायः तोते के आकार की एक प्रकार की बहुत सुंदर चिड़िया जिसका स्वर बहुत कोमल और मधुर होता है और जो इसी लिए पाली जाती है। इसकी कई जातियाँ और रंग हैं; पर प्रायः पीले रंग की कनेरी बहुत सुंदर होती है।

**कन्सरवेंसी-संघा सी०** [ सं० ] सरकारी निरीक्षण या देख रेल। जैसे,—कन्सरवेंसी इन्स्पेक्टर।

**कन्सरवेटर-संघा पु०** [ सं० ] देख रेल करनेवाला। निरीक्षक। जैसे,—जंगल विभाग का कान्सरवेटर।

**कन्सरवेटिव-संघा पु०** [ सं० ] (१) वह जो राज्य या शासन प्रणाली में क्रांतिकारी या धरम प्रकार के परिवर्तन का विरोधी हो। वह जो प्रजा-सत्तात्मक शासन प्रणाली का विरोधी हो। टोरी। (२) वह जो प्राचीनता का, पुरानी बातों का, पक्षपाती और नवीनता का, नई बातों का, किसी प्रकार के सुधार या परिवर्तन का विरोधी हो। वह जो परंपरा से चली आई हुई धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं और रीति रवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। वह जो सुसंस्कार या अदृष्टदर्शिता से सच्ची उद्यति का विरोधी हो।

वि० जो देश की नागरिक और धार्मिक संस्थाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन या प्रजासत्ता के प्रवर्तन का विरोधी हो। जो परंपरा से चली आई हुई सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं या रीति रवाज का समर्थक और पक्षपाती हो। परिवर्तन-विमुख। सुधार-विरोधी। सनातनी। पुराणप्रिय। लक्ष्मी का फकीर। जैसे,—आल विवाह जैसी नादाकारी प्रथा का समर्थन उन्होंने लोगों ने किया जो कनसरवेटिव थे—लक्ष्मी के फकीर थे।

**कप-संघा पु०** [ सं० ] प्याल।

**कपालसंधि-संघा सी०** [ सं० ] पेसी संधि जिसमें किसी पक्ष को दवाना न पड़े। समान संधि।

**कपाल-संश्रय-संघा पु०** [ सं० ] वह राष्ट्र या राज्य जो दो शक्ति-शाली राष्ट्रों के बीच में हो और दोनों का मित्र बना रहे।

**कपासी-संघा सी०** [ दे० ] (२) एक प्रकार का झाड़ू या छोटा वृक्ष जो प्रायः सारे भारत, मलय द्वीप, जावा और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह गरमी और बरसात में फूलता और जाड़े में फलता है। इसी का फल मरोड़फली कहलता है जो पेट के मरोड़ दूर करने के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

**कपिशेल-संघा सी०** [ सं० कपिशेल ] केरोंच। कौटा। उ०—डोन

सो पदार लियो हवाल ही उधारि कर कंदुक र्वाँ कपिशेल बेल कैसो फल भो।—गुलसी।

**कफाली-संघा पु०** [ हि० खपली ] एक प्रकार का गेहूँ जिसे खपली भी कहते हैं। वि० दे० "खपली"।

**कहरा-संघा पु०** [ हि० कौर ] कृती की जाति की एक प्रकार की फलनेवाली झाड़ी जो उत्तरी भारत में अधिकता से पाई जाती है। इसके फल खाए जाते हैं और उनसे एक प्रकार का तेल भी निकाला जाता है। इसका व्यवहार औषधि के रूप में भी होता है। कौर।

**कबल-कि०** वि० [ सं० कबल ] पहले। पूर्व में। पेशतर। जैसे,—मैं आपके पहुँचने के कबल ही वहाँ से चला जाऊँगा।

**कबाना-कि०** सं० [ ? ] उखाड़ना। उखाड़ना करना।

**कबीला-संघा पु०** [ सं० ] (अस्तानिस्तान और भारत की पश्चिमी सीमा में) एक ही पूर्व-पुरुष के वंशजों का जगथा या टोली जो प्रायः एक साथ रहती है। खेल।

**कबूतरखाना-संघा पु०** [ सं० ] वह स्थान जहाँ पाले हुए बहुत से कबूतर रखे जाते हैं। कबूतरों का बड़ा दरवा।

**कबल-कि०** वि० दे० "कबल"।

**कमची-संघा सी०** [ सं० ] (२) पंजा लदाने में हाथ का सड़का जिससे ढँगलियाँ टूट जाती हैं।

**कमशील-वि०** [ सं० ] ध्यापार संबंधी। व्यापारिक।

**कमलपाणि-वि०** [ सं० ] जिसके हाथ कमल के समान हैं। उ०—पिनायक एक हू पै भावे ना पिनाक ताहि, कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई।—केशव।

**कमाहवा-संघा सी०** [ सं० कमान ] (१) छोटी कमान। कमान-वा। (२) सारंगी बजाने की कमान। उ०—वीना वेनु कमाइच गहे। धाने तई अमृत गहगहे।—जायसी।

**कमाच-संघा पु०** [ ? ] एक प्रकार का रोमानी कपड़ा। उ०—काम जो भावे कामरी का लै करिय कमाच।—गुलसी।

**कमानिया-वि०** [ हि० कमान+या (प्रत्यय०) ] (१) जिसमें किसी प्रकार की कमान लगी हो। (२) जिसमें किसी प्रकार की मेहराब या अर्धबृच हो। मेहराबदार।

**कमिटी-संघा सी०** [ सं० ] सभा। समिति।

**कमिश्नरी-संघा सी०** [ सं० कमिश्नर ] (१) वह भूभाग जो किसी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। डिवीजन। जैसे,—बनारस एक कमिश्नरी है। (२) कमिश्नर की कचहरी। जैसे,—कमिश्नरी में मामला चल रहा है। (३) कमिश्नर का काम या पद। जैसे,—उन्होंने कई वर्ष तक कमिश्नरी की थी।

**कमोड-संघा पु०** [ सं० ] छोटे या घनी मिट्टी आदि का बना हुआ, कढ़ाई के आकार का एक प्रकार का शौचरोजी बंग का पात्र जिसमें धारना किया है। गमला।

**कम्युनिक-संघा पु०** [ सं० ] सरकारी विज्ञप्ति या सूचना। वह



सरकारी यत्न्य जो समाचार पत्रों को छापने के लिये दिया जाता है। जैसे,—सरकार ने एक कम्युनिफ़ निकाळ कर इस समाचार का खंडन किया।

**कम्युनिज्म-पंशा पुं० [ अं० ]** वह मतवाद या सिद्धांत जिसमें संपत्ति का अधिकार समष्टि या समाज का माना जाता है; व्यक्ति विशेष या व्यक्ति का स्वयं नहीं माना जाता। समष्टिवाद।

**कम्युनिस्ट-संज्ञा पुं० [ अं० ]** वह जो कम्युनिज्म या समष्टिवाद के सिद्धांत को मानता हो। कम्युनिज्म के सिद्धांत को माननेवाला।

**करंज-संज्ञा पुं० [ सं० कर्ज, फ० कुंज ]** सुरगा।

**यौ०—करंजखाना।**

**करंजखाना-संज्ञा पुं० [ हिं० करंज + फ० खाना (घर) ]** वह स्थान जहाँ बहुत से सुरगे पले हों। पालतू सुरगों के रहने का स्थान। उ०—हिरन हरमखाने, स्याही है सुरखाने, पाड़े पीलखाने और करंजखाने कीस हैं।—भूपण।

**करंतीना-संज्ञा पुं० दे० “करंटाना”।**

**करकचहा-संज्ञा पुं० दे० “अमलतास”।**

**करजोड़ी-संज्ञा स्त्री० [ सं० कर + हिं० जोरना ]** एक प्रकार की ओपधि जो पारा बाँधने के काम में आती है। हस्तजोड़ी। हत्या जड़ी। सि० दे० “हत्या जड़ी”।

**करण-संज्ञा पुं० [ सं० कर्ण ]** कान। उ०—संसु शरासन गुण करण करणालभित आस।—केदाव।

**करतारी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० करतार ]** हथेर की लीला। उ०—केदाव और की और भई गति, जानि न जाय कष्ट करतारी।—केदाव।

**करद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१)** मालगुजारी देनेवाला किसान।

**विशेष—**चाणक्य ने लिखा है कि जो किसान मालगुजारी देते हों, उनको हलके सुधरे हुए खेत खेती करने के लिये दिए जायें। बिना सुधरे खेत उनको न दिए जायें। जो खेती न करें, उनके खेत छीन लिए जायें। गाँव के नौकर या बनिप उस पर खेती करें। खेती न करनेवाले सरकारी नुबसान हैं। जो लोग मुगमत्ता से कर दे दें, राजा उनके धान्य, पशु, हल आदि की सहायता दे। (की०)

(२) कर देनेवाला राजा या राज्य। (३) वह घर जिसका राज्य को कर मिले। (की०)

**करन-संज्ञा पुं० [ सं० कर्ण ]** राजा कर्ण। उ०—करन पास हीन्हेट के छंदू। चित्र रूप धरि सिलमिल, हृन्दू।—जायसी।

**यौ०—करन का पहरो** = प्रभात या प्रातःकाल का समय, जो राग कर्ण के पहरो देने का समय माना जाता है।

**करपिचकी-संज्ञा स्त्री० [ सं० कर = हाथ + पिचकी (पिचबन्दी) ]** दोनों हाथों के योग से बनाई हुई पिचकारी। (प्रायः लोग दोनों

हाथों के बीच में, कई प्रकार से जल भर कर इस प्रकार जोर से दबाते हैं कि उसमें से पिचकारी सी छूटती है। इसी को करपिचकी कहते हैं।) उ०—छिड़के नाह नवादा रंग, करपिचकी जल जोर। रोचन रंग खाली भई विय विय खोचन कोर।—बिहारी।

**करबरना-संज्ञा-कि० प्र० [ सं० कलब ]** पक्षियों आदि का कलब करना। उ०—सारी सुभा जो रहचह करहीं। कुहिं परेवा और करबरहीं।—जायसी।

**करभा-संज्ञा पुं० [ दे० ]** एक प्रकार का जंगली गाना जो प्रायः कोल, भील आदि गाते हैं।

**करमैल-संज्ञा पुं० [ दे० ]** एक प्रकार का तोता जो साधारण तोते से कुछ बड़ा होता है। इसके पंरों पर लाल दाग होते हैं।

**कररी-संज्ञा स्त्री० [ सं० करी ]** घटे की जाति की एक प्रकार की चिड़िया जो साधारण घटे से कुछ बड़ी और बहुत सुंदर होती है। यह हिमालय में प्रायः सभी जगह पाई जाती है। इसकी खाल का बहुत बड़ा व्यापार होता है।

**करघट-संज्ञा पुं० [ दे० ]** एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसका गोंद जहरीली होता है और जिसमें तीर जहरीले करने के लिए छुसाए जाते हैं। जवूँद। नताडल।

**करधानक-संज्ञा पुं० [ सं० कर्धक ]** चटक पक्षी। गौरैया। उ०—सारस से स्यूर करवानक से साहजादे मोर से मुगुल मीर धीर ही धचे नहीं।—भूपण।

**करही-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] (२)** शीशम की तरह का एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते शीशम के पत्तों से दूने बदे होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत भारी होती है और प्रायः इमारत के काम में आती है।

**कराई-संज्ञा स्त्री० [ हिं० करना ] (१)** करने या कराने का भाव। (२) करने या कराने की मजदूरी।

**करात-संज्ञा स्त्री० दे० “कैट” (२)।**

**करिकाट-संज्ञा पुं० [ दे० ]** किलकिला नाम का पशु जो मछलियों पकड़ कर खाता है।

**करित-संज्ञा पुं० [ सं० ]** वह पदार्थ जो आइर या आइरा देकर बनवाया गया हो। (की०)

**करिल-संज्ञा स्त्री० [ हिं० कौरिल ]** कौंपल। नया कला। उ०—ओहि भौंति पलही मुखयाही। उठी करिल नह कौंप सैवाही।—जायसी।

**वि० दे० “काला”** उ०—करिल केस विसहर विस भरे। लहरे लहि केवल मुख धरे।—जायसी।

**करी-संज्ञा स्त्री० [ ? ]** सौरी या सवरी नाम की मछली जिसका मांस खाया जाता है।

**करीश-संज्ञा पुं० [ सं० ]** हाथियों में श्रेष्ठ। गजराज।

कहणामय-वि० [ सं० ] जिसमें बहुत अधिक करणा हो। द्रव्य-  
वान। उ०—बहु शुभ मनसा कर करणामय अर शुभ  
तरंगिनी शोभ सनी।—केशव।

करवैल-संज्ञा स्त्री० [ सं० कार्वेल ] दूनायण की वैल या लता।  
उ०—कीहेसि उत मोड रस-भरी। केहेसि करवैल बहु  
फरी।—जायसी।

कहल-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की बड़ी चिदिया जो जल के  
किनारे रहती है और घोंघे खादि फोड़ कर खाया करती है।  
इसके बने काले और छाती सफेद होती है। इसकी चोंच  
बहुत लंबी और मुकीली होती है। लोग इसका सिंकार  
भी करते हैं।

करेलुका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हथिनी। मादा हाथी। उ०—  
केशवदास प्रबल कोणुका गमनहार भुक्त सुदंस कंस बहु  
सुखदासी है।—केशव।

करेलुवती-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेदिसान की कन्या का नाम जो  
नङ्ग को ब्याही गई थी।

कर्काट-शृंगी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह असह्य ब्यूह जिसमें तीन  
भाग अर्द्धचंद्राकार असह्य हैं। (कौ०)

कर्जुंगवाह-संज्ञा पुं० [ सं० कर्ज + वा० खाद = चारुनेवा] वह जो किसी  
से कर्ज लेना चाहता हो। कर्ण लेने की इच्छा रखनेवाला।

कर्हमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चैत्र मास की पूर्णिमा तिथि।

कर्पूर-क-संज्ञा पुं० [ सं० ] कर्पूरक। कपूर कचरी।

कर्मकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) श्रमी। मजदूर। (२) प्राचीन  
काल की एक जाति जो सेवा कर्म करती थी। आजकल इसे  
कमकर कहते हैं।

कर्मगुण-संज्ञा पुं० [ सं० ] काम की अच्छाई, सुराई। कार्य-  
धामता। (कौ०)

कर्मगुणापकर्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] काम अच्छा न होना। श्रमियों  
की कार्यक्षमता का घटना।

कर्मनिष्ठासि वेतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काम की अच्छाई,  
सुराई के अनुसार वेतन। (कौ०) (२) वह वेतन जो काम  
पूरा होने पर दिया जाय।

कर्मनिष्ठाक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मेहनती मजदूरों से काम को  
अंत तक पूरा करवाना।

कर्ममास-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का महाना जो ३० सावन  
दिनों का होता है। सावन मास।

कर्मयध-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिकित्सा में असावधानी जिससे रोगी  
की हानि पहुँच जाय। (कौ०)

कर्मयध वैगुण्यकरय-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिकित्सा में असावधानी  
के कारण बीमारी का बंध जाना। (कौ०)

कर्मसंधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुर्ग बनाने के संबंध में दो राज्यों के  
बीच संधि। (कौ०)

कर्मस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जहाँ कारीगर काम करते  
हैं। कारखाना। (कौ०)

कर्मांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) कार्यालय। कारखाना। (कौ०)

कर्मापरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] चिकित्सा में असावधानी। बीमार  
का इलाज ठीक ढंग पर न करना। (कौ०)

कर्माध्याभृति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] काम के अच्छे या बुरे अथवा  
कम या अधिक होने के अनुसार मजदूरी। कार्य के अनु-  
सार वेतन।

कर्मापघाती-वि० [ सं० कर्मापघाति ] काम बिगाड़नेवाला। (कौ०)

कर्प-संज्ञा पुं० [ सं० ] (६) प्राचीन काल का एक प्रकार का  
सिका जो आजकल के हिसाब से लगभग ४१] मूल्य का  
होता था। यह चाँदी के १६ कार्याण के बराबर था। इसे  
"रूप" भी कहते थे।

कर्पनाळ-कि० सं० [ सं० कर्पण ] खोचना। उ०—क्रोध आतु  
रान समाज में बल शंभु को धनु कर्पिई।—केशव।

कर्पिता भूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह भूमि जिसको शत्रु ने पूर्ण  
रूप से निचोड़ लिया हो।

कलंक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) वह कजली जो पारा सिद्ध होने  
पर पैठ जाती है। उ०—करत न समुसत हूळ गुनमुनत होत  
मतिरंक। पारद प्रगट प्रपंचमय सिद्धि नाउ कलंक।—  
मुलसी। (५) परे और गंधक की कजली। उ०—जी रुद्धि  
घरी कलंक न पर। कौंच होदि नहि कंचन करा।—जायसी।

कलंगो-संज्ञा स्त्री० [ हि० कंगो ] पहाड़ों में होनेवाली जंगली माँग  
का वह पौधा जिसमें बीज लगते हैं। कुन्दा का उलटा।

कलसची-संज्ञा स्त्री० [ हि० कला ] कंजा नाम की कैंडीली शार्दी।  
वि० दे० "कंजा" (१)।

कलसुदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० कर + रुचा ] चम्मच के आकार का लंबी  
डंडी का एक प्रकार का पात्र जिसका आला भाग गोल  
कटोरी के आकार का होता है और जिससे पकते समय  
चावल, दाल, तरकारी आदि चलाते या परोसते हैं।

कलत्रगर्हि सैन्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] परिवार के बनीमत सेना।  
वह सेना जो परिवार (पुत्र कलत्र) की चिंता में हुयी रहे।

विशेष—कीटिल्य ने यद्यपि ऐसी सेना को ठीक नहीं कहा है,  
पर अंतः दाल्य (शत्रु से भीतर भीतर, मिली हुई) सेना ने  
अच्छी कहा है।

कलघरा-संज्ञा पुं० [ देश० ] करघे की चक नामक लकड़ी।  
वि० दे० "चक"।

कलपनाळ-कि० सं० [ सं० कर्पण ] काटना। कतरना। उ०—  
हो नरथंभ वरनाह दमीरू। इलपि माध जेह दान्ध सरीरः।  
—जायसी।

कलशमय-संज्ञा पुं० [ सं० ] अग्रहण ऋषि जिनकी उत्पत्ति घट से  
कही गई है। उ०—अकनि कट्टु धार्नी कुटिल की कोथ-

कामनचेदथ—पंजा पुं० [ अं० ] लोक-सत्तामक शासन प्रणाली ।  
कामन सभा—संज्ञा स्त्री० [ अं० हाउस आफ कामन्स ]—मिटिश पार्ल-  
मेण्ट की वह शाखा या सभा जिसमें जन साधारण के निर्वाचित  
प्रतिनिधि होते हैं । आजकल इनकी संख्या ७०० होती है ।  
हाउस आफ कामन्स ।

कामर्स—पंजा पुं० [ अं० ] व्यापार । वाणिज्य । कारोबार । लेन  
देन । जैसे,—चेंबर आफ कामर्स । कामर्स डिपार्टमेंट ।

कामयन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह घन जहाँ घैटकर महादेव जी  
ने कायदेव का दहन किया था । (२) मथुरा के पास का  
एक प्रसिद्ध घन जो तीर्थ माना जाता है ।

कॉमिडियन—संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) आदि रस या हास्य रस का  
अभिनेता । (२) सुखोत्त नाटक लिखनेवाला ।

कॉमिडी—संज्ञा स्त्री० [ अं० ] वह नाटक जिसका अंत आनंद या सुखमय  
हो । सुखोत्त नाटक । संयोगोत्त नाटक । मिलनोत्त नाटक ।

काफ्रेड—पंजा पुं० [ अं० ] सहयोगी । साथी ।

विशेष—कम्प्युनिस्ट या साम्यवादी अपने दुलयालों और अपने  
से सहायभूति रखनेवालों को 'काफ्रेड' शब्द से संबोधित  
करते हैं । जैसे,—काफ्रेड सकलतवाला ।

कारंधमी—संज्ञा पुं० [ सं० ] रसायनी । कीमियागर ।

कारण—वि० [ हिं० कारण ] काल । कृष्ण । उ०—'रावन' पाप  
जो जिउ धरा दुखी जगत महुँ कार ।—जायसी ।

पंजा स्त्री० [ अं० ] (१) गाड़ी । (२) मोटर गाड़ी । मोटर कार ।

कारगाह—संज्ञा पुं० [ फा० ] (१) वह स्थान जहाँ बहुत से मजदूर  
आदि काम करते हों । कारखाना । (२) जलाहों का कपड़ा  
धुने का स्थान । करगह ।

कार्ट्रिज—संज्ञा पुं० [ अं० ] दफती, टीन, तौबे आदि का बना  
हुआ वह आवरण जिसके अंदर बंदूक में भरकर चलाई जाने-  
वाली गोली या छरा आदि रहता है । कारतूस ।

कारणिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] मुकदमे संबंधी कागज लिखनेवाला ।  
सुदरर । अर्जीनवीस ।

कारपोरल—संज्ञा पुं० [ अं० ] प्लेटन का छोटा अफसर । जमा-  
दार । जैसे,—कारपोरल मिल्टन ।

कारिताबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह बुद्धि जो 'कृष्ण' लिया हुआ  
घन दूसरे को देखकर लिया जाय ।

विशेष—आधुनिक बैंक इसी नियम पर चलते हैं ।

कारशासिता—संज्ञा पुं० [ सं० ] कारशासित्व । शिल्पियों या कारीगरों  
का निरीक्षक या उन्हें काम में लगानेवाला । ( की० )

कारस्पॉन्डेंट—संज्ञा पुं० [ अं० ] वह जो किसी समाचार पत्र में  
अपने स्थान की घटनाएँ आदि लिखकर भेजता हो । समा-  
चारपत्रों में संवाद आदि भेजनेवाला । संवाददाता ।

कारस्पॉन्डेंस—संज्ञा पुं० [ अं० ] पत्र आदि का भेजा जाना और  
आना । पत्र-व्यवहार ।

कारोनर—संज्ञा पुं० [ अं० ] वह अफसर जिसका काम जूरी की सहा-  
यता से आकरिमिक या संदिग्ध मृत्यु, आत्महत्या तथा उन  
लोगों की मृत्यु की जाँच करना है जो दूरे फसद में या  
किसी दुर्घटना के कारण मरे हों ।

विशेष—हिंदुस्थान में प्रेसिडेंसी नगरों अर्थात् कलकत्ता, बंबई  
और मद्रास में कारोनर होते हैं । ये प्रायः छोटी अदालत के  
जज या मैजिस्ट्रेट होते हैं । इनके साथ जूरी बैठते हैं ।

ऐसी मौत के मामले इस अदालत में आते हैं जो गिरने,  
पड़ने, जलने, अक्षयक के लगने या आत्महत्या से हुई  
हो । उदाहरणार्थ किसी युवती की मृत्यु जलने से हुई  
है । उसने स्वयं आत्महत्या की या वह जलाकर मार डाली  
गई, साक्ष्य और प्रमाणों पर यही निर्णय करना इस  
अदालत का काम है । और किसी प्रकार की कानूनी कार्रवाई  
करने या दंड का इसे अधिकार नहीं है । इसका निर्णय हो  
जाने पर साधारण अदालत में किसी पर मामला चलता है ।

कार्य्यकरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्य्यालय । दफ्तर । ( की० )  
कार्य्यक्षितक—संज्ञा पुं० [ सं० ] शासक । स्थानीय प्रबंधकर्ता ।

( स्मृति० )  
कालखंड—संज्ञा पुं० [ सं० ] परमेधर । उ०—'मानो कौन्हीं काल  
ही की कालखंड खंडना ।—केदाव ।

कालदंड—संज्ञा पुं० [ सं० ] यमराज का दंड । उ०—'वज्र से  
कठोर है कैलास ते विद्याल, कालदंड से कराल सब काल  
गावई ।—केदाव ।

कालरं—संज्ञा पुं० [ अं० ] हैजा या विस्फिका नामक रोग ।

कालांतरित पर्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत काल पहले का  
यना माल ।

विशेष—ऐसे माल का दाम बनने के समय की उसकी लागत  
का विचार करके निश्चित किया जाता था । ( की० )

कालादेव—संज्ञा पुं० [ हिं० काल + देव ] (१) एक कल्पित देव  
या विद्यालकाय्य व्यक्ति जिसका रंग बिलकुल काला माना  
गया है । (२) वह व्यक्ति जिसका शरीर हट पुष्ट और रंग  
बहुत काला हो ।

काला धातुरा—संज्ञा पुं० [ हिं० काल + धातुरा ] एक प्रकार का बहुत  
विषैला धातुरा जिसके पत्ते हरे, पर फल और बीज काले होते  
हैं । लोग प्रायः बहुत अधिक गोशे या स्वयं के लिये इसका  
व्यवहार करते हैं ।

काला नमक—संज्ञा पुं० [ हिं० काल + नमक ] एक प्रकार का बना-  
पटी नमक जिसका रंग काला होता है और जो साधारण  
नमक तथा हट, पहेदे और सजी के संयोग से बनाया जाता  
है । वैद्यक में यह हलका, उष्णवीर्य, रोचक, भेदन, दीपन,  
पाचक, वातनाशक, अर्थात् पित्तजनक और विषघ्न, शूल,  
गुल्म और आनाह का नाशक माना गया है । साँच नमक ।

कालिका वृद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह व्याज जो महीने महीने लिया जाय। मासिक व्याज।

कालीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] काला चंदन।

कालीयक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) पीला चंदन। (२) काली अमर। (३) काला चंदन। (४) दारुहल्ली।

कालोनियल-वि० [ म० ] कालोनी या उपनिवेश संबंधी। औपनिवेशिक। जैसे,—कालोनियल सेक्रेटरी।

कालोनी-संज्ञा स्त्री० [ म० ] एक देश के लोगों को दूसरे देश में बस्ती या आबादी। उपनिवेश।

काव्य व्यूह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) शरीरों का बनाया हुआ मोरचा या व्यूह। उ०—प्रतिबंधित जयसाहि दुति दीपति दरपन धाम। सजु जगु जीतनु कीं कवी काव्य व्यूह मनु काम।—विहारी।

काश्मरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसके पत्ते पीपल के पत्तों से चौड़े होते हैं और जिसके कई भागों का व्यवहार औषधि के रूप में होता है। वि० दे० "गंमारी"।

काष्ठ संघात-संज्ञा पुं० [ सं० ] लकड़ियों का घेरा। (कौ०)

कासा-संज्ञा पुं० [ म० ] (३) दरिदाई नारियल का वह मिश्रण जो प्रायः सुसलमान कबीरों के पास रहता है। कचकोल।

कासालु-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कंद या आदू।

कास्टिक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पगडंडी। (२) पतला रास्ता। (गृहगम्य)

कास्टिकेट-संज्ञा पुं० [ म० ] पेटी। सँदूकड़ी। विवशा। जैसे,—अभिनंदनप्रथ चाँदी के एक सुंदर कास्टिकेट में रखकर उनके अपंग किया गया।

कास्टिंग वोट-संज्ञा पुं० [ म० ] किसी सभा या परिषद् के अध्यक्ष या सभापति का वोट जिसका उपयोग किसी विषय या प्रश्न का निर्णय करने के लिये उस समय किया जाता है जब सभासद दो समान भागों में बँट जाते हैं; अर्थात् जब आधे सदस्य पक्ष में और आधे विपक्ष में होते हैं, तब सभापति किसी पक्ष को अपना 'कास्टिंग वोट' देता है। इस प्रकार एक अधिक वोट से उस पक्ष को यात मान ली जाती है। निर्णायक वोट। जैसे,—अधुक्त प्रस्ताव के पक्ष में २० और विपक्ष में भी २० ही वोट आए। सभापति ने पक्ष में अपना कास्टिंग वोट देकर प्रस्ताव पास कर दिया।

चिरोप-यदि सभापति उस सभा या संस्था का सदस्य हो तो वह कास्टिंग वोट दे सकता है; सदस्य रूप से वह सदस्यों के साथ पहले ही वोट दे चुकता है।

कटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घनघेदा या बॉस का बना कवच। (कौ०)

किल-वि० [ सं० ] (३) और। तरक। उ०—मानहु पुढरीक मँहें चहुँ कित अँवर बुंद मग मोहँ।—रघुनाथ।

वि० दे० "कितना"। उ०—रुहि दहि लेह कित होइ होइ गए। कै कै गरम खेल मिलि गए।—जायसी।

कितैल-वि० [ सं० ] कृप। कहाँ। किस जगह। उ०—रांमु को दे राजपुत्री कितै।—केशव।

किनवानी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] छोटी छोटी बूँदों की वर्षा। फुहार। शदी।

किनारे-वि० [ हि० ] (१) किनारे पर। तट पर। (२) अलग। दूर।

किम्मत-संज्ञा स्त्री० [ म० ] हिक्मत। (१) चतुराई। होतियारी। उ०—हारिए न हिम्मत सुकीने कौटि किम्मत को आपति में पति राखि धरज को धरिए। (२) वीरता। बहादुरी।

किरकिरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] लोहारों का एक औजार जिससे बड़े और मोटे लोहे में छेद किया जाता है।

किरणकेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य। उ०—जयति जय सयु कटि केसरी सयुधन सयुधत गृहिन हर किरनकेतु।—तुलसी।

किरसुन-संज्ञा पुं० दे० "कृष्ण"। उ०—उहै धनुक किरसुन पहुँ अहा। उहै धनुक राधो कर गहा।—जायसी।

किरीरा-संज्ञा स्त्री० दे० "कीड़ा"। उ०—हँसहि हंस भी करहि कीरीरा। चुनहि रतन मुकुताहल हीरा।—जायसी।

किरोध-संज्ञा पुं० दे० "क्रोध"। उ०—गुम धारी पिठ दुहुँ जग राजा। गरय किरोध ओहि पे छाजा।—जायसी।

किलक-वि० [ ? ] निश्चय ही। अवश्य। उ०—कै श्रोगित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।—केदार।

किलचिया-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का बहुत छोटा यगल जो सारे भारत और बरमा में पाया जाता है।

किलवारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कर्ण ] यह झाँडा जिससे छोटी नावों में पतवार का काम लेते हैं।

किलविपी-वि० [ सं० ] किल्विपी ] पापी। अपराधी। उ०—मन महीन कलि किलविपी होत सुनत जासु, कृत काज। सी तुलसी कियो आपुनो खुसीरी गरीय निवाज।—तुलसी।

किलहँटी-संज्ञा पुं० [ म० ] गिलाय या हि० कूट ? ] [स्त्री० ] किलहँटी] एक प्रकार की बिड़िया जो आपस में बहुत लड़ती है। सिरौही।

किलोमीटर-संज्ञा पुं० [ म० ] दूरी की एक माप जो मील के प्रायः पंच-अष्टमांश के बराबर होती है।

किसय-संज्ञा पुं० [ म० ] कल ] (१) रोजगार। व्यवसाय। (२) कारीगरी। कला-कौशल। उ०—चाकरी न भाकरी न खेती न बनित्र भोख जानत न कूर कछु किसय कबार है।—तुलसी।

की-संज्ञा स्त्री० [ म० ] वह पुस्तक जिसमें किसी ग्रंथ या पुस्तक के कठिन शब्दों के अर्थ या उनका व्याख्या की गई हो। कुँजी।

कीकाना-संज्ञा पुं० [ सं० ] केकाय ( देश ) ] (१) केकाय देश जो

किरी समय घोड़ों के लिये प्रसिद्ध था। (२) इस देश का घोड़ा। (३) घोड़ा। अथ।

कीलना-कि० सं० [ सं० कीलन ] (५) तोप की नली में आगे की ओर से फलकर लकड़ी का कुन्दा डोंकना जिसमें तोप चलाई न जा सके।

कीलाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जल। पानी। (२) रक्त। लहू। (३) अमृत। (४) मधु। शहद। (५) पशु। जानवर।

वि० बंधन हटाने या दूर करनेवाला।

कुंदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० कुंभी ] (५) एक प्रकार का पद्म वृक्ष जो बहुत जल्दी बढ़ता और प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। इसकी छाल से चमड़ा सिनाया जाता है और रेशों से रस्से आदि बनते हैं। कहीं कहीं अकाल के दिनों में इसकी छाल आटे की तरह पीस कर खाई भी जाती है। लकड़ी से खेती के औजार, छाजन की यष्टियाँ, गादियों के घुरे और पंजुक के कुंदे बनाए जाते हैं। यह पानी में जल्दी बढ़ता नहीं। जंगली सूअर इसकी छाल बहुत मजे में खाते हैं, इसलिये शिकारी लोग उनका शिकार करने के लिये प्रायः इसका उपयोग करते हैं। अरजम।

कुमसंभव-संज्ञा पुं० [ सं० ] भगवत्स्य मुनि।

कुटज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (४) इंदुजी। (५) पत्र। कमल।

कुटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (३) सफेद कुड़ा। श्वेत कुटज। (४) मरुआ नामक पीचा।

कुट्टा-संज्ञा पुं० [ हि० कटन ] (२) यह पक्षी जिसके पैर बाँधकर जाल में इसलिये छोड़ दिये हैं कि उसे देख कर और पक्षी आकर जाल में फँसें। शुल्हद।

कुपना-कि० प्र० [ हि० कुपना ] बहुत मार खाना। पीटा जाना।

कुपंधी-वि० [ हि० कुपंध + ई (प्रत्य०) ] जिसका आचरण निषिद्ध हो। घुरे मार्ग पर चलनेवाला। उ०—पंडित सुमित देह पथ लावा। जो कुपंधि लेहि पंडित न भांवा।—जायसी।

कुप-संज्ञा पुं० [ दे० ] घास, भूसे या पुआल आदि का ढेर जो खलिदान में लगाया जाता है।

कुपक-संज्ञा पुं० [ पा० कुपक ] एक प्रकार का गानेवाला पक्षी जो प्रायः पाठा खाता है।

कुपित मूल (सैन्य)-संज्ञा पुं० [ सं० ] भड़की हुई सेना। विशेष—कौटिल्य के मत में कुपितमूल और भिन्नगर्भ (वितर वितर हुई) सेनाओं में से कुपितमूल सामाधि उपायों से प्राप्त किया जाकर उपयोग में लाई जा सकती है।

कुब-संज्ञा पुं० दे० "कुबड़"।

कुबड़ापन-संज्ञा पुं० [ हि० कुबडा + पन (प्रत्य०) ] 'कुबड़ा' होने का भाव।

कुयानी-संज्ञा स्त्री० [ सं० कु + नानी (वाचिष्य) ] घुरा व्यवसाय।

खराप वाणिज्य। उ०—अपने चलने से किन्हे कुयानी। लाभ न देख मूर भइ हानी।—जायसी।

कुमदतु-संज्ञा पुं० दे० "कुमैत"। उ०—कारे कुमदत लील सुपेते। बिग कुंरंग भोज दुर केते।—जायसी।

कुमारयाज-संज्ञा पुं० [ अ० किमार + यज० याज (प्रत्य०) ] वह जो जूभा खेलता हो। सुभारी।

कुमारयाजी-संज्ञा स्त्री० [ अ० किमार = जूभा + या० बाबो (प्रत्य०) ] जूभा खेलने का भाव। सुभारीपन।

कुम्हरीटी-संज्ञा स्त्री० [ हि० कुम्हार + टी (प्रत्य०) ] एक प्रकार की काली मिट्टी जिससे कुम्हार लोग घड़े और होंदियों आदि बनाते हैं। जटाव।

कुुरसा-संज्ञा पुं० [ दे० ] (२) जंगली गोभी।

कुुरसी-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (७) नदियों में चलनेवाली छोटी नाव की लंबाई में दोनों ओर लकड़ी की पट्टियों का बना हुआ वह ऊँचा और चौंसट स्थान जिस पर बाहरी घेरे हैं। पादाक।

कुरी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] (१) घुस। धीला। उ०—हाल सो कर मोह लेह बाड़ा। कुरी दुबो पैज के काड़ा।—जायसी। (२) ढेर। समूह। उ०—तेह सन भोदित कुरी चलाए। तेह सन पवन पंख जनु लाए।—जायसी।

कुुरमळ-संज्ञा पुं० [ सं० कूर्म ] कूर्म। कच्छप। उ०—कुुरम डूटे थुई काटे तिन्ह हस्तिन्ह के चालि।—जायसी।

कुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (८) व्यापारियों या कारीगरों का संघ। धेणी। कंपनी। (स्मृति०) (९) शासन करनेवाले उच्च कुल के लोगों का मंडल। कुलीनतंत्र राज्य। (कौ०)

कुलट-संज्ञा पुं० [ सं० ] औरस के अतिरिक्त और किसी प्रकार का पुत्र। क्षेत्रज्ञ, गोलक, दत्तक या क्रीत पुत्र।

कुलधर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी परिवार में प्रचलित नियम या परंपरा। कुल की रीति।

विशेष—अभियोगों के निर्णय में इसका भी विचार किया जाता था।

कुलनीधी-प्राहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी समाज या संघ की आमदनी को अपने पास जमा रखनेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे धन का अल्पव्यय या दुरुपयोग करने वाले के लिये १०० पण जुर्माना लिखा है।

कुलपत-संज्ञा स्त्री० [ अ०, कुलपत ] मानसिक धिंता या दुःख। कि० प्र०—मिटना।—होना।

कुलराज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी एक वंश के सरदारों का राज्य। किसी एक कुल के नायकों द्वारा चलनेवाला शासन। सरदारतंत्र।

विशेष—वाणव्य के अनुसार ऐसे राज्य में स्थिरता रहती है, अराजकता का भय नहीं रहता और ऐसे राज्य की शत्रु भी जल्दी नहीं जीत सकता।

कुलशतावर-ग्राम

कुलशतावर-ग्राम-संज्ञा पुं० [ सं० ] बंद गोंद जिसकी आवादी सौ से अधिक हो। (कौ०)

कुलसंघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुलीन तंत्रराज्य का शासक मंडल। वि० दे० "कुलराज्य"।

कुहर-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस खाया जाता है।

कुहौ-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुहू। मोर या कोयल की बूक। कुहू। उ०—यन-भादन पिक बटपरा छवि बिरदितु मत मँ न। कुहौ कुहौ कहि कहि उँठ करि करि राते नैन।—विहारी।

कुड़-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (४) मिट्टी, तौबे या पीतल आदि का बना हुआ बड़ा गहरा पात्र जिसके ऊपर घमदा-मढ़कर "बापों" या "देका" बनते हैं।

कुटकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) जूआ खेलते समय वेईमानी करना या हाथ की घनुराई या सकाई से पासे पलटना। (कौ०)

कुटन-संज्ञा स्त्री० [ दि० ] कुटना। (१) कुटने की क्रिया या भाव। (२) मारना। पीटना। कुटाई। उ०—फेरत नैन-वेरि हों छुईं। भइ कुटन कुटनी तस कुईं।—जायसी।

कुटपण कारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जाली सिखा या माल तैयार करनेवाला। (२) जाली दस्तावेज़ बनानेवाला। जालसाज। (कौ०)

कुटमुद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] जाली मुहर या सिखा बनानेवाला। (कौ०)

कुटमुद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जाली मुहर या परवाना। (कौ०)

कुटरूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] जाली रूप या सिखा। (कौ०)

कुटरूप कारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जाली सिखा तैयार करनेवाला।

विशेष—वाणव्य ने लिखा है कि जो लोग भिन्न भिन्न प्रकार के छोटे के औजार खरीदते हों तथा जिनके पास सैकड़ों प्रकार के रासायनिक द्रव्य हों और जो धूर्त में सने हों, उनको जाली सिखा तैयार करनेवाला समझना चाहिए। इनको गुप्त दूत लगाकर पकड़ना और देस से निकाल देना चाहिए।

कुटरूप निर्वापण-संज्ञा पुं० [ सं० ] जाली सिखा निकालना या चलाना। (कौ०)

कुटरूप प्रतिग्रहण-संज्ञा पुं० [ सं० ] जाली सिखा ग्रहण करना। (कौ०)

कुटागार-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के अनुसार वह मंदिर जो मातृपौ सुदों के लिये बना हो।

कुटाघपात-संज्ञा पुं० [ सं० ] ऊपर से छिटा हुआ गन्ना जो जंगली जानवरों को फँसाने के लिये बनाया जाता है।

कुथना-कि० सं० [ सं० ] कुंथन। बहुत मारना। पीटना। कि० प्र० दे० "कुंथना"।

कुर्पात-संज्ञा पुं० [ सं० ] भद्र की रक्षा के लिये लोहे की शालियों का छोटा कवच। (कौ०)

कूर्मखंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] पौराणिक भूगोल के अनुसार एक खंड या वर्य का नाम।

कूर्ममुद्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तांत्रिकों की उपासना में एक प्रकार की मुद्रा जिसमें एक इथेली दूसरी एथेली पर इस प्रकार रखते हैं कि कटुप की आकृति बन जाती है।

कुकाटिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कंधे और गले का जोड़। घाँटी। उ०—सुगढ़ पुष्ट उन्नत कुकाटिका कंठ कंठ सोभा मनं मातति।—तुलसी।

कुच्छुरपराक-संज्ञा पुं० [ सं० ] १२ दिन तक निराहार रहने का मत।

कुच्छुराति-संज्ञा पुं० [ सं० ] २१ दिन तक दूध पर निर्वाह करने का मत।

विशेष—गौतम के मन से दूध के स्थान पर पानी पी कर ही रहना चाहिए।

कृतकाल दास-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह दास जिसने कुछ ही समय के लिये अपने को दास बनाया हो।

कृतविदूषण संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] द्रव्य के भागियों या अपने गुणधरों द्वारा यह सिद्ध करके कि द्रव्य ने संधि भंग किया है, संधि भंग करना। (कौ०)

कृतशुल्क-वि० [ सं० ] (माल) जिस पर चुंगी दी जा चुकी हो। (कौ०)

कृतश्लेषण संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह पक्षी संधि जो मिरों को बीच में डालकर की जाय और जिससे युद्ध या विग्रह की संभावना न रह जाय। (कौ०)

कुत्रिम-अरि-प्रकृति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राजा जो किसी दूसरे को विजैता के विरुद्ध भद्रकृता हो।

कुत्रिम-मित्र-प्रकृति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राजा जो धन तथा जीवन के हेतु मित्र बन गया हो।

कुशोदरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अर्धतमूल।

कुतकर-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] "केतकी"। उ०—तुहु जो प्रीति निवाहै अँटा। और न देख केतकर कँटा।—जायसी।

केम-संज्ञा पुं० [ सं० ] कदम। कदम। उ०—अब तजि माउँ उवाय की भाप पावस मास। खेल न रहिबौ खेम सौं केम-कुसुम की बास।—बिहारी।

केष-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का पशु जो सिच की पहाड़ियों और पश्चिमी हिमालय में होता है। इसकी छकड़ी भरे रंग की और भारी होती है, तथा सजावट के सामान और बिलोने आदि बनाने के काम में आती है। इसके फल खाए-जाते हैं और जीवों से सेल निकलता है। इसके पौधे पर विलायती जीवों की कलम लग जाती है।

कैटल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूचीय। फेहरिस्त। फर्द।

कैप-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] टोपी।

कैपिटल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी व्यक्ति या संसुदाय का पैसा समस्त धन जिसे वह किसी व्यवसाय या काम में लगा

संकेत धन। संपत्ति। पूँजी। (२) वह धन जो किसी व्यापार या व्यवसाय में लगाया गया हो या जिससे कोई कारोबार आरंभ किया गया हो। किसी दूकान, कोठी, कारखाने, बैंक आदि की निज की चर या अचर संपत्ति। पूँजी। मूलधन। (३) किसी देश का मुख्य या प्रधान नगर जिसमें राजा या राज-प्रतिनिधि या प्रधान सरकार हो।

कैपिटलिस्ट-संज्ञा पुं० दे० "पूँजीपति"।

कैरट-संज्ञा पुं० [ अं०, मि० अं० विगत ] (१) दे० "करात"।

(२) एक प्रकार का मान जिससे सोने की शुद्धता और उसमें दिए हुए मेल का हिसाब जाना जाता है।

विशेष—युरोप और अमेरिका में विलकुल खालिस सोने का व्यवहार प्रायः नहीं होता और उसमें अपेक्षाकृत अधिक मेल दिया जाता है। इसी लिए जो सोना विलकुल शुद्ध होता है, वह २४ कैरट का कहा जाता है। यदि आधा सोना और आधा दूसरी धातु का मेल हो तो वह सोना १२ कैरट का, और यदि तीन चौथाई सोना और एक चौथाई मेल हो तो वह सोना १८ कैरट का कहा जाता है। इसी प्रकार १५, १६, २० और २२ कैरट का भी सोना होता है; जिनमें से अंतिम सभ से अच्छा समझा जाता है।

फैलंडर-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) अंग्रेजी तिथि पत्र या पंचांग जिसमें गहना, वार और तारीख छपी रहती है। (२) सूची। फेहरिस्त। रजिस्टर।

कैषा-कि० वि० [ हि० कै=कर+षा=षार ] कई धार। कई दफा। उ०—(क) मैं तो सौँ कैषा क्यो तू जनि हूँ पथाई। लगा लगी करि लोइनु उर मैं लाई लाइ।—विहारी। (ख) कैषा आश्रत इहि गली रहैं चलाइ चलेन। दरसन की साथै रहै सूपे रहैं नैन।—विहारी।

कैश-संज्ञा पुं० [ अं० ] रुपया पैसा। सिक्का। नगदी। वि० जिसका दाम नगद दिया गया हो। सिक्का देकर लिया हुआ।

कैशियर-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह कर्मचारी जिसके पास रुपया पैसा जमा रहता हो और जो उसे खर्च करता हो। आमदनी लेने और खर्च करनेवाला आदमी। खजानची।

कैसा-कि० वि० [ हि० का+सा ] के समान। का सा। की तरह का। उ०—सिसिया कैसी घट भयो, दिन ही मैं बन-कुंज।—मतिराम।

कोटिक-वि० [ सं० कोटि+क ] बहुत अधिक। अन्त। उ०—(क) कीने हूँ कोटिक जतन भय कदि काड़े कौतु। मो मन-मोहन रहुपु मिला पानी मैं कौ लौनु।—विहारी। (ख) कोज कोटिक समझै कोज लाल हजार। मो संपति जदुपति सदा विपति बिदारनहार।—विहारी।

कोठी-संज्ञा स्त्री० [ हि० कोठा ] (१) कोल्हू के बीच का यह स्थान

या घेरा जिसमें घेरने के लिये ऊँच या गले के बुँदें डाले जाते हैं।

कोइ-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) वह पुस्तक जिसमें किसी प्रकार के संकेत और उनके प्रयोग के नियम लिखे हैं। संकेत पदति। संकेत विधान। (२) किसी विषय के प्रयोग के नियम आदि का संग्रह।

कोपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह लाभ जो मंत्रियों के उपदेश से अथवा राजदोही मंत्रियों के अनादर से प्राप्त हुआ हो।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है पहली अवस्था में मंत्री यह समझने लगते हैं कि हम न होते तो राज्य की बहुत हानि हो जाती, और दूसरी अवस्था में शेष मंत्री यह समझते हैं कि जहाँ हमसे लाभ न पहुँचेगा, वहाँ हमारा नाश होगा।

कोप्यापण यात्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जाली सिक्कों का चलना (जिनका रोकना जरूरी हो)। (कौ०)

कोर-संज्ञा पुं० [ अं० ] पलटन। सैन्यदल। जैसे,—वालटियर कोर। कोरना-कि० सं० [ हि० कोर+ना (प्रत्य०) ] (१) लकड़ी आदि में कोर निकालना। (२) छील, छाल कर ठीक करना। दुस्त करना। उ०—यनवासीं पुर-लोग महामुनि किए हैं बांड से कोरि।—गुलसी।

कोरम-संज्ञा पुं० [ अं० ] किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने की उपस्थिति सभा के कार्य-निर्वाह के लिये आवश्यक होती है। किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने के उपस्थित होने पर सभा का कार्य प्रारंभ होता है। कार्य-निर्वाहक सदस्य संख्या। जैसे,—साधारण सभा का कोरम ९ सदस्यों का है; पर ६ ही उपस्थित थे, कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका।

कोरहन-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का धान। उ०—कोरहन बढ़न जड़हन मिला। औ संसार-तिलक खँडविला।—जायसी।

कोर्स-संज्ञा पुं० [ अं० ] उन विषयों का क्रम जो किसी विषय-विद्यालय, स्कूल, कालेज आदि में पढ़ाए जाते हैं। पाठ्यक्रम। जैसे,—इस बार बी० ए० के कोर्स में प्राकृतिक के स्थान पर भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित' नाटक रखा गया है।

कोशसंधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कोश देकर संधि करना। धन देकर किया जानेवाला मेल।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि यदि शत्रु कोशसंधि करना चाहे तो उसको ऐसे यद्दुमूल्य पदार्थ दे जिनका कोई खरीदनेवाला न हो या जो युद्ध के श्रेय अनुपयोगी हों या जो जांगलिक पदार्थ हों।

कोशामिहंरख-संज्ञा पुं० [ सं० ] खजाने की कमी पूरी करना। विशेष—चाणक्य ने इसके कई ढंग बताए हैं; जैसे,—(१) बाकी राजकर को एक दम चमूटे करना। (२) धान्य का

वृत्तीय तथा चतुर्थ अंश दैत्य में लेना । (३) सोने चाँदी के उत्पादकों, व्यापारियों, व्यवसायियों तथा पशुपालकों से मित्र मित्र दंग पर राजकर लेना । (४) मंदिरों की आमदनी में से कर लेना । (५) धनियों के घरों से धन गुप्त वृत्तों के द्वारा चोरी कराके प्राप्त करना ।

**कोरवस-संज्ञा पुं० [ देश० ]** मद्रास के आस पास रहनेवाली एक जाति । इस जाति के लोग प्रायः दौरीयाँ आदि बनाते और सारे भारत में घूम घूम कर अनेक प्रकार के परिचयों के पर एकत्र करते हैं ।

**कोषाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (१) कोष का अध्यक्ष या स्वामी । वह जिसके पास कोष रहता हो । (२) वह जिसके पास किसी व्यक्ति या संस्था का आयव्यय और रोकड़ आदि रहती हो । रोकेदिया । खजानची ।

**कोष्ठागार-संज्ञा पुं० [ सं० ]** भंडार । भंडारखाना । (कौ०)

**कोसा-संज्ञा पुं० [ देश० ]** एक प्रकार का गाढ़ा रस या भस्त्रेह जो चिकनी सुपारी बनाने के समय सुपारियों को उबालने पर तैयार होता है और जिसकी सहायता से पठिया द्रव्य की सुपारियाँ रंगी और स्वादिष्ट बनाई जाती हैं ।

**कौंचा-संज्ञा पुं० [ ? ]** ऊस के ऊपर का पतला और नीरस भाग जिसमें गोंद बहुत पास पास होती हैं । अगिरा ।

**कौंच-संज्ञा स्त्री० [ सं० कचु ]** केराच । कौंच । दि० दे० "कौंच" ।

**कौंट-संज्ञा पुं० [ सं० काउंट ]** [ स्त्री० कंटित ] युरोप के कई देशों के सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों की उपाधि जिसका दर्जा मिट्टिया उपाधि 'अर्ल' के बराबर का है ।

**कौंसल-संज्ञा पुं० [ सं० ]** चैरिस्टर । एडवोकेट ।

**कौंसली-संज्ञा पुं० [ सं० कौंसल ]** चैरिस्टर । एडवोकेट । जैसे,— हाई कोर्ट में उसकी ओर से बड़े बड़े कौंसली पेशी कर रहे हैं । (भौतिक)

**कौड़ा-संज्ञा पुं० [ देश० ]** (२) बूई नाम का पौधा जिसे जलकर समोसार निकालते हैं । वि० दे० "बूई" ।

**कौड़िया-संज्ञा पुं० [ हि० कौड़िल ]** कौड़िला या किलकिला नाम का पत्ती । उ०—नयन कौड़िया हिय समुद्र गुरु सी तेदी जोति । मन मरजिया न होइ परं हाय न आवै मोति । —जायसी ।

**कौणप-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (३) पातकी । अघमर्मी । उ०—केवट कुटिल मालु कपि कौणप कियो सकल संग भाई ।—जुलसी ।

**कौण्ठिग-संज्ञा पुं० [ सं० कौण्ठ ]** विलक्षण और अद्भुत घात । कौण्ठक । उ०—देखत कछु कौण्ठिगु हुनै देखी नैक निहारि । कब की हुकट कटि रही दटिया अँगुरिन फारि ।—बिहारी ।

**कौमियत-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]** कौम या जाति का भाव । जातीयता । जैसे,—बलिद्यत और कौमियत सय लिखा हो ।

**कौमी-वि० [ सं० ]** किसी कौम या जाति संबंधी । जातीय । जैसे,—कौमी जोत । कौमी मजलिस ।

**कौल-संज्ञा पुं० दे० "कोर"** । उ०—लाल विलोचनि-कौलन सीं, मुसकान्द हतैं अरहाइ चित्तौगो ।—मतिराम ।

**कौवा-संज्ञा पुं० [ सं० काव ]** (६) कनकूटकी नाम का पेड़ जिसकी राल दवा और रंगारंग के काम में भाती है । (७) एक प्रकार की मछली जिसका मुँह बगले के मुँह की तरह होता है । कंकपोट । जलमय्य ।

**कौपेय-वि० [ सं० ]** रोशम से संबंध रखनेवाला । रोशम का । रोशमी । संज्ञा पुं० रोशम का बना हुआ वस्त्र । रोशमी कपड़ा ।

**कौष्टेयक-संज्ञा पुं० [ सं० ]** पे कर या टैक्स जो खजाने तथा वस्तु-भांडार की पूर्ण करने के लिये जनता से समय समय पर लिये जायें ।

**काम-संज्ञा-संज्ञा पुं० [ सं० कर्म ]** कर्म । कार्य । कृत्य । उ०—मन, वच, क्रम तुम सेवहु जाई ।

**कालोत्पन्न-संज्ञा पुं० [ सं० ]** पदार्थ के क्रय विक्रय संबंधी पत्र । (मुकनीति)

**क़ायिम-संज्ञा पुं० [ सं० ]** वह कर या टैक्स जो माल की खरीद या बिक्री पर लिया जाय । (कौ०)

**क़ायोपघात-संज्ञा पुं० [ सं० ]** पदार्थ के खरीदने को रोकना । पदार्थ के क्रय में रुकावट डालना । (कौ०)

**क़ाउन-संज्ञा पुं० [ सं० ]** (३) राजा । सम्राट् । शाह । मुलतान । (४) राज्य ।

**क़ाउन काशोनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]** वह कालोनी या उपनिवेश जो किसी राज्य या साम्राज्य के अधीन हो । राज्य या साम्राज्यवालयंत उपनिवेश ।

**क़ाउन मिस-संज्ञा पुं० [ सं० ]** किसी स्वतंत्र राज्य का राज-सिंहासन का उत्तराधिकारी । युवराज । जैसे,—रूमानिया के क़ाउन मिस ।

**क़िमिनल इनवेस्टिगेशन डिपार्टमेंट-संज्ञा पुं० [ सं० ]** [ संज्ञा स्त्री० भी० भी० ] सरकार का वह विभाग या महकमा जो अपराधों, विधेय कर राजनीतिक अपराधों का गुप्त रूप से अनुसंधान करता है । भेदिया विभाग । खुफिया महकमा । भेदिया पुलिस । खुफिया पुलिस । स्त्री० जाई० डी० ।

**क़िमिनल प्रोसीजर कोड-संज्ञा पुं० [ सं० ]** अराब और दंड संबंधी विधानों का संग्रह । दंडविधान । जल्दा फौजदारी ।

**क़ूजर-संज्ञा पुं० [ सं० ]** तेज चलनेवाला सनख या हथियारबंद जहाज जिसका काम अपने देश के जहाजों की रक्षा करना और शत्रु के जहाजों को नष्ट करना या लूटना है । रक्षक जहाज ।

**क़ोडिट-संज्ञा पुं० [ सं० ]** बाजार में वह मानसर्वादा विप्लव के कारण मनुष्य लेन देन कर सकता हो । सात । जैसे,—बाजार में



लकड़ी नाब आदि घनाने के काम में आती है । वि० दे० "धव" ( १ ) ।

खरविरई—संज्ञा स्त्री० [ वि० ख( + विरई = वृष्टि) वास-यात या जड़ी वृष्टी की दवा जो प्रायः देहाती लोग करते हैं ।

खरायँध—संज्ञा स्त्री० [ वि० खरा + यँध ] ( १ ) सूत्र की दुग्ंध ।

पेसाव की दवा । ( २ ) क्षार आदि की दुग्ंध ।

खरिया—संज्ञा स्त्री० [ वि० ख( + रिया प्रत्य० ) ] ( २ ) शोली । थैली ।

खरियाना—कि० सं० [ वि० खरिया = मोती ] ( १ ) शोली में डालना । धोली में भरना । ( २ ) हस्तगत करना । छे लेना । ( ३ ) शोली में से गिराना ।

खलना—कि० सं० [ वि० खल + ण ] ( १ ) खरल में डालकर घोटना । ( २ ) नष्ट करना । पीस डालना । उ०—रावन सो रसना सुभद्र रस सहित लंक खल खलतो ।—तुलसी ।

खलादीपिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] पल्लिधन में आग लगानेवाला ।

विशेष—येसे अपराधी को आग में जलाने का देह मिलता था । खसखसो—वि० [ वि० खसखस ] खसखस की तरह का । बहुत छोटा । जैसे,—खसखसी दाढ़ी ।

खसखसी—संज्ञा पुं० [ वि० खसखस ] पोस्ते के फूल का रंग । हलका आसमानी रंग ।

वि० पोस्ते के फूल के रंग का । हलका आसमानी ।

खसिया—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] ( १ ) एक पहाड़ी का नाम जो आसाम में है । ( २ ) इस पहाड़ी के आस पास का प्रदेश । उ०—चला परधनी लेइ कुमाऊँ । खसिया मगर जहाँ लगी गाऊँ ।—जायसी ।

खौंडना—कि० सं० [ सं० खंड = उका ] कुचल कुचल कर खाना । चबाना । उ०—कादे अधर बाभ जनु चीरा । रहिर खुँवै जो खौंडे चीरा ।—जायसी ।

खाड़ी—संज्ञा स्त्री० [ सं० खान ] खाव पदार्थ ।

मुहा०—खाजी खाना=मुँह की खाना । उरो तरद पपल श्रीर क्षत्रि होना । उ०—सानुज सगन ससंघिय सुजोधन भए सुख मखिन प्याइ खल खाजी ।—तुलसी ।

खिभङ्ग—संज्ञा स्त्री० दे० "खोज" । उ०—मनु न मनावन कौं करे देत रडाइ रडाइ । कौतुक लायो प्यो प्रिया खिसहूँ रिस्-पति जाइ ।—बिहारी ।

खिरौरा—संज्ञा पुं० [ वि० खैर = कथा + रौरा (प्रत्य०) ] कथे की रिकिया । उ०—पुहुष पंक रस अमृत सौँधे । कोइ यह सुरंग खिरौरा सौँधे ।—जायसी ।

खिसलाना—संज्ञा स्त्री० दे० "किसलन" ।

खिसाना—वि० [ वि० खिसियाना ] खिसियाया हुआ । लजित और संकुचित ।

खिसौँहूँ—वि० [ वि० खिसियाना + सौँह (प्रत्य०) ] खिसियाया हुआ । लजित और संकुचित । उ०—गहकि गाँधु औरै

गई रहे अध-कहे वैन । देखि खिसौँहूँ पिय-नयन किए खिसौँहूँ नैन ।—बिहारी ।

खीरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० खीरिणी ] खिरनी नाम का फल । उ०—कोइ दारिदैं, कोइ दास्य औ खीरी । कोइ सदाकर तुरंग गँभीरी ।—जायसी ।

खुँटैया—संज्ञा स्त्री० [ वि० खूँटी ] एक प्रकार की दूब या घास जिसे चट्टू भी कहते हैं ।

खुटयाजी—संज्ञा स्त्री० [ प्र० ] चंगेल नामक पौधे का फल जो दवा के काम में आता है । वि० दे० "चंगेल" ।

खुमानडा—वि० [ सं० मयुधमन् ] बड़ी आयुवाला । दीर्घजीवी । ( आशीर्वाद )

खुरक—संज्ञा पुं० [ वि० खुरक ] खुरका । खटका । अशिका । उ०—मोट बड़े सोइ टोइ टोइ धरे । उबर दवर खुरकन चरे ।—जायसी ।

खुसिया—संज्ञा पुं० [ प्र० खुसिय ] अंड फोड़ा ।

धौ०—खुसिया वरदाती=सुंदर अधिक सुरामद ।

खूँट—संज्ञा पुं० [ सं० खंड ] ( ३ ) कान में पहनने का एक प्रकार का गहना । उ०—काननइ कुंडल खूँट औ खूँटी । जानहुँ परी कचपची टूटी ।—जायसी ।

खेरौरा—संज्ञा पुं० [ वि० खैर + रौरा (प्रत्य०) ] खँडौरा या भोला नाम की मिठाई । मिसरी का लड्डू । उ०—दूती बहुत पकावन साथे । मोति-लाइ औ खेरौरा वौँधे ।—जायसी ।

खैला—संज्ञा पुं० [ सं० खैर ] मयानी । उ०—मन माझ सम अस के धोवै । तन खैला रोहि माहिं बिलोवै ।—जायसी ।

खोई—संज्ञा स्त्री० [ सं० खुद ] ( ४ ) एक प्रकार की घास जिसे "पूर" भी कहते हैं । वि० दे० "पूर" ।

खोड़—संज्ञा पुं० [ सं० खोर ] वह छेद जो वृक्ष की लकड़ी के सड़ जाने से हो जाता है । उ०—मानहु आयो है राज कहु चदि दैदे हो येसै पलास के खोड़े ।—मतिराम ।

खोरक—संज्ञा स्त्री० [ सं० खान्द, वि० खोरना ] नहाने की क्रिया । खान ।

खोली—संज्ञा स्त्री० [ प्र० खेल ] तकिप आदि के ऊपर चढ़ाने की थैली । गिलाफ ।

खौँ—संज्ञा स्त्री० [ सं० खन् ] ( ३ ) वृक्ष में वह स्थान जहाँ डाल से टहनी या टहनी से पत्ती निकलती है ।

खौँटी—संज्ञा स्त्री० [ वि० खौँटना ] ( १ ) खौँटने की क्रिया या भाव ।

( २ ) खौँटने या नोचने के कारण ( शरीर आदि पर ) पद्म हुआ चिह्न । खौँट । उ०—सिपनिय हिप लु लगी बलत पिय नख रेख खौँट । सूखन देति न सरसई खौँटि खौँटि खत खौँट ।—बिहारी ।

गंगा-गति—संज्ञा स्त्री० [ सं० गंगा + गति ] मोक्ष । मुक्ति । उ०—मरे जो चले गंगा-गति लेई । तेहि दिन कहीं धरी को देई ।—जायसी ।

गंगेय-संज्ञा पुं० [ सं० गंगेय ] गंगा के पुत्र भीष्म-पितामह ।  
उ०—तुम ही द्रोण और गंगेय । तुम्हें छेड़ो जैसे सहदेव ।  
—जायसी ।

गंगोत्सव-संज्ञा पुं० [ सं० गंगोत्सव ] गंगा का जल । गंगोत्सव ।  
उ०—तुलसी रामहिं परिहरे निपट हनि सुनि भोस । सुर-  
सरित्गन सोई सलिल नुरा सरिस गंगोत्सव ।—तुलसी ।

गंजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) दुग्ध । कष्ट । तच्छलीक । उ०—  
जंदि मिलि विद्युरनि औ तरनि अंत होइ जी नित । तेहि  
मिलि गंजन को सहे पर बिजु मिले निचित ।—जायसी ।

गँठछोरी-संज्ञा पुं० [ हिं० गँठ + छोरीना ] गँठ का माल छीन लेने-  
वाला । गिरकट ।

गँड़भप-संज्ञा पुं० [ हिं० गँड़ + भपना ] घुरी तरह झेंपने की  
क्रिया । ( बाजारु )

गुदा-संज्ञा पुं०—गँड़भप खाना = हुरी तरह झेंपना । बहुत देवार  
लजित होना ।

गँड़दार-संज्ञा पुं० [ सं० गंघ वा गेंहासा + घ० दार ( प्रत्य० ) ]  
मदहत । झीलवान । उ०—र्यों मनंग गँड़दार की, लिप  
जात गँड़दार ।—रसराज ।

गँड़सल-वि० [ हिं० गँड़ ] (१) गुदा भंजन करानेवाला । (२)  
दरपोक । कायर ।

गंडिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गंडे के चमड़े से बनी हुई एक प्रकार  
की छोटी नाव ।

गँड़ियल-वि० [ हिं० गँड़ + यल ( प्रत्य० ) ] (१) गुदा भंजन  
करानेवाला । (२) दरपोक । कायर ।

गंधतृण-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की सुगंधित घास जो घैघक  
में कुछ तिक्, सुगंधित, रसायन, छिगच, मधुर, शीतल और  
कफ तथा पित्त की नाशक कही गई है ।

पदार्थो—सुगंधि । शूलक । सुरस । सुरभि । सुखवास ।

गहनाही—संज्ञा स्त्री० [ सं० धान ] धान । जानकारी । उ०—  
हसी ती माई धयाम सुभंगम करे । मोहन मुख मुसंका  
मनहु विप जाने मरे सो मरे । कुंरे न मंत्र मंत्र गहनाही  
चले गुणी गुण दारे ।—सूर ।

गगनगढ़-संज्ञा पुं० [ सं० गगन + गढ़ ] गगन-स्पर्शी प्रासाद । बहुत  
ऊँचा महल । उ०—देवा साह गगनगढ़ इन्द्रलोक कर साज ।  
कहिय राज कुर ताकन सतग करे अस राज ।—जायसी ।

गज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) ज्योतिष में वृश्चिक की बीगियों  
में से एक ।

गजदंष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० गजदंष्ट ] पारिस पीपल का पेड़ ।  
पारोदा स्थिपल ।

गड़गड़-संज्ञा पुं० [ श्रु० ] (१) गड़ गड़ शब्द जो हुका पीने के  
समय या सुराही से पानी चलाने के समय होता है । (२)  
पेट में होनेवाला गड़ गड़ शब्द ।

गडुरी-संज्ञा स्त्री० [ ? ] एक प्रकार का पक्षी जिसे गेडुरी भी कहते  
हैं । उ०—पीव पीव कर लग पयोहा । तुही तुही कर गडुरी  
जोहा ।—जायसी ।

गड्ढा-संज्ञा पुं० [ हिं० गाधा वा गाधी ] (१) थैल गाढ़ी । छकड़ा ।  
(२) लकड़ी आदि का बड़ा थैल या गड़ा । (३) रसम या  
सूत आदि का गड़ा ।

गढ़ना-क्रि० सं० [ सं० घटन ] प्रस्तुत करना । उपस्थित करना ।  
उ०—आड़े सँजोग गोसाईं गढ़े ।—जायसी ।

गढ़वना-क्रि० सं० [ सं० गढ़ + वना ] (१) झिले में जाना ।  
(२) रचित स्थान में पहुँचना । उ०—गदि न सकी सय  
जगत में सितिर सोत के प्रास । गरम भाति गढ़वे भई  
तिप-कुच अचल मयास ।—विहारी ।

गण-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१४) किसी विशेष कार्य के लिये संबन्धित  
समान या संबं. जैसे,—व्यापारियों का गण, मिश्रक  
संन्यासियों का गण । (१५) शासन करनेवाली जाति के  
सुखियों का मंडल । जैसे,—मालवों का गण ।

विशेष—प्राचीन काल में कहीं कहीं इस प्रकार के गणराज्य  
होते थे । मालवा में पहले मालवों का गणराज्य था जिनका  
संवत् पीठ विक्रम संवत् कहलाया ।

गणतंत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह राज्य या राष्ट्र जिसमें समस्त राज-  
सत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और वे सामूहिक रूप से  
या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा शासन और न्याय  
का विधान करते हों । प्रजातंत्र । जनतंत्र ।

गणिकाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यकों का निरीक्षक राजकर्म-  
चारी या शौचरी ।

विशेष—कीटव्य के समय में इस प्रकार के कर्मचारी नियत  
करने की व्यवस्था थी ।

गणित विक्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] गिनती के हिसाब से पदार्थ  
बचना । (की०)

गणय पर्यय-संज्ञा पुं० [ सं० ] गिनती के हिसाब से विक्रयवाली  
वस्तु । (की०)

गधना-क्रि० सं० [ सं० गाधा ] धातें बना बना कर कहना ।  
गढ़ गढ़ कर कहना ।

गढ़राना-क्रि०-वि० [ हिं० गढ़राना ] गढ़राना हुआ । उ०—गढ़राने  
तन गोद्री ऐवन आइ लिलार । हूँवोँ दे हूँलहा इग करै  
गँवारि सुवार ।—विहारी ।

गढ़ा-संज्ञा पुं० [ प्र० ] मिश्रक । मिलमंगा । फँदर ।

यो०—गढ़गरी=मिश्रकी । मिलमंगान । फँदरी ।

गधेही-संज्ञा स्त्री० [ हिं० गधी + ही ( प्रत्य० ) ] अयोध्या या  
कूहड़ की ।

गंगानाना-क्रि० प्र० [ श्रु० ] (रोमाँ) खड़ा होना । रोमाँच होना ।  
गनरा भाँग-संज्ञा स्त्री० [ गनरा ? + हिं० भाँग ] जंगली भाँग जिममें

नया बिलकुल नहीं होता। कहीं कहीं इसकी टहनियों से रेरे निकाले जाते हैं।

गगना३-कि० सं० दे० "गिगना"।

कि० अ०—गिना जाना। गिनती में आना। उ०—भारत ओनइस चारि सताइस। जीगनि पच्छिउँ दिसा गनाइस।—जायसी।

गनी-संज्ञा पुं० [ अ० ] पाठ या सन की रसियों का घुना हुआ मोटा सुरदुरा कपड़ा जो बोरा या धेला बनाने के काम में आता है। जैसे,—गनी माकैंट। गनी जोकर।

गप्या-संज्ञा पुं० [ अ० गप ] (१) घोला।

मुद्दा०—गप्या खाना=बोले में आना। चूहना।

(२) पुरुष की इन्द्रिय। (पानरू)

गभस्तल-संज्ञा पुं० [ सं० गभस्तिमान् ] गभस्तिमान् द्रव्य।

गमकना-कि० अ० [ हि० गमक + ना (गम्य०) ] सुगन्धि देना। महकना।

गमगुसार-संज्ञा पुं० [ का० ] वह जो किसी को कष्ट में देखकर दुःखी होता हो। सहानुभूति रखने या दिखलानेवाला। हमदर्द।

गमना३-कि० अ० [ अ० गम = रथ + ना (गम्य०) ] (१) गम करना। शोक करना। (२) परवाह करना। ध्यान देना। उ०—मेरे सौ न डर रघुबीर सुनौ साँची कहीं खल अनलैहैं सुहँ सज्जन न गमिहैं।—तुलसी।

गया-संज्ञा स्त्री० [ सं० गया (जाय) ] गया में होनेवाली पिंडोदक आदि क्रियाएँ।

मुद्दा०—गया करना = गया में जाकर पिंडदान आदि करना। जैसे,—वह बाप की गया करने गए हैं।

गरजना३-वि० [ हि० गरजना ] गरजनेवाला। जोर से बोलनेवाला। उ०—राजपंथि पैया गरजना।—जायसी।

गरना-कि० अ० [ हि० गरना ] (१) गारा जाना। निचोड़ा जाना। (२) किसी चीज में से किसी पदार्थ को छँद छँद होकर गिरना। निचुड़ना। उ०—तुंयक-जोहँदा औंटा खोवा। भा हलुवा बिउ गरत निचोवा।—जायसी।

गरय-संज्ञा पुं० [ सं० गर्व ] हाथी का मद्द। उ०—गरय गयंदह गगन पसीजा। रहिर लुवै धरती सय भीजा।—जायसी।

गरय-गहेली-वि० [ हि० गर्व + गहना (ग्रहण करना) ] [ स्त्री० गय-गहेली ] जिसने गर्व धारण किया हो। गर्वीला। उ०—तू गज-गामिनि गरय-गहेली। श्वयं कस आस छँडू, तू वेडी।—जायसी।

गरबना३-कि० अ० [ सं० गर्व ] गर्व करना। अभिमान करना। शेकी करना। उ०—हँहि हेहँ मोती सुगंधं दूँ नय गरवि निसकँ। जिहि पहिरे जग-रग मसति लसति हँसति, सी नाँक।—बिहारी।

गरसना३-कि० सं० दे० "मसना"।

गरान-संज्ञा पुं० [ अ० गेनमोच ] चीरी नाम का वृक्ष जिसकी छाल से रंग निकाला और चमड़ा सिसाया जाता है।

गरासना३-कि० सं० दे० "मसना"। उ०—रतुं रनि होइ रविहँ गरासो।—जायसी।

गरियल-संज्ञा पुं० [ दिश० ] एक प्रकार का किलकिला पक्षी जिसका स्तिर भूरे रंग का होता है।

गरी-वि० [ सं० गुरु ] (१) भारी। चञ्चली। (२) जिसका स्वभाव गंभीर हो। प्रांत।

गरुड्या-वि० [ सं० गुरु ] [ स्त्री० गरु ] (२) गौरव युक्त। गौरववाली। उ०—यैहुहु पाट छत्र नय फेरी। सुहरे गरु गरुड मै बेरो।—जायसी।

गरुधा-वि० [ सं० गुरु = भाप ] (१) भारी। बोझवाला। (२) गंभीर। धीर। उ०—बेदे कहायत आप सौं गरुवे गोपीनाथ। सौ यदिहँ जौ रागिहो हायनु लखि मनु हाप।—बिहारी।

गरु-वि० [ सं० गुरु ] (१) भारी। चञ्चली। उ०—गरु गयद न दारे दरहँ।—जायसी।

गरेटा-वि० [ हि० वेप ] चकरदार। घुमावदार।

गर्वना३-कि० अ० [ सं० गर्व ] गर्व करना। अभिमान करना।

गर्भसंधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक।

गल-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) लड़की। पालिका। (२) युवती। जवान स्त्री।

गलसू स्कूल-संज्ञा पुं० [ अ० ] वह विद्यालय जिसमें केवल लड़कियाँ पढ़ती हों। कन्या विद्यालय।

गलगजना३-कि० अ० [ हि० गाल + गजना ] जोर से भावना करना। भारी शब्द करना। उ०—बीस सहस्र पहाराहि निसाना। गलगजहिं मेरी असमाना।—जायसी।

गलभय-संज्ञा पुं० [ हि० गल + भय ] एक प्रकार की लोहे की हल जो बुढ़ के समय हाथियों के गले में पहनाई जाती थी। उ०—सैसे चँवर बनाए और घाले गलभय। यँप सेन गजगाह तहँ जौ देखै सो कंय।—जायसी।

गलत-फहमी-संज्ञा स्त्री० [ अ० + फा० ] किसी ठीक बात को गलत समझना। गल से कुछ का कुछ समझना। भ्रम।

कि० अ०—पेवा होना।—होना।

गवनचार-संज्ञा पुं० [ सं० गवन + चार ] बच्चे का बर के घर जाना। गौना। उ०—गवनचार पदमावति सुना। उदा धमकि जिय औ स्तिर घुना।—जायसी।

गवाही-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) इशारायन। (२) एक प्रकार की ककड़ी। (३) सहोदा नाम का पेड़। (४) अपराजिता हता विष्णुकांत।

**गवामयन**-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का यज्ञ जो एक वर्ष में समाप्त होता था।

**गवेजा**-संज्ञा पुं० [ ? ] घातघात। घातघात। उ०—केपेट हँसे सो सुवत गवेजा। समुद्र म धनुं कुर्व कर मेजा।—जायसी।

**गवेसी**—वि० [ सं० गवेषण ] भवेपणा करनेवाला। हँदनेवाला। उ०—कहाँ सो गुरु पायीं उपदेसी। अगम पंथ जो कहे गवेसी।—जायसी।

**गह**-संज्ञा स्त्री० [ हि० गहन ] (१) हथियार आदि के ढकड़ने की गह। सूड। दुस्ता। कपडा।

**गुहा**—गह वैदना—उपर कच्ची तरह हाथ बैठना।

(२) किसी कमरे या कोठरी की ऊँचाई। (३) मकान का लंद। भोजिल।

**गहडोरना**—क्रि० प्र० [ अनु० ] मथकर गँडला करना। उ०—दूर कीजै द्वार सँ लजार छलची प्रपंची सुधा सँ सलिल सुकरी ज्यों गहडोरिहीं।—गुलसी।

**गहघरना**—क्रि० प्र० [ सं० गहर ] (१) घहराना। व्याकुल होना। उ०—नत खन खनने गहघर। रोडव छँडि पाँव छेह पर।—जायसी। (२) कण्ठा आदि के कारण (जी) भर आना। उ०—(क) कपि के चलत तिय को मनु गहघरि आयो।—गुलसी। (ख) बिलखी डमकैं हँ, पधन तिय छल्लि गहन बराह। पिय गहबरी आपुँ गँरे राखी गँरे लगाह।—बिहारी।

**गहघरना**—क्रि० प्र० दे० "गहघरना"।

क्रि० सं० व्याकुल करना। विकल करना। घबराहट में डालना।

**गहरी**—संज्ञा पुं० दे० "गहरा"।

**गह्वी**-संज्ञा पुं० [ सं० गह्विक ] (१) वह जो द्वार और सुगंधित तेल आदि बेचना हो। गंधी। (२) गुजराती वैद्यों की एक जाति।

**गाल मरिच**-संज्ञा स्त्री० [ हि० गाल + मरिच ] मरिच की जाति का एक प्रकार का मसूर फल।

**गाजारघोट**-संज्ञा पुं० [ ? ] कंजा नाम की कँडौली हवादी। वि० दे० "कंजा" (१)।

**गाजोमर्व**-संज्ञा पुं० [ गा० + मर्व ] (१) वह जो बहुत पन्ना धीर हो। (२) घोड़ा। अध। (बोलचाल)

**गाथ**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पदा। प्रस्ता। उ०—उपम गाथ सनाथ जय धनु श्री खुनाय जी हाथ के छीमो।—केजव।

**गालुख**-वि० [ हि० गाल + ख (पथ) ] (१) स्वयं बड़ बँडकर धातें करनेवाला। गाल ममानेवाला। यकनारी। (२) टाँग हँकनेवाला। सोखीवाज।

**गिजई**-संज्ञा स्त्री० [ सं० गिजन ] गिजई या कन सलाई नाम का वस्तु। वस्तु। (३) वस्तु। वि० दे० "गिजई"।

**गिनी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० गिनी माध ] एक प्रकार की विलायती

बारहमासी घास जो पशुओं के लिये बहुत दायर्यक और आरोग्यकारक होती है। इसे गौओं और भैंसों को खिलाते से उनका दूध बहुत बढ़ जाता है; और घोड़ों को खिलाने से उनका बल बहुत बढ़ जाता है। यह घास सभी प्रकार की जमीनों में मली मॉति हो सकती है, पर क्षार या सोदपायी जमीन में अच्छी नहीं होती। यद्यपि यह बीजों से भी बोई जा सकती है, पर जहाँ से बीना अधिक उगम समझा जाता है। यदि वर्षा ऋतु के आरंभ में यह बोई सी की बो दी जाय तो बहुत दूर तक फैल जाती है। इसके लिये घोड़े की सड़ी हुई लीद की खाद बहुत अच्छी होती है। यदि इस पर उचित ध्यान दिया जाय तो साल में दसको छः फसलें काटी जा सकती हैं।

**गिराव**-संज्ञा पुं० [ हि० गिरा + भाव (भाव) ] गिरने की क्रिया या भाव। पतन।

**गिरावट**-संज्ञा स्त्री० दे० "गिराव"।

**गिरिनेदी**-संज्ञा पुं० [ सं० गिरिनिन्दिर ] शिव के एक प्रकार के गण।

**गिरिबूटी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की चतुष्पत्ति जो शीघ्र के काम में आती है। संग बूटी। अंगुरोका। वि० दे० "अंगुरोका"।

**गीड**-संज्ञा पुं० [ सं० ग्रीका ] गरदन। उ०—दौरप नैन तीस गहँ देवा। दौरप गीड कंठी निति रेखा।—जायसी।

**गीवा**-संज्ञा पुं० [ सं० गीवा ] ग्रीवा। गरदन। उ०—राते स्वाम कंड हुइ गीवा। तेहि हुइ फंद डरीं सुदि जीवा।—जायसी।

**गुंडासिनी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का तृण जो वैद्यक में कटु, तिक्त, उष्ण और विष, दाह, शोथ तथा मग-दोष का नाशक कहा गया है।

**गुट्या**-संज्ञा पुं० [ गुट्याल ] गुट्याल। गुच्छमूलिका। चिपटा। तृणा-पत्री। ययास। टुट्टुल। विष्टरा।

**गुसुरी**-संज्ञा स्त्री० [ हि० गुसुर ] (२) वह मनु जिसके कान न हों या फटे हुए हों। बर्षी।

**गुडभा**-वि० [ सं० गुण ] गुण। छिगा हुआ। (वस्त्रिन)

**गुडमाना**-क्रि० सं० [ सं० गुण ] छिगाना। गुप्त करना।

**गुट्टी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० मंधि, हि० गौड ] (१) कोई मोटी गोल या लंबोवरी गाँठ। (२) दे० "दल्य" (१)।

**गुड ईचनिग**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संज्ञा के समय का अँगरेजी अभिवादन का यजन जो किसी से मिलने अथवा अलग होने के समय कहा जाता है और जिसका अभिप्राय है—यह संज्ञा आपके लिये शुभ हो।

**गुड नाइट**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रात के समय किसी से मिलने या विदा होने पर कहा जानेवाला एक अँगरेजी अभिवादन यजन जिसका अभिप्राय है—यह रात आपके लिये शुभ हो।

**गुड बाई**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किसी से विदा होने के समय कहा

जानेवाला अँगरेजी अभिवादन-वचन जिसका वास्तविक अभिप्राय है—ईश्वर तुम्हारे साथ रहे या तुम्हारा रक्षक हो।

**गुड मानिग-संज्ञा पुं०** [ अंग० ] किसी से मिलने या विश्वास होने के समय कहा जानेवाला एक अँगरेजी अभिवादन-वचन।

**गुडरू-संज्ञा पुं०** [ ? ] एक प्रकार की चिड़िया जिसे गडुरी भी कहते हैं। उ०—उर परेया पंडुक हेरी। वेहा गुडरू और घेरी।—जायसी।

**गुडिल्ला-संज्ञा पुं०** [ हिं० गुडिया ] (१) बड़ी गुडिया। (२) किसी की बनी हुई आकृति। मूर्ति। सुतला।

**गुडौल्ला-वि०** [ हिं० गुड + रूला (अर्थ०) ] (१) गुड का सा मीठा। (२) उत्तम। बढ़िया। (क०)

**गुदरू-संज्ञा पुं०** [ सं० गुड ] छिप कर रहने का स्थान। बच कर रहने की बगह।

**गुदनाळ-क्रि० प्र०** [ सं० गुड ] आइ में होना। छिपना। छुकना। उ०—लवि दास्त पिय-कर-कटक दास छुदावन काज। बरहिन बन माई दगनु रही सुवी करि लाज।—विहारी।

**गुणुनिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] नाटक में वह अनुष्ठान जो नट लोग अभिनय आरंभ करने से पहले विमों की शक्ति के लिये करते हैं। पूर्व रंग।

**गुदना-संज्ञा स्त्री०** [ हिं० गोदना ] वह स्त्री जिसके चरित्र पर गोदना गुदा हुआ हो। (पञ्चिम)

**गुदरनाळ-क्रि० प्र०** [ फा० गुदर + ना (अर्थ०) ] (१) ध्वस्त होना। धीतना। गुजरना। उ०—मंतर लेहु होहु सँग लागू। गुदर जाइ सब होइहि आगू।—जायसी। (४) उपस्थित किया जाना। पता होना।

**गुननाळ-क्रि० प्र०** [ सं० गुणन ] (१) मनन करना। विचार करना। जैसे,—पढ़ना गुनना। (२) समझना। सोचना। उ०—(क) सुनि चितउर राजा मन गुना। विधि-सँदेस मैं कासँ सुना।—जायसी। (ख) सुमति महासुनि सुनिये। तन, धन कै मन गुनिये।—केराव।

**गुनाहगार-वि०** [ ध० ] (१) गुनाह करनेवाला। पाप करनेवाला। (२) अपराध करनेवाला। कसूर करनेवाला। दोषी।

**गुनाहगारी-संज्ञा स्त्री०** [ फा० ] गुनाहगार का भाव। अपराधी या दोषी होने का भाव।

**गुप-वि०** दे० “गुप”।

**संज्ञा पुं०** [ अ० ] संतुष्टान होने का भाव। सहाय।

**गुपुतळ-वि०** दे० “गुप्त”।

**गुमान-संज्ञा पुं०** [ फा० ] (१) लोगों की चुरी धारणा। बद्-गुमानी। लोकापवाद। उ०—तुलसी जेपे गुमान कौ होतो कइ उपाड। तो कि जानिकिहि जानि जिय परिदहते रघुराज।—तुलसी।

**गुमर-संज्ञा पुं०** [ हिं० गुमर ] चेहरे या और किसी अंग पर

निकला हुआ बहुत बड़ा मोल मसा या मांस का लोथड़ा।

**गुरिदा-संज्ञा पुं०** [ फा० गौरदा ] गुस्तर। भेदिया। गोइदा। जैसे,—कोतवाल तथा उनके गुरिदों ने छेदाखल जी का जीवन भार-भूल कर दिया।—प्रताप।

**गुरीराळी-वि०** [ हिं० गुण + रूला (अर्थ०) ] (१) गुण का सा मीठा। (२) सुंदर। बढ़िया। उत्तम। उ०—मूर पास सौं भयो गुरीरा।—जायसी।

**गुदजा-संज्ञा पुं०** दे० “गुज”। उ०—तीसर खेडग बँद परलवा। कौष गुरुज हुत धाव न आवे।—जायसी।

**गुद समुदय-वि०** [ सं० ] ( राष्ट्र या राजा ) जो लड़ाई के लिये बड़ी मुश्किल से तैयार हो।

**गुलच-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रकार का फंद।

**गुल झुकीक-संज्ञा पुं०** [ फा० ] एक प्रकार का फूलदार पीथा जिसके बीसियों भेद पाए जाते हैं। यह प्रायः फागुन चैत या सावन भादों में लगाया जाता है।

**गुलफाम-वि०** [ फा० ] जिसके शरीर का रंग फूल के समान हो। सुन्दर। स्वयंभूत।

**गुल मलमल-संज्ञा पुं०** [ फा० ] (१) एक प्रकार का पीथा जिसके बीजों से पहले पनीरी तैयार करके तब पीथे लगाए जाते हैं। (२) इस पीथे का फूल जो देखने में मलमल की बुँदियों के समान जान पड़ता है। यह सफेद, लाल और पीला कई रंगों का तथा बहुत मुलायम और चिकना होता है।

**गुलरू-वि०** [ फा० ] फूल के समान आकृतिवाला। सुन्दर। स्वयंभूत।

**गुलाम चोर-संज्ञा पुं०** [ अ० गुलाम + हिं० चोर ] तारा का एक प्रकार का खेल जो दो से सात आठ आदमियों तक में खेला जाता है। इसमें एक गुलाम या और कोई पत्ता गड्डी से अलग कर दिया जाता है, और तब सब खेलनेवालों में बा-बर पत्ते बाँट दिए जाते हैं। हर एक खेलाड़ी अपने अपने पत्तों के जोड़ (जैसे,—दुष्की दुष्की, रूला रूला, दरल दरल) निकाल कर अंला रख देता है और सब एक दूसरे से एक एक पत्ता लेते हुए इसी प्रकार जोड़ मिलाकर निकालते हैं। अंत में जिसके पास अकेला गुलाम या निकाले हुए पत्ते का जोड़ बच रहता है, वही चोर और हारा हुआ समझा जाता है।

**गुलिस्त-संज्ञा पुं०** [ फा० ] (१) वह स्थान जहाँ फूलों के बहुत से पीथे आदि लगे हों। याग। उपवन। वाटिका। (२) फात्सी के प्रतिबद्ध कवि मोल सादी शीराजी का बनाया हुआ नीति सम्बन्धी एक प्रसिद्ध ग्रंथ।

**गुलमप-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक गुलम का भायक। शौक्लिक।

**गुवा-संज्ञा पुं०** [ सं० गुवाक ] सुपारी। उ०—कोइ जायकर लींग सुपारी। कोइ नरियर कोइ गुवा छुहारी।—जायसी।

गुहाई—संज्ञा स्त्री० [ हि० गुह्या ] (१) गुहने की क्रिया या भाव । (२) गुहने की समद्वारी ।

गुँगी—संज्ञा स्त्री० [ हि० गुँगा ] (१) दो-सुईं सॉप ।  
गुह्नीमी—संज्ञा पुं० [ सं० गुह्नीमीन् ] (१) वह जिसकी जीविका का पता न चलता हो । यह जितने संबंध में यह न पता हो कि वह किस प्रकार अपना निर्वाह करता है । (२) गुप्त रूप से बोरी, लडैती आदि के द्वारा जीवन निर्वाह करने-वाला व्यक्ति ।

गुप्त सराई—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वृक्ष जो पूर्वी हिमालय और त्रिवेणित्तः दारजिलिंग तथा आसाम में पाया जाता है । रोहू ।

गुप्त भौंग—संज्ञा स्त्री० [ हि० कृष्ण वृक्ष + भृङ्ग ] हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की भौंग का मादा पेड़ जिसकी टहनियों से देवे निकाले जाते हैं ।

गुह्जानत (वास)—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह दास जो घर में दासी से पैदा हुआ हो ।

गुह्यपातक व्यंजन—संज्ञा पुं० [ सं० ] सामान्य गुह्यरूप के रूप में रहनेवाले गुह्यवर जो लोगों के रहन सहन, आमदनी आदि की खबर रखते थे। ये समाहर्ताके अधीन रहते थे । (की०) गुह्यमंत्री—संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव" ।

गुह्यमुख—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मुख जो एक ही देश या राज्य के निवासियों में आपस में हो । अंतः कलह । गुह्यकलह ।

गुह्यसचिव—संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव" ।

गुहाधिपति—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) अक्रान्त का मालिक । मकान-दार । (२) राजभवन का प्रधान अधिकारी ।

गिशेष—वह राज-कर्मचारी जिसका काम राजभवन की देख-भाल रखना होता था, गुहाधिपति कहलाता था । (शुक्र नीति)  
गुहीतानुचर—संज्ञा पुं० [ सं० ] देने के बाद कुछ और दे देता । (की०)

गोटा—संज्ञा पुं० [ देश० ] मोका नाम का वृक्ष जिसकी छकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है । मोका । वि० दे० "मोना" ।

गोपपद—संज्ञा पुं० [ सं० ] नाट्य शास्त्र के अनुसार लास्य के दस अंगों में से एक । बीणा या तानपूरा आदि यंत्र लेकर आसन पर बैठे हुए केवल गाना ।

गैजेटियर—संज्ञा पुं० [ अंग० ] यह पुस्तक जिसमें कहीं का भौगोलिक वृष्ट घणानुक्रम से हो । भौगोलिक कोश । जैसे,—  
रिट्टिस्ट गैजेटियर, इंग्लैंड गैजेटियर ।

गैजेटेड अफसर—संज्ञा पुं० [ अंग० ] वह सरकारी कर्मचारी जिसकी नियुक्ति की सूचना सरकारी गैजेट में प्रकाशित होती है ।

गिशेष—सरकारी गैजेट में उन्हीं कर्मचारियों की नियुक्ति की सूचना प्रकाशित होती है जिनका पद बड़ा और महत्व का  
५०१२

समझा जाता है । इस प्रकार गवर्नर, हाक की नियुक्ति की सूचना गैजेट में निकलती है । सब इन्स्पेक्टर, जमादार, आदि छोटे कर्मचारियों की नियुक्ति गैजेट में नहीं निकलती ।  
गैजल—संज्ञा पुं० [ सं० गजल ] गजान । आकाश । आसमान । उ०—  
ओठे बने न हूँ सऊँ लगी सतर है गैज । शीरघ होहि न  
नैकहूँ फारि निहार्न गैज ।—बिहारी ।

गैर-सरकारी—वि० [ अ० गैर + कार० सरकारी ] जो सरकारी न हो । जो किसी सरकार या राज्य का (आदमी या नौकर) न हो । जिसका किसी सरकार या राज्य से संबंध न हो । जैसे,—गैर सरकारी सदस्य ।

गोद पट्टे—संज्ञा स्त्री० [ सं० गुंठ + पट्टा० पट्टे ] पानी में होनेवाली एक प्रकार की वनस्पति जिसके पत्ते मोठे और प्रायः एक-दूसरे चौड़े और चार पाँच फुट लंबे होते हैं । इसके पत्तों में से नए पत्ते निकलते हैं । इसमें ऊपर की ओर चानने की बाल के समान बाल भी छगती है जिसके ऊपर सईं होती हैं । इन सईं को से चढाईयाँ आदि बनती हैं । वैद्यक में यह कफली, मधुर, शीतल, रक्तपित्त नाशक और स्तन का वृध, शुक्र, रज तथा मूत्र को शुद्ध करनेवाली कही गई है ।

गो—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) उपोषित में मद्यत्रों की नी वीधियों में से एक ।

गोही—संज्ञा पुं० दे० "गोय" ।

गोहन—संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का मृग । उ०—दृतिन रोस  
छगना यन यसे । घीतर गोहन शॉल की ससे ।—जायसी ।

गोही—संज्ञा स्त्री० दे० "गोहयों" । उ०—मुनि निरुचे गैहर के  
गोह । गरे छागि पद्मभावत रोह ।—जायसी ।

गोट—संज्ञा पुं० [ हि० गोल ] तोप का गोला । उ०—जिन्हके गोट  
कोट पर जाहीं । जेहि साकहिं चूकहिं तेहि नार्हीं ।—जायसी ।

गोटा—संज्ञा पुं० [ सं० शुटिका ] (१) चौपड़ का मोहरा । गोट । गोटी । उ०—अलक सुभंगिनि तेहि पर छोडरा । छिप-धर  
एक खेल बुद्ध गोटा ।—जायसी । (२) तोप का गोला । उ०—औ जौं लुटहिं बख कर गोटा । विसरहिं सुमुति होइ  
सय रोटा ।—जायसी ।

गोट्टे—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की घटिया चिकनी सुपारी ।

गोड्डागी—संज्ञा स्त्री० [ हि० गोड + गी ] (२) जूता ।

गोड्डाप्राही—संज्ञा स्त्री० [ हि० गोड + प्रा + ही = जाने के सूत्र  
के शब्द का अर्थ ] (१) किसी मंडल में घूमने की क्रिया ।  
पार्ह । मंडल देना । (२) किसी स्थान पर बार बार आने  
की क्रिया । छाना पार्ह ।

गोड्डाही—संज्ञा स्त्री० [ हि० गौड + ही ] गौड वृक्ष ।

गोदती—संज्ञा स्त्री० [ सं० गोदत ] एक प्रकार का मणि वा बहु-  
सूत्र पत्थर ।

गोप—संज्ञा पुं० [ सं० ] (८) गाँव का मुखिया या पदवारी जो गाँव

के हिस्सों और लोगों के स्वत्व आदि का लेखा रखता था।  
 छीं। वि० [ सं० गुप्त ] छिया हुआ। गुप्त। उ०—छाछया  
 जस सुन्दर अलौष्ट। ओढ़ई सो आनि रहा करि गोपू—जायसी।  
 गोपीता—संज्ञा स्त्री० [ सं० गोपी ] गोप-कन्या। गोपी। ( छ० )  
 उ०—उन्ह भौंदिनि सरि कैउ न जीता। अछरी छपौं छपौं  
 गोपीता।—जायसी।

गोप्याधि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह धन जो घर में छिपा कर रखने  
 के लिये गिरवी रखा जाय।

गोमुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (३) सर्पसारी नामक मूत्र। (कौ०)  
 गोरान—संज्ञा पुं० [ सं० म० मैनवैव ] चीरी नाम का वृक्ष जिसकी  
 छाल से रंग निकाला और चमड़ा सिसया जाता है।

गोल मेज काफ़रनेन्स—संज्ञा स्त्री० दे० “राउंड टेबुल काफ़रनेन्स”।  
 गोलिग—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल की एक प्रकार की  
 गाड़ी। (कौ०)

गोलफ—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का अँगरेज़ी खेल जो बंदे  
 और गेंदों से खेला जाता है।

गौं—संज्ञा स्त्री० [ सं० गम ] (३) घम। बाल। डंग। उ०—कल  
 कुंडल पीतनी चार अति चलत मत्त गज गौं हैं।—तुलसी।

गौनहर—संज्ञा स्त्री० दे० “गौनहारी”।

गौनहारिन—संज्ञा स्त्री० दे० “गौनहारी”।

गौनहारी—संज्ञा स्त्री० [ हिं गाना + हारी (शाली) ] एक प्रकार की  
 गानेवाली छियाँ जो कई एक साथ मिलकर बोलक पर या  
 राहनाई आदि के साथ गाती हैं। इनकी कोई विशेष जाति  
 नहीं होती। प्रायः घर से निकली हुई छोटी जाति की छियाँ  
 ही आकर इनमें सम्मिलित हो जाती हैं और गाने बजाने  
 तथा फसव कमाने लगती हैं।

गौरा—संज्ञा पुं० [ सं० गोपेचन ] गौरोचन नामक सुगंधित द्रव्य।  
 उ०—रचि रचि सजने चंदन चौरा। पोते भगर मेद औ  
 गौरा।—जायसी।

गौरीपट्ट—संज्ञा पुं० [ सं० ] शिव जी की जलहरी, जिसे जलधरी  
 या अरधा भी कहते हैं।

गौरुयटी—संज्ञा स्त्री० [ दे० ] करभई या अमली नाम का झाड़ी-  
 दार पौधा। वि० दे० “करभई”।

गौलिमक—संज्ञा पुं० [ सं० ] शं० सिपाहियों का नायक या अफसर।  
 गौहरा—संज्ञा पुं० [ हिं गौ + हरा ] गायों के रंजने का रंथान। गौंदा।  
 ग्रंथिभेद—संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) वह चोरी जो द्रव्य के साथ बंधी  
 गाँठ काटकर की जाय। गाँठ काटना। गिरहकटी।

ग्रंथन—संज्ञा पुं० [ सं० ग्रंथि = कुटिलता ] (२) वह जो छल कपट  
 करता हो। कुटिल। (३) छुट। उपद्रवी।

ग्रामकंटक—संज्ञा पुं० दे० “ग्रामद्रोही”।

ग्रामकूट—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) गाँव का मुखिया या चौधरी।

विशेष—कौटिल्य के समय में इनके पीछे भी गुप्तचर रहते थे,

जो इनकी ईमानदारी की जाँच करते रहते थे।

ग्रामद्रोही—संज्ञा पुं० [ सं० ] ग्राम की मर्यादा या नियम का भंग  
 करनेवाला। ग्रामकंटक।

विशेष—प्राचीन काल में ग्राम के प्रबंध और संगठन आदि  
 नियमों का भार गाँव की पंचायत पर ही रहता था। जो  
 लोग उक्त पंचायत के निर्णय के विरुद्ध काम करते या  
 उसका नियम तोड़ते थे, वे ग्रामद्रोही कहलाते और दंड के  
 भागी होते थे।

ग्रामर—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्याकरण।

ग्रामहट्टार—संज्ञा पुं० [ सं० ] ग्राम का मुखिया या चौधरी। ग्रामहट्ट।

ग्रेट ब्रिटेन—संज्ञा पुं० [ सं० ] इंग्लैंड, वेल्स और स्कॉटलैंड।

ग्लास—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) शीशा। (२) दे० “गिलास”।

ग्वारफली—संज्ञा स्त्री० [ हिं ग्वार + फली ] ग्वार नामक पौधे की  
 फली जिसकी तरकारी बनती है। वि० दे० “ग्वार”।

ग्वैठा—वि० [ हिं गैठ का मनु ] पूंछा हुआ। देड़ा मेड़ा। उ०—  
 सौं हैं हूँ हय्यो न तै केती धाई सौंह। पटो, बगौं वैठी किए  
 पैंठी ग्वैठी भौंह।—विहारी।

घँसना—कि० सं० दे० “घिसना”।

घट—संज्ञा पुं० [ सं० ] (५) नौ प्रकार के दिव्यों में से एक जिसे  
 तुला भी कहते हैं। वि० दे० “तुला परीक्षा”।

घटकर्ण—संज्ञा पुं० दे० “कुंभकर्ण”। उ०—जपति दसकंठ घट-  
 करन बारिदनाद कदन कारन कालनेमि हंता।—तुलसी।

घटना—कि० प्र० [ सं० घटन ] (३) उपयोग में आना। काम  
 आना। उ०—जाम कहा मानुष सन पापु। काम बचन मन  
 सपनेनु कथहुँक घटत न काम परापु।—तुलसी।

घटस्थापन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी मंगल कार्य या पूजन  
 आदि के समय, विशेषतः नवरात्र में, घड़े में जल भरकर  
 रखना जो कल्याणकारक समझा जाता है। (२) नवरात्र  
 का आरंभ, या पहला दिन जिसमें घट की स्थापना होती है।

घटिकास्थान—संज्ञा पुं० [ सं० ] यात्रियों के ठहरने का स्थान।  
 पथिकशाला। घड़ी। सराय।

घटेदश्या—संज्ञा पुं० [ हिं घाटी = गला ] पशुओं का एक प्रकार  
 का रोग जिसमें उनका गला फूल जाता है।

घड़ी—संज्ञा स्त्री० [ सं० घट ] घड़ा का खोलिग और अल्पार्थक रूप।  
 छोटा घड़ा।

घन—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१५) घरीर। उ०—कंप सुख्यो घन स्नेद  
 घटयो, सजु रोम उख्यो, अँलियाँ भरि आई।—मतिराम।

घनदार—वि० [ सं० घन + दार (धाय) ] घना। गुमान।

घनपेल—संज्ञा स्त्री० [ सं० घन + पेल (पेल) ] एक प्रकार का बेल।  
 उ०—बहुत फूल फूली घनपेली। केवड़ा, चपा कुट चमेली।

—जायसी।

घनश्याम—संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) रामचन्द्र जी। उ०—गोकु की

भाग लगी परिवर्द्धन आह गये घनश्याम विद्वाने।—केशव ।  
घनसार—संज्ञा पुं० [ सं० ] कपूर । उ०—गारि राख्यो घंदन  
बगारि राख्यो घनसार।—मतिराम ।

घरजाया—संज्ञा पुं० [ हि० घर + जाया = बलब ] दास । गुलाम ।  
उ०—राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि, गुलसी  
तिहारो घर-जायउ ई घर को।—गुलसी ।

घरीश्री—संज्ञा स्त्री० दे० "बदिया" ।

घायौ—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] (१) ओर । तरफ । (२) अवसर ।  
वार । दफा ।

कि० वि० ओर से । तरफ से ।

घाघस—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की बदिया और बड़ी मुरगी ।  
घाता—संज्ञा पुं० [ हि० घात या घाळ ] वह मोड़ी सी चीज जो  
सौदा खरीदने के बाद ऊपर से ही या दी जाती है । घाल ।  
घल्ला ।

घाघपत्ता—संज्ञा पुं० [ हि० घान + पत्ता ] एक प्रकार की लता  
जिसके पत्ते पान के आकार के, प्रायः एक बालिशत लंबे  
और ८-१० अंगुल चौड़े होते हैं और तीचे की ओर कुछ  
सफेदी लिए होते हैं । यह घावों पर उनको सुखाने और  
पोषण पर उनको बढ़ाने के लिये बाँधा जाता है । पैसा  
प्रसिद्ध है कि यदि यह साँधा बाँधा जाय तो कच्चा फोड़ा  
पककर फूट जाता है ; और यदि उलटा बाँधा जाय तो  
बहता हुआ फोड़ा सूख जाता है । मालवा में इसे तबियसर  
कहते हैं ।

घिरितल—संज्ञा पुं० [ सं० घृत ] घृत । घी । उ०—अपने  
हाथ देव नहवावा । कलस सहस्र एक घिरित भरवा।—  
जायसी ।

घिरिन परेया—संज्ञा पुं० [ हि० घिरनी = चर + परेया ] (१)  
गिरहवाज क्यूतर । (२) कौटिल्या पक्षी जो मछली के लिये  
पानी के ऊपर मँडराता रहता है । उ०—(क) कहँ बह  
और कँवल-रस-लेवा । आह परे होइ घिरिन परेया।—  
जायसी । (ख) घिरिन परेया गीठ उठवा । चहै मोल तम-  
चूर सुनावा।—जायसी ।

घोऊआर—संज्ञा पुं० [ सं० घृङ्गया० ] एक प्रसिद्ध धूप जो खारी  
रेतीली जमीन पर अथवा नदियों के किनारे अधिकता से होता  
है । इसके पत्ते ३-४ अंगुल चौड़े, हाथ सेट हाथ लंबे, दोनों  
किनारों पर अनीदार, बहुत मोटे और गूदेदार होते हैं जिनके  
अंदर हरे रंग का और लंबीला गुद्दा होता है । यह गुद्दा  
बहुत पुष्टिकारक समझा जाता और कई रोगों में स्प्यहृत  
होता है । पलुवा इसी के रस से बनाया जाता है । वैद्यक  
में यह शीतल, कड़वा, कृपणाशक और निष, खाँसी, विष,  
श्वस तथा कृच्छ आदि को दूर करनेवाला माना गया है ।  
पनों के बीच से एक मोटा बंडा वा धूपला निकलता है जो

मधुर और कृमि तथा पिचनशाक कहा गया है । इसी बंडे  
में छाल फूल निकलता है जो भारी और बात, पिच तथा  
कृमि का नाशक बतलाया गया है ।

घीसाळ—संज्ञा पुं० [ हि० घिसना ] घिसने या रगड़ने की क्रिया ।  
रगड़ । मँजा । उ०—खरिका लाइ करे तन भीसू । निषर  
न होइ करे इबलीसू ।—जायसी ।

घुटना—कि० सं० [ भ्रु० मि० सं० घुटना ] जोर से पकड़ना या  
कसना । उ०—किरिदि हुओ सन फेर घुटे कै । सातहु फेर  
गँडि सो एकै ।—जायसी ।

घुत्तुरा—संज्ञा पुं० [ घुत्तुर से भ्रु० ] शींगुर नाम का कीड़ा ।

घुँटा—संज्ञा पुं० [ सं० घुंटा, हि० घुटना ] टाँग और जाँच के बीच  
का जोड़ । घुटना । उ०—मुँहुणखारि मुकुहरु निजै सोस सञ्जल  
कर द्वाइ । मीरु उचै घुँटुनु तँ नारि सरोवर न्हाइ ।—बिहारी ।  
घेंटी—संज्ञा स्त्री० [ हि० घोंघी या सं० कृकटिका ] गले और कंधे  
का जोड़ ।

घेरुआ—संज्ञा पुं० [ हि० घेरना ] वह छोटा गड्ढा जो नाली आदि  
में पानी रोकने के लिये बनाया जाता है । शिर्रा ।

घेसी—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार का देवदार जो हिमालय में  
होता है । इसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है । यरकर ।

घोड़ानस—संज्ञा स्त्री० [ हि० घोडा या घोडा + नस ] वह मोड़ी मस  
जो परे में पड़ी से ऊपर की ओर गई होती है । कहते हैं कि  
यह नस कट जाने पर आदमी या पशु मर जाता है (क्योंकि  
शरीर का प्रायः सारा रक्त इसी के मार्ग से निकल जाता है) ।

घ्राणक—संज्ञा पुं० [ देश० ] उतना तेलहन जिसका एक बार में  
घरने के लिये कोल्हू में डाला जाय । घानी ।

घ्रियेष—इस शब्द का प्रयोग संवत् १००२ के एक शिलालेख  
में आया है जिसमें लिखा है कि हर घाणक पीठे नारायण देव  
आदि ने एक एक पत्नी तेल मंदिर के लिये दिया । इस शब्द  
की श्रुत्यक्ति का संस्कृत में पता नहीं लगाता, यद्यपि 'घानी'  
या 'घान' शब्द अब तक इसी अर्थ में बोला जाता है ।

चंद्र-पापाण—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पथर जिसमें से चंद्र-किरणों  
का दर्शन होने से जल की बूँदें टपकने लगती हैं । चंद्रकाल ।  
उ०—चंद्र की चँदिनी के परसें मनीं, चंद्रपखान पहार बले  
चै ।—मतिराम ।

चकारा—संज्ञा पुं० [ हि० चक्रवा ] (सो० चक्र) चक्रवक्र । चक्रवा ।  
उ०—नैकु निमेष न छायायल मैन चकी चितवै तिय देव-  
तिया की ।—मतिराम ।

चक्रावर—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गाड़ीवान ।

चक्रापथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) गाड़ी की लीक । (२) गाड़ी चलने  
का मार्ग ।

चट्ट—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की दूब जिसे खुरिया भी कहते हैं ।  
चतुरोई—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] राँच घः हाथ ऊँची एक प्रकार की



झाड़ी जो हिमालय में हजारों से नैपाल तक १००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। इसकी छाल सफेद रंग की होती है और कागुन चैत में इसमें पीले रंग के छोटे फूल लगते हैं। इसकी लकड़ी के रस से एक प्रकार की रसोत बनाते हैं।

घट्टुःशाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह मकान जिसमें चार, चढ़े चढ़े कमरे हों। (२) चौपाल। धैठक। दीवानखाना।

घपरनाल-कि० प्र० [ सं० चरल ] सेती करना। जल्दी करना। उ०—सरल चक्रगति पंचमह घपरि च चितवत काहु। तुलसी सूधे सर ससि समय विडंबत राहु।—तुलसी।

घभना-कि० प्र० [ ? ] कुचला जाना। दरोरा खाना। उ०—रहौ ठीठु छारसु गहँ सुसंहरि गयौ न सुह। मुखो न मनु मुखानु सुभि भी चूरनु चापि चूर।—बिहारी।

घरचनाल-कि० सं० [ सं० चरन ] (१) पहचानना। उ०—वेला घर, धन गुरु-गुन गावा। खोजत पृथि परम रस पाया।—जायसी।

घरिअवधक कृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह धन जो किसी के पास किसी शर्त पर गिरवी रखा जाय।

घरीद-संज्ञा पुं० [ का० चरिद या हि चरना ] यह जानवर जो चरने के लिये निकला हो। ( निकारी )

घर्मकरपट्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] चमड़े का बड़ा कुप्पा जिसके सहारे नदी के पार उतरा जाय। ( कौ० )

घलचा-संज्ञा पुं० [ दे० ] ढाक। पलास।

घलमित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह मित्र (राजा) जो सदा साथ न दे सके। वि० दे० “अनर्थ सिद्धि” ( कौ० )

घहचहाद-संज्ञा स्त्री० [ हि० चहचहाना + द (प्रत्य०) ] चहचहाने की क्रिया या भाव।

घाँचर-संज्ञा पुं० [ दे० ] सालपान नाम का छुप। वि० दे० “सालपान”।

घाँप-संज्ञा स्त्री० [ हि० चपना ] (१) दवाय। (२) रेल पेल। धका। उ०—कोह काहू न सेमारे होत आप तसं थोप। घरति आपु कहँ कौप सरग आपु कहँ कौप।—जायसी।

घाह-संज्ञा पुं० [ हि० चाव ] चाय। उमंग। उ०—किय हाहलु चित-चाह लगि भग्नि पाहलु। तुय पाह। पुनि सुनि सुनि मुँह मधु-पुनि क्यो न लालु ललचाह।—बिहारी।

घाकलेट-संज्ञा पुं० [ सं० चोक्लेट = एक प्रकार की मिठाई ] सुन्दर लडका जिसके साथ प्रकृत-विरुद्ध कर्म किया जाय। छँडा।

घाकसू-संज्ञा पुं० [ सं० चतुष्पा (१) निर्मली का धृक्ष या पीत।

घाटुकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) सोने के तार में पिरोप मोतियों की यह माला जिसके बीचों-बीच एक तरलक मणि हो। ( धृहसंहिता )

घारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह कैद जिसमें न्यायाधीश बिचारकाल में किसी को रखे। हवालत।

घार-प्रवार-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुहघर छोड़ना। सुक्रिया सुल्लिष पीछे लगाना। ( कौ० )

घारितल-संज्ञा पुं० [ हि० चार ] पशुओं के चरने का चारा। उ०—घरनि-धेनु चारितु चरत प्रजा सुबच्छ पेन्हाह। हाय कट्टु नहि लागिहे किपु गोदु की गाय।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [ सं० ] (चलाया जानेवाला) धारा। उ०—चारितु चरति कसम दुकरम कर-मतत जीवगन पासी।—तुलसी।

घार्घा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की सड़क जो ६ हाथ चौड़ी होती थी।

घार्ज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) किसी काम का भार। कार्यभार। जैसे,—(क) उन्होंने ३ तारीख को आफिस का चार्ज ले लिया। (ख) लार्ड रीडिंग ने २ तारीख को चर्चर्ड में, जहाज पर, नये वायसराय को चार्ज दिया।

कि० प्र०—देना।—लेना।

(२) संरक्षण। सपुर्तगी। देखरेख। अधिकार। जैसे,—सरकारी अस्पताल सिविल सर्जन के चार्ज में है। (३) अभियोग। आरोप। इलजाम। जैसे,—मालूम नहीं, अदालत ने उन पर क्या चार्ज लगाया है।

कि० प्र०—लगाना।—लगाना।

(४) दाम। मूल्य। जैसे,—(क) आपके प्रेस में छपाई का चार्ज अन्य प्रेसों की अपेक्षा अधिक है। (ख) इतना चार्ज मत कीजिये।

कि० प्र०—करना।—देना।—पढ़ना।

(५) किराया। भाड़ा। जैसे,—अगर आप टाकसाड़ी से जायेंगे तो आपको ड्योरा चार्ज देना पड़ेगा।

कि० प्र०—देना।—लगाना।

घाट्टर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह लेख जिसमें किसी सरकार की ओर से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार देने की बात लिखी रहती है। सनद। अधिकारपत्र। जैसे,—घाट्टर पेट्ट। (२) किसी शर्त पर जहाज को किराये पर लेना या देना। जैसे,—चीनी व्यापारियों ने माल ब्यादने के लिये हाल में दो जापानी जहाज घाट्टर किए हैं।

वि० [ सं० घाट्टर ] जो राजा की सनद से स्थापित हुआ हो। जैसे,—महाराजा की छोटसँ पेट्टस से स्थापित होने के कारण कलकत्ते, मद्रास, बंबई और इलाहाबाद के हाहकोर्ट घाट्टर हाहकोर्ट कहते हैं।

घाला-संज्ञा पुं० [ हि० घालना = धानना ] एक प्रकार का कृत्य जो किसी व्यक्ति के मर जाने पर उसकी पोश्री आदि की क्रिया की समाप्ति पर रात के समय किया जाता है। इसमें एक चलनी में राख या बाल आदि डाल कर उसे छानते हैं, और जमीन पर गिरी हुई राख या बाल में बनेनेवाली आकृतियों से इस बात का अनुमान करते हैं कि मृत व्यक्ति भगले

जन्म में किस यौनि में जायगा। यह कृत्त्य प्रायः घर की कोई बड़ी बूझी ही प्रकार में करती है, और उस समय किसी को, विशेषतः बालकों को, वहाँ नहीं आने देती।

**चिकिया-संज्ञा पुं०** [दे०] एक प्रकार का रेशमी या टसर का कपड़ा। चिकट। उ०—चिकिया चीर मपीना होने। मोति छाग औ छापे सोने।—जायसी।

**चित्त-संज्ञा पुं०** [सं०] (२) रामानुजाचार्यके अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो जीव-पद-वाच्य, भोक्ता, अपरिच्छिन्न, निर्मल ज्ञान स्वरूप और नित्य कहा गया है। (दोप दो पदार्थ अचित्त और ईश्वर हैं।)

**चित्तप्रताप-संज्ञा पुं०** [सं०] जिते ही चित्त पर जला देने का बूँद। विशेष—जो भी पुरुष का खून कर देती थी, उसको चंद्रगुप्त के समय में जिते जी जला दिया जाता था। (कौ०)

**चित्तमंग-संज्ञा पुं०** [सं०] यदिकाश्रम के एक पर्वत का नाम।

**चित्ती-संज्ञा स्त्री०** [हिं० चित्त = संकेत दाग] (२) एक और कुछ रंगड़ा हुआ हमली का चित्र जिससे छोटे लड़के जूआ खेलते हैं।

**चिशोय-हमली के चिपूँ** को लड़के एक ओर इतना रंगदते हैं कि उसके ऊपर का काला छिलका बिलकुल निकल जाता है और उसके अंदर से सफेद भाग निकल आता है। दो तीन लड़के मिल कर अपनी अपनी चित्ती एक में मिलाकर फेंकते हैं और दौब पर चिपूँ लगाते हैं। फेंकने पर जिस लड़के के चिपूँ का सफेद भाग ऊपर पड़ता है, वह और लड़कों के दौब पर लगाए हुए चिपूँ जित लेता है।

**चित्र-वि०** [सं०] चित्र के समान ठीक। दुरस्त। उ०—बाँके पर मुद्रि बाँक करेहीं। रानिहि कोट चित्र के लेहीं।—जायसी।

**चित्रता-संज्ञा** सं० [सं० चित्र + ता (प्रत्य०)] (१) चित्रित करना। चित्र यनाना। चित्रना। उ०—चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि केरावदास निहारि। अनु विधरूप की अमल आरसी रची विरिचि विचारि।—केशव। (२) रंग भरना। चित्रित करना।

**चित्रभोग-संज्ञा पुं०** [सं०] राजा का वह सहायक या खैरखाह जो ग्राम, बाजार, वन आदि में मिलनेवाले पदार्थों तथा गाड़ी, घोड़े आदि से समय पर सहायता करे। (कौ०)

**चित्रमति-वि०** [सं० चित्र + मति] विचित्र बुद्धिवाला। जिसकी बुद्धि बिलक्षण हो। उ०—विचामित्र पवित्र चित्रमति यामदेव पुनि।—केशव।

**चिरम-संज्ञा स्त्री०** [दे०] गुंजा। धुँवधी। उ०—गाह, तस्नि-कुच उच पद चिरम ठायी सय गाँउ। सुँद रोकर रहिहै बड़े उ हो माल जनि गाँउ।—विहारी।

**चिरला-संज्ञा पुं०** [दे०] एक प्रकार की छोटी, झाड़ी जो पंजाब, अफगानिस्तान, यलोचिम्पान और फारस में होती है। यह

महीनों तक बिना पत्तियों के ही रहती है। इसमें काले रंग के मीठे फल लगते हैं जिनका व्यवहार औषध में होता है।

**चिरिहार-संज्ञा पुं०** [हिं० चिदिधा + हार = बाल (प्रत्य०)] पक्षी फँसानेवाला। बहेलिया। उ०—जौ न होत चारा के आसा। किन चिरिहार दुकत लेहै छासा।—जायसी।

**चिल्ली-संज्ञा स्त्री०** [हिं० चिली] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी छाल गहरे खाकी रंग की होती है और जिस पर सफेद चितियाँ होती हैं। यह देहरादून, रुहेलखंड, अथवा और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ एक सालित से कुछ कम लंबी होती हैं और गामी के दिनों में यह फलता है। इसके फल मछलियों के लिये जहर होते हैं।

**चीना-संज्ञा पुं०** [सं० चीनक] चीनी कपूर।

**चीनी-संज्ञा पुं०** [दे०] एक प्रकार का छोटा पौधा जो पंजाब और पश्चिम हिमालय में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं।

**चीफ जस्टिस-संज्ञा पुं०** [अंग०] हाईकोर्ट का प्रधान न्यायाधीश। प्रधान विचारपति।

**चुनवट-संज्ञा स्त्री०** [हिं० चुनना + वट (प्रत्य०)] चुनने की क्रिया या भाव। चुनट।

**चुनौती-संज्ञा स्त्री०** [हिं० चुनना] (३) वह आह्वान जो किसी को वाणिवाद्द करके अधवा और किसी प्रकार किसी विषय का निर्णय या अधवा पक्ष प्रमाणित करने के लिये दिया जाता है। प्रचार।

**चुष्की-संज्ञा स्त्री०** [सं० चूष] (५) चमकी या सितारे जो खियाँ अपना सौंदर्य बढ़ाने के लिये माथे और कपोलों पर चिपकाती हैं। उ०—तिलक सँवारि जो चुष्की रची। दुइज मौस जानहुँ कचपची।—जायसी।

**मुद्गा-संज्ञा** चुष्की रचना—पल्लव और कपोलों पर सितारे या चमकी लगाना।

**चुवा-संज्ञा पुं०** [हिं० चौघा = चार पैरों वाला] पशु। चौपाया। उ०—चार चुवा चहुँ ओर चलेँ छपटें सपटें। सो तर्माचर तौकी।—तुलसी।

**चुहुटना** किं० प्र० [हिं० चिमटना] चिमटना। चिपकना। पकड़ना।

जिं० चिमटनेवाला। चिपकने या पकड़नेवाला। उ०—हंसि उतारि हिय तें दईं तुम उ तिहि दिना लाल। राखति मान कर ज्यों बड़े चुहुटनी-माल।—विहारी।

विशेष—यहाँ चुहुटनी शब्द मिलत है। इसका एक अर्थ धुँवधी या गुंजा और दूसरा अर्थ चिपकने या पकड़नेवाली है।

**चुहुटनी-संज्ञा स्त्री०** [दे०] गुंजा। धुँवधी। उ०—हंसि उतारि हिय तें दईं तुम उ तिहि दिना लाल। राखति मान कर ज्यों बड़े चुहुटनी माल।—विहारी।

**चूक-संज्ञा स्त्री०** [हिं० चूकना] (३) छल। कपट। फरेव। दगा

खोला । उ०—(क) अहो हरि बलि सौं चूक करी ।—  
परमानन्ददास । (ख) धरमराज सौं चूक करि दुरयोधन के  
लीन्ह । राजपाट अरु बित सब यनीयास दी दीन्ह ।—  
छट्टु ।

चूड़ी—संज्ञा स्त्री० [ हि० चूड़ा ] वे छोटी छोटी मेहरावें जिनमें कोई  
यादी मेहराव विभक्त रहती है ।

चूना—कि० शब्० [ सं० चूवन ] (४) गर्भपात होना । गर्भ गिरना ।  
(क०) उ०—दिकपालन की सुवपालन की, लोकपालन की  
किन मातृ गईं र्वै ।—केशव ।

चूर्णा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (७) तोल में ३२ रत्नी मोतियों की संख्या  
के हिसाब से मिश्र मिश्र लक्षियों ।

चेंज—संज्ञा पुं० [ अंग० ] (१) ( एक स्थान से दूसरे स्थान को )  
वायु-परिवर्तन के लिये जाना । वायु-परिवर्तन । हवा बदल-  
ना । जैसे,—डाक्टरों की सलाह से वे चेंज में गए हैं ।

(२) ( किसी जंकरान पर ) एक गाड़ी से उतर कर दूसरी  
पर चढ़ना । बदलना । जैसे,—मुगलसराय में चेंज करना  
पड़ेगा । ( ३ ) यद्दे सिकों का छोटे सिकों में बदलना ।

विनिमय । जैसे,—(क) आपके पास नोट का चेंज होगा ?  
(ख) टिकट बावू को नोट दिया है, चेंज ले लें तो चलता हूँ ।

चेता पुं० सं० चि० ] (१) संज्ञा । होना । बुद्धि । (२)  
स्थिति । याद । ( पश्चिम )

मुद्दा—चेता भूलना=याद न रहना । रमण न रहना ।

चौटना—कि० सं० [ हि० चिकोटी या चनु० ] गोचना । तोड़ना ।  
उ०—यदत निकसि कुच कोर रचि कदत गौर भुजमूल । मनु  
लुटिगी लोटनु चदत चौंटात ऊँचे फूल ।—बिहारी ।

चोका पुं० सं० चूषण ] चूसने की क्रिया । चूसना ।

मुद्दा—चोका लगाना=मुँह लगा कर चूसना । उ०—ते छकि रस  
नव कैल करेहीं । चोका लाह अथर रस लेहीं ।—जायसी ।

चोढ़ा पुं० सं० [ ? ] उरसाह । उमंग । उ०—मूँझ गरे सिर मोर-  
पला मतिराम हों गाय चराचत चोढ़े ।—मतिराम ।

चोभा—संज्ञा पुं० [ हि० चोभना ] (२) एक प्रकार का औजार जिसमें  
लकड़ी के दस्ते या लहू में भागे की ओर चार पाँच मोटी  
सूइयाँ लगी रहती हैं और जिससे आँवले या पंटे भादि का  
गुरब्बा बनाने के पहले उसे इसलिये काँचते हैं कि उसके  
अंदर तक रस या शीराँ चला जाय ।

चोभाकारी—संज्ञा स्त्री० [ हि० चोभना + कारी ] बहुमूल्य  
पर्यारों पर रत्नों या सोने भादि का ऐसा जड़ाव जो कुछ  
उभरा हुआ हो ।

चौकड़ा—संज्ञा पुं० [ देश० ] करील का पौधा ।

चौक—संज्ञा पुं० [ हि० चार या सं० चतुष्क ] (१०) चार का समूह ।

उ०—बुनि सारोही सिंगार जस चारिहु चौक कुलीन । दीरघ  
चारि चारि छपु चारि सुभट चौ खीन ।—जायसी ।

चौगून—संज्ञा स्त्री० [ हि० चौगुना ] (१) चौगुना होने का भाव ।

(२) आरंभ में गाने या बजाने में जितना समय लगाया  
जाय, आगे चल कर उसके चौथाई समय में गाना या  
बजाना । दून से भी आधे समय में गाना या बजाना ।

विशेष—प्रायः किसी चीज के गाने या बजाने का आरंभ धीरे  
धीरे होता है, पर आगे चलकर उसकी छय बढ़ा दी जाती है  
और यही गाना या बजाना जल्दी जल्दी होने लगता है । जब  
गाना या बजाना साधारण समय से आधे समय में हो, तब  
उसे दून, जब तिहाई समय में हो, तब उसे तिगून और  
जब चौथाई समय में हो, तब उसे चौगून कहते हैं ।

चौघड़ा—संज्ञा पुं० [ हि० चौ + घर ] (१) एक प्रकार का वाजा ।  
चौदोल । उ०—सौं गुपार तेहस गज पावा । हुंहुमि औ  
चौघड़ा दियावा ।—जायसी ।

चौघड़िया—वि० [ हि० चौ = चार + घड़ी + रस (प्रत्य०) ] चार  
घड़ियों का । चार घड़ी संबंधी । जैसे,—चौघड़िया मुहूर्त्त ।  
संज्ञा स्त्री० [ हि० चौ = चार + गौडा = बाग ] एक प्रकार की  
छोटी ऊँची चौकी जिसमें चार पाये होते हैं । तिरपाई । झूल ।

चौघड़िया मुहूर्त्त—संज्ञा पुं० [ हि० चौघड़िया + सं० मुहूर्त्त ] एक  
प्रकार का मुहूर्त्त जो प्रायः किसी जल्दी के काम के लिये, एक  
दो दिन के अंदर ही निकाला जाता है ।

विशेष—जब कोई शुभ मुहूर्त्त दूर होता है और यात्रा या इसी  
प्रकार का और कोई काम जल्दी करना होता है, तो इस  
प्रकार मुहूर्त्त निकलवाया जाता है । ऐसा मुहूर्त्त दिन के  
दिन या एक दो दिन के अंदर ही निकल जाता है । ऐसा  
मुहूर्त्त घड़ी, दो घड़ी या चार घड़ी का होता है; और उतने  
ही समय में उस कार्य का आरंभ कर दिया जाता है ।

चौदोल—संज्ञा पुं० [ हि० चौ + डोल ? ] एक प्रकार का बाजाँ जिसे  
चौघड़ा भी कहते हैं । उ०—आंस पास पाजत चौदोल ।  
हुंहुमि शौंस दूर बफ डोला ।—जायसी ।

चौधारी—संज्ञा स्त्री० [ हि० चौ = चार + धार ] वह कपड़ा  
जिसमें बाड़ी और वेदी धारियाँ बनी हों । चारदाना ।  
उ०—पेमचा दोरिया औ चौधारी । साम, सेत, पीयर  
हरियारी ।—जायसी ।

चौमी—संज्ञा स्त्री० [ हि० चोभना ] नाँगर या नगरा-से मिला  
हुआ हल का यह भाग जिसमें फाल लगा होता है और  
उताई के समय जिसका कुछ भाग फाल के साथ जमीन के  
अंदर रहता है ।

छंदसासिनी—वि० स्त्री० [ सं० ] स्वतन्त्र जीविकावाली । ( स्त्री )  
जो किसी दूसरे पर निर्भर न करती हो । ( कौ० )

छतगीर—संज्ञा स्त्री० दे० "छतगीरी" ।

छतगीरी—संज्ञा स्त्री० [ हि० छत + गीर ] (१) वह कपड़ा या  
बँदिनी जो किसी कमरे में ऊपर की ओर शोभा के लिये लप

मे सही हुई देगी रहती है। (२) यह कपड़ा जो रात को सोने के समय ओस आदि से रक्षित रहने के लिये परलंग के ऊपरी भाग में (उसके पायों के ऊपर चारों ओर चार इंचे लगाकर) तान दिया जाता है।

उत्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चमड़े का कृष्ण आदि जिसके सहारे नदी पार करतते थे। (कौ०)

छन-संज्ञा पुं० [ सं० घण ] पर्य का समय। पुण्यकाल। उ०—सागर उजागर की बहु बाहिनी की पति छन दान म्रिय किर्त्ती मूरज अमल है।—कैदाव।

छनदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० छयदा ] (२) चित्रली। विद्युत्। उ०—नम मंडल है छिति मंडल है, छनदा की छटा छहरान छगी।—मतिराम।

छरना-कि० सं० [ सं० घण ] कथा अलग करने के लिये चावल को फटक कर साफ करना।

कि० प्र० (१) चावल का फटक कर साफ किया जाना। (२) छँट कर अलग होना। दूर होना। उ०—जेहि जेहि मग सिय राम छपन गय तहाँ तहाँ नर भारि विनु छट छरिगे।—तुलसी।

छिड़झड़ी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० छिड़झा ] छिंद्रिय के ऊपर का वह अगल भावण जो बाहर की ओर कुछ बढ़ा हुआ होता है और जो मुसलमानों में खतने या मुसलमानी के समय काट दिया जाता है।

छिन्नधान्य (सैन्य)-संज्ञा पुं० [ सं० ] (वह सेना) जिसके पास धान्य न पहुँच सकता हो।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि छिन्नधान्य तथा छिन्नपुरण-वीच्य (जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो) सैन्य में छिन्नधान्य उत्तम है; क्योंकि यह दूसरे स्थान से धान्य लाकर या स्थावर तथा जंगम (घरकारी तथा मांस) आहार कर लड़ाई लड़ सकता है। सहायता न मिलने के कारण छिन्नपुरण वीच्य यह नहीं कर सकता। (कौ०)

छिन्नपुरण वीच्य (सैन्य)-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सेना जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो।

छिरना-कि० प्र० दे० "छिलना"। उ०—मदरि क तार तेहि कर बीरु। सो पहिरे छिरि जाइ सरिरु।—जायसी।

छोटा-संज्ञा पुं० [ सं० छि, हिं० छोटना ] (६) किसी चीज पर पड़ा हुआ कोई छोटा दाग। जैसे,—दूध नग पर कुछ छोटे हैं।

छुछमछुछी-संज्ञा स्त्री० [ सं० छुछ, पुं० हिं० छुछम + मछली ] मेंदक के बच्चे का एक आरंभिक रूप जो लंबी सूँझाले कीड़े या मछली के बच्चे का सा होता है। इसके उपरांत कई रूपान्तर होने पर तब यह अपने अंतिम छुछपद रूप में आता है।

छुछैया-वि० [ हिं० छुछाना + ऐया (पत्य०) ] छुछानेवाला। बचाने-वाला। रक्षक।

छोटा स्त्री० [ हिं० छोटना + ऐया (अप्य०) ] किसी दूसरे के हाथ की गुदबुनी या पतंग को उड़ाने के लिये कुछ दूर पर जाकर, दोनों हाथों से पकड़ कर ऊपर आकाश की ओर छोड़ना या हवा में उड़ाना।

कि० प्र०—देना।

विशेष—जिस समय हवा कम होती है और गुदबुनी या पतंग आदि के उड़ने में कुछ कठिनाता होती है, उस समय एक दूसरा आदिनी पतंग या गुदबुनी को, पकड़ कर कुछ दूर ले जाता है; और तब वहाँ से उसे ऊपर की ओर छोड़ता या उड़ता है, जिससे वह सहज में और जल्दी उड़ने लगती है।

छुद्रावली-संज्ञा स्त्री० दे० "छुद्रावतिका"। उ०—कति छुद्रावलि अमरन पूरा। पायुध पहिरे पावल चूरा।—जायसी।

छेचना-कि० सं० [ सं० छेपण ] (२) ऊपर डालना।

मुहा०—जी पर छेचना = अपने ऊपर विपत्ति बाँटना। बी पर छेकना। उ०—(क) जो मस कोई जिय पर छेया। देवता भाई करहिं नित सेवा।—जायसी। (ख) औरँ खोति जस पाये केवा। गुह्य कारन में जिय पर छेवा।—जायसी।

छोहनार्थ-कि० प्र० [ हिं० छोह = प्रेम + नार्थ (अप्य०) ] प्रेम करना। अनुवारा करना।

छोड़ाई-संज्ञा पुं० [ सं० संकप, हिं० छोकरा ] [खो० छोई] छड़का। पालक। उ०—छलिन की छोड़ी सो निगोड़ी छोटी जति पॉति कीन्ही छीन भाउ में सुनारी भोंडे भील की।—तुलसी।

छुनना-कि० सं० [ हिं० छुनाना ] छुनाना। स्पर्श करना। उ०—है कपूर मनिसय रही मित्रि तन-दुति मुकतालि। छिन छिन पारी विषविछनी लखति ह्याह तिनु भालि।—विहारी।

जंकशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह स्थान जहाँ दो या अधिक रेलवे लाइनें मिली हों। जैसे,—मुंगलसराय जंकशन। (२) वह स्थान जहाँ दो रास्ते मिले हों। संगम। जैसे,—कावेज स्टीज और हैरिसन रोड के जंकशन पर गहटा दंगा हो गया।

जंगेला-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसे धीरी, मामरी और रूही भी कहते हैं। वि० दे० "रूही"।

जंघाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] १२० हाथ लम्बी, १६ हाथ चौड़ी और १२½ हाथ चौकी नाव।

जंपना-कि० प्र० [ सं० जम्पन ] कहन। कथन करना। उ०—मैं कवि भूषण जंपत है लखि संपति की अलक्षपति लानी।—भूषण।

जंबुर-संज्ञा पुं० दे० "जंबूर"। उ०—हावन मीर बहादुर जंगी। जंबुर कमीने तीर सदर्गी।—जायसी।

अणुबंध-वि० [ सं० अणु + बंध ] जिसकी चंदना संसार को।

धोखा । उ०—(क) अहाँ हरि बलि सों चूक करी।—  
परमानन्ददास । (ख) धरमराज सौं चूक करि दुरबोधन है  
लखिन्ह । राज-पाठ भर वित्त सब धनीवास है दीन्ह ।—  
लखू ।

चूड़ी—संज्ञा स्त्री० [ हि० चूड़ा ] वे छोटी छोटी मेहरायेँ जिनमें कोई  
पदी मेहराय विभक्त रहती है ।

चूना—कि० प्र० [ सं० च्यवन ] (१) गर्भपात होना । गर्भ गिरना ।  
(क०) उ०—दिकपालन की शुचपालन की, लोकपालन की  
किन मातु गई च्यै ।—केदाव ।

चूर्णा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) तोल में ३२ रत्ती मोतियों की संख्या  
के हिसाब से भिन्न भिन्न लड़ियों ।

चँज—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) (एक स्थान से दूसरे स्थान को)  
वायु-परिवर्तन के लिये जाना । वायु-परिवर्तन । हवा बदल-  
ना । जैसे,—बाबरों की सलाह से वे चँज में गए हैं ।

(२) ( किसी जंकरान पर ) एक गाड़ी से उतर कर दूसरी  
पर चढ़ना । बदलना । जैसे,—मुगलसराय में चँज करना  
पड़ेगा । ( ३ ) बड़े सिक्कों का छोटे सिक्कों में बदलना ।  
विनिमय । जैसे,—(क) आपके पास नोट का चँज होगा ?

(ख) टिकट बाबू को नोट दिया है, चँज ले लें तो चलता हूँ ।  
चेता † संज्ञा पुं० [ सं० चित्त ] (१) संज्ञा । होना । बुद्धि । (२)  
स्मृति । याद । ( पश्चिम )

मुहा०—चेता भूलना=याद न रहना । स्मरण न रहना ।  
चौटना—कि० सं० [ हि० चिकोटी या प्रनु० ] नोचना । तोड़ना ।  
उ०—इदंत निकसि कुच कोर रुचि कदत गौर भुजगुल । मनु  
लुरिगौ लोट्यु चदत चौंठत अँचै फूल ।—बिहारी ।

चोका †—संज्ञा पुं० [ सं० चूपण ] चूसने की क्रिया । चूसना ।  
मुहा०—चोका लगाना=मूँह लगा कर चूसना । उ०—ते छकि रस  
न केलि करेहीं । चोका लाह अवर रस लेहीं ।—जायसी ।

चोढ़ †—संज्ञा पुं० [ ? ] उरसाह । उमंग । उ०—मूँज गरे सिर मोर-  
पला मतिराम हों गाय चरायत चोढ़े ।—मतिराम ।

चोमा—संज्ञा पुं० [ हि० चोमना ] (२) एक प्रकार का औजार जिसमें  
लकड़ी के दस्ते या लट्टू में भागे की ओर चार पाँच मोटी  
सूइयाँ लगी रहती हैं और जिससे आँवले या पेठे आदि का  
सुरखा बनाने के पहले उसे इसलिये काँचते हैं कि उसके  
अंदर तक रस या शीरा बल जाय ।

चोमाकारी—संज्ञा स्त्री० [ हि० चोमना + कारी ] बहुमूल्य  
पत्थरों पर रत्नों या सोने आदि का ऐसा नक्काश जो कुछ  
उमरा हुआ हो ।

चौकड़ा—संज्ञा पुं० [ देश० ] करील का पौधा ।  
चौक—संज्ञा पुं० [ हि० चार या सं० चतुर्क ] (१०) चार का समूह ।  
उ०—मुनि सोरहो सिंगार जस चारिहु चौक कुलीन । दीरघ  
चारि चारि छपु चारि सुभट चौ जीन ।—जायसी ।

चौगुन—संज्ञा स्त्री० [ हि० चौगुना ] (१) चौगुना होने का भाव ।

(२) धारभ में गाने या बजाने में जितना समय लगाया  
जाय, आगे चल कर उसके चौथाई समय में गाना या  
बजाना । दून से भी आधे समय में गाना या बजाना ।

विशेष—प्रायः किसी चीज के गाने या बजाने का धारभ धीरे  
धीरे होता है, पर आगे चलकर उसकी लय बढ़ा दी जाती है  
और वही गाना या बजाना जल्दी जल्दी होने लगता है । जब  
गाना या बजाना साधारण समय से आधे समय में हो, तब  
उसे दून, जब तिहाई समय में हो, तब उसे तिगुन और  
जब चौथाई समय में हो, तब उसे चौगुन कहते हैं ।

चौघड़ा—संज्ञा पुं० [ हि० चौ + घर ] (१) एक प्रकार का याना ।  
चौदोल । उ०—सौ हुपार तेइस गज पावा । हुंदुमि औ  
चौघड़ा दियावा ।—जायसी ।

चौघड़िया—वि० [ हि० चौ = चार + घड़े + रथा (मय०) ] चार  
घड़ियों का । चार घड़ी संबंधी । जैसे,—चौघड़िया मुहूर्त्त ।  
संज्ञा स्त्री० [ हि० चौ = चार + गोड़ा = पावा ] एक प्रकार की  
छोटी अँधी चौकी जिसमें चार पावे होते हैं । तिरपाई । स्टूल ।

चौघड़िया मुहूर्त्त—संज्ञा पुं० [ हि० चौघड़िया + सं० मुहूर्त्त ] एक  
प्रकार का मुहूर्त्त जो प्रायः किसी जल्दी के काम के लिये, एक  
दो दिन के अंदर ही निकाला जाता है ।

विशेष—जब कोई शुभ मुहूर्त्त दूर होता है और यात्रा या हसी  
प्रकार का और कोई काम जल्दी करना होता है, तो इस  
प्रकार मुहूर्त्त निकलवाया जाता है । ऐसा मुहूर्त्त दिन के  
दिन या एक दो दिन के अंदर ही निकल आता है । ऐसा  
मुहूर्त्त घड़ी, दो घड़ी या चार घड़ी का होता है, और उतने  
ही समय में उस कार्य का धारभ कर दिया जाता है ।

चौहोल—संज्ञा पुं० [ हि० चौ + होल ] एक प्रकार का बाजा जिसे  
चौघड़ा भी कहते हैं । उ०—भास पास बाजत चौहोल ।  
हुंदुमि शॉस घर बफ दोला ।—जायसी ।

चौधारी—संज्ञा स्त्री० [ हि० चौ = चार + धारा ] वह कपड़ा  
जिसमें आधी और बेड़ी धारियाँ बनी हों । चारखाना ।  
उ०—पेमचा धोरिया औ चौधारी । साम, सेत, पीया  
हरियारी ।—जायसी ।

चौभीरी—संज्ञा स्त्री० [ हि० चोभना ] नगर या नगर से मिला  
हुआ हल का वह भाग जिसमें फाल लगा होता है और  
उतार्ह के समय जिसका कुछ भाग काल के साथ जमीन के  
अंदर रहता है ।

छुंदासिनी—वि० स्त्री० [ सं० ] स्वतन्त्र जीविकावाली । ( स्त्री )  
जो किसी दूसरे पर निर्भर न करती हो । ( कौ० )

छतगीर—संज्ञा स्त्री० दे० "छतगीरी" ।

छतगीरी—संज्ञा स्त्री० [ हि० छत + गीर ] (१) वह कपड़ा या  
चौदनी जो किसी कमरे में ऊपर की ओर बोभा के लिये लाना

से सटी हुई हैगी रहती है। (२) यह कपड़ा जो रात को सोने के समय ओस आदि से रक्षित रहने के लिये पलंग के ऊपरी भाग में (उसके पायों के ऊपर) धारो धार धार ढंढे लगाकर) तान दिया जाता है।

छत्ति-संज्ञा की० [ सं० ] चमड़े का कृपाया आदि जिसके सहारे नदी पार वतलते थे। (की०)

छन-संज्ञा पुं० [ सं० छय ] पर्व का समय। पुष्यकाल। उ०—सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति छन दान प्रिय किर्षी चरान भमल है।—केशव।

छनदा-संज्ञा की० [ सं० छयदा ] (२) विजली। विद्युत्। उ०—नम मंडल है छिति मंडल है, छनदा की छटा छहरान लगी।—मतिराम।

छरना-कि० सं० [ सं० चय ] कत्ता भलग करने के लिये चावल को फटक कर साफ करना।

कि० प्र० (१) चावल का फटक कर साफ किया जाना। (२) छँट कर भलग होना। दूर होना। उ०—जैहि जेहि मग सिय राम लखन गए तहाँ तहाँ नर नारि विनु छट छरिये।—गुलसी।

छिछुड़ी-संज्ञा की० [ हि० छिच्छा ] किंवाद्रिय के ऊपर का यह अगत्या आवरण जो बाहर की ओर कुछ बढ़ा हुआ होता है और जो मुसलमानों में खतने या मुसलमानों के समय काट दिया जाता है।

छिन्नधान्य (सैन्य)-संज्ञा पुं० [ सं० ] (यह सेना) जिसके पास धान्य न पहुँच सकता हो।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि छिन्नधान्य तथा छिन्नपुरण-वीथ (जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो) सैन्य में छिन्नधान्य उच्चम है; क्योंकि यह दूसरे स्थान से धान्य लाकर या ध्वार तथा जंगम (तकरीरी तथा मोस) आहार कर, लड़ाई लड़ सकता है। सहायता न मिलने के कारण छिन्नपुरण वीथय यह नहीं कर सकता। (की०)

छिन्नपुरण वीथय (सैन्य)-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह सेना जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो।

छिरना-कि० प्र० दे० "छिलना"। उ०—मकरि क तर तेदि कर चीरू। सो पहिरे छिरि जाइ सरीरू।—जायसी।

छीटा-संज्ञा पुं० [ सं० छि, हि० छीटा ] (६) किसी चीज पर पड़ा हुआ कोई छोटा दाग। जैसे,—हस नाग पर कुछ छीटे हैं।

छुटमछुली-संज्ञा की० [ सं० छुट, पु० हि० छुटन + मछली ] मेंदक के बच्चे का एक आर्यिक रूप जो लंबी पूँछवाले कीड़े या मछली के बच्चे का सा होता है। इसके उपरांत कई रूपान्तर होने पर तब यह अपने असुखी चतुष्टय रूप में आता है।

छुट्टी-संज्ञा-वि० [ हि० छुट्टाना + येया (प्रत्य०) ] छुट्टानेवाला। यधाने-वाला। रक्षक।

छोटा की० [ हि० छोटना + येया (प्रत्य०) ] किसी दूसरे के हाथ की गुदड़ी या पतंग को उड़ाने के लिये कुछ दूर पर जाकर, दोनों हाथों से पकड़ कर ऊपर आकाश की ओर छोड़ना या हवा में उड़ाना।

कि० प्र०—देना।

विशेष—जित्त समय हवा कम होती है और गुदड़ी या पतंग आदि के उड़ने में कुछ कठिनता होती है, उस समय एक दूसरा आरामी पतंग या गुदड़ी को, पकड़ कर कुछ दूर ले जाता है; और तब वहाँ से ठले ऊपर की ओर छोड़ता या उड़ता है, जिससे वह सहज में और जल्दी उड़ने लगती है।

छुद्रावली-संज्ञा की० दे० "छुद्रावटिका"। उ०—कटि छुद्रावलि भभरन पूरा। पायस पहिरे पायल चूरा।—जायसी।

छेचना-कि० सं० [ सं० छेपण ] (२) ऊपर डालना।

मुहा०—जी पर छेचना=भयने ऊपर विषय हासना। की पर खेलना। उ०—(क) जो अस कोई जिय पर छेवा। देवता भाई करहि नित सेवा।—जायसी। (ख) और खोजि जस पाई केवा। तुम्ह कारन मैं निय पर छेवा।—जायसी।

छोहना-कि० प्र० [ हि० छोह = प्रेम + ना (प्रत्य०) ] प्रेम करना। अनुप्राण करना।

छोड़ा-संज्ञा पुं० [ सं० शोकर, हि० शोका ] [श्री० शौरी] लड़का। पालक। उ०—छलिन की छोड़ी सो निगोदी छोयी जाति पाति कीन्ही लीन भापु में सुनारी भोंदे भील की।—गुलसी।

छूना-कि० सं० [ हि० छुलना ] छुलाना। स्पर्श करना। उ०—है कहर मनियय रही मिठि तन-द्रुति मुकतोळि। छिन छिन खरी विषयिछनी लखति ह्याइ तिनु आलि।—बिहारी।

अंकशान-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) यह स्थान जहाँ दो या अधिक रेलवे लाइनें मिली हों। जैसे,—मुगलसराय अंकशान। (२) यह स्थान जहाँ दो रास्ते मिले हों। संगम। जैसे,—कालेज स्ट्रीट और हिरसन रोड के अंकशान पर गहरा दंगल हो गया।

अंगोला-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का दूर जिसे चीरी, सामरी और रूदी भी कहते हैं। वि० दे० "रूदी"।

अंजोला-संज्ञा की० [ सं० ] १२ हाथ लम्बी, १६ हाथ चौड़ी और १२ हाथ ऊँची नाय।

अंपना-कि० प्र० [ सं० अरपन ] कहना। कर्त्तव्य करना। उ०—यों कवि रूपण अंपत है लखि कृति को अलकापति खाने।—भूपण।

अंबुर-संज्ञा पुं० दे० "अंबूर"। अंबुर-आशुन मीर महादुर जंती। अंबुर कमीने तीर, अंबुर-जायसी।

अगपद-वि० [ सं० अगपद ] जिसकी पंढना संसार करे।

संसार द्वारा पूजित । उ०—आपनची तु तज्यो जगवंद है ।—केदार ।

जगरन<sup>१</sup>—संज्ञा पु० दे० “जागरण” । उ०—जगन्नाथ जगरन के भाई । मुनि दुवारिका जाइ नहाई ।—जायसी ।

जगसूर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० जगत् + सूर ] राजा । ( पर्व ) उ०—बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा । ए जगसूर ! सीउ मोहिं लाग्या ।—जायसी ।

जजमेट—संज्ञा पुं० [ अ० ] कैसला । निर्णय । जैसे,—जामेले की सुनवाई हो चुकी; अभी जजमेट नहीं सुनाया गया ।

जह<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० दे० “यज्ञ” । उ०—केन वारि समुसावै भँवर न काटेवैय । कहे मरौं तै चितवउर जाऊ करौं अमुमेप ।—जायसी ।

जान-संत्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० जन + संत्या ] किसी स्थान पर बसने या रहनेवाले लोगों की गिनती । आयादी । जैसे,—(क) काशी की जन संख्या दो लाख के लगभग है । (ख) कलकत्ते की जन संख्या में बंधई की अपेक्षा इस यार कम वृद्धि हुई है ।

जानी—संज्ञा स्त्री० [ सं० जाननी ] एक प्रकार की ओपधि जिसे पपड़ी या पानकी भी कहते हैं । यह पीतल, बर्णकारक, फँसली, कड़वी, हलकी, अमिदीपक, रुचिकारक तथा रक्तपित्त, कफ, श्थिर-विकार, कोष्ठ, दाह, वमन, तृषा, विष, मुजली और मण का नाश करनेवाली कही गई है ।

जनी<sup>४</sup>—संज्ञा पुं० [ हिं० जानना ] मानो । उ०—जब भा चेत उद्य वैरागा । बाउर जनीं सोइ उठ जागा ।—जायसी ।

जपना<sup>५</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० जपन ] यजन करना । यज्ञ करना । उ०—बहत महा मुनि जाग जपो । नीच निस्तावर देत दुसह दुख कूस तनु ताप तपो ।—तुलसी ।

जपा<sup>६</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० जप ] वह जो जप करता हो । जप करनेवाला । उ०—मठ मंडप चहुँ पास सँवारे । तपा जपा सय आसन मारे ।—जायसी ।

जमकात<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० दे० “जमकातर” । उ०—बिजुरी चक फिरे चहुँ फेरी । औ जमकात फिरे जम कैरी ।—जायसी ।

जमकातर—संज्ञा स्त्री० [ सं० जम + कर्तृ ] (२) एक प्रकार की छोटी तलवार ।

जम-दिशा<sup>८</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० जम + दिशा ] दक्षिण दिशा जिसमें यम का निवास माना जाता है । उ०—मेप सिंह धन पूर्य यसै । बिरिह मकर कन्या जम-दिसे ।—जायसी ।

जम-रस्ती—संज्ञा स्त्री० [ सं० जम + रस्ती ] चौरों नाम का वृक्ष जिसकी जड़ सोंप के फाटने की बहुत अच्छी ओपधि समझी जाती है ।

जमवार<sup>९</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० जमवार ] यम का द्वार । उ०—सिंहल द्वीप अंध औतारु । जहुँदीप जाइ जमवारु ।—जायसी ।

जबफर<sup>१०</sup>—संज्ञा पुं० दे० “जायफल” । उ०—जयफर लौं गा सुपारि ओहारां । गिरिच होइ जो सहै ज क्षारा ।—जायसी ।

जया—वि० [ सं० ] जय दिलानेवाली । विजय करानेवाली । उ०—तीग अष्टमी तेरसि जया । चौथि चतुरदसि नवमी रव्या ।—जायसी ।

जरद झाड़ो—संज्ञा स्त्री० [ फ० जरद + झाड़ो ] काली अंठी की तरह की एक प्रकार की बड़ी झाड़ी जिसकी लंबी टहनियों के सिरों पर कटेट होते हैं । यह देहरादून से म्यान और खासिया की पहाड़ी तक, ७००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है । दक्षिण में कनाडा और लंबा तक भी होती है । इसमें फागुन चैत में फल लगते हैं और वैशाख जेठ में फल पकते हैं जो फफे भी खाए जाते हैं और अचार डालने के भी काम में आते हैं ।

जरनलित्त<sup>११</sup>—संज्ञा पुं० दे० “पत्रकार” ।

जरना<sup>१२</sup>—संज्ञा पुं० दे० “जड़ना” ।

जराऊ<sup>१३</sup>—वि० दे० “जराऊ” । उ०—पौरि कवठ जराऊ पाऊँ । दीन्हि असीस आइ तेहि ठाऊँ ।—जायसी ।

जराफत—संज्ञा स्त्री० [ म० ] जरीफ होने का भाव । मसखरा-पन ।

जरी<sup>१४</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० जरी ] जड़ी । पृथी । उ०—तब सो जरी अमृत छेह आवा । जो मरे हुत तिन्ह छिरिकि जियावा ।—जायसी ।

जरीफ—संज्ञा पुं० [ म० ] परिहास करनेवाला । मसखरा । टट्टे-बाज । मसौलिया ।

जल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) धर्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य । वि० दे० “दिव्य” ।

जल-चादर—संज्ञा स्त्री० [ सं० जल + हिं० चादर ] किसी ऊँचे स्थान से होनेवाला जल का झीना और विस्तृत प्रवाह । उ०—सहज सेज पंचतोरिया यह रत अति छवि होति । जल-चादर के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ।—बिहारी ।

जलोप-प्रायः धनवानों और राजाओं आदि के उद्यानों में शोभा के लिये इस प्रकार जल का प्रवाह कराया जाता है, जिसे जल-चादर कहते हैं । कभी कभी इसके पीछे आले बनाकर उनमें दीपकों की पंक्ति भी जलाई जाती है जिससे रात के समय जलचादर के पीछे जगमगाती हुई दीपावली बहुत शोभा देती है ।

जल-हमकमध्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] भूगोल में जल की वह पतली प्रणाली जो दो बड़े समुद्रों या जलों के मध्य में हो और दोनों को मिलाती हो ।

जलधर्म—संज्ञा पुं० [ सं० जल-धर्म ] मंत्रों आदि से जल का स्तनन करने या उसे रोकने की क्रिया । जल-स्तनन । उ०—स्वतं विधा जल परस यिन पतियतु मो मन ताल । कहुं जानत जलधर्म यिधिं तुजोयन लौं छाल ।—बिहारी ।

जलसेना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह सेना जो जहाजों पर चढ़कर

समुद्र में युद्ध करती हो। जहाजी बंदों पर रहनेवाली फौज।  
 नौसेना। समुद्री सेना।

जल-सेनापति—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सेनापति, जिसकी अधीनता में जल-सेना हो। समुद्री सेना का प्रधान अधिकारी जिसकी अधीनता में बहुत से लड़ाई के जहाज और जल-सैनिक हों। जल या नौसेना का प्रधान या अध्यक्ष। नौसेनापति।

जलेबी—संज्ञा स्त्री० [ हिं० जलब ] (७) एक प्रकार की आतिवायागी जो मिट्टी के कसोरे में कुछ मसाले आदि रखकर और ऊपर कागज थिपका कर बनाई जाती है।

जवाहरात—संज्ञा पुं० [ अ० ] जवाहर का बहुवचन रूप। बहुत से या अनेक प्रकार के रत्न और मणि आदि। जैसे,—अब उन्हें कपड़े का काम छोड़ कर जवाहरात का काम शुरू किया है।

जखूँद—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसके रेशों से रस्से आदि बनते हैं। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और मेज डुरसी आदि बनाने के काम में आती है। इसे नताउल भी कहते हैं। वि० दे० "नताउल"।

जसोवाल—संज्ञा स्त्री० दे० "जसोदा"। उ०—सो हम मातृ जसोवे, मोहिं न जानहु वार। अई राजा बलि बोधा छोरीं पंडि पवार।—जायसी।

जस्टिफार्ड—संज्ञा पुं० [ अ० ] कंपोज किए हुए मटर को इस सहूलियत से धोना या कसना कि कोई लाइन या पंक्ति लेंची नीची या कोई अक्षर दृष्टर उभर न होने पावे। जैसे,—इस पेज का जस्टिफार्ड ठीक नहीं हुआ है।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

जस्टिस—संज्ञा पुं० [ अ० ] वह जा न्याय करने के लिये नियुक्त हो। न्यायाधीश। विचारपति। न्यायमूर्ति। जैसे,—जस्टिस सुंदरलाल।

विशेष—हिंदुस्थान में हाईकोर्ट के जज 'जस्टिस' कहलाते हैं।

जस्टिस आफ दि पीस—संज्ञा पुं० [ अ० ] [ संविधान रूप ने० प० ] स्थानीय छोटे मैजिस्ट्रेट जो शांति रक्षा, छोटे मोटे मामलों आदि का विचार करने के लिये नियुक्त किए जाते हैं। नातिरक्षक।

विशेष—यंत्रों में कितने ही प्रतिष्ठित भारतीय जस्टिस आफ दि पीस हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता। इन्हें आनरेरी मैजिस्ट्रेट ही सम्मना चाहिए। जज, मैजिस्ट्रेट आदि भी जस्टिस आफ दि पीस कहलाते हैं। अपने महल्ले या आसपास में दंगा फसाद होने पर ये जस्टिस आफ दि पीस या नातिरक्षक की हैसियत से शांति-रक्षा की व्यवस्था करते हैं।

जॉगर—संज्ञा पुं० [ देश० ] प्लाटी वंशज जिसमें से अब हाड़ लिया गया हो। उ०—उलसी त्रिलोक की सद्यद्वि सौन संपदा अकलि चाकि रासी रासि जॉगर जहान मो।—उलसी।

जाखिनीश—संज्ञा स्त्री० दे० "यतिनी"। उ०—जायकर जाखिनी-

पुत्रा। चहै सो भांव देखावै दूजा।—जायसी।

जागना—क्रि० प्र० [ सं० वागण्य ] (९) प्रसिद्ध होना। महाहूर होना। उ०—खायो खींचि मीनि में तेरो नाम लिया रे। तेरे बल बलि आहु छैं जग जागि जिया रे।—उलसी।

जाहूँ—संज्ञा स्त्री० [ हिं० जाट ] हिसार, करनाल और रोहतक के जाटों की बोली जिसे बोंगहू या हरियानी भी कहते हैं।

जाति-चरित्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] जातीय रहन सहन तथा प्रथा। (कौ०)

जाति-धर्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) जिस जाति में मनुष्य उत्पन्न हुआ हो, उसका विशेष आचार या कर्तव्य।

विशेष—प्राचीन काल में अभियोगों का निर्णय करते हुए जाति-धर्म का आदर किया जाता था।

जाप—संज्ञा स्त्री० [ सं० जप ] मंत्र या नाम आदि जपने की माला। जप माला। उ०—विरह भभूत जटा वैरागी। छाला कौंय जाप कैंड छायी।—जायसी।

जायँ—वि० [ अ० जा = लोक ] ठीक। उचित। वाजिब। मुनासिब। जैसे,—जुम्हारा कहना जायँ है।

जायंट—वि० [ अ० ] साथ में काम करनेवाला। सहयोगी। संयुक्त। जैसे,—जायंट सेक्रेटरी। जायंट पृथ्वर।

जायंट मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [ अ० ] फौजदारी का वह मैजिस्ट्रेट या हाकिम जिसका दर्जा जिला मैजिस्ट्रेट के नीचे होता है और जो प्रायः नया सिविलियन होता है। जट।

जाय—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] चने और उदद की भून कर पकाई हुई दाल।

जायरी—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की छोटी हाथी जो बुंदेलखंड और राजपूताने की पथरीली भूमि में नदियों के पास होती है।

जालरंध्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] घर में प्रकाश आने के लिये झरोखे में लगा हुई जाली या उसके छेद। उ०—जालरंध्र मग अँगुनु की कणु उजास सौ पाह। पीठि दिप जगयौ रखी कीटि झरोखे काह।—विहारी।

जालिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (७) समूह। उ०—प्रनतजन कुमुद-धन इन्दुकर जालिका। जटसि अभिमान महिसे बहु कालिका।—उलसी।

जाया—संज्ञा पुं० [ हिं० वागन या वागना ] यह मसाला जिससे शराब चुआई जाती है। बेसवार। जाया।

जिनिभू—अर्थ० [ हिं० जनि ] सत। नहीं। उ०—जिनि कदार गर लावसि समुसि देसु मन आप। सकति औट जौं कादे महा दोष औ पाप।—जायसी।

जिययथाह—संज्ञा पुं० [ सं० जीव + यथ ] जहाड़।

जिला बोर्ड—संज्ञा पुं० [ अ० प्रिज + अ० बोर्ड ] किसी जिले के दर-दाताओं के प्रति-निधियों की यह सभा जिसका काम अपने अधीनस्थ ग्राम बोर्डों की सहायता से गवर्नों की सड़कों की



संसार द्वारा पृथित । उ०—आपनपौं जु तज्यो जगयंद है ।—केदार ।

जगरनल्ल—संज्ञा पुं० दे० “जागरण” । उ०—जगसाथ जगरन के भाई । पुनि दुवारिका जाइ नहार्ह ।—जायसी ।

जगसूर—संज्ञा पुं० [ सं० जगत् + सूर ] राजा । ( पव० ) उ०—बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा । ए जगसूर ! सीउ मोहिं छागा ।—जायसी ।

जजमेट—संज्ञा पुं० [ अ० ] कैसला । निर्णय । जैसे,—प्रामेले की सुनवाई हो चुकी, अमी जजमेट नहीं सुनाया गया ।

जहश—संज्ञा पुं० दे० “यज्ञ” । उ०—केन यारि ससुसाव भँवर न काटैयेव । कहे मरौं तै चितउ जश । हरौं असुमेय ।—जायसी ।

जन-संख्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० जन + संख्या ] किसी स्थान पर बसने या रहनेवाले लोगों की गिनती । ज्ञायादी । जैसे,—(क) कानो की जन संख्या दो लाख के लगभग है । (ख) कलकत्ते की जन संख्या में बंधई की अपेक्षा इस या कम बढ़ि हुई है ।

जनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० जननी ] एक प्रकार की ओषधि जिसे पर्वटी या पानवी भी कहते हैं । यह शीतल, वर्णकारक, कसैली, कड़वी, हलकी, अग्निदीपक, रुचिकारक तथा रक्तपिच, कफ, रुधिर-विकार, कोढ़, दाह, यमन, मृषा, विष, खुजली और म्रग का नाश करनेवाली कही गई है ।

जनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जानना ] मानो । उ०—जब भा चेत उठा बैरागा । चाउर जनीं सोह उठ जागा ।—जायसी ।

जपना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यजन करना । यज्ञ करना । उ०—बहत महा मुनि जाग जपो । नीव निसाचर देत तुसह दुख कूस तनु ताप तपो ।—मुलसी ।

जपा—संज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञ जो जप करता हो । जप करनेवाला । उ०—मठ मंडप चहुँ पास सँवारे । तपा जपा सब भासन मारे ।—जायसी ।

जमकात—संज्ञा पुं० दे० “जमकातर” । उ०—बिजुरी चक फिरि चहुँ फेरी । औ जमकात फिरि जम केरी ।—जायसी ।

जमकातर—संज्ञा स्त्री० [ सं० यम + कर्तरी ] (२) एक प्रकार की छोटी तलवार ।

जम-दिसा—संज्ञा स्त्री० [ सं० यम + दिसा ] दक्षिण दिशा जिसमें यम को निवास माना जाता है । उ०—मेप सिंह घग पूरव वसे । मिरिह मकर कन्या जम-दिसै ।—जायसी ।

जम-रहसी—संज्ञा स्त्री० [ सं० यम + रहसी ] चौरी नाम का हथकिसकी जद्द सॉप के काटने की बहुत अच्छी ओषधि समझी जाती है ।

जमघार—संज्ञा पुं० [ सं० यमघार ] यम का द्वार । उ०—सिंहल द्वीप भंय औतारु । जंघुदीप जाइ जमवारु ।—जायसी ।

जबफर—संज्ञा पुं० दे० “जायफल” । उ०—जयफर लौंग सुपारि छोहार । मिरिच होइ जो सहेन सार ।—जायसी ।

जया—वि० [ सं० ] जय दिलावेवाली । विजय करानेवाली । उ०—सीम अंठमी तेरसि जया । चौधि चतुरदसि नवमी रखया ।—जायसी ।

जरद थंछी—संज्ञा स्त्री० [ पा० बरद + थंछी ] काली भंगी की तरह की एक प्रकार की बड़ी झाड़ी जिसकी लंबी दृष्टियों के सिरों पर कोंट होते हैं । यह देहरादून से मदान और खासिया की पहाड़ी तक, ७००० फुट की ऊँचाई तक, पाई जाती है । दक्षिण में कनाडा और लका तक भी होती है । इसमें फागुन चैत में फल लगते हैं और वैशाख जेठ में फल पकते हैं जो कच्चे भी खाए जाते हैं और अचार डालने के भी काम में आते हैं ।

जरनलिस्ट—संज्ञा पुं० दे० “पत्रकार” ।

जरनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जड़ना ।

जराऊ—वि० दे० “जवाऊ” । उ०—पौरि कबड जराऊ पाई । रंगिह असोस भाइ तेहि टाऊ ।—जायसी ।

जराफूत—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] जरीफ होने का भाव । संसारापन ।

जरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जड़ी । घुटी । उ०—तब सो जरी अमृत लेइ आया । जो मरे हुत तिनह छिरिकि जियाया ।—जायसी ।

जरीफ—संज्ञा पुं० [ अ० ] परिहास करनेवाला । मसपरा । खेबाज । मसौलिया ।

जल—संज्ञा पुं० [ सं० ] (६) धर्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य । वि० दे० “दिव्य” ।

जल-चांदर—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जल + हिं० चार ] किसी ऊँचे स्थान से होनेवाला जल का झीना और विस्तृत प्रवाह । उ०—सहज सेज पंचोरिया यह रत अति छवि होति । जल-चांदर के दीप लौं जगमगाति सन-जोति ।—बिहारी ।

विशेष—यामः घनबानों और राजाओं आदि के उद्यानों में शोभा के लिये इस प्रकार जल का प्रवाह कराया जाता है, जिसे जल-चांदर कहते हैं । कभी कभी इसके पीछे आले बनाए उनमें दीपकों की पंक्ति भी लगाई जाती है जिससे रात के समय जलचांदर के पीछे जगमगाती हुई दीपावली बहुत शोभा देती है ।

जल-कम-कमथ—संज्ञा पुं० [ सं० ] भूगोल में जल की वह पतली प्रणाली जो दो बड़े समुद्रों या जलों के मध्य में हो और दोनों को मिलाती हो ।

जलधंभ—संज्ञा पुं० [ सं० ] जल-स्तंभ ] मंत्रों आदि से जल का स्तंभन करने या उसे रोकने की क्रिया । जल-स्तंभन । उ०—बिरह विधा जल परस विन पतिवतु सो मन ताल । कहु जानत जलधंभ विधिं दुजोवन हीं लाल ।—बिहारी ।

जलसेना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह सेना जो जहाजों पर बसकर

समुद्र में युद्ध करती हो। जहाजी वेदों पर रहनेवाली फौज।  
 नौ-सेना। समुद्री सेना।  
**जल-सेनापति-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह सेनापति जिसकी अधीनता में जल-सेना हो। समुद्री सेना का प्रधान अधिकारी जिसकी अधीनता में बहुत से लड़ाई के जहाज और जल-सैनिक हों। जल या नौ-सेना का प्रधान या अध्यक्ष। नौसेनापति।  
**जलोथी-संज्ञा स्त्री०** [ हिं० जलप ] (४) एक प्रकार की आविचायाजी जो मिट्टी के कसोरे में कुछ मसाले भादि रखकर और ऊपर कागज चिपका कर बनाई जाती है।  
**जवाहरात-संज्ञा पुं०** [ अ० ] जवाहर का यहवचन रूप। बहुत से या अनेक प्रकार के रत्न और मणि आदि। जैसे,—अशुभ-उन्होंने कन्वे का काम छोड़ कर जवाहरात का काम शुरू किया है।  
**जखूँद-संज्ञा पुं०** [ देश० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसके रसों से रस्ते आदि बनते हैं। इसकी लकड़ी मूल्यवान होती है और मेज डुरसी आदि बनाने के काम में आती है। इसे नताउल भी कहते हैं। वि० दे० "नताउल"।  
**जसोवाल-संज्ञा स्त्री०** दे० "यशोदा"। उ०—सो तुम मातु जसोवै, मोहिं न जानहु वार। जई राजा बलि बाँधा छोरीं पति पतार।—जायसी।  
**जस्टिफाई-संज्ञा पुं०** [ अं० ] कंगेज किए हुए मैटर को इस सहूलियत से बैठाना या कसना कि कोई लाइन या पंक्ति ऊँची नीची या कोई अक्षर इधर उधर न होने पावे। जैसे,— इस पेज का जस्टिफाई ठीक नहीं हुआ है।  
**क्रि०प्र०—**करना।—हीना।  
**जस्टिस-संज्ञा पुं०** [ अं० ] यह जा न्याय करने के लिये नियुक्त हो। न्यायाधीश। विचारपति। न्यायमूर्ति। जैसे,—जस्टिस सुंदरलाल।  
**विशेष—**हिंदुस्थान में हाईकोर्ट के जज 'जस्टिस' कहलाते हैं।  
**जस्टिस आफ दि पीस-संज्ञा पुं०** [ अं० ] [ संवित्र एच वे० पी० ] स्थानीय छोटे मैजिस्ट्रेट को शांति रक्षक, छोटे मोटे मामलों आदि का विचार करने के लिये नियुक्त किए जाते हैं। शांतिरक्षक।  
**विशेष—**यंत्रों में कितने ही प्रतिष्ठित भारतीय जस्टिस आफ दि पीस हैं। इन्हें घेतन नहीं मिलता। इन्हें आनरेरी मैजिस्ट्रेट ही सम्मान पाहिए। जज, मैजिस्ट्रेट आदि भी जस्टिस आफ दि पीस कहलाते हैं। अपने महेले या आसपास में दंगा फसाद होने पर ये जस्टिस आफ दि पीस या शांतिरक्षक की हैसियत से शांति-रक्षा की व्यवस्था करते हैं।  
**जौगर-संज्ञा पुं०** [ देश० ] खाड़ी इंटल जिसमें से अन्न हराइ लिया गया हो। उ०—तुलसी जिलेकी की सख्दि सौत संपदा अकेलि चाकि राखी रासि जौगर जहान भी।—उजसी।  
**जाजिनीअ-संज्ञा स्त्री०** दे० "वजिणी"। उ०—शायद कर्ना जाजिनी-

पूजा। वही सो भाव देखावे दूजा।—जायसी।  
**जागना-क्रि० प्र०** [ सं० जागरण ] (९) प्रसिद्ध होना। मशहूर होना। उ०—सामो खॉचि मॉगि में तेरो नाम लिया रे। तेरे बल बलि आनु छौं जग जागि जिया रे।—तुलसी।  
**जाहूँ-संज्ञा स्त्री०** [ हिं० जाट ] हिसार, करनाल और रोहतक के जाटों की घोड़ी जिसे यॉगाह या हरियाली भी कहते हैं।  
**जाति-चरित्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] जातीय रदन सहन तथा प्रथा। (कौ०)  
**जाति-धर्म-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (३) जिस जाति में मनुष्य उल्लख हुआ हो, उसका विशेष आधार या कर्तव्य।  
**विशेष—**प्राचीन काल में अभियोगों का निर्णय करते हुए जाति-धर्म का आदर किया जाता था।  
**जाप(संज्ञा स्त्री०)** [ सं० जप ] मंत्र या नाम आदि जपने की माला। जप माला। उ०—विरह भभूत जटा बैरागी। छाला कपि जाप कँठ छागी।—जायसी।  
**जायँ-वि०** [ अ० वा = टोक ] ठीक। उचित। वाजिब। मुनासिब। जैसे,—उम्हारा कहना जायँ है।  
**जायंट-वि०** [ अं० ] साथ में काम करनेवाला। सहयोगी। संयुक्त। जैसे,—जायंट सेक्रेटरी। जायंट एडिटर।  
**जायंट मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं०** [ अं० ] कौजदारी का यह मैजिस्ट्रेट या हाकिम जिसका दर्जा जिला मैजिस्ट्रेट के नीचे होता है और जो प्रायः नया सिथिलियन होता है। अंत।  
**जाय-संज्ञा स्त्री०** [ देश० ] चने और उदक की भून कर पकाई हुई दाल।  
**जायरी-संज्ञा पुं०** [ देश० ] एक प्रकार की छोटी शायी जो मुँदेल-खंड और राजपूताने की पयरीली मृत्ति में सदियों के पास होती है।  
**जाशरंभ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] घर में प्रकाश आने के लिये शरोखे में लगी हुई जाली या उसके छेद। उ०—जालरंभ मग नँगसु कौ कसु उजास सी पाह। पीठि दिदु जगधौ रछौं शीठि शरोखे साह।—बिहारी।  
**जातिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (७) समूह। उ०—प्रनतजन कुमुद-वन इन्दुकर जालिका। जलसि अभिमान मदियेस बहु कालिका।—तुलसी।  
**जाया-संज्ञा पुं०** [ हिं० नामन या जगन ] यह मसाला जिससे शरयत चुआई जाती है। वेसवार। जाया।  
**जिनिअ-प्रत्यय०** [ हिं० जनि ] मत। नहीं। उ०—जिनि कयार गर लायसि ससुसि देसु मन आप। सकनि-बीड जौं कादे महा दोष औ पाप।—जायसी।  
**जियघधाअ-संज्ञा पुं०** [ सं० शीव + घ + च ] जहाज।  
**जिल्ला बोर्ड-संज्ञा पुं०** [ अ० मिल + अं० बोर्ड ] किसी जिलेके कर्ताओं के प्रतिनिधियों की यह सभा जिसका काम अपने अधीनस्थ ग्राम योंकों की सहायता से गाँवों की सड़कों की

मरम्मत कराना, स्कूल और चिकित्सालय चलायाना, चेचक के टीके और स्वास्थ्योन्नति का प्रबंध आदि करना है।

विशेष—म्युनिसिपैलिटी के समान ही जिला बोर्ड के सदस्यों का भी हर तीसरे साल चुनाव होता है।

जिला मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [ अ + अं० ] जिले का बड़ा हाकिम जो फौजदारी मामलों का फैसला करता है। जिला हाकिम।

विशेष—हिंदुस्थान में जिले का कलक्टर और मैजिस्ट्रेट एक ही मनुष्य होता है जो अपने दो पदों के कारण दो नामों से पुकारा जाता है। मालजुमारी घसूल करने, जमींदार और सरकार का संबंध ठीक रखने आदि के कारण वह कलक्टर और फौजदारी मामलों का फैसला करने के कारण मैजिस्ट्रेट कहलाता है।

जिवानाश्री—कि० सं० [ हि० जीव = जीवन ] जीवित करना। जिलाना। उ०—इहि कैंटें मो पाहः गादि, लीनी भरति जिवाह। प्रीति जनारति भीति सौं मीत जुकावणी भाह।—विहारी।

जिह्वाच्छेद—संज्ञा पुं० [ सं० ] जीभ काटने का दंड।

विशेष—जो लोग माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य या तपस्वियों आदि को गाली देते थे; उनको यही दंड दिया जाता था।

जीगन—संज्ञा पुं० दे० “जुगद्”। उ०—बिरह जरी लखि जीगननु कइयाँ न टहि कै बार। अरी आउ भजि भीतरी घरसतु आन अँगार।—विहारी।

जुमारल—संज्ञा पुं० [ हि० जुम्न = जुद्ध + भार (भय०) ] युद्ध। समर। लड़ाई। (ब०) उ०—यादल राय। मोर तुह बार। का जानसि कस होइ जुमारा।—जायसी।

जुतल—वि० दे० “युक्त”। उ०—जागी जाति नारिन दवारि जुत यन में।—सतिराम।

जुनूनी—वि० [ अ० ] जिसे जुनून हो। पागल। उन्मत्त।

जुलकरन—संज्ञा पुं० दे० “जुलकरनैन”। उ०—तहाँ लगी राज खदग करि लीन्हा। इसकंदर जुलकरन जो कीन्हा।—जायसी।

जुलकरनैन—संज्ञा पुं० [ अ० ] सुप्रसिद्ध यूनानी बादशाह सिकंदर की एक उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। कुछ लोगों के मत से इसका अर्थ “दो सींगोंवाला” है। वे कहते हैं कि सिकंदर अपने देश की प्रथा के अनुसार दो सींगोंवाली टोपी पहनता था। इसी प्रकार कुछ लोग “पूर्व और पश्चिम दोनों कोंनों की जीतनेवाला” कुछ लोग “बीस वर्ष राज्य करनेवाला” और कुछ लोग “दो उच प्रदों से युक्त” अर्थात् “भायवान्” अर्थ करते हैं।

जूना—संज्ञा पुं० [ देश० ] (१) एक प्रकार का पीया जो प्रायः बागों में बोना के लिये लगाया जाता है। (२) इस पीये का फूल

जो गहरे पीले रंग का और देहने में बहुत सुंदर होता है। जूर—संज्ञा पुं० [ अं० ] वह जो जूरी में बैठता हो। जूरी का काम करनेवाला। पंच। सालिस। जैसे,—९ जूरों में ७ ने उसे अपराधी बताया। जज ने बहुतत मानकर अभियुक्त को पाँच वर्ष की सख्त कैद की सजा दी।

जूरिस्ट—संज्ञा पुं० [ अं० ] वह व्यक्ति जो कानून में, विशेष कर दीवानों कानून में, पारंगत हो। व्यवहार शास्त्र निष्णात। जैसे—डायटर सर रासबिहारी घोष संसार के बहुत बड़े जूरिस्टों में थे।

जूरिस्टिकशन—संज्ञा पुं० [ अं० ] वह सीमा या विभाग जिसके अंदर शक्ति या अधिकार का उपयोग किया जा सके। अधिकार-सीमा। जैसे,—वह स्थान इस हाई कोर्ट के जूरिस्टिकशन के बाहर है।

जूरी—संज्ञा स्त्री० [ अं० ] वे कुछ व्यक्ति जो अदालत में जज के साथ बैठकर खून, डाकावनी, राजद्रोह, पदच्यंत्र आदि के संगीन मामलों को सुनते और अंत में अभियुक्त या अभियुक्तों के अपराधी या निरपराध होने के संबंध में अपना मत देते हैं। पंच। सालिस। जैसे,—जूरी ने एक मत होकर उसे निर्दोष बताया; तदनुसार जज ने उसे छोड़ दिया।

विशेष—जूरी के लोग नागरिकों में से चुने जाते हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता, खर्च भर मिलता है। इन्हें निष्पक्ष रह कर न्याय करने की शपथ करनी पड़ती है। जब तक किसी मामले की सुनवाई नहीं हो लेती, इन्हें धरावर पेशीवाले दिन अदालत में उपस्थित रहना पड़ता है। और देशों में जज इनका बहुतत मानने को बाध्य है और तदनुसार ही अपना फैसला देता है। पर हिंदुस्थान में यह बात नहीं है। हाई कोर्ट और चीफ कोर्ट को छोड़कर जिले के दोहा जज जूरी का मत मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। जूरी से मतव्यय न होने की अवस्था में वे मामला हाई कोर्ट या चीफ कोर्ट भेज सकते हैं।

जूरीमैन—संज्ञा पुं० दे० “जूर”।

जूट्ट—संज्ञा पुं० [ ? ] (१) हिंदु। (२) हिंदुओं की भाषा।

विशेष—पहले पहल पुस्तकालियों ने भारत के मूर्तिपूजकों के लिये इस शब्द का प्रयोग किया था। बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के समय अंगरेज लोग उक्त अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करने लगे थे।

जेंधनी—संज्ञा पुं० [ हि० जेंधना ] खाने की चीजें। भोजन की सामग्री। खाद्य पदार्थ। उ०—कोई आगे पनवार विजावहि। कोई जेंधन लेइ लेइ आवहि।—जायसी।

जैडेंड—कि० वि० [ सं० यः + ड ] उर्ध्व। जिस प्रकार। जैसे। उ०—आदि किपूड आदिसे सुषहि ते अरथूल भय। आउ करै सब भेस सुहमद चादर-ओट जैडें।—जायसी।

जेटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी या संयुक्त के किनारे ईंट, पथर विशेषकर शहतीरों या छट्टों का बना डैटकामें या चबूतरा जहाँ जहाज पर से यात्री या माल उतरता या चढ़ता है ।

जेता-क्रि०-वि० [ हि० विज + तना (प्रय०) ] जिस मात्रा का । जिस परिमाण का । जितना । उ०—सकल दीप महँ लेती रानी । तिन्ह महँ दीपक बारह धानी ।—जायसी ।

क्रि० वि० जिस मात्रा में । जिस परिमाण में । जितना ।

जेतरल स्टाफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] जेतरलों या सेनाध्यक्षों का वर्ग या सयूद ।

जेसिन-संज्ञा पुं० [ जर्मन ] जर्मनी की एक प्रकार की उद्देयाली मशीन या वायुयान जिसका निर्माता इसी नाम का एक जर्मन था ।

जेहि-सर्व० [ सं० यत् ] (२) जिससे । उ०—कहि भव सोई, जहि यथा होई ।—केसव ।

जेस-क्रि०-वि० दे० "जैसा" । उ०—जरादिह जैस गगनसों नेहा । एकदि भाव पराया भ्रतु मेहा ।—जायसी ।

जे-क्रि०-प्रत्य० [ सं० यद् ] (२) यद्यपि । अगरचे । (वच०) उ०—पौरि पौरि कोतवार जो यंत्र । पेमक लुडुध सुरँग होइ पंडा ।—जायसी ।

जेरसी-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी" । उ०—चित्त पितु-मारक जोग गनि भयौ भयें सुत सोगु । फिरि हुलसी जिय जोइसी समुलें जारज-जोग ।—विहारी ।

जोखना-क्रि०-प्र० [ सं० जुग = खोजना ] विचार करना । सोचना । उ०—झाड़ साय न तन गा, सकृति मुए सब पोखि । भोउ पूर सेदि जानव जो धिर भावत जोखि ।—जायसी ।

जोखि-संज्ञा स्त्री० दे० "जोखिम" । उ०—मुम सुखिया अपने पर राजा । जोखिउँ पत सहइ केहि काजा ।—जायसी ।

जोग-प्रत्य० [ सं० योग्य ] के लिये । वास्ते । ( पु० हि० ) उ०—अवने जोग लागि भस चेला । गुर भपुँ आउ कीन्ह तुह चेला ।—जायसी ।

जोत-संज्ञा स्त्री० [ हि० जेतना ] (३) वह छोटी रस्सी या पगड़ी जिसमें पैल बाँधे जाते हैं और जो उन्हें जोतते समय जुभाटे में बाँध दी जाती है ।

जोतिवर्त-क्रि०-वि० [ सं० ज्योति + वर्त ] ज्योति युक्त । चमकदार । उ०—नाचक पवन मणि पचाग पतंग पिनुँ जेत जोतिवर्त जग ज्योतिविन गाये हँ ।—केसव ।

जोती-संज्ञा स्त्री० [ हि० जोग्य ] (३) चट्टी में की यह रस्सी जो बीच की कीली और हथके में घँघी रहती है । इसे कसने या ढीली करने से चट्टी हलकी या भारी चलती है और चीज मोटी या महीन पिचती है । (४) वह रस्सियाँ जिनमे खेत में पानी डालने की दौरी बाँधी रहती है ।

ज्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (०) किसी वृक्ष का भास ।

ज्यलिनो सीमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दो गाँवों के बीच की यह सीमा जो ऊँचे पेड़ लगाकर बनाई गई हो ।

जिशोय-अनु ने लिखा है कि पीपल, यद्, साल, ताड़ तथा टाक के वृक्ष गाँव की सीमा पर लगावे ।

जौंभोरा-संज्ञा पुं० [ देग० ] कचनार का पेड़ ।

जौंयकार-संज्ञा-वि० [ हि० जौंय + कार ] कृष्ण वर्ण का । शौंवेले रंग का । काला । उ०—गौंय गर्वद जरे भए कारे । औ यन मिरिग रोश सँवकारे ।—जायसी ।

जौंसना-क्रि० सं० [ मनु० ] (१) सिर या तलुए आदि में तेल या और कोई चिकना पदार्थ लगाकर हथेली से उभे यात धार राखना जिसमें वह उस अंग के अन्दर समा जाय । जैसे,— सिर में कद्दू का तेल जौंसने से सुहावा सिर दर्द दूर होगा । संयो० क्रि०—देना ।

(२) किसी को यहका कर या अनुचित रूप से उसका धन आदि आदि ले लेना । जैसे,—उम ओझा ने भूत के महाने उससे दस रुपए जौंस लिए ।

जौंराना-क्रि०-प्र० [ हि० जौंरान ] शकरोर लेना । झमना । उ०—ज्यदी सँकरें कुंज-पग करतु शौंकि सँझरात । मंद मंद मायत घुरँग मँरतु भावतु जात ।—विहारी ।

क्रि० सं० शकरोर देना । झमने में प्रयुक्त करना ।

जौखिया-संज्ञा स्त्री० दे० "झखी" ।

जौर-संज्ञा पुं० [ सं० ] झाड़ू देनेवाला । स्थान झाड़ू देनेवाला ।

जिशोय-झाड़ू देनेवाले को जब कोई पढ़ी हुई चीज मिलती थी तो उसका कुछे भाग चन्द्रगुप्त का राज्य होता था और कुछे भाग उसको मिलता था । (कौ०)

जौलया-संज्ञा पुं० [ हि० जाल ] एक प्रकार का पकवान जिसे झाल भी कहते हैं ।

जौलाना-क्रि० प्र० [ मनु० जन जन ] दूढ़ी, जोड़ या नस आदि पर एक बारगी चोट लगाने के कारण एक विशेष प्रकार की संवेदना होना । सुन सा हो जाना । जैसे,—देखी टोकर लगी कि पैर झला गया ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

क्रि० सं० दूसरे से झालने का काम कराना । झालने में किसी को प्रयुक्त करना ।

जौंसना-क्रि० सं० दे० "जौंसना" ।

जौंपाना-क्रि० सं० [ सं० जगपन ] (३) पकड़ कर दया लेना । छीप लेना । उ०—नीची में नीची निपट होकि कुड़ी लीँ दौरी । उदि कँव नीची दियी मनु हलुसु क्षीपि क्षीरि ।—विहारी ।

जौंनाना-क्रि० सं० [ सं० शाप या रापन ] (८) निकालना । दूर करना । इदना । छुड़ाना । जैसे,—गुहागी सारी ब्रह्मनासी झाड़ू दौं । उ०—जौंनौं ने ये चतुर कडावति । ये मन ही मन मोको नासि । ऐने अपन कहुँगो इन नें चतुगई इनकी नें

भरमत कराना, स्कूल और चिकित्सालय चलाना, चैचक के टीके और स्वास्थ्योन्नति का प्रबंध आदि करना है।  
**विशेष**—न्युनिवर्सिटी के समान ही जिला बोर्ड के सदस्यों का भी हर तीसरे साल चुनाव होता है।  
**जिला मैजिस्ट्रेट**—संज्ञा पुं० [ अ + भं० ] जिले का यथा हाकिम जो फौजदारी मामलों का फैसला करता है। जिला हाकिम।  
**विशेष**—हिंदुस्थान में जिले का कलक्टर और मैजिस्ट्रेट एक ही मनुष्य होता है जो अपने दो पदों के कारण दो नामों से पुकारा जाता है। मालगुजारी वसूल करने, जमींदार और सरकार का संबंध ठीक रखने आदि के कारण यह कलक्टर और फौजदारी मामलों का फैसला करने के कारण मैजिस्ट्रेट कहलाता है।  
**जिवाना**—क्रि० सं० [ हि० जीव = जीवन ] जीवित करना। जिलाना। उ०—इहि कैंटें भो पाह गदि, लीनी भरति जिवाह। मीति जनावति मीति सैं मीत जुकावै आह।—विहारी।  
**जिह्वाच्छेद**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जीभ काटने का दंड।  
**विशेष**—जो लोग माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य या तपस्वियों आदि को गाली देते थे, उनको यही दंड दिया जाता था।  
**जीगना**—संज्ञा पुं० दे० “जुगनु”। उ०—बिरह जरी लखि जीगननु कही न छदि कै पार। अरी आउ भजि भीतरी परसतु आग अंगार।—विहारी।  
**जुझार**—संज्ञा पुं० [ हि० जुग्म = युद्ध + आर (प्रयोग) ] युद्ध। समर। लड़ाई। (स्व०) उ०—बादल राय। मोर तुह धारा। का जानसि कस होइ जुझारा।—जायसी।  
**जुत**—क्रि० दे० “जुक”। उ०—जानी जाति नारिन द्वारि जुत धन में।—मतिराम।  
**जुनुनी**—वि० [ अ० ] जिसे जुनुन हो। पागल। उन्मत्त।  
**जुलकरन**—संज्ञा पुं० दे० “जुलकरनेन”। उ०—तहँ लगि राज खदग करि लीन्हा। इसकंदर जुलकरन जो कीन्हा।—जायसी।  
**जुलकरनैन**—संज्ञा पुं० [ अ० ] सुप्रसिद्ध यूनानी यादशाह सिकंदर की एक उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। कुछ लोगों के मत से इसका अर्थ “दो सींगोंवाला” है। वे कहते हैं कि सिकंदर अपने देना की प्रथा के अनुसार दो सींगोंवाली टोपी पहनता था। इसी प्रकार कुछ लोग “पूर्व और पश्चिम दोनों कोनों को जीतनेवाला” कुछ लोग “दोस वर्ष राज्य करनेवाला” और कुछ लोग “दो उच्च पदों से जुक्त” अर्थात् “भाग्यवान्” अर्थ करते हैं।  
**जुना**—संज्ञा पुं० [ दे० ] (१) एक प्रकार का चौथा जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। (२) इस पीछे का फूल

जो गहरे पीले रंग का और देखने में बहुत सुंदर होता है।  
**जूर**—संज्ञा पुं० [ अ० ] वह जो जूरी में बैठता हो। जूरी का काम करनेवाला। पंच। सालिस। जैसे,—१ जूरों में ७ ने उसे अपराधी बताया। जज ने बहुमत मानकर अभियुक्त को पाँच वर्ष की सख्त कैद की सजा दी।  
**जूरिस्ट**—संज्ञा पुं० [ अ० ] वह व्यक्ति जो कानून में, विशेष कर दीवानी कानून में, पारंगत हो। व्यवहार शास्त्र निष्णात। जैसे—डॉक्टर सर रासबिहारी घोष संसार के बहुत बड़े जूरिस्टों में थे।  
**जूरिस्टिकशन**—संज्ञा पुं० [ अ० ] वह सीमा या विभाग जिसके अंदर शक्ति या अधिकार का उपयोग किया जा सके। अधिकार-सीमा। जैसे,—यह स्थान इस हाई कोर्ट के जूरिस्टिकशन के बाहर है।  
**जूरी**—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] वे कुछ व्यक्ति जो अदालत में जज के साथ बैठकर त्वन, टाकाजनी, राजद्रोह, पदपत्र आदि के संगीन मामलों को सुनते और अंत में अभियुक्त या अभियुक्तों के अपराधी या निरपराध होने के संबंध में अपना मत देते हैं। पंच। सालिस। जैसे,—जूरी ने एक मत होकर उसे निर्दोष बताया, तदनुसार जज ने उसे छोड़ दिया।  
**जूरी**—जूरी के लोग नागरिकों में से चुने जाते हैं। इन्हें धेतन नहीं मिलता, खर्च भर मिलता है। इन्हें नियंत्रण रह कर न्याय करने की शपथ करनी पड़ती है। जब तक किसी मामले की सुनवाई नहीं हो लेती, इन्हें बराबर पेची-वाले दिन अदालत में उपस्थित रहना पड़ता है। और दोनों में जज इनका बहुमत मानने को बाध्य है और तदनुसार ही अपना फैसला देता है। पर हिंदुस्थान में यह बात नहीं है। हाई कोर्ट और चीफ कोर्ट को छोड़कर जिले के दौरा जज जूरी का मत मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। जूरी से सतैवप न होने की अवस्था में वे मामला हाई कोर्ट या चीफ कोर्ट भेज सकते हैं।  
**जूरीमैन**—संज्ञा पुं० दे० “जूर”।  
**जूट**—संज्ञा पुं० [ ? ] (१) हिंदु। (२) हिंदुओं की भाषा।  
**जूट**—पहले पहल पुस्तकालियों ने भारत के मूर्तिपूजकों के लिये इस शब्द का प्रयोग किया था। बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के समय अंगरेज लोग उक्त अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करने लगे थे।  
**जूवन**—संज्ञा पुं० [ हि० ज्वन ] खाने की चीजें। भोजन की सामग्री। खाद्य पदार्थ। उ०—कोह आगे पनवार बिछावई। कोई ज्वन लेह लेह आवई।—जायसी।  
**जूउँ**—क्रि० वि० [ सं० य + ह ] उग्यो। जिस प्रकार। जैसे। उ०—आदि किपूठ आदेश सुखईति अस्थूल भएँ। भापु करै सब भेस मुहमद चादर-ओट जेउँ।—जायसी।

जेटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नदी या समुद्र के किनारे ईंट, पत्थर विद्योपकर श्राद्धतीर्थों या छट्टों का बना ईंटकाम या चत्तरा जहूँ जहाज पर से यारी या माल उतरता या चढ़ता है।

जेता-वि० [ हि० जित + तना (भव०) ] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जितना। उ०—सकल दीप मई जेती रानी। निन्द मई दीपक बारह थानी।—जायसी।

कि० वि० जिस मात्रा में। जिस परिमाण में। जितना। जेनरल स्टाफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] जेनरलों या सेनाध्यक्षों का वर्ग या समूह।

जेसिन-संज्ञा पुं० [ जर्मन ] जर्मनी की एक प्रकार की उड़नेवाली मशीन या वायुयान जिसका निर्माता इसी नाम का एक जर्मन था।

जेहि-संज्ञा पुं० [ सं० पत् ] (२) जिससे। उ०—कहि अथ सोई, केहि यस होई।—केशव।

जैस-वि० दे० "जैसा"। उ०—ररतिहि जैस गगन सों मेहा। पलटि भाव बरपा कतु मेहा।—जायसी।

जो-संज्ञा पुं० [ सं० बड़ ] (२) यद्यपि। अगरचे। (भव०) उ०—पौरि पौरि कोतवार जो वैदा। पेमक लुधुध सुरैंग होइ पदा।—जायसी।

जोहसी-संज्ञा पुं० दे० "ज्योतिषी"। उ०—चित पिनु-मारक जोग गनि भयो भयें सुच सोपु। फिरि डुलस्यौ त्रिय जोहसी समुसैं जारज-जोग।—विहारी।

जोखना-वि० सं० [ सं० जुग = जोखना ] विचार करना। सोचना। उ०—कहा साय न तन गा, सकति मुपु सय पीखि। ओल पूर सेदि ज्ञानब जो पिर आवत जोखि।—जायसी।

जोखि-संज्ञा स्त्री० दे० "जोखिम"। उ०—तुम सुखिया अपने पर राधा। जोखि-एत सहहु केहि काजा।—जायसी।

जोग-संज्ञा पुं० [ सं० योग ] के लिये। वास्ते। ( पु० हि० ) उ०—अपने जोग लागि अस खेला। गुरु भयें भापु कौन्ह तुग केला।—जायसी।

जोत-संज्ञा स्त्री० [ हि० जोतना ] (३) वह छोटी रस्ती या पगड़ी जिसमें थैल बाँधे जाते हैं और जो उन्हें जोतते समय लुभाटें में बाँध दी जाती है।

जोतिवत-वि० [ सं० ज्योति + वत ] ज्योति युक्त। चमकदार। उ०—दावक पवन मणि पञ्च पतंग पितृ जेते जोतिवत जा ज्योतिविन गये हैं।—केशव।

जोती-संज्ञा स्त्री० [ हि० जोतना ] (३) चष्मा में की वह रस्ती जो बीच की काली और हथुपे में बाँधी रहती है। इसे कसने या ढीली करने से चष्मा ढलकी या भारी चलती है और चीज जोती या महीन पिसती है। (४) वह रस्सियाँ जिनसे खेत में पानी सींचने की दौरी बाँधी रहती हैं।

जया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (७) किसी धृत्क का व्यास।

ज्वलितनी सीमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दो गाँवों के बीच की वह सीमा जो ऊँचे पेड़ लगाकर बनाई गई हो।

विशेष—मनु ने लिखा है कि पीपल, बड़, साल, ताड़ तथा ढाक के बूझ गाँव की सीमा पर लगाये।

मौझोरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] कचनार का पेड़।

भँवकार-वि० [ हि० भँवला + कार ] कृत्रम वर्ण का। झँवले रंग का। काला। उ०—गँड गयँड जरे भपु कारे। औ बन मिरिग रोस खँवकारे।—जायसी।

भँसना-वि० सं० [ भव० ] (१) सिर या तलुप आदि में तेल या और कोई चिकना पदार्थ लगाकर हथेली से उसे बार बार रगड़ना जिसमें वह उस भाग के अंदर समा जाय। जैसे,—सिर में कद्दू का तेल भँसने से हुंदाहा सिर दर्द दूर होगा। संयो० कि०—देना।

(२) किसी को बहका कर या अनुचित रूप से उसका धन आदि आदि ले लेना। जैसे,—उस भोसा ने भूत के बहाने उससे दस रुपय हँस लिए।

भकुराना-वि० सं० [ हि० भकुरा ] झकुरा लेना। झमना। उ०—रवयी सौँके कुंज-भग करतु सौँके शँकुरात। मंद मंद मारत रौरंग दँदतु भावतु जातु।—विहारी।

कि० सं० झकुरा देना। झमने में प्रवृत्त करना।

भखिया-संज्ञा स्त्री० दे० "सखी"।

भरर-संज्ञा पुं० [ सं० ] श्राद्ध देनेवाला। स्थान झाड़नेवाला।

विशेष—श्राद्ध देनेवाले को जब कोई पड़ी हुई चीज मिलती थी तो उसको छु भगा चन्द्रगुप्त का राज्य होता था और छु भगा उसको मिलता था। (कौ०)

भलर-संज्ञा पुं० [ हि० भालर ] एक प्रकार का पकवान जिसे शाल भी कहते हैं।

भलाना-वि० प्र० [ भल० भन भन ] हठी, जोड़ या नस भादि पर एक बारगी चोट लगने के कारण एक विद्योप प्रकार की संवेदना होना। सुन सा हो जाना। जैसे,—पेसी टोकर लगा कि पैर हला गया।

संयो० कि०—उटना।—जाना।

कि० सं० दूसरे से शालने का काम करना। शालने में किसी को प्रवृत्त करना।

भलना-वि० सं० दे० "भँसना"।

भाँपना-वि० सं० [ सं० भापन ] (३) पकड़ कर दबा लेना। धीप लेना। उ०—नीची मैं नीची निपट दौदि कुदी लीँ दौरी। उदि खँवें नीची दियो मनु कुलियुँ धँपि क्षीरी।—विहारी।

भांडना-वि० सं० [ सं० राध या राधन ] (८) निकालना। दूर करना। हटाना। छुड़ाना। जैसे,—तुम्हारी सारी बद्मासी श्राद्ध देंगे। उ०—मौहूँ ते ये धारु कहावति। पे मही ही मन मीको नारति। पेमे नवन कहुँगी हन लें चतुपारी हनकी मैं

शरति ।—सूर । ( ९ ) अपनी योग्यता दिखलाने के लिये गद्गद् कर घातें करना । जैसे,—वह जाते ही अँगरेजी हाड़ने लगा ।

भालार—पंजा पुं० [ { ] एक प्रकार का पकवान जिसे शलरा भी कहते हैं । उ०—भालार मँडें आपु पोहैं । देखत उजर पाग जस धोहैं ।—जायसी ।

भिराना—कि० प्र० दे० "धुराना" ।

भिलमिल—पंजा शी० [ भ्रु० ] युद्ध में पहनने का लोहे का कवच । श्लिष्य । उ०—करन पास खीन्हेउ कै छंदू । विप्र रूप धरि शिलमिल छंदू ।—जायसी ।

भोगन—पंजा पुं० [ देश० ] मँडोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसका तना मोटा होता है और जिसमें डालियाँ अपेक्षाकृत बहुत कम होती हैं । यह सारे उत्तरी भारत, आसाम, बरमा और लंका में पाया जाता है । इसमें से पीलापन लिए सफेद रंग का एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसका व्यवहार छोटों की छपाई और औपचिक के रूप में होता है । इसकी छाल से टस्सर रंगा और बमहा सिखाया जाता है । इसकी पत्तियाँ धारे के काम में आती हैं और हीर की लकड़ी से कई तरह के सामान बनते हैं ।

भीका—पंजा पुं० [ सं० शिकन ] रस्सी का लटकता हुआ जालदार फंदा जिस पर चिह्नी आदि के बर से दूध या खाने की दूसरी वस्तुएँ रखते हैं । छीका । सिकहर ।

भीलर—पंजा पुं० [ हि० भील ] छोटी झील । छोटा तालाब ।

भौंका—पंजा पुं० दे० "भौंका" । उ०—यह गद्गद् छार होइ इक होके ।—जायसी ।

भूसना—कि० सं० [ भ्रु० ] किसी को धक्का कर या दम-पटी देकर उसका धन आदि लेना । धूसना ।

भूसना—पंजा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की बरसाती घास जो उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है और जिसे घोड़े तथा गाय बैल आदि बड़े चाब से खाते हैं । मुल्यगुला । पलंजी । पड़ा मुखुरा ।

भेसना—कि० सं० [ सं० बेश ] प्रहण करना । मानना । उ०—पयिन धानि परे तो परे रहे केसी करी मनुहारि न खेले ।—मतिराम ।

भोला—पंजा पुं० [ हि० भूकना ] झाँका । झकोरा । हिलोर । उ०—कोई खादि पवन कर भोला । कोई करहि पात अस खेला ।—जायसी ।

भौराना—कि० प्र० [ हि० भूमना ] हथर उधर हिलना । क्षमना । उ०—त्रोडिहि रंक चहै भौराई । निरैठ राव-संघ कह यौराई ।—जायसी ।

टरकुल—वि० [ हि० टरकान ] ( १ ) बहुत साधारण । विलकुल मामूली । ( २ ) घटिया । खराब ।

टॉक—पंजा शी० [ सं० टक ] ( ५ ) एक प्रकार का छोटा कटोरा । उ०—धीट टॉक मँडें सोप-सेराया । लींग मिरिच वेदि उपर नावा ।—जायसी ।

टानिक—पंजा पुं० [ अं० ] वह औपचिक जो शरीर का बल बढ़ाती है । बलवीर्य-वर्द्धक औपचिक । पुष्टिकारक औपचिक । ताकत की दवा । जैसे,—डाक्टर ने उन्हें कोई टानिक दिया है ।

टारपीडो—पंजा पुं० [ अं० ] एक विध्वंसकारी यंत्र जिसमें भीषण विस्फोटक पदार्थ भरा रहता है और जो बड़े समुद्री मत्स्य के आकार का होता है । यह जल के अंदर छिपाया रहता है । युद्ध के समय शत्रु के जहाज पर इसे चलाते हैं । इसने लगने से जहाज में बध्ना सा छेद हो जाता है और वह वहीं डूब जाता है । विस्फोटक यंत्र ।

टारपीडो कैचर—पंजा पुं० [ अं० ] तेज चलनेवाला एक शक्ति-शाली रणपोत वा जंगी जहाज जो टारपीडो बोट के प्रयत्न को विफल करने और उसे नष्ट करने के काम में लाया जाता है ।

टारपीडो बोट—पंजा शी० [ अं० ] तेज चलनेवाली एक छोटी स्टीम बोट जो युद्ध के समय शत्रु के जहाज को नष्ट करने के लिये उस पर टारपीडो या विस्फोटक यंत्र चलाती है । नावक जहाज ।

टालना—कि० सं० [ हि० टरना ] ( १३ ) हिलाना । इधर उधर गति देना । उ०—टारहिं पूँछ पसारहि जीहा । कुंजर डरहि कि गुंजरि सीहा ।—जायसी ।

टावर—पंजा पुं० [ अं० ] ( १ ) लट । मीनार । ( २ ) किला । कोट ।

टिकटी—पंजा शी० [ सं० तिकाठ ] ( ५ ) रथी जिस पर शत्रु को अंत्येष्टि क्रिया के लिये ले जाते हैं ।

टिका साहब—पंजा पुं० [ हि० टीका = तिक + साहब ] राजा का यह बड़ा लड़का जिसका पौरवराज्याभिषेक होने को हो । युवराज । ( पंजाब )

टिकी—पंजा शी० [ देश० ] काली सरसों ।

टी—पंजा शी० [ अं० ] चाय ।

टी गार्डन—पंजा पुं० [ अं० ] वह जमीन जहाँ चाय की रोती होती है । चाय बगीचा । जैसे,—आसाम के टी-गार्डनों के कुलियों की दशा बड़ी ही शोचनीय और करुणाजनक है ।

टूट—पंजा पुं० [ सं० टुडे ] टुटि । भूल । गलती । उ०—औ विनती पंडितन मन बना । टूट सँवारहु मेदयहु सजा ।—जायसी ।

टूल—पंजा पुं० [ अं० ] औजार जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय ।

टुंजा पुं० [ अं० ] टूल ] अँधे पावों की छोटी चौकी जिस पर लड़के धरते या कोई चीज रखी जाती है । तिपाई ।

टंपरेचर—पंजा पुं० [ अं० ] शरीर या देह के किसी स्थान की उष्णता या गर्मी का माप जो थर्मोमीटर से जाना जाता है । तापमान । जैसे,—( १ ) सवेरे उसका टंपरेचर लिया था,

१०२ डिग्री सुन्नार था । (ख) इस वार हलाहावाद में ११८ डिग्री टेम्परेचर हो गया था ।—  
 कि० प्र०—वेना ।—होना ।  
 इतिहास—वि० दे० “टैटी” ।  
 घंटा पुं० एक प्रकार के क्षयित जो प्रायः बिहार के शाहाबाद जिले में पाए जाते हैं ।  
 टैटी—वि० [ अनु० टैट ] वात वात में बिगड़नेवाला । व्यर्थ शगडा करनेवाला ।  
 टेकना—कि० सं० [ हि० टेक ] ( ६ ) किसी को कोई काम करते हुए धीब में रोकना । पकड़ना । व०—( क ) रोवाई माए पिता भी माई । कोउ न टेक वी कंत चलाई ।—जायसी ।  
 (ख) जनहूँ आदि कै मिलि गए तस दुनी भए एक । कंचन कसत कसौटी हाथ न कोऊ टेक ।—जायसी ।  
 टेन्ट—घंटा पुं० [ सं० ] (१) किराणदार । (२) भसामी । पट्टेदार । पैयत ।  
 टेयुल—घंटा पुं० [ सं० ] (१) मेज । (२) वह जिसमें बहुत से खाने या कोष्ठक घने हों । नकशा ।  
 टेरिटीरियल फोर्स—घंटा स्त्री० [ सं० ] यह सैन्यदल जिसका संबंध अपने स्थान से हो । नागरिक सेना । देशरक्षिणी सेना ।  
 विशेष—इन्हें साधारणतः देश के बाहर लड़ने को नहीं जाना पड़ता ।  
 टैक्सी—घंटा स्त्री० [ सं० ] किराए पर चलनेवाली मोटर गाड़ी ।  
 टैक्सोड—घंटा पुं० [ सं० ] ( १ ) छोटी टिकिया । जैसे, तिवनाइन टैक्लेट । (२) पायद, कोंसे आदि का फलक जिस पर किसी की स्तुति में कुछ लिखा या खुदा रहता है । जैसे,—किसान समा ने उनके स्मारक स्वरूप एक टैक्लेट लगाना निश्चित किया है ।  
 टैरो—घंटा पुं० दे० “कनसरवेडि” ( १ ) ।  
 टैराना—कि० सं० [ हि० टेना ? ] ( १ ) भली बुरी बात की जाँच करना । ( २ ) किसी व्यक्ति या बात की धाढ़ लेना । पता लगाना ।  
 टैस्ट—घंटा पुं० [ सं० ] संपत्ति या दान-संपत्ति को इस विचार या विश्वास से दूसरे व्यक्तियों के समुह करना कि वे संपत्ति का प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखा-पढ़ी या दान-पत्र के अनुसार करेंगे ।  
 टैस्टी—घंटा पुं० [ सं० ] वह व्यक्ति जिसके समुह कोई संपत्ति इस विचार और विश्वास से की गई हो कि वह उस संपत्ति का प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखा-पढ़ी या दान-पत्र के अनुसार करेगा । अविभाजक ।  
 टैन्सपोर्ट—घंटा पुं० [ सं० ] ( १ ) माल असवाब एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना । वारपरदारी । ( २ ) वह जहाज जिस पर सैनिक या युद्ध का सामान आदि एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है । ( ३ ) त्तारी । गाड़ी ।

टैन्सलेटर—घंटा पुं० [ सं० ] वह जो एक भाषा का दूसरी भाषा में उल्था करता है । भाषांतरकार । अनुवादक । जैसे,—गवर्नमेंट टैन्सलेटर ।  
 टैन्सलेशन—घंटा पुं० [ सं० ] एक भाषा में प्रदर्शित भाषों या विचारों को दूसरी भाषा के शब्दों में प्रकट करना । एक भाषा को दूसरी में उल्था करना । भाषांतर । अनुवाद । उल्था । तर्जुमा ।  
 टैप—घंटा स्त्री० [ सं० ] ( १ ) पलटन । सैन्यदल । जैसे,—मिटिशा टैप । नेटिव टैप । ( २ ) बुद्धसवारों का एक दल जिसमें एक कप्तान की अधीनता में प्रायः साठ जवान होते हैं ।  
 टैक्स—घंटा स्त्री० [ सं० ] दो लड़नेवाली सेनाओं के नायकों की स्वीकृति से लड़ाई का स्थगित होना । कुछ काल के लिये लड़ाई बंद होना । शक्ति संधि ।  
 टैजहर—घंटा पुं० [ सं० ] खजानची । कोषाध्यक्ष ।  
 टैजेडियन—घंटा पुं० [ सं० ] ( १ ) वह अभिनेता जो विषाद, शोक और गंभीर भाव व्यंजक अभिनय करता हो । ( २ ) वियोगांत नाटक लिखनेवाला । वियोगांत नाटक लेखक ।  
 टैजेडी—घंटा स्त्री० [ सं० ] नाटक का एक भेद जिसमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटना का वर्णन हो, मनोविकारों का लक्ष संघर्ष और द्वंद्व दिखाया गया हो और जिसका अंत शोक-दुःखमय हो । वह नाटक जिसका अंत कल्याणवादी और विषादमय हो । दुःखांत नाटक । वियोगांत नाटक ।  
 टाइ—घंटा स्त्री० [ हि० ठहरना ] धीरे धीरे और अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय लगा कर गाने या बजाने को किया ।  
 विशेष—जब गाने या बजानेवाले लोग कोई भी गाना या बजाना आरंभ करते हैं, तब पहले धीरे धीरे और अधिक समय लगाकर गाने या बजाने हैं । इसी को “टाइ” या “टाइ” में गाना बजाना कहते हैं । आगे चलकर यह चीज क्रमशः जल्दी जल्दी गाने या बजाने लगते हैं जिसे दून, तिगल और चौगूल कहते हैं । वि० दे० “चौगूल” ।  
 टैडी—घंटा स्त्री० [ दे० ] राज-जामुन नाम का वृक्ष । वि० दे० “राज-जामुन” ।  
 टैजी—वि० [ हि० टेल ] धील डीलवाला । बढ़ा । वयस्क । जैसे,—इतने बढ़े डज हुए, अऊ नहीं आई ।  
 टैक—घंटा पुं० [ सं० ] ( १ ) किसी बंदर या नदी के किनारे एक चिरा हुआ स्थान जहाँ जहाज आकर उतरते हैं और जिसका फाटक, जो पानी में बना होता है, आवश्यकता पड़ने पर खुलता और बंद होता है । ( २ ) अदालत में यह स्थान जहाँ अभियुक्त खड़े किए जाते हैं । कटवरा ।  
 टैकुरा—घंटा पुं० [ दे० ] चक्र को तट्ट घुमनी हुई वायु । बवं-डर । चक्रव्यत । बगुला ।



**डगना**—किं प्र० [ हि० डिगना वा डग ] (३) डगमगाना । लड़खड़ाना ।  
 उ०—डगडु डगनि सी चलि डडुकि चितई चली निहारि ।  
 लिए जाति चितु चोरटी वई गोस्टी नारि ।—विहारी ।  
**डमकना**—किं प्र० [ भृ० ] (१) ( अँलों का ) डबडबाना ।  
 ( नेत्रों में ) जल भर खाना । उ०—थदुन पियरं जलं डभ-  
 कहि मैना । परगट हुवै पैम के धैना ।—जायसी ।  
**डला**—संज्ञा पुं० [ सं० दल ] (२) डिगोद्विय । ( यात्रारू )  
**डुधारा**—वि० [ हि० डारना ] डारनेवाला । तंग करनेवाला । कट  
 पहुँचानेवाला । उ०—फोरहि सिल लोदा मदन लागे भडुक  
 पहार । कायर कूर कुत कलि घर घर सहस डहार ।—  
 तुलसी ।  
**डौकी**—संज्ञा पुं० दे० “डंका” । उ०—दान डौक वाजै दरबारा ।  
 कीरति गई समुन्दर पारा ।—जायसी ।  
 संज्ञा पुं० [ हि० डंक ] विपैले अंतुओं के काटने का डंक ।  
 भार । उ०—जे तब होत दिखा दिखी भई अमीहक आँक ।  
 दूगं सिरीछी छीति अथ हूँ थोछी को डौक ।—विहारी ।  
**डाइवीटी**—संज्ञा पुं० [ अ० दायिवीत् ] बहुमूत्र रोग । मधुमेह ।  
**डाक्टर**—संज्ञा स्त्री० [ अ० डाक्टर ] (३) डाक्टर का पेशा या  
 काम । (४) वह परीक्षा जिसे पास करने पर आदमी डाक्टर  
 होता है ।  
**डामल**—संज्ञा पुं० दे० “डायमंड कट” ।  
**डायट**—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) व्यवस्थापिका सभा । राज्य सभा ।  
 जैसे,—जापान की इम्पीरियल डायट । (२) पच्य । (३)  
 भोजन । खाद्य पदार्थ ।  
**डायरिया**—संज्ञा पुं० [ अ० ] दस्त की बीमारी । अतिसार ।  
**डायार्की**—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] वह शासन-प्रणाली या सरकार जिसमें  
 शासन-अधिकार दो व्यक्तियों के हाथों में हो । द्वैप शासन ।  
 दुहत्या शासन ।  
**विशेष**—भारत में १९१९ के गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट के  
 अनुसार भादेशिक शासन-प्रणाली इसी प्रकार की कर दी गई  
 है । शासन के सुभीते के लिये प्रदेशों से संबंध रखनेवाले  
 विषय दो भागों में बाँट दिए गए हैं—एक रिजर्व या रक्षित  
 विषय जो गवर्नर और उनका शासन सभा के अधिकार में है,  
 और दूसरा ट्रान्सफरैबल वा हस्तांतरित विषय जो मिनिस्टर्स  
 या मंत्रियों के अधिकार में ( जो निर्वाचित सदस्यों में से चुने  
 जाते हैं ) है । “रक्षित विषयों” की सुब्यवस्था के लिये गवर्नर  
 और उनका शासन सभा भारत सरकार और भारत सचिव  
 द्वारा अल्पव्यक्त रूप से पार्लमेंट अथवा ब्रिटिश मतदाताओं के  
 सामने उचरदाता है और हस्तान्तरित विषयों के लिये गवर्नर  
 के मंत्री अल्पव्यक्त रूप से भारतीय मतदाताओं के सामने उचर-  
 दायी हैं । यद्यपि विशेष अवस्थाओं में इनके मत के विरुद्ध  
 कार्य करने का गवर्नर को अधिकार है, परंतु शासन सभा

के बहुमत के विरुद्ध गवर्नर आचरण नहीं कर सकता ।  
 शासन सभा के सदस्यों और मंत्रियों में एक अंतर यह  
 भी है कि वे सम्राट् के आज्ञा-पत्र द्वारा नियुक्त होते हैं,  
 परंतु मंत्री को नियुक्त करने और हटाने का अधिकार गव-  
 र्नर को ही है । मंत्री का वेतन निर्दिष्ट करने का अधिकार  
 व्यवस्थापिका सभा को है ।—भारतीय शासन पद्धति ।  
**डालना**—किं सं० [ सं० तलन ] (१४) किसी के अंतर्गत करना ।  
 किसी विषय या वस्तु के भीतर लेना । जैसे,—यह रण्य  
 व्याह के खर्च में डाल दो । (१५) अव्यवस्था आदि उप-  
 स्थित करना । घुरी बात घटित करना । मचाना । जैसे,—  
 गद्दबद् डालना, आपत्ति डालना, विपत्ति डालना । (१६)  
 बिडाना । जैसे,—बटिया डालना । परंग डालना । घात  
 डालना ।  
**डाही**—वि० [ हि० दाह ] दाह करनेवाला । ईर्ष्या करनेवाला ।  
 इर्ष्यालु ।  
**डिभ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) एक प्रकार का उदर रोग जो धीरे  
 धीरे बढ़ता हुआ अंत में बहुत भयानक हो जाता है ।  
**डिक्टेटर**—संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) वह मनुष्य जिसे कोई काम  
 करने का पूरा अधिकार प्राप्त हो । प्रधान नेता या पय-  
 प्रदर्शक । शास्ता । (२) वह मनुष्य जिसे शासन की अवा-  
 धित सत्ता प्राप्त हो । निरंकुश शासक ।  
**विशेष**—डिक्टेटर दो प्रकार के होते हैं—(१) राष्ट्रपक्ष का  
 और (२) राज्य या शासन पक्ष का । जब देश में संकट उप-  
 स्थित होता है, तब देश या राष्ट्र उस मनुष्य को, जिस पर  
 उसका पूरा विद्वान्ता होता है, पूर्ण अधिकार दे देता है कि  
 वह जो चाहे सो करे । यह व्यवस्था संकट काल के लिये है ।  
 जैसे,—सं० १९८०-८१ में महात्मा गांधी राष्ट्र के डिक्टेटर  
 या शास्ता थे । पर राज्य या शासन पक्ष का डिक्टेटर वही  
 होता है जो बड़ा जयर्हस्त होता है, जिसका सब लोगों पर  
 आतंक छाया रहता है । जैसे,—इस समय इटली का  
 डिक्टेटर मुसॉल्लोनी है ।  
**डिक्लेरेशन**—संज्ञा पुं० [ अ० ] वह लिखा हुआ कागज़ जिसमें, किसी  
 ‘मैजिस्ट्रेट के सामने कोई प्रेस खोलने, रखने या कोई समा-  
 चार पत्र या पत्रिका छापने और निकालने की जिम्मेदारी ली  
 या घोषित की जाती है । जैसे,—(क) उन्होंने अपने नाम से  
 प्रेस खोलने का डिक्लेरेशन दिया है । (ख) वे अपद्रुत के  
 मुद्रक और प्रकाशक होने का डिक्लेरेशन देनेवाले हैं ।  
**डिगलाना, डिगुलाना**—किं प्र० [ हि० डग ] डगमगाना । लड़-  
 खड़ाना । उ०—डिगत पानि डिगुलत गिरि ललि सय प्र-  
 वेहाल । कंपि किसोरी दरसि के खरं लजाने लाल ।—  
 विहारी ।  
**डिगोमेसी**—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) वह चातुरी या कीदल जो

कार्य-साधन के लिये, विशेष कर राजनीतिक कार्य-साधन के लिये, किया जाय। कूटनीति। (२) स्वतंत्र राष्ट्रों में आपस का व्यवहार संबंध। राजनीतिक संबंध।

डिप्लोमेट-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह जो डिप्लोमैसी या कूटनीति में निपुण हो। कूटनीतिज्ञ।

डिफेन्शन-संज्ञा पुं० [ अं० ] किसी की अप्रतिष्ठा या अपमान करने के लिये गहित शब्दों का प्रयोग। ऐसे गंदे शब्दों का प्रयोग जिनसे किसी की मानहानि या वैद्गती होती हो। मानहानि। अप्रतिष्ठा। अपमान। वैद्गती। हतक इज्जत। जैसे,—दूधर महीनों से उनपर डिफेन्शन कैसे चल रहा है।

डिलेवरी-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] (२) किसी चीज का बाँटा या दिया जाना। (३) प्रसव होना।

डिडिजनल-वि० [ अं० ] डिडिजन का। उस भूभाग कमिभरी या किसमत का जिसके अंतर्गत कई जिले हों। जैसे,—डिडिजनल कमिश्नर।

डिडिडेंड-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह लय या मुनाफा जो जायंट स्टॉक कंपनी या सुमिडिलि पूँजी से चलनेवाली कंपनी को होता है और जो हिस्सेदारों में, उनके हिस्से के मुनाफिक, बँट जाता है। जैसे,—कृष्ण काठन मिल ने इस धार अपने हिस्सेदारों को पाँच सैंकड़े डिडिडेंड बाँटा।

डिडीजन-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) वह भूभाग जिसके अंतर्गत कई जिले हों। कमिश्नरी। जैसे,—बनारस डिडीजन। (२) विभाग। जैसे,—वह मैट्रिक्जुलेशन परीक्षा में फस्ट डिडीजन में पास हुआ।

डिडसकाउंट-संज्ञा पुं० [ अं० ] यह कमी जो व्यवहार या लेनदेन में किसी वस्तु के मूल्य में की जाती है। घटा। दस्तूरी। कमीशन।

डिडिसिन-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) नियम या कायदे के अनुसार चलने की शिक्षा या भाव। अनुशासन। (२) आशु-वर्तिष्ठ। नियमानुवर्तिष्ठ। फरमोशरदारी। (३) व्यवस्था। पद्धति। (४) शिक्षा। तालीम। (५) दंड। सजा।

डिस्ट्रायर-संज्ञा पुं० [ अं० ] नासक जहाज। वि० दे० "टारपीडो बोट"।

डिस्ट्रिक्ट-संज्ञा पुं० [ अं० ] किसी प्रदेश या स्यूे का वह भाग जो एक कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। जिला।

पौ०—डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड-संज्ञा पुं० दे० "जिला बोर्ड"।

डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० दे० "जिला मैजिस्ट्रेट"।

डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट-संज्ञा पुं० [ अं० ] मंडाति। अतिमांय। पावन-शक्ति की कमी।

दोठनाळ-वि० स० [ हि० दोठ + ञ (प्रत्यय०) ] (१) देवना। दधि हालना। उ०—रूप गुरु कर चले डोठा। चित समाह होइ विग्र पहँडा।—जायसी। (२) बुरी दधि लगाना।

नजर लगाना। जैसे,—कल से बचे को सुवार आ गया; किसी ने डोठ दिया है।

डुडला-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसे दूदला भी कहते हैं।

डूंगा-संज्ञा पुं० [ सं० तुंग ] छोटी पहाड़ी। टीला।

डेका-संज्ञा पुं० [ दे० ] महानिय। पकायन।

धंहा पुं० [ अं० ] जहाज पर का लकड़ी से पटा हुआ फर्ना या छत।

डेमोक्रेसी-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] (१) वह सरकार या शासन-प्रणाली जिसमें राजसत्ता जन-साधारण के हाथ में हो और उस सत्ता या शक्ति का प्रयोग वे स्वयं या उनके निर्वाचित प्रतिनिधि करें। यह सरकार जो जन-साधारण के अधीन हो। सर्वसाधारण द्वारा परिचाहित सरकार। लोक-सत्ताक राज्य। प्रजा सत्ता-व्यक्त राज्य। (२) वह राष्ट्र जिसमें समस्त राजसत्ता जन-साधारण के हाथ में हो और वे सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन और न्याय का विधान करते हों। प्रजातंत्र। (३) राजनीतिक और सामाजिक समानता। समाज की वह अवस्था जिसमें कुलीन-अकुलीन, धनी-गरीब, ऊँच-नीच या इसी प्रकार का और भेद नहीं माना जाता।

डेमोक्रेट-संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) वह जो डेमोक्रेसी या प्रजासत्ता या लोकसत्ता के सिद्धांत का पक्षपाती हो। वह जो सरकार को प्रजासत्ताक या लोकसत्ताक बनाने के सिद्धांत का पक्षपाती हो। (२) वह जो राजनीतिक और प्राकृतिक समानता का पक्षपाती हो। वह जो कुलीनता-अकुलीनता या ऊँच-नीच का भेद न मानता हो।

डेरी-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] वह स्थान जहाँ गौएँ भैंसेँ रली और दूध, मक्खन आदि बेचा जाता हो।

पौ०—डेरी फार्म।

डेरी फार्म-संज्ञा पुं० दे० "डेरी"।

डेल-संज्ञा पुं० [ हि० डल ] वह डला जिसमें घरेलिय पक्षी आदि बंद करके रखते हैं। उ०—कित नहर बुनि भाउव कित ससुरे यह खेल। आपु आपु कहँ होइहि परव पंलि जस डेल।—जायसी।

डेल आपरियन-संज्ञा स्त्री० [ आपरिय ] आयलैंड की पार्लमेंट या व्यवस्थापिका परिषद जिसमें उस देश के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं।

डेली-संज्ञा स्त्री० दे० "डेल"। उ०—बंथिया मुखा करन सुलकेटी। चूरि पंलि मेलेसि घरि डेली।—जायसी।

डोम साल-संज्ञा पुं० [ हि० डोम + साल ] मँडोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसे गीदड़ रूप भी कहते हैं। वि० दे० "गीदड़ रूप"।

डोमीनियन-संज्ञा स्त्री० [ भं० ] (१) स्वतंत्र शासन या सरकार ।

(२) स्वतंत्र शासनवाला देश या साम्राज्य । जैसे,—ब्रिटिश डोमीनियन ।

डोल्ला-वि० [ हि० डोलना ] डोलनेवाला । बंचल । उ०—तुम बिजु कौंधे धनि हिया, तन तिनउर भा डोल । तेहि पर निरह जराइ के चहै उड़ावा झोल ।—जायसी ।

संज्ञा पुं० हलचल । उ०—बादसाह कहै ऐस न बोल्ल । चढ़ै तीं पर जगत भहै डोल्ल ।—जायसी ।

किं० प्र०—पढ़ना ।

डोलढाक-संज्ञा पुं० [ हि० ढाक ? ] पैगारा नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी के तखते बनते हैं । वि० दे० “पैगारा” ।

ड्यूक-संज्ञा पुं० [ भं० ] [ स्त्री० द्येन ] (१) इंग्लैंड, फ्रान्स, इटली आदि देशों के सामंतों और भूम्यधिकारियों की वंश परंपरागत उपाधि । इंग्लैंड के सामंतों और भूम्यधिकारियों को दी जानेवाली सर्वोच्च उपाधि जिसका दर्जा प्रिंस के नीचे है । जैसे,—कनाट के ड्यूक ।

विशेष—जैसे हमारे देश में सामंत राजाओं तथा बड़े बड़े जमींदारों को सरकार से महाराजाधिराज, महाराजा, राजा, महानुद, राजा आदि उपाधियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार इंग्लैंड में सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों को ड्यूक, मार्किस्, अर्ल, वाइकॉट, बैरन आदि की उपाधियाँ मिलती हैं । ये उपाधियाँ वंश-परंपरा के लिये होती हैं । उपाधि पानेवाले के मरने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र या उत्तराधिकारी उपाधि का भी अधिकारी होता है । इस प्रकार अधिकारी क्रम से उस वंश में उपाधि बनी रहती है । मार्किस्, अर्ल, वाइकॉट और बैरन-उपाधिधारी लार्ड कहलाते हैं । मार्किस्, बैरन आदि उपाधियाँ जारान में भी प्रचलित हो गई हैं ।

(२) सामंत । सरदार । (३) राजा ।

ड्यूटी-संज्ञा स्त्री० [ भं० ] (१) करने योग्य कार्य । कर्तव्य । धर्म । फर्ज । जैसे,—स्वयंसेवकों ने यद्दी तत्परता से अपनी ड्यूटी पूरी की । (२) वह काम जो संपूर्ण किया गया हो । सेवा । खिदमत । पहरा । जैसे,—(क) स्वयंसेवक अपनी ड्यूटी पर थे । (ख) कल्ल सवेरे वहाँ उसकी ड्यूटी थी । (३) नौकरी का काम । जैसे,—वह अपनी ड्यूटी पर चला गया । (४) कर । जुग्गी । महसूल । जैसे,—सरकार ने नमक पर ड्यूटी कम नहीं की ।

ड्राप-संज्ञा पुं० [ भं० ] (१) वूँद । बिंदु । (२) दे० “ड्रापसीन” ।

ड्राप सीन-संज्ञा पुं० [ भं० ] नाट्यशाला या थियेटर के रंग-भंच के भागे का परदा जो नाटक का एक अंक पूरा होने पर गिराया जाता है । यवनिका ।

ड्राफ्ट-संज्ञा पुं० [ भं० ] मसविदा । खर्चा । जैसे,—अपील का ड्राफ्ट तैयार कर के कमिटी में भेज दिया गया ।

ड्रामा-संज्ञा पुं० [ भं० ] (१) रंगमंच पर गदों का आकृति, हाव भाव, वचन आदि द्वारा किसी घटना या दृश्य का प्रदर्शन । रंगमंच पर किसी घटना या घटनाओं का प्रदर्शन । अभिनय । (२) वह रचना जिसमें मानव-जीवन का चित्र अंकों और गभाओं आदि में चित्रित हो । नाटक ।

ड्रेटनाट-संज्ञा पुं० [ भं० ] जंगी जहाज का एक भेद जो सांपारण जंगी जहाजों से बहुत अधिक बड़ा, शक्तिशाली और भीषण होता है ।

ड्रेन-संज्ञा पुं० [ भं० ] नगर के गंदे पानी के निकास का परनाला । मोती ।

दकपश्चा-संज्ञा पुं० [ हि० दक + पश्चा = पत्ता ] पलास-पापड़ा । दपना-किं० प्र० [ हि० दकना ] दका होना । उ०—लसत सेन सारी दप्यो तरल तरौना कान । पत्थी मनी सुरसरि सल्लि रवि प्रतिबिंबु बिहान ।—विहारी ।

किं० स० ढाकना । ऊपर से ओढ़ना ।

दसक-संज्ञा स्त्री० [ भु० ] (१) ठन ठन शब्द जो सूखी खाँसी में गले से निकलता है । (२) सूखी खाँसी जिसमें गले से ठन ठन शब्द निकलता है ।

ढार-संज्ञा स्त्री० [ भु० ] रोने का घोर शब्द । आर्तगाद । चिहाकर रोने की ध्वनि ।

मुहा०—ढार मारना या ढार मारकर रोना=चिहा चिहाकर रोना ।

ढारना-किं० स० [ सं० धार ] (१) धारों और धुनाना । डुलना । (चँवर के लिये) उ०—रवि बिबाल सो सति। सँवारा । चहुँ दिसे चँवर कराँहि सब ढारा ।—जायसी ।

ढाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) एक प्रकार का बड़ा शंखा जो बहुत नीचे तक लटकता रहता है और जो राजाओं की सवारी के साथ चलता है । उ०—धैरल ढाल गगन गा छाई । बला कटक धरा न समझै ।—जायसी ।

ढीलना-किं० स० [ हि० ढोलना ] (५) संभोग करना । प्रसंग करना । (बाजारू)

डुलाई-संज्ञा स्त्री० [ हि० डुलना ] (१) डुलने की क्रिया । (२) डोए जाने की क्रिया । जैसे,—आजकल सामान की डुलाई हो रही है । (३) डोने की मजदूरी ।

डूँढ़ी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] (१) किसी चीज का गोलपिंड या लोँदा । (२) डुने हुए आटे आदि का बड़ा गोल लड्डू जो प्रायः देहाती लोग खाते हैं ।

डूँटी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] धव का पेड़ ।

देवरी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसे चोरी, मामरी और रूही भी कहते हैं । वि० दे० “रूही” ।

देरा-वि० [ देश० ] जिसकी आँवों की पुतलियाँ देखने में बराबर न रहती हों । भंग । अंबर तन्हा ।

दोघा-संज्ञा पुं० [ हि० दोना ] (१) डोए जाने की क्रिया । डोघाई ।

(२) छट् । उ०—सूतदि खूब सँवरि गवु रोवा । कस होदि लौ होदि होवा ।—जायसी ।  
 दोवार्हे—पंश शी० दे० “द्वारहे” ।  
 तकरारी—वि० [ भ० तकार ] तकरार करेवाला । शगद्वाद ।  
 लक्ष्मण ।  
 तकौली—पंश पुं० [ देस० ] वीराम की जाति का एक प्रकार का  
 पद पृक्ष जिसे परसी भो कहते हैं । वि० दे० “परसी” ।  
 तज्जात पुसप—पंश पुं० [ सं० ] निपुण धर्मी । होसिमार कागिर ।  
 ततल—वि० [ सं० तत् ] उस । जैसे,—उतखन—तलक्षण ।  
 ततल्लन—कि० वि० दे० “तल्लण” । उ०—ततलन आइ विवॉन  
 पहुँवा । मन तें अधिक गगन तें ऊँचा ।—जायसी ।  
 ततल्लन—कि० वि० दे० “तल्लण” ।  
 तति—वि० [ सं० ] लंबा चीड़ा । विस्तृत । उ०—पशोपवीत पुनीत  
 पिरावत गूढ जनु वनि पीन असं तति ।—गुलसी ।  
 तन तनहा—कि० वि० [ हिं० तन + पठ० तनहा ] विलकुल अकेला ।  
 जिसके साथ और कोई न हो । जैसे,—वह तन तनहा  
 दुग्गन की छावनी से चला गया ।  
 तनुत्तप—पंश पुं० [ सं० ] बहू लाम जो मंत्र मात्र से साध्य  
 हो । (कौ०)  
 तपा—पंश पुं० [ सं० तप ] तप करनेवाला । तपस्वी । उ०—  
 मठ मंडप चहुँ पास सँवारे । तपा जपा सच आसन मारे ।—  
 जायसी ।  
 तफरका—पंश पुं० [ भ० ] विरोध । वैमनस्य ।  
 कि० प्र०—डालना ।—रडना ।  
 तचेला—पंश पुं० [ भ० तचेः ] वह स्थान जहाँ घोड़े घोँधे जाते  
 और गाढ़ी, एक आदि सवारियाँ रती जावो हों । अस्तव्य ।  
 सुदसाल ।  
 तमझा—पंश शी० [ भ० ] आकांक्ष । इच्छा । क्याहित ।  
 तमान—पंश पुं० [ ? ] एक प्रकार का विरदार पात्रामा जिसकी  
 मोहरि नीचे से संग होती है ।  
 तमालिनी—पंश शी० [ सं० ] काले रंग का वृक्ष । कृष्ण.सदिर ।  
 तरतराता—वि० [ हिं० तर ] धी में अच्छी तरह हुआ हुआ (पक-  
 वान) । जिसमें से धी निकलता या बहता हो । (साध पदार्थ)  
 तरसिया—पंश पुं० [ देस० ] एक प्रकार का पीपों जो प्रायः वेद  
 दो हाथ ऊँचा होता है और पश्चिमी भारत में जी या चने के  
 साथ बोया जाता है । इसके पीपों से तेल निकलता है जो  
 प्रायः जलाने के काम में आता है । तिरा ।  
 तरसीदौल—वि० [ हिं० तरसना + दौल (प्रत्य०) ] तरसनेवाला ।  
 उ०—सिय तरसीदौ सुनि किए करि सरसीदौ नेह । घर-  
 परसीदौ है रते सर-भरसीदौ मेह ।—विहारी ।  
 तररावय—पंश पुं० [ सं० ] बिना आशा लिये मर्जी पार करने का  
 उरमाना । (कौ०)

तरासना—कि० प्र० [ सं० शास + ना (प्रत्य०) ] मज दिखलाना ।  
 डराना । प्रस्त करना । उ०—बसक वीजु घन गरनि  
 तरासा । बिरह काल होइ जीय गरसा ।—जायसी ।  
 तरेंदा—पंश पुं० [ हिं० तना + दा (प्रत्य०) ] तैरनेवाला काठ ।  
 वेड़ा । उ०—सिंध तरेंदा जेहि गहा पार भये तेहि साथ ।  
 ते ते वृद्धे वाठरे मंड-पुष्टि जिन्ह हाथ ।—जायसी ।  
 तचेला—पंश पुं० दे० “तचेला” ।  
 तदना—कि० प्र० [ हिं० तेद + ना (प्रत्य०) ] क्रोध से जलना ।  
 क्रुद्ध होना । उ०—सदा चतुरई कवती नार्ही अति ही निहारी  
 तही हौ ।—चूर ।  
 ताज—पंश पुं० [ पठ० ताजिबाना ] घोड़े को मारने की याजुक ।  
 उ०—सीस तुहार चौँड भी बाँके । सँवरहिँ पीरि धाज विजु  
 हॉके ।—जायसी ।  
 ताजीशत—पंश पुं० [ भ० ] अपराध और दंड संपंधी व्यवस्थाओं या  
 कानूनों का संग्रह । दंडविधि । जैसे,—ताजीशत हिंद ।  
 ताहु—वि० [ हिं० ताहना ] ताड़नेवाला । भाँपने या अनुमान  
 करनेवाला ।  
 तादात्विक (राजा)—पंश पुं० [ सं० ] वह राजा जिसका खजाना  
 खाली रहता हो । जितना धन राज-कर आदि में मिले,  
 उसको खर्च कर डालनेवाला । (कौ०)  
 विशेष—आजकल के राज्य बढ़िया इसी प्रकार के होते हैं ।  
 ये प्रबंध में व्यव करने के लिये ही धन एकत्र करते हैं ।  
 तानापाई—पंश शी० [ हिं० ताना + पाई = ताने का सूत फैलाने का  
 ढाँच ] बार बार किसी स्थान पर आना जाना । उसी प्रकार  
 लगाधार फेरें लगाना जिस प्रकार जुलाहे ताने का सूत  
 पाई पर फैलाने के लिये लगाते हैं ।  
 तानी—पंश शी० [ हिं० तानना ] झंगरने या खोली आदि की  
 तनी । बंद । उ०—कंलुकि चूर, चूर भइ तानी ।—दूट हार  
 मोति छहरानी ।—जायसी ।  
 ताप-व्यंजन—पंश पुं० [ सं० ] ये गुलचर वा सुकिया पुलिख के  
 आदमी जो तपस्वियों या साधुओं के घेस में रहते थे ।  
 विशेष—कौटिल्य के समय में ये समाह्वय के शकीय होते थे ।  
 ये किसानों, गोपों, व्यापारियों तथा निच निच अर्थवृत्तों के  
 ऊपर रहि रखते थे तथा ब्राह्मण राजा के गुलचरों और धोर  
 डाकुओं का पता भी लगवा करते थे ।  
 तार—पंश पुं० [ सं० तार ] (२) साइ नामक वृक्ष । उ०—  
 कीन्हैसि बगईल भी करि मूरी । कीन्हैसि तरियार तार  
 लूरी ।—जायसी ।  
 पंश पुं० [ सं० ] (२) लौ । उ०—गुलसी मृपदि विसो  
 कदि न सुधाने कोउ पन और ऊँर दोज मेम की  
 गुला भी साह ।—गुलसी ।  
 तारना—कि० सं० [ सं० तापय ] (३) पानी की धारा देना । तरेंदे

देना । उ०—मनहँ पिरह के सय पाव हियेँ लखि तकि तकि  
 धरि धीरज तारति।—तुलसी ।  
 तारामंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) एक प्रकार का कपड़ा ।  
 तारिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) ४० हाथ लंबी, ५ हाथ चौड़ी,  
 और ४६ हाथ ऊँची नाव ।  
 तालमूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] एकद्वी की डाल । (कौ०)  
 ति-वि० [ सं० तद्वा या त ] यह । उ०—ति न नगरि ना नगरि,  
 प्रति यद्द हंस क हीन ।—देवाव ।  
 तिश्वाह-संज्ञा पुं० [ सं० ति + ष ] यह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु  
 के पैंतालीसवें दिन किया जाता है ।  
 तितहार-संज्ञा पुं० दे० “त्यूहार” । उ०—सखि माँनै तितहार  
 सब, गाह देवारी खेलि । हँ का गावौँ कंठ बिनु, रही छार  
 सिर मेलि ।—जायसी ।  
 तिगून-संज्ञा पुं० [ हि० तिगुना ] ( १ ) तिगुना होने का भाव ।  
 (२) आरंभ में जितना समय किसी चीज के गाने या यज्ञाने  
 में लगाया जाय, आगे चलकर वह चीज उसके तिहाई समय  
 में गाना । साधारण से तिगुना जल्दी गाना या यज्ञाना ।  
 वि० दे० “तीगून” ।  
 तितरात-संज्ञा पुं० [ १ ] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ औषध  
 के काम में आती है ।  
 तिनउर-संज्ञा पुं० [ सं० तृण + उर या भौर (अप्य०) ] तिनकों का  
 ढेर । तृण-समूह । उ०—जन तिनउर भा, शरीर खरी । भइ  
 परखा, दुख भागिरि जरी ।—जायसी ।  
 तिपागळी-संज्ञा पुं० दे० “त्याग” ।  
 तियागना-संज्ञा-कि० रा० [ सं० त्याग + ना (अप्य०) ] त्याग करना ।  
 छोड़ना ।  
 तियागी-संज्ञा-वि० [ सं० त्यागी ] ( १ ) त्याग करनेवाला । छोड़ने-  
 वाला । उ०—यलि विक्रम दागी यद्द कही । हानिम करन  
 तियागी भई ।—जायसी ।  
 तिवीरजनुपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] अन्यराष्ट्र का मनुष्य । विदेशी । (कौ०)  
 तिलफरा-संज्ञा पुं० [ देता० ] एक प्रकार का छोटा सुंदर सदायहार  
 वृक्ष जो हिमालय में, ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक  
 पाया जाता है । इसकी पत्तियों, गहरे हरे रंग की और  
 ३-४ इंच की होती हैं ।  
 तिलिस्मात-संज्ञा पुं० [ सं० तिलिस्म ] ( १ ) अहुत या अलौकिक  
 कार्य, चमत्कार, करामत । (२) जादू, ईशजाल ।  
 तिलहारी-संज्ञा स्त्री० [ १ ] झालर की तरह का यह परदा जो घोड़ों  
 के माथे पर उनकी आँखों को भवियों से बचाने के लिये  
 लौंटा जाता है । नुकता । ( २ )  
 तीघ-संज्ञा स्त्री० [ सं० तीघ ] स्त्री । औरत । उ०—सीघ कँवल  
 सुगंध सरीरु । ससुद लहरि सौई तन, चीरु ।—जायसी ।  
 तुंगला-संज्ञा पुं० [ देता० ] एक प्रकार की छोटी क्षायी जो पश्चिमी

हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है ।  
 गढ़वाल में लोग इसकी पत्तियों का नमूना या सुती के  
 स्थान पर व्यवहार करते हैं । इसके फल खट्टे होते हैं और  
 इसकी की तरह काम में लाय जाते हैं ।  
 तुकार-संज्ञा पुं० [ सं० ? ] (४) घोड़ा । अध । उ०—आना कादर  
 एक तुकार । कहा सो फेरी भा असवारु ।—जायसी ।  
 तुलार-संज्ञा स्त्री० [ हि० तुलाना ] गाड़ी के पहियों को बाँधने या  
 धुरी में चिकना दिलवाने की क्रिया ।  
 तुलामानांतर-संज्ञा पुं० [ सं० ] तौल में अंतर डालना । कम तौल  
 के यत्न से रखना । हलके घाट रखना ।  
 विशेष-कीटिल्य ने इस अवस्था के लिये २०० पण दंड  
 लिखा है ।  
 तुलाहीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कम तौलना । ढोड़ी मारना ।  
 विशेष-चागव्य ने तौल की कमी में कमी का चार गुना  
 गुमाना लिखा है ।  
 तृतिया-संज्ञा पुं० [ सं० तृथ ] नीला घोषा ।  
 तूरा-संज्ञा पुं० [ सं० तूर ] तुरही नाम का बाजा । उ०—निसि  
 दिन बागई मादर तूरा । रहस कइ सय भरे सँदूरा ।—  
 जायसी ।  
 तूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] लंपेपन का विस्तार । लंबाई ।  
 यौ०—तूल भर्ज=शर्भ और चौलाई ।  
 तुहा-संज्ञा पुं०—तूल सींचना=निसि बात या कार्य का भावयकता से बहुत  
 बहना । जैसे,—(क) व्याह का काम बहुत तूल सींच रहा  
 है । (ख) उन लोगों का झगडा बहुत तूल सींच रहा है ।  
 तूल देना= किसी बात को भावयकता से बहुत बहाना । जैसे,—  
 हर एक बात को तूल देने की तुम्हारी आदत है । तूल  
 पकड़ना=दे० “तूल सींचना” ।  
 तुलम तूल-कि० वि० [ सं० तुल्य या सं० तूल = लंबाई ] सामने  
 सामने । पराधी पर । उ०—कंत पियारे, भेंट देसौ तुलम  
 तूल होइ । भए ययस दुहू हँड मुहमद निति सरगिरि  
 करे ।—जायसी ।  
 तुल्पी युद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह युद्ध जिसमें पटयंत्र के द्वारा  
 शत्रु के मुख्य मुख्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर  
 लिया जाय । (कौ०)  
 तुलमखि-संज्ञा पुं० [ सं० ] तुल की आकर्षक करनेवाला मणि ।  
 कहरवा ।  
 तुलाख्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का तृण जो औषध के काम  
 में आता है । पर्वतुण ।  
 तेंदुस-संज्ञा पुं० [ सं० तिथिय ] खंडसी नाम की तरकारी ।  
 तेल चलाई-संज्ञा स्त्री० [ हि० तेल + चलाई ] देसी छींट की छलाई  
 में मिटाई नाम की क्रिया । वि० दे० “मिटाई” ।  
 तेवान-संज्ञा पुं० [ देता० ] सोच । चिन्ता । फिर । उ०—

मन सेवान के राघव द्वारा। नाहि उबार जीउ डर-परा।  
जायसी।

**तोरकी**-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की वनस्पति जो भारत के गरम प्रदेशों और एका में प्रायः प्रायः के साथ होती है। पश्चिमी भारत में अकाल के दिनों में गरीब लोग इसके दानों आदि की रोडियाँ बनाकर खाते हैं।

**तोरो**-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] काली सरसों।

**तोपपत्र**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र जिसमें राज्य की ओर से जागीर मिलने का उल्लेख रहता है। यहिखानामा।

**त्यौं**-संज्ञा स्त्री० [ सं० तन ] और। तरक। उ०—सादर वारहिं वार सुमाय चित्त तुम त्यौं हयरो मन मोहै। पृथति प्रामयधु सिय सौं कहै सौँवरे से सखि रावरे कोहै।—तुलसी।

**प्रासमान**-संज्ञा-वि० [ सं० प्रात + मान (भव०) ] उदा हुआ। भय-भीत। उ०—जोगी जती आव जो कोहै। सुनतहि प्रासमान भा सोहै।—जायसी।

**त्रिभुवननाथ**-संज्ञा पुं० [ सं० त्रिभुवन + नाथ ] जगदीश। पर-मेध। उ०—त्यौं भय त्रिभुवननाथ ताइका मारो सह सुत।—केशव।

**उपवरा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तीन सदस्यों की शासक-सभा। वि० दे० "दशावरा"।

**विशेष**-मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लुक ने तीन संभ्यों से ऋचेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी का तात्पर्य लिया है।

**यलपति**-संज्ञा पुं० [ सं० यल + पति ] राजा। उ०—धवन नयन मन लगे सय धलपति तायो।—तुलसी।

**थाक**-संज्ञा पुं० [ सं० था ] ( ३ ) सीमा। हद। उ०—मेरे कहाँ थाई गोरस को नवनिधि मंदिर यामहि।—तुलसी।

**थाकना**-कि० प्र० [ हि० थकना ] ( २ ) रकना। उदरना। उ०—जग जल बूध तहाँ रुगि ताकी। मोरि नाथ खेवक विदु थाकी।—जायसी।

**थालिका**-संज्ञा स्त्री० [ हि० थाल ] वृक्ष का थाल। आडवाल। उ०—पुनजन प्रजोपहार सोमिंत ससि। पवळ धार भजन भवभार भकि कहर कालिका।—तुलसी।

**थियेटर**-संज्ञा पुं० [ अंग० ] ( १ ) वह मकान जहाँ नाटक का अभिनय दिखाया जाता है। नाट्यशाला। नाटक घर। ( २ ) अभिनय। नाटक।

**थियोसोफिस्ट**-संज्ञा पुं० [ अंग० ] थियोसोफी के सिद्धान्तों को माननेवाला।

**थियोसोफी**-संज्ञा स्त्री० [ अंग० ] ईश्वरीय ज्ञान जो किसी देवी या कि-अथवा आत्मा के प्रकार से हुआ हो। प्रज्ञाविद्या।

**थिरकीहोई**-वि० [ हि० थिरकना + होई (भव०) ] थिरकनेवाला। थिरकता हुआ।

**थि** [ हि० थिर ] उदरा हुआ। स्थिर। उ०—बग थिरकौं

अथखुल देह थकीं हँ वार। सुरत सुथित सी देखियति दुखिन।  
गरम कै भार।—विहारी।

**थिरधानी**-संज्ञा पुं० [ सं० थिर + धान ] स्थिर स्थानवाले, लोकपाल आदि। उ०—सुकुन सुमन तिल-मोद यासि थिधि जतन जंत्र भरि कानी। मुख सनेह सय दियो। दस्-रयाहि खरि खेलेठ थिरधानी।—तुलसी।

**थीपी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० स्थिति ] ( १ ) स्थिता। ( २ ) धैर्य। धीरज। इतमीनान। उ०—यधिई स्थंती सौं जस पीती। टेकु पिपास, यौधु मन पीती।—जायसी।

**थोर**-वि० [ सं० थिर ] स्थिर। उदरा हुआ। उ०—उलथहि मानिक मोती हीरा। दरय देखि मन होइ न थोर।—जायसी।

**थूर**-संज्ञा पुं० [ सं० धुवप ] अरहर। नूर।  
**दंड-श्रृणु**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह श्रृणु जो सरकारी खुरमाना देने के लिये लिया गया हो।

**दंडखेदी**-संज्ञा पुं० [ सं० दंड + खेदि ] वह मनुष्य जो राज्य से दंड पाने के कारण कष्ट में हो। दंड से तुली व्यक्ति।

**विशेष**—प्राचीन काल में भिन्न भिन्न अपराधों के लिये हाथ पैर काटने, शंख जलाने आदि का दंड दिया जाता था जिसके कारण दंडित व्यक्ति बहुत दिनों तक कष्ट में रहते थे। कौटिल्य ने ऐसे व्यक्तियों के कष्ट का उपाय करने की व्यवस्था की थी।

**दंडचारी**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति। (की०)  
**दंडधारणा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह भूमि या प्रदेश जहाँ प्रबंध और शासन के लिये सेना रखनी पड़े। (की०)

**दंडमान**-वि० [ सं० दंड + मान (भव०) ] दंड पाने योग्य। दंड-नीय। उ०—अदंडमान वीन गर्व दंडमान भेद्वै।—केशव।

**दंडव्यूह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में सेना की समान स्थिति। (की०)

**दंडसंधि**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह संधि जो सेना या उदाई का सामान लेकर की जाय। (की०)

**दंडस्थान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) वह जनपद या राष्ट्र जिसका शासन सैन्य द्वारा होता हो। (की०)

**दंडाकरण**-संज्ञा पुं० दे० "दंडकारण्य"। उ०—परे आह वन परयत माहौं। दंडाकरण शीरु-यन जाहौं।—जायसी।

**दंडित**-वि० [ अंग० ] ( २ ) जिसका शासन किया गया हो। शासित। उ०—पंडित गग मंडित गुण दंडित मजि देखिये।—केशव।

**दंडोपनत**-वि० [ सं० ] पराजित और अधीन (राना)। (की०)  
**दंदत**-संज्ञा पुं० दे० "दंद"। उ०—कान्हेसि राकस भूत परीना।

कान्हेसि भोक्स देव दहो।—जायसी।

**दश दिशा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दक्षिण दिशा।

देना । उ०—मनुहुं विरह के सब घाव हिये लपित तकि तकि  
 परि धरिज तारति ।—तुलसी ।  
 तारामंडल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) एक प्रकार का कपड़ा ।  
 तारिणी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) ४० हाथ लंबी, ५ हाथ चौड़ी,  
 और ४६ हाथ ऊँची नाव ।  
 तालमूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] लकड़ी की टाल । (कौ०)  
 ति-वि० [ सं० तद् वा त ] यह । उ०—ति न नगरी ना नागरी,  
 प्रति षड हंस क हीन ।—केशव ।  
 तिश्नाह-संज्ञा पुं० [ सं० वि + ष्व ] यह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु  
 के पंचतीसवें दिन किया जाता है ।  
 तिउहार-संज्ञा पुं० दे० "लौहार" । उ०—सखि मानैं तिउहार  
 सब, गाह देवारी खेलि । हौं का भावौं कंत विनु, रही छार  
 सिर मेलि ।—जायसी ।  
 तिगून-संज्ञा पुं० [ हि० तिगुण ] ( १ ) तिगुना होने का भाव ।  
 (२) आरंभ में जितना समय किसी चीज के गाने या यज्ञाने  
 में लगाया जाय, आगे चलकर वह चीज उसके तिहाई समय  
 में गाना । साधारण से तिगुना जल्दी गाना या यज्ञाना ।  
 वि० दे० "चोगून" ।  
 तितरात-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ औषध  
 के काम में आती है ।  
 तिनउर-संज्ञा पुं० [ सं० तृण + उर या और (अप्य०) ] तिनकों का  
 ढेर । वृण-समूह । उ०—जब तिनउर भा, धरौं खरी । भइ  
 बरखा, बुल आगिरि जरी ।—जायसी ।  
 तियागळी-संज्ञा पुं० दे० "व्याग" ।  
 तियागाना-संज्ञा-कि० सं० [ सं० त्याग + ना (अप्य०) ] त्याग करना ।  
 छोड़ना ।  
 तियागो-संज्ञा-वि० [ सं० त्यागी ] ( १ ) त्याग करनेवाला । छोड़ने-  
 वाला । उ०—यलि विक्रम दानी बहु कहै । हातिम करने  
 तियागो अहै ।—जायसी ।  
 तिरोजनुपद-संज्ञा पुं० [ सं० ] अम्य राष्ट्र का मनुष्य । विदेशी । (कौ०)  
 तिलफरा-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का छोटा सुंदर सदाबहार  
 वृक्ष जो हिमालय में, ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक  
 पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की और  
 चमकीली होती हैं ।  
 तिलिस्मात-संज्ञा पुं० [ सं० तिलिस्मत ] (१) अद्भुत या अलौकिक  
 कार्य । चमत्कार । करामत । (२) जादू । इंद्रजाल ।  
 तिलहारी-संज्ञा स्त्री० [ ? ] शालर की तरह का यह परदा जो घोड़ों  
 के माथे पर उनकी आँखों की मखिलियों से बचाने के लिये  
 लटकाया जाता है । सुकता । ( २ )  
 तीवह-संज्ञा स्त्री० [ सं० ती ] यौ । औरत । उ०—तीवह कँवल  
 सुगंध सरीरु । सयुध लहरि सौहे तन । चौरु ।—जायसी ।  
 तुंगला-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पश्चिमी

हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है ।  
 गुदाबल में लोग इसकी पत्तियों का तमाहू या सुती के  
 स्थान पर व्यवहार करते हैं । इसके फल खटे होते हैं और  
 हमली की तरह काम में लाए जाते हैं ।  
 तुषार-संज्ञा पुं० [ सं० ? ] (४) घोड़ा । भव । उ०—आना काट  
 एक तुषारु । कदा सो फेरी भा असवारु ।—जायसी ।  
 तुलार-संज्ञा स्त्री० [ हि० तुलाना ] गाड़ी के पहियों को भीगाने या  
 धुरी में चिकना दिलवाने की क्रिया ।  
 तुलामानांतर-संज्ञा पुं० [ सं० ] तौल में अंतर छालना । कम तौल  
 के बटखरे रखना । हलके वाट रखना ।  
 विशेष-कौटिल्य ने इस अपराध के लिये २०० पग दंड  
 लिखा है ।  
 तुलाहीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] कम तौलना । ढोंड़ी मारना ।  
 विशेष-चागक्य ने तौल की कमी में कमी का चार गुना  
 जुरमाना लिखा है ।  
 त्रुतिया-संज्ञा पुं० [ सं० त्रुत्य ] नीला घोधा ।  
 त्रुर-संज्ञा पुं० [ सं० त्रुर ] 'त्रुरही' नाम का धाजा । उ०—निसि  
 दिन बागहिं मादर त्रुर । रहस छुद सय भरे संत्रुर ।—  
 जायसी ।  
 त्रूल-संज्ञा पुं० [ सं० ] लंपेपन का विस्तार । लंबाई ।  
 यौ०—त्रूल अर्ज=अर्ज और चौलाई ।  
 मुद्दा-संज्ञा-वि० [ सं० ] व्याह का काम बहुत तूल खींच देना  
 है । (ख) उन लोगों का समूह बहुत तूल खींच रहा है ।  
 तूल देना=किसी बात की भावश्यकता से बहुत बंधाना । जैसे,—  
 हर एक बात को तूल देने की तुम्हारी आदत है । तूल  
 पकड़ना=दे० "तूल खींचना" ।  
 तुलम तूल-कि० वि० [ सं० तुल्य या म० तूल = लंबाई ] सामने  
 सामने । बराबरी पर । उ०—कंत पियारे भेंट देखौ तुलम  
 तूल होइ । भय बयस बुद्ध हेंट मुहमय निति सरगारि  
 करे ।—जायसी ।  
 तुप्पी युद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह युद्ध जिसमें पदयंत्र के द्वारा  
 शत्रु के मुख्य मुख्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर  
 लिया जाय । ( कौ० )  
 तुणमण्डि-संज्ञा पुं० [ सं० ] तुण को आकर्षक करनेवाला मणि ।  
 कहल्यो ।  
 तुणाल्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का तुण जो औषध के काम  
 में आता है । पर्वतुण ।  
 तेंदुल-संज्ञा पुं० [ सं० थिदिया ] उड़सी नाम की तरकारी ।  
 तेल चलाई-संज्ञा स्त्री० [ हि० तेल + चलाना ] देशी छोट की उगाई  
 में मिटाई नाम की क्रिया । वि० दे० "मिटाई" ।  
 तेजान-संज्ञा पुं० [ दे० ] सोच । चिन्ता । फिकर । उ०—

मन सेवान के राखन द्वारा । नाहि उचार जीउ डर-परा ।—  
जायसी ।

तोरकी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार की वनस्पति जो भारत  
के गरम प्रदेशों और लकड़ों में प्रायः घास के साथ होती  
है । पश्चिमी भारत में अकाल के दिनों में गरीब लोग इसके  
दानों आदि की रोटियाँ बनाकर खाते हैं ।

तोरी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] काली सरसों ।

तोपपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र जिसमें ताप की ओर से  
जमीन मिलने का उल्लेख रहता है । वक्षिशानामा ।

र्यों-संज्ञा स्त्री० [ सं० र्तन ] और । सरफ । उ०—सादर वारहिं  
वार सुभाष चिन्हें हुम र्यों इमरो मन मोहैं । पछति प्रामथयू  
स्त्रिय सों कही साँवरे से सल्लि साँवरे को हैं ।—तुलसी ।

प्रासमान-वि० [ सं० प्रास + मान (भव०) ] दरा हुआ । भय-  
भीति । उ०—जोगी जती आय जो कोहैं । सुनतहि प्रासमान  
भा सोई ।—जायसी ।

त्रिभुवननाथ-संज्ञा पुं० [ सं० त्रिभुवन + नाथ ] जगदीश । पर-  
मेश्वर । उ०—र्यों भय त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सह  
मुत ।—देवनाथ ।

उपघरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तीन सदस्यों की शासक-सभा । वि०  
दे० “दशाघरा” ।

विशेष-मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लुक ने तीन संस्थों से  
प्रायवेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी का तात्पर्य लिया है ।

घरुपति-संज्ञा पुं० [ सं० स्वरु + पति ] राजा । उ०—रत्नन नयन  
मन लगे सुख घरुपति तापो ।—तुलसी ।

घाक-संज्ञा पुं० [ सं० खा ] ( २ ) सीमा । हद । उ०—मेरे कहीं  
बाहु गोरस को मचनिधि मंदिर यामहिं ।—तुलसी ।

घाकना-कि० प्र० [ हि० वकना ] ( २ ) रुकना । टहरना ।  
उ०—जग जल गूढ़ तहाँ लगि ताकी । मोरि नाथ स्वेक  
बिनु थाकी ।—जायसी ।

घालिका-संज्ञा स्त्री० [ हि० घाल ] दूध का घाला । आठघाल ।  
उ०—पुरजन पूजोपहार सोमिंति ससि । पबल धार भजन  
भवमार मोक कल्प कालिका ।—तुलसी ।

घियेटर-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) वह मकान जहाँ नाटक का अभिनय  
दिखाया जाता है । नाचघाला । नाटक घर । ( २ ) अभि-  
नय । नाटक ।

घियोसोफिस्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] घियोसोफो के सिद्धान्तों को  
माननेवाला ।

घियोसोफी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ईश्वरीय ज्ञान जो किसी देवी शक्ति  
अथवा आत्मा के प्रकाश से हुआ हो । प्रकाशिता ।

घिरकौहो-वि० [ हि० घिरकना + होई (भव०) ] घिरकनेवाला ।  
घिरकता हुआ ।

वि० [ हि० घिर ] उतरा हुआ । स्थिर । उ०—रग घिरकौहें

अधखुल देह यहाँ है उर । सुरत सुखित सी देखियति सुखित,  
गरम के भार ।—विहारी ।

घिरधानी-संज्ञा पुं० [ सं० स्थिर + धान ] स्थिर स्थानवाले,  
लोकपाल आदि । उ०—सुकुन-सुमान तिल-मोद यासि  
विधि जतन जय भरि कानी । सुप सनेह सब दियो दुस-  
रयहिं खरिं छेलेल घिरधानी ।—तुलसी ।

धीधी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ध्वनि ] ( १ ) स्थिरता । ( २ ) धैर्य ।  
धीरज । इतमीनान । उ०—बसिहै खानी सौं अस प्रीती ।  
देकु पियास, बाँपु मन थीती ।—जायसी ।

धीर-वि० सं० स्थिर ] स्थिर । ठहरा हुआ । उ०—उलथहि  
मानिक मोती हीरा । दरव देखि मन होइ न-धीर ।—  
जायसी ।

धूर-संज्ञा पुं० [ सं० धुप ] भरहर । वृ ।  
दंड-अनुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र जो सरकारी छरमाना देने  
के लिये लिया गया हो ।

दंडखेदी-संज्ञा पुं० [ सं० दंडखेदि ] वह मनुष्य जो राज्य से दंड  
पाने के कारण कष्ट में हो । दंड से दुखी व्यक्ति ।

विशेष—प्राचीन काल में मित्र मित्र अपराधों के लिये हाथ  
पैर कटाने, कंठा लटाने आदि का दंड दिया जाता था जिसके  
कारण दंडित व्यक्ति बहुत दिनों तक कष्ट में रहते थे ।  
कौटिल्य ने ऐसे व्यक्तियों के कष्ट का उपाय करने की  
व्यवस्था की थी ।

दंडचारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेनापति । (कौ०)

दंडधारणा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह भूमि या प्रदेश जहाँ प्रबंध  
और शासन के लिये सेना रखनी पड़े । (कौ०)

दंडमान-वि० [ सं० दंड + मान (प्रत्य०) ] दंड पाने योग्य । दंड-  
नीय । उ०—अदंडमान वीन गर्व दंडमान भेद्वै ।—केदाव ।  
दंडभ्यूह-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) पक्ष, कक्ष तथा डरस्य में सेना  
की समान स्थिति । (कौ०)

दंडसंधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह संधि जो सेना या लड़ाई का  
सामान्य श्लोक की जाय । (कौ०)

दंडस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) वह जनपद या राष्ट्र-निम्नका  
शासन सैन्य द्वारा होता हो । (कौ०)

दंडाकरण-संज्ञा पुं० दे० “दंडकरण” । उ०—नरे भाहू वन  
परखत माहौं । दंडकरण धीरु-वन जाहौं ।—जायसी ।

दंडित-वि० [ सं० ] ( २ ) जिसका शासन किया गया हो ।  
शासित । उ०—पंडित गम मंडित गुण दंडित मनि देखिये ।—  
केदाव ।

दंडोपनत-वि० [ सं० ] पराजित और अधीन (राजा) । (कौ०)

ददत-संज्ञा पुं० दे० “ददत” । उ०—कौन्हेसि राकम भूत परीता ।  
कौन्हेसि भोक्त ददत दहता ।—जायसी ।

ददत दिशा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दक्षिण दिशा ।



**दृग्ना**-किं प्र० [ अ० दाम ] (१) दृग्ना जाना । अंकित होना । चिह्नित होना । (२) प्रसिद्ध होना । मशहूर होना । उ०-  
लोक वेद हूँ हूँ दृग्ना नाम भले को पोच । धर्मराज जस गाज  
पवि कहत सकोच न सोच ।—गुलसी ।

**दृगल**-संज्ञा पुं० दे० "दृगला" । उ०-सूर सुपेती मंदिर राती ।  
दृगल चीर पहिरहि बहु भांती ।—जायसी ।

**दृत्तस्थानपा** कर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] कोई चीज किसी को देकर  
फिर लौटाना । एक बार दान करके फिर वापस माँगना या  
लेना । (की०)

**दृमनल**-संज्ञा स्त्री० दे० "दृमयती" । उ०-दृमनहि नलहि जो हंस  
मेराया । तुम्ह हीरामन नार्थ कहाया ।—जायसी ।

**दृर्धवी**-संज्ञा स्त्री० [ पा० ] (१) किसी चीज की दृर या भाव  
निश्चित करने की क्रिया । (२) लगान आदि की निश्चित  
की हुई दर । (३) अलग अलग दर या विभाग आदि निश्चित  
करने की क्रिया ।

**दृरसनी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० दरसन ] दर्पण । शीशा । आहना । उ०-  
नखल सुदरसन दरसनी छेमकरी चक चाप । दृर दिसि  
देखत सरुण सुभ पूजहि मन भमिलाप ।—गुलसी ।

**दृर्पमद्य** क्रीडा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] रसिकता या रँगिलेपन के खेल ।  
नाच रंग आदि ।

**दृर्शनप्रतिभाव्य** ऋण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ऋण जो दर्शन-प्रतिभू  
की साख पर लिया गया हो ।

**दृलकन**-संज्ञा स्त्री० [ हि० दलकना ] (१) दलकने की क्रिया या  
भाव । दलक । (२) झटका । धापात । उ०-मंद बिलेद  
अभेरा दलकन पाइय मुख झकझोरा रे ।—गुलसी ।

**दृलित**-वि० [ सं० ] (५) जो दबा रखा गया हो । दबाया हुआ ।  
जैसे,—भारत की दलित जातियाँ भी अब उठ रही हैं ।

**दृर्घरा**-संज्ञा पुं० [ सं० दव + अंगार ? ] घर्षा ऋतु के आरंभ में  
होनेवाली शब्दी । उ०-विहरत हिंया करहु पिठ टंका ।  
दीडि-दुवैगरा मेरवहु एका ।—जायसी ।

**दृशमूली** संग्रह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे दस चीजों जो आंग से बचने  
के लिये प्रत्येक व्यक्ति को घर में रखनी चाहिएँ ।

**विशेष**- चंद्रयुत मौर्य के समय में निम्नलिखित दस चीजों को  
घर में रखने के लिये प्रत्येक व्यक्ति राजनिघम के द्वारा  
साध्य था । (१) पानी से भरे हुए पाँच घड़े, (२) पानी  
से भरा हुआ एक मटका, (३) सीढ़ी, (४) पानी से भरा  
हुआ बर्तन का धरतन, (५) फरसा या कुल्हाड़ी, (६) सूय,  
(७) अंकुश, (८) खंड आदि उखाड़ने का औजार, (९)  
मशक और (१०) हल्लादि । इन दसों चीजों का नाम दृशमूली  
संग्रह था । जो लोग इनके रखने में प्रमाद करते थे, उनको  
३ पण जु्रमाना देना पड़ता था । (की०)

**दृशावरा**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दस सभ्यों की शासक-सभा । दस  
पंचों की राज-सभा ।

**विशेष**-ऐसी सभा जो व्यवस्था दे, उसका पालन मनु ने  
आवश्यक लिखा है । गौतम ने दृशावरा के दस सभ्यों का  
विभाग इस प्रकार बताया है कि चार तो भिन्न भिन्न वेदों के,  
तीन भिन्न भिन्न आश्रमों के और तीन भिन्न भिन्न धर्मों के  
प्रतिनिधि हों । बौद्धायन ने धर्मों के तीन शाखाओं के स्थान  
पर मीमांसक, धर्मपाठक और ज्योतिषी रखे हैं ।

**दृसन**-संज्ञा पुं० [ देस० ] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पंजाब,  
सिंध, राजपूताने और मैसूर में पाई जाती है । इसकी छाल  
चमड़ा सिन्धाने के काम में आती है । दृसनी ।

**दृरनी**-संज्ञा स्त्री० [ देस० ] एक प्रकार की झाड़ी । वि० दे०  
"दृसन" ।

**दृहन**-संज्ञा पुं० [ देस० ] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी । वि० दे०  
"कंजा" ।

**दृल्ल**-संज्ञा पुं० [ हि० दल्ल ] दौड़ । दृप । वार । उ०-ऐस  
जो ठाकुर किय एक दाऊँ । पहिले रचा मुहम्मद नाऊँ ।—  
जायसी ।

**दृल्ल**-वि० दे० "दृक्ष" । उ०-ताकीं विहित बखानहीं, जिनरी  
कविता दाख ।—मतिराम ।

**दृल्ल निरयिसी**-संज्ञा स्त्री० [ हि० दल्ल + निरयिसी ] दर लेवनी नाम  
की झाड़ी जिसकी पत्तियाँ और जड़ का औषध रूप में  
व्यवहार होता है । पुरही ।

**दान-प्रतिभू**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जामिन जो यह कहे कि "यदि  
दृसने व्याज सहित धन न लौटाया तो मैं ही धन दे दूँगा ।"

**दायोपगत दास**-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह दास जो बराबरत में  
मिला हो ।

**दार-प्रत्य** [ प० ] रत्नबाला । घाला । जैसे,—मालदार/  
सुकानदार ।

**दिआना**-किं सं० दे० "दिलाना" । उ०-सब दिन राजा दान  
दिआया । भइ तिसि नागमती पहँ आवा ।—जायसी ।

**दिआदिखी**-संज्ञा स्त्री० [ हि० देखना ] देखादेखी । सामना ।  
उ०-जे सय होत दिआदिखी भइँ अमी इक आँक । रौँ  
तिरीछी छीटि अब हूँ सीछी को सँक ।—बिहारी ।

**दिगपाल**-संज्ञा पुं० दे० "दिक्पाल" । उ०-(क) चालि अचल  
अचल घालि दिगपाल बल पालि ऋपिराज के यचन परचण्ड  
को ।—केशव । (ख) दिगपालन की भुवपालन की श्लोक-  
पालन की किन मातृ गई चै ।—केशव ।

**दिवादिदी**-संज्ञा स्त्री० [ हि० दीठ ] देखा देली । सामना । उ०-  
लहि रूँ घर कर गृहत् दिवादिदी की हँडि । गदी सुचि-  
नाहीं करति करि ललबाहीं छीटि ।—बिहारी ।

दिवाणा—कि० सं० [ हि० दीठ + प्राणा (प्रत्य०) ] नजर लगाता ।  
 दृष्टि लगाना ।  
 कि० प्र० नजर लगाना ।  
 दिनअरक—संज्ञा पुं० [ सं० दिनकर ] सूर्य । उ०—गहन छूट दिन-  
 भर कर-ससि सौं मण्ड' मिराव । मंदिर सिंहासन साजा  
 याजा नगर बधाव ।—जायसी ।  
 दिनभृति—संज्ञा पुं० [ सं० ] रोज की मजदूरी पर काम करने-  
 वाला मजदूर ।  
 दिपाणा—कि० प्र० दे० "दिपना" । उ०—कनक कलेस भुप-  
 चन्द्र दिपाहीं । रहस केलि सन आवहि जाहीं ।—जायसी ।  
 कि० सं० [ हि० दिनया ] दीप्त करना । चमकाना ।  
 दिपना—कि० प्र० [ सं० दीप्त ] दीप्त होना । चमकना । उ०—  
 पालकेलि वातवस झलकि झलमलत सोभा की दीपत मानों  
 रूप दीप दिपो है ।—उलसी ।  
 दिपरा—संज्ञा पुं० [ हि० दिपा ] (२) वह यदा सा लुक जो सिफारी  
 दिरनों को आकर्षित करने के लिये जलाते हैं । उ०—सुभग  
 सकल अंग अनुज धालक संग देखि नर नारि रहै ज्यों कुंरंग  
 दिपरे ।—उलसी ।  
 दिपस-संज्ञात—संज्ञा पुं० [ सं० ] दिन भर का काम ।  
 विशेष—मजदूर दिन भर में जितना काम करता था, उसी के  
 अनुसार चंद्रगुप्त के समय में उसको रोजाना मजदूरी दी  
 जाती थी ।  
 दिष्टि—संज्ञा स्त्री० [ सं० दृष्टि ] दृष्टि । नजर । उ०—जहाँ जो  
 दौब दिष्टि मँह आवा । दरान भाव दरस देखराया ।—जायसी ।  
 दिष्टि-बंध—संज्ञा पुं० [ सं० दृष्टिबंध ] इंद्रजाल । जादू । उ०—  
 रावव दिष्टियंघ कलि खेला । सभा मँस घेतक अस  
 मेला ।—जायसी ।  
 दीठवंत—संज्ञा पुं० [ हि० दीठ + वंत (प्रत्य०) ] (१) यह जिसे  
 दिखाई देता हो । सुसाम्या । (२) शानी । उ०—ना वह  
 मिला न वेहरा ऐस रहा मरिपूर । दीठवंत कहै नीयरे अंध  
 मूरखहि दूर ।—जायसी ।  
 दीघा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) ८८ हाथ लंबी, ४४ हाथ चौड़ी और  
 ४४ हाथ ऊँची नाव ।  
 दीघिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ३२ हाथ लंबी, ४ हाथ चौड़ी और  
 ३२ हाथ ऊँची नाव । (युक्ति कल्पतरु)  
 दुक—वि० दे० "दोनों" । उ०—वेखि दुक भये पायन लीने ।  
 —केशव ।  
 दुखदानि—वि० [ सं० दुःख + दान ] दुःख देनेवाली । तकलीफ  
 पहुँचानेवाली । उ०—यह सुनि पुख' यानी धनु गुनं तानी  
 जानी द्विज दुखदानि ।—केशव ।  
 दुखहाया—वि० [ हि० दुख + हाया (प्रत्य०) ] [ स्त्री० दुखहाये ]  
 दुःख से भरा हुआ । दुःखित । उ०—दुखहाइयु चरचा नही

आनन आनन' आन । लगी चिरै टुका विद' कानन कानन  
 कान ।—विहारी ।  
 दुजन—वि० दे० "दुर्जन" । उ०—दुजन को दाह कर दसह  
 दिसान में ।—प्रतिराम ।  
 दुडी—संज्ञा स्त्री० [ हि० दी + डी (प्रत्य०) ] तारा का वह पत्ता  
 जिसमें दो चूटियाँ होती हैं । टुकी ।  
 दुभिष्ठा—संज्ञा पुं० दे० "दुर्मिष्ठ" ।  
 दुभुञ्ज—वि० दे० "द्विभुञ्ज" ।  
 दुर्गकोपक—संज्ञा पुं० [ सं० ] किले में बगवत फँसानेवाला विद्रोही ।  
 विशेष—चंद्रगुप्त के समय में इसको कपड़े में लपेट कर जीता  
 जला दिया जाता था ।  
 दुर्गतकर्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह काम जो अकाल पड़ने पर पीढ़ियों  
 की सहायता के लिये राज्य की ओर से खोला जाय । (कौ०)  
 दुर्गतसेतु कर्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] दूरे हुए भूभागों की मरम्मत का  
 काम जो दुर्मिष्ठ-पीढ़ियों की सहायता के लिये राज्य की ओर  
 से खोला जाय । (कौ०)  
 दुर्गति—संज्ञा स्त्री० [ सं० दुः + गति ] दुर्गम होने का भाव ।  
 दुर्गमता । उ०—दुर्गति दुर्गम हीं सु कृत्तिल गति सरितन  
 हीं में ।—केशव ।  
 दुर्गापार्श्रया भूमि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह भूमि जिसमें किले हैं,  
 अर्थात् जो मैना रखने के उपयोगी हो ।  
 विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि राज्य करने के लिये यदि  
 एक ओर अच्छे किलेवाली जमीन हो और दूसरी ओर पानी  
 आवादीवाली जमीन, तो पानी आवादीवाली जमीन को  
 ही पसंद करना चाहिये; क्योंकि मनुष्यों पर ही राज्य होता  
 है, न कि जमीन पर । जनशून्य भूमि से राज्य को आमदनी  
 नहीं हो सकती । पानी आवादीवाली भूमि को चालक्य ने  
 सुरक्षापार्श्रया भूमि लिखा है ।  
 दुर्जय व्यूह—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ब्यूह जिसमें सेना चार  
 पक्षियों में खड़ी की जाय । (कौ०)  
 दुष्टपाणिग्राह—वि० [ सं० ] (सेना) जिसके पीछे की सेना  
 दृष्ट हो ।  
 दुस्त—संज्ञा पुं० दे० "दुष्पन्त" । उ०—जैस' दुस्तविहि साकु-  
 स्तला । मधवानलद्वि कायकंदला ।—जायसी ।  
 दुष्टया शासन—संज्ञा पुं० दे० "द्विदल शासन प्रणाली" ।  
 दुष्ट—वि० [ हि० दो + हँ (प्रत्य०) ] दोनों ही । उ०—दुष्टें भौति  
 असमंजसै, बाण चले सुखपाय ।—केशव ।  
 दुहेला—संज्ञा पुं० [ सं० दुर्दण ] दुग्ध । विपत्ति । सुसौख्य उ०—  
 पदमावति नगलक्ष्मसि कहैं लखि कहैं दुहेल । वेदि सजुद भई  
 रोएउं हौं का जिषीं अकेल ।—जायसी ।  
 दूतावास—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्थान जो किसी दूसरे राज्य या  
 देश में रहनेवाले किसी सरे राज्य या देश के राजदूत या

वाणिज्य दूत, के अधिकारतागत हो। राजदूत या वाणिज्य दूत का कार्यालय। राजदूत या वाणिज्यदूत का निवास-स्थान। कान्फ्युलेट। जैसे—(क) शंघाई में रूसी दूतावास पर स्थानीय पुलिस ने चढ़ाई की और कितने ही आर्म्बियों को गिरफ्तार किया। (ख) महाराज जाऊँ के पधारने पर रोमस्थित ब्रिटिश दूतावास में यद्वा आनन्द मनाया गया।

**दूधफेनी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० दुग्धफेनी ] एक प्रकार का पौधा जो दूध के काम में आता है।

**दुग्धा स्त्री०** [ दि०दुग्ध + फेनी ] फेनी नाम का पकवान जो मँदे का बना हुआ और सूत के लच्छों के रूप में होता है और जो दूध में मिंगो कर ग्याया जाता है।

**दूरपात**—वि० [ सं० ] दूर से आने के कारण धकी। (सेना) वि० दे० "नवागत"।

**दूषण**—वि० [ सं० ] विनाशक। संहारक। मारनेवाला। उ०—लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न रीह दानव-दूषण।—केशव।

**दूष्य महामात्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह न्यायाधीश या महामात्र नायक राजकर्मचारी जो भीतर भीतर राज्य का शत्रु हो या शत्रु का साथी हो।

**दूष्ययुक्त**—वि० [ सं० ] राजविद्रोहियों से युक्त (सेना)। विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दूष्ययुक्त तथा दुष्टपाणि-प्राह (जिसके पीछे की सेना दुष्टरो) सेना में दूष्ययुक्त सेना उत्तम है, क्योंकि आस पुरों के आधिपत्य में यह लड़ सकती है, पर पीछे के आक्रमण से घबराई हुई दुष्टपाणिप्राह सेना नहीं लड़ सकती। (कौ०)

**दृढ़कष्यूह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह क्यूह जिसमें पक्ष तथा कक्ष कुछ कुछ पीछे हटे हों। (कौ०)

**दृताप्रवेग**—वि० [ सं० ] (सेना) जिसका अग्र भाग नष्ट हो गया हो। वि० दे० "प्रतिहत"।

**द्वय धर्म**—संज्ञा पुं० [ सं० ] दान धर्म। विशेष—नालाल्लों में इस शब्द का विशेष रूप से प्रयोग मिलता है।

**द्वय विसर्ग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देने योग्य वस्तु किसी को दे देना। (कौ०)

**द्वयलुच्छ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का मत जिसमें लपसी, शाक, दूध, दही, घी इतमें से क्रमशः एक एक वस्तु तीन तीन दिन तक खाते थे और उसके बाद तीन दिन तक पायु घी पर रहते थे।

**द्वयतुष्टिपति**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुजारी। (शुक्लीति०)

**द्वयदेव**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (५) इन्द्र। उ०—तहँ राजा दशरथ लखँ देवदेव अनुत्प।—केशव।

**द्वयपथ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) यह मार्ग जो किसी देव-मंदिर की ओर जाता हो।

**द्वयल**—संज्ञा पुं० [ सं० देव ] एक प्रकार का चावल। उ०—धनियाँ देवल और अजाना। कहीं लगी धरगत जायँ घाना।—जायसी।

**द्वयारी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० दीपावली ] दीपावली। दीवाली। उ०—अहँ गिहुर बाउ एदिंशारा। परब देवारी होइ संसात।—जायसी।

**द्वयचरित्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देश की प्रथा। रवाज। (कौ०)

**द्वयधर्म**—संज्ञा पुं० [ सं० ] देश का आचार व्यवहार।

**द्वयधर्म**—मनु का मत है कि राजा देश के धर्म का आदर करे और उसी के अनुसार शासन करे।

**द्वयपीडन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रजा पर अत्याचार। राष्ट्र को हानि पहुँचाना। (कौ०)

**द्वयशंरित** परएय—संज्ञा पुं० [ सं० ] देसावरी माल। विदेशी माल। दूर देश का माल। (कौ०)

**द्वैत**—संज्ञा पुं० दे० "द्वैत"। उ०—मुनि अस लिखा उठा करि राजा। जानी द्वैत सङ्घि घन गाजा।—जायसी।

**द्वैतदिन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जो ब्रह्मा के पचास वर्ष बीतने पर होता है। मोहरात्रि।

**द्वैत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (४) योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विर्मों में से एक प्रकार का चिन्म या उपसर्ग जिसमें योगी उन्मत्तों की तरह अँस बंद करके चारों ओर देखा है। (सांकेय पु०)

**द्वैतकृत दुर्ग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह स्थान जो प्राकृतिक रूप में ही दुर्ग के समान दृढ़ और चारों ओर से रक्षित हो। (कौ०)

**द्वैत-संयोग-व्यापन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी देवी देवता के साथ संबंध प्रसिद्ध करना। यह बात कैलाश कि हमें अमुक देवता का दृष्ट है या अमुक देवता ने हमें विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया है, या युद्ध में अमुक देवता हमारा सहायता पर है।

**द्वैत**—कौटिल्य ने अपने पक्ष की सेना को उत्साहित और शत्रु-सेना को उद्विग्न तथा हतोत्साह करने के लिये यह नीति या टंग बतया है। उस ने कई प्रयोग कहे हैं। शत्रु के द्वारा देवमूर्ति के नीचे पहुँचकर कुछ बोलना, रात में सहसा प्रकाश दिखाना, पानी के ऊपर रात को रस्सी में दूँपी कोई मूर्ति तैराकर फिर उसे गायब कर देना।

**द्वैतप्रमाण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो भाग्य पर विश्वास रखकर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे।

**द्वैत**—चाणक्य के मत से ऐसे व्यक्तियों को उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए। निर्जन स्थान में पहुँचकर वे अपने आप कर्म करेंगे, अन्यथा फल दूँगे। (कौ०)

**द्वैत**—वि० [ सं० ] दो बार भभके में खींचा या उभाया

हुआ । दो-आतना । जैसे,—दो-जरया श्रांतव । दो-जरया भरक ।

**बोहना**—क्रि० सं० [ सं० बोध + ना ] (१) बोध लगाता । दूधित रहना । (२) तुच्छ रहना । उ०—बेनी नव-याला की बहनाय गुरी-बलभद्र लुसुम असन पाठ मन मोहियत है । कारी सटकारी नीकी राजत निंतव नीचे पक्षग की नारिन की देह दोहियत है ।—बलभद्र ।

**घाना**—क्रि० सं० [ हि० दिखाना ] देना का प्रेरणार्थक रूप । दिखाना । दिखाना । उ०—फिरि सुधि है सुधि घाद्यों हीं निरदई निरास । नई नई बहस्यौ दर्द बई उसासि उसास ।—विहारी ।

**घृताभ्यक्ष-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह राजकीय अधिकारी जो जूए का निरीक्षण करता था और जुआरियों से राजकीय भाग प्रहण करता था । स्थान स्थान पर बने हुए जूए के सरकारी अड्डे इसी के निरीक्षण में रहते थे । जो कोई किसी दूसरे स्थान पर जूआ खेलता था, उसको १२ पण जुरमाना देना पड़ता था । (कौ०)

**घृतामियोग-संज्ञा** पुं० [ सं० ] जूए संबंधी युक्तदम । (कौ०)

**घृतापाच-संज्ञा** पुं० [ सं० ] जूआ खाना । (कौ०)

**द्रुम-संज्ञा** पुं० [ सं० मि० पा० दिव्य ] १६ पण के मूल्य का चाँदी का एक प्राचीन सिक्का ।

**विशेष**—मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व भारत में इसका व्यवहार विशेष रूप से था । लीलावती में प्रश्न आदि निकाहने में इसी का प्रयोग किया गया है । उसमें लिखा है कि २० कौड़ी बराबर एक काकिणी के, ४ काकिणी बराबर १ पण के, १६ पण बराबर १ द्रुम के तथा १६ द्रुम बराबर १ निष्क के होता है ।

**द्रुम्यवन-संज्ञा** पुं० [ सं० ] लकड़ियों के लिये रक्षित वन । वह जंगल जहाँ से लकड़ी आती हो । (कौ०)

**द्रुम्यवन भोग-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह जागीर या उपनिवेश जिसमें लकड़ी तथा और जंगलिक पदार्थों की बहुतायत हो ।

**विशेष**—प्राचीन आचार्यों ऐसे उपनिवेश को ही पसंद करते थे जिसमें जंगलिक पदार्थ बहुतायत से हैं । परंतु चाणक्य का मत है कि लकड़ियों तथा जंगलिक पदार्थ सभी स्थानों में पैदा किए जा सकते हैं; इसलिये उत्तम उपनिवेश वही है जिसमें हाथीवाले जंगल हैं ।

**द्रुम्यवमाहीपिक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] लकड़ी आदि के लिये रक्षित जंगल में आग लगानेवाला । (कौ०)

**द्रुम्यसार-संज्ञा** पुं० [ सं० ] बहुमूल्य पदार्थ । उपयोगी पदार्थ ।

**द्रुणा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (२) लकड़ी का धनुष । (कौ०)

**द्रोणमुखा-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (२) चार सौ गाँवों के बीच का किला ।

**द्रादसथानी-वि०** दे० "दारहथानी" । उ०—यद् पदमिति चित्तदर

जो आनी । काया कंदन द्रादस-थानी ।—जायसी ।

**द्रारादेय युक्क-संज्ञा** पुं० [ सं० ] द्वार पर देय फर । दरवाजे पर लिखा जानेवाला महसूल । चुंगी । (कौ०)

**द्विगुह-संज्ञा** पुं० [ सं० ] लास्य के दस अंगों में से एक । यह गीत जिसमें सव पद सम और सुंदर हों, संघियों वर्तमान हों तथा रस और भाव सुसंपन्न हों । (नाट्य शास्त्र)

**द्विदल शासन-प्रणाली-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की शासन प्रणाली या सरकार जिसमें शासन-अधिकार दो भिन्न ध्यक्षियों के हाथ में रहता है । द्वैध शासन प्रणाली । दुहत्या शासन । वि० दे० "डायर्की" ।

**द्विनेत्रभेदी-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह मनुष्य जिसने किसी की दोनों आँखें फोड़ दी हों ।

**विशेष**—जो लोग यह अपराध करते थे, उनकी दोनों आँखें 'योगान्न' लगाकर फोड़ दी जाती थीं । ८०० पण देकर लोग इस दंड से बच सकते थे । (कौ०)

**द्विपटघान-संज्ञा** पुं० [ सं० ] दोहरे अर्ज का कपड़ा । ज्यादा अर्ज का कपड़ा । (कौ०)

**द्विपादघघ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] दोनों पैर काटने का दंड ।

**विशेष**—जो लोग भूत पुरुष की आज्ञादाद, पशु या दासी आदि की घोरि करते थे, उनको यह दंड दिया जाता था । (कौ०)

**द्वैधशासन प्रणाली-संज्ञा** स्त्री० दे० "द्विदल शासन प्रणाली" ।

**द्वैधीभाव-संज्ञा** पुं० [ सं० ] (१) एक से लड़ना तथा दूसरे के साथ संबंध करना । (२) दोनों और मिलकर रहना ।

**विशेष**—कालंदक ने लिखा है कि जो राजा सफल न हो और जिसके धर उधर बलवान राज्य हों, वह द्वैधीभाव से काम चलावे अर्थात् अपने आप को दोनों पक्षों का मित्र प्रकट करता रहे ।

**द्वैराज्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] एक ही देश पर दो राजाओं का राज्य ।

**विशेष**—इसी को वैराज्य भी कहते थे । कौटिल्य ने इसे अस्मभव कहा है । परन्तु कहीं कहीं इस प्रकार के राज्य होने का प्रमाण मिलता है ।

**द्व्ययल विभाग-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह व्यूह जिसके पक्ष में सैनिक, पार्श्व में हाथी, पीछे रथ और आगे दायु के व्यूह के अनुसार व्यूह बना हो । (कौ०)

**घँघार-संज्ञा** स्त्री० [ हि० घृष्ट ] ज्वाल । लपट । उ०—कंधां जदे आगि जनु छाई । निरह-घँघार जत न सुहाद ।—जायसी ।

**घका** पोख-संज्ञा स्त्री० [ हि० घका + पोखना ] पक्षमप्रका । मीड़भाड़ में होनेवाली पक्षेवाजी ।

**घनधारी-संज्ञा** पुं० [ सं० घन + धारी ] (१) कुंवर । उ०—राम-निरावरे लेन को हृदि होत भित्तारी । बहुदियत तेदि दैतिए मागहुं घनधारी ।—तुलसी । (२) बहुत बढ़ा अमीर । परम धनवान ।

**धनुक-संज्ञा पुं०** [ सं० धनुष ] इन्द्रधनुष । उ०—औंहीं धनुक  
 धनुक पे हारा । नैनन्हि साधे बान-विप मारा ।—जायसी ।  
**धनुक-वि०** [ सं० धनुष ] धनुषी । उ०—अलि पुरुष भस नथे न  
 नाप । औ सु-पुरुष होइ देस पराप ।—जायसी ।  
**धमनिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] तूर । तुरही बाजा । ( कौ० )  
**धर-संज्ञा स्त्री०** [ सं० धरा ] पृथ्वी । धरती । उ०—( क० ) मानहु  
 शेष अशेषधर धरनहार बरिबंड ।—केशव । ( स० ) सरजू सरिता  
 तट नगर बसै वर । अवध नाम येशधाम धर ।—केशव ।  
**धरक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] अनाज की मंडी में अनाज गोदले का  
 काम करनेवाला । बया ।  
**धरधर-संज्ञा पुं०** दे० “धरहर” ।  
**धरनहार-वि०** [ हिं० धारना + हार ( प्रत्य० ) ] धारण करनेवाला ।  
 उ०—मानहु शेष अशेषधर धरनहार बरिबंड ।—केशव ।  
**धरनी-संज्ञा स्त्री०** [ हिं० धरना या सं० धारण ] किसी बात पर  
 दृढ़तापूर्वक अड़े रहना । टेक । उ०—तुलसी-अधराम को  
 दास कहाइ हिये धर चातक की धरनी ।—तुलसी ।  
**धरमसारणी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० धर्मशास्त्र ] ( १ ) धर्मशास्त्र । ( २ )  
 सदाबचं । सैरत खाना । उ०—रानी धरमसार पुनि  
 साजा । बंदि मोक्ष जेहि पाबहिं राजा ।—जायसी ।  
**धरहर-संज्ञा पुं०** [ सं० धर्य ? ] दृढ़ विश्वास । निश्चय । उ०—  
 जम करि मुँह तरहरि पत्नी इहिं धरहरि चित लखत । विषय-  
 रूपा परिहरि अजै नरहरि के मुन गाव ।—विहारी ।  
**धर्मदापन ( ऋण )-संज्ञा पुं०** [ सं० ] ( २ ) समझाने बुझाने से  
 से या अपने आप जब ऋणी ऋण का धन लौटावे, तो उसको  
 धर्मदापन कहते हैं ।  
**धर्मपरियद्-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] धर्म सभा । न्याय करनेवाली  
 सभा । न्यायाध्यक्षों का मंडल ।  
**धर्मराज-संज्ञा पुं०** [ सं० ] ( ५ ) न्यायकर्ता । न्यायाधीश । उ०—  
 सेनापति बुधजन, मंगल गुरु-राण, धर्मराज मन बुद्धि  
 धनी ।—केशव ।  
**धर्मविजयी-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जो नम्रता या विनय ही से  
 संतुष्ट हो जाय ।  
**धियो-कौटिल्य के अनुसार दुर्बल राजा को पहले धर्मविजयी**  
 राजा का सहारा लेना चाहिए ।  
**धर्मसभा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] ( २ ) वह स्थान जहाँ धार्मिक विषयों  
 की चर्चा या उपदेश हो ।  
**धर्मस्थ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] धर्माध्यक्ष । न्यायाधीश ।  
**विशेष-भारतीय आर्यों में लोक को व्यवस्थित रखनेवाले**  
 नियम, जिनका पालन राज्य करता था, धर्म ही कहलाते  
 थे । कानून भी धर्म ही कहलाते थे । कानून धर्म से अलग  
 नहीं माना जाता था ।  
**धर्मस्थायी-संज्ञा पुं०** [ सं० ] न्यायालय ।

**धर्माशु-संज्ञा पुं०** [ सं० ] सूर्य । उ०—जयति धर्माशु संदध  
 संपति नयपच्छ लोएन दिव्य देह-दाता ।—तुलसी ।  
**धर्मावसथि, धर्मावस्थायी-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पुण्य विभाजक  
 अधिकारी ।  
**विशेष-चाणक्य के समय में इसका कार्य, यात्रियों तथा**  
 वैरागियों को शहर में ठहराने के लिये स्थान देना था ।  
 कारीगर तथा दिल्पी अपनी जिम्मेवारी पर रिस्तेदारों,  
 साधुओं, संप्रासिधियों तथा धोत्रियों को अपने मकान में  
 बसाते थे । यही बात व्यापारियों को करनी पड़ती थी ।  
**धसक-संज्ञा स्त्री०** [ हिं० धसकना ] ( १ ) धसकने की क्रिया या  
 भाव । ( २ ) डर । भय । दहशत । डैरे, —उनके मन में  
 कुछ धसक पैठ गई है ।  
**धसकन-संज्ञा स्त्री०** दे० “धसक” ।  
**धसकना-क्रि० प्र०** [ हिं० धसना ] मन में भय उत्पन्न होना ।  
 जो दहलना । उ०—गवनचार पदमावति सुना । उज  
 धसकि जिउ औ खिर पुना ।—जायसी ।  
**धाकना-क्रि० प्र०** [ हिं० धाकना ( प्रत्य० ) ] धाक जमाना ।  
 रीय जमाना । उ०—दास तुलसी के विरह बनत बिदुष  
 यीर विक्रान्त यर धरि धाके ।—तुलसी ।  
**धान्यभोग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह भूमि या जागीर जिसमें भूज  
 बहुत होता हो ।  
**धान्यचाप-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह स्थान जिसमें अन्न बहुतायत से  
 पैदा होता हो । ( कौ० )  
**धाम-संज्ञा पुं०** [ दे० ] कालसे की जाति का एक प्रकार का  
 छोटा घुंघा जो मध्य और दक्षिण भारत में पाया जाता है ।  
 इसकी पत्तियाँ तीन से छः इंच तक लंबी और गोलाई  
 लिए होती हैं ।  
**धामन-संज्ञा स्त्री०** [ ? ] एक प्रकार की घास जो नरम और रेशीली  
 भूमि में बहुत अधिकता से होती है । यह प्रायः वर्षा ऋतु में  
 बहुत से होती है और पशुओं के लिये बहुत अच्छी समझी  
 जाती है ।  
**धामा-संज्ञा पुं०** [ सं० धाम ] ( २ ) अनाज आदि रखने का बड़ा  
 टोकरा । ( पश्चिम )  
**धारणिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] ( १ ) ऋणी । धरता । कर्जदार ।  
 ( २ ) वह आदमी या कौड़ी जिसके पास धन जमा किया  
 गया हो ।  
**धारिणी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] ( ६ ) १६० हाथ लंबी, २० हाथ  
 चौड़ी और १६ हाथ ऊँची माव । ( युक्ति कल्पतरु )  
**धूकना-क्रि० प्र०** [ हिं० धुकना ] किसी और बड़ना या धुकना ।  
 उ०—हस्ती घोड़ घाई जो धूका । ताहि कीन्ह सो खैर  
 भूका ।—जायसी ।

धूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (४) चीद या धूप सरल नाम का वृक्ष जिससे गंधाबिरोजा निकलता है। वि० दे० "चीद"।

धूपसरल-संज्ञा पुं० [ सं० सरल ] चीद का वृक्ष जिससे गंधाबिरोजा निकलता है। वि० दे० "चीद"।

धृत-विक्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] तौल कर कोई-पदार्थ बेचना। (कौ०)

धृष्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) साहित्य के अनुसार यह नायक जो बार बार अपराध करता है, अनेक प्रकार के अपमान सहता है, पर फिर भी किसी न किसी प्रकार माते बनकर नायिका के साथ लगा रहता है। उ०—लाज धरे मन मैं नहीं, नायक पृष्ट निदान।—नतिराम।

धेयना-संज्ञा पुं० [ सं० ध्यान ] ध्यान करना। उ०—सेह न धेह न सुमिरि के पद प्रीति सुधारी। पाह सुसाधिय राम सो भरि पेट विगारी।—तुलसी।

धोषना-संज्ञा पुं० [ सं० धोना ] जल की सहायता से साफ करना। धोना। उ०—सुँह धोवति पद्मी घसति हँसति अनगमति वीर। धँसति न इंदीवर नयनि कालिंदी के नीर।—विहारी।

धोषिन-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] शीतल की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत के काम में आती है। इसकी लकड़ी परतदार होती है। अर्थात् इसमें एक मोटी तह सफेद लकड़ी की होती है और तब उस पर काले रंग की बहुत पतली एक और तह होती है। इसी तह पर से इस लकड़ी के तखते बहुत सख्त में चीरे जा सकते हैं।

धौकरा-संज्ञा पुं० [ सं० धव ] बाकली की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो अथय, सुंदेलखंड और मध्य प्रदेश में पाया जाता है। इसकी लकड़ी खेती के सामान बनाने के काम में आती है।

धौरा-संज्ञा पुं० दे० "बाकली"।

धौरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० धौय ] (२) एक प्रकार की चिड़िया। उ०—धौरी पंहुक कहु रिउ नाईं। जौं चित रोख न दूसर दाईं।—जायसी।

धंजा स्त्री० दे० "बाकली"।

धज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (८) हृदय की निदान।

धजमूला-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुंगीधर की सीमा। (कौ०)

नंदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) आनंद देनेवाली। (२) सुभ। उचम। उ०—परिवा, छटि, एकादसि नंदा। हुइज, सत्तमी ह्रादसि नंदा।—जायसी।

नंस-संज्ञा पुं० [ सं० नात ] जिसका नाम हुआ हो। नष्ट। उ०—कौतुक केलि करहि दुख नंसा। रौरि कुलहि जनु सर हंसा।—जायसी।

संज्ञा पुं० नात। बरबादी।

नकघाँ-संज्ञा पुं० [ हि० नक या नका ] (१) सूई का वह छेद जिसमें तामा पिरोया जाता है। नाका। (२) नया निकला

पूर्य

हुआ अंडर। कला। (३) तराजू की ढंडी में का यह छेद जिसमें पलके की रसियाँ पिरोकर रखी जाती हैं।

नकीर्ण-वि० [ हि० एक ] (१) सीक। दुस्त। (२) पका। (३) पला। (४) सुकाया हुआ। सुकता। साफ। (हिंसाय)

नलयास-संज्ञा पुं० [ सं० नल ] नर। नाबूत। उ०—सेज मियत सामी कईं लाये उर नखवान। जेहि गुन सये सिंध के सो संखिन, सुलतान।—जायसी।

नखरेल-संज्ञा स्त्री० [ सं० नल + रेखा ] शरीर में लगा हुआ नखों का चिह्न जो संभोग का चिह्न माना जाता है। नखरीत। उ०—मरकत भाजन सलिल गत हृदकला के खेल। स्तन ह्रगा में शूलमले ध्यान गात नखरेल।—विहारी।

नग-फँगा-वि० [ ? ] नटखट। शरीर। उ०—हो भले नग-फँग परे गढ़ीये अथ न गढ़न महरि सुख जोए।—तुलसी।

नगधास-संज्ञा पुं० [ सं० नागधास ] रात को बौंघने या फँसाने के लिये एक प्रकार का फंदा। नागधास। उ०—जान पुझर जो भा बनचासी। रौब रौब परे फंद नगधासी।—जायसी।

नजरवाज-वि० [ सं० नजर + वाज ] आँखें लड़ाने-वाला। प्रेम की दृष्टि से देरनेवाला।

नजरवाजी-संज्ञा स्त्री० [ सं० नजर + वाज ] (१) नजरवाज होने की क्रिया या भाव। (२) आँखें लड़ाना।

नटराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) निजुग षट। नदों में प्रधान या श्रेष्ठ नद। उ०—लरत कहुँ पायक सुभट कहुँ नरत नटराज।—केशव।

संज्ञा पुं० [ सं० ] धीहृष्या।

नदीदुर्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] नदी के बीच में या द्वीप में बना हुआ दुर्ग। ऐसा दुर्ग स्थलदुर्ग से उत्तम तथा पर्वत दुर्ग से निम्न गया है। (कौ०)

नरहा-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का जंगली वृक्ष। वि० दे० "चिल्ली"।

नचंन-संज्ञा पुं० [ सं० नचंन ] मृच्छ करना। नाचना। उ०—लरत कहुँ पायक सुभट कहुँ नचंन नटराज।—केशव।

नर्मद्युति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] माला दाख के अनुसार प्रसिद्ध संधि के तेरह अंगों में से एक। यह परिहास जो किसी पहले परिहास से उत्पन्न आनंद तथा दोष छिपाने के लिये किया जाय। जैसे,—राजारखी में सुसंगत के यह कदने पर कि "प्यारी सखी, तू बड़ी निटुर है। महाराज तेरी श्रुती खातिर करते हैं, तो भी तू मसख नहीं होती।" सागरिका भीड़ चढाकर कबती है—"अथ भी तू धूप नहीं रहती, सुसंगत।"

नलयास-संज्ञा पुं० [ हि० नल + यास ] दिमाक्य की तराई में होने-

वाला एक प्रकार का बॉस जिसे विधुली और देवबॉस भी कहते हैं। वि० दे० "देवबॉस"।

नवागत (सैन्य)—संज्ञा पुं० [ सं० ] नई भरती की हुई फौज। रंगरुद्धों की सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि नवागत तथा दूरयात (दूर से आने के कारण थके) सैन्य में से नवागत सैन्य दूसरे देश से आकर पुरानों के साथ मिलकर युद्ध कर सकता है। दूरयात सैन्य के संबंध में यह बात नहीं है; क्योंकि वह थकावट के कारण लड़ाई के अयोग्य होता है। (कौ०)

नसेनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० सेनी ] सीढ़ी। जीना।

नाईना—कि० प्र० [ सं० नंश ] (२) दीपक का बुझने के पहले कुछ भभक कर जलना।

नाँदल—संज्ञा पुं० [ सं० नाय ] स्वामी। पति।

ना-कदर-वि० [ फा० ना + क० कद ] (१) जिसकी कोई कदर न हो। जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो। (२) जो किसी की कदर करना न जानता हो। जिसमें गुण-प्रादुर्भूत न हो।

ना-कदरी—संज्ञा स्त्री० [ फा० ना + क० कद ] ना-कदर होने के क्रिया या भाव।

नाकनाछी—कि० सं० [ सं० लंघन या हिं० नाका ] (१) चारों ओर से घेरना।

ना-काम-वि० [ फा० ] जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो। विफल मनोरथ।

नाकू—संज्ञा पुं० [ सं० नक ] घड़ियाल या मगर नामक जल-जंतु।

नागरक—संज्ञा पुं० [ सं० ] नगर का शासनकर्त्ता। (कौ०)

नागरिकता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नागरिक होने का भाव। नागरिक के स्वत्व और अधिकारों से युक्त होने की अवस्था। नागरिक जीवन।

नागोदरिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] युद्ध में हाथ की रक्षा के लिये पहना जानेवाला दस्ताना। (कौ०)

नाचाफी—संज्ञा स्त्री० [ फा० नाचाक ] बिगाड़। अनवन। लड़ाई। धैर्यनश्य।

नाजिर—संज्ञा पुं० [ फा० ] (४) वह दलाल जो वेदयाओं को गाने बजाने के लिये ठीक करता और लाता हो।

नाजिरात—संज्ञा स्त्री० [ हि० नाजिर + प्रात (प्रत्यय०) ] वह दलाली जो नाजिर को नाचने गानेवाली वेदया आदि से मिलती है।

नाटकिया—संज्ञा पुं० [ सं० नाटक + रिया (प्रत्यय०) ] (१) नाटक में अभिनय करनेवाला। (२) स्वयं भरनेवाला। यहू-रुपिया।

ना-ताकती—संज्ञा स्त्री० [ फा० ना + क० ताकत + री (प्रत्यय०) ] नाताकत होने का भाव। दुर्बलता। कमजोरी।

नाथ—संज्ञा स्त्री० [ हि० नाथना ] (१) नाथने की क्रिया या भाव। (२) जानवरों की नाक की नकल या रस्ती। उ०—रंग

नाथ हीं जा कर हाथ ओहि के नाथ। गड़े नाथ सो छोड़े परे फिरे ना माथ।—जायसी।

नानकोआपरेशन—संज्ञा पुं० दे० "असहयोग" (२)।

नापास-वि० [ हिं० ना + प्र० पास ] जो पास या मंजूर न हो। जो स्वीकृत न हो। नामंजूर। अस्वीकृत। जैसे,—कौन्सिल से उनका पिल नापास हुआ। (क०)

नापैद-वि० [ फा० ना + पैदा ] (१) जो पैदा न होता हो। (२) न मिलनेवाला। अप्राप्य।

नामरुत-संज्ञा पुं० [ सं० ] असली चीज का नाम छिपाना और उसका दूसरा नाम धताना। कल्पितमाम बतलाना। (कौ०)

नामिनेटेड-वि० [ फा० ] जो किसी पद के लिये चुना गया हो। जो किसी स्थान के लिये पसंद किया गया हो। मनोनीत। नामजद। जैसे,—नामिनेटेड मॅबर।

नामुराद-वि० [ फा० ] जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो। विफल मनोरथ।

विशेष—पश्चिम में इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाली के रूप में होता है।

नामुधाफिक-वि० [ फा० ना + फ० मुधाफिक ] जो मुवाफिक या अनुकूल न हो। प्रतिकूल। विरुद्ध।

नायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) दस सेनापतियों के ऊपर का अधिकारी। (१०) बीस हाथियों तथा घोड़ों का अध्यक्ष। (कौ०)

नायाब-वि० [ फा० ] जो न मिलता हो। अप्राप्य।

नारद-वि० [ सं० ] (३) यह ब्रह्मिक जो लोगों में परस्पर झगड़ा लगाता हो। लड़ाई करनेवाला।

नार्थ-संज्ञा पुं० [ फा० ] उत्तर दिशा।

नालायकी-संज्ञा स्त्री० [ फा० ना + क० आयक ] नालायक का भाव। अयोग्यता।

नाथाज-संज्ञा पुं० [ सं० ] मलाह।

नावाजिब-वि० [ फा० ना + क० वाजिब ] जो वाजिब या ठीक न हो। अनुचित।

नाशन-वि० [ सं० ] नाश करनेवाला। विध्वंस करनेवाला। नाशक। उ०—जानत है किधों जानत नाहिन दू अपने मदनानशन को।—देवाव।

नाष्टिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] खोया हुआ धन। (स्मृति)

ना-हमघार-वि० [ फा० ] जो हमघार या समतल न हो। ऊपर खावड़। ऊँचा नीचा।

निधकौरी-संज्ञा स्त्री० दे० "दिवकौरी"।

निघर-संज्ञा पुं० दे० "गरिज"।

निष्ठाधील-संज्ञा स्त्री० [ सं० निः + अधी ] धन-हीनता। दरिद्रता। गरीबी। उ०—साथी आपि निष्ठाधि जो सके हाथ निर-याहि। जो निः + धीरे पिठ मिले, भंडू रे जिठ। जति

याहि।—जायसी।

निष्पाना-किं वि० [ हि० न्यात् ] न्यारा । अलग । उ०—अनु-  
राजा सो जरे निष्पाना । बादसाह कै सेवन माना ।—जायसी ।  
निक्षेपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] धरोहर में रखा हुआ पदार्थ । (कौ०)  
निकर-संज्ञा पुं० [ भं० निरलवाक्ये ] एक प्रकार का पुटने तक का  
सुला पायगाम ।  
निगरा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ५५ मोनियों की लड़ी जो तौल में  
३२ स्त्री हो ।  
निगुन, निगुना-वि० दे० “निगुण” उ०—भरै सोह जो होइ  
निगुना । पीर न जानि विहद विह्वना ।—जायसी ।  
निग्राहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मनुष्य जो अपराधियों को अनु-  
चित तथा अन्याय-युक्त दंड दे ।  
निघटना-किं सं० [ हि० नि + घट्ना ] मिटाना । नष्ट करना ।  
उ०—बल्लभ पंथ पंथनि धरम अुनि करम निघटन ।—  
मतिराम ।  
निजामत-[ सं० ] (१) नाजिम का पद या कायद । (२) वह  
कार्यालय जिसमें नाजिम और उसके सहायक कर्मचारी  
रहते हैं ।  
नित्यमित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मित्र जो निःस्वार्थ भाव से प्रीति  
या बदे हुए पुराने संबंधों की रक्षा करे ।  
नित्यामित्रा भूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह भूमि जहाँ के लोग सदा  
दुःखमयी करते हैं या जिसमें शत्रु की प्रशक्ता हो । (कौ०)  
निपात-वि० [ हि० नि + पत् + घञ् ] विना पत्तों का । जिसमें  
पत्ते न हों । उ०—(क) जेहि पंथी के निभर होइ कहे विरह  
के बात । सोह पंथी के निभर होइ कहे विहाह के बात ।  
सोहै पंथी जइ जति, आविर होइ निपात ।—जायसी ।  
(ख) सौं विहि रई, साथि तन, निर्येठहि आभरि भूख ।  
विनु राय विरिछ निपात जिमि तइ तइ द सूख ।—जायसी ।  
संज्ञा पुं० [ सं० ] नहाने का स्थान । (कौ०)  
निघेघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सरकारी भाड़ा । (कौ०)  
निघह-संज्ञा पुं० [ ? ] सयह । झुट । उ०—मनहु उड़ान निघह  
भाए मिलत तम तजि द्वेषु ।—गुलसी ।  
निघहुरी-संज्ञा पुं० [ हि० नि + हुरना ] वह स्थान जहाँ से जाकर  
कोई न लौटे । यमद्वार ।  
निघहुरी-वि० [ हि० नि + हुरना ] जो चला जाय और न लौटे ।  
सदा के लिये चला जानेवाला । ( गाली )  
निमय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वस्तु-विनिमय । पदार्थों का अद्वय-वदल ।  
विशेष—गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि ब्राह्मण गी, तिल,  
दूध, दही, फल, मूल, फूल, ओषधि, मधु, मांस, वस्त्र, सन,  
वेपथ आदि पदार्थों का मुद्रा लेकर विक्रय न करें । यदि  
उनको ऐसा करने की जरूरत ही पड़े तो वे विनिमय कर  
लें । अन्नादि का अन्नादि से और पशुओं का पशुओं से ही  
बदला किया जाय । नमक तथा पक्वान्त के लिये यह

नियम नहीं है । कच्चा पदार्थ देकर पक्वान्त लिया जाय ।  
तिलों के फल विक्रय में धान्य के सदृश ही नियम हैं ।  
निर्मूल-वि० [ हि० मुँदा ] मुँदा हुआ । मुदित । बंद । उ०—  
कौडा ओसू मुँदि, कसि सोकर बहनी सजल । कीने यदन  
निर्मूद, दग-मालिा टारे रहत ।—विहारी ।  
वि० [ हि० नि = नहीं + मुँदा ] जो मुँदा न हो । सुला ।  
निमेट-वि० [ हि० नि + पिटना ] न मिटनेवाला । घना रहने-  
वाला । उ०—काह कहीं हों ओहि सों जेइ दुख कीन्ह  
निमेट । तेहि दिन धागि करे यह जेहि दिन होइ सो  
भेंट ।—जायसी ।  
निघयोधी-वि० [ सं० निघयोधिन् ] किले के नीचे से या नीची  
जमीन पर से लड़नेवाला । वि० दे० “स्थलोधी” ।  
निष्कारण-संज्ञा पुं० [ सं० ] पहाड़ों की घाटी । (कौ०)  
नियंत्रण-संज्ञा पुं० [ सं० ] नियम या इसी प्रकार के और किसी  
बंधन में बाँधना । कायदे का पालन करना । व्यवस्थित  
करना ।  
नियोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ७ ) वह आपत्ति जिसमें यह निश्चय  
हो कि इसी एक उपाय से यह आपत्ति दूर होगी, दूसरे  
से नहीं । (कौ०)  
निरदोषी-वि० दे० “निरदोष” । उ०—शुगुनंदन सुगुणिये मन गई  
गुणिये खनुनंदन निरदोषी ।—केशव ।  
निरनुबंध-संज्ञा पुं० [ सं० ] अर्थ का एक भेद । वह सिद्धि या  
सफलता जिससे अपना लाभ आवश्यक न हो । दंड या  
अनुग्रह द्वारा किसी उदासीन का अर्थ सिद्ध करना । (कौ०)  
निरयाहना-वि० सं० [ सं० विहा ] निर्याह करना । निष्पाना ।  
चलाए चलना । उ०—देह लखी दिग गेहपति सज मेह  
निरयाहि । नीची अँसियनु ही हूँ गई कनखियनु चाहि ।  
—विहारी ।  
निरमर-वि० दे० “निर्मल” । उ०—पदमिनि चाहि घाटि  
दुइ करा । और सय गुन ओहि निरमरा ।—जायसी ।  
निषेपकार आधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह धाती या धरोहर जो  
किसी आमदनीवाले काम में न लगी हो ।  
निषेपजीव्या भूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह भूमि जिस पर किसी  
का गुजर न हो सकता हो । (कौ०)  
निर्यात-संज्ञा पुं० दे० “निर्यात” । जैसे—निर्यात कर ।  
निर्गुण भूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह भूमि जिस पर कुछ भी पैदा  
न होता हो । उत्तर जमीन । (कौ०)  
निर्मान-वि० [ हि० नि + मान ] जिसका मान न हो । बेहद ।  
अपार । उ०—नित्य निर्मय नित्य युक्त निर्मान हरि ज्ञान  
धन सधिदानंद मूल ।—गुलसी ।  
निर्यात-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह वस्तु या माल जो भेचने के लिये



विदेश भेजा गया हो। आयातका उलटा। रफतनी। निर्गत। जैसे,—निर्वात कर। निर्वात व्यापार।

**निर्वाचक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जिसे किसी प्रतिनिधिक संस्था के सदस्य या प्रतिनिधि निर्वाचन में वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो। वह जिसे किसी कार्यकर्ता या प्रतिनिधि को वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो। मताधिकार प्राप्त मनुष्य। निर्वाचन करनेवाला।

**निर्वाचक संघ-संज्ञा पुं०** [ सं० ] उन लोगों का समूह या समाज जिन्हें मताधिकार अर्थात् वोट देने का अधिकार प्राप्त हो। मूलेन्द्रयट।

**निर्वाचन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) बहुतां में से एक या अधिक को चुनने या पसंद करने का काम। चुनाव। जैसे,—कविताओं का निर्वाचन सुंदर हुआ है। (२) किसी को किसी पद या स्थान के लिये, उसके पक्ष में 'वोट' देकर, हाथ उठाकर या बिट्टी डाल कर, चुनने या पसंद करने का काम। जैसे,—व्यवस्थापिका सभा के इस बार के निर्वाचन में अच्छे आदमी निर्वाचित हुए हैं।

**निर्वाचनी संस्था-संज्ञा स्त्री०** दे० "निर्वाचक संघ"।

**निर्वाचित-वि०** [ सं० ] (१) निर्वाचन किया हुआ। चुना हुआ। जैसे,—इस पुस्तक में उनके निर्वाचित लेखों का संग्रह है। (२) जिसका (किसी स्थान या पद के लिये लोगों द्वारा) निर्वाचन हुआ हो। जो (किसी पद या स्थान के लिये लोगों द्वारा) चुना गया हो। जैसे,—वे बनारस दिवाजन से व्यवस्थापिका पतिपद के सदस्य निर्वाचित हुए हैं।

**निर्वाहण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] ऐसे पदार्थों का नगर में ले जाना जिनके ले जाने का निषेध हो। (कौ०)

**निर्वेक्ष-संज्ञा पुं०** [ सं० ] भ्रृति।

**निलहा-वि०** [ सं० नील + हा (प्रत्य०) ] नील से संबंध रखनेवाला। निलवाला।

यौ०—निलहा गोरा। निलहा साहब।

**निविशमान-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वे लोग जिनसे उपनिवेश बसाए जायें।

**विशेष-चंद्रग्रहण** के समय में राज्य ऐसे लोगों को भद्र, पशु तथा संपत्ति से सहायता पहुँचाता था।

**निविष्टपर्यय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] धोरों में भरत हुआ माल। (कौ०) **निवृत्तवृद्धि का आधि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वह धन जो बिना व्याज पर किसी के यहाँ जमा हो।

**निष्क्रय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (७) वह धन जो छुटकारे के लिये दिया जाय। (कौ०)

**निष्क्राम्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) माल का बाहर भेजा जाना। बाहर भेजी जानेवाली चलान। (२) रफतनी माल। (कौ०)

**निष्क्राम्य शुल्क-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बाहर भेजे जानेवाले माल पर का महसूल।

**निर्सेठ-वि०** [ हि० नि + सेठ = पूजी ] जिसके पास धन या पूँजी न हो। निर्धन। गरीब। उ०—साँठि होइ जेहि वैदि सय बोला। निर्सेठ जो पुरूप पात जिमि बोला।—जायसी।

**निर्सेल-वि०** [ हि० नि + सेल ] जिसे साँस न आता हो। श्वेत-प्राय। मुरदा सा। उ०—निर्सेल ऊनि भरि लोहेसि सँसा। भा अथार जीवन कै आस।—जायसी।

**निस्तारना-क्रि० सं०** [ सं० निस्तार + ना (प्रत्य०) ] निस्तार करना। छुटकारा देना।

**निसयाना-वि०** [ हि० नि + सयाना ? ] जिसकी सुष-सुष सो गई हो। जिसके होश हवास्त ठिकाने न हों। उ०—जनहु मानि निसियानी बली। अति बेसँमार फूलि जनु भरसी।—जायसी।

**निसाँसा-वि०** [ हि० नि + साँस ] जिसका श्वास न चलता हो। श्वास प्रत्यास रहित। उ०—अब हौं मरीं निसाँसा हिये न आवै साँस। रोगिया की को चाले वैदहि जहाँ उपास।—जायसी।

**निसियर-संज्ञा पुं०** [ सं० निशिकर ] चंद्रमा। उ०—अनु धनि तू निसियर निसि माहाँ। हौं दिनभर जेहि कै तू छाँहाँ।—जायसी।

**निसुका-वि०** [ सं० निलक ] निर्धन। दरिद्र। गरीब। उ०—रहँ निगोड़े मैं न डिगि रहँ न चेत अचेत। हौं कसु कै रित के करौं ये निसुके हंसि देत।—बिहारी।

**विशेष-इस शब्द का प्रयोग खियाँ प्रायः "निगोड़ा" शब्द की भाँति करती हैं।**

**निसृष्ट-संज्ञा पुं०** [ सं० ] दैनिक भृति। रोजाना दी जानेवाली मजदूरी। (कौ०)

**निस्तर-संज्ञा पुं०** [ सं० निस्तार ] छुटकारा। निस्तार। उ०—जँ देहु दुख जरी अषारा। निस्तर पाह जाउँ एक बारा।—जायसी।

**नीधी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (५) वह धन जिसके व्याज-आदि की आय किसी काम में खर्च की जाय और जो सदा रहित रहे। स्थायी कोश। (६) खर्च करने के बाद बची हुई पूँजी। (कौ०)

**नीधी-प्राहक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह व्यक्ति जिसके पास चंदा या किस दूसरे व्यक्ति का धन जमा हो और जो उस धन का प्रबंध करता हो। खजानची।

**नुमाइदा-संज्ञा पुं०** [ फ० ] प्रतिनिधि।

**नुसख्जा-संज्ञा पुं०** [ म० ] (३) रोगी के लिये लिखी हुई ओपियाँ और उनकी सेवन विधि आदि।

**नुरैवता-संज्ञा पुं०** [ सं० ] राजा। उ०—देवता अदेवता नुरैवता जिते जहान।—केशव।

**नेपोटिच-संज्ञा पुं०** [ फ० ] फौदामाफ़ी में वह प्रीता जिस पर उस चीज की उल्टी प्रतिकृति आ जाती है जिसका चित्र लिया

जाता है। इसी पर मसालेदार कंगन रखकर छपा जाता है जो चित्र रूप में दिखाई देता है।

नेचर-संज्ञा पुं० [ अं० ] प्रकृति। कुदरत। जैसे,—ये नेचर को माननेवाले हैं।

नेचरिया-वि० [ अं० नेचर + रिया (भव०) ] जो केवल प्रकृति को सृष्टि का कर्ता मानता हो। प्रकृतिवादी। नास्तिक।

नेजा-संज्ञा पुं० [ अं० ] (२) चिलगोजा नाम की सूखी फली या मेवा।

नेटिच-वि० [ अं० ] देवा का। देशी। मुल्क का। मुल्की। जैसे,—नेटिच आदमी।

नेता पुं० वह जो अपने देश में उत्पन्न हुआ हो और जो विदेशी या बाहर का न हो। आदिम निवासी।

नेता-संज्ञा स्त्री० [ ? ] एक प्रकार की देशी घाड़। उ०—(क) पुनि गजमत्त चढावा भेत चिड़ाई खाट। याजत गाजत राजा आह थंड सुल-पाट।—जायसी। (ख) पालँग पॉव कि आछे पाटा। नेत विछाय चलै जो बाटा।—जायसी।

नेतुला-संज्ञा पुं० [ अं० ] आकाश में धूर या कुहरे की तरह फैला हुआ क्षीण प्रकाशपुंज। नीहारिका। वि० दे० “नीहारिका।”

नेथना-संज्ञा पुं० [ अं० ] नयन। नमन होना। झुकना।

नेवरना-संज्ञा पुं० [ अं० ] निवारण। (१) निवारण होना। दूर होना। उ०—सुनि जोगी के अमर जो करनी। नेवरी बिधा बिरह के मरनी।—जायसी। (२) समाप्त होना। खतम होना। (३) निपटना।

नेघाना-संज्ञा पुं० [ अं० ] नमन। नमन करना। झुकाना।

नेवारना-संज्ञा पुं० [ अं० ] निवारण। निवारण करना। दूर करना। हटाना।

नेवी-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] एक राष्ट्र या देश के समस्त लड़ाकू जहाज। नौसेना। जलसेना।

नेशन-संज्ञा पुं० [ अं० ] लोकसमुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो। एक देश में रहने और सम-भाषा बोलनेवाला जनसमूह। राष्ट्र।

नैधानी स्त्रीमा-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] वह सीमा या हदबंदी जो भूसी, कौयले आदि से अरे बड़े गाड़ कर बनाई जाय।

विशेष—बृहस्पति ने इस प्रकार सीमा बनायी का विधान बताया है। पराशर ने कहा है कि ग्राम के बृद्ध लोगों का कर्तव्य है कि वे मरचों को सीमा के चिह्नों से परिचित करते रहें।

नैशनल-वि० [ अं० ] राष्ट्र संबंधीय। राष्ट्र का। राष्ट्रीय। सार्वजनिक। जैसे,—नैशनल कांग्रेस।

नैशनलिस्ट-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह जो राष्ट्र पक्ष का पक्षपाती हो। राष्ट्रवादी।

नैवेचनिक संज्ञा पुं० [ सं० ] राज्याभियेक के उत्सव पर दी हुई वस्तुओं का उपहार। (कौ०)

नौ-संज्ञा पुं० [ सं० ] पोत। जहाज।

नौकरशाही-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] नौकर + शाही ] वह सरकार या शासन प्रणाली जिसमें राजसत्ता या शासन सूत्र उच्च राजकर्मचारियों या बड़े बड़े सरकारी अफसरों के हाथों में रहे।

वि० दे० “न्यूरोक्रेसी”।

नौकराना-संज्ञा पुं० [ अं० ] नौकर + आना (भव०) ] (१) वेतन के अतिरिक्त नौकर को दिया जानेवाला धन। नौकर का हक। (२) वह धन जो दूकानदार माल खरीदनेवाले के नौकर को देता है। दस्तूरी।

नौकरणी-संज्ञा पुं० [ सं० ] जहाज की पतवार।

नौकर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] नौकर्मण्य ] महाह का पेशा या काम।

नौकाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] नावों का पुष्ट।

नौचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाह।  
वि० जहाज पर जानेवाला।

नौजीयक-संज्ञा पुं० [ सं० ] महाह। खलासी।

नौता-संज्ञा पुं० [ सं० ] नव या नून ] नया। हाल का। ताजा। उ०—कराई जो किंगरी लेहू बैरागी। नौती होह बिरह के आगी।—जायसी।

नौनेता-संज्ञा पुं० [ सं० ] नौनेत ] जहाज की पतवार पकड़नेवाला। पतवारिया।

नौबंधन-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिमालय के सर्वोच्च शृंग का नाम। कहते हैं कि महाशिवन के समय मनु ने इसी से अपना जहाज बाँधा था। ( महाभारत )

नौयायी-वि० [ सं० ] नौयायि ] नाव पर जानेवाला ( यात्री या माल )।

नौयाह-संज्ञा पुं० दे० “नौनेता”।

नौसेना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह सेना या फौज जो लड़ाकू जहाजों पर चढ़ कर युद्ध करती है। लड़ाकू जहाजों पर से युद्ध करनेवाली सेना या फौज। जलसेना।

नौसेनापति-संज्ञा पुं० [ सं० ] नौ सेना का प्रधान या अध्यक्ष। जल सेनापक्ष।

न्याना + वि० [ सं० ] न्याना ] ( १ ) जो कुछ न जानता हो। अनजान। निर्बंध। ( २ ) छोटी उमर का। अल्प अवस्था का। अल्पवयस्क।

न्यूज-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] समाचार। संवाद। वृत्त। वृत्त। खबर।

न्यूजपेपर-संज्ञा पुं० [ अं० ] समाचार पत्र। अखबार।

न्योजी + संज्ञा स्त्री० [ हिं० ] लीची ] ( १ ) लीची नामक फल। उ०—कोह नारंग कोह शब्द चिरांजी। कोह कटहर पड़हर कोह न्योजी।—जायसी। ( २ ) नेजा। चिलगोजा।

पंखीसेढ़-संज्ञा पुं० [ हि० पंखी + सं० सेल ] चौकोर-पाल-जो मस्तूल से तिरछे एक तिहाई निकला रहे ।

पंगई-संज्ञा स्त्री० [ ? ] नाय खेने का छोटा डोंडा जिसका एक जोड़ा लेकर एक ही आदमी नाच चला सकता है । हाथ हलसे । चमचा । वैद्य । चप्पू । ( लदा० )

पँगारा-संज्ञा पुं० [ देश० ] ( १ ) मसोले आकार का एक प्रकार का कैंटीला पृथक् जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है । शीत ऋतु में इसकी पत्तियाँ हड़ जाती हैं । इसकी एकड़ी बहुत मुलायम, पर चिमड़ी होती है और तलवार की ग्यान या तलवे आदि बनाने के काम में आती है । डौलडाक । डाक । मदार ।

पंचक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ७ ) पाँच प्रतिनिधियों की सभा । पंचायत ।

पंचमंडली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पाँच भलेमानसों की सभा । पंचायत ।

विशेष-चंद्रगुप्त द्वितीय के साँचीवाले मिलालेख में यह शब्द आया है ।

पंचवान-संज्ञा पुं० [ सं० पंचवाण ? ] राजपूतों की एक जाति । उ०-पत्नी और पंचवान, यधेले । अथ पार, चौहान, चेंद्रेले ।-जायसी ।

पंचाशकेप-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा के विजय के लिये आगे बढ़ने पर राज्य में विद्रोह फैलाना । ( कौ० )

पंचालिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( २ ) नदी । नर्सकी । उ०-नाचति मंच पंचालिका कर संकलित अपार ।-केदाव ।

पंढाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी भारी समारोह के लिये बनाया हुआ विस्तृत मंडप । जैसे,—सम्मेलन का पंढाल । कांग्रेस का पंढाल ।

पंडुर + संज्ञा पुं० [ देश० ] पानी में रहनेवाला साँप । टेढ़ड़ा । उ०-मेरे हरी साँप जगत लखत है । पंडुर कतहूँ गरुड धरतु है ।-कबीर ।

पंतीजना + कि० सं० [ सं० पित्रन = पुनको ] रुई से पिनौले निकाल कर अलग करना । रुई भौटना । पीजना ।

पंतीजी-संज्ञा स्त्री० [ सं० पित्रन = पुनकी ] रुई पुनने की पुनकी । उ०-चरख पंतीजी चरख यदि उमोंडौकत जग सुत ।-बृद्ध ।

पंवर-संज्ञा पुं० [ ? ] सामान । सामग्री । उ०-भसम गंग लोचन अदि डमरू, पंचतत्व सूचक अस भौरू, हर के बस पंचउ यह पैवरू, तिनसे पिंड उरेह ।-देवस्वामी ।

पकावन-संज्ञा पुं०-दे० "पकवान" । उ०-दूती बहुत पकावन साथे । मोतिलाडू औ खेरोरा साथे ।-जायसी ।

पच्छिराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) जटायु । ( ३ ) एक प्रकार का पान ।

पखंडी-संज्ञा पुं० [ हि० पाखंडी ] वह जो कठपुलियाँ नचाता हो ।

कठपुलकी का । नाच दिखानेवाला । उ०-कतहूँ पिरहैदा पंखी लाया । कतहूँ पखंडी काठ नचावा ।-जायसी ।

पंगारना-कि० सं० [ ? ] फैलाना ।

पगेरना-संज्ञा पुं० [ देश० ] कसेरों की एक प्रकार की छेनी जो परतनों पर नकाशी करने के काम में आती है ।

पचतोरिया-संज्ञा पुं० [ सं० पंच + ठार या सं० पट + ठार ] एक प्रकार का कपड़ा ।-उ०-गिरं पचतोरिया खसित अनलस लाल लाल रद छंद मुखचंद ज्यों शरद को ।-देव । ( ख ) सेत जरतारी की उज्यारी कंबुकी की कसिं अनियाती डीठि प्यारी उठि पैरुही पचतोरिया ।-देव ।

पघर-संज्ञा पुं० [ हि० पघी ] ( २ ) एकड़ी की बड़ी मेंत या खंड । ( लदा० )

पच्छिराज-संज्ञा पुं० [ सं० पच्छिराज ] गरुड । उ०-पच्छिराज जच्छिराज प्रेतराज जातुधान-केदाव ।

पलना-संज्ञा पुं० [ हि० पादना ] ( ७ ) वह अन्न आदि जिससे फोड़े-चीज पाठी जाय । पाछने का औजार । ( २ ) वह उस्तारा जो सिंगी लगाने से पहले शरीर में घाय करने के काम आता है । ( ३ ) शरीर में से रक्त निकालने की क्रिया । फसद ।

कि० अ० पाछा जाना । पाछने की क्रिया होना ।

पल्लगा-संज्ञा पुं० दे० "पिठलगा" । उ०-हैं पंडितन के पल्लगा । किछु कहि चला तबल देह डगा ।-जायसी ।

पछाड-संज्ञा पुं० [ हि० पछाडना ] कुदती का एक पंच ।

विशेष-जय दायु सामने रहता है; सब एक हाथ उसकी जर्बों के नीचे से निकाल कर पीछे की ओर से उसका लँगोट पकड़ते हैं, और दूसरा हाथ उसकी पीठ पर से पुगा कर उसकी चाल में भड़ाने हैं और इस प्रकार उसे उड़ाकर चित्त फँक देते हैं । इसमें अधिक बल की आवश्यकता होती है ।

पछियावर-संज्ञा स्त्री० [ हि० पीछे ] ( १ ) एक प्रकार का शिलान या शरयत ।-उ०-पुनिजावरी पछियाउरि आहं । पिरति खौंकि की बनी मिठाई ।-जायसी । ( २ ) छाछ से बना हुआ एक प्रकार का पेय पदार्थ जो भोजनान्त में परोसा जाता है । इससे भोजन शीघ्र पचता है । उ०-भोद साँ तारकनंद को मेद, पछियावरी पान सिरायो हियोरे ।-केदाव ।

पटलता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( ७ ) पटल का काम । ( २ ) अधिकता । उ०-अजहूँ खीं अथलोकिये, पुलक पटलता ताह ।-मतिराम ।

पटला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भोमा के आकार की नौका । ६७ हाथ लंबी ३२ हाथ चौड़ी और ३२ हाथ ऊँची नाव । ( युक्ति कल्पतरु )

पटपा-संज्ञा पुं० [ सं० पट ] पटसन की जाति का एक प्रकार का पौधा जो बंगाल में अधिकता से बोया जाता है । यह कहीं

कहीं शायों में शोभा के लिये भी लगाया जाता है। इसमें एक प्रकार की फलियाँ लगाती हैं जो खाई जाती हैं। इसके तनों से मूत्र प्रसार का रोग निकलना है और इसके फल तथा बीज कहीं कहीं औषधि रूप में काम में आते हैं।  
हाल अंगारी।

**पटिया-संज्ञा स्त्री०** [ हि० पट्या + रणं (प्रत्य०) ] (३) विपटे तले की बड़ी और ऊपर में परी हुई नाव जो बन्दरगाहों में जहाज से मोड़ उतारने और चढ़ाने के काम में आती है। (लटा०)

**पट्ट-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (२) लड़ाई का वह पहनावा या कवच जिससे केवल घट्टा रुका रहे और दोनों धों ही खुली रहें। (कौ०)

**पट्टधाना-क्रि० सं०** [ सं० प्रथान ] भेजना। रवाना करना।

**पट्टान-संज्ञा पुं०** [ १ ] (२) जहाज या नाव का पेंदा। (लटा०)

**पट्टावनी-संज्ञा स्त्री०** [ हि० पट्टा + वनी ] (३) भेजने या पहुँचाने की मजदूरी। उ०—तेईं पायें पाईके चढ़ाह नाव धोए बिनु खैहीं न पट्टावनी के हैहीं न हँसाइ के।—मुलसी।

**पट्ट-वि०** दे० "पाट्य"।

**पट्टमान-वि०** [ सं० पाट्य + मान (प्रत्य०) ] पढ़ा जाने के योग्य। सुपाठ्य। उ०—अपट्टमान वाप ग्रन्थ पट्टमान पेटवै।—केशव।

**पट्ट्या-संज्ञा पुं०** [ देश० ] घाट पर रहनेवाली वह नाव जो यात्रियों को इस पार से उस पार ले जाती है। घट्टा। (लटा०)

**पट्टाव-संज्ञा पुं०** [ हि० पटना + आव (प्रत्य०) ] (३) विपटे तले की बड़ी और खुली नाव जो जहाज से मोड़ उतारने और चढ़ाने के काम में आती है। (संबई) (लटा०)

**पट्ट्या-संज्ञा पुं०** [ देश० ] ऊल का खेत।

**पट्ट-संज्ञा स्त्री०** [ हि० पटना ] निरंतर पढ़ने की क्रिया। धरावर पढ़ना। जैसे—रुंत कवि-सम्मेलन।

**पट्टा-वि०** [ हि० पटना ] पढ़नेवाला। पाठ करनेवाला। उ०—वेद पढ़ता पीढ़े मारे पूजा करते स्वामी हो।—कवीर।

**पणचतुष्टय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] अँगूठा काटने का ढँड।

**विशेष**—चन्द्रगुप्त के समय में दूसरी बार गेटि कतरने के अन्तराष्ट्र में जो राजद्वर्जचारि पकड़े जाते थे, उनका अँगूठा काट दिया जाता था।

**पण-जित दास-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह जो अपने को जूए के दौब पर रखकर हारा और दास हुआ हो।

**पणवंध-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बान्धवो।

**पणयात्रा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] सिक्के का चलाना। (कौटि०)

**पणिका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक पण। (कौटि०)

**पणपानिचय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बिक्री का माल इकट्ठा करना।

**विशेष**—इसमें भी चन्द्रगुप्त के समय में ज्ञान्य के एकत्र करने के सारना ही नियम प्रचलित था।

**पण-निर्वाहण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बिना चुंगी या महगूल दिए घोरी से माल निकाल ले जाना। (कौ०)

**पणपत्तन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के माल आकर बिकते हैं। मंडी। (कौ०)

**पणपत्तन चारित्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] मंडी में प्रचलित नियम। (कौ०)

**पणपत्तन चारित्रोपधानिका-वि० स्त्री०** [ सं० ] (वह नाव) जिससे बन्दरगाह के नियमों का पालन न किया हो। (कौ०)

**पण्य संस्था-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] माल रखनेका गोदाम। (कौ०)

**पण्य समवाय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] थोक सेबा जानेवाला माल।

**पण्योपघात-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बिक्री के माल का लुकसान।

**विशेष**—व्यापारियों को चन्द्रगुप्त के राज्य से सहायता मिलनी थी। जब उनके माल का लुकसान हो जाता था, तब उन्हें राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। (कौ०)

**पतंगसुत-संज्ञा पुं०** [ सं० पतंग = सूर्य + सुत ] सूर्य के पुत्र अधिनी कुमार।

**पतनी-संज्ञा पुं०** [ देश० ] वह आरमी जो घाट पर की नाव इस पार से उस पार ले जाता और उस पार से इस पार ले आता हो। घाट पर से पार उतारनेवाला या पट्टा का मासी। (लटा०)

**पताका-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (८) नाव्य शाख के अनुसार प्रासंगिक कथावस्तु के दो भेद में से एक। वह कथावस्तु जो सात्त्विक हो और धरावर चलती रहे। (प्रासंगिक कथावस्तु का दूसरा भेद "प्रकृती" है।)

**पतिंग-संज्ञा पुं०** [ सं० पतंग ] पतंग। कृतिंगा। मुनगा। उ०—इहाँ देवता अस गण हारी। तुम्ह पतिंग को भई मिशरारी।—जायसी।

**पतिवार-वि०** [ हि० पतिवारा ] विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय। उ०—सीन लोक भरि परि रहो है नौही है पतिवार।—कवीर।

**संज्ञा पुं०** दे० "पतिवारा"।

**पत्तनाध्यक्ष-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बन्दरगाह का अध्यक्ष या प्रधान अधिकारी। (कौटि०)

**पत्ता-संज्ञा पुं०** [ सं० पत्र ] (५) नाव के ढाँडे का वह अगला भाग जिसमें सफ्टी लड़ी रहती है और जिसकी सहायता में पानी काटा जाता है। फन। (लटा०)

**पतिप-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पतिपाल।

**पतिपाल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] नाव या छः सिपाहियों के ऊपर का अफसर।

**विशेष**—प्राचीन काल में सिपाहियों का पहरा बदलना इसी का काम होता था।

पत्तिव्यूह—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह व्यूह जिसमें भाग कवचधारी  
 दैनिक और पीछे धनुर्धर हों। (कौटिल्य)  
 पत्ती—संज्ञा पुं० [ १ ] राजपूतों की एक जाति। उ०—पत्ती औ पंचवान  
 बबले। अगरयार चौहान चँदले।—जायसी।  
 पत्थरफोड़—संज्ञा पुं० [ हि० पत्थर+फोड़ना ] बहुत छोटी जाति की  
 एक प्रकार की वनस्पति जो प्रायः वर्षा ऋतु में दीवारों या  
 पत्थर के जोड़ों के बीच से निकलती है। इसकी पत्तियाँ  
 बहुत छोटी होती हैं जो प्रायः फोड़ों को पकाने के लिये  
 उन पर बाँधी जाती हैं। इसमें सफेद रंग के बहुत छोटे  
 छोटे फूल लगे होते हैं।  
 पत्रकार—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो किसी सार्वजनिक सामा-  
 चारपत्र या पत्रिका का संचालन करता हो। वह जो किसी  
 अन्वहार को चलाता हो। पत्र संचालक। पत्र संपादक।  
 अग्रहार नहीं। पृथीतर। जरनलिस्त। (२) वह जो किसी  
 समाचारपत्र या अन्वहार में नियमित रूप से लिखता  
 हो। रिपोर्टर।  
 पत्रपुरा—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] १६ हाथ लंबी, ४८ हाथ चौड़ी और  
 ४८ हाथ ऊँची नाव। ( युक्तिरूप्यतरु )  
 पद्मिनि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (५) लक्ष्मी। उ०—पद्मन ऊपर पद्मिनि  
 मानहु। रूपन ऊपर दीपति जानहु।—केशव।  
 पद्म, पद्मक—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह भूमि जो सारे समाज या समुदाय  
 की हो। पंचायती जमीन।  
 विशेप—महानदी के किनारे राजीव नगर के राजा तिवरदेव के  
 साधुपत्र में यह शब्द आया है। कोशों में पद्म का अर्थ प्राम  
 मिलता है। डा० बूलर ने इस शब्द से 'चरागाह' का अभि-  
 लिया है। विल्सन ने अपने कोश में इसका अर्थ समाज या  
 समुदाय दिया है।  
 पनडब्या—संज्ञा पुं० [ हिं० पान + डब्या ] वह डब्या जिसमें पान  
 और उसके लगाने का सामान चूना, सुपारी, कथा आदि  
 रहता हो। पानदान।  
 पनपथी—संज्ञा स्त्री० [ हिं० पानी + पानना ] वह रोटी जो बिना  
 पर्यन के केवल पानी लगाकर बेली जाती है।  
 पनिचल—संज्ञा स्त्री० [ सं० पत्तिचल ] धनुष की ज्या। उ०—सँचि  
 पनिच भृकुटी धनुष यधिक समर तजि कानि। इनत तरुन  
 भृग तिलक-सर सुक भाल भरि तानि।—बिहारी।  
 पनिहा—संज्ञा पुं० [ सं० पाणिहा ] वह जो चोरी आदि का पता  
 लगाता हो। जासूस। भेदिया। उ०—खालन लहि पाएँ दुँरे  
 चोरी सँह करै न। सीस-चढ़े पनिहा मगट कहै पुकारै नैन।  
 —बिहारी।  
 पनुआँ—वि० [ हिं० पानी ] जिसमें अधिक पानी मिल गया हो।  
 फीका। उ० पनुआँ रंगन मेजि नियोँरे। गादो रंग अछत

जिमि चोरै। रंग देह तुरतै न विचोरै। रस-रसती पर  
 टाँग देरै।—देवस्वामी।  
 पन्नगपति—संज्ञा पुं० [ सं० ] शेषनाग। उ०—पन्नग प्रचंड पति  
 प्रभु की पनच पीन पर्वनारि पर्वत प्रभा न मान पावई।—  
 केशव।  
 पपड़ा—संज्ञा पुं० [ सं० पपट ] ( १ ) एक प्रकार का पकवान जो  
 मीठा और नमकीन दोनों होता है। मीठा पपड़ा मैद को  
 शरबत में घोलकर और नमकीन पपड़ा येसत को पानी में  
 घोलकर घी या तेल में तलकर बनाते हैं।  
 पग्लिक प्रासिकव्यूह—संज्ञा पुं० [ अंग० ] पुलिस का वह अफसर  
 या वकील जो सरकार की ओर से कौजदारी मुकदमों की  
 पैरवी करता है।  
 पग्लिशर—संज्ञा पुं० [ अंग० ] वह जो पुस्तकादि छपाय कर प्रकट या  
 प्रकाशित करे। प्रकट करनेवाला। (कोई चीज प्रकाशित करने  
 के अभियोग पर मिटर और पग्लिशर दोनों गिरफ्तार किये  
 जाते हैं।)  
 परकरपण—संज्ञा पुं० [ सं० ] शत्रु की संपत्ति आदि लूटना।  
 परकारना—कि० सं० [ हिं० परकार ] (१) परकार से घृत आदि  
 बनाना। (२) चारों ओर घेरना। आवेष्टित करना। उ०—  
 दसहँ दिसति गई परकारी। देखी समे भयतक भारी।—  
 छत्र प्रकाश।  
 परचाना—कि० सं० [ सं० प्रचलन ] प्रचलित करना। जलाना।  
 उ०—घिनगि जोति करसौ तें भागै। परम तनु परचावै  
 लागै।—जायसी।  
 परछालना—कि० सं० [ सं० प्रचालन ] जल से धोना। पका-  
 लना।  
 परजन—संज्ञा पुं० [ दे० ] डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक प्रकार का पीषा  
 जो राजपूताने, पंजाब और अफगानिस्तान की जोती बाँई  
 हुई भूमि में प्रायः पाया जाता है। इसमें पीछे रंग के बहुत  
 छोटे छोटे फूल लगते हैं।  
 परतंत्र-द्वैधी भाव—संज्ञा पुं० [ सं० ] दो प्रबल और परस्पर विरोधी  
 राष्ट्रों के बीच में रह कर और किसी एक राष्ट्र से कुछ धन  
 या वार्षिक रूति पाकर दोनों से मेल बनाए रखना।  
 (कामदक) जैसे,—यूरोपीय महायुद्ध के पहले अफगानिस्तान  
 की स्थिति परतंत्र-द्वैधी भाव की थी; पर युद्ध के पीछे अब  
 स्वतंत्रद्वैधी भाव की स्थिति है।  
 पररूपण संधि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] संपूर्ण राज्य की उत्पत्ति तथा  
 फल देने की प्रतिज्ञा कर संधि करना। ( कामदक )  
 परदेशप वाहान—संज्ञा पुं० [ सं० ] विदेशियों को बुलाकर उपनिवेश  
 बसाना। (कौटिल्य)  
 परनाल—संज्ञा पुं० [ हिं० परनाल ] जहाज में पेशाब करने की  
 मोती। (सप्त०)

परमट-मंत्रा पुं० [ भं० परमिट ] (२) बंद कर या महसूल जो विदेश से आने आनेवाले माल पर लगता है। कर। महसूल। चुंगी।

परमट-हाउस-संज्ञा पुं० दे० "कस्टम हाउस"।

परमदेवी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] महा-सामंत की स्त्री की उपाधि। विशेष-सतलज नदी तटस्थ निर्मल-ग्राम में महासामंत शब्द तथा महाराज समुद्रसेन के लेख में महासामन्त की स्त्री के लिये परमदेवी शब्द का प्रयोग किया गया है।

परममंड-वि० [ सं० ] स्थायी। स्थिर। कायम। जैसे,—परममंड अंशर सेक्रेटरी।

परम भट्टारक-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल के महाराजाधिराजों की उपाधि।

परम भट्टारिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राचीन काल की सम्राज्ञी की उपाधि।

परमिथा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह मुक्ति या राज्य जिसमें मित्र और शत्रु दोनों समान रूप से हों। ( कौटिल्य )

परवकल्प पराय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह माल जिसका सौदा दूसरे के साथ हो चुका हो।

विशेष-पेसा सौदा किसी दूसरे माहक के हाथ बेचनेवालों के लिये कौटिल्य और रघुनिकारों ने दंड का विधान किया है।

परवान-संज्ञा पुं० [ हिं० पाल, का० बादवान ] जहाज का पाल। बादवान।

परवाना-क्रि० अ० [ सं० प्रमाण ] प्रमाण मानना। ठीक संमतना। उ०—दुमरे कहत न जो सुगद मानहु। जो बह कहे सोहू परवानहु।—जायसी।

परवास-संज्ञा पुं० दे० "प्रवास"।

संज्ञा पुं० [ सं० वास ] आच्छादन। उ०—रूपहसार सूधी सदस यौधि धवन परवास। किय बुराज यह पादुरी मो सठ तुलसीदास।—तुलसी।

परवीं १ संज्ञा स्त्री० [ सं० पर्विणी ] पर्व काल। पुण्य काल। पर्विणी। उ०—परवीं परे भरत या होई। वेदि दिन-मैधुन करे जो कोई।—विश्राम।

परस-पखान-संज्ञा पुं० [ सं० परस + पखान ] परस पत्थर। स्पर्श-मणि। उ०—रूपवंत धनवंत सखारो। परस-पखान पौरि तिन्ह खणे।—जायसी।

परसोई-संज्ञा स्त्री० [ सं० परसो, हिं० परस + ओर ( प्रत्यय ) ] स्वर्ण करनेवाला। छूनेवाला। उ०—तिय तरसोई मुनि किय करि सरसोई मेह। घर परसोई छे रहे सर परसोई मेह।—विहारी।

परहरना-क्रि० सं० [ सं० परि + हरण ] परिव्याग करना।

श्रेयना। उ०—भक्ति छुदावे निगुरा करई। कहे कहाये जो परहरई।—विश्राम।

परौचा-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार की कम चौड़ी और लंबी नाव। ( ल० )

परायन-संज्ञा पुं० [ सं० परं ] पर्व। पुण्यकाल। उ०—पूरे पूरव पुण्यते पर्यो परायन आज।—मतिराम।

पराया-वि० दे० "पराय" उ०—विरह विवस ब्यकुल महतारी। निठु पराय नहिं हृदय सगदारी।—रामाचरमेध।

परिक्रय संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह संधि जो जंगली पदार्थ, धन या कोबा का कुछ भाग या संपूर्ण कोश देकर की जाय। ( कामंदक )

परिक्षिप्त-वि० [ सं० ] सब ओर से घिरी हुई ( मेन )। पि दे० "उपद्रव"।

परिक्षीण-वि० [ सं० ] ( २ ) दुर्बल और भयानक। ( सेना )

परिपन्न-वि० [ हिं० पलना ] निगहबानी करनेवाला। देख रेख करनेवाला। भगोरिया। उ०—गरभ मादि रक्षा करी जहाँ हिय नहिं कोह। अय का परिवलन पालिहें जियिन गढ़ मई सोइ।—विश्राम।

परिच्छद-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रोत। प्रदेत।

विशेष-नागदूद तियासत के खोह नामक गाँव में जो तात्रपत्र मिला है, उस में इस शब्द का प्रयोग पाया गया है। यहाँ लिखा है—दक्षिणेन बलवर्मा परिच्छदः।

परिपणित काल-संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] "आप इतने समय तक लड़िये और मैं इतने समय तक लडूँगा" इस प्रकार की समय सम्बन्धी संधि।

परिपणित देश-संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] "आप इस देश पर चढ़ाई करिये और हम इस देश पर चढ़ाई करते हैं" इस वंग की देश विषयक संधि।

परिपणित संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुछ शर्तों के साथ की गई संधि। इसके तीन भेद हैं—( १ ) परिपणित देश-संधि, ( २ ) परिपणित काल-संधि और ( ३ ) परिपणितार्थ-संधि।

परिपणितार्थ-संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] "आप इतना काम करें और मैं इतना काम करूँगा" ऐसी कार्य विषयक संधि।

परिपार-संज्ञा स्त्री० [ सं० पालि वा परिपाये ] मर्यादा। उ०—भरे परेसो को करे वृद्धि विखोके विचारि। किहि भर किहि भर राखिये छैं बँदे परिपारि।—विहारी।

परिमाष-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( नाटक में ) कोई आश्चर्यजनक दृश्य देखकर कुतूहलपूर्ण बातें कहना।

परिवर्त्तक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ७ ) अनाज आदि देकर दूसरी वस्तु दे बढे में लेना। विनिमय।

परिवृत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] बृहदाने के बाहर मारा हुआ पशु। ( कौ० )

परिच्युत-वि० [ सं० ] लड़ाई से भागा हुआ (सैनिक)।  
 परिहँस-संज्ञा पुं० [ सं० परिहास ] हँसना। दाढ़। जलन। उ०—  
 (क) परिहँस पियर भए तेहि बसा।—जायसी। (ख) परिहँस  
 भरसि कि कौनिउ लाजा। आपन जीउ देसि केहि  
 काजा।—जायसी।

परिहा-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का छंद। उ०—सुनत दूत के  
 बचन चतुर चित में हँसे। लोहितक्ष हँकरन धात में हम  
 कैसे। बल ते सयै उपाय और तब कीजिये। नहिँ दीर्घाँ भेंट  
 कुठार प्राण को लीजिये।—हनुमन्नाटक।

परिहारक ग्राम-संज्ञा पुं० [ सं० ] राज-कर से मुक्त ग्राम।  
 सुभाषी गाँव। लाखिराज गाँव।

विशेष-समाहर्त्ता के खेवट में आमों या भूमि का जो वर्गी-  
 कारण है, उसमें 'परिहारक' भी है। (कौ०)

परिहारनाश-क्रि० सं० [ सं० प्रहार + ना (प्र०) ] (शत्रु आदि)  
 प्रहार करना। चलाना। उ०—पारथ देखि याण परिहारा।  
 पथ काटि पायक महुँ टारा।—सबल।

परीछित-वि० संज्ञा पुं० दे० "परीक्षित"।  
 कि० वि० [ सं० परीक्षित ] अवश्य ही। निश्चित रूप से।  
 उ०—संकर कोप सों पाप को दास परीछित जाहिगो जारि  
 कै हीयो।—उलसी।

परीत-संज्ञा पुं० दे० "प्रेत"। उ०—कीन्हैसि राकस भूत परीता।  
 कीन्हैसि भोकरस देव दुहँता।—जायसी।

परआ-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की भूमि। (बुंदेलखंड)  
 परेरा-संज्ञा पुं० [ हिं० परहरा ] छोटी शंखी जो किसी किसी जहाज  
 के मस्जूल के सिरे पर लगी रहती है। फेरा। फरहरा।  
 (लडा०)

परेह-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार की कढ़ी जो बेसन को खूब पतला  
 घोलकर और घी या तेल में पका कर बनाई जाती है।

परोक दोष-संज्ञा पुं० [ सं० ] अदालत के सामने ठीक रीति से  
 बयान न करने का अपराध।

विशेष-जो प्रकरण में आई हुई बात छोड़कर दूसरी बात कहने  
 लगे, पहले कुछ कहे पीछे कुछ, प्रश्न किए जाने पर उत्तर न  
 दे या दूसरे से पूछने को कहे, प्रश्न कुछ किया जाय और  
 उत्तर कुछ दे, पहले कोई बात कहकर फिर निकल जाय,  
 साक्षियों के द्वारा कही बात स्वीकार न करे तथा अनुचित  
 स्थान में साक्षियों के साथ कानाफूसी करे, वह इस अपराध  
 का दोषी कहा गया है।

पणरुच्छु-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का मत जो  
 गृह, बेल, कुंदा आदि के पत्ते खाकर या इनके काढ़े पीकर  
 रहने से होता था।

पर्युपासन-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रतिमुख संधि के तेरह अंगों में से

एक। किसी को मुद्द देखकर उसे प्रसन्न करने के लिये  
 अनुनय विनय करना। (नाट्य शास्त्र)

पर्यंत दुर्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] पहाड़ी किला।  
 विशेष-चाणनय के मत से पर्यंत दुर्ग सब दुर्गों से उत्तम होता  
 है। (कौ०)

पर्यंतनदिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] पार्वती। उ०—सुत मैं न  
 जायो राम सो यह कर्षौ पर्यंतनदिनी।—केदार।

पर्यंतुष-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का वृण जो औषध के काम  
 में आता है। वृणाव्य।

पलंजी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की बरसाती घास जो  
 उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है। भूसा।  
 गुलगुल। पदा गुरसुरा। वि० दे० "भूसा"।

पलटनिया-संज्ञा पुं० [ हिं० पलटन + या (प्र०) ] वह जो पलटन  
 में काम करता हो। सेना का सिपाही। सैनिक। जैसे—नाग  
 में गोरे पलटनियों का पहरा था।

वि० पलटन में काम करनेवाला। पलटन का। जैसे—  
 १८९३ के पहले सुपरिटेण्डेंट और असिस्टेंट पलटनिये अफ-  
 सर होते थे।

पला-संज्ञा पुं० [ सं० पटल ] (३) पार्श्व। किनारा। उ०—  
 नासिक पुल सरात पथ चला। तेहि कर भीं हैं दुह पला।  
 —जायसी।

पलाय-संज्ञा पुं० [ हिं० पूला ] पूला नामक वृक्ष जिसके रेशों से  
 रस्से बनते हैं। वि० दे० "पूला"।

पलास-संज्ञा पुं० [ ? ] कनवास नाम का मोटा कपड़ा। वि० दे०  
 "कनवास"।

पलिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तेल निकालने की डोंड़ीदार बेलिया।  
 पल्ली।

विशेष-संवत् १००३ के सियादानी शिलालेख में यह शब्द  
 आया है। वि० दे० "प्राणक"।

पवंगा-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का छंद। उ०—पूजे दिन वर-  
 कार सुजान सुआहके। देखत ही मनसूर महा सुख पाहके।  
 विलयति करी नयाय जनार्ह वकीळ सौं। मसलति वृक्षन  
 काज सुजान सुसील सौं।—सूदन।

पवन-संज्ञा स्त्री० दे० "पवन"। उ०—सुवन सुख करनि भव-  
 सरिता सरनि गायत तुलसिदास कीरति पवनि।—तुलसी।

पवारी-संज्ञा स्त्री० [ ? ] नलिका नामक गंधद्रव्य।

पस्ती-संज्ञा पुं० [ देश० ] सीतल की जाति का एक प्रकार का  
 बड़ा वृक्ष जो प्रायः सारे उत्तरी भारत, नेपाल, और आसाम  
 में पाया जाता है। यह प्रायः सड़कों के किनारे लगाया  
 जाता है। यह नीची और बलुई जमीन में बहुत जल्दी बढ़ता  
 है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। इसकी लकड़ी

बहुत बढ़िया होती है और श्रीराम की भाँति ही काम में आती है। बियुआ। भकोली।

पहँल-अर्थ [ सं० पाहल, प्रा० पाह ] ( १ ) निकट। समीप। उ०—राजा बंदि जेहि के सीपना। गा योरा तेहि पहँल अग-मना।—जायसी। ( २ ) से। उ०—दूतिवन्द बाल न दिये समानी। पदमावति पहँ कदा सो आनी।—जायसी।

पहाड़ी-संज्ञा स्त्री० [ हि० पहाड़ या सं० पर्वत ] एक प्रकार की ओपधि जिसे पर्यटो या जनी भी कहते हैं। वि० दे० "जनी"।

पहाड़ी इन्द्रायन-संज्ञा पुं० [ हि० पहाड़ + इन्द्रायन ] एक प्रकार का योरा जिसे पेराल् भी कहते हैं। वि० दे० "पेराल्"।

पहाड़ियाँ-संज्ञा पुं० [ दे० ] बच्चों का एक प्रकार का खेल जिसे आनी पानी भी कहते हैं।

वि० [ हि० पहाड़ ] पहाड़ संबंधी। पहाड़ का। पहाड़ी।

पहाऊँ-संज्ञा पुं० [ हि० पहाड़ ] पहरदार। रक्षक। पाहरू। उ०—जैहि तिव मई होइ सत पहाऊँ। परं पहाड न कोई मरु।—जायसी।

पहूँची-संज्ञा स्त्री० [ हि० पहुँचा ] ( २ ) बुद्ध-काल में कलाई पर, उसकी रक्षा के लिये, पहनने का लोहे का एक प्रकार का आवरण। उ०—सजें सनाहट पहूँची टोपा। लोहसार पहिरे सब भोगा।—जायसी।

पहुला-संज्ञा पुं० [ सं० प्रकृष्ण ] कुमुदिनी। कोई। उ०—पहुला हार दिमें लस सन की बँदी माल। राखनि खेत खरे खरे उरोजनु बाल।—विहारी।

पाँजरा-संज्ञा पुं० [ ? ] यह मल्लाह जो मल्लाही में बनाड़ी हो। टंकी। कूली। ( ऐसे बनादियों को मल्लाह लोग पाँजरा कहते हैं। )

पाँड़-वि० स्त्री० [ दे० ] ( १ ) ( स्त्री ) जिसके स्तन बिलबुल न हो या बहुत ही छोटे हों। ( २ ) ( स्त्री ) जिसकी योनि बहुत छोटी हो और जो संभोग के योग्य न हो।

पाँसासार-संज्ञा पुं० [ हि० पाँसा ] चीपड़। उ०—पाँसासार कुँवर सब खेलाई गीतन सुवन भोगादि। चैन चाव तस देखा जनु गढ़ छँका नाहि।—जायसी।

पासुघायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] धूल साध करनवाला। सद्क या गली साधनेवाला। ( कौ० )

पाईट-संज्ञा पुं० [ अ० ] ( १ ) पानी, दूध आदि द्रव पदार्थ नापने का एक अंगोको माप जो डेढ़ पाव का होता है। डेढ़ पाव का एक पैमाणा। ( २ ) आधी या छोटी घोटल जिसमें आयः डेढ़ पाव जल या मदिरा आती है। अन्न।

पाकनाडी-क्रि० प्र० दे० "पकना"। उ०—कहर डार पींड सन पाके। कहर सो अनुष भति ताके।—जायसी।

पाकसी-संज्ञा स्त्री० [ अ० पाँच ] लोमड़ी। ( लता० )

पाकाडी-वि० दे० "पका"।

पाकेट-संज्ञा पुं० [ अ० पैकेट ] ( २ ) नियमित दिन को टाक, माल और यात्री लेकर रवाना होनेवाला जहाज। ( लता० )

पाखी-संज्ञा पुं० [ सं० पक्ष ] पक्षी का पंख। डैना। पर। पागर-संज्ञा पुं० [ ? ] वह रस्ता जिससे मल्लाह नाल को खींच कर नदी के किनारे बाँधते हैं। गूल। ( लता० )

पाज-संज्ञा पुं० [ ? ] पंक्ति। पंती। कनार। ( लता० )

पाट-संज्ञा पुं० [ सं० पट ] ( १६ ) वस्त्र। कपड़ा।

पाटक संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १५ ) हल में का मछोतर जिसकी सहायता से हरिस में हल जुड़ा रहता है। यह मछली के आकार का होता है।

पाटा-संज्ञा पुं० [ हि० पाट ] ( ३ ) यह हाथ डेढ़ हाथ ऊँची दीवार जो रसोई-घर में चौके के सामने और पागल में इसलिये बनाई जाती है कि बाहर बैसकर खानेवालों का पकाने-वाली स्त्री से सामना न हो।

पादतल्ल-संज्ञा स्त्री० [ हि० पदना ] ( ३ ) पदने की क्रिया या भाव।

पातरङ्गी-वि० [ हि० पतरा ] [ स्त्री० पावरी ] जिसका शरीर दुपंख हो। पतरा। उ०—अंग अंग छवि की लपट उपटनि जाति अछेद। खरी पातराङ्ग तज छौं भरी सी देह।—विहारी।

पाद्गाप-संज्ञा पुं० [ सं० ] पदाति, रथी, हस्ती तथा अश्वोर्ही सेना के संरक्षक। ( कौ० )

पादपथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] पगडंडी।

पादानुध्यात, पादानुध्यान-संज्ञा पुं० [ सं० ] छोटे की ओर से बढ़े की पत्र लिखने में एक नम्रतापूर्वक शब्द जिसका व्यवहार लिखनेवाला अपने लिये करता था।

विशेष-आयः सामंत या जागीरदार महाराज को पत्र लिखने में इस शब्द का व्यवहार करते थे (गुहों के नियालेख)। इसी प्रकार पुत्र पिता, को पत्र लिखने में या कोई व्यक्ति अपने पूर्वज का उल्लेख करते समय अपने लिये इस शब्द का व्यवहार करता था।

पादिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] चौयाई पण। ( कौ० )

पानन-संज्ञा पुं० [ दे० ] साँदन नाम का मीठोले आकार का एक वृक्ष जिसकी लकड़ी से सजावट के सामान बनते हैं। वि० दे० "साँदन"।

पानीबेल-संज्ञा स्त्री० [ हि० पानी + बेल ] एक प्रकार की बड़ा लता जिसकी पत्तियाँ तीन से सात इंच तक लंबी होती हैं। गरमी के दिनों में इसमें ललाई, छिपू मूरे रंग के छोटे फूल लगते हैं और वर्षा ऋतु में यह फलती है। इसके फल साध जाते हैं और जड़ का ओपधि के रूप में व्यवहार होता है। यह स्फेलरंड्रम, अवध और ग्वालियर के आस पास और विशेषतः साल के जंगलों में पाई जाती है। सूखल।

पानूस-संज्ञा पुं० दे० "पानूस"। उ०—बाल छरीली तियनु



में धैरी आउ छिपाइ । अरगत ही पानूस सी परगत होति छलाइ—जायसी ।

**पापर**-संज्ञा पुं० [ अं० पापर ] ( १ ) मुफलिस आदमी । निर्धन व्यक्ति । ( २ ) वह व्यक्ति जो मुफलिसी या निर्धनता के कारण दीवानी में बिना किसी प्रकार के अदालती रसूम या खर्च के किसी पर दावा दायर करने या मामला लड़ने की स्वीकृति पाता है ।

**विशेष**-उसे व्यक्ति को पहले प्रमाणित करना पड़ता है कि मैं मुफलिस हूँ; दावा दायर करने या मामला लड़ने के लिये मेरे पास पैसा नहीं है । अदालत को विश्वास हो जाने पर वह उसे अदालती रसूम या खर्च से बरी कर देती है । पर हाँ, मामला जीतने पर उसे खर्च देना पड़ता है ।

**पापटमैन**-संज्ञा पुं० [ अं० पापटमैन ] वह आदमी जिसके जिम्मे रेलवे लाइन हूपर से उधर करने या बदलने की कल रहती है ।

**पायझी**-संज्ञा पुं० [ सं० पाद ] पैर । पाँव । उ०—यादल केरि जसोयै भाषा । आइ गहेसि यादल कर पाया ।—जायसी ।

**पायतघत**-संज्ञा पुं० [ फा० पायः घतल ] राजनगर । राजधानी ।

**पारह**-संज्ञा स्त्री० [ सं० पार ] मिट्टी का बड़ा कसोरा । पारह । उ०—अनि भाजन मधु पारह पूरन अनी निहारि । का छँदिय का संग्रहिय कहहु बिबेक विचारि ।—तुलसी ।

**पारतलियक**-वि० [ सं० ] जो पारह स्त्री के साथ गमन करे । व्यभिचारी ।

**पारविषयिक**-वि० [ सं० ] दूसरे राज्य का । विदेशी । (कौ०)

**पारस**-वि० [ सं० पारस ] ( २ ) जो किसी दूसरे को भी अपने ही समान कर ले । दूसरों को अपने जैसा बनानेवाला । उ०—पारस-आनि लिलाटहि ओती । दिस्टि जो करे होइ तेहि जोती ।—जायसी ।

**पारिपातिक रथ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह रथ जो हूपर उधर सँर करने के काम का होता था ।

**पारिहीणिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्षतिपूर्ति । नुकसानी । हरजाने की रकम ।

**पारी**-संज्ञा स्त्री० [ फा० पारी ? ] जहाज के मस्तूल के नीचे का भाग । ( लदा० )

**पार्ट**-संज्ञा पुं० [ अं० ] ( १ ) नाटकांतगत कोई भूमिका या चरित्र जो किसी अभिनेता को अभिनय करने को दिया जाय । भूमिका । जैसे—उसने प्रतापसिंह का पार्ट बढ़ी उत्तमता से किया । ( २ ) हिस्सा । भाग । जैसे—आजकल वे सभा सोसाइटियों में पार्ट नहीं लेते । ( ३ ) ( पुस्तक का ) खंड । भाग । हिस्सा ।

**पार्टिशन** संज्ञा पुं० [ अं० ] बाँटने या विभाग करने की क्रिया । किसी चीज के दो या अधिक भाग या हिस्से करना । विभाग । बँटवारा । जैसे—बहाल पार्टिशन । पार्टिशन वूट ।

**पार्थिव आय**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जमीन की आमदनी । माल-गुजारी । लगान ।

**पार्श्वकर**-संज्ञा पुं० [ सं० ] बकाया मालगुजारी । पिछले साल की बाकी जमा ।

**पार्ष्णिप्राह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना को पीछे से दबावनेवाला ( शत्रु ) या सहायता पहुँचानेवाला ( मित्र ) ।

**पार्ष्णि प्रति-विधान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना के पिछले भाग को कमजोर पड़ने पर पुष्ट करना ।

**पालंगा**-संज्ञा पुं० दे० "पलंग" । उ०—पालंग पाँव कि आँठ पाटा । नेत विछान चले जौ याटा ।—जायसी ।

**पाल**-संज्ञा पुं० [ ? ] तोप, बंदूक या तमंचे की नाल का धरा या चक्कर । ( लदा० )

**पाल** पुं० [ सं० ] ( ५ ) गोपाल । ग्वाल ।

**पालक**-संज्ञा पुं० [ हि० पालक ] पलंग । पट्यंक । उ०—अं पालक पीढ़े को माढ़ी । सोयनहार परा बँदि गाढ़ी ।—जायसी ।

**पालिटिक्स**-संज्ञा पुं० [ अं० ] ( १ ) नीति शास्त्र का वह अंग जिसमें राष्ट्र या राज्य की शांति, सुख्यवस्था और सुलससृष्टि के लिये नियम, कायदे और शासन-विधियाँ हैं । राजनीति शास्त्र । ( २ ) वह सब बातें जिनका राजनीति से सम्बन्ध हो । ( ३ ) अधिकार-प्राप्ति के लिये "राजनीतिक दलों की प्रतिद्वंद्विता ।

**पालिसी**-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] ( २ ) वह प्रमाण या प्रतिज्ञापत्र जो बीमा करनेवाली कंपनी की ओर से बीमा करानेवाले को मिलता है, जिसमें लिखा रहता है कि अशुक शर्त पूरी होने या धीरे में अशुक दुर्घटना संघटित होने पर बीमा करानेवाले या उसके उत्तराधिकारी को इतना रुपया मिलेगा । वि० दे० "बीमा" ।

धौ०—पालिसी-होल्डर ।

**पालिसी-होल्डर**-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह जिसके पास किसी बीमा कंपनी की पालिसी हो । बीमा करानेवाला ।

**पासदर**-संज्ञा पुं० [ अं० पासदर ] यात्री । मुसाफिर । ( लदा० )

**पासपोर्ट**-संज्ञा पुं० [ अं० ] एक प्रकार का अधिकारपत्र या परवाना जो, एक देश से दूसरे देश को जाते समय, सरकार से प्राप्त करना पड़ता है और जिससे एक देश का मनुष्य दूसरे देश में सरलान प्राप्त कर सकता है । अधिकारपत्र । हूट पत्र ।

**विशेष**-अनेक देशों में ऐसा नियम है कि उन देशों की सरकारों से पासपोर्ट या अधिकारपत्र प्राप्त किए बिना कोई विदेश नहीं जाने पाता । पासपोर्ट देना या न देना सरकार की इच्छा पर निर्भर है । अत्याधुनिक व्यक्तियों या राजनीतिक संघियों को पासपोर्ट नहीं मिलता; क्योंकि इनसे अधिकारियों को आतंका रहनी है कि वे विदेशों में जाकर सर-

कार के विरुद्ध काम करेंगे। हिंदुस्थान से बाहर जानेवालों को भी पासपोर्ट लेना पड़ता है।

(२) वह अधिकारपत्र या परवाना जो युद्ध के समय विरोधी देश के लोगों को अपने देश में निरापद पहुँचाने के लिये दिया जाता है। (३) बिना नियमित कर या महसूल के विदेश से माल मँगाने या बेचने का प्रमाणपत्र या लाइसेंस।

पासबाने-वि० [ पा० ] रक्षा करनेवाला। रक्षक।

तथा स्त्री० रसेली स्त्री। रवनी। ( रातपूना )

पाहूँ#-अव्य० [ सं० पाहूँ ] पास। रामोप। निकट। उ०—  
में जानेद सुहृद् मोही माहो। देखीं ताकि ती ही सब पाहूँ।—जायसी।

पिंडकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] मुकरंद मालगुजारी। रिधर या नियत कर जैसा कि आतकल दुवामी बंदोबस्तवाले प्रदेशों में है।

पिंडा-संज्ञा पुं० [ देश० ] करवे में पोटो की ओर लगी हुई एक खूँटी। वि० दे० "महतवान"।

पिअरया-संज्ञा स्त्री० [ हि० पिअरा = पीला ] दरतन घनाने की पीले रंग की मिट्टी। ( कुम्हार )

पिकेट-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) पलटनियों का पहरा जो कहीं उपद्रव होने या उसकी आशंका होने पर उसे रोकने के लिये भेजाया जाता है। (२) किसी काम को रोकने के लिये दिया जानेवाला पहरा। घरना।

पिकेटिंग-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] किसी बात को रोकने के लिये पहरा देना। घरना। जैसे,—स्वयंसेवक विद्वेनी बख की दुकानों के सामने पिकेटिंग कर रहे थे; इससे कोई ग्राहक नहीं आया।

पिक्चर-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] चित्र। नस्वीर।

पिच्छल-संज्ञा पुं० [ हि० पिच्छल ] जहाज का पिच्छल भाग। ( लडा० )

पिट-संज्ञा पुं० [ अ० ] धियेटर में गैलरी के आगे की सीटें या आसन।

पिटपिटाना-कि० प्र० [ अ० ] असमर्थता आदि के कारण हाथ-पैर पटककर रह जाना। विवश होकर रह जाना।

पिटमान-संज्ञा पुं० [ ? ] पाल। ( लडा० )

पिटोटा-संज्ञा पुं० [ हि० पीठना ] वह संघा या लाठी जिससे फमल की बालों आदि को पीटकर उसके दाने निकालते हैं। पीठना।

पिट्ट-संज्ञा स्त्री० [ हि० पीठना ] रोने पीठने की क्रिया या भाव। पिह्य।

कि० प्र०—पड़ना।

पिटमिह्ला-संज्ञा पुं० [ हि० पीठ + मिह्ला ] अँगरसे या कोट आदि का वह भाग जो पीठ पर रहता है। पीठ।

पिटौरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० पिठो + भौरी (भयो०) ] (२) गुँधे हुए आदि का वह छोटा पेड़ा जो पकनी हुई दाल में छोड़ दिया

जाता है और उसी में उबलकर पक जाता है।

पिड़िया-संज्ञा स्त्री० [ सं० पिठक या हि० पेड़ा ] चावल का गुँधा हुआ आटा जो लंबोतेरे पेड़े के आकार का बनाकर अद्दल में छोड़ दिया जाता है और उबल जाने पर खाया जाता है।

पितिजिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० पुत्रजीवक ] इंगुदी की तरह का एक प्रकार का पेड़ जिसके पत्ते और फल भी इंगुदी के पत्तों और फलों से मिलते जुलते होते हैं। इसके बीजों को, श्राद्ध की तरह, माला बननी है। वैद्यक में इसे शीतल, वीर्यप्रदक, कलकारक, गर्भ और जीवदायक, नेत्रों को हिनकारी, पित्त को शांत करनेवाला और दाह तथा गुया को हरनेवाला कहा है। पितौजिया। जियापोंता।

पितौजिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० पुत्रजीवक ] पुत्रजीवक नामक वृक्ष। वि० दे० "पितिजिया"।

पित्तो-संज्ञा स्त्री० [ ? ] एक प्रकार की बेल जिसे रक्त बहती भी कहते हैं।

पिदारा-संज्ञा पुं० [ हि० पिदा ] पिरी पड़ी का नर। पिदा। उ०—  
चकई चकदा और पिदारे। नकटा लेदी सोन सलारे।—  
जायसी।

पिपास-संज्ञा स्त्री० दे० "पिपासा"। तु०—छूटै सब सबनि के  
सुख छुपिपास।—केशव।

पिपियाना-कि० प्र० [ हि० पीप + श्याम ( शय० ) ] पीप पड़ना। मवाद आना। जैसे,—फोड़े का पिपियाना।  
कि० सं० पीप उत्पन्न करना। मवाद पैदा करना। जैसे,—  
यह दवा फोड़े को पिपिया देगी।

पियास-संज्ञा पुं० [ देश० ] राज-जामुन नामक वृक्ष। वि० दे०  
"राजजामुन"।

पियाव थड्डा-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की मिठाई जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पहले चावल को पकाकर सिल पर पीसते हैं, फिर गुलाब का अंतर और पौंछों मेवे मिला कर बड़े की तरह बनाते हैं। अनंतर धी में तलकर चादनी में डाल देते हैं।

पिल-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] ( दवा की ) गोली। बटो। जैसे,—  
निवनाइन पिल। टालिक पिल।

पीक संज्ञा पुं० [ अ० ] (३) फोना। ( लडा० )  
वि० खदा। कायम। ( लडा० )

पीछ-संज्ञा स्त्री० [ अ० पिच ] एक प्रकार की राख जो जहाज आदि में दूरार भरने के काम में आनी है। दामर। गीर। कील। ( लडा० )

पीठ-संज्ञा स्त्री० [ सं० शठ ] (२) रोटी का ऊपर का भाग। (३) जहाज का फर्श। ( लडा० )

पीठना-कि० सं० दे० "पीसना"। उ०—एक न आदी मरिच  
सो—पीठा। दूसर दूध खोद सो मीठा।—जायसी।

में धैरी भापु छिपाइ । अरगत ही पानूस सी परगत होति लपटाइ—जायसी ।

**पापर**-संज्ञा पुं० [ अं० पापर ] ( १ ) मुकलिस आदमी । निर्धन व्यक्ति । ( २ ) वह व्यक्ति जो मुकलिसी या निर्धनता के कारण दीवानी में बिना किसी प्रकार के अदालती रसूम या खर्च के किसी पर दावा दायर करने या मामला लड़ने की स्वीकृति पाता है ।

**विशेष**-ये व्यक्ति को पहले प्रमाणित करना पड़ता है कि मैं मुकलिस हूँ, दावा दायर करने या मामला लड़ने के लिये मेरे पास पैसा नहीं है । अदालत को विन्यास हो जाने पर वह उसे अदालती रसूम या खर्च से बरी कर देता है । पर हों, मामला जीतने पर उसे खर्च देना पड़ता है ।

**पापर्टमैन**-संज्ञा पुं० [ अं० प्वापर्ट्मैन ] यह आदमी जिसके जिम्मे रेलवे लाइन इत्यर से उधर करने या बदलने की फल रहती है ।

**पायलर**-संज्ञा पुं० [ सं० पाद ] पर । पाँव । उ०—पायल केरि जसोवे माथा । आइ गहेसि बायल कर पाया ।—जायसी ।

**पापतखत**-संज्ञा पुं० [ फा० पायः तखत ] राजनगर । राजधानी ।

**पारङ्गी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० पार ] मिट्टी का बड़ा कसोरा । परङ्ग । उ०—मनि भाजन महु पारङ्ग पूरन भमी निहारि । का छौं दिव का संग्रहिय फहगु बियेक विचारि ।—गुलसी ।

**पारतल्पिक**-वि० [ सं० ] जो पराई की के साथ गमन करे । व्यक्तिचारी ।

**पारविषयिक**-वि० [ सं० ] दूसरे राज्य का । विदेशी । (की०)

**पारस**-वि० [ सं० पर्स ] (२) जो किसी दूसरे को भी अपने ही समान कर ले । दूसरों को अपने जैसा बनानेवाला । उ०—पारस-जोनि छिछाटहि ओती । दिष्टि जो कर होइ तेहि जोती ।—जायसी ।

**पारिपातिक रथ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह रथ जो इधर उधर सैर करने के काम का होता था ।

**पारिहीणिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] क्षतिपूर्ति । चुकसाना । हरजाने की रकम ।

**पारी**-संज्ञा स्त्री० [ फा० पारो ? ] गहान के मल्लू के नीचे का भाग । (लडा०)

**पार्ट**-संज्ञा पुं० [ अं० ] ( १ ) माटकांतगत कोई भूमिका या परित्र जो किसी अभिनेता को अभिनय करने को दिया जाय । भूमिका । जैसे—उसने प्रतापसिंह का पार्ट बढ़ी उत्तमता से किया । ( २ ) हिस्सा । भाग । जैसे—आजकल वे सभा सौसाइतियों में पार्ट नहीं लेते । ( ३ ) ( पुस्तक का ) खंड । भाग । हिस्सा ।

**पार्टिशन** संज्ञा पुं० [ अं० ] बाँटने या विभाग करने की क्रिया । किसी चीज के दो या अधिक भाग या हिस्से करना । विभाग । बँटवारा । जैसे—बहाल पार्टिशन । पार्टिशन सूट ।

**पार्थिव आध**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जमीन की आमदनी । माल-गुजारी । लगान ।

**पार्श्वकर**-संज्ञा पुं० [ सं० ] बकाया मालगुजारी । पिछले साठ की बाकी जमा ।

**पारिणाम्राह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना को पीछे से दबोचनेवाला ( शत्रु ) या सहायता पहुँचानेवाला ( मित्र ) ।

**पारिण प्रति-विधान**-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना के पिछले भाग को कमजोर पड़ने पर पुष्ट करना ।

**पालंग**-संज्ञा पुं० दे० "पलंग" । उ०—पालंग पाँव कि आँठ पाटा । नेत विछाव चले जो बाटा ।—जायसी ।

**पाल**-संज्ञा पुं० [ ? ] तोप, बंदूक या तमंचे की नाल का धरा या चक्र । ( लडा० )

संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ५ ) गोपाल । ग्वाला ।

**पालकल**-संज्ञा पुं० [ हि० पलंग ] पलंग । पथरक । उ०—को पालक पीरुं को माही । सोचनहार परा बैदि गावी ।—जायसी ।

**पालिटिक्स**-संज्ञा पुं० [ अं० ] ( १ ) नीति-शास्त्र का वह अंग जिसमें राष्ट्र या राज्य की शांति, सुव्यवस्था और सुखसमृद्धि के लिये नियम, कायदे और शासन-विधियाँ हों । राजनीति शास्त्र । ( २ ) वह सब बातें जिनका राजनीति से सम्बन्ध हो । ( ३ ) अधिकार-प्राप्ति के लिये राजनीतिक दलों की प्रतिद्वन्द्विता ।

**पालिसी**-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] ( २ ) वह प्रमाण या प्रतिज्ञापत्र जो बीमा करनेवाली कंपनी की ओर से बीमा करानेवाले को मिलता है, जिसमें लिखा रहता है कि अमुक शर्त पूरी होने या भीष में अमुक दुर्घटना संघटित होने पर बीमा करानेवाले या उसके उत्तराधिकारी को इतना रकम मिलेगा । वि० दे० "बीमा" ।

यौ०—पालिसी-होल्डर ।

**पालिसी-होल्डर**-संज्ञा पुं० [ अं० ] वह जिसके पास किसी बीमा कंपनी की पालिसी हो । बीमा करानेवाला ।

**पासंदर**-संज्ञा पुं० [ अं० पैसंदर ] यात्री । मुसाफिर । (लडा०)

**पासपोर्ट**-संज्ञा पुं० [ अं० ] एक प्रकार का अधिकारपत्र या परवाना जो, एक देश से दूसरे देश को जाने समय, सरकार से प्राप्त करना पड़ता है और जिससे एक देश का सवुप्य दूसरे देश में संरक्षण प्राप्त कर सकता है । अधिकार-पत्र । छूट पत्र ।

**विशेष**-अनेक देशों में ऐसा नियम है कि उन देशों की सरकारों से पासपोर्ट या अधिकारपत्र प्राप्त किए बिना कोई विदेश नहीं जाने पाता । पासपोर्ट देना या न देना सरकार की इच्छा पर निर्भर है । अवांछनीय व्यक्तियों या राजनीतिक संदिग्धों को पासपोर्ट नहीं मिलता ; क्योंकि इनसे अधिकारियों को आतंका रहती है कि वे विदेशों में जाकर सर-

कार के विरुद्ध काम करेंगे। हिंदुस्थान से बाहर जानेवालों को भी पासपोर्ट लेना पड़ता है।

(२) वह अधिकारपत्र या परवाना जो युद्ध के समय विरोधी देश के लोगों को अपने देश में निरापद पहुँचने के लिये दिया जाता है। (३) दिना नियमित कर या महसूल के विदेश से माल मँगाने या भेजने का प्रमाणपत्र या लाइसेंस।

पास्तवान-विं [ फा० ] रक्षा करनेवाला। रक्षक।

पला सी० रखेली सी०। रखनी। (राजपूता०)

पाहूँ#-अव्य० [ सं० पाहूँ ] पार। रामीप। निकट। उ०— मैं जानेद तुम्ह मोही माहों। देखों ताकि तौ ही सब पाहूँ।—जायसी।

पिंडक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मुकर्कर मालजुगरी। स्थिर या नियत कर जैसा कि भातकल द्वाभा बंधोबलवाले प्रदेशों में है।

पिंडा-संज्ञा पुं० [ देश० ] करये में पोंछे की ओर लगी हुई एक लुँटी। वि० दे० "महतवान"।

पिअरवा-संज्ञा स्त्री० [ हि० पिअर = पीठ ] धरतन बनाने की पीले रंग की मिट्टी। (कुम्हार)

पिकेट-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) पलटनियों का पहरा जो कहीं उपद्रव होने या उसकी आतंका होने पर उसे रोकने के लिये बैठाया जाता है। (२) किसी काम को रोकने के लिये दिया जानेवाला पहरा। धरना।

पिकेटिंग-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] किसी बात को रोकने के लिये पहरा देना। धरना। जैसे,—स्वयंसेवक विदेशी बख की दुकानों के सामने पिकेटिंग कर रहे थे; इससे कोई आदक नहीं आया।

पिकचर-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] चित्र। सस्वीर।

पिच्छल-संज्ञा पुं० [ हि० पिच्छल ] जहाज का पिछला भाग। (लडा०)  
पिट-संज्ञा पुं० [ अ० ] विघेटर में गैलरी के भाग की सॉट या भासन।

पिटपिटाना-क्रि० प्र० [ अ० ] शरतमयता आदिके कारण हाथ-पैर पटककर रह जाना। विवश होकर रह जाना।

पिटमान-संज्ञा पुं० [ ? ] पाल। (लडा०)

पिटौरा-संज्ञा पुं० [ हि० पीठना ] वह बंडा या छाटी जिससे फसल की बालों आदिको पीठकर उसके दाने निकालते हैं। पिटना।

पिट्टन-संज्ञा स्त्री० [ हि० पीठना ] रोने पीठने की क्रिया या भाव। पिटस।

क्रि० प्र०—पड़ना।

पिटमाला-संज्ञा पुं० [ हि० पीठ + माला ] अंगरसे या कोट आदि का वह भाग जो पीठ पर रहता है। पीठ।

पिटौरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० पिठौरी + औरी (अव्य०) ] (२) मुँचे हुए भाँटे का वह छोटा पेंदा जो एकता हुई शाल में छोड़ दिया

जाता है और उसी में डबलकर पक जाता है।

पिड़िया-संज्ञा स्त्री० [ सं० पिठक या हि० पेंदा ] चावल का गुँथा हुआ आटा जो लंबोतरे पेंदे के आकार का बनाकर भाँहन में छोड़ दिया जाता है और डबल जाने पर खाया जाता है।

पितिजिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० पुत्रजीवक ] इंदुदी की तरह का एक प्रकार का पेड़ जिसके पत्ते और फल भी इंदुदी के पत्तों और फलों से मिलते जुलते होते हैं। इसके बीजों की, सदाश की तरह, माला बनती है। वैद्यक में इसे शीतल, वीर्यवर्द्धक, कफकारक, गर्म और जीवनायक, नेत्रों की हिनकारी, पित्त को शांत करनेवाला और दाह तथा मृषा को हरनेवाला कहा है। पितौजिया। जियापोता।

पितौजिया-संज्ञा स्त्री० [ सं० पुत्रजीवक ] पुत्रजीवक नामक वृक्ष। वि० दे० "पितिजिया"।

पिची-संज्ञा स्त्री० [ ? ] एक प्रकार की बेल जिसे रक्त पल्ली भी कहते हैं।

पिदारा-संज्ञा पुं० [ हि० पिदा ] पिही पक्षी का नर। पिदा। उ०— चऊई बकवा और पिदारे। नकटा लेई सोन सलारे।—जायसी।

पिपाल-संज्ञा स्त्री० दे० "पिपामा"। तु०—लुट्टे सब सबनि के सुख क्षुतिपास।—केदाव।

पिपियाना-क्रि० प्र० [ हि० पीप + खाना (अव्य०) ] पीप पड़ना। मवाद आना। जैसे,—कोड़े का पिपियाना।  
क्रि० रा० पीप उपपन्न करना। मवाद पैदा करना। जैसे,— यह दवा फोड़े को पिपिया देगी।

पियामन-संज्ञा पुं० [ देश० ] राजजासुन नामक वृक्ष। वि० दे० "राजजासुन"।

पियाव बड्डा-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की मिठाई जिसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पहले चावल को पकाकर सिल पर पीसते हैं, फिर गुलाब का अंतर और पाँचों भेजे मिला कर बड़े की तरह बनाते हैं। अन्तर धी में तलकर चाचनी में ढाल देते हैं।

पिल-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (दवा की) गोली। बटी। जैसे,— विवनाहन पिल। यानिक पिल।

पीक संज्ञा पुं० [ अ० ] (३) कोना। (लडा०)  
वि० खड़ा। कायम। (लडा०)

पीछ-संज्ञा स्त्री० [ अ० पिच ] एक प्रकार की राख जो जहाज भाँदि में दूरार भरने के काम में आती है। दामर। गीर। कील। (लडा०)

पीठ-संज्ञा स्त्री० [ सं० शठ ] (२) रोटी का ऊपर का भाग। (३) जहाज का फर। (लडा०)

पीठना-क्रि० स० दे० "पीसना"। उ०—एक न आदी सरिच सो पीठा। दूसर दूध खॉद सो मोंटा।—जायसी।

पीठिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( ४ ) तामदान । डौड़ी । ( कौ० )  
 पीनल कोइ-संज्ञा पुं० [ सं० पीनल कोइ ] अपराध और दंड संबंधी  
 व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह । दंडविधि । ताजगीरत ।  
 जैसे,—इं दिवन पीनल कोइ ।  
 पीयूषमानु-संज्ञा पुं० [ सं० पीयूष + मानु ] चंद्रमा । उ०—तीछन  
 उगहाई भई मीपम को धामु, भयो भीसम पीयूषभानु,  
 भानु रुपहर कौ ।—मतिराम ।  
 पीलसोज-संज्ञा पुं० [ सं० पत्तीसोज ] दीया जलाने की दीवट ।  
 चिरागदान । उ०—पीलसोज फानूस कुर्पा निखटी  
 मुमसालें ।—सूदन ।  
 पीघ-संज्ञा पुं० [ हि० पिय ] पिय । स्वामी । उ०—हरि मोर  
 पिघ में राम की बहुरिया ।—कवीर ।  
 पीसगुड-संज्ञा पुं० [ सं० पीसगुड ] ( कपड़े का ) धान । रेजा ।  
 जैसे,—पीस गुडज के व्यापारी ।  
 पुंदल-संज्ञा पुं० [ ? ] जहाज के मस्तूल का पिछला भाग । ( लश० )  
 पुखर-संज्ञा पुं० [ सं० पुखर, प्रा० पुखर ] ताराश्या । पोखरा । उ०—  
 भरह पुखर आं ताल तलावा ।—जायसी ।  
 पुष्य-संज्ञा पुं० दे० “पुष्य” ।  
 पुगना-किं० प्र० दे० “पुगना” ।  
 पुट-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १० ) पोटली या पैकेट जिस पर मुहर  
 की जाती थी । ( कौ० )  
 पुटवार-किं० वि० [ हि० पुट्टा ] पीछे । बगल में । उ०—तुम  
 सेन सजै पुटवार रही अथ आयसु देहु न और सही ।  
 हम जाय खुरें पहले उन सौं तुम गौर करी लखि लोह  
 बही ।—सूदन ।  
 पुतहा-संज्ञा पुं० [ सं० पुतल ] ( २ ) जहाज के आगे का पुतला  
 या सत्वीर । ( लश० )  
 पुनी-किं० वि० [ सं० पुनः ] पुनः । फिर । उ०—मानस वचन  
 काय किं पाप सात भाय राम को कहाय दास दगावान  
 पुनी सौ ।—तुलसी ।  
 पुर-संज्ञा पुं० [ देश० ] कुँड़े से पानी निकालने का बमड़े का  
 डोल । धरसा ।  
 पुरस्ताखाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह लाभ जो चढ़ाई करने पर  
 प्राप्त हो । ( कौ० )  
 पुरहा-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की लता जिसकी पत्तियाँ  
 गोलाकार और ५-६ इंच चौड़ी होती हैं । यह हिमालय  
 में सब जगह ७००० फुट तक की ऊँचाई पर पाई जाती  
 है । कहीं कहीं इसकी जड़ का व्यवहार औषधि रूप में  
 भी होता है ।  
 पुरही-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] हलजेबदी नाम की झाड़ी जिसकी  
 पत्तियाँ और जड़ औषध रूप में काम में आती हैं ।  
 दाख-निरबिस्ती ।

पुराण-चौर-व्यंजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे गुप्तधर जो पुराने चौर-  
 डाकुओं के घेप में रहते थे । ( कौ० )  
 विश्रेण-ये लोग चौरों बदमाशों के अड्डों और शत्रु के पक्षवालों  
 की मण्डली आदि का पता रखते थे और समाहर्त्ता के अधीन  
 काम करते थे ।  
 पुराणपर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराना माल । ( कौ० )  
 पुराणमंड-संज्ञा पुं० [ सं० ] अंगद खंभड़ । पुराना माल अस्त-  
 याव । ( कौ० )  
 पुरिया-संज्ञा पुं० दे० “पुरिया” । उ०—( क ) लक्ष्मण के पुरि-  
 पान किया पुरुवारध सो न कहाँ परई ।—केवय । ( स )  
 जिनके पुरिया भुव गंगहि लाये । नगरी शुभ स्वर्ग सदैव  
 सिधाये ।—केशव ।  
 पुरुष संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह संधि जो शत्रु कुछ बोन्य  
 पुरुषों को अपनी सेवा के लिये लेकर करे ।  
 विशेष-कौटिल्य ने लिखा है कि यदि पेरसी भवस्थां भा पदे  
 तो राजा शत्रु को इस प्रकार के लोग दे—राजद्रोही, जंगली,  
 अपने यहाँ के अपमानित सामंत आदि । इससे राजा का  
 हनुसे पीडा भी छूट जायगा और ये शत्रु के यहाँ जाकर  
 मौका पाकर उसकी हानि भी करेंगे ।  
 पुरुषांतर संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] इस शर्त पर की हुई संधि कि  
 आपका सेनापति मेरा अमुक काम करे और मेरा सेनापति  
 आपका अमुक काम कर देगा । ( कामंदक )  
 पुरुषपाश्रया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] घनी आबादीवाली भूमि । वि०  
 दे० “दुर्गापाश्रया” ।  
 पुरुषोपस्थान-संज्ञा पुं० [ सं० ] अपने स्थान पर किसी दूसरे  
 व्यक्ति को काम करने के लिये देना । एवज देना ।  
 पुरुष-मेला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मरदाभा मेला तमाशा । वह खेल  
 तमादो जिनमें पुरुष ही जा सकते हैं ।  
 पुरुषभोग-वि० [ सं० ] ( यह राष्ट्र या राजा ) जिसके पास  
 सेना या आदमी बहुत हों ।  
 पुरुषायित घंघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामशास्त्र के अनुसार एक  
 प्रकार का बंध या स्त्री-संभोग का एक प्रकार जिसमें पुरुष  
 नीचे चित्त लेटता है और स्त्री उसके ऊपर पट लेट कर  
 संभोग करती है । इसके कई भेद कई नाम हैं । साहित्य में  
 इसकी विपरीत रति कहा है ।  
 पुरोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ( राष्ट्र या राजा ) जो बिना किसी प्रकार  
 की बाधा या शर्त के अपने पक्ष में आकर मिले । ( कौ० )  
 पुल सरात-संज्ञा पुं० [ सं० पुल + सरात ] मुसलमानों के  
 अनुसार ( हिन्दुओं की वैतरणी की भाँति ) एक नदी का  
 पुल जिसे मरने के उपरांत जीवों को पार करना पड़ता है ।  
 कहते हैं कि पापियों के लिये यह पुल बाल के समान पतला  
 और पुण्यात्माओं के लिये लासी सड़क के समान चौड़ा हो

जाना है। उ०—नासिक पुल-सरात पथ चला। तेहि कर भँहि हँ दुइ पला।—जायसी।

**पुलाहना**—कि० प्र० दे० “पुलहना”। उ०—तोहि देखे, पिठ। पुलहै क्या। उमरा चित्त, बहुरि कइ मया।—जायसी।

**पुलांग**—संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते फँदों के पत्ते की तरह और फल गोल होते हैं जिनमें से गिरी निकलती है। इससे तेल निकलता है। यह वृक्ष उड़ीसे में होता है।

**पुष्प**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१२) नाटक में कोई ऐसी बात कहना जो विशेष रूप से प्रेम या अनुराग उत्पन्न करनेवाली हो। जैसे,—“यह साक्षात् लक्ष्मी है। इसकी दृष्टि पारिजात के नयदल हैं, नहीं तो पत्नी के पहने इसमें से अमृत कहीं से टपकता।”

**पुष्पगंडिका**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] स्नायु के दस अंगों में से एक। बाजों के साथ अनेक छंदों में छियों द्वारा पुरणों का और पुरणों द्वारा कियों का अभिनय और गान। (नाट्यशास्त्र)

**पुष्पल**—संज्ञा पुं० [ सं० पुष्प ] पुष्प। फूल। उ०—सुरपुर नय हरये, पुष्पनि वरपे हुंदुमि वीह बजाये।—केशव।

**पूँजीदार**—संज्ञा पुं० दे० “पूँजीरति”।

**पूँजीपति**—संज्ञा पुं० [ हि पूँजी + पति ] यह मनुष्य जिनके पास धन हो। यह जिसके पास अधिक धन हो, जिसने उसे किसी काम में लगाया हो अथवा जिसे वह किसी काम में लगावे। पूँजीदार।

**पूजन**—संज्ञा पुं० दे० “पूजण” उ०—भजे न दुखन कोय छिनाहि दिन पूजन होइ।—सुधाकर।

**पूग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (९) किसी विशेष कार्य के लिये बना हुआ संघ। कंपनी।

**विशेष**—कारिणा में कहा गया है कि भिन्न जातियों के लोग कार्थिक उदयेय से जिस संघ में काम करें, वह पूग कहलाता है। जैसे शिल्पियों या व्यापारियों का पूग। वायुवक्ष्य ने इस शब्द को एक स्थान पर बसनेवाले भिन्न भिन्न जाति के लोगों की समा के अर्थ में लिया है।

**पूजना**—कि० प्र० [ हि० पूजना ] पूरा होना। पूजना। जैसे,—निती पूजना। उ०—संतक समाज असमंजस में रामराज काज छुग पूजनि को करतल पल भौ।—तुलसी।

**पूर**—संज्ञा पुं० [ हि० पूरा ] (१) घास आदि का पैदा हुआ मुहा। पूरा। पूरक। (२) फसल की उपज की सीमा बराबर बराबर राशियाँ जिनमें से एक जमींदार और दो तिहाई कानठ-कार लेता है। तिकुर। नीकुर। (३) बैलगाड़ी के अग्रत बागल का रस्ता।

**पूर्वकाल**—आधि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह गिरवी जिसके रखने का समय पूरा हो गया हो।

**पूला**—संज्ञा पुं० [ सं० पूलक ] (२) एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो देहरादून और सहारनपुर के आस पास के जंगलों में पाया जाता है। वसंत ऋतु में इसकी सब पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इसकी छाल के भीनीरी भाग के रेशों से रस्ते बनाए जाते हैं। इसकी पत्तियों का व्यवहार औषधि रूप में होता है और इसकी छाल से चीनी साफ की जाती है।

**पूली**—संज्ञा स्त्री० [ हि० पूल ] पूला नामक वृक्ष जिसके रेशों से रस्ते बनते हैं। वि० दे० “पूला”।

**पंच का घाट**—संज्ञा पुं० [ हि० पंच + घाट ] जहाजों के ठहरने का पक्का घाट। (लडा०)

**पेंटर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) चित्रकार। मुसन्धिर। (२) रंग भरनेवाला। रंग-साज।

**पेंटिंग**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) चित्रकारी। मुसन्धरी। (२) रंग भरने का काम। रंगसाजी।

**पेंडुलम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] दीवार में लगानेवाली घड़ी में हिलने-पाला टुकड़ा जो उसकी गति का नियंत्रण करता है। घड़ी का लटकन। लंगर।

**पेंहुल्ला**—संज्ञा पुं० [ हि० पेडा ] (१) कचरी या पेडा नामक लता। (२) इस लता का फल जो कुँदरु के आकार का होता है और जिसकी तरकारी तथा कचरी बनती है। वि० दे० “कचरी” (१)।

**पे**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तनखाह। वेतन। महीना। जैसे,—इस महीने की पे तुम्हें मिल गई।

**पेग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) उतनी शराब जितनी एक बार में सोदा-वाटर डालकर पीते हैं। शराब का गिलास। शराब का प्याला। जैसे,—एक ओर साहब लोग धैरे हुए पेगपर पेग उड़ा रहे थे।

**पेज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) सेवर। अनुवर। विशेषकर बालक अनुचर जो किसी पद मर्पादावाले या ऐश्वर्यशाली व्यक्ति की सेवा में रहता है। जैसे,—दिल्ली दरबार के नवसर पर दो देशी नरेशों के पुत्रों को महाराज राज के ‘पेज’ बनने का सम्मान प्रदान किया गया था जो महाराज का जामा पीछे से उठाए हुए चलेते थे। (३) यह बालक या युवा व्यक्ति जो किसी व्यवस्थापिका परिषद के अध्यक्षता में सदस्यों और अधिकारियों की सेवा में रहता है।

**पेट**—संज्ञा पुं० [ हि० पेट ] रोटी का वह भाग जो पहले तबे पर डाला जाता है।

**पेटून**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्रक। टूट-पीसक। सरपरस्त। जैसे,—वे समा के पेटून हैं।

**पेनशानिया**—संज्ञा पुं० [ सं० पेनान ] यह जिसे पेनान मिलती है। पेनान पापेयाला। पेनानर।

पेपर-संज्ञा पुं० [ शं० ] 'पेनी' का बहुवचन। वि० दे० "पेनी"।  
 पेपर-संज्ञा पुं० [ शं० ] (४) यह छपा हुआ पत्र या पर्चा जिसमें  
 परीक्षार्थियों से एक या अधिक प्रश्न किए गए हों। प्रश्नपत्र।  
 जैसे,—दूसरे बार मैट्रिकयुलेशन का बैंगरोजी या पेपर बहुत  
 कठिन था। (५) प्रामेसरी नोट। सरकारी कागज। जैसे,—  
 गवर्नमेंट पेपर। (६) लेख। निबंध। प्रबंध।

पेमा-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार की मछली जो प्रकृष्टपुत्र,  
 गंगा और इरावदी (बरमा) तथा बंगई के जलाशयों में  
 पाई जाती है। इसकी लंबाई ८ इंच होती है।  
 पेमेंट-संज्ञा पुं० [ शं० ] मूल्य या देना चुकाना। वैशाकी। मुग-  
 मान। जैसे,—(क) तीन तारीख हो गई, भर्मा तक पेमेंट  
 नहीं हुआ। (ख) बंक ने पेमेंट बन्द कर दिया।

कि प्र०—करना।—होना।  
 पैरा-संज्ञा पुं० [ सं० पैरास् ] वैदिक काल का लहंगे की तरह का  
 एक प्रकार का पहनावा जो नाचने के समय पहना जाना  
 था और गिसमें सुनहला काम बना होता था।  
 पैत-संज्ञा स्त्री० [ सं० पथकृत ] (२) जूधा खेल्ने का पॉना।  
 उ०—प्रमुदिन पुलकि पैत पूरे जलु विधि वस सुदर, दरे  
 है।—तुलसी।

पैफ्लेट-संज्ञा पुं० [ शं० ] कुछ पत्तों की छोटी सी पुस्तक, जिसमें  
 किसी सामयिक विषय पर विचार किया गया हो। पुस्तिका।  
 पर्चा।  
 पैकट-संज्ञा पुं० [ शं० ] दो पक्षों में किसी विषय पर होनेवाला  
 कौल फरार। प्रण। शर्त। जैसे,—बंगाल का हिंदू-मुसलिम  
 पैकट।

पैगोडा-संज्ञा पुं० [ बरमी ] बौद्ध मंदिर।  
 पैड़-संज्ञा पुं० [ शं० ] (१) सोपवा या स्वाही-सौल कागज की  
 गद्दी। (२) छोटी मुलायम गद्दी। जैसे हूक पैड़।  
 पैरा-संज्ञा पुं० [ शं० पैराफ्रक ] (२) टिप्पणी। छोटा नोट।  
 जैसे,—संपादक ने इस विषय पर एक पैरा लिखा है।  
 पैराऊल-संज्ञा पुं० दे० "पैरात्र"। उ०—धरनी चरपे वादल भीम  
 भीट अंघा पैराऊ। हंस उड़ाने ताल बुधाने चहले बीधा  
 पाऊ।—कबीर।

पेपेट-संज्ञा पुं० [ शं० प्यारट ] अंतरीप। (लघा०)  
 पेपेटा-संज्ञा पुं० [ शं० प्यारट ] रस्मे का सिरा या छोर। (लघा०)  
 पेपार-संज्ञा स्त्री० [ मनु० ] मल्लयाग करने की इन्द्रिय। गुदा।  
 पेर-संज्ञा पुं० [ ? ] जहाज की रखवाली या चौकसी करनेवाले  
 कर्मचारी या महाद। (लघा०)  
 पेस्ट-संज्ञा पुं० [ शं० ] (२) समुद्र या नदी के किनारे वह स्थान  
 जहाँ जहाँ माल उतारने या लादने या मुसाफिर उतारने  
 या चढ़ाने के लिये दरावर आकर ठहरते हैं। बन्दर। बंदरगाह।  
 जैसे,—कलकत्ता पोर्ट। (३) समुद्र के किनारे, खाड़ी या

नदी के मुहाने पर बना हुआ या प्राकृत स्थान जहाँ जहाज  
 तूकान से अपनी रक्षा कर सकते हैं।

पोर्टर-संज्ञा पुं० [ शं० ] वह जो पोस्ट होता हो। विशेषकर  
 रेलवे स्टेशन और जहाज के डक पर मुसाफिरों का माल  
 अस्वाभाव होनेवाला रेलवे कुली। डक-कुली। जैसे,—बस  
 दिन बन्दई के चिकटोरिया टरमिनस स्टेशन के पोर्टों में  
 गहरी मारपीट हो गई।

पोल-संज्ञा पुं० [ शं० ] (१) लकड़ी या छोड़े आदि का बंधा रूढ़ा  
 या लंबा। (२) जमीन की एक नाप जो ५५ गज की होती  
 है। (३) ५५ गज की बरीय जिससे जमीन नापते हैं।  
 (४) ध्रुव।

पोलिंग ब्यूथ-संज्ञा पुं० [ शं० ] यह स्थान जहाँ कौन्सिल और के  
 निर्वाचन या चुनाव के अवसर पर वोट लिख जाते हैं।  
 पोलिंग स्टेशन-संज्ञा पुं० [ शं० ] यह स्थान जहाँ कौन्सिल  
 स्तुनिसिपल निर्वाचन के अवसर पर लोगों के वोट लिख  
 और टुर्ब लिख जाते हैं।

पोथना-कि० सं० दे० "पोना"। उ०—अरुने टग कोरिण, कोरिण  
 में मन को मनुका मनु पोथनु है।—अधुरागभाग।

पोसपोन-वि० दे० "पोस्टपोन"।  
 पोस्टपोन-वि० [ शं० पोस्टपोन ] जो कुछ समय के लिये रोक  
 दिया गया हो। जिसका समय बढ़ा दिया गया हो। मुक-  
 तबी। स्थगित। जैसे—सामल पोस्टपोन हो गया।

पोस्टर-संज्ञा पुं० [ शं० ] छपी हुई बड़ी नोटिस या विज्ञापन जो  
 दीवारों पर चिपकाया जाता है। डैकर्ट। जैसे—संघ  
 समिति ने शहर भर में पोस्टर लगवा दिए थे जिसमें  
 पाथियों को धुत्तों से सावधान रहने को कहा गया था।

कि० प्र० चिपकाना।—चिपकाना।—लगाना।—लगाना।  
 पीतच-संज्ञा पुं० [ सं० ] बिकी का माल तोलनेवाला। बर्गी।  
 डंडीदार। (कौ०)

पीतवाप्यक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] माल की तोल की निगरानी रखने  
 वाला अधिकारी। (कौ०)

पीतवाप्यार-संज्ञा पुं० [ सं० ] उचित से कम तोलना। उ०  
 भारना। (कौ०)

पीरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० पेर ] सीढ़ी। पैड़ी। उ०—का बरनी  
 अस कंच तुलारा। दुष्ट पीरी पहुँचे असवारा।—ज

१ संज्ञा स्त्री० [ हि० पेरि ] चढ़ाई। उ०—गौचन  
 लेहु सम पीरी। कौट प्रेते न गई अँकरीरी।—जायसी

पीवीपीरथिक-वि० [ सं० ] धंगवरपरागत। पुत्रतैवी।  
 पीचा-संज्ञा पुं० [ हि० पाच ] (३) २६ टोली पान। (तककी)

पीसर-संज्ञा पुं० [ हि० पन + शाला ] वह स्थान जहाँ सब शाला  
 रंग को धमोंयें जल छिटाया जाता है। प्याऊ। सबील।

पवाजी-संज्ञा पुं० [ दे० ] काले रंग का एक प्रकार का दूना जो

# हिंदी-शब्दसागर

प्रथम

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

संयोजक

सत्यनंद शर्मा

समयेंद्र शर्मा

संयोजक

काशी-बाबरी-बनारसी लया

१९२६





प्रायः गुरु के साथ उत्पन्न होता और उसी के ज्ञानों के साथ मिल जाता है। मुनमुना। वि० दे० "मुनमुना"।

**सुप्रतिष्ठ पुस्तिस**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह भौतिक पुस्तिस द्रव जो किसी नगर या गाँव में, बहोतलों के दृष्ट आचरण अर्थात् नियम उपद्रव आदि करने के कारण, निर्दिष्ट अवधि के लिये सैन्यत्व किया जाता है और जिसका खर्च गौरव-पालों से ही दंड स्वरूप लिया जाता है।

**खीर**—संज्ञा पुं० [ वि० वि० ] (१) पत्नी। स्वामी। (२) त्रिय-तम। उ०—दूध हमी के के हहा पाहुनु पाखी खीर। छेहु कमा भजहुँ किण तेह तरेखी खीर।—बिहारी।

**प्रकरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्रासंगिक कथावस्तु के दो भेदों में से एक। वह कथावस्तु जो थोड़े काल तक चर कर एक जाती या समाप्त हो जाती है। (प्रासंगिक कथावस्तु का दूसरा भेद "पनाका" है।)

**प्रकासना**—क्रि० सं० [ सं० प्रकाश ] प्रकाश करना। प्रकट करना। जाहिर करना। उ०—गुनि उद्वह सय बाल प्रकासी। तुम विन दुखिन रहत प्रववासी।—विधाम।

**प्रकृति**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (४) राजा, अमात्य जनपद, दुर्ग, कोना, दंड और मित्र इन सात अंगों में युक्त राष्ट्र या राज्य।

**विशेष**—इसी को शुक्नीति में 'संज्ञा राज्य' कहा है। उसमें राजा की मिर से, अमात्य की आँव से, मित्र की कान से, कोश की मुख से, दंड या सेना की सुजा से, दुर्ग की हाथ से और जनपद की पैर से उपमा दी गई है।

(५) राज्य के अधिकारी कार्यकर्ता जो आठ कहे गए हैं। वि० दे० "अष्ट-प्रकृति"।

**प्रकोपक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी भूमि या धन का धर्मात्मा के हाथ से अधर्मी के हाथ में जाना। अधर्मी का लाभ (जिससे जनता को खेद या रोष हो)।

**प्रकृति**—वि० [ सं० प्रकृष्ट ] पूरनेवाला। प्रभकर्ता। उ०—कल्प कल्पसं कोकि क्षीरगिधि धवि प्रस हिमिगिरि प्रभा प्रसु प्रगद पुर्जित है।—केशव।

**प्रवात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) पानी बहने का मल।

**प्रचार काट्य**—संज्ञा पुं० [ सं० ] व्याख्यानों, उपदेशों, पुलिकाओं, और विशाषणों आदि के द्वारा किसी मन या सिद्धांत के प्रचार करने का उपाय या काम। प्रीपगदा। पैले,—हिन्दू महात्म्या की ओर से हरिहर क्षेत्र के मेले में बहुत अच्छा प्रचार कार्य हुआ।

**प्रकाशना**—संज्ञा पुं० दे० "प्रकाशन"।

**प्रकृष्ट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] छास्य के दस अंगों में से एक। त्रिय-तम को धन्य नायिका में आसक्त जनकर प्रेम-विषेष्ट के अनुपाय से तप्त-रूपमा नायिका का योगा के साथ गाना। (नाम्यशास्त्र)

**प्रजासत्ता**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शासन-व्यवस्था जिसमें कोई राजा न होता हो, बल्कि राज्य-परिचालन के लिये कोई एक व्यक्ति चुने लिया जाता हो। ऐसी व्यवस्था में उस चुने हुए व्यक्ति को प्रायः राजा के समान अधिकार प्राप्त होते हैं, और वह प्रजा की चुनी हुई किसी समया या समिति आदि की सहायता से कुछ निश्चित समय तक शासन का सच प्रबंध करता है। गणतंत्र।

**प्रजासत्ता**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह शासन व्यवस्था जिसमें किसी देश के निवासियों या प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधि ही शासन और न्याय आदि का सारा प्रबंध करते हैं। प्रजा द्वारा संचालित राज्य-प्रबंध।

**प्रजापदपत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र जो प्राचीन काल में राजा की ओर से याज्ञिकों या कृषिजनों को बुलाने के लिये भेजा जाता था। (शुक्नीति)

**प्रतिपात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी शक्ति की पूर्ण पूर्ति। मुकसान का पूरा बढ़ला या हराजाना। (कौ०)

**प्रतिपादन मान**—संज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत अधिक धेतन या जागीर आदि देकर-प्रतिष्ठा पदाना। (कौ०)

**प्रतिबल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शत्रु सेना के भिन्न भिन्न अंगों का सामना करने की शक्ति या सामान।

**विशेष**—कौटिल्य ने लिखा है कि इस्तिसेना का मुकाबला करने-वाली हस्तिचक्र, शस्त्र गण, कुंठा, प्रास, शस्त्र आदि से युक्त सेना है। जिस सेना में पाषाण, लकड़ (खरियाँ), कवच, कवचहारी आदि अधिक हों, वह रथ-सेना के मुकाबले के लिये ठीक है; इत्यादि।

**प्रतिलोम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) 'उपाय' में बताई हुई युक्तियों से उल्टी युक्ति जिसके कौटिल्य ने १५ भेद व्यवहार हैं। (कौ०)

**प्रतिष्ठा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१४) वह उपहार जो बर का वेदा भी बन्धु को देता है।

**प्रतिहत**—वि० [ सं० ] (१) अपने शत्रु के द्वारा पीछे हटाया हुआ (सैन्य)।

**विशेष**—कौटिल्य ने प्रतिहत सेना को हताश्रय सेना से अच्छा कहा है; क्योंकि यह उच्च भिन्न भाग को फिर से जोड़ कर युद्ध के योग्य हो सकती है।

**प्रतिहारक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) सुदामा देनेवाला या धामप्रय करनेवाला राज्याधिकारी।

**विशेष**—शुक्नीति में लिखा है कि जो मनुष्य शस्त्र-अप चटाने में कुशल हो, धर्मग हो, आलसी न हो और जो मर्य होकर दूसरों को बुला सके, वह इस पद के योग्य होता है।

**प्रतीकार संधि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह संधि जो उपकार के बदले में उपकार करने की शर्त काके की जाय; अर्थात् राम और सुग्रीव के बीच हुई थी। (कामन्दकीय)

प्रतोली-बंधा सी० [ सं० ] (६) किले के नीचे होकर जाने-वाला रास्ता ।

प्रत्यभियोग-बंधा पुं० [ सं० ] वह अभियोग जो अभियुक्त अभियोग चलानेवाले पर चलाये । मुद्दाहेतु का मुद्दाई पर भी दायता करना । (कौ०)

प्रत्ययाधि-बंधा सी० [ सं० ] वह गिरवी या रहन जो रुपया वसूल होने के इतमीनान या साख के लिये रखा जाय ।

प्रत्यय प्रतिभू-बंधा पुं० [ सं० ] यह जमानतदार जो किसी को महाजन से यह कह कर कर्ज दिलावे कि "मैं इसे जानता हूँ; यह मर्दा ईमानदार, साधु और विधास करने के योग्य है" ।

प्रत्यादेय-बंधा पुं० [ सं० ] 'आदेय' से उलटा लाम । यह लाम जो पीछे लौटाना पड़े ।

विशेष-आँदलिय ने इसे घुरा कहा है; केवल कुछ विशेष अवस्थाओं में ही ठीक बताया है ।

प्रत्यादेया भूमि-बंधा सी० [ सं० ] वह भूमि जिसको लौटा देना पड़े । (कौ०)

प्रत्युत्पत्ताधि कृच्छ्र-वि० [ सं० ] (राज्य या राष्ट्र) जो अर्थ संकट में पड़ गया हो, अर्थात् जिसके शासन का खर्च आमदनी से न सधता हो ।

प्रदिष्टाभय-वि० [ सं० ] जिसके राज्य की ओर से रक्षा का वचन मिला हो । राज्य द्वारा संरक्षित ।

प्रदेष्टा-बंधा पुं० [ सं० ] प्रदेश विशेष के कर की वसूली का प्रबंध करनेवाला और चोर डाकूओं आदि को दंड देकर शांति रखनेवाला अधिकारी ।

विशेष-इसका कार्य आजकल के कलक्टर के कार्य से मिलता चलता होता था ।

प्रभुशक्ति-बंधा सी० [ सं० ] कोटा और सेना का बल ।

प्रभु-सिद्धि-बंधा सी० [ सं० ] वह कार्य जो प्रभुशक्ति से सिद्ध हो ।

प्रयोजक-बंधा पुं० [ सं० ] (४) वह जिसके सामने किसी के पास धन जमा किया जाय या जो अपने सामने किसी से किसी के यहाँ धन जमा करावे । (५) कार्य रूप में कर के दिखानेवाला । प्रदर्शन करनेवाला । (नाटक)

प्रवेष्ट-बंधा पुं० [ सं० ] देश के भीतर आनेवाला माल । आयात । (कौ०)

प्रवेश्य शुल्क-बंधा पुं० [ सं० ] देश के भीतर आनेवाले माल का महसूल । आयात कर ।

प्रवेशना-कि० सं० [ सं० ] प्रवेश करना । घुसना । पीठना । उ०—सो सिय मम हित लागि दिनेसा । चोर वगनि मँहँ कीन्ह प्रवेशा—रामाश्रमेष ।

कि० सं० प्रविष्ट करना । घुसाना ।

प्रसंग-स्थान-बंधा पुं० [ सं० ] किसी स्थान पर चढ़ाई करने की बात प्रसिद्ध कर किसी दूसरे स्थान पर चढ़ाई कर देना । (कामंदक)

प्रसंगासन-बंधा पुं० [ सं० ] किसी दूसरे पर चढ़ाई करने के गुप्त उद्देश्य से प्राप्त शत्रु के साथ संधि करके लुपचाय धैरता । (कामंदकीय)

प्रसादक-बंधा पुं० [ सं० ] (४) देना या धन आदि का अर्थात्कि के हाथ से निकल कर किसी धार्मिक के पास जाना । धार्मिक पुरुष का लाम; (जिससे जनता को प्रसन्नता होती है) । (कौ०)

प्रसार-बंधा पुं० [ सं० ] (६) युद्ध के समय वह सहायता जो जंगल आदि पड़ने से प्राप्त हो जाय । (कौ०)

प्रसुप्त-बंधा पुं० [ सं० ] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेदा इन चारों छैतों का एक भेद या अवस्था जिसमें किसी छेदा की चित्त में सुषुप्त रूप से अवस्थिति तो रहती है, पर उसमें कोई कार्य करने की शक्ति नहीं रहती ।

प्रस्तावक-बंधा पुं० [ सं० ] वह जो किसी विषय को किसी सभा में सम्मति या स्वीकृति के लिये उपरिधत करे । प्रस्ताव उपरिधत करनेवाला । जैसे—प्रस्तावक ने ही अपना प्रस्ताव उठा लिया ।

प्रसंतिनी-बंधा सी० [ सं० ] एक प्रकार का योनि रोग जिसमें प्रसंग के समय रगड़ से योनि बाहर निकल जाती है और गर्भ नहीं ठहरता ।

प्राइम मिनिस्टर-बंधा पुं० [ सं० ] किसी राज्य या देश का प्रधान मंत्री । वजीर आंजम ।

प्राइमरी-वि० [ सं० ] प्रारंभिक । प्राथमिक । जैसे—प्राइमरी पञ्जकेनन ।

प्राइवेट-बंधा पुं० [ सं० ] पलटन का सिपाही । सैनिक । जैसे—प्राइवेट जेम्स ।

प्रातिनिधिक-वि० [ सं० ] प्रतिनिधि प्रतिनिधित्व से युक्त । जैसे—प्रातिनिधिक संस्था ।

प्रातिमाभ्य-बंधा पुं० [ सं० ] (९) वह धन जो प्रतिभू या जामिन को देना पड़े ।

प्रातिमाभ्य ष्टण-बंधा पुं० [ सं० ] वह ऋण जो किसी की जमानत पर लिया गया हो ।

प्रादीपिक-बंधा पुं० [ सं० ] घर या खेत आदि में आग लगानेवाला ।

विशेष—जो लोग इस अपराध में पकड़े जाते थे, उनको जौले जी जलाने का दंड दिया जाता था । (कौ०)

प्रानेस-बंधा पुं० [ सं० ] प्रवेश । पति । स्वामी । उ०—बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस । प्यारी कहत विसाव नहिँ पावस चलत बिदेस ।—बिहारी ।

प्रासंगिक-बंधा पुं० [ सं० ] कथावस्तु के दो भेदों में से एक । १. गौण कथावस्तु जिससे आधिकारिक या मूल कथावस्तु का सौंदर्य बढ़ता है और मूल कार्य या व्यापार के विकास में

साहयता मिलता है। इसके दो भेद कहे गए हैं—पताका और प्रकरी।

मिस-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) राजा । मेरवा । ( २ ) सुवराज । राजकुमार । शाहजादा । ( ३ ) राज परिवार का कोई व्यक्ति । ( ४ ) सरदार । सामंत ।

मिथिमी-संज्ञा स्त्री० [ सं० पथी ] पृथ्वी । जमीन । उ०—जो नहीं खीस पैम-पय लावा । सो मिथिमी नहीं काहे क आवा ।—जायसी ।

मिथिलेज खीब-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह छुटी जो, सरकारी तथा किसी गैर-सरकारी संस्था या कंपनी के नौकर, कुछ निर्दिष्ट अवधि तक काम कर चुकने के बाद, पाने के अधिकारी या हकदार होते हैं ।

मीनियम-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह रकम जो जीवन या दुर्घटना आदि का बीमा कराने पर उस कंपनी को, जिसके यहाँ बीमा कराया गया हो, निश्चित समयों पर दी जाती है । 'बि० दे०' की भाँति ।

मीनियर-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रधान मंत्री । यजीर आजम ।

प्रेशारुद-संज्ञा पुं० [ सं० ] धियेदर या नाव्य मंत्रि में वह स्थान जहाँ दूरांक लोग बैठ कर अभिनय देखते हैं । नाट्यशाला में दूरकों के घेठने का स्थान ।

प्रेशावेतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] लेसस लेने का महसूल या फीस । (की०) ।

प्रेरना-संज्ञा-कि० सू० [ सं० प्रेषण ] ( १ ) प्रेरणा करना । चलाना । ( २ ) भेजना । पठाना । उ०—( क ) तब उस शुद्ध आचारवाले काहुस्थ ने तुहों का प्रेरना हुआ दूषण न सहा ।—लक्ष्मणसिंह । ( ख ) भूलक जान प्रेरि रघुवीरा । विरह विवस आ सियिल सरीरा ।—रामाधरधर ।

प्रेस कम्प्युनिक-संज्ञा पुं० [ सं० प्रेस + कम्प्युनिक ] किसी विषय के सन्बन्ध में वह सरकारी विज्ञप्ति वा वक्तव्य जो अखबारों को छापने के लिये दिया जाता है । जैसे,—सरकार ने प्रेस कम्प्युनिक निकाला है कि लोग अफसरों को डालियों आदि नजर न करें ।

प्रेस-रिपोर्टर-संज्ञा पुं० दे० "रिपोर्टर" ( १ ) ।

प्रेस्क्रिपशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] डाक्टर की लिखी हुई रोगी के लिये औषध और उसकी सेवन-विधि । दवा का पुरजा । नुसखा । व्यवसायपत्र ।

प्रोजेमेयान-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) राजाशा या सरकारी सूचनाओं का प्रचार । घोषणा । पृहान । ( २ ) डिगोरा । हुगी ।

प्रोपैगंडा-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) व्याख्यान, उपदेश, विज्ञापन, प्रस्तावक, समीचारपत्र आदि के द्वारा किसी मत या सिद्धांत के प्रचार करने का रंग या काम । प्रचार कार्य । जैसे,—

( क ) आइकल कांग्रेस की ओर से विदेशों में अच्छा प्रोपैगंडा हो रहा है । ( ख ) आर्य समाजियों ने वहाँ मिथिरीयों के निरुद्ध प्रोपैगंडा किया ।

प्रोसीडिंग-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किसी सभा या समिति के अधिवेशन में संपन्न हुए कार्यों का लेखा या विवरण । कार्य विवरण । जैसे,—राज अधिवेशन की प्रोसीडिंग पढ़ी गई ।

प्रोसीडिंग बुक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह बही या किताब जिसमें किसी सभा या समिति के अधिवेशनों में संपन्न हुए कार्यों का विवरण लिखा जाता है । कार्यविवरण पुस्तक । जैसे,—प्रोसीडिंग बुक में यह बात लिखी जानी चाहिए ।

प्रोसेशन-संज्ञा पुं० [ सं० ] धूमधाम की सवारी । जुलूस । द्रोभायात्रा । जैसे,—महासभा के प्रेसिडेंट का प्रोसेशन बड़ी धूम धाम से निकला ।

सान-संज्ञा पुं० दे० "झेन" ।

साविनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] १४४ हाथ लंबी, १० हाथ चौड़ी और १४३ हाथ ऊँची नाव या जहाज । (युक्ति कल्पतरु)

सैंट-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह भावेदनपत्र जो किसी दीवानी अदालत में किसी पर नाटिका या दावा दायर करते समय दिया जाता है और जिसमें दावे के संबंध में अपना सब वक्तव्य रहता है । अर्जीदावा ।

सैंटर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो विदेश में जमीन लेकर ( चाय, गन्ने, नील आदि की ) खेती करता हो । बंदे पैमाने में खेती करनेवाला ।

शिरोधर—हिंदुस्थान में "हुँटर" शब्द से गोरे हुँटरों का ही बोध होता है ; जैसे—सी हुँटर ( चाय बगान का साहब ), इण्डिगो हुँटर ( निलहा गोरा या साहब ) आदि ।

सैकडे-संज्ञा पुं० [ सं० ] छपा हुआ बड़ा नोटिस या विज्ञापन जो प्रायः दीवारों आदि पर चिपकाया जाता है । पोस्टर । जैसे—दीवारों पर धियेदर, सिनेमा आदि के रंग बिरंगे हुँकर्टे लगने हुए थे ।

सि० प्र०—चिपकना ।—चिपकाना ।—लगना ।—लगाना ।

सैन-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) किसी बननेवाली इमारत का रेखाचित्र । नक्शा । डीचा । खाका । जैसे—नकान का सैन म्युनिसिपैलिटी में दाखिल कर दिया है । मंजूरी मिलते ही काम में हाथ लग जायगा । ( २ ) किसी काम को करने का विचार या आयोजन । यंदिश । मगदूबा । तजवीज । योजना । स्कीम । जैसे—तुमने यहाँ आकर मेरा सारा ड्रैग विगाड़ दिया ।

सैनचट-संज्ञा पुं० दे० "शुचट" ।

फैंकनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० फैंकना ] वह दवा आदि जो फैंक कर खाई भाय । सूण । फैंकी ।

फि० प्र०—फैंकना ।

**फंदेता**—संज्ञा पुं० [ हि० फंदा + एत (प्रत्य०) ] वह सिसाया हुआ पशु या पक्षी जो किसी प्रकार अपनी जाति के अन्य पशुओं या पक्षियों आदि को मालिक के जाल या फंदे में फँसाता हो ।

**फँसौरी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० फँसना + औरी (प्रत्य०) ] फंदा । पाश । उ०—गध काँच, लखि मन नाच सिलि जनु, पाँचसर सु फँसौरी ।—तुलसी ।

**फण्डा**—संज्ञा पुं० [ सं० फण्डिका ] गाली गलौज । कुवाच्य ।  
कि० प्र०—फण्डना ।

**मुहा०**—**फण्डा तोलना** = गाली गुफता करना । कुबाच्य कहना ।  
वि० ( १ ) जो अपने पास कुछ भी न रखता हो, सब उड़ा डालता हो । ( २ ) फकीर । गिखमंगा ।

**फटकना**—कि० प्र० [ हि० फटकारना ] फटकारना जाना ।  
कि० सं० [ हि० फटकना ] फटकना । उ०—छोट रतन सोई फटकर । केहि घर रतन जो द्वारिद हर ।—जायसी ।

**फट्टावाज**—संज्ञा पुं० [ हि० फट्ट + वाज (प्रत्य०) ] वह जिसके यहाँ जूए का फट्ट बिद्यता हो । अपने यहाँ लोगों को जूआ खेलानेवाला व्यक्ति ।

**फट्टावाजी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० फट्टावाज + र (प्रत्य०) ] ( १ ) फट्टावाज का भाव । ( २ ) अपने यहाँ दूसरों को जूआ खेलाने की क्रिया ।

**फट्टावाना**—कि० प्र० [ भद्र० ] ( १ ) शरीर में बहुत सी कुत्तियों या गरमी के दाने निकल आना । ( २ ) दृष्टों में बहुत सी झालाएँ निकलना ।

**फर्म**—संज्ञा पुं० [ सं० फर्म ] ( ४ ) नाव के डौंड का वह अगला और चौड़ा भाग जिससे पानी काटा जाता है । पत्ता । ( लया० )

**फना**—संज्ञा स्त्री० [ म० ] घिनपता । नाश । बरबादी ।  
**मुहा०**—**दम फना होना** = मारे भय के क्षान सूचना । बहुत अधिक भयभीत होना । जैसे—तुम्हें देखते ही लड़के का दम फना हो जाता है ।

**फनिग**—संज्ञा पुं० [ सं० फणिग ] फतिगा । फनगा । उ०—सयद एक उरद कदा अकेला । गुए जस भिंग, फनिग जस, घेला ।  
—जायसी ।

**फफफस**—वि० [ फफ ] जिसका शरीर श्वादी के कारण बहुत फूल गया हो । मोटा और भड़ा ।

**फफफा**—संज्ञा पुं० [ भद्र० ] फफोला । छाला ।  
**फफफा**—वि० [ भद्र० ] ( १ ) फूला हुआ और अंदर से पोला । ( २ ) फल, जिसका स्वाद विगड़ गया हो । उरें स्वादवाला ।

**फरफंदी**—वि० [ भद्र० फर + हि० फंदा ] ( १ ) फरफंद करनेवाला । छल कपट या दौंव पँच करनेवाला । भूत । चालबाज । ( २ ) नखरेबाज ।

**फराश**—संज्ञा पुं० [ ? ] झाड़ की जाति का एक प्रकार का बड़ा

पुष्प जो पंजाब, सिंध, अफगानिस्तान और फारस में अधिकता से पाया जाता है । यह गरमी के दिनों में फूलता है । सारी भूमि में यह अच्छी तरह बढ़ता है ।

**फरीक**—संज्ञा पुं० [ म० ] फरीक. का बहुवचन । दोनों या सब फरीक या पक्ष । जैसे—उस मुकद्दमे में फरीकेन में सुल्ह हो गई ।

**फरेफता**—वि० [ फा० ] लुभाया हुआ । आसक्त । आसिक ।  
**फरेधिया**—वि० दे० "फरेधी" ।

**फरेधी**—वि० [ फा० फरेध ] फरेय या छल कपट करनेवाला । धोखेबाज । कपटी ।

**फर्म**—संज्ञा पुं० [ अ० ] ( १ ) व्यापारी या महाजनी कोठी । सात का कारवार । जैसे—कलकत्ते में व्यापारियों के कितने ही फर्म हैं । ( २ ) वह नाम जिससे कोई कंपनी या कोठी कारवार करती है । जैसे—बलदेवदास युगलकिशोर, झाड़वे डेडला पंड कंपनी ।

**फरी**—संज्ञा स्त्री० [ फा० ] एक प्रकार का बड़ा हुका जिसमें तमाहू पीने के लिये बड़ी लचीली नली लगी होती है ।  
वि० फर्रा संबंधी । फर्रा का ।

**फौ**—फर्रा सलाम = बहुत झुक कर, या फर्रा तक झुक कर किया जानेवाला सलाम ।

**फस्ट**—वि० [ अ० ] गिनती में सब से आरंभ में पढ़नेवाला । पहला । अव्यल । जैसे—फस्ट क्लास का बच्चा । फस्ट क्लास मजिस्ट्रेट ।

**फलडा**—संज्ञा पुं० [ हि० फल ] ( हथियार आदि के ) फल का अल्पार्थक रूप । जैसे—चाकू का फलडा ।

**फलता**—संज्ञा स्त्री० [ हि० फलना ] फलने की क्रिया या भाव । जैसे—इस साल सभी जगह आम की फलत बहुत अच्छी हुई है ।

**फलसा**—संज्ञा पुं० [ देश० ] ( १ ) दरवाजा । द्वार । ( २ ) गाँव की सीमा ।

**फसकना**—कि० प्र० [ भद्र० ] ( १ ) अंदर को बैठना । घँसना । ( २ ) फटना । सड़कना । जैसे—अधिक पूर देने के कारण पेटा फसक गया ।

**फसली कौवा**—संज्ञा पुं० [ म० फल + हि० कौवा ] ( १ ) पहली कौवा जो शीत ऋतु में पहाड़ से उतर कर मैदान में बस आता है । ( २ ) वह जो केवल अच्छे समय में अपने स्वार्थ साधन करने के लिये किसी के साथ रहे और उसकी विपत्ति के समय काम न आवे । स्वार्थी । मतलबी ।

**फसली बुखार**—संज्ञा पुं० [ म० फल + बुखार ] ( १ ) वह ज्वर जो किसी एक ऋतु की समाप्ति और दूसरी ऋतु के आरंभ के समय होता है । ( २ ) जादा देकर आनेवाला वह बुखार जो प्रायः बरसात में होता है । जूही । मलेरिया ।  
**फारन**—संज्ञा पुं० [ म० ] जुमाना । अर्थदंड । जैसे—उस पर १०० फारन हुआ ।

फाइनेल-वि० [ सं० ] आखिरी । अंतिम । जैसे,—फाइनेल परीक्षा ।

फाइनेल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सार्वजनिक राजस्व और उसके आय व्यय की पद्धति । अर्थ व्यवस्था ।

फाइनेल-वि० [ सं० ] (१) सार्वजनिक राजस्व या अर्थ व्यवस्था संबंधी । मालगुजारी के मुनाहिक । माली । जैसे,—फाइनेल कर्मिभर । (२) आर्थिक । अर्थ सम्बंधी । माली ।

फाइनेल-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सरकारी अफसर जिसके अधीन किसी प्रदेश का राजस्व विभाग या माल का महकमा हो ।

फाउंड्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह कल या कारखाना जहाँ धातु की चीजें ढाली जाती हैं । ढालने का कारखाना । जैसे,—टाइप फाउंड्री ।

फाजिल या की-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] हिसाब की कमी या बेसी । हिसाब में का लेना या देना ।

फि० प्र०-निकालना ।

वि०-हिसाब में थोकी निकलना हुआ । घटा हुआ । अवशिष्ट । जैसे,—मुहारे जितने १०० फाजिल या की है ।

फादर-संज्ञा पुं० [ सं० ] पादरियों की सम्मानसूचक उपाधि । जैसे,—फादर जोन्स ।

फायर एंजिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाग हलाने की दमकल । वि० दे० "दमकल" ।

फायर ब्रिगेड-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाग हलानेवाले कर्मचारियों का दल ।

फारमूला-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संकेत । सिद्धांत । सूत्र । (२) विधि । कायदा । (३) तुलना ।

फारिग-वि० [ सं० ] (१) काम से छुट्टी परया हुआ । जो अपना काम कर चुका हो । जैसे,—अप वह शारी के काम से फारिग हो गए । (२) निश्चित । बेफिक्र । (३) छूटा हुआ । मुक्त ।

फारिग-उल्ल या फल-वि० [ सं० ] (१) जिसके पास निर्वाह के लिये प्येट धन संपत्ति हो । संपन्न । (२) जो सब प्रकार से निश्चित हो । जिसे किसी बात की चिंता न हो । निश्चित ।

फारिग-उल्ल-माली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) संपन्नता । अमीरी । (२) निश्चिन्ता । बेफिक्र ।

फारोन-वि० [ सं० ] दूसरे राष्ट्र या देश का । विदेश या पर-राष्ट्र संबंधी । वैदेशिक । पर-राष्ट्रीय । जैसे,—फारोन डिपार्टमेंट, फारोन सेक्रेटरी ।

फिकुरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) बन्दों का सार्थक समूह । बाण्य । झुमल । (२) सौसापट्टी । बमबुत्ता ।

फौ०-फिकरेवाज ।

मुहा०-फिकरा चलाना = धोखा देने के लिये कोई बाला बनाकर करना । जैसे,—भाप भी बड़े बड़े फिकरा चलया करते हैं ।

फिकरा चलाना = धोखा देने के लिये कहीं दुर्ग रात का समीह फल होना । जैसे,—अगर आप का फिकरा चल गया तो रुपये मिल ही जायेंगे । फिकरा देना या घताना = फौसा देना । दम बुझा देना । फिकरा बनाना या तराशना = धोखा देने के लिये कोई बात गढ़कर बनाना । फिकरे मुनाना, ढालना या कहना = स्वयंपूर्ण बात कहना । बोली बोलना । प्रयत्न कसना ।

फिकुरेवाज-संज्ञा पुं० [ सं० ] फिकरा + फ० वाज । वह जो लोगों को धोखा देने के लिये बातें गढ़ गढ़ कर कहना हो । सौसा पट्टी देनेवाला ।

फिकुरेवाजी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] फिकरा + फ० वाजी । धोखा देने के लिये तरह तरह की बातें कहना । सौसा पट्टी देना । दमवाजी ।

फिकैत-संज्ञा पुं० [ हि० फ़ैत + ऐत (प्रत्य०) ] वह जो फरी-गद्दा या पदा-बनेडी चलता हो ।

फिकैती-संज्ञा स्त्री० [ हि० फ़िकैत + री (प्रत्य०) ] पदा बनेडी चलाने का काम या विद्या ।

फिट-वि० [ सं० ] फिट् (१) उपयुक्त । ठीक । (२) जिसके कल पुरते आदि ठीक हों । जैसे,—यह मशीन बिलकुल फिट है ।

मुहा०-फिट करना = मशीन के पुरते आदि पथारथान बैठ कर उसे चलने के योग्य बनाना ।

(३) जो अपने स्थान पर ठीक बैठता हो । जैसे,—(क) यह कोट बिलकुल फिट है । (ख) यह अलमारी यहाँ बिलकुल फिट है ।

संज्ञा पुं० मिरगी आदि रोगों का वह दौरा जिसमें आदमी बेहोश हो जाता है और उसके मुँह से स्राव आदि निकलने लगती है ।

फिटसन-संज्ञा पुं० [ दे० ] कन्वेमल नाम का छोटा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं । वि० दे० "कन्वेमल" ।

फिरंगिस्तान-संज्ञा पुं० [ सं० ] फ्रान्क + फ० तान । फिरंगियों के रहने का देश । गोरों का देश । युरोप । फिरंग । वि० दे० "फिरंग" (१) ।

फिरनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का खाद्य पदार्थ जो चावलों को पीस कर और दूध में पका कर तैयार किया जाता है । इसका व्यवहार प्रायः पश्चिम में और विशेषतः मुसलमानों में होता है ।

फिराक-वि० [ हि० फिफा ] (१) फिरता हुआ । बापस लौटता हुआ । (२) (माल) जो फेरा जा सके । आकड़ ।

फिरारी-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] तास के खेल में उतनी जीव जितनी एक हाथ चलने में होती है । एक चाल की जीव ।

किरोही—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] यह भग जो दूकानदार माल मरीदने-  
वाले के नौकर को देना है। दस्यूरी। नौकराना।

फिलासफी—संज्ञा स्त्री० [ भं० ] ( १ ) दर्शन शास्त्र। ( २ )  
सिद्धांत या तत्त्व की बात। गूढ़ बात। जैसे,—कहने सुनने  
को तो यह साधारण सी बात है, पर इसमें बड़ी भारी  
फिलासफी है।

फील्ड एम्बुलेन्स—संज्ञा पुं० दे० "एम्बुलेन्स" ( १ )।

फीवर—संज्ञा पुं० [ भं० ] ज्वर। बुखार।

फुँदना—संज्ञा पुं० [ देश० ] सूत आदि का बँधा हुआ गुच्छा या  
फूल जो शोभा के लिये दोरियों आदि में लटकता रहता  
है। झन्डा।

फुँदियाँ—संज्ञा स्त्री० [ हि० फुँदना ] झन्डा। फूलरा। फुँदना।  
फुं० दे० "फुँदना"। उ०—फुँदियाँ और कसनिया राती।  
छायल बँद लाए गुजराती।—जायसी।

फुँदी—संज्ञा स्त्री० [ हि० फुँदी ] बिंदी। टीका। उ०—सारी लटकति  
पाट की, बिलसति फुँदी छिलट।—मतिराम।

फुरफुर—संज्ञा स्त्री० [ भ० ] बिछुटने का भाव। वियोग।

फुलंगो—संज्ञा स्त्री० [ हि० फुल ] पहाड़ों में होनेवाली जंगली  
भोग का यह पौधा जिसमें बीज बिलकुल नहीं लगते।  
कलंगो का उलटा।

फुलकारी—संज्ञा स्त्री० [ हि० फूल + कारी ( प्रत्य० ) ] एक प्रकार  
का कपड़ा जिसमें मामूली मलमल आदि पर रंगीन रेशम से  
बूटियाँ आदि काढ़ी हुई होती हैं।

फुलवार—संज्ञा पुं० [ सं० फुल ] मकूल। प्रसन्न। उ०—जागहुँ  
जरन आगि जल पर। होइ फुलवार रहस हिय भरा।—  
जायसी।

फुलायल—संज्ञा पुं० दे० "फुलेल"। उ०—(क) मुहमद याजी  
पेम के ज्यों भावें त्यों खेल। तिल फुलह के संग ज्यों होइ  
फुलायल तेल।—जायसी। (ख) छेरहु जटा, फुलायल लेहू।  
शारहू कैस, मडहू सिर देहू।—जायसी।

फुह्राँ—संज्ञा पुं० [ हि० फुह्रा ] ( १ ) मक्रे या चायल आदि की  
मुनी हुई सील। छाया। ( २ ) दे० "फुली" ( १ )।

फुसकी—संज्ञा स्त्री० [ फुस से भ्र० ] अथान वायु। पाद। गोज।  
फूल—संज्ञा पुं० [ सं० फूल ] ( १८ ) मथानी के आगे का हिस्सा जो  
फूल के आकार का होता है।

फूल-पान-वि० [ हि० फूल + पान ] ( फूल-या पान के समान )  
बहुत ही कोमल। नाजुक।

फूल भोग—संज्ञा स्त्री० [ हि० फूल + भोग ] हिमालय में होनेवाली  
एक प्रकार की भोग का गर पद जिसकी टहनियों से रेशे  
निकाले जाते हैं।

फेल—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसे बेपार भी कहते  
हैं। वि० दे० "बेपार"।

फैकल्टी—संज्ञा स्त्री० [ भं० ] विश्वविद्यालय के अंतर्गत किसी विद्या  
या शास्त्र के पंडितों और आचार्यों का समाज या मंडल।  
विद्वत्समिति। विद्वन्मंडल। जैसे,—फैकल्टी आफ लॉ,  
फैकल्टी आफ मेडिसिन, फैकल्टी आफ सायन्स।

फैन—संज्ञा पुं० [ भं० ] पंखा। जैसे,—हलेविट्रक फैन।

फैयाज़-वि० [ भ० ] खुले दिल का। उदार।

फैयाज़ी—संज्ञा स्त्री० [ भ० फैयाज़ ] फैयाज़ का काम या भाव।  
उदारता।

फोर्ट—संज्ञा पुं० [ भं० ] किला। दुर्ग।

फौती—वि० [ भ० फौत ] ( १ ) मृत्यु संबंधी। मृत्यु का। जैसे,—  
फौती रजिस्टर। ( २ ) मरा हुआ। मृत।

संज्ञा स्त्री० ( १ ) मरने की क्रिया। मृत्यु। ( २ ) किसी के  
मरने की सूचना जो म्युनिसिपैल्टी आदि की चौकी पर  
लिखाई जाती है।

फौतोनामा—संज्ञा पुं० [ भ० फौत + फ० नामा ] ( १ ) मृत व्यक्तियों के  
नाम और पते की सूची जो म्युनिसिपैल्टियों आदि की चौकी  
पर तैयार की जाती है और म्युनिसिपैल्टी के प्रधान कार्या-  
लय में भेजी जाती है। ( २ ) मृत सिपाही की मृत्यु की वह  
सूचना जो सेना विभाग की ओर से उसके घर के लोगों के  
पास भेजी जाती है।

फ्युडेटरी चोफ—संज्ञा पुं० [ भं० ] वह राजा जो किसी बड़े राजा  
या राज्य के अधीन हो और उसे कर देता हो। करद राजा।  
सामंत राजा। मांडलिक।

फ्युडेटरी स्टेट—संज्ञा पुं० [ भं० ] वह छोटा राज्य जो किसी बड़े  
राज्य के अधीन हो और उसे कर देता हो। करद राज्य।

फ्रांक—संज्ञा पुं० [ फ्र० ] फ्रांस का एक चाँदी का सिक्का जो प्रायः  
अंगरेजी १॥ पेनी मूल्य का होता है। ( एक पेनी प्रायः तीन  
पैसे के बराबर मूल्य की होती है। )

फ्रांटियर—संज्ञा पुं० [ भं० ] सरहद्द। सीमांत। जैसे,—फ्रांटि-  
यर प्राक्सिस।

फ्रैग—संज्ञा पुं० [ भं० ] शंका। पताका।

बंगाला—संज्ञा पुं० [ सं० बंग ] बंगाल देश।  
संज्ञा स्त्री० बंगालिका नाम की रागिनी। उ०—परमाती हीरे  
उठे बंगाला। आसावरी राग गुलमाला।—जायसी।

बँसुरी—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] सालपांन नाम की श्राद्धी जो भारत के  
प्रायः सभी गरम देशों में होती है। यह वर्षा ऋतु में  
फूलती है।

बँटवारा—संज्ञा पुं० [ हि० बँटना ] बँटने या भाग करने की क्रिया।  
किसी वस्तु के दो या अधिक भाग या हिस्से करना।  
विभाग। सक्सीम।

बंद—संज्ञा पुं० [ फ० ] ( ८ ) चौसर में के वे घर जिनमें पहुँचने पर  
गोटियाँ मारी नहीं जाती।

यंदा-पंदा पुं० [ सं० बंदी ] बंदी । कैदी । बंधुवा । उ०—उंदहि छंद भयउ सो यंदा । छन एक मॉहि हँसी रोवँदा ।  
—जायसी ।

यंदा-पंदा स्त्री० [ सं० बंदी = बंदी ] बंदी होने की दशा । कैदी । उ०—आजु परे पंचव, बँदि मॉहँ । आउ हुसासन उतरी बाहँ ।—जायसी ।

यंदेराळ-पंदा पुं० [ सं० बंदी ] [ स्त्री० बंदेरी ] बंदी । कैदी । बंधुवा । उ०—परा हाथ दसकंदर धरी । सो छित छँडि कै भई बंदेरी ।—जायसी ।

बंध-पंदा पुं० [ सं० ] गिरवी रखा हुआ धन । बंधक-पंदा पुं० [ सं० बंध ] कामशास्त्र के अनुसार स्त्री-संभोग का कोई आसन । बंध । उ०—बौरासी आसन पर जोगी । सत रस बंधक चतुर सो भोगी ।—जायसी ।

बंधविधोपक-पंदा पुं० [ सं० ] रंजियों का द्रव्यत्व । विशेष—वाणशय के समय में हन पर भी भिन्न भिन्न कर लगते थे ।

बहदनाछी—किं० भ० दे० “बहना” । उ०—सखी सरेखी साध बहँडी । तपे सूर ससि आय न दीडी ।—जायसी ।

बकक-पंदा स्त्री० [ हिं० बकना ] बकने की क्रिया या भाव । धर्म की बहुत अधिक बातें । जैसे—तुम जहाँ धँडते हो, यहाँ बक बक करते हो ।

बकली-पंदा स्त्री० [ देश० ] अथोरी नाम का वृक्ष जिसकी छकड़ी से हल और नाचें बनती हैं । वि० दे० “अथोरी” ।

बकावर-पंदा स्त्री० दे० “गुल बकावली” । उ०—तुम जो बकावरी हुम्द सों भर ना । बकुचन गई चहै जो करना ।—जायसी ।

बकुचन-पंदा स्त्री० [ सं० विक्रान्त या हिं० बकुचा ] ( १ ) हाथ जोड़ने की अवस्था । बकौजलि । उ०—बकुचन विनवीं रोस न ओही । सुनु बकाउ तनि चाहू न जही ।—जायसी ।  
( २ ) हाथ या मुँदी से पकड़ने की क्रिया । उ०—तुम्ह जो बकावरी हुम्द सों भर ना । बकुचन गई चहै जो करना ।—जायसी । ( ३ ) गुच्छा ।

बकौरी-पंदा स्त्री० दे० “गुल बकावली” । उ०—सुरंग गुलाल कदम भो कजा । सुँगोय बकौरी गंधव पूजा ।—जायसी ।

बकस-पंदा पुं० [ सं० ] ( २ ) विप्रेतर, सिनेमा आदि में सच में आगे अलग चित्रा हुआ स्थान जिसमें तीन पार व्यक्तियों के चित्रों की व्यवस्था रहती है ।

बकावरी-पंदा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की रागिनी जिसे कुछ लोग मालकोस राग की रागिनी मानते हैं ।

बगकरा-पंदा पुं० [ हिं० बग + पौधा ] बवंदर । बगूला । उ०—चित्र की सी प्रतिमा के रूपे बगकरे माहि, शंवर छदाइ लई कामिनी के काम की ।—केशव ।

बचका-पंदा पुं० [ देश० ] ( १ ) एक प्रकार का पकवान जो किसी प्रकार के साग या पत्तों आदि को बेसन में छपेट कर और घी या तेल में छान कर बनाया जाता है । ( २ ) एक प्रकार का पकवान जो बेसन और मैदे को एक में मिलाकर और जलेबी की तरह टपका कर घी में छाना जाता है और तब दूध में भिगोकर खाया जाता है । उ०—खँडरा बचका जो बुभकौरी । बरी पकोतर सी कौहदौरी ।—जायसी ।

बचीता-पंदा पुं० [ देश० ] दो तीन हाथ लेंची एक प्रकार की झाड़ी जिसके तने और टहनियों पर बहुत अधिक रोपूँ होते हैं । यह गरम प्रदेशों की पदती भूमि में अधिकता से पाई जाती है । इसमें घमकीले पीले रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं जो बीच में काल होते हैं । इसके तने से एक प्रकार का मजदूत रेशा निकलता है ।

बजंत्री-पंदा पुं० [ हिं० बाजा ] ( २ ) मुसलमानी राज्यकाल का एक प्रकार का कर जो गाने बजाने का पेशा करनेवालों से लिया जाता था ।

बजरागि, बजरागी-पंदा स्त्री० [ सं० बज्रगि ] बज्र की अभि, विजली । उ०—पानी मॉस उटै बजरागी । कहाँ से लौकि बौनु मुहँ छागी ।—जायसी ।

बजुन-भय्व० [ सं० ] सिवा । अतिरिक्त । जैसे,—बजुन आपके और कोई बहँ न जा सकेगा ।

बटाऊ-पंदा पुं० [ हिं० बटना ] बँटानेवाला । भाग लेनेवाला । हिस्सा लेनेवाला ।

बटालियन-पंदा स्त्री० [ सं० ] पिदल सेना का एक दल जिसमें १०० जवान होते हैं ।

बटुघाँ-वि० [ हिं० बटना ] बटा हुआ । जैसे—बटुघाँ सूत, बटुआ रस्ता ।  
वि० [ हिं० बटना ] सिल आदि पर पीसा हुआ । उ०—कटुआ बटुआ मिला सुवास । सिका अनबन मॉति गराम ।—जायसी ।

बडकधी-पंदा स्त्री० [ हिं० बधी + धी ] दो-तीन हाथ लेंचा एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है । इसकी टहनियों पर सफेद रंग के लंबे रोपूँ होते हैं । इसके पौधे में से कड़ी दुरंगंध आती है । इसके तने से एक प्रकार का रेशा निकलता है और जड़, पत्तियों तथा बीज अपेक्षि रूप में काम में आते हैं ।

बडुधेरी-पंदा स्त्री० [ हिं० बधी + धेरी ] जंगली बेर । झड़ बेरी । उ०—जो कट्टर बडुधर बडुधेरी । तोहि अस नाहीं कोका बेरी ।—जायसी ।

बडुलार्ही-पंदा स्त्री० [ हिं० बर्य ] राई नाम का पौधा या उसके नाम ।

बडुयागि-पंदा स्त्री० दे० “बदवागि” । उ०—यै शदे उमदाहु



उत, जलन धुसे घड़वागि । जाहो सौं लाग्यो हियो ताही कैं  
हिय लागि ।—विहारी ।

**बड़हन-संज्ञा पुं०** [ हि० बड़ + धान ] एक प्रकार का धान । उ०—  
कोरहन बड़हन जड़हन मिला । औ संसार-तिलक खैंड-  
विला ।—जायसी ।

**वणिा-संज्ञा स्त्री०** [ ? ] रुई का शाब्द । कपास ।  
**घनौरी-संज्ञा स्त्री०** [ सं० घन + गौरी (प्रलय०) ] एक प्रकार का रोग  
जिसमें शरीर के ऊपर गोलकाकार उभार हो आता है । इस  
रोग में प्रायः चमड़े के नीचे एक गाँठ सी हो आती है  
जिसमें प्रायः मज्जा भरी रहती है । यह गाँठ खँवती रहती है,  
पर इसमें पीड़ा नहीं होती ।

**बदल्यारई-संज्ञा स्त्री०** दे० "बदलाई" ।  
**बदा-संज्ञा पुं०** [ हि० बदना ] वह जो कुछ भाग्य में लिखा हो ।  
निवृत्त । विपाक । जैसे,—बह तो अपना अपना बदा है ।

**बन-कपास-संज्ञा स्त्री०** [ हि० बन + कपास ] पटसन की जाति का  
एक प्रकार का लंबा पौधा जिसमें बहुत अधिक टहनियाँ  
होती हैं । कहीं कहीं इसमें काँटे भी पाए जाते हैं । यह  
बुंदेलखंड, अवधो और राजपूताने में अधिकता से होता है ।  
इससे सफेद रंग का मजबूत रेशा निकलता है ।

**बनकपासी-संज्ञा स्त्री०** [ हि० बन + कपास ] एक प्रकार का पौधा  
जो साल के जंगलों में अधिकता से पाया जाता है । इसके  
रेतों से लकड़ी के गठे बाँधने की रस्सियाँ बनती हैं ।

**बन नीवू-संज्ञा पुं०** [ हि० बन + नीवू ] एक प्रकार का सदा बहार  
झुप जो प्रायः सारे भारत में और हिमालय में ७००० फुट  
तक की ऊँचाई तक पाया जाता है । इसकी टहनियाँ दलुअन  
के काम में आती हैं और इसके फल खाए जाते हैं ।

**बनमूँग-संज्ञा पुं०** [ हि० बन + मूँग, सं० मृत् ] मुँगवन या मोठ नाम  
का कदुस ।

**बगर-संज्ञा पुं०** [ देरा० ] एक प्रकार का अन्न । उ०—तिमि विभूति  
भए बनर कही युग सैसदिन बन करवीरा । कामरूप मोहन  
आवरणहु लई काम रुचि वीरा ।—रघुराज ।

**बन-रखना-संज्ञा पुं०** [ हि० बन + रखना ] बन का रक्षक । बनरखा ।

**बनबघ-संज्ञा पुं०** [ हि० बनना ] एक प्रांत जिसमें जौनपुर, आजम-  
गढ़, बनारस और अयध का पश्चिमी भाग सम्मिलित था ।  
कुछ लोग इसका विस्तार बैसवाड़े से विजयपुर तक और  
गोरखपुर से भोजपुर तक भी मानते हैं । इस प्रांत के बारह  
राज्यों अर्थात् (१) विजयपुर के गहरवार, (२) बडगोती के  
खानजादे, (३) बैसवाड़े के बिसेन, (४) गोरखपुर के अशनेत,  
(५) हरदी के हैहय वंशी, (६) बुमराँव के उजैनी, (७)  
थोरी भगवानपुर के राजकुमार, (८) अँगोरी के बँदेल, (९)  
सरवार के कलदास, (१०) नगर के गौतम, (११) कुड़वार  
के हिंदू बडगोती और (१२) मसौली के बिसेन ने मिलकर

एक संघ बनाया था और निश्चय किया था कि हम लोग सदा  
परस्पर सहायता करते रहेंगे । ये लोग "बतहो बनबघ"  
कहलाते थे ।

**बनावन-संज्ञा पुं०** दे० "बनबघ" ।  
**बनावरि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० बाणवलि ] चाणों की अवली ।  
तीरों की पंक्ति ।

**बनौघो-संज्ञा पुं०** दे० "बनबघ" ।  
**बघुल-संज्ञा पुं०** [ सं० बघुल ] शरीर । देह । उ०—सूरि के कलंक  
भव-सीस ससि सम राखत है केदौदास दास के बघुल  
को ।—केशव ।

**बफर स्टेट-संज्ञा पुं०** [ अंग० ] वह मध्यवर्ती छोटा राज्य जो दो  
बड़े राज्यों को एक दूसरे पर आक्रमण करने से रोकने का  
काम करे । संधर्ष-निवारक राज्य । अंतर्धि ।

**विशेष-दो बड़े राज्यों के एक दूसरे पर आक्रमण करने के मार्ग  
में जो छोटा सा राज्य होता है, उसे "बफर स्टेट" कहते हैं,  
जैसे,—हिंदुस्थान और रूस के बीच में अफगानिस्तान और  
फ्रांस तथा जर्मनी के बीच में बेल्जियम है । यदि ये छोटे  
राज्य तटस्थ या निरपेक्ष रहें, तो इनमें से होकर कोई राज्य  
दूसरे राज्य पर आक्रमण नहीं कर सकता । इस प्रकार ये  
संधर्ष-रोकने का कारण होते हैं । ऐसे छोटे राज्यों का बन्ना महत्व  
है । संधि न होने की अवस्था में इधर उधर के प्रतिद्वंद्वी  
राज्य इनसे सदा सन्नत रहते हैं कि न जाने ये कब किसके  
पक्ष में हो जायें और उसके आक्रमण का मार्ग प्रशस्त कर  
दें । गत महासमर में जर्मनी ने बेल्जियम की तटस्थता भंग  
कर उसमें से होकर फ्रांस पर चढ़ाई की थी । साथ ही  
यह भी होता है जब कि दो प्रतिद्वंद्वी राज्य बफर स्टेट की  
तटस्थता भंग करके मिट जाते हैं, तब बफर स्टेट की, बीच  
में होने के कारण, भीषण हालि होती है ।**

**बफुत्ती-संज्ञा स्त्री०** [ देरा० ] एक प्रकार का सदाबहार छोटा पौधा  
जो प्रायः सभी गरम देशों और विशेषतः रेतीली जमीनों में  
पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ ऊँटों के खारे के काम में  
आती हैं ।

**बमकना-क्रि० अ०** [ अंगु० ] आवेश में आकर लंघी चौड़ी बातें  
करना । दोषी वधारना । उँग हँकना ।

**बमकाना-क्रि० स०** [ हि० बमकना ] किसी को बमकने में प्रवृत्त  
करना । बड़ बड़ कर धोलने के लिये आवेश दिखाना ।

**बमपुस्तिक-संज्ञा पुं०** [ अंग० बम = धक्का + पुस्त = स्थान ] राह-  
चलकों और मुसाफिरों के लिये बस्ती से दूर बना हुआ  
पायखाना ।

**विशेष-इस शब्द के प्रचार के संबंध में एक मनोरंजक बात  
सुनने में आई है । कहते हैं, हिंदुस्थान में पलटन के अवि-  
ज्ञित गोरे पायखाने की "बम-पुस्त" अर्थात् धक्का करने का**

रथान कदा करते थे। इसी 'बमहेस' से विगाद कर 'बमभुलिस' बन गया।

**पमासन-संज्ञा स्त्री०** [ देश० ] एक प्रकार की कैंडीली लता जो उत्तर भारत में पंजाब से आसाम तक और दक्षिण में लंका तक पाई जाती है। यह गरमी के दिनों में फूलती और बरसात में फलती है। इसके फल खाए जाते हैं। मकोह।

**वर्षागा-संज्ञा पुं०** [ ? ] शूला।

**वरल-संज्ञा पुं०** दे० "बल"। उ०—देख्यो मैं राजकुमार के बर।  
—केशव।

**संज्ञा पुं०** [ पा० ] फल।

**व्यो०**—वरे अंवा=माम को फल की व्यय वा मायगुवती।

**संज्ञा पुं०** [ हि० बल=सिद्धि ] रेश। लकीर।

**मुद्दा**—वर खाँचना या खाँचना=(?) किसी बात के सम्बन्ध में दुहाय सुनिश्चित करने के लिये लकीर खाँचना। (भायः खोग पदसा दिखाने के लिये कहते हैं कि मैं घर (लकीर) खाँचकर यह बात कहता हूँ।) उ०—वेहि ऊपर राघव बर खाँचा। दुहुन भासु तो पंडित साँचा।—जायसी। (२) बट दिखाना। भाना। गिर करना। उ०—हिन्दू देव काह बर खाँचा। सरगढु अथ न सूर सौँ बाँचा।—जायसी। बर खाँचना=प्रतिष्ठा करना। उ०—लँपउर घरा देव अस आदी। और को बर बाँधे, को बादी?—जायसी।

**वरखाना-कि०** सं० दे० "वरनना"। उ०—अनर अनर अज अंगी और अनंगी सब बरणि सुनायें प्रेये कोने गुण। पाए हैं।—केशव।

**बरतराई-संज्ञा स्त्री०** [ पा० बतर ? ] यह कर जो जमींदार की ओर से बाजार में धैरनेवाले यनियों और दुकानदारों आदि से लिया जाता है। बंटकी।

**बरतुस-संज्ञा पुं०** [ ? ] यह लैन जिसमें पहले धान बोया गया हो और फिर जोत कर हल खेई जाय।

**बरदिधा-संज्ञा पुं०** दे० "बलदिधा"।

**बरदी-संज्ञा स्त्री०** दे० "बलदी"।

**बरन-संज्ञा पुं०** दे० "वर्ण"। उ०—सुबरन परन सुपास छव, सरस दलन सुकुमारि।—भतिराम।

**बरनाळी-कि०** सं० [ सं० बारण ] मना करना। रोकना। (छटा०)

**संज्ञा पुं०** [ सं० वरुष ] एक प्रकार का वृक्ष।

**बरषट-संज्ञा-कि०** वि० [ सं० वरुषट ] (१) बलपूर्वक। जबरदस्ती। बरवस। उ०—वेधक अनियारे मयन वेधत करि न निपेधु। बरषट वेधतु मो हियौ तो भासा कौ वेधु।—विहारी। (२) दे० "बरवस"। उ०—मैन मीन पे नागरनि, बरषट वधित आइ।—भतिराम।

**घरमा-संज्ञा पुं०** [ सं० नफरेग ] (२) एक प्रकार का धान जो बहुत दिनों तक रखा जा सकता है।

**घरदांड-संज्ञा पुं०** दे० "श्रदांड"। उ०—कीहेति सस मही बरसंटा। कीहेति सुवन चीदहो खंडा।—जायसी।

**घरहा-संज्ञा पुं०** दे० "बल"।

**घरहाघना-संज्ञा-कि०** सं० [ सं० ग्राह + भावना (ग्रह०) ] आशीर्वाद देना। असीस देना। उ०—जाति भौट कित औगुन लावसि। वार्थे हाथ राज बरहावसि।—जायसी।

**घरसाँहा-वि०** [ हि० बरचना + हाँदा ( श्राव० ) ] घसनेवाला। उ०—तिय सरसाँहि मुनि किए करि सरसाँहि नेह। घरपरसाँहि हे रहे सर-घरसाँहि मेह।—विहारी।

**घरहन-संज्ञा पुं०** दे० "बद्धहन"।

**घरहारा-संज्ञा पुं०** [ सं० बहि ] मयूर। मोर। उ०—तई बरहा निरसत चवन मुख दुति कलि चकोर बिहंग। बलि भार ससित गोवाल सुखल राधिका भरपंग।—सूर।

**घराट-संज्ञा स्त्री०** [ सं० वराटिडा ] कौड़ी। कर्पाटिका। उ०—भयो करनार बड़े कूर को कृपाल पायो नाम प्रेम पातस हीं लालची घराट को।—जुलसी।

**संज्ञा स्त्री०** [ सं० बगरी ] एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने का समय दिन में २५ से २० दंड तक है। इनमत के मत से यह औरक रागी रागिनी मानी गई है।

**घराट-संज्ञा स्त्री०** दे० "बराट"।

**घरियंड-वि०** दे० "बरयंड"। उ०—क्रोध उपजाय भुगुनंद घरियंड को।—केशव।

**घरियाळी-वि०** [ सं० बरिन् ] बलवान। ताकतवर। उ०—तुलसिदास को प्रभु कोमलपति सब प्रकार घरियो।—जुलसी।

**घरियारै-संज्ञा स्त्री०** [ हि० बरिकर ] (१) बलवान होने का भाव। बलवालिना। ताकतवरी। (२) बल-प्रयोग। जबरदस्ती।

**घरीसना-संज्ञा-कि०** सं० दे० "घरसना"। उ०—सवन मेघ होइ साम घरीसहि।—जायसी।

**घर-संज्ञा पुं०** दे० "घर"। उ०—लिल छाई सिय को बर पेसो। राजकुमारहि देखिय पेसो।—केशव।

**घरोका-कि०** वि० [ सं० बरौक ] बलपूर्वक। जबरदस्ती। उ०—भावन वहाँ पडाबहु देहिं लारा दम रोक। होइ सो बेलि जहि घारी आनहिं सवैं घरोक।—जायसी।

**घलकट-संज्ञा पुं०** [ हि० गल + कट ] पोषे की बाल को विना काटे तोड़ लेना।

**वि०** [ ? ] पैसारी। आजाड़। आगौड़ी।

**घलकटो-संज्ञा स्त्री०** [ हि० बलकट ] मुसलमानी राज्य-काल की एक प्रकार की किस्म जो फसल बटने के समय बसूल ली जाती थी।

**घलदिया-संज्ञा पुं०** [ हि० बलद = बल ] गौओं, भैंसों आदि का चरवाहा।

**घलदिदाई-संज्ञा स्त्री०** [ हि० बलद = बल ] यह कर जो गौओं, भैंसों

बादि को चराने के बदले में दिया या लिया जाय। चराई-  
 यलदी-संज्ञा स्त्री० [ हि० बलद = बैल ] बैलों का झुंड या समूह।  
 बलारकार दायन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जग्गी को मार धँस कर खरया  
 चुकता कहना। ( स्मृति )  
 बलाह-संज्ञा पुं० [ सं० बोलार ] यह घोड़ा जिसकी गरदन और  
 दुम के बाल पीले हों। बुलाह।  
 बलाहक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) एक प्रकार का पगल।  
 बलाहर-संज्ञा पुं० [ हि० बुलाया ] गाँव में होनेवाले वह कर्म-  
 चारी जो दूसरे गाँवों में सँदेसा ले जाता, गाँव में आए हुए  
 लोगों की सेवा शुभ्रपा करता और उन्हें मार्ग दिखलाता  
 हुआ दूसरे गाँवों तक ले जाता है।  
 बलियाँ-वि० [ हि० बल + रया (प्रय०) ] बलवान्। ताकतवर। जैसे,—  
 किस्मत के बलिया। पकाई रीर, हो गया बलिया। (कहा०)  
 बलु-अव्य० दे० “बल”। उ०—प्यास न एक बुझाइ बुझै प्रैताप  
 बलु।—केशव।  
 बल्य-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) एक प्रकार की वनस्पति जिसमें बहुत  
 सी पत्तियाँ के योग से प्रायः कमल के आकार की बहुत बड़ी  
 कली या गुद्दी सी बन जाती है। इसके नीचे के भाग से जड़ें  
 निकलती हैं जो जमीन के अंदर फैलती हैं और ऊपरी मध्य  
 भाग में से पतला तना निकल कर ऊपर की ओर बढ़ता है  
 जिसमें सुंदर सुगंधित फूल लगते हैं। इसके कई भेद होते  
 हैं। गुद्दी। (२) स्त्री के वह खोलका लट्टू जो प्रायः कमल  
 के आकार का होता है और जिसके अंदर बिजली की रोशनी  
 के तार लगे रहते हैं।  
 बलमटेर-संज्ञा पुं० [ अ० बालंटीयर ] (१) यह मनुष्य जो पिना  
 वेतन के स्वेच्छा से फौज में सिपाही या अफसर का काम  
 करे। स्वेच्छा सैनिक। बालंटीयर। (२) अपनी इच्छा से  
 सार्वजनिक सेवा का कोई काम करनेवाला। स्वयंसेवक।  
 बलंत-संज्ञा पुं० [ सं० बलंत ] दो हाथ ऊँचा एक प्रकार का  
 पौधा जो प्रायः सारे भारत में और हिमालय में सात हजार  
 फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चार  
 पौंच अंगुल लंबी; पर गोलकाफर होती हैं। फूल के बिचारे से  
 इसके कई भेद होते हैं।  
 बलना-संज्ञा पुं० [ देरा० ] जयंती की जाति का एक प्रकार का  
 मसोला वृक्ष जो देखने में बहुत सुंदर होता है और प्रायः  
 दोमा के लिये बागों में लगाया जाता है। इसके पत्ते एक  
 बालित्त लंबे होते हैं। प्रायः पान के भीटों में भी यह  
 लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ, कलियाँ और फूलों की  
 तरकारी बनती है और औषधि रूप में भी उनका उपयोग  
 होता है।  
 बलघादी-संज्ञा पुं० [ हि० बाल = युग्म + घार (प्रय०) ] छँक।  
 बघार।

वि० सोंचा। सुगंधित। उ०—करतू तेल कीन्ह बलवात्।  
 मेथी कर तत्र दीन्ह बवारु।—जायसी।  
 बसना-कि० प्र० [ हि० बास ] (२) दुर्गंध देना। बसू करना।  
 उ०—मंद जस मंद बसाइ पसेऊ। औ बिसवासि छै सब  
 केऊ।—जायसी।  
 बसट-संज्ञा पुं० [ अ० ] किसी व्यक्ति की ऐसी मूर्ति या चित्र जिसमें  
 केवल घड़ और सिर हो।  
 बसना-कि० प्र० [ हि० बास = गंध ] दुर्गंध देना। बसू करना।  
 बहकाघट-संज्ञा स्त्री० [ हि० बहकाना + आवट (प्रय०) ] बहकाने  
 की क्रिया या भाव।  
 बहन-संज्ञा पुं० [ सं० बहन ] बहने की क्रिया या भाव। उ०—  
 वायु को बहन दिन दावा को बहन, बड़ी बड़वा अनल  
 ज्वाल जाल में रखी परे।—केशव।  
 बहना-कि० प्र० [ सं० बहन ] (१९) निर्वाह करना। निवाहना।  
 उ०—गाढ़ भली उखारे अमुचित बनि आए बहियेई।—  
 तुलसी।  
 बहनेली-संज्ञा स्त्री० [ हि० बहन + ली (प्रय०) ] वह जिसके  
 साथ बहनावा या बहन का संबंध स्थापित किया गया हो।  
 मुँहबोली बहन। (खियाँ)  
 बहवू-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] लाम। भलाई। फायदा।  
 बहुलानुरक्त (सैन्य)-वि० [ सं० ] प्रजा से प्रेम रखनेवाली  
 (सैना)। सर्वमित्र। (कौ०)  
 बाँगड़-संज्ञा पुं० [ देरा० ] हिसार, रोहतक और करनाल का प्रांत।  
 बाँगड़-संज्ञा स्त्री० [ हि० बाँग (प्रदेश) ] हिसार, रोहतक और  
 करनाल के जाटों की बोली जिसे जाटू या हरियाली भी  
 कहते हैं।  
 बाँवना-कि० सं० [ ] रलना। उ०—लोक कहे राम को गुलाम  
 हैं कहावै। एते बड़े अपराध भो न मन बाँवै।—तुलसी।  
 बाँवली-संज्ञा स्त्री० [ हि० बवल ] बवल की जाति का एक प्रकार  
 का वृक्ष जो सिंध, पंजाब और मारवाड़ में खुले तालों के  
 तलों में होता है। इसकी छाल चमड़ा सिंहाने के काम में  
 आती है और इसमें से एक प्रकार का मोद भी निकलता  
 है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं।  
 बारडेन-संज्ञा पुं० [ अ० ] परोडेन या वायुयान का एक भेद।  
 बाउंटी-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] यह सहायता या मदद जो व्यापार या  
 उद्योग धंधे को उद्योजन देने के लिये दी जाय। सहायता।  
 बाउं मदद।  
 बाकल-संज्ञा पुं० दे० “बकल”। उ०—सिरसि जटा बाकल बउ  
 धारी।—केशव।  
 बाक्ती-कि० वि० [ ? ] दृष्ट भाग में। पीछे। (लदा०)  
 बाबर-संज्ञा पुं० [ देरा० ] एक प्रकार की घास जो स्थूलत्व में  
 अधिकता से होती है।

**बाजीदार**-संज्ञा पुं० [ हि० बाल + दा + क्त ] वह हलवाहा जिसे  
 वेतन के स्थान में उपज का भद्र मिलता हो । बालीदार ।  
**बाडवानल**-संज्ञा पुं० दे० । "बडवानल" । उ०-मम, बाडवानल  
 कोर । अय क्रियो वाहत लोप ।-केशव ।  
**बाढी**-संज्ञा स्त्री० [ अ० बाडिन ] एक प्रकार की अँगिया या कुर्ती  
 जो सेमें पहनती है (और आज कल बहुतेरी भारतीय स्त्रियाँ  
 भी पहनने लगी हैं) ।  
**बाण**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१२) स्वर्ग । (१३) निर्वाण । मोक्ष ।  
**बाणिक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाणिक्य करनेवाला । व्यापारी ।  
**बात**-संज्ञा पुं० [ सं० वात ] वात । हवा । उ०-दिग्देव यद्दे बहु  
 बात यद्दे ।-केशव ।  
**बाध**-संज्ञा पुं० [ ? ] मोद । अंक । अँकार । उ०-टासिहवत  
 मंगलौचनी मत्वी उलटि मुन बाध । जानि भई तिय भाय  
 के हाय परस हाँ हाथ ।-विहारी ।  
**बाध**-संज्ञा पुं० [ सं० बाध ] ( ५ ) बाना नाम का हथियार जो  
 फेंक कर मारा जाता है । उ०-गोली बान सुमन सर  
 समुक्ति उलटि मन देखु । उत्तम मध्यम नीच प्रभु बेचन  
 विचारि बिलेखु ।-तुलसी ।  
**बाध**-संज्ञा पुं० [ ? ] गोला । उ०-तिलक पछीवा भाये दमन  
 अक्ष के वान । जहि हेरहि तेहि मारहि सुरकुस करहि  
 निदान ।-जायसी ।  
**बाध**-संज्ञा पुं० [ सं० बाध + शब्द ] ( १ ) सुमीव । उ०-  
 बाधर तत्र ही हैसि सोल्यो ।-केशव । ( २ ) हनुमान ।  
**बाणी**-संज्ञा स्त्री० दे० "बाणिक्य" । उ०-अपने चलन से कीन्ह  
 कुबारी । छाम न देख मूर भई हामी ।-जायसी ।  
**बायकी**-संज्ञा स्त्री० [ सं० बायकी ] एक देवी जिसकी पूजा प्रायः  
 जादूगर आदि करते हैं ।  
**बाय**-संज्ञा पुं० [ अ० ] ( १ ) एक प्रकार का लोहे का पीरा जो  
 ससुद्ध में या उन भट्टियों में जिनमें जहान चलते हैं, स्थान  
 में स्थान पर खंगर द्वारा धँप दिए जाते हैं और सिगनल का  
 काम देते हैं । तरिदा । ( २ ) दे० "लहाय बाय" ।  
**बाय** हकाउट-संज्ञा पुं० [ अ० ] ( १ ) विचारियों का एक प्रकार  
 का सैनिक दंग से संघटन जिसका प्रधान उद्देश्य विविध  
 प्रकार से समाज की सेवा करना है । जैसे,—कहीं आग  
 लगने पर तुरन्त वहाँ पहुँच कर आग बुझाना, मेलें डेले और  
 पत्रों पर बापियों को आराम पहुँचाना, और उचकों को  
 गिरफ्तार करना, आहत या अनाथ रोगियों को यथास्थान  
 पहुँचाना, उनके दयादारु और सेवा सुप्रथा की समुचित  
 व्यवस्था करना आदि । बालघर-धम् । ( २ ) उक्त धम् मा  
 सेवा का सद्स्य ।  
**बाघदाना**-संज्ञा पुं० [ प० ] ( १ ) वह अक्षर जो कभी हुई गगड़ी  
 के भाँचे लगा रहता है ।

**बाघना**-संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसके फलों का  
 गूदा इमारत की लोहे में मिलाया जाता है । पि० दे०  
 "विलासी" ।  
**बाघना**-संज्ञा पुं० [ प० बा + घ ( प्रत्य० ) ] अनेक बाँर । कई  
 बाँर । अक्षर । जैसे,—मैं बाघना उनके यहाँ गया, पर  
 वे नहीं मिले ।  
**बाघरू**-संज्ञा पुं० [ उ० बाघरू = बाघरू ] एक प्रकार का धान ।  
**बाघरोठा**-संज्ञा पुं० [ सं० बाघ + रूथ ( पशु० ) ] वह रस्म जो विवाह के  
 समय वर के द्वार पर आने के समय की जाती है । उ०-  
 बाघरोठे को चार करि कदि केदाय अनुरूप । द्विज दूल्ह पहिरा-  
 द्यो पहिरासु सध भूप ।-केशव । ( २ ) द्वार । दरवाजा ।  
**बाघरू**-संज्ञा पुं० [ प० ] किसी चीज के किनारों पर बना हुआ बेल  
 वृक्ष । हाथिया ।  
**बाघकता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बालक का भाँव । लड़कपन । उ०-  
 अति कोमल केदाय बालकता ।-केशव ।  
**बाघचर**-संज्ञा पुं० दे० "बाय स्काउट" ।  
**बासतोड़ा**-संज्ञा पुं० [ हि० बास + तोड़ना ] एक प्रकार का फोड़ा  
 जो दरारों में का कोई बाल झटके के साथ टूट जाने के  
 कारण उस स्थान पर हो जाता है । इसमें बहुत पीड़ा होती  
 है; और यह कभी कभी पक भी जाता है ।  
**बासल खोरा**-संज्ञा पुं० [ हि० बास + खोरा ] एक प्रकार का बहुत  
 पका खोरा । इसकी तरकारी बनती है और चीज थूनागी  
 दवा के काम में आते हैं । उ०-चारों दारिजे हरन  
 जैभीरा । औ हिंदवाना बालमखोरा ।-जायसी ।  
**बासलमावृत्ता**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वेणी, पेंगी, लकड़ुर, रकसारी,  
 प्रभूता, स्वरिता और रजनी नाम की सात मान्यदाएँ जिनके  
 विषय में प्रसिद्ध है कि ये बालकों को पकवती और उन्हें  
 रोती बनाती हैं ।  
**बासल साँगड़ा**-संज्ञा पुं० [ ? ] कुस्ती में एक प्रकार का पेंच या  
 दौंग । इसमें विपक्षी की फसेर पर पहुँच कर उसकी एक  
 टाँग उठाई जाती है और उस पर अपना एक पैर रख कर  
 और अपनी जाँटी में से खींचते और मरोड़ते हुए उसे  
 जमीन पर गिरा देते हैं ।  
**बाखी**-संज्ञा स्त्री० [ हि० बाख ] ( २ ) वह अन्न जो हलवाहों  
 आदि को उनके परिश्रम के बदले में, धन की जगह, दिया  
 जाता है ।  
 यो०-बाखीदार ।  
**बाखीदार**-संज्ञा पुं० [ हि० बाखी = धन + दा + क्त ] वह हल-  
 वाहा जो नगद पारिश्रमिक न लेकर उपज का कुछ भाग  
 के बाखीदार ।  
**बाघरी**-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की बाघमासी घाँस जो  
 उत्तरी भारत के रेगिरे और वधरले मैदानों में पाई जाती

भीर पशुओं के चारे के लिये अच्छी (समझी) जाती है। सरदावा।

दास-संज्ञा पुं० [ सं० वसन ] छोटा वस्त्र। उ०—दासि दास दासि दास रोम पाट को कियो। दाय जां विदेहराज भौति भौति को कियो।—केशव।

दासा-संज्ञा पुं० [ सं० दास ] (३) वह स्थान जहाँ मूल्य लेकर भोजन का प्रबंध हो। भोजनालय।

विशेष—कलकत्ते, पंजई आदि बड़े बड़े व्यापार-प्रधान, नगरों में भिन्न भिन्न जातियों के ऐसे दासे हैं, जहाँ वे लोग जो विना गृहस्थी के होते हैं, भोजन करते हैं।

दासकोप-संज्ञा पुं० [ सं० ] राष्ट्र के मुखियों, अंतपाल (सीमा-रक्षक), आटविक (जंगलों के अफसर) और दंडोपनत (पराजित राजा) का चिह्न। (कौ०)

दिवू-संज्ञा पुं० [ सं० ] सुगरी।

विकारल-वि० [ सं० विकार या विकारल ] (१) जिसकी दशा विकृत हो। (२) विकराल। विकट। भीषण। उ०—जुम जाहु बालक छौंदि जमुना स्वाम मेरो जागिहै। आं कारो मुल विकारो दृष्टि पर तोहिं छागिहै।—सूर।

विगासना-संज्ञा-कि० प्र० [ सं० विगास ] विकसित करना। खिलाना। उ०—अभी अधर अस राजा सब जग आस कोइ। केहि कहैं कैंवल विगासा को मनुकर रस लेह।—जायसी।

विगुर-वि० [ सं० वि+गुर ] जिसने किसी गुरु से शिक्षा या दीक्षा न ली हो। निगुरा। उ०—हरि विगुर मर्म विगुर बिन फंदा। जहँ जहँ गये अपन पी लोये तेहि फंदे बहु फंदा।—कबीर।

विचहुत-संज्ञा पुं० [ हिं० विच+भ्रं ] (१) अंतर। फरक। (२) दुबधा। संदेह। उ०—अप हंसि के दासि सूरहि भेंडा। अहा जो शीत विचहुत मेडा।—जायसी।

विचारमान-वि० [ सं० विचारमान ] (१) विचार करनेवाला। शुद्धिमान्। (२) विचारने के योग्य। विचारणीय। उ०—विचारमान प्रसा, देव अर्चमान मानिये।—केशव।

विधुसा-संज्ञा पुं० [ हिं० विद्ध ] (५) कमर में पहनने का एक गहना। एक प्रकार की करपनी।

विजई-संज्ञा स्त्री० [ हिं० विज ] भीत का अवतिष्ठ अन्न जो नीच जाति के लोग खेती से खाते हैं। विजवार।

विजन-संज्ञा पुं० [ सं० विजम ] विजन स्थान। मुगसाल जगह। कि० वि० जिसके साथ कोई न हो। अकेला। उ०—कैसे यह बाल लाल बाहिर विजन आवे, विजन धरारि छागैं लखकत लंक है।—मतिराम।

विजरी-संज्ञा स्त्री० [ देग० ] अलसी या सांसी का पौधा। (हुंदेल०)

विजचारा-संज्ञा पुं० दे० "विजई"

विट-संज्ञा पुं० [ सं० विट ] नीच। छल। उ०—नीर-करि-केसरी

कुठार पाणि मानी शरि तेरी कहा चली विट तो सो मनी फाल को।—तुलसी।

विटारना-कि० प्र० [ सं० विट ] (३) नष्ट होना। बरबाद होना। विटारना-कि० प्र० [ हिं० विटारना का सं० रूप ] (२) नष्ट करना।

बरबाद करना। न रहने देना। उ०—सेतु बंध जहं धनुष विटार। उहौ धनुष भौंहह सो हारा।—जायसी।

बिची-संज्ञा स्त्री० [ सं० बृषि ] वह धन जो दूकानदार लोग गोशाला या और किसी धर्म कार्य के लिये; माल का दाम चुकाने के समय, काट कर अलग रखते हैं।

विद्युभा-संज्ञा पुं० [ देग० ] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसे पस्ती भी कहते हैं। वि० दे० "पस्ती"।

बिनघट-संज्ञा स्त्री० [ हिं० बनेटी ] बनेटी चलाने की क्रिया या विद्या। बिनानी-संज्ञा पुं० [ सं० विज्ञान ] विज्ञानी। उ०—तहाँ पवन न चालह पानी। तहाँ आपई एक बिनानी।—शूद्र।

बिबाका-वि० दे० "बेबाक"। उ०—स्वारथ रहित परमारपी कहावत हैं मे सनेह विषस विदेहता विधाके हैं।—तुलसी।

विद्युपेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] हृन्द। उ०—जयति विद्युपेश धनदादि दुर्लभ महाराज सद्गम सुखप्रद विरानी।—तुलसी।

विमानी-वि० [ सं० वि० + मान ] मान रहित। निरिमान। उ०—बिधि के समान हैं विमानी-हृत राज हंस विविध विद्युष सुत मेह सो अचल।—केशव।

बिमोहना-कि० प्र० [ सं० विमोहन ] मोहित होना। आसक होना। उ०—सर्वरूप बिमोहा हिये हिलोहिं लेह। प्राँय हुये मनु पावै पहि मिसि लहराई देह।—जायसी।

वियतल-संज्ञा पुं० [ सं० वियत ] आकाश। उ०—जहँ जहँ केहि जोनि जनम महि पताल वियत।—तुलसी।

विरामना-संज्ञा-कि० प्र० [ सं० विराम ] विराम करना। सुस्ताना। उ०—सुवत-स्वैत मकरंद कन तस सर तैर बिरमाइ। अचतु दृष्टिजन देस तैं भयो वंदोही चाह।—विशार।

विरसना-संज्ञा-कि० प्र० [ सं० विरस ] विलास करना। भोगना। उ०—नीर घटे पुनि पल न कोइ। विरसि जो लीज हाथ रह सोई।—जायसी।

विरहा-संज्ञा पुं० [ सं० विरह ] एक प्रकार का गीत जो प्रायः अहीर लोग गाते हैं। इसका अंतिम शब्द प्रायः बहुत खींच कर कहा जाता है। उ०—बंद हुकीम गुलाबो कोह गोइयाँ कोई लेओ री खपरिया मोर। खिरकी से खिरकी ज्यों फिती फिती हुओ पिरकी डठल बड़ जोर।—यलवीर।

मुहा०—शार विरहा गाना= बड़ बड़ कर ऐसी बातें कहना जो प्रायः काब्य रूप में परिपन्न न हो सकती हैं।

बिरासी-संज्ञा पुं० [ सं० विरासी ] वह जो विलास करता हो। विलासी। उ०—जौ लगि काहिदि होहि बिरासी। उनि सुरसि होइ ससुद परासी।—जायसी।

**विस्तंजा-संज्ञा** पुं० [ दे० ] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ साग के रूप में खाई जाती हैं और भोज्यि रूप में भी उनका व्यवहार होता है।

**विलंद-वि०** [ का० उर्द० ] (१) ऊँचा। उच्च। उ०- (क) —मंद विलंद अमेरा दलकने पाह्य दुख शकहोता दे। —सुलसी। (ख) —प्रथम विलंद वर बारनि के दंतनि सी, धैरि के बाँके बाँके दुर्ग बिदारी है। —केदाव। (२) विफल। नाकामयाव। जैसे, —अगर अच्छी तरह न पढ़ोगे तो इस बार इम्तहान में विलंद हो जाओगे।

**विलगद-संज्ञा** पुं० [ दे० ] गिरगिट्टी नामक वृक्ष जो प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। वि० दे० "गिरगिट्टी"। **विलगासा-कि०** प्र० [ दि० वि० ग + आना (प्रत्य०) ] (२) प्रयत्न या श्रम रूप से दिखाई देना।

**विलाहता-वि०** [ दे० ] [ स्त्री०-वि० ] जिसे किसी बात का कुछ भी शक या संशय न हो। गावदी। मूर्ख।

**विलापलक्ष-संज्ञा** स्त्री० [ सं० वृद्धा ] (१) मेमिका। प्रियतमा। (२) स्त्री। पत्नी। जैसे, —राज-विलापल।

**विलासी-संज्ञा** पुं० [ ? ] एक प्रकार का वृक्ष जो मलाबार और कनाड़ा में भाप से भाप होता और दूसरे स्थानों में लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ अंडाकार और ३ से ६ इंच तक लंबी होती हैं। इसकी छाल और पत्तियों का भोज्यि के रूप में व्यवहार होता है, और इसके फल का गुहा राज लोग इमालत को लेई में मिलाते हैं जिससे उसकी सुड़ाई बहुत मजबूत हो जाती है। धारणा।

वि० [ सं० वि० ] विलास करनेवाला। भोग करनेवाला। उ०—देखि किती तप ही तप रावण सागो रसातल के मे विलासी। —केदाव।

**विलोमात-संज्ञा** पुं० [ निष्पत्ति ] तिष्ठत के एक पर्यंत का नाम। **विरोध-यह** शब्द दैनियों के वैताड्य (पर्वत) का अपभ्रंश जान पड़ता है।

**विलोमी-संज्ञा** स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार की घास। **विलोनी-संज्ञा** पुं० [ दि० विलोनी ] वह पशु जो बिलोकर निकाली जाय। मवनीत। मखन। उ०—सत के विलोना विलोय मोर माई। ऐसा विलोय जामें सत न जाई। —कथीर।

**विलौरा-संज्ञा** पुं० [ दि० विलो या विलोरे + ओष (प्रत्य०) ] विलो का घास।

**विवाही-संज्ञा** स्त्री० [ सं० विवाह ] पति में होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें पति की उँगलियों के बीच का मांस या सतुप का चमड़ा फट जाता है। उ०—जाके पिर न पटी विवाही। सो का जाने पोर पराई। —कदावत।

कि० प्र०—फटना।

**विवायन-संज्ञा** स्त्री० दे० "विवाह"। **संज्ञा** पुं० [ ? ] विना। वाषा (दि०)

**विसमौ-संज्ञा** पुं० [ सं० विसम ] विपाद। दुःख। रंज। (अवय) उ०—नाग-फौल उन्ह मेला गीया। हरप न विसमौ पकी जीया। —जायसी।

कि० वि० [ सं० वि + समय ] विना समय के। असमय या कुसमय। उ०—बिहद भगवत जो विसमौ उण्ड। सवर हरप सुखि सब गयक। —जायसी।

**विसरामी-संज्ञा** वि० [ सं० विश्राम ] विश्राम देनेवाला। सुख देनेवाला। सुखद। उ०—सुभा सो राजा कर विसरामी। मारि न जाह चहै जेहि स्वामी। —जायसी।

**विसपल-संज्ञा** पुं० [ दे० ] बघूल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जिसे उँदरू भी कहते हैं। वि० दे० "उँदरू"।

**विसा-संज्ञा** पुं० दे० "वित्वा"। उ०—गीस विसे मत भंग भयो सु कही अय, केदाव को धनु ताने। —केदाव।

**विसायेंध-संज्ञा** स्त्री० [ सं० विष + गंध ] (१) दुर्गंध। बदबू। (२) मांस की दुर्गंध। गोरत की बदबू। उ०—मोटि माँसु रुचि भोजन तासु। औ सुख भाव विसायेंध वासु। —जायसी।

**विसैंघी-वि०** [ दि० विसैंध ] (१) जिसमें दुर्गंध आती हो। बदबूदार। (२) मांस, मछली आदि की गंधवाला। उ०—तजि नागेंसर फूल सोहावा। कयैल विसैंघी सैं मन लावा। —जायसी।

**विद्वलक्ष-वि०** [ सं० विद्वेष्ट ] (२) शिथिल। उ०—है गई बिहव अंग प्रथु फिरि सजे सकल सिंगार गु। —केदाव।

**विहारी-वि०** [ सं० विहार ] विहार करनेवाला। उ०—एक इहाँ दुख देखत केदाव होव उहाँ सुरलोक बिहारी। —केदाव।

संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण का एक नाम।

**वीदना-संज्ञा** कि० प्र० [ ? ] अनुमान करना। अंदाज से जानना। उ०—हुकि हुकि सपकी है पशु फिरि फिरि शुरि जमुहाइ। वीदि पियागम नंद मिसि दी सब अली उडाइ—विहारी।

**वीधि-संज्ञा** स्त्री० [ सं० वीधि ] लहर। तरंग। उ०—वीधिन के सोर सैं जनावत पुकार के। —मतिराम।

**वीभो-वि०** [ सं० विभ ] (२) सघन। घना। (जंगल) **वीना-संज्ञा** स्त्री० दे० "वीन"। उ०—कहै सुंदरी येनु बाना यजायें। —केदाव।

**वीरन-संज्ञा** स्त्री० दे० "वीर" (१)।

**वीरो-संज्ञा** पुं० [ दि० वीर ] वृक्ष। पद। उ०—आहुदि खोइ ओहि जो पावा। सो वीरी मनु लाइ जमावा। —जायसी।

**वीस-संज्ञा** पुं० [ दे० ] एक प्रकार का वृक्ष जो गोरलपुर और बरमा के जंगलों तथा कॉकन देश में पाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है और प्रायः बंदूक के कुँड़े बनाने के काम में आती है।

वृक्षसंज्ञक-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुस्तकें वेचनेवाला । पुस्तक-विक्रेता ।  
वृत्ताम-संज्ञा पुं० [ सं० वृत्ताम ] पहनने के कपड़ों में लगाई जानेवाली  
कड़ी बिगड़ी धुंधी । घड़न ।

वृत्ता-संज्ञा पुं० [ दे० ] ( १ ) धोखा । हाँसा । पर्दा ।

मुहा०-वृत्ता देना = हाँसा देना । दम देना ।

यौ०-दम वृत्ता ।

( २ ) पहाना । हाँसा ।

मुहा०-वृत्ता बताना = बहाना करना । हाँसा करना ।

वृद्ध द्रव्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वृद्ध भगवान् की श्रद्धि, केस, नख,  
आदि स्मृति-विह्व जो किसी स्तूप के नीचे संरक्षित हों ।

वृद्धा-संज्ञा पुं० [ हिं० वृद्धा ] पानी का मुलबुला । वृद्धवृद्धा ।  
उ०-पानी में जस वृद्धा सस यह जग वतराई । एकदि  
आवत देखिप एक है जात बिलाह ।-जायसी ।

वृक्षा-वि० [ सं० वृक्ष-विभाग करना ] ( ३ ) जिसके साथ कोई  
संबन्ध बढ़ानेवाला उपकरण न हो । नंगा । खाली ।

वृत्तेतिन-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) किसी सार्वजनिक विषय पर  
सरकारी या किसी अधिकारी व्यक्ति का वक्तव्य या विवरण । जैसे,—सत्याग्रह कमिटी के प्रचार मंत्री ने एक  
वृत्तेतिन निकाला है जिसमें लोगों से कहा गया है कि वे  
ऐसे समाचारों पर विश्वास न करें । ( २ ) किसी राजा,  
महाराज, राजपुरुष या देश के प्रमुख नेता के स्वास्थ्य के  
संबन्ध में सरकारी या किसी अधिकारी व्यक्ति की रिपोर्ट  
या विवरण । जैसे,—राज्य के प्रधान डाक्टर के हस्ताक्षर  
से सचरे ७ बजे एक वृत्तेतिन निकला जिसमें लिखा था कि  
महाराज का स्वास्थ्य सुधर रहा है ।

व्यंच-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( ३ ) वह आसन जिस पर न्यायकर्ता  
बैठता हो । न्यायासन । ( ४ ) न्यायालय । अदालत ।

व्यंचत-संज्ञा स्त्री० दे० "व्यंच" ।

वेकदूरा-वि० [ सं० वे + कद ] ( १ ) जिसकी कोई कदर न हो ।  
अप्रतिष्ठित । ( २ ) जो कदर करना न जानता हो ।

वेकसूर-वि० [ सं० वे + कसूर ] जिसका कोई कसूर न हो ।  
निरपराध ।

वेखतर-वि० [ सं० वे + खतर ] जिसे किसी प्रकार का खतर  
या भय न हो । निर्भय । निडर । जैसे,—जाप वेखतर  
वहाँ चले जायँ ।

वेगदर-संज्ञा पुं० [ ? ] उद्द, या सूँग का कुछ मोटा और रवेदार  
आधा जिससे प्रायः मगदल या बड़ा आदि बनते हैं । यह  
कच्चा और लकड़ा दो प्रकार का होता है । कच्चा वह कहलाता  
है जो कच्चे सूँग या उद्द को पीस कर बनाया जाता है,  
और पक्का वह कहलाता है जो सुने हुए सूँग या उद्द को  
पीसने से बनता है ।

वेगना-संज्ञा-क्रि० सं० [ सं० वेग + ना (भव०) ] निदाना लगाता ।  
देखता ।

वेट-संज्ञा पुं० [ सं० ] बाजी । दौव । शर्त । बंदन । जैसे-बतराओ,  
कुछ वेट लगाते हो ?

क्रि० प्र०-लगाता ।

वेधिया-संज्ञा पुं० [ हिं० वेधना ] अंकुश । आँकुर । उ०-  
केहरि लंक कुंभरवल दिया । गीठ मयूर अलक वेधिया ।-  
जायसी ।

वेनसीय-वि० [ हिं० वे + नसीय ] जिसका नसीय अर्थात् न  
हो । अभागा । बदकिस्मत । जैसे-भा अद्वय बानसीय ।  
वेभद्व वेनसीय ।

वेनियन-संज्ञा पुं० [ हिं० वनिया ] वह व्यापारी या महांज जो  
युरोपियन कोठीवालों ( हाउसवालों ) को आवश्यकतामुता  
रूप की सहायता देता है ।

विशेष-"वेनियन" : पानी बंगाली और मारवादी होते हैं ।  
हाउसवालों से इनको लिखा पढ़ी रहती है कि जब जितने  
रूप की आवश्यकता होगी, देना पड़ेगा । एक हाउस या  
कोठी का एक ही वेनियन होता है । लाभ होने पर वेनियन  
को भी हिस्सा मिलता है और घाटा होने पर उसे हानि भी  
सहनी पड़ती है ।

वेपरद्वारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] परदे का अभाव । परदा न होना ।  
वेफिकरा-वि० [ हिं० वे + फा० विक्र ] जिसे किसी बात की विक्र  
या परवाह न हो । निश्चिन्ता ।

वेमजा-वि० [ सं० ] जिसमें कोई मजा न हो । जितमें कोई  
आनंद न हो ।

वेमौसिम-वि० [ सं० वे + म० मौसिम ] उपयुक्त मौसिम या ऋतु  
न होने पर भी होनेवाला । जैसे,—जाड़े में पानी बरसना  
या आम मिलना वेमौसिम होता है ।

वेलकुन-संज्ञा पुं० [ दे० ] नक-छिकनी की जाति की एक प्रकार  
की लता जो पंजाब की पहादियों और पश्चिमी हिमालय में  
५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है । यह लकड़ा और  
मलाया द्वीप में भी होती है । वर्षा ऋतु के अंत में इसमें  
पीलापन रहिये सफेद रंग के बहुत छोटे छोटे फूल लगते हैं ।

वेलिफ-संज्ञा पुं० [ सं० ] दीवानी अदालत का वह कर्मचारी  
जिसका काम अदालत में हाजिर न होनेवालों को गिरफ्तार  
करना और माल कुर्क करना आदि है ।

वेली-संज्ञा पुं० [ सं० वल ] सापी । संगी । जैसे,—गरीबों का  
अलाह वेली है । (कहा०) उ०-सोरह सै संग चलीं सहली ।  
कैवल न रहा और को वेली ।-जायसी ।

संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार का छोटा कैंटीला वृक्ष जो  
हिमालय में ४००० फुट तक की ऊँचाई पर और दक्षिण  
भारत में भी पाया जाता है । यह गरमी के दिनों में फूलता

और जाड़े में फलता है। इसके मित्र मित्र अंगों का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। इसकी एकड़ी पंखे रंग की और बहुत कड़ी होती है। छावा में इसके फल कपड़ा धोने के काम में आते हैं।

**वेवसाय**—संज्ञा पुं० [ सं० व्वसाय ] व्यवसाय का काम। उ०—  
विरिध विस ज्यो बंधे पाऊ। कहीं सो जीवन किम वेव-  
साऊ।—जायसी।

**वेसर**—संज्ञा पुं० [ ? ] राक्षस। उ०—हस्ति घोड़ और पुरष  
जावन वेसरा ऊँट। जहाँ वहाँ लीन्ह पत्थनी कटक सरह अस-  
ष्ट।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० नाक में पहनने की छोटी नथ।  
**वेसाहनी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० वेसाहना ] मोले लेने की क्रिया।  
उ०—कोई कर वेसाहनी काहू कर विनाह। काँई चले  
लाम सन कोई मूर गँवाइ।—जायसी।

**वेहराना**—क्रि० प्र० [ हि० वेहर ] फटना। विदीर्ण होना। उ०—  
उठा दूलि हिरदन न समाना। कंधा टुक टुक वेहराना।—  
जायसी।

क्रि० सं० फाड़ना। विदीर्ण करना।  
**वेहनर**—वि० [ प्र० ] जिसे कोई हुनर न आता हो। जिसमें कोई  
कला या गुण न हो।

**वैकर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मद्भाग्न। सातुकार। कौड़ीवाल।  
**वैट**—संज्ञा पुं० [ सं० ] क्रिकेट के खेल में गेंद मारने का डंडा जो  
आगे की ओर चौड़ा और चिपटा होता है। बल्ला।

**वैठकी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० वैठना ] वह कर जो जमींदार की ओर  
से बाजार में वैठनेवाले बनिवों और दुकानदारों आदि पर  
लगाया जाता है। बर-सराई।

**वैतड़ा**—वि० [ हि० वैतल ] (१) जो स्वयं दूसर ऊपर प्रभुता  
रहता हो। आचारा। (२) लुच्चा। शोहदा।

**वैतला**—वि० [ सं० वैतल्ला ] (१) (माठ) मिमका कोई—मालिक  
न हो। लाचारिस।  
संज्ञा पुं० पोरी का माल। ( दुभारी )

**वैरन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ ची० वैरेनेम ] हार्नेड के सामनों तथा  
बड़े बड़े भ्रूयधिकारियों को बंधा परंपरा के लिये दी जाने-  
वाली उपाधि जिसका दत्ता "बाहर्नेड" के नीचे है। वि०  
दे० "ल्यक"।

**वैरोमीटर**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मीसिम की सरदी-पारमी नापने का यंत्र  
जो थर्मामीटर की तरह का, पर उससे बड़ा होता है।  
**वैसताना**—क्रि० सं० [ हि० वैसना ] रिधत करना। सैजाना।  
उ०—सिधि गुटका जो द्रिन्दि, समाई। पारदि मेल रूप  
वैसाई।—जायसी।

**वैशार**—संज्ञा पुं० दे० "बाकरी"।  
**वैठुला**—संज्ञा पुं० [ देग० ] मैसोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष

जो अथवा, दुंदेलखंड और बंगाल में पाया जाता है। इसकी  
पत्तियाँ टहनियों के सिरों पर गुच्छों के रूप में होती हैं और  
पशुओं के चारे के काम में आती हैं। इसकी एकड़ी बहुत  
मुलायम होती है।

**व्योनस**—संज्ञा पुं० [ प्र० ] (१) वह धन या रकम जो किसी को  
उसके प्रायशः के अतिरिक्त दी जाय। (२) वह धन जो किसी  
कर्मचारी को उसके पारिश्रमिक या वेतन के अतिरिक्त दिया  
जाय। पुरस्कार। पारितोषिक। बलिदान। (३) वह अति-  
रिक्त लाभ या मुनाफा जो सम्मिलित पूँजी से चलनेवाली  
कंपनी के शेयर-होल्डरों या डिप्लोमेटों को दिया जाय।

**व्योना**—संज्ञा पुं० [ सं० युना ] एक प्रकार की वनस्पति। वि० दे०  
"धूसरच्छद्र"।

**व्योला**—संज्ञा पुं० [ देग० ] (१) धातुर का भूसा। (२) रेत।  
याद।

**व्योडर**—संज्ञा पुं० [ प्र० ] वह विशाखा जो बोद्धिम हावस में  
रहता हो।

**व्योलनहार**—संज्ञा पुं० [ हि० बोलना + हार = वाह ( प्रत्यय० ) ]  
शुद्ध आत्मा। बोलता। उ०—पराधीन देव दीन हौं  
स्वाधीन मुसाई। बोलनहार सौ करे बलि विनय कि  
साई।—मुलसी।

**बोलसर**—संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—किरमिज  
नुकरा जरदे भले। रूपकरान बोलसर चले।—जायसी।

**बोलाचावली**—संज्ञा स्त्री० [ हि० बोचना + अनु० चवला ] यात-  
धील या आलाप का व्यवहार। जैसे,—गुमहारी उबकी  
बोलाचावली क्यों भन्द हो गई ?

**बौडी**—संज्ञा स्त्री० [ हि० दमरी ] दमड़ी। छदाम। उ०—जाँचि  
को बरेस देस देस को कलेस करे दैदें तो प्रसव है, बड़ी  
बड़ाई बौडिधि।—मुलसी।

**बौलसिरी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० बकुलश्री ] बकुल। मौलसिरी। उ०—  
अपने कर मुहि आपु हडि पहिनाई गर लाल। मौल सिरी  
औरे चड़ी बौलसिरी की माल।—बिहारी।

**ब्याज**—वि० [ हि० ब्याज ] व्याज पर दिया या लगाया हुआ (पन)।  
जैसे,—हमारे पास १००) धे, सो हमने व्याज दे दिपु।  
**ब्याहुला**—वि० [ हि० ब्याह + ल्ला (प्रत्यय०) ] विवाह संबंधी।  
विवाह का। जैसे,—ब्याहुले गीत।

**ब्योरती**—संज्ञा स्त्री० [ सं० बियर, हि० ब्योय ] बालों को संवारने  
की क्रिया या रंग। उ०—वेई का ब्योरनि, चई ब्योरी  
कीन बिचार। जिनहीं उरसरी मो हियो निनहीं सुरके पार।  
—बिहारी।

**ब्योरा**—संज्ञा पुं० [ सं० बियर ] (५) अंतर। भेद। फरक। उ०—  
वेई कर ब्योरनि चई ब्योरी कीन बिचार। जिनहीं उरसरी  
मो हियो निनहीं सुरके पार।—बिहारी।



प्रारंभ-संज्ञा पुं० दे० "प्रशास" । उ०—धनु भंग को शब्द गयो भेदि प्रलय्य को ।—केदाव ।

प्रारणदेव-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रारण को दान में दी हुई वस्तु । ( तिलालेख )

प्रारणप्रद-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वेदों का ज्ञाता । (२) प्रारण देव को जाननेवाला । प्रारणविद् । (३) सृष्टि के आदि में प्रारणप्रद से उपपन्न कवि नामक ऋषि की उपाधि । (४) एक प्रकार के प्रारणों की उपाधि ।

प्रिय-संज्ञा पुं० [ सं० ] पुल । मेनु । जैसे,—सोन प्रिय । हवयां प्रिय ।

प्रियेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंगलैंड और वेल्स ।

प्रोकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह व्यक्ति जो दूसरे के लिये सौदा करीबता और बेचना है और जिसे सौदे पर सँकड़े पीछे कुछ बँधी हुई दूबाली मिलती है । दूबाल । जैसे,—नीयर प्रोकर । पीस गुदूस प्रोकर ।

भंकार-संज्ञा पुं० [ भन्० भं + कार (प्रय०) ] विकट शब्द । भीषण नाद । उ०—कहूँ भीम भंकार कर्नाल साजें ।—केदाव ।

भँड़तिला-संज्ञा पुं० [ हिं० भँड़ + तिला ] (१) भँड़ताल नाम का गाना । (२) कोई ऐसा गाना जो व्यवस्थित रूप से या साज सामान के साथ न हो ।

भँडे-संज्ञा पुं० [ देस० ] धूँट नाम का शब्द या वृक्ष जिसकी छाल चमड़ा रँगने के काम में आती है । वि० दे० "धूँट" ।

भँयन-संज्ञा पुं० [ सं० भ्रमण ] भ्रमण । घूमन । फिरना । उ०—देखत खग निकट मृग खनन्हि जुत थकित बिसारि जहाँ तहाँ की भँयनि ।—तुलसी ।

भगन-वि० दे० "भग्न" । उ०—भगन किया भव धनुष, साल तुमको भव सालों ।—केदाव ।

भगना-संज्ञा पुं० [ हिं० भगना ] लड़ाई से भागा हुआ पशु या पक्षी ।

भगनी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० भगना ] बहुत से लोगों के साथ मिलकर भागने की क्रिया । भागद ।

कि० प्र०—रुदना ।—सचना ।

भगनेच्छुद्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वे गोप जो साक्षीदार के समान अनुभवयोगी गावों का पालन करते थे ।

विशेष—कौटिल्य के समय में ऐसे लोगों के अर्थात् भीमार, लंगरी, लली, दूब बुद्धने में बहुत तंग करनेवाली या किसी विशेष आदमी के हाथ से ही लगनेवाली और बड़े बड़े को मार डालनेवाली गोप रची जाती थीं ।

भइसाई-संज्ञा स्त्री० [ हिं० भाई ] भइभैनों की भइी जिसमें वे अनाज भूतने हैं । वि० दे० "भाइ" ।

मुहा०—भइसाई चिकना = कारवाय का मुर चुकना । "अच्छी चर होता । (स्वयं) ।

भइसास-संज्ञा स्त्री० [ हिं० भइसा ] जन में पैदा हुआ हुआ या सोच ।

मुहा०—भइसास निकालना = कुछ कह सुन कर या और किसी प्रकार मन में बैठा हुआ कुछ दूर करना । जैसे—तुम भी यह शक कर अपने मन की मइसास निकाल लो ।

भद्र अयक्षा-संज्ञा स्त्री० दे० "सविनय कानून मंगा" ।

भया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) ६२ हाथ लम्बी, ५६ हाथ चौड़ी और २६ हाथ ऊँची नाव । (युक्ति कल्पतरु) ।

भरत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) जैनों के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के उपेष्ट पुत्र का नाम ।

भरना-कि० प्र० [ सं० भरण ] भेटना । मिलना । उ०—भरी सखी सच भेटत फेरा । अंत कंत हों भएउ गुरेरा ।—जायसी ।

भरनी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० भरना ] (१) रेतों में बीज आदि बोने की क्रिया । (२) भरतों में पानी देने की क्रिया ।—सिचाई ।

भरभराहट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूजन । चरम ।

भरा जिनन-संज्ञा पुं० [ हिं० भरना + महीना ] बरसात के दिन महीनों खेतों में बीज बोए जाते हैं । उ०—लेह किनु खाइ जागि पाई पाया । भरा मास वैद सोइ गँवावा ।—जायसी ।

भरुआना-कि० प्र० [ हिं० मारी + आना (प्रय०) ] भारी होना । उ०—भावकु उभरिहीं भयो कसुकु पत्थी भएभाइ । सीप हरा के मिसि दिव्यो निसि दिन हेरत जाइ ।—विहारी ।

भरोटा-संज्ञा पुं० [ हिं० मार + ओटा (प्रय०) ] घास या लकड़ियों आदि का गट्टा । बोझ ।

भर्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] मरण पोषण का द्रव्य । लवण । गुजरा । विशेष—विशेष अवस्थाओं में राज्य की ओर से पत्नी को पति से 'भर्य' दिलाया जाता था । (कौ०) ।

भर्रा-संज्ञा पुं० [ भर से भ्रु० ] (१) झँसा । पट्टी । दम । बकमा । जैसे—एक ही भर्रे में तो वह सारा रूपया चुका देंगे ।

कि० प्र०—देना ।

भवनघासी-संज्ञा पुं० [ सं० भवनघासिन् ] जैनों के अनुसार आत्मार्थों के धार भेदों में से एक ।

भवौंछा-संज्ञा पुं० [ सं० भ्रमण ] फेरा । चक्कर । उ०—राते कँवल करहिं अलि भवौं । घूमहिं मेनि चहहिं अपसवौं ।—जायसी ।

भविल्ल-वि० दे० "भ्रमण" । उ०—केदाव की भविं भूपण की भविं भूपण भूतन में तनयां उपजाई ।—केदाव ।

भस्साकु-संज्ञा पुं० [ हिं० भस्सा ] पीने का वह तमराइ जो बहुत कटुभा या कटान हो । हलका और मीठा तमराइ ।

भस्सइ-वि० [ भ्रु० भस ] बहुत मोटा और मड़ा ( विशेषतः आदमी ) ।

भाइ-संज्ञा पुं० [ हिं० भाई ] (१) भाइपन । (२) भाई का काम । उ०—कहूँ भाइ भौल्यो कैं मान पायँन ।—केदाव ।

भौति-संज्ञा स्त्री० [ सं० भेद ] मर्यादा । धार । उ०—रहत रगत लज्यो जाति पाँति भौति । संदो नृपति को लाहली-भरौं न दूप नयो हौं ।—तुलसी ।

भाँवू-संज्ञा पुं० [ वि० भौषणा ] भाँवने या ताड़नेवाला । दूर से ही देखकर अनुमान कर लेनेवाला ।

भागानुप्रविष्टक-संज्ञा पुं० [ सं० ] गायों की रक्षा करनेवाला वह कर्मचारी जो गाय के मालिकों से दूध आदि की आमदनी की का दसवाँ भाग लेता था । ( कौ० )

भाग्य-लेशय-पत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वैद्यक का कागज । यह कागज जिनमें किसी ज्योतिषी के हिस्सेदारों के हिस्से लिखे हैं । ( शुक्र-नीति )

भांग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (८) प्राचीन काल का सोने का एक मान जिसकी २० तुल्य या २००० घल के बराबर होता था ।

भारत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (७) भारत युद्ध । घमासान लड़ाई । उ०—धरि एक भारत था पर अस्वारथ मेळ । जूषि कुंवर सय निवेद गोरा रहा अकेल ।—जायसी ।

भारतीयकरण-संज्ञा पुं० [ सं० भारतीय + करण ] किसी वस्तु या संस्था आदि को भारतीय बनाना अर्थात् उसमें भारतीयत्व या भारतीय-वास्तियों का प्राधिक्य करना । जैसे—सेना का भारतीयकरण ।

भार्गवेश-संज्ञा पुं० [ सं० भार्गव + देश ] परशुराम । उ०—अमेय भोज भोग भक्त भार्गवेश देविये ।—केशव ।

भाय निस्तोत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार किसी पदार्थ का विह्वल नाम जो उसके केषल वर्तमान स्वभाव को देख कर रखा गया हो ।

भाद्यमाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार आत्मा की शक्तिवत् शक्ति ।

भाद्यप्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार भाद्यना या विचार जिनके द्वारा कर्म तत्त्वसे आत्मा बंधन में पड़ता है ।

भाद्यलिंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] काम-वासना के संबंध में होनेवाली मानसिक क्रिया । संयोग संबंधी भाव या विचार । ( जैन )

भाद्यलेश्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार आत्मा पर रहनेवाली बाह्य भावों का आधार । विचारों की रजल जो आत्मा पर रहती है ।

भाद्यसंघर-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार वह शक्ति या क्रिया जिससे मन में नष्ट भावों का प्रदूषण दूर जाता है ।

भाषाभाष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार भाषा का अर्थभाव में अथवा वर्तमान का भूत में होनेवाला परिवर्तन ।

भावै-प्रत्यय [ वि० ] भाग । धा० । उ०—भावे चारिहु उग्र सति । भावे आगि वांडे जल । पूरी ।—जायसी ।

भाषाप्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (११) वह पत्र जिसमें कर्णों का निवेदन किया गया हो । ( शुक्र-नीति )

भिच्छु-संज्ञा पुं० दे० "भिच्छु" । उ०—भिच्छु बानि बानकी सु ।—शोक को घुलाहयो ।—केशव ।

भिनभिनाहट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भिनभिनाहट + आहट ( प्रथ० ) । भिनभिनाहट की क्रिया या भाव ।

भिन्नकूट- (सैम्य) वि० [ सं० ] विना सेनापति की (सेना) ।

विशेष—कौटिल्य ने भिन्नकूट और अंध ( अतिव्रित ) सेनाओं में से भिन्नकूट को अच्छा कहा है, क्योंकि वह सेनापति का प्रबंध हो जाने पर छंद सकती है ।

भिन्नगर्भ- (सैम्य) वि० [ सं० ] तितर पितर की हुई (सेना) ।

भिन्न मनुष्या-वि० स्त्री० [ सं० ] ( भूमि ) जिसमें भिन्न भिन्न जातियों, स्वभावों और पेशों के लोग बसते हैं ।

विशेष—कौटिल्य ने प्रचलित राज-शासन की रक्षा के विचार से ऐसे देन को अच्छा कहा है, क्योंकि उसमें जनता शासन को नष्ट करने के लिये एक नहीं हो सकती ।

भिन्न-सुद-वि० [ सं० ] जिसकी मुद्रा या मोहर टूट गई हो ।

मीमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( ५ ) ४० हाथ लंबी, २० हाथ चौड़ी और २० हाथ ऊँची ताय । ( युक्ति-कल्पतरु )

मुँहचाली-संज्ञा पुं० [ हि० मुँह + चाल = चलना, रिहना ] झूठकप । झूठोल । उ०—जनु मुँहचाल चलत महि परा ।

मुँहदर-संज्ञा पुं० [ हि० मुँह + दर ( प्र० ) ] जमीन के नीचे बना हुआ कमरा आदि । तहखाना । ( बुदेल० )

मुकड़ी-संज्ञा स्त्री० [ ? ] सफेद रंग की एक प्रकार की वनस्पति जो प्रायः बरसात के दिनों में अनाज, फल या अचार आदि पर उसके सड़ जाने के कारण उत्पन्न होती है ।

क्रि० प्र०—उगाना ।

मुकराई-संज्ञा स्त्री० दे० "मुकरायें" ।

मुकराई-वि० [ हि० मुकरायें ] जिसमें से मुकरायें भावे । सरी हुई दुर्गंधवाला । ( विनियतः अनाज )

मुकरायें-संज्ञा स्त्री० [ हि० मुकरा + यें ] वह दुर्गंध जो किसी पदार्थ के सड़ जाने और उसमें मुकड़ी लग जाने के कारण उत्पन्न होती है ।

मुक्तकाश्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] फल या कोसे का वस्त्र जिसमें साय पदार्थ रजल कर लाया जाता हो । ( कौ० )

मुखमुद्या-वि० दे० "मुखमरा" ।

मुग्गा-वि० [ दे० ] मूख । वैयकृक ।

संज्ञा पुं० तिल आदि का एक प्रकार का तैयार किया हुआ मिठा चूरा ।

क्रि० प्र०—टूटना ।

मुग्गहल-संज्ञा पुं० [ सं० मुग्ग ] मुग्गा नामक पशु ।

मुजिया-संज्ञा पुं० [ हि० भूजना=भुजना ] ( ३ ) यह तरकारी जो १० सूंजी ही भूनकर बनाई जाती है और जिसमें रसा या शोरवा नहीं होता । सूजी तरकारी । जैसे,—आलू का मुजिया । परवल का मुजिया ।

भुनघाई-संज्ञा स्त्री० [ हि० भुनकना ] ( ५ ) भुनवाने की क्रिया या

माव । (२) वह धन जो सुनवाने के बदले में दिया जाय ।  
 सुनाई । भाँज ।  
 सुनाई-संज्ञा स्त्री० दे० "सुनवाई" ।  
 सुस्नास-संज्ञा पुं० [ दे० ] पुरुष की इन्द्रिय । लिंग । (बाजारू )  
 सुस्नासी-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का बड़ा देसी ताला जो  
 प्रायः वृक्षों आदि में बंद किया जाता है ।  
 सुरसुरा-संज्ञा पुं० [ दे० ] उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार  
 की धरसाती घास जिसे गौएँ, बैल और घोड़े बहुत पसंद  
 करते हैं । इसका मेल देने से कड़े चारे नरम हो जाते हैं ।  
 पलंजी । हासा । गलमल ।  
 सुरसुराहट-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सुरसुरा + आहट (प्रत्य०) ] सुरसुरा  
 होने की क्रिया या भाव । सुरसुरापन ।  
 सुरा-वि० [ हिं० भूरा वा बैरा ? ] बहुत अधिक काहा । घोर  
 कृष्ण । जैसे,—बिलकुल काला सुरा सा आदमी तुम्हें  
 हँदने आया था ।  
 सुलकड़-वि० [ हिं० भूलना + अकड़ (प्रत्य०) ] जिसका स्वभाव भूलने  
 का हो । बातों को भूल जानेवाला ।  
 सुवपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] भूपति । राजा । उ०—भूपर भाऊ  
 सुवपति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँचो ।—मतिराम ।  
 सुई-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भूमि । पृथ्वी ।  
 सुआ-संज्ञा स्त्री० दे० "सुआ" ।  
 सूरी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० सूरा या सूआ ] रूई के समान गुलाबम  
 पस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा । उ०—तुईँ प मरदि होह  
 जरि सुई । अथहुँ उघेलु कान के रूई ।—जायसी ।  
 सूजी-संज्ञा स्त्री० दे० "सुजिया" ।  
 भूमि-भोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राष्ट्र या राजा जिसके पास  
 भूमि बहुत हो ।  
 विशेष—पुराने आचार्य्य भूमिभोग की अपेक्षा हिरण्य-भोग  
 (जिसके पास सोना या धन बहुत हो ) को अच्छा मानते  
 थे, क्योंकि उसे, धर्म का ध्यय भी कम उठाना पड़ता है  
 और ध्यय के लिये धन भी उसके पास पर्याप्त रहता है ।  
 पर कौटिल्य ने भूमि को ही सब प्रकार के धन का आधार  
 मानकर भूमिभोग को ही अच्छा बताया है ।  
 भूमि-संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) यह संधि जो परस्पर मिलकर  
 कोई भूमि प्राप्त करने के लिये की जाय । (२) शत्रु के  
 साथ यह संधि जो कुछ भूमि देकर की जाय ।  
 विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि इस संधि में शत्रु को  
 भूमि ही भूमि देनी चाहिए जो प्रत्यादेया हो या जिस पर  
 शत्रु या असमर्थ और असक्त बसे हों अथवा जिसके सम्म-  
 लने में धन जन का व्यय अधिक होता हो ।  
 भृगु-मुष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] परशुराम । उ०—पंचमुख छमुक्ष

भृगुमुष्य मत् अमुर सुर सर्व सरि समर समार्य स्रो ।  
 —तुलसी ।  
 भृतक बल-संज्ञा पुं० [ सं० ] तनखाह लेकर लड़नेवाली सेना ।  
 नीकर फौज ।  
 भोग-वि० [ दे० ] जिसकी गाँलों की दोनों पुतलियाँ देलने में  
 परापर न रहती हों, देखी सखी रहती हों । देता । भंगर-सखी ।  
 भोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का साधु या  
 संत । ( साधुओं की परि० )  
 भेंसवाली-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार की बेल जिसकी  
 पत्तियाँ पाँच से आठ इंच तक लम्बी होती हैं । यह उत्तरी  
 और दक्षिणी भारत में पाई जाती है । यह वर्षा ऋतु में  
 फूलती और जाड़े में फलती है ।  
 भेंसिया गुगल-संज्ञा पुं० [ हिं० भेंसिया + गुगल ] एक प्रकार का  
 गुगल जिसका व्यवहार औषधि के रूप में होता है ।  
 भेंसिया लहसुन-संज्ञा पुं० [ हिं० भेंसिया + लहसुन ] एक प्रकार  
 का लाल दाग या निशान जो प्रायः गाल या गारदन आदि  
 पर होता है । लच्छन ।  
 भैद्य-शुद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] मिश्रा संबंधी शुद्धि । मिश्रा माँगने  
 और ग्रहण करने के संबंध की शुद्धि । ( जैन )  
 भैरव भोली-संज्ञा स्त्री० [ सं० भैरव + भोली ] एक प्रकार की लंबी  
 होली जो प्रायः साधुओं आदि के पास रहती है ।  
 भोकस-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार के राक्षस । उ०—कीर्ति  
 राक्षस भूत परीता । कीर्तिभोक्ष देव दहता ।—जायसी ।  
 भोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२१) आय । आमदनी । (कौ०) (२२)  
 भूमि या संपत्ति का व्यवहार ।  
 भोगपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र जो राजा को डाली या उर-  
 ( ) हार भेजने के संबंध में लिखा जाय । (शुक्नीति) ।  
 भोग-भूमि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार वह लोक जिसमें  
 किसी प्रकार का कर्म नहीं करना पड़ता, और सब प्रकार की  
 आनंदयुक्तताओं की पूर्ति केवल कल्पवृक्ष के द्वारा हो जाती है ।  
 भोगलाम-संज्ञा पुं० [ सं० ] दिव्य रूप अन्न के बदले में ध्यान के रूप  
 में कुछ अधिक अन्न जो फलल तीयार होने पर लिखा जाय ।  
 भोगघेतन-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह धन जो किसी धरोहर रखी हुई  
 वस्तु के व्यवहार के बदले में स्वामी को दिया जाय ।  
 भोग-व्यूह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह व्यूह जिसमें सैनिक एक दूसरे  
 के पीछे खड़े किए गए हों । (कौ०) ।  
 भोग्याधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] धरोहर की वह रकम या वस्तु जो  
 कागज पर लिख ली गई हो ।  
 भोधार-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का घोड़ा । उ०—मुद्रकी भी  
 हिरमिजी पूराकी । तुरकी कहे भोधार बलाकी ।—जायसी ।  
 भौंर-संज्ञा पुं० [ ? ] मुद्रकी घोड़ा । उ०—लील समंद बाल जग  
 जाने । हाँसल भौर गियाह यलाने ।—जायसी ।

**ध्रम-पंहा** पुं० [ सं० सभ्रम ] मान । प्रलिप्ता । इज्जत । उ०—जस अति संकट पंडवन्ह भयउ भीव बँदि छोर । तस परयस पिउ काइहु राखि लेहु ध्रम मोर ।—जायसी ।  
**पंहा पुं०** [ सं० ] (१) योगियों के योग में होनेवाले पंच प्रकार के विषयों में से एक प्रकार का विषय या उपसर्ग जिसमें योगी सब प्रकार के आचार आदि का पटियाग कर देता है और उसका मन निरबल्य की भाँति इधर उधर भटकता रहता है । ( मार्कण्डेय पु० )

**मंग-संहा** स्त्री० दे० "मँग" । उ०—इसुम फूल जस मरदै निरँग देख सब अँग । पंचावति भइ यारी, चूस केस औ मँग ।—जायसी ।

**संहा पुं०** [ देरा० ] आठ की संख्या । ( दलाल )  
**मंगल कलश-संहा** पुं० [ सं० ] जल से भरा हुआ वह पड़ा या कलश जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर पूजा के लिये रखा जाता है ।

**मंगल घट-संहा** पुं० दे० "मंगल कलश" । उ०—परिवृण सिंदूर पर कैयी मंगल घट ।—केशव ।

**मंगलाय-संहा** पुं० [ दल० मंग = पाठ + आय (पठ०) ] अठारह की संख्या । ( दलाल )

**मंजन-संहा** पुं० [ सं० मज्जन ] (१) वह पूर्ण जिसकी सहायता से मल कर दौत साफ किए जाते हैं । (२) स्थान । नहाना । उ०—ध्वजन दे, निकसी नित नैनन मंजन के अति धर्म सँवारे ।—मतिराम ।

**मँजना-कि०** प्र० [ सं० मज्जन ] (१) रगड़ कर साफ किया जाना । मँजना जाना । (२) किसी कार्य को ठीक तरह से करने की योग्यता या शक्ति आना । अभ्यस्त होना । मरक होना । जैसे,—लिखने में हाथ मँजना ।

**मँजार्द-संहा** स्त्री० [ हि० मँजना ] (१) मँजने की क्रिया या भाव । (२) मँजने की मजदूरी ।

**मँजाना-कि०** स० [ हि० मँजना का प्रेर० ] मँजने का काम दूसरे से कहाना । किसी को मँजने में प्रवृत्त करना ।  
 कि० स० मँजाना । मल कर साफ करना । उ०—मृत युत सी कया मँजार्द । सीमा काय विनत सिधि पाई ।—जायसी ।

**मँजारी-संहा** स्त्री० [ सं० मंजार्द ] बिल्ली । विशाल । उ०—कइति न देवर की लुबत कुट्टिय कइइ बरालि । पंवरगत मँजार विग सुक यौं वृकति बालि ।—बिहारी ।  
**मँजाघट-संहा** स्त्री० [ हि० मँजना ] (१) मँजने या मँजने का भाव । (२) मँजने या मँजने की क्रिया । (३) किसी काम में हाथ का मँजना । हाथ की सफाई ।  
**मँजिल-संहा** स्त्री० [ म० ] (१) पाया के मार्ग में टट्टरने का

स्थान । पड़ाव । (२) वह स्थान जहाँ तक पहुँचना हो । (३) मकान का खंड । मरातिव ।

**मँजूपा-संहा** स्त्री० [ सं० ] ( ४ ) पिंजड़ा । उ०—आहु नरापन फिरि जग खँदा । आहु सो सिंह मँजूपा मँदा ।—जायसी ।  
**मँमारा-कि०** वि० [ सं० मय्य ] मय्य में । बीच में ।

**मँमियार-संहा** वि० [ सं० मय्य, प्रा० मयक ] मय्य का । बीच का । उ०—नव द्वारा राखे मँमियारा । दसवें मँदि के दिपउ किवारा ।—जायसी ।

**मँहना-कि०** स० [ सं० मँहन ] (३) परिष्कृत करना । भरना । छाना । उ०—बँह कोदंड रखौ मण्डि नवपंड को ।—केशव ।

**मँहल-संहा** पुं० [ सं० ] (२) राजा के प्रधान कर्मचारियों का समूह । वि० दे० "अष्ट-अकृति" ।

**मँहल ब्यूह-संहा** पुं० [ सं० ] वह ब्यूह जिसमें सैनिक चारों ओर एक घेरा सा बना कर खड़े किए जायें । ( की० )

**मँडारी-संहा** पुं० [ सं० मंडल ] (१) शाय । डलिया । उ०—सुअँहि को पूछ । पतंग-मँडारे । धल न देख आँछे मन मारे ।—जायसी ।

**मंत्र-भेदक-संहा** पुं० [ सं० ] सरकारी गुप्त सलाह को प्रकाशित करनेवाला । ( चंद्रगुप्त के समय में इस अथराय में जीभ उखाड़ लेना दंड था । )

**मंत्र युद्ध-संहा** पुं० [ सं० ] केवल बात चीत या यहस के द्वारा शत्रु को घब में करने का प्रयत्न ।

**विशेष-मौलिक्य** ने अर्थशास्त्र में इस विषय का एक अलग प्रकरण ( १६३ पृ० ) ही दिया है ।

**मंत्र शक्ति-संहा** स्त्री० [ सं० ] युद्ध में चतुराई या चालाकी । ज्ञानबल ।

**मंघरा-संहा** स्त्री० [ सं० ] (२) १२० हाथ लंबी, ६० हाथ चौड़ी और ३० हाथ ऊँची नाव । ( युक्ति कल्पवृक्ष )

**मंशा-संहा** स्त्री० [ म० ] कामना । इच्छा । इरादा । जैसे,—मेरी मंशा तो यही थी कि सब लोग वहाँ चले ।

**मँसा-संहा** स्त्री० [ देत० ] एक प्रकार की घास जो बहुत शीघ्रता से बढ़ती और पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकाक समझी जाती है । मकड़ा । वि० दे० "मकड़ा" ।

**मंकर-संहा** पुं० [ म० ] यह मकान जिसके अंदर कोई कबर हो । कबर के ऊपर बनी हुई इमारत । समाधि-मंदिर ।

**मंकर-कुंडल-संहा** पुं० [ सं० मकर + कुंडल ] मकर के आकार का कुंडल । उ०—धवन मंकर कुंडल लसत मुख सुखमा पुंछ ।—केशव ।

**मंकर तेंदुआ-संहा** पुं० [ मकर + तेंदुआ ] आवतुस । काकतेंदुक ।

**मंकोह-संहा** स्त्री० दे० "बनोलन" ।

मकड़-संज्ञा पुं० [ हि० मकड़ी ] बड़ा मकड़ा । नर मकड़ी ।  
 मखीरा-संज्ञा पुं० [ हि० मखीरा ] राहद । मखु ।  
 मखौल-संज्ञा पुं० [ देश० ] हँसी उठानेवाला । मजाक । परिहास ।  
 मखौलिया-संज्ञा पुं० [ हि० मखौल + रया (प्रत्य०) ] वह जो सदा  
 मखौल करता हो । हँसी उठानेवाला । मसखरा ।  
 दिखुगिवाज ।  
 मुद्दा-मखौल उठाना = किसी की हँसी उठाना । परिहास  
 करना ।  
 मगर-संज्ञा पुं० [ सं० मग ] अराकान प्रदेश जहाँ मग नाम की  
 जाति बसती है । उ०—बला परबती लेह कुमाऊँ । खसिया  
 मगर जहाँ लगी नाऊँ ।—जायसी ।  
 मगरा-वि० [ म० मगर ] ( १ ) अभिमानी । घमंडी । ( २ )  
 सुस्त । अकर्मण्य । काहिल । ( ३ ) छट । डीठ । ( ४ )  
 हठी । जिदी । ( ५ ) उदंड ।  
 मगरी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] डालूप छप्पर का बीच-का या सय  
 से ऊँचा भाग । जैसे,—ओछती का पानी मगरी चढ़ा  
 है । ( कहा० )  
 मधौना-संज्ञा पुं० [ सं० मेघ + वण ] नीले रंग का कपड़ा । उ०—  
 चिक्का चीर मधौना लोने । मोति लाग औ छापे सोने ।  
 —जायसी ।  
 † संज्ञा पुं० दे० “मधवा” ।  
 मचकाना-कि० सं० [ मचु ] मचकने में प्रवृत्त करना । मुकाना ।  
 मचमचाना- कि० प्र० [ मचु ] काम के बहुत अधिक आवेश  
 में होना । बहुत अधिक कामातुर होना ।  
 मचमचाहट-संज्ञा स्त्री० [ हि० मचमचाना + भाट (प्रत्य०) ] मच-  
 मचाने की क्रिया या भाव । बहुत अधिक काम का  
 आवेश ।  
 मचला-वि० [ हि० मचलना ] ( २ ) मचनेवाला । हट करनेवाला ।  
 हठी । उ०—हौं मचला हँ चौंदिहौं जेहि लगी अंगो हँ ।  
 —तुलसी ।  
 मचलापन-संज्ञा पुं० [ हि० मचला + पन (प्रत्य०) ] मचला होने का  
 भाव । कुछ जानते हुए भी खुर रहने का भाव ।  
 मचाना-कि० सं० [ ? ] मिला करना । गंदा करना ।  
 मचुला-संज्ञा पुं० [ देश० ] गिरगिटी नामक वृक्ष जो प्रायः बगों  
 में शोभा के लिये लगाया जाता है । वि० दे० “गिरगिटी” ।  
 मछरंगा-संज्ञा पुं० [ हि० मछरंग = मछरी ] एक प्रकार का जल-पक्षी  
 जो मछलियों पकड़ कर खाता है । राम-चिड़िया ।  
 मजारी-संज्ञा स्त्री० [ सं० मजारी ] जिदी । बिडाल । उ०—(क)  
 विरह मयूर नाम यह नारी । तू मजारी करु बैस गोहारी ।  
 —जायसी । (ख) सटु सुभार के पाऊ बारी । सुनि धाप  
 जस धाय मजारी ।—जायसी ।  
 मजीठी-वि० [ हि० मजीठ ] मजीठ के रंग का । लाल । सुल ।

उ०—ओहि के रंग भा दाय मजीठी । मुकुना लेई तो  
 धुँचकी दीठी ।—जायसी ।  
 मभ्र-वि० [ सं० मध्य + भ्रम ] मध्य । उ०—लगाँ बेलि करे  
 मंस नीरा । हंस लजाई धैठ ओहि तीरा ।—जायसी ।  
 मभ्रका-संज्ञा पुं० [ हि० माया + भ्रम ] विषाद के दूसरे या  
 तीसरे दिन होनेवाली एक प्रकार की रस जिसमें वा-पत्र  
 के लोग कन्या के घर जाकर उसका सुख देखते और उसे  
 कुछ नगद तथा आभूषण आदि देते हैं । सुँहनेवनी ।  
 ( पूर्य ) ।  
 मटिया फूस-वि० [ हि० मिट्टी + फूस ] बहुत अधिक दुबल और  
 सूद । जर्जर ।  
 मट्टर-संज्ञा पुं० [ देश० ] सुस्त । काहिल ।  
 मठारना-कि० सं० [ हि० मठारना ] ( १ ) रात में गोलाई या  
 सुबोलीपन होने के लिये उसे “मठारना” नामक हवाई मे  
 धीरे धीरे पीटना । ( २ ) गूँधे हुए आटे में लेस उबलकरने  
 के लिये उसे मुच्चियों से बार-बार दबाना । मुच्छी देना ।  
 ( ३ ) किसी बात को बहुत धीरे धीरे या बनावना करना  
 कहना । बात को बहुत विस्तार देना ।  
 मड़क-संज्ञा स्त्री० [ म्रु ] किसी बात के अंदर छिपा हुआ हिंसा  
 भीतरी रहस्य । जैसे—तुम उसकी बात की मड़क  
 नहीं समझते ।  
 मड़ा-संज्ञा पुं० [ हि० मरी ] बड़ी कोठरी । कमरा ।  
 मदी-संज्ञा स्त्री० [ सं० मट ] ( ६ ) नाथ संप्रदाय के सन्यासी की  
 समाधि जहाँ प्रायः कुछ साधु लोग रहते हैं ।  
 मणि सोपानक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सोने के तार में पिरोए हुए  
 मोतियों की माला जिसके बीच में कोई रत्न हो । ( को० )  
 मतली-संज्ञा स्त्री० [ हि० मिचली ] जी मिचलाने की क्रिया या  
 भाव । है होने की इच्छा ।  
 मताधिकार-संज्ञा पुं० [ सं० ] बोट या मत देने का अधिकार जो  
 राजा या सरकार से प्राप्त हो । व्यवस्थापिका परिषद  
 व्यवस्थापिका सभा आदि प्रतिनिधिक कहलानेवाली संस्थाओं  
 के सदस्य या प्रतिनिधि निर्वाचित करने में बोट या मत देने  
 का अधिकार ।  
 मति-प्रत्ये० [ सं० मत् या वत् ] सदस्य । समान । उ०—धूम  
 समूह गिरल बातक ज्यों तृपित जानि मति फन की ।  
 —तुलसी ।  
 मतिम-प्रत्ये० [ सं० मत् या वत् ? ] सदस्य । समान । ( पूर्य )  
 मतिमाह-वि० [ सं० मतिमत् ] मतिमात्र । बुद्धिमात्र । समस-  
 दार । उ०—पुनि सलार कादिम मतिमाहौं । लौई दान  
 उभै निति यौहा ।—जायसी ।  
 मरिच्यनी सीमा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दो गाँवों के बीच में पड़ने-  
 वाली नदी जो सीमा के रूप में हो । ( स्मृति )

मद्दगार-संज्ञा पुं० [ म० मद्द + गार (प्रत्य०) ] मद्द करने-  
वाला। सदायता करनेवाला। सदायक।

मद्दन-कद्दन-संज्ञा पुं० [ सं० मद्दन + क्दन ] शिव । महादेव ।  
उ०—अय ही यह कहि देल्यो मद्दन-कद्दन को दंड ।—केशव ।

मद्दन-मल्लिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( २ ) मल्लिका छंद का एक  
नाम । उ०—अष्ट वरग शुभ सहित क्रम शुभ छन्द केदाव  
दास । मद्दन-मल्लिका नाम यह कीर्ति छंद प्रकाश ।—केशव ।

मद्दफन-संज्ञा पुं० [ म० ] यह स्थान जहाँ मुरदे गाड़े जाते हैं ।  
कब्रिस्तान ।

मद्दमत्त-वि० [ सं० ] ( १ ) ( हाथी ) जो मद्द बहने के कारण  
मस्त हो । उ०—जिन हाथन हडि हरेपर हनेत हरिणीरिपु  
मद्द । तिन न करत संहार कहा मद्दमत्त मय्यद्द ।—  
केशव । ( २ ) मस्त । मत्तवाला ।

मद्दमिच्छा-वि० [ १ ] कल्याण करनेवाला । मंगलकारक । उ०—  
हुलसी संगति पांच की सुजनहि होति मद्दमि । अ्यों हरि  
रूप सुताहि तैं कौन छुहारी आनि ।—हुलसी ।

मद्दिया-संज्ञा स्त्री० [ म० भाद्र ] पशुओं में स्त्री जाती । स्त्री-जाति  
का जानवर । शैले,—मद्दिया कव्जूर । मद्दिया कौवा ।

मद्दधाना-संज्ञा पुं० [ देण० ] एक प्रकार की घांस जो पशुओं के  
लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है । मकड़ा । मघाना ।  
वि० दे० "मकड़ा" ।

मद्दधुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ३ ) उद्धव । उ०—पगी प्रेम नैदलाल  
के, हमें न भाव जोग । मद्दधुप राजपद पाय के, भीख न  
मौगत लोग ।—मतिराम ।

मद्दधुराज-संज्ञा पुं० [ सं० ] मिर्गाई । मिर्गाहा । उ०—सायं मद्द-  
राज, नहि पाय पनही धर ।—केशव ।

मद्दधम राजा-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह राजा जो कई परस्पर विरुद्ध  
राजाओं के मध्य में हो ।

मद्दधिवेष-इसमें इतनी शक्ति का होना आवश्यक है कि प्राति  
तथा युद्ध काल में दोनों पक्षों के निपुट तथा अनुपुट में  
समर्थ हो ।

मद्दधम-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( ७ ) २४ हाथ लंबी, १२ हाथ  
चौड़ी और ६ हाथ चौड़ी नाव । ( सुक्ति-कल्पतरु )

मद्दधमोक्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) जैनों के अनुसार यह मध्य-  
पर्वी लोक को संकेत पर्वत पर १०००००० योजन की ऊँचाई  
पर है ।

मद्दधमंग-संज्ञा पुं० [ सं० मंग + धमंग ] अद्विकाधम के पुरुष पर्वत  
का नाम ।

मद्दधरोचन-वि० [ सं० मन + रोचन ] मन को सुगम करनेवाला ।  
सुंदर । उ०—जापर भीर पयो मद्दधरोचन लोक विरोचन  
की संधिरी है ।—केशव ।

मद्दधसो-संज्ञा स्त्री० [ देण० ] एक प्रकार की घांस जो बहुत शीघ्रता  
से बढ़ती और पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी  
जाती है । मकड़ा । मघाना । खमकरा । वि० दे० "मकड़ा" ।

मद्दधसाकर-वि० [ हि० मन्सा + कर ] एक देवी जो साँपों  
के कुत्र की अधिष्ठात्री मानी जाती है । प्रायः लोग साँप के  
काटने पर इसकी मन्त्र मानते हैं ।

मद्दधवैग-संज्ञा पुं० [ सं० ] चमड़े आदि का बना हुआ एक प्रकार  
का छोटा घुड़गा जिसके अंदर कई खाने होते हैं जिनमें खप,  
देवांगी आदि रखते हैं ।

मद्दधव्य-मणुना-संज्ञा स्त्री० दे० "मद्दधमणुना" ।

मद्दधव्य-संज्ञा स्त्री० [ हि० मन्सा + देवी ] एक देवी जो साँपों  
के कुत्र की अधिष्ठात्री मानी जाती है । प्रायः लोग साँप के  
काटने पर इसकी मन्त्र मानते हैं ।

मद्दधवैग-संज्ञा पुं० [ सं० ] चमड़े आदि का बना हुआ एक प्रकार  
का छोटा घुड़गा जिसके अंदर कई खाने होते हैं जिनमें खप,  
देवांगी आदि रखते हैं ।

मद्दधव्य-मणुना-संज्ञा स्त्री० दे० "मद्दधमणुना" ।

मद्दधहार-संज्ञा स्त्री० [ हि० मन + हरना ] शक्ति । वृत्ति । उ०—  
कुरला काम करि मनुहारी । कुरला जेहि नहि सोन सुनारी ।

मद्दधगत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] कामदेव ।

मद्दधघणो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार वे सूक्ष्म तत्व  
जिनसे मन की रचना हुई है ।

मद्दधलो-संज्ञा पुं० [ देण० ] ( १ ) घोबिन नाम का छोटा पक्षी  
जिसके पेट पर काली धारियाँ होती हैं । ( २ ) छोटा और  
प्यारा बच्चा ।

मद्दधमा-संज्ञा पुं० [ मनु० ] ( १ ) स्तन । छाती । ( २ ) जल ।  
पानी । ( बालक )  
संज्ञा पुं० दे० "माता" ।

मद्दधसुता-संज्ञा स्त्री० [ सं० मय + सुता ] मय दागव की कन्या,  
मद्दधदेवी । उ०—मय की सुता र्ही को है, मोहनी है  
मोह मन, भांगु लौं न सुनी सु ती मनन निहारिये ।—केशव ।

मद्दधकज-संज्ञा पुं० [ म० ] ( १ ) दूध का मध्य बिंदु । ( २ )  
प्रधान वा मध्य स्थान । केंद्र ।

मद्दधशांसा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शीघ्र मरने की हृष्ट्या । मरती  
मरने की कामना । ( जैन )

मद्दधरियम-संज्ञा स्त्री० [ म० ] ( १ ) यह बालिका जिसका विवाह  
न हुआ हो । कुमारी । कन्या । ( २ ) ईसा मसीह की  
माता का नाम । ( कहते हैं कि इन्हें कौमार अवस्था में ही  
विना किसी पुरुष के संयोग के, ईश्वरी माया से, गर्भ रई  
गया था जिससे महात्मा मसीह का जन्म हुआ था । )  
( ३ ) पतिव्रता और साध्वी स्त्री ।

मद्दधरियम का पंजा-संज्ञा पुं० [ म० मरियम + हि० पंजा ] एक  
प्रकार की सुगंधि वनस्पति जिसका अंशदार हृद्य के पंजे  
का सा होता है । ऐसा प्रसिद्ध है कि ईसा मसीह की  
माता मरियम ने प्रसव के समय इस वनस्पति पर हाथ

रखा था, जिससे इसका आकार पंजे का सा हो गया। इसी कारण इसके संबंध में यह भी प्रसिद्ध हो गया है कि प्रसन्न पीढ़ा के समय गर्भवती स्त्री के सामने इसे रख देने से पीढ़ा शांत हो जाती है और सहज में तथा शीघ्र प्रसन्न हो जाता है।

**मरियल-वि०** [ हि० मरणा + शक (प्रत्य०) ] बहुत दुर्बल। दुबला और कमजोर।

**यौ०**—मरियल दृष्ट = बहुत दुस्त या कमजोर आदमी।  
**मच्छंठ-संज्ञा पुं०** [ मं० ] व्यापार वाणिज्य करनेवाला। व्यापारी। सौदागर।

**प्रदल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पलायन के रंग का एक प्रकार का याजा जिसका व्यवहार प्रायः बंगाल में कीर्तन आदि के समय होता है। मादल।

**मलका-संज्ञा स्त्री०** [ म० भक्तिः ] पादसाह या महाराज की पदराशि। महारानी।

**मलकुल भौत-संज्ञा पुं०** [ म० ] मुसलमानों के अनुसार वह फरिश्ता जो अंत समय में प्राण लेने के लिये आता है।

**मलता-वि०** [ हि० मलना ] मला या घिसा हुआ (सिका)। जैसे—मलता पसा, मलती अठनी।

**मलमलाना-कि०** म० [ मनु० ] पश्चात्ताप करना। अफसोस करना। पछताना।

**मलमलाइट-संज्ञा स्त्री०** [ मनु० ] मलमलाने की क्रिया या भाव। पश्चात्ताप। अफसोस।

**मलयुग-संज्ञा पुं०** दे० "कलियुग"। उ०—नाम और अर्थ लगे वष्यो मलयुग जग जेरो। अर्थ गरीब जन पोपिय पाययो न हेरो।—तुलसी।

**मलेपंज-संज्ञा पुं०** [ दि० ] अधिक अवस्था का घोड़ा। बुढ़ा घोड़ा।  
**मलहा बेल-संज्ञा स्त्री०** [ दि० ] मौला नाम की बेल जो प्रायः चूड़ों पर चढ़कर उन्हीं बहुत अधिक हानि पहुँचाती है। वि० दे० "मौला"।

**मसानिया-संज्ञा पुं०** [ हि० मसान (शमशान) + न्या (प्रत्य०) ] (१) शमशान पर रहनेवाला डोम। (२) वह जो शमशान पर रह कर किसी प्रकार की साधना करता हो। (३) वह जो श्राद्ध कैंकर भूत-प्रेत आदि उत्तारता हो। सयाना। ओहा।

**मसियर-संज्ञा पुं०** दे० "मसाल"। उ०—चहुँ दिसि मसियर पर मखत चहाई। सूजन चढ़ा चँद के ताई।—जायसी।

**मसियार-संज्ञा पुं०** दे० "मसाल"।

**मसियार-संज्ञा पुं०** दे० "मसाल"।

**मसीमा-संज्ञा पुं०** [ दे० ] मोटा अर्थ। कड़व।  
**मसीहा-संज्ञा पुं०** [ फा० ] (१) ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह। (२) वह जो मृतकों को जीवित करता हो।

**विशेष**—प्रायः उर्दू और फारसी काव्यों में प्रेमी या प्रेमिका के लिये इस शब्द का व्यवहार होता है।

**मसीहाई-संज्ञा स्त्री०** [ फा० ] (१) मसीहा का भाव। मसीहापन। (२) मृतक को जीवित करने की शक्ति। मरे हुए को जिलाने की शक्ति।

**मसेवरा-संज्ञा पुं०** [ हि० मांस + वरा (प्रत्य०) ] मांस की पत्नी चीजें। जैसे,—कोफता, कड़ाव आदि। उ०—कीन्ह मसेवरा सोसि रसोई। जो किछु सबै माँसु सीं होई।—जायसी।

**मसोसा-संज्ञा पुं०** [ हि० मसोसना ] (१) मानसिक दुःख। मन में होनेवाला रंज। (२) पश्चात्ताप। पछतावा।

**महत्ता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) महत्त्व। विज्ञान शक्ति। (२) महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

**महना-कि०** सं० [ सं० मथन ] (२) किसी बात या विषय का आवश्यकता से बहुत अधिक विवेचन करना। बहुत पिछ-पिचन करना।

**यौ०**—महना मथन = धर्म का बहुत अधिक वाद-विवाद करना।

**महरा-संज्ञा पुं०** [ हि० महला ] (३) सरदार। नायक। उ०—दसवें दौंव के गा जो दसहरा। पलटा सोह नाव लेई महरा—जायसी।

**महसूली-वि०** [ म० ] जिस पर किसी प्रकार का महसूल हो या लग सकता हो। महसूल के योग्य।

**महा-संज्ञा पुं०** [ हि० महना ] महा। छाल। उ०—रीसि वृक्षी सय की प्रतीति प्रीति पृथी द्वार वृध को जन्यो पिबत कूँकि कूँकि मझो हौं।—तुलसी।

**महात्तय-व्यय-निवेश-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह उपनिवेश या भूमि जिसके रखने में धन का बहुत खर्च हो।

**विशेष**—कौटिल्य का मत है कि ऐसे प्रदेश को या तो पेष देना चाहिए अथवा उसमें अपराधियों, राजद्रोहियों, प्रमादियों आदि को भेज देना चाहिए।

**महानसाबलेही-संज्ञा पुं०** [ सं० ] चीका खराब करनेवाला। (चंद्रगुप्त मौर्य के समय में जो लोग ब्राह्मण के चीके को छू कर अथवा और किसी प्रकार खराब कर देते थे, उनको जीव उड़ाई ली जाती थी)।

**महापदा-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१०) जैनों के अनुसार महा हिमवार पर्वत पर के जलाशय का नाम।

**महापुंडरीक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] जैनों के अनुसार रविम पर्वत पर के बड़े जलाशय या झील का नाम।

**महाप्रतिहार-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (२) नगर में शानि रखनेवाला अधिकारी। कोतवाल।

**महामरा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] कुलजन। पाना की जड़।  
**महामंत्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सब से बड़ा मंत्र जिसकी

सहायता से किसी काम का होना निश्चित हो। (२) उच्छ्रित-मंथ। अथवी और कविता संज्ञाह। उ०—राजा राजपुरोहितानि सुहृदो मंत्री महामंत्र-दा।—केवल।

**महामत्स्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार वह बहुत पक्षी मछली जो स्वयंभरमय सागर में थी।

**महाशुक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार दूसरे स्वर्ग का नाम।

**महासत्ता-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार वह विष-व्यापिनी सत्ता जिसमें विष के समस्त जीवों और पदार्थों की सत्ता अंतर्भूत है। सबसे पक्षी और प्रधान सत्ता जो सब प्रकार की सत्ताओं का मूल आधार है।

**महा हिमवान्-संज्ञा** पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार दूसरा पर्वत जो हिमवत और हरि नाम के दो हिस्सों में विभक्त है।

**महिपाउर-संज्ञा** पुं० [ हिं० ] मही = पहा + पाउर = चावल ] मछे में पका हुआ चावल। उ० भाटा महि महिपाउर नाथा। भीज धरा नैनु जनु खावा।—जायसी।

**महेरा-संज्ञा** पुं० [ हिं० ] मही + परा ( श्रव० ) ] मही । मरा। उ०—जस विट होह जराह कै तस जिउ निरमल होह। महि महेरा वृरि करि भोग करै सुख सोह।—जायसी।

**महेरी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] महेरी। महेरी। पार्वती। उ०—दिय महेस जो कहै महेसी। कित सिर नाथी प परदेसी।—जायसी।

**महेसुर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] महेर। ( १ ) महेर। ( २ ) माहे-श्वर नामक शैव सम्प्रदाय। उ०—कोह सु महेसुर जगाम जती। कोह एक परसि देवी सती।—जायसी।

**महोछा-संज्ञा** पुं० [ सं० ] महोत्सव ] सत्रियों में होनेवाला उनके एक प्रसिद्ध महानाम ( याथा लाहल जसराय ) का पूजन जो धातव्य भास के कृष्ण पत्र में होता है।

**महोली-संज्ञा** स्त्री० [ देश० ] पापवी नामक वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती और इमारत के काम में आती है। वि० दे० "पापवी"।

**मौज-संज्ञा** स्त्री० [ देश० ] ( १ ) दूधलेही भूमि। ( २ ) तराई ! कछार। ( ३ ) वह भूमि जो किसी नदी के पीछे हट जाने के कारण निकल आती है। मंगवरार।

**मौ-जाया-संज्ञा** पुं० [ हिं० ] मौ + जाया = जात ] [ स्त्री० ] मौंवार ] मौं से उत्पन्न, सगा भाई।

**माइका-संज्ञा** पुं० [ भं० ] अंबरक। अमक।

**माइन-संज्ञा** स्त्री० [ भं० ] ( १ ) खान। ( २ ) बारूद की सुरंग।

**मान्नारिटी-संज्ञा** स्त्री० [ भं० ] ( १ ) अल्प संख्या। आधे से कम संख्या। ( २ ) एक पाठों या दल जिसके षोडश कर्म हों।

**मोई-संज्ञा** स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल मान् से मिलता जुलता होता है और जिसका व्यवहार प्रायः हकीम लोग औषधि के रूप में करते हैं।

**माई लाई-संज्ञा** पुं० [ भं० ] लाई तथा हाइकोट्टे के जनों को संबोधन करने का शब्द। जैसे,—माई लाई, आपको इस बात का क्या अभिमान है कि औरों में आपकी भाँति भारतवर्ष के विषय में शासन-नीति समझनेवाला और शासन करनेवाला नहीं है।—शालुमुकुंद गुप्त।

**माउंट पुलिस-संज्ञा** स्त्री० [ भं० ] माउंट पुलिस] युद्ध-सभारा पुलिस।

**माकल-संज्ञा** स्त्री० [ देश० ] इद्रायन नाम की लता।

**माखी-संज्ञा** स्त्री० [ हिं० ] मखी ] दाहद की मखली। ( पश्चिम )

**संज्ञा** स्त्री० [ हिं० ] मुल्लं ? ] लोगों में फैलनेवाली चर्चा। जनरवा।

**भाट-संज्ञा** पुं० [ देश० ] एक प्रकार की वनशक्ति जिसका व्यवहार सरकारी के रूप में होता है।

**माहू-संज्ञा** पुं० [ देश० ] ( १ ) बंदर। वाण। ( २ ) मूख। ( पश्चिम )

**माझा-वि०** [ सं० ] मंर ] ( १ ) पराय। निकम्मा। ( २ ) हुबला। दुबल। ( पश्चिम ) ( ३ ) बीमार। रोगी। ( पश्चिम )

**माद्री-संज्ञा** स्त्री० [ हिं० ] मंरी ] मज्ज। मयिया। उ०—को, पालक पीढ़े को माद्री। सोबनहार पहाई बँद माद्री।—जायसी।

**माणघ-विद्या-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] जादू, योना। जंत्र मन्त्र की विद्या। ( स्त्री० )

**माधना-संज्ञा** स्त्री० सं० दे० "मयना"। उ०—नीर होह तर ऊपर सोहें। माधे रंग समुद जस होहें।—जायसी।

**मादर-संज्ञा** पुं० दे० "मादल"। उ०—गुन्ह पिउ साहस बाँधों में, पिय माँस सँदूर। दोउ सँभारे होह रँग बाँधे सादर।—जायसी।

**माद्री-वि०** [ पा० ] माता संबंधी। माता का।

**यौ०—माद्री** जवान = मातृगण।

**माईल-संज्ञा** पुं० [ सं० ] मईल ] पलायक के लंग का, एक प्रकार का बाजा जो प्रायः बंगाल में कौतन भादि के समय बजाया जाता है।

**मानवती-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] यह नायिका जो, अपने पति या प्रेमी से मान करती हो। मानिनी। उ०—करै हृष्या, सोँडु तिय मन-मानव सौं मान। मानवती तारसँ कहत, केवि मतिराम सुजान।—प्रतिराम।

**मानवदेव-संज्ञा** पुं० [ सं० ] मानव + देव ] रावण। उ०—बलि मिस देले देवता कर मिस मानव देव। मुप मार सुविचार हत स्वार्थ साधन एव।—गुलसी।

**मानाथ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] ] लक्ष्मी के पति, विष्णु। उ०—सद्वन मनसईन भपातीत माया रहित मंजु मानाथ पायोत पानी।—गुलसी।

**मानिटर-संज्ञा** पुं० [ भं० ] स्कूल की किसी कक्षा का, यह प्रधान विद्यार्थी जो अपने अन्य सहपाठियों की पढ़ने-लिखने आदि के संबंध में देख माल रखता हो।



रखा था, जिससे इसका आकार पंजे का सा हो गया। इसी कारण इसके संबंध में यह भी प्रसिद्ध हो गया है कि प्रसव पीड़ा के समय गर्भवती स्त्री के सामने इसे रख देने से पीड़ा शांत हो जाती है और सहज में तथा शीघ्र प्रसव हो जाता है।

**मरियल-वि०** [ हि० मरला + इयल (प्रत्य०) ] बहुत दुर्बल। दुबला और कमजोर।

**यौ०**—मरियल टट्टू = बहुत सुस्त या कमजोर आरोगी।  
**मच्छेद-संज्ञा पुं०** [ मं० ] व्यापार वाणिज्य करनेवाला। व्यापारी। सोदागार।

**मर्दल-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पखावज के ढंग का एक प्रकार का धाजा जिसका व्यवहार प्रत्यः बंगाल में कीर्तन आदि के समय होता है। मादल।

**मलका-संज्ञा स्त्री०** [ म० मलिकाः ] यादशाह या महाराज की पट्टरानी। महारानी।

**मलकुल भौत-संज्ञा पुं०** [ म० ] मुसलमानों के अनुसार वह फरिश्ता जो अंत समय में प्राण लेने के लिये आता है।

**मलता-वि०** [ हि० मलता ] मला या पिसा हुआ (सिका)। जैसे—मलता पिसा, मलती अठ्ठी।

**मलमलाना-क्रि० प्र०** [ मनु० ] पश्चात्ताप करना। अफसोस करना। पछताना।

**मलमलाइट-संज्ञा स्त्री०** [ मनु० ] मलमलाने की किया या भाव। पश्चात्ताप। अफसोस।

**मलयुग-संज्ञा पुं०** दे० "कलियुग"। उ०—नाम भोट अथ लुगि बच्यो मलयुग जग जेरो। अब गरीब जन पोपिय पायबो न हेरो।—तुलसी।

**मलेपंज-संज्ञा पुं०** [ हि० ] अधिक अवस्था का घोड़ा। बुढ़ा घोड़ा।

**मल्हा बेल-संज्ञा स्त्री०** [ दे० ] मौला नाम की बेल जो प्रायः वृक्षों पर चढ़कर उठने बहुत अधिक हानि पहुँचाती है। वि० दे० "मौला"।

**मसानिया-संज्ञा पुं०** [ हि० मसान (शमशान) + ण्या (प्रत्य०) ] (१) शमशान पर रहनेवाला, शोम। (२) वह जो शमशान पर रह कर किसी प्रकार की साधना करता हो। (३) वह जो श्राद्ध फूँक कर भूत-प्रेत आदि उतारता हो। सयाना। ओसा।

**मसियर-स्त्री संज्ञा स्त्री०** दे० "मसाल"। उ०—चहुँ दिसि मसि-र। घर मखत तहाई। सृज चढ़ा चौँद के ताई।—जायसी।

**मसियार-संज्ञा स्त्री०** दे० "मसाल"।

**मसियार-संज्ञा पुं०** दे० "मसाल"।

**मस्तीमा-संज्ञा पुं०** [ दे० ] मोटा अन्न। कद्द।

**मस्तीहा-संज्ञा पुं०** [ फा० ] (१) ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह। (२) वह जो मृतकों को जीवित करता हो।

**विषय-प्रायः उर्दू और फारसी काव्यों में प्रेमी या प्रेमिका के लिये इस शब्द का व्यवहार होता है।**

**मसीहार्द-संज्ञा स्त्री०** [ फा० ] (१) मसीहा का भाव। मसीहापन। (२) मृतक को जीवित करने की शक्ति। मरे हुए को जिलाने की ताकत।

**मसेवरा-संज्ञा पुं०** [ हि० मांस + वरा (प्रत्य०) ] मांस की बनी चीज़ें। जैसे,—कोफता, कबाब आदि। उ०—कीन्ह मसेवरा सींफि रसोई। जो किछु सबे मसु सीं होई।—जायसी।

**मसोसा-संज्ञा पुं०** [ हि० मसोसना ] (१) मानसिक दुःख। मन में होनेवाला रंज। (२) पश्चात्ताप। पछताना।

**महता-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] (१) महत्त्व। विज्ञान शक्ति। (२) महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

**महना-क्रि० प्र०** [ सं० मन्थन ] (२) किसी बात या विषय का आवश्यकता से बहुत अधिक विवेचन करना। बहुत विष्ट-वेष्टन करना।

**यौ०**—महना मथन = मथने का बहुत अधिक वाद-विवाद करना।

**महरा-संज्ञा पुं०** [ हि० महता ] (३) सरदार। नायक। उ०—दसवें दौब के गा जो दसहरा। पलटा सोई नाव छे महरा—जायसी।

**महसूली-वि०** [ म० ] जिस पर किसी प्रकार का महसूल हो या लग सकता हो। महसूल के योग्य।

**महा-संज्ञा पुं०** [ हि० महना ] महा। छाल। उ०—रीसि बूझी सब की प्रतीति प्रीति पही द्वार दूध को जखो पिबत फूँकि फूँकि मद्यो हौं।—तुलसी।

**महात्तय-व्यय-निवेश-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह उपनिवेश या भूमि जिसके रखने में धन का बहुत खर्च हो।

**विशेष-कौटिल्य का मत है कि ऐसे प्रदेश को या तो बेच देना चाहिए अथवा उसमें अपराधियों, राजत्रोहियों, प्रमादियों आदि को भेज देना चाहिए।**

**महानसावलेही-संज्ञा पुं०** [ सं० ] चौका खराब करनेवाला। (बुढ़ा सुत मौर्य के समय में जो लोग ब्राह्मण के चौके को छू कर अथवा और किसी प्रकार खराब कर देते थे, उनकी जीभ उखाड़ ली जाती थी।)

**महापश-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१०) जैनों के अनुसार महा हिमयात्र पर्वत पर के जलाशय का नाम।

**महापुंडरीक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] जैनों के अनुसार रुमि पर्वत पर के बड़े जलाशय या झील का नाम।

**महाप्रतिहार-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (२) नगर में शांति रखनेवाला अधिकारी। कीतवाला।

**महाभरा-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] कुलजन। पान की जड़।

**महामंत्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) सब से बड़ा मंत्र जिसकी

सहायता से किसी काम का होना निश्चित हो। (२) उष्ण मंत्र। अग्नी और बढ़िया संज्ञा। उ०—राजा राजपुरोहितानि सुद्वन्दो मंत्री महाभारत-दा।—केतव।

**महाभारत-संज्ञा** पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार वह बहुत बड़ी मछली जो स्वर्गवर्मण सागर में थी।

**महाशुक्र-संज्ञा** पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार दसवें स्वर्ग का नाम।

**महासंज्ञा-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार वह विद्य-व्यापिनी सत्ता जिसमें विद्य के समस्त जीवों और पदार्थों की सत्ता अंतर्गुण है। सबसे बड़ी और प्रधान सत्ता जो सब प्रकार की सत्ताओं का मूल आधार है।

**महा विमान-संज्ञा** पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार दूसरा पर्वत जो ईश्वर और हरि नाम के दो शंखों में विभक्त है।

**महियाउर-संज्ञा** पुं० [ हि० मही = मछ + उर = चाल ] मछ में पका हुआ चावल। उ० माछा महि महियाउर नाया। भोज करा नैनु जनु खावा।—जायसी।

**महेरा-संज्ञा** पुं० [ हि० मही + पर (प्रय०) ] मही। मछ। उ०—जस पिठ होइ जराह के तस जिठ निरमल होइ। महे महेरा वृत्ति करि भोग करे सुख सोइ।—जायसी।

**महेरी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० महेरी ] महेरी। पार्वती। उ०—हिय महेस जी कई महेसी। कित सिर नावहि प परदेसी।—जायसी।

**महेसुर-संज्ञा** पुं० [ सं० महेसुर ] (१) महेसुर। (२) माहेसुर नामक वीर संप्रदाय। उ०—कोइ सु महेसुर जंगम जती। कोइ एक परखे देखी सती।—जायसी।

**महोष्ण-संज्ञा** पुं० [ सं० महोष्ण ] सत्रियों में होनेवाला उनके एक प्रसिद्ध महाभारत (याग लाल, जसराय) का पूजन जो थावन मास के कृष्ण पक्ष में होता है।

**महोत्ती-संज्ञा** स्त्री० [ देस० ] पापदा नामक वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती और इमारत के काम में आती है। हि० दे० "पापद्वी"।

**मौज-संज्ञा** स्त्री० [ देस० ] (१) दलदली भूमि। (२) तराई। कठार। (३) वह भूमि जो किसी नदी के पीछे हट जाने के कारण निकल आती है। गंगवरा।

**मौ-जाया-संज्ञा** पुं० [ हि० मौ + जाया = जाइ ] स्त्री० मौजा। मौ से उपपन्न, सगा भाई।

**माइका-संज्ञा** पुं० [ सं० ] शेरक। अमक।

**माइन-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) खान। (२) वारुद की सुरंग।

**माइनारिटी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] (१) कल्प संख्या। आधे से कम संख्या। (२) वह पाठों या दल जिसके घोट कम हों।

**माई-संज्ञा** स्त्री० [ देस० ] एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल मान् से मिलता जुलता होता है और जिसका व्यवहार प्रायः इकीम लोग औषधि के रूप में करते हैं।

**माई लाई-संज्ञा** पुं० [ सं० ] लाई तथा हाइकोर्ट के जजों को संयोजन करने का शब्द। जैसे—माई लाई, आपको इस बात का बड़ा अभिमान है कि अंगरेजों में आपकी भाँति भारतवर्ष के विषय में शासन-नीति समझनेवाला और शासन करनेवाला नहीं है।—बालमुकुंद गुप्त।

**माउंट पुलिस-संज्ञा** स्त्री० [ सं० माउंट पुलिस ] सुद-सवार पुलिस।

**माकल-संज्ञा** स्त्री० [ देस० ] इंदायन नाम की छता।

**माखो-संज्ञा** स्त्री० [ हि० माखी ] दाढ़द की मक्खी। (पश्चिम) संज्ञा स्त्री० [ हि० मुखे ? ] लोगों में फैलनेवाली चर्चा। जनरव।

**माउ-संज्ञा** पुं० [ देस० ] एक प्रकार की वनस्पति जिसका व्यवहार सकारी के रूप में होता है।

**माहू-संज्ञा** पुं० [ देस० ] (१) बंदर। वागर। (२) मूख। (पश्चिम)

**माझा-वि०** [ सं० मंज ] (१) परावर। निकम्मा। (२) दुबला। दुर्बल। (पश्चिम) (३) बीमार। रोगी। (पश्चिम)

**माडो-संज्ञा** स्त्री० [ हि० मंडो ] मज्जा। मधिया। उ०—को पालक पीढ़े को मादी। सोचनकर पड़ा पैंद गादी।—जायसी।

**माएथ-विद्या-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] जादू टोना। जंत्र मन्त्र की विद्या। (को०)

**माधना-संज्ञा** स्त्री० सं० दे० "मयना"। उ०—नीर होइ तर ऊपर सोई। मापे रंग समुद्र जल होई।—जायसी।

**मादर-संज्ञा** पुं० दे० "नादल"। उ०—गुह पिठ साहस र्गर्भों में विप मीग सेंदर। दोउ सँभारे होइ र्गर्भ बाई मादर वर।—जायसी।

**मादरी-वि०** [ सं० ] माता संबंधी। माता का।

**मौ-मादरी** जवान = मादुगाया।

**मादल-संज्ञा** पुं० [ सं० मंदल ] पलायक के ढंग का एक प्रकार का बाना जो प्रायः बंगाल में कीर्तन आदि के समय बनाया जाता है।

**मानयती-संज्ञा** स्त्री० [ सं० ] यह नायिका जो अपने पति या प्रेमी से मान करती हो। मानिनी। उ०—करे दूरपा, सौं छू लिय मन-भावन सौं। मानवती तासौं कइत, कवि अतिराम सुजान।—अतिराम।

**मानवदेव-संज्ञा** पुं० [ सं० मानव + देव ] राजा। उ०—बलि मिस देखे देवता कर मिस मानव देव। सुप्र भार सुविचार हउ स्वाराय साधन पर।—तुलसी।

**मानाथ-संज्ञा** पुं० [ सं० ] पशुधर्म के पति, विष्णु। उ०—अद्वन मईन मयातीत माया रहित मंडु मानाथ पायोज पानी।—तुलसी।

**मानिटर-संज्ञा** पुं० [ सं० ] स्कूल की किसी कक्षा का यह प्रधान विद्यार्थी जो अपने अन्य सहपाठियों की पढ़ने-लिखने आदि के संबंध में देख माल रखता हो।

मानुषोत्तर-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार एक पर्वत का नाम है। जो पुष्कर द्वीप की दो सभान भागों में विभक्त करता है।

मांपक-संज्ञा पुं० [ सं० ] अन्न मांपने का काम करनेवाला। क्या।

विशेष-माचीन काल में भारत में अन्न तुला से नहीं तोला जाता था। मित्र मित्र मौलों के घरतन रहते थे; उन्हीं में अनाज भर भर कर घेया जाता था। माप में भेद आने पर २०० पण धुरमाया किया जाता था। (को०)

मासूर-वि० [ अ० ] भरा हुआ। पूर्ण।

मायापति-संज्ञा पुं० [ सं० ] ईश्वर। परमेश्वर।

मायापात्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] माया = धन + पात्र। वह जिसके पास बहुत धन हो। धनवान। अमीर।

मारकेश-संज्ञा पुं० [ सं० ] फलित-ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में पढ़नेवाले कुछ विविध ग्रहों का योग जिसके परिणाम स्वरूप उस व्यक्ति की श्रृष्ट्य हो जाती है अथवा वह मरणपात्र हो जाता है।

मार पीट-संज्ञा स्त्री० [ हि० ] मारना + पीटना। मारने और पीटने की क्रिया। ऐसी लड़ाई जिसमें आघात किया जाय।

मारफत-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] ईश्वर संबंधी ज्ञान। ईश्वरीय ज्ञान। उ०—राह हकीकत परे न चूकी। पैठि मारफत मार हुइकी।

उ०—जावसी।

मार्क-संज्ञा पुं० [ अ० ] जर्मनी में चलनेवाला पैसे का एक सिक्का जो प्रायः एक शिलिंग या बारह आने मूल्य का होता है।

मार्क्सि-संज्ञा पुं० [ अ० ] [ खी० ] मार्सिज्म ] इंग्लैण्ड के सामंतों और बड़े बड़े भूस्वयिकारियों को वर्ग परंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि जिसका दर्जा द्यूक के बाद है। वि० दे० "ह्यक"।

मार्गनिरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] चलते रास्ते को बंद करना या रोकना।

विशेष—कौटिल्य के समय में इसके लिये मित्र मित्र दंड नियत थे।

मार्जारदासक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का रत्न। (की०)

मार्शल-संज्ञा पुं० [ अ० ] संगमरमर।

मार्शल-संज्ञा पुं० [ अ० ] सेना का एक बहुत बड़ा अधिकार जो प्रधान सेनापति या समर-सचिव के अधीन होता है।

मार्शल-संज्ञा पुं० [ अ० ] सैनिक व्यवस्था या शरसन। फौजी कानून या हुकूमत।

विशेष—समर-विद्रोह या इसी प्रकार के आपकाल में साधारण कानून या दंड-विधान से काम चलता न देखकर देव का शासनसूत्र सैनिक अधिकारियों के हाथ में दे दिया जाता है और इसकी घोषणा कर दी जाती है। सैनिक अधिकारी इस संकट-काल में विद्रोह आदि दमन करने में कठोर से कठोर उपायों का अवलंबन करते हैं।

मालू-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की बेलें जो बागों में बोनी के लिये लगाई जाती हैं और प्रायः सारे भारत में जंगली दवा में पाई जाती हैं। साल के जंगलों में यह बहुत अधिकता से होती है। यदि इसे छाँटा और रोका न जाय तो यह बहुत जल्दी बंद जाती और बूझों को बहुत शानि पहुँचाती है। इसकी शाखाएँ सँकड़ी फुट तक पहुँचती हैं। इसकी छाल से रेशा निकाला जाता है और उससे रस्से आदि बनाए जाते हैं। इसकी पत्तियाँ और बीज औषध में काम आते हैं और बीज भूत कर खाए भी जाते हैं। इसकी पत्तियों के छाते भी बनाए जाते हैं।

मालूम-संज्ञा पुं० [ अ० ] जहॉज का अङ्गसूत्र। (लश०)

माशाघ्राह-परि [ अ० ] एक प्रजंसासूचक पद। बहुत अच्चा है। क्या कहना है।

विशेष—इस पद का प्रयोग दो प्रकार से होता है। एक तो किसी अच्छी चीज को देकर उसकी प्रशंसा करने के लिये और दूसरे किसी अच्छी चीज का जिक्र करते हुए यह भाव प्रकट करने के लिये कि ईश्वर को इसे नजर न लगे।

मासभूत-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मजदूर जिसकी मासिक धेतन मिलता हो।

मासिक धर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्त्रियों की प्रति मास होनेवाला र्राव। स्त्रियों का रजस्वला होना।

मासूम-वि० [ अ० ] जिसने कोई अपराध या दोष न किया हो। निरपराध। बेगुनाह। जैसे—मासूम बचा।

माह-संज्ञा पुं० [ देश० ] कन-सलाई नाम का बरसती कीड़ा जो प्रायः कान में घुस जाता है। गिआइ।

माहेंद्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ५ ) जैनों के अनुसार चौथे स्वर्ग का नाम।

मितली-संज्ञा पुं० दे० "मिन्"। उ०—(क) बाली और मित को मेरो मित्रो मिलाप—मतिरसम। (ख) वृहे दे और सौ मिता मिता सोइ करे जेहि लहे न चिता—जावसी।

मिफसचर-संज्ञा पुं० [ अ० ] ऐसी तरह औषध जिसमें कई औषधियाँ मिली हों। मिश्रित औषध। जैसे—जिवाहव मिफसचर।

मिचली-संज्ञा स्त्री० [ हि० ] मिचलाना की मिचलाने की क्रिया या भाव। के होने की इच्छा।

मिजवानी-संज्ञा स्त्री० दे० "मिजवानी"।

मिडाता-कि० अ० [ हि० ] मीठा + ता (पद०)। मीठा होना। मधुर होना। उ०—माखी मधुहारिउ मरी, माखी सती मिटाहि। वाकी बलि अनलाहटी सुसुकाह-बिनु माहि।

—विहारी।

मिजाजी-वि० [ अ० मिहात्र + र् ( मय० ) ] बहुत अधिक मिजाज करने या रखनेवाला । अभिमान्नी । घमंड़ी ।

मितविक्रय-संज्ञा पुं० [ सं० ] मात्र कर पदार्थ वचना । ( की० )

मिती-काटा-संज्ञा पुं० [ हि० मिती + काटना ] ( १ ) वह हिसाब जिसके अनुसार सरांक लोग हुंडी की मुद्रय तथा व्याज लेते हैं । ( २ ) खुद लगाने का वह लंग जिसमें प्रत्येक रकम का खुद उसकी अलग अलग मिती से जोड़ा जाता है ।

मित्रपद्धति-संज्ञा पुं० [ सं० ] विजेता के पारों और रहनेवाले मित्र राष्ट्र या राजा ।

मित्र-विक्षिप्त-वि० [ सं० ] मित्र के देश में पड़ी हुई ( सेना ) ।

मिनट-संज्ञा पुं० [ अंग० ] एक घंटे का साठवाँ भाग । साठ सेकंड का समय ।

मुहा०—मिनटों में = थय की थय में । जैसे,—वह यह काम मिनटों में कर टालेगा ।

मिनिट-संज्ञा स्त्री० [ अंग० ] वह बही या किताब जिसमें किसी सभा, समिति के अधिवेशनों में सम्भव हुए कार्यों का विवरण लिखा जाता है ।

मिनिस्टर-संज्ञा पुं० [ अंग० ] ( १ ) मन्त्री । सचिव । दीवान । पन्नीर । ( २ ) राजदूत । पुरुषी । ( ३ ) धर्मोपदेश । धर्माचार्य । पाद्री । ( ईसाई )

मिखना-संज्ञा-क्रि० सं० दे० "मिलाना" ।

मिरियासा-संज्ञा स्त्री० [ अ० मीयान ] किसी के मरने पर उसके उधराधिकारी को मिलनेवाली संपत्ति । मीरास ।

मिल-संज्ञा स्त्री० [ अंग० ] कपड़ा आदि धुनने की काल या कारखाना । धुतलीघर ।

मिलचतु-संज्ञा-क्रि० सं० दे० "मिलाना" उ०—उन हटकी हंसि के हूँ हन खैपरी मुसकाई । हैन मिलें सन मिलि रंग दोक मिलवत गाई ।—विहारी ।

मिलिंद-संज्ञा पुं० [ सं० ] धरम । भीरा । उ०—मदरस मस मिलिंद यन, मान मुदित मननाथ ।—मतिराम ।

मिलिटरी-वि० [ अंग० ] ( १ ) सेना या सैनिक संबंधी । फौजी । जैसे,—मिलिटरी डिपार्टमेंट । ( २ ) बुद्ध संबंधी । सामरिक । जंगी । ( ३ ) लड़ाका । योद्धा । जैसे,—वह मिलिटरी आदमी है ।

संज्ञा स्त्री० [ अंग० ] सैन्यदल । पलटन । फौज । जैसे—दो के दिनों में नगर में मिलिटरी का पहरा था ।

मिलिशिया-संज्ञा स्त्री० [ अंग० ] ऐसे जवानों का दल जिन्हें किसी सीमा या स्थान की रक्षा करने के लिये शिक्षा दी गई हो और जिससे समय समय पर रक्षा का काम लिया जाता हो । लड़ा पलटन । ( इसका संपन्न रथानी नहीं होता ) जैसे,—चर्कीरिस्तान मिलिशिया ।

मिलीशिया-संज्ञा स्त्री० दे० "मिलिशिया" ।

मिसहा-वि० [ हि० मिस = बहाना + हा ( प्रत्यय० ) ] बहाना करनेवाला । छल करनेवाला । उ०—मैं मिसहा सोयी समुखि मूँहु चूयो विग जाइ । हँस्यो खिसानी गल गद्दी रही परे छपटाइ ।—विहारी ।

मिस्सा-संज्ञा पुं० [ देश० ] किसी प्रकार की दाल को पीस कर तैयार किया हुआ मोटा आटा जिसकी रोटी बना कर गरीब लोग खाते हैं ।

यी०—मिस्सा कुस्सा = मोटा भ्रत । कदम ।

मिहचमा-संज्ञा-क्रि० सं० दे० "मीचना" । उ०—प्रीतम टग मिहचत प्रिया पानि-परस मुखु ।—विहारी । जानि विधान अज्ञान हीं नैकुं न होनि जनाइ ।—विहारी ।

मिहो-वि० दे० "महीन" । उ०—जैसे मिहो वट में चटकीलो, चहुँ रैत तीसरी बार के बोरें ।—मतिराम ।

मीजना-संज्ञा-क्रि० सं० [ हि० मूँजना ] मूँदना । बंद करना । ( आँखों के लिये ) उ०—दूध मॉस नस मीउ हँ समुद मॉइ जस मोनि । नैन मीजि ओ देखहु चमक डंठे तस जोति ।—जायसी । मीचल-संज्ञा स्त्री० [ सं० मूच्यु ] मूच्यु । मोत । उ०—मीच गहूँ जर मीच ही, बिरहानल की क्षार ।—मतिराम ।

मीता-संज्ञा पुं० [ सं० मित्र ] मित्र । दोस्त । उ०—(क) मीत ई मॉगा योगि थिवान् । चला सूर सँवरा भरयान् ।—जायसी । (ख) हम हीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी । एक हगहीं सँग जात तजत जब पितु सुत नारी ।—भारतेंदु ।

मीन-मेख-संज्ञा पुं० [ सं० मीन + मेख ] सोच विचार । आगा पीछा । असमंजस । उ०—मामिनि मेख नारि के लेखे । कत पिड पीड कीन्हि, मोहें देखे ।—जायसी ।

मुँगवना-संज्ञा पुं० [ सं० मुंग ] मोट या बममूंग नाम का कदम । मुँगौली-संज्ञा स्त्री० [ हि० मुँग + ली ( प्रत्यय० ) ] मुँग की बनी हुई बरी । मुँगौरी । उ०—भई मुँगौली मिरचें परी । कीन्ह मुँगौरा औ बहु बरी ।—जायसी ।

मुँचना-संज्ञा-क्रि० सं० सं० मुक ] मुक करना । छोड़ना ।

मुँहचंग-संज्ञा पुं० दे० "सुचंग" ।

मुकतई-संज्ञा स्त्री० [ सं० मुक ] मुक्ति । छुटकारा । उ०—हूँ मति माने मुकतई किंयें कपट चित कोटि । औ गुनही ती राखिये ओखिनु मॉस अगोटी ।—विहारी ।

मुकतालि-संज्ञा स्त्री० [ सं० मुकवली ] मोतियों की लड़ी । मुकतवली । उ०—हूँ कपूर मनियय रही मिलि सत-दुखि मुकतालि । दिन दिन खरी विचच्छिनी लखति झाँइ निनु आलि ।—विहारी ।

मुकरना-संज्ञा-क्रि० अ० [ सं० मुक ] मुक होना । छुटना ।

मुकराना-संज्ञा-क्रि० सं० [ हि० मुकरना ] मुक कराना । छुड़ाना । उ०—प्रिय जेहि बंदि जोगिनि होइ पावीं । हीं बंदि लेइ विचहि मुकरावीं ।—जायसी ।

**मुकलाना**—क्रि० सं० [सं० मुक वा मुकलित ?] खोलना । छोड़ना ।  
उ०—सरवर तीर पद्मिनी आई । खोंपा छोरि वैस मुक-  
लाई ।—जायसी ।

**मुकबा**—संज्ञा पुं० [देश०] वह छोटा संदूक जिसमें सुरमा, मिरसी, कंधी और शीशा आदि रख कर वफ़ू को देते हैं । संदूक के आकार का छोटा सिंगारदान । (मुसल०)

**मुकुता**—संज्ञा पुं० दे० "मुक्ता" । उ०—बहुत वाहिनी संग मुकुता-  
माल विशाल कर ।—केशव ।

**मुक्क**—संज्ञा पुं० दे० "मुक्ता" । उ०—हेम हीर हार मुक्क धीर चार  
साजि के ।—केशव ।

**मुक्क भ्रूण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह ऋण जिसकी लिखावट न हुई  
हो । जवानी यास चीत पर दिया हुआ ऋण ।

**मुक्काहल**—संज्ञा पुं० [ सं० मुक्का + फल ] मुक्काफल । मोती ।  
उ०—सहजहि जाबहु मेंहदी रची । मुक्काहल लीन्हें जनु  
हूँषची ।—जायसी ।

**मुक्कि फौज**—संज्ञा स्त्री० दे० "संखेदान आर्मी" ।  
**मुजमित्त**—क्रि० वि० [ प्र० मित्र् जुमल ] सय मिलाकर । कुल  
मिलाकर ।

**संज्ञा पुं०** दो या अधिक संख्याओं का योग । जोड़ ।  
**मुज़ाहिम**—वि० [ भ० ] (१) रोकने या बाधा डालनेवाला ।  
बाधक । (२) आपत्ति करनेवाला ।

**मुज़ाहिमत**—संज्ञा स्त्री० [ भ० ] (१) रोकने या बाधा देने की क्रिया  
या भाव । (२) आपत्ति करने की क्रिया या भाव ।

**मुतफरकात**—संज्ञा स्त्री० [ भ० मुतफरकात ] (१) भिन्न भिन्न पदार्थ ।  
फुटकर चीजें । (२) फुटकर व्यय की मद । (३) जमीन के वे  
अलग अलग टुकड़े जो किसी एक ही गाँव के अंतर्गत हों ।

**मुतवज्जह**—वि० [ भ० ] जिसने किसी धोर तवज्जह की हो । जिसने  
ध्यान दिया हो । प्रयुक्त ।

**मुतास**—संज्ञा स्त्री० [ हिं० मुताना + भास, (प्र०) ] मूतने की इच्छा ।  
पेशाब करने की इच्छा ।

**मुत्ती**—संज्ञा स्त्री० [ सं० मूत् ] मूत्र । पेशाब । (यालक)  
संज्ञा पुं० दे० "मोती" । उ०—चलत पाइ नियुनी गुनी घनु  
ननि मुत्तियन्माल । भेंट होत जयसादि सौं भागु चाहियत  
माल ।—विहारी ।

**मुदरिसी**—संज्ञा स्त्री० [ भ० ] (१) मुदरिस का काम । पढ़ाने का  
काम । अध्यापन । (२) मुदरिस का पद । जैसे—बड़ी  
फठिनता से उन्हें स्तुतिसिपल स्कूल में मुदरिसी मिली है ।

**मुदररंक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] सुदर ( सुँगरे ) का चिह्न जो धोवियों  
के पत्र पर पहचान के लिये चंद्रयुत के समय में रहता था ।  
। विशेष—यदि धोयी इस प्रकार के चिह्न से रहित वस्त्र पहन  
कर निकलते थे तो उन पर ३ पण जुर्माना होता था ।

**मुद्री**—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] रस्ती आदि की खिंसकनेवाली गाँठ ।

**मुद्रक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो किसी छापखाने में रह कर छापने  
का काम करता या देखता हो और जो छपनेवाली चीजों को  
छपाई का जिम्मेदार हो । छापनेवाला । मुद्रककर्ता ।  
जैसे,—"चंद्रोदय" के संपादक और मुद्रक राजविद्रोह-  
त्मक लेख लिखने और छापने के अभियोग पर भारतीय  
दंडविधान की १२४ प धारा के अनुसार गिरफ्तार  
किए गए हैं ।

**मुद्रा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) कहीं जाने का परवाना या आज्ञापत्र ।  
परवाना राहदारी ।

**मुद्राधपक्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कहीं जाने का परवाना देनेवाला  
अधिकारी । (कौ०)

**मुनमुना**—संज्ञा पुं० [ देश० ] खसखस की तरह का पर उससे प्या  
एक प्रकार का काला दाना जो गेहूँ के सेत में उग्यत्र होना  
और प्रायः उसके दानों के साथ मिला रहता है । इसके  
मिले रहने के कारण आटे का रंग कुछ काला पड़ जाता और  
स्वाद कुछ कड़वा हो जाता है । प्याजी ।  
वि० बहुत छोटा या थोड़ा ।

**मुनाल**—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का बहुत सुंदर पदाशी पत्ती  
जिसकी हरी गरदन पर सुंदर कंठा सा दिखाई देता है और  
जिसके सिर पर कलगी होती है । इसके पर बहुत अधिक  
मूल्य पर विकते हैं ।

**मुबल्लिग**—वि० [ भ० ] (रपप आदि की) संख्या । गिनती ।  
जैसे,—मुबल्लिग दो सौ रुपए वसूल हुए ।

**मुमानियत**—संज्ञा स्त्री० [ भ० ] मना करने या होने का भाव ।  
मनाही ।

**मुरमुरा**—संज्ञा पुं० [ भ० ] एक प्रकार का मुना हुआ चावल जो  
अंदर से पोला होता है । फरबी । लाई ।

**मुर्गयाज**—संज्ञा पुं० [ फ० ] वह जो मुरगे लड़ाता हो । मुर्गा का  
खेलादी ।

**मुर्गवाज़ी**—संज्ञा स्त्री० [ फ० ] मुरगे लड़ाने का काम या भाव ।  
**मुल**—अव्य० [ देश० ] (१) मगर । लेकिन । पर । (पश्चिम)  
(२) तात्पर्य यह कि । मतलब यह कि ।

**मुलकित**—वि० [ सं० पुलकित ? ] मन्द मन्द हँसता हुआ । मुस्क-  
राता हुआ । उ०—डैवे चिते सराहियत गिरह क्यार लेव ।  
शलकति दग मुलकित यदुत तनु पुलकित किहि देव ।—  
विहारी ।

**मुल्लह**—संज्ञा पुं० [ देश० ] वह पक्षी जो पौर बाँध कर जाल में इस-  
लिये छोड़ दिया जाता है कि उसे देखकर और पक्षी आकर  
जाल में फँसे । लुहा ।

। वि० [ देश० ] बहुत अधिक सीधा सादा । बेवकूफ । मूर्ख ।  
**मुवकिल**—संज्ञा पुं० [ भ० ] वह जो किसी को मुकदमा आदि

रुद्धने के लिये अपना बहील नियुक्त करता हो। वकील करने या रखनेवाला।

**सुरतयहा-वि०** [ भ० ] जिसमें किसी प्रकार का शुभदा हो। संदेह के योग्य। संदिग्ध।

**सुश्रवका-वि०** [ भ० ] जिसमें कई आदमी शरीक हों। जिसमें और लोग भी सम्मिलित हों। जैसे,—सुरतकर का जायदाद।

**मुसुकाना-कि०** भ० दे० "मुसकराना"। उ०—गान खात मुसुकत मुदु को यह केमवदास।—केदाव।

**मुहताजी-संज्ञा** स्त्री० [ भ० मुहताज + ई (प्रत्य०) ] ( १ ) मुहताज होने की क्रिया या भाव। ( २ ) दरिद्रता। गरीबी। ( ३ ) परमुखापेक्षा होने का भाव। परवदाता।

**मूआ-संज्ञा** पुं० [ हिं० मूआ ] मृत। मरा हुआ। (इसका प्रयोग खिर्बाँ प्रायः गाली के रूप में करती है।)

**मूज़ी-वि०** [ फ० ] कष्ट पहुँचाने या सतानेवाला। तकलीफ देने या दिक् करनेवाला।

**मूढ़-संज्ञा** पुं० [ सं० ] योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त तमोगुण के कारण निद्रायुक्त या स्तब्ध रहता है। कहा गया है कि यह अवस्था योग के लिये अनुकूल या उपयुक्त नहीं होती। वि० दे० "चित्तमूर्ति"।

**मूढ़घाताहत-वि०** [ सं० ] मूफल में पड़ा हुआ (जहाज या नाव)। (कौ०)

**मूर-संज्ञा** पुं० [ सं० मूल ] मूल नामक नक्षत्र। उ०—काहे चंद्र घटत है काहे सूरज पर। काहे होइ अभावस काहे लागे मूर।—जायसी।

**मूरी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० मूल ] मूल। जड़। (विशेषतः किसी ओपपि की) उ०—कीन्हेंसि बनसैंड औ जरि मूरी। कीन्हेंसि तगिबर तार खजूरी।—जायसी।

**मूर्त्त्य-संज्ञा** पुं० [ सं० ] मूर्त्त होने की क्रिया या भाव। मूर्त्तता।

**मूलरत्न-संज्ञा** पुं० [ सं० ] राजधानी या शासन के केंद्रस्थान की रक्षा।

**मूलस्थान-संज्ञा** पुं० [ सं० ] ( १ ) राजधानी। शासन का मुख्य केंद्र। (कौ०)

**मूलद्वार-संज्ञा** पुं० [ सं० ] वह रास जो फूल लखे हो। वह जिसने अपना संपूर्ण धन नष्ट कर दिया हो। (कौ०)

**मूला-संज्ञा** स्त्री० [ दे० ] मूला नाम की बेल जो छुई पर चढ़ कर उन्हे बहुत हानि पहुँचाती है। वि० दे० "नीला"।

**मूलावाचक-संज्ञा** पुं० [ सं० ] राश्ट्रनातिक के केंद्र को धरनेवाला। (कौ०)

**मूलोदय-संज्ञा** पुं० [ सं० ] व्याज का मूल धन के परावर हो जाना।

**मूलमेट-संज्ञा** पुं० [ सं० ] यह प्रवाल या आंदोलन जो किसी उद्वेग की सिद्धि या अर्थात् फल की प्राप्ति के लिये एक या अधिक व्यक्ति करते हैं। आंदोलन। जैसे,—स्वदेशी मूलमेट। मानकोभापरेदान मूलमेट।

**मृगनैनी-वि०** स्त्री० [ सं० मृग + नयन ] जिसकी आँखें हिरन की आँखों के समान सुंदर हों। बहुत सुंदर नेत्रोंवाली। उ०—वासों मृग शंक कई तो सों मृगनैनी सय, बहु सुधापर उहँ सुधापर मानिये।—केदाव।

**मृगमद-संज्ञा** पुं० [ सं० मृग + मद ] कस्तूरी। उ०—अचलीकने चिलोकिये मृगमदनय धनसार।—केदाव।

**मैंड-संज्ञा** स्त्री० [ हिं० डोंड का मनु० या सं० मंडल ] ( १ ) ऊँची उठी हुई सँग जमीन जो धूर तक लकीर के रूप में घली गई हो। ( २ ) दो खेतों के बीच की कुछ ऊँची उठी हुई सँकरी जमीन जिस पर से लोग भाते जाते हैं। शँड। पगडंडी।

**मैंड-डोंड** मैंड = मूल किनारा। वार पार। उ०—पवनहुँ ते मन चाँद मन तँ आसु उतावला। कतहँ मैंड न डोंड सुदमद बहु विस्तार सो।—जायसी।

**मैंडरानी-संज्ञा** पुं० [ सं० मंडल ] ( १ ) घेर कर बनाया हुआ कोई गोल चक्र। ( २ ) मँडूआ। गोहुरी।

**मैंडराना-कि०** भ० दे० "मैंडराना"। उ०—राजपंलि तेहि पर मैंडरानां। सहस-कोस तिन्ह के परछाहीं।—जायसी।

कि० सं० घेर कर गोल चक्र बनाना। मैंडरा बनाना।

**मेजवांनी-संज्ञा** स्त्री० [ फ० मेजवान ] ( १ ) मेजवान का भाव या पर्म। ( २ ) वे खाद्य पदार्थ जो बरात आने पर पहले पहल कन्यापक्ष से बरातियों के लिये भेजे जाते हैं।

**मेजर-जनरल-संज्ञा** पुं० [ अंग० ] कौज का एक अफसर जिसका दर्जा लेफ्टनेंट जनरल के बाद ही है।

**मेज्रा-संज्ञा** पुं० दे० "मंडक"। उ०—केवटहँसे सो सुनत गयेना। समुद्र न जान कुर्वी कर मेना।—जायसी।

**मेजारिटी-संज्ञा** स्त्री० [ अंग० ] बहु संख्या। आधे से अधिक पक्ष। अधिकांश। जैसे,—मेजारिटी रिपोर्ट।

**मेट-संज्ञा** पुं० [ अंग० ] ( २ ) जहाज का एक कर्मचारी जिसका काम जहाज के अफसर की सहायता करना है। ( ३ ) संगी। साथी। जैसे,—हास-मेट।

**मेडिकल-वि०** [ अंग० ] पाश्चात्य औषध और चिकित्सा से संबंध रखनेवाला। डाक्टरी संबंधी। जैसे,—मेडिकल कालेज, मेडिकल डिपार्टमेंट।

**मेडिसिन-संज्ञा** स्त्री० [ अंग० ] ( १ ) औषध। दवा। जैसे,—डाक्टर ने बहुत तेज मेडिसिन दी है। ( २ ) चिकित्सा विज्ञान।

**मेद-संज्ञा** स्त्री० [ सं० मेदा ] मेदा नामक सुगंधित जड़। उ०—रचि रचि सजे चंदन चौरा। पौतें अगर मेद भी गौरा।—जायसी।

**मेदनी-संज्ञा** स्त्री० [ सं० मेदिनी ] पात्रियों का गोल जो संधा लेकर किसी तीर्थ स्थान या देवस्थान की जाय।

**मेना-कि०** सं० [ हिं० मीयन ] पकवान आदि में मीयन देना

मोयन टालना । उ०—लुचुई पोइ पोइ विठ मेई । पाठे छानि खॉट रस मेई ।—जालसी ।

**मेमोरैंडम—संज्ञा पुं०** [ अं० ] ( १ ) वह पत्र जिसमें कोई बात स्मरण दिलाने के लिये लिखी गई हो । याददास्त । स्मरण-पत्रक । ( २ ) वक्तव्य । अभिमत ।

**मेमोरैंडम आफ एसोसियेशन—संज्ञा पुं०** [ अं० ] किसी ब्राह्मंड शक्ति कंपनी या सम्मिलित पूँजी से चालनेवाली कंपनी की उद्देश्य-पत्रिका जिसमें उस कंपनी का नाम और उद्देश्य आदि लिखे होते हैं और अंत में हिस्सेदारों के हस्ताक्षर होते हैं । सरकार में इसकी रजिस्ट्री हो जाने पर कंपनी का कानूनी अस्तित्व हो जाता है । उद्देश्य-पत्रिका ।

**मेयना**—कि० सं० [ हि० मेवन ] पकवान आदि में मोयन टालना । मोयन देना ।

**मेयर—संज्ञा पुं०** [ अं० ] म्युनिसिपल कारपोरेशन का प्रधान । जैसे,—कलकत्ता कारपोरेशन के मेयर ।

**विशेष—**इंग्लैंड में म्युनिसिपलिटियों के प्रधान मेयर कहलाते हैं । ये अपने नगरों की म्युनिसिपलिटियों के प्रधान होने के सिवा यहाँ के प्रधान मैजिस्ट्रेट भी होते हैं । लंडन तथा और कई नगरों की म्युनिसिपलिटियों के प्रधान लार्ड मेयर कहलाते हैं । हिंदुस्तान में केवल कलकत्ता कारपोरेशन के प्रधान मेयर कहलाते हैं । इनका केवल म्युनिसिपल प्रबंध से ही संबंध है । इंडस्ट्रियल कंपनी के समय सन् १७२६ ई० में भारत में, कलकत्ते, बंबई और मद्रास में विचारकार्य के लिये मेयर कोर्ट स्थापित किए गए थे ।

**मेरघनडी—संज्ञा स्त्री०** [ हि० मेरघना ] मिलाने की क्रिया या भाव । मिलान । उ०—सुंदर स्वामल अंग बसन पीत सुरंग कटि निरपंग परिकर मेरघनि ।—तुलसी ।

**मेराना**—कि० सं० दे० “मिलाना” । उ०—सो वसीट सरजा लेइ आवा । थादसाह कहँ आनि मेरावा ।—जायसी ।

**मेल—संज्ञा स्त्री०** [ अं० ] ( १ ) वे सब चिट्ठियाँ और पत्रसंल आदि जो डाक से भेजी जायँ । ( २ ) डाकगाड़ी । मेल ट्रेन । यौ०—मेल ट्रेन

**मेल ट्रेन—संज्ञा स्त्री०** [ अं० ] वह बहुत तेज चलनेवाली गाड़ी जो केवल बड़े बड़े स्टेशनों पर ठहरती है, छोटे स्टेशनों पर नहीं ठहरती और जिसके द्वारा चूर की डाक भेजी जाती है ।

**मेल—संज्ञा पुं०** [ अं० ] वह स्थान जहाँ मूल्य लेकर विचारियों के लिये भोजन का प्रबंध किया जाय । छात्र भोजनालय । विद्यार्थी-वास ।

**मेस्मराइज़र—संज्ञा पुं०** [ अं० मेस्मराइजर ] वह जो किसी को अपनी इच्छाशक्ति से अचेत कर देता हो । मेस्मरिज्म करनेवाला । सम्मोहक ।

**मेस्मरिज्म—संज्ञा पुं०** [ अं० मेस्मरिज्म ] ( मेस्मर ) नामक जर्मन

शास्त्र का निकाला हुआ ) यह सिद्धांत कि मनुष्य किसी गुप्त शक्ति या केवल इच्छाशक्ति से दूसरे की इच्छाशक्ति को प्रभावान्वित या बशीभन कर सकता है । वह सिद्धांत शक्ति जिससे कोई मनुष्य अचेत कर वश में किया और अपने इच्छानुसार परिचालित किया जा सके, अर्थात् वस्तु जो कुछ कहलाया जाय, वह करे या जो कुछ पढ़ा जाय, उसका उत्तर दे । सम्मोहिनी विद्या । सम्मोहन ।

**विशेष—**जिस पर मेस्मरिज्म किया जाता है, वह अचेत सा हो जाता है; और उस अवस्था में उससे जो कुछ कहलाता होता है, वह कहता है या जो कुछ पढ़ा जाता है, उसका उत्तर देता है ।

**मेहल—संज्ञा पुं०** [ देरा० ] महोले आकार का एक प्रकार का शृंग जो हिमालय में काश्मीर से भूटान तक ८००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ बीच-बीच में अंगुल लंबी होती हैं और पुरानी होने पर काली हो जाती हैं । जाड़े में इसके फल पकते हैं जो खाए जाते हैं । इसकी लकड़ी की छड्डियों और हुकों की निगालियाँ बनती हैं; और पत्तियों पशुओं के लिये चारे के काम में आती हैं ।

**मैगना कार्टा—संज्ञा पुं०** [ अं० ] यह राजकीय आज्ञापत्र जिसमें राजा की ओर से प्रजाजनों को कोई स्थव्य या अधिकार देने की बात हो । शाही फरमान ।

**मैजिक—संज्ञा पुं०** [ अं० ] वह अद्भुत खेल या कृष्य जो दर्शकों की दृष्टि और बुद्धि को धोखा देकर किया जाय । जादू या खेल ।

**मैजिक लाइट—संज्ञा स्त्री०** [ अं० मैजिक लैटर्न ] एक प्रकार की लाइट जिसके आगे शीशे पर बने हुए चित्र इस प्रकार रखे जाते हैं कि उनकी परछाई सामने के कपड़े पर पड़ती है; और वे चित्र दर्शकों को उस परदे पर दिखाई देते हैं ।

**मैटर—संज्ञा पुं०** [ अं० ] ( १ ) कागज पर लिखा हुआ कोई विषय जो कंपोज करने के लिये दिया जाय । वह लिखी हुई कापी जो कंपोज करने के लिये दी जाय । जैसे,—पहले फर्म के लिये एक कालम का मैटर और चाहिए । ( कंपोजिटर ) ( २ ) कंपोज किए हुए टाइप या अक्षर जो छपने के लिये तैयार हों । जैसे,—प्रेस पर फर्मा कसते हुए एक पत्र का मैटर टूट गया । ( कंपोजिटर )

**मैडम—संज्ञा स्त्री०** [ अं० ] विवाहिता तथा बुढ़ा स्त्री के नाम के आगे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द । श्रीमती । महाशया । जैसे,—मैडम ब्लैडवैल्डकी ।

**मैन-आफ-द-घार—संज्ञा पुं०** [ अं० ] लड़ाकू जहाज । युद्ध पोत ।  
**मैनकामिनी—संज्ञा स्त्री०** [ हि० मैन=मदन + कामिनी ] कामदेव की स्त्री, रति । उ०—मैन-कामिनी के मैनकाहू के न रूप रीते, मैं न काहू के सिखायँ आंनों मन साग री ।—मतिराम ।

मैनडेट-संज्ञा पुं० [ सं० ] आदेश । हुक्म । जैसे,—कांग्रेस से ऐसा करने का मैनडेट मिला है ।

मैनडेटरी-वि० [ सं० ] जिसमें आदेश हो । आदेशात्मक । जैसे,—कांग्रेस का वह प्रस्ताव मैनडेटरी है ।

मैनमय-वि० [ हिं० मैन = मदन + यव ] कामातुर । कामेच्छा से युक्त । उ०—मैन सुख दैन, मन मैनमय लेखियो ।—केशन ।

मैनस्क्रिप्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पुस्तक या कागज जो हाथ या कलम से लिखा हुआ हो, छपा हुआ न हो । हस्तलिखित मत ।

मैनिकेस्टो-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी व्यक्ति, संस्था या सरकार का किसी सार्वजनिक विषय, नीति अथवा कार्य पर अभिमत, बन्धन्य या घोषणा । बन्धन्य । जैसे,—देश के कितने ही प्रमुख नेताओं ने एक मैनिकेस्टो निकाला है, जिसमें सरकार की वर्तमान दमन-नीति की निंदा की गई है और लोगों से कहा गया है कि वे इसके विरुद्ध जैतों का आन्दोलन करें ।

मैरीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) वह सैनिक जो लड़ाई अहाज पर काम करता हो । ( २ ) किसी देश या राष्ट्र की समस्त नौ सेना । नौ सेना । जल सेना । जैसे,—रायल मैरीन । ( ३ ) किसी देश के समस्त जहाज ।

वि० ससुद संबंधी । जल संबंधी । नौ सेना संबंधी । जैसे,—मैरीन कोर्ट ।

मैशिनरी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( १ ) किसी यंत्र या कल के पुरजे । ( २ ) यंत्र । कल । मशीन ।

मोड़तोड़-संज्ञा पुं० [ हिं० मोड़ + तड़ + घन० ठोड़ ] मार्गों में पड़नेवाला घुमाव कियाव । चक्कर ।

मोती लट्टू-संज्ञा पुं० [ हिं० मोती = लट्टू ] मोतीचूर का लट्टू । उ०—दूनी बहुत पकावन साधे । मोतिलाहूँ भी चैरीरा बाँधे ।—जायसी ।

मोनशेनयर-संज्ञा पुं० [ फ्रें० ] फ्रांस में, प्रिंस, पादरी तथा प्रतिष्ठित लोगों के नाम के आगे लगनेवाला सम्मानमूक शब्द । श्रीमान् ।

मोनोलेन-संज्ञा पुं० [ सं० ] एरोप्लेन या वायुयान का एक भेद ।

मोरट-संज्ञा पुं० [ सं० ] सर्वा ।

मोशिये-संज्ञा पुं० [ फ्रें० ] [ संक्षिप्त रूप मोस, जम० ] [ हिंदी संक्षिप्त रूप मो० ] फ्रांस में नाम के आगे लगाया जानेवाला आदर-सूचक शब्द । अंग्रेजी 'मिस्टर' शब्द का समानार्थवाची शब्द । महाशय । साहब । जैसे,—मोशिये श्रावर्ध ।

मौगी-वि० [ सं० मौन ] मौन । चुप । उ०—सुनि खग कहत अंध मौगी रही सगुनि प्रेम-यव न्यारी ।—तुलसी ।

मौजू-वि० [ सं० ] जो किसी स्थान पर ठीक वेंकता या मालूम होता हो । उपयुक्त ।

मौल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) बड़ा जमींदार । तबल्लुकदार । भूस्वामी ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि ग्राम के सीमा-संबंधी विवाद को सामन्त और यदि सामन्त न हों तो मौल निपटावे ।

मौलबल-संज्ञा पुं० [ सं० ] बड़े जमींदारों की अथवा उनके द्वारा पकड़ की हुई सेना । ( कौ० )

मौला-संज्ञा पुं० [ देश० ] उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ एक बालित तक लंबी होती हैं । जाड़े के दिनों में इसमें आध इंच लंबे फूल लगते हैं । इसके तने से एक प्रकार का लाल रंग का गोंद निकलता है । यह बेल जिस वृक्ष पर चढ़ती है, उसे बहुत हानि पहुँचाती है । मूला । मल्ला बेल ।

याचाकामी घघ-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी व्यक्ति को यह घोषित करके छोड़ देना कि इसे जो चाहे, मार डाले ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में जो राजकर्मचारी चार बार बोरी या गोंद कतरने के अपराध में पकड़े जाते थे, उनको यह दंड दिया जाता था ।

याघपि-बन्ध० [ सं० ] अगर्चे । हरबंद । वायव्येदि । उ०—याघपि ईधन जरि गये अरिगण केसावदास । नद्वि प्रतापानलन को पल पल बदन प्रकाश ।—केशन ।

याचितक-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी से कुछ दिन के लिये मर्गी हुई वस्तु । मर्गानी की चीज ।

विशेष—वाणज्य ने लिखा है कि मोंग हुए पदार्थ को जो न लौटावे, उस पर १२ पण क्षरमाना किया जाय । ( कौ० )

यातश्च-वि० [ सं० ] ( २ ) जिस पर चढ़ाई की जानेवाली हो ।

यात्रा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( ७ ) बुद्धयात्रा । चढ़ाई । ( कौ० )

यादगारी-संज्ञा स्त्री० [ प्रा० ] ( १ ) वह पदार्थ जो किसी की स्मृति में हो । स्मृति विद् । ( २ ) दे० "यादगार" ।

यादच्छिक आधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गिरवी रखी हुई वह चीज जो बिना ऋण चुकाए न लौटाई जा सके ।

यादयाश-वि० [ प्रा० ] चार दोस्तों में रहकर आनन्दपूर्वक समय पितानेवाला । रसिक ।

यूनाइटेड किंगडम-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंग्लैंड, स्कॉटलैंड और आयरलैंड के संयुक्त राज्य ।

यूनाइटेड स्टेट्स-संज्ञा पुं० [ सं० ] अनेक छोटे छोटे राज्यों का एक बड़ा संयुक्त राज्य । जैसे,—यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका ।

यूनियन-संज्ञा पुं० [ सं० ] संघ । समा । समात । मण्डल । जैसे,—लेबर यूनियन । ट्रेड्स यूनियन ।

यूनियन जैक-संज्ञा पुं० दे० "यूनियन झेंडा" ।

यूनियन श्लैंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] छेद छिदेन और आयरलैंड के संयुक्त राज्यों की राष्ट्रीय पताका ।



**यूनीफार्म**-संज्ञा पुं० [ अं० ] एक ही प्रकार की पोशाक या पहनावा जो किसी विशेष विभाग के कर्मचारियों या नौकरों के लिये नियत हो। वस्ती। जैसे,—पुलिस के पचास जवान जो यूनीफार्म में नहें थे, वहाँ सधरे से आ उठे थे।

**योग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३८) शत्रु के लिये की जानेवाली यंत्र, मन्त्र, पूजा, छल, कपट आदि की युक्ति।

**योगगुरुप**-संज्ञा पुं० [ सं० ] मतलब निकालने के लिये साधा हुआ आदमी। (कौ०)

**योगोपनिषद्**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) छल कपट तथा गुप्त रीति में शत्रु को मारने की युक्ति। (कौ०)

**योजना**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (८) किसी बड़े काम को करने का विचार या आयोजन। भावी कार्यों के संबंध में व्यवस्थित विचार। स्त्रीमा। जैसे,—ग्युनिसिपैलिटी की नगर-सुधार की योजना सरकार ने स्वीकृत कर ली।

**रंगराता**-वि० [ सं० रंग + रा ] [को० रंगपत्नी] (१) भोग विलास में लगा हुआ। पैदा आराम में मस्त। (२) प्रेमयुक्त। अनुरागपूर्ण। उ०—रंगराती रातें हिये भियतम लखी बनाई। पाती कासों बिरह की छाती रही लगाई।—बिहारी।

**रंभन**-संज्ञा पुं० [ सं० रंभण ] आलिंगन। परिंभण।

**रत्ना**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार पुरातन खंड की एक नदी का नाम।

**रत्नातिक्रम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] नियम भंग। कायदाकानून तोड़ना। (कौ०)

**रक्षया**-वि० स्त्री० [ सं० रक्षा ] रक्षा करनेवाली। उ०—तीज अष्टमी तेरस जया। चौपि चतुरदसि नवमी रक्षया।—जायसी।

**रजिस्ट्रार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह अफसर जिसका काम लोगों के लिखित प्रतिज्ञापत्रों या दस्तावेजों की कानून के मुताबिक रजिस्ट्री करना अर्थात् दन्तों, सरकारी रजिस्टर में दर्ज करना हो। (२) वह उच्च कर्मचारी या अफसर जो किसी विश्व-विद्यालय में मंत्री का काम करता हो। जैसे,—हिंदू विश्व-विद्यालय के रजिस्ट्रार।

**रजोभ्रम**-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुरी बात से रोकनेवाला। निषिद्ध कर्म करने पर सावधान करनेवाला। (स्पृति)

**रज्जु**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (४) जैनियों के अनुसार समस्त विश्व की ऊँचाई का बड़े घों भाग। राज्जु।

**रतगिरी**-संज्ञा स्त्री० [ हिं० रत्नी ] गुंजा। धूपघी।

**रतनगुरुप**-संज्ञा पुं० [ १ ] एक प्रकार की छोटी झाड़ी, जो दिही, आगरे, बुंदेलखंड और बंगाल में पाई जाती है। इसकी जड़ और पत्तियों ओपधि के रूप में काम में आती हैं।

**रतया**-संज्ञा पुं० [ दे० ] धर, नाम की धास जो धोड़ों के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है।

**रती**-संज्ञा स्त्री० [ सं० रति ] (५) तेज। कान्ति। उ०—बेदू लोक

सब साखी काहू की रति न राखी रावन की बंदि लाने अमर मरन।—तुलसी।

**रत्नगृह**-संज्ञा पुं० [ सं० ] यौद्धों के शत्रु के मध्य की कोठरी जिसमें धातु आदि रक्षित रहती थी।

**रत्नायतन**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (४) एक प्रकार का हार।

**रथ**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (६) शतरंज का वह मोहरा जिसे आठ बल कैंट कहते हैं।—उ०—राज कील देइ शह मॉगा। शह देइ चाह भरे रथ खॉगा।—जायसी

**विशेष**-जय चतुरंग का पुराना खेल भारत से फारस और अरब गया, तब वहाँ रथ के स्थान पर कैंट हो गया।

**रथचर्यासंचार**-संज्ञा पुं० [ सं० ] रथों के चलने की पद्धति। (यह खजूर की, लकड़ी या पथर की बनाई जाती थी।)

**रथ्या**-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (६) सड़कों का एक भेद जिसकी चौड़ाई २० या २१ हाथ होती थी।

**रथना**-क्रि० प्र० [ सं० रथ ] उच्चरित करना। रथ करना। बोलना। उ०—आकाश विमान अमान छपे। हा हा सप ही यह शब्द रथे।—केशव।

**रथ**-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] वह बीमार जो एक पर एक पॉठी बड़े बड़े पथर रथ कर उठाई गई हो और जिसके पथर चूने गारे आदि से न जोड़े गए हों। ( बुंदेल० )

**रथक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) तीस मोतियों का लच्छा जो तौल में बचीस रत्नी हो।

**रवादाक**-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मनुष्य जिसने गिरवी रत्ने हुए धन को हजम कर लिया हो।

**रस-परित्याग**-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार दूध, दही, चीनी, नमक या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ बिलकुल छोड़ देना और कभी ग्रहण न करना।

**रसाल**-संज्ञा पुं० दे० "रसाल"।

**रसाल**-वि० [ सं० ] (६) रसिक। रसिया। उ०—तासों मुदिता कहत हैं, कवि मतिराम रसाल।—मतिराम।

**रसेसक**-संज्ञा पुं० [ सं० रसेण ] नमक। लवण। उ०—खचिर रूप जलसों रसेस है मिलि न फिरन की, पात चलाई।—तुलसी।

**रसौल**-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार की बड़ी कैंटीली लता जो खीरी और बहराइच के जंगलों में बहुत अधिकता से होती है और दक्षिण भारत, बंगाल तथा बरमा में भी पाई जाती है। यह गरमी के दिनों में फूलती और जाड़े में फलती है। इसकी पत्तियों और कलियों ओपधि रूप में भी काम आती हैं और उनसे चमड़ा भी सिद्धाया जाता है। इसकी पत्तियों खटी होती हैं, इसलिये उनकी चटनी भी बनाई जाती है।

**रहस**-संज्ञा पुं० [ सं० रहस = को। ] आनंद। आनंद-प्रमोद।

७०—मिले रहस भा चाहिये दूता। कित रोहस जौं मिले विद्वता।—जायसी।

राज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) पदम। नरम ऊन।

राईल-संज्ञा पुं० [ सं० राजा ] (१) राजा। (२) वह जो सब में श्रेष्ठ हो। ७०—सुनु सुनिराई, जगसुखाई। कहिं अब सोई, जेहि यश होई।—देवराय।

राजंड टेकुल कांनरैस-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह-समा या सम्मेलन जिसमें एक गोल मेज के चारों ओर राजपक्ष तथा देवा के मित्र मित्र मंत्रों और दूतों के लोग बिना किसी भेदभाव के बैठकर किसी महत्व के विषय पर विचार करें। गोल मेज काफ़रस।

राजसपति-संज्ञा पुं० [ सं० राजस + पति ] राजग। ७०—सिगरे नानायक, असुर विनायक; राजसपति हिय होरि गये।—केदाव।

रागविवाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] गाली गलौज।

राजकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्यायालय। अदालत।

(२) राजनीति। जैसे—राजक्रान्त की बहुत सी महत्वपूर्ण बातें परदे के संदर हुआ करती हैं; और जनतक वे कार्य में परिणत नहीं होतीं, सब तक वे बड़े बन्द से दबा रखी जाती हैं।—श्रीकृष्णसंदेश।

राजकुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजाओं का खानदान। राजवंश।

७०—सुग्राह-राजकुल-कलस कहे बालक वृद्ध न जानिये।—देवराय।

राज-जामुन-संज्ञा पुं० [ सं० राज + हिं० जामुन ] जामुन की जाति का एक प्रकार का मसोले, आकार का घृण जो देहरादून, अवध और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है। इसकी छाल यौगन लिपू भूरे रंग की और खुरदुरी होती है। यह गरमो में फूलता और बरसान में फलता है। इसकी पत्तियों का व्यवहार औषध में होता है और फल खाए जाते हैं। इसकी लकड़ी इमारत के सामान और खेती के औजार बनाने के काम में आती है। विषामन। टूटी।

राजपंखी-संज्ञा पुं० [ सं० राज + हिं० पंखी ] राजहंस। ७०—पंखें बग सौं तहाँ ल्याना। राजपंखि पेवा गरजना।—जायसी।

राजपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (५) राज्य की ओर से मिला हुआ एक पद या उपाधि। सरदार। नायक।

विशेष-गुप्तों के समय में यह पद सुदृशवर्तों के नायक को दिया जाता था। हिन्दी का 'रावन' या 'रावत' शब्द इसी से बना है।

राजवंत-विं० [ सं० पञ्च + वं (प्रत्य०) ] राजकुम से संयुक्त।

७०—वन राजवंत, जग योगवंत। तिनको उदोन, केदि भीति होत।—केदाव।

राजवार-संज्ञा पुं० [ सं० राज + वार ] राजद्वार। ७०—मौगत राजवार चलि भाई। भीतर चेरिन्ह बात जनाई।—जायसी। राजशब्दोपजीवी गण-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का गण या प्रजातंत्र।

विशेष-कौटिल्य ने लिखा है कि लिच्छवि, यजिक, मद्रक, कुर्पांचाल आदि गण राजशब्दोपजीवी हैं। (कौटि०)

राजस्थानिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक उच्च राजकीय पद। हाकिम। वाहसराय।

विशेष-गुप्तों के समय में इस शब्द का विशेष प्रचार था। राजस्थानीय-संज्ञा पुं० दे० "राजस्थानिक"।

राजस्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुजारी, आयकारी, इन्कम टैक्स, कस्टम्स, लुट्टी आदि करों से होती हो। आमदेसुक्त। मालगुजारी।

राजाकोशिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा को गाली देने या कोसेनेवाला। राजा की अनुचित शब्दों में आलोचना करनेवाला।

विशेष-कौटिल्य ने इसके लिये जीम उखादने का दंड लिखा है। राज-संज्ञा स्त्री० दे० "रज्जु"।

राज्यसभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० राज्य + सभा ] भारतीय व्यवस्थापक मंडल का वह भाग जिसमें प्रायः बड़े आदिमियों के प्रतिनिधि होते हैं। स्टेट कौंसिल। अपर चेंबर। अपर हाउस।

विशेष-जिस प्रकार मित्रिटा पार्लमेंट के किंग (महाराज), लार्ड्स और कामन्स ये तीन भाग हैं, उसी प्रकार भारतीय व्यवस्थापक मंडल के गवर्नर-जनरल, व्यवस्थापिका परिषद् (लेजिस्लेटिव कौंसिल) और राज्यसभा (स्टेट कौंसिल) ये तीन अंग हैं। राज्यसभा और व्यवस्थापिका परिषद् दोनों इंग्लैंड की लार्ड्स सभा और कामन्स सभा के ढंग पर बनाई गई हैं। राज्यसभा को अपर चेंबर या अपर हाउस और परिषद् को लोअर चेंबर या लोअर हाउस भी कहते हैं। यद्यपि सभासदों की संख्या की दृष्टि से परिषद् बड़ी सभा और राज्यसभा छोटी सभा है, पर सदस्यों और उनके निर्वाचकों की योग्यता, पद और सर्वार्थों की दृष्टि से राज्यसभा बड़ी सभा और परिषद् छोटी सभा कहलाती है, क्योंकि उसके निर्वाचकों और सदस्यों की योग्यता इससे अधिक रखी गई है। कोई विषय या बिल दोनों सभाओं में स्वीकृत होना चाहिए। एक सभा से स्वीकृत होने पर कोई विषय या बिल स्वीकारार्थ दूसरी सभा में जाय है। यहाँ से स्वीकृत होने पर वह गवर्नर जनरल के पास स्वीकारार्थ जाता है। गवर्नर जनरल को उसे स्वीकार करने या न करने का पूरा पूरा अधिकार है। यदि गवर्नर जनरल ने दोनों सभाओं से स्वीकृत बिल पर स्वीकृति दे दी तो वह कानून बन जाय है। राज्यसभा में ३३ निर्वाचित और

यूनीफार्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक ही प्रकार की पोशाक या पहनावा जो किसी विशेष विभाग के कर्मचारियों या सौकरों के लिये नियत हो। घरदी। जैसे,—पुलिस के पचास जवान जो यूनीफार्म में नहीं थे, वहाँ सधरे से आ डटे थे।

योग-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३८) दायु के लिये की जानेवाली यंत्र, मन्त्र, पूजा, छल, कपट आदि की युक्ति।

योगगुरुप-संज्ञा पुं० [ सं० ] मत्तल निकालने के लिये साधा हुआ आदमी। (कौ०)

योगोपनिषद्-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) छल कपट तथा गुप्त रीति से दायु को मारने की युक्ति। (कौ०)

योजना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ]—(८) किसी बड़े काम को करने का विचार या आयोजन। भावी कार्यों के संबंध में व्यवस्थित विचार। रक्रीम। जैसे,—मुनिसिपैलिटी की नगर-सुधार की योजना सरकार ने स्वीकृत कर दी।

रंगारता-वि० [ सं० रंग + रत ] [स्त्री० रंगारती] (१) भोग विलास में लगा हुआ। पेशा आराम में मस्त। (२) प्रेमयुक्त। अनुरागपूर्ण। उ०—रंगारती रातें हियें मियतम लिखी बनाइ। पाती काती बिरह की छाती रही लगाइ।—विहारी।

रंभन-संज्ञा पुं० [ सं० रंभण ] आलिंगन। परिंरंभण।

रस्ता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार पुरातन खंड की एक नदी का नाम।

रक्षातिक्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] नियम-भंग। कापदा-कानून तोड़ना। (कौ०)

रखया-वि० स्त्री० [ सं० रखा ] रक्षा करनेवाली। उ०—सौज अष्टमी तेरस जया। चौथि चतुरदसि नयमी रखया।—जायसी।

रक्षिप्रार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह अफसर जिसका काम लोगों के लिखित प्रतिज्ञापत्रों या दस्तावेजों की कानून के मुताबिक रक्षिणी करना अर्थात् उन्हें सरकारी रजिस्टर में दर्ज करना हो। (२) वह उच्च कर्मचारी या अफसर जो किसी विध-विद्यालय में मन्त्री का काम करता हो। जैसे,—हिंदू विध-विद्यालय के रक्षिप्रार।

रजोभ्रम-संज्ञा पुं० [ सं० ] घुरी घात से रोकनेवाला निषिद्ध कर्म करने पर सावधान करनेवाला। (रुद्रति)

रज्जु-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (७) जैतियों के अनुसार समस्त विध की ऊँचाई का दूधे वाँ भाग। राज।

रतगिरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० रती ] गुंजा। हुँघची।

रतनपुरुष-संज्ञा पुं० [ १ ] एक प्रकार की छोटी झाड़ी, जो दिही, आगरे, बुंदेलखंड और बंगाल में पाई जाती है। इसकी जड़ आगे पत्तियों ओपथि के रूप में काम में आती है।

रतघा-संज्ञा पुं० [ देशा० ] खर नाम की घास जो धोड़ों के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है।

रती-संज्ञा स्त्री० [ सं० रति ] (५) तेज। कान्ति। उ०—बिद् लोक

सय साखी काहू की रति न राखी रावन की बंदि लगे अमर मरन।—तुलसी।

रत्नगृह-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धों के रूप के मध्य की कोठी जिसमें धातु आदि रक्षित रहती थी।

रत्नावली-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (५) एक प्रकार का हार।

रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] (६) शतरंज का वह मोहरा जिसे आठ कल ऊँट कहते हैं।—उ०—राज कौल देइ शह मींग। शह देइ चाह भरे रथ खींगा।—जायसी

विशेष—जय चतुर्ग का पुराना खेल भारत से फारस और अरब गया, तब वहाँ रथ के स्थान पर ऊँट हो गया।

रथसवर्णसंचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] रथों के चलने की पक्की सड़क। (यह खरुर की लकड़ी या पत्थर की बनाई जाती थी।

चन्द्रगुप्त के समय में इसका विशेष रूप से प्रचार था।)

रथया-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (६) सड़कों का एक भेद जिसकी चौड़ाई २० या २१ हाथ होती थी।

रथना-कि० अ० [ सं० रथ ] उच्चरित करना। रव करना। बोलना। उ०—आकाश विमान अमान छपे। हा हा सब ही यह शब्द रथे।—केशव।

रथ-संज्ञा स्त्री० [ देशा० ] वह दीवार जो एक पर एक बाँधी बड़े बड़े पत्थर रख कर उठाई गई हो और जिसके पत्थर चूने गारे आदि से न जोड़े गए हों। (बुंदेल०)

रथक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) तीस मोतियों का लब्ध जो तौल में बचीस रती हो।

रथादक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मनुष्य जिसने गिरवी रथे हुए धन को हजम कर लिया हो।

रस-परित्याग-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार वृष, दही, चीनी, नमक या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ विलडल छोड़ देना और कभी ग्रहण न करना।

रसाल-संज्ञा पुं० दे० "रसाल"।

रसाल-वि० [ सं० ] (६) रसिक। रसिया। उ०—तासों मुविता कहत हैं, कथि मतिराम रसाल।—मतिराम।

रसेस-संज्ञा पुं० [ सं० रसेग ] नमक। लघु। उ०—रुचि रूप जलसों रसेस है मिलि न फिरन की बात चलाई।—तुलसी।

रसील-संज्ञा स्त्री० [ देशा० ] एक प्रकार की बड़ी कैंटीली लता जो खीरी और बहराइच के जंगलों में बहुत अधिकता से होती है। यह गरमी के दिनों में फूलती और जाड़े में फूलती है।

इसकी पत्तियाँ और कलियाँ ओपथि रूप में जो काम आती हैं और उनसे चमड़ा भी सिद्धाया जाता है। इसकी पत्तियाँ खटी होती हैं, इसलिये उनकी चटनी भी बनाई जाती है।

रसाल-वि० [ सं० रस ] आनंद। आनंद-प्रमोद।

रहस-संज्ञा पुं० [ सं० रहस = कौ० ] आनंद। आनंद-प्रमोद।

उ०—मिले रहस्य भा चाहिये दूना। कित रोहस्य जो मिले विद्वान्।—जायसी।

रौक्म-वेला पुं० [ सं० ] (२) पदम। नरम ऊन।

राईल-संज्ञा पुं० [ सं० राजा ] (१) राजा। (२) वह जो सब में श्रेष्ठ हो। उ०—सुनु मुनिराई, जगसुयदाई। कहि अब सोई, जेहि यश होई।—देशव।

राउंड टेबुल कान्फरेंस-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह सभा या सम्मेलन जिसमें एक गोल मेज के चारों ओर राजपक्ष तथा देश के विभिन्न विभिन्न मतों और दलों के लोग बिना किसी भेदभाव के बैठकर किसी महत्व के विषय पर विचार करें। 'गोल मेज कान्फरेंस'।

राजसपति-संज्ञा पुं० [ सं० राजस + पति ] राजपण। उ०—सिगरे नरायाक, असुर विनायक, राजसपति हिय हारि गये।—केदाव।

रामविचार-संज्ञा पुं० [ सं० ] गाली गलौज।

राजकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्यायालय। अदालत।

(२) राजनीति। जैसे—राजकरण की बहुत सी महत्वपूर्ण बातें परदे के अंदर हुआ करती हैं; और जनतक के कार्य में परिणत नहीं होतीं; तब तक वे बढ़े बढ़ते से दबा रहीं जाती हैं।—श्रीकृष्णसंदेश।

राजकुल-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजाओं का खानदान। राजवंश। उ०—सुगताज-रानकुल-कलस कहैं बालक बुद्ध न जानिये।—देशव।

राज-जामुन-संज्ञा पुं० [ सं० राजा + हि० जामुन ] जामुन की जाति का एक प्रकार का मसोले आकार का फल जो देहरादून, अवध और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है। इसकी छाल पीलापन लिए भूरे रंग की और खुदुरी होती है। यह गरमो में फूलना और बरसात में फलता है। इसकी पत्तियों का व्यवहार औषध में होता है और फल खाए जाते हैं। इसकी छक्की इमारत के सामान और खेती के औजार बनाने के काम में आती है। विषामन। टुकी।

राजपंखी-संज्ञा पुं० [ सं० राज + हि० पंखी ] राजहंस। उ०—पॉखे नग सो तहाँ लागता। राजपंखि पेया गराजना।—जायसी।

राजपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] (५) राज्य की ओर से मिला हुआ एक पद या उपाधि। सरदार। नायक।

विशेष-गुप्तों के समय में यह पद बुद्धसवारों के नायक को दिया जाता था। हिन्दी का 'राजत' या 'राजत' शब्द इसी से बना है।

राजवंत-वि० [ सं० राज + वंत (प्रत्यय) ] राजकर्म से संयुक्त। उ०—जन राजवंत, जग भोगवंत। तिनको उद्योग, कैहि भीति होत।—केदाव।

राजवार-संज्ञा पुं० [ सं० राज + वार ] राजद्वार। उ०—मॉगत राजवार चलि आई। भीतर चेरिन्ह बात जनाई।—जायसी। राजशुद्धोपजीवी गण-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक प्रकार का गण या प्रजातंत्र।

विशेष-कौटिल्य ने लिखा है कि लिच्छवि, वज्जिक, मद्रक, कुर्वांचाल आदि गण राजशुद्धोपजीवी हैं। (कौटि०)

राजस्थानिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक उच्च राजकीय पद। हाकिम। वाहसराय।

विशेष-गुप्तों के समय में इस शब्द का विशेष प्रचार था। राजस्थानीय-संज्ञा पुं० दे० "राजस्थानिक"।

राजस्व-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुजारी, आयकारी, इन्कम टैक्स, कस्टम्स, ल्यूटी आदि करों से होती हो। आयवेमुक्त। मालगुजारी।

राजाकोशक-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजा को गाली देने या कोसने-वाला। राजा की अनुचित शब्दों में आलोचना करनेवाला। विशेष-कौटिल्य ने इसके लिये जीभ उखाड़ने का दंड लिखा है।

राजू-संज्ञा स्त्री० दे० "रजु"।

राज्यसभा-संज्ञा स्त्री० [ सं० राज्य + सभा ] भारतीय व्यवस्थापक मंडल का वह भाग जिसमें प्रायः बड़े आदमियों के प्रतिनिधि होते हैं। स्टेट कौन्सिल। अपर चेंबर। अपर हाउस।

विशेष-जिस प्रकार मिट्टिया पार्लमेंट के किंग (महाराज), लार्ड्स और कामन्स ये तीन भाग हैं, वसी प्रकार भारतीय व्यवस्थापक मंडल के गवर्नर-जनरल, स्वीकृत्यापिका परिषद् (लेजिस्लेटिव पर्संबली) और राज्यसभा (स्टेट कौंसिल) ये तीन भाग हैं। राज्यसभा और व्यवस्थापिका परिषद् दोनों इंग्लैंड की लार्ड्स सभा और कामन्स सभा के ढंग पर बनाई गई हैं। राज्यसभा को अपर चेंबर या अपर हाउस और परिषद् को लोअर चेंबर या लोअर हाउस भी कहते हैं। जबकि सभासदों की संख्या की दृष्टि से परिषद् बड़ी सभा और राज्यसभा छोटी सभा है, पर सदस्यों और उनके निर्वाचकों की योग्यता, पद और मर्यादा की दृष्टि से राज्यसभा बड़ी सभा और परिषद् छोटी सभा कहलाती है, क्योंकि उसके निर्वाचकों और सदस्यों की योग्यता इससे अधिक रूढ़ी गई है। कोई विषय या बिल दोनों सभाओं में स्वीकृत होना चाहिए। एक सभा से स्वीकृत होने पर कोई विषय या बिल स्वीकारार्थ दूसरी सभा में जाता है। वहाँ से स्वीकृत होने पर वह गवर्नर जनरल के पास स्वीकारार्थ जाता है। गवर्नर जनरल को उसे स्वीकार करने या न करने का पूरा पूरा अधिकार है। यदि गवर्नर जनरल ने दोनों सभाओं से स्वीकृत बिल पर स्वीकृति दे दी तो वह कानून बन जाय है। राज्यसभा में ३३ निर्वाचित और

प्रेसिडेंट समेत २७ मनोनात सदस्य होते हैं, जिनमें से प्रेसिडेंट को छोड़ कर १९ से अधिक सरकारी अफसर नहीं होते। ( भारतीय शासन पद्धति )

राजविद्योप-संज्ञा पुं० [ सं० ] रात में होनेवाले अपराध । जैसे, चोरी । ( कौटि० )

रात्रिभुक्ति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार छठी प्रतिमां जो रात्रि के समय किसी प्रकार का भोजन आदि नहीं ग्रहण करती ।

राधारमण-संज्ञा पुं० [ सं० ] राधा में रमण करनेवाले, श्रीकृष्ण । उ०—लीला राधारमन की, सुंदर जस अगिराम ।—नतिराम ।

रानाश-कि० प्र० [ हि० राचना ] अनुक्त होना । उ०—कोन कली जो भौर न राई । डार न दूट पुहुप गरुभाई ।—जायसी ।

रामचरना-संज्ञा पुं० [ हिं० राम + चरना ] खटुआ खेल । श्रयम्लपूर्णा ।

रामचिड़िया-संज्ञा स्त्री० [ हिं० राम + चिड़िया ] एक प्रकार का जल-पक्षी जो मछलियों पकड़ कर खाता है । मछर गा ।

राष्ट्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह लोक समुदाय जो एक ही देस में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकता-बद्ध हो । एक या सम भाषा-भाषी जन समूह । नेदान । जैसे, भारतीय राष्ट्र ।

राष्ट्रपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ३ ) किसी मण्डल का शासक । हाकिम ।

विशेष-गुप्तों के समय में एक प्रदेश ( जैसे, कुरु पांचल ) के शासक राष्ट्रपति कहलाते थे ।

रास-वि० [ प्रा० रास = राहिन ] अनुकूल । शीत । मुआफिक । उ०—कौंचि पारह परा जो पौसा । पाके पैत परी तनु रासा ।—जायसी ।

रिजर्विस्ट-संज्ञा पुं० [ अ० ] वे सैनिक जो आपत्काल के लिये रक्षित रखे जाते हैं । रक्षित सैनिक ।

विशेष—रिजर्विस्ट सैनिक कम से कम तीन वर्ष तक लड़ाई पर रह चुकने पर छुट्टी पा जाते हैं । जिस पलटन में ये भर्ती होते हैं, रिजर्विस्टों या रक्षित सैनिकों में नाम रहने पर भी ये उस पलटन के ही बने रहते हैं । केवल दो दो वर्ष पर इन्हें दो दो महीने के लिये सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के वास्ते अपनी पलटन में जाना पड़ता है । २५ वर्ष की सैनिक सेवा के बाद इन्हें पेंशन मिल जाती है ।

रिजल्ट-संज्ञा पुं० [ अ० ] परीक्षा-फल । इस्तहान का नतीजा । जैसे—इस थार भी० ए० का रिजल्ट बहुत अच्छा हुआ है ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—होना ।

मुहा०—रिजल्ट आउट होना = परीक्षा पकड़ का प्रकाशित होना । इस्तहान का नतीजा निकलना ।

रिटनिंग अफसर-संज्ञा पुं० [ अ० ] वह अफसर जो निर्वाचन के समय वोटों या मतों को गिनता है और कौन अधिक वोट मिलने से नियमानुसार निर्वाचित हुआ, इसकी घोषणा करता है ।

रिटायर-वि० [ अ० रिटायर्ड ] जिसने काम से अवसर ग्रहण कर लिया हो । जिसने पेंशन ले ली हो । अवसर-प्राप्त ।

रिपोर्टर-संज्ञा पुं० [ अ० ] ( १ ) किसी समाचारपत्र के संपादकीय विभाग का वह कार्यकर्ता जिसका काम सच प्रकार के स्थानीय समाचारों और घटनाओं का संग्रह कर उन्हें लिख कर संपादक को देना और अपने पत्र के लिये सार्वजनिक सभा, समिति, उत्सव आदि का विवरण लिख कर लाना, स्थानान्तर में होनेवाली सभा, सम्मेलन, उत्सव, मेले आदि के अंशतर पर जाकर वहाँ का व्योरा लिख कर भेजना और प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिल कर महत्व के सार्वजनिक प्रश्नों पर उनका मत जानना होता है । ( २ ) वह जो किसी सभा या समिति का विवरण और व्याख्यान लिखना हो । जैसे—कामिंस रिपोर्टर । ( ३ ) वह जो सरकार की ओर से अदालत या किसी सभा, समिति या कौन्सिल की काररवाई और व्याख्यान लिखता हो । जैसे—कौन्सिल रिपोर्टर, सी० आई० डी० रिपोर्टर ।

रिफार्म-संज्ञा पुं० [ अ० ] दोषों या त्रुटियों का दूर किया जाना । किसी संस्था या विभाग में परिवर्तन किया जाना । सुधार । संस्कार । परिवर्तन ।

रिफार्मर-संज्ञा पुं० [ अ० ] वह जो धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक सुधार या उत्थति के लिये प्रयत्न या आन्दोलन करता हो । सुधारक । संस्कारक ।

रिफार्मेंटरी-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] वह संस्था या स्थान जहाँ बालक कैदी रखे जाते हैं और उन्हें औद्योगिक शिक्षा दी जाती है जिसमें वे वहाँ से बाहर निकल कर जीविका निर्वाह कर सकें और भलेमानस बन कर रहें । चरित्र-संशोधनालय ।

रिफार्मेंटरी स्कूल-संज्ञा पुं० दे० "रिफार्मेंटरी" ।

रिदना-कि० प्र० [ अनु० ] बहुत दीनता प्रकट करना । गिड़गिड़ाना ।

रिदिहा-संज्ञा पुं० [ हिं० रिना = गिड़गिड़ाना ] वह जो गिड़गिड़ा कर और रट लगा कर कुछ मँगाना हो । उ०—द्वार हीं और हीं को भाज । रटत रिदिहा आदि और न कीर हीं ते काज ।—गुलसी ।

रिदावर-संज्ञा पुं० [ अ० ] एक प्रकार का तमचा जिसमें एक साथ कई गोलीयों भरने की जगह होती है और गोलीयों लगातार एक के बाद दूसरी छोटी जा सकती हैं ।

रिद्यु-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] ( १ ) किसी नवीन प्रकाशित पुस्तक की परीक्षा कर उसके गुण-दोषों को प्रकट करना । आलो

चना। समालोचना। जैसे—आपने अपने पत्र में अभी मेरी पुस्तक की रिब्यू नहीं की।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) वह लेख या निबंध जिसमें इस प्रकार किसी पुस्तक की आलोचना की गई हो। समालोचना। जैसे—'संवेदा' में 'समाज' की जो रिब्यू निकली है, वह सन्भावपूर्ण नहीं कही जा सकती। (३) वे सामाजिक पत्र पत्रिकाएँ जिनमें सामाजिक, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि विषयों पर आलोचनात्मक लेखों का संग्रह रहने के साथ ही नवीन प्रकाशित पुस्तकों की भी आलोचना रहती हो। जैसे—'माडन रिब्यू', 'सैटरडे रिब्यू'। (४) किसी निर्णय या फैसले का पुनर्विचार। मजूर सानी। जैसे—जीचे की अदालत का फैसला रिब्यू के लिये हाईकोर्ट भेजा गया है।

रिलीफ—संज्ञा पुं० [ अं० ] यह सहायता जो आर्य, पीड़ित या दोन दुखी जनों को दी जाय। सहायता। साहाय्य। मदद। जैसे—मरावादी रिलीफ सोसाइटी। रिलीफ चर्क।

रिस्क—संज्ञा स्त्री० [ अं० ] झोका। जवाबदेही। भार। बोझ। जैसे—नेलेवे रिस्क। उ०—(ख) यदि तुम गॉट न उठाओगे तो वे तुम्हारी रिस्क पर डेव ही जाएंगी।

क्रि० प्र०—उठाना।

रिस्क—वाच—संज्ञा स्त्री० [ अं० ] कलाई पर बाँधने की धड़ी।

रीजेंट—संज्ञा पुं० [ अं० ] वह जो किसी राजा की नाबालिगी, अनुपस्थिति या अयोग्यता, की अवस्था में राज्य का प्रबंध या शासन करता हो। राज-प्रतिनिधि। अस्थायी शासक। बडो। जैसे—स्वर्गीय महाराज सरदासिंह जी की नाबालिगी में ईश्वर के महाराज सर प्रतापसिंह कर्तव्य तक जोधपुर के रीजेंट रहे।

रीजेंसी—संज्ञा स्त्री० [ अं० ] रीजेंट का शासन या अधिकार।

जैसे—जोधपुर में कई वर्ष तक रीजेंसी रही।

रीडर—संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) वह जो पढ़े। पढ़नेवाला। पाठक। (२) कालेज या विद्यालय का अध्यापक या व्याख्याता। (३) वह जो लेख या पुस्तकों के प्रक. पढ़ना या संशोधन करता है। संशोधक।

संज्ञा स्त्री० पाठ्य पुस्तक। जैसे—पहली रीडर।

रीडिंग रूम—संज्ञा पुं० दे० 'बाचनालय'।

रीहा—संज्ञा स्त्री० दे० 'रीसा'।

रुकिम—संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार, पंचवें वर्ष का नाम जो रथक और हैष्यवत वर्ष के मध्य में स्थित है।

रुटाना—क्रि० सं० [ हि० रुटना का प्र० ] किसी को रुटने में प्रवृत्त करना। नाराज करना। उ०—मनु न मनावन कीं करे देस रुटाइ रुटाइ। कौतुक व्यंग्य। प्रिया—विश्वहृदिसिंहवति भाव।—विहारी।

रुद्र-कमल—संज्ञा पुं० [ सं० रुद्र + कमल ] हृदाक्ष। उ०—रुद्रकी रुद्र-कवच के गदा। ससि माथे औ सुरसरि जटा।—जायसी।

रूपकरण—संज्ञा पुं० [ सं० रूप + करण ] एक प्रकार का घोंटा।

उ०—किरमिज तुरुरा जरदे भले। रूपकरन, बोलसर चले।—जायसी।

रूपघात—संज्ञा पुं० [ सं० ] सूरत विगाढ़ना। कुरूप करने का अपराध। (कौ०)

रूपदर्श—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) प्राचीन काल का सिक्कों का निरीक्षण करनेवाला राज कर्मचारी। (२) सराफ। (कौ०) रूप्यकुला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार हैष्यवत वर्ष की एक नदी का नाम।

रुखल—संज्ञा पुं० [ रुखी रुख ] रूस का चाँदी का सिक्का जो प्रायः दो सिक्कियाँ डेढ़ पनी के बराबर मूल्य का होता है। (एक सिक्कियाँ = प्रायः बारह आने। एक पनी = प्रायः तीन पैसे)

रूपा—वि० [ सं० रुद्र ] (२) बहुत बढ़ा। उ०—बिज की सी उप्रिका के रूरे बगरूरे मोहि शंवर छड़ाय लई कामिनी के काम की।—केशव। (३) सुन्दर। मुगोहर। उ०—मेघ मन्दारकिनी, चारसोदामिनी, रूप रूरे लसैं देहधारी मनो।—केशव।

रेकार्ड—संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) किसी सरकारी या सार्वजनिक संस्था के कागज पत्र। (२) अदालत की मिसिल। (३) कुछ विशिष्ट मसलों से बना तबे के आकार का गोल टुकड़ा जिसमें वैज्ञानिक क्रिया से किसी का गाना पजाना या बढ़ी हुई बातें भरी रहती हैं। फोनोग्राफ के सँदूक के बीच में निकली हुई कील पर इसे लगा कर ऊँगी देने पर यह घूमने लगता है और इसमें से शब्द निकलने लगते हैं। चूड़ी। विशेष—दे० 'फोनोग्राफ'।

रेक्टर—संज्ञा पुं० [ अं० ] किसी संस्था का, विशेष कर शिक्षा संस्था का प्रधान। जैसे—यूनिवर्सिटी का रेक्टर।

रेगुलेशन—संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) नियम या कायदे जो राजपुरुष अपने अधीन देश के सुशासन के लिये बनाते हैं। बिधि। विधान। कानून। जैसे—बंगाल के तीसरे रेगुलेशन के अनुसार किनारे ही युवक निर्वासित किए गए। (२) वे नियम या कायदे जो किसी विभाग या संस्था के सुसंचालन और नियन्त्रण के लिये बनाए जाते हैं। नियम। कायदे।

रेग्युलेटर—संज्ञा पुं० [ अं० ] किसी मशीन या कल का वह हिस्सा या पुर्जा जो उसकी गति का नियन्त्रण करता है। यंत्रनियामक।

रेजोल्यूशन—संज्ञा पुं० [ अं० ] (१) यह नियमित याकायदा प्रस्ताव जो किसी स्थस्थायिका सभा या अन्य किसी सभा संस्था के अधिवेशन में विचार और स्वीकृति के लिये उप-

स्थित किया जाय। प्रस्ताव। तजवीज। जैसे—वे परिपक्व के आगामी अधिवेशन में राजनीतिक कैदियों को छोड़ देने के संबंध में एक रेजोल्यूशन उपस्थित करनेवाले हैं। (२) किसी व्यवस्थापिका संभा या अन्य किसी सभा-संस्था का किसी विषय पर निश्चय जो एकमत या बहुमत से हुआ हो। निर्णय। मन्तव्य। जैसे—इस संबंध में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के रेजोल्यूशनों में विरोध नहीं है। (४) पुलिस की शासन रिपोर्ट पर जो सरकारी रेजोल्यूशन निकला है, उसमें पुलिस की प्रशंसा की गई है और कहा गया है किगत वर्ष जो राजनीतिक अपराध नहीं हुए, उसका कारण पुलिस की तत्परता और सावधानता है।

रेट-पेयर्स-संज्ञा पुं० [ अ० ] वह जो किसी म्युनिसिपैलिटी को टैक्स या कर देता हो। करदाता। जैसे—रेट-पेयर्स एसोसिएशन।

रेफरी-संज्ञा पुं० [ अ० ] वह जिससे कोई झगड़ा निपटाने को कहा जाय। पंच। जैसे—इस वार फुटबाल मैच में फंसान स्टांडन रेफरी थे।

रेफ्यूज-संज्ञा पुं० [ अ० ] वह संस्था जिसमें अनार्यों और निराश्रयों को आस्थायी रूप से आश्रय मिलता है। जैसे—इण्डियन रेफ्यूज।

रेवरेंड-संज्ञा पुं० [ अ० ] पादरियों की सम्मानसूचक उपाधि। जैसे—रेवरेंड कोलमैन।

रेवेन्यू-संज्ञा पुं० [ अ० ] किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुजारी, आयकारी, इनकम टैक्स, कस्टम ड्यूटी आदि करों में होती है। आमदने मुल्क। मालगुजारी। जैसे—रेवेन्यू मेम्बर, रेवेन्यू अफसर, रेवेन्यू बोर्ड।

रेवेन्यू बोर्ड-संज्ञा पुं० [ अ० ] कई बड़े बड़े अफसरों का वह बोर्ड या समिति जिसके अधीन किसी प्रदेश के राजस्व का प्रबंध और नियन्त्रण हो।

रेवोल्यूशन-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) समाज में ऐसा उलटफेर या परिवर्तन जिससे पुराने संस्कार, आचार विचार, राजनीति, रुढ़ियाँ आदि का अस्तित्व न रहे। आमूल परिवर्तन। फेरकार। उलट फेर। क्रांति। विद्रोह। (२) देश या राज्य की शासन प्रणाली या सरकार में आकस्मिक और भीषण परिवर्तन। प्रचलित शासन प्रणाली या सरकार को उलट देना। राज्यक्रांति। राज्यविद्रोह।

रेवोल्यूशनरी-वि० [ अ० ] राज्यक्रांतिकारी। विद्रोहवादी। जैसे, रेवोल्यूशनरी लीग।

रेवोल्यूशन संबंधी। जैसे, रेवोल्यूशनरी साहित्य।

रेस-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] (१) यात्री बंद कर दौड़ना। दौड़ में प्रति-योगिता करना। (२) घुड़दौड़।

यौ०—रेस-कोर्स। रेस प्राइड।

रेस कोर्स-संज्ञा पुं० [ अ० ] दौड़ या घुड़दौड़ का रास्ता या मैदान।

रेस प्राइड-संज्ञा पुं० [ अ० ] दौड़ या घुड़दौड़ का मैदान।

रेक-संज्ञा पुं० [ अ० ] लकड़ी का खुला हुआ ढाँचा जिसमें पुस्तकें आदि रखने के लिये दर या खाने बने रहते हैं। यह आलमारी के ढंग का होता है, पर भेद इतना ही होता है कि आलमारी के चारों ओर तल्ले जड़े होते हैं और यह कम से कम आगे से खुला रहता है।

रेकेट-संज्ञा पुं० [ अ० ] टेनिस के खेल में गेंद मारने का ढंग जिसका अग्र भाग प्रायः चतुर्लकार और नाँव से पुना हुआ होता है।

रेनिचर-संज्ञा पुं० [ हि० रेन + चर ] निदापर। राइस। उ०—हेम मृग होहिं नहिं रेनिचर जांनियो—केशव।

रोगदूरी-संज्ञा स्त्री० [ हि० रोग + दूरी ] (१) अन्वय। (२) बर्झमानी।

रोगद्वैत-संज्ञा स्त्री० दे० "रोगदूरी"। उ०—खेलत खात परस पर उहकत छीनत कहत करत रोगद्वैत।—तुलसी।

रोचन-वि० [ सं० ] (४) लाल। उ०—धारि भरित भये बारि रोचन।—केशव।

रोचित-वि० [ सं० रोचन ] शोभित। उ०—तन रोचिन रोचन लई, रंचन कंचन गोडु।—केशव।

रोटा-वि० [ हि० रोटी ] पिस्ता हुआ। चूर किया हुआ। उ०—ओ जीं घुटाई बज कर गोटा। बिसरहिं भुगुति होइ सग रोटा।—जायसी।

रोड-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] सड़क। रास्ता। राजपथ। जैसे, हैरिसन रोड।

रोपना-क्रि० सं० दे० "रोकना"। उ०—राजहिं तहाँ गण्ड लई काहू। होइ सामुहँ रोपा देवपाळ।—जायसी।

रोम-संज्ञा पुं० [ सं० रोम ] (४) ऊन। उ०—दासी दास बसि बाल रोम पाट को कियो। दायजो विदेहराज भौति भौति को कियो।—केशव।

रोल-संज्ञा पुं० [ अ० ] नामों की तालिका या फहरिस्त।

रोल नंबर-संज्ञा पुं० [ अ० ] नामों की तालिका या सूची का क्रम।

रोहिता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार हैमवत की एक नदी का नाम।

रोहितास्या-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार हैमवत की एक नदी का नाम।

रौंग-संज्ञा पुं० [ दे० ] सफेद कौकर।

रौंगोचा-संज्ञा पुं० [ दे० ] जानवर की आँत जो मसालेदार क्रीमे से भर कर और तलकर खाई जाती है। कुल्मा। गुल्मा।

लंबू-वि० [ हि० लंबा ] लंबा। (आदमी के लिये, धर्म्य)

लंबोतरा-वि० [ हि० लंबा + त्रोटत (पत्य०) ] जो आकार में इतना लंबा हो। लंबापन लिए हुए। जैसे,—आम के फल लंबोतरा होते हैं।

लंदराज-संज्ञा पुं० [ लं० अंगराज ] एक प्रकार की मोटी चादर ।  
लउडी-संज्ञा स्त्री० [ सं० लउड ] लउडी । लउड़ी । उ०—बाएँ से छेद  
तरुन वह सोया । लउडी बूढ़े छेद पुनि रोया ।—जायसी ।

लक वक्र-वि० [ प्र० लय वक्र ] ( मैदान ) जिसमें धूल या वन-  
स्पति आदि कुछ भी न हो ।

लक्ष्मि-संज्ञा स्त्री० [ सं० लक्ष्मी ] लक्ष्मी । देवता ।  
उ०—पद्म हूँ संक्षिप्त संख्या संक्षी हूँ मनोत लक्ष्मि स्वच्छ  
प्रत्यक्ष ही दिखिये ।—केदार ।

लक्ष्मण, लक्ष्मण-संज्ञा पुं० [ सं० लक्ष्मण ] लक्ष्मण का वह घर  
जो पांडवों को जलाने के लिये दुर्योधन ने बनवाया था ।  
लक्ष्मणपुत्र । उ०—जैसे भारत लक्ष्मण साहस कोन्हों भीउ ।  
भारत खंभ तस काहुहु के पुरुवार्य भीउ ।—जायसी ।

लखपेड़ा-वि० [ हिं० लख + पेड़ा ] ( बाग आदि ) जिसमें बहुत  
अधिक फूल हों ।

लखलुटल-वि० [ हिं० लख + लुटल ] जो लखों रुपय लुटा दे ।  
बहुत बड़ा अपव्ययी ।

लखी-संज्ञा पुं० [ हिं० लखी ] लख के रंग का घोड़ा । लखी ।  
उ०—अबलक भरबी लखी सिरात्री । चौबर बाल, समेद  
भल तानी ।—जायसी ।

लगनवट-संज्ञा स्त्री० [ हिं० लगन + वट (भय०) ] लगन । प्रेम ।  
मुस्कत । उ०—गाढ़ी खेती लगनवट फलन कुन्यात मग  
खेत । धैर बड़े सों आपने क्रिये पाँच दुःख-हेत ।—मुल्सी ।

लगना-संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का जंगली मृग । उ०—  
हरिन रोड़ लगना वन बसे । धीतर गोंहन शौल भी  
संसे ।—जायसी ।

लगनी-संज्ञा स्त्री० [ प्र० लगन = बाली ] ( १ ) छोटी बाली ।  
तिकावी । ( २ ) पानदान में की यह तदतरी जिसमें पान  
रखे जाते हैं । ( ३ ) परात ।

लग्नी-वि० [ हिं० लगन = संभोग करना ] ( १ ) संभोग करने-  
वाला ( २ ) उपपत्ति । जार । पार । ( धाजारू )

लगु-समुत्पत्ति ( राजा )-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राजा या राज्य जो  
लुहार्ह के लिये जल्दी तैयार किया जा सके ।

विशेष—लगु-समुत्पत्ति और लगु-समुत्पत्ति इन दो प्रकार के मिश्रों  
में कौटिल्य ने दूसरे को ही अर्थात् कहा है, क्योंकि यद्यपि  
उसकी शक्ति बहुत नहीं होती, पर वह समय पर खड़ा हो  
सकता है । पर प्राचीन आचार्य—लगु-समुत्पत्ति को ही  
अर्थात् मानते थे, क्योंकि यद्यपि वह जल्दी नहीं उठ सकता,  
पर जब उठता है, तब कार्य, पूरा करके ही छोड़ता है ।

लक्ष्मण-संज्ञा स्त्री० [ सं० लक्ष्मण ] लक्ष्मी का देवता । उ०—  
विनके लक्ष्मण-लक्ष्मण धय, आठे दहे बलामि ।—मिवराम ।

लक्ष्मण-वि० [ अनु० ] ( १ ) ( व्यंजन ) जो न बहुत गाढ़ा हो

और न बहुत पतला । लक्ष्मण । ( २ ) जिसमें पौरुष का  
अभाव हो । नरुसक ।

लक्ष्मण-संज्ञा स्त्री० [ हिं० लक्ष्मण + बालिका ] मूली । बेवकूफ ।  
लक्ष्मण-संज्ञा स्त्री० [ हिं० लक्ष्मण ] एक प्रकार का जंगली मृग  
जिस की बाल कपड़े में लिपट या फँस जाती है और  
कठिनता से छूटती है ।

वि० ( १ ) लिपटनेवाला । चिमटनेवाला । ( २ ) सदा या  
लिपटा हुआ ।

लक्ष्मण-वि० [ अनु० ] ( १ ) हीरान होना । परेशान होना ।  
मुद्गा—लक्ष्मण क्षपना = रैरान होना । उ०—प्रादि बरस जी  
लक्ष्मण क्षपण । छन एक गुपुत जाय जो जपड़े '—जायसी ।

लक्ष्मण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह दास जो दूसरे में मिटा हो ।  
लक्ष्मण-वि० [ हिं० लंवा ] लंवा का संक्षिप्त रूप जो प्रायः यौगिक  
शब्दों के आरंभ में लगाया जाता है । जैसे,—लक्ष्मणतंड ।

लक्ष्मण-वि० दे० "लंवातरा" ।  
लक्ष्मण-संज्ञा स्त्री० [ सं० लक्ष्मण + कला ] वे कलाएँ या  
विचारें जिनके ध्यक्त करने में किसी प्रकार के सौन्दर्य की  
अपेक्षा हो । जैसे,—संगीत, चित्रकला, वास्तुकला, मूर्ति-  
कला इत्यादि । वि० दे० "कला" ।

लक्ष्मण-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( २ ) प्रायः समोसे के आकार की  
एक बँसला मिठाई जिसमें ऊपर से एक लौंग घोसा हुआ  
होता है और जिसके अन्दर कुछ मेवे और मसाले आदि भरे  
होते हैं ।

लक्ष्मण-संज्ञा स्त्री० [ सं० नवगीत ] नवगीत । मगन ।  
लक्ष्मण-संज्ञा पुं० [ प्र० ] लवानिम का बहुवचन । सामग्री ।  
उपकरण ।

लक्ष्मण-संज्ञा पुं० [ हिं० लक्ष्मण ] गौ का घवा । बछड़ा ।  
लक्ष्मण-संज्ञा पुं० [ हिं० लगन या लक्ष्मण ] सत्यन्व । लगाव ।  
साहचर्य । ( लखनऊ )

लक्ष्मण-संज्ञा स्त्री० [ अनु० ] गोंद या लक्ष्मण चीज की तरह  
चिपकना । चिपचिपाना ।

लक्ष्मण-संज्ञा स्त्री० [ हिं० लक्ष्मण ] ( १ ) लक्ष्मण । चिपचिपाहट । वि०  
दे० 'लक्ष्मण' । ( २ ) छाछ । मद्य । तक । ( पश्चिम )  
यौ०—कक्षी लक्ष्मण=अधिक पानी मिठा हुआ दूध ।

लक्ष्मण-संज्ञा स्त्री० [ हिं० लक्ष्मण ] ( १ ) लक्ष्मण की किया या  
भाव । ( २ ) भाग की लपट । ( ३ ) चमक । सुति । ( ४ )  
शोभा । छवि ।

लक्ष्मण-संज्ञा पुं० [ हिं० लक्ष्मण ] पतला गोदा । लक्ष्मण ।  
लक्ष्मण-संज्ञा स्त्री० [ हिं० लक्ष्मण ] ( १ ) किसी के विरुद्ध कुछ  
करने के लिये बहकाना । ताव दिखाना । ( २ ) उत्साहित  
करके भागे बहाना । ( ३ ) कुपे को उत्साहित या क्रुद्ध करके  
किसी के पीछे लगाना ।



रियत किया जाय। प्रस्ताव। तजवीज। जैसे—ये परिपक्व के भानामो अधिवेशन में राजनीतिक कैदियों को छोड़ देने के संबंध में एक रेजोल्यूशन उपरिपत्त करनेवाले हैं। (२) किसी श्वयस्थापिका समा या अन्य किसी समा-संस्था का किसी विषय पर निश्चय जो एकमत या बहुमत से हुआ हो। निर्णय। मन्तव्य। जैसे—इस संबंध में कांग्रेस और मुसलिम लीग के रेजोल्यूशनों में विरोध नहीं है। (४) पुलिस की शासन रिपोर्ट पर जो सरकारी रेजोल्यूशन निकला है, उसमें पुलिस की प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि गत वर्ष जो राजनीतिक अपराध नहीं हुए, उसका कारण पुलिस की तत्परता और सावधानता है।

रेट-पेयर्स—संज्ञा पुं० [ भं० ] वह जो किसी ग्युनिसिपलिटि को टैक्स या कर देता हो। करदाता। जैसे—रेट-पेयर्स एसोसिएशन।

रेफरी—संज्ञा पुं० [ भं० ] वह जिससे कोई क्षमता निपटाने को कहा जाय। पंच। जैसे—इस वार फुटबाल मैच में कप्तान स्वीटन रेफरी थे।

रेफ्यूज—संज्ञा पुं० [ भं० ] यह संस्था जिसमें अनार्यों और निराश्रयों को अस्थायी रूप से आश्रय मिलता है। जैसे—इण्डियन रेफ्यूज।

रेवरेंड—संज्ञा पुं० [ भं० ] पादरियों की सम्मानसूचक उपाधि। जैसे—रेवरेंड कोलमैन।

रेवेन्यू—संज्ञा पुं० [ भं० ] किसी राजा या राज्य की वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इनकम टैक्स, कस्टम खुटी आदि करों से होती है। आमदनी मुल्क। मालगुजारी। जैसे—रेवेन्यू मेम्बर, रेवेन्यू अफसर, रेवेन्यू थोर्ड।

रेवेन्यू थोर्ड—संज्ञा पुं० [ भं० ] कई बड़े बड़े अफसरों का वह थोर्ड या समिति जिसके अधीन किसी प्रदेश के राजस्व का प्रबंध और नियन्त्रण हो।

रेवोल्यूशन—संज्ञा पुं० [ भं० ] (१) समाज में ऐसा उलटफेर या परिवर्तन जिससे पुराने संस्कार, आचार विचार, राजनीति, रुढ़ियों आदि का अस्तित्व न रहे। आमूल परिवर्तन। फेरकार। उलट फेर। क्रांति। विद्रुव। (२) देश या राज्य की शासन प्रणाली या सरकार में आकस्मिक और भीषण परिवर्तन। प्रचलित शासन प्रणाली या सरकार को उलट देना। राज्यक्रांति। राज्यविद्रुव।

रेवोल्यूशनरी—वि० [ भं० ] राज्यक्रांतिकारी। चिद्रुवपथी। जैसे—रेवोल्यूशनरी लीग।

रेवोल्यूशन संघर्षी। जैसे—रेवोल्यूशनरी साहित्य।

रेस—संज्ञा स्त्री० [ भं० ] (१) पाती बढ़ कर दौड़ना। दौड़ में प्रतियोगिता करना। (२) बुद्धदीव।

यौ०—रेस-कोर्स। रेस प्राउंड।

रेस कोर्स—संज्ञा पुं० [ भं० ] दौड़ या बुद्धदीव का रास्ता या मैदान। रेस प्राउंड—संज्ञा पुं० [ भं० ] दौड़ या बुद्धदीव का मैदान।

रेक—संज्ञा पुं० [ भं० ] लकड़ी का खुला हुआ ढाँचा जिसमें पुस्तकें आदि रखने के लिये दर या खाने बने रहते हैं। यह आलमारी के ढंग का होता है, परं भेद इतना ही होता है कि आलमारी के चारों ओर तख्ते जड़े होते हैं और यह कम से कम आगे से खुला रहता है।

रेकेट—संज्ञा पुं० [ भं० ] टेनिस के खेल में गेंद मारने का ढंग जिसका अग्र भाग प्रायः चतुर्लकार और ताँत से बना हुआ होता है।

रेनिचर—संज्ञा पुं० [ हिं० रेन + चर ] निचाचर। राक्षस। उ०—हम गृग होहिं नहिं रेनिचर जानियो।—केशव।

रोगदर्ही—संज्ञा स्त्री० [ हिं० रोग + ही ] (१) अन्वयाय। (२) वैद्यमानी। रोगदैया—संज्ञा स्त्री० दे० "रोगदर्ही"। उ०—खेलत खत परस पर उहकत छीनत कहत करत रोगदैया।—तुलसी।

रोचन—वि० [ सं० ] (४) लाल। उ०—चारि भरित भये यारि रोचन।—केशव।

रोचित—वि० [ सं० ] रोचन। शोभित। उ०—तन रोचित रोचन लहे, रचन कचन गोवु।—केशव।

रोटा—वि० [ हिं० रोटी ] पिसा हुआ। चूर किया हुआ। उ०—औं जीं छुटाईं वज्र कर गोटा। बिसरहिं सुगुति होइ सर रोटा।—जायसी।

रोड—संज्ञा स्त्री० [ भं० ] सड़क। रास्ता। राजपथ। जैसे—ईरिसन रोड।

रोपना—क्रि० सं० दे० "रोकना"। उ०—राजहिं तहाँ गएउ लहे काल। होइ सामुह रोपा देवपाल।—जायसी।

रोम—संज्ञा पुं० [ सं० रोम ] (४) ऊन। उ०—दासी दास बसि थास रोम पाट को कियो। दायजो विदेहराज भाँति यारि को कियो।—केशव।

रोल—संज्ञा पुं० [ भं० ] नामों की तालिका या फहरिस्त। रोल नंबर—संज्ञा पुं० [ भं० ] नामों की तालिका या सूची का क्रम।

रोहिता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार हेमवत की एक नदी का नाम।

रोहितास्था—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार हेमवत की एक नदी का नाम।

रौंग—संज्ञा पुं० [ दे० ] सफेद कौर। लँगोचा—संज्ञा पुं० [ दे० ] जानवर की भाँत जो मसालेदार कौमे से भर कर और तलकर खाई जाती है। कुलमा। गुलमा।

लंबू—वि० [ हिं० लंबा ] लंबा। (आदमी के लिये, बर्तन)

लंबोतरा—वि० [ हिं० लंबा + तोतरा (पथ) ] जो आकार में डूप लंबा हो। लंबापथ लिपु डूप। जैसे—आम के फल लंबोतरा होते हैं।

संदर्भ—संज्ञा पुं० [ मं० अंगसाय ] एक प्रकार की मोटी चादर ।  
 लखटौली—संज्ञा स्त्री० [ सं० लघु ] लकड़ी । लकड़ी । उ०—वारे खेल  
 तरुन वह सोवा । लकड़ी बूढ़ लेइ पुनि रोवा ।—जायसी ।  
 लक्ष्मि—वि० [ मं० लघु दग ] ( मयान ) जिसमें वृक्ष या वन-  
 स्पति आदि कुछ भी न हो ।  
 लक्ष्मि—किं० सं० [ सं० लघु + ना ( प्रत्य० ) ] लक्ष्मि । देवता ।  
 उ०—पद्म हूँ संधि संध्या संधी हूँ मनोत लक्ष्मि स्वच्छ  
 प्रत्यक्ष ही देखिये ।—केशव ।  
 लखघर, लखाघर—संज्ञा पुं० [ सं० लखाघर ] लख का वह घर  
 जो पांडवों को जलाने के लिये दुर्योधन ने बनवाया था ।  
 लखामुह—उ०—जैसे जात लखामुह साहस कीन्हो भीड ।  
 भारत खंभ तस काइहूँ की पुरुषाय जीउ ।—जायसी ।  
 लखपेड़ा—वि० [ हिं० लख + पेड़ ] ( धारा आदि ) जिसमें बहुत  
 अधिक वृक्ष हों ।  
 लखलुट—वि० [ हिं० लख + लुटना ] जो लखों रुपय लुटा दे ।  
 बहुत बड़ा अपभ्रंश ।  
 लखी—संज्ञा पुं० [ हिं० लखी ] लख के रंग का घोड़ा । लखी ।  
 उ०—अवलक भरबी लखी सिरानी । चौबर बाल, समेंद  
 मल तानी ।—जायसी ।  
 लखनवट—संज्ञा स्त्री० [ हिं० लखन + वट ( प्रत्य० ) ] लखन । प्रेम ।  
 मुहवत । उ०—राही खेनी लखनवट भ्रन कुबवाज मग  
 खेत । वैर बदे सों अपने क्रिये पर्व दुःख-हेत ।—तुलसी ।  
 लखना—संज्ञा पुं० [ ? ] एक प्रकार का जंगली मृग । उ०—  
 हरिन रोख लखना बन बसे । पीतर गौड़न झौल करे  
 ससे ।—जायसी ।  
 लखनी—संज्ञा स्त्री० [ मं० लखन = पत्नी ] ( १ ) छोटी पत्नी ।  
 रिक्की । ( २ ) पानदान में की वह तबती जिसमें पान  
 रखे जाते हैं । ( ३ ) परात ।  
 लखनी—वि० [ हिं० लखना = संभोग करना ] ( १ ) संभोग करने-  
 वाला । ( २ ) उपपत्ति । जार । पार । ( प्रजाक )  
 लखु-समुत्थ ( राजा )—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राजा या राज्य जो  
 लखड़े के लिये जल्दी तैयार किया जा सके ।  
 विशेष—गुरु-समुत्थ और लखु-समुत्थ इन दो प्रकार के निर्मों  
 में कीर्तिलय ने दूसरे को ही अच्छा कहा है, क्योंकि यद्यपि  
 उसकी शक्ति बहुत नहीं होती, पर वह समय पर लखु तो  
 हो सकता है । पर प्राचीन आचार्य गुरु-समुत्थ को ही  
 अच्छा मानते थे, क्योंकि यद्यपि वह जल्दी नहीं उठ सकता,  
 पर जब उठता है, तब कार्य पूरा करने ही छोड़ता है ।  
 लखना—किं० सं० [ सं० लख ] मली मौँति देवता । उ०—  
 निमके लखन-रुछ अम; आठ कहे वलानि ।—महिराम ।  
 लखबड़ा—वि० [ मनु० ] ( १ ) ( व्यंजन ) जो म बहुत गाढ़ा हो

और न बहुत पतला । लखपटा । ( २ ) जिसमें पौरुष का  
 अभाव हो । नपुंसक ।  
 लखवायला—वि० [ हिं० लघु + वायला ] सूखें । वेवकृत ।  
 लखटौली—संज्ञा पुं० [ हिं० लखटना ] एक प्रकार का जंगली मृग  
 जिस की बाछ कपड़े में लिपट या फँस जाती है और  
 कठिनता से छूटती है ।  
 वि० ( १ ) लिपटनेवाला । चिमटनेवाला । ( २ ) सया या  
 लिपटा हुआ ।  
 लखना—किं० मं० [ मनु० ] ( ४ ) हीरान होना । पददान होना ।  
 मुहा०—लखना शपना = रौरन होना । उ०—प्रादि परस जो  
 लखई शपई । छन एक गुणुत जाय जो जपई ।—जायसी ।  
 लखदास—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह दास जो दूसरे में मिला हो ।  
 लम—प्रत्य० [ हिं० लंघा ] लंघा का संक्षिप्त रूप जो प्रायः पौंगिक  
 शब्दों के आरंभ में लगाया जाता है । जैसे,—लमतडंग ।  
 लमलुभा—वि० दे० “लंबोतरा” ।  
 ललित कला—संज्ञा स्त्री० [ सं० ललित + कला ] वे कलाएँ या  
 विद्याएँ जिनके व्यक्त करने में किसी प्रकार के सौन्दर्य की  
 अपेक्षा हो । जैसे,—संगीत, चित्रकला, वास्तुकला, मूर्ति-  
 कला इत्यादि । वि० दे० “कला” ।  
 ललितता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( ३ ) प्रायः समोसे के आकार की  
 एक लँगला मिठाई जिसमें ऊपर से एक लँग खाँसा हुआ  
 होता है और जिसके अन्दर कुछ भेजे और मसाले आदि भरे  
 होते हैं ।  
 ललनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० नवनीत ] नवनीत । मखन ।  
 ललाजामात—संज्ञा पुं० [ मं० ] ललाजिम का बहुवचन । सामग्री ।  
 उपकरण ।  
 लखारा—संज्ञा पुं० [ हिं० लखारे ] गौ का बच्चा । पछड़ा ।  
 लखरका—संज्ञा पुं० [ हिं० लखना या लखना ] सन्वन्ध । लगाव ।  
 तालुक । ( लखनऊ )  
 लखलखाना—किं० मं० [ मनु० ] गौड़ या लखदार चीज की तरह  
 चिपकना । चिपचिपाना ।  
 लखसी—संज्ञा स्त्री० [ हिं० लख ] ( १ ) लख । चिपचिपाहट । वि०  
 दे० “लसी” । ( २ ) छाट । मटा । तक । ( पच्छिम )  
 यौ०—कधी लखसी=अधिक पानी मिला हुआ दूध ।  
 लखक—संज्ञा स्त्री० [ हिं० लखकना ] ( १ ) लखकने की क्रिया या  
 भाव । ( २ ) भाग की लपट । ( ३ ) चमक । सुत्ति । ( ४ )  
 शोभा । छवि ।  
 लखका—संज्ञा पुं० [ हिं० लखक ] पतला गोटा । लखका ।  
 लक्षकारना—किं० सं० [ हिं० लक्षकारना ] ( १ ) किसी के विरुद्ध कुछ  
 करने के लिये बहकना । ताव दिखाना । ( २ ) उन्सहित  
 करके भागे बहाना । ( ३ ) लुके को उन्सहित या झूठ करके  
 किसी के पीछे लगाना ।

सुशुभा-वि० [ सं० शुभ ] (१) लोभी । लालची । (२) चाहने-  
वाला । सुशुभ । प्रेमी । उ०—गालि गैग ओहि रागिय,  
बल बहि कीजिय ओट । देम क सुशुभा पाव ओहि, कइ  
सो बद् का छोट ।—जायसी ।

सुश्री-संज्ञा स्त्री= दे० "लोमड़ी" ।

सुत-संज्ञा स्त्री [ सं० सुत ] मकड़ी । अन्तःपत्र । उ०—लागे छत  
के जाल प, लखो लहात इहि मीन ।—मतिराम ।

सुहो-संज्ञा स्त्री [ हि० सुह ] छः हाथ लम्बी रस्सी जिसके एक  
तिरे पर मुन्नी और दूसरे तिरे पर गुण्डी होती है । यह  
घोड़े की दुम में घूटाई पर से लगाई जाती है । ( घोड़े  
का साज )

सुहोरो-संज्ञा स्त्री [ दे० ] ( चौपायों को ) दाना या चारा  
गिहाने का बर्तन ।

सुहड़-संज्ञा स्त्री [ दे० ] भेंड़ों या दूसरे चौपायों का छुट ।

सुकचर-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह जो लेकचर देता हो । व्याख्यान  
देनेवाला । व्याख्याता ।

सुका-संज्ञा स्त्री [ हि० सुक ] लकीर । पक्की बात । उ०—विद्वं-  
भर श्रीपति मिभुवनपति वेद-विदित यह लेख ।—गुलसी ।

सुक्याकृ-वि० [ सं० ] जिसके संबंध में लिखा पढ़ी हो गई हो ।  
दस्तावेज़ी । जैसे—लेख्याकृ धापि ।

सुजिस्लेटिघ-वि० [ प्र० ] व्यवस्था सम्बन्धी । कानून सम्बन्धी ।  
जैसे—हेजिस्लेटिघ डिपार्टमेंट ।

सुजिस्लेटिघ परसंगी-संज्ञा स्त्री [ सं० ] दे० "व्यवस्थापिका  
परिपद्" ।

सुजिस्लेटिघ कौंसिल-संज्ञा स्त्री= दे० "व्यवस्थापिका सभा" ।

लेट-वि० [ सं० ] जो निश्चित या ठीक समय के उपरान्त आवे,  
रहे या हो । जैसे देर हुई हो । जैसे—यह गाड़ी प्रायः लेट  
रहती है ।

सौ०—लेट फी ।

लेट फी-संज्ञा स्त्री [ सं० ] यह फीस जो निश्चित समय के बाद  
ढाकलाने में कोई चीज दाखिल करने पर देनी पड़ती हो ।

विशेष—ढाकलाने में प्रायः सभी कार्यों के लिये समय निश्चित  
रहता है । उस निश्चित समय के उपरांत यदि कोई व्यक्ति  
कोई चीज रजिस्ट्री कराना या चिट्ठी रवाना करना चाहे, तो  
उसे कुछ फीस देनी पड़ती है जो लेट फी कहलाती है ।

लेटर्स पेटेंट-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह राजकीय आजापत्र जिसमें  
किसी को कोई पद या स्वावल आदि देने या कोई संस्था  
स्थापित करने की यात लिखी रहती है । राजकीय आजापत्र ।  
राजी फरमान । जैसे,—१८६१ में पार्लमेंट ने कानून बना  
फर महाराजा को अधिकार दे दिया था कि अपने लेटर्स पेटेंट  
से कलकत्ता, चम्पई, मद्रास और आगरा प्रदेशों में हाईकोर्ट  
स्थापित करे ।

लेटा-संज्ञा पुं० [ दे० ] गहरे का बाजार । मंडी ।

लेत-संज्ञा स्त्री [ सं० ] गली । कूचा । जैसे—प्यारीचरण सरकार  
लेन, कलकत्ता ।

लेतहार-वि० [ हि० लेत + हार (प्रत्य०) ] लेनेवाला । लेनदार ।  
लहनेदार । उ०—जुत लेनिहार न लेहि जिउ हरहि तरासहि  
ताहि । पतन बोल भाय मुख करै तराहि तराहि ।—जायसी ।

लेफ्टनेट-कर्मल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का एक अफसर जिसका  
दर्जा कर्मल के बाद ही है ।

लेफ्टनेट-जेनरल-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना का एक अफसर  
जिसका दर्जा जेनरल के बाद ही है । सहायक सैन्याध्यक्ष ।

लेयर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो शारीरिक परिश्रम द्वारा जीविक  
निर्वाह करता हो । मेहनत मजूरी करके गुजर करनेवाला ।  
धमजीवी । मजूर ।

लेला-संज्ञा पुं० [ दे० ] [ ली० लेली ] ( १ ) बकरी या भेंड़ का  
बच्चा । ( २ ) वह जो साथ लगा रहता हो । पिछलग्नु ।

लेवी-संज्ञा स्त्री [ सं० ] ( १ ) एक प्रकार का दरवार जो विलायत  
में राजा लोग और हिंदुस्तान में बायसराय करते हैं । ( २ )  
उद्देश्य विशेष से बड़ी की हुई परतन । जैसे,—मकरान लेवी  
कोर । वि० दे० "मिलिशा" ।

लेह-संज्ञा पुं० [ हि० ] ( १ ) लोच नामक वृक्ष । वि० दे० "लोच" ।  
लैसर-संज्ञा पुं० [ सं० ] रिसाले के सवारों के तीन भेदों में से  
एक जो आला लिए रहते हैं और जिनके घोड़े भारी होते हैं ।

लोअर कोर्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] नीचे की अदालत । निच  
विचारालय ।

लोकपाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) नरदा । राजा । रूपति । उ०—  
द्विगपालन की सुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई  
च्ये ।—केशव ।

लोकल-वि० [ सं० ] किसी स्थान विशेष, जिले या प्रदेश का ।  
स्थानीय । प्रादेशिक । जैसे,—लोकल बोर्ड । लोकल गवर्नमेंट ।

लोकहार-वि० [ सं० लोक + हारण ] लोक को हरण करनेवाला ।  
संसार को नष्ट करनेवाला । उ०—वियोग सीप को न, कल  
लोकहार प्रागिये ।—केशव ।

लोकाकाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] विद्य जिसमें सब प्रकार के जीव और  
सब रहते हैं । ( जैन )

लोना-संज्ञा पुं० [ हि० लाम्बोनी ] ( ६ ) अमलौमी नाम की घात  
जिसे रसायनी घातु सिद्ध करने के काम में लाते हैं । उ०—  
( क ) कहीं सो खोपहु विरवा लोना । जेहि तें होइ रूप औ  
सोना ।—जायसी । ( घ ) जहँ लोना विरवा कै जाती । कहि  
के सँदेस आन को पाती ।—जायसी ।

लोना की० [ दे० ] एक कल्पित स्त्री जो जानि की बसा  
और जादू टोने में बहुत प्रवीण कही जाती है । उ०—पूकारु  
परा बस देना । भूला ओय छरा तोहि लोना ।—जायसी ।

लोतार-संज्ञा पुं० [ दि० लूत = गमक + आर (अप०) ] यह स्थान जहाँ नमक चयना हो अथवा जहाँ से नमक आता हो । जैसे,—नमक की खान, झील या बयारी ।

लोभा-संज्ञा स्त्री० [ दि० लोभने ] लोभनी । उ०—कौटुहलियो लोभा ह्युर बाँधी कौटुहलियो बहुल रहिँ छनि माटी ।—जायसी ।

लोभ-विजय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राजा जो असल में लड़ाई न करना चाहता हो, कुछ धन आदि चाहता हो । विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि ऐसे को कुछ धन देकर मित्र बना लेना चाहिए ।

लोल्ला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) ६४ हाथ लंबी < हाथ चौड़ी और ६६ हाथ ऊँची नाव । ( युक्तिव्यवहार )

लोलिनी-वि० स्त्री० [ सं० लोल ] चंचल प्रकृतिवाली । उ०—कहूँ लोलिनी वेदिनी गीत गाँव ।—केशव ।

लोहचालिका-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का बक्तर जिससे सारा भार उका रहता था । ( कौ० )

लोहसार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) कौलाद । (२) कौलाद की बनी जमीर । उ०—लोहसार हस्ती पहिराए । मेघ साम जुनु गरजत क्षाप ।—आयसी ।

लोकना-कि० प्र० [ दि० लो ] दूर से दिखाई देना । उ०—मनि कुचल दूरकँ बलि लोने । जन कौपा लौकदि दुहु कोने ।—जायसी ।

लौकतिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार वे स्वर्गस्थ जीव जो पंचवें स्थान अक्षलोके में रहते हैं । ऐसे जीवों का जो दूसरा अवतार होता है, वह अंतिम होता है और उसके उपरांत फिर उन्हें अवतार धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

लौट-संज्ञा स्त्री० [ दि० लौटना ] लौटने की क्रिया, भाव या दंग । उ०—ऊर उडाह हूँसुड करत उसरते पदगुसरोट । सुख मोंटँ लुटँ ललन लखि ललना की लौट ।—विहारी ।

ल्यपयना-कि० सं० दे० "लाना" उ०—पितहि भुव ल्यावते, जगत मय प्रावते ।—केशव ।

लुकुश-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह स्त्रीगी बत्ती या साधु जिसे अपने प्रभों, शरीर और भक्तों या शिष्यों की कुछ कुछ चिंता रहती हो । ( जैन )

लुत्-मन्त्र० [ सं० ] समाल । तुल्य । सदा । जैसे,—लुत्तवत् । तियवत् ।

लुत्त-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) खेद । (२) अनुकंपा । (३) संतोष । (४) विलम्ब । (५) आमन्त्रण ।

लुक्किग कमिटी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कार्यकारिणी समिति । जैसे,—कमिसे वकिंग कमिटी ।

लुक्किरुपान-संज्ञा पुं० [ सं० ] पाषाण । ( परा० स्मृति )

लुक्कियुह-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) वह असंहत व्यूह जिसमें सेना के पाँच भाग असंहत हों । ( कौ० )

लुक्किधातु-संज्ञा पुं० [ सं० ] गुरु; ईशुर आदि रह के काम में आने-वाली धातु ।

लुक्किसंहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] प्रतिमुख सन्धि के वेरह अंगों में से एक । माक्षण, क्षमिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्गों के लोगों का एक स्थान पर सम्मेलन । पर अभिनय गुप्ता-स्थान का मत है कि नाटक के भिन्न भिन्न पात्रों के एक स्थान पर सम्मेलन को वर्णसंहार कहना चाहिए । (माट्टयाचार्य)

लुक्किनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सद्क का महसूल । ( कौ० )

लुक्किराज-संज्ञा पुं० [ सं० वक् + राज साभ ] वह जो बाँधी या सोने आदि को बूटकर उनके चरक बनाता हो । तबकार । तबक्रिया ।

लुक्किजि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] कसरत । व्यायाम ।

लुक्कि-कि० वि० [ दि० लो ] (१) उधर । (२) उर । (३) पर । (४) पर । (५) पर । (६) पर । (७) सैनिकों की दो दो पकियों में स्थिति । ( कौ० )

लुक्कि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (८) धार्मिक कर । धर्मकार्य के लिये लगाया हुआ कर । ( कौ० )

लुक्किमित्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मित्र जिसका बहुत प्रकार से उपयोग किया जा सके । यह तीन प्रकार का होता है—(१) एकतोभोगी, (२) वचनतोभोगी और (३) सर्वतोभोगी ।

लुक्किधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) जैनों के अनुसार वे चरक जो पृथ्वी के चिमाणों या घणों को विभक्त करते हैं ।

लुक्कि-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) देना, ऊन तथा सब प्रकार के चरकों को पहचानने और उनके भाव आदि का पता रखनेवाला राजकर्मचारी । ( शुक्लनीति )

लुक्किभयन-संज्ञा पुं० [ सं० लय + भयन ] कपड़े का पना हुआ घर । जैसे—रावरी, खेमा आदि । उ०—वस्त्र भौन स्थान आसने विद्यावने दायनो विदेहराज मति भक्ति को दियो ।—केशव ।

लुक्कि-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) दो चीजों का आपस में मिलना । मिलन । ( २ ) संयोग । मिलाप । विनोयतः प्रेमी और प्रेमिका का मिलाप ।

लुक्कि-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ९ ) जैनों के अनुसार लौकतिक जीवों का तीसरा वर्ग ।

लुक्कि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] द्वाराप । भय । सुरा ।

लुक्कि-संज्ञा पुं० [ सं० ] बौद्धिक । बशी नाव । जहाज । उ०—सोह राम कामादि-भिय अवपपति सर्वथा दास लुक्कि-चारनिधि चहिन ।—पुलसी ।

लुक्कि-संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० वाक्कित्त ] दृगलोक के सामने

और यद्दे यद्दे भूग्यधिकारियों को यदा; परंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि जिसका दर्जा 'अर्ल' के नीचे और 'घेरन' के ऊपर है। वि० दे० "ड्युक"।  
**वाहस-चेयरमैन-संज्ञा पुं०** [ अ० ] यह जिसका दर्जा 'चेयरमैन' या समाध्यक्ष के बाद ही होता है और जो उसकी अनुपस्थिति में उसका काम करता है। उपाध्यक्ष। उपसभापति।  
 जैमे—यूनिवर्सिटि की वाहस-चेयरमैन।

**वाहस प्रेसिडेंट-संज्ञा पुं०** [ अ० ] यह जिसका दर्जा प्रेसिडेंट या सभापति के बाद ही होता है और जो उसकी अनुपस्थिति में सभा का संचालन करता है। उपसभापति। जैसे,—  
 प्रेसिडेंट के वाहस प्रेसिडेंट।

**वाउचर-संज्ञा पुं०** [ अ० ] यह कागज या बही जिसमें किसी प्रकार के हिसाब का द्योरा हो।  
**वाकफियत-संज्ञा स्त्री०** [ अ० ] ( १ ) वाकफ होने का भाव। जानकारी। ( २ ) ज्ञान पहचान। परिचय।  
**वाच-संज्ञा स्त्री०** दे० "वाच्"। उ०—काय मन वाच सप्र धर्म करियो करै।—केशव।

**वाचनानुसंग-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह कमरा या भवन जहाँ पुस्तकें और समाचार पत्र आदि पढ़ने को मिलते हैं। रीडिंग रूम।  
**वाचस्पय दूत-संज्ञा पुं०** [ सं० ] यह मनुष्य जो किसी स्वाधीन राज्य या देश के प्रतिनिधि रूप से दूसरे देश में रहता है और अपने देश के श्यापारिक स्वायों की रक्षा करता हो। द्वासल।

**वातजात-संज्ञा पुं०** [ सं० वात + जात ] पवन-सुत। हनुमान।  
 उ०—सर्दमि मुखात वातजात की सुरति करि लवा ज्यों लुका। तुलसी शपेटे बाज के।—तुलसी।  
**वाम-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] एक देवी जिसकी पूजा प्रायः जादूगर आदि करते हैं।

**वार-संज्ञा पुं०** [ अ० ] युद्ध। संभार। जंग। जैसे,—जमन वार।  
**वारनि-संज्ञा स्त्री०** [ अ० ] वारिया एक प्रकार का यौगिक तरल पदार्थ जो लकड़ियों आदि पर उनमें चमक लाने के लिये लगाया जाता है।

**वारघाण-संज्ञा पुं०** [ सं० ] पट्टी तक लंबा आंगा। ( कौ० )  
**वारशिप-संज्ञा पुं०** [ अ० ] जंगी जहाज। लड़ाकू जहाज। युद्ध पोत।

**वाष्पीघर-संज्ञा पुं०** [ सं० ] जैनों के अनुसार चौध द्वीप और उसके समुद्र का नाम।  
**वाशु कृच्छ्र-संज्ञा पुं०** [ सं० ] एक प्रत जिसमें महानि भर तक पानी में घुला सक्त खाकर रहते थे। ( स्मृति )  
**वातश श्रौपजीवी-संज्ञा पुं०** [ सं० ] केवल वाणिज्य या युद्ध व्यवसाय में लगे रहनेवाले।

**विशेष-कौटिल्य** ने लिखा है कि कांबोज और सौराष्ट्रवाले अधिकतर ऐसे ही हैं।  
**वाधुपिक-संज्ञा पुं०** [ सं० ] कम दाम पर बहुत खरीद कर अधिक पर बेचने का व्यवसाय करनेवाला। खरीद फरोह या रोजगारी। बगिया। ( स्मृति )

**वास्कुट-संज्ञा स्त्री०** [ अ० ] वेस्ट कोट। फर्नीचर।  
**वाहा द्यातिथ्य-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बाहर से आया हुआ विदेशी माल।

**विकल्प आपत्ति-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वह आपत्ति जो दूसरे मार्ग के अवलंबन से बचाई जा सकती हो। ( कौ० )  
**विकल्प प्रतिक्रोष्टा-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बोली बोलकर बेचनेवाला। नीलाम करनेवाला।

**विक्षिप्त-संज्ञा पुं०** [ सं० ] योग में चित्त की प्रतियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त प्रायः अस्थिर रहता है, पर बीच बीच में कुछ स्थिर भी हो जाता है। कहा गया है कि ऐसी अवस्था योग की साधना के लिये अनुकूल या उपयुक्त नहीं होती। वि० दे० "चित्तभ्रम"।

**विग्रह गमन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] चारों ओर से मित्रों तथा शत्रुओं से घिर कर पानी में से भागना। ( कामंदक )  
**विग्रहास-संज्ञा पुं०** [ सं० ] शत्रु की दक्ति आदि की कुछ भी परवां न कर की आनेवाली अंधाधुंध चढ़ाई। ( कामंदक )

**विग्रहासन-संज्ञा पुं०** [ सं० ] ( १ ) दुश्मन को छेड़कर या उसकी जमीन आदि छीनकर चुपचाप बैठना। ( २ ) शत्रु स्थित दुर्ग को जीतने में असमर्थ होकर घेरा ढालकर बैठना।  
**विग्रह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] ( १७ ) दूसरे के प्रति दानिकारक उपायों का प्रत्यक्ष प्रयोग।

**विच्छिन्न-संज्ञा पुं०** [ सं० ] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों छिनों की वह अवस्था जिसमें बीच में उनका विच्छेद हो जाता है। बंध बीच की अवस्था जिसमें कोई छेदा वर्चमान नहीं रहता, पर जिससे कुछ पहले और कुछ बाद यह वर्चमान रहता है।

**विजन-संज्ञा पुं०** दे० "व्यंजन"। उ०—भौति भौति के विजन और प्रकवाने ढाल भर उसके स्वरु ले।—लक्ष्मी।

**विजय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] ( ४ ) जैनों के अनुसार पांच अनुषाओं में से पहला अनुषा या सब से ऊपर का स्वर्ग। ( ५ ) विष्णु के एक वापद का नाम। ( ६ ) अशुन का एक नाम। ( ७ ) यम का नाम। ( ८ ) जैनों के एक तिन देव का नाम। ( ९ ) कालिका के एक पुत्र का नाम। ( १० ) कालिका पुराण के अनुसार भैरववंशी कल्यारज के पुत्र का नाम जो काशिराज नाम से प्रसिद्ध थे। ( ११ ) विमान। ( १२ ) संजय के एक पुत्र का नाम। ( १३ ) ब्रह्मर्ष के एक पुत्र का नाम। ( १४ ) एक प्रकार का शुभ मुहूर्त।

विज्ञानशास्त्र-किं सं० [ सं० उपसर्ग वि + हिं० जानना ] जानना । मली भौति जानना । विशेष रूप से जानना । उ०—आतम कवन अनातम को है । चाक्री तार विज्ञानत जो है :— पद्माकर ।

विट-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १० ) विष्टा । गुह । मल । उ०—(क) कवि भरम विट परिनाम सत वेदि स्तमि जगु देरी मयो । —गुलसी । (ख) पाठे से दूकर सुत भाषा । विट उपर मुख मारी गिराया ।—विभ्राम ।

वितत-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) मृदंग या डोल आदि अलक्ष्य वाजों से उत्पन्न होनेवाला शब्द ।

विद्यक-संज्ञा पुं० [ हिं० विषयना ? ] पवन । विद्यारण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] (७) जैनों के अनुसार दूसरों के पापों या दोषों की धोषणा करना ।

विदिश-संज्ञा स्त्री० दे० "विदिश" । उ०—धायो घर घर दील विदिश दिशि तहाँ चकहूँ चाहि लयो ।—पूर ।

विदेह-वि० [ सं० ] शान्तशून्य । संज्ञा रहित । वेसुष । अचेत । उ०—(क) मूरति मरुर मनोहर देखी । भयउ विदेहु विदेहु विसेली ।—तुलसी । (ख) देखि भरत कर सोनु सनेहू । भा निपाद तेहि समम विदेहू ।—तुलसी । (ग) कौन ले आहूँ कौने चरन चलाई, कौने बहिर्यो गहरी सोधो कोही री । मूरदास प्रभु देखे सुधि रही नहि, अनि विदेह भई अम में वृक्षनि तोही री ।—पूर ।

विदेह-कुमारो-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( राजा जनक की पुत्री ) जानकी । सीता । उ०—कही थीं तात बर्षों जीति सकल नृप धरो है विदेहकुमारी ।—तुलसी ।

विदेही-संज्ञा पुं० [ सं० विदेहिण ] द्रव्य । उ०—कुल मर्यादा सोहूँके रोजिनि पदनिर्वात । अंकुर बीज नसाहूँ के भये विदेही धान ।—कबीर ।

विद्व मण्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सूजन जो शरीर के किसी अंग में कौटे की नोक के चुभने या दूटकर रह जाने से होती है ।

विद्याधर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (५) एक प्रकार का अष्ट । उ०—(क) वर विद्याधर अष्ट नाम मन्दत जो ऐसी । मोहन स्थापन सयन सीम्य कर्नन पुनि तैसी ।—दशमकर । (ख) महा अष्ट विद्याधर सोने पुनि नन्दन जेहि नाई ।—रघुराज । (५) विद्याधर । पंडित । उ०—कविद्व विद्याधर सकल कलाधर राज राज घर वेश बने ।—हेसाव ।

विद्यामार्ग-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह मार्ग जो मनुष्य को मोक्ष की ओर ले जाय । ध्येय मार्ग । (कठवर्षी उपनिषद्) ।

विद्यावान-संज्ञा पुं० [ सं० विद्वान् ] पंडित । विद्वाण । उ०—जीवत जग में क्राहि पिछानी । विद्यावान होहूँ जो मानी ।—विभ्राम ।

विपरोत रति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] साह्यिक के अनुसार संयोग का

एक प्रकार जिसमें पुरुष नीचे की ओर चित लेटा रहता है और स्त्री उसके ऊपर पट लेट कर संयोग करती है । काम शास्त्र में इसे पुरुषाभित संयोग कहा है । इसके कई भेद कहे गए हैं । )

विप्रमोक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] मोक्ष । मुक्ति । ( जैन ) विमंग-वि० [ सं० ] उपल । उ०—विमल विपुल बहसि वारि सीतल भव ताप हारि भँवर घर विमंगतर तरंग-मालिका ।—तुलसी ।

विमश संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नाय्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक । वि० दे० "अवमशी संधि" ।

विमलापति-संज्ञा पुं० [ सं० ] द्रव्य । उ०—जानत हीं त्रिय सोदर दोऊ । कै कमला विमलापति कोऊ ।—केसाव ।

विमोक्षितावास-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार ऐसे स्थान में निवास करना जिसे किसी ने रहने के अर्थोय समझकर छोड़ दिया हो ।

विलायती मेंहदी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० विनायती + मेंहदी ] मेंहदी की जाति का एक प्रकार का पीया जो प्रायः मादक के रूप में लगाया जाता है । यह भारत, बलोचिस्तान, अफगानिस्तान, अरब, अफ्रिका आदि सभी स्थानों में होता है । यह वर्षा और शीत काल में फूलता है । इसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है और इस पर खुदाई का काम बहुत अच्छा होता है । सनहा ।

विलोपभृत-संज्ञा पुं० [ सं० ] यह सेना जो केवल खटमार का शालक देकर इकट्ठी की गई हो । ( कौ० )

विलोमन-संज्ञा पुं० [ सं० ] मुख-संधि के बारह अंगों में से एक । नायक का मन नायिका की ओर अथवा नायिका का मन नायक की ओर आकृष्ट करने के लिये उसके गुणों का कथन । जैसे,—रत्नावली में चैतालिक का सागरिका को लुभाने के लिये राजा उद्यन के गुणों का वर्णन । ( नाय्यशास्त्र )

विविक शय्यास्तन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार वह आचार जिसमें स्थानी सदा किसी एक ही स्थान में रहता और सोता है ।

विद्योताध्यक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] परामार्हों का निरीक्षक कर्मचारी । ( की० )

वियेक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (७) बहुत ही मिय पदार्थों का सम्यग । ( जैन )

विशिष्टा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] राज्य की वह बड़ी मदक जिस पर बड़े बड़े जीहरियों तथा सुनारों की दुकानें हों । ( की० )

विशेषना-किं प्र० [ सं० विशेष + ना ( प्रत्यय ) ] (१) निश्चित करना । निर्णय करना । उ०—अनंत भुग माधे, विशेषिनि न पावे ।—केसाव । (२) विशेष रूप देना । उ०—साहि पूजत थोकि कै । तदधि भौति भौति विशेष कै ।—केसाव ।

विश्वरूप-संज्ञा पुं० [ सं० ] (६) देवता । उ०—भूपन को रूप परि विश्वरूप आरु हैं।—केशव ।

विपद्वंद-संज्ञा पुं० [ सं०. विप = कर्मल की नाल ] कमल की नाल । उ०—केशव कोदंद विपद्वंद पुस्तो खंडें भव मेरे भुजदंडन की यही है विडंबना।—केशव ।

विपम व्यूह-संज्ञा पुं० [ सं०. ] समव्यूह का उलटा व्यूह । विं० दे० "समव्यूह" ।

विपम संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह संधि जिसमें शक्ति के अनुसार तत्काल सहायता न दी जाय । सम संधि का उलटा । 'तुम आगे से हमारे मित्र रहोगे' इस प्रकार की संधि ।

विषय-संज्ञा पुं० [ सं०. ] वह पद प्रदेन जिस पर कोई शासन-व्यवस्था हो ।

विशेष-ग्राम से बड़ा राष्ट्र और राष्ट्र से बड़ा विषय माना जाता था । कितने बड़े भू-भाग को विषय कह सकते थे, इसका कोई निर्दिष्ट मान नहीं था ।

विषय-निर्वाचनी समिति-संज्ञा स्त्री० दे० "विषय निर्वाचनी समिति" ।

विषय-निर्वाचनी समिति-संज्ञा स्त्री० [ सं०. ] कुछ विशिष्ट सदस्यों की वह सभा जो किसी महासभा या सम्मेलन में उपस्थित किए जानेवाले विषय या प्रस्ताव आदि निश्चित या प्रस्तुत करती है । सवनेवट कमिटी ।

विसी-सर्व० दे० "उस" ।

विसाल-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) संयोग । मिलाप । (२) आत्मा का इंधन में मिलना । मृत्यु । मौत । (३) प्रेमी और प्रेमिका का मिलाप ।

विहायगति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] आकाश में चलने की क्रिया या शक्ति । ( जैन )

वीटो-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी व्यवस्थापिका सभा के स्वीकृत प्रस्ताव या मंतव्य को अस्वीकृत करने का अधिकार । वह अधिकार जिससे व्यवस्थापक मंडल की एक शाखा दूसरी शाखा के स्वीकृत प्रस्ताव या मंतव्य को अस्वीकृत कर सकती है । अस्वीकृति । नामजूरी । मनाही । रोक ।

वृथादान-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ऋण जो चालबाज, भूत आदि लोगों को दिया गया हो ।

वृद्धदुःख-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसकी प्राप्तिसे लाभ ही लाभ हो ।

वे-सर्व० [ हिं० व ] वह का बहुवचन या सम्मानवाचक रूप ।

जैसे,—(क) वे लोग चले गए । (ख) वे आज न आवेंगे ।

वेगिनी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] १७६ हाथ लंबी, २२ हाथ ऊँची और १०६ हाथ चौड़ी नाव । (सुक्ति कल्पतरु)

वेटेरिनरी-वि० [ सं० ] बैल, घोड़े आदि पालतू पशुओं की चिकित्सा संबंधी । शालिहोत्र संबंधी । जैसे, वेटेरिनरी अस्पताल ।

वेटेरिनरी अस्पताल-संज्ञा पुं० [ सं०. ] वेटेरिनरी इतिवत् ।

स्थान या चिकित्सालय जहाँ घोड़े आदि पालतू पशुओं की चिकित्सा की जाती है । पशु चिकित्सालय ।

वेणिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नरसल का बना थैदा । ( कौ० )

वेतन कल्पना-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] तनखाह नियत करना ।

वेतनकालानिपातन-संज्ञा पुं० [ सं० ] तनखाह देने में देर करना ।

वेतन नाश-संज्ञा पुं० [ सं० ] तनखाह या मजदूरी उन्मत्त हो जाना ।

विशेष-चाणक्य के समय में यह राज-नियम था कि जो कारीगर ठीक ढंग से काम नहीं करते थे या कहा कुछ जाय और करते कुछ थे, उनका वेतन जप्त हो जाता था ।

वेदत्रयी-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ऋक्, यजु तथा साम वे तीनों वेद ।

उ०—वेदत्रयी अह राज-सिरी परिपूरणता शुभ योग मयी है।—केशव ।

वेरि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बँत आदि से घुन कर बना हुआ पहनावा या बकतर । ( कौ० )

वेश्म-पुरोधक-संज्ञा पुं० [ सं० ] दूसरे के मकान को तोड़ कर या उसमें सँघ लगाकर चोरी करनेवाला । ( कौ० )

वेश्मादीपिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] मकान में आग देनेवाला । ( कौ० )

वेस्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] पश्चिम दिशा ।

वेस्ट फ्रीट-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की अंगरेजी कुर्ती या फटुडी जिसमें बॉट्टे नहीं होती और जो कमिज के ऊपर तथा कोट के नीचे पहनी जाती है ।

वैल-अर्थ० [ सं० ] निश्चयसूचक चिह्न । उ०—अदृढमान शून, गर्भ रंढमान जेद वै।—केशव ।

वैगनेट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की हल्की बग्गी या घोड़े गाड़ी जिसमें पीछे की ओर दाहिने बाएँ बँधने की लंबी जगह होती है ।

वैजयंत-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ५ ) जैनों के अनुसार एक लोक जो सांती स्वर्ग से भी ऊपर है ।

वैदेश्यसाय-संज्ञा पुं० [ सं० ] विदेशी माल । ( कौ० )

वैदेहक ध्यंजन-संज्ञा पुं० [ सं० ] व्यापारी के वेदों में गुणवत्ता । ( कौ० )

विशेष—ये समाहर्ता के अधीन काम करते थे और व्यापारियों में मिलकर उनकी कारवाहियों की सूचना दिया करते थे ।

वैद्यावृत्त्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] कुतकर । थोक का उलटा । जैसे,—वैद्यावृत्त्य विक्रय ।

वैतनिक रथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ४ ) लड़ाई सिखाने के लिये बने हुए रथ ।

वैमानिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ४ ) जैनों के अनुसार वे जीव जो स्वर्ग लोक में रहते हैं ।

वैवाच्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] यतियों और साधुओं आदि की सेवा । ( जैन )

वैराज्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ३ ) विदेशियों का राज्य । विदेशियों का शासन ।

**विशेष**—वैराज्य और द्वैराज्य के गुग दोष का विचार करते हुए कहा गया है कि द्वैराज्य में अशांति रहती है और वैराज्य में देश का धन धान्य निचोड़ लिया जाता है। दूसरी बात यह कही गई है कि विदेशी राजा अपनी अधिकृत भूमि कभी कभी बेच भी देता है और आपत्ति के समय असहाय अवस्था में छोड़ भी देता है।

**वैसा**—किं वि० [ हिं वर + एसा ] उस प्रकार का। उस तरह का। जैसे,—वैसा दुपट्टा तुमने पहले भेजा था, वैसा ही एक और भेज दो।

**घोट माफ सेंसर**—संज्ञा पुं० [ म० ] निंदा का प्रस्ताव। निंदारमक प्रस्ताव। जैसे, परिषद् ने बहुमत से सरकार के विरुद्ध वोट आफ़ सेंसर पास किया।

**व्यंजन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ११ ) गुणधर या गुणधरों का मंडल।

**व्यपदेश**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) व्याहृति। विवरण। ( जैन )

**व्यपरोषण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ५ ) आवाग पहुँचाना। पीड़ा पहुँचाना। ( जैन )

**व्यलीक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ७ ) कपट। छल। उ०—भीर भयो जागहु रघुनन्दन। गत व्यलीक भगतनि उर चंदन।—तुलसी।

**व्यवस्था**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( ५ ) कानून। जैसे,—भारत सरकार के व्यवस्था सदस्य।

**व्यवस्थापक मंडल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] यह समाज या समूह जिसे कानून कायदे बनाने और रद्द करने का अधिकार प्राप्त हो।

**व्यवस्थापिका परिषद्**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह समा या परिषद् जिसमें देश के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं। देश के लिये कानून कायदे बनानेवाली सभा। बड़ी व्यवस्थापिका सभा। लेजिस्लेटिव एसेंबली। लोअर चेंबर। लोअर हाउस।

**विशेष**—निदिता भारत भर के लिये कानून कायदे बनानेवाली सभा व्यवस्थापिका परिषद् या लेजिस्लेटिव एसेंबली कहलाती है। आजकल इसके सदस्यों की संख्या १३३ है जिनमें से १०३ लोकनिर्वाचित और ३० सरकार द्वारा मनोनीत (२५ सरकारी और १५ गैरसरकारी) सदस्य हैं।

**व्यवस्थापिका सभा**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यह सभा जिसमें किसी प्रदेश विशेष के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं। कानून कायदे बनानेवाली सभा। लेजिस्लेटिव कौंसिल।

**व्यवहारस्थान**—संज्ञा पुं० [ सं० ]। लेन देन, इकरारनामे आदि के सम्बन्ध में यह निर्णय करने के उचित रूप में हुए हैं या नहीं। ( को० )

**विशेष**—चंद्रगुप्त के समय में तीन धर्मस्थ और तीन समाज व्यवहारों की निगरानी करते थे।

**व्याजी**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किसी में नापों या तौल के ऊपर कुछ थोड़ा सा और देना। घाल। घुलना।

**व्यामिश्र व्यूह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] मिला जुला व्यूह। वह व्यूह जिसमें पदचल के अतिरिक्त हाथी, घोड़े और रथ भी सम्मिलित हों।

**विशेष**—कौटिल्य ने इसके दो भेद कहे हैं—अभ्यभेदी और अंतभेदी। मध्यभेदी वह है जिसके अंत में हाथी, इधर उधर घोड़े, मुख्य भाग या केंद्र में रथ तथा उरस्थ में हाथी और रथ हों। इससे भिन्न अंतभेदी है।

**व्यामिश्रासिद्धि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] शत्रु और मित्र दोनों की स्थिति का अपने अनुकूल होना। ( कौ० )

**व्यायाम**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ५ ) युद्ध की सैनारी। ( ९ ) सेना की कवायद आदि।

**व्यायाम युद्ध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] आग्नेय सामने की लड़ाई।

**विशेष**—चाणक्य का मत है कि व्यायाम युद्ध अर्थात् आग्नेय सामने की लड़ाई में दोनों ही पक्षों को बहुत हानि पहुँचती है। जो राजा जीत भी जाता है, वह भी इतना कमजोर हो जाता है कि उसको एक प्रकार से पराजित ही समझना चाहिए। ( कौ० )

**व्याल**—सूदन—संज्ञा पुं० [ सं० ] गरुड़। उ०—अपति मीमांसुं व्यालसूदन गयेंहर धनंजय रक्षामाकेतु।—तुलसी।

**व्यावहारिक ऋण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह ऋण जो किसी कार-वार के संबंध में लिया गया हो।

**व्युत्सर्ग**—संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार शरीर के मोह या चिन्ता का परित्याग।

**व्रज**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ४ ) अहीरों का टोला या वादा। उ०—नपनि को फल उति निमित्त खग मृग सुरभी प्रमथषू अहीर।—तुलसी।

**व्रजपथ्यंत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पशुओं की गणना।

**विशेष**—चंद्रगुप्त के समय में अथर्व को राजकीय पशुओं की पूरे निदान आदि के साथ यहीं में गिनती रखनी पड़ती थी। **व्रात**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ४ ) वह जिसकी कोई निश्चित घृति न हो या जो चोरी डाके से निर्वाह करता हो। जरायम पेशा। दुर्जनी।

**शुकटव्यूह**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) वह भोग व्यूह जिसके अंदर उरस्थ में दोहरी पंक्तियाँ हों और पक्ष स्थिर हों। ( कौ० )

**शुंकर शूल**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कैलास पर्वत। उ०—दंकर शूल च्यु मन मोहति। सिद्धत की तमया जनु सोदति।—कैदाव।

**शुक्तयपेक्ष**—दायन—संज्ञा पुं० [ सं० ] कृष्ण की सामर्थ्य के अनुसार ऋण थोड़ा थोड़ा करके चुकता कराना।

**शतानीक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ८ ) सौ सिपाहियों का नायक।

**शुशुसाल**—विं० [ सं० ] तपु + शिं० साकना ] शत्रु के हृदय में शूल उपलब्ध करनेवाला। उ०—युप शुशुसाल नंदनं नवल । भावसिंह गुंगलमनि ।—मतिराम।



शमिता-संज्ञा पुं० [ सं० शमित् ] यह जो यज्ञ में पशु का बलिदान करता हो ।

शरापना-क्रि० सं० [ सं० शार + ना ( प्रत्य० ) ] किसी को शाप देना । सरापना ।

शाहला-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ३ ) रेगिस्तान के बीच की वह थोड़ी सी हरियाली जहाँ कुछ हलकी पत्तरी भी हो ।

शासक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ३ ) जहाज़ का कप्तान । ( कौ० )

शासनपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) राजा का वह पत्र जिस पर राजा का हस्ताक्षर हो । फरमान । ( शुक्रनीति )

शास्ता-संज्ञा पुं० [ सं० शास्त्र ] ( ४ ) वह मनुष्य जिसे कोई काम करने का पूरा अधिकार हो । प्रधान नेता या पथ-प्रदर्शक । डिक्टेटर । ( ५ ) वह मनुष्य जिसे शासन की अबाधित सत्ता प्राप्त हो । निरंकुश शासक । वि० दे० "डिक्टेटर" ।

शिक्षावृद्धि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( २ ) वह व्याज जो रोजाने के हिसाब से नित्य वसूल किया जाता हो । रोजही । ( परा० स्मृति )

शिक्षा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( ११ ) कोड़ा । बेंत ।

शौ०—शिक्षादंड = कोई मात्से का दंड ।

शिला प्रमोद-संज्ञा पुं० [ सं० ] लड़ाई में पथर फेंकना या लुढ़काना । ( कौ० )

शिक्षा-संज्ञा पुं० [ सं० ] इंग्लैंड में चलनेवाला चौड़ी का एक सिक्का जो प्रायः बारह आने मूल्य का होता है ।

शिल्प-समाह्वय-संज्ञा पुं० [ सं० ] कारीगरी का मुकाबला ।

शुद्ध द्यूद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह द्यूद्ध जिसमें उरस्य में हाथी, मध्य में सेना घोड़े और पक्ष में ब्याल ( मतवाले हाथी ) हों । ( कौ० )

शुद्धहार-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह हार जिसमें एक शीर्षक मोती का हो । ( कौ० )

शुद्धिपत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) वह व्यवस्थापत्र जो प्रायश्चित्त के पीछे शुद्धि के प्रमाण में पंडितों की ओर से दिया जाता था । ( शुक्रनीति )

शुभ-वि० [ सं० ] श्रेत । सफेद उ०—शोभजति दंतसचि शुभ उर मानिये ।—केदाव ।

शुभकाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] बुंगी का अध्यक्ष । ( कौ० )

शुभमूल-वि० [ सं० ] ( सेना ) जिसका वह केंद्र नष्ट हो गया हो जहाँ से सिपाही आते रहे हों । ( कौ० )

शुभ-संज्ञा पुं० [ सं० ] अघोरी नामक पूजा । ( बुंदेल० )

शेयर होल्डर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसके पास-सम्भ्रमित । मूल धन या धूर्तों से चलनेवाले किसी कार्यालय या कंपनी के "शेयर" या हिस्से हों । हिस्सेदार । अंश । जैसे—बैंक के शेयर होल्डर, कंपनी के शेयर होल्डर ।

श्रेयस्द्यूद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह द्यूद्ध जिसमें पक्ष और कक्ष

को स्थिर रख कर उरस्य को आगे बढ़ाया जाय । ( कौ० )

श्रावण-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ६ ) योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विग्रहों में से एक प्रकार का विग्रह या उरस्य जिसमें योगी हजार योजन तक के दण्ड ग्रहण करके उनके अर्थ हृदयंगम करता है । ( मार्कण्डेय पुराण )

श्रीकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक व्रत जिसमें केवल श्रीफल ( बेल ) खाकर रहते हैं ।

श्रीफल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ६ ) द्रव्य । घन । उ०—भीकल को अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी में ।—केदाव ।

श्रीमुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ३ ) सूर्य । उ०—श्याम में मुनि देखिये अति लाल श्रीमुख साजहाँ ।—केदाव ।

श्रुषा-संज्ञा पुं० दे० "सूबा" । उ०—कुन सुद्रिका समिधं श्रुषा कुन औ कर्मदल को लिये ।—केदाव ।

श्रेणीपाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राष्ट्र या जनपद जिसमें श्रेणियों या पंथायंतों की प्रधानता हो । ( कौ० )

श्रेणी प्रमाण-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शिल्पी या व्यापारी जो किसी श्रेणी के अन्तर्गत हो और उसके मतव्यों के अनुसार काम करता हो । ( कौ० )

पट्मुख-संज्ञा पुं० [ सं० ] कार्तिकेय । उ०—गिरि शेष पट्मुख जीति तारकनंद को जब उयो हख्यो ।—केदाव ।

संकाश-संज्ञा पुं० [ ? ] प्रकाश । चमक । उ०—स्वर्नसैल-संकाश कोटि रवि तरुन तेज-घन । उर विसाल मुजदंड चंड नख वज्र वज्रतन ।—दुलसी ।

संख्येय-वि० [ सं० ] जिसकी संख्या की जा सके । गिना जाने के योग्य । गण्य ।

संगत संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अच्छे के साथ संधि जो अपने और बुरे दिनों में एक ही चली रहती है । कांचन संधि । ( कामंदक )

संग्रहण-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ७ ) स्त्री के स्तन, कपोल, केश, जंघा आदि वज्र स्थानों का स्पर्श ।

विशेष—स्मृतियों में : इस अपराध के लिये कठोर दंड लिखा गया है ।

संगठ-संज्ञा पुं० [ सं० संगठन ] ( ३ ) समूह । राशि । डेर । उ०—सुभट मर्कट भालु कटक संगठ सजत नमत पद रावणानुज निवाजा ।—दुलसी ।

संगती-संज्ञा पुं० [ सं० संग, दि० संग ] साथी । सहचर । उ०—गुरु भस हित संगती पिपासी । जियत जीठ नाई सौ निनारी ।—जायसी ।

संगठनाल-क्रि० सं० [ सं० संगठ + ना ( प्रत्य० ) ] ( १ ) संगठ करना । नादा करना । ( २ ) मार डालना । उ०—नारायण चूर चूर होइ परहीं । हस्ति घोर मानुष संघरहीं ।—जायसी ।

संचारना-क्रि० सं० [ सं० संचार + ना ( प्रत्य० ) ] ( ३ ) उलट

करना। जन्म देना। उ०—नूर मुहम्मद देवि तो भा हुलास मन सोई। बुनि इषकीस संघतेड डरत रई सब कोइ।—जायसी।

**संजुत**—वि० [ सं० संयुक्त ] संयुक्त। मिश्रित। मिला हुआ। उ०—उहँई कीन्हव, पिंड उरोहा। भई संजुत आदम कै देहा।—जायसी।

**सँजोऊ**—संज्ञा पुं० [ हि० संजोना ] (१) तैयारी। उपक्रम। उ०—अवहीं योगिहि करी सँजोऊ। उस मारहु इत्या नहि होऊ।—जायसी। (२) साज सामान। सामग्री। (३) संयोग। उ०—आहि भागे विर रहा न कोऊ। दहूँ का कहीं अस खर सँजोऊ।—जायसी।

**संशो**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसमें संज्ञा हो। जीव। चेतन। (जैन)

**संत**—संज्ञा पुं० [ सं० संत ] वह संप्रदाय-युक्त साधु या संत जो विवाह करके गृहस्थ बन गया हो। (साधुओं की परि०)

**संतान**—संधि संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह संधि जो अपना लड़का या लड़की देकर की जाय। (कामंदक)

**संतोछा**—अर्थ० [ अ० छनो ] से। द्वार। उ०—सो न डोल देसा रात्रयो। राजा सचदच दुहूँ संतो।—जायसी।

**संदिग्ध**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) वह जिस पर किसी अपराध का संदेह किया जाय। जैसे—ताजनीतिक संदिग्ध।

**सँदेसी**—संज्ञा पुं० [ हि० संदेसा + ई (प्र०) ] वह जो सँदेसा ले जाता हो। बसोड। उ०—राजा जाह तहाँ बहि लागा। जहाँ न कोइ सँदेसी कागा।—जायसी।

**संधना**—क्रि० प्र० [ सं० संधि ] संयुक्त होना। मिलना। उ०—पश दू संधि संध्या सँभोई सगो।—केसव।

**संधापगमन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] समीपवर्ती राशु से संधि कर दूसरे राशु पर चढ़ाई करना। (कामंदक)

**संधिकर्म**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संधि करना। मुलह करना।

**विशेष**—संधि के मुख्य दो भेद हैं—चाळसंधि और स्वावर संधि। चाळसंधि वह है जिसे दोनों पक्ष शपथ करके करते हैं, और स्वावर संधि वह है जो कुछ दे लेकर की जाती है। कौटिल्य ने चाळसंधि को बहुत ही रमायी कहा है, क्योंकि शपथ खाकर को हुई संधि राजा लोग कभी नहीं तोड़ते थे। कामंदक ने १६ प्रकार की संधियों कही हैं।

**संधि मोक्ष**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुरानी संधि तोड़ना। संधिभंग। वि० दे० "समाधि मोक्ष"।

**संधि-विमर्दिक**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पर राष्ट्रों के साथ युद्ध या संधि का निर्णय करनेवाला मंत्री या भविष्यारी।

**संधि-विमर्दी**—संज्ञा पुं० दे० "संधि-विमर्दिक"।

**संध्यासन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] आपस में लड़कर राशुओं का कमजोर होकर धँस जाना। (कामंदक)

**समितोपना**—संज्ञा पुं० [ सं० ] श्रेणी या संघ के धन को रखने-वाला। इत्यावची। (कौटि०)

**संपति**—संज्ञा स्त्री० दे० "संगति"। उ०—(क) जगन विदित वृंदी नगर मुल संपति को धाम।—मतिराम। (ख) तहाँ कियो भावत यिन संपति शोभा साज।—केसव।

**संभाराधिप**—संज्ञा पुं० [ सं० ] राजकीय पदायों का अध्यक्ष।

**संभूयकारी**—संज्ञा पुं० [ सं० ] संघ में मिलकर व्यापार करनेवाला। कंपनी का हिस्सेदार। (सृजित)

**विशेष**—वृहस्पति के अनुसार यदि संघ के दैवी कारण से या राजा के कारण हानि पहुँचे तो उसके भागी सब हिस्सेदार हैं, पर यदि किसी हिस्सेदार की भूल या गलती से हानि पहुँचे तो उसका जिम्मेदार अकेला वही है।

**संभूयकथ**—संज्ञा पुं० [ सं० ] थोक माल बेचना या खरीदना। (कौ०)

**संभूयगमन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] पूरी चढ़ाई जिसमें सामंत और मील (तक्षलकेदार) सब अपने दलबल के साथ हों। (कामंदक)

**संभूयसमुदायन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] कंपनी खोलना।

**संभूयासन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] शत्रु से मेल करके और उसे उदासीन समझ कर युध्दपथ धँस जाना। (कामंदक)

**संधोग संधि**—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह संधि जो किसी उद्देश्य से चढ़ाई करने के उपरांत उसके संबंध में कुछ तै हो जाने पर की जाय। (कामंदक)

**संवनन**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) मंत्र मंत्र आदि के द्वारा खियों की फैसला।

**सँवार**—संज्ञा स्त्री० [ सं० स्वरण ] (१) याद। सृजित। (२) खबर। हाल।

**सँवार**—संज्ञा स्त्री० [ सं० संवाह या स्वरण ] हाल। समाचार। उ०—बुनि दे सँवार कहँसि अष दूजी। जो बलि दीन्ह देवतन्ह वूजी—जायसी।

**संज्ञा स्त्री०** [ हि० संवारना ] (१) संवारने की क्रिया या भाव। (२) एक प्रकार का श्राप या गाली।

**विशेष**—कभी कभी लोग यह न कह कर कि "तुम पर खुरा की मार या फिटकार" प्रायः "तुम पर खुरा की सँवार" कह दिया करते हैं।

**संविश्रपत्र**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पत्र जिसमें दो मामों या प्रदेशों के बीच किसी बात के लिये मेल की प्रतिज्ञा या दाँत लिखी हो। (सुक्रनीति)

**संस्तक सामंत**—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सामंत जिसकी थोड़ी बहुत ज़मीन बाटो और हो और कहीं पूरे गाँव भी हो। (परा० सृजित)

**संस्तरण**—संज्ञा पुं० [ सं० ] (८) वह मार्ग जिससे दो कर बहुत दिनों से लोग या पशु भाते जाते हैं।

विशेष—बृहस्पति ने लिखा है कि ऐसे मार्ग पर चलने से कोई (जर्मांदार भी) किसी को नहीं रोक सकता।

संस्थाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] व्यापार का निरीक्षक। व्यापाराध्यक्ष।

विशेष—इसका मुख्य काम गिरवी रखे जानेवाले माल का तथा पुरानी चीजों का विक्रय करवाना था। तौल माप का निरीक्षण भी यही करता था। चन्द्रगुप्त के समय में तुला द्वारा सौलने में यदि दो तोले का भी फरक पड़ जाता तो बनिप पर ६ पण जुर्माना किया जाता था। क्रय विक्रय सम्बन्धी राज-नियमों को जो लोग तोड़ते थे, उनको भी दण्ड यही देता था। भिन्न भिन्न पदार्थों पर कितनी चुंगी लगे, कौन कौन सा माल बिना चुंगी दिए बाहर में जाय, इन सम्पूर्ण बातों का प्रबन्ध भी यही करता था। पदार्थों की कीमतें भी यही नियत करता था और सरकारी पदार्थों का विक्रय भी यही करवाता था। उनके विक्रय के लिये जोकर भी रखता था, इत्यादि।

संहत पल-संज्ञा पुं० [सं०] संवदित सेना। (कौटि०)

संहारना-किं० प्र० [सं०] संहार। नष्ट होना। संहार होना।

उ०—इहय मारो नृपजन सँहरे। सो यश है किंन युग युग जीजे।—केशव।

किं० सं० [सं०] संहारण। संहार करना। ध्वंस करना।

उ०—सुरनायक सो सँहरी परम पाणिनी धाम।—केशव।

सर्इ-संज्ञा स्त्री० [?] वृद्धि। बरकत। उ०—सग मृग सरय निसांचर सत्र की पूंजी विनु बादी सर्इ।—तुलसी।

सकल-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्र। साका। धाक।

मुंदा—सक बौचना = (१) भाक बौचना। उ०—हैं तो रतनसेन सक-बौची। राहु येथि जीता संरंधी।—जायसी। (२) मथोदा रथापित करना।

सकत-किं० वि० [सं०] सक। जहाँ तक हो सके। भरसक।

उ०—का तोहि जीव मरावीं सकत आन के दोस। जो पहिं बुते समुद-जल सो उसाइ किंन ओस।—जायसी।

सकपकाना-किं० प्र० [प्र०] (५) हिलना डोलना। लहराना। उ०—सकपकाहिं विप भरे पसारे। लहरि भरे लहरति भति कारे।—जायसी।

संकुचाना-किं० प्र० [सं०] संकोच, हिं० संकुच-प्रधान (प्रय०)। संकोच करना। जैसे,—यह आपके पास आने में संकुचता है।

किं० सं० [सं०] संकुचन। संकोचना। उ०—प्रवण दारण पविन सुनत लियो प्रभु तनु सकुचाई।—बूर।

किं० सं० [हिं०] संकुचना का प्रे०। किसी को संकोच करने में प्रवृत्त करना। लजित करना। उ०—निज करनी सकुचै कत सकुचावत इहि चाल। मोहूँ से नित विमुख रथी सममुख रहि गोपाल।—बिहारी।

सकुचौहाँ-वि० [सं०] संकोच + शौ (प्रय०)। संकोच करनेवाला। लजिला। उ०—गहो। अथोलो बोलि प्यौ-आपुदि पठै वसीठि। दीठि चुराई दुहुन की लखि सकुचौहाँ दीठि।

—बिहारी।

संकोचना-किं० सं० [सं०] संकोच + ना (प्रय०)। संकुचिन करना। उ०—सोच पोव मोधि कै सकुच भीम वेप को।—केशव।

सक चक्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र जो चारों ओर शक्तिशाली राष्ट्रों से घिरा हो। राष्ट्र चक्र।

सक सामंत-संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम समूह का जर्मांदार जो उसका सामंत होता था।

विशेष—किसी ग्राम के पास का जो साल्लुकेंदार होता था, वही उस ग्राम का सक सामंत होता था। सीमा संबंधी मामलों में सबसे पहले इसी की गवाही ली जाती थी। (परा० स्मृति)।

सचना-किं० सं० [हिं०] सजना (२) सम्पादित करना। पूरा करना। उ०—यहु कुंड शोनिता सौं भरे विनु तपणादि किया सची।—केशव।

सच्छत-वि० [सं०] स + चत। जिसे क्षत लगा हो। घायल। जवमी। उ०—जिनको जग अच्छत सीस धरे। तिनको जग सच्छत कौन करे।—केशव।

सजना-किं० प्र० [सं०] सजा (३) शस्त्राक्ष से सुसजित होना। रंग के लिये तैयार होना। उ०—रूमईं चलिहैं करि संग अये। सजि सैन चले चतुरंग सये।—केशव।

सजयना-संज्ञा पुं० [हिं०] सजना। सजने की क्रिया या भाव। तैयारी। उ०—बहुतन्ह अस गढ़ कीन्ह सजयना। अंन मई लंका जस रयना।—जायसी।

सतपना-किं० वि० [सं०] संतपण। भली भाँति तृप्त करना। संतुष्ट करना।

सतार-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार ग्यारहवें स्वर्ग का नाम।

सत्याग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] सत्य के लिये आग्रह या दृढ़। सत्य या न्याय पक्ष पर प्रतिशपथक अडुना और उसकी सिद्धि के उद्योग में मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों और कष्टों को धीरतापूर्वक सहना और किसी प्रकार का उपद्रव या बल प्रयोग न करना।

किं० प्र०—करना।—होना।

सत्र-संज्ञा पुं० [सं०] विकट स्थान या समय। विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि रेगिस्तान, सङ्कटमय स्थान, दुर्लभ, पक्षी, नदी, घाटी, ऊँची नीची भूमि, नाव, शरीर, शकट, गृह, पुंष्य तथा रात ये सब सत्र कहे जाते हैं। (की०)

सदर-अ-मन्थ० [ सं० सर्व ] सदर । सदा । उ०—उद्ये धवन उजार बसावन गई बहोर विरद सदर है ।—तुलसी ।  
 सदर-संज्ञा पुं० [ दे० ] सज नाम का वस्त्र । वि० दे० "सज" । ( बुन्देल० ) ।  
 सदर-संज्ञा पुं० [ सं० राई ] राई । सिद्ध । उ०—विरह हलि तन सारै घाम करै चित चूर । बेगि आइ पिउ बाजहु गाजहु होइ सदर ।—जायसी ।  
 सदर-क्रि० वि० [ सं० ] (२) मूर्तिमान । सघारी । उ०—सब श्वाभर सदरै मनोरति मन्मथ मोहि ।—केशव ।  
 सनष्ट-संज्ञा पुं० [ दे० ] विद्यापती मंहरी नाम का पौषा जो बागों में याद के रूप में लगाया जाता है । वि० दे० "विद्यापती मंहरी" ।  
 सनरकुमार-संज्ञा पुं० [ सं० ] (३) जैनों के अनुसार तीसरे स्वर्ग का नाम ।  
 सन्नी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सन ] सन की जाति का एक प्रकार का छोटा पौधा जो प्रायः सारे भारत और बरमा में पाया जाता है । इसके बँडलों से भी एक प्रकार का मन्वृत रेशा निकलता है; पर लोग उसका व्यवहार कम करते हैं । यह देखने में बहुत सुन्दर होता है; अतः कहीं कहीं लोग इसे बागों में शोभा के लिये भी लगाते हैं ।  
 सप्लाई-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] ( व्यवहार या उपयोग के लिये कोई वस्तु ) उपस्थित करना । पहुँचाना । मुहैया करना । जैसे—वे ० नं० बुद्धसवार पलटन के घोड़ों के लिये घास दाना सप्लाई किया करते हैं ।  
 कि० प्र०—करना ।  
 सप्तापर-संज्ञा पुं० [ अ० ] वह जो किसी को चीजें पहुँचाने का काम करता है । कोई वस्तु या माल पहुँचाने या मुहैया करनेवाला ।  
 सप्लीमेंट-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) वह पत्र जो किसी समाचार पत्र में अतिरिक्त विषय देने के लिये अतिरिक्त रूप से लगाया जाय । अतिरिक्त पत्र । सप्लिमेंट । ( २ ) किसी वस्तु का अतिरिक्त अंश ।  
 सय-जन्म-संज्ञा पुं० [ अ० ] छोटा जन्म । सदराला ।  
 सय-द्विचित्रनल-वि० [ अ० ] सय-द्विचित्रन का । उस मू-भाग का जिसके अन्तर्गत बहुत से गाँव और कसबे हों । सय-द्विचित्रन संबंधी । जैसे—सय-द्विचित्रनल अकसर ।  
 सय-द्विचित्रन-संज्ञा पुं० [ अ० ] किसी जिले का वह छोटा मू-भाग जिसके अंतर्गत बहुत से गाँव और कसबे हों । परगना । जैसे—सोड़पुर सय-द्विचित्रन ।  
 सयिप-कई सय-द्विचित्रनों का एक जिला होता है अर्थात् हर जिला कई सय-द्विचित्रनों में बँटा हुआ होता है ।  
 सयद-संज्ञा पुं० [ सं० राय ] (१) राय । भावाज । उ०—

हुता जो मुचम-सुख नौयें ठौब ना सुर समद । तहाँ पाप नहिं पुच महमद आपुहि आपु मई ।—जायसी ।  
 (२) किसी महात्मा की बागी या भजन आदि । जैसे—कबीर जी के सबद, दादू प्रयाल के सबद ।  
 सय-मरीन-संज्ञा पुं० [ अ० ] एक प्रकार का छोटा बोट जो जल के अंदर चलता है और युद्ध के समय शत्रु के जहाजों को नष्ट करने के काम में आता है । यह घंटों जल के अंदर रह सकता है और ऊपर से दिखाई नहीं देता । अर्थात् पानी लेने लिये इसे ऊपर आना पड़ता है । यह "टारपीडो" नामक मोपण विस्फोटक बम साथ लिए रहता है और घात लगते ही शत्रु के जहाज पर टारपीडो चलाता है । यदि टारपीडो ठिकाने पर लगा तो जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है । गोताखोर ।  
 सयसिद्धियरी जेल-संज्ञा स्त्री० [ अ० ] हवालाल ।  
 सयार-क्रि० वि० [ वि० संवै ] जद्दी । शीघ्र । उ०—होइ भगोरध कर तई फेरा । जाहि सवार मरन कै वेरा ।—जायसी ।  
 सयार्निटन जज-संज्ञा पुं० [ अ० ] दीवानी अदालत का वह हाकिम जो जज के नोचें हो । छोटा जज । सदराला ।  
 सयजेस्ट-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) प्रस्ता । देयता । जैसे—प्रिन्सिपल सयजेस्ट । (२) विषय । मन्थन ।  
 सयजेस्ट कमिटी-संज्ञा स्त्री० दे० "त्रिपयनिर्वाचनी समिति" ।  
 सभागा-वि० [ सं० स+भा ] [ स्त्री० सभागी ] (१) भागवान् । सुभा किमन । नकदीरवर । उ०—ओहि छुह पवन विरिठ जेहि लगा । सोहि मलयगिरि भयुठ सभागा ।—जायसी ।  
 (२) सुंदर । रूपवान् । उ०—आए गुपुठ होइ-देखन लागी । यह मूर्ति कस सती सभागी ।—जायसी ।  
 समद-संज्ञा पुं० [ अ० ] (१) वह यादामी रंग का बोधा जिसकी अवाल, तुम और छुट्टे काले हों । उ०—हील समद चाल जग जात । हाँसल भौंर गियाह चलाने ।—जायसी ।  
 (२) मोटा । अंध ।  
 समचर-वि० [ सं० ] समान आचरण करनेवाला । एक साँ व्यवहार करनेवाला । उ०—नाम निदुर समचर सिखी सलिल सनेह न दूर । ससि सरोग दिनकर बड़े पयद प्रेमपय चूर ।—तुलसी ।  
 समझ-संज्ञा स्त्री० [ सं० सज्ज ] ( १ ) समझने की शक्ति । बुद्धि । अह । जैसे,—सुगहारी समझ की बलिहारी है ।  
 मुहा०—समझ पर पथर पड़ना उ० उद्वि नष्ट होना । एक का भाग बनना । जैसे—उसकी समझ पर तो पथर पड़ गये हैं, यह दिवाहित ज्ञान-शुभ्य हो गया है । (२) स्वयं । ध्यान । जैसे,—(क) मेरी समझ में उसने ऐसा कोई काम नहीं किया कि जिसके लिये उसकी निन्दा की जाय ।

**विशेष**—गृहस्थिति ने लिखा है कि ऐसे मार्ग पर चलने से कोई (जमींदार भी) किसी को नहीं रोक सकता।

**संस्थाध्यक्ष-संज्ञा पुं०** [सं०] व्यापार का निरीक्षक। व्यापाराध्यक्ष।

**विशेष**—इसका मुख्य काम गिवाची रंगे जनेवाल माल का तथा पुरानी चीनों का विक्रय करवाना था। तौल भाप का निरीक्षण भी यही करता था। चन्द्रगुप्त के समय में तुला द्वारा तौलने में यदि दो तौले का भी फरक पड़ जाता तो बनिप पर ६ पण जुर्माना किया जाता था। क्रय विक्रय सम्बन्धी राज-नियमों को जो लोग तोड़ने थे, उनको भी दण्ड यही देता था। भिन्न भिन्न पदार्थों पर कितनी चुंगी-छों, कौन कौन सा माल बिना चुंगी दिए बाहर में जाय, इन सम्पूर्ण बातों का प्रबन्ध भी यही करता था। पदार्थों की कीमतों भी यही नियत करता था और सारकारी पदार्थों का विक्रय भी यही करवाता था। उनके विक्रय के लिये नौकर भी रक्खता था, इत्यादि।

**संहत बल-संज्ञा पुं०** [सं०] संबन्धित सेना। (कौटि०)

**संहारना-किं० प्र०** [सं०] संहार। नष्ट होना। संहार होना।

उ०—हेहय मारो युगजन संहरे। सो, यदा छै किन युग युग जाँजे।—केशव।

किं० सं० [सं०] संहारण। संहार करना। ध्वंस करना।

उ०—सुरगणिक सो संहरी परम पापिनी वाम।—केशव।

**सई-संज्ञा स्त्री०** [?] वृद्धि। वरकत। उ०—खग सुग सवर निसाचर सब की पूँजी विनु यादो सई।—तुलसी।

**सक-संज्ञा पुं०** [सं०] राक। साका। धाक।

**सुहा-संज्ञा स्त्री०** (= (२) ) भाऊ बधिन। उ०—हैं सो रतनसेक सुह-बंधी। राहु बंधि जीता मरंधी।—जायसी। (२) मर्यादा स्थापित करना।

**सह-किं० वि०** [सं०] शक्ति। जहाँ तक हो सके। भरसक।

उ०—का तोहि जीव मर्याप सकत आन के दोस। जो नहि तुसे समुद्र-जल सो बुहाइ कित ओस।—जायसी।

**सकपकाना-किं० प्र०** [सं०] (५) हिलना खोलना। लहराना। उ०—सकपकाहि विप-भरे पसारे। लहरि भरे लहकति अति कारे।—जायसी।

**सकुचाना-किं० प्र०** [सं०] संक्षेप, हिं० सकुच + आना (प्रथ०)। संकोच करना। जैसे,—वह आपके पास आने में सकुचाता है।

किं० सं० [सं०] संकुचन। सिकोड़ना। उ०—ध्रुवण शरण ध्वनि सुनत लियो प्रभु तसु सकुचाई।—सूर।

किं० सं० [हिं०] सकुचन का प्र०। किसी को संकोच करने में प्रयत्न करना। खिन्न करना। उ०—निज करनी सकुचोहि कत सकुचावत इहि चाल। मोहो से नित विमुख खी सनमुख रहि गोपाल।—विहारी।

किं० सं० [सं०] संकोच + आर (प्रथ०)। संकोच करने वाला। लजीला। उ०—गयो अयोडो बोलि प्यो आपुदि पठे मसीदि। दीडि सुराई दुहुन की छलि सकुचोही दूति।

—विहारी।

**संकोचना-किं० सं०** [सं०] संकोच + न (प्रथ०)। संकुचित करना। उ०—सोच पोष भोधि कै सकोच भीम वेप को।—केशव।

**सक चक्र-संज्ञा पुं०** [सं०] वह राष्ट्र जो चारों ओर तक्षिलायी राष्ट्रों से घिरा हो। राष्ट्र चक्र।

**सक सामंत-संज्ञा पुं०** [सं०] ग्राम समूह का जमींदार जो उसका सामंत होता था।

**विशेष**—किसी ग्राम के पास का जो ताल्लुकेदार होता था, वही उस ग्राम का सक सामंत होता था। (सीमा संबंधी सगढ़ों में सबसे पहले इसी की गवाही ली जाती थी। (परा० स्मृति)।

**सचना-किं० सं०** [हिं०] सनना। (२) सम्पादित करना। पूरा करना। उ०—यहु ऊँड घोनिनत सो भरे पितु तर्पणादि किया सची।—केशव।

**सच्छत-वि०** [सं०] स + च + त जिसे शक्त लगा हो। धाल। जसमी। उ०—जिनहो जग अछत सीत धरे। तिनको जग सच्छत कीन करे।—केशव।

**सजना-किं० प्र०** [सं०] सज्जा। (३) नाखाख से सुसजित होना। रंग के लिये तैयार होना। उ०—हमहौं पहिलिं करि संग अये। सजि सैन चले चतुरंग सचे।—केशव।

**सजवना-संज्ञा पुं०** [हिं०] सजना। सजने की क्रिया या भाव। तैयारी। उ०—बहुतन्ह अंस गढ़ कीन्ह सजवना। अंत भई छका जस रवना।—जायसी।

**सतपना-किं० सं०** [सं०] सतर्पण। भली भाँति पूजना। संहत करना।

**सतार-संज्ञा पुं०** [सं०] जैनों के अनुसार ग्यारहवें स्वर्ग का नाम।

**सत्याग्रह-संज्ञा पुं०** [सं०] सत्य के लिये आग्रह या हठ। सत्य या न्याय पक्ष पर प्रतिज्ञापूर्वक अहंता और उसकी सिद्धि के उद्योग में मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों और कष्टों को धैर्यपूर्वक सहना और किसी प्रकार का उपद्रव या बल का प्रयोग न करना।

किं० प्र०—करना।—होना।

**सत्र-संज्ञा पुं०** [सं०] विकट स्थान या समय।

**विशेष**—कौटिल्य ने लिखा है कि रेगिस्तान, सङ्कटमय स्थान, दलदल, पहाड़, नदी, घाटी, जैची नोची भूमि, नाब, गी, दाह, शूद्र, अंध तथा रात ये सब सत्र कहे जाते हैं। (की०)

सदर-संघ-प्रत्यु० [ सं० सदर ] सदर । उ०—उत्प्रे धपन उजार बसावन गाई बहोर विरद सदर है ।—तुलसी ।

सदर-संघा पुं० [ दे० ] सज नाम का वृक्ष । वि० दे० “सज” । ( बुन्देल० ) ।

सदर-संघा पुं० [ सं० शार्दूल ] शार्दूल । सिद्ध । उ०—विरह हान्त सन साले धांय करै चिन चूर । वेगि भाइ पिउ धानहु गान्धु होइ सदर ।—जायसी ।

सदेह-कि० वि० [ सं० ] (२) भूमिमान । सखीर । उ०—सन श्दार सदेह मनोरति मन्मथ मोहि ।—केदाव ।

सनट्टा-संघा पुं० [ दे० ] विहायती मेंहरी नाम का पौधा जो बागों में बाढ़ के रूप में लगाया जाता है । वि० दे० “विहायती मेंहरी” ।

सनतकुमार-संघा पुं० [ सं० ] (३) जैनों के अनुसार तीसरे स्वर्ग का नाम ।

सन्नी-संघा स्त्री० [ वि० सन ] सन की जाति का एक प्रकार का छोटा पौधा जो प्रायः सारे भारत और बरमा में पाया जाता है । इसके हंठलों से भी एक प्रकार का मजबूत रेशा निकलता है; पर लोग उसका व्यवहार कम करते हैं । यह देखने में बहुत सुन्दर होता है; अतः कहीं-कहीं लोग इसे बागों में शोभा के लिये भी लगाते हैं ।

सपार्इ-संघा स्त्री० [ सं० ] (प्यवहार या उपयोग के लिये कोई वस्तु) उपस्थित करना । पहुँचाना । सुदृष्य करना । जैसे—वे ७ नं० युद्धसवार पलटन के घोड़ों के लिये घास दाना सपार्इ किया करते हैं ।

कि० प्र०—करना ।

सप्तावर-संघा पुं० [ सं० ] वह जो किसी को चीजें पहुँचाने का काम करता है । कोई वस्तु या माल पहुँचाने या सुदृष्य करनेवाला ।

संसीमेंट-संघा पुं० [ सं० ] (१) वह पत्र जो किसी समाचार पत्र में अधिक विषय देने के लिये अतिरिक्त रूप से लगाया जाय । अतिरिक्त पत्र । छोड़पत्र । (२) किसी पत्र का अतिरिक्त अंश ।

संघ-जन्म-संघा पुं० [ सं० ] छोटा जन्म । सदराला ।

संघ-दिविजनल-वि० [ सं० ] संघ-दिवीजन का । उस भू-भाग का जिसके अन्तर्गत बहुत से गाँव और कस्बे हों । संघ-दिवीजन संबंधी । जैसे—संघ-दिविजनल अफसर ।

संघ-दिवीजन-संघा पुं० [ सं० ] किसी जिले का वह छोटा भू-भाग जिसके अंतर्गत बहुत से गाँव और कस्बे हों । परगना । जैसे—चंद्रपुर संघ-दिवीजन ।

विशेष—कई संघ-दिवीजनों का एक जिला होता है अर्थात् हर जिला कई संघ-दिवीजनों में बँटा हुआ होता है ।

सयद-संघा पुं० [ सं० शब्द ] (३) शब्द । आवाज । उ०—

हुता जो सुभ्रम-सुभ्र नवि ठवि ना सुर समद । तहाँ पाप नहि पुत्र मदमद भापुदि भापु मई ।—जायसी ।

(२) किसी महात्मा की वाणी या मजन आदि । जैसे—कबीर जी के सबद, दादू दयाल के सबद ।

सय-मरीन-संघा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का छोटा घोट जो जल के अंदर चलता है और सुद के समय शत्रु के जहाजों को नष्ट करने के काम में आता है । यह घंटों जल के अंदर रह सकता है और ऊपर से दिखाई नहीं देता । हुआ पानी लेने लिये इसे ऊपर आना पड़ता है । यह “टारपीडो” नामक भोग्य विस्फोटक बम साथ लिए रहता है और घात लगते ही शत्रु के जहाज पर टारपीडो चलता है । यदि टारपीडो ठिकाने पर लगा तो जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है । गीताखोर ।

सयसिद्धिपरी जेल-संघा स्त्री० [ सं० ] हवालात ।

सयार-कि० वि० [ वि० मयेठ ] जल्दी । शीघ्र । उ०—होइ भगीरथ कर तहँ फेरा । जाहि सयार मरन कै बेरा ।—जायसी ।

सयार्डिनेट जज-संघा पुं० [ सं० ] दीवानी अदालत का वह हाकिम जो जज के नीचे हो । छोटा जज । सदराला ।

सयजेकट-संघा पुं० [ सं० ] (१) प्रजा । दैयत । जैसे—ब्रिटिश सयजेकट । (२) विपद । मजबूत ।

सयजेकट कमिटी-संघा स्त्री० दे० “विषयनिर्वाची समिति” ।

समागा-वि० [ सं० स+माग ] [ जी० समागी ] (१) भाग्यवान् । सुख क्रिमत । तकरीरकर । उ०—ओहि छुट पवन विरिछ जेहि लागी । सोइ मलयगिरि मयट समागा ।—जायसी ।

(२) सुंदर । रूपवान् । उ०—भाइ गुणुन होइ देखन लागी । वह मूरति कस सती समागी ।—जायसी ।

समंद-संघा पुं० [ का० ] (१) वह यादानी रंग का घोड़ा जिसकी अयाल, हुन और पुटे काले हों । उ०—लील समंद बाल जग जाने । हंसिल और गियाह यलाने ।—जायसी ।

(२) घोड़ा । अथ ।

समचर-वि० [ सं० ] समान आचरण करनेवाला । एक सा व्यवहार करनेवाला । उ०—नाम निटुर समचर सिखी सलिल सनेह न दूर । ससि सरीग दिनकर बड़े पयद प्रेमपय कूर ।—तुलसी ।

समक-संघा स्त्री० [ सं० संगान ] (१) समझने की शक्ति । बुद्धि । अह । जैसे—पुश्करी समक की यलिहारी है ।

मुहा०—समझ पर पथर पड़ना = बुद्धि नष्ट होना । अह का मातृ भाग्य । जैसे—उसकी समझ पर तो पथर पड़ गये हैं, वह हिताहित ज्ञान-धर्म ही गया है । (२) सवाल । ध्यान । जैसे—(क) मेरी समझ में उसने ऐसा कोई काम नहीं किया कि जिसके लिये उसकी निन्दा की जाय ।

(ख) मेरी समझ में उन्होंने तुमको जो उत्तर दिया, यह बहुत ठीक था।

**समभदार-वि०** [ हि० समक + फ० दार ] बुद्धिमान । अहमन्द ।  
**समझना-क्रि० प्र०** [ सं० सम्यक् ज्ञान ] किसी बात को अच्छी तरह जान लेना । अच्छी तरह मन में बैठाना । भली भाँति हृदयगम करना । अच्छी तरह ध्यान में लाना । ज्ञान प्राप्त करना । योष होना । वृत्ताना । जैसे,—मैंने जो कुछ कहा, यह तुम समझ गए होगे । (२) खयाल में आना । ध्यान में आना । विचार में आना । जैसे—(क) मैं समझता हूँ कि अब तुम्हारी समझ में यह बात आ गई होगी । (ख) तुम समझ न हो तो फिर समझ लो ।

**सं० क्रि०**—ज्ञाना ।—पढ़ना ।—रखना ।—लेना ।

**मुहा०**—समझ वृत्तकर = शक्ती तरह जान कर । प्रत्यक्ष ।  
 जैसे—तुमने बहुत समझ वृत्त कर यह काम किया है ।

**समझ रखना** = शक्ती तरह जान रखना । भली भाँति हृदयगम करना । जैसे—तुम समझ रखो कि अपने किए का फल तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा । समझ लेना—(१) बखल लेना । विशेष लेना । जैसे—कल तुम चौक में आना; तुमसे समझ लेंगे । (२) समझौता करना । नियतार । जैसे,—आप रुपय दे दीजिये; हम दोनों आपस में समझ लेंगे ।

**समझाना-क्रि० सं०** [ हि० समझना कर्त्त० ] कोई बात अच्छी तरह किसी के मन में बैठाना । हृदयगम कराना । ज्ञान प्राप्त कराना । ध्यान में लाना । योष कराना ।

**यौ०**—समझाना वृत्ताना ।

**समझौता-संज्ञा पुं०** [ हि० समझना ] आपस का वह निपटारा जिसमें दोनों पक्षों को कुछ न कुछ दबना या स्वार्थ त्याग करना पड़े । राजी-नामा ।

**क्रि० प्र०**—करना ।—कराना ।—होना ।

**समदण्ड-संज्ञा स्त्री०** [ ? ] भेंट । उपहार । नजर । उ०—आपन देस खादु सब औ चँदेरी छेदु । समुद जो समदण कीन्ह तोहि ते पाँची नग देहु ।—जायसी ।

**समदृता-क्रि० प्र०** [ ? ] प्रेमपूर्वक मिलना । भेंटना । उ०—समदि लोण पुनि चढ़ी विधाना । जेहि दिन डरी सो आह गुलाना ।—जायसी ।

**क्रि० सं०**—(१) भेंट करना । उपहार देना । नजर करना ।

(२) विवाह करना । उ०—दुहित्वा समद्री सुख पाव अवे ।—केशव ।

**समधियाना-संज्ञा पुं०** [ हि० समधी + रक्षणा (पय०) ] वह पर जहाँ अपनी कन्या या पुत्र का विवाह हुआ हो । समधी का घर ।  
**समधिया-संज्ञा पुं०** [ सं० सम्पत्ती ] [ स्त्री० सम्पत्ति ] पुत्र या पुत्री का समुत्तर । वह जिसकी कन्या से अपने पुत्र का अथवा जिसके पुत्र से अपनी कन्या का विवाह हुआ हो ।

**समय-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (१) एक । काल । जैसे—समय परि-वर्तनशील है ।

**मुहा०**—समय पर = ठीक वक्त पर ।

(२) अवसर । मौका । जैसे,—समय चूकि पुनि का पछिताने ।

(३) अवकाश । फुरतन । जैसे—तुम्हें इस काम के लिये थोड़ा सा समय निकालना चाहिये ।

**क्रि० प्र०**—निकालना ।

(४) अंतिम काल । जैसे—उनका समय आ गया था; उन्हें घबाने का सब प्रयत्न व्यर्थ गया ।

**क्रि० प्र०**—आना ।—पहुँचना ।

(५) शपथ । प्रतिज्ञा । (६) आकार । (७) सिद्धांत ।

(८) संविदा । (९) निर्देश । (१०) मापा । (११)

संकेत । (१२) व्यवहार । (१३) संपदा । (१४) कर्त्तव्य

पालन । (१५) व्याख्यान । प्रचार । घोषणा । (१६)

उपदेश । (१७) दुःख का अवसान । (१८) नियम ।

(१९) धर्म । (२०) संन्यासियों, वैदिकों, व्यापारियों आदि

के संघों में प्रचलित नियम । (स्मृति)

**समय क्रिया-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] विलिपियों या व्यापारियों का परस्पर व्यवहार के लिये नियम स्थिर करना । (वृहस्पति)

**समरथ-वि० दे०** "समर्थ" । उ० (क) लोकन की रचना रचि रचिये को समरथ्य ।—केशव । (ख) तुलसी या जग भाई के कौन भयो समरथ्य ।—तुलसी ।

**समरथ-वि० दे०** "समर्थ" उ०—(क) सब विधि समरथ तबै राजा दशरथ भगीरथ पथगामी गंगा कैसो जल है ।—केशव । (ख) समरथ के गर्दि दोस गुसाईं ।—तुलसी ।

**समवर्षोपधान-संज्ञा पुं०** [ सं० ] बहिया और कीमती माल में घटिया माल मिलाना ।

**विशेष**—चन्द्रयुग के समय में पान्य, धी, क्षार, नमक, औषध आदि में इस प्रकार की मिलावट करने पर १२ पण उत्तमाना होता था । (कौ०)

**समवेत-संज्ञा पुं०** दे० "सम्बन्धकार" (२) ।

**समव्यूह-संज्ञा पुं०** [ सं० ] वह सेना जिसमें २२५ सवार, ६७५

सिपाही तथा इतने ही घोड़े और रथ आदि के पादगोत्र हों ।

**समसंधि-संज्ञा स्त्री०** [ सं० ] वह संधि जिसमें संधि करनेवाला राजा या राष्ट्र अपनी पूरी दक्षिण के साथ सहायता करने की तैयारी हो । (कौ०)

**समादान-संज्ञा पुं०** [ सं० ] (२) ग्रहण किए हुए प्रती या आभारों की उपस्था । (दीन)

**समाधि-संज्ञा स्त्री०** दे० "समाधान" । (व०) उ०—स्वाधि भूत जनित उपाधि काह पल की समाधि कौबै तुलसी की जानि जन फुर के ।—तुलसी ।

समाधि मोक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] युगनी संधि तोड़ना । संधिभंग ।  
(कौ०)

विशेष—पालन्य ने इसके अनेक नियम दिए हैं। संधि के समय किसी पक्ष को दूसरे पक्ष से जो बंधन मिली हैं, उन्हें किस प्रकार छीटाना चाहिये, किस प्रकार सूचना देनी चाहिये आदि बातों का उसने पूर्ण वर्णन किया है।

समानतोऽर्थापद-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक साथ ही चारों ओर से अर्पण सिद्धि । (कौ०)

समाना-किं० प्र० [ सं० समाधि ] अन्दर आना । भरना । अटना । जैसे—यह समाचार सुनते ही सब के हृदय में आनन्द समा गया । किं० सं० किसी के अन्दर रचना । भरना । अटना । जैसे—ये सब चीजें इसी यन्त्र के अन्दर समा दें ।

समानिका-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का वर्णन जिसमें रगण, जगण और एक गुण होता है। समाना । उ०—देवि देवि कै समा । विप्र मोहियो प्रभा । राज मंथली लसे । देव लोक को हँसै ।—केशव ।

समाना-ज्ञा स्त्री० दे० "सनातिका" ।

समाप्त सैम्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सेवा जो एक ही वय की लड़ाई करना जानती हो । वि० दे० "उपनिविष्ट" ।

समाहर्ता-संज्ञा पुं० [ सं० ] (४) प्राचीन काल का राजा एक प्रकार के राजा प्रथम कर्मधारि । (कौ०) ।

विशेष—चन्द्रगुप्त के समय में इसका मासिक वेतन २००० पण था । यह जैनपद को चार भागों में विभक्त करके और प्रामों का अर्ध, मध्यम और कनिष्ठ के नाम से विभाग करके करों के संस्कार में निम्नलिखित धर्मोत्तरण करता था—परिवारक, आशुषिक, पान्यकर, पशुकर, हिरण्यकर, कृष्यकर, विधिकर, और प्रतिकर । इनमें से प्रत्येक के लिये वह 'गोप' नियुक्त करता था जिनके अधिकार में गोप से दस गाँवों तक रहते थे । इन गोपों के ऊपर स्थानिक होते थे ।

समाहर्तृपुत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] समाहर्ता का कारिदा । (कौ०)

समाह्वय-संज्ञा पुं० [ सं० ] पक्ष, पक्षियों (सीतर, खेद, शार्भी, शेर, भैंसे आदि) को लड़ाने और शान्ति लाने का खेल । विशेष—इसके संबंध में अथैशाख तथा स्तुतियों में अनेक नियम हैं ।

समिधा, समिधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० सम्य ] लकड़ी, विशेषतः यशकंड में जलाने की लकड़ी । उ०—प्रेम धारि तपेन भले पक्ष सहज सनेह । संसय समिधि अग्नि उमा समता बलि देह ।—तुलसी ।

समीति-संज्ञा स्त्री० दे० "समिति" उ०—राग दोष दृष्ट्या विमोह बस रची न साधु समीति ।—तुलसी ।

समीर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (६) प्राणवायु जिसे योगी वना में

रखते हैं । उ०—कठुन सावन सिधि जार्ना ने निगम विधि नहि जप तप वन मन न समीर ।—तुलसी ।

समुद्र-फण-संज्ञा पुं० [ हिं० समुद्र + फण ] मसाले भाकरों का एक प्रकार का द्रव्य जो रुहेलखंड और अवध के जंगलों में शरनों के किनारे और नम जमीन पर होता है । बंगाल में भी यह अधिकता से होता है और दक्षिण भारत में लंबों तक पाया जाता है । कहीं कहीं खोग इसे शोभा के लिये बागों में भी लगाते हैं । इसकी लकड़ी से प्रायः मार्च बनाती है । औषध में भी इसकी पत्तियों और छाल आदि का व्यवहार होता है । पुंजर ।

समुच्चय-संज्ञा पुं० [ सं० ] (४) वह आपत्ति जिसमें यह निश्चय हो कि इस उपाय के अतिरिक्त और उपायों में भी काम हो सकता है । (कौ०)

समुद्रपरिवर्त्तिम-संज्ञा पुं० [ सं० ] वेषे हुए पदार्थों में चालाकी से दूसरा पदार्थ भिंला देना । (कौ०)

समुद्रावलि-संज्ञा पुं० दे० "समुद्राय" । उ०—रच्यो एक सम गुनि को, पर विरंचि समुद्राय ।—केशव ।

समुद्रार्थ-वि० [ सं० संमुख, पुं० हिं० समुद्र ] (१) सामने का । आगे का । (२) सामना । सीधा ।

किं० वि०—सामने । आगे । उ०—मारिषे की साहसु करे बड़े विरह की पीर । दीरति है समुद्री सखी सरसिज सुरभि समीर ।—विहारी ।

समुद्राना-किं० प्र० [ सं० समुद्र, पुं० हिं० समुद्र ] सामने आना । संमुख होना । उ०—सबही त्यों समुद्रति छिनु चलति सयनु दे पीठि । बाही त्यों टहरति यह कथिल-मवी लौं दीठि ।—पिहारी ।

समुद्र-हितयादी-संज्ञा पुं० [ सं० ] जनता के हित साधन में तत्पर रहनेवाला । जनता का प्रतिनिधि । (रघुति)

विशेष—वाशुनक्षत्र ने लिखा है कि किसी स्थान का शासन चमंड, निळोमें और पत्रिच समुद्र-हितयादियों के हार्थ में देना चाहिये ।

समीरिया-संज्ञा पुं० [ हिं० सम + मीरिषा ] बराबर उभरवाला । समवयस्क ।

सम्भन-संज्ञा पुं० [ सं० समन ] अदालत का वह सूचनापत्र या आदेशपत्र जिसमें किसी को निर्दिष्ट समय पर अदालत में उपस्थित या हाजिर होने की सूचना या आदेश लिखा रहता है । तलखीनामा । हुच्छिखानामा । बाद्दानपत्र ।

किं० प्र०—जाना ।—देना ।—निकलना ।—निकलवाना ।—जारी कराना ।—जारी होना ।—सामील ।—देना ।—तामील कराना ।

सयन-संज्ञा पुं० [ सं० सयन ] श्रावण ऋते का वासन । बिलार ।



७०—निज कर राजीवन्दन पहल-दल रचित सयन प्यास परसपर पियूष प्रेम-पानकी।—तुलसी।

सयान-संज्ञा पुं० दे० "सयानपन"। उ०—आई गौने फालि ही, सीखी कदा सयान। अर ही तैं रूसन लगी, अवही तैं पहिछान।—मसिराम।

सयानपत-संज्ञा स्त्री० [ हि० सयान + पत (प्रत्य०) ] चालाकी। धूर्तता।

सयानपन-संज्ञा पुं० [ हि० सयान + पन (प्रत्य०) ] (१) सयान होने का भाव। (२) चतुरता। बुद्धिमान्। होशियारी। (३) चालाकी। धूर्तता।

सयाना-वि० [ सं० सयान ] (१) अधिक अवस्थावाला। वयस्क। जैसे,—अब तुम लड़के नहीं हो, सयाने हुए। (२) बुद्धिमान्। चतुर। होशियार। (३) चालाक। धूर्त।

संज्ञा पुं० (१) बड़ा घड़ा। घृदक पुरुष। (२) वह जो हाथ फूँक करता हो। अंतर मंतर करनेवाला। भोक्षा। (३) चिकित्सक। हकीम। (४) गाँव का मुखिया। नंबरदार।

सयानाचारी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सयाना + चार (प्रत्य०) ] यह रमूम जो, गाँव के मुखिया को मिलता है।

सयोनीयपथ-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेतों में जानेवाला मार्ग।

सरंहर-वि० [ सं० सरंहर ] जिसने अपने को दूसरे के हवाले किया हो। जिसने दूसरे के सम्मुख आत्मसमर्पण किया हो। उपस्थित। हाजिर। जैसे,—उन पर गिरिफ्तारी का चार्ज था; सोमवार को वे अदालत में सरंहर हो गए।

किं० प्र०—होना।

सर-संज्ञा स्त्री० [ सं० सर ] चिता। उ०—पापुँ नहिं होइ जोगी जती। अब सर चढ़ीं जरीं जस सती।—जायसी।

सरक-संज्ञा पुं० [ ? ] (६) शराब का सुमार। उ०—बय अनुहरत विभूषन विभिन्न अंग जोहे जिय अति सनेह की सरक सी—तुलसी।

सरसुत-संज्ञा पुं० [ का० ] (३) आज्ञापत्र। परवाना। उ०—आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सुबे तुलसी निहाल कै कै दिवो सरसुत हैं।—तुलसी।

सरस-संज्ञा पुं० दे० "स्वर्ग"। उ०—मूल पताल सरग ओहि साखा। अमर बेलि को पाय को चाखा।—जायसी।

सर-घर-संज्ञा पुं० [ सं० सर + हि० घर ] वह स्थान जिसमें सार रखे जाते हैं। तरकश। सुगीर। उ०—छोने छोने धनुष विनिय कर झयलनि छोने मुनिपट कटि छोने सर-घर हैं।—तुलसी।

सरजना-संज्ञा-किं० सं० [ सं० यजन ] (१) सृष्टि करना। (२) रचना। बनाना।

सरदार-तंत्र-संज्ञा पुं० [ का० सरदार + सं० तंत्र ] एक-प्रकार की

सरकार जिसमें राजसत्ता या दासतन्त्र सरदारों, बड़े बड़े ताल्लुकदारों या ऐश्वर्यशाली नागरिकों के हाथ में रहता है। कुलीनतंत्र। अभिजाततंत्र। कुलतंत्र। वि० दे० "परिलोकैसी"। सरदा-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] उत्तरी भारत की रेतीली भूमि में होनेवाली एक प्रकार की बारहमासी घास जो चारे के लिये अच्छी समझी जाती है। बादरी।

सरदा-संज्ञा स्त्री० [ दे० ] एक प्रकार का पोधा जो प्रायः रेतीली भूमि में होता है। यह वर्षा और धरद क्रम में फूलता है। इसका व्यवहार औषधि के रूप में होता है।

सरनदीप-संज्ञा पुं० [ सं० सर्य दीप या निरुल दीप ] लंका का एक प्राचीन नाम जो भरतवालों में प्रसिद्ध था। उ०—दिवा दीप नहीं तम डँडियातार। सरनदीप सरि होइ न पारा।—जायसी।

सरधाना-संज्ञा पुं० [ ? ] तंबू। खेमा। उ०—उठि सरधान गगन लगि छाप। जानहु राते मेघ देखाए।—जायसी।

सरघाला-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की लता जिसे घोड़ा-बेल भी कहते हैं। घिलाई कंद हस्ती की जड़ होती है। वि० दे० "घोड़ा बेल"।

सरस-वि० [ सं० ] (९) बढ़ कर। उत्तम। उ०—प्रधानंद हृदय दरस सुख लोचननि अनुभव उभय सरस राम जागे हैं।—तुलसी।

सरसोही-वि० [ हि० सरस + औही (प्रत्य०) ] रस युक्त किया हुआ। सरस बनाया हुआ। उ०—तिथ-सरसोई सुनि किए करि सरसोई मेह। पर-परसोई है हे सर सरसोई मेह।—विहारी।

सराही-संज्ञा स्त्री० [ ? ] पाजामा।

सरार-संज्ञा पुं० [ दे० ] घोड़ा-बेल नाम की लता जिसकी जड़ घिलाई कंद कहलाती है। वि० दे० "घोड़ा बेल"।

सरित-संज्ञा स्त्री० [ सं० सरित ] सरिता। नदी। उ०—दुर्गति दुर्गम ही छु डटिल गति सरितन ही में।—देशधर।

सरहाना-संज्ञा-किं० सं० [ ? ] चंगा करना। अच्छा करना। उ०—समुधि रहनि सुनि कहनि विरह प्रत अनप अभिय औपध सरहाए।—तुलसी।

सरोजना-संज्ञा-किं० सं० [ ? ] पाता। उ०—इस साजोवय सुख सरोजयो रहत समीप सहाई। सो तजि कहत और की कोरे तुम अलि बड़े अदाई।—सर।

सकिल-संज्ञा पुं० [ सं० ] कई महलों, गाँवों या कस्बों आदि का समूह जो किसी काम के लिये नियत हो। हलका जैसे,—सकिल अफसर, सकिल इन्स्पेक्टर।

सकयुट हाउस-संज्ञा पुं० [ सं० ] जिसे के प्रधान नगर में रह

सरकारी मकान या कौठी जहाँ, दौरा करते हुए उच्च राज-  
कर्मचारी या बड़े अफसर लोग ठहरते हैं। सरकारी कौठी।  
सक्युलर-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह 'यय', विज्ञप्ति या सूचना जो  
बहुत से व्यक्तियों के नाम भेजी जाय। गपनी विज्ञप्ति।

सर्वज्ञाहट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार की बहुत तेज बिजली  
की रोशनी जिसका प्रकाश रिफ्लेक्टर या प्रकाश-परावर्तक के  
द्वारा लंबाई में बहुत दूर तक जाता है। प्रकाश हतना तेज  
होता है कि, आँखें सामने नहीं उठरती और दूर तक की  
चीजें साफ दिखाई देती हैं। दुर्घटना के बचाव के लिये  
आइस प्रायः जहाजों पर ही इसका उपयोग होता था; पर  
प्राइकल मेल, इन्सपेक्ट आदि ट्रेनों के इंजनों के आगे भी  
पह लगी रहती है। अन्येषक प्रकाश। प्रकाश-अपेक्षक।

सर्पसारी व्यूह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह भोगव्यूह जिसमें पक्ष, कष्ट  
तथा उरस्य विषम हों। (कौ०)

सर्वतोभोगी-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह वयय मित्र जो अभिषेक,  
आसारों (संगी साधियों) पक्षीसियों तथा जगलिकों से  
रक्षा करे। (कौ०)

सर्वदण्ड नायक-संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना या पुलिस का एक  
ऊँचा अधिकारी।

सर्वभोग-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह वयय मित्र जो सेना, कोरा तथा  
भूमि से सहायता करे। (कौ०)

सर्वभोग सह-संज्ञा पुं० [ सं० ] सब प्रकार से उपयोगी। सब  
प्रकार के कामों में समर्थ। (कौ०)

सयस्व संधि-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सर्वस्व देकर शत्रु से की हुई  
संधि।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि शासु के साथ यदि ऐसी संधि  
करनी पड़े तो राजधानी को छोड़ कर शेष सय उसको  
सुर्ज कर देना चाहिए।

सर्पहित कर्म-संज्ञा पुं० [ सं० ] सामाजिक समारोह, उत्सव या  
जलसा आदि।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि जो नाटक आदि सामाजिक  
जलसों में भोग न दे, उसे उसमें सम्मिलित होने या उसे  
देखने का अधिकार नहीं है, उसे हटा देना चाहिए। यदि  
न हटे तो वह दण्ड का योगी हो।

सर्पार्थसिद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] जनों के अनुसार सय से ऊपर  
का अनुचर या शर्गी के ऊपर का लोक।

सर्वेय-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो सर्वे अर्थात् जमीन की नाप  
जोख करता हो। पैमाइस करनेवाला। भूमि।

सत्पन-संज्ञा पुं० [ सं० ] दो तीन हाथ ऊँची एक प्रकार की  
साड़ी जिसकी टहनियों पर सफेद रोपू होते हैं। यह प्रायः  
सारे भारत, लंका, बरमा, चीन और मलयान में पाई जाती

है। यह वर्षा ऋतु में फूलती है। इसका व्यवहार भोपधि  
रूप में होता है।

सत्ताक-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सत्ताक ] बाण। तीर। उ०—शुद्ध  
सत्ताक समाज लसी अति रोमन्यो एग वीति तिहारी।—  
केचन।

सत्तारी-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार की सिंधिया। उ०—चकई  
पकवा और पिपुते। नकटा लंदी सोन सत्तारी।—जायसी।

सत्ताही-संज्ञा पुं० [ सं० ] सत्ताही ] सत्ताहीकार। परामर्शदाता।  
जैसे,—कानूनी सत्ताही। (भारतीय शासन पद्धति)। (शब्०)

सविनय कानून मंग-संज्ञा पुं० [ सं० ] सविनय + का० कानून +  
सं० मंग ] नयता या भद्रतापूर्वक राज्य की किसी ऐसी  
व्यवस्था या कानून अथवा धाजा को न मानना जो अमान-  
जनक और अग्यायमूलक प्रतीत हो और ऐसी अवस्था में  
राज्य की ओर से होनेवाले पीढन तथा कारादंड आदि को  
धीरतापूर्वक सहन करना। भद्र अवज्ञा। सिविल डिस्-  
ओबीडियंस।

ससल-संज्ञा पुं० [ सं० ] ससल ] ( १ ) खेती बारी। उ०—सपने के  
सौमल मुप सस सुर संचित देत विराह के।—तुलसी।

ससहरल-संज्ञा पुं० [ सं० ] शरिषर ] चंद्रमा। उ०—सोई सुर शुभ  
ससहर भाति भिलावों सोह। तस दुख मई सुख उपजै  
दिने सोई दिन होह।—जायसी।

ससुरा-संज्ञा पुं० [ सं० ] ससुरा ] ( १ ) धसुर। ससुर। ( २ ) एक  
प्रकार की गाली। जैसे,—वह ससुरा हमारा क्या कर  
सकवा है। ( ३ ) दे० "ससुराल"। उ०—कित यह  
रहसि जो आउय करना। ससुरेह अंत जनम दुख मरना।  
—जायसी।

ससरेड-वि० [ सं० ] जो किसी काम से, किसी अभियोग के संबंध  
में, जॉख पूरी न होने तक, अलग कर दिया गया हो। जो  
किसी काम से किसी अथवा पर, कुछ समय के लिये हटा  
दिया गया हो। मुञ्चल। जैसे,—उस पर पूर लेने का  
अभियोग है; इसलिए वह ससरेड कर दिया गया है।

क्रि० प्र०—करना।

सह-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) प्राचीन काल की एक प्रकार की  
चतुष्टयि या चूटी जिसका व्यवहार यज्ञों आदि में  
होता था।

सहगयनल संज्ञा पुं० दे० "सहगयन"।

सहजभरि प्रकृति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राजा जो विवेता का  
पक्षी और स्वभावात् शयुता रखनेवाला हो।

सहजभरि प्रकृति-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह राजा जो विवेता का  
पक्षी, कुलीन तथा स्वभाव से ही मित्र हो।

सहयोगवाद-संज्ञा पुं० [ सं० ] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से

सहयोग अर्थात् उसके साथ मिल कर काम करने का सिद्धांत।

सहयोगवादी—संज्ञा पुं० [ सं० सहयोग + वादी ] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से सहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिल कर काम करने के सिद्धांत को माननेवाला।

सहस्रार—संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) जैनों के अनुसार बारहवें स्वर्ग का नाम।

सहुँड़ी—अभ्य० [ सं० समुल ] ( १ ) समुल। सामने। ( २ ) भी। तरफ। उ०—जा सहुँड़े जाइ सो मारा। गिरि-घर दरिंदे भौद जो टारा।—जायसी।

सहेट—संज्ञा पुं० दे० “सहेत”। उ०—भौन से निकसि धृपभाउ की कुमारी देखयो ता समै सहेट को निकुंज गिरयो तीर को।—प्रतिराम।

साँकर—संज्ञा पुं० [ सं० संकीर्ण ] कष्ट। संकट। उ०—(क) साँकरे की साँकरन सनमुल हो न तोरे।—केशव। (ख) मुकती साँटि गाँडि जो करै। साँकर परे सोइ उपकरै।—जायसी।

साँटिया—संज्ञा पुं० [ हि० साँटि ] डींड़ी पीटनेवाला। डुगाँवाला। उ०—चहुँ दिसि भान साँटिया फेरी। अ कटकाई राजा फेरी।—जायसी।

साँट गाँठ—संज्ञा स्त्री० [ हि० गाँठ + प्रत्य० गाँठ ] ( १ ) मेलमिलाप। ( २ ) छिपा और दूषित संबंध। गुप्त संबंध प्रा रूपाय। जैसे,—उस स्त्री से उसकी साँट गाँठ थी। ( ३ ) पड़भंग। साजिश। जैसे,—उन दोनों ने साँट गाँठ कर उसे वहाँ मे निकलवा दिया।

साँटना—क्रि० सं० [ हि० साँट ] एकट्टे रहना। उ०—नाथ सुनी ! श्रुतनाथ कथा बलि बालि गढ़ बलि बाट के साँटे।—तुलसी।

साँभर—संज्ञा पुं० [ सं० संवल या संभार ] मार्ग के लिये साथ में लिया हुआ जलपान या भोजन। संवल। पाषेय। उ०—जावत अहहि सकल अरकागा। साँभर हेतु नृरि है जाना।—जायसी।

साँधन—संज्ञा पुं० [ दे० ] मसोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसका सना प्रायः लुका हुआ होता है। इसकी छाल पत्थरी और भूरे रंग की होती है। यह देहरादून, अवध, बुंदेलखंड और हिमालय में ४००० फुट तक की ऊँचाई पर पाया जाता है। फागुन-वैत में पुरानी पत्तियों के झड़ने और नई पत्तियों के निकलने पर इसमें फूल लगते हैं। इसमें से एक प्रकार का गोदू निकलता है जो ओषधि रूप में काम आता और मछलियों के लिये विष होता है। इसके हीर की लकड़ी मजबूत और कड़ी होती है और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। पशु इसकी पत्तियाँ बड़े पात्र से खाते हैं।

सांन्यासहारिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] कंपनी के हिस्सेदार होकर काम या व्यापार करनेवाला ब्यापारी।

साउथ—संज्ञा पुं० [ अंग० ] दक्षिण दिशा।

साका—संज्ञा पुं० [ सं० साका ] ( ७ ) समय। अवसर। मौदा। उ०—जो हम मरन-दिवस मन ताछ। आतु आर पूजा वह साका।—जायसी।

साक्षिमान् आधि—संज्ञा पुं० [ सं० ] साक्षियों के सामने गिवाी रखा हुआ घन जिसकी लिखा पढ़ी न की गई हो।

साखी—संज्ञा पुं० [ सं० साखि ] ( साखीभाँ वाला ) वृक्ष। पेड़। उ०—(क) तुलसीदल सँज्यो चँई सट साखि सिहारे।—तुलसी। (ख) अरती बान केधि सब राखी। साखी दद देई सब साखी।—जायसी।

साखिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ५ ) चार प्रकार के अभिनयों में से एक। साखिक भावों की प्रदर्शन करके, हँसने, रोने, स्तंभ और रोमांच आदि के द्वारा अभिनय करना।

साध-वि० [ सं० साधु ] उत्तम। अच्छा। उ०—अंतोप दास विरात के जिन जानियो मत साथ।—केशव।

साधना—क्रि० सं० [ सं० ] ( ९ ) अपनी ओर मिलाना या काट्ट में करना। यश में करना। उ०—पाधिराज को पुत्र साधि सब मित्र दातु यल।—केशव।

सामझ—संज्ञा पुं० दे० “सामान”। उ०—शाल्मकि अत्रामिल के कतु हुतो न सायन सामो।—तुलसी।

सामक—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ४ ) समाज धन।

सामयिक पत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १ ) वह इकरारनामा या दस्तावेज जिसमें बहुत से लोग अपना अपना धन लगा कर किसी मुकदमे की धरती करने के लिये लिखा पढ़ी करते हैं। (मुकदमीति) (२) समाचार-पत्र। अखबार। सामयिक पत्र।

सामरिक्ता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] समर या समर संबंधी कार्यों में लिस रहना। युद्ध। लड़ाई भिड़ाई।

सामरिक वाद—संज्ञा पुं० [ सं० सामरिक + वाद ] वह सिद्धान्त जिसके अनुसार राष्ट्र सामरिक कार्यों—सेना बढ़ाने, निरप नए नए भयंकर और घातक युद्धोपकरण बनवाने आदि की ओर अधिकाधिक ध्यान दे। विराट् सेना रखने का सिद्धान्त।

सामवायिक राज्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] ( २ ) वे राज्य जो किसी युद्ध के निमित्त मिल गए हों।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि सामवायिक राज्य राग्यों से कभी अकेला न लड़े।

साम्राज्य वाद—संज्ञा पुं० [ सं० साम्राज्य + वाद ] साम्राज्य के देशों की रक्षा और वृद्धि या विस्तार का सिद्धान्त।

साम्राज्यवादी—संज्ञा पुं० [ सं० साम्राज्य + वादी ] वह जो साम्रा-

ज्य शासन-प्रणाली का पक्षपाती और अनुरागी हो। यह जो साम्राज्य की स्थापना और उसकी विस्तार-वृद्धि का पक्ष-पाती हो।

सार-संज्ञा सी० [ हि०. सारण ] (३) खबरदारी। सँभाल। हिका-जत। उ०—भरन सौपुनी सार करत है, अति भिय जानि तिहारे।—तुलसी।

सारना-कि० सं० [ हि०. सरना का सक० रूप ] (९) (भय आदि) चलाना। संघालित करना। उ०—सुमि पर करवत सारा राहू। नखतन्ह भरा दीन्ह यह दाहू।—जायसी।

सारमोड-संज्ञा पुं० [ सं० ] (७) चोला माल। असली माल।

सार्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (७) व्यापारी माल। (कौ०) (५) करियार करनेवाला। व्यापारी। रोजगारी।

सार्धातिथाद्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] माल की चलान। (कौ०) सार्वराष्ट्रीय-वि० [ सं० ] जिसका दो या अधिक राष्ट्रों से संबंध हो। भिन्न भिन्न राष्ट्र संबंधी। जैसे, सार्वराष्ट्रीय प्रश्न। सार्वराष्ट्रीय राजनीति।

साहचर्य-संज्ञा पुं० [ सं०. राशिपर्याय ? ] एक प्रकार का छुप जो देहरादून, अवध और गोरखपुर की नम भूमि में पाया जाता है। यह वर्षा ऋतु के अंत में फूलता है। इसकी जड़ का मोषधि के रूप में व्यवहार होता है। कसरदा। पाँचर। सालिसिट्टर-संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का बकील जो कलकत्ते और बंबई के हाइकोर्टों में होनेवाले मुकदमों लेता और उनके कागज पत्र तैयार करके रीस्टर को देता है। एटवोकेट।

शिशोप-ये हाइकोर्टों में पहले नहीं कर सकते, पर अन्य अदा-लतों में इन्हें बहस करने का पूरा अधिकार है। इनका दर्जा एटवोकेट के समान ही है।

साधज-संज्ञा पुं० [ ? ] जंगली जानवर जिनका शिकार किया जाता है।

साधतल-संज्ञा पुं० [ हि०. सौध ] (१) सौतों में होनेवाला पार-स्परिक द्वेष। सौतिया द्वन्द्व। (२) ईदगी। दाह। उ०—तहाँ गए मद मोह खोम अति सरगड्डे, मिटति न सायन।—तुलसी।

साधधि आधि-संज्ञा सी० [ सं० ] यह गिरवी जो इस धन पर रखी जाय कि इसी दिनों के अंदर अवश्य छुदा ली जायगी।

सासन-संज्ञा पुं० दे० "शासन"। उ०—पुत्र-श्री, दशरथ के धनराज सासन आइयो।—केशव।

सासनाइ-संज्ञा सी० दे० "शासन"। उ०—सासना न मानई जो कोटि जन्म नरक जाय।—केशव।

साहजिक धन-संज्ञा पुं० [ सं० ] पारिवारिक, धेनन, विजय आदि में मिला हुआ धन। (मुकनीति)

साहित्यिक-वि० [ सं०. साहित्य ] साहित्य-संबंधी। जैसे,—साहित्यिक चर्चा।

साहित्य-सेवा पुं० यह जो साहित्य सेवा में संलग्न हो। साहित्य-सेवी। जैसे,—वहाँ कितने ही प्रसिद्ध साहित्यिक उप-स्थित थे।

सिगार हाट-संज्ञा सी० [ हि०. सिगार + हाट = बाजार चैद्यार्थों ] के रहने का स्थान। चकड़ा।

सिधेला-संज्ञा पुं० [ सं०. सिध + पला (प्रत्य०) ] शेर का बच्चा। उ०—ती लखि गात न मान सिधेला। सिंह साह सँ झरौ अकेला।—जायसी।

सिद्धिकेट-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) सिनेट या विश्वविद्यालय की प्रबंध-सभा के सदस्यों या प्रतिनिधियों का समिति। (२) प्रती, व्यापारियों या जानकार लोगों की ऐसी मंडली जो किसी कार्य को, विशेष कर अर्थ संबंधी उद्योग या योजना को अग्रसर करने के लिये बनी हो।

सिद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१२) दिग्गजर जैन साधुओं के चार भेदों में से एक।

सिखंड-संज्ञा पुं० [ सं०. सिखंड ] मोर की पूँछ। मयूरपंख। उ०—सिरनि सिलख सुमान दल मंडन बाल सुभाष बनाए।—तुलसी।

सिद्धि गुटिका-संज्ञा सी० [ सं० ] यह गुटिका जिसकी सहायता से रसायन बनाया या इसी प्रकार की और कोई सिद्धि की जाती हो। उ०—सिद्धि गुटिका अब मो सँग कहा। भएँ रँग सन दिप न रहा।—जायसी।

सिनेमा-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मकान जहाँ यात्रियों को दिखाया जाता है।

यौ०—सिनेमा हाउस।

सिराजी-संज्ञा पुं० [ फ०. सिराज (नगर) ] सिराज का घोड़ा। उ०—अबलक अरपी लखी सिराजी। खीवर बाल समई मल ताजी।—जायसी।

सिलेक्ट कमिटी-संज्ञा सी० [ सं० ] वह कमिटी जिसमें कुछ चुने हुए अंगर या सदस्य होते हैं और जो किसी महत्व के विषय पर विचार कर अपना निर्णय साधारण सभा में उप-स्थित करती है।

सिविल डिप्लोमा-संज्ञा पुं० दे० "सिविल कानून मंत्र"। सिविल प्रोसीजर कोड-संज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय-विधान। जानता-दीवानी।

सिविल वार-संज्ञा पुं० दे० "युद्ध"। सी० आर्० डी०-संज्ञा पुं० दे० "किमिनल इनवेस्टिगेशन डिपार्ट-

मेंट"। जैसे,—सी० आई० टी० ने संदेह पर एक भादमी को गिरफ्तार किया।

सीक्रेट-वि० [ अं० ] छिपा हुआ। गुप्त। पोपगदा। जैसे,—सीक्रेट पुलिस। सीक्रेट कमिटी।

संज्ञा पुं० गुप्त बात। जैसे,—गवर्नमेंट सीक्रेट बिल।

सीफना-क्रि० प्र० [ सं० सिद्ध ] (८) मिलने के योग्य होना। प्राप्त्य होना। जैसे,—(क) घयाना हुआ और तुम्हारी दलाली सीफनी। (ख) यह मकान बेहन रख लोगे तो (१) सिकदे का व्याज सीफिया।

सीता-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१०) सीताश्वक्ष के द्वारा एकत्र किया हुआ भयान। (११) जैनों के अनुसार विदेह की एक नदी का नाम।

सीताव्यय-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसानों पर होनेवाला श्रमदान। खेती के संबंध का श्रमदान। (कौ०)

सीतोदा-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] जैनों के अनुसार विदेह की एक नदी का नाम।

सीपति-संज्ञा पुं० ( सं० श्रीपति ) विष्णु।

सीमाकर्षक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ग्राम की सीमा पर हल जोतने या खेती करनेवाला। ( परा० स्थिति )

सीमावरोध-संज्ञा पुं० [ सं० ] सीमा स्थिर होना। हृदयदी। ( कौ० )

सीरियल-संज्ञा पुं० [ अं० ] ( १ ) वह खूबी कहानी या दूसरा लेख जो कई बार और कई हिस्सों में निकले। ( २ ) वह कहानी या किस्सा जो बायस्कोप में कई बार और हिस्सों में दिखाया जाय।

सीरीज़-संज्ञा स्त्री० [ अं० ] एक ही वस्तु का लगातार क्रम। सिलसिला। श्रेणी। खड़ी। माला। जैसे,—माल साहित्य सीरीज की पुस्तकें अच्छी होती हैं।

सीसमोप्राफ-संज्ञा पुं० [ अं० ] एक प्रकार का यंत्र जिससे भूकंप होने का पता लगता है। ( इस यंत्र से यह मांखस हो जाता है कि भूकंप किस दिशा में, कितनी दूर पर हुआ है, और उसका वेग हलका था या जोर का )।

सुप्राउड-वि० [ सं० सु + प्राउ ] जिसकी आयु बढ़ी हो। दीर्घायु। उ०—सुधन न सुमन सुप्राउ सो।—तुलसी।

सुप्रासिनी-संज्ञा स्त्री० [ हि० सुशयिन ] (२) वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सौभाग्यवती स्त्री।

सुख-वि० [ सं० ] (१) स्वाभाविक। सदेव। उ०—जकि सुख सुखवास से पासित होत दिगंत।—केशव। (२) सुख देनेवाला। सुखद।

क्रि० वि० (१) स्वाभाविक रीति से। साधारण रीति से।

उ०—केहुँ द्विन गण मिलि सुख धुति पदहीं।—केशव। (२) सुखपूर्वक। आराम से।

सुखदगीत-वि० [ सं० सुखद + गीत ] जिसकी बहुत अधिक प्रशंसा हो। प्रशंसनीय। उ०—जनक सुखदगीता पुत्रिं पाया सीता।—केशव।

सुखसार-संज्ञा पुं० [ सं० सुख + सार ] मुक्ति। मोक्ष। उ०—केदाव तिनसौं यों कहरौ कयों पाई सुखसार।—केशव।

सुखा-संज्ञा स्त्री० [ सं० सुचना ] ज्ञान। चेतना। सुख। उ०—रही जो मुह नागिनि जति तुखा। जिठ पाएँ तन कै भइ सुखा।—जायसी।

सुटुकना-क्रि० प्र० [ प्रभु० ] चुपके या धीरे से भाग जाना। सरकना।

सुठिऊ-अभ्य० [ सं० सुधु ] पूरा पूरा। बिल्कुल। उ०—दिये जो आखर तुम लिखे ते सुठि लीह परान।—जायसी।

सुतंत्र-क्रि० वि० [ सं० स्वतंत्र ] स्वतंत्रतापूर्वक। स्वच्छंदतापूर्वक। ( कौ० ) उ०—विधि लिययो शोधि सुतंत्र। जनु जवान के मंत्र।—केशव।

सुधागेह-संज्ञा पुं० [ सं० सुधा + गेह = वा ] चंद्रमा। उ०—देह सुधागेह ताहि मृगहु मलीन कियो ताहु पर बाहु चिनु राहु गहियतु है।—तुलसी।

सुपरवाइजर-संज्ञा पुं० [ अ० ] वह जो किसी काम की देल माल या निगरानी करता हो। निरीक्षण करनेवाला। निगरानी करनेवाला।

सुयाहु-संज्ञा स्त्री० [ सं० सु + राहु ] सेना। फौज। उ०—येत राज समाज कर तन धन धरम सुयाहु। शीत सुसचिवन सौपि सुख बिलसहि नित गरमाहु।—तुलसी।

सुमंत्र-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ४ ) आय-व्यय का प्रबंध करनेवाला मंत्री। अर्थ-सचिव।

विशेष—सुमंत्र का कर्तव्य यह बतलाया गया है कि वह राजा को सूचित करे कि इस वर्ष इतना द्रव्य संचित हुआ है, इतना व्यय हुआ है, इतना शेष है, इतनी रथावर संगति है और इतनी अंगम संगति है।

सुरंग-वि० [ सं० ] (४) छाल रंग का। रक्त वर्ण। उ०—पकि यसन सुरंग पावक युत स्वाहा मनो।—केशव। (५) निर्मल। स्वच्छ। साफ। उ०—अति वदन शोभ सरसी सुरंग। तहँ कमल नयन नासा तरंग।—केशव।

सुस्ता-वि० [ हि० सुस्त ] समसदार। हांशियार। सपना। चालक।

सुरपति-संज्ञा पुं० [ सं० ] (२) विष्णु का एक नाम। उ०—सुरपति गति मानी, सासन मानी, अयुपति को सुख भारी।—केशव।

सुरपालक- संज्ञा पुं० [ सं० ] इन्द्र । उ०—भ्रानंद के कन्द, सुर-पालक के पाठक थे ।—केशव ।

सुरायुष्म-संज्ञा पुं० [ सं० सु + युष्म = युष्म ] श्रेष्ठ नृपति । अच्छा राजा । उ०—बहु भक्ति पूजि सुराय । कर जोरि कै परि पाय ।—बेदाय ।

सुराल-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की लता जिसकी जड़ बिलाई कंद कहलती है । वि० दे० "बोधा-बेल" ।

सुलगा-भ्रम्य० [ हि० सु + गन्ना ] पास । समीप । निष्कट । उ०—मुनि वेप धरे धनु सायक सुलग हैं । तुलसी दिये लसत लोने लोने दग हैं ।—तुलसी ।

सुविर-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १० ) पंजी आदि सुँह से कूँक कर बनाए जानेवाले धारों में से निकलनेवाली ध्वनि ।

सुस्ताई-संज्ञा स्त्री० दे० "सुस्ती" । उ०—पंथी कहीं कहीं सुस्ताई । पंथ चले तंत्र पंथ सोलाई ।—जायसी ।

सुखेल-संज्ञा पुं० [ भ० ] एक प्रसिद्ध चमकौला सितारा जो फारसी तथा अरबी के कवियों के अनुसार यमन देश में उगता है । कहते हैं कि इसके उदय होने पर सप्त कौड़े मर जाते हैं और चमड़े में सुगंध उत्पन्न हो जाती है । यह शुभ और सीमात्य का सूचक माना जाता है । उ०—विदुरता जब भेंट सो जानि जेदि मेह । सुखल सुखेला उगावै दुःखल खरे निमि मेह ।—जायसी ।

सूक-संज्ञा पुं० [ सं० सूक ] सूक नदय । उ०—जग सूसा एक नयनाई । उभा सूक जस नखतन्ह माहीं ।—जायसी ।

सूचीव्यूह-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह व्यूह जिसमें सैनिक एक दूसरे के पीछे खड़े किए गए हों । ( कौ० )

सूट-संज्ञा पुं० [ भ० ] दावा । नालिया । जैसे,—उसने हाईकोर्ट में हम पर सूट दायर किया है ।

सूचक-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( ३ ) लोहे के तारों का बना हुआ कवच । ( कौ० )

सूचमान कर्मांत-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपड़ों धुनने का कारखाना ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में राज्य अपनी ओर से इस वंग के कारखाने खड़े करता था और लोगों को मजदूरी देकर उनसे काम लेता था ।

सूत्रशाला-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] सूत कानने या इकट्ठा करने का कारखाना ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में नियम था कि जो खियों बड़े तबके अपना कता हुआ सूत सूत्रशाला में ले जाती थीं, उनको उसी समय उसका मूल्य मिल जाता था । इस प्रकार खियों की जीविका का उपयुक्त प्रबंध हो जाता था ।

सूत्राध्यक्ष-संज्ञा पुं० [ सं० ] कपड़ों के व्यापार का अध्यक्ष ।

सूदता-संज्ञा-कि० सं० [ सं० सूदन ] नाश करना । उ०—सुदित मन धर धदन सोभा उदित अधिक उछाहू । मनुहुँ दूरि कळंक करि ससि समर सुधो राहू ।—तुलसी ।

सूरज-संज्ञा पुं० ( सं० सूर + ज ( प्रत्य० ) ) सूर या वीर का पुत्र । बहादुर का लड़का । उ०—हारि हारि हव्यार सूरज जोष छे छे भ्रमहीं ।—बेदाय ।

सैंद्रल-वि० [ भं० ] जो केंद्र या मध्य में हो । केंद्रीय । प्रधान । सुगुण । जैसे,—सैंद्रल गयनमंड । सैंद्रल कमेटी । सैंद्रल जेल ।

सैंशर-संज्ञा पुं० [ भं० ] दोष । इलजाम । निंदा । तिरस्कार । भर्त्सना ।

सैंसर-संज्ञा पुं० [ भं० ] वह सरकारी अफसर जिसे पुस्तक पुस्तिकाएँ बियोग कर समाचार पत्र छपने या प्रकाशित होने, नाटक खेले जाने, फिल्म दिखाए जाने या तार कहीं भेजे जाने के पूर्व देखने या जाँचने का अधिकार होता है । यह जाँच इसलिये होती है कि कहीं उनमें कोई आपत्तिजनक या भद्रकानेवाली बात तो नहीं है ।

विशेष—वायस्कूप के फिल्मों या नाटकों की जाँच और काट छाँट करने के लिये तो सैंसर बराबर रहता है, पर समाचार-पत्रों और तार-पत्रों में उसी समय सैंसर पैजाए जाते हैं जब देश में विद्रोह या किसी प्रकार की उत्रेजना फैली होती है अथवा किसी देश से युद्ध छिदा होता है । सैंसर ऐसी बातों को प्रकाशित नहीं होने देता जिनसे देश में और भी उत्रेजना फैल सकती हो अथवा घायु वा विरोधी को किसी प्रकार का लाभ पहुँचता हों ।

सैंसल-संज्ञा पुं० दे० "मर्दुमशुमार" ।

सेटिल-वि० [ सं० सेटिल ] जो निपट गया हो । जो तै हो गया हो । जैसे,—उन दोनों का मामला आपस में सेटिल हो गया ।

सेटिलमंड-संज्ञा पुं० [ भं० ] ( १ ) खेती के लिये भूमि को नाप कर उसका रासकर निर्धारित करने का काम । जमीन नाप कर उसका लगान नियत करने का काम । बूंदोयस्त । ( २ ) एक देश के लोगों की दूसरे देश में बसी हुई बस्ती । उपनिवेश ।

सेतु-संज्ञा पुं० [ सं० ] ( १२ ) यह मकान जिसमें धरने छत के साथ लोहे की कीलों से जुड़ी हों ।

सेतुपथ-संज्ञा पुं० ( सं० ) दुर्गम स्थानों में जानेवाली सड़क । कैंची नीची पहाड़ी धारियों में जानेवाली सड़क ।

सेतुबंध-संज्ञा पुं० ( सं० ) ( ३ ) नहर ।

विशेष—कीटव्य में नहरों के प्रकार की कड़ी हैं—आहायोदक और सहायोदक । आहायोदक वह है जिसमें पानी नहीं, ताल आदि से खींच कर लाया जाता है । सहायोदक में धरने से

स्थानीय-संज्ञा पुं० [ सं० ] भाट सौ गाँवों के बीच में बना हुआ किला ।

स्थायी समिति-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] किसी सभा सम्मेलन के कुछ निर्वाचित सदस्यों की वह समिति जिसका काम उस सभा या सम्मेलन के दो महाधिवेशनों के बीच की अवधि में उपस्थित होनेवाले कामों की व्यवस्था करना है ।

स्थायी-पुलाक न्याय-संज्ञा पुं० [ सं० ] जिस प्रकार हाँड़ी के एक चावल को देखकर शेष सब चावलों के कच्चे होने या पक जाने का अनुमान होता है, उसी प्रकार किसी एक बात को देखकर उसके सम्बन्ध की और सब बातों का अनुमान होना ।

स्थाह्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] सूखी जमीन में होनेवाले अनाज, भोपधि आदि । (कौ०)

स्थित-पाठ्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] नाट्य शास्त्र के अनुसार लास्य के दस भागों में से एक । काम से संतप्त नायिका का धैर्यकर स्वाभाविक पाठ करना । कुछ लोगों के मन से क्रुद्ध या ध्रांत स्त्री-पुरुषों का प्रकृत पाठ भी यही है ।

स्पाई-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो छिपकर किसी का भेद ले । भेदिया । गुप्तचर । गोयंदा । जैसे,—गुलिस-स्पाई । (२) वह दूत जो राशु की छावनी या राज्य में भेद लेने के लिये भेजा जाय । गुप्त दूत । भेदिया । जैसे,—पेशावर के पास कई भौलदोविक स्पाई पकड़े गए हैं ।

स्फिरिट-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) किसी वस्तु का सार । अर्क । (२) मदिरा का सार । सुरासर । (३) उत्साह । जोरा । तपस्वता । जैसे,—इस नगर के नवयुवकों में स्फिरिट नहीं है । (४) स्वभाव । मिजाज । (५) प्रेतात्मा । रूढ़ ।

स्फिलेचा-संज्ञा पुं० [ सं० ] हिमालय की एक शब्दी जिसकी दृष्टि-निर्माण से दोस्त बाँधते और टोकरे आदि बनाते हैं ।

स्पीकर-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो सभा-समिति या सर्व साधारण में खड़े होकर किसी विषय पर प्रवृत्त हो बोलता या भाषण करता है । वक्ता । व्याख्यानदाता । जैसे,—ये वदे अच्छे स्पीकर हैं, लोगों पर उनके व्याख्यान का खूब प्रभाव पड़ता है । (२) मिडिया पार्लमेंट की कामन्स सभा, अमेरिका के संयुक्त राज्यों की प्रतिनिधि सभा तथा व्यवस्थापिका सभाओं के अध्यक्ष । सभापति । (३) मिडिया हाउस आफ लार्ड्स या लार्ड सभा के अध्यक्ष जो लार्ड चान्सेलर हुआ करते हैं ।

विशेष—मिडिया हाउस आफ कामन्स या कामन्स सभा का स्पीकर या अध्यक्ष पार्लमेंट के सदस्यों में से ही, बिना किसी राजनीतिक भेदभाव के, चुना जाता है । इसका काम सभा में शांति बनाए रखना और नियमावली के कार्य संचालन

करना है । किसी विषय पर सभा के दो समान भागों में विभक्त होने पर ( अर्थात् आधे सदस्य एक पक्ष में और आधे दूसरे पक्ष में होने पर ) वह अपना फास्टिंग वोट या निर्णायक मत किसी के पक्ष में दे सकता है । अमेरिका की प्रतिनिधि सभा या व्यवस्थापिका सभाओं के स्पीकर या अध्यक्ष साधारणतः उस पक्ष के नेता या मुखिया होते हैं जिसका सभा में बहुमत होता है । मिडिया पार्लमेंट के स्पीकर के समान इन्हें भी सभा संचालन और नियंत्रण का अधिकार तो है ही, इसके सिवा ये महत्व के अवसरों पर दूसरे को अध्यक्ष के आसन पर बैठाकर सदस्य की हित-यत से साधारण सभा में भी बहस कर सकते हैं और वोट दे सकते हैं ।

स्पेशलिस्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो । वह जो किसी विषय में परागत हो । विशेषज्ञ । जैसे,—ये आँख के इलाज के स्पेशलिस्ट हैं ।

स्मरणपत्रक-संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह पत्र जो किसी को किसी विषय का स्मरण दिलाने के लिये लिखा या भेजा जाय । (२) वह पत्र जिसमें कोई बात याद रखने के लिये लिखी जाय । याददास्त ।

स्माल काज कोर्ट-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्माल काज कोर्ट ] वह दीवानी अदालत जहाँ छोटे छोटे मामले होते हैं । छोटी अदालत । अदायत एक्जिज्यु ।

विशेष—हिन्दुस्तान में कलकत्ता, बंबई आदि बड़े शहरों में स्माल काज कोर्ट हैं ।

स्वाहा फौटा-संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वाहा + हि० फाँट ] किंगार्ड नाम का कैंटीला पौधा । बाल । वि० दे० "किंगार्ड" ।

स्वोक्ष-अव्य० [ सं० स्व ] (२) पास । समीप । उ०—बिनती करे भाइ हों दिखी । बितवर के मोहिं त्यो ही किछी ।—जायसी ।

स्विलप-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) पर्वता । चित । (२) कागज का लथाम टुकड़ा जिस पर कंपोज करने के लिये कुछ लिखा जाय । जैसे,—उनकी तीन स्विलपों में एक पेज का मैटर निकलता है । (कंपोजिटर)

स्वकरण-संज्ञा पुं० [ सं० ] अपना स्वयं जताना । दावा करना । (कौ०)

स्वकरण भाष्य-संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी वस्तु पर बिना अपना स्वयं सिद्ध किए अधिकार करना । बिना हक साबित किए कब्जा करना ।

स्वकरण विशुद्ध-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह पदार्थ जिस पर किसी व्यक्ति का स्वयं न हो ।

स्वचिन्तका-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह शिल्पी जो किसी श्रेणी के

अन्तर्गत होते हुए भी स्वतंत्र रूप से काम करता हो।  
 स्वतंत्र कारीगर। (कौ०)  
 स्वतंत्रद्वैधी भाव—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो स्वतंत्र रूप से अपना  
 हित समझकर दो शत्रुओं से मेलजोल रखता हो।  
 स्वदेशामित्रपद—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वराष्ट्र में जहाँ आधादी बहुत  
 अधिक हो गई हो, वहाँ से कुछ जनता को दूसरे प्रदेश में  
 यसाना। (कौ०)  
 स्वयंभद्राद्दान—संज्ञा पुं० [ सं० ] सेना आदि के द्वारा आप  
 आप सहायता पहुँचाना। (कौ०)  
 स्वयंभूरमण—संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार अंतिम महादीप  
 और समुद्र का नाम।  
 स्वयंवादिदोष—संज्ञा पुं० [ सं० ] न्यायालय में सूट यात को बार  
 बार दुहराने का अपराध।  
 स्वयंघादी—संज्ञा पुं० [ सं० ] मुकदमे में जिरह के समय किसी  
 सूट यात को बार बार दुहरानेवाला।  
 स्वयंमुपगत—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अपनी हृच्छा से किसी  
 का दास हो गया हो।  
 स्वराजिस्त्र—संज्ञा पुं० दे० "स्वराज्ञी"।  
 स्वराजी—संज्ञा पुं० [ सं० स्वराज्य ] वह मनुष्य जो "स्वराज्य"  
 नामक राजनीतिक पद या दल का हो। स्वराज्य-प्रति के  
 लिये आन्दोलन करनेवाले राजनीतिक दल का मनुष्य।  
 स्वराष्ट्र मंत्री—संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।  
 स्वराष्ट्र सचिव—संज्ञा पुं० [ सं० ] किसी देश की सरकार या  
 मंत्रिमंडल का वह सदस्य जिसके अधीन पुलिस, जेलखाने,  
 फौजदारी शासन प्रबंध आदि हैं। होम मंत्र। होम मिनि-  
 स्ट्र। होम सेक्रेटरी।  
 स्वराष्ट्र सदस्य—संज्ञा पुं० दे० "स्वराष्ट्र सचिव"।  
 स्वर्कपासिद्ध—वि० [ सं० ] जो स्वयं, अपने स्वरूप से ही असिद्ध  
 जान पड़ता हो। कभी सिद्ध न हो सकनेवाला।  
 स्वर्णमुखी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (२) ४४ हाथ लम्बी, ३२ हाथ  
 ऊँची और ३२ हाथ चौड़ी नाव।  
 स्वल्प-व्यक्ति तंत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह सरकार जिसमें राज-  
 सत्ता इन्ने गिने लोगों के हाथों में हो। कुछ लोगों का राज्य  
 या शासन। वि० दे० "भोलिगार्ही"।  
 स्वविहित सौम्य—संज्ञा पुं० [ सं० ] अपने ही देश में विद्यमान  
 सेना।  
 विद्योप—श्रीदिव्य ने लिखा है कि स्वविहित और मित्र विहित  
 (मित्र के देश में विद्यत) सेना में स्वविहित उत्तम है,  
 क्योंकि समय पड़ने पर यह युक्त काम दे सकती है।  
 स्वसमुत्थ-वि० [ सं० ] अपने ही देश में उत्पन्न, विहित या एक

होनेवाला। जैसे,—स्वसमुत्थ कोश। स्वसमुत्थ षल  
 या दंड।  
 स्वापतेय—संज्ञा पुं० [ सं० ] स्वकीय संपत्ति। निज की  
 वस्तु। (कौ०)  
 स्वार्थोन्मिषयात्—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह व्यक्ति जिसे अपना अर्थ  
 साधने के लिये कोई दूसरा लाया हो। आतुरा। (कौ०)  
 स्वीकारोक्ति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह कथन या यथार्थ जिसमें  
 अपना अपराध स्वीकार किया जाय। अपराध की स्वीकृति।  
 इकरारे झुमं। जैसे,—अभियुक्तों में से दो ने मैजिस्ट्रेट के  
 सामने स्वीकारोक्ति की।  
 स्वीकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक व्रत जिसमें  
 तीन तीन दिन तक क्रमशः गोमूत्र, गोबर तथा जौ की  
 लप्सी खा कर रहते थे।  
 स्वेच्छासैनिक—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह मनुष्य जो बिना वेतन के  
 अपनी हृच्छा से फौज में सिपाही या अगसर का काम करे।  
 वालदीपर। वहमदेर।  
 विद्योप—हिंदुस्तान में स्वेच्छासैनिक या वालदीयर अधिकतर  
 युरोपियन और युरेसियन होते हैं। इनसे संकट काल में  
 संधी, रेडों, छावनीयों और नगरों की रक्षा करने का काम  
 लिया जाता है।  
 हँकारी—संज्ञा पुं० [ हि० हँकार + ई (प्रत्य०) ] (१) वह जो  
 लोगों को बुलाकर लाने के काम पर नियुक्त हो। (२)  
 प्रतिहारी। सेवक।  
 हँडकुलिया—संज्ञा स्त्री० [ हि० हँडिया + कुलिया ] यहाँ के खेलने के  
 लिये रसोई के बहुत छोटे बरतनों का समूह।  
 हँडना—कि० प्र० [ सं० मन्वटन ] (४) (घर आदि का)  
 व्यवहार में आना। पढ़ना या शोधना जाना।  
 हँडर—संज्ञा पुं० दे० "हँडरवेट"।  
 हँडरवेट—संज्ञा पुं० [ प्र० ] एक भारेजी सौल जो ११२ पाउंड या  
 प्रायः १ मन १४५ सेर की होती है।  
 हँडाना—कि० प्र० [ सं० मन्वटन ] (१) घुमाना। फिराना।  
 (२) व्यवहार में आना। काम में लाना।  
 हक दक—वि० [ अनु० ] हक या दक। स्वतंत्र। चकित।  
 वि० प्र०—पहना।—होना।  
 हकलापन—संज्ञा पुं० [ हि० हकला + पन (प्रत्य०) ] हकला होने  
 की क्रिया या भाव। हकलाने का भाव।  
 हकला—संज्ञा पुं० [ दे० ] लकड़ी का एक प्रकार का भागन या  
 प्रहार। (खलनज)  
 हटवा—संज्ञा पुं० [ हि० घाट ] वह जो घाट पर बैठकर सौदा  
 बेचना हो। हाटवाला। दुकानदार।



हट्टी-संज्ञा स्त्री० [ सं० हट्ट ] चीजों के विक्रय की जगह । दूकान ।  
( पश्चिम )

हड़कंप-संज्ञा पुं० [ देश० ] भारी हलचल या उथल पुथल ।  
तहलका । जैसे,—नाय की सेना के पहुँचते ही किले में  
हड़कंप मच गया ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

हड़काया-वि० [ हिं० हड़क ] [ स्त्री० हड़कार ] पागल । ( कुत्ता )

हृदरस-संज्ञा पुं० [ हिं० हृद + रस ? ] हस्त-मैथुन । हस्तक्रिया ।

हृद्येय-संज्ञा पुं० [ हिं० हृद्य ] हृद्योद्गा । घन । उ०—हृदि हृद्येय  
हिय दरपन साजै । छोलनी जाप लिहे तन नाजै ।—  
जायसी ।

हृनिर्वैत-संज्ञा पुं० दे० "हनुमान" । उ०—नाहिं सो राम, हृनिर्वैत  
पदि दूरी । को लेह आव सजीवन मूरी ।—जायसी ।

हनुघँ-संज्ञा पुं० दे० "हनुमान्" । उ०—जमहुँ लक सब लट्टी  
हनुघँ विधँसी यारि । जागि उडिउँ अस देखत, सखि । कहु  
सयन विचारि ।—जायसी ।

हृद्युडा-वि० [ देश० ] ( १ ) जिसके बहुत बड़े बड़े दाँत हों ।  
महदंता । ( २ ) महा । कुरूप । चढ़-चकल ।

हृमउम्र-वि० [ का० उम्र + म० उम्र ] अवस्था में समान । बराबर  
उम्र का ।

हृमकौम-वि० [ प० हृम + म० कौम ] एक ही जाति के ।  
सजातीय ।

हृमपेशा-वि० [ का० ] एक ही तरह का पेशा करनेवाले । जो  
व्यवसाय एक करता हो, वही व्यवसाय करनेवाला दूसरा ।  
सह-व्यवसायी ।

हृमविस्तर-वि० [ का० ] एक ही विद्ये में पर साथ में सोया हुआ ।  
क्रि० प्र०—होना ।

हृमविस्तरी-संज्ञा स्त्री० [ का० ] एक ही विद्ये में पर साथ में सोने  
की क्रिया । संभोग । प्रसंग ।

हृममज्ञहृष-वि० [ का० हृम + म० मज्ञहृष ] समान धर्म के अनु-  
यायी । एक ही मज्ञहृष को माननेवाले । सह-धर्मी ।

हृर-संज्ञा पुं० [ जर्मन ] अंगरेजी 'मिस्टर' शब्द का जर्मन समानार्थ-  
वाची शब्द । महाशय । जैसे,—हृर स्ट्रेमैन ।

हृरजेवडुडी-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार की छोटी श्राद्धी जो  
प्रायः सारे भारत और स्वर्भी गरम प्रदेशों में पाई जाती है ।  
इसकी टाखियों और पत्तियों पर बहुत से रोपे होते हैं ।  
इसकी जड़ और पत्तियों का व्यवहार भोज्य के रूप में होता  
है । दास निरविस्ती । पुरही ।

हृरतार-संज्ञा स्त्री० दे० "हृरताल" । उ०—का हृरतार पार नाहिं  
पाया । गंधक काढ़े कुहडटा खाया ।—जायसी ।

हृरद्वान-संज्ञा पुं० [ ? ] एक स्थान का नाम जहाँ की तलवार

प्रसिद्ध थी । उ०—हृरान्द गहे खडग, हृरद्वानी । चमकहिं  
सेल बीनु के यानी ।—जायसी ।

हृरद्वानी-वि० [ हिं० हृरद्वान ] हृरद्वान का बना हुआ । उ०—  
हाथान्द गहे खडग हृरद्वानी । चमकहिं सेल बीनु के यानी ।  
—जायसी ।

हृरनौटा-संज्ञा पुं० [ हिं० हृरन + नौटा ( प्रत्य० ) ] हृरन का  
बच्चा । छोटा हृरन ।

हृरधोग-संज्ञा पुं० [ मनु० ] ( १ ) उपद्रव । उग्रता । ( २ )  
अव्यवस्था । चढ़-अमली । गढ़वड़ी ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

हृरमल-संज्ञा पुं० [ देश० ] डेढ़ दो हाथ लंबी एक प्रकार की साड़ी  
जो सिंध, पंजाब, काश्मीर और दक्षिण भारत में पाई जाती  
है । इसकी पत्तियाँ भोज्य के रूप में काम आती हैं और  
इसके धीजों से एक प्रकार का लाल रंग निकलता है ।

हृरा-संज्ञा पुं० [ सं० हृरति ] हरे रंग का घोड़ा । सच्चा । उ०—  
हरे कुरंग महुभ बहु भौंती । गरर कोकाह बुलाह सुपौंती ।  
—जायसी ।

हृरि-अव्य० [ हिं० हृर ] धीरे । आहिस्ते । उ०—सूला हृरि  
हार भा भारी । हृरि हृरि प्रानतजहिं सय नारी ।—जायसी ।

हृरित्-संज्ञा पुं० [ सं० ] जैनों के अनुसार हृरिषेत्र की एक नदी  
का नाम ।

हृरिन हृर-संज्ञा पुं० [ देश० ] सोहाग नामक बड़ा सदाबहार वृक्ष  
जिसके बीजों से जलाने का तेल निकलता है । वि० दे०  
"सोहाग" ।

हृरियानी-संज्ञा स्त्री० [ हिं० हृरियाला प्रांत ] हृरिसार, रोहतक और  
करनाल प्रांत की बोली जिसे जाहू या गोंगडू भी कहते हैं ।

हृरियाली-संज्ञा स्त्री० दे० "दूब" ।

हृरी-चुग-संज्ञा पुं० [ हिं० हृरी ( हृरियाली ) + चुगना ] यह जो  
केवल अच्छे समय में साथ दे । संपन्न अवस्था में साथ  
देनेवाला ।

हृलकम-संज्ञा पुं० दे० "हड़कंप" ।

हृलचलाना-क्रि० म० [ मनु० ] भय या शीघ्रता आदि के कारण  
घबराना ।

क्रि० सं० दूसरे को घबराने में प्रयत्न करना ।

हृलयलाहट-संज्ञा स्त्री० [ मनु० ] हृलयलाने की क्रिया या भाव ।  
खलबली । घबराहट ।

हृलान्वली-संज्ञा स्त्री० दे० "हृलचल" ।

हृलक-संज्ञा स्त्री० [ देश० ] ( १ ) उतना पदार्थ जितना एक बार  
घमन में मुँह से निकले । ( २ ) घमन । की । जैसे,—  
हृलकों में उसकी जान निकल गई ।

हृलर-संज्ञा पुं० [ अ० हृलर ] रिसाले के सवारों के तीन भेदों में

से एक जो हल्के होते हैं और जिनके अक्षर तथा घोड़े भी हल्के होते हैं। (अन्य दो भेद हैंसर और दूँत हैं।)

हस्तदोष—संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ से छोटी मारने या नाप में फूँके डालने का अपराध। (कौ०)

हस्तचिपमकाशी—संज्ञा पुं० [ सं० ] हाथ की सफाई में बाड़ी जीतनेवाला।

हस्तिकरुण्यक—संज्ञा पुं० [ सं० ] हथियारों का धार रोकने का एक प्रकार का पटल या ढाल। (कौ०)

हस्तिकरुण्यक—संज्ञा पुं० [ सं० ] हथियारों का वह ब्यूह जिसमें आक्रमण करनेवाले हाथी उरस्य में, तेज भागनेवाले (अपवाह) मध्य में और रयाल (गतवाले) पक्ष में हों। (कौ०)

हाइड्रोसील—संज्ञा पुं० [ सं० ] अंडकोश या फोते में शरीर के विकृत जल का जमा होना। अंडबुद्धि। फोते का बढ़ना।

हाउस आफ कामन्स—संज्ञा पुं० दे० "कामन सभा"।

हाउस आफ लाउड्स—संज्ञा पुं० दे० "लाउड सभा"।

हाटक—संज्ञा पुं० [ सं० ] (५) भाड़ा। किराया। जैसे,—नीला हाटक।

हाड़ी—संज्ञा पुं० [ सं० हाड=मसाह ? ] एक प्रकार का पहारों का राग।

हावुस—संज्ञा पुं० [ सं० हविथ ] बौकी कच्ची बाल जो प्रायः भूत-कर और नमक मिचै मिलाकर टाई जाती है।

हावुडा—संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की छोटी जाति जिसका काम लूट मार और चोरी आदि करना है।

हामी—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) वह जो हिमायत करता हो। (२) सहायता करनेवाला। मददगार।

हारवर—संज्ञा पुं० [ सं० ] समुद्र के किनारे, नदी के मुहाने या खाड़ी में बना हुआ वह स्थान जहाँ जहाज आकर उड़ते हैं। बंदर। अंदरगाह। जैसे,—हायमण्ड हारवर। बंबई हावर।

हाथ हाथ—संज्ञा स्त्री० [ हिं० हाथ ] किसी पदार्थ को प्राप्त करने की बहुत अधिक और अनुचित इच्छा। हाथ हाथ। जैसे,—तुम्हें तो हर दम रुपयों की हाथ हाथ पड़ी रहती है।

हाहा हहा—संज्ञा पुं० [ मनु० ] हा हा हाके हैंसने की क्रिया। हैंसी उठाना। चिन्नेद। हा हा ठीकी।

हाही—संज्ञा स्त्री० [ हिं० हाथ ] किसी वस्तु को प्राप्त करने की अनुचित और बहुत अधिक विकलता। कुछ पाने के लिये 'हाथ हाथ' करते रहना। जैसे,—(क) तुम्हें तो सदा रुपयों की हाथी पड़ी रहती है। (ख) इतनी हाही क्यों करते हो ? जब सब को मिलेगा, तब तुम्हें भी मिल जायगा।

हाइड्रिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दुग्धमत्तों या चालूओं की नाव।

हाइम आनर—संज्ञा पुं० [ सं० ] छोटे छोट आदि के पद के आगे

लगनेवाला सम्मानसूचक शब्द। जैसे,—हिज आनर लेफ्टनेंट गवर्नर।

हिज एक्सेलेंसी—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० हर एक्सेलेंसी ] वाइसराय, प्रधान सेनापति, गवर्नर, स्वतंत्र देशों के मन्त्री आदि कुछ विरिष्ठ उच्च अधिकारियों के नाम के आगे लगनेवाली प्रविष्टासूचक उपाधि। श्रीमान्। जैसे,—हिज एक्सेलेंसी वाइसराय, हिज एक्सेलेंसी कमांडर-इन-चीफ, हिज एक्सेलेंसी ग्राहम सिनिस्टर, रियाल।

हिज मैजेस्टी—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० ए मैजेस्टी ] सम्राट और स्वाधीन देशों के राजाओं के नाम के आगे लगनेवाली गौरवसूचक उपाधि। महामहिमान्वित। मलिक मोअज्जम। जैसे,—हिज मैजेस्टी किंग जार्ज। हिज मैजेस्टी अमातुल्ला।

हिज रायल हाइनेस—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० हर रायल हाइनेस ] स्वाधीन राज्यों या देशों के सुवराजों तथा राजपरिवारों के व्यक्तियों के नाम के आगे लगनेवाली गौरवसूचक उपाधि। जैसे,—हिज रायल हाइनेस मिस्टर आर्जु वेल्स।

हिजली चंद्राम—संज्ञा पुं० [ द्विस्त्री० + हिं० चंद्राम ] काट्ट नामक वृक्ष के फल जो प्रायः बादाम के समान होते हैं और जिनसे एक प्रकार का तेल निकलता है जो प्रायः बादाम के तेल के समान होता है। यह फल भून कर खाया जाता है और इसका गुरूप्या भी पढ़ता है। वि० दे० "काट्ट"।

हिज हाइनेस—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० हर हाइनेस ] राजा महाराजाओं के नाम के आगे लगनेवाली गौरवसूचक उपाधि। जैसे,—हिज हाइनेस महाराज सर सपानी राय गायकवाड़।

हिज होलीनेस—संज्ञा पुं० [ सं० ] पोप तथा ईसाई मत के प्रधान आचार्यों के नाम के आगे लगनेवाली उपाधि।

विशेष—भारत में भी लोग धर्माचार्यों के नाम के आगे यह उपाधि लगाने लग गए हैं। जैसे,—हिज होलीनेस स्वामी शंकराचार्य।

हिपोकिट—संज्ञा पुं० [ सं० ] (१) काटी। मकार। (२) पालंडी।

हिपोकिसी—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] (१) छल। कवट। फरेब। मकर। (२) पालंड।

हिमवान—संज्ञा पुं० [ सं० हिमवत् ] (३) चंद्रमा। उ०—पावक पवन पानी भातु हिमवान जम, काल लोकपाल मेरे डर दावोंडोल है।—तुलसी।

हिरकमा—संज्ञा पुं० [ सं० हिरक ] (३) (बच्चों या पशुओं आदि का) परचान।

हिरिस—संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो अल्प, राजपूताने, पंजाब और सिंध में पाया जाता है। इसकी छाल भूरे रंग की होती है। इसकी पत्तियाँ पचि छः अंगुल लंबी और नरु की ओर गोलाकार होती हैं। यह फलान चैत में

फलता है। इसके फल खट-मीठे होते हैं और कहीं कहीं सापु जाते हैं।

द्विधा-संज्ञा पुं० दे० "दीया"।

द्विवंचल-संज्ञा पुं० [ सं० द्विच ] द्विच । पाला । बरफ़ । उ०—बरखा रुदन परज अति कोहू । चिचुरी हँसी द्विवंचल छोहू । —जायसी ।

रंझा पुं० दे० "हिमाचल" । उ०—को ओहि लागि द्विवंचल सीदा । का कहँ लिलो ऐस को रीसा ।—जायसी ।

द्विचरीया-संज्ञा पुं० [ भ० ] मूर्धा रोग जो प्रधानतः स्त्रियों को होता है ।

विशेष—इस रोग के प्रधान लक्षण ये हैं—आक्षेप या मूर्धा के पहले ऐसा मालूम होना मानों पेट में कोई गोला ऊपर को जा रहा है, रोग, चिड़ाना, चकना, हाथ पैर ठंडे होगा, चार चार प्यास लगना आदि ।

दीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] (८) दीन । नम्र । उ०—रहै जो पिय के आयसु बरतै होइ दीन । सोइ चांद अस निरमल जनम न होइ मलीन ।—जायसी ।

दीनचिछदिक-संज्ञा पुं० [ सं० ] वह संघ या श्रेणी जो कुल, मान-समादा, शक्ति आदि में बहुत घटकर हो । ( कौ० )

दीनापहीन-संज्ञा पुं० [ सं० ] जामाने के साथ हरजाना । अर्थ-दंड सहित हानि की पूर्ति ।

विशेष—चंद्रयुग के समय में यदि राजकीय कारखाने में शुल्क काम सूत या कपड़े बनाते थे तो, उन्हें 'दीनापहीन' देना पड़ता था । ( कौ० )

हीर-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की रत्ना जो प्रायः सारे भारत में पाई जाती है और जिसकी टहनियों, और पत्तियों पर भुरे रंग के रोहें होते हैं । यह चैत चंद्राख में फूलती है । इसकी जड़ और पत्तियों का स्पृहदार ओषधि रूप में होता है । इसके पके फलों के रस से घेंगनी रंग की स्वादी बनती है जो बहुत टिकाऊ होती है ।

हीरा-संज्ञा पुं० [ सं० शीरक ] (५) रुद्राक्ष या इसी, प्रकार का और कोई एक अकेला मनका जो प्रायः साधु लोग गले में पहनते हैं । (साधुओं की परि०)

हीस-संज्ञा पुं० [ दे० ] एक प्रकार की कैंटीली रत्ना जो प्रायः सारे भारत में बहुत बड़े बड़े पेटों पर चाड़ी हुईं पड़ी जाती है । यह गरमी में फूलती और बरसात में फलती है । इसकी पत्तियों और टहनियाँ हाथी पड़े चाय से खाते हैं ।

हीही-संज्ञा स्त्री० [ अनु० ] ही ही शब्द करके हँसने की क्रिया । तुच्छतापूर्वक हँसना ।

यी०—ही ही टी टी करना = (१) व्यर्थ और तुच्छतापूर्वक हँसना । (२) हँसो मजाक करना ।

हुजती-वि० [ भ० हुजय + ई (प्रत्य०) ] धातु धातु में लड़ने-वाला । हुमत करनेवाला । झगड़ालू ।

हुडका-संज्ञा पुं० [ दे० ] यह जो धीर मानसिक व्यथा, विनोदः पच्चों को होनेवाली मानसिक व्यथा जो प्रायः अचानक किसी मिय व्यक्ति का वियोग हो जाने पर उत्पन्न होती है ।

कि० प्र०—पड़ना ।

हुडकाना-कि० सं० [ हि० हुडक + आना (प्रत्य०) ] (१) बहुत अधिक भयभीत और डुंभी करना । (२) तरसना । ललचाना ।

हुनरमंदी-संज्ञा स्त्री० [ फा० ] हुनरमंद होने की क्रिया या भाव । कला-कुशलता । निपुणता ।

हुमकना- कि० प्र० [ अनु० ] (५) दवाने या हसी प्रकृत का और कोई काम करने के लिये जोर लगाना । उ०—भारोसि साँग पेट मई धँसो । कावेसि हुमकि भोति धुर खसी ।—जायसी ।

हुलहुला-संज्ञा पुं० [ दे० ] (१) विलक्षण वात । अतुल वात । (२) उपद्रव । उद्वेग । (३) शोक । उर्मंग । (४) निव्या अपियोग ।

हुशकारना-कि० सं० [ हुश से अनु० ] हुश हुश शब्द करके जुड़े को किसी की ओर काटने आदि के लिये बड़ना ।

हूला-संज्ञा पुं० [ हि० हूलना ] दास्य आदि हूलने की क्रिया या भाव ।

हेड कार्टर-संज्ञा पुं० [ भ० हेडकार्टेन ] (१) वह स्थान या मुकाम जहाँ सेना का प्रवान रहता हो । जैसे,—सेना का हेड क्वार्टर दिल्ली में है । (२) किसी सरकार या अधिकारी का प्रवान स्थान । जैसे,—जाड़े में भारत सरकार का हेड क्वार्टर दिल्ली में रहता है । (३) वह स्थान जहाँ कोई मुख्यतः रहता या कारोबार करता हो । सदर । सदर मुकाम । केंद्र । जैसे,—ये हमी हेड क्वार्टर से लौटे नहीं हैं ।

हेडिंग-संज्ञा स्त्री० [ भ० ] वह शब्द या वाक्य जो विषय के परिचय के लिये किसी समाचार, लेख या प्रबन्ध के ऊपर दिया जाय । शीर्षक । जैसे,—अजयपुर में महत्त्व के समाचार यही यही हेडिंगें देकर छापे जाते हैं ।

हेल्थ-संज्ञा पुं० [ भ० ] स्वास्थ्य । तंदुहस्ती । जैसे,—हेल्थ अफसर । हेल्थ डिपार्टमेंट ।

हैंड बिल-संज्ञा पुं० [ भ० ] छपा हुआ कागज़ का टुकड़ा जिसमें किसी चीज का विज्ञापन या नाच समाचार, समा समिति आदि की सूचना दी जाती है । जैसे,—अभी एक हैंड बिल से मुझे मालूम हुआ कि टाउन हाल के मैदान में एक सार्वजनिक सभा होनेवाली है ।

हिया-संज्ञा पुं० दे० "हीमा"

हरिण्यवत-संज्ञा पु० [ सं० ] जैनों के अनुसार जंग् द्वीप के छटे-  
संज्ञ का नाम ।

हैहयाधिराज-संज्ञा पु० [ सं० ] सहस्राहुत । उ०-प्रचंड हैहया-  
धिराज दण्डमान जानिये ।-केशव ।

होम डिपार्टमेंट-संज्ञा पु० दे० "स्वराष्ट्र विभाग" ।

होम मिनिस्टर-संज्ञा पु० दे० "स्वराष्ट्र सचिव" ।

होम मंत्र-संज्ञा पु० दे० "स्वराष्ट्र सचिव" ।

होम सेक्रेटरी-संज्ञा पु० दे० "स्वराष्ट्र सचिव" ।

होरहा-संज्ञा पु० [ सं० होल्क ] चने का छांटा पौधा जो प्रायः  
जड़ से उखाड़ कर भाजारों में बेचा जाता है और जिसमें से  
चने के भुने हुए साने दाने निकलते हैं ।

होल-संज्ञा पु० [ हि० होश ] भुने या उबाले हुए चने ।  
(होवेवाला)

होस्टेल-संज्ञा पु० [ अ० ] ( १ ) स्कूल या कालेज से संबद्ध छात्रों  
के रहने का स्थान । छात्रावास । ( २ ) रहने का स्थान ।

हौल जौल-संज्ञा स्त्री० [ अ० होल + जौल (अनु०) ] ( १ ) जल्दी ।  
शीघ्रता । ( २ ) जल्दी के कारण होनेवाली घबराहट ।

कि० प्र०-मचाना ।

हौला जौली-संज्ञा स्त्री० दे० "हौल जौल" ।

हौल-वि० [ हि० होल ] जिसके मन में जल्दी हौल होता हो ।  
शीघ्र भयभीत होने वा घबरानेवाला ।

हृस्वकाल-संज्ञा पु० [ सं० ] आक्रमण करते ही प्राप्त होनेवाला  
छाप । ( कौ० )

हृस्व-प्रवासी-संज्ञा पु० [ सं० ] थोड़े समय के लिये बाहर गया  
हुआ मनुष्य । वह जो कुछ ही काल के लिये परदेश गया  
हो । ( कौ० )

चिरोप-देसे प्रवासियों की स्त्रियों के लिये कुछ अवधि नियत  
थी कि वे निश्चित दिनों तक पति की प्रतीक्षा करें । उस  
काल के पहले वे दूसरा विवाह नहीं कर सकती थीं ।

ह्री-संज्ञा स्त्री० [ सं० ] ( ३ ) जैनों के अनुसार महापद्म नामक  
सरोवर की देवी का नाम ।

द्विप-संज्ञा पु० [ अ० ] ( १ ) पार्लमेंट या स्वव्यवस्थापिका सभा का वह  
सदस्य जो अपनी पार्टी या दल के सदस्यों को किसी महत्व  
के प्रश्न पर वोट या मत लिप्युक्त होने के समय, सभा में  
अधिकारिक संख्या में उपस्थित कराता है । दलदल ।  
जैसे,—इस वार परिषद् के स्वराजी दल के द्विप के उद्योग  
से दल के समस्त सदस्य १२ ता० के अधिवेशन में उप-  
स्थित हुए थे ।

चिरोप-द्विप का काम है अपने दल के प्रत्येक सदस्य को सूचित  
करना कि अमुक समय पर अमुक महत्व के विषय पर वोट  
या मत लिप्युक्त जायेंगे, और इस बात का ध्यान रखना कि  
वोट लिप्युक्त होने के पहले सभा से दल का कोई सदस्य बाहर  
न जाने पाये (अर्थात् उन सब को सभा में रोक रक्खना),  
अपने दल के सदस्यों को बताना कि किस प्रकार वोट देना  
चाहिए, वोट लिप्युक्त होने के समय प्रत्येक दल के सदस्यों की  
गणना करना, अपने दल के सदस्यों से मिलते जुलते रहना  
और किसी विषय पर उनका क्या निश्चित मत है, यह  
अपने दल के नेता को विदित करना जिसमें वह निरचय कर  
सके कि कहीं तक हमें इस विषय में अपने दल का सहारा  
मिलेगा । सारांश यह कि द्विप का काम अपने दल के स्वार्थ  
या हित को देखना है ।

( २ ) वाचक । ( ३ ) कोचवान ।



# हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

[ सातवाँ खंड ]

~~संपादक~~

संपादक

श्यामसुंदरदास वी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल

रामचंद्र वर्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारणी सभा

१९२८

गणपति, कृष्ण गुर्जर द्वारा श्रीदत्तमीनारायण प्रेस, काशी में मुद्रित।



## संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेज़ी भाषा  
 अ० = अरबी भाषा  
 अनु० = अनुकरण शब्द  
 अने० = अनेकार्थनाममाला  
 अप० = अपभ्रंश  
 अयोध्या = अयोध्यासिंह  
 उपाध्याय  
 अर्द्धमा० = अर्द्धमागधी  
 अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग  
 अव्य० = अव्यय  
 आनंदघन = कवि आनंदघन  
 इव० = इवराती भाषा  
 उ० = उदाहरण  
 उत्तरचरित = उत्तररामचरित  
 उप० = उपसर्ग  
 उभ० = उभयलिङ्ग  
 कठ० उप० = कठचह्नी  
 उपनिषद्  
 कवीर = कवीरदास  
 केशव = केशवदास  
 कौक० = कौकण देश की भाषा  
 क्रि० = क्रिया  
 क्रि०अ० = क्रिया अकर्मक  
 क्रि०प्र० = क्रियाप्रयोग  
 क्रि० वि० = क्रियाविशेषण  
 क्रि० स० = क्रिया सकर्मक  
 क० = कवित्, अर्थात् इस  
 का प्रयोग बहुत कम  
 देखने में आया है  
 खानखाना = अच्युतहोम  
 खानखाना  
 गि० दा० वा गि० दास =  
 गिरिधरदास ( या०  
 गोपालचंद्र )  
 गिरिधर = गिरिधरराय  
 ( कुंडलियावाले )

गुज० = गुजराती भाषा  
 गुमान = गुमान मिश्र  
 गोपाल = गिरिधरदास  
 ( या० गोपालचंद्र )  
 चरण = चरणचंद्रिका  
 चिंतामणि = कवि चिंतामणि  
 त्रिपाठी  
 छीत = छीतस्वामी  
 जायसी = मलिक मुहम्मद  
 जायसी  
 जाया० = जाया द्वीप की भाषा  
 ज्यो० = ज्योतिष  
 डि० = डिंगल भाषा  
 तु० = तुर्की भाषा  
 तुलसी = तुलसीदास  
 तोप = कवि तोप  
 दादू = दादूदास  
 दीनदयालु = कवि  
 दीनदयालु गिरि  
 दूल्हा = कवि दूल्हा  
 दे० = देवो  
 देव = देव कवि  
 (मैनपुरीवाले)  
 देश० = देशज  
 द्विवेदी = महाशय्यप्रसाद  
 द्विवेदी  
 नागरी = नागरीदास  
 नामा = नामादास  
 निधल = निधलदास  
 पं० = पंजाबी भाषा  
 पद्माकर = पद्माकर भट्ट  
 पर्या० = पर्याय  
 पा० = पाली भाषा  
 पुं० = पुलिङ्ग  
 पु० हिं० = पुरानी हिंदी

पुर्त० = पुर्तगाली भाषा  
 पू० हिं० = पूर्वी हिंदी  
 प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र  
 प्रत्य० = प्रत्यय  
 प्रा० = प्राकृत भाषा  
 प्रिया = प्रियादास  
 प्रे० = प्रेरणार्थक  
 प्रे० सा० = प्रेमसागर  
 फ० = फ़रासीसी भाषा  
 फ़ा० = फ़ारसी भाषा  
 वँग० = वँगला भाषा  
 वरमी० = वरमी भाषा  
 बहु० = बहुवचन  
 विहारी = कवि विहारीलाल  
 बुं० खं० = बुंदेलखंड बोली  
 बेनी = कवि बेनी प्रवीन  
 भाव = भाववाचक  
 भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी  
 मतिराम = कवि मतिराम  
 त्रिपाठी  
 मला० = मलायम भाषा  
 मलूक = मलूकदास  
 मि० = मिलाजो  
 मुहा० = मुहायिरा  
 यू० = यूनानी भाषा  
 यौ० = यौगिक तथा दो  
 या अधिक शब्दों के पद  
 रघु० दा० = रघुनाथदास  
 रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन  
 रघुराज = महाराज  
 रघुराजसिंह दीवानरेश  
 रसखान = मैयद इम्राहीम  
 रसनधिप = राजा पृथ्वीसिंह  
 रहीम = अच्युतरहीम  
 खानखाना

लक्ष्मणसिंह = राजा  
 लक्ष्मणसिंह  
 ललू = लल्लाल  
 लशू० = लशकरी भाषा;  
 अर्थात् हिंदुस्तानी  
 जहाजियों की बोली  
 लाल = लाल कवि ( छत्र-  
 प्रकाशवाले )  
 लै० = लैटिन भाषा  
 वि० = विशेषण  
 विश्राम = विश्रामसागर  
 व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी  
 व्या० = व्याकरण  
 व्यास = अशिकादत्त व्यास  
 शं० दि = शंकर दिग्विजय  
 शृं० सत० = शृंगार सतसई  
 सं० = संस्कृत  
 संयो० = संयोजक अव्यय  
 संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया  
 स० = सकर्मक  
 सयल = सयलसिंह चौहान  
 सभा० वि० = सभाविलास  
 सर्व० = सर्वनाम  
 सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी  
 सूदन = सूदन कवि  
 ( भरतपुरवाले )  
 सू० = सू०दास  
 खि० = खियों द्वारा प्रयुक्त  
 खी० = खीलिंग  
 रूप० = रूपनी भाषा  
 हिं० = हिंदी भाषा  
 हनुमान = हनुमन्नाटक  
 हरिदास = स्वामी हरिदास  
 हरिचंद्र = भारतेंदु हरिचंद्र

⊗ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त है ।

† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग भौतिक है ।

⊕ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप प्रायः है ।





